आनन्दरामायणम्

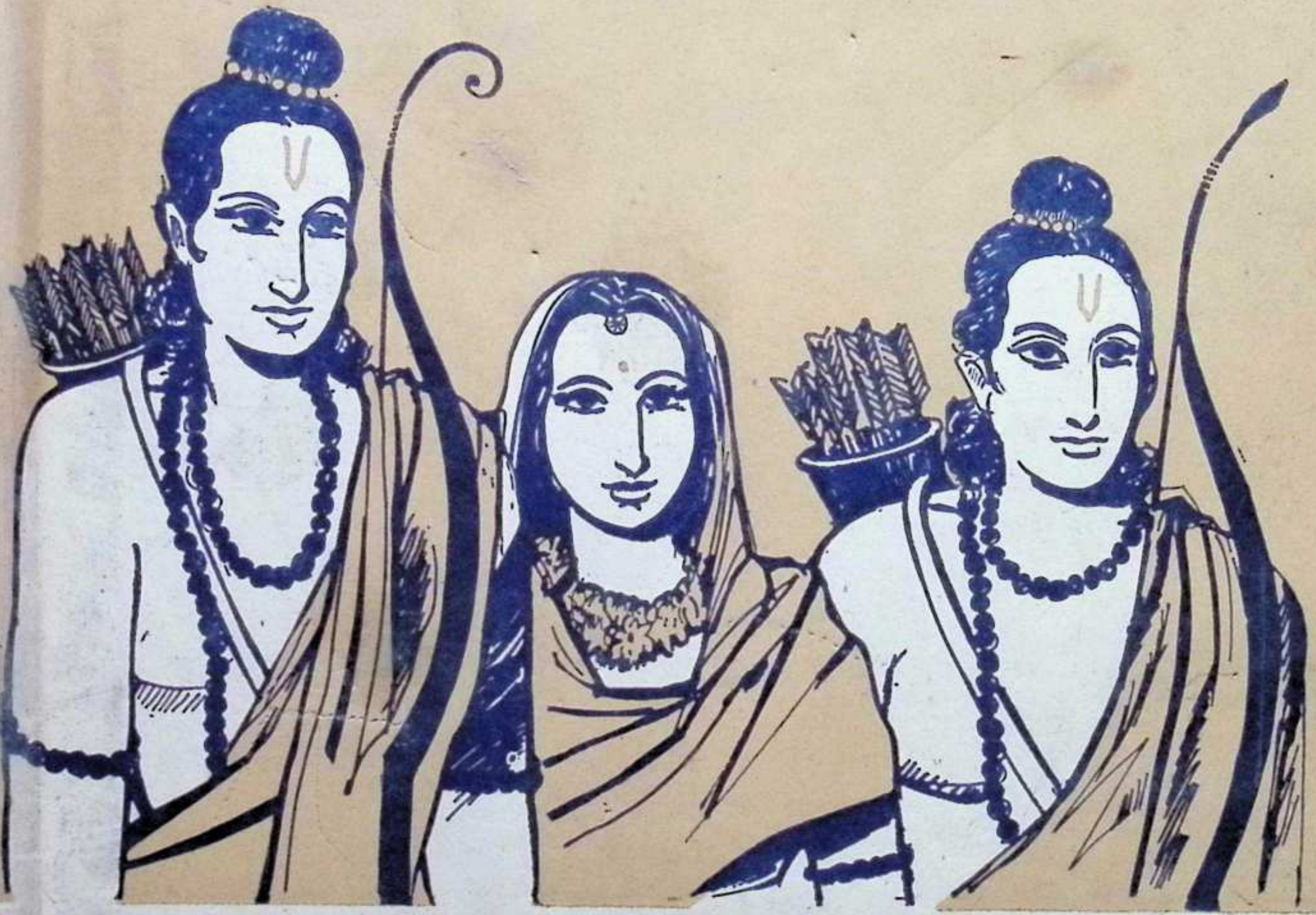

पं॰ श्री रामतेज पाण्डेय

चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान

दिल्ली

C. V. Bhawan
Rs. 200/-
200/-

डाक्टर [illegible] रमण रैणी, [illegible] स्मारक पुस्तकालय

॥ श्रीः ॥

व्रजजीवन प्राच्यभारती ग्रन्थमाला
७

श्रीरामचन्द्रो विजयतेतराम्

श्रीवाल्मीकिमहामुनिकृतशतकोटिरामचरितान्तर्गतं

आनन्दरामायणम्

साहित्यशास्त्रिणा पं० रामतेजपाण्डेयेन कृतया 'ज्योत्स्ना'ऽभिधया
भाषाटीकयाऽऽटीकितम्

चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान
३८ यू० ए०, जवाहरनगर, बंगलो रोड,
दिल्ली ११०००७

प्रकाशक

चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान

(प्राच्यभारती के प्रकाशक एवं वितरक)

३८ यू. ए., जवाहरनगर, बंगलो रोड

पो० बा० नं० २११३

दिल्ली ११०००७

दूरभाष : २३६३९१

पुनर्मुद्रित संस्करण १९८६

मूल्य - २००-००

अन्य प्राप्तिस्थान

चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन

के० ३७/११७, गोपालमन्दिर लेन

पो० बा० नं० ११२९, वाराणसी २२१००१

*

प्रधान-वितरक

चौखम्बा विद्याभवन

चौक (बनारस स्टेट बैंक भवन के पीछे),

पो० बा० नं० १०६९, वाराणसी २२१००१

दूरभाष : ६३०७६

मुद्रक

श्रीजी मुद्रणालय

वाराणसी

6975

THE
VRAJAJIVAN PRACHYABHARATI GRANTHAMALA
7

THE ĀNANDARĀMĀYAṆA

OF
VĀLMĪKI
WITH
THE JYOTSNĀ HINDI COMMENTARY
BY

PANDIT RAMTEJ PANDEYA
Sāhityaśāstrī

1986
CHAUKHAMBA SANSKRIT PRATISHTHAN
DELHI (INDIA)

© CHAUKHAMBA SANSKRIT PRATISHTHAN

(Oriental Publishers & Distributors)

38 U. A., Jawaharnagar, Bungalow Road

DELHI 110007

Telephone : 236391

294.5922
P 192 a

Reprint Edition

1986

294.5922
PAN

Also can be had of

CHAUKHAMBA SURBHARATI PRAKASHAN

K. 37 117, Gopal Mandir Lane

Post Box No. 1129

VARANASI 221001

*

Sole Distributors

CHOWKHAMBA VIDYABHAWAN

CHOWK (Behind The Benares State Bank Building)

Post Box No. 1069

VARANASI 221001

Telephone : 63076

प्राक्कथन

इस पुनीत भारतभूमिपर जितने भी कवि हुए, जिनके मस्तिष्कमें कुछ भी प्रतिभा जागी, जिनकी लेखनीमें कुछ भी ओजका उदय हुआ और जिनकी सूझमें कुछ भी अनोखापन आया, उन सबने अपनी-अपनी पहुँचके अनुसार मर्यादापुरुषोत्तम आनन्दकन्द राघवेन्द्र श्रीरामचन्द्रके यशोगानमें ही अपनी अनूठी कलाकी चमत्कृति दिखायी। ऐसा करके भगवान् रामकी अनपायिनी कीर्तिके साथ वे भी सदाके लिए अमर हो गये। विकराल कालके अहर्निश पैंतरे बदलते रहनेपर भी वे महामनीषी कवि सूर्य-चन्द्रके सदृश भक्तोंके हृदयाकाशमें जग-मगाते रहे। इस जगतीतलमें रामनामकी महिमा गानेवाली जितनी रामायणें प्रस्तुत हैं, सब अपने-अपने ढङ्गसे भगवान् कोसलकिशोरका गुणगान करके अन-गिनत भावुक भक्तोंको आप्यायित करती हैं। उनमें अन्तर केवल इतना ही है कि कुछ कविपुङ्गव आदिकवि महर्षि वाल्मीकिके सदृश भगवान् कौसल्यानन्दनको एक राजकुमारके रूपमें हमारे सामने उपस्थित करते हैं और उनके परमोज्ज्वल कार्यकलापको अपने अनुपम काव्य-कौशलसे सँवारते हुए महत्ताकी पराकाष्ठापर पहुँचा देते हैं। कुछ लोकपूज्य गुसाईं तुलसीदास सरीखे अनन्य भक्त कवि हैं, जो अपने भक्तिरसकी मन्दाकिनीमें गोते लगाते हुए भगवान् रामको मर्यादा-पुरुषोत्तम ही नहीं, बल्कि उन्हें निखिलभुवनमण्डलके सचराचर जीवोंका अधीश्वर कहकर भी तृप्त नहीं होते। किन्तु हमारे आनन्दरामायणके रचयिताकी शैली ही अनोखी है। ये दोनों भावोंको बड़ी चतुराईके साथ सम्हालते हुए अबाधरूपसे श्रीरामचन्द्रके पावन चरित्रोंका वर्णन करते चले जाते हैं। ये अपने ग्रन्थमें न तो मन उबा देनेवाली अत्युक्तिमयी वार्ताओंका समावेश होने देते हैं और न महत्त्वके चरित्रको छोड़ते ही हैं।

अधिकांश रामायणकार भगवान् राघवेन्द्रके जन्मसे अपनी कथावस्तु आरम्भ करते हैं और विभिन्न कथाओंका वर्णन करते हुए रावणविजय कराके उन्हें अयोध्याकी राजगद्दीपर बिठाल एवं बालरूपधारी रामको राजा रामके स्वरूपमें देखकर अलग हो जाते हैं। वहाँ ही उनकी कथा समाप्त हो जाती है। किन्तु हमारे परम प्रतिभासम्पन्न आनन्दरामायणकार उन सामग्रियोंको जो अन्यान्य कवियों-की सारी पूँजी है, अपने 'सारकाण्ड' नामके एक काण्डमें ही कह डालते हैं। इसके बाद भगवान्के उन चरित्रोंका वर्णन करने लग जाते हैं, जहाँतक किसी कविकी आँखें ही नहीं पहुँचीं। ये भगवान्से भारतवर्षके सभी तीर्थोंकी यात्रा कराते हैं। अनेकानेक अश्वमेध यज्ञ सम्पन्न कराते हैं। राम-लक्ष्मण आदिकी अनेकानेक

सन्ततियोंके जन्मका वर्णन करते हैं। फिर अनेकानेक स्वयंवरोंमें उनके विवाह कराते हैं। भगवान् रामचन्द्र और महारानी सीताकी ऐसी-ऐसी सुन्दर लीलाओंका दिग्दर्शन कराते हैं कि जिन्हें अबतक कोई अपनी कल्पनामें भी नहीं ला सका था। भगवान्‌के दिग्विजयकी गाथा और अनूठा भूगोलवर्णन तो इस महाग्रन्थकी अनमोल निधि ही है। इनके अतिरिक्त भगवान्‌की विभिन्न स्तुतियाँ, विविध अनुष्ठान, अनेक प्रकारके रामलिंगतोभद्रोंकी रचनाका प्रकार आदि ऐसे-ऐसे विषय वर्णित हैं कि जिन्हें देखकर सर्वथा नीरस मानवमनमें भी भक्तिमयी त्रिपथगाकी अलौकिक धारा उमड़ पड़ती है। यह सब होते हुए भी पूरे ग्रन्थमें यह कहीं नहीं लक्षित हो पाता कि इस बहुमूल्य रामायणका वास्तविक रचयिता कौन है। यद्यपि प्रत्येक सर्गकी समाप्तिपर "इति श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये" ऐसा संकल्पवाक्य लिखा मिलता है, किन्तु लघुरामायणके सिवाय महर्षि वाल्मीकिकृत रामायणका कहीं कोई अंश यहाँ दृष्टिगोचर नहीं होता। इस रामायणमें बहुतेरी बातें ऐसी पायी जाती हैं—कुछ वर्णन ऐसे मिलते हैं, जो वाल्मीकीय रामायणसे सर्वथा अनोखे हैं। अस्तु, जबतक किसी धुरन्धर विद्वान् अन्वेषकको इस ग्रन्थके ग्रन्थकारकी खोजमें सफलता न मिल जाय, तबतक प्रस्तुत महाग्रन्थको महर्षि वाल्मीकिकी सौ करोड़ श्लोकात्मिका रचनाओंके अन्तर्गत मानते हुए अपने श्रद्धाङ्कुरको आनन्दरामायणकी आनन्दमयी कथाओंके पावन गङ्गाजलसे सींचना ही उपयुक्त होगा।

यद्यपि हमने इस महान् ग्रन्थकी छपाई तथा कागज-टीका-संशोधन-जिल्द आदि सब तरहसे सँवारनेकी सतत चेष्टा की है, फिर भी यदि कहीं किसी प्रकारकी कोई त्रुटि दीख जाय तो उसे आप विधिका विधान अथवा हमारी कमजोरी समझते हुए अपनी सहज दयालुतावश क्षमा कर दें। क्योंकि—

दृष्टं किमपि लोकेऽस्मिन् निर्दोषं न निर्गुणम्।
तस्माद्दोषान्परित्यज्य गृह्णन्तु गुणान्बुधाः॥

काशीधाम
पौषी पूर्णिमा
सं० २०३३

वंशवद
पाण्डेय रामतेज शास्त्री

श्रीहरिः

श्रीमदानन्दरामायणस्थविषयानुक्रमणिका

विषय — पृष्ठ

सारकाण्ड

प्रथम सर्ग

मङ्गलाचरण — १

रघुवंशकी संक्षिप्त वंशावली — २

रावणका ब्रह्मासे अपने मरणका हेतु पूछना, ब्रह्माका रामके हाथों रावणके मरणका भविष्य बतलाना और रावणका कौसल्याको सन्दूकमें बंद करके समुद्रनिवासी तिमिंगिलको सौंपना — ३

महाराज दशरथके साथ कौसल्याका गांधर्व-विवाह — ४

दशरथजीका सुमित्रा-कैकेयीके साथ विवाह, महाराज दशरथका देव-दानवयुद्धमें जाना — ५

उस युद्धमें कैकेयीका रथकी टूटी धुरीमें अपना हाथ लगाकर राजा दशरथके प्राण बचाना, जिससे दशरथजीका कैकेयीको दो वरदान देना तथा अयोध्याको सकुशल लौटना — ६

राजा दशरथ द्वारा श्रवणका वध और श्रवणके अंधे माता-पिताका शाप देना — ७

ऋष्यशृङ्ग द्वारा पुत्रेष्टि यज्ञ सम्पन्न होना और अग्निका प्रकट होकर हवि देना — ७

द्वितीय सर्ग

पृथ्वीका दुःखित होकर देवताओंके पास जाना और सब देवताओंका क्षीरसागर जाकर विष्णुभगवान्‌की स्तुति करना और भगवान्‌की आकाशवाणी सुनना, राम-लक्ष्मण-भरत-शत्रुघ्नका जन्म और उन पुत्रोंकी बाल-लीला — ८

गुरु वसिष्ठका रामादि चारों भाइयोंको शास्त्रीय शिक्षा देना — ९

तृतीय सर्ग

महामुनि विश्वामित्रका राजा दशरथकी सभामें जाकर यज्ञरक्षार्थ राम-लक्ष्मणको माँगना, मार्गमें विश्वामित्रका दोनों बालकोंको शस्त्रास्त्रकी शिक्षा देना और श्रीरामके हाथों ताड़कावध — १०

विषय — पृष्ठ

राम-लक्ष्मणको लेकर विश्वामित्रका जनकपुरको प्रस्थान और अहल्योद्धार — ११

रामके आगमनसे जनकपुरनिवासिनी ललनाओंका हर्षोल्लास — १३

राजा जनक द्वारा अपनी प्रतिज्ञाकी घोषणा — १४

रावण द्वारा धनुष उठानेका प्रयास और उसमें विफलता, सभामें रामका आगमन — १५

सीताका रामको देखना और मुग्ध होकर मन ही मन देवताओंसे प्रार्थना करना — १७

रामके हाथों शिवधनुष टूटना — १८

राजा जनकके आज्ञानुसार सीताका राजसभामें आना और रामके गलेमें वरमाला डालना — १९

राजा जनकका महाराज दशरथके पास निमंत्रण भेजना, रामादि चारों भ्राताओंके विवाहका निश्चय और सीताके जन्मका वृत्तान्त — २१

राम-लक्ष्मण-भरत-शत्रुघ्नका क्रमशः सीता-उर्मिला-माण्डवी और श्रुतकीर्तिके साथ विवाह और एक मास बाद महाराज दशरथका अयोध्याको प्रस्थान — ३०

मार्गमें राम-परशुरामका साक्षात्कार — ३१

राम द्वारा परशुरामका गर्वभञ्जन और परशुरामका रामको आत्मकथा सुनाना — ३२

महाराज दशरथका अयोध्यामें पहुँचना और उत्सव मनाना — ३३

चतुर्थ सर्ग

दीपावलीके अवसरपर पुनः राजा जनकका महाराज दशरथको बुलाना और तदनुसार उनका प्रस्थान — ३४

जनकपुरमें राजा दशरथका सत्कार और जनकपुरसे लौटते समय रास्तेमें उनको बहुतेरे वैरी राजाओंका घेरना — ३५

रामका उन राजाओंके साथ घोर युद्ध और भरतका मूर्छित होना — ३६

रामके आज्ञानुसार लक्ष्मणका मुद्गल मुनिके आश्रममें सञ्जीवनी बूटी लेने जाना और आश्रमवासियों द्वारा उपस्थित की गयी

विषय	पृष्ठ
बाधाओंको दूर करके हठात् संजीवनी लाकर भरतको जीवित करना	३७
महाराज दशरथका मुनि मुद्गलसे रामके भविष्यका प्रश्न और उसका संतोषजनक उत्तर पाना	३८
वृंदाका वृत्तांत और उसके द्वारा विष्णु भगवान्‌के शापित होनेका इतिहास	३९
सौराष्ट्रके एक भिक्षु ब्राह्मण तथा उसकी स्त्री कलहाका उपाख्यान	४१
पञ्चम सर्ग	
धर्मदत्त विप्र द्वारा कलहाका उद्धार	४५
रामका सीताके साथ अयोध्यामें सानन्द निवास	४८
रामकी संक्षिप्त दिनचर्या	४९
महाराज दशरथका रामसे ज्ञानोपदेश सुनानेकी प्रार्थना करना और रामका ज्ञानोपदेश देना	५१
षष्ठ सर्ग	
नारदका रामको देवताओंका संदेश सुनाना	५३
राम-सीताका परस्पर वनगमनसम्बन्धी परामर्श	५४
रामके राज्याभिषेककी तैयारी, गुरु वसिष्ठका रामके महलोंमें जाना और उपदेश देना, अभिषेककी तैयारी देखकर मन्थराका दु:खित होना	५५
मंथराका कैकेयीके पास जाकर उसे उत्तेजित करना और धरोहरस्वरूप रखे दोनो वरदान माँगनेको प्रेरित करना, तदनुसार कैकेयीका कोपभवनप्रवेश, राजा दशरथका उसके पास पहुँचना और वरदानकी बात सुनकर विकल होना, प्रात:काल रामका पिताके पास जाकर धैर्य देना	५६
कैकेयीके रामवनगमनसम्बन्धी वरदान माँगनेके समाचारसे पुरवासियोंकी व्याकुलता दूर करनेके लिए वामदेवको रामकी प्रतिज्ञा तथा नारदके आगमनकी बात बताना	५७
राम-लक्ष्मण-सीताका वनगमन	५७
प्रयाग होते हुए रामका चित्रकूट पहुँचना, जयंतकी कथा तथा दशरथमरण	५८
भरतका ननिहालसे आकर पिताकी क्रिया करनेके बाद चित्रकूट जाना और रामके अनुरोधसे उनकी चरणपादुका लेकर अयोध्या लौटना	६०
रामका अत्रिके आश्रमपर जाना	६०
सप्तम सर्ग	
रामके द्वारा विराधका वध	६२
सुतीक्ष्णके आश्रमपर रामका जाना और वहाँसे अगस्त्यके आश्रमपर होते हुए पञ्चवटी पहुँचना, वहाँ जटायुसे मिलन और लक्ष्मणके हाथों सूर्पणखाके पुत्र साम्बका मरण	६३
लक्ष्मणका सूर्पणखाके नाक-कान काटना	६४
रामके हाथों खरदूषण-त्रिशिरा और उनकी चौदह हजार राक्षसी सेनाका निधन तथा सूर्पणखाका लंकामें रावणके पास जाना	६५
सीताके अनुरोधसे रामका मृग मारीचके वधको जाना और रावण द्वारा सीताका हरण	६७
जटायु-रावणयुद्ध, पञ्चवटीकी कुछ विशेष कथाएँ	६८
राम-लक्ष्मणका लौटकर आश्रम पहुँचना, वहाँ मरणोन्मुख जटायुसे रावण द्वारा सीताहरणका वृत्तांत सुनना और रामका मृत जटायुकी अपने हाथों दाहक्रिया करना	६९
सीताको व्यग्रभावसे खोजते हुए रामको देखकर पार्वतीका वहाँ पहुँचना और उनके ईश्वरत्वकी परीक्षा करना, कबन्धवध और कबन्धकी आत्मकथा	
रामका शबरीके आश्रमपर पहुँचना और शबरीको मुक्ति प्राप्त होना, वहाँसे रामका पम्पासरोवर जाना	७१
अष्टम सर्ग	
राम-सुग्रीवकी मित्रता और सुग्रीवका रामको अपना दु:ख सुनाना	७२
वालि-सुग्रीवयुद्ध और रामके हाथों वालिका मरण तथा रामका वालिको वरदान	७५
रामका प्रवर्षण पर्वतपर निवास, कालांतरमें सुग्रीवको सीताकी खोजके विषयमें निश्चिन्त देखकर रामका लक्ष्मणको भेजना	७६
सुग्रीवका बहुतेरे वानरोंको सीताकी खोजके लिये भेजना और हनुमान्‌-अङ्गद आदिका एक तपस्विनीसे मिलना	७७
अङ्गद आदिका सम्पातीसे मिलना और सम्पातीका अपना पूर्ववृत्तांत बताते हुए सीताके मिलनेका उपाय बताना	७९
नवम सर्ग	
हनुमान्‌ द्वारा समुद्रलङ्घन और मार्गमें नागमाता सुरसासे साक्षात्कार	७९

विषय	पृष्ठ
हनुमान्‌जीके द्वारा सिंहिकावध, समुद्रपार पहुँचकर रात्रिके समय हनुमान्‌जीका लङ्कामें प्रवेश और लङ्किनीसे साक्षात्कार	८०
हनुमान्‌का रावणके भवनमें जाकर उसकी दाढ़ी-मूँछ जलाना, मन्दोदरीको सीताके सदृश सुन्दरी देखकर हनुमान्‌का चकराना, सीता और मन्दोदरीके सादृश्यका कारण	८१
हनुमान्‌जीका सीताके समक्ष पहुँचना	८३
उसी समय रावणका सीताके पास जाकर विविध प्रलोभन देना और सीताका रावणको फटकारना	८४
बातोंसे हारकर रावणका सीताको मारनेके लिए उद्यत होना और मन्दोदरीका रोकना	८५
बहुतेरी राक्षसियोंको सीताको डराने-धमकानेके लिए नियुक्त करके रावणका अपने घर जाना	८५
त्रिजटाका सीताको आश्वासन, हनुमान् द्वारा रामयश वर्णन और प्रकट होकर राममुद्रिका-प्रदान	८६
हनुमान्‌का अशोकवाटिका उजाड़ना	८७
हनुमान्‌का रावणके भेजे हुए बहुतेरे सैनिकोंको मारना	८८
मेघनादके ब्रह्मपाशमें बँधकर हनुमान्‌का रावणके समक्ष जाना	८९
हनुमान्‌का रावणको सदुपदेश और रावणका दैत्योंको हनुमान्‌की पूँछ जलानेका आदेश देना	९१
हनुमान् द्वारा लङ्कादहन	९२
लङ्का भस्म कर देनेपर सीताके भी जल मरनेकी बात सोचकर हनुमान्‌का दुःखी होना और आकाशवाणी सुनकर धीरज धरना	९३
लङ्काका प्राचीन इतिहास, गज-ग्राहकथाके प्रसंगमें ग्राहके पूर्वजन्मकी कथा, गज-ग्राहका सहस्रवर्षव्यापी युद्ध और भगवान् द्वारा गजका उद्धार	९४
गरुड़का एक गजको लेकर भक्षण करनेके लिए त्रिकूट पर्वतपर पहुँचना और हनुमान्‌का अशोकवाटिकामें सीतासे फिर मिलना	९६
लङ्कासे लौटते समय एक मुनिके द्वारा हनुमान्‌का गर्वापहार	९७
समुद्रके इस पार आकर हनुमान्‌का अङ्गद आदिसे मिलना और वहाँसे चलकर मधुवन होते हुए रामके पास पहुँचकर उन्हें सीताका हाल सुनाना	९८

दशम सर्ग

विषय	पृष्ठ
हनुमान्‌का रामको लङ्काका स्वरूप बतलाना	९९
रामका लङ्काको प्रस्थान	१००
उधर लङ्कामें हनुमान्‌का पराक्रम देखकर रावणका घबड़ाना और राजसभामें जाकर परामर्श करना, विभीषणका समझाना और रावणसे तिरस्कृत होकर रामकी शरणमें जाना	१०१
राम-विभीषणमें मैत्री, रामका कुपित होकर समुद्रपर आग्नेय बाण चलानेको उद्यत होना और समुद्रका सेतुबन्धके लिए उपाय बताना, रामका समुद्रतटपर शिवलिंग स्थापित करनेका निश्चय करके हनुमान्‌को शिवलिंग लानेके लिए काशी भेजना	१०३
शिवजीका हनुमान्‌को एक प्राचीन इतिहास बताना	१०४
विंध्यपर्वतकी वृद्धिसे देवताओं तथा मनुष्योंकी घबड़ाहट और अगस्त्य मुनिका विन्ध्यके कोपको शांत करनेके लिए काशीका त्याग	१०६
राम द्वारा हनुमान्‌का गर्वहरण	१०७
हनुमान्‌का अपनी लायी मूर्तिको अलग स्थापित करना और रामका वरदान देना	१०८
शिवजीका रामको एक प्राचीन इतिहास बताना और रामके आज्ञानुसार नलका सेतुरचना करना	१११
रावणको शुकका सदुपदेश और उसके द्वारा शुकका तिरस्कृत होना, शुकके पूर्वजन्मकी कथा	११२
रामके आदेशसे अङ्गदका लङ्का जाना और लौटते समय रावणका एक महल उठाते लाना	११३
अङ्गदके मुखसे रावणकी दर्पोक्ति सुनकर सुग्रीवका रावणके पास जाना और उसके साथ मल्लयुद्ध करना	११४
माल्यवान्‌का रावणको उपदेश	११५

एकादश सर्ग

विषय	पृष्ठ
राम-रावणका युद्धारम्भ	११६
वानरी सेनापर मेघनादका शक्तिप्रयोग और रामकी आज्ञासे हनुमान द्वारा लायी हुई द्रोणगिरिकी औषधिसे सबकी मूर्छा दूर होना	११७

विषय	पृष्ठ
रावणका लक्ष्मणपर शक्तिप्रयोग और हनुमान्‌का द्रोणगिरि लाते समय कालनेमिसे भेंट	११८
तड़ागपर जल पीनेके लिए गये हुए हनुमान्‌को मगरीका पकड़ना, हनुमान्‌के हाथों कालनेमिका वध और वहाँसे चलकर हनुमान्‌का भरतके बाणप्रहारसे मूर्छित होकर गिरना	१२०
ऐरावण-मैरावण द्वारा राम-लक्ष्मणका हरण	१२०
हनुमान्‌का राम-लक्ष्मणको खोजने पाताल जाना, वहाँ मकरध्वजसे भेंट, मकरध्वजका अपनी जन्मकथा सुनाना और हनुमान्‌का कामाख्यादेवीके मंदिरमें प्रवेश	१२१
हनुमान्‌का मैरावणकी पत्नीसे ऐरावण-मैरावणके मरणका उपाय पूछना और उस नागकन्याका उन दोनोंकी मृत्युका उपाय बताना	१२२
रामके द्वारा ऐरावण-मैरावणका वध	१२४
उस नागकन्याको रामका वरदान, रावणका कुम्भकर्णको जगाना, रावणकी प्रेरणासे उसका समरभूमिमें जाना और रामके हाथों कुम्भकर्णका निधन	१२५
मेघनादका निकुम्भिला देवीके मंदिरमें जाकर यज्ञ करना और हनुमान् तथा लक्ष्मण द्वारा यज्ञविध्वंस	१२६
लक्ष्मण द्वारा मेघनादका वध	१२७
सुलोचनाका सती होना	१२८
रावणका सीताको रामका कटा हुआ नकली सिर दिखाना	१२९
मन्दोदरीका रावणको समझाना और रावणका रामके समक्ष नकली सीताको काटना	१३०
राम-रावणका भीषण युद्ध	१३१
रामके हाथों रावणका वध	१३२

द्वादश सर्ग

विषय	पृष्ठ
राम-सीताका मिलन	१३३
रामकी अयोध्या लौटनेकी तैयारी और विभीषणके प्रश्न	१३४
रामका त्रिजटाको वरदान	१३५
रामका अवध-प्रस्थान, मार्गमें सम्पातीसे भेंट और रामका सीताको विविध दृश्य दिखाना	१३६
उधर अवधि बीतते देखकर भरतका चितामें कूदनेको तैयार होना और उसी समय हनुमान्‌जीका पहुँचना	१३७
राम-भरतका मिलन	१३८
रामका राज्याभिषेक	१३९
श्रीशिवजीके द्वारा रामकी स्तुति	१४०
राज्याभिषेकोत्सवपर स्वर्गसे महाराज दशरथका आना, रामका ब्राह्मणों-मित्रों तथा परिवारके लोगोंको उपहार देना	१४१
हनुमान्‌को रामके विविध वरदान और भोजनके समय हनुमान्‌का कौतुक	१४२
पुष्पक विमान, सुग्रीव तथा विभीषणकी विदाई	१४३
रामके रणयज्ञकी समाप्तिका वर्णन	१४४

त्रयोदश सर्ग

विषय	पृष्ठ
रामके यहाँ अगस्त्य आदि ऋषियोंका आगमन, रामका अगस्त्यसे मेघनादका वृत्तांत पूछना और उनका बताना	१४६
रावण-कुम्भकर्ण आदिकी जन्मकथा	१४७
माताकी आज्ञासे रावणका शिवलिंग लेने कैलाश जाना और अपने मस्तक काटकर शिवजीको प्रसन्न करना तथा वरदान पाना	१४८
रावण कुम्भकर्ण-विभीषणका तप करके ब्रह्माको प्रसन्न करना और उनसे वरदान पाना	१४९
रावणको कुबेरपुत्र नलकूबरका शाप, मेघनादका इन्द्रको पराजित करना और उसका इन्द्रजित् नाम पड़ना	१५०
रावणका बालिसे लड़ने जाना और बालिका उसे अपनी कांखमें रख लेना	१५१
रावणका वानरराज बालिसे युद्ध करने जाना और परास्त होना	१५२
रावणका राजा अनरण्यसे युद्ध और उनका रावणको शाप	१५३
रावण-सनत्कुमारका वार्तालाप, रावणकी श्वेतद्वीपयात्रा और वहाँकी स्त्रियोंके हाथों पिटना	१५४
बालि-सुग्रीवकी जन्मकथा	१५५
ब्रह्माका बालिको किष्किंधाका राज्य देना और हनुमान्‌की जन्मकथा	१५६
हनुमान्‌का सूर्यको निगलना, हनुमान्‌पर इन्द्रका वज्रप्रहार, पवनका कोप और हनुमान्‌को ब्रह्माका वरदान	१५७
इन्द्रका राहुको सूर्य देना और हनुमान्‌को मुनियोंका शाप मिलना	१५८
रामराज्यके सुखका वर्णन	१५९

विषय पृष्ठ

यात्राकाण्ड

प्रथम सर्ग

श्रीशिवजीसे पार्वतीके प्रश्न और शङ्कर-जीका उत्तर १६१
सहसा वाल्मीकिके मुखसे कविताका प्रादुर्भाव १६२
ब्रह्माका वाल्मीकिके आश्रमपर जाकर राम-चरित्र लिखनेका आग्रह करना १६३

द्वितीय सर्ग

वाल्मीकिका रामायणनिर्माण, उसे सुननेके लिए देवता-यक्ष-नागादिकोंका आगमन १६४
रामायण प्राप्त करनेके लिए उनमें परस्पर कलह और विष्णुभगवान् द्वारा रामायणका विभाजन १६५
नारदजीके द्वारा व्यासजीको चार श्लोक प्राप्त होना १६७

तृतीय सर्ग

पार्वतीका शंकरजीसे रामदास विष्णुदासके परिचर्याविषयक प्रश्न और शिवजीका उत्तर १६९
सीताका रामसे गङ्गातटपर चलनेकी प्रार्थना १७१
रामका लक्ष्मणको यात्राकी तैयारी करनेका आदेश देना १७२
गङ्गायात्रासम्बन्धी समाचारसे प्रजाजनमें उल्लासकी लहर १७३

चतुर्थ सर्ग

रामचन्द्रका ज्योतिषी बुलाकर उत्तम मुहूर्त पूछना १७४
रामचन्द्रका गंगातटको प्रस्थान १७५
यात्राकालीन उल्लासका वर्णन १७६
रामका महर्षि मुद्गलके आश्रमपर पहुंचना १७८
महर्षि मुद्गलका अपने नवीन आश्रमसे रामके दर्शनार्थ प्राचीन आश्रमपर जाना और पूछनेपर आश्रमत्यागका कारण बतलाना, रामका मुनि मुद्गलसे सरयूकी श्रेष्ठताके विषयमें प्रश्न और मुनिका उत्तर १७९
रामके आदेशसे लक्ष्मणका बाण चलाकर सरयूके दो भाग करके एक भागको मुद्गलके पूर्व आश्रमपर लाना १८०

पञ्चम सर्ग

सीताका गंगापूजनकी तैयारी करना, कौसल्या आदि सासुओं, सोहागिन स्त्रियों तथा बहुतेरे

विषय पृष्ठ

ब्राह्मणोंके साथ सीताका ससमारोह गंगापूजन करना १८१
रामके दर्शनार्थ च्यवन मुनिका आना और मागधोंसे प्राप्त होनेवाले कष्टोंका वर्णन करना, उनका दु:ख दूर करनेके लिए रामका अपने बाणसे अलंघ्य खाई खोदना १८२
कुम्भोदर मुनिका रामदूतोंसे वार्तालाप, दूतोंके आग्रह करनेपर भी उनका बिना भोजन किये लौटना और पूछनेपर कारण बताना १८३
कुम्भोदर मुनिके आक्षेप सुनकर रामका तीर्थ-यात्राकी तैयारी करना, पुष्पक विमानका रामके आदेशसे दस योजन विस्तृत और सौ खंडका ऊँचा होना १८४
रामका तीर्थयात्राके लिए प्रस्थान १८५
रामकी चार ध्वजाओंका वर्णन १८६

षष्ठ सर्ग

रामका सदल-बल प्रयाग पहुंचना, वहांसे चलकर काशी पहुंचना और विविध लोकोप-कारी कार्य तथा दान करते हुए एक साल वहाँ रहना १८७
काशीमें रामका अनेक तीर्थोंकी स्थापना करना १८८
रामकी गयायात्रा, वहाँ फल्गुनदीमें सीताके बालुकाकी दुर्गा बनाते समय राजा दशरथका अपने हाथों बालूकापिण्ड लेना १९१
पिताको पिण्डदान देते समय राजा दशरथका हाथ न दीखनेपर रामका विस्मित होना, लक्ष्मण और सीतासे पूछनेपर सीताका कारण बताना १९२
सीताका आम्रवृक्ष, फल्गुनदी, गयावाल ब्राह्मणों, बिल्ली तथा अग्निको साक्षी देनेके लिए कहना और उनके इनकार करनेपर शाप देना, अन्तमें सूर्यकी साक्षीसे प्रसन्न रामके पिता दशरथका प्रत्यक्ष प्रकट होना १९३

सप्तम सर्ग

रामकी दक्षिण भारतकी तीर्थयात्राका विवरण १९५
तोताद्रिमें कन्याकुमारीका रामसे भेंट और रामका उसे वरदान देना १९८

अष्टम सर्ग

भारतके पश्चिमी प्रदेशके तीर्थोंकी यात्राका विवरण, सवारीपर बैठकर यात्रा करनी चाहिए या

विषय	पृष्ठ
नहीं, इस विषयणमें रामदास-विष्णुदासका प्रश्नोत्तर	२००
पुष्पक बिमानपर नित्य करोड़ों ब्राह्मणोंके भोजनका प्रबन्ध	२०१
रामके पुष्पक विमानको देखकर अन्यान्य तीर्थवासियोंकी विविध कल्पनायें	२०३

नवम सर्ग

विषय	पृष्ठ
उत्तर दिशाकी तीर्थयात्राका विवरण, रामकी बदरीनारायण तथा मानसरोवरकी यात्रा, वहाँसे कैलास जाना और यहाँपर सीताका कामधेनु गौ पाना	२०४
सब तीर्थोंकी यात्रा करके रामका अयोध्या लौटना	२०५
अयोध्यामें रामका भव्य स्वागत	२०६
यात्राकाण्डकी फलश्रुति	२०७

यागकाण्ड

प्रथम सर्ग

विषय	पृष्ठ
अश्वमेध यज्ञके लिए रामका गुरु वसिष्ठसे परामर्श	२०९
वसिष्ठका लक्ष्मणको यज्ञकी तैयारीके लिये आदेश देना	२१०
यज्ञकी सामग्रियोंका विवरण	२११

द्वितीय सर्ग

विषय	पृष्ठ
राम-सीताका यज्ञकी दीक्षा लेना	२१३
श्यामकर्ण घोड़ेकी पूजा करके भूभ्रमणके लिये छोड़ना और शत्रुघ्न-सुमन्त आदिका उसकी रक्षाके लिये जाना	२१४
यज्ञसमारोहमें बहुतेरे ऋषियोंका आगमन	२१५
वहाँ आए हुये ऋषियोंका रामके द्वारा स्वागत-सत्कार और कामधेनुकी पूजा करके पाकशालामें बाँधना तथा उससे मनचाही वस्तुयें प्राप्त करके सब अभ्यागतोंकी इच्छा पूर्ण करना	२१६

तृतीय सर्ग

विषय	पृष्ठ
श्यामकर्ण घोड़ेके साथ शत्रुघ्नका ब्रह्मावर्त पहुँचना, वहाँ नौकाकी रुकावटसे दुखी होकर गङ्गाकी प्रार्थना करना और गङ्गाका प्रसन्न होकर उन्हें मार्ग देना	२१७
श्यामकर्ण घोड़ेका मगधमें पहुँचना और वहाँके राजासे उपहार पाना	२१८
सभी देशोंमें अबाध गतिसे घूमकर घोड़ेका अयोध्या लौटना	२२०

चतुर्थ सर्ग

विषय	पृष्ठ
रामके अश्वमेध यज्ञमें सब देवताओं तथा शिवजीका आगमन, राम द्वारा सबका स्वागत-सत्कार होना और राम तथा शिवजीमें कुछ मनोरञ्जक वार्तालाप	२२१
अश्वमेध यज्ञमें कुम्भोदर मुनिका आगमन, रामके साथ बातचीत और कुम्भोदर मुनिका अष्टोत्तरशतनाम स्तोत्रसे रामकी स्तुति करना	२२३

पञ्चम सर्ग

विषय	पृष्ठ
विष्णुदासका गुरु रामदाससे अष्टोत्तरशतनाम-विषयक प्रश्न और उनका उत्तर	२२४
रामाष्टोत्तरशतनामस्तोत्र	२२५
रामाष्टोत्तरशतनामस्तोत्रका माहात्म्य	२२७

षष्ठ सर्ग

विषय	पृष्ठ
यज्ञके समय रामकी दिनचर्या	२२८

सप्तम सर्ग

विषय	पृष्ठ
ध्वजारोपणव्रतके विषयमें प्रश्नोत्तर	२३१
ध्वजारोपणविधि, माहात्म्य एवं फलश्रुति	२३२

अष्टम सर्ग

विषय	पृष्ठ
अश्वमेध यज्ञकी समाप्तिपर रामकी अवभृथ-स्नानके लिए यात्रा	२३६
यात्राकालमें रामके दर्शनार्थं जनताकी व्यग्रता और रामका लक्ष्मणको सुप्रबन्धके लिए निर्देश	२३७
रामका सरयूमें सपरिवार अवभृथस्नान	२३८
कामधेनु गौ देनेको उद्यत रामसे वसिष्ठका सीताको दानमें माँगना	२३९
तदनुसार रामका सीताको दान देना और पुनः वसिष्ठकी बतायी योजनाके अनुसार सुवर्णराशि देकर सीताको वापस लेना	२४०

नवम सर्ग

विषय	पृष्ठ
अश्वमेध यज्ञकी समाप्तिपर शिवजीका रामसे वरदान माँगना और उनका देना	२४१
पार्वतीका सीताजीसे वर माँगना और उनका देना	२४३

विषय	पृष्ठ
यज्ञके ऋत्विजोंको रामका दान और अतिथियोंको उपहार भेंट	२४४
सिंहासनासीन रामको नदी-समुद्र तथा अन्यान्य देवताओंसे विविध प्रकारके उपहार मिलना	२४५
अयोध्यामें रामका दरबार	२४६
यज्ञमें आये हुए अतिथियोंका प्रस्थान	२४७

—:०:—

विलासकाण्ड

प्रथम सर्ग

शिवकृत रामस्तवराज	२४९

द्वितीय सर्ग

रामके द्वारा सीताके सौन्दर्यका वर्णन और पक्षियों द्वारा रामकी स्तुति	२५७

तृतीय सर्ग

सीतासे प्रश्न करनेपर रामका देहरामायण-वर्णन	२६१
अपने दिये हुए ज्ञानके विषयमें रामका प्रश्न और सीताका उत्तर	२६३

चतुर्थ सर्ग

रामकी दिनचर्या और बन्दीजनोंकी स्तुति	२६६
सीताके अगणित अलंकारोंका वर्णन	२६८

पञ्चम सर्ग

राम-सीताका जलविहार	२७२

षष्ठ सर्ग

राम-सीताके शयनका वर्णन, राम-सीताका बिहार	२७६
राम और सीताका एक छतपरसे बाजारके कौतुक देखना, सीताका एक दीन-हीन ब्राह्मणीको अपना बच्चा लिये भीख मांगनेपर उद्यत देखना, सीताका उससे उसकी दरिद्रताका कारण पूछना और उसका बताना, सीताका उस ब्राह्मणीको एक लाख स्वर्णमुद्रा दिलवाना	२७७
सीताका लक्ष्मणके द्वारा सारे देशमें यह घोषणा करवाना कि कोई भी स्त्री बिना वस्त्राभूषणके दिखलायी न दे। यदि वह धनाभावके कारण वस्त्राभूषण न धारण कर पाती हो तो उसे राज्यसे दिया जाय	२७८
भगवान् रामकी तत्कालीन दिनचर्या	२७९

विषय	पृष्ठ

सप्तम सर्ग

रामके यहाँ व्यासजीका आगमन	२७९
व्यासका रामके एक पत्नीव्रतकी प्रशंसा करना रामका व्यासजीसे अगले जन्ममें बहुत-सी स्त्रियोंको प्राप्त करनेका उपाय पूछना	२८०
व्यासजीके आज्ञानुसार रामका सोलह सीताकी सुवर्णमूर्तियें दान देना, रामके सम्मुख कितनी ही देवांगनाओंका आकर रामपर मुग्ध होना	२८१
उन स्त्रियोंको रामका वरदान	२८१

अष्टम सर्ग

गुणवतीका वृत्तान्त, अरण्यमें गुणवतीके पतिका मरण	२८३
गुणवतीका अयोध्यामें रामके सम्मुख पहुँचना, रामकी तत्कालीन शोभाका वर्णन	२८४
गुणवतीको रामका वरदान मिलना	२८५
पिंगला नामकी वेश्याका रामके समक्ष पहुँचना, राम द्वारा पिंगलाका वृत्तान्त सुनकर सीताका कुपित होना	२८६
क्रोधवश सीताका मरनेके लिए उद्यत होना, रामकी विकलता, आधी रातके समय रामका गुरु वसिष्ठको बुलानेके लिए लक्ष्मणको भेजना, गुरुके चरण छूकर रामका शपथ खाना	२८८
सबेरे सीताका पिंगला वेश्याको बुलाकर डांटना और मारना, पिंगलाको सीताका शाप और उससे उद्धारका समय निर्धारित करना	२८९

नवम सर्ग

रामकी कुरुक्षेत्रयात्रा, लोपामुद्रा और जानकीजीकी बातचीत	२८९
लोपामुद्रासे शास्त्रार्थमें सीताकी विजय	२९०
विलासकाण्डका माहात्म्य एवं विलासकाण्डके पाठकी विधि	२९२

—:०:—

जन्मकाण्ड

प्रथम सर्ग

धात्रीके मुखसे रामका सीताके गर्भिणी होनेका समाचार सुनना	२९३
सीताका जंगलोंमें सैर करनेकी इच्छा प्रकट करना और इसकी तैयारीके लिए रामका लक्ष्मणको आदेश देना	२९४

विषय	पृष्ठ
पालकीपर चढ़कर रामका सीता तथा सब परिवारको साथ लेकर वनकी यात्रा करना	२९५
इन लोगोंका वनमें पहुँचना और वनकी शोभाका वर्णन	२९६
द्वितीय सर्ग	
राम-सीताका वनविहार	२९८
छठें मासमें सीमन्तोन्नयनसंस्कार और जनकजीसे रामका सीतात्यागसम्बन्धी वार्तालाप	२९९
वनमें, जहाँ कि सीता जाकर रहनेवाली थीं, वहाँपर जनकजीका प्रबन्ध	३००
तृतीय सर्ग	
रामका सीताको त्यागनेका कारण बतलाना	३०१
रामका विजय नामक गुप्तचरसे जनताके गुप्त विचार पूछना	३०२
उसके मुखसे प्रजाके हृदयकी यह बात मालूम करना कि सीता कितने ही वर्ष रावणके यहाँ रह चुकी थी, फिर भी उसे रामने अपना लिया। यह अच्छा नहीं किया। विजयका रामको एक धोबीकी बात सुनाना। कैकेयीका सीतासे रावणकी आकृति पूछना और सीताका दीवारमें केवल रावणके एक अंगूठेका आकार बनाना	३०३
सीताके चली जानेपर कैकेयीका उस अंगूठेके अनुरूप रावणके सारे शरीरकी तसवीर बना देना और इसी समय रामका पहुँचना, तसवीरके विषयमें रामके पूछनेपर कैकेयीका सीताकी बनायी बतलाना	३०४
प्रात:कालके समय सीताको वनमें त्यागनेके लिए लक्ष्मणका प्रस्थान	३०५
वाल्मीकिके आश्रमपर पहुँचकर गदगद वाणीमें लक्ष्मणका सीताको सब वृत्तान्त बतलाना	३०६
चतुर्थ सर्ग	
रामकी उस आज्ञा पालन करनेके लिए लक्ष्मणका विचार करना–जिसमें उन्होंने कहा था कि लौटते समय सीताके दोनो हाथ काट ले आना। उस निर्मम कार्यको करनेमें असमर्थ लक्ष्मणका प्राण त्यागनेपर उद्यत होना और बढ़ईके रूपमें विश्वकर्मासे भेंट	३०७
विश्वकर्माका सीताकी भुजा बनाकर देना और उसे लेकर लक्ष्मणका अयोध्या लौटना	३०८
अर्धरात्रिके समय सीताके गर्भसे पुत्ररत्न उत्पन्न होना	३०८
पुष्पक विमान द्वारा उस समय रामका भी वहाँ पहुँचना और बादमें रामका सौ अश्वमेध यज्ञ करनेका निश्चय करना	३०९
स्वर्णमयी सीता बनाकर रामका यज्ञारम्भ, रामके नब्बे यज्ञ पूर्ण होना और कुशकी उत्पत्तिका वृत्तान्त	३१०
वाल्मीकिका कुश-लवको रामायणकी शिक्षा देना और अल्प समयमें उनका सीखना	३११
पञ्चम सर्ग	
विष्णुदासका रामदाससे रामरक्षास्तोत्रके विषयमें प्रश्न और रामरक्षास्तोत्रका पाठ	३१२
रामरक्षास्तोत्रका माहात्म्य	३१३
रामनामके स्मरणका फल	३१५
षष्ठ सर्ग	
सीताका वाल्मीकिसे पतिवियोग दूर करनेके लिए कोई व्रत पूछना और उनका बतलाना	३१६
सीताका व्रतारम्भ और लवका रामके बगीचेसे कमल लाने जाना	३१७
लवका बगीचेके रक्षकोंसे मुठभेड़ और विजयी होकर लौटना	३१८
दूसरे दिन फिर लवका उन लोगोंसे युद्ध और लवकी विजय	३१९
रामका लवको पकड़नेके लिये वाल्मीकि ऋषिके आश्रमपर दूत भेजना, इसपर वाल्मीकिका यह उत्तर देना कि चलो, मैं रामके अपराधीको लेकर स्वयं वहाँ आता हूँ	३२०
सप्तम सर्ग	
रामका अन्तिम यज्ञके लिये श्यामकर्ण घोड़ा छोड़ने और गुप्तरीतिसे वाल्मीकिका सीताके साथ रामके यज्ञमें जाना	३२१
कुश-लवका रामायणगान सुनकर सबका मुग्ध होना और बादमें रामकी सभामें लव-कुशका रामायणगान	३२२
रामका उन दोनों बालकोंको पुरस्कार दिलवाना और उनका लेनेसे इनकार करना	३२३
लवका रामके श्यामकर्ण घोड़ेको पकड़ना और लव तथा शत्रुघ्नका संग्राम, लवका हनुमान्, सुमन्त्र और भरतको कांखमें दबाकर माता सीताके पास ले जाना	३२४
रामके आज्ञानुसार लवको पकड़नेके लिये	

विषय — पृष्ठ

लक्ष्मणका जाना, लव और लक्ष्मणमें युद्ध ३२५

लक्ष्मणका लवको ब्रह्मपाशमें बाँधकर राम-के समक्ष ले जाना, रामके आज्ञानुसार लोगों-का लवपर जलके घड़े उड़ेलना और लवका लड़ना ३२६

लवको छुड़ानेके लिए कुशका जाना ३२७

राम-लक्ष्मण और कुशका युद्ध ३२८

अष्टम सर्ग

रामका एक मन्त्रीको वाल्मीकिके पास भेजना ३२९

रामकी सभामें वाल्मीकिका सीताको साथ लिये हुए आना ३३०

रामके प्रति वाल्मीकिकी उक्ति और सीताको हाथों सहित देखकर रामका सन्देह ३३१

सीताकी शपथ, सीताका पृथ्वीमें प्रवेश करना और पृथ्वीसे रामकी प्रार्थना ३३२

पृथ्वीपर रामका कोप और रामका पृथ्वीसे सीताको वापस पाना ३३३

यज्ञमें आये हुए राजाओं और ऋषियोंकी विदाई ३३४

नवम सर्ग

उर्मिला, माण्डवी तथा श्रुतकीर्ति आदिका गर्भिणी होना और यथासमय पुत्र उत्पन्न करना, पुत्रोंकी उत्पत्तिके अवसरपर रामका उत्साह ३३५

रामका कुलगुरु वशिष्ठसे सब बच्चोंके शुभाशुभ लक्षण पूछना और वशिष्ठका सब बालकोंके लक्षण बतलाना ३३६

पुत्रवती बहिनोंके साथ सीताका आनन्दमय जीवन बिताना ३३८

गुरु वशिष्ठसे रामका लव-कुशके उपनयनका परामर्श और व्रतबन्धकी तैयारियोंके लिये रामका लक्ष्मणको आदेश ३३९

व्रतबन्ध (उपनयन) संस्कार समारोह ३४०

व्रतबन्धसंस्कार ३४१

लव-कुश आदि बालकोंका वेदाध्ययन, बालकोंका गुरुगृहसे वापस आनेपर अयोध्या नगरीके उत्साहका वर्णन ३४२

जन्मकांडके सुननेका फल और उसकी महिमाका वर्णन ३४३

विषय — पृष्ठ

विवाहकाण्ड

प्रथम सर्ग

रामकी सभामें महाराज भूरिकीर्तिका स्वयंवर पत्र आना ३४५

पत्र पढ़नेके अनन्तर रामका स्वयंवरमें जानेकी तैयारी करना, रामको स्वयंवरयात्रा ३४६

रामका अपने पुत्रोंके साथ स्वयंवरमें पहुँचना ३४७

रामका आगमन सुनकर राजा भूरिकीर्तिकी नगरनिवासिनी महिलाओंकी प्रसन्नताका वर्णन ३४८

द्वितीय सर्ग

दूसरे रोज रामका स्वयंवर-सभामें जाना और रामके दूतोंका वहाँ आये हुए राजाओंका परिचय देना ३४९

सभामें चम्पिका नामकी राजकन्याका प्रवेश ३५०

चम्पिकाको साथ लिये सुनन्दाका सब राजाओंके समक्ष जाना और चम्पिकाको उन राजाओंकी स्थिति समझाना ३५१

चम्पिकाका सब राजाओंके सामनेसे होकर रामके सम्मुख पहुँचना ३५३

अन्तमें चम्पिकाका कुशके सामने पहुँचना और कुशके गलेमें वरमाला डालना ३५४

तृतीय सर्ग

सुनन्दाका सुमति नामकी दूसरी राजकन्याको साथ लेकर पहलेकी तरह सब राजाओंका यश सुनाना ३५५

सुमतिका सब राजाओंके सामनेसे होकर लवके समक्ष पहुँचना और उनके गलेमें वर-माला डालना, दूसरे दिन भूरिकीर्तिका रामके पास जाकर विदाईके लिए मुहूर्त निश्चित करना ३५७

विवाहकार्यका प्रारम्भ ३५८

लव-कुशका विवाहमण्डपमें पहुँचना और विवाह सम्पन्न होना ३५९

चतुर्थ सर्ग

विवाहके अनन्तर होनेवाले लोकाचार ३६०

भूरिकीर्तिकी नगरीसे राम आदिको विदाई, रामका अयोध्या पहुँचना और अयोध्यावासियों द्वारा उनका स्वागत ३६१

विषय	पृष्ठ
विवाहोत्सवमें आये हुए अभ्यागतोंकी विदाई, रामदासका विष्णुदासको कुशके विषयमें कुछ भविष्यकी बातें बतलाना	३६२
पञ्चम सर्ग	
सीता तथा भ्राताओंके साथ रामका वनमें अगस्त्यके आश्रमपर जाना	३६३
अगस्त्य ऋषि द्वारा रामका सत्कार और वनमें रामको पाँच अप्सराओंका मिलना	३६४
अगस्त्यसे उन अप्सराओंके विषयमें रामका प्रश्न और उनका उत्तर, रामके बाण मारनेके लिए उद्यत होनेपर जलदेवियोंका प्रकट होना और बारह कन्यायें रामको अर्पित करना	३६५
षष्ठ सर्ग	
बहुतसे गंधर्वों और पन्नगोंका आना और रामकी स्तुति करना, अपने तथा लक्ष्मण आदिके पुत्रोंकी कुछ भविष्यकी बातें अगस्त्य ऋषिसे रामको मालूम होना	३६६
गंधर्वोंको अयोध्या आनेकी आज्ञा देकर रामका अपनी पुरीको वापस लौटना	३६७
अयोध्यामें पहुँचकर उन कन्याओंको वशिष्ठके यहाँ रखना, गंधर्वों और नागोंका अयोध्यापुरीमें पहुँचना तथा विवाहके मुहूर्तका निश्चित होना	३६८
सप्तम सर्ग	
उन कन्याओंके साथ राम आदिके पुत्रोंके विवाहकी तैयारी	३६९
कंजनयनी नामकी कन्याके सग लवका विवाह, अन्य कन्याओंके सङ्ग अन्य पुत्रोंका विवाह, राम आदिके आनन्दका वर्णन	३७१
अष्टम सर्ग	
रामके पास कम्बुकण्ठ नामक राजाका पत्र आना, कम्बुकण्ठकी कन्या मदनसुन्दरीके पास नारदजीका पहुँचना	३७३
मदनसुन्दरीका नारदजीसे रामचन्द्रजीको पतोहू बननेका उपाय पूछना और नारदका उसे उपाय बताना	३७३
नारदका अयोध्या पहुँचना और उनके मुखसे सब हाल सुनकर यूपकेतुका कान्तिपुरीको चल देना	३७४
यूपकेतुको न देखकर परिवार समेत रामका विह्वल होना और नारदका सब हाल बतलाना, यूपकेतुका अपने मोहनास्त्रसे सब राजाओंको मोहित करके मदनसुन्दरीको वरना	३७५
यूपकेतुका सब राजाओंके साथ युद्ध	३७६
यूपकेतुका खड्ग उठाकर अपने ससुर कम्बुकण्ठको मारनेके लिए उद्यत होना और मदनसुन्दरीकी प्रार्थनासे छोड़ देना, मार्गमें शत्रुघ्नसे यूपकेतुका साक्षात्कार और वहाँसे लौटकर फिर कान्तिपुरीको जाना	३७७
नवम सर्ग	
दूतके मुखसे यूपकेतुका सब समाचार ज्ञात होनेपर रामका कान्तिपुरीके लिए प्रस्थान, कान्तिपुरीमें आनन्दपूर्वक रामका पहुँचना	३७८
वहाँ यूपकेतुका विवाह होना, भगवान्‌की स्तुति करके नारदका प्रस्थान, विवाहकाण्डका श्रवणफल	३७९
विवाहकाण्डके अनुष्ठानकी विधि	३८०

राज्यकाण्ड (पूर्वार्द्ध)

विषय	पृष्ठ
प्रथम सर्ग	
रामसहस्रनामके विषयमें विष्णुदासका प्रश्न और रामदासका उत्तर	३८१
सनत्कुमार और गणेशका वार्तालाप	३८२
राम-सहस्रनाम	३८३
रामसहस्रनामका माहात्म्य	३९१
द्वितीय सर्ग	
कल्पवृक्षके विषयमें रामदास-विष्णुदासका प्रश्नोत्तर	३९२
रामके पास साठ हजार शिष्योंके साथ दुर्वासाका आगमन और सबके लिए भोजन तथा पूजनके लिए ऐसे फूल माँगना, जिन्हें संसारमें किसीने न देखा हो	३९३
रामका पत्रके साथ एक बाण इन्द्रके पास भेजना और इन्द्रका कल्पवृक्ष तथा पारिजात स्वयं लाकर अयोध्यामें रामको देना	३९४
सीताका कल्पवृक्षकी स्तुति करके उसके द्वारा प्राप्त सामग्रीसे शिष्यों समेत दुर्वासाको भोजन कराना	३९५
भोजनके बाद प्रसन्न दुर्वासाका रामकी स्तुति करके प्रस्थान	३९६

विषय पृष्ठ

तृतीय सर्ग

रामोपासक तथा कृष्णोपासक दो विप्रोंमें परस्पर मधुर विवाद ३९७

दोनों ब्राह्मणोंका विवाद निपटानेके लिए आकाशवाणीका होना ४०६

चतुर्थ सर्ग

एक कौएको रामका वरदान ४०७

रामपर आसक्त सौ नागरिक स्त्रियोंका आगमन ४०८

उन स्त्रियोंकी अनुचित प्रार्थनापर रामका उत्तर और वरदान ४०९

रामका दास-दासियोंको बुलाना, किन्तु वहाँ किसीका उपस्थित न रहना, लक्ष्मणका अपने दूत भेजकर उन्हें बुलवाना और दास-दासियोंका हरिकीर्तन छोड़कर आनेसे इन्कार करना ४१०

मध्य रात्रिमें एक स्त्री (निद्रा) का रुदन सुनकर पुष्पक द्वारा रामका उसके पास जाना और उसे वरदान देना ४११

कुम्भकर्णके पौत्र पौण्ड्रककी लंकापर चढ़ाई करके विभीषणको परास्त करना और विभीषणका रामके पास जाकर अपना दुःख सुनाना ४१२

रामका लंका जाकर पौंड्रकको परास्त करके विभीषणको राजगद्दीपर बिठाना, कुछ काल बाद मूलकासुरसे परास्त होकर विभीषणका रामकी शरणमें जाना ४१३

सामन्त राजाओंके साथ रामकी मूलकासुर पर चढ़ाई और भीषण युद्ध होना ४१४

ब्रह्माजीके द्वारा मूलकासुरके मरणकी गुप्त युक्तिका ज्ञात होना और रामका सीताको लानेके लिए गरुड़को भेजना ४१५

पञ्चम सर्ग

रामके विरहसे सीताकी व्यथाका वर्णन ४१६

रामसे मिलनेके लिए सीताका विविध मनोतियाँ मानना ४१७

सीताका गरुड़पर आरूढ़ होकर प्रस्थान, राम-सीताका मिलाप और मूलकासुरका वध करनेके लिए रथपर सवार होकर सीताका रण-भूमिको प्रयाण ४२०

षष्ठ सर्ग

सीता-मूलकासुरका सामना और वार्तालाप ४२०

विषय पृष्ठ

सीताके हाथों मूलकासुरका वध ४२१

ब्रह्मा आदि देवताओं द्वारा सीताकी स्तुति ४२२

रामके हाथों विभीषणका राज्याभिषेक ४२३

विभीषणके द्वारा भलीभाँति सम्मानित होकर रामका त्रिजटाका सत्कार करना ४२४

रामका अयोध्या लौटना ४२५

लवणासुरसे त्रस्त मुनियोंका रामके पास जाना और च्यवन मुनिका लवणासुके पूर्वजन्मका वृत्तान्त बताना ४२५

रामकी आज्ञासे शत्रुघ्नका लवणासुरको मारनेके लिये मधुवन जाना ४२६

सप्तम सर्ग

शत्रुघ्न द्वारा लवणासुरका वध ४२८

अपनी सेनाके साथ रामका दिग्विजयके लिए प्रस्थान ४२९

पुरूरवा आद तीन राजाओंके साथ रामका तुमुल युद्ध ४३०

उन्हें जीतकर रामका मथुरा जाना और वहाँसे यवनादि विविध देशोंकी यात्रा ४३१

अष्टम सर्ग

रामकी किम्पुरुष आदि देशोंकी विजययत्रा, भारतवर्षके विविध द्वीपों, द्वीपस्थ नदियों और पर्वतोंका वर्णन ४३१

नवम सर्ग

रामकी प्लक्षादि द्वीपोंकी विजययात्रा ४३५

विविध द्वीपोंपर विजय प्राप्त करते हुए रामका घृतोदसागर पहुँचना ४३७

रामकी शाकद्वीप यात्रा ४३८

रामका पुष्करद्वीप पहुँचना ४३९

लोकालोक पर्वत तक जाकर रामका अयोध्या लौटना ४४०

जीते हुए द्वीपोपर राम द्वारा अपने भाइयों और पुत्रोंकी नियुक्ति ४४१

दशम सर्ग

रामका लक्ष्मणसे एक कुत्तेके रोदनका कारण पूछना ४४१

पूछनेपर कुत्तेका व्यर्थ मारनेवाले एक संन्यासीको अपराधी बताना ४४२

रामका संन्यासीको बुलवाना और दोष प्रमाणित हो जानेपर कुत्तेसे ही अपराधीको

विषय	पृष्ठ
दण्ड देनेके लिए कहना और कुत्तेका संन्यासीको कहींका मठाधीश बननेका दण्ड देना	४४३
इस दण्डपर चकित लोगोंका कुत्तेसे कारण पूछना और उसका बतलाना, एक दिन एक विप्रका अपने मरे हुए बच्चेको लेकर रामके समक्ष आना और रोना	४४४.
रामका उसे आश्वासन देना और बच्चेके शवको तेलकी नावमें रखवाना	४४५
उसी समय शृङ्गवेरपुरसे एक और शवका आना	४४६
उसकी विधवाको आश्वासन देकर रामका पुष्पक विमानपर चढ़कर बाहर निकलना, उनके चले जानेपर और पांच शवोंका अयोध्या आना	४४७
रामका दण्डकवनमें एक शूद्रको उग्र तप करते देखना, उससे बात करना और वरदान देना	४४८
रामके समक्ष एक गृध्र और उलूकका अभियोग तथा रामका न्याय	४४९
रामका पूर्वोक्त सातों मृतकोंको जीवित करना	४५०

एकादश सर्ग

मृगयाके लिए रामकी यात्रा और	४५०
वनवर्णन	४५१
रामका एक सिंहका पीछा करते हुए अपने साथियोंसे बिछुड़कर वनमें दूर निकल जाना, वहाँ सिंहको मारना और मृत सिंहका अपनी आत्मकथा सुनाना	४५२
रामका एक कन्दरामें घुसना, वहाँ चार स्त्रियोंको मृतप्राय दशामें देखना और उन्हें जीवित करना	४५२
रामका उन स्त्रियोंसे वार्तालाप, उनका रामपर मोहित होना और उनको रामका वर देना	४५३

द्वादश सर्ग

उन चारोंके साथ आगे चलकर एक स्थानपर रामका सोलह हजार स्त्रियोंको देखना	४५५
उन सब स्त्रीोंका रामपर मोहित होना	४५६
उन सबका वरण करनेके लिए रामको विवश करना और रामका अन्तर्धान होना	
रामके वियोगमें उन स्त्रियोंकी करुण-दशाका वर्णन	४५८
उनका कारुणिक नारीगीत सुनकर रामका प्रकट होना और वरदान देना	४६०
उन सबको साथ लेकर रामका लक्ष्मण आदिके पास जाना और वहाँसे एक सरोवरपर पहुँचना	४६१
रात्रिके समय रामका वाराहमृगया करना	४६२
वहाँसे रामका मथुरा जाना, वहाँ एकान्तमें रामके पास रात्रिमें नारीरूप धारण करके यमुनाका आगमन	४६३
कालिन्दी (यमुना) को राम वरदान	४६४

राज्यकाण्ड (उत्तरार्द्ध)

त्रयोदश सर्ग

सभामें बैठे हुए रामका एक मनुष्यकी हँसी सुनकर घबराना	४६५
रामका अपने राज्यमें हँसनेकी मनाही करना	४६६
रामके इस आदेशसे मनुष्यों तथा देवताओंमें आतंक छा जाना और विरोध-प्रदर्शनार्थ ब्रह्माका अयोध्याके एक पीपल वृक्षमें प्रविष्ट होकर जोरोंसे हँसना	४६७
एक दिन सभामें किसी दूतको हँसते देखकर रामका हँसना और बादमें पछताते हुए अपनी हँसीपर विचार करना	४६८
कारण ज्ञात होनेपर अनुचरोंको हँसनेवाला पीपल काट डालनेकी आज्ञा देना, उसे काटनेको गये हुए सेवकोंका ब्रह्माकी उपलवर्षासे आहत होकर चीत्कार करना	४६८
बादमें रामकी आज्ञासे सुमंत्रका जाना, वहाँ पत्थरोंकी मारसे उनका भी मूर्छित होना और रामका वशिष्ठको बुलाकर कारण पूछना	४६९
वशिष्ठका कारण बतलाना, ब्रह्माकी धृष्टता सुनकर रामका कुपित होना और क्रुद्ध रामको महर्षि वाल्मीकिका समझाना	४७०
आनन्दरामायणकी महिमा	४७१
वाल्मीकिका ब्रह्माको बुलवाना	४७२
ब्रह्माका रामकी स्तुति करना और वशिष्ठका दो विष्णुगणोंके विषयमें प्रश्न	४७३

चतुर्दश सर्ग

वशिष्ठके प्रश्नका ब्रह्मा द्वारा उत्तर, अश्विनी-कुमारोंका विष्णुके गण जय-विजयको शाप देना और

विषय — पृष्ठ

उद्धारके समयका निर्देश ४७४

जय-विजयके अगले जन्मकी कथा, ब्रह्माकी स्तुतिसे रामका प्रसन्न होना, महर्षि वाल्मीकिसे रामके कुछ प्रश्न ४७५

वाल्मीकिका अपने पूर्वजन्मका वृत्तान्त बताना, तस्करवृत्तिपरायण वाल्मीकिका एक विप्रका दण्ड-कमण्डल तथा जूते आदि छीनना, बादमें तपती रेतपर चलते हुए ब्राह्मणको दुखी देखकर दयावश जूते लौटा देना ४७६

वाल्मीकिका शंख विप्रसे अपने पूर्वजन्मका हाल पूछना ४७७

शंखका वाल्मीकिके पूर्वजन्मका वृत्तान्त बताना, वेश्यासक्त वाल्मीकिकी स्त्रीकी सेवा और आश्वासन ४७८

वाल्मीकिका देहान्त और उनकी स्त्रीका सती होना ४७९

उनके अगले जन्ममें कृणु नामके ऋषिका वीर्य एक सर्पिणीका खाना और उससे वाल्मीकिका जन्म, किरातों द्वारा पालित होनेके कारण वाल्मीकिका व्याधवृत्ति स्वीकार करना ४८०

वाल्मीकिको सप्तर्षियोंका उपदेश ४८१

उनके उपदेशसे वाल्मीकिका 'मरा-मरा' यह मंत्र जपते हुए कठोर तप करना और बहुत वर्षों बाद सप्तर्षियोंका फिर वहाँ आना और उन्हें बाँबीसे बाहर निकालना, वाल्मीकिके मुखसे श्लोकका जन्म ४८२

अकारादि क्रमसे रामनामकी महिमा ४८३

पञ्चदश सर्ग

रामराज्यकी विशेषतायें ४८५

षोडश सर्ग

रामका लव-कुश आदि पुत्रों तथा भरत-लक्ष्मण आदि भ्राताओंको राजनीतिक उपदेश ४९०

सप्तदश सर्ग

कुशकी पुत्री हेमाका स्वयंवर ४९६

चित्रांगद द्वारा हेमाका अपहरण और उसके साथ लव-कुश आदिका भीषण युद्ध ४९७

उस युद्धमें कुशका विजयी होना और प्रसन्न होकर रामका उन्हें एक कंकण देना, उस कंकणकी प्राप्तिके विषयमें कुशका महर्षि अगस्त्यसे प्रश्न और उनका उत्तर ४९८

हनुमान्‌जीका मुद्गल ऋषिके आश्रमसे संजीवनी बूटी लाकर लवकी मूर्छा दूर करना ४९९

लवको भी रामका एक अगस्त्यप्रदत्त कंकण देना, उस कंकणकी प्राप्तिके विषयमें अगस्त्यसे लवका प्रश्न और उन मुनिका उत्तर ५००

एक स्वर्गीय प्राणीको सड़े हुए मुर्देका मांस खाते देखकर अगस्त्यका विस्मित होना, उससे कारण पूछना और उसका बतलाना ५००

दंडकारण्यके विषयमें महर्षि अगस्त्यसे लवका प्रश्न और ऋषिका उत्तर ५०१

दंडकारण्यकी कथा, राजा दण्डकका भृगुकी कन्याके साथ बलात्कार और राजाको भृगुका शाप ५०२

अष्टादश सर्ग

राममुद्राकी रचनाविधि ५०३

विष्णुदासका रामनाथपुरके ब्राह्मणोंको राममुद्राङ्कित शिला मिलनेका कारण पूछना और रामदासका उत्तर ५०४

बहुत समय बाद एक दुष्ट राजा द्वारा सताये जानेपर उन ब्राह्मणों द्वारा वह शिला एक सरोवरमें फेंकना ५०७

उस सरोवरकी बाढ़से हनुमान्‌जीका उन ब्राह्मणोंकी रक्षा करना और राममुद्रांकित शिलाको सरोवरसे निकालना ५०८

वह शिला दिखाकर हनुमान्‌जीका उस दुष्ट राजाको शूलीपर चढ़ाना और ब्राह्मणोंको आश्वासन देना ५०९

एकोनविंश सर्ग

रामकी दिनचर्या ५१०

वैद्य और ज्योतिषीसे रामका वार्तालाप ५११

रामकी सभा और उसकी शोभा ५१२

कुशकी उत्पत्तिके बाद सीताके गर्भ न रहनेका कारण ५१६

बीसवाँ सर्ग

लवका वसिष्ठसे रात्रिमें सोते समय कानमें धौंकनीके समान होनेवाले शब्दका कारण पूछना और वसिष्ठका उत्तर देना ५१८

रामका रामावतारको श्रेष्ठ बतलाना ५१९

मत्स्य, कूर्म, वाराह, नृसिंह, वामन, परशुराम, कृष्ण, बौद्ध तथा कल्कि अवतारके दोषोंका वर्णन ५२०

राम द्वारा रामवतारके सुखोंका वर्णन ५२२

इकीसवाँ सर्ग

चैत्रस्नानके समय सीताका दर्शन करनेके लिए बहुतेरी स्त्रियोंका आना ५२५

रामका पूर्वकालके कार्योंका सिंहावलोकन ५२६

विषय	पृष्ठ
लवका गुरु वसिष्ठसे पोथियोंके प्रत्येक पत्रमें एक ओर श्री तथा दूसरी ओर राम लिखनेका कारण पूछना और उनका बताना	५२७
रामका एक दासीको वरदान देना, रामका एक ही समय दो रूप धारण करके विश्वामित्र और वाल्मीकिके यहाँ जाना	५२८

बाईसवाँ सर्ग

विषय	पृष्ठ
राजा भूरिकीर्तिके यहाँसे बहुतेरा सौगात आना और बिना रामको अर्पण किये सीताका उसमेंसे एक फूल सूँघ लेना	५३१
एकादशीके रोज सीताकी साड़ीसे फँसकर एक तुलसीका पत्र टूटना और उसी समय नारदका आ पहुँचना	५३२
भोजन परोसनेपर नारदका सीतासे संस्पृष्ट भोजन करनेसे इनकार करना और रामके पूछनेपर कारण बताना	५३३
सीताका टूटा तुलसीपत्र टहनीमें जोड़नेके प्रयासमें विफल होना	५३४
नारदकी बतायी युक्तिसे फिर सीताका प्रयास करना और तुलसीपत्रका जुड़ जाना	५३५
नारदकृत रामस्तुति	५३६

तेईसवाँ सर्ग

विषय	पृष्ठ
आनन्दरामायणका पाठ करनेसे एक साधारण सिपाहीका राजमन्त्री हो जाना	५३८
उसका अभ्युदय देखकर सब सिपाहियोंका आनन्दरामायणके आराधनमें लग जाना, सिपाहियोंके अभावसे घबड़ाकर सब राजाओंका रामके पास जाना	५३९
आनन्दरामायणके श्रवणसे यमपुरका सूना होना और यमराजका ब्रह्मा-शिव आदि देवताओंके साथ अयोध्या आना	५४०
उनकी दुःखगाथा सुनकर रामका आनन्दरामायणपर प्रतिबन्ध लगाना	५४१

चौबीसवाँ सर्ग

विषय	पृष्ठ
रामका मृत सुमन्त्रको यमदूतोंसे छीनकर वापस लाना	५४२
सुमन्त्रकी जन्मकालीन गाथा	५४३
कुपित यमराजकी अयोध्यापर चढ़ाई	५४४
लव और यमराजमें भयानक युद्ध, लवके ब्रह्मास्त्रकी मारसे यमराजकी घबराहट और सूर्य भगवान्‌का आकर लवको समझाना	५४५
सूर्यका यमको ले जाकर रामसे क्षमा मँगवाना	५४६
रामका अपने राज्यभरमें धार्मिक आदेश	५४७
राज्यकाण्डके पारायणका माहात्म्य	५५१

मनोहरकाण्ड

प्रथम सर्ग

विषय	पृष्ठ
रामदाससे विष्णुदासका नारदकथित रामायण (लघुरामायण) का सार पूछना	५५३

द्वितीय सर्ग

विषय	पृष्ठ
अयोध्यावासियोंका रामसे कुछ उपदेश देनेके लिए प्रार्थना करना	५६०
रात्रिके समय दूतोंका प्रजाजनोंको उपदेश	५६१
प्रातःकाल पुनः पुरवासियोंका रामसे वार्तालाप	५६२
एक दिन कैकेयीका रामसे उपदेश देनेकी प्रार्थना करना और रामका कैकेयीको भेड़ोंसे उपदेश दिलवाना	५६४
भेड़ोंसे प्राप्त ज्ञानके विषयमें रामका कैकेयीसे प्रश्न	६६५
सुमित्राको रामका ज्ञानोपदेश	५६६
माता कौसल्याको रामका गौके बछड़ोंसे आत्मज्ञानका उपदेश दिलाना	५६८
कालान्तरमें कौसल्या-सुमित्रा आदिका देहत्याग	५६९

तृतीय सर्ग

विषय	पृष्ठ
विष्णुदासका रामदाससे रामकी मानसी पूजा-विधि पूछना	५७०
रामदासका उत्तर और गुरुके लक्षण बताना	५७१
विभिन्नसंख्यक अक्षरोंवाले राममन्त्र	५७२
मानसी पूजाका विधि-विधान	५७३
नमस्काराष्टकमन्त्र	५७५
बहिःपूजाविधान	५७७
नवपुष्पांजलिके विषयमें विष्णुदास-रामदासका प्रश्नोत्तर और चन्द्र-अतिचन्द्र आदि नौ भक्तोंकी कथा	५८२
उन नवों भक्तोंका कठोर तप करना और उन्हें रामका प्रत्यक्ष दर्शन मिलना	५८३
उन नवों भक्तोंको रामका वरदान	५८४

चतुर्थ सर्ग

विषय	पृष्ठ
अष्टोत्तरशत रामलिंगतोभद्र आदिके विषयमें विष्णुदासका रामदाससे प्रश्न और उनका उत्तर	५८५
रामदासका विष्णुदासको आध्यात्मिक उपदेश	५८९

विषय	पृष्ठ
राममुद्राको पूर्ण करनेकी विधियाँ	५९१
अष्टोत्तरशत रामलिंगतोभद्रके भेद	६०२
पञ्चम सर्ग	
रामलिङ्गतोभद्र आदि विविध भद्रोंकी रचनाविधि	६०४
षष्ठ सर्ग	
रामतोभद्रमें तत्तद्देवताओंकी स्थापनविधि	६२७
श्रीरामकी प्रिय वस्तुओंका विवरण	६३०
प्रतिदिन रामकी पूजाविधि	६३२
रामनवमीका व्रत करनेवाले एक विप्रकी कथा	६३७
एक रात्रिमें राजसेवकोंका आकर उस विप्रको सताना	६४०
हनुमान्‌जीके गर्जनसे राज्यके सब पुरुषोंका मरण, तभीसे उस राज्यमें स्त्रीराज्य होना	६४१
उस राज्यमें पुरुष उत्पन्न न होनेका कारण	६४२
रामनवमी व्रतकी फलश्रुति	६४३
सप्तम सर्ग	
रामशतनाम आदि लिखनेकी रीति और उद्यापनविधि	६४४
रामनामकी महिमा	६४५
राजा युधिष्ठिरका श्रीकृष्णसे रामनामजप तथा पुरश्चरणविधि पूछना और श्रीकृष्णका बताना	६४७
आनन्दरामायणके पाठ और दानका माहात्म्य	६४९
रामनामजपकी महिमा	६५०
कविताओंका स्वरूप और कवियोंकी श्रेणी	६५२
अष्टम सर्ग	
वेदादिकोंके पाठका माहात्म्य	६५३
दानपात्रके विषयमें रामदास-विष्णुदासका प्रश्नोत्तर	६५४
शास्त्रोंके अध्ययनकी महिमा	६५५
विविध रामायणोंकी चर्चा	६५६
रामायणके पाठ और रामसम्बन्धी कविता करनेका फल	६५८
आयुर्वेदादिकोंके अध्ययनका फल	६५९
दानियोंको दानपात्रका विचार करना ही चाहिए और ब्राह्मणका धन हड़पनेका कुफल	६६०
विष्णुदास-रामदासमें रामकी विशेष पूजाके विषयमें प्रश्नोत्तर, रामकी पूजाके मास तथा तिथियोंका निर्देश	६६१
दोलापूजनकी विधि	६६२
वसन्त पञ्चमीको आमका बौर पीनेका माहात्म्य	६६७
किस कामनाकी पूर्तिके लिए किस देवताकी आराधना करनी चाहिए	६७०
रामके रकारादि नामोंका महत्त्व	६७१
रामतारक मन्त्रका माहात्म्य	६७२
दशम सर्ग	
चैत्रमासकी महिमा	६७३
चैत्रस्नान करनेवालोंके लिए कुछ विशेष नियम	६७४
स्त्रियोंके लिए शीतला गौरीस्नान तथा पूजनविधि	६७९
रामनवमीको रामचन्द्रके पूजनका विधान, चैत्रमें आनन्दरामायणके पारायणका विधान	६८०
अन्य विधि-विधान	६८१
एकादश सर्ग	
चैत्रमासके महत्त्वका कारण	६८३
रामका देवताओंको वरदान	६८४
चैत्रस्नान करनेवाले नृसिंह ब्राह्मणकी कथा	६८५
शम्भु ब्राह्मणकी कथा	६८८
शम्भु विप्रका एक बहेलियेको उपदेश	६८९
शम्भु द्वारा वहाँ आये हुए एक राक्षसका उद्धार	६९१
शम्भु विप्र तथा व्याधकी अयोध्यायात्रा	६९२
शम्भुके मार्गमें एक सिंह तथा हाथीका सामने आना, उस सिंह तथा हाथीके पूर्वजन्मकी कथा	६९३
शम्भुका उन दोनोंके उद्धारका आश्वासन	६९४
आगे बढ़नेपर शंभुकी एक कार्पटिक (काँवारथी) से भेंट और वार्तालाप	६९५
शंभु द्वारा अयोध्याकी शोभाका वर्णन	६९७
कार्पटिकके साथ शंभु विप्रका अयोध्यासे लौटकर उस पूर्व आश्वासित राक्षसका उद्धार करना	७०१
द्वादश सर्ग	
मृगयाके प्रसंगमें रामकी एक शबरीसे भेंट	७०२
रामका दुर्गामन्दिरमें जाकर बहुतेरी स्त्रियोंकी पूजा स्वीकार करना और वरदान देना	७०५
रामनामकी महिमा	७०६
रामका मुनियोंको उपदेश	७०७
त्रयोदश सर्ग	
हनुमत्कवच और उसका माहात्म्य	७०८
रामकवच	७१४
चतुर्दश सर्ग	
सीताकवचके विषयमें विष्णुदासका प्रश्न और सीताकवच	७१७
सीताष्टोत्तरशतनामस्तोत्र	७२०

विषय	पृष्ठ
स्त्रियोंके लिए कुछ उपयोगी व्रत	७२२
रामनामतोभद्रकी रचनाविधि	७२३
पंचदश सर्ग	
लक्ष्मणकवच	७२५
भरतकवच	७२७
शत्रुघ्नकवच	७२९
मनन एवं कीर्तन करने योग्य राममन्त्र	७३१
षोडश सर्ग	
रामायणश्रवणके बादके कर्तव्य	७३८
गरुड़की शंका और रामके द्वारा समाधान	७३९
वानरोंकी उत्पत्तिका इतिहास और वानरोंको ब्रह्माका वरदान	७४०
हनुमत्पताकारोपणविधान	७४१
सप्तम सर्ग	
श्रीरामचन्द्रोपदिष्ट साररामायण	७४३
अष्टादश सर्ग	
अर्जुनके कपिध्वज नाम पड़नेका कारण	७५१

पूर्णकाण्ड

विषय	पृष्ठ
प्रथम सर्ग	
रामकी सभामें हस्तिनापुरसे दूतका आना	७५७
वाल्मीकिका रामको चंद्रवंशी राजाओंका इतिहास सुनाना	७६०
द्वितीय सर्ग	
रामका सामन्त राजाओंको बुलवाना	७६१
रामका भरतको सप्तद्वीपपतिके पदपर अभिषिक्त करनेका सङ्कल्प करना, किन्तु भरतका यह पद स्वीकार न करना, अन्तमें उस पदपर कुशका अभिषेक	७६२
हस्तिनापुरीपर चढ़ाईके लिये परामर्श, रामका सरयू और अयोध्याको वरदान	७६४
रामका हस्तिनापुरको प्रस्थान	७६५
तृतीय सर्ग	
रामका हस्तिनापुर पहुँचना	७६६
राम और सोमवंशी राजाओंका युद्ध	७६७
उस भीषण युद्धको देखकर देवताओंमें घबराहट और शान्तिका उपाय सोचना	७६८
चतुर्थ सर्ग	
कुशका ब्रह्मास्त्र संधान करना और ब्रह्माका आकर रोकना	७७०
ब्रह्माका सोमवंशी राजाओंको साथ लेकर रामके पास जाना और क्षमा मँगवाना	७७१
रामका ब्रह्माको वाल्मीकिके पास भेजना और वाल्मीकिके परामर्शसे सोमवंशी राजाओंकी स्त्रियोंका सीताके पास जाना	७७२
सीताके अनुरोधपर युद्धविराम, ब्रह्माका रामसे वैकुण्ठधाम पधारनेकी प्रार्थना करना और रामकी स्वीकृति	७७३
पञ्चम सर्ग	
रामको परम धाम जानेके लिये उद्यत देखकर सुषेण, सुग्रीव, विभीषण आदिका अपने साथ ले चलनेके लिये आग्रह करना	७७४
युद्धमें आये हुए राजाओं, मित्रो तथा पुत्रोंकी विदाई और उनकी स्थान-स्थानपर नियुक्ति	७७५
रामके आज्ञानुसार कुशका अयोध्या जाना	७७६
रामका लक्ष्मणको वरदान	७७७
षष्ठ सर्ग	
दूसरे दिन सबेरे रामका अजमीढ़को बुलाकर अपने परम धाम जानेकी बात बतलाना	७७८
रामके आगमनकी बात जानकर स्वर्गके देवताओंमें उत्साहका सञ्चार	७७९
श्रीशिवजीका रामके समक्ष स्तुति करना	७८०
गरुड़पर बैठकर रामका वैकुण्ठधाममें जाना और रामके साथ गये सभी अयोध्यावासियोंको सान्तानिक लोक प्राप्त होना	७८१
सप्तम सर्ग	
कुशके बादवाले सूर्यवंशी राजाओंकी वंशावली	७८२
अन्य रामायणों तथा आनन्दरामायणमें भेदका कारण	७८३
अष्टम सर्ग	
विष्णुदासका रामदाससे आनन्दरामायणकी अनुक्रमणिका पूछना और रामदासका अनुक्रमणिका-सर्ग कहना	७८४
नवम सर्ग	
आनन्दरामायण सुननेका फल	७८८
अनुष्ठानविधि	७८९
पारायणविधि	७९०
आनन्दरामायणका संक्षिप्त माहात्म्य	७९२
पार्वतीजी और शिवजीका रामदास-विष्णुदास-के विषयमें प्रश्नोत्तर	७९३

इति आनन्दरामायणाविषयनुक्रमणिका समाप्ता

श्रीसीतापतये नमः

श्रीवाल्मीकिमहामुनिकृतशतकोटिरामचरितान्तर्गतं

आनन्दरामायणम्

'ज्योत्स्ना'ख्या भाषाटीकयाऽऽटीकितम्

सारकाण्डम्

प्रथमः सर्गः

(दशरथ-कौसल्याविवाह तथा ऋष्यशृङ्ग द्वारा पुत्रेष्टि यज्ञ)

श्रीवाल्मीकिरुवाच

वामे भूमिसुता पुरस्तु हनुमान् पृष्ठे सुमित्रासुतः
शत्रुघ्नो भरतश्च पार्श्वदलयोर्वाय्वादिकोणेषु च ।
सुग्रीवश्च विभीषणश्च युवराट् तारासुतो जाम्बवान्
मध्ये नीलसरोजकोमलरुचिं रामं भजे श्यामलम् ॥ १ ॥

आदौ रावणमर्द्दनं द्विजगिरा तीर्थाटनं सीतया साकेते दशवाजिमेधकरणं पत्न्या विलासाटनम् ।
स्त्रीपुत्रग्रहणं स्नुषार्थमटनं पृथ्व्याश्च संरक्षणं रामार्चादिनिरूपणं दयितया स्वीयं स्थलारोहणम् ॥२॥

एकदा पार्वती देवी शंकरं प्राह हर्षिता । कैलासवासिनं नत्वा रामभक्त्यैकतत्परा ॥३॥

पार्वत्युवाच

शंभो त्वया पुराणानि कथितानि ममांतिके । रघुनाथस्य चरितं जन्मकर्मसमन्वितम् ॥ ४ ॥
कथयस्वाधुना देव मम प्रीतिविवर्द्धनम् । आनन्ददायकं कर्म रघुवीरेण यत्कृतम् ॥ ५ ॥

श्रीवाल्मीकि मुनि कहते हैं कि जिनके बाँयें भागमें सीताजी, सामने हनुमान, पीछे लक्ष्मण, दोनों बगल शत्रुघ्न और भरत, वायव्य ईशान अग्नि तथा नैर्ऋत्यकोणमें क्रमशः सुग्रीव, विभीषण, तारापुत्र युवराज अङ्गद और जाम्बवान् हैं, उनके बीच विराजमान श्याम कमलसदृश मनोहर कान्तिवाले परम पुरुषोत्तम भगवान् श्रीरामचन्द्रजीका मैं भजन करता हूँ ॥ १ ॥ इस ग्रन्थके सारकांडमें ऋषिवाक्यसे दुष्ट रावणका हनन, दूसरे यात्राकांडमें सीताके साथ रामकी तीर्थयात्रा, तीसरे यागकांडमें अयोध्यामें दस अश्वमेघ यज्ञ, चौथे विलासकांडमें पत्नीके साथ विलास, पाँचवें जन्मकांडमें लव-कुशकी उत्पत्ति तथा सीताकी पुनः स्वीकृति, छठें विवाहकांडमें लवकुशके विवाहके लिए प्रस्थान, सातवें राज्यकांडमें धर्मपूर्वक पृथ्वीका रक्षण, आठवें मनोहरकांडमें रामकी पूजा आदिका वर्णन और नवें पूर्णकांडमें सीतासहित भगवान् रामचन्द्रके स्वधाम पधारने आदिका सुन्दर चरित्र वर्णित है ॥ २ ॥ एक समय रामचन्द्रजीकी भक्तिमें तत्पर देवी पार्वतीने कहा—हे शम्भो ! आपने बहुतसे पुराणोंकी सुन्दर कथा मुझे सुनायी । हे देव ! अब आप कृपा करके मेरी प्रीति बढ़ानेवाले रघुवीर रामचन्द्रके आनन्ददायक कर्म और उनके जन्म आदिकी मनोहर

सम्यक् पृष्टं त्वया कान्ते रामचन्द्रकथानकम् । कथयामि सविस्तारं महामंगलकारकम् ॥ ६ ॥
आदिनारायणाद्ब्रह्माऽभून्मरीचिर्विधेः सुतः । मरीचेः कश्यपः पुत्रस्तत्सुतः सूर्य उच्यते ॥ ७ ॥
सूर्यपुत्रः श्राद्धदेवो मनुर्वैवस्वतस्त्विति । स एव प्रोच्यते तस्येक्ष्वाकुः पुत्रः प्रतापवान् ॥ ८ ॥
इक्ष्वाकोस्तु विकुक्षिर्हि शशादश्च स एव हि । विकुक्षेस्तु ककुत्स्थश्च स एवात्र पुरञ्जयः ॥ ९ ॥
स एवोक्तश्चन्द्रवाहः ककुत्स्थनृपतेः सुतः । अनेनास्तस्य पुत्रोऽभूद्विश्वरन्धिश्च तत्सुतः ॥१०॥
चन्द्रश्चन्द्रस्य पुत्रोऽभूद्युवनाश्वः प्रतापवान् । शावस्तो युवनाश्वस्य शावस्तस्य सुतो महान् ॥११॥
बृहदश्व इति ख्यातस्तस्माज्जज्ञे नृपोत्तमः । कुवलयाश्वो नृपतिर्दृढाश्वस्तत्सुतः स्मृतः ॥१२॥
हर्यश्व इति तत्पुत्रो निकुम्भस्तत्सुतः स्मृतः । बर्हणाश्वो निकुम्भस्य बर्हणाश्वनृपोत्तमात् ॥१३॥
कृताश्वो नृपतिः प्रोक्तः श्येनजित्तत्सुतः स्मृतः । युवनाश्वः श्येनजितो युवनाश्वनृपोत्तमात् ॥१४॥
मान्धाता त्रसदस्युर्हि स एव कथितो भुवि । पुरुकुत्सश्च मान्धातुः पुरुकुत्सस्य वै पुनः ॥१५॥
त्रसदस्युरिति ख्यातोऽनरण्यश्चापि तत्सुतः । अनरण्यस्य हर्यश्वो हर्यश्वस्यारुणः सुतः ॥१६॥
त्रिबन्धनोऽरुणाज्जातस्त्रिबन्धनसुतो महान् । सत्यव्रतः स एवात्र त्रिशङ्कुरिति वै स्मृतः ॥१७॥
सत्यव्रतस्य पुत्रोऽभूद्धरिश्चन्द्रः प्रतापवान् । रोहितस्तत्सुतः प्रोक्तस्तस्माच्च हरितः स्मृतः॥१८॥
हरितस्य सुतश्चम्पः सुदेवश्चम्पदेहजः । सुदेवाद्विजयः प्रोक्तस्तत्पुत्रो भरुकः स्मृतः ॥१९॥
भरुकस्य वृकः पुत्रो वृकपुत्रस्तु बाहुकः । बाहुकात्सगरो जज्ञेऽसमञ्जः सगरात्मजः ॥२०॥
असमञ्जसश्च पुत्रोऽभूदंशुमानिति नामतः । तस्य पुत्रो दिलीपस्तु दिलीपाच्च भगीरथः ॥२१॥
भगीरथाच्छ्रुतो जातः श्रुतान्नाभः प्रकीर्त्यते । नाभस्य सिन्धुद्वीपश्च ह्ययुतायुश्च तत्सुतः ॥२२॥
ऋतुपर्णस्त्वयुतायोः सुदासस्तस्य कीर्त्यते । मित्रसहः स एवात्र कल्माषांघ्रिः स एव हि ॥२३॥
सुदासस्याश्मकः पुत्रो मूलकोऽश्मकदेहजः । स एव नारीकवचो मूलकस्य सुतो महान् ॥२४॥
नाम्ना दशरथः प्रोक्तस्तस्य पुत्रः प्रतापवान् । नाम्ना त्वैडविडः प्रोक्तस्तस्य विश्वसहः स्मृतः॥२५॥
तस्य पुत्रस्य खट्वाङ्गः खट्वाङ्गाद्दीर्घबाहुकः । दिलीपश्च स एवात्र तस्य पुत्रो रघुः स्मृतः ॥२६॥

कथा सुनाइये ॥ ३–५ ॥ शिवजी बोले–हे कान्ते ! तुमने श्रीरामचन्द्रका कथाविषयक बड़ा अच्छा प्रश्न किया है। मैं उस मङ्गलकारिणी कथाको विस्तारपूर्वक कहता हूँ ॥ ६ ॥ आदि नारायण विष्णुसे ब्रह्माजी जायमान हुए। ब्रह्मासे मरीचि, मरीचिसे कश्यप, कश्यपसे सूर्य और सूर्यसे श्राद्धदेव हुए ॥७॥८॥ उन्हींको वैवस्वत मनु भी कहते हैं। उनके बड़े प्रतापी इक्ष्वाकु, इक्ष्वाकुसे विकुक्षि अथवा शशाद और विकुक्षिके ककुत्स्थ अर्थात् पुरञ्जय हुए। ककुत्स्थसे इन्द्रवाह, इन्द्रवाहसे अनेना, अनेनासे विश्वरन्धि, विश्वरन्धिसे चन्द्र और चन्द्रका युवनाश्व नामक प्रतापी पुत्र हुआ। युवनाश्वसे शावस्त, शावस्तसे बृहदश्व तथा बृहदश्वसे कुवलयाश्व सर्वश्रेष्ठ राजा हुए। कुवलयाश्वसे दृढाश्व, दृढाश्वसे हर्यश्व, हर्यश्वसे निकुम्भ, निकुम्भसे बर्हणाश्व, बर्हणाश्वसे कृताश्व, कृताश्वसे श्येनजित्, श्येनजित्से युवनाश्व, युवनाश्वसे मांधाता हुए। जो संसारमें त्रसदस्यु नामसे प्रसिद्ध थे। मांधातासे पुरुकुत्स, पुरुकुत्ससे फिर दूसरे त्रसदस्यु हुए। त्रसदस्युसे अनरण्य, अनरण्यसे हर्यश्व, हर्यश्वसे अरुण, अरुणसे त्रिबन्धन, त्रिबन्धनसे सत्यव्रत हुए। उनका नाम त्रिशंकु भी था ॥ ९–१७ ॥ सत्यव्रतसे हरिश्चन्द्र नामके बड़े सत्यवादी और प्रतापी राजा हुए। हरिश्चन्द्रसे रोहित, रोहितसे हरित, हरितसे चंप, चंपसे सुदेव, सुदेवसे विजय, विजयसे भरुक, भरुकसे वृक, वृकसे बाहुक, बाहुकसे सगर, सगरसे असमञ्जस, असमञ्जससे अंशुमान्, अंशुमान्से दिलीप, दिलीपसे भगीरथ, भगीरथसे श्रुत, श्रुतसे नाभ, नाभसे सिन्धुद्वीप, सिन्धुद्वीपसे अयुतायु, अयुतायुसे ऋतुपर्ण और ऋतुपर्णसे सुदास हुए। [illegible] मित्रसह और कल्माषांघ्रि नामसे भी प्रसिद्ध थे ॥ १८–२३ ॥ सुदाससे अश्मक, अश्मकसे मूलक [illegible] नारीकवच, नारीकवचसे दशरथ,

रघोः पुत्रो ह्यजः प्रोक्तस्तस्माद्दशरथः स्मृतः । राज्ञो दशरथाज्जातः श्रीरामः परमेश्वरः ॥२७॥
यस्य नामान्यनन्तानि गृणंति मुनयः सदा । विष्णोरारभ्य कथिता एकषष्टिर्नृपा मया ॥२८॥
एकषष्टिर्नृपाश्चाग्रे मध्ये रामो विराजते । तस्य ते चरितं कृत्स्नं संक्षेपाच्च ब्रवीम्यहम् ॥२९॥
इक्ष्वाकुवंशप्रवरः क्षत्रियो लोकविश्रुतः । बलवान् सरयूतीरेऽयोध्यायां पार्थिवोत्तमः ॥३०॥
नाम्ना दशरथः श्रीमान् जम्बूद्वीपपतिर्महान् । शशास राज्यं धर्मेण सैन्येन महताऽऽवृतः ॥३१॥
अयोध्यायास्तु सान्निध्ये देशे श्रीकोसलाह्वये । कोसलायां महापुण्यः कोसलाख्यो नृपो महान् ॥३२॥
तस्यासीद्दुहिता रम्या कौसल्या पतिकामुका । तस्या दशरथेनैव विवाहो निश्चितो मुदा ॥३३॥
लग्नार्थं तं समानेतुं दूता दशरथं नृपम् । ययुर्विनिश्चयं कृत्वा विवाहदिवसस्य च ॥३४॥
तदा दशरथश्चापि साकेते सरयूजले । नौकास्थो जलजां क्रीडां चक्रे वै मंत्रिबंधुभिः ॥३५॥
निशायां सेनया युक्तः स्तुतो मागधवंदिभिः । रत्नदीनप्रकाशैश्च ननृतुर्वारयोषितः ॥३६॥
तस्मिन्काले तु लंकायां विधिं पप्रच्छ रावणः । कस्मान्मे मरणं ब्रह्मन् तत्त्वं मां वक्तुमर्हसि ॥३७॥
तद्रावणवचः श्रुत्वा कथयामास तं विधिः । कौसल्यायां दशरथाद्रामः साक्षाज्जनार्दनः ॥३८॥
चतुर्धा पुत्ररूपेण भूत्वा स निहनिष्यति । पंचमेऽहनि लग्नस्य राज्ञो दशरथस्य हि ॥३९॥
दिवसो निश्चितो विप्रैः कौसल्याख्येन रावण । तद्विधेर्वचनं श्रुत्वा पुष्पकस्थो दशाननः ॥४०॥
अयोध्यां सत्वरं गत्वा राक्षसैः परिवेष्टितः । नौकास्थं तं दशरथं जित्वा युद्धैः सुदारुणैः ॥४१॥
बभंज निजपादेन तां नौकां सरयूजले । तदा सर्वे मृतास्तत्र सरय्वा निर्मले जले ॥४२॥
दशरथसुमंत्रौ द्वौ नौकाखण्डोपरि स्थितौ । शनैः शनैः प्रवाहेण गत्वा भागीरथीं नदीम् ॥४३॥

दशरथसे ऐडविड, ऐडविडसे विश्वसह, विश्वसहसे खट्वाङ्ग, खट्वाङ्गसे दीर्घबाहु हुए। उन्हींका नाम दिलीप भी था। दिलीपसे रघु, रघुसे अज और अजसे बड़े प्रतापी महाराज दशरथ हुए। दशरथसे साक्षात् परमेश्वर मर्यादापुरुषोत्तम रामचन्द्रजी जायमान हुए॥ २४-२७॥ उनके अनन्त नाम हैं। जिनको मुनिलोग सदा गाया करते हैं। विष्णुसे लेकर ६१ (इकसठ) राजे मैंने गिनाये। उन राजाओंके बाद रामचन्द्रजी प्रकट हुए। उनका चरित्र मैं तुमको संक्षेपमें बताता हूँ ॥ २८ ॥ २९ ॥ इक्ष्वाकुकुलमें श्रेष्ठ, लोगोंमें प्रसिद्ध, बलवान् क्षत्रिय, सरयू नदीके किनारे बसी हुई अयोध्या नगरीके राजा, जम्बूद्वीपके स्वामी, बड़े भारी श्रीमान् राजा दशरथ विशाल सेना रखकर धर्म तथा न्यायपूर्वक राज्यका शासन करते थे॥ ३० ॥ ३१ ॥ अयोध्याके पास हा कोसलदेशकी कोसलपुरीमें कोसल नामका एक बड़ा पुण्यात्मा राजा राज्य करता था ॥ ३२ ॥ उसकी विवाहके योग्य एक सुन्दरी कौसल्या नामकी पुत्री थी। उसका उसके पिता कोसलने दशरथके साथ विवाह निश्चित किया। बादमें आनन्दके साथ विवाहके दिनका निश्चय करके उन्होंने लग्नके निमित्त राजा दशरथको बुलानेके लिए दूतोंको भेजा ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ उस समय राजा दशरथ सरयूनदीके बीच नौकापर बैठकर इष्टमित्रों तथा मन्त्रियोंके साथ जलक्रीड़ा कर रहे थे। रात्रिका समय था, चारों ओर सैनिक खड़े थे, चारणगण स्तुति कर रहे थे और रत्नोंके दीपके प्रकाशसे समस्त नाव जगमगा रही थी। वाराङ्गनायें नानाप्रकारके नृत्य-गान कर रही थीं॥ ३५ ॥ ३६ ॥ उसी समय लङ्काके राजा रावणने ब्रह्मासे पूछा—हे ब्रह्मन् ! मेरा किसके हाथों मरण होगा ? यह आप स्पष्ट कहिये ॥ ३७ ॥ रावणका वचन सुनकर ब्रह्माने कहा कि दशरथकी स्त्री कौसल्यासे साक्षात् जनार्दन भगवान राम आदि चार पुत्रोंके रूपमें उत्पन्न होंगे। उनमेंसे राम तुमको मारेंगे। कोसलराजने ब्राह्मणोंसे पूछकर राजा दशरथके लग्नका आजसे पाँचवाँ दिन निश्चित किया है। ब्रह्माका यह वचन सुना तो रावण बहुतसे राक्षसोंको साथ लेकर शीघ्र अयोध्यानगरीको चल पड़ा। वहाँ जा और घोर युद्ध करके उसने नौकापर बैठे राजा दशरथको पराजित किया और पादप्रहारसे नावको तोड़कर सरयूके जलमें डुबो दिया। उस समय और सब तो जलमें डूबकर मर गये। परन्तु राजा दशरथ तथा सुमन्त्र नामका मन्त्री दैवेच्छासे नावके टुकड़ोंपर बैठकर धीरे-धीरे

ततः समुद्रमध्ये हि जीविताविश्वरेच्छया । रावणः कोसलं गत्वा कृत्वा परमसंगरम् ॥४४॥
कोसलाख्यं नृपं जित्वा कौसल्यां तां जहार सः । ततः प्रमुदितो लंकां ययावाकाशवर्त्मना ॥४५॥
दृष्ट्वा तिमिंगिलं मत्स्यं वसंतं लवणार्णवे । चित्ते विचारयामास देवास्ते मम शत्रवः ॥४६॥
लंकायाश्च हरिष्यन्ति कौसल्यां गुप्तविग्रहाः । अतस्तिमिङ्गिलायेमां न्यासभूतां करोम्यहम् ॥४७॥
इति निश्चित्य मनसि पेटिकायां निधाय ताम् । मत्स्यं समर्प्य हृष्टात्मा ययौ लंकां दशाननः ॥४८॥
तिमिङ्गिलोऽपि तामास्ये धृत्वाऽब्धौ व्यचरत्सुखम् । अग्रे दृष्ट्वा रिपुं स्वीयं तेन युद्धार्थमुद्यतः ॥४९॥
द्वीपे तां पेटिकां स्थाप्य संग्रामं रिपुणाऽकरोत् । एतस्मिन्नन्तरे नौकाखंडं तं द्वीपमागतम् ॥५०॥
तदा तौ मंत्रिनृपती द्वीपं तमारुरुहतुः । तत्र तां पेटिकां दृष्ट्वा समुद्घाट्यातिविस्मितौ ॥५१॥
तस्यां दृष्ट्वाऽथ कौसल्यां ज्ञात्वा वृत्तं परस्परम् । तया मुहूर्तसमये द्वीपे दशरथो नृपः ॥५२॥
गान्धर्वाख्यं विवाहं च चकार मुदिताननः । ततो राजाऽथ कौसल्या सुमंत्रो मंत्रिसत्तमः ॥५३॥
त्रयःस्थित्वा पेटिकायां तद्द्वारं पिदधुः पुनः । तिमिंगिलो रिपुं जित्वा चकारास्ये तु पेटिकाम् ॥५४॥
लंकायां रावणश्चापि समाहूय विधिं पुनः । उवाच प्रहसन्वाक्यं सभायां संस्थितः सुखम् ॥५५॥
विधे तव मृषा वाक्यं रावणेन मया कृतम् । हतो दशरथस्तोये कौसल्या गोपिता मया ॥५६॥
तद्रावणवचः श्रुत्वा सभायां पद्मसंभवः । दीर्घस्वरेण प्रोवाच ॐपुण्याहमिति स्फुटम् ॥५७॥
रावणः संभ्रमात्प्राह किमिदं व्याहृतं त्वया । विधिः प्रोवाच लग्नं तु जातं दशरथस्य हि ॥५८॥
तदा विधिं मृषा कर्तुं दूतान्संप्रेष्य सादरम् । तिमिङ्गिलात्समानीय पेटिकां ब्रह्मणोऽन्तिके ॥५९॥
समुद्घाट्य ददर्शासौ तत्र तस्यां दशाननः । तदाऽतिचकितः क्रुद्धस्तान् हन्तुं खड्गमाददे ॥६०॥

जलप्रवाहके सहारे गंगानदीमें जा पहुँचे ॥ ३८-४३ ॥ वहाँसे बहते हुए वे दोनों समुद्रमें जा मिले। उधर रावण अयोध्यासे चलकर कोसलनगरमें जा पहुँचा और भयानक युद्ध करके राजा कोसलको जीत लिया। तदनन्तर कौसल्याका हरण करके वह आनन्दके साथ आकाशमार्गसे लङ्काको चला ॥ ४४ ॥ ४५ । रास्तेमें क्षार समुद्रमें रहनेवाली तिमिङ्गिल मछलीको देखकर उसने सोचा कि सब देवता मेरे शत्रु हैं। कहीं रूप बदलकर वे लङ्कासे कौसल्याको चुरा न ले जायँ। इसीलिये इसको यहीं इस तिमिङ्गिलको धरोहररूपमें सौंप दूँ तो ठीक हो ॥ ४६ ॥ ४७ ॥ ऐसा सोचकर उसने कौसल्याको पिटारीमें बन्द करके तिमिङ्गिल मछलीको सौंप दिया और स्वयं आनन्दके साथ लङ्का चला गया ॥ ४८ ॥ वह मछली उस पिटारीको मुखमें लेकर सुखपूर्वक समुद्रमें घूमने लगी। सहसा अपने शत्रुको सामने देखकर उसने शत्रुके साथ युद्ध करनेका निश्चय किया ॥ ४९ ॥ तदनुसार पिटारीको एक टापूपर रखकर वह शत्रुसे युद्ध करने लगी। उसी समय वह नावका टुकड़ा भी उसी टापूके किनारे आ लगा ॥ ५० ॥ तब राजा दशरथ तथा सुमन्त्र उसी द्वीपमें उतर पड़े। वहाँ उनकी दृष्टि उस पिटारीपर पड़ी। खोलकर देखनेपर उसमें कौसल्याको देखकर उन्हें बड़ा आश्चर्य हुआ ॥ ५१ ॥ बादमें एक दूसरेसे सब बातोंको जान करके प्रसन्न हुए और अच्छे मुहूर्तमें वहींपर राजा दशरथने प्रसन्नतापूर्वक कौसल्याके साथ गांधर्व विवाह कर लिया। पश्चात् राजा, कौसल्या तथा मन्त्रियोंमें श्रेष्ठ मन्त्री सुमन्त्र ये तीनों पुनः पिटारीमें घुस गये और ढकना बन्द कर लिया। मछलीने भी शत्रुको जीतकर उस सन्दूकको फिर अपने मुखमें रख लिया ॥ ५२-५४ ॥ उधर लङ्कामें रावण सुखपूर्वक सभाके बीचमें बैठा और ब्रह्माजीको बुलाकर हँसते हुए बोला—। ५५ ॥ हे ब्रह्मन् ! मैंने आपके वचनको भी झूठा कर डाला। दशरथको जलमें डुबोकर कौसल्याको छुपा दिया ॥ ५६ ॥ भरी सभामें रावणके इस वचनको सुनकर ब्रह्माने जोरसे स्पष्ट शब्दोंमें "ॐ पुण्याहम्" ऐसा कहा ॥ ५७ ॥ यह सुनकर रावणने पूछा कि यह आपने क्या कहा ? ब्रह्माजी बोले—अरे ! राजा दशरथका विवाह हो गया ॥ ५८ ॥ रावण ब्रह्माके वचनको असत्य प्रमाणित करनेके लिये दूतों द्वारा मछलीसे पेटी मँगवायी और ज्यों ही खोलकर ब्रह्माजीको दिखलाना चाहा, त्यों ही उसमें सुमंत्रके साथ दशरथ कौसल्याको देखकर

तदाऽतिसंभ्रमाद्वेधा रावणं वाक्यमब्रवीत् । किं करोषि दशास्य त्वं माऽधुना साहसं कुरु ॥६१॥
कौसल्यैका स्थापिताऽस्यां पेटिकायां त्वया पुरा । त्रयस्त्वत्र तु संजाता भविष्यन्त्यत्र कोटिशः ॥६२॥
भविष्यति वधस्तेऽद्य रामोऽद्यैव जनिष्यति । साहसं कुरु माऽद्यैव सत्यायुषि दशानन ॥६३॥
यद्भविष्यं तद्भवतु तदग्रे माऽस्तु सांप्रतम् । एतान्दूतैः प्रेषयाद्य साकेतं त्वं सुखी भव ॥६४॥
न भविष्यति मद्वाणी मृषा जानीहि निश्चयम् । यद्भाव्यं तद्भवत्येव गहना कर्मणो गतिः ॥६५॥
तद्विधेर्वचनं सत्यं मत्वा भीतो दशाननः । पेटिकां प्रेषयामास साकेतं स्वभटैर्जवात् ॥६६॥
साकेते पेटिकां त्यक्त्वा भटास्ते रावणं गताः । अयोध्यायां महानासीत्संभ्रमो नृपदर्शनात् ॥६७॥
अयोध्यावासिनां नणां कोसलाधिपतेरपि । ततः पुनर्विवाहस्य संभ्रमं कोसलाधिपः ॥६८॥
कृत्वा स्वराज्यं जामात्रे ददौ प्रीत्या हि पुत्रिकाम् । तदारभ्य कोसलेन्द्राः प्रोच्यन्ते रविवंशजाः ॥६९॥
ततो राजा दशरथः सुमित्रां मगधेशजाम् । विवाहेनापरां पत्नीं चकार दयितां प्रियाम् ॥७०॥
कैकेयनृपतेः कन्यां कैकेयीं पद्मलोचनाम् । विवाहेनाकरोद्भार्यां तृतीयां परमादरात् ॥७१॥
तथाऽन्यानि सप्तशतकलत्राण्यकरोन्नृपः । एवं राजा दशरथः शशास जगतीतलम् ॥७२॥
दानैर्भोगैर्दशरथो बभूव जरठो महान् । नाभवत्संततिस्तस्य धार्मिकस्यावनीपतेः ॥७३॥
कौसल्या च सुमित्रा च कैकेयी च गिरींद्रजे । एताः कुलीनाः सुभगा रूपयौवनसंयुताः ॥७४॥
तस्मिन् शासति राज्यं तु स्थितेऽयोध्यापुरि प्रिये । देवानां दानवानां च राज्यार्थे विग्रहो महान्॥७५॥
तत्र वागभवच्छ्रेष्ठा यत्रायोध्यापतिर्महान् । जयस्तत्र न संदेहस्तां श्रुत्वा पवनो जवात् ॥७६॥
प्रार्थयामास नृपतिं गत्वा युद्धाय सादरम् । ततो गत्वा दशरथश्चकार कदनं महत् ॥७७॥

पहले तो बहुत चकित हुआ। फिर क्रुद्ध होकर उन्हें मारनेके लिये उसने तलवार निकाल ली ॥ ५९ ॥ ६० ॥ तब ब्रह्माने रावणको रोककर कहा—अरे दशवदन! यह क्या करता है? इस समय ऐसा साहस मत कर ॥ ६१ ॥ देख, तूने केवल कौसल्याको ही इसमें रक्खा था। किन्तु ये एकसे एक तीन हो गये। वैसे ही इन तीनोंसे करोड़ों हो जायँगे ।. ६२ ॥ राम भी आज ही जन्म ले लेंगे और तू मारा जायगा। आयु शेष रहते क्यों व्यर्थ मरना चाहता है? इसलिये तू ऐसा साहस त्याग दे ॥ ६३ ॥ जो होनी होगी सो आगे होगी। अभी तू कुछ मत कर और इन तीनोंको दूत द्वारा इनके स्थानको भेजवाकर सुखी हो ॥ ६४ ॥ मेरी बात कभी झूठ न होगी । इस बातका निश्चय रख। कर्मकी गति बड़ी गहन होती है। कर्मके अनुसार जो होनेवाला होता है, सो होकर ही रहता है ॥ ६५ ॥ इस घटनाको घटित होते देखकर रावण कुछ डर गया और ब्रह्माजीकी बातको सच्ची मानकर वह पिटारी अपने दूतों द्वारा शीघ्र अयोध्या भेज दी ॥ ६६ ॥ राजा दशरथ आदिको सकुशल आया देखकर अयोध्यावासियों तथा कोसलदेशके राजा आदिको बड़ी प्रसन्नता हुई और आश्चर्य भी हुआ। बादमें कोसलाधिपतिने बड़े समारोहके साथ फिरसे विवाह करके अपनी कमनीय कन्या कौसल्या तथा अपना संपूर्ण राज्य अपने दामाद राजा दशरथको दहेजरूपमें दे दिया। तबसे कोसलदेशके राजे भी सूर्यवंशी कहलाने लगे ॥ ६७-६९ ॥ तदनन्तर राजा दशरथने मगधदेशके राजाकी कन्या सुमित्राको ब्याहकर अपनी दूसरी प्राणप्रिया स्त्री बनायी ॥ ७० ॥ केकय देशके राजाकी कमलनयनी कन्या कैकेयीको ब्याहकर उन्होंने बड़े आदरपूर्वक तीसरी पत्नी बनायी ॥ ७१ ॥ इन तीनोंके अतिरिक्त अन्य भी उनकी सात सौ स्त्रियें थीं। इस प्रकार आनन्दपूर्वक राजा दशरथ दान-मान-भोग-ऐश्वर्य आदिके द्वारा पृथ्वीका शासन करते हुए वृद्ध हो गये। परन्तु उन परम धार्मिक राजा दशरथके कोई सन्तान नहीं हुई ॥ ७२ ॥ ७३ ॥ हे प्रिये पार्वती! पुत्रके बिना राजाको रूपयौवन युक्त मनोज्ञ कौसल्या, कैकेयी तथा सुमित्रा आदि स्त्रियें, राज्य और विशाल अयोध्यापुरी सूनी तथा व्यर्थ दीखने लगी। उसी समय देवताओं और दानवोंमें राज्यके लिए बड़ा भारी युद्ध आरम्भ हो गया ॥ ७४ ॥ ७५ ॥ उस युद्धमें यह आकाशवाणी हुई कि 'जिसके पक्षमें अयोध्यापति राजा दशरथ होंगे, उसी पक्षकी विजय होगी'। उस वाणीको सुनकर पवनदेवने शीघ्र जाकर

एतस्मिन्नन्तरे तत्र संग्रामेऽतिभयावहे । भिन्नाक्षं स्वरथं राजा नाविदद्दिष्टसंभ्रमात् ॥७८॥
राज्ञोऽन्तिके स्थिता सुभ्रूः कैकेयी रणकौतुकम् । पश्यन्ती स्वरथं भिन्नं ददर्श समरांगणे ॥७९॥
अक्षवत्सा निजं हस्त चकार जयहेतवे । तया तु पूर्वं बाल्यत्वान्मष्यास्यं कस्यचिन्मुनेः ॥८०॥
कृष्णवर्णं कृतं तेन शप्ता तेऽप्यपवादतः । मुखमग्रे निरीक्ष्यन्ति नैव लोकाः कदाचन ॥८१॥
ततस्तं गंतुमुद्युक्तं कैकेयी वामहस्ततः । दंडादिकं ददौ तस्य मुनेर्हस्तेऽतिभक्तितः ॥८२॥
तस्यै ददौ वरं विप्रस्तत्र वामकरो वरात् । भविता वज्रकठिनः क्वापि नाशं न चैष्यति ॥८३॥
कैकेयी तं वरं स्मृत्वा स्वं चकाराक्षवत्करम् । अथ जित्वा रणे दैत्यान् दृष्ट्वा तत्कर्म पार्थिवः ॥८४॥
ददौ वरौ द्वौ तस्यै स न्यासभूतौ कृतौ तया । यदाऽहं याचयिष्यामि तदा त्वं देहि तौ मम ॥८५॥
तथेत्युक्त्वा नृपः पत्नीं ययौ स्वनगरीं प्रति । एकदा स निशायां तु मृगयायां महावने ॥८६॥
चकार वारिबंधं चावधीद्वनचरान् बहून् । एतस्मिन्नंतरे तत्र वने वाराणसीपथा ॥८७॥
करंडस्थौ स्वपितरौ स्वस्कंधे श्रवणो वहन् । काशीं नेतुं ययौ वैश्यो धर्मबाधाभयान्निशि ॥८८॥
नीरं पातुं शिशो देहि चावयोश्चेति प्रार्थितः । ताभ्यां करंडके न्यस्य तटाके जलसंनिधौ ॥८९॥
गत्वा जले स्वयं कुम्भं न्युब्जं तस्थौ जले क्षणम् । कुम्भस्य न्युब्जतः शब्दो बभूव करिणो यथा ॥९०॥
वनद्विपो न हंतव्यश्चेति जानन्नपि नृपः । वैश्यं राजा द्विपं मत्वा विव्याध स पतत्रिणा ॥९१॥
पपात श्रवणस्तोये हा केनाहं प्रताडितः । मुत्वतश्चेति तद्वाक्यं श्रुत्वाऽभूद्विह्वलो नृपः ॥९२॥
गत्वा जलाद्बहिर्वेगात्सं कृत्वाऽऽकर्ण्य तद्गिरा । सर्वं वृत्तं विशल्यं तं चकार भयविह्वलः ॥९३॥

राजा दशरथसे युद्धमें सम्मिलित होनेका सादर प्रार्थना की। तदनुसार राजा दशरथ वहाँ जाकर दानवोंसे घोर युद्ध करने लगे ॥ ७६ ॥ ७७ ॥ उस भयानक संग्रामके समय राजाके रथका धुरा टूट गया, किन्तु दैववश राजाका पता नहीं लगा ॥ ७८ ॥ राजाके पास बैठी सुन्दर भौंहोंवाली रानी कैकेयी संग्रामका कौतुक देख रही थी। उसने सहसा रणमें अपने रथका धुरा टूटते देख लिया ॥ ७९ ॥ तत्काल उसने विजयलाभके लिए अपने बायें हाथको धुरेकी जगह लगा दिया। बचपनमें कैकेयीने किसी सोते हुए मुनिका मुँह स्याहीसे काला कर दिया था। तब मुनिने उसे शाप दे दिया कि जा, तेरा मुँह भी अपयशके कारण ऐसा काला होगा कि कोई देखना नहीं चाहेगा ॥ ८० ॥ ८१ ॥ जब मुनि वहाँसे चलने लगे, तब कैकेयीने भक्तिपूर्वक बायें हाथसे उनका दण्ड-कमण्डल उन्हें दे दिया ॥ ८२ ॥ इस सेवासे प्रसन्न होकर मुनिने उसे वरदान दिया कि जा, तेरा बायाँ हाथ समय पड़नेपर वज्र जैसा कठोर हो जायगा और किसी तरह घायल न होगा ॥ ८३ ॥ कैकेयीने उस वरका स्मरण करके ही अपने हाथको धुरेके सदृश बनाकर रथमें लगा दिया था। रणमें दैत्योंको जीतनेके बाद राजा दशरथने कैकेयीके इस साहस भरे कार्यको देखकर प्रसन्नतापूर्वक उससे दो वर माँगनेके लिए कहा। उसने भी उन दोनों वरोंको राजाके पास ही धरोहररूपमें रख दिया और कहा कि जब मैं माँगूँ, तब आप ये दो वर मुझे दे दीजियेगा ॥ ८४ ॥ ८५ ॥ 'बहुत अच्छा' कहकर राजा अपनी स्त्रीके साथ अयोध्या लौट आये। एक दिन रात्रिके समय राजा दशरथ शिकार खेलनेके लिये सरयूके किनारे गहन वनमें जा पहुँचे। वहाँ उन्होंने बाणोंकी वर्षा करके नदीका जलप्रवाह रोक दिया और बहुतसे वनपशुओंको मारा। उसी समय श्रवण अपने बूढ़े तथा अंधे माता-पिताको काँवरमें बिठाकर काँधेपर उठाये हुए उस वन्य मार्गसे काशी ले जा रहा था। तभी गर्मीसे पीड़ित होकर वृद्ध माता-पिताने अपने पुत्रसे जल पिलानेको कहा। उनकी आज्ञा पाते ही श्रवण काँवरको जलके किनारे रख तथा घड़ेको टेढ़ा करके जल भरने लगा तो उस घड़ेसे हाथीके शब्द जैसा शब्द निकला ॥ ८६—९० ॥ 'बनैले हाथीको नहीं मारना चाहिये' इस बातको जानते हुए भी राजा दशरथने उस वैश्य श्रवणको हाथीके भ्रमसे शब्दवेधी बाण मारकर बींध दिया ॥ ९१ ॥ 'हाय! मुझ निरपराधको किसने मारा' ऐसा चिल्लाकर श्रवण धड़ामसे जलमें गिर पड़ा। मनुष्यकी बोली सुनकर राजा दशरथ घबड़ा उठे और दौड़कर वहाँ गये। उसको जल-

तावंधावपि तत्पुत्रवधं श्रुत्वा रुरोदतुः । कारयित्वा नृपतिना चितिं पुत्रसमन्वितौ ॥९४॥
दशरथाय तौ शापं ददतुः पुत्रदुःखितौ । पुत्रशोकादावयोर्हि यथा मृत्युस्तवास्त्विति ॥९५॥
ययौ नृपोऽपि नगरीं गुरुं वृत्तं न्यवेदयत् । वसिष्ठो नृपतेर्दोषशांत्यर्थं तुरगाध्वरम् ॥९६॥
नृपेण कारयामास साकेते सरयूतटे । रोमपाद इति ख्यातस्तस्मै दशरथः सखा ॥९७॥
शांतां स्वकन्यां प्रायच्छत्तद्राष्ट्रेऽभूदवर्षणम् । विभांडकाश्रमं वारनारीः संप्रेष्य तत्सुतम् ॥९८॥
रोमपादो मोहयित्वा ऋष्यशृंगं समानयत् । वारस्त्रियो वने गत्वा समानिन्युरृषेः सुतम् ॥९९॥
नाट्यसंगीतवादित्रैर्विभ्रमालिंगनार्हणैः । तत्प्रतापादभूद्वृष्टिः पुत्रोऽपि नृपतेरभूत् ॥१००॥
ततस्तुष्टो रोमपादस्तस्मै शांतां ददौ सुताम् । दशरथोऽपि स्वपुरीमानयामास तं मुनिम् ॥१०१॥
स तु राज्ञोऽनपत्यस्य निरूप्येष्टिं मरुत्वतः । प्रत्यक्षं हि चकाराग्निं यज्ञकुंडात्सपायसम् ॥१०२॥
आविर्भूत्वा स्वयं वह्निर्ददौ राज्ञे सुपायसम् । राज्ञा विभक्तं स्त्रीभ्यस्तत्कैकेय्या दुष्टभावतः ॥१०३॥
अहरत्पायसं हस्ताद्गृध्री शापविमोचकम् । सुवर्चलाऽप्सरोमुख्या नृत्यभंगात्स्वयंभुवा ॥१०४॥
शप्ता जाता तु सा गृध्री तया वेधाः सुतोषितः । तस्यै तुष्टो विधिः प्राह कैकेयीपायसं यदा ॥१०५॥
प्रक्षिपस्यंजनगिरौ तदा ते भविता गतिः । अप्सरा त्वं पूर्ववच्च भविष्यसि न संशयः ॥१०६॥
तस्मात्सा पायसं नीत्वाऽक्षिपदंजनपर्वते । निजं स्वरूपं सा लब्ध्वा जगाम सुरमंदिरम् ॥१०७॥
ततस्ताभ्यां तु कैकय्यै दत्तं किंचित्तु पायसम् । अथ ता भक्षयामासुरंतर्गर्भास्तदाऽभवन् ॥१०८॥

से वाहर निकालकर उसके मुँहसे सब वृत्तान्त सुना तो भयसे काँपते हुए राजाने उस वैश्यवालकके शरीरसे वाण निकाला ॥ ९२ ॥ ९३ ॥ राजाके मुखसे पुत्रमरणकी वात सुनकर वे दोनों अंधे अतिशय विलाप करने लगे और राजासे चिता वनवाकर पुत्रके साथ जलकर परलोक सिधार गये। मरते समय पुत्रवियोगसे दुःखित वे दोनों अन्धी-अन्धे राजा दशरथको यह शाप देते गये कि 'जैसे हम दोनों पुत्रशोकसे मर रहे हैं, वैसे ही तुम भी पुत्रशोकसे ही मरोगे' ॥ ९४ ॥ ९५ ॥ राजाने नगरमें आकर यह सब हाल गुरु-वसिष्ठजीको सुनाया। कुछ दिनों वाद वसिष्ठजीने राजाकी दोषनिवृत्ति तथा पुत्रप्राप्तिके लिए उनसे सरयूके किनारे ऋष्यशृङ्गको बुलवाकर अश्वमेघ यज्ञ करवाया। राजा दशरथके मित्र अंगदेशके राजा रोमपादने अपनी शान्ता नामकी कन्या ऋष्यशृङ्गको दे दी थी। क्योंकि एक बार राजा रोमपादने देशमें वर्षा न होने तथा उन्हें कोई पुत्र न होनेके कारण मन्त्रियोंके कथनानुसार ऋष्यशृङ्गके पिता विभांडकके आश्रमसे वेश्याओंके द्वारा मोहित करवाकर उन्हें अपने देशमें बुलवाया। वेश्यायें वनमें गयीं और नाचकर, गाना गाकर, बाजे बजाकर, हावभाव, आलिङ्गन तथा पूजा आदिके द्वारा मोहित करके ऋष्यशृङ्गको ले आयीं। उनके यज्ञ करानेसे राज्यमें वृष्टि हुई और राजाको पुत्र भी प्राप्त हुआ ॥ ९६-१०० ॥ तब प्रसन्न होकर राजा रोमपादने ऋष्यशृङ्गको अपनी शान्ता नामकी कन्या दान करके दे दी। अतएव दशरथ भी उन ऋष्यशृङ्गको अपने नगरमें ले आये ॥ १०१ ॥ उन मुनिने संतानरहित राजा दशरथसे इष्टि (यज्ञ) करवाकर खीर लिये हुए अग्निदेवको यज्ञकुण्डसे प्रत्यक्ष प्रकट किया ॥ १०२ ॥ इस प्रकार अग्निने स्वयं प्रकट होकर राजाको सुन्दर पुत्र देनेवाला पायस (खीर) दिया। राजाने वह खीर लेकर तीनों स्त्रियोंमें बाँट दी। तभी कैकेयीके भागको एक गृध्री यह सोचकर कि यदि इसको मैं ले जाऊँगी तो मेरा शाप छूट जायगा। इस स्वार्थसे खीर छीन ले गयी। कथान्तर। एक समय सुवर्चा नामकी अप्सराओंमें उत्तम अप्सराको नृत्यभङ्गके अपराधसे ब्रह्माने गृध्री होनेका शाप दे दिया। जब फिर उसने स्तुतिके द्वारा ब्रह्माको प्रसन्न किया। तब ब्रह्माजीने कहा कि जब तुम कैकेयीके पायसको छीनकर अंजनिपर्वतपर फेंकोगी। तब तुम्हारी पुनः सुगति हो जायगी और पूर्ववत् तुम अप्सरा हो जाओगी ॥ १०३-१०६ ॥ इसी कारण उस गृध्रीने खीर लेकर अंजनिगिरिपर डाल दी। जिससे वह अपने अप्सरा-रूपको प्राप्त होकर पुनः स्वर्ग चली गयी ॥ १०७ ॥ बादमें कौसल्या तथा सुमित्राने अपने-अपने भागमेंसे

आसंस्तासां दोहदास्ते पुत्राणां भाविकर्मभिः । पुत्राणां भाविकर्माणि विदुस्ते दोहदैर्जनाः ॥१०९॥
इति श्रीशतकोटिरामचरितांतर्गते श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये सारकांडे प्रथमः सर्गः ॥ १ ॥

द्वितीयः सर्गः

(राम लक्ष्मण भरत तथा शत्रुघ्नका जन्म)

श्रीशिव उवाच

एतस्मिन्नंतरे भूमिर्दशास्यादिप्रपीडिता । ब्रह्मणा प्रार्थयामास विष्णुं सोऽपि तदाऽब्रवीत् ॥ १ ॥
भूम्यामवतरिष्यामि भवंतु कपयः सुराः । गंधर्वी दुंदुभीनाम्नी भूम्याः कार्यार्थसिद्धये ॥ २ ॥
मंथराऽग्रे भवत्वद्वा राज्यविघ्नार्थसिद्धये । पश्चात्पुनर्द्वापरांते कुब्जात्वं कंसमंदिरे ॥ ३ ॥
अथ विष्णुश्चैत्रमासि नवम्यां मध्यगे रवौ । सूतिकागृहमध्येऽथ कौसल्यायाः पुरोऽभवत् ॥
चतुर्भुजः पीतवासा मेघश्यामो महाद्युतिः ॥ ४ ॥
साऽपि दृष्ट्वा बालभावं प्रार्थयामास तं हरिम् । ततो जातस्तदा बालः क्षणाद्रुक्मविभूषितः ॥ ५ ॥
हेमवर्णः कंजनेत्रश्चन्द्रास्यस्तपनप्रभः । ततः सुमित्रापुरतः शेषोऽभूद्बालरूपधृक् ॥ ६ ॥
आविर्भूतौ द्वौ यमलौ कैकेय्याः शंखचक्रके । एवं ते जनिता बालाश्चत्वारः समये शुभे ॥ ७ ॥
देवदुंदुभयो नेदुः पुष्पवृष्टिः शुभाऽपतत् । जातकर्मादिसंस्कारान् गुरुणा नृपतिस्तदा ॥ ८ ॥
कारयामास विधिवन्ननृतुर्वारयोषितः । ज्येष्ठं रामं तु कौसल्यातनयं प्राह वै गुरुः ॥ ९ ॥
सुमित्रातनयं नाम्ना लक्ष्मणं गुरुरब्रवीत् । ततो भरतशत्रुघ्ननामनी प्राह वै गुरुः ॥१०॥

थोड़ा-थोड़ा पायस कैकेयीको दे दिया । इस प्रकार सबने पायस खाया और सबने गर्भ धारण किया ॥ १०८ ॥ भावी पुत्रोत्पत्तिके गर्भचिह्नोंको देख तथा सुनकर होनहार पुत्रोंके द्वारा किये जानेवाले अद्भुत कार्योंको लोग पहले ही समझ गये ॥ १०९ ॥ इति श्रीशतकोटिरामचरितांतर्गते श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये सारकाण्डे भाषाटीकायां प्रथमः सर्गः ॥ १ ॥

श्रीशिवजी बोले—हे प्रिये ! इसी बीच रावण आदि दुष्ट राक्षसोंसे पीडित होकर पृथ्वी माता ब्रह्माके साथ विष्णुभगवान्के पास गयीं और उनसे अपनी तथा धर्मकी रक्षाके लिये प्रार्थना की । तब विष्णुभगवानने कहा कि 'मैं तुम्हारे लिये भूमिपर अवतार लूंगा' । ऐसा कहकर उन्होंने देवताओंसे कहा—हे देवताओ ! तुम लोग मेरी सहायताके लिये वानररूपसे पृथ्वीपर जन्म लो । दुन्दुभी गंधर्वी पृथ्वीकी रक्षाके लिये पहिलेसे जाकर मन्थरारूपसे जन्म ले और रामके राज्याभिषेकमें विघ्न डाले । द्वापरके अन्तमें वही जाकर कंसके यहाँ कुब्जा बनेगी ॥ १–३ ॥ कुछ काल बाद साक्षात् विष्णुभगवान् चैत महीनेके कृष्णपक्षकी नवमी तिथिको मध्य सूर्यके समय प्रसूतिगृहमें कौसल्याके सामने चार भुजाधारी पीताम्बर पहिने हुए वर्षाऋतुकालीन मेघके समान श्यामशरीर तथा तेजस्वी रूपमें प्रकटे ॥ ४ ॥ कौसल्याने वह रूप देखकर भगवान्से बाल्यभाव स्वीकार करनेकी प्रार्थना की । तब भगवान् क्षण भरमें स्वर्णाभरणोंसे भूषित, सुवर्णके सदृश कान्तिसम्पन्न, कमलके समान नेत्र तथा चन्द्रतुल्य मुख एवं सूर्यके समान तेजस्वी बालक बन गये । बादमें सुमित्राके गर्भसे शेषावतार लक्ष्मणजी बालभावसे प्रकट हुए । फिर कैकेयीके गर्भसे विष्णुके शंख-चक्र अवतार लेकर एक साथ भरत-शत्रुघ्न पैदा हुए । इस प्रकार वे चारों बालक शुभ समय, अच्छे लग्न और शुभ नक्षत्रमें उत्पन्न हुए ॥ ५-७ ॥ देवताओंने प्रसन्न होकर नगाड़े बजाये और पुष्पवृष्टि की । राजाने गुरु वसिष्ठसे बालकोंका जातकर्म (संतानके उत्पन्न होनेपर किया जानेवाला कर्म) आदि संस्कार विधिपूर्वक करवाया । उस उत्सवपर वेश्याओं द्वारा अनेक प्रकारका नृत्य भी करवाया गया । वसिष्ठजीने कौसल्याके सबसे बड़े पुत्रका नाम राम रक्खा । सुमित्राके पुत्रका नाम लक्ष्मण और कैकेयीके दोनों पुत्रोंके नाम भरत तथा शत्रुघ्न

रमणाद्राम एवासौ लक्षणैर्लक्ष्मणस्त्विति । भरणाद्भरतश्चेति शत्रुघ्नः शत्रुतर्जनात् ॥११॥
अथ ववृधिरे सर्वे लक्ष्मणो राघवेण हि । शत्रुघ्नो भरतेनापि चकार क्रीडनादिकम् ॥१२॥
रुक्मकंकणमंजीरनूपुरैस्ते विभूषिताः । केयूररशनाहारकुण्डलैरतिशोभिताः ॥१३॥
शृंखलाबद्धरुक्मादिनिर्मितेषु वरेषु च । दोलकेषु च ते सर्वे दोलिता रेजिरे सुखम् ॥१४॥
भाले स्वर्णमयाश्वत्थपर्णान्यतिमहांति च । मुक्ताफलप्रलंबीनि शोभयंति स्म बालकान् ॥१५॥
कंठे रत्नमणिव्रातमध्यद्वीपिनखांचिताः । कर्णयोः स्वर्णसंपन्नरत्नार्जुनसुतालकाः ॥१६॥
सिंजानमणिमंजीरकटिसूत्रांगदैर्युताः । स्मितवक्त्राल्पदशना इन्द्रनीलमणिप्रभाः ॥१७॥
अंगणे रिंगमाणाश्च संस्कारैः संस्कृताः शुभाः । ते तातं रंजयामासुर्मातॄँश्चापि विशेषतः ॥१८॥
कौसल्या नृपतिश्चापि नानावस्त्रैः सुभूषणैः । शोभयामासतुर्बालान्नानाव्याघ्रनखादिभिः ॥१९॥
रामः स्वपितरं दृष्ट्वा भोजनस्थं त्वरान्वितः । दुद्राव कवलं पात्राद्गृहीत्वा स पुनर्बहिः ॥२०॥
कौसल्या बालकं धर्तुं दुद्राव नृपनोदिता । न तस्याः करगश्चासीद्योगिनामप्यगोचरः ॥२१॥
परिवृत्य स्वयं रामः करेण मृदुलेन च । कौसल्यास्ये नृपास्येऽपि कवलावकरोन्मुदा ॥२२॥
एवं नानाकौतुकैश्च रंजयामास राघवः । नानाशिशुक्रीडनकैश्चेष्टितैर्मुग्धभाषितैः ॥२३॥
बालकृत्रिमयुद्धैश्च गमनैर्मुखचुंबनैः । पितरौ निजचारित्रैर्वाहनारोहणादिभिः ॥२४॥
ततस्ते बालकाः सर्वे वस्त्रालंकारभूषिताः । सभायां पितरं नत्वा तस्थुः सिंहासनोपरि ॥२५॥
अत्र पित्रोपनीतास्ते गुरुणा मुनिभिर्मुदा । गर्भात्संवत्सरे षष्ठे जन्मतः पंचमे समे ॥२६॥
ब्रह्मवर्चसकामस्य कार्यं विप्रस्य पञ्चमे । राज्ञो बालार्थिनः षष्ठे वैश्यस्यार्थार्थिनोऽष्टमे ॥२७॥

रक्खा ॥ ८-१० ॥ मनोहर तथा आनन्ददायक होनेसे राम, शुभ लक्षणोंसे युक्त होनेसे लक्ष्मण, प्रजाका भरण-पोषण करनेमें निपुण होनेसे भरत और शत्रुनाशक होनेसे वसिष्ठने उनका शत्रुघ्न नाम रक्खा ॥ ११ ॥ लक्ष्मण रामके साथ और शत्रुघ्न भरतके साथ खेलते हुए बढ़ने लगे ॥ १२ ॥ सुवर्णके कड़े तथा नूपुरोंसे भूषित बाजूबन्द, हार, करधनी तथा कुण्डलोंसे सुशोभित, सोनेकी सिकड़ियोंको गलेमें पहने हुए वे बालक सुवर्ण-घटित, रत्नजटित तथा कंचनके साँकलोंसे बँधे हुए हिंडोलोंपर झूलते हुए बहुत ही सुन्दर लगते थे ॥ १३ ॥ १४ ॥ ललाटस्थलमें बँधे हुए सुवर्णनिर्मित पीपलके पत्तेके आकारवाले एवं जिनके अग्रभागमें बड़े-बड़े मोती लटक रहे थे, ऐसे सुन्दर आभूषणोंसे उन बालकोंकी शोभा और भी बढ़ी-चढ़ी दीखती थी। उनके कण्ठमें विविध मणि तथा बघनखे सुशोभित हो रहे थे। कानोंमें कनकके बने हुए रत्नजटित कुण्डल लहरा रहे थे। सिरपर घुंघराले बाल फहरा रहे थे। पाँवोंमें मणिमण्डित झाँझर झनझना रहे । हाथोंमें बाजूबन्द और कमरमें करधनी खनखना रही थी। चन्द्रमाके सदृश शुभ्र हास्य भरे मुखमें किरणोंके समान छोटे-छोटे दाँत चमचमा रहे थे । इन्द्रनीलमणिके समान श्याम कान्तिवाले, अँगनाईमें घुटनोंके बल रेंगते हुए, संस्कारोंसे संस्कृत और देखनेमात्रसे मन मोह लेनेवाले वे कुमार अपने माता-पिताके मनको मुग्ध करने लगे ॥ १५-१८ ॥ कौसल्या और राजा दशरथ भी अनेक प्रकारके वस्त्र तथा बघनखा आदि अलङ्कारोंसे अपने बालकोंको भूषित करने लगे ॥ १९ ॥ राम अपने पिताको थालमें भोजन करते देखते तो आकर उसमेंसे एक ग्रास हाथमें लेकर बाहर भाग जाते । राजाके कहनेपर कौसल्या रामको पकड़नेके लिए जब दौड़तीं तो योगियोंको भी अगम्य राम उनके हाथ नहीं आते थे। बादमें वे स्वयं धीरेसे आकर पीछेसे आनन्दपूर्वक अपने कोमल हाथोंसे माता-पिताके मुँहमें वह कौर रख देते थे ॥ २०-२२ ॥ ऐसी अनेक कौतुकयुक्त बालक्रीड़ा, बालचेष्टा, मधुर-मनोहर भाषण, बालकोंके कृत्रिम युद्ध, नाना प्रकारकी चालें, मुखचुम्बन और तरह-तरहकी बनावटी सवारियोंपर सवार होकर राम आदि चारों बालक माता-पिताके मनको लुभाने तथा आनन्दित करने लगे ॥ २३ ॥ २४ ॥ कालान्तरमें सब बालक वस्त्र-आभूषण आदिसे भूषित हो पिताको प्रणाम करके सभामें सिंहासनपर बैठने लगे। तब राजाने ऋषियों द्वारा सानन्द उनका यज्ञोपवीत संस्कार करवाया।

विद्वद्भिश्चोपनयनमेवं शास्त्रेषु निर्णयः । गुरोरास्यात्सुमुहूर्ते वेदान् सांगांश्चतुर्विधान् ॥२८॥
चक्रुर्मुखोद्गतानेव बालाः शास्त्रादिकान्यपि । ब्रह्मचर्यसमाप्तौ ते तीर्थानि जग्मुरादरात् ॥२९॥
सेनया मंत्रिसहिता वसिष्ठेन समन्विताः । षण्मासैः पुनरागत्य साकेतं विविशुर्मुदा ॥३०॥
एवं ते मतिमन्तश्च प्रिया राज्ञो वशे स्थिताः । पितरं रंजयामासुः पौरान् जानपदानपि ॥३१॥
इति श्रीशतकोटिरामचरितांतर्गते श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये सारकाण्डे रामजन्मनाम द्वितीयः सर्गः ॥ २ ॥

तृतीयः सर्गः

(ताड़कावध-अहल्योद्धार तथा सीतास्वयंवर)

श्रीशिव उवाच

एतस्मिन्नंतरेऽयोध्यां विश्वामित्रो ययौ मुनिः । यज्ञसंरक्षणार्थाय राजानं मुनिरब्रवीत् ॥ १ ॥
रामं च लक्ष्मणं चापि मह्यं देहि कियद्दिनम् । गुरूनामंत्र्य राजाऽपि प्रेषयामास तौ तदा ॥ २ ॥
जग्मतुर्यज्ञरक्षार्थं गाधिजेन रथस्थितौ । ततः प्रहृष्टो गाधेयः स्थित्वा कामाश्रमे पथि ॥ ३ ॥
प्रभाते स्नातयोः स्नातः प्रादाद्विद्यास्तयोर्मुदा । माहेश्वरीं च सद्विद्यां धनुर्विद्यापुरःसराम् ॥ ४ ॥
शास्त्रीमास्त्रीं लौकिकीं च रथविद्यां गजोद्भवाम् । अश्वविद्यां गदाविद्यां मंत्राह्वानविसर्जने ॥ ५ ॥
क्षुत्तृट्श्रमविलोपिन्यौ बलामतिबलामपि । सर्वविद्यास्त्ववाप्याथ ह्युभौ तौ रामलक्ष्मणौ ॥ ६ ॥
वनौकसां हितार्थाय जघ्नतुस्तत्र राक्षसान् । पथि पांथजनध्वंसकारिणीं नाम ताटिकाम् ॥ ७ ॥
राक्षसीमेकबाणेन जघान रघुनन्दनः । अप्सरा सा मुनिं पूर्वं क्षोभयामास कानने ॥ ८ ॥

शास्त्रोंका भी यही सिद्धान्त है कि ब्रह्मवर्चस् (ब्रह्मतेज) की इच्छावाले ब्राह्मणकुमारका यज्ञोपवीत गर्भसे छठें अथवा जन्मसे पाँचवें वर्ष होना चाहिये । बल चाहनेवाले क्षत्रियका छठें और धन चाहनेवाले वैश्य-कुमारका यज्ञोपवीत आठवें वर्ष अवश्य हो जाना चाहिये ॥ २५–२७ ॥ तदनन्तर अच्छे मुहूर्तमें गुरुके मुखसे राम-लक्ष्मणने सांग (शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्द और ज्योतिष सहित) चारों वेद, छः शास्त्र (न्याय-वेदान्त वादि) और चौंसठ कला (गाना-बजाना आदि) सीख-पढ़कर हृदयंगम कर लिया । ब्रह्मचर्यकी समाप्तिके बाद राम आदि चारों भ्राता सेनाको, मन्त्रियोंको तथा गुरु वसिष्ठको साथ लेकर सहर्ष तीर्थयात्रा करने गये । छः महीनेमें वहाँसे लौट आये और आनन्दपूर्वक अयोध्यामें रहने लगे ॥ २८–३० ॥ इस प्रकार बुद्धिमान्, माता-पिताके परम भक्त, परम प्रिय तथा उनकी आज्ञापर चलनेवाले वे चारों बालक पिताको, नगरके लोगोंको तथा उस देशकी प्रजाको अपने सद्व्यवहारके द्वारा मोहित करने लगे ॥ ३१ ॥ इति श्रीशतकोटिरामचरितान्तर्गते श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये सारकाण्डे पं० रामतेजपाण्डेयकृतभाषा-टीकायां रामजन्मनाम द्वितीयः सर्गः ॥ २ ॥

श्रीशिवजी बोले—हे पार्वती ! तदनन्तर मुनि विश्वामित्र अयोध्या आये और राजा दशरथसे कहा कि यज्ञकी रक्षा करनेके लिए राम तथा लक्ष्मणको आप मुझे दे दीजिये । गुरु वसिष्ठके समझानेपर राजाने न चाहते हुए भी दोनों बालकोंको उनके साथ कर दिया ॥ १ ॥ २ ॥ तदनन्तर गाधिपुत्र विश्वामित्रके साथ रथपर बैठकर उनके यज्ञकी रक्षा करनेके लिए राम-लक्ष्मण चल दिये । रास्तेमें कामाश्रममें सबेरे स्नान करके प्रसन्न विश्वामित्रजीने स्नान किये हुए राम-लक्ष्मणको विविध विद्यायें सिखायीं । महेश्वर (शिवजीसे प्राप्त माहेश्वरी धनुर्विद्या, शस्त्रविद्या, अस्त्रविद्या, लौकिकी विद्या, रथविद्या, गजविद्या, अश्वविद्या, गदा चलानेकी विद्या, मन्त्रके द्वारा अस्त्रादिका आवाहन और विसर्जन करनेकी विद्या, भूख-प्यासको मिटानेवाली बला और अतिबला नामकी दो विद्याएँ तथा अन्यान्य सब विद्याओंको प्राप्त करके राम-लक्ष्मण वनवासी ऋषि-मुनियोंके सुखके लिये राक्षसोंको मारने लगे । रास्तेमें पथिकोंको मारकर खा जानेवाली ताड़का नामकी राक्षसीको रघुनन्दन रामचन्द्रने एक ही बाणसे मार डाला । सुन्दकी स्त्री और सुकेतु यक्षकी

राक्षसी तस्य शापेन बभूव सुंदकामिनी । मारीचश्च सुबाहुश्च सुंदात्तस्याः सुतावुभौ ॥ ९ ॥
रामबाणाद्गतिस्तस्याः कीर्तिता मुनिना पुरा । सा प्राप्य दिव्यदेहत्वं नत्वा रामं दिवं गता ॥१०॥
विश्वामित्राश्रमं रामो गत्वा तद्यज्ञघातकान् । राक्षसान्निशितैर्बाणैर्जघान रघुनन्दनः ॥११॥
प्रारम्भं रणयज्ञस्य चकार रघुनन्दनः । हत्वा सहस्रशः श्रीमान् राक्षसान् निशितैः शरैः ॥१२॥
क्षिप्त्वा बाणेन मारीचं शतयोजनसागरे । हत्वा सुबाहुं चैकेन बाणेन रघुसत्तमः ॥१३॥
स कृत्वा गाधियज्ञस्य समाप्तिं रघुनन्दनः । नाकरोद्रणयज्ञस्य समाप्तिं स्वकृतस्य च ॥१४॥
कालानलमतृप्तं तं दृष्ट्वा तत्तृप्तिहेतवे । श्रुत्वा जनकगेहे वै तत्कन्यायाः स्वयंवरम् ॥१५॥
रामलक्ष्मणसंयुक्तो मुनिस्तं नगरं ययौ । गमनावसरे मार्गे भर्तृशप्तां शिलां मुनिः ॥१६॥
मुनिरूपिमहेन्द्रेण भुक्तां रहसि शोभनाम् । गौतमस्यांगनां नाम ह्यहल्यां चावदत्तयोः ॥१७॥
ब्रह्मणा निर्मिताऽहल्या द्विमुखी गोःपरिक्रमात् । दत्ता पुरा गौतमाय विसृज्येंद्रादिकान्सुरान् ॥१८॥
तत्स्मरन् मघवा वैरं तां भुक्त्वा मुनिशापतः । सहसा भगवान् जातः सहस्रलोचनस्ततः ॥१९॥

श्रीरामचन्द्रो निजपादपद्मस्पर्शेन तां गौतमधर्मपत्नीम् ।
निष्कल्मषामद्भुतरूपयुक्तां चकार देवः करुणासमुद्रः ॥ २० ॥

नदीरूपा जनस्थानेऽहल्या गौतमशापतः । रामेण भ्रमताऽरण्ये स्वांघ्रिस्पर्शात्समुद्धृता ॥२१॥
कल्पभेदाद्वदंतीत्थं मुनयश्चापि केचन । नैव शापोऽस्ति सर्वेषु कल्पेषु सत्कथा तथा ॥२२॥
ततस्तौ सुरगन्धर्ववर्षितौ पुष्पवृष्टिभिः । दत्त्वाऽहल्यां गौतमाय जग्मतुर्जाह्नवीं प्रति ॥२३॥

पुत्री ताड़का पहिले बड़ी सुन्दर अप्सरा थी। परन्तु बादमें जब उसने अगस्त्य ऋषिको वनमें सताया, तब उनके शापसे वह कुरूप राक्षसी बन गयी। उससे मारीच और सुबाहु ये दो राक्षस पुत्र उत्पन्न हुए ॥ ३–९ ॥ 'रामके बाणसे तेरी गति होगी' ऐसा अगस्त्य मुनिने उससे कहा था। इसलिए रामबाणसे इस समय अमर तथा दिव्य शरीर धारण करके वह स्वर्गको चली गयी ॥ १० ॥ वहाँसे चल तथा विश्वामित्रके आश्रममें जाकर रघुनन्दनने यज्ञमें विघ्न डालनेवाले समस्त राक्षसोंको अपने तीखे बाणोंसे मार डाला ॥११॥ रघुपति रामचन्द्रने वहाँ रणयज्ञ (युद्धरूपी यज्ञ) प्रारम्भ कर दिया। श्रीमान् रामने हजारों राक्षसोंको तीक्ष्ण बाणोंसे मारकर मारीचको एक बाणकी मारसे सौ योजन (चार सौ कोस) दूरीपर समुद्रमें फेंक दिया। उन्होंने दूसरे बाणसे मारीचके भाई सुबाहुको मार डाला ॥ १२ ॥ १३ ॥ विश्वामित्रजीके यज्ञकी तो उन्होंने राक्षसोंको मारकर निर्विघ्न समाप्ति कर दी। परन्तु अपने द्वारा प्रारम्भ युद्धयज्ञकी समाप्ति नहीं की अर्थात् उनका क्रोध शान्त नहीं हुआ ॥ १४ ॥ श्रीरामको प्रलयकालीन अग्निके सदृश उग्र तथा युद्धसे अतृप्त देखकर मुनि विश्वामित्रने उनकी तृप्तिके लिए राजा जनकके यहां उनकी कन्याका स्वयंवर सुनकर राम-लक्ष्मणको लेकर जनकपुरको प्रयाण किया। चलते-चलते रास्तेमें मुनिने अहल्याको देखकर कहा कि यह मुनिवेषधारी इन्द्रके द्वारा भोगी गयी परमसुन्दरी गौतमकी स्त्री है। यह भेद विश्वामित्रने राम-लक्ष्मणको बताया ॥ १५–१७ ॥ इस मनोहर मुखवाली अहल्याको बनाकर ब्रह्माने पृथ्वीकी परिक्रमा करनेवाले गौतम ऋषिको दे दिया। किसी इन्द्रादि देवताको नहीं दी ॥ १८ ॥ इन्द्रने उस वैरका स्मरण करके कपटसे एकान्तमें उसके साथ भोग किया। तदनन्तर गौतम मुनिके शापसे इन्द्र हजार भग (योनि) वाले हो गये। फिर प्रार्थना करनेपर गौतमकी कृपासे वे हजार नेत्रवाले बन गये। अब विश्वामित्रके अनुरोधसे करुणानिधि एवं साक्षात् देवतास्वरूप रामचन्द्रने दया करके अपने चरणकमलके स्पर्शसे उस शिलास्वरूपिणी गौतमकी धर्मपत्नी अहल्याको दोषसे मुक्त करके अति अद्भुत स्वरूपवाली सुन्दरी स्त्री बना दिया ॥ १९ ॥ २० ॥ दण्डक वनके पास एक स्थानमें मुनिके शापसे शापित नदीरूपा अहल्याका अरण्यमें भ्रमण करते हुए रामचन्द्रने अपने परम पवित्र चरणस्पर्शसे उद्धार कर दिया ॥ २१ ॥ कुछ लोग इस कथाको कल्पभेदसे मानते और कहते हैं कि सब कल्पोंमें यह शापकी बात एक जैसी नहीं मिलती ॥ २२ ॥ इसके बाद

रामं नौकां कांक्षमाणं नौकापो वाक्यमब्रवीत् ।

नाविक उवाच

आदावहं क्षालयित्वा पादरेणूँस्तव प्रभो ॥ २४ ॥

पश्चान्नौकां स्पर्शयामि तव पादौ रघूद्वह । नोचेत्त्वत्पादरजसा स्पृष्टा नारी भविष्यति ॥ २५॥

क्षालयामि तव पादपङ्कजं नाथ दारुदृषदोः किमन्तरम् ।

मानुषीकरणचूर्णमस्ति ते इति लोके हि कथा प्रथीयसी ॥२६॥

अस्ति मे गृहिणी गेहे किं करोम्यपरां स्त्रियम् । इति तद्वाक्यमाकर्ण्य विहस्य रघुनन्दनः ॥२७॥
तेन संक्षालितपदो नौकां तामारुरोह सः । ततस्तीर्त्वा जाह्नवीं ते मिथिलां मुनिभिर्ययुः ॥२८॥
मिथिलायां समाहूताः कोटिशः पार्थिवा ययुः । चारणास्याद्दशास्योऽपि श्रुत्वाऽगच्छत्स्वमंत्रिभिः२९॥
अनाहूतः पुष्पकेण सेनया परिवारितः । न ययौ पुत्रविरहाद्राजा दशरथस्तदा ॥३०॥
अत्यादरैर्विदेहेन समाहूतोऽपि भक्तितः । श्रीरामलक्ष्मणाभ्यां च विश्वामित्रो मुनीश्वरः ॥३१॥
शनैर्मुदा स मिथिलां बहिश्चोपवनं ययौ । विश्वामित्रं समानेतुं जनको मन्त्रिभिः सह ॥३२॥
यावद्गन्तुं मनश्चक्रे तावच्छिष्यः समाययौ । विश्वामित्रस्य तं दृष्ट्वा ननाम जनकस्तदा ॥३३॥
ततः शिष्यः करं धृत्वा जनकस्य करेण हि । नीत्वा रहसि प्रोवाच वचनं स्वगुरोः स्फुटम् ॥३४॥
त्वामाह गाधिजो राजन् राज्ञो दशरथस्य हि । मया पुत्रौ समानीतौ वीरौ श्रीरामलक्ष्मणौ ॥३५॥
तौ सीतोर्मिलयोः पाणिग्रहणं हि करिष्यतः । पणीकृतं त्वया चापं रामोऽयं खण्डयिष्यति ॥३६॥
अतो वरविधानेन तौ पुरीं नेतुमर्हसि । एतद्वृत्तं चापभंगपर्यन्तं मा स्फुटं कुरु ॥३७॥

देवताओं और गन्धर्वोंने जिनके ऊपर दिव्य पुष्पोंकी वृष्टि की थी, ऐसे राम तथा लक्ष्मण गौतमको अहल्या सौंपकर जाह्नवी (गङ्गा) की ओर चल पड़े ॥ २३ ॥ गङ्गातटपर पहुँचकर रामचन्द्र पार उतरनेके लिये नाव खोज ही रहे थे कि इतनेमें एक नाववाला बोला—हे प्रभो ! हे रघूद्वह रामचन्द्रजी ! यदि आप कहें तो मैं पहिले आपके चरणकी धूलि धो लूँ, बादमें आपको नावपर बैठाकर पार उतार दूँ । क्योंकि ऐसा न करनेपर कहीं आपकी पदरज छूनेसे मेरी नाव भी स्त्री न बन जाय । क्योंकि पत्थर और लकड़ीमें कोई बहुत अन्तर नहीं होता । यह बात जगत्में प्रसिद्ध है कि आपके चरणकी रजमें जड़को भी मनुष्य बनानेकी सामर्थ्य हैं । इसलिये आपका चरण धोना आवश्यक है ॥ २४-२६ ॥ क्योंकि मेरे घरमें एक स्त्री है । अतएव मैं दूसरीको लेकर क्या करूँगा । इस अटपटे वाक्यको सुनकर आनन्दकन्द रामचन्द्र हँस पड़े ॥ २७ ॥ बादमें जब उस धीवरने पाँव धो लिया, तब रामचन्द्रजी मुनियोंके साथ नावपर सवार होकर गङ्गा पार हुए और वहाँसे मिथिलापुरीकी ओर चले ॥ २८ ॥ मिथिलामें निमन्त्रित राजाओंका एक प्रकारका छोटा-सा समुद्र एकत्र हो गया था । रावण भी बिना बुलाये चारणोंके मुखसे सुनकर ही सेना तथा मंत्रियोंसे घिरा हुआ पुष्पक विमानपर चढ़कर वहाँ जा पहुँचा । उस समय राजा दशरथ आदर तथा भक्तिपूर्वक जनकके द्वारा बुलाये जानेपर भी पुत्रविरहसे दुखी होनेके कारण नहीं आये थे । उसी समय मुनियोंके ईश्वर विश्वामित्र भी राम और लक्ष्मणके साथ धीरे-धीरे आनन्दपूर्वक मिथिलाके बाहर एक उपवनमें जा पहुँचे । राजा जनक विश्वामित्रको लिवा लानेके लिए जाना ही चाहते थे कि विश्वामित्रका एक शिष्य वहाँ आ पहुँचा । उसको विश्वामित्रका शिष्य जानकर राजाने नमस्कार किया ॥ २९–३३ ॥ शिष्यने राजाका हाथ पकड़ तथा एकान्तमें ले जाकर अपने गुरुका भेजा हुआ सन्देश भलीभाँति कह सुनाया ॥ ३४ ॥ उसने कहा—गाधिपुत्र विश्वामित्रने कहा है कि मैं अपने साथ राजा दशरथके दो शूरवीर पुत्रों राम-लक्ष्मणको यहाँ ले आया हूँ ॥ ३५ ॥ ये दोनों सीता तथा उर्मिलाका पाणिग्रहण करेंगे और आपका पणीकृत धनुष रामचन्द्रजी तोड़ेंगे ॥ ३६ ॥ इसलिये वरको ले आनेके विधानसे इन दोनोंको नगरमें लाना चाहिये । जबतक धनुष भङ्ग न हो, तबतक यह वृत्तान्त किसीको न बताइएगा ॥ ३७ ॥ राजा

इत्युक्त्वा जनकं शिष्यः स्वगुरुं शीघ्रमाययौ । जनकोऽपि मुदा युक्तस्तूष्णीमेव पुरीं निजाम् ॥३८॥
तोरणाद्यैः शोभयित्वा सैन्येन परिवेष्टितः । वारणेन्द्रं पुरस्कृत्य सभार्यस्तैर्नृपैः सह ॥३९॥
सुमेधादिप्रमदाभिर्नानावाद्यैर्मनोहरैः । विश्वामित्रांतिकं गत्वा नत्वा संपूज्य तं मुनिम् ॥४०॥
अज्ञात इव तौ पृष्ट्वा श्रुत्वा तद्वृत्तमादरात् । वस्त्रालंकारभूषाद्यैः सत्कृत्य विधिवन्नृपः ॥४१॥
गजयोस्तौ समारोप्य चामराद्यैः सुवीजितौ । विश्वामित्रेण मुनिना निनाय मिथिलां पुरीम् ॥४२॥
ननृतुर्वारनार्यश्च तुष्टुवुर्वन्दिमागधाः । नेदुर्नानासुवाद्यानि जगुस्ते तु नटादयः ॥४३॥
तदा तौ हट्टमार्गेण जग्मतुश्चातिशोभितौ । श्रुत्वा च पुरनार्यश्च वीरौ श्रीरामलक्ष्मणौ ॥४४॥
समागताविति मुदा जग्मतुश्चातिशोभितौ । कंजनेत्रैर्ददृशुस्तौ ववर्षुः पुष्पवृष्टिभिः ॥४५॥
तदा परस्परं प्रोचुः सीतायोग्यो वरस्त्वयम् । रामोऽस्माकं रोचते हि करोत्वेवं विधिस्तु सः ॥४६॥
उर्मिलायास्तु योग्योऽयं लक्ष्मणोऽस्ति सुलक्षणः । अस्माकं सुकृतैरद्य तयोरेतौ पती शुभौ ॥४७॥
श्रीरामलक्ष्मणौ रम्यौ भवतश्चोत्तमोत्तमौ । एवं तासां कामिनीनां वचनानि नृपात्मजौ ॥४८॥
शुश्रुवतुः शुभान्येव ह्यूर्ध्वास्यौ तौ ददर्शतुः । ततस्ते मिलिताः सर्वे नृपाः प्रोचुः परस्परम् ॥४९॥
एतादृशो विदेहेन यदाऽस्माभिः समागतम् । तदोत्सवः कृतो नैव ह्यनयोः क्रियते कथम् ॥५०॥
किमंतःस्थेन राज्ञाऽद्य सीता रामाय साऽर्पिता । किमस्माकं समाहूय मानभंगोऽद्य नः कृतः ॥५१॥
एवं तेषां नृपाणां च वचनानि नृपात्मजौ । जनको गाधिजश्चापि शुश्रुवुस्ते समततः ॥५२॥
ततः शनैः शनैर्वीरौ गवाक्षैः स्त्रीभिरीक्षितौ । जग्मतुर्वाद्यघोषाद्यैर्जनकस्य सभां प्रति ॥५३॥
ततोऽवतरतुर्वीरौ गजाभ्यां मुनिना सह । तत्स्वयंवरशालायामुपविष्टेषु राजसु ॥५४॥

जनकजीसे यह कहकर शिष्य शीघ्र अपने गुरुजीके पास लौट गया। राजा भी इस बातको मनमें रखकर बड़ी प्रसन्नताके साथ अपनी मिथिला नगरीको तोरण तथा रंग-बिरंगी पताकाओं आदिसे सजवाकर गहने, जरीकी झूल तथा सोनेके हौदेसे सुशोभित उत्तम एवं दर्शनीय हाथीको आगे करके सेना, सभी राजाओं, सुमेधा आदि स्त्रियों और अनेक प्रकारके मनोहर मांगलिक बाजे लेकर अपनी भार्याके साथ विश्वामित्र मुनिके पास गये और उनको नमस्कार करके पूजा की ॥३८--४०॥ मुनिसे अनजानकी तरह उन दोनों बालकोंका परिचय पूछकर विधिवत् वस्त्र-आभूषणसे उनका सत्कार करके हाथियोंपर चढ़ाकर चमर डुलवाते हुए जनकजी विश्वामित्रके साथ दोनों भाइयोंको मिथिलापुरीमें ले चले ॥ ४१ ॥ ४२ ॥ उस समय बहुतेरी वारांगनाएं सुन्दर नृत्य करने लगीं। चारण तथा भाट लोग स्तुतिपाठ एवं जयजयकार करने लगे। नाना प्रकारके बाजोंके मधुर स्वरसे दसों दिशायें गूंज उठीं। गायकजन मनोहर गायन गाने लगे ॥ ४३ ॥ इस प्रकार शूरवीर तथा अति सुन्दर राम-लक्ष्मण बाजारकी सड़कोंपर आ पहुँचे। उन्हें आते देख तथा औरोंसे सुनकर आनन्दके मारे पहिलेसे ही नगरकी सब स्त्रिये नगरके प्रधान दरवाजेपर, अपने-अपने घरकी छतोंपर, झरोखों और अटारियोंपर जा बैठीं और अपने कमलसदृश नेत्रोंसे उन्हें बड़े चावसे देखती हुई उनपर फूलोंकी वर्षा करने लगीं ॥ ४४ ॥ ४५ ॥ फिर वे आपसमें कहने लगीं कि ये राम सीताके योग्य वर हैं। हमको तो राम बहुत प्रिय लगते हैं। इस लिए ईश्वर भी वैसा ही करे तो अच्छा हो। ये शुभ लक्षणोंसे युक्त लक्ष्मण उर्मिलाके योग्य वर हैं। हमारे भाग्यसे ये दोनों उत्तम, रमणीय तथा सुन्दर गात्रवाले राम और लक्ष्मण सीता तथा उर्मिलाके पति हों तो बहुत अच्छा हो। इस प्रकार उनके मनोहर वचनोंको सुनकर राम-लक्ष्मण दोनों भाई ऊपर मुख उठाकर उन्हें देखने लगे। बादमें वे सब राजे परस्पर कहने लगे—॥ ४६--४९ ॥ जब हम सब यहाँ आये, तब तो राजा जनकने ऐसा उत्सव नहीं किया। अब इन बालकोंके लिये ऐसा क्यों किया ॥ ५० ॥ राजाने कहीं चुपकेसे सीता रामको तो नहीं दे दी है? ऐसा ही था तो हम लोगोंको बुलाकर अपमानित क्यों किया गया ॥ ५१ ॥ उनकी बातें राम-लक्ष्मण, राजा जनक तथा विश्वामित्रजीने भी सुनी ॥ ५२ ॥ इधर झरोखोंमें बैठी हुई स्त्रियोंके द्वारा अवलोकित वे दोनों वीर गाने एवं बाजेकी ध्वनि

विश्वामित्रानुगौ तौ हि मुनिशालां प्रजग्मतुः । ऋद्धायां मुनिशालायां मुनेरग्रे निषीदतुः ॥५५॥
एवं सभायामृद्धायां राज्ञा कन्याप्रतिग्रहे । प्रतिज्ञातं मम धनुस्तत्सज्ज त्वमुपस्थितम् ॥५६॥
यदाऽधीता धनुर्विद्या मत्तः परशुधारिणा । तदा दत्तं मया तस्मै धनुस्त्रिपुरदाहकम् ॥५७॥
तेनैकविंशद्वारं हि निःक्षत्रा पृथिवी कृता । सहस्रबाहुर्निहतः स्वपितुर्घातकारणात् ॥५८॥
तन्मैथिलांगणे स्थाप्य जामदग्न्यो नृपं ययौ । अश्ववत्तद्धनुः कृत्वा जानकी क्रीडनं व्यधात् ॥५९॥
जामदग्न्यस्तेन सीतां ज्ञात्वा लक्ष्मीं तदिच्छया । ददौ नृपं पणार्थं तद्धनुरन्यैर्दुरासदम् ॥६०॥
पणीकृतं धनुस्तच्च विदेहेन स्वयम्वरे । ततः सभायामृद्धायां जनकः प्राह शंकितः ॥६१॥
संस्थाप्य राज्ञां पुरतस्तन्मे चापमनुत्तमम् । शस्त्रागारात्समानीतं वृषैः पंचशतैस्तु यत् ॥६२॥
सीतास्वयंवरार्थं यन्न्यस्तं परशुधारिणा । नृपः प्राह सभामध्ये यो वीरस्त्वद्य सदसि ॥६३॥
करिष्यति धनुः सज्जं तं वै सीता वरिष्यति । तत्तस्य वचनं श्रुत्वा धनुर्दृष्ट्वाऽचलोपमम् ॥६४॥
अधोमुखास्तदा सर्वे बभूवुः पार्थिवोत्तमाः । केचिद्भूमेः समुद्वोढुं धनुः शक्ता न चाभवन् ॥६५॥
भूमेरुच्चालिते केचिदूर्ध्वं नेतुं न चाशकन् । सर्वेऽप्युच्चालने तस्य नृपाः शक्ता न चाभवन् ॥६६॥
सज्जीकारः कुतस्तस्य मनसाऽप्यविचिंतितः । धनुः सज्जीकृतौ सर्वान्नृपान् ज्ञात्वा पराङ्मुखान्॥६७॥
तदातिगर्वसंरूढः सभायां रावणोऽब्रवीत् । धनुषः सन्निधिं गत्वा विहसन् जनकं प्रति ॥६८॥
येन वै निर्जिता देवास्त्रैलोक्यं स्ववशे कृतम् । आन्दोलितो भुजाभिर्हि कैलासो येन वै मया ॥६९॥

आदिके साथ धीरे-धीरे राजा जनकके सभामण्डपमें जा पहुँचे ॥ ५३ ॥ वहाँ वीर राम-लक्ष्मण तथा मुनिगण हाथियोंसे नीचे उतरे । पश्चात् सभामण्डपमें राजाओंके यथास्थान बैठ जानेपर विश्वामित्रजीके साथ जाकर वे बालक भी मुनिमण्डपमें मुनिके आगे बैठ गये । ५४ ॥ ५५ ॥ इस प्रकार सभाके भर जानेपर कन्यादानके लिये नियत किये हुए धनुषपर ज्या (ताँत या डोरी) चढ़ानेके लिये राजाओंसे राजा जनकने कहा ॥ ५६ ॥ श्रीशिवजी कहते हैं—हे पार्वती ! जब परशुरामजीने मुझसे धनुर्विद्या प्राप्त की, उस समय मैंने उनको वह त्रिपुरको जलानेवाला धनुष दिया था ॥ ५७ ॥ उसके द्वारा उन्होंने इक्कीस बार पृथ्वीको क्षत्रियोंसे शून्य कर डाला और अपने पिताके घातक सहस्रबाहुको भी उसीसे मारा ॥ ५८ ॥ तदनन्तर परशुरामजी उस धनुषको राजा जनकके आँगनमें रख आये। बचपनमें जानकीजी उस धनुषको लकड़ीका घोड़ा बनाकर खेला करती थीं ॥ ५९ ॥ इस व्यवहारसे परशुराम सीताको लक्ष्मी समझने लगे और इसी अभिप्रायसे हर एकके लिये दुर्लभ वह धनुष राजा जनकको प्रतिज्ञापालनार्थं दे दिया ॥ ६० ॥ तदनुसार विदेहने उस धनुषको सीतास्वयम्वरमें प्रणकी जगहपर नियत किया। पश्चात् भरी सभामें सशंक भावसे जनकजीने उस मेरे सर्वोत्तम धनुषको सबके सामने रखकर राजाओंको अपनी प्रतिज्ञा कह सुनायी। वह धनुष शस्त्रागारसे पाँच सौ बैलों द्वारा खिंचवाकर राजा जनकने सीता-स्वयंवरके लिये वहाँ स्थापित किया था। भरी सभाके मध्यमें राजा जनकने राजाओंसे कहा—'जो राजा इन सभासदोंके सामने इस धनुषको सज्जित करेगा, उसीको सीता वरेगी।' राजाके वचनको सुन तथा पर्वतके समान अचल उस धनुषको देखकर सबके सब राजाओं तथा महाराजाओंने मुख नीचे कर लिया। उनमेंसे कुछ तो उस धनुषको जमीनसे तनिक भी नहीं उठा सके ॥ ६१–६५ ॥ कुछ लोगोंने कुछ ऊँचा भी किया तो जमीनसे बिल्कुल नहीं उठा सके। बादमें सबके सब मिलकर उठाने लगे तो भी वह जमीनसे पूरा नहीं उठा। तब फिर उसपर डोरी चढ़ाना तो और भी कठिन काम था। सभामें धनुष चढ़ानेसे सब राजाओंको पराङ्मुख देखकर रावण गर्वके साथ धनुषके पास गया और हँसकर राजा जनकसे कहने लगा—॥ ६६–६८ ॥ हे राजन् ! जिस रावणने समस्त देवताओंको जीत लिया है, जिसने तीनों लोकोंको अपने वशमें कर लिया है तथा अपनी दो ही भुजाओंसे जिसने शिवजीके निवासस्थान कैलास पर्वतको हिला दिया है, उस रावणका यदि तुम राजाओंसे भरी सभामें बल देखना चाहते

तस्य मे जनकाद्य त्वं बलं पार्थिवसंसदि । द्रष्टुमिच्छसि किंत्वस्मिन् लघुचापे तृणोपमे ॥७०॥
एवं वदन् दशास्यः स नम्रो भूत्वा महद्धनुः । गृहीतुं वामहस्तेन चालयामास वै तदा ॥७१॥
न तच्चचाल किंचिच्च तदा दक्षिणसत्करम् । पुरः कृत्वा गृहीतुं तच्चालयामास वै पुनः ॥७२॥
न तच्चचाल तदपि तदाश्चर्येण रावणः । भुजाभ्यां चालयामास तदा चापं चचाल न ॥७३॥
एवं क्रमेण सर्वाभिर्भुजाभिश्चालयन् धनुः । विंशद्दोर्भिरेकदेशं चापस्योर्ध्वं चकार सः ॥७४॥
एकोनविंशद्दोर्भिश्च धृत्वा चैव महद्धनुः । गुणं भूम्यां निपतितं गृहीतुं हि दशाननः ॥७५॥
किंचिद्भूत्वा विनम्रः स दोष्णा जग्राह तं गुणम् । एतस्मिन्नंतरे तच्च पपात तद्धृदये धनुः ॥७६॥
न तद्विंशतिभुजाभिश्च चचाल हृदयाद्धनुः । तदा सभायामूर्ध्वास्यः पपात स दशाननः ॥७७॥
मुकुटः पतितो भूमौ मुक्तकच्छोऽप्यभूत्तदा । तदा विजहसुः सर्वे सभायां पार्थिवोत्तमाः ॥७८॥
तदा प्राणांतिकं चासीद्रावणस्य सभांगणे । अक्षीणि भ्रामयामास लालास्येभ्यो विनिर्ययौ ॥७९॥
तदा तं वेष्टयामासुर्मंत्रिणो राक्षसास्तदा । धनुरुच्चालने शक्तास्तेऽभवन्नैव संसदि ॥८०॥
सद्वस्त्रेषु दशास्यः स विष्टामूत्रं तदाऽकरोत् । ततः सभायां जनकः पुनः प्राहातिशंकितः ॥८१॥
कोऽपि वीरोऽस्ति भूमौ न किं निर्वीरं हि भूतलम् । चेदस्ति कश्चित्सदसि तर्हि सोऽद्य सभांगणे ॥८२॥
जीवदानं करोत्वस्मै दशास्याय नृपाग्रतः । इति वाक्यशराघातभिन्नौ तौ रामलक्ष्मणौ ॥८३॥
ददर्शतुर्गाधिजस्य मुखं तौ स्फुरितभ्रुवौ । विश्वामित्रस्तदा प्राह राम चोत्तिष्ठ राघव ॥८४॥
किमंतं रावणस्याद्य त्वं पश्यसि सभांगणे । जीवयैनं राक्षसेन्द्रं सज्जं कुरु धनुस्त्विदम् ॥८५॥
तन्मुनेर्वचनं श्रुत्वा तथेत्युक्त्वा स राघवः । तदोत्थायासनाद्वेगात्प्रणनाम मुनीश्वरम् ॥८६॥
निष्कास्य कंठाद्धारादीन् कटिं बद्ध्वा तदा प्रभुः । मुकुटादि दृढं कृत्वा शनैः प्राप सभांगणम् ॥८७॥

हो तो भले ही देख लो, किन्तु इस तिनकेके समान हल्के धनुषमें क्या वीरता देखोगे ॥ ६९ ॥ ७० ॥ ऐसा कहकर दशमुख रावणने उस बड़े भारी धनुषको पहिले अपने बायें हाथसे ही हिलाना चाहा ॥ ७१ ॥ लेकिन वह तनिक भी नहीं हिला। तब उसने दाहिने हाथसे पकड़कर हिलाना चाहा, तिसपर भी जब वह नहीं हिला, तब रावणको बड़ा आश्चर्य हुआ और एक साथ दोनों हाथोंसे उठाना चाहा। फिर तीनसे, फिर चारसे इस प्रकार करते-करते जब बीसों भुजायें ऐक साथ लगा दीं, तब कहीं वह एक ओरसे कुछ ऊँचा हुआ ॥ ७२–७४ ॥ तब उसने उन्नीस भुजाओंसे उस महान् धनुषको सम्हाला तथा बीसवीं भुजासे जमीनपर लटकती हुई ताँतको पकड़कर ज्यों ही उपरको उठाना चाहा, त्यों ही वह धनुष उलटकर उसकी छातीपर गिर पड़ा ॥ ७५ ॥ ७६ ॥ तब बीसों हाथोंसे भी रावण उस धनुषको अपनी छातीपरसे नहीं हटा सका और उपर मुख किये पृथ्वीपर धड़ामसे गिर पड़ा ॥ ७७ ॥ उसके सिरका मुकुट दूर जा गिरा और धोतीकी लांग खुल गयी। यह देख सबके सब राजे खिलखिलाकर हँस पड़े ॥ ७८ ॥ रावण बेचारेके पसीना निकलने लगा, आँखे घूमने लगीं और मुखसे लार गिरने लगी ॥ ७९ ॥ उसके सब मन्त्रियों तथा सैनिकोंने आकर घेर लिया, परन्तु उन सबसे भी धनुष नहीं उठा ॥ ८० ॥ पहिने हुए सुन्दर वस्त्रोंमें रावणका मल-मूत्र निकल पड़ा। रावण जैसे वीरकी यह दशा देख राजा जनकको और भी शंका हुई और वे घबड़ाकर कहने लगे— ॥ ८१ ॥ क्या कोई भी वीर पुरुष इस भूतलपर नहीं रहा ? क्या पृथ्वी वीरोंसे शून्य हो गयी ? यदि कोई हो तो इस सभामें राजाओंके सामने रावणको जीवनदान देकर बचाये। उनके इस वाक्यरूपी बाणसे पीडित होकर राम तथा लक्ष्मण जिनकी भौंहें क्रोधके मारे फड़क रही थीं, विश्वामित्रके मुखकी ओर देखने लगे। तब विश्वामित्र बोले—हे राघव ! खड़े हो जाओ और इस रावणके प्राण बचाओ। तुम्हारे देखते रावण मर रहा है। सो ठीक नहीं है। इसे बचाकर धनुषको भी सज्जित करो ॥ ८२–८५ ॥ मुनिके वाक्य सुन तथा बहुत अच्छा कहकर राम तुरन्त आसनसे उठ खड़े हुए और मुनिको प्रणाम किया ॥ ८६ ॥ उन्होंने गलेमेंसे हार आदि आभूषण उतारकर रख दिये, कमरको कस लिया,

तं राममागतं दृष्ट्वा जनाः सर्वेऽतिविस्मिताः । चकिताः पार्थिवाः सर्वे ददृशुर्नेत्रपंकजैः ॥८८॥
परस्परं तदा प्रोचुः किंमूढोऽस्ति शिशुस्त्वयम्। यत्रास्माभिः स्थितं तूष्णीं तत्रायं किं करिष्यति ॥८९॥
केचिदाहुर्दशास्यं हि द्रष्टुं बालः समागतः । केचिद्‌चुर्बालचेष्टा क्रियते शिशुनाऽत्र हि ।९०॥
केचिद्‌चुः किमर्थं हि हारा मुक्तास्त्वनेन हि। केचिद्‌चुर्गाधिजेन चापं प्रति सुयोजितः ॥९१॥
केचिद्‌चुर्वैरबुद्धया चोदितः किं शिशुस्त्वयम् । वधार्थं चापघातेन विश्वामित्रेण राघवः ॥९२॥
केचिद्‌चुर्बलं त्वस्य मुनिनाऽत्र निरीक्षितुम् । चोदितोऽस्त्यत्र श्रीरामश्चापेऽयं किं करिष्यति ॥९३॥
एवं नानाविधांस्तर्कान्यावत्कुर्वंति पार्थिवाः । तावद्‌दृष्ट्वाऽग्रतो रामं जनकः प्राह गाधिजम् ॥९४॥
किमर्थं प्रेषितस्त्वत्र मुने बालः सभांगणे । लत्रैते रावणाद्याश्च नृपाः सर्वेऽपि कुण्ठिताः ॥९५॥
तस्मिंश्चापे त्वयं बालः किमागत्य करिष्यति । यत्त्वया. शिष्यवाक्येन पूर्वं चाहं प्रबोधितः ॥९६॥
तत्सर्वं तु मृषैवाद्य चापाग्रे मुनिसत्तम । क्वायं बालः कोमलांगः क्वेदं चापं सुदुर्धरम् ॥९७॥
किं चातकस्तृषाक्रांतः सागरं शोषयिष्यति । एतस्मिन्नन्तरे सर्वाः सुमेधाद्याः स्त्रियश्च ताः ॥९८॥
द्विजराजानन चारुदोर्दण्डद्वयशोभितम् । हेमवर्णोपमरुचिं शृंखलानूपुरांघ्रिणम् ॥९९॥
शृंखलाकंककवरद्वयशोभितसत्करम् । दिव्यकुण्डलमुकुटरत्नालंकारशोभितम् ॥१००॥
सुजंघं सुपदं शूरं सुजानुं सुन्दरोदरम् । सुस्कंधं सुहनुं कंबुकंठं त्रिवलिशोभितम् ॥१०१॥
स्मितास्यं कोमलोष्ठं च सुदंतावलिराजितम् । सुनासं सुकपोलं च कञ्जपत्रायितेक्षणम् ॥१०२॥
सुभ्रुभावं च सुस्निग्धं कुंचितालकशोभितम् । मुक्तामाणिक्यरत्नादिनानाऽलकारशोभितम् ॥१०३॥

मुकुटको अच्छी प्रकार बांध लिया और धीरेसे सभाके बीचमें आ खड़े हुए ॥ ८७ ॥ रामको वहाँ खड़े देख सब लोग बड़े विस्मयमें पड़ गये और चकित होकर सबके सब राजे उन्हें अपने कमलसदृश नयनोंसे देखते हुए परस्पर कहने लगे कि यह बालक कैसा मूर्ख है । अरे, जहाँ हम लोगोंको चुप होना पड़ा, वहाँ यह क्या करेगा ? ॥ ८८ ॥ ८९ ॥ कोई कहने लगा कि यह बालक केवल रावणको देखनेके लिए आया है । किसीने कहा कि यह बालक तो मानों खेलने गया हो, ऐसा लगता है ॥ ९० ॥ कोई बोला- तब इसने गलेसे हार तथा माला क्यों उतार दी है ? किसीने उत्तर दिया कि इसको विश्वामित्रने धनुष उठानेके लिए भेजा है ॥ ९१ ॥ कोई बोला कि इस बालकको विश्वामित्रने शत्रुतावश भेजा है, जिससे यह धनुषसे दबकर मर जाय ॥ ९२ ॥ दूसरोंने कहा कि नहीं, मुनिने इसका बल देखनेके लिए भेजा है । परन्तु राम इस धनुषके विषयमें क्या कर सकता है ? ॥ ९३ ॥ इस प्रकार राजा लोग अनेक तरहके तर्क-वितर्क कर ही रहे थे कि रामको देखकर जनकने विश्वामित्रसे कहा—हे मुनिराज ! आपने इस बालकको क्यों भेजा है ? जिस धनुषके विषयमें बड़े-बड़े राजे-महाराजे तथा रावणकी भी शक्ति कुण्ठित हो गयी, वहाँ यह बालक जाकर क्या करेगा ? जो आपने पहले अपने शिष्यके द्वारा कहला भेजा था, सो सब आज इस धनुषके सामने झूठा होगा । क्योंकि कहाँ यह कोमल अंगका बालक और कहाँ यह अति दुर्धर्ष तथा महान् धनुष । चातक चाहे कितना ही प्यासा क्यों न हो, तो भी क्या वह समुद्रको सोख सकता है ? इसी समय सुमेधा आदि स्त्रियें झरोखोंसे, जालियोंसे, चौकों और छतोंपरसे सुन्दर तथा कोमल अङ्गवाले, कमलके सदृश नेत्रवाले, चन्द्रमाके समान सुन्दर मुखवाले, बड़ी-बड़ी भुजाओंसे शोभित, सुवर्णसदृश कान्तिसम्पन्न, नूपुर और सिकड़ियोंको पावँमें पहिने । ९४-९९ ॥ जिनके हाथोंमें सिकड़ी और कड़े शोभित हो रहे थे । जिनके सिरपर दिव्य मुकुट, कानोंमें दिव्य कुण्डल, हृदयपर रत्न तथा मणियोंके विशाल हार झलक रहे थे, पेट तथा ललाटमें त्रिवली पड़ी हुई थी । शंखके समान कंठ देखनेमें बड़ा ही अच्छा लगता था । जिनकी चिकनी ठोढ़ी, कोमल कपोल, हँसता हुआ मुखचंद्र, अनारकी पंक्तिके समान दाँत, सुन्दर लम्बी और पतली नाक तथा लाल-लाल होंठ थे । माणिक्य, मोती, रत्न तथा हीरों आदिसे जड़े हुए अनेक अलंकारोंसे अलंकृत,

मुक्तारत्नपुष्पमालान्यस्तमप्यतिशोभितम् । न्यस्तहारं न्यस्तवस्त्रं बद्धपीताम्बरान्वितम् ॥१०४॥
दिव्यमुद्रांगुलिलसत्पंकजद्वयसत्करम् । एवं दृष्ट्वा स्त्रियो रामं सभाङ्गणविराजितम् ॥१०५॥
न्यस्तकोदंडतूणीरं शिवचापाभिसंमुखम् । प्रार्थयामासुस्ताः सर्वा ऊर्ध्वास्या ऊर्ध्वसत्कराः ॥१०६॥
पश्यंत्यो गगने शंभुं मोहान्नारायणं विधिम् । साक्षान्नारायणं रामं न ज्ञात्वा ताश्च वै स्त्रियः ॥१०७॥
हे शंभो हे रमाकान्त हे विधेऽस्मत्पुराकृतैः । व्रतदानादिपुण्यैश्च चापं सज्जीकरोत्वयम् ॥१०८॥
युष्माभिर्नः सुकृतैश्च कर्तव्यं पुष्पवद्धनुः । अद्यास्य कंठदेशेऽत्र मालां सीता दधात्वियम् ॥१०९॥
नो भवत्वद्य नेत्राणां साफल्यं दर्शनादिह । सीतया रामचंद्रस्य वेदिकायां स्थितस्य हि ॥११०॥
एतस्मिन्नंतरे सीता रामं दृष्ट्वा सभांगणे । दिव्यप्रासादसंरूढा सखीभिः परिवेष्टिता ॥१११॥
प्रोच्चचालासनाद्वेगादानंदस्वेदसंप्लुता ।
सख्यास्तुलस्याः कंठे स्वां दोर्लतां क्षिप्य सादरम् ॥११२॥
अब्रवीन्मधुरं वाक्यं रत्नालंकारमंडिता । किंपणोऽत्र कृतः पित्रा मम शत्रुस्वरूपिणा ॥११३॥
क्व रामः सुकुमारांगः क्वेदं चापं नगोपमम् । हा विधे किं करोष्यद्य किमस्त्यंतर्गतं तव ॥११४॥
रामाद्विनाऽन्यं पुरुषं मनसाऽहं न रोचये । यदि तातो बलादन्यं मां दास्यति तदा ह्यहम् ॥११५॥
त्यजामि जीवितं त्वद्य प्रासादपतनादिना । हे शंभो हे विधे दुर्गे हे सावित्रि सरस्वति ॥११६॥
हे गायत्रि स्वरे भानो मघवन्यम तोयप । हे कुबेरानल रमे हे विष्णो खगनायक ॥११७॥
हे फणींद्र निशानाथ हे सर्वे निर्जरादयः । युष्माकं प्रार्थयाम्यत्र प्रसार्य करपल्लवम् ॥११८॥
सर्वै रेतन्महच्चापं करणीयं तु पुष्पवत् । प्रवेशनीयं युष्माभिः श्रीरामभुजदंडयोः ॥११९॥
चतुर्दश वत्सराणि मुनिवृत्त्याऽनुवर्तिनी । विचरामि वने चाहं धनुः सज्जं करोत्वयम् ॥१२०॥

पन्ना, लाल, पुखराज, मुक्ता तथा हरे-पीले अनेक रङ्गकी पुष्पमालाओंसे मनोहर, पीताम्बर आदि सुन्दर वस्त्रोंको पहिने हुए, शङ्ख चक्र गदा पद्म आदि शुभ चिह्नोंसे चिह्नित करकमलवाले, सभामण्डपके बीच खड़े, दोनों कन्धोंपर धनुष और तूणीरको टाँगे तथा शिवधनुषके सामने मुख किये हुए रामको देख-कर उन्हें साक्षात् नारायण न समझती हुई वे महिलायें आकाशमें स्थित शिव, विष्णु और ब्रह्माको देख उनसे हाथ जोड़कर प्रार्थना करने लगीं—॥ १००–१०७ ॥ हे शंभो ! हे रमाकांत ! हे ब्रह्मन् ! हमारे पूर्वोपार्जित व्रत-दानजन्य पुण्योंसे यह बालक धनुष चढ़ानेमें समर्थ हो ॥१०८॥ आप लोग हमारे पुण्यप्रतापसे इस धनुषको पुष्पके समान हल्का बना दें। जिससे हमारी सीता आज इनके गलेमें वरमाला डाले ॥ १०९ ॥ हमलोग सीतासहित रामचन्द्रको विवाहकी वेदीपर बैठे देखकर अपने नेत्रोंको सफल करें ॥ ११० ॥ उसी समय वस्त्रों तथा अलङ्कारोंसे सुशोभित सखियोंके साथ दिव्य भवनकी छतपर बैठी हुई सीता रामको सभाके बीच खड़े देख आनन्दके स्वेदसे परिप्लुत होकर शीघ्र आसनसे उठ खड़ी हुईं। अपनी प्रिय सखी तुलसीके गलेमें हाथ डाल तथा तनिक अगाड़ी बढ़कर आदरपूर्वक यह मधुर वाक्य बोलीं—शत्रुस्वरूप मेरे पिताने यह कैसी प्रतिज्ञा की है ? कहाँ ये कोमल अङ्गवाले बालक राम और कहाँ यह पर्वतके समान भारी तथा कठिन धनुष। यह इनसे कैसे चढ़ सकेगा ? हा ईश्वर ! तुमने यह क्या किया और क्या करनेका विचार है ? चाहे जो हो, मैं रामको छोड़कर दूसरे किसीको नहीं वरूँगी। यदि मेरे पिता मुझे दूसरे किसीको देंगे तो मैं महलपरसे गिरकर अथवा विष आदिके द्वारा शीघ्र प्राण त्याग दूँगी। हे शंभो ! हे विधे ! हे दुर्गे ! हे सरस्वती ! हे गायत्री ! हे स्वरे ! हे सूर्य ! हे इन्द्र ! हे जलपति वरुण ! हे कुबेर ! हे अग्ने ! हे रमे ! हे विष्णो ! हे गरुड़ ! हे फणीन्द्र ! हे चन्द्र ! हे समस्त देवताओं ! मैं आँचल फैलाकर प्रार्थना करती हूँ कि आप सब इस धनुषको फूलके समान हल्का बना दें और रामचन्द्रके भुजदण्डमें प्रवेश करके उन्हें बल प्रदान करें। जिससे राम धनुष चढ़ानेमें समर्थ हों और मुनिवृत्ति धारण करके रामकी

एवं नानाविधैर्वाक्यैः सीता देवानतोषयत् ।
एवं प्रासादसंस्थायाः सीताया विविधानि च ॥१२१॥
तथा तासां हि नारीणां नृपाणां जनकस्य च ।
वाक्यानि शृण्वन् श्रीरामः किंचित्कृत्वा स्मिताननम् ॥१२२॥

ययौ चापं नमस्कृत्य कृत्वा तं च प्रदक्षिणम् । पुनर्नत्वा शिवं ध्यात्वा गुरुं दशरथं नृपम् ॥१२३॥
कौसल्यां च गुरुं ध्यात्वा वामहस्तेन तद्दधौ । सव्यहस्तेन चापस्य गुणं धृत्वा रघूत्तमः ॥१२४॥
वामहस्तेन नम्रं तच्चकार सदसि क्षणात् । तदा निनेदुर्वाद्यानि तुष्टुवुर्बन्दिमागधाः ॥१२५॥
एतस्मिन्नन्तरे रामो वामहस्तबलाद्धनुः । मध्येऽभवत्त्रिखंडं तच्चैवं प्राचीनमुत्तमम् ॥१२६॥
चापभङ्गान्महानादस्तदाऽभूद्गगनांगणे । चकंपे धरणी त्वं चालिङ्ग्यन्मां भयाद्दृढम् ।१२७।
चुक्षुभुः सागराः सर्वे निनेदुस्ता दिशो दश । तारा निपेतुर्धरणीं शिरः शेषोऽप्यचालयत् ॥१२८॥
ववुर्वाताः सुगन्धाश्च देवास्ते गगने स्थिताः । वादयामासुर्वाद्यानि पुष्पौघैः समवाकिरन् ॥१२९॥
स्ववेंश्या ननृतुः खे हि देवास्तोषं प्रपेदिरे । तदा निनेदुः सदसि भेर्यो दुंदुभयो वराः ॥१३०॥
नववाद्यस्वनाः सर्वे बभूवुर्जयनिःस्वनाः । ननृतुर्वारनार्यश्च तुष्टुवुर्मागधादयः ॥१३१॥
स्त्रियो गवाक्षरंध्रैश्च रामं पुष्पैरवाकिरन् । तदा स रावणस्तूष्णीं लज्जयाऽऽनतमस्तकः ॥१३२॥
मुकुटैरपि हीनश्च मुक्तकच्छोऽतिविह्वलः । सभायां न क्षणं तस्थौ तूर्णं लंकापुरीं ययौ ॥१३३॥
रामेण भग्नं तच्चापं दृष्ट्वा नार्यो मुदान्विताः । चक्रुर्जयस्वनैर्घोषान्करैश्च करतालिकाः ॥१३४॥
सीताऽपि मुदिता जाता हर्षरोमांचनिर्भरा । अनिमेषा कंजनेत्रा राममुत्कंठिता बभूव ॥१३५॥
एतस्मिन्नंतरे राजा जनकः प्राह मन्त्रिणः । करिणीस्थामत्र सीतामानयध्वं समुत्सवैः ॥१३६॥

अनुगामिनी बनकर उनके साथ चौदह वर्ष तक वनमें भ्रमण करूँ ॥ १११–१२० ॥ इस प्रकार विविध वाक्योंसे सीता देवताओंको मनाने लगीं। प्रासादपर स्थित सीताके, उन स्त्रियोंके, राजा जनकके तथा अन्यान्य राजाओंके ऐसे-ऐसे वाक्योंको सुनकर मुसकाते हुए श्रीराम धनुषके पास गये । वहाँ जाकर उन्होंने धनुषको नमस्कार किया, प्रदक्षिणा की और शिवजीका मन ही मन ध्यान धरके प्रणाम किया। बादमें राजाओंमें श्रेष्ठ राजा दशरथ, माता कौसल्या तथा गुरु वसिष्ठका मन ही मन ध्यान धरके प्रणाम किया। फिर बायें हाथसे धनुष और दाहिने हाथसे उसकी ताँत पकड़कर क्षणभरमें सभाके सामने बायें हाथसे धनुषको झुकाकर ताँत चढ़ा दी। उस समय बाजे बजने लगे, पुष्पवृष्टि होने लगी और चारणगण रामका यश गाने लगे। इतनेमें रामके बायें बाहुबलसे उस उत्तम तथा पुरातन शिवधनुषके बीचसे तीन टुकड़े हो गये ॥ १२१–१२६ ॥ धनुषके टूटनेसे बड़ा घनघोर शब्द हुआ । जिससे समस्त गगनमण्डल गूँज उठा। धरती काँप उठी। हे पार्वती ! तुम भी उस समय मारे डरके हमसे चिपट गयी थीं। सब समुद्र चलायमान हो गये। दिशायें क्षुभित हो गयीं। तारे टूट-टूटकर पृथ्वीपर गिरने लगे। शेषनागका सिर घूमने लगा। सुगन्धयुक्त वायु बहने लगी। देवता आकाशसे फूल बरसाने और बाजे बजाने लगे । स्वर्गकी देवियाँ आकाशमें नृत्य करने लगीं और देवता आनन्द मनाने लगे। उस समय सभामण्डपमें भी उत्तम ढोल तथा नगाड़े बजने लगे ॥ १२७–१३० ॥ नये-नये बाजों तथा जयजयकारका घोष होने लगा। वाराङ्गनाएँ नाचने लगीं। भाँट आदि स्तुति करने लगे। झरोखोंसे स्त्रियें रामपर फूल बरसाने लगीं। तब रावण चुपचाप लज्जासे सिर नीचा किये हुए बिना लाँग लगाये मुकुटरहित हो घबराहटके साथ शीघ्र मिथिलापुरीसे निकलकर लङ्काको भाग गया। वहाँ वह क्षणभर भी नहीं ठहरा ॥ १३१–१३३ ॥ रामने धनुषको तोड़ डाला, यह देखकर स्त्रियें हर्षातिरेकसे जयजयकार करने और तालियाँ बजाने लगीं ॥ १३४ ॥ सीताके तो शरीरमें मारे आनन्दके रोमाञ्च हो आया। उत्कण्ठापूर्वक निमेषरहित होकर कमलसदृश नयनोंसे वे रामको निहारने लगीं ॥ १३५ ॥ तभी राजा जनकने

रक्षणीया निजैः सैन्यैर्वेष्टयित्वा समन्ततः । तथेति ते मंत्रिणश्च ययुर्वेगेन जानकीम् ॥१३७॥
प्रोचुस्ते मधुरं वाक्यं प्रबद्धकरसंपुटाः । हे सीते कंजनयने धन्याऽसि गजगामिनि ॥१३८॥
रविवंशोद्भवेनाद्य दशरथसुतेन च । रामेण भग्नं सदसि चापमुत्तिष्ठ वेगतः ॥१३९॥
करिणीपृष्ठमारुह्य राम त्वं गंतुमर्हसि । रामकंठेऽर्पयस्वाद्य रत्नमालां मुदान्विता ॥१४०॥
तन्मंत्रिणां वचः श्रुत्वा सीता नत्वा स्वमातरम् । सखीभिः करिणीपृष्ठे संस्थितासीन्मुदान्विता ॥१४१॥
तदग्रे नववाद्यानि निनेदुर्मञ्जुलानि वै । निनेदुः पृष्ठभागेऽपि नानावाद्यानि वै मुहुः ॥१४२॥
चित्रोष्णीष्ठाः कंचुकिनः शतशो वेत्रपाणयः । सीताकरिण्याश्चाग्रे ते दुद्रुवुर्दीर्घनिःस्वनाः ॥१४३॥
वारयन् जनसंमर्दं सीतां द्रष्टुं जनैः कृतम् । ननृतुर्वारनार्यश्च बभूवुर्यन्त्रनिःस्वनाः ॥१४४॥
तुष्टुवुर्मागधाद्याश्च नटा गानं प्रचक्रिरे । करिणीं वेष्टयामासुः सीतादास्यः सहस्रशः ॥१४५॥
अश्वारूढाश्चामरादि बिभ्रन्त्यो रुक्मशोभिताः । ततोऽश्वसंस्थाः शतशस्तां ययुश्चोपमातरः ॥१४६॥
जरठाः शस्त्रधारिण्यः स्वर्णदंडलसत्कराः । ततः पुरुषवद्वेषान्बिभ्रन्त्यः प्रमदोत्तमाः ॥१४७॥
ययुस्तरुण्यः शतशः शस्त्रहस्ताः सुभूषिताः । गोपितास्याः कंचुकिन्यस्तुरगादिषु संस्थिताः ॥१४८॥
ततस्ते मंत्रिणः सर्वे नानावाहनसंस्थिताः । स्वसैन्यैर्वेष्टयामासुः सीतायाः करिणीं मुदा ॥१४९॥
चामरैर्व्यजनैः सख्यो मुहुः सीतामवीजयन् । स्त्रियो गवाक्षरंध्रैश्च सीतां पुष्पैरवाकिरन् ॥१५०॥
एवं नानासमुत्साहैः शनैः सीता तडित्प्रभा । नवरत्नमयीं मालां बिभ्रती दक्षिणे करे ॥१५१॥
रामं नेत्रकटाक्षैश्च पश्यन्ती मुदितानना । सभायां राघवं गत्वा करिण्याश्चावरुह्य च ॥१५२॥
शनैः पद्भ्यां ययौ रामं तद्ग्रीवायां सुलज्जिता । मुमोच निजबाहुभ्यां रत्नमालां मुदान्विता ॥१५३॥
चकार नमनं रामं पादयोः स्थाप्य वै शिरः । तस्थाववाङ्मुखी सीता सभायामतिलज्जिता ॥१५४॥

अपने मन्त्रियोंको आज्ञा दी कि सुन्दर हथिनीपर बैठाकर सेनाकी देख-रेखमें समारोहके साथ सीताको यहाँ ले आओ ॥ १३६ ॥ 'बहुत अच्छा' कहकर मन्त्रिगण तुरन्त जानकीजीके पास गये ॥ १३७ ॥ वे हाथ जोड़कर इस प्रकार मधुर वाणीमें कहने लगे—हे गजगामिनी और कमलनयनी सीता ! तुम धन्य हो ॥ १३८ ॥ सूर्यवंशी दशरथपुत्र रामने सभामें धनुष तोड़ डाला। जल्दी उठकर खड़ी हो जाओ ॥ १३९ ॥ हथिनीपर चढ़कर अभी रामके पास चलना है। वहाँ चलकर आनन्दपूर्वक अभी उनके गलेमें यह रत्नोंकी माला (वरमाला) डाल दो ॥ १४० ॥ सीताने मन्त्रियोंके इस वाक्यको सुनकर माताके चरणोंमें नमस्कार किया और सहर्ष सखियोंके साथ हथिनीकी पीठपर सवार हो गयीं ॥ १४१ ॥ उनके आगे तथा पीछे नाना प्रकारके मनोहर बाजे बजने लगे ॥ १४२ ॥ रङ्ग-बिरङ्गी पगड़ियें बाँधे और हाथमें बेंत लिये अन्तःपुरके सैंकड़ों दरवान हथिनीके आगे-आगे जोरसे चिल्लाते हुए चलने लगे ॥ १४३ ॥ वे रास्तेमें सीताको देखनेके लिये खड़ी भीड़को हटा रहे थे। वेश्यायें नाचने लगीं। विविध वाद्योंके निनाद होने लगे। भाँट स्तुति करने और नट गाने लगे। सीताकी हजारों दासियोंने उन्हें घेर लिया ॥ १४४ ॥ १४५ ॥ उनके पीछे अश्वपर सवार तथा सुवर्णभूषित चमर आदि लिये हुए बहुतसी स्त्रियें तथा उनके पीछे घोड़ोंपर सवार सैंकड़ों उपमातायें (दाइयाँ) चलीं ॥ १४६ ॥ उनके पीछे शस्त्रधारिणी तथा सोनेकी छड़ियें लिये हुए सैंकड़ों बूढ़ी स्त्रियें चलीं। उनके बाद जवान स्त्रियें पुरुषका वेष बनाये और हाथमें शस्त्र लिये हुए चलीं। उनके बाद उसी वेषमें मुख ढाँके और कुरता पहिने घोड़ोंपर सवार होकर अस्त्र लिये हुए कुछ सुन्दरी स्त्रियें चलीं ॥ १४७ ॥ १४८ ॥ सबके पीछे विविध वाहनोंपर सवार मन्त्रिगण अपनी-अपनी सेनाके द्वारा सीताकी हथिनीको घेरे हुए चले ॥ १४९ ॥ सखीगण चँवर तथा पंखे सीताजीपर डुलाने लगीं। नगरकी स्त्रियें गवाक्षमार्गसे उनपर फूल बरसाने लगीं ॥ १५० ॥ इस तरह अनेक प्रकारसे सज-धजकर धीरे-धीरे बिजलीके सदृश दीप्तिवाली तथा दाहिने हाथमें नवरत्नोंका हार लिये हुए अपने नेत्रकटाक्षोंसे रामको देखती हुई सीता सभामण्डपके पास जा तथा हथिनीसे उतरकर धीरे-धीरे रामके पास गयीं और लज्जापूर्वक अपने हाथोंसे उनके गलेमें वह रत्नोंकी माला डाल दी ॥ १५१–१५३ ॥

दर्दर्श सीतां रामोऽपि हारशोभितहृत्स्थलाम् । अवाप तोषं नितरां ननाम गाधिजं प्रभुः ॥१५५॥
तदा रामं समालिंग्य विश्वामित्रो मुनीश्वरः । निवेशयन्निजांके तं स प्रेम्णाऽऽघ्राय मस्तके ॥१५६॥
तदा स जनकः सीतां गाधिजांके न्यवेशयत् । सीतया रघुनाथेन शुशुभे स मुनिस्तदा ॥१५७॥
मानयामास स मुनिर्जन्मसाफल्यतां हृदि । ततः सभायां जनको विश्वामित्रं वचोऽब्रवीत् ॥१५८॥
प्रसादात्तव रामस्य लाभो जातोऽद्य मे मुने । धन्योऽस्म्यहं कुलं धन्यं धन्यौ तौ पितरौ मम ॥१५९॥
योऽहं श्रीरामश्वशुरश्चेति लोके प्रथां गतः । इत्युक्त्वा गाधिजं नत्वा प्रणनाम रघूत्तमम् ।.१६०॥
तदा ते पार्थिवाः सीतां दृष्ट्वा तत्र तडित्प्रभाम् । बिंबोष्ठीं चंद्रवदनां तन्नेत्रशरताडिताः ॥१६१॥
बभूवुर्विकलास्तत्र दुर्दैवं मेनिरे निजम् । केचिन्मूर्छां ययुस्तत्र तान्समागत्य मैथिलः । १६२॥
प्रार्थयामास नृपतीन्विषण्णान् सदसि स्थितान् । नष्टश्रीम्लानवदनान् लज्जया नतकंधरान् ॥१६३॥
युष्माभिर्मेऽत्र कन्याया विवाहं विनिवर्त्य च । गंतव्यं स्वपुराण्येव करणीया कृपा मयि ॥१६४॥
तदा ते पार्थिवाः सर्वे मंत्रांश्चक्रुः परस्परम् । यदि युद्धे विजेतव्यः श्रीरामोऽद्य रणांगणे ॥१६५॥
तर्ह्यस्मिन् समये दुष्टे जयो नो न भविष्यति । कुमुहूर्ते वयं यातास्तूष्णीं गत्वा पुराणि हि ॥१६६॥
सुमुहूर्ते पुनर्योद्धुं यास्यामः सकला बलैः । भविष्यति तदाऽस्माकं जयो युद्धे विनिश्चयात् ॥१६७॥
यदा रामं बाणभिन्नं पश्यामः पतितं रणे । भविष्यामः कृतकृत्यास्तदा सर्वे वयं नृपाः ॥१६८॥
तदैवास्यापमानस्य दुःखं मर्मस्थलं गतम् । त्यजामः पार्थिवाः सर्वे जेष्यामो राघवं यदा ॥१६९॥
किमर्थमधुना वैरं दर्शनीयं नृपाय वै । इति संमंत्र्य ते सर्वे तथेत्युक्त्वा नृपोत्तमम् ॥१७०॥
कृत्वा सीताविवाहं च गच्छामः स्वस्थलानि हि । तदा तान् सकलं वस्तु गृहाणि जनको मुदा ॥१७१॥

तत्पश्चात् रामके चरणोंपर अपना सिर रख तथा नमस्कार करके सभामें लज्जावश कुछ नीचा मुख किये हुए खड़ी हो गयीं ॥ १५४ ॥ उस हारसे सुशोभितहृदय रामने भी सीताकी ओर देखा और अत्यन्त सन्तुष्ट होकर उन्होंने विश्वामित्रजीको प्रणाम किया ॥ १५५ ॥ मुनियोंके ईश्वर विश्वामित्रने रामको आलिङ्गन करके प्रेमसे गोदमें बिठाया और उनका सिर सूँघा ॥ १५६ ॥ तब राजा जनकने सीताको भी ले जाकर विश्वामित्रजीकी गोदमें बैठा दिया। उस समय सीता तथा रामके सहित विश्वामित्रजी बड़ी ही शोभाको प्राप्त हुए ॥ १५७ ॥ वे मन ही मन अपने जन्मको सफल समझने लगे। तदनन्तर राजा जनकने सभामें विश्वामित्रसे कहा—॥ १५८ ॥ हे मुनिराज ! आपकी कृपासे आज मुझे रामचन्द्र जैसा दामाद प्राप्त हुआ है। मैं अपनेको, अपने माता-पिताको तथा अपने कुलको धन्य समझता हूँ ॥ १५९ ॥ क्योंकि मैं रामचन्द्रके श्वशुरनामसे संसारमें विख्यात हुआ। ऐसा कहकर उन्होंने विश्वामित्रको तथा रघुकुलशिरोमणि रामचन्द्रको प्रणाम किया ॥ १६० ॥ उस समय वहाँ एकत्रित अन्यान्य राजे चपलाके समान चमकनेवाले बिम्ब अर्थात् पके हुए कुँदरूफलके सदृश ओंठ और चन्द्रमाके सदृश मुखवाली सीताको देखते ही उसके नेत्ररूपी बाणोंसे घायल होकर व्याकुल हो गये और अपना दुर्भाग्य समझने लगे। कुछ वहीं मूर्छित हो गये। तब मिथिलाके अधिपति राजा जनकने वहाँ जाकर उन कान्ति नष्ट हो जानेसे मलीनमुख, दुःखी, लज्जासे नीची गरदन करके सभामें बैठे हुए राजाओंसे प्रार्थना की-॥ १६१—१६३ ॥ कृपा करके मेरी कन्याके विवाहका उत्सव समाप्त करके ही आपलोग अपने-अपने नगरोंको जाइयेगा ॥ १६४ ॥ तब वे राजे विचार करने लगे कि यदि रामको युद्धमें जीतना ही हो तो भी इस कुसमयमें हमलोगोंको विजय लाभ नहीं होगा। क्योंकि हमलोग कुमुहूर्तमें आये हैं। अतएव अभी यहाँसे चुपचाप अपने-अपने स्थानोंको जाकर फिर किसी अच्छे मुहूर्तमें दलबलके सहित आयेंगे। उस समय रामको रणभूमिमें घायलकर और विजय प्राप्त करके हम सब कृतकृत्य होंगे तथा अपमानजनित हृदयगत दुःखको शान्त करेंगे। इसलिए इस समय राजा जनकसे वैर करना अच्छा नहीं है। सीताके विवाहको करवाकर ही चलेंगे। ऐसा विचार करके सब राजाओंने राजा जनकसे 'बहुत अच्छा' ऐसा कहा ॥ १६५-१७० ॥ इधर राजा जनकने सहर्ष रघूत्तम

कल्पयामास विधिवन्मुनींश्चापि रघूत्तमम् । ततो गाधिजवाक्येन विदेहः प्रेष्य मंत्रिणः ॥१७२॥
समानेतुं दशरथं तत्प्रतीक्षां चकार सः । तेऽपि गत्वा मंत्रिणश्च दृष्ट्वा दशरथं नृपम् ॥१७३॥
वृत्तं निवेद्य सकलं तं नत्वा तत्पुरःस्थिताः । वृत्तं दशरथः श्रुत्वा तुतोष नितरां तदा ॥१७४॥
सैन्येन नागरैः सर्वैः स्त्रीभिर्जानपदैः सह । मिथिलामगमच्छीघ्रं तदा दशरथो नृपः ॥१७५॥
तदा महोत्सवेनैव नृपं दशरथं पुरीम् । नेतुं गजं पुरस्कृत्य जनकः पार्थिवैर्ययौ ॥१७६॥
तदा दशरथाग्रे तौ दृष्ट्वा कैकेयजासुतौ । श्रीरामलक्ष्मणावत्र कुतः प्राप्तौ व्यचिंतयत् ॥१७७।
तावद्रामलक्ष्मणाभ्यां युक्तं तं गाधिजं मुनिम् । स्वसेनायां नृपो दृष्ट्वा विस्मयं प्राप मैथिलः ॥१७८॥
ततो दशरथं नत्वा वसिष्ठं प्रणिपत्य च । गाधिजं जनकः प्राह कावेतौ रामरूपिणौ ॥१७९॥
ततस्तं गाधिजः प्राह रामांशाद्भरतस्त्वयम् । लक्ष्मणांशाच्च शत्रुघ्नः कैकेय्या नंदनाविमौ ॥१८०॥
तच्छ्रुत्वा जनकः प्राह राजानं गाधिजं गुरुम् । सीतां रामाय दास्यामि लब्धां भूमावयोनिजाम्॥१८१॥
देहजामुर्मिलानाम्नीं लक्ष्मणायार्पयाम्यहम् । कुशध्वजस्य मे बन्धोः श्रुतकीर्तिश्च मांडवी ॥१८२॥
वर्तेते बालिके रम्ये रूपयौवनमण्डिते । सीतोर्मिलाभ्यामपि ये मया नित्यं प्रलालिते ॥१८३॥
दास्याम्यहं भरताय मांडवीं मंडनान्विताम् । शत्रुघ्नाय श्रुतकीर्तिमर्पयाम्यहमादरात् ॥१८४॥
एवं स्नुषाश्चतस्रश्च त्वमंगीकुरु पार्थिव । तथेति जनकं प्राह राजा दशरथो मुदा ॥१८५।
ततो दशरथः प्राह शतानंदं पुरोहितम् । अहल्याजठरोद्भूतं मैथिलाग्रे स्थितं मुनिम् ॥१८६॥
कथं लब्धा भुवः सीता तत्सर्वं वक्तुमर्हसि । शतानंदस्तथेत्युक्त्वाऽब्रवीद्दशरथं नृपम् ।१८७॥

शतानंद उवाच

सम्यक् पृष्टं त्वया राजन् शृणुष्वैकाग्रमानसः । आसीत्पुरा नृपः कश्चित्पद्माक्ष इति विश्रुतः । १८८॥

रामके लिये, मुनियोंके लिये तथा राजाओंके लिये सब प्रकारकी वस्तुओंका यथोचित प्रबन्ध कर दिया ॥ १७१ ॥ तदनन्तर विश्वामित्रके कहनेपर राजा जनकने अवधनरेश महाराज दशरथको बुलानेका निश्चय करके मन्त्रियोंको अयोध्या भेजा। तदनुसार वे राजा दशरथके पास गये और सब वृत्तान्त निवेदन करनेके बाद नमस्कार करके सामने खड़े हो गये। इस वृत्तान्तको सुनकर राजा दशरथ बहुत प्रसन्न हुए ॥ १७२–१७४ ॥ फिर राजा दशरथ स्त्रियोंको, सेनाको, नगर तथा देशके सब लोगोंको साथ लेकर आनन्दपूर्वक शीघ्र मिथिलापुरीको चल पड़े ॥ १७५ ॥ उधर राजा जनक बड़े समारोहपूर्वक बाजे-गाजेके साथ एक हाथीको सजाकर सब राजाओंके संग उनकी अगवानीके लिए सामने आये ॥ १७६ ॥ महाराज दशरथके आगे कैकेयीके पुत्र भरत तथा शत्रुघ्नको देखकर राजा जनक विचारने लगे कि ये राम-लक्ष्मण यहाँ कहाँसे आ गये। बादमें जब विश्वामित्रके साथ राम-लक्ष्मणको अपनी सेनामें देखा तो आश्चर्यचकित होकर राजा जनकने महाराज दशरथ और मुनि वसिष्ठको प्रणाम करके विश्वामित्रसे पूछा कि ये दोनों राम-लक्ष्मणके समान रूपवाले दूसरे बालक कौन हैं ? ॥ १७७–१७९ ॥ विश्वामित्रजीने उत्तर दिया कि रामके अंशस्वरूप भरत तथा लक्ष्मणके अंश शत्रुघ्न ये दोनों कैकेयीके पुत्र हैं ॥ १८० ॥ यह सुनकर राजा जनक गुरु विश्वामित्र तथा राजा दशरथसे कहने लगे कि अयोनिजा (योनिसे नहीं उत्पन्न) तथा पृथ्वीसे प्राप्त सीताको मैं रामके लिए देता हूँ तथा शरीरसे उत्पन्न उर्मिलाको लक्ष्मणके लिए दे रहा हूँ। उन्हें आप ग्रहण करें। मेरे भाई कुशध्वजकी श्रुतकीर्ति तथा माण्डवी नामकी सुन्दर तथा रूपयौवनसे सम्पन्न दो कन्याएँ हैं। जिनको कि सीता तथा उर्मिलाके साथ-साथ पालकर मैंने बड़ी की है ॥ १८१–१८३ ॥ उनमें भूषणोंसे भूषित मांडवीको भरतके लिए तथा श्रुतकीर्तिको शत्रुघ्नके लिए देता हूँ। हे पार्थिव ! आप इन चारों पुत्रवधुओंको स्वीकार करें। तब राजा दशरथने सहर्ष 'तथास्तु' कहा ॥ १८४ ॥ १८५ ॥ तदनन्तर राजा दशरथने राजा जनकके सामने खड़े अहल्याकी कोखसे उत्पन्न पुरोहित मुनि शतानन्दसे पूछा कि सीता धरतीमेंसे कैसे प्राप्त हुई। सो सब वृत्तान्त आप कहें। शतानन्दने 'बहुत अच्छा' कहकर बताना आरम्भ किया ॥१८६॥१८७॥

स दृष्ट्वा सकलाँल्लोकान् लक्ष्मीकामैकतत्परान् । चिंतयामास मनसि लक्ष्मीं कन्यां करोम्यहम् ॥१८९॥
तपसैव निजांके तां रंजयामि निरंतरम् । इति निश्चित्य स नृपस्तप्त्वा तीव्रं महत्तपः ॥१९०॥
दृष्ट्वा प्रसन्नामग्रे तु लक्ष्मीं वचनमब्रवीत् ; दुहिता मे भव त्वं हि सा प्राह नृपतिं प्रति ॥१९१॥
परतंत्राऽस्म्यहं राजन् विष्णुं त्वं प्रार्थयाधुना । स चेद्दास्यति मां ते हि तर्ह्यहं दुहिता तव ॥१९२॥
भविष्यामि न संदेहस्तथेत्युक्त्वा नृपः पुनः । तप्त्वा तीव्रं तपो विष्णुं चकार वरदोन्मुखम् ॥१९३॥
नत्वा तं नृपतिः प्राह देहि कन्यां रमां मम । तद्राजवचनं श्रुत्वा मातुलुङ्गफलं हरिः ॥१९४॥
पद्माक्षाय ददौ श्रेष्ठं स्वयमंतर्दधे विभुः । तद्भित्वा नृपतिः कन्यां ददर्श कनकप्रभाम् ॥१९५॥
तां दृष्ट्वा साभिलाषः स कन्यां मेने निजां शुभाम् । पद्माक्षनृपतेः कन्यां पद्मां लोका वदंति च ॥१९६॥
आह्वयामासुस्तां रम्यां सर्वचित्तैकरंजनीम् । शकले मातुलुङ्गस्य भूत्वैकत्र फलं पुनः ॥१९७॥
जातं दृष्ट्वा दधाराथ स्वहस्ते नृपतेः सुता । सा त्ववर्धत नृपतेरंके चंद्रकला यथा ॥१९८॥
शुक्लपक्षे च तां दृष्ट्वा पद्माक्षोऽचिंतयद्धृदि । कस्मै देया मया कन्या ह्यस्यै योग्यो वरोऽत्र कः १९९॥
ततः संमंत्र्य नृपतिः स्वयंवरमथारभत् । स्वयंवरेऽथ पद्माया यज्ञारम्भं चकार सः ॥२००॥
स्वयंवराय यज्ञाय पत्रैराकारयन्नृपान् । तेऽपि शृङ्गारयुक्ताश्च ययुः पद्मास्वयंवरम् ॥२०१॥
पद्मास्वयंवरं श्रुत्वा ययुस्तत्र मुनीश्वराः । ययुर्देवाः सगंधर्वा दानवा मानवाः खगाः । २०२॥
नगा नद्यः समुद्राश्च भूरुहाः कामरूपिणः । ययुर्यक्षाः किन्नराश्च राक्षसा रावणादयः ॥२०३॥
सर्वान् समागतान् दृष्ट्वा पद्माक्षः प्राह तान् प्रति । आकाशनीलवर्णेन यः स्वांगं परिलेपयेत् ॥२०४।
ददामि तस्मै पद्मेयं सत्यं ज्ञेयं वचो मम । तद्राजवचनं श्रुत्वा दुर्घटं नृपसत्तमाः ॥२०५॥

शतानन्द बोले—हे राजन् ! आपने जो वृत्तान्त पूछा सो बहुत अच्छा किया । मैं कहता हूँ, आप ध्यानसे सुनें। पूर्वकालमें पद्माक्ष नामका एक प्रसिद्ध राजा था ॥ १८८ ॥ उसने सब लोगोंको लक्ष्मोकी कामनामें तत्पर देखकर मनमें सोचा कि मै तपके द्वारा लक्ष्मीको पुत्री बनाऊँ और अपनी गोदमें लाड़-प्यार करके बड़ी करूँ। ऐसा निश्चय करके उसने लक्ष्मीको प्राप्त करनेके लिए बड़ा कठोर तप किया ॥ १८९ ॥ १९० ॥ जब प्रसन्न होकर लक्ष्मी सामने आ खड़ी हुई तो उसने कहा कि तुम मेरी पुत्री बनो। यह सुनकर लक्ष्मीने राजासे कहा-॥ १९१ ॥ हे राजन् ! मैं तो विष्णुभगवान्के अधीन हूँ—स्वतन्त्र नहीं हूँ । इसलिए तुम विष्णुकी प्रार्थना करो। वे यदि मुझे तुम्हारे लिये दे देंगे तो मैं तुम्हारी पुत्री होऊँगी। इसमें सन्देह नहीं है। 'अच्छी बात है' कहकर राजा पद्माक्षने तीव्र तप करके विष्णुभगवान्को प्रसन्न किया ॥ १९२ ॥ १९३ ॥ विष्णुने उसे एक श्रेष्ठ मातुलुङ्गफल (बिजौरा नीबू अथवा नारंगीका फल) दिया और स्वयं अन्तर्धान हो गये। राजा पद्माक्षने उस फलको फोड़ा तो उसमें सुवर्णके समान जगमगाती कन्याको विद्यमान देखा ॥१९४॥१९५॥ कन्याभिलाषी राजाने बालिकाको देखकर उसे अपनी कन्या ही माना। सबके चित्तको आनन्द देनेवाली उस रमणीय कन्याको देखकर वहाँके सब लोग भी सहर्ष 'यह राजा पद्माक्षकी कन्या लक्ष्मी हैं' ऐसा कहने लगे। तभी उस बिजौराके टुकड़ोंका मिलकर फिर समूचा फल बन गया। यह देखकर राजाकी पुत्रीने उसे अपने हाथोंमें ले लिया। वह बालिका राजाके अंक (गोद) में शुक्लपक्षकी चन्द्रकलाकी भाँति बढ़ने लगी। उसे देखकर राजाके मनमें चिन्ता हुई कि 'यह कन्या मैं किसको दूँ, इसके योग्य वर कौन है' ॥ १९६–१९९ ॥ तदनन्तर राजाने विचार करके उसका स्वयम्वर रचाया। उसी स्वयम्वरमें उन्होंने यज्ञ भी आरम्भ कर दिया ॥ २०० ॥ स्वयम्वर तथा यज्ञके लिए निमन्त्रणपत्र भेजकर पद्माक्षने राजाओंको बुलाया। वे लोग शृङ्गार करके बड़े ठाट-बाटसे पद्माके स्वयम्वरमें आकर सम्मिलित हुए। स्वयम्वरका समाचार सुनकर बड़े-बड़े मुनीश्वर,देवता, गन्धर्व, दानव, मानव, जैसा चाहें वैसा रूप धारण करनेवाले खग, पर्वत, नदी, समुद्र, यक्ष, किन्नर और रावणादि राक्षस भी वहाँ आ पहुँचे ॥ २०१–२०३ ॥ उन सबको आया हुआ देखकर राजाने उनसे कहा कि जो

पद्मासौन्दर्यसंभ्रांतास्तां हर्तुं ते समुद्यताः । तान् कन्याहरणोद्युक्तान्नृपान् दृष्ट्वा सनिर्जरान् ॥२०६॥
चकार संगरं तैः स पद्माक्षो लोमहर्षणम् । तद्बाणपीडिता देवा मानवा विमुखा रणे ॥२०७॥
बभूवुस्तत्र दैत्यैश्च पद्माक्षो निहतो रणे । ततस्ते मिलिताः सर्वे तां धर्तुं दुद्रुवुर्जवात् ॥२०८॥
सा दृष्ट्वा धर्त्तुमुद्युक्तान् जुहावाग्नौ कलेवरम् । तामदृष्ट्वा नृपाद्यास्ते विचिन्वन्नगरे तदा ॥२०९॥
बभंजुर्नृपगेहानि भूमिं चक्रुरितस्ततः । श्मशानतुल्यं नगरं जातं वै क्षणमात्रतः ॥२१०॥
पद्माक्षनृपतेर्लक्ष्मीसंगाज्जातेदृशी दशा । तस्मान्न मुनयो लक्ष्मीं कामयंति कदाचन ॥२११॥
लक्ष्म्याश्चित्तस्य चांचल्यं भयं शोको वधोऽपि च । भवत्येव महद्दुःखं तस्मात्तां परिवर्जयेत् ॥२१२॥
पद्माक्षे निहते युद्धे नृपपत्न्यः सहस्रशः । भर्त्रा सहैव गमनं चक्रुस्ता भयनिर्भराः ॥२१३॥
ततस्ते दैत्यवर्याद्या ययुः स्वं स्वं स्थलं प्रति । एकदा वह्निकुंडात्सा पद्मा शक्तिः स्थिरा हरेः ॥२१४॥
बहिर्निर्गत्य कुंडस्य समीपे समुपाविशत् । एतस्मिन्नन्तरे तत्र पुष्पकस्थो दशाननः ॥२१५॥
विचरन् जगतीं जेतुमाकाशवर्त्मना ययौ । सारणस्तां ददर्शाथ वह्निकुंडे बहिः स्थिताम् ॥२१६॥
सारणो दर्शयामास रावणाय वचोऽब्रवीत् । पुरा सुरासुराद्याश्च यां धर्त्तुं समुपस्थिताः ॥२१७॥
सेयं पद्माक्षनृपतेः कन्या पद्माऽग्निसन्निधौ । तत्सारणवचः श्रुत्वा तां दृष्ट्वा काममोहितः ॥२१८॥
यानाज्जवादुत्पपात तां धर्तुं साऽनलेऽविशत् । तामग्नौ संप्रविष्टां स दृष्ट्वा ज्ञात्वाऽथ तत्स्थलम् ॥२१९॥
ततः प्राह दशास्यः स त्वया देवा नृपादयः । कृत्वाऽग्नौ वसतिं पद्मे श्रमग्रस्ताः कृताः पुरा ॥२२०॥
तदद्य वासस्थानं ते मया ज्ञातं मनोरमे । पद्मेऽधुनाऽहं त्वां धर्तुं शोधयाम्यनलस्थलम् ॥२२१॥

कोई अपने शरीरको आकाशके नीले रंगसे रंग लेगा (अर्थात् जो ऐसा कर सकेगा) उसे ही मैं यह अपनी पद्मा नामकी कन्या दूँगा। यह मेरी दृढ़ प्रतिज्ञा है। राजाके इस दुर्घट वचनको सुनकर वे नृपश्रेष्ठ पद्माके सौंदर्यपर मोहित होते हुए उसका बरबस हरण करनेके लिए उद्यत हो गये। देवताओं सहित उन राजाओंको कन्याहरणके लिए उद्यत देखकर राजा पद्माक्षने उनके साथ लोमहर्षण अर्थात् रोमांचकारी युद्ध किया। उनके बाणोंसे पीड़ित होकर मनुष्य तथा देवता रणसे भागने लगे। परन्तु अन्तमें दैत्योंके द्वारा राजा पद्माक्ष रणमें मारा गया। तदनन्तर वे सब मिलकर पद्माको पकड़नेके लिए बड़े वेगसे दौड़े। उनको पकड़नेके लिए आते देखकर पद्मा अग्निमें कूद पड़ी। उसको न देखकर राजाओंने उसे सारे नगरमें ढूँढ़ना आरम्भ किया। राजमहल खोदकर गिरा दिया और बहुत-सी इधर-उधरकी जमीन खोद डाली। क्षणभरमें सारा नगर श्मशान बन गया ॥ २०४–२१० ॥ लक्ष्मीके संसर्गसे राजा पद्माक्षकी ऐसी दशा हुई। इसीलिये मुनि लोग लक्ष्मीको कभी नहीं चाहते ॥ २११ ॥ लक्ष्मीसे चित्तकी चंचलता बढ़ती है, भय बढ़ता है, शोक बढ़ता है, मनुष्य मारा जाता है और बड़ा भारी दुःख पाता है। इस वास्ते लक्ष्मीसे दूर रहना चाहिए ॥ २१२ ॥ युद्धमें राजा पद्माक्षके मारे जानेपर राजाकी हजारों स्त्रियें भयभीत होकर राजाके साथ ही सती हो गयीं ॥ २१३ ॥ बादमें वे सब दैत्य भी अपने अपने स्थानको चले गये। एक समय श्रीहरिकी स्थिरशक्तिरूपा लक्ष्मी अग्निकुण्डसे बाहर निकलकर कुण्डके समीप बैठी थीं। इतनेमें रावण पुष्पक विमानपर बैठकर विचरता हुआ जगत्को जीतनेके लिए आकाशमार्गसे उधर ही निकला। तब रावणका मंत्री सारण पद्माको अग्निकुण्डके बाहर बैठी देख रावणको दिखलाकर कहने लगा कि पूर्वकालमें जिस राजा पद्माक्षकी कन्याके लिए देवताओं और असुरोंको राजाके साथ युद्ध करना पड़ा था, वही कन्या अग्निकुण्डके पास बैठी है। सारणके इस वचनको सुन तथा पद्माको देख कामसे मोहित होकर रावण ज्यों ही वेगसे उसको पकड़नेके लिए नीचे कूदा, त्यों ही वह फिर अग्निमें प्रवेश कर गयी। उसको अग्निमें प्रवेश करती तथा उस स्थानको देखकर रावण कहने लगा—॥ २१४–२१९ ॥ हे पद्मे ! तुमने पहिले भी अग्निमें प्रवेश करके राजाओं तथा देवताओंको बड़ा भारी दुःख दिया है। हे मनोरमे ! तुम्हारा निवास-स्थान आज मैंने देख लिया है। अब मैं तुमको खोजनेके लिये सारा अग्निकुण्ड छान डालूँगा

इत्युक्त्वा जलकुंभैश्च सिषेचाग्निं दशाननः । यावत्पश्यति कक्षायां तावत्तत्र ददर्श ह ॥२२२॥
पंच रत्नानि दिव्यानि गृहीत्वा तानि रावणः । करंडिकायां संस्थाप्य विमानेन ययौ पुरीम् ॥२२३॥
करंडिकां देवगेहे संस्थाप्य रावणस्तदा । रात्रौ मंदोदरीं प्राह मंचकस्थां रहःस्थितः ॥२२४॥
हे मंदोदरि रत्नानि मया त्वत्तोषदानि हि । समानीतानि यत्नेन त्वदर्थं सुरसद्मनि ॥२२५॥
करंडिकायां वर्तन्ते गच्छ गृह्णीष्व तानि हि । तद्दशास्यवचः श्रुत्वा सा ययौ देवमन्दिरम् ॥२२६॥
करंडिकां तत्र दृष्ट्वा तां नेतुं पतिसन्निधौ । यावदुच्चालयामास न चचाल तदा भुवः ॥२२७॥
तदा सा लज्जिता गत्वा रावणाय न्यवेदयत् । तच्छ्रुत्वा स प्रहस्याथ स्वयं नेतुं ययौ तदा ॥२२८॥
तां सोऽप्युच्चालयामास न चचाल करंडिका । यदा विंशद्भुजैर्भूम्या न चचाल करंडिका ॥२२९॥
तदा स विस्मयाविष्टो भयं मेने दशाननः । तत्रैवोद्घाटयामास रावणस्तां करंडिकाम् ॥२३०॥
तावद्ददर्श तस्यां स कन्यां सूर्यप्रभोपमाम् । तत्तेजोहरतेजस्कान्यासश्चक्षूंषि रक्षसाम् ॥२३१॥
तां द्रष्टुं बालिकां रम्यां ययुः सुहृत्सुतादयः । तदा मंदोदरीं प्राह तस्या वृत्तं रणोद्भवम् ॥२३२॥
पद्माक्षकुलजात्यादि सर्वं वृत्तं दशाननः । क्रोधान्मंदोदरी प्राह भयभीता दशाननम् ॥२३३॥
इयं कृत्या प्रचंडा च कुलविध्वंसकारिणी । लंकां किमर्थमानीता ह्यस्या ज्ञात्वाऽपि चेष्टितम् ॥२३४॥
दुष्टां स्ववंशघाताय त्यजैनां सत्वरं वने । बालत्वेऽपीदृशी गुर्वी तारुण्ये किं करिष्यति ॥२३५॥
वधोऽस्यास्तव जानेऽहं मृत्युरेव भविष्यति । स्थापनीया न लंकायामियमद्यैव रावण ॥२३६॥
इति तस्या वचः श्रुत्वा सत्यं मेने दशाननः । मन्त्रिभिश्चाथ सम्मन्त्र्य दूतानाज्ञापयत्तदा ॥२३७॥
करंडिकेयं नीत्वाऽद्य विमाने स्थाप्य यत्नतः । त्यक्तव्या मम वाक्यात्तु वने गच्छत वेगतः ॥२३८॥
ततस्ते राक्षसाः सर्वे संमील्य पुष्पकेऽथ ताम् । करंडिकां तु संस्थाप्य निन्युश्चाकाशवर्त्मना ॥२३९॥

॥ २२० ॥ २२१ ॥ ऐसा कहकर दशाननने पानीके घड़ोंसे अग्निको बुझा दिया और ज्यों ही राखमें देखने लगा, त्यों ही उसमें उसे दिव्य पाँच रत्न दिखायी दिये ॥ २२२ ॥ रावणने उन पाँचों रत्नोंको उठा लिया और एक सन्दूकमें रख तथा विमानपर चढ़कर अपनी नगरीको चला गया ॥ २२३ ॥ वहाँ जाकर रावणने उस सन्दूकको देवगृहमें रखकर रात्रिके समय एकान्तमें पलँगपर बैठी हुई मन्दोदरीसे कहा— ॥ २२४ ॥ हे मन्दोदरी ! जिन्हें देखकर तुम सन्तुष्ट हो जाओगी, ऐसे कुछ रत्न मैं बड़े परिश्रमसे तुम्हारे लिए ले आया हूँ। वे देवालयमें संदूकके भीतर रक्खे हैं। जाकर ले आओ। रावणका वचन सुनकर वह देवालयमें गयी ॥ २२५ ॥ २२६ ॥ सन्दूकको देख उसे पतिके पास ले आनेके लिये उठाया तो वह जमीनसे तनिक भी नहीं उठी ॥२२७॥ तब उसने लज्जित होकर रावणसे सब हाल कहा। यह सुना तो हँसकर रावण स्वयं उसे लानेके लिये गया और उसे उठाया, किन्तु पेटी जमीनसे नहीं हिली ॥ २२८ ॥ २२९ ॥ इससे रावण बड़ा विस्मित हुआ और डर गया। फिर उसने वहीं उसको खोला ॥ २३० ॥ तब उसमें सूर्यके समान कान्तिवाली एक कन्या दिखायी दी। उसके तेजसे हतप्रभ होकर राक्षसोंकी आँखें चकपकाने लगीं ॥ २३१ ॥ उस मनोहर बालिकाको देखनेके लिये उसके मित्र तथा पुत्र आदि आने लगे। उस समय रावणने मन्दोदरीको युद्धका तथा जैसे वह राजा पद्माक्षके कुलमें उत्पन्न हुई थी, वह सब वृत्तान्त कह सुनाया। मन्दोदरी भयभीत होकर क्रोधपूर्वक दशाननसे कहने लगी–॥ २३२ ॥ २३३ ॥ इस कृतघ्ना, कुलविध्वंसकारिणी तथा प्रचण्डाके कर्मोंको जानते हुए भी तुम इसको लंकामें क्यों ले आये ? ॥ २३४ ॥ यह दुष्टा हमारे कुलका नाश करनेवाली है। इसको शीघ्र वनमें छुड़वा दो। बचपनमें ही यह इतनी भारी है तो जवानीमें न जाने क्या करेगी ॥ २३५ ॥ इससे तुम्हारी मृत्यु होगी। ऐसा मुझे जान पड़ता है। इसको लंकामें घड़ी भर भी नहीं रखना चाहिये ॥ २३६ ॥ रावणने मन्दोदरीकी बात सत्य समझ तथा मन्त्रियोंसे मन्त्रणा करके दूतोंको आज्ञा दी–॥ २३७ ॥ इस सन्दूकको यत्नपूर्वक शीघ्र विमानमें रखकर आज ही मेरे कथनानुसार वनमें छोड़ आओ ॥ २३८ ॥ पश्चात् वे सब राक्षस इकट्ठे हो तथा उस सन्दूकको विमानमें रखकर आकाशमार्गसे चले ॥ २३९ ॥ उस समय

दशास्यपत्नी तानाह कार्या भूमिगता त्वियम् । स्थापनीया बहिर्नेयं दर्शनाद्वधकारिणी ॥२४०॥
गृहस्थाश्रमयुक्तो यस्तथा च विजितेंद्रियः । वृद्धिमेष्यति तद्गेहे कुमारीयं शुभानना ॥२४१॥
चराचरेषु सर्वत्र आत्मरूपेण यः स्थितः । तस्य गेहे चिरं कालं स्थास्यतीयं न संशयः ॥२४२॥
इति मंदोदरीवाक्यं श्रुत्वा दूताः सविस्तरम् । यावत्ते गंतुमुद्युक्तास्तावत्कन्या वचोऽब्रवीत् ॥२४३॥
यास्याम्यहं पुनर्लंकां राक्षसानां वधाय च । निधनाय दशास्यस्य सपुत्रस्य समंत्रिणः ॥२४४॥
अथ तृतीयवेलायामागत्याहं पुनस्त्विह । निकुम्भजं पौंड्रकं तं शतशीर्षं च रावणम् ॥२४५॥
हनिष्यामि पुनर्गत्वा पुनर्यास्यामि त्वत्पुरीम् । अहं चतुर्थवेलायामद्भुतं मूलकासुरम् ॥२४६ ।
कुंभकर्णसुतं शूरं मर्दयिष्याम्यहं पुनः । तत्तस्या वचनं श्रुत्वा हृदि विद्धो दशाननः ॥२४७॥
जातास्ते राक्षसाः सर्वे भयभीताः शवोपमाः । रावणश्चिंतयामास हंतव्याऽद्यैव बालिका ॥२४८॥
तीक्ष्णं खड्गं करे धृत्वा पद्मां दुद्राव रावणः । हंतुकामं पतिं दृष्ट्वा मयकन्या न्यवारयत् ॥२४९॥
साहसं कुरु माऽद्यैव सत्यायुषि दशानन । भविष्यति वधस्त्वद्य तव नास्या वचो मृषा ॥२५०॥
यद्भविष्यति भवतु तदग्रे त्यज कानने । कालान्तरेण यो मृत्युस्तमद्य त्वं किमिच्छसि ॥२५१॥
इति भार्यावचः श्रुत्वा तूष्णीमास दशाननः । ततः सा पेटिका दूतैर्नीता यानेन वै जवात् ॥२५२॥
पश्यन् वनानि सर्वाणि सीतायै मैथिलस्य च । कृता भूमिगता दूतैस्तदा सर्वैः करंडिका ॥२५३॥
ततो ययुः पुनर्लंकां दूतास्ते रावणस्य च । न्यवेदयन् रावणाय सर्वं वृत्तं यथाकृतम् ॥२५४॥
सा भूमिः सूर्यग्रहणे विदेहेन समर्पिता । ब्राह्मणाय द्विजश्चापि तां कर्षयितुमुद्यतः ॥२५५॥
पश्यन् मुहूर्तं प्रियः स प्रत्यब्दं वै पुनः पुनः । चिरकालेन दृष्ट्वाऽथ मुहूर्तं परमोदयम् ॥२५६॥

रावणकी स्त्रीने उनसे कहा कि दर्शनमात्रसे वध करनेवाली इस घातिनीको बाहर खुली न रखना, बल्कि जमीनमें गाड़ आना ॥ २४० ॥ गृहस्थाश्रमी होते हुए भी जो जितेन्द्रिय होगा, उसीके घरमें यह शुभानना कुमारी वृद्धिको प्राप्त होगी ॥ २४१ ॥ सब चराचरके साथ अपनी आत्माके समान बर्ताव करनेवाला जो होगा, उसके घरमें यह चिरकाल स्थित रहेगी। इसमें सन्देह नहीं है (अर्थात् समदर्शी तथा जितेन्द्रियके घरमें ही लक्ष्मी चिरकालतक रहती है—दूसरेके यहाँ नहीं) ॥ २४२ ॥ इस प्रकार मन्दोदरीकी बात सुनकर ज्यों ही दूत लोग चलनेको उद्यत हुए, त्यों ही कन्या कहने लगी—॥ ३४३ ॥ मैं फिर राक्षसों तथा मन्त्री और पुत्रसहित रावणका वध करनेके लिए लंकामें आऊँगी ॥ २४४ ॥ पुनः तीसरी बार यहाँ आकर निकुम्भपुत्र पौंड्रकको तथा सौ सिरवाले रावणको मारूँगी। फिर बादमें पुनः चौथी बार आकर शूरवीर कुम्भकर्ण तथा मूलकासुरको मारूँगी। उसके वचनको सुनकर दशाननका हृदय विद्ध हो गया ॥ २४५–२४७ ॥ वे सब राक्षस भी भयभीत होकर मृतक सरीखे हो गये। रावणने सोचा कि इस बालिकाको अभी मार डालना चाहिये। यह विचार तथा तीक्ष्ण तलवार हाथमें लेकर वह पद्माकी तरफ दौड़ा। पतिको इस प्रकार कन्याको मारनेके लिये उद्यत देखकर मयदानवकी कन्या मन्दोदरीने कहा—॥ २४८ ॥ २४९ ॥ हे दशानन! आयु शेष रहनेपर भी आज ही तुम यह साहस मत करो। इससे तुम्हारी मृत्यु हो जायगी। इसका वचन झूठा न होगा ॥ २५० ॥ आगे जो होनेवाला होगा सो होगा। अभी तो तुम इसे वनमें छुड़वा दो। कालान्तरमें होनेवाली मृत्युको आज ही क्यों बुलाते हो? ॥ २५१ ॥ भार्याके इस वचनको सुनकर दशानन चुप हो गया। पश्चात् दूत उस सन्दूकचीको शीघ्र विमानमें रखकर ले गये ॥ २५२ ॥ सीताके योग्य मिथिला नरेशके वनोंको देखते हुए वहींपर सब दूतोंने उस करण्डिकाको भूमिमें गाड़ दिया ॥ २५३ ॥ तदनन्तर दूत लङ्का लौट गये और जो किया था, सो सब वृत्तान्त रावणसे निवेदन कर दिया ॥ २५४ ॥ राजा विदेहने वह जमीन सूर्यग्रहणके अवसरपर एक ब्राह्मणको दान दे दी थी। ब्राह्मणने उस जमीनको जुतवानेका विचार किया ॥ २५५ ॥ प्रतिवर्ष शुभ मुहूर्त देखते-देखते बहुत वर्षों बाद

शूद्रेण कर्षयामास भूमिं कृष्यर्थमादरात् । तदा हलसिताग्रेण निर्गता सा करंडिका ॥२५७॥
तां गृहीत्वा स शूद्रोऽपि ययौ भूमिपतिं द्विजम् । स मत्वा तन्निधानं तु हर्षात्प्राह द्विजोत्तमम् ॥२५८॥
श्रेष्ठस्तव मुहूर्तोऽयं महाभाग्यं तव द्विज । इमां हलाग्रसंभूतां गृहाण त्वं करंडिकाम् । २५९॥
निधानपूरितां गुर्वीं मया यत्नेन वाहिताम् । ततः स द्विजवर्यस्तु तां जग्राह करंडिकाम् ।२६०॥
तामानीय विदेहाय सभामध्ये ददौ मुदा । नृपतिं प्राह वृत्तं तद्विप्रः श्रुत्वा नृपोऽपि सः ॥२६१॥
उवाच ब्राह्मणं भक्त्या मया भूमिः समर्पिता । तस्यां लब्धा त्वया चेयं तवैवास्तु करंडिका ॥२६२॥
विदेहनृपतेर्वाक्यं श्रुत्वोवाच द्विजः पुनः । मह्यं समर्पिता पूर्वं भूमिरेव त्वया नृप ॥२६३॥
नेयं करंडिका रम्या वसुपूर्णा समर्पिता । यद्भूमौ वर्त्तते वित्तं तन्नृपस्य न संशयः ॥२६४।
मा मामधर्मः स्पृशतु गृहाणेमां करंडिकाम् । एवं नृपस्य विप्रेण कलहोऽभून्सुदारुणः ॥२६५॥
तदा सभासदाः सर्वे नृपतिं वाक्यमब्रुवन् । मा कार्यः कलहो राजन् पश्यास्यां किं नु वर्तते ॥२६६॥
तां तदोद्घाटयामास दूतैर्नृपतिसत्तमः । तस्यां दृष्ट्वा बालिकां तु विस्मयं प्राप पार्थिवः ॥२६७॥
द्विजस्त्यक्त्वा ययौ गेहं पालयामास तां नृपः । तदा खेचरवाद्यानि नेदुः कुसुमवृष्टिभिः ॥२६८॥
ववर्षुः सुरसंघाश्च तां कन्यां जनकं नृपम् । गंधर्वा गायनं चक्रुर्ननृतुश्चाप्सरोगणाः ॥२६९॥
तदा मेने निजां कन्यां जनकस्तोषमाप सः । जातकं कारयामास विप्रैस्तस्याः सविस्तरम् ॥२७०।
ददौ दानानि विप्रेभ्यो ननृतुर्वारयोषितः । मातुलुङ्गाद्विनिर्गता या मातुलुङ्गीति सा स्मृता ॥२७१॥
अग्निवासादग्निगर्भा तथा रत्नावलीति च । रत्नांतरनिवासाच्च प्रोच्यते जगतीतले ॥२७२॥
धरण्या निर्गता यस्मात्तस्माद्धरणिजेति च । जनकेनाविता यस्माज्जानकीति प्रकीर्त्यते ॥२७३॥

अच्छा तथा परम उदयको करनेवाला मुहूर्त देखकर ॥ २५६ ॥ उस ब्राह्मणने आदरपूर्वक शूद्रसे उस जमीनमें खेतीके लिए हल चलवाया । उसी समय हलके फालसे वह सन्दूक निकल आयी। २५७ ॥ उसको लेकर वह शूद्र जमीनके मालिकके पास गया और उसको वह खजाना समझकर सहर्ष ब्राह्मणसे कहने लगा—हे द्विज ! आप बड़े भाग्यशाली हैं । आपने अच्छे मुहूर्तमें खेती आरम्भ करवायी। यह हलके अग्रभागसे (अर्थात् फालसे जिसको संस्कृतमें सीता कहते हैं) संभूत (प्राप्त) सन्दूकको लीजिये । मैं खजानेसे भरी हुई बड़ी भारी इस पिटारीको बड़ी कठिनाईसे यहाँ ले आया हूँ। उस द्विजने उसको ले लिया ॥ २५८-२६० ॥ उसको ले जाकर ब्राह्मणने सभाके सामने राजा विदेहको दिया और सब समाचार कह सुनाया। राजा भी यह सुनकर ब्राह्मणसे कहने लगे कि मैंने तो भक्तिसे भूमि आपको समर्पण कर दी है। तब उसमेंसे मिली हुई यह पिटारी भी आप ही की है ॥ २६१ ॥ २६२ ॥ राजा विदेहके वचनको सुनकर ब्राह्मण उनसे कहने लगा—हे नृप ! आपने मुझे भूमि ही दी है ॥ २६३ ॥ यह धनपूर्ण सुन्दर संदूक नहीं दी थी। इसलिये जो भूमिमें धन है, वह निर्विवाद राजाका ही होता है। २६४ ॥ मुझे अधर्ममें न डालें और इस पिटारीको आप स्वीकार करें। इस प्रकार राजा तथा ब्राह्मणमें बड़ा झगड़ा होने लगा । तब सब सभासदोंने राजासे कहा—हे राजन् ! कलहको छोड़ें और देखें कि इसमें क्या है ? ॥ २६५ ॥ २६६ ॥ तब नृपतियोंमें श्रेष्ठ नृपति विदेहने दूतोंसे सन्दूक खुलवायी। उसमें बालिकाको देखकर राजा बड़े विस्मित हुए। ब्राह्मण उसे वहीं छोड़कर घर चला गया। तब राजाने ही उस कन्याको पाल लिया। तब देवताओंके बाजे बजे और उन्होंने उस कन्या तथा राजाके ऊपर पुष्पवृष्टि की। गन्धर्व गाने लगे। अप्सरायें नृत्य करने लगीं॥ २६७-२६९ ॥ तब राजा जनकने प्रसन्न होकर उसको अपनी पुत्री माना। ब्राह्मणोंके द्वारा विस्तारपूर्वक उसका जातकर्मसंस्कार (सन्तानके उत्पन्न होनेपर करनेका संस्कार) करवाया ॥ २७० ॥ विप्रोंको बहुतसे दान दिये और वेश्याओंका गायन करवाया गया। जगत्में वह कन्या मातुलुङ्गफलसे निकलनेके कारण मातुलुङ्गी, अग्निमें वास करनेसे अग्निगर्भा तथा रत्नोंमें निवास करनेसे रत्नावली कही जाने लगी ॥ २७१ ॥ २७२ ॥ धरणीसे निकलने-

सीराग्रान्निर्गता यस्मात्सीतेत्यत्र प्रगीयते । पद्माक्षनृपतेः कन्या तस्मात्पद्मेति सा स्मृता ॥२७४॥
एवं नामान्यनंतानि सीतायाः संति भो नृप । आकाशनीलवर्णाभवपुषाऽनेन जानकी ॥२७५॥
लब्धा रामेण पद्माक्षप्रतिज्ञा सफलीकृता । एवं त्वया यथा पृष्टं तथा त्वां विनिवेदितम् ॥२७६॥
चतस्रस्त्वं स्नुषास्त्वत्र कर्तुमर्हसि भो नृप ।

श्रीशिव उवाच

एतस्मिन्नंतरे तत्र पूर्वं दशरथेन च ॥ २७७ ॥
समाहूता ययुः सैन्यैः स्त्रीपुत्रैः श्वशुराश्च ते । कोसलो मगधेशश्च कैकेयश्च युधाजितः ॥२७८॥
मानयामास तान् राजा जनकोपि मुदान्वितः । ततो दशरथं पूज्य श्रीरामं लक्ष्मणं तथा ॥२७९॥
भरतं चापि शत्रुघ्नं संपूज्याभरणादिभिः । निनाय जनकस्तुष्टः स्वपुरीं परमोत्सवैः ॥२८०॥
तदा रामो नृपं नत्वा राज्ञा चालिंगितो मुहुः । वसिष्ठं गाधिजं नत्वा कौसल्यादिं प्रणम्य च ॥२८१॥
राज्ञो दशरथस्याग्रे तैः स्त्रीभिर्बन्धुभिः सह । गजारूढो ययावग्रे तेऽप्यभूवन् गजस्थिताः ॥२८२॥
नदत्सु वाद्यसंघेषु स्तुवत्सु मागधादिषु । नर्तत्सु वारनारीषु विवेश नगरीं प्रभुः ॥२८३॥
तदाऽऽसीत्संभ्रमः पौरस्त्रीणां श्रीरामदर्शने । विसृज्य स्वीयकृत्यानि ददृशुर्गोपुरादिषु ॥२८४॥
कट्यां निधाय बालांश्च ददृशू रघुनंदनम् । राजमार्गगतं रामं ववर्षुः पुष्पवृष्टिभिः ॥२८५॥
एवं महोत्सवैर्वासस्थलं दशरथः सुतैः । ययौ वस्त्रान्नतोयौघैः परिपूर्णं मनोरमम् ॥२८६॥
कृत्वा ज्योतिर्विदा लग्नदिवसस्य विनिश्चयम् । मंडपांश्च तोरणानि पताकाश्च ध्वजांस्तथा ॥२८७॥
रोपयामासुः सर्वत्र मंत्रिणो मिथिलां पुरीम् । मार्गाश्चंदनलिप्ताश्च पुष्पैराच्छादिता अपि ॥२८८॥
मालाभिस्तोरणैः पुष्पघोषाद्यैस्ते चकाशिरे । ततो मुहूर्तसमये वधूच्छिष्टां निशां शुभाम् ॥२८९॥

के कारण धरणिजा, जनकके द्वारा पालित होनेसे जानकी, सीता (फाल) के अग्रभागसे प्रकट होनेके कारण सीता और राजा पद्माक्षकी कन्या होनेसे वह पद्मा कहलायी ॥ २७३ ॥ २७४ ॥ हे महाराज दशरथ ! इस प्रकार सीताके अनेक नाम हैं । आकाशके समान नीलवर्णके रङ्गवाले रामने सीताको प्राप्त करके राजा पद्माक्षकी प्रतिज्ञा पूर्ण कर दी । इस प्रकार जो आपने पूछा सो मैने निवेदन कर दिया । अब आपको ये चारों पुत्रवधुएँ स्वीकार करनी चाहियें । शिवजी बोले—इतनेमें पहिलेसे राजा दशरथके द्वारा बुलवाये गये उनके श्वसुर कोसलराज तथा मगधराज युधाजित् नामके कैकेयराज अपनी स्त्री और सेनाको साथ लेकर वहाँ आ पहुँचे। राजा जनकने भी उनका प्रेमपूर्वक स्वागत किया। पश्चात् राजा दशरथकी वस्त्र-आभूषण आदिसे और राम लक्ष्मण भरत तथा शत्रुघ्नकी पूजा करके राजा जनक महान् उत्सवके साथ अपने नगरमे ले गये ॥ २७५–२८० ॥ तदनन्तर रामने राजा दशरथको प्रणाम किया। राजाने उन्हें हृदयसे लगाया। फिर रामने गुरु वशिष्ठको तथा कौसल्या आदि माताओंको प्रणाम करके राजा दशरथके आगे उन स्त्रियों तथा वस्तुओंके सहित हाथियोंपर चढ़कर आगे-आगे चले। उनके पीछे और सब लोग गजारूढ़ होकर चल पड़े। इस प्रकार वाद्यसमूहके शब्दोंको सुनते, चारणोंकी स्तुतियोंको श्रवण करते तथा वेश्याओंके नाचको देखते हुए प्रभु रामने नगरमें प्रवेश किया। उस समय रामके दर्शनके लिये नगरकी स्त्रियें व्याकुल हो उठीं। अपने-अपने गृहकार्योंको छोड़ सबकी सब बालकोंको गोदमें लिये नगरके दरवाजे आदिपर जाकर रघुनन्दन रामका दर्शन करने लगीं। राम जब सड़कपर आ गये, तब उन्होंने उनपर पुष्पवृष्टि की ॥ २८१--२८५ ॥ इस तरह महोत्सवके साथ राजा दशरथ राम आदिको लेकर अन्न (भोजनका सामान), वस्त्र (ओढ़ने-बिछानेका सामान) तथा जल (नहाने-धोने तथा पीने का पानी) आदिसे परिपूर्ण मनोहर वासस्थानपर (वरके ठहरनेके स्थानपर) गये ॥ २८६ ॥ मन्त्रियोंने ज्योतिषीके द्वारा लग्नका दिन निश्चय कराकर समस्त मिथिलापुरीको मण्डपोंसे, तोरणोंसे, पताकाओंसे
4 तथा रङ्ग-बिरङ्गी ध्वजाओंसे सजवा दिया। बड़े-बड़े रास्तोंको चन्दनसे लिपवाया गया। उनपर भाँति-

सुतैलाद्यां स्त्रियः सर्वाः कौसल्याद्यास्तु मातरः । रामादीन् परिलिप्यादौ नीराजनपुरःसरम् ॥२९०॥
करकुंभांस्तोयपूर्णाश्चतुर्दिक्षु सदीपकान् । संस्थाप्य स्नापयामासुर्महावाद्यपुरःसरम् ॥२९१॥
तदाभ्यंगं स्वयं चापि कृत्वा सस्नुश्च मातरः । रामादीन् पुरतः कृत्वा वस्त्रालंकारभूषिताः ॥२९२॥
अभ्यङ्गपूर्वकं सस्नौ राजा दशरथोऽपि सः । समाहूय नृपस्त्रीश्च सभायां स्वस्तिके गुरुः ॥२९३॥
मुक्ताविनिर्मिते राज्ञः पार्श्वे वामे न्यवेशयत् । अग्रे रामादिकान्कृत्वा ताः स्त्रियोऽवनताननाः॥२९४॥
हरिद्राकुंकुमालिप्तचरणा रेजिरेऽङ्गणे । वसिष्ठो ब्राह्मणैर्युक्तो राज्ञा रामादिभिर्मुदा ॥२९५॥
कृत्वा गणपतेः पूजां पुण्याह्वादित्रयं क्रमात् । कारयामास विधिवत्प्रतिष्ठां देवकस्य च ॥२९६॥
ग्रामाचारं कुलाचारं वृद्धाचारं तथा पुनः । देशाचारं च प्रमदाचारादीनकरोन्नृपः ॥२९७॥
तोयकुम्भं मंडपादिकानां पूजनमाचरत् । कौसल्याद्याः स्त्रियः सर्वा हरित्पीतारुणैर्वरैः ॥२९८॥
हेमतंत्वंकितैर्वस्त्रैर्विरेजुर्मंडपांगणे । जनकश्च नृपैर्युक्तो महावाद्यपुरःसरम् ॥२९९॥
रामादीन्स निजं गेहं नेतुकामः समाययौ । मंडपे पूजयामास रामादान् जनकस्तदा ॥३००॥
हेमतन्तूद्भवैर्दिव्यैर्वस्त्रैराभरणादिभिः । तदा विरेजुस्ते बालाः सर्वे प्रमुदिताननाः ॥३०१॥
ततस्ते वारणेंद्रस्था दिव्यचामरवीजिताः । शृण्वंतो वाद्यघोषांश्च वर्षिता पुष्पवृष्टिभिः ॥३०२॥
हरिद्रांकितधान्यैश्च मांगल्यैर्मौक्तिकादिभिः । मातृभिर्वारणस्त्रीषु संस्थिताभिर्मुहुर्मुहुः ॥३०३॥
एवं ते राघवाद्याश्च पुरस्त्रीभिर्निरीक्षिताः । प्रासादोपरि संस्थाभिर्लाजाभिर्वर्षिता मुहुः ॥३०४॥
ददृशुर्नर्तनान्यग्रे वारस्त्रीणां स्मिताननाः । वाटिकाः पुष्पवृक्षाणां वरमृत्पात्रनिर्मिताः ॥३०५॥

भाँतिके पुष्प विखेर दिये और खास-खास स्थानोंमें मालाएँ तथा तोरण वँधवा दिये। पुष्पलताओं और माङ्गलिक शब्दों द्वारा उस समय वह नगरी और भी दिव्य मालूम पड़ने लगी। तदनन्तर शुभ मुहूर्तमें जिस रातको सीताके शरीरमें स्त्रियोंके द्वारा तेल-हल्दी आदि मला गया। उसी रातमें कौसल्या आदि माताओंने आँगन लीप तथा राखका पानी छिड़ककर जलपूर्ण दीपक सहित चार सुन्दर घड़ोंको चारों दिशाओंमें स्थापित करके राम लक्ष्मण भरत और शत्रुघ्नको वाद्यध्वनिके साथ माङ्गलिक स्नान कराया ॥ २८७–२९१ ॥ फिर तेल आदि मलकर अपने आप भी सब माताओंने स्नान किया। पहिले राम आदिको वस्त्र तथा अलङ्कारोंसे भूषित करके तेल-हरदी आदिका शरीरमें अभ्यङ्ग करके (मलकर) राजा दशरथने भी स्नान किया। पश्चात् गुरु वशिष्ठने राजाकी सब स्त्रियोंको सभामण्डपमें बुलाकर राजाके वामभागमें मुक्तानिर्मित स्वस्तिक अंकित (वेदी या आसन) पर वैठाया। उस समय सभाके आँगनमें स्त्रियें राम आदि बालकोंको सामने वैठाकर निम्न मुख किये तथा हल्दी और तेल चरणोंमें लगाये अत्यन्त सुशोभित होने लगीं। ब्राह्मणोंके सहित वशिष्ठजीने राजा दशरथ तथा रामादिके द्वारा गणपतिपूजन तथा पुण्याहवाचन ये दोनों कर्म क्रमसे करवाये और तीसरा कर्म विधिवत् देवताकी प्रतिष्ठा करवायी। राजा दशरथने भी वादमें प्रसन्नतापूर्व ग्रामाचार, कुलाचार, वृद्धाचार, देशाचार तथा प्रमदाचार आदि किया ॥ २९२–२९६ ॥ तदनन्तर जलपूर्ण कुम्भ तथा मण्डप आदिकी पूजा की। मण्डपके आँगनमें हरी, लाल, पीली तथा जरीदार साड़ियोंको पहिनकर कौसल्या आदि स्त्रियें बड़ी सुन्दर दीखने लगी। वड़े वड़े वाजोंको वजवाते हुए अन्य राजाओंके सहित राजा जनक भी राम आदिको अपने भवनमें लिवा ले जानेके लिये वहाँ आये। मण्डपमें जाकर राजा जनकने राम आदिका पूजन किया ॥ ३०० ॥ उस समय प्रसन्न मुखवाले वे सब बालक जरीदार दिव्य वस्त्रों तथा आभरणोंको पहने हुए बड़े सुन्दर लगने लगे ॥ ३०१ ॥ वादमें वे सब जो कि उत्तम हाथियोंपर वैठे हुए थे, जिनपर सुन्दर चँवर ढुल रहे थे। हाथियोंपर वैठी हुई माताएँ चारों तरफसे वारम्वार जिनपर मोतियों, माङ्गलिक हल्दीमिश्रित चावलों तथा पुष्पोंकी बौछार कर रहीं थीं। जिनकी ओर नगरकी स्त्रिये बड़े चावसे देख रही थीं तथा भवनोंपरसे धानका लावा वरसा रही थीं। आनन्दभरे मुखोंसे वहाँके रास्तेमें वेश्याओंके नृत्य

तथा कृत्रिमवृक्षांश्च पताकाश्च ध्वजांस्तथा । वह्निसंगादोषधीनां पुष्पवृक्षविनिर्मितान् ॥३०६॥
तडित्प्रभोपमांश्चापि गगनान्तर्विराजितान् । वह्निसंज्ञादोषधीभ्यः प्राकारान् विविधान् वरान्॥३०७॥
चंद्रज्योत्स्नाकृत्रिमांश्च दीपवृक्षान् सहस्रशः । दीपमालाश्च व्याघ्रादीन्कृत्रिमान् रथसंस्थितान्॥३०८॥
ओषधीभिः पूरितांश्च केकीचक्रोपमादिकान् । ददृशुर्वारणेंद्रस्था एवं ते राघवादयः ॥३०९॥
तदा देवा विमानस्था ददृशुः कौतुकं मुदा । एवं नानोत्सवैर्बाला ययुर्जनकमंदिरम् ॥३१०॥
अवरुह्य गजेन्द्रेभ्यस्तस्थुस्ते मंडपांगणे । मधुपर्कविधानानि विष्टरादीनि च क्रमात् ॥३११॥
तयोर्गुरू चक्रतुस्तौ वसिष्ठगौतमात्मजौ । वाल्मीक्यादिमुनिगणैर्वेष्टितौ तुष्टमानसौ ॥३१२॥
ततः पूजां वधूनां च मुदा दशरथो नृपः । चकार गुरुणा युक्तस्तदा स मंडपाङ्गणे ॥३१३॥
ततो लग्नमुहूर्ते तान् वधूभिश्च पृथग्वरान् । वेदिकासु स्थितान् कृत्वा दम्पत्योरंतरे पटान्॥३१४॥
कृत्वा मंगलघोषांश्च मुनिभिश्चक्रतुर्गुरू । तदा तूर्ष्णीं सभायां ते शुश्रुवुः सकला जनाः ॥
पुष्पौघैः पीतधान्यैश्च ववृषुर्दम्पतीन् स्त्रियः ॥ ३१५ ॥
श्रीदेवीतनयौ शिवः सुखकरो मित्रः शशी कंपनः सर्वे ते मुनयश्चला दश दिशः सर्पा मृगेंद्राः खगाः ।
नद्यःपुण्यसरोवराणि दितिजास्तीर्थानि कंजासनश्चेंद्रो वह्व्यमरा नदी जलधयः कुर्वंतु वो मंगलम् ३१६॥
तदेव लग्नं सुदिनं तदेव तारावलं चंद्रबलं तदेव । विद्याबलं दैवबलं तदेव काशीपतेर्यत्स्मरणं विधेयम्३१७
एवं मंगलशब्दैश्च महावाद्यपुरःसरम् । तेषामंतःपटान्मुक्त्वा ॐपुण्योऽस्तूचतुर्गुरू ॥३१८॥
तासां ते पाणिग्रहणविधानं विधिपूर्वकम् । लाजाहोमादिकं सर्वं चक्रुर्मंगलपूर्वकम् ॥३१९॥
तदा महावाद्यघोषा निनेदुर्मंडपांगणे । ननृतुर्वारनार्यश्च जगुर्मागधवंदिनः ॥३२०॥

मनोहर मिट्टी आदिके बने हुए गमलों, वृक्षों तथा फूल-पत्तियोंसे बनी हुई वाटिकाओंको, कृत्रिम वृक्षोंको, पताकाओंको, ध्वजाओंको, अग्निके संयोगसे जलनेवाले, तड़ितके समान रोशनीवाले और आकाशमें चमकनेवाले नाना प्रकारकी आतशबाजीसे सजे पुष्प-वृक्ष-लता आदिको, हजारों चन्द्रमाओंकी चाँदनीके कृत्रिम दीपवृक्षोंको, दीपमालाओंको, रथोंमें रक्खे हुए बनावटी व्याघ्र-गज आदिको, औषधिसे भरे हुए मोर तथा चर्खी आदिको देखने लगे ॥३०२–३०९॥ सब देवता भी आनन्दसे उस कौतुकको देख रहे थे। इस प्रकार विविध उत्सवों सहित वे राम आदि बालक राजा जनकके भवनको गये ॥ ३१० ॥ वहाँ जा तथा हाथियोंसे उतरकर वे मण्डपके आँगनमें खड़े हो गये। वाल्मीकि आदि मुनियोंसे घिरे हुए दोनों पक्षके गुरु वशिष्ठ तथा गौतमपुत्र शतानन्दने प्रसन्नतासे मधुपर्क (मधुनिश्रित दही) का विधान और आसन आदिका विधान क्रमशः करवाया ॥ ३११ ॥ ३१२ ॥ पश्चात् राजा दशरथने गुरु वशिष्ठको साथ लेकर सहर्ष भावी पुत्रवधुओंकी पूजा की। फिर शुभ मुहूर्त तथा सुलग्नमें मुनियों तथा गुरुजनोंने उन-उन वधुओं और उन-उन वीर बालकोंको पृथक्-पृथक् वेदियोंपर बैठाकर उन दम्पतियोंके बीचमें वस्त्रका आड़ करके मंगलमय शब्दोंका उच्चारण किया। सभाके सभी मनुष्य चुप होकर उसे सुनने लगे। स्त्रियें केसरसे रंगे पीले चावल तथा फूल वरवधूके ऊपर बरसाने लगीं ॥ ३१३–३१५ ॥ सरस्वती, देवीतनय गणपति, सुखकारक शिव, सूर्य, चन्द्र, वायु, सब मुनि, चल-अचल जीव, दसों दिशायें, सर्प, मृगेन्द्र, खग, नदी, पवित्र सरोवर, दैत्य, तीर्थ, ब्रह्मा, इन्द्र, अग्निदेवता तथा नदी-समुद्र आदि तुम लोगोंका कल्याण करें ॥ ३१६ ॥ काशीपति श्रीविश्वनाथ भगवानका स्मरण ही तुम्हारे लिए सुन्दर लग्न, शुभ दिन, ग्रहबल, विद्याबल तथा देवबल बन जाय ॥ ३१७ ॥ ऐसे मांगलिक शब्दों और मांगलिक बाजोंकी ध्वनि होने लगी। उसके बाद बीचमें पड़े हुए वस्त्रोंको हटा दिया गया और दोनों ओरके गुरुओंने "ॐपुण्योऽस्तु" ऐसा कहा ॥ ३१८ ॥ इस प्रकार उन लोगोंने मिलकर विधिपूर्वक उनका विवाहकार्य तथा लावाका हवन आदि सभी कृत्य मङ्गलपूर्वक संपादित कर दिया ॥ ३१९ ॥ तब मण्डपकी अँगनाईमें बड़े-बड़े बाजोंका निनाद होने लगा, वेश्यायें नाचने लगी, भाँट और बन्दीजन यशोगान करने लगे ॥ ३२० ॥

नटा मंगलगीतैश्च तुष्टुवुस्ते महास्वनैः । तदा दानान्यनेकानि चक्रतुस्तौ नृपोत्तमौ ॥३२१॥
अथ ते बालकाः सर्वे वधूः स्थाप्य कटीषु वै । कौसल्यादिवनिताभिर्जग्मुस्ते भोजनगृहान् ॥३२२॥
तत्राम्रसिंचनं चक्रुः संपूज्य त्वां च मामपि । ततो रामादिकाः सर्वे स्वस्वपत्न्या पृथङ्मुखाः ॥३२३॥
चक्रुस्ते भोजनं हृष्टाः स्त्रीभिः सर्वत्र वेष्टिताः । राजा दशरथश्चापि सुहृद्भिश्च नृपोत्तमैः ॥३२४॥
पौरैर्जानपदैरिष्टैर्मुनिभिः परिवारितः । जनकस्य गृहं गत्वा चकार भोजनं मुदा ॥३२५॥
कौसल्याद्याः स्त्रियः स्त्रीभिश्चक्रुर्भोजनमुत्तमम् । सुमेधया प्रार्थितास्ता वंदिताश्च मुहुर्मुहुः ॥३२६॥
एवं नानासमुत्साहांश्चकार जनको मुदा । अथ ते बालकाः सर्वे स्त्रीवाक्यान्मातृसन्निधौ ॥३२७॥
स्वस्वपत्न्याः पादयोः स्वशिरोभिर्नमनं मुहुः । चक्रुस्तुष्टचेतसस्ते तास्ता नेमुः पृथक् पृथक् ॥
कुङ्कुमांकितपादाश्च तेषामंकेषु ता ददुः ॥३२८॥
श्रीरामः समवाप्य भूमितनयामाद्यां जगत्स्वामिनीं सर्वात्मा वरहेतुसुन्दरतनुः कारुण्यपूर्णेक्षणः ॥
विद्युद्वर्णविराजमानवसनस्त्रैलोक्यचूडामणिः शोभामाप जगत्त्रयेऽप्यनुपमां मुक्ताविराजद्गलः ॥३२९॥
चतुर्थे दिवसे रात्रौ वंशपात्रविराजितैः । दीपैर्नीराजिताः सर्वे विरेजू राघवादयः ॥३३०॥
रामादीनां पारिबर्हान् ददौ स जनकस्तदा । नियुतान् वारणेंद्रांश्च शिबिकाश्चापि तन्मिताः ॥३३१॥
तुरगान् दशलक्षांश्च नियुतान् स्यंदनान् ददौ । नानालंकारवासांसि गोदासीसेवकादिकान् ॥३३२॥
ददौ स राघवादिभ्यो येषां सख्या न विद्यते । एवं सम्मानितास्तेन ते बाला जनकेन हि ॥३३३॥
पूर्ववदुत्सवाद्यैश्च स्वस्वपत्न्या समन्विताः । गजारूढा नृत्यगीतैस्ताभिः स्वमंडपं ययुः । ३३४॥
ततो राजा मासमेकं निनाय नृपवाक्यतः । ततः सैन्येन स्वपुरीं गन्तुं पुर्या बहिर्ययौ ॥३३५॥
सीताद्या निर्ययुर्मुग्धाः साश्रुनेत्राः सुविह्वलाः । सुमेधास्ताः समालिंग्य सांत्वयित्वा व्यसर्जयत् ॥३३६॥

नट लोग जोरसे मङ्गलगीतोंको गाकर स्तुति करने लगे और दोनों नृपश्रेष्ठोंने अनेक दान दिये ॥ ३२१ ॥ तदनन्तर वे सब बालक अपनी-अपनी बहूको कमरपर चढ़ाकर कौसल्या आदि माताओंके साथ भोजनालयमें गये ॥ ३२२ ॥ हे पार्वति ! वहाँ आम्रसेचन करके तुम्हारी तथा हमारी (शिव-पार्वतीकी) पूजा करनेके बाद राम आदिने अपनी-अपनी पत्नियोंके साथ आनन्दपूर्वक भोजन किया और सब स्त्रियाँ उन्हें घेरकर खड़ी हो गयीं। राजा दशरथने भी दूसरे राजाओंको, सुहृदोंको, नगर तथा देशके लोगोंको और मुनियोंको साथ ले तथा जनकके घरपर जाकर सहर्ष भोजन किया ॥ ३२३–३२५ ॥ सुमेधासे बार-बार प्रार्थित तथा आनंदित कौसल्या आदि स्त्रियोंने भी अन्यान्य स्त्रियोंके साथ जाकर भोजन किया ॥३२६॥ राजा जनकके यहाँ अनेक समारोह हुए । फिर उन बालकोंने प्रसन्न होकर स्त्रियोंके कहनेसे माताओंके सम्मुख अपनी-अपनी स्त्रियोंके पैरोंपर अपना-अपना सिर रखकर नमस्कार किया। पश्चात् उन स्त्रियोंने भी उनको अलग-अलग नमस्कार करके उनकी गोदोंमें कुंकुमसे रंजित पावँ रखे ॥ ३२७ ॥ ३२८ ॥ समस्त संसारके आत्मास्वरूप सुन्दर शरीरको धारण किये हुए, करुणापूर्ण नेत्रोंवाले, विद्युत्के समान वर्णवाले, पीले वस्त्रोंको धारण किये हुए, त्रिलोकीके चूड़ामणिस्वरूप गलेमें मोतीकी माला पहने हुए श्रीराम जगत्की आदिस्वामिनी और भूमितनया सीताको प्राप्त करके तीनों लोकोंमें अनुपमेय शोभाको प्राप्त हुए ॥ ३२९ ॥ चौथे दिन बाँसके पात्रमें जलाये हुए दीपकोंसे नीराजित तथा पूजित राम आदि चारों भाई बड़े ही शोभायमान होने लगे ॥ ३३० ॥ राजा जनकने राम आदिको ये दहेज दिये-दस लाख हाथी, दस लाख पालकियाँ, दस लाख घोड़े तथा दस लाख रथ, असंख्य अलंकार, पोशाक, गौएँ तथा दास-दासिएँ दीं। इस प्रकार राजा जनकके द्वारा सम्मानित वे बालक ॥ ३३१–३३३ ॥ अपनी-अपनी स्त्रियोंको साथ ले तथा हाथीपर सवार होकर नृत्य-गीत तथा बाजेके साथ अपने मण्डपको लौट आये ॥ ३३४ ॥ पश्चात् राजा दशरथ राजा जनकके आग्रहसे एक महीना वहीं व्यतीत करके अपने पुरको जानेके लिये सेनाके साथ उस पुरीसे बाहर आये ॥ ३३५ ॥ सीता आदि अश्रुपूर्ण नेत्रोंसे बहुत विह्वल होकर चलीं । सुमेधाने उनको

अथ राजा दशरथो जनकं विन्यवर्तयत् । तदा दशरथं प्राह जनकः साश्रुलोचनः ॥३३७॥
श्वसन् कवोष्णम्लानास्यो विरहाद्गद्गदाक्षरः । एतावत्कालपर्यन्तं सीताद्या लालिता मया ॥३३८॥
अधुना त्वमिमास्त्वग्रे लालयस्व कृतेक्षणैः । इत्युक्त्वा नृपतिं नत्वा मिथिलां जनको ययौ ॥३३९॥
ततो दशरथश्चापि स्नुषास्त्रीतनयादिभिः । नृपैः सैन्येन स्वपुरीं ययौ मार्गे शनैः शनैः ॥३४०॥
अथ गच्छति श्रीरामे मैथिलाद्योजनत्रयम् । निमित्तान्यतिघोराणि ददर्श नृपसत्तमः ॥३४१॥
नत्वा वसिष्ठं प्रपच्छ किमिदं मुनिपुङ्गव । निमित्तानीह दृश्यंते विषमाणि समंततः ॥३४२॥
वसिष्ठस्तमथो प्राह भयमागामि सूच्यते । पुनरप्यभयं तेऽद्य शीघ्रमेव भविष्यति ॥३४३॥
मृगाः प्रदक्षिणं यांति त्वां पश्य शुभसूचकाः । एवं वै वदतस्तस्य ववौ घोरतरोऽनिलः ॥३४४॥
मुष्णंश्चक्षूंषि सर्वेषां पांसुवृष्टिभिरर्दयत् । ततो ददर्श परमं जामदग्न्यं महाप्रभम् ॥३४५॥
नीलमेघनिभं प्रांशुं जटामण्डलमंडितम् । धनुःपरशुहस्तं च साक्षात्कालमिव स्थितम् ॥३४६॥
कार्तवीर्यांतकं रामं दृप्तक्षत्रियमर्दनम् । प्राप्तं दशरथस्याग्रे रक्तास्यं रक्तलोचनम् ॥३४७॥
तं दृष्ट्वा भयसंत्रस्तो राजा दशरथस्तदा । अर्घ्यादिपूजां विस्मृत्य त्राहि त्राहीति चाब्रवीत् ॥३४८॥
दंडवत्प्रणिपत्याह पुत्रप्राणान्प्रयच्छ मे । इति ब्रुवंतं राजानमनादृत्य रघूत्तमम् ॥३४९॥
उवाच निष्ठुरं वाक्यं क्रोधात्प्रचलितेन्द्रियः । त्वं राम इति मन्नाम्ना चरसि क्षत्रियाधम ॥३५०॥
द्वंद्वयुद्धं प्रयच्छाशु यदि त्वं क्षत्रियोऽसि मे । पुराणं जर्जरं चापं भंक्त्वा त्वं कत्थसे मुधा ॥३५१॥
इदं तु वैष्णवं चापमारोपयसि चेद्गुणम् । तर्हि युद्धं त्वया सार्द्धं न करोमि नृपात्मज ॥३५२॥
नो चेत्सर्वान्हनिष्यामि क्षत्रियांतकरस्त्वहम् । इति तद्वचनं श्रुत्वा राघवो वाक्यमब्रवीत् ॥३५३॥

छातीसे लगाया तथा आश्वासन देकर बिदा किया ॥ ३३६ ॥ तब राजा दशरथने राजा जनकको लौटनेके लिये कहा। राजा जनक आँखोंमें आँसू भरकर कुछ गरम श्वास लेते हुए मलिन मुख किये पुत्रियोंके वियोगसे गद्गदस्वर होकर राजा दशरथसे कहने लगे कि आज तक मैने सीता आदिका लालन-पालन किया और अब आजसे आप अपनी कृपादृष्टिसे इनका पालन-पोषण करें। ऐसा कह और राजाको नमस्कार करके राजा जनक मिथिलाको लौट गये ॥ ३३७–३३९ ॥ राजा दशरथ भी पुत्रों, पुत्रवधुओं, स्त्रियों, राजाओं तथा सेनाको साथ लेकर धीरे-धीरे अपनी नगरीको चले ॥ ३४० ॥ जब श्रीराम मैथिल देशसे निकलकर बारह कोस आगे बढ़े। तब राजा दशरथको अतिघोर अपशकुन दिखाई दिये ॥ ३४१ ॥ तब वे नमस्कार करके वसिष्ठजीसे कहने लगे—हे मुनिपुंगव ! यह क्या कारण है कि चारों तरफ ये अपशकुन दिखाई दे रहे हैं ? ॥ ३४२ ॥ वसिष्ठजीने कहा कि ये भावी भयके सूचक हैं। परन्तु शीघ्र ही आपका भय निवृत्त हो जायगा ॥ ३४३ ॥ देखिए, शुभसूचक हरिण दाहिनी ओर जा रहे हैं। इतना कहना ही था कि घोरतर वायु बहने लगी ॥ ३४४ ॥ उसने धूलसे सबकी आँखें भर दीं। बादमें बड़े तेजस्वी, नीले मेघके समान रंगवाले, ऊँची जटाओंसे मंडित, हाथमें धनुष तथा फरसा लिये, साक्षात् कालके समान लाल मुँह किये हुए, कार्तवीर्य (सहस्रबाहु) को मारनेवाले, उद्दण्ड तथा घमण्डी क्षत्रियोंका नाश करनेवाले परशुरामजी दशरथके आगे खड़े हो गये ॥ ३४५-३४७ ॥ राजा उनको देखकर भयसे विह्वल हो सत्कार-पूजा भूलकर त्राहि-त्राहि करने लगे ॥ ३४८ ॥ उन्होंने दंडवत् प्रणाम करके कहा कि आप मेरे पुत्र रामके प्राण बचायें। परन्तु परशुरामने क्रोधातुर होकर राजाका अनादर करके रघूत्तम रामसे इस प्रकार निष्ठुर वचन कहा—अरे क्षत्रियाधम राम ! तू मेरे नामसे संसारमें झूठ-मूठ क्यों प्रसिद्ध हुआ फिरता है ? ॥ ३४९ ॥ ३५० ॥ यदि तू सच्चा क्षत्रिय हो तो मेरे साथ युद्ध कर। पुराना सड़ा हुआ धनुष तोड़कर क्यों अपनी बड़ाईकी झूठी डींग हांक रहा है ? ॥ ३५१ ॥ ओ रघुवंशज ! यदि तू इस विष्णुके धनुषपर डोरी चढ़ा दे तो मैं तेरे साथ युद्ध न करूँगा ॥ ३५२ ॥ नहीं तो मैं तुम सबको मार डालूँगा। क्योंकि क्षत्रियोंका नाश करना ही मेरा काम है। परशुरामका यह वचन सुनकर रामने कहा—॥ ३५३ ॥

वयमेकगुणाः स्वामिन् यूयं चैव गुणाधिकाः । गोविप्रदेवनारीषु राघवा नास्त्रधारिणः ॥३५४॥
मयैतैश्च जीवितानि तव पादार्पितानि हि । यथेच्छं घातयास्माकं विप्रैर्युद्धं करोमि न ॥३५५॥
इति ब्रुवति रामे वै चचाल वसुधा भृशम् । क्रुद्धं दृष्ट्वा जामदग्न्यं क्षत्रियांतमुपस्थितम् ॥३५६॥
अंधकारो बभूवाथ चुक्षुभुः सप्त सागराः । रामो दाशरथिर्वीरो वीक्ष्य तं भार्गवं रुषा ॥३५७॥
धनुराच्छिद्य तद्धस्तादारोप्य गुणमंजसा । तुणीराद्बाणमादाय संधायाकृष्य वीर्यवान् ॥३५८॥
उवाच भार्गवं रामः शृणु ब्रह्मन् वचो मम । लक्ष्यं दर्शय बाणस्य ह्यमोघो रामसायकः ॥३५९॥
लोकान् पादयुगं वापि वद शीघ्रं ममाज्ञया । एवं वदति श्रीरामे भार्गवो विकृताननः ॥३६०॥
संस्मरन् पूर्ववृत्तांतमिदं वचनमब्रवीत् । राम राम महाबाहो जाने त्वां परमेश्वरम् ॥३६१॥
पुराणपुरुषं विष्णुं जगत्सर्गलयोद्भवम् । बाल्येऽहं तपसा विष्णुमाराधयितुमंजसा ॥३६२॥
गत्वा हि तीर्थे गोमत्यास्तपसा तोष्य शार्ङ्गिणम् । अहर्निशं महात्मानं नारायणमनन्यधीः ॥३६३॥
यस्यांशेन मया भूम्यामवतारो धृतोऽस्ति हि । भूभारहरणार्थाय कार्तवीर्यवधेप्सया ॥३६४॥
ततः प्रसन्नो देवेशः शंखचक्रगदाधरः । उवाच मां रघुश्रेष्ठ प्रसन्नमुखपंकजः ॥३६५॥

श्रीभगवानुवाच

उत्तिष्ठ तपसो ब्रह्मन् विहितं ते तपो महत् । मच्चिदंशेन युक्तस्त्वं जहि हैहयपुंगवम् ॥३६६॥
कार्तवीर्यं पितृहणं यदर्थं तपसा श्रमः । ततस्त्रिःसप्तकृत्वस्त्वं हत्वा क्षत्रियमंडलम् ॥३६७॥
कृत्स्नां भूमिं कश्यपाय दत्त्वा शान्तिमुपावह । त्रेतायुगे दाशरथिर्भूत्वा रामोऽहमव्ययः ॥३६८॥
उत्पत्स्ये परया भक्त्या तदा द्रक्ष्यसि मां पुनः । मत्तेजः पुनरादास्ये त्वयि दत्तं मया कृतम् । ३६९॥
तदा तपश्चरँल्लोके तिष्ठ त्वं ब्रह्मणो दिनम् । इत्युक्त्वाऽन्तर्दधे देवस्तथा सर्वं मया कृतम् ॥३७०॥
स एव विष्णुस्त्वं राम जातोऽसि ब्रह्मणाऽर्थितः । मयि स्थितं तु त्वत्तेजस्त्वयैव पुनराहृतम् ॥३७१॥

हे स्वामिन् ! हम एक गुणवाले तथा आप अनेक गुणवाले हैं। रघुवंशी लोग गौ, ब्राह्मण, देवता तथा स्त्रीपर शस्त्र नहीं उठाते ॥ ३५४ ॥ मैने और इन सबने आपके चरणोंमें जीवन अर्पण कर दिया है। आप जैसा चाहें वैसा करें। यदि चाहें तो मार डालें, परन्तु मैं ब्राह्मणके साथ युद्ध कदापि नहीं करूँगा ॥ ३५५ ॥ रामके ऐसा कहनेपर क्षत्रियोंके नाशकस्वरूप जामदग्न्य (परशुराम) को क्रुद्ध देखकर वसुधा काँपने लगी। चारों ओर अन्धकार छा गया तथा सातों समुद्र क्षुभित हो उठे। तब दशरथपुत्र वीर रामने भी परशुरामको क्रोधसे देखकर उनके हाथसे धनुष छीन लिया और डोरी चढ़ा तथा भाथेमेंसे बाण निकाल और उसपर चढ़ा तथा बलपूर्वक खींचकर भार्गव परशुरामसे कहने लगे—हे ब्रह्मन् ! मेरी बात सुनिए और मुझे लक्ष्य बताइए। मेरा बाण खाली नहीं जा सकता ॥ ३५६–३५९ ॥ शीघ्र ही मुझे या तो लोकोंको विद्ध करनेकी आज्ञा दीजिए अथवा अपने दो चरणोंको। रामके इस वचनको सुनकर विकृतमुख होते हुए परशुरामने पूर्व वृत्तान्तको स्मरण करते हुए कहा–हे राम ! हे राम ! हे महाबाहो ! मैं आपको जगत्की उत्पत्ति, स्थिति तथा प्रलयके कारणस्वरूप पुराणपुरुष साक्षात् परमेश्वर विष्णु समझता हूँ। बचपनमें मैंने गोमती-तीर्थमें जाकर शार्ङ्गधनुषधारी विष्णुभगवान्को, जिनके एक अंशसे मैंने संसारमें भूभार हरण करने तथा कार्तवीर्यको मारनेके लिए अवतार लिया है, उन्हें अपने तपसे प्रसन्न किया। तब प्रसन्नमुख होकर शंख-चक्रगदापद्मधारी उन देवेशने मुझसे कहा ॥ ३६०–३६५ ॥ श्रीभगवान् बोले – हे ब्रह्मन् ! तप करना छोड़कर तू उठ खड़ा हो। मैंने तेरे तपोबलको जान लिया है। मेरे चिदंशसे युक्त होकर तू हैहयश्रेष्ठ तथा अपने पिताको मारनेवाले कार्तवीर्यको मार। जिसके लिए तूने तपका परिश्रम किया है। बादमें इक्कीस बार क्षत्रिय-समुदायका नाश करके समस्त पृथिवी कश्यपको दान देकर शान्त हो। पश्चात् त्रेतायुगमें मैं अविनाशी दाशरथी राम होकर उत्पन्न होऊँगा। तब तू परम भक्तिसे मुझे देखेगा। उस समय मै तुझे दिया हुआ अपना तेज लौटा लूँगा ॥ ३६६–३६९ ॥ तदनन्तर ब्रह्माके एक दिन तक तू तप करता हुआ संसारमें

अद्य मे सफलं जन्म प्रतीतोऽसि मम प्रभो । नमोऽस्तु जगतां नाथ नमस्ते भक्तिभावन ॥३७२॥
नमः कारुणिकानंत रामचन्द्र नमोऽस्तु ते । देव यद्यत्कृतं पुण्यं मया लोकजिगीषया ॥३७३॥
तत्सर्वं तव बाणाय भूयाद्राम नमोऽस्तु ते । ततो मुक्त्वा शरं रामस्तत्कर्म भस्मसात्करोत् ॥३७४॥
ततः प्रसन्नो भगवान् श्रीरामः करुणामयः । जामदग्न्यं तदा प्राह वरं वरय चेति सः ॥३७५॥
ततः प्रीतेन मनसा भार्गवो राममब्रवीत् । यदि मेनुऽग्रहो राम तवास्ति मधुसूदन ॥३७६॥
त्वद्भक्तसंगस्त्वत्पादे मम भक्तिः सदाऽस्तु वै । तथेति राघवेणोक्तः परिक्रम्य प्रणम्य तम् ॥३७७॥
पूजितस्तदनुज्ञातो महेंद्राचलमन्वगात् । रावणेन जिता देवाः सगर्वो रावणो महान् ॥३७८॥
सहस्रबाहुना बद्धः सोऽर्जुनो भार्गवेण हि । हतः क्षणेन समरे सोऽद्य श्रीभार्गवोऽपि च ॥३७९॥
जितस्तद्धनुषा बाणमोचनाद्राघवेण हि । एवं श्रीरामचंद्रस्य पौरुषं किं वदाम्यहम् ॥३८०॥
अथ राजा दशरथो रामं मृतमिवागतम् । दृढमालिंग्य हर्षेण नेत्राभ्यां जलमुत्सृजन् ॥३८१॥
ततः प्रीतेन मनसा स्वस्थचित्तः पुरीं ययौ । अयोध्यायां सुमंत्रोऽपि नृपं श्रुत्वा समागतम् ॥३८२॥
नगरीं शोभयामास पताकाध्वजतोरणैः । वारणेंद्रं पुरस्कृत्य रामं प्रत्युद्ययौ जवात् ॥३८३॥
अथो नदत्सु वाद्येषु राजा पुत्रैः सुहृज्जनैः । विवेश नगरं पौरैः पश्यन्नृत्यादिकं पथि ॥३८४॥
रामादयः स्वपत्न्या ते गजसंस्था ययुः पुरीम् । ननृतुर्वारनार्यश्च तुष्टवुर्मागधादयः ॥३८५॥
एवं राजा गृहं गत्वा बालकैः स्वीयसद्मनि । रमापूजाः कारयित्वा ददौ दानान्यनेकशः ॥३८६॥
तदाऽलङ्कारवस्त्राद्यैः सुहृदः पार्थिवादयः । रामादीन्पूजयामासुस्तथा दशरथं नृपम् ॥३८७॥

रह। ऐसा कहकर प्रभु अन्तर्द्धान हो गये। मैंने भी सब वैसे ही किया ॥ ३७० ॥ हे राम! वही आप ब्रह्मासे प्रार्थित होकर पृथिवीपर अवतीर्ण हुए हैं। मेरे तनमें स्थित अपना तेज आपने ही फिर आज आहरण कर लिया है ॥ ३७१ ॥ आपके दर्शनसे मेरा जन्म सफल हो गया। हे भक्तिभावन! हे जगन्नाथ! हे करुणाशील! हे रामचन्द्र! आपको नमस्कार है। हे देव! लोकोंको जीतनेकी इच्छासे मैंने जो जो कर्म किये हैं, वे सब आपके बाणको समर्पित हैं (अर्थात् उन्हें आप अपने बाणका लक्ष्य बनाकर नष्ट कर दें)। तब रामने बाण छोड़कर उनके कर्मोंको भस्म कर दिया ॥ ३७२–३७४ ॥ तदनन्तर प्रसन्न होकर करुणामय भगवान् श्रीरामने परशुरामसे कहा कि तुम वर माँगो, मैं तुमपर प्रसन्न हूँ ॥ ३७५ ॥ यह सुनकर प्रसन्न मनसे भार्गवने रामसे कहा—हे मधुसूदन राम! यदि आप मेरेपर अनुग्रह रखते हों तो मुझे सदा आप अपने भक्तोंका संग तथा अपने विषयमें निर्मल भक्ति प्रदान करें। तब रामचन्द्रजीने 'तथास्तु' कहा। तदनन्तर परशुराम उन्हें नमस्कार तथा परिक्रमा करके और आज्ञा लेकर महेन्द्राचलकी ओर चल दिये। जिस रावणने देवताओंको जीता था, उस सगर्व महान् रावणको सहस्रबाहु अर्जुनने बाँध लिया था। उसी अर्जुनको परशुरामने युद्ध करके क्षणभरमें मार डाला था। उन परशुरामको भी रामने उन्हींके दिये हुए धनुषपर बाण चढ़ाकर जीत लिया। हे पार्वती! इस प्रकार रामके पुरुषार्थका वर्णन मैं कहाँ तक करूँ। उनके बल-वीर्यका अन्त नहीं है ॥ ३७६–३८० ॥ पश्चात् राजा दशरथ रामको मरकर लौटे हुए की तरह आलिंगन करके हर्षके आँसू बहाने लगे ॥ ३८१ ॥ बादमें प्रसन्न मन होकर वे स्वस्थ चित्तसे अयोध्यापुरीको चल पड़े। उधर अयोध्यामें सुमन्त्रने जब राजा दशरथके आगमनकी बात सुनी तो उन्होंने नगरीको पताका, ध्वजा तथा तोरणोंसे खूब सजाया और हाथी लेकर रामको लेनेके लिए आगे आये ॥ ३८२ ॥ ३८३ ॥ राजा दशरथने पुत्र-मित्र तथा नगरनिवासियोंके साथ रास्तेमें नृत्य आदि देखते हुए बाजे-गाजेके साथ नगरमें प्रवेश किया ॥ ३८४ ॥ राम आदिने भी अपनी स्त्रियोंके साथ हाथियोंपर बैठकर पुरीमें प्रवेश किया। वेश्यायें नृत्य करने लगीं तथा भाट आदि स्तुति करने लगे ॥ ३८५ ॥ राजाने घर जाकर बालकोंसे लक्ष्मीका पूजन करवाया और अनेक प्रकारके दान दिये ॥ ३८६ ॥ पश्चात् सुहृदों तथा राजाओंने वस्त्र-अलङ्कारसे राम आदिकी और राजा दशरथकी पूजा की ॥ ३८७ ॥

दशरथोऽपि तान्सर्वान् पूजयामास वैभवैः । ततस्ते सुहृदः सर्वे नृपाश्च स्वस्थलं ययुः ॥३८८॥
प्रीत्या युधाजितं राजा स्थापयामास स्वांतिकम् । रामाद्या रमयामासुः स्वस्वदारैः स्वसद्मसु ॥३८९॥

पार्वत्युवाच

श्रीविष्णोस्तु चिदंशेन जामदग्न्यस्त्वया स्मृतः ॥३९०॥
तद्वच्चायं राघवः किं नुद मे संशयं प्रभो ।

श्रीशिव उवाच

अष्टावंशेन विधृता अवताराश्च विष्णुना ॥३९१॥
रामकृष्णावतारौ च पूर्णरूपेण तौ धृतौ । वरिष्ठौ सकलेष्वेवावतारेषु हि तावुभौ ॥३९२॥
तयोरपि वरः पूर्वः सत्यसंधो जितेंद्रियः । ज्ञेयो रामावतारो हि नानेन सदृशः परः ॥३९३॥
कृष्णः कृष्णरुचिर्ज्ञेयः श्रीरामो रुक्मसंरुचिः । एवं गिरींद्रजे प्रोक्तं सीतायाश्च स्वयंवरम् ॥
अस्य सर्गस्य श्रवणान्मंगलं लभ्यते नरैः ॥३९४॥

इति श्रीशतकोटिरामचरितांतर्गते श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये सारकाण्डे सीतास्वयंवरो नाम तृतीयः सर्गः ॥३॥

चतुर्थः सर्गः

(रामका शत्रु राजाओंके साथ युद्ध तथा विष्णुको वृन्दाका शाप)

श्रीशिव उवाच

अथ सीतायुतः श्रीमान् रामः साकेतसंस्थितः । बुभुजे विविधान् भोगान् राजसेवापरोऽभवत् ॥ १ ॥
शरत्कालाश्विने मासि जनकेन स्वमन्त्रिणः । आह्वानाय च राजानं प्रेषितास्त्वरितं ययुः ॥ २ ॥
तानागतान्दशरथः शीघ्रं सत्कृत्य सादरम् । पप्रच्छागमने हेतुं तेऽपि नत्वा तमूचिरे ॥ ३ ॥
दीपावल्युत्सवार्थं त्वां स कुटुम्बं समंत्रिणम् । पौरजानपदैः साकमाह्वयामास ते सुहृत् ॥ ४ ॥
तत्तेषां वचनं श्रुत्वा दूतानाज्ञापयन्नृपः । कथ्यतां नगरे राष्ट्रे गमनं मिथिलां प्रति ॥ ५ ॥

राजा दशरथने भी उन सबका अनेक विभवोंसे सत्कार किया। बादमें वे सब सुहृद् तथा राजा लोग अपने-अपने स्थानोंको चले गये ॥ ३८८ ॥ किन्तु राजाने प्रीतिपूर्वक युधाजित्को रोक लिया। राम-लक्ष्मण तथा भरत आदि भी अपनी-अपनी स्त्रियोंके साथ जाकर अपने-अपने महलोंमें रमण करने लगे ॥ ३८९ ॥ पार्वतीजी कहने लगीं—हे शिवजी ! श्रीविष्णुके चिदंशसे परशुरामजीका अवतार आपने बताया और उसीसे आपने रघुपति रामचन्द्रजीका भी अवतार बताया है। फिर इन दोनोंमें क्या अन्तर है ? सो कहकर मेरी शङ्का दूर कीजिये। श्री शिवजीने उत्तर दिया कि विष्णुभगवानने अपने अंशसे कुल आठ अवतार धारण किये थे। उनमेंसे राम तथा कृष्णका पूर्ण अवतार था। सब अवतारोंमें ये दो अवतार श्रेष्ठ थे ॥ ३९०-३९२ ॥ उन दोनोंमें भी सत्यवादी तथा जितेन्द्रिय रामावतार उत्तम था। रामके समान और कोई नहीं था ॥ ३९३ ॥ कृष्णको कृष्णरुचिवाले तथा रामको रुक्मरुचिवाले जानो। इस प्रकार शिवजीने गिरीन्द्रतनया (पार्वती) को सीताका स्वयम्वर कह सुनाया। इस सर्गको सुननेवाले मनुष्योंको मङ्गल लाभ होता है ॥ ३९४ ॥ इति श्रीशतकोटिरामचरितांतर्गते श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये 'ज्योत्स्ना'-भाषाटीकायां सारकाण्डे सीतास्वयम्वरो नाम तृतीयः सर्गः ॥ ३ ॥

श्रीशिवजी बोले— हे देवि ! श्रीमान् राम सीताके साथ अयोध्यामें विविध राजभोगोंका सुख भोगने लगे ॥ १ ॥ शरत्कालके आश्विन महीनेमें राजा जनकने अपने मन्त्रियोंको महाराज दशरथको बुलानेके लिये भेजा। वे शीघ्र अयोध्या जा पहुँचे ॥ २ ॥ राजा दशरथने उनका आदर-सत्कार करके आनेका कारण पूछा। मन्त्रियोंने नमस्कार करके कहा—॥३॥ आपके मित्र राजा जनकने सकुटुम्ब आपको मन्त्रियों, पुरवासियों तथा

सुमुहूर्ते ततो राजा हस्त्यश्वरथपत्तिभिः । पौरैर्जानपदैः साकं ययौ करिविराजितः ॥ ६ ॥
राज्ञः पृष्ठे समाजग्मुर्गजोपरि विराजिताः । रामलक्ष्मणभरतशत्रुघ्नास्ते स्वलंकृताः ॥ ७ ॥
कौसल्याद्या राजदाराःस्नुषाभिस्ताःपृथक् पृथक् रत्नमाणिक्यमुक्तादिशोभितासु वरासु च ॥ ८ ॥
करिणीषु समासीना वेष्टिता वेत्रपाणिभिः । धातृकाभिः स्वदासीभिर्वस्त्रादिभूषिताः ॥ ९ ॥
आगतं नृपतिं श्रुत्वा जनकः पौरवासिभिः । प्रत्युज्जगाम हर्षेण निनाय नगरीं प्रति ॥१०॥
वाद्यघोषनिनादैश्च दुन्दुभीनां महास्वनैः । वारांगनानां नृत्याद्यैर्गायकानां च गायनैः ॥११॥
मार्गे मार्गे महासौधारूढस्त्रीणां कदम्बकैः । पुष्पवृष्टिविवर्षाभिर्ययौ नृपगृहं नृपः ॥१२॥
ततो गृहाणि रम्याणि पूरितान्यन्नवारिभिः । प्रविवेश नृपश्रेष्ठो जनकेनातिमानितः ॥१३॥
ततो नानासमुत्साहैर्मिष्ठान्नैर्नृत्यगायनैः । वस्त्राभरणैः सर्वान् जामातॄंश्च विशेषतः ॥१४॥
मणिरत्नादिदीपैश्च मुहुर्नीराजनैरपि । जनकः पूजयामास दीपावल्यां महादिने ॥१५॥
दीपोत्सवैर्महापुण्यैर्बलिराज्य प्रवर्तते । आनन्दः सर्वलोकानां मंगलानि गृहे गृहे ॥१६॥
अभ्यंगोद्वर्तनाद्यैश्च वरपक्वान्नभोजनैः । गोदासदासीदानैश्च हस्त्यश्वरथपत्तिभिः ॥१७॥
चकार तुष्टान् जामातॄन् जनको नृपतिं तथा । नृपपत्नी स्वदुहितॄरयोध्यास्थादिकान् क्रमात् ॥१८॥
ततः प्रस्थानमकरोत्पुरीं दशरथो नृपः । ततो राजा दशरथः सैन्येन परिवेष्टितः ॥१९॥
ययौ शनैः शनैर्मार्गं सुहृन्मन्त्रिपुरःसरः । एतस्मिन्नंतरे मार्गे सीतार्थं धनुषा पुरा ॥२०॥
भग्नमाना नृपतयः पूर्ववैरमनुस्मरन् । असंख्याताः ससैन्यास्ते रुरुधुर्नृपतिं पथि ॥२१॥

देशवासियोंके सहित दीवालीके उत्सवपर बुलाया है ॥ ४ ॥ उनका यह वचन सुनकर राजाने दूतों द्वारा मिथिला चलनेका समाचार सारे गाँवों तथा नगरोंमें कहला दिया ॥ ५ ॥ फिर शुभ मुहूर्त देखकर राजा अश्वारूढ़, गजारूढ़ तथा पैदल सैनिकोंको साथ लेकर नगर तथा राष्ट्रके लोगोंके साथ हाथीपर सवार होकर चले ॥ ६ ॥ राजाके पीछे सुन्दर अलंकार धारण करके हाथीपर सवार होकर राम, लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न चले ॥ ७ ॥ उनके पीछे कौसल्या आदि राजाकी स्त्रिएँ भी अपनी-अपनी पुत्रवधुओंके साथ रत्न-माणिक्य-मोती आदिसे सुशोभित उत्तम हथिनियोंपर अलग-अलग सवार हो बेंतधारी सिपाहियों, धाइयों तथा दासियोंसे घिरी हुई वस्त्र आदिसे भूषित होकर चल पड़ीं ॥ ८ ॥ ९ ॥ राजा दशरथका आगमन सुनकर राजा जनक पुरवासियोंको साथ लेकर स्वागत करनेके लिए गये और राजा दशरथको नगरमें ले आये ॥ १० ॥ रास्तेमें जगह-जगह वाद्योंका घोषनाद और नगाड़ोंका तुमुल निनाद होने लगा, वारांगनाएँ नाचने लगीं, गायकोंके गाने होने लगे तथा बड़े-बड़े महलोंकी अटारियोंपर स्थित स्त्रियोंके झुण्ड फूलोंकी बौछार करने लगे। इस प्रकार राजा दशरथ राजभवनमें पहुँचे ॥ ११ ॥ १२ ॥ पश्चात् जनकसे सम्मानित होकर अन्न-जल आदिसे परिपूर्ण भवनोंमें पधारे ॥ १३ ॥ बादमें विशेषरूपसे राजा जनकने सब जामाताओंकी विविध उत्सवोंसे, मिष्ठान्नसे, नृत्यसे, गीतसे, वस्त्रसे, अलंकारसे तथा मणिरत्नमय दीपकोंको आरतीसे दीपावलीके शुभ दिन बारम्बार पूजन तथा सत्कार किया ॥ १४ ॥ १५ ॥ दीपोत्सवके महापुण्यसे राजा बलिका राज्य आरम्भ हुआ था। इसीसे सब लोगोंको आनन्द हुआ तथा घर-घर मंगल होने लगा ॥ १६ ॥ राजा जनकने उन जामाताओंके शरीरमें तेल और चन्दन आदि लगा तथा गुलाबजल छिड़ककर इत्र आदि लगाया और उन्हें सुन्दर पकवान जिमा तथा हाथी, घोड़े, रथ, गाएँ, प्यादे, दास तथा दासिएँ देकर जमाइयों और राजा दशरथको सन्तुष्ट किया। तदनन्तर क्रमशः राजाको, स्त्रियोंको, अयोध्यानिवासियोंको और अपनी लड़कियोंको भी राजा जनकने यथेच्छ वस्तुएँ देकर सन्तुष्ट किया ॥ १७ ॥ १८ ॥ तदनन्तर जब कि राजा दशरथ राजाओं, मन्त्रियों, सेना तथा मित्रोंके साथ धीरे-धीरे अयोध्याको जा रहे थे। उसी समय उन राजाओंने जिनका कि सीतास्वयम्वरमें मानभंग हुआ था, उस वैरका स्मरण करके असंख्य सेनाओंके साथ आकर राजा दशरथको घेर लिया। उनको देखा

तान्दृष्ट्वा नृपतींश्चापि किमेतदिति विह्वलः । मन्त्रिभिर्मन्त्रयामास जनकः स्वजनैरपि ॥२२॥
एतस्मिन्नंतरे रामः श्रुत्वा चिन्तार्णवे निजम् । निमग्नं पितरं शीघ्रं ययौ लक्ष्मणसंयुतः ॥२३॥
नत्वा दशरथं रामः किञ्चिन्नम्र इदं जगौ । तात राजन्न कर्तव्या चिन्ता सति मयि त्वया ॥२४॥
क्षणादेव वधिष्यामि पश्य त्वं कौतुकं मम । ततो रामवचः श्रुत्वा राजाऽऽलिंग्य रघूत्तमम् ॥२५॥
प्राह षड्वार्षिको बालस्त्वं कथं योद्धुमिच्छसि । अरण्ये सकुटुम्बोऽहं वेष्टितोऽस्मि नृपाधमैः ॥२६॥
अहमेव गमिष्यामि योद्धुं रक्षस्व वाहिनीम् । तत्तातवचनं श्रुत्वा रामस्तं पुनरब्रवीत् ॥२७॥
यदा मे कुंठितां शक्तिं पश्यसि त्वं रणांगणे । तदा मे कुरु साहाय्यं तावदत्र स्थिरो भव ॥२८॥
स्वां वाहिनीं सकुटुंबां तात त्वं रक्ष मद्गिरा । इत्युक्त्वा पितरं नत्वा सज्जीकृत्य शरासनम् ॥२९॥
जगाम रथमारूढो लक्ष्मणोऽपि तमन्वगात् । तौ दृष्ट्वा भरतश्चाथ शत्रुघ्नोऽपि जगाम सः ॥३०॥
तान्दृष्ट्वा दशसाहस्रीं राजसेनामचोदयत् । ततस्ते पार्थिवाः सर्वे रथस्थं तं रघूत्तमम् ॥३१॥
निरीक्ष्य दर्शयामासुः स्वसेनायां परस्परम् । समागतोऽयं श्रीरामः स्वपितृस्यन्दनस्थितः ॥३२॥
एष वै सुमहच्छ्रीमान् विटपी सम्प्रकाशते । विराजत्युज्ज्वलस्कन्धः कोविदारध्वजो रथे ॥३३॥
दशरथाज्ञया तस्य रथे शस्त्रौघपूरिते । ध्वजबद्धपताकोच्चकोविदारे स्थितस्त्वयम् ॥३४॥
एवं वदन्तस्ते सर्वे रथैर्योद्धुं समाययुः । ततोऽभवन्महद्युद्धं घोरं तच्च परस्परम् ॥३५॥
अस्त्रैः शस्त्रैर्भिन्दिपालैः शतघ्नीभिः परश्वधैः । रामस्य सैनिकान् मुक्त्वा राजानो राममन्वयुः ॥३६॥
ते ववर्षुर्महाशस्त्रैर्बाणैर्व्याप्य दिगम्बरम् । तान्दृष्ट्वा नृपतीन् सर्वान् राममेवाभिसम्मुखान् ॥३७॥
लक्ष्मणः प्राद्रवच्छीघ्र भरतोऽपि च शत्रुहा । स्वामितारकवद्घोरमासीद्युद्धं सुदारुणम् ॥३८॥
ततो नृपतयः सर्वे शस्त्रौघैर्भरतं तदा । ते विध्वा मूर्च्छितं चक्रुः स्यंदनात्पतितो भुवि ॥३९॥

तो घबराकर राजा दशरथ मन्त्रियों तथा स्वजनोंको पास बुलाकर विचार करने लगे कि यह क्या बात है ? ॥ १९-२२ ॥ अपने पिताको चिन्तासमुद्रमें डूबा सुनकर राम लक्ष्मणके साथ उनके पास गये ॥ २३ ॥ पिता दशरथको नमस्कार करके राम नम्रतापूर्वक कहने लगे—हे तात ! हे राजन् ! मेरे रहते हुए आपको चिन्ता नहीं करनी चाहिए ॥ २४ ॥ मैं क्षणभरमें इन सबको मार डालूँगा । आप मेरा कौशल देखिये । रामके वचनको सुनकर राजाने उनका आलिंगन करके कहा – हे राम ! छः वर्षका बालक तू क्या युद्ध करेगा ? इस अरण्यमें सकुटुम्ब मुझको इन नीच राजाओंने आ घेरा है । इसलिए मैं ही इनको मारूँगा और तू सेनाकी रक्षा कर । पिताके इस वचनको सुनकर राम उनसे फिर कहने लगे—॥ २५-२७ ॥ जब आप मेरी शक्तिको रणाङ्गणमें कुण्ठित होते देखें, तब मेरी सहायता करिएगा । तबतक आप मेरे कहनेसे यहीं रहकर सकुटुम्ब अपनी सेनाकी रक्षा करें । ऐसा कहकर रामने पिताको नमस्कार किया और धनुषको ठीक करके रथपर चढ़कर चल दिये । उनके पीछे लक्ष्मण भी गये । उन दोनोंको जाते देख भरत और शत्रुघ्न भी उनके साथ चल दिये ॥ २८-३० ॥ उन सबको जाते देखकर राजा दशरथने दस हजार सैनिकोंकी सेना उनके साथ भेजी । उधर सब राजे रथस्थित रामको आते देख अपनी सेनामें एक दूसरेको दिखाने लगे कि यह राम अपने पिताके रथपर चढ़कर आ रहा है । यह बड़ा तेजस्वी है । विशाल शाखावाले पेड़के समान ऊँचे तथा शोभित कन्धेवाला राम रथमें कोविदार (कचनार या रक्तकाञ्चन) की ध्वजा लगाये हुए अपने पिताकी आज्ञासे उनके ही रथपर सवार होकर आ रहा है । ऐसा कहकर वे सब राजे युद्ध करनेके लिए रथ लेकर चले । पश्चात् परस्पर बड़ा भारी युद्ध होने लगा ॥ ३१-३५ ॥ वे सब एक दूसरेपर अस्त्र, शस्त्र, तीर, तोप तथा फरसे चलाने लगे । वे राजे रामके सैनिकोंको छोड़कर रामपर झपटे ॥ ३६ ॥ वे लोग आकाशको व्याप्त करके बड़े-बड़े शस्त्रों तथा बाणोंकी वर्षा करने लगे । उन सब राजाओंको अकेले रामके साथ युद्ध करते देख लक्ष्मण, भरत तथा शत्रुघ्न भी दौड़ पड़े और उनमें तारकासुर तथा कार्तिकेयकी तरह भयानक युद्ध होने लगा । तब सब

भरतं पतितं दृष्ट्वा शत्रुघ्नं विव्यधुः शरैः । तं चापि विरथं कृत्वा दुद्रुवुर्लक्ष्मणं नृपाः ॥४०॥
ववर्षुर्निशितैर्बाणैश्चक्रुस्तं व्याकुलं रणे । तथैव राघवं चापि शरैराच्छादयन्नृपाः ॥ ४१॥
ततः श्रीरामचन्द्रोऽपि लीलया समरांगणे । पश्यत्सु जालरंध्रैश्च कौसल्याद्यासु मातृषु ॥४२॥
सीतया भ्रातृपत्नीषु पित्रा मंत्रिकुलेष्वपि । टणत्कृत्य महच्चाप वायव्यास्त्रेण तान्नृपान् ॥४३॥
शुष्कपर्णवदुद्धूय प्राक्षिपद्वारिधरोधसि । मोहनास्त्रेण शेषान् हि मोहयामास राघवः ॥४४॥
लुलुंठ सकलं सैन्यं हस्त्यश्वरथसंकुलम् । ततो मूर्छितमालोक्य भरतं कैकयी रणे ॥४५॥
करिण्याःशीघ्रमुत्प्लुत्य शुशोचाङ्के निधाय तम् । ततो दशरथश्चापि कौसल्याद्या नृपस्त्रियः ॥४६॥
सांत्वयित्वाऽथ तान् रामः सौमित्रिं प्राह वेगतः । इतो विदूरे सौमित्रे मुद्गलस्य तपोनिधेः ॥४७॥
आश्रमोऽस्ति हि तत्र त्वं गत्वा वल्लीः शुभावहाः । संजीविन्यादिकाः सर्वाः शीघ्रमानय लक्ष्मण ॥४८॥
मुनेस्तपःप्रभावेण बहवः संति तत्र वै । तथेति लक्ष्मणो गत्वा स्यंदनस्थस्त्वरान्वितः ॥४९॥
अवरुह्य रथाद्वीरः संविवेशाश्रमं मुनेः । निवारितः स वटुकैः समाधिविरमे मुनेः ॥५०॥

याच्ञां कृत्वा शुभा वल्लीः प्राप्स्यसे त्वं न चान्यथा ।
कालातिक्रमभीत्या स लक्ष्मणोऽपि रघूत्तमम् ॥५१॥

वृत्तं निवेदयामास पुनस्तं राघवोऽब्रवीत् । निवारयित्वा वटुकान् विना शस्त्रैस्त्वरान्वितः ॥५२॥
आनय त्वं शुभा वल्लीर्मा शंकां च मुनेः कुरु । सोऽपि रामाज्ञया गत्वा निवार्य वटुकान् क्षणात् ॥५३॥
बलात्कारेण वा वल्लीर्गृहीत्वा राममागतः । भरतं जीवयामास विशल्यं कृत्य सानुजम् ॥५४॥
ततः समुत्थितं दृष्ट्वा कैकेयी भरतं मुदा । संतोषं परमं चक्रे कैकेयी पितरं तदा ॥५५॥
राघवं सा समालिंग्य भरतं परिषस्वजे । ततो राजाऽतिसंतुष्टः समालिंग्य रघूत्तमम् ॥५६॥

राजाओंने शस्त्रोंसे भरतको बींधकर मूर्छित कर दिया और वे रथसे गिर पड़े ॥ ३७–३९ ॥ भरतको पृथ्वीपर गिरा देखकर राजाओंने शरोंसे शत्रुघ्नको भी विद्ध किया । उनको भी गिराकर वे राजे लक्ष्मणकी ओर दौड़े ॥ ४० ॥ उनपर भी बाणोंकी वर्षा करके व्याकुल कर दिया । इसी प्रकार राघव रामको भी राजाओंने बाणोंसे आच्छादित कर दिया ॥ ४१ ॥ बादमें श्रीरामचन्द्रने समरके मैदानमें पालकियोंकी खिड़कियोंमें लगी हुई चिकोंमेंसे देखती हुई कौसल्या आदि माताओंके, सीताके तथा अपने भाइयोंकी स्त्रियोंके समक्ष राजाओं और मन्त्रियोंके सामने अपने बड़े भारी धनुषका टंकोर करके उसपर वायव्यास्त्र चढ़ाकर उससे उन राजाओंको सूखे पत्तोंकी तरह उड़ाकर समुद्रके किनारे फेंक दिया । बाकी लोगोंको रामने मोहनास्त्रसे मूर्छित कर दिया ॥ ४२–४४ ॥ हाथी, घोड़े, रथ तथा पैदलोंकी समस्त सेनाको जमीनमें लिटा दिया । रणमें भरतको मूर्छित देख कैकेयी हथिनीसे उतरी और उनको गोदमें लेकर विलाप करने लगी । तदनन्तर राजा दशरथ तथा उनकी स्त्रियें कौसल्या आदि भी विलाप करने लगीं ॥ ४५ ॥ ४६ ॥ तब रामने सबको आश्वासन देकर कहा—लक्ष्मण ! यहाँसे कुछ दूरपर एक तपोनिधि मुद्गलमुनिका आश्रम है । वहाँ जाकर तुम कल्याणकारिणी संजीवनी आदि बूटियोंको ले आओ ॥ ४७ ॥ ४८ ॥ मुनिके तपके प्रभावसे वहाँ अनेक प्रकारकी जड़ियें उगी हुई हैं । 'बहुत अच्छा' कहकर वीर लक्ष्मण रथपर चढ़कर शीघ्र मुनिके आश्रममें गये । वहाँके ब्रह्मचारियोंने उनको बूटिये लेनेसे रोका और कहा कि तुम मुनिके समाधिसे उठनेपर उनसे पूछकर ही बूटियें ले जा सकते हो—अन्यथा नहीं । समय बीत जानेके डरसे लक्ष्मणने आकर रामसे सब हाल कहा । रामने फिर कहा कि उन वटुकोंको अस्त्रके बिना हाथसे हटाकर शीघ्र ही उन शुभ जड़ियोंको ले आओ । मुनिसे मत डरो । रामकी आज्ञा पाकर वे वहाँ गये तथा बलप्रयोगके बिना ही बटुकोंको हटाकर उन जड़ियोंको लेकर रामके पास लौट आये । तब रामने भरतके शरीरसे बाण निकालकर उन्हें जड़ीसे जीवित किया । भरतको स्वस्थ देखकर कैकेयी बहुत प्रसन्न हुई । उसने रामका आलिङ्गन करके भरतको छातीसे लगा लिया । राजाने भी प्रसन्न

हर्षान्नानोत्सवांस्तत्र चकार गुरुणा द्विजैः । ततस्ते वटवः सर्वे हाहाकृत्य मुनीश्वरम् ॥५७॥
वृत्तं निवेदयामासुः समाधिविरमे मुनेः । स मुद्गलोऽपि तच्छ्रुत्वा विस्मयेनाब्रवीद्वटून् ॥५८॥
को लक्ष्मणः किमर्थं कस्याज्ञया सोऽहरद्द्रुमम् । विदित्वा सकलं वृत्तमागच्छध्वं त्वरान्विताः ॥५९॥
तथेति ते दशरथं गत्वा प्रोचुस्त्वरान्विताः । कस्त्वं किमर्थमानीता वल्ल्यो लक्ष्मणहस्ततः ॥६०॥
तान्दृष्ट्वा क्रोधसंयुक्तान् राजा चिन्तातुरोऽब्रवीत् । अहं दशरथो वल्ल्यो भरतार्थं ममाज्ञया ॥६१॥
आनीता मुनये सर्वे ब्रुवध्वं नतिपूर्वकाः । अहमप्यागमिष्यामि मुनिं सांत्वयितुं जवात् ॥६२॥
ततस्ते मुनये सर्वं नृपनामाद्यवर्णयन् । श्रुत्वा रामस्य पितरं क्रोधं संहृत्य वेगतः ॥६३॥
दर्शनार्थं मतिं चक्रे तावद्दृष्टो नृपः पुरः । बद्ध्वा करसंपुटं तं प्रणमंतं नृपोत्तमम् ॥६ ॥
प्रार्थयन्तं समुत्थाप्य पूजयामास सादरम् । रामाद्या नृपपुत्राश्च कौसल्याद्या नृपस्त्रियः ॥६५॥
प्रणम्याथ मुनिं स्तुत्वा तस्थुर्मुद्गलभार्यया । सुमत्या पूजिताः सर्वा राजदारा विशेषतः ॥६६॥
ततो दशरथः प्राह मुनिं स्तुत्वा पुनः पुनः । मयाऽपराधितं राज्ञा क्षम्यतां तत्त्वया मुने ॥६७॥
मुनिर्दशरथं प्राह ह्युपकारो महान् कृतः । नोचेत्कथं दर्शनं मे ध्यानस्थस्य सुतस्य ते ॥६८॥
श्रीरामस्य ससीतस्य नृवेषस्य हि मायया । इति तस्य वचः श्रुत्वा दृष्ट्वा तुष्टं मुनीश्वरम् ॥६९॥
उवाच नृपतिर्नत्वा किंचित्प्रष्टुमना मुनिम् । ज्ञात्वा नृपस्य स मुनिर्हृद्गतं प्रष्टुकामुकम् ॥७०॥
एकांते तुलसीखंडं नीत्वा तं नृपमेव सः । पप्रच्छ किं ते वांछाऽस्ति वदस्व कथ्यते मया ॥७१॥
तमब्रवीद्दशरथः श्रीरामस्य हि भावि यत् । हिताहितं सविस्तारं ज्ञातुमिच्छे मुनीश्वर ॥७२॥
नृपस्य वचनं श्रुत्वा राजानं मुनिरब्रवीत् ।

मुद्गल उवाच

साक्षान्नारायणो विष्णुः सर्वव्यापी जनार्दनः ॥ ७३ ॥

होकर रामका हृदयसे लगाया। उस समय उन्होंने आनन्दसे गुरु तथा ब्राह्मणों द्वारा अनेक उत्सव कराये। उधर समाधिसे निवृत्त होनेपर सब वटुकोंने हाहाकार करके मुनिको सब हाल सुनाया। तब मुद्गल मुनि विस्मित होकर वटुकोंसे कहने लगे—॥ ४९–५८ ॥ जाओ, वह लक्ष्मण कौन है, किस लिये और किसके कहनेसे बूटियाँ ले गया है। शीघ्र इस बातका पता लगाकर आओ ॥ ५९ ॥ 'अच्छा, कहकर उन्होंने दशरथके पास जाकर पूछा कि तुम कौन हो और तुमने लक्ष्मणके द्वारा जड़ियें क्यों मँगवायी हैं ? ॥ ६० ॥ उन्हें क्रुद्ध देखकर राजा चिन्तापूर्वक कहने लगे कि मैं राजा दशरथ हूँ। लक्ष्मण मेरे कहनेसे भरतके लिये जड़ियें ले आया है। मेरा नमस्कार कहकर मुनिसे यह सब वृत्तान्त कह दें । मैं भी मुनिको समझानेके लिये शीघ्र ही आ रहा हूँ ॥ ६१ ॥ ६२ ॥ लौटकर वटुकोंने मुनिको राजाका नाम आदि कह सुनाया। रामके पिताका नाम सुना तो मुनिने क्रोधको रोक तथा शीघ्र जाकर राजासे मिलनेका विचार किया ही था कि इतनेमें राजा दशरथ स्वयं आकर सामने खड़े हो गये और हाथ जोड़ प्रणाम करके प्रार्थना करने लगे। तब खड़े होकर मुनिने उनकी सादर पूजा की । राम आदि राजाके पुत्र तथा कौसल्या आदि राजाकी स्त्रियें भी मुनिको प्रणाम करके उनकी स्तुति करती हुई खड़ी हो गयीं। मुद्गल मुनिकी भार्या सुमतिने विशेषरूपसे राजाकी स्त्रियोंका सत्कार किया ॥ ६३–६६ ॥ राजाने वारम्वार स्तुति करके मुनिसे कहा–हे मुनि ! मुझसे जो अपराध हुआ है। उसको क्षमा करें ॥ ६७ ॥ मुनिने महाराज दशरथसे कहा कि नहीं, तुमने मेरा बड़ा भारी उपकार किया है । नहीं तो ध्यानयोग्य और मायासे मनुष्यका रूप धारण किये हुए सीताके सहित आपके पुत्र रामका दर्शन मुझे कैसे मिलता ? मुनिके वचन सुन तथा उन्हें प्रसन्न देखकर राजाने नमस्कार करके उनसे कुछ पूछना चाहा । इतनेमें मुनि राजाके हृदयकी बात जान गये और एक ओर तुलसीकी झाड़ीमें ले जाकर वे स्वयं राजासे कहने लगे—हे राजन् ! कहो, तुम्हारी क्या पूछनेकी इच्छा है, मैं उसका उत्तर दूँगा ॥ ६८–७१ ॥ राजाने कहा—हे मुनीश्वर ! रामका भविष्य कैसा है ? मैं उसका

भूभारहरणार्थाय तवापि वरदानतः । अवतीर्णोऽस्ति त्वत्तो हि तव पुण्यमहोदयात् ॥७४॥
अधर्मस्य विनाशं च वृद्धिं धर्मस्य सादरम् । निर्द्दलनं हि दुष्टानां सज्जनानां च पालनम् ॥७५॥
करिष्यति महानेष तव पुत्रो रघूत्तमः । दशवर्षसहस्राणि दशवर्षशतानि च ॥७६॥
करिष्यति महद्राज्यं गते त्वयि दिवं नृप । सप्तद्वीपपतिश्चायं भविष्यति नृपो महान् ॥७७॥
द्वौ तौ भविष्यतः पुत्रौ चतस्रश्च स्नुषास्तथा । चतुर्विंशतिपौत्राश्च पौत्र्यस्तु द्वादशैव हि ॥७८॥
असंख्याताः प्रपौत्राद्या भविष्यन्ति सुतस्य ते । कियद्दिनैरयं वृंदाशापं भोक्तुं हि दंडके ॥७९॥
गमिष्यति ततः पश्चान्महद्राज्यं करिष्यति । तत्तस्य वचनं श्रुत्वा नृपः प्राह मुनिं पुनः ॥८०॥

दशरथ उवाच

का वृंदा कस्य भार्या सा कथं शप्तो हरिस्तया । तत्सर्वं विस्तरेणैव कथयस्व मुनीश्वर ॥८१॥

मुद्गल उवाच

पुरा जलंधरेणासीद्युद्धं श्रीशंकरस्य च । वृंदापातिव्रतबलाद्रक्षितं विष्णुना तदा ॥८२॥
ज्ञात्वा तद्दर्शितपथा पार्वत्या धर्षणादिना । जालंधरपुरं गत्वा तद्दैत्यपुटभेदनम् ॥८३॥
पातिव्रत्यस्य भंगाय वृंदायाश्चाकरोन्मतिम् । अथ वृंदारका देवी स्वप्नमध्ये ददर्श ह ॥८४॥
भर्तारं महिषारूढं तैलाभ्यक्तं दिगंबरम् । दक्षिणाशागतं मुण्डं तमसाऽप्यावृतं तदा ॥८५॥
ततः प्रबुद्धासा बाला तं स्वप्नं स्वं विचिन्तती । कुत्रापि नालभच्छर्म गोपुराट्टालभूमिषु ॥८६॥
ततः सखीद्वययुता नगरोद्यानमागता । वनाद्वनांतरं याता ददर्शातीव भीषणौ ॥८७॥
राक्षसौ सिंहवक्त्रादौ दंष्ट्रानयनभीषणौ । तौ दृष्ट्वा विह्वलाऽतीव पलायनपरा तदा ॥८८॥
ददर्श तापसं शांतं सशिष्यं मौनमास्थितम् । ततस्तत्कंठमासज्य निजबाहुलतां भयात् ॥८९॥
मुने मां रक्ष शरणमागतामित्यभाषत । तत्तस्या वचनं श्रुत्वा ध्यानं मुक्त्वा स वै मुनिः ॥९०॥

हित-अहित जानना चाहता हूँ ॥ ७२ ॥ राजाकी बात सुनकर मुनि मुद्गल कहने लगे—साक्षात् नारायण तथा सर्वव्यापी जनार्दन विष्णुभगवान् पृथ्वीका भार उतारने तथा पूर्वजन्ममें आपको वरदान देनेके कारण आपके पुण्य-प्रतापसे स्वयं अवतरे हैं। ये अधर्मका नाश करके धर्मकी वृद्धि करेंगे। रामचन्द्रजी दुष्टोंका दलन करके सज्जनोंका पालन करेंगे। हे नृप ! आपके देवलोक चले जानेपर ये दस हजार दस सौ वर्ष तक राज्य करेंगे। ये सप्तद्वीपके अधिपति और महान् राजा होंगे ॥ ७३-७७ ॥ इनके दो पुत्र और चार पुत्रवधुएँ होंगी। चौबीस पोते और बारह पोतियें होंगी। आपके पुत्र रामके परपोते असंख्य होंगे। कुछ दिनोंके लिए ये दण्डकारण्यमें वृन्दासे प्राप्त शापको छुड़ाने जायँगे। उसके बाद विशाल राज्य करेंगे। यह सुनकर राजाने फिर मुनिसे कहा ॥ ७८-८० ॥ राजा दशरथ बोले - वृन्दा कौन थी तथा किसकी स्त्री थी ? उसने भगवान्को क्यों शाप दिया ? हे मुनीश्वर ! यह सब विस्तारपूर्वक कहें ॥ ८१ ॥ मुद्गल बोले—पूर्वकालमें जलंधर नामका एक दैत्य था। वृन्दा उसकी बड़ी पतिव्रता स्त्री थी। उसके पातिव्रतके बलसे वह शिवजीके साथ युद्ध करके भी नहीं हारा। तब भगवान विष्णु पार्वतीसे उसका कारण जानकर उनके कथनानुसार जालन्धरपुर गये। वहाँ दैत्यमिथुनका भेदन करके वृन्दाका पातिव्रत भङ्ग करनेके लिए उन्होंने उसके साथ भोग करनेका विचार किया। तभी वृन्दादेवीने स्वप्नमें अपने पतिको तेलसे नहाये, नंगे शरीर, भैंसेपर चढ़कर दक्षिण दिशाको जाते, सिर मुड़ाये तथा तमसे आच्छादित देखा। जब वह बाला जागी तो स्वप्नपर विचार करने लगी। गोपुर, छत तथा अँटारी आदिपर उसे कहीं चैन नहीं मिली ॥ ८२-८६ ॥ तब वह अपनी दो सखियोंको साथ लेकर नगरके बाहर बागमें मन बहलाने लगी। वहाँ एकसे दूसरे और दूसरेसे तीसरे बागमें वह जब फिरने लगी, तब उसको भयानक सिंहके समान गर्जन करनेवाले और भयंकर दाँत तथा नेत्रवाले दो राक्षस दिखाई दिये। उनको देख तथा विह्वल होकर वह इधर-उधर भागने लगी। उसे वहाँ सहसा शिष्योंसे युक्त एक मौनव्रतधारी शांत तपस्वी दिखायी दिये। तब वह अपनी दोनों भुजारूपिणी

उन्मील्य नयने वृंदां हृदि दृष्ट्वाऽब्रवीद्वचः । तिष्ठ त्वं बालिके ह्यत्र मा भयं कुरु सर्वथा ॥९१॥
इत्युक्त्वा पुरतो दृष्ट्वा राक्षसौ मुनिसत्तमः । निर्भर्त्सयंतौ हुंकारैः क्रोधेन महता वृतः ॥९२॥
तौ तद्धुंकारतस्त्रस्तौ पलायनपरौ तदा । तत्सामर्थ्यं मुनेर्दृष्ट्वा वृंदा सा विस्मयावृता ॥९३॥
प्रणम्य दंडवद्भूमौ मुनिं वचनमब्रवीत् ।

वृन्दोवाच

रक्षिताऽद्य त्वया घोराद्भयादस्मात्कृपानिधे ॥९४॥
किंचिद्विज्ञप्तुमिच्छामि कृपया तद्वदस्व माम् । जलंधरो हि मे भर्ता रुद्रं योद्धुं गतः प्रभो ॥९५॥
स तत्रास्ते कथं युद्धे तन्मे कथय सुव्रत । मुनिस्तद्वाक्यमाकर्ण्य कृपयोर्ध्वमवैक्षत ॥९६॥
तावत्कपी समायातौ तं प्रणम्याग्रतः स्थितौ । ततस्तद्भ्रूलतासंज्ञाप्रयुक्तौ गगनांतरात् ॥९७॥
गत्वा क्षणार्धादागत्य वानरावग्रतः स्थितौ । शिरःकबंधहस्तौ च दृष्ट्वाऽब्धितनयस्य सा ॥९८॥
पपात मूर्च्छिता भूमौ भर्तृव्यसनदुःखिता । कमंडलुजलैः सिक्ता मुनिनाऽऽश्वासिता तदा ॥९९॥
रुदित्वा सुचिरं वृंदा तं मुनिं वाक्यमब्रवीत् ।

वृन्दोवाच

कृपानिधे मुनिश्रेष्ठ जीवयैनं मुने प्रियम् ॥१००॥
त्वमेवास्य पुनः शक्तो जीवनाय मतो मम ।

मुनिरुवाच

नायं जीवयितुं शक्यो रुद्रेण निहतो युधि ॥१०१॥
तथापि त्वत्कृपाविष्टः पुनः संजीवयाम्यहम् । इत्युक्त्वांतर्दधे यावत्तावत्सागरनंदनः ॥१०२॥
वृंदामालिंग्य तद्वक्त्रं चुचुंब प्रीतमानसः । अथ वृंदाऽपि भर्तारं दृष्ट्वा हर्षितमानसा ॥१०३॥
रेमे तद्वनमध्यस्था तद्युक्ता बहुवासरम् । कदाचित्सुरतस्यांते दृष्ट्वा विष्णुं तमेव हि ॥१०४॥

लताएँ उनके गलेमें डालकर भयभीतभावसे कहने लगी—हे मुने ! आपकी शरणमें आयी हुई मुझ अबलाकी रक्षा करिए। उसके इस आर्त वचनको सुना तो ध्यान छोड़कर मुनिने उसे अपने हृदयसे लिपटी हुई पाया। तब वे उससे कहने लगे-बालिके ! तुम यहाँ निर्भय होकर रहो ॥ ८७-९१ ॥ उसे इस प्रकार समझाकर मुनिश्रेष्ठने डराते तथा हुंकार करते हुए उन दोनों राक्षसोंको अपने सामने देखा। तब क्रुद्ध होकर वे भी हुंकार करने लगे। उनके हुंकारसे त्रस्त होकर वे दोनों राक्षस भाग गये। मुनिके इस अद्भुत सामर्थ्यको देखा तो वृन्दा आश्चर्यचकित होकर भूमिपर दण्डवत् प्रणाम करके कहने लगी। वृन्दा बोली हे कृपानिधे ! मुझे आपने इस घोर संकटसे बचा लिया। अब मैं आपसे कुछ पूछना चाहती हूँ। सो कृपा करके कहिये। हे प्रभो ! मेरा पति जलंधर शिवजीसे युद्ध करने गया है। हे सुव्रत ! वह वहाँ किस दशामें है, यह मुझे बताइए। मुनिने उसकी बात सुनकर कृपापूर्वक ऊपरकी ओर देखा तो उपरसे दो बन्दर आये और मुनिको प्रणाम करके सामने खड़े हो गये। उनके हाथोंमें वृन्दाने अब्धितनय जलन्धरका कटा सिर, हाथ तथा धड़ देखा। यह देखनेके साथ ही वह पतिवियोगके दुःखसे दुःखित तथा मूर्छित होकर धरतीपर गिर पड़ी। तब मुनिने उसके मुँहपर कमण्डलुका जल छिड़का और सचेत करके शांत किया ॥ ९२-९९ ॥ बहुत समय तक रोनेके बाद वृन्दा कहने लगी—हे कृपानिधे ! हे मुनिश्रेष्ठ ! आप मेरे प्रिय पतिको जीवित कर दें ॥ १०० ॥ मेरी समझमें आप ही इसको जिलानेमें समर्थ हैं। मुनि बोले—युद्धमें शिवजीके द्वारा निहत जलन्धरको जीवित करना असम्भव है। फिर भी तुमपर दया करके मैं इसे जीवित करता हूँ। ऐसा कहकर वे अन्तर्धान हो गये। इतनेमें सागरनन्दन जलन्धर प्रकट हो गया और आनन्दसे वृन्दाका आलिङ्गन करके मुख चुम्बन करने लगा। वृन्दाने भी अपने पतिको देखा तो प्रसन्न होकर उस वनमें बहुत दिनतक उसके साथ रमण करती रही। एक दिन संभोगके अनन्तर उसी जलन्धरको विष्णु के रूप में

निर्भर्त्स्य क्रोधसंयुक्ता वृंदा वचनमब्रवीत् ।

वृन्दोवाच

तव ज्ञातं हरे शीलं परदाराभिगामिनः ॥१०५॥

त्वं ज्ञातोऽसि मया सम्यङ्मायी प्रत्यक्षतापसः । यौ त्वया मायया द्वौ तौ स्वकीयौ दर्शितौ मम ॥१०६ ।
तावेव राक्षसौ भूत्वा तव भार्यां विनेष्यतः । जयविजयनामानौ ज्ञातौ कृत्रिमरूपिणौ ॥१०७॥
त्वं चापि भार्यादुःखार्तो वने कपिसहायवान् । भव सर्वेश्वरोऽपि त्वं यत्ते शिष्यौ समागतौ ॥१०८॥
पुण्यशीलसुशीलौ तौ कपिरूपधरावुभौ । अतस्ते वानरैरस्तु संगतिर्दंडके वने ॥१०९॥
वटुरूपधरः शिष्यो यस्तार्क्ष्यश्चेति वेद्म्यहम् । इत्युक्त्वा सा तदा वृंदा प्रविवेश हुताशनम् ॥११०॥
ततो जालंधरो दैत्यो निहतो युधि शंभुना । तस्माद्राजन्निदानीं तौ कुम्भकर्णदशाननौ ॥१११॥
जातौ सागरमध्ये तौ लंकायामधुना स्थितौ । नीत्वा जनकजां बालां पंचवट्यास्तु मातृवत् ॥११२॥
पालयित्वाऽथ षण्मासान् रामबाणान्मरिष्यति । रामोऽपि बालिनं हत्वा सुग्रीवेण समन्वितः ॥११३॥
शिलाभिः सागरं बद्ध्वा सीतामादाय यास्यति । यात्रायज्ञविलासांश्च सप्तद्वीपप्ररक्षणम् ॥११४॥
करिष्यति दयितया बंधुभिश्च यथासुखम् । इदं गोप्यं त्वया राजन् कथनीयं न कुत्रचित् ॥११५॥

श्रीशिव उवाच

इत्युक्त्वा मुद्गलः सर्वं भावि रामस्य कौतुकात् । चरित्रं वर्णयामास यदा यद्यत्करिष्यति ॥११६॥
तत्सर्वं नृपतिः श्रुत्वा तुष्टः पप्रच्छ तं पुनः । पूर्वजन्मनि कश्चाहं किं मया सुकृतं कृतम् ॥११७॥
तत्सर्वं वद मां ब्रह्मन् यस्माज्जातो हरिः सुतः । मम साक्षाद्रामचंद्रो लक्ष्मीःसीता स्नुषाभूत्स्नुषा ॥११८॥

इति तस्य वचः श्रुत्वा नृपमाह पुनर्मुनिः ।

मुद्गल उवाच

आसीत्सह्याद्रिविषये करवीरपुरे पुरा ॥११९॥

ब्राह्मणो धर्मवित्कश्चिद्धर्मदत्त इति श्रुतः । विष्णुव्रतकरः सम्यग्विष्णुपूजारतः सदा ॥१२०॥

देखा तो क्रुद्ध होकर धिक्कारती हुई वृन्दा बोली–हे हरे ! तुम्हारे इस परस्त्रीगमनरूपी व्यवहारको धिक्कार है ॥ १०१ ॥ मैंने अब जाना कि तुम मायावी तथा बनावटी तपस्वी हो । तुमने अपने निजी दो दूतोंको वानर-रूपमें मुझे दिखलाया था, वे ही दोनों राक्षस होकर तुम्हारी स्त्रीका हरण करेंगे। वे दोनों कृत्रिमरूपधारी जयविजय तुम्हारे पार्षद थे ॥ १०२-१०७ ॥ सर्वेश्वर होनेपर भी तुम स्त्रीके वियोगसे दुःखी होकर वानरोंके साथ वनमें चक्कर लगाओगे। तुम्हारे वे दोनों पुण्यशील-सुशील शिष्य भी वानर बनेंगे । उनमेंसे तार्क्ष्य नामका शिष्य वटुरूप धारण करेगा । और भी बहुतसे वानर दंडकवनमें तुमको मिलेंगे। इतना कहकर वृन्दा अग्निमें प्रविष्ट हो गयी ॥ १०८-११० ॥ इस प्रकार वृन्दाका पातिव्रत खंडित होनेके बाद जलन्धर वास्तविकरूपमें शंभुके द्वारा मारा गया । हे महाराज दशरथ ! इस शापके कारण इस समय रावण-कुम्भकर्ण जन्म लेकर समुद्र-के बीच लंकामें निवास करते हैं । वे पंचवटीसे जनककी पुत्री सीताको ले जाकर छः मास तक माताकी तरह पालन करनेके पश्चात् रामके बाणोंसे मारे जायँगे । राम भी वालीको मारकर सुग्रीवके साथ पत्थरोंसे समुद्रको बाँध तथा उस पार जाकर सीताको ले आयेंगे। पश्चात् प्राणप्रिया सीता तथा बन्धुओंके साथ राम तीर्थयात्रा, यज्ञ तथा विलास करते हुए सप्तद्वीपोंकी रक्षा करेंगे। हे राजन् ! यह गोप्य बात किसीको न बतलाइएगा ॥ १११-११५ ॥ श्रीशिवजी बोले—हे पार्वती ! इस प्रकार मुद्गलने रामका समस्त भावी चरित्र बता दिया ॥ ११६ ॥ इन सब बातोंको सुन तथा प्रसन्न होकर राजा दशरथने फिर पूछा कि मैं कौन था और मैंने कौनसे सुकृत किये थे कि जिससे साक्षात् भगवान् रामरूपमें मेरे पुत्र बने तथा साक्षात् लक्ष्मी सीता होकर मेरी पुत्रवधू बनीं । हे ब्रह्मन् ! यह सब हाल मुझे कह सुनाइये ॥ ११७ ॥ ११८ ॥ यह सुनकर मुद्गल मुनि राजासे फिर कहने लगे । मुनि बोले–हे राजन् ! सह्याद्रिपर करवीरपुरमें परम धर्मज्ञ धर्मदत्त नामसे विख्यात एक ब्राह्मण

6957 डिल्ली रमण रेड्डी

द्वादशाक्षरविद्यायां जपनिष्ठोऽतिथिप्रियः । कदाचित्कार्तिके मासि हरिजागरणाय सः ॥१२१॥
रात्र्यां तुर्यावशेषायां जगाम हरिमंदिरम् । हरिपूजोपकरणान् प्रगृह्य व्रजता तदा ॥१२२॥
तेन दृष्टा समायाता राक्षसी भीमनिःस्वना । वक्रदंष्ट्रा ललज्जिह्वा निनग्ना रक्तलोचना ॥१२३॥
दिगंबरा शुष्कमांसा लंबोष्ठी घर्घरस्वना । तां दृष्ट्वा भयसंत्रस्तः कंपितात्रयवस्तदा ॥१२४॥
पूजोपकरणैः सर्वैः पयोभिश्चाहनद्बलात् । संस्मृत्य यद्धरेर्नाम तुलसीयुक्तवारिणा ॥१२५॥
सोऽहनद्वारिणा तस्मात्तत्पापं लयमागतम् । अथ संस्मृत्य सा पूर्वजन्मकर्मविपाकजम् ॥१२६॥

स्वां दशामब्रवीत्तीव्रं दंडवच्च प्रणम्य सा ।

कलहोवाच

पूर्वकर्मविपाकेन दशामेतां गताऽस्म्यहम् ॥१२७॥
तत्कथं तु पुनर्विप्र याम्यहं गतिमुत्तमाम् ।

मुद्गल उवाच

तां दृष्ट्वा प्रणतामार्तां वदमानां स्वकर्म च ॥१२८॥
अतीव विस्मितो विप्रस्तदा वचनमब्रवीत् ।

धर्मदत्त उवाच

केन कर्मविपाकेन त्वं दशामीदृशीं गता ॥१२९॥
कुतः प्राप्ता च किंशीला तत्सर्वं विस्तराद्वद ।

कलहोवाच

सौराष्ट्रनगरे ब्रह्मन् भिक्षुनामाऽभवद्द्विजः ॥१३०॥

तस्याहं गृहिणी ब्रह्मन् कलहाख्याऽतिनिष्ठुरा । न कदाचिन्मया भर्तुर्वचसाऽपि शुभं कृतम् ॥१३१॥
नार्पितं तस्य मिष्टान्नं भर्तुर्वचनभंगया । पाककाले मया नित्यं यद्यच्चान्नं मनोरमम् ॥१३२॥
तत्तत्पूर्वं स्वयं भुक्त्वा पश्चाद्भर्त्रे निवेदितम् । एकदा स पतिर्मित्रं मम वृत्तं न्यवेदयत् ॥१३३॥
नैव शृणोति मे पत्नी मद्वाक्यं किं करोम्यहम् । तेन श्रुत्वा तु सकलं क्षणं संचिन्त्य वै हृदि ॥१३४॥
उवाच मत्पतिं किंचिद्युक्तिं तां ते वदाम्यहम् । निषेधोक्त्या वदस्व त्वं गृहिणी सा करिष्यति ॥१३५॥

रहता था । वह विष्णुके व्रतोंको करनेवाला, भली भाँति विष्णुपूजामें रत, सदा बारह अक्षरके मन्त्र (ॐनमो भगवते वासुदेवाय) के जपमें निष्ठा रखनेवाला तथा अभ्यागतोंका प्रेमी था । एक बार वह कार्तिकमें रात्रिजागरण करके चौथे पहर पूजाकी सामग्री लेकर हरिमन्दिरमें जा रहा था कि रास्तेमें सहसा उसने एक भयानक घरघर शब्द करती हुई, टेढ़े दाँतोंवाली, जीभको हिलाती, नितान्त नग्न, लाल नेत्रोंवाली, जिसके शरीरका सब मांस सूख गया था—ऐसी लम्बे होठों और नग्न शरीरवाली एक राक्षसीको आते देखा । उसको देखकर ब्राह्मण भयसे काँप उठा । तव वह समस्त पूजाकी सामग्री तथा जल आदि फेंक-फेंककर उसको मारने लगा । वह नारायणका नाम लेता हुआ उसके ऊपर तुलसीपत्र तथा जल फेंकता जाता था । बस, इसीसे अनायास उस राक्षसीके सब पाप धुल गये और उसको पूर्वजन्मके कर्मोंका स्मरण हो आया ॥ ११६-१२६ ॥ तब वह ब्राह्मणको दंडवत् प्रणाम करके कहने लगी । कलहा बोली—हे विप्र ! मैं पूर्वजन्मके कर्मोंके फलस्वरूप इस दशाको प्राप्त हुई हूँ । हे ब्रह्मन् ! सौराष्ट्रनगरमें भिक्षुनामका एक ब्राह्मण रहता था । मैं उसकी कलहा नामकी बड़ी निष्ठुर स्त्री थी । मैंने कभी वचनसे भी पतिकी भलाई नहीं की ॥ १२७-१३१ ॥ रसोईमें कभी मैं मिष्ठान बनाती तो पतिसे झूठा बहाना करके तथा उसकी बात टालकर मिठाई नहीं देती थी । भोजनके समय प्रतिदिन जो जो अच्छी चीज बनाती, पहिले उसको मैं खा लेती थी तब पतिको देती थी । एक दिन मेरे पतिने जाकर अपने एक मित्रसे कहा कि मेरी स्त्री मेरी बात नहीं मानती । मैं क्या करूँ ? उसके

तत्र वाक्येन कार्यादि यत्किंचित्तव वांछितम् । तथेति मित्रवाक्येन गृहमेत्य पतिर्मम ॥१३६॥
मामाह दयिते मा त्वं भोजनार्थं समाह्वय । मम मित्रं महद्दुष्टं तच्छ्रुत्वा स्वपतेर्वचः ॥१३७॥
तदा भर्ता मयोक्तः स मित्रं ते साधुसम्मतम् । समाह्वयाम्यशनार्थमद्यैव ब्राह्मणोत्तमम् ॥१३८॥
ततो मया समाहूतः स्वयं गत्वा पतेः सखा । तदारभ्य निषेधोक्त्या कार्यमाज्ञापयत्पतिः ॥१३९॥
एकदा स पितुर्दृष्ट्वा क्षयाहः स्वपतिर्मम । मामाह दयिते श्राद्धं न करिष्याम्यहं पितुः ॥१४०॥
तद्वाक्यं स्वपतेः श्रुत्वा मया विप्रा निमंत्रिताः । मया धिक् धिक् कृतो भर्ता कथं श्राद्धं करोषि न १४१॥
पुत्रधर्मं न जानासि का गतिस्ते भविष्यति । ततः पुनः स मामाह पक्वान्नमद्य मा कुरु ॥१४२॥
द्विजं निमंत्रयस्वैकं मा विस्तारं कुरु प्रिये । तत्तस्य वचनं श्रुत्वा मयाऽष्टादश भूसुराः ॥१४३॥
निमंत्रितास्तु श्राद्धार्थं पक्वान्नानि कृतानि हि । ततः पुनः स मामाह प्रिये शृणु वचो मम ॥१४४॥
मया सहादौ त्वं मिष्टं पाकं भुक्त्वा ततः परम् । स्वीयोच्छिष्टं त्वद्य विप्रान् परिवेषणमाचर ॥१४५॥
तन्मया कथितं श्रुत्वा स पतिर्धिक्कृतः पुनः । कथमादौ स्वयं भुक्त्वा पश्चाद्विप्रान्समर्पयेत् ॥१४६॥
एवं सर्वं निषेधोक्त्या श्राद्धं चांगं चकार सः । पिंडदानादिकं कृत्वा मामाह स पतिः पुनः ॥१४७॥
अहश्चोपोषणं त्वद्य करिष्यामि न संशयः । तत्तस्य वचनं श्रुत्वा मिष्टान्नेन स भोजितः ॥१४८॥
ततो दैववशाद्भर्ता विस्मृत्य प्राह मां पुनः । नीत्वा पिंडान् क्षिपस्वाद्य सत्तीर्थे परमादरात् ॥१४९॥
ततो मया शौचकूपे नीत्वा पिंडा विसर्जिताः । ततः खिन्नमना विप्रो हाहेत्युक्त्वा स्थिरोऽभवत् १५०
क्षणं विचिंत्य मामाह पिंडान्मा त्वं बहिः कुरु । तदोत्तीर्य शौचकूपे मया पिंडा बहिः कृताः ॥१५१॥
ततः पुनः स मामाह पिंडान् तीर्थे क्षिपस्व मा । तदा तीर्थे मया क्षिप्तास्ते पिंडाः परमादरात् ॥१५२॥

मित्रने यह सुनकर मनमें विचार किया ॥ १३२-१३४ ॥ तदनन्तर उसने मेरे पतिसे जो कुछ कहा था, सो मैं कहती हूँ । उसने कहा—हे मित्र ! तुम अपनी स्त्रीसे उलटी बात कहा करो, तब वह तुम्हारे मना किये हुए कामको अवश्य करेगी और तुम्हारा अभीष्ट सिद्ध होगा । मित्रकी बात सुन तथा 'बहुत अच्छा' कहकर मेरा पति घरपर आया ॥ १३५ ॥ १३६ ॥ वह मुझसे कहने लगा-हे प्रिये ! मेरे मित्रको तुम कभी भोजनके लिये न बुलाया करो । वह बड़ा दुष्ट है । पतिके इस वचनको सुनकर मैंने कहा कि तुम्हारा मित्र ब्राह्मणोंमें श्रेष्ठ तथा बड़ा सज्जन है । उसको मैं आज ही भोजनके लिये बुलाती हूँ ॥ १३७ ॥ १३८ ॥ तब मैं स्वयं जाकर पतिके मित्रको बुला लायी । तबसे मेरा पति विपरीत कथनसे ही काम लेने लगा ॥ १३९ ॥ एक दिन मेरा पति अपने पिताकी मरणतिथि आनेपर कहने लगा—हे दयिते ! मैं आज अपने पिताका श्राद्ध नहीं करूँगा ॥ १४० ॥ यह सुनकर मैंने उसके कहनेके प्रतिकूल झटपट ब्राह्मणोंको निमंत्रण दे दिया और पतिसे कहा कि तुमको धिक्कार है, जो अपने पिताका श्राद्ध भी नहीं करते ॥ १४१ ॥ तुम पुत्रके धर्मको नहीं जानते । इसलिये न जाने तुम्हारी क्या गति होगी । तब उसने कहा कि यदि करना ही है तो केवल एक ब्राह्मणको निमंत्रण दे देना, अधिक बखेड़ा नहीं बढ़ाना । पकवान-मिठाई आदिमें व्यर्थ खर्च नहीं करना । यह सुनकर मैंने एक साथ अठारह ब्राह्मणोंको निमत्रण दे दिया । श्राद्धके लिए अनेक प्रकारके पकवान बनाये । फिर पतिने मुझसे कहा कि आज तुम पहले मेरे साथ मिष्ठान्न भोजन करके बादमें अपना जूठा भोजन ब्राह्मणोंको परोसना ॥ १४२-१४५ ॥ यह सुनकर मैंने पतिको धिक्कारा और कहा कि तुमको धिक्कार है। पहले स्वयं खाकर पश्चात् ब्राह्मणोंको भोजन करानेके लिये कहते हो ? ॥ १४६ ॥ इस प्रकार विपरीत कथनसे पतिने मेरे द्वारा विधिवत् श्राद्ध करवाया । पिण्डदान आदि करके फिर उन्होंने मुझसे कहा—॥ १४७ ॥ मैं आज कुछ भी न खाकर उपवास करूँगा । यह सुनकर मैंने उन्हें खूब मिष्ठान्न खिलाया ॥ १४८ ॥ बादमें दैववशात् भूलकर पतिने मुझसे कहा कि इन पिंडोंको ले जाकर प्रेमसे किसी पवित्र तीर्थके जलमें फेंक आओ ॥ १४९ ॥ यह सुनकर मैंने उन पिंडोंको ले जाकर पाखानेमें डाल दिया । यह देखा तो वह विप्र हाय-हाय करने लगा ॥ १५० ॥ क्षणभर सोचकर मुझसे कहा कि देखो, पाखानेसे पिंडोंको बाहर न निकालना । तब शौचकूपमें उतरकर मैंने उन पिंडोंको निकाल लिया

एवं मया कदा भर्तुर्वचनं न कृतं तदा। कलहप्रियया नित्यं मय्युद्विग्नमना यदा ॥१५३॥
परिणेतुं ततोऽन्यां वै मनश्चक्रे पतिर्मम। ततो गरं समादाय प्राणस्त्यक्तो मया द्विज ॥१५४॥
अथ बद्ध्वा वध्यमानां मां निन्युर्यमकिंकराः। यमश्च मां तदा दृष्ट्वा चित्रगुप्तमपृच्छत ॥१५५॥

यम उवाच

अनया किं कृतं कर्म फलं शुभमथाशुभम्। प्राप्नोत्येषा च तत्कर्म चित्रगुप्तावलोकय ॥१५६॥

कलहोवाच

चित्रगुप्तस्तदा वाक्यं भर्त्सयन्मामुवाच ह।

चित्रगुप्त उवाच

अनया तु शुभं कर्म कृतं किंचिन्न विद्यते ॥१५७॥

मिष्टान्नं भुज्यमानेयं न भर्तरि तदर्पितम्। अतश्च वगुलीयोन्यां स्वविष्ठादाऽत्र तिष्ठतु ॥१५८॥
पतिं द्वेष्टि सदा त्वेषा नित्यं कलहकारिणी। विष्ठादा शूकरीयोन्यां तस्मात्तिष्ठत्वियं यम ॥१५९॥
पाकभांडे सदा भुंक्ते गुप्तं चैका यतस्ततः। तस्माद्दोषाद्विडालाऽस्तु स्वजातापत्यभक्षिणी ॥१६०॥
भर्तारमपि चोद्दिश्य ह्यात्मघातः कृतोऽनया। तस्मात्प्रेतशरीरेऽपि तिष्ठत्वेकाऽतिनिंदिता ॥१६१॥
अतश्चैषा मरुदेशे प्रापितव्या हरेर्भटैः। तत्र प्रेतशरीरस्था चिरं तिष्ठत्वियं ततः ॥१६२॥
ऊर्ध्वं योनित्रयं चैषा भुनक्त्वशुभकारिणी।

कलहोवाच

ततो दूतैः प्रापिताऽहं मरुदेशं क्षणाद्द्विज ॥१६३॥

दत्त्वा प्रेतशरीरं मां गतास्ते स्वस्थलं प्रति। साऽहं पंचदशाब्दानि प्रेतदेहे स्थिता किल ॥१६४॥
क्षुत्तृड्भ्यां पीडिताऽत्यर्थंदुःखिता स्वेन कर्मणा। ततः क्षुत्पीडिता नित्यं शरीरं वणिजस्त्वहम् ॥१६५॥
प्रविश्य दक्षिणे प्राप्ता कृष्णावेण्यास्तु संगमे। तत्तीरं संश्रिता यावत्तावत्तस्य शरीरतः ॥१६६॥
शिवविष्णुगणैर्दूरमपाकृष्टा बलादहम्। ततः क्षुत्क्षामया दृष्टो भ्रमंत्या त्वं मया द्विज ॥१६७॥

॥ १५१ ॥ फिर पतिने कहा—देखो, कहीं इनको किसी तीर्थमें न डालना। तब मैंने ले जाकर उन पिंडोंको बड़े आदरपूर्वक तीर्थजलमें डाल दिया ॥ १५२ ॥ इस तरह मुझ कलहप्रियाने जब कभी भी पतिका सीधी तौरपर कहा हुआ काम नहीं किया, तब दुःखित होकर उसने अपना दूसरा ब्याह करना निश्चित किया। हे द्विज ! तब मैंने जहर खाकर अपने प्राण त्याग दिये ॥ १५३ ॥ १५४॥ तब यमदूत मुझे बाँधकर यमराजके पास ले गये। यमराज मुझे देखकर चित्रगुप्तसे कहने लगे ॥ १५५ ॥ यमराजने कहा—चित्रगुप्त ! देखो, इसने अच्छा कर्म किया है या बुरा, जिससे इसको वैसा ही फल दिया जाय ॥ १५६ ॥ कलहा कहने लगी—यह सुनकर चित्रगुप्त मुझे धमकाते हुए कहने लगे कि इसने तो कोई अच्छा कर्म कभी किया नहीं। यह मिष्ठान्न बनाकर खाती थी, परन्तु अपने पतिको नहीं देती थी। इसलिये यह वगुलीकी योनिमें जाकर अपनी ही विष्ठा खानेवाली पक्षिणी बने। प्रतिदिन झगड़ा तथा पतिसे द्वेष करनेके कारण यह विष्ठा भक्षण करनेवाली सूकरयोनिमें पैदा हो। हे यम ! इधर-उधर छिपकर भोजन बनानेके पात्रमें अकेली ही खानेवाली यह बिल्ली बने ॥१५७–१६०॥ पतिके उद्देश्यसे इसने आत्मघात किया है। इस कारण यह अतिनिन्दित प्रेतयोनिमे अकेली रहे ॥ १६१ ॥ हे यम ! इसको दूतोंके द्वारा मरुप्रदेशमें भेज देना चाहिये। वहाँ जा तथा प्रेत बनकर यह बहुत काल पर्यन्त निवास करे ॥ १६२ ॥ यह पापिनी उपर्युक्त सभी योनियोंको भोगे। कलहा बोली–हे द्विज ! तब यमदूतोंने क्षण ही भरमें मुझे मरुदेशमें पहुँचा दिया ॥ १६३ ॥ वहाँ प्रेतयोनिमें डालकर वे अपने स्थानको चले गये। मैं पन्द्रह वर्ष तक प्रेतयोनिमें रही ॥ १६४ ॥ अपने किये हुये कर्मोंके अनुसार मैं सदा भूख-प्याससे अत्यन्त दुःखिनी रहने लगी। इस प्रकार नित्य भूखसे पीडित हो एक बनियेकी देहमें पैठकर मै दक्षिणमें कृष्णा-वेणीके संगमपर आयी। वहाँ आनेपर शिव तथा विष्णुके गणोंने मुझे बरबस उस वणिक्के शरीरसे अलग करके दूर भगा दिया। तदनन्तर हे द्विज !

त्वद्धस्ततुलसीवारिसंस्पर्शाद्गतपातका । तत्कृपां कुरु विप्रेंद्र कथं मुक्ता भवाम्यहम् ॥१६८॥
योनित्रयादग्रभाव्यादस्माच्च प्रेतभावतः । मामुद्धर मुनिश्रेष्ठ त्वामहं शरणं गता ॥१६९॥
इत्थं निशम्य कलहावचनं द्विजश्च तत्पापकर्मभयविस्मयदुःखयुक्तः ।
तद्ग्लानिदर्शनकृपाचलचित्तवृत्तिर्ध्यात्वा चिरं सुवचनं निजगाद दुःखात् ॥१७०॥

इति श्रीशतकोटिरामचरितांतर्गते श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये सारकांडे
वृन्दाशापकलहाख्यानं नाम चतुर्थः सर्गः ॥ ४ ॥

पञ्चमः सर्गः

(धर्मदत्त द्वारा कलहाका उद्धार)

धर्मदत्त उवाच

विलयं यांति पापानि तीर्थदानव्रतादिभिः । प्रेतदेहे स्थितायास्ते तेषु नैवाधिकारिता ॥१॥
त्वद्ग्लानिदर्शनादस्मात् खिन्नं च मम मानसम् । नैव निर्वृतिमायाति त्वामनुद्धृत्य दुःखिताम् ॥२॥
पातकं च तवात्युग्रं योनित्रयविपाकजम् । नैवाल्पैः क्षीयते पुण्यैः प्रेतत्वं चातिगर्हितम् ॥३॥
तस्मादाजन्मजनितं यन्मया कार्तिकव्रतम् । तत्पुण्यस्यार्धभागेन सद्गतित्वमवाप्नुहि ॥४॥
कार्तिकव्रतपुण्येन न साम्यं यांति सर्वथा । यज्ञदानानि तीर्थानि व्रतान्यपि ततो ध्रुवम् ॥५॥

मुद्गल उवाच

इत्युक्त्वा धर्मदत्तोऽसौ यावत्तामभ्यषेचयत् । तुलसीमिश्रतोयेन श्रावयन् द्वादशाक्षरम् । ६ ।
तावत्प्रेतत्वनिर्मुक्ता ज्वलदग्निशिखोपमा । दिव्यरूपधरा जाता लावण्येन यथोर्वशी ॥७॥
ततः सा दंडवद्भूमौ प्रणनाम यदा द्विजम् । उवाच सा तदा वाक्यं हर्षगद्गदभाषिणी ॥८॥

कलहोवाच

त्वत्प्रसादाद्द्विजश्रेष्ठ विमुक्ता निरयादहम् । पापाब्धौ मज्जमानायास्त्वं नौभूतोऽसि मे ध्रुवम् ॥९॥

भूखों मरती एवं भ्रमण करती हुई मैंने यहाँ तुमको देखा ॥ १६५–१६७ ॥ यहाँ तुम्हारे हाथके जल तथा तुलसीसे मेरे सब पाप दूर हो गये हैं। इस कारण हे विप्रेन्द्र ! अब ऐसी कृपा करो कि जिससे भावी तीन योनियोंसे मेरी मुक्ति हो जाय। हे मुनिश्रेष्ठ ! मैं तुम्हारी शरणमें आयी हूँ। तुम मेरा इस प्रेतयोनिसे भी उद्धार करो। ब्राह्मणने कलहाके वृत्तान्तको सुना तो उसके पापकर्मसे भय विस्मय तथा दुःखसे इस और उसकी इस ग्लानिपूर्ण दशाको देखकर कृपासे चञ्चलचित्त हो और बहुत देरतक सोचकर दुःखसे इस प्रकार सुन्दर वचन कहना आरम्भ किया॥ १६८–१७० । इति श्रीशतकोटिरामचरितांतर्गते श्रीमदानन्द-रामायणे वाल्मीकीये 'ज्योत्स्ना' भाषाटीकायां सारकाण्डे वृन्दाशापकलहाख्यानं नाम चतुर्थः सर्गः॥ ४॥

धर्मदत्त बोले—तीर्थ, दान तथा व्रतके द्वारा पाप क्षीण होते हैं, परन्तु प्रेतशरीरमें रहनेसे तुम्हारा उनपर अधिकार नहीं है ॥ १ ॥ तुम्हारी इस दुर्दशाको देखकर मेरा मन बहुत दुखी हो रहा है। जबतक तुम्हारा इस दुःखसे उद्धार न होगा, तबतक मुझको शान्ति नहीं मिलेगी ॥ २ ॥ यह नीच प्रेतत्व और तीन योनियोंको भोगानेवाला तुम्हारा महान् पाप साधारण पुण्योंसे क्षीण न होगा ॥ ३ ॥ इस कारण जन्मसे लेकर अबतक किये हुए अपने कार्तिकव्रतके पुण्यका आधा भाग मैं तुमको देता हूँ। उससे तुम सद्गतिको प्राप्त होओगी ॥ ४ ॥ कार्तिकव्रतके पुण्यके समान यज्ञ-दान-तीर्थ आदि कोई भी नहीं हो सकता। यह बात निश्चित है ॥ ५ ॥ मुनि मुद्गल कहने लगे–हे राजन् ! इतना कहकर धर्मदत्तने ज्यों ही उसके ऊपर तुलसीदल तथा जल छिड़ककर द्वादश अक्षरोंका मंत्र सुनाया। त्यों ही प्रेतयोनिसे मुक्त होकर वह जलती हुई अग्निकी लपटके समान दिव्य रूप धारण करके उर्वशीके सदृश सुन्दर स्त्री बन गयी ॥ ६ ॥ ७ ॥ तब वह ब्राह्मणके चरणोंको दण्डवत् प्रणाम करके सहर्ष गद्गद वाणीसे कहने लगी ॥ ८ ॥ कलहा बोली—हे द्विजोंमें श्रेष्ठ द्विज ! आपकी कृपासे मैं नरकमें जानेसे बच गयी। पापसमुद्रमें डुबती हुई मुझ पापिनीको बचाकर आपने

मुद्गल उवाच

इत्थं सा वदती विप्रं ददर्शायांतमंबरात् । विमानं सुन्दरं युक्तं विष्णुरूपधरैर्गणैः ॥१०॥
अथ सा तद्विमानस्थैर्विमाने चाधिरोपिता । पुण्यशीलसुशीलाद्यैरप्सरोगणसेविता ॥११॥
तद्विमानं तदाऽपश्यद्धर्मदत्तः सविस्मयः । पपात दंडवद्भूमौ दृष्ट्वा तौ पुण्यरूपिणौ ॥१२॥
पुण्यशीलसुशीलौ च समुत्थाप्यानतं द्विजम् । समभ्यनन्दयन् वाणीं प्रोचतुर्धर्मसंयुताम् ॥१३॥

गणावूचतुः

साधु साधु द्विजश्रेष्ठ यस्त्वं विष्णुरतः सदा । दीनानुकंपी धर्मज्ञो विष्णुव्रतपरायणः ॥१४॥
आबालत्वात्त्वया ह्येतद्यत्कृतं कार्तिकव्रतम् । तव तस्यार्धदानेन पुण्यं द्वैगुण्यमागतम् ॥१५॥
त्वत्पुण्यस्यार्धभागेन यदस्याः पूर्वकर्मजम् । जन्मान्तरशतोद्भूतं पापं तद्विलयं गतम् ॥१६॥
स्नानैरेव गतं पापं यदस्याः पूर्वकर्मजम् । हरिजागरणाद्यैश्च विमानमिदमागतम् ॥ ७॥
वैकुण्ठं नीयते साधो नानाभोगयुता त्वियम् । दीपदानभवैः पुण्यैस्तैजसं रूपमाश्रिता ॥१८॥
तुलसीपूजनाद्यैश्च कार्तिकव्रतकैः शुभैः । विष्णुसान्निध्यगा जाता त्वया दत्तैः कृपानिधे ॥१९॥
त्वमप्यस्य भवस्यान्ते भार्यया सह यास्यसि । वैकुंठभुवनं विष्णोः सान्निध्यं च सरूपताम् ॥२०॥
ते धन्याः कृतपुण्यास्ते तेषां च सफलो भवः । यैर्भक्त्याऽऽराधितो विष्णुर्धर्मदत्त त्वया यथा ॥२१॥
सम्यगाराधितो विष्णुः किं न यच्छति देहिनाम् । औत्तानपादिर्येनैव ध्रुवत्वे स्थापितः पुरा ॥२२॥
यन्नामस्मरणादेव देहिनो यांति सद्गतिम् । ग्राहगृहीतो नागेन्द्रो यन्नामस्मरणात्पुरा ॥२३॥
विमुक्तः संनिधिं प्राप्तो जातोऽयं जयसंज्ञकः । ग्राहोऽयं विजयो नाम्ना श्रीविष्णोश्चिंतनादभूत् ।
यतस्त्वयाऽर्चितो विष्णुस्तत्सान्निध्यं प्रयास्यसि । बहून्यष्टसहस्राणि भार्याद्वययुतस्य ते ॥२५॥

नावका काम किया है ॥ ९ ॥ मुद्गल मुनि कहने लगे कि इस बातको कहते ही कहते उसने देखा कि आकाशमार्गसे विष्णुरूपधारी गणोंसे युक्त एक सुन्दर विमान उतर रहा है ॥ १० ॥ बादमें विमानमें बैठे हुए पुण्यशील तथा सुशील आदिने कलहाको विमानमें बैठा लिया और अप्सरायें उसकी सेवा करने लगीं ॥ ११ ॥ धर्मदत्तको वह विमान देखकर बड़ा आश्चर्य हुआ और उसने पुण्यात्मा तथा पुण्यशील सुशीलको देखकर उनके चरणोंमें दण्डवत् प्रणाम किया ॥ १२ ॥ उन दोनोंने भी उस विनम्र द्विजको खड़ा देख तथा अभिनन्दन करके धर्मयुक्त वाणीमें कहा ॥ १३ ॥ दोनों गण कहने लगे—हे द्विजश्रेष्ठ ! वाह-वाह, तुम धन्य हो । तुम दीनोंपर दया करते हो, धर्मको जानते हो और सदा विष्णुभक्तिमें रत रहते हुए विष्णुके व्रतमें तत्पर रहते हो ॥ १४ ॥ तुमने जो बचपनसे ही कार्तिकमासका व्रत करके आज उस पुण्यका आधा भाग दान दिया है, इससे तुम्हारा पुण्य दुगुना हो गया है ॥ १५ ॥ तुम्हारे आधे पुण्यसे इसके सैकड़ों जन्मके पापकर्मोंका नाश हो गया ॥ १६ ॥ तुम्हारे कराये हुए तुलसीदलयुक्त जलके स्नानसे ही इसके पूर्वमें किये हुए सब पाप दूर हो गये थे । अब विष्णु-जागरणके पुण्यसे इसके लिए यह विमान आया है ॥ १७ ॥ हे साधो ! तुम्हारे दीपदानके पुण्यसे इस तेजस्वी रूप धारण करनेवालीको हम विविध सुख भोगनेके लिए वैकुण्ठ ले जा रहे हैं ॥ १८ ॥ हे कृपानिधे ! तुम्हारे दिये हुए तुलसीपूजन तथा कार्तिकव्रतके पुण्यसे यह विष्णुभगवान्के सांनिध्यको प्राप्त हुई है ॥ १९ ॥ तुम भी इस जन्मके अन्तमें स्त्रीसहित वैकुण्ठमें जाकर विष्णुके सांनिध्य तथा सरूपताको प्राप्त होओगे ॥ २० ॥ हे धर्मदत्त ! वे लोग धन्य हैं और बड़े धर्मात्मा तथा सफल जन्मवाले हैं, जिन्होंने कि तुम्हारी तरह विष्णुकी आराधना की है ॥ २१ ॥ भली भाँति पूजित विष्णुभगवान् मनुष्यको क्या नहीं देते ? जिन्होंने पूर्वसमयमें राजा उत्तानपादके पुत्रको ध्रुवपदपर स्थापित किया ॥ २२ ॥ जिनके नामस्मरणमात्रसे ही मनुष्य सद्गतिको प्राप्त हो जाता है । प्राचीन समयमें मगरसे पकड़ा गया गजेन्द्र जिनके नामका स्मरण करनेसे मुक्त होकर विष्णुके सांनिध्यको प्राप्त हुआ और जय नामका द्वारपाल बना । ग्राह भी विष्णुका चिन्तन करके विजय नामका द्वारपाल बना था ॥ २३ ॥ २४ ॥ इसी प्रकार तुमने भी विष्णुभगवान्का पूजन किया है।

ततः पुण्ये क्षयं प्राप्ते यदा यास्यसि भूतलम् । सूर्यवंशोद्भवो राजा विख्यातस्त्वं भविष्यसि ॥२६॥
नाम्ना दशरथस्तत्र भार्याद्वययुतः पुमान् । तृतीयेयं तदा भार्या पुण्यस्यैवार्धभागिनी ॥२७॥
कलहा कैकेयी नाम्नी भविष्यति न संशयः । तत्रापि तव सान्निध्यं विष्णुर्दास्यति भूतले ॥२८॥
आत्मानं तव पुत्रत्वं प्रकल्प्यामरकार्यकृत् । रामनाम्ना रावणादीन् हत्वा राज्यं करिष्यति ॥२९॥
तवाजन्मव्रतादस्माद्विष्णुसंतुष्टिकारणात् । न यज्ञा न च दानानि न तीर्थान्यधिकानि वै ॥३०॥
अतस्त्वग्रेऽपि धर्मज्ञ नित्यं विष्णुव्रते स्थितः । त्यक्तमात्सर्यदंभोऽपि भव त्वं समदर्शनः ॥३१॥
कार्तिके माधवे माघे चैत्रे मासचतुष्टये । प्रत्यब्दं त्वं धर्मदत्त प्रातःस्नायी सदा भव ॥३२॥
एकादशीव्रते तिष्ठ तुलसीवनपालकः । ब्राह्मणानपि गाश्चापि वैष्णवांश्च सदा भज ॥३३॥
मसूरिकाश्चारनालं वृन्ताकादीनि खाद मा । एवं त्वमपि देहांते तद्विष्णोः परमं पदम् ॥३४॥
प्राप्नोषि धर्मदत्त त्वं तद्भक्त्यैव यथा वयम् । पुण्यशीलसुशीलाख्यौ जयश्च विजयस्तथा ॥३५॥

धन्योऽसि विप्राग्र्य यतस्त्वयैतद्व्रतं कृतं तुष्टिकरं जगद्गुरोः ।
यदर्धभागात्सफलान्मुरारेः प्रणीयतेऽस्माभिरियं सलोकताम् ॥३६॥

मुद्गल उवाच

इत्थं तौ धर्मदत्तं तमुपदिश्य विमानगौ । तया कलहया सार्द्धं वैकुण्ठभुवनं गतौ ॥३७॥
धर्मदत्तोऽप्यसौ राजन् प्रत्यब्दं तद्व्रते स्थितः । देहांते परमं स्थानं भार्याभ्यामन्वितोऽभ्यगात् ॥३८॥
बहून्यब्दसहस्राणि स्थित्वा वैकुण्ठसद्मनि । ततः पुण्यक्षये जाते जातोऽसि त्वं नृपो महान् ॥३९॥
त्रिभिः स्त्रीभिर्दशरथ ते विष्णुः पुत्रतां गतः । रामोऽयं लक्ष्मणः शेषो भरतोऽब्जोऽरिशत्रुहा ॥४०॥
एवं सर्वं मयाऽऽख्यातं यथा पृष्टं त्वया मम । धन्यस्त्वं यस्य तनयः साक्षान्नारायणोऽभवत् ॥४१॥

इसलिए तुम भी दोनों स्त्रियोंके साथ कई हजार वर्ष पर्यन्त उनके सांनिध्यको प्राप्त होओगे ॥ २५ ॥ तत्पश्चात् पुण्य क्षीण होनेपर जब तुम पुनः पृथ्वीपर आओगे, तब सूर्यवंशमें बड़े प्रख्यात राजा बनोगे ॥ २६ ॥ दोनों स्त्रियाँ तुम्हारे साथ रहेंगी और तुम श्रीमान् दशरथ नामके राजा बनोगे । उस समय यह आधे पुण्यकी भागिनी कलहा निःसन्देह कैकेयी नामकी तुम्हारी तीसरी स्त्री होगी । वहाँ पृथ्वीपर भी भगवान् सदा तुम्हारे सन्निकट रहेंगे ॥ २७ ॥ २८ ॥ वे प्रभु देवताओंका कार्य साधन करनेके लिए अपने आपको तुम्हारा पुत्र बनाएँगे तथा रामनाम धारण करके रावण आदिको मारकर राज्य करेंगे ॥ २९ ॥ विष्णुको प्रसन्न करनेवाले तुम्हारे जन्मसे लेकर किये हुए इस व्रतसे बढ़कर कोई यज्ञ, दान तथा तीर्थ आदि नहीं हैं ॥ ३० ॥ इस कारण आगे भी तुम धर्मज्ञ, नित्य विष्णुके व्रतमें स्थित और मात्सर्य-दम्भ आदिसे रहित होकर समदर्शी बनो ॥ ३१ ॥ हे धर्मदत्त ! प्रतिवर्ष कार्तिक, वैशाख, चैत तथा माघ इन चारों महीनोंमें प्रातःकाल स्नान करके तुम एकादशीका व्रत और तुलसीका पूजन करो । ब्राह्मण, गौ तथा विष्णुभक्तोंकी सेवामें तत्पर रहा करो ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ मसूर, सौवीर तथा बैंगन आदिका खाना छोड़ दो । हे धर्मदत्त ! ऐसा करनेसे तुम भी जय-विजय तथा पुण्यशील-सुशील आदि हम लोगोंकी तरह विष्णुके उस परम पदको उनकी भक्तिमात्रसे ही प्राप्त होजाओगे ॥ ३४ ॥ ३५ ॥ हे ब्राह्मणश्रेष्ठ ! तुम धन्य हो, क्योंकि तुमने जगद्गुरु विष्णुको सन्तुष्ट करनेवाला यह व्रत किया है, जिसके अमोघ पुण्यभागके प्रभावसे हमलोग श्री मुरारि भगवान्की सलोकताको (समानलोकको) प्राप्त हुए हैं ॥ ३६ ॥ मुद्गल बोले—इस प्रकार वे दोनों धर्मदत्तको उपदेश दे तथा विमानमें बैठकर कहलाके साथ वैकुण्ठधामको चले गये ॥ ३७ ॥ हे राजन् ! वह धर्मदत्त भी प्रतिवर्ष उस व्रतको करके देहान्त होनेके बाद दोनों स्त्रियोंके साथ परमपदको प्राप्त हुआ ॥ ३८ ॥ बहुत वर्षों पर्यन्त वैकुंण्ठ-धाममें रहकर पुण्यक्षय होनेके बाद यहाँ आकर वही तुम इतने बड़े राजा बने हो ॥ ३९ ॥ तुम अपनी तीनों स्त्रियोंके साथ यहाँ आये । विष्णुभगवन् तुम्हारे पुत्र राम बने, शेष लक्ष्मण बने, ब्रह्मा भरत बने तथा चक्र शत्रुघ्न बना ॥ ४० ॥ जो तुमने पूछा था, वह सब मैंने तुमको कह सुनाया । तुम धन्य हो । क्योंकि साक्षात् नारायण तुम्हारे पुत्र हुए हैं ॥ ४१ ॥ श्रीशिवजी

इत्युक्त्वा नृपतिं पूज्य विससर्ज मुनिस्तदा । आलिंग्य रामं सौमित्रिं मेने च कृतकृत्यताम् ॥४२॥
तदा राजा स्वसैन्येन महाहर्षसमन्वितः । अयोध्यामगमद्रम्यां गोपुराट्टालमंडिताम् ॥४३॥
नृपमागतमाज्ञाय मंत्रिणः पुरवासिनः । पताकातोरणाद्यैश्च दिव्यचंदनसेचनैः ॥४४॥
नगरीं भूषयित्वा ते नृत्यवाद्यादिमंगलैः । निन्युः कुटुम्बसहितं राजानं नगरीं प्रति ॥४५॥
राममागतमाज्ञाय गोपुराट्टालपंक्तिषु । कट्यां निधाय बालांश्च स्त्रियः स्थित्वा निजैः करैः ॥४६॥
सुवर्णकुसुमाद्यैश्च ववर्षुः पुष्पवृष्टिभिः । काश्चिन्मार्गोपरि स्थित्वा कुंभदीपादिमंगलैः ॥४७॥
आर्तिक्याद्यैश्च राजानं सरामं शांतिकारकैः । पूजयंति स्म ताः सर्वा राजमार्गे पृथक् पृथक ॥४८॥
एवं नानासमुत्साहैर्नर्तनैर्वारयोषिताम् । दुंदुभीनां निनादैश्च गायकानां च गायनैः ॥४९॥
सौधोद्भवगवाक्षैश्च स्त्रीमुक्तपुष्पवृष्टिभिः । ययौ स्वशिविरं राजा वीज्यमानः सुचामरैः ॥५०॥
ततस्तान् जनकामात्यान् वस्त्रालंकारवाहनैः । सत्कृत्य भोजनाद्यैश्च प्रेषयामास मैथिलम् ॥५१॥
एवं सर्वेषूत्सवेषु जनको वार्षिकेषु सः । निनाय मिथिलां राममातृभिः पार्थिवेन च ॥५२॥
उत्तरोत्तरतः पूज्य तोषयामास राघवम् । रामोऽपि रमयामास लीलाभिर्नृपतिं तदा ॥५३॥
मासैः षडभिर्जनकजा लघ्वी श्रीराघवाच्छुभा । लग्नात्त्वेकादशे वर्षे रजोयुक्ता बभूव ह ॥५४॥
तद्वार्तां जनकः श्रुत्वा पत्नीभिर्मन्त्रिभिः सह । अयोध्यामगमच्छीघ्रं राजा प्रत्युज्जगाम तम् ॥५५॥
परस्परं समालिंग्य साकेतमिथिलाधिपौ । नृत्यवाद्यसमुत्साहैरयोध्यां विविशुः सुखम् ॥५६॥
ततो महासमुत्साहैर्नानामंडपतोरणैः । कदलीस्तंभमालाभिरिक्षुदंडैः सुचामरैः ॥५७॥
चतुर्द्वारमण्डपैश्च घंटाघोषैः सदर्पणैः । किंकिणीजालघोषैश्च वितानैर्दीपराजिभिः ॥५८॥

बोले कि ऐसा कहकर मुनिने राजाकी पूजा की और उन्हें विदा किया। राम-लक्ष्मणका आलिङ्गन करके उन्होंने अपनेको कृतकृत्य समझा ॥ ४२ ॥ तब राजा दशरथ अत्यन्त हर्षित अपनी सेनाके साथ पुरद्वार तथा अटारियोंसे सुशोभित रमणीक अयोध्यापुरीको गये ॥ ४३ ॥ राजाका आगमन सुनकर मन्त्रियों तथा पुरवासियोंने पताकाओं तथा तोरणोंसे नगरीको सजा तथा सड़कोंपर चन्दन छिड़कवाकर नृत्य और मांगलिक बाजे-गाजेके साथ सकुटुम्ब राजाको नगरमें ले आये ॥ ४४ ॥ ४५ ॥ रामको आया जानकर स्त्रियें अपने बालकोंको कमरपर उठाकर पुरद्वार तथा अटारियोंकी पंक्तियोंपर जाकर खड़ी हो गयीं और अपने हाथसे उनपर सुवर्ण-कुसुमोंकी वृष्टि करने लगीं। कुछ स्त्रियाँ पानीसे भरा मांगलिक कलश और कुछ मांगलिक दीप लेकर रास्तेमें सामने खड़ी हो गयीं और कुछ राजमार्गमें जगह-जगह शान्तिकारी आरती आदिसे रामके सहित राजाकी पूजा करने लगीं ॥ ४६–४८ ॥ इस प्रकार अनेक उत्सवोंसे युक्त वेश्याओंके नृत्य तथा नगाड़ोंके शब्दों एवं गायकोंके गानोंके साथ महलोंके झरोखोंसे स्त्रियों द्वारा की गयी पुष्पवृष्टिसे आच्छादित तथा सुन्दर चमरोंसे वीज्यमान होते हुए राजा दशरथ अपने शिविरमें गये ॥ ४९ ॥ ५० ॥ तदनन्तर वस्त्र, अलङ्कार, अश्व-गजादि वाहन तथा भोजन आदिसे राजा जनकके मन्त्रियोंका सत्कार करके उन्हें मिथिला भेज दिया ॥ ५१ ॥ इस प्रकार राजा जनक प्रत्येक वार्षिक उत्सवमें रामको उनकी माताओं तथा राजा दशरथको मिथिलापुरीमें बुलाते थे ॥ ५२ ॥ राजा जनक रामको सदा संतुष्ट रखनेकी चेष्टा करते थे। राम भी अनेक लीलाओं द्वारा राजाको आनन्दित करते थे। सुन्दरी तथा शुभा जानकी रामसे छः महीना छोटी थीं। विवाहके ग्यारहवें वर्षमें वे रजस्वला हुई ॥ ५३ ॥ ५४ ॥ यह समाचार सुनकर राजा जनक अपनी स्त्रियों तथा मन्त्रियोंके साथ अयोध्या गये। राजा दशरथने भी उनकी अगवानी की ॥ ५५ ॥ अयोध्यापति तथा मिथिलाधिपति दोनों परस्पर जी भरकर गले मिले। तदनन्तर नृत्य-वाद्य आदि उत्सवपूर्वक सुखसे अयोध्यामें प्रविष्ट हुए ॥ ५६ ॥ पश्चात् विविध मण्डपों, तोरणों, केलेके स्तम्भों, पुष्पोंकी मालाओं, ईखके दण्डों, चामरों, चार दरवाजेवाले मण्डपों, घण्टा-घड़ियालके शब्दों, छोटी-छोटी घण्टियोंके समुदायके शब्दों, शीशों, चँदोवों तथा दीपपंक्तियों द्वारा

वसिष्ठो मुनिभिः सार्द्धं गर्भाधानविधिं शुभम् । कारयामास रामेण सीतायाश्चातिहर्षितः ॥५९॥
तदा वस्त्ररलंकारैर्जनको नृपतिं मुदा । पूजयामास सस्त्रीकं स्नुषापुत्रसमन्वितम् ॥६०॥
मासमेकमतिक्रम्य ययौ स्वनगरीं सुखम् । रामोऽपि सीतया सार्द्धं नानाभोगान्सुपुष्कलान् ॥६१॥
बुभुजे हेमरत्नादिनिर्मितेषु गृहेषु सः । रुक्ममंडनयुक्ताभिर्दासीभिर्वीजितः सुखम् ॥६२॥
एवं तासां नृपसुतपत्नीनां च पृथक् पृथक् । यथाकाले निधानेषु गर्भाधानादिकेषु च ॥६३॥
आगत्य जनकश्चक्रे नानोत्साहान्मुदान्वितः । अयोध्यानगरीमध्ये वाद्यघोषो गृहे गृहे ॥६४॥
मंगलानि च सर्वत्र न कुत्राप्यस्त्यमंगलम् । न दरिद्री ऋणी नासीन्नाधिव्याधिप्रपीडितः ॥६५॥
रामादिभिश्चतुर्भिस्तैर्वधुभिस्तदनंतरम् । पृथग्गेहेषु भार्याभिर्गार्हस्थ्यमभ्यनुष्ठितम् ॥६६॥
रामः प्रातः समुत्थाय कृतशौचादिसत्क्रियः । आरुह्य शिबिकां दिव्यां स्नानार्थं सरयूं नदीम् ॥६७॥
गत्वा कूले वाहनादि विसृज्य रघुनंदनः । गच्छंस्तस्याः पावनार्थं सरय्वाः पुलिने मुदा ॥६८॥
मंत्रिभिर्वेष्टितो गत्वा नत्वा तां सरयूनदीम् । स्नात्वा नित्यविधिं कृत्वा ब्राह्मणैः परिवारितः ॥६९॥
दत्त्वा दानान्यनेकानि गोभूधान्यरसादिभिः । संपूज्य सरयूं पुण्यां ब्राह्मणान् पूज्य सादरम् ॥७०॥
ययौ रथं समारुह्य रुक्मबन्धनबंधितम् । रुक्मतंतुरज्जुभिश्च सर्वतः परिवेष्टितम् ॥७१॥
पट्टकूलादिवसनैर्वरै राच्छादितं शुभम् । वाजिवाहं सारथिना सुस्नातेन प्रचोदितम् ॥७२॥
किंकिणीवरमालाभिर्घंटाभिरतिगर्जितम् । रुक्मदंडधरैर्दूतैरग्रे दर्शितसत्पथम् ॥७३॥
पथि नीराजितः स्त्रीभिर्वर्षितः पुष्पवृष्टिभिः । प्राप स्वीयं गृहं रामः सूर्यकोटिसमप्रभम् ॥७४॥
अवरुह्य रथाद्रामः पादयोर्धृत्य पादुके । विवेश सीतासंदत्तपादार्घ्याचमनो गृहम् ॥७५॥
गत्वाऽग्निहोत्रशालायां सीतयाऽऽसनसंस्थितः । अग्निहोत्रादिविधिना वह्निं हुत्वा ततः परम् ॥७६॥

महान् उत्सवके साथ गुरु वसिष्ठने मुनियोंको साथ लेकर रामका सीताके साथ आनन्दपूर्वक शुभ गर्भाधान-संस्कार किया ॥ ५७–५९ ॥ तदनन्तर राजा जनकने स्त्रियों, पुत्रों तथा पुत्रवधुओं सहित राजा दशरथकी वस्त्र-अलङ्कार आदिसे प्रसन्नतापूर्वक पूजा की ॥ ६० ॥ इस प्रकार एक मास अयोध्यामें रहकर आनन्दसे वे अपने नगरको लौट गये। राम भी सीताके साथ सुवर्ण-रत्नों आदिसे निर्मित भवनोंमें अनेक प्रकारके भोगोंको भोगने लगे। उस समय सोनेके गहनोंसे सुशोभित दासियें पंखा झलती थीं ॥ ६१ ॥ ६२ ॥ इसी प्रकार प्रत्येक राजपुत्रको स्त्रीके गर्भाधानसंस्कारमें आकर राजा जनकने विविध उत्सव किये और अयोध्या नगरीमें घर-घर बाजे बजे ॥ ६३ ॥ ६४ ॥ सारी अयोध्या मङ्गलमयी हो गयी। कहीं भी अमङ्गलका नाम न था। उस नगरीमें कोई दरिद्र, ऋणी, मानसिक तथा शारीरिक दुःखसे पीड़ित नहीं था ॥ ६५ ॥ पश्चात् राम आदि चारों भाई अपनी-अपनी स्त्रियोंके साथ अलग-अलग महलोंमें गृहस्थधर्मका पालन करने लगे ॥ ६६ ॥ राम प्रतिदिन प्रातः उठते तथा शौचादि कृत्यसे निवृत्त हो दिव्य पालकीपर सवार होकर स्नान करनेके लिए सरयू नदीपर जाते थे। सवारी आदिको किनारे छोड़ आनन्दसे सरयूको पवित्र करनेके लिये वालुकापर होते हुए वहाँ जाते थे ॥ ६७ ॥ ६८ ॥ मन्त्रियोंके सहित जाकर वे सरयू नदीको नमस्कार करके स्नान तथा नित्यकर्म करते और ब्राह्मणोंको गौ, भूमि, धान्य तथा सुवर्ण आदिका दान देकर पवित्र सरयू और ब्राह्मणोंकी सादर पूजा करते थे ॥ ६९ ॥ ७० ॥ तदनन्तर सोनेके बंधनोंसे बँधे हुए सुवर्णके तारकी रस्सियोंसे युक्त रेशम तथा मखमलके उत्तम वस्त्र द्वारा चारों ओरसे आच्छादित एवं सुन्दर सारथीसे प्रेरित अश्वोंवाले रथपर सवार होकर लौटते थे ॥ ७१ ॥ ७२ ॥ घुँघरूकी मालाओं तथा घण्टियोंके शब्दसे गर्जित उस रथके आगे सोनेकी छड़ियोंवाले छड़ीदार दौड़कर मार्ग दिखलाते चलते थे ॥ ७३ ॥ रास्तेमें स्त्रियों द्वारा पूजित तथा पुष्पवृष्टिसे आच्छादित राम करोडों सूर्योंके समान प्रभासम्पन्न अपने महलमें पधारते ॥७४॥ वहाँ रथसे उतरकर रामचन्द्र-जी खड़ाऊँ पहिनकर घरमें जाते। वहाँ सीताजी स्वयं उन्हें पाँव तथा हाथ-मुँह धोनेका जल देती थीं ॥ ७५ ॥ पश्चात् सीता समेत राम अग्निहोत्रशालामें जा तथा आसनपर बैठकर अग्निहोत्रकी विधिसे अग्निमें हवन

स्फटिकस्य च लिंगस्य कर्ममार्गं यथाविधि । लोकानां शिक्षणार्थाय कृत्वा पूजनमुत्तमम् ॥७७॥
जानक्या दत्तपक्वान्ननैवेद्यादि समर्प्य च । ब्राह्मणान्पूज्य दानाद्यैस्तोष्य लब्ध्वा तदाशिषः ॥७८॥
तुलसीं च गुरुं धेनुमश्वत्थं मुनिपादपम् । पूजयित्वा रविं देवं ब्रह्मयज्ञं विधाय च ॥७९॥
गुरोर्मुखाच्च पौराणीं कथां श्रुत्वा तु सीतया । गुरुं पुनः प्रपूज्याथ बन्धुभिः परिवेष्टितः ॥८०॥
प्रार्थितश्च मुहुः पत्न्या ब्राह्मणैः परिवारितः । नारिकेलकपित्थाम्रसुलभाजम्बुदाडिमैः ॥८१॥
खर्जूरिकापनसाद्यैः पक्वान्नैर्घृतपाचितैः । उपाहारं सुखं कृत्वा तांबूलं परिगृह्य च ॥८२॥
दिव्यवस्त्राणि संगृह्य दृष्ट्वाऽऽदर्शे निजं मुखम् । निरीक्षितश्च वैदेह्याऽऽरुह्य स्यंदनमुत्तमम् ॥८३॥
वेष्टितो मंत्रिदूताद्यैस्तूर्यध्वनिपुरःसरम् । मातृगेहं ततो गत्वा ताः प्रणम्यावनिं गतः ॥८४॥
सव्यां प्रदक्षिणां कृत्वा गत्वा राजगृहं प्रति । सिंहासनस्थं राजानं नत्वा स्थित्वा तदाज्ञया ॥८५॥
पौरकार्याण्यनेकानि कृत्वा राज्ञा विसर्जितः । ययौ स्यंदनमास्थाय नृपं नत्वा पुनः पुनः ॥८६॥
तूर्यगीतनिनादैश्च नर्तनैर्वारयोषिताम् । ययौ स्वीयं गृहं रामः स्यंदनादवरुह्य च ॥८७॥
भूमिजादत्तपादार्घ्याचमनीयासनादिकम् । गृहीत्वा तद्बहिर्गत्वा कृतं तत्तां न्यवेदयत् ॥८८॥
सर्वं वृत्तं कौतुकेन हास्यगीतादिमंगलैः । रमयित्वा भूमिकन्यां दिव्यवस्त्रादिभूषिताम् ॥८९॥
ततो मध्याह्नसमये सरय्वां वाऽथ सद्मनि । स्नात्वा माध्याह्निकं कर्म चकार रघुनंदनः ॥९०॥
नित्यं यत्राकरोत्स्नानं सरयूनिर्मले जले । तदाख्ययाऽभवत्तीर्थं रामतीर्थमिति स्फुटम् ॥९१॥
तद्विख्यातं त्रिभुवने चैत्रमासि विशेषतः । माध्याह्निकं च संपाद्य ब्राह्मणर्मन्त्रिभिर्जनैः ॥९२॥
इष्टैः सुवर्णपात्रेषु त्रिपदासु धृतेषु च । परिष्कृतेषु जानक्या सीतया गतिलाघवात् ॥९३॥
क्वणत्कंकणमंजीरकिंकिणीनूपुरादिषु । नदत्सु भोजनं चक्रे राघवो हर्षपूरितः ॥९४॥
करशुद्धिं विधायाथ भुक्त्वा ताम्बूलमुत्तमम् । ततः शतपदं गत्वा निद्रां कृत्वा तु सीतया ॥९५॥

करते थे ॥७६॥ लोगोंको कर्म करनेका यथार्थ उपदेश देनेके लिए वे स्फटिकके शिवलिङ्गका पूजन करते और सीताके दिये हुए पक्वान्नका नैवेद्य भोग लगाते थे। तदनन्तर ब्राह्मणोंकी पूजाकर तथा उन्हें दान आदिके द्वारा संतुष्ट करके उनसे अनेक आशीर्वाद लेते थे ॥७७॥७८॥ तदनन्तर तुलसी, गुरु, गौ, पीपल, शमी तथा सूर्यदेवकी पूजा और ब्रह्मयज्ञका विधान करके सीताके साथ गुरुमुखसे पुराणोंकी कथा सुनते थे। फिर गुरुकी पूजा करके पत्नीके प्रार्थना करनेपर ब्राह्मणों तथा बन्धुओंके साथ नारियल, कैथा, आम, सुलभा (शालपर्णी), जामुन, अनार, खजूर तथा कटहल आदि और घृतके पक्वान्न आनन्दसे खाकर पान खाते थे। ७९-८२ ॥ तत्पश्चात् दिव्य वस्त्र धारण करके शीशेमें मुख देख वैदेहीके समक्ष उत्तम रथपर चढ़ तथा दूतों और मन्त्रियोंको साथ ले तुरही आदि बाजोंके साथ माताके महलमें जाते और भूमिपर लोटकर उन्हें प्रणाम करते थे ॥८३॥८४॥ फिर दाहिनी ओरसे प्रदक्षिणा करके राजा दशरथके महलमें जाते और वहाँ सिंहासनपर बैठे हुए राजाको प्रणाम करके उनकी आज्ञासे बैठ जाते थे ॥ ८५ ॥ तदनन्तर नगरसम्बन्धी अनेक कार्योंपर परामर्श करके राजा उनको लौटा देते थे। तब राम राजाको प्रणाम करते और रथपर सवार हो गाने-बजाने तथा नाचनेके शब्दोंको सुनते हुए महल जाते। वहाँ रथसे उतरकर घरमें जाते और सीताके हाथों प्राप्त जलसे पाँव-हाथ-मुँह आदि धोकर जो कुछ कार्य कर आते थे, वह सब सीताको कह सुनाते ॥ ८६-८८ ॥ पश्चात् दिव्य वस्त्रोंसे भूषित सीताको सुन्दर हास्य-गीत आदिके द्वारा प्रसन्न करते थे ॥ ८९ ॥ उसके बाद राम दोपहरको सरयू या घर ही में स्नान करके मध्याह्नके कृत्य करते थे ॥ ९० ॥ जिस जगह वे नित्यप्रति स्नान करते थे, उस स्थानका नाम रामतीर्थ पड़ गया ॥ ९१ ॥ तीनों लोकोंमें वह स्थान प्रसिद्ध हो गया। विशेष करके चैत्रमासमें उसका बड़ा माहात्म्य है। मध्याह्नकृत्य करनेके बाद ब्राह्मणों, मन्त्रियों तथा मित्रजनोंके साथ तिपाइयोंपर रक्खे हुए सुन्दर परिष्कृत सुवर्णपात्रोंमें मन्दगतिवाली तथा जिनके अङ्ग-प्रत्यङ्गमें कंकण, झांझर, नूपुर और करधनी आदि गहने बज रहे थे, ऐसी सीताके साथ रघुपति राम हर्षपूर्वक भोजन करते थे ॥ ९२-९४ ॥ पश्चात् हाथ धो

पुनर्वस्त्राणि संगृह्य लब्ध्वा शस्त्राणि सादरम् । धनुर्बाणौ करे धृत्वा रथे स्थित्वाऽथ बंधुभिः ॥९६॥
पुष्पारामोद्यानकादीन् दृष्ट्वा तु कौतुकेन च । वाद्यघोषैर्नर्तनाद्यैर्गत्वा स्वीयं गृहं पुनः ॥९७॥
सायंसंध्यादि संपाद्य पुनर्हुत्वा सविस्तरम् । शंभुं भक्त्या पुनः पूज्य कृत्वा चैवोपहारकम् ॥९८॥
रत्नकांचनमाणिक्यनिर्मिते मंचके वरे । दिव्यप्रासादमध्ये स सीतया रघुनायकः ॥९९॥
हास्यगीतविनोदाद्यैर्निद्रां चक्रे ततः परम् । एवं नानासमुत्साहैर्निनायार्कसमाः सुखम् ॥१००॥
एकदा राघवं राजा ज्ञात्वा मुद्गलवाक्यतः । वसिष्ठवाक्यतश्चापि चरित्रैश्चाप्यमानुषः ॥१०१॥
साक्षान्नारायणं विष्णुं मत्वाहूय रहः स्थितः । पप्रच्छ विनयेनैव हृदि भावं विधाय च ॥१०२॥
राम नारायणस्त्वं हि भूभारहरणाय च । मत्तो जातोऽसीति लोका वदंत्यज्ञानबुद्धयः ॥१०३॥
अतः पृच्छामि ते राम मायया मोहितस्तव । किंचिज्ज्ञानोपदेशेन नाशयाज्ञानजां मतिम् ॥१०४॥
दारापत्यादिगेहेषु स्थिता नैवोपशाम्यति । तत्पितुर्वचनं श्रुत्वा राजानं राघवोऽब्रवीत् ॥१०५॥

श्रीराम उवाच

शृणु राजन् प्रवक्ष्यामि तव ज्ञानार्थमुत्तमम् । शृणोतु मम मातेयं कौसल्याऽपि तव प्रिया ॥१०६॥
नश्वरं भासते चैतद्विश्वं मायोद्भवं नृप । यथा शुक्तौ रौप्यभासः काचभूम्यां जलस्य च ॥१०७॥
यथा रज्जौ सर्पभासो मृगतोये जलस्पृहा । तद्वदात्मनि भासोऽयं कल्प्यते नश्वरोऽबुधैः ॥१०८॥
अज्ञानदृष्टिभिर्नित्यं मन्यते न तु पंडितैः । आत्मा शुद्धो निर्व्यलीकः सच्चिदानंदलक्षणः ॥१०९॥
यस्यांशांशेन विश्वेशा ब्रह्माद्याः सकला वयम् । स्थित्युत्पत्तिविनाशार्थं नानारूपाणि मायया ॥११०॥
धार्यंते नटवद्राजन्न तेष्वासक्त एव सः । यथा पद्मं न स्पृशति जलं मायां तथा मलः ॥१११॥
आत्मा नित्यो न स्पृशति परमानंदविग्रहः । देहागारसुतस्त्रीषु मामकेति च या मतिः ॥११२॥

तथा ताम्बूल खाकर सौ पग टहलनेके बाद सीताके साथ आराम करते थे ॥ ९५ ॥ फिर वस्त्र पहिन तथा दोनों हाथोंमें धनुष-वाण लेकर बन्धुओंके साथ रथपर सवार होकर पुष्पित बाग-बगीचोंको देखते, आनन्दपूर्वक गायन सुनते तथा नाच देखते हुए पुनः अपने घर आ सायंसंध्यादि नित्य कर्म करते और यथाविधि हवन करके भक्तिसे शिवजीकी पूजा करते थे। सायंकालको भोजन करके रत्नकांचन तथा माणिक्यक सुन्दर पलंगपर दिव्य महलमें सीताके साथ हास्य-गीत तथा विनोदपूर्वक शयन करते थे। इस प्रकार आनन्दसे सुखपूर्वक बारह वर्ष बीत गये ॥ ९६–१०० ॥ एक समय मुनि मुद्गल तथा गुरु वसिष्ठके वाक्योंसे और रामके देवी चरित्रोंको देख राजा दशरथने रामको साक्षात् नारायण समझकर एकान्तमें बुलाया और भक्तिभाव तथा विनयपूर्वक कहने लगे–॥ १०१ ॥ १०२ ॥ हे राम ! तुम साक्षात् नारायण हो। तुमने भूमिका भार हरण करनेके लिए मेरे घर अवतार लिया है। ऐसा अज्ञानयुक्त बुद्धिवाले लोग कहते हैं। इस कारण हे राम ! तुम्हारी मायासे मोहित मैं प्रार्थना करता हूँ कि तुम ज्ञानका उपदेश देकर मेरा अज्ञान दूर कर दो ॥ १०३ ॥ १०४ ॥ स्त्री-पुत्र तथा गृह आदिमें अनुरक्त मेरी बुद्धि कभी शान्ति तथा सुखका अनुभव नहीं करती। पिताके इस वचनको सुनकर राम राजा दशरथसे बोले ॥ १०५ ॥ श्रीरामने कहा– हे राजन् ! मैं आपको ज्ञानलाभके लिए उत्तम उपदेश देता हूँ। उसे आप तथा आपकी प्राणप्रिया और मेरी माता कौसल्या भी ध्यानसे सुनें ॥ १०६ । हे नृप ! मायासे उत्पन्न यह समस्त संसार आत्मामें उसी प्रकार झूठा भासित होता है जैसे कि सीपीमें चाँदी, रेतीमें जल, रस्सीमें साँप तथा मृगमरीचिकामें सलिल भासित होता है। अज्ञानी लोग इस आभासको भी नित्य तथा अनश्वर समझते हैं। परन्तु पण्डित लोग तो इससे विपरीत ही मानते हैं। उनके मतमें आत्मा शुद्ध, नित्य तथा सच्चिदानन्दस्वरूप है ॥ १०७ ॥ १०८ ॥ उसके अंशमात्रसे समस्त विश्वके स्वामी ब्रह्मादि तथा हम सब प्राणी मायाके अधीन होकर जगत्की स्थिति उत्पत्ति तथा विनाशके लिये नटकी तरह विविध रूपोंको धारण करते हैं। किन्तु आत्मा स्वयं किसीमें आसक्त नहीं होता। जिस प्रकार कमलपत्र जलका स्पर्श नहीं करता, उसी प्रकार अमल, नित्य और परम आनन्दस्वरूप आत्मा भी मायासे निर्लिप्त

उपसंहृत्य बुद्ध्या संन्यस्य ब्रह्मणि चिद्धने । यद्यत्किंचिद्भासतेऽत्र तत्तन्नारायणात्मकम् ॥११३॥
पश्य त्वं सर्वभावेन मुच्यसे भवसंकटात् । सत्यं शौचं दया शांतिः क्षमा चेंद्रियनिग्रहः ॥११४॥
अहिंसा भगवद्भक्तिर्वेदमार्गानुवर्तनम् । इत्याद्या ये गुणा राजन् तान् भजस्व निरंतरम् ॥११५॥
चौर्यं द्यूतं विवादं च मात्सर्यं दंभमेव च । क्रौर्यं लोभं भयं क्रोधं शोकं निंद्यप्रवर्तनम् ॥११६॥
वेदविप्रयतीनां च साधूनां मानभंजनम् । निंदां पैशुन्यमांनेशं त्यज दूरं स्वतो नृप ॥११७॥
पूर्वं त्वया तपस्तप्तं पुत्रत्वं याचितं मम । तस्माज्जातोऽस्मि त्वत्तोऽहं कौसल्यायांनृपोत्तम ११८॥
यन्मया कथितं चैतदज्ञानमलनाशनम् । गोपनीयं प्रयत्नेन कथनीयं न कुत्रचित् ॥११९॥
तद्रामवचनं श्रुत्वा गतमायामलो नृपः । सद्भावपरिपूर्णस्तु रोमांचितवपुर्धरः ॥१२०॥
प्रणनाम राघवस्य चरणौ दृढभावतः । ततो रामः पुनः प्राह पितरं निर्मलाशयम् ॥१२१॥
नेदं योग्यं त्वया राजन् वंदनादि शिशुं प्रति । मायया नरवेषस्य मम उपहासकारणम् ॥१२२॥
मनसेव च मां नित्यं भज भावेन सादरम् । मच्चित्तो मद्गतप्राणो मयि भक्तिं दृढां कुरु ॥१२३॥
इत्युक्त्वा पितरौ नत्वा गृहीत्वाज्ञां तयोः प्रभुः । ययौ रथसमारूढः श्रीरामः स्वनिकेतनम् ॥१२४॥
कदा मातुर्गृहं गत्वा सीतया भोजनं व्यवधात् । कदा भ्रातृगृहेष्वेव कदा पंक्तौ पितुः स्वयम् ॥१२५॥
कदा दशरथं तातं भोजनार्थं निजे गृहे । भार्यापुत्रादिभिर्युक्तं पौरैर्विप्रैः समन्वितम् ॥१२६॥
मुदा रामः समाहूय भोजयामास सादरम् । श्रीरामदर्शनार्थं ते तपोवननिवासिनः ॥१२७॥
अयोध्यानगरीमेत्य द्वारपैरनिषेधिताः । शतशः प्रत्यहं रामं दृष्ट्वा स्तुत्वा पुनः पुनः ॥१२८॥
आतिथ्यं रघुनाथस्य गृहीत्वा तुष्टमानसाः । सप्तपंचदिनान्येव स्थित्वा पुण्यकथादिभिः ॥१२९॥
रमयित्वा रमानाथं जग्मुः स्वं स्वं वराश्रमम् । यत्र यत्र हि रामस्य प्रीतिं ज्ञात्वा विदेहजा ॥१३०॥

रहती है। देह-गेह-पुत्र-स्त्री आदिपरसे ममता हटाकर अथवा संन्यास भावके द्वारा समस्त भावनाओंको छोड़कर यह जो दृश्यमान संसार है, उसको चिद्घन ब्रह्मसे अभिन्न नारायणस्वरूप जान तथा उसी ईश्वरको सर्वत्र व्याप्त देखकर आप इस भवसङ्कटसे मुक्त हो जायँगे। हे राजन्! पहले आप सत्यभाषण, पवित्रता, दया, शान्ति, क्षमा, इन्द्रियनिग्रह, अहिंसा, भगवद्भक्ति तथा वेदोक्त मार्गके अनुवर्तन आदि गुणोंको निरन्तर धारण करें ॥ १०९–११५ ॥ हे नृप! चोरी, जुआ, ईर्ष्या, पाखण्ड, क्रूरता, लोभ, भय, क्रोध, शोक, निन्दनीय काममें प्रवृत्ति, वेद-विप्र-साधु-संन्यासी आदिका मानभङ्ग, निन्दा और चुगलखोरी आदिको अपने दिलसे दूर कर दें ॥ ११६ ॥ ११७ ॥ हे नृप! आपने पूर्वकालमें तप करके मुझको पुत्ररूपसे माँगा था। इसी कारण मैं आपके द्वारा कौसल्याके गर्भसे पुत्ररूपमें जायमान हुआ हूँ ॥ ११८ । यह जो मैंने आपको अज्ञानरूपी मल नष्ट करनेवाला उपदेश दिया है, उसे आप अपने मनमें ही रखियेगा—किसीसे कहिएगा नहीं ॥ ११९ ॥ रामके इस उपदेशको सुनते ही राजाके मनसे मायाकृत मोह दूर हो गया और सद्भावसे परिपूर्ण तथा रोमांचित शरीर होकर दृढ़ भक्तिभावसे राजा दशरथने रामके चरणोंकी वन्दना की। इस प्रकार निर्मल हृदयवाले पितासे राम फिर कहने लगे – ॥ १२० ॥ १२१ ॥ हे राजन्! पुत्रको प्रणाम करना आपको उचित नहीं है। मायासे मनुष्यदेहधारी मेरा इससे उपहास होगा। इस कारण आप सदा आदरभावसे मनमें ही मेरा भजन किया करें। मन तथा प्राणको मुझे अर्पण करके मेरी दृढ़ भक्ति करें ॥ १२२ ॥ ऐसा कह तथा माता-पिताकी आज्ञा लेकर श्रीरामने उनको नमस्कार किया और रथपर सवार होकर अपने भवनको चले गये ॥ १२४ ॥ वे सीताके साथ कभी माताके महलमें जाकर भोजन करते, कभी भाइयोंके भवनमें और कभी पिताके साथ पंक्तिमें बैठकर भोजन करते थे। कभी स्त्रियों पुत्रों ब्राह्मणों तथा नागरिकोंके साथ पिता दशरथको अपने भवनमें बुलाकर सादर हर्षपूर्वक भोजन कराते थे। प्रतिदिन सैकड़ोंकी संख्यामें वनवासी मुनिजन भी श्रीरामचन्द्रका दर्शन करनेके लिये अयोध्या आते रहते थे। वे विना रोकटोक भीतर जाकर रामका दर्शन तथा स्तुति करते और रामके द्वारा किये हुए सत्कारको ग्रहण करके प्रसन्नतापूर्वक पाँच-सात दिन वहाँ रहकर अपने-अपने

तत्तच्चकार सा साध्वी हास्यक्रीडासनादिकम्। विवाहानन्तरं रामः समा द्वादश सीतया ॥१३१॥
रमयामास साकेते महाक्रीडापुरःसरम्। सहस्रवर्षैर्विज्ञेयं श्रेष्ठं वर्षं कृते युगे ॥१३२॥
शतवर्षश्च त्रेतायां द्वापरे दशवर्षजम्। कलेर्मानेन बोद्धव्यं शून्यह्रासात्त्रिविक्रमात् ॥१३३॥
एवं श्रीरामचंद्रेण भोगा भुक्ताः सुरोपमाः। यस्मिन् ऋतौ च यद्द्रव्यं फलपुष्पादिकं शुभम् ॥१३४॥
तत्सर्वं सर्वदैवासौद्रामे साकेतसंस्थिते। अनावृष्टिर्न वै कुत्र तस्कराणां भयं न हि ॥१३५॥
हिंसादीनां भयं नासीदयोध्याविषये प्रिये। युधाजिन्नाम कैकेयीभ्राता भरतमातुलः ॥१३६॥
निनाय भरतं स्वीयराज्ये शत्रुघ्नसंयुतम्। कौतुकेन नृपं पृष्ट्वा कैकेयीं प्रणिपत्य च ॥१३७॥
एवं रामस्य मांगल्यं बालत्वेऽपि सुखावहम्। ये शृण्वंति नरा भक्त्या न तेषामस्त्यमंगलम् ॥१३८॥
एवं यथा त्वया पृष्टं तथा सर्वं मयोदितम्। रामेणाचरितं यच्च नृणां मांगल्यदायकम् ॥ ३९॥
एवं गिरींद्रजे प्रोक्तं बाललीलादिकौतुकम्। रामचंद्रस्य संक्षेपात्तव प्रीत्यै सुखावहम् ॥१४०॥

इति श्रीशतकोटिरामचरितांतर्गते श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये सारकाण्डे
रामदिनचर्यावर्णनं नाम पञ्चमः सर्गः ॥ ५ ॥

षष्ठः सर्गः

(रामका दण्डकवनमें प्रवेश)

श्रीशिव उवाच

एवं त्रेतायुगे रामं नगर्यां सीतया सुखम्। क्रीडंतं नारदोऽर्केब्दे ययावाकाशवर्त्मना ॥१॥
अथ रामो मुनिं पूज्य सीतया लक्ष्मणेन च। शुश्राव वचनं तस्य सुरैर्विज्ञापितं च यत् ॥२॥
निहत्य रावणं युद्धे ततो राज्यं कुरुष्व हि। अंगीकृत्य रघुश्रेष्ठस्तं मुनिं च व्यसर्जयत् ॥३॥
अथ रामोऽब्रवीत्सीतां मम राज्याभिषेचनम्। कर्तुकामोऽस्ति तत्राहं विघ्नमुत्पाद्य दंडकम् ॥४॥

अश्रमको चले जाते थे । जो काम करनेसे राम प्रसन्न होते थे, पतिव्रता सीता उन-उन हस्य-क्रीडा तथा आसनादिका विधान करती थीं। विवाहके बाद रामने बारह वर्ष तक सीताके साथ अयोध्यामें आनन्दपूर्वक विलास किया। कलियुगके हजार वर्षोंके बराबर सत्ययुगका एक वर्ष जानना चाहिये। कलियुगके सौ वर्षोंके बराबर त्रेतायुगका एक वर्ष और कलियुगके बारह वर्षके बराबर द्वापरका एक वर्ष होता है ॥१२५–१३३॥ इस प्रकार श्रीरामचन्द्रने बारह वर्ष तक देवताओंके योग्य भोगोंको भोगा। रामचन्द्रजीके अयोध्यामें रहते समय जिस ऋतुमें जो पुष्प-फल आदि होना चाहिए, वह सब नियमसे उत्पन्न हुआ करते थे। कभी अनावृष्टि नहीं हुई और चोरोंका भय नहीं रहा। हे प्रिये पार्वती ! उस राज्यमें कभी किसीको हिंसक पशुओंका भय नहीं हुआ। एक दिन युधाजित् नामक कैकेयीका भाई तथा भरतका मामा वहां आया और राजासे पूछ तथा कैकेयीको मनाकर शत्रुघ्नसहित भरतको अपने राज्यमें ले गया। ॥ १३४–१३७ ॥ बाल्यावस्थामें ही मङ्गलस्वरूप तथा सुखदायक रामके चरित्रको जो मनुष्य भक्तिभावसे सुनता है, उसका कभी अमङ्गल नहीं होता ॥ १३८ ॥ इस प्रकार मनुष्यमात्रके लिए कल्याणकारी श्रीरामचन्द्रका चरित्र मैने तुमको कह सुनाया ॥ १३९ ॥ १४० ॥ इति श्रीशतकोटिरामचरितांतगते श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये बालचरित्रे भाषाटीकायां सारकाण्डे रामदिनचर्यावर्णनं नाम पञ्चमः सर्गः ॥ ५ ॥

श्रीशिवजी बोले—इस तरह अयोध्यानगरीमें सुखपूर्वक सीताके साथ क्रीडा करते हुए रामके पास बारहवें वर्षमें एक दिन आकाशमार्गसे नारद मुनि पधारे ॥ १ ॥ सीता तथा लक्ष्मणके साथ रामने मुनिकी पूजा की और उनके मुखसे देवताओंका यह संदेश सुना कि आप पहले रावणको मारकर पश्चात् राज्य करें। रघुश्रेष्ठ रामने भी 'बहुत अच्छा' कहकर उन्हें विदा किया ॥ २ ॥ ३ ॥ तदनन्तर राम सीतासे कहने लगे–हे सीते !

गच्छामि रावणादीनां वधार्थं लक्ष्मणेन च । अयोध्यायां वसात्र त्वं कौसल्यां पार्थिवं भज ॥५॥
तद्रामवचनं श्रुत्वा प्रणिपत्य रघूत्तमम् । उवाच मधुरं वाक्यं वनं मां त्वं नय प्रभो ॥६॥
कारणान्यत्र वै त्रीणि संति तानि वदाम्यहम् । भवत्वद्य प्रयाणं मे दंडकं हि त्वया सह ॥७॥
वनप्रयाणं मामाह भर्त्रा स सत्यवाग्द्विजः । बालत्वे कररेखां मे दृष्ट्वा कश्चिद्द्विजाग्रणीः ॥८॥
अन्यत्स्वयंवरे पूर्वं सुरानपि मयोदितम् । यदा चापांतिकं प्राप्तः सज्जितुं त्वं सभांगण ॥९॥
चतुर्दश वत्सराणि मुनिवृत्त्यनुवर्तिनी । विचरिष्याम्यरण्येऽहं धनुः सज्जं करोत्वयम् ॥१०॥
तत्सत्यं कुरु मद्वाक्यं प्रयाणाद्दंडकं त्वया । अन्यच्छ्रुतं मया पूर्वं रामायणमनुत्तमम् ॥११॥
तत्र सीतां विना रामो न गतोऽस्ति हि दंडकम् । तस्मात्त्वं मां रघुश्रेष्ठ दंडकं नेतुमर्हसि ॥१२॥
तत्सीतावचनं श्रुत्वा तथास्त्विति वचोऽब्रवीत् । विहस्य राघवः श्रीमान् समालिंग्य विदेहजाम् ॥१३॥
अथ राजा दशरथः श्रीरामस्याभिषेचनम् । यौवराज्यपदे कर्तुमुद्युक्तः प्राह वै गुरुम् ॥१४॥
यौवराज्यपदे राममभिषेक्तुं त्वमर्हसि । तद्राजवचनं श्रुत्वा गुरुर्दशरथं नृपम् ॥१५॥
कौसल्यागृहमानीय बोधयामास वै रहः । राजन् शृणु त्वं कौसल्यासुमित्रे शृणुतं त्विमे ॥१६॥
रावणस्य वधार्थं हि रामः श्वो दंडकं वनम् । गमिष्यति लक्ष्मणेन सीतया कैकयीवरात् ॥१७॥
तस्मात्त्वमज्ञवत्तूष्णीं संभारानभिषेचितुम् । कारयस्व सुमंत्रेण समाहूय नृपादिकान् ॥१८॥
श्रीरामविरहाद्राजन् ब्राह्मणस्यापि शापतः । अचिरादेव स्वर्लोकं त्वं गमिष्यसि पार्थिव ॥१९॥
कौसल्येयं रामराज्योत्सवं पश्यतु वै पुनः । अंतरिक्षाद्विमानस्थस्त्वं पश्यसि महोत्सवम् ॥२०॥
दुर्लंघ्या भाविनी रेखा ब्रह्मादीनां नृपोत्तम । इति श्रुत्वा गुरोर्वाक्यं तेन राजा सभां ययौ ॥२१॥
रामराज्याभिषेकाय संभारानकरोन्मुदा । दूतैराकारयामास नृपान् दशरथस्तदा ॥२२॥

पिताजी मेरा राज्याभिषेक करना चाहते हैं, परन्तु मैंने उसमें विघ्न खड़ा करके रावण आदिको मारनेके लिए लक्ष्मणके साथ दण्डकारण्य जानेकी तैयारी की है। तुम यहीं रहकर माता कौसल्याकी और महाराजकी सेवा करना ॥ ४ ॥ ५ ॥ रामका यह वचन सुनकर सीता रघूत्तम रामके चरणोंपर गिर पड़ीं और यह मधुर वचन बोलीं—हे प्रभो ! मुझे भी अपने साथ वनको ले चलिए ॥ ६ ॥ इसमें तीन कारण हैं। उन्हें मैं बताती हूँ। एक तो यह कि बाल्यावस्थामें मेरे हाथकी रेखा देखकर एक ब्राह्मणश्रेष्ठने कहा था कि तुम अपने पतिके साथ वनवास करोगी। सो आपके साथ वनमें जानेसे उस ब्राह्मणकी बात सत्य हो जायगी ॥ ७ ॥ ८ ॥ दूसरा कारण यह है कि जब आप सभाके बीच स्वयम्वरके समय धनुष चढ़ाने चले थे। तब मैंने देवताओंसे प्रार्थना की थी—हे देवताओं ! यदि राम धनुष चढ़ा लें तो मैं चौदह वर्ष तक मुनिवृत्ति धारण करके वनमें विचरण करूँगी ॥ ९ ॥ १० ॥ अतएव आप मुझे वनमें ले जाकर मेरी प्रतिज्ञाको भी सच्ची बनाएँ। तीसरा कारण यह है कि मैंने सर्वोत्तम रामायण-महाग्रंथमें यह सुना है कि सीताके बिना राम अकेले कभी वनमें नहीं गये। सो आपको मुझे दण्डकारण्यमें साथ ले चलना चाहिये ॥ ११ ॥ १२ ॥ सीताके वचन सुनकर रामने उनका आलिङ्गन करके "तथास्तु" कहा ॥ १३ ॥ इधर राजा दशरथने रामका युवराजपदपर अभिषेक करनेका निश्चय करके गुरु वसिष्ठसे कहा कि आप श्रीरामका युवराजपदपर अभिषेक करें। इस बातको सुनकर वे राजा दशरथको कौसल्याके भवनमें ले आये और एकान्तमें कहने लगे—॥ १४-१६ ॥ हे राजन् ! आप तथा ये कौसल्या और सुमित्रा मेरे कथनको सुनें। राम कैकेयीके वरसे सीता तथा लक्ष्मणको साथ लेकर रावणको मारनेके लिए कल ही दण्डकवन चले जायँगे ॥ १७ ॥ इसलिये अनजानकी तरह आप चुपचाप रामका अभिषेक करनेके लिए सुमन्त्रको कहकर सब सामग्री मँगवाइए और समस्त राजाओंको निमन्त्रित करिए ॥ १८ ॥ हे पार्थिव ! श्रीरामके विरह तथा ब्राह्मणके शापसे आप शीघ्र स्वर्ग सिधारेंगे ॥ १९ ॥ बादमें कौसल्या रामके राज्योत्सवकी देखेगी और स्वर्गीय विमानमें बैठकर आप अन्तरिक्षसे वह उत्सव देखेंगे ॥ २० ॥ हे नृपोत्तम ! भविष्यकी रेखा ब्रह्मादिकोंके लिए भी दुर्लंघनीय होती है। गुरु वसिष्ठका यह वचन

ऋषीश्वराः समाजग्मुर्नानाश्रमनिवासिनः । नगरीं शोभायामासुर्दूताश्चित्रध्वजोत्तमैः ॥२३॥
पताकाभिस्तोरणैश्चैव हेमकुम्भैर्मनोरमैः । गुरुराज्ञापयामास सुमंत्रं नृपमंत्रिणम् ॥२४॥
श्वः प्रभाते मध्यकक्षे कन्यकाः स्वर्णभूषिताः । तिष्ठन्तु षोडश गजाः स्वर्णरत्नादिभूषिताः ॥२५॥
चतुर्दन्तः समायातु ऐरावतकुलोद्भवः । नानातीर्थोदकैः पूर्णाः स्वर्णकुम्भाः सहस्रशः ॥२६॥
स्थाप्यतां तत्र वैय्याघ्रचर्माणि त्रीणि वा नव । श्वेतच्छत्रं रत्नदंडं मुक्तामणिविराजितम् ॥२७॥
दिव्यमाल्यानि वस्त्राणिदिव्यान्याभरणानि च । मुनयः संस्कृतास्तत्र तिष्ठन्तु कुशपाणयः ॥२८॥
नर्तक्यो वारमुख्याश्च गायका वैदिकास्तथा । नानावादित्रकुशला वादयंतु नृपांगणे ॥२९॥
हस्त्यश्वरथपादाता बहिस्तिष्ठंतु सायुधाः । नगरे यानि तिष्ठंति देवतायतनानि च ॥३०॥
तेषु प्रवर्ततां पूजा नानाबलिभिरादृताः । राजानः शीघ्रमायान्तु नानोपायनपाणयः ॥३१॥
इत्यादिश्य वसिष्ठस्तु रथेन रघुनन्दनम् । गत्वा सम्मानितस्तेन सर्वं वृत्तं न्यवेदयत् ॥३२॥
निमित्तमात्रस्त्वं राम श्वो गमिष्यसि दंडकान्। चतुर्दश समास्तत्र स्थित्वा संहृत्य रावणम् ॥३३॥
बंधुना सीतया सार्धं ततो राज्यं करिष्यसि । लौकिकीं वृत्तिमालंब्य स्वीकुरुष्व पितुर्वचः ॥३४॥
अद्य त्वं सीतया सार्धमुपवासं यथाविधि । कृत्वा शुचिर्भूमिशायी भव राम जितेंद्रियः ॥३५॥
इत्युक्त्वा रथमारुह्य दृष्ट्वा रामं सलक्ष्मणम् । जानकीं चापि स गुरुर्ययौ राजगृहं पुनः ॥३६॥
कौसल्या च सुमित्रा च रामराज्याभिषेचनम् । मृषाऽपि श्रुत्वा श्रीगुरोरास्यात्स्नेहसमन्विते ॥३७॥
चक्रतुः पूजनं देव्यास्तद्विघ्नोपशमस्पृहे । बलिदानैः शांतिपाठैर्मुनिवृंदसमन्विते ॥३८॥
अथापराह्णे सौधस्था दास्याः पुत्री तु मंथरा । शोभितां नगरीं दृष्ट्वा पृष्ट्वा वृद्धां पथि स्थिताम् ॥३९॥

सुनकर राजा दशरथ सभामें गये ॥ २१ ॥ वहा मन्त्रीसे रामके राज्याभिषेकके वास्ते सब सामग्री जुटवायी और प्रसन्नतापूर्वक दूतोंको भेजकर राजाओंको बुलवाया ॥ २२ ॥ उस समय आश्रमोंमें रहनेवाले अनेक ऋषीश्वर भी वहाँ आ पहुँचे । दूतोंने चित्र-विचित्र ध्वजा, पताका और तोरणोंसे नगरीको सजाया । स्थान-स्थानपर उत्तम तथा मनोहर सुवर्णके कलश स्थापित किये गये । गुरु वसिष्ठने मन्त्री सुमन्त्रको आज्ञा दी कि कल सबेरे ही सुवर्णके अलङ्कारोंसे अलंकृत कन्यायें और चार-चार दाँतोंवाले ऐरावत कुलमें उत्पन्न सुवर्ण तथा रत्नों आदिसे अलंकृत सोलह हाथी मध्यकक्षमें उपस्थित रहने चाहियें। वहाँ अनेक तीर्थोंके जलसे परिपूर्ण स्वर्णकुम्भ ॥ २३–२६ ॥ तीन या नौ बाघम्बर, मोती और मणियोंसे सुशोभित रत्नजटित दण्डवाले श्वेत छत्र, चमर, सुन्दर मालायें, सुन्दर वस्त्र तथा दिव्य आभूषण भी तैयार रहें। स्नान आदि संस्कारोंसे संस्कृत मुनिजन हाथमें कुशा लिये हुए तैयार रहें ॥ २७ ॥ २८ ॥ नर्तकियें, वेश्यायें, गायक, वेदघोष करनेवाले विप्र तथा नाना प्रकार बाजा बजानेमें कुशल शिल्पी मिलकर राजमहलके सामने गाना-बजाना प्रारम्भ कर दें ॥ २९ ॥ हाथी, घोड़े, रथ और पैदल सेना शस्त्र धारण करके बाहर खड़ी रहे । नगरमें जहाँ-जहाँ देवालय हैं, वहाँ-वहां अनेक सामग्रियोंसे प्रेमपूर्वक पूजा की जाय और सब राजे भेंट ले-लेकर उपस्थित हों ॥ ३० ॥ ३१ ॥ इतनां कहकर वसिष्ठ रथपर सवार हुए और रघुनन्दन रामके पास गये। रामने उनको आदरपूर्वक आसन दिया। तब मुनि ने उन्हें सब वृत्तान्त सुनाते हुए कहा—॥ ३२ ॥ हे राम ! तुम निमित्तमात्र हो । कल तुम दण्डकवनको चले आओगे। वहाँ चौदह वर्ष रहकर रावणको मारोगे। उसके पश्चात् भाई लक्ष्मण तथा सीताके साथ प्रसन्नतापूर्वक राज्य करोगे । अतएव लोकव्यवहार निभानेके लिए पिताके वचनको मान लो ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ आज तुम सीताके साथ पवित्रतापूर्वक विधिवत् ब्रह्मचर्यसे रहो और पृथ्वीपर शयन करो ॥ ३५ ॥ ऐसा कह और राम-लक्ष्मण तथा सीतासे मिलकर गुरुदेव रथपर सवार हुए और वहाँसे राजमहलको चल दिये ॥ ३६ ॥ तदनन्तर कौसल्या और सुमित्रा गुरुदेवके मुखसे रामके राज्याभिषेकको झूठा सुनकर भी स्नेहवश विघ्नोंकी शांतिकी इच्छासे मुनियोंको साथ लेकर पूजाद्रव्यों तथा शांतिपाठोंसे देवीका पूजन करने लगीं ॥ ३७ ॥ ३८ ॥ दोपहरके समय छतपर खड़ी दासीपुत्री मंथराने नगरको सुशोभित देखकर रास्तेकी एक बुढ़ियासे इसका

श्रुत्वा श्रीरामराज्यार्थं ययौ वेगेन कैकयीम् । सर्वं वृत्तं निवेद्याथ तूष्णीमासीत्तदा क्षणम् ॥४०॥
तच्छ्रुत्वा कैकयी चापि तस्यै भूषणमर्पयत् । एतस्मिन्नंतरे वाण्या देववाक्यात्सुमोहिता ॥४१॥
तुष्टां दृष्ट्वा तु कैकेयीं भर्त्सयंत्याह तां पुनः । मूढे कथं त्वं तुष्टाऽसि हतभाग्याऽसि वेद्म्यहम् ॥४२॥
रामे राज्यपदं प्राप्ते कौसल्यायाश्च कैकयि । दासी भविष्यसि त्वं हि अतो मद्वचनं कुरु ॥४३॥
वरेण न्यासभूतेन राज्यं श्रीभरताय हि । नृपं प्रार्थय रामस्य द्वितीयेन वरेण च ॥४४॥
दंडकारण्यगमनं चतुर्दश समाः पदा । क्रोधागारं प्रविश्याद्य कुरुष्व यन्मयेरितम् ॥४५॥
तन्मंथरोक्तं स्वहितं मत्वा सापि तथाऽकरोत् । मोहिता साऽविवेकेन श्रीराघवसुरेच्छया ॥४६॥
ततो निशायां राज्ञा सा ज्ञाता क्रोधगृहस्थिता । गत्वा तत्र नृपः शीघ्रं ददर्श कैकयीं तदा ॥४७॥
विकीर्यमाणकेशां तां त्यक्ताऽलंकारमंडनाम् । भूमौ शयानां तां दृष्ट्वा ज्ञात्वा तस्या मनोगतम् ॥४८॥
रामाय दंडकारण्यं यौवराज्यं सुताय च । वराभ्यां याचितं ज्ञात्वा हेत्युक्त्वा मूर्च्छितोऽभवत् ॥४९॥
प्रभाते तत्सुमंत्रेण वृत्तं श्रुत्वा नृपं ययौ । कैकेयी मंत्रिणा पृष्टा सुमंत्रं प्राह सा तदा ॥५०॥
अत्रानयस्व श्रीरामं द्रष्टुं तं वांछते नृपः । सोऽप्याह रामं नृपतिमपृष्ट्वा नानयाम्यहम् ॥५१॥
तदा शनैर्नृपः प्राह शीघ्रमानय राघवम् । सुमंत्रोऽप्यानयामास राघवं पार्थिवाज्ञया ॥५२॥
ततो रामो नृपं गत्वा श्रुत्वा कैकेयजागिरा । आत्मानं दंडके वासं वरदानं पितुः पुरा ॥५३॥
तथेत्यंगीचकाराथ नृपं वचनमब्रवीत् । मा ते शोकोऽस्तु हे तात ह्यहं गच्छामि दंडकान् ॥५४॥
तद्रामवचनं श्रुत्वा हाहेत्युक्त्वा नृपोऽब्रवीत् । मां विहाय कथं घोरं विपिनं गन्तुमिच्छसि ॥५५॥
तस्य तद्वचनं श्रुत्वा सांत्वयामास राघवः । अहं प्रतिज्ञां निस्तीर्य शीघ्रं यास्यामि ते पुरीम् ॥५६॥

कारण पूछा ॥ ३९ ॥ उसके मुखसे रामके राज्याभिषेककी बात सुनकर वह शीघ्र कैकेयीके पास गयी और सब वृतान्त सुनाकर क्षण भर चुपचाप खड़ी रही ॥ ४० ॥ उसकी बात सुनकर कैकेयीने उसको अपना एक आभूषण दे दिया। इतनेमें देवताओंकी प्रेरणा तथा सरस्वतीसे मोहित मंथरा कैकेयीको प्रसन्न देखकर उसे डराती हुई कहने लगी—अरे मूढ़े ! रामके राज्याभिषेकका समाचार सुनकर तू प्रसन्न क्यों हुई ? ऐसा ज्ञात होता है कि तेरा भाग्य तुझसे रूठ गया है। यदि रामको राज्य मिल गया तो ओ कैकेयी ! तुझे कौसल्याकी दासी बनना पड़ेगा। इस कारण जो मैं कहूँ, वैसा कर ॥ ४१ ॥ ४२ ॥ अपने पति राजा दशरथके पास धरोहर रखे दो वरोंमेंसे एकके द्वारा तू भरतके लिये राज्य माँग और दूसरे वरके द्वारा चौदह वर्षके लिए रामका पैदल दण्डकारण्यगमन माँग। तू अभी कोपभवनमें चली जा ॥ ४३–४५ ॥ उसने भी श्रीरामचन्द्र तथा देवताओंकी इच्छासे और अविवेकके कारण मोहित मन्थराके उस कथनको अपना हितकारक समझकर वैसा ही किया ॥ ४६ ॥ सायंकालके समय जब राजाको ज्ञात हुआ कि कैकेयी कोपभवनमें है, तब वे उसके पास गये और देखा कि कैकेयी सिरके बाल खोले, भूषण तथा वस्त्रोंको फेंककर धरतीपर पड़ी हुई है। पश्चात् जब राजा दशरथने उसके अभिप्रायको जाना तो उसके कथनानुसार दो वरोंमेंसे एकके द्वारा रामको दण्डकारण्यवास और दूसरेके द्वारा भरतको यौवराज्य देनेकी बात स्वीकार करके मूर्छित हो गये ॥ ४७–४९ ॥ प्रातःकाल मंत्री सुमंत्र इस वृत्तान्तको सुनकर राजाके पास गये। सुमन्त्रके पूछनेपर कैकेयीने कहा— ॥ ५० ॥ राजा रामको देखना चाहते हैं। जाओ, उन्हें यहाँ बुला लाओ। सुमन्त्रने कहा कि राजासे बिना पूछे मैं रामको यहाँ नहीं ले आ सकता ॥ ५१ ॥ तब राजाने धीरेसे कहा कि 'रामको शीघ्र ले आओ।' सुमंत्र भी महाराजकी आज्ञासे शीघ्र रामको ले आये ॥ ५२ ॥ रामने राजाके पास आकर कैकेयीकी वाणीसे अपने दण्डकारण्यवास तथा पिताका पूर्वकालमें वरदान देनेका हाल सुना तो "तथास्तु" कहकर स्वीकार किया। उन्होंने राजासे कहा—हे तात ! आप शोक न करें, मैं अभी दण्डकारण्य जाता हूँ ॥ ५३ ॥ ५४ ॥ रामका वचन सुनकर राजा दशरथ कहने लगे— हे राम ! मुझको छोड़कर तुम वनमें कैसे जाओगे ? ॥ ५५ ॥ पिताके इस करुण वचनको सुनकर राम उन्हें

इदानीं गंतुमिच्छामि व्येतु मातुश्च हृच्छयः । मातरं च समाश्वास्य ह्यनुनीय च जानकीम् ॥५७॥
आगत्य पादौ वंदित्वा तव यास्ये सुखं वनम् । इत्युक्त्वा तौ परिक्रम्य मातरं द्रष्टुमाययौ ॥५८॥
नत्वा स्वमातरं रामः समाश्वास्य पुनः पुनः । नत्वा प्रदक्षिणाः कृत्वा तामामंत्र्य ययौ गृहम् ॥५९॥
सर्वं वृत्तं तु सीतां स कथयामास राघवः । सीतया लक्ष्मणेनापि वनं गंतुं पुनः पुनः ॥६०॥
प्रार्थितश्च तथेत्युक्त्वा त्वरयामास राघवः । सर्वस्वं ब्राह्मणान्दत्त्वा सीतयाऽग्निसमन्वितः ॥६१॥
पद्भ्यामेव शनैर्भ्रात्रा ययौ रामो नृपान्तिकम् । गच्छंतं पथि श्रीरामं पद्भ्यां दृष्ट्वा पुरौकसः ॥६२॥
परस्परेण ते वृत्तं श्रुत्वा व्याकुलमानसाः । बभूवुस्तान्वामदेवः कथयामास सादरात् । ६३॥
नारदागमनं रामप्रतिज्ञां रावणस्य च । वधादिकं सविस्तारं विष्णुं मनुजरूपिणम् ॥६४॥
पौराः श्रुत्वा गतक्लेशा ह्यभूवन्पथि संस्थिताः ततो नत्वा नृपं रामः कैकेयीं वाक्यमब्रवीत् ॥६५॥
अम्बागतोऽहं विपिनं गंतुमाज्ञां ददस्व माम् । ततः सा वल्कलादीनि ददौ रामादिकांस्तदा ॥६६॥
रामस्तान् परिधायाथ स्वयं सीतामशिक्षयत् । तद्दृष्ट्वा कैकेयीं प्राह गुरुः क्रोधेन भर्त्सयन् ॥६७॥
जडे पापिनि दुर्वृत्ते राम एव त्वया वृतः । वनवासाय दुष्टे त्वं सीतायै किं प्रदास्यसि ॥६८॥
इत्युक्त्वा दिव्यवस्त्राणि सीतायै स गुरुर्ददौ । राजा दशरथोऽप्याह सुमंत्रं रथमानय ॥६९॥
रथमारुह्य गच्छन्तु वनं वनचरप्रियाः । रामः प्रदक्षिणं कृत्वा पितरौ रथमारुहत् ॥७०॥
सीतया लक्ष्मणेनाथ चोदयामास सारथिम् । कौसल्यां च सुमित्रां च तातमाश्वास्य वै पुनः ॥७१॥
समाश्वास्य जनान् रामस्तमसातीरमाययौ । माघमासे सिते पक्षे पंचम्यां परमेऽहनि ॥७२॥
प्राप्ते ह्यष्टादशे वर्षे राघवाय महात्मने । आसीनद्वनप्रयाणं हि स्वपुर्यास्तमसातटम् ॥७३॥

सांत्वना देते हुए बोले कि मैं आपकी प्रतिज्ञा पूरी करके शीघ्र पुरीमें लौट जाऊँगा ॥ ५६ ॥ परन्तु इस समय तो मैं जाना ही चाहता हूँ । जिससे कि माता कैकेयीके हृदयका शोक दूर हो सके । माताको आश्वासन दे तथा सोताको समझाकर मैं आ रहा हूँ । तव आपके चरणोंको प्रणाम करके सुखसे वनको प्रस्थान करूँगा । यह कहकर राम उन दोनोंकी परिक्रमा करके दर्शन करनेके लिये माता कौसल्याके पास गये ॥ ५७ ॥ ५८ ॥ माताको नमस्कार करनेके वाद बारम्बार समझा तथा प्रदक्षिणा करके उनकी आज्ञासे अपने महलमें गये ॥ ५६ ॥ वहाँ जाकर श्रीरामने सीताको समस्त वृत्तान्त कह सुनाया । जब सीता और लक्ष्मण बारम्बार अपने साथ वनमें ले चलनेकी प्राथना की, तब 'अच्छा' कह तथा शीघ्र ब्राह्मणोंको सर्वस्व दान देकर सीता तथा अग्निको साथ लेकर भाई लक्ष्मणके साथ पैदल ही राजाके पास आये । रास्तेमें पुरवासीजन रामको पैदल आते देख तथा एक दूसरेसे सब वृत्तान्त जानकर बड़े चिन्तातुर हुए । तब वामदेव मुनिने प्रेमसे उन लोगोंको नारदका आगमन, रामकी प्रतिज्ञा, रावणका वध तथा विष्णुका मनुष्यरूप धारण करना आदि वृत्तान्त विस्तारसे कह सुनाया ॥ ६०-६४ ॥ रास्तेमें खड़े पुरवासीजन उनकी यह बात सुनकर शान्त हो गये । रामने राजाके पास जा तथा उन्हें नमस्कार करके कैकेयीसे कहा—॥ ६५ ॥ हे अम्ब ! मैं वन जानेके लिए तैयार हो गया हूँ । आप मुझे आज्ञा दें । तब उसने राम, सीता तथा लक्ष्मणको पहिननेके लिये बल्कल वसन दिये ॥ ६६ ॥ राम स्वयं उन्हें पहिनकर सीताको बल्कल पहिनना सिखलाने लगे । यह देखकर मुनि वसिष्ठ क्रुद्ध होकर कंकेयीको धमकाते हुए कहने लगे—॥ ६७ ॥ ओ जड़े ! अरी पापिनि ! अयि दुर्वृत्ते ! तूने केवल रामके वनवासका वर माँगा है । तब सीताको पहिननेके लिये बल्कल क्यों देती है ? ॥ ६८ ॥ यह कहकर सीताके लिए गुरुने दिव्य वस्त्र दिये । राजा दशरथ बोले—हे सुमन्त्र ! रथ ले आओ । उस रथपर सवार होकर वनचरोंके प्रिय ये तीनों वनको जायँगे । बादमें रामने माता-पिताकी प्रदक्षिणा की और सीता तथा लक्ष्मणको साथ लेकर रथपर सवार हुए । तब सारथीको रथ चलानेकी आज्ञा दी । कौसल्या, सुमित्रा, पिता तथा अन्य जनोंको आश्वासन देकर राम चल पड़े और शीघ्र ही तमसा नदीके तीरपर जा पहुँचे । अठारहवें वर्षके माघ शुक्ल वसन्तपञ्चमीकी शुभ तिथिको महात्मा रामने अपने नगरसे चलकर तमसाके किनारेकी ओर प्रयाण किया था

5.

इंद्राद्या निर्जराश्चक्रुस्तदा तन्मार्गसत्क्रियाम् । आसन् शुभाश्च शकुना रामस्य व्रजतो वनम् ॥७४॥
उपित्वैकां निशां तत्र शृंगवेरपुरं ययौ । गुहेन मानितश्चापि तत्र रात्रिं निनाय सः ॥७५॥
गुहानीतैर्वटक्षीरैर्बबंध राघवो जटाम् । प्रभाते सीतयाऽऽरुह्य नौकायां लक्ष्मणेन सः ॥७६॥
प्रेषयामास सरथं सुमंत्रं नगरीं प्रति । गुहस्तां वाहयामास नौकां स्वज्ञातिभिस्तदा ॥७७॥
गंगामध्यगतां गंगां प्रार्थयामास जानकी । देवि गंगे नमस्तेऽस्तु निवृत्ता वनवासतः ॥७८॥
रामेण सहिताऽहं त्वां लक्ष्मणेन च पूजये । सुरामांसोपहारैश्च नानाबलिभिरादृता ॥७९॥
इत्युक्त्वा परकूलं तु गत्वा रामो गुहं तदा । विसर्जयित्वा तत्रैकां निशां नीत्वा शनैः शनैः ॥८०॥
भारद्वाजाश्रमं गत्वा तस्थौ तेनातिमानितः । ततः प्रयागे यमुनां तीर्त्वा गत्वा महावनम् ॥८१॥
वाल्मीकेराश्रमं गत्वा तस्थौ तेनातिपूजितः । चित्रकूटे लक्ष्मणेन पर्णशालां मनोरमाम् ॥८२॥
कृत्वा मांसैर्मृगोद्भूतैर्बलिं दत्त्वा रघूत्तमः । तस्थौ तस्यां सुखं भ्रात्रा सीतया स्वगृहं यथा ॥८३॥
शयनासनपाकाग्निदेवादीनां पृथक् पृथक् । तत्रासन्विविधाः शालास्तरुवल्लिविराजिताः ॥८४॥
कंदैर्मूलैर्वनोद्भूतैर्मृगमांसफलादिभिः । मुनीश्वराणामातिथ्यं चक्रुस्ते स्वगृहे यथा ॥८५॥
एकदा निद्रितं रामं सीतांके सन्निरीक्ष्य च । ऐन्द्रः काकस्तदागत्य नखैस्तुंडेन चासकृत् ॥८६॥
सीतांगुष्ठं मृदु रक्तं विददारामिषाशया । निद्राभंगभयाद्भर्तुः सीतया न निवारितः ॥८७॥
सीतांगुष्ठं तु काकेन भिन्नं दृष्ट्वा रघूत्तमः । अभिद्रवंतं रक्तास्यमीषिकास्त्रं मुमोच सः ॥८८॥
केनाप्यरक्षितस्यास्त्रभयाद्ब्रह्मांडगोलके । स्वशरणमागतस्यास्य पुनर्नारदवाक्यतः ॥८९॥
ईषिकास्त्रेण काकस्य बिभेद नयनं क्षणात् । एवं नानाकौतुकानि कुर्वंस्तस्थौ सुखं प्रभुः ॥९०॥

॥ ६९–७३ ॥ उस समय इन्द्रादि देवताओंने मार्गमें उनका सत्कार किया। वनमें जाते हुए रामको अनेक शुभ शकुन दीखे ॥ ७४ ॥ वे वहाँ एक रात्रि निवास करके शृङ्गवेरपुर गये। वहाँ निषादराजके द्वारा सम्मानित होकर उस रातको वहीं विताया ॥ ७५ ॥ सवेरे रामने निषादके द्वारा लाये हुए वटवृक्षके दूधसे जटा बाँधी। तदनन्तर सीता तथा लक्ष्मणके साथ नौकापर सवार हुए ॥ ७६ ॥ वहाँसे रथसहित सुमन्त्रको अयोध्या लौटा दिया। तब निषादराजने स्वयं अपने जातिवालोंके साथ मिलकर नावको खेना आरम्भ किया ॥ ७७ ॥ जानकीने वीच धारामें जाकर गङ्गाजीकी प्रार्थना की और कहा—हे देवि गंगे ! आपको नमस्कार है। मैं राम तथा लक्ष्मणके साथ वनसे सकुशल लौटकर आदर तथा श्रद्धापूर्वक मांस-मदिरा आदिके उपहारोंसे आपकी पूजा करूँगी ॥ ७८ ॥ ७९ ॥ उस पार जा तथा वहाँ एक रात निवास करके रामने निषादको लौटा दिया और धीरे-धीरे चलकर भारद्वाजके आश्रमपर जा पहुँचे। वहाँ उनका अत्यन्त आग्रह देखकर ठहर गये। सबेरे प्रयागमें यमुनाको पार करके चले और महावन (चित्रकूट) में स्थित वाल्मीकिके आश्रममें जा पहुँचे। वहाँ उनसे पूजित होकर ठहरे। चित्रकूटमें रामने लक्ष्मणसे एक मनोहर पर्णकुटी बनवायी ॥ ८०–८२ ॥ मृगोंके मांसकी बलि देकर रघूत्तम राम सीता तथा भाईके साथ सुखपूर्वक घरकी तरह उसमें रहने लगे ॥ ८३ ॥ शयनका बैठनेका, खानेका, अग्निका तथा देवता आदिका स्थान विविध बेतों और लताओंसे निर्माण किया गया। वे स्थान अति रमणीक लगते थे ॥ ८४ ॥ वहाँ उत्पन्न होनेवाले कंद-मूल-फल तथा मृगमांस आदिसे, जैसे अपने भवनमें मुनीश्वरोंका सत्कार करते थे, वैसे ही सत्कार करने लगे ॥ ८५ ॥ एक समय सीताकी गोदमें सिर रख-कर रामको सोते देख इन्द्रका पुत्र जयन्त कौआ बनकर वहाँ आया और अपने नख तथा चोंचसे बारम्बार सीताके पाँवके लाल अंगूठेका मांस खानेकी इच्छासे उसे विदीर्ण करने लगा। सीताने पतिकी निद्रा भंग हो जानेके भयसे उसको नहीं हटाया ॥ ८६ ॥ ८७ ॥ जागनेके बाद रामने सीताके अंगूठेको कौएके द्वारा विदारित देखकर रक्तरञ्जित मुखवाले भागते हुए कौएपर सींकका अस्त्र छोड़ा ॥ ८८ ॥ ब्रह्माण्ड भरमें उस अस्त्रके भयसे जब किसीने जयन्तकी रक्षा नहीं की, तब नारदके कहनेपर वह रामकी शरणमें आया। उस समय क्षणभरमें रामने सींकके अस्त्रसे जयन्तकी केवल एक आँख फोड़कर उसे जीवनदान दे दिया। इस प्रकार सबके प्रभु राम विविध

सुमंत्रोऽपि पुरीं गत्वा नृपं वृत्तं न्यवेदयत् । सोऽपि राजा राघवेति जपन्स्वं जीवितं जहौ ॥९१॥
नृपं मृतं गुरुर्ज्ञात्वा तैलद्रोण्यां निधाय तम् । युधाजिन्नगराद्दूतैः कैकेय्यास्तनयावुभौ ॥९२॥
आनयामास भरतशत्रुघ्नौ वेगतस्तदा । तावुभावपि वेगेन स्वां पुरीं संविवेशतुः ॥९३॥
मात्रा संपादितं कृत्यं ज्ञात्वा धिक्कृत्य मातरम् । भरतः पितरं वह्निं ददौ सरयुसैकते ॥९४॥
वीराणां मातरस्ताश्च जग्मुर्न स्वामिना दिवम् । पितुरुत्तरकार्यादि कर्म कृत्वा सविस्तरम् ॥९५॥
मंथरां ताडयामास मातुरग्रे पुनः पुनः । प्रार्थितोऽप्यभिषेकार्थं राज्यमंगीचकार न ॥९६॥
ततो मंत्रिजनैः साकं मातृभिः पुरवासिभिः । परावर्तयितुं रामं ययौ स भरतस्तदा ॥९७॥
गुहेन मानितश्चापि भारद्वाजाश्रमं ययौ । तपोबलेन भूस्वर्गं निर्माय भरतं मुनिः ॥९८॥
ससैन्यं पूजयामास तं नत्वा भरतोऽपि सः । मुनिसंदर्शितपथा चित्रकूटेऽग्रजं ययौ ॥९९॥
दृष्ट्वा रामं तु शालायां सीतया बंधुना स्थितम् । नत्वा तेनालिंगितश्च सर्वं वृत्तं न्यवेदयत् ॥१००॥
रामः श्रुत्वा मृतं तातं गत्वा मंदाकिनीं नदीम् । स्नात्वा तिलांजलिं दत्त्वा ययौ शालां निजांगिरौ १०१॥
ततस्तं प्रार्थयामास भरतो गुरुणा सह । राज्यार्थं राघवश्चापि नेत्युवाच पुनः पुनः ॥१०२॥
प्रायोपवेशनं तत्र दर्भेषु भरतस्तदा । चकार निग्रहं तस्य ज्ञात्वा गुरुमचोदयत् ॥१०३॥
रामाज्ञया गुरुश्चाह भरतं बोधयंस्तदा । भूभारहरणार्थाय विष्णुः साक्षाद्रघूत्तमः ॥१०४॥
अत्र जातोऽस्ति देवानां वचनाद्रावणादिकान् । हंतुं गच्छति रामोऽद्य मा त्वं निग्रहमाचर ॥१०५॥
ततो ज्ञात्वा हरिं रामं भरतो राममब्रवीत् । राज्यार्थं पादुके देहि तयोः सेवां करोम्यहम् ॥१०६॥
जटावल्कलधारी च वसामि नगराद्बहिः । प्रतीक्षां तत्र राजेंद्र वर्षाणि च चतुर्दश ॥१०७॥

लीलायें करने लगे ॥८९॥९०॥ उधर सुमन्त्रने अवधपुरीमें जाकर राजा दशरथको सब वृत्तान्त सुनाया। राजाने भी 'हा राघव ! हा राघव !' करते-करते प्राण छोड़ दिये ॥ ९१ ॥ तब गुरु वसिष्ठने मृत राजाके शरीरको तेलके टाँकेमें रखवा दिया और युधाजित्के नगरमें टिके दोनों पुत्रों भरत-शत्रुघ्नको दूतोंके द्वारा तुरन्त बुलवाया। वे दोनों शीघ्र अपने नगरमें आये तथा माताके कुकृत्यको सुनकर उसे धिक्कारने लगे। भरतने पिताके शरीरका सरयू नदीकी बालुकामें अग्निसंस्कार किया ॥ ९२–९४ ॥ वीर पुरुषोंकी माताएँ स्वामीके साथ स्वर्गलोकको नहीं गयीं। भरतने पिताकी उत्तरक्रियायें विस्तार सहित कीं ॥ ९५ ॥ तदनन्तर भरत-शत्रुघ्नने माताके सामने मंथराको बारम्बार पीटा और माताके बहुत कहनेपर भी भरतने राज्य नहीं स्वीकार किया ॥ ९६ ॥ पश्चात् वे मन्त्रियों, माताओं तथा पुरवासियोंके साथ रामको लौटा लानेके हेतु वनको गये ॥ ९७ ॥ रास्तेमें भरत निषादराज द्वारा सम्मानित होकर भारद्वाजके आश्रममें पधारे। मुनिने अपने तपोबलसे पृथ्वीपर स्वर्गकी रचना करके सेना सहित भरतका सत्कार किया। तदनन्तर भरत उनको प्रणाम करके उनके बतलाये हुए रास्तेसे चित्रकूटमें अपने बड़े भाई रामके पास गये ॥ ९८ ॥ ९९ ॥ पर्णशालामें सीता तथा लक्ष्मण सहित रामको देखकर भरतने उन्हें प्रणाम किया। तदनन्तर रामसे आलिङ्गित होकर उन्होंने सब वृत्तान्त उन्हें कह सुनाया ॥१००॥ पिताकी मृत्यु सुनकर राम मन्दाकिनी नदीपर गये। वहाँ स्नान करके तिलाञ्जलि दी और पर्वतपर स्थित अपनी पर्णशालामें लौट आये ॥ १०१ ॥ गुरु वसिष्ठको साथ लेकर भरतने रामसे राज्य स्वीकार करनेके लिये बारम्बार प्रार्थना की। तिसपर भी राम उसको बार-बार अस्वीकार ही करते गये ॥१०२॥ तब भरत कुशाके आसनपर बैठकर अनशन (उपवास) करने लगे। उनकी दृढ़ता तथा असन्तोष देखकर रामने गुरु वसिष्ठसे भरतको समझानेके लिये कहा ॥ १०३ ॥ रामकी आज्ञासे गुरुने भरतको समझाते हुए कहा कि ये विष्णुस्वरूप रघूत्तम राम भूभार हरण करनेके लिये इस पृथ्वीपर अवतरे हैं। ये देवताओंके अनुरोधसे रावण आदिको मारने जा रहे हैं। इस कारण तुम हठ मत करो ॥ १०४ ॥ १०५ ॥ तब भरत रामको साक्षाद् ईश्वर जानकर उनसे बोले–हे राम ! राजकार्य करनेके लिए आप अपनी खड़ाऊँ दे दें। जटा-वल्कलधारी मैं उनकी नित्य सेवा पूजा करता हुआ नगरके बाहर रहूँगा। परन्तु हे राजेन्द्र ! यदि आप

कृत्वा चतुर्दशे वर्षे पूर्णे गुप्ते रवौ त्वहम् । प्रवेक्ष्याम्यनलं राम सत्यमेतद्वचो मम ॥१०८॥
ततस्य वचनं श्रुत्वा तथेत्युक्त्वा रघूत्तमः । राज्यार्थं स्वीयपदयोः पादुके रत्नभूषिते ॥१०९॥
ददौ रामस्तदा तस्मै ततस्तं स व्यसर्जयत् । गृहीत्वा पादुके दिव्ये भरतो रत्नभूषिते ॥११०॥
मस्तकोपरि ते बद्ध्वा कृतकृत्यममन्यत । ततो नत्वा रघुश्रेष्ठं परिक्रम्य पुनः पुनः ॥१११॥
सैन्येन मातृभिः शीघ्रं राममामंत्र्य सो ययौ । संप्रार्थयत्कैकयी सा रामचन्द्रं पुनः पुनः ॥११२॥
मयाऽपराधितं राम तत्क्षंतव्यं रघूत्तम । तामाह रामचंद्रोऽपि न त्वया मेऽपराधितम् ॥११३॥
मच्छंदान्मंथरावाक्यात्त्वं वाण्या मोहितातदा । सुखं गच्छांब स्वपुरीं न क्रोधोऽस्ति मम त्वयि ॥११४॥
इत्युक्ता रामचंद्रेण भरतेन न्यवर्तत । भरतः पूर्वमार्गेण ययौ स्वनगरीं मुदा ॥११५॥
सर्वान् स्थाप्य नगर्यां तु नंदिग्राममकल्पयत् । तस्थौ स भरतस्तत्र स्थाप्य सिंहासनोपरि ॥११६॥
रामस्य पादुके दिव्ये फलमूलाशनः स्वयम् । राजकार्याणि सर्वाणि यावंति पृथिवीपतेः ॥११७॥
तानि पादुकयोः सम्यङ्निवेदयति राघवः । गणयन्दिवसान्येव रामागमनकांक्षया ॥११८॥
स्थितो रामार्पितमनाः साक्षाद्ब्रह्ममुनिर्यथा । रामोऽपि चित्रकूटाद्रौ वसन्मुनिभिरादृतः ॥११९॥
चकार सीतया क्रीडां विपिने रम्यपर्वते । मनःशिलासुतिलकं सीताया भालकेऽकरोत् ॥१२०॥
गंडयोश्चित्रवल्लीः स चकार निजहस्ततः । वृक्षारुणदलैश्चित्रैः कोमलैः कुसुमादिभिः ॥१२१॥
एवं क्रीडन्सुखं रामस्तस्थौ पत्न्याऽनुजेन च । नागरास्तं सदा जग्मू रामदर्शनलालसाः ॥१२२॥
दृष्ट्वा सजनसंबाधं रामस्तत्याज तं गिरिम् । अन्वगात्सीतया भ्रात्रा ह्यत्रेराश्रममुत्तमम् ॥१२३॥
नत्वाऽत्रिं मानितस्तेन तस्थौ तत्र दिनत्रयम् । गृहस्थामनुसूया तां सीताऽत्रेर्वचनात्तदा ॥१२४॥

निश्चित समयपर नहीं लौटेंगे तो मैं चौदह वर्ष समाप्तिके दिन सूर्यास्तके समय अग्निमें प्रवेश कर जाऊँगा। हे राम ! मेरी इस प्रतिज्ञाको आप सत्य समझें ॥ १०६-१०८ ॥ उनके इस वचनको सुनकर रघूत्तम रामने "तथाऽस्तु" कहा और राज्यके लिए अपने पावँकी रत्नभूषित पादुकाएँ देकर उन्हें विदा किया। भरतने उन रत्नभूषित पादुकाओंको लेकर माथे चढ़ाया और अपने आपको कृतकृत्य समझा। पश्चात् रघुश्रेष्ठ रामको बारम्बार प्रणाम करके परिक्रमा की और उनकी आज्ञा लेकर भरत माता और सेनाके साथ तुरन्त अयोध्याकी ओर चल दिये। उस समय कैकेयी पुनः पुनः रामसे प्रार्थना करने लगी—॥ १०९-११२ ॥ हे राम ! हे पुरुषोत्तम ! मैंने जो अपराध किया है, उसे क्षमा कर दो। रामने कहा—माताजी ! तुम्हारा कोई अपराध नहीं है ॥ ११३ ॥ मेरी इच्छासे ही सरस्वतीने मंथराके वाक्यसे तुमको मोहित कर दिया था। हे अम्ब ! अब तुम सुखपूर्वक अयोध्या जाओ। मुझे तुमपर कुछ भी क्रोध नहीं है ॥ ११४ ॥ ऐसा कहनेके बाद कैकेयी रामके कथनानुसार भरतके साथ नगरको लौटी। भरत भी सहर्ष जिस मार्गसे आये थे, उसी मार्गसे अपनी नगरीको लौट गये ॥ ११५ ॥ वहाँ जा तथा सबको नगरमें पहुँचाकर उन्होंने नन्दीग्राम बसाया। वहीं भरत सिंहासनपर रामकी दिव्य खड़ाऊँ रख तथा फल-मूल खाकर रहने लगे। राज्यके जो-जो काम आते थे, उन सबको भरत-जी खड़ाऊँके सामने लाकर प्रतिदिन निवेदन कर दिया करते थे। इस प्रकार राममें मन लगाकर रात्रि-दिवसोंको गिनते हुए भरत साक्षात् ब्रह्ममुनिकी भाँति समय व्यतीत करने लगे। उधर राम भी मुनियोंसे सत्कार प्राप्त करके सानन्द चित्रकूट पर्वतपर रहने लगे ॥ ११६-११९ ॥ उस पवित्र तथा मनोहर वनमें राम सीताके साथ क्रीड़ा करते थे। मैनसिलकी सुन्दर शिलापर चन्दनादि घिसकर राम सीताके मस्तकपर तिलककी रचना करते थे ॥१२०॥ अपने कोमल हाथोंसे सीताके कोमल गालोंपर चित्रावलीका निर्माण करते थे। वृक्षोंके कोमल-कोमल लाल पत्तों और अनेक प्रकारके फूलोंसे सीताको सजाते थे ॥ १२१ ॥ इस प्रकार क्रीड़ा करते हुए राम अपनी प्राणप्यारी पत्नी तथा अनुज लक्ष्मणके साथ सुखपूर्वक रहते थे। वहाँ अनेक नागरिक रामके दर्शनकी अभिलाषासे सदा उनके पास आते रहते थे ॥ १२२ ॥ इस प्रकार लोगोंका आवागमन देखकर रामने उस पर्वतको छोड़ दिया और भाई लक्ष्मण तथा सीताको लेकर अत्रिऋषिके उत्तम आश्रमकी ओर चल

नत्वा तयाऽऽलिंगिता सा तदंके सम्मुपाविशत् । अनुसूया तदा सीतां पूजयामास सादरम् ॥१२५॥
दिव्ये ददौ कुण्डले द्वे निर्मिते विश्वकर्मणा । दुकूले द्वे ददौ तस्यै निर्मले भक्तिसंयुता ॥१२६॥
अंगरागं च सीतायै ददावत्रेस्तु सा प्रिया । न त्यक्ष्यतेऽङ्गशोभां त्वं कदापि जनकात्मजे ॥१२७॥
पातिव्रत्यं पुरस्कृत्य राममन्वेहि जानकि । कुशली राघवो यातु त्वया भ्रात्रा पुनर्गृहम् ॥१२८॥
भोजयित्वा यथान्यायं रामं सीतासमन्वितम् । अत्रिर्विसर्जयामास रामो नत्वा ययौ वनम् ॥१२९॥
एवं वर्षमतिक्रांतं । रामस्य गिरिवासिनः । यथासुख लक्ष्मणेन जानक्या सहितस्य च ॥१३०॥
एवं गिरींद्रजेऽयोध्यापुर्यां रामेण यत्कृतम् । चरित्रं तन्मया किंचित्त्वदग्रे विनिवेदितम् ॥१३१॥

इति श्रीशतकोटिरामचरितांतर्गते श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये सारकाण्डे
अयोध्याचरित्रे दंडकवनप्रवेशो नाम षष्ठः सर्गः ॥ ६ ॥

सप्तमः सर्गः

(रामके द्वारा विराध और खर-दूषणका वध)

श्रीशिव उवाच

अथ रामः सीतया तु लक्ष्मणेन समन्वितः । ययौ स दंडकारण्यं सज्जं कृत्वा मनद्धनुः ॥ १ ॥
अग्रे ययौ स्वयं रामस्तत्पृष्ठे जानकी ययौ । तस्याः पृष्ठे स सौमित्रिर्ययौ धृतशरासनः ॥ २ ॥
वने दृष्ट्वाऽथ कासारं स्नात्वा पीत्वा जल सुखम् । भुक्त्वा फलानि पक्वानि तस्थुस्तत्र क्षणं त्रयः ॥ ३ ॥
एतस्मिन्नंतरे तत्र विराध नाम राक्षसम् । ते तं दद्दशुरायांतं महासत्त्वं भयानकम् ॥ ४ ॥
करालदंष्ट्रावदनं भीषयंतं स्वगर्जितैः । वामांसन्यस्तशूलाग्रग्रथितानेकमानुषम् ॥ ५ ॥
भक्षयंत गजं व्याघ्रं महिषं वनगोचरम् । ज्यारोपितं धनुर्धृत्वा रामो लक्ष्मणमब्रवीत् ॥ ६ ॥

दिये ॥ १२३ ॥ अत्रि ऋषिको नमस्कार करनेके बाद उनसे सम्मानित होकर वे वहाँ तीन दिन ठहरे। अत्रिके कहनेसे सीता कुटीमें स्थित अनसूयाके पास गयीं ॥ १२४ ॥ नमस्कार करनेपर उन्होंने सीताका आलिङ्गन किया और सीता उनकी गोदमें बैठ गयीं। पश्चात् अनसूयाने उनका आदर-सत्कार करके पूजन किया ॥ १२५ ॥ तदनन्तर विश्वकर्माके बनाये दो दिव्य कुण्डल और दो स्वच्छ सूक्ष्म वस्त्र प्रेम तथा भक्तिपूर्वक सीताको दिये ॥ १२६ ॥ अत्रिकी प्रिया अनसूयाने सीताका महावर आदि रङ्ग भी अङ्गोंमें लगानेके लिए दिये और कहा—हे जनकात्मजे! यह रङ्ग तुम्हारे अङ्गोंपरसे कभी नहीं उतरेगा ॥ १२७ ॥ हे जानकी! पातिव्रत धर्मको निभाती हुई तुम रामकी अनुगामिनी बनो। यथासमय राम तुम्हारे तथा भाई लक्ष्मणके साथ सकुशल घर लौट जायँगे ॥ १२८ ॥ तब अत्रिने सीता सहित रामको यथोचित भोजन कराकर विदा किया। राम भी नमस्कार करके चल दिये ॥ १२९ ॥ इस तरह रामको सीता तथा भाईके सहित सुखपूर्वक पर्वतोंपर निवास करते हुए एक वर्ष बीत गया ॥ १३० ॥ हे गिरीन्द्रजे! अयोध्यापुरीमें रामने जो काम किया था, वह सब मैंने तुम्हारे सामने कह सुनाया ॥ १३१ ॥ इति श्रीशतकोटिरामचरितान्तर्गते श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये सारकाण्डे अयोध्याचरित्रे पं० रामतेजपाण्डेयकृत'ज्योत्स्ना'भाषाटीकायां दण्डकवनप्रवेशो नाम षष्ठः सर्गः ॥ ६ ॥

शिवजी बोले—हे गिरजे! इसके बाद राम बड़े भारी सज्जीकृत धनुषको हाथमें लेकर सीता तथा लक्ष्मणके साथ दण्डकारण्यमें गये ॥ १ ॥ आगे आगे स्वयं राम, पीछे सीता और उनके पीछे हाथमें धनुष धारण करके लक्ष्मण चले ॥ २ ॥ वनमें एक सरोवर देखा तो सुखपूर्वक स्नान करके जल पिया और पके फलोंको खाकर क्षणभर तीनोंने वहाँ विश्राम किया ॥ ३ ॥ इतनेहीमें उन्होंने अपनी ओर आते हुए बड़े भयानक विराध नामके राक्षसको देखा ॥ ४ ॥ वह अपने विकराल दाँतवाले मुखको फैला तथा भयानक गर्जन करता हुआ उन लोगोंको डराने लगा। उसने अपने भालेकी नोकमें बींधकर बहुतसे मनुष्योंको धारण कर रक्खा था। वह वनचर व्याघ्र, हाथी और महिष आदिको भी मार-मारकर खा रहा था। यह देख राम

रक्ष त्वं जानकीमत्र संहनिष्यामि राक्षसम् । स तु दृष्ट्वा रमानाथं लक्ष्मणं जानकीं तदा ॥७॥
कौ युवामिति तौ प्राह ततो रामस्तमब्रवीत् । नामकर्म निजं सर्वं कैकेय्याऽपि च यत्कृतम् ॥८॥
तद्रामवचनं श्रुत्वा विहस्य राक्षसोऽब्रवीत् । मां जानासि त्वं राम विराधं लोकविश्रुतम् ॥९॥
मद्भयान्मुनयः सर्वे त्यक्त्वा वनमितो गताः । यदि जीवितुमिच्छास्ति त्यक्त्वा सीतां निरायुधौ १०॥
पलायेतां न चेच्छीघ्रं भक्षयामि युवामहम् । इत्युक्त्वा राक्षसः सीतामादातुमभिदुद्रुवे ॥११॥
रामश्चिच्छेद तद्बाहू शरेण प्रहसन्निव । ततः क्रोधपरीतात्मा व्यादाय विकटं मुखम् ॥१२॥
राममभ्यद्रवद्रामश्चिच्छेद परिधावृतः । पदद्वयं तदा सर्प इवास्येन ययौ पुनः ॥१३॥
ततोऽर्धचंद्राकारेण निहतो राघवेण सः । ततः सीता समालिंग्य प्रशशंस रघूत्तमम् ॥१४॥
देवदुन्दुभयो नेदुर्दिवि देवगणेरिताः । ततो विराधकायात्तु पुरुषश्च विनिर्गतः ॥१५॥
नत्वा रामं निजं वृत्तं कथयामास सादरम् । दुर्वाससाऽहं शप्तस्तु पुरा विद्याधरः शुभः ॥१६॥
इदानीं मोचितः शापात्त्वया कालांतराद्वने । इत्युक्त्वा राघवं स्तुत्वा विमानेन ययौ दिवम् ॥१७॥
विराधे स्वर्गते रामो लक्ष्मणेन च सीतया । जगाम शरभंगस्य वनं सर्वसुखावहम् ॥१८॥
शरभगं ततो नत्वा तेन सम्मानितो बहु । तस्थौ तत्र निशामेकां शरभंगो मुनीश्वरः ॥१९॥
तस्मै समर्प्य स्वं पुण्यमारुरोह चितिं तदा । स्तुत्वा तं स विमानेन वैकुण्ठं परमं ययौ ॥२०॥
ततः शनैः सुतीक्ष्णस्य ययावाश्रममुत्तमम् । नत्वा तं पूजितस्तेन सुखं तस्थौ रघूद्वहः ॥२१॥
एतस्मिन्नंतरे तत्र नानाश्रमनिवासिनः । मुनयो राघवं द्रष्टुं समाजग्मुः सहस्रशः ॥२२॥
सर्वे ते राघवं नत्वा स्तुत्वा निन्युर्निजं निजम् । आश्रमं सीतया भ्रात्रा चक्रुः पूजां सविस्तराम् ॥२३॥

धनुषपर डोरी चढ़ाकर लक्ष्मणसे बोले-॥ ५ ॥ ६ ॥ हे लक्ष्मण ! तुम यहाँ जानकीकी रक्षा करो । मैं इस दुष्ट राक्षसको मारूँगा । वह राक्षस रमापति राम, लक्ष्मण तथा जानकीको देखकर बोला—तुम कौन हो ? तब रामने अपना नाम, काम तथा कैकेयीका कृत्य सब कुछ कह सुनाया ॥ ७ ॥ ८ ॥ रामके वचनको सुनकर राक्षस हँसा और कहने लगा-हे राम ! क्या तू लोकविख्यात विराधको नहीं जानता ? ॥ ९ ॥ मेरे ही डरसे सब मुनि इस वनको छोड़कर भाग गये हैं । यदि तुम दोनों जीना चाहते हो तो सीता तथा शस्त्रको छोड़कर भाग जाओ । नहीं तो तुम दोनोंको मैं अभी खा जाऊँगा । इतना कहकर वह राक्षस सीताको पकड़ने दौड़ा ॥ १० ॥ ११ ॥ तब हँसते हुए रामने उसके दोनों हाथोंको अपने बाणसे काट दिया । तब विराध क्रुद्ध हो तथा विकट मुख फैलाकर रामकी ओर दौड़ा । तब रामने अति वेगसे दौड़कर उसके दोनों पाँवोंको भी काट डाला । फिर वह सर्पकी तरह मुखसे खानेके लिये झपटा ॥ १२ ॥ १३ ॥ तब रामने अपने अर्द्धचन्द्राकार बाणसे उनके सिरको भी काट डाला और वह मर गया । यह देख सीता रामका आलिङ्गन करके उनकी प्रशंसा करने लगीं ॥ १४ ॥ तभी आकाशमें देवताओंके नगाड़े बजने लगे । पश्चात् विराधके शरीरसे एक दिव्य पुरुष प्रकट हुआ ॥ १५ ॥ वह रामको प्रणाम करके बड़े आदरसे अपनी कहानी सुनाते हुए कहने लगा-पूर्व समयमें मैं एक सुन्दर विद्याधर था, परन्तु दुर्वासा ऋषिने मुझको शाप देकर इस दशाको प्राप्त करा दिया ॥ १६ ॥ आज बहुत कालके बाद आपने मुझको उस शापसे युक्त किया है । यह कह और रामकी स्तुति करके वह विमानमें बैठकर स्वर्ग चला गया ॥ १७ ॥ विराधके चले जानेपर राम लक्ष्मण तथा सीताके साथ सर्वसुखदायक शरभंग मुनिके वनमें पधारे ॥ १८ ॥ उनको नमस्कार करके तथा उनसे सम्मानित होकर वे एक रात्रि वहाँ ठहरे । मुनिश्रेष्ठ शरभंगने अपना सब पुण्य उनके चरणोंमें समर्पण करके रामके सामने ही चितामें प्रवेश किया और उनकी स्तुति करके विमानपर बैठकर दिव्य रूपसे वैकुण्ठ धामको चले गये ॥ १९ ॥ २० ॥ वहाँसे रामने सुतीक्ष्ण मुनिके सुन्दर आश्रमकी ओर प्रयाण किया । वहाँ पहुँचनेपर रामने मुनिको नमस्कार किया । मुनिने उनका बहुत सत्कार करके अपने यहाँ ठहराया ॥ २१ ॥ वहाँ श्रीरामके दर्शनार्थ विविध आश्रमोंसे हजारों मुनि आते थे ॥ २२ ॥ वे सब सीता तथा लक्ष्मणके सहित रामको नमस्कारकर और उनकी स्तुति करके उन्हें अपने-अपने आश्रममें ले

एकरात्रं त्रिरात्रं वा पंच सप्त दिनानि वा । पक्षमात्रं तु मासं वा सार्धमासमथापि वा ॥२४॥
त्रिमासान्पंचमासं वा षष्ठाष्टैकादशाथवा । साग्रं संवत्सरं वापि स्वाश्रमेषु रघूत्तमम् ॥२५॥
संस्थाप्य चक्रुरातिथ्यमधिकं चोत्तरोत्तरम् । पत्न्याऽनुजेन श्रीराममेवं पूज्य विसर्जयन् ॥२६॥
भ्रमतैवं हि रामेण नव वर्षाणि दंडके । आश्रमेषु मुनीनां च व्यतिक्रांतानि वै सुखम् ॥२७॥
बहवो निहतास्तत्र राक्षसा भ्रमता तदा । राघवेण सह भ्रात्रा क्रीडताऽवनिकन्यया ॥२८॥
नानाश्रमारामपुष्पवनोपवनभूमिषु । नदीजलतटाकाद्रिशिखरादिस्थलेष्वपि ॥२९॥
जंब्वाम्ररंभाद्राक्षादिनानावृक्षलतेषु हि । चकार सीतया क्रीडां रामो देव्या यथा शिवः ॥३०॥
अथ रामो ययौ कुम्भसंभवस्यानुजाश्रमम् । सुमतिः पूजयामास राघवं सीतयान्वितम् ॥३१॥
ततः सीतायुतो रामः शनैर्भ्रात्रा मुदान्वितः । अगस्तेराश्रमं प्राप नानावृक्षविराजितम् ॥३२॥
प्रत्युद्गम्य मुनिश्चापि मुनिभिर्वटुभिर्वृतः । राघवं तं समालिंग्य स्वाश्रमं तेन सो ययौ ॥३३॥
अथ तं पूजयामास राघवं कुम्भसंभवः । रामोऽपि मानितस्तेन तस्थौ तत्र कियद्दिनम् ॥३४॥
ततः स्तुत्वा रमानाथमगस्त्यो मुनिसत्तमः । ददौ चापं महेन्द्रेण रामार्थं स्थापितं पुरा ॥३५॥
अक्षय्यौ बाणतूणीरौ खड्गं रत्नविभूषितम् । ततो रामो मुनेर्वाक्याद्गौतम्या उत्तरे तटे ॥३६॥
ययौ पंचवटीं रम्यां मार्गे दृष्ट्वाऽथ पक्षिणम् । जटायुषं नगाकारमरुणात्मजमुत्तमम् ॥३७॥
सखायं स्वपितुश्चापि संभाष्याथ विवेश तम् । तत्र कृत्वा महाशालां यथा पूर्वं कृता गिरौ ॥३८॥
मृगमांसैर्बलिं दत्त्वा तस्थौ रामो यथासुखम् । सीतां संरक्षयामास जटायुः पक्षिराट् स्वयम् ॥३९॥
राघवस्य पंचवट्यां सीतया क्रीडतः सुखम् । सार्धत्रीणि वत्सराणि व्यतिक्रांतानि पार्वति ॥४०॥
वने शूर्पणखापुत्रं तपंतं सांबनामकम् । ब्रह्मा ददौ दिव्यखड्गं तं सांबो न ददर्श सः ॥४१॥
तद्धृत्वा लक्ष्मणः खड्गं वृक्षान्वल्लीर्बभंज सः । वृक्षगुल्मे हतः सांबस्ततो राघवमब्रवीत् ॥४२॥

जाते और विधिवत् पूजा करते थे ॥ २३ ॥ वे एक-दो दिन, पांच-सात मास अथवा पूरे वर्ष भर अपने आश्रममें रखकर रघूत्तम रामका प्रतिदिन अधिकाधिक प्रेमसे आतिथ्य करते और अन्तमें पत्नी तथा भाईके सहित रामका पूजन करके विदा करते थे ॥ २४ –२६ ॥ इस तरह मुनियोंके आश्रमोंमें घूम-फिरकर रामने सुखसे नौ वर्ष बिता दिये ॥ २७ ॥ वहाँ भाई लक्ष्मणके साथ भ्रमण करते हुए रामने बहुतसे राक्षसोंको मार डाला ॥ २८ ॥ रामने अनेक आश्रमोंमें, बागोंमें, पुष्प भरे वनोंमें, नदीके जलमें, तालाबोंमें, पर्वतके शिखर आदि स्थलोंमें, जामुन, आम, केला, दाख आदि अनेक वृक्षों तथा लताकुञ्जोंमें सीताके साथ शिव-पार्वतीकी तरह क्रीड़ा की ॥ २९ ॥ ३० ॥ तत्पश्चात् राम कुम्भज ऋषिके छोटे भाई मार्कण्डि मुनिके आश्रमपर गये। उन बुद्धिमान् मुनिने भी सीतासहित रामकी पूजा की ॥३१॥ वहाँसे चलकर सीता तथा भाईके साथ राम विविध वृक्षोंसे मंडित अगस्त्य मुनिके आश्रमपर गये ॥ ३२ ॥ वहाँ मुनि अगस्त्य अन्य मुनियों और ब्रह्मचारियोंसे साथ आगे आये और रामका आलिङ्गन करके आश्रममें ले गये ॥ ३३ ॥ उन्होंनें रामकी विधिवत् पूजा की। उनसे पूजित होकर रामने वहाँ कुछ दिन निवास किया ॥ ३४ ॥ मुनिश्रेष्ठ अगस्त्यने रामकी प्रशंसा की और इन्द्रके द्वारा प्रदत्त तथा उनके लिये पहिलेसे ही रक्खा हुआ धनुष रामको दिया ॥ ३५ ॥ अक्षय बाणवाले दो तूणीर (तरकस) तथा रत्नजटित तलवार दी। पश्चात् रामने मुनिके कथनानुसार गौतमी नदीके उत्तरी किनारेपर स्थित रमणीक पञ्चवटीकी ओर प्रस्थान किया। रास्तेमें उनको पर्वताकार अरुणपुत्र एवं उनके पिताका श्रेष्ठ मित्र जटायु नामका पक्षी मिला। उससे सम्भाषण करके वनमें आगे बढ़े। चित्रकूटकी तरह वहाँपर भी उन्होंने पर्णकुटी बनवायी ॥ ३६ ॥ ३७ ॥ वहाँ मृगोंके मांसकी बलि देकर राम आनन्दसे रहने लगे। पक्षिराज जटायु स्वयं सीताकी रक्षा करने लगा ॥ ३८ ॥ ३९ ॥ हे पार्वती ! पंचवटीमें रामको सीताके साथ क्रीड़ा करते हुए साढ़े तीन वर्ष व्यतीत हो गये ॥ ४० ॥ उस वनमें सूर्पणखाका पुत्र साम्ब तप करता था। यह देखकर ब्रह्माने एक दिव्य खड्ग उसे दिया, पर इस बातका साम्बको पता नहीं लगा ॥ ४१ ॥ तब लक्ष्मणने

प्रायश्चित्तं ब्रह्महणं मां वद त्वं रघूत्तम । रामोऽप्याह हतः सांबो राक्षसो न मुनिर्हतः ॥४३॥
तच्छ्रुत्वा लक्ष्मणस्तुष्टःसांबमात्रापि तच्छ्रुतम् । तत्स्मरंती पुत्रदुःखं राक्षसी कामरूपिणी ॥४४॥
विचचार शूर्पणखा नाम्नी च सर्वघातिनी । एकदा पंचवट्यां सा रामं दृष्ट्वाऽथ राक्षसी ॥४५॥
पुत्रदुःखसमाक्रांता धृत्वा रूपं मनोहरम् । कापट्यबुद्ध्या श्रीरामं सानुजं हंतुमुद्यता ॥४६॥
उवाच मधुरं वाक्यं वस्त्रालंकारमंडिता । कौ युवां का त्वियं रम्या किमर्थमागता वनम् ॥४७॥
कुतः समागतावत्र क्वाधुना गच्छतः पुरः । तत्तस्या वचनं श्रुत्वा रामः सर्वं न्यवेदयत् ॥४८॥
ततः सा राघवं प्राह भव भर्ता मम प्रभो । सोऽप्याह दयिता मेऽस्ति बहिस्तिष्ठति लक्ष्मणः ॥४९॥
प्रार्थयामास सौमित्रिं सा तं सोऽप्युत्तरं ददौ । अहं दासोऽस्मि रामस्य त्वं तु दासी भविष्यसि ॥५०॥
ततः क्रोधेन सा सीतां धर्तुं वेगेन दुद्रुवे । तदा तां राघवः प्राह ममायं शर उत्तमः ॥५१॥
चिह्नार्थं लक्ष्मणाय त्वं नीत्वा दर्शय वेगतः । मद्बाणदर्शनात्कार्यं सिद्धिं नेष्यति लक्ष्मणः ।५२॥
इत्युक्त्वा राघवो बाणं ददौ तस्यै क्षुरोपमम् । सत्यं मत्वा रामवाक्यं सा ययौ लक्ष्मणं पुनः ॥५३॥
लक्ष्मणाय रामबाणं दर्शयामास राक्षसी । स बुद्ध्वा हृद्गतं बंधोस्तं संधाय शरासने ॥५४॥
मुमोच बाणं वेगेन रामनाम्नांकितं शुभम् । स शरो राक्षसीं गत्वा घ्राणकर्णौष्ठहृद्भवान् ।.५५॥
संछित्वा रामतूणीरं विवेश क्षणमात्रतः । घ्राणकर्णौष्ठहृज्जातरहिता साऽपि राक्षसी ॥५६॥
हा हतास्मीति जल्पंती ययौ बंधून्खरादिकान् । दृष्ट्वा स्वसां तादृशीं ते त्रिशिरःखरदूषणाः ॥५७॥
तन्मुखात्सकलं वृत्तं श्रुत्वा ते क्रोधसंयुताः । चतुर्दश महाघोरान् राक्षसान्प्रेषयंस्तदा ॥५८॥

उस खड्गको लेकर उस घने वनके सब वृक्षों और लताओंको काट डाला। उस वृक्षपुंजके साथ साम्ब भी मारा गया। यह देखकर लक्ष्मण रामसे कहने लगे—॥ ४२ ॥ हे रघुराज ! आप मुझे ब्रह्महत्यानिवारक कोई प्रायश्चित्त बतायें। तब रामने कहा - तुमने तो साम्ब नामके राक्षसको मारा है, न कि मुनिको ॥ ४३ ॥ ४४ ॥ यह सुनकर लक्ष्मण प्रसन्न हुए। उधर यथेच्छ रूप धारण करनेवाली साम्बकी माता सूर्पणखा राक्षसीने जब यह सुना तो पुत्रमरणके दुःखसे दुःखित होकर वारम्वार पुत्रका स्मरण करती हुई क्रोधसे सबको मार डालनेकी इच्छासे इधर-उधर विचरने लगी। एक दिन पंचवटीमें रामको देखकर वह राक्षसी पुत्रदुःखसे व्याकुल हो उठी और मनोहर रूप धारण करके सीता-लक्ष्मण सहित रामको मारनेके लिए उद्यत हो गयी ॥ ४५ ॥ ४६ ॥ वह वस्त्र तथा अलंकारसे सजकर उनके पास जा पहुँची और इस प्रकार मधुर वचन कहने लगी-तुम दोनों तथा यह सुन्दरी स्त्री कौन है और यहाँ वनमें तुम सब किस लिए आये हो ? ॥ ४७ ॥ कहाँसे आ रहे हो और अब आगे कहाँ जानेका विचार है ? उसके प्रश्न सुनकर रामने अपना सब वृत्तान्त कह सुनाया ॥ ४८ ॥ तब वह बोली-हे प्रभो ! कृपा करके आप मेरे पति बनें। उत्तरमें रामने कहा कि मेरे पास तो यह मेरी प्रिय पत्नी विद्यमान है। इसलिए तुम बाहर खड़े मेरे छोटे भाई लक्ष्मणके पास जाओ ॥ ४९ ॥ रामके कथनानुसार सूर्पणखाने बाहर जाकर लक्ष्मणसे अपनी इच्छा प्रकट की। लक्ष्मणने कहा कि मैं तो रामका दास हूँ। तुम मेरी स्त्री बनकर क्या करोगी। मेरे साथ तुम्हें भी दासी बनना पड़ेगा ॥ ५० ॥ यह सुनकर सूर्पणखा क्रोधसे लाल हो गयी और सीताको पकड़नेके लिए बड़े वेगसे झपटी। रामने उसे रोककर कहा कि यह मेरा सुन्दर बाण पहचानके लिए ले जाकर लक्ष्मणको दिखाओ। मेरे बाणको देखते ही लक्ष्मण तुम्हारी इच्छा पूरी कर देगा ॥ ५१ ॥ ५२ ॥ यह कहकर रामने छुरेके समान तीक्ष्ण एक बाण उसको दिया। रामकी बातको सत्य समझ वह राक्षसी बाण लेकर फिर लक्ष्मणके पास गयी ॥ ५३ ॥ वहाँ जाकर उसने लक्ष्मणको रामका बाण दे दिया। लक्ष्मण बड़े भाईका अभिप्राय समझ गये और धनुषपर चढ़ाकर रामनामसे अंकित उस शुभ बाणको छोड़ दिया। वह बाण राक्षसीके पास गया और उसके नाक, कान, ओंठ तथा स्तनोंको काटकर पुनः क्षण भरमें रामकी तरकसमें लौट गया। कान, नाक, ओंठ तथा स्तनोंसे रहित वह राक्षसी ॥ ५४–५६ ॥ 'हाय मैं मारी गयो' इस प्रकार चिल्लाती हुई खर-दूषण आदि अपने भाइयोंके पास जा पहुँची। बहिनकी यह

तान् रामः क्षणमात्रेण चतुर्दशशरैर्यमम् । संप्रदर्श्य निजं लोकं प्रेषयामास लीलया ॥५९॥
तान् राक्षसान् मृतान् श्रुत्वा खराद्यास्ते त्रयः क्रुधा । युद्धाय निर्ययुः सैन्यैः सहस्रैश्च चतुर्दश ॥६०॥
रामोऽपि बंधुं सीतां च गुहायां स्थाप्य वेगतः । चकार राक्षसैर्युद्धं शस्त्रास्त्रैर्भयावहम् ॥६१॥
चतुर्दशसहस्राणि स्वीयरूपाणि राघवः । कृत्वा तेषां च पुरतः शरैस्तान्मर्दयत्क्षणात् ॥६२॥
हत्वा खरं दूषणं च तथा त्रिशिरसं शरैः । चतुर्दशसहस्रांस्तान्प्रेषयामास स्वं पदम् ॥६३॥
मुहूर्तेन तु रामेण सहस्राणि चतुर्दश । मिता सेना खराद्यैश्च निहता गौतमीतटे ॥६४॥
खराद्याः कंटका यत्र स्थितास्तत्र त्रिकंटकम् । क्षेत्रं ख्यातं त्र्यंबकाख्यं तदेव प्रोच्यते भुवि ॥६५॥
जनस्थानं भूसुराणां ददौ वस्तुं रघूद्वहः । अथ सीता समालिंग्य राघवं प्रशशंस सा ॥६६॥
अथ तां जानकीं प्राह रामो रहसि सादरम् । सीते त्वं त्रिविधा भूत्वा रजोरूपा वसानले ॥६७॥
वामांगे मे सत्त्वरूपा वस छाया तमोमयी । पंचवट्यां दशास्यस्य मोहनार्थं वसात्र वै ॥६८॥
तद्रामवचनं श्रुत्वा तथा सीता चकार सा । ततः सूर्पणखा लंकां गत्वा रावणमब्रवीत् ॥६९॥
धिक् त्वां राक्षसराजानं वृत्तं चारैर्न वेत्सि यः । चतुर्दशसहस्रा सा सेना त्वद्बन्धुभिः सह ॥७०॥
मानुषेणैव रामेण जनस्थाने निपातिता । तत्तस्या वचनं श्रुत्वा तां दृष्ट्वा तादृशीं तदा ॥७१॥
सिंहासनाच्चचालाथ पुनः पप्रच्छ तां स्वसाम् । वद किं कारणं युद्धे प्राह सा राक्षसेश्वरम् ॥७२॥
स्त्रीरत्नां जानकीं दृष्ट्वा मया चित्ते विचिंतितम् । रावणार्थं विनेष्यामि धर्तुं तां तत्पुरोगता ॥७३॥
तावद्बाणेन नीताऽहं दशामेतां तु रावण । सौमित्रिणा पंचवट्यामाज्ञया राघवस्य च ॥७४॥
सांबोऽपि मे हतः पुत्रस्तप्यमानो निरर्थकम् । मत्तोषार्थं कृतं युद्धं बंधुभिस्ते निपातिताः ॥७५॥

दशा देखकर त्रिशिरा, खर और दूषणने उसके मुखसे सब समाचार सुनकर क्रोधयुक्त हो चौदह भयानक राक्षसोंको उसी समय रामसे लड़नेके लिये भेजा ॥ ५७ ॥ ५८ ॥ तब रामने चौदह बाणोंसे क्षणमात्रमें लीला-पूर्वक उनको मारकर अपने लोक भेज दिया ॥ ५९ ॥ उनके मारे जानेका समाचार सुनकर खर आदि तीनों राक्षस क्रुद्ध होकर चौदह हजार सैनिकोंके साथ युद्धके लिए निकल पड़े ॥ ६० ॥ राम भी सीता तथा लक्ष्मणको एक गुफामें रखकर शीघ्र अस्त्र-शस्त्रोंसे प्रहार करते हुए राक्षसोंके साथ भयानक युद्ध करने लगे ॥ ६१ ॥ उस समय राम अपने चौदह हजार रूप बनाकर उनके सामने गये और समरभूमिमें उन सबका मद मर्दन कर डाला ॥ ६२ ॥ उन्होंने खर, दूषण, त्रिशिरा तथा चौदह हजार राक्षसोंको बाणोंसे मारकर अपने धाम भेज दिया ॥ ६३ ॥ इस प्रकार मुहूर्तमात्रमें रामने चौदह हजार सैनिकों तथा खर आदिको गौतमी नदीके किनारे मार डाला ॥६४॥ जहाँ ये खर-दूषण-त्रिशिरा तीनों भाई कंटकरूपसे रहते थे। वह स्थान त्रिकंटक नामसे प्रसिद्ध था और उसीको लोग त्र्यम्बक भी कहते थे ॥ ६५ ॥ तदनन्तर रघुनन्दन रामने वह स्थान त्रिकंटक (त्र्यम्बक) ब्राह्मणोंको निवास करनेके लिए दान दे दिया। यह सब देखकर सीता रामका आलिंगन करके उनकी प्रशंसा करने लगीं ॥ ६६ ॥ एक दिन राम एकान्तमें सीतासे सादर कहने लगे—हे सीते ! तुम तीन रूपोंको धारण करके रजोरूपसे अग्निमें, सत्त्वरूपसे छायाकी तरह मेरे बायें अंगमें और तमोमयी बनकर रावणको मोहित करनेके लिये यहाँ पंचवटीमें निवास करो ॥ ६७ ॥ ६८ ॥ रामके उस वचनको सुनकर सीताने वैसा ही किया। तभी सूपर्णखा लंकामें जाकर रावणसे बोली—॥ ६९ ॥ हे राक्षसराज ! तुम्हारे जैसे राजाको धिक्कार है, जो दूतोंके द्वारा तुम्हें राज्यकी दशाका पता नहीं लगता। चौदह हजार सेना सहित तुम्हारे भाइयोंको मनुष्यरूपधारी रामने दण्डकारण्यमें मारकर गिरा दिया। उसके इस वचनको सुन तथा उसकी वह दशा देख सिंहासनसे कुछ ऊँचे होकर वह अपनी बहिनसे पूछने लगा कि युद्ध होनेका क्या कारण है, सो बतलाओ। तब वह राक्षसेश्वर रावणसे बोली—॥ ७०-७२ ॥ स्त्रियोंमें रत्न जानकीको देखकर मैंने निश्चय किया था कि इसको रावणके लिये ले जाऊँगी। यह विचारकर मैं उसको पकड़नेके लिये सामने गयी ॥ ७३ ॥ हे रावण ! इतनेहीमें एक बाणने मेरी यह दशा कर दी। रामके

यद्यस्ति पौरुषं किंचित्तर्हि सीतां समानय । नोचेदधोमुखस्तिष्ठ यथा स्त्री गतभर्तृका ॥७६॥
तत्तस्या वचनं श्रुत्वा सांत्वयामास तां स्वसाम् । तौ रामलक्ष्मणौ हत्वा तव शोकाश्रुमार्जनम् ॥७७॥
करोम्यहं लोहितेन तयोः खेदं भजस्व मा । एवं नानाविधैर्वाक्यैः सांत्वयित्वा स्वसां मुहुः ॥७८॥
स्वहितस्योपदेष्टारं मातुलं तपसि स्थितम् । ययौ रथेन मारीचं तस्मै वृत्तं न्यवेदयत् ॥७९॥
सोऽथ तं भीषयामास भागिनेयं मुहुर्मुहुः । विश्वामित्राध्वरे त्यक्तमात्मानं तं न्यवेदयत् ॥८०॥
रामाख्यया रथं रत्नं रजतं रुक्मभूषितम् । श्रुत्वाऽत्र रादि यत्किंचिद्रामं मत्वा बिभेम्यहम् ॥८१॥
केन ते शिक्षिता बुद्धिरियं लंकाविघातिनी । आप्तरूपोऽस्ति कः शत्रुर्येनेयं शिक्षिता मतिः ॥८२॥
कथां न कुरु रामस्य तं दृष्ट्वा त्वं मरिष्यसि । ततः क्रोधेन तं प्राह यदि नायासि राघवम् ॥८३॥
मया तर्हि वधिष्यामि त्वामतः कुरु मद्वचः । भूत्वा त्वं मृगरूपश्च रामस्त्वामनुयास्यति ॥८४॥
त्वं शब्दं कुरु रामस्य लक्ष्मणस्तेन यास्यति । ततस्तां जानकीं वेगाल्लङ्कां स्वामानयाम्यहम् ॥८५॥
लंकायास्तव दास्यामि स्वीयराज्यार्द्धमादरात् । इति तस्याग्रहं दृष्ट्वा मारीचो ह्यचिंतयत् ॥८६॥
रामहस्तान्मृतिः श्रेष्ठा माऽस्तु रावणहस्ततः । इति निश्चित्य मारीचस्तथेत्युक्त्वा ययौ तदा ॥८७॥
रावणेन रथे स्थित्वा गत्वा पंचवटीं प्रति । भूत्वा हेममयश्चित्रो मोहयामास जानकीम् ॥८८॥
सा छाया तामसी दृष्ट्वा मृगं राघवमब्रवीत् । क्रीडार्थं मां मृगं चेमं धृत्वा देहि रघूत्तम ॥८९॥
मृगश्चेद्बाणभिन्नांगः करोमि कंचुकीं त्वचः । तत्तस्या वचनं श्रुत्वा ज्ञात्वा सर्वं रघूत्तमः ॥९०॥

कहनेसे लक्ष्मणने पंचवटीमें मेरी यह दशा की है ॥ ७४ ॥ उन्होंने विना किसी कारण तपस्या करते हुए मेरे प्राणप्रिय पुत्र साम्बको भी मार डाला । तब मुझे संतुष्ट करनेके लिए खर-दूषणादि भाइयोंने रामके साथ युद्ध किया । किन्तु उसने उन्हें भी मार डाला ॥ ७५ ॥ यदि तेरेमें कुछ भी बल हो तो सीताका हरण कर, नहीं तो पतिके मर जानेपर विधवा स्त्रीकी तरह नीचा मुँह करके बैठा रह ॥ ७६ ॥ उसके वचन सुनकर रावण अपनी बहिनको समझाने लगा और बोला कि मैं राम-लक्ष्मणको मारकर उनके खूनसे तुम्हारे शोकाश्रुका मार्जन करूँगा–तुम दुखी न होओ । इस प्रकार अनेक वाक्योंसे उसने भगिनीको बार-बार समझाया ॥ ७७ ॥ ७८ ॥ पश्चात् रथपर बैठकर वह हितका उपदेश करनेवाले तथा तपमें स्थित अपने मामा मारीचके पास गया और उसे सब हाल कह सुनाया ॥ ७९ ॥ तब मारीच अपने भांजे रावणको बार-बार डराता हुआ बोला कि रामने मुझे विश्वामित्रके यज्ञके समय बाणसे उठाकर समुद्रके किनारे फेंक दिया था ॥ ८० ॥ तभीसे मैं रथ, रत्न, रजत (चांदी), रुक्म (सोना) तथा रमणी आदि नामोंके रकार अक्षर सुनने मात्रसे ही डर जाता हूँ (अर्थात् रामके भयसे मैंने इन सब चीजोंसे प्रेम करना भी छोड़ दिया है) ॥ ८१ ॥ लंकाका नाश करनेवाली यह मंत्रणा तुमको किसने दी है ? वह मित्ररूपमें छिपा हुआ तुम्हारा शत्रु ही है, जिसने तुमको यह मति दी है ॥ ८२ ॥ उसकी बात मत मनो, नहीं तो मारे जाओगे । यह सुना तो क्रुद्ध होकर रावण मारीचसे बोला–यदि तुम रामके पास नहीं जाओगे तो मैं तुम्हें मार डालूँगा । इसलिये मेरा कहा मान लो । तुम मृग बनकर जब रामके पास जाओगे तो राम तुम्हारे पीछे चल देंगे । वनमें दूर ले जाकर तुम रामके जैसा स्वर बनाकर "हा लक्ष्मण" ऐसा चिल्लाना । तब लक्ष्मण भी आश्रम छोड़कर तुम्हारी ओर चल देंगे । उस समय मैं शीघ्र सीताको अपनी लंकामें उठा लाऊँगा । ८३–८५ ॥ यदि मेरा कार्य सिद्ध हो जायगा तो मैं तुमको लंकाका आधा राज्य दे दूँगा । उसके आग्रहको सुनकर मारीचने मनमें विचार किया कि रावणके हाथसे मरनेकी अपेक्षा रामके हाथसे मरना अच्छा है । यह निश्चय करके मारीच 'बहुत अच्छा' कह तथा रथपर सवार होकर रावणके साथ पंचवटीको उसी समय चल पड़ा । वहाँ जाकर उसने सुवर्णका मृग बनकर सीताको मोहित कर लिया ॥ ८६–८८ ॥ तब तमोगुणमयी छायारूपिणी सीता मृगको देखकर रामसे बोलीं—हे रघूत्तम राम ! इस मृगको पकड़कर मुझे दे दो । मैं उसके साथ क्रीड़ा करूँगी ॥ ८९ ॥ और यदि बाणसे मारकर ला दो तो मैं उसके चमड़ेकी चोली बनाऊँगी । सीताके वचन सुन तथा कुछ सोच-समझकर रघूत्तम राम सीताकी रक्षाके लिये भाई लक्ष्मणको

सीताया रक्षणे बंधुं संस्थाप्याशु मृगं ययौ । ततः पलायनं चक्रे मृगो रामं विकर्षयन् ॥९१॥
रामबाणेन भिन्नांगः शब्दं दीर्घं चकार सः । हा सौमित्रे समागच्छ हा हतोऽस्म्यद्य कानने ॥९२॥
इत्युक्त्वा रामवद्वाचा ममार रुधिरं वमन् । तं शब्दं जानकी श्रुत्वा चोदयामास लक्ष्मणम् ॥९३॥
सोऽप्याह रामवचनं नेदं सीते भयं त्यज । ततः सा तं पुनः प्राह जानामि तव चेष्टितम् ॥९४॥
भरतस्योपदेशेन मृतिं रामस्य वांछसि । अथवा मेऽभिलाषोस्ति तर्हि प्राणांस्त्यजाम्यहम् ॥९५॥
तत्क्रूरवचनं तस्याः श्रुत्वा ज्ञात्वा महद्भयम् । जानकीं प्राह सौमित्रिर्मातः शृणु वचो मम ॥९६॥
राघवाज्ञां पुरस्कृत्य रक्षतस्त्वां मम त्वया । ताडितं वाक्शरेणाद्य भोक्ष्यस्यस्याचिरात्फलम् ॥९७॥
तथापि शृणु मद्वाक्यं यन्मयाऽत्रोच्यते हितम्। मयैतां धनुषो रेखां कृतां त्वत्परितोऽधुना ॥९८॥
त्वद्रक्षणार्थं दुष्टानां दुर्विलंघ्यां महत्तमाम् । मा त्वमुल्लंघयस्वेमां प्राणैः कंठगतैरपि ॥९९॥
इत्युक्त्वा धनुषः कोट्या कृत्वा रेखां समंततः । बाह्यदेशे पंचवट्याः सौमित्रिः परिघोपमाम् ॥१००॥
नत्वा सीतां ततस्तूष्णीं ययौ रामं त्वरान्वितः । एतस्मिन्नंतरे तत्र रावणो भिक्षुरूपधृक् ॥१०१॥
गत्वा पंचवटीद्वारं रेखायाश्च बहिः स्थितः । नारायणेति वै चोक्त्वा तूष्णीं तस्थौ स रावणः ॥१०२॥
तावच्छायामयी सीता भिक्षां तस्मै समर्पितुम्। ययौ द्वारं दीर्घहस्ता गृह्णीष्वेत्यब्रवीच्च तम् ॥१०३॥
तदा भिक्षुः पुनः प्राह सीतां पंकजलोचनाम् । नांगीकरोम्यंतरेण भिक्षामेतां त्वयार्पिताम् ॥१०४॥
गार्हस्थ्यं चेद्राघवस्य रक्षितुं त्वं समिच्छसि । तर्हि रेखां समुल्लंघ्य मां भिक्षां दातुमर्हसि ॥१०५॥
तद्भिक्षुवचनं श्रुत्वाऽधर्मोऽभून्मेति शंकिता । रेखाबहिः सव्यपादं दत्त्वा दीर्घलसत्करा ॥१०६॥
गृह्णीष्वेमां वरां भिक्षामिति तं प्राह जानकी । ततो दशास्यस्तां धृत्वा भिक्षुरूपं विसृज्य च ॥१०७॥
खरवाहे रथे सीतां संस्थाप्याथ न्यवर्तत । यावद्गच्छति वेगेन तावद्दृष्टो जटायुषा ॥१०८॥

नियुक्त करके शीघ्र मृगके पीछे चल दिये । हरिण भी रामके आगे दौड़ता हुआ उन्हें बहुत दूर जंगलमें दौड़ा ले गया ॥ ९० ॥ ९१ ॥ वहाँ बाणसे घायल होकर वह जोरसे रामके स्वरमें चिल्लाने लगा–'हा लक्ष्मण ! मैं वनमें मारा गया, शीघ्र आओ' ॥ ९२ ॥ इतना कहकर मारीच रक्त वमन करता हुआ मर गया । उस शब्दको सुनकर जानकीने लक्ष्मणको जानेके लिये कहा ॥ ९३ ॥ लक्ष्मण बोले–हे सीते ! यह रामका वाक्य नहीं है, मत डरो । सीता फिर कहने लगीं कि मैं अब तुम्हारे अभिप्रायको जान गयी ॥ ९४ ॥ तुम भरतके कहनेके अनुसार रामका मरण अथवा रामके मर जानेपर मुझे भोगना चाहते हो । परन्तु याद रखो, मैं तुम्हारी अभिलाषा पूरी नहीं होने दूँगी और अभी मर जाऊँगी ॥ ९५ ॥ सीताके इस वचनको सुनकर सुमित्रापुत्र लक्ष्मण जानकीसे बोले—हे माता ! मेरी बात सुनो ॥ ९६ ॥ रामकी आज्ञासे तुम्हारी रक्षामें तत्पर मुझको तुमने जो वाणीरूपी बाणोंसे ताडित किया है, उसका फल तुम शीघ्र पाओगी ॥ ९७ ॥ तो भी मेरे कहे हुए इस हितकारी वचनको सुन लो । मैं धनुषसे तुम्हारे चारों ओर यह रेखा खींचे देता हूँ ॥ ९८ ॥ यह तुम्हारी रक्षाके लिए और दुष्टोंके लिये दुर्लंघनीय तथा महान् भय उत्पन्न करनेवाली होगी । प्राणोंके कण्ठमें आ जानेपर भी तुम इस रेखाका उल्लंघन नहीं करना ॥ ९९ ॥ ऐसा कहकर धनुषकी कोरसे लक्ष्मणने पञ्चवटीके बाहर खाईंकी भाँति सीताकी चारों ओर रेखा खींच दी ॥ १०० ॥ तदनन्तर सीताको प्रणाम करके चुपचाप शीघ्र रामकी ओर चल दिये । इसी समय रावण भिक्षुकका रूप धारण करके पंचवटीके द्वारपर जाकर रेखाके बाहर खड़ा हो गया और "नारायणहरि" कहकर चुप हो रहा ॥ १०१ ॥ १०२ ॥ तब छायामयी सीता उसको भिक्षा देनेके लिये बाहर आयीं और हाथ बढ़ाकर भिक्षुसे 'भिक्षा लो' ऐसा कहा ॥ १०३ ॥ तब कमलके समान नेत्रोंवाली सीतासे भिक्षुने कहा कि मैं रेखाके भीतरसे बँधी हुई भीख नहीं लेता ॥ १०४ ॥ यदि तुम रामके गृहस्थाश्रमकी रक्षा करना चाहती होओ तो रेखाके बाहर आकर भिक्षा दो ॥ १०५ ॥ भिक्षुके इस वचनको सुनकर 'कहीं पाप न लगे' इस शंकासे बायें पावँको रेखासे बाहर रख और लम्बा हाथ करके ॥ १०६ ॥ जानकी 'यह भिक्षा लो' ऐसा बोलीं । तभी रावणने उनको पकड़ लिया और भिक्षुका रूप त्याग तथा सीताको गधोंके रथपर बिठालकर पीछे

चकार तुमुलं युद्धं रावणेन स पक्षिराट् । निजपक्षाभ्यां मुखेनाथ चूर्णीकृत्य रथोत्तमम् ॥१०९॥
खरानष्टौ विनिष्पिष्य बभंज तद्धनुर्महत् । मुकुटान् दश संछिद्य कृत्वा देहं तु जर्जरम् ॥११०॥
मूर्छितं रावणं कृत्वा तां सीतां संन्यवर्तयत् । स्वस्थीभूतो दशास्योऽपि ताडयामास तं पदा ॥१११॥
क्रोधेन महताविष्टः पक्षिणा जर्जरीकृतः । ततो जटायुः पतितो वमन् रक्तं मुखेन सः ॥११२॥
ततो विहायसा सीतां निनाय रावणः पुनः । रामरामेति जल्पंती सीताऽश्रून्यस्तलोचना ॥११३॥
उत्तरीये बबंधाथ पथि स्वाभरणानि सा । दृष्ट्वाऽधः पर्वते प्रोच्चैः संस्थितान् पंच वानरान् ॥११४॥
प्राक्षिपत्कपिमध्येऽथ सूचनार्थं रघूत्तमम् । ततो दशास्यस्तां नीत्वा ह्यशोके संन्यवेशयत् ॥११५॥
प्रार्थयामास तां सीतां नोत्तरं सा ददौ तदा । तस्याः संरक्षणार्थाय राक्षसीश्च सहस्रशः ॥११६॥
आज्ञापयद्दशास्यः स स्वयं गेहं विवेश ह । तदेन्द्रो ब्रह्मवाक्येन पायसं वर्षतुष्टिदम् ॥११७॥
ददौ रहसि सीतायै तेन तुष्टा बभूव सा । समर्प्य पायसं किंचिद्रामाय लक्ष्मणाय च ॥११८॥
सुरानतिथये दत्त्वा दत्त्वा धेनुं च खेचरान् । दत्त्वाऽथ त्रिजटां किंचिद्भक्षयामास जानकी ॥११९॥
संमंत्र्य रावणेनापि राक्षसांश्चैव षोडश । प्रेषिता रामघातार्थं ते कबंधेन भक्षिताः ॥१२०॥
यत्र यत्र पंचवट्यां रामबाणभयान्मृगः । चचार गौतमीतीरे सस्थानं तत्र तत्र हि ॥१२१॥
स्थानसंज्ञान्यनेकानि जातानि च पुराणि हि । मृगस्य पतितं यत्र नूपुरं परिधावता ॥१२२॥
नूपुराख्यो महाग्रामः प्रोच्यते गौतमीतटे । रामबाणप्रहारेण चपलाक्षोऽपतद्भुवि ॥१२३॥
मृगो यत्र महाँस्तत्र चापल्यग्राम इर्यते । गोदातटे ग्रावभूम्यां रामबाणहतो मृगः ॥१२४॥
पतितो यत्र तच्चिह्नं दृश्यतेऽद्यापि मानवैः । सौमित्रचापजा रेखा पंचवट्याः समन्ततः ॥१२५॥

लौटा। वह भागा जा रहा था, तभी जटायुने उसे देख लिया ॥ १०७ ॥ १०८ ॥ तब पक्षिराज जटायुने रावणके साथ तुमुल युद्ध किया। अपने पाँवों और चोंचसे मार-मारकर उसके रथको चूर-चूर कर दिया ॥ १०९ ॥ आठों गदहोंको पीस डाला। उसका बड़ा भारी धनुष तोड़ दिया। मुकुटोंको काट डाला और उसके शरीरको जर्जरित कर दिया ॥ ११० ॥ इतना ही नहीं, रावणको मूर्छित करके वह सीताको लौटा लाने लगा। तभी रावण भी स्वस्थ होकर उसको पाँवसे मारने लगा ॥ १११ ॥ बड़ा क्रोध करके रावणने पक्षीको और पक्षीने रावणको जर्जर कर दिया। अन्तमें जटायु घायल होकर धरतीपर गिर पड़ा ॥ ११२ ॥ तब रावण सीताको लेकर आकाशमार्गसे लङ्काकी ओर चल पड़ा। बेचारी सीता नीची आँखोंसे 'हा राम-हा राम' चिल्लाने लगीं ॥ ११३ ॥ उसी समय उन्होंने नीचे एक उन्नत पर्वतके शिखरपर बैठे हुए पाँच वानर सुग्रीव-हनुमान् आदिको देखा और अपनी साड़ीको फाड़ तथा उसके टुकड़ेमें अपने गहने बाँधकर वहीं गिरा दिये। उधर दशमुख रावणने सीताको ले जाकर लंकाकी अशोकवाटिकामें रखा ॥ ११४ ॥ ११५ ॥ प्रेम करनेके लिये उसने सीतासे बड़ी प्रार्थना की, परन्तु सीता किसी प्रकार सहमत नहीं हुई और न उसकी बातोंका कुछ उत्तर ही दिया। उनकी रक्षाके लिये रावणने वहाँ हजारों राक्षसियें नियुक्त कर दीं ॥ ११६ ॥ उनकी रक्षा करनेकी आज्ञा देकर रावण अपने महलमें चला गया। इसी अवसरपर ब्रह्माके कहनेसे इन्द्रने वहाँ जाकर वर्ष भर तक भूखको मिटाकर सन्तुष्ट रखनेवाला पायस (खीर) एकान्तमें सीताको दिया। इससे सीता बड़ी प्रसन्न हुईं। उन्होंने राम तथा लक्ष्मणके नाम उसमेंसे कुछ पायस निकाला ॥ ११७ ॥ ११८ ॥ कुछ देवताओंको दिया। कुछ गौओं तथा पक्षियोंको खिलाया और थोड़ासा त्रिजटाको देकर बादमें बची हुई थोड़ीसी खीर जानकीने स्वयं खाया ॥११९॥ तदनन्तर रावणने सलाह करके सोलह राक्षसोंको रामको मारनेके लिये भेजा, परन्तु वे सब रास्तेमें ही कबन्धके द्वारा खा डाले गये ॥ १२० ॥ उस समय पञ्चवटीमें रामके बाणके भयसे जहाँ-जहाँ मृगरूपी मारीच गया था, गौतमीके किनारे वहाँ सर्वत्र अनेक नामवाले स्थान स्थापित हुए। जिस जगह दौड़ते हुए मृगका नूपुर गिर पड़ा था, वहाँ नूपुरपुर नामका बड़ा भारी गाँव बस गया। रामके बाणसे ताडित होकर चपल नेत्रोंवाला मृग जहाँ पृथ्वीपर गिर गया था, वहाँ बड़ा भारी चापल्य नामका गाँव अब भी बसा हुआ दीखता है। गोदावरीके किनारे

अद्यापि दृश्यते स्पष्टा नदीरूपा भयावहा । पाषाणभूम्यां तत्रैव रावणस्य पदं महत् ॥१२६॥
अद्यापि दृश्यते भीमं गर्तरूपं नरोत्तमैः । खराद्यैर्युद्धसमये पंचवट्यां विदेहजा ॥१२७॥
गुहायां गोपिता भर्त्रा साऽद्यापि तत्र दृश्यते । तथा रामो लक्ष्मणोऽपि पंचवट्यां सदैव हि ॥१२८॥
दृश्यतेऽद्यापि भो देवि तज्जनैर्ज्ञानदृष्टिभिः । अज्ञानदृष्टिभिस्ते तु दृश्यते ग्रावरूपिणः ॥१२९॥
रामतीर्थं रामकृतं सीतालक्ष्मणसंस्कृते । तीर्थे तत्र तु गौतम्यां दृश्यतेऽद्यापि मानवैः ॥१३०॥
रामेण सीतया यत्र शय्यायां पर्वतोपरि । कृतं पूर्वं तु शयनं रामशय्यागिरिः स्मृतः ॥१३१॥
शय्यारूपाणि दृश्यंतेऽद्यापि तत्र तृणानि हि । रामोऽपि लक्ष्मणं दृष्ट्वा श्रुत्वा सीतावचोऽशुभम् ॥१३२॥
निवेदितं लक्ष्मणेन क्रोधाश्रुस्मयचेतसा । निमित्तान्यतिघोराणि दृष्ट्वा चैव समततः ॥१३३॥
ययौ पंचवटीं व्यग्रस्तत्र सीतां ददर्श न । ततो मानुषभावं तु दर्शयन् सकलाञ्जनान् ॥१३४॥
विचिन्वन्सर्वतः सीतां गृध्रराजं ददर्श सः । ततः स पक्षिवचसा रावणेन हृतां प्रियाम् ॥१३५॥
ज्ञात्वा तं योजयामास वह्निना जीवितक्षये । तत्तुष्टयर्थं वन्यमांसं क्षिप्त्वा स्नात्वा रघूत्तमः ॥१३६॥
ययौ दक्षिणमार्गेण विचिन्वन्मूढवत्प्रभुः । पूर्ववदग्निहोत्रं स चकार कुशभार्यया ॥१३७॥
एतस्मिन्नंतरे देवि त्वया प्रोक्तस्त्वहं पुरा । त्वया यस्य जपो नित्यं क्रियते राघवस्य हि ॥१३८॥
सोऽयं स्त्रीविरहात्पश्य मूढवद्भ्रमते वने । तवेति वचनं श्रुत्वा तदा त्वामब्रुवं त्वहम् ॥१३९॥
देवि साक्षान्महाविष्णुस्त्वयं रामो महातले । शिक्षार्थं सकलाँल्लोकान् मूढवद्भ्रमते वने ॥१४०॥
नारीसंगो नरैस्त्याज्यः सर्वदाऽत्रेति शिक्षयन् । नारीविषयजं दुःखमीदृशं भ्रमकारकम् ॥१४१॥
दर्शयन् सकलाँल्लोकानिति सोऽत्राटते वने । इति मद्वचनं श्रुत्वा तत्परीक्षार्थमुद्यता ॥१४२॥

जहाँ ग्रावभूमि (पथरीली धरती) पर रामबाणसे निहत होकर मृग गिरा था ॥ १२१-१२५ ॥ उसका चिह्न वहाँ आज भी मनुष्योंको दिखाई देता है। सुमित्रापुत्र लक्ष्मणके धनुष द्वारा खींची हुई रेखा पंचवटीके चारों ओर आज भी भयानक नदीके रूपको धारण हुए स्पष्ट दिखाई देती है। उस पाषाणमयी भूमिमें रावणका बड़ा भारी पदचिह्न एक बड़े भारी गढ़ेके रूपमें अब भी दिखाई दे रहा है। पहले खरके साथ युद्ध करनेके समय पंचवटीमें विदेहजा सीताको जिस गुफामें उनके पति रामने छिपाया था, वह भी विद्यमान है। हे देवि ! सज्जन तथा ज्ञानो महात्माओंको सदैव राम-लक्ष्मणका वहाँ दर्शन होता है और सीताके स्थापित तीर्थ इस समय भी दिखाई देते हैं ॥ १२६-१३० ॥ जिस पर्वतपर रामने शय्या निर्माण करके सीताके साथ शयन किया था, वह रामशय्यागिरिके नामसे प्रसिद्ध है ॥ १३१ ॥ वहाँके तृण आज भी शय्याकार दिखाई देते हैं। इधर रामने लक्ष्मणको आया देखा तथा उनके मुखसे सीताके कहे दुर्वचनको सुना ॥ १३२ ॥ यह सब हाल लक्ष्मणने क्रोधपूर्वक आँसू बहाते हुए तथा विस्मयके साथ कहा था। राम चारों ओर अत्यन्त भयानक शकुनोंको देख तथा घबराकर शीघ्र ही पंचवटामें गये तो वहाँ सीता नहीं दिखाई दीं। पश्चात् मनुष्यभावसे वे समस्त वनके पशु-पक्षी तथा जड़ वृक्षों आदिसे सीताका पता पूछने और सीताको सर्वत्र ढूँढने लगे। इतनेमें गृध्रराज जटायु दिखायी दिया। उस पक्षीके मुँहसे सुना कि रावण प्रिया सीताका हरण कर ले गया है ॥ १३३-१३५ ॥ मरणोपरान्त जटायुके कथनानुसार रामने उसका अग्निसंस्कार किया। उसकी शान्ति तथा तुष्टिके लिए रामने वन्य मृग आदिके मांससे पिण्डदान किया और स्नान आदि क्रिया की ॥ १३६ ॥ पश्चात् सर्वेश्वर राम मूढ़ पुरुषकी तरह सीताको खोजते हुए दक्षिणकी ओर चले। रास्तेमें सीताके अभावमें कुशाको सीता बनाकर उसोके साथ रामने अग्निहोत्र किया ॥ १३७ ॥ इसी बीच हे देवि पार्वती ! तुमने मुझसे प्रश्न किया था--हे प्रभो ! आप नित्यप्रति जिन रामका नाम जपा करते हैं ॥ १३८ ॥ वही राम स्त्रीके विरहसे मूढ़की तरह वनमें मारे-मारे फिर रहे हैं। तुम्हारा यह वचन सुनकर मैंने तुमसे कहा-- ॥ १३९ ॥ हे देवि ! यह साक्षात् विष्णु भगवान् राम बनकर पृथ्वीमण्डलके लोगोंकी शिक्षा देनेके लिए वनमें मूढ़की तरह भ्रमण कर रहे हैं ॥ १४० ॥ वे सबको यह उपदेश देते हैं कि मनुष्यको स्त्रीमें आसक्त नहीं होना चाहिए। स्त्रीविषयक आसक्ति ऐसे ही दुःख

त्वं गताऽसि समीपं श्रीराघवस्य तदा वने । सीतारूपेण तं रामं त्वया प्रोक्तं शुभं वचः ॥१४३॥
राम राजीवपत्राक्ष मामग्रे पश्य जानकीम् । क्रीडस्वात्र मया सार्धमेहि शीघ्रं सुखी भव ॥१४४॥
त्वदुक्तं राघवः श्रुत्वा विहस्य त्वां वचोऽब्रवीत् । जानाम्यहं त्वं कासीति सीता त्वं नासि वेद्म्यहम् १४५
त्वं किं सीतास्वरूपेण मोहयस्यत्र मां वने । एवं पुनः पुनः प्रोक्ता यदा त्वं राघवेण हि ॥१४६॥
तदा त्वया तत्स्वरूपं ज्ञातं सत्यं मयेरितम् । ततो नत्वा रामचंद्रं प्रार्थयित्वा पुनः पुनः ॥१४७॥
आगताऽसि पुनर्मां त्वं कैलासशिखरेऽमले । त्वं का त्वं किमिति प्रोक्ता राघवेण पुनः पुनः ॥१४८॥
या त्वं सा दंडके जाता त्वं का नाम्नांबिका वने। त्वं लज्जिताऽसि रामेण यत्र तत्र तव स्थले ॥१४९॥
तल्लज्जापुरनाम्नाऽऽसीन्नगरं दंडके वने । ततस्तौ रामसौमित्री जग्मतुर्दक्षिणां दिशम् ॥१५०॥
बहवो निहता मार्गे राक्षसा घोररूपिणः । एतस्मिन्नंतरेऽरण्ये कबंधेन घृतौ तदा ॥१५१॥
श्रीरामलक्ष्मणौ मार्गे योजनायतबाहुना । दृष्ट्वा तं शिरसा हीनं बाहू चिच्छेदतुस्तदा ॥१५२॥
ततः स दिव्यरूपोऽभून्नत्वा रामं वचोऽब्रवीत् । पुरा गंधर्वराजोऽहं ब्रह्मणो वरदानतः ॥१५३॥
केनाप्यवध्यस्त्वहमष्टावक्रं मुनीश्वरम् । रक्षो भवेति शप्तोऽहं मुनिना प्राह मां पुनः ॥१५४॥
त्रेतायुगे यदा रामलक्ष्मणौ योजनायतौ । छेत्स्यतस्ते महाबाहू तदा शापात्प्रमोक्ष्यसे ॥१५५॥
ततो राक्षसदेहोहमिन्द्रमभ्यद्रवं रुषा । सोऽपि वज्रेण मां राम शिरोदेशे ह्यताडयत् ॥१५६॥
तदा कुक्षौ शिरःपादयुगलं च गतं क्षणात् । ब्रह्मदत्तवरान्मृत्युर्नाभून्मे वज्रताडनात् ॥१५७॥
मुखाभावे कथं जीवेदयमित्यमराधिपः । तदा मां प्राह कृपया जठरे ते मुख भवेत् ॥१५८॥
बाहू ते योजनायामावद्य शीघ्रं भविष्यतः । तदारभ्यात्र बाहुभ्यां लब्धं तद्भक्षयाम्यहम् ॥१५९॥

तथा भ्रमका कारण बनतो है ॥ १४१ ॥ इन बातोंको बतलाने तथा लोगोंको शिक्षा देनेके लिए राम वनमें इधर-उधर भ्रमण कर रहे हैं। मेरे इस उत्तरको सुनकर तुम उनकी परीक्षा लेनेको उद्यत हुईं ॥ १४२ ॥ उस समय तुम सीताका रूप बनाकर श्रीरामके पास गयीं और उनसे कहा--॥ १४३ ॥ हे कमलसदृश नेत्रोंवाले राम ! अपने सामने खड़ी मुझ जानकीको देखो। आओ, मेरे साथ इस वनमें क्रीड़ा करके सुख प्राप्त करो ॥ १४४ ॥ तुम्हारे कथनको सुनकर राम हँसे और कहा—मैं जानता हूँ कि तुम कौन हो ॥ १४५ ॥ व्यर्थ सीताका रूप धारण करके मुझे क्यों मोहित करती हो ? इस प्रकार जब रामने बारम्बार कहा ॥ १४६ ॥ तब तुमने मेरे कहनेके अनुसार रामका वास्तविक स्वरूप पहिचान और उनकी पुनः पुनः प्रार्थना करके क्षमा माँगी ॥ १४७ ॥ १४८ ॥ तदनन्तर तुम रमणीक कैलास पर्वतके शिखरपर मेरे पास लौट आयीं। जहाँपर रामने तुमसे पूछा था कि तुम कौन हो ? यहाँ क्यों आयी हो और तुम्हारे नामकी अम्बिका तो दण्डकारण्यमें रहती हैं। यह सुनकर तुम लज्जित हुईं । जिससे वहाँपर लज्जापुर नामका एक नगर बस गया। तदनन्तर वे राम-लक्ष्मण दक्षिणकी ओर चल दिये ॥ १४९ ॥ १५० ॥ उन्होंने मार्गमें बहुतसे घोर राक्षसोंको मारा। इसी जङ्गलमें कबंधने उन दोनोंको पकड़ लिया ॥ १५१ ॥ उसके चार-चार कोसके लम्बे हाथ थे। उसे सिरसे रहित देखकर उसके दोनों हाथ राम-लक्ष्मणने काट डाले ॥ १५२ ॥ तब वह दिव्य रूप धारण करके नमस्कारपूर्वक रामसे कहने लगा--पहले मैं गन्धर्वोंका राजा था। ब्रह्माने मुझे वर दिया था कि तुमको कोई नहीं मार सकेगा। इस गर्वसे मैं एक दिन मुनीश्वर अष्टावक्रको कुरूप देखकर हँस पड़ा। इसपर उन्होंने क्रुद्ध होकर मुझको शाप दिया कि तू राक्षस हो जायगा। मेरे प्रार्थना करनेपर फिर वे बोले— ॥ १५३ ॥ १५४ ॥ त्रेता युगमें जब राम-लक्ष्मण तेरी इन योजन भर विस्तारवाली भुजाओंको काटेंगे, तब तू शापसे मुक्त हो जायगा ॥ १५५ ॥ राक्षस होकर एक दिन मैंने इन्द्रके ऊपर धावा किया। उन्होंने कुपित होकर मेरे मस्तकपर वज्र मारा ॥ १५६ ॥ जिससे मेरा सिर और दोनों पाँव पेटमें घुस गये। परन्तु ब्रह्माका वरदान प्राप्त रहनेसे मेरी मृत्यु नहीं हुई ॥ १५७ ॥ तब मैंने देवताओंके अधिपति इन्द्रसे प्रार्थना की कि मैं बिना मुखके किस प्रकार जी सकूँगा। तब उन्होंने कृपा करके कहा कि जा, तेरे पेटमें मुख हो जायगा ॥ १५८ ॥

तिष्ठन्त्यग्रे मतंगादिमुनीनां परिचारिकाः । शबरीदर्शनार्थं त्वं तत्र याहि रघूत्तम ॥१६०॥
कथयिष्यति सा सीताशुद्धिं ते रघुनंदन । इत्युक्त्वा राघवं नत्वा स्तुत्वा स्वर्गं ययौ मुदा ॥१६१॥
ततो रामो लक्ष्मणेन शबरीसंनिधिं ययौ । साऽपि संपूज्य श्रीरामं विशेषैर्वनसंभवैः ॥१६२॥
चितामारोढुमुद्युक्ता राघवं प्राह हर्षिता । ऋष्यमूकगिरावग्रे सुग्रीवो मंत्रिभिः सह ॥१६३॥
वर्तते तस्य सख्येन सीताशुद्धिं लभिष्यसि । गच्छ राम इतस्त्वग्रे पंपानाम सरोवरम् ॥१६४॥
तत्तटाके तु वृक्षाणां फलानि विविधानि च । भक्षस्व त्वं जलं पीत्वा याहि सुग्रीवसंनिधिम् ॥१६५॥
इत्युक्त्वा शबरी रामं नत्वा वह्निं विवेश सा । रामसंदर्शनान्मुक्तिं प्राप्ता वैकुण्ठमाययौ ॥१६६॥
ततो रामः शनैर्भ्रात्रा ययौ पंपासरोवरम् । फलानि भक्षयामास पीत्वा तज्जलमुत्तमम् ॥१६७॥
ततः शनैर्ययौ मार्गे ऋष्यमूकाचलं प्रति । पश्यन्वनानि सर्वत्र चिंतयामास जानकीम् ॥१६८॥
एवं गिरींद्रजे प्रोक्तमारण्यं चरितं तव । श्रीरामस्य ससीतस्य लक्ष्मणेन युतस्य च ॥१६९॥

इति श्रीशतकोटिरामचरितांतर्गते श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये सारकाण्डे
खरादिवधो नाम सप्तमः सर्गः ॥ ७ ॥

अष्टमः सर्गः

(राम-सुग्रीवमैत्री और वालिवध)

श्रीशिव उवाच

अथ रामो लक्ष्मणेन ऋष्यमूकाचलं प्रति । ययौ धृतधनुर्बाणो नेत्रे सर्वत्र चालयन् ॥ १ ॥
ऋष्यमूकगिरेः पार्श्वे गच्छंतौ रामलक्ष्मणौ । सुग्रीवेणाथ तौ दृष्टौ ऋष्यमूकस्थितेन हि ॥ २ ॥
सुग्रीवस्तौ तदा दृष्ट्वा चतुर्भिर्मंत्रिभिर्युतः । संमंत्र्य मारुतिं प्राह बालिना प्रेषिताबुभौ ॥ ३ ॥

शीघ्र ही तेरे हाथ भी योजन-योजन भर लम्बे हों जायँगे । तबसे मैं जो कुछ इन हाथोंके बीच आ जाता है, खा लेता हूँ ॥ १५९ ॥ यहाँसे आगे मतङ्ग आदि मुनियोंकी परिचारिकायें रहती हैं । हे रघूत्तम ! आप वहाँ जाकर शबरीसे मिलें ॥ १६० ॥ हे रघुनन्दन ! वह आपको सीताका पता बतायेगी । इतना कहकर उसने रामकी स्तुति की और नमस्कार करके वह सानन्द स्वर्गको चला गया ॥ १६१ ॥ तदनन्तर राम लक्ष्मणको लेकर शबरीके पास गये । शबरीने वनके अच्छे-अच्छे पुष्पों तथा फलोंसे उनका पूजन-सत्कार किया ॥१६२॥ बादमें चितारोहण करते समय हर्षपूर्वक वह रामसे बोली कि आगे ऋष्यमूक पर्वतके शिखरपर मन्त्रियोंके साथ सुग्रीव रहता है ॥ १६३ ॥ उसकी मित्रता प्राप्त करनेसे आपको सीताका पता मिल जायगा । हे राम ! आप यहाँसे चलकर पंपासरोवर जायँ ॥ १६४ ॥ उसके किनारेपर लगे हुए वृक्षोंके विविध फल खा तथा जलपान करके आप सुग्रीवके पास जाइएगा ॥ १६५ ॥ इतना कहकर शबरीने रामको प्रणाम किया और अग्निमें प्रवेश कर गयी । इस प्रकार रामके दर्शनमात्रसे मुक्त होकर वह वैकुण्ठधाम सिधारी ॥१६६॥ तदनन्तर राम भाई लक्ष्मणके साथ पम्पासरोवर गये । वहाँके सुन्दर फल खाकर सरोवरका निर्मल जल पिया ॥ १६७ ॥ पश्चात् धीरे-धीरे ऋष्यमूक पर्वतकी ओर चले । रास्तेमें चारों ओर हरे-भरे वनोंकी शोभा देखकर राम बारम्बार जानकीका स्मरण करने लगे ॥ १६८ ॥ हे गिरीन्द्रजे ! यह मैंने तुमको सीता, लक्ष्मण तथा श्रीरामका किया हुआ चरित्र कह सुनाया ॥ १६९ ॥ इति शतकोटिरामचरितांतर्गते श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये सारकाण्डे पं० रामतेजपाण्डेयकृत'ज्योत्स्ना'भाषाटीकायां सप्तमः सर्गः ॥ ७ ॥

श्रीशिवजी बोले—हे प्रिये ! इस तरह राम हाथमें धनुष-बाण लिये और नेत्रोंसे चारों ओर देखते हुए लक्ष्मणके साथ ऋष्यमूक पर्वतके पास पहुँचे ॥ १ ॥ वहाँ शिखरपर बैठे सुग्रीवने पर्वतके पास आते हुए राम-लक्ष्मणको देख लिया । २ ॥ उन्हें देखकर सुग्रीवने अपने चारों मन्त्रियोंको बुलवाया और उनसे मन्त्रणा

मां हंतुं धृतकोदंडौ सतूणीरौ नराकृती । इतोऽस्माभिः प्रगंतव्यं मंत्रं शृणु मयोच्यते ॥४॥
गच्छ जानीहि भद्रं ते वटुर्भूत्वा द्विजाकृतिः । ताभ्यां संभाषणं कृत्वा जानीहि हृदयं तयोः ॥५॥
यदि तौ दुष्टहृदयौ संज्ञां कुरु कराग्रतः । साधुत्वे स्मितवक्त्रोऽभूरेवं जानीहि निश्चयम् ॥६॥
तथेति वटुरूपेण गत्वा नत्वा रघूत्तमम् । कौ युवां पुरुषव्याघ्राविति पप्रच्छ मारुतिः ॥७॥
ततस्तं लक्ष्मणः प्राह पूर्ववृत्तं सविस्तरम् । शबरीवचनाद्रामः सख्यं कर्तुं समागतः ॥८॥
सुग्रीवेणाथ तच्छ्रुत्वा स्वरूपं मारुतिस्तदा । चकार नैजं प्रकटं स्वीयं वृत्तं न्यवेदयत् ॥९॥
मत्स्कंधमधिरुह्याथ पर्वतं गंतुमर्हथः । तथेति मारुतेः स्कंधे संस्थितौ तौ बभूवतुः ॥१०॥
उत्पपात गिरेर्मूर्ध्नि क्षणादेत्र महाकपिः । वृक्षच्छायां समाश्रित्य तौ स्थितौ रामलक्ष्मणौ ॥११॥
सुग्रीवं मारुतिर्गत्वा रामवृत्तं न्यवेदयत् । ततः प्रज्वाल्य वह्निं स सुग्रीवो राघवेण हि ॥१२॥
चकार सख्यं वेगेन समालिंग्य परस्परम् । वृक्षशाखां स्वयं छित्त्वा विष्टरार्थं ददौ कपिः ॥१३॥
हर्षेण महताविष्टाः सर्वं एवावतस्थिरे । लक्ष्मणस्त्वब्रवीत्सर्वं सुग्रीवं वृत्तमात्मनः ॥१४॥
तच्छ्रुत्वा सकलं वृत्तं सुग्रीवः स्वं न्यवेदयत् । सखे शृणुष्व मे वृत्तं वालिना यत्कृतं पुरा ॥१५॥
मयपुत्रो दुर्मदश्च किष्किंधामेकदा गतः । कृत्वा स दीर्घशब्दं तु वालिनं समुपाह्वयत् ॥१६॥
तं श्रुत्वा निर्ययौ वाली जघान दृढमुष्टिना । दुद्राव तेन संविग्नो जगाम स्वगुहां प्रति ॥१७॥
अनुदुद्राव तं वाली वालिपृष्ठे त्वहं गतः । वाली समाह तिष्ठ त्वं बहिर्गच्छाम्यहं गुहाम् ॥१८॥
इत्युक्त्वाऽऽविश्य स गुहां मासमेके न निर्ययौ। गुहाद्वारान्मया रक्तं निर्गतं सन्निरीक्ष्य च ॥१९॥

करके हनुमान्‌से कहा कि इन दोनोंको वालीने भेजा है, ऐसा ज्ञात होता है ॥ ३ ॥ ये दोनों नररूप धारण कर भाथा बांध तथा धनुष लेकर मुझे मारने आ रहे हैं। इस कारण हम लोगोंको यहांसे कहीं अन्यत्र भाग जाना चाहिये। अथवा तुम मेरी बात मानो और ब्राह्मणका रूप धारण करके ब्रह्मचारी बनकर उनके पास जाओ और उनके साथ बातचीत करके उनके हृदयका अभिप्राय जान लो ॥ ४ ॥ यदि उनके हृदयका विचार दूषित हो तो पेड़की आड़में जाकर हाथकी अंगुलीसे संकेत करना और यदि अच्छा विचार रखते हों तो हँसकर मेरी ओर निहारना। बस यही संकेत निश्चित है, याद रखना ॥ ५ ॥ ६ ॥ तदनुसार हनुमान् 'बहुत अच्छा' कह और ब्रह्मचारीका रूप धारण करके रामके पास गये और नमस्कार करके कहा—'पुरुषोंमें सिंहके समान वीर आप दोनों कौन हैं ?'॥७॥तब लक्ष्मणने उनको अपना संपूर्ण वृत्तांत कह सुनाया और कहा कि शबरीके कहनेसे ये राम सुग्रीवके साथ मित्रता करनेके लिये यहाँ आये हैं ॥ ८ ॥ यह सुनकर हनुमान्‌ने अपना असली स्वरूप प्रकट किया और अपना भी सब हाल कह सुनाया ॥ ९ ॥ साथ ही यह भी कहा कि आप दोनों मेरे कन्धेपर बैठकर पर्वतपर चलें। 'तथास्तु' कहकर वे दोनों मारुतिके कन्धेपर चढ़ गये ॥ १० ॥ महाकपि हनुमान्‌जी कूदकर क्षणभरमें पर्वतके शिखरपर आ गये। वहाँ राम-लक्ष्मण एक वृक्षकी छायामें बैठे ॥ ११ ॥ हनुमान्‌ने जाकर रामका सब समाचार सुग्रीवको कह सुनाया। पश्चात् सुग्रीवने अग्नि जलायी और उसे साक्षी बनाकर रामके साथ शीघ्र मित्रता कर ली और परस्पर वे दोनों गले मिले। तब स्वयं सुग्रीवने अपने हाथोंसे वृक्षकी शाखा तोड़कर रामको बिछानेके लिए दे दी। तब सब लोग प्रसन्न हुए और बैठ गये। लक्ष्मणने अपना सब वृत्तांत सुग्रीवको सुनाया ॥ १२-१४ ॥ यह सुनकर सुग्रीवने भी अपना सब हाल बताते हुए कहा—हे सखे! पहले बालिने मेरे साथ जो कुछ किया है, वह सब आप सुन लें ॥ १५ ॥ एक समय मय दानवका पुत्र दुर्मद किष्किन्धा नगरीमें गया। वहाँ जाकर वह जोरसे चिल्लाया और वालिको युद्धके लिये ललकारा ॥ १६ ॥ सो सुनकर वालि बाहर आया और दुर्मदको बहुत जोरसे एक मुक्का मारा। इससे घबराकर वह अपनी गुफाकी ओर भागा ॥ १७ ॥ उसके पीछे वालि और वालिके पीछे मैं भी भागा। वहाँ जाकर वालिने मुझसे कहा कि तुम बाहर खड़े रहो, मैं गुफाके भीतर जाता हूँ ॥ १८ ॥ यदि एक महीनेमें मैं बाहर न आऊँ तो मुझे मरा समझ लेना। ऐसा कहकर वह गुफामें चला गया। उसके कथनानुसार एक महीना बीत गया,

निश्चितं मनसा वाली दुर्मदेन हतस्त्विति । एतस्मिन्नंतरे श्रुत्वा किष्किंधां रिपुवेष्टिताम् ॥२०॥
गुहाद्वारि शिलामेकां निधाय दुर्मदस्य च । यत्नतो मार्गरोधार्थं किष्किंधामागतः स्वयम् ॥२१॥
मां दृष्ट्वा रिपवः सर्वे वेगाचक्रुः पलायनम् । अनिच्छंतं मंत्रिणो मां तत्पदे सन्यवेशयन् ॥२२॥
ततो हत्वा रिपुं वाली दृष्ट्वा मां स्वपदस्थितम् । संताड्य नगरान्मां स बहिर्न्यष्कासयत्तदा ॥२३॥
ततः स सर्वदेशेषु वादयामास दुन्दुभिम् । भूम्यां सुग्रीवपाता यः स वध्यो भवेदिति ॥२४॥
ततो लोकान्परिक्रम्य ऋष्यमूको मयाऽऽश्रितः । एकदा दुंदुभिर्नाम दैत्यो महिषरूपधृक् ॥२५॥
युद्धाय वालिनं रात्रौ समाह्वयत भीषणः । ततो वाली समागत्य धृत्वा शृंग करेण मः ॥२६॥
हस्ताभ्यां तच्छिरश्छित्वा तोलयित्वाऽक्षिपद्भुवि। पपात तच्छिरो राम मतंगाश्रमसन्निधौ ॥२७॥
रक्तवृष्टिः पपातोच्चैर्मतङ्गोऽप्यशपत्क्रुधा । यद्यागतोऽसि मे वालिन् गिरिं शीघ्र समापये ॥२८॥
एवं शप्तस्तदारभ्य ऋष्यमूकं न यात्यसौ । प्रतिज्ञां ते करोम्यद्य सीतां शीघ्र समानये ॥२९॥
यदा नीता रावणेन तदा दृष्टा मयाऽत्र खे । बद्ध्वोत्तरीये क्षिप्तानि पश्य त्व भूषणानि हि ॥३०॥
इत्युक्त्वा दर्शयामास सुग्रीवो भूषणानि हि । तानि दृष्ट्वाऽब्रवीद्बन्धुं रामस्त्वं निश्चयं वद ॥३१॥
त्वयाद्दष्टानि सीतायास्तच्छ्रुत्वा लक्ष्मणोऽब्रवीत्। न वेद्म्यहं समस्तानि वेद्म यंगुलिभत्रानि हि ॥३२॥
वंदने यानि दृष्टानि मया नित्यं रघूद्वह । ततो रामोऽतिसंतुष्टो लब्धां सीताममन्यत ॥३३॥
सुग्रीववचनाद्रामः प्रत्ययार्थं तदा क्षणात् । पादांगुष्ठेनाक्षिपत्तद्दुंदुभेः शिर उत्तमम् ॥३४॥

किन्तु वह बाहर नहीं आया । मैंने जब गुफामेंसे निकलता हुआ रुधिर देखा तो मनमें निश्चय कर लिया कि दुर्मद दानवने वालीको मार डाला । उसी समय यह सुनकर कि शत्रुओंने किष्किन्धाको घेर लिया है, मैंने गुफाके द्वारको एक बड़ी भारी शिलासे ढाँक दिया और निश्चय कर लिया कि अब दुर्मदका मार्ग रुक गया है। वह यत्न करके भी बाहर नहीं निकल सकेगा । तब मैं अपनी किष्किन्धा नगरीको चला आया ॥ १९–२१ ॥ मुझे देखनेके साथ ही सब शत्रु भाग गये और मेरी इच्छा न रहनेपर भी मन्त्रियोंने मुझे भाई वालीके पदपर बैठा दिया ॥ २२ ॥ पश्चात् वालि भी शत्रुको मारकर घर आया और मुझे अपने पदपर बैठा देखा तो मुझे मार-पीटकर उसी समय नगरसे बाहर निकाल दिया ॥ २३ ॥ साथ ही सब देशोंमें उसने ढिंढोरा पिटवाकर कहला दिया कि "जो कोई सुग्रीवको शरण देकर क्षमा करेगा, वह मेरा अपराधी होगा और मार डाला जायगा" ॥ २४ ॥ तदनन्तर सब देशोंमें घूमकर मैंने इस ऋष्यमूक गिरिका आश्रय लिया । यहाँकी कथा यह है कि एक दिन दुन्दुभी नामक दैत्य भैंसेका रूप धरकर रात्रिके समय वालीके यहाँ गया और उसको युद्धके लिये ललकारा । वालीने आकर अपने हाथसे उसकी सींग पकड़ ली और खींचकर उसका सिर धड़से उखाड़ तथा घुमाकर दूर फेंक दिया । हे राम ! उसका वह सिर मतङ्ग ऋषिके आश्रममें जा गिरा ॥ २५–२७ ॥ इससे मतङ्गऋषिके ऊपर भी रुधिर गिरा । तब उन्होंने क्रोध करके उसे शाप दिया कि 'अरे वालि ! यदि मेरे पर्वत तथा आश्रमके पास तू आयेगा तो तुरन्त मर जायगा' ॥ २८ ॥ इस शापसे डरकर वाली यहाँ कभी नहीं आता । हे राम ! मैं प्रतिज्ञा करता हूँ कि सीताको शीघ्र ही ले आऊँगा ॥ २९ ॥ जब रावण उनको ले जा रहा था, तब यहीं बैठे हुए मैंने आकाशमें देखा था । उस समय सीताने अपनी साड़ीमें बाँधकर कुछ आभूषण नीचे फेंके थे । वे यहीं हैं, आप उन्हें देखें ॥ ३० ॥ इतना कहकर सुग्रीवने वे आभूषण दिखलाये । उन्हें देखकर रामने लक्ष्मणसे कहा—हे भाई ! तुम इन्हें देखकर ठीक-ठीक बतलाओ कि ये सीताके हैं या नहीं । क्योंकि तुमने तो सीताके आभूषण देखे ही होंगे । यह सुनकर लक्ष्मणने कहा कि मैं सबको तो नहीं पहचानता, परन्तु पाँवकी अँगुलीके नूपुरके बारेमें अवश्य कह सकता हूँ कि ये सीताके ही हैं । कारण कि मैंने प्रणाम करते समय केवल उनके पाँव देखे हैं —अन्य अङ्ग नहीं देखे । यह सुनकर राम प्रसन्न हुए और 'अब सीता मिल गयी' ऐसा समझा ॥ ३१–३३ ॥ तदनन्तर सुग्रीवको विश्वास दिलानेके लिए उसी समय रामने अपने पाँवके अँगूठेसे मारकर दुन्दुभीके बड़े विशाल सिरको

दशयोजनपर्यंतं तथा बाणेन वै पुनः । चक्राकारान् सप्त तालान् दृष्ट्वा देहे ह्यहेः प्रभुः ॥३५॥
स्वीयांगुष्ठेन सौमित्रेः पदं किंचिद्विमर्द्य च । ऋजुं कृत्वा पन्नगं तं शेषांशेन स्थितं भुवि ॥३६॥
सुग्रीवप्रत्ययार्थं हि सप्त तालान् बिभेद सः । गुहायामेकदा तालफलानि स्थापितानि हि ॥३७॥
वालिना सप्त नीतानि तेन सर्पं ददर्श सः । तमशपत्त्वयि वृक्षाश्च भविष्यंतीति वानरः ॥३८॥
नर्पोऽप्याहाथ तान् छेत्ता यस्ते हंता न संशयः । तद् दृष्ट्वा रामसामर्थ्यं तस्मिन्प्रत्ययमाप सः ॥३९॥
सुग्रीवस्तं पुनः प्राह राघवं तुष्टमानसः । वालिने सुरनाथेन पुरा दत्ताऽस्ति मालिका ॥४०॥
यां दृष्ट्वा रिपवो युद्धे गतवीर्या भवन्ति हि । या पुरा कश्यपेनैव तपसा दुष्करेण च ॥४१॥
शिवाल्लब्धा पिता पुत्रमिन्द्रं तेनापि वालिने । प्रीत्यार्पिता मालिका सा वाली कंठे दधात्यसौ ॥४२॥
तस्यास्त्वं दर्शनाद्राम गतसत्त्वो भविष्यसि । तत्रोपायं चिन्तयस्व येन तेऽद्य जयो भवेत् ॥४३॥
तत्तस्य वचनं श्रुत्वा रामः सर्पं तमब्रवीत् । यः शापान्मोचितः पूर्वं सप्त तालान्विभिद्य च ॥४४॥
गच्छ त्वं मम वाक्येनकिष्किंधायां च वालिनम् । निशीथे निद्रितं दृष्ट्वा हर तन्मालिकां शुभाम् ॥४५॥
तथेति रामवाक्येन किष्किंधामेत्य पन्नगः । मंचकस्थां जहाराथ तां मालां वासवं ददौ ॥४६॥
ततो रामाज्ञया गत्वा समाहूयाथ वालिनम् । युद्धं चकार सुग्रीवः श्रीरामोऽपि ददर्श तम् ॥४७॥
समानरूपौ तौ दृष्ट्वा मित्रघातविशंकया । न मुमोच तदा बाणं रामः सोऽपि न्यवर्तत ॥४८॥
सुग्रीवो राघवं प्राह मां घातयसि वालिना । यदि मद्धनने वांछा त्वमेव जहि मां विभो ॥४९॥
तत्तस्य वचनं श्रुत्वा सुग्रीवस्य रघूत्तमः । बन्धयामास सुग्रीवकंठे मालां तु बन्धुना ॥५०॥

दूर फेंक दिया ॥ ३४ ॥ वह दस योजनकी दूरीपर जा गिरा । गोल आकारमें सर्पके शरीरपर जमे हुए सात तालवृक्षोंको देखा तो रामने पृथ्वीपर शेषके अंशसे स्थित लक्ष्मणके पाँवको अपने पाँवके अंगूठेसे दबाकर उस सर्पको सीधा किया और बाणसे उन सातों वृक्षोंको एक ही वारमें काट डाला ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ ऐसा करके उन्होंने सुग्रीवको विश्वास दिलाया कि राम मेरी सहायता करने और वालीको मारनेमें समर्थ हैं । एक समयकी बात है कि वालीने अपनी गुफामें तालके कुछ फल रखे थे। उनमेंसे सात फल कोई उठा ले गया। वालीने देखा तो उसे वहाँ फलकी जगह सर्प दिखायी दिया । तब वालीने सर्पको शाप दे दिया कि जा, तेरे ऊपर सात तालवृक्ष उगेंगे ॥ ३७ ॥ ३८ ॥ तब सर्पने भी कहा कि जो पुरुष वृक्षोंको काटेगा, वही तुझे मारेगा—इसमें सन्देह नहीं है। उसी सामर्थ्यको आज राममें देखकर सुग्रीवको विश्वास हो गया ॥ ३९ ॥ तब प्रसन्न होकर सुग्रीवने कहा – पूर्वकालमें इन्द्रने वालीको एक माला दी थी । ४० ॥ जिसे देखकर उसके शत्रु युद्धमें बलहीन हो जाते हैं। पहिले कठोर तप करनेपर वह माला कश्यपको शिवजीसे मिली थी । कश्यपने उसे लेकर अपने पुत्र इन्द्रको दी और इन्द्रने वालीको अर्पण की। प्रीतिपूर्वक अर्पित की हुई उस मालाको वाली सदा गलेमें पहिने रहता है ॥ ४१ ॥ ४२ ॥ हे राम ! उसको देखनेके साथ ही आप भी बलहीन हो जायँगे। अतएव इस विषयमें कोई उपाय सोचिए। जिससे आपकी विजय हो ॥ ४३ ॥ सुग्रीवके इस वचनको सुनकर रामने, जिसका बाणके द्वारा सात तालवृक्षोंको काटकर शापसे मुक्त किया था, उस साँपसे कहा कि तुम मेरे कथनानुसार किष्किन्धा-में जाकर रात्रिके समय जब कि वाली सोता रहे, तब उसके गलेमेंसे उस सुन्दर मालाको चुरा लाओ ॥ ४४ ॥ ॥ ४५ ॥ 'तथास्तु' कहकर वह साँप रामकी आज्ञाके अनुसार किष्किन्धा नगरीमें गया और पलङ्गपरसे उस मालाको चुराकर इन्द्रको दे आया ॥ ४६ ॥ तदनन्तर रामकी आज्ञासे सुग्रीवने वालीके पास जाकर उसको युद्ध के लिये ललकारा और युद्ध किया। उस युद्धको राम देख रहे थे, किन्तु उन दोनों भाइयोंको समान रूपवान् देख धोखेमें कहीं मित्र सुग्रीव ही न मारा जाय, इस आशंकाके कारण रामने वालीपर बाण नहीं छोड़ा। तब सुग्रीव रामके पास लौट आया और रामसे बोला कि मुझे आप वालीके हाथों क्यों मरवाना चाहते हैं ? यदि मुझे मारनेकी ही इच्छा हो तो हे विभो ! आप ही मार डालें ॥ ४७–४९ ॥ सुग्रीवके इस वचनको सुनकर

पुनस्तं प्रेषयामास सोऽपि वालिनमाह्वयत् । ततः श्रुत्वा ययौ वाली तं ताराऽप्रार्थयत्तदा ॥५१॥
श्रुतमगदवाक्येन मया रामः समागतः । चकार मैत्रीं किं तेन मा कुरुष्वाद्य संगरम् ॥५२॥
गच्छ नत्वा रमानाथं बंधुं मानय सादरम् । यौवराज्यपदं देहि तस्मै मे वचनं शृणु ॥५३॥
तत्तारावचनं श्रुत्वा वाली तां वाक्यमब्रवीत् । जानाम्यहं राघवं तं नररूपधरं हरिम् ॥५४॥
तस्य हस्तान्मृतिर्मेऽस्ति गच्छामि परमं पदम् । सुखं त्वं तिष्ठ तारेऽत्र सुग्रीवं भज सर्वदा ॥५५॥
यदा त्वया स सुग्रीवः करिष्यति रतिं प्रिये । तदा तत्पत्निभोगस्यानृण्यं गच्छामि भामिनि ॥५६॥
अत एव मालिका मे गुप्ताऽभूत्पश्य मत्प्रिये । अद्याहं रामबाणेन पतिष्यामि रणांगणे ॥५७॥
अद्य धन्योऽस्म्यहं तारे धन्यौ तौ पितरौ मम । योग्यं श्रीरामहस्तेन मरिष्यामि रणांगणे ॥५८॥
एवमाश्वास्य तां तारां ययौ वाली त्वरान्वितः । दृष्ट्वा वाली महोत्पातान् सन्तोषं परमं ययौ ॥५९॥
चकार बन्धुना युद्धं तदा बाणेन राघवः । वृक्षषण्डे तिरोभूत्वा पातयामास तं भुवि ॥६०॥
ततस्तारा समागत्य शुशोच वालिनं प्रति । वाली दृष्ट्वा रमानाथं तदा प्राह स गद्गदः ॥६१॥
वृक्षषण्डे तिरोभूत्वा त्वयाऽहं ताडितो हृदि । तवाद्य दुर्यशो जातं मम जातो महोदयः ॥६२॥
किं मयाऽपकृतं ते हि त्वया यस्मान्निपातितः । रामः प्राह वालिनं त्वं रुमायां लम्पटः सदा ॥६३॥
बन्धुभार्यां गृहे स्थाप्य बन्धुं हन्तुं त्वमिच्छसि । दुर्वृत्तं त्वां समालोक्य मया तस्मान्निपातितः ॥६४॥
यथा त्वया रुमा भुक्ता तथा तारां तव प्रियाम् । भोक्ष्यत्ययं हि सुग्रीवो वचनान्मे कपीश्वर ॥६५॥
यद्यपि त्वं दुराचारो निहतोऽसि रणे मया । तथापि भिल्लरूपेण द्वापरान्तेऽघ्रिणं मम ॥६६॥
भित्त्वा प्रभासे बाणेन पूर्ववैरेण वानर । ततो मद्धस्तमरणस्यास्य कारणगौरवात् ॥६७॥
मुक्तिं गच्छसि त्वं वालिन् शुभां जन्मांतरेण हि । ततः प्राह पुनर्वाली मेऽभविष्यदुदीरितम् ॥६८॥

रघूत्तम रामने भाई लक्ष्मणके द्वारा सुग्रीवके कण्ठमें पहिचानके लिए माला बँधवायी ॥ ५० ॥ तदनन्तर पुनः उसको युद्ध करनेके लिये भेजा । उसने जाकर फिर वालीको ललकारा । सो सुनकर वालीने जानेको तैयारी की तो ताराने प्रार्थनापूर्वक कहा-॥ ५१ ॥ हे नाथ ! मैंने अङ्गदके मुखसे सुना है कि आजकल राम इस वनमें आये हुए हैं । इसलिये आप सुग्रीवके साथ मित्रता कर लें और लड़नेका विचार त्याग दें ॥ ५२ ॥ आप जाकर रामके चरणोंकी वन्दना करें और मेरा कहना मानकर भाई सुग्रीवको सादर युवराजपद प्रदान करें । ५३ ॥ ताराकी वात सुनकर वालीने कहा कि मैं नररूपधारी साक्षात् नारायण रामको जानता हूँ ॥ ५४ ॥ उनके हाथों यदि मेरी मृत्यु होगी तो परमपद प्राप्त करूँगा । हे तारे ! तुम यहाँ सुखपूर्वक रहकर सुग्रीवकी सेवा करना । हे प्रिये ! सुग्रीव जब तुम्हारे साथ रति करेगा, तभी मैं उसकी पत्नीके भोगसे उऋण होऊँगा ॥ ५५ ॥ ५६ । और हे भामिनि ! देखो, आज मेरी माला भी लापता हो गयी है । अतएव मैं रणभूमिमें रामके वाणसे अवश्य मारा जाऊँगा ॥ ५७ ॥ हे तारे ! मैं तथा मेरे माता-पिता धन्य हैं कि जो आज श्रीरामके हाथों मेरी मृत्यु होगी ॥ ५८ ॥ इस प्रकार ताराको समझाकर वाली तुरन्त चल पड़ा और महान् उत्पातोंको देखकर भी सन्तुष्ट हुआ ॥ ५९ ॥ वह अपने भाई सुग्रीवके साथ लड़ने लगा । उसी समय राम एक वृक्षकी आड़में खड़े हो गये और वालीको वाणसे मारकर पृथ्वीपर गिरा दिया ॥ ६० ॥ तब तारा आकर वालीके लिये अत्यन्त विलाप करने लगी । वाली अपने सामने रामको देखकर गद्गद स्वरसे बोला--॥ ६१ ॥ हे नाथ ! आपने जो आज वृक्षकी आड़में छिपकर मेरे हृदयमें वाण मारा है, इससे मेरे लिये तो यह महान् अभ्युदयकी वात है, परन्तु इससे आपका वड़ा भारी अपयश होगा ॥ ६२ ॥ दूसरी वात यह है कि मैंने आपका कौन-सा अपराध किया था, जो आपने मुझे मारा ? रामने कहा--तू सदा सुग्रीवकी स्त्री रुमामें लिप्त रहता था ॥ ६३ ॥ तू छोटे भाईकी स्त्रीको अपने घरमें रखकर भाईको मार डालना चाहता था । यह दुराचार देखकर मैंने तुझे मारा है, तो भी द्वापरके अन्तमें भील होकर तू पूर्ववैरका स्मरण करके प्रभासक्षेत्रमें अपने वाणसे मेरे पाँवको छेदेगा । तव मेरे

सीतावृत्तं त्वया पूर्वं क्षणेन रावणेन हि । दत्ताऽभविष्यदानीय सीता तव मया तदा ॥६९॥
अधुना प्रार्थयामि त्वामंगदं परिपालय । इत्युक्त्वा स तदा वाली जहौ प्राणान् रणांगणे ॥७०॥
अङ्गदेन तदा रामः कारयामास तत्क्रियाम् । अथ रामं स सुग्रीवो राज्यार्थं प्रार्थयत्तदा ॥७१॥
रामस्तमेव राजानं चकार लक्ष्मणेन सः । अथ वार्षिकमासान्स वस्तुं रामोऽविचारयत् ॥७२॥
प्रवर्षणगिरेः प्रोच्चशिखरे स्फटिकोद्भवाम् । रम्यां दृष्ट्वा गुहां रामः पत्रपुष्पसमन्विताम् ॥७३॥
निनाय वार्षिकान् मासान् चतुरः श्रीरघूद्वहः । एकदा लक्ष्मणः स्नात्वा यावद्रामं समागतः ॥७४॥
सात्त्विक्या सीतया युक्तस्तावद्रामो निरीक्षितः । सौमित्रिणा वन्दिता सा पत्युर्वामे लयं ययौ ॥७५॥
एवं नासीत्तदा सीतावियोगो राघवस्य हि । सुग्रीवोऽथ पुरीमध्ये चकार राज्यमुत्तमम् ॥७६॥
एकदा हनुमद्वाक्याद्वानरान्स समाह्वयत् । प्रवर्षणगिरावास्तां तीर्थे द्वे रामलक्ष्मणे ॥७७॥
एतस्मिन्नन्तरे रामो दृष्ट्वा प्राप्तं शरदृतुम् । क्रोधेन प्रेषयामास सुग्रीवाय लक्ष्मणं च सः ॥७८॥
सोऽपि गत्वाऽथ किष्किंधां भीषयामास वानरान् । आगतं लक्ष्मणं श्रुत्वा सुग्रीवो भयविह्वलः ॥७९॥
मारुतिं प्रेषयामास सांत्वनार्थं हि लक्ष्मणम् । स गत्वा तं सांत्वयित्वा किष्किंधामानयत्तदा ॥८०॥
एतस्मिन्नन्तरे तारां प्रेषयामास वानरः । साऽपि गत्वा मध्यकक्षां संस्थितं तं ददर्श ह ॥८१॥
लक्ष्मणं सांत्वयामास वचोभिर्मधुरैर्निजैः । समाहूतानि सैन्यानि रामार्थं प्लवगेन हि ॥८२॥
सुग्रीवे च त्वया कोपो मा कार्योऽद्य हि देवर तती लक्ष्मणहस्ते सा धृत्वा राजगृहं ययौ ॥८३॥
दृष्ट्वा सुग्रीवराजस्तमासनात्स चचाल सः । सुग्रीवं लक्ष्मणः प्राह विस्मृतोऽसि रघूत्तमम् ॥८४॥
वाली येन हतो वीरः स बाणस्त्वां प्रतीक्षते । त्वमद्य वालिनो मार्गं गमिष्यसि मया हतः ॥८५॥

हाथों मरनेके गौरवसे जन्मान्तररहित शुभ गतिको प्राप्त होगा। वालीने फिर कहा--यदि आप मेरे पास आते तो मैं तुरन्त आपको सीताका पता बताता तथा रावणसे सीताको लाकर छीन क्षणभरमें आपको दे देता ॥ ६४-६९ ॥ अस्तु, अब मैं प्रार्थना करता हूँ कि आप अङ्गदकी रक्षा करिएगा। इतना कहकर वालीने उसी समय रणाङ्गणमें प्राण छोड़ दिया ॥ ७० ॥ तदनन्तर रामने अङ्गदसे उसका क्रियाकर्म कराया। बादमें सुग्रीवने रामसे वह राज्य ग्रहण करनेके लिये प्रार्थना की ॥ ७१ ॥ तब रामने लक्ष्मणको भेजकर सुग्रीवको वहाँका राजा बना दिया। अब राम बरसातमें कहीं चातुर्मास निवास करनेका विचार करने लगे ॥७२॥ तदनुसार उन्होंने वहीं प्रवर्षणगिरिके उच्च शिखरपर सुन्दर पत्तों-पुष्पोंकी लताओंसे वेष्टित एक रमणीक गुफा देखी ॥ ७३ ॥ बस, राम वहीं रहकर चौमासेके चार महीने बिताने लगे। एक दिन लक्ष्मण स्नान करके जब आये तो रामको सतोगुणमयी सीतासे युक्त देखा। लक्ष्मणने उन्हें प्रणाम किया, तैसे ही सीता अपने पति रामके वामाङ्गमें विलीन हो गयीं ॥ ७४ ॥ ७५ ॥ इस तरह उस समय भी रामसे सीताका वियोग नहीं हुआ था। उधर सुग्रीव अपनी पुरीमें उत्तम रीतिसे राज्य करने लगा ॥७६॥ एक बार हनुमान्‌के कहनेपर सुग्रीवने वानरोंको बुलवाया। उस समय राम-लक्ष्मण प्रवर्षणगिरिपर रहते थे॥ ७७॥ तभी रामने शरदृतुको प्राप्त देखा तो क्रोधसे लक्ष्मणको सुग्रीवके पास सहायताका स्मरण दिलाने लिये भेजा। उन्होंने वहाँ जाकर किष्किन्धाके वानरोंको डराना आरम्भ किया। लक्ष्मणको आया सुनकर सुग्रीव भी भयसे विह्वल हो उठा ॥ ७८ ॥ ७९ ॥ उसने लक्ष्मणको शान्त करनेके लिये हनुमान्‌को भेजा। उन्होंने जाकर लक्ष्मणको समझाया और अपने साथ किष्किन्धामें ले आये ॥ ८० ॥ उसी समय वानर सुग्रीवने तारांको भेजा। वह जाकर महलके बीचवाली दालानमें बैठ गयी। इतनेमें उसने लक्ष्मणको आते देखा॥ ८१ ॥ ताराने अपने मधुर वचनोंसे लक्ष्मणको समझाकर शांत करते हुए कहा—हे देवरजी ! वानरोंके राजा सुग्रीवने रामके कामके लिये वानरोंको बुलवा भेजा है। आप कोप न करें। इतना कह तथा लक्ष्मणका हाथ पकड़कर घरमें राजा सुग्रीवके पास ले गयी ॥ ८२ ॥ ८३ ॥ उन्हें देख राजा सुग्रीव सिंहासनसे उठकर खड़े हो गये। तब लक्ष्मणने सुग्रीवसे कहा कि तुम रघुकुलमें उत्तम

एवमत्यन्तपरुषं वदन्तं लक्ष्मणं तदा । उवाच हनुमान् वीरः कथमेवं प्रभाषसे ॥८६॥
रामकार्यार्थमनिशं जागर्ति न तु विस्मृतः । इत्युक्त्वा तं पूजयित्वा सुग्रीवेण स मारुतिः ॥८७॥
चकार लक्ष्मणं शांतं सुग्रीवोऽप्यथ वानरैः । गत्वा तं राघवं नत्वा दर्शयामास वानरान् ॥८८॥
राघवं स तदा प्राह सुग्रीवः प्लवगाधिपः । देव पश्य समायांतीं वानराणां महाचमूम् ॥८९॥
अत्र यूथाधिपतयः पद्मान्यष्टादश स्मृताः । ततो रामाज्ञया सीताशुद्ध्यर्थं तान् दिदेश सः ।९०॥
दिक्षु सर्वासु विविधान् वानरान् प्रेष्य सत्वरम् । याम्यां दिशं जाम्बवन्तमङ्गदं वायुनन्दनम् ॥९१॥
नलं सुषेणं शरभं मैंदं सम्प्रेषयत्तदा । मासादर्वाङ्निवर्तध्वं नोचेद्वध्या भविष्यथ ॥९२॥
ततो रामो मुद्रिकां स्वां ददौ मारुतिसत्करे । मन्नामाक्षरयुक्तेयं सीतायै दीयतां रहः ॥९३॥
ततो रामो निजं मन्त्रं ददौ तस्मै हनूमते । तन्मन्त्रस्य लक्षमिते कृत्वा तु जपलेखने ॥९४॥
लब्ध्वा सामर्थ्यमतुलं लंकां गन्तुं स मारुतिः । नत्वा रामं परिक्रम्य जगाम कपिभिः सह ॥९५॥
सद्वृत्तं राघवः प्राहः चित्रकूटे पुरा कृतम् । मनःशिलायास्तिलकं सीताभाले विनिर्मितम् ।.९६॥
गण्डयोः पत्रवल्ल्यादि सीतायै कथ्यतां रहः । ततस्ते प्रस्थिताः सर्वे पश्चिमादिषु दिक्षु च ॥९७॥
प्रेषितास्ते समायाता न दृष्टा सेति तं ब्रुवन् । तदांगदाद्याः प्लवगाः सीतार्थं बभ्रमुर्वने ॥९८॥
मत्वाऽयं रावणश्चेति राक्षसान्छ्रशोऽर्दयन् । सार्द्रास्यान्खेचरान्दृष्ट्वा गुहाद्वाराद्विनिर्गतान् ॥९९॥
जलार्थं संप्रविष्टास्ते गुहायां वानरोत्तमाः । तस्यां तान् गच्छतस्तूष्णीं दिनान्यष्टादशैव हि ॥१००॥
अतिक्रांतानि तिमिरे बभ्रमस्तु इतस्ततः । तत्र रत्नमये दिव्ये गेहे दृष्ट्वा स्त्रियं शुभाम् ॥१०१॥

रामको भूल गये हो ॥ ८४ ॥ जिस बाणसे वीर वाली मारा गया था । वही बाण तुम्हारी भी प्रतिक्षा कर रहा है । आज मैं तुम्हें मारकर जिस मार्गसे वाली गया है, उसी मार्गपर भेज दूँगा ॥ ८५ ॥ लक्ष्मण जब इस प्रकार अत्यन्त कठोर वचन कहने लगे । तब हनुमान्ने कहा कि आप ऐसे कठोर वचन मुँहसे क्यों निकाल रहे हैं ? ॥ ८६ ॥ रामके कार्यके लिए सुग्रीव रात-दिन सचेष्ट रहता है । इतना कहकर हनुमान्ने सुग्रीवसे लक्ष्मणकी पूजा करवायी और उनको शान्त करवाया। पश्चात् सुग्रीव वानरोंको लेकर रामके पास गये । वहाँ जा तथा वानरोंको दिखलाकर प्लवगाधिप सुग्रीवने कहा—हे देव ! देखिये, वानरोंकी बड़ी भारी सेना आ रही है ॥ ८७–८९ ॥ इसमें अठारह पद्म सेनापति हैं। तदनन्तर रामकी आज्ञासे सुग्रीवने सीताकी खोज करनेके लिये सब दिशाओंमें बहुतसे वानरोंको उसी समय भेज दिया । उनमेंसे जाम्बवान्, अंगद, हनुमान्, नल, नील, सुषेण तथा मैंदको दक्षिण दिशामें भेजा और कह दिया कि एक मासके भीतर सीताकी सुधि लेकर लौट आओ, नहीं तो तुम सबको मार डाला जायगा ॥ ९०–९२ ॥ तब रामने अपनी अंगूठी हनुमान्के हाथोंमें दी ओर कहा कि यह मेरे नामसे अङ्कित अंगूठी एकान्तमें सीताको देना ॥ ९३ ॥ बादमें अपना मंत्र हनुमान्को दिया। जिसको कि एक लाख बार जप तथा लिखकर लङ्का जानेकी अतुल सामर्थ्य प्राप्त करनेके पश्चात् हनुमान्ने रामको प्रणाम किया और परिक्रमा करके वानरोंके साथ चल दिये ॥ ९४ ॥ ९५ ॥ चलते समय रामने चित्रकूटमें किया हुआ एक चरित्र हनुमान्को सुनाते हुए कहा कि एक समय मैंने सीताके मस्तकमें मैनसिलका तिलक तथा कपोलोंपर पत्रावलीकी रचना की थी । इस बातको तुम सीतासे एकान्तमें कहना । जिससे कि उनको तुम्हारा विश्वास हो जाय। इसके बाद वे सब विभिन्न दिशाओंको चल दिये ॥ ९६ ॥ ९७ ॥ कुछ कालके बाद बहुतेरे वानरोंने आ-आकर सुग्रीवसे कहा कि हमको सीता कहीं नहीं दिखाई दीं । उधर अङ्गदादि वानर भी सीताको खोजते हुए वनमें इधर-उधर भ्रमण कररहे थे । वहाँ उन्होंने गीली चोंचवाले बहुतसे पक्षी देखे ॥ ९८ ॥ ९९ ॥ यह देखकर प्याससे पीडित वानरोंमें उत्तम वे वानर जलकी अभिलाषासे उस गुफामें घुसे । उसमें जाते-जाते उन्हें अठारह दिन बीत गये ॥ १०० ॥ वे उस अंधकारमें इधर-उधर भटकने लगे । अचानक वहाँ उन्हें रत्नमय दिव्य दो भवन तथा उनमें एक सुन्दरी स्त्री दिखायी

संश्राव्यतां निजं वृत्तं त्वद्वृत्तं श्रोतुमुद्यताः । तान्पूज्य कथयामास चैनं वृत्तं तु योगिनी ॥१०२॥
हेमानाम्नो सुता विश्वकर्मणः सा महेश्वरम् । नृत्येन तोषयामास ददौ तस्यै पुरं महत् ॥१०३॥
अत्र स्थित्वा चिरं कालं यदा गंतुं समुद्यता । सा मां प्राहात्र रामस्य प्रतीक्षां कुरु सद्मनि ॥१०४॥
समागच्छस्व रामस्य कृत्वा पूजनमुत्तमम् । इत्युक्त्वा सा दिवं याता राघवं गम्यते मया ॥१०५॥
स्वयंप्रभेति नाम्नाऽहं हेमायाः परिचारिका । अधुना ब्रूत युष्माकं साहाय्यं किं करोम्यहम् ॥१०६॥
तत्तस्या वचनं श्रुत्वा मत्वा स्वीयदिनव्ययम् । तामूचुर्वानराः सर्वे नस्त्वं कुरु गृहाद्बहिः ॥१०७॥
इत्युक्ता सा क्षणेनैव तैः सहैव ययौ बहिः । तद्गिराच्छादितस्वीयनयनैर्वानरैस्तदा ॥१०८॥
न ज्ञातं च तया केन मार्गेण च बहिः कृतम् । साऽपि गत्वा पूज्य रामं देहं त्यक्त्वा दिवं ययौ१०९॥
ततस्ते वानरा ज्ञात्वा गुहायां स्वदिनव्ययम् । विषण्णाः सागरं दृष्ट्वा तस्थुः प्रायोपवेशने ॥११०॥
जटायोः कीर्तनं चक्रू रामकार्ये मृतं पुरा । तच्छ्रुत्वाऽथ स संपातिः तान्हंतुं यः समुद्यतः ॥१११॥
तेभ्यः श्रुत्वा मृतिं बंधोर्दत्त्वा तस्मै जलांजलिम् । तेषां श्रुत्वा पूर्ववृत्तं सीतावृत्तं न्यवेदयत् ॥११२॥
शतयोजनमध्येऽब्धेर्लंकायां वर्ततेऽधुना । अशोकवनिकायां तु तीर्त्वाऽब्धिं तां प्रपश्यथ ॥११३॥
अहं पक्षविहीनोऽस्मि मया गन्तुं न शक्यते । गृध्रत्वाद्दूरदृक्चाऽह सीता मां दृश्यते गिरौ ॥११४॥
भ्रात्रा जटायुषा पूर्वमुड्डीयाहं बलाद्रविम् । स्प्रष्टुकामस्तदा तप्तस्तातो बंधुर्मया सखे ॥११५॥
पक्षाभ्यां भस्मसाज्जातौ मे पक्षौ पतितावुभौ । जटायुः स सपक्षश्च गतो देशांतरं पुनः ॥११६॥
अहं तदा पक्षहीनश्चन्द्रशर्माणमुत्तमम् । मुनिं नत्वा तदा तस्मै निजवृत्त निवेदितम् ॥११७॥

दी ॥ १०१ ॥ उसके वृत्तान्तका सुननेकी अभिलाषासे वानरोंने कहा—अपना वृत्तान्त सुनाओ, तुम कौन हो और तुम्हारा क्या नाम है ? वह योगिनी उन सबका सम्मान करके कहने लगी—॥ १०२ ॥ विश्वकर्माकी हेमा-नामसे प्रसिद्ध एक कन्या थी। उसने जब महादेवजीको नृत्य-गान करके प्रसन्न किया। तब उन्होंने उसको यह बड़ा भारी नगर दिया ॥ १०३ ॥ यहाँ बहुत कालतक निवास करके जब वह जाने लगी। तब उसने मुझको कहा कि यहाँ बहुत कालतक निवास करती हुई तुम रामके आगमनकी प्रतीक्षा करो ॥ १०४ ॥ उन रामका उत्तम प्रकारसे पूजन करनेके बाद तुम भी चली आना। इतना कहकर वह चली गयी। इसी कारण अब मैं भी रामके पास जाना चाहती हूँ ॥ १०५ ॥ उसी हेमाकी मैं स्वयंप्रभा नामकी दासी हूँ। अब आप लोग यह कहें कि मैं आप लोगोंकी कौन-सी सहायता करूँ ॥ १०६ ॥ उसकी इस बातको सुन तथा बहुत दिन व्यर्थ व्यतीत हुआ देखकर वे सब उससे बोले कि हमको इस मकानसे बाहर कर दो ॥ १०७ ॥ यह सुनकर उसने उन सबको अपनी-अपनी आँखें मूँदनेके लिए कहा। ऐसा करनेपर वानरोंको यह नहीं मालूम हो पाया कि उन्हें किसने और किस मार्गसे बाहर कर दिया। वह भी रामके पास चली गयी तथा उनकी पूजा करके स्वर्ग सिधारी ॥ १०८ ॥ १०९ ॥ पश्चात् वे सब वानर अपनी अवधिके दिनोंको बीते देख उदास हो समुद्रके किनारे गये और उपवास करने लगे ॥ ११० ॥ वार्तालापके प्रसंगमें रामके लिए प्राणतक दे देनेवाले जटायुकी चर्चा चल पड़ी। वहाँ रहनेवाला संपाती जो उनको खा जानेके लिये उद्यत था। वह उनके मुखसे रामके कार्यके लिये जटायुका मरण तथा प्रशंसा सुनकर भाई जटायुको जलाञ्जलि देनेके लिए समुद्रतटपर गया। पश्चात् उन वानरोंका वृत्तान्त सुनकर उनको सीताका समाचार कह सुनाया और कहा—॥ १११ ॥ ११२ ॥ यहाँसे समुद्रको पार करके सौ योजनकी दूरीपर तुम उन्हें देख सकते हो ॥ ११३ ॥ मैं पाँखोंसे रहित हूँ। इस कारण वहाँतक नहीं जा सकता। गृध्रकी दृष्टि तेज होती है। अतएव मैं सीताको पर्वतपर बैठी हुई लङ्कामें यहाँसे देख रहा हूँ ॥ ११४ ॥ मेरे पंख न होनेका कारण यह है कि मैं एक बार अपने बलके दर्पसे भाई जटायुके साथ उड़कर सूर्यका स्पर्श करनेके लिए आकाशमें उड़ा। राहमें सूर्यकी गर्मीसे जटायु जलने लगा। तब मैंने अपनी पाँखोंसे ढाककर उसकी रक्षा की। जिससे कि मेरी दोनों पाँखें भस्म हो गयीं और मैं तथा जटायु दोनों ऊपरसे गिर पड़े। जटायु तब भी सपक्ष था। लुढ़कते-लुढ़कते मैंने चन्द्रशर्मा नामक मुनिके

तदा मां स मुनिः प्राह यदा त्वं वानरोत्तमान् । सीताशुद्धिं कथयसि तदा पक्षौ भविष्यतः ॥११८॥
पश्यतां निर्गतौ पक्षौ कोमलौ मां क्षणादिह । यदा नीता रावणेन पुरा सीता विहायसा ॥११९॥
मत्पुत्रेण तदा दृष्टा कथितं चापि मां तदा । धिक्कृतः स मया क्रोधात्सा त्वया न विमोचिता१२०॥
तदारभ्य गतः क्रोधादद्यापि न समागतः । इत्युक्त्वा तान् कपीन् पृष्ट्वा स संपातिर्गतस्तदा॥१२१॥
अथ ते वानराः सर्वे प्रोचुः स्वं स्वं बलं तदा । न कोऽपि गमने शक्तः शतयोजनसागरे ॥१२२॥
तदा स जांबवान् वृद्धः स्तुत्वा तं मारुतिं मुहुः । जन्मकर्मादि संश्राव्य लंकां गंतुं दिदेश तम् ॥१२३।
सोऽपि श्रुत्वा समुद्योगं चकारारुह्य पर्वतम् । निजभाराद्भूमिगतं कृत्वा सस्मार राघवम् ॥१२४॥
एवं गिरींद्रजे प्रोक्तं किष्किंधाविषये कृतम् । चरितं राघवेणेदं पुरा पापप्रणाशनम् ॥१२५॥

इति श्रीशतकोटिरामचरितान्तर्गते श्रीमदानन्दरामायणे सारकांडे किष्किन्धाचरित्रेऽष्टमः सर्गः ॥ ८ ॥

नवमः सर्गः

(हनुमान्का लंकामें जाकर सीताका पता लगाना और लंका जलाना)

श्रीशिव उवाच

अथ उड्डीय हनुमान् ययावाकाशवर्त्मना । तद्‌दृष्ट्वा तद्बलं ज्ञातुं सुरसां नागमातरम् ॥ १ ॥
प्रेषयामासुरमराः सा शीघ्रं तत्पुरो ययौ । तदा सा मारुतिं प्राह विश त्वं वदनं मम ॥ २ ॥
स प्राह रघुवीरस्य कार्यं कृत्वा विशाम्यहम् । दृष्ट्वा तस्यास्तु निर्बन्धं व्यवर्धत तदा कपिः ॥ ३ ॥
विवर्धितं तयाऽप्यास्यं तदा सूक्ष्मो बभूव ह । अंगुष्ठमात्रस्तस्याः स वक्त्रे गत्वा विनिर्गतः ॥ ४ ॥

पास जाकर प्रणाम किया और अपना वृत्तांत उन्हें सुनाया ॥ ११५–११७ ॥ तब मुनिने कहा कि जब तुम वानरोंको सीताकी खबर सुनाओगे । उसी समय तुम्हारा पाँखें पुनः जम जायँगी ॥ ११८ ॥ देखो, मेरे शरीर-में ये कोमल पाँखें क्षणभरमें निकल आयीं । उस समय जब रावण सीताको आकाशमार्गसे ले जा रहा था ॥ ११९ ॥ उसी समय मेरे पुत्रने उनको देखा तो आकर मुझसे कहा । तब मैंने उसको बहुत धिक्कारा और कहा—अरे दुष्ट ! तूने सीताको छुड़ाया क्यों नहीं ? ॥ १२० ॥ तब वह कुपित होकर मेरे पाससे चला गया और आजतक नहीं लौटा । इतना कह तथा वानरोंसे पूछकर संपाती भी वहाँसे चला गया ॥ १२१ ॥ तब वानरोंने परस्पर एक दूसरेसे अपना-अपना बल पूछा तो पता लगा कि सौ योजन विस्तारवाले समुद्रको लाँघनेके लिये कोई समर्थ नहीं है ॥ १२२ ॥ तब वृद्ध जाम्बवान्ने हनुमान्‌को बारंबार प्रशंसा की । उनका जन्म तथा कर्म कह सुनाया और उन्हें लङ्का जानेका आदेश दिया ॥ १२३ ॥ हनुमानजी भी जाम्बवान्‌के वचन सुन तथा अपना पुरुषार्थ स्मरण करके पर्वतपर चढ़कर कूदनेको उद्यत हुए । अपने भारसे उन्होंने पवतको जमीनमें धँसा दिया और रामका स्मरण करने लगे ॥ १२४ ॥ हे गिरीन्द्रजे ! इस प्रकार पहिले किया हुआ रामका किष्किन्धाचरित्र मैंने तुमको सुना दिया । जो कि श्रवणमात्रसे पापोंका नाश कर देता है ॥ १२५ ॥ इति श्रीशतकोटिरामचरितांतर्गते श्रीमदानन्दरामायणे सारकाण्डे किष्किन्धाचरित्रे भाषाटीकायाष्टमः सर्गः ॥ ८ ॥

शिवजी बोले—तदनन्तर हनुमान् उड़कर आकाशमार्गसे लंकाको चले । यह देखकर उनके बलकी परीक्षा लेनेके लिये देवताओंने नागोंकी माता सुरसाको भेजा । वह शीघ्र मार्गमें हनुमान्‌जीके सामने जाकर खड़ी हो गयी और मुख फाड़कर हनुमानसे कहने लगी कि तू आकर मेरे मुखमें प्रवेश कर । मैं तुझे खाऊँगी ॥ १ ॥ २ ॥ हनुमान्ने उत्तर दिया कि मैं श्रीरामका कार्य संपादन करनेके बाद आकर तुम्हारे मुखमें प्रवेश करूँगा । परन्तु उसका अधिक आग्रह देखकर कपिने अपना शरीर बढ़ाया ॥ ३ ॥ यह देखकर सुरसाने भी अपनी काया और अधिक बढ़ायी । तब हनुमान् अंगुष्ठमात्रका सूक्ष्म रूप धरके उसके मुखमें प्रविष्ट होकर

ज्ञात्वा साऽपि बलं तस्य स्तुत्वा तं प्रययौ दिवम्। अथाब्धिवचनान्मार्गे मैनाकः पर्वतो महान् ॥ ५ ॥
जलमध्यात्प्रादुरभूद्विश्रांत्यर्थं हनूमतः। नानामणिमयैः शृङ्गैस्तस्योपरि नराकृतिः ॥ ६ ॥
भूत्वा यान्तं हनूमन्तं प्राह मैनाकपर्वतः। आगच्छामृतकल्पानि जग्ध्वा पक्वफलानि च ॥ ७ ॥
विश्रम्यात्र क्षणं पश्चाद्गमिष्यसि यथासुखम्। पुरा गिरीणामिंद्रेण युद्धमासीत्सुदारुणम् ॥ ८ ॥
तदा दशरथेनाहं मोचितोऽस्म्यत्र संस्थितः। अतस्तदुपकारं हि निस्तर्तुं निर्गतोऽस्म्यहम् ॥ ९ ॥
गच्छतो रामकार्यार्थं तव विश्रांतिहेतवे। तदा तं हनुमानाह रामकार्ये न मे श्रमः ॥१०॥
विश्रामः स्वामिकार्येऽत्र न करोम्यद्य भक्षणम्। मैनाकस्तं पुनः प्राह स्वस्पर्शात्पावयस्व माम् ॥११॥
तथेति स्पृष्टशिखरः कराग्रेण ययौ कपिः। किंचिद्दूरं गतस्यास्य छायां छायाग्रहोऽग्रहीत् ।१२।
सिंहिकानाम सा घोरा जलमध्ये स्थिता सदा। आकाशगामिनां छायामाक्रम्याकृष्य भक्षती ॥१३॥
तया गृहीतो हनुमांश्चिंतयामास वीर्यवान्। केनेदं मे कृतं वेगरोधनं विघ्नकारिणा ॥१४॥
एवं विचिंत्य हनुमानधो दृष्टिं प्रसारयन्। तत्र दृष्ट्वा सिंहिकां तां तदास्ये न्यपतत्कपिः ॥१५॥
तस्यांत्रजालं निष्कास्य तां हत्वाऽग्रे ययौ पुनः। ततोऽब्धेर्दक्षिणे कूले लंकां कृत्वा तु पार्श्वतः ॥१६॥
पपात परलंकायां तत्र तां रावणस्वसाम्। क्रौंचां हत्वा सिंहिकावल्लंकां रात्रौ विवेश सः ॥१७॥
तदा लङ्कापुरी नाम्नी राक्षसी तं व्यतर्जयत्। हनुमानपि तां वाममुष्टिनाऽवज्ञयाऽहनत् ॥१८॥
तदा स्मृत्वा ब्रह्मवाक्यं सा प्राहाश्रुमुखी पुरी। ब्रह्मणोक्ता पुरा चाहं यदा त्वां धर्षयेत्कपिः ॥१९॥
तदा रामो रावणस्य वधार्थमत्र यास्यति। ज्ञातं मया रावणस्य वधं रामः करिष्यति ॥२०॥
जितं त्वया गच्छ लंकामशोके पश्य जानकीम्। ततो विवेश हनुमाँल्लंकां पश्यन्ययौ तदा ॥२१॥

शीघ्र बाहर निकल आये ॥ ४॥ तब सुरसा उनका बल जान और स्तुति करके स्वर्गको चली गयी। पश्चात् समुद्रके कहनेसे महान् मैनाक पर्वत जलके बीचमेंसे हनुमान्‌के विश्रामके लिये आश्रय देनेको उठ खड़ा हुआ। नाना मणिमय शिखरोंके ऊपर मनुष्यका रूप धारण करके मैनाक पर्वत आते हुए हनुमान्‌से बोला कि आइए और मेरे अमृततुल्य फलोंको खाइए ॥ ५-७॥ तत्पश्चात् क्षणभर विश्राम करके सुखपूर्वक आगे जाइयेगा। पूर्वसमय पर्वतोंका इन्द्रके साथ दारुण युद्ध हुआ था ॥ ८॥ उस समय राजा दशरथने मुझे बचाया था। तबसे मैं यहाँ आकर रहता हूँ। मैं उनके उपकारसे उऋण होनेके लिये ही आपके सामने उपस्थित हुआ हूँ ॥ ९॥ सो इसलिये कि रामकार्यके लिये जाते हुए आप मेरे ऊपर विश्राम करके जायँ। तब उससे हनुमान्‌ने कहा कि क्या रामके कार्यसे मुझे श्रम होगा? अरे, स्वामीके कार्यमें तो सदा विश्राम ही रहता है। इसलिये मैं यहाँ ठहरकर भोजन आदि नहीं कर सकता। तब फिर मैनाकने कहा—अच्छा, कमसे कम अपने हाथसे स्पर्श करके तो मुझे पवित्र कर दें॥ १०॥ ११॥ 'तथास्तु' कह हनुमान् हाथसे उसके शिखरको छूकर चल पड़े। जब कुछ दूर आगे बढ़े तो उनकी छायाको किसी छायाग्रहने पकड़ लिया ॥ १२॥ वह सिंहिका नामकी घोर राक्षसी थी। जो सदा जलमें रहा करती थी और आकाशमार्गमें उड़ते हुए पक्षियोंकी छाया पकड़कर खींच लेती और खा जाती थी ॥ १३॥ उसके पकड़नेपर बलवान् हनुमान् सोचने लगे कि किसने रामके काममें विघ्न डालनेके लिए मेरा वेग रोक दिया ॥ १४॥ यह विचारकर हनुमान्‌ने नीचे देखा तो सिंहिका राक्षसीको देखकर उसके मुखमें ही कूद पड़े ॥ १५॥ उन्होंने उसकी आँतें निकाल लीं और उसे मार डाला। वहाँसे आगे बढ़े तो समुद्रके दक्षिण किनारे स्थित लङ्काकी बगलमें स्थित परलङ्कामें जा पहुँचे। वहाँ रावणकी लड़की क्रौंचाको सिंहिकाके ही समान मारकर रात्रिके समय लङ्कामें प्रवेश किया ॥ १६॥ १७॥ तब उन्हें लङ्का नामकी राक्षसी डराने लगी। हनुमान्‌ने उसको भी अवज्ञासे बाएँ हाथका एक मुक्का मारा ॥ १८॥ उस समय ब्रह्माके वाक्यका स्मरण करके लंका आँखोंमें आँसू भरकर बोली कि पूर्वकालमें ब्रह्माने मुझसे कहा था कि जब कोई वानर तेरा अपमान करेगा ॥ १९॥ तब राम रावणका वध करनेके लिए यहाँ

ददर्श लङ्कां तां रम्यां गोपुराट्टालमंडिताम् । हट्टवीथीचतुष्काढ्यां त्रिकूटशिखरस्थिताम् ॥२२॥
पश्यन्समन्ततः सीतां प्रतिगेहं स मारुतिः । गुहायां निद्रितं कुम्भकर्णं दृष्ट्वा भयानकम् ॥२३॥
दृष्ट्वा विभीषणं रामकीर्तने हृष्टमानसम् । दृष्ट्वा सुलोचनायुक्तं निद्रितं मेघनिःस्वनम् ॥२४॥
ययौ राजगृहं रात्रौ रावणं सदसि स्थितम् । दृष्ट्वा स्वयं वायुरूपो दीपराजीर्व्यलोकयत् ॥२५॥
अकरोद्वस्त्रहीनास्तान् रावणादीन्स मारुतिः । उल्मुकेनाकरोद्भस्म कूर्चं च रावणस्य च ॥२६॥
राक्षसीः कोटिशो नग्नाः कृत्वा तोयघटान्कपिः बभंज लीलया तूर्णीं दूतान्पुच्छेन तर्जयन् ॥२७॥
तदाऽतिविह्वलाः सर्वे प्रोचुस्तेऽथ परस्परम् । क्रुद्धाऽद्य जानकी सत्यं नः प्राणांतमुपागतम् ॥२८॥
तच्छ्रुत्वा तुष्टचित्तः स ययौ रावणसद्गृहम् । अदृष्ट्वा जानकीं तत्र ययौ पुष्पकमुत्तमम् ॥२९॥
रावणं निद्रितं दृष्ट्वा वेष्टितं स्त्रीकदम्बकैः । दृष्ट्वा मन्दोदरीं तत्र सीतेयमिति शंकितः ॥३०॥
लक्ष्मणोक्तानि चिह्नानि पश्यंस्तस्यां ददर्श न । तथापि सीतासदृशीं दृष्ट्वा व्यग्रमनास्त्वभूत् ॥३१॥

पार्वत्युवाच

कथं मन्दोदरी सीतासदृशी राक्षसीरिता । सीतांशांशांशजाः सर्वाः स्त्रियश्चेति श्रुतं मया ॥३२॥

श्रीशिव उवाच

शृणुष्व कारणं देवि सीतेयं विष्णुना चिता । तेनैव विष्णुना पूर्वमियं मन्दोदरी चिता ॥३३॥
एकदा कैकसी माता रावणं प्राह दुःखिता । शेषोच्छ्वासेन तल्लिङ्गं गतं चाद्य रसातलम् ॥३४॥
शिवादानीय मां देहि आत्मलिंगमनुत्तमम् । तन्मातृवचनं श्रुत्वा गायनाद्वरदोन्मुखम् ॥३५॥
मामाह रावणो वाक्यं द्वौ वरौ देहि मां प्रभो । आत्मलिंगं च मन्मात्रे पत्न्यर्थं पार्वतीं मम ॥३६॥

आयेंगे। सो अब मैंने जान लिया कि राम रावणको मारेंगे ॥ २० ॥ तुमने लङ्काको जीत लिया। जाओ, लङ्कामें घुसकर अशोकवाटिकामें जानकीको देखो। तब हनुमान सीताको खोजते हुए लङ्कामें घुसे ॥ २१ ॥ उन्होंने पुरद्वार तथा अटारियोंसे मण्डित रम्य लङ्कापुरीको देखा। वह त्रिकूट पर्वतके शिखरपर स्थित बाजारों, सड़कों तथा चौराहोंसे रमणीक लग रही थी ॥ २२ ॥ हनुमानसे सब ओर प्रत्येक घरमें सीताको ढूँढ़कर गुफामें सोये हुए कुम्भकर्णको देखा ॥ २३ ॥ उन्होंने रामनामके कीर्तनसे प्रसन्नमन विभीषणको और सुलोचनाके साथ सोये हुए मेघनादको देखा ॥ २४ ॥ तदनन्तर राजभवनमें जाकर रात्रिके समय सभामें स्थित रावणको देखा। यह देखकर वायुपुत्र हनुमान्ने दीपकोंको बुझा दिया ॥ २५ ॥ हनुमान्जीने उन रावणादिको नग्न करके रावणकी दाढ़ी-मूछ आदिको लुआठीसे जलाकर भस्म कर दिया ॥ २६ ॥ करोड़ों राक्षसियोंको नग्न कर दिया। खेल-खेलमें जलके घड़ोंको फोड़ डाला और चुपकेसे बहुतेरे सिपाहियोंको पूछसे खूब पीटा ॥ २७ ॥ अतिशय विह्वल होकर वे सब परस्पर कहने लगे कि सचमुच सीताजी हम लोगोंपर क्रुद्ध हुई हैं। अब हम लोगोंका प्राणान्तकाल निकट आ गया है ॥ २८ ॥ यह सुना तो संतुष्टचित होकर हनुमान् रावणके महलमें गये। वहाँ भी जानकीको न देखकर पुष्पकविमानमें गये ॥ २९ ॥ वहाँ रावणको स्त्रियोंके झुण्डसे वेष्टित होकर सोता हुआ देखा। साथ ही मन्दोदरीको देखकर 'यही सीता है क्या ?' ऐसी आशंका करने लगे। ॥ ३० ॥ परन्तु जब लक्ष्मणके कथनानुसार सीताकी मुखाकृति मिलाने लगे तो नहीं मिली। फिर भी उसको सीताके समान देखकर आश्चर्यचकित हुए ॥ ३१ ॥ पार्वतीजीने पूछा—हे सदाशिव ! राक्षसी मन्दोदरी सीताके सदृश कैसे थी ? मैंने तो सुना है कि संसारकी सब स्त्रियें सीताके अंशांशसे उत्पन्न हुई हैं ॥ ३२ ॥ श्रीशिवजी कहने लगे—एक बार रावणकी माता कैकसीने दुःखित होकर रावणसे कहा कि शेषनागके उच्छ्वाससे मेरा नित्य पूजा करनेका शिवलिंग पातालमें चला गया है ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ सो तुम एक उत्तम लिङ्ग शिवजीसे माँगकर मुझे ला दो। माताके वचनको सुना तो अपने गायनसे वरदान देनेके लिए राजी करके मुझसे रावणने कहा—हे प्रभो ! मुझको दो वर दीजिए। एकसे मेरी माताके लिए आत्मलिङ्ग और दूसरेसे

तत्तस्य वचनं श्रुत्वा त्वं दत्ताऽसि गिरींद्रजे । दत्त्वाऽऽत्मलिंगं संप्रोक्तो मया त्वं यदि रावण ॥३७॥
मार्गे लिंगं भूमिसंस्थं करोषि तर्ह्यहं पुनः । नाग्रे गच्छामि तत्स्थानात्तत्रैव च वसाम्यहम् ॥३८॥
तथेति रावणश्चोक्त्वा देव्या लिंगेन सो ययौ । तदा त्वया स्मृतो विष्णुस्तेनाङ्गचन्दनादिना ॥३९॥
कृत्वा मन्दोदरी नारी मयहस्तेऽर्पिता शुभा । तां निनाय मयः शीघ्रं पाताले स्वीयसद्गृहम् ॥४०॥
ततो द्विजस्वरूपेण विष्णुः प्राह दशाननम् । प्रतारितः शिवेन त्वं दत्त्वा दुर्गां तु कृत्रिमाम् ॥४१॥
पाताले मयगेहे सा गोपिताऽस्ति शिवेन हि । विविच्यसि त्वं स्वर्लोकं भूलोकं चेति शंकया ॥४२॥
स्वीयं मत्त्वा तु पातालं तत्र त्वं न गवेष्यसि । त्यजेमां कृत्रिमां दुर्गां पश्य तां मयसद्मनि ॥४३॥
गिरींद्रजां महारम्यां पत्नीं कृत्वा सुखं भज । तद्विप्रवचनं सत्यं मत्वा मामेत्य वै पुनः ॥४४॥
विहस्य रावणः प्राह ज्ञातं तेऽन्तर्गतं मया । अर्पिता कृत्रिमा देवी मां तां गोप्य रसातले ॥४५॥
तवैवास्त्वधुना चेयं त्वहं नेष्यामि गोपिताम् । इत्युक्त्वा त्वां विसृज्याथ पातालं गन्तुमुद्यतः ॥४६॥
तावन्मार्गे ह्यल्पशंकाग्रस्तः प्राह द्विजं तदा । आत्मलिंगं क्षणं हस्ते गृह्णीष्व वचनान्मम ॥४७॥
यावन्निवर्त्य शंकां स्वामहमेष्यामि वेगतः । द्विजवेषधरो विष्णुस्तदा प्राह दशाननम् ॥४८॥
अतिक्रांते मुहूर्तेऽथ लिङ्गं स्थाप्य व्रजाम्यहम् । तथेति रावणश्चोक्त्वा तत्करे लिंगमर्पयत् ॥४९॥
ततो मूत्रस्य सा धाराऽखंडिताऽभूच्चिरं प्रिये । अतिक्रान्ते मुहूर्तेऽथ लिंगं सागररोधसि ॥५०॥
पश्चिमे स्थाप्य भूम्यां स ययौ स्वीयस्थलं हरिः । ततः स रावणश्चापि मूत्रं कृत्वा यथाविधि ॥५१॥
लिंगं दृष्ट्वा भूमिसंस्थं तच्छिरश्चालयत्तदा । तदा भूम्यां गतं लिङ्गं शिरः किंचिच्चचाल न ॥५२॥
अभूद्गर्ता कर्णरंध्रसदृशी तच्छिरःस्थले । गर्तायां तच्छिरश्चापि कर्णशंकूपमं कृशम् ॥५३॥

पत्नी बनानेके लिए मुझे पार्वतीको दे दीजिए ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ हे गिरीन्द्रजे ! उसकी वरयाचना सुनकर मैंने तुमको उसे दे दिया और आत्मलिङ्ग भी देकर उससे कहा—हे रावण ! देख, यदि तूने इस लिङ्गको मार्गमें कहीं भी रख दिया तो मैं आगे न जाकर वहीं रह जाऊँगा ॥ ३७ ॥ ३८ ॥ 'बहुत अच्छा' कहकर रावण देवी पार्वती तथा लिङ्गको लेकर चला गया। उस समय तुमने विष्णुभगवानका स्मरण किया । तब उन्होंने अपने अङ्गके चन्दन आदिसे मन्दोदरीको सुन्दरी स्त्री बनाकर मय दानवको दिया। उसे लेकर मयदानव पातालके अपने मनोहर भवनको चला गया ॥ ३९ ॥ ४० ॥ तब विष्णुभगवान्‌ने ब्राह्मणका रूप धारण करके रास्तेमें रावणसे कहा-हे दशानन ! शिवजीने तुमको ठग लिया । उन्होंने यह नकली पार्वती तुमको दी है ॥ ४१ ॥ असलीको तो शिवजीने पातालमें मयदानवके घरमें छिपा रखा है । उन्होंने यह सोचा कि तुम स्वर्ग तथा भूलोकमें ही खोजोगे ॥ ४२ ॥ अपना समझकर पातालमें न खोजोगे । इस कारण तुम इस कृत्रिम दुर्गाको तो छोड़ दो और मय-दानवके घर जाकर यथार्थ पार्वतीको ढूँढ़ निकालो ॥ ४३ ॥ उस अत्यन्त सुन्दरी पार्वतीको पत्नी बनाकर सुख भोगो । विप्रके उस वचनको सच मानकर पुनः रावण मेरे पास आया ॥ ४४ ॥ वह हँसकर बोला कि मैंने आपके हृदयगत अभिप्रायको जान लिया है । आपने असली पार्ववीको रसातलमें छिपाकर मुझे नकली पार्वती दे दी है ॥ ४५ ॥ इसको अब अपने पास ही रखिए । मैं तो उस छिपी हुई पार्वतीको ही ले जाऊँगा। इतना कह तथा तुमको वहीं छोड़कर वह पातालमें जानेके लिए उद्यत हुआ ॥ ४६ ॥ रास्तेमें लघुशङ्का करनेकी इच्छावश उसने ब्राह्मणसे कहा—हे द्विज ! मेरी प्रार्थना स्वीकार करके क्षणभरके लिए इस शिवलिङ्गको अपने हाथमें लिये रहो ॥ ४७ ॥ मैं अभी लघुशङ्का करके तुम्हारे पास आ रहा हूँ । द्विजवेष धारण करनेवाले विष्णुने कहा—हे दशानन ! यदि अधिक देर लगेगी तो मैं लिङ्गको यहींपर रखकर चला जाऊँगा। अच्छी बात है, कहकर रावणने शिवलिङ्ग उनके हाथमें दे दिया ॥ ४८ ॥ ४९ ॥ रावण जब लघुशङ्का करने लगा तो बहुत देर तक मूत्रकी अखण्ड धारा चलती रही । अधिक समय बीत जानेपर सागरके पश्चिम किनारे लिङ्गको रखकर विष्णुभगवान अपने स्थानको चले गये। उसके पश्चात् रावण भी विधिवत् मूत्रत्याग करके वहाँ आया ॥ ५० ॥ ५१ ॥ लिङ्गको जमीनपर रक्खा देखकर उसके सिरको हिलाया, परन्तु भूमिगत लिङ्गका सिर नहीं हिला

भुवः कर्णोपमं लिंगं गोकर्णं तद्वदंति हि । ततः खिन्नमनास्तूष्णीं पातालं रावणो ययौ ।।५४।।
मयगेहे निरीक्ष्याथ देवीं मंदोदरीं वराम् । मयं संप्रार्थयामास ददौ तां रावणाय सः ।।५५।।
ततो विवाहं निर्वर्त्य पारिबर्हं ददौ मयः । रावणाय दृढां शक्तिममोघां शत्रुघातिनीम् ।।५६।।
दृष्ट्वा मन्दोदरं तस्याः प्राह मन्दोदरीमिति । तां नाम्ना रावणस्तुष्टस्तया स्वीयस्थलं ययौ ।।५७।।
ततो मात्रा धिकृतः स पुनस्तप्तुं त्वरान्वितः । गोकर्णं रावणो गत्वा तप्त्वा लब्ध्वा विधेर्वरान् ।।५८।।
त्रैलोक्यं स्ववशे कृत्वा लंकायां राज्यमाप सः । तस्मात्सीतासमानेयं दृष्टा मन्दोदरी प्रिये ।।५९।।
लंकायां वायुपुत्रेण रावणाग्रे विनिद्रिता । मयोऽप्यासीत्स लंकायां गृहं कृत्वा यथासुखम् ।।६०।।
मयबंधुर्गयो नाम महान् वीरः प्रतापवान् । रात्रौ विनिद्रितो गेहे ब्रह्मदत्तवरात्सुधीः ।।६१।।
दशास्यहस्तात्तन्मृत्युर्विधिनोक्तं विचिंत्य च । तस्य वस्त्रं मारुतिना हृतं सदसि वै पुरा ।।६२।।
तत्क्षिपद्धेमपर्यङ्के रावणस्य कपिस्तदा । विभीषणस्य पर्यंके वसनं रावणस्य च ।।६३।।
क्षिप्त्वापश्यज्जानकीं स लंकायां च मुहुः कपिः । ययावशोकवनिकां वृक्षप्रासादमंडिताम् ।।६४।।
ददर्श तत्र प्रांशुं च शिंशपानाम पादपम् । तन्मूले राक्षसीमध्ये ददर्शावनिकन्यकाम् ।।६५।।
एकवेणीं कृशां दीनां मलिनांबरधारिणीम् । भूमौ शयानां शोचंतीं रामरामेति भाषिणीम् ।।६६।।
कृतार्थोऽहमिति प्राह दृष्ट्वा सीतां स मारुतिः । शिंशपानगशाखाग्रपल्लवाभ्यंतरे स्थितः ।।६७।।
पुरा दृष्टानलंकारान् तस्य देहे ददर्श न । ततः किलकिलाशब्दैर्ययौ तत्र दशाननः ।।६८।।
ददर्श रावणः स्वप्ने कपिः कश्चित्समागतः । अशोकवनिकायां सा दृष्टा तेन विदेहजा ।।६९।।

।।५२।। उसके शिरोभागकी जगह कानके छेदकी तरह गड़हा हो गया। गड़हेसे सिर भी कर्णशंकुकी तरह कृश हो गया ।। ५३ ।। अतएव पृथ्वीके कर्णके सदृश वह लिङ्ग गोकर्ण नामसे विख्यात हुआ। तब खिन्नमन होकर रावण चुपचाप पाताल चला गया ।। ५४ ।। मयके घरमें सुन्दरी मन्दोदरीको देखकर मयसे रावणने प्रार्थना की। तब मयने रावणको वह कन्या दे दी ।। ५५ ।। इस प्रकार मयने कन्याका विवाह करके रावणको दहेजमें बहुत-सा वस्त्र-आभूषण आदि दिया और शत्रुघातिनी, अमोघ दृढ़ शक्ति भी दी ।। ५६ ।। उस देवीका उदर मन्द अर्थात् सूक्ष्म देखकर रावणने उसका नाम मन्दोदरी रखा और उसके लाभसे सन्तुष्ट होकर रावण अपने स्थानको चला गया ।। ५७ ।। वहाँ माताके धिक्कारनेपर रावण फिर गोकर्णके पास जाकर तप करने लगा। अन्तमें अपनी तपस्याके बलसे रावणने ब्रह्मासे वर प्राप्त करके तीनों लोक वशमें कर लिया और लङ्कामें राज्य करने लगा। हे प्रिये पार्वती ! इसी कारण हनुमान्ने सीताके समान मन्दोदरीको रावणके पास लङ्कामें सोते हुए देखा था। बादमें तो मय दानव भी लङ्कामें घर बनाकर सुखपूर्वक रहने लगा ।। ५८-६० ।। प्रतापी मयका भाई गय रात्रिके समय अपने भवनमें सो रहा था। विचारशील हनुमान्ने ब्रह्माके वरसे गयका रावणके हाथों मृत्यु करानेके विचारसे उसके वस्त्रोंको ले जाकर सभागृहमें रावणके पलंगपर और बादमें रावणके वस्त्र ले जाकर विभीषणके पलंगपर रख दिया ।। ६१-६३ ।। पुनः हनुमान् लङ्कामें जानकीजीको खोजने लगे। खोजते-खोजते वृक्षों तथा प्रासादोंसे सुशोभित अशोकवाटिकामें गये ।। ६४ ।। वहा उन्हें एक अच्छा शिंशपा (शीशम) का वृक्ष दिखायी दिया। उसके नीचे राक्षसियोंके बीचमें अवनि-कन्या जानकीजीको विराजमान देखा ।। ६५ ।। उस समय शुष्क तथा दीन मुख होकर मलीन वस्त्र धारण किये हुए भूमिपर सोयी हुई सीता दुःखित मनसे रामका नाम जप रही थीं। उनके सिरके बालोंमें मिट्टी आदि भर जानेसे लट्टुरी बँध गयी थी ।। ६६ ।। सीताके दर्शनसे अपनेको कृतार्थ समझते हुए हनुमान्जी उसी शिंशपावृक्षकी एक शाखाके अग्रभागके पत्तोंमें छिपकर बैठ गये ।। ६७ ।। उस समय सीताके शरीरपर वे अलङ्कार नहीं दिखायी दिये, जिनको कि हनुमान्ने पहिले सुग्रीवके पास देखा था। इतनेमें कुछ कोलाहलके साथ रावण वहाँ जा पहुँचा ।। ६८ ।। क्योंकि रावणको स्वप्नमें दिखायी दिया कि कोई वानर आया है और उसने

रामहस्तान्मृतिः शीघ्रं लब्धुं तां धर्षयाम्यहम् । कपिर्दृष्ट्वा राघवाय निवेदयतु मत्कृतम् ॥७०॥
आगमिष्यति तच्छ्रुत्वा रामो मां निहनिष्यति । इति निश्चित्य स ययौ स्त्रीभिः संवेष्टितो मुदा ॥७१॥
नूपुराणां ध्वनिं श्रुत्वा विह्वलाऽऽसीद्विदेहजा । रावणो जानकीमाह मां दृष्ट्वा किं विलज्जसे ॥७२॥
रामं वनचरं राज्यभ्रष्टं त्यक्तसुहृज्जनम् । पित्रा हीनं भोगहीनं सदा त्वय्यतिनिष्ठुरम् ॥७३॥
एकांतवासिनं पिंगजटावल्कलधारिणम् । तं त्यक्त्वा मां भजस्वाद्य त्रैलोक्येशं महाबलम् ॥७४॥
अप्सरोभिः सेवितं मां भाग्ययुक्तं पदस्थितम् । स्त्रियो मन्दोदरीमुख्यास्त्वां भजिष्यंत्यहर्निशम्॥७५॥
मया राज्यं त्वदधीनं कृतमस्ति भजस्व माम् । मया स्वजीवितं चापि त्वदधीनं कृतं महत् ॥७६॥
इति नानाविधैर्वाक्यैः प्रार्थयामास रावणः । उवाचाधोमुखी सीता निधाय तृणमन्तरे ॥७७॥
राघवाद्भिम्यता नूनं भिक्षुरूपं धृतं त्वया । रहिते राघवाभ्यां त्वं शुनीव हविरध्वरे ॥७८॥
हृतवानसि मां नीच तत्फलं प्राप्स्यसेऽचिरात् । यदा रामशराघातविदारितवपुर्भवान् ॥
भविष्यसि रणे रामं जानीषे मानुषं तदा ॥७९॥
श्रुत्वा रक्षोऽधिपः क्रुद्धो जानक्याः परुषाक्षरम् । वाक्यं क्रोधसमाविष्टः पुनर्वचनमब्रवीत् ॥८०॥
भवित्री लंकायां त्रिदशवदनग्लानिर्चिरात्स रामोऽपि स्थाता न युधि पुरतो लक्ष्मणसखः ।
तथा यास्यत्युच्चैर्विपदमनुजेनात्र जटिलो जयः श्रीरामे स्यान्न मम बहुतोषोऽत्र तु भवेत् ॥८१॥
तद्रावणवचः श्रुत्वा जानकी प्राह तं पुनः । षष्ठाक्षरपराण्येत्र चतुर्षु चरणेष्वपि ॥८२॥
त्वमक्षराणि चत्वारि लोप्य श्लोकममुं पठ । एवं तया जितो वाक्यमार्गणैः स दशाननः ॥८३ ।

अशोकवनमें जाकर राजा विदेहकी पुत्री सीताको देख लिया है ॥ ६९ ॥ "रामके हाथोंसे शीघ्र मरनेके लिए मैं चलकर सीताका तिरस्कार करूँगा तो मेरी करतूत देखकर वह वानर रामसे कहेगा ॥ ७० ॥ सो सुनकर राम यहाँ आयेंगे और मुझे मारेंगे"। ऐसा निश्चय करके रावण स्त्रियोंको साथ लेकर सानन्द उधर चल पड़ा ॥ ७१ ॥ नूपुरोंकी ध्वनि सुनते ही सीताजी घवड़ा गयीं और उन्होंने मुख नीचे कर लिया। तब रावणने सीतासे कहा-तू मुझसे लजाती क्यों है ? ॥ ७२ ॥ वनमें भ्रमण करनेवाले, राज्यसे भ्रष्ट सुहृज्जनोंसे रहित, पितृहीन, भोगहीन, सदा तेरे लिए निर्दय, ॥ ७३ ॥ एकान्तसेवी, पीली जटा और बल्कल (भोजपत्र आदि वृक्षके छिल्कोंको) धारण करनेवाले रामको छोड़कर तू त्रिलोकपति और महाबलवान् मुझ रावणका आश्रय ले और मेरी सेवा कर ॥ ७४ ॥ मैं अप्सराओंसे सेवित और भाग्यवान् होकर महान् पदपर स्थित हूँ । मेरी सेवा करनेसे मेरी मन्दोदरी आदि स्त्रियें भी रात-दिन तेरी दासियाँ बनकर रहेंगी ॥ ७५ ॥ मैंने अपना राज्य तथा अपना जीवन तुझको दे दिया है। तू मेरी बनकर रह ॥ ७६ ॥ इस तरह अनेक प्रकारके वाक्योंसे रावण प्रार्थना करने लगा। तब बीचमें तिनकेका आड़ करके तथा नीचे मुख किये हुए सीताने कहा-॥ ७७ ॥ अरे पापी ! क्यों डींग हाँकता है। रामके डरसे तू भिक्षुका रूप धारण करके और राम-लक्ष्मणकी अनुपस्थितिमें यज्ञसे जैसे कुत्ता हवि अर्थात् हवनकी सामग्री घृत-खीर आदि लेकर भागे, उसी प्रकार तू मुझे लेकर भाग आया है। अरे नीच ! उसका फल तुझको शीघ्र मिल जायगा। जब रामके बाणोंसे विदारितशरीर होकर तू गिरेगा, तब तुझे यह पता लग जायेगा कि राम मनुष्य हैं या और कोई। यह सुना तो राक्षसाधिप रावण कुपित होकर जानकीजीको कठोर वचन कहता हुआ बोला-॥ ७८-८० ॥ "इस लङ्कामें आकर देवताओंके भी मुख मलीन हो जायँगे। लक्ष्मणसहित वह राम भी मेरे समक्ष युद्धमें नहीं खड़ रह सकेगा। यहाँ आया तो अनुजके सहित वह बड़ी भारी विपत्तिमें पड़ जागा। यहाँ उस जटाधारी रामकी जीत नहीं होगी और मुझे भी आनन्द न प्राप्त होगा" ॥ ८१ ॥ रावण-की इस बातको सुनकर जानकीने कहा-चारों चरणोंमें छठे अक्षर तथा आगेवाले चारों सप्तम अक्षरोंका लोप करके तुम इसी श्लोकको फिरसे पढ़ो। वही हाल तुम लोगोंका होगा। कहनेका आशय यह है कि ८१वें श्लोकमेंसे चारों चरणोंके त्री न वि और न ये चार अक्षर निकल जानेसे यह अर्थ होगा कि लङ्कामें दशवदन रावणके ऊपर शीघ्र ही विपत्ति आयेगी अर्थात् वह हार जायगा। लक्ष्मणके साथ राम युद्धमें आ डटेंगे ।

दुद्राव भीषयन्सीतां खड्गमुद्यम्य सत्वरः । धृत्वा करेण तत्पाणिं मन्दोदर्या निषेधितः ॥८४॥
मादृश्यः संति बह्वयश्च त्यजैनां कृपणां कृशाम् । ततोऽब्रवीद्दशग्रीवो राक्षसीर्विकृताननाः ॥८५॥
यथा मे वशगा सीता भविष्यति सकामना । तथा यतध्वं त्वरितं तर्जनादरणादिभिः ॥८६॥
यदि मासद्वयादूर्ध्वं मच्छय्यां नाभिनन्दति । तदा मे प्रातराशाय हत्वा कुरुत मानुषीम् ॥८७॥
तदा सीता पुनः प्राह वचनं तं दशाननम् । बाल्यत्वेऽहं समानीता पेटिकास्था त्वया पुरा ॥८८॥
तदा मया वचः प्रोक्तं तत्त्वं किं विस्मृतोऽसि हि । अधुनाऽहं गमिष्यामि यास्यामि त्वरितं पुनः ॥८९॥
त्वां बंधुपुत्रसैन्याद्यैर्निहन्तुं च मयेरितम् । तत्स्वीयं वचनं सत्यं कर्तुमत्रागताऽस्म्यहम् ॥९०॥
त्वां बन्धुपुत्रसैन्याद्यैर्निहत्य रामहस्ततः । ततोऽयोध्यापुरीं गत्वा पुनर्यास्यामि त्वत्पुराम्॥९१॥
निकुम्भजं पौंड्रकं तं मातामहगृहे स्थितम् । शतशीर्षं रावणं च द्वीपांतरनिवासिनम् ॥९२॥
साहाय्याहार्थं पौंड्रकेन लंकायामागतं पुनः । अहं तृतीयवेलायां संवधिष्यामि तावुभौ ॥९३॥
ततः स्वीयस्थलं गत्वा पुनर्यास्याम्यहं जवात् । कुम्भकर्णोद्भवं वीरं मूलकासुरनामकम् ॥९४॥
अत्रैव तुर्यवेलायामागत्य पुष्पकेण हि । अहमेव हनिष्यामि शितवाणैः रणांगणे ॥९५॥
अन्यच्चापि स्मराद्य त्वं पुरा यद्विधिनोदितम् । यद्वाक्याच्च त्वया गत्वा कौसल्यानृपतो हृतौ ॥९६॥
पेटिकास्थौ पुनस्त्यक्तौ साकेते दैवयोगतः । अतस्त्वं मर्तुकामोऽसि यतोऽहमाहृता त्वया ॥९७॥
गच्छ गेहे सुखं भुंक्ष्व रामः शीघ्रं हनिष्यति । इति सीतावाक्यबाणभिन्नमर्मस्थलोऽपि सः ॥९८॥
ययौ तूष्णीं निजं गेहं लज्जितश्च दशाननः । एवं दशानने याते राक्षस्यो रावणाज्ञया ॥९९॥
जानकीं तां स्वशब्दैश्च तथा क्रूरोक्तिभिर्मुहुः । आस्यैर्विदीर्णखड्गाद्यैर्भीषयन्त्यः करादिभिः ॥१००॥

अनुज सहित राम उच्च पदको प्राप्त करेंगे । जटाधारी रामकी विजय होगी, तब मुझे बड़ा हर्ष होगा । इस प्रकार वाक्यका संशोधन करके सीताने दशाननको जीत लिया ॥ ८२ ॥ ८३ ॥ तब रावण तलवार उठाकर सीताको डराते हुए उनपर झपटा । उस समय मन्दोदरीने उसका हाथ पकड़कर रोका और कहा कि तुम्हारे पास ऐसी बहुत-सी स्त्रियें है । तुम इस बेचारी कमजोर तथा गरीब मानुषी नारीको छोड़ दो । तब रावणने भयानक मुखवाली राक्षसियोंको आज्ञा दी कि सीता जिस तरह कामभावस मेरे वशमे हो, वैसा तुमलोग डराकर अथवा समझाकर शीघ्र यत्न करो ॥ ८४-८६ ॥ यदि दो महानेके भीतर यह मेरा शय्यापर न आये तो इस मानुषीको मारकर मेरे जलपानके लिए तैयार करना, तब मैं इसे खा जाऊँगा ॥ ८७ ॥ सीता फिर दशमुख रावणसे कहने लगी—जब तू बाल्यावस्थामें मुझे पिटारी सहित यहाँ ले आया था ॥ ८८ ॥ उस समय जो बात मैंने कही थी, क्या उसे भूल गया ? मैंने कहा था कि अभी मै जाती हूँ, परन्तु फिर यहाँ शीघ्र ही आऊँगी ॥ ८९ ॥ और वह इसलिए कि मैं भाई, पुत्र तथा सेना सहित तुझे मार डालूंगी । अब मैं अपने वचन सत्य करने आयी हूँ ॥ ९० ॥ रामके हाथों तुझको और तेरे बन्धुओं तथा सेनाको मरवाकर अयोध्यापुरी जाऊँगी । पुनः मैं तीसरी बार भी तेरी नगरीमे आऊँगी ॥ ९१ ॥ उस समय मातामह अर्थात् नानाके घरमें स्थित निकुम्भके पुत्र पौण्ड्रकको तथा द्वीपांतरमें रहनेवाले सौ सिरवाले रावणको जो कि पौण्ड्रककी सहायतार्थ लङ्कामें आयेगा, तीसरी बार आकर उन दोनोंको मारूँगी ॥ ९२ ॥ ९३ ॥ पश्चात् अपने स्थानको जाकर फिर चौथी बार मैं शीघ्र आऊँगी और कुम्भकर्णके पुत्र वीर मूलकासुरका वध करूँगी ॥ ९४ ॥ पुष्पक विमानसे यहाँ आकर मैं उसे रणांगणमें मारूँगी ॥ ९५ ॥ पूर्वकालमें जो ब्रह्माजीने कहा था, वह भी स्मरण कर ले। जिनके कहनेसे तूने कौसल्या और राजा दशरथका हरण किया था ॥ ९६ ॥ देवयोगसे फिर तूने उन्हें अयोध्यामें छुड़वा दिया था । इससे पता लगता है कि तू मरना चाहता है । इसीलिए तूने मुझसे प्रेम करना चाहा है ॥ ९७ ॥ अब घर जा और सुखसे भोजन कर । राम तुझे शीघ्र मारेंगे । इस प्रकार सीताके वाक्यरूपी बाणोंसे विदीर्णहृदय होकर दशानन लज्जासे चुपचाप अपने घर चला गया । दशाननके चले जानेपर उसकी आज्ञासे राक्षसियें अपने भयानक शब्दोंसे, क्रूर वाक्योंसे, मुँह फाड़कर, तलवार तथा

निवार्य त्रिजटानाम्नी विभीषणप्रियाऽनुगा । ताः सर्वा राक्षसीर्वेगाद्वाक्यमाहाथ सादरम् ॥१०१॥
न भीषयध्वं रुदतीं नमस्कुरुत जानकीम् ।सुचिह्नै राघवः स्वप्ने मया दृष्टोऽद्य जानकीम् ॥१०२॥
मोचयामास दग्ध्वेमां लंकां हत्वा तु रावणम् । रावणो गोमयह्रदे तैलाभ्यक्तो दिगंबरः ॥१०३॥
मयाऽद्य दृष्टः स्वप्ने हि तस्मादेनां न साहसम् । कार्यं सेव्या सदा चेयं रामादभयदायिनी ॥१०४॥
युष्माभिर्दुःखिता चेद्वो भर्त्रेयं घातयिष्यति । इति तत्त्रिजटावाक्यं श्रुत्वा तस्थुर्भयाकुलाः॥१०५॥
तूष्णीमेव तदा सीता दुःखार्त्किंचिदुवाच सा । इदानीमेव मरणं केनोपायेन मे भवेत् ॥१०६॥
दीर्घा वेणी ममात्यर्थमुद्बन्धाय भविष्यति । यन्मया स्वीयवाग्बाणैर्लक्ष्मणस्ताडितः पुरा । १०७॥
तस्मादिमाः पीडयंति भोक्ष्यते स्वकृतं मया । मया विरागः सौमित्रिस्त्रासितो गौतमीतटे ॥१०८॥
प्रायश्चित्तं करोम्यद्य तस्य त्यक्त्वा स्वजीवितम् । एवं निश्चितबुद्धिं तां मरणायाथ जानकीम् ॥१०९॥
दृष्ट्वा शनैर्वायुपुत्रो रामवृत्तं न्यवेदयत् । आसाकेतनिर्गमाच्च स्वसीतादर्शनावधि ॥११०॥
सविस्तारं क्रमेणैव सीतातोषार्थमादरात् । सीता क्रमेण तत्सर्वं श्रुत्वा साश्चर्यमानसा ॥१११॥
किं मयेदं श्रुतं व्योम्नि स्वप्नो दृष्टोऽथवा निशि । येन मे कर्णपीयूषवचनं समुदीरितम् ॥११२॥
स दृश्यतां महाभागः प्रियवादी ममाग्रतः । तच्छ्रुत्वा तत्पुरो गत्वा नत्वा तामब्रवीत्पुनः ॥११३॥
रामदूतो ददौ तस्यै राघवस्यांगुलीयकम् । तां राममुद्रिकां दृष्ट्वा नत्वा तामब्रवीत्कपिम् ॥११४॥
सर्वं कथय तद्वृत्तं यथा दृष्टं त्वयाऽत्र हि । तदा तां सांत्वयामास रामो मत्स्कंधसंस्थितः॥११५॥
वानरेंद्रैः समागत्य हत्वा रावणमाहवे । त्वां नेष्यति भयं सीते त्यज त्वं मम वाक्यतः॥११६॥

अँगुलियोंके संकेतोंसे सीताको डराने लगीं ॥ ९८–१०० ॥ उसी समय विभीषणकी प्रिया अनुगामिनी त्रिजटा राक्षसीने उन सबको ऐसा करनेसे रोका और उन सबको समझाकर कहा कि इस रोती हुई जानकीजीको तुम लोग डराओ नहीं, प्रत्युत नमस्कार करो । मैंने आज स्वप्नमें रामको सुन्दर चिह्नोंसे युक्त देखा है और यह भी देखा है कि उन्होंने जानकीको छुड़ाकर लङ्काको जलाया तथा रावणको मार डाला है। तेल लगाये हुए रावण गोबरके गड़हेमें गिर गया है ॥ १०१–१०३ ॥ मैंने आज यह स्वप्न देखा है। इस कारण इन्हें सतानेका साहस नहीं करना चाहिए । रामसे अभय दिलानेवाली इस जानकीकी तुम्हें सेवा करनी चाहिए ॥ १०४ ॥ यदि तुम लोग इसे दुःख दोगी तो यह अपने पति रामके द्वारा तुम्हें मरवा डालेगी । त्रिजटाके इस वाक्यको सुनकर सब राक्षसियें व्याकुल होकर चुप हो गयीं ॥ १०५ ॥ उन सबके सो जानेपर दुःखित होकर सीता धीरे-धीरे कहने लगीं कि इसी समय मेरा मरण किस उपायसे हो सकता है ॥ १०६ ॥ हाँ, यह मेरे सिरके बालकी लम्बी लट फाँसी लगानेके लिए बहुत अच्छी तरह काम आयेगी । उस समय जो मैंने वचनरूपी बाणों-से लक्ष्मणको बींधा था ॥ १०७ ॥ उसीके फलस्वरूप ये राक्षसियें मुझे सता रही हैं । यह मैं अपने किये हुए कर्मोंका फल भोग रही हूँ । मैंने गोमती नदीके किनारे सुमित्राके निर्दोष पुत्र लक्ष्मणको जो धमकाया था ॥१०८॥ उसका मैं आज प्राण देकर प्रायश्चित्त करूँगी। इस प्रकार मरनेका निश्चय किये हुए जानकीको देखकर वायुपुत्र हनुमान्ने धीरे-धीरे रामका वृत्तान्त सुनाना प्रारम्भ किया । उन्होंने रामके अयोध्यासे चलनेके समयसे लेकर सीताको देखने तकका सारा वृत्तान्त विस्तारपूर्वक क्रमसे सीताके संतोषके लिए सुना दिया। वह सब वृत्तान्त सुनकर सीता आश्चर्यचकित होकर सोचने लगीं कि क्या यह मैं कोई आकाशवाणी सुन रही हूँ अथवा रात्रिके समयका स्वप्न देख रही हूँ। जिसने मेरे कानोंके लिए अमृतके समान यह वचन सुनाया है ॥ १०९–११२ ॥ वह प्रियवादी मेरे सामने आकर दर्शन दे। यह सुना तो हनुमान् उनके सामने प्रकट हो गये और नमस्कार करके उन्हें रामका वृत्तान्त पुनः सुनाया ॥ ११३ ॥ फिर विश्वास दिलानेके लिए रामकी अंगूठी निकाल-कर सीताको दी । रामकी मुद्रिकाको देख तथा नमस्कार करके सीता बोलीं—॥ ११४ ॥ हे कपि ! जैसा कि तुमने देखा है, मेरा सब हाल जाकर रामसे कह देना। तब हनुमान् सीताको आश्वासन देकर कहने लगे कि राम मेरे कन्धेपर सवार हो वानरसेनापतियोंके साथ यहाँ आकर युद्धमें रावणको मारेंगे और आपको

ततः सीताप्रत्ययार्थं रूपं स्वं दर्शयन् कपिः । ततः पुनः प्रत्ययार्थं सीतायै राघवोदितम् ॥११७॥
मनःशिलायास्तिलकं चित्रकूटगिरौ कृतम् । कपिस्तत्कथयामास पूर्ववृत्तं सविस्तरम् ॥११८॥
ततस्तुष्टां जानकीं तां मारुतिर्वाक्यमब्रवीत् । अनुज्ञां देहि मे मातस्त्वभिज्ञानं ददस्व माम् ॥११९॥
सा तं चूडामणिं पित्रा दत्तं केशांतरस्थितम् । निष्कास्य तत्करे दत्त्वा पूर्वं काकेन यत्कृतम् ॥१२०॥
चित्रकूटगिरौ वृत्तं कथयामास तत्कपिम् । ततो नत्वा रामपत्नीं चिंतयामास चेतसि ॥१२१॥
स्वामिकार्यं कृतं चैतदन्यत्किञ्चित्करोम्यहम् । इति निश्चित्य मनसा जानकीं पुनरब्रवीत् ॥१२२॥
मातर्मेऽतीव क्षुद्बोधस्त्वद्य विक्लवदो महान् । अस्मिन्वनेऽतिमधुरः फलसंघोऽतिदुर्लभः ॥१२३॥
तवाज्ञयाऽद्य सीतेऽहं करिष्ये भक्षणं ध्रुवम् । इति तद्वचनं श्रुत्वा जानकी स्वीयकंकणम् ॥१२४॥
निष्कास्य हस्तात्तं प्राह गृह्णीष्वेदं प्लवंगम । अनेन फलसंभारान् लंकाहट्टात्प्रगृह्य च ॥१२५॥
भुक्त्वापीत्वासुखंगच्छवनेऽस्मिन्त्रोटयस्व मा । तदा कपिः पुनः प्राह परहस्तफलानि हि ॥१२६॥
नाहं भुंजामि सीते मे व्रतमस्ति व्रजाम्यहम् । व्रजंतं मारुतिं दृष्ट्वा सीता वचनमब्रवीत् ॥१२७॥
भो बालक कपिश्रेष्ठ रावणोऽस्ति वनाधिपः । न शक्तिर्न च शक्यं ते कथं त्वं भक्षयिष्यसि ॥१२८॥
ततस्त्या वचनं श्रुत्वा मारुतिः प्राह जानकीम् । श्रीरामेति परं मंत्रशस्त्रं मे हृदयांतरे ॥१२९॥
तेन सर्वाणि रक्षांसि तृणरूपाणि सांप्रतम् । तदा तं जानकी प्राह पतितान्यत्र वै भुवि ॥१३०॥
भुंक्ष्वैतानि फलानि त्वं तूष्णीं मा त्रोटयात्र वै ।तथेति मारुतिश्चोक्त्वा वृक्षान्पुच्छेन चालयन्॥१३१॥
वृक्षांदोलनमात्रेण निपेतुश्च फलानि हि । भक्षयामास तान्येव सुफलानि क्षणेन सः ॥१३२॥
ततो वृक्षान्समुत्पाट्य लांगूलेन स मारुतिः । क्षिप्त्वा तानन्यवृक्षेषु समस्तानि फलानि वै ॥१३३॥
पातयामास भूम्यां तु भक्षयामास तानि सः । भक्षितानि समस्तानि फलानि वनजानि हि॥१३४॥

छुड़ा ले जायँगे। हे सीते! मेरे कहनेसे आप निर्भय रहें ॥ ११५ ॥ ११६ ॥ तब हनुमान्‌ने सीताको विश्वास दिलानेके लिए अपना असली स्वरूप दिखाया । तदनन्तर और भी विश्वासके लिए सीताको रामका कहा और चित्रकूटपर किया मैनसिलके तिलक आदिका किस्सा भी सुना दिया । साथ ही और भी पहलेका वृत्तान्त सीताको सुनाया ॥ ११७ ॥ ११८ ॥ तब भली-भाँति संतुष्ट जानकीसे हनुमान्‌ने कहा—हे माता! अब आप मुझे जानेकी आज्ञा दें तथा अपना कोई चिह्न भी दे दें ॥ ११९ ॥ तब सीताने पिताकी दी हुई चूडामणि सिरके बालोमें-से निकालकर उनके हाथोंमें दी और पूर्वमें चित्रकूटगिरिपर काक (जयन्त) का किया हुआ वृत्तान्त हनुमान्‌को सुनाया । तदनन्तर रामपत्नी सीताको नमस्कार करके हनुमान् मनमें सोचने लगे—॥ १२० । १२१ ॥ मैंने स्वामीका कहा हुआ काम तो कर दिया, पर और भी कुछ करते चलना चाहिए। ऐसा निश्चय करके वे जानकीसे बोले—॥ १२२ ॥ हे माता! आज थकावटके साथ बड़ी भूख लगी हुई है । इस वनमें अतिशय दुर्लभ एवं अति मधुर फलोंका समूह लगा हुआ है ॥ १२३ ॥ सो आपकी आज्ञासे मैं इनको अवश्य खाऊँगा । यह सुना तो जानकीने हाथसे उतारकर अपना कंकण उनको दिया और कहा—हे प्लवङ्गम! यह लो और लङ्काकी दूकानोंपरसे फलोंके ढेर खरीद लो और उन्हें खाकर जाओ । परन्तु इस वनके फल न तोड़ना। तब हनुमान्‌ने कहा कि दूसरोंके हाथसे तोड़े फल मैं नहीं खाता। हे सीते! ऐसा मेरा व्रत है। अच्छी बात है, रहने दो। मैं ऐसे ही जाता हूँ। जाते हुए मारुतिको देखकर सीताने कहा—॥ १२४–१२७ ॥ हे बालक! हे कपियोंमें श्रेष्ठ कपि ! इस उपवनका अधिपति रावण है । तुम्हारेमें इतनी शक्ति नहीं है कि तुम उसको जीत सको तो फल कैसे खाओगे ? ॥ १२८ ॥ यह सुनकर मारुतिने जानकीसे कहा कि मेरे हृदयमें 'श्रीराम' यह मंत्ररूपी अमोघ शक्ति विद्यमान है ॥ १२९ ॥ उसके बलपर मैं इन सब राक्षसोंको तृणवत् समझता हूँ। तब जानकीने कहा कि जो फल पृथ्वीपर गिर पड़े हों ॥ १३० ॥ उनको तुम चुपचाप खा लो, पेड़परसे न तोड़ना। 'बहुत अच्छा' कहकर हनुमान्‌ने अपनी पूँछसे बाँधकर वृक्षोंको हिलाया ॥ १३१ ॥ वृक्षोंको हिलानेसे सब फल नीचे गिर पड़े। उन्होंने उन सब सुन्दर फलोंको क्षणभरमें खा लिया ॥ १३२ ॥ फिर हनुमान्‌ने उन वृक्षोंको

दृष्ट्वा तं दुद्रुवुर्धर्तुं मारुतिं वनरक्षकाः । राक्षसानागतान् दृष्ट्वा वृक्षैस्तांस्ताडयत्कपिः ॥१३५॥
उत्पाट्याशोकवनिकां निर्वृक्षामकरोत्क्षणात् । सीताश्रयनगं त्यक्त्वा वनं शून्यं चकार सः ॥१३६॥
बभंज चैत्यप्रासादं हत्वा तद्रक्षकान् क्षणात् । ततस्ता राक्षसीः सर्वा वनभंगं निरीक्ष्य च ॥१३७॥
पप्रच्छुर्जानकीं सर्वाः कोऽयं कस्य कुतस्त्विह । ताः सर्वा जानकी प्राह राक्षसाः कामरूपिणः ॥१३८॥
विचरंति मुदा भूम्यां वेद्म्यहं भिक्षुरूपिणा । तदा हृता पंचवट्यां रावणेन हि तद्वनात् ॥१३९॥
तस्माज्ज्ञेयस्तु युष्माभिः कोयं मां पृच्छतेह किम्।इति तस्या वचः श्रुत्वा राक्षस्यो भयविह्वलाः ॥१४०॥
दशाननं हि तद्वृत्तं ययुः शीघ्रं निवेदितुम् । एतस्मिन्नंतरे प्रातर्मंचके कटिबंधनम् ॥१४१॥
निरीक्ष्य रावणश्चाथ गयस्य चकितस्तदा । भुक्तां मंदोदरीं ज्ञात्वा तां हंतुं खड्गमाददे॥१४२॥
तदा निवारितः स्त्रीभिः स्त्रीहत्यां माकरोत्त्विति । तदा क्रुद्धो दशग्रीवस्तूष्णीं गत्वा गयगृहम् ॥१४३॥
अवधीन्निद्रितं वीरं खड्गेन स्वगृहं ययौ । तदा विभीषणः प्रातर्बन्धोर्वस्त्रं स्वमंचके ॥१४४॥
दृष्ट्वा तां स रमां हंतुं दुद्रुवे वर्जितस्तदा । स्त्रीभिर्धृत्वा तस्य स्त्रीहत्या गर्हिता त्विति ॥१४५॥
विभीषणस्तदारभ्य बंधोस्त्रासममन्यत । एवमासीच्च लंकायां कौतुकं कपिना कृतम् ॥१४६॥
अथ वेगेन राक्षस्यः सभासंस्थं दशाननम् । वृत्तं निवेदयामासुः स्खलद्वाण्या वनोद्भवम् ॥१४७॥
तच्छ्रुत्वा रावणः क्रोधात्कपिनोत्पाटितं वनम् । वनपालं समाहूय जम्बुमालिनमब्रवीत् ॥१४८॥
राक्षसैर्नियुतैर्गच्छ कीशं धृत्वा समानय । तथेति स ययौ वेगादशोकवनिकां प्रति ॥१४९॥
दृष्ट्वा सैन्यं दीर्घनादं चकार कपिकुंजरः । ततस्ते राक्षसाः शस्त्रैर्निजघ्नुर्वानरोत्तमम् ॥१५०॥

पूँछसे बाँध-बाँधकर गिरा दिया । उनको गिराकर दूसरे वृक्षोंके फल खाये ॥ १३३ ॥ उन्हें भी गिराकर तीसरे वृक्षके समस्त फल खा लिये । ऐसा करके उन्होंने उस उपवनके सब फलोंको खा डाला ॥ १३४ ॥ यह देखकर वनके रक्षकगण उन्हें पकड़ने दौड़े । हनुमान्ने राक्षसोंको आते देखकर उन्हें वृक्षोंसे ही पीटना आरम्भ कर दिया ॥ १३५ ॥ इस प्रकार क्षणभरमें उन्होंने सारे अशोकवनको वृक्षोंसे रहित कर दिया । केवल सीताके आश्रयभूत एक वृक्षको छोड़ और सब उपवनको उजाड़ डाला ॥ १३६ ॥ बादमें उन्होंने वहाँके बड़े-बड़े महलोंको गिरा दिया और उनके रक्षकोंको मार भगाया । उधर वे राक्षसियें वनभङ्गको देखकर सीतासे पूछनें लगीं कि यह कौन है, किसका दूत है और कहाँसे आया है ? सीताने उन सबसे कहा कि बहुतसे यथेच्छ रूप धारण करनेवाले राक्षस पृथ्वीपर आनन्दसे घूमा करते हैं । उन्हीमेंसे कोई होगा । इस बातका पता मुझे तबसे लगा है, जब भिक्षुकका रूप धारण करके रावण मुझे पंचवटीके वनसे हर लाया ॥ १३७–१३९ ॥ सो तुम्हीं लोग इसका पता लगाओ कि यह कौन है । मुझसे क्या पूछती हो ? उनके इस वचनको सुनकर राक्षसियें भयसे विह्वल हो गयीं ॥ १४० ॥ वह हाल कहनेके लिए वे शीघ्र दशाननके पास दौड़ीं । इधर प्रातःकालके समय रावण अपनी शय्यापर गयका कमरबन्द देखकर चकित हो गया । रावणने सोचा कि गयने यहाँ आकर मन्दोदरीको भोगा है । यह शंका करके उसने मन्दोदरीको मारनेके लिये तलवार उठायी ॥ १४१ ॥ १४२ ॥ तब दूसरी स्त्रियोंने 'स्त्रीकी हत्या नहीं करनी चाहिए' यह कहकर उसे रोका । तब क्रुद्ध रावणने चुपकेसे गयके घर जाकर सोये हुए ही वीर गयको तलवारसे काट डाला और अपने घर लौटा । उधर विभीषणने प्रातःकाल अपने अपने भाई रावणका वस्त्र अपने पलङ्गपर देखा ॥ १४३ ॥ १४४ ॥ यह देखकर वह अपनी स्त्री रमाको मारने दौड़ा । तब अन्य स्त्रियोंने उसका हाथ पकड़कर रोक लिया और कहा कि स्त्री-हत्या करना बडा भारी निन्दित कर्म है ॥ १४५ ॥ तथापि विभीषण उस दिनसे अपने भाईसे डरने लगा । इस प्रकार लङ्कामें हनुमान्ने बड़े बड़े कौतुक किये ॥ १४६ ॥ उन राक्षसियोंने भी दौड़ी-दौड़ी जाकर सभामें स्थित रावणको घबराहटके कारण टूटे-टूटे शब्दोंमें अशोकवनके विनाशका सब वृत्तान्त सुनाया ॥ १४७ ॥ कपिके द्वारा वनभङ्गका समाचार सुनकर क्रुद्ध रावणने उस वनके रक्षक जम्बुमालीको बुलाकर कहा—॥ १४८ ॥ तुम बीस हजार राक्षसोंको लेकर जाओ और उस वानरको पकड़ लाओ । 'तथास्तु' कहकर वह शीघ्र अशोकवनको

तत उत्प्लुत्य हनुमान् तोरणेन समंततः। निष्पिपेष क्षणादेव मशकानिव यूथपः ।।१५१।।
हत्वा तान् राक्षसान् सर्वांस्ततो वेगेन मारुतिः। तालवृक्षं समुत्पाट्य जघान जंबुमालिनम् ।।१५२।।
तान् सर्वान्निहताञ्छ्रुत्वा पञ्चसेनापतीन्पुनः। रावणः प्रेषयामास हतास्ते तोरणेन च ।।१५३।।
वायुपुत्रेण वेगेन लक्षराक्षससंयुताः । स तानपि मृताञ्छ्रुत्वाऽक्षं पुत्रं प्रैषयत्तदा ।।१५४।
कपिना मारितः सोऽपि ससैन्यो मुद्गरेण च। ततः स प्रेषयामास पुत्रमिंद्रजितं पुनः ।।१५५।।
ततः स रथमारूढः कोटिराक्षसवेष्टितः। युद्धं चकार कपिना शस्त्रैरस्त्रैः सुदुर्धरैः ।।१५६।।
तदा पुच्छेन सैन्याय कृत्वा प्राकारमुत्तमम्। निष्पिपेष तोरणेन राक्षसान्मारुतिः क्षणात् १५७।।
ततो वृक्षं समुत्पाट्य मेघनादमताडयत्। वृक्षेण भिन्नसर्वांगो मेघनादोऽविशद्गुहाम् ।।१५८।।
एतस्मिन्नंतरे ब्रह्मा प्रार्थयामास मारुतिम्। ब्रह्मास्त्रं मानयन्मेऽद्य त्वं लङ्कां याहि रावणम् ।।१५९।।
तथेत्यंगीचकारासौ मेघनादं ययौ विधिः। विधिः प्राह मेघनादं क्व गतोऽद्य पराक्रमः ।।१६०।।
गच्छ मेऽस्त्रेण तं बद्ध्वा पितुरग्रे समानय। स ब्रह्मवचनं श्रुत्वा मेघनादः पुनर्ययौ ।।१६१।।
ब्रह्मास्त्रेणाथ बद्ध्वा तमानयामास रावणम्। ततो रावणवाक्येन प्रहस्तः प्राह मारुतिम् ।१६२।।
कस्त्वं कुतः समायातः प्रेषितः केन वा वद। ततः स रामवृत्तं हि कथयामास विस्तरात् ।।
ततस्तं बोधयामास रावणं वायुनन्दनः ।।१६३।।
विसृज्य मौर्ख्याद्धृदि शत्रुभावनां भजस्व रामं शरणागतप्रियम्।
सीतां पुरस्कृत्य सपुत्रबान्धवो रामं नमस्कृत्य विमुच्यसे भयात् ।।१६४।।
यावन्नगाभाः कपयो महाबला हरींद्रतुल्या नखदंष्ट्रयोधिनः।

गया ।। १४९ ।। उसकी सेनाको देखकर कपियोंमें कुञ्जर (हाथी)के समान वीर हनुमान्ने बहुत जोरसे गर्जन किया। तब राक्षसोंने वानरोत्तम हनुमान्को शस्त्रोंसे मारना आरम्भ कर दिया ।। १५० ।। हनुमान् भी रणमें कूद पड़े और मच्छरोंकी तरह उन सेनापतियों तथा राक्षसोंको चारों ओरसे तोरणके द्वारा क्षणभरमें पीस डाला ।। १५१ ।। उन सबको मारनेके बाद मारुतिने वेगसे एक ताड़का वृक्ष उखाड़कर उससे जम्बुमालीको समाप्त कर दिया ।। १५२ ।। उन सबको मारे गये सुनकर रावणने पाँच और सेनापतियोंको भेजा। हनुमान्ने तोरण (मुग्दर) से उन्हें भी मार डाला ।। १५३ ।। वायुपुत्र हनुमान्ने लाखों राक्षसोंके साथ उन पाँच सेनापतियोंको भी मार डाला, यह सुनकर रावणने अपने अक्षयनामक पुत्रको भेजा ।। १५४ ।। तब हनुमान्ने उसको भी मुग्दरसे मार डाला। अब रावणने अपने इन्द्रजित् सुत मेघनादको भेजा ।। १५५ ।। वह एक करोड़ राक्षसोंसे वेष्टित हो तथा रथपर सवार होकर वहाँ आया। वह अपने दुर्धर्ष शस्त्रास्त्रोंसे हनुमान्के साथ युद्ध करने लगा ।।१५६।। हनुमान्ने सेनाको रोकनेके लिए अपनी पूँछका ही गढ़ बनाया और तोरणसे उन सबको क्षणभरमें पीस डाला ।। १५७ ।। बादमें एक वृक्ष उखाड़कर उससे मेघनादको मारा। जिससे घायल होकर वह एक गुफामें जा घुसा ।। १५८ ।। उस समय ब्रह्माने हनुमान्से प्रार्थना की कि तुम मेरे ब्रह्मास्त्र ब्रह्मपाश) का मान रखो और उसमें बँधकर लंकामें रावणके पास जाओ ।। १५९ ।। उन्होंने 'तथास्तु' कहकर अङ्गीकार कर लिया। तब ब्रह्मा मेघनादके पास गये और कहा—हे मेघनाद ! तुम्हारा पराक्रम आज कहाँ चला गया ? ।। १६० ।। अब मेरे पाशसे उन वानरको बाँधकर अपने पिताके पास ले जाओ। ब्रह्माके वचनको सुनकर मेघनाद फिर वहाँ गया और हनुमान्को ब्रह्मपाशसे बाँधकर रावणके पास ले आया। तब रावणके कथनानुसार प्रहस्त उनसे पूछने लगा—।। १६१ ।। १६२ ।। बतला तू कौन है, कहाँसे आया है और तुझे किसने भेजा है ? तब विस्तारसे रामका वृत्तान्त सुनाकर हनुमान् रावणको समझाने लगे–।। १६३ ।। ओ रावण ! मूर्खतासे प्राप्त शत्रुभावको तू हृदयसे निकाल दे और शरणागतोंके प्रिय रामका भजन कर। यदि सीताको आगे करके पुत्र तथा बान्धवोंके साथ जाकर रामको नमस्कार करेगा तो तू निर्भय हो जायगा ।। १६४ ।। सिंहके समान महाबलवान्

लंकां समाक्रम्य विनाशयंति ते तावद्द्रुतं देहि रघूत्तमाय ताम् ॥१६५॥
जीवन्न रामेण विमोक्ष्यसे त्वं गुप्तः सुरेंद्रैरपि शंकरेण ।
न देवराजांकगतो न मृत्योः पाताललोकानपि संप्रविष्टः ॥१६६॥
शुभं हितं पवित्रं च वायुपुत्रवचः खलः । प्रतिजग्राह नैवासौ म्रियमाण इवौषधिम् ॥१६७॥
इति तद्वचनं श्रुत्वा मारुतिं प्राह रावणः । विनिर्जिता येन देवास्तस्य मे पौरुषं त्वया ॥१६८॥
न दृष्टं वल्गसे व्यर्थं शृणु किंचिद्वदामि ते । पंचाङ्गपाठकश्चायं पश्य ब्रह्मा कृतो मया ॥१६९॥
प्रतीहारस्त्वयं सूर्यः शशी छत्रधरः कृतः । वरुणोऽयं जलग्राही मार्जकः पवनस्त्विह ॥१७०॥
अग्निः कृतोऽयं रजको मालाकारः शचीपतिः । दंडपाणिर्यमश्चात्र दास्यश्चात्र सुरस्त्रियः ॥१७१॥
मार्तंडो नापितश्चायं गणपः खररक्षकः । मंगलाद्या ग्रहाः सप्त मे सोपानायितासने ॥१७२॥
शिशुसेवातत्परेण षष्ठी देवी मया कृता । आंदोलितश्च कैलासः कुबेरोऽपि विनिर्जितः ॥१७३॥
कथं ममाग्रे विलपस्यभीतवत्प्लवंगमानामधमोऽसि दुष्टधीः ।
क एष रामः कतमो वनेचरो निहन्मि सुग्रीवयुतं नराधमम् ॥१७४॥
इत्युक्त्वा हंतुमुद्युक्तस्तं दशास्यः सभास्थितः । तदा निवारयामास रावणं स विभीषणः ॥१७५॥
परदूतो न हन्तव्य इत्यादिवचनैस्तदा । ततः क्रोधसमाविष्टो रावणो लोकरावणः ॥१७६॥
दूतानाज्ञापयामास छेदनीयं तु लांगुलम् । तद्रावणवचः श्रुत्वा राक्षसास्ते सहस्रशः ॥१७७॥
स्वायुधैश्छेदयामासुः कुठारक्रकचादिभिः । आयुधान्येव शतशस्तत्पुच्छाघातमात्रतः ॥१७८॥
बभूवुः शतचूर्णानि तस्य रोम्णोऽपि न व्यथा । तन्निरीक्ष्य दशास्यः स मारुतिं वाक्यमब्रवीत् ॥१७९॥
न वीरा गोपयंत्यत्र स्वीयं मृत्युमपि क्वचित् । अतस्त्वं वद पुच्छस्य येन घातोऽद्य ते भवेत् ॥१८०॥

और नखों तथा दाँतोंसे लड़नेवाले वानर आकर लंकामें प्रवेश नहीं करते, उसके पहले ही तू सीताको ले जाकर रामको दे दे ॥ १६५ ॥ अब तुझे राम जीवित नहीं छोड़ेंगे । चाहे तेरी रक्षा सुरेंद्र करें, चाहे शंकर करें, चाहे तू अपना प्राण बचानेके लिये देवराजकी शरणमें जा । चाहे यमलोक या पाताललोकमें जाकर छिप, चाहे कुछ कर ले ॥ १६६ ॥ किन्तु उस दुष्ट रावणने हनुमान्‌की शुभ, हितकारी तथा पवित्र बातकों नहीं माना । जैसे मुमूर्षु पुरुष औषधि नहीं खाता ॥ १६७ ॥ रावणने हनुमान्‌की बात सुनकर कहा कि मैंने सब देवताओंको जीत लिया है । मेरे पुरुषार्थको तू नहीं जानता । इसीलिये व्यर्थ बकवास कर रहा है । सुन. मैं तुझे कुछ सुनाता हूँ । देख, ब्रह्माको मैंने पञ्चाङ्गपाठक बना दिया है ॥ १६८ ॥ १६९ ॥ सूर्यको प्रतिहारी, चन्द्रमाको छत्रधारी, वरुण-को जल भरनेवाला, पवनको झाड़ू लगानेवाला, अग्निको धोबी, शचीपति इंद्रको माली, दण्डधारी यमराजको द्वारपाल, देवताओंकी स्त्रियोंको दासियें, मार्तण्डको नाई, गणपतिको गधोंका रक्षक सईस और मंगल-बुध आदि सातों ग्रहोंको मैंने अपने आसनकी सीढ़ियें बना लिया है । षष्ठी देवी कात्यायनीको मैंने बच्चोंको खेलानेवाली धाई बनाया है । कैलासको मैंने ही हिलाया था । कुबेरको भी मैंने जीत लिया है ॥१७०-१७३॥ हे प्लवङ्गमोंमें अधम वानर ! तू मेरे आगे क्यों वृथा प्रलाप करता है ? तू बड़ा ही मूर्ख दीखता है । अरे ! वनवासी राम मेरे सामने क्या चीज है । मनुष्योंमें नीच रामको तो सुग्रीव सहित मैं मार ही डालूँगा ॥ १७४ ॥ इतना कहकर दशानन रावण बीच सभामें उनको मारने दौड़ा । तब विभीषणने उसको रोककर कहा कि दूसरेके दूतको मारना अन्याय है । पश्चात् लोगोंको रुलानेवाले रावणने क्रोध करके सिपाहियोंको आज्ञा दी कि इस वानरकी पूँछ काट डालो । रावणकी आज्ञा पाकर हजारों राक्षस अपने-अपने कुल्हाड़ों और क्रकच (आरा) आदि हथियारोंसे उनकी पूँछ काटने लगे । इसी समय हनुमान्‌जीने तनिक अपनी पूँछ हिला दी । उसके हिलनेमात्रसे उन हथियारोंके सैकड़ों टुकड़े होकर गिर पड़े ॥१७५–१७८॥ वे चूर-चूर हो गये, परन्तु हनुमानजीका बाल भी बाँका नहीं हुआ । यह देखकर दशानन मारुतिसे कहने लगा—॥ १७९ ॥ वीर पुरुष अपनी मृत्युके उपायको भी छिपाकर नहीं रखते । इसलिए साफ-साफ बता दे कि तेरी पूँछ किस उपायसे नष्ट होगी ॥१८०॥

तदाऽमरत्वं स्वं प्राह कपिस्तच्च मृषेति सः । मत्वा दशास्यस्तं प्राह पुनः सत्यं वदेति च ॥१८१॥
तदा स मारुतिस्तूष्णीं क्षणं चित्ते व्यचिंतयत् । मत्पितुश्च सखा वह्निस्तस्मान्नास्ति भयं मम ॥१८२॥
तस्मात्पुच्छं दीपयित्वा लंकां दग्धां करोम्यहम्। ततस्तं रावणं प्राह मारुतिः सदसि स्थितः ॥१८३॥
पुच्छं मे वह्निना दग्धं भविष्यति न संशयः । तत्तस्य वचनं श्रुत्वा रावणो निजकिंकरान् ॥१८४॥
आज्ञापयामास पुच्छं दीपयित्वा प्रयत्नतः । लङ्कायां दर्शनीयोऽयं दृष्ट्वैनं मद्भयं भवेत् ॥१८५॥
सर्वेषां मद्रिपूणां च तथा चक्रुस्त्वरान्विताः । तैलाक्तैः शणपट्टैश्च राक्षसा वसनैरपि ॥१८६॥
पुच्छं संवेष्टयामासुस्तदा पुच्छं व्यवर्द्धत । ततो वसनहट्टात्तु वस्त्रकोशान्विलुण्ठ्य च ॥१८७॥
तत्पुच्छं वेष्टयामासुर्गृहवस्त्रैरनेकशः । ततः पुरुषनारीणां लंकास्थानां नृपाज्ञया ॥१८८॥
बलादाच्छिद्य वस्त्राणि चक्रुः सर्वान्दिगम्बरान्। ततः शय्यामंडपांश्च कंचुकीः कंचुकानपि ॥१८९॥
पौराणां राजगेहाच्च ते वस्त्राणि समानयन् । दृष्ट्वाऽपूर्तिं तु पुच्छस्य सभास्थानां नृपस्य च ॥१९०॥
वस्त्रमात्रैः समस्तैश्च लांगूलं वेष्टयंस्तदा । ध्वजोष्णीषपताकाभिर्विप्राणां वसनैरपि ॥१९१॥
मंदोदर्यादिवस्त्रैश्च भिक्षूणां वसनादिभिः । वेष्टयन्कपिलांगूलं ततः सीतां ययुश्चराः ॥१९२॥
तज्ज्ञात्वा मारुतिश्चापि पुच्छपूर्तिं प्रदर्शयत् । तदा कोलहलश्चासीद्वस्त्रार्थं प्रतिसद्मनि ॥१९३॥
तैलार्थं च घृतार्थं च स्नेहपात्रं समानयन् । नासीन्निशायां दीपार्थं शिशूनामपि नो घृतम् ॥१९४॥
आसन्स्त्रीपुरुषा नग्ना लज्जा नासीत्परस्परम् । ततस्तद्दीपयामासुर्वह्निना भस्त्रकंपनैः ॥१९५॥
प्रदीप्तं नाभवत्पुच्छं ततो मारुतिरब्रवीत् । यदा स्वीयमुखेनायं लज्जमानोऽद्य रावणः ॥१९६॥
वह्निं प्रज्वालयेदत्र तदा ज्वाला भविष्यति । तन्मारुतिवचः श्रुत्वा ययावग्रे दशाननः ॥१९७॥
यावत्फूत्कारयामास तत्पुच्छानलमाननैः । तावत्तच्छिरजाः श्मश्रुकूर्चा दग्धा तदाऽभवन् ॥१९८॥

तिसपर जब हनुमान्ने अपनेको अमर बतलाया तो भी बातको सच न मानकर रावणने फिरसे कहा कि सच-सच बतला ॥ १८१ ॥ तब मारुति मनमें विचारने लगे कि अग्नि मेरे पिताके मित्र हैं। इसलिये मुझे डरनेकी कोई बात नहीं है ॥ १८२ ॥ इसलिए अपनी पूँछ जलवाकर मैं लङ्काको ही जला डालूँगा। यह विचारकर सभामें स्थित रावणसे हनुमान्ने कहा—॥ १८३ ॥ मेरी पूँछ अग्निसे जल सकती है, यह पक्की बात है। यह सुनकर रावणने अपने नौकरोंको बुलाकर आज्ञा दी कि प्रयत्नपूर्वक इसकी पूँछ जलाकर इसे नगरभरमें घुमाकर दिखला दो। जिससे कि समस्त शत्रुओंको मेरा डर लगने लगे। नौकरोंने भी वैसा ही किया और शीघ्र ही राक्षसोंने सन तथा वस्त्रोंको तेलमें भिगोकर पूँछपर लपेट दिया। वस्त्र जब कुछ कम पड़ गये, तब बाजारके गोदामोंसे कपड़े चुराकर घरके वस्त्र लाकर और रावणकी आज्ञासे उन्होंने लंकाके नर-नारियोंके वस्त्र छीनकर हनुमान्की पूँछमें लपेटा। ऐसा करके उन्होंने सारे नगरके लोगोंको नंगा कर दिया। तथापि जब पूँछ नहीं ढँकी तो शय्याके मण्डप (मशहरी), कंचुकियोंके चोंगे, पुरवासियों तथा राजाके महलोंके वस्त्र लाकर लपेट दिये। तिसपर भी जब पूरा नहीं पड़ा तो सभासदों तथा राजाके वस्त्र लाकर लपेट दिये गये। ध्वजाएँ तथा पताकाएँ ला-लाकर लपेटी गयीं। रानी मन्दोदरी, साधु-महात्माओं तथा भिक्षुकोंके वस्त्र उतार-उतारकर लपेट दिये और सीताकी भी साड़ी उतारनेके लिए कुछ दूत दौड़े ॥ १८४–१९२ ॥ यह देखकर हनुमान्ने पूँछ बढ़ाना बन्द कर दिया। तब प्रत्येक घरमें तेल आदिके लिए कोलाहल होने लगा। वे दैत्य सबके यहाँका घी तथा तेल उठा लाये। यहाँ तक कि किसी घरमें दीपकके लिए तेल और बालकोंके लिए भी घी नहीं बच पाया ॥ १९३ ॥ १९४ ॥ समस्त स्त्री-पुरुषोंको लज्जा छोड़कर नङ्गा होना पड़ा। तब वे हनुमान्की पूँछ धौंकनीसे धौंककर अग्निके द्वारा जलाने लगे ॥ १९५ ॥ परन्तु अग्नि प्रदीप्त नहीं हुई। उस समय हनुमान्ने कहा कि यदि लज्जित रावण स्वयं अपने मुखसे फूँककर जलाये तो अग्नि जल सकती है। हनुमान्की बात सुनकर रावण तुरन्त आगे बढ़ा ॥ १९६ ॥ १९७ ॥ ज्यों ही उसने अपने मुखसे अग्निको फूँकना प्रारम्भ किया, ज्यों ही उसके सिरोंके बाल तथा दाढ़ी-मूँछ जल गयी ॥१९८॥ रावण जब अपने

तदा विंशद्भुजैः स्वीयमुखोपरि दशाननः । ताडयद्वह्निशांत्यर्थं जहसू राक्षसास्तदा ॥१९९॥
हास्य चकार हनुमांस्तदा क्रुद्धः स रावणः । नीयतां मर्कटश्चायमिति दूतान्वचोऽब्रवीत् ॥२००॥
ततो दूताः कपिं निन्युर्लङ्कायां ते समंततः । शृंखलाभिर्दृढं बद्ध्वा भ्रामयामासुरादरात् ॥२०१॥
वाद्यघोषैर्दीर्घशब्दैर्वेष्टितं शस्त्रधारिभिः । एवं दिवा सर्वलङ्कां दृष्ट्वोड्डीय स मारुतिः ॥२०२॥
धृत्वाऽतिसूक्ष्मरूपं तु दृढबंधविनिर्गतः । यथास्थानं ब्रह्मणोऽस्त्रं तद्ययौ पूर्वमेव हि ॥२०३॥
ततः पश्चिमदिक्संस्थं लंकाद्वारं समानयत् । निष्कास्य तोरणं द्वाराज्जघान द्वाररक्षकान् ॥२०४॥
हत्वा स्वरक्षकांश्चापि प्रासादेषु समंततः । ददावग्निं स्वपुच्छेन लङ्कां दग्धां चकार सः ॥२०५॥

तदा कोलाहलश्चासील्लंकायां प्रतिसद्मनि ।
निद्रितानपि बालाँश्च त्यक्त्वा नार्यो गृहाद्बहिः ॥२०६॥

दुद्रुवुः प्राणरक्षार्थं दग्धवस्त्रालकास्तदा । क्रमेण रावणादीनां प्रासादान् ज्वालयन् कपिः ॥२०७॥
तां रावणसभां दग्ध्वा जनान् पुच्छेन ताडयत् । अभवन् राक्षसा दग्धा शुखवाद्यानि चक्रिरे ॥२०८॥
तदा स रावणः क्रुद्धो राक्षसैर्दशकोटिभिः । ययौ योद्धु मारुतिना तान् सर्वान् तोरणेन सः २०९॥
घातयामास पुच्छेन बद्ध्वा चैकत्र कोटिशः । तथैव लीलया पुच्छं रावणस्य च मस्तके ॥२१०॥
संताड्य तत्त्वचं दग्धामकरोन्मारुतिः क्षणात् । तत्पुच्छवह्निना दग्धो मूर्छितोऽभूद्दशाननः ॥२११॥
कपिः श्रीरामकीर्त्यर्थं रावणं न जघान सः । पतितं पितरं दृष्ट्वा दृष्ट्वा दग्धान्स्वराक्षसान् ॥२१२॥
आत्मनः प्राणरक्षार्थमिंद्रजिद्विवरं ययौ । कपिर्लक्ष्मणप्रीत्यर्थं मेघनादं जघान न ॥२१३॥
एवं सर्वान्विनिर्जित्य गोपुराट्टालमंडिताम् । दग्ध्वा लङ्कां सविस्तारां ययौ सागरमुत्तमम् ॥२१४॥

बीसों हाथोंसे आग बुझानेके लिए अपने मुखोंपर पटापट थप्पड़ मारने लगा। तब राक्षस जोरोंसे खिलखिलाकर हँस पड़े ॥ १९९ ॥ हनुमान् भी हँसने लगे। यह देखकर रावण बड़ा क्रुद्ध हुआ और आज्ञा दी कि इस दुष्ट वानरको पकड़ ले आओ ॥ २०० ॥ तब दूत लोग हनुमान्‌को बड़ी मजबूत साँकलोंसे बाँधकर ले गये और नगरमें चारों ओर घुमाया ॥ २०१ ॥ घुमाते समय उनके साथ बड़े बड़े बाजे बज रहे थे। बहुतसे बालक तथा शस्त्रधारी लोग उनको घेरे हुए थे। इस प्रकार दिनमें सारी लंका देखकर सायंकालके समय हनुमान् सूक्ष्म रूप धारण करके झटपट बन्धनमेंसे निकल गये और कूदकर दरवाजेपर जा चढ़े। उसके पूर्व ही ब्रह्मपाश भी अपने स्थानपर लौट गया ॥ २०२ ॥ २०३ ॥ वहाँसे चलकर वे पश्चिमी द्वारपर आये। वहाँ फाटकका खम्भा उखाड़कर उससे समस्त द्वारपालोंको मार डाला ॥ २०४ ॥ अनेक रक्षक राक्षसोंको भी मार गिराया और अपनी पूँछकी अग्निसे सब महलोंमें आग लगाकर सारी लंकाको जला दिया ॥ २०५ ॥ उस समय लंकाके प्रत्येक घरमें बड़ा भारी कोलाहल होने लगा। स्त्रियें अपने बालकोंको सोते हुए छोड़कर ही घरोंसे बाहर निकल पड़ीं ॥ २०६ ॥ उनके वस्त्रों तथा बालोंमें आग लगी हुई थी और वे अपने प्राण बचानेके लिए इधर-उधर भागने लगीं। हनुमान्‌ने क्रमशः आगे जाकर रावणके महलोंमें भी आग लगा दी ॥ २०७ ॥ रावणकी सभाको जलाकर वहाँके राक्षसोंको अपनी पूँछसे खूब पीटा और सब राक्षस जलने तथा अनेक प्रकारके शब्द करके चिल्लाने लगे ॥ २०८ ॥ तब रावण क्रुद्ध हो दस करोड़ राक्षसोंको साथ लेकर हनुमान्‌से लड़नेके लिए गया। हनुमान्‌ने उन सबको उसी लोहेके खंभेसे मार डाला और करोड़ोंको एक साथ पूँछमें बाँधकर लीलापूर्वक रावणके सिरपर दे मारा ॥ २०९ ॥ २१० ॥ इस प्रकार मारनेसे उसकी चमड़ी क्षणभरमें जल उठी। उनकी पूँछकी अग्निसे जलकर दशानन मूर्छित हो गया ॥ २११ ॥ परन्तु हनुमान्‌ने यह सोचकर उसको जानसे नहीं मारा कि यदि रामके हाथसे मारा जायगा तो उनका यश बढ़ेगा। पिताको गिरा हुआ तथा अपने राक्षसोंको जलते देख इन्द्रजीत मेघनाद अपने प्राणोंकी रक्षाके लिए एक गुफामें घुस गया। हनुमान्‌ने लक्ष्मणकी प्रसन्नताके लिए उसको भी जीवित छोड़ दिया—मारा नहीं ॥ २१२ ॥ २१३ ॥ इस तरह सबको जीत तथा पुरद्वार और अटारियोंसे मंडित विशाल लंकाको जलाकर हनुमान् उत्तम

तटे पुच्छं स्थापयित्वा जलजान् रक्षयन् कपिः । तत्तरंगैः शीतलं स्वं कृत्वा लांगूलमुत्तमम् ॥२१५॥
निजकण्ठाच्च धूम्रेण श्लेष्माणं सागरेऽक्षिपत् ।ततः कपिः क्षणं तूष्णीं स्थित्वा सीतां विचिन्त्य च२१६
ताडयामास हृदये मत्वा दग्धां विदेहजाम् । आत्मानं गर्हयामास स्थित्वा सागररोधसि ॥२१७॥
धिग्धिङ्मां वानरं मूढं स्वामिपत्न्याश्च दाहकम्। निश्चयेन मया दग्धा जानकी रामतोषदा ॥२१८॥
न विचारः कृतः पूर्वं लङ्कादाहेऽविवेकिना । आत्मघातं करोम्यद्य पुच्छबंधेन चात्र वै ॥२१९॥
किं रामायेदृशं स्वास्यं दर्शयेऽद्य विगर्हितम् । रामस्तु श्रुत्वा सीताया वृत्तं शीघ्रं मरिष्यति ।२२०॥
तद्दुःखेन स सौमित्रिर्मरिष्यति न संशयः । तयोर्दुःखेन सुग्रीवस्तदर्थं सा च वै रुमा ॥२२१॥
तं श्रुत्वा सोऽङ्गदश्चापि मरिष्यत्यतिलालितः । ताराऽपि पुत्रशोकेन नृपे नष्टेऽथ वानराः ॥२२२॥
प्राप्ते पंचदशे वर्षे भरतोऽपि मरिष्यति । रामदुःखेन कौसल्या सुमित्रा पुत्रदुःखतः ॥२२३॥
तथा सा कैकेयी दुष्टा सर्वानर्थकरी तु या । शत्रुघ्नो बंधुदुःखेन रामार्थं मुनयश्च ते ॥२२४॥
राघवा रामभक्ताश्च मंत्रिणः सुहृदस्तथा । सीतापितुः कुलं सर्वं कौसल्याः पितुः कुलम् ॥२२५॥
सुमित्रायाश्च कैकेय्यास्तेषां संबंधिनस्तथा । नष्टे राजकुले जाते प्रजा स्वेच्छानुवर्तिनी ॥२२६॥
मरिष्यति न संदेहस्ततः स्थावरजंगमम् । भूमिस्थाः प्राणिनः सर्वे यदा नष्टास्तदा दिवि॥२२७॥
हव्यकव्यविहीनास्ते देवा नाशं गता इव । अकाले प्रलयं दृष्ट्वा नष्टां सृष्टिं स्वनिर्मिताम् ॥२२८॥
पश्चात्तापेन धाताऽपि मरिष्यति न संशयः । एवं क्रमेण ब्रह्मांडं नश्यत्येव न संशयः ॥२२९॥
एतद्घातनिमित्तोऽहं विधिना निर्मितः पुरा । इत्युक्तवंत खेदेन देहत्यागार्थमुद्यतम् ॥२३०॥
दृष्ट्वा साऽऽकाशजा वाणी बभूव बहुहर्षदा । मा कुरुष्व कपे खेदं न दग्धा जानकी शुभा ॥२३१॥

सागरके किनारे गये ॥ २१४ ॥ वहाँ लम्बी पूछके बड़े भागको किनारेपर रखकर जलजन्तुओंको बचाते हुए हनुमान्‌ने समुद्रकी तरङ्गोंसे अपनी दीर्घ तथा उत्तम पूछको शीतल किया ॥ २१५ ॥ वहाँ उन्होंने धुएँसे गलेमें जमे कफका भी त्याग किया। तदनन्तर वे क्षणभर शान्त रहे। बादमें वे सीताका सोच तथा उनको जल गयी समझकर जोर-जोरसे छाती पीटने लगे । समुद्रतटपर खड़े होकर उन्होंने अपनी निन्दा की ॥ २१६ ॥ २१७ ॥ स्वामीकी स्त्री सीताको जलानेवाले मुझ सरीखे मूर्ख वानरको बारम्बार धिक्कार है। रामको संतोष देनेवाली जानकीको मैंने धोखेमें जला दिया ॥ २१८ ॥ अविवेकी मैंने लङ्का जलानेसे पहिले यह विचार नहीं किया । अब मैं गलेमें पूछ बाँधकर आत्मघात कर लूँगा ॥ २१९ ॥ मैं अब अपने इस निन्दित मुखको कैसे दिखाऊँगा। राम सीताका यह हाल सुनते ही प्राण त्याग देंगे ॥ २२० ॥ उनके दुःखसे दुःखित सुमित्रापुत्र लक्ष्मण भी अवश्य मर जायँगे। उन दोनोंके दुःखसे सुग्रीव और सुग्रीवके दुःखसे उनकी स्त्री रुमा भी प्राण त्याग देगी ॥ २२१ ॥ यह समाचार सुननेके साथ ही अत्यन्त प्यारसे पला हुआ अंगद भी प्राण छोड़ देगा। तब पुत्रशोकसे तारा और राजाके वियोगसे सब वानर भी प्राण दे देंगे ॥ २२२ ॥ पन्द्रह वर्ष बीत जानेपर भरत भी मर जायँगे। रामके वियोगसे कौसल्या, पुत्रवियोगसे सुमित्रा तथा भरतके वियोगसे यह अनर्थकारिणी तथा दुष्टा कैकेयी भी मर जायगी। भाईके दुःखसे शत्रुघ्न, रामके दुःखसे मुनिलोग एवं रघुवंशी रामके भक्त मन्त्रिजन तथा मित्रवर्ग भी प्राण दे देंगे। सीताके पिता जनकका कुल, कौसल्याके पिताका कुल, सुमित्राके पिताका कुल, कैकेयीके पिताका कुल तथा उनके भी सगे-सम्बन्धी लोग प्राण त्याग देंगे। राजकुल नष्ट हो जानेपर प्रजा स्वेच्छाचारिणी हो जायगी ॥ २२३–२२६ ॥ तब वह निःसन्देह स्थावर-जङ्गम सभी प्राणियोंका नाश करने लगेगी। जब पृथ्वीपर सब प्राणी मार डाले जायँगे। तब स्वर्गलोकवासी देवता और पितर भी हव्य-कव्यसे वंचित होकर मृतक सरीखे हो जायँगे। असमयका प्रलय तथा अपनी रची सृष्टिका विनाश देखकर पश्चात्तापसे निःसन्देह विधाता भी मर जायगा। इस प्रकार क्रमशः समस्त ब्रह्माण्ड-ही नष्ट हो जायगा। इसमें सन्देह नहीं है ॥ २२७–२२९ ॥ ब्रह्माजीने इनके विनाशका कारण मुझे ही बनाया। हनुमान् ऐसा खेदपूर्वक कहने लगे और मरनेके लिए उद्यत हो गये ॥ २३० ॥ उसी समय यह आनन्ददायिनी आकाशवाणी हुई कि हे

आत्मानं दर्शयित्वा तां शीघ्रं गच्छ रघूद्वहम् । तां वाणीं हनुमाञ्छ्रुत्वा बभूव हर्षपूरितः ॥२३२॥
द्रुतं तां जानकीं द्रष्टुमशोकवनिकां ययौ । तावद्ददर्श लंकायां सुवर्णवेष्टितां भुवम् ॥२३३॥
तत्कारणं वदाम्यद्य तच्छृणुष्व गिरींद्रजे । आसीद्गिरिवरो देवि त्रिकूट इति विश्रुतः ॥२३४॥
क्षीरोदेनावृतः श्रीमान्योजनायुतमुच्छ्रितः । तावता विस्तृतः पर्यक् त्रिभिः शृंगैः पयोनिधिम् २३५
दिशः खं रोचयन्नास्ते रौप्यायसहिरण्मयैः । तस्य द्रोण्यां भगवतो वरुणस्य महात्मनः ॥२३६॥
उद्यानमृतुमन्नाम आक्रीडं सुरयोषिताम् । तस्मिन्सरः सुविपुलं लसत्कांचनपंकजम् ॥२३७॥
कुमुदोत्पलकह्लारशतपत्रश्रियोर्जितम् । नैवत्कृतघ्नाः पश्यंति न नृशंसा न नास्तिकाः॥२३८॥
तस्मिन्सरसि दुष्टात्मा विरूपोऽन्तर्जलाशयः । आसीद्ग्राहो गजेन्द्राणां दुराधर्षो महाबलः ॥२३९॥
अथ दंतोज्ज्वलमुखः कदाचिद्गजयूथपः । आजगाम तृषाक्रांतः करेणुपरिवारितः ॥२४०॥
तृषितः पानकामोऽयमवतीर्णश्च तत् सरः । पिबतस्तस्य तत्तोयं ग्राहस्तमुपपद्यत ॥२४१॥
सुलीनः पंकजवृते यूथमध्यगतः करी । गृहीतस्तेन रौद्रेण ग्राहणातिबलीयसा ॥
गजो ह्याकर्षते तीरं ग्राह आकर्षते जलम् ॥२४२॥
पश्यंतीनां करेणूनां क्रोशंतीनां सुदारुणम् । नीयते पंकजवने ग्राहेणाव्यक्तमूर्तिना ॥२४३॥
तथाऽऽतुरं यूथपतिं करेणवो विकृष्यमाणं तरसा बलीयसा ।
विचुक्रुशुर्दीनधियोऽपरे गजाः पार्ष्णिग्रहास्तारयितुं न चाशकन् ॥२४४॥
तयोर्युद्धमभूद्घोरं दिव्यवर्षसहस्रकम् । वारुणैः संयतः पाशैर्निष्प्रयत्नगतिः कृतः ॥२४५॥
वेष्टयमानः सुघोरैस्तु पाशैर्नागैर्दृढैस्तथा । विस्फूर्जितमहाशक्तिर्विक्रोशश्च महारवान् ॥२४६॥

कपिश्रेष्ठ ! खेद न करो । कल्याणकारिणी जानकोजी नहीं जली हैं ॥ २३१ ॥ उनसे मिलकर तुम शीघ्र रघूद्वह रामके पास जाओ । उस गगनवाणीको सुनकर हनुमान् बहुत प्रसन्न हुए ॥ २३२ ॥ वे जानकीको देखनेके लिए शीघ्र अशोकवनमें गये । वहाँ जाकर हनुमान्ने कुछ सुवर्णवेष्टित धरती देखी ॥ २३३ ॥ हे गिरीन्द्रजे ! उसका कारण मैं बताता हूँ, सुनो–हे देवि ! त्रिकूट नामसे प्रसिद्ध एक श्रेष्ठ पर्वत था ॥ २३४ ॥ वह चारों ओर क्षीरसागरसे घिरा हुआ सुन्दर शोभायुक्त तथा दस हजार योजन ऊँचा था । वह उतना ही गोलाईमें भी था । वह चाँदी, लोहे और सोनेके तीन शिखरोंसे दसों दिशाओं तथा आकाशको व्याप्त किये हुए था । उसके एक भागमें महात्मा भगवान् वरुणका ऋतुमान् नामक देवस्त्रियोंका क्रीड़ास्थान एवं उद्यान था । उसमें विशाल सुवर्णकमलोंसे सुशोभित एक तालाब था ॥ २३५–२३७ ॥ जो कि कुँइयाँ, लाल कमल, श्वेत कमल तथा आतपत्र जैसे कमलोस अतीव सुन्दर प्रतीत होता था । उनको कृतघ्न, क्रूर और नास्तिक लोग नहीं देख सकते थे ॥ २३८ ॥ उसी जलाशयमें छिपा हुआ महाबलवान्, बड़ी कठिनाईसे पकड़ा जानेवाला तथा गजेन्द्रोंको भी ग्रस लेनेवाला एक दुष्ट मगरमच्छ रहता था ॥ २३९ ॥ किसी समय श्वेत दाँत तथा श्वेत मुखवाला गजोंमें मुख्य एक गजराज प्याससे व्याकुल होकर हथिनियोंसे घिरा हुआ वहाँ आया ॥ २४० ॥ वह पानी पीनेकी इच्छासे ज्यों ही पानीमें उतरा और पानी पीने लगा, त्यों ही ग्राह उसके पास जा पहुँचा ॥ २४१ ॥ कमलवनसे ढँके तथा हाथियोंके झुण्डके बीचमे स्थित उस हाथीको उस भयानक तथा अति बलवान् ग्राहने पकड़ लिया ॥ २४२ ॥ अब वह हाथी ग्राहको तीरकी ओर खींचने लगा । उसके साथकी हथिनियाँ देखती और दुःखसे चिल्लाती ही रह गई और जलमें छिपा हुआ ग्राह हाथीको कमलके वनमें दूर खींच ले गया ॥२४३॥ जब घबराये हुए उस यूथपति गजको ग्राह बलपूर्वक वेगसे जलमें खींच रहा था, तब हथिनियें मलीन मुखसे क्रन्दन करने लगीं और दूसरे तथा पीछे रहनेवाले हाथी दीन होकर चिल्लाने लगे, पर कोई उसे बचा नहीं सका ॥ २४४ ॥ उस गज तथा ग्राह दोनोंमें देवताओंके हजार वर्ष तक घोर युद्ध होता रहा । अन्तमें गजराज जैसे वरुणपाश तथा अति भयानक एवं दृढ़ नागपाशमें बँधकर सर्वथा असमर्थ हो गया । तब उज्ज्वल वर्ण तथा महाशक्तिसम्पन्न होता हुआ भी वह गजराज चिल्लाने तथा महान् चीत्कार

व्यथितः स निरुत्साहो गृहीतो घोरकर्मणा । परामापदमापन्नो मनसाऽचिंतयद्धरिम् ॥२४७॥
एकाग्रो निगृहीतात्मा विशुद्धेनांतरात्मना । प्रगृह्य पुष्कराग्रेण कांचनं कमलोत्तमम् ॥२४८॥
नैवेद्यं मनसा ध्यात्वा पूजयित्वा जनार्दनम् । आपद्विमोक्षमन्विच्छन्गजः स्तोत्रमुदीरयत् ॥२४९॥
तत्कृतेन स्तवेनैव सुप्रीतः परमेश्वरः । आरुह्य गरुडं विष्णुराजगाम सुरोत्तमः ॥२५०॥
ग्राहग्रस्तं गजेन्द्रं च तं ग्राहं च जलाशयात् । उज्जहाराप्रमेयात्मा तरसा मधुसूदनः ॥२५१॥
जलस्थं दारयामास नक्रं चक्रेण माधवः । मोचयामास नागेंद्रं पाशेभ्यः शरणागतम् ॥२५२॥
आसीद्गजः पुरा पांड्य इन्द्रद्युम्न इति श्रुतः । एकदा स तपोनिष्ठो बभूव ध्यानतत्परः ॥२५३॥
यदृच्छया ययौ तत्र कुम्भजन्मा नृपांतिकम् । ध्यानस्थः स नृपो नैव मुनिं वेद समागतम् ॥२५४॥
ददौ शापं मुनिर्भूप दृष्ट्वात्मानं तु नोत्थितम् । तपोमदेनसंभ्रान्तस्त्व यस्मान्नोत्थितोऽसि माम् २५५॥
अतो भव गजो भ्रांतो मदेन विपिनेऽचिरात् । तं श्रुत्वा नृपतिः शापं तं प्रणम्य पुनः पुनः ॥२५६॥
विशापं प्रार्थयामास मुनिः प्राह हरेः करात् । भविष्यति विमुक्तिस्ते यदा ग्राहो धरिष्यति ॥२५७॥
पुरा तदैव गंधर्वस्त्वप्सरोगणसेवितः । सरस्यस्मिञ्जलक्रीडां कर्तुं हूहूः समागतः ॥२५८॥
सरस्यघमर्षणार्थं तं दृष्ट्वा स देवलं चिरम् । संस्थितं च बहिः कर्तुं गन्धर्वः स व्यचिंतयत् ॥२५९॥
स्वयं भूत्वा जले लीनस्तत्पादौ स्वकरेण हि । दृढं धृत्वा कर्षयंतं ज्ञात्वा तमशपन्मुनिः ॥२६०॥
ग्राहवन्मे धृतौ पादौ तस्माद्ग्राहो भवात्र वै । तेन संप्रार्थितः प्राह हरिस्त्वामुद्धरिष्यति ॥२६१॥
एवं तौ पूर्वशापेन पतितावतिसंकटे । हरिरुद्धृत्य तौ ताभ्यां ययौ स्वीयस्थलं पुनः॥२६२॥

करने लगा ॥ २४५ ॥ २४६ ॥ उस घोर पराक्रमी ग्राहसे ग्रस्त होकर गजराज दुःखी और निरुत्साह हो गया । उस समय इस प्रकारकी परम विपत्तिको प्राप्त होकर वह श्रीहरिका चिन्तन करने लगा ॥ २४७ ॥ तदनन्तर इन्द्रियोंका निग्रह करके उसने एकाग्र मन तथा शुद्ध अन्तःकरणसे सुवर्णके समान उत्तम एक कमलपुष्प सूँड़के अग्रभागसे पकड़कर शान्त भावसे मन ही मन जनार्दन भगवान्‌का आवाहन, पूजन, ध्यान तथा नैवेद्य अर्पण करके विपत्तिसे छुटकारा पानेके हेतु स्तोत्रपाठ किया ॥ २४८ ॥ २४९ ॥ उसकी स्तुतिसे प्रसन्न परमेश्वर सुरोत्तम भगवान् विष्णु स्वयं गरुड़पर सवार होकर वहाँ आये ॥ २५० ॥ उन अप्रमेय आत्मा मधुसूदन भगवान्‌ने उस ग्राह तथा गजेन्द्रको जलसे शीघ्र ही बाहर निकाला ॥ २५१ ॥ उन्होंने जलमें रहनेवाले ग्राहको अपने चक्रसे मार डाला और शरणागत गजराजको पाशोंसे छुड़ा दिया ॥ २५२ ॥ वह हाथी पूर्व जन्ममें पांड्यवंशी इन्द्रद्युम्न नामका राजा था । एक बार उसने ध्यान धरके तप करना आरम्भ किया ॥ २५३ ॥ जब वह तप कर रहा था, तभी उसके पास अगस्त्य मुनि एकाएक जा पहुँचे । ध्यानमें स्थित राजाको मुनिके आनेका कुछ पता न था । २५४ ॥ मुनिने अपने आनेपर राजाको खड़े होते न देखकर शाप दे दिया कि तपके घमण्डसे मेरे आनेपर भी तुम खड़े नहीं हुए ॥ २५५ ॥ इसलिए शीघ्र ही तुम वनमें मदोन्मत्त हाथी हो जाओ । यह सुनकर राजा इन्द्रद्युम्न बारम्बार मुनिको प्रणाम करके शापसे मुक्त करनेकी प्रार्थना करने लगा । तब मुनिने कहा कि तुमको ग्राह (मगरमच्छ) पकड़ेगा, तब प्रभुके हाथसे तुम्हारी मुक्ति होगी ॥ २५६ ॥ २५७ ॥ उन्हीं दिनों हूहू नामक गन्धर्व विशिष्ट अप्सराओंको साथ लेकर उस तालाबमें जलक्रीड़ा करनेके लिए आया ॥ २५८ ॥ उसने देखा कि उस सरोवरके जलमें खड़े होकर देवल मुनि बहुत देरसे अघमर्षण अर्थात् सम्पूर्ण पापोंको नष्ट करनेवाले मन्त्रका जप कर रहे हैं और अभी बाहर निकलना नहीं चाहते । तब वह उनको बाहर निकालनेका उपाय सोचने लगा ॥ २५९ ॥ तदनन्तर स्वयं जलमें डुबकी मारकर वह अपने हाथसे उनके पाँवोंको पकड़कर खींचने लगा । यह देखकर मुनि उसको पहिचान गये और शाप दिया—॥ २६० ॥ तूने ग्राहकी तरह मेरे पावँ पकड़े हैं, इसलिए तू यहाँपर मगरमच्छ बनेगा । पुनः गन्धर्वके प्रार्थना करनेपर मुनिने कहा कि श्रीहरि तेरा इस शापसे उद्धार करेंगे ॥ २६१ ॥ इस प्रकार पूर्व जन्ममें प्राप्त शापके कारण अतिशय भीषण संकटमें पड़े हुए उन गज-ग्राहका भगवान्‌ने उद्धार

क्षुधितेनाथ तार्क्ष्येण प्रार्थितः प्राह तं हरिः । गच्छ भक्षस्व पतिते गजग्राहकलेवरे ॥२६३।
ययौ तार्क्ष्यः सरः पुण्यं तावद्भ्रूभंगगृध्रराट् । कलेवरांतिक प्राप्तस्तं निहत्य खगेश्वरः ॥२६ ॥
पदेनैकेन भ्रूभंगमपरेण कलेवरे । धृत्वा तार्क्ष्यः शुद्धदेश भक्षणार्थमपश्यत् ॥२६५॥
तावत्क्षीरार्णवे जांबूनदवृक्षं समीक्ष्य सः । आयामविस्तरोच्चैस्तु सहस्रयोजन शुभम् ॥२६६॥
तच्छाखायां विशालायां यावत्तस्थौ स पक्षिराट । तावद्बभंज तच्छाखा वालखिल्यैरधोमुखैः ॥२६७॥
तपद्भिः षष्टिसाहस्रैश्चिरकालं समाश्रिताः । तांस्तादृशान्विलोक्याथ तच्छापभयशंकितः ॥२६८।
धृत्वा स्वचंचुना शाखां बभ्राम गगने पुनः । ततो दृष्ट्वा कश्यपं स्वतातं नत्वा व्यजिज्ञपत् ।२६९॥
वद शुद्धां भुवं मेऽद्य कुर्वेऽहं यत्र भोजनम् । तदा तं कश्यपः प्राह शतयोजनसागरे ॥२७०।
लंकानाम्नी शुद्धभूमिस्तत्र त्वं कुरु भोजनम् । तत्पितुर्वचनाल्लङ्कां ययौ तार्क्ष्यः क्षणेन सः ॥२७१॥
प्रोच्चयोः पक्षयोः शाखां स्थाप्य तान्भक्षयन्मुदा । तस्य कैशस्थिभिस्तत्र शृंगाणि त्रीणि चाभवन् ॥२७२॥
त्रिकूट इति नाम्ना स लङ्कायां गिरिराडभूत् । तेषु शृंगेषु तां शाखां तार्क्ष्यः संस्थाप्य संययौ ।।२७३॥
वालखिल्यास्तपोऽन्ते ते ययुर्विष्णोः परं पदम् । आसीच्छाखाऽन्तराले सा लङ्कायां शृंगमूर्द्धसु ॥२७४॥
ग्रावभूतां शैवलेन न विदुस्तां तु राक्षसाः । लङ्काऽग्निना द्रवीभूता मर्दयन्ती क्षपाचरान् ॥ ७५॥
पपात तद्रसेनासील्लङ्काभूमिर्हिरण्मयी । तां दृष्ट्वा चकितो वेगाद्वने सीतां ययौ कपिः ॥२७६॥
दृष्ट्वाऽशोके पुनः सीतां तामाह कपिकुञ्जरः । मत्स्कन्धसंस्थिता रामद्य पश्यसि जानकि ॥२७७।
सा प्राह मोचितामन्यैर्मां रामो न सहिष्यति । नीत्वा पुनर्मुद्रिकां त्वं राघवाय समर्पय ॥२७८॥

किया और दोनोंको साथ लेकर अपने धाम पधारे ॥२६२॥ तदनन्तर भूखे गरुडने श्रीहरिसे आहारकी प्रार्थना की। श्रीहरिने कहा कि जाओ, सरोवरके तटपर पड़े हुए गज-ग्राहके शरीरको खा लो ॥ २६३ ॥ गरुड़ वहां गये तो उन कलेवरोंके पास भ्रूभङ्ग नामके एक गृध्रराजको देखा। देखते ही पक्षियोंके ईश गरुड़ने उसे मार डाला ॥ २६४ ॥ तत्पश्चात् एक टाँगसे भ्रूभङ्गको तथा दूसरी टाँगसे गज-ग्राहके शरीरोंको पकड़कर उन्हें खानेके लिए कोई शुद्ध स्थान खोजने लगे ॥ २६५ ॥ इतनेमें गरुड़को क्षीरसागरमें एक जाम्बूनद (सुवर्ण) का वृक्ष दिखायी दिया। वह लम्बाई-चौड़ाई तथा ऊँचाईमें हजार योजन परिमाणवाला था और देखनेमें बड़ा ही सुन्दर लगता था ॥२६६॥ पक्षिराज गरुड़ जाकर ज्यों ही उसकी एक शाखापर बैठे, तैसे ही उसकी वह शाखा टूट पड़ी। उसके टूटनेसे उसपर बहुत कालसे रहनेवाले साठ हजार वालखिल्य ऋषि अधोमुख होकर गिरने लगे। उनकी यह दशा देखकर पक्षिराज गरुड़के मनमें ऋषियोंके शापकी शंका समा गयी ॥ २६७ ॥ २६८ ॥ अतएव उस शाखाको चोंचमें पकड़कर वे आकाशमें फिर भ्रमण करने लगे। तभी उन्हें अपने पिता कश्यप दिखायी पड़े। तब नमस्कार करके उनसे निवेदन किया—॥ २६९ ॥ आप कोई ऐसी पवित्र जगह बतलाएँ, जहाँ मैं भोजन कर सकूँ। तब कश्यपने कहा कि सौ योजन विस्तृत लंका नामकी विशुद्ध भूमि है, वहाँ जाकर तुम भोजन कर सकते हो। अपने पिताकी बात अङ्गीकार करके गरुड़ क्षणभरमें लङ्का जा पहुँचे ॥ २७० ॥ ॥ २७१ ॥ वालखिल्य ऋषियों सहित शाखाको अपनी ऊँची पाँखोंपर धरे हुए वे आनन्दसे उन मृत शरीरोंको खाने लगे, जिन्हें पाँवोंसे पकड़ लाये थे। उन गज-ग्राह तथा गीधके शरीरसे निकली हुई हड्डियोंसे वहाँ तीन बड़े भारी शिखर खड़े हो गये ॥ २७२॥ उन तीनोंका लङ्कामें पर्वतराज त्रिकूट नाम पड़ गया। गरुडने उन्हीं शिखरोंपर उस शाखाको रख दिया और चले गये ॥ २७३ ॥ वहींपर तपस्या पूरी करके वे वालखिल्य ऋषि विष्णुके परम पदको प्राप्त हो गये। लंकामें उन शिखरोंके मध्यमें स्थित शाखा पाषाणके समान हो गयी थी। इसी कारण राक्षस लोग उसे नहीं पहचान पाये थे। जब हनुमान्ने लङ्काको अग्निसे जलाया, तब वह द्रवित होकर राक्षसोंका मर्दन करती हुई गिर पड़ी। उसके रससे लंकाकी भूमि सुवर्णमयी हो गयी। यह लीला देखकर हनुमान् चकित हो गये और शीघ्र ही सीताके समीप आये ॥ २७४-२७६ ॥ अशोकवनमें सीताको पूर्ववत् स्थित देखकर कपिकुञ्जर हनुमान् सीतासे बोले-हे जानकी ! आप मेरे कन्धे-

इत्युक्त्वा तत्करे सीता ददौ श्रीराममुद्रिकाम् । ततस्तां मारुतिः पृष्ट्वा नत्वां शीघ्रं ययौ पुनः ॥२७९॥
आरुरोह सुवेलाद्रिं चूर्णं तमकरोद्गिरिम् । एतस्मिन्नतरे ब्रह्मा ददौ पत्रं सविस्तरम् ॥२८०॥
यद्यत्कृतं मारुतिना लंकायां तस्य सूचकम् । तद्गृह्य मारुतिर्वेगान्नत्वा पृष्ट्वा विधिं पुनः ॥२८१॥
तत उड्डीय वेगेन ययावाकाशवर्त्मना । कुर्वन् शब्दं महाघोरं कपीनामूर्ध्वतस्तदा ॥२८२॥
उदङ्दिश्यंतरा किंचित्पपात भुवि मारुतिः । ततो दृष्ट्वा कपींस्तत्र दृष्ट्वैकं मुनिसत्तमम् ॥२८३॥
किंचिद्गर्वसमाविष्टस्तं मुनिं प्राह मारुतिः । मया श्रीरामकार्यं तु कृतमस्ति मुनीश्वर ॥२८४॥
पानीयं पातुमिच्छामि दर्शयस्व जलाशयम् । तर्जन्या दर्शयामास मुनिस्तस्मै जलाशयम् ॥२८५॥
ततः स मारुतिर्मुद्रां मणिं पत्रं मुनेः पुरः । संस्थाप्य नीरं पातुं वै ययौ कासारमुत्तमम् ॥२८६॥
ततस्तत्र कपिः कश्चिन्मुद्रिकां मुनिसंनिधौ । कमंडलौ प्राक्षिपत्स ययौ तावच्च मारुतिः ॥२८७॥
गृहीत्वा तं मणिं पत्रं मुनिं पप्रच्छ मुद्रिकाम् । मुनिर्भ्रूसंज्ञया तस्मै कमंडलुमदर्शयत् ॥२८८॥
ततः कमंडलौ तूर्णं मुद्रिकामवलोकयत् । तावद्दर्शाञ्जनेयस्तस्मिन् श्रीराममुद्रिकाः ॥२८९॥
दृष्ट्वा सहस्रशस्तत्र चकितः प्राह तं मुनिम् । कुतस्त्वियमा मुद्रिकाश्च वद का मम मुद्रिका ॥२९०॥
एतासु त्वं मुनिश्रेष्ठ तदा तं मुनिरब्रवीत् । यदा यदा वायुपुत्रः सीतां तां राघवाज्ञया ॥२९१॥
लंकां गत्वा समानीवा शुद्धिमुद्रास्तदा तदा । मदग्रे स्थापितास्ताश्च कपिभिश्च कमंडलौ ॥२९२॥
निक्षिप्तास्तास्त्विमाः सर्वा पश्यंतासु स्वमुद्रिकाम् । तन्मुनेर्वचनं श्रुत्वा गतगर्वस्तमब्रवीत् ॥२९३॥
कियंतो राघवाश्चात्र समायाता मुनीश्वर ।मुनिस्तं प्राह निष्कास्य गणयस्वाद्य मुद्रिकाम्॥२९४॥

पर सवार हो जायँ, तो मैं आपको ले चलकर आज ही रामका दर्शन करा दूँ ॥ २७७ ॥ जानकीने कहा—मुझे दूसरा कोई छुड़ाकर ले जाय, इस बातको भगवान राम सहन नहीं कर सकेंगे। इसलिए तुम इस अंगूठीको ले जाकर रामको दे दो ॥ २७८ ॥ इतना कहकर सीताजीने हनुमानके हाथोंमें वह मुद्रिका दे दी। तब हनुमानजी सीताकी आज्ञा ले तथा नमस्कार करके शीघ्र ही लौट पड़े ॥ २७९ ॥ उन्होंने समुद्रके किनारे-वाले पर्वतपर चढ़कर उसे चूर्ण कर डाला। उस समय ब्रह्माजीने विस्तारपूर्वक एक पत्र लिखकर उन्हें दिया ॥ २८० ॥ जिसमें यह लिखा था कि लंकामें जाकर मारुतिने क्या-क्या काम किया है। उसको लेकर ब्रह्माकी आज्ञा ले तथा उन्हें नमस्कार करके हनुमान् पुनः वहाँसे उड़कर आकाशमार्गसे घोर तथा महान् वानरोंकी तरह शब्द करते हुए जोरोंसे चल पड़े ॥ २८१ ॥ २८२ ॥ उत्तर दिशाकी ओर कुछ दूर आगे जाकर नीचे उतरे तो वहाँ उन्होंने एक मुनिको विराजमान देखा ॥ २८३ ॥ तब कुछ गर्वसे मारुतिने कहा—हे मुनीश्वर! मैं श्रीरामका काम करके आ रहा हूँ ॥ २८४ ॥ यहाँ मैं पानी पीनेकी इच्छासे आया हूँ। मुझे कोई जलाशय बतलाइये। तब मुनिने उन्हें तर्जनी अँगुलीसे जलाशय बतला दिया ॥ २८५ ॥ तदनन्तर हनुमान् अंगूठी, चूडामणि तथा पत्र मुनिके पास रखकर उस उत्तम तालाबकी ओर जल पीने गये ॥ २८६ ॥ इतनेमें किसी बन्दरने आकर रामकी मुद्रिकाको मुनिके पास रखे कमण्डलुमें डाल दिया। उधरसे हनुमान्‌जी भी आ पहुँचे ॥ २८७ ॥ चूड़ामणि तथा पत्रके विषयमें उन्होंने मुनिसे पूछा कि मुद्रिका कहाँ गयी? मुनिने भौंहोंके संकेतसे कमण्डलु दिखाया ॥ २८८ ॥ जब हनुमान्‌ने कमण्डलुमें देखा तो उसमें श्रीरामकी हजारों मुद्रिकाएँ दिखायी दीं। तब हनुमान्‌ने आश्चर्यचकित होकर मुनिसे पूछा कि इतनी अंगूठियें कहाँसे आयीं, सो बताइए ॥ २८९ ॥ २९० ॥ हे मुनिश्रेष्ठ! आप यह भी कहिये कि इनमेंसे मेरी मुद्रिका कौन-सी है? मुनिने उत्तर दिया कि जब-जब श्रीरामकी आज्ञासे हनुमान्‌ने लंकामें जाकर सीताका पता लगाया है और अंगूठियें मेरे सामने रक्खी हैं, तब-तब बन्दरोंने उन्हें इस कमण्डलुमें डाल दी हैं। वे ही ये सब हैं। इनमेंसे तुम अपनी अंगूठी खोज लो। मुनिके इस वाक्यको सुनकर हनुमान्‌का गर्व खर्व हो गया। तब उन्होंने मुनिसे कहा—॥ २९१ ॥ २९२ ॥ हे मुनीश्वर! यहाँ कितने राम आये हैं? मुनिने कहा—कमण्डलुमेंसे अंगूठियें निकालकर

कमंडलोरंजलिभिस्तदाऽथ मुद्रिका मुहुः । बहिः क्षिपन्मारुतिः स नांतं तासां ददर्श सः ॥२९५॥
पुनः कमंडलौ कृत्वा मुनिं नत्वा कपिः क्षणम् । चिंतयामास मनसि मादृशैः शतशः पुरा ॥२९६॥
समानीतास्ति सीतायाः शुद्धिः का गणनाऽद्य मे। इति निश्चित्य मनसि गतगर्वस्तदा कपिः ॥२९७॥
पुनर्दक्षिणमार्गेण ययौ यत्रांगदादयः । प्रायोपवेशनस्थास्ते तं दृष्ट्वा तुष्टमानसाः ॥२९८॥
बभूवुर्वानराः सर्वे समालिंग्याथ तं मुहुः । ज्ञात्वा तन्मुखतः सीता दृष्टाऽशोकवने त्विति ॥२९९॥
ययुस्ते राघवं शीघ्रं मार्गे सुग्रीवपालितम् । दृष्ट्वा मधुवनं सर्वे दृष्ट्वा तं वालिनंदनम् ॥३००॥
फलानि भक्षयामासुर्दधिवक्त्रो न्यषेधयत् । ततस्ते ताडयामासुर्दधिवक्त्रं कपीश्वरम् ॥३०१॥
ज्ञात्वा तं मातुलमपि सुग्रीवस्यांगदादयः । स गत्वा सकलं वृत्तं सुग्रीवाय न्यवेदयत् ॥३०२॥
सोऽपि श्रुत्वा जनकजा दृष्टा तैरित्यमन्यत । नोचेन्मधुवनं रम्यं कथमश्नन्ति वानराः ॥३०३॥
ततो विसर्जयामास दधिवक्त्रं कपीश्वरः ।मा निषेधस्त्वया कार्यस्त्वं शीघ्रं प्रेषयस्व तान् ॥३०४॥
मर्मांतिकं ततो गत्वा दधिवक्त्रस्तथाऽकरोत् । ततः सुग्रीववचनं श्रुत्वा तेन समीरितम् ॥३०५॥
युयुस्ते वानराः सर्वे रामं नत्वा पुरःस्थिताः । ततो हर्षान्मारुतिः स ब्रह्मपत्रं न्यवेदयत् ॥३०६॥
दत्त्वा चूडामणिं रामं काकवृत्तं न्यवेदयत् । तच्छ्रुत्वा सकलं वृत्तं ज्ञात्वा मारुतिना कृतम् ॥३०७॥
लंकायां वायुपुत्रेण रामस्तुष्टो बभूव सः । समालिंग्य हनूमंतं राघवो वाक्यमब्रवीत् ॥३०८॥
तवोपकारिणश्चाहं न पश्याम्यद्य मारुते । कर्तुं प्रत्युपकारं ते धन्योऽसि जगतीतले ॥३०९॥
परिरंभो हि मे लोके दुर्लभः परमात्मनः । अतस्त्वं मम भक्तोऽसि प्रियोऽसि हरिपुङ्गव ॥३१०॥
यत्पादपद्मयुगलं तुलसीदलाद्यैः संपूज्य विष्णु पदवीमतुलां प्रयांति ।

गिन लो ॥ २९३ ॥ २९४ ॥ अब हनुमान् कमण्डलुसे अंजली भर-भरकर बारम्बार अंगूठियें बाहर निकालने लगे। पर कहीं उनकी अन्त नहीं हुआ ॥ २९५ ॥ तब फिरसे उन्हें कमण्डलुमें भर दिया और मुनिको नमस्कार करके क्षणभरके लिए वे मनमें विचार करने लगे कि ओह ! पहिले मेरे जैसे सैकड़ों हनुमान् जाकर सीताकी खबर ले आये हैं तो मेरी कौन-सी गिनती है। यह निश्चय करके वीर मारुति घमण्डको त्यागकर दक्षिणमार्गमें जहाँ अङ्गदादि वानर बैठे थे, वहाँ गये। उपवासी दशामें बैठे हुए वे सब वानर हनुमानको देखकर बहुत प्रसन्न हुए ॥ २९६-२९८ ॥ वे सब उनको बार-बार हृदयसे लगाने लगे और उनके मुखसे यह सुनकर कि मैं सीताको अशोकवाटिकामें देख आया हूँ ॥ २९९ ॥ तब सबके सब तुरन्त रामकी ओर चल पड़े। रास्तेमें उन्हें सुग्रीवका सुरक्षित मधुवन दिखाई दिया। तब सब वानर वालिके पुत्र अङ्गदसे पूछकर ॥ ३०१ ॥ उस वनके फल खाने लगे। जब उसके रक्षक दधिमुखने रोका तो वे उसको मारने लगे ॥ ३०० ॥ यह जाननेपर भी कि यह सुग्रीवका मामा है, तथापि उसे पीटकर ही छोड़ा। तदनन्तर दधिमुखने जाकर सब हाल सुग्रीवको कह सुनाया। यह सुनकर सुग्रीवने समझ लिया कि उन्होंने जनकतनयाका पता पा लिया है, नहीं तो वे लोग मधुवनके फल क्योंकर खाते ॥ ३०२ ॥ ३०३ ॥ पश्चात् कपीश्वर सुग्रीवने दधिमुखको समझा-बुझाकर लौटाया और कहा कि उन्हें रोको मत, यहाँ भेज दो ॥ ३०४ ॥ सुग्रीवकी बात मानकर उसने वैसा ही किया। पश्चात् वे सब वानर दधिमुखसे सुग्रीवका आदेश सुनकर ॥ ३०५ ॥ रामके पास गये तथा नमस्कार करके उनके सामने खड़े हो गये। तब हनुमान्ने सहर्ष ब्रह्माका दिया हुआ पत्र रामको अर्पण किया और चूड़ामणि देकर जयन्त कौवेका वृत्तान्त कह सुनाया। सो सुनकर राम लङ्कामें हनुमान्का किया हुआ समस्त कार्य जान गये ॥ ३०६ ॥ ३०७ ॥ ब्रह्माके पत्रसे राम अतिशय सन्तुष्ट हुए। तदनन्तर राम हनुमान्का आलिंगन करके बोले—॥ ३०८ ॥ हे मारुते ! तुमने मेरा बड़ा उपकार किया है। इस उपकारका प्रत्युपकार करनेके लिये मुझे कुछ नहीं सूझता । सचमुच तुम संसारमें धन्य हो ॥ ३०९ ॥ इस संसारमें साक्षात् परमात्माका (मेरा) परिरम्भ (आलिङ्गन) दुर्लभ है, वह तुमको प्राप्त हो गया। इस कारण हे हरिपुङ्गव ! तुम प्रिय भक्त हो ॥ ३१० ॥ जिन विष्णुके दोनों चरणकमलोंका तुलसीपत्र तथा जल आदिसे पूजन

तेनैव किं पुनरसौ परिरब्धमूर्ती रामेण वायुतनयः कृतपुण्यपुंजः ॥३११॥
रामं स मारुतिः प्राह भीतभीतोऽतिकंपितः । मयाऽपराधितमिति मुद्रावृत्तं मुनेर्वचः ॥३१२॥
तच्छ्रुत्वा रामचंद्रोऽपि विहस्योवाच मारुतिम् । मयैव दर्शितं मार्गे कौतुकं मुनिरूपिणा ॥३१३॥
त्वद्दर्पपरिहारार्थं मुद्रिकां मत्करे त्विमाम् । कनिष्ठिकायां त्वं पश्य समानीता त्वयाद्य वै ॥३१४॥
तां राममुद्रिकां दृष्ट्वा श्रीरामस्य करांगुलौ । ननाम गतदर्पः स रामं विष्णुममन्यत ॥३१५॥
मय्यप्यस्यैव कृपया पौरुषं चेत्यमन्यत । एवं गिरींद्रजे प्रोक्तं चरित्रं सुंदराभिधम् ॥३१६॥
रामार्थं वायुपुत्रेण कृतं सर्वार्थदायकम् ॥३१७॥

इति श्रीशतकोटिरामचरितांतर्गते श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये सारकाण्डे सुन्दरचरित्रे सीताशुद्धिर्नाम नवमः सर्गः ॥ ९ ॥

दशमः सर्गः

(राम-रावणसेनाका संघर्ष)

श्रीशिव उवाच

अथाह मारुतिं रामो मां वदस्व सविस्तरम् । लंकास्वरूपं ज्ञात्वा च प्रतीकारं करोम्यहम् ॥ १ ॥
तद्रामवचनं श्रुत्वा कथयामास मारुतिः । लंका दिव्यपुरी देव त्रिकूटशिखरे स्थिता ॥ २ ॥
स्वर्णप्राकारसहिता स्वर्णाट्टालकसंयुता । परिखाभिः परिवृता पूर्णाभिर्निर्मलोदकैः ॥ ३ ॥
नानोपवनशोभाढ्या दिव्यवापीभिरावृता । गृहैर्विचित्रशोभाढ्यैर्मणिस्तंभमयैः शुभैः ॥ ४ ॥
पश्चिमद्वारमासाद्य गजवाहाः सहस्रशः । उत्तरद्वारि तिष्ठन्ति वाजिवाहाः सपत्तयः ॥ ५ ॥
दशकोटिमिता सेना विविधायुधमण्डिता । लंकायाः परितो व्याप्ता सतर्का रक्षते पुरीम् ॥ ६ ॥

करके मनुष्यमात्र विष्णुके अनुपम पदको प्राप्त करता है। उन्हीं साक्षात् रामके द्वारा आलिङ्गित होकर वायुपुत्र हनुमान् यदि महान् पुण्यशाली बन जायँ तो इसमें आश्चर्य ही क्या है ॥ ३११ ॥ तदनन्तर डरके मारे कापते हुए मारुतिने रामसे अपना गर्वरूपी अपराध, मुद्रिकाका वृत्तान्त तथा मुनिका वचन कह सुनाया ॥ ३१२ ॥ यह सुना तो रामचन्द्रने हँसकर कहा कि यह कौतुक मैंने ही मार्गमें मुनिरूप धारण करके दिखलाया था ॥ ३१३ ॥ यह काम मैंने तुम्हारे गर्वको छुड़ानेके लिये ही किया था। यह देखो, जिस मुद्रिकाको तुम ले आये थे, वह तो मेरे हाथकी कनिष्ठिका अंगुलीमें विद्यमान है ॥ ३१४ ॥ रामके हाथमें रामकी अगूठी देखी तो गर्व छोड़कर हनुमान्ने नमस्कार किया और उन्हें साक्षात् विष्णु माना ॥ ३१५ ॥ और यह भी माना कि इन्हींकी कृपासे मुझमें भी पौरुष आ गया है। हे गिरींद्रजे ! रामके लिये वायुपुत्रके द्वारा किया हुआ सर्वार्थसाधक सुन्दर चरित्र मैंने तुमको इस प्रकार कह सुनाया ॥ ३१६ ॥ ३१७ ॥ इति शतकोटिरामचरितांतर्गते श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये सारकाण्डे भाषाटीकायां सुन्दरचरित्रे सीताशुद्धिर्नाम नवमः सर्गः ॥ ९ ॥

शिवजी बोले—हे पार्वती ! रामने मारुतिसे कहा—तुम हमको विस्तारसे लंकाका स्वरूप बताओ। लङ्काका स्वरूप जानकर मैं प्रतीकारका उपाय सोचूँगा ॥ १ ॥ रामकी बात सुनकर मारुतिने कहा—हे देव ! त्रिकूट पर्वतके शिखरपर वह लङ्का नामकी दिव्य पुरी बसी हुई है ॥ २ ॥ उसके चारों ओर सोनेका गढ़ है तथा वह सोनेकी अँटारियोंवाले भवनोंसे सुशोभित है। निर्मल जलसे परिपूर्ण खाईसे वह नगरी घिरी हुई है ॥ ३ ॥ अनेकानेक उपवनोंसे सुन्दर, दिव्य बावलियोंसे आवृत तथा चित्र-विचित्र शोभावाले मणियोंके खम्भोंवाले सुन्दर महलोंसे सजी हुई है ॥ ४ ॥ उसके पश्चिमी द्वारपर हजारों गजारूढ़ तथा अश्वारूढ़ सिपाही खड़े रहते हैं ॥ ५ ॥ दस करोड़ पैदल तथा सवार सैनिक विविध शस्त्रास्त्रोंसे सुसज्जित होकर लङ्काको

तिष्ठन्त्यर्बुदसंख्याता गजाश्वरथपत्तयः । रक्षयंति सदा लंकां नानास्त्रकुशलाः प्रभो ॥७॥
संक्रमैर्विविधैर्लंका शतघ्नाभिश्च संयुता । एवं स्थितायां देवेश शृणु त्वद्दासचेष्टितम् ॥८॥
दशाननबलौघस्य चतुर्थांशो मया हतः । दग्धा लंकापुरी स्वर्णप्राकारा धर्षिता मया ॥९॥
शतघ्न्यः संक्रमाश्चैव नाशिता मे रघूद्वह । देव त्वद्दर्शनादेव लंका भस्मीभवेत्पुनः ॥१०॥
सुवेलाद्रिश्चोत्तरेऽस्ति परलंकाऽस्ति पश्चिमे । निकुंभिला दक्षिणेऽस्ति तत्रास्ते योगिनीवटः ॥११॥
पूर्वे च लघुलंकाऽस्ति सा मध्ये कांतिमंडिता । त्रिकूटशिखरे रम्ये मत्पुच्छानलधर्षिता ॥१२॥
प्रस्थानं कुरु देवेश गच्छामो लवणार्णवम् । तन्मारुतेर्वचः श्रुत्वा सुग्रीवं प्राह राघवः ॥१३॥
सुग्रीवसैनिकान् सर्वान्प्रस्थानायाभिनोदय । इदानीमेव विजयो मुहूर्तस्त्वद्य वर्तते ॥१४॥
आश्विनी शुक्लदशमी श्रवणर्क्षसमन्विता । शुभाऽद्य वानरश्रेष्ठ गच्छामो लवणार्णवम् ॥१५॥
रक्षन्तु यूथपाः सेनामग्रे पृष्ठे च पार्श्वयोः । नलो भवत्वग्रसरः पृष्ठे नीलोऽथ रक्षतु ॥१६॥
सुषेणः सव्यपार्श्वे मे जांबवानितरे मम । गजो गवाक्षो गवयो मैंदश्चैतेऽद्य वानराः ॥१७॥
वह्निनैरितवाय्वीश चतुर्दिक्षु समन्ततः । रक्षन्तु वानरीं सेनां द्विविदाद्यास्तथाऽपरे ॥१८॥
सर्वे गच्छन्तु सर्वत्र सेनायाः शत्रुघातिनः । आरुह्य मारुतिं चाहं गच्छाम्यग्रेऽङ्गदं ततः ॥१९॥
आरुह्य लक्ष्मणो यातु सुग्रीव त्वं मया सह । आगच्छध्वेति चाज्ञाप्य हरीन् रामः सलक्ष्मणः ॥२०॥
प्रतस्थे दक्षिणाशायां सेनामध्यगतो विभुः । तदा ते कपयश्चक्रुर्बुबुःकारान् भयानकान् ॥२१॥
वादयामासुर्वाद्यानि पणवानकगोमुखैः । वारणेंद्रनिभाः सर्वे वानराः कामरूपिणः ॥२२॥
गतास्तदा दिवारात्रं कश्चित्तस्थुर्न ते क्षणम् । अभवञ्छकुना लंकां गच्छतो राघवस्य हि ॥२३॥
ते सह्यं समतिक्रम्य मलयं च तथा गिरिम् । आययुश्चानुपूर्व्येण ते सर्वे दक्षिणार्णवम् ॥२४॥

चारों ओरसे रक्षा कर रहे हैं ॥ ६ ॥ उनमें विविध सुरंगें लगी हैं और उसके गढ़पर अनेक तोपें भी रखी हुई हैं। हे देवेश ! इस दशामें भी आपके इस दासने वहाँ जाकर जो कुछ किया, सो सुनिये ॥ ७ ॥ ८ ॥ मैंने वहाँ जाकर रावणकी चौथाई सेना मार डाली है। लङ्कापुरीको जलाकर स्वर्णप्राकार गिरा दिया है ॥ ९ ॥ हे रघूद्वह ! मैंने तोपें तथा सुरंगें तोड़ डाली हैं। हे देव ! अब आपके जानेमात्रसे ही लंका पुनः भस्म हो जायगी ॥ १० ॥ उस लंकाके उत्तर सुवेलाद्रि है। पश्चिम परलंका है। दक्षिण निकुम्भिला है। जहाँपर योगिनीवट विद्यमान है ॥ ११ ॥ पूर्वकी ओर लघु लंका है, जिसका मध्यभाग बड़ा ही रमणीक है। उस त्रिकूटके शिखरपर बसी हुई लंकाको मैंने अपनी पूँछकी आगसे जला दिया है ॥ १२ ॥ हे देवेश ! अब आप प्रस्थान करें। हम लोग क्षार समुद्रकी ओर चलें। मारुतिकी बात सुनकर रामने सुग्रीवसे कहा-॥ १३ ॥ हे सुग्रीव ! समस्त सैनिकोंको प्रस्थान करनेके लिए आज्ञा दे दो । आज इसी समय विजयप्राप्तिका शुभ मुहूर्त है ॥ १४ ॥ आज श्रवणनक्षत्रसे युक्त आश्विन शुक्ल दशमीकी शुभ तिथि है। हे वानरश्रेष्ठ ! हमलोग आज लवणसागरकी ओर अवश्य प्रस्थान कर दें ॥ १५ ॥ बड़े-बड़े यूथपति वानर सेनाकी आगे-पीछे और बगलसे रक्षा करें। आगे नल तथा पीछे नील रक्षा करें ॥ १६ ॥ सुषेण मेरी बाईं ओर तथा जाम्बवान् मेरी दाहिनी बगलमें रहें। गज, गवाक्ष, गवय और मैंद ये सब वानर अग्निकोण, नैऋर्त्यकोण, वायव्यकोण तथा ईशानकोणमें रहकर वानरी सेनाकी चौतरफा रक्षा करें । शत्रुओंको मारनेमें निपुण द्विविद आदि वानर भी सेनाको सब ओरसे घेरकर चलें। मारुतिके कन्धेपर सवार होकर मैं आगे चलता हूँ और मेरे पीछे अंगदके कन्धेपर सवार होकर लक्ष्मण चलें। हे सुग्रीव ! तुम भी मेरे साथ चलो। इसी प्रकार अन्य सब वानरोंको 'चलो' ऐसी आज्ञा देकर लक्ष्मण सहित राम सेनाके बीच होकर दक्षिण दिशाकी ओर चल दिये। उस समय वे वानर भयानक भूभूकार करने लगे ॥ १७-२१ ॥ वे ढोल, मृदंग तथा गौके मुख सदृश बाजे बजाने लगे । ऋक्षरूप धारण करनेवाले तथा श्रेष्ठ हाथियोंके समान वीर सब वानर क्षणभर भी विश्राम न करके चलने लगे। लंकाके लिए प्रस्थित रामको अच्छे-अच्छे शकुन दीख पड़े ॥ २२ ॥ २३ ॥ वे सह्यपर्वत तथा

कृतः सेनानिवासश्च राघवेणाब्धिसैकते । चक्रुर्मन्त्रं सागरस्य तरणार्थं प्लवंगमाः ॥२५॥
लंकायां वायुपुत्रेण कृतं दृष्ट्वा स रावणः । प्रहस्तादींस्तदा प्राह कथमग्रे भविष्यति ॥२६॥
एकेन कपिनाऽस्माकं पुरतो ज्वालिता पुरी । दृष्टा सीता वनं भग्नं राक्षसा निहता रणे ॥२७॥
ममातिलालितः पुत्रः कनीयान्निहतो रणे । तदा ते मन्त्रिणः सर्वे ददुर्धैर्यं दशाननम् ॥२८॥
राजन्नुपेक्षितोऽस्माभिर्मर्कटोऽयमिति स्फुटम् । वयं तवाज्ञया कुर्मो जगत् कृत्स्नमवानरम् ॥२९॥
कुम्भकर्णस्तदा प्राह रावणं राक्षसेश्वरम् । त्वया योग्यं कृतं नैतद्यद्गत्वा जानकी हृता ॥३०॥
यद्यप्यनुचितं कर्म त्वया कृतमजानता । सर्वं समं करिष्यामि स्वस्थचित्तो भव प्रभो ॥३१॥
देहि देव ममानुज्ञां हत्वा रामं सलक्ष्मणम् । सुग्रीवं वानरांश्चैवागमिष्यामि पुनः क्षणात् ॥३२।
कुम्भकर्णवचः श्रुत्वा तदा प्राह विभीषणः । महाभागवतः श्रीमान् रामभक्त्यैकतत्परः ॥३३॥

विलोकय कुम्भश्रवणादिदैत्यान्मत्तप्रमत्तानतिविस्मयेन ।
विलोक्य कामातुरमप्रमत्तो दशाननं प्राह विशुद्धबुद्धिः ॥३४॥
न कुम्भकर्णेन्द्रजितौ च राजंस्तथा महापार्श्वमहोदरौ तौ ।
निकुम्भकुम्भौ च तथाऽतिकायः स्थातुं न शक्ता युधि राघवाग्रे ॥३५॥
सीतां च सत्कृत्य महाधनेन दत्वाऽभिरामाय सुखी भव त्वम् ।
नोचेन्न रामेण विमोक्ष्यसे त्वं गुप्तः सुरेन्द्रैरपि शंकरेण ॥३६॥

एवं शुभं रावणः स विभीषणवचो हितम् । आत्मनः प्रतिजग्राह नैवासौ सौख्यकारणम् ॥३७॥
कालेन नोदितो दैत्यो विभीषणमथाब्रवीत् । बंधुरूपेण शत्रुस्त्वं जातो नास्त्यत्र संशयः ॥३८॥
योऽन्यस्त्वेवंविधं ब्रूयाद्वाक्यं हन्मि तदैव तम् । उत्तिष्ठ गच्छ दुर्बुद्धे धिक् त्वां रक्षःकुलाधम ॥३९॥
रावणेनैवमुक्तः स परुषेण विभीषणः । चतुर्भिर्मन्त्रिभिर्युक्तो ययौ श्रीराघवांतिकम् ॥४०॥

मलयाचल होते हुए क्रमशः दक्षिण समुद्रपर जा पहुँचे ॥ २४ ॥ रामने उस वानरी सेनाको समुद्रके किनारे बालूमें ठहरा दिया और सब वानर मिलकर समुद्रका पार करनेकी समस्यापर विचार करने लगे ॥ २५ ॥ उधर लङ्कामें वायुपुत्र हनुमान्के कृत्यको देखकर रावणने प्रहस्तादि मन्त्रियोंको बुलाकर पूछा कि अब आगे क्या होगा। २६ ॥ एक ही वानरने हमारी सम्पूर्ण लंका नगरी जला दी। उसने सीताको देख लिया, वनको उजाड़ा और राक्षसोंको मार डाला ॥ २७ ॥ मेरे अतिशय प्रिय छोटे पुत्रको भी रणमें उसने समाप्त कर दिया। वे सब मन्त्री दशाननको धैर्य दिलाते हुए कहने लगे—॥ २८ ॥ हे राजन् ! यह तो हम लोगोंने वानर समझकर उसकी उपेक्षा कर दी थी। अब यदि आप आज्ञा दें तो हम समस्त संसारको वानरशून्य कर दें ॥ २९ ॥ कुम्भकर्णने राक्षसेश्वर रावणसे कहा—आपने यह उचित नहीं किया, जो जाकर जानकीको उठा लाये ॥ ३० ॥ यद्यपि आपने अनजानमें यह अनुचित काम किया है। तथापि मैं सब कुछ ठीक कर दूँगा। हे प्रभो ! आप निश्चिन्त रहें ॥ ३१ ॥ आप मुझको आज्ञा दें तो लक्ष्मणसहित राम, सुग्रीव और सब वानरोंको मारकर क्षणभरमें लौट जाऊँ ॥ ३२ ॥ कुम्भकर्णकी बात सुनकर भगवद्भक्तोंमें श्रेष्ठ तथा श्रीमान् रामकी भक्तिमें लीलीन विभीषणने प्रमत्त कुम्भकर्ण आदि दैत्योंकी ओर दृष्टि डालते हुए कामातुर दशाननसे विचारपूर्वक कहा— ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ हे राजन् ! कुम्भकर्ण, महापार्श्व, महोदर, निकुम्भ, कुम्भ और अतिकाय भी युद्धमें रामके सामने नहीं ठहर सकते ॥ ३५ ॥ इसलिए आप रामका प्रचुर धनसे सत्कार करें और उन्हें सीता समर्पण करके सुखसे रहें। नहीं तो सुरेन्द्र तथा शंकरका शरणमें जानेपर भी आपको वे जीवित नहीं छोड़ेंगे ॥ ३६ ॥ इस प्रकार शुभ तथा हितभरे विभीषणके वाक्यको भी रावणने अपने प्रतिकूल ही समझा ॥ ३७ ॥ कालसे प्रेरित दैत्य रावणने विभीषणसे कहा—निःसन्देह तू बंधुरूपमें मेरा शत्रु है ॥ ३८ ॥ यदि और कोई मुझसे ऐसा कहता तो मैं उसको उसी समय मार डालता। ओ दुर्बुद्धे! अरे राक्षसाधम ! तुझे धिक्कार

राघवश्चापि तं ज्ञात्वा तेन सख्यं चकार सः । हनूमतोदधेस्तीरे लंकां च सिकतोद्भवाम् ॥४१॥
कारयित्वा रघुश्रेष्ठस्तत्र मित्रं विभीषणम् । लंकायाश्चैव राज्यार्थं वानरैरभ्यषेचयत् ॥४२॥
तदा विभीषणं प्राह रामचन्द्रो विहस्य च । न्यासभूता त्वियं लंका तावत्कालं तवास्ति मे ॥४३॥
यावता रावणं हत्वा तव दास्याम्यहं शुभाम् ।हनूमतांस्त्वयं नाम्ना लङ्का ख्यातिं गमिष्यति ।।४४।।
हनुमल्लङ्काऽब्धेस्तीरे वर्ततेऽद्यापि पार्वति । विभीषणाद्रावणान्ते रामस्तां मोचयिष्यति ॥४५॥
एतस्मिन्नन्तरे तत्र गगनस्थः शुकोऽब्रवीत् । प्रेषितो रावणेनैव सुग्रीवं प्राह वेगतः ॥४६॥
त्वामाह रावणो राजा तव नास्त्यर्थविप्लवः । अहं यद्यहरं भार्यां राजपुत्रस्य किं तव ॥४७॥
किष्किन्धां याहि हरिभिस्त्वं वैरं कुरु मा मया । तं धृत्वा वानराः शीघ्रं बबन्धुर्लौहबंधनैः ॥४८॥
शार्दूलश्चापि सेनां तां दृष्ट्वाऽधिपमभाषत । तच्छ्रुत्वा रावणश्चापि दीर्घचिन्तापरोऽभवत् ॥४९॥
रामः संमंत्रयामास तदैकान्ते स्थितः क्षणम् । विभीषणेन सुग्रीवमारुतिभ्यां समन्वितः ॥५०॥
तीर्त्वार्धं जलधेर्गुल्मं संस्थितो बन्धुना युतः । सर्वेषां वचनं श्रोतुं राघवेणाथ सागरः ॥५१॥
मेघवद्गर्जनां कुर्वन् वामहस्तेन धिक्कृतः । अद्यापि सागरस्तत्र तूष्णीमेव स विद्यते ॥५२॥
ततः संमंत्र्य रामस्तु तदा सागररोधसि । प्रायोपवेशनं चक्रे दर्भानास्तीर्य वेगतः ॥५३॥
दिनद्वयमतिक्रम्य तृतीयदिवसे तदा । उत्थाय दर्भशयनात्पुनर्लक्ष्मणमब्रवीत् ॥५४॥
पश्य लक्ष्मण दुष्टोऽसौ वारिधिर्मामुपागतम् । नाभिनन्दति दुष्टात्मा दर्शनार्थं ममानघ ॥५५॥
जानाति मानुषोऽयं मां किं करिष्यति वानरैः । अद्य पश्य महाबाहो शोषयिष्यामि वारिधिम् ॥५६॥
पद्भ्यामेवाद्य गच्छंतु वानरा विगतज्वराः । इत्युक्त्वा चापमाकृष्य सदधे बाणमुत्तमम् ॥५७॥

है। उठ, यहांसे निकल जा ॥ ३९ ॥ रावणके इस प्रकार धिक्कारनेपर विभीषण अपने चार मन्त्रियोंको साथ लेकर श्रीरामके समीप चला गया ॥ ४० ॥ रामने परिचय पूछकर उसके साथ मित्रता कर ली। तदनन्तर रामने हनुमान्से समुद्रके किनारे रेताकी लंका बनवाकर उसमें अपने मित्र विभीषणका लंकाराज्यके राजाके पदपर वानरों द्वारा अभिषेक करवा दिया ॥ ४१ ॥ ४२ ॥ तब रामने हँसकर विभीषणसे कहा—मित्र ! यह लंका तुम्हारे पास तबतक धरोहररूपसे रहेगा ॥ ४३ ॥ जबतक मैं रावणको मारकर तुम्हें लंका न दे दूँ, यह लंका हनुमान्के नामसे प्रसिद्ध होगी ॥ ४४ ॥ हे पार्वती ! वह हनुमान्की लंका अभी भी समुद्रके किनारे विद्यमान है। रावणका अन्त हो जानेपर राम उसे विभीषणसे छुड़ा लेंगे ॥ ४५ ॥ तदनन्तर आकाशमें स्थित शुक बोला—हे सुग्रीव ! मुझे बड़ी शीघ्रतासे रावणने तुम्हारे पास भेजा है ॥ ४६ ॥ राजा रावणने कहा है कि हमने तुम्हारी कोई हानि नहीं की है। यदि मैं राजपुत्र रामकी स्त्रीका हरण कर लाया तो इससे तुम्हारी क्या हानि हुई ॥ ४७ ॥ उन्होंने कहा है कि तुम हमारे साथ शत्रुता न करके बंदरोंको लेकर किष्किन्धा लौट जाओ। इतना कहना था कि वानरोंने उस राक्षसको पकड़कर लोहेकी जंजीरोंसे जकड़ दिया ॥ ४८ ॥ उसके साथ गुप्तरूपसे आया हुआ दूसरा शार्दूल नामका राक्षस उस विशाल सेनाको देखकर रावणके पास गया और वानरी सेनाका पराक्रम कह सुनाया। सो सुनकर रावण बड़ी भारी चिन्तामें पड़ गया ॥ ४९ ॥ इधर रामचन्द्रजी भी एकान्तमें जाकर विभीषण, सुग्रीव तथा हनुमान्के साथ मंत्रणा करने लगे ॥ ५० ॥ तदनन्तर वे समुद्रके जलमें कुछ दूर जाकर सबकी बात सुननेके लिये खड़े हो गये। बादमें रामने मेघकी तरह गर्जन करके बायें हाथसे सागरको धिक्कारा और कहा कि तू अभी तक चुप ही है ॥ ५१ ॥ ५२ ॥ मंत्रणा पूरी करके राम सागरके किनारेपर आगये और कुशा बिछाकर अनशन करने लगे ॥ ५३ ॥ दो दिन बिताकर तीसरे दिन कुशासनसे उठ खड़े हुए और लक्ष्मणसे कहा—॥ ५४ ॥ हे अनघ लक्ष्मण ! देखो, यह दुष्टात्मा वारिधि मुझे यहाँ आया जानकर भी मुझसे मिलने या मेरा दर्शन करने नहीं आया ॥ ५५ ॥ यह समझता है कि यह मनुष्यमात्र है। यह मेरा क्या कर लेगा और ये वानर भी क्या कर लेंगे। हे महाबाहो ! देखो, मैं आज इसको सोख लूंगा ॥ ५६ ॥ तब वानर बिना किसी कठिनाईके पाँवसे चलकर उस पार

तदा चचाल वसुधा दिशश्च तमसावृताः । चुक्षुभे सागरो वेलां भयाद्योजनमत्यगात् ॥५८॥
तिमिनक्रझषा मीनाः प्रतप्ताः परितत्रसुः । एतस्मिन्नंतरे साक्षात्सागरो दिव्यरूपधृक् ॥५९॥
शनैरुपायनं रामं समर्प्य प्रणनाम सः । अथ तुष्टाव दीनात्मा प्रार्थयामास राघवम् ॥६०॥
अभयं देहि मे राम लंकामार्गं ददामि ते । इति तद्वचनं श्रुत्वा राघवः प्राह सागरम् ॥६१॥
अमोघोऽयं महाबाणः कस्मिन्देशे निपात्यताम्। लक्ष्यं दर्शय मे शीघ्रं बाणस्यास्य पयोनिधे ॥६२॥

सागर उवाच

रामोत्तरप्रदेशेऽस्ति द्रुमकल्प इति श्रुतः । प्रदेशस्तत्र बहवः पापात्मानो दिवानिशम् ॥६३॥
बाधन्ते मां रघुश्रेष्ठ तत्र ते पात्यतां शरः । रामेण मुक्तो बाणोऽसौ क्षणादाभीरमंडलम् ॥६४॥
हत्वा पुनः समागत्य तूणीरे पूर्ववत्स्थितः । ततोऽब्रवीद्रघुश्रेष्ठं सागरो विनयान्वितः ॥६५॥
मयि सेतुं कारयस्व नलेनोपलनिर्मितम् । विश्वकर्मसुतश्चायं वरो लब्धोऽस्त्यनेन हि ॥६६॥
द्विजस्य जाह्नवीतोये शालिग्रामस्त्वनेन हि । त्यक्तस्तदा तेन शप्तः पाषाणादि तरिष्यति ॥६७।
त्वद्धस्तादिति शापोऽयं वर एवात्र स स्मृतः । इत्युक्त्वा राघवं नत्वा ययौ सिंधुरदृश्यताम् ॥६८॥
नलमाज्ञापयामास सेत्वर्थं रघुनन्दनः । सेतुमारभमाणस्तु विघ्नेशं स्थाप्य राघवः ॥६९।
नवग्रहाणां पूजार्थं पाषाणान्नव सादरम् । नलहस्तेन संस्थाप्य पूर्वं तत्र महोदधौ ॥७०॥
ततः सागरसंयोगे स्वनाम्ना लिङ्गमुत्तमम् । स्थापयामीति निश्चित्य मारुतिं वाक्यमब्रवीत् ॥७१॥
काशीं गत्वा शिवाल्लिंगमानीयमनुत्तमम् । मुहूर्तमध्ये नोचेन्मे मुहूर्तातिक्रमो भवेत् ॥७२॥
तद्रामवचनं श्रुत्वा तथेत्युक्त्वा स मारुतिः । ययावाकाशमार्गेण क्षणाद्वाराणसीं मम ॥७३॥

जा सकेंगे। इतना कहकर रामने धनुषपर बाण चढ़ाकर डोरी खींची ॥ ५७ ॥ उस समय पृथ्वी काँप उठी, सब दिशाओंमें अँधेरा छा गया, समुद्र भयसे क्षुब्ध होकर अपने किनारेसे चार कोस आगे बढ़ गया ॥ ५८ ॥ मीन, तिमि तथा झष नामकी मछलियें और मगरमच्छ आदि जलजन्तु सन्तप्त तथा व्याकुल हो गये। तब समुद्र दिव्य रूप धारण करके प्रकटा और रामको रत्नोंकी भेंट दे तथा नमस्कार करके दीनभावसे प्रार्थना करके कहने लगा–॥ ५९ ॥ ६० ॥ हे राम ! कृपा करके आप मुझे अभयदान दें। मैं आपको लङ्का जानेका रास्ता अभी देता हूँ। उसके वचनको सुनकर रामने कहा–॥ ६१ ॥ हे पयोनिधे ! यह मेरा महाबाण अमोघ है, व्यर्थ नहीं जा सकता। बतलाओ, इसे कहाँपर गिराऊँ। इस बाणका कोई लक्ष्य बताओ ॥ ६२ ॥ सागरने कहा—हे राम ! उत्तर दिशामें द्रुमकल्प नामका देश है। वहाँ बहुतेरे पापी आभीर रहते हैं। वे मुझको रात-दिन सताते हैं। हे रघुश्रेष्ठ ! आप इस बाणको वहाँ ही गिराइए। तदनुसार रामने बाण छोड़ा तो उसने जाकर क्षणभरमें समस्त आभीरमण्डलको मार डाला और पुनः वापस लौटकर रामके तरकसमें पूर्ववत् स्थित हो गया। बादमें सागरने विनयपूर्वक रघुश्रेष्ठ रामजीसे कहा–॥ ६३–६५ ॥ हे राघव ! आप मेरे ऊपर नलके द्वारा पत्थरोंका पुल बँधवाएँ। नल विश्वकर्माका पुत्र है। उसने जलपर पत्थर तैरानेका वर प्राप्त किया है ॥ ६६ ॥ एक बार इसने एक ब्राह्मणका पूज्य शालिग्राम उठाकर गङ्गाजीके जलमें फेंक दिया था। तब उसने शाप दिया कि जा, तेरा फेंका पत्थर भी पानीमें तैरेगा ॥ ६७ ॥ वह शाप भी वर माना जायगा। इतना कह तथा रामको नमस्कार करके समुद्र अदृश्य हो गया ॥ ६८ ॥ तदनन्तर रघुनन्दन रामने नलको पुल बाँधनेकी आज्ञा दी। सेतु बाँधते समय पहिले गणेशजीकी स्थापना की गयी ॥ ६९ ॥ पश्चात् नवग्रहोंकी पूजाके लिए नलके हाथसे सादर नौ पाषाणोंकी समुद्रमें स्थापना करवाई गयी ॥ ७० ॥ इसके बाद 'अपने नामसे मैं सागरके सङ्गमपर उत्तम शिवलिंग स्थापित करूँगा' ऐसा निश्चय करके रामने मारुतिसे कहा–॥ ७१ ॥ हे हनुमान् ! तुम काशी जाकर शिवजीसे एक उत्तम लिंग मुहूर्तमात्रमें माँग ले आओ। नहीं तो मेरा यह शुभ मुहूर्त टल जायगा ॥ ७२ ॥ रामकी आज्ञा सुनकर हनुमान्ने 'तथास्तु' कहा और क्षणभरमें उड़कर

तत्रागत्याथ मां नत्वा रामकार्यं न्यवेदयत् । तच्छ्रुत्वाऽथ मया देवि राघवाय हनूमते ॥७४॥
द्वे लिंगे ह्यर्पिते श्रेष्ठे ततोऽहं कपिमब्रुवम् । मयाऽपि दक्षिणे गंतुं पूर्वमेव विनिश्चितम् ॥७५॥
अगस्तिना विशेषेण यास्यामि राघवाज्ञया । एवं तद्वचनं श्रुत्वा मारुतिः प्राह मां पुनः ॥७६॥
कदा विनिश्चितं पूर्वं त्वयाऽत्र कुम्भजन्मना । तत्सर्वं मां वदस्वाद्य कृपां कृत्वा ममोपरि ॥७७॥
तन्मारुतिवचः श्रुत्वा ततोऽहमब्रुवं कपिम् । मारुते त्वं शृणुष्वाद्य पूर्ववृत्तं वदामि ते ॥७८॥
कदाचिन्नारदः श्रीमान्स्नात्वा श्रीनर्मदांभसि । श्रीमदोंकारमभ्यर्च्य सर्वदं सर्वदेहिनाम् ॥७९॥
व्रजन्विलोकयांचक्रे पुरो विंध्यं धराधरम् । संसारतापसंहारि रेवावारिपरिष्कृतम् ॥८०॥
रूपद्वयेन कुर्वंतं स्थावरेण चरेण च । साभिख्येन यथार्थाख्यामुच्चैर्वसुमतीमिमाम् ॥८१॥
अथ तं नारदं दृष्ट्वा विन्ध्यः प्रत्युज्जगाम सः । गृहमानीय विधिवत्पूजयामास सादरम् ॥८२॥
गतश्रममथालोक्य बभाषेऽवनतो गिरिः । अघसंघः परिहृतस्त्वदंघ्रिरजसा मम ॥८३॥
त्वदंगसंगिमहसा सहसाप्यांतरं तमः । सकलर्धिकरं चाद्य सुदिनं चाद्य मे मुने ॥८४॥
प्राकृतैः सुकृतैरद्य फलितं मे चिरार्चितैः । धराधरत्वं कुलिषु मान्यं मेऽद्य भविष्यति ॥८५॥
इति श्रुत्वा तदा किंचिदुच्छ्वस्य स्थितवान्मुनिः । पुनरूचे कुलिवरः संभ्रमापन्नमानसः ॥८६॥
उच्छ्वासकारणं ब्रह्मन् ब्रूहि सर्वार्थकोविद । तवाहं मार्जयाम्यद्य हृत्खेदं क्षणमात्रतः ॥८७॥
धराधरणसामर्थ्यं मेर्वादौ पूर्वपूरुषैः । वर्ण्यते समुदायात्तदहमेको दधे धराम् ॥८८॥
गौरीगुरुत्वाद्धिमवानाधिपत्याच्च भूभृताम् । सम्बन्धित्वात्पशुपतेः स एको मानभूस्सताम् ॥८९॥
न मेरुः स्वर्णपूर्णत्वाद्रत्नसानुतयाऽथवा । सुरसद्मतया वाऽपि क्वापि मान्यो मतो मम ॥९०॥

आकाशमार्गसे (शिवकी) वाराणसी (काशी) नगरीमें आगये ॥ ७३ ॥ वहाँ आकर उन्होंने मुझको नमस्कार करके रामके कार्यके लिये निवेदन किया। हे देवि ! उस निवेदनको सुनकर मैंने रामके लिए हनुमान्को दो उत्तम लिंग दिये और कहा कि हे कपि ! मैंने भी दक्षिण दिशामें जानेका बहुत दिनोंसे निश्चय कर रक्खा है ॥ ७४ ॥ ७५ ॥ यह निश्चय अगस्त्य मुनिके साथ हुआ था। पर बादमें सोचा कि जब विशेषरूपसे रामकी आज्ञा होगी, तभी जाऊँगा। मेरे मुखसे यह सुनकर मारुतिने मुझसे फिर प्रश्न किया—॥ ७६ ॥ आपने पहिले कब और कहाँपर कुम्भजन्म (अगस्त्य) के साथ यह निश्चय किया था। यह सब हाल कृपा करके कहें ॥ ७७ ॥ मारुतिकी बात सुनकर मैंने कहा—हे मारुते ! मैं तुमको पूर्ववृत्तान्त बताता हूँ, सुनो ॥ ७८ ॥ एक समय श्रीमान् नारदमुनि नर्मदा नदीके पवित्र जलमें स्नान करके समस्त देहधारी प्राणियोंको सब कुछ देनेवाले. ओंकारेश्वर शिवकी पूजा करके जा रहे थे। रास्तेमें संसार भरके तापको दूर करनेवाला तथा रेवाके जलसे परिप्लुत विंध्यपर्वत सामने दिखाई दिया ॥ ७९ ॥ ८० ॥ वह स्थावर तथा जंगम इन दो रूपोंसे इस वसुमती पृथ्वीको यथार्थ नाम प्रदान कर रहा था ॥ ८१ ॥ नारदको देखकर वह पर्वत सामने आया तथा उन्हें अपने घरपर ले जाकर सादर विधिवत् पूजन किया ॥ ८२ ॥ नारदजीका श्रम दूर हो जानेपर विन्ध्याचल विनम्र होकर कहने लगा कि आपके चरणरजसे मेरा पापपुञ्ज नष्ट हो गया ॥ ८३ ॥ हे महामुने ! आपके दैहिक तेजके संसर्गसे अनेक मनोव्यथा पैदा करनेवाला मेरे हृदयका अन्धकार दूर हो गया। आज मेरे लिए बड़ा शुभ दिन है ॥ ८४ ॥ चिरकालसे उपार्जित मेरे प्राकृत पुण्य आज सफल हो गये। आजसे मैं पर्वतोंमें माननीय पर्वत माना जाऊँगा ॥ ८५ ॥ यह सुनकर मुनिने कुछ लम्बी साँस ली। यह देखा तो घबराकर पर्वतने कहा—हे सब अर्थोंको जाननेवाले ब्रह्मन् ! इस उच्छ्वासका क्या कारण है ? आपके हृदयका खेद मैं क्षणभरमें मार्जित कर दूँगा ॥ ८६ ॥ ८७ ॥ पूर्व पुरुषोंने मेरु आदि सब पर्वतोंको मिलाकर पृथ्वीको धारण करनेमें समर्थ बतलाया है, पर मैं अकेला ही उसको धारण कर सकता हूँ ॥ ८८ ॥ अभी गौरीका पिता होनेसे, पर्वतोंका अधिपति होनेसे तथा पशुपति शिवका सम्बन्धी होनेके कारण केवल हिमालय ही सज्जनोंके मानका पात्र है ॥ ८९ ॥ मेरी समझमें तो सोनेसे भरा हुआ तथा रत्नमय शिखरोंवाला

परं शतं न किं शैला इलाकलनकेलयः । इह संति सतां मान्या मान्यास्ते तु स्वभूमिषु ॥९१॥
मंदेहदेहसंदोहा उदयैकयाश्रिताः । निषधश्चौषधिधरोऽप्यस्तोऽप्यस्तमितप्रभः ॥९२॥
नीलश्च नीलनिलयो मंदरो मंदलोचनः । सर्पालयः स मलयो रायं नाबाप रैवतः ॥९३॥
हेमकूटत्रिकूटाद्याः कूटोत्तरपदास्तु ते । किष्किंधक्रौंचसह्याद्या भारसह्या न ते भुवः ॥९४॥
इति विंध्यवचः श्रुत्वा नारदो ह्यचिंतयत् । अखर्वगर्वसंसर्गो न महत्त्वाय कल्पते ॥९५॥
श्रीशैलमुख्याः किं शैला नेह संत्यमलश्रियः । येषां शिखरमात्रादिदर्शनं मुक्तये सताम् ॥९६॥
अद्यास्य बलमालोच्यमिति ध्यात्वाऽब्रवीन्मुनिः। सत्ययुक्तं हि भवता गिरिसारं विवृण्वता ॥९७॥
परः शैलेषु शैलेन्द्रो मेरुस्त्वामवमन्यते । मया निःश्वसितं चैतत्त्वयि चापि निवेदितम् ॥९८॥
अथवा मद्विधानां हि केयं चिंता महात्मनाम् ।स्वस्त्यस्तु तुभ्यमित्युक्त्वा ययौ स व्योमवर्त्मना ९९॥
गते मुनौ निनिंद स्वमतोवोद्विग्नमानसः । चित्ते विचारयामास मेरोः श्रैष्ठ्य कथं त्विति ॥१००॥
मेरुं प्रदक्षिणं कुर्यान्नित्यमेष दिवाकरः । सग्रहर्क्षगणो नूनं मन्यमानो बलाधिकम् ॥१०१॥
इति निश्चित्य विंध्याद्रिर्ववृधे स मृधेक्षणः । निरुध्य भानुमध्वानं स्वस्थोऽभूद्गगनांगणे ॥१०२॥
ततः प्रभाते सूर्योऽसौ दिशि याम्यां समुद्यतः । गंतुं रुद्धं स्वपंथानं दृष्ट्वाऽस्वस्थोऽभवच्चिरम् ॥१०३॥
योजनानां सहस्रे द्वे द्वे शते द्वे च योजने । यः स्वस्थश्च निमेषार्द्धाद्याति नापि चिरं स्थितः॥१०४॥
गते बहुतिथे काले प्राच्योदीच्या भृशार्दिताः । चण्डरश्मेः करव्रातपातसंतापतापिताः ॥१०५॥
पाश्चात्या दाक्षिणात्याश्च निद्रामुद्रितलोचनाः । भ्रमिता एव दृश्यंते सतारग्रहमंबरम् ॥१०६॥
स्वाहास्वधावषट्कारवर्जिते जगतीतले । पंचयज्ञक्रियालोपाच्चकम्पे भुवनत्रयम् ॥१०७॥

तथा देवताओंका निवासस्थान होनेपर भी मेरु विशेष माननीय नहीं है ॥ ९० ॥ क्या पृथ्वीको धारण करनेवाले अन्य सैकड़ों पर्वत इस संसारमें नहीं हैं? क्या वे सभी पर्वत सज्जनोंके मान्य हैं? नहीं, यदि हैं भी तो केवल अपने-अपने स्थानोंपर ॥ ९१ ॥ उदयाचल मन्द है। वह राक्षसोंको आश्रय देनेकी कृपा करनेमें ही समर्थ है। निषधगिरि औषधिमात्र धारण करता है। अस्ताचल निस्तेज हो गया है ॥ ९२ ॥ नीलगिरि नीले पत्थरोंका समूहमात्र है। मन्दराचल मन्ददृष्टि है। मलय पर्वत सर्पोंका घर है। रैवत निर्धन है ॥ ९३ ॥ हेमकूट तथा त्रिकूट आदि केवल कूट उत्तरपदवाले ही हैं। किष्किन्धा, क्रौञ्च और सह्य पर्वत भी पृथ्वीके बोझको धारण करनेमें समर्थ नहीं हैं ॥ ९४ ॥ विन्ध्याचलकी इस बातको सुनकर नारदने मनमें विचार किया कि गर्वीला प्राणी महत्त्वके योग्य नहीं होता ॥ ९५ ॥ क्या इस संसारमें श्रीशैल आदि पर्वत निर्मल, कान्तिसम्पन्न तथा यशस्वी नहीं हैं? जिनके शिखरको देखनेमात्रसे शुद्ध अन्तःकरणवाले महान् पुरुषोंको मुक्ति मिल जाती है ॥ ९६ ॥ अतएव आज इसके बलकी परीक्षा करनी चाहिए। ऐसा विचार करके नारद मुनिने कहा—तुमने पर्वतोंका बल ठीक वर्णन किया है ॥ ९७ ॥ पर पर्वतोंमें श्रेष्ठ मेरुपर्वत तुम्हारा अपमान करता है। वह तुमसे भी अपनेको बढ़कर मानता है। बस, यही कारण है कि मैंने लम्बा श्वास लिया था और यह बात तुमसे भी कह दी ॥ ९८ ॥ अथवा हम जैसे महात्माओंको इस बातकी क्या चिंता है। तुम्हारा कल्याण हो। इतना कहकर वे व्योममार्गसे चले गये ॥ ९९ ॥ नारद मुनिके चले जानेपर अतिशय चिन्ताकुल होकर विन्ध्यपर्वतने अपने आपको बड़ी निन्दा की और सोचने लगा कि मेरुकी इतनी बड़ी महिमा क्यों है? ॥ १०० ॥ ग्रहों तथा नक्षत्रों सहित सूर्यनारायण प्रतिदिन उसकी परिक्रमा करते हैं। सम्भवतः इसीसे उसको अपने बलाधिक्य तथा महत्त्वका अभिमान है ॥ १०१ ॥ ऐसा निश्चय करके विन्ध्याचलने उसकी समृद्धि देखनेकी इच्छासे अपना शरीर बहुत ऊपरको बढ़ाया और सूर्यके रास्तेको रोककर आकाशरूपी आँगनमें खड़ा हो गया ॥ १०२ ॥ प्रातःकाल सूर्यने दक्षिण दिशाकी ओर जानेको प्रस्थान किया। तब रास्ता रुका देखकर वे वहीं
8 रुक गये। जब बहुत दिन बीत गये, तब सूर्यके प्रचण्ड किरणसमूहके तापसे पूर्व तथा उत्तर दिशाके लोग जलने लगे ॥ १०३–१०५ ॥ पश्चिम तथा दक्षिण दिशाके लोगोंकी आँखें निद्रासे मुँदी रहीं। वे जब

ततः सुरा विधेर्वाक्यादगस्तिं तद्गिरेर्गुरुम् । प्रार्थयामासुश्चात्रैत्य स मुनिर्विह्वलोऽभवत् ॥१०८॥
तदाऽगस्तिर्मयोक्तःस गच्छ त्वं दक्षिणां दिशम्।वाक्पाशेन गिरिं बद्ध्वा मा खिद त्वं भजस्व माम्१०९
अहमप्यचिरेणैव तव खेदापनुत्तये । सेतौ श्रीरामपूजार्थं यास्यामि दक्षिणां दिशम् ॥११०॥
इति मद्वचनं श्रुत्वाऽगस्तिस्तुष्टमनास्तदा । मुक्त्वा काशीं ययौ विंध्यं लोपामुद्रासमन्वितः॥१११॥
तमगस्त्यं सपत्नीकं दृष्ट्वा विंध्योऽतिकंपितः । अतिखर्वतरो भूत्वा विविक्षुरवनीमिव ॥११२॥
आज्ञाप्रसादः क्रियतां किं करोमीति चाब्रवीत् । तद्विन्ध्यवचनं श्रुत्वाऽगस्तिः प्राह च सादरम् ॥११३॥
विन्ध्य साधुरसि प्राज्ञो मां च जानासि तत्त्वतः । पुनरागमनं चेन्मे तावत्खर्वतरो भव ॥११४॥
इत्युक्त्वा दक्षिणामाशामगस्तिः स ययौ तदा । वेपमानो गिरिः प्राह पुनर्जन्माद्य मेऽभवत् ॥११५॥
उच्छिरो द्वादशाब्दैः स मुनिं पश्यति दक्षिणे । नागतं तं मुनिं दृष्ट्वा पुनः खर्वोऽवतिष्ठते ॥११६॥
अद्य श्वो वा परश्वो वा ह्यागमिष्यति वै मुनिः । इति चिन्तामहाभारैर्गिरिराक्रांतवत्स्थितः ॥११७॥
नाद्यापि मुनिरायाति नाद्यापि गिरिरेधते । अरुणोऽपि च तत्काले कालज्ञोऽश्वानकालयत् ॥११८॥
जगत्स्वास्थ्यमवापोच्चैः पूर्ववद्भानुसंचरैः । स मुनिर्दण्डकं गत्वा मद्वाक्यं संस्मरन्हृदि ॥११९॥
करोति मत्प्रतीक्षां च तस्माद्यास्याम्यहं कपे । इत्युक्तो मारुतिः काश्यां मया देवि विसर्जितः॥१२०॥
जगामाकाशमार्गेण शीघ्रं रामं स मारुतिः । किंचिद्गर्वसमाविष्टो लिंगद्वयसमन्वितः ॥१२१॥
तद्गर्वं राघवो ज्ञात्वा सुग्रीवादीन् वचोऽब्रवीत् । मुहूर्तातिक्रमो मेऽद्य भविष्यति ततस्त्वहम् ॥१२२॥
कृत्वा लिंगं सैकतं च सेत्वादौ स्थापयामि वै । इत्युक्त्वा वानरान् सर्वान्मुनिभिः परिवेष्टितः ॥१२३॥

भी देखते तो आकाशमें ग्रह और नक्षत्र ही विद्यमान दिखायी देते थे ॥ १०६ ॥ संसारमें स्वाहा, स्वधाकार, वषट्कार, अग्निहोत्र तथा पंचयज्ञकी क्रियाओंके लोप हो जानेसे तीनों लोक काँप उठे ॥ १०७ ॥ पश्चात् ब्रह्माजीके कहनेसे देवताओंने जाकर विन्ध्य पर्वतके गुरु अगस्त्य मुनिसे प्रार्थना की । तब मुनि घबराकर यहाँ काशीमें आये ॥ १०८ ॥ मैंने (शिवजीने) अगस्त्य मुनिसे कहा कि तुम दक्षिण दिशाकी ओर जाओ । वहाँ जाकर विन्ध्याचलको अपने वाग्जालमें बाँधकर निश्चिन्त भावसे मेरा भजन करना ॥ १०९ ॥ कालान्तरमें मैं भी तुम्हारा खेद दूर करनेके लिए सेतुबन्धपर रामकी पूजा प्राप्त करनेके लिए शीघ्र ही दक्षिण प्रदेशमें आऊँगा ॥ ११० ॥ मेरे इस कथनको सुनकर अगस्त्यमुनि प्रसन्नतापूर्वक उसी समय काशी छोड़कर अपनी स्त्री लोपामुद्राके साथ विन्ध्यपर्वतकी ओर चल पड़े ॥ १११ ॥ सपत्नीक मुनिको देखकर विन्ध्याचल काँपने लगा और मानो पृथ्वीमें घुस जाना चाहता हो, इस प्रकार अतिशय छोटा रूप धारण करके बोला कि मैं आपका दास हूँ। मुझे कुछ आज्ञा देनेकी कृपा करें। विन्ध्यकी बात सुनकर अगस्त्य मुनि बोले—॥ ११२ ॥ ॥ ११३ ॥ हे विन्ध्य ! तुम साधु पुरुष तथा बुद्धिमान् हो और मुझे भली भाँति जानते हो । अतः जबतक मैं उधरसे लौटकर पुनः यहाँ न आऊँ, तब तक तुम इसी प्रकार वामनरूपसे नीचा सिर किये खड़े रहो ॥११४॥ इतना कहकर अगस्त्य दक्षिणकी ओर चले गये । तब कम्पित होकर विन्ध्यने कहा कि आजके दिन मेरा पुनर्जन्म हुआ है ॥ ११५ ॥ बारह वर्ष बाद जब उसने सिर उठाकर दक्षिणकी ओर देखा तो मुनि नहीं दिखायी दिये । तब फिर उसने वैसे ही नीचा सिर कर लिया ॥ ११६ ॥ आज, कल या परसोंतक मुनिको यहाँ अवश्य आ जाना चाहिये । इस प्रकार सोचता हुआ विन्ध्य बड़ी चिन्ता करने लगा ॥ ११७ ॥ पर न वे मुनि आज तक आये और न पर्वत खड़ा हुआ । कालकी गतिको जाननेवाले सूर्यके सारथी अरुणने भी उसी समय अपने घोड़ोंको हाँक दिया ॥ ११८ ॥ तब सूर्यके संचारसे जगत् पूर्ववत् पुनः स्वस्थ हुआ । वे अगस्त्य मुनि दण्डकवनमें जाकर मेरे वचनका स्मरण करते हुए मेरी प्रतीक्षा कर रहे हैं । इस कारण हे कपि हनुमान् ! मैं वहाँ अवश्य जाऊँगा । हे देवि ! इतना कहकर मैंने मारुतिको काशीसे विदा किया ॥ ११९ ॥ १२० ॥ तब मारुति शीघ्र आकाशमार्गसे रामके पास चले । उस समय मेरे दो लिंग प्राप्त करके उनके मनमें कुछ अभिमान हुआ ॥ १२१ ॥ रामने इस गर्वको जान लिया और सुग्रीव आदिसे कहा कि प्रतिष्ठाका मुहूर्त बीता जा रहा है । इसलिए मैं बालूका लिंग बनाकर सेतुके इस छोरपर स्थापित किये देता हूँ । तदनुसार सब मुनियों और

सैकतं स्थापयामास लिङ्गं रामो विधानतः । तदा सस्मार मनसि कौस्तुभं रघुनन्दनः ॥१२४॥
तावद्ययौ मणिः शीघ्रं खात्कोटितपनोपमः । तं बबंध मणिं कण्ठे कौस्तुभ रघुनन्दनः ॥१२५॥
मण्युद्भवैर्धनैर्वस्त्रैरश्वाभरणधेनुभिः । दिव्यान्नैः पायसाद्यैश्च पूजयामास तान् मुनीन्॥१२६॥
ततस्ते मुनयस्तुष्टा राघवेणातिपूजिताः । ययुः स्वीयाश्रमान् मार्गे तान्ददर्श स मारुतिः ॥१२७॥
पप्रच्छ मारुतिर्विप्रान् यूयं केन प्रपूजिताः । तेऽप्यूचुर्लिङ्गमाराध्य राघवेणैव पूजिताः ॥१२८॥
तत्तेषां वचनं श्रुत्वा क्रोधाविष्टोऽभ्यचिंतयत् । वृथाऽहं श्रमितस्तेन रामेणाद्य प्रतारितः ॥१२९॥
इत्थं वदन्ययौ राम क्रोधात्स्वीयं पदद्वयम् । भुवि संताड्य पतितस्तदा भूम्यां पदद्वयम् ॥१३०॥
गतं कपिस्तदा राममब्रवीत्किं न मे स्मृतः । सीताशुद्धिर्मया लंकां गत्वानीतेति साऽद्य हि ॥१३१॥
तस्य मेऽद्योपवासोऽत्र काशीं प्रेष्य त्वया कृतः। किमर्थं श्रमितश्चाहं यदीत्थं ते हृदि स्थितम् ॥१३२॥
अभविष्यन्मया ज्ञात चेत्पूर्वं हृद्गतं तव । काशीमहं तर्हि गत्वा किमर्थं लिंगमानये ॥१३३॥
एकं त्वदर्थमानीतमपरं लिंगमुत्तमम् । मयाऽऽत्मार्थं समानीतं तवाग्रे किं करोम्यहम् ॥१३४॥
एवं क्रोधयुतं वाक्यं किंचिद्गर्वसमन्वितम् । रामः श्रुत्वा कपिं प्राह कपे त्वं सत्यवागसि ॥१३५॥
यथैतत्स्थापितं लिंगं समुत्पाटय त्वं बलात् । स्थापयामि त्वयानीतं काश्या विश्वेश्वराभिधम्॥१३६॥
तथेत्युक्त्वा मारुतिः स सैकतस्येश्वरस्य च । संवेष्ट्य मस्तके पुच्छं बलेनान्दोलयन्मुहुः ॥१३७॥
त्रुटितं तत्कपेः पुच्छं पपात भुवि मूर्छितः । जहसुर्वानराः सर्वे न चचालेश्वरस्तदा ॥१३८॥
स्वस्थो भूत्वा मारुतिः स गतगर्वस्तदाऽभवत् । ननाम परया भक्त्या प्रार्थयामास तं मुहुः ॥१३९॥
मायाऽपराधितं राम तत्क्षमस्व कृपानिधे । तदाह मारुतिं रामस्त्वं मल्लिंगोत्तरे त्विदम् ॥१४०॥

वानरोंको बुलाकर रामने विधिवत् बालूके लिंगको स्थापित कर दिया। पश्चात् भगवान् रामने कौस्तुभ मणिका स्मरण किया ॥ १२२–१२४ ॥ स्मरण करते ही करोड़ों सूर्यके समान प्रभाशाली वह मणि आकाशमार्गसे आ गया। तब रघुनन्दन रामने उस मणिको कंठमें बाँध लिया ॥ १२५ ॥ उस मणिसे प्राप्त धन, वस्त्र, आभरण, अश्व, धेनु, दिव्य पकवान तथा पायस आदिसे रामने मुनियोंका पूजन-सत्कार किया ॥ १२६ ॥ श्रीरामसे पूजा प्राप्त करके प्रसन्न वे मुनि अपने-अपने आश्रमोंको जा रहे थे, तभी रास्तेमें उन्हें मारुतिने देख लिया ॥ १२७ ॥ तब हनुमान्‌ने उनसे पूछा कि आपकी पूजा किसने की है ? उन्होंने उत्तर दिया कि रामने शिवलिंगकी आराधना तथा स्थापना करके हम लोगोंकी पूजा की है ॥ १२८ ॥ हनुमान्‌ने उनकी बात सुनी तो क्रुद्ध होकर विचारने लगे कि रामने आज मुझसे व्यर्थ इतना परिश्रम कराके ठगा है ॥ १२९ ॥ यह विचारते हुए वे क्रोधसे रामके पास गये और जोरसे उन्होंने अपने दोनों पाँवोंको जमीनपर पटका। इससे उनके दोनों पाँव पृथ्वीमें धँस गये। बादमें हनुमान्‌ने रामसे कहा कि क्या आपको मेरा स्मरण नहीं था ? जिस हनुमान्‌ने लंकामें सीताकी खोज की थी और लौटकर आपको उनकी खबर दी थी ॥ १३० ॥ १३१ ॥ उसी हनुमान्‌को आज आपने काशी भेजकर ऐसा उपहास किया ? यदि आपके मनमें यही था तो फिर मुझे इस तरह व्यर्थ क्यों सताया ? ॥ १३२ ॥ यदि मुझे आपका अभिप्राय ज्ञात हो जाता तो मैं कभी काशी जाकर ये दो शिवलिंग न लाता ॥ १३३ ॥ इनमेंसे एक आपके लिए और दूसरा उत्तम शिवलिंग अपने लिये ले आया हूँ। अब मैं इस आपवाले शिवलिंगको क्या करूँ ! ॥ १३४ ॥ इस प्रकार कुछ क्रोध तथा गर्वयुक्त हनुमान्‌का वाक्य सुनकर रामने कहा कि हे कपे ! तुम्हारा कहना सत्य है ॥ १३५ ॥ अब तुम यदि इस मेरे स्थापित लिंगको पूँछमें लपेटकर उखाड़ लो तो मैं तुम्हारे काशीसे लाये हुए विश्वेश्वरलिंगको यहाँ पुनः स्थापित कर दूँ ॥ १३६ ॥ 'बहुत अच्छा' कहकर हनुमान्‌ने उस बालूके लिंगके ऊपरी भागमें पूँछ लपेटकर बारम्बार खूब जोरसे हिलाया ॥ १३७ ॥ जिससे सहसा उनकी पूँछ टूट गयी। वे जमीनपर गिर पड़े
9 और मूर्छित हो गये। परन्तु बालूका लिंग तनिक भी नहीं हिला। यह देखकर सब वानर हँसने लगे ॥ १३८ ॥ पश्चात् मारुति स्वस्थ हो तथा गर्व छोड़कर भक्तिसे रामको नमस्कार करके प्रार्थना करने लगे—॥ १३९ ॥

विश्वनाथाभिधं लिंगं स्वीयं संस्थापयाधुना । तथेति मारुतिर्लिङ्गं स्थापयामास सादरम् ॥१४१॥
मारुतेश्चैव लिंगाय ददौ रामो वरं तदा । असंपूज्य विश्वनाथं मारुते त्वत्प्रतिष्ठितम् ॥१४२॥
ममादौ पूजयंत्यत्र ये नरा लिङ्गमुत्तमम् । रामेश्वराभिधं सेतौ तेषां पूजा वृथा भवेत् ॥१४३॥
इत्युक्त्वा तं पुनः प्राह रामो राजीवलोचनः । मदर्थं यत्समानीतं त्वया लिङ्गं महत्तमम् ॥१४४॥
विश्वनाथस्य तत्तूष्णामस्तु देवालये चिरम् । अनर्चितमवन्यां तदप्रतिष्ठितमुत्तमम् ॥१४५॥
अग्रे कालान्तरेणाहं तच्चापि स्थापयामि वै । तत्तत्र वर्ततेऽद्यापि लिङ्गं विश्वेश्वरान्तिके ॥१४६॥
अप्रतिष्ठापितं भूम्यां न केनापि प्रपूजितम् । पुनः प्राह कपिं रामस्त्वमत्र छिन्नलांगुलः ॥१४७॥
वस भूम्यां गुप्तपादः स्मरन्स्वगर्वितं त्विदम् । ततः कपिः स्वीयमूर्ति स्थापयामास स्वांशतः ॥१४८॥
छिन्नपुच्छा गुप्तपादा सा तत्राद्यापि वर्तते । पतितो मूर्च्छितो यत्र मारुतिस्तत्र तद्वरम् ॥१४९॥
बभूव मारुतेर्नाम्ना तीर्थं पापप्रणाशनम् । रामस्तत्राकरोत्पुण्यं स्वनाम्ना तीर्थमुत्तमम् ॥१५०॥
स्वांशेन स्थापयामास मूर्तिं तत्र रघूद्वहः । सेतुमाधवनाम्नी सा वर्ततेऽद्यापि पार्वति ॥१५१॥
स्वनाम्ना लक्ष्मणश्चापि चकार तीर्थमुत्तमम् । ततो रामः स्वहस्तेन स्पृष्ट्वा मारुतिलांगुलम् ॥१५२॥
चकार पूर्ववद्रम्यं दृढसन्धिप्रसादितः । तत्पुच्छवेष्टनाजातः कृशो रामेशमस्तकः ॥१५३॥
स तथैव कृशोऽद्यापि तत्रास्ति शिवमस्तकः । तदारभ्य त्यक्तगर्वश्चाभूद्रामे स मारुतिः ॥१५४॥
ततोऽहं सैकताल्लिङ्गादाविर्भूय रघूद्वहम् । अब्रुवं देवि तत्सर्वं शृणुष्व ते वदाम्यम् ॥१५५।
राघवेन्द्र रघुश्रेष्ठ शृणु वृत्तं पुरातनम् । एकदाऽहं पुरा भूम्यां मलिनाम्बरसंयुतः ॥१५६॥
भिक्षार्थं कौतुकाद्विप्ररूपेणाविचरं सुखम् । ऋषीणामाश्रमाद्येषु ह्यतटंतं मां विलोक्य च ॥१५७॥

हे राम ! मेरा जो अपराध हुआ हो, उसे क्षमा करें। क्योंकि आप कृपानिधि हैं। तदनन्तर रामने कहा—हे मारुति ! तुम मेरे स्थापित लिङ्गसे उत्तरकी ओर इस विश्वनाथ नामके अपने लिङ्गको स्थापित करो। 'तथास्तु' कहकर मारुतिने सादर शिवलिङ्गकी स्थापना कर दी ॥१४०॥१४१॥ तब रामने उस मारुतिलिङ्गको वरदान देते हुए कहा—हे मारुते ! तुम्हारे द्वारा स्थापित विश्वनाथलिङ्गकी पूजा किये बिना जो सेतुबंधरामेश्वरकी पूजा करेगा, उसकी पूजा व्यर्थ हो जायगी ॥ १४२ ॥ १४३ ॥ इतना कहकर रामने फिर हनुमान्‌से कहा कि जो तुम मेरे लिए उत्तम लिङ्ग लाये हो ॥ १४४ ॥ वह विश्वनाथलिङ्ग यों ही इस देवालयमें पड़ा रहे। बहुत कालतक यह उत्तम लिङ्ग धरतीपर अपूजित ही पड़ा रहेगा ॥ १४५ ॥ आगे चलकर बहुत दिनों बाद उसकी भी मैं अवश्य स्थापना करूँगा। वह लिङ्ग अभी भी वहाँ विश्वेश्वरलिङ्गके पास पड़ा हुआ है ॥ १४६ ॥ न अभी उसकी प्रतिष्ठा हुई है और न कोई उसकी पूजा ही करता है। रामने फिर हनुमान्‌से कहा कि तुम्हारी पूँछ यहींपर छिन्न हुई है। अतः तुम यहींपर भूमिमें छिन्नपुच्छ तथा गुप्तपाद होकर अपने गर्वका स्मरण करते हुए पड़े रहो। तब हनुमान्‌ने अपने अंशसे वहीं अपनी मूर्ति स्थापित कर दी ॥ १४७ ॥ १४८ ॥ अभी भी वहाँ हनुमान्‌की छिन्नपुच्छ और गुप्त पाँवकी मूर्ति विद्यमान है। जहाँपर मारुति मूर्छित होकर गिरे थे, वह उत्तम स्थान मारुतिके नामसे पवित्र तथा पापोंको नष्ट करनेवाला तीर्थ प्रसिद्ध हुआ। वहाँ ही रामने भी अपने नामसे एक उत्तम तीर्थ बनाया ॥ १४९ ॥ १५० ॥ रामने वहाँ अपने अंशकी एक मूर्ति भी स्थापित कर दी। सेतु-माधव नामकी वह मूर्ति अभी भी वहाँ प्रस्तुत है ॥ १५१ ॥ हे पार्वति ! लक्ष्मणने भी वहाँ अपने नामका उत्तम तीर्थ स्थापित किया। पश्चात् रामने अपने हाथसे छूकर हनुमान्‌की पूँछको पूर्ववत् सुन्दर तथा दृढ़ सन्धियुक्त बनाकर हनुमान्‌को प्रसन्न कर लिया। पूँछसे लपेटे जानेके कारण रामेश्वरका मस्तक कुछ दब गया था ॥ १५२ ॥ १५३ ॥ वह शिवमस्तक अभी भी वैसा ही चिपटा है। तबसे हनुमान् रामके समक्ष सर्वथा गर्वरहित हो गये ॥ १५४ ॥ हे देवि ! उस समय वालूके लिङ्गमेंसे प्रकट होकर मैंने रघुद्वह रामसे जो कुछ कहा था, वह सब तुमको सुनाता हूँ। ध्यान देकर सुनो ॥ १५५ ॥ मैंने कहा—हे राघवेन्द्र ! हे रघुश्रेष्ठ ! तुम्हें मैं एक प्राचीन इतिहास सुनाता हूँ। एक समय कौतुकवश मैं पुराने कपड़े पहिन तथा ब्राह्मणका

मद्रूपमोहिताः सर्वा ऋषिपत्न्यः सहस्रशः । मत्पृष्ठे ताः समाजग्मुर्भर्तृभिर्वारिता अपि ॥१५८॥
तदा ते चुक्षुभुः सर्वे मामज्ञात्वा मुनीश्वराः । ददुः शापं महाघोरं क्रोधसंविग्नमानसाः ॥१५९॥
रत्यर्थं मोहिता नार्यस्त्वया तस्माद्द्विजाधम । पतत्वद्य रतेरंग लिंगं भुवि च नो गिरा ॥१६०॥
एवं द्विजैर्यदा शप्तोऽपतल्लिंगं तदा भुवि । द्विजच्छद्मस्य मे राम गतोऽहं गुप्ततां तदा ॥१६१॥
द्विजनार्योऽप्यदृष्ट्वा मां जग्मुः स्वं स्वं गृहं प्रति । तल्लिंगं ववृधे भूम्यां गगनं व्याप्य संस्थितम् ॥१६२॥
तद्दृष्ट्वा चकितो वेधास्तस्यांत द्रष्टुमुद्यतः । पश्यतस्तस्य कोट्यब्दैर्नान्तमसीच्च वेधसः ॥१६३।
तदा मामेत्य स विधिर्भयाद्वृत्तं न्यवेदयत् । अकाले प्रलयस्त्वद्य शम्भोऽनेन भविष्यति ॥१६४॥
तदा मया पूर्ववृत्तं विधिं सश्राव्य सादरम् । त्रिशूलो वेधसे दत्तस्तं छेत्तुं सोऽब्रवीच्च माम् ॥१६५॥
कथं तेऽङ्गं दारयेऽहं त्वमेव छेत्तुमर्हसि । ततो मयार्कखंडानि कृतानि तस्य राघव ॥१६६॥
त्रिशूलेनापि क्षिप्तानि भूम्यां निपतितानि हि । तज्जातान्यत्र लिंगानि ज्योतिःसंज्ञानि द्वादश ॥१६७॥
ॐकारः सोमनाथश्च त्र्यम्बको मल्लिकार्जुनः । नागेशो वैद्यनाथश्च काशीविश्वेश्वरस्त्वहम् ॥१६८॥
केदारेशो महाकालो भीमेशो घुसृणेश्वरः । एवमेकादश ज्ञेया ज्योतिर्लिङ्गमयाः शुभाः ॥१६९॥
गन्धमादननाम्नेशो मेरोरीशानदिक्स्थितः । आसीच्चिरं न कस्यापि मानवस्याक्षिगोचरः ॥१७०॥
तदा ते मुनयः सर्वे शिवं बुद्ध्वा तु लिङ्गतः । ददुर्वरं पुनर्लिङ्गं तवास्तु गिरिजाप्रिय ॥१७१॥
ततः प्रलयवातेन गन्धमादननामकम् । तन्मेरोरुत्तरे शृङ्गमेकदाऽत्रापतद्भुवि ॥१७२॥
तदिदं ह्यब्धिसंयोगे दक्षिणे सागरांभसि । गन्धमादननाम्नेदं श्रृंगं पश्यात्र राघव ॥१७३॥
गन्धमादननाम्नेशं लिंगं द्वादशमं त्विदम् । त्वत्प्रतिष्ठितलिंगस्य हीशान्यामन्तिके स्थितम्॥१७४॥

रूप धरकर आनन्दसे भिक्षाके लिए पृथिवीपर विचर रहा था। इस प्रकार ऋषियोंके आश्रममें घूमता हुआ मुझे देखकर सैकड़ों ऋषिपत्नियाँ मेरे रूपपर मोहित हो गयीं। पतियोंके रोकनेपर भी वे नहीं रुकीं और मेरे पीछे पीछे घूमने लगीं ॥ १५६–१५८ ॥ तब वे सब मुनीश्वर मुझे न पहिचानकर बहुत चकराये और क्रुद्ध होकर उन्होंने मुझे बड़ा भयानक शाप दे दिया ॥ १५९ ॥ उन्होंने कहा—अरे अधम ब्राह्मण! तूने रति करनेके लिए हमारी स्त्रियोंको मोहित कर लिया है। इससे तेरे रतिका साधन अङ्ग अर्थात् लिङ्ग हमारे कहनेसे कटकर जमीन-पर गिर पड़े ॥ १६० ॥ हे राम! उनके शापसे द्विजवेशधारी मेरा लिङ्ग कटकर तुरन्त जमीनपर गिर पड़ा। बादमें मैं अन्तर्धान हो गया ॥ १६१ ॥ मुझे न देखकर वे द्विजोंकी स्त्रियें भी अपने-अपने घर चली गयीं। तदनन्तर वह लिङ्ग इस प्रकार बढ़ा कि आकाश तक व्याप्त हो गया ॥१६२॥ यह देखकर ब्रह्मा बहुत चकित हुए और उसका अन्त देखनेके लिए उद्यत हो गये। करोड़ों वर्ष तक पता लगानेपर भी ब्रह्माको जब मेरे लिङ्गका अन्त नहीं मिला ॥ १६३ ॥ तब मेरे पास आकर डरते हुए उन्होंने कहा—हे शंभो! इससे तो अकालमें ही प्रलय होना चाहता है ॥ १६४ ॥ मैंने ब्रह्माको पूर्व वृत्तांत सुनाकर सादर उनके हाथमें उस लिङ्गको काटनेके लिए अपना त्रिशूल दे दिया। तब ब्रह्माने कहा—॥ १६५ ॥ मैं भला आपके अंगको कैसे काट सकता हूँ। आप ही इसे काटें। हे राघव! तब मैंने उस लिंगके बारह टुकड़े कर डाले ॥ १६६ ॥ फिर त्रिशूलसे ही उठाकर उनको पृथ्वीपर इधर-उधर फेंक दिया। वे ही बारहों टुकड़े यहाँपर बारह ज्योतिर्लिङ्ग नामसे विख्यात हुए ॥ १६७ ॥ ओंकारनाथ, सोमनाथ, त्र्यम्बकेश्वर, मल्लिकार्जुन, नागेश, वैद्यनाथ, काशीविश्वनाथ, केदारनाथ, केदारेश्वर, महाकाल, और घुसृणेश्वर ये ग्यारह शुभ ज्योतिर्लिङ्ग हैं॥ १६८॥ १६९॥ बारहवाँ लिङ्ग गंधमादन पर्वतके ईशान कोणवाले शिखरपर बहुत काल तक स्थित रहकर भी किसी मनुष्यकी दृष्टिमें नहीं आया ॥ १७० ॥ तब मुनियोंने लिंगके द्वारा शिवको पहिचानकर पुनः वर दिया—हे गिरिजाप्रिय! तुम्हारे फिर लिंग हो जाय ॥ १७१ ॥ तदनन्तर एक समय वह मेरुका गंधमादन नामक उत्तरी शिखर प्रलयवायुसे उड़कर यहाँ आ गिरा ॥ १७२ ॥ हे राघव! उस गंधमादन शिखरको तुम यहाँ दक्षिणी समुद्रके संगमपर जलमें देख सकते हो ॥ १७३ ॥ बारहवाँ गंधमादन

एतावत्कालपर्यंतं नेदं कैश्चिद्विलोकितम् । अद्य त्वया वानराद्यैर्दृष्टं स्पृष्टं विमोक्षदम् ॥१७५॥
त्वत्प्रतिष्ठितलिंगस्य प्रसादादवनीतले । ख्यातिं गतं त्विदं लिंगं यस्मात्तस्माद्रघूत्तम ॥१७६॥
अस्य लिंगस्य यज्ज्योतिर्मदीयं त्वत्प्रतिष्ठिते । यास्यत्यद्य सैकतेऽत्र लिंगे सेतौ गिरा मम ॥१७७॥
ज्योतिर्लिङ्गं द्वादशमं तव रामेश्वराभिधम् । वदंत्यत्र जनाः सर्वे ह्यद्यारभ्य रघूत्तम ॥१७८॥
पूजोत्सवादिकं कर्म यद्यत्किंचिद्गिरा मम । तवैव लिंगे तत्सर्वमस्तु रामेश्वरे सदा ॥१७९॥
अहं चापि मुनेर्वाक्यादगस्तेस्त्वद्गिरापि च ।त्यक्त्वा काशीमागतोऽस्मि त्वल्लिङ्गेऽस्मिन्वसाम्यहम् ॥
प्रणमेत्सेतुबंधे यः पुमान् रामेश्वरं शिवम् । ब्रह्महत्यादिपापेभ्यो मुच्यते तदनुग्रहात् ॥१८१॥
त्वं वदाद्य रघुश्रेष्ठ वरं येन जनाः सदा । स्नानार्थमानयिष्यन्ति मणिकर्णिजलं मम ॥१८२॥
ममैतद्वचनं श्रुत्वा प्रसन्नो रघुनायकः । जगाद स्नात्वा सेतुबंधे रामेशं परिपश्यति ॥१८३॥
संकल्प्य नियतो भूत्वा गृहीत्वा सेतुबालुकाम्। करंडिकाभिर्यत्नेन गत्वा वाराणसीं शुभाम् ॥१८४॥

क्षिप्त्वा तां बालुकां त्यक्त्वा वेण्यां बालुकरंडिकाम् ।
आनीय गंगासलिलं रामेशमभिषिच्य च ॥१८५॥

समुद्रे त्यक्तवद्भारो ब्रह्म प्राप्नोत्यसंशयम् । संकल्पेन विना गंगा रामेशं नागमिष्यति ॥१८६॥
आगता चेत्तदा ज्ञेयः संकल्पः पूर्वजन्मनि । कुतोऽस्तीत्यत्र मद्वाक्यान्नात्र कार्या विचारणा ॥१८७॥
एवं नानावरान्रामो यावल्लिंगाय सोऽब्रवीत् । तावत्तत्र समायातः कुम्भजन्मा मुनीश्वरः ॥१८८॥
ननाम शंकरो रामं रामोऽपि प्रणनाम तम् । तदा मुनिः प्राह रामं प्रसादात्तव राघव ॥१८९॥
दर्शनं विश्वनाथस्य जातं मेऽद्यात्र वै चिरात् । अद्यात्र तुष्टिर्जाता मे लिंगमत्र करोम्यहम् ॥१९०॥
इत्युक्त्वा स्थापयामास स्वनाम्ना लिंगमुत्तमम् । रामेश्वराग्निदिग्भागे कुंभजन्मा मुदान्वितः ॥१९१॥

लिंग तुम्हारे प्रतिष्ठित लिंगकी ईशानदिशामें पास ही विद्यमान है ॥ १७४ ॥ इतने समय तक इसको किसीने नहीं देखा था। पर आज वानरसहित तुमने इस मोक्षप्रद लिंगको स्पष्ट देख लिया है ॥ १७५ ॥ तुम्हारे द्वारा स्थापित लिंगकी महिमासे ही पृथ्वीपर इसकी प्रसिद्धि हुई है। इस कारण हे रघूत्तम ! इस लिंगकी जो ज्योति है, वह ज्योति तुम्हारे द्वारा स्थापित बालुकामय लिंगमें मेरे कहनेसे आज ही चली आयगी ॥ १७६ ॥ १७७ ॥ हे रघूत्तम ! आजसे बारहवाँ ज्योतिर्लिङ्ग तुम्हारा स्थपित रामेश्वर ही दुनियाँकि सब मनुष्योमें प्रसिद्ध होगा ॥ १७८ ॥ मेरे वचनसे पूजा आदि सब उपचार सदा तुम्हारे रामेश्वर लिंगका ही होगा ॥ १७९ ॥ मैं भी अगस्त्य मुनिके तथा तुम्हारे कहनेसे काशी छोड़कर यहाँ आ गया हूँ और अब तुम्हारे इस लिंगमें ही निवास करूँगा ॥ १८० ॥ जो मनुष्य सेतुबन्ध रामेश्वरको प्रणाम करेगा, वह मेरी कृपासे ब्रह्महत्या आदि भयानक पापोंसे भी मुक्त हो जायगा ॥ १८१ ॥ हे रघुश्रेष्ठ ! आप मुझे यह वर दें कि सब लोग मुझे स्नान करानेके लिए सदा काशीकी मणिकर्णिकाका जल लाकर चढ़ाया करें ॥ १८२ ॥ हे पार्वती ! मेरे इस वचनको सुनकर श्रीराम हर्षित होकर बोले कि जो मनुष्य सेतुबंधमें स्नान करके रामेश्वर शिवका दर्शन करेंगे ॥ १८३ ॥ फिर दृढ़ संकल्पसे सेतुकी बालुकाको काँवरमें रखकर प्रेम तथा यत्नसे काशीमें ले जाकर गंगाके प्रवाहमें डालेंगे और उस काँवरको वहीं छोड़कर दूसरी काँवरके द्वारा गंगाजल लाकर उससे रामेश्वरका अभिषेक करेंगे ॥ १८४ ॥ १८५ ॥ वहाँ उस काँवरको भी समुद्रमें फेंककर निःसंदेह ब्रह्मपदको प्राप्त होंगे। जबतक दृढ़ संकल्प न होगा, तब तक रामेश्वर आना न होगा ॥ १८६ ॥ कदाचित् कोई आगया तो यही जानना चाहिए कि उसके पूर्वजन्मका संकल्प था। मेरे कहनेसे आप इस बातमें तनिक भी संदेह न करें ॥ १८७ ॥ इस प्रकार राम जब अनेक वर दे रहे थे, तभी वहाँ कुम्भजन्म (अगस्त्य) मुनि आ पहुंचे ॥ १८८ ॥ उन्होंने वहाँ आकर शिव तथा रामको प्रणाम किया। तब रामने भी मुनिको प्रणाम किया। अगस्त्य मुनिने रामसे कहा— हे राघव ! आपके अनुग्रहसे मुझे आज बहुत दिनके बाद विश्वनाथका दर्शन प्राप्त हुआ है। इससे मुझे बड़ी प्रसन्नता हो रही है। इसलिए मैं भी यहाँ एक लिंग स्थापित करता हूँ ॥ १८९ ॥ १९० ॥ इतना कहकर अगस्त्य मुनिने भी अपने नामसे एक उत्तम

पूजयामास तल्लिंगमगस्तीश्वरनामकम् । नत्वा स्तुत्वा विश्वनाथं रामं रामेश्वरं तथा ॥१९२॥
दृष्ट्वा पुरातनं लिंगं गंधमादननामकम् । ययौ स्वीयाश्रमं तुष्टः कुंभजन्मा मुनीश्वरः ॥१९३॥
सेतौ रामेश्वरस्यैव देवि देवालये शुभे । दिश्याग्नेय्यामगस्तीशमीशान्यां गंधमादनम् ॥१९४॥
वर्ते तेऽद्यापि द्वे लिंगे कश्चिज्जानाति वा न वा । प्रसिद्धोऽभूच्च रामेशः स्वर्गमृत्युरसातले ॥१९५॥
ततो रामाज्ञया सेतुं नलः कर्तुं मनो दधे । किंचिद्गर्वसमाविष्टस्तज्ज्ञातं राघवेण हि ॥१९६॥
यावदेकां शिलां त्यक्त्वा नलोऽन्यां प्राक्षिपच्छिलाम् ।
तावत्तरंगकल्लोलैः सागरस्य इतस्ततः ॥१९७॥
गच्छंतिस्म शिलाः सर्वास्ता दृष्ट्वा खिन्नमानसः। गतगर्वस्तदा रामं नलो वृत्तं न्यवेदयत् ॥१९८॥
रामः श्रुत्वा नलं प्राह रामेति द्वेऽक्षरे मम । दृषदोः संधिसिद्ध्यर्थं पृथग्विलिखतां द्वयोः ॥१९९॥
सर्वत्रैवं लिखित्वा हि दृढ़ः संधिर्भविष्यति । तथेति रामवचनात्तथा चक्रे नलस्तदा ॥२००॥
कृतः पंचदिनैः सेतुः शतयोजनमुत्तमः । कृतानि प्रथमेनाह्ना योजनानि चतुर्दश ॥२०१॥
द्वितीयेन तथा चाह्ना योजनानां च विंशतिः । तृतीयेन तथा चाह्ना योजनान्येकविंशतिः ॥२०२॥
चतुर्थेन तथा चाह्ना द्वाविंशतिरिति श्रुतम् । पंचमेन त्रयोविंशद्योजनानां शतं त्विति ॥२०३॥
विस्तृतो द्वादश प्रोक्तो योजनानि दृषन्मयः । एवं बबंध सेतुं स नलो वानरसत्तमः । २०४॥
ये मज्जंति निमज्जयंति च परान् ते प्रस्तरा दुस्तरे वार्धौ येन तरंति वानरभटान् संतारयतेऽपि च ।
नैते ग्रावगुणा न वारिधिगुणा नो वानराणां गुणाः श्रीमद्दाशरथेः प्रतापमहिमा सोऽयं समुज्जृम्भते२०५॥
तेनैव जग्मुः कपयो योजनानां शतं द्रुतम् । आरुह्य मारुतिं रामो लक्ष्मणोऽप्यंगदं तथा ॥२०६॥
जगाम वायुवल्लंकासंनिधिं सेनया वृतः । असंख्याताः सुवेलाद्रिं रुरुहुः प्लवगोत्तमाः ॥२०७॥

लिङ्ग स्थापित किया। मुनिने आनन्दके साथ रामेश्वरके अग्निकोणमें उसकी स्थापना की ॥ १९१ ॥ इस प्रकार मुनिने अगस्तीश्वर नामक लिंगकी पूजा करके विश्वनाथ, रामेश्वर एवं श्रीरामकी स्तुति तथा प्रणाम करनेके अनन्तर पुरातन गंधमादन लिंगका दर्शन किया और प्रसन्न होकर अपने आश्रमको चले गये ॥ १९२ ॥ १९३ ॥ हे देवि ! सेतुबंध रामेश्वरके देवालयमें ही आग्नेयकोणमें अगस्तीश्वर तथा ईशानकोणमें गन्धमादनेश्वरका लिंग अभी भी विद्यमान है। उन्हें कोई इन नामोंसे जानता है और कोई नहीं भी जानता। रामेश्वरका लिंग स्वर्ग, पाताल तथा मृत्यु इन तीनों लोकोंमें प्रसिद्ध हो गया ॥ १९४ ॥ तदनन्तर रामकी आज्ञासे नलने कुछ गर्वयुक्त होकर पुल बांधना आरम्भ कर दिया। रामको इस गर्वका पता लग गया ॥ १९५ ॥ १९६ ॥ इसके बाद नलने जलमें एक पत्थर डालकर दूसरा ज्यों ही डाला, त्यों ही समुद्रकी तरंगित लहरियोंसे सब शिलाएँ इधर-उधर छितराने लगीं। यह देखा तो खिन्नमन हो तथा गर्व त्यागकर नल रामके पास गये और सब वृत्तान्त निवेदन किया ॥ १९७ ॥ १९८ ॥ यह सुनकर रामने नलसे कहा कि मेरे नामके 'रा म' ये दो अक्षर पत्थरोंको एक साथ मिलानेके लिये दोनों शिलाओंकी बगलमें लिख दो ॥ १९९ ॥ ऐसा लिख देनेसे सब एक दूसरेके साथ दृढ़तासे जुड़ जायँगे और संधि (साँस) न रहेगी। नलने भी 'तथास्तु' कहकर रामके कथनानुसार ही किया ॥ २०० ॥ ऐसा करनेपर पांच दिनमें सौ योजन लम्बा, सुन्दर और दृढ़ सेतु बन गया। पहिले दिन चौदह योजन, दूसरे दिन बीस, तीसरे दिन इक्कीस, चौथे दिन बाईस और पाँचवें दिन तेईस योजन पुल बँधा। इस प्रकार सौ योजन पूरे हो गये ॥ २०१–२०३ ॥ उसमें भी बारह योजन एकमात्र पत्थरका ही पक्का पुल बनाया गया। इस तरह वानरोत्तम नलने सेतु बाँधकर तैयार किया ॥ २०४ ॥ जो पत्थर स्वयं डूबते और दूसरोंको डुबाते हैं, वे ही दुस्तर समुद्रमें स्वयं तैरने तथा दूसरोंको तारने लग गये। यह गुण न पत्थरका है, न समुद्रका और न वानरोंका। परन्तु यह गुण तो केवल दशरथतनय रामका ही है। जिनकी महिमा सर्वत्र व्याप्त हो रही है ॥ २०५ ॥ उस पुलके द्वारा वानरगण सौ योजन सागर शीघ्र ही पार कर गये। राम हनुमान्के कंधे तथा लक्ष्मण अङ्गदके कंधेपर चढ़कर वायुवेगसे सेनाके साथ लंकाके पास

ततः सैन्ययुतो रामः सुवेलाद्रिं ययौ मुदा। दिदृक्षू राघवो लंकामारुरोहाचलं शुभम् ॥२०८॥
सुवेलाद्रिं महारम्यं तरुवल्लिविराजितम्। ददर्श लंकां विस्तर्णां रामश्चित्रध्वजाकुलाम् ॥२०९॥
चित्रप्रासादसंबाधां स्वर्णप्राकारतोरणाम्। परिखाभिः शतघ्नीभिः संक्रमैश्च विराजिताम्॥२१०॥
प्रासादोपरि विस्तीर्णप्रदेशे दशकन्धरम्। पश्यंतं कपिसैन्यं तं सन्ददर्श रघूद्वहः ॥२११॥
ततो रामेण मुक्तः स शुको गत्वा दशाननम्। कपिसैन्यं दर्शयंस्तं बोधयामास रावणम् ॥२१२॥
सीतां प्रयच्छ रामाय लंकाराज्ये विभीषणम्। कृत्वा तं शरणं याहि नो चेद्रामान्न मोक्ष्यसे ॥२१३॥
तच्छ्रुत्वा रावणः क्रोधाच्छुकं धिक्कृत्य वै मुहुः। दूतैर्गेहाद्बहिः कृत्वा रामसेनां व्यलोकयत् ॥२१४॥
शुकोऽपि ब्राह्मणः पूर्वं वरिष्ठो ब्रह्मवित्तमः। अयजत् क्रतुभिर्देवान् विरोधो राक्षसैरभूत् ॥२१५॥
वज्रदंष्ट्र इति ख्यातस्तदैको राक्षसो महान्। मांसान्नं याचितं दृष्ट्वा मुनिना कुंभजन्मना ॥२१६॥
शुक्रभार्यावपुर्धृत्वा नरमांसं समर्पयत्। तदा शप्तः शुकस्तेन त्वं रक्षो भव मा चिरम् ॥२१७॥
रक्षःकृतं पुनर्ध्यानाज्ज्ञात्वा तत्प्रार्थितोऽब्रवीत्। रामस्य दर्शनं कृत्वा बोधयित्वा दशाननम् ॥२१८॥
त्वं प्राप्स्यसि निजं रूपं तस्माज्जातः शुको द्विजः। सुवेलशिखरे संस्थः संमंत्र्य कपिभिस्ततः ॥२१९॥
सूचनार्थं रिपुं रामोऽङ्गदं लंकामचोदयत्। सोऽपि रामाज्ञया गत्वा नानानीत्युच्चरैस्तदा ॥२२०॥
रावणं बोधयामास सभायां लांगुलासने। संस्थितोऽभीतवद्वालितनयः स्वस्थमानसः ॥२२१॥
शृणु रावण मद्वाक्यं हितं ते प्रवदाम्यहम्। सीतां सत्कृत्य सधनां प्रयच्छ राघवं जवात् ॥२२२॥
रामं नारायणं विद्धि विद्वेषं त्यज राघवे। यत्पादपोतमाश्रित्य ज्ञानिनो भवसागरम् ॥२२३॥
तरन्ति भक्तिपूतास्ते ह्यतो रामो न मानुषः। मद्वाक्यं कुरु राजेन्द्र कुलकौशलहेतवे ॥२२४॥

जा पहुँचे। वानरोंमें उत्तम असंख्य वानर सुवेल पर्वतपर जा चढ़े ॥ २०६ ॥ २०७ ॥ उनके पीछे राम भी अपनी सेनाके साथ सहर्ष सुवेलगिरिपर गये। वहाँ जाकर राम लंकाको देखनेके लिए उसके एक सुन्दर शिखरपर चढ़े ॥ २०८ ॥ वह पर्वत बड़े मनोहर वृक्षों तथा लताओंसे मंडित था। वहाँ रामने बड़ी विस्तृत, रंग-बिरंगी ध्वजाओंसे व्याप्त, अनेक प्रकारके भवनोंसे सघन, स्वर्णके गढ़ तथा तोरण युक्त खाईं, सुरंगों तथा तोपोंसे विराजित लंकाको देखा ॥ २०९ ॥ २१० ॥ वहाँसे रामने एक प्रासाद (महल) के ऊपर विस्तीर्ण प्रदेशमें बैठकर कपिसेनाको देखते हुए दशकन्धर रावणको देखा ॥ २११ ॥ तदनन्तर रामने कैद किये हुए शुकको छुड़वा दिया। उसने जाकर रावणको वानरी सेना दिखायी और समझाया—॥ २१२ ॥ तुम सीता रामको दे दो, लङ्काका राज्य विभीषणको दे दो और रामकी शरणमें चले जाओ। नहीं तो राम तुमको जीवित नहीं छोड़ेंगे ॥ २१३ ॥ यह सुनकर क्रोधसे पागल रावणने शुकको बार-बार धिक्कारा और दूतोंसे बाहर निकलवाकर रामकी सेना देखने लगा ॥ २१४ ॥ शुक पहिले एक श्रेष्ठ ब्राह्मण था। उसने यज्ञ द्वारा देवताओंको प्रसन्न किया था। इस कारण राक्षसोंसे उसका विरोध हो गया ॥ २१५ ॥ तदनन्तर एक दिन वज्रदंष्ट्र नामक राक्षसने अगस्त्य मुनिको शुकसे मांसान्न माँगते देखकर शुककी स्त्रीका रूप धारण करके मनुष्यका मांस पकाकर मुनिको परोस दिया। तब मुनिने क्रुद्ध होकर शुकको शाप दे दिया कि जा, तू शीघ्र राक्षस हो जा ॥ २१६ ॥ २१७ ॥ पुनः शुकके प्रार्थना करनेपर मुनिने ध्यान धरके देखा तो मालूम हुआ कि यह तो एक राक्षसका कृत्य है। तब मुनिने कहा—हे शुक ! तू रामका दर्शन करके और रावणको समझाकर फिरसे अपने स्वरूपको प्राप्त हो जायगा। इसी कारण अब वह शुक पुनः ब्राह्मण हो गया। इधर रामने सुवेल पर्वतके शिखरपर बैठकर वानरोंको आमन्त्रित किया और शत्रुको सूचना देनेके लिए अंगदको लंका भेजा। उसने जाकर रामकी आज्ञासे अनेक नीतिवाक्यों द्वारा रावणको समझाया ॥ २१८–२२० ॥ सभामें अपनी पूँछका मोढ़ा बनाकर उसपर बैठे हुए अंगदने निर्भय होकर स्वस्थ मनसे रावणको समझाते हुए कहा—॥ २२१ ॥ हे रावण ! मैं तुमको हितका उपदेश देता हूँ, सुनो। मेरी सलाह मानो और धनसे सीताका सत्कार करके झटपट रामको दे आओ ॥ २२२ ॥ रामको साक्षात् नारायण समझो

एवं नानाविधैर्वाक्यैरंगदेनातिबोधितः । सोऽथ नीत्युत्तराण्यस्य नाशृणोद्वानरस्य च ॥२२५॥
उवाच क्रोधसंयुक्तो वानरं स दशाननः । भीषयसेऽद्य किं मां त्वं रावणं लोकरावणम् ॥२२६॥
येन सर्वे जिता देवाः कैलासः कंपितो मया । तस्य मेऽग्रे मर्कट त्वं कत्थसे किं मुधाऽद्य हि ॥२२७॥
क्षणेन राघवौ हत्वा हत्वा सुग्रीवमारुती । हत्वा विभीषणं त्वां च वानरान् भक्षयाम्यहम् ॥२२८॥
रावणस्य वचश्चेत्थं श्रुत्वा प्राहांगदश्च तम् । जानाम्यहं पौरुषं ते बलिपाशविचूर्णित ।२२९॥
शिवपादांगुष्ठ भारनम्रकैलासपीडित । सहस्रार्जुनवीरात्मसंभवक्रीडनमृग ॥२३०॥
श्वेतद्वीपस्थप्रमदाकरताडितसन्मुख । विष्णुपुत्रोऽथ वै ब्रह्मा मरीचिस्तत्सुतः स्मृतः ॥२३१॥
तत्सुतः कश्यपस्तस्य पुत्रोऽभूदिंद्रनामकः । तेनैव युद्धकाले तु बद्ध्वा कारागृहस्थित ॥२३२॥
पर्यंकोपरि संबद्धमन्मूत्रक्षालितानन । इति तद्वाक्यशराघाततर्जितः स दशाननः ॥२३३॥
दूतानाज्ञापयामास ताडनीयो मुखे त्वयम् । तथेत्युक्त्वा राक्षसास्ते शस्त्रहस्ताः सहस्रशः ॥२३४॥
अंगदं दुद्रुवुः शीघ्र तान् दृष्ट्वा वानरोत्तमः । मर्द्दयामास पुच्छेन तान्सर्वान् क्षणमात्रतः ॥२३५॥
रावणास्येषु संताड्य स्वकराभ्यां मुहुर्मुहुः । तद्धस्तपादौ पुच्छेन पूर्वं बद्ध्वा सविस्तरम् ॥२३६॥
ततश्चोड्डीय वेगेन ययौ प्रासादमस्तकः । सुवेलाद्रौ राघवेंद्रं तारेयः स विहायसा ॥२३७॥
अंगदं राघवो दृष्ट्वा प्रासादान्वितमस्तकम् । उवाच किं कृतं बाल प्रासादोऽयं त्वया कथम् ॥२३८॥
समानीतोऽत्र लंकाया मित्रायेयं पुरी मया ।अर्पिताऽस्ति ततो मित्रवस्त्विदं न स्पृशाम्यहम्॥२३९॥
तद्राघववचः श्रुत्वा चकितः स तदांगदः । प्रासादं मस्तके दृष्ट्वोर्ध्वाक्षिभ्यामाह राघवम् ।।२४०॥

और उनसे द्वेष करना छोड़ दो। जिनके चरणकमलरूपी जहाजका आश्रय लेकर ज्ञानी लोग भक्तिसे पवित्र मन होकर इस संसाररूपी समुद्रको अनायास पार कर जाते हैं, वे राम मनुष्यमात्र नहीं हैं। हे राजेन्द्र! यदि अपने कुलकी कुशलता चाहते होओ तो मेरा कहा करो ॥ २२३ ॥ २२४ ॥ इस प्रकार विविध वाक्योंसे अङ्गदने उसे बहुत समझाया, परन्तु उसने अङ्गदका एक भी नीतिपूर्ण वाक्य नहीं सुना ॥ २२५ ॥ प्रत्युत क्रुद्ध होकर रावणने अङ्गदसे कहा—अरे नीच! तू आज सब लोकोंको रुलानेवाले मुझ रावणको डराने आया है? ॥ २२६ ॥ अरे! मैंने संपूर्ण देवताओंको जीतकर कैलास तकको कँपा दिया है। ऐसे मुझ वीरके सामने अरे मर्कट! तू क्यों व्यर्थका बकवास कर रहा है ॥ २२७ ॥ मैं क्षणभरमें राम, लक्ष्मण, सुग्रीव, हनुमान्, विभीषण, तुझे और सब वानरोंको मारकर खा सकता हूँ ॥ २२८ ॥ इस प्रकार रावणका गर्वभरा वाक्य सुनकर अङ्गदने कहा—हे वलिपाशसे विचूर्णित! हे शिवपादांगुष्ठसे आनम्र कैलाससे पीडित! हे वीरात्मा कार्तवीर्यके क्रीडामृग! हे श्वेतद्वीपकी स्त्रियोंके हाथसे ताड़ित मुखवाले रावण! मैं तेरे बलको जानता हूँ। यह भी मुझे मालूम है कि विष्णुके पुत्र ब्रह्मा, ब्रह्माके पुत्र मरीचि, मरीचिके पुत्र कश्यप, कश्यपके पुत्र इन्द्र और इन्द्रके पुत्र बालिने तुमको युद्धके समय बाँधकर कारागारमें डाल रक्खा था। वहाँ तुम्हारा मुख चारपाईमें बधे रहनेके कारण मेरे मल-मूत्रसे भर जाता था। अङ्गदके इन वाक्यरूपी बाणोंसे विद्ध होकर रावण उत्तेजित हो उठा ॥ २२९–२३३ ॥ उसने दूतोंको आज्ञा दी कि मार-मारकर इसका मुँह लाल कर दो। तब 'तथास्तु' कहकर हजारों राक्षस हाथमें शस्त्र लेकर अङ्गदकी ओर झपटे। उन्हें देखकर वानरोत्तम अङ्गदने अपनी पूँछकी मारसे उन सबको क्षणभरमें धराशायी कर दिया ॥ २३४ ॥ २३५ ॥ तदनन्तर पूँछसे रावणके हाथ पाँव भली-भाँति बाँधकर अंगदने उसके मुखोंपर खूब तमाचे लगाये ॥ २३६ ॥ तत्पश्चात् वहाँसे उड़कर तारापुत्र अंगद आकाशमार्गसे सुवेल पर्वतपर रामके पास लौट गये। उड़ते समय रावणका महल भी उनके सिरपर बैठकर चला आया ॥ २३७ ॥ रामने अंगदको मस्तकपर महल लिये आते देखकर कहा—हे बालिपुत्र! तुम इस महलको क्यों उठा लाये? ॥ २३८ ॥ मैंने लंकापुरी मित्र विभीषणको अर्पण कर दी है। इसलिए मैं तो मित्रकी इस वस्तुको छू भी नहीं सकता ॥ २३९ ॥ रामकी यह बात सुनकर अङ्गद चकित हो गये। जब अङ्गदने ऊपरकी ओर आँखें कीं तो अपने सिरपर मकान देखकर रामसे

न ज्ञातोऽयं मया राम प्रासादो मस्तकेन मे । उत्पाटितश्च लंकायाः समानीतस्तवांतिकम् ॥२४१॥
पुनर्नीत्वाऽद्य लंकायामेनं संस्थापयाम्यहम् । इत्युक्त्वा परिवृत्याथ राघवस्याज्ञयांगदः ॥२४२॥
प्रासादं पूर्ववत्स्थाप्य लंकायां स ययौ पुनः । सुवेलाद्रौ राघवेंद्रं नत्वा वृत्तं न्यवेदयत् ॥२४३॥
यद्यत्कृतं तु लंकायां संवादं रावणस्य च । रामोऽपि श्रुत्वा तत्सर्वं स्मित्वा तं परिषस्वजे॥२४४॥
अथ श्रीरामचंद्रोऽपि सुवेलाद्रौ स्थितस्तदा । लीलया चापमादाय मुमोच शरमुत्तमम् ॥२४५॥
तेन छत्रसहस्राणि किरीटदशकं तथा । लंकायां राक्षसेंद्रस्य प्रासादे संस्थितस्य च ॥२४६॥
चिच्छेद निमिषार्धेन कपीनां पश्यतां प्रभुः । एतस्मिन्नंतरे तत्र रामाग्रे संस्थितो महान् ॥२४७॥
न दत्तां जानकीं श्रुत्वा रावणेनांगदास्यतः । क्रोधेन महताविष्टः सुग्रीवः प्लवगाग्रणीः ॥२४८॥
ययावुड्डीय लङ्कायां दशास्यं राक्षसैर्युतम् । प्रासादसंस्थितं छत्रहीनं प्रव्यग्रमानसम् ॥२४९॥
सुग्रीवो रावणं गत्वा जघान दृढमुष्टिना । पातयामास भूम्यां तं वरसिंहासनात्तदा ॥२५०॥
चक्रतुस्तौ बाहुयुद्धं तुमुलं रोमहर्षणम् । उर्ध्वांघ्रिकरहृद्धस्तैः कपीशराक्षसेश्वरौ ॥२५१॥
तदासीज्जर्जरांगः स रावणः कपिघाततः । दुद्रुवे बाहुयुद्धं तत्त्यक्त्वा गेहं विलज्जितः ॥२५२॥
तदाऽऽच्छिद्य तन्मुकुटं ययौ रामं कपीश्वरः । ननाम राघवं भक्त्या वृत्तं सर्वं न्यवेदयत् ॥२५३॥
तं समालिंग्य रामोऽपि सुग्रीवं प्राह सादरम् । मामपृष्ट्वा कथं बन्धो गतस्तूष्णीं दशाननम् ॥२५४॥
त्वज्जीवितं विपन्नं चेत्तर्हि किं सीतया मम । भविष्यति न सौख्यं हि मेदृशं साहसं कुरु ॥२५५॥
ततो भेरीमृदंगाद्यैर्वाद्यैस्ते वानरोत्तमाः । लङ्कां संवेष्टयामासुश्चतुर्द्वारेषु संस्थिताः ॥२५६॥
तदा तं मुकुटं रामोऽङ्गदाय रावणस्य च । ददौ तुष्टो दशेशाय लङ्कां रोद्धुं प्रचोदयत् ॥२५७॥

बोले—॥ २४० ॥ हे राम ! मुझे तो इस बातका पता भी नहीं था कि मेरे मस्तकपर मकान है और लंकासे उखड़कर यहाँ आपके पास तक चला आया है ॥ २४१ ॥ मैं इसको फिरसे जाकर लङ्कामें रख आता हूँ। इतना कह और रामकी आज्ञा पाकर अंगद तुरन्त लौटे ॥ २४२ ॥ वे उस प्रासादको पूर्ववत् लङ्कामें रखकर पुनः रामके पास आ गये और नमस्कार करके सब वृत्तान्त निवेदन किया ॥ २४३ ॥ लङ्कामें जाकर उन्होंने जो कुछ किया था और रावणके साथ जो संवाद हुआ था, वह सब रामसे कहा। सो सुनकर रामने उनको हृदयसे लगा लिया ॥ २४४ ॥ तदनन्तर श्रीरामचन्द्रजीने सुवेलाद्रिपर खड़े होकर लीलापूर्वक एक उत्तम बाण धनुषपर चढ़ाकर छोड़ा ॥ २४५ ॥ उससे लंकाके महलपर स्थित राक्षसेश्वर रावणके दसों मुकुट तथा हजारों छत्र कटकर क्षणभरमें वानरोंके समक्ष आ गिरे। इतनेमें रामके आगे खड़े सुग्रीवने जब अंगदके मुखसे यह सुना कि रावण सीताको देनेके लिये तैयार नहीं है। तब अतिशय कुपित होकर वानरोंमें अग्रणी सुग्रीव उड़कर लंकामें वहाँ जा पहुँचे, जहाँ कि महलपर छत्र तथा किरीटरहित अत्यन्त व्यग्र मनसे रावण बैठा था ॥ २४६–२४९ ॥ वहाँ जाकर सुग्रीवने रावणको जोरसे एक मुक्का मारा। जिससे दशानन सिंहासनसे जमीनपर गिर पड़ा ॥ २५० ॥ तदनन्तर कपीश सुग्रीव तथा राक्षसेश्वर रावणका आपसमें घोर मल्लयुद्ध होने लगा। वे एक दूसरेको उठा-उठाकर चित्त-पट करने लगे। जिससे कि उनके हाथ-पाँव तथा छाती द्वारा निर्मम प्रहारके कारण बड़ी चोट लगती थी ॥ २५१ ॥ अन्तमें सुग्रीवकी मारसे रावणके सब अंग जर्जरित हो गये। तब रावण बाहुयुद्ध करके लज्जाके मारे घरमें भाग गया॥ २५२ ॥ उसी समय उसका मुकुट छीनकर कपीश्वर सुग्रीव रामके पास आ गये और भक्तिपूर्वक नमस्कार करके सब समाचार कहा ॥ २५३ ॥ रामने आदरके साथ सुग्रीवका आलिंगन किया और कहा—हे बन्धो ! तुम हमसे बिना कहे चुपकेसे रावणके साथ युद्ध करने क्यों चले गये ?॥२५४॥ कहीं तुम्हारे प्राण संकटमें पड़ जाते तो हम सीताको पा करके भी कौन-सा सुख भोगते। अबसे कभी ऐसा साहस नहीं करना ॥ २५५ ॥ बादमें नगाड़ा मृदंग तथा तुड़ही आदि बाजे बजाते हुए सब वानरयोद्धाओंने लंकाको घेर लिया और चारों दरवाजोंको रोककर खड़े हो गये ॥ २५६ ॥ तत्पश्चात् रामने वह रावणका मुकुट प्रसन्न होकर सेनापति अंगदको दे दिया और लंकाको घेरनेके लिये

अङ्गदं दक्षिणद्वारं वायुपुत्रं तु पश्चिमम् । नलं सैन्येन प्राग्द्वारं सुषेणं द्वारमौत्तरम् ॥२५८॥
ययुस्ते राघवं नत्वा लंकां स्वस्वबलैर्युताः । तां लंकां रुरुधुः सर्वे चतुर्द्वारेषु वानराः ॥२५९॥
दशास्योऽपि गृहं गत्वा सुग्रीवजर्जरीकृतः । तस्थौ तूष्णीं स रहसि स्मरन्सुग्रीवपौरुषम् ॥२६०॥
माली सुमाली च तथा माल्यवान्बान्धवास्त्रयः । मातामहा रावणस्य ते संमन्त्र्य परस्परम् ॥२६१॥
दशाननं बोधयितुं तेभ्यस्त्वेको ययौ जवात् । माल्यवानिति नाम्ना यो बुद्धिमान्स्नेहसंयुतः॥२६२॥
प्राह तं राक्षसं वीरं प्रशांतेनांतरात्मना । शृणु राजन् वचो मेऽद्य श्रुत्वा कुरु यथेप्सितम्॥२६३॥
यदा प्रविष्टा नगरीं जानकी रामवल्लभा । तदादि पुर्यां दृश्यंते निमित्तानि दशानन ।२६४॥
घोराणि नाशहेतूनि तानि मे वदतः शृणु । खराः स्तनितनिर्घोषा मेघाः प्रतिभयंकराः ॥२६५॥
शोणितान्यभिवर्षन्ति लंकामुष्णेन सर्वदा । सीदन्ति देवलिङ्गानि स्विद्यन्ति प्रचलंति च ॥२६६॥
कालिका पांडुरैर्दंतैः प्रहसंतेऽग्रतः स्थिताः । खरा गोषु प्रजायंते मूषका नकुलैः सह ।२६७॥
मार्जारेण तु युध्यंते पन्नगा गरुडेन च । करालो विकटो मुंडः पुरुषः कृष्णपिंगलः ॥२६८॥
कालो गृहाणि सर्वेषां काले काले त्ववेक्षते । एतान्यन्यानि दृष्टानि निमित्तान्युद्भवंति च ॥२६९॥
अतः कुलस्य रक्षार्थं शांतिं कुरु दशानन । सीतां सत्कृत्य सधनां रामायाशु प्रयच्छ भोः॥२७०॥
मातामहवचश्चेत्थं श्रुत्वा तं रावणोऽब्रवीत् । रामेण प्रेषितो नूनं भाषसे त्वमनर्गलम् ॥२७१॥
गच्छ वृद्धोऽसि बंधुस्त्वं सोढं सर्वं त्वयोदितम् । इतो वा कर्णपदवीं दहत्येतद्वचस्तव ॥२७२॥
इत्युक्तः स रावणेन माल्यवान्स गृहं ययौ । रावणोपि सभां गत्वा चोदयामास राक्षसान् ॥२७३॥
पूर्वद्वारं तु धूम्राक्षं वज्रदंष्ट्रं तु पश्चिमम् । नरांतकं दक्षिणं तमुत्तरं च महोदरम् ॥२७४॥

भेजा ॥ २५७ ॥ अङ्गदको दक्षिणी दरवाजेपर, वायुपुत्र हनुमानको पश्चिम द्वारपर, नलको सेनाके साथ पूर्वद्वारपर और सुषेणको उत्तरी दरवाजेपर जानेको कहा ॥ २५८ ॥ वे सब रामको नमस्कार करके अपनी-अपनी सेना लेकर गये और लंकाके चारों दरवाजोंको रोककर खड़े हो गये ॥ २५९ ॥ उधर रावण भी सुग्रीवके हाथसे मार खाकर घायल हो घर जाकर एकान्तमें मन मारके बैठ गया और सुग्रीवके पुरुषार्थका स्मरण करने लगा ॥ २६० ॥ तब रावणके नाना माली, सुमाली तथा माल्यवान् इन तीनों भाइयोंने आपसमें राय की और रावणको समझानेके लिए इन तीनोंमेंसे बुद्धिमान् तथा स्नेही माल्यवान् उसके पास गया ॥ २६१ ॥ ॥ २६२ ॥ वह शान्तिपूर्वक वीर राक्षसेश्वर रावणको समझाते हुए कहने लगा—हे राजन् ! मेरी बात सुन लें, फिर जैसी आपकी इच्छा हो वैसा करिएगा ॥ २६३ ॥ हे दशानन ! जबसे रामकी प्यारी सीता लंकामें आयी है, तबसे यहाँ बराबर अपशकुन हो देखनेमें आते हैं ॥ २६४ ॥ वे सब भयानक और नाशके निमित्त हैं । उनको मैं कहता हूँ, आप सुनें । मेघ तीव्र गर्जनके शब्द करते हुए लंकामें गरम खूनकी सतत वर्षा करते हैं । शिवलिंग खिन्न देखनेमें आते हैं । वे कभी पसीजते हैं और कभी काँपने लगते हैं ॥ २६५ ॥ २६६ ॥ आगे खड़ी कालीकी मूर्तिएँ पीले-पीले दाँत निकालकर हँसती हैं । गायोंके पेटसे गधे पैदा होते हैं । चूहे न्योलों तथा बिल्लियोंसे लड़ते हैं । साँप गरुडके साथ युद्ध करते हैं । कभी-कभी कराल काल सिर मुड़ाए काले-पीले पुरुषका रूप धारण करके लोगोंको पकड़ता हुआ दीखता है । इनके अतिरिक्त और भी अनेक अशकुन प्रकट होते दीखते हैं ॥ २६७–२६९ ॥ इसलिए हे दशानन ! कुलकी रक्षाके लिये शान्ति धारण करो और सीताका आदर-सत्कार करके प्रचुर धनके सहित शीघ्र रामको सौंप आओ ॥२७० ॥ यह सुनकर रावणने अपने नानासे कहा कि अवश्य तुम रामके द्वारा यहाँ इस प्रकार अनर्गल (ऊटपटांग) बातें करनेके लिये भेज गये हो । अस्तु, जो हुआ सो हुआ । अब तुम यहाँसे निकल जाओ । वृद्ध तथा सगे नाना होनेके नाते इतनी बातें मैंने सह ली । तुम्हारी बातें हमारे कानोंको जलाये दे रही हैं ॥ २७१ ॥ २७२ ॥ रावणके एसा कहनेपर माल्यवान् अपने घर चला गया । रावणने भी सभामें जाकर राक्षसोंको आज्ञा दी ॥ २७३ ॥ तदनन्तर लंकाके पूर्वद्वारपर धूम्राक्षको, पश्चिमी द्वारपर वज्रदंष्ट्रको, दक्षिणी द्वारपर नरांतकको और उत्तरी

प्रेषयामास सैन्येन वस्त्राद्यैस्तोषितान् जवात् । चत्वारस्तेऽपि नत्वा तं रावणं संगरं ययुः ॥२७५॥
एवं रामरावणयोः सैन्यानि च परस्परम् । ययुस्तानि सम्मुखानि संगरार्थं महास्वनैः ॥२७६॥

इति श्रीशतकोटिरामचरितांतर्गते श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये सारकाण्डे युद्धचरिते रामरावणसेनासंयोगो नाम दशमः सर्गः ॥ १० ॥

एकादशः सर्गः

(श्रीरामके द्वारा रावणका वध)

श्रीशिव उवाच

अथ ते राक्षसाः सर्वे द्वारेभ्यः क्रोधमूर्च्छिताः । निर्गत्य भिंदिपालैश्च खड्गैः शूलैः परश्वधैः ॥ १ ॥
कुन्तैः शरैः शतघ्नीभिः संक्रमैः शक्तिभिर्दृढम् । निजघ्नुर्वानरानीकं महाकाया महाबलाः ॥ २ ॥
राक्षसांश्च तदा जघ्नुर्वानरा जितकाशिनः । वृक्षैर्ग्रावैः पर्वतैश्च मुष्टिभिः करताडनैः ॥ ३ ॥
ते हयैश्च गजैश्चैव रथैः कांचनसन्निभैः । रक्षोव्याघ्रा युयुधिरे नादयन्तो दिशो दश ॥ ४ ॥
एवं परस्परं चक्रुर्युद्धं वानरराक्षसाः । नलो जघान धूम्राक्षं वज्रदंष्ट्रं स मारुतिः ॥ ५ ॥
नरांतकं स तारेयः सुषेणस्तं महोदरम् । चतुर्थांशावशेषेण निहतं राक्षसं बलम् ॥ ६ ॥
तदांगदाद्याश्चत्वारो महावाद्यमहोत्सवैः । प्रणेमू राममागत्य जयघोषप्रपूरिताः ॥ ७ ॥
स्वसैन्यं निहतं दृष्ट्वा मेघनादो ययौ तदा । सर्पास्त्राद्व्याकुलं रामं चकार बंधुवानरैः ॥ ८ ॥
रामः सस्मार तार्क्ष्यं स तार्क्ष्यः सार्पं न्यवारयत् । ततः स्वस्थो ब्रह्मवरादंतर्धानं गतोऽसुरः ॥ ९ ॥
सर्वास्त्रकुशली व्योम्नि ब्रह्मास्त्रेण समन्ततः । ववर्ष शरजालानि ब्रह्मास्त्रं मानयंस्तदा ॥१०॥
क्षणं तूष्णीमुवासाथ रामः स बंधुवानरैः । ततः स्वस्थो रघुश्रेष्ठो ददर्श पतितं बलम् ॥११॥
मूर्छागतं ब्रह्मपाशैस्तदा लक्ष्मणमब्रवीत् । चापमानय सौमित्रे ब्रह्मास्त्रेणासुरान् क्षणात् ॥१२॥

द्वारपर महोदरको वस्त्रादिके दानसे तन्तुष्ट करके शीघ्र सेनाके साथ भेज दिया । वे लोग भी रावणको नमस्कार करके युद्धभूमिपर गये ॥ २७४ ॥ २७५ ॥ इस प्रकर राम-रावणकी सेनाएँ परस्पर युद्ध करनेके लिए भीषण गर्जन करती हुई एक दूसरेके सामने जा डटीं ॥ २७६ ॥ इति श्रीशतकोटिरामचरितांतर्गते श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये सारकांडे 'ज्योत्स्ना' भाषाटीकायांरामरावणसेनासंयोगो नाम दशमः सर्गः ॥ १० ॥

शिवजी बोले—बादमें वे सब महाकाय तथा महाबली राक्षस बड़े क्रोधके साथ दरवाजोंसे निकल-निकल कर बर्छी, तलवार, त्रिशूल, भाला, बाण, तोप तथा शक्तियें लेकर वानरी सेनाको दृढ़ताके साथ मारने लगे ॥ १ ॥ २ ॥ विजयी वानर भी वृक्ष, पत्थर, पर्वत, मुक्के तथा थप्पड़ोंसे राक्षसोंको पीटने लगे ॥ ३ ॥ उधर राक्षस भी दशों दिशाओंको गुञ्जाते हुए घोड़े, हाथी तथा सुवर्णसदृश रथोंपर आरूढ़ होकर युद्ध करने लगे ॥ ४ ॥ इस प्रकार वानर और राक्षस आपसमें लड़ने लगे । नलने धूम्राक्षको और मारुतिने वज्रदंष्ट्रको मारा ॥ ५ ॥ तारासुत अङ्गदने नरान्तकको मारा और सुषेणने महोदरको मार डाला । इस प्रकार राक्षसोंकी सेना चार भागोंमेंसे केवल एक भाग बाकी रही और सब मार दी गयी ॥ ६ ॥ तब अंगदादि चारों वीरोंने जयध्वनि करते हुए सोत्साह बाजे-गाजेके साथ रामके पास जाकर प्रणाम किया ॥ ७ ॥ अपने सैन्यको निहत देखकर मेघनादने सर्पास्त्रसे बाँधकर भाई लक्ष्मण तथा वानरों सहित रामको व्याकुल कर दिया ॥८॥ तब रामने गारुडास्त्रका स्मरण किया । उसने आकर उस सर्पास्त्रका निवारण किया । तब वह असुर मेघनाद ब्रह्माके वरके प्रतापसे अन्तर्धान हो गया और सभी शस्त्रास्त्रोंको चलानेमें कुशल इन्द्रजित् अलक्षित होकर आकाशसे चारों तरफ ब्रह्मास्त्र द्वारा बाणोंकी वर्षा करने लगा । उस समय ब्रह्मास्त्रकी मर्यादा रखनेके लिये बन्धु तथा वानरों सहित राम क्षणभरके लिए चुप हो गये । तदनन्तर जब स्वस्थ होकर रामने निहारा तो अपनी सेनाको

भस्मीकरोमि तच्छ्रुत्वा लङ्कामिंद्रजयो ययौ । विलपतौ स्वसान्निध्ये यत्र वायुजराक्षसौ ॥१३॥
वरदानाद्ब्रह्मणस्तौ दृष्ट्वा रामः स जीवितौ । तावुवाच रघुश्रेष्ठो युवाभ्यां जांबवान् रणे ॥१४॥
गत्वाऽस्ति जीवितश्चेद्धि वाच्यस्तर्हि गिरा मम। उपायं चिंतयस्वाद्य वानराणां सुजीवने ॥१५॥
तद्रामवचनं श्रुत्वा तौ विभीषणमारुती । निशीथे तौ विचिन्वंतौ जांबवंतं प्रजग्मतुः ॥१६॥
उल्मूकहस्तौ तं दृष्ट्वा प्रोचतू राघवेरितम् । जांबवानपि तां रामगिरं श्रुत्वाऽतिहर्षितः ॥१७॥
निमीलिताक्षः प्रोवाच कौ युवां वायुजो रणे । चेदस्ति जीवितस्तर्हि जीवयिष्यति वानरान् ॥१८॥
तदा विभीषणः प्राह त्वया त्यक्त्वांगदादिकान्। पृच्छयतेऽद्य कथं वायुपुत्रस्य परमादरात् ॥ १९॥
तदा विभीषणं प्राह जांबवानृक्षसत्तमः । रुद्रावतारः संजज्ञे वायुपुत्रः प्रतापवान् ॥२०॥
न ज्ञेयः कपिरेवात्र तस्मात्त्वं विलोकय । तदाऽब्रवीज्जांबवंतं नत्वा स वायुनन्दनः ॥२१॥
यं त्वं पृच्छसि सोऽद्याहं जीवितोऽस्म्यद्य मारुतिः । विभीषणो द्वितीयोऽयं यस्त्वया परिभाषते ॥२२॥
तदा स जांबवांस्तुष्टो मारुतिं वाक्यमब्रवीत् । गत्वा क्षीरनिधिं वेगाद्द्रोणाद्रिं त्वं समानय ॥२३॥
तथेत्युक्त्वा त्वरन् गत्वा गंधर्वैर्गोपितं नगम्। कामधेन्वा स्त्रोयधर्मनेत्रलेपात्प्रदर्शितम् ॥२४॥
उत्पाट्य पुष्पवद्भूत्वाऽऽनयामास कपिर्जवात् । पर्वतोद्भववल्लीनामवघ्रायामृतोपमम् ॥२५॥
सुगंधं जीवयिष्यंति राक्षसाश्चेति शंकया । निहतान् राक्षसान्सर्वांस्तदा तार्क्ष्यविभीषणौ ॥२६॥
चिक्षिपतुः सागरे तान् राघवस्याज्ञया क्षणात् । तदानीं तं गिरिं दृष्ट्वा सुषेणः स भिषग्वरः ॥२७॥
पर्वतोद्भववल्लीभिर्जीवयामास तान् कपीन् । ततः शाखामृगाः सर्वे समुत्तस्थुर्विजृम्भिताः ॥२८॥
द्रोणाचलं यथास्थाने स्थापयामास मारुतिः । कुबेरार्पितदिव्यांभः प्रमृज्य नयनेषु च ॥२९॥

ब्रह्मपाशसे मूर्छित होकर जमीनपर पड़ी देखा। सो देखकर उन्होंने लक्ष्मणसे कहा—हे सौमित्रे ! धनुष लाओ, मैं इन सब असुरोंको भस्म कर दूँगा। यह सुनकर मेघनाद लङ्काको भाग गया। उस समय रामने अपने पास ही विलाप करते हुए तथा ब्रह्माके वरदानसे जीवित वायुपुत्र और विभीषणको देखकर उन दोनोंसे कहा—तुम लोग रणांगणमें जांववान्के पास जाओ और यदि वे जीवित हों तो उन्हें मेरा सन्देश सुनाते हुए कहो कि वानरोंके जीवित होनेका कोई उपाय हो सके तो सोचें॥ ९-१५ ॥ रामकी आज्ञा सुनकर मारुति तथा विभीषण अर्धरात्रिके समय जांववान्को खोजने निकले ॥ १६ ॥ दोनोंने हाथोंमें मशालें ले लीं। खोजते-खोजते जब जम्बवान् मिले तो उन्हें रामका संदेश सुना दिया। जांववान् यह सुनकर बहुत प्रसन्न हुए ॥ १७ ॥ आँखोंको निमीलित किये हुए ही वे बोले कि तुम दोनों कौन हो ? यदि वायुपुत्र हनुमान् इस रणक्षेत्रमें जीवित हों तो वे सब वानरोंको जिला लेंगे ॥ १८ ॥ तब विभीषणने कहा—हे जांववान् ! तुमने अंगद आदि वीरोंको छोड़कर बड़े आदरके साथ वायुपुत्रको ही क्यों पूछा ? ॥ १९ ॥ ऋक्षोंमें श्रेष्ठ जांववान्ने विभीषणको उत्तर दिया कि प्रतापी वायुपुत्र हनुमान् साक्षात् रुद्रके अंशसे उत्पन्न हुए हैं ॥ २० ॥ उनको केवल कपि ही न समझो। अब तुम उनका पता लगाओ। तब हनुमान्ने नमस्कार करके जांववान्से कहा—॥ २१ ॥ जिसको आप पूछ रहे हैं, वह मारुति जीवित खड़ा है। दूसरा जो आपसे बातें कर रहा है, वह विभीषण है ॥ २२ ॥ तदनन्तर प्रसन्न होकर जांववान्ने मारुतिसे कहा—तुम क्षीरसागर जाकर शीघ्र द्रोणाचलको ले आओ ॥ २३ ॥ 'तथास्तु' कहकर हनुमान् शीघ्र चल दिये और गन्धर्वों द्वारा सुरक्षित तथा कामधेनुका पसीना लगे नेत्रोंसे दिखाई देते हुए उस पर्वतको उखाड़कर फूलकी तरह शीघ्र उठा ले आये। इधर इस शङ्कासे कि पर्वतोत्पन्न वल्लियोंकी अमृतोपम सुगन्धिसे राक्षस भी जी जायेंगे, गरुड तथा विभीषणने उन्हें रामकी आज्ञासे उठा-उठाकर समुद्रमें फेंक दिया। अब वैद्यवर सुषेणने द्रोणगिरिको देखकर पर्वतोत्पन्न बूटियोंसे उन मरे हुए वानरोंको जिलाना आरम्भ किया। सहसा वे सब वानर जँभाई ले लेकर खड़े होने लगे ॥ २४-२८ ॥ तदनन्तर मारुति पुनः द्रोणाचलको यथास्थान रख आये और कुबेरके दिये हुए दिव्य जलको आँखोंमें लगाकर वे रणमें राम आदि अन्तर्हितोंको देखने लगे। उसी समय रावणने भी अतिनाद, प्रहस्त,

अन्तर्हितानां रामाद्या दर्शनं प्रापुराहवे । ततः संप्रेषयामास रावणः स्वीयमंत्रिणः ॥३०॥
अतिनादः प्रहस्तश्च महानाददरीमुखाः । देवशत्रुर्निकुम्भश्च देवांतकनरान्तकौ ॥३१॥
सारणाद्या बलैरन्ये युयुधुर्वानरैः सह । तान्सर्वानंगदाद्यास्ते हत्वा तस्थुर्विगर्जिताः ॥३२॥
तदा कुंभनिकुंभौ द्वौ कुंभकर्णसुतोत्तमौ । रावणः प्रेषयामास युद्धार्थं तौ प्रजग्मतुः ॥३३॥
तदा कुंभो जम्बवता निहतश्च रणाजिरे । अंगदेन निकुम्भश्च हतः श्रुत्वा दशाननः ॥३४॥
अतिकायं स्वीयपुत्रं प्रेषयामास संगरम् । अतिकायेन सौमित्रिः कृत्वा संगरमुल्बणम् ॥३५॥
शरेण पातयामास लङ्कायां तच्छिरो महत् । तदा ययौ रावणः स स्वयं युद्धाय वेगतः ॥३६॥
सुहृन्मित्रजनैर्युक्तो वेष्टितः पुरवासिभिः । रणे विभीषणं दृष्ट्वा कोपाच्छक्तिं मुमोच सः ॥३७॥
पृष्ठे विभीषणं कृत्वा ययावग्रे स लक्ष्मणः । हृदि सताडितः शक्त्या पपात भुवि लक्ष्मण ॥३८॥
लक्ष्मणं नगरीं नेतुं तं ययौ स दशाननः । न चचाल भुजस्तस्य सौमित्रेः शेषरूपिणः ॥३९॥
तं नेतुकामं हनुमान् हृदि मुष्ट्या व्यताडयत् । तेन मुष्टिप्रहारेण पपात रुधिरं वमन् ॥४०॥
आनयामास सौमित्रिं मारुतिः कपिवाहिनीम् । रथारूढो रावणोऽपि विव्याध मारुतिं शरैः ॥४१॥
ततः क्रुद्धेन रामेण बाणेन हृदि ताडितः । साश्वध्वजं रथं सूतं रावणो धनुरोजसा ॥४२॥
छत्रं पताकां तरसा चिच्छेद शितसायकैः । अर्धचन्द्रेण चिच्छेद तत्किरीटं रविप्रभम् ॥४३॥
ततस्तं व्याकुलं दृष्ट्वा रामो रावणमब्रवीत् । गच्छाद्य लङ्कामाश्वस्तः श्वस्त्वं पश्य बलं मम ॥४४॥
ततो लज्जानतशिरा ययौ लङ्कां दशाननः । रामोऽपि लक्ष्मणं दृष्ट्वा मूर्च्छितं प्राह मारुतिम् ॥४५॥
द्रोणाचलं समानीय जीवयैनं तथा कपीन् । तथेति स ययौ वेगात्तज्ज्ञात्वा स दशाननः ॥४६॥
प्रार्थयित्वा कालनेमिं तद्विघ्नार्थमचोदयत् । स गत्वा हिमवत्पार्श्वं तपोवनमकल्पयत् ॥४७॥
तत्र शिष्यैः परिवृतो मुनिवेषधरः स्थितः । मारुतिश्चाश्रमं दृष्ट्वा जलं पातुं विवेश तम् ॥४८॥

महानाद, दरीमुख, देवशत्रु, निकुम्भ, देवान्तक तथा नरान्तक आदि मंत्रियोंको भेजा ॥ २९–३१ ॥ सारणादि दैत्योंने भी बहुत-सी सेना लेकर वानरोंके साथ युद्ध किया । अङ्गद आदि वानर उन सबको मारकर गर्जन करने लगे ॥ ३२ ॥ तब कुम्भकर्णके पुत्र कुम्भ तथा निकुम्भको रावणने युद्धके लिए भेजा ॥ ३३ ॥ सुमित्रापुत्र लक्ष्मणने उनके साथ घोर युद्ध करके उनके सिरोंको बाणसे काटकर लङ्कामें फेंक दिया । तब रावण स्वयं लड़नेके लिए निकल पड़ा ॥ ३४–३६ ॥ उसके साथ मित्र सुहृद् तथा पुरवासी लोग भी गये । रावणने रणमें विभीषणको देखकर उसपर शक्तिका प्रहार किया ॥ ३७ ॥ यह देखकर लक्ष्मणने विभीषणको पीछे कर लिया और स्वयं आगे खड़े हो गये । जिससे वह शक्ति लक्ष्मणके हृदयमें लगी और वे धड़ामसे पृथ्वीपर गिर पड़े ॥ ३८ ॥ उन्हें नगरमें उठा ले जानेके लिये दशानन आगे बढ़ा और उनको उठाना चाहा, पर शेषावतारस्वरूप लक्ष्मणका एक हाथ भी रावणसे नहीं हिला ॥ ३९ ॥ उस समय अवसर देखकर हनुमान्ने रावणकी छातीमें एक मुक्का मारा । उस मुष्टिप्रहारसे रावणके मुखसे रुधिर निकलने लगा और वह धरतीपर गिर पड़ा ॥ ४० ॥ तदनन्तर मारुति लक्ष्मणको कपिसेनामें उठा ले आये । तभी रावण रथपर सवार होकर मरुतिको बाणोंसे बींधने लगा ॥ ४१ ॥ यह देखकर क्रुद्ध रामने रावणके हृदयमें बाण मारा और अश्व तथा ध्वजा सहित रथको, सारथीको, धनुषको, छत्रको तथा पताकाको अपने तीक्ष्ण बाणोंसे काट गिराया । अर्धचन्द्राकार बाणसे उन्होंने उसका सूर्यके समान तेजस्वी किरीट भी काट डाला ॥ ४२ ॥ ४३ ॥ पश्चात् रावणको व्याकुल देखकर रामने कहा—जा, लङ्कामें भाग जा और आश्वस्त होकर कल फिर मेरा बल देखना ॥ ४४ ॥ तब रावण नीचा मुख किये लङ्कामें चला गया । रामने लक्ष्मणको मूर्छित देखकर मारुतिसे कहा—॥ ४५ ॥ पूर्ववत् द्रोणाचल लाकर लक्ष्मणको जिलाओ । 'तथास्तु' कहकर हनुमान् चल पड़े । इस बातका पता लगनेपर दशाननने कालनेमिसे प्रार्थना करके उसको हनुमान्के रास्तेमें विघ्न डालनेके लिए भेजा । उसने जाकर हिमवान् पर्वतके पास एक तपोवनकी रचना की ॥ ४६ ॥ ४७ ॥ वहाँ बहुतसे शिष्योंको साथ लेकर वह स्वयं मुनिवेष धारण करके बैठ गया ।

मुनिना मानितश्चापि जलकुम्भः प्रदर्शितः । मारुतिः प्राह तृप्तिर्मे नैव तेन भविष्यति ॥४९॥
तं पुनः प्राह स मुनिस्तटाकं निकटस्थितम् । गच्छाक्षिणी पिधाय त्वं जलं पिब यथासुखम् ॥५०॥
आगच्छाशु पुनश्चात्र सुखं तिष्ठ ममान्तिकम् । जानामि ज्ञानदृष्ट्याऽहं लक्ष्मणश्चोत्थितस्त्विति ॥५१॥
गृहाण मंत्रान् मत्तस्त्वं यैश्च पश्यसि तं गिरिम् । गोपितं त्वद्य गधर्वैर्यं तं त्वं नेतुमिच्छसि ॥५२॥
प्लवंगानां जीवनार्थं लङ्कायां वेगतः कपे । मत्तस्त्वं लब्धविद्यः सन् ददस्व गुरुदक्षिणाम् ॥५३॥
तथेति मारुतिर्गत्वा कासारमपिवज्जलम् । पिधाय नेत्रे तावत्तमग्रसन्मकरी तदा ॥५४॥
सोऽपि तां दारयामास धृत्वास्ये सा ममार ह । ततोऽन्तरिक्षे सा प्राह दिव्यरूपा तु मारुतिम् ॥५५॥
पुराऽहं मुनिना स्पृश्या प्रार्थिता न रतिर्मया । दत्ता शप्ताऽस्मि त्वत्तो मे निष्कृतिस्तेन कीर्तिता ॥५६॥
धान्यमालीति विख्याताऽप्सराः पूर्वं भवांतरे । आश्रमे यस्त्वया दृष्टः कालनेमिर्महासुरः ॥५७॥
रावणप्रेषितो मार्गे स्थितस्तं जहि वेगतः । तथेति मारुतिर्गत्वा मुनिं प्राह त्वरान्वितः ॥५८॥
मुष्टिं बद्ध्वा दृढां घोरां गृहाण गुरुदक्षिणाम् । इत्युक्त्वा ताडयामास हृदि त मुष्टिना तदा ॥५९॥
पपात भुवि रक्तं स वमन् प्राणान् जहौ क्षणात् । ततः क्षीरनिधिं गत्वा जित्वा गंधर्वसत्तमान् ॥६०॥
द्रोणाचलं गृहीत्वा स यावद्गच्छति मारुतिः । विहायसाऽतिवेगेन लङ्कां तावच्च वै पथि ॥६१॥
भरतेन शरं मुक्त्वा पर्वतो भुवि पातितः । भरतं मारुतिर्दृष्ट्वा रामोऽयमिति विह्वलः ॥६२॥
उवाच मधुरं वाक्य कथमत्र समागतः । जितः किं रावणेन त्वं रणं त्यक्त्वा पलायितः ॥६३॥
एवमुक्तोऽपि भरतः पुनस्तं मारुतिं वरम् । मत्वाऽयं राक्षसश्चेति संदधे निशितं शरम् ॥६४॥

मारुति रास्तेमें मुनिका आश्रम देखकर उसमें जल पीनेके लिए गये ॥ ४८ ॥ मुनिने मारुतिका सम्मान किया और जल पीनेके लिये उनको एक भरा घड़ा दिखाया। तब हनुमान्‌ने कहा कि इतनेसे मेरी तृप्ति नहीं होगी ॥ ४९ ॥ तब मुनिने उन्हें एक तालाब दिखाया और कहा कि वहाँ जाकर तुम आँखोंको बन्द करके आनन्दपूर्वक जल पी लो ॥ ५० ॥ बादमें आकर यहाँ मेरे पास शान्तिसे बैठो। मुझे ज्ञानदृष्टिसे पता लग गया है कि लक्ष्मण उठ खड़ा हुआ है। इसलिए अब चिन्ताकी कोई बात नहीं है ॥ ५१ ॥ दूसरी बात यह है कि मैं तुम्हें कुछ ऐसे मन्त्र बताऊँगा कि जिनसे तुम्हें गन्धर्वों द्वारा रक्षित वह पर्वत दिखलाई दे जायगा; जिसको कि तुम ले जाना चाहते हो ॥ ५२ ॥ उसको लङ्कामें ले जाकर तुम वानरोंको शीघ्र जिला सकते हो। इस प्रकारकी विद्या मुझसे ग्रहण करनेके बाद तुम्हें मुझे गुरुदक्षिणा भी देनी होगी ॥ ५३ ॥ 'बहुत अच्छा' कहकर मारुतिने तालाबपर जाकर जल पिया, परन्तु नेत्र बन्द होनेके कारण उस समय एक मकरीने आकर उन्हें पकड़ लिया ॥ ५४ ॥ तब मारुतिने उसका मुँह पकड़कर चीर डाला। जिससे वह मकरी मर गयी। पश्चात् वह दिव्य रूप धारण करके आकाशमें जाकर मारुतिसे बोली—॥ ५५ ॥ पूर्वकालमें एक मुनिने मुझको दुराचार करनेके लिए कहा, परन्तु जब मैंने उन्हें रति नहीं दी। तब उन्होंने मुझे मकरी होनेका शाप देकर कहा कि तेरा निस्तार मारुतिसे होगा ॥ ५६ ॥ पूर्वजन्ममें मैं धान्यमाली नामकी विख्यात अप्सरा थी। यहाँ आश्रममें जो एक मुनि बैठा हुआ आपने देखा है, वह कालनेमि नामका महान् राक्षस है ॥ ५७ ॥ रावणने उसको आपके मार्गमें विघ्न डालनेके लिए भेजा है। आप शीघ्र जाकर उसको मार डालें। 'अच्छी बात है' कहकर मारुति तुरन्त वहाँ पहुँचे ॥ ५८ ॥ उन्होंने दृढ़ मुक्का बाँधकर 'यह लो अपनी गुरुदक्षिणा' ऐसा कहते हुए उसकी छातीमें जोरसे मुक्का मारा ॥ ५९ ॥ उस प्रहारसे वह जमीनपर लुढ़क पड़ा। उसके मुँहसे रक्त बहने लगा और क्षणभरमें वह मर गया। तदनन्तर क्षीरसागर जा तथा गन्धर्वोंको जीतकर द्रोणाचलको लिये हनुमान् आकाशमार्गसे जा रहे थे कि रास्तेमें भरतने बाण मारकर उनके हाथसे वह पर्वत गिरा दिया। हनुमान् भरतको देख उन्हें भ्रमवश राम समझकर घबरा गये ॥ ६०–६२ ॥ उन्होंने मधुर वाणीमें कहा—हे राम! आप यहाँ कहाँसे और क्यों आ गये? क्या आपको रावणने जीत लिया? अथवा रण छोड़कर आप यहाँ भाग आये हैं ॥ ६३ ॥ मारुतिके इतना कहनेपर भी भरतने उन्हें राक्षस समझकर मारनेके लिए एक

बाणहस्तं तमालोक्य भुभुकारं विधाय सः । नैवायं राघवश्चेति मत्वा ध्यात्वा क्षणं हृदि ॥६५॥
भरतं मारुतिः प्राह रामदूतोऽद्य मे बलम् । पश्यसि त्वं तद्गिरं तां श्रुत्वा तं भरतोऽब्रवीत् ॥६६॥
बंधुना मम रामेण कुतो वद समागमः । तत्र जातं सविस्तारं दंडकारण्यवासिना ॥६७॥
ततस्तं मारुतिर्वृत्तं संश्राव्य राघवस्य तु । भरतेनेषुणा दत्तं गिरिं धृत्वा ययौ पुनः ॥६८॥
लङ्कां गत्वा स वल्लीभिर्जीवयामास लक्ष्मणम् । वानरांश्च भरतस्य रामं वृत्तं न्यवेदत् ॥६९॥
पुनर्नीत्वा यथास्थानं तं संस्थाप्य महाचलम् । लक्ष्मणो जीवितश्चेति संश्राव्य भरतं पुनः ॥७०॥
ययावाकाशमार्गेण लङ्कां गन्तुं मनो दधे । नृपानाकारयामास साकेतं भरतोऽपि सः ॥७१॥
साहाय्यार्थं राघवस्य लंकां गन्तुं मनो दधे । ततः सभायामासीनो रावणः प्राह राक्षसान् ॥७२॥
गच्छध्वं त्वरितं दूताः पाताले तौ महाबलौ । ऐरावणो महानुग्रस्तथा मैरावणो महान् ॥७३॥
तयोर्मे कथनीयं हि युद्धवृत्तं वयस्ययोः । तथेति ते गता दूतास्तौ तद्वृत्तं न्यवेदयन् ॥७४॥
तौ श्रुत्वा विह्वलात्मानौ लङ्कायां समवस्थितौ । रामं च लक्ष्मणं हंतुं निशायां तौ समागतौ ॥७५॥
ददर्शतुस्तौ पुच्छस्य परिघ हि हनूमतः । कपीनां तत्र सेनायास्तदाकाशान्महाबलौ ॥७६॥
निपेततुः कपीनां तु सेनायां रामलक्ष्मणौ । किंचिद्विनिद्रितौ दृष्ट्वा शिलायां संगरश्रमात् ॥७७॥
निन्यतुस्तौ शिलां शीघ्रं पातालं निजमन्दिरम् । एतस्मिन्नंतरेऽदृष्ट्वा सेनायां रामलक्ष्मणौ ॥७८॥
मारुतिः पादमार्गेण तयोः पातालमाययौ । एतस्मिन्नन्तरे मार्गे लङ्कादक्षिणदिक्तटे ॥७९॥
निकुंभिलायां स्वपतिं कपोती प्राह गुर्विणी । नाथाद्य नरमांसं मे भोक्तुं स्पृहयते मनः ॥८०॥
स प्राहाद्य समानीतौ वर्तेते रामलक्ष्मणौ । रसातलं हि दैत्याभ्यां देव्यग्रेतौ वधिष्यतः ॥८१॥
अथ श्वस्तद्वधे जाते मांसमानीय तेऽर्पये । तद्वाक्यं मारुतिः श्रुत्वा किंचित्तोषयुतो ययौ ॥८२॥

और तेज बाण धनुषपर चढ़ाया ॥ ६४ ॥ उनको हाथमें बाण लिये देख मारुति भू-भू करके मनमें यह सोचकर कि ये राम नहीं हैं ॥ ६५ ॥ भरतसे बोले कि 'मैं रामका दूत हूँ । आज तुम देख लो ।' उनका यह वाक्य सुनकर भरतने कहा – ॥ ६६ ॥ दण्डकारण्यवासी मेरे भाई रामके साथ तुम्हारा समागम कहाँ हुआ ? सो विस्तारपूर्वक कहो । तब मारुति भरतको सब हाल सुनाकर भरत द्वारा दिये हुए उस पर्वतको पुनः उठाकर चल पड़े ॥ ६७ ॥ ६८ ॥ लङ्कामें जा तथा जड़ियोंसे लक्ष्मण तथा वानरोंको जीवित करके उन्होंने रामको भरतका समाचार कह सुनाया ॥ ६९ ॥ फिर वहाँसे ले जाकर द्रोणाचलको उसके स्थानपर रख आये और भरतको लक्ष्मणके जीवित हो उठनेका शुभ समाचार भी सुना दिया ॥ ७० ॥ इतना काम करके हनुमान् पुनः बड़ी तेजीके साथ लङ्कामें लौट आये । उधर भरतने अयोध्यामें सब राजाओंको एकत्र करके लङ्कामें जाकर रामको सहायता देनेका विचार किया । तभी सभामें बैठे रावणने भी राक्षसोंको बुलाकर कहा–॥ ७१ ॥ ७२ ॥ हे दूतों ! तुम लोग शीघ्र पातालमें जाकर वहाँ रहनेवाले महान् उग्र ऐरावण तथा महान् मैरावण इन दोनों मेरे मित्रोंको यहाँके युद्धका समाचार सुनाओ । 'तथाऽस्तु' कहकर वे दूत वहाँ गये और उन दोनोंको सब वृत्तांत निवेदन कर दिया ॥ ७३ ॥ ७४ ॥ यह सुनकर वे दोनों बड़ी आतुरताके साथ लङ्कामें आ पहुँचे और रात्रिके समय राम-लक्ष्मणका हरण करनेके लिये रामके शिविरमें गये ॥ ७५ ॥ वहाँ उन दोनोंने वानरोंकी सेनाके चारों ओर हनुमान्की पूँछका बना हुआ दुर्गम परिघ देखा । तब महाबलान् उन दैत्योंने आकाश-मार्गसे कूदकर कपियोंकी सेनामें प्रवेश किया । वहाँ राम-लक्ष्मणको एक शिलापर युद्धश्रमसे थककर सोते हुए देख उन दोनोंने उस शिला समेत राम-लक्ष्मणको उठा लिया और पातालमें ले गये । रास्तेमें लङ्काके दक्षिण किनारे निकुम्भिला गुफामें स्थित एक गर्भवती कपोतिका अपने पतिसे कह रही थी कि हे नाथ ! आज मुझे नरमांस खानेकी इच्छा हो रही है ॥ ७६–८० ॥ पतिने कहा–आज दो दैत्य राम-लक्ष्मणको रसातलमें ले आये हैं । वे दोनों देवीके सम्मुख मारे जायँगे ॥ ८१ ॥ कल उनका वध हो जानेपर मैं

तावद्ददर्श तद्द्वारि संस्थितं मकरध्वजम् । स धृत्वा तं हनूमन्तं पप्रच्छ मकरध्वजः ॥८३॥
कस्त्वं कुतः समायातः स्ववृत्तं प्राह मारुतिः । रामदूतस्तु लङ्कायाश्चानीतौ रामलक्ष्मणौ ॥८४॥
निद्रितौ निशि दैत्याभ्यामत्र पातालमद्य हि । तयोः शोधार्थमायातश्चेत्त्वं वेत्सि वदस्व तौ ॥८५॥
तन्मारुतिवचः श्रुत्वा तं प्राह मकरध्वजः । पिता मे वर्तते तत्र क्षेमेणांजनिसंभवः ॥८६॥
तच्छ्रुत्वा चकितः प्राह हनुमान् मकरध्वजम् । हनूमतः कुतः पत्नी सोऽब्रवीन्मारुतिं पुनः ॥८७॥
लङ्कादाहं पुरा कृत्वा सागरे शीतलं कृतम् । यदा पुच्छं मारुतिना तदा तद्धूमपूरितात् ॥८८॥

कंठाच्छ्लेष्मा बहिस्त्यक्तः सागरे सोऽपतत्तदा ।
मकर्या भक्षितः सोऽपि तस्यां जातः सुतोऽस्म्यहम् ॥८९॥

तच्छ्रुत्वा मारुतिः प्राह सोऽयमेव न संशयः । तदा ननाम पितरं तथा वृत्तं न्यवेदयत् ।९०॥
कामाख्यायाश्च बलिं कर्तुं निश्चितौ पूर्वमेव हि । तावानेतुं यदोद्युक्तौ लङ्कां गत्वा सुरोत्तमौ ॥९१॥
श्वः कामाख्याः पुरः कर्तुं तयोर्दानं विनिश्चितम् । गच्छ देवालये गत्वा तत्र स्थित्वा हरस्व तौ ॥९२॥
ततः स मारुतिर्गत्वा त्रसरेणुस्वरूपधृक् । देवालये प्रविश्याथ कपाटानि बबंध सः ॥९३॥
तावद्दैत्यौ समायातौ पूजार्थं द्वारि संस्थितौ । शनैर्देव्याः स्वरेणैव मारुतिस्तौ वचोऽब्रवीत् ॥९४॥
पूजा कार्या गवाक्षेण सजीवौ रामलक्ष्मणौ । वनोद्भवैः फलैः पुष्पादिभिः सम्यक् प्रपूजितौ ॥९५॥
धृतकोदण्डतूणीरौ वन्यपुष्पैश्च शोभितौ । देवालयस्य किंचिद्धि द्वारमुद्घाट्य वै शनैः ॥९६।
मत्तुष्ट्यर्थं प्रेषणीयावत्र मामद्य मानवौ । येन केन प्रकारेण यो मामद्य प्रपश्यति ।९७॥
भविष्यति निश्चयेन सोऽन्धो नास्त्येव संशयः । तद्देव्या वचनं श्रुत्वा तुष्टां ज्ञात्वाऽम्बिकां मुदा ॥९८॥

तेरे लिए नरमांस ला दूँगा। इस बातको सुनकर मारुति कुछ संतुष्ट होकर आगे बढ़े ॥ ८२ ॥ आगे जाकर उन्होंने उसके द्वारपर मकरध्वजको बैठे देखा। उस मकरध्वजने मारुतिको पकड़ लिया और पूछा—॥ ८३ ॥ तुम कौन हो और कहाँसे आये हो ? मारुतिने अपना परिचय दिया कि मैं रामका दूत हूँ। सोते हुए राम-लक्ष्मणको लङ्कासे दो राक्षस उठाकर यहाँ पातालमें आज ही ले आये हैं। मैं उन दोनोंकी खोज करने यहाँ आया हूँ। यदि तुमको उनका कुछ पता हो तो बताओ ॥ ८४॥ ८५ ॥ मारुतिके इस वचनको सुनकर मकरध्वजने पूछा कि मेरे पिता अञ्जनीकुमार हनुमान् वहाँ कुशलक्षेमसे हैं ? ॥ ८६ ॥ यह सुना तो हनुमान्ने चकित होकर पूछा– अरे ! हनुमान्की स्त्री ही कौन सी थी कि जिससे तू पैदा हुआ ? उसने मारुतिको उत्तर दिया—॥ ८७ ॥ जब हनुमान्ने लंकाको जलाकर अपनी पूँछ समुद्रमें ठण्डी की थी। उस समय उन्होंने धुएँसे जमा हुआ कंठका कफ जलमें थूक दिया था। उसे एक मछलीने खा लिया। बस, उसीसे उत्पन्न मैं उनका पुत्र हूँ ॥ ८८ ॥ ८९ ॥ यह सुनकर मारुतिने कहा कि यदि ऐसा है, तब तो मैं ही अञ्जनीपुत्र हूँ। यह बात सर्वथा सत्य है। तब मकरध्वजने अपने पिता हनुमान्को प्रणाम किया और सब समाचार भी कह सुनाया ॥ ९० ॥ उसने कहा कि जब वे दोनों असुर यहाँसे राम-लक्ष्मणको लेनेके लिए लंका गये थे, उससे पूर्व ही उन दोनोंने राम-लक्ष्मणको कामाक्षी देवीके सामने बलिदान देनेका निश्चय कर लिया था। तदनुसार कल उन दोनोंका देवीके सम्मुख बलिदान देना निश्चित हो चुका है। जाओ, देवालयमें जाकर खड़े हो जाओ और वहाँसे उन दोनोंको उठा ले जाना ॥ ९१ ॥ ९२ ॥ तत्पश्चात् हनुमान् त्रसरेणुके समान छोटा रूप धारण करके देवालयमें घुस गये तथा अन्दर जाकर चुपचाप खड़े हो गये। उसी समय मारुतिने भीतरसे देवीके जैसा स्वर बनाकर कहा—॥ ९३ ॥ ९४ ॥ आज तुम लोग झरोखेमेंसे ही मेरी पूजा कर लो और बादमें धनुष तथा तूणीरको धारण करनेवाले राम-लक्ष्मण नामके दोनों मनुष्योंको वनफूल तथा फलों और पुष्पमालाओंसे सुशोभित करके जीवित ही मेरी
9. प्रसन्नताके लिए तनिक-सी किवाड़ खोलकर धीरेसे भीतर कर दो। कोई मनुष्य यदि आज किसी प्रकार तनिक भी मुझको देखेगा तो वह अवश्य अन्धा हो जायगा। देवीके इस आदेशको

ततस्तौ पूजनं दैत्यौ गवाक्षेणैव चक्रतुः । पक्वान्नपायसादीनां राशींस्तौ प्रमुमोचतुः ॥९९॥
प्रंचामृतघटांश्चापि कोटिशस्तौ मुमोचतुः । कोटिशः फलभारैश्च गवाक्षेण मुमोचतुः ॥१००॥
तत्सर्वं भक्षयित्वा स मारुतिः प्राह तौ पुनः । किं दत्तं ग्रासमात्रं मे भोजनं क्षुधिताऽस्म्यहम् ॥१०१॥
तद्देव्या वचनं श्रुत्वा तौ दैत्यावतिस्मितौ । दूतैर्विलुंब्य हट्टांश्च तथा स्वीयपुरौकसाम् ॥१०२॥
भक्षणीयपदार्थांस्तौ गिरीनिव मुमोचतुः । राजगृहादिषु स्वेषु यद्यद्वस्त्वस्ति संचितम् ॥१०३॥
तच्चापि दूतैरानीय देव्यै शीघ्रं मुमोचतुः । तदा कोलाहलश्चासीत्प्रतिगेहे पुरौकसाम् ॥१०४॥
नासीच्छेषं बालकानां भक्ष्यवस्त्वण्वपि क्वचित् । ततस्तौ वन्यपुष्पाद्यैर्भूषितौ रामलक्ष्मणौ ॥१०५॥
धृतकोदंडतूणीरौ द्वारेणैवार्पितौ श्रियै । तौ दृष्ट्वा मारुतिर्नत्वाऽऽलिंग्य श्रीरामलक्ष्मणौ ॥१०६॥
कपाटानि तदोद्घाट्य दैत्ययोः स व्यतर्जयत् । ततो रामो लक्ष्मणेन बहिर्देवालयात्तदा ॥१०७॥
निर्गत्य शरजालैस्तौ जघान क्षणमात्रतः । सेवकान् सुहृदादींश्च तयोर्बाणैर्जघान सः ॥१०८॥
पुनस्तौ जीवितौ दैत्यौ पुनस्तेन निपातितौ । शतवारं हतावेवं नासीन्मृत्युस्तयोस्तदा ॥१०९॥
ततोऽतिविस्मितो भूत्वा त्वरन्गत्वा स मारुतिः । इतस्ततो भ्रमन्पुर्यां नारीं रहसि संस्थिताम् ॥११०॥
ऐरावणभोगपत्नीं पप्रच्छ मरणं तयोः । सा प्राह नागकन्याऽहं बलेनानेन धर्षिता ॥१११॥
मैरावणोऽपि मां नित्यं दुष्टबुद्ध्याऽत्र पश्यति । उभाभ्यामपि च क्रीडां दातुं नास्ति बलं मयि ॥११२॥
मित्रं त्वेको रिपुस्त्वेकस्त्वित्रति दुःखं तयोर्मम । अतस्तयोर्वधे तुष्टिर्मम चापि भविष्यति ॥११३॥
मारुते यदि रामो मां स्वस्त्रियं हि करिष्यति । तर्ह्यहं कथयाम्यद्य तयोर्मृत्युर्यतो भवेत् ॥११४॥
तच्छ्रुत्वा मारुतिः प्राह यदि श्रीरामभारतः । न भविष्यति भग्नस्ते मंचकस्तर्हि ते पतिः ॥११५॥

सुनकर दोनों दैत्योंने समझ लिया कि आज देवी भली भाँति हमपर प्रसन्न हुई हैं ॥ ९५–९८ ॥ बादमें दोनोंने गवाक्षमार्गसे ही देवीका पूजन किया। बताशे, मिठाई, मालपूए तथा खीर आदि भी झरोखेसे भीतर डाल दिया ॥ ९९ ॥ करोड़ों पञ्चामृतके घड़े अन्दर उँड़ेले और करोड़ों फलोंके ढेर वहींसे भीतर डाल दिये ॥ १०० ॥ वह सब खाकर मारुति पुनः उनसे कहने लगे—क्या तुमने कवलमात्र भोजन दिया है। मैं तो अभी बहुत भूखी हूँ ॥ १०१ ॥ देवीके इस वचनको सुनकर वे दोनों दैत्य बड़े विस्मयमें पड़ गये और अपने दूतों द्वारा दूकानोंका माल तथा नगरवासियोंके सब खाद्य पदार्थ लुटवाकर उसके पर्वतसदृश ढेरको भीतर डाल दिया। अपने राजगृहोंमें भी जो कुछ खाने-पीनेकी चीजें संचित कर रक्खी थीं, वे भी नौकरोंसे मँगवाकर देवीको समर्पण कर दीं। इससे पुरवासियोंके प्रत्येक घरमें बड़ा भारी कोलाहल मच गया। बच्चोंको खानेके लिए भी कहीं कुछ नहीं बचा। तदनन्तर कोदण्ड (धनुष) तथा तूणीर (तरकस) धारण किये हुए राम-लक्ष्मणकी वन्य पुष्पोंसे पूजा करके द्वारके रास्ते वीरेसे देवीको अर्पण कर दिया। उन्हें देखकर मारुतिने नमस्कार किया और उन दोनोंने हनुमान्को हृदयसे लगाया। तब हनुमान् किवाड़ खोलकर बाहर आये और उन दोनों दैत्योंको ललकारा। बादमें राम-लक्ष्मण भी देवालयसे बाहर निकल आये और उन्होंने शरसमुदायकी वर्षा करके उन दोनों राक्षसोंको क्षणभरमें मार डाला। ॥ १०२–१०८ ॥ पर वे दोनों राक्षस फिर जी गये। रामने फिर उन्हें मारा तो फिर जी गये और फिर मारा। इस प्रकार उन दोनोंको उन्होंने सौ बार मारे। परन्तु उनकी मृत्यु नहीं हुई ॥ १०९ ॥ तब चकित होकर मारुति उनकी मृत्युके उपायकी खोजमें इधर-उधर भ्रमण करने लगे तो नगरीके एक एकान्त स्थानमें स्थित ऐरावणकी भोगपत्नी (रखैल) को देखा और उससे उन दोनोंके मरणका उपाय पूछा। उसने कहा कि मैं एक नागकन्या हूँ। मेरे साथ ऐरावणने बलात्कार किया है ॥ ११० ॥ १११ ॥ मैरावण भी मुझे कुदृष्टिसे देखता है। इन दोनोंको रतिदान देनेकी सामर्थ्य मेरेमें नहीं है ॥ ११२ ॥ एक मेरा मित्र है और एक शत्रु है। पर उन दोनोंसे मुझे दुःख ही मिलता है। अतः इन दोनोंके मारे जानेपर मुझको तो आनन्द ही होगा ॥ ११३ ॥ किन्तु हे मारुते ! यदि राम मुझे अपनी स्त्री बनायें तो मैं वह उपाय बतला सकती हूँ, जिससे कि वे दोनों मारे जा सकें ॥ ११४ ॥ यही

भविष्यति रामचन्द्रस्तथेत्युक्त्वा तमाह सा । भ्रमरानेकदा पूर्वं बालैः कंटकरोपितान् ॥११६॥
मोचयामासतुस्तौ हि तेन तुष्टाश्च षट्पदाः । तावूचुस्ते युवाभ्यां हि मरणाद्रक्षिता वयम् ॥११७॥
यथा तथा युवां चापि रक्षामो मरणाद्वयम् ।इत्युक्त्वा ते स्थिताश्चात्र ते नीत्वाऽमृतमुत्तमम्॥११८॥
तद्रक्तबिंदून् स्पृष्ट्वा ते प्रकुर्वंति सजीवितौ । भ्रमरास्ते तयोर्निद्रास्थाने संत्यधुना कपे ॥११९॥
कोटिशस्तान्मर्द्यस्व सोऽपि तान्मर्दयत्क्षणात्। तत्रैकं शरणं प्राप्तं भ्रमरं प्राह मारुतिः ॥१२०॥
कुरु मंचकगर्भं त्वं गजभुक्तकपित्थवत् । ऐरावणभोगपत्न्याः षट्पदोऽपि तथाऽकरोत् ॥१२१॥
ततो निहत्य तौ दैत्यौ पुनर्बाणै रघूद्वहः । अभिषिच्य तयोः स्थाने राज्ये तं मकरध्वजम् ॥१२२॥
यावद्गंतुं मनश्चक्रे तावन्मारुतिनाऽर्थितः । नागकन्यागृहं गत्वा नानाचित्रविचित्रितम् ॥१२३॥
दृष्ट्वा तां चारुवदनां वस्त्रालङ्कारमण्डिताम् ।धृत्वा करेण तद्धस्तं किंचित्कृत्वा स्मिताननम् ॥१२४॥
चकार मञ्चकं भग्नं स्वभारेण रघूत्तमः । ततस्तया प्रार्थितः स रामस्तां पुनरब्रवीत् ।१२५॥
त्यक्त्वा देहं भुवं गत्वा भूत्वा ब्राह्मणकन्यका । तपस्तप्त्वा चिरं कालं तृतीये त्वं नु जन्मनि ॥१२६ ।
द्वापरे द्वारकायां हि मम पत्नी भविष्यसि । तद्रामवचनं श्रुत्वा रामाग्रेऽग्निं प्रविश्य सा ॥१२७॥
कन्याकुमारी नाम्नासीद्द्विजकन्याऽब्धिरोधसि। मारुतेः स्कंधसंस्थोऽभूत्तदा रामो मुदान्वितः ॥१२८॥
राज्ये कृत्वा मन्त्रिणं स्वं लक्ष्मणं मकरध्वजः । अकरोत्तं स्कंधसंस्थं शेषं ब्रह्माण्डधारकम् ॥१२९॥
ततः क्षणाज्जग्मतुस्तौ लंकां श्रीरामलक्ष्मणौ । श्रीरामलक्ष्मणौ दृष्ट्वा सुग्रीवाद्याश्च वानराः ॥१३०॥
तावालिंग्य मुहुर्नत्वा बभूवुस्तोषपूरिताः । रामोऽपि सकलं वृत्तं सुग्रीवादीन्न्यवेदयत् ॥१३१॥

सुनकर मारुतिने कहा कि यदि श्रीरामके भारसे तुम्हारा पलंग नहीं टूटेगा तो राम तुम्हारे पति बनेंगे ॥११५॥ तब 'तथास्तु' कहकर उसने कहा कि पूर्व समयमें एक बार बालकोंके द्वारा काँटोंपर आरोपित भ्रमरोंको उन ऐरावण-मैरावणने छुड़ा दिया था। इससे सन्तुष्ट होकर उन भ्रमरोंने उन दोनोंसे कहा कि तुम दोनोंने हम लोगोंको मरनेसे बचाया है ॥ ११६ ॥ ११७ ॥ इसलिए जैसे भी होगा, हम तुम दोनोंकी मृत्युसे रक्षा करेंगे। इतना कहकर वे सब भँवरे वहीं रहने लगे। बस, ये भँवरे ही इस समय उत्तम अमृत लाकर उसकी बिन्दुओंसे इन दोनोंके रक्तको स्पर्श कराके बारम्बार सजीव कर दिया करते हैं। हे कपे ! वे भँवरे अभी भी उन दोनोंके शयनगृहोंमें विद्यमान हैं ॥ ११८ ॥ ११९ ॥ वे करोड़ोंकी संख्यामें हैं। तुम उन्हें मार डालो। उसके कथनानुसार हनुमान्‌ने जाकर क्षणभरमें उन सब भँवरोंको मार डाला। उनमेंसे शरणमें आये हुए एक भँवरेसे मारुतिने कहा—॥ १२० ॥ तुम जाकर ऐरावणकी भोगपत्नीके पलंगको भीतरसे खाकर हाथीके द्वारा खाये हुए कैथेकी तरह अन्दर ही अन्दरसे खोखला कर दो। भँवरेने वैसा ही किया । १२१॥ बादमें रामचन्द्रने बाणसे उन दोनों राक्षसों को मार डाला और उनके स्थानमें राज्यासनपर मकरध्वजको अभिषिक्त कर दिया ॥ १२२ ॥ इतना करके उन्होंने ज्यों ही वहाँसे चलनेकी तैयारी की, त्यों ही मारुतिने रामसे प्रार्थना की कि आप नागकन्याके घर चलकर अनेक चित्र-विचित्र शोभा देखें ॥ १२३ ॥ वस्त्रों तथा अलङ्कारोंसे मण्डित सुन्दर मुखवाली उस कन्याका हाथ पकड़े तथा कुछ हँसकर उसके पलङ्गकर बैठकर अपने भारसे उसके पलङ्गको तोड़ आएँ। यह सब कर लेनेके बाद उस कन्यासे प्रार्थित रामने उनसे कहा—॥ १२४ ॥ १२५ ॥ तू इस देहको छोड़कर पृथ्वीपर जा । वहाँ ब्राह्मणकन्याका शरीर धारण करके बहुत कालतक तप करनेके बाद तीसरे जन्म तथा द्वापरके युगमें तू मेरी पत्नी बनेगी। रामके सुन्दर तथा मधुर वाक्यको सुनकर वह रामके सामने ही अग्निमें प्रवेश कर गयी ॥ १२६ ॥ १२७ ॥ जन्मान्तरमें वह कन्याकुमारी नामकी द्विजकन्या होकर पृथ्वीपर उत्पन्न हुई। तब राम मारुतिके कन्धेपर प्रसन्नतापूर्वक आरूढ़ हुए ॥ १२८ ॥ मारुतितनय मकरध्वजने भी अपने राज्यका भार मन्त्रीको सौंप दिया और ब्रह्माण्डको धारण करनेवाले शेषके अवतारस्वरूप लक्ष्मणको अपने कन्धेपर बिठा लिया ॥ १२९ ॥ इस प्रकार दोनों भाई राम-लक्ष्मण क्षणभरमें लङ्का जा पहुँचे। श्रीराम तथा लक्ष्मणको देखकर सुग्रीव आदि सब वानर बड़े प्रसन्न हुए और बारम्बार आलिङ्गन तथा प्रणाम करने लगे। रामने भी

दैत्यौ रामेण निहतौ श्रुत्वा सदसि रावणः । राक्षसांश्चकितः प्राह पूर्ववृत्तं भयान्वितः ॥१३२॥
मानुषेणैव मृत्युर्मे ह्याह पूर्वं पितामहः । अतो नारायणः साक्षान्मानुषोऽभून्न संशयः ॥१३३॥
रामो दाशरथिर्भूत्वा मां हंतुं समुपस्थितः । यदाऽनरण्यः पूर्वं हि स हतो दीक्षितो मया ॥१३४॥
शप्तश्चाहं तदा तेन सूर्यवंशोद्भवेन हि । उत्पत्स्यते च मद्वंशे परमात्मा सनातनः ॥१३५॥
स एव त्वां पुत्रपौत्रैर्बान्धवैर्निहनिष्यति । इत्युक्त्वा स ययौ नाकं सोऽधुना समयो मम ॥१३६॥
समागतो राघवो मां समरे स हनिष्यति । विबोध्य कुम्भकर्णं तमानयध्वं त्वरान्विताः ॥१३७॥
ततस्ते तां गुहां गत्वा तच्छ्वासेन विकर्षिताः । यातायाते प्रचक्रुस्ते कुम्भकर्णोदरे मुहुः ॥१३८॥
तदैकत्र बाहुपाशैर्बलं कृत्वाऽथ राक्षसाः । गत्वा तदंतिकं भीत्या निजघ्नुस्तं द्रुमैः पदैः ॥१३९॥
शिलाभिस्ताडयामासुश्चाश्वैरुष्ट्रैर्व्यचूर्णयन् । काष्ठभारैर्महादाहं देहे चक्रुर्नृपाज्ञया ॥१४०॥
तदा प्रबुद्धश्चोत्थाय सूकरान् महिषान् वरान् । कोटिशः स्वमुखे क्षिप्त्वा जलवापीर्विशोष्य सः॥१४१॥
गत्वा नत्वा राक्षसेन्द्रं बोधयामास रावणम् । एकदाऽहं वनं गत्वा दृष्ट्वा तं नारदं मुनिम् ॥१४२॥
पृष्टवाँस्त्वं कुत्र यासि कुतश्चागमनं कृतम् । स मां प्राह देवलोकादयोध्यां प्रति गम्यते ॥१४३॥
रावणादीन् रणे हंतुं विष्णुर्जातोऽत्र मानुषः । देववाक्यात्त्वरयितुं रामं गच्छाम्यहं जवात् ॥१४४॥
इत्युक्त्वा मां गतः सोऽथ प्रेषयामास राघवम् । इति श्रुतं मया पूर्वं तवाग्रे तन्निवेदितम् ॥१४५॥
अतोऽर्पयाद्य रामाय सीतां सख्यं कुरु प्रभो । इति तद्वचनं श्रुत्वा रावणस्तं वचोऽब्रवीत् ॥१४६॥
निद्राव्याप्तेऽक्षिणी तेऽद्य गच्छ निद्रां सुखं कुरु । तद्बंधोः क्रूरवचनं श्रुत्वा नत्वाऽथ रावणम् ॥१४७॥

वहाँका सब समाचार सुग्रीव आदिको कह सुनाया ॥ १३० ॥ १३१ ॥ उधर भरा सभामें रावणने जब ऐरावण तथा मैरावणकी मृत्युका समाचार सुना तो घबराकर भयभीत भावसे अपना पूर्ववृत्तान्त राक्षसोंसे कहने लगा ॥ १३२ ॥ उसने कहा कि पितामह ब्रह्माने मुझे पहले ही कह रक्खा है कि तेरा मरण मनुष्यके द्वारा होगा। इससे ज्ञात होता है कि ये राम साक्षात् नारायण ही मनुष्यरूप धारण करके आये हैं। इसमें संदेह नहीं है॥ १३३ ॥ इन रामने मुझे मारनेके लिए ही दशरथपुत्र बनना स्वीकार किया है और यहाँ आकर उपस्थित हुए हैं। जब मैंने पूर्वकालमें (दीक्षाको प्राप्त या सत्सङ्कल्पनिरत) अनरण्य नामके सूर्यवंशी राजाको मार डाला था॥ १३४ ॥ उस समय राजाने मुझे शाप दिया था कि मेरे वंशमें सनातन पुरुष परमात्मा उत्पन्न होंगे। ॥ १३५ ॥ वे तुम्हें पुत्र-पौत्र तथा बान्धवों सहित मारेंगे। इतना कहकर राजा स्वर्ग चले गये। बस, अब वही समय आ गया है ॥ १३६ ॥ राम मुझे समरमें अवश्य मारेंगे। तुमलोग जाकर शीघ्र कुम्भकर्णको जगाकर यहाँ ले आओ ॥ १३७ ॥ बादमें वे सब जब उस गुफामें गये, जहाँपर कुम्भकर्णका सोया था। तब तो उसके लम्बे तथा बलवान् श्वाससे आकर्षित होकर वे सब बार-बार उसके पेटमें आने-जाने लगे ॥ १३८ ॥ यह देखकर वे बड़े चकराये और एक साथ मिल तथा बाहुबलका आश्रय लेकर किसी प्रकार उसके शरीरके पास पहुँचे। वहाँ जाकर डरते हुए वे लातों तथा पेड़ोंसे पीटकर उसे जगाने लगे ॥ १३९ ॥ उसपर बहुतेरे पत्थर फेंके, घोड़ों तथा ऊँटोंसे कुचलवाया, पर उसकी नींद नहीं टूटी। तब राजाकी आज्ञासे उसपर बहुतसे लकड़ीके ढेर डालकर जलाये गये ॥ १४० ॥ तब वह किसी प्रकार उठा और करोड़ों सूअर तथा मोटे-मोटे भैंसोंको खा तथा जलपान करके उसने एक बावलीको सुखा दिया ॥ १४१ ॥ तत्पश्चात् वह राक्षसेन्द्र रावणके पास गया और समझाकर कहने लगा कि एक बार मैं वनमें गया था। मैंने वहाँ नारद मुनिको देखकर पूछा-॥ १४२ ॥ हे महामुने ! आप कहाँसे आये और कहाँ जा रहे हैं ? उन्होंने कहा कि मैं देवलोकसे अयोध्या जा रहा हूँ ॥ १४३ ॥ वहाँ रावणादिको मारनेके लिए साक्षात् नारायण अवतरे हैं। उन भगवान् रामको देवताओंके कथनानुसार जल्दी करनेका स्मरण करानेके लिए मैं वेगसे जा रहा हूँ ॥ १४४ ॥ इतना कहकर वे चले गये। उन्होंने ही रामको भेजा है। इस प्रकार जो मैंने सुना था, सो कह सुनाया ॥ १४५ ॥ इसलिए तुम सीता रामको समर्पण करके उनसे मित्रता कर लो। यह सुनकर

जवाथयौ स युद्धायोल्लंघ्य प्रासादमुन्नतम् । कुम्भकर्णं ततो दृष्ट्वा कृपणा भयविह्वलाः ॥१४८॥
चक्रुः पलायनं सर्वे रामपार्श्वमुपागताः । कुम्भकर्णं तत्र दृष्ट्वा प्रणनाम विभीषणः ॥१४९॥
उवाच प्रणतो भूत्वा मया राजाऽतिबोधितः । सीतां रामाय देहीति तेन धिग्धिक्कृतस्त्वहम् ॥१५०॥
तच्छ्रुत्वाऽहं राघवस्य सेवां कर्तुमुपागतः । तच्छ्रुत्वा बंधुवचनं कुम्भकर्णस्तमब्रवीत् ॥१५१॥
सम्यक्कृतं त्वया वत्स मदग्रे मा स्थिरो भव । युद्धे स्वीयः परो वाऽत्र ज्ञायते न मयाऽद्य हि ॥१५२॥
ततो बंधुं नमस्कृत्य रामपार्श्वमुपाययौ । कुम्भकर्णोऽपि हस्ताभ्यां पादाभ्यां पेषयन्हरान् ॥१५३॥
चचार वानरीं सेनां तत्र दृष्ट्वा कपीश्वरम् । त्रिशूलेनाथ तं भित्त्वाऽऽनयामास पुरीं तु सः ॥१५४॥
मार्गे स्वस्थः स सुग्रीवः कर्णौ घ्राणं रिपोर्नखैः । छित्वा ययौ राघवेंद्रं सोऽपि पौरैर्विलज्जितः ॥१५५॥
पुनर्ययौ रणभुवं तं दृष्ट्वा रघुनंदनः । विव्याध निशितैर्बाणैः सोऽपि रामं द्रुमैर्नगैः ॥१५६॥
ताडयामास तान् बाणैर्निवार्य रघुनन्दनः । वायव्यास्त्रेण चिच्छेद तद्धस्तौ सायुधौ क्षणात् ॥१५७॥
छिन्नबाहुमथायांतं नदंतं वीक्ष्य राघवः । द्वावर्द्धचंद्रौ निशितावादायास्य पदद्वयम् ॥१५८॥
चिच्छेद पतितौ पादौ लङ्काद्वारि महास्वनौ । निकृत्तहस्तपादोऽपि कुम्भकर्णोऽतिभीषणः ॥१५९॥
वडवामुखवद्वक्त्रं व्यादाय रघुनंदनम् । अभिदुद्राव विनदन् राहुश्चन्द्रमसं यथा ॥१६०॥
अपूरयच्छिताग्रैश्च सायकैस्तद्रघूत्तमः । शरपूरितवक्त्रोऽसौ चुक्रोशातिभयकरः ॥१६१॥
अथ सूर्यप्रतीकाशमैंद्रं शरमनुत्तमम् । मुमोच तेन चिच्छेद कुम्भकर्णशिरो महत् ॥१६२॥
तथा खे देववाद्यानि नेदुः कुसुमवृष्टिभिः । ववर्षुरमरा रामं तुष्टुवुर्विविधैः स्तवैः ॥१६३॥
पितृव्यं निहतं श्रुत्वा पितरं चातिविह्वलम् । रावणिः सांत्वयामास त्वं मे पश्याद्य वै बलम् ॥१६४॥

रावणने कहा–॥ १४६ ॥ अभी तुम्हारी आँखोंमें निद्रा भरी है, जाकर सो जाओ। मैंने तुमको उपदेश देनेके लिये नहीं बुलाया है। वन्धुके ऐसे कठोर वचन सुनकर उसने रावणको नमस्कार किया ॥ १४७ ॥ तदनन्तर बड़े वेगसे वह मकानों तथा गढ़को लाँघकर लड़नेके लिए गया। उस भयानक कुम्भकर्णका देखते ही सब वानर दौड़कर रामके पास चले गये। विभीषणने कुम्भकर्णका आया देखकर नमस्कार किया ॥ १४८ ॥ १४९ ॥ फिर कहा कि मैंने राजा रावणको बहुत नम्रतापूर्वक समझाया कि तुम सीता रामको दे दो। इसपर उसने मुझे बहुत धिक्कारा। तब मैं उसके धिक्कारसे दुःखी होकर यहाँ रामकी सेवामें चला आया। यह सुनकर कुम्भकर्ण-ने कहा—॥ १५० ॥ १५१ ॥ हे वत्स ! तुमने बहुत अच्छा किया, पर इस समय तुम मेरे सामनेसे हट जाओ। मुझे इस समय युद्धमें अपना-पराया नहीं सूझ रहा है ॥१५२॥ तब विभीषण भाईको नमस्कार करके रामके पास चले गये। कुम्भकर्ण भी हाथों तथा पाँवोंसे वानरोंको पीसता हुआ वानरी सेनामें यथेच्छ विचरने लगा। अन्तमें कपीश्वर सुग्रीवको देखते ही उन्हें त्रिशूलमें पोहकर वह सहर्ष लंका पुरीकी ओर ले चला ॥१५३॥१५४॥ रास्तेमें सुग्रीवको जब होश आया तो नखोंसे कुम्भकर्णके नाक-कान काटकर वे राघवेन्द्र रामके पास लौट आये। कुम्भकर्ण भी पुरवासियोंसे लज्जित होकर पुनः रणस्थलीमें लड़ने चला गया। उसे देखकर रघुनन्दन रामने अपने तीक्ष्ण बाणोंसे बींधना आरम्भ किया। उन्होंने हथियार समेत उसके हाथ काट गिराये ॥ १५५–१५७ ॥ रामने जब देखा कि भुजा कट जानेपर भी वह गर्जन करता हुआ सामने चला आ रहा है, तब उन्होंने दो अर्धचन्द्राकार बाणोंसे उसके दोनों पैर काट दिये। वे कटे पाँव जाकर लंकाके दरवाजेपर गिरे। हाथ-पाँवसे रहित होकर भी कुम्भकर्ण अति भीषण वडवानलके समान मुख फाड़कर घोर नाद करता हुआ चन्द्रमापर राहुके समान रामपर झपटा ॥ १५८-१६० ॥ तब रामने तीक्ष्ण बाणोंसे उसका मुँह भर दिया। मुखमें बाण भर जानेसे वह और भी भयानक तथा क्रुद्ध हो उठा ॥ १६१ ॥ तब रामने उसपर सूर्यके समान प्रदीप्त ऐन्द्र बाण छोड़ा। उससे कुम्भकर्णका महान् सिर कटकर गिर पड़ा ॥ १६२ ॥ उस समय आकाशमें देवताओंने दिव्य बाजे बजाये और पुष्पोंकी वर्षा करके रामकी विविध स्तोत्रोंसे स्तुति की ॥ १६३ ॥ चाचा कुम्भकर्णको मारा गया तथा पिताको विह्वल सुनकर रावणपुत्र मेघनाद पिताको सांत्वना देकर बोला–हे पिताजी ! आप आज

इत्युक्त्वा त्वरितं गत्वा मेघनादो निकुम्भिलाम् । रक्तमाल्यांबरधरो हवनायोपचक्रमे ॥१६५॥
रक्षार्थं दिव्यशस्त्रार्थं जयार्थमभिचारकैः । योगिनीवटाधोभूम्यां गुहायां संस्थितो रहः ॥१६६॥
तोयानिलानलव्याघ्रसर्पराक्षसकंटकैः । आत्मनः परितः कृत्वा परिधान् सप्त दुर्गमान् ॥१६७॥
होमकुण्डाग्र्यतः सर्पं बद्ध्वा कृष्णमधोमुखम् । रक्तपुष्पांबरधरो रक्तचंदनलेपितः ॥१६८॥
रक्तपुष्पाक्षता गुञ्जा सर्षपश्चंदनेक्षुभिः । खदिराम्रपलाशोदुम्बरभल्लातकास्थिभिः ॥१६९॥
समिद्भिर्माषमांसादिभल्लातकफलैरपि । अर्कनिंबबीजपूरकृष्णधत्तूररोचनैः ॥१७०॥
अपामार्गबदरिकानलदालकबंधुकैः । नरमुंडैः समांसैश्च बिभीतकफलादिभिः ॥१७१॥
सर्पखंडैश्च मण्डूकैस्त्वग्दंतस्नायुलोमभिः । नानावनचराणां च मांसैरपि समन्त्रकम् ॥१७२॥
इत्थं चकार होमं स निमील्य नयने रहः । बिभीषणोऽपि तं दृष्ट्वा होमधूम्रं भयावहम् ॥१७३॥
प्राह रामाय सकलं होमारंभं दुरात्मनः । समाप्यते चेद्धोमोऽयं मेघनादस्य दुर्मतेः ॥१७४॥
स चाजय्यो भवेद्राम मेघनादः सुरासुरैः । अतः शीघ्रं लक्ष्मणेन घातयिष्यामि रावणिम् ॥१७५॥
यस्तु द्वादश वर्षाणि निद्राहारविवर्जितः । तेनैव मृत्युर्निर्दिष्टो ब्रह्मणाऽस्य दुरात्मनः ॥१७६॥
लक्ष्मणोऽयं यदाऽयोध्यापुर्यास्त्वामनुनिर्गतः । तदादि निद्राहारादीन् प्राप्तः स रघूत्तम ॥१७७॥
सेवार्थं तव राजेन्द्र ज्ञातं सर्वमिदं मया । ततो रामाज्ञया गत्वा लक्ष्मणेन बिभीषणः ॥१७८॥
हनुमत्प्रमुखैर्वीरैर्यूथपैः सर्वतो वृतः । लक्ष्मणं दर्शयामास होमस्थानं निकुम्भिलाम् ॥१७९॥
अङ्गदस्कंधमारुह्य वह्न्यस्त्रेणाथ कंटकान् । ज्वालयामास सौमित्रिर्जघान राक्षसाञ्छरैः ॥१८०॥
गारुडास्त्रेण सर्पांश्च पर्वतास्त्रेण दंष्ट्रिणः । अनलं शांतमकरोत्पर्जन्यास्त्रेण लक्ष्मणः ॥१८१॥
प्राशयामास हनुमाननिलं क्षणमात्रतः । जलं संशोषयामास वायव्यास्त्रेण लक्ष्मणः ॥१८२॥

मेरा बल देखें ॥ १६४ ॥ इतना कहकर मेघनाद तुरन्त निकुम्भिला नामकी पश्चिमी गुफामें गया। वहाँ लाल फूलोंकी माला तथा लाल वस्त्र धारण करके वह हवनकी तैयारी करने लगा ॥ १६५ ॥ दिव्य रथ, दिव्य अस्त्र तथा जयलाभके लिए अभिचारक्रिया करनेका निश्चय करके वह गुफाके भीतर योगिनीवटके पास एकान्तमें जा बैठा ॥ १६६ ॥ उसने वहाँ अपनी सुरक्षाके लिये अग्नि जल वायु सिंह सर्प राक्षस तथा काँटोंसे अपने चारों ओर सात दुर्ग बना लिये ॥ १६७ ॥ होमकुण्डके ऊपरी भागमें अधोमुख करके एक काला साँप बाँध दिया। तदनन्तर रक्त पुष्प तथा रक्तांबर धारण करके शरीरमें रक्त चन्दन लगाया ॥ १६८ ॥ लाल फूल, अक्षत, गुंजा, सरसों, चन्दन, ईख, बेर, आम, पलाश तथा भेलावेकी लकड़ियें, समिधा, उर्द, मांस, भल्लातककी गुठली, आक, नीम, बीजपूर, कृष्ण धतूरा, नीबू, चिचिड़ा, बेर, चित्रक, दालक, बंधूक, नरमुण्ड, चरबी, बिभीतकफल, सर्पखण्ड, मण्डूक, चर्म, दांत, स्नायु, आंत, माम तथा नाना वनचरोंके मास आदिसे उसने मन्त्रोच्चारपूर्वक एकान्तमें हवन प्रारम्भ कर दिया। सहसा विभीषणने होमके भयानक धुएँको उठते देखा ॥ १६९–१७३ ॥ तब उन्होंने रामसे कहा–देखिये, उस दुरात्माने होम आरम्भ कर दिया है। यदि उस दुर्बुद्धि मेघनादका होम निर्विघ्न समाप्त हो गया तो फिर हे राम! वह दैत्यों तथा देवताओंसे भी अजेय हो जायगा। इसलिए शीघ्र लक्ष्मणके द्वारा मैं उसको मरवा दूँगा ॥ १७४ ॥ १७५ ॥ जो मनुष्य बारह वर्षतक निद्रा तथा आहारसे रहित रहा हो, उसीसे ब्रह्माने मेघनादकी मृत्यु कही है ॥ १७६ ॥ लक्ष्मण जब अयोध्यासे निकले हैं, तबसे निद्रा तथा आहार त्यागकर इन्होंने आपकी सेवा की है। यह मैं भली भाँति जानता हूँ। पश्चात् रामकी आज्ञासे लक्ष्मण तथा हनुमान आदि वीर सेनापतियोंको साथ लेकर विभीषण वहाँ गये और लक्ष्मणको निकुम्भिला-का होमस्थान बताया ॥ १७७–१७९ ॥ वहाँ जाकर लक्ष्मणने अङ्गदके कन्धेपर सवार होकर अग्निबाणसे काँटोंको जलाकर राक्षसोंको मार डाला ॥ १८० ॥ उन्होंने गारुडास्त्रसे सर्पों तथा पर्वतास्त्रसे दाँतवाले सिंह आदि जन्तुओंको समाप्त कर दिया। उन्होंने मेघास्त्रसे अग्निका शान्त किया। हनुमान्ने क्षणभरमें

परिघेष्वपि नष्टेषु तत्राद्दृष्ट्वा रिपोः स्थलम् । ययावुत्पाटितुं क्रोधाद्धनुमान्योगिनीवटम् ॥१८३॥
तदा तां दर्शयामास वटस्थां योगिनीगुहाम् । गुहापिधानपाषाणं हनुमान्पादघट्टनैः ॥१८४॥
चूर्णीकृत्य गुहासंस्थं मेघनादं व्यतर्जयत् । तदा स मेघनादोऽपि त्यक्त्वा होमं त्वरान्वितः॥१८५॥
क्रोधाविष्टो रथे स्थित्वा ययौ लक्ष्मणसम्मुखम् । शस्त्रैरस्त्रैः पर्वताद्यैर्मर्मभिद्भिर्निजोक्तिभिः ॥१८६॥
चकार लक्ष्मणेनैव युद्धं तत्तारकामयम् । सौमित्रिरपि बाणौघै रथमश्वान्धनुर्ध्वजम् ॥१८७॥
तद्दृढं कवचं सूतं विभेद क्षणमात्रतः । ततः सोऽन्येन धनुषा मुक्त्वा बाणान्सहस्रशः॥१८८॥
पद्भ्यामेवास्थितो भूम्यां चिच्छेद कवचं रिपोः । तदा क्रुद्धः स सौमित्रिर्बाणेनेंद्रजितश्च हि ॥१८९॥
सशरं दक्षिणभुजं पातयामास तद्गृहे । तदा स वामहस्तेन मेघनादोऽतिविह्वलः ॥१९०॥
दुद्राव लक्ष्मणं हंतुं धृत्वा शूलमनुत्तमम् । तं चापि मार्गणेनैव सशूलं वामसत्करम् ॥१९१॥
मेघनादस्य सौमित्रिश्छित्त्वा रावणसन्निधौ । पातयामास लंकायां तदद्भुतमिवाभवत् ॥१९२॥
तदा व्यादाय स्वमुखं रावणिर्लक्ष्मणं ययौ । लक्ष्मणोऽपि शरं दिव्यं रामनामांकितं शुभम् ॥१९३॥
मुमोच रघुवीरस्य कृत्वा चिंतनमादरात् । स शरः सशिरस्त्राणं श्रीमज्ज्वलितकुण्डलम् ॥१९४॥
प्रमथ्येंद्रजितः कायात्पातयामास तच्छिरः । ततः प्रमुदिता देवाः सौमित्रिं परितुष्टुवुः १०५।
पुष्पाणि विकिरंतो वै चक्रुर्नीराजनं मुहुः । गतश्रमः स सौमित्रिः शंखमापूरयद्रणे ॥१९६॥
श्रुत्वा सीता शंखनादं त्रिजटां प्रेष्य सादरम् । शुश्राव सकलं वृत्तं तद्वाक्यात्प्रतुतोष सा ॥१९७॥
ततस्तन्मेघनादस्य शिरः संगृह्य मारुतिः । राघवाय दर्शयितुं त्वरयामास लक्ष्मणम् ॥१९८॥
तदा स वानरैर्युक्तोऽङ्गदस्थः सविभीषणः । नानावाद्यनिनादैश्च सौमित्री राघवं ययौ ॥१९९॥
नत्वा तं दर्शयामास मेघनादस्य तच्छिरः । तद्दृष्ट्वाऽऽलिंग्य सौमित्रिं रामस्तुष्टोऽभवत्तदा ॥२००॥

वायु पी लिया और लक्ष्मणने वायव्यास्त्रसे जलको सुखा दिया ॥ १८१ ॥ १८२ ॥ उन सब घेरोंके नष्ट हो जानेपर भी जब शत्रुका स्थान नहीं दिखायी दिया तो हनुमान् क्रुद्ध होकर योगिनीवटकी ओर गये। वहाँ उन्हें योगिनीवटवाली गुफा दीख पड़ी, तुरन्त गुफाके द्वारपर लगे हुए पत्थरको हनुमान्‌ने लात मारकर चूर्ण कर डाला और भीतर जाकर मेघनादको ललकारा। तब मेघनादने भी तुरन्त होम छोड़ दिया ॥ १८३–१८५ ॥ तदनन्तर क्रोधके साथ रथपर सवार होकर वह लक्ष्मणके समक्ष गया और अस्त्र शस्त्र, पर्वत तथा मर्मभेदी वाक्योंसे उनको जीतनेकी इच्छासे भयानक युद्ध करने लगा। लक्ष्मणने भी अनवरत बाण छोड़कर उसके अश्व, रथ, धनुष, ध्वजा, दृढ़ कवच तथा सारथीको क्षणभरमें छिन्न-भिन्न कर दिया। तब मेघनाद भी दूसरा धनुष ले तथा नीचे ही खड़े हो हजारों बाण छोड़कर शत्रुके कवचको काटने लगा। उस समय लक्ष्मणने क्रुद्ध होकर अपने बाणसे इन्द्रजित्‌का बाणके सहित दाहिना हाथ काटकर उसीके घरमें गिराया। तब विह्वल होकर मेघनादने बायें हाथमें त्रिशूल सम्हाला ॥ १८६–१९० ॥ वह उत्तम त्रिशूल लेकर लक्ष्मणको मारनेके लिए दौड़ा। तब मेघनादके त्रिशूल सहित बायें हाथको भी सुमित्रापुत्र लक्ष्मणने बाणसे ही काटकर रावणके पास गिराया। यह देखकर लंकामें सबको बड़ा आश्चर्य हुआ ॥ १९१ ॥ १९२ ॥ तब मेघनाद मुँह फाड़कर लक्ष्मणकी ओर झपटा। तब लक्ष्मणने भी रामका ध्यान करके रामनामसे अंकित दिव्य बाण छोड़ा। उस बाणने जाकर पगड़ी सहित, शोभायुक्त तथा प्रदीप्त कुण्डलवाले मेघनादके सिरको धड़से अलग करके धरतीपर गिरा दिया। यह देखकर देवतागण अतीव प्रसन्न हुए और लक्ष्मणकी स्तुति करने लगे॥ १९३–१९५ ॥ वे उनपर कुसुमोंकी वृष्टि करके आरती उतारने लगे। तब लक्ष्मणने शान्त होकर विजयशंख बजाया॥ १९६ ॥ वह शंखनाद सुनकर सीताने त्रिजटाको भेजा और उसके मुँहसे युद्धका समस्त समाचार सुनकर वे बहुत ही प्रसन्न हुईं ॥ १९७ ॥ इधर हनुमान्‌जीने मेघनादका सिर लेकर रामको दिखलानेके लिये लक्ष्मणसे शीघ्र चलनेको कहा ॥ १९८ ॥ तब लक्ष्मण विभीषण और वानरोंको साथ ले तथा अङ्गदके कंधेपर सवार होकर अनेक बाजे-गाजेके साथ रामके पास गये ॥ १९९ ॥ वहाँ जाकर लक्ष्मणने रामको प्रणाम किया और

रावणोऽपि भुजं दृष्ट्वा श्रुत्वा पुत्रवधं तथा । पपात पुत्रदुःखेन सभायां मूर्छितो भुवि ॥२०१॥
क्रोधात्स खड्गमुद्यम्य ययौ हंतुं विदेहजाम् । सुपार्श्वो नाम मेधावी मंत्री तं संन्यवारयत् ॥२०२॥
सखड्गं तत्करं धृत्वा स्वहस्ते स त्वरान्वितः । उवाच नीतिसंयुक्तं वचनं रावणं तदा ॥२०३॥
कथं नाम दशग्रीव कोपात्स्त्रीवधमिच्छसि । अस्माभिः सहितो युद्धे हत्वा रामं सलक्ष्मणम् ॥२०४॥
प्राप्स्यसे जानकीं शीघ्रमित्युक्तः स न्यवर्तत । सुलोचनाऽपि कांतस्य भुजं केयूरभूषितम् ॥२०५॥
दृष्ट्वा समार्गणं स्वीयपुरतः पतितं भुवि । तदा विलापमकरोत्स्मृत्वा तत्पौरुषाणि सा ॥२०६॥
भुजोऽपि सांत्वयन् तां स लेख्य भूम्यां शरेण हि । स्वलोहिताक्षरैः प्राह मा खेदं भज भामिनि ॥२०७॥
साक्षाच्छेषशराघातैर्हतोऽहं मुक्तिमागतः । त्वं चापि गत्वा श्रीरामं नत्वा याचस्व मच्छिरः ॥२०८॥
तत्त्वां दास्यति रामोपि तेनाग्निं विश्य याहि माम् । सुलोचना पठित्वा सा लिखितान्यक्षराणि हि ॥२०९॥
तुष्टा पृष्ट्वा रावणाय मंदोदर्यै विभूषिता । ययौ रामं शिबिकया तां दृष्ट्वा वानरोत्तमाः ॥२१०॥
सीतेयं रावणेनाद्य भयाद्रामं विसर्जिता । इति मत्वादुद्रुवुस्ते सीताया दर्शनेच्छया ॥२११॥
शिबिकां वेष्टयामासुर्ज्ञात्वा तां तु सुलोचनाम् । शिबिकावाहकास्येनाययुः श्रीराघवं पुनः ॥२१२॥
सुलोचनाऽपि श्रीरामं ननाम शिरसा मुहुः । भर्तुः शिरः कांक्षमाणां तां रामो वाक्यमब्रवीत् ॥२१३॥
कृपया तव भर्तारं करोम्यद्य सजीवितम् । मा विशस्वाद्य वह्निं त्वं रोचते चेद्वदस्व माम् ॥२१४॥
तदा सा प्राह श्रीरामं पुनः सौमित्रिहस्ततः । कुतो भवेत्तन्मरणं मोक्षदं जीवयस्व मा ॥२१५॥
इत्युक्त्वा राघवं दत्त्वा सस्मितं कपिवाक्यतः । कृत्वा शिरः पतेस्तत्र लब्ध्वा सा भर्तृसच्छिरः ॥२१६॥
लङ्कायास्तौ समानीय भुजौ गत्वा निकुम्भिलाम् । भर्तृदेहेन संयोज्य विवेशाग्निं यथाविधि ॥२१७॥

मेघनादका कटा सिर दिखाया । उसे देखकर रामने लक्ष्मणको छातीसे लगा लिया और बहुत आनन्दित हुए ॥ २०० ॥ रावणने पहले पुत्रका कटा हुआ हाथ देखा । पश्चात् उसकी मृत्यु सुनी तो मूर्छित होकर सभामें ही जमीनपर गिर पड़ा ॥ २०१ ॥ बादमें वह क्रोधपूर्वक खड्ग लेकर सीताको मारनेके लिए चला । उस समय सुपार्श्व नामके बुद्धिमान् मंत्रीने उसको रोका और उसका तलवारवाला हाथ अपने हाथसे पकड़कर नीतियुक्त उपदेश देते हुए कहा—॥ २०२ ॥ २०३ ॥ हे दशग्रीव ! क्रोधावेशमें आकर स्त्रीहत्या करना पाप है । हमारे साथ चलकर युद्ध करो । रणमें राम-लक्ष्मणको मारकर जानकीको अपनी स्त्री बनाओ । इस तरह समझानेपर रावण शान्त हो गया । उधर सुलोचना अपने पति मेघनादका केयूरविभूषित तथा बाणयुक्त हाथ अपने सामने पृथ्वीपर पड़ा देखकर उसके पुरुषार्थका स्मरण करके विलाप करने लगी ॥ २०४ ॥ २०५ ॥ तब उस कटी भुजाने बाण द्वारा अपने खूनसे जमीनपर 'हे भामिनी ! तुम दुःखिनी मत होओ' ऐसा लिखकर सुलोचनाको आश्वासन दिया ॥ २०६ ॥ २०७ ॥ उसने यह भी लिखा कि 'मैं साक्षात् शेषावतार लक्ष्मणके बाणसे मरकर मुक्तिको प्राप्त हुआ हूँ । अब तुम रामके पास जाकर मेरा सिर माँगो । वे तुमको अवश्य मेरा सिर दे देंगे । उस सिरको ले तथा अग्निमें प्रवेश करके मेरी अनुगामिनी बनो' । सुलोचना उन रक्तलिखित अक्षरोंको पढ़कर प्रसन्न हुई । तदनन्तर रावण और मन्दोदरीसे आज्ञा ले तथा आभूषण धारण करके वह पालकीमें बैठकर श्रीरामके पास चली । वानरगणने उसको देखकर यह समझा कि रावणने डरकर सीता रामके पास भेज दी है । ऐसा समझकर वे उनके दर्शनकी इच्छासे दौड़ पड़े ॥ २०८–२११ ॥ पास जाकर पालकीको घेर लिया, पर जब पालकी ढोनेवालोंसे पता लगा कि यह सुलोचना है तो वे सब वानर रामके पास दौड़ गये ॥ २१२ ॥ सुलोचना श्रीरामके पास पहुँची तो सिर नवाकर प्रणाम किया और पतिके सिरकी प्राप्तिके लिये प्रार्थना की । तब रामने कहा—॥ २१३ ॥ मैं तुमपर कृपा करके तुम्हारे पतिको जीवित कर देता हूँ । तुम अग्निमें प्रवेश करनेका विचार छोड़ दो । बोलो, यह पसन्द है ? ॥ २१४ ॥ उसने कहा—हे महाराज ! फिर ऐसे मोक्षप्रद लक्ष्मणके हाथसे मृत्यु इन्हें कहाँ प्राप्त होगी ? इसलिये अब आप इन्हें न जिलाएँ ॥ २१५ ॥ इतना कहकर उसने फिर रामको प्रणाम किया और कपिराज सुग्रीवके आज्ञानुसार पतिके सिरको पाकर हँसती हुई वह भर्तांके

सुलोचना दिव्यदेहा वैकुण्ठं पतिना ययौ । रावणोऽपि सुहृन्मित्रैः पुनर्योद्धुं ययौ रणम् ॥२१८॥
ततो रामेण निहताः सर्वे ते राक्षसा युधि । लङ्कायां रावणः क्षिप्तः शरेण राघवेण सः ॥२१९॥
ततः कृत्वा रामशिरः कृत्रिमं मयहस्ततः । ययौ सीतां दर्शयितुं रावणोऽशोककाननम् ॥२२०॥
एतस्मिन्नन्तरे ब्रह्मा बोधयामास जानकीम् । कृतमस्ति रावणेन कृत्रिमं रामसच्छिरः ॥२२१॥
तद्दृष्ट्वा मा भजस्त्वाद्य खेदं त्वमधुनाऽबले । इति सबोध्य तां सीतां ब्रह्माऽन्तर्धानमाययौ ॥२२२॥
रावणोऽपि समागत्य दर्शयामास तच्छिरः । सीतां प्राह हतो रामस्त्वधुना त्वं भजस्व माम् ॥२२३॥
तदा साऽधोमुखी प्राह तवैवाहं शिरांसि हि । रामबाणैश्च पश्यामि पतितानि रणांगणे ॥२२४॥
इति तद्वाक्शराघातताडितः स दशाननः । ययौ तूष्णीं स्वयं गेहं लज्जयाऽवनतस्तदा ॥२२५॥
अथ रामाज्ञया सर्वे लङ्कां प्रासादमंडिताम् । ईषिकाचूडहस्तास्ते वानराः कोटिशः क्षणात् ॥२२६॥
ज्वालयामासुः सर्वत्र दत्वा वह्निं मुहुर्मुहुः । तदा कोलाहलश्चासील्लङ्कादाहे पुरा यथा ॥२२७॥
दग्धां स्वनगरीं दृष्ट्वा स्वगृहाण्यपि रावणः । दृष्ट्वा दग्धानि कपिभिर्मेघास्त्रं ससृजे जवात् ॥२२८॥
तेनासीदनलः शांतस्तद्दृष्ट्वा कपयो ययुः । ततः स रावणः शुक्रवचनाद्रहसि स्थिताम् ॥२२९॥
गुहां प्रविश्य चैकांते मौनी होमं प्रचक्रमे । लङ्काद्वारकपाटादि बद्ध्वा सर्वत्र यत्नतः ॥२३०॥
होमद्रव्याणि संगृह्य यान्युक्तानि मया पुरा । रक्तावगाहितो मुण्डमाली प्रेतासनस्थितः ॥२३१॥
परिस्तीर्याथ शस्त्राणि होमकुण्डसमंततः । आदशाहबालकानां शिरोभिर्मांसलोहितैः ॥१३२॥
एवं स रिपुघातार्थं चकार हवनं रहः । उत्थितं धूम्रमालोक्य रामं प्राह विभीषणः ॥२३३॥
यदि होमसमाप्तिः स्यात्तदाऽजेयो भवेदयम् । ततो रामो हरीन्सर्वान्प्रेषयामास सादरम् ॥२३४॥

गलेपर रखकर जोड़ दिया ॥ २१६ ॥ पश्चात् लंकामें पतिकी देहसे उसे मिलाकर यथाविधि पतिके शरीरके साथ अग्निमें जलकर सती हो गयी ॥ २१७ ॥ तदनन्तर सुलोचना दिव्य देह धारण करके पतिके साथ वैकुण्ठ चली गयी। उधर रावण पुनः बन्धुओं तथा मित्रोंको साथ लेकर रणभूमिमें युद्ध करने गया ॥ २१८ ॥ वहाँ रामने सब राक्षसोंको मारकर रावणको बाणसे उठाकर लंकामें फेंक दिया ॥ २१९ ॥ तदनन्तर रावण मयदानवके हाथसे रामका नकली मस्तक बनवाकर सीताको दिखलानेके लिए अशोकवनमें गया ॥ २२० ॥ वहाँ इसी बीच ब्रह्माने सीताको पहले ही बता दिया था कि रावण रामका नकली सिर तुम्हें दिखायेगा। यह कहकर वे अन्तर्धान हो गये। इसके बाद रावण उनके पास पहुँचा और रामका मस्तक दिखलाते हुए कहा—हे सीते ! देखो, मैंने रामको मार डाला है। अब तुम मेरी सेवा करनेके लिये तैयार हो जाओ ॥ २२१-२२३ ॥ यह सुनकर सीताने नीचे मुख करके कहा—मैं तो रामके बाणसे कटकर रणस्थलीमें गिरे हुए तेरा ही सिरोंको देखना चाहती हूँ ॥ २२४ ॥ सीताके इस वाक्यरूपी बाणसे ताडित होकर दशानन लज्जित हो और मुँह नीचा करके चुपचाप अपने महलमें चला गया ॥ २२५ ॥ तभी रामकी आज्ञासे करोड़ों वानर हाथमें घासके पूले ले-लेकर प्रासादों (हवेलियों) से भूषित लंका नगरीमें घुस पड़े ॥ २२६ ॥ उन्होंने क्षणभरमें चारों ओरसे आग लगा दी। उस समय लंकामें प्रथम लंकादहनकी ही तरह महान् कोलाहल तथा हाहाकार मचने लगा ॥ २२७ ॥ रावणने नगर तथा अपने मकानोंको जलते देखकर मेघास्त्र छोड़ा ॥ २२८ ॥ उससे आगको शान्त देखकर कपिसमूह भाग गया। पश्चात् रावण दैत्यगुरु शुक्राचार्यके कथनानुसार एकान्तकी एक गुफामें गया और मौन धारण करके होम करने लगा। उसने चौतरफासे लंकाके दरवाजे अच्छी तरह बंद कर लिये ॥ २२९ ॥ २३० ॥ पहले मैंने जो-जो हवनके द्रव्य कहे हैं, वे सब इकट्ठे कर लिये। उसने अपने सब शरीरमें लोहू लपेट लिया। गलेमें मुण्डोंकी माला पहिन ली। मृत पुरुषके शरीरको आसन बनाया ॥२३१॥ होमकुण्डके चारों ओर शस्त्र रख लिये और दस दिनसे प्रथम उत्पन्न बालकोंके सिर तथा मांस और रुधिर से एकान्तमें शत्रुओंके नाशके लिये हवन आरम्भ कर दिया। ऊपर उठते होमके धुएँको देखकर विभीषणने रामसे कहा—॥ २३२ ॥ २३३ ॥ हे राम ! यदि होम निर्विघ्न समाप्त हो गया तो रावण सर्वथा अजेय हो

प्राकारं लङ्घयित्वा ते गत्वा रावणमंदिरम् । हत्वा राक्षसवृन्दं तद्गुहारक्षणतत्परम् ॥२३५॥
न ददृशुर्गुहाद्वारं यत्र होमं चकार सः । ततश्च सरमानाम प्रभाते करसंज्ञया ॥२३६॥
विभीषणस्य भार्या तान् होमस्थानमसूचयत् । गुहापिधानपाषाणानंगदः पदघट्टनैः ॥२३७॥
चूर्णयित्वा रावणञ्च ताडयामास मुष्टिना । वानरास्तेऽपि तं वृक्षैरताडयाभासुरादरात् ॥२३८॥
तद्वृत्ते वानरा दृष्ट्वा तूष्णीमेव स्थितं रिपुम् । समानयन्केशपाशे धृत्वा मंदोदरीं शुभाम् ॥२३९॥
विलपंतीं मुक्तनीवीं विह्वलां हृतकंचुकीम् । दृष्ट्वा त्यक्त्वा तदा होममुदतिष्ठत्त्वरान्वितः ॥२४०॥
ततस्ते वानराः सर्वे ययुः श्रीराघवांतिकम् । ततो मंदोदरी प्राह कुरु त्वं वचनं मम ॥२४१॥
दत्त्वा सीतां राघवाय राज्ये कृत्वा विभीषणम् । तपश्चर्यां मयाऽरण्ये कर्तुमर्हसि वै सुखम् ॥२४२॥
तत्तस्या वचनं श्रुत्वा तां स प्राह दशाननः । रामो विष्णुश्च मा सीता जानामि प्राणवल्लभे ॥२४३॥
रामहस्ताद्वधं लब्धुं हृता सीता पुरा मया । रामहस्तात्त्यक्तदेहो गच्छामि परमं पदम् ॥२४४॥
त्वया कार्या क्रिया मे हि प्रविशस्वानलं ततः । ततः सुखं मया मुक्ता गमिष्यसि परं पदम् ॥२४५॥
इत्युक्त्वा प्रययौ योद्धुं रथे स्थित्वा त्वरान्वितः। राजद्वाराद्विनिर्गच्छन्नग्रे मुण्डी विलोकितः ॥२४६॥
मुकुटः पतितश्चित्रः संविग्नो रावणो हृदि । ततो ययौ रणभुवं ववर्ष निशितैः शरैः ॥२४७॥
विधाय कृत्रिमां सीतां मयेन स दशाननः । पश्यतां वानराणां च स्वरथे तां जघान वै ॥२४८॥
दिव्येन शितखड्गेन दृष्ट्वा ते तु प्लवंगमाः । हाहेत्युक्त्वा दुःखितास्ते ययू रामं निवेदितुम्॥२४९॥
तावद्वेधाः समागत्य रामादीन् प्राह सादरम् । कृत्रिमेयं हता सीता मा खेदं भजताद्य हि ॥२५०॥
ततोऽन्तर्धानमगमद्विधिस्तेऽपि प्लवंगमाः । रामाद्या ब्रह्मवाक्येन तुष्टा युद्धाय निर्ययुः ॥२५१॥

जायगा। तब रामने सब वानरोंको सादर बुलाकर युद्धके लिये भेजा ॥ २३४ ॥ वे सब परकोटेको लाँघकर रावणके मन्दिरमें घुस गये। उन्होंने वहाँ उस गुफाकी रक्षा करनेवाले राक्षसोंको मार डाला ॥ २३५ ॥ परन्तु जहाँ रावण हवन करता था, उस गुफाका दरवाजा किसीको नहीं मालूम था। तब प्रातःकालके समय विभीषणकी स्त्री सरमाने हाथके संकेतसे उन सबको होमस्थानका दरवाजा बता दिया। द्वारपर लगे हुए पाषाणको लात मारकर अंगदने तोड़ दिया और भीतर जाकर रावणको मुक्कोंसे मारने लगे। अन्यान्य वानर भी उसे वृक्षोंसे पीटने लगे ॥ २३६-२३८ ॥ फिर भी रावणको चुपचाप बैठा देखकर वानर उसकी स्त्री मन्दोदरीको केश पकड़कर वहाँ खींच लाये॥ २३९ ॥ अपनी सुन्दरी स्त्रीको रोती हुई, मुक्तकच्छ, चोलीरहित तथा विह्वल देखकर रावण होमको अधूरा छोड़कर उठ खड़ा हुआ ॥ २४० ॥ इस प्रकार उसके होमको भङ्ग करके सब वानर रामके पास भाग गये। तब मन्दोदरीने कहा—हे नाथ! तुम अब भी मेरी बात मान लो ॥ २४१ ॥ सीता रामको देकर विभीषणको लंकाका राज्य दे दो और मेरे साथ चलकर वनमें तप करो। तुमको इसीमें सुख प्राप्त होगा। स्त्रीकी बात सुनकर दशाननने कहा—हे प्राणवल्लभे ! मैं जानता हूँ कि राम साक्षात् विष्णु तथा सीता साक्षात् लक्ष्मी हैं ॥ २४२ ॥ २४३ ॥ यह जानकर ही मैं रामके हाथसे मरनेके लिए सीताको यहाँ ले आया हूँ। रामके हाथसे मरकर मैं परम पद प्राप्त करूँगा ॥ २४४ ॥ बादमें तुम भी मेरी क्रिया करके तथा अग्निमें सती होकर सुखपूर्वक मेरे साथ परम धाम प्राप्त करोगी ॥ २४५ ॥ इतना कह तथा रथपर सवार होकर वह लड़ाईके लिए चल पड़ा। राजमहलसे निकलते ही उसको सिर मुड़ाये हुए एक मुण्डी दिखायी दिया ॥ २४६ ॥ उसका चित्र-विचित्र मुकुट भी गिर पड़ा। यह देखकर रावण मनमें घबराया। फिर भी उसने समरभूमिमें जाकर बहुत तेजीसे वाणोंकी वर्षा की ॥ २४७ ॥ तदनन्तर मयदानवसे एक नकली सीता बनवाकर उसने वहीं वानरोंके सामने अपने रथपर रखकर काट डाला ॥ २४८ ॥ तेज धारवाली तलवारसे सीताको कटती देख हाहाकार करते हुए सब वानर यह समाचार रामके पास निवेदन करने गये ॥ २४९ ॥ इतनेमें ब्रह्माने आकर राम आदिको बड़े आदरसे समझाकर कहा कि यह कृत्रिम सीता मारी गयी है। तुम लोग दुखी मत होओ ॥२५०॥ इतना कहकर ब्रह्माजी अन्तर्धान हो गये और वे सब वानर और राम आदि वीर ब्रह्मवाक्य-

तदा स मातलिः शीघ्रं देवेन्द्रवचनाद्रथम् । शस्त्रास्त्रवाजिसहितमशनिध्वजशोभितम् ॥२५२॥
वरच्छत्रसमायुक्तं राघवाग्रे न्यवेदयत् । तमारुह्य तदा रामश्चकार कदनं महत् ॥२५३॥
आग्नेयेन तदाग्नेयं दैवं दैवेन राघवः । अस्त्रं राक्षसराजस्य जघान परमास्त्रवित् ॥२५४॥
ततस्तु ससृजे घोरं राक्षसः सार्पमस्त्रवित् । रामः सर्पांस्ततो दृष्ट्वा सौपर्णास्त्रं मुमोच सः ॥२५५॥
अस्त्रैः प्रतिहते युद्धे रामेण दशकंधरः । पार्जन्यं ससृजे घोरं वायव्यास्त्रेण राघवः ॥२५६॥
तदस्त्रं विनिवार्यासो वह्न्यस्त्रं ससृजे पुनः । पर्जन्यास्त्रेण पौलस्त्यश्चकार विफलं तदा ॥२५७॥
नागानामयुतं तुरंगनियुतं सार्द्धं रथानां शतं पत्तीनां शतकोटिनाशसमये त्वेका कबंधा नृतिः ।
एवं कोटिकबंधनर्तनविधावेका ध्वनिः किंकिणेर्विंशत्ताः प्रहरार्धतो रघुपतेः कोदंडघंटारणे ॥२५८॥
तदा खे कौतुकं द्रष्टुं समाजग्मुः सुरा मुदा । गंधर्वाः किन्नरा यक्षा विमानशतसंस्थिताः ॥२५९॥
तदाऽशनिध्वजं रम्यं बाणैश्चिच्छेद रावणः । तं दृष्ट्वा रामचंद्रोऽपि ध्वजहीनं रथं निजम् ॥२६०॥
मारुतिं प्राह वेगेन क्षणं तिष्ठ ध्वजोपरि । तथेत्युक्त्वा मारुतिः स तालमुत्पाट्य वेगतः ॥२६१॥
गत्वा रामरथे दिव्ये तस्मिंस्तस्थौ स्वयं मुदा । तं मारुतिध्वजं दृष्ट्वा रावणः समरांगणे ॥२६२॥
तालं छत्रं मातलिनं तुरगान्वायुनंदनम् । ऐन्द्रं धनुस्तच्चिच्छेद नवबाणैस्त्वरान्वितः ॥२६३॥
वातात्मजमातलिनौ मूर्च्छितौ पतितौ भुवि । क्षणमात्रेण स्वस्थोऽभूत्तदा स वायुनन्दनः ॥२६४॥
तदा रामो वायुपुत्रस्कन्धे स्थित्वा रणाजिरे । चकार तुमुलं युद्धं रावणेन भयावहम् ॥२६५॥
रावणः परिघेणव संताड्य मारुतिं हृदि । चकार मूर्च्छितं वगात्पपात स पुनर्भुवि ॥२६६॥
तदा सस्मार रामोऽपि स्वरथं समरांगणे । तावद्रथः क्षणादेवाययौ खादग्रतः स्थितः ॥२६७॥

से संतुष्ट होकर युद्ध करनेको निकल पड़े ॥ २५१ ॥ इसी समय इन्द्रके आज्ञानुसार उनका सारथी मातलि अस्त्र-शस्त्रोंसे भरे तथा घोड़ोंसे जुते हुए रथको लेकर रामके पास आया और उनसे रथपर सवार होकर युद्ध करनेके लिए कहा। तब रामने उस रथपर सवार होकर महान् युद्ध किया ॥ २५२ ॥ २५३ ॥ अस्त्रोंको जाननेवालोंमें परमश्रेष्ठ रामने राक्षसोंके राजा रावणका आग्नेय अस्त्र अपने आग्नेय अस्त्रसे तथा देवास्त्र देवास्त्रसे शान्त किया ॥ २५४ ॥ तब अस्त्रवित् रावणने घोर सर्पास्त्र छोड़ा। रामने सर्पोंको देखकर गारुडास्त्र छोड़ा ॥ २५५ ॥ इस प्रकार जब रामने युद्धको अपने अस्त्रोंसे प्रतिहत कर दिया, तब रावणने एक दूसरा भयानक मेघास्त्र फेंका। रामने उनका उत्तर वायुअस्त्रसे कर दिया ॥ २५६ ॥ उस अस्त्रका निवारण करके रामने उसपर आग्नेयास्त्र चलाया। तब रावणने उसे वर्षा-अस्त्रसे विफल कर दिया ॥२५७॥ दस हजार हाथी, दस लाख घोड़े, डेढ़ सौ रथ तथा एक करोड़ पैदल सैनिकोंके नष्ट होनेपर एक कबन्धका नृत्य होता है। इस प्रकारके करोड़ कबन्धनृत्य होनेपर एक किंकणियों (घंटियों) की ध्वनि होती है, परन्तु रघुपति रामके केवल आधे प्रहरतक धनुषका घंटारव करनेसे ही बीसों किंकिणियोंकी ध्वनि हुई ॥ २५८ ॥ उस समय इस कौतुकको देखनेके लिए आकाशमें सैकड़ों विमानोंपर आरूढ़ देवता, गन्धर्व, किन्नर तथा यक्षलोग इकट्ठे हो गये ॥ २५९ ॥ तभी रावणने अपने बाणोंसे रामके वज्र तथा ध्वजाको काट दिया। रामचन्द्र अपने रथको ध्वजासे हीन देखकर मारुतिसे बोले कि तुम क्षणभरके लिये जल्दीसे मेरे रथकी ध्वजाके पास बैठ जाओ। 'तथास्तु' कहकर मारुति झट एक ताड़का वृक्ष उखाड़कर रामके दिव्य रथपर रख दिया और आनन्दसे उसीपर जा बैठे। मारुतिकी ध्वजाको देखकर रावणने रणांगणमें बड़ी फुरतीके साथ तालवृक्षको, छत्रको, मातलि सारथीको, अश्वोंको, वायुनन्दन हनुमान्‌को तथा ऐन्द्र धनुषको नौ बाणोंसे काट डाला ॥ २६०–२६३ ॥ तब वातात्मज हनुमान् तथा मातलि मूछित होकर जमीनपर गिर पड़े। परन्तु क्षण ही भरमें वायुनन्दन सचेत हो गये ॥ २६४ ॥ तब राम हनुमान्‌के कन्धेपर सवार होकर रावणके साथ रणांगणमें भयानक युद्ध करने लगे ॥ २६५ ॥ एकाएक रावणने मारुतिकी छातीपर गदा मारकर मूछित कर दिया और हनुमान् उसी समय फिर पृथ्वीपर गिर पड़े ॥२६६॥ तब श्रीरामने अपने रथका स्मरण किया। क्षणभरमें आकाशसे आकर वह रथ युद्धभूमिमें उनके सामने

दारुकः सारथिर्यत्र यत्र शस्त्राण्यनेकशः । गदा पद्मं तु यत्रास्ति सर्वदा गरुडो ध्वजे ॥२६८॥
यस्मिञ्छैब्यश्च सुग्रीवस्तथा चैत्र बलाहकः । मेघपुष्पश्च चत्वारो वायुवेगा हयोत्तमाः ॥२६९॥
यत्र छत्रं वरं दिव्यं हेमदण्डं विराजते । चामरे द्वे शुभे यत्र शार्ङ्गं स्वं धनुराददे ॥२७०॥
ततो रामः शरैस्तीक्ष्णैर्दशास्यस्य रथं क्षणात् । चकार चूर्णं साश्वं तं रावणं चाप्यतर्जयत् ॥२७१॥
तदाऽन्यरथमारूढो रावणो राघवं ययौ । ततो रामः शरैस्तीक्ष्णैर्दशाननशिरांसि सः ॥२७२॥
चिच्छेद तानि गगने गत्वा तोषयुतानि हि । रामहस्तान्मृतिर्जाताऽस्माक चेति विचिंत्य च ॥२७३॥
वन्दनं कर्तुकामानि गगनाच्च रणाजिरे । सस्मितानि पतन्ति स्म राघवस्य पदोपरि ॥२७४॥
रामःशिरांसि दृष्ट्वाऽथ विदीर्णास्यानि खात्पुनः । मां हन्तुं प्रदवंतीति मत्वा भीत्या व्यताडयत् ॥२७५॥
शरौघैः शतशः शीघ्रं तदद्भुतमिवाभवत् । शतमेकोत्तरं छिन्नं शिरसां चैकवर्चसाम् ॥२७६॥
शतमूर्ध्नो रावणस्य चैकोत्तरसहस्रकम् । छिन्नं तत्कल्पभेदेन वदंतीत्यपि केचन ॥२७७॥
दृष्ट्वा तु रावणस्यान्तं विभीषणमतेन सः । नाभिदेशेऽमृतं तस्य कुण्डलाकारसंस्थितम् ॥२७८॥
पावकास्त्रेण तच्छीघ्रं शोषयामास राघवः । ततः शिरांसि बाहूँश्चिच्छेद रावणस्य सः ॥२७९॥
एकेन मुख्यशिरसा बाहुभ्यां रावणो बभौ । तयोर्युद्धमभूद्घोरं तुमुलं रोमहर्षणम् ॥२८०॥
ततो दारुकवाक्येन मर्मदेशे व्यताडयत् । ब्रह्मास्त्रेण रघुश्रेष्ठः समरे दशकन्धरम् ॥२८१॥
स शरो हृदयं भित्त्वा हत्वा तं तु दशाननम् । रामतूणीरमाविश्य मेने स कृतकृत्यताम् ॥२८२॥
रावणस्य च देहोत्थं ज्योतिरादित्यवत्स्फुरत् । प्रविवेश रघुश्रेष्ठं देवानां पश्यतां सताम् ॥२८३॥
तदा देवास्तुष्टुवुस्तं ववर्षुः पुष्पवृष्टिभिः । नेदुः खे देववाद्यानि ननृतुश्चाप्सरोगणाः ॥२८४॥
तदा मंदोदरी भर्त्रा सह देहं विसृज्य सा । ययौ वैकुण्ठभवनं रावणेन मुदान्विता ॥२८५॥

खड़ा हो गया ॥ २६७ ॥ जिस रथका दारुक सारथी था, जिसपर अनेक शस्त्र थे, जिसपर गदा-पद्म तथा ध्वजापर गरुड़ विराजमान थे ॥ २६८ ॥ जिस रथमें उत्तम वायुवेगवाले शैव्य, सुग्राव, बलाहक तथा मेघपुष्प ये चार घोड़े जुते थे ॥ २६९ ॥ जिसमें दिव्य तथा सुन्दर सुवर्णदण्डवाला छत्र विराजमान था। जिसमें दो मनोहर चमर तथा रमणीय शार्ङ्ग नामका धनुष रक्खा हुआ था। तब रघुनन्दन राम उस रथको देख तथा परिक्रमा करके सानन्द उसपर सवार हो गये और अपने शार्ङ्ग धनुषको हाथमें ले लिया। अब राम अपने तीक्ष्ण बाणोंसे क्षणभरमें शत्रुके अश्व सहित रथको चूर्ण करके रावणको ललकारने लगे। तब रावण दूसरे रथपर सवार होकर रामके सामने गया। रामने पुनः तीक्ष्ण बाणोंसे रावणके दसों सिरोंको काट दिया। वे सिर गगनमंडलमें जाकर 'हमारी मृत्यु रामके हाथोंसे हुई है' यह सोचकर हँसते हुए आकाशसे रणक्षेत्रमें रामके पाँवोंपर आ गिरे ॥ २७०–२७४ ॥ रामने आकाशसे मुख फाड़े हुए उन सिरोंको अपनी ओर आते देखकर यह समझा कि ये मुझे खा जानेको आ रहे हैं। इस प्रकार रामने डरकर झट सैकड़ों बाण उनपर चला दिये। यह दृश्य बड़ा ही अद्भुत था। इस प्रकार एक सौ एक बार उसके सिरको रामने काटा ॥ २७५ ॥ २७६ ॥ कोई-कोई विद्वान् कल्पभेदसे यह भी कहते हैं कि सौ सिरवाले रावणके सिर रामने एक हजार एक बार काटे थे ॥ २७७ ॥ परन्तु तिसपर भी जब रावणकी मृत्यु नहीं हुई, तब विभीषणके कहनेके अनुसार रामने उसके नाभिदेशमें स्थित अमृतकुण्डको अपने अग्निअस्त्रसे सुखा डाला और बादमें उन्होंने रावणके सिरों तथा बाहुओंको काटा ॥ २७८ ॥ २७९ ॥ इस प्रकार जब रावणके एक सिर तथा दो हाथ बाकी रह गये, तब पुनः राम-रावणका रोमांचकारी तुमुल युद्ध हुआ ॥ २८० ॥ तदनन्तर रामने दारुक सारथीके कहनेपर ब्रह्मास्त्रसे समरमें दशकंधरकी नाभिमें मारा ॥ २८१ ॥ उस बाणने उसके हृदयको छेद तथा रामके तरकसमें आकर अपने आपको कृतकृत्य समझा ॥ २८२ ॥ उस समय रावणके मृत शरीरसे सूर्यके समान प्रदीप्त तेज निकलकर देवताओंके सामने ही रघुनन्दन रामके देहमें प्रवेश कर गया ॥ २८३ ॥ तब देवताओंने स्तुति करके

ततो विभीषणेनैव रामो रावणसत्क्रियाम् । कारयित्वा लक्ष्मणेन लङ्कायां तं विभीषणम् ॥२८६॥
नीत्वाऽभिषेचयित्वाऽथ न्यासभूतां तदंतिके । वायुपुत्रकृतां लङ्कां मोचयामास राक्षसात् ॥२८७॥
विभीषणादिभिः शीघ्रमशोकं प्रेष्य मारुतिम् । सीतायै सकलं वृत्तं श्रावयामास राघवः ॥२८८॥

इति श्रीशतकोटिरामचरितांतर्गते श्रीमदानंदरामायणे वाल्मीकीये सारकांडे युद्धचरित्रे रावणवधो नामैकादशः सर्गः ॥ ११ ॥

द्वादशः सर्गः

(रामका राज्याभिषेक)

श्रीशिव उवाच

अथ तां दिव्यवस्त्रैश्च भूषयित्वा विदेहजाम् । सुस्नातां शिबिकासंस्थां वेष्टितां वेत्रपाणिभिः ॥ १ ॥
निन्युः श्रीरामसान्निध्यं सुग्रीवाद्यास्त्वरान्विताः । नानावाद्यसमुत्साहैर्नर्तनैर्वारयोषिताम् ॥ २ ॥
ततोऽवरुह्य यानात्सा पद्भ्यां गत्वा शनैः पतिम् । ननाम सीता श्रीरामं लज्जिताऽऽसीत्पतेः पुरः ॥ ३ ॥
रामोऽपि दृष्ट्वा तां सीतां शुद्धां ज्ञात्वापि तां पुनः। सर्वेषां प्रत्ययार्थं हि तदा वचनमब्रवीत् ॥ ४ ॥
यथेच्छं गच्छ वैदेहि रिपुगेहनिवासिनी । न त्वामंगीकरोम्यद्य ब्रह्मणा प्रार्थितोऽप्यहम् ॥ ५ ॥
तद्रामवचनं श्रुत्वा कारयित्वा चितां शुभाम् । लक्ष्मणनाथ सुस्नाता सीता वचनमब्रवीत् ॥ ६ ॥
रामादन्यं चेतसाऽपि नाहं जानामि पावक । यदिदं मे वचः सत्यं तर्हि त्वं शीतलो भव ॥ ७ ॥
इति सा शपथं कृत्वा विवेशानलमुत्तमम् । ततः स देववाक्यैश्च तथा दशरथस्य च ॥ ८ ॥
वचनाज्जानकीं शुद्धां ज्ञात्वा तामग्रहीत्प्रभुः । सुभूषितां पावकेन स्वांके संस्थापितां शुभाम् ॥ ९ ॥
पञ्चवट्यां स्वयं तत्र पुरा न्यस्तां च पावके । आलिंग्य जानकीं रामो निजांके सन्यवेशयत् ॥१०॥

पुष्प बरसाये, गगनमण्डलमें दिव्य बाजे बजने लगे तथा अप्सराएँ नृत्य करने लगीं ॥ २८४ ॥ उधर मन्दोदरी आनन्दसे पतिके साथ अपना पाञ्चभौतिक देह छोड़कर वैकुण्ठधामको प्रस्थान कर गयी ॥ २८५ ॥ पश्चात् रामने लक्ष्मणको भेजा और विभीषणसे रावणकी क्रिया करवायी और लङ्कामें विभीषणका अभिषेक करवाकर उसके पास वायुपुत्रकी न्यास (धरोहर) रक्खी हुई लङ्काको राक्षसोंसे छुड़वा दिया ॥ २८६ ॥ २८७ ॥ तदनन्तर रामने विभीषणादिके साथ हनुमान्को सीताके पास भेजकर सब समाचार कहलाया ॥ २८८ ॥ इति श्रीशतकोटिरामचरितांतगते श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये सारकांडे युद्धचरित्रे 'ज्योत्स्ना' भाषाटीकायां रावणवधो नामैकादशः सर्गः ॥ ११ ॥

श्रीशिवजी बोले—हे प्रिये ! तदनन्तर सुग्रीव आदि वानर सुमनोहर वस्त्रों तथा भूषणोंसे भूषित, स्नान कर-के पालकीपर सवार, बेंत हाथमें लिये हुए सिपाहियोंसे घिरी हुई वैदेहीको अनेक बाजोंके सुन्दर शब्दोंके सहित तथा वेश्याओंके नृत्यके साथ शीघ्र रामके पास ले आये ॥ १ ॥ २ ॥ सीता कुछ दूर ही सवारीपरसे उतरकर धीरे-धीरे अपने पति रामके पास गयीं तथा उन्हें प्रणाम करके कुछ लज्जित होती हुई उनके सामने खड़ी हो गयीं ॥ ३ ॥ राम सीताको शुद्ध चरित्रवाली समझकर भी सर्वसाधारणको विश्वास दिलानेके लिए कहने लगे—॥ ४ ॥ हे शत्रुके घरमें निवास करनेवाली वैदेही ! तुम जहाँ चाहो, वहाँ चली जाओ । साक्षात् ब्रह्मा कहें तो भी मैं तुम्हें अपने पास नहीं रख सकता ॥ ५ ॥ रामका ऐसा वाक्य सुनकर सीताने स्नान किया और लक्ष्मणसे सुन्दर चिता रचवाकर अग्निदेवकी प्रार्थना करती हुई बोलीं—॥ ६ ॥ हे पावक ! यदि मैंने रामके सिवाय अन्य पुरुषका चित्तसे भी चिन्तन न किया हो तो तू शीतल हो जा ॥ ७ ॥ सीता ऐसा कहकर अग्निमें प्रवेश कर गयीं । तब प्रभु रामने अग्निदेव तथा राजा दशरथके कहनेसे जानकीको पवित्र तथा पतिव्रता समझकर स्वीकार कर लिया । यह बात सीता जानती थीं, जिनको कि रामने पंचवटीमें स्वयं अग्निको सौंप

तामसी राजसी चैव सात्त्विकी या त्रिधा पुरा । जाता रावणघातार्थं सा जातैकत्र वै तदा ॥११॥
ततो दैवैः स्तुतो रामश्चेन्द्रेण समरे मृतान् । वानरादीन् सुधावृष्टया जीवयामास सादरम् ॥१२॥
तत्रैकं वानरं रामोऽदृष्ट्वा पप्रच्छ मारुतिम् । राघवं मारुतिः प्राह कुम्भकर्णेन भक्षितः ॥१३॥
यदि किंचित्तस्य कपेर्नखकेशास्थिलोहितम् । रणेऽभविष्यत्पतितं तर्ह्यद्यामृतवृष्टितः ॥१४॥
अभविष्यज्जीवितः स सत्यं विद्धि रघूत्तम । सुधावृष्टया राक्षसास्ते जीवयिष्यंति वै पुनः ॥१५॥
इति भीत्या पुराऽस्माभिः सर्वे त्यक्ता महादधौ । तन्मारुतेर्वचः श्रुत्वा यमराजं व्यलोकयत् ॥१६॥
यमोऽपि भीत्या रामाग्रेऽर्पयत्तं प्लवगोत्तमम् । तं दृष्ट्वा राघवस्तुष्टस्तदाऽऽज्ञां नाकमुत्तमम् ॥१७॥
गंतुं ददौ मातलिने सोऽपि नत्वा रघूत्तमम् । रथेन वाजियुक्तेन ययौ मघवतः पुरीम् ॥१८॥
रामस्तु मंगलस्नानं कर्तुं संप्रार्थितोऽपि हि । विभीषणेन भरतं स्मृत्वा नांगीचकार सः ॥१९॥
ततः सर्वैर्वानरैश्च पुष्पकं चारुरोह सः । रथेन दारुकश्चापि गरुडो मकरध्वजः ॥२०॥
विभीषणश्चारुरोह पुष्पकं राघवाज्ञया । ततस्ते निर्जराः सर्वे राममामंत्र्य खं ययुः ॥२१॥
दृष्ट्वा रामं दशरथो विमानेन ययौ दिवम् । अथ तं राघवं प्राह पुष्पकस्थं विभीषणः ॥२२॥
राम ते प्रष्टुमिच्छामि तत्त्व मां वक्तुमर्हसि । ऐरावणगृहे राम यदा पातालमुत्तमम् ॥२३॥
पुरा गतस्तदा तूष्णीं किमर्थं त्व स्थितः प्रभो । कथं तौ न हतौ दुष्टौ तदैव क्षणमात्रतः ॥२४॥
तत्तस्य वचन श्रुत्वा विहस्य राघवोऽब्रवीत् । भ्रमराणां वधः पूर्वं विधिना मारुतेः करात् ॥२५॥
प्रोक्तस्तस्मान्मया तूष्णीं प्रतीक्षा मारुतेः कृता । अन्यच्चापि जगत्यां हि मारुतेः पौरुषं जनाः ॥२६॥

दिया था। इस समय भगवान रामचन्द्रने उन्हीं जानकीको आलिंगन करके अपनी गोदमें बैठा लिया ॥ ८-१० ॥ जिस सीताने पूर्वकालमे रावणवधके लिए तामसो, राजसी तथा सात्त्विकी ये तीन मूर्तियें धारण का थीं, वह उस समय पुनः एक हो गयीं ॥ ११ ॥ पश्चात् सब देवताओंने मिलकर रामकी स्तुति की। रामने इन्द्रसे कहकर समरमें मरे हुए वानरोंको सुधावृष्टिसे जीवित करवाया ॥ १२ ॥ उनमें एक वानरको न देखकर रामने मारुतिसे पूछा। मारुतिने उत्तर दिया कि मालूम होता है, उसे कुम्भकर्ण खा गया ॥ १३ ॥ हे रघूत्तम ! यदि उस वानरका नख, केश अथवा लोहित आदि कुछ भी रणभूमिमें शेष होता तो वह अवश्य इस अमृतवर्षासे जावित हो जाता। यदि कहें कि अमृतवर्षासे राक्षस क्यों नहीं जो गये तो इसका उत्तर यह है कि उनका तो जोवित हा जानेके डरसे हम लोगोंने पहले ही समुद्रमें फेंक दिया था। मारुतके इस वचनको सुनकर रामने यमराजकी ओर देखा। उनके देखनेसे ही यमराज डर गय और उस बन्दरका रामके आगे लाकर खड़ा कर दिया। यह देखकर राम प्रसन्न हो गये। बादमें रामने मातालका स्वर्ग जानेका आज्ञा दे दी। वह भो रामको प्रणामकर तथा अश्वयुक्त रथ लेकर इन्द्रपुरीको चला गया ॥ १४-१८ ॥ तदनन्तर विभीषणने रामको विघ्नशांतिकारक मङ्गलस्नान करनेके लिये कहा। जो किसी विघ्न, आपत्ति तथा रोग आदिके बाद किया जाता है। पर रामने भरतका स्मरण करके उसे अंगीकार नहीं किया ॥ १९ ॥ बादमें समस्त बन्दरोके साथ रामजी पुष्पक विमानपर सवार हो गये। रथसहित दारुक, गरुड़ और मकरध्वज भी उसपर चढ़ गये ॥ २० ॥ रामको आज्ञा पाकर विभोषण भी विमानारूढ़ हो गये। तभी सब देवता रामका आदेश पाकर स्वर्गको चले गये ॥ २१ ॥ राजा दशरथ [जो कि जनकनन्दिनीके अग्निप्रवेशके समय विमानपर बैठकर आये थे] भो रामसे पूछकर स्वर्गको चल दिये। इसके उपरान्त पुष्पक विमानपर स्थित विभीषणने रामसे कहा—॥ २२ ॥ हे राम ! मैं आपसे कुछ पूछना चाहता हूँ। कृपा करके आप उसका उत्तर द। हे राम ! जब आप पातालमें ऐरावणके यहाँ गये थे ॥ २३ ॥ उस समय हे प्रभो ! आप चुप क्यों हो गय थे। उसी क्षण आपने उन दुष्टोंको मार क्यों नहीं डाला ? ॥ २४ ॥ यह प्रश्न सुना तो राम कुछ मुस्कराकर बोले कि पूर्वकालमें किसी समय ब्रह्माने 'उन भँवरोंका वध हनुमान्के हाथसे होगा' ऐसा कह दिया था ॥ २५ ॥ इसी कारण मैंने चुप होकर वह काम मारुतिपर ही छोड़ दिया था और इसीलिये मैंने मारुतिको

वदंतु येन श्रीरामलक्ष्मणौ मोचितौ पुरा । असुराभ्यां हि पाताले सोऽयं श्रीरामसेवकः ॥२७॥
इति पौरुषवृद्ध्यर्थं मारुतेर्जगतीतले । मम दासस्य बलिनस्तथा तूष्णीं स्थितं मया ॥२८॥
नोचेद्धुंकारमात्रेण पथि हंतुं न किं क्षमः । ईषिकास्त्रेण काकस्य येन नेत्रं विदारितम् ॥२९॥
शतयोजनपर्यन्तं मारीचोऽब्धौ पतत्रिणा । पुरा येन मया त्यक्तः सोऽहं किं कुण्ठितस्तदा ॥३०॥
तयोर्वधे तु पाताले न शस्त्रार्थं प्रतीक्षितम् । मारुतेः पौरुषार्थं हि सत्यं वेद विभीषण ॥३१॥
इति रामवचः श्रुत्वा मारुतिः स विभीषणम् । तदा प्राह विहस्याथ किं त्वं तद्विस्मृतोऽसि हि ॥३२॥
सेतुकाले राघवेण गर्वं दृष्ट्वा मयि स्थितम् । लांगूलं खंडितं पूर्वं लिंगोत्पाटनहेतुना ॥३३॥
तस्य मे राघवाग्रे हि किं बलं मन्यसेऽत्र हि । किं विलम्बो राघवाय तयोरसुरयोर्वधे ॥३४॥
वर्धिता निजदासस्य कीर्तिरत्र विभीषण । इति तन्मारुतेर्वाक्यं श्रुत्वा रामं विभीषणः ॥३५॥
ननाम परया भक्त्या ततः सम्यगपूजयत् । अथ रामः पुष्पकस्थः सीतया प्रार्थितो मुहुः ॥३६॥
तद्वाक्यगौरवात्तुष्टस्त्रिजटायै वरान्ददौ । वस्त्रालङ्कारभूषाभिः पूर्वं तुष्टां विधाय च ॥३७॥
त्रिजटे वचनं मेऽद्य शृणु मंगलदायकम् । कार्तिके माधवे माघे चैत्रे मासचतुष्टये ॥३८॥
स्नात्वाऽग्रे त्रिदिनं स्नानं त्वत्प्रीत्यर्थं नरोत्तमाः । करिष्यंति हि तेनैव कृतकृत्या भविष्यसि ॥३९॥
यैर्नत्रिदिनं स्नानं न कृतं पूर्णिमोर्ध्वतः । तेषां मासकृतं पुण्यं हर त्वं वचनान्मम ॥४०॥
अन्यच्चापि शृणुष्व त्वं दीयते यो वरो मया । अशुचीनि गृहाण्येव तथा श्राद्धहवींषि च ॥४१॥
क्रोधाविष्टेन दत्तानि विधिवत्तत्कृतान्यपि । त्रिजटे तानि तुभ्यं हि शृण्वन्यत्त्वं मयोच्यते ॥४२॥
पादशौचमनभ्यंगं तिलहीनं च तर्पणम् । सर्वं तत्त्रिजटे तुभ्यं तथा श्राद्धमदक्षिणम् ॥४३॥

यहाँ प्रतीक्षा की। दूसरी इच्छा यह थी कि संसारमें लोग मारुतिके बलको भी जान जायँ कि मारुतिने पातालमें राक्षसोंके हाथसे राम-लक्ष्मणको छुड़ाया था, वही यह रामका सेवक हनुमान् है॥ २६ ॥ २७ ॥ इस प्रकार जगत्में अपने बलवान् सेवक हनुमान्के पुरुषार्थकी प्रसिद्धि करनेके लिए ही मैं वहाँ चुप हो गया था॥ २८ ॥ नहीं तो क्या मैं उनको रास्तेमें ही हुंकारमात्रसे नष्ट नहीं कर सकता था ? जिसने सींकके अस्त्रसे ही काक जयन्तका नेत्र फोड़ डाला॥ २९ ॥ जिसने बाणसे मारीचको सौ योजनकी दूरीपर समुद्रमें फेंक दिया। वह मैं तब क्या कुण्ठितशक्ति हो गया था, कभी नहीं। मैंने पातालमें उनको मारनेके लिये किसी शस्त्रकी राह नहीं देखी थी। हे विभीषण ! तुम सच मानो कि मैं उस समय केवल हनुमान्के बलकी ख्याति करनेके लिए ही चुप हो गया था॥ ३० ॥ ३१ ॥ रामका यह कथन सुनकर हँसते हुए मारुतिने विभीषणसे कहा-क्या तुम उस बातको भूल गये, जब सेतु बाँधनेके समय रामने मुझको कुछ गर्वयुक्त देखकर स्थापित शिवलिंग उखाड़नेके बहाने मेरी पूँछ तोड़वा डाली थी॥ ३२ ॥ ३३ ॥ ऐसे मुझ निर्बलका बल रामचन्द्रके सम्मुख किसी गिनतीमें नहीं है। रामचन्द्रको उन दोनों असुरोंको मारनेमें क्या देर लगती ? कदापि नहीं। हे विभीषण ! रामने केवल अपने दासकी (मेरी) कीर्ति बढ़ानेके लिए ही वैसा किया था। मारुतिकी बात सुनकर विभीषणने रामकी परम भक्तिसे प्रणाम करके प्रेमसे अच्छी तरह पूजन किया। पश्चात् रामने विमान-पर बैठी हुई सीताके कहनेसे उनके वाक्यका आदर करते हुए प्रसन्न होकर त्रिजटाको वरदान दिया। पहले उसको वस्त्र-अलंकार आदिसे संतुष्ट करके कहा-हे त्रिजटे ! तुम मेरी मङ्गलमयी वाणी सुनो। कार्तिक, वैशाख, माघ और चैत्र इन चार महीनोंमें पहलेके तीन दिन सभी नरश्रेष्ठ तुमको प्रसन्न करनेके लिए ही स्नान करेंगे। इससे तुम कृतकृत्य हो जाओगी॥ ३४-३९ ॥ जो मनुष्य इन चार महीनोंमें पूर्णिमासे लेकर तीन दिन स्नान न करे, उसका सारे महीनेका किया हुआ पुण्य मेरे कहनेसे तुम हरण कर लेना॥ ४० ॥ और यह भी वर देता हूँ कि अपवित्र स्थानमें विधिपूर्वक किये हुए श्राद्ध तथा हवन आदि भी यदि क्रोधसे किये गये हों तो वे भी तुम्हारे ही होंगे। और भी सुनो, बिना तेल मले पाँव धोने तथा बिना तिलके तर्पण करनेके पुण्य भी तुम्हारे होंगे। हे त्रिजटे ! दक्षिणासे

इति दत्त्वा वरान् रामस्त्रिजटासरमान्वितः । स विभीषणसुग्रीवमकरध्वजवानरैः ॥४४॥
ययौ विहायसा सीतां दर्शयन् कौतुकानि सः । पश्य सीते पुरीं लङ्कां तथा रणभुवं शुभाम् ॥४५॥
पश्य सेतुं मया बद्धं शिलाभिर्लवणार्णवे । एतच्च दृश्यते तीर्थं सेतुबंधमिति स्मृतम् ॥४६॥
इत्युक्त्वा रघुवीरस्तु राक्षसेंद्रस्य वाक्यतः । पुष्पकाद्भुवि चोत्तीर्य धृत्वा कोदंडमुत्तमम् ॥४७॥
बभंज सेतुं तत्कोट्या धनुष्कोटिरितीर्यते । अतएव हि तत्तीर्थं स्नानात्कैवल्यदायकम् ॥४८॥
कोदंडपाणिर्नाम्नाऽऽसीद्रामसूर्तिश्च तत्र हि । एतस्मिन्नंतरे तत्र संपातिः स ययौ तदा ॥४९॥
तमालिंग्य रामचंद्रस्तं प्राह स्मितपूर्वकम् । बंधोर्नाम्नाऽत्र तीर्थं त्वं कुरु सेतौ महत्तमम् ॥५०॥
तथेति रामवचनाद्भ्रातुः संतोषकाम्यया । तीर्थं चकार सम्पातिर्जटायुमिति विश्रुतम् ॥५१॥
ततो रामाज्ञया यानं संपातिश्चारुरोह सः । ततो यानेन तां सीतां दर्शयन् कौतुकानि हि ॥५२॥
ययौ रामेश्वरं पूज्य तथा श्रीरघुनंदनः । सीतेऽत्र पश्य मंत्रार्थमेकांते संस्थितं पुरा ॥५३॥
अत्र दर्भेषु शयनं कृतं पश्य विदेहजे । नवग्रहार्थं प्रक्षिप्तान्पाषाणान्पश्य सागरे ॥५४॥
तूष्णीमेव स्थितं पश्य सागरं मम वाक्यतः । एवं तां दर्शयन् रामः किष्किंधां प्रययौ क्षणात् ॥५५॥
वानराणां स्त्रियः सर्वा विमाने स्थाप्य राघवः । ययौ तां दर्शयन् सीतां कौतुकानि समंततः ॥५६॥
प्रवर्षणगिरिं पश्य ऋष्यमूकाचलं तथा । पंपासरोवरं पश्य कृष्णां भीमरथीं शुभाम् ॥५७॥
पश्य पंचवटीं रम्यां गोदातीरविराजिताम् । अगस्तेराश्रमं पश्य सुतीक्ष्णस्याश्रमं तथा ॥५८॥
पश्यात्रेराश्रमं सीते चित्रकूटं समीक्षय । कालिंदीं जाह्नवीं पश्य भारद्वाजाश्रमं तथा ॥५९॥
इत्युक्त्वा जानकीं रामो भारद्वाजार्थितस्तदा । तस्थौ तस्याश्रमे यानादवरुह्य यथासुखम् ॥६०॥

शून्य सब श्राद्ध भी तुम्हींको प्राप्त होंगे ॥ ४१ ॥ ४२ ॥ इस तरह बहुतेरे वर देकर राम त्रिजटा, सरमा, विभीषण, सुग्रीव, मकरध्वज तथा वानरोंके साथ आकाशमार्गसे सीताको मार्गके कौतुक दिखाते हुए चल दिये। राहमें राम बोले-हे सीते ! इस लंका नगरीको तथा इस सुन्दर रणभूमिको देखो ॥ ४३-४५ ॥ यह क्षारसमुद्रमें मेरा बाँधा हुआ शिलाओंका विशाल सेतु है। यह सामने सेतुवन्ध नामका प्रसिद्ध तीर्थ दिखाई दे रहा है ॥ ४६ ॥ इतना कहनेके बाद रामचन्द्रजी राक्षसेन्द्र विभीषणके कथनानुसार विमानसे नीचे उतरे और अपना उत्तम धनुष लेकर उसकी नोकसे सेतुको तोड़ दिया। वहाँपर स्नान करनेसे मोक्षपद देनेवाला धनुपकोटि नामका तीर्थ बन गया ॥ ४७ ॥ ४८ ॥ दण्डपाणि नामकी रामकी मूर्ति भी वहाँ स्थापित हो गयी। इतनेमें वहाँ संपाती आ पहुँचा ॥ ४९ ॥ रामने उसका आलिंगन करके प्रसन्न मनसे कहा कि तुम यहाँ सेतुपर अपने भाईके नामका एक महान् तीर्थ स्थापित करो ॥ ५० ॥ 'तथास्तु' कहकर रामकी आज्ञाके अनुसार संपातीने अपने भाईकी आत्माको संतुष्ट करनेकी इच्छासे वहाँ 'जटायु' नामका प्रसिद्ध तीर्थं बनाया ॥ ५१ ॥ बादमें रामकी आज्ञासे संपातीको भी पुष्पक विमानपर चढ़ा लिया गया। श्रीरघुनन्दन राम सीताके साथ रामेश्वरकी पूजा करके विमानपर सवार होकर सीताको सब दृश्य दिखाते हुए बोले—देखो सीते ! इस एकान्त जगहपर मैं मंत्रणा करनेके लिए बैठता था ॥ ५२ ॥ ५३ ॥ हे विदेहजे ! इन कुशाओंपर मैं सोता था। देखो, ये नौ पाषाण मैने समुद्रमें नवग्रहोंकी पूजाके लिए डाले थे ॥ ५४ ॥ देखो, मेरे कहनेसे यह समुद्र अब भी चुप है। इस प्रकार वर्णन करते हुए रघुनन्दन राम क्षणभरमें किष्किधा आ पहुँचे ॥ ५५ ॥ वहाँसे सुग्रीव आदि वानरोंकी स्त्रियोंको विमानपर बैठाकर पुनः सब स्थल सीताको दिखाते हुए वे आगे बढ़े ॥ ५६ ॥ रामने सीतासे कहा—देखो यह प्रवर्षण गिरि है, यह ऋष्यमूक पर्वत है, यह पंपासरोवर है, यह पवित्र कृष्णा तथा भीमरथी नदी है ॥ ५७ ॥ गोदावरीके तटपर विराजमान यह रमणीक पंचवटी है। उधर अगस्त्य तथा सुतीक्ष्ण मुनिके आश्रमको देखो ॥ ५८ ॥ हे सीते ! अत्रि मुनिके इस आश्रमको तथा चित्रकूट पर्वतकी शोभाको देखो। यमुना, गंगा तथा भारद्वाज ऋषिके आश्रमको देखो ॥ ५९ ॥ जानकीसे यह कहकर राम विमानसे नीचे उतरे और भारद्वाज ऋषिके प्रार्थना करनेपर उनके आश्रममें सुखसे

माघशुक्लचतुर्थ्यां हि पूर्णे वर्षे चतुर्दशे । भारद्वाजोऽपि तपसा स्वर्गं निर्माय भूतले ॥६१॥
पूजयामास श्रीरामं सीतावानरसंयुतम् । रामोऽपि हृदि संमन्त्र्य मारुतिं वाक्यमब्रवीत् ॥६२॥
अयोध्यां गच्छ भरतं मद्वृत्तं कथयस्व तम् । सखायं शृङ्गवेरे मे वृत्तं कथय केवटम् ॥६३॥
तथेति गुहकं गत्वा कपिर्वृत्तं न्यवेदयत् । गुहकोऽपि मुदा युक्तस्तदा रामांतिकं ययौ ॥६४॥
ततोऽयोध्यां ययौ वेगान्मारुतिः स विहायसा । नंदिग्रामेऽपि भरतः पूर्णे वर्षे चतुर्दशे ॥६५॥
नागते राघवे वह्निं सन्नद्धोऽभूत्प्रवेशितुम् । शत्रुघ्नं भरतः प्राह रावणेन रणांगणे ॥६६॥
श्रीरामलक्ष्मणौ वीरौ हतौ मन्येऽद्य नागतौ । आकारिता मया सर्वे नृपा एते बलैर्युताः ॥६७॥
लंकां गत्वा राघवस्य साहाय्यं कर्तुमिच्छता । सोऽहमग्निं विशाम्यद्य रवावस्ताचलं गते ॥६८॥
त्वं गच्छ पार्थिवैर्लंकां हत्वा युद्धे दशाननम् । मोचयित्वा जनकजां ततो नः पारलौकिकम् ॥६९॥
रामादीनां त्रिबंधूनां कर्तुमर्हसि सादरम् । इति तद्वाक्यमाकर्ण्य पौरा जानपदा नृपाः ॥७०॥
शत्रुघ्नो मातरः सर्वा उर्मिलाद्याः स्त्रियश्च ताः । सुमंत्राद्या मंत्रिणश्च पौरनार्यश्च सेवकाः ॥७१॥
भरतं वेष्टयामासुः खेदाद्विह्वलमानसाः । भरतः सांत्वयन् सर्वान्ययौ तां सरयूं नदीम् ॥७२॥
चितां कृत्वा ततः स्नात्वा ददौ दानान्यनेकशः । सप्त प्रदक्षिणाः कृत्वा वह्निं ध्यात्वा रघूत्तमम् ॥७३॥
सीतां तां लक्ष्मणं वीरं नत्वा मातृगुरुं मुनीन् । आराध्यदेवतां ध्यात्वा ह्युत्तराभिमुखः स्थितः ॥७४॥
रवौ न्यस्तेक्षणः सायं प्रतीक्षन् संस्थितः क्षणम् । महान्कोलाहलश्चासीत्तदा स्त्रीपुरुषैः कृतः ॥७५॥
एतस्मिन्नंतरे खस्थस्तं दृष्ट्वा वायुनंदनः । प्रवेष्टुमुद्यतं वेगाद्भरतं गद्गदस्वनः ॥७६॥
अब्रवीन्मधुरं वाक्यं सुधया सेचयन्निव । मा विशस्वानलं वीर राघवोऽद्य समागतः ॥७७॥

ठहर गये ॥ ६० ॥ उस रोज चौदहवें वर्षको माघ शुक्ल चतुर्दशी थी । भारद्वाजने अपने तपोबलसे पृथ्वीपर ही स्वर्गकी रचना कर दी ॥ ६१ ॥ समस्त स्वर्गीय पदार्थोंसे उन्होंने सीता तथा वानरों समेत श्रीरामका भली भाँति पूजन तथा सत्कार किया । तदनन्तर रामने विचार करके मारुतिसे कहा—॥ ६२ ॥ अयोध्या जाकर भरतको तथा शृंगवेरपुर जाकर मेरे प्रिय मित्र निषादराजको मेरा सब समाचार सुना दो ॥ ६३ ॥ 'बहुत अच्छा' कहकर हनुमान्ने निषादराजके पास जाकर सब वृत्तान्त निवेदन कर दिया । वह प्रसन्न होकर रामके पास गया ॥ ६४ ॥ वहाँसे मारुति आकाशमार्गसे शीघ्र अयोध्या गये । वहाँ जाकर देखा कि नंदीगाँव-में भरत चौदह वर्ष बीत जानेपर भी रामके न लौटनेके कारण अग्नि जलाकर उसमें प्रवेश करनेकी तैयारी करके शत्रुघ्नसे कह रहे थे—मेरी समझमें तो ऐसा आ रहा है कि रावणने युद्धमें राम-लक्ष्मणको मार डाला है। इसी कारण वे अबतक नहीं लौटे । इसीलिए मैंने सब राजाओंको अपनी-अपनी सेनाके सहित बुलवा भेजा है कि वे सब लंका जाकर रामकी सहायता करें । मैं तो आज सूर्यास्तके समय अग्निमें प्रवेश कर जाऊँगा ॥ ६५–६८ ॥ परन्तु तुम राजाओंके साथ लंका जा तथा युद्धमें रावणको मारकर जनकनन्दिनीको छुड़ा लाना । पश्चात् राम आदि हम तीनों भाइयोंका तुम आदरपूर्वक पारलौकिकी क्रिया करना । भरतकी यह बात सुनकर देशके और नगरके लोग, राजालोग, शत्रुघ्न, सब माताएँ, उर्मिला आदि समस्त स्त्रियाँ, सुमंत्र आदि मंत्रिगण, पुरकी स्त्रियें तथा सेवकवर्गने आकर चारों ओरसे भरतको घेर लिया और दुःखी होकर रुदन करने लगे । तब भरत सबको समझा-बुझाकर सरयू नदीके किनारे गये ॥ ६९–७२ ॥ वहाँ जा तथा स्नान करके चिता रचवायी और अनेक दान दिये । पश्चात् अग्निकी सात प्रदक्षिणा करके उन्होंने रघूत्तम रामका ध्यान किया ॥ ७३ ॥ तदनन्तर सीता तथा वीर लक्ष्मणको नमस्कार करके माताओं, गुरुजनों तथा मुनियोंको प्रणाम किया और आराध्य देवताका स्मरण करके उत्तराभिमुख होकर खड़े हो गये ॥ ७४ ॥ भरत सूर्यपर दृष्टि गड़ाये हुए सूर्यास्तकी प्रतीक्षा करने लगे । उस समय सभी स्त्री-पुरुषोंमें महान् हाहाकार मच
10 गया ॥ ७५ ॥ तभी वायुनन्दन हनुमान्ने आकर अग्निप्रवेश करनेको उद्युक्त भरतसे शांतिपूर्ण गद्गदस्वर होकर अमृतके तुल्य यह मधुर वचन कहा—हे वीर ! अग्निमें प्रवेश मत करिए । श्रीराम सीता तथा लक्ष्मणके साथ

सीतया लक्ष्मणेनापि भारद्वाजाश्रमं प्रति । वानरैः सहितं रामं श्वस्त्वं पश्यसि निश्चयात् । ७८॥
रामोऽप्युत्कंठितस्त्वां हि द्रष्टुमस्ति जटाधर । इति तद्वाक्सुधावृष्टिसेचितो भरतो मुदा ॥७९॥
वह्निं नत्वा परावृत्य ननाम वायुनंदनम् । भरतं मारुतिश्चापि नत्वाऽऽलिंग्य सविस्तरम् ।८०॥
श्रावयामास श्रीरामवृत्तं संतोषकारकम् । तच्छ्रुत्वा भरतस्तुष्टः शोभयामास तां पुरीम् ॥८१॥
अयोध्यां तोरणाद्यैश्च पौरैः प्रत्युज्जगाम तम् । मस्तके पादुके बद्ध्वा पुरस्कृत्याथ वारणम् ॥८२॥
माघस्य सितपंचम्यां प्राप्ते पंचदशेऽब्दके । प्रभाते भरतो याम्ये ददर्श पुष्पकं खगम् ॥८३॥
ननाम राघवं दृष्ट्वा साष्टांगं भरतस्तदा । रामोऽप्यालिंग्य भरतं कृत्वा रूपाण्यनेकशः ॥८४॥
एककाले जनान् सर्वान्पृथक् स परिषस्वजे । आदौ पश्चान्न रामेण कृतमालिंगन तदा । ८५॥
रामान् दृष्ट्वा ह्यसंख्यातान् जनाश्चासन्सुविस्मिताः । समाश्वास्याथ भरतं राघवः साश्रुलोचनः ॥८६॥
ननाम शिरसा मातृर्वसिष्ठं चाप्यरुन्धतीम् । ततो वाद्यनर्तनाद्यैर्नन्दिग्रामं ययौ शनैः ॥८७॥
श्मश्रुकर्मोद्वर्तनं च तैलाभ्यंगं तु बंधुभिः । नंदिग्रामेऽकरोद्रामो नानामांगल्यवस्तुभिः ॥८८।
नववाद्यसुघोषाश्च नेदुः सर्वत्र सुस्वराः । नार्यो नीराजयामासु रत्नदीपै रघूत्तमम् ॥८९॥
ततः सीता नमस्कृत्य कौसल्याद्याश्च मातरः । वसिष्ठं ब्राह्मणान्वृद्धान्वंदनीयान्यथाक्रमम् ॥९०॥
ततः सीतां समालिंग्य कौसल्याद्याश्च मातरः । स्नापयामासुर्मांगल्यद्रव्यैर्वाद्यपुरःसरम् ॥९१॥
वस्त्रालंकारभूषाभिः शुशुभे जानकी तदा । भरतः पादुके ते तु राघवस्य सुपूजिते ॥९२॥
योजयामास रामस्य पादयोर्भक्तिसंयुतः । ततोऽतिविनयात्प्राह भरतो रघुनंदनम् ॥९३॥
राज्यमेतन्न्यासभूतं मया निर्यापितं तव । कोष्ठागारं बलं कोशं कृतं दशगुणं मया ॥९४॥

आज आ गये हैं। आप वानरों समेत उन्हें कल अवश्य देखेंगे ॥ ७६-७८ ॥ हे जटाधर ! राम भी आपको देखनेके लिए बड़े ही उत्कंठित हो रहे हैं। इस प्रकार हनुमान्‌की वाक्यरूपिणी सुधावृष्टिसे सिंचित होकर भरत सहर्ष अग्निके पाससे लौट आये और वायुनन्दनको प्रणाम किया। मारुतिने भी भरतको नमस्कार तथा आलिङ्गन करके श्रीरामका संतोषकारक तथा सविस्तार सब समाचार सुना दिया। यह सुना तो भरतने प्रसन्न होकर अयोध्या नगरीको तोरण-पताका आदिसे सुसज्जितकर तथा पुरवासियोंको साथ ले और हाथीको आगे करके रामकी खड़ाऊँको मस्तकपर बाँधकर रामकी अगवानी करने गये ॥ ७९-८२ ॥ पन्द्रहवें वर्षकी माघ शुक्ल पञ्चमीको प्रातःकाल ब्राह्म मुहूर्तमें भरतने पुष्पकविमानको आकाशमें देखा ॥ ८३ ॥ भरतने रामके दर्शन करनेके साथ ही उनको साष्टांग प्रणाम किया। रामने भरतको आलिंगन करनेके बाद एक साथ अनेक रूप धारण करके एक ही समय सब लोगोंके साथ अलग-अलग मिले। किसीके साथ आलिंगन आगे या पीछे नहीं होने पाया ॥ ८४ ॥ ८५ ॥ बहुतसे रामोंको देखकर लोगोंको बड़ा भारी विस्मय हुआ। रामने भरतको ढाढ़स बँधाया और उनके नेत्रोंमें जल भर आया ॥ ८६ ॥ पश्चात् उन्होंने माताओंको मस्तक झुकाकर प्रणाम करके गुरुपत्नी अरुन्धतीको प्रणाम किया। बादमें नाच-गाना तथा बाजोंके साथ धीरे-धीरे राम नन्दीग्राममें पधारे ॥ ८७ ॥ वहाँ जाकर रामने क्षौर कराया और शरीरमें चन्दनादि सुगन्धित द्रव्य मल तथा तेल लगाकर अनेक मंगलकारी वस्तुओंसे सब बन्धुओंके साथ मंगलस्नान किया ॥ ८८ ॥ चारों तरफ नये-नये बाजोंके सुन्दर घोष होने लगे। स्त्रियें रत्नमय दीपकोंसे कौसल्यानन्दन रामकी आरती उतारने लगीं ॥ ८९ ॥ सीताने भी अपनी सासोंको, अरुन्धतीको, वसिष्ठको, ब्राह्मणोंको तथा और-और वन्दनीय जनोंको यथाक्रम प्रणाम किया ॥ ९० ॥ इसके अनन्तर कौसल्या आदिने सीताको छातीसे लगाकर मांगलिक द्रव्योंसे स्नान कराया ॥ ९१ ॥ उस समय जनकनन्दिनी नये-नये अलङ्कारोंसे सजकर बड़ी सुन्दर लगने लगीं। भरतने रामकी पादुकाका पूजन करके रामके पाँवोंमें भक्तिपूर्वक पहिना दी। तदनन्तर अति विनीत भावसे भरत रघुनाथजीसे कहने लगे—॥ ९२ ॥ ९३ ॥ हे प्रभो ! आपका धरोहरस्वरूप राज्य मैंने आजतक चलाया। हे जगन्नाथ ! आपके पुण्य-प्रतापसे मैंने यहाँके कोठार, कोश तथा सेनाको बढ़ाकर दसगुना कर दिया है। अब आप अपने इस नगरका, देशका तथा

त्वत्तेजसा जगन्नाथ पालयस्व पुरं स्वकम् । तथेति राघवश्चोक्त्वा भरतं संन्यवेशयत् ॥९५॥
ततः स दिव्यवस्त्राणि परिधाय रघूत्तमः । सीतया रथमारुह्य वाद्यघोषैर्जनस्वनैः ॥९६॥
वारांगनानृत्यगीतैर्ययौ निजपुरीं प्रति । पौरनार्यश्च सौधस्था ववर्षुः पुष्पवृष्टिभिः ॥९७॥
चक्रुर्नीराजनं मार्गे नानाबलिपुरःसरम् । रामो रथात्तदोत्तीर्य सीतां संप्रेष्य वै गृहम् ॥९८॥
पुष्पकं प्राह गच्छ त्वं कुबेरं वह सर्वदा । तथेति रामवचनाज्जगाम पुष्पकं तु तत् ॥९९॥
अथ रामः सभामध्ये विवेश कपिभिः सह । ददौ कपिभ्यो गेहानि वस्तुं रम्याणि सादरम्॥१००॥
अथ रामस्य राज्यार्थमभिषेकं गुरुस्तदा । चकार सुमुहूर्ते वै महामंगलपूर्वकम् १०१॥
हनुमत्प्रमुखाद्यैश्च चतुःसिंधुजलं शुभम् । समानीय नृपैः सर्वैर्महावाद्यपुरःसरम् ॥१०२॥
छत्रं च तस्य जग्राह पृष्ठसंस्थः स लक्ष्मणः । दधार सव्यपार्श्वस्थश्चामरं भरतस्तदा ॥१०३॥
शत्रुघ्नो वामपार्श्वस्थो दधार व्यजनं शुभम् । हनुमान्पादुके दिव्ये दधार पुरतः स्थितः ॥१०४॥
वायव्यादिचतुष्कोणसंस्थितास्ते महौजसः । सुग्रीवाद्यास्तदा चासंश्चत्वारो राघवेक्षणाः ॥१०५॥
सुग्रीवो जलपात्रं च वरादर्शं विभीषणः । दधार हस्ते तांबूलपात्रं स बालिनन्दनः ॥१०६॥
वस्त्रकोशं जांबवांश्च दधार वेगवत्तरः । तस्थौ सिंहासने रामः सपृष्ठांकोपबर्हणः ॥१०७॥
सौमित्रिवामपार्श्वेऽथ संपातिः संस्थितोऽभवत् । वामपार्श्वे भरतस्य गुहकः संस्थितोऽभवत् । १०८॥
शत्रुघ्नवामपार्श्वेऽथ संस्थितो मकरध्वजः । हनुमद्वामपार्श्वे च गरुडः संस्थितोऽभवत् ॥१०९॥
सुग्रीवादिचतुर्णां ते वामपार्श्वेषु संस्थिताः । श्रीचित्ररथविजयसुमंत्रदारुकास्तथा ॥११०॥
नानाराजोपकरणधृतहस्ता महौजसः । ययुर्देवासुराः सर्वे यक्षगंधर्वकिन्नराः ॥१११॥
ओषध्यः पर्वता वृक्षाः सागराश्चाथ निम्नगाः । मालाञ्च कांचनीं वायुर्ददौ वासवचोदितः ॥११२॥

राज्यका पालन स्वयं करें। यह सुन और 'तथास्तु' कहकर रामने भरतको अपने पास बैठा लिया ॥ ९४ ॥ ९५ ॥ तदनन्तर राम और सीता दिव्य वस्त्र धारण करके रथपर सवार होकर जय-जयकार तथा बाजे गानेके साथ वारांगनाओंका नाच-गान देखते-सुनते हुए अपनी प्रिय अयोध्यापुरीको चले। नगरमें प्रवेश करनेपर नगरकी नारियोंने छतों तथा कोठोंपर चढ़कर अनेक प्रकारके पुष्पोंकी वर्षा की ॥ ९६ ॥ ९७॥ वे रास्तेमें विविध पूजाकी सामग्रीसे रामकी आरती उतारने लगीं। रामने विमानसे उतरकर सीताको महलमें भेज दिया और पुष्पक विमानसे कहा कि 'तुम कुबेरके पास जाकर सदा उन्हींकी सेवा करो।' रामकी आज्ञाको स्वीकार करके पुष्पक विमान कुबेरके पास चला गया ॥ ९८ ॥ ९९ ॥ अब राम सब कपियोंको साथ लेकर सभाभवनमें गये। पश्चात् कपियोंको निवास करनेके लिए उत्तम-उत्तम मकान दिये गये ॥ १०० ॥ तदनन्तर गुरु वसिष्ठने शुभ मुहूर्तमें बड़े धूम-धामसे रामका राज्याभिषेक ठाना ॥ १०१ ॥ हनुमान् आदिको भेजकर चारों समुद्रोंका शुभ जल मँगवाया। देश-देशान्तरके राजे-महाराजे बुलाये गये। नाना प्रकारके बाजे बजे। लक्ष्मणने पीछे खड़े होकर रामके ऊपर छत्र लगाया। रामकी पादुका हाथमें लेकर हनुमान् उनके सामने खड़ हो गये। बायीं ओर सुन्दर पंखा लेकर शत्रुघ्न खड़े हुए और रामकी दाहिनी ओर चमर लेकर भरत खड़े हो गये ॥ १०२-१०४ ॥ रामके नेत्रसदृश प्रिय तथा ओजस्वी सुग्रीव आदि मित्र वायव्य आदि चार कोनोंमें विराजमान हो गये ॥ १०५ ॥ सुग्रीवने जलपात्र, विभीषणने सुन्दर दर्पण, बालिनन्दन अंगदने पानदान तथा वेगवान् जांबवान्ने अपने हाथमें श्रीरामके वस्त्रोंकी पिटारी ले ली। तब श्रीराम आकर गद्दी-तकिया लगे हुए बहुमूल्य सिंहासनपर विराजमान हो गये। लक्ष्मणके वामभागमें संपाती, भरतके वामभागमें निषादराज, शत्रुघ्नके वामभागमें मकरध्वज तथा हनुमान्के वामभागमें गरुड़ खड़े हुए। सुग्रीव आदि चारों मित्रोंके बायें चित्ररथ, विजय, सुमन्त्र तथा दारुक खड़े हुए ॥ १०६–११० ॥ बड़े-बड़े तेजस्वी राजे हाथोंमें अनेक प्रकारकी भेटें लेकर आये। सब देवता, असुर, यक्ष, गन्धर्व तथा किन्नरगण वहाँ आकर उपस्थित हो

सर्वरत्नसमायुक्तं मणिकांचनभूषितम् । ददौ हारं नरेंद्राय स्वयं शक्रस्तु भक्तितः ॥११३॥
प्रजगुर्देवगंधर्वा ननृतुर्वारयोषितः । देवदुन्दुभयो नेदुः पुष्पवृष्टिः पपात खात् ॥११४॥
ततोऽकरवं स्तुतिमहं भरतेनाभिपूजितः ॥११५॥

श्रीशिव उवाच

सुग्रीवमित्रं परमं पवित्रं सीताकलत्रं नवमेघगात्रम् ।
कारुण्यपात्रं शतपत्रनेत्रं श्रीरामचन्द्रं सततं नमामि ॥११६॥
संसारसारं निगमप्रचारं धर्मावतारं हृतभूमिभारम् ।
सदाऽविकारं सुखसिंधुसारं श्रीरामचन्द्रं सततं नमामि ॥११७॥
लक्ष्मीविलासं जगतां निवासं लंकाविनाशं भुवनप्रकाशम् ।
भूदेववासं शरदिन्दुहासं श्रीरामचन्द्रं सततं नमामि ॥११८॥
मंदारमालं वचने रसालं गुणैर्विशालं हतसप्ततालम् ।
क्रव्यादकालं सुरलोकपालं श्रीरामचन्द्रं सततं नमामि ॥११९॥
वेदांतगानं सकलैः समानं हृतारिमानं त्रिदशप्रधानम् ।
गजेंद्रयानं विगतावसानं श्रीरामचन्द्रं सततं नमामि ॥१२०॥
श्यामाभिरामं नयनाभिरामं गुणाभिरामं वचनाभिरामम् ।
विश्वप्रणामं कृतभक्तकामं श्रीरामचन्द्रं सततं नमामि ॥१२१॥
लीलाशरीरं रणरङ्गधीरं विश्वैकसारं रघुवंशहारम् ।
गंभीरनादं जितसर्ववादं श्रीरामचन्द्रं सततं नमामि ॥१२२॥
खले कृतांतं स्वजने विनीतं सामोपगीतं मनसा प्रतीतम् ।

गये । औषधि, पर्वत, वृक्ष, समुद्र तथा नदियाँ भी आ पहुँचीं । इन्द्रके द्वारा भेजे हुए वायुने आकर रामको एक सुन्दर कंचनकी माला पहनायी ॥ १११ ॥ ११२ ॥ पश्चात् स्वयं इन्द्रने भी आकर सब रत्नोंसे युक्त तथा सोनेसे सुशोभित हार राजा रामको समर्पण किया ॥ ११३ ॥ देवता और गन्धर्व उनके गुण गाने लगे । सब अप्सरायें और वारांगनायें नाचने लगीं । देवताओंके नगाड़े बजने लगे और आकाशसे फूलोंकी वर्षा होने लगी ॥ ११४ ॥ बादमें भरतके द्वारा पूजित होकर मैं (शिव) रामकी स्तुति करने लगा ॥ ११५ ॥ श्रीशिवजी बोले– सुग्रीवके मित्र, परमपावन, सीताके पति, मेघके समान श्याम शरीरवाले, करुणाके सिंधु और कमलके सदृश नेत्रोंवाले श्रीरामचन्द्रको मैं निरन्तर नमस्कार करता हूँ ॥ ११६ ॥ संसारसागरसे भक्तोंको पार करनेवाले, वेदोंका प्रचार करनेवाले, धर्मके साक्षात् अवतार, भूभारको हरण करनेवाले, अविकृत स्वरूपवाले और सुखके सर्वोत्तम सागर श्रीरामचन्द्रको मैं सदा नमस्कार करता हूँ ॥ ११७ ॥ लक्ष्मीके साथ विलास करनेवाले, जगत्‌के निवासस्थान, लङ्काका विनाश करनेवाले, भुवनोंको प्रकाशित करनेवाले, ब्राह्मणोंको शरण देनेवाले और शारदीय चन्द्रमाके समान शुभ्र हास्य करनेवाले श्रीरामचन्द्रको मैं सतत नमस्कार करता हूँ ॥ ११८ ॥ मन्दारकी माला धारण करनेवाले, रसीले वचन बोलनेवाले, गुणोंमें महान्, सात ताल वृक्षोंका भेदन करनेवाले, राक्षसोंके काल तथा देवलोकके पालक रामचन्द्रको मैं सदा नमस्कार करता हूँ । वेदान्तके गेय, सबके साथ समान बर्ताव करनेवाले, शत्रुके मानका मर्दन करनेवाले, गजेन्द्रकी सवारी करनेवाले तथा अन्तरहित श्रीरामचन्द्रको मैं सतत नमस्कार करता हूँ ॥ ११९ ॥ १२० ॥ श्यामरूपसे मनोहर, नयनोंसे मनोहर, गुणोंसे मनोहर, हृदयग्राही वचन बोलनेवाले, विश्ववन्दनीय और भक्तजनोंकी कामनाओंको पूरी करनेवाले श्रीरामचन्द्रको मैं निरन्तर प्रणाम करता हूँ ॥ १२१ ॥ लीलामात्रके लिए शरीर धारण करनेवाले, रणस्थलीमें धीर, विश्वभरके एकमात्र सारभूत, रघुवंशमें श्रेष्ठ, गंभीर वाणी बोलनेवाले और समस्त वादोंको जीतनेवाले श्रीरामचन्द्रको मैं प्रतिक्षण प्रणाम करता हूँ ॥ १२२ ॥ दुष्टजनोंके लिए कठोर हृदयवाले, अपने भक्तोंके प्रति

रागेण गीतं वचनादतीतं श्रीरामचन्द्रं सततं नमामि ॥१२३॥
श्रीरामचन्द्रस्य वराष्टकं त्वां मयेरितं देवि मनोहरं ये ।
पठन्ति शृण्वन्ति गृणंति भक्त्या ते स्वीयकामान्प्रलभन्ति नित्यम् ॥१२४॥

इति स्तुत्वा रामचन्द्रं सभायां संस्थितस्त्वहम् । एतस्मिन्नन्तरे तत्र राजा दशरथो महान् ॥१२५॥
दृष्ट्वा रामं ससीतं च विमानस्थोऽर्कसन्निभः । स्तुत्वा रामं परात्मान राज्यस्थं बंधुवेष्टितम् ॥१२६॥
उवाच रामं संतुष्टः सुरानीकविराजितः ।

दशरथ उवाच

धन्योऽहं कृतकृत्योऽहं धन्यौ तौ पितरौ मम ॥१२७॥

धन्यो देशः कुलं धन्यं यस्त्वां राज्याभिषेचितम्। पश्याम्यद्य महाबाहो धन्या सा जननी तव ॥१२८॥
या कौसल्या समुत्साहं नेत्राभ्यां तेऽद्य पश्यति । इत्युक्तवन्तं राजानं ननाम स रघूत्तमः ॥१२९॥
कौसल्याद्या राजदाराः सर्वे ते पौरवासिनः । लक्ष्मणो भरतश्चैव शत्रुघ्नस्तेऽथ मंत्रिणः ॥१३०॥
नमस्कारान्नृपं चक्रुर्विमानस्थं मुदान्विताः । तान् राजाऽपि पृथक् पृष्ट्वा सर्वैर्देवगणैर्युतः ॥१३१॥
पूजितो रामचन्द्रेण मया सह न्यवर्तत । ययुः स्वं स्वं पदं सर्वे मया राज्ञा सुरास्तदा ॥१३२॥
रामेऽभिषिक्ते राजेन्द्र सर्वलोकसुखावहे । वसुधा सस्यसंपन्ना फलवंतो महीरुहाः ॥१३३॥
गधहीनानि पुष्पाणि गंधवन्ति चकाशिरे । सहस्रं शतमश्वानां धेनूनां रघुनंदनः ॥१३४॥
ददौ शतं वृषाणां च द्विजेभ्यो वसु कोटिशः । सूर्यकांतिसमप्रख्यां सर्वरत्नमयीं स्रजम् ॥१३५॥
सुग्रीवाय ददौ प्रीत्या राघवो हर्षसंयुतः । अवतंसं ददौ श्रेष्ठं राक्षसेंद्राय राघवः ॥१३६॥
अंगदाय ददौ दिव्ये राघवो बाहुभूषणे । चंद्रकोटिप्रतीकाशं मणिरत्नविभूषितम् ॥१३७॥
सीतायै प्रददौ हारं प्रीत्या रघुकुलोत्तमः । सा तं हारं ददौ वायुपुत्राय सा मनस्विनी ॥१३८॥

विनम्रभाववाले, सामवेद जिनका गुण-गान करता है, मनमात्रके विषय, प्रेमसे गान करने योग्य तथा वचनोंसे ग्रहण करने लायक श्रीरामचन्द्रको मैं सर्वदा नमस्कार करता हूँ ॥ १२३ ॥ हे देवि ! तुम्हारे प्रति कहे हुए श्रीरामके इस सुन्दर अष्टकको जो मनुष्य भक्तिसे पढ़ेगा अथवा सुने-सुनायेगा, वह अपनी अभिलषित कामनाओंको नित्य प्राप्त करेगा ॥ १२४ ॥ रामचन्द्रकी इतनी स्तुति करके ज्यों ही मैं उस सभामें बैठा, त्यों ही सूर्यके समान तेजस्वी राजा दशरथ विमानपर सवार होकर सुरसमुदायके साथ वहाँ आकर सीताके सहित बन्धुओंसे वेष्टित तथा राजगद्दीपर स्थित पुत्रस्वरूप राम परमात्माको देखकर स्तुति करने लगे ॥ १२५ ॥ १२६ ॥ देवताओंके समूहसे परिवेष्टित राजा दशरथ प्रसन्न होकर बोले। उन्होंने कहा—मैं धन्य हूँ, मैं कृतकृत्य हूँ, मेरे माता-पिता धन्य हैं ॥ १२७ ॥ मेरा देश तथा कुल भी धन्य है कि जो मैं आज तुम्हें राजगद्दीपर अभिषिञ्चित देख रहा हूँ। हे महाबाहो ! तुम्हारी माता कौसल्या भी धन्य हैं, जो तुम्हें उत्साहपूर्वक अपने नेत्रोंसे देख रही हैं। तदनन्तर रामने उन राजा दशरथको प्रणाम किया ॥ १२८ ॥ १२९ ॥ तब कौसल्या आदि राजाकी स्त्रियोंने, पुरवासियोंने, भरत-शत्रुघ्नने तथा मन्त्रियोंने प्रमुदित होकर विमानमें स्थित राजा दशरथको प्रणाम किया। राजाने भी एक-एक करके उन सबसे कुशल पूछा। फिर देवताओं तथा मुझे साथ ले और रामचन्द्रसे पूजित होकर उन्होंने वहाँसे प्रस्थान कर दिया। मेरे तथा राजाके सहित वे सब देवता अपने-अपने धाम सिधारे ॥ १३०–१३२ ॥ सब लोगोंको सुख देनेवाले राजाओंमें श्रेष्ठ राजा रामका अभिषेक हो जानेपर पृथ्वी धन-धान्यपूर्ण हो गयी और नहीं फलनेवाले भी वृक्ष फलने लगे ॥ १३३ ॥ सुगन्धरहित पुष्प भी सुगंधित होकर सुशोभित होने लगे। रघुनन्दन रामने सैकड़ों बैल, हजारो घोड़े तथा करोड़ों रत्न ब्राह्मणोंको दान दिये। उन रामने प्रसन्न होकर सूर्यके समान चमकनेवाली तथा अनेक प्रकारके रत्नोंसे निर्मित एक माला प्रीतिपूर्वक सुग्रीवको दी और एक सिरपेंच राक्षसेन्द्र विभीषणको दिया ॥ १३४–१३६ ॥ उन्होंने अंगदको दिव्य बाजूबन्द दिये। रघुकुलमणि रामने सीताको करोड़ों चन्द्रमाके समान चमकीले मणियों तथा

तेन हारेण शुशुभे मारुतिर्गौरवेण च । तदा दृष्ट्वा हनूमन्तं रामो वचनमब्रवीत् ॥१३९॥
मारुते त्वां प्रसन्नोऽस्मि वर वरय कांक्षितम् । हनूमानपि तं प्राह नत्वा रामं प्रहृष्टधीः ॥१४०॥
त्वन्नाम स्मरतो राम मनस्तृप्यति नो मम । अतस्त्वन्नाम सततं स्मरन्स्थास्यामि भूतले ॥१४१॥
यावत्स्थास्यति ते नाम लोके तावत्कलेवरम् । मम तिष्ठतु राजेंद्र वरोऽयं मेऽभिकांक्षितः ॥१४२॥
यत्र यत्र कथा लोके प्रचरिष्यति ते शुभा । तत्र तत्र गतिर्मेऽस्तु श्रवणार्थं सदैव हि ॥१४३॥
देवालयान्नदीतीरात्तीर्थाद्वापि जलाशयात् । विनाऽन्यत्र स्थले तेऽस्तु कथा षड्घटिकोर्ध्वतः॥१४४॥
रामस्तथेति तं प्राह मुक्तस्तिष्ठ यथासुखम् । कल्पांते मम सायुज्यं प्राप्स्यसे नात्र संशयः ॥१४५॥
तमाह जानकी प्रीता यत्र कुत्रापि मारुते । स्थितं त्वामनुयास्यंति भोगाः सर्वे ममाज्ञया ॥१४६॥
ग्रामारामपत्तनेषु व्रजखेटकसद्मसु । वनदुर्गपर्वतेषु सर्वदेवालयेषु च ॥१४७॥
नदीषु क्षेत्रतीर्थेषु जलाशयपुरेषु च । वाटिकोपवनाश्वत्थवटवृंदावनादिषु ॥१४८॥
त्वन्मूर्तिं पूजयिष्यंति मायया विघ्नशांतये । भूतप्रेतपिशाचाद्या नश्यंति स्मरणात्तव ॥१४९॥
ये चान्ये वानराद्याश्च ह्ययोध्यां समुपागताः । अमूल्याभरणैर्वस्त्रैः पूजिता राघवेण ते ॥१५०॥
सुग्रीवप्रमुखाः सर्वे वानराः सविभीषणाः ।
मकरध्वजसंपातिगुहकाः पार्थिवादयः । यथार्हं पूजितास्तेन रामेण वसनादिभिः ॥१५१॥
ततः सर्वैर्भोजनार्थं राघवः संस्थितोऽभवत् । रामेण प्राणाहुतयो गृहीताश्चेति मारुतिः ॥१५२॥
निरीक्ष्योड्डीय वेगेन रामाग्रे भोजनस्य च । त्रिपदायां स्थितं पात्रं हैमं पक्वान्नपूरितम् ॥१५३॥
निनाय वामहस्तेन धृत्वा च विहसन्मुदा । स्वयं भुक्त्वा रामशेषं प्राक्षिपद्वानरानपि ॥१५४॥

रत्नोंसे विभूषित हार सप्रेम समर्पण किया । मनस्विनी सीताने भी रामका दिया हुआ वह हार वायुपुत्र हनुमानको दे दिया ॥ १३७ ॥ १३८ ॥ उस हारके गौरवसे हनुमान् बड़े ही सुशोभित होने लगे । यह देखकर रामने हनुमान्‌से कहा – ॥ १३९ ॥ हे मारुते ! मैं तुम्हारे ऊपर प्रसन्न हूँ । जो चाहो सो वर माँगो । तब प्रसन्न हनुमान्‌ने रामको नमस्कार करके कहा— ॥ १४० ॥ हे प्रभो ! आपके नामस्मरणसे मेरा मन अब भी तृप्त नहीं हुआ है । अतएव जबतक आपका नाम भूतलमें विद्यमान रहे, तबतक मैं आपके नामका स्मरण करता हुआ इस लोकमें जीवित रहूँ । हे राजेन्द्र ! यही मेरा अभिलषित वर आप मुझे दे दें ॥ १४१ ॥ १४२ ॥ लोकमें जहाँ कहीं भी आपकी पवित्र कथा होती हो, वहाँ वह कथा सुननेके लिये जानेमें मेरी अप्रतिहत गति हो ॥ १४३ ॥ देवालय, नदीतीर, तीर्थस्थान तथा बावली आदि जलाशयको छोड़कर अन्य स्थानोंमें छः घड़ीके बाद नित्य आपकी कथा हुआ करे ॥ १४४ ॥ रामने कहा—अच्छा, तुम मुक्त होकर सुखसे भूमण्डलपर निवास करो । कल्पान्तके समय तुम मेरी सायुज्य मुक्तिको प्राप्त होओगे, इसमें संदेह नहीं है ॥ १४५ ॥ इसके पश्चात् जानकीजी प्रसन्न होकर बोलीं—हे मारुते ! तुम जहाँ कहीं रहोगे, वहींपर मेरे आशीर्वादसे तुमको सब भोग्य पदार्थ प्राप्त हो जाया करेंगे ॥ १४६ ॥ ग्राम, बाग, नगर, गोशाला, रास्ता, छोटा गाँव, घर, वन, जिला, पर्वत, सब देवालय, नदी, तीर्थक्षेत्र, जलाशय, पुर, वाटिका, उपवन, पीपल, वट तथा वृन्दावन आदि स्थानोंमें मनुष्य अपने विघ्नोंको शान्त करनेके लिये तुम्हारी मूर्तिकी पूजा करेंगे । तुम्हारा नाम स्मरण करनेसे ही भूत-प्रेत तथा पिशाच आदि दूर भाग जायँगे ॥ १४७-१४९ ॥ इसके बाद रामने अयोध्यामें जो अन्य वानर आये थे, उन सबका भी बहुमूल्य भूषण तथा वस्त्रोंसे सत्कार किया ॥ १५० ॥ श्रीरामने वस्त्रादिसे सुग्रीव आदि वानरों, विभीषण, मकरध्वज, संपाती तथा निषादराज आदि राजाओंकी भी यथायोग्य पूजा की ॥ १५१ ॥ उसके पश्चात् सबको साथ लेकर रामचन्द्रजी भोजन करने बैठे । रामके पाँच ग्रास ग्रहण करके तृप्त हो जानेके साथ ही हनुमान् झट उठकर रामके पास आ पहुँचे और उनके सामने पीढ़ेपर रखा हुआ पकवानोंसे परिपूर्ण सुवर्णका थाल बाएँ हाथसे उठाकर आकाशमें चले गये और रामके उस भोजनशेषका स्वयं आनन्दसे

तदा विभीषणाद्याश्च स्वीयपात्राणि वेगतः । विसृज्य मारुतिं स्तुत्वा त्वया सम्यक्कृतं त्विति। १५५।
तत्क्षिप्तं राघवोच्छिष्टं बुभुजुः संभ्रमान्विताः । महान् कोलाहलश्चासीद्रामोच्छिष्टार्थमादरात् ॥१५६॥
सीतारामौ तन्निरीक्ष्य मुदा जहसतुस्तदा । एवं नानाकौतुकानि कुर्वन्तौ राघवांतिके ॥१५७॥
सुग्रीवाद्याः सुखं तस्थुस्तोषयंतः कियद्दिनम् । एतस्मिन्नन्तरे तत्र पुष्पकं चागमत्पुनः ॥१५८॥
प्राह देव कुबेरेण प्रेषितं त्वामहं पुनः । मामाह यत्कुबेरस्तच्छृणुष्व त्वं रघूत्तम ।१५९॥
जितस्त्वं रावणेनादौ पश्चाद्रामेण निर्जितः । अतस्त्वं राघवं नित्यं वह यावद्वसेद्भुवि ॥१६०॥
यदा गच्छेद्रघुश्रेष्ठो वैकुण्ठं याहि मां तदा । तच्छ्रुत्वा राघवः प्राह सुग्रीवादीन्यथास्थले ॥१६१॥
स्थाप्य शीघ्रमयोध्यायां राजद्वाराद्बहिर्वस । तथेति रामवचनाद्वानराद्यान्यथास्थले ॥१६२॥
स्थाप्य शीघ्रमयोध्यायां राजद्वाराद्बहिः स्थितम् । चकार राज्यं धर्मेण लङ्कायां स विभीषणः ॥१६३॥
शशास राज्यं पाताले धर्मेण मकरध्वजः । चकार तार्क्ष्यः संपातिं यौवराज्यपदे निजे ॥१६४॥
शशास राज्यं कपिभिः किष्किन्धायां कपीश्वरः । शृङ्गवेरपुरे राज्यं गुहकश्चाकरोन्मुदा ॥१६५॥
नत्वा रामं वायुपुत्रो ययौ तप्तुं हिमालयम् । सर्वे विभीषणाद्याश्च पंचमे सप्तमेऽहनि ॥१६६॥
दर्शनार्थं राघवस्य साकेतं प्रययुः सदा । पंच सप्त दिनान्यत्र स्थित्वा श्रीराघवांतिकम् ।१६७॥
यातायातं सदा चक्रुः स्वस्वराज्याद्रघूत्तमम् । रामोऽपि राज्यमखिलं शशासाखिलवत्सलः ॥१६८॥
अनिच्छंतं हि सौमित्रिं यौवराज्येऽभ्यषेचयत् । लक्ष्मणः परया भक्त्या रामसेवापरोऽभवत् ।१६९॥
विश्वामित्राध्वरे पूर्वं रणयागस्य पूर्णता ।
न कृता या राघवेण सा कृता स्वपदे तदा । रणयागः सविस्ताराद्वर्ण्यते शृणु पार्वति ॥१७०॥

खाने तथा नीचे वानरोंके आगे फेंकने लगे ॥ १५२–१५४ ॥ यह देखकर विभीषण आदि भक्त भी शीघ्र अपने-अपने थालोंको छोड़कर हनुमान्‌की प्रशंसा करके कहने लगे कि तुमने बहुत उत्तम काम किया ॥ १५५ ॥ यह कहकर वे स्वयं भी बड़े आदरसे मारुतिका फेंका हुआ रामका उच्छिष्ट प्रसाद पाने लगे । उस समय रामकी जूठनके लिये बड़ा भारी कोलाहल मच गया ॥ १५६ ॥ राम और सीताने यह देखा तो प्रसन्न होकर हँसने लगे । इस प्रकार विविध क्रीडायें करके सीता और रामको प्रसन्न करते हुए सुग्रीव आदि मित्र कुछ दिन वहाँ रहे । इतनेमें पुष्पक विमान पुनः वहाँ आया ॥ १५७ ॥ १५८ ॥ वह रामसे कहने लगा—हे देव ! कुबेरने मुझको आपके पास वापस भेज दिया है । हे रघुनन्दन ! कुबेरने जो कुछ मुझसे कहा है, वह सुनिये ॥ १५९ ॥ उन्होंने कहा है कि पहले तो रावणने तुमको मुझसे जीता था और बादमें रामने तुमको रावणसे जीता है । इस कारण तुम जाकर तबतक राम ही को सवारी देनेका काम करो, जबतक कि भूमण्डलमें रहें ॥ १६० ॥ जब रघुश्रेष्ठ राम वैकुण्ठ धाम चले जायँ, तब तुम मेरे पास चले आना । यह सुनकर रामने विमानको आज्ञा दी कि सुग्रीव आदि मेरे मित्रोंको उनके स्थानपर पहुँचाकर शीघ्र ही अयोध्या लौट आओ और राजमहलके दरवाजेके बाहर खड़े रहो । तदनन्तर विभीषण जाकर लङ्कामें धर्मपूर्वक राज्य करने लगे ॥ १६१–१६३ ॥ मकरध्वज पातालमें धर्मपूर्वक राज्य-शासन करने लगे । गरुड़ने युवराजपदपर संपातीका अभिषेक किया ॥ १६४ ॥ किष्किन्धामें कपीश्वर सुग्रीव राज्य करने लगे । शृङ्गवेरपुरमें निषादराज आनन्दसे राज्य करने लगा ॥ १६५ ॥ वायुपुत्र हनुमान् रामको नमस्कार करके तप करनेको हिमालय चले गये । फिर भी विभीषण-सुग्रीव आदि मित्र पाँचवें अथवा सातवें दिन अयोध्यामें श्रीरामका दर्शन करनेके लिए आया करते थे और वे श्रीरामके पास पाँच-सात दिन निवास करके चले जाते थे । इस प्रकार उन लोगोंका अपने-अपने राज्यसे श्रीरामके पास आना-जाना लगा रहता था । सभी लोगोंके प्रिय राम भी सम्पूर्ण राज्यका पालन करने लगे ॥ १६६–१६८ ॥ न चाहनेपर भी रामने लक्ष्मणका युवराजके पदपर अभिषेक कर दिया और वे भी रामकी सेवामें तत्पर हो गये ॥ १६९ ॥ रामने पूर्व समयमें विश्वामित्रके यज्ञके समय जिस युद्धरूपी यज्ञकी समाप्ति नहीं की थी, उस रणयज्ञकी इस समय अपने राज्यपदपर स्थित हो जानेपर पूर्णाहुति की । हे पार्वती !

रणांगणं यज्ञकुण्डं तत्र वै ह्यपलायनम् । तच्च येदविधानं हि ब्रह्मसत्त्वं प्रकीर्तितम् ॥१७१॥
कर्मणश्च घटाटोपो ज्ञेयः शस्त्रखणस्वनः । संमार्जनं स्रुक्स्रुवयोर्ज्ञेयं पाषाणघर्षणम् ॥१७२॥
शस्त्राणां मलशोधार्थं क्रियते यद्रणांगणे । भूमौ शराणां विस्तारः परिस्तरणमुत्तमम् ॥१७३॥
परिसमूहनं धैर्यं वह्निकालानलो महान् । स्रुवेण बाणरूपेण मांसाहुतिसमर्पणम् ॥१७४॥
रक्तधारा वसोर्धारा हाहाकारो भयानकः । स ॐकारवषट्कारघोषो ज्ञेयो रणाध्वरे ॥१७५॥
अग्नेर्ज्वाला शस्त्रतेजोधूम्रः स्वेदस्रुवो रणे । ज्वालानिचयशांत्यर्थं पृषदाज्यस्य सेचनम् ॥१७६॥
यत्तदत्र तु वीराणामस्त्रमोचनमुत्तमम् । ज्ञानेन सह जीवस्य बलिर्दीपबलिः स्मृतः ॥१७७॥
ये देहलोभिनो जीवा बलिदीपहराः स्मृताः । रामहस्तान्मृतिं त्यक्त्वा ये कुर्वन्ति पलायनम् ॥१७८॥
देहबन्धान्न मुक्तास्ते बलिभक्षणदोषतः । पूर्णाहुतिः शिरोभिर्हि ज्ञेयास्तत्र प्रदक्षिणाः ॥१७९॥
उच्चाटनं हि सव्येन वीराणां जयहेतवे । नैजं पदप्रदानं च ज्ञेया सा दक्षिणाऽध्वरे ॥१८०॥
सुरैर्या पुष्पवृष्टिस्तज्ज्ञेयं विप्राभिषेचनम् । जयसम्पादनं युद्धे श्रेयःसंपादनं हि तत् ॥१८१॥
चराचराणामानन्दो ज्ञेयः स निजगोत्रिणाम् । भूतानां तर्पणं विप्रभोजनं सम्प्रकीर्तितम् ॥१८२॥
एवं सुबाहुना युद्धे राघवस्य रणाध्वरः । तथा गाधिजयज्ञोऽपि द्वौ तौ ज्ञेयौ सहैव हि ॥१८३॥
कृताध्वरसमाप्तिस्तु विश्वामित्रेण वै पुरा । विसर्जितो न रामेण दृष्ट्वाऽतृप्तं रणाध्वरे ॥१८४॥
कालानलं पुनस्तस्य तृप्त्यर्थं वाऽकरोन्मतिम् । कृत्वा भूमेर्महत्पात्रं विराधरुधिरेण हि ॥१८५॥
पात्रस्य प्रोक्षणं कृत्वा चित्राहुत्यर्थमादरात् । रामः शूर्पणखायाश्च घ्राणं कर्णौ बिभेद यत् ॥१८६॥
प्राणाहुतिभ्यो रामेण त्रिशिराः खरदूषणौ । मारीचश्च कबन्धश्च पंच ते निहताः क्षणात् ॥१८७॥

उस रणरूपी यज्ञका मैं विस्तारसे वर्णन करता हूँ, सुनो ॥ १७० ॥ उस रणयागमें युद्ध कुण्ड था। उसमेंसे न भागना ही वेदविहित ब्रह्मसत्त्व था ॥ १७१ ॥ शस्त्रोंकी खनकार ही कर्मकी सामग्री थी। रणांगणमें शस्त्रोंका मैल छुड़ानेके लिये उनपर जो पत्थर घिसे जाते थे, वही स्रुक्-स्रुवाका माँजना था। भूमिमें बाणोंको फैला-फैलाकर रखना ही उत्तम कुश आदिका आस्तरण था। धीरता ही उनका परिसमूहन (बटोरना) था। महान् कालरूपी अग्नि ही यज्ञकुण्डकी आग थी। उसमें बाणरूपी स्रुवासे मांसकी आहुतियें समर्पण की जाती थीं ॥ १७२–१७४ ॥ रुधिरकी धारा ही वसुधारा थी। भयानक हाहाकार ही ओंकार तथा वषट्कारका नाद था ॥ १७५ ॥ शस्त्रोंकी चमक ही आगकी लपटें थी। पसीनेका बहना ही धुआँ था। वीर पुरुषोंका उत्तम अस्त्रमोचन ही अधिक ज्वालाकी शांतिका पृषदाज्य सींचनारूपी उपाय था। ज्ञानपूर्वक जीवोंका शरीर-त्याग ही दीपदान था ॥ १७६ ॥ १७७ ॥ जो शरीरमें ममता रखनेवाले थे, वे ही पूजाकी सामग्री तथा दीपको ले भागनेवाले माने जाते थे। जो रामके हाथसे न मरकर वहाँसे भाग जाते थे, वे बलिभक्षण करनेके दोषसे देहरूपी बन्धनमें ही पड़े रह जाते थे–मुक्त नहीं होते थे। उस युद्धरूपी यज्ञमें सिरोंका कट कटकर गिरना ही नारियलके द्वारा दी जानेवाली पूर्णाहुति थी। विजयलाभके लिये अपनी दाहिनी ओरसे वीरोंको दूर करना हो प्रदक्षिणा थी। उस यज्ञमें मृत पुरुषोंका विजयपद (ब्रह्मपदकी प्राप्ति) ही दक्षिणा थी ॥१७८–१८०॥ देवताओंके द्वारा जो पुष्पवृष्टि की जाती थी, वह ब्राह्मणोंका अभिषेचन था। युद्धमें विजय प्राप्त करना ही यज्ञका फल था ॥ १८१ ॥ चर-अचरका आनन्दलाभ ही अपने गोत्रवालोंका आनन्द समझा जाता था। पशु-पक्षी आदि जीवोंकी तृप्ति ही विप्रभोजन कहा जाता था ॥ १८२ ॥ इस प्रकार रामका जो सुबाहुसे युद्धरूप यज्ञ राक्षसोंके साथ आरम्भ हुआ, वह और गाधिपुत्र विश्वामित्रका यज्ञ दोनों साथ ही प्रारम्भ हुए ॥ १८३ ॥ उनमेसे विश्वामित्रजीने तो अपना यज्ञ समाप्त कर लिया था, परन्तु रामने अपने यज्ञमें कालानलको अतृप्त देखकर अपना युद्धयज्ञ समाप्त नहीं किया था। अतएव उसको तृप्त करनेकी इच्छा करके रामने विराधके रुधिरसे पृथ्वीरूपी पात्रका प्रोक्षण (शुद्धि) करके सूर्पणखाके नाक-कान काटकर प्रेमसे चित्र-विचित्र आहुतियें दीं ॥ १८४–१८६ ॥ रामने त्रिशिरा, खर, दूषण, मारीच तथा कबन्धको क्षणभरमें मारकर पंचप्राणा-

शिखाबंधविमोक्षार्थं शबरी भवबंधनात्। कृता मुक्ता तु रामेण जलस्पर्शनहेतवे ॥१८८॥
नेत्रयोर्निहतो बाली दत्तं तद्रुधिरं तदा। क्वथिलंकापुरी दग्धा कुंभकर्णस्तथौदनः ॥१८९॥
पक्वान्नमिंद्रजिद् ज्ञेयः शाकार्थं राक्षसा हताः। वरान्नं सारणो ज्ञेयः प्रहस्तो वटकः स्मृतः ॥१९०॥
निकुंभः पर्पटो ज्ञेयः कुंभस्तु लवणं स्मृतः। पायसार्थं कालनेमिस्त्वतिकायः स शर्करः ॥१९१॥
क्षीरमैरावणो ज्ञेयो घृतं मैरावणः स्मृतः। दध्योदनः समाप्तौ तु आहवे च स रावणः ॥१९२॥
हत्वा निवेदितः पात्रे तस्य कालानलस्य च। उच्छिष्टबलिसंत्यागः केशत्वकीकसादेनाम् ॥१९३॥
संत्यागोऽत्र रणे ज्ञेयस्तदा तृप्तो बभूव सः। ततो रणाध्वरस्यात्र राघवेण विसर्जनम् ॥१९४॥
अयोध्यायां प्रवेशो हि कृतस्तत्ते वदाम्यहम्। अध्वरावभृथस्नानं ज्ञेयं राज्याभिषेचनम् ॥१९५॥
मंगलानि समस्तानि यज्ञांगविहितानि हि। ज्ञातव्यानीति रामेण रणयागो विसर्जितः ॥१९६॥
एवं प्रोक्तो मया देवि रणयागः सविस्तरः। रामोऽथ परमात्मापि कार्याध्यक्षोऽतिनिर्मलः॥१९७॥
कर्तृत्वादिविहीनोऽपि निर्विकारोऽपि सर्वदा। स्वानन्देनापि संतुष्टो लोकानामुपदेशकृत् ॥१९८॥
चकार विविधान् धर्मान् गार्हस्थ्यमनुलंब्य च। न पर्यदेवन् विधवा न च व्यालकृतं भयम् ॥१९९॥
न व्याधिजं भयं चासीद्रामे राज्यं प्रशासति। औरसानिव रामोऽपि जुगोप पितृवत् प्रजाः ॥२००॥
सीतया बन्धुभिः सार्द्धं साकेते सुखमाप सः। इदं युद्धचरित्रं ते प्रोक्तं देवि मया तव ॥२०१॥

इति शतकोटिरामचरितांतर्गते श्रीमदानंदरामायणे वाल्मीकीये सारकाण्डे युद्धचरिते रामराज्याभिषेकवर्णनं नाम द्वादशः सर्गः ॥ १२ ॥

हुतियें दीं ॥ १८७॥ शिखाकी गाँठ खोलनेकी जगह रामने शबरीको संसारबन्धनसे छुड़ाकर मुक्त कर दिया। रामने बालीको मारकर उसके रुधिररूपी जलसे नेत्रोंमें स्पर्श किया। लंकाको जलाकर कालानलके लिये दाल तथा कढ़ी बनायी। अर्थात् लंका दाल-कढ़ीके स्थानमें गिनी गयी। कुम्भकर्णरूपी भात, मेघनादरूपी पकवान और सब राक्षसोंका शाक बना। अन्य उत्तम पदार्थोंके स्थानपर सारण मारा गया। प्रहस्त बड़ा, निकुम्भ पापड़, कुम्भ नमक, कालनेमि खीर, अतिकाय शक्कर, ऐरावणरूपी दूधमें मैरावणरूपी घी तथा दधिभक्तके स्थानपर रावणको मारकर रामने कालानलके थालमें परोस दिया। कालानलने इन सबका भोजन करके केश, चर्म तथा अस्थियोंका जूठन रणमें छोड़ दिया। तब वह तृप्त हुआ। उसके पश्चात् रामका अयोध्यामें प्रवेश करना ही रणरूपी यज्ञकी समाप्ति अर्थात् रणयज्ञका विसर्जन हुआ। वहाँ रामका राज्याभिषेक ही यज्ञके अन्तका अवभृथस्नान था ॥ १८८–१९५ ॥ अन्यान्य मांगलिक कार्य उस यज्ञके अंग थे। इस प्रकार रामने सांगोपांग रणयज्ञ पूरा किया॥ १९६ ॥ हे देवि ! मैने तुमको उपर्युक्त प्रकारसे समस्त रणयाग कह सुनाया। तदनंतर साक्षात् परमात्मा, कार्यसमुदायके अधिष्ठाता, कर्तृत्वादि अभिमानसे रहित, सदा निर्विकार स्वरूप, निज आनन्दसे ही संतुष्ट तथा सब प्राणियोंको सदुपदेश देनेवाले राम भी गृहस्थधर्मका पालन करते हुए अनेक धर्मोंका आचरण करने लगे। उनके राज्यकालमें कोई भी स्त्री विधवा होकर रोती नहीं थी। किसीको साँप तथा व्याघ्र आदिका भय नहीं था और न किसीको रोगका ही भय था। रामने भी समस्त प्रजाको, पिता जिस प्रकार अपने सगे लड़कोंका पालन करता है, उसी प्रकार पालन किया। हे देवि ! यह मैंने तुमको रामका युद्धचरित्र कह सुनाया ॥ १९७-२०१॥ इति श्रीशतकोटिरामचरितांतर्गते श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये सारकांडे युद्धचरित्रे रामतेजपांडेयकृत 'ज्योत्स्ना' भाषाटीकायां रामराज्याभिषेकवर्णनं नाम द्वादशः सर्गः ॥ १२ ॥

त्रयोदशः सर्गः

(अगस्त्य-रामसंवाद)

श्रीशिव उवाच

एकदा राघवं द्रष्टुं मुनिभिः कुंभसंभवः । ययौ रामेण संमानमानितः स उपाविशत् ॥ १ ॥
उपविष्टाः प्रहृष्टाश्च मुनयो रामपूजिताः । संपृष्टकुशलाः सर्वे रामं कुशलमब्रुवन् ॥ २ ॥
कुशलं ते महाबाहो सर्वत्र रघुनंदन । दिष्ट्येदानीं प्रपश्यामो हतशत्रुमरिंदम ॥ ३ ॥
दिष्ट्या त्वया हताः सर्वे मेघनादादयोऽसुराः । हत्वा रक्षोगणान्सर्वान् कृतकृत्योऽद्य जीवसि ॥ ४ ॥
इति तेषां वचः श्रुत्वा रामस्तान्प्राह सुस्मितः । किमर्थमादौ युष्माभिर्मेघनादोऽद्य कीर्तितः ॥ ५ ॥
इति रामवचः श्रुत्वाऽगस्तिस्तैरवलोकितः । कुंभयोनिस्तदा रामं प्रीत्या वचनमब्रवीत् ॥ ६ ॥
शृणु राम यथा वृत्तं मेघनादस्य चेष्टितम् । जन्मकर्मवरप्राप्तिं संक्षेपाद्वदतो मम ॥ ७ ॥
पुरा कृतयुगे राम पुलस्त्यो ब्रह्मणः सुतः । तृणबिंदुसुतायां स पुत्रं त्रैलोक्यविश्रुतम् ॥ ८ ॥
निर्ममे विश्रवा नामधेयं वेदनिधिं शुभम् । भरद्वाजसुतायां च विश्रवा निर्ममे सुतम् ॥ ९ ॥
श्रेष्ठं वैश्रवणं तस्मै प्रसन्नोऽभूद्विधिश्चिरात् । विधिर्वैश्रवणायाथ तुष्टस्तत्तपसा ददौ ॥१०॥
मनोऽभिलषितं यानं धनेशत्वमखंडितम् । पुष्पकं चाप्येकदाऽसौ द्रष्टुं विश्रवसं ययौ ॥११॥
पुष्पकेण धनाध्यक्षो ब्रह्मदत्तेन भास्वता । नत्वा तातं तदा प्राह न स्थानं ब्रह्मणा मम ॥१२॥
दत्तं स्थेयं मया कुत्र तद्विचार्य वदस्व माम् । विश्रवा ह्यपि तं प्राह विश्वकर्मविनिर्मिता ॥१३॥
लंकानाम्नी पुरी श्रेष्ठा सागरेऽस्ति सुमंडिता । त्यक्त्वा विष्णुभयाद्दैत्या विविशुस्तं रसातलम् ॥१४॥
सुखं त्वं वस तस्यां हि तथेत्युक्त्वा धनेश्वरः । गत्वा तस्यां चिरं कालमुवास पितृसंमतः ॥१५॥

श्रीशिवजी बोले—हे प्रिये ! एकदिन बहुतसे मुनियोंके साथ अगस्त्यमुनि श्रीरामका दर्शन करने आये। रामसे सम्मानित होकर वे सब बैठे ॥ १ ॥ अन्यान्य मुनि भी रामसे पूजित होकर प्रसन्नतापूर्वक बैठ गये। रामके पूछनेपर सबने अपना कुशल-क्षेम सुनाया ॥ २ ॥ और कहा—हे रघुनन्दन ! बड़े हर्षकी बात है कि शत्रुको मारकर सकुशल आपको हम लोग राज्यसिंहासनपर विराजमान देख रहे हैं। हे अरिन्दम (शत्रुओं-को नीचा दिखलानेवाले) ! आपने बड़े भाग्यसे मेघनाद आदि सब असुरोंको मार गिराया है। उन्हें मार तथा कृतकार्य होकर आप विराजमान हैं ॥ ३ ॥ ४ ॥ उनका ऐसा वचन सुनकर राम कुछ मुसकराते हुए बोले—आप लोगोंने सब राक्षसोंमेंसे मेघनादका नाम पहले क्यों लिया ? रामका यह प्रश्न सुनकर वे सब मुनि अगस्त्य मुनिका मुख देखने लगे। यह देखकर अगस्त्य बहुत प्रेमपूर्वक रामसे बोले—॥ ५ ॥ ६ ॥ हे राम ! मैं आपसे मेघनादका चरित्र, जन्म, कर्म तथा वरप्राप्तिका वृत्तान्त संक्षेपमें कहता हूँ, आप सुनें ॥ ७ ॥ हे राम ! सत्ययुगमें पुलस्त्य नामके ब्रह्मपुत्रने तृणबिन्दुकी पुत्रीसे तीनों लोकोंमें प्रसिद्ध वेदवेत्ता विश्रवा नामका पुत्र उत्पन्न किया। विश्रवाने भारद्वाजकी पुत्रीसे वैश्रवण नामक श्रेष्ठ पुत्र उत्पन्न किया। कुछ दिनोंके बाद वैश्रवणकी तपस्यासे प्रसन्न होकर ब्रह्माने उसको उसका मनोवांछित पुष्पक विमान, अखंड धनेशत्व तथा कुबेरकी पदवी प्रदान की। एक दिन ब्रह्माके दिये हुए उस सुन्दर पुष्पक विमानपर सवार होकर धनाधिप कुबेर अपने पिता विश्रवाका दर्शन करने गये। वहाँ जाकर कुबेरने पिताको नमस्कार करके कहा—हे पिताजी ! ब्रह्माने मुझे निवासके लिये कोई स्थान नहीं दिया है। अतः आप विचार करके कोई मेरे रहने योग्य स्थान बताइए। विश्रवाने कहा—विश्वकर्माकी बनायी हुई एक सुन्दर और श्रेष्ठ लंका नामकी नगरी समुद्रके बीचमें विद्यमान है। विष्णुके डरसे दैत्य लोग उसे छोड़कर पातालमें चले गये हैं ॥ ८–१४ ॥ तुम जाकर उसमें सुखपूर्वक निवास करो। 'तथास्तु' कहकर कुबेर पिताके कथनानुसार जाकर बहुत काल

कस्मिंश्चित्त्वथ काले हि सुमालीनाम राक्षसः । दुहित्रा व्यवचरद्भूमौ पुष्पकेतुं ददर्श सः ॥१६॥
हिताय चिंतयामास राक्षसानां महामनाः । कैकसीं तनयामाह गच्छ विश्रवसं मुनिम् ॥१७॥
वरयस्व मुनेस्तेजःप्रतापात्ते सुताः शुभाः । भविष्यन्ति धनाध्यक्षतुल्या नो हितकारिणः ॥१८॥
सा संध्यायां ययौ शीघ्रं मुनेरग्रे व्यवस्थिता । लिखन्ती भुवि पादांगुष्ठेन चाधोमुखी स्थिता ॥१९॥
तामपृच्छन्मुनिः का त्वं साऽऽह त्वं वेत्तुमर्हसि । ततो ध्यात्वा मुनिः सर्वं ज्ञात्वा तां प्रत्यभाषत ॥२०॥
ज्ञातं तवाभिलषितं मत्तः पुत्रानभीप्ससि । दारुणायां तु वेलायामागताऽसि सुमध्यमे ॥२१॥
अतस्ते दारुणौ पुत्रौ राक्षसौ संभविष्यतः । साऽब्रवीन्मुनिशार्दूलं त्वत्तोऽप्येवंविधौ सुतौ ॥२२॥
तामाहान्तिमजो यस्ते भविष्यति महामतिः । ततः सा सुषुवे पुत्रान् यथाकाले सुमध्यमा ॥२३॥
रावणं कुम्भकर्णं च क्रौंचीं शूर्पणखां शुभाम् । कुंभीनसीं कनीयांसं तृतीयं तं विभीषणम् ॥२४॥
रावणः कुंभकर्णश्च त्रयो दुहितरस्तथा । दुर्वृत्ताः प्राणिभक्षाश्च बभूवुर्मुनिहिंसकाः ॥२५॥
एकदा रावणो मात्रा लिंगार्थं प्रेषितः शिवम् । कर्तुं प्रसन्नमकरोत् कैलासे कर्म दुष्करम् ॥२६॥
किंचित्स्वीयं शिरश्छित्त्वा वीणां षड्जस्वरैर्मुहुः। कृत्वा पीठं हि देहस्य तन्मूलं शिरसस्तथा ॥२७॥
तदग्रं पादयोः कृत्वा शंकूनंगुलिभिस्तथा । तंत्रीः कृत्वाऽन्त्रमालाभिः शतशोऽथ सहस्रशः ॥२८॥
एवं कृत्वा स्वदेहस्य वीणां षड्जस्वरैर्मुहुः । चकार स्वमुखेनैव गांधर्वं गायनं शुभम् ॥२९॥
तदा नंदीश्वरं प्राह शंकरो लोकशंकरः । शिरः संधाय हस्तेन त्वया वाच्योऽद्य रावणः ॥३०॥
आत्मलिंगं राक्षसं त्वां शंकरो न प्रदास्यति । हृद्गतं हि मया ज्ञातं शंभोस्त्वं याहि स्वस्थलम् ॥३१॥
इत्युक्त्वा प्रेषणीयः स रावणः स्वस्थल त्वया । इति शंभोर्वचः श्रुत्वा ययौ नंदी स रावणम् ॥३२॥

तक वहाँ रहे ॥ १५ ॥ पश्चात् किसी समय सुमाली राक्षसने अपनी पुत्रीको साथ लेकर पृथ्वीपर भ्रमण करते समय पुष्पकेतुको देखा ॥ १६ ॥ तब महात्मा सुमालीने राक्षसोंका हित सोचकर अपनी लड़की कैकसीसे कहा कि तुम विश्रवा मुनिके पास जाकर मुनिके तेज-प्रतापसे सुन्दर पुत्रोंकी प्राप्तिके लिये वर माँगो। वे पुत्र कुबेरके समान प्रतापी तथा हमलोगोंके हितकारी होंगे ॥ १७ ॥ १८ ॥ तदनुसार सायंकालके समय मुनिके पास जाकर पाँवके अंगूठेसे धरतीको कुरेदती हुई वह नीचा मुख करके खड़ी हो गयी ॥ १९ ॥ मुनिने उससे पूछा—तुम कौन हो ? उसने कहा कि आप स्वयं इस बातको समझ सकते हैं। तब मुनिने ध्यान करके सब कुछ जान लिया और उससे बोले—॥ २० ॥ मुझे मालूम हो गया कि मुझसे तू पुत्र पाना चाहती है, परन्तु हे सुमध्यमे ! तू इस भयानक समयमें यहाँ आयी है। इसलिये तुझसे दो भयानक राक्षस पुत्र उत्पन्न होंगे। तब वह मुनिशार्दूलसे बोली—हे महाराज ! क्या आपसे भी मुझे ऐसे ही पुत्र प्राप्त होंगे ? ॥ २१ ॥ २२ ॥ तब मुनि बोले—अच्छा जा, तेरा आखिरी पुत्र बड़ा बुद्धिमान् होगा। पश्चात् उस सुन्दर कमरवाली कैकसीने यथासमय तीन पुत्र उत्पन्न किये ॥ २३ ॥ रावण, कुम्भकर्ण, क्रौंची, सूर्पणखा, कुम्भीनसी और सबसे छोटा तीसरा पुत्र विभीषण उससे उत्पन्न हुआ ॥ २४ ॥ उनमेंसे रावण, कुम्भकर्ण और तीन लड़कियें बड़ी दुराचारिणी, जीवभक्षिणी तथा मुनिहिंसक हुईं ॥ २५ ॥ एक दिन रावणकी माता कैकसीने रावणको शिवजीके पास लिंग लेने भेजा। कैलासपर जाकर रावणने शिवजीको प्रसन्न करनेके लिये बड़ा दुष्कर काम किया ॥ २६ ॥ उसने अपने सिरका कुछ भाग काटकर वीणा बनायी। सिरसे वीणाका मूलभाग बनाकर अपनी देहसे उसका पृष्ठभाग तैयार किया। पाँवोंसे उस वीणाका अग्रभाग बनाया और अँगुलियोंसे वीणाकी खूँटियें तैयार कीं। अपने पेटके भीतरकी आँतोंसे सैंकड़ों एवं हजारों तार बनाकर अपने शरीरसे ही वीणा रची। पश्चात् षड्ज आदि स्वरोंसे रावणने अपने मुखसे ही गंधर्वके समान सुन्दर गायन आरम्भ किया ॥२७-२९॥ तब लोगोंका कल्याण करनेवाले भगवान् शंकर नन्दीश्वरसे बोले :कि तुम अपने हाथसे रावणका सिर संधान करके उससे कहो कि शंकरजी तुम जैसे राक्षसको आत्मलिंग कभी न देंगे। मैं शिवजीके हृदयकी बात जानता हूँ।

शिरः संयोज्य हस्तेन शिवोक्तं तं न्यवेदयत् । तच्छ्रुत्वा रावणश्चापि समतिक्रम्य तां निशाम् ॥३३॥
चकार पूर्ववद्गानं द्वितीयदिवसे पुनः । नन्दिना शंकरश्चापि पूर्ववत्तं न्यवेदयत् ॥३४॥
इत्थं दश दिनान्येव गतानि रावणस्य च । अथ तत्कर्मणा तुष्टः शंकरो गायनेन च ॥३५॥
भूत्वा प्रसन्नस्तं प्राह वरं वरय चेति वै । दृष्ट्वा शंभुं रावणोऽपि शिरसा तेन संधितः ॥३६॥
वरयामास मन्मात्रे ह्यात्मलिंगं तथा मम । पत्न्यर्थं पार्वतीं देहि तथेत्युक्त्वा ददौ शिवः ॥३७॥
गृहीत्वा गंतुकामं तं पुनः प्राह हरस्तदा । मत्तोषार्थं त्वया वीर दशवारं निजं शिरः ॥३८॥
खड्गेन छेदितं यस्मात्तस्मात्तेऽद्य शिरांसि हि । दश विंशद्भुजाश्चापि भविष्यन्ति गिरा मम ॥३९॥
ततः स रावणस्तुष्टो गिरिजालिंगसंयुतः । विंशद्भुजो दशग्रीवः स्वस्थलं गन्तुमुद्यतः ॥४०॥
कल्पभेदाच्छतशिराः शतवारं प्रखंडितैः । स प्रोक्तः स्वशिरोभिर्हि शतद्वयभुजः क्वचित् ॥४१॥
तस्माद्धि हृतवान् विष्णुस्त्वं तं मार्गे प्रतार्य च । तथैवाब्धेस्तटे लिंगं गोकर्णं रावणात्त्वया ॥४२॥
गृहीत्वा स्थापितं पूर्वं रावणोऽपि गृहं ययौ । मंदोदरीं हरेर्वाक्याल्लब्ध्वा मयसुतां शुभाम् ॥४३॥
मातुः कार्यमसंपाद्य तूष्णीमेवातिलज्जितः । मंन्दोदर्याऽकरोत्स्वीयं विवाह तोषपूरितः ॥४४॥
दृष्ट्वैकदा धनाध्यक्षं पुष्पकस्थं तु कैकसी । पुत्रान् धिक्कारयामास यूयं षढा मृतोपमाः ॥४५॥
सापत्न्यबंधुं ये दृष्ट्वा जायंते नात्र लज्जिताः । ते मातृवचनं श्रुत्वा ययुर्गोकर्णमुत्तमम् ॥४६॥
दशवर्षसहस्राणि कुंभकर्णोऽकरोत्तपः । विभीषणोऽपि धर्मात्मा सत्यधर्मपरायणः ॥४७॥

इसलिए तुम अपने स्थानको वापस चले जाओ' ॥ ३० ॥ ३१ ॥ ऐसा कहकर उसको उसके स्थानपर भेज दो। नन्दीश्वर शिवका यह वचन सुनकर रावणके पास गये ॥ ३२ ॥ उन्होंने अपने हाथसे उसका सिर धड़से जोड़कर शिवका वचन उसको कह सुनाया । रावण यह सुनकर भी उस रातको वहीं रहा और दूसरे दिन फिर उसी विधिसे शिवजीका गुणगान करने लगा । शिवजीने उस दिन भी अपना संदेश नन्दीके द्वारा रावण को कहला भेजा। परन्तु रावणने फिर भी अपना गायन उसी प्रकार दस दिनतक जारी रक्खा । तब शंकरजी उसके उस भयानक कर्म तथा मनोहर गायनसे प्रसन्न हो गये और उससे कहा–वर माँगो। ऐसा कहकर शिवजीने उसका वह सिर भी धड़से जोड़ दिया । तब उसने शंभुसे वर माँगा कि आप मेरी माताके लिए आत्मलिंग तथा पत्नी बनानेके लिए मुझे पार्वतीजीको दे दीजिये । 'तथाऽस्तु' कहकर शिवजीने उसको वे दोनों चीजें दे दीं ॥ ३३–३७ ॥ जब उनको लेकर रावण चलने लगा, उस समय शिवजी कहने लगे–हे वीर ! तुमने मुझको प्रसन्न करनेके लिये अपना सिर दस बार तलवारसे काटा है। इसलिये मेरे कथनानुसार तुम्हारे दस सिर तथा बीस भुजायें हो जायेंगी ॥ ३८ ॥ ३९ ॥ तब रावण प्रसन्नतापूर्वक दस सिर और बीस हाथवाला बनकर पार्वती तथा शिवलिंग लेकर अपने स्थानकी ओर चला ॥ ४० ॥ कहीं-कहीं कल्पभेदसे रावण सौ बार मस्तक काटनेसे सौ सिर तथा दो सौ हाथोंवाला भी कहा गया है ॥ ४१ ॥ बादमें रास्तेसे ही विष्णुभगवान् रावणके हाथसे तुमको (पार्वतीको) छीन ले गये। तब तुम (पार्वती) भी श्रीहरिको धोखा देकर उनसे अलग हो गयीं। विष्णुकी तरह तुमने रावणके हाथसे शिवलिंग भी छीन लिया और उस लिंगको समुद्रके किनारेपर ही गोकर्ण नामसे स्थापित कर दिया। तब रावण खाली हाथ लौट गया और विष्णुके कथनानुसार मय राक्षसकी सुन्दरी पुत्री मन्दोदरी उसको प्राप्त हुई ॥४२॥४३॥ माताके कार्यका सम्पादन न कर सकनेके कारण वह बहुत लज्जित हुआ और कुछ भी नहीं कह सका। पश्चात् मन्दोदरीके साथ विवाह करके वह सन्तुष्ट हुआ ॥ ४४ ॥ एक समय उसकी माता कैकसी धनपति कुबेरको पुष्पक विमानपर बैठा देखकर अपने पुत्रोंको धिक्कार कर कहने लगी कि तुम लोग नपुंसक तथा मृतक सरीखे हो ॥ ४५ ॥ अपने सौतेले भाईका उत्कर्ष देखकर तुम लोगोंको लज्जा नहीं आती ? माताके इस कटु वचनको सुनकर वे तीनों भाई पूजनीय गोकर्ण महादेवके पास गये ॥ ४६ ॥ वहाँ कुम्भकर्णने दस हजार वर्ष तपस्या की। धर्मात्मा विभीषणने भी सत्यधर्मपरायण होकर

पंचवर्षसहस्राणि पादांगुष्ठेन तस्थिवान् । दिव्यवर्षसहस्रं तु धूमाहारो दशाननः ॥४८॥
पूर्णे वर्षसहस्रे स्वं शीर्षमग्नौ जुहाव सः । एवं वर्षसहस्राणि नव तस्यातिचक्रमुः ॥४९॥
अथ वर्षसहस्रे तु दशमे दशमं शिरः । छेत्तुकामस्य धर्मात्मा प्रसन्नोऽभूत्प्रजापतिः ॥५०॥
उवाच वचनं ब्रह्मा वरं वरय कांक्षितम् । तदोवाच दशास्यस्तमवध्यत्वं वृणोम्यहम् ॥५१॥
सुपर्णनागयक्षेभ्यो देवेभ्यश्चासुरैरपि । त्वत्तः शंभोर्महाविष्णोर्मानुषा मे तृणोपमाः ॥५२॥
तथेत्युक्त्वा विधिस्तस्मै दश शीर्षाणि संददौ । विभीषणाय सद्बुद्धिममरत्वं ददौ मुदा ॥५३॥
विमोहितं सरस्वत्या देवेंद्रपदकांक्षिणम् । कुंभकर्णं विधिः प्राह वरं वरय वांछितम् ॥५४॥
सोऽपि तं वरयामास निद्रांमपाणसिकीं शुभाम् । षाण्मासीये चैकदिनेऽशनं ब्रह्माऽपि दत्तवान् ॥५५॥
ततोऽन्तर्द्धानमगमद्विधिस्तेऽपि गृहं ययुः । सुमाली वरलब्धांस्तान् ज्ञात्वा दौहित्रसत्तमान् ॥५६॥
पातालान्निर्भयः प्रायात्प्रहस्ताद्यैर्भुवं सुखम् । मंत्रिवाक्याद्दशास्योऽपि निष्कास्य धनदं बलात् ॥५७॥
लंकापुर्यां राक्षसैस्तु लंकाराज्यं चकार सः । धनदः पितरं पृष्ट्वा त्यक्त्वा लङ्कां महायशाः ॥५८॥
गत्वा कैलासशिखरं तपसाऽतोषयच्छिवम् । तेन सख्यमनुप्राप्य तेनैव परिनंदितः ॥५९॥
अलका नगरीं तत्र निर्ममे विश्वकर्मणा । दिक्पालत्वमनुप्राप्य शिवस्य वरदानतः ॥६०॥
रावणो विद्युज्जिह्वाय ददौ शूर्पणखां तदा । पारिबर्हं ददौ तस्मै दंडकारण्यमुत्तमम् ॥६१॥
मातृस्वसुः सुतान् बंधून् त्रिशिरःखरदूषणान् । साहाय्यार्थं ददौ तस्मै तत्कांते तु मृतेऽचिरात् ॥६२॥
कुंभीनसीं ददौ हर्षान्मधुदैत्याय रावणः । ददौ मधुवनं तस्मै पारिबर्हमनुत्तमम् ॥६३॥
खड्गजिह्वाय तां क्रौंचीं ददौ प्रेम्णा दशाननः । परलङ्कां पारिबर्हं ददौ तस्यै मनोरमम् ॥६४॥

पावँके अंगूठेपर पाँच हजार वर्षतक खड़ा रहकर तप किया और दस हजार वर्षतक केवल धूम्र पीकर दशाननने तपस्या की ॥ ४७ ॥ ४८ ॥ हजार वर्ष पूरे हो जानेपर वह अपना एक सिर काटकर अग्निमें होम देता था, ऐसा करते-करते नौ हजार वर्ष बीत गये ॥ ४९ ॥ जब दस हजार वर्ष पूरे हुए और रावण अपना दसवाँ सिर काटकर आगमें हवन करनेके लिए तैयार हुआ, तब प्रजापति ब्रह्मा उसपर प्रसन्न हुए ॥ ५० ॥ ब्रह्माने कहा—हे वत्स ! तू अपना इच्छित वर माँग। तब रावणने कहा कि मैं गरुड़से, सर्पोंसे, यक्षोंसे, देवताओंसे, असुरोंसे, आप (ब्रह्मा) से, शंभुसे तथा विष्णुसे भी अवध्यत्वका वर माँगता हूँ और मनुष्य तो मेरे लिए तिनकेके बराबर हैं ॥ ५१ ॥ ५२ ॥ 'तथास्तु' कहकर ब्रह्माने रावणको दस सिर दिये और विभीषणको सुबुद्धि तथा अमरत्व दिया ॥ ५३ ॥ इन्द्रपदकी इच्छा रखनेवाले कुम्भकर्णसे ब्रह्माने कहा कि अपना अभिलषित वर माँगो ॥ ५४ ॥ तब सरस्वतीके द्वारा मोहमें पड़कर कुम्भकर्णने छः महीने तककी नींद माँगी। तदनन्तर ब्रह्माने उसको छः महीनेतक सोना और फिर भोजन करना तथा छः महीनेतक फिर शयनका वर दिया ॥ ५५ ॥ तदनन्तर ब्रह्माजी अन्तर्धान हो गये और वे लोग भी अपने घर चले गये। सुमाली अपने दौहित्रोंको वर प्राप्त किये हुए जानकर प्रहस्त आदिके साथ पातालसे निकलकर निर्भय भावसे पृथ्वीपर विचरने लगा। मन्त्रीके कथनानुसार रावणने लंकासे कुबेरको निकलवा दिया और वहाँ स्वयं राक्षसोंको लेकर लंकाका राज्य करने लगा। तब महान् यशस्वी कुबेरने अपने पितासे पूछकर लङ्काको छोड़ दिया और कैलासके शिखरपर जाकर तपश्चर्यासे शिवको प्रसन्न किया। उन्होंने उनसे मित्रता जोड़ी और उन्हींके कहनेसे वहाँ विश्वकर्मा द्वारा अलका पुरी बनवायी और शिवजीके वरदानसे दिक्पालकी पदवी प्राप्त की ॥ ५६–६० ॥ बादमें रावणने अपनी सूर्पणखा नामकी बहिन विद्युज्जिह्वको ब्याह दी और उत्तम दंडकारण्य उसको दहेजमें दे दिया ॥ ६१ ॥ थोड़े ही दिनों बाद जब उसका पति मर गया। तब रावणने अपनी मौसीके लड़के त्रिशिरा-खरदूषण आदिको उसकी सहायताके लिए भेजा ॥ ६२ ॥ रावणने कुम्भीनसी नामकी बहिन मधु दैत्यको ब्याही तथा श्रेष्ठ मधुवन उसको दहेजमें दिया ॥ ६३ ॥ दशाननने अपनी क्रौंची नामकी बहिन खड्गजिह्व राक्षसको

वैरोचनस्य दौहित्रीं वृत्रज्वालेति विश्रुताम् । स्वयंदत्तां मुदोवाह कुम्भकर्णाय रावणः ॥६५॥
गन्धर्वराजस्य सुतां शैलूषस्य महात्मनः । विभीषणस्य भार्यार्थे सरमां स मुदाऽऽहरत् ॥६६॥
ततो मन्दोदरी पुत्रं मेघनादमजीजनत् । जातमात्रस्तु यो नादं मेघवत्प्रचकार ह ॥६७॥
ततः सर्वेऽब्रुवन्मेघनादोऽयमिति वै जनाः । गुहायां कुम्भकर्णोऽपि निद्राव्याप्तो विनिद्रितः ॥६८॥
ततः स रावणश्चापि देवगन्धर्वकिन्नरान् । हत्वा ऋषीश्वरान्नागान् स्त्रियस्तेषामपाहरत् ॥६९॥
धनदोऽपि च तच्छ्रुत्वा रावणस्याक्रमं तदा । अधर्मं मा कुरुष्वेति दूतवाक्यैर्न्यवारयत् ॥७०॥
ततः क्रुद्धो दशग्रीवो जगाम धनदालयम् । विनिर्जित्य धनाध्यक्षं जहार तस्य पुष्पकम् ॥७१॥
अलकायां यदाऽऽसीत्स सेनया रावणस्तदा । निशायामेकदा भ्रातुः कुबेरस्य सुतेन हि ॥७२॥
प्रार्थिता सा पुरा रम्भा चकार नियतं दिनम् । अज्ञातवृत्ता वेगेन ययौ खान्नूपुरस्वना ॥७३॥
रावणोऽपि च तां दृष्ट्वा बलादेव प्रभुक्तवान् । चिरान्मुक्ताऽथ वृत्तं सा कौबेरं संन्यवेदयत् ॥७४॥
क्रुद्धः सोऽपि ददौ शापं रावणाय महात्मने । अद्यारभ्य दशास्यश्चेद्विरक्तां स्त्रियमुत्तमाम् ॥७५॥
हठाद्भोक्ष्यति चेत्तर्हि क्षणमात्रान्मरिष्यति । इति शापं रावणोऽपि शुश्राव चरवाक्यतः ॥७६॥
तदारभ्य स्त्रियं काममनिच्छन्तीं न धर्षयन् । ततो यमं च वरुणं निर्जित्य समरेऽसुरः ॥७७॥
स्वर्गलोकमगात्तूर्णं देवराजजिघांसया । ततो रावणमभ्येत्य बबंध त्रिदशेश्वरः ॥७८॥
तच्छ्रुत्वा सहसाऽऽगत्य मेघनादः प्रतापवान् । कृत्वा युद्धं महाघोरं जित्वा त्रिदशपुङ्गवम् ॥७९॥
इन्द्रं धृत्वा दृढं बद्ध्वा मेघनादो महाबलः । मोचयित्वा स्वपितरं गृहीत्वेन्द्रं ययौ पुरीम् ॥८०॥
ब्रह्मा तं मोचयामास देवेन्द्रं मेघनादतः । दत्त्वा वरान्राक्षसाय ब्रह्मा स्वभवनं ययौ ॥८१॥

दी तथा उसको दहेजमें अतिशय मनोहर परलंका पुरी दे दी ॥ ६४ ॥ वैरोचनकी दौहित्री (नतिनी) प्रसिद्ध वृत्रज्वालाको उसके पिताने कुम्भकर्णके लिये रावणको दी ॥ ६५ ॥ महात्मा गन्धर्वराज शैलूषकी सुता सरमाको रावण विभीषणके लिये ले आया ॥ ६६ ॥ तदनन्तर मन्दोदरीसे मेघनाद पुत्र उत्पन्न हुआ । जो कि पैदा होनेके साथ ही मेघकी तरह गर्जन करने लगा था ॥ ६७ ॥ इसीलिए सब लोग उसको मेघनाद कहने लगे । कुंभकर्ण गुफामें जाकर सो गया ॥ ६८ ॥ उधर रावण देव, गन्धर्व, किन्नर, ऋषीश्वर और नागोंको मार-मारकर उनकी स्त्रियोंका अपहरण करने लगा ॥ ६९ ॥ जब कुबेरने रावणका इस प्रकार दुराचार सुना, तब उन्होंने अपने दूतों द्वारा कहला भेजा कि हे रावण ! तू ऐसा अधर्म करना छोड़ दे ॥ ७० ॥ यह सुना तो रावण और भी क्रुद्ध होकर कुबेरके यहाँ गया तथा उनको जीतकर पुष्पक विमान छीन लाया ॥ ७१ ॥ जब रावण अपनी सेनाके साथ अलकापुरीमें था । उसी समय रावणके भाई कुबेरके पुत्र नलकूबरकी प्रार्थना स्वीकार करके रम्भा अप्सरा युद्धके वातावरणको न जाननेके कारण एकाएक नियत दिनपर आकाशसे वहाँ आ पहुँची । उसके पाँवोंमें सुन्दर एवं मनोहर नूपुरकी ध्वनि हो रही थी ॥ ७२ ॥ रावणने उसको सहसा देखकर उसके साथ हठात् भोग किया । बहुत देरके बाद उससे मुक्त हो रम्भाने जाकर वह सब हाल कुबेरके पुत्रको कह सुनाया ॥ ७३ ॥ तब क्रुद्ध नलकूबरने रावणको शाप देते हुए कहा--"हे दशास्य ! आजसे यदि तुम किसी भी तुमको न चाहनेवाली भली स्त्रीसे हठात् भोग करोगे तो उसी क्षण मर जाओगे।" इस शापको दूतके मुखसे रावणने भी सुन लिया ॥ ७४ ॥ ७५ ॥ तबसे रावणने अपनेसे विमुख स्त्रीका अपमान करना छोड़ दिया । तदनन्तर युद्धमें यमराज तथा वरुणको जीतकर वह देवराज इन्द्रको मारनेकी इच्छासे शीघ्र ही स्वर्ग गया । त्रिदशेश्वर इन्द्रने रावणके सामने जाकर उसको कैद कर लिया ॥ ७६-७८ ॥ पिताको कैद किया हुआ सुनकर प्रतापी मेघनाद शीघ्र वहाँ जा पहुँचा तथा भयानक युद्ध करके इन्द्रको जीत लिया ॥ ७९ ॥ तब महाबलवान् मेघनादने अपने पिता-को छुड़ा लिया और इन्द्रको पकड़ तथा बाँधकर अपने नगरमें ले लाया ॥ ८० ॥ पश्चात् ब्रह्माने इन्द्रको

इन्द्रजिन्नाम तस्याभूत्तदारभ्य रघूत्तम । रावणादपि यश्चासीद्बलिष्ठः समरप्रियः ॥८२॥
मेघनादादयश्चेति तस्मात्प्रोक्तं तवाग्रतः । एतैर्मुनीश्वरैः पूर्वं तन्निमित्तं मयेरितम् ॥८३॥
रावणो विजयी लोकान्सर्वान् जित्वा क्रमेण तु । जित्वा वह्निं निर्ऋतिं च वायुमीशं ययौ मुदा ॥८४॥
कैलासं तोलयामास बाहुभिः परिघोपमैः । तदा भीता शिवं देवी दोर्भ्यां सा परिषस्वजे ॥८५॥
शिवोऽपि वामपादाङ्गुष्ठेन कैलासमूर्द्धनि । भारं दत्त्वा गिरिं खर्वं चकाराथ शनैः शनैः ॥८६॥
तदा तद्गिरिसम्भूतवल्लिसंधिषु दोर्लताः । विंशच्चापि रावणस्य ता आसन्मर्दिताः क्षणात्। ८७॥
स तेनाक्रन्दयामास स्तम्भसम्बद्धचोरवत् । तदा नन्दीश्वरेणापि शप्तोऽयं रावणेश्वरः ॥८८॥
चञ्चलं कर्म यस्मात्ते कपितुल्यमतोऽसुर । वानरैर्मानुषैश्चैव नाशं गच्छसि कोपितैः ॥८९॥
ततः कालान्तरेणायं शम्भुनैव विमोचितः । शप्तोऽप्यगणयन्वाक्यं ययौ हैहयपत्तनम् ॥९०॥
बहिर्गतं नृपं श्रुत्वा सहस्रार्जुननामकम् । मध्याह्ने रावणश्चक्रे रेवायां शिवपूजनम् ॥९१॥
अधस्तस्मान्नर्मदाया भुजपाशैश्च सेतुवत् । स्तम्भयामास नीरौघ जलक्रीडां गतोऽर्जुनः ॥९२॥
वेष्टितोऽयुतनारीभिस्तत्तोयं रावणं तदा । प्लावयामास ध्यानस्थं ज्ञातस्तत्कर्मणाऽर्जुनः ॥९३॥
मुक्त्वा ध्यानादिकं सर्वं युद्धं चक्रेऽर्जुनेन सः । तेन बद्धो दशग्रीवः कण्ठे रन्तुं सुताय तम् ॥९४॥
ददौ दशाननं प्रीत्या काष्ठनिर्मितहस्तिवत् । कियत्कालान्तरेणैव पुलस्त्येन स मोचितः ॥९५॥
ततोऽतिबलमासाद्य जिघांसुर्हरिपुङ्गवम् सागरे ध्यानमासीन पश्चाद्भागे शनैर्ययौ ॥९६॥
धृतस्तेनैव कक्षेण वालिना दशकन्धरः । भ्रामयित्वा तु चतुरः समुद्रान् रावणं हरिः ॥९७॥

मेघनादसे छुड़ाया और राक्षसोंको वर देकर ब्रह्मा अपने भवनको चले गये ॥ ८१ ॥ हे रघूत्तम ! तबसे मेघनादका इन्द्रजित् नाम पड़ा। जो कि रावणसे भी अधिक बलवान् तथा युद्धलोलुप था ॥ ८२ ॥ इसीलिए मैंने आपके सामने मेघनादका पहले नाम लिया । इन ऋषियोंने इसका कारण पहले ही बता दिया था ॥ ८३ ॥ विजयशील रावणने क्रमशः सब लोकोंको जीतकर वह्नि, निर्ऋति, वायु तथा ईशानको जीत लिया और बादमें अपनी अर्गलाके समान भुजाओंसे कैलास पर्वतको उठाने गया। उस समय डरकर पार्वती देवी शिवजोसे लिपट गयीं ॥ ८४ ॥ ८५ ॥ पश्चात् शिवने अपने बायें पाँवके अंगूठेसे उस पर्वतको दबा दिया। जिससे कैलास धीरे-धीरे नीचे धँसने लगा ॥ ८६ ॥ उस समय पर्वतके नीचे आ जानेसे रावणकी बीसों भुजायें दब गयीं और वह खम्भेसे बँधे हुए चोरकी तरह चिल्लाने लगा। उस समय नन्दीश्वरने भी रावणको शाप देते हुए कहा—॥ ८७ ॥ ८८ ॥ हे असुर ! तुम्हारेमें वानरके समान चंचलता होनेके कारण क्रुद्धवानरों तथा मनुष्योंसे ही तुम्हारी मृत्यु होगी ॥ ८९ ॥ बहुत कालके बाद शिवजीने उसे छुड़ा दिया । छूटनेके साथ ही वह शापको भूल गया और शिवजीके वचनका तिरस्कार करके युद्ध करनेके लिए हैहयराजके नगरको गया ॥ ९० । वहाँ जाकर पूछा तो ज्ञात हुआ कि सहस्रार्जुन नामवाला वहाँका राजा वहाँ उपस्थित नहीं हैं। तब रावण नर्मदा नदीके किनारे जाकर उसके बीचमें एक टापूपर बैठकर मध्याह्न समयमें शिवजीका पूजन करने लगा ॥ ९१ ॥ उससे नीचेकी ओर राजा सहस्रार्जुन जलक्रीडा कर रहा था। उसने अपनी भुजारूपी सेतुसे खेल-खेलमें उस नदीके जलप्रवाहको रोक दिया। उस समय हजारों स्त्रियें उसे घेरकर जलक्रीडा कर रही थीं । परन्तु उस जलप्रवाहके रुक जानेसे शिवके ध्यानमें स्थित रावण जलमें बहने लगा। इस घटनाको देखकर उसने जान लिया कि यह काम सहस्रार्जुनका है। यह जानते ही वह तुरन्त ध्यान छोड़कर सहस्रार्जुनके पास गया और उसको युद्धके लिए ललकारने लगा। तब उसने रावणके गलेमें रस्सी डालकर बांध लिया और अपने पुत्रको खेलनेके लिए लकड़ीके बने हुए हाथीकी तरह दे दिया। कुछ दिनोंके बाद पुलस्त्य मुनिने जाकर उसको वहाँसे छुड़ाया ॥ ९२–९५ ॥ बादमें रावण बल संचय करके वानरश्रेष्ठ बालीको मारनेकी इच्छासे समुद्रके किनारे ध्यान धरकर बैठे हुए वानरराजके पास जाकर धीरेसे पीछे-

किष्किंधां स्वां ययौ वेगादग्रे दृष्ट्वांगदं शिशुम् । प्रीतया तं चुंबनं दातुं दोर्भ्यां कक्ष्यां न्यवेशयत् ॥९८॥
तदा बाहोश्चंचलत्वात्कक्षात्स पतितो भुवि । तं दृष्ट्वा स्वजनान् स्त्रीश्च दर्शयामास वै मुदा ॥९९॥
प्रेंखस्योपरि पुत्रस्य बबन्धाधोमुखं चिरम् । आसीत्सोऽङ्गदमूत्रस्य धाराधौताननोऽसुरः ॥१००॥
स्वयमेव ततो वाली बहुकाले गते सति । ददावाज्ञां दशास्याय तेन सख्यं चकार सः ॥१०१॥
रावणः स पुनः स्थित्वा पुष्पके व्यचरत्सुखम् । पश्यन्नानाविधान्वीरान् ययौ पातालमुत्तमम्॥१०२॥
तत्र दृष्ट्वा पुरं रम्यं बलेः कोटिरविप्रभम् । तत्तेजोहततेजस्तत्पुष्पकं न चचाल वै ॥१०३॥
ततः स्वयं ययौ तूष्णीमेक एव दशाननः । पुरं प्रविश्य तद्द्वारि त्वां ददर्श च वामनम् ।१०४॥
कोटिसूर्यप्रतीकाशं पीतकौशेयवाससम् । चतुर्भुजं सपत्नीकं द्वाररक्षणतत्परम् ॥१०५॥
त्वां प्राह स दशग्रीवः कोऽत्र राजाऽस्ति मां वद । तूष्णीं स्थितो वामनस्त्वमर्पितं नोत्तरं रिपोः॥१०६॥
तदा त्वां बधिरं मत्वा स विवेश बलेर्गृहम् । तत्र दृष्ट्वा बलिं पत्न्या सारिक्रीडनतत्परम् ॥१०७॥
तस्थौ तत्र क्षणं तूष्णीं बलेर्लक्ष्मीं व्यलोकयत् । तावद्दूरे बलेर्हस्तात्क्रीडापासोऽपतद्भुवि ॥१०८॥
तमानेतुं रावणाय बलिराज्ञापयत्तदा । रावणोऽपि तमानेतुं ययौ पासांतिकं जवात् ॥१०९॥
प्रोच्चचाल भुवः पासं करेण न चचाल सः । विंशद्दोर्भिः क्रमेणासौ यावत्पासं प्रचालयत् ॥११०॥
तावदंगुलयः सर्वाः पासभारेण पीडिताः ।न निष्क्रमुः पासतलाच्चूर्णिता रुधिराप्लुताः ॥१११॥
तदा चुक्रोश दीर्घं स चिरकालं दशाननः । ततो विहस्य दास्या तं पासमानीय वै बलिः ॥११२॥
धिग्धिक् कृत्वा रावणं तं गृहान्निष्कासयद्बहिः । ततो धृतो राजदूतैस्तदुच्छिष्टैस्तु पोषितः ॥११३॥

की ओर जा खड़ा हुआ ॥ ९६ ॥ तब वालीने उसको काँखमें उलटा दबाकर चारों समुद्रोंके चौतरफा घुमाया ॥ ९७ ॥ पश्चात् अपनी किष्किन्धा पुरीमें ले गया। वहाँ जाकर उसने अपने पुत्र अङ्गदको देखा। ज्यों ही वह अङ्गदको प्रेमसे चूमनेके लिये अपनी भुजाओंसे उसे कमरपर बैठाने लगा ॥ ९८ ॥ त्यों ही हाथोंके हिलनेसे रावण काँखसे नीचे जमीनपर गिर पड़ा। उसको देखकर स्त्रियें प्रसन्नतापूर्वक स्वजनोंको दिखलाने लगीं ॥ ९९ ॥ उसके ऊपर पुत्र अङ्गदका पालना बाँधकर नीचे रावणका मुख करके उन्होंने बहुत दिनोंतक बाँधकर रक्खा। जिससे रावणका मुख अङ्गदकी मूत्रधारासे धुलता रहा ॥ १०० ॥ तदनन्तर स्वयं वालीने ही रावणको जानेकी आज्ञा दे दी और उससे मित्रता कर ली ॥ १०१ ॥ रावण पुनः पुष्पक विमानपर सवार होकर आनंदके साथ विचरने लगा। अनेक वीरोंको देखता हुआ वह पातालमें जा पहुँचा ॥ १०२ ॥ वहाँ कोटिसूर्यके सदृश प्रकाशमयी उस नगरीके तेजसे प्रतिहत होकर पुष्पक विमानकी गति रुक गयी ॥ १०३ ॥ तब उससे उतरकर दशानन चुपचाप अकेला ही पुरीकी ओर चल पड़ा। उसने पुरीमें प्रवेश करनेके बाद वामनरूपधारी आपको देखा ॥ १०४ ॥ करोड़ों सूर्योंके समान तेजस्वी आपने पीताम्बर धारण कर रक्खा था। आप चतुर्भुज होकर लक्ष्मीके साथ वहाँ रहते हुए राजा बलिके द्वारकी रक्षा कर रहे थे ॥ १०५ ॥ उस दशग्रीवने आपसे पूछा कि इस नगरका राजा कौन है, बताओ। रावण कुछ देर चुपचाप खड़ा रहा, पर आपने उसे अपना शत्रु समझकर कुछ उत्तर नहीं दिया ॥ १०६ ॥ तब आपको बहरा समझकर वह बलिके भवनमें घुसा। वहाँ उसने राजा बलिको अपनी स्त्रीके साथ चौसर खेलते देखा ॥ १०७ ॥ वहाँ चुपकेसे खड़ा होकर वह बलिकी राज्यलक्ष्मीको क्षणभर देखता रहा। इतनेमें राजा बलिके हाथसे छटककर पाँसा दूर जा गिरा ॥ १०८ ॥ उसी समय बलिने रावणको उस पाँसेको उठा लानेके लिए कहा। रावण भी उसे उठानेके लिये शीघ्र ही उसके पास जा पहुँचा ॥ १०९ ॥ वह उसे एक हाथसे उठाने लगा। पर वह पाँसा हिल सक नहीं। तब रावणने दो, तीन, चार करके बीसों हाथोंसे उस पाँसेको उठानेकी चेष्टा की, परन्तु तो भी वह नहीं हिला ॥ ११० ॥ प्रत्युत उसके सब हाथोंकी अँगुलियें पाँसेके बोझसे दब गयीं और कुचल जानेसे खून निकलने लगा, परंतु वे निकलीं नहीं ॥ १११ ॥ अतएव दशानन बहुत जोरसे चिल्लाने लगा। तब

अश्वानां शकृतं नीत्वा प्राक्षिपत्प्रत्यहं बहिः । एकदा द्वापरे गत्वा प्रार्थयामास त्वां मुहुः ॥११४॥
त्वया स्वपादलग्नः स्वपदांगुष्ठेन खेऽर्पितः । तदाऽतिमुदितो लंकां चिरकालेन रावणः ॥११५॥
ययौ मेने निजं जन्म द्वितीयं जातमद्य वै । रावणः परमप्रीत एवं लोकान्महाबलः ॥११६॥

कर्तुं तान्स्ववशान्नित्यं बभ्राम पुष्पकस्थितः ।
दृष्ट्वैकदाऽत्र साकेते पूर्वजं तव दीक्षितम् ॥११७॥
अनरण्यं संगरेण चकार पतितं रणे ।
तदा शप्तोऽनरण्येन मद्वंशे रघुनन्दनः ॥११८॥

भूत्वा त्वां संगरेणैव सकुटुम्बं वधिष्यति । इत्युक्त्वा स गतो नाकं रावणोऽपि पुरीं ययौ ॥११९॥
सनत्कुमारमेकांते सन्निरीक्ष्यैकदाऽसुरः । नत्वा पप्रच्छ देवेषु को वरश्रेति सादरम् ॥१२०॥

मुनिः प्राह महाविष्णुं तच्छ्रुत्वा प्राह तं पुनः ।
विष्णुना ये हता युद्धे राक्षसाद्या लभंति काम् ॥१२१॥
गतिं चेति मुनिः प्राह ते मुक्तिं यांति दुर्लभाम् ।
पुनः पप्रच्छ तं नत्वा केनोपायेन वै हरेः ॥१२२॥

भविष्यत्यत्र मे मृत्युस्तदा तं मुनिरब्रवीत् । त्रेतायां नररूपेण रामो विष्णुर्भविष्यति ॥१२३॥
अयोध्यायां तदा तेन कृत्वा वैरं सुदारुणम् । तस्माद्वधं कुरुष्व त्वमात्मनः परमात्मनः ॥१२४॥

तेन गच्छसि मुक्तिं त्वं तच्छ्रुत्वा स दशाननः ।
विरोधार्थं जनकजामहरद्गौतमीतटात् ॥१२५॥
अशोके रक्षिता तेन मातृवत्स्ववधेच्छया ।

राजा बलिकी एक दासीने शीघ्र पाँसेको उठाकर राजाको दे दिया ॥ ११२॥ बलिने उसी समय रावणको धिक्कार-कर अपने महलसे निकाल दिया। बाहर राजा बलिके दूतोंने उसको फिर पकड़ लिया और अपने जूठनसे उसका पोषण करने लगे ॥ ११३ ॥ रावणको घोड़ोंकी लीद उठा-उठाकर बाहर फेंक आनेका काम सौंपा गया। कुछ दिनों बाद एक दिन रावण द्वारपर स्थित आप विष्णुके पास आकर नगरके बाहर जाने देनेकी प्रार्थना करने लगा और आपके चरणोंपर गिर पड़ा। तब आपने अपने पाँवके अंगूठेसे उसको आकाशकी ओर उछाल दिया। जिससे रावण बहुत कालके बाद प्रसन्नतापूर्वक अपनी लङ्कामें जा पहुँचा ॥ ११४॥ ११५ ॥ वह आज मेरा दूसरा जन्म हुआ है, ऐसा मानने लगा। तब बली रावण पुनः प्रसन्न होकर पूर्ववत् सब लोकोंको अपने वशमें करनेकी इच्छासे पुष्पकपर चढ़कर नित्यप्रति इधर-उधर भ्रमण करने लगा। उसने एक दिन अयोध्यामें आपके पूर्वज दीक्षित (सोमयागकी दीक्षा लिये हुए) राजा अनरण्यको देखा। उनके साथ युद्ध करके रावणने रणमें उन्हें हरा दिया। तब अनरण्यने उसको शाप दिया कि मेरे वंशमें जन्म लेकर रघुनन्दन राम सकुटुम्ब तुमको मारेंगे ॥ ११६–११८ ॥ इतना कहकर वे स्वर्ग सिधार गये तथा रावण अपने नगरको चला गया ॥ ११९ ॥ उस राक्षसने एक दिन सनत्कुमारको नमस्कार करके एकान्तमें पूछा—हे मुने! कृपा करके मुझे यह बताइए कि देवताओंमें सबसे श्रेष्ठ देवता कौन है ? ॥ १२० ॥ मुनिने विष्णुको श्रेष्ठ बताया। यह सुनकर वह असुर रावण फिर बोला कि विष्णुने आजतक जिन राक्षसोंको मारा है, वे किस गतिको प्राप्त हुए हैं ? ॥ १२१ ॥ मुनिने कहा—वे सब उत्तम तथा दुर्लभ मुक्तिको प्राप्त हुए हैं। उस राक्षसने फिर प्रश्न किया कि किस उपायसे मेरी मृत्यु श्रीहरिके हाथों हो सकती है ? मुनिने उसके प्रश्नका उत्तर देते हुए कहा कि त्रेतायुगमें विष्णु अयोध्यामें मनुष्यका रूप धारण करेंगे ॥ १२२ ॥ १२३ ॥ उस समय उनसे घोर वैर करके उन परमात्मा
11 रामके हाथों तुम अपना वध करवा लेना ॥ १२४ ॥ उससे तुम मुक्तिपदको प्राप्त हो जाओगे। यह बात मनमें रखकर रावणने रामके साथ विरोध करनेके लिए ही गौतमी नदीके तटसे जनकनन्दिनी सीताका

एकदा नारदं दृष्ट्वा नत्वा पप्रच्छ रावणः ॥१२६॥
भगवन् ब्रूहि मे योद्धुं कुत्र सन्ति महाबलाः ।
योद्धुमिच्छामि बलिभिस्त्वं जानासि जगत्त्रयम्॥१२७॥
मुनिर्ध्यात्वा चिरात्प्राह श्वेतद्वीपनिवासिनः । महाबला महाकायास्तत्र याहि महामते ॥१२८॥
विष्णुपूजारता ये वै विष्णुना निहताश्च ये । त एव तत्र संजाता ह्यजेयाश्च सुरासुरैः ॥१२९॥
तच्छ्रुत्वा रावणो वेगान्मंत्रिभिः पुष्पकेण तैः ।
योद्धुकामो ययौ गर्वाच्छ्वेतद्वीपांतिकं मुदा ॥१३०॥
तत्प्रभाहततेजस्कं पुष्पकं नाचलत्पुरः ।
त्यक्त्वा विमानं प्रययौ स्वयमेव दशाननः ॥१३१॥
प्रविशन्नेव तद्द्वीपं धृतो हस्तेन योषिता ।
गच्छंत्या कस्यचिद्दास्या पुष्पाण्यानयितुं वनम् ॥१३२॥
तया पृष्टः कुतः कोऽसि प्रेषितः केन वा वद । इत्युक्त्वा लीलया स्त्रीभिर्हसंतीभिर्मुहुर्मुहुः ॥१३३॥
मुखेषु ताडितो हस्तैर्भ्रामितोऽधोमुखं चिरम् । धृत्वैकं तत्पदं ताभिः क्षिप्तः कंदुकवन्मुहुः ॥१३४॥
परस्परं हि क्रीडद्भिः कया त्यक्तस्तु लीलया । पपात परलंकायां क्रौंचायाः शौचकूपके ॥१३५॥
कृच्छ्राद्धस्ताद्विनिर्मुक्तस्तासां स्त्रीणां दशाननः ।
आश्चर्यमतुलं लब्ध्वा चिन्तयामास दुर्मतिः ॥१३६॥
विष्णुना ये हता युद्धे तेषामेतादृशं बलम् । तर्ह्यत्र निहतस्तेन श्वेतद्वीपं व्रजाम्यहम् ॥१३७॥
मयि विष्णुर्यथा कुप्येत्तथा कार्यं करोम्यहम् ।
इति निश्चित्य वैदेहीं जहार रावणो वनात् ॥१३८॥

हरण कर लिया था ॥ १२५ ॥ अपने वधकी इच्छासे ही उसने सीताको अशोकवनमें रखकर माताके समान रक्षा की थी। एक बार रावणने नारद मुनिको देखकर नमस्कार किया और पूछा—॥ १२६ ॥ हे भगवन् ! आप कृपा करके यह बताइये कि मुझसे लड़नेवाले बलवान् लोग कहाँ हैं ? मैं बलवानोंसे युद्ध करना चाहता हूँ। आप तीनों लोकके लोगोंका जानते हैं ॥ १२७ ॥ मुनिने तनिक देर ध्यान धरके कहा कि श्वेतद्वीपके लोग बड़े भारी शरीरवाले होते हैं और वे नित्य भगवान्की पूजामें लगे रहते हैं। जो लोग विष्णुके हाथों मारे जाते हैं, वे ही सुरों तथा असुरोंसे अजेय होकर वहाँ जन्म लेते हैं ॥ १२८ ॥ १२९ ॥ यह सुनकर प्रसन्न रावण अपने मन्त्रियोंके साथ पुष्पक विमानपर सवार होकर गर्व तथा वेगके साथ उन लोगोंसे युद्ध करनेकी इच्छासे श्वेतद्वीपकी ओर चल पड़ा ॥ १३० ॥ परन्तु उस द्वीपकी कान्तिसे चौंधियाकर उसका विमान रुक गया। तब रावण विमान छोड़कर पैदल चलने लगा ॥ १३१ ॥ द्वीपमें घुसते ही एक स्त्रीने उसको एक हाथसे पकड़ लिया। वह किसीकी दासी थी और वनमें पुष्प लेने जा रही थी ॥ १३२ ॥ उस स्त्रीने रावणसे पूछा कि तू कौन है और तुझे यहाँ किसने भेजा है ? बता। इतना कहकर कुछ स्त्रियाँ बारम्बार हँसकर लीलापूर्वक उसके मुखपर तमाचे लगाने लगीं। बादमें उसका पाँव पकड़ तथा उसको औंधे सिर घुमाकर गेंदकी भाँति दूर फेंक दिया ॥ १३३॥ १३४ ॥ आपसमें एक दूसरेके साथ खेलती हुई किसी एक स्त्रीने ही यह काम किया था। इस प्रकार फेंकनेपर रावण परलङ्कामें क्रौंचाके शौचालयमें जा गिरा ॥ १३५ ॥ इस प्रकार रावण उन स्त्रियोंके हाथोंसे बड़ी कठिनाईसे छूटा और आश्चर्यचकित होकर वह दुष्ट विचारने लगा–॥ १३६ ॥ ओहो ! विष्णु जिनको मारते हैं, वे लोग कितने बलवान् हो जाते हैं। इसलिए मैं भी उनसे मारा जाकर श्वेतद्वीपमें जाऊँगा ॥ १३७ ॥ अब मैं वही काम करूँगा कि जिससे विष्णु मेरे ऊपर क्रुद्ध हों। यही सोचकर वनमें रावणने

जानन्नेवं महालक्ष्मीं स जहारावनीसुताम् ।
मातृवत्पालयामास त्वत्तः कांक्षन्वधं निजम् ॥१३९॥

श्रीरामचन्द्र उवाच

वालिसुग्रीवयोर्जन्म श्रोतुमिच्छामि त्वन्मुखात्। रवींद्रौ वानराकारौ जज्ञात इति तच्छ्रुतम् ॥१४०॥

अगस्त्य उवाच

मेरौ स्वर्णमये पूर्वं सभायां ब्रह्मणः कदा। नेत्राभ्यां पतितं दिव्यमानंदाश्रुजलं तदा ॥१४१॥
तद्गृहीत्वा करे ब्रह्मा ध्यात्वा किंचित्तदत्यजत् ।
भूमौ पतितमात्रेण तस्माज्जातो महाकपिः ॥१४२॥
तमाह द्रुहिणो वत्स त्वमत्र वस सर्वदा ।
एवं बहुतिथे काले गतेर्क्षविरजः सुधीः ॥१४३॥
कदाचित्पर्यटन्मेरौ फलमूलार्थमुद्यतः । अपश्यद्दिव्यसलिलां वापीं मणिशिलाचिताम् ॥१४४॥
पानीयं पातुमगमत्तत्र छायामयं कपिम् । दृष्ट्वा प्रतिकपिं मत्वा निपपात जलांतरे ॥१४५॥
तत्रादृष्ट्वा हरिं शीघ्रं बहिरुत्प्लुत्य संययौ । अपश्यत्सुन्दरीं नारीमात्मानं विस्मयं गतः ॥१४६॥
ततो ददर्श मघवा सोऽत्यजद्वीर्यमुत्तमम् । तामप्राप्यैव तद्वीर्यं बालदेशेऽपतद्भुवि ॥१४७॥
वाली समभवत्तत्र शक्रतुल्यपराक्रमः ।
भानुरप्यागमत्तत्र तदानीमेव भामिनीम् ॥१४८॥
दृष्ट्वा कामवशो भूत्वा ग्रीवादेशेऽसृजन्महत् । बीजं तस्यास्ततः सद्यो सुग्रीवो बलवानभूत् ॥१४९॥
त्रद्द यं समादाय गत्वा सा निद्रिता क्वचित् । प्रभातेऽपश्यदात्मानं पूर्ववद्वानराकृतिम् ॥१५०॥
तद्वृत्तं तु विधिः श्रुत्वा किष्किंधाराज्यमुत्तमम् ।
ददौ स वानरेन्द्राय पुत्राभ्यां तत्र संस्थितः ॥१५१॥

वैदेहीका हरण कर लिया ॥ १३८ ॥ उसने यह भी जान लिया था कि ये साक्षात् अवनिसुता लक्ष्मी हैं। इसीलिए उसने अपने वधकी इच्छा करके सीताको माताके समान पाला था ॥ १३९ ॥ श्रीरामचन्द्र बोले—हे मुने! मैं आपके मुखसे वालि और सुग्रीवके जन्मकी कथा सुनना चाहता हूँ। मैंने सुना है कि स्वयं सूर्य तथा इन्द्र वानराकार वालि-सुग्रीवके रूपमें उत्पन्न हुए थे ॥ १४० ॥ अगस्त्य मुनि बोले—मेरु पर्वतके स्वर्णशिखरपर एक बार भरी सभामें सहसा ब्रह्माके नेत्रसे दिव्य आनन्दाश्रु निकल पड़ा ॥ १४१ ॥ ब्रह्माजीने उसको हाथमें ले तथा कुछ ध्यान धरनेके पश्चात् जमीनपर डाल दिया। गिरनेके साथ ही उससे एक महान् कपि उत्पन्न हो गया ॥ १४२ ॥ तब ब्रह्माने उससे कहा—हे वत्स! तुम सदा यहीं रहो। वहीं रहते हुए कुछ दिन बीतनेपर वह ऋक्षविरजा कपि किसी समय मेरु पर्वतपर घूमता-फिरता फल-मूल आदिके लिए एक वनमें जा पहुँचा। उसने वहाँ मणिकी शिलाओंमें बनी हुई स्वच्छ जलवाली एक बावली देखी ॥ १४३ ॥ १४४ ॥ जब वह पानी पीने लगा तो उसे अपनी छाया दिखाई दी। उसे अपना प्रतिपक्षी समझकर वह जलमें कूद पड़ा ॥ १४५ ॥ किन्तु उसमें जब उसको दूसरा वानर नहीं दिखाई पड़ा, तब वह उछलकर बाहर निकल आया। बाहर निकलनेके साथ ही वह एक सुन्दरी स्त्रीके रूपमें परिणत हो गया। यह देखकर उसको बड़ा आश्चर्य हुआ ॥ १४६ ॥ बादमें जब इन्द्रने उसको देखा तो कामवश उनका वीर्य निकलकर उस स्त्रीके बालोंपर जा गिरा ॥ १४७ ॥ उससे इन्द्रतुल्य पराक्रमी वानर बालि पैदा हुआ। उसी समय सुर्यदेव भी वहाँ आ पहुँचे ॥ १४८ ॥ उस सुन्दरी कामिनीको देखकर वे भी कामातुर हो उठे और उस स्त्रीकी गर्दनपर उनका महान् वीर्य गिर पड़ा। जिससे उसी समय बलवान् वानर सुग्रीव उत्पन्न हुआ ॥ १४९ ॥ उन दोनों पुत्रोंको कहीं ले जाकर वह स्त्री सो गयी। प्रातःकाल होनेपर उसने फिर अपने आपको वानररूपमें पाया ॥ १५० ॥

12

मृतेर्क्षविरजस्याभूद्वाली पुर्यां कपीश्वरः। एवं ते कथितं राम यथा पृष्टं त्वया मम ॥१५२॥

श्रीरामचन्द्र उवाच

यदाऽसौ वालिना बंधुः किष्किन्धाया बहिष्कृतः।
तदा तस्यैव सचिवः श्रीमान्पवननंदनः ॥१५३॥
न वेद किं बलं नैजं वालितुल्यपराक्रमः। इति रामवचः श्रुत्वा पुनस्तं मुनिरब्रवीत् ॥१५४॥

अगस्तिरुवाच

केसरीनाम विख्यातः कपिरंजनपर्वते।
तस्यास्तां च शुभे पत्न्यौ वानर्याविकदा गिरौ ॥१५५॥
प्लवंगस्याञ्जनीनाम्नी स्थिता तावच्च खात्तदा।
पपात पायसमयः पिंडो गृध्रीमुखाद्भुवि ॥१५६॥
यदा नीतस्तु कैकेय्या कराद्गृध्रया शुभः पुरा। तं पिंडं भक्षयामास वानरी ह्यमृतोपमम् ॥१५७॥
एतस्मिन्नंतरे तत्र मार्जारास्या समागता। पतिना रहिते ते द्वे क्रीडंत्यौ वसनं तयोः ॥१५८॥
अहरत्पवनो वेगाद्दृष्ट्वा वायुस्तदूरवः।
अंजनीं प्रार्थयामास तया भोगं चकार सः ॥१५९॥
तथैव प्रार्थयामास मार्जारास्यां स निर्ऋतिः। तयाऽकरोद्रतिं तत्र सोऽपि पर्वतमूर्द्धनि ॥१६०॥
तयोस्ताभ्यां समुत्पन्नो वानर्यां मारुतात्मजः।
मार्जार्याः समभूद्घोरः पिशाचो घर्घरस्वनः ॥१६१॥
चैत्रे मासि सिते पक्षे हरिदिन्यां मघाऽभिधे। नक्षत्रे स समुत्पन्नो हनुमान् रिपुसूदनः ॥१६२॥
महाचैत्रीपूर्णिमायां समुत्पन्नोऽञ्जनीसुतः। वदन्ति कल्पभेदेन बुधा इत्यादि केचन ॥१६३॥
बालभावेऽपि यः पूर्वं दृष्ट्वोद्यंतं विभावसुम्।
मत्वा पक्वफलं चेति जिघृक्षुर्लीलयोत्प्लुतः ॥१६४॥

वह वृत्तान्त सुनकर ब्रह्माजीने वानरेन्द्र ऋक्षविरजाको किष्किंधा नगरीका उत्तम राज्य दे दिया। जहाँपर वह अपने दोनों पुत्रोंके साथ रहने लगा॥ १५१॥ उस ऋक्षराजके मर जानेपर किष्किन्धापुरीका राजा कपीश्वर बाली हुआ। हे राम! जो आपने पूछा, मैंने वह सब कह दिया॥ १५२॥ श्रीरामचन्द्र बोले—जब सुग्रीवको बालीने किष्किन्धासे बाहर निकाल दिया था, उस समय इनके मन्त्री ये वायुनन्दन हनुमान् भी साथ थे॥ १५३॥ पर इनको बालीके समान अपना बल क्यों नहीं याद आया? रामके इस वचनको सुनकर मुनि अगस्त्य फिर कहने लगे–॥ १५४॥ अंजन पर्वतनिवासी केसरी नामसे विख्यात कपिकी दो वानरी स्त्रियें थीं॥ १५५॥ किसी समय उस कपिकी अंजनी नामकी स्त्री वहाँ बैठी थी। इतनेमें आकाशसे किसी गृध्रीके मुखसे छूटकर पायसका एक पिण्ड आ गिरा॥ १५६॥ यह पिंड वही था जो कि पहले कैकेयीके हाथसे एक गृध्री छीन ले गयी थी। उस अमृततुल्य पिण्डको वानरीने खा लिया॥ १५७॥ इतनेमें वहाँ वह दूसरी मार्जारास्या वानरी भी आ पहुँची। पतिकी अनुपस्थितिमें वे दोनों क्रीड़ा कर रही थीं। तभी उन दोनोंके वस्त्रोंको पवनने उड़ाकर ऊँचे उठाया तथा उनकी जाँघोंको देख लिया। पश्चात् अंजनीसे प्रार्थना करके उसके साथ वायुने भोग किया॥ १५८॥ १५९॥ उसी प्रकार निर्ऋतिने मार्जारास्यासे प्रार्थना करके पर्वतके शिखरपर उसके साथ रति की॥ १६०॥ उन दोनोंसे उन दोनोंमें–वानरीसे मारुतात्मज हनुमान् तथा मार्जारीसे घोर घर्घरस्वन पिशाच उत्पन्न हुआ॥ १६१॥ चैत्र शुक्ल एकादशीके दिन मघानक्षत्रमें रिपुदमन हनुमान्का जन्म हुआ था॥ १६२॥ कुछ पण्डित कल्पभेदसे चैत्रकी पूर्णिमाके दिन हनुमान्का शुभ जन्म हुआ, ऐसा कहते हैं॥ १६३॥ वे हनुमान् बाल्यकालमें ही सूर्यको देख तथा उन्हें पका फल समझकर उसको लेनेकी

योजनानां पंचशतं वायुवेगेन मारुतिः। राहुस्तस्मिन्दिने दर्शे ययौ सूर्यं रघूत्तम ॥१६५॥
तावद्दृष्ट्वा धर्तुकामं रवेरग्रे कपिं स्थितम्। तदा राहुर्भयादेव रविं मुक्त्वेंद्रमाययौ ॥१६६॥

राहुः प्राह शचीनाथं तव पीडां करोम्यहम्।
दत्तः पूर्वं त्वया सूर्यः पीडां कर्तुं सुरेश्वर ॥१६७॥

तत्र विघ्नं समुत्पन्नं तत्त्वं शीघ्रं निवारय। तद्राहुवचनादिंद्रः समारुह्य गजोपरि ॥१६८॥
देवैर्युतो ययौ वेगाद्ददर्श प्लवगं पुरः। तदा मुमोच तं वज्रं मघवा मारुतिं प्रति ॥१६९॥

वज्रपातान्मारुतिः खात् पपात गिरिकन्दरे।
तदा भग्ना हनुस्तस्य हनुमानिति वै यतः ॥१७०॥
ख्यातिं गतोऽयं सर्वत्र तदा वायुश्चुकोप ह।
सांत्वयित्वा हनूमंतं स्वयं स्तब्धोऽभवत्तदा ॥१७१॥

वायुस्तम्भाज्जनाः सर्वे निपेतुर्धरणीतले। त्रैलोक्यं शववज्जातं हाहाकारोऽभवद्दिवि ॥१७२॥

तदा धिक्कृत्य देवेंद्रं वेधा वायुं ययौ जवात्।
प्रार्थयामास तं नत्वा पुनर्वायुं वचोऽब्रवीत् ॥१७३॥

देवेन्द्रस्यापराधं त्वं क्षन्तुमर्हसि कंपन। तव पुत्राय दास्यामि वरानद्य हनूमते ॥१७४॥
तदा तुष्टोऽभवद्वायुश्चचाल पूर्ववत्पुनः। अभूत्संजीवितं सर्वं त्रैलोक्यं क्षणमात्रतः ॥१७५॥

तदा ददौ वरान् ब्रह्मा मारुतिं पुरतः स्थितम्।
भविष्यसि त्वममरो वज्रदेहो वरान्मम ॥१७६॥

ते कुंठिता गतिर्माऽस्तु कुत्राप्यंजनिसंभव। भविष्यति हरौ भक्तिस्तव नित्यमनुत्तमा ॥१७७॥

त्वं विष्णोरपि साहाय्यं करिष्यसि वरान्मम।
इत्युक्त्वाऽन्तर्दधे वेधा राहुः सूर्यं ययौ पुनः ॥१७८॥

इच्छासे लीलापूर्वक ऊपरको उछले॥ १६४॥ उस समय मारुति वायुवेगसे पाँच सौ योजन ऊपर उठ गये थे। हे रघूत्तम! उसी दर्श (अमावस्या) के दिन राहु भी ग्रसनेके लिए सूर्यके पास गया, किन्तु उन्हें पकड़नेकी इच्छासे खड़े हनुमान्‌को देखा। तब राहु डरा और सूर्यको छोड़कर इन्द्रके पास जा पहुँचा ॥१६५॥१६६॥ शचीपति इन्द्रसे राहु बोला—अब मैं आपको ही सताऊँगा। क्योंकि पूर्वकालमें आपने मुझे सतानेके लिये सूर्यको दिया था॥ १६७॥ परन्तु उसमें इस समय विघ्न उपस्थित हो गया है। अतः उसका आप निवारण करें, नहीं तो मैं आपहीको दुःख दूँगा। इस प्रकार राहुके कथनानुसार इन्द्र गजपर सवार होकर देवताओंके साथ सूर्यके पास गये तो वहाँ उनके सामने हनुमान्‌को खड़ा देखा। तत्काल इन्द्रने उनके ऊपर वज्रप्रहार किया ॥ १६८॥ १६९॥ वज्रके आघातसे हनुमान् नीचे गिरिकन्दरामें जा गिरे और उनकी ठुड्ढी टेढ़ी हो गयी। जिससे कि उनका हनुमान् नाम पड़ा॥ १७०॥ उनका यह नाम सर्वत्र प्रसिद्ध हो गया। यह देखकर उनके पिता वायुदेवने कुपित होकर अपनी गति बन्द कर दी॥ १७१॥ वायुके बन्द हो जानेसे सब लोग मर-मरकर धरतीपर गिरने लगे। तीनों लोक मृतक जैसे हो गये और देवलोकमें भी हाहाकार मच गया॥ १७२॥ तब ब्रह्मा इन्द्रको धिक्कारकर शीघ्र वायुके पास गये और नमस्कार करके प्रार्थनापूर्वक कहा—॥ १७३॥ हे कंपन! तुम देवेन्द्रके अपराधको क्षमा कर दो। मैं तुम्हारे पुत्र हनुमान्‌को वर देता हूँ॥ १७४॥ तब प्रसन्न होकर वायु पुनः पूर्ववत् बहने लगा। अतः क्षणमात्रमें तीनों लोक फिर जीवित हो गये॥ १७५॥ पश्चात् ब्रह्माने सामने खड़े मारुतिको वर दिया कि तुम मेरे वचनसे वज्रदेह होकर अमर हो जाओगे॥ १७६॥ हे अंजनीपुत्र! तुम्हारी गति कहीं भी प्रतिहत न होगी और नित्य श्रीहरिमें तुम्हारी उत्तम भक्ति बनी रहेगी॥१७७॥ मेरे वरदानसे तुम विष्णुकी सहायता करनेमें भी समर्थ होओगे। इतना कहकर ब्रह्मा अन्तर्धान हो गये और राहु पुनः

श्रीराम उवाच

देवेंद्रेण कथं दत्तो रविस्तस्मै स राहवे । तत्सर्वं विस्तरेणैव कथयस्व ममाग्रतः ॥१७९॥

अगस्तिरुवाच

सुधापानादयं राहुर्दैत्योऽभूदमरः स्वयम् । ग्रहोऽष्टमोऽभवत्सोऽपि यदाऽवांछदघं सुरान्॥१८०॥
पीडां कर्तुं तदा देवाः सूर्यं सोमं ददुस्तु वै । ज्ञात्वा धर्मैर्जनाः सर्वे निजकर्मादिहेतवे ॥१८१॥
मोचयिष्यन्ति राहोश्च शशिनं भास्करं प्रति । यदा यदा भवत्यत्रोपरागो जगतीतले ॥१८२॥
तदा तदा जना धर्मैर्निजमत्यर्थमादरात् ।
तोषयित्वा सदा राहुं तौ तस्मान्मोचयंति हि ॥१८३॥
एतत्सर्वं मया प्रोक्तमुपरागस्य कारणम् । जन्म कर्म वरादानं मारुतेश्चापि विस्तरात् ॥१८४॥
अतस्तद्बलमाहात्म्यं को वा शक्नोति वर्णितुम् । स एकदा मुनीनां हि चाश्रमेषु कुशादिकान् ॥१८५॥
चकारेतस्ततः सर्वान्धिर्षयन्मुनिबालकान् । तस्य तत्कर्म मुनिभिर्दृष्ट्वा शप्तोऽञ्जनीसुतः ॥१८६॥
अद्यारभ्य कपिश्रेष्ठ न ज्ञास्यसि स्वपौरुषम् ।
यदाऽन्यस्य मुखात्स्वीयं बलं श्रोष्यसि विस्तरात् ॥१८७॥
भविष्यति तदा पूर्वस्मृतिस्ते पौरुषं पुनः । अतः सुग्रीवसान्निध्ये विस्मृतः स्वपराक्रमः ॥१८८॥
यदा स्तुतो जांबवता पुरा प्रायोपवेशने । तदा स्मृतिस्तस्य जाता स्वबलस्य हनूमतः ॥१८९॥
एतत्ते सर्वमाख्यातं त्वया पृष्टं मया तव । यथा तथा सविस्तारं कपिरावणचेष्टितम् ॥१९०॥
राम त्वं परमेश्वरोऽसि सकलं जानासि विज्ञानदृक्
भूतं भव्यमिदं त्रिकालकलनासाक्षी विकल्पोज्झितः ।
भक्तानामनुवर्त्तनाय सकलां कुर्वन् क्रियासंहतिं
चाश्रृण्वन् मनुजाकृतिर्मम वचो भासीश लोकार्चितः ॥१९१॥

सूर्यके पास गया ॥ १७८ ॥ श्रीरामजीने पूछा कि देवेन्द्रने सूर्य राहुको क्यों दे दिया था ? हे मुनीन्द्र ! यह कथा आप विस्तारसे कहें ॥ १७९ ॥ अगस्त्य ऋषि बोले—हे राम ! दैत्य राहु पूर्वकालमें सुधापान करके अमरत्वको प्राप्त हो गया था । बादमें जब वह अष्टम ग्रह हो गया, तब उसने देवताओंको दुःख देना चाहा । यह देखकर देवताओंने सूर्य तथा चन्द्रमा राहुको दे दिया और यह सोचा कि संसारके लोग अपने कामके लिए धर्मके द्वारा राहुसे सूर्य तथा चन्द्रमाको छुड़ा लेंगे । उसीके अनुसार सूर्य-चन्द्रको जब-जब ग्रहण लगता है, तब-तब मनुष्य अपने कार्यसाधनके लिये आदरपूर्वक दान-धर्मसे राहुको संतुष्ट करके उससे सूय-चन्द्रको छुड़ा लेते हैं ॥ १८०–१८३ ॥ इस प्रकार मैंने ग्रहणका कारण तथा मारुतिका जन्म-कर्म आदि वृत्तान्त सविस्तार आपको कह सुनाया ॥ १८४ ॥ पूरी तरह हनुमान्‌के बल-प्रतापका वर्णन कौन कर सकता है । उन्होंने एक दिन मुनियोंके आश्रममें जाकर उनके बालकोंको डराया-धमकाया और कुशा आदि सब सामग्री इधर-उधर बिखेर दी । उनके इस कामको देखकर मुनियोंने अंजनीसुत हनुमान्‌को शाप देते हुए कहा—॥ १८५ ॥ हे कपिश्रेष्ठ ! आजसे तुम अपने पुरुषार्थको भूल जाओगे और जब कभी दूसरेके मुखसे अपना बल विस्तारसे सुनोगे ॥ १८६ ॥ १८७ ॥ तब स्मरण होगा । वे सुग्रीवके पास रहते समय इसी कारण अपना पुरुषार्थ भूल गये थे । बादमें समुद्रतटपर उपवासके समय जब जांबवान्‌ने उनकी स्तुति करके उनके बलका स्मरण दिलाया, तब हनुमान्‌को तुरन्त अपना बल याद आगया था ॥ १८८ ॥ १८९ ॥ यह सब मैंने आपके पूछनेके अनुसार सविस्तार कपि हनुमान् तथा रावणका कार्यकलाप कह सुनाया ॥ १९० ॥ हे राम ! आप परमेश्वर हैं, ज्ञानदृष्टिसे सब कुछ देखते हैं, विकल्परहित आप भूत-भविष्य-वर्तमान तीनों कालकी क्रियाके विज्ञ और सबके साक्षी हैं । भक्तोंके अनुरोधसे आप समस्त क्रियाकलाप करते हुए मनुष्य बनकर मेरे बचनको

श्रीशिव उवाच

स्तुत्वैवं राघवं तेन पूजितः कुंभसंभवः। स्वाश्रमं मुनिभिः सार्धं प्रययौ गुप्तविग्रहः ॥१९२॥
विन्ध्याचलं निजं रूपं स मुनिर्नैव दर्शयत्। पुनरुत्थास्यति गिरिश्चेति मत्वा तु तद्भयात् ॥१९३॥
रामस्तु सीतया सार्द्धं भ्रातृभिः सह मंत्रिभिः।
संसारीव रमानाथो रममाणोऽवसद्गृहे ॥१९४॥
अनासक्तोऽपि विषयान् बुभुजे प्रियया सह। हनुमत्प्रमुखैः सद्भिर्वानरैः परिसेवितः ॥१९५॥
राघवे शासति भुवं लोकनाथे रमापतौ। वसुधा सस्यसंपन्ना फलवंतश्च भूरुहाः ॥१९६॥
जनाः स्वधर्मनिरताः पतिभक्तिपराः स्त्रियः। नापश्यत्पुत्रमरणं कश्चिद्राजनि राघवे ॥१९७॥
समारुह्य विमानाग्र्यं राघवः सीतया सह। वानरैर्भ्रातृभिः सार्द्धं संचचारावनिं प्रभुः ॥१९८॥
अमानुषाणि कर्माणि चकार बहुशो भुवि। लोकानामुपदेशार्थं परमात्मा रघूत्तमः ॥१९९॥
कोटिशः शिवलिंगानि स्थापयामास सर्वतः।
अश्वमेधादिविविधान् यज्ञान् विपुलदक्षिणान् ॥२००॥
चकार परमानन्दो मानुषं वपुरास्थितः। सीतां तां रमयामास सर्वभोगैरमानुषैः ॥२०१॥
शशास रामो धर्मेण राज्यं परमधर्मवित्। कथाः संस्थापयामास सर्वलोकमलापहाः ॥२०२॥
एकादशसहस्राणि सैकादशसमानि च। त्रेतायुगभवान्येव वर्षाणि रघुनन्दनः ॥२०३॥
चकार राज्यं धर्मेण लोकवन्द्यपदांबुजः। कलेर्मानेन ज्ञेयानि लक्षाण्येकादशैव हि ॥२०४॥
सैकादशशतान्यत्र रामो राज्यं चकार सः। एकपत्नीव्रतो रामो राजर्षिः सर्वदा शुचिः ॥२०५॥
यस्यैकमेव तत्रासीत् पत्नीवाक्यं शरस्तथा। गृहमेधीयमखिलमाचरन् शिक्षितुं नरान् ॥२०६॥
सीता प्रेम्णाऽनुवृत्त्या च प्रश्रयेण दमेन च। भर्तुर्मनोहरा साध्वी भावज्ञा सा ह्रिया भिया ॥२०७॥

सुनते हैं। हे ईश ! सब लोगोंसे पूजित होकर आप बड़ी ही शोभाको प्राप्त हो रहे हैं॥ १९१॥ श्रीशिवजी बोले- इस प्रकार रामकी स्तुतिकर तथा उनसे पूजा-सत्कार प्राप्त करके गुप्तविग्रह अगस्त्य मुनि सब मुनियोंको साथ लेकर अपने आश्रमको चले गये॥ १९२॥ जाते समय मुनिने अपना रूप विन्ध्याचलको इस डरसे नहीं दिखलाया कि वह कहीं फिर उठकर न खड़ा हो जाय॥ १९३॥ उधर रामचन्द्रजी सीता, मन्त्रिगण तथा भ्राताओंके साथ संसारी जीवोंके समान क्रीड़ा करते हुए अपने घरमें रहने लगे॥ १९४॥ आसक्त न होते हुए भी अपनी प्रिया सीताके साथ ऐहिक विषयोंका आनन्द लेते रहे। हनुमान् आदि अच्छे वानर श्रीहरि-की सेवामें लग गये॥ १९५॥ रमापति तथा लोकनाथ रामके शासनकालमें धरा धन-धान्यपूर्ण हो गयी, वृक्ष खूब फलने लगे॥ १९६॥ मानवगण अपने-अपने धर्मपथपर चलने लगे और स्त्रियें पतिभक्तिपरायणा होकर रहने लगीं। रामके राज्यमें माता-पिताके जीते जी कहींपर पुत्रमरण नहीं होता था॥ १९७॥ वे प्रभु राम-सीता, लक्ष्मण आदि भाइयों तथा वानरोंके साथ विमानपर सवार होकर अवनीतलपर विचरते थे॥ १९८॥ पृथ्वीपर उन्होंने अनेक लोकोत्तर कार्य किये। परमात्मा रामने लोगोंको उपदेश देनेके लिए सर्वत्र करोड़ों शिव-लिंग स्थापित किये। परमानन्दस्वरूप परमेश्वर रामने मनुष्यका रूप धारण करके बहुतेरी दक्षिणावाले विविध अश्वमेध यज्ञ किये। मनुष्योंको दुर्लभ अनेक भोगसाधनोंसे रामने सीताको सन्तुष्ट किया॥१९९॥२००॥ ॥ २०१॥ परम धर्मज्ञ रामने न्यायपूर्वक राज्यका शासन करके लोगोंके पापोंको दूर करनेवाली अनेक कथाएँ स्थापित कीं॥ २०२॥ त्रेतायुगके ग्यारह हजार वर्ष पर्यन्त लोगों द्वारा वन्दनीय चरणकमलवाले रघुनन्दनने धर्मपूर्वक राज्य किया। कलियुगके हिसाबसे रामने यहाँ ग्यारह लाख ग्यारह वर्षतक राज्य किया। राजर्षि राम सर्वदा पवित्र रहकर एकपत्नीव्रतमें स्थिर रहे॥ २०३–२०५॥ जिनके लिए पत्नीका वाक्य और बाण एक समान था। उन्होंने समस्त गृहस्थाश्रमका कार्य एकमात्र लोगोंको शिक्षा देनेके लिए किया था

युक्ता तं रंजयामास राजानं राघवं मुदा। एवं गिरींद्रजे प्रोक्तं रामराज्योत्तरोद्भवम् ॥२०८॥
चरितं रघुनाथस्य यथा पृष्टं त्वया मम। श्रवणात्सर्वपापघ्नं महामंगलकारकम् ॥२०९॥

सारकांडमिदं देवि ये शृण्वन्ति नरोत्तमाः।
तेषां मनोरथाः सर्वे परिपूर्णा भवन्ति हि ॥ २१० ॥

इति श्रीशतकोटिरामचरितांतर्गते श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये सारकाण्डे अगस्तिरामशिवपार्वतीसंवादे त्रयोदशः सर्गः ॥ १० ॥

प्रथमसर्गे श्लोकाः ॥ १०९ ॥ द्वितीये ॥ ३१ ॥ तृतीये ॥ ३९४ ॥ चतुर्थे १७० ॥ पंचमे ॥ १४० ॥ षष्ठे ॥ १३० ॥ सप्तमे ॥ १६६ ॥ अष्टमे ॥ १२५ ॥ नवमे ॥ ३१० ॥ दशमे ॥ २७३ ॥ एकादशे ॥ २८८ ॥ द्वादशे ॥ २०२ ॥ त्रयोदशे ॥ २१० ॥ एवं सारकाण्डस्य पूर्णश्लोकसंख्या ॥ २५५८ ॥

॥ २०६ ॥ सीता प्रेमके अनुकूल बर्तावसे, नम्रतासे, लज्जासे, डरसे, पातिव्रत धर्मसे, मनोहरभावसे तथा पतिके मनोभावको जानकर उसके अनुसार व्यवहारसे राजा रामको प्रेमपूर्वक आनन्दित करने लगीं। हे गिरीन्द्रजे ! इस प्रकार मैंने तुमको रामके राज्यकालके बादका सब वृत्तान्त कह सुनाया, जैसा कि तुमने पूछा था। यह रामचरित्र श्रवणमात्रसे सब पापोंका नाशक तथा महामंगलकारी है ॥ २०७–२०९ ॥ हे देवि ! जो लोग इस सारकांडको श्रद्धासे सुनते हैं, उन नरश्रेष्ठोंके सब मनोरथ पूर्ण होते हैं। इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है ॥ २१० ॥ इति श्रीमच्छतकोटिरामचरितांतर्गते श्रीमदानंदरामायणे वाल्मीकीये सारकांडे अगस्तिरामशिवपार्वतीसंवादे पं० रामतेजपाण्डेयकृत 'ज्योत्स्ना' भाषाटीकायां त्रयोदशः सर्गः ॥ १३ ॥

इस सारकाकाण्डके पहिले सर्गमें १०९ श्लोक, दूसरेमें ३१, तीसरेमें ३९४, चौथेमें १७०, पाँचवेंमें १४०, छठेंमें १३०, सातवेंमें १६६, आठवेंमें १२५, नवेंमें ३१०, दसवेंमें २७३, ग्यारहवेंमें २८८, बारहवेंमें २०२ तथा तेरहवेंमें २१० श्लोक हैं। इस प्रकार इस सारकाण्डमें कुल २५५८ श्लोक हैं।

*** इति श्रीमदानन्दरामायणे सारकाण्डं समाप्तम् ***

श्रीरामचन्द्रार्पणमस्तु

श्रीरामचन्द्रो विजयतेतराम्

श्रीवाल्मीकिमहामुनिकृतशतकोटिरामचरितान्तर्गतं

आनन्दरामायणम्

'ज्योत्स्ना'ऽऽह्वया भाषाटीकयाऽऽटीकितम्

यात्राकाण्डम्

प्रथमः सर्गः

(रामायणकी उत्पत्तिका वृत्तान्त)

श्रीपार्वत्युवाच

सारकांडं त्वया शंभो कीर्तितं बहुपुण्यदम् । मया श्रुतं तु पृच्छामि यत्तद्वक्तुं त्वमर्हसि ॥ १ ॥
कथं कृता वाजिमेधा राघवेण बलीयसा । रामादीनां चतुर्णां हि बन्धूनां सन्ततिं वद ॥ २ ॥
स्वपुत्रबन्धुपुत्राश्च कथं स्त्रीभिः सुयोजिताः । दशवर्षसहस्राणि दशवर्षशतानि च ॥ ३ ॥
तथैकादश वर्षाणि त्रेतायुगभवानि हि । राज्यं कृतं त्वया प्रोक्तं विस्तराद्वस्व माम् ॥ ४ ॥
यानि यानि चरित्राणि राघवेण कृतानि हि । तानि तानि हि कृत्स्नानि विस्तराद्वक्तुमर्हसि ॥ ५ ॥
इति देविवचः श्रुत्वा शंभुस्तां पुनरब्रवीत् ।

श्रीमहादेव उवाच

सम्यक् पृष्टं त्वया देवि राघवस्य कथानकम् ॥ ६ ॥
ममापि हर्षः संजातस्तद्वदामि तवान्तिकम् । चरितं रघुनाथस्य शतकोटिप्रविस्तरम् ॥ ७ ॥
एकैकमक्षरं पुंसां महापातकनाशनम् । वाल्मीकिना कृतं पूर्वमेकदा तद्वदामि ते ॥ ८ ॥

श्रीगणेशाय नमः ॥ श्रीपार्वतीजी बोली—हे शम्भो ! आपने अतिपुण्यदायक सारकाण्डकी जो कथा कही, सो मैंने सुनी । परन्तु अब मैं जो आपसे पूछती हूँ, वह कृपा करके कहें ॥ १ ॥ बलवान् रामने अश्वमेधयज्ञ किस प्रकार किये ? राम आदि चारों भाइयोंकी कौन-कौन-सी सन्ततियां हुईं ॥ २ ॥ रामने अपने पुत्रों तथा भाइयोंके पुत्रोंका किस प्रकार और कौन-कौन सी स्त्रियोंके साथ विवाह किया ? आपने कहा है कि रामने त्रेतायुगमें ग्यारह हजार ग्यारह वर्ष पर्यन्त राज्य किया था । अतएव ये सब बातें विस्तारपूर्वक कहें ॥ ३ ॥ ४ ॥ रामने जो जो चरित्र किये हों, वे सब आपके द्वारा सविस्तार कहनेके योग्य हैं ॥ ५ ॥ देवीके इस वचनको सुनकर शम्भुने कहा । श्रमहादेवजी बोले–हे देवि ! तुमने बहुत अच्छा किया कि जो रामकी कथा पूछी ॥ ६ ॥ इससे प्रसन्न होकर मैं तुमको रघुनाथजीका सौ करोड़ श्लोकोंमें कहा हुआ चरित्र सुनाता हूँ ॥ ७ ॥ जिसका कि एक-एक अक्षर पुरुषोंके महान् पापोंको नष्ट करनेवाला है । वाल्मीकिने जो कार्य

वाल्मीकिस्त्वेकदा स्नातुं जगाम तमसां नदीम् । शिष्येण सहितो गत्वा भूमौ स्थाप्य कमंडलुम् ॥९॥
आवश्यकं तु संपाद्य कृत्वा शौचविधिं ततः । यावद्गच्छति स्नानार्थं दर्भपाणिः स वै मुनिः ॥१०॥
तावद्ददर्श तमसातीरे कौतुकमुत्तमम् । क्रौंचयुग्मे हतः क्रौंचो निषादेन पतत्त्रिणा ॥११॥
क्रौंची शोकसमाविष्टा विललापातिदुःखिता । वियुक्ता पतिना तेन द्विजेन सहचारिणा ॥१२॥
ताम्रशीर्षेण मत्तेन पत्त्रिणा सा हतेन च । तथाविधं द्विज दृष्ट्वा निषादेन निपातितम् ॥१३॥
ऋषेर्धर्मात्मनस्तस्य कारुण्यं समपद्यत । ततः करुणयाऽऽविष्टस्त्वधर्मोऽयमिति द्विजः ॥१४॥
निशम्य रुदतीं क्रौंचीमिदं वचनमब्रवीत् । मा निषाद प्रतिष्ठां त्वमगमः शाश्वतीः समाः ॥१५॥
यत्क्रौंचमिथुनादेकमवधीः काममोहितम् । तस्येत्थं ब्रुवतश्चिन्ता बभूव हृदि वीक्षतः ॥१६॥
शोकार्तेनास्य शकुनेः किमिदं व्याहृतं मया । चिंतयन्स महाप्राज्ञश्चकार मतिमान् मतिम् ॥१७॥
शिष्यं चैवाब्रवीद्वाक्यमिदं स मुनिपुंगवः । पादबद्धोऽक्षरसमस्तंत्रीलयसमन्वितः ॥१८॥
शोकार्तस्य प्रवृत्तो मे श्लोको भवतु नान्यथा । शिष्यस्तु तस्य ब्रुवतो मुनेर्वाक्यमनुत्तमम् ॥१९॥
प्रतिजग्राह संतुष्टस्तस्य तुष्टोऽभवन्मुनिः । सोऽभिषेकं ततः कृत्वा तीर्थे तस्मिन्यथाविधि ॥२०॥
तमेव चिंतयन्नर्थमुपावर्तत वै मुनिः । भारद्वाजस्ततः शिष्यो विनीतः श्रुतवान् गुरोः ॥२१॥
कलशं पूर्णमादाय प्रहृष्टश्च जगाम ह । स प्रविश्याश्रमपदं शिष्येण सह धर्मवित् ॥२२॥
उपविष्टः कथाश्चान्याश्चकार ध्यानमास्थितः । तत्राजगाम लोकानां कर्ता ब्रह्मा स्वयं प्रभुः ॥२३॥

पहिले एक समयमें किया था, सो तुम्हें सुनाता हूँ ॥ ८ ॥ एक समय वाल्मीकि मुनि अपने शिष्य भारद्वाजको साथ लेकर तमसा नदीपर स्नान करनेके लिए गये । वे रास्तेमें जमीनपर कमंडलु रख तथा आवश्यक शौच आदि कर्मसे निवृत्त होकर ज्यों ही हाथमें कुशा ग्रहण करके स्नान करनेके लिए चले ॥ ९ ॥ १० ॥ त्यों ही उन्होंने तमसा नदीके तटपर एक उत्तम कौतुक देखा । वह यह कि एक निषादने बाणसे क्रौंच तथा क्रौंचीके जोड़ेमेंसे क्रौंच (बगुले) को मार डाला ॥ ११ ॥ तब क्रौंची शोकातुर होकर अतिदुःखसे विलाप करने लगी । वह बेचारी अपने सहचर, तामेके समान लाल मस्तकवाले, मत्त और बाणसे मारे गये अपने पति पक्षीसे बिछुड़ गयी थी । निषादके द्वारा मारे गये उस पक्षीकी दशा देखकर धर्मात्मा वाल्मीकि ऋषिके मनमें बड़ी करुणा उत्पन्न हुई । पश्चात् उस क्रौंचीके दयाजनक रुदनको सुननेसे करुणाक्रान्त हो और 'यह बड़ा अधर्म हुआ' एसा विचारकर मुनि बोले—॥ १२–१४ ॥ अरे निषाद ! तूने एक कामासक्त जोड़ेके क्रौंच पक्षीको मार डाला है। इसलिए तू भी अनेक वर्षोंतक प्रतिष्ठाको नहीं प्राप्त होगा अर्थात् बहुत काल पर्यन्त जीवित नहीं रहेगा ॥ १५ ॥ इस प्रकार अनुष्टुप्-छन्दोबद्ध वाणी सहसा अपने मुखसे निकल पड़नेके कारण आश्चर्यचकित तथा क्रौंचके शोकसे पीडित उन ऋषिके मनमें 'ओह ! इस निषादको मैंने यह क्या कह दिया । इससे तो मुझे बड़ा भारी पाप लग गया' ऐसी चिन्ता होने लगी ॥ १६ ॥ ओह ! यह तो मुझसे बड़ा भारी अपयश देनेवाला काम हो गया । ऐसी चिन्ता करते हुए मनमें कुछ निश्चय करके महामतिमान् मुनिश्रेष्ठ वाल्मीकिने अपने शिष्य भारद्वाजसे कहा—॥ १७ ॥ वत्स ! शोकवश होकर मैंने निषादको शाप दे दिया । यह हुआ तो अनुचित, तथापि शोकसे दुःखित होनेके कारण मेरे मुखसे आठ अक्षरोंवाले चार चरणोंयुक्त समान पदोंसे विशिष्ट तथा ताल-लयपर गाने योग्य यह अनुष्टप् छन्द श्लोकरूपमें (यशरूपमें) ही प्रवृत्त हो अपयशस्वरूप न हो ॥ १८ ॥ पश्चात् मुनिके इन श्रेष्ठ वाक्यों सुनकर उनके प्रसन्नवदन शिष्य भारद्वजने 'यह श्लोक आपके इच्छानुसार यशरूप ही होगा' ऐसा कहकर उनकी बातका समर्थन किया । इससे वाल्मीकि उनके ऊपर प्रसन्न हुए ॥ १९ ॥ तदनन्तर तमसा नदीके जलमें यथाविधि स्नान आदि कृत्य करके वे महर्षि 'मेरा अपयश कैसे यशरूपमें परिणत हो जाय' ऐसा विचार करते हुए अपने आश्रमकी ओर चल दिये ॥ २० ॥ उनके पीछे उनके विद्वान् और विनम्र शिष्य भारद्वाज भी जलका घड़ाभरकर चल पड़े ॥२१॥ आश्रममें पहुँचनेपर भो वे "निषादको दिया हुआ शाप यशरूपमें कैसे परिणत हो" इसी बातका मनमें

चतुर्मुखो महातेजा द्रष्टुं तं मुनिपुंगवम् । वाल्मीकिरथ तं दृष्ट्वा सहसोत्थाय वाग्यतः ॥२४॥
प्रांजलिः प्रयतो भूत्वा तस्थौ परमविस्मितः । पूजयामास तं देवं पाद्यार्घ्यासनवंदनैः ॥२५॥
प्रणम्य विधिवच्चैनं पृष्ट्वा चैव निरामयम् । अथोपविश्य भगवानासने परमार्चिते ॥२६॥
महर्षये वाल्मीकये संदिदेशासनं ततः । ब्रह्मणा समनुज्ञातः सोऽप्युपाविशदासने ॥२७॥
उपविष्टे तदा तस्मिन् साक्षाल्लोकपितामहे । तद्गतेनैव मनसा वाल्मीकिर्ध्यानमास्थितः ॥२८॥
पापात्मना कृतं कष्टं वैरग्रहणबुद्धिना । यस्तादृशं चारुरवं क्रौंचं हन्यादकारणम् ॥२९॥
शोचन्नेवं पुनः क्रौंचीमुपश्लोकमिमं जगौ । पुनरंतर्गतमना भूत्वा शोकपरायणः ॥३०॥
तमुवाच ततो ब्रह्मन् प्रहसन् मुनिपुंगवम् । श्लोक एव त्वया बद्धो नात्र कार्या विचारणा ॥३१॥
मच्छन्दादेव ते ब्रह्मन् प्रवृत्तेयं सरस्वती । रामस्य चरितं कृत्स्नं कुरु त्वमृषिसत्तम ॥३२॥
धर्मात्मनो गुणवतो लोके रामस्य धीमतः ॥३३॥
वृत्तं कथय धीरस्य यथा ते नारदाच्छ्रुतम् । रहस्यं च प्रकाशं च यद्वृत्तं तस्य धीमतः ॥३४॥
रामस्य सह सौमित्रेः कीशानां रक्षसां तथा । वैदेह्याश्चैव यद्वृत्तं प्रकाशं यदि वा रहः ॥३५॥
तच्चाप्यविदितं सर्वं विदितं ते भविष्यति । न ते वागनृता काव्ये काचिदत्र भविष्यति ॥३६॥
कुरु रामकथां पुण्यां श्लोकबद्धां मनोरमाम् । यावत्स्थास्यंति गिरयः सरितश्च महीतले ॥३७॥
तावद्रामायणकथा लोकेषु प्रचरिष्यति । यावद्रामायणकथा त्वत्कृता प्रचरिष्यति ॥३८॥

विचार करते हुए वे धर्मज्ञ मुनि शिष्यके साथ बैठकर अन्यान्य बातें करने लगे ॥ २२ ॥ इतनेमें वहाँ समस्त लोकोंके कर्ता चतुर्मुख प्रभु महातेजस्वी ब्रह्मा उन मुनिश्रेष्ठसे मिलनेके लिए आ पहुँचे ॥ २३ ॥ उनको अचानक आते देखकर वाल्मीकि मुनि विस्मयान्वित तथा अवाक् हो गये। परन्तु वे तुरन्त हाथ जोड़कर नम्रतासे उनके सामने खड़े हो गये ॥ २४ ॥ पश्चात् धीरेसे मनको स्थिर करके मुनिने ब्रह्माजीसे कुशल-समाचार पूछा तथा पाद्य, अर्घ्य, आसन, स्तुति, प्रणाम आदिसे उनका सत्कार किया। ब्रह्माजीने भी उनके तप आदिका कुशल पूछा और अपने लिए बिछाये हुए आसनपर स्वयं बैठकर वाल्मीकिजीको भी आसनपर बैठनेके लिए कहा। लोकोंके साक्षात् पितामह ब्रह्माजीके आसनपर बैठ जानेपर उनकी आज्ञासे वाल्मीकि ऋषि भी बैठ गये ॥ २५–२७ ॥ किन्तु उस समय भी उनका मन क्रौंचपक्षीके विषयमें ही सोच रहा था कि पापी अन्तःकरण तथा निर्दोष जीवोंपर मिथ्या वैरभाव रखनेवाले उस व्याधने यह बड़ा कष्टप्रद काम किया ॥ २८ ॥ जो कि सुन्दर बोली बोलनेवाले, निर्दोष तथा कामके वशीभूत उस पक्षीको बिना कारण ही मार डाला और मैंने भी उस व्याधको शाप दे दिया, सो भी बड़ा खराब काम हुआ। ऐसे विचारमें मग्न और शोकमें डूबे हुए वाल्मीकि क्रौंचका शोक करते हुए फिर वही बात मनमें सोचने लगे। बादमें उन्होंने व्याधको शाप देते समय जो श्लोक कहा था, उसीको उन्होंने ब्रह्माजीके सम्मुख कहा। उसको सुनकर ब्रह्माजी हँसकर मुनिसे कहने लगे ॥ २९ ॥ ३० ॥ हे ब्रह्मन् ! तुम्हारा एकाएक कहा हुआ यह श्लोक यशके रूपमें परिणत हो जायगा। इसमें तुम तनिक भी संशय न करना। यह तो मेरी इच्छा तथा प्रेरणासे ही तुम्हारे मुखसे यह सरस्वती प्रवृत्त हुई है ॥ ३१ ॥ हे मुनीश्वर ! तुम मेरी आज्ञासे धर्मात्मा भगवान् अखिललोकके स्वामी परम बुद्धिमान् राजा रामका संपूर्ण चरित्र रचो ॥ ३२ ॥ धैर्यशाली तथा बुद्धिमान् रामका जो चरित्र तुमने नारदसे सुना है, वह तथा और जो गुप्त या प्रकट चरित्र हो, उसको तुम रचकर प्रकाशित करो ॥ ३३ ॥ सुमित्रासुत लक्ष्मण सहित रामचंद्रका, वानरोंका, सब राक्षसोंका तथा सीताका गुप्त अथवा प्रकट जो जो वृत्तान्त तुम न जानते होगे, वह सब भी मेरी कृपासे जान जाओगे और रामके चरित्रसे भरे हुए उस काव्यमें निहित तुम्हारी वाणी असत्य नहीं होगी ॥ ३४ ॥ ३५ ॥ तुम ऐसे श्लोकोंमें ही मनको आनन्द देनेवाली पवित्र रामकथा लिखो। जबतक संसारमें नदी-पर्वत रहेंगे, तबतक तुम्हारी रची हुई रामकथा भी लोगोंमें प्रचारित होती रहेगी। जबतक तुम्हारी रची हुई रामकथा पृथ्वीमण्डलपर स्थित रहेगी, तबतक तुम मेरे ऊपरके तथा नीचेके सब लोकोंमें

तावदूर्ध्वमधश्च त्वं मल्लोकेषु निवत्स्यसि । इत्युक्त्वा भगवान् ब्रह्मा स्वयं रामस्य धीमतः ॥३९॥
चरित्रं श्रावयामास वेदवाक्यैः सुपुण्यदैः । ततस्तेनार्चितो ब्रह्मा तत्रैवांतरधीयत ॥४०॥
ततः सशिष्यो भगवान् मुनिर्विस्मयमाययौ । तस्य शिष्यास्ततः सर्वे जगुः श्लोकमिमं पुनः ॥४१॥
मुहुर्मुहुः प्रीयमाणाः प्राहुश्च भृशविस्मिताः । समाक्षरैश्चतुर्भिर्यः पादैर्गीतो महर्षिणा ॥
सोऽनुव्याहरणाद्भूयः शोकः श्लोकत्वमागतः ।४२॥
तस्य बुद्धिरियं जाता महर्षेर्भावितात्मनः । कृत्स्नं रामायणं काव्यमीदृशैः करवाण्यहम् ॥४३॥
उदारवृत्तार्थपदैर्मनोरमैस्तदाऽस्य रामस्य चकार कीर्तिमान् ।
समाक्षरैः श्लोकवरैर्यशस्विनो मुनिः स काव्यं शतकोटिसंमितम् ॥४४॥

इति श्रीशतकोटिरामचरितांतर्गते श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये यात्राकाण्डे श्लोकोत्पत्तिरामायणकथनं नाम प्रथमः सर्गः ॥ १ ॥

द्वितीयः सर्गः

श्रीशिव उवाच

वाल्मीकिना कृतं देवि शतकोटिप्रविस्तरम् । रामायणं महाकाव्यं जगृहुर्मुनयश्च ते ॥ १ ॥
आश्रमे तत्पठंति स्म कथयंति स्म ते मुदा । तच्छ्रोतुममराः सर्वे विमानैश्च दिवि स्थिताः । २ ॥
श्रुत्वा सर्वं सविस्तारं वाल्मीकिं पुष्पवृष्टिभिः । ववर्षुर्जयशब्दैस्ते प्रशशंसुर्मुनीश्वरम् ॥ ३ ॥
ततो देवाः सगंधर्वा यक्षा नागाः सकिन्नराः । मुनीश्वरा गुह्यकाश्च पार्थिवाः पद्मभूस्त्वहम् ॥ ४ ॥
परस्परं ते कलहं चक्रुः काव्यार्थमादरात् । ब्रह्माद्या निर्जराः सर्वे पन्नगान्दितिजान्नरान् ॥ ५ ॥
वयं काव्यं विनेष्यामो दिवं वाल्मीकिना कृतम् । दितिजाः पन्नगाः प्रोचुर्विनेष्यामो रसातलम् ॥ ६ ॥

सुखसे रहोगे । इतना कहकर स्वयं भगवान् ब्रह्माने पुण्यप्रद वेदवाक्यों द्वारा बुद्धिमान् रामका चरित्र उन्हें कह सुनाया । पश्चात् मुनिसे पूजित होकर ब्रह्मा वहींपर अन्तर्धान हो गये ॥३६–४०॥ तब शिष्यों सहित भगवान् वाल्मीकि मुनिको बड़ा भारी विस्मय हुआ और उनके शिष्य उस श्लोकको बारम्बार आनन्दसे गाने लगे ॥ ४१ ॥ महर्षिने समान अक्षरोंवाला तथा चार चरणों युक्त जिस श्लोकको गाया था, उसीको ये शिष्य भी प्रसन्न होकर आश्चर्यसे परस्पर कहने-सुनने लगे ॥ ४२ ॥ उस श्लोकको मुनि शोकवश बार-बार कहते थे। अन्तमें वही शोक श्लोक (यश) रूपमें परिणत हो गया। पश्चात् उन शुद्धात्मा महर्षिकी यह इच्छा हुई कि मैं इसी प्रकारके श्लोकोंमें समस्त रामायणका निर्माण करूँ ।। ४३ ॥ अन्तमें उन कीर्तिमान् मुनिने मनको आनन्द देनेवाला तथा जिससे उदार चरित्र भरे अर्थोंका ज्ञान प्राप्त हो, ऐसे पद और समान अक्षरोंवाले सौ करोड़ श्लोकोंवाला यशस्वी रामका काव्य (रामायण) रचा ॥ ४४ ॥ इति श्रीशतकोटिरामचरितान्तर्गते श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये यात्राकाण्डे भाषाटीकायां श्लोकोत्पत्तिरामायणकथनं नाम प्रथमः सर्गः ॥ १ ॥

श्रीशिवजी बोले-हे देवि ! वाल्मीकि मुनिका बनाया हुआ सौ करोड़ श्लोकात्मक उस महाकाव्य रामायणको सब मुनियोंने अपनाया और वे हर्षपूर्वक उसे अपने आश्रमोंमें पढ़ने तथा सुनने लगे । उसको सुननेके लिए सब देवता विमानोंमें बैठकर आकाशमें छा गये ॥ १ ॥ २ ॥ उन लोगोंने विस्तारपूर्वक सम्पूर्ण रामायण सुना और मुनीश्वर वाल्मीकिकी स्तुति करके जयजयकार करते हुए उनपर पुष्पवृष्टि की ॥ ३ ॥ बादमें देवता, गंधर्व यक्ष, नाग, किन्नर, मुनिगण, गुह्यक, राजे-महराजे, ब्रह्मा तथा मैं सब एक साथ उस रामायण महाकाव्यकी प्राप्तिके लिए परस्पर आदरपूर्वक झगड़ने लगे । ब्रह्मादि देवता पन्नगों, दैत्यों तथा मनुष्योंसे कहने लगे कि इस वाल्मीकीय काव्यको हमलोग स्वर्गमें ले जायँगे । दैत्य तथा पन्नग कहने लगे कि हम

वयं काव्यं राघवस्य चरित्रं पावनं शुभम् । ऋषीश्वराः सभूपालाः प्रोचुः काव्य हि भूतलात् ॥७॥
नेतुं रसातलं स्वर्गं न दास्यामो वयं त्विदम् । काव्यार्थमिति ते चक्रुः कलहं रोमहर्षणम् ॥८॥
ततो देवि जनान् सर्वान्निवार्य वचनैर्निजैः । गत्वाऽहं तैस्तु क्षीराब्धौ शेषपर्यङ्कशायिनम् ॥९॥
विष्णुं स्तुत्वा तु वेदोक्तैर्मन्त्रैर्नानाविधैरपि । नानापूजोपहारैश्च पूजयित्वा सविस्तरम् ॥१०॥
कृतवान् गीतवाद्यादि तेन विष्णुरबुध्यत । पप्रच्छ मां तदा विष्णुः किमर्थं बोधितोऽस्म्यहम्॥११॥
वृत्तं सर्वं मया देवि कथितं तत्सविस्तरम् । काव्यार्थं कलहं श्रुत्वा प्रहस्य जगदीश्वरः ॥१२॥
त्रिधा विभज्य काव्यं तत् क्षणेन भक्तवत्सलः । त्रयस्त्रिंशत्कोटिलक्षसहस्राणि पृथक् पृथक् ॥१३॥
शतानि त्रीणि श्लोकांश्च त्रयस्त्रिंशच्छुभावहान् । दशाक्षरमितान्मंत्रान्व्यभजयत रमापतिः ॥१४॥
द्वेऽक्षरे याचमानाय मह्यं शेषे ददौ हरिः । उपादिशाम्यहं काश्यां तेऽन्तकाले नृणां श्रुतौ ॥१५॥
रामेति तारकं मन्त्रं तमेव विद्धि पार्वति । लक्ष्मीगरुडशेषेभ्यो याचमानेभ्य आदरात् ॥१६॥
मन्त्रत्रयं पृथक् विष्णुर्ददौ तेभ्योऽतिहर्षितः । शेषान् निनाय पातालं लक्ष्मीर्वैकुण्ठमादरात् ॥१७॥
पृथिव्यामेव गरुडस्तं दधार महामनुम् । प्रापुः शेषात्पन्नगाद्याः सर्वे पातालवासिनः ॥१८॥
स्वर्गे प्रापुर्महालक्ष्म्यास्तं मनुं निर्जरादयः । तार्क्ष्यात्प्रापुर्महामन्त्रं सर्वे भूतलवासिनः ॥१९॥
मन्त्रशास्त्रात्तत्स्वरूपं ज्ञेयं गुह्यं गिरीन्द्रजे । ततः पूर्वविभागान्स ददौ विष्णुः पृथक् पृथक् ॥२०॥
एवं विभागं देवेभ्यो द्वितीयं परमेश्वरः । मुनीश्वरेभ्यो नागेभ्यस्तृतीयं भागमुत्तमम् ॥२१॥
ततो देवा निजं भागं स्वर्गं निन्युर्मुदान्विताः । पाताले पन्नगाद्याश्च निन्युर्भागं मुदा निजम् ॥२२॥

लोग इसे रसातलमें ले जायेंगे ॥ ४–६ ॥ क्योंकि इस काव्यमें पवित्र तथा सुन्दर रामचरित्र वर्णित है। तब राजा-प्रजा और ऋषि लोगोंने कहा कि हम इस काव्यको भूतलपरसे न ता स्वर्गमें ले जाने देंगे और नहीं पातालमें। इस प्रकार वे सब रामायणके लिए परस्पर रोमहर्षक वाग्युद्ध करने लगे ॥ ७ ॥ ८ ॥ हे देवि ! पश्चात् मैंने उन सबको समझा-बुझाकर कलह करनेसे रोका और उन सबको साथ लेकर मैं क्षीर-समुद्रमें शेषशय्यापर शयन करनेवाले विष्णुभगवान्‌के पास गया और नाना प्रकारकी पूजाकी वस्तुओंसे विस्तारपूर्वक पूजा करके अनेक वेदमंत्रोंसे उनकी स्तुति की ॥ ९ ॥ १० ॥ तदनन्तर उनके सामने बाजे बजाकर गाना प्रारंभ किया। उससे विष्णु भगवान् जागे और कहने लगे कि तुमने मुझको क्यों जगाया ? ॥ ११ ॥ हे देवि ! तब मैंने सब हाल साफ-साफ कह सुनाया। जगन्नियंता विष्णुभगवान् रामायण महाकाव्यके लिए होनेवाले कलहको सुनकर हँस पड़े ॥ १२ ॥ उन भक्तवत्सल भगवान्‌ने क्षणभरमें उस काव्यके तीन भाग कर दिये। उनमेंसे प्रत्येक भाग तैंतीस करोड़ तैंतीस लाख, तैंतीस हजार तीन सौ तैंतीस श्लोकोंका बना। उन रमापतिने दस-दस अक्षरोंवाले मंत्रोंका भी विभाजन किया ॥ १३ ॥ १४ ॥ बाकी दो अक्षर श्रीहरिने दो हो अक्षरोंकी याचना करनेवाले मुझ (शिव) को दे दिया। मैं काशीमें रहता हुआ अंतकालमें उन्हीं दो अक्षरोंका मनुष्योंके कानमें उपदेश करता हूँ ॥ १५ ॥ हे पार्वती ! उन दो अक्षरोंको ही तुम 'राम" नामका तारक-मंत्र समझो। अर्थात् वही दो अक्षरका 'राम' यह तारक मंत्र है। पश्चात् बड़े आदरसे माँगनेपर विष्णु भगवान्‌ने अतिशय प्रसन्न होकर लक्ष्मी, गरुड़ और शेषनागको भी अलग-अलग तीन मन्त्र प्रदान किये। शेष भगवान् अपने मंत्रको पातालमें, लक्ष्मी वैकुण्ठमें और गरुड़ उस महामंत्रको बड़ी चावसे पृथ्वीपर ले गये ॥ १६ ॥ १७ ॥ शेषके द्वारा पातालमें गया हुआ मंत्र पातालवासी नागोंको प्राप्त हो गया ॥ १८ ॥ स्वर्गमें लक्ष्मीके द्वारा वह मंत्र सब देवताओंको मिला और भूतलवासी लोगोंको वह मंत्र गरुड़से प्राप्त हुआ ॥ १९ ॥ हे गिरीन्द्रजे ! उन मंत्रोंका गुप्तस्वरूप मंत्रशास्त्रोंसे जाना जा सकता है। तदनन्तर रामायणके किये हुए तीनों भागोंको विष्णुने अलग-अलग बाँट दिया ॥ २० ॥ उनमेंसे तैंतीस करोड़ तैंतीस लाख तैंतीस हजार तीन सौ तैंतीस ३३३३३३३३३ मंत्रोंका एक भाग उन्होंने देवताओंको दिया। ३३३३३३३३३ का दूसरा भाग मुनीश्वरोंको पृथ्वीतलके लिए दिया और ३३३३३३३३३ का तीसरा भाग नागोंको दिया ॥ २१ ॥

आसीद्भागो मुनीनां हि पृथिव्यां गिरिवरात्मजे । तस्यापि विस्तरं वक्ष्ये विभक्तो विष्णुना यथा ॥२३॥
सप्तद्वीपेषु सर्वेषु विभक्तः सप्तधा पुनः । कोट्यश्चत्वारि लक्षाणि षट्सप्ततिमितानि हि ॥२४॥
सहस्राणि तथैकोनत्रिंशच्चैव तथा पुनः । सप्तचत्वारिंशन्मिताःश्लोकाश्चेति पृथक् पृथक् ॥२५॥
विभक्तं सप्तधा देवि सप्तद्वीपेषु विष्णुना । चतुःश्लोकाः शेषभूता याचमानाय वेधसे ॥२६॥
ददौ विष्णुस्तुष्टमना निजभक्ताय भक्तितः । पुष्करद्वीपभागश्च वर्षयोर्द्विविधः कृतः ॥२७॥
कोट्यौ द्वे ह्यष्टत्रिंशच्च लक्षाणि हि तथा पुनः । सहस्राणि नवैवाथ तथा पंचशतानि हि ॥२८॥

त्रयोविंशाश्च ते श्लोकाः षोडशाक्षरजो मनुः ।
एवं द्विधा कृतौ भागौ विष्णुना वर्षयोस्त्विह ॥२९॥
शाकद्वीपादिद्वीपानां पंचानां च पृथक् पृथक् ।

सप्तस्वपि च वर्षेषु सर्वत्र हरिणा यथा । तत्तद्भागा विभक्ताश्च ताञ्छृणुष्व ब्रवीम्यहम् ॥३०॥
अष्टषष्टि हि लक्षाणि सहस्रे द्वे शतानि हि । सप्तैव च तथा श्लोका एकविंशच्छुभप्रदाः ॥३१॥
विभज्य षट्सु द्वीपेषु हरिणैव यथाक्रमम् । जम्बूद्वीपगतो भागो नववर्षेषु सादरम् ॥३२॥
विभक्तो विष्णुना देवि यथा त्वां च ब्रवीम्यहम् । द्विपंचशात्तु लक्षाणि तथा गिरिवरात्मजे ॥३३॥
सहस्राण्येकनवतिश्लोकाः पञ्च तथा पुनः । सप्ताक्षरमिता मंत्रास्त्वेव हि नवधा कृताः ॥३४॥
शेषमेकमक्षरं श्रीरिति सर्वत्र विष्णुना । नवखण्डेषु तत्यक्तं तत्सर्वत्र न्योजयत् ॥३५॥
नानानामसु मंत्रेषु न तस्य नियमः कृतः । विभज्येति महाविष्णुरदृश्यमगमत्तदा ॥३६॥
अग्रे कालांतरे देवि दशास्यो बुद्धिमत्तरः । निजबुद्धिबलादेव वेदानां च पृथक् पृथक् ॥३७॥
शतशश्चैव खण्डानि करिष्यति ऋजूनि च । ज्ञात्वा मंदधियो विप्रा भविष्यन्तीति वै कलौ॥३८॥

देवता अपने भागको बड़ी प्रसन्नतासे देवलोकमें ले गये । पन्नगगण अपने भागको सहर्ष पातालमें ले गये । हे गिरीन्द्रजे ! उसका तीसरा हिस्सा पृथ्वीपर रह गया । उस पृथ्वीतलके भागको भी जिस प्रकार विष्णु-भगवान्‌ने बाँटा, सो हम तुमको विस्तारसे कह सुनाते हैं ॥ २२ ॥ २३ ॥ उस पृथ्वीतलके भागको विष्णुने पृथ्वीके सात द्वीपोंमें बाँटा । उनमेंसे हर एक द्वीपको चार कराड़ छिहत्तर लाख उन्नीस हजार सैंतालीस (४७६१९०४७) श्लोक दिये । उन भागोंमेंसे बचे हुए चार श्लोक विष्णुने प्रसन्न होकर अपने भक्त ब्रह्माको भक्तिपूर्वक माँगनेपर दे दिये । उन भागोंमेंसे भी पुष्करद्वीपवाले भागके दो भाग किये ॥ २४-२७ ॥ पुष्कर-द्वीपके अंतर्गत दो वर्षों (खंडों) को दो करोड़ अढ़तीस लाख नौ हजार पाँच सौ तेईस (२३८०९५२३) षोडशाक्षर मंत्ररूप श्लोक अलग-अलग करके दे दिये ॥ २८ ॥ २९ ॥ पश्चात् विष्णुभगवान्‌ने शाकद्वीप, क्रौंचद्वीप, शाल्मलीद्वीप, प्लक्षद्वीप और कुशद्वीप इन पाँचों द्वीपोंके हिस्सोंको भी उसमेंसे हर एकके अन्तर्गत नौ-नौ देशोंमें बाँट दिया । उनको कितना-कितना मिला सो कहता हूँ ॥ ३० ॥ उनमेंसे हर एक वर्षको अड़सठ लाख दो हजार सात सौ एक्कीस (६८०२७२१) सुन्दर श्लोक प्राप्त हुए ॥ ३१ ॥ इस प्रकार श्रीहरिने छः द्वीपोंके भागोंको विभक्त करनेके अनन्तर सातवें जंबूद्वीपके भागको भी उसके अन्तर्गत भारत आदि नौ वर्षोंको बड़े प्रेमसे बाँट दिया ॥ ३२ ॥ हे देवि ! जैसा विष्णुने उसका विभाजन किया, वह तुमसे कहता हूँ । हे गिरि-वरात्मजे ! बावन लाख एक्यान्नवे हजार पाँच (५२९१००५) सप्ताक्षरात्मक मंत्ररूप श्लोक उन्होंने बराबर-बराबर नौ भागोंमें बाँटकर नवों खण्डोंको दे दिये ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ शेष बचे "श्री" इस एक अक्षरको विष्णुने नवों खण्डोके लिए छोड़ दिया । यह सब प्रकारके मन्त्रोंमें लगाया जा सकता है । इसका कोई नियम नहीं है । इस प्रकार विभाजन करनेके बाद विष्णुभगवान् अदृश्य हो गये ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ हे देवि ! आगे चलकर कलियुगमें बुद्धिमानोंमें श्रेष्ठ दशवदन रावण कम बुद्धिवाले, व्याकुलचित्त तथा अल्पायु ब्राह्मणोंको देखकर अपनी बुद्धिके प्रभावसे वेदोंके सैकड़ों भाग अलग-अलग करके उन ब्राह्मणोंके

क्षीणायुषो व्यग्रचित्तास्तेषां योग्यानि राघव: । श्रीकृष्णोऽपि पुनर्देवि व्यासरूपधरो भुवि ॥३९॥
मानवानां हितार्थाय काव्याद्रामायणात्पुनः । भागाद्भारतवर्षान्तर्गताच्च विविधानि हि ॥४०॥
पृथक् पृथक् सप्तदश पुराणानि करिष्यति । भारतं चेतिहासं च महच्छ्रेष्ठं करिष्यति ॥४१॥
भागाद्भारतवर्षान्तर्गतात्सारं विगृह्य च । स व्यासो भारताद्यैश्च यदा शान्तिं न गच्छति ॥४२॥
सरस्वत्यास्तटे व्यासो व्यग्रचित्तो भविष्यति । एतस्मिन्नन्तरे ब्रह्मा नारदाय महात्मने ॥४३॥
चतुःश्लोकैर्विष्णुदत्तैरुपदेशं करिष्यति । लब्ध्वा तान् नारदश्चापि सुवीणां रणयन्मुहुः ॥४४॥
कीर्तयन् सुस्वरं गत्वा मुनिं सत्यवतीसुतम् । तांश्लोकान् व्यासमुनये स तदा ह्युपदेक्ष्यति ॥४५॥
लब्ध्वा व्यासमुनिः श्लोकांस्तान्रामायणसंस्थितान् । शान्तिं लब्ध्वा ततस्तेषां विस्तारं च करिष्यति ॥
तेषामेवार्थमादाय पुराणं परमोदयम् । अष्टादशसहस्रं हि श्रीमद्भागवताभिधम् ॥४७॥
करिष्यत्यष्टादशमं रम्यं जनमनोहरम् । भागवतस्यात एव वाणी भिन्ना भविष्यति ॥४८॥
पुराणानां च सर्वेषां वाल्मीकीयैव गीः प्रिये । पृथक्कर्ता स्मृतो व्यासः श्रीमद्रामायणं शतम् ॥४९॥
करिष्यति तथान्यानि स व्यासो विविधानि च । रम्याण्युपपुराणानि सारं सारं विगृह्य च ॥५०॥
भागाद्भारतखण्डान्तर्गताद्रामायणाद्भुवि । करिष्यंति तथान्येऽपि षट्शास्त्राणि मुनीश्वराः ॥५१॥
तस्माद्रामायणादेव सारमुद्धृत्य सादरात् । यत्किञ्चिद्गिरिजे भूम्यां कीर्त्यते वै कथानकम् ॥५२॥

रामायणांशजं विद्धि श्लोकमात्रमपीह यत् ।

पार्वत्युवाच

शंभो ते प्रष्टुमिच्छामि व्यासाय नारदो मुनिः ॥ ५३ ॥

स्वयं ज्ञात्वा विधिमुखाद्रम्यान्पातकनाशनान् । तान् रामचरितश्लोकांश्चतुरश्चोपदेक्ष्यति ॥५४॥
यैः करिष्यति स व्यासो मुनिर्भागवतं वरम् । तान्श्लोकांश्चतुरस्त्वं मां कृपया वक्तुमर्हसि ॥५५॥

योग्य बनायेगा। हे देवि ! इसके अतिरिक्त स्वयं श्रीकृष्ण भी पृथ्वीपर व्यासका रूप धरकर अवतार लेंगे और मनुष्यके कल्याणके लिए भारतवर्षके भागवाले रामायण काव्यसे विविध प्रकारके पृथक्-पृथक् सत्रह पुराण रचेंगे। वे सर्वोत्तम तथा बड़ा भारी महाभारत नामका सुन्दर इतिहास भी लिखेंगे ॥ ३७-४१ ॥ जो भारतवर्षीय रामायणके भागका सारांश होगा। उन भारत आदि ग्रंथोंका निर्माण करनेपर भी जब व्यासजीको सन्तोष न होगा, तब वे व्यग्र होकर सरस्वती नदीके किनारे बैठेंगे। उसी अवसरपर ब्रह्माजी भी विष्णुप्रदत्त चार श्लोकोंका नारदको उपदेश करेंगे। नारदजी उन श्लोकोंको प्राप्त करके अपनी सुन्दर वीणाको वारम्बार बजाते तथा सुन्दर स्वरसे गाते हुए सत्यवतीके पुत्र व्यास मुनिके पास जाकर उनको उन श्लोकोंका उपदेश देंगे ॥ ४२-४५ ॥ व्यास मुनि उसी रामायणके चार श्लोकोंको प्राप्त करके बड़े शान्त चित्तसे उनका विस्तार करेंगे। उनके अर्थका आश्रय लेकर परम उदार अर्थवाले, अठारह हजार श्लोकात्मक, रमणीय और मनुष्योंके मनको मोह लेनेवाले अठारहवें 'श्रीमद्भागवत' नामक महापुराणका निर्माण करेंगे। इसीलिए भागवतकी भाषा भी भिन्न प्रकारकी होगी अर्थात् अन्यान्य पुराणोंसे उनका लेख विलक्षण होगा ॥ ४६ ॥ ४७ ॥ हे प्रिये ! सब पुराणोंकी भाषा वाल्मीकीयके समान ही है। तथापि शतरामायणके कर्ता व्यास अलग ही गिने जायेंगे। वेदव्यास भूमिमें भारतवर्षीय रामायणके भागका सार ग्रहण करके और भी बहुतसे मनोहर उपपुराण बनायेंगे। इसी प्रकार उस रामायणका सारभाग लेकर अन्यान्य मुनीश्वर छः शास्त्रोंका निर्माण करेंगे। हे गिरिजे ! पृथ्वीमण्डलपर और भी जो कुछ श्लोकात्मक तथा पद्यात्मक कथा मिले तो उसे भी तुम रामायणके अंशसे ही उत्पन्न समझो। पार्वतीजी बोलीं—हे शंभो ! मैं आपके मुखारविन्दसे रामचरित्रके उन चार श्लोकों-को सुनना चाहती हूँ, जिन पापनाशक श्लोकोंको नारदने ब्रह्माके मुखसे सुनकर व्यासको सुनाया था ॥ ४८-५४ ॥ जिनके आधारपर व्यासमुनि अपूर्व भागवत ग्रंथको रचेंगे, उन चार श्लोकोंको कृपा करके

श्रीशिव उवाच

सम्यक् पृष्टं त्वया देवि सावधानमनाः शृणु । नारदोक्तांश्चतुःश्लोकांस्तवाग्रे प्रवदाम्यहम् ॥५६॥
नारदायापि कथिता विधिना ये पुरा शुभाः । ब्रह्मणे विष्णुना पूर्वं श्रीरामचरितं यदा ॥५७॥
विभक्तं हि तदा दत्ताः शेषभूताः सुपुण्यदाः । तान् शृणुष्व चतुःश्लोकान् विष्णुनोक्तान्स्वयंभुवे ॥

श्रीभगवानुवाच

अहमेवासमेवाग्रे नान्यद्यत्सदसत्परम् । पश्चादहं यदेतच्च योऽवशिष्येत सोऽस्म्यहम् ॥५९॥
ऋतेऽर्थं यत्प्रतीयेत न प्रतीयेत चात्मनि । तद्विद्यादात्मनो मायां यथाऽऽभासो यथा तमः। ६०॥
यथा महान्ति भूतानि भूतेषूच्चावचेष्वनु । प्रविष्टान्यप्रविष्टानि तथा तेषु न तेष्वहम् ॥६१॥
एतावदेव जिज्ञास्यं तत्त्वजिज्ञासुनाऽऽत्मनः । अन्वयव्यतिरेकाभ्यां यत्स्यात्सर्वत्र सर्वदा ॥६२॥

श्रीशिव उवाच

एवं श्लोका भगवता चत्वारश्च प्रकीर्तिताः । वेधसे ये तवाग्रे ते कीर्तिता देवि वै मया ॥६३॥
एते पवित्राः पापघ्ना मर्त्यानां ज्ञानदायकाः । अज्ञाननाशनाः सद्यः कीर्तनीया नरोत्तमैः ॥६४॥
एवं देवि त्वया पृष्टं यथा तत्ते निवेदितम् । कथामारंभिता पूर्वमधुना शृणु वच्म्यहम् ॥६५ ।
ततो रामायणं व्यासो विध्वस्तं मुनिभिः पुनः । कृत्वैकत्र शेषभूतं सप्तकांडमितं शुभम् ॥६६॥
चतुर्विंशति साहस्रं रक्षिष्यति मुनिस्तदा । आदावन्ते ततस्तस्य श्लोकास्तत्र कियन्ति हि ॥६७॥
चतुर्विंशतिसाहस्रं व्यासस्य रचिता अपि । भविष्यन्ति गिरिजेऽग्रे मंगलाचरणादिषु ॥६८॥

आप अवश्य मुझसे कहें ॥ ५५ ॥ शिवजीने कहा—हे देवि ! तुमने बहुत अच्छा प्रश्न किया है । अब उन श्लोकोंको सावधान होकर सुनो । मैं उन नारदोक्त चार श्लोंको सुनाता हूँ ॥ ५६ ॥ उससे भी पहिले नारदके समक्ष श्रीरामके चरित्रस्वरूप वे ही चार श्लोक विष्णुने ब्रह्मासे कहे थे ॥ ५७ ॥ उन्हें विष्णुने ब्रह्मासे उस समय कहा था, जब कि उन्होंने रामायणका विभाजन किया था । उन बचे हुए पुण्यप्रद तथा विष्णुके द्वारा ब्रह्माको मिले हुए चार श्लोकोंको मन लगाकर श्रवण करो ॥ ५८ ॥ श्रीभगवान्ने कहा था – इस चराचर प्रपंचात्मक तथा पांचभौतिक संसारके उत्पन्न होनेके पूर्व न कोई सद्वस्तु थी और न असद्वस्तु । केवल सबका कारण तथा सृष्टिका बीजरूप मैं ही था । उसी प्रकार प्रलयके पश्चात् भी जो कुछ कार्यसमूहका अधिष्ठानस्वरूप अवशिष्ट रहता है, वह भी एकमात्र मैं ही हूँ ॥ ५९ ॥ जो वास्तविक वस्तु न होनेपर भी सद्विचारके अभाववश वास्तविकरूपसे जान पड़ती है, परन्तु जब आत्म-अनात्मविषयक तत्त्वविचार किया जाता है, तब आत्माके अतिरिक्त जिसकी कोई सत्ता नहीं जान पड़ती, जड़ स्वभाववाली, भ्रान्तिवशात् आत्माको आच्छादित करनेवाली, आत्मसंबन्धिनी मायाको मृगमरीचिकाके आभासकी तरह तथा आकाशकी नीलिमाकी तरह मिथ्या जानना चाहिये ॥ ६० ॥ जिस तरह पृथ्वी आदि पञ्चमहाभूत अन्यान्य भौतिक वस्तुसमूहमें अनुस्यूत होनेपर भी उनसे अलग दिखाई देते हैं । उसी तरह मैं पञ्चमहाभूतोंमें व्याप्त होनेपर भी उनसे अर्थात् समस्त भौतिक संसारसे अलिप्त रहता हूँ ॥ ६१ ॥ बस, आत्मतत्त्वके जिज्ञासुओंको सदा और सब जगह अन्वय-व्यतिरेकसे उपर्युक्त बातोंका निश्चय करके आत्मतत्त्व तथा मायाको पृथक्-पृथक् विरुद्धधर्मवाली जान लेना चाहिए। यही व्यापक नियम है ॥ ६२ ॥ शिवजी बोले–हे देवि ! भगवान् नारायणने जो चार श्लोक ब्रह्मासे कहे थे, वे मैंने तुम्हें कह सुनाये ॥ ६३ ॥ ये श्लोक पवित्र, पापनाशक, मृत्युलोक प्राणियोंको उत्तम ज्ञान देनेवाले तथा शीघ्र अज्ञानरूपी अन्धकारको दूर करनेवाले हैं । अतः समझदार मनुष्योंको निरन्तर इसका श्रवण, मनन और कीर्तन करते रहना चाहिये ॥ ६४ ॥ हे देवि ! जो तुमने पूर्वमें आरम्भिक कथा पूछी, सो मैंने तुमसे कही । आगे जो कहता हूँ, वह भी सुनो ॥ ६५ ॥ बादमें मुनियोंके द्वारा इधर उधर बिखरे हुए रामायणको व्यासमुनि फिरसे एकत्र करके सुन्दर सात कांडोंमें चौबीस हजार श्लोकयुक्त बनाकर उसकी रक्षा करेंगे । इसी कारण चौबीस हजार श्लोकोंवाली उस रामायणके आदि तथा अन्तमें मंगलाचरण आदिके प्रकरणमें व्यासरचित और और भी कुछ श्लोक दृष्टिगोचर होंगे ॥ ६६–६८ ॥ हे देवि !

रामायणान्यनेकानि पृथगग्रे मुनीश्वराः । भागाद्भारतखण्डान्तर्गतात्कुंभोद्भवादयः ॥६९॥
करिष्यंत्यत्र शतशस्तानि सर्वाणि पार्वति । वाल्मीकीयाद्विना देवि न ज्ञेयानि मनीषिभिः॥७०॥
सारकाण्डं पुरा देवि यदुक्तं च मया तव । वाल्मीकीयाच्च तच्चापि सारमुद्धृत्य वै मया ॥७१॥
निवेदितं च ह्यधुना पृष्टं रामकथानकम् । सविस्तारं वदस्वेति त्वया तस्मान्मयोदितम् ॥७२॥
मानं रामचरित्रस्य शतकोटिप्रविस्तरम् । पंचाननोऽप्यहं देवि दिव्यैर्वर्षार्बुदैरपि ॥७३॥
रामायणं सविस्तारं व्याख्यातुं न क्षमस्त्विह । यन्निर्मितं च मुनिना स्वतपोभिरनुत्तमम् ॥७४॥
अतः संक्षेपमात्रं हि सारं सारं विगृह्य च । कथयिष्यामि त्वत्प्रीत्यै यात्राकाण्डं शुभावहम् ॥७५॥
रामदासो यथाऽग्रे हि विष्णुदासं वदिष्यति । शतकोटिमितान् ज्ञानदृष्ट्या चाहं तथा तव ॥७६॥

इति श्रीशतकोटिरामचरितान्तर्गतश्रीमदानंदरामायणे यात्राकाण्डे
रामायणविस्तारकथनं नाम द्वितीयः सर्गः ॥२॥

तृतीयः सर्गः

(गंगा-सरयूसंगमपर जानेकी तैयारीके लिए दूतोंको रामकी आज्ञा)

पार्वत्युवाच

को रामदासः कुत्रस्थो विष्णुदासश्च कः स्मृतः । कथं वदिष्यति गुरुस्तन्मां कथय विस्तरात् ॥ १ ॥

श्रीशिव उवाच

भारते दण्डकारण्ये गोदानाभौ विराजिते । क्षेत्रेऽन्जके नृसिंहाख्यो मुनिरग्रे भविष्यति ॥ २ ॥
रामनामा तु तत्पुत्रस्तच्छिष्यो विष्णुरित्यपि । गुरुशिष्यौ रामसेवासक्तौ नित्यं भविष्यतः ॥ ३ ॥
दास्यत्वाज्जानकीजानेस्तावुभौ भूसुरोत्तमौ । रामदासविष्णुदासाविति लोके परां प्रथाम् ॥ ४ ॥
गमिष्यतोऽग्रे भो देवि गौतम्या दक्षिणे तटे । रामदासः पितुः श्राद्धं गयायां संविधाय च ॥ ५ ॥
पृथिव्यां यानि तीर्थानि तानि गत्वा यथाक्रमम् । अध्यापयिष्यति च्छात्रान् गोदानाभौ गृहाश्रमी ६ ॥

भारतवर्षमें प्रचलित रामायणके भागके आधारपर अगस्त्य आदि अन्यान्य मुनि भी सैकड़ों रामायण लिखेंगे। पर विचारशील पुरुषोंको उन्हें वाल्मीकीय रामायणसे पृथक् न समझना चाहिये ॥ ६९ ॥ ७० ॥ हे पार्वती ! पहले जो मैंने तुमको सारकाण्ड सुनाया, वह भी वाल्मीकीय रामायणका सार ही था ॥ ७१ ॥ उसके बाद जो तुमने रामकी सविस्तर कथा पूछी और मैंने सुनायी, उसका एक अरब श्लोकोंमें विस्तार है। हे देवि ! पञ्चमुखसे मैं दिव्य अरब वर्षोंमें भी सम्पूर्ण रामायणकी व्याख्या करनेमें समर्थ नहीं हूँ। तब फिर औरोंका तो कहना ही क्या है। इसकी रचना वाल्मीकि ऋषिने अपने तपोबलसे की थी ॥ ७२–७४ ॥ इसलिये सारमात्र लेकर संक्षेपमें मैं तुम्हारी प्रसन्नताके हेतु मनोहारी यात्राकाण्ड सुनाऊँगा ॥ ७५ ॥ जिस सौ करोड़ श्लोकोंकी रामायणको आगे चलकर रामदास विष्णुदासको सुनाएँगे, वही मैं ज्ञानदृष्टिसे देख कर तुमको सुनाता हूँ ॥ ७६ ॥ इति श्रीशतकोटिरामचरितांतर्गतश्रीमदानंदरामायणे यात्राकाण्डे 'ज्योत्स्ना' भाषाटीकायां रामायणविस्तारकथनं नाम द्वितीयः सर्गः ॥ २ ॥

पार्वतीजीने पूछा—हे महाराज ! रामदास कौन और कहाँके हैं ? ये विष्णुदास कौन हैं ? रामदास विष्णुदासको क्यों विस्तारसे रामायण सुनायेंगे, यह भी कह सुनाइये ॥ १ ॥ शिवजीने उत्तर दिया कि भारतवर्षके दंडकारण्यमें गोदावरीके मध्यप्रदेशीय अन्धक क्षेत्रमें आगे चलकर नृसिंह नामके एक मुनि होंगे ॥ २ ॥ नृसिंहमुनिके पुत्र रामदास और रामदासके शिष्य विष्णुदास होंगे। वे दोनों गुरु-शिष्य निरन्तर रामकी भक्ति करनेवाले होंगे ॥ ३ ॥ सीतापति रामके अनन्य दास होनेके कारण ही ये दोनों रामदास तथा विष्णुदास नामसे संसारमें परम प्रसिद्धि प्राप्त करेंगे। हे देवि ! आगे चलकर वे ही रामदास गौतमी नदीके दक्षिण
12. तटपर तथा गयामें पिताका श्राद्ध करके पृथ्वीके समस्त तीर्थोंका भ्रमण करनेके बाद गृहस्थाश्रम स्वीकार करके

एकदा विष्णुदासः स श्रुत्वा नानाविधाः कथाः । रामदासमुखात्सारकाण्डं रामायणोद्भवम् ॥ ७ ॥
श्रुत्वा किंचित्प्रष्टुमना रामदासं वदिष्यति ।

विष्णुदास उवाच

गुरो ते प्रष्टुमिच्छामि तत्त्वं वक्तुमिहार्हसि ॥ ८ ॥
सारकाण्डं मया त्वत्तः श्रुतं रामायणस्थितम् । न किंचित्सौख्यलेशोऽपि जानक्या राघवस्य च ॥ ९ ॥
श्रुतोऽत्र कापि राज्यस्य विस्तारोऽपि च न श्रुतः । कथं यागाः कृतास्तेन सन्ततिस्तस्य न श्रुता ॥१०॥
सुतानां बंधुपुत्राणां विवाहादिकमश्रुतम् । तत्सर्वं विस्तरात्त्वत्तः श्रोतुमिच्छाऽस्ति मे गुरो ॥११॥
तत्त्वं वद महाभाग रघुवीरस्य चेष्टितम् । रम्यं पवित्रमानन्ददायकं पातकापहम् ॥१२॥

रामदास उवाच

सम्यक् पृष्टं त्वया वत्स रामचन्द्रकथानकम् । मंगलं रघुनाथस्य प्रोच्यते यत्सविस्तरम् ॥१३॥
सावधानमनास्त्वं तच्छृणु पातकनाशनम् । यथा श्रुतं मया पूर्वं तुष्टयर्थं ते वदाम्यहम् ॥१४॥
हत्वा दशाननं रामो राज्यं निहतकंटकम् । अयोध्यायां मुक्तिपुर्यां शशास नीतिमत्तमः ॥१५॥
न दुर्भिक्षं न चौर्यं च नापमृत्युर्न चेतयः । न दारिद्र्यं भयं चिन्ता व्याधयश्च कदाचन ॥१६॥
न भिक्षार्थी न दुर्वृत्तो न पापात्मा न निष्ठुरः । न क्रोधी न कृतघ्नोऽपि रामे राज्यं प्रशासति ॥१७॥
एकदा जानकी कान्तमेकान्ते प्राह लज्जिता । स्मितवक्त्रा चारुनासा दिव्यालङ्कारमण्डिता॥१८॥
चामरव्यग्रहस्ता सा विनयावनतानना । राम राजीवपत्राक्ष रावणारे मम प्रभो ॥१९॥
किञ्चिद्विज्ञप्तुमिच्छामि यद्यनुज्ञां करोषि हि । विज्ञापयामि तर्हि त्वां धर्ममूलं महोदयम् ॥२०॥

गोदावरीके तटवर्ती गाँवमें छात्रोंको अनेक शास्त्रोंका अध्ययन कराएँगे ॥ ४–६ ॥ उसी अवसरपर किसी दिन विष्णुदास रामदाससे बहुतेरी कथा सुनते-सुनते रामायणका सारकाण्ड सुनकर कुछ प्रश्न करनेकी इच्छासे कहेंगे–हे गुरो ! मैं आपसे जो प्रश्न करनेकी इच्छा करता हूँ, उसका युक्तिसंगत उत्तर देनेमें आप समर्थ हैं। हे गुरो ! मैंने आपसे रामायणका सारकाण्ड तो सुन लिया, परन्तु उसमें मैंने कहीं भी महारानी जानकी अथवा राजा रामचन्द्रका कोई सुखद संवाद नहीं सुना और न उनके राज्यका विवरण ही सुन पाया । उन्होंने कैसे और किस प्रकार यज्ञ किये ? उनकी संतानोंका विस्तार भी नहीं सुननेको मिला। राम तथा उनके भाइयोंके पुत्रोंके विवाह आदिका वर्णन भी मैं नहीं सुन सका । हे गुरो ! यह सब मैं आपके श्रीमुखसे विस्तार-पूर्वक सुनना चाहता हूँ ॥ ७–११ ॥ इसलिए हे महाभाग ! श्रीरामचन्द्रजीका वह मनोहर, पावन, आनन्ददायक तथा पापपुञ्जहारी चरित्र आप मुझको सुनाएँ ॥ १२ ॥ रामदास बोले—हे वत्स ! तुमने रामचन्द्रका कथा-विषयक यह बड़ा ही उत्तम प्रश्न किया है । रघुनाथजीके उस मांगलिक चरित्रको मैं विस्तारसे वर्णन करता हूँ ॥ १३ ॥ उनकी कथा श्रवणमात्रसे जन्म-जन्मान्तरके पापोंको नष्ट कर देती है। उसको मैंने जैसे सुना है, वैसा ही तुम्हारी प्रसन्नताके लिए कहता हूँ। अब सावधान होकर सुनो ॥ १४ ॥ रामचन्द्रजी दशानन रावणको मारकर मोक्षदायिनी अयोध्यानगरीमें रहते हुए नीतिपूर्वक निष्कंटक राज्य करने लगे ॥ १५ ॥ उनके राज्यमें कभी भी अकाल नहीं पड़ा और चोरी नहीं हुई। किसीका अकाल या कुत्सित मरण नहीं हुआ । अतिवृष्टि, अनावृष्टि, टिड्डी तथा मूसोंसे खेतीका नाश, पक्षियोंसे खेतीका विनाश और राजविद्रोहसे जायमान ईतियें (विपत्तियें) भी उनके राज्यकालमें लोगोंपर नहीं आयीं। उनके राज्यमें कोई दरिद्र, भयभीत, चिन्तातुर या रोगपीड़ित नहीं रहता था ॥ १६ ॥ उनके राज्यकालमें कोई भिखारी, दुराचारी, पापी, क्रूर, क्रोधी और कृतघ्न भी नहीं होता था ॥ १७ ॥ ऐसे सुख-शान्तिके समय एक दिन हास्ययुक्तमुख-वाली, सुन्दर नासिकायुक्त एवं देवियोंके योग्य अलंकारोंसे विभूषित जानकी कुछ लज्जापूर्वक एकान्तमें अपने प्रिय पति रामसे कहने लगीं। उस समय जानकीके हाथमें मनोहर चमर था। ऐसी दशामें वे विनयसे नीचा मुख किये हुए बोलीं–हे कमलपत्रके समान नयनोंवाले, रावणके शत्रु तथा मेरे नाथ राम ! यदि

तत्सीतावचनं श्रुत्वा जानकीं प्राह राघवः । हे सीते कंजनयने मम प्राणसुखास्पदे ॥२१॥
शीघ्रं वदस्व यत्तेऽस्ति चित्ते तत्कारवाण्यहम् । इति राघवसम्मानवचनैर्जनकात्मजा ॥२२॥
नितरां तोषपूरौघपरिपूर्णाऽब्रवीत्पतिम् ।

श्रीसीतोवाच

यदा त्वं राघवश्रेष्ठ दण्डकं वचनात्पितुः ॥२३॥
मया सौमित्रिणा साकं पूर्वं स्वनगराद्गतः । शृंगवेरपुरं गत्वा जाह्नव्यास्तरणे यदा ॥२४॥
नौकायां स्थितमस्माभिर्भागीरथ्यां तदा पुरा । संकल्पितं मया किंचित्तत्त्वां वक्ष्याम्यहं प्रभो ॥२५॥
देवि गंगे नमस्तेऽस्तु निवृत्ता वनवासतः । रामेण सहिताऽहं त्वां लक्ष्मणेन च पूजये ॥२६॥
सुरामांसोपहारैश्च नानाबलिभिरादृता । इत्युक्तं वचनं पूर्वं तज्ज्ञातं भवताऽपि च ॥२७॥
ततश्चतुर्दशे वर्षे विमानेन यदाऽऽगतम् । तदा भरतशत्रुघ्नकौसल्याविरहातुरा ॥२८॥
अहं तद्विस्मृता राम स्मृतिर्जाताऽद्य मे प्रभो । तन्मत्संकल्पपूर्त्यर्थं गंतुमर्हसि जाह्नवीम् ॥२९॥
मया मातृबंधुभिस्त्वमिति ते प्रार्थयाम्यहम् । रोचते यदि ते चित्ते न त्वामाज्ञापयाम्यहम् ॥३०॥
इति सीतावचः श्रुत्वा प्रहस्य रघुनन्दनः । सीतामालिंग्य बाहुभ्यां हर्षयन् तामुवाच सः ॥३१॥
एतद्वचनचातुर्यं कुतो जानासि मैथिलि । न तत्ते वचनं देवि गङ्गां प्रति ममैव तत् ॥३२॥
वचनात्तव वैदेहि श्वो गन्ता जाह्नवीं प्रति । क्व ते वांछाऽस्ति दयिते गङ्गां गन्तुं वदस्व मे ॥३३॥
तच्छ्रुत्वा तत्र वै स्थातुं सेनायोग्यसमं मृदु । ऋजुं कर्तुं हि पन्थानं दूतानाज्ञापयाम्यहम् ॥३४॥
ततः सीताऽब्रवीद्वाक्यं पुनः श्रीरामचोदिता । यत्र गङ्गा च सरयू संगताऽस्ति रघूद्वह ॥३५॥

आप मुझे आज्ञा दें तो मैं आपसे कुछ निवेदन करना चाहती हूँ। वह मेरा निवेदन धर्मसम्मत तथा अभ्युदयकारी होगा ॥ १८–२० ॥ राम सीताका वचन सुनकर कहने लगे—हे कमलनयनी ! हे मम प्राणसुखावहे सीते ! तुम जो कहना चाहो, सो शीघ्र कहो। मैं उसे अभी पूरा करनेको तैयार हूँ। इस प्रकार रामके सम्मानभरे वचनोंसे जनकनन्दिनी संतोषकी लहरोंसे नितान्त लहरा उठीं और पतिसे कहने लगीं। श्रीसीताजी बोलीं–हे राघवश्रेष्ठ ! जब आप पिताके कहनेपर दंडकारण्य जानेके लिए मुझे तथा सुमित्रापुत्र लक्ष्मणको साथ लेकर अयोध्या नगरीसे चले थे और जब शृंगबेरपुर जाकर जाह्नवी नदीमें नावपर हमलोग सवार हुए थे। उस समय भगवती भागीरथीकी बीच धारामें मैंने जो संकल्प किया था। हे प्रभो ! वह मैं आज आपको सुनाती हूँ ॥ २१–२५ ॥ मैंने गंगाको नमस्कार करके कहा था—हे देवि ! जब मैं राम तथा लक्ष्मणके साथ वनवाससे लौटूँगी, उस समय सुरासे, मांससे तथा अनेक प्रकारकी पूजासामग्रीसे तुम्हारी पूजा करूँगी। उस समय कहे हुए मेरे इस वचनको आपने भी सुना था ॥ २६ ॥ २७ ॥ पश्चात् चौदह वर्ष बाद जब हमलोग विमान द्वारा वनसे लौटे, तब भरत-शत्रुघ्न और माता कौसल्याके वियोगसे आतुर होनेके कारण मैं उस बातको भूल गयी। हे प्रभो ! आज मुझे उस बातका पुनः स्मरण आया है। अतएव मेरे उस संकल्पको पूरा करनेके लिए माताओं, भाइयों तथा मुझे लेकर आपको गंगाजीके तटपर चलना चाहिये। यही मेरी आपसे प्रार्थना है। यदि आप उचित समझें तो चलें। मैं आपको इस बातकी आज्ञा नहीं देती। क्योंकि स्त्रीका पतिको आज्ञा देना अधर्म है, परन्तु सविनय उचित परामर्श देना न्याय्य और धर्मसम्मत है ॥ २८–३० ॥ सीताके इस वाक्यको सुनकर राम बड़े प्रसन्न हुए और आलिंगन करके सीतासे सहर्ष कहने लगे—॥ ३१ ॥ हे मैथिली ! इस प्रकारका वचनचातुर्य तुममें कहाँसे आ गया ? तुम्हारा वह वचन गंगाके प्रति नहीं, प्रत्युत मेरे ही प्रति था ॥ ३२ ॥ हे वैदेहि ! तुम्हारे कथनानुसार मैं कल ही गंगाजी चलनेके लिए तैयार हूँ। हे प्रिये ! तुम्हारी जिस जगह और जिस तीर्थको चलनेकी इच्छा हो, वह कहो ॥ ३३ ॥ इस बातको जानकर मैं वहाँ सेनाको ठहरनेके लिए स्थान और मार्ग साफ-सुथरा करनेके लिए दूतोंको आज्ञा दे दूँ ॥३४॥ इस प्रकार रामके पूछनेपर सीताने कहा–हे रघुनन्दन ! जहाँ गंगा और सरयूजीका संगम हुआ है, वहाँपर गंगाजीके

तत्र गङ्गोत्तरे देशे गंतुमिच्छति मे मनः । इति सीतावचः श्रुत्वा तथेत्युक्त्वा रघूद्वहः ॥३६॥
द्वारपालं समाहूय पटैराच्छाद्य जानकीम् । आज्ञापयच्च तं रामः शीघ्रं गच्छ ममाज्ञया ॥३७॥
लक्ष्मणं वचनं मे त्वं कथयस्व सविस्तरम् । ज्ञापव्यः श्वो ममोद्योगः सीतायाश्चैव कौतुकात् ॥३८॥
सरयूसङ्गमे गङ्गापूजनार्थं त्वया सह । मातृभिर्मन्त्रिभिः सैन्यैः सुहृद्भिर्भरतेन च ॥३९॥
शत्रुघ्नेन पुरस्थैश्च जनैर्विप्रैर्यथासुखम् । सेनानिवेशस्थानानि योजनार्द्धान्तराणि च ॥४०॥
पूरितामन्नतोयाद्यैः कल्पनीयानि वै पृथक् । इति रामवचः श्रुत्वा स तथेति त्वरान्वितः ॥४१॥
आज्ञाप्रमाणमित्युक्त्वा नत्वा रामं पुनः पुनः । कथयामास सौमित्रिं रामवाक्यं सविस्तरम् ॥४२॥
तद्रामवचनं श्रुत्वा यौवराज्यपदस्थितः । सभायां मन्त्रिभिर्युक्तो लक्ष्मणो दूतमब्रवीत् ॥४३॥
अङ्गीकृतं रामवाक्यमिति रामं वदस्व तत् । तच्छ्रुत्वा त्वरितं दूतः कथयामास राघवम् ॥४४॥
सभायां लक्ष्मणश्चापि दूतानाज्ञापयत्तदा । रुक्मदण्डकरान् चित्रोष्णीषयुक्तान् विभूषितान् ४५॥
गच्छध्वं त्वरिता यूयं कथयध्वं जनान्पुरि । अयोध्यायां राघवस्य श्वो यात्रार्थं समुद्यमः ॥४६॥
तथेत्युक्त्वा जवाद्दूता राजमार्गेषु सर्वतः । दीर्घस्वरेण ते प्रोचुश्चोर्ध्वं कृत्वाऽऽत्मसत्करान् ॥४७॥
हे जनाः शृणुत स्वस्थाः श्वः सीतारामयोर्मुदा । समुद्योगोऽस्ति पूजार्थं सरय्वाः सङ्गमं प्रति ॥४८॥
भागीरथ्यां सुहृद्भिश्च सावरोधैर्बलैः सह । इति संश्राव्य सकलान् जनान् साकेतवासिनः ॥४९॥
ते दूता राजभवने लक्ष्मणं तं पुनर्ययुः । संश्राव्य ते जनांश्चारा रामोद्योगं न्यवेदयन् ॥५०॥
सभायां लक्ष्मणश्चापि समाहूयानुजैर्जवात् । तक्षकानिष्टिकाकारान्दृषत्कर्मसु नैष्ठिकान् ॥५१॥
लोहकारांश्चर्मकारान् भित्तिकर्मादिनैष्ठिकान् । क्रयविक्रयकर्तॄंश्च काष्ठनिर्जीवकारिणः ॥५२॥
वासोगृहविदग्धाश्च महिषैर्जलवाहिनः । नानाकर्मसु निष्णाता रज्जुकुद्दालधारिणः ॥५३॥

उत्तरी तटपर जानेकी मेरे मनमें इच्छा है। सीताकी इस इच्छाको सुनकर रामने 'बहुत अच्छा' ऐसा कहा ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ तदनंतर जानकीको महलके भीतर भेज तथा द्वारपालको बुलाकर रामने कहा—तुम मेरी आज्ञासे अभी लक्ष्मणके पास जाकर मेरा आदेश उनसे कह दो। उनसे कहना कि कल प्रातःकाल सीताकी इच्छासे तुम्हारे, माताओं, मन्त्रियों, सेनाओं, भरत-शत्रुघ्न, पुरवासी जनों तथा ब्राह्मणोंके साथ सरयूके संगम-पर गङ्गाजीका पूजन करनेके लिए धूम-धामसे मेरा जाना निश्चित हुआ है। इस लिये रास्तेमें दो-दो कोसपर अन्न-जलसे परिपूर्ण शिविर तैयार कराओ। रामके इस वचनको सुनकर वह दूत 'बहुत अच्छा, जो आज्ञा' कह तथा रामको बारम्बार नमस्कार करके वहाँसे शीघ्र चल पड़ा। लक्ष्मणके पास जाकर उसने विस्तारसे रामकी आज्ञा सुना दी ॥ ३७–४२ ॥ युवराजपदपर स्थित तथा मन्त्रियोंके साथ सभामें विराजमान लक्ष्मणने जब रामके आदेशको दूतके मुखसे सुना तो उससे कहा—॥ ४३ ॥ तुम जाकर श्रीरामसे कहो कि आपकी आज्ञाके अनुसार सब कार्य ठीक हो जायगा। दूतने जाकर शीघ्र ही रामको यह सन्देश सुना दिया ॥ ४४ ॥ तब लक्ष्मणने सोनेके दण्ड धारण करनेवाले रंग-बिरंगी पगड़ी सिरपर बाँधे तथा सुन्दर पोशाक पहिने हुए बहुतसे सिपाहियोंको बुलाकर उन्हें यह आज्ञा दी—॥ ४५ ॥ तुमलोग शीघ्र नगरभरमें घूमकर सब नगरवासियोंको रामचन्द्रजीके कल यात्राके लिए प्रस्थान करनेका समाचार सुना आओ ॥ ४६ ॥ 'तथास्तु' कहकर वे दूत नगरकी सड़कोंपर घूम-घूम तथा हाथ उठा-उठाकर ऊँचे स्वरसे सब लोगोंको सुनाने लगे—॥ ४७ ॥ 'हे नगरवासियो! ध्यान देकर सुनो। राम और सीता कल अन्तःपुरवासिनी स्त्रियों, सगे-संबन्धियों और सेनाको साथ लेकर सरयूनदीके संगमपर गङ्गाका पूजन करनेके लिए जायँगे। अयोध्यावासी लोगोंको यह समाचार सुनाकर वे पुनः लक्ष्मणजीके पास आगये और बोले कि हमलोग नगरके सब लोगोंको रामजीकी यात्राका समाचार सुना आये ॥ ४८-५० ॥ तदनन्तर लक्ष्मणने नौकरोंके द्वारा तत्क्षण बढ़ई, ईंटें पाथनेवाले कुम्हार, पत्थरके काममें कुशल संगतरास ॥ ५१ ॥ लोहार, चमार, भीत-मकान आदि बनानेमें चतुर राजगीर, सौदा बेचने तथा खरीदनेवाले बनिये, लकड़हारे, कपड़ेके डेरा-तम्बूके

एतानाज्ञापयामास तोषणाद् वसनादिभिः । संमानितान्स सौमित्रिः कथयामास सादरम् ॥५४॥
समुद्योगं राघवस्य सीतायाः श्वो बलैः सह । ऋजुर्मार्गो विधातव्यः समः कर्करवर्जितः ॥५५॥
निम्ना भूमिः समा कार्या उच्चा भूमिः समाऽपि च । छिद्यंतां पार्वता वृक्षा मार्गस्था दुःखदायकाः ॥५६॥
वाप्यः कूपास्तडागाश्च शोधनीयाः सहस्रशः । नवीनाश्चापि कर्तव्याः सतोया निर्जले वने ॥५७॥
सेनानिवेशस्थानानि योजनार्द्धे सविस्तरे । कल्पनीयानि युष्माभिः पूरितान्यन्नवारिभिः ॥५८॥
चुल्ल्यो रम्या विधातव्याः पाकशालाः सभित्तयः । वस्त्रैर्गृहाणि कार्याणि तृणैश्चापि सहस्रशः ॥५९॥
आरक्तखर्परैराच्छादितानि चित्रितानि हि । नानागृहाणि कार्याणि पूरितान्यन्नवारिभिः ॥६०॥
पुष्पाणां वाटिकाः कार्याः शतशोऽथ सहस्रशः । मार्गे मार्गे कौतुकार्थं भित्तौ चित्राण्यनेकशः ॥६१॥
नरस्कंधगताश्चित्रवाटिकाश्च सहस्रशः । पुष्पाणां वाटिकाश्चारुमृत्पात्रनिर्मिताः शुभाः ॥६२॥
मार्गे मार्गे गायकानां स्थलान्यपि सहस्रशः । सेनानिवासस्थानेषु हस्त्यश्वरथवाजिनाम् ॥६३॥
सहस्रशो विधातव्याः शालाः पूर्णास्तृणादिभिः । सुगंधचंदनैर्मार्गाः सेचनीयाः समंततः ॥६४॥
नेमिरेखाऽपि सा मार्गे विचित्रवसनैर्गृहाः । पुष्पैराच्छादनीयास्ते हट्टाः सन्तु समंततः ॥६५॥
भृंगारैरतिचित्रैश्च हस्त्युष्ट्ररथवाजिनः । वस्त्रालङ्कारघण्टाभिः शोभनीयाः सहस्रशः ॥६६॥
शकटेषु तथोष्ट्रेषु वारणेषु रथादिषु । शतघ्न्यः परिघा बाणाः शक्तयः कार्मुकान्यपि ॥६७॥
स्थापनीयानि शतशो विधातव्या ध्वजा अपि । चतुर्ष्वपि विधातव्या ध्वजा रामरथेषु हि ॥६८॥
हनुमत्कोविदाराण्डजेशत्राणांकिताः शुभाः । चतुर्ष्वपि बंधनीयाः पताकाः स्यंदनेषु हि ॥६९॥
हरितश्वेतपीतनीलवर्णाः परमशोभनाः । गजपृष्ठे राघवार्थं हरिद्वर्णाङ्कितासनम् ॥७०॥

निर्माणमें निपुण दर्जी, भैंसेके द्वारा जल ढोनेवाले भिश्ती तथा अन्यान्य नाना कर्मोंमें कुशल, रस्सी बटनेवाले और कुदार चलानेवाले आदि-आदि मजूरोंको सभामें बुलाकर वस्त्र आदिसे सत्कार करके प्रसन्न किया और आदरपूर्वक उनसे कहा—॥ ५२–५४ ॥ कल राम-सीता सेनाके साथ तीर्थयात्राके लिए जानेवाले हैं। सो तुम लोग उनके सम्पूर्ण रास्तेको कंकड़-पत्थर बीनकर साफ-सुथरा कर दो ॥ ५५ ॥ रास्तेकी ऊँची-नीची जमीन बराबर कर दो। मार्गके दुःखदायी पर्वतीय वृक्षोंको काट डालो ॥ ५६ ॥ रास्तेकी बावड़ी, कूएँ तथा तालाबोंको साफ कर दो और निर्जल वनमें नये सैकड़ों तालाब-कूएँ आदि खोद दो ॥ ५७ ॥ आधे-आधे योजनपर सेनाके लिए शिबिर बनाकर अन्न-जलसे परिपूर्ण कर दो ॥ ५८ ॥ सुन्दर दीवारें खड़ी करके भोजनालय और चूल्हे तैयार करे। जगह-जगह वस्त्र तथा घासके अम्बार लगा दो ॥ ५९ ॥ पके हुए लाल खपड़ोंसे छाये हुए चित्र-विचित्र घरोंमें प्रचुरमात्रामें अन्न-जल संचित करके रखवा दो ॥ ६० ॥ मार्गमें स्थान-स्थानपर सैकड़ों तथा हजारोंकी संख्यामें आनन्द लेनेके लिए दीवारोंपर रंग-बिरंगे चित्र खींच दो तथा मनोविनोदके लिए बीच-बीचमें पुष्पवाटिकाएँ लगा दो ॥ ६१ ॥ नर पुतलियोंके कंधेपर रक्खे हुए फूलोंसे गमले अथवा जमीनपर ही फूलोंके गमलोंको सजाकर स्थान-स्थानपर सैकड़ों-हजारों वाटिकाएँ तैयार कर दो ॥ ६२ ॥ पथ-पथपर गायकोंकी गायनशालायें रच दो। सेनाके हर एक सन्निवेशस्थानमें दाने तथा घाससे पूर्ण अनेक अश्वशालायें और हस्तिशालायें तैयार कर रक्खो। चन्दन तथा गुलाब आदिके सुगन्धित जल सब रास्तोंमें छिड़कवा दो तथा चित्र-विचित्र धारीवाले कपड़ोंके तम्बू बनाकर जगह-जगह गाड़ दो और उनपर विविध रंगकी पुष्पमालाएँ टाँग दो। उनके चारों ओर बाजार लगा दो ॥ ६३–६५ ॥ तमाम हाथी-घोड़े, ऊँट तथा रथोंको वस्त्र अलंकारसे अलंकृत करके तथा घण्टे आदि बाँधकर सुसज्जित कर दो ॥ ६६ ॥ बैलगाड़ियोंमें, ऊँटोंपर और रथ आदिपर धनुष-बाण, मुद्गर, शक्तियें, तोप अथवा बन्दूकें रख दो ॥ ६७ ॥ रास्तेके चौतरफा और दरवाजे आदिपर ध्वजाएँ गाड़ तथा बाँध दो। रामजीके चारों रथोंपर भी ध्वजाएँ बाँध दो ॥ ६८ ॥ उन चारों स्यन्दनोंपर हनुमान, कोविदार, गरुड़ और बाणके चिह्नोंवाली पताकाएँ होनी चाहियें ॥ ६९ ॥ वे ध्वजाएँ हरे,

रुक्ममाणिक्यरचितं सितच्छत्रोपशोभितम् । स्थापनीयं महादिव्यं मुक्ताहारविराजितम् ॥७१॥
सीतार्थं करिणीपृष्ठे नीलवर्णं महासनम् । रुक्मविद्रुमवैदूर्यरत्नमुक्ताविराजितम् ॥७२॥
मुक्ताफलहेमतंतुगणैराच्छादितं वरम् । सिद्धं कार्यं महादिव्यं स्वर्णकुंभविराजितम् ॥७३॥
पुष्पमालास्तोरणानि बंधनीयानि वै पथि । नृत्यंतु वारवेश्याश्च स्तुतिं कुर्वन्तु वन्दिनः ॥७४॥
द्रव्यैर्वस्त्रैराभरणैः पूजाद्रव्यैश्च गोरसैः । पात्रैर्नानाविधैर्दिव्यैः पूरणीया रथोत्तमाः ॥७५॥
अन्यच्चापि मया नोक्तं यद्यद्योग्यं हि तत्पथि । सिद्धं कार्यं हि योगेन येन तुष्यति राघवः ॥७६॥
इति सन्दिश्य मेधावी लक्ष्मणः सह मंत्रिभिः । सायं सन्ध्यादिकं कर्तुं जगाम निजमन्दिरम् ॥७७॥
सौमित्रेराज्ञया तेऽपि तथा चक्रुर्यथोदिताः । संतुष्टास्ते यथायोग्यं रामसन्तोषहेतवे ॥७८॥
रामोऽपि सीतया सार्द्धं मन्दिरे रत्ननिर्मिते । मञ्चके पुष्पशय्यायां सीतामालिंग्य वै दृढम् ॥७९॥
रुक्मनेपथ्ययुक्ताभिर्दासीभिश्च मुहुर्मुहुः । वीजितो वालव्यजनैर्निशि सुप्तः सुखं तदा ॥८०॥

इति श्रीमदानन्दरामायणे यात्राकाण्डे दूताज्ञाकरणं नाम तृतीयः सर्गः ॥ ३ ॥

चतुर्थः सर्गः

(रामका सरयूके दो खण्ड करना)

रामदास उवाच

ततः प्रातः समुत्थाय श्रुत्वा वाद्यध्वनिं तथा । गायनं वंदिभिर्गीतं सीतया सह राघवः ॥ १ ॥
कृत्वा नित्यविधिं सर्वं दत्त्वा दानानि विस्तरात् । ज्योतिर्विदं समाहूय गोपालाभिधमुत्तमम् ॥ २ ॥
नमस्कृत्वाऽथ संपूज्य गणकं राघवोऽब्रवीत् । भो गोपाल महाबुद्धे त्वां पृच्छेऽहं द्विजोत्तम ॥ ३ ॥

पीले, श्वेत और नीले रंगकी सुन्दर बनी हों। रामचन्द्रजीके लिए हाथीपर हरे रंगके मखमलकी गद्दी-तकिया लगाकर उसपर मुक्ताके हार टाँग देने चाहियें और सोना तथा माणिक्यसे रचित, बहुमूल्य, दिव्य, परम सुन्दर तथा श्वेत छत्र भी लगा देना चाहिए ॥ ७० ॥ ७१ ॥ एक दूसरी हथिनीकी पीठपर सीताके लिये सुवर्ण, विद्रुम (मूँगे), वैदूर्यमणि, रत्न, मोती तथा गजमुक्ता लगा हुआ हरा, जरीदार एवं बहुमूल्य आसन विछाकर तैयार करो और उसके हौदेपर बहुतसे छोटे-छोटे सुवर्णके कलश भी लगा दो। जिससे कि वह अधिक सुन्दर प्रतीत होने लगे ॥ ७२ ॥ ७३ ॥ रास्तेमें फूलोंकी मालाएँ और तोरण बाँध दो। वेश्याएँ नाचने तथा बंदागण स्तुतिपाठ करने लग जायँ ॥ ७४ ॥ बहुतसे रथोंमें वस्त्र, आभूषण, दुग्ध, दही, पूजाके द्रव्य तथा अच्छे-अच्छे बरतन आदि भर लिये जायँ ॥ ७५ ॥ जो कुछ मैंने न कहा हो, सो भी सब जरूरी सुविधाएँ सुलभ रहनी चाहियें। जिन्हें देखकर रामचन्द्रजी प्रसन्न हो जायँ ॥ ७६ ॥ बुद्धिमान् लक्ष्मण ऐसी आज्ञा देकर सायंकालीन संध्या-वन्दन करनेके लिए मंत्रियोंके साथ सभाभवनसे बाहर आकर अपने महलमें चले गये ॥ ७७ ॥ लक्ष्मणकी आज्ञाके अनुसार कारीगर लोगोंने प्रसन्नतासे रामजीके सुखके लिये यथायोग्य सब सामान ठीक कर दिया ॥ ७८ ॥ उधर रामचन्द्रजी भी अपने रत्ननिर्मित भवनमें फूलोंकी शय्यापर सीताजीको दृढ़ आलिङ्गन करके रात्रिको सुखपूर्वक सोये। सोनेकी जरीदार साड़ियोंको पहिने दासियें बार-बार उनपर वालव्यजन (पंखा) डुलाने लगीं ॥ ७९ ॥ ८० ॥ इति श्रीमदानन्दरामायणे यात्राकाण्डे भाषाटीकायां दूताज्ञाकरणं नाम तृतीयः सर्गः ॥ ३ ॥

रामदास बोले—प्रातः कालके समय बन्दियोंके गायन और बाजोंके मधुर शब्दको सुनकर सीतासहित राम जागे ॥ १ ॥ तब नित्यकर्मसे निवृत्त होकर उन्होंने अनेक तरहके दान दिये और गोपाल नामके ज्योतिषीको बुलवाकर रामने नमस्कार तथा पूजा करके कहा—हे ब्राह्मणोंमें श्रेष्ठ और महाबुद्धिमान् गोपाल महाराज !

यात्रार्थं जाह्नवीतीरं गन्तुमिच्छामि सांप्रतम् । अतो मुहूर्तो दातव्यः सम्यग्बुद्ध्या विविच्य च ॥४॥
तद्रामवचनं श्रुत्वा गोपालः प्राह राघवम् । पञ्चाङ्गपट्टं विस्तार्य तत्र दृष्ट्वा बलाबलम् ॥५॥
राम राजीवपत्राक्ष मुहूर्तस्त्वद्य वर्तते । पूर्वयामे महाञ्छ्रेष्ठः पुष्यनक्षत्रमंडितः ॥६॥
तस्य वक्ष्ये फलं राजन् सावधानमनाः शृणु । शृण्वन्तु मुनयः सर्वे शृणोतु ते गुरुर्महान् ॥७॥

न योगयोगं न च लग्नलग्नं न तारकाचंद्रबलं गुरोश्च ।
योगिन्य राहुर्न तदैव काले सर्वाणि कार्याणि करोति पुष्यः ॥८॥

अस्मिन्राम सुनक्षत्रे प्रस्थानं कुरु सीतया । दत्तो मया मुहूर्तोऽयं यात्रार्थं रघुनायक ॥९॥
इति तस्य वचः श्रुत्वा लक्ष्मणं राघवोऽब्रवीत् । भेरीमृदंगपणवकाहलाऽऽनकगोमुखैः ॥१०॥
तालघर्घरदुंदुभिभिश्चैभिश्च नवभिर्महान् । सेनायाः सूचनार्थं हि कर्तव्यः प्रथमो ध्वनिः ॥११॥
तथेति रामवचनाद्दूतानाज्ञापयत्तदा । नववाद्यध्वनिं तेऽपि चक्रुर्मञ्जुलसुस्वरम् ॥१२॥
ततो रामो द्विजैर्युक्तो वसिष्ठेन पुरोधसा । घृतेन प्रचुरं श्राद्धं गणेशादीन् प्रपूज्य च ॥१३॥
चकार प्रोक्तविधिना वसिष्ठं प्राह वै ततः । अग्निहोत्राणि मेऽग्रे त्वं स्थापितानि तु पुष्पके ॥१४॥
नेतुमर्हसि मे मातॄर्बंधुभिः पुरवासिनः । विमाने करिणीबद्धा पुष्पमालाऽतिशोभिता ॥१५॥
सीतांगस्पर्शनी मार्गे मां स्पर्शतु गजस्थितम् । ततः पप्रच्छ वैदेहीं केन यानेन मैथिलि ॥१६॥
गमिष्यसि वद त्वं मां तदेवाज्ञापयाम्यहम् । तद्रामवचनं श्रुत्वा सीता ध्यात्वा क्षणं हृदि ॥१७॥
सा प्राह मुदिता रामं करिण्या गमनं मम । रोचते यदि ते चित्ते तर्ह्यस्तु रघुनायक ॥१८॥
तत्तस्या वचनं श्रुत्वा यानमाज्ञाप्य लक्ष्मणम् । सीतायै दिव्यवस्त्राणि ददौ मातॄस्तथैव च ॥१९॥

मैं आपसे एक प्रश्न पूछता हूँ ॥२॥३॥ आज मैं तीर्थयात्रा करनेके लिए गंगाजीके तटपर जाना चाहता हूँ। अतएव खूब विचारकर कोई अच्छा मुहूर्त बतलाइए ॥ ४ ॥ रामचन्द्रजीका प्रश्न सुनकर गोपाल पण्डितने पञ्चाङ्ग देख तथा ग्रहोंके बलाबलका विचार करके रामसे कहा—॥ ५ ॥ हे कमलदलके समान सुन्दर नयनोंवाले राम ! आज प्रथम प्रहरमें पुष्यनक्षत्रसे युक्त बड़ा अच्छा मुहूर्त है ॥ ६ ॥ उसका फल मैं आपसे कहता हूँ। हे राजन् ! आप, सब मुनि लोग तथा आपके गुरु वसिष्ठजी भी उसको ध्यानसे सुनें ॥ ७ ॥ अच्छे योगसे युक्त न रहनेपर भी, अच्छे लग्नसे संलग्न न होनेपर भी, तारा, चन्द्रमा और गुरुके बलसे शून्य होनेपर भी, शुभ योगिनीके अभावमें भी तथा अनिष्टकारी राहुके सन्निकट रहनेपर भी केवल एक पुष्य नक्षत्रके रहनेमात्रसे ही यात्राके सब इष्ट कार्य सिद्ध हो जाते हैं ॥ ८ ॥ हे राम ! इस शुभ नक्षत्रमें आप सीताके साथ प्रस्थान करें। हे रघुनायक ! यात्राके लिए मैंने यह अच्छा मुहूर्त बतलाया है ॥ ९ ॥ उनका यह वचन सुनकर रामजीने लक्ष्मणसे कहा—हे लक्ष्मण ! समस्त सेनाको सूचना देनेके लिए भेरी, मृदंग, पणव, नगाड़े, ढोल, तुड़ही, झांझ, घंटा तथा दुन्दुभी ये नौ प्रकारके बाजे जोरसे बजाये जायँ ॥ १० ॥ ११ ॥ 'बहुत अच्छा' कहकर रामकी आज्ञाके अनुसार लक्ष्मणने दूतोंको आज्ञा दी। उन्होंने मधुर रीतिसे नवों बाजे बजवाये ॥ १२ ॥ उसके बाद रामने ब्राह्मणों तथा अपने पुरोहित वसिष्ठजीको साथ लेकर गणपतिपूजन किया और घीसे विधिवत् श्राद्ध करके वसिष्ठजीसे कहा कि मेरी वेदोक्त विधिसे स्थापित की हुई अग्नियोंको, माताओंको तथा बन्धुसहित पुरवासियोंको विमानपर चढ़ाकर आप चलें। पुष्पमालाओंसे अतिशय सुशोभित तथा सीतासे अधिष्ठित गजपर सवार हमको मार्गमें मिलें। पश्चात् रामने सीतासे पूछा—हे मैथिलि ! तुम किस सवारीपर चलोगी ? जो पसन्द हो, उस सवारीके लिए मैं आज्ञा दे दूँ। रामजीके इस वाक्यको सुनकर सीताजीने क्षणभर मनमें विचार किया ॥ १३–१७ ॥ फिर प्रसन्न होकर रामसे कहा—हे रघुनायक ! यदि आप कहें तो मेरी इच्छा हथिनीपर चलनेकी है ॥ १८ ॥ सीताकी इस इच्छाको जानकर रामजीने लक्ष्मणको सीताके लिए हथिनी तैयार करवानेकी आज्ञा दी। पश्चात् रामने सीताको तथा अपनी माताओंको पहिननेके लिए

तथा दत्त्वा बंधुपत्नीर्दत्त्वा चापि गुरोः स्त्रियम् । ततो दत्त्वा वसिष्ठं च विप्रान्दत्त्वा ततः परम् ॥२०॥
दत्त्वा वस्त्राणि बंधुभ्यः स्वयं जग्राह राघवः । बद्ध्वा शस्त्राण्यनेकानि त्वरयित्वा विदेहजाम्॥२१॥
नत्वा मातृर्गुरूंश्चापि मंत्रिभिः परिवारितः । आरुह्य शिबिकां रामः सभां प्रति समाययौ ॥२२॥
ततः सिंहासने स्थित्वा लक्ष्मणं प्राह राघवः । द्वितीयः सूचनार्थं हि नववाद्यध्वनिः पुनः ॥२३॥
आज्ञापनीयः सौमित्रे तच्छ्रुत्वा राघवेरितम् । आज्ञा प्रमाणमित्युक्त्वाऽऽज्ञापयद्ध्वनिमुत्तमाम्॥२४॥
कर्तुं दूतास्तेऽपि चक्रुर्ध्वनिं मेघोपमां ततः । ततः प्राह रघुश्रेष्ठः पुनः सौमित्रिमादरात् ॥२५॥
सुमंत्रः स्थाप्यतां पुर्यां रक्षणार्थं ममाज्ञया । गच्छत्वग्रे तु भरतो पश्चादायातु शत्रुहा ॥२६॥
मत्पृष्ठे त्वं समागच्छ ततः सीताऽनुगच्छतु । तस्याःपृष्ठे च त्वत्पत्नी ह्युर्मिला सानुगच्छतु ॥२७॥
तत्पृष्ठे मांडवी रम्या दयिता भरतस्य सा । अनुगच्छतु तत्पृष्ठे श्रुतकीर्त्यनुगच्छतु ॥२८॥
शत्रुघ्नस्य प्रिया भार्या विमानैः पुरयोषितः । मातृभिस्ताः सभायां तु पश्यंत्यः कौतुकं मुदा ॥२९॥
सीतायाः करिणीष्वत्र स्थापयित्वा ममान्तिकम्। आगन्तव्यं त्वया शीघ्रं ततोऽहं गजमाश्रये ॥३०॥
तथेति रामवचनात्तथा ताः करिणीषु सः । आरोहयित्वा श्रीरामं समागच्छत्त्वरान्वितः ॥३१॥
समागतं लक्ष्मणं तं दृष्ट्वा रामो महामनाः । सुमंत्राय ददौ वस्त्रं तदधीनां पुरीं व्यधात् ॥३२॥
ततो मुहूर्तसमये धृत्वा लक्ष्मणसत्करम् । सिंहासनात्समुत्तीर्य महानागान्तिकं ययौ ॥३३॥
गजं प्रदक्षिणं कृत्वा सोपानेन स राघवः । गजदन्तोद्भवेनारुरोह नागं सुखं शनैः ॥३४॥
तदा दुंदुभिनिर्घोषान् नववाद्यस्वरान् वरान् । वादयामासुर्गंभीरान् राजदूताः सहस्रशः ॥३५॥
बभूवुर्यन्त्रशब्दाश्च ननृतुर्वारयोषितः । वादयंति स्म वाद्यानि गजवाजिरथोपरि ॥३६॥
जयशब्दान् वेदघोषान् द्विजाश्चक्रुर्महास्वनैः । केऽपि पिच्छोद्भवं चित्रं रत्नदण्डविराजितम् ॥३७॥

दिव्य वस्त्र दिये ॥१९॥ अपने भाइयोंको, उनकी स्त्रियोंको और गुरुपत्नीको सुन्दर वस्त्र दिये । उनके बाद गुरु-वसिष्ठको, अन्य ब्राह्मणोंको तथा अपने बंधुओंको नये कपड़े देकर स्वयं रामने भी नूतन वस्त्र पहना । अनेक प्रकारके शस्त्र भी बाँध लिये और सीताको शीघ्रता करनेके लिए कहा ॥ २० ॥ २१ ॥ तदनन्तर रामजी गुरु तथा माताओंको नमस्कारकर तथा मन्त्रियोंको साथ ले पालकीपर सवार होकर सभाभवन (कचहरी) गये ॥ २२ ॥ वहाँ सिंहासनपर आरूढ़ होकर रामने लक्ष्मणसे कहा कि दूसरी सूचना देनेके लिए पुनः नौ प्रकारके बाजे बजानेकी आज्ञा दे दो । लक्ष्मणने 'जो आज्ञा' कहकर दूतोंको उत्तम रीतिसे बाजे बजवानेकी आज्ञा दी । आदेश पाते ही उन दूतोंने मेघध्वनिके समान बाजोंका निनाद किया । इसके उपरान्त रामने पुनः लक्ष्मणसे कहा—॥२३–२५ ॥ हे भाई ! मेरी आज्ञाके अनुसार तुम यहाँ नगरकी रक्षा करनेके लिए सुमन्त्रको छोड़ दो । आगे भरत और उनके पीछे शत्रुघ्न चलें तथा मेरे पीछे तुम चलो । तुम्हारे पीछे सीता और सीताके पीछे तुम्हारी स्त्री उर्मिला चले ॥ २६ ॥ २७ ॥ उसके पीछे भरतकी प्राणप्रिया सुन्दरी मांडवी और मांडवीके पीछे शत्रुघ्नकी प्रिया भार्या श्रुतकीर्ति चले ॥ २८ ॥ नगरकी स्त्रियोंके साथ माताएँ विमान-पर सवार होकर आनन्दसे समारोह देखती हुई आयें ॥ २९ ॥ तुम जाकर सीता आदि सब स्त्रियोंको हथि-नियोंपर चढ़ा आओ । उसके बाद मैं गजपर सवार होऊँगा ॥३०॥ सो सुनकर लक्ष्मण तुरन्त चल दिये और उन सबको हथिनियोंपर सवार कराकर शीघ्र ही रामके पास लौट आये ॥ ३१ ॥ लक्ष्मणके आ जानेपर मतिमान् रामने मन्त्री सुमन्त्रको चिह्नस्वरूप वस्त्र दिये तथा रक्षाके लिये नगर सौंप दिया ॥ ३२ ॥ उसके बाद शुभ मुहूर्तमें लक्ष्मणके सुन्दर हाथको पकड़कर राम सिंहासनसे उठे और उत्तम हाथीके पास गये ॥ ३३ ॥ हाथीकी प्रदक्षिणा करके राम गजदन्तकी बनी हुई सीढ़ीपर पाँव रखकर सुखपूर्वक धीरेसे उसपर सवार हो गये ॥३४॥ उस समय हजारों राजसेवक सुन्दर एवं गम्भीर शब्द करनेवाले दुन्दुभि आदि नवविध वाद्योंको बजाने लगे ॥ ३५ ॥ वहाँपर अनेक प्रकारके शब्द होने लगे, वेश्याएँ नाचने लगीं और हाथी तथा घोड़ोंपर नाना प्रकारके बाजे बजाये जाने लगे ॥ ३६ ॥ विप्रलोग उच्च स्वरसे जयजयकार और वेदध्वनि करने लगे । एक

चामरं वीजयामास विजयः पार्श्वसंस्थितः । अन्यस्तु वालव्यजनं वीजयामास पृष्ठतः ॥३८॥
कलशैः शतसाहस्रैर्मुक्ताहारैस्तु शोभितम् । रत्नदण्डं सुविस्तीर्णं छत्रमन्यो दधार तत् ॥३९॥
तत्पृष्ठे गजमारुह्य लक्ष्मणः शीघ्रमाययौ । सीताद्यास्ताः समाजग्मुः सौमित्रिगजपृष्ठतः ॥४०॥
पश्यंत्यः कौतुकान्येव जालरंध्रैः समंततः । पुष्पकं चापि गगनमार्गेणैव शनैः शनैः ॥४१॥
जगाम संस्थितास्तत्र पुरनार्यो रघूत्तमम् । पश्यंत्योऽथ कौतुकानि ववर्षुः पुष्पवृष्टिभिः ॥४२॥
ततस्ते तुरगारूढा गजारूढा रथे स्थिताः । नेमिरेखोपमाः सर्वे स्थितास्ते रामपार्श्वयोः ॥४३॥
चक्रुः प्रणामान् श्रीरामं संस्थिता हारबंधवत् । रामोऽपि कंजहस्ताभ्यां प्रणामानस्यनंदयत् ॥४४॥
एवं गच्छति राजेंद्रे रामचंद्रे शनैः पथि । गजोपरि सवीणास्ते नटा गानं प्रचक्रिरे ॥४५॥
एवं पश्यन् स रामोऽपि पुष्पारामादिकौतुकम् । हट्टान् चित्राणि वेश्यानां नृत्यानि विविधानि च॥४६॥
सुस्वराण्यथ वाद्यानि शृण्वन् मार्गे शनैः शनैः । वेष्टितश्चतुरङ्गिण्या सेनया स समंततः ॥४७॥
प्राप सेनानिवासाय कल्पितां भुवमुत्तमाम् । अयोध्यामिव तां दृष्ट्वाऽत्रतरद्राघवो गजात् ॥४८॥
अभिनंद्य प्रणामांश्च पुनर्वीरकृतान् मुहुः । लक्ष्मणस्य करं धृत्वा स्वकरेण रमापतिः ॥४९॥
वस्त्रगेहं संप्रविश्य तस्थौ सिंहासने पुनः । सीताद्यास्ताः स्त्रियः सर्वा विविशुर्वस्त्रसद्मनि ॥५०॥
ततः श्रीरामचंद्रोऽपि लक्ष्मणं वाक्यमब्रवीत् । सीमायाः क्रोशमात्रेऽद्य शतदूतान् पृथक् पृथक् ॥५१॥
एकैकस्यां दिशि त्वं मे वचनात्स्थापयस्व भोः । योजनोपरि सौमित्रे त्वष्टदिक्षु समंततः ॥५२॥
नियोजयस्व शतशो वाजिवाहान् ममाज्ञया । तथेत्युक्त्वा लक्ष्मणोऽपि तथा सर्वं चकार सः ॥५३॥
ततो विप्रैः सुहृद्भिश्च विविधान्नैर्मनोरमैः । घृतेन श्राद्धशेषेण भोजनं राघवो व्यधात् ॥५४॥

और खड़ा होकर विजय रत्नजटित डण्डेवाला तथा मयूरपंखसे निर्मित चमर लेकर रामके ऊपर डुलाने लगा । पीछेकी ओर दूसरा जयनामक सेवक पंखा झलने लगा ॥ ३८ ॥ तीसरा सेवक सुवर्णकलशसे सुशोभित, हजारों मुक्तामालाओंसे मण्डित तथा रत्नजटित डण्डेवाला सुविशाल छत्र तानकर खड़ा हो गया ॥ ३९ ॥ उनके पीछे हाथीपर सवार होकर लक्ष्मण शीघ्रतासे चल दिये । लक्ष्मणके हाथीके पीछे सीता आदि स्त्रियें जालियोंमेंसे चारों ओरके दृश्योंको देखती हुई चलीं । पुष्पकविमान भी धीरे-धीरे आकाशमार्गसे उड़ता हुआ चला ॥ ४० ॥ ४१ ॥ उसपर बैठी नगरनिवासिनी स्त्रियें कौतुक देखती हुई रामचन्द्रजीके ऊपर आनन्दसे पुष्पवृष्टि करने लगीं ॥ ४२ ॥ तदनन्तर घुड़सवार, गजसवार और रथसवार सैनिक रामके दोनों ओर पंक्तिबद्ध होकर खड़े हो गये ॥ ४३ ॥ हारकी तरह कतारबद्ध खड़े उन सैनिकोंने रामको प्रणाम किया । रामने भी अपने करकमलोंसे उनके प्रणामोंको स्वीकार किया ॥ ४४ ॥ जब इस प्रकार श्रीराम गजेन्द्रपर सवार होकर धीरे-धीरे चले, तब दूसरे गजोंपर बैठे हुए गायकगण अपनी-अपनी वीणा लेकर मधुर गान करने लगे ॥ ४५ ॥ रामचन्द्रजी रास्तेमें फूलोंके सुहावने बागोंको देखते, अनेक तरहके बाजारोंका अवलोकन करते, वेश्याओंके विविध नृत्योंके देखते, मनको हरण करनेवाले बाजोंको सुनते, अन्यान्य कौतुकोंको निहारते तथा चारों ओर चतुरंगिणी सेनासे घिरे हुए धीरे-धीरे सेनानिवासके लिए कल्पित उत्तम शिविरमें जा पहुँचे । उस स्थानको दूसरी अयोध्याके समान सुरक्षित देखकर राम हाथीसे उतर पड़े ॥ ४६–४८ ॥ उस समय स्त्री-सैनिकोंके द्वारा बारम्बार किये हुए प्रणामोंको स्वीकार करके अपने हाथसे लक्ष्मणका हाथ पकड़कर रमापति राम तम्बूमें गये और वहाँ सिंहासनपर विराजमान हो गये । सीता आदि स्त्रियें भी अपनी-अपनी सवारियोंसे उतरकर तम्बुओंमें जा विराजीं ॥ ४९ ॥ ५० ॥ पश्चात् श्रीरामने लक्ष्मणसे कहा कि तुम मेरे आज्ञानुसार सीमांकी सब दिशाओंमें एक-एक कोसकी दूरीपर सैकड़ों सिपाही अलग अलग खड़े कर दो और आठों दिशाओंमें एक-एक योजनकी दूरीपर सैकड़ों घुड़सवार नियुक्त कर दो । "जो आज्ञा" कहकर लक्ष्मणने सब वैसा ही प्रबन्ध कर दिया ॥ ५१–५३ ॥ पश्चात् ब्राह्मणों

तांबूलैर्दक्षिणां दत्त्वा नानाविप्रेभ्य आदरात् । मुखशुद्धिं स्वयं कृत्वा तस्थौ सिंहासने पुनः ॥५५॥
श्रुत्वा शास्त्रपुराणानि वेदान्तांश्चापि सादरम् । सायंसंध्यादिकं कृत्वा हुत्वा होमं यथाविधि ॥५६॥
सिंहासने समासीनो वेश्यानां नृत्यमुत्तमम् । पश्यन् शृण्वन् गायनं च नीत्वा यामद्वयां निशाम् ५७
ततः सुष्वाप पर्यङ्के सीतया सह राघवः । द्वितीये दिवसे तत्र स्थित्वा रामस्तु कौतुकैः ॥५८॥
नीत्वा समग्रं सुदिनं तृतीये दिवसे पुनः । पूर्ववद्वाद्यघोषाद्यैः शनैः स्थानांतरं ययौ ॥५९॥
क्वचिद्दिनमतिक्रम्य क्वचिद्द्वे त्रीणि राघवः । स्थित्वा पश्यन्कौतुकानि रञ्जयन् जनकात्मजाम्६०॥
शनैः शनैर्ययौ मार्गे मासेनैकेन राघवः । प्राप जीर्णं मुद्गलेन त्यक्तमाश्रममुत्तमम् ॥६१॥
राममागतमाज्ञाय मुद्गलो नूतनाश्रमात् । भागीरथ्या दक्षिणतः प्राप रामांतिकं तदा ॥६२॥
तं दृष्ट्वा राघवश्चापि नत्वा सम्पूज्य सादरम् । वासोगेहे समासीनं पप्रच्छ विनयान्मुनिम् ॥६३॥
त्वयाऽयमाश्रमस्त्यक्तः किमर्थं मुनिसत्तम । तत्त्वं वद महाभाग यथावच्च सविस्तरम् ॥६४॥
तद्रामवचनं श्रुत्वा मुद्गलो वाक्यमब्रवीत् । अद्य धन्योऽस्म्यहं राम निवृत्तं वनवासतः ॥६५॥
यत्त्वां पश्यामि नेत्राभ्यां चिरकालेन राघव । भरतप्राणरक्षार्थं यदा नीता ममाश्रमात् ॥६६॥
दिव्यौषध्यस्तदा जातं पूर्वं ते दर्शनं मम । मयाऽयमाश्रमस्त्यक्तः किमर्थं तद्ब्रवीमि ते ॥६७॥
सान्निध्यं नात्र गङ्गायाः सरय्वा अपि नात्र वै । इति मत्वा मया त्यक्तश्चाश्रमोऽयं महत्तमः ॥६८॥
अत्र सिद्धिं गताः पूर्वं शतशोऽथ सहस्रशः । मुनीश्वरा मयाप्यत्र तपस्तप्तं कियद्दिनम् ॥६९॥
इति राम समाख्यातमाश्रमस्य च मोचने । कारणं च त्वया पृष्टं किमग्रे श्रोतुमिच्छसि ॥७०॥

तथा मित्रोंके साथ बैठकर रामने घृतमिश्रित नाना प्रकारके श्राद्धशेष पकवानोंका भोजन किया ॥ ५४ ॥ आदरसे ब्राह्मणोंको ताम्बूल तथा अनेक प्रकारकी दक्षिणायें देकर रामने मुखशुद्धिके लिए तांबूल खाया और पुनः सिंहासनपर आ विराजे ॥ ५५ ॥ तदनन्तर वेदान्त आदि सत् शास्त्रों तथा पुराणोंकी कथाको प्रेम और श्रद्धासे शान्तिपूर्वक सुना। सायंकाल होनेपर पुनः यथाविधि संध्यावंदन तथा हवन आदिसे निवृत्त होकर सिंहासनपर आ सुशोभित हुए। वहाँ रात्रिके दो पहर तक वेश्याओंका नृत्य-गान देखते-सुनते रहे ॥ ५६ ॥ ५७ ॥ तदनन्तर राम सीताके साथ पलंगपर शयन करनेको चले गये। दूसरा भी सारा दिन रामने आनन्दसे वहीं रहकर बिताया। तीसरे दिन सानन्द बाजे-गाजेके साथ धीरे-धीरे दूसरे पड़ावकी ओर बढ़े ॥ ५८ ॥ ५९ ॥ इसी प्रकार कहीं एक दिन, कहीं दो और कहीं तीन दिन तक निवास करते हुए राम जानकीको प्रसन्न करते तथा विविध कौतुकोंको देखते रहे ॥ ६० ॥ इस प्रकार एक मास बीत जानेपर वे मुद्गल ऋषिके छोड़े हुए एक पुराने तथा पवित्र आश्रममें जा पहुँचे ॥ ६१ ॥ रामको अपने पुराने आश्रमपर आये सुनकर मुद्गलऋषि भागीरथीके दक्षिण तटपर स्थित अपने नवीन आश्रमसे दर्शन करनेके लिए उनके पास आये ॥ ६२ ॥ राघवने उन्हें देखकर नमस्कार किया और उनकी विधिवत् पूजा की। पश्चात् ताम्बूल देकर आदरपूर्वक आसनपर बैठाया और उनसे नम्रतापूर्वक कहा— ॥ ६३ ॥ हे मुनिश्रेष्ठ ! आपने इस आश्रमको क्यों छोड़ दिया ? हे महाभाग ! इसका कारण विस्तारसे आप हमें कह सुनाइये ॥ ६४ ॥ यह सुनकर मुद्गलमुनि कहने लगे—हे राम ! मेरा धन्य भाग्य है कि जो मैं आज बहुत दिनो बाद वनवाससे लौटे हुए आपको अपनी आँखों देख रहा हूँ। पूर्वकालमें भरतके प्राणोंकी रक्षा करनेके लिए जब आप मेरे आश्रमसे दिव्य औषधि ले गये थे, तब मुझे आपका दर्शन मिला था। अब मैंने इस आश्रमको क्यों छोड़ दिया, इसका कारण आपसे कहता हूँ ॥ ६५-६७ ॥ हे प्रभो ! मैंने इस विशाल आश्रमको केवल इसलिए छोड़ दिया है कि यहाँपर गंगा अथवा सरयू इन दोनों पवित्र नदियोंमेंसे कोई भी नदी नहीं है ॥ ६८ ॥ इस आश्रममें निवास करके हजारों मुनीश्वरोंने सिद्धि प्राप्त की है और मैंने भी कुछ दिनों तक यहाँ रहकर तपस्या की है। परन्तु क्या करें, किसी तीर्थके न होनेसे इस स्थानपर बड़ा कष्ट है ॥ ६९ ॥ हे राम ! यह तो मैंने आपके पूछनेके अनुसार इस आश्रमको छोड़नेका कारण कह

तन्मुनेर्वचनं श्रुत्वा पुनस्तं प्राह राघवः। किं कृत्वा तेऽत्र वसतिर्भविष्यति मुने वद ॥७१॥
तद्रामवचनं श्रुत्वा राघवं प्राह मुद्गलः। यद्यत्र सरयूनद्याः संगमो हि भविष्यति ॥७२॥
जाह्नव्या तर्ह्यहं चात्रं वत्स्ये राम यथासुखम्। तत्तस्य वचनं श्रुत्वा राघवः प्राह तं पुनः ॥७३॥
किमर्थं सरयूः श्रेष्ठा कुतः प्राप्ता धरातलम्। तत्त्वं वद महाभाग सविस्तारं ममाग्रतः ॥७४॥
तद्रामवचनं श्रुत्वा मुद्गलो वाक्यमब्रवीत्। तवैव चरितं राम मन्मुखाच्छ्रोतुमिच्छसि ॥७५॥
तर्हि ते संप्रवक्ष्यामि तच्छृणुष्व रघूत्तम। शंखासुरो महान्दैत्यो वेदान् पूर्वं जहार हि ॥७६॥
क्षिप्त्वा तांश्च समुद्रे हि स्वयमासीन्महोदधौ। तदर्थं च त्वया मात्स्यं वपुर्धृत्वा महच्चरम् ॥७७॥
हतः शंखासुरो वेदास्त्वया दत्तास्तु वेधसे। ततो हर्षेण महता पूर्वरूपं त्वया धृतम् ॥७८॥
तदा हर्षेण नेत्राच्चे पतिताश्चाश्रुबिंदवः। हिमालये ततो जाता नदी पुण्या शुभोदका ॥७९॥
साक्षान्नारायणस्यैव आनन्दाश्रुसमुद्भवा। शनैर्बिन्दुसरः प्राप तस्माच्च मानसं ययौ ॥८०॥
एतस्मिन्नन्तरे राम पूर्वजस्ते महत्तमः। वैवस्वतो मनुर्यष्टुमुद्युक्तो गुरुमब्रवीत् ॥८१॥
अनादिसिद्धाऽयोध्येयं विशेषेणापि वै मया। रचिता निजवासार्थमत्र यज्ञं करोम्यहम् ॥८२॥
यदि ते रोचते चित्ते तच्छ्रुत्वा गुरुरब्रवीत्। अत्र तीर्थं वरं नास्ति नास्ति श्रेष्ठा महानदी ॥८३॥
यद्यत्रैवास्ति ते चित्तं यष्टुं नृपतिसत्तम। आनयस्व नदीं रम्यां मानसात्पातकापहाम् ॥८४॥
तद्गुरोर्वचनाद्राजा मनुर्वैवस्वतो महान्। टणत्कृत्य महच्चापं सन्दधे शरमुत्तमम् ॥८५॥
स शरो मानसं भित्त्वा तस्मान्निष्कास्य तां नदीम्। अयोध्यामानयामास पंथानं दर्शयन्निव ॥८६॥
शरमार्गानुसारेणायोध्यायां प्राप वै नदी। महोदधौ पूर्वदेशे मिलिता रघुनन्दन ॥८७॥

सुनाया। आगे क्या पूछना है, सो कहिये ॥ ७० ॥ मुनिके इस वाक्यको सुनकर रामने कहा—हे मुने! आप यह बताइये कि क्या करनेसे आप फिर इस आश्रममें निवास कर सकते हैं? ॥ ७१ ॥ रामके प्रेमपूर्ण प्रश्नको सुनकर मुद्गल ऋषिने कहा—यदि यहाँपर सरयू और गंगाका संगम हो जाय तो मैं बड़े सुखसे रह सकता हूँ। इस बातको सुनकर रामने पुनः उनसे प्रश्न किया—॥ ७२ ॥ ७३ ॥ हे महाभाग! सरयू नदीका इतना श्रेष्ठ माहात्म्य क्यों है और यह कहाँसे धरातलपर आयी है? इन बातोंका विस्तारसे वर्णन करिए ॥ ७४ ॥ मुद्गलने कहा—हे प्रभो! आप अपना ही चरित्र यदि मेरे मुखसे सुनना चाहते हैं ॥ ७५ ॥ तो हे रघूत्तम! मैं आपको सुनाता हूँ, सुनिए। पहिले कभी शंखासुर नामका एक बड़ा भारी राक्षस हुआ था। वह सब वेदोंको हर ले गया ॥ ७६ ॥ उसने उन्हें ले जाकर समुद्रमें डुबो दिया तथा स्वयं भी उसी महासागरमें छिप गया। उसको मारनेके लिए आपने बड़े भारी मत्स्यका रूप धारण किया ॥ ७७ ॥ और उसको मारकर वेदोंकी रक्षा की। वेदोंको लाकर आपने ब्रह्माको दिया और प्रसन्नतापूर्वक पुनः अपना पूर्वरूप धारण कर लिया ॥ ७८ ॥ उस समय आपके नेत्रोंसे आनंदाश्रुकी बूँदें टपक पड़ीं। हिमालयपर गिरी हुई आप नारायणके उन हर्षाश्रुकी बूँदोंने एक पवित्र तथा निर्मल जलवाली नदीका रूप धारण कर लिया। आगे चलकर वे कासार और कासारसे मानसरोवरके रूपमें परिणत हो गयीं ॥ ७९ ॥ ८० ॥ हे राम! उसी समय आपके पूर्वज महात्मा वैवस्वत मनुने यज्ञ करनेकी इच्छा करके अपने गुरुसे कहा—॥ ८१ ॥ इस अयोध्यापुरीके अनादिकालसे स्थित रहनेपर भी मैंने अपने निवासके लिए इसकी कुछ विशेषतापूर्वक रचना करवायी है। इस कारण यदि आप कहें तो मैं इस नगरीमें यज्ञ करूँ। तब गुरुने कहा कि देखिए, न तो यहाँ कोई पवित्र तीर्थ है और न कोई बड़ी नदी ही है ॥ ८२ ॥ ८३ ॥ इसलिये यदि आपकी यहीं यज्ञ करनेकी इच्छा हो तो हे नृपतियोंमें श्रेष्ठ नृप! मानसरोवरसे सुन्दर तथा पापोंको नष्ट करनेवाली एक नदीको यहाँ ले आइए ॥ ८४ ॥ गुरुके इस वचनको सुनकर महान् राजा वैवस्वत मनुने अपने विशाल धनुषको चढ़ा तथा टंकोर करके बाण चलाया ॥ ८५ ॥ वह बाण मानसरोवरको भेदकर उसमेंसे निकली नदीके आगे-आगे चलकर रास्ता दिखाते हुए अयोध्या ले आया। बाणके मार्गका अनुसरण करती हुई वह नदी अयोध्या आयी तथा वहाँसे आगे जाकर पूर्वी महा-

आनीता सा शरेणैव शरयूश्चेति कथ्यते । सरोवरात्समुद्भूता सरयूश्चेति केचन ॥८८॥
ततो भगीरथेनेयं कपिलक्रोधवह्निना । विनिर्दग्धान् पूर्वजान् वै सागरान् प्रेषितुं दिवम् ॥८९॥
भागीरथी समानीता त्वत्पादाब्जसमुद्भवा । तपसा शंकरं तोष्य सरय्वा मिलिताऽथ सा ॥९०॥
वरदानात्कलौ शंभोर्गङ्गा ख्यातिं गमिष्यति । अग्रे सागरपर्यंतमेनां गङ्गां वदंति हि ॥९१॥
तव पादसमुद्भूता या विश्वं पाति जाह्नवी । इयं तु नेत्रसंभूता किमद्याग्रे वदाम्यहम् ॥९२॥
कोटिवर्षसहस्रैश्च कोटिवर्षशतैरपि । महिमा सरयूनद्याः कोऽपि वक्तुं न वै क्षमः ॥९३॥
इति राम समाख्यातं यथा पृष्टं त्वया मम । मुनेस्तद्वचनं श्रुत्वा लक्ष्मणं प्राह राघवः ॥९४॥
सरयूमानयस्वात्र शरं मुक्त्वा ममाज्ञया । तथेति रामवचनाद्धृत्वा चापं स लक्ष्मणः ॥९५॥
शरं मुक्त्वा तटं भित्त्वा सरयूमानयत्क्षणात् । सरयू सा द्विधा भूत्वा मुद्गलाश्रममाययौ ॥९६॥
जाह्नव्या मिलिता सापि तां दृष्ट्वा राघवोऽब्रवीत् । अत्र स्थित्वा लक्ष्मणेन दारितेयं महानदी ॥९७॥
अतो दद्रीति नाम्नाऽत्र नगरी ख्यातिमेष्यति । दद्रीयं जगतीमध्ये बदर्याश्च यवाधिका ॥९८॥
भविष्यति न संदेहस्तव वासाद्विशेषतः । ततः सीतां समाहूय राघवो वाक्यमब्रवीत् ॥९९॥
मुद्गलस्याश्रमेऽत्रैव सा नीता सरयूर्नदी । पश्य सौमित्रिणा मुक्त्वा शरं मन्नामचिह्नितम्॥१००॥
नारीभिर्मातृभिः सीते पुष्पकेणातिभास्वता । वृद्धा सा सरयूर्यत्र संगताऽस्ति महानदी ॥१०१॥
जाह्नव्या संगमं त्वं हि गच्छस्व गुरुणा द्विजैः । पूजयित्वा सविस्तारं यथोक्तं वचनं पुरा ॥१०२॥
आगच्छस्व ततः शीघ्रमत्र त्वं मम सन्निधौ । विशेषान्मुद्गलस्यापि सन्निधावद्य वै पुनः ॥१०३॥
नवीनसरयूनद्या भागीरथ्यास्तु संगमे । पूजनं त्वं मया साकं कर्तुमर्हसि मैथिलि ॥१०४॥

सागरमें मिल गयी ॥८६॥८७॥ शरके द्वारा लायी जानेसे लोग उसको 'शरयू' नदी कहने लगे । अथवा सरोवरसे निकलकर आनेके कारण उसका 'सरयू' नाम पड़ा, कुछ लोगोंका ऐसा कथन है ॥ ८८ ॥ उसके बाद राजा भगीरथ कपिल मुनिकी क्रोधाग्निसे जलाये गये अपने पूर्वज सगर-पुत्रोंको स्वर्ग भेजनेकी इच्छासे आपके चरणारविन्दसे प्रादुर्भूत भागीरथी गंगाको ले आये । बादमें शंकरजीको तपसे प्रसन्न करके उस नदीको सरयूसे ला मिलाया ॥ ८९ ॥ ९० ॥ शकरभगवान्के वरदानसे गंगाकी बड़ी भारी प्रसिद्धि हुई तथा समुद्र तक उसको लोग गंगा कहने लगे ॥ ९१ ॥ हे प्रभो ! आपके चरणकमलोंसे निकली हुई गंगा समस्त विश्वको पवित्र करने लगी । वैसे ही आपके नेत्रजलसे उत्पन्न होकर यह सरयू भी लोगोंको पावन करने लगी । हे भगवन् ! अब मैं आगे क्या कहूँ ? ॥ ९२ ॥ करोड़ों वर्षोंमें भी इस सरयू नदीकी महिमाका वर्णन कोई नहीं कर सकता ॥ ९३ ॥ हे राम ! आपने जो पूछा था, सो मैंने कह सुनाया । मुनिके इस वाक्यको सुनकर रघुपति रामचन्द्रजीने लक्ष्मणसे कहा—॥ ९४ ॥ तुम बाण छोड़ तथा सरयूके तटका भेदन करके उसे यहाँ ले आओ । लक्ष्मणने वैसा ही किया और वह सरयू दो भागोंमें विभक्त होकर क्षणभरमें मुद्गलऋषिके प्राचीन आश्रममें आ पहुँची ॥ ९५ ॥ ९६ ॥ उसको अकेली ही नहीं, किन्तु जाह्नवीके संगम सहित आयी हुई देखकर रामने कहा कि लक्ष्मण दारण (चीर) करके इस नदीको यहाँ ले आये हैं ॥ ९७ ॥ इस लिए इस जगहपर दद्री नामकी प्रसिद्ध नगरी बसेगी । वह दद्री नगरी पृथ्वीतलमें बदरीनाथ धामसे भी जौभर बढ़कर पुनीत होगी ॥ ९८ ॥ इसमें संदेह नहीं है । विशेष करके आपके यहाँ निवास करनेसे इसको और भी अधिक ख्याति होगी । पश्चात् रामने सीताको बुलाकर कहा—॥९९॥ सीते ! देखो, सुमित्रापुत्र लक्ष्मण मेरे नामसे चिह्नित बाण छोड़कर सरयू नदीको यहाँ मुद्गल मुनिके आश्रममें ले आये हैं ॥ १०० ॥ अब तुम हमारी माताओं, अन्य स्त्रियों, गुरुजनों तथा ब्राह्मणोंको साथ ले तथा इस पुष्पक विमानपर सवार होकर जहाँ सरयू तथा गंगाका संगम है, वहाँ जाओ और अपनी प्रतिज्ञाके अनुसार विधिवत् उनकी पूजा कर आओ ॥ १०१ ॥ १०२ ॥ वहाँसे लौटकर शीघ्र ही मेरे तथा इन मुद्गल मुनिके सम्मुख इस नवीन सरयू तथा भगवती भागीरथीके संगमका

तथेति रामवचनमंगीकृत्य विदेहजा। पूजासंभारमादातुं विवेश वसनगृहम् ॥ १०५॥
इति श्रीमदानन्दरामायणे यात्राकाण्डे सरयूद्विवाकरणं नाम चतुर्थः सर्गः ॥ ४ ॥

पञ्चमः सर्गः

(कुम्भोदरोपाख्यान)

श्रीरामदास उवाच

तवो गृहीत्वा संभारान् पूजार्थं जानकी जवात्। कौसल्यादिश्वश्रूभिस्तु पुष्पकं चारुरोह सा ॥ १ ॥
क्षणेन मुदा सरयूर्यत्र सा गङ्गया शुभा। सङ्गताऽस्ति महाश्रेष्ठा तत्र प्राप विदेहजा ॥ २ ॥
पतिं विनाऽग्निना नारी सीमामुल्लंघ्य न व्रजेत्। स दोषोऽत्र न विज्ञेयः सीतायात्रा विहायसा ॥ ३ ॥
उत्तीर्य सा विमानाग्रयान्नमस्कृत्वाऽथ सङ्गमम्। पुरोधसा चोदिता सा नारिकेलं सवायनम् ॥ ४ ॥
भागीरथ्यै समर्प्याथ स्नात्वा चैव यथाविधि। सगमं पूजयामास चोपस्कारैर्यथाविधि ॥ ५ ॥
सुरामांसोपहारैश्च पक्वान्नैर्बलिभिस्तथा। पट्टकूलादिभिर्वस्त्रैर्मुक्ताहारैः सचंदनैः ॥ ६ ॥
दिव्यैराभरणैश्चित्रैर्वायनाद्यैः सविस्तरम्। ततः सुवासिनीः पूज्य पूजयित्वा त्वरुंधतीम् ॥ ७ ॥
वसिष्ठं ब्राह्मणांश्चापि भोजयामास विस्तरैः। पट्टकूलादिभिर्वस्त्रैर्दिव्यैराभरणादिभिः ॥ ८ ॥
सुवासिनीर्ब्राह्मणांश्च तोषयामास मैथिली। स्वयं कृत्वोपहारं न राघवार्थमुपोषिता ॥ ९ ॥
ययौ यानेन शीघ्रं सा राघवस्यान्तिकं मुदा। ततः श्रीरामचन्द्रोऽपि सीतया गुरुणा द्विजैः ॥१०॥
गङ्गयोः सङ्गमे चक्रे पूजनं स यथाविधि। यथा कृतं च वैदेह्या तस्माच्चापि शताधिकम् ॥११॥
ततः सहस्रशो विप्रान् भोजयामास सादरम्। दत्त्वा दानान्यनेकानि गोहस्तिरथवाजिनाम् ॥१२॥
ततो भुक्त्वा स्वयं रामः सीतया बन्धुभिर्जनैः। सिंहासने समासीनो सौमित्रिमिदमब्रवीत् ॥१३॥

मेरे साथ मिलकर पूजन करो ॥ १०३ ॥ १०४ ॥ तब विदेहराजकी पुत्री सीता "जो आज्ञा" कहकर पूजाकी सामग्रियें लेनेको तंबूमें गयी ॥ १०५ ॥ इति श्रीमदानन्दरामायणे यात्राकाण्डे भाषाटीकायां सरयूद्विधाकरणं नाम चतुर्थः सर्गः ॥ ४ ॥

श्रीरामदासजीने कहा—बादमें जानकी पूजाका सब सामान लेकर कौसल्या आदि सासुओं तथा अन्य बहुओंके साथ शीघ्रतासे पुष्पक विमानपर जा बैठीं ॥ १ ॥ क्षण भरमें विदेहराजकी पुत्री सीता उस पुराने सङ्गमपर जा पहुँचीं, जहाँपर कि सरयू पवित्र गङ्गा नदीसे मिली हैं ॥ २ ॥ पत्नीको पतिके विना आगेकी सीमा नहीं लाँघनी चाहिये। यह दोष यहाँ सीताको नहीं लग सकता। क्योंकि सीताका गमन आकाशमार्गसे हुआ था ॥ ३ ॥ वहाँ पहुँचनेपर सीता विमानसे नीचे उतरीं और सङ्गमको नमस्कार किया। पश्चात् पुरोहित-के कथनानुसार सीताने वायन (ऐपन) सहित नारियल भागीरथीको समर्पण करके उसमें विधिवत् स्नान किया। फिर सुरा मांस-पकवान आदिकी बलिसे, दुपट्टा आदि सुन्दर वस्त्रोंसे, दिव्य आभूषणोंसे, मुक्ताके हारसे, चन्दनसे तथा वायन आदिकी पूजाके उपकरणोंसे विधिवत् तथा विस्तारपूर्वक सीताने संगमका पूजन किया। तदनन्तर पतिपुत्रवती सोहागिन स्त्रियोंकी पूजा करके सीताने अरुन्धतीका पूजन किया ॥ ४–७ ॥ तब उनको तथा वसिष्ठ आदि सब ब्राह्मणोंको भोजन कराके सुवासिनी स्त्रियोंको दुपट्टों, धोतियों तथा दिव्य आभूषणोंसे सीताने संतुष्ट किया। स्वयं निराहार रहकर सीताने रामके कल्याणार्थ उपवास किया ॥८॥९॥ तदनन्तर विमानपर सवार होकर आनन्दसे शीघ्रतापूर्वक रघुनन्दन रामके पास आ गयीं। रामने भी सीताको, गुरु वसिष्ठको तथा विप्रोंको साथ लेकर सीताकी की हुई पूजासे सौगुने धूम-धाम तथा विधिसे गङ्गा-सरयूके सङ्गमकी पूजा की ॥ १० ॥ ११ ॥ वहाँ उन्होंने बड़े आदरभावसे हजारों विप्रोंको भोजन कराया। अनेक गायें, हाथी, घोड़े तथा

ज्ञातव्यो मम वासोऽत्र रात्रीर्नव रघूत्तम । सीमाचारान् कुरुष्व त्वं शासनं यन्मयोच्यते ॥१४॥
ब्रह्मचारी गृहस्थो वा वानप्रस्थाश्रमी यतिः । यः कश्चिद्वा समायाति पथिकः स ममाज्ञया ॥१५॥
मया संपूजितो नैव गन्तुं देयः समन्ततः । मयाऽदृष्टो गतः कश्चित्तदा वः शासनं मम ॥१६॥
तद्रामवचनं श्रुत्वा तथा चक्रे स लक्ष्मणः । च्यवनो मुनिवर्यस्तु ज्ञात्वा रामं समागतम् ॥१७॥
दर्शनार्थं ययौ शीघ्रं रामेणापि सुपूजितः । स्थित्वासने वस्त्रगेहे राघवं वाक्यमब्रवीत् ॥१८॥
राम राजीवपत्राक्ष गङ्गाया दक्षिणे तटे । आश्रमः कीकटे देशे ममास्ति परमः शुभः ॥१९॥
कंदमूलफलार्थं हि विघ्नं कुर्वन्ति मागधाः । ममाश्रमे राजदूतास्तेभ्यो रक्षा विधीयताम् ॥२०॥
च्यवनस्य वचः श्रुत्वा टणत्कृत्य महद्धनुः । बाणं मुक्त्वाऽऽश्रमात्तस्य परितः परिखोपमाम्॥२१॥
चकार रेखां बाणेन दुष्टैर्गंतुं च ह्यक्षमाम् । रामबाणकृता रेखा यत्र तत्र पुरी शुभा ॥२२॥
रामरेखेति नाम्नाऽऽसीत्तया चैव मता नदी । च्यवनश्च ततो हृष्टो राघवं वाक्यमब्रवीत् ॥२३॥
निंद्यः स कीकटो देशो वर्तते रघुनंदन । तव वाक्याद्भविष्यंति तत्र पुण्यस्थलानि हि ॥२४॥
तर्हि त्वयाऽद्य वक्तव्यं वचनं मे सुखास्पदम् । तन्मुनेर्वचनं श्रुत्वा वाक्यं रामस्तमब्रवीत् ॥२५॥
कीकटेषु गया पुण्या नदी पुण्या तु पुनपुना । आश्रमस्ते महापुण्यः पुण्यं राजवनं परम् ॥२६॥
भविष्यति न सन्देहो मम वाक्यान्मुनीश्वर । च्यवनस्तेन संतुष्टो रामं दृष्ट्वाऽऽश्रमं ययौ ॥२७॥
एतस्मिन्नन्तरे तस्य सत्रे रामेण निर्मिते । प्रत्यहं कोटिशो विप्रा भुञ्जन्ति यतिभिः सह ॥२८॥
कुंभोदरो मुनिः प्रागात्सीमाचारांतिकं तदा । गङ्गायात्राप्रसंगेन गयां गन्तुं समुद्यतः ॥२९॥
समागतः प्रयागाच्च दूतान्दृष्ट्वाऽब्रवीद्वचः । हे दूता उत्तरं देयं यूयं कस्याज्ञया स्थिताः ॥३०॥

रथ उन्हें दानमें दिये ॥ १२ ॥ उनको भोजन करानेके बाद भाई-बन्धुओं तथा अन्यान्य लोगोंके साथ सीता तथा स्वयं रामने भी भोजन किया। तत्पश्चात् सिंहासनपर बैठकर उन्होंने लक्ष्मणसे कहा—॥ १३ ॥ हे रघूत्तम ! मैं इस जगह नौ दिन तक निवास करूँगा। इसलिए मेरे कहनेसे तुम सीमापर खड़े दूतोंको आज्ञा दो कि कोई भी यात्री, ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ तथा संन्यासी बिना मेरी पूजा ग्रहण किये न जाने पाये। यदि कोई चला गया और मुझे ज्ञात हुआ तो मैं दूतोंको दण्ड दूँगा ॥ १४-१६ ॥ रामके वचन सुनकर लक्ष्मणने वैसी ही आज्ञा दे दी। उधर च्यवन मुनिने जब सुना कि यहाँ रामचन्द्र आये हुए हैं तो वे रामके दर्शनार्थं वहाँ आये। रामने उनकी पूजा की। पश्चात् तम्बूमें सुन्दर आसनपर विराजमान होकर मुनिने रामसे कहा—॥ १७ ॥ १८ ॥ हे कमलपत्रके समान नेत्रोंवाले राम ! मगध देशमें गङ्गाके दक्षिणी तटपर मेरा एक परम रमणीक आश्रम है ॥ १९ ॥ परन्तु मेरे उस आश्रममें मगध देशके दूत फल-मूल आदि लेनेमें बड़ा विघ्न डालते हैं। इसलिए आप उन विघ्नोंसे मेरी रक्षा करें ॥ २० ॥ च्यवनकी बात सुनकर रामने धनुषका टंकोर करके एक बाण छोड़ा। जिससे च्यवन-आश्रमके चारों ओर खाईंके समान गहरी लकीर खिंच गयी, जिसको लांघना उन दुष्टोंके लिए असंभव हो गया। जहाँ रामके बाणकी रेखा खिंची थी, वहाँपर "रामरेखा" नामकी सुन्दर नगरी बसी और रामरेखा नामकी नदी भी प्रवर्तित हो गयी। इसके बाद च्यवनऋषि प्रसन्न होकर रामचन्द्रजीसे बोले-॥ २१-२३ ॥ हे रघुनन्दन ! अभी कीकट देश निन्द्य माना जाता है। आपके कहनेसे वह भी पुण्यस्थान अवश्य बन जायगा। इसीलिए आप मुझे सुख देनेवाला कोई वचन आज कहें। मुनिके इस वचनको सुनकर रामजीने सहर्ष कहा—॥ २४ ॥ २५ ॥ हे मुनीश्वर ! मेरे कहनेसे कीकट देशमें गया, पुनपुना नदी, आपका आश्रम तथा राजवन (राजगृह) पुण्यस्थल होंगे। इसमें आप कुछ भी संदेह न मानें। श्रीभगवान्के इस कथनसे संतुष्ट होकर च्यवचनऋषि रामजीसे आज्ञा लेकर अपने आश्रमको चले गये ॥ २६ ॥ २७ ॥ इसके बाद रामजीके द्वारा स्थापित अन्नक्षेत्रमें प्रतिदिन करोड़ों ब्राह्मण और यति भोजन करने लगे ॥ २८ ॥ ऐसा होनेपर एक दिन गङ्गायात्राके प्रसङ्गमें कुम्भोदर नामके मुनि प्रयागसे रामजीकी भोजनशालाके लिए नियत की हुई सीमापर आये। वहाँ दूतोंको देखकर वे बोले—हे दूतो !

आकाशचुंबिनश्चित्रा इमेऽग्रे कस्य वै ध्वजाः । हनुमत्कोविदारांडजेशबाणांकिताः शुभाः ।।३१।।
श्वेतनीलहरित्पीतवर्णाः परमशोभनाः । दृश्यंतेऽग्रे पताकाश्च श्रूयते जयनिःस्वनः ।।३२।।
तत्तस्य वचनं श्रुत्वा दूताः प्रोचुस्त्वरान्विताः । रामो राजीवपत्राक्षोऽयोध्यायाः पालकः प्रभुः ।।३३।।
सोऽग्रे यात्रार्थमायातो वयं तस्याज्ञया स्थिताः । सत्रमन्नस्य रामेण निर्मितं चात्र वर्तते ।।३४।।
क्षुधार्तस्त्वं सुखं गच्छ भुक्त्वा पीत्वा सुखं व्रज । तत्तेषां वचनं श्रुत्वा परिवृत्य मुनिः पुनः ३५।।
आगतो येन मार्गेण तेन मार्गेण संययौ । गच्छन्तं तं मुनिं दृष्ट्वा रामदूतास्त्वरान्विताः ।।३६।।
रुद्ध्वा मार्गं मुनेस्तस्य वचनं प्रोचुरादरात् । किमर्थं त्वं परावृत्य मुने गच्छसि वै पुनः ।।३७।।
आगतोऽसि पथा येन तेनैव त्वं वदस्व नः । इति तेषां वचः श्रुत्वा निर्बन्धान्मुनिरप्यसौ ।।३८।।
तूष्णीं स्थित्वा क्षणं ध्यात्वा निश्चयं कृतवान् हृदि । इदानीं राघवोऽयोध्यां यात्रां कृत्वा गमिष्यति ३९।।
नानादेशेषु सर्वत्र नृणां तद्दर्शनं कथम् । भविष्यति तथाऽन्यत्र रामतीर्थानि भूतले ।।४०।।
भविष्यन्ति कथं नृणां महत्पापहराणि च । कथं रामेश्वरा भूम्यां भविष्यन्ति गतिप्रदाः ।।४१।।
अतः किञ्चित्करोम्यद्य येन रामस्तु भूतले । यात्रोद्देशेन सर्वत्र सीतया सह यास्यति ।।४२।।
अनेन लोकशिक्षाऽपि भविष्यति न संशयः । इति निश्चित्य स मुनिः प्राह दूतान्स्मयन्निव ।।४३।।
दूताः शृणुत मे वाक्यं हतो येन दशाननः । ब्रह्मपुत्रो बन्धुपुत्रैर्न कृतं तीर्थसेवनम् ।।४४।।
तथा यज्ञः कृतो नैव तस्यान्नं नाहमश्नियाम् । दीयतां मम मार्गो हि भवद्भिर्वचनं मम ।।४५।।
कथनीयं राघवाय यात्रायज्ञान् करिष्यति । इति तस्य वचः श्रुत्वा विमस्याविष्टमानसाः ।।४६।।
दत्त्वा मार्गं शापभीत्या दूता रामांतिकं ययुः । रामं नत्वा शनैस्तस्य कर्णे वृत्तं न्यवेदयन् ।।४७।।
राघवोऽपि मुनेस्तस्य ज्ञात्वाऽभिप्रायमुत्तमम् । सर्वं वृत्तं सभामध्ये चकार सस्मितः स्फुटम् ।।४८।।

तुम लोग किसकी आज्ञासे यहाँ ठहरे हो ? ये सामने गगनस्पर्शी तथा चित्र-विचित्र हनुमान्, कोविदार, गरुड़ और बाणसे चिह्नित श्वेत, नील, हरित एवं पीत रंगकी परम सुन्दर पताकायें किसकी फहरा रही हैं ? यह जयशब्द किसका सुनाई दे रहा है ? ।। २९–३२ ।। मुनिके वचन सुनकर दूत बोले—कमलनयन और अयोध्याके पालक प्रभु रामचन्द्रजी यात्राके लिए यहाँ आये हुए हैं। उनकी आज्ञासे ही हम लोग यहाँ उपस्थित हैं। उन्हीं रामजीके द्वारा स्थापित अन्नक्षेत्र यहाँ है। यदि आप भूखे हों तो सुखसे वहाँ चलिए और भोजनादि करके जाइये। उनके वचन सुनकर मुनि लौट पड़े और जिस मार्गसे आये थे, उसी मार्गसे फिर जाने लगे। जाते हुए मुनिको देख शीघ्र दूत लोग उनकी राह रोककर सादर बोले—हे मुने ! आप जिस मार्गसे आये थे, उसी मार्गसे फिर लौटे क्यों जा रहे हैं ? आप जिस कार्यसे आये हों, उसे हम लोगोंको बताइए। दूतोंके इस आग्रह भरे वचनको सुना तो चुपचाप खड़े होकर थोड़ी देर हृदयमें सोच करके मुनिने विचार किया कि यदि इस समय रामचन्द्रजी यात्रा करके अयोध्या चले जायँगे ।। ३३–३९ ।। तब अन्यान्य देशोंके मनुष्योंको उनका दर्शन कैसे मिलेगा और दूसरे स्थानोंपर मनुष्योंके बड़ेसे बड़े पापोंको नष्ट करनेवाला रामतीर्थ कैसे बनेगा ? अनेक मोक्ष-दायक रामेश्वर कैसे स्थापित होंगे ? इस लिए आज मैं कोई ऐसा उपाय करता हूँ कि जिससे रामचन्द्रजी संसारमें सब स्थानोंपर यात्राके उद्देश्यसे सीताजीके साथ जायँ ।। ४०–४२ ।। इस यात्रामें लोगोंको शिक्षा भी मिलेगी। इसमें संदेह नहीं है। ऐसा विचार करके कुछ हँसते हुए मुनिने दूतोंसे कहा—।। ४३ ।। हे दूतो ! मेरे वचन सुनो। जिसने ब्राह्मणपुत्र दशानन रावणको मारा और भाई एवं पुत्रोंके सहित न तीर्थसेवन किया और न यज्ञ ही किया, उस रामके अन्नको मैं नहीं खाऊँगा। आप लोग मुझे जाने दें। मेरी बात रामसे कहियेगा। इसे सुनकर वे अवश्य तीर्थयात्रा तथा यज्ञ करेंगे। मुनिके इस वचनको सुनकर वे घबड़ाये हुए दूत शापके डरसे मुनिको मार्ग देकर रामचन्द्रजीके पास गये। वहाँ पहुँचकर रामजीको प्रणाम करके उनके कानमें उस मुनिकी बातको धीरेसे निवेदन कर दिया ।। ४४–४७ ।। श्रीरामने भी मुनिके उस उत्तम अभिप्रायको जानकर सब बात

मंत्रिभिर्बन्धुभिश्चैव वसिष्ठेन पुरोधसा । मन्त्रयित्वा मुनेर्वाक्यं सत्यं मेने रमापतिः ॥४९॥
ततो निश्चितवान् रामः सभामध्ये पुरोधसा । आदौ कार्या तीर्थयात्रा यज्ञाः कार्यास्ततः परम् ॥५०॥
ततो रामाज्ञया दूता गत्वाऽयोध्यां पुरीं प्रति । तद्वृत्तं च सविस्तारं सुमंत्राय न्यवेदयन् ॥५१॥
सुमंत्रोऽपि च तद्वृत्तं श्रुत्वा वस्त्रधनानि च । उष्ट्राश्वरथनागाद्यैः प्रेषयामास सादरम् ॥५२॥
पुष्पकं च तदा प्राह रामः शक्तिस्तवास्ति हि । यद्यप्यद्य गिरा मे त्वं शीघ्रमेव यथाबलम् ॥५३॥
उष्ट्राश्वरथनागाद्यैर्निवासं च तवोदरे । करिष्यंति सविस्तारं तथा विस्तीर्णतां भज ॥५४॥
सर्वेषां भारवाहार्थं शक्तिरस्तु यथासुखम् । कस्मिन्काले सूक्ष्मरूपं महद्रूपं कदापि च ॥५५॥
यथाकामा मया शक्तिस्तव दत्ता न संशयः । तच्छ्रुत्वा रामवचनं पुष्पकं दशयोजनम् ॥५६॥
समंततस्तथोच्चं हि व्यवर्धत द्वियोजनम् । शताट्टालैश्च सोपानैर्हेमरत्नोद्भवैश्चितम् ॥५७॥
कोटिसूर्यप्रतीकाशं नानाधातुविचित्रितम् । कलशैः शतसाहस्रैर्हेमरत्नविघट्टितैः ॥५८॥
जालरंध्रैर्गवाक्षैश्च मुक्ताहारैर्विभूषितम् । कपाटैर्दर्पणोद्भूतैर्जलयंत्रशतैर्वृतम् ॥५९॥
पुष्पाणां वाटिकाभिश्च नानापक्षिनिनादितम् । सर्पमस्तकजा यत्र शतशोऽथ सहस्रशः ॥६०॥
निशायां मणयश्चित्राः प्रभा विस्तारयंति हि । गोपुराणि च भासन्ते शतशोऽथ सहस्रशः ॥६१॥
तत्र प्राथमिकायां तु पंक्तौ श्रीराघवाज्ञया । उष्ट्राश्वरथनागादीन् दूताश्चारोहयंस्तदा ॥६२॥
द्वितीयायां काष्ठचयान् तृणोलूखलमूसलान् । तृतीयायां धान्यराशीन् पाकामत्राणि वै ततः ॥६३॥
पंचम्यां तु शतघ्नीश्च ततः शस्त्राण्यनेकशः । तत ऊर्ध्वं राजवाहानश्वोष्ट्ररथवारणान् ॥६४॥
अष्टमायां राजकोशान् वस्त्रधान्यविनिर्मितान् । हट्टशालास्ततः श्रेष्ठा दासीदासांस्ततः परम् ॥६५॥
नटादीनां ततः शाला वारस्त्रीणां ततः परम् । ततो वीरानग्रिगांश्च तेभ्यः श्रेष्ठांस्ततः परम् ॥६६॥
गच्छंति तुरगैर्ये तान् पंचदर्शपिता ततः । रथयोग्यांस्ततोऽप्यूर्ध्वं गजांश्चैव ततः परम् ॥६७॥

सभामें मुसकाते हुए कही ॥ ४८ ॥ मन्त्रियों, बन्धुओं तथा पुरोहित वसिष्ठजीके साथ परामर्श करके रमापति रामने कुम्भोदर मुनिके वाक्यको सत्यसंगत माना ॥ ४९ ॥ इसके बाद सभामें पुरोहितके साथ परामर्श करके रामचन्द्रजीने निश्चय किया कि पहले तीर्थयात्रा और उसके बाद यज्ञ करना चाहिए ॥ ५० ॥ ऐसा निर्णय हो जानेके बाद रामचन्द्रजीकी आज्ञासे दूतने अयोध्या जाकर मन्त्री सुमन्त्रसे सब हाल विस्तारपूर्वक कहा। सुमन्त्रने भी उस समाचारको सुनकर सादर वस्त्र-धन आदि ऊँट, घोड़ा, रथ और हाथी आदिपर लदवाकर रामजीके पास भेजा ॥ ५१ ॥ ५२ ॥ तब रामने पुष्पकविमानसे कहा—तुम्हारेमें अपार शक्ति है। अतएव तुम अपने बलके अनुसार विस्तृत बनो। क्योंकि तीर्थयात्राके समय ऊँट, घोड़ा, रथ और हाथी आदि भी तुम्हारे अन्दर ही निवास करेंगे ॥ ५३ ॥ ५४ ॥ कामके अनुरूप अर्थात् जैसा कार्य हो, वैसा तुम्हारा बल भी हो जाय। ऐसी शक्ति तुम्हें मैंने दी है। इसमें संशय नहीं है। रामजीके इस वचनको सुनकर सौ अट्टालिकाओं और सोने तथा रत्न आदिकी सीढ़ियोंवाला, करोड़ों सूर्योंकी कान्तिवाला, अनेक प्रकारकी धातुओंसे चित्रित, सुवर्ण तथा रत्नजटित सहस्रशः कलशोंसे युक्त, मोतियोंके द्वारा विभूषित, खिड़कियों तथा चिकोंसे युक्त, काचमढ़े फाटकों तथा सैकड़ों फव्वारोंसे शोभित, भिन्न-भिन्न प्रकारके पक्षियों द्वारा कलरवित, पुष्पवाटिकाओंसे मण्डित, जिनमें सैकड़ों-हजारोंकी संख्यामें प्रधान द्वार भासित हो रहे थे, इस प्रकार वह पुष्पकविमान सर्वविध साधनोंसे सम्पन्न, दस योजन लम्बा तथा दो योजन ऊँचा हो गया ॥ ५५-६१ ॥ ऐसा हो जानेपर भगवान् रामचन्द्रकी आज्ञासे दूतोंने पहली पंक्तिकी अट्टालिकामें ऊंट, घोड़े, रथ तथा हाथी आदिको चढ़ा दिया। दूसरी पंक्तिकी अट्टालिकामें काष्ठका ढेर तथा घास, ओखली-मूसल आदि, तीसरी अट्टालिकामें अन्नसमूह, चौथीमें भोजनालयके पात्र, पाँचवींमें तोप आदि, छठीमें अन्य विविध प्रकारके शस्त्र, सातवीं अट्टालिकामें राजघरानेके वाहन, आठवींमें राजकोश, नवीं अट्टालिकामें वस्त्र-अन्न आदिसे युक्त श्रेष्ठ बाजार, दसवीं अट्टालिकामें

आरोहयंस्ततो दूतान् राज्ययोग्याधिकारिणः । सुहृत्पुत्रजनस्त्रीभिर्नृपान्मांडलिकांस्ततः ॥६८॥
ततोऽप्यूर्ध्वं राघवस्य सुहृदश्च पुरौकसः । ततो भोजनशालाश्च विंशच्चैव मनोरमाः ॥६९॥
पाकशालास्ततः पंच स्त्रीणां भोक्तुं ततो दश । तत उर्ध्वं हि बन्धूनां मातृणां च गृहाणि च ॥७०॥
तत ऊर्ध्वं राघवस्य सभा सिंहासनान्विता । ततोऽप्यूर्ध्वं च सीताया गेहं नानासखीवृतम् ॥७१॥
ततोऽप्यूर्ध्वं राघवस्य क्रीडास्थानं तु सीतया । ततोऽप्यूर्ध्वं षष्टितमायां राज्ञां सुहृदां स्त्रियः । ७२॥
ततः स्त्रीणां सभार्थं हि सप्त शालाः शुभावहाः । चित्रशाला द्वादशाथ वयसां पंच वै ततः ॥७३॥
पुष्पारामदीकानां हि पंच शालास्ततः शुभाः । ततोऽप्यूर्ध्वं तु शालायां घटीयंत्रादिकौतुकम् ॥७४॥
व्याघ्रादीनां ततः शाला त्वेका रम्याऽतिविस्तृता। ततोऽप्यूर्ध्वमग्निहोत्रशाला श्रीराघवस्य च ॥७५॥
ततः शिवार्चनस्यैका शाला ज्ञेया शुभावहा । विप्राणां च ततः शालाः शाला विद्यार्थिनां ततः॥७६॥
यतीनां च ततः शाला वाद्यशाला ततः परम् । जलशाला ततः श्रेष्ठा जलयंत्रान्विता ततः ॥७७॥
ततोऽप्यूर्ध्वमार्द्रवस्त्रशोषणार्थमनुत्तमाः । शतशालास्त्विमाः पूर्णाश्चक्रुस्ते रामसेवकाः ॥७८॥
रामोऽपि दृष्ट्वा ताः सर्वा आरुरोह स्वयं तदा । ततो नदत्सु वाद्येषु स्तुवत्सु मागधादिषु ॥७९॥
नर्तत्सु वारनारीषु पताकासु चलत्सु च । प्रकाशयन् दश दिशो विमानं राघवाज्ञया ॥८०॥
अगमत्पूर्वदिग्भागात् प्रतीचीं तपनोपमम् । विहायसा वायुवेगं किंकिणीजालमण्डितम् ॥८१॥
ययौ प्रयागाभिमुखं श्रीरामध्वजचिह्नितम् ।

विष्णुदास उवाच

कथं रामस्य चत्वारो ध्वजाः प्रोक्ताः पुरा त्वया ॥८२॥
तत्सर्वं विस्तरेणाद्य श्रोतुमिच्छामि त्वन्मुखात् ।

श्रीरामदास उवाच

शैशवे रघुनाथस्तु स्वपितृस्यंदनस्थितः ॥८३॥

दास तथा दासियोंको, ग्यारहवींमें नटादिकोंको, बारहवींमें वेश्याओंको, तेरहवींमें पहलवानोंको, चौदहवींमें पैदल चलनेवालोंको, पंद्रहवींमें श्रेष्ठ घुड़सवारोंको, सोलहवींमें हाथियों तथा हाथीपर सवारी करनेवालोंको, सत्रहवींमें बन्दूक आदि छोड़नेवालोंको, अठारहवींमें राज्यके अधिकारी दूतोंको और उन्नीसवींमें रामचन्द्रके मित्र राजाओंने अपने पुत्रों एवं स्त्रियों आदिके साथ स्थान पाया । बीसवीं कक्षामें नगरके मित्रोंको स्थान मिला । इसके बाद बीस भोजनशालायें बनीं। भोजनशालाओंके ऊपर पाँच पाकगृहको स्थान मिला और उनके ऊपर स्त्रियोंके दस भोजनगृह बने । उसके ऊपर भाइयों तथा माताओंके गृह, बादमें सिंहासनसे अलंकृत राजसभा, राजसभाके ऊपर बहुत-सी सखियोंसे युक्त सीताजीका गृह बना और सीताजीके गृहके ऊपर सीता सहित रामका क्रीडा-स्थान बनाया गया । क्रीडास्थानके ऊपर मित्रोंकी स्त्रियोंको स्थान मिला । इसके बाद स्त्रियोंकी सभासे लिये सुखदायक सात अट्टालिकायें निर्मित की गयीं । स्त्रीसभास्थानके बाद बारह चित्रशालायें और पाँच पक्षि-शालायें निर्मित की गयीं । पक्षिशालाके बाद सुन्दर पुष्प आदिके पाँच स्थान बनाये गये । उसके ऊपर कौतुकमय सात घटीयन्त्र आदि रखे गये । बादमें अति विस्तृत एवं रम्य एक शाला व्याघ्रादि जन्तुओंके लिए नियत की गयी । उसके ऊपर अग्निहोत्रगृह और अग्निहोत्रगृहके ऊपर शिवजीके पूजनका स्थान, इसके बाद क्रमशः विप्रशाला, विद्यार्थीशाला, संन्यासीशाला, वाद्यशाला, जलयन्त्रादि युक्त सुन्दर जलशाला और जलाशलाके बाद गीले वस्त्रोंको सुखानेका उत्तम स्थान बना । इस प्रकार रामचन्द्रजीके सेवकोंने इन सौ शालाओंसे उन अट्टालिकाओंको पूर्ण किया ॥ ६२–७८ ॥ इस प्रकार सर्वथा पूर्ण देखकर रामचन्द्रजी स्वयं विमानपर बैठे । रामचन्द्रजीके बैठनेके बाद बाजे बजने और भाटोंके द्वारा स्तुति करने एवं वेश्याओंके नाचनेपर दसों दिशाओंको प्रकाशित करता हुआ सूर्यके समान तेजस्वी तथा पवनके समान वेगवाला राम-चन्द्रजीकी ध्वजासे चिह्नित वह विमान रामके आज्ञानुसार पूर्वदिशासे पश्चिमकी ओर प्रयागके लिए चला ।

अतः सोऽप्यस्य रामस्य कोविदारध्वजः स्मृतः । बाणध्वजांकितरथमारुह्य ताटिकां वने ॥८४॥
जघानैकेन बाणेन तस्माद्बाणध्वजः स्मृतः । छिन्नं वज्रध्वजं दृष्ट्वा रावणेन स राघवः ॥८५॥
ध्वजेऽकरोद्वायुपुत्रं तस्मात्प्रोक्तः कपिध्वजः । रणे विमूर्छितं दृष्ट्वा रामो मातलिनं तदा ॥८६॥
स्थितः स्वीयरथे दिव्ये तस्माच्च गरुडध्वजः । शुक्लायां हि पताकायां कोविदारोऽस्ति वै शुभः ८७॥
बाणःशुभोऽस्ति नीलायां हरितायां तु मारुतिः । पीतायां गरुडो ज्ञेयः श्रीरामस्यंदनोपरि ॥८८॥
चतुर्षु स्यंदनेष्वेवं चत्वारः कीर्तिता ध्वजाः । कोविदारध्वजो रामः श्रीरामो मार्गणध्वजः ॥८९॥
कपिध्वजो राघवेंद्रो भूपेशो गरुडध्वजः । एवं नामान्यनंतानि प्रोच्यंते राघवस्य हि । ९०॥
तस्माद्रामध्वजाः प्रोक्ताश्चत्वारश्च मया तव । वज्रध्वजांकितरथे स्थित्वा रामेण संगरः ॥९१॥
कृतस्तस्माद्राघवेंद्रं तं वदंत्यशनिध्वजम् । अतो रामध्वजस्यैकमेव चिह्नं न विद्यते ॥९२॥
तस्माच्छिष्य मया प्रोक्ताश्चत्वारो राघवप्रियाः । कोविदारांकितरथे सुमंत्रः सारथिः स्मृतः ॥९३॥
बाणध्वजांकितरथे सूतश्चित्ररथः स्मृतः । वायुपुत्रांकितरथे सारथिर्विजयः स्मृतः ॥९४॥
रामस्य दारुकः सूतः स्यंदने गरुडांकिते । एवं शिष्य त्वया पृष्टं श्रीरामध्वजकारणम् ॥९५॥
त्वया पूर्वं मया तच्च तवाग्रेऽद्य निवेदितम् ॥९६॥

इति श्रीमदानन्दरामायणे यात्राकाण्डे कुम्भोदरोपाख्यानं नाम पंचमः सर्गः ॥ ५ ॥

षष्ठः सर्गः

(पूर्वदेशके तीर्थोंकी यात्रा)

श्रीरामदास उवाच

ततो रामो विमानेन गत्वा किंचित्तु पश्चिमाम् । दिशं ययौ प्रयागं च त्रिवेणी यत्र वर्त्तते ॥ १ ॥

विष्णुदासने कहा कि आप (रामदास) ने रामकी चार ध्वजायें जो पहले कही थीं, उन्हें अब विस्तारसे कहें। श्रीरामदास बोले–बाल्यकालमें रघुनाथजी अपने पिताके रथपर बैठे थे ॥७९-८३॥ इसलिये वह रामका रथ कोविदारध्वज कहा जाता है। बाण-ध्वजासे चिह्नित रथपर बैठकर एक ही बाणसे वनमें ताड़काको मारनेके कारण वे बाणध्वज कहलाये। रावणके द्वारा वज्रध्वजा कटनेके बाद महावीर हनुमान्‌को ध्वजापर बैठानेसे वे कपिध्वज नामसे प्रसिद्ध हुए। रणमें मातलिको मूर्छित देखकर अपने रथपर गरुड़को बैठानेसे गरुड़ध्वज हुए। किस ध्वजामें किसका चिह्न है, सो बताते हैं। श्वेत पताकामें कोविदार, नील पताकामें बाण, हरितमें मारुति, पीत पताकामें गरुड़। इस प्रकार रामजीके रथपर स्थित चिह्नोंको जानना चाहिए ॥ ८४–८८ ॥ इस तरह चारों रथोंपर चार ध्वजायें मैंने कहीं। कोविदार ध्वजावाले राम, बाण ध्वजावाले श्रीराम ॥ ८९ ॥ कपिसे चिह्नित ध्वजावाले राघवेन्द्र और गरुड़से चिह्नित ध्वजावाले भूपेश। इस प्रकार रामचन्द्रके अनन्त नाम हैं ॥ ९० ॥ इसलिए मैंने तुम (विष्णुदास) से रामकी चार ही ध्वजायें कही हैं। वज्रसे अंकित ध्वजावाले रथपर बैठकर रामचन्द्रजीने युद्ध किया था। राघवेन्द्र नामवाले रामको अशनिध्वज कहते हैं। रामचन्द्रकी ध्वजाका एक ही चिह्न नहीं है ॥ ९१ ॥ ९२ ॥ इसलिए मैंने छाँटकर रामकी अति प्रिय ध्वजाओंको ही कहा है। कोविदार ध्वजासे चिह्नित रथपर सुमन्त्र, बाणध्वजसे चिह्नित रथपर चित्ररथ और कपिध्वजसे अंकित रथपर विजय नामके सारथी कहे गये हैं। रामके गरुड़ांकित रथपर दारुक सारथी रहता है। इस प्रकार जो तुम (विष्णुदास) ने श्रीरामकी ध्वजाका कारण पूछा, सो मैंने आज तुमसे कहा है ॥ ९३–९६ ॥ इति श्रीमदानन्दरामायणे यात्राकांडे भाषाटीकायां कुम्भोदरोपाख्यानं नाम पंचमः सर्गः ॥ ५ ॥

श्रीरामदासने कहा—बादमें श्रीराम विमान द्वारा कुछ पश्चिम दिशाकी ओर जाकर प्रयाग पहुँचे।

क्रोशमात्रे विमानं तन्मुक्त्वा रामः ससीतया । पद्भ्यां शनैः शनैरेव त्रिवेणीसंगमं ययौ ॥ २ ॥
नारिकेलं वायनेन समर्प्य रघुनंदनः । चतुरंगुलमानं हि केशबन्धं सभूषणम् ॥ ३ ॥
ददौ संछिद्य सीतायाः स्वयं क्षौरमथाकरोत् । लक्ष्मणाद्यैर्बन्धुभिश्च वपनं रघुनंदनः ॥ ४ ॥
मातृभिः कारयामास कृत्वा चैकमुपोषणम् । द्वितीये दिवसे प्राप्ते कृत्वा श्राद्धं सतर्पणम् ॥ ५ ॥
मासमात्रं माघमासे वासं कृत्वा सविस्तरम् । अष्टतीर्थीं ततो गत्वा दत्त्वा दानान्यनेकेशः ॥ ६ ॥
दृष्ट्वाऽक्षयवटं रम्यं निद्रास्थानं निजालये । किंचिद्विहस्य श्रीरामः सीतया भ्रातृभिः सह ॥ ७ ॥
पूजां कृत्वा त्रिवेण्याश्च वस्त्रैर्दिव्यैः सुभूषणैः । गंगाजलैः काचकुम्भान् शतशोऽथ सहस्रशः ॥ ८ ॥
पूरयित्वा विमानाग्रये स्थाप्य तीर्थं पुरोहितान् । पूजयित्वा सविस्तारं नत्वा चैव पुनः पुनः ॥ ९ ॥
तान् पृष्ट्वा पुष्पके स्थित्वा ययावाकाशवर्त्मना । विन्ध्याचलं समाश्रित्य यत्र दुर्गा तु वर्तते ॥१०॥
तत्र स्नात्वा तीर्थविधिं पूर्ववच्च विधाय सः । तां विंध्यवासिनीं पूज्य वस्त्राभरणादिभिः ॥११॥
कृत्वा दानान्यनेकानि तोष्य तीर्थपुरोहितान् । ययौ काशीं पुष्पकस्थः श्रीरामः सीतया सुखम् ॥१२॥
एतस्मिन्नन्तरे काश्यां काशिस्थाः पुष्पकं तु तत् । कोटिसूर्यप्रतीकाशं दृष्ट्वा पश्चिमतो दिशम् ॥१३॥
यत् प्राचीं काश्याभिमुखमागच्छन्तं महोज्ज्वलम् । चक्रुस्तर्कान्वितर्कांश्च शतशोऽट्टालसंस्थिताः ॥१४॥
केचिदूचुश्च दावाग्निस्त्वयं पर्वतमस्तके । सूर्येण विस्मृतः पंथा भ्रमणाद्भ्रांतिमाप सः ॥१५॥
इति केचिज्जनाः प्रोचुः केचिदूचुस्त्वयं मुनिः । नारदस्तु समायाति केचित्तत्र बभाषिरे ॥१६॥
पतत्यसौ रविः स्वर्गात् केचिद्द्रोणाचलान्वितः । वायुपुत्रोऽयमिति ते प्रोचुः काशीनिवासिनः ॥१७॥
केचिदूचुः शशी स्वर्गान्मृगेण विनिपातितः । केचिदूचुश्च विश्वेशं केचिदूचुः सुदर्शनम् ॥१८॥

जहाँपर कि पतितपावनी त्रिवेणी विद्यमान हैं ॥ १ ॥ त्रिवेणीसे एक कोस दूर श्रीराम जानकीज़ीके साथ विमानसे उतर पड़े और धीरे-धीरे पैदल ही त्रिवेणीके संगमपर गये ॥ २ ॥ वहाँ जाकर रघुनन्दनने त्रिवेणीको नारियल समर्पण करके भूषणोंसे गुँथा हुआ जानकीका केशपाश (जूड़ा) चार अंगुल लंबा काटकर त्रिवेणीमें प्रवाहित कर दिया। पश्चात् स्वयं भी "प्रयागे मुण्डनं श्रेयः" के अनुसार क्षौर करवाया। रामने उसी प्रकार माताओं, भाइयों तथा अन्यान्य सगे-सम्बन्धियोंका भी क्षौर करवाया। तदनन्तर सबने उपवास करके दूसरे दिन तर्पण तथा श्राद्ध किया। पश्चात् यथाविधि माघ महीने-भर वहाँ कल्पवास किया। उसके उपरान्त प्रयागके प्रसिद्ध त्रिवेणी, वेणीमाधव, सोमनाथ, भारद्वाज, नाग-बासुकी, अक्षयवट, दशाश्वमेध आदि आठ तीर्थों (अष्टतीर्थी) की यात्रा की और विप्रोंको अनेक प्रकारके दान दिये ॥ ३-६ ॥ अपने प्रलयकालीन निद्रास्थान अक्षयवटको देखकर राम कुछ मुस्कुराये। पश्चात् सीता तथा भाइयोंके साथ मिलकर सुन्दर वस्त्रों तथा आभूषणोंसे त्रिवेणी महारानीकी पूजा की। उसके बाद हजारों काँचघट गङ्गाजलसे भरवाकर अपने विमानपर धरवा लिये। तीर्थके पुरोहितोंकी विस्तारसे पूजा तथा सत्कार किया। तदनन्तर उनको नमस्कार किया और उनकी आज्ञा लेकर राम विमानपर सवार हो गये। तत्पश्चात् आकाशमार्गसे विन्ध्याचल पधारे। वहाँ विन्ध्यवासिनी दुर्गाजीका दिव्य मन्दिर है ॥ ७-१० ॥ वहाँ रामने स्नान किया और पूर्ववत् वहाँपर भी तीर्थविधिका पालन किया। वस्त्र तथा आभरण आदि सामग्रीसे विन्ध्यवासिनी देवीकी पूजा की ॥ ११ ॥ अनेक दान देकर वहाँके पुरोहितोंको प्रसन्न किया। पश्चात् श्रीराम सीताके साथ पुष्पकविमानपर सवार होकर सुखपूर्वक काशीको चले ॥ १२ ॥ उस समय काशीनिवासी जन उस करोड़ों सूर्यके समान प्रकाशवान् तथा अतिउज्ज्वल विमानको पश्चिम दिशासे काशीकी ओर आते देखकर हजारोंकी संख्यामें महलोंकी छतोंपर चढ़ गये और उसके विषयमें अनेक तर्क-वितर्क करने लगे ॥ १३ ॥ १४ ॥ कोई कहने लगा कि यह पर्वतके ऊपर दवाग्नि जल रही है। कोई कहता कि सूर्य रास्ता भूलकर इधर-उधर भटक रहा है ॥ १५ ॥ कोई कहता कि यह तो नारद मुनि नीचेको आ रहे हैं। किसीने कहा कि स्वर्गसे सूर्य नीचे गिर रहा है। कोई कहता कि यह द्रोणाचलको लिये हनुमानजी आ रहे हैं ॥ १६ ॥ १७ ॥ कोई कहने

केचिदूचुः सुवर्णाद्रिं केचित्प्रोचुररुन्धतीम् । केचित्पतत्त्रिराजानं केचिच्च प्रलयानलम् ॥१९॥
केचित्प्रोचुर्महाघोरं वह्न्यस्त्रं केन मोचितम् । केचित्प्रोचुः सहस्रास्यस्त्वयं मणिविराजितः ॥२०॥
एवं वदंतस्ते यानं ददृशुः पुष्पकं महत् । महाकोलाहलं चक्रुः प्रोचुस्त्वयं समागतः ॥२१॥
रामोऽयोध्यापतिः श्रीमान् मानं कर्तुं सनागरः । विश्वनाथोऽपि तच्छ्रुत्वा पार्वत्या वृषभस्थितः ॥२२॥
प्रत्युज्जगाम श्रीरामं काशीस्थैः परिवेष्टितः । उपायनं राघवस्य गृहीत्वा बहुविस्तरम् ॥२३॥
एतस्मिन्नंतरे रामस्तं देहलिविनायकम् । पूज्य विश्वेश्वरं दृष्ट्वा ननाम शिरसा तदा ॥२४॥
आलिंगितः शिवेनाथ गृहीत्वोपायनं शिवात् । स्वयं वस्त्रैराभरणैः पूजयामास शंकरम् ॥२५॥
विवेश काशिनाथस्य धृत्वा हस्तेन सत्करम् । तावुभौ वाहनं मुक्त्वा जग्मतुर्मणिकर्णिकाम् ॥२६॥
ततः सीतायुतो रामश्चक्रपुष्करिणीजले । समर्प्य श्रीफलं स्नात्वा सचैलं क्षौरपूर्वकम् ॥२७॥
नित्ययात्रां विधायाथ कृत्वा चैकमुपोषणम् । तीर्थश्राद्धादि संपाद्य पंचतीर्थीं विधाय च ॥२८॥
अंतर्गृहीं महायात्रां मानसद्वयमेव च । द्विचत्वारिंशल्लिंगानि ह्यष्टलिंगानि वै ततः ॥२९॥
षट्पञ्चाशच्च गणपांस्तथाऽष्टौ भैरवान् पुनः । योगिनीश्च चतुःषष्टीस्तथा दुर्गाश्च वै नव ॥३०॥
तथाऽष्टदिक्पदींश्चापि तथा चैव नवग्रहान् । क्षेत्रप्रदक्षिणां पंचक्रोशीयात्रां रघूत्तमः ॥३१॥
चतुर्दशेमा यात्रास्तु कृत्वा चैव सविस्तरम् । रामेश्वरं महालिंगं वरुणायास्तटे शुभे ॥३२॥
काश्या वायव्यदिग्भागे सीमायां स्थाप्य सूत्तमम् । रामतीर्थं स्वीयनाम्ना भागीरथ्यां चकार सः३३॥
एतस्मिन्नन्तरे तत्र वायुपुत्रः समागतः । वृत्तं श्रुत्वा राघवस्य यात्राः कर्तुं गतस्त्विति ॥३४॥
सीतारामौ नमस्कृत्य स्नात्वा भागीरथे जले । स्वनाम्ना शंकरं तीर्थमकरोज्जाह्नवीतटे ॥३५॥

लगा कि मृगने स्वर्गसे चन्द्रमाको नीचे गिरा दिया है। कोई उसको विष्णु, कोई सुमेरु पर्वत, कोई अरुन्धती तारा, कोई गरुड और कोई प्रलयाग्नि बताने लगा ॥१८॥१९॥ कोई कहने लगा कि किसीने महाघोर आग्नेयास्त्र छोड़ा है। कोई कहने लगा कि यह सहस्रमुख शेष हैं ॥ २० ॥ इस प्रकार वे सब तर्क वितर्क कर ही रहे थे कि पुष्पकविमान उनके पास आ पहुँचा। यह देखकर सब लोग कोलाहल करते हुए आश्चर्यपूर्वक एक-दूसरेसे कहने लगे कि यह तो साक्षात् अयोध्याधिपति श्रीमान् राम नगरवासियोंके साथ यहाँ यात्राके लिये पधारे हैं। यह सुनकर स्वयं काशीविश्वनाथजी बहुतेरी भेटें लेकर बैलपर सवार हुए और नगरवासियोंको साथ लेकर रामके समक्ष आ उपस्थित हुए ॥ २१-२३ ॥ इस बीच रामने देहलीविनायक तथा ढुण्ढिराजके दर्शन कर ही लिये। जब उन्होंने शिवजीको प्रत्यक्ष देखा तो सिर नवाकर प्रणाम किया ॥ २४ ॥ शिवजीने रामका आलिंगन किया। शिवजीकी दी हुई भेंट स्वीकार करके स्वयं रामने भी वस्त्रों तथा अलंकारोंसे शिवजीकी पूजा की ॥ २५ ॥ तदनन्तर अपने हाथसे काशीनाथके सुन्दर हाथको पकड़कर रामने काशीमें प्रवेश किया। पश्चात् वे दोनों वाहन छोड़कर मणिकर्णिका गये ॥ २६ ॥ वहाँ सीता सहित रामने क्षौर आदि करवाकर चक्रपुष्करिणी कुण्डमें श्रीफल समर्पण करके सहर्ष स्नान किया ॥ २७ ॥ नित्ययात्रा करके एक दिनका उपवास किया। तदुपरान्त तीर्थश्राद्धादि कर्म करनेके बाद पञ्चतीर्थी की ॥ २८ ॥ बादमें अतर्गृही, महायात्रा, दोनों मानसोंकी यात्रा तथा बयालीस और आठ लिङ्गोंकी यात्रा की ॥ २९ ॥ छप्पन गणपालोंकी यात्रा, आठ भैरवोंकी यात्रा, चौंसठ योगिनियोंकी यात्रा, नव दुर्गाओंकी यात्रा, ॥३०॥ आठ दिक्पालोंकी यात्रा और क्षेत्रकी प्रदक्षिणारूपिणी पञ्चक्रोशीकी यात्रा की ॥ ३१ ॥ इस प्रकार रामने उपर्युक्त चौदहों यात्राओंको विधिवत् पूर्ण किया। तदनन्तर काशीके वायव्यकोणकी सीमामें वरुणा नदीके तटपर श्रीरामने परम पवित्र तथा मनोहर रामेश्वर नामक महालिङ्ग स्थापित करके अपने नामसे भगवती भागीरथीके तटपर रामतीर्थ अर्थात् रामघाट भी स्थापित किया ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ राम यात्रा करने निकले हैं, यह समाचार सुनकर वायुपुत्र हनुमान्जी भी वहाँ आ पहुँचे ॥ ३४ ॥ वहाँ उन्होंने सीता तथा रामको प्रणाम करके गंगामें स्नान किया। फिर जाह्नवीके किनारे उन्होंने

घट्टं बबंध गंगायास्तटे रम्यं दृषन्मयम् । काश्यामद्यापि तन्नाम्ना घट्टोऽस्ति परमः शुभः ॥३६॥
तथा चकार रामोऽपि घट्टबंधनमुत्तमम् । दृश्यते प्रत्यहं यत्र काश्यां रामः ससीतया ॥३७॥
चकार पंचगंगायां कार्तिकस्नानमुत्तमम् । काशीवासं वर्षमेकं चकार धर्मतत्परः ॥३८॥
तीर्थवासार्थिनः सर्वान् सन्तर्प्य च पृथक् पृथक् । रत्नैर्हिरण्यैर्वासोभिरश्वाभरणधेनुभिः ॥३९॥
विचित्रैश्च दशाऽमत्रैः स्वर्णरौप्यादिनिर्मितैः । अमृतस्वादुपक्वान्नैः पायसैश्च सशर्करैः ॥४०॥
सगोरसैरन्नदानैर्धान्यदानैरनेकधा । गन्धचन्दनकर्पूरैस्ताम्बूलैश्चारुचामरैः ॥४१॥
सतूलैर्मृदुपर्यंकैर्दीपिकादर्पणासनैः । शिबिकादासदासीभिर्वाहनैः पशुभिर्गृहैः ॥४२॥
चित्रध्वजपताकाभिरुल्लोचैश्चंद्रचारुभिः । नानाव्रतैर्महाश्रेष्ठैः सध्वजारोपणादिभिः ॥४३॥
वर्षाशनप्रदानैश्च गृहोपस्करसंयुतैः । उपानत्पादुकाभिश्च यतीश्चापि तपस्विनः ॥४४॥
योग्यैः पट्टदुकूलैश्च मृदुलैश्चित्रकम्बलैः । दण्डैः कमण्डलुयुतैरजिनैर्मृगसम्भवैः ॥४५॥
कौपीनैरुच्चमंचैश्च परिचारकरक्षनैः । मठैर्विद्यार्थिनामन्नैरातिथ्यर्थं महाधनैः ॥४६॥
बहुधौषधदानैश्च भिषजां जीवनादिभिः । महापुस्तकसंभारैर्लेखकानां च जीवनैः ॥४७॥
रसायनैरमूल्यैश्च पत्रदानैरनेकशः । ग्रीष्मे प्रपार्थद्रविणैर्हेमन्तेऽग्नेष्टकेन्धनैः ॥४८॥
छत्राच्छादनकाद्यर्थैर्वर्षाकालोचितैर्बहु । रात्रौ पाठप्रदीपैश्च पादाभ्यंजनकादिभिः ॥४९॥
पुराणपाठकांश्चापि प्रतिदेवालयं धनैः । देवालये नृत्यगीतकरणार्थैरनेकशः ॥५०॥
देवालये सुधाकार्यैर्जीर्णोद्धारैरनेकशः । चित्रलेखनमूल्यैश्च रङ्गशालादिमण्डनैः ॥५१॥
आरार्तिकैर्गुग्गुलैश्च दशांगादिसुधूपकैः । कर्पूरवर्तिकाद्यैश्च देवाचार्थैरनेकशः ॥५२॥

एक कल्याणकारी तीर्थं बनाया ॥ ३५ ॥ गंगाजीके तटपर उन्होंने सुन्दर पत्थरोंका एक घाट बनवाया, जो कि अभी भी काशीमें हनुमानघाटके नामसे प्रसिद्ध है ॥ ३६ ॥ उसी प्रकार रामचन्द्रने भी उत्तम घाट बंधवाया, जो कि आज दिन भी काशीमें रामघाटके नामसे वर्तमान है। पश्चात् रामने सीताके साथ पञ्चगङ्गामें स्नान किया। उस समय कार्तिकका उत्तम मास था। इस प्रकार रामने वर्षभर काशीमें धर्मतत्पर होकर निवास किया ॥ ३७ ॥ ३८ ॥ पश्चात् समस्त तीर्थवासियोंको पृथक् पृथक् रत्न, सुवर्ण, वस्त्र, अश्व, आभरण, गाय, सोना-चाँदीके विचित्र पात्र, अमृततुल्य पकवान तथा शर्करामिश्रित दुग्धदानसे प्रसन्न किया ॥ ३९ ॥ ४० ॥ गोरसयुक्त अन्नदान तथा धान्यदानसे भी उन्हें संतुष्ट किया। बहुतोंको सुगन्धित चन्दन, कपूर, ताम्बूल, मनोहर चमर, कोमल रुईसे भरे हुए गद्दे-तकिए, दीवट, दर्पण, आसन, पालकी, दास-दासी, वाहन, पशु तथा भवन देकर प्रसन्न किया ॥ ४१ ॥ ४२ ॥ बहुतोंको चित्र-विचित्र ध्वजा-पताका, चन्द्रमाकी चाँदनीके समान निर्मल चाँदनी, शामियाना, बड़े-बड़े श्रेष्ठ व्रत करके ध्वजारोपण, वर्षाशनदान तथा गृहस्थीकी सामग्री देकर प्रसन्न किया। विप्रोंको उपानह तथा संन्यासी यतियों और तपस्वियोंको खड़ाऊँ, उनके योग्य कोमल रेशमी वस्त्र, कम्बल, दण्ड-कमण्डलु, चित्र-विचित्र मृगचर्म, कौपीन, ऊँचे-ऊँचे खटोले, सेवक, मठ, उसकी रक्षाके लिए तथा विद्यार्थी और अतिथि-सत्कारके लिए सुवर्ण तथा बहुत-सा धन देकर संतुष्ट किया ॥ ४३–४६ ॥ वैद्योंको उनकी जीविकाके साधनभूत बहुतसे औषध दान देकर, लेखकोंको जीविकाके साधनभूत बहुतसे पुस्तकसमूह देकर, बहुतोंको बहुमूल्य रसायन दान देकर और बहुतोंके लिए अन्नक्षेत्र खोलकर सन्तुष्ट किया। बहुतोंको ग्रीष्मऋतुमें पौसरेके वास्ते धन देकर तथा बहुतोंको हेमन्तके योग्य काष्ठ आदिके वास्ते द्रव्य देकर प्रसन्न किया ॥ ४७ ॥ ४८ ॥ बहुतोंको वर्षाकालोचित छत्र तथा आच्छादन देकर आनन्दित किया। बहुतोंको रात्रिके समय पढ़नेके लिए दीपादिका प्रबन्ध कर दिया। बहुतोंको शरीरमें अभ्यङ्ग (मालिश) करनेके लिए तेल आदि सुगन्धित द्रव्योंका दान देकर राजी किया ॥ ४९ ॥ हर एक देवालयमें पुराणपाठ करनेवालोंको धन देकर संतुष्ट किया। देवालयोंमें अनेक नृत्य-गीत करवाये। उनका जीर्णोद्धार करवाकर चूना पुतवा दिया। उनमें बहुतेरे चित्र बनवा दिये। उनमें केसर आदि रङ्ग तथा माला आदिका प्रबन्ध करवा दिया ॥ ५० ॥ ५१ ॥ देवपूजाके

पञ्चामृतानां स्नपनैः सुगन्धस्नपनैरपि । देवार्थं मुखवासैश्च देवोद्यानैरनेकशः ॥५३॥
महापूजार्थं माल्यादिगुम्फनार्थैस्त्रिकालतः । शंखभेरीमृदंगादिवाद्यनादैः शिवालये ।.५४॥
घण्टांगडुककुम्भादिस्नानोपस्करभाजनैः । श्वेतमार्जनवस्त्रैश्च सुगन्धैर्यक्षकर्दमैः ॥५५॥
जपहोमैः स्तोत्रपाठैः शिवनामोच्चभाषणैः । रासक्रीडादिसंयुक्तैश्चलनैः सप्रदक्षिणैः ॥५६॥
एवमादिभिरुद्दण्डैः क्रियाकाण्डैरनेकशः । वर्षमेकमुषित्वा तु कृत्वा तीर्थान्यनेकशः ॥५७॥
दीनानाथांश्च सन्तर्प्य नत्वा विश्वेश्वरं विभुम् । ब्रह्मचर्यादिनियमैर्ऋतुकालागमेन च ॥५८॥
सत्यसम्भाषणेनापि तीर्थमेवं प्रसाद्य च । नत्वा पुनर्विश्वनाथं कालराजं गणाधिपम् ॥५९॥
अन्नपूर्णां दण्डपाणिं दृष्ट्वा स्तुत्वा प्रणम्य च । अनुज्ञातः शिवेनाथ विमानेन रघूत्तमः ॥६०॥
ययावाकाशमार्गेण गंगाया दक्षिणे तटे । कर्मनाशां नदीं दृष्ट्वा च्यवनस्याश्रमं ययौ ॥६१॥
रामचन्द्रः पुष्पकस्थः स्नात्वा नत्वा मुनीश्वरम् । रामतीर्थं च रामेशं चकार तत्र राघवः ॥६२॥
निजबाणकृतां रेखां दर्शयामास तान् जनान् । काश्या अप्यधिकान्यत्र दत्त्वा दानान्यनेकशः ॥६३॥
ययौ यानेन दिव्येन स्वर्णभद्रस्य संगमम् । यानि यानि हि तीर्थानि राघवश्च गमिष्यति ॥६४॥
उत्तरोत्तरतस्तेषु दानाधिक्यं करिष्यति । यत्र यत्र रघुश्रेष्ठो गमिष्यति ससीतया ॥६५॥
तत्र तीर्थान्यनेकानि भविष्यन्ति महान्ति च । शेषोऽपि तेषां संख्यां हि वक्तुं नात्र क्षमो भवेद् ॥६६॥
तेषु तीर्थानि श्रेष्ठानि षड् ज्ञेयानि मनीषिभिः । बन्धूनां चैव चत्वारि सीतायाः पञ्चमं स्मृतम् ॥६७॥
षष्ठमञ्जनिपुत्रस्य सर्वत्रैवं विनिश्चयः । रामः स्नात्वा स्वर्णभद्रगगयोः संगमे मुदा ॥६८॥
त्रिरात्रं समतिक्रम्य गण्डकीसंगमं ययौ । कस्मिंस्तीर्थे त्रिरात्रं च पञ्चरात्रमथ क्वचित् ॥६९॥

लिए आरती, गुग्गुल, दशांग, धूप, दीप, कपूर आदि अनेक वस्तुयें दिलवायीं ॥ ५२ ॥ देवताओंके लिए पंचामृतके स्नानका प्रबन्ध, सुगन्धित गुलाबजल आदिसे स्नानका प्रबन्ध, मुखवासार्थ पान आदिका प्रबन्ध, तथा उनके लिए उद्यान आदिका प्रबन्ध भी करवा दिया ॥ ५३ ॥ सब शिवालयोंमें त्रिकाल पूजाके लिए माला गूँथनेका प्रबन्ध, शंख, नगाड़ा, मृदंग आदि बाजोंका प्रबन्ध एवं घड़ी घंटा कलश गेंडुवा तथा स्नानके सामानका प्रबन्ध कर दिया । मार्जनके लिए श्वेत वस्त्र तथा सुगन्धित द्रव्य चन्दन, केसर, अगर, तगर, कपूर आदिके लेपनका भी स्थायी प्रबन्ध करवा दिया । उसी प्रकार देवालयोंमें जप, होम, स्तोत्रपाठ, उच्च शिवनामोच्चारण, प्रदक्षिणा तथा चँवर लेकर रासक्रीड़ा आदि अन्यान्य क्रियाएँ करते हुए रामने काशीमें एक वर्ष बिताया । वहाँके अनेक तीर्थ किये । उन्होंने दीनानाथ विश्वेश्वर भगवान् शिवको संतुष्ट किया। ऋतुकालमें भी ब्रह्मचर्य धारणकर तथा सत्यभाषणका अनुष्ठान करके तीर्थके नियमोंका पालन किया । अन्तमें विश्वनाथको, कालभैरवको, गणाधिपको, अन्नपूर्णाको तथा दण्डपाणिको बारंबार नमस्कार करके तथा उनकी स्तुति करके उनसे जानेकी आज्ञा माँगी । उनसे अनुज्ञात होकर रघूत्तम राम विमानपर सवार हुए ॥ ५४-६० ॥ और आकाशमार्गसे गङ्गानदीके दक्षिण तटकी ओर चल दिये । रास्तेमें उनको कर्मनाशा नदी मिली। बादमें च्यवनमुनिके आश्रमपर पहुँचे॥ ६१॥ पुष्पक विमानसे उतरकर रामचन्द्रजीने स्नान करके मुनिके दर्शन किये और वहाँ अपने नामसे रामेश्वर तथा रामतीर्थ स्थापित किया॥ ६२ ॥ वहाँ अपने साथवालोंको अपनी बनायी हुई बाणकी रेखा दिखलायी । अन्तमें वहाँपर काशीसे भी अधिक दान-पुण्य करके दिव्य विमानके द्वारा शोणभद्र तथा गङ्गाके सङ्गमपर गये । उसी प्रकार आगे भी राम जिन-जिन तीर्थोंमें जायँगे, वहाँ-वहाँ उत्तरोत्तर अधिक दान करेंगे । जहाँ जहाँ राम सीताके साथ पधारेंगे, वहाँ-वहाँ अनेक बड़े-बड़े तीर्थ बनेंगे । जिनकी संख्याको शेषनाग भी नहीं बता सकते ॥ ६३-६६॥ परन्तु विचारशील लोगोंको उनमें भी छः तीर्थोंको मुख्य समझना चाहिये । चार चार भाइयोंके, पाँचवाँ सीता तथा छठाँ हनुमान्का । इनके विषयमें कभी भी संदेह नहीं करना चाहिये । श्रीराम शोणभद्र तथा गङ्गाके सङ्गममें स्नान करनेके पश्चात् वहाँ तीन रात निवास करके प्रसन्न मनसे

सप्तरात्रं क्वचिच्चापि पक्षमेकमथ क्वचित् । अष्टादशैकविंशद्वा त्रिमासं च क्वचित्प्रभुः ॥७०॥
चकार वासं तीर्थेषु धर्मान् कुर्वन् यथासुखम् । गंडकीसंगमे स्नात्वा नेपाले जगदीश्वरम् ॥७१॥
दृष्ट्वा हरिहरक्षेत्रं ययौ रघुकुलोद्वहः एवं कुर्वन् स तीर्थानि सर्वाणि रघुनन्दनः ॥७२॥
पुनः पुनः संगमं च ययौ जाह्नविदक्षिणे । वैकुण्ठनगरं गत्वा जरासंधपुरं ययौ ॥७३॥
वैकुंठाया जले स्नात्वा ततो रामो ययौ गयाम् । फल्गुनद्यास्तटे पूर्वं मुक्त्वा तद्यानमुत्तमम् ॥७४॥
नत्वा विष्णुपदं दिव्यं पुनर्यानान्तिकं ययौ । तां निशां समतिक्रम्य प्रभाते रघुनन्दनः ॥७५॥
स्नातुं फल्गुनदीतोये ययौ तीर्थं द्विजैः सह । एतस्मिन्नन्तरे सीता सखीभिः परिवेष्टिता ॥७६॥
ययौ स्नातुं फल्गुनद्यां स्नात्वा पूज्य सुवासिनीः। सैकते सा क्षणं तस्थौ पूजनार्थं महेश्वरीम् ॥७७॥
वालुकापंचपिंडैश्च दुर्गां कर्तुं समुद्यता । गृहीत्वा वामहस्तेन सार्द्रां सा सिकतां तदा ॥७८॥
सव्येन कृत्वा पिंडं तु यावत्सा पाणिना भुवि । स्थापयामास तावत्तु ददर्श जगतीतलात् ॥७९॥
विनिर्गतं दशरथश्वशुरस्य करं शुभम् । दक्षिणं निजहस्ताच्च गृहीत्वा पिण्डमुत्तमम् ॥८०॥
गच्छन्तं भूतलं रम्यं तद्दृष्ट्वा कौतुकं पुनः । द्वितीयं स्थापयामास भुवि पिंडं तु सैकतम् ॥८१॥
सोऽपि नीतः पूर्ववच्च ह्येवमष्टोत्तरं शतम् । ददौ पिंडान् कौतुकेन ततः श्रान्ता विदेहजा ॥८२॥
मनसा पूज्य दुर्गां सा ययौ यानं त्वरान्विता । तद्वृत्तं न सखीभिस्तु ज्ञातं रामेण वाऽपि न ॥८३॥
तयाऽपि कथितं नैव किं रामो मां वदिष्यति । इति भीत्या ततो रामः पंचतीर्थं विगाह्य च ॥८४॥
प्रेतपर्वतमासाद्य पिंडदानमथाकरोत् । कनिष्ठिकाया निष्कास्य निजनामांकितां शुभाम्॥८५॥
कांचनीं मुद्रिकां रम्यां दक्षिणाभिमुखस्तदा । अपहतेति मंत्रेण चकार भुवि राघवः ॥८६॥

गंडकीके सङ्गमकी ओर सिधारे । श्रीराम प्रभुने किसी स्थानपर तीन रात, कहीं पाँच रात, कहीं सात रात, कहीं एक पक्ष, कहीं अठारह दिन, कहीं इक्कीस दिन और कहीं तीन मास पर्यन्त सुखसे निवास किया । गंडकीके सङ्गममें स्नान करके श्रीहरि नेपालमें पशुपतिनाथके दर्शनार्थ गये ॥ ६७–७० ॥ बादमें रघुकूलभूषण राम हरिहरक्षेत्र गये । इस प्रकार रघुनन्दन राम तीर्थ करते समय बीच-बीचमें बार-बार गङ्गाके दक्षिण सङ्गमपर पधारते थे । बादमें बैकुण्ठ नगर होते हुए जरासन्धके राजगृह नगर गये ॥ ७१–७३ ॥ पश्चात् वैकुण्ठके जलमें स्नान करके गयाजी गये । फल्गु नदीके पूर्वीय तटपर विमानको छोड़कर दिव्य विष्णुपदके दर्शनार्थ गये । दर्शन करनेके बाद पुनः यानके पास लौट आये और रात्रिको वहीं व्यतीत करके सबेरे ब्राह्मणोंके साथ फल्गुनदीके पवित्र तीर्थमें स्नान करने गये । इतनेमें सखियोंसे घिरी हुई सीताजी फल्गुनदीपर स्नानार्थ पधारीं। वहाँ उन्होंने स्नान करके सोहागिन स्त्रियोंकी पूजा की। पश्चात् देवी महेश्वरीकी पूजा करनेके लिए सैकत-प्रदेशमें जाकर बालूके पाँच पिण्डोंसे दुर्गाजीकी प्रतिमा बनानेको उद्यत हुई । बायें हाथमें नीली बालुका लेकर उन्होंने दाहिने हाथसे पिण्ड बनाकर ज्यों ही पृथ्वीपर रखना चाहा, त्यों ही उन्हें पृथ्वीतलसे निकलता हुआ अपने ससुर महाराज दशरथका सुन्दर हाथ दिखायी दिया । उनका दाहिना हाथ सीताके हाथसे उस उत्तम पिण्डको लेकर पुनः धरतीमें प्रविष्ट हो गया । यह देखकर सीताके मनमें बड़ा कौतूहल हुआ । बादमें फिर सीताने पिण्ड बनाकर जमीनपर रक्खा, उसको भी पूर्ववत् वह हाथ ले गया । इस प्रकार सीताने एक-एक करके एक सौ आठ पिण्ड दुर्गाकी पूजाके लिये रक्खे और उन सबको ससुरका हाथ ले गया । यह देखकर सीता हार गयीं ॥ ७४–८२ ॥ अन्तमें उन्होंने दुर्गाकी मन ही मन पूजा की और विमानके पास लौट आयीं । उस वृत्तान्तको न तो सखियें जान सकीं और न राम ही जान पाये ॥ ८३ ॥ सीताने भी राम हमको क्या कहेंगे, इस डरके मारे उस वृत्तान्तको छिपा रखा । बादमें रामने जब पञ्चतीर्थ करनेके बाद प्रेतशिलापर जाकर पिण्डदान दिया और उन्होंने अपने हाथकी अनामिका अँगुलीसे रामनाम खुदी हुई सुन्दर सुवर्णकी अँगूठी निकालकर दक्षिण-की ओर मुख करके 'अपहता' इत्यादि मंत्रसे जमीनपर तीन रेखाएँ खींची, जो कि वहाँ अभी भी स्पष्ट

रेखात्रयं तदद्यापि दृश्यते तत्र वै स्फुटम् । आस्तीर्य स कुशांस्तत्र पिण्डान् सक्तुमयाञ्छुभान् ॥८७॥
तिलाज्यमधुसंयुक्तान् दातुं रामः समुद्यतः । सव्येन पाणिना पिण्डं गृहीत्वा रघुनन्दनः ॥८८॥
यावत्पश्यति भूम्यां तु न ददर्श पितुः करम् । तदाश्चर्येण विप्रास्ते राममूचुस्त्वरान्विताः ॥८९॥
निष्कामंत्यत्र सर्वेषां पितॄणां दक्षिणाः कराः । न दृश्यते तव पितुः कारणं नात्र विद्महे ।.९०॥
रामोऽपि विस्मयाविष्टश्चकितः प्राह लक्ष्मणम् । जानीषे कारणं किंचिदत्र त्वं बुद्धिमानसि ॥९१॥
स प्राह राघवास्माभिर्यदा गोदावरीं गतम् । इङ्गुदीफलपिण्याकपिण्डदाने तदा करः ॥९२॥
अस्माभिः स्वपितुर्दृष्टः सोऽत्र नैत्र प्रदृश्यते । ममापि जातमाश्चर्यं सीतां त्वं प्रष्टुमर्हसि ॥९३॥
तच्छ्रुत्वा जानकी शीघ्रं प्राह किंचिद्भयातुरा । मयाऽपराधितं किंचित्तत्क्षमस्व रघूत्तम ॥९४॥
ततस्या वचनं श्रुत्वा राघवः प्राह तां पुनः । वद तथ्यं न भेतव्यं कारणं किं ममांतिकम् ॥९५॥
यथा वृत्तं तया सर्वं राघवाय निवेदितम् । तच्छ्रुत्वा राघवः प्राह कः साक्षी तव कर्मणि ॥९६॥
सा प्राह चूतवृक्षोऽस्ति दृष्टः स नेत्युवाच ह । तदा शप्तः सीतया स फलहीनः स कीकटः ॥९७॥
भव मे वचनाच्चूत यतो मिथ्या त्वयेरितम् । पुनः सा राघवं प्राह फल्गुः साक्ष्यं प्रदास्यति ॥९८॥
साऽपि रामेण पृष्टाऽथ नेत्युवाच भयातुरा । साऽपि शप्ता रामपत्न्याऽधोमुखी मम वाक्यतः ।.९९॥
वह यस्मान्मृषा चोक्तं त्वया सत्येपि कर्मणि । ततः सीता पुनः प्राह साक्ष्यं मेऽत्र निवासिनः ॥१००॥
दास्यंति मे द्विजाः सर्वे तदा मन्निकटस्थिताः । तेऽपि पृष्टा राघवेण नेत्यूचुर्भयविह्वलाः ॥१०१॥
दद्युः साक्ष्यं तर्हि रामः शापं नस्तु प्रदास्यति । निवारिता कथं नेयं तदा सीतेति चिन्त्य ते ॥१०२॥
ताँस्तदा जानकी शापं ददौ तीर्थनिवासिनः । युष्माकं नात्र संतृप्तिः कदा द्रव्यैर्भविष्यति ॥१०३॥

दिखायी देती हैं। पश्चात् उन्होंने कुशा बिछाकर उसपर तिल घृत मधुआदिसे युक्त सवतुका पिंड रखना प्रारम्भ किया। रामने जब दाहिने हाथमें पिण्ड लेकर जमीनकी ओर देखा तो उन्हें अपने पिताका हाथ नहीं दीखा। वहाँके ब्राह्मण भी आश्चर्यान्वित होकर रामसे कहने लगे—॥ ८४-८९ ॥ यहाँ सब लोगोंके पितरोंके दाहिने हाथ पिंड लेनेके लिये निकलते हैं, पर आपके पिताका हाथ क्यों नहीं निकला। इसका कारण समझमें नहीं आता ॥ ९० ॥ तब रामने विस्मित होकर लक्ष्मणसे पूछा—हे लक्ष्मण ! तुम बुद्धिमान् हो, क्या कुछ इसका कारण जानते हो ? ॥ ९१ ॥ लक्ष्मणने कहा—हाँ भाई ! जब हम लोग गोदावरी गये थे, तब तो इंगुदीफलके पिसानका पिण्डदान देते समय अपने पिताका हाथ दिखाई दिया था, वह यहाँ नहीं दिखाई देता। इस बातका हमको भी आश्चर्य है । आप इसका कारण जानकीसे तो पूछें ॥ ९२ ॥ ९३ ॥ यह सुनकर जानकीजी घवड़ा उठीं और बोलीं-हे रघुराज ! आप क्षमा करें। मुझसे कुछ अपराध हो गया है ॥ ९४ ॥ यह सुनकर रामने कहा कि घबराने तथा डरनेकी कोई बात नहीं है। जो हो, सो साफ-साफ कहो ॥ ९५ ॥ तब जानकीने जो घटना घटी थी, सो स्पष्ट कह सुनायी । यह सुनकर रामने पूछा-इस बातका साक्षी कौन है कि हमारे पिताने तुम्हारे हाथसे पिंडदान ग्रहण किया है ? ॥ ९६ ॥ सीताने अपना गवाह पासके आम्रवृक्षको बताया, परन्तु उससे पूछनेपर वह इनकार कर गया। तब सीताने उसको शाप दिया कि अरे दुष्ट ! तू झूठ बोला है, इसलिए मगधदेशमें तू फलशून्य होकर रहेगा। तब सीताने फल्गुनदीको अपना साक्षी बताया ॥ ९७ ॥ ९८ ॥ परन्तु रामके पूछनेपर वह भी भयसे इन्कार कर गयी। इसपर सीताने उसको भी शाप दिया कि तू सत्य बातमें भी झूठ बोली है, इसलिए तू अधोमुखी (अन्तर्मुखी) होकर बहेगी । तब सीताने कहा कि मेरी साक्षी यहाँके रहनेवाले उस समय मेरे पास खड़े ब्राह्मण देंगे। उन्होंने भी विह्वल होकर रामके पूछनेपर ना कर दिया ॥ ९९-१०१ ॥ वे लोग विचारने लगे कि "यदि ऐसा था तो तुम लोगोंने सीताको उस समय पिण्ड देनेसे रोका क्यों नहीं । ऐसा कहकर कहीं सत्य कहनेपर राम हमको शाप न दे दें" सीताने उनको भी शाप दिया कि जाओ, तुमलोग द्रव्यसे कभी तृप्त न होकर मारे-मारे फिरोगे। तब जानकीने

द्रव्यार्थं सकलान् देशान् भ्रमध्वं दीनरूपिणः । ततः सा जानकी प्राह ओतुःसाक्ष्यं प्रदास्यति ॥१०४॥
सोऽपि पृष्टो नेत्युवाच रामं सीता शशाप ताम् ।पुच्छाग्रं स्वपुरः कृत्वा पदा मन्निकटोऽपि सन्॥१०५॥
मृषेरितं यतस्तस्मात्पुच्छे ह्यस्पृश्यतां भज । ततः सा जानकी प्राह गौर्मे साक्ष्यं प्रदास्यति॥१०६॥
साऽपि पृष्टा नेत्युवाच रामं सीता शशाप ताम् । अपवित्रा भवास्ये त्वं मम वाक्येन धेनुके ॥१०७॥
ततः सीताश्वत्थवृक्षं साक्ष्यार्थं प्राह राघवम् । स पृष्टो नेत्युवाचाथ तं सीताऽथाशपत्क्रुधा ॥१०८॥
भवाचलदलस्त्वं हि मद्गिराऽश्वत्थपादप । पुनः सीता पतिं प्राह मम साक्षी प्रभाकरः ॥१०९॥
स पृष्टः प्राह तथ्यं हि तुष्टिर्जाता पितुस्तव । एतस्मिन्नंतरे तत्र विमानेनार्कवर्चसा ॥११०॥
राजा दशरथो राममागत्यालिंग्य वै दृढम् ॥
प्राह त्वया तारितोऽहं नरकादविदुस्तरात् । मैथिल्याः पिण्डदानेन जाता मे तृप्तिरुत्तमा ॥१११॥
तथापि लोकशिक्षार्थं गयाश्राद्धं त्वमाचर । पितरं प्राह रामोऽपि किमर्थं हि त्वयाऽत्र वै ॥११२॥
त्वरया सिकतापिण्डः संगृहीतो वदस्व माम् । स प्राहात्र गयायां तु बहुविघ्नानि राघव ॥११३॥
भवंति श्राद्धसमये कृता तस्मात्त्वरा मया । इति रामं समाभाष्य गृहीत्वा राघवादपि ॥११४॥
किंचित्कव्यं विमानेन ययौ दशरथस्तदा । ततो रामः प्रेतगिरौ पिण्डदान विधाय च ॥११५॥
गत्वा प्रेतशिलायां च दत्त्वा काकबलिं ततः । धर्मारण्यं ततो गत्वा कत्वैकोनपदेषु हि ॥११६॥
सक्तुना च तिलाज्यैश्च पायसैश्च सशर्करैः । पृथग्वै पिण्डदानानि वटश्राद्धं विधाय च ॥११७॥
अष्टतीर्थी ततः कृत्वा ततः संध्यां स्थलत्रये । कृत्वा यथाविधानेन दत्त्वा दानान्यनेकशः ॥११८॥
गदाधरं ततः पूज्य महाविभवपूर्वकम् । सेचयामास तोयैश्च चूतवृक्षं सकीकटम् ॥११९॥
एको मुनिः कुंभकुशाग्रहस्तश्चूतस्य मूले सलिलं ददार ।
आम्रश्च सिक्तः पितरश्च तृप्ता एका क्रिया द्व्यर्थकरी प्रसिद्धा ॥१२०॥

बिलारको साक्षी देनेके लिए कहा । उसने भी पूछनेपर ना कह दिया । सीताने उसे भी शाप देते हुए कहा कि उस समय मेरे समक्ष पूँछ किये खड़े रहनेपर भी जो तूने ना कर दिया है । इसलिए जा तेरी पूँछ अछुत हो जायगी । तब जानकीजीने गौको साक्षी देनेके लिए कहा ॥ १०२–१०६ ॥ रामके पूछनेपर उसने भी ना कह दिया । सीताने कहा–हे धेनु ! मेरे शापसे तेरा मुख अपवित्र हो जायगा ॥ १०७ ॥ पश्चात् सीताने पीपलके वृक्षको साक्षी देनेके लिए रामके सम्मुख उपस्थित किया । जिसका नाम अश्वत्थ था, परन्तु जब वह भी इन्कार कर गया तो सीताने क्रोध करके शाप दिया कि तू आजसे अचलदल हो जायगा । तब अन्तमें सीताने कहा कि सूर्य मेरी साक्षी देंगे । रामके पूछनेपर सूर्यने कहा कि यह बात सत्य है । इस कार्यसे आपके पिता अवश्य सन्तुष्ट हुए हैं । इतनेमें सूर्यके समान कान्तिमान् विमानपर सवार होकर स्वयं महाराज दशरथ वहाँ आ पहुँचे । रामको दृढ आलिङ्गन करके वे बोले–हे राम ! तुमने यथार्थमें हमको तार दिया है । मैथिलीके पिण्डदानसे हमें बड़ी ही तृप्ति मिली है ॥ १०८–१११ ॥ तो भी लोकशिक्षाके लिए तुम गयाश्राद्ध अवश्य करो । रामने पितासे पूछा कि आपने यहाँ इतनी जल्दी बालुकापिंड क्यों ग्रहण किया ? इसका क्या कारण है ? दशरथने कहा–हे राम ! गयामें पिंडदानके समय बड़े-बड़े विघ्न उपस्थित होते हैं । इसीलिए मैंने त्वरा की थी । इतना कहकर राजा दशरथ रामके हाथसे भी कुछ कव्य (पितृ-अन्न)ग्रहण करके विमान द्वारा वहाँसे चले गये । पश्चात् रामने प्रेतपर्वतपर पिण्डदान दिया ॥ ११२–११५ ॥ वहाँसे वे प्रेतशिला गये । वहाँ काकबलि देनेके बाद धर्मवन गये । वहाँ एकोनपद स्थानमें तिल-पायस तथा शर्करासे युक्त सक्तुके पृथक्-पृथक् करके अनेक पिंड दिये और वटश्राद्धका भी सम्पादन किया ॥ ११६ ॥ ११७ ॥ तदनन्तर अष्टतीर्थी की । तीनों नियत स्थानोंमें सन्ध्यावन्दन करनेके बाद विधिवत् बहुतसे दान दिये ॥ ११८ ॥ अनेक विभवोंसे गदाधरकी पूजा की और मगधदेशस्थ आम्रवृक्षका जलसे सेचन किया ॥ ११९ ॥ कहा भी है–किसी

कृत्वा विष्णुपदे पूजां विमानारोपणादिभिः । मासत्रयमतिक्रम्य गयायां रघुनन्दनः ॥१२१॥
विमानेन ययौ प्राचीं दिशं संतोषयन् जनान् । फल्गुनद्यास्तटे पूर्वे विमानं यत्र संस्थितम् ॥१२२॥
तत्र रामगयानाम्नी भूमिर्विप्रैरुदीर्यते । रामेश्वरो रामतीर्थं वर्तते तत्र पावनम् ॥१२३॥
रामोऽपि फल्गुनद्याश्च गङ्गायाः संगमं ययौ । गयाबहिः फल्गुरेव ज्ञेया सा तु महानदी ॥१२४॥
ततो ययौ मुद्गलस्य नूतनाश्रममुत्तमम् । यस्मिन्नुदग्वहा गङ्गा जाह्नवी पापनाशिनी ॥१२५॥
ततोऽग्रे जानकी ज्ञात्वा भूमौ दिव्यं प्रदास्यति । तस्या दिव्यस्थले रामस्तीर्थमादौ चकार सः ॥१२६॥
बंधूनां च पृथक् तत्र संति तीर्थानि सर्वतः । सीतया च कृतं तत्र स्वनाम्ना तीर्थमुत्तमम् ॥१२७॥
ज्ञात्वा भविष्यत्यग्रे मत्तीर्थं चेति सविस्तरम् । यदा भूमौ प्रदास्यामि दिव्यं तीर्थं तदाऽस्तु मे१२८॥
रामस्ततो विमानेन गतश्चोत्तरवाहिनीम् । नाम्ना पुरी तथा गङ्गां यत्रास्ति परमार्थदा॥१२९॥
पर्वतो यत्र गङ्गायामस्ति बिल्वेश्वरोऽपि च । ततः श्रीवैजनाथेशं नत्वा रावणनिर्मितम् ॥१३०॥
ततः शनैर्विमानेन पश्यन्नानास्थलानि सः ।ययौ भागीरथीमध्यायत्र भिन्ना सिता पुनः॥१३१॥
प्रयागाद्योजनशतमाने देशे रघूद्वहः । ततो गङ्गाऽब्धिसंयोगसहस्रे पुष्पकेन सः ॥१३२॥
गत्वा स्नात्वा ततो यत्र कालिंदीसंगताऽर्णवे । तत्र गत्वा रघुश्रेष्ठस्ततः पश्यन् स्थलानि सः ॥१३३॥
नानापुण्यानि तीर्थानि दृष्ट्वा श्रीपुरुषोत्तमम् । पूर्वसागरतीरस्थं दत्त्वा दानान्यनेकशः ॥१३४॥
ततः शनैः पुष्पकेण दृष्ट्वा नानाविधान् सुरान् । दृष्ट्वा नाना नदीः सर्वा नानादेशान्विलंघ्य च॥१३५॥
गोदातीरे स्वनाम्ना तु कृत्वा गिरिमनुत्तमम् । सप्तगोदावरीभेदसंगमेषु महोदधौ ॥१३६॥

एक मुनिने कुशायुक्त हाथमें जलका घड़ा लेकर आम्रवृक्षके मूलमें जल दिया। उससे आम्रवृक्ष सिंच गया और पितर भी तृप्त हो गये । इसीके आधारपर "एका क्रिया द्वयर्थकरी" की कहावत प्रचलित हुई ॥ १२० ॥ इसी प्रकार प्रतिदिन विष्णुपदकी पूजा करते और विमानपर चढ़कर घूमते-फिरते हुए रामने गयामें एक वर्ष व्यतीत किया ॥ १२१ ॥ पश्चात् सब लोगोंको आश्वासन दे तथा विमानपर सवार होकर रघुनन्दन पूर्वकी ओर चल दिये। फल्गुनदीके किनारे जहाँ रामका विमान खड़ा हुआ था ॥ १२२ ॥ उस जगहको वहाँके विप्र रामगया कहने लगे। पवित्र रामेश्वर नामका रामतीर्थ अभी भी वहाँ विद्यमान है ॥ १२३ ॥ राम वहाँसे चलकर फल्गु तथा गंगाके सङ्गमपर आये। गयाके बाहरी भागमें फल्गु नदी है। उसका विस्तार बहुत बड़ा है ॥ १२४ ॥ बादमें मुद्गल ऋषिके नवीन आश्रमकी ओर गये। जहाँपर पाप हरण करनेवाली गंगा उत्तरवाहिनी होकर बहती हैं ॥ १२५ ॥ आगे चलकर एक जगह जहाँ कि उन्हें विश्वास था कि यहाँ जानकी भूमिमें प्रवेश करके दिव्य रूप धारण करेंगी, अपने नामका एक उत्तम तीर्थ स्थापित किया ॥ १२६ ॥ उसके बाद लक्ष्मण आदि भाइयोंके नामसे भी अनेक तीर्थ स्थापित किये। सीताने भी वहाँ, यह विचारकर कि भविष्यमें मेरे नामका यहाँ बड़ा भारी तीर्थ होगा, एक अपने नामका तीर्थ स्थापित किया। उन्होंने यह विचारा कि जब मैं दिव्य रूप धारण करूँगी, तब यहाँ दिव्य तीर्थ होगा ॥ १२७ ॥ १२८ ॥ पश्चात् राम विमानमें बैठकर उस जगह गये, जहाँ कि कल्याणकारिणी उत्तरवाहिनी नामकी गंगा तथा एक नगरी विद्यमान थी ॥ १२९ ॥ और जहाँपर बीच गंगामें बिल्वेश्वर नामका पर्वत खड़ा है। वहाँसे आगे चलकर श्रीरामने रावण द्वारा स्थापित वैद्यनाथजीका दर्शन किया ॥ १३० ॥ तदनन्तर विमानमें बैठकर अनेक वनोंकी शोभा देखते हुए वहाँ गये, जहाँसे कि श्वेतजल युक्त गंगा बीचो-बीचसे दो भागोंमें बँट गयी हैं ॥ १३१ ॥ वह स्थान प्रयागसे सौ योजनकी दूरीपर था। पश्चात् राम विमानके द्वारा वहाँ जा पहुँचे, जहाँ कि गंगा सहस्रमुखी होकर समुद्रमें मिली हैं ॥ १३२ ॥ उस जगह गंगा-समुद्रसङ्गममें स्नान करनेके बाद कालिन्दी-समुद्रके सङ्गममें स्नान किया। वहाँपर रामने अनेक मनोहर पुष्पित वनोपवन देखे, अनेक तीर्थोंके दर्शन किये और साथ ही पूर्वी सागरके तटपर स्थित भगवान् परम पुरुषोत्तमके भी दर्शन किये तथा अनेक दान दिये ॥ १३३ ॥ १३४ ॥ वहाँसे चलकर अनेक देवताओंके दर्शन करते हुए अनेक नदियोंको लाँघकर गोदावरीके

स्नात्वा दक्षिणमार्गेण ततो रामो ययौ पुनः । पूर्वदेशे नृपतिभिर्मानितः पूजितोऽपि च ॥१३७॥
गृहीत्वा स्वकरं तेभ्यस्तैः सहैव शनैः शनैः । विमानेन सुखेनैव तीर्थान्यन्यानि सेवितुम् ॥१३८॥
श्रीरामो याम्यदिग्जानि दक्षिणाभिमुखो ययौ । एवं प्रोक्ता पूर्वदेशयात्रा रामेण या कृता ॥१३९॥

इति श्रीमदानन्दरामायणे यात्राकाण्डे पूर्वदेशतीर्थयात्रावर्णनं नाम षष्ठः सर्गः ॥ ६ ॥

सप्तमः सर्गः

(श्रीरामके द्वारा दक्षिणभारतकी तीर्थयात्रा)

श्रीरामदास उवाच

ततो रामः समुल्लंघ्य मत्स्यतीर्थं मनोरमम् । तीर्त्वा महानदीं कृष्णां पश्यन् पुण्यस्थलानि सः ॥१॥
ततो ययौ नारसिंहं रामः पानकनामकम् । कृष्णाऽब्धिसंगमे स्नात्वा दत्त्वा दानानि विस्तरैः ॥२॥
पश्यन्नानास्थलान्येव ययौ श्रीशैलपर्वतम् । स्नात्वा स नीलगङ्गायां दृष्ट्वा श्रीमल्लिकार्जुनम् ॥३॥
तत्रैव कृष्णा सा ज्ञेया नीलगङ्गेति नामतः । श्रीशैलशिखरं दृष्ट्वा पुनर्जन्मनिवारकम् ॥४॥
शिखरेश्वरस्य शिखराद्ब्रह्मकुण्डे विगाह्य च । भीमकुंडे ततः स्नात्वा तथा निर्वृतिसंगमे ॥५॥
तुंगभद्रासंगमेऽपि महानदीसरोवरे । विगाह्य भवनाशिन्यां ततो दृष्ट्वा ह्यहोबलम् ॥६॥
नारसिंहं ततो नत्वा कृत्वा स्तंभप्रदक्षिणाः । गत्वा पुष्पगिरौ तत्र पिनाकीमवगाह्य च ॥७॥
पश्यन् पुण्यस्थलानीशान् दृष्ट्वा पंपासरोवरम् । किष्किंधायां ततो गत्वा सुग्रीवाद्यैः सुपूजितः ॥८॥
सुग्रीवाद्यैर्वानरैश्च विमानेन विहायसा । प्रवर्षणगिरौ स्वीयगुहां रम्यां प्रदर्शयन् ॥९॥
वैदेहीं कौतुकाद्रामः किंचित्कृत्वा स्मिताननम् । द्वितीये भीमकुंडेऽथ स्नात्वा गत्वा षडाननम् ॥१०॥
स्नात्वाऽगस्त्यकुंडमध्ये पश्यंस्तीर्थान्यनेकशः । कनकगिरिस्थं शंभुं नत्वा संपूज्य राघवः ॥११॥

किनारे आये। वहाँ उन्होंने अपने नामका एक उत्तम पर्वत नियत किया। बादमें सागरके साथ गोदावरी-सङ्गममें स्नान किया। पश्चात् वे दक्षिणमार्गसे पूर्वकी ओर आ गये। वहाँ अन्य राजाओंसे पूजित तथा सम्मानित होकर और उनसे कर लेते हुए उनको भी साथ लेकर धीरे-धीरे विमानके द्वारा अन्यान्य तीर्थोंको देखनेकी इच्छासे दक्षिण भारतकी ओर चले। इस प्रकार रामकी पूर्वप्रदेशकी यात्रा समाप्त हुई ॥१३५-१३९॥
इति श्रीमदानन्दरामायणे यात्राकाण्डे 'ज्योत्स्ना' भाषाटीकायां पूर्वदेशयात्रावर्णनं नाम षष्ठः सर्गः ॥ ६ ॥

श्रीरामदासने कहा—वहाँसे राम मनोहर मत्स्यतीर्थ होते हुए महानदी तथा कृष्णाको पार करके अन्यान्य पवित्र स्थानोंको देखते हुए पानक नृसिंहतीर्थ गये। पश्चात् कृष्णा तथा समुद्रके सङ्गममें स्नान करके उन्होंने अनेक दान पुण्य किये ॥ १ ॥ २ ॥ वहाँसे विविध वनोंके सौन्दर्य देखते हुए राम श्रीशैल पर्वतपर पधारे। वहाँ नीलगंगामें स्नान करके श्रीमल्लिकार्जुनके दर्शन किये ॥ ३ ॥ वहाँपर कृष्णा नदीका ही नाम नीलगंगा पड़ गया है। पुनर्जन्मके निवारक श्रीशैलशिखरको देखकर शिखरेश्वरके शिखरसे निकले हुए ब्रह्मकुण्डमें स्नान किया। इसके अतिरिक्त भीमकुण्ड, निवृ'तिसङ्गम, तुङ्गभद्राके सङ्गम, महानदीके सरोवर और भवनाशिनीमें स्नान किया। वहाँ महाप्रतापी नरसिंहजीका दर्शन किया तथा स्तंभकी प्रदक्षिणा की। वहाँसे आगे पुष्पगिरिपर जाकर पिनाकिनी नदीमें स्नान किया ॥ ४-७ ॥ बादमें अनेक आश्रमों तथा विविध पुष्पवनोंको देखते हुए पंपासरोवर और वहाँसे किष्किन्धा गये। वहाँ सुग्रीव आदिने रामका विधिवत् पूजन-सत्कार किया ॥ ८ ॥ वहाँसे सुग्रीव आदि वानरोंको साथ ले तथा विमानपर आरूढ़ होकर आकाश-मार्गसे प्रवर्षण गिरिपर पधारे। वहाँ जानकीको अपनी निवासगुफा दिखलाकर श्रीराम कुछ हँसे। फिर भीमकुण्डमें स्नान करके षडानन कार्तिकेय स्वामीका दर्शन करनेके लिए गये ॥ ९ ॥ १० ॥ अगस्त्यकुण्डमें

वीरभद्रं ततो दृष्ट्वा नत्वाऽद्रिवेंकटं भुवि । गोविंदराजं तं नत्वा तृप्तिपत्तनसंस्थितम् ॥१२॥
स्नात्वा कपिलधारायां तीर्थश्राद्धं विधाय च । ततः शेषाचलं गत्वा स्नात्वा पुष्करिणीजले ॥१३॥
वेंकटेशं पूजयित्वा पंचतीर्थीं विगाह्य सः । सुवर्णमुखरीतीरसंस्थं श्रीकालहस्तिनम् ॥१४॥
पूजयित्वा ययौ कांचीं रामः शिवहरिप्रियाम् । एकांबरेश्वरं पूज्य सर्वतीर्थे विगाह्य च ॥१५॥
कामाक्षीमंबिकां नत्वा स्नात्वा वेगवतीजले । नत्वा वरदराजं च पक्षितीर्थं ततो ययौ ॥१६॥
पूषाविधातृनामानौ पक्षिणौ पूज्य सीतया । पुष्पकेण ततः शीघ्रं क्षीरनद्यां विगाह्य च ॥१७॥
नत्वा त्रिविक्रमं तत्र ततोऽगादरुणाचलम् । मुक्तिर्यत्स्मरणादेव नत्वा तमरुणाचलम् ॥१८॥
मणिमुक्तानदीतीरे वृद्धाचलमगात्ततः । वृद्धाचलेशं संपूज्य वटपालं ततो ययौ ॥१९॥
वटपालेश्वरं पूज्य ततः श्रीमुष्टिमभ्यगात् । तत्र यज्ञवराहं च संपूज्य जगदीश्वरम् ॥२०॥
चिदम्बरमथागच्छद्दर्शनादेव मुक्तिदम् । लिखिता यत्र शेषेण शिलायां ताण्डवाकृतिः ॥२१॥
कावेरीं च ततस्तीर्त्वा सिंहक्षेत्रं ततो ययौ । नत्वा ब्रह्मपुरेशं च वैद्यनाथं प्रणम्य सः ॥२२॥
श्वेतारण्यं ततो गत्वा शंखमुख्यां विगाह्य च । छायावनं ततो दृष्ट्वा ययौ गौरीमयूरकम् ॥२३॥
वेदारण्यं ततो गत्वा नत्वा मध्यार्जुनं शिवम् । स्नात्वाऽथ वृद्धकावेरीं कुंभकोणं विलोक्य च ॥२४॥
श्रीनिवासं ततो दृष्ट्वा दृष्ट्वा वृन्दावनं शुभम् । सारनाथं ततो दृष्ट्वा श्रीवत्सं च ददर्श सः ॥२५॥
प्रयागमाधवं नत्वा गत्वाऽऽम्रशिरसः स्थलम् । भित्तावाकाशनीलाभं गत्वाऽथ कमलालयम् ॥२६॥
त्यागेश्वरं समभ्यर्च्य गयातीर्थे विगाह्य च । दक्षिणद्वारकायां च श्रीगोविंदं प्रणम्य सः ॥२७॥
जैपालाख्यं पुरं गत्वा गत्वा चाभयदेश्वरम् । विघ्नेश्वरं नमस्कृत्य पुरा संस्थापितं स्वयम् ॥२८॥
स्नात्वा वै नवपाषाणे ययौ देव्याश्च पत्तनम् । स्नात्वा वेतालतीर्थे वै तीर्त्वौघं सागरस्य च ॥२९॥

स्नान करके अनेक तीर्थ देखे। कनकगिरिपर विराजमान शम्भुका दर्शन करके उनकी पूजा की ॥ ११ ॥ बादमें वीरभद्रका दर्शन करके पृथ्वीपर प्रसिद्ध अद्रिवेङ्कटको नमस्कार किया। तदनन्तर तृप्तिपत्तन (तिरुपति नगर) में स्थित गोविन्दराजके दर्शन किये ॥ १२ ॥ वहाँ कपिलधारामें स्नान करके तीर्थश्राद्ध किया। वहाँसे शेषाचलपर जाकर पुष्करिणीके जलमें स्नान किया ॥ १३ ॥ वेङ्कटेश भगवान्‌की पूजा-अर्चा करनेके बाद पंचतीर्थीमें स्नान किया। बादमें सुवर्णमुखरीके तीरपर विराजमान श्रीकालहस्तीश्वरका पूजन करके राम शिव तथा विष्णुकी प्रिय शिवकांची और विष्णुकांची गये। वहाँ एकांबरेश्वरकी पूजा करके सभी तीर्थोंमें अवगाहन किया ॥ १४ ॥ तब कामाक्षी देवीको नमस्कार करके वेगवतीके पवित्र जलमें स्नान किया। वहाँसे आगे वरदराजका दर्शन करके पक्षितीर्थ गये ॥ १५ ॥ १६ ॥ वहाँ पूषा तथा विधाता नामके दो पक्षियोंकी पूजा करके सीताके साथ विमानपर बैठकर शीघ्र ही क्षीरनदीपर पधारे, वहाँ स्नान कर और त्रिविक्रमका दर्शन करके अरुणाचल गये। स्मरणमात्रसे मुक्ति देनेवाले अरुणाचलको नमस्कार करके मणिमुक्ता नदीके तटपर स्थित वृद्धाचलपर गये। वहाँ वृद्धाचलेश्वरकी पूजा करके वटपाल गये ॥ १७–१९ ॥ वहाँ वटपालेश्वरकी पूजा करके मुष्टितीर्थ गये। वहाँ यज्ञवराहकी पूजा करके दर्शनमात्रसे निर्वाण पद देनेवाले चिदम्बरेश्वरके दर्शनार्थ पधारे। वहाँपर शिलामें शेषनागकी लिखी हुई तांडवचित्रावली देखी ॥ २० ॥ २१ ॥ पश्चात् कावेरीको पार करके सिंहक्षेत्र गये। बादमें ब्रह्मपुरेश और वैद्यनाथको प्रणाम करके श्रीराम श्वेतारण्य पधारे वहाँ शङ्खमुखीमें स्नान किया। वहाँसे छायावन होकर गौरीमयूर गये। वहाँसे वेदारण्य जाकर मध्यार्जुन शिवका दर्शन किया। पश्चात् वृद्धकावेरीमें स्नान करके कुम्भकोणम् देखा ॥ २२–२४ ॥ वहाँसे आगे श्रीनिवासका दर्शन करके चित्ताकर्षक वृन्दावनकी ओर गये। तदनन्तर सारनाथका दर्शन करके श्रीवत्सके दर्शनार्थ आगे बढ़े ॥ २५ ॥ वहाँ प्रयागमें वेणीमाधवका दर्शन करके आम्रशिरस नामके स्थानपर गये। वहाँकी भीतमें आकाशके समान लीलाकमलालय देखा ॥ २६ ॥ बादमें त्यागेश्वरकी पूजा करके गयातीर्थमें स्नान किया और दक्षिण द्वारका और श्रीगोविन्दको प्रणाम किया ॥ २७ ॥ वहाँसे जैपाल नामके नगरमें जाकर

स स्नात्वा भैरवे तीर्थे प्रापैकांतस्थितं निजम् । अवरुह्य विमानाग्रयात्पद्भ्यां सर्वैर्जनैः सह ॥३०॥
गत्वा लक्ष्मणकुंडेऽथ स्वकुंडेऽपि विगाह्य च । अग्नितीर्थे ततः स्नात्वा धनुष्कोट्यां विगाह्य च ॥३१॥
स्नात्वा जटायुतीर्थे हि गत्वा तं गधमादनम् । आदौ नत्वा विश्वनाथं पुराऽऽनीतं हनूमता ॥३२॥
रामेश्वरं ततो नत्वा कृत्वा गंगाभिषेचनम् । काचकुंभादिकं त्यक्त्वा धनुष्कोट्यां रघूत्तमः ॥३३॥
कोटितीर्थं धनुष्कोट्यां चकार कूपमुत्तमम् । क्षेत्रपापप्रशांत्यर्थं दृष्ट्वा श्रीसेतुमाधवम् ॥३४॥
नानादानादिकं कृत्वा मासमेकं विलंघ्य च । वाहनारूढदेवानां महोत्साहान्विधाय च ॥३५॥
क्षेत्रपापप्रशांत्यर्थं कोटितीर्थं विगाह्य च । नत्वा द्वारस्थगणपं तीर्त्वौघं जलधेः पुनः ॥३६॥
विहायसा विमानेन स दर्भशयनं ययौ । स्नात्वा निक्षेपिकातोयैस्ताम्रपर्ण्यब्धिसंगमे ॥३७॥
गत्वा स्नात्वा रामचंद्रो ददौ दानान्यनेकशः । ततोऽब्धेस्तीरसंस्थं तं स्कन्दं संपूज्य राघवः ॥३८॥
ताम्रपर्णीतटेनैव पश्यन्पुण्यस्थलानि सः । नववेंकटनाथांस्तान्नत्वा तोताद्रिमाययौ ॥३९॥
कन्याकुमारिकां दृष्ट्वा सिन्धुतीरनिवासिनीम् । प्रतीक्षंतीं स्वीयमार्गं बिभ्रतीं मालिकां करे ॥४०॥
तामाह रघुवीरश्च वरं वरय सुव्रते । सा प्राह राघवं नत्वा चिरमस्मि व्रतस्थिता ॥४१॥
अहं मुनिसुता पित्रा सुरेंद्राय विनिश्चिता । विवाहार्थं समानीतः सुरेंद्रो योजने स्थितः ॥४२॥
तव यात्रोद्यमं श्रुत्वा मया चित्ते विनिश्चितम् । आगमिष्यति रामोऽत्र वरयिष्याम्यहं तदा ॥४३॥
पित्रा मन्निश्चयं ज्ञात्वा सुरेंद्रो विनिवर्तितः । सोऽपि मत्खेदचित्तस्तु योजनेऽद्यापि वर्तते ॥४४॥
विवाहोपकरणादि मन्मात्रा यत्कृतं पुरा । पित्रा तत्सागरे क्षिप्तं क्रोधाविष्टेन राघव ॥४५॥

अभयदेश्वरका अर्चन किया । पश्चात् रामचन्द्रने पूर्वसमयमें अपने द्वारा स्थापित विघ्नेश्वरका दर्शन किया ॥ २८ ॥ वहाँके नवपाषाणसरमें स्नान करके देवीनगर गये । फिर वैतालतीर्थमें स्नान करके सागरके अथाह जल-प्रवाहको पार करके ॥ २९ ॥ एकान्तमें स्थित भैरवतीर्थ गये । वहाँसे पैदल चलते हुए सबके साथ आगे बढ़े । आगे जाकर लक्ष्मणकुंड, रामकुंड, अग्नितीर्थ, धनुष्कोटितीर्थ और जटायुतीर्थमें स्नान किया । वहाँसे गंधमादन पर्वतपर गये । वहाँ पूर्वसमयमें हनुमानजीके द्वारा लाये हुए विश्वनाथका दर्शन किया ॥ ३०–३२ ॥ पश्चात् रामेश्वरको नमस्कार करके उन्हें गङ्गाजलसे स्नान कराया । बादमें रामने खाली काँचके घड़ोंको धनुष्कोटि तीर्थमें फेंक दिया ॥ ३३ ॥ उस धनुष्कोटि तीर्थमें रामने कोटितीर्थ नामका एक कूप खुदवाया । बादमें क्षेत्रपापकी शांतिके लिए श्रीसेतुबंध माधवका दर्शन किया ॥ ३४ ॥ वहाँपर अनेक दानपुण्य करते हुए रामने एक मास निवास किया । अनेक वाहनारूढ़ देवताओंका महोत्सव भी वहीं मनाया ॥ ३५ ॥ पश्चात् पुनः क्षेत्रपापकी शांतिके लिए कोटितीर्थमें स्नान किया । द्वारपाल गणनाथको नमस्कार कर तथा विमानके द्वारा समुद्र पार करके दर्भशयन नामके तीर्थको गये । वहाँ निक्षेपिकाके जलमें और ताम्रपर्णी तथा सागरके संगममें स्नान किया ॥ ३६ ॥ ३७ ॥ वहाँ भी अनेक दान दिये । पश्चात् रामने समुद्रके तटपर विराजमान कार्तिकेय स्वामीकी पूजा की ॥ ३८ ॥ बादमें ताम्रपर्णीके किनारे-किनारे राम अनेक पवित्र स्थानोंको देखते तथा नववेंकटेश्वरोंकी पूजा करते हुए तोताद्रि गये ॥ ३९ ॥ पश्चात् सिंधुतीर-निवासिनी कन्याकुमारीके दर्शन किये, जो कि हाथमें माला लिये उन्हीं (राम) की राह देख रही थीं ॥ ४० ॥ रामजीने उससे कहा–हे सुव्रते ! वर माँगो । तब उसने रामको नमस्कार करके कहा–हे राघव ! मैं बहुत दिनोंसे व्रत धारण करके आपकी प्रतीक्षामें यहाँ खड़ी हूँ ॥ ४१ ॥ मैं एक मुनिकन्या हूँ । मेरे पिताने मुझे सुरेन्द्रको देना निश्चित किया और उनको विवाहके लिए बुलाया भी था । जो कि अब भी यहाँसे एक योजनकी दूरीपर विद्यमान है ॥ ४२ ॥ परन्तु मैंने जब आपकी तीर्थयात्राका समाचार सुना तो मनमें यह निश्चय कर लिया कि राम जब यहाँ यात्राके निमित्त आयेंगे, तब मैं उन्हींसे विवाह करूँगी ॥ ४३ ॥ पिताने जब मेरा यह दृढ़ निश्चय देखा तो सुरेंद्रको लौटा दिया । वह मेरे लिए दुःखित होकर एक योजनपर अब भी खड़ा है ॥ ४४ ॥ हे राघव ! मेरी माताने विवाहके लिए जो सामग्री एकत्रित की थी, वह सब मेरे

अद्यापि दृश्यते पश्य तरंगैर्निर्गतं बहिः । अद्य त्वया तारिताऽहं मां दासीं कर्तुमर्हसि ॥४६॥
ज्ञात्वा तस्या ह्यभिप्रायं तामाह रघुनन्दनः । एकपत्नीव्रतं मेऽस्मिञ्जन्मन्यस्ति कुमारिके ॥४७॥
अग्रे कृष्णावतारे त्वं भज मां नात्र संशयः । तद्रामवचनादेव यमैश्च नियमैरपि ॥४८॥
यावद्रामः स्थितो भूम्यां तावद्धृत्वा कलेवरम् । तपोबलेन देहांते जांबवंती जनिष्यति ॥४९॥
जांबवंतीति नाम्ना सा कृष्णपत्नी भविष्यति । रामो ययौ सुरेंद्रं च पयोष्णीं संविगाह्य सः ॥५०॥
आद्यनंतं ततो गत्वा ताम्रपर्णीतटे स्थितम् । विनिद्रितं शेषपृष्ठे लक्ष्मीगरुडसेवितम् ॥५१॥
ज्ञातव्या ताम्रपर्णी सा त्वन्या पश्चिमवाहिनी । अनन्तशयनं गत्वा पद्मतीर्थे विगाह्य च ॥५२॥
शंखतीर्थे मत्स्यनद्यां विगाह्य सीतया प्रभुः । ततो गत्वा विमानेन धर्माधर्मसरोवरे ॥५३॥
स्नात्वा जनार्दनं गत्वा पश्चिमे ह्यब्धिरोधसि । दर्शेऽथ पौर्णिमायां च गंगाधाराब्धिसंगमे ॥५४॥
स्नात्वा जनार्दनं पूज्य नारीराज्यं विलोक्य च । अग्रे श्रीरामचंद्रः स न ययौ लोकशिक्षया ॥५५॥
परिवृत्य ततो रामो घृतमालां विगाह्य च । कृतमालां ततः स्नात्वा सिन्धुनद्यां विगाह्य च ॥५६॥
गत्वा गजेंद्रमोक्षं च ताम्रपर्णीतटस्थितम् । ताम्रपर्ण्युद्गमे स्नात्वा गत्वा मैरालतीर्थकम् ॥५७॥
गत्वा चंद्रकुमाराख्यं गिरिं श्रीरघुनन्दनः । ततो ययौ विमानेन दृष्ट्वा दक्षिणकाशिकाम् ॥५८॥
नत्वा काशीविश्वनाथं चंपकारण्यमाययौ । चित्रगंगाजले स्नात्वा नत्वा हरिहरौ शुभौ ॥५९॥
ततो रामो विमानेन मधुपुर्यां विवेश सः । वेगवत्या जले स्नात्वा नत्वा तं सौन्दरेश्वरम् ॥६०॥
मीनाक्षीमम्बिकां नत्वा वेंकटं द्राविडे गिरौ । कावेरीमध्यनिलयं श्रीरंगशयनं ययौ ॥६१॥
मातृभूतेश्वरं नत्वा नत्वा तं जंबुकेश्वरम् । रंगनाथं नमस्कृत्य ह्यविनाशीं ततो ययौ ॥६२॥

पिताने क्रुद्ध होकर समुद्रमें फेंकवा दी ॥ ४५ ॥ वह सामग्री आज भी तरंगोंके द्वारा लहरा-लहराकर बाहर आ रही है। हे प्रभो ! आज यहां आकर आपने मुझको तार दिया है । अब आप दया करके मुझे अपनी दासी बना लें ॥ ४६ ॥ उसके अभिप्रायको जानकर रघुनन्दन रामने कहा–हे कुमारिके ! इस जन्ममें तो मैने अविचल एकपत्नीव्रत धारण कर रक्खा है ॥ ४७ ॥ आगे चलकर कृष्णावतारमें मैं तुझे अवश्य प्राप्त होऊँगा । इसमें संदेह नहीं है । रामचन्द्रके कथनानुसार जबतक राम पृथ्वीपर रहे, तबतक वह यम-नियमपालनपूर्वक जीती रही । तदनन्तर अपने तपोबलसे शरीर छोडकर जांबवान्‌के यहाँ उत्पन्न होकर जाम्बवती नामकी कृष्ण-पत्नी बनी । वहाँसे राम सुरेन्द्र गये तथा पयोष्णीमें स्नानकर ताम्रपर्णीके तटपर स्थित आद्यानन्ततीर्थपर पधारे, जहाँ भगवान् विष्णु लक्ष्मी तथा गरुड़से सेवित होकर शेषनागपर शयन कर रहे थे ॥ ४८–५१ ॥ उनके दर्शन करके पश्चिमवाहिनी ताम्रपर्णीके तटपर गये । वहाँ स्नान करके पद्मतीर्थपर अनन्तशयनके दर्शनार्थ गये ॥ ५२ ॥ सीता सहित भगवान्‌ने शङ्खतीर्थ जाकर मत्स्यनदीमें स्नान किया और बादमें वहाँसे विमानपर सवार होकर धर्माधर्मनामके सरोवरपर गये । वहाँ स्नान करके पश्चिम समुद्रतटपर विराजमान जनार्दनके दर्शन किये । अमावस्या तथा पूर्णिमाको गंगा तथा समुद्रके सङ्गमपर स्नान करके उन्होंने जनार्दन भगवान्‌की पूजा की । उसके आगे स्त्रीराज्य देखकर श्रीराम लोगोंको शिक्षा देनेके निमित्त आगे नहीं बढ़े ॥ ५३–५५ ॥ वहाँसे लौटकर रामने घृतमाला, कृतमाला तथा सिन्धुनदमें स्नान किया ॥ ५६ ॥ वहाँ ताम्रपर्णीके तटपर स्थित गजेन्द्रमोक्ष गये । जहांसे ताम्रपर्णी निकली है, उस जगह स्नान किया । वहाँसे मैराल तीर्थ गये ॥ ५७ ॥ वहाँसे चन्द्रकुमार पर्वतपर गये । पश्चात् विमानके द्वारा दक्षिणकाशी गये ॥ ५८ ॥ वहाँ विश्वनाथका दर्शन करके चम्पकारण्य पधारे । वहाँ चित्रगङ्गामें स्नान करके दर्शनमात्रसे कल्याण करनेवाले हरिहरका दर्शन किया ॥ ५९ ॥ बादमें रामने विमानपर बैठकर मधुपुरीमें प्रवेश किया । तदनन्तर वेगवतीके पवित्र जलमें अवगाहन करके जगविख्यात सौंदरेश्वरके दर्शन किये ॥ ६० ॥ तदनन्तर मीनाक्षी देवीके दर्शन किये। द्रविडगिरिपर वेंकटेश्वरके दर्शन किये और कावेरीके मध्यमें निवास करनेवाले श्रीरंगशयनका दर्शन किया ॥ ६१ ॥ पश्चात् मातृभूतेश्वरका दर्शन करके जंबुकेश्वरके दर्शनार्थ पधारे । वहाँसे रङ्गनाथ जाकर

श्रीरंगपत्तनं गत्वा स्नात्वा हैमवतीजले । शालिग्रामं नमस्कृत्य रामनाथपुरं ययौ ॥६३॥
स्नात्वा कुमारधारायां सुब्रह्मण्यं प्रपूज्य च । उडुप्याख्यं ततः कृष्णं नत्वा शृंगाश्रमं ययौ ॥६४॥
तुंगानदातटे शृंगिगिरौ नत्वा तु शारदाम् । कुम्भकाशीं ततो गत्वा गत्वा कोटीश्वरं शिवम् ॥६५॥
नत्वा मूकांबिकां देवीं नत्वा मुण्डेश्वरं हरम् । गुणवंतेश्वरं नत्वा नत्वा धारेश्वरं ततः ।६६।
गौरेश्वरं नमस्कृत्य नत्वा सर्गेश्वरं शिवम् । गोकर्णं च ततो गत्वा तं प्रणम्य महाबलम् ॥६७।
हरीहरेश्वरं गत्वा पश्यंस्तीर्थान्यनेकशः । जामदग्न्यं महेंद्राद्रौ नत्वा भीमेश्वरं ययौ ॥६ ।
धौमं महाबलं नत्वा ययौ कोलपुरं ततः । करवीरपुरं गत्वा कृष्णावेण्योस्तु संगमे ।६९॥
स्नात्वा रामो विमानेन गदालक्ष्मीश्वरं ययौ । स्नात्वा घटप्रभायां तु पश्यन् पुण्यस्थलानि हि॥७०॥
महादेवं नमस्कृत्य नत्वा मल्लारिमीश्वरम् । कारानदीतटस्थं तं वक्रतुंडं विलोक्य च ॥७१॥
नीरानदीजले स्नात्वा नारसिंहं प्रपूज्य च । पांडुरंगं नमस्कृत्य चंद्रभागां विगाह्य च ॥७२॥
ययौ भीमासंगमं तु चंदलां च ततो ययौ । ततः प्रेमपुरं गत्वा नत्वा मार्तंडमीश्वरम् ॥७३॥
नीलदुर्गां विलोक्याथ नाना पश्यन्स्थलानि हि । तुलजापुरसंस्थां तां देवीं नत्वा ययौ ततः ॥७४॥
माणिक्यामंबिकां दृष्ट्वा पश्यंस्तीर्थानि राघवः । योगीश्वरीं वरामंबां दृष्ट्वा ह्यंबापुरस्थिताम् ॥७५॥
वैद्यनाथं नमस्कृत्य वंजरासंगमं ययौ । नागेशं च विलोक्याथ विमानेन स राघवः ॥७६॥
स्नात्वा पूर्णासंगमे तु गोदाया उत्तरे तटे । स्वनाम्नाऽथ पुरीं कृत्वा मुद्गलाश्रममाययौ ॥७७॥
बाणतीर्थे ततः स्नात्वा सिंधुफेनासुसंगमे । गोदानाभावब्जकेऽथ स्नात्वा नत्वा त्रिविक्रमम्॥७८॥
कृत्वा परां स्वनाम्ना तु पुरीं गोदावरीतटे । अंबिकां तु नमस्कृत्य चंडिकां परिपूज्य च ॥७९॥

उनकी पूजा की । बादमें अविनाशी तीर्थकी ओर गये ॥ ६२ ॥ श्रीरंगनगरको देखनेके बाद हैमवतीके पवित्र जलमें जाकर स्नान किया । पश्चात् शालिग्रामको नमस्कार करके रामनाथपुर पधारे ॥ ६३ ॥ वहाँ कुमार-धारामें अवगाहन करनेके अनन्तर सुब्रह्मण्यदेवीकी प्रीतिपूर्वक पूजा की । पश्चात् उडुपी नामक कृष्णकी पूजा करके शृङ्गाख्य आश्रमकी ओर चले ॥ ६४ ॥ वहाँ तुङ्गभद्रा नदीमें स्नान करके शृङ्गिगिरिपर विराजमान शारदादेवीके दर्शन किये । पश्चात् कुम्भकाशी होते हुए कोटीश्वर गये ॥ ६५ ॥ वहाँसे मूकांबिका देवीके दर्शन करते हुए मुण्डेश्वर शिवके दर्शनार्थ पधारे । पश्चात् गुणवंतेश्वर और उसके उपरान्त धारेश्वरके दर्शन किये ॥ ६६ ॥ फिर गौरेश्वर तथा सर्गेश्वरके दर्शन किये । फिर गोकर्णेश्वर, जामदग्न्य तथा महेन्द्र पर्वतपर विराजमान भीमेश्वरके दर्शन किये ॥ ६७ ॥ ६८ ॥ तदुपरान्त धौम और महाबलीका दर्शन करके श्रीराम कोलापुर पधारे । पश्चात् करवीरपुर जाकर कृष्णा और वेणाके सङ्गममें स्नान किया ॥ ६९ ॥ तदनन्तर विमानारूढ़ होकर राम गदालक्ष्मीश्वरके दर्शनार्थ पधारे । वहाँ धटप्रभामें स्नान करके वहाँके अन्यान्य पुण्यस्थल देखे ॥ ७० ॥ फिर महादेवको नमस्कार करके मल्लारीश्वरके दर्शनार्थ गये । बादमें कारानदीके तटपर विद्यमान जगद्विख्यात वक्र-तुंडके दर्शन किये ॥ ७१ ॥ बादमें नीरा नदीमें स्नानकर तथा नरसिंहका पूजन करके पांडुरङ्गका पूजन और चन्द्रभागामें स्नान किया ॥ ७२ ॥ तदनन्तर भीमानदीके सङ्गम तथा चन्दलामें स्नान किया । फिर प्रेमपुरमें जाकर उन्होंने मार्तण्ड प्रभुका दर्शन किया ॥ ७३ ॥ वहाँ नीलदुर्गाका दर्शन करके बहुतसे स्थानोंका अवलोकन किया । पश्चात् तुलजानगरमें जाकर वहाँ देवीके शुभ दर्शन किये और बादमें आगे बढ़े ॥ ७४ ॥ आगे जाकर माणिक्य अंबाके दर्शन करके अन्यान्य पवित्र तीर्थोंमें श्रीरामने भ्रमण किया । पश्चात् अंबापुरमें विराजमान योगेश्वरी अम्बाका दर्शन किया ॥ ७५ ॥ बादमें वैद्यनाथको नमस्कार करके वंजरासंगमपर पधारे । वहाँसे विमान द्वारा नागेश्वरके दर्शनार्थ गये ॥ ७६ ॥ पूर्णाके संगममें स्नान करके गोदावरीके उत्तरी किनारेपर अपने नामसे रामने एक पुरी बसायी । वहाँसे मुद्गल ऋषिके आश्रम-पर होते हुए बाणतीर्थ गये । वहाँ स्नान करके सिन्धुफेनाके मनोहर संगमपर गये । तत्पश्चात् गोदावरी और अब्जक नदीमें स्नान करके त्रिविक्रमके दर्शन किये ॥ ७७ ॥ ७८ ॥ वहाँपर भी गोदावरीके तटपर

आत्मतीर्थे ततः स्नात्वा नत्वा विज्ञानमीश्वरम् । महालक्ष्मीं विलोक्याथ वडवासंगमं ययौ ॥८०॥
प्रतिष्ठानं विलोक्याथ स्नात्वा वृद्धेलसंगमे । शिवनंदासंगमेऽथ नृसिंहं परिपूज्य सः ॥८१॥
स्वीयनाम्ना ख्याततीर्थे प्रवरासंगमं ययौ । सिद्धेश्वरं नमस्कृत्य निवासाख्यं पुरं ययौ ॥८२॥
नूपुराख्यं पुरं गत्वा पश्यन्नानास्थलानि सः । ययौ गोदातटेनैव पुण्यस्तंभं रघूद्वहः ॥८३॥
गत्वा कद्रूसंगमे तु विनतासंगमं ययौ । जनस्थानं ततो गत्वा ययौ त्र्यंबकमीश्वरम् ॥८४॥
दाक्षिणात्यैर्नृपतिभिर्मानितः पूजितोऽपि च । गृहीत्वा करभारं स्वं तेभ्यस्तैः सहितो ययौ ॥८५॥
एवं दक्षिणयात्रेयं या कृता राघवेण वै । सा मया विस्तरेणैव कथिता त्र्यंबकावधि ॥८६॥

इति श्रीमदानंदरामायणे यात्राकाण्डे दक्षिणतीर्थयात्रावर्णनं नाम सप्तमः सर्गः ॥ ७ ॥

अष्टमः सर्गः

(राम द्वारा भारतवर्षके पश्चिमी प्रदेशकी तीर्थयात्रा)

विष्णुदास उवाच

गुरो जातोऽस्ति संदेहो मम चित्ते वदाम्यहम् । स त्वया छिद्यतां स्वामिन् साधवो हि कृपालवः॥ १ ॥
यानारूढा न कर्तव्या यात्रा चेति श्रुतं मया । कथं यानेन रामेण कृता यात्रा त्वयेरिता ॥ २ ॥
इति जातोऽस्ति संदेहो मम तं त्वं निवारय । इति शिष्यवचः श्रुत्वा गुरुः प्राहाथ तं पुनः ॥ ३ ॥

श्रीरामदास उवाच

पदा यात्रा न कर्तव्या छत्रचामरधारिणी । राज्ञा द्वीपाधिपत्येन कार्या मांडलिकेन तु ॥ ४ ॥
पृथिवीशस्य देवस्य लग्नोद्युक्तवरस्य च । तथा मठाधिपस्यापि गमनं न पदा स्मृतम् ॥ ५ ॥
तस्मान्नात्र त्वया कार्यः संदेहो राघवं प्रति । आज्ञया रामचंद्रस्य कृपयाऽपि च तैर्जनैः ॥ ६ ॥

अपने नामकी पुरी बसायी । फिर अम्बिका तथा चंडिकाकी पूजा की ॥ ७९ ॥ पश्चात् आत्मतीर्थमें जाकर स्नान किया । बादमें विज्ञानेश्वरका दर्शन करके बड़वासंगमपर स्नान किया ॥ ८० ॥ फिर प्रतिष्ठानपुरको देखकर वृद्धेलसंगममें स्नान किया । शिवनन्दाके संगममें स्नान करके उन्होंने नृसिंहकी पूजा की ॥ ८१ ॥ तदनन्तर अपने नामके रामतीर्थको देखकर प्रवराके संगमपर गये । वहाँ सिद्धेश्वरको नमस्कार करके निवासाख्यपुर गये ॥ ८२ ॥ वहाँसे नूपुरनगर गये तथा और भी बहुतसे स्थान देखे । गोदावरीके तटपर होते हुए रघूद्वह राम पुण्यस्तम्भ गये ॥ ८३ ॥ वहाँसे कद्रूके संगमपर गये । वहाँसे आगे विनताके संगमपर गये । वहाँसे जनस्थान और वहाँसे त्र्यंबकेश्वर गये ॥ ८४ ॥ रास्तेमें दाक्षिणात्य राजाओंके द्वारा सम्मानित और पूजित होते हुए राम उनसे अपना कर उगाहते और उनको साथ लेते हुए आगे बढ़े ॥ ८५ ॥ इस प्रकार त्र्यम्बकावधि की हुई रामकी दक्षिण भारतकी तीर्थयात्रा मैंने तुमको कह सुनायी ॥ ८६ ॥ इति श्रीमदानन्दरामायणे यात्राकाण्डे 'ज्योत्स्ना' भाषाटीकायाँ दक्षिणतीर्थयात्रावर्णनं नाम सप्तमः सर्गः ॥ ७ ॥

विष्णुदासने कहा—हे गुरो ! मेरे हृदयमें एक संशय है । वह मैं आपके सम्मुख कहता हूँ । आप उसको दूर करें । क्योंकि साधु-महात्मा स्वभावसे कृपालु होते हैं ॥ १ ॥ मैंने सुना है कि सवारीपर बैठकर यात्रा नहीं करनी चाहिये । फिर आपने जो कहा कि श्रीरामने विमानपर सवार होकर यात्रा की, सो क्यों ? ॥ २ ॥ यही मुझे संदेह है, इसे आप निवृत्त करें । शिष्यके वचनको सुनकर गुरुने कहा ॥ ३ ॥ श्रीरामदास बोले—शास्त्रमें यह भी लिखा है कि ऐसे छत्रचमरधारी पुरुषको पैदल यात्रा नहीं करनी चाहिए, जो किसी द्वीपका अधिपति राजा हो । हाँ, मांडलिक अर्थात् किसी एक मंडलके राजाको तो पैदल ही यात्रा करना उचित है ॥ ४ ॥ बड़े पृथ्वीपतिको, देवताको, जिसका विवाह होना हो ऐसे वरको तथा मठाधीशको पैदल चलकर यात्रा नहीं करनी चाहिए ॥ ५ ॥ अतः तुमको श्रीरामकी विमान द्वारा यात्रामें किसी प्रकारका संदेह नहीं

अधिष्ठितं पुष्पकं तु को वेदेश्वरचेष्टितम् । इदानीं रामचंद्रस्य शृणु तां प्राक्तनीं कथाम् ॥ ७ ॥
त्र्यंबकाद्रामचंद्रस्तु पुरा यत्र तु निद्रितम् । सीतया पर्वते तत्र गत्वा स्थित्वा दिनत्रयम् ॥ ८ ॥
सप्तशृंगगिरौ गत्वा गत्वाऽगस्तेस्तु चाश्रमम् । सुतीक्ष्णस्याश्रमं गत्वा ययौ चैलपुरं ततः ॥ ९ ॥
घृष्णेश्वरं नमस्कृत्य शिवतीर्थे विगाह्य च । दृष्ट्वा रम्य देवगिरिं विरजाक्षेत्रमाययौ ॥१०॥
मातापुरस्थां देवीं तां नत्वा पश्यन्स्थलानि सः । देववाटे नारसिंह नत्वा रामश्च सीतया ॥११॥
चकार विधिवत्स्नानं पयोष्ण्यां बंधुभिर्जनैः । स्नात्वा ताप्युद्गमं रामः स्वनाम्ना पर्वतोत्तमम् ॥१२॥
गत्वा स्नात्वाऽथ रेवायामोंकारं परिपूज्य च । पश्चिमाभिमुखः पश्यन्नानापुण्यस्थलानि हि ॥१३॥
ताप्याश्च संगमे स्नात्वा नर्मदायाश्च संगमे । महानदीजले स्नात्वा प्रभासं च ततो ययौ ॥१४॥
पंचसरस्वतीनां च संगमेषु विगाह्य च । सौराष्ट्रस्थं सोमनाथं दृष्ट्वा स भ्रमतीं नदीम् ॥१५॥
पश्यन्नानास्थलान्येवं शंखोद्धारं ययौ ततः । गोमत्यां विधिवत्स्नात्वा द्वारावत्यां विवेश सः ॥१६॥
अनादिसिद्धां सप्तसु पुरीषु प्रथितां शुभाम् । दृष्ट्वा कृत्वा तीर्थविधिं दत्त्वा दानान्यनेकशः ॥१७॥
पश्यंस्तीर्थानि सर्वाणि पुण्यानि रघुनंदनः । पाश्चिमात्यैर्नृपतिभिर्मानितः पूजितोऽपि च ॥१८॥
गृहीत्वा करभारं स्वं तेभ्यस्तैः सहितो ययौ । सरस्वत्यास्तटेनैव पश्यन्पुण्यस्थलानि सः ॥१९॥
पुष्पकस्थः शनैः सीतां दर्शयन् कौतुकानि च । ययौ पुष्करतीर्थं वै नृपैः सर्वत्र संवृतः ॥२०॥
विमाने प्रत्यहं रामः कोटिशो ब्राह्मणान् सदा । भोजयामास दिव्यान्नैः पायसैः शर्करादिभिः ॥२१॥
विमाने ये स्थिताः पूर्वमयोध्यापुरवासिनः । तथा ये पूर्वदेशीया दाक्षिणात्या नृपाश्च ये ॥२२॥
पाश्चिमात्या नृपा एवं ते बलैर्वाहनैः सह । रामेणातिथिवत्सर्वे वस्त्रान्नाभरणादिभिः ॥२३॥

करना चाहिए । उन्हीं रामचन्द्रकी आज्ञाके अनुसार और लोग भी विमानपर सवार हुए ॥ ६ ॥ ईश्वरकी चेष्टाको कौन समझ सकता है ? अब तुम श्रीरामकी प्राचीन कथा सुनो ॥ ७ ॥ त्र्यम्बक धामसे चलकर श्रीराम उस पर्वतपर गये, जहाँ सीताके साथ उन्होंने प्रथम निद्रा ली थी । वहाँपर उन्होंने तीन रात्रि निवास किया ॥ ८ ॥ सप्तशृङ्ग पर्वतपर जाकर अनेक मनोहर स्थानोंमें भ्रमण किया । वहाँसे अगस्त्य मुनिके आश्रमको गये । बादमें सुतीक्ष्ण मुनिके आश्रममें पधारे । पश्चात् चैलपुर गये ॥ ९ ॥ वहाँ घृष्णेश्वरको नमस्कार किया, शिवतीर्थमें स्नान किया, रमणीक देवगिरि देखा और वहाँसे विरजाक्षेत्रमें गये ॥ १० ॥ वहाँ मातापुरनिवासिनी देवीको नमस्कारकर अनेक स्थानोंको देखते हुए देववाटमें जाकर नरसिंहको प्रणाम किया । सीता सहित रामने बादमें जाकर पयोष्णी नदीमें विधिवत् स्नान करके बन्धुसहित तापीके उद्गमस्थानमें स्नान किया । पश्चात् रामनामके पर्वतपर जाकर रेवामें स्नान करके ओंकारेश्वरकी पूजा की और पश्चिमकी ओरके अनेक स्थान देखे, जो कि बड़े पवित्र थे ॥ ११–१३ ॥ तदनन्तर तापी तथा नर्मदाके संगममें स्नान करके महानदीके जलमें स्नान किया और वहाँसे प्रभासक्षेत्र गये ॥ १४ ॥ वहाँ पंचसरस्वतीके संगममें स्नान करके सौराष्ट्र (गुजरात) देशमें सोमनाथजीका दर्शन किया । वहाँसे भ्रमती नदी गये । रास्तेमें अनेक स्थलोंको देखते हुए शंखोद्धार तीर्थ गये । वहाँ गोमतीमें विधिपूर्वक स्नान करके द्वारावती (द्वारिका) में प्रवेश किया ॥ १५ ॥ १६ ॥ जो कि सात पुरियोंमें अनादिसिद्ध, प्रसिद्ध और बड़ी ही सुन्दर पुरी है । वहाँ तीर्थविधि सम्पन्न करके अनेक दान दिये ॥ १७ ॥ इस प्रकार अनेक तीर्थोंको देखते तथा पश्चिमके राजा-महाराजाओंसे सम्मानित और पूजित होते तथा उनसे अपना कर लेते और उनके साथ पुण्य स्थानोंको देखते हुए राम सरस्वतीके किनारे-किनारे आगे बढ़े । पुष्पकपर स्थित राम महारानी सीताको रास्तेमें अनेक कौतुक दिखाते तथा राजाओंको साथ लिये हुए पुष्करराज जा पहुँचे ॥ १८–२० ॥ रामचन्द्रजी विमानपर भी प्रतिदिन करोड़ों ब्राह्मणोंको सुन्दर और दिव्य अन्न मालपूआ आदि तथा मिश्रीयुक्त खीर भोजन कराते थे ॥ २१ ॥ इतना ही नहीं, बल्कि और भी जो अयोध्यापुरवासी लोग विमानपर पहलेसे ही गये हुए थे तथा अन्य भी जो दक्षिण देशके

पूजिता मानिता आसन् सादरं ते यथासुखम् । न कश्चिद्भिन्नपाकं हि चकार पुष्पके नरः ॥२४॥
चिंता काष्ठतृणादीनां जलस्यापि न कस्यचित् । एका चिंता तु तत्रास्ति क्षुद्बोधो मे कथं भवेत् ॥२५॥
वांछन्ति सर्वे तत्रैकं भिषक् चूर्णं प्रदास्यति । निद्रायास्तत्र दारिद्र्यं वाद्यघोषैर्निरंतरम् ॥२६॥
त्रासस्तत्र महानासीद्विमाने वारयोषिताम् । गीतैर्नेत्रकटाक्षैश्च क्रीडाभिर्वचनादिभिः ॥२७॥
मणिदीपैर्दिनं रात्रिं न जानाति स्म तत्र वै । गच्छद्दिने कदा यानं याति रात्रावपि क्वचित् ॥२८॥
एतस्मिन्नन्तरे शिष्य पुष्करस्थैर्जनैस्तदा । महानादः श्रुतो रम्यो मंजुलः श्रुतितोषकृत् ॥२९॥
वारस्त्रीनूपुरोद्भूतः क्वणत्कंकणजोऽपि च । करताडनगीतादिमृदंगपणवोद्भवः ॥३०॥
नववाद्यसमुद्भूतो घटीयंत्रसमुद्भवः । यानघंटाकिंकिणीनां पताकारवसंभवः ॥३१॥
वारांगनाकटितटकिंकणीसंभवोऽपि च । वारणाश्वायुधोष्ट्रादिमयूरकपिसम्भवः ॥३२॥
वीरेभ्यो वेदघोषेभ्यः शिष्येभ्यश्च समुत्थितः । नटनाटकवंदिभ्यो मागधेभ्यः समुत्थितः ॥३३॥
गोदोहसंभवश्चापि ह्यजामहिषिदोहजः । दधिमंथनसंभूतः शिशूनां रोदनोद्भवः ॥३४॥
शिशुमंचकसंबद्धशृंखलाभ्यः समुत्थितः । नानातूर्योद्भवश्चापि पिष्टचक्रसमुद्भवः ॥३५॥
घृतपाचितपक्वान्नप्रकारकरणोद्भवः । नारदादिमुनिश्रेष्ठधृतवीणादिसंभवः ॥३६॥
पुराणकथनोद्भूतो हरिकीर्तनसंभवः । रामनामसहस्रादिस्तोत्रपाठसमुद्भवः ॥३७॥
नारीपूरणपेषणकार्ये कंकणसंभवः । पादप्रक्षालनाद्यादिनानाकार्यसमुद्भवः ॥३८॥

राजा लोग, पूर्वदेशके राजा लोग तथा पश्चिम देशके राजागण थे । उन सबका भी सेनाओं और वाहनों सहित रामने विधिवत् अन्न-वस्त्र-आभरण आदिसे खूब सत्कार किया। उन्हें पूर्ण आदर और सुख दिया। पुष्पक-विमानपर कोई भी मनुष्य पृथक् भोजन नहीं बनाता था। सब रामहीके भोजनालयमें भोजन करते थे। इसलिए न तो किसीको काष्ठ तथा तृणकी चिंता थी और न जलकी। यदि वहाँ किसीको कोई चिन्ता थी तो केवल यही कि अच्छी भूख कैसे लगे। जिससे कि खूब अच्छा-अच्छा भोजन करें॥ २२-२५॥ वहाँ सब लोग वैद्यसे चूर्ण पानेकी इच्छा रखते थे। वहाँ दरिद्रता थी तो केवल निद्राकी। क्योंकि हर समय नाना प्रकारके बाजोंकी ध्वनि हुआ करती थी॥ २६॥ वहाँ यदि कोई भय था तो केवल वारांगनाओंका। विमानस्थ लोगोंको वेश्याओंके गीत, नेत्रकटाक्ष, अनेक क्रीडाओं, मधुर वचनों तथा मणिमय दीपोंके कारण रात-दिन एक-सा प्रतीत होता था। यान कभी दिनमें यात्रा करता था और कभी रातमें॥ २७॥ २८॥ इतनेमें हे शिष्य ! पुष्करतीर्थके लोगोंको एक बड़ा कोमल, मनोहर और श्रवणसुखकारी घोष सुनायी पड़ा॥ २९॥ जिसमें वेश्याओंके नूपुर बजते थे, कंकण बजते थे, तालियें बजती थीं, गीत हो रहा था, मृदङ्ग तथा नगाड़े आदि वाद्यसमूह बज रहे थे, घंटियें बज रही थीं, यानके घंटे बज रहे थे और झंडे फड़फड़ा रहे थे॥ ३०॥ ३१॥ वारांगनाओंकी कोमल कमरमें बँधी हुई क्षुद्रघंटिकाएँ बज रही थीं और हाथी चिग्घाड़ रहे थे। घोड़े हिनहिना रहे थे। आयुध खनखना रहे थे। ऊँट गलगला रहे थे। मोर केका वाणी बोल रहे थे॥ ३२॥ योद्धा लोग हाँकें लगा रहे थे। वेदघोष हो रहा था। छात्रगण अध्ययन कर रहे थे। नटोंका नाटक हो रहा था। चारण तथा भाट विरुदावली बखान रहे थे॥ ३३॥ गौओंके दोहनका घर्घर शब्द हो रहा था। बकरियों तथा भैंसोंके दोहनका शब्द भी सुनायी दे रहा था। छाछ बिलोनेका घरर-घरर निनाद हो रहा था। बालक रो रहे थे। बालकोंके झूलोंकी सिकड़ियों का शब्द हो रहा था। अनेक बाजे बज रहे थे। आटा पीसनेकी चक्कियोंको घरघराहट हो रही थी॥ ३४॥ ३५॥ घीमें पकाये जाते तथा तले जाते पकवानोंका छूँ छूँ शब्द हो रहा था। नारदादि मुनियोंकी वीणादिका मधुर शब्द हो रहा था॥ ३६॥ पुराण बांचे जा रहे थे। हरिकीर्तनकी ध्वनि हो रही थी। विष्णुसहस्रनाम तथा शिवमहिम्नस्तोत्रादिके पाठका घोष हो रहा था। नारियोंके कोई वस्तु कूटने तथा मेंहदी आदि पीसनेके समय कंकणका शब्द हो रहा था। उनके पाद-प्रक्षालनके समय झांझरका झंकार, कड़ोंकी कणकणाहट, छड़ोंका छनछनाहट, बिछुओंकी छमछमा-

एवं नानाविधं श्रुत्वा पुष्करस्था जना ध्वनिम् । निशांते पश्चिमामाशां किमेतदिति विह्वलाः ॥३९॥
केचिदूचुर्नन्दिघंटास्वरोऽयं श्रूयते महान् । केचिदूचुर्विमानेन गच्छतींद्रो दिवं प्रति ॥४०॥
केचिदूचुः समायांति रंभाद्यप्सरसश्च खे । केचिन्मेघध्वनिं प्रोचुः केचिदैरावतं त्विति ॥४१॥
केचित्प्रोचुः समायाति सागरः किं लयं विना । केचित्प्रोचुस्त्विदं ज्ञेयं वायुपुत्रस्य शब्दितम् ॥४२॥
केचित्पतत्त्रिराजस्य शब्दितं प्रोचुरुत्तमम् । केचित्प्रोचुश्च गंधर्वा विमानस्था अटति खे ॥४३॥
केचित्प्रोचुर्नागकन्याः कुर्वन्तीदं सुगायनम् । कुर्वन्तश्चेति तर्कांश्च ददृशुः पुष्पकं महत् ॥४४॥
राममागतमाज्ञाय तोषपूर्णा बभूविरे । उपायनानि संगृह्य प्रेमनिर्भरमानसाः ॥४५॥
प्रत्युज्जग्मुस्तदा रामं दृष्ट्वा नत्वा रघूत्तमम् । मेनिरे जन्मसाफल्यं राघवेणातिमानिताः ॥४६॥
राघवोऽपि विमानाग्र्यादवरुह्य द्विजोत्तमान् । प्रणिपत्य समाभाष्य प्रतिपूज्य सविस्तरम् ॥४७॥
तैस्तीर्थवासिभिर्युक्तो ययौ पुष्करमुत्तमम् । स्नात्वा सचैलं विधिना तीर्थश्राद्धं विधाय च ॥४८॥
दत्त्वा दानान्यनेकानि काश्याःकोट्यधिकानि तु । द्रव्यालंकारवस्त्राद्यैस्तोषयामास भूसुरान् ॥४९॥
ततस्तैरभ्यनुज्ञातो विमानेन ययौ पुनः । एवं पश्चिमयात्रा ते वर्णिता राघवस्य हि ॥५०॥

इति श्रीमदानन्दरामायणे यात्राकाण्डे पश्चिमयात्रावर्णनं नामाष्टमः सर्गः ॥ ८॥

नवमः सर्गः

(रामकी उत्तरभारतीय तीर्थयात्रा और वहाँसे लौटकर अयोध्या आगमन)

रामदास उवाच

उत्तराभिमुखो रामस्ततः पश्यन् स्थलानि सः । ययौ पर्वततीर्थं च ततो ज्वालामुखीं ययौ ॥ १ ॥

हट तथा पायजेबका मनोहारी निनाद हो रहा था ॥ ३७ ॥ ३८ ॥ इस प्रकार अनेक प्रकारके शब्दोंसे मिश्रित तथा घनीभूत ध्वनिको रात्रिके शांत समयमें पश्चिमकी ओर सुनकर पुष्करनिवासी लोग चकित हो गये ॥ ३९ ॥ कोई कहने लगा कि नन्दीश्वरके घंटेका यह शब्द सुनाई देता है। कोई कहने लगा कि इन्द्र विमानपर बैठकर स्वर्ग जा रहे हैं ॥ ४० ॥ कोई कहने लगा कि रम्भादि अप्सराएँ आकाशमें जा रही हैं। कोई मेघकी गर्जना बतलाने लगा। कोई ऐरावतकी चिंघाड़ कहने लगा ॥ ४१ ॥ कोई कहने लगा कि विना प्रलयकालके ही समुद्र उमड़ा आ रहा है। कोई कहने लगा कि वायुपुत्र हनुमान्का गर्जन हो रहा है ॥ ४२ ॥ कोई कहने लगा कि पक्षिराज गरुड़का शब्द हो रहा है। कोई बोला कि ये तो गन्धर्व लोग विमानपर बैठकर आकाशमें घूम-फिर रहे हैं ॥ ४३ ॥ कोई कहने लगा कि नागकन्याएँ गान कर रही हैं। इस प्रकारके अनेक तर्क-वितर्क करते हुए वे लोग पुष्पकको देखने लगे ॥ ४४ ॥ बादमें जब रामचन्द्रजीको आते देखा तो सब लोग बड़े ही प्रसन्न हुए। रामको देखकर सब लोग हाथमें अनेक तरहकी भेंटें ले-लेकर प्रेमपूर्वक उनके सामने गये। श्रीरामको प्रणाम करके उन्होंने अपना जन्म सफल माना। श्रीरामने भी उन सबका सत्कार किया ॥ ४५ ॥ ४६ ॥ पश्चात् श्रीरामने विमानसे नीचे उतरकर द्विज लोगोंमें श्रेष्ठ ब्राह्मणोंका नमस्कारपूर्वक पूजन किया और बादमें उन तीर्थवासियोंके साथ विस्तारसे वार्तालाप करते हुए उत्तम पुष्कर नगरमें प्रवेश किया। वहाँ सवस्त्र स्नान करके विधिवत् तीर्थश्राद्ध किया ॥ ४७ ॥ ४८ ॥ वहाँपर रामने काशीसे कोटिगुणा अधिक दान-पुण्य किया। द्रव्य, अलंकार, वस्त्र तथा अन्नादिसे ब्राह्मणोंको संतुष्ट किया। बादमें उनसे आज्ञा लेकर वे विमान द्वारा आगे बढ़े। इस प्रकार हे पार्वती ! मैंने रामकी पश्चिम भारतकी तीर्थयात्रा कह सुनायी ॥ ४९ ॥ ५० ॥
इति श्रीमदानन्दरामायणे यात्राकाण्डे 'ज्योत्स्ना'भाषाटीकायां पश्चिमयात्रावर्णनं नामाष्टमः सर्गः ॥ ८ ॥

15 श्रीरामदासने कहा—बादमें श्रीराम अनेक स्थलों एवं उत्तरके पर्वतों तथा तीर्थोंको देखते हुए वहाँसे

पश्यन् स्थलानि संप्राप तत्रां श्रीमणिकर्णिकाम् । करतोयानदीतोये स्नात्वाऽग्रे न ययौ विभुः ॥ २ ॥
तरणे दोषमाकर्ण्य पर्यवर्तत राघवः । कर्मनाशानदीस्पर्शात्करतोयाविलंघनात् ॥ ३ ॥
गंडकीबाहुतरणाद्धर्मः स्खलति कीर्तनात् । गत्वा देवप्रयागं चालकनंदातटेन वै ॥ ४ ॥
नरनारायणौ गत्वा दर्शनान्मुक्तिदौ नृणाम् । बदरिकाश्रमे रामः केदारेश विलोक्य सः ॥ ५ ॥
हिमाद्रौ देवगंधर्वसेविते धातुमंडले । महापथं ततो गत्वा ययौ तन्मानसं सरः ॥ ६ ॥
यस्माद्विनिर्गता गंगा सरयुः पापनाशिनी । कंजानि यत्र हैमानि यत्र हंसाः सहस्रशः ॥ ७ ॥
रक्तनेत्रांघ्रिवदना मुक्ताभक्षणतत्पराः । यत्प्रदेशे चित्रभूम्यां देवगंधर्वकिन्नराः ॥ ८ ॥
अप्सरोभिस्तथा स्त्रीभिः क्रीडां कुर्वंत्यहर्निशम् । तत्र स्नात्वा मानसेऽथ गत्वा विन्दुसरोवरम् ॥ ९ ॥
स्नात्वा दानादिकं कृत्वा हिमालयगिरिस्थिताम् । दृष्ट्वा ब्रह्मसभां दिव्यां मेरुस्थसदृशीं पराम् ॥१०॥
राघवः सीतया सर्वैरवरुह्य स पुष्पकात् । प्रणमंतं सुरेंद्राद्यैरालिंग्य चतुराननम् ॥११॥
ब्रह्मणा सहितान्देवान्पूजयामास विस्तरैः । विधिस्तं पूजयामास कामधेनुं न्यवेदयत् ॥१२॥
विमानाग्रे कामधेनु संस्थाप्य रघुनंदनः । सुरैर्ब्रह्मादिभिः साकं कैलासमगमत्तदा ॥१३॥
राममागतमाज्ञाय कैलासे गिरिजापतिः । प्रत्युज्जगाम पार्वत्या रामचंद्रं वृषस्थितः ॥१४॥
शम्भुमागतमाज्ञाय राघवः पुष्पकाजवात् । अवरुह्य नमस्कृत्य शिवेनालिंगितः स्थितः ॥१५॥
उमाऽपि सीतामालिंग्य दिव्यालंकारचंदनैः ।
पूजयामास वस्त्राद्यैः सूर्यकोटिसमप्रभैः । ताटंके नूपुरे दिव्ये केयूरे चूडकद्वयम् ॥१६॥
किंकिणीरवसंयुक्तरशनां चंद्रभास्करौ । सीमंतभूषणौ हारान्मणिमुक्ताविचित्रितान् ॥१७॥

ज्वालामुखी गये ॥ १ ॥ वहाँसे आगे बहुतेरे स्थानोंको देखते हुए श्रीमणिकर्णिका तीर्थपर जा पहुँचे। वहाँ करतोया नदीमें स्नान किया, परन्तु उसको पार करके आगे नहीं गये ॥ २ ॥ श्रीराम करतोयाको पार करनेमें प्रायश्चित्त सुनकर वहींसे लौट पड़े। क्योंकि शास्त्रोंमें लिखा है—कर्मनाशा नदीके स्पर्शमात्रसे, करतोयाके लाँघनेसे, गंडकीमें हाथोंद्वारा तैरनेसे तथा धर्मका अपने मुखसे बखान करनेसे प्राणीका किया हुआ धर्म नष्ट हो जाता है। वहाँसे वे देवप्रयाग गये। पश्चात् अलकनन्दाके किनारे-किनारे चलकर मनुष्योंको दर्शनमात्रसे मुक्ति देनेवाले नरनारायणका दर्शन किया। श्रीरामने बदरिकाश्रमके बाद केदारेश्वरका दर्शन किया ॥ ३–५ ॥ इसके अनन्तर राम अनेक धातुओंसे मंडित हिमाद्रिपर गये, जहाँ कि अनेक देवता तथा गन्धर्व निवास करते हैं। बादमें महापथ गये और वहाँसे उस सर्वसिद्ध मानसरोवरपर पधारे ॥ ६ ॥ जहाँसे कि पापोंको नष्ट करनेवाली गंगा तथा सरयू निकली हैं। उस मानसरोवरमें अनेक सुवर्णकमल खिले हुए थे। वहाँ मोती चुगनेमें तत्पर, लाल नेत्र, लाल पग तथा लाल मुखवाले हजारों राजहंस निवास करते थे। उस प्रदेशकी चित्र-विचित्र भूमिपर अप्सराओं तथा स्त्रियोंके सहित अनेक देव-गंधर्व और किन्नरोंके समूह क्रीड़ा कर रहे थे। उस मानसरोवरमें स्नान करके श्रीराम विन्दुसरोवर गये ॥ ७–९ ॥ वहाँपर स्नान करके तथा अनेक दान देकर हिमालयपर गये। वहाँ मेरुपर्वतपर स्थित ब्रह्मसभाके समान एक दूसरी मनोहर ब्रह्मसभा देखी ॥ १० ॥ वहाँ राम सीता तथा अन्य सब लोगोंके साथ विमानपरसे उतर पड़े और इन्द्रादिकोंको साथ लेकर प्रणाम करते हुए चतुर्मुख ब्रह्माका आलिङ्गन किया। ब्रह्मा सहित अन्य सब देवताओंकी रामने विस्तारसे पूजा की। पश्चात् ब्रह्माने भी श्रीरामका विधिपूर्वक पूजन किया और उन्हें सादर कामधेनु समर्पित की ॥ ११ ॥ १२ ॥ बादमें रघुनन्दन सब देवताओं सहित ब्रह्माको तथा उस कामधेनुको विमानपर चढ़ाकर कैलास पर्वतपर पधारे ॥ १३ ॥ कैलासपर श्रीरामको आये सुनकर गिरिजाके पति शिवजी पार्वतीके साथ नन्दीश्वरपर सवार होकर रामचन्द्रको लेने आये ॥ १४ ॥ राम शिवजीको आते देखकर पुष्पकपरसे नीचे उतर गये और शिवजीको प्रणाम किया। शिवजीने रामका आलिङ्गन किया। पार्वतीने भी सीताका आलिंगन करके दिव्य चन्दन आदिसे पूजा की। तदनन्तर प्रसन्न होकर उमादेवीने सीता महारानीको सूर्यके समान दीप्तिवाले अनेक आभूषण और वस्त्र दिये।

ददौ जनकनन्दिन्यैं पार्वती तोषपूरिता । ततः शंभुस्तदा प्राह राघव पूज्य वैभवैः ॥१८॥
राम त्वन्नाभिकमले ब्रह्माऽयं चतुराननः । ततो जातो विधेश्चाहं रोदनाद्रुद्रसंज्ञकः ॥१९॥
पौत्रस्तव रघुश्रेष्ठ तवाज्ञापरिपालकः । संहारः क्रियते राम आज्ञया तव सादरात् ॥२०॥
यदा मया तु प्रलये तदा पापं क्व ते गतम् । यद्दशास्यवधाद्भीतस्तीर्थयात्रां करोषि हि ।॥२१॥
क्रीडेयं तव राजेंद्र सुखं क्रीडस्व सीतया । क्रियते लोकशिक्षार्थं जानामि तव चेष्टितम् ॥२२॥
एवं नानाविधैस्तस्य चारित्र्यैरीड्य राघवम् । ददौ सिंहासनं छत्रं चामरे मंचकोत्तमम् ॥२३॥
पानपात्रं भोजनस्य पात्र हैमं मनोरमम् । कंकणे कुण्डले बाहुभूषणे मुकुटोत्तमम् ॥२४॥
रामं प्रस्थापयामास बद्ध्वा चिन्तामणिं हृदि । हृदि चिन्तामणिं दृष्ट्वा राघवस्य विदेहजा ॥२५॥
प्राहातिलज्जिता रामं गौर्मे चिन्तामणिस्तव । तथेति राघवोऽप्युक्त्वा विमानेन जनैः सह ॥२६॥
ययौ नत्वा शंकरं हि कृत्वा यज्ञार्थसूचनाम् । आकारयित्वाऽथ विधिं मासैकेनाध्वराय हि ॥२७॥
भागीरथ्यास्तटेनैव हरिद्वारं ययौ जवात् । कुरुक्षेत्रं विगाह्याथ इन्द्रप्रस्थं ततो ययौ ॥२८॥
दृष्ट्वा मधुवनं रम्यं ययौ वृन्दावनं ततः । गोकुलं वीक्ष्य रामस्तु गोवर्धनमगाच्छनैः ॥२९॥
गत्वाऽथावंतिकां पुण्यां क्षिप्रातीरविराजिताम्। महाकालं पुरस्कृत्य पश्यंस्तीर्थान्यनेकशः ॥३०॥
दृष्ट्वा गजाह्वयं क्षेत्रं सागरं कूपमीक्ष्य च । ययौ स नैमिषारण्ये गोमत्यां स विगाह्य च ॥३१॥
सूतं पौराणिकं दृष्ट्वा शौनकादीन् प्रपूज्य च । स्नात्वा तद्ब्रह्मवैवर्तसरस्यथ रघूत्तमः ॥३२॥
तमसां तां विगाह्याथ ददर्श नगरीं निजाम् । राममागतमाज्ञाय सुमंत्रो वेगवत्तरः ॥३३॥

दो कर्णफूल, दो सुन्दर चूड़िएँ, छोटे-छोटे घुँघुरुओंके शब्दसे युक्त करधनी, चन्द्रमाके समान कांतिवाले दो सीमन्तभूषण और मणि तथा मोतियोंके हार भी दिये । पश्चात् शिवजीने भी अनेक विभवोंसे रामका पूजन करके उनसे प्रश्न किया-॥ १५-१८ ॥ हे राम ! आपके नाभिकमलसे ये चतुरानन ब्रह्मा हुए। इन ब्रह्मासे मैं पैदा हुआ और रोदन करनेके कारण मेरा नाम रुद्र पड़ा ॥ १९ ॥ हे रघुश्रेष्ठ ! इस प्रकार मैं आपका पौत्र हुआ। हे राम ! आपकी आज्ञाका पालन करते हुए आपके आदशके अनुसार मैं प्रलयकालमें तीनों लोकोंका संहार करता हूँ । तब क्या यह पाप आपको नहीं लगता, जो आज आप साक्षान्नारायण होकर भी रावणवधसे ब्रह्महत्यारूपी लोकापवादके भयसे तीर्थयात्रा करने निकले हैं ? ॥ २० ॥ २१ ॥ अथवा ठीक ही है, मैं समझ गया। हे प्रभो ! आप यह सब लोकशिक्षाके लिये क्रीड़ामात्र कर रहे हैं। यदि ऐसा है तो आप भले ही सीताके सहित क्रीड़ा करें। लोकमर्यादाको स्थापित करनेके अतिरिक्त और कुछ भी आपकी क्रीड़ाका प्रयोजन नहीं है ॥ २२ ॥ इस प्रकार अनेक रामचरित्रोंसे श्रीरामकी स्तुति करनेके बाद शिवजीने उन्हें सिंहासन, एक छत्र, दो चमर, एक उत्तम पलंग, पानका डिब्बा, भोजन करनेके लिए सुन्दर सोनेका थाल, कंकण, कुण्डल, कड़े और मुकुट दिये ॥ २३ ॥ २४ ॥ तदनन्तर रामके गलेमें चिन्तामणि बाँधकर उन्हें विदा किया। सीताने रामके हृदयपर चिन्तामणि देखकर उनसे कुछ लज्जापूर्वक कहा- अच्छा, यह चिन्तामणि आपकी रही और यह कामधेनु मेरी। श्रीराम भी 'बहुत अच्छा' कहकर वहाँसे सब लोगोंके साथ विमानपर सवार हो शंकर भगवान्को नमस्कार करके चल दिये। चलते समय वे शंकर भगवान्को भावी यज्ञकी सूचना देते गये। ब्रह्माको भी एक मासके बाद होनेवाले यज्ञमें अयोध्या आनेके लिए कहा ॥ २५-२७ ॥ वहाँसे भागीरथीके किनारे-किनारे हरिद्वार गये । वहाँसे शीघ्र ही कुरुक्षेत्रमें स्नान करके इन्द्रप्रस्थ (दिल्ली) गये ॥ २८ ॥ वहाँसे मनोहर मथुरापुरी देखकर वृन्दावन पधारे । गोकुल देखकर वे गोवर्धन पर्वतपर गये ॥ २९ ॥ बादमें शनैः शनैः परम पवित्र अवन्तिका (उज्जैन) नगरीको गये, जो कि क्षिप्रा नदीके किनारेपर विद्यमान है। वहाँ महाकालेश्वरका दर्शन-पूजन करके अनेक शुभ तीर्थ देखते हुए गजाह्वय (हस्तिनापुर) क्षेत्र तथा सागरकूपको देखा। पश्चात् नैमिषारण्य गये। वहाँ गोमतीमें स्नान किया ॥ ३० ॥ ३१ ॥ फिर पौराणिक सूतका दर्शन करके

अयोध्यां भूषयामास प्रोच्चैर्नानाविधध्वजैः । तोरणैश्च पताकाभिः पुष्पहारैर्मनोरमैः ॥३४॥
शोधयित्वा राजमार्गान् सेचयित्वा तु चंदनैः । विकीर्णकुसुमैर्दिव्यैर्बलिदीपैर्विराजितान् ॥३५॥
वारणेंद्रं पुरस्कृत्य सेनया परिवेष्टितः । प्रत्युज्जगाम राजेंद्रं पुष्पकस्थं त्वरान्वितः ॥३६॥
दंडवत्प्रणिपत्याथ दत्त्वा चोपायनानि तत् । आलिंगितो राघवेण मेने स कृतकृत्यताम् ॥३७॥
ततो वाद्यनिनादैश्च नर्तनैर्वारयोषिताम् । वेदघोषैर्द्विजानां च रामतीर्थं ययौ शनैः ॥३८॥
स्नात्वा तत्सरयूतोये यत्र तीर्थं सुपुण्यदम् । स्वयमेव कृतं पूर्वं नित्यकर्मार्दमादरात् ॥३९॥
वसिष्ठोक्तविधानेन कृत्वा चैकमुपोषणम् । दधिश्राद्धं विधायाथ दत्त्वा दानान्यनेकशः ॥४०॥
तृतीये दिवसे रामो विमानेन विहायसा । पुर्या विलंघ्य प्राकरान् हेमरत्नविनिर्मितान् ॥४१॥
अयोध्यां शोभितां रम्यां गोपुराट्टालमंडिताम् । वीथीहट्टसमायुक्तां चतुष्पथविराजिताम् ॥४२॥
पश्यन् स्वीयं राजसभाद्वारं प्राप रघूत्तमः । यानं भूमंडलं प्राप्य सुखमासीत्स्थिरं तदा ॥४३॥
ततः सुमंत्रपत्नीभिर्दध्योदनविनिर्मिताः । बलयः कांस्यपात्रस्था जलतैलघटास्तथा ॥४४॥
सीताराघवयोर्देहादुत्तार्य शतशस्तदा । नीत्वा त्यक्त्वा विदूरे तु स्नात्वा रामगृहं ययुः॥४५॥
ततो रामो विमानाग्र्यादवरुह्य स बंधुभिः । नागरैस्तैर्नृपतिभिः सभायां संविवेश ह ॥४६॥
तस्थौ सिंहासने रामश्चिंतामणिविराजितः । तस्थुर्नृपाः सभायां श्रीराघवेणातिमानिताः ॥४७॥
सीताऽपि निजगेहं सा विचित्ररत्ननिर्मितम् । कामधेनुं पुरस्कृत्य प्रविवेशातिहर्षिता ॥४८॥
ततो रामः कामधेनुसंभूतैतपाचितैः । परमान्नैः षड्रसैश्च भोजयामास भूसुरान् ॥४९॥

शौनकादि ऋषियोंका पूजन और ब्रह्मवैवर्त नामके सरोवरमें स्नान किया ॥ ३२ ॥ तमसा नदीमें अवगाहन करके राम अपनी नगरीको चल पड़े। उधर श्रीरामको आते सुनकर सुमंत्रने झटपट अनेक प्रकारकी बड़ी-बड़ी पताकाओं तथा ध्वजाओंसे अयोध्या नगरीको सजवा दिया। अनेक तोरण बँधवा दिये ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ राजमार्गोंको साफ कराकर चन्दनके जलसे छिड़काव करा दिया। उनपर दिव्य और नाना रंगके फूल बिछवा दिये। जगह-जगह चौराहोंपर दीपक तथा पूजाकी सामग्री रखवा दी ॥ ३५ ॥ पश्चात् सुसज्जित वारणेन्द्र (हाथी) को आगे करके सेनासहित स्वयं पुष्पकस्थित राजा रामकी अगवानी करने गये ॥३६॥ उन्होंने उन्हें दण्डवत् प्रणाम करके अनेक उपायन दिये। बादमें मंत्री सुमंत्र रामसे आलिंगित होकर अपने आपको कृतकृत्य समझने लगे ॥ ३७ ॥ तदनन्तर बाजे-गाजे, वारांगनाओंके नृत्य तथा ब्राह्मणोंके वेदघोषके साथ राम धीरे-धीरे रामतीर्थपर गये ॥३८॥ वहाँ जाकर उन्होंने सरयूके जलमें स्नान किया। वह बड़ा पवित्र तथा उत्तम तीर्थ स्वयं रामके ही नित्यकर्मके लिये निर्मित हुआ था ॥ ३९ ॥ वहाँ उन्होंने वसिष्ठजीके कथनानुसार विधिवत् एक उपवास किया, दधिश्राद्ध किया तथा अनेक दान दिये ॥ ४० ॥ तीसरे दिन श्रीराम विमानके द्वारा आकाशमार्गसे नगरीके सुवर्णनिर्मित प्राकारोंको लाँघकर पुरद्वार तथा सुन्दर अटारियोंसे सुशोभित मनोहारिणी अयोध्यामें पधारे। जो गलियों, सड़कों, बाजारों तथा चौराहोंसे बड़ी ही भली लग रही थी ॥ ४१ ॥ ४२ ॥ बहुत दिनों बाद आज उन्हें अपनी राजसभाके द्वारका दर्शन प्राप्त हुआ। वहाँ आकर वे यानपरसे उतर पड़े। विमान भी भूतलपर उतरकर सुखपूर्वक खड़ा हो गया ॥ ४३ ॥ तब सुमंत्रकी स्त्रियें दधि-ओदनसे युक्त काँसेके पात्रमें रखी हुई बलिएँ तथा जल-तेलसे पूर्ण सैकड़ों घड़े सीता तथा रामके देहपरसे उतार तथा दूर ले जाकर छोड़ आयीं और स्नान करके रामके भवनमें गयीं ॥ ४४ ॥ ४५ ॥ श्रीराम भी विमानपरसे उतरनेके बाद नागरिकों तथा अन्य राजाओंके साथ सभाभवनमें पधारे ॥ ४६ ॥ चिन्तामणिसे सुशोभित हृदयवाले राम सिंहासनपर जा विराजे तथा उनसे सम्मानित होकर अन्य राजे भी यथास्थान बैठ गये ॥ ४७ ॥ महारानी सीता भी कामधेनुको लेकर प्रसन्नतापूर्वक चित्र-विचित्र रत्नोंसे निर्मित अपने महलमें गयीं ॥ ४८ ॥ पश्चात् श्रीरामने कामधेनुसे प्राप्त घृतसे निर्मित षड्रसमय उत्तम पकवानों द्वारा

अचांडालांस्तर्पयित्वा स्वयं कृत्वाऽशनं तदा । निद्रार्थं नृपतीन् याने स्थलमाज्ञापयत्तदा ॥५०॥
पंचरात्रं नृपान् प्रीत्या स्थापयित्वा स्वसन्निधौ । वस्त्रालंकारतुरगैस्तोषयित्वा सविस्तरम् ॥५१॥
तान् प्रोवाच रमानाथः प्रबद्धकरसंपुटान् । मम यज्ञांगतुरगं दृष्ट्वा तत्पृष्ठगैः पुनः ॥५२॥
आगन्तव्यं जानपदैः स्वसैन्यैर्नागरैः सह । इत्याज्ञां रघुवीरस्य ह्यंगीकृत्य नृपोत्तमाः ॥
ययुः स्वं स्वं पुरं देशं स्वबलैः परिवेष्टिताः ॥५३॥
सुग्रीवाद्यान्वानरांश्च परिवारसमन्वितान् । आज्ञापयित्वा सद्मानि स्थापयामास स्वांतिके ॥५४॥
वाजिमेधानन्तरं हि प्रेषयिष्याम्यहं त्विति । ततो दुंदुभिनिर्घोषं स्वपुर्यां घोषयत्तदा ॥५५॥
अद्यारभ्य जनैः सर्वैरयोध्यानगरीस्थितैः । यैः कैश्चिदत्र पथिकैर्भिन्नपाकैर्न भुज्यताम् ॥५६॥
यावत्करोम्यहं भूम्यां राज्यं सीतासमन्वितः । निजगार्हस्थ्यमालंब्य ये वर्तन्ते नरोत्तमाः ॥५७॥
ते कुर्वन्तु सुखं पाकं स्वस्वगेहेषु भक्तितः । निर्बन्धो मम न ज्ञेयो वर्तितव्यं यथासुखम् ॥५८॥
इत्याज्ञाप्य जनान् रामः सुखं तस्थौ स सीतया । अयोध्यायां तु सर्वत्र वेदघोषो गृहे गृहे ॥५९॥
मंगलानि सशुत्साहा नर्तनं वारयोषिताम् । बभूवुश्च पुराणानि कीर्तनानि हरेः कथाः ॥६०॥
एवमासीत्सुसंतुष्टा साकेतनगरी शुभा । एवं प्रोक्तं मया शिष्य यात्राकाण्डमनुत्तमम् ॥६१॥
ये शृण्वंति नरा भक्त्या तेषां यात्राफलं भवेत् । यात्राधनार्जनोद्योगे यात्राकाण्डमिदं वरम् ॥६२॥
पठित्वा ये तु गच्छंति सुखेनायांति ते गृहम् । ब्रह्महत्यादिपापानि कृतानि मानवैः सकृत् ॥६३॥
यात्राकांडमिदं जप्त्वा शुद्धिस्तेभ्यो भविष्यति । सर्वतीर्थावगाहैश्च यत्फलं परिकीर्तितम् ॥६४॥
यात्राकाण्डमिदं श्रुत्वा तत्फलं प्रतिपद्यते । धनार्थी धनमाप्नोति कामी कामानवाप्नुयात् ॥६५॥

ब्राह्मणोंसे लेकर चाण्डाल तकको यथोचित भोजन कराके तृप्त किया । बादमें राजाओंके साथ स्वयं भोजन करके राजाओंको शयनार्थ विमानमें तथा अन्यान्य महलोंमें जानेकी आज्ञा दी ॥ ४९ ॥ ५० ॥ इस प्रकार पाँच दिन तक उन लोगोंको बड़े ही प्रेम तथा सत्कारसे रामने अपने भवनमें रक्खा । बादमें वस्त्र, अलंकार तथा अश्व आदि दे और उन्हें भलीभाँति प्रसन्न करके अपने-अपने स्थानको जानेकी आज्ञा दी । जब वे हाथ जोड़कर जानेके लिए सम्मुख खड़े हुए, तब रमानाथ रामने फिरसे उन्हें यज्ञके सुअवसरपर यज्ञके अंगभूत अश्वके पीछे-पीछे चलनेके लिए ससैन्य और प्रजा सहित आनेके लिये कहा । वे राजे इस आज्ञाको स्वीकार करके अपनी-अपनी सेनाके साथ अपने-अपने देश तथा नगरकी ओर चल दिये । परिवार सहित सुग्रीव आदि वानरोंको रहनेके वास्ते बहुतसे भवन देकर अपने यहाँ रक्खा और कहा कि अश्वमेध यज्ञके पश्चात् तुम लोगोंको विदा करेंगे । बादमें श्रीरामने अपने नगरमें ढिंढोरा पिटवाकर कहला दिया कि आजसे लेकर मेरे नगरवासियों तथा अन्य यात्री लोगोंको अलग भोजन बनाकर नहीं खाना चाहिये । सब लोग तबतक हमारे भोजनालयमें भोजन करें, जब तक कि मैं भूमिपर राज्य करूँ । हाँ, जो गृहस्थाश्रमी हों, वे भले ही अपने-अपने घरोंमें भक्तिपूर्वक सुखसे भोजन बनाएँ । उनके लिये मेरा आग्रह नहीं है ॥ ५१-५८ ॥ यह आज्ञा देकर राम सीताके साथ सुखपूर्वक रहने लगे । तबसे अयोध्या नगरीमें घर-घर वेदध्वनि होने लगी ॥ ५९ ॥ मंगलगान होने लगे, सोत्साह वारांगनाओंका नृत्य होने लगा तथा पुराणपाठ और हरिकथाएँ होने लगीं ॥ ६० ॥ इस प्रकार वह समस्त पुरी आनन्दित हो उठी । हे शिष्य ! मैंने तुमको भली भाँति उत्तम यात्राकांड सुनाया ॥ ६१ ॥ जो मनुष्य इस यात्राकांडको भक्तिपूर्वक श्रवण करेगा, उसे समस्त यात्रायें करनेका फल प्राप्त होगा । यदि मनुष्य यात्रामें जानेके समय अथवा धन कमानेके लिये जाते समय इसको सुनकर जाय तो वह सुखपूर्वक और कृतार्थ होकर लौटेगा । यदि मनुष्यने ब्रह्महत्यादि जैसे घोर पाप किये हों तो वे भी इसको सुननेसे दूर हो जाते हैं और प्राणी शुद्ध हो जाता है । सब तीर्थोंकी यात्रा करनेसे जो फल होता है, वह इस यात्राकांडको पढ़ने तथा सुननेसे प्राप्त हो जाता है । धनकी इच्छावालेको धन और कामकी इच्छावालेको काम मिलता है ॥ ६२-६५ ॥ इस

पापी पूतो भवेत्सद्यो यत्राकाण्डश्रवादिना । यः कश्चित्प्रातरुत्थाय कृतशौचविधिर्नरः ॥६६॥
तीर्थानां च वरं काण्डमिदं पुण्यं पठिष्यति । तस्य रामश्च संतुष्टः पूरयिष्यति वांछितम् ॥६७॥
सर्वतीर्थावगाहस्य फल तस्य भवेद्ध्रुवम् । यानि कानि च पापानि जन्मांतरकृतानि च ॥६८॥
तानि सर्वाणि नश्यन्ति यात्राकाण्डश्रवादिना ॥६९॥

इति श्रीशतकोटिरामचरितांतर्गतश्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये यात्राकाण्डे
रामोत्तरयात्रा-नगरप्रवेशो नाम नवमः सर्गः ॥ ९ ॥

यात्राकांडे च सर्गा वै नव प्रोक्ता मनीषिभिः ।
पंचत्रिंशोत्तराः सप्तशतश्लोका भवापहाः ॥ १ ॥

कांडको सुननेसे पापी पुरुष भी पवित्र हो जाता है । जो प्राणी प्रातःकाल उठ तथा स्नानादि करके इस पवित्र यात्राकांडको पढ़ेगा तो श्रीरामकी अनुकम्पासे उसके सब मनोरथ पूरे होंगे ॥ ६६ ॥ ६७ ॥ उसे सब तीर्थोंकी यात्राका फल मिलेगा । जन्म-जन्मान्तरके जो कुछ पाप होंगे, वे सब इस यात्राकांडको सुननेसे अवश्य नष्ट हो जायँगे ॥ ६८ ॥ ६९ ॥ इति श्रीशतकोटिरामचरितांतर्गतश्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये यात्राकांडे पं० रामतेजपांडेयकृत'ज्योत्स्ना'भाषाटीकायां रामोत्तरयात्रा-नगरप्रवेशो नाम नवमः सर्गः ॥ ९ ॥

इस यात्राकांडमें नौ सर्ग और भवभयको दूर करनेवाले ७३५ सात सौ पेंतीस श्लोक कहे गये हैं ॥ १ ॥

* इति श्रीमदानन्दरामायणे यात्राकाण्डं समाप्तम् *

श्रीरामचन्द्रार्पणमस्तु

श्रीरामचन्द्रो विजयतेतराम्

श्रीवाल्मीकिमहामुनिकृतशतकोटिरामचरितान्तर्गतं

आनन्दरामायणम्

'ज्योत्स्ना'ऽऽह्वया भाषाटीकयाऽऽटीकितम्

यागकाण्डम्

प्रथमः सर्गः

(अश्वमेध यज्ञके लिए सामग्री एकत्र करनेका निर्देश)

श्रीरामदास उवाच

अथ रामः सभामध्ये एकदा गुरुमब्रवीत् । कुम्भोदरमुनेर्वाक्यात्तीर्थयात्रा मया कृता ॥ १ ॥
इदानीं तस्य वाक्येन वाजिमेधं करोम्यहम् । यज्ञोपकारणानि त्वं लक्ष्मणाय वदस्व हि ॥ २ ॥
सुमुहूर्ते शुभे लग्ने श्यामकर्णाङ्घ्रिपुच्छकः । तुरङ्गो दिव्यवस्त्राद्यैर्भूषयित्वा विमुच्यताम् ॥ ३ ॥
पृथ्वीप्रदक्षिणार्थं हि तत्पृष्ठेऽयुतसंख्यया । सेनया सह शत्रुघ्नः सुमंत्रेण सहाचिरात् ॥ ४ ॥
तद्रामवचनं श्रुत्वा वसिष्ठो मुनिसत्तमः । ज्योतिर्वित्सहितो दृष्ट्वा सुमुहूर्तं शुभोदयम् ॥ ५ ॥
आज्ञापयत्स सौमित्रिं सभायां राजसन्निधौ । सौमित्रेऽद्यदिनाज्ज्ञेयो मुहूर्त्तः सप्तमेऽहनि ॥ ६ ॥
दीक्षार्थं रामचन्द्रस्य वाजिमेधाख्यकर्मणि । रामतीर्थे यज्ञभूमिः शोधनीया हलादिभिः ॥ ७ ॥
सुवर्णनिर्मितैर्दिव्यैर्ब्राह्मणैः सह सत्वरम् । दशक्रोशमिताऽयोध्यावहिः सर्वत्र लक्ष्मण ॥ ८ ॥
समा कर्करहीना तु लिप्ता चन्दनजातिभिः । मंडपश्च विधातव्यः सर्वत्राखण्डितः शुभः ॥ ९ ॥

श्रीरामदासने कहा—इसके अनन्तर एक दिन सभामें रामचन्द्रजी गुरु वसिष्ठसे कहने लगे—हे गुरो ! कुम्भोदर ऋषिके कथनानुसार मैंने तीर्थयात्रा की। अब उन्हींकी बातसे मैं अश्वमेध यज्ञ भी करना चाहता हूँ। यज्ञकी जो-जो आवश्यक वस्तुएँ हों, कृपया आप लक्ष्मणको बतला दीजिए ॥ १ ॥ २ ॥ किसी अच्छे मुहूर्त और शुभ लग्नमें श्याम रङ्गवाले जिसके कान, पैर और पूँछ हों, ऐसे घोड़ेको सुन्दर वस्त्रों और आभूषणोंसे सुसज्जित करके पृथ्वीप्रदक्षिणाके लिए छोड़ा जाय ॥ ३ ॥ तदनन्तर उस यज्ञीय घोड़ेकी रक्षा करनेके लिए दस हजार सेनाके साथ सुमन्त और शत्रुघ्न प्रस्थान करें ॥ ४ ॥ रामचन्द्रजीकी इन बातोंको सुनकर वसिष्ठजीने ज्योतिषियोंके साथ अच्छे लग्न तथा अच्छे नक्षत्रसे संयुक्त एक बढ़िया मुहूर्त देखा और सभामें ही रामचन्द्रजीके सामने लक्ष्मणजीसे बोले—हे लक्ष्मण ! रामचन्द्रके यज्ञकी दीक्षा लेनेका शुभ मुहूर्त आजसे ठीक सातवें दिन है ॥ ५ ॥ ६ ॥ सबसे पहला काम यह है कि इस अश्वमेध यज्ञके लिए रामतीर्थकी भूमि सुवर्णके बने हुए हलों द्वारा ब्राह्मणोंके साथ जोतकर शुद्ध की जाय। अयोध्याके चारों ओर दस कोस तककी जमीन परतालकर बराबर कर दी जाय और ऐसी साफ की जाय कि उसमें कहीं कुछ भी कङ्कड़-पत्थर न रहने

जम्ब्वाम्रादिनगानां च शाखाभिः कुसुमैरपि । पल्लवैश्च विचित्रैश्च कदलीस्तम्भमण्डितः ॥१०॥
समन्ततस्तोरणानि बन्धनीयानि यत्नतः । पुष्पहाराः फलादीनां मालाश्च विविधाः शुभाः ॥११॥
वेद्यः सहस्रशः कार्याः सुधया चेष्टकादिभिः । करणीयं महत्कुण्डं सत्सान्निध्येन मृन्मयम् ॥१२॥
कुंडोपरि महत् कार्यं गोमुखं च मनोरमम् । खदिरस्य विचित्रं हि वसोर्धारार्थमुत्तमम् ॥१३॥
सितरक्तासितैश्चैव नीलपीतादिभिः शुभैः । नानादृषदचूर्णैश्च ह्युपधातुविनिर्मितैः ॥१४॥
ननावर्णैर्विलेख्यानि स्वस्तिकानि समन्ततः । कमलानि विचित्राणि तथा ह्यष्टदलानि च ॥१५॥
शङ्खचक्रगदापद्मवल्लयश्च सहस्रशः । कुसुमानि विकीर्याणि यज्ञभूम्यां समन्ततः ॥१६॥
चतुर्विंशच्छुभाः कार्या यज्ञस्तम्भा महोच्छ्रिताः। विनिर्मिताः सुवर्णेन मुक्ताहारविगुंफिताः ॥१७॥
त्रितयं सर्वतोभद्रं कुण्डमध्येऽश्वदैवतम् । लेखनीयं तथा कुंड नानावर्णैर्विचित्रितम् ॥१८॥
द्रुतं कार्याणि पात्राणि यज्ञार्थं मम पश्यतः । हैमाः किलोपकरणा वरुणस्य यथाऽध्वरे ॥१९॥
आसनानि ऋषीणां च निद्रार्थं च सहस्रशः । वासोगेहानि कार्याणि तृणैः पर्णैश्च खर्परैः ॥२०॥
पाकशाला विधातव्या कार्या शालाऽशनस्य च । ऋषिशाला विधातव्याः स्त्रीशालाश्च शुभावहाः ॥२१॥
यज्ञोपकरणानां च शाला परमसुन्दरी । सभाः कार्या नृपाणां च वरवस्त्रैर्विचित्रिताः ॥२२॥
आसनार्थं महार्हाणि वस्त्राणि च समन्ततः । आस्तीर्याणि तथा राजपृष्ठभागाश्रयाणि च ॥२३॥
पक्षिपिच्छैः सुकार्पासभेदैः सम्पूरितानि हि । कशिपूपबर्हणानि विचित्राणि महान्ति च ॥२४॥
स्थापनीयानि सदसि महार्हाणि तु लक्ष्मण । स्थापनीयानि पानार्थं पात्राणि विविधानि च ॥२५॥
नानारसैः पूरितानि तथा पक्वफलादिभिः । नानासुगन्धद्रव्यैश्च रागैर्नानाविधैरपि ॥२६॥

पायें। फिर केसर-चन्दनसे लीपकर वह भूमि पवित्र करनी होगी । उस भूमिपर ऐसे मण्डप बनाये जायँ, जो सुन्दर हों और कहींसे कटे-फटे न हों ॥ ७–९ ॥ जामुन-आम आदि वृक्षोंकी शाखाओं तथा फूलों-पत्तोंसे खूब अच्छी तरह सजाकर केलेके खम्भोंके फाटक बनाये जायँ और मण्डपके चारों ओर फूलों और फलोंकी मालाएँ लटकाई जायँ ॥ १० ॥ ११ ॥ मण्डपके भीतर ईंट और चूनेकी पक्की जोड़ाई करके एक हजार वेदियाँ बनवायी जायँ। वहाँ ही मिट्टीका एक बड़ा भारी कुण्ड बनाया जाय। लेकिन वह मैं अपने सामने बनवाऊँगा। कुण्डके ऊपर खैरकी लकड़ीका एक सुन्दर गोमुख बनाया जाय, जो वसोर्धाराके काममें आयेगा। सफेद, लाल, काले, नीले और पीले पत्थरोंका चूर्ण तथा उपधातु (गेरू-गंधक आदि) के चूर्णोंसे जगह-जगह रङ्ग-बिरङ्गे स्वस्तिक लिखे जायँ और अष्टदल कमल बनाये जायँ ॥ १२–१५ ॥ जहाँ-तहाँ शंख, चक्र, गदा, पद्म तथा फूल-पत्तियोंकी चित्रकारी की जाय ॥ १६ ॥ सोनेके चौबीस यज्ञस्तम्भ बनाये जायँ, जो खूब ऊँचे हों और उनपर मोती-माणिक आदिका काम किया गया हो। कुण्डके पास अश्वदेवताके निमित्त सर्वतोभद्र बनाया जाय और वेदीके चारों ओर अच्छे-अच्छे चित्र बनाये जायँ। यज्ञके लिए जितने पात्रोंकी आवश्यकता होगी, वे सब मेरे सामने बनाये जायँगे। प्रायः वे सब पात्र सोनेके होंगे, जैसे वरुणदेवके यज्ञमें थे ॥ १७–१९ ॥ ऋषियोंको बैठने और सोनेके लिए पक्के, खपड़ोंके अथवा छप्परोंके हजार घर तैयार करने होंगे ॥ २० ॥ मण्डपकी एक ओर पाकशाला (रसोईघर) रहेगी, दूसरी ओर अशनशाला (भोजनभवन), तीसरी ओर ऋषिशाला (मुनियोंके ठहरनेकी जगह) और एक ओर सुन्दर स्त्रीशाला (स्त्रियोंके रहनेकी जगह) बनेगी ॥ २१ ॥ एक बड़ा-सा और सुन्दर मकान यज्ञकी सब सामग्रियें रखनेके लिए बनेगा। अच्छे-अच्छे कपड़ोंसे सजाकर राजाओंके लिए कई महफिलें बनायी जायँगी। बैठनेके लिए बढ़िया-बढ़िया कालीन-गलीचे आदि मँगाकर बिछाये जायँगे। पक्षियोंके पखनों या रूईसे भरी कितनी ही सुन्दर तकियायें राजाओंको लगानेके लिए रक्खी जायँगी। सबको जल पीनेके लिए विविध प्रकारके पात्र रक्खे जायँगे ॥ २२–२४ ॥ सभाभवनमें जल पीनेके लिए सुन्दर तथा बहुमूल्य बर्तन रक्खे जायँगे। कितने ही पके हुए फलोंके शरबतसे भरे

मद्यैर्विचित्रैर्मधुरैस्तथा मादकवस्तुभिः। नानासुगंधतैलैश्च काचकुम्भाः सहस्रशः ॥२७॥
स्थापनीयाश्चन्दनैश्च सुगंधैरक्षतादिभिः। नानोपस्करयुक्तानां ताम्बूलानां सहस्रशः ॥२८॥
स्थापनीयानि पात्राणि चामराणि सहस्रशः। व्यंजनानि विचित्राणि तथादर्शा विचित्रिताः ॥२९॥
स्थापनीयाश्च क्रीडार्थं क्रीडोपकरणानि च। स्थापनीयानि सदसि नृपाणां चित्रितानि च ॥३०॥
मृत्पात्रसम्भवाः कार्याः शतशः पुष्पवाटिकाः। जलयंत्राणि कार्याणि सर्वत्र विविधानि च ॥३१॥
नानाविचित्रवर्णानां वयसां पंजराः शुभाः। हेमरत्नमौक्तिकैश्च प्रवालैर्वसनैर्वरैः ॥३२॥
कमनीयाश्च भूषाभिस्तोयान्नाद्यैः प्रपूरिताः। बंधनीया मंडपेषु नर्तितव्योऽप्सरोगणः ॥३३॥
धूपयंतु सुधूपाश्च सुगायंतु हि गायकाः। वादनीयानि वाद्यानि बहूनि विविधानि च ॥३४॥
पूजोपकरणाद्यैश्च पात्राणि पूरितानि हि। पृथक् पृथक् सभास्वेव स्थापनीयानि लक्ष्मण॥३५॥
तथा ऋषिसभायां तु दर्भाश्च समिधस्तथा। दण्डाः कमण्डलुयुताः स्थापनीयाः सहस्रशः ॥३६॥
बहिर्वासाँश्च कौपीनान् वल्कलान्यजिनानि च। पूजाद्रव्याणि हव्यानि जलकुम्भाः सहस्रशः ॥३७॥
शौचार्थं मृत्तिकाः शुद्धा दंतकाष्ठानि पादुकाः। गैरिका मुखशुद्ध्यर्थं नानावस्तूनि कल्पय ॥३८॥
तथा नारीसभायां तु पूजापात्राण्यनेकशः। सौभाग्यद्रव्यपूर्णानि सुगंधैः पूरितान्यपि ॥३९॥
वायनानि विचित्राणि स्थापनीयानि लक्ष्मण। कवर्यः कज्जलानां च पात्राणि कुंकुमानि च ॥४०॥
करंडस्थानि रम्याणि भूषणान्युज्ज्वलानि च। हरिद्रादीनि वस्तूनि कंचुक्यो वसनानि च ॥४१॥
स्थापनीयानि व्यजनचामरादीनि सादरम्। सुहृदां लेखनीयानि पत्राणि च समंततः ॥४२॥

हुए बड़े-बड़े कंडाल वहाँ उपस्थित रहें। अनेक प्रकारके इत्र, गुलाबजल, केवड़ाजल, कस्तूरी और केसरका चन्दन सबको लगानेके लिए तैयार रखना चाहिए ॥ २५ ॥ २६ ॥ विचित्र प्रकारके स्वादिष्ट मद्य तथा अनेक मादक वस्तुएँ जुटाई जायें। बहुत किस्मके सुगन्धित तेलोंसे भरे हुए काँचके हजारों घड़े सदा तैयार रहें। बहुतसे बर्तनोंमें सुगन्धित चन्दन और अक्षत रक्खे रहें। विविध सामग्रियोंके साथ हजारों तश्तरियोंमें पानके बीड़े लगा-लगाकर रखे जायें ॥ २७ ॥ २८ ॥ हजारों चमर हाँकनेके लिए मँगा लेने चाहियें। खानेके लिए तरह तरहके पकवान सर्वदा तैयार रहें। मुँह देखनेके लिए अच्छे-अच्छे दर्पण मँगवा लिये जायें। खेलनेके लिए जितनी भी सामग्रियाँ हो सकें, मँगवाकर रख ली जायें। देश-विदेशके राजाओंके चित्र मँगवाकर सभाभवनमें चारों ओर टाँग दिये जायें ॥ २९ ॥ ३० ॥ बहुतसे फूलोंके गमले मँगवाकर वहाँ-पर रक्खे जायें। थोड़ी-थोड़ी दूरपर हजारों फोहारे बनाये जायें, जिनसे सदा जलकी धारा बहती रहे। लाल, पीले, हरे तथा बैंगनी आदि रङ्गोंवाले पक्षियोंके पिंजड़े लाकर मण्डपमें चारों ओर लटका दिये जायें और हीरा, मोती, पन्ना और मूँगा आदिके जड़ाऊ वस्त्रों द्वारा वे सजाये जायें ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ पिंजड़ोंमें उन पक्षियोंके भोजन करनेकी सब सामग्री भरी रहे। वहाँपर नाचनेके लिए सुन्दर-सुन्दर वेश्यायें बुलायी जायें। धूप देनेवाले लोग सुगन्धित धूप देनेके लिए नियुक्त किये जायें। गानेवाले गाना गायें और बजानेवाले विविध प्रकारके बाजे बजायें ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ सब राजसभाओंमें अलग-अलग पूजन करनेकी सामग्रियोंसे पूर्ण बर्तन रक्खे रहें। ऋषिसभाओंके लिए कुशा, दण्ड, कमण्डलु तथा समिधाका विशेष प्रबन्ध रहे। ऊपर पहननेके लिये वस्त्र और नीचे पहननेके लिये कौपीन, वल्कल वस्त्र, मृगचर्म, पूजनकी सब सामग्रियाँ, हवन करनेकी सब वस्तुएँ, जलसे भरे हुए हजारों घड़े आदि वहाँपर ला-लाकर रक्खे जायें। हाथ पवित्र करनेके लिए शुद्ध मृत्तिका, दातौन, खड़ाऊँ तथा मुखशुद्धिके लिये बहुतसे मंजन आदि वहाँपर रक्खे रहें ॥ ३५–३८ ॥ इसी तरह नारीसभामें भी पूजाके बहुतसे पात्र रहने चाहियें। सोहागके लिये शुभसूचक रोली-सेंदुर आदि सुगन्धित वस्तुयें भी रक्खी रहें। सुन्दर दर्पण लाकर रक्खे जायें। कागजके कुमकुमभरे बर्तन आदि भी वहाँ उपस्थित रहें ॥ ३९ ॥ ४० ॥ बहुत-सी बाँसकी बनी हुई सन्दूकोंमें सुन्दर और चमचमाते हुए आभूषण रक्खे रहें। हल्दी-रोली आदि चीजें और कंचुकी आदि वस्त्र लाकर रक्खे जायें। पंखे और चमरादिक

राममुद्रांकितान्यद्य तथा दूता महाजवाः । जनकाय प्रेषणीयाः कैकेयनृपसन्निधौ ॥४३॥
कौसल्यायाः सुमित्रायाः पितरौ प्रति लक्ष्मण । श्यामांघ्रिः श्यामकर्णश्च श्यामपुच्छः सितः शुभः ४४॥
महार्हाभरणैर्वस्त्रैर्दिव्यत्रीशासनेन च । शोभनीयश्चामराद्यैर्मुक्ताहारैर्मनोरमैः । ४५॥
हेर्माभिः शृंखलाभिश्च वेणीवंधविभूषणैः । तस्य भाले हेमपत्रे लेखनीयं स्फुटाक्षरैः । ४६॥
कोसलेन्द्रस्य रामस्य यज्ञांगतुरगो ह्ययम् । ज्ञेयः सर्वैर्नृपैर्मुक्तः कर्तुं भूम्याः प्रदक्षिणाम् ॥४७॥
यस्यास्ति सारं तेनाश्वो वंधनीयोऽयमुत्तमः । नोचेत् कोशांश्च निजान् पुरस्कृत्य वलैः सह ॥४८॥
स्वकुटुम्बैर्नागरैश्च तथा जानपदैः सह । आगंतव्यं नृपतिभिर्यज्ञांगाश्वानुवर्तिभिः ॥४९॥
यज्ञभूमिमयोध्यायां युद्धैर्जित्वा महोद्धतान् । एवं पत्रं बंधयित्वा मुक्तामणिविचित्रितैः ॥५०॥
अवतंसैः शोभयित्वा सिद्धः कार्यश्च मंडपे । सिद्धः कार्यः स शत्रुघ्नः सैन्येन परिवेष्टितः ॥५१॥
रथारूढोऽश्वरक्षार्थं सुमंत्रेण समन्वितः । नानापुण्यनदीनां च जलकुंभान् सहस्रशः ॥५२॥
नानादेशान्मृदश्चापि शत्रुघ्नेनानयस्व हि । शोभनीया पुरी रम्या पताकाध्वजतोरणैः ॥५३॥
देवालये सुधा देया तथा प्रासादमस्तके । देवालयाभ्यंतरेऽद्य चित्रशाला मनोरमाः ॥५४॥
लेखनीया विधातव्या रत्नदीपाः सदैव हि । पूजोपकरणादीनि प्रतिदेवालयेष्वपि ॥५५॥
स्थापयस्व समस्तानि वाद्यान्याज्ञापयस्व भोः । राजमार्गाः शोधनीयाः सेचनीयाश्च चंदनैः ॥५६॥
सौधराजिषु सर्वत्र चित्राणि विविधानि च । लेखनीयानि रम्याणि मुक्ताहाराः समंततः ॥५७॥
प्रवालमणिवैदूर्यकाश्मीरस्फटिकादिभिः । नानाविधाश्च कुसुमैर्हाराः पक्वफलादिभिः ॥५८॥
बधनीयाश्च सर्वत्र जालरंध्रैर्विशेषतः । एवं यद्यन्मया प्रोक्तं तत्कुरुष्वाविचारतः ॥५९॥

लाकर रक्खे जायँ और अपने मित्रोंकी आयी हुई चिट्ठियाँ क्रमशः वहाँ रक्खी रहें ॥ ४१ ॥ ४२ ॥ आज ही रामचन्द्रजीका मुहर लगा हुआ पत्र लेकर दूत मिथिलेश जनक, कोसल तथा केकय आदि राजाओंके पास जायँ। तदनन्तर श्याम पुच्छ तथा श्याम पैरवाले घोड़ेको ॥ ४३ ॥ ४४ ॥ बहुमूल्य वस्त्रों और आभूषणोंसे सजाया जाय। उसे सोनेकी जंजीरें और वेणीवंध आदि गहने पहनाये जायँ। एक सुवर्णपत्रपर ये बातें साफ अक्षरोंमें लिखकर घोड़ेके माथेपर बाँध दिया जाय–॥ ४५ ॥ ४६ ॥ "कोसलेन्द्र महाराज रामचन्द्रका यह यज्ञीय घोड़ा भूमिकी प्रदक्षिणा करनेके लिए छोड़ा गया है। सब देश-देशान्तरके राजाओंको ज्ञात हो कि जिसमें बल हो, वह इस सुन्दर घोड़ेको बाँध ले। नहीं तो अपने देशवासियों, अपनी सेना तथा कुटुम्बियोंके साथ इस घोड़ेके पीछे-पीछे चलता हुआ हमारी यज्ञभूमि अर्थात् अयोध्यामें आकर मुझसे मिले" ॥ ४७–४९ ॥ इस आशयका पत्र लटकाया जाय। रास्तेमें जो जो उद्दण्ड राजे मिलें, उनसे युद्ध कर-करके उन्हें परास्त किया जाय। अनेक प्रकारके झाड़-फानूस आदिसे सजा करके एक सिद्धमंडप वनाया जाय। इसके अनन्तर अपनी पूरी सेनाके साथ शत्रुघ्नजी सुमन्त्रको साथ लिये हुए घोड़ेपर सवार होकर उस यज्ञीय घोड़ेकी रक्षा करनेके किए प्रस्थान करें। उसके पश्चात् बहुत-सी पवित्र नदियोंकी मृत्तिका और हजारों घड़ोंमें जल भर-भरकर शत्रुघ्नजीके द्वारा मँगवाया जाय ॥ ५०–५२ ॥ अयोध्यामें जितने भी देवालय हों, उन सबको चूनेसे पुतवाया जाय। सब मकानोंकी भी सफाई की जाय। देवालयोंके भीतर नाना प्रकारकी चित्रकारियाँ की जायँ। हर एक देवालयमें हर रोज पूजन करनेकी सामग्रियाँ भेजी जायँ ॥ ५३–५५ ॥ हे लक्ष्मणजी ! आज ही आप सब प्रकारके बाजे मँगाकर रखनेकी आज्ञा दे दीजिए। अयोध्याके सब राजमार्ग खूब अच्छी तरह साफ किये जायँ और उनपर चन्दनका छिड़काव किया जाय। राजमार्गके सब बड़े-बड़े महलोंकी दावारोंपर विविध प्रकारके चित्र बनानेकी आज्ञा दे दी जाय। जगह-जगहपर मोतियोंकी मालायें लटकायी जायँ ॥ ५६ ॥ ५७ ॥ प्रवालमणि, वैदूर्यमणि, काश्मीर और स्फटिकादि मणियोंकी मालायें, फूलोंकी मालायें तथा पके फलोंकी मालायें हर एक मकानोंपर लटकाई जायँ। इस प्रकार मैंने जो कुछ बतलाया है, उसे कर

तद्गुरोर्वचनं श्रुत्वा तथेत्युक्त्वा स लक्ष्मणः । कारयामास तत्सर्वं गुरोर्वाक्याच्छताधिकम् । ६०॥

इति श्रीशतकोटिरामचरितांतर्गते श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये यागकाण्डे यागोपकरणनिवेदनं नाम प्रथमः सर्गः ॥ १ ॥

द्वितीयः सर्गः

(यज्ञमें सावधानी रखनेके लिए रामका लक्ष्मणको आदेश)

श्रीरामदास उवाच

अथ रामः ससीतस्तु मुहूर्ते सप्तमेऽहनि । नवनीतोद्वर्तनाद्यैः स्नात्वा कृत्वांजनादिकम् ॥ १ ॥
तूर्यनादैर्द्विजानां च वेदघोषैर्विशेषतः । पौरस्त्रीणां गायनैश्च पौराणां च जयस्वनैः ॥ २ ॥
आगत्य मंडपे रम्ये तस्थौ चित्रासनोपरि । ददौ कौशेयवस्त्राणि गुरुं रामस्त्वरुन्धतीम् ॥ ३ ॥
पौरांश्च पौरपत्नीश्च मातृश्चाथ सुवासिनीः । श्वश्रूश्चापि द्विजान् सर्वान् जनकं सुहृदस्तथा ॥ ४ ॥
बंधूंश्च बंधुपत्नीश्च वयस्यांश्च ततः परम् । मंत्रिणश्चाथ वीरांश्च दासदासीजनांस्तथा ॥ ५ ॥
नटनर्तकवंद्यादीन् वारस्त्रीश्च ततः परम् । आचांडालादिकान् दत्त्वा ततः सीतां ददौ वरम्॥ ६ ॥
हेमतन्तुसमुद्भूतं मुक्तामाणिक्यगुंफितम् । रत्नकाश्मीरनीलाद्यैर्मध्ये मध्ये विचित्रितम् ॥ ७ ॥
मुक्ताप्रवालघोषाद्यैर्मणिभिः सर्वतो वृतम् । आदर्शबिम्बसदृशं विद्युत्तेजोपमं महत् ॥ ८ ॥
ततः स्वयं रामचन्द्रः पीतकौशेयमुत्तमम् । हेमतंत्वंकितं नानावल्लीपुष्पविचित्रितम् ॥ ९ ॥
दधारान्यच्चोत्तरीयं वासोऽलंकारमंडितः । व्यंजिताशेषगात्रश्रीर्मणिद्वयविराजितः ॥१०॥
केयूरकुण्डलैर्मुक्ताहारैश्च कटकैर्युतः । ततो वसिष्ठवर्यस्तं मुक्तानां स्वस्तिकोपरि ॥११॥
निवेश्य राघवः सीतामाहूय वटुकैर्निजैः । निवेश्य रामवामांगे मुनिभिः परिवेष्टितः ॥१२॥
रामेण कारयामास विघ्नेशादिप्रपूजनम् । पुण्याहादित्रयं चापि ददौ दीक्षां ततस्तयोः ॥१३॥

आओ। तुम उनके विषयमें कुछ मत सोचो-विचारो। मैंने स्वयं सब सोच लिया है। इस प्रकार गुरुवरकी आज्ञा पाकर लक्ष्मणने सिर झुकाकर स्वीकार किया और सब काम उससे भी सौगुना बढ़-चढ़कर किया, जैसा कि गुरु वसिष्ठजीने कहा था ॥ ५८–६० ॥ इति श्रीशतकोटिरामचरितांतर्गतश्रीमदानन्दरामायणे यागकाण्डे भाषा-टीकायां यागोपकरणनिवेदनं नाम प्रथमः सर्गः ॥ १ ॥

श्रीरामदासने कहा — इसके बाद सातवें दिन सीताजीके साथ-साथ रामचन्द्रने मक्खन आदिका उबटन लगाकर स्नान किया, अंजन लगाया और तुड़ही आदि बाजों, वेदमंत्रों, नगरकी स्त्रियोंके गीतों और पुरवासियोंकी जयध्वनिके साथ ॥ १ ॥ २ ॥ आकर उस सुन्दर मंडपमें एक चित्रासनपर बैठे। तब गुरु वसिष्ठ तथा अरुन्धतीको उन्होंने सुन्दर-सुन्दर रेशमी वस्त्र दिये। इसके अनन्तर पुरवासियोंको, पुरवासिनी नारियोंको, माताओंको, बहुओंको, साधुओंको, नगरनिवासी सब विप्रोंको, मित्रोंको, बान्धवोंको, परिवारके लोगोंको, बान्धवोंको, नारियोंको, समवयस्क मित्रोंको, मंत्रियोंको, सेनापतियोंको, सैनिकोंको, दास-दासियोंको, ॥ ३–५ ॥ नटों-नर्तकोंको, बन्दीजनोंको, वेश्याओंको और चाण्डालसे लेकर ऊँच जाति तकके प्रत्येक मनुष्यको अच्छे-अच्छे कपड़े देकर जिसमें सुनहले तारका काम बना हुआ था, मोती-माणिक आदिके झुब्बे चारों ओर लटक रहे थे, ऐसे नीलम तथा पुखराज आदि मणियोंसे सुसज्जित एक सुन्दर वस्त्र सीताजीको दिया ॥ ६ ॥ ७ ॥ तब दर्पणकी तरह चमकती हुई एवं बिजलीकी तरह जिसमें तेज था और सुवर्णके तारका जगह-जगह बेल-बूटा बना हुआ था, ऐसे एक वस्त्रको लेकर रामचंद्रजीने स्वयं पहिना ॥ ८ ॥ ९ ॥ ऊपरसे एक उपरना धारण किया। तरह-तरहके आभूषण पहने। जब रामचन्द्रजीके कानोंमें कुण्डल झूलने लगे, मोतीकी मालाएँ गलेमें पड़ गयीं और हाथोंके सब गहने हाथोंमें पहन लिये गये। तब वसिष्ठजीने मोतियोंके चौकके ऊपर रामचन्द्रजी तथा

ध्वजारोपविधानेन स्थापयित्वा ध्वजोत्तमान् । रामेण वरयामास गुरुः षोडश ऋत्विजः ॥१४॥
वसिष्ठस्तत्र सञ्जातोऽध्वर्युः सकलकर्मवित् । ब्रह्माऽभूच्च स्वयं ब्रह्मा होता गाधिसुतो ह्यभूत् ॥१५॥
उद्गाताऽभूच्छतानदो गुरुर्यो जनकस्य च । यमो बभूव शमिता कश्यपाद्या मुनीश्वराः ॥१६॥
वृणीता वाजिमेधे हि राघवेण महात्मना । ऋत्विजः षोडश शुभास्तथाऽन्ये सर्वकर्मसु ॥१७॥
पृथक् पृथक् संवृणीताः शतशस्ते मुनीश्वराः । कुण्डेऽग्निस्थापनं कृत्वा पात्राण्यासाद्य विस्तरात् ॥१८॥
श्यामकर्णं जयित्वा मोचयामास भूतले । सव्यं प्रदक्षिणां कर्तुं तस्य संरक्षणाय हि ॥१९॥
रथारूढं सुमंत्रेण सैन्येनायुतसंख्यया । शत्रुघ्नं प्रेषयित्वाऽथ तूष्णीं तस्थौ द्विजैर्गुरुः ॥२०॥
यज्ञवाटे मुनिगणापूरिते सरयूतटे । रामोऽपि सीतया तूष्णीं तस्थौ शृण्वन् कथाः शुभाः ।।
कृष्णाजिनधरो दांतः कुशपाणिः कृतोचितः । कोटिसूर्यप्रतीकाशस्तस्थौ स गुरुसन्निधौ ॥२२॥
तद्दीक्षायां प्रवृत्तायां भ्रातरः पुष्करस्रजः । स्नाताः सुवाससः सर्वे रेजिरे सुष्ठ्वलंकृताः ॥२३॥
तन्महिष्यश्च मुदिता निष्ककंठ्यः सुवाससः । दीक्षाशालामुपाजग्मुश्चालिप्ता वस्तुपाणयः ॥२४॥
तदा निनेदुर्वाद्यानि ननृतुर्वारयोषितः । एतस्मिन्नन्तरे तत्र समायाता मुनीश्वराः ॥२५॥
दिने दिनेऽश्वमेधस्य वार्तां श्रुत्वा सहस्रशः । कश्यपोऽत्रिर्भरद्वाजो विश्वामित्रोऽथ गौतमः ॥२६॥
मार्कण्डेयो मृकण्डश्च च्यवनो मुद्गलोऽसितः । जामदग्न्यो देवलश्च व्यासो नारायणः क्रतुः ।२७॥
विभांडको नारदश्च तुम्बुरुर्गालवो मुनिः । शिवदासो भानुदासो हरिदासो महातपाः ॥२८॥
शिववर्मा रुद्रवर्मा शिवशर्मा मुनीश्वरः । एकश्रृंगश्चतुःशृङ्गः सप्तशृङ्गस्त्रिशृङ्गकः ॥२९॥
तिलभांडो भृगुश्चैव भार्गवो वाक्पतिस्तथा । धौम्यः कण्वश्चैकपादस्त्रिपादश्चोर्ध्वबाहुकः ॥३०॥

सीताजीको बिठलाया और अपने शिष्यों तथा ऋषियोंके साथ-साथ सबसे पहले रामचन्द्रजीके द्वारा गणेश-गौरी आदिका पूजन तथा पुण्याहवाचन कराया और सीता तथा रामचन्द्रजीको यज्ञकी दीक्षा दी। ध्वजारोपणकी जो विधि होती है, उसके अनुसार ध्वजारोपण और रामचन्द्रजीके द्वारा सोलह ऋत्विजोंका वरण कराया ॥ १०–१४ ॥ सम्पूर्ण कर्मोंके ज्ञाता वसिष्ठ स्वयं अध्वर्यु बने । स्वयं ब्रह्माजी ब्रह्मा बने और होता बने विश्वामित्रजी । शतानन्द उद्गाता बने, जो जनकजीके गुरु थे। इसके अनन्तर कश्यपादि मुनियोंको रामचन्द्रजीने ऋत्विक् बनाकर वरण किया ॥ १५–१७ ॥ इनके अतिरिक्त भी सैकड़ों ऋषियोंका रामचन्द्रजीने अन्यान्य कार्योंको करनेके लिए वरण किया। उन सबने यथासमय कुण्डमें अग्निस्थापन करके यज्ञके पात्रोंको अपने-अपने स्थानपर रक्खा, विधिपूर्वक श्यामकर्ण घोड़ेका पूजन कराया और पृथ्वीकी दक्षिणावर्त परिक्रमा करनेके लिए उसे छोड़ दिया ॥ १८ ॥ १९ ॥ उसकी रक्षाके लिए सुमन्तके साथ शत्रुघ्नको भेजकर भगवान् रामचन्द्रजी अपने गुरुजनोंके पास चुपचाप जा बैठे। उस यज्ञभूमिमें जहाँ हजारों ऋषि आकर बैठे हुए थे, रामचन्द्रजी भी सीताजीके साथ एक किनारे बैठकर शुभ कथायें सुनने लगे। उस समय रामचन्द्रजी केवल काले मृगका चर्म धारण किये और हाथमें कुशा लिये हुए एक साधारण वेशमें थे। फिर भी उनमें करोड़ों सूर्यका तेज था और वे गुरु वसिष्ठके पास बैठे थे ॥ २०–२२ ॥ यज्ञकी दीक्षा हो जानेपर सब भ्राता फूलकी मालायें तथा अच्छे अच्छे कपड़े पहने बहुत ही सुन्दर दीख पड़ते थे । उनकी स्त्रियाँ भी गलेमें सोनेके कण्ठे और शरीरमें सुन्दर वस्त्र पहने हँसती-खेलती अनेक वस्तुओंका उपहार लिये हुए उसी यज्ञशालामें आ पहुँचीं ॥ २३ ॥ २४ ॥ इसके अनन्तर बाजे बजे और वेश्यायें नाचने लगीं। उसी समय बहुतसे ऋषिगण आ पहुँचे । अश्वमेध यज्ञकी खबर पाकर हजारों महर्षिगण आ-आकर एकत्रित होते जा रहे थे। जैसे—कश्यप, अत्रि, भरद्वाज, विश्वामित्र, गौतम, मार्कण्डेय, मृकण्ड, च्यवन, मुद्गल, असित, जामदग्न्य, देवल, व्यास, नारायण, क्रतु, विभाण्डक, नारद, तुम्बुरु, गालव, शिवदास, भानुदास, महातपस्वी हरिदास, शिववर्मा, रुद्रवर्मा, मुनीश्वर शिवशर्मा, एकशृंग, त्रिशृङ्ग, चतुःशृङ्ग, सप्तशृङ्ग ॥२५–२९॥ तिलभांड,

ऊर्ध्वपादश्चोर्ध्वनेत्रश्चोर्ध्वास्यस्त्रिशिरास्तथा । वृद्धगौतमनामाऽथ पर्णादश्चन्द्रसंज्ञकः ॥३१॥
ऋष्यशृंगो मतंगोऽथ जाबालिः कुंभसंभवः । दधीचिः शौनकः सूतः सुतीक्ष्णो लोमशस्तथा ॥३२॥
वाल्मीकिश्चापि दुर्वासा मुनिर्वेदनिधिर्महान् । एते चान्ये च मुनयः स्त्रीशिष्यतनयादिभिः ॥३३॥
केचित्पर्णाशनाः केचिद्वायुभक्षास्तथाऽपरे । कुशाग्रजलपानाश्च केचित्त्यक्ताशनास्तथा ॥३४॥
भिक्षाशनास्तथा केचित् परदत्ताशनाः परे । अयाश्चाव्रतिनः केचित्त्यक्तसंभाषणाः परे ॥३५॥
केचिद्वल्कलसंवीताः केचित्काषायवस्त्रिणः । मृगचर्मधराः केचित् केचिदाकाशवस्त्रिणः ॥३६॥
वृक्षपल्लववस्त्राश्च केचित्पंचाग्निसाधकाः । धूम्रपानव्रताः केचित् केचित्त्यक्तेषणाः परे ॥३७॥
एवं नानावनारामगिरिदुर्गाश्रमादिषु । वासिनस्ते समायाताः सदाराश्च सबालकाः ॥३८॥
सशिष्या रामचन्द्रस्य द्रष्टुं यज्ञोत्सवं वरम् । दशदिग्भ्यो मुनिश्रेष्ठाः कोटिशश्च दिने दिने ॥३९॥
तान्सर्वान् रामचंद्रोपि प्रत्युत्थानासनादिभिः । मधुपर्कादिपूजाभिस्तोषयामास सादरम् ॥४०॥
यज्ञवाटे महारम्ये कामधेनुं रघूत्तमः । पूजयामास विधिवद्वस्त्रैराभरणैरपि ॥४१॥
सुवर्णशृंगभूषाभिः किंकिणीनूपुरादिभिः । एवं तां शोभयित्वाऽथ प्रार्थयामास राघवः ॥४२॥
धेनो सागरसंभूते त्वमन्नानि द्विजादिकान् । दातुमर्हस्यध्वरे मे प्रसीद जगदंबिके ॥४३॥
एवं संप्रार्थ्य तां कामधेनुं रामः प्रणम्य च । बबन्ध पाकशालायां पट्टकूलासनोपरि ॥४४॥
अथ सा सुरभिस्तुष्टा षड्रसान्नानि सादरात् । ददौ जनकनन्दिन्यै सा देवाध्वरकर्मणि ॥४५॥
नाग्निकार्यं च तत्रासीत् पाकशालासु चैकदा । इच्छाशनैः सदा पुष्टा बभूवुर्मुनिसत्तमाः ॥४६॥

भृगु, भार्गव, बृहस्पति, धौम्य, कण्व, एकपाद, त्रिपाद, ऊर्ध्वपाद, ऊर्ध्वनेत्र, ऊर्ध्वास्य, त्रिशिरा, वृद्धगौतम, पर्णाद, चंद्रसंज्ञक, ॥ ३० ॥ ३१ ॥ ऋष्यशृंग, मतङ्ग, जाबालि, अगस्त्य, दधीचि, शौनक, सूत, सुतीक्ष्ण, लोमश, वाल्मीकि, दुर्वासा, ये एकसे एक विद्वान् मुनिगण तथा और भी कितने ही ऋषि अपने स्त्री-पुत्रों तथा शिष्योंके साथ आते जा रहे थे ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ उनमें बहुतसे ऐसे थे, जो केवल पत्ते खाकर रहते थे। कोई वायु पीकर रहते थे। कोई कुशके अग्रभागमें जल लेकर पीते और उसीसे काल यापन कर रहे थे। कुछ ऐसे भी थे, जिन्होंने भोजनको त्याग ही दिया था ॥ ३४ ॥ कुछ ऋषि भिक्षान्न खाते थे, कोई दूसरेके बनाये भोजनको करते थे (अपने हाथसे आग नहीं छूते थे) और कितने ही ऐसे थे, जो किसीसे माँगना पसन्द नहीं करते थे। कोई कोई तो किसीसे संभाषण ही नहीं करते थे ॥ ३५ ॥ कुछ मुनि बल्कल वस्त्र पहने हुए थे, कोई गेरुआ कपड़ा धारण किये थे, कोई मृगचर्म पहने थे और कोई दिगम्बर (नंगे) थे ॥ ३६ ॥ कुछ महर्षि वृक्षके पत्तोंसे शरीर ढाँके हुए थे, कोई पञ्चाग्नि तापनेवाले थे, कोई धूम्रपान (गाँजे और चरस) का व्रत लिये थे और कोई-कोई ऐसे थे, जिनकी सब प्रकारकी इच्छाएँ समाप्त हो गयी थीं ॥ ३७ ॥ इसी प्रकार कितने ही जङ्गलों, बगीचों, पर्वतों, किलों और आश्रमोंके निवासी ऋषि अपनी स्त्री तथा बच्चोंके साथ वहाँ आ पहुँचे थे ॥ ३८ ॥ रामचन्द्रके उस अश्वमेध यज्ञको देखनेके लिए दसों दिशाओंसे करोड़ों ऋषि इसी तरह अपने शिष्यादिकोंके साथ वहाँ प्रतिदिन आ रहे थे। रामचन्द्र भी उनका प्रत्यूत्थान, आसन, मधुपर्कादिसे पूजन तथा आदर करते थे ॥ ३९ ॥ ४० ॥ उसी यज्ञभूमिमें रामचन्द्रजीने विधिपूर्वक अनेक वस्त्रों और आभूषणोंसे कामधेनुका पूजन किया। उसकी सींगें सोनेसे मढाईं तथा किंकिणी और नूपुर आदि पहनाये। इसी तरह उसको अलंकृत करके रामचन्द्रजीने प्रार्थना की—॥ ४१ ॥ ४२ ॥ हे क्षीरसागरसे उत्पन्न होनेवाली कामधेनो! तुम हमारे अतिथिरूपमें आये हुए ब्राह्मणोंको अन्नादिके दानसे तृप्त रखना। हे जगदम्बिके! तुम मेरेपर प्रसन्न होओ ॥ ४३ ॥ इस प्रकार विनती करके एक गलीचा बिछाकर भोजनशाला (रसोईघर) मे ले आकर कामधेनुको बाँध दिया ॥ ४४ ॥ इसके पश्चात् उस सुरभीने प्रसन्न होकर आदरपूर्वक छहों रसके अन्न सीताको दिये। तबसे पाकशालामें न तो कोई भट्ठी जलती थी और न कोई पदार्थ बनाया जाता था। लेकिन

यान्यान्कामान् रामचंद्रश्चिन्तयामास चेतसि । तांस्तानुभौ मणी शीघ्रं कल्पयामासतुर्द्रुतम् ॥४७॥
तथा सीताऽपि यान् कामांश्चिन्तयामास चेतसि । कामधेनुर्ददौ ताँस्ताञ्छीघ्रं त्रैलोक्यदुर्लभान् ॥४८॥
सर्वत्र यज्ञवाटे हि द्विजाद्यैश्च समंततः । पंक्तिषु भूमिजादीनां परिवेषणकर्मणि ॥४९॥
स्त्रीणां कंकणनादश्च शुश्रुवे नूपुरध्वनिः । अथ रामश्च सौमित्रिं समाहूयेदमब्रवीत् ॥५०॥
सीमाचारान्समाहूय मम वाक्याच्च सादरम् । आज्ञापयस्व शीघ्रं त्वं शासनं यन्मयोच्यते ॥५१॥
ब्रह्मचारी गृहस्थो वा वानप्रस्थाश्रमी यतिः । यः कश्चिद्वा समायाति पथिकः स ममाज्ञया ॥५२॥
निवारणीयो युष्माभिर्न कदाप्यध्वरे मम । ममाज्ञां न प्रतीक्षध्वं कोपः कार्यो न कस्यचित् ॥५३॥
इति रामवचः श्रुत्वा तथेत्युक्त्वा स लक्ष्मणः । सीमाचारान् समाहूय राघवोक्तं न्यवेदयत् ॥५४॥
ततो रामः पुनः प्राह समाहूयाथ लक्ष्मणम् । ब्रह्मचारी गृहस्थो वा वानप्रस्थाश्रमी यतिः ॥५५॥
मुनीनां दयिता बालाः शिष्याः सम्बन्धिनस्तथा। पौरा जानपदस्थास्तु तेषां संबंधिनः स्त्रियः ॥५६॥
दासीदासजनाः सर्वे यद्यद्वांछंति लक्ष्मण । मामपृष्ट्वा तु तत्तेषां दातव्यं ह्यविचारितम् ॥५७॥
अन्त्यजावधि सर्वान्हि तोषयध्वं निरन्तरम् । न केषामभिलाषा च विफला हि विधीयताम् ॥५८॥
अयोध्यां कामधेनुं च जानकीं कौस्तुभं मणिम् । चिंतामणिं पुष्पकं च राज्यं कोशादिकं च मे ॥५९॥
एतेष्वपि च यो यद्वै याचयिष्यति तत्त्वया । न दत्तं चेति वै श्रुत्वा ममातोषो भवेत्त्वयि ॥६०॥
अतो ज्ञात्वा भयं मत्तो ददस्व ह्यविचारतः । याञ्चाभङ्गः कृतश्चेद्धि मच्छिरोहा भविष्यसि ॥६१॥
सदा स्मर गिरं मे त्वमिमां लक्ष्मण सादरम् । इति रामकृतां शिक्षामंगीकृत्य स लक्ष्मणः ॥६२॥
तथा चकार तत्सर्वं यथा रामेण शिक्षितम् ॥६३॥

इति श्रीशतकोटिरामचरितांतर्गतश्रीमदानन्दरामायणे यागकाण्डे
लक्ष्मणाज्ञाकरणं नाम द्वितीयः सर्गः ॥ २ ॥

वहाँपर आये हुए सब ऋषि इच्छाभोजन कर-करके प्रसन्न हो रहे थे ॥ ४५ ॥ ४६ ॥ जिन-जिन वस्तुओंको रामचन्द्रजीने अपने मनमें चाहा, उन सबको उनके दो मणियों (कौस्तुभमणि तथा चिन्तामणि) ने बातकी बातमें पूर्ण कर दिया ॥ ४७ ॥ इसी तरह सीताजीने जो कुछ चाहा, सो कामधेनुने त्रैलोक्यकी दुर्लभ वस्तुओंको भी देकर उनकी इच्छा पूरी की । यज्ञभूमिके चारों ओर जब ब्राह्मणोंकी मण्डली भोजन करनेके लिए बैठती थी और स्त्रियाँ उनको भोजन परोसनेके लिए आती थीं, तब उनके भूषणोंकी मंजुल ध्वनि सुनायी देती थी ! इसके तदनन्तर रामचन्द्रजीने लक्ष्मणको बुलाकर इस प्रकार समझाया—॥ ४८ ॥ ४९ ॥ ५० ॥ हमारी यज्ञभूमिके आस-पास रहनेवाले निवासियोंको सादर बुलाकर हमारी तरफसे यह समझा दो कि आजसे लेकर जो कोई ब्रह्मचारी, वानप्रस्थ, सन्यासी, मुनियोंकी पत्नियाँ, उनके बच्चे, शिष्य, सम्बन्धी, पुरवासी, देशनिवासी और उनके सम्बन्धी, जो कोई यहाँ आ जाय, उसे कोई न रोके। उसका सत्कार करनेके लिए मेरी आज्ञाकी प्रतीक्षा करनेकी कोई आवश्यकता नहीं है ॥ ५१—५३ ॥ रामचन्द्रजीके आज्ञानुसार लक्ष्मणजीने सब आस-पासके निवासियोंको जाकर समझा दिया । कुछ देर बाद रामचन्द्रजीने फिर लक्ष्मणको बुलाकर कहा कि मुनियोंकी स्त्रियों तथा बच्चों आदिको अथवा दास-दासीगणको जिस किसी वस्तुकी आवश्यकता हो, वह बिना हमसे पूछे उनके इच्छानुसार देते जाओ ॥ ५४—५७ ॥ चाण्डालसे लेकर विप्रतक प्रत्येक प्राणीको सन्तुष्ट करो। किसीको किसी प्रकारका कष्ट न होने पाये । किसीकी कोई अभिलाषा विफल न हो । अयोध्या, कामधेनु, सीता, कौस्तुभमणि, पुष्पक विमान, राज्य तथा कोशादिक इन सब वस्तुओंको भी देनेसे यदि तुमने इनकार किया तो मैं तुम्हारे ऊपर बहुत नाराज होऊँगा । इसलिए मेरे क्रोधसे डरते हुए बिना किसी प्रकारका विचार किये सब अभ्यागतोंको उनकी अभिलषित वस्तुयें देते जाओ । तुम किसीकी माँग खाली करोगे तो तुम्हें मेरा सिर काटनेका पातक लगेगा ॥ ५८—६१ ॥ हे लक्ष्मण ! सदा मेरी इन बातोंका ख्याल

तृतीयः सर्गः

(रामके यज्ञीय अश्वका सब ओर घूमकर अयोध्या लौटना)

श्रीरामदास उवाच

अथ मुक्तस्तदा वाजी राघवेण महात्मना । यज्ञांगः श्यामकर्णः स पूर्वदेशं ययौ जवात् ॥१॥
शत्रुघ्नेन च सैन्येन प्राप्तो भागीरथीतटम् । एतस्मिन्नन्तरे रामः स्वप्रतापं प्रदर्शयन् ॥२॥
चकार कौतुकं तत्र शत्रुघ्नस्य पुरो महत् । ब्रह्मावर्तं महादेशं त्यक्त्वा गङ्गातटं प्रति ॥३॥
यावत्प्राप्तः श्यामकर्णस्तावदासीद्धनैर्विना । गङ्गायां च महापूरो यत्र नौकाऽपि कुंठिता ॥४॥
शत्रुघ्नेनापि तद्दृष्ट्वा कुण्ठितां गतिमीक्ष्य च । कालातिक्रमभीत्या स निजचित्ते व्यचिंतयत् ॥५॥
आदावेवापि मे विघ्नमुत्पन्नं गमने महत् । ग्रासे प्राथमिके यद्वन्मक्षिकापतनं तथा ॥६॥
तर्हीदानीं रामचन्द्रप्रतापेनास्तु मे गतिः । निश्चित्येत्थं स शत्रुघ्नो रथस्थो जाह्नवीतटे ॥७॥
स्थित्वा प्रोवाच गङ्गां स प्रतिपूज्य सविस्तरम् । शृण्वन्तु सर्वलोकेषु मुनिदेवगणेषु च ॥८॥
देवि गङ्गे महापुण्ये यदि सत्यं रघूत्तमे । दीयतां तर्हि पंथा मे शीघ्रं सैन्ययुतस्य च ॥९॥
इति शत्रुघ्नवचनं श्रुत्वा सा जाह्नवी तदा । स्ववेगं खंडयामास स्वोदरं चाप्रदर्शयत् ॥१०॥
पद्भिर्वाजी तदा शीघ्रं परं तीरं ययौ क्षणात् । तथा सैन्येन शत्रुघ्नः ससुमंत्रः समाययौ ॥११॥
मागधाख्यं महादेशं स एव कीकटः स्मृतः । पूर्ववच्च महापूरो जाह्नव्यां संबभूव ह ॥१२॥
प्रतापं रामचन्द्रस्य सर्वैर्बुध्वा महाद्भुतम् । चक्रुस्ते जयशब्दांश्च सीतारामाख्यया मुहुः ॥१३॥
श्यामकर्णस्ततः शीघ्रं ययौ पूर्वदिशं प्रति । मगधेशो नृपश्चाथ श्रुत्वा तुरगमागतम् ॥१४॥
प्रत्युज्जगाम सैन्येन पुरस्कृत्याथ वारणम् । निनायाश्वं पठित्वा तद्भालपत्रं पुरं निजम् ॥१५॥

रखना भूलना नहीं। रामचन्द्रजीकी शिक्षाको अङ्गीकार करके लक्ष्मणजीने वैसा ही किया, जैसा रामने कहा था ॥ ६२ ॥ ६३ ॥ इति श्रीशतकोटिरामचरितांतर्गतश्रीमदानन्दरामायणे पं० रामतेजपाण्डेयविरचित'ज्योत्स्ना' भाषाटीकासमन्विते यागकाण्डे लक्ष्मणाज्ञाकरणं नाम द्वितीयः सर्गः ॥ २ ॥

श्रीरामदासजी फिर कहने लगे—रामचन्द्रजीके द्वारा छोड़ा हुआ वह यज्ञका अङ्गस्वरूप श्यामकर्ण घोड़ा अयोध्यासे बड़े वेगके साथ पूर्व दिशाकी ओर चला ॥ १ ॥ चलते-चलते शत्रुघ्न, सुमन्त तथा विशाल सेनाके साथ वह अश्व जाकर भागीरथी गंगाके तटपर पहुँचा। इधर रामचन्द्रजीने अपनी महिमा दिखानेकी इच्छासे शत्रुघ्नजीके सामने एक विचित्र कौतुक उपस्थित किया। वह यह कि ब्रह्मावर्त देशको लाँघकर गङ्गातट पहुँचते-पहुँचते उनके पास जो कुछ भी धन था, वह सब समाप्त हो गया। गङ्गाकी बाढ़से एक स्थानपर उनकी नौका भी रुक गयी ॥ २-४ ॥ शत्रुघ्नने उस दारुण समयको देखा तो देर हो जानेके भयसे मन ही मन सोचने लगे—ओह ! पहली ही यात्रामें इतना बड़ा विघ्न आ पहुँचा। यह वही कहावत चरितार्थ हुई कि "पहले ही ग्रासमें मक्खी आ गिरी" ॥ ५ ॥ ६ ॥ अब मुझे इस समय केवल रामचन्द्रजीके प्रतापका भरोसा है। उसीसे मेरा निस्तार होगा। इस प्रकार निश्चय करके शत्रुघ्नजी रथपर बैठे ही बैठे जाह्नवीके तटपर जाकर कहने लगे— ॥ ७ ॥ हे महापुण्यशालिनी गंगे ! हे देवि ! यदि भगवान् रामचन्द्रजी सच्चरित्र हों तो आप सेनासहित मुझे रास्ता दे दीजिए ॥ ८ ॥ ९ ॥ इस प्रकार शत्रुघ्नके वचनको सुनकर गङ्गाजीने वेगको मन्द करके अपने मध्य भागसे शत्रुघ्नको रास्ता दे दिया ॥ १० ॥ तब क्षणभरमें घोड़े और पैदल सैनिक चलकर गङ्गाके उस पार पहुँच गये। इस तरह ससैन्य शत्रुघ्न सुमन्त्रके साथ महादेश मगधमें जा पहुँचे, जिस देशको कीकट भी कहते हैं। उन लोगोंके पार उतर जानेके बाद गङ्गाका प्रवाह पूर्ववत् वेगवान् हो गया ॥ ११ ॥ १२ ॥ मगधनिवासी लोग रामचन्द्रके अद्‌भुत प्रतापको समझकर सीतारामके नामका जयजयकार करने लगे ॥ १३ ॥ वहाँसे अश्वमेध यज्ञके लिए छोड़ा
15. हुआ श्यामकर्ण घोड़ा पूर्व दिशाकी ओर चला। राजा मगधेश घोड़ेको आया हुआ सुनकर हाथीकी सवारीपर चढ़ तथा सेनाको लेकर अगवानीके लिए गये। घोड़ेके मस्तकमें बँधे हुए पत्रको पढ़कर उसको नगरमें ले गये

पूज्यादरात्ससैन्यं तं शत्रुघ्नं विभवैर्निजैः । समस्तं निजकोशादि समर्प्य मगधाधिपः ॥१६॥
पौरान् जानपदान्स्वज्ञीः सुहृत्तनयमंत्रिणः । पौरपत्नीर्जानपदपत्नीर्विप्रान् पुरोधसम् ॥१७॥
प्रेषयामास साकेते वाहनैरध्वरं प्रति । स्वयं सैन्येन तुरगचरणाननुलक्ष्य च ॥१८॥
शत्रुघ्नवागनुवर्ती बद्धहस्तपुटो ययौ । एवं सर्वेऽपि राजानो ज्ञातव्याःसर्वदिक्स्थिताः ॥१९॥
न केनापि श्यामकर्णो बद्धो नृपविना भुवि । इन्द्राद्यैर्निर्जरैर्नापि नासुराद्यैः कदाचन ॥२०॥
ततो वाजी पूर्वदेशानंगवंगकलिंगकान् । तथा नानाविधान्देशान् विलंघ्य जलधेस्तटम् ॥२१॥
दृष्ट्वा नृपकुलैर्युक्तो दक्षिणाभिमुखो ययौ । गोदावरीं नदीं तीर्त्वा देशमांध्रं च द्राविडम् ॥२२॥
अतिक्रम्यारवाराख्यं देशं समतिक्रम्य च । काञ्चीप्रदेशान्सकलान्पश्यन्नानाविधाञ्छुभान् ॥२३॥
कावेरीं समतिक्रम्य चोलदेशं विलंघ्य च । सेतुबंधं ततो दृष्ट्वा पश्चिमाभिमुखो ययौ ॥२४॥
ताम्रपर्णीं विलंघ्याथ समतिक्रम्य केरलान् । द्विषट्प्रकारान् देशांश्च गोकर्णं च ततो ययौ ॥२५॥
कृष्णातीरप्रदेशांश्च समतिक्रम्य घोटकः । कर्णाटकं महादेशं समतिक्रम्य सत्वरम् ॥२६॥
कोंकणं समतिक्रम्य तत्तद्देशनृपैः सह । भीमान्देशान् स सकलाञ्श्यामकर्णः शुभावहः ॥२७॥
पश्यन् ययौ महाराष्ट्रं गौतमीं तां विलंघ्य च । विदर्भं समतिक्रम्य ययावाभीरमंडलम् ॥२८॥
मालवं समतिक्रम्य तीर्त्वा पुण्यां महानदीम् । तीर्त्वा स श्वमतीं पुण्यां समतिक्रम्य गुर्जरम् ॥२९॥
प्रभासं च ततो गत्वा ययावानर्तमुत्तमम् ।
सौवीरान् समतिक्रम्य ययौ वाजी स माथुरान् । सौराष्ट्रान्समतिक्रम्य मरुदेशं ययौ हयः ॥३०॥
धन्वदेशमतिक्रम्य ययौ सारस्वतानथ । मत्स्यान् देशानतिक्रम्य ययौ वाजी स माठरान्॥३१॥
शूरसेनानतिक्रम्य पांचालांस्तुरगो ययौ । कुरुक्षेत्रं ततो गत्वाऽतिक्रम्य कुरुजांगलान् ॥३२॥
देशं कैकेयमुल्लंघ्य ययौ काश्मीरमुत्तमम् । भिल्लदेशं गौडदेशं शकदेशं ययौ हयः ॥३३॥
यवनांस्ताम्रदेशांश्च समतिक्रम्य वेगतः । पश्यन्नानाविधान् देशान् करतोयातटेन वै ॥३४॥

और बड़े आदरके साथ अपनी संपत्तिसे शत्रुघ्नकी पूजा की। समस्त निज कोशादि शत्रुघ्नको अर्पण करके पुरवासियोंको, अपने कुटुम्बको, जनपदवासियोंको एवं अपने मित्र-बान्धवोंको वाहनोंके साथ अश्वमेध यज्ञमें अयोध्या भेज दिया। किन्तु स्वयं सेनाके साथ शत्रुघ्नके वशवर्ती होकर यज्ञीय अश्वके चरणोंको लक्ष्य करके साथ-साथ चले। इसी तरह सब देशोंके राजा लोग शत्रुघ्नके वशवर्ती होकर अश्वके पीछे-पीछे चले ॥ १४–१९ ॥ पृथ्वीपर किसी भी राजाने श्यामकर्ण घोड़ेको नहीं बाँधा। न स्वर्गमें इन्द्रादि देवताओंने और न पाताललोकमें असुरोंने उसे बाँधा ॥ २० ॥ उसके बाद घोड़ा अङ्ग-वङ्ग-कलिंगादि अनेक देशोंमें होता हुआ समुद्रतटपर पहुँचा ॥ २१ ॥ वहाँसे नृपसमूहके साथ वह दक्षिण दिशामें गया। फिर गोदावरी नदीको पार करके आंध्र, द्रविड़, कारवार नामक देशोंका अतिक्रमण करके नाना प्रकारके मनोहर प्रदेशोंमें घूमता हुआ कावेरी नदीको पार करके चोलदेशमें जा पहुँचा। वहाँसे समुद्रतटपर सेतुबन्ध रामेश्वर होकर पश्चिम दिशामें गया ॥ २२–२४ ॥ वहाँसे वह घोड़ा ताम्रपर्णी नदीको लाँघ तथा केरल देशका अतिक्रमण करके गोकर्ण तीर्थमें जा पहुँचा ॥ २५ ॥ वहाँसे कृष्णा नदी उतरकर वह घोड़ा कर्णाटकमें पहुँचा ॥ २६ ॥ वहाँसे कोंकण देशको पार करके तत्तद्देशीय राजाओंके साथ भीमा नदीको लाँघता हुआ महाराष्ट्रमें जा पहुँचा ॥२७॥ वहाँपर गौतमी नदीको लाँघकर विदर्भ देशमें होता हुआ आभीरमण्डलमें पहुँचा ॥ २८ ॥ वहाँसे मालवा होता हुआ महानदी पुण्याका अतिक्रमण करके गुजरातमें पहुँचा ॥ २९ ॥ वहाँसे प्रभास तीर्थमें आकर आनर्त देशको गया। फिर सौवीर आदि देशोंको पार करके घोड़ा मथुरा प्रदेशमें गया। वहाँसे सौराष्ट्र देशको लाँघकर मरु-देश (मारवाड़) में पहुँचा ॥ ३० ॥ उसके बाद धन्व नामक देशका अतिक्रमण करके सरस्वतीके तीरपर गया। वहाँसे मत्स्य देशमें घूमता हुआ माठर देशमें गया ॥ ३१ ॥ उसके बाद वह श्यामकर्ण घोड़ा शूरसेन, पञ्चाल, कुरुक्षेत्र, जांगल एवं कैकय देशमें भ्रमण करता हुआ कश्मीर गया। वहाँसे भिल्लदेश,

ययौ वाजी वायुगत्या शीघ्रं ज्वालामुखीं प्रति । दोषभीत्या करतोयां तीर्त्वा नैवाग्रतो गतः ॥३५॥
कर्मनाशानदीस्पर्शात् करतोयाविलंघनात् । गंडकीं बाहुतरणाद्धर्मः स्खलति कीर्तनात् ॥३६॥
हरिद्वारं ययौ वाजी ततो गङ्गातटेन हि । हिमाद्रेः सन्निधौ देशान् समतिक्रम्य वेगतः ॥३७॥
बद्रिकाश्रममालोक्य कलापग्रामवासिभिः । संमानितस्तदा वाजी गत्वा तन्मानसं सरः ॥३८॥
दृष्ट्वा हरिहरक्षेत्रं मिथिलां प्राप सेनया । नानादेशानतिक्रम्य ह्यार्यावर्तं ययौ हयः ॥३९॥
दृष्ट्वा काशीं त्रिवेणीं च ह्यंतर्वेदीं ययौ जवात् । शृङ्गवेरपुरं गत्वा तमसां तां विलंघ्य च ॥४०॥
गत्वा स नैमिषारण्यं समुल्लंघ्याथ गोमतीम् । ब्रह्मावर्तं सरो गत्वा पश्यन् देशान् मनोरमान् ॥४१॥
कोसलाख्यं महादेशं दृष्ट्वा वाजी मनोरमम् । ततः साकेतविषये षण्मासैः प्राप चाध्वरम् ॥४२॥
नानादेशनृपैः सार्धं शत्रुघ्नेनाभिरक्षितः । आगतं श्यामकर्णं तं ज्ञात्वा सीतापतिस्तदा ॥४३॥
आज्ञापयच्च सौमित्रिं सोऽपि प्रत्युज्जगाम तम् । वारणेंद्रं पुरस्कृत्य भेरीदुंदुभिनिःस्वनैः ॥४४॥
वारस्त्रीणां नृत्यगीतैर्वेदघोषैर्द्विजेरितैः । संपूज्याथ श्यामकर्णं नृपतींश्च सविस्तरम् ॥४५॥
आनयामास सौमित्रिः शनैरध्वरमंडपम् । महोत्सवो महानासीत्तदा तुरगदर्शने ॥४६॥
दशयोजनपर्यंतं सर्वत्र जगतीतलम् । व्याप्तं सर्वं ततोऽयोध्याबहिर्नृपगणैस्तदा ॥४७॥
तत्र सर्वत्र राजानः पूर्वसंप्रेषिताञ्जनान् । पौरान् जानपदान्स्त्रीश्च पश्यंतो भ्रमरोपमाः ॥४८॥
सैन्येन बभ्रमुः सर्वे स्वीयदर्शनलालसाः । न प्रापुर्दर्शनं तेषां जनौघेऽध्वरमंडपे ॥४९॥
केचित्ते दर्शनं स्वानां प्रापुस्तत्र परेऽहनि । केचित्तृतीये दिवसे पंचमे सप्तमेऽथ वा ॥५०॥
केचिद्दुंदुभिघोषेण प्रापुः स्वानां प्रदर्शनम् । केचित् पक्षानन्तरं हि मासेनानंतरं जनाः ॥५१॥
केषां वियोग एवासीच्चिरकालं तदाऽध्वरे । तज्ज्ञात्वा रामचंद्रोऽपि लक्ष्मणं प्राह सादरम् ॥५२॥

गौड़देश, शकदेश, यवनोंके देश एवं ताम्रदेशसे निकलकर करतोया नदीके तटवर्ती नानाविध मनोहर दृश्योंको देखता हुआ बड़े वेगसे ज्वालामुखीके पार्वत्य प्रदेशमें गया ॥ ३२–३४ ॥ वहाँसे करतोया नदीको पार करके आगेके प्रदेशोंमें नहीं गया । क्योंकि कर्मनाशा नदीका स्पर्श करनेसे, करतोयाका उल्लंघन करनेसे, गण्डकी नदीको बाहुओं द्वारा तैरने और धार्मिक काम करके उसका बखान करनेसे धर्मका क्षय होता है ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ वहाँसे वह गङ्गाके तट ही तट होकर हरिद्वार गया । वहाँसे हिमालयके प्रदेशमें जाकर बद्रिकाश्रम पहुँचा। वहाँसे कलापग्रामनिवासियोंका अतिक्रमण करके वह घोड़ा आर्यावर्त्त देशमें गया ॥ ३७–३९ ॥ वहाँसे काशी और गङ्गातटपर घूमता हुआ वेगपूर्वक अन्तर्वेदीमें गया। फिर शृङ्गवेरपुरमें जाकर तमसाको पार करके नैमिषारण्यमें गया। वहाँसे गोमती और ब्रह्मावर्त्त सरोवरको जाकर मनोहर देशोंको देखता हुआ कोसल देशमें पहुँचा। इस प्रकार छः महीनोंसे घूमता हुआ वह अश्व फिर अयोध्याके निकटवर्ती अश्वमेधके यज्ञमंडपमें आ पहुँचा ॥ ४०–४२ ॥ अनेक देशके राजाओंके साथ शत्रुघ्नसे अभिरक्षित यज्ञार्थ छोड़े हुए श्यामकर्ण घोड़ेको आया हुआ सुनकर सीतापति रामचन्द्रजीने उसको लानेके लिये लक्ष्मणको आज्ञा दी। लक्ष्मणजी हाथीपर चढ़कर बड़े उत्साहके साथ उसकी अगवानी करनेके लिए गये। वे विधिपूर्वक श्यामकर्ण घोड़ेकी और राजाओंकी पूजा करके उसे धीरे-धीरे यज्ञमण्डपमें ले आये। उस समय घोड़ेको देखनेके लिए प्रजावर्गमें बड़ा उत्साह था ॥ ४३–४६ ॥ यज्ञोत्सवके समय अयोध्याके बाहर दस योजनतक सम्पूर्ण पृथ्वीमण्डल राजा-महाराजाओं तथा अमीर-उमरावोंसे भरा था ॥ ४७ ॥ यज्ञमें इतनी भीड़ थी कि श्यामकर्ण अश्वके साथ भ्रमण करके लौटे हुए राजा लोग पहिलेसे भेजे हुए अपने स्त्री-पुत्र-बान्धवोंको खोजते हुए उनको देखनेकी इच्छासे इधर-उधर घूमते रहे, पर उस यज्ञकालिक जनसमुदायमें उन लोगोंको प्राप्त नहीं कर सके ॥ ४८ ॥ ४९ ॥ कोई खोजते-खोजते दूसरे दिन मित्र-बान्धवोंसे मिल सका। कोई तीसरे दिन, कोई पाँचवें रोज और कोई सातवें रोज मिला ॥ ५० ॥ किसीको नगाड़ेकी ध्वनिसे स्वजनोंका पता लगा। किसीको एक पखवारेके बाद और किसीको एक मासके बाद पता लगा ॥ ५१ ॥ किसीको चिरकाल तक पता ही नहीं लगा । यह सुनकर भगवान रामचन्द्रजीने लक्ष्मणसे

परस्परं वियोगोऽत्र संमर्देन तु लक्ष्मण ! जायते तत्र युक्तिं त्वं मत्तः श्रुत्वा कुरुष्व ताम् ॥५३॥
तमसायास्तटे शालां कृत्वाऽद्य महतीं शुभाम् । घोषणीयश्च सर्वत्र महादुंदुभिनिःस्वनैः ॥५४॥
येषां वियोगस्तैर्गत्वा तमसातटशोभिताम् । शालां प्रवेशयध्वं हि स्वानां योगोऽस्तु तत्र हि॥५५॥
चतुष्पदादिवस्तूनि ज्ञात्वा यस्य लघून्यपि । तत्रैव स्थापनीयानि स्वं स्वं गृह्णन्तु ते जनाः ॥५६॥
इति रामवचः श्रुत्वा तथेत्युक्त्वा स लक्ष्मणः । तथा चकार तत्सर्वं येन योगः परस्परम् ॥५७॥
सर्वे तत्र जनाः प्रापुः स्वानां स्त्रीबालमंत्रिणाम् । चतुष्पदादिवस्तूनां तत्र लाभो बभूव ह ॥५८॥
यत्किंचिद्विस्मृतं येन तद्दृष्ट्वाऽन्येन वै तदा । शालायां स्थापितं दृष्ट्वा स्वयं जग्राह तत्र सः ॥५९॥
एवं श्रीरामयज्ञे हि संमर्दः संबभूव ह । न तत्र शुश्रुवे शब्दः कर्णेऽप्युक्तो जनैस्तदा ॥६०॥
ततस्ते पार्थिवाः सर्वे तस्थुर्वसनसद्मसु ॥६१॥

इति श्रीशतकोटिरामचरितांतर्गतश्रीमदानंदरामायणे वाल्मीकीये यागकाण्डे अश्वागमनं नाम तृतीयः सर्गः ॥ ३ ॥

चतुर्थः सर्गः

(रामका कुम्भोदर मुनिसे साक्षात्कार)

श्रीरामदास उवाच

अथ ते ऋत्विजः सर्वे मंगलैर्विविधैः शुभैः । सम्यक् प्रवर्तयामासुर्वाजिमेधं यथाविधि ॥ १ ॥
तत्रर्त्विजो वाजिमेधे रत्नकौशेयवाससः । ससदस्या विरेजुस्ते यथा वृत्रहणोऽध्वरे ॥ २ ॥
एतस्मिन्नन्तरे तत्र सुरेशसहितैः सुरैः । स्वामिना विघ्नराजेन पार्वत्या वृषभस्थितः ॥ ३ ॥
महेश्वरो यज्ञवाटं रामाहूतो ययौ गणैः । शिवमागतमाज्ञाय प्रत्युद्गम्याथ लक्ष्मणः ॥ ४ ॥
वारणेंद्रं पुरस्कृत्य पताकाध्वजतोरणैः । नानावाद्यसुघोषैश्च वारस्त्रीणां प्रनर्तनैः ॥ ५ ॥

कहा—॥ ५२ ॥ यहाँ भीड़के कारण परस्पर लोगोंका वियोग हो जाता है। अतएव मैं एक युक्ति बतलाता हूँ। उसको करो ॥ ५३ ॥ तमसा नदीके तटपर एक बड़ी भारी शाला बनवाओ और डुगडुगी पिटवा दो कि भूले-भटकोंको खोजना हो तो तमसा नदीके तटपर जहाँ नयी शाला बनी हुई है, वहाँ जाओ। वहाँपर भूले-भटकोंको खोज पाओगे ॥ ५४ ॥ ५५ ॥ लोगोंकी बड़ीसे लेकर छोटी-छोटी भी खोयी हुई वस्तुएँ खोज-खोजकर वहाँ रखी हैं। वहाँ जिस-जिसकी जो-जो वस्तु हो, वह अपनी-अपनी वस्तु ले ले। इस प्रकार रामजीके वचन सुनकर लक्ष्मणने कहा—अच्छा महाराज ! ऐसा ही करूँगा। इसके बाद लक्ष्मणजीने ऐसी व्यवस्था की, जिससे सबका अपने वियुक्त बान्धवोंसे मिलाप होने लगा ॥ ५६ ॥ ५७ ॥ वियुक्त बन्धु वहाँ गये और सबको अपने-अपने स्त्री-पुत्र-मित्रादि और चतुष्पदादि पशु सभी खोई हुई चीजें मिल गयी। जहाँ-कहींपर जिससे जो वस्तु भूलसे छूट गई, उस वस्तुको राजानुचरोंने तथा जिसने देखी एवं जिसको मिली, उसीने वहाँ शालामें रखवा दी और जिसकी वह वस्तु थी, उसने वहाँ जाकर ले ली ॥ ५८ ॥ ५९ ॥ इस प्रकार श्रीरामजीके यज्ञमें ऐसी भीड़ हुई कि जिसके कारण कानमें कहा हुआ भी शब्द मनुष्योंको नहीं सुनाई पड़ता था ॥ ६० ॥ यज्ञ भगवान्‌के दर्शन करके सब राजा लोग अपने-अपने स्त्री-पुत्र-मित्रादिकोंको लेकर अलग-अलग तम्बुओं (खेमों) में रहने लगे ॥ ६१ ॥ इति श्रीशतकोटिरामचरितान्तर्गतश्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये यागकाण्डे अश्वागमनं नाम तृतीयः सर्गः ॥ ३ ॥

श्रीरामदास कहने लगे—इसके अनन्तर सब ऋत्विक् मंगलमय कृत्योंके साथ-साथ शास्त्रानुसार अश्वमेध यज्ञ करवाने लगे ॥ १ ॥ उस समय यज्ञमें रत्नमय आभरणों और वस्त्रोंको पहिने हुए ऋत्विक् ऐसे सुशोभित हो रहे थे, जैसे इन्द्रके यज्ञमें सुशोभित होते थे ॥ २ ॥ उसी समय वहाँ रामजीके बुलावेसे बैलपर चढ़कर महादेव और पार्वतीजी आयीं। उनके संग इन्द्रादि देवता, स्वामिकार्तिकेय, गणेशजी एवं प्रमथादि सब गण भी आये ॥ ३ ॥ महादेवजीका आगमन सुनकर सम्पूर्ण नगर ध्वजा-पताका आदिसे सजाया गया।

संपूज्य शंकरं भक्त्या चानयामास मंडपम् । पंच सप्त पदान्यग्रे गत्वा रामोऽपि शंकरम् ॥ ६ ॥
नमस्कृत्य समालिंग्य विश्वेशं गिरिजायुतम् । हैमासने सन्निवेश्य हेमपात्रे स्वहस्ततः ॥ ७ ॥
पादप्रक्षालनं शंभोश्चकार सीतया प्रभुः । हेमनिर्मितझर्झर्या मणिरत्नादिचित्रया ॥ ८ ॥
जलधारां यथायोग्यां मोचयामास जानकी । ततस्ते राघवं सीतां दृष्ट्वा देवगणास्तदा ॥ ९ ॥
अनिमेषाः कंजनेत्रकटाक्षाः सन्निरीक्ष्य हि । तयोश्चित्रोपमा आसन् न विदुः के वयं त्विति ॥ १० ॥
तुष्टुवुस्तत्र केचित्ते सुराः श्रीराघवं मुदा । जानकीं तुष्टुवुः केचित् प्रबद्धकरसम्पुटाः ॥ ११ ॥
एवं निर्जरसंघानां संतोषस्तत्र वै ह्यभूत् । अनौपम्यं तयोर्दृष्ट्वा रूपं कोटिरविप्रभम् ॥ १२ ॥
अथ रामः सीतया हि शंकरं गिरिजामपि । स्वयं संपूज्य सकलान् देवान् सौमित्रिणा ऋषीन् ॥ १३ ॥
पूजयित्वाऽब्रवीद्वाक्यं शंकरं लोकशंकरम् । अद्य धन्योऽस्म्यहं देव दर्शनात्तव सीतया ॥ १४ ॥
अद्य मे सूर्यवंशेऽस्मिन् जन्म साफल्यतां गतम् । इति रामस्य वचनं श्रुत्वा स शशिभूषणः ॥ १५ ॥
विहस्य राघवं प्राह वेद्मि मायां हरे तव । त्वन्नाभिकमले ब्रह्मा जातस्तस्मान्मुनीश्वराः ॥ १६ ॥
मरीच्याद्याः सम्बभूवुः पौत्राः सप्ताहतौजसः । मरीचेः कश्यपः पुत्रः सृष्ट्युत्पत्तिविधायकः ॥ १७ ॥
कश्यपात्सविता जज्ञे पौत्रपौत्रस्तव प्रभो । रवेर्जातः सूर्यवंशस्तद्वंशे तव जन्म वै ॥ १८ ॥
त्वद्वंशसंभवः सूर्यः किं मां मोहयसि प्रभो । देवानां कार्यसिद्धयर्थमवतीर्णोऽसि मायया ॥ १९ ॥
कुरु क्रीडां यथेच्छं त्वं यात्रायज्ञादिकौतुकैः । शिक्षां करोषि लोकानां वेद्म्यहं चेष्टितं तव ॥ २० ॥
इति श्रुत्वा शंभुवाक्यं सीतारामौ विहस्य च । यज्ञकुंडसमीपे तु तस्थतुर्गुरुसन्निधौ ॥ २१ ॥
एतस्मिन्नंतरे तत्र समाजग्मुः सहस्रशः । गन्धर्वाः किन्नराः सिद्धास्तथा चाप्सरसां गणाः ॥ २२ ॥
लोकपालाश्च दिक्पाला रसातलनिवासिनः । नवग्रहाः षड्तवः षष्टिसंवत्सरास्तथा ॥ २३ ॥

वेश्याओंके नाना प्रकारके नाच और अनेक तरह बाजे-गाजेके साथ हाथीपर चढ़कर लक्ष्मणजी उनकी अगवानीके लिए गये ॥ ४ ॥ ५ ॥ वे भक्तिपूर्वक शंकरभगवान्‌को यज्ञमण्डपमें ले आये। रामजीने भी उनको आते देखा तो पाँच-सात पग आगे बढ़कर शंकरजीको प्रणाम किया। शिव-पार्वतीका सत्कार करके सुवर्णमय सिंहासनपर बैठाया। सीताके साथ स्वयं रामने अपने हाथसे रत्न-खचित एक बड़ेसे सुवर्णके पात्रमें दोनोंका पादप्रक्षालन किया। जानकीने शंकरभगवान्‌के चरणोंपर विधिवत् जलधारा डाली। उपस्थित देवतागण निर्निमेष नेत्रोंसे श्रीराम एवं सीताकी अनुपम शोभा देखकर चित्रलिखित-से हो गये। उनको यहाँतक ज्ञान नहीं रहा कि मैं कौन हूँ ॥ ६–१० ॥ उस समय देवगण गद्गद होकर श्रीरामचन्द्र और महारानी सीताकी स्तुति करने लगे ॥ ११ ॥ इस प्रकार सीता और रामका कोटि सूर्यकी कान्तिके समान प्रभाशाली अनुपम सौंदर्य देखकर देवताओंको अतीव प्रसन्नता हुई ॥ १२ ॥ इससे बाद सीता और लक्ष्मणके साथ स्वयं रामजीने शिव-पार्वती तथा सब देवताओंकी पूजा की ॥ १३ ॥ त्रैलोक्यके कल्याण करनेवाले शंकरकी पूजा करके रामजी कहने लगे–हे भगवन्! आज मैं धन्य होगया ॥ १४ ॥ आज आप लोगोंके दर्शनसे मेरा जन्म ग्रहण करना सफल हुआ। इस प्रकार रामजीके वचन सुनकर शशिभूषण शङ्करजी हँसकर कहने लगे–॥ १५ ॥ हे भगवन्! आपकी मायाको मैं जानता हूँ। आपहीके नाभिकमलसे ब्रह्मा पैदा हुए और उन ब्रह्मासे सम्पूर्ण मुनीश्वर उत्पन्न हुए हैं ॥ १६ ॥ उन निष्पाप मरीचि प्रभृति सात मुनीश्वरोंमेंसे मरीचिके पुत्र कश्यप हुए। जिन्होंने सृष्टिको विस्तृत किया ॥ १७ ॥ उन कश्यपके पुत्र सूर्य हुए। हे प्रभो! इस प्रकार आपके पौत्रके पौत्र रविसे सूर्यवंश चला। उस सूर्यवंशमें आपका जन्म हुआ। यह सब आपकी माया ही है। क्यों आप मुझे अपने मायाजालमें फँसाते हैं? आप अपनी मायासे देवताओंके कार्य सिद्ध करनेके लिए भूमिपर अवतीर्ण हुए है ॥ १८ ॥ १९ ॥ यात्रा-यज्ञादि कौतुकोंसे आप यथेच्छ क्रीड़ा करिये। मैं आपकी सब चेष्टाओंको समझता हूँ। आप संसारको शिक्षित करनेके लिए ही ऐसा करते हैं ॥ २० ॥ इस प्रकार शिवजीके कथनको सुनकर सीता और रामजी हँसे। तदनन्तर वे यज्ञकुण्डके समीप स्थित गुरु वसिष्ठके पास गये ॥ २१ ॥ इसी समय हजारों यक्ष, गन्धर्व, किन्नर,

ऋक्षाणि तिथयो योगाः करणानि च राशयः। पर्वतास्तरवः सर्वे सागराश्च नदा अपि ॥२४॥
सरोवराणि नद्यश्च वाप्यः कूपास्तथाऽपरे। धृत्वा जंगमरूपाणि ययुस्ते यज्ञमण्डपम् ॥२५॥
समागतश्च संपातिर्गुहको मकरध्वजः। समाययौ स लङ्काया राक्षसैश्च विभीषणः ॥२६॥
मानिता राघवेणापि सर्वे तस्थुः प्रपूजिताः। स्वान्तिके स्थापिताः पूर्वं तत्रैवासन् प्लवंगमाः ॥२७॥
एतस्मिन्नंतरे तत्र समायातो मुनीश्वरः। कुम्भोदरो महातेजाः सीमाचारैर्विलोकितः ॥२८॥
तं दृष्ट्वा भयभीतास्ते सर्वे प्रोचुः परस्परम्। हा कष्टं पुनरायातः सोऽयं कुम्भोदरो मुनिः ॥२९॥
यात्राश्रमो राघवस्य यन्निमित्तो बभूव ह। यद्वाक्यादश्वमेधोऽपि सर्वेषां संबभूव ह ॥३०॥
महान् श्रमोऽश्वपृष्ठे तु भ्रमतां जगतीतले। अधुनाऽपि समायातः किमग्रे वै पुनस्त्वयम् ॥३१॥
करिष्यति न तद्विद्मो राघवस्यापि निंदकः। एवं नानाविधा वाचः सीमाचारगणेरिताः ॥३२॥
शृण्वन् कुम्भोदरस्तूष्णीं ययौ यज्ञभुवं प्रति। तदागमनपूर्वं स सीमाचारैर्निवेदितः ॥३३॥
धावद्भिर्वेपमानैश्च स्खलद्वाग्भिस्त्वरान्वितैः। राम राम महाबाहो हे लक्ष्मण शृणु प्रभो ॥३४॥
यात्रायज्ञश्च यद्वाक्यात् समायातः स वै पुनः। कुम्भोदरो मुनिश्रेष्ठो राम त्वय्यपि निष्ठुरः ॥३५॥
तद्दूतवचनं श्रुत्वा सर्वे तद्दर्शनोत्सुकाः। त्यक्त्वा स्वीयानि कर्माणि चोत्तस्थुस्तद्दिदृक्षया ॥३६॥
ऋत्विजो राघवः सीता न भयं मेनिरे मुनेः। कुम्भोदरो यज्ञवाटं ययौ सर्वैर्विलोकितः ॥३७॥
अतिखर्वः स्थूलशिराः श्यामकर्णः सपादुकः। स्थूलोदरः पिंगनेत्रः सकौपीनो जटाधरः ॥३८॥
चीरवासाः खर्वपादः खर्वहस्तो महामुनिः। युवा किंचित् श्मश्रुयुक्तो धृतदण्डकमण्डलुः ॥३९॥
तं दृष्ट्वा सकला लोका भयं प्रापुः स्वचेतसि। पूर्वकर्म च संस्मृत्य संश्रुत्य च परस्परम् ॥४०॥
एतस्मिन्नन्तरे रामः शीघ्रं प्रत्युज्जगाम तम्। साष्टांगं प्रणिपत्याथ करे धृत्वा तु मंडपम् ॥४१॥

सिद्ध, चारण एवं अप्सराओंका गण आया ॥ २२ ॥ सम्पूर्ण लोकपाल, दिक्पाल तथा नागलोकवासी भी आये। नवों ग्रह, छहों ऋतुयें, सातों सम्वत्सर एवं तिथि नक्षत्र योग करण राशि पर्वत वृक्ष समुद्र नद नदी कूप तालाब तथा अन्य सूक्ष्म प्राणी सभी अपने जङ्गम रूप धारण करके रामके यज्ञमें आये ।।२३-२५।। गृध्रराज संपाति, निषादराज एवं मकरध्वज आये। तदनन्तर सभी राक्षसोंके साथ लंकासे विभीषण आ आये ॥ २६ ॥ भगवान् रामने सबकी पूजा की और अपने समीप बैठाया। वन्दर पहलेसे ही वहाँ टिके थे ॥ २७ ॥ इसी समय महातेजा कुम्भोदर मुनि आये। यज्ञ-भूमिकी सीमापर निवास करनेवालोंने उन्हें आते हुए देखा ॥ २८ ॥ वे देखकर बड़े भयभीत हुए और बोले—आह! बड़े कष्टकी बात है। यह तो फिर वे कुम्भोदर मुनि आ गये ॥ २९ ॥ जिनके कारण भगवान् रामको यात्राका कष्ट हुआ था, जिनके कारण हम सबका अश्वमेध हो गया ॥ ३० ॥ घोड़ेके पीछे-पीछे संसारमें इधरसे उधर उधरसे इधर घूमते हुए अत्यन्त कष्ट भोगे। अब यह फिर आये हैं। अब आगे क्या करेंगे, सो हमलोग नहीं जानते। यह रामजीका बड़ा निन्दक है ॥ ३१ ॥ इस प्रकार सीमाचारी लोगोंकी वाणियोंको सुनते हुए कुम्भोदर चुपचाप यज्ञभूमिमें आये ॥ ३२ ॥ उनके आनेके पूर्व ही बड़े वेगसे भागते-काँपते हुए दूतोंने आकर रामसे निवेदन किया—॥ ३३ ॥ हे राम! हे महाबाहो लक्ष्मण! हे प्रभो! आप लोग सुनें। जिसके वाक्यसे आपने यात्रा और यज्ञ किया है, वही कुम्भोदर मुनि फिर आये हैं। हे राम! आपके ऊपर उनका बड़ा कठोर भाव है ॥ ३४ ॥ ३५ ॥ इस तरह दूतके वाक्य सुनकर सब अपने-अपने कार्योंको छोड़कर उन्हें देखनेको उठे ॥ ३६ ॥ ऋत्विक् लोग, सीता तथा रामजी मुनिसे भयभीत नहीं हुए। उनके देखते-देखते वे कुम्भोदर मुनि यज्ञभूमिमें आ पहुँचे ॥ ३७ ॥ जो बड़े नाटे थे। जिनका मस्तक बड़ा था। जिनकी नाड़ियाँ उभड़ी थीं। जिनके श्याम कर्ण थे। जो खड़ाऊँ पहने हुए तथा स्थूल उदरवाले थे। पीले-पीले जिनके नेत्र थे। वे कौपीन पहिने तथा जटा धारण किये थे ॥ ३८ ॥ चीर पहिने हुए वे छोटे-छोटे हाथोंवाले थे। युवा होनेसे जिनके मूछें आ रहीं थीं और जो दण्ड-कमण्डलु धारण किये हुए थे ॥ ३९ ॥ उनको देखकर सम्पूर्ण जनसमुदाय उनके पहिलेके कृत्योंको सुन-सुन और स्मरण कर-करके मन ही मन भयभीत हुआ ॥ ४० ॥ उसी समय राम

आनयामास श्रीरामो ददौ हैमासनं वरम् । कुंभोदरो मुनिः शीघ्रं भूमौ दंडकमडलू ॥४२॥
स्थापयामास चीराणि ननाम रघुनायकम् । रामः शीघ्रं कराभ्यां तं प्रत्युत्थाप्य मुनीश्वरम् ॥ ४३॥
गाढमालिंग्य बाहुभ्यां ततो मुनिमभाषत । नाहं योग्यो वंदनार्थं त्वया रावणघातकः ॥४४॥
इति रामवचोरूपैर्वाणैः संताडितो हृदि । कुंभोदरस्तदोवाच यज्ञवाटे रघूत्तमम् ॥४५॥
राम राम महाबाहो न कोपः क्रियतां मयि । अपराध्यस्म्यहं ते हि क्षमस्व रघुनायक ॥४६॥
न मया स्वार्थसिद्ध्यर्थं दोषारोपः कृतस्त्वयि । कृतः परोपकारार्थं तथा कीर्त्यै तवापि च ॥४७॥
शिक्षार्थं सकलान्लोकान् तज्ज्ञातं च त्वयापि हि । यथैते मुनयः सर्वे तव सत्रेऽन्ननिर्मिते ॥४८॥
शतशो भोजनं चक्रुस्तथा भुक्तं मयाऽपि च । तदा कुतो महत्कीर्तिस्तव मे. रघुनदन ॥४९॥
इति निश्चित्य हृदये मया पूर्वं हिताय हि । लोकानां च कृतो यत्नस्त्वयि दोषानुकीर्तनैः ॥५०॥
नोचेद्यात्रासमुद्योगः कथं राम भवेत्तव । यत्र यत्र च देशेषु तीर्थेषूपवनेषु च ॥५१॥
आश्रमारामग्रामेषु नदीवनगिरिष्वपि । ये ये जनाश्च सर्वत्र नानाकर्मसु तत्पराः ॥५२॥
तत्र दर्शनलाभस्तु तेषां जातः सुखप्रदः । तत्राहं कारणं मन्ये चात्मानं रघुनन्दन ॥५३॥
ममालमुपकारस्तु जनैः सर्वत्र कीर्त्यते । कुंभोदरप्रसादेन नः सीतारामदर्शनम् ॥५४॥
जातं विषयलुब्धानामिति मे कृतकृत्यता । जाता समंततः कीर्तिस्त्वयि दोषानुकीर्तनात् ॥५५॥
तवापि कीर्तिः सर्वत्र जाताऽत्र रघुनंदन । रामेश्वराश्च सर्वत्र रामतीर्थान्यनेकशः ॥५६॥
यावद्भूम्यां प्रगीयेत तावत्कीर्तिस्तवापि च । अन्यच्च लोकशिक्षाऽपि जाता मद्वाक्यकारणात् ॥५७॥
कुंभोदरेण मुनिना राघवस्य महात्मनः । दोषारोपः कृतः पूर्वं कथं नो न भविष्यति ॥५८॥
स्वदोषपरिहारार्थं राघवेण महात्मना । तीर्थयात्रा कृता पूर्वमस्माकं का कथा पुनः ॥५९॥
इति स्मृत्वा भयं चित्ते सर्वत्र जगतीतले । करिष्यन्ति जना यात्रां स्वदोषक्षालनाय हि ॥६०॥

बड़ी शीघ्रतासे आये और कुम्भोदरको साष्टाङ्ग प्रणाम करके हाथमें हाथ मिलाये हुए यज्ञमण्डपमें ले आये और उन्हें सुवर्णनिर्मित आसन बैठनेके लिए दिया ॥ ४१ ॥ कुम्भोदरने भी शीघ्र ही भूमिपर दण्ड-कमण्डलु रखकर रघुनायक रामको प्रणाम किया ॥ ४२ ॥ रामने शीघ्र मुनिको हाथोंसे उठा लिया और बाहुओंसे दृढालिङ्गन करके बोले—हे भगवन् ! रावणघातक मैं आपकी वन्दना करने योग्य नहीं हूँ ॥ ४३ ॥ ४४ ॥ इस तरह रामके वाक्यबाणसे हृदयमें विद्ध कुम्भोदर रामसे कहने लगे—॥ ४५ ॥ हे राम ! हे महाबाहो ! आपको इस तरह मेरे ऊपर क्रोध नहीं करना चाहिए। मैं आपका अपराधी हूँ। मुझे क्षमा करें ॥ ४६ ॥ मैंने स्वार्थसिद्धिके लिए आपके ऊपर दोषारोपण नहीं किया था। किन्तु संसारका उपकार करनेके लिये, आपकी कीर्तिवृद्धिके लिए और संसारको शिक्षित करनेके लिए ही मैंने ऐसा किया था। सो आपने जान ही लिया होगा ॥ ४७ ॥ ॥ ४८ ॥ जैसे इन मुनियोंने आपके अन्नक्षेत्रमें सैकड़ों बार भोजन किया है, वैसे ही मैंने भी भोजन किया है। आपकी और मेरी कीर्ति कैसे हो, पहलेसे ही यह निश्चय करके संसारके हितके लिए मैंने आपकी निन्दा की थी ॥ ४९ ॥ ५० ॥ अन्यथा हे राम ! विभिन्न तीर्थों तथा देशोंके लिए आपकी यात्रा नहीं होती। विविध तीर्थ, नदा, वन, बगीचा तथा आश्रमोंमें जो मनुष्य नाना कर्मोंमें लिप्त हो रहे हैं, उनको जो आपका सुखप्रद दर्शनंलाभ हुआ। उसमें मैं अपनेको ही कारण मानता हूँ ॥ ५१–५३ ॥ सब मनुष्य सभी जगह मेरे इस उपकारका कीर्तन करते हैं। वे कहते हैं कि कुम्भोदरकी कृपासे ही हम लोगोंको सीतारामके दर्शन मिल गये ॥ ५४ ॥ आपके ऊपर दोषारोपण कर देनेसे विषयी जनोंको भी आपका दर्शन प्राप्त हुआ। इसीसे मैं कृतकृत्य हो गया और चारों तरफ आपकी कीर्ति फैल गयी ॥ ५५ ॥ जबतक भूमण्डलपर विविध रामेश्वर महादेव और रामतीर्थ रहेंगे, तबतक आपकी कीर्ति संसारमें स्थिर रहेगी ॥ ५६ ॥ और फिर मेरे दुर्वाक्यके कारण ही यह लोकशिक्षा भी हो गयी कि कुम्भोदर मुनिने जब रामजीको दोष लगाया, तब हमलोगोंको कैसे न लगेगा ॥ ५७ ॥ ५८ ॥ प्राचीन समयमें महात्मा रामचन्द्रने दोषोंको नष्ट करनेके लिए तीर्थ किया था तो फिर हमलोगोंका तो कहना

त्वयि ब्रह्मणि पूर्णे च दोषारोपः कथं भवेत् । पद्मपत्रे जलस्पर्शो न घटेत यथा तथा ॥६१॥
यस्य भ्रूभंगमात्रेण ब्रह्मांडप्रलयो भवेत् । ब्रह्मांडांतगतान् जीवान् हरसि त्वं यदा मुहुः ॥६२॥
तदा दोषानुरोपस्ते किं घटेत जनार्दन । सर्वेषां च क्षयं मृत्युर्विदधाति तवाज्ञया ॥६३॥
तत्र संख्यात्र का कार्या त्वया दोषः कृतस्त्विति ।यथा चित्राणि कुडये हि लिखितानि सहस्रशः ॥६४॥
संमार्जितानि तेनैव तत्र दोषो भवेत्कथम् । तथा त्वमपि श्रीराम त्रिधा भूत्वा त्रिभिर्गुणैः ॥६५॥
सृष्टिं करोषि रजसा सत्त्वरूपेण पालनम् । तमोरूपेण संहारं विधिविष्णुशिवात्मकः ॥६६॥
अस्माभिस्तव तोषार्थं तीर्थयात्रा विधीयते । तव तीर्थस्तु किं राम तीर्थीभूतगुणस्य च ॥६७॥
सर्वतीर्थेषु मुख्या या कीर्त्यते स्वर्धुनी भुवि । तव दक्षिणपादस्यांगुष्ठाग्राज्जनिता तु सा ॥६८॥
तवांघ्रिरजसः स्पर्शात्पवित्रा कीर्तिता भुवि । तव पादरजोमिश्रा दृश्यतेऽद्यापि सा सिता ॥६९॥
रजांस्यद्यापि दृश्यन्ते तव भागीरथीजले । इति नानाविधैर्वाक्यैस्तोषयामास राघवम् ॥७०॥
अष्टोत्तरशतं यावत् श्रीमद्रामस्तवेन च । स्तुत्वा रामं राघवेण पूजितः स्थितवान्मुनिः ॥७१॥
रामोऽपि गुरुसान्निध्ये तस्थौ सीतासमन्वितः । निजासनेषु सर्वत्र तस्थुस्ते सकला जनाः ॥७२॥

इति श्रीशतकोटिरामचरितांतर्गतश्रीमदानन्दरामायणे यागकाण्डे
कुम्भोदरदर्शनं नाम चतुर्थः सर्गः ॥ ४ ॥

पञ्चमः सर्गः

(रामाष्टोत्तरशतनामस्तोत्र)

विष्णुदास उवाच

गुरो ते प्रष्टुमिच्छामि तत्त्वं वद सविस्तरम् । कुम्भोदरेण मुनिना यत्स्तोत्रं समुदीरितम् ॥ १ ॥
अष्टोत्तरशतं नाम्नां राघवस्य शुभप्रदम् । श्रवणे तस्य मे प्रीतिर्जाताऽस्ति कथयस्व तत् ॥ २ ॥

ही क्या है ॥ ५९ ॥ इस तरह पृथ्वीतलपर मनुष्यमात्र अपने चित्तमें भयका अनुभव करके स्वदोषपरिहारार्थ तीर्थयात्रा करेंगे ॥ ६० ॥ जैसे कमलके पत्तेपर जलका स्पर्श नहीं हो सकता, वैसे ही आप पूर्ण ब्रह्ममें दोषारोप नहीं हो सकता ॥ ६१ ॥ जिसके भ्रूभङ्गमात्रसे ब्रह्माण्डमें प्रलय हो जाता है। वही आप ब्रह्माण्डान्तर्गत सब जीवों-को अपनेमें विलीन करते हैं ॥ ६२ ॥ तव हे जनार्दन ! आपपर दोषारोप कैसे हो सकता है ? जब आप ही की आज्ञासे मृत्यु सबका क्षय करती है ॥ ६३ ॥ तब आपने कितने दोष किये हैं ? इसकी गणना कौन कर सकता है ॥ ६४ ॥ जैसे किसीने भित्तिपर चित्र लिखा और फिर उसीने अपने हाथसे मिटा दिया। तब उसमें क्या दोष हो सकता है। उसी तरह आप भी तीनों गुणोंसे तीन तरहके अर्थात् ब्रह्मा-विष्णु-शिवरूपमें परिणत होकर रजोगुणसे सृष्टि, सत्त्वसे पालन और तमोगुणसे संहार करते हैं ॥ ६५ ॥ ६६ ॥ हम लोग आपकी प्रसन्नताके लिए ही तीर्थयात्रा करते हैं। स्वतः तीर्थस्वरूप आपको तीर्थोंसे क्या प्रयोजन है ॥ ६७ ॥ जिस गङ्गाको लोग सब तीर्थोंमें श्रेष्ठ मानते हैं, वह गङ्गा आपके दाहिने पैरके अंगूठेसे उत्पन्न हुई है ॥ ६८ ॥ वह आपके चरण-रजस्पर्शसे ही पवित्र मानी गयी है। इसी वास्ते वह आज तक श्वेत दिखाई पड़ती है ॥ ६९ ॥ आज भी गङ्गाजीमें आपकी चरणरेणु दीख रही है। इस प्रकारके वाक्योंसे कुम्भोदरमुनि भगवान् रामको प्रसन्न किया ॥ ७० ॥ इसके बाद रामाष्टोत्तरशतनामसे रामकी स्तुति करके और रामके द्वारा पूजित होकर वे यथास्थान बैठ गये ॥ ७१ ॥ रामजी भी गुरुके समीप सीताके साथ जा बैठे। अन्यान्य लोग भी अपने-अपने आसनोंपर विराजमान हो गये ॥ ७२ ॥ इति श्रीशतकोटिरामचरितान्तर्गतश्रीमदानन्दरामायणे कुम्भोदरदर्शनं नाम चतुर्थः सर्गः ॥ ४ ॥

श्रीविष्णुदास बोले—हे गुरु ! मैं आपसे कुछ पूछना चाहता हूँ। जो प्रश्न मैं पूछना चाहता हूँ, उसका आप विस्तृत उत्तर दीजिए ॥ १ ॥ कुम्भोदर मुनिने रामके जो अष्टोत्तरशत नामोंका शुभप्रद स्तोत्र कहा

श्रीरामदास उवाच

शृणु शिष्य महाबुद्धे सम्यक् पृष्टं त्वया मम । अष्टोत्तरशतं नाम्नां राघवस्य वदाम्यहम् ॥ ३ ॥
सर्वेश्वरः सर्वमयः सर्वभूतोपकारकः । सर्वेषामुपकारार्थं यः साकारो निराकृतिः ॥ ४ ॥
स भवत्येव लोकेऽस्मिन् संसारभयनाशनः । यदा यदा हि लोकानां भयमुत्पद्यते तदा ॥ ५ ॥
अवतीर्याकरोच्छ्रीमान् दुष्टदैत्यविमर्दनम् । मत्स्यकूर्मवराहादिरूपेण परमार्थदृक् ॥ ६ ॥
तत्कालेषु च सर्वेषु सर्वेषामुपकारकृत् । साधूनां समचित्तानां भक्तानां भक्तवत्सलः ॥ ७ ॥
उपकर्तुं निराकारः सदाकारेण जायते । अजोऽयं जायतेऽनन्तो विश्रुतो भूतभावनः ॥ ८ ॥
तदा तदाऽवतरति भक्तानामनुकंपया । क्षीराब्धौ देवदेवेशो लक्ष्मीनारायणो विभुः ॥ ९ ॥
अशेषैः शंखचक्राभ्यां देवैर्ब्रह्मादिभिः सह । शेषोऽभूल्लक्ष्मणो लक्ष्मीर्जानकी शंखचक्रके ॥१०॥
जातौ भरतशत्रुघ्नौ देवाः सर्वेऽपि वानराः । आसन् पुरैव सर्वेऽपि देवानां भयशांतये ॥११॥
तत्र नारायणो देवः श्रीराम इति विश्रुतः । सर्वलोकोपकाराय भूमौ स्वयमवातरत् ॥१२॥
ध्यानमात्रेण देवेशो महापातकनाशकृत् । कीर्तनश्रवणाभ्यां च हत्याकोटिनिवारणः ॥१३॥
कलौ स कीर्तनेनैव सर्वं पापं व्यपोहति । राम रामेति रामेति ये वदन्त्यतिपापिनः ॥१४॥
पापकोटिसहस्रेभ्यस्तानुद्धरति नान्यथा । अष्टोत्तरशतं नाम्नां तस्य स्तोत्रं वदाम्यहम् ॥१५॥

ॐ अस्य श्रीरामचन्द्रनामाष्टोत्तरशतमंत्रस्य ब्रह्मा ऋषिः । अनुष्टुप् छन्दः । जानकीवल्लभः श्रीरामचन्द्रो देवता । ॐ बीजम् । नमः शक्तिः । श्रीरामचन्द्रः कीलकम् । श्रीरामचन्द्रप्रीत्यर्थे जपे विनियोगः । ॐ नमो भगवते राजाधिराजाय परमात्मने हृदयाय नमः । ॐ नमो भगवते विद्याधिराजाय हयग्रीवाय शिरसे स्वाहा । ॐ नमो भगवते जानकीवल्लभाय नमः शिखायै वषट् ।

है, उसे सुननेकी मेरी प्रबल इच्छा है । वह कहिए ॥ २ ॥ श्रीरामदास बोले–हे महाबुद्धे शिष्य ! सुनो। तुमने अच्छा प्रश्न पूछा है । मैं तुम्हें रामाष्टोत्तरशतनामस्तोत्र सुना रहा हूँ ॥ ३ ॥ राम सर्वेश्वर हैं, सर्वमय हैं और सब प्राणियोंका उपकार करनेवाले हैं । वे निराकार होते हुए भी संसारके कल्याणार्थ साकार मनुष्यदेह धारण करते हैं ॥ ४ ॥ जब-जब प्रजाको भय होता है, तब-तब उस भयको नष्ट करनेके लिये वे इस लोकमें अवतीर्ण होते हैं ॥ ५ ॥ अवतीर्ण होकर वे मत्स्य-कूर्म-वराहादि रूपसे जनशत्रुओंका विनाश करते हैं । भगवान् जो कुछ करते है, वह सब परमार्थकी दृष्टिसे ही करते हैं ॥ ६ ॥ वे भक्तवत्सल प्रभु समदर्शी हैं । साधुओं और भक्तोंके उपकारार्थ निराकार होते हुए भी अल्पकालमें ही साकार हो जाते हैं । वे भूतभावन प्रभु अनन्त एवं अज हैं और इन्हीं नामोंसे प्रसिद्ध हैं । वे समय-समयपर भक्तोंपर अनुकम्पा करके अवतीर्ण होते हैं । वे देवदेव इन्द्रके भी शासक हैं । वे क्षीरसागरमें शयन करते हैं और सर्वत्र व्यापक हैं ॥ ७–९ ॥ वे ही लक्ष्मीनारायण अखिल देवोंके साथ त्रैलोक्यके भयशान्त्यर्थ रामरूपसे संसारमें अवतीर्ण हुए । शेष लक्ष्मण बने । लक्ष्मी जानकी बनीं और भगवान्के पार्षद शंख-चक्र भरत-शत्रुघ्नके रूपमें उत्पन्न हुए और सब देवता वानर बने ॥ १० ॥ ११ ॥ जो श्रीराम इसी नामसे प्रसिद्ध हैं, वे साक्षात् नारायण हैं और लोकोपकारार्थ संसारमें स्वयं अवतरे हैं ॥ १२ ॥ उन भगवान् रामके ध्यानमात्रसे महापातक भी नष्ट हो जाते हैं । वें कीर्तन-श्रवण करनेसे कोटि हत्याओंके पापका भी निवारण कर देते हैं ॥ १३ ॥ वे भगवान् कलिमें नाम-कीर्तन करनेसे ही सब पापोंको नष्ट कर देते हैं । जो घोर पापी भी रामनाम उच्चारण करते हैं तो राम उनका सहस्रकोटि पापोंसे उद्धार कर देते हैं । उन भगवान्के अष्टोत्तरशतनामस्तोत्रको कहता हूँ ॥१४॥१५॥ रामचन्द्रके इस अष्टोत्तर शतनाम मन्त्रके ब्रह्मा ऋषि हैं ! अनुष्टुप् छन्द है । जानकीवल्लभ श्रीरामचन्द्रजी इसके देवता हैं । ॐ बीज है । नमः शक्ति है । श्रीरामचन्द्र कीलक हैं । श्रीरामप्रीत्यर्थ इसका विनियोग होता है । ॐ हृदयमें बैठे हुए राजाधिराज परमात्मास्वरूप भगवान्को बारम्बार नमस्कार है । मस्तकमें विराजमान विद्याधिराज हयग्रीव भगवान्को नमस्कार हैं । शिखामें विराजमान जानकीवल्लभ भगवान्को नमस्कार और

ॐ नमो भगवते रघुनंदनायामिततेजसे कवचाय हुम् । ॐ नमो भगवते क्षीराब्धिमध्यस्थाय नारायणाय नेत्रत्रयाय वौषट् । ॐ नमो भगवते सत्प्रकाशाय रामाय अस्त्राय फट् । इति षडंगन्यासः । एवं अंगुलिन्यासः कार्यः ।

अथ ध्यानम्

मन्दाराकृतिपुण्यधामविलसद्वक्षःस्थलं कोमलं शांतं कांतमहेन्द्रनीलरुचिराभासं सहस्राननम् ।
वंदेऽहं रघुनंदनं सुरपतिं कोदण्डदीक्षागुरुं रामं सर्वजगत्सुसेवितपदं सीतामनोवल्लभम् ॥१६॥
सहस्रशीर्ष्णे वै तुभ्यं सहस्राक्षाय ते नमः । नमः सहस्रहस्ताय सहस्रचरणाय च ॥१७॥
नमो जीमूतवर्णाय नमस्ते विश्वतोमुख । अच्युताय नमस्तुभ्यं नमस्ते शेषशायिने ॥१८॥
नमो हिरण्यगर्भाय पंचभूतात्मने नमः । नमो मूलप्रकृतये देवानां हितकारिणे ॥१९॥
नमस्ते सर्वलोकेश सर्वदुःखनिषूदन । शंखचक्रगदापद्मजटामुकुटधारिणे ॥२०॥
नमो गर्भाय तत्त्वाय ज्योतिषां ज्योतिषे नमः । ॐ नमो वासुदेवाय नमो दशरथात्मज ॥२१॥
नमो नमस्ते राजेन्द्र सर्वसम्पत्प्रदाय च । नमः कारुण्यरूपाय कैकेयीप्रियकारिणे ॥२२॥
नमो दांताय शांताय विश्वामित्रप्रियाय ते । यज्ञेशाय नमस्तुभ्यं नमस्ते क्रतुपालक ॥२३॥
नमो नमः केशवाय नमो नाथाय शार्ङ्गिणे । नमस्ते रामचन्द्राय नमो नारायणाय च ॥२४॥
नमस्ते रामचन्द्राय माधवाय नमो नमः । गोविन्दाय नमस्तुभ्यं नमस्ते परमात्मने ॥२५॥
नमस्ते विष्णुरूपाय रघुनाथाय ते नमः । नमस्तेऽनाथनाथाय नमस्ते मधुसूदन ॥२६॥
त्रिविक्रम नमस्तेऽस्तु सीतायाः पतये नमः । वामनाय नमस्तुभ्यं नमस्ते राघवाय च ॥२७॥
नमो नमः श्रीधराय जानकीवल्लभाय च । नमस्तेऽस्तु हृषीकेश कंदर्पाय नमो नमः ॥२८॥

वषट्कार है। बाहुओंमें कवचरूपेण विद्यमान अमिततेजा उन रघुनन्दनको नमस्कार है, जिनके हुङ्कारमात्रसे सब शत्रु नष्ट हो जाते हैं। नेत्रोंमें वौषट् अर्थात् ज्योतिरूपेण विद्यमान तथा क्षीरसागरमें शयन करनेवाले भगवान्को नमस्कार है। अस्त्रस्वरूप, फट्स्वरूप और सत्प्रकाश स्वरूप रामको नमस्कार है। इस प्रकार भगवान्को छहों अङ्गोंमें न्यास अर्थात् विराजमान करे। इसी तरह अंगुलियोंमें न्यास करे। अब यहाँसे एक श्लोकमें रामका ध्यान करके स्तोत्र आरंभ होता है। जिनकी मनोहर आकृति है। जो पुण्यधाम है। मालाओंसे जिनका वक्षःस्थल सुशोभित हो रहा है। जो कोमल एवं शान्त हैं। जो सुन्दर महेन्द्रनीलमणिकी कान्तिके समान सुशोभित हैं। जो धनुर्वेदकी शिक्षामें संसारके गुरु हैं। संसार जिनके चरणोंको पूजता है, उन सुरपति तथा सीताके प्राणवल्लभ रामको मैं प्रणाम करता हूँ ॥१६॥ हे राम! सहस्र मस्तकवाले आपको नमस्कार है। मेघके समान कान्तिवाले आपको नमस्कार है। हे विश्वतोमुख! आपको नमस्कार है। अच्युतको नमस्कार हैं। शेषशायीको प्रणाम है ॥ १७ ॥ १८ ॥ हिरण्यगर्भको प्रणाम है। पञ्चभूतात्माको प्रणाम है। मूलप्रकृतिको नमस्कार है ॥ १९ ॥ हे सर्वलोकनाथ! सब दुःखोंको दूर करनेवाले! आपको प्रणाम है। हे शंख चक्र गदा पद्म तथा जटा-मुकुट धारण करनेवाले राम आपको नमस्कार है ॥२०॥ गर्भस्वरूप आपको प्रणाम है। तत्त्वस्वरूपको प्रणाम है। ज्योतियों-की भी ज्योतिको नमस्कार है। वसुदेवके पुत्रको प्रणाम है। दशरथपुत्र रामको प्रणाम है ॥ २१ ॥ हे राजेन्द्र! सब संपत्ति देनेवाले आपको प्रणाम है। हे दयाके मूर्तस्वरूप तथा कैकेयीके प्रिय करनेवाले! आपको नमस्कार है ॥ २२ ॥ दांत, शांत एवं विश्वामित्रके प्रियकर्ता आपको प्रणाम है। हे यज्ञेश! हे क्रतुपालक! आपको प्रणाम है ॥ २३ ॥ केशवको नमस्कार है। शार्ङ्गीको नमस्कार है। रामचन्द्रके लिए नमस्कार है। नारायणके लिए नमस्कार है ॥ २४ ॥ हे रामचन्द्र! आपको प्रणाम है। हे माधव! आपको प्रणाम है। हे गोविन्द! हे परमात्मन्! आपको नमस्कार है ॥ २५ ॥ हे विष्णुस्वरूप रघुनाथ! मैं आपको नमस्कार करता हूँ। हे दीनोंके नाथ मधुसूदन! आपको प्रणाम है ॥ २६ ॥ हे त्रिविक्रम! हे सीतापते! हे वामन! हे रामचन्द्र! मैं

नमस्ते पद्मनाभाय कौसल्याहर्षकारिणे । नमो राजीवनयन नमस्ते लक्ष्मणाग्रज ॥२९॥
नमो नमस्ते काकुत्स्थ नमो दामोदराय च । विभीषणपरित्रातर्नमः संकर्षणाय च ॥३०॥
वासुदेव नमस्तेऽस्तु नमस्ते शंकरप्रिय । प्रद्युम्नाय नमस्तुभ्यमनिरुद्धाय ते नमः ॥३१॥
सदसद्भक्तिरूपाय नमस्ते पुरुषोत्तम । अधोक्षज नमस्तेऽस्तु सप्ततालहराय च ॥३२॥
खरदूषणसंहर्त्रे श्रीनृसिंहाय ते नमः । अच्युताय नमस्तुभ्यं नमस्ते सेतुबन्धक ॥३३॥
जनार्दन नमस्तेऽस्तु नमो हनुमदाश्रय । उपेन्द्रचन्द्रवंद्याय मारीचमथनाय च ॥३४॥
नमो वालिप्रहरण नमः सुग्रीवराज्यद । जामदग्न्यमहादर्पहराय हरये नमः ॥३५॥
नमो नमस्ते कृष्णाय नमस्ते भरताग्रज । नमस्ते पितृभक्ताय नमः शत्रुघ्नपूर्वज ॥३६॥
अयोध्याधिपते तुभ्यं नमः शत्रुघ्नसेवित । नमो नित्याय सत्याय बुद्ध्यादिज्ञानरूपिणे ॥३७॥
अद्वैतब्रह्मरूपाय ज्ञानगम्याय ते नमः । नमः पूर्णाय रम्याय माधवाय चिदात्मने ॥३८॥
अयोध्येशाय श्रेष्ठाय चिन्मात्राय परात्मने । नमोऽहल्योद्धारणाय नमस्ते चापभञ्जिने ॥३९॥
सीतारामाय सेव्याय स्तुत्याय परमेष्ठिने । नमस्ते बाणहस्ताय नमः कोदण्डधारिणे ॥४०॥
नमः कबन्धहन्त्रे च वालिहन्त्रे नमोऽस्तु ते । नमस्तेऽस्तु दशग्रीवप्राणसंहारकारिणे १०८ ॥४१॥
अष्टोत्तरशतं नाम्नां रामचन्द्रस्य पावनम् । एतत्प्रोक्तं मया श्रेष्ठं सर्वपातकनाशनम् ॥४२॥
प्रचरिष्यति तल्लोके प्राण्यदृष्टवशाद्द्विज । तस्य कीर्तनमात्रेण जना यास्यंति सद्गतिम् ॥४३॥
तावद्विजृम्भते पापं ब्रह्महत्यापुरःसरम् । यावन्नामाष्टकशतं पुरुषो न हि कीर्तयेत् ॥४४॥
तावत्कलेर्महोत्साहो निःशंकं सम्प्रवर्तते । यावच्छ्रीरामचन्द्रस्य शतनाम्नां न कीर्तनम् ॥४५॥
तावद्यमभटाः क्रूराः संचरिष्यन्ति निर्भयाः । यावच्छ्रीरामचन्द्रस्य शतनाम्नां न कीर्तनम् ॥४६॥
तावत्स्वरूपं रामस्य दुर्बोधं प्राणिनां स्फुटम् । यावन्न निष्ठया रामनाममाहात्म्यमुत्तमम् ॥४७॥

आपको बारम्बार प्रणाम करता हूँ ॥ २७ ॥ हे श्रीवर ! हे जानकीवल्लभ ! हृषीकेश ! कन्दर्प ! मैं आपको बारम्बार प्रणाम करता हूँ ॥ २८ ॥ हे पद्मनाभ ! हे कौसल्याहर्षकारिन् ! कमलनयन ! लक्ष्मणाग्रज ! मैं आपको पुनः पुनः प्रणाम करता हूँ ॥ २९ ॥ हे काकुत्स्थ ! दामोदर ! संकर्षण ! विभीषणसंरक्षक ! आपको मैं पुनः पुनः प्रणाम करता हूँ ॥ ३० ॥ हे वासुदेव ! शंकरप्रिय ! प्रद्युम्न ! अनिरुद्ध ! मैं आपको पुनः पुनः प्रणाम करता हूँ ॥ ३१ ॥ हे सदसद्भक्तिस्वरूप ! पुरुषोत्तम ! अधोक्षज ! सप्ततालहर ! आपको कोटिशः प्रणाम है ॥ ३२ ॥ हे खरदूषणहन्ता ! श्रीनृसिंह ! अच्युत ! सेतुबन्धकारिन् राम ! आपको कोटिशः प्रणाम है ॥ ३३ ॥ हे जनार्दन ! हनुमदाश्रय ! उपेन्द्रचन्द्रवन्द्य ! मारीचमथनकारिन् ! आपको कोटिशः प्रणाम है ॥ ३४ ॥ हे वालिप्रहरण ! सुग्रीवराज्यप्रद ! जामदग्न्य ! महादुःखहर हरे ! आपको कोटिशः प्रणाम है ॥ ३५ ॥ हे कृष्ण ! भरताग्रज ! पितृभक्त ! शत्रुघ्नपूर्वज ! मैं आपका सहस्रों बार प्रणाम करता हूँ ॥ ३६ ॥ हे अयोध्याधिपते ! शत्रुघ्नसेवित ! नित्यसत्य ! बुद्ध्यादिज्ञानकारिन् ! आपको प्रणाम है ॥ ३७ ॥ हे अद्वैत ब्रह्मरूप ! ज्ञानगम्य ! माधव ! पूर्ण ! रम्य ! चिदात्मन् ! मैं आपको प्रणाम करता हूँ ॥ ३८ ॥ हे अयोध्येश ! श्रेष्ठ ! चिन्मात्र ! परमात्मन् ! अहल्योद्धारक ! धनुर्भञ्जिन् ! आपको प्रणाम है ॥ ३९ ॥ हे सीतासेव्य ! स्तुत्य ! परमेष्ठिन् ! बाणहस्त ! धनुर्धारिन् ! आपको अनेकशः प्रणाम है ॥ ४० ॥ हे कबन्धहंतः ! पापिहन्तः ! दशग्रीवप्राणसंहारकारिन् ! मैं आपको पुनः पुनः नमस्कार करता हूँ ॥ ४१ ॥ सम्पूर्ण पापोंको नष्ट करनेवाला श्रेष्ठ एवं पावन रामचन्द्रका यह अष्टोत्तरशतनामस्तोत्र मैंने तुमसे कहा ॥ ४२ ॥ हे द्विज ! जो प्राणी अपने दुर्भाग्यवश इस लोकमें भ्रमण करते हैं। इस स्तोत्रके पठनमात्रसे वे सद्गतिको प्राप्त होंगे ॥ ४३ ॥ ब्रह्महत्यादि पाप तभीतक उपद्रव करते हैं, जब तक पुरुष इस स्तोत्रका पाठ नहीं करता ॥ ४४ ॥ प्राणीमें तभी तक कलिका प्रवेश रहता है, जब तक वह रामचन्द्रके इस स्तोत्रका मनन-पठन नहीं करता ॥ ४५ ॥ तभीतक भयंकर यमराजके योद्धा निर्भय विचरण करते हैं, जबतक प्राणी इस स्तोत्रका पाठ नहीं करता ॥ ४६ ॥ तभीतक रामका स्वरूप प्राणियोंको

कीर्तितं पठितं चित्ते धृतं संस्मारितं मुदा। अन्यतः शृणुयान्मर्त्यः सोऽपि मुच्येत पातकात्॥४८॥
ब्रह्महत्यादिपापानां निष्कृतिं यदि वांछति। रामस्तोत्रं मासमेकं पठित्वा मुच्यते नरः॥४९॥
दुष्प्रतिग्रहदुर्भोज्यदुरालापादिसम्भवम्। पापं सकृत्कीर्तनेन रामस्तोत्रं विनाशयेत्॥५०॥
श्रुतिस्मृतिपुराणेतिहासागमशतानि च। अर्हंति नाल्पां श्रीरामनामकीर्तिकलामपि॥५१॥
अष्टोत्तरशतं नाम्नां सीतारामस्य पावनम्। अस्य संकीर्तनादेव सर्वान् कामाँल्लभेन्नरः॥५२॥
पुत्रार्थी लभते पुत्रान् धनार्थी धनमाप्नुयात्। स्त्रियं प्राप्नोति पत्न्यर्थी स्तोत्रपाठश्रवादिना॥५३॥
कुंभोदरेण मुनिना येन स्तोत्रेण राघवः। स्तुतः पूर्वं यज्ञवाटे तदेतत्त्वां मयोदितम्।५४॥

इति श्रीशतकोटिरामचरितांतर्गते श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये यात्राकाण्डे श्रीरामनामाष्टोत्तरशतस्तोत्रं नाम पञ्चमः सर्गः॥५॥

षष्ठः सर्गः

(रामकी दिनचर्या)

श्रीरामदास उवाच

अथ कुम्भोदरे दिव्ये आसनोपरि संस्थिते। यज्ञस्तम्भे श्यामकर्णं बबन्धुस्ते हि ऋत्विजः॥१॥
तस्याङ्गानि समस्तानि पृथङ् मन्त्रैर्यथाविधि। सम्मन्त्र्यापि शमित्रा तं निहन्युर्द्विजपुङ्गवाः॥२॥
तन्मांसखण्डैराज्याक्तैर्होमं चक्रुः सविस्तरम्। तथा नानाविधैर्द्रव्यैः सक्तुपायसगोघृतैः॥३॥
मध्वाक्ततिलदूर्वाद्यैः समिधाभिश्च सादरम्। गोघृतेन वसोर्धारां वह्नौ स्थूलामखण्डिताम्॥४॥
गोमुखेनोर्ध्वबद्धेन ददुर्मंत्रैः सविस्तरम्। चिरकालं होमकुंडे यावद्यज्ञसमापनम्॥५॥
तदा धूमचयैर्व्याप्तमाकाशं च समन्ततः। नाद्यापि दृश्यते शुभ्रं नीलवर्णं प्रदृश्यते॥६॥
चैत्रमासे महापुण्ये वसन्तर्तौ सुखावहे। एवं प्रवर्तयामासुर्वाजिमेधं मुनीश्वराः॥७॥

दुर्बोध्य रहता है, जबतक इस उत्तम स्तोत्रमें निष्ठा नहीं होती॥४७॥ जो इसको पढ़ता और कीर्तन करता है, जो इसे चित्तमें धारण करता है, प्रेमसे स्मरण करता है और औरोंसे सुनता है, वह भी पातकोंसे छूट जाता है॥४८॥ जो ब्रह्महत्यादि पापोंकी निष्कृति चाहता हो, वह पुरुष एक महीने इसका पाठ करे॥४९॥ इसके एक बार कीर्तन करनेसे मनुष्य दुष्प्रतिग्रह, दुर्भोज्य तथा दुरालापादिजन्य पापोंसे छूट जाता है॥ ५०॥ श्रुति-स्मृति-पुराण-इतिहास-आगम (वेद) और स्मृति इसकी सोलहवीं कलाको भी नहीं पहुँचते॥५१॥ श्रीसीतारामके इस पावन अष्टोत्तरशतनामका जो मनुष्य पाठ करता है, वह सम्पूर्ण कामनाओंको प्राप्त कर लेता है। इसका पाठ एवं श्रवण करनेसे पुत्रार्थीको पुत्र, धनार्थीको धन और स्त्री चाहनेवालेको स्त्री मिलती है॥५२॥५३॥ अगस्त्य मुनिने जिस स्तोत्रके द्वारा अश्वमेध यज्ञमें रामचन्द्रकी स्तुति की थी, वही स्तोत्र मैंने तुमसे कहा है॥५४॥
इति श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये यागकाण्डे श्रीरामनामाष्टोत्तरशतनामस्तोत्रं नाम पञ्चमः सर्गः॥५॥

श्रीरामदास बोले—इसके अनन्तर कुम्भोदर मुनि दिव्य आसनपर बैठ गये। उधर ऋत्विक् लोगोंने यज्ञस्तम्भमें श्यामकर्ण अश्वको बाँध दिया॥१॥ हे द्विजश्रेष्ठ! उसके अंगोंको शास्त्रानुसार मन्त्रोंसे अभिमन्त्रित करके ब्राह्मणोंने उसका वध किया॥२॥ तब घृतमें सने हुए घोड़ेके मांसखण्डों एवं सक्तु पायस गोघृत आदि नाना द्रव्योंसे ऋत्विक् लोग हवन करने लगे॥३॥ वे ही मधुमें सने हुए तिल, दूर्वा, समिधा तथा गोघृतकी अखंड एवं स्थूल वसोर्धाराको अग्निमें छोड़ने लगे॥४॥ चिरकाल पर्यन्त जब तक यज्ञ समाप्त नहीं हुआ, तबतक वे ऊपर बँधे हुए गोमुखके द्वारा होमकुण्डमें समन्त्र आहुति देते रहे॥५॥ इससे सम्पूर्ण आकाश-मंडल धूमसमूहसे व्याप्त हो गया। उसीके कारण आज भी आकाश श्वेत नहीं, नीला ही दीखता है। सुखावह वसन्त ऋतु एवं पुनीत चैत्रमासमें इस तरह वे मुनीश्वर लोग वह अश्वमेध यज्ञ कर रहे थे॥६॥७॥

ईजुस्ते यज्ञविधिना ह्यग्निहोत्रादिलक्षणैः । प्राकृतैर्वैकृतैर्यज्ञैर्द्रव्यज्ञानक्रियेश्वरम् ॥ ८ ॥
प्रत्यहं प्रातरुत्थाय रामचंद्रः ससीतया । नत्वा शम्भुं विधिं देवान् मुनींश्चापि पृथक् पृथक् ॥ ९ ॥
कौसल्याद्याश्च मातॄश्च कामधेनुं हृदि स्थितम् । चिंतामणिं कौस्तुभं च कंठे बद्धं रविप्रभम् ॥१०॥
पुष्पकं यज्ञवाटस्य देवतां यज्ञपूरुषम् । ततो गत्वा रामतीर्थे स्नात्वा रामो यथाविधि ॥११॥
कृत्वा नित्यविधिं सर्वं पूजयामास शंकरम् । उपहारान् समर्प्याथ कामधेनुसमुद्भवान् ॥१२॥
समानीतान् रत्नपात्रैः सीतया रघुनंदनः । ततः संपूज्य तां धेनुं विधिं पूज्य सविस्तरम् ॥१३॥
ऋत्विग्जनं तु संपूज्य तस्थौ स गुरुसन्निधौ । प्रभाते ऋत्विजः सर्वे सहदया मुनीश्वराः ॥१४॥
स्नात्वा नित्यविधिं कृत्वा तस्थुर्यज्ञस्य मंडपे । रामाज्ञयाऽथ सौमित्रिर्नृपादीनां प्रपूजनम् ॥१५॥
दिव्यैर्नानोपहाराद्यैः कामधेनुसमुद्भवैः । ततश्चकार सौमित्रिर्नृपादीनां प्रपूजनम् ॥१६॥
तथा सीताज्ञया स्त्रीणामूर्मिला लक्ष्मणप्रिया ॥ १७ ॥
मांडवीं श्रुतकीर्तिश्च सर्वाश्चक्रुः प्रपूजनम् । अथ ते ऋत्विजश्चक्रुः स्वाहाकारैर्यथाविधि ॥१८॥
होमं नानाविधैर्द्रव्यैः सुगन्धैर्यज्ञमंडपे । पुरोडाशान् वरान् दिव्यानश्नन् रामोऽपि सीतया॥१९॥
वाजिमेधे राघवस्य साक्षाद्देवाः स्वयं मुदा । हवींषि भक्षयामासुस्त्यक्तमात्राणि पावके ॥२०॥
अस्तु श्रौषडिति प्रोचुर्वाद्यघोषः स मेघवत् । श्रूयते यज्ञशालासु सर्वत्रर्त्विजकीर्तितः ॥२१॥
मध्ये कुंडं महारम्यं व्याप्तमृत्विग्जनैः शुभम् । ततो मुनीश्वराः सर्वे ततो देवाः समंततः ॥२२॥
ततः सर्वाः स्त्रियः श्रेष्ठास्ततो विद्याधराः स्थिताः । ततो यक्षाश्च गंधर्वाः किन्नराः प्लवगोत्तमाः ॥२३॥
ततस्ते क्षत्रियाः सर्वे ततस्तेषां तु सेवकाः । ततः स्थिता वारनार्यस्ततो मागधवंदिनः ॥२४॥
ददृशुः संस्थिता यज्ञमंडपे यज्ञकौतुकम् । मध्याह्नावधि हुत्वा ते ऋत्विजश्च सविस्तरम् ॥२५॥

द्रव्यज्ञान एवं क्रियाओंमें निपुण वैदिक अग्निहोत्रादिकी प्राकृत एवं वैदिक विधियोंसे शास्त्रानुसार यज्ञ कर रहे थे ॥ ८ ॥ रामचन्द्रजी नित्य प्रातःकाल उठ तथा शौचादि क्रियाओंसे निवृत्त होकर शंभु, ब्रह्मा एवं अन्यान्य देवताओंको, मुनियोंको, कामधेनुको, हृदयस्थ चिन्तामणिको, कंठबद्ध सूर्यके समान कान्तिमान् कौस्तुभमणिको, पुष्पक विमानको, यज्ञके देवता तथा यज्ञ भगवान्‌को प्रणाम करते थे ॥ ९ ॥ १० ॥ उसके बाद यथाविधि रामतीर्थमें जाकर स्नान करते थे ॥ ११ ॥ इसके अनन्तर सम्पूर्ण दैनिक कृत्य करते और कामधेनुसे प्राप्त उपहारोंकी भेंट देते थे ॥ १२ ॥ सीताके द्वारा रत्नपात्रोंमें लाये गये संभारसे कामधेनुकी पूजा करनेके बाद विस्तारपूर्वक ब्रह्माकी पूजा करते थे ॥ १३ ॥ तदनन्तर ऋत्विजोंकी पूजा करके आचार्यके पास बैठ जाते थे। ऋत्विक्, होता एवं सब मुनीश्वर भी नित्यकर्मोंको समाप्त करके यज्ञमण्डपमें बैठ जाते थे। रामकी आज्ञासे लक्ष्मणजी उनकी पूजा करते थे ॥ १४ ॥ १५ ॥ बादमें कामधेनुसे उत्पन्न नाना प्रकारके स्वर्गीय उपहारोंसे राजाओंकी पूजा करते थे ॥ १६ ॥ दिव्य वस्त्राभरणों तथा विविध पक्वान्नोंसे लक्ष्मणप्रिया उर्मिला एवं माण्डवी-श्रुतकीर्ति प्रभृति स्त्रियाँ भी सीताके आज्ञानुसार सब स्त्रियोंका पूजन करती थीं ॥ १७ ॥ इस तरह प्रत्येक मनुष्यकी यथायोग्य पूजा हो चुकनेके बाद ऋत्विक् लोग स्वाहाकारों तथा विविध सुगन्धित द्रव्योंसे यज्ञमण्डपमें हवन करते थे ॥ १८ ॥ सीता और राम इष्टियोंकी समाप्तिपर श्रेष्ठ एवं दिव्य पुरोडाशोंको खाते थे ॥ १९ ॥ रामचन्द्रजीके अश्वमेध यज्ञमें देवता प्रत्यक्ष प्रकट होकर बड़े आनन्दसे अग्निमें प्रक्षिप्त द्रव्योंको खाते थे ॥ २० ॥ ऋत्विक् लोग 'अस्तु श्रौषट्' इस प्रकार बोलते थे और बाजे बजाते थे। जिनका मेघध्वनिकी तरह गम्भीर घोष समस्त यज्ञशालामें सुनायी पड़ता था ॥ २१ ॥ मध्यमें रमणीय एवं ऋत्विक्‌जनोंसे व्याप्त हवनकुण्ड था। उसके पास मुनीश्वर बैठे थे। चारों तरफ देवता बैठे थे ॥ २२ ॥ इसके बाद सम्पूर्ण स्त्रियाँ थीं। उनके बाद विद्याधर बैठे थे। उनके बाद यक्ष, यक्षोंके बाद गन्धर्व, गन्धर्वोंके बाद किन्नर, किन्नरोंके बाद बन्दर, उनके बाद क्षत्रिय, उनके बाद सेवकवर्ग, उनके बाद वेश्यायें, उनके बाद मागध और बंदीजन बैठे थे ॥ २३ ॥ २४ ॥ इस तरह अपने-अपने स्थानोंपर बैठे हुए सब लोग यज्ञका कौतुक देख रहे थे ॥ २५ ॥

ततो माध्यांह्निकं कर्तुं ययुस्तां सरयूं नदीम् । कृत्वा माध्याह्निकं कर्म गत्वा तु यज्ञमंडपे ॥२६॥
हैमासने तु सर्वत्र नेमिरेखोपमे स्थितः । देवाश्चापीश्वराद्यास्ते तस्थुर्दिव्यासनोपरि ॥२७॥
लक्ष्मणस्तान् प्रपूज्याथ भरतेन स शत्रुहा । संस्थाप्य हेमपात्राणि सर्वेषां पुरतस्तदा ॥२८॥
जानकीं त्वरयामास परिवेषणकर्मणि । अथ सीतोर्मिला रम्या तथा सा मांडवी शुभा ॥२९॥
श्रुतकीर्तिर्मंत्रिपत्न्यः सुहृत्पत्न्यः सहस्रशः । परिवेषणकर्माणि चक्रुस्ता यज्ञमंडपे ॥३०॥
नानाविधैर्वरान्नैश्च कामधेनुसमुद्भवैः । मुनीश्वरादिकाः सर्वे तोषमापुस्तदाऽध्वरे ॥३१॥
सीतादीनां हि नारीणां तदा यज्ञस्य मंडपे । नूपुराणां किंकिणीनां शुश्रुवे सर्वतो ध्वनिः ॥३२॥
यथेच्छं भुंजतां सर्वे याच्यतां यद्धृदि स्थितम् । मा शंका भोजने कार्या त्यक्तव्यं यन्न रोचते ॥३३॥
अयाचितानि देयानि पक्वान्नानि यथारुचि । अखंडिताज्यधाराऽत्र कार्या राघवशासनात् ॥३४॥
गृह्यतां किंचिदूचुस्ते नेति नेति द्विजाः पुनः । इति भोजनकाले वै शुश्रुवे सर्वतो ध्वनिः ॥३५॥
किंचिदपेक्षितं स्वामिन्निति रामेण प्रार्थिताः । चक्रुस्ते भोजनं सर्वे वीजिता व्यजनादिभिः ॥३६॥
जलैरुष्णोदकैश्चक्रुः करशुद्धिं मुनीश्वराः । ततो गृहीततांबूला मुनयस्ते तु निर्जराः ॥३७॥
गृहीत्वा हेममुद्रां हि राघवेण पृथक् पृथक् । समर्पितां दक्षिणार्थं जग्मुर्वासस्थलानि हि ॥३८॥
ततः पूर्वोपचाराद्यैः कथितैरेव पार्थिवाः । चक्रुस्ते भोजनं सर्वे चक्रुर्वेश्यास्ततः परम् ॥३९॥
स्त्रीणां भोजनशालासु पूर्वं भुक्त्वाऽमरस्त्रियः । सहिता मुनिपत्नीभिस्ततस्ताः क्षत्रियस्त्रियः ॥४०॥
चक्रुर्वै भोजनं सर्वाः सीतया प्रार्थिता मुहुः । ततो वैश्यास्त्रियश्चक्रुः पौरनार्यस्ततः परम् ॥४१॥
ततः शूद्रस्त्रियश्चापि मुदा चक्रुश्च भोजनम् । शालासु पुरुषाणां च ततो वानरराक्षसाः ॥४२॥
ऋक्षाः पौरा जानपदाश्चक्रुर्भोजनमुत्तमम् । ततः शूद्रादयः सर्वे ततः पार्थिवसेवकाः ॥४३॥

ऋत्विक् लोग मध्याह्नपर्यन्त विस्तारपूर्वक हवन करके माध्यन्दिन कृत्य करनेके लिए सरयूपर जाते थे ॥ २६ ॥ माध्याह्निक कर्म करके वे यज्ञमण्डपमें नेमिरेखोपम सुवर्णनिर्मित आसनपर बैठ जाते थे । इसी तरह अपना अपना कृत्य समाप्त करके देवता भी दिव्यासनपर विराजते थे ॥ २७ ॥ बादमें भरत, लक्ष्मण एवं शत्रुघ्न उनकी पूजा करके सुवर्णके भोजनपात्र उनके सामने रख देते थे ॥ २८ ॥ तब भगवान् रामचन्द्र भोजन परोसनके लिए सीताको आज्ञा देते थे । तब सीता, उर्मिला, माण्डवी, श्रुतकीर्ति एवं हजारों मित्रपत्नियाँ परोसती थीं ॥ २९ ॥ ३० ॥ नाना प्रकारकी उन उत्कृष्ट भोजनसामग्रियोंसे वे मुनीश्वरादिक अत्यन्त प्रसन्न होते थे ॥ ३१ ॥ जिस समय सीता प्रभृति स्त्रियाँ यज्ञमण्डपमें भोजन परोसती थीं, उस समय नुपूरों एवं किंकिणियोंका मधुर ध्वनि सर्वत्र सुनाई पड़ती थी ॥ ३२ ॥ सब लोग यथेष्ट भोजन करें, जो पसंद हो सो माँगें, भोजनके विषयमें कोई किसी तरहकी शंका न करे और जिसको जो पदार्थ न रुचे, उसे छोड़ दे । बिना माँगे ही यथेष्ट पक्वान्न दो और उनकी थालियोंमें अखण्ड घृतधारा डालो । इस प्रकार रामचन्द्र परिवेषकोंको आज्ञा देते थे ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ परोसनेवाले कहते थे और लीजिए, ब्राह्मण कहते थे 'नहीं'। इस प्रकार भोजनकालमें सर्वत्र यही ध्वनि सुनाई पड़ती थी ॥ ३५ ॥ भगवान् रामचन्द्रजी कहते थे–भगवन् ! क्या चाहिये ? इसके उत्तरमें ब्राह्मण 'सब परिपूर्ण है' ऐसा कहते थे । इस प्रकार आनन्दके साथ पंखेकी हवा खाते हुए विप्रगण भोजन करते थे ॥ ३६ ॥ भोजनोत्तर ठण्ढे एवं उष्णोदकसे हस्त-दन्त-शुद्धि करके वे ताम्बूल खाते थे ॥ ३७ ॥ इसके बाद राम द्वारा दक्षिणार्थ समर्पित स्वर्णमुद्राको लेकर वे मुनीश्वर एवं देवता डेरेपर चले जाते थे ॥ ३८ ॥ इसके बाद पूर्वोक्त उपचारोंसे राजालोग भोजन करते थे । तदुपरान्त वेश्यायें भोजन करती थीं ॥ ३९ ॥ स्त्रियोंकी भोजनशालामें पहले देवाङ्गनायें, फिर मुनिपत्नियाँ और उनके बाद क्षत्रियपत्नियाँ भोजन करती थीं । तदनन्तर सभी स्त्रियाँ सीताकी प्रार्थनापर भोजन करती थीं । उसके बाद वणिक्पत्नियाँ, तदुपरान्त पुरनारियाँ एवं शूद्रपत्नियाँ भोजन करती थीं । पुरुषोंके भोजनालयमें वानर, राक्षस, ऋक्ष, पुरवासी, शूद्रादि एवं राजसेवक ये सब क्रमशः भोजन करते थे

न कश्चित् क्षुधितस्तत्र नासीत्कस्य निषेधनम् । ततो रामः सुहृन्मित्रैर्बंधुभिः सचिवादिभिः ॥४४॥
चकार भोजनं स्वस्थः सीतया प्रार्थितो मुहुः । यावंतो भूमिकणिका यावंतस्तोयबिंदवः ॥४५॥
यावंत्युडूनि गगने तावन्तो राघवाध्वरे । प्रत्यहं भोजनं चक्रुर्विप्राद्यास्तत्स्त्रियोऽपि च ॥४६ ।
श्वश्रूभिर्मंत्रिपत्नीभिस्तथा देवरपत्निभिः । चकार भोजनं सीता दिव्यान्नैः स्वस्थमानसा ॥४७॥
ततश्चतुर्थप्रहरे सभां कृत्वा तु मंडपे । कथाभिः कीर्तनैर्गीतैः शास्त्रवादैः सुपुण्यदैः ॥४८॥
वारस्त्रीणां नृत्यगीतैर्निन्ये रामो दिनक्षयम् । ततः संध्यादिकं कृत्वा पुनर्हुत्वा यथाविधि ॥४९॥
पूर्वोक्तैस्तु कथाद्यैश्च निशायाः प्रहरद्वयम् । समतिक्रम्य निद्रार्थं सर्वानाज्ञापयत्तदा ।५०।
गत्वा स्वस्वस्थलं सर्वे निद्रां चक्रुर्यथासुखम् । पट्टकूलामने भूम्यां सीतया स जितेंद्रियः ॥५१॥
चकार निद्रां श्रीरामो हृदि चिंतयेष्टदेवताः । आज्ञाभंगो नरेन्द्राणां विप्राणां मानखंडनम् ॥५२॥
पृथक् शय्या च नारीणामशस्त्रवध उच्यते । अतः स सीतया युक्तश्चकार शयनं प्रभुः ॥५३॥
एवमासीत्प्रत्यहं वै दिनचर्याऽध्वरे प्रभोः ॥ ५४ ॥

इति श्रीशतकोटिरामचरितांतर्गते श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये यागकाण्डे
यज्ञारंभे रामदिनचर्यावर्णनं नाम षष्ठः सर्गः ॥ ६ ॥

सप्तमः सर्गः

(ध्वजारोपणव्रतकी महिमा)

श्रीरामदास उवाच

सौत्येऽहन्यवनीपालो याजकान्सदसस्पतीन् । अपूजयन्महाभागान् यथावत्सुसमाहितः ॥ १ ॥
अथ चैत्रे सिते पक्षे राजानः प्रतिपत्तिथौ । ध्वजानारोपयामासुर्विधिनाऽध्वरमंडपे ॥ २ ॥

श्रीविष्णुदास उवाच

आरोपिता ध्वजाः प्रोक्ताः पार्थिवैर्यज्ञमंडपे । गुरो तेषां विधानं मां सम्यग्वक्तुं त्वमर्हसि ॥ ३ ॥

॥ ४०–४३ ॥ किसीके लिए भोजनका निषेध नहीं था। वहांपर कोई भूखा नहीं रहता था। सबके भोजन कर लेनेके बाद रामचन्द्रजी स्वयं सीताके वारम्वार प्रार्थना करनेपर अपने पुत्र, मित्र, बन्धु एवं सचिवोंके साथ भोजन करते थे ॥ ४४ ॥ पृथ्वीमें जितनी रेणुकायें हैं, जितने जलबिन्दु हैं तथा आकाशमें जितने नक्षत्र हैं, उतनी संख्यामें ब्राह्मण प्रभृति पुरुष एवं स्त्रीवृन्द रामचन्द्रके यज्ञमें प्रतिदिन भोजन करते थे ॥ ४५ ॥ ४६ ॥ रामचन्द्रके भोजनोपरान्त श्रीसीताजी भी सास, मन्त्रिपत्नी तथा देवपत्नियोंके साथ दिव्यान्न खाती थीं ॥ ४७ ॥ पुनः चौथे पहर यज्ञमण्डपमें सभा करके कथा, हरिकीर्तन, पुण्यप्रद शास्त्रचर्चा तथा वेश्याओंके नृत्यगान द्वारा राम अवशिष्ट समय विताते थे ॥ ४८ ॥ पुनः सायंकाल सन्ध्या एवं हवनकृत्य पूर्ण करके कथादिके द्वारा रात्रिके दो प्रहर विताकर सब लोगोंको शयन करनेकी आज्ञा देते थे ॥ ४९ ॥ ५० ॥ तब सब लोग अपने-अपने स्थानों-पर सानन्द शयन करते थे। राम भी अपने इष्टदेवताका हृदयमें स्मरण करके भूमिपर पट्टदुकूलासन बिछा तथा जितेन्द्रिय होकर सीताके साथ सोते थे ॥ ५१ ॥ राजाओंकी आज्ञा तोड़ना, ब्राह्मणोंका मानमर्दन एवं स्त्रियोंकी पृथक् शय्या करना अशस्त्रवध कहलाता है। अतः भगवान् रामचन्द्र सीताके साथ ही सोते थे ॥ ५२ ॥ ५३ ॥ इस प्रकार यज्ञमें भगवान्का यह प्रतिदिनका काम था ॥ ५४ ॥ इति श्रीशतकोटिरामचरितान्तर्गते श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये यागकाण्डे यज्ञारम्भे रामचर्यावर्णनं नाम षष्ठः सर्गः ॥ ६ ॥

श्रीरामदास कहने लगे—सौत्यपर्वके दिन राजा रामचन्द्रने सावधान होकर याजकों एवं सदस्योंकी यथावत् पूजा की ॥ १ ॥ चैत्र शुक्लपक्ष प्रतिपदाके दिन राजालोग विधिपूर्वक यज्ञमण्डपके ऊपर ध्वजाओंको फहराने लगे ॥ २ ॥ विष्णुदासने कहा—हे गुरो ! आपने कहा कि राजा लोग यज्ञमण्डपके ऊपर ध्वजा

श्रीरामदास उवाच

सम्यक् प्रश्नः कृतः शिष्य त्वया लोकोपकारकः । सावधानमना भूत्वा शृणुष्व त्वं मयोच्यते ॥ ४ ॥
सांवत्सरं व्रतं चेदं नृपैर्दृष्ट्वा समागतम् । आरोपिता ध्वजाः सर्वैर्यज्ञवाटे तदा मुदा ॥ ५ ॥
नोचेद्विष्णुगृहेष्वारोपणीया ध्वजा नृभिः । मधुशुक्लदशम्यां च पुण्यायां प्रतिपत्तिथौ ॥ ६ ॥
अथवा रोपणीयास्ते श्रीरामनवमीदिने । मधुशुक्लदशम्यां वा दशम्यामाश्विने सिते ॥ ७ ॥
अथवोर्जप्रतिपदि शुक्लपक्षेऽपि भो द्विज । एते काला मया प्रोक्ता व्रतस्यास्य तवाग्रतः ॥ ८ ॥
अधुना संप्रवक्ष्यामि ध्वजारोपणमुत्तमम् । व्रतं पापहरं पुण्यं रामसंतोषकारकम् ॥ ९ ॥
यः कुर्याद्विष्णुभवने ध्वजारोपणसंज्ञितम् । सम्पूज्यते विरिंचाद्यैः किमन्यैर्बहुभाषितैः ॥१०॥
हेमभारसहस्रं तु यो दद्याच्च कुटुम्बिने । तत्फलं समवाप्नोति ध्वजारोपणकर्मणः ॥११॥
ध्वजारोपणतुल्यं स्यान्न गंगास्नानमुत्तमम् । अथवा तुलसीसेवा शिवलिंगप्रपूजनम् ॥१२॥
अहोऽपूर्वमहोऽपूर्वमहोऽपूर्वं महत्तरम् । सर्वपापहरं कर्म ध्वजारोपणसंज्ञितम् ॥१३॥
तानि सर्वाणि वक्ष्यामि शृणु त्वं गदतो मम ॥ १४ ॥
अथ चैत्रे सिते पक्षे व्रतं हि प्रतिपत्तिथौ । मधुशुक्लदशम्यां वा नवम्यां राघवस्य वा ॥१५॥
कार्यं वाऽऽश्विनमासस्य दशम्यां शुक्लपक्षके । ऊर्जशुक्लप्रतिपदि दशम्यां वा विधीयताम् ॥१६॥
अवश्यं चैत्रमासे हि कार्यं चैतद्व्रतोत्तमम् । अतिक्रांते चैत्रमासे कार्यं चेतरपर्वसु ॥१७॥
चैत्रशुक्लप्रतिपदि प्रभाते प्रयतो नरः । स्नानं कुर्यात्प्रयत्नेन दंतधावनपूर्वकम् ॥१८॥
ततः कृत्वा नित्यकर्म पश्चाद्विष्णुं समर्चयेत् । चतुर्भिर्ब्राह्मणैः सार्द्धं कृत्वा च स्वस्तिवाचनम् ॥१९॥
नांदीश्राद्धं प्रकुर्वीत ध्वजारोपणकर्मणि । ध्वजस्तंभौ च गायत्र्या प्रोक्षयेद्वस्त्रसंयुतौ ॥२०॥
पताकयोर्लेखनीयौ वैनतेयाञ्जनीसुतौ । सूर्यं चद्रं मारुतिं च वैनतेयं प्रपूजयेत् ॥२१॥
धातारं च विधातारं पूजयेत्कुम्भकद्वये । हरिद्राऽक्षतदूर्वाद्यैः शुक्लपुष्पैर्विशेषतः ॥२२॥

फहराने लगे । सो उस ध्वजारोपणका क्या विधान है । यह कृपा करके मुझे बताइए ॥ ३ ॥ श्रीरामदासजीने उत्तर दिया–हे शिष्य ! तुमने अच्छा प्रश्न किया है । यह प्रश्न लोकोपकारक है । तुम सावधान होकर सुनो । मैं कहता हूँ ॥ ४ ॥ ध्वजारोपणरूपी व्रतके समयको प्राप्त जानकर राजाओंने यज्ञमण्डपमें ध्वजाओंको आरोपित करना आरम्भ कर दिया ॥ ५ ॥ यज्ञका समय न हो तो चैत्र शुक्लपक्षको प्रतिवर्ष विष्णुमन्दिरके ऊपर ध्वजा आरोपित करे ॥ ६ ॥ अथवा रामनवमी दशमी तथा विजयादशमीको ध्वजारोपण करे ॥ ७ ॥ अथवा कार्तिकशुक्ल प्रतिपदाको ध्वजारोपण करे । ये ही तिथियाँ ध्वजारोपणके लिए उत्तम होती हैं, जो मैंने तुम्हें बतलायी हैं ॥ ८ ॥ अब मैं ध्वजारोपण व्रतका विधान बतलाता हूँ । यह व्रत रामको अत्यन्त प्रिय और अतीव पुण्योत्पादक है ॥ ९ ॥ इस विषयमें अधिक कहनेकी आवश्यकता नहीं है । जो प्राणी विष्णुमन्दिरके ऊपर ध्वजारोपण करता है, उसकी ब्रह्मादिक देवता भी पूजा करते हैं ॥ १० ॥ कुटुम्बी विप्रको हजार तोला सुवर्ण देनेसे जो फल प्राप्त होता है, वही फल ध्वजारोपणका भी है ॥ ११ ॥ ध्वजारोपण कर्मके समान न गङ्गास्नान है, न तुलसीसेवा और न शिवपूजा ही है ॥ १२ ॥ यह कार्य इतना उत्तम है कि इसको करनेसे सब पाप नष्ट हो जाते हैं ॥ १३ ॥ इसका सब विधान मैं तुम्हें बतलाता हूँ—सुनो ॥ १४ ॥ इसको करनेका चैत्रादि मास उपयुक्त समय है । यदि इनमेंसे पहला समय न मिले तो इतर पर्वमें ही ध्वजारोपण करे ॥ १५–१७ ॥ चैत्र शुक्ल प्रतिपदाको प्रातःकाल दन्तधावनपूर्वक स्नान करे ॥ १८ ॥ फिर नित्यकृत्यसे निवृत्त होकर विष्णुभगवान्‌की पूजा करे । तदनन्तर चार ब्राह्मणोंसे स्वस्तिवाचन कराके नान्दीश्राद्ध करे और वस्त्रावृत ध्वजाओंको गायत्रीमन्त्रसे प्रोक्षित करे ॥१९॥ उन ध्वजाओंमें गरुड और हनुमानजीका चित्र बना रहे । फिर उसपर सूर्य-चन्द्र-गरुड एवं हनुमान्‌जीकी पूजा करे । तदनन्तर दो घड़ोंपर हरिद्रा, अक्षत, दूर्वा एवं विशेष करके श्वेत पुष्प-

ततो गोचर्ममात्रं तु स्थंडिलं चोपलिप्य च । आधायाग्निं स्वगृह्योक्त्या घृतभागादिकं क्रमात् ।।२३।।
जुहुयात्पायसेनैव घृतेनाष्टोत्तरं शतम् । प्रथमं पौरुषं सूक्तं विष्णोर्नुकेन मंत्रतः ।।२४।।
ततश्च वैनतेयाय स्वाहेत्यष्टाहुतीस्तदा । मारुतेरष्टाहुतीश्च कृत्वा स्वाहेति होमयेत् ।।२५।।
सोमो धेनुं समुच्चार्य जुहुयात्प्रयतस्तदा । सौरान् मंत्रान् जपेत्तत्र शांतिसूक्तानि भक्तितः ।।२६।।
रात्रौ जागरणं कुर्यादुपकंठं हरेः शुचिः । एवं नवदिनं कार्यं पूजनं परमोत्सवैः ।।२७।।
नवरात्रं जागरणं कुर्यान्नित्यं सुकीर्तनैः । ततो दशम्यामुषसि समुत्थाय व्रती शुचिः ।।२८।।
प्रातःस्नात्वा नित्यकर्म समाप्याथ ततः परम् । गंधपुष्पादिभिर्देवानर्चयेत्पूर्ववत्क्रमात् ।।२९।।
ततो मंगलवाद्यैश्च शुक्लपीठैश्च शोभनैः । नृत्यैश्च स्तोत्रपठनैर्नयेद्विष्णवालयं ध्वजम् ।।३०।।
देवस्य द्वारदेशे वा शिखरे वा मुदान्वितः । सुस्थिरं स्थापयेच्छ्रिष्य ध्वजस्तंभं सुशोभितम् ।।३१।।
गंधपुष्पाक्षतैर्दीपैर्दिव्यधूपैर्मनोरमैः । भक्ष्यभोज्यादिसंयुक्तैर्नैवेद्यैश्च हरिं यजेत् ।।३२।।
आप्रतिपदमारभ्य दशम्यवधि सद्मनि । ध्वजयोः पूजनं कृत्वैकादश्यां हरिसद्मनि ।।३३।।
आरोपणीयौ शिखरे पुरतो वा यथासुखम् । अथवा रोपणीयौ हि दशम्यां तौ ध्वजोत्तमौ ।।३४।।
नवम्यां वा द्वितीयायां चतुर्थ्यामष्टमीदिने । षष्ठ्यां वा रोपणीयौ तौ पूर्वं पूज्य यथाविधि ।।३५।।
व्रतस्य प्रतिपद्येव प्रारंभो नेतरे दिने । पूर्वोक्तेषु हरेः कार्या न मासेष्वितरेषु च ।।३६।।
माघासितचतुर्दश्यामेवं शंभोर्गृहे ध्वजौ । नंदीभृंग्यंकितौ कृत्वा रोपणीयौ यथाविधि ।।३७।।
आश्विनस्य सिताष्टम्यां मधोर्वा गिरिजागृहे । नभस्यस्य चतुर्थ्यां हि प्रोक्तो गणपसद्गृहे ।।३८।।
मार्गशीर्षे शुक्लषष्ठ्यामेवं मार्तंडसद्गृहे । एवं हि सर्वदेवानामुत्साहदिवसेष्वपि ।।३९।।

से धाना और विधानाकी पूजा करे। तत्पश्चात् गोचर्ममात्र स्थण्डिलके ऊपर परिसमूहनादि पंचभूसंस्कार करके स्वशाखीय गृह्योक्त विधानसे कुण्डमें अग्नि स्थापित करे ॥ २०–२३ ॥ पुनः क्रमशः पायस और घृतसे आघार-आज्यभाग नामकी अष्टोत्तरशत आहुति दे। अथवा आघाराज्यभागकी आहुति देकर पुनः क्रमशः पायस और घृतकी अष्टोत्तरशत आहुति दे। प्रथम आहुतियाँ पुरुषसूक्तके मंत्रोंसे और दूसरी आहुतियां विष्णोर्नुकं इस मन्त्रसे दे ॥ २४ ॥ फिर गरुड़के निमित्त आठ आहुतियाँ और मारुतिके निमित्त आठ आहुतिसे हवन करे। 'गरुड़ाय स्वाहा' मंत्रसे पहली आठ आहुतियाँ एवं 'मारुतये स्वाहा' इस मंत्रसे दूसरी आठ आहुतियाँ दे ॥ २५ ॥ पुनः 'सोमो धेनुः' मंत्रका उच्चारण करके संयमपूर्वक हवन करे। तदनन्तर सौर मन्त्रोंका जप और शान्तिसूक्तका पाठ करे ॥ २६ ॥ रात्रियोंमें श्रीहरिके समीप जागरण करे। फिर दशमीको परमोत्सवके साथ भगवान्‌का पूजन करे ॥ २७ ॥ नित्य हरिकीर्तन करके नवरात्रि पर्यन्त जागरण करे। दसवें दिन प्रातः स्नान-संध्यादि नित्यकृत्योंसे निवृत्त होकर पूर्ववत् पूजनसम्भारसे भगवान्‌की पूजा करे ॥ २८ ॥ २९ ॥ इसके बाद मंगलमय बाजे-गाजेके साथ स्तोत्रपाठ करते हुए ध्वजाको विष्णुमन्दिरमें ले जाय ॥ ३० ॥ मन्दिरके द्वार तथा शिखरपर पुष्पमालासे सुशोभित ध्वजाको स्थापित करें ॥ ३१ ॥ वहाँ गन्ध, पुष्प, अक्षत, धूप, दीप एवं भक्ष्य-भोज्यादि युक्त नैवेद्यसे श्रीहरिका पूजन करे। अथवा प्रतिपदासे लेकर दशमी तक घरमें ध्वजाओंकी पूजा करके एकादशीको विष्णुमन्दिरके शिखर या द्वारपर उन ध्वजाओंको स्थापित करे। अथवा दशमीको ही स्थापित कर दे ॥ ३२–३४ ॥ अथवा द्वितीया, चतुर्थी, षष्ठी, अष्टमी तथा नवमीको सुविधानुसार समय देखकर उपर्युक्त विधानसे पूजा करके ध्वजा स्थापित करे ॥ ३५ ॥ किन्तु व्रतका प्रारम्भ प्रतिपदाको ही होता है। श्रीहरिके निमित्त ध्वजारोपण पूर्वोक्त मासोंमें ही करे, अन्य मासोंमें नहीं ॥ ३६ ॥ इसी प्रकार माघकृष्ण चतुर्दशीको शिवालयपर ध्वजारोपण करे। उस ध्वजामें यथाविधि नन्दी और भृङ्गीको अंकित करे ॥ ३७ ॥ आश्विन शुक्ल अष्टमीको या चैत्रके नवरात्रमें पार्वतीके मन्दिरपर ध्वजा फहराये। भाद्रपद चतुर्थीको गणेशके मन्दिरपर ध्वजारोपण करे ॥ ३८ ॥ मार्गशीर्ष शुक्ल षष्ठीको सूर्यके मन्दिरपर ध्वजास्थापन करे। इस प्रकार देवताओंके उत्सवदिवसमें ही यह कार्य सम्पन्न करे ॥ ३९ ॥

मधूर्जाश्विनमासेषु विना विष्णोर्न चेतरे । एवं देवालये स्थाप्य शोभनौ तौ ध्वजोत्तमौ ॥४०॥
संपूज्य विष्णुं विधिवत् वित्तशाट्यं विना ततः । प्रदक्षिणमनुव्रज्य स्तोत्रमेतदुदीरयेत् ॥४१॥
नमस्ते पुंडरीकाक्ष नमस्ते विश्वभावन । नमस्तेऽस्तु हृषीकेश महापुरुषपूर्वज ॥४२॥
येनेदमखिलं जातं यस्मिन् सर्वं प्रतिष्ठितम् । लयमेष्यति यत्रैतत्तं प्रपन्नोऽस्मि माधवम् ॥४३॥
न जानंति वरं देवं सर्वे ब्रह्मादयः सुराः । योगिनो यं प्रशंसंति तं वंदे ज्ञानरूपिणम् ॥४४॥
अंतरिक्षं तु यन्नाभिर्द्यौर्मूर्धा यस्य चैव हि । पादादभूच्च वै पृथ्वी तं वंदे विश्वरूपिणम् ॥४५॥
यस्य श्रोत्रे दिशः सर्वा यच्चक्षुर्दिनकृच्छशी । ऋक्सामयजुषो येन तं वंदे ब्रह्मरूपिणम् ॥४६॥
यन्मुखाद्ब्राह्मणा जाता यद्बाह्वोरभवन्नृपाः । वैश्या यस्योरुतो जाताः पद्भ्यां शूद्रस्त्वजायत ॥४७ ।
मनसश्चंद्रमा जातो दिनेशश्चक्षुषस्तथा । प्राणेभ्यः पवनो जातो मुखादग्निरजायत ॥४८॥
पापसंदाहमात्रेण वदंति पुरुषं तु यम् । स्वभावविमलं शुद्धं निर्विकारं निरंजनम् ॥४९॥
क्षीराब्धिशायिनं देवमनंतमपराजितम् । सद्भक्तवत्सलं विष्णु भक्तिगम्यं नमाम्यहम् ॥५०॥
पृथिव्यादीनि भूतानि तन्मात्राणींद्रियाणि च । सुसूक्ष्माणि च येनासंस्तं वंदे सर्वतोमुखम् ॥५१॥
यद्ब्रह्म परमं धाम सर्वलोकोत्तमोत्तमम् । निर्गुणं परमं सूक्ष्मं प्रणतोऽस्मि पुनः पुनः ॥५२॥
निर्विकारमजं शुद्धं सर्वतो वह्निमीश्वरम् । यमामनंति योगींद्राः सर्वकारणकारणम् ॥५३॥
एको विष्णुर्महद्भूतं पृथग्भूतान्यनेकशः । त्रींल्लोकान् व्याप्य भूतात्मा भुंक्ते विश्वभुगव्ययः ॥५४॥
निर्गुणः परमानंदः स मे विष्णुः प्रसीदतु । हृदयस्थोऽपि दूरस्थो मायया मोहितात्मनाम् ॥५५ ।
ज्ञानिनां सर्वधर्मस्तु स मे विष्णुः प्रसीदतु । चतुर्भिश्च चतुर्भिश्च द्वाभ्यां पंचभिरेव च ॥५६॥
हूयते च पुनर्द्वाभ्यां स मे विष्णुः प्रसीदतु । ज्ञानिनां कर्मणां चैव तथा भक्तिमतां नृणाम् ॥५७॥

चैत्र आश्विन तथा कार्तिक इन तीन मासोंमें विष्णुके सिवाय अन्य देवताओंके लिए ध्वजारोपण नहीं करना चाहिये ॥ ४० ॥ इस प्रकार वित्तशाठ्य त्यागकर देवालयपर ध्वजारोपण करके विधिवत् विष्णुकी पूजा करे। तदनन्तर प्रदक्षिणा करके इस स्तोत्रका पाठ करे—॥ ४१ ॥ हे पुण्डरीकाक्ष ! हे हृषीकेश ! हे महापुरुषपूर्वज ! आपको अनेकशः प्रणाम है ॥ ४२ ॥ जिससे यह संसार उत्पन्न हुआ है, जिसके आधारपर टिका हुआ है और जिसमें लय होगा, मैं उन माधव भगवान्‌को प्रणाम करता हूँ ॥ ४३ ॥ जिसको ब्रह्मादि देवता भी भली-भाँति नहीं जानते और योगी जिनकी प्रशंसा करते हैं, उन परब्रह्म परमात्माको मैं प्रणाम करता हूँ ॥४४॥ अन्तरिक्ष जिसकी नाभि है, आकाश जिसका मस्तक है और जिसके चरणसे भूमि उत्पन्न हुई है, मैं उस ब्रह्मको प्रणाम करता हूँ ॥ ४५ ॥ दिशाएँ जिसके कान हैं, सूर्य एवं चन्द्र जिसके नेत्र हैं, ऋक्-साम एवं यजुर्वेद जिससे जायमान हुए हैं, उस ब्रह्मको मैं प्रणाम करता हूँ ॥ ४६ ॥ जिसके मुखसे ब्राह्मण, बाहुसे क्षत्रिय, ऊरुस्थलसे वैश्य और पैरोंसे शूद्र उत्पन्न हुए हैं, उस ईश्वरको मैं प्रणाम करता हूँ ॥ ४७ ॥ स्वभावतः निर्मल, निरञ्जन, निर्विकार एवं शुद्ध परमात्माके नामस्मरणमात्रसे समस्त पापसमूह नष्ट हो जाता है ॥ ४८ ॥ जिसके मनसे चन्द्रमा, चक्षुसे सूर्य, प्राणोंसे पवन एवं मुखसे अग्नि उत्पन्न हुआ है, उस परमात्माको मैं प्रणाम करता हूँ ॥ ४९ ॥ क्षीरसागरमें शयन करनेवाले, भक्तोंके प्रेमी, भक्तिगम्य, अपराजित और अनन्त-स्वरूप विष्णुको मैं प्रणाम करता हूँ ॥ ५० ॥ पृथिव्यादि पञ्चभूत, तन्मात्रा, एकादश इन्द्रियाँ और सूक्ष्म प्राणिसमूह जिनसे उत्पन्न हुए हैं, उन सर्वतोमुख भगवान्‌को मैं प्रणाम करता हूँ ॥ ५१ ॥ जो ब्रह्म है, सर्व-लोकोत्तमोत्तम है, निर्गुण है एवं परम सूक्ष्म है, उस परमात्माको मैं पुनः प्रणाम करता हूँ ॥ ५२ ॥ योगीन्द्रजन जिसको निर्विकार, अज, शुद्ध, ईश्वर एवं संसारका आदि कारण कहते हैं, उस परब्रह्मको मैं प्रणाम करता हूँ ॥ ५३ ॥ जो विश्वभोक्ता और अव्यय है, जो एक होता हुआ भी अलग-अलग पञ्च महाभूतों एवं तीनों लोकोंमें व्याप्त है, उस भूतात्माको मैं प्रणाम करता हूँ ॥ ५४ ॥ जो निर्गुण है, परमानन्दस्वरूप है और हृदयमें रहते हुए भी जिस प्राणीकी आत्मा मायासे मुग्ध है, वह उससे दूर है ॥ ५५ ॥ जो ज्ञानियोंका सर्वस्व है। वह विष्णु

गतिदाता विश्वभुग्यः स मे विष्णुः प्रसीदतु । जगद्धितार्थं यो देहमदधाल्लीलया हरिः ॥५८॥
यमर्चयंति विबुधाः स मे विष्णुः प्रसीदतु । यमामनंति वै संतः सर्वदाऽऽनंदविग्रहम् ॥५९॥
निर्गुणं च गुणाधारं स मे विष्णुः प्रसीदतु । परेशः परमानंदः परात्परतरः प्रभुः ॥६०॥
चिद्रूपश्च परिज्ञेयः स मे विष्णुः प्रसीदतु । य इदं कीर्तयेन्नित्यं स्तोत्राणामुत्तमोत्तमम् ॥६१॥
सर्वपापविनिर्मुक्तो विष्णुलोके महीयते । य इदं कीर्तयेद्विष्णुं ब्राह्मणांश्च प्रपूजयेत् ॥६२॥
आचार्यं पूजयेत्पश्चाद्दक्षिणाच्छादनादिभिः । ब्राह्मणान्भोजयेत्पश्चाद्भक्तितः सत्यभाषणः ॥६३॥
पुत्रमित्रकलत्राद्यैर्बन्धुभिः सह वाग्यतः । कुर्वीत पारणां शिष्य नारायणपरायणः ॥६४॥
यस्त्वेतत्कर्म कुर्वीत ध्वजारोपणमुत्तमम् । तस्य पुण्यफलं वक्ष्ये शृणुष्व सुसमाहितः ॥६५॥
वस्त्रं ध्वजस्य संबद्धं यावच्चलति वायुना । तावत्स्वपापजालानि नश्यंत्यत्र न संशयः ॥६६॥
महापातकयुक्तो वा युक्तश्चेत्सर्वपातकैः । ध्वजं विष्णुगृहे कृत्वा सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥६७॥
यावद्दिनानि वसति ध्वजो हरिगृहोपरि । तावद्युगसहस्राणि हरेः सामीप्यमाप्नुयात् ॥६८॥
आरोपितं ध्वजं दृष्ट्वा येऽभिवंदंति धार्मिकाः । तेऽपि सद्यो विमुच्यंते ह्युपपातककोटिभिः ॥६९॥
आरोपितं ध्वजं विष्णुगृहे धुन्वन्स्वकं पटम् । कर्तुः सर्वाणि पापानि धुनोति निमिषार्धतः ॥७०॥
एवं शिष्य मया प्रोक्तं यथा पृष्टं त्वया मम । ध्वजारोपणमाहात्म्यं सविधानं मनोरमम् ॥७१॥
समागतां प्रतिपद ज्ञात्वा चैत्रसितां नृपैः । आरोपिता ध्वजाः सर्वे द्वितीयायां पृथक् पृथक् ॥७२॥
ज्ञात्वा रामं महाविष्णुं तस्यैवाध्वरमंडपे । कृत्वा' चैकदिनं स्वस्ववासगेहेषु पूजनम् ॥७३॥
ध्वजस्य पूजनं गेहे नवरात्रं समाचरेत् । यथाशक्त्यनुसारं वा चैकरात्रमथापि वा ॥७४॥
यज्ञोऽस्सवदर्शनार्थं कृतमेकदिनं नृपैः । चकार राघश्चापि पूर्वमेव ध्वजोत्सवम् ॥७५॥
माघमासे कृष्णपक्षे चतुर्दश्यां शिवाग्रतः । तदा ध्वजैर्महोच्चैस्तैः शुशुभे गगनांगणम् ॥७६॥

मुझपर प्रसन्न हों ॥ ५६ ॥ चार-चार ऋत्विक् जिनके प्रीत्यर्थ हवन करते हैं, कभी दो-दो और कभी पाँच-पाँच तथा फिर दो-दो ऋत्विक् हवन करते हैं, वे विष्णु मेरे ऊपर प्रसन्न हों ॥ ५७ ॥ जो ज्ञानियों, कर्मों एवं भक्तोंकी गति हैं। जो विश्वभुक् हैं, वे विष्णु मेरे ऊपर प्रसन्न हों। जो संसारके हितके लिए शरीर धारण करते हैं ॥ ५८ ॥ जिनकी विद्वान् पूजा करते हैं। सन्त लोग जिनको सदा आनन्दविग्रह कहते हैं, वे विष्णु मुझपर प्रसन्न हों। जो निर्गुण हैं और सगुण भी हैं। जिनका सर्वेश, परमानन्द, परमात्मा एवं चिद्रूप इत्यादि नामोंसे परिचय मिलता है, वे विष्णु मेरे ऊपर प्रसन्न हों ॥ ५९ ॥ ६० ॥ जो पुरुष इस उत्तम स्तोत्रका पाठ करता है, वह समस्त पापोंसे विनिर्मुक्त होकर विष्णुलोकमें पूजित होता है। जो इसका कीर्तन करना चाहे, वह पुत्र-मित्र-कलत्रादिके साथ सत्यपरायण होकर इस स्तोत्रका कीर्तन करे। पश्चात् विष्णु, ब्राह्मण एवं आचार्योंकी पूजा करे। बादमें ब्राह्मणभोजन कराये ॥ ६१–६४ ॥ जो पुरुष ध्वजारोपण करता है, उसका पुण्यफल सावधान होकर सुनो ॥ ६५ ॥ आरोपित ध्वजाका वस्त्र वायुसे जैसे-जैसे हिलता है, तैसे-तैसे उस पुरुषका सब पाप नष्ट होता जाता है ॥ ६६ ॥ विष्णुमन्दिरके ऊपर ध्वजारोपण करनेसे एक महापातक क्या सभी पाप नष्ट हो जाते हैं। वह आरोपित ध्वजा जितने दिनों तक हरिमन्दिरपर सुशोभित रहती है, उतने सहस्र युगपर्यन्त ध्वजारोपणकर्ता श्रीहरिके समीप रहता है ॥ ६७ ॥ ६८ ॥ जो धार्मिक पुरुष ध्वजाकी वन्दना करते हैं, वे कोटि उपपातकोंसे छूट जाते हैं ॥ ६९ ॥ वह आरोपित ध्वजा अपने वस्त्र कँपाती हुई निमिषार्धमें आरोपयिताके पापोंको नष्ट कर देती है। हे शिष्य ! तुमने जो मनोहर ध्वजारोपणमाहात्म्य पूछा, वह सब विधिपूर्वक मैंने कहा ॥ ७० ॥ इसीलिए चैत्रशुक्ल प्रतिपदाको आया हुआ जानकर राजाओंने द्वितीयाको ध्वजाओंका आरोपण किया। यज्ञमण्डपमें स्थित रामको महाविष्णु समझकर ही वे राजे ध्वजाका अपने-अपने तम्बुओंमें अलग-अलग पूजन करने लगे ॥ ७१–७३ ॥ पूजा नवरात्र पर्यन्त अथवा अपनी शक्तिके अनुसार करे। अथवा एक ही रात करे ॥ ७४ ॥ यज्ञो-

इदं चरित्रं परमं मनोहरं श्रीमद्ध्वजारोपविधानसंज्ञितम् ।
पठंति शृण्वंति नराः सुपुण्यदं भवेच्च तेषां नियतं त्रिचिन्तनम् ॥७७॥

इति श्रीशतकोटिरामचरितांतर्गते श्रीमदानंदरामायणे वाल्मीकीये यागकांडे ध्वजारोपणव्रतं नाम सप्तमः सर्गः ॥ ७ ॥

अष्टमः सर्गः

(अवभृथस्नानोत्सवका वर्णन)

श्रीरामदास उवाच

अथ चैत्रसिते पक्षे नवम्यां रामजन्मनि । तदाऽवभृथस्नानार्थं वाजिमेधफलाप्तये ॥ १ ॥
चकार सूचनां राज्ञे राघवाय गुरुः स्वयम् । त्वरयामास तं रामं रवितापभयान्मुनिः ॥ २ ॥
वसिष्ठवचनं श्रुत्वा रामो लक्ष्मणमब्रवीत् । अद्यावभृथस्नानार्थमुत्सवैर्गमनं मम ॥ ३ ॥
रामतीर्थं त्वया ज्ञात्वा करणीयं मयोच्यते । आज्ञापनीया राजानो निजसैन्यैर्गजादिभिः ॥ ४ ॥
सज्जीभूताः सावरोधास्तिष्ठध्वमिति मंडपे । सिद्धं कार्यं निजं सैन्यं शिबिकारथवारणम् ॥ ५ ॥
अश्वपत्तिसमायुक्तं तुरगोष्ट्रगजैर्युतम् । नववाद्यध्वनिः कार्या तूर्यादीनां स्वनोऽपि च ॥ ६ ॥
पताकाश्च ध्वजाश्चापि तोरणादि समंततः । मुक्ताप्रवालपुष्पाणि हाराश्चाध्वरमंडपात् ॥ ७ ॥
बन्धनीया रामतीर्थपर्यंतं सैकतेऽपि च । कदलीनां महास्तंभाश्चेक्षुदंडाः समंततः ॥ ८ ॥
पुष्पाणि वाटिकाश्चापि मृत्पात्रादिषु निर्मिताः । स्थापनीयाश्च सर्वत्र नृत्यंतु वारयोषितः ॥ ९ ॥
सेचनीयो रामतीर्थमार्गश्चन्दनवारिभिः । पुष्पैराच्छादनीयो हि पट्टकूलादिभिस्तथा ॥१०॥
अन्यच्चापि यथायोग्य यन्नोक्तं च मया तव । तत्कुरुष्वाविलम्बेन मामपृष्ट्वाऽविचारितम् ॥११॥
तथेत्युक्त्वा लक्ष्मणोऽपि तथा सर्वं चकार सः । अथ तं ऋत्विजश्चक्रुर्गमनेऽष्टिं सविस्तराम् ॥१२॥

त्सव देखनेके निमित्त राजाओं तथा रामजीने एक ही दिनमें सब कृत्य सम्पन्न कर लिया था ॥ ७५ ॥ इसी तरह माघकृष्ण चतुर्दशीको शिवजीके सम्मुख ध्वजारोपण किया। उस ऊँची ध्वजासे गगनमण्डल अत्यन्त सुशोभित हुआ ॥ ७६ ॥ ध्वजारोपणविधानसंज्ञक इस परम मनोहर एवं पुण्यप्रद चरित्रको जो लोग पढ़ते और और सुनते हैं, उनका चिंतितार्थ अवश्य पूर्ण होता है ॥ ७७ ॥ इति श्रीशतकोटिरामचरितांतर्गते श्रीमदानन्द-रामायणे यागकांडे 'ज्योत्स्ना' भाषाटीकायां ध्वजारोपणव्रतं नाम सप्तमः सर्गः ॥ ७ ॥

श्रीरामदास कहने लगे--चैत्रशुक्ल रामनवमीको अश्वमेध यज्ञके फलप्राप्त्यर्थ अवभृथ-स्नानके लिये स्वयं गुरु वसिष्ठने रामको सूचना दी और सूर्यतापके भयसे जल्दी करनेके लिए कहने लगे ॥ १ ॥ २ ॥ वसिष्ठके वाक्य सुनकर रामने लक्ष्मणसे कहा--आज अवभृथ स्नानके लिए मैं उत्सवपूर्वक रामतीर्थको जाऊँगा। अतः उस समयका जो कर्तव्य है, सो सुनो ॥ ३ ॥ राजाओंको आज्ञा दी कि वे अपनी-अपनी सेना एवं हाथी-घोड़ोंके साथ अन्तःपुरकी स्त्रियोंको लेकर यज्ञमण्डपमें आएँ ॥ ४ ॥ इसी तरह जब सब बाहरी लोग भी आ जायँ, तब अपनी सेना, हाथी, घोड़े, शिबिका एवं ऊँटोंको भी ले आओ। नवीन तथा प्राचीन वाद्योंकी ध्वनिके साथ सब लोग रामतीर्थ चलें ॥ ५ ॥ ६ ॥ यज्ञमण्डपके चारों ओर पताका, ध्वजा, तोरण, मुक्तामाला, प्रवाल एवं पुष्पोंके हारोंसे सजावट कर दी जाय ॥ ७ ॥ रामतीर्थ पर्यन्त रेतीले प्रदेशमें भी हजारों पताकाएँ बाँध दी जायँ और चारों ओर इक्षुदंड एवं कदलीके महान् स्तम्भ खड़े कर दिये जायँ ॥ ८ ॥ गमलोंकी फुलवारी सजा दी जाय और सर्वत्र वेश्याएँ नृत्य करें ॥ ९ ॥ रामतीर्थका मार्ग चन्दनके जलसे सिंचवाकर पुष्पों तथा पट्टदुकूलोंसे आच्छादित करा दिया जाय ॥ १० ॥ और भी जो कुछ करने योग्य हो, किन्तु जिसको मैंने नहीं कहा हो, वह सब बिना पूछे ही विचारपूर्वक सब व्यवस्था कर दो। इस प्रकार रामकी आज्ञा सुनकर लक्ष्मणने

वाजिवाहे रथे वह्निं पात्राणि स्थाप्य राघवम् । सीतां चारोह्य स गुरुश्चाकरोहर्त्विजैः सह ॥१३॥
मुनयो वेदघोषांश्च सर्वे चक्रुः समन्ततः । स सम्राड्रथमारूढः सदश्वं रुक्ममालिनम् ॥१४॥
ययौ शनैः शनैर्मार्गे मुदा वन्दिजनैः स्तुतः । अग्रे गजाः पताकाभिर्जग्मुरश्वास्ततः परम् ॥१५॥
ततस्ते तूर्यघोषाणां कर्तारस्तुरगस्थिताः । ततस्ते राजदूताश्च चित्रोष्णीषाः सुदंडिनः ॥१६॥
ततो वंदिनटाद्याश्च वारस्त्रीणां ततो गणाः । ततो देवाः सगन्धर्वास्ततो रामः स सीतया ॥१७॥
ऋत्विग्जनैर्ययौ वह्निसंयुतः स्यन्दनस्थितः । ततो मुनीश्वराः सर्वे ऋषिपत्न्यस्ततो ययुः ॥१८॥
ततः क्षत्रियपत्न्याद्याः स्त्रियः सर्वाः शनैर्ययुः । ततस्ते क्षत्रियाः सर्वे नानावाहनसंस्थिताः ॥१९॥
ततस्तेषां हि सैन्यानि ततोऽन्ते राजसेवकाः । नववाद्यध्वनीनां च वारणाद्यास्ततः परम् ॥२०॥
ततश्चोष्ट्रास्तु बाणानां शकटाः शस्त्रपूरिताः । लोहकारास्तक्षकाश्च चर्मकारास्ततः परम् ॥२१॥
भूमिमानप्रकर्तारो रज्जुकुद्दालहस्तकाः । ययुर्यथाक्रमं सर्वे तदैव परमोत्सवैः ॥२२॥
तदा निनेदुर्वाद्यानि ननृतुर्वारयोषितः । मुनिपार्थिवपत्न्यस्तं ववर्षुः पुष्पवृष्टिभिः ॥२३॥
मार्गे वन्दिजनाद्याश्च तुष्टुवू रघुनन्दनम् । षड्जादिस्वरान् गंधर्वाः प्रजगुः पथि ते मुदा ॥२४॥
चक्रुस्ते वेदघोषाँश्च मुनयः स्वरपूर्वकान् । एवं रामः शनैर्मार्गे कौतुकानि समन्ततः ॥२५॥
पश्यन् जनकनन्दिन्या ययौ चामरवीजितः । तत्र रामस्य मार्गे हि सीताया मुखपङ्कजम् ॥२६॥
द्रष्टुं कोलाहलं चक्रुः संमर्दात्सकला जनाः । ततस्तास्ताडयामासुः शतशो वेत्रपाणयः ॥२७॥
विशेषेण तदासीत्स महान् कोलाहलो द्विज । तत्सर्वं राघवो दृष्ट्वा श्रुत्वा च प्राह लक्ष्मणम् ॥२८॥
एते सर्वे पुष्पकस्था जनाः सीतां च मां सुखम् । पश्यंतु कलहो माऽस्तु तथास्त्विति स लक्ष्मणः॥२९॥
सर्वानारोहयामास पुष्पके तान् जनान् मुदा । ततस्ते पुष्पकारूढा जना रामं मनोरमम् ॥३०॥

'अच्छा महाराज' कहकर सम्पूर्ण व्यवस्था कर दी । इसके बाद ऋत्विग्गण सविस्तर गमनेष्टि कृत्य करने लगे ॥ ११ ॥ १२ ॥ घोड़े जुते रथमें अग्नि रख तथा पात्रोंको यथास्थान जमाकर सीता और रामको रथारूढ़ कराके गुरु वसिष्ठ भी रथमें बैठ गये ॥ १३ ॥ जब सम्राट् रामचन्द्र सुवर्णनिर्मित रथपर चढ़े, तब ऋत्विक् लोग वेदघोष करने लगे ॥ १४ ॥ वन्दीजनोंसे स्तूयमान होते हुए राम धीरे धीरे रामतीर्थको चले । आगे-आगे पताकाओंसे युक्त हाथी, उसके बाद घोड़े, उसके बाद घोड़ोंपर चढ़े हुए घुड़सवार, तब बाजा बजानेवाले और उनके बाद सुन्दर पगड़ी पहने हुए दण्डधारी राजदूत चले ॥१५॥१६॥ उसके बाद वन्दीजन, उसके बाद वैश्यवृन्द, उसके बाद देवता तथा गन्धर्व चले ॥ १७ ॥ तदनन्तर स्यन्दनस्थ तथा वह्निसंयुक्त ऋत्विक् जनोंसे परिवेष्टित राम और सीता चलीं । उसके बाद ऋषि और ऋषिपत्नियाँ चलीं ॥ १८ ॥ उसके बाद राजपत्नी-प्रभृति सम्पूर्ण स्त्रियाँ चलीं । उसके अनन्तर विविध वाहनोंपर चढ़े हुए राजे चले ॥ १९ ॥ उसके बाद उनकी सेना तथा अन्य राजसेवक चले । उसके बाद वाद्यवादक चले ॥ २० ॥ उसके बाद बाणोंसे लदे ऊँट और शस्त्रोंसे भरे शकट चले । उसके बाद लोहकार, पुनः बढ़ई, तब चर्मकार चलने लगे ॥ २१ ॥ उसके बाद भूमिकी नाप-जोख करनेवाली रस्सी एवं कुदाल हाथमें लिये मजदूर चलने लगे । इस तरह आनन्दमग्न वह सम्पूर्ण जनसमुदाय चलने लगा ॥ २२ ॥ उसके बाद बाजे बजने लगे और वेश्याएँ नाचने लगीं । मुनिपत्नियाँ और राजपत्नियाँ रामपर पुष्पवृष्टि करने लगीं ॥ २३ ॥ मार्गमें बन्दीजन स्तुति करने लगे, गन्धर्व गाने लगे और मुनिलोग उच्चस्वरसे वेदघोष करने लगे ॥ २४ ॥ इस प्रकार जनकनन्दिनी सीताके साथ विविध कौतुक देखते हुए राम चले ॥ २५ ॥ उस समय राम एवं सीताके दर्शनके लिए परस्पर झगड़ती हुई जनतामें कोलाहल मच गया । उसको शान्त करनेके लिए पुलिस डंडोंसे जनताको ताड़ना देने लगी ॥ २६ ॥ २७ ॥ जब अधिक कोलाहल होने लगा, तब रामने देखा और कुछ सोचकर लक्ष्मणसे बोले – ॥ २८ ॥ तुम ऐसी व्यवस्था करो कि जिससे जनता हमारा दर्शन कर सके और कलह शान्त हो जाय । इन सबको पुष्पक विमानपर चढ़ा लो । लक्ष्मणने कहा 'बहुत अच्छा' ॥ २९ ॥ इस प्रकार रामकी आज्ञासे सबको पुष्पकपर चढ़ा लिया गया । तब

जानकीसहितं यान्तं ददृशुः पथि वै शनैः । केचिदूचुर्वयं धन्याः परिपूर्णमनोरथाः ॥३१॥
अद्य रामं ससीतं च पश्यामोऽत्र महोत्सवे । केचिदूचुश्च तौ धन्यौ पितरौ नः सुजन्मदौ ॥३२॥
ययोः पुण्यचयैरद्य नः सीतारामदर्शनम् । एवं गच्छति श्रीरामे स्त्रियः सर्वाः परस्परम् ॥३३॥
समंत्र्य पुष्पके स्थातुं प्रार्थयंति स्म जानकीम् । तदा सा जानकी प्राह लक्ष्मणं पुरतः स्थितम् ॥३४॥
स्त्रियः सर्वास्त्वया शीघ्रं नारीशालासु पुष्पके । आरोहणीया मे वाक्यात् प्रार्थयंत्यत्र मां मुहुः ॥३५॥
लक्ष्मणोऽपि तथेत्युक्त्वा ताः स्त्रीः सर्वाश्च पुष्पके । त्वरयाऽऽरोहयामास स्त्रीशालासु यथासुखम् ॥३६॥
ततस्ताः पुष्पकारूढास्तृणजालपटान्तरैः । ददृशुः सीतया रामं ववर्षुः पुष्पवृष्टिभिः ॥३७॥
मृदङ्गशङ्खपणवधुन्धुर्यानकगोमुखाः । वादित्राणि विचित्राणि नेदुश्चावभृथोत्सवे ॥३८॥
नर्तक्यो ननृतुर्हृष्टा गायका यूथशो जगुः । वीणावेणुतलोन्नादस्तेषां स दिवमस्पृशत् ॥३९॥
चित्रध्वजपताकाग्रैरिभेन्द्रस्यन्दनार्वभिः । स्वलंकृतैर्भटैर्भूपा निर्ययू रुक्ममालिनः ॥४०॥
यदुसृंजयकाम्बोजकुरुकैकयकोसलाः । कम्पयन्तो भुवं सैन्यैर्यजमानपुरःसराः ॥४१॥
सदस्यर्त्विग्द्विजश्रेष्ठा ब्रह्मघोषेण भूयसा । देवर्षिपितृगन्धर्वास्तुष्टुवुः पुष्पवृष्टिभिः ॥४२॥
स्वलंकृता नरा नार्यो गन्धस्रग्भूषणाम्बरैः । विलिंपन्त्योऽभिषिंचन्त्यो विजह्रुर्विविधै रसैः ॥४३॥
तैलगोरसगन्धोदहरिद्रासान्द्रकुंकुमैः । पुंभिर्लिप्ताः प्रलिंपन्त्यो विजह्रुर्वारयोषितः ॥४४॥
एवं नानासमुत्साहैः श्रीरामश्च ससीतया । पश्यन्नानाकौतुकानि स्यन्दनेन शनैः शनैः ॥४५॥
अगमत्सरयूतीरे रामतीर्थं शुभावहम् । अवरुह्य रथाद्रामः सीतया सरयूजले ॥४६॥
स चकार जलेष्टिं तैर्ऋत्विग्भिः परिवारितः । पत्नीसंयाजावभृथ्यैश्चरित्वा ते तमृत्विजः ॥४७॥
सर्वे रामह्रदे विप्रा यजमानपुरःसराः । आचान्तं स्नापयाञ्चक्रुः सरय्वां सह सीतया ॥४८॥

पुष्पकस्थ जनता रास्तेमें जाते हुए सीतारामको प्रेमसे देखने लगीं ॥ ३० ॥ वे कहने लगे—हम धन्य हैं और परिपूर्ण मनोरथ हैं, जो अपने नेत्रोंसे सीतारामको देख रहे हैं । कोई बोला कि हमारे जन्मदाता माता-पिता धन्य हैं। जिनके पुण्यसे हमको सीतारामके दर्शन हो रहे हैं ॥ ३१ ॥ इस तरह कौतुक देखते हुए श्रीराम चले जा रहे थे, तब अन्यान्य स्त्रियाँ परस्पर विचार करके पुष्पकमें बैठानेके लिए जानकीसे प्रार्थना करने लगीं ॥३२॥३३॥ उनकी प्रार्थना सुनकर सीताजीने सामने बैठे लक्ष्मणसे कहा—॥३४॥ ये स्त्रियाँ बारम्बार मुझसे प्रार्थना कर रही हैं। अतः मेरी आज्ञासे इनको भी पुष्पकविमानकी स्त्रीशालामें बैठा दो ॥ ३५ ॥ लक्ष्मणजीने उत्तरमें 'बहुत अच्छा' कहकर उन स्त्रियोंको शीघ्र पुष्पककी नारीशालामें बैठा दिया ॥ ३६ ॥ उसपर आरूढ़ होकर वे झरोखोंमेंसे सीताको देखने और पुष्पोंकी वर्षा करने लगीं ॥ ३७ ॥ उस अवभृथस्नानोत्सवके उपलक्ष्यमें लोग मृदङ्ग, शंख, पणव (ढोल), धुन्धुर्यानक (नगाड़े) एवं गोमुख (भेरी) प्रभृति विचित्र-विचित्र वाद्योंको बजाने लगे ॥ ३८ ॥ नर्तकियाँ प्रसन्न होकर नाचने लगीं। गायकसमूह गायन गाने लगे और बीणा-वेणु प्रभृति वाद्योंका शब्द आकाशको गुञ्जित करने लगा ॥ ३९ ॥ चित्र-विचित्र ध्वजा-पताकाओंसे सुशोभित हाथी-घोड़े तथा रथोंके द्वारा सजे हुए योद्धाओंके साथ सब राजे चल रहे थे ॥ ४० ॥ यदु, सृञ्जय, काम्बोज, कुरु, केकय एवं कोसलवंशी राजाओंका वृन्द श्रीरामको आगे करके पृथ्वीमण्डलको कँपाता हुआ चल रहा था ॥ ४१ ॥ सदस्य, ऋत्विक् एवं ब्राह्मणवृन्द वेदघोष करने लगा और देवता, ऋषि, पितर एवं गन्धर्व पुष्पवृष्टि करने लगे ॥ ४२ ॥ गन्ध, माला, आभूषण एवं वस्त्रोंसे अलंकृत नारियाँ विविध रसोंको छिड़कती हुई पुरुषोंके साथ विहार करने लगीं ॥ ४३ ॥ वेश्याएँ भी तैल, गोरस, गन्धोदक, हरिद्रा तथा गीला कुमकुम पुरुषोंपर उंडेलती हुई उनके साथ खेलने लगीं ॥ ४४ ॥ इस तरह अनेक प्रकारके आनन्दमय कौतुक देखते हुए श्रीराम और सीता रथके द्वारा धीरे-धीरे सरयूके तीरस्थ शुभावह रामतीर्थपर पहुँचे और वहां उतर पड़े ॥ ४५ ॥ ४६ ॥ ऋत्विजोंसे परिवेष्टित श्रीराम सरयूके जलमें जलेष्टि करने लगे । ऋत्विक् लोगोंने इनको पत्नीके साथ सयाज एवं अवभृथ स्नान करवाया ॥ ४७ ॥ ब्राह्मण लोग रामतीर्थके सरयूजलमें सीताके

शत्रुघ्नेन पुराऽऽनीतैर्नानातीर्थजलैस्तदा । रामाभिषेकं ते चक्रुर्मुदा मंत्रैर्मुनीश्वराः ॥४९॥
देवदुन्दुभयो नेदुर्नरदुन्दुभिभिः समम् । मुमुचुः पुष्पवर्षाणि देवर्षिपितृमानवाः ॥५०॥
सस्नुस्तत्र ततः सर्वे वर्णाश्रमयुता नराः । महापातकिनश्चापि स्नात्वा मुक्ताः स्वपातकात् ॥५१॥
अथ रामोऽहते क्षौमे परिधाय स्वलंकृतः । शुशुभे नितरां दिव्यकंकणाभ्यां सुमंडितः ॥५२॥
केयूराभ्यां कुण्डलाभ्यां मुक्ताहारैर्विचित्रितैः । नानामस्नैर्हारैश्च रत्नानां नूपुरादिभिः ॥५३॥
हृदि चिंतामणियुतः कंठे कौस्तुभमंडितः । चिंतामणिकौस्तुभयोः प्रभया दीपितोदरः ॥५४॥
कोटिसूर्यप्रतीकाशः सिकतायां वरासने । तस्थौ जनकनन्दिन्या ऋत्विग्भिः परिवेष्टितः ॥५५॥
अथर्त्विग्भ्योऽददात्काले यथाम्नायं स दक्षिणाः । स्वलंकृतेभ्योऽलंकृत्य गोभूतुरगवारणान् ॥५६॥
कामधेनुमलंकृत्य गुरुं दातुं समुद्यतः । तज्ज्ञात्वा चिंतयामास वसिष्ठः स स्वचेतसि ॥५७॥
अस्ति मां नंदिनी नाम्नी कामधेनुसुतासुता । नास्याः प्रयोजनं मेऽद्य ह्यत्रापूर्वं करोम्यहम् ॥५८॥
अस्यैवास्तु कामधेनुरस्यै योग्यो रघूत्तमः । तां वर्जयित्वा रामस्य कीर्त्यर्थं जगतीतले ॥५९॥
याचाम्यहं शुभां सीतां सालंकारां सदक्षिणाम् । औदार्यं राघवस्याद्य दर्शयिष्याम्यहं जनान् ॥६०॥
इति निश्चित्य स गुरुस्तदा प्राह रघूत्तमम् । करोमि किं धेनुदानं तेन तृप्तिर्न मे भवेत् ॥६१॥
यदि दास्यसि देया मे सीताऽलंकारमंडिता । तया तृप्तिर्भवेन्मेऽद्य नान्यैर्नारीशतैरपि ॥६२॥
तन्मुनेर्वचनं श्रुत्वा वसिष्ठस्य जनास्तदा । हाहाकारं महच्चक्रुर्विषण्णा भयविह्वलाः ॥६३॥
केचिदूचुर्वसिष्ठोऽयं किं भ्रांतो जठरोऽद्य हि । केचिदूचुर्विनोदोऽयं कृतोऽस्ति मुनिनाऽत्र हि ॥६४॥
केचिदूचू राघवस्य धैर्यं पश्यत्ययं मुनिः । केचिदूचू राघवोऽद्य किं करिष्यति पश्यताम् ॥६५॥
एतस्मिन्नंतरे रामः श्रुत्वा तच्च गुरोर्वचः । प्रहस्य संज्ञया सीतामाहूय गुरुसन्निधौ ॥६६॥

साथ श्रीरामको आचमन कराकर स्नान करवाने लगे ॥ ४८ ॥ मुनीश्वर लोगोंने पहले शत्रुघ्नके लाये हुए विविध तीर्थोंके जलसे उन्हें स्नान करवाया ॥ ४९ ॥ उस समय मनुष्योंके नगाड़ोंके साथ साथ देवताओंके नगाड़े भी बजने लगे और देवता, ऋषि, पितर एवं मनुष्य पुष्प बरसाने लगे ॥ ५० ॥ सभी वर्णाश्रमी लोग रामतीर्थमें स्नान करने लगे। महापातकी भी वहाँ स्नान करके अपने पातकोंसे छूट गये ॥ ५१ ॥ इसके बाद राम नवीन रेशमी वस्त्र पहिन तथा दिव्य कंकणोंसे मण्डित होकर अत्यन्त सुशोभित होने लगे ॥ ५२ ॥ दोनों बाजुओंमें केयूर, कानोंमें कुण्डल, गलेमें मुक्तामाला तथा पुष्पमाला और पैरोंमें रत्नजटित नूपुरोंको पहिने हुए सीताजी भी अत्यन्त सुशोभित होने लगीं ॥ ५३ ॥ भगवान् राम हृदयपर चिन्तामणि और कण्ठमें कौस्तुभ मणि पहिने हुए थे। उस चिन्तामणि और कौस्तुभकी कान्तिसे चमकते हुए कोटि सूर्यकी कान्तिके समान तेजस्वी श्रीरामचन्द्र ऋत्विक् लोगोंसे परिवेष्टित होकर सरयूकी रेतीमें ही श्रेष्ठ आसनपर सीताके साथ बैठ गये ॥ ५४ ॥ ५५ ॥ बादमें अच्छी तरह अलंकृत ऋत्विजोंको और भी अलंकृत करके वे शास्त्रानुसार गो, भूमि, घोड़े एवं हाथी दान देने लगे ॥ ५६ ॥ जब वे कामधेनुको भी अलंकृत करके गुरु वसिष्ठको देनेके लिए उद्यत हुए, तब वसिष्ठ विचार करने लगे–॥ ५७ ॥ मेरे पास इसकी कन्या नन्दिनी है ही, तब इससे मेरा क्या अर्थ सिद्ध होगा। मुझे इसका कोई प्रयोजन नहीं है। यह कामधेनु राम ही के पास रहे तो अच्छा हो। क्योंकि इसके योग्य राम ही हैं। इसको छोड़कर मैं रामकी कीर्ति बढ़ानेके लिए सालंकारा एवं सदक्षिणा सीताको माँगता हूँ। ऐसा करके मैं आज रघुश्रेष्ठ रामका अपूर्व औदार्य संसारको दिखाऊँगा ॥ ५८–६० ॥ ऐसा निश्चय करके वसिष्ठजी बोले—क्या आप कामधेनु दान करते हैं ? इससे मेरी तृप्ति नहीं होगी ॥ ६१ ॥ यदि देना ही हो तो अलङ्कारोंसे सुशोभित सीताको दीजिये। उसीके दानसे मेरी तृप्ति होगी। अन्य सैकड़ों स्त्रियोंसे भी मेरी तृप्ति न होगी ॥ ६२ ॥ इस प्रकार ऋषि वसिष्ठके वचन सुनकर विषण्ण एवं भयविह्वल जनता महान् हाहाकार करने लगी ॥६३॥ जनता कहने लगी–"मालूम पड़ता है कि बूढ़ा वसिष्ठ पागल हो गया है" "नहीं भाई" किसीने कहा "ऋषिने रामसे मजाक किया है" ॥६४॥ कोई कहने लगा–"ऋषि रामजीके धैर्यको अजमा रहे हैं"। कोई कहने

सीतायाः स्वकरेणैव धृत्वा वामकरं मुदा। सभायां राघवः प्राह वसिष्ठं तोषयन्मुदा ॥६७॥
स्त्रीदानमन्त्रो वक्तव्यः सीतादानं करोमि ते। तथेति मुनिवृन्देषु वसिष्ठश्च यथाविधि ॥६८॥
अङ्गीचकार स्त्रीदानं राघवेण समर्पितम्। चकितं च तदाऽभूद्वै सर्वं स्थावरजङ्गमम् ॥६९॥
देहभानं न कस्यासीत्तदासीदतिचित्रवत्। तदा सीतां मुनिः प्राह मत्पृष्ठे तिष्ठ बालिके ॥७०॥
ममार्पिताऽसि रामेण त्वां मन्येऽहं सुतोपमाम्। तन्मुनेर्वचनं श्रुत्वा सीता सा खिन्नमानसा ॥७१॥
रामन्यस्तेक्षणा साध्वी मुनेः पृष्ठे ह्युपाविशत्। बभूवाश्रुपूर्णनेत्रा सा रोमांचितविग्रहा। ७२॥
ततो रामः पुनः प्राह वसिष्ठं विनयान्वितः। गृहाण सुरभिं चापि सीतार्थं ह्यर्पितां पुरा। ७३॥
मया तोषेण कैलासे मन्मणेस्तोषदायिनी। मयाऽपि दातुमानीता तच्छ्रुत्वा गुरुरब्रवीत् ॥७४।
राम राम महाबाहो तवौदार्यं च दर्शितम्। याचिता तव पत्नीयं मया तेऽस्तु पुनः शुभा ॥७५॥
अस्याः कुरु तुलामद्य सुवर्णेन रघूत्तम। अष्टवारं प्रतुलितं सीतया रुक्ममुत्तमम् ॥७६॥
मां दत्त्वेयं त्वया ग्राह्या पुनः सपदि मद्गिरा। अन्यत्किंचिच्छृणुष्व त्वं वचनं यन्मयोच्यते ॥७७॥
धेनुं चिंतामणिं सीतां कौस्तुभं पुष्पकं पुरीम्। स्वयं राज्यं मयोध्यायां त्वं चेत्कस्य प्रदास्यसि॥७८॥
अग्रे कदा तदाऽऽज्ञा मे त्वया लुप्ता भविष्यति। ममाज्ञाभङ्गदोषेण बहुक्लेशो भविष्यसि ॥७९॥
मदुक्तैः सप्तभी राजन् विना यद्यत्त्वमिच्छसि। तत्तद्दत्स्व विप्रेभ्यो त्वं सुखं ह्यविचारतः ॥८०॥
तद्गुरोर्वचनं श्रुत्वा तथेत्युक्त्वा रघूत्तमः। सीतां तुलायामारोप्य सुवर्णेनाष्टसंख्यया ॥८१॥
तुलितां प्रतिजग्राह गुरोः साध्वीं स्मिताननाम्। दिव्यालंकारहीनां तां कंचुकीवस्त्रसंयुताम् ॥८२॥
तदा निनेदुर्वाद्यानि ववर्षुः पुष्पवृष्टिभिः। सुरस्त्रियो विमानस्थाः सीतारामौ मुदान्विता ॥८३॥

लगा—"देखें, अब रामजी क्या करते हैं" ॥ ६५ ॥ इस तरह गुरुका वचन सुना तो रामजीने हँसकर संकेतसे सीताको और गुरु वसिष्ठको बुलाया ॥ ६६ ॥ उन्हें बुलाकर सभामें ही आनन्दपूर्वक अपने हाथसे सीताका बायाँ हाथ पकड़कर वसिष्ठजीको प्रसन्न करते हुए बोले—॥ ६७ ॥ "गुरुदेव ! आप स्त्रीदानका मन्त्र बोलिये, मैं सीताको दान करता हूँ"। वसिष्ठजीने भी "तथास्तु" कहकर रामके द्वारा दिये हुए स्त्रीदानको यथाविधि स्वीकार कर लिया। उस समय सम्पूर्ण स्थावर-जङ्गम जगत् आश्चर्यसे चकित रह गया ॥ ६८ ॥ ६९ ॥ उस समय सारा संसार चित्रलिखित-सा हो गया। किसीको अपनी देहकी भी सुधि नहीं रही। तब मुनि वसिष्ठ सीतासे बोले—सीते ! मेरे पीछे आकर बैठो ॥ ७० ॥ रामजीने मेरे लिये तुम्हें दान किया है। मैं तुमको पुत्रीकी तरह मानता हूँ। इस तरह मुनिके वचन सुनकर दुःखिता साध्वी सीता मुनिके पीछे जाकर बैठ गयीं। उस समय उनके रोंगटे खड़े हो गये और वे फूट-फूटकर रोने लगीं ॥ ७१ ॥ ७२ ॥ तदनन्तर विनयी रामजी वसिष्ठजीसे बोले—मैंने प्रसन्न होकर कैलास पर्वतपर सीताको सुरभी गाय दी थी। अतः इस मनस्तोषदायिनी सुरभीको भी आप ले लें। क्योंकि आपको देनेके लिए ही मैंने इसको मँगाया था। यह सुनकर गुरु वसिष्ठ बोले—॥ ७३ ॥ ७४ ॥ हे राम ! हे महाबाहो ! मैंने आपकी उदारता देखनेके लिए हो सीताको माँगा था। अतएव अब मेरे द्वारा दी हुई यह सीता पुनः आपकी हो जाय ॥ ७५ ॥ हे रघूत्तम ! सुवर्णके बराबर इसको तौलिए। आठ बार तौलनेपर जितना स्वर्ण हो, उसे मुझे देकर मेरी आज्ञासे आप पुनः सीताको ले लें। और भी जो मैं कहता हूँ, उसे सुनें ॥ ७६ ॥ ७७ ॥ भविष्यमें कामधेनु, चिन्तामणि, सीता, कौस्तुभ रत्न, पुष्पक विमान, अयोध्यापुरी एवं अपना राज्य यदि आप किसीको देंगे तो मेरे आज्ञाभंगजन्य दोषसे अत्यन्त दुःखी होंगे। क्योंकि आजतक आपने कभी भी मेरी आज्ञा भङ्ग नहीं की है ॥ ७८ ॥ ७९ ॥ अतः हे राजन् ! मुनिनिर्दिष्ट सात वस्तुओंको छोड़कर जो इच्छा हो, बिना विचारे ब्राह्मणोंको देकर आप सुखी हों ॥ ८० ॥ इस तरह गुरुके वचन सुनकर रघूत्तम रामने कहा— 'बहुत अच्छा गुरुदेव" और सीताको आठ बार सुवर्णसे तौलकर उनसे वापस ले लिया ॥८१॥ तब केवल कंचुकी वस्त्र पहने तथा दिव्यालंकारोंसे रहित भी सीता प्रसन्न हो गयीं। इसके अनन्तर बाजे बजने लगे और विमानपर बैठी हुई देवांगनायें प्रसन्न होकर सीतारामके ऊपर पुष्पवृष्टि करने

पूर्वाधिकानलंकारान्स्वदेहे जानकी दधौ । जनाः सर्वे सुसंतुष्टास्तदाऽऽसन्मुदिताननाः ॥८४॥
अथ सीता पतिं नत्वा तत्पार्श्वे संस्थिताऽभवत् । स्मिताननाऽऽनंदमग्ना लज्जिता रामलोचना ॥८५॥
ततो रामोऽप्यनेकानि कृत्वा दानानि विस्तरात्। ऋत्विक्सदस्यमुख्यादीनानर्च्याभरणांबरैः ॥८६॥
स्वीयज्ञातीनृपान्मित्रसुहृदोऽन्यांश्च सर्वशः । अभीक्ष्णं पूजयामास वस्त्रालंकारभूषणैः ॥८७॥
सर्वे जनाः सुललितोन्मणिकुण्डलस्रगुष्णीषकंचुकदुकूलमहार्घहाराः ।
नार्यश्च कुंडलयुगालकवृंदजुष्टवक्त्रश्रियः कनकमेखलया विरेजुः ॥८८॥

इति श्रीशतकोटिरामचरितांतर्गते श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये यागकाण्डे
अवभृथोत्सववर्णनं नामाष्टमः सर्गः ॥ ८ ॥

नवमः सर्गः

(अश्वमेध महायज्ञकी समाप्ति)

श्रीरामदास उवाच

श्रीरामेऽवभृथस्नाते शंभुर्ब्रह्मादिभिः सुरैः । रामं वेदस्तवैः स्तुत्वा प्रत्युवाच पुरः स्थितः ॥ १ ॥
अद्य धन्या वयं सर्वे यत्त्वां स्नातं सुमंगलम् । पश्यामो वाज्यवभृथे सीतया बंधुभिः सह ॥ २ ॥
अस्माकं हर्षकालोऽयं देवदेव दयानिधे । तस्मादयं सदा पुण्यः श्रेष्ठकालो भविष्यति ॥ ३ ॥
त्वं चाप्यंगीकुरुष्वाद्य देह्यस्मै सुबहून्वरान् । अन्यच्चश्चात्र प्रत्यब्दं येन ते दर्शनं भवेत् ॥ ४ ॥
तथा कुरु रघुश्रेष्ठ तीर्थायास्मै वरान्वद । अन्यानि च त्वया पूर्वं यानि भूम्यां कृतानि हि ॥ ५ ॥
यात्राकाले सुतीर्थानि लिंगान्यपि निजाख्यया ।
तेषामपि वरानद्य वद त्वं मम वाक्यतः ॥ ६ ॥
पुरीषु श्रेष्ठाऽयोध्येयं त्वया वाच्याऽद्य राघव । नदीषु सरयूः श्रेष्ठा वरैः कार्याऽद्य मद्गिरा ॥ ७ ॥
तच्छंभुवचनं श्रुत्वा प्रहस्य रघुनन्दनः । हर्षकालेऽब्रवीद्वाक्यं यत्त्रैलोक्योपकारकम् ॥ ८ ॥

लगीं ॥ ८२ ॥ ८३ ॥ जब जानकीजीने पहलेसे भी अधिक आभूषणोंको अपने शरीरमें पहना तो उससे जनता अत्यन्त सन्तुष्ट हुई ॥ ८४ ॥ इसके बाद पतिको प्रणाम करके हँसती हुई सीताजी आनन्दमग्न होकर लज्जापूर्वक रामके पास बैठ गयीं। तदनन्तर रामजीने खूब दान दिये एवं ऋत्विक्, सदस्य, राजे, मित्र, सुहृद् तथा अपने भाई-बन्धुओंका वस्त्राभूषणोंसे भली भाँति सत्कार किया ॥ ८५ ॥ ८६ ॥ उस समय रामजीके यज्ञमें सब पुरुष मनोहर मणियोंसे जटित कुण्डलों एवं मालाओंको पहिने तथा बहुमूल्य पगड़ी, कंचुकी और दुपट्टोंसे सुशोभित हो रहे थे। इसी तरह कुण्डल, रत्नजटित आभूषण तथा सोनेकी मेखला (तागड़ी) से सुशोभित स्त्रियें भी विराज रही थीं ॥ ८७ ॥ ८८ ॥ इति श्रीमदानन्दरामायणे यागकाण्डे पं० रामतेजपाण्डेयकृत-'ज्योत्स्ना'भाषाटीकायामवभृथोत्सववर्णनं नाम अष्टमः सर्गः ॥ ८ ॥

श्रीरामदासजी कहने लगे—श्रीरामने जब अवभृथ स्नान कर लिया, तब ब्रह्मादि देवोंके साथ महादेव रामजीकी स्तुति करके कहने लगे—॥ १ ॥ आज हम लोग धन्य हैं, जो सीता एवं बन्धुओंके सहित आपको यह अश्वमेधका अवभृथ स्नान किये हुए देख रहे हैं, जो अतीव मंगलकारक है ॥ २ ॥ हे देवदेव ! हे कृपानिधे ! यह समय हम लोगोंके लिए बड़ा हर्षप्रद है। अतः यह सदा अत्यन्त श्रेष्ठ और पुण्यवर्द्धक होगा ॥ ३ ॥ आप भी इसको अङ्गीकार करें और इसके लिए अच्छे एवं बहुतसे ऐसे वर दें कि जिससे हमलोगोंको प्रतिवर्ष आपका दर्शन मिलता रहे ॥ ४ ॥ हे रघुश्रेष्ठ ! आप इस तीर्थके लिए भी बहुतेरे वरोंको दें। यात्रा करते समय पहले भी आपने जिन तीर्थों एवं लिंगोंको स्थापित किया है, उनको भी मेरे कहनेसे आप वरदान दें ॥ ५ ॥ ६ ॥ हे राघव ! आज मेरे कहनेसे आप ऐसा कह दीजिये कि सब नागरिकोंके लिए श्रेष्ठ यह अयोध्या नगरी है एवं

श्रीराम उवाच

यत्प्रार्थितं त्वया शंभो तदेव हृदि मे स्थितम् । शृणुष्व वचनं मेऽद्य यद्धर्षात्प्रोच्यते शुभम् ॥ ९ ॥
सर्वेषामेव मासानां श्रेष्ठश्चायं मधुर्भवेत् । वैशाखात् कार्तिकः श्रेष्ठः कार्तिकान्माघ एव च ॥१०॥
माघमासाद्वरश्चायं चैत्रमासो भविष्यति ।
चैत्रमासेऽभवज्जन्म मम यस्मात्तथा पुनः ॥११॥
वाजिमेधावभृथेषु स्नानेनापि विशेषतः । सर्वेषामधिकश्चास्तु मधुस्ते वाक्यगौरवात् ॥१२॥
चैत्रमासे कृतं दत्तं हुतं स्नातं विचिंतितम् । सर्वं कोटिगुणं प्रोक्तमयोध्यायां विशेषतः ॥१३॥
सर्वासु प्रथमा चेयं पुरीषु नगरी मम । अयोध्या मुक्तिदात्री तु भविष्यति गिरा मम ॥१४॥
अन्यत्र यत्कृतं पुण्यं षष्टिसंवत्सरैः शुभम् । तदत्र दिवसैकेन भविष्यति नृणां सदा ॥१५॥
पुरीणां मधुरा ज्ञेया राजधानी शुभप्रदा ।
त्वयाऽस्यै याचितो यस्माद्वरार्थमहमादरात् ॥१६॥
तव वाक्याद्गौरवेण तव काश्याः शताधिका । भविष्यति पुरी चेयमयोध्या मम वल्लभा ॥१७॥
नदीषु सरयूश्चेयं श्रेष्ठाऽस्तु वचनान्मम । सरयूसदृशी नान्या नदी भूता भविष्यति ॥१८॥
अस्यामपि मया चेदं रामतीर्थं विनिर्मितम् । निजतेजःप्रतापेन तीर्थेषु मुकुटोपमम् ॥१९॥
भविष्यति न संदेहः सर्वपातकनाशनम् ।
तथा यानि पृथिव्यां हि मया तीर्थानि वै पुरा ॥२०॥
लिंगान्यपि स्वीयनाम्ना कृतानि तानि शंकर । स्नाने दर्शनार्चाद्यैर्मुक्तिदाऽन्यत्र संतु वै ॥२१॥
रामतीर्थे चैत्रमासे प्रत्यब्दं भुवि मानवैः । स्नातव्यं विधिना सम्यङ्नियमैर्मम वाक्यतः ॥२२॥
यच्छ्रेयश्चाश्वमेधेन यद्गोमेधेन वै फलम् । यत्फलं सोमयागेन तच्चैत्रेऽत्रावगाहनात् ॥२३॥
सूर्यग्रहे कुरुक्षेत्रे यच्छ्रेयः स्नानदानतः ।
तच्छ्रेयः स्यान्मधौ स्नानादयोध्यायां सुरेश्वर ॥२४॥

नदियोंमें उत्तम सरयू नदी है । शिवजीका यह कथन सुनकर हँसते हुए राम सहर्ष त्रिभुवनोपकारिणी वाणी बोले ॥ ७ ॥ ८ ॥ श्रीरामने कहा—हे शम्भो ! आप जो चाहते हैं, वही मेरे भी मनमें है । आप मेरी बात सुनिये । मैं हर्षपूर्वक यह कल्याणमय वाक्य कहता हूँ ॥ ९ ॥ सम्पूर्ण मासोंमें श्रेष्ठ यह चैत्र मास होगा । वैशाखसे कार्तिक, कार्तिकसे माघ एवं माघ महीनेसे भी चैत्र श्रेष्ठ होगा । इसी मासमें मेरा जन्म हुआ है । इसलिए भी यह चैत्र मास श्रेष्ठ है ॥ १० ॥ ११ ॥ अश्वमेधीय अवभृथ स्नान होने तथा आपके वाक्यगौरवसे भी यह महीना सबसे श्रेष्ठ होगा ॥ १२ ॥ चैत्र मासमें यहाँ स्नान-दान आदिका कोटिगुणा फल होगा । अयोध्यामें किया हुआ सुकर्म तो और भी अधिक पुण्यप्रद होगा ॥ १३ ॥ यह मेरी पुरी सब नगरियोंमें उत्तम है तथा मेरी वाणीसे यह मुक्तिदात्री भी अवश्य होगी ॥ १४ ॥ और जगह किया हुआ पुण्यकार्य ६० वर्षमें फलदायक होता है, किन्तु यहाँ किया हुआ पुण्य एक ही दिनमें फलदायक होगा ॥ १५ ॥ वैसे पुरियोंमें शुभप्रद पुरी मथुराको समझें क्योंकि आपने मुझसे वर माँगा है ॥१६॥ अतएव आपके वाक्यगौरवसे यह मेरी प्रिया अयोध्यापुरी गुणोंमें आपकी काशीसे भी सौगुनी श्रेष्ठ होगी ॥ १७ ॥ मेरे वचनसे सरयू सब नदियोंमें श्रेष्ठ होगी । सरयू जैसी नदी न है और न होगी ॥ १८ ॥ उसमें भी मेरा बनाया हुआ यह रामतीर्थ अपने प्रतापसे सम्पूर्ण तीर्थोंमें मुकुट सदृश होगा ॥१९॥ हे शंकरजी ! मैंने अपने नामसे भूमिपर जितने भी तीर्थ एवं शिवलिंग स्थापित किये हैं, वे सब स्नान-दर्शन एवं पूजनसे मुक्ति देनेवाले तथा सर्वपापनाशक होंगे । इसमें कोई सन्देह नहीं है ॥ २० ॥ २१ ॥ मनुष्योंको प्रतिवर्ष चैत्र मासमें विधिपूर्वक यम-नियमादिके साथ रामतीर्थमें स्नान करना चाहिये ॥२२॥ अश्वमेध, गोमेध एवं सोमयाग करनेसे जो फल प्राप्त होता है, वही फल रामतीर्थपर स्नान करनेसे मिल जाता है ॥ २३ ॥ सूर्यग्रहणके समय कुरुक्षेत्रमें स्नान-दान करनेसे जो फल होता है, वही फल चैत्रमें अयोध्यास्नान करनेसे

अयोध्यायां रामतीर्थे सरयूजलसंस्थिताः । चैत्रस्नानं प्रकुर्वाणास्ते नरा मोक्षभागिनः ॥२५॥
यथा माघे प्रयागे हि स्नातव्यं सुखमिच्छता । कार्तिकेऽपि यथा काश्यां पंचगंगाजले स्मृतः ॥२६॥
द्वारकायां यथा प्रोक्ता वैशाखे चक्रतीर्थके ।
अयोध्यायां रामतीर्थे तथा चैत्रेऽवगाहनम् ॥२७॥
करणीयं नरैर्भक्त्या वचनान्मम सर्वदा । सर्वेष्वपि च मासेषु प्रथमः सकलैर्जनैः ॥२८॥
एतावत्कालपर्यन्तं मार्गशीर्षः प्रगीयते । अद्यारभ्य मधुश्चाय प्रथमः ख्यातिमेष्यति ॥२९॥
यथा देवेषु प्रथमस्त्वं महेशस्तथा मधुः ।
मासेषु प्रथमश्चास्तु तथाऽयोध्या पुरीष्वपि ॥३०॥
चैत्रे मासे तु संप्राप्ते सर्वे देवाः सवासवाः । बहिर्जलं समाश्रित्य तिष्ठध्वं हि ममाज्ञया ॥३१॥
प्रत्यब्दं चैत्रमासेऽत्र यथेदानीं समागताः । आगंतव्यं तथा सर्वैस्त्रैलोक्यांतरवासिभिः ॥३२॥
जरठैरातुरैः स्त्रीभिर्येषां यत्संनिधौ मम । रामतीर्थं प्रगंतव्यं सर्वत्र भुवि शंकर ॥३३॥
चैत्रमासेऽवगाहार्थं वचनान्मम सर्वदा ।
इति रामवचः श्रुत्वा गिरिजा प्राह जानकीम् ॥३४॥
सीते वरास्त्वया देया इदानीं वचनान्मम । नारीणां च हितार्थं हि सर्वलोकोपकारकाः ॥३५॥
पार्वत्या वचनं श्रुत्वा जानकी प्राह सादरम् । पृथिव्यां मम तीर्थानि यानि सन्ति सहस्रशः ॥३६॥
अत्रापि च महच्छ्रेष्ठं यत्र स्नातं मयाऽधुना ।
तेषु चैत्रतृतीया या यावद्वैशाखसंभवा ॥३७॥
सिता तृतीयाऽक्षय्याख्या तावत्स्त्रीभिस्तु सादरम् । स्नातव्यं शीतलागौरीसंज्ञकं स्थानमुत्तमम् ॥३८॥
सौभाग्यदं मासमेकं पुत्रपौत्रप्रवर्द्धनम् । सर्वत्र रामतीर्थस्य वामे तीर्थं ममास्ति हि ॥३९॥
इति दत्त्वा वरान्सीताऽऽसीत्तूष्णीं रामसन्निधौ ।
ततो रामं गुरुः प्राह गन्तव्यं यज्ञमंडपम् ॥४०॥

प्राप्त होता है ॥ २४ ॥ जो अयोध्याके सरयूजलस्थ रामतीर्थमें स्नान करते हैं, वे मोक्ष प्राप्त करते हैं ॥ २५ ॥ जो फल माघमासमें प्रयागस्नानका है, कार्तिकमें काशीकी पंचगङ्गामें स्नान करनेका है और द्वारकामें चक्रतीर्थपर वैशाखस्नानका जो फल है, वही फल अयोध्याके रामतीर्थपर चैत्र मासमें स्नान करनेका है ॥ २६ ॥ २७ ॥ आजसे जनता मेरे कहनेसे बारह महीनोंमें चैत्रको पहला महीना समझे ॥ २८ ॥ आज तक मार्गशीर्ष (अगहन) सबसे प्रथम मास माना जाता था, पर आजसे चैत्र प्रथम मास समझा जायगा ॥ २९ ॥ जैसे देवताओंमें पहले आप (शिव) हैं, इसी तरह मासोंमें प्रथम चैत्र और पुरियोंमें प्रथम अयोध्या समझी जायगी ॥ ३० ॥ जैसे इस समय आप लोग यहाँ आये हैं, उसी तरह प्रतिवर्ष चैत्र मासमें आयें और मेरी आज्ञासे सरयू तटपर आश्रम बनाकर निवास करें ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ बूढ़े, आतुर (रोगी) एवं स्त्रियें भी जिसके पास जो कुछ हो, उसी वस्तुको श्रद्धा-भक्तिसे भेंट देने तथा चैत्रमासमें स्नानार्थ यहाँ आया करें ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ इस प्रकार रामके वचन सुनकर पार्वतीजी सीतासे बोलीं—हे सीते ! आप भी इस समय मेरे कहनेसे सर्वलोकोपकारक एवं विशेष करके स्त्रियोंका हितकर वर प्रदान करें ॥ ३५ ॥ इस प्रकार पार्वतीके वचन सुनकर सीताजी बोलीं—पृथिवीपर जितने भी मेरे तीर्थ हैं और यहाँपर जो महाश्रेष्ठ तीर्थ हैं, जिनमें मैंने स्नान किया है, उन सब तीर्थोंमें चैत्रकी तृतीयासे लेकर वैशाखकी अक्षय तृतीया पर्यन्त स्त्रियोंको स्नान करना चाहिये । यह शीतलागौरी स्नान कहलायेगा । यह स्नान एक मास होता है। यह स्नान सौभाग्य देनेवाला एवं पुत्रपौत्र बढ़ानेवाला है । सभी स्थानोंमें रामतीर्थके वामभागमें मेरा तीर्थ है ॥ ३६–३९ ॥ इस प्रकार वर देकर सीताजी चुप हो गयीं। इसके बाद गुरु वसिष्ठ रामजीसे बोले

तद्गुरोर्वचनं श्रुत्वा तथेत्युक्त्वा रघूद्वहः । आरुरोह रथं शीघ्रं सीतयार्त्विग्जनैः सह ॥४१॥
ततो नेदुर्दुन्दुभयो भेरीणां निःस्वनास्ततः । मृदंगपणवादीनां महाघोषाः समंततः ॥४२॥
वेदघोषाश्च सर्वत्र जयशब्दा द्विजेरिताः ।
बभूवुर्मंत्रशब्दाश्च ननृतुश्चाप्सरोगणाः ॥४३॥
नानोत्सवैः पूर्ववच्च कौतुकानि समंततः । पश्यन्ययौ रामचन्द्रः शनैरध्वरमंडपम् ॥४४॥
अवरुह्य रथाच्छीघ्रं नीत्वाऽग्निं प्राक्षिपत्पुनः । यज्ञकुण्डे रामचन्द्रः सीतयार्त्विग्जनैः सह ॥४५॥
पूर्णाहुतिं ततो दत्त्वा वस्त्रैराभरणैः फलैः ।
कृत्वाऽग्रं पूजनं चापि यज्ञपात्राणि राघवः ॥४६॥
ततो विसर्जयामास यज्ञांते दक्षिणां बहु । दातुं तानृत्विजः सर्वान् सौमित्रिं राघवोऽब्रवीत् ॥४७॥
कोशागारं लक्ष्मणाद्याः सर्वे मे ऋत्विजस्त्वया । नीत्वा दूतान्निराकृत्य तूष्णीं स्थेयं ततः परम् ॥४८॥
यथेच्छयाऽमितं येन गृहीतमुत्तमं वसु ।
तस्याश्रमे प्रापणीयं वाहनाद्यैश्च तत्त्वया ॥४९॥
ततो मुनिजनान् सर्वान् देयं विपुलहस्ततः । तद्रामवचनं श्रुत्वा लक्ष्मणोऽपि तथाऽकरोत् ॥५०॥
ततो विसर्जयामास भोजयित्वा रघूत्तमः । ऋत्विग्जनान् संवृणीतान्वाजिमेधाख्यकर्मणि ॥५१॥
ततो रामोऽमरान्सर्वान् शिवाद्यान्विविधैर्निजैः । पूजयामास विधिवद्वस्त्रालंकारवाहनैः ॥५२॥
ददौ कोशान्सतुरगान् केषां स शिबिकां ददौ ।
केषां रथान्गजान्केषां ददौ वस्त्राण्यपीश्वरः ॥५३॥
एवं पृथ्वीपतींश्चापि सावरोधान् ससेवकान् । वस्त्रैराभरणैर्यानैः पूजयामास भोजनैः ॥५४॥
ततो रामः स्वशरीरे दिव्यवस्त्राणि सन्दधौ । तदा तं पूजयामासुर्बलिभिर्विबुधा नृपाः ॥५५॥

कि अब यज्ञमण्डपको चलना चाहिये ॥ ४० ॥ इस तरह गुरुजीके बचन सुने तो राम 'तथास्तु' कहकर शीघ्र सीता एवं ऋत्विक् लोगोंके साथ रथपर चढ़े ॥ ४१ ॥ उस समय नगाड़े बजने लगे, भेरीके शब्द होने लगे और मृदंग-पणव प्रभृति वाद्योंके घोषसे सब दिशायें व्याप्त हो गयीं ॥४२॥ ब्राह्मण वेदघोष तथा जयजयकारके शब्द करते हुए वैदिक मन्त्रोंका उच्चारण करने लगे और वेश्यायें नाचने लगीं ॥ ४३ ॥ पहलेकी तरह विविध उत्सवों एवं कौतुकोंको देखते हुए राम शनैः शनैः यज्ञमण्डपमें गये ॥ ४४ ॥ वहाँ उन्होंने शीघ्र रथसे उतरकर साथकी अग्निको यज्ञकुंडमें छोड़ दिया। बादमें सीता एवं ऋत्विजोंके साथ पूर्णाहुति करने लगे। उन्होंने वस्त्र-आभूषण एवं फलोंसे अग्निका पूजन करके यज्ञपात्रोंका विसर्जन कर दिया और यज्ञांतमें ऋत्विजोंको विपुल दक्षिणा देनेकी आज्ञा देते हुए रामने लक्ष्मणसे कहा—॥ ४५ ॥ ४६ ॥ ४७ ॥ हे लक्ष्मण ! इन सब ऋत्विजोंको कोषागारमें ले जाकर वहाँके पहरेदारोंको हटा दो और तुम चुपचाप अलग खड़े हो जाओ ॥ ४८ ॥ जिसकी जितनी इच्छा हो, उसको बिना रोक-टोक उतना द्रव्य ले लेने दो। लिया हुआ द्रव्य वाहनोंके द्वारा इनके आश्रमपर पहुँचवा दो ॥ ४९ ॥ फिर खुलेहाथ मुनियोंको दान दो। इस तरहका वचन सुनकर लक्ष्मणने भी रामजीके कथनानुसार ही दान दिया ॥ ५० ॥ तदनन्तर अश्वमेध यज्ञमें जिनका वरण हुआ था, उन ऋत्विजोंको भोजन कराके रामजीने विसर्जित किया ॥ ५१ ॥ इसी तरह समस्त देवताओंको भी विधिवत् वस्त्र-अलंकारोंसे पूजित करके विसर्जित कर दिया ॥ ५२ ॥ उनमेंसे किसीको रामचन्द्रजीने खजानेके साथ घोड़े दिये, किसीको अच्छी-अच्छी पालकी दी, किसीको हाथी, किसीको घोड़े और अच्छे-अच्छे कपड़ों तथा गहनोंका उपहार देकर सम्मानित किया ॥ ५३ ॥ ५४ ॥ इसके अनन्तर रामचन्द्रजीने स्वयं कपड़े पहने। उस समय समस्त देवताओं तथा राजाओंने नाना प्रकारकी भेंट दे-देकर रामचन्द्रजीका

सरित्समुद्रा गिरयो नागा गावः खगा मृगाः ।
द्यौः क्षितिः सर्वभूतानि समाजह्रुरुपायनम् ॥५६॥
सीतया स महाराजः सुवासाः साध्वलंकृतः । बंधुभिः सेव्यमानः स विरेजेऽग्निरिवापरः ॥५७॥
तस्मै जहार धनदो हैमं वीरवरासनम् । वरुणः सलिलस्रावि ह्यातपत्रं शशिप्रभम् ॥५८॥
वायुश्च बालव्यजने धर्मः कीर्तिमयीं स्रजम् ।
इन्द्रः किरीटमुत्कृष्टं दण्डं संयमनं यमः ॥५९॥
ब्रह्मा ब्रह्ममयं वर्म भारती हारमुत्तमम् । दशचन्द्रमसिं रुद्रः शतचन्द्रमथाम्बिका ॥६०॥
सोमोऽमृतमयानश्वांस्त्वष्टा रूपाश्रयं रथम् । अग्निराजगवं चापं सूर्यो रश्मिमयानिषून् ॥६१॥
भूः पादुके योगमय्यौ द्यौः पुष्पावलिमन्वहम् ।
नाट्यं सुगीतं वादित्रमन्तर्धानं च खेचराः ॥६२॥
ऋषयश्चाशिषः सत्याः समुद्रः शंखमात्मजम् । सिन्धवः पर्वता नद्यो रथवीथीर्महात्मनः ॥६३॥
ततो ददुर्नृपाः सर्वे स्यन्दनांस्तुरगान् गजान् । शिबिकागोवृषान् खड्गान् दासीर्दासोष्ट्रखेरान् ॥६४॥
सीतायै नृपपत्न्यश्च देवपत्न्यः सहस्रशः ।
वस्त्रालंकारयानानि माङ्गल्यान्यथ कंचुकीः ॥६५॥
क्रीडोपकरणादीनि ददुस्ताः पक्षिपंजरान् । ततस्तैः पूजितः सर्वैः सीतया रघुनायकः ॥६६॥
आरुरोह रथं दिव्यं वह्निना वन्दिभिः स्तुतः । स्वस्त्रीभिर्नृपपत्नीर्विमानेन मुनीश्वराः ॥६७॥
विहायसा ययुः सर्वेऽयोध्यायां नृपतेर्गृहम् ।
ततो रामो रथेनैव पूर्वोक्तैरुत्सवैः शनैः ॥६८॥
विवेश नगरीं रामः स्तुतः सूतैश्च मागधैः । छत्रं दधार सौमित्रिर्मुक्ताजालविराजितम् ॥६९॥
भरतस्तालव्यजनं शत्रुघ्नश्चामरद्वयम् । ताम्बूलपात्रं सुग्रीवस्तोयपात्रं तु वायुजः ॥७०॥
नलः ष्ठीवनपात्रं च वालिजो मुकुरं वरम् ।
वासःकोशं राक्षसेंद्रो धूपपात्रं हि जाम्बवान् ॥७१॥

पूजन किया। संसारकी नदियाँ, पर्वत, समुद्र, हाथी, घोड़े, मृग, पक्षी, आकाश और पृथ्वीपर रहनेवाले सब प्राणियोंने अपनी-अपनी सामर्थ्यानुसार भगवान्‌को भेंट दी। उस समय रामचन्द्रजी सीताजीके साथ सिंहासनपर बैठे हुए थे। चारों भाई उनकी सेवामें तल्लीन थे। रामचन्द्र उस समय दूसरे अग्निके सदृश देदीप्यमान दीख रहे थे॥ ५५–५७॥ उस समय भगवान्‌को कुबेरने एक सोनेका सिंहासन दिया। वरुणदेवने जलकी वर्षा करनेवाले और चन्द्रमाकी नाईं उज्ज्वल छत्र दिया। वायुने चमर दिया। धर्मराजने माला दी। इन्द्रने एक बहुमूल्य किरीट दी। यमराजने दण्ड दिया। ब्रह्माने कवच दिया। सरस्वतीने हार दिया। उसी तरह रुद्रने दस धारवाली एक तलवार, पार्वतीने शतचन्द्र तलवार, चन्द्रमाने अमृतभरे घड़े, त्वष्टा (विश्वकर्मा) ने एक सुन्दर रथ, अग्निने अग्निकी तरह चमकता हुआ आजगव नामक एक धनुष, सूर्यने तेजोमय बाण, पृथ्वीने योगमयी पादुकाएँ, आकाशने फूलोंके ढेर, गन्धर्वोंने नाच-गाने-बाजे आदि, ऋषियोंने सत्य अशीर्वाद, समुद्रने शंख, नदियों तथा बड़े-बड़े नदों और पर्वतोंने भगवानको रथके रास्ते दिये ॥ ५८–६३॥ इसके अनन्तर राजाओंने रथ, हाथी, घोड़े, पालकी, गाय, बैल, खड्ग, दास और ऊँट आदिके उपहार दिये। फिर राजाओंकी रानियों और देवताओंकी देवियोंने नाना प्रकारके वस्त्र-आभूषण, पालकी आदि माङ्गलिक वस्तुयें, खेलके सामान, बोलनेवाले सुन्दर पक्षियोंके पींजरे आदि सीताको दिये। इस तरह सीताके साथ रामचन्द्र सबसे पूजित होकर एक दिव्य रथपर सवार हुए और बन्दीजनोंने भगवान्‌की स्तुति आरम्भ की। बहुतेरे मुनिजन अपनी स्त्रियों और राजाओंकी स्त्रियोंके साथ विमानपर चढ़कर

नानाफलानां पात्राणि पूजापात्राण्यनेकशः । सुगन्धद्रव्यपात्राणि दधुस्ते मंत्रिसत्तमाः ॥७२॥
एवं सुगंधवस्तूनि प्रक्षिपन् वारयोषिताम् । वृंदेषु सीतया रामो विरेजे स्यन्दने स्थितः ॥७३॥
सुगंधरागपूर्णैश्च जलयंत्रैः करे धृतैः ।
वाराङ्गनानां वस्त्राणि नृपादीनां च राघवः ॥७४॥
चित्रितान्यकरोद्रागैः किंशुकानिव माधवे । स्नेहैः सुगंधै रागाद्यैरार्द्रवस्त्रेषु राघवः ॥७५॥
क्षिप्त्वा परिमलादीनि चित्रितान्यकरोत्पुनः । नर्तत्सु वारयोषित्सु वाद्येषु निनदत्सु च ॥७६॥
स्तुवत्सु बंदिवृंदेषु पुष्पवृष्टिविराजितः ।
ययौ राजगृहद्वारं रामो राजपथा शनैः ॥७७॥
मार्गे कुंभप्रदीपैश्च दध्योदनविनिर्मितैः । वलिदीपैः पूर्णकुंभै राजमार्गे पुरस्त्रियः ॥७८॥
चक्रुर्नीराजनं रामं स्वस्त्यर्थं सीतया युतम् । अवरुह्य रथाद्रामो सीतयाऽग्निं निजे गृहे ॥७९॥
स्थाप्य स्वीयसभां गत्वाऽऽरुरोह स्वीयमासनम् ।
ततस्ते पार्थिवाः सर्वे प्रणेमू रघुनंदनम् ॥८०॥
राज्ञां मुकुटरत्नौघप्रभाभिः पदपंकजे । विरेजतू राघवस्य तदा सिंहासनोपरि ॥८१॥
मुकुटस्थावतंसानां परागैः पूजिते नृपैः । प्रापतुर्नितरां शोभां रक्तोत्पलनिभे परे ॥८२॥
सीमंतस्थचद्रसूर्यरत्नमाणिक्यदीप्तिभिः ।
सुरपार्थिवपत्नीनां सीतायाः पादपंकजे ॥८३॥
विरेजतुः परागैश्च केशबधप्रसूनजैः । सुरपार्थिवपत्नीभिः पूजिते कनकोज्ज्वले ॥८४॥
ततः सभायां श्रीरामं स्तुत्वा देवैर्महेश्वरः । श्रीरामस्तवराजेन श्रीरामेणापि पूजितः ॥८५॥

आकाशमार्गसे अयोध्यांकी ओर चले । इधर रामचन्द्र भी पूर्वोक्त उत्सवोंके साथ रथपर सवार होकर राजमहलकी ओर बढ़े । जब रामचन्द्र अयोध्यानगरीमें प्रविष्ट हुए, उस समय भगवान्को एक अनूठी शोभा थी । रामजी सीताजीके साथ रथपर बैठे थे । लक्ष्मण अपने हाथोंमें छत्र, भरत पंखा, शत्रुघ्न चमर, सुग्रीव पानदान, हनुमान्जी जलकी झारी, नल उगालदान, अङ्गद आइना, विभीषण कपड़ोंकी पेटी और जाम्बवान् धूपदानी लिए हुये थे । इसी प्रकार अनेक फूलोंके पात्र, पूजाकी सामग्री और अनेक सुगन्धमय द्रव्यके पात्र वहाँके अच्छे-अच्छे मन्त्री ले-लेकर चले । रास्तेमें वे मन्त्री वेश्याओंके ऊपर गुलाब केवड़ा आदिके इत्रोंकी वर्षा करते जा रहे थे । उस समय विविध प्रकारके सुगन्धित तथा रङ्गीन फौवारे छूट रहे थे, जिससे सबके कपड़े एक विचित्र रङ्गके दिखाई दे रहे थे । उन्हीं भीगे हुए और रङ्गीन कपड़ोंपर रह-रहकर रामचन्द्रजी स्वयं गुलालकी वर्षा करके उन्हें और भी विचित्र बना देते थे । इस तरह वेश्याओंके नृत्य, बाजेवालोंके बाजों, बन्दीजनोंकी स्तुतियों और देवताओंकी पुष्पवृष्टिके साथ राजे राजमार्गसे चलते हुए रामचन्द्रजीके महलकी ओर जा रहे थे ॥ ६४–७७ ॥ रास्तेमें स्थान स्थानपर जलसे भरे कलश और दही-भात आदिकी बलि दिखलायी पड़ती थी । सीतारामके कल्याणकी कामनासे अयोध्यावासिनी स्त्रियाँ भगवान्की आरती उतार रही थीं । महलके फाटकपर पहुँचकर रामचन्द्रजी रथसे उतर पड़े और सीताजीके साथ अपने यज्ञभवनमें गये । यज्ञीय अग्निको देवगृहमें स्थापित करके वे राजसभामें जा पहुँचे । सभाके सुन्दर सिंहासनपर भगवान् आसीन हुए । तब देश-देशान्तरसे आये हुए राजाओंने उन्हें प्रणाम किया । जिस समय वे राजे अपना मस्तक झुकाकर अपने मुकुटको रामचन्द्रजीके चरणोंसे स्पर्श करा रहे थे, उस समय भगवान्की एक विचित्र झाँकी दिखायी देती था । जब उन राजाओं, रानियों और देवियोंने सीतारामको प्रणाम तथा

प्राप्याज्ञां रामचंद्रस्य सावरोधैः सुरादिभिः ।
प्रस्थानं स्वस्थलं गंतुं चकार वृषभस्थितः ॥८६॥
नृपस्त्रियोऽपि सीतायाः प्राप्याज्ञां पूजितास्तथा । यानान्यारुरुहुः सर्वास्त्वयोध्याया विनिर्ययुः ॥८७॥
अथ ते पार्थिवाद्याश्च प्राप्याज्ञां राघवस्य च । सावरोधाः ससैन्याश्च स्वीयराज्यानि वै ययुः ॥८८॥
ययौ शिवोऽपि कैलासं सत्यलोकं विधिर्ययौ ।
इन्द्राद्या निर्जराः सर्वे स्वर्गलोकं ययुर्मुदा ॥८९॥
अथर्त्विजो महाशीलाः सदस्या ब्रह्मवादिनः । सर्वे मुनीश्वराद्याश्च स्वधामानि ययुस्तदा ॥९०॥
ततो रामः पूर्ववच्च शशास जगतीतलम् । रेमे जनकनंदिन्या चिरकालं यथासुखम् ॥९१॥
वर्षान्तरेण कालेन वाजिमेधाः पृथक् पृथक् ।
उत्तरोत्तरतः श्रेष्ठा विंशद्वर्षैः कृता दश ॥९२॥
इत्थं श्रीरामचंद्रेण दशमे तुरगाध्वरे । प्रतिपाल्य गुरोर्वाक्यं सर्वस्वमपि भूसुरान् ॥९३॥
दत्तं किल महाराज्ञा तथा च दिक्चतुष्टयम् । ऋत्विग्भ्यो दक्षिणार्थं हि दत्त चेति मया श्रुतम् ॥९४॥
ऋत्विग्भिस्तत्पुनर्दत्तं राघवायैव सादरम् ।
कृपालुभिः पालनार्थमिति शिष्यानुश्रूयते ॥९५॥
एवं शिष्य त्वया पृष्टं राचंद्रस्य मंगलम् । चरितं तन्मया किंचित्तवोक्तं यज्ञसंभवम् ॥९६॥
इदं यः प्रातरुत्थाय यागकाण्डं मनोरमम् । पठिष्यति नरः पुण्यं सर्वान् कामानवाप्नुयात् ॥९७॥
पुत्रार्थी प्राप्नुयात्पुत्रं धनार्थी धनमाप्नुयात् ।
यागकाण्डमिदं श्रुत्वा वाजिमेधफलं लभेत् ॥९८॥
होमकाले श्राद्धकाले चातुर्मास्यादिकेष्वपि । जपध्यानार्चनारंभे पूर्वं नित्यं पठेदिदम् ॥९९॥

पूजन कर लिया और जब देवताओंके साथ शङ्करजीने रामस्तवराजसे रामचन्द्रजी स्तुति और पूजा कर ली। तब रामचन्द्रजीसे आज्ञा ले लेकर सब लोग अपने-अपने घरोंको प्रस्थान करने लगे ॥ ७८–८६ ॥ राजाओंकी रानियाँ भी सीताजीकी आज्ञा पाकर अपने-अपने रथोंपर सवार हुईं और अयोध्यासे अपने घरोंको जाने लगीं। इसी प्रकार सब राजे रामकी आज्ञा पाकर अपनी-अपनी राजधानीको लौटे। तब शिवजी अपने कैलासको, ब्रह्मा सत्यलोकको और इन्द्रादि देवता स्वर्गलोकको चले गये ॥ ८७–८९ ॥ इसके बाद शीलवान् ऋत्विक् और सदस्य आदि भी अपने-अपने आश्रमोंको विदा हुए। रामचन्द्रजीने फिर पूर्वरीतिसे अपना राजकाज सँभाल लिया और चिरकाल तक सीताजीके साथ विहार करते रहे। प्रति दूसरे वर्ष इसी तरह अश्वमेध यज्ञ करते हुए रामचन्द्रजीने बीस वर्षमें दस अश्वमेध यज्ञ किये। दसवें अश्वमेधमें गुरु वसिष्ठके आज्ञानुसार भगवान्ने अपनी सारी सम्पत्ति ब्राह्मणोंको दान दे दी। मैंने तो यहाँतक सुना है कि रामने चारों दिशायें दक्षिणारूपमें ऋत्विजोंको दे डाली थीं ॥ ९०–९४ ॥ किन्तु उन दयालु ऋत्विजोंने फिर उसे बड़े आदरके साथ भगवान्को लौटा दिया और कहा—"हे प्रभो ! इसकी रक्षा आप ही कर सकते हैं–हम नहीं। इस कारण यह सब आप अपने ही पास रखिए"। इस प्रकार हे शिष्य ! जैसे तुमने रामचन्द्रजीके मङ्गलकार्यका प्रश्न किया, वैसे ही मैंने भी तुम्हें बतलाया और रामचन्द्रके यज्ञसम्बन्धी चरित्रोंको सुना दिया। जो कोई सबेरे उठकर इस सुन्दर यागकाण्डको सुनेगा, उसकी सारी कामनाएँ पूर्ण हो जायँगी। वह यदि पुत्रार्थी होगा तो उसे पुत्र मिलेगा और धनार्थी होगा तो धन प्राप्त होगा। इस यागकाण्डको सुननेसे अश्वमेध

रम्यं पवित्रं रघुनायकस्य श्रीमच्चरित्रं तुरगाध्वरोद्भवम् ।
पठंति शृण्वंति जनाः सुपुण्यदं लभंति नैजं खलु वांछितं हृदि ॥१००॥

इति श्रीशतकोटिरामचरितांतर्गते श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये यागकाण्डे
रामोत्तरयात्रा-नगरप्रवेशो नाम नवमः सर्गः ॥ ९ ॥

यागकाण्डोद्भवाः सर्गा नवैव परिकीर्तिताः । सपादषट्शतश्लोका रामदासेन वर्णिताः ॥ १ ॥

यज्ञका फल प्राप्त होता है। किसी प्रकारका हवन आदि करते समय, श्राद्धकालमें, चातुर्मासमें, व्रतमें, जप, ध्यान और पूजनके पहले सदा इस यागकाण्डका पाठ करना चाहिए। इन रम्य तथा पवित्र अश्वमेध-यज्ञसम्बन्धी रामचरित्रको जो लोग पढ़ते और सुनते हैं, वे अपनी अभिलषित कामनाओंको पूर्ण कर लेते हैं ॥ ९५–१००

इति श्रीशतकोटिरामचरितान्तर्गते श्रीमदानन्दरामायणे पं० रामतेजपाण्डेयविरचित'ज्योत्स्ना'-
भाषाटीकासमन्विते यागकांडे यज्ञसमाप्तिर्नाम नवमः सर्गः ॥ ९ ॥

इस यागकाण्डमें कुल नौ सर्ग और ६२५ श्लोकोंका रामदासने वर्णन किया है ॥ १ ॥

इति श्रीमदानन्दरामायणे यागकाण्डं समाप्तम् ।

श्रीरामचन्द्रार्पणमस्तु

श्रीसीतापतये नमः

श्रीवाल्मीकिमहामुनिकृतशतकोटिरामचरितान्तर्गतं—

आनन्दरामायणम्

'ज्योत्स्ना'ऽऽह्वया भाषाटीकयाऽऽटीकितम्

विलासकाण्डम्

प्रथमः सर्गः

(शिवकृत रामस्तवराज)

विष्णुदास उवाच

गुरो ते प्रष्टुमिच्छामि तद्वदस्व सविस्तरम् । स्तुतो रामः शिवेनात्र येन रामस्तवेन हि ॥ १ ॥
तं रामस्तवराजं मे विस्तरेण प्रकाशय ।

श्रीशिव उवाच

इति शिष्यवचः श्रुत्वा रामदासोऽब्रवीद्वचः ॥ २ ॥

श्रीरामदास उवाच

सम्यक् पृष्टं त्वया वत्स सावधानमनाः शृणु । प्रोच्यते रामचन्द्रस्य स्तवराजो मयाऽधुना ॥ ३ ॥
यत्परं यद्गुणाधारं यज्ज्योतिरमलं शिवम् । तदेव परमं तत्त्वं कैवल्यपददायकम् ॥ ४ ॥
श्रीरामेति परं जाप्यं तारकं ब्रह्मसंज्ञितम् । ब्रह्महत्यादिपापघ्नमिति वेदविदो विदुः ॥ ५ ॥
श्रीराम राम रामेति ये वदंत्यपि सर्वदा । तेषां भुक्तिश्च मुक्तिश्च भविष्यति न संशयः ॥ ६ ॥
स्तवराजः पुरा प्रोक्तः शिवेन परमात्मना । तमहं संप्रवक्ष्यामि हरिध्यानपुरःसरम् ॥ ७ ॥
तापत्रयाग्निशमनं सर्वाघौघनिकृन्तनम् । दारिद्र्यदुःखशमनं सर्वसंपत्प्रदायकम् ॥ ८ ॥

विष्णुदासने कहा—हे गुरो ! मैं यह जानना चाहता हूँ कि शिवजीने किस रामस्तराजसे रामचन्द्रजीकी स्तुति की थी ॥ १ ॥ कृपा करके आप मुझे वह रामस्तवराज बतला दीजिये । इस तरह अपने शिष्यकी बात सुनकर श्रीरामदासने कहा—॥ २॥ हे वत्स ! तुमने मुझसे बहुत अच्छी बात पूछी है । मैं तुम्हें वह स्तवराज बतलाया हूँ, सावधान होकर सुनो ॥ ३ ॥ जो संसारमें सबसे श्रेष्ठ है, जो सब सद्‌गुणोंका आधार है, जो एक निर्मल एवं पवित्र ज्योति है, वह ही परम प्रधान तत्त्व है और मोक्षपददायक है ॥ ४ ॥ बड़े-बड़े विद्वानोंका कहना है कि 'श्रीराम' यह सर्वोत्तम तारक मन्त्र है और ब्रह्महत्या प्रभृति महान् पातकोंका नाशक है ॥ ५ ॥ जो सज्जन सर्वदा 'श्रीराम' नामका जप करते हैं, उन्हें जबतक कि वे संसारमें रहते हैं, तबतक सांसारिक भोग मिलते हैं और शरीर त्याग करनेपर मुक्ति मिल जाती है ॥ ६ ॥
17 जो मैं तुमसे कहनेवाला हूँ, इस स्तवराजको शिवजीने स्वयं मुझसे कहा था । उसीको आज भगवान्का ध्यान करके मैं तुमसे कहूँगा ॥ ७ ॥ यह तीनों (दैहिक, दैविक और भौतिक) तापोंको नष्ट करनेवाला,

विज्ञानफलदं पुण्यं मोक्षैकफलदायकम् । नमस्कृत्य प्रवक्ष्यामि रामं कृष्णमनामयम् ॥ ९ ॥
अयोध्यानगरे रम्ये रत्नमंडपमध्यगे । ध्यायेत्कल्पतरोर्मूले रत्नसिंहासने शुभे ॥१०॥
तन्मध्येऽष्टदलं पद्मं नानारत्नोपशोभितम् । स्मरेन्मध्ये दाशरथिं सहस्रादित्यतेजसम् ॥११॥
पितुरासनमासीनमिंद्रनीलसमप्रभम् । कोमलांगं विशालाक्षं विद्युद्वर्णांबरावृतम् ॥१२॥
भानुकोटिप्रतीकाशं किरीटेन विराजितम् । रत्नग्रैवेयकेयूरवरकुंडलमंडितम् ॥१३॥
रत्नकंकणमंजीरकटिसूत्रैरलंकृतम् । श्रीवत्सकौस्तुभोरस्कं मुक्ताहारोपशोभितम् ॥१४॥
चिंतामणिसमायुक्तं रत्नमालाविराजितम् । दिव्यरत्नसमायुक्तं मुद्रिकाभिरलंकृतम् ॥१५॥
कर्पूरागरुकस्तूरीदिव्यगंधानुलेपनम् । तुलसीकुंदमंदारपुष्पमाल्यैरलंकृतम् ॥१६॥
राघवं द्विभुजं वीरं राममीषत्स्मिताननम् । योगशास्त्रेष्वभिरतं योगेशं योगदायकम् ॥१७॥
सदा सौमित्रिभरतशत्रुघ्नैरुपसेवितम् । विद्याधरसुराधीशसिद्धगधर्वकिंनरैः ॥१८॥
योगींद्रैर्नारदाद्यैश्च स्तूयमानमहर्निशम् । विश्वामित्रवसिष्ठाद्यैर्ऋषिभिः परिसेवितम् ॥१९॥
सनकादिमुनिश्रेष्ठैर्योगिवृन्दैः समावृतम् । रामं रघुवरं वीरं धनुर्वेदविशारदम् ॥२०॥
मंगलायतनं देवं रामं राजीवलोचनम् । सर्वशास्त्रार्थतत्त्वज्ञमानन्दमतिसुन्दरम् ॥२१॥
कौसल्यातनयं रामं धनुर्बाणधरं हरिम् । एवं संचिंतयेद्विष्णुं यज्ज्योतिर्ज्योतिषां परम् ॥२२॥
प्रहृष्टमानसो भूत्वा सभायां वृषभध्वजः । सर्वलोकहितार्थाय तुष्टाव रघुनन्दनम् ॥२३॥
कृतांजलिपुटो भूत्वा चिन्तयन्नद्भुतं हरिम् ।

श्रीशिव उवाच

यदेकं तत्परं नित्यं यदनन्तं चिदात्मकम् ॥२४॥

पापसमूहका नाशक, दारिद्रय और दुःखका दमन करनेवाला तथा समस्त सम्पदाओंका दाता है ॥ ८ ॥ यह विज्ञान (ईश्वरसम्बन्धी ज्ञान) का फल देनेवाला, पवित्र और मोक्षका साधक है। मैं श्यामस्वरूपधारी राम-कृष्णका ध्यान करके वह स्तवराज तुमको बतला रहा हूँ ॥ ९ ॥ श्रोताको चाहिये कि वह अयोध्यानगरीके रत्नोंसे सुसज्जित एक सुन्दर भवनमें कल्पवृक्षके नीचे ऐसे रत्नसिंहासन, जिसमें नाना प्रकारके मणियोंसे सुशोभित अष्टदल कमल है, उसपर बैठे हुए हजारों सूर्यकी भाँति तेजोमय रामचन्द्रजीका ध्यान करे ॥१०॥११॥ रामचन्द्रजी अपने पिता (महाराज दशरथ) के आसनपर बैठे हैं, इन्द्रनील मणिकी भाँति जिनकी श्याम मूर्ति है, जिनके कोमल अङ्ग हैं, बड़ी-बड़ी आँखें हैं, बिजलीकी तरह चमकता पीताम्बर पहिने हुए हैं,जिसमें करोड़ो सूर्योंके समान प्रकाश है, मस्तकपर किरीट धारण किये हैं, उरःस्थलमें श्रीवत्स तथा कौस्तुभ मणि है और गलेमें चिन्तामणि तथा कितने ही रत्नोंकी मालायें पहने हैं। उनकी उँगलियोंमें बहुमूल्य रत्नोंसे जड़ी अंगूठियाँ पड़ी हैं ॥ १२–१५ ॥ कर्पूर, अगर और कस्तूरीसे मिला हुआ चन्दन उनके सारे शरीरमें लगा हुआ है। तुलसी तथा कुन्द-मन्दार आदिके पुष्पोंसे जिनका श्रृङ्गार किया हुआ है, जिनके केवल दो भुजायें हैं, होठोंपर मन्द मुस्कान है, जो योगशास्त्रके वार्तालापमें मग्न हैं, लक्ष्मण-भरत-शत्रुघ्न जिनकी सेवामें लगे हुए हैं, विद्याधर, देवता, सिद्ध, गन्धर्व और नारदादि योगीन्द्र रात-दिन जिनकी स्तुति किया करते हैं, विश्वामित्र-वसिष्ठादि ब्रह्मर्षि जिनकी परिचर्यामें लगेहुए हैं। सनक, सनन्दन, सनातन, सनत्कुमार आदि मुनि दर्शनार्थ खड़े हैं। जो रघुवंशमें सर्वप्रधान वीर तथा धनुर्वेदमें निपुण हैं। जो मंगलभवन हैं, कमलके समान जिनके नेत्र हैं, जो सब शास्त्रोंके तत्त्वज्ञ, आनन्दमूर्ति, अतिशय सुन्दर कौसल्याके सुवन हैं और धनुष-बाण धारण किये हैं, ऐसे भगवान् रामचन्द्रका ध्यान करे। जो सब ज्योतियोंमें श्रेष्ठ हैं। ऐसे अद्भुत स्वरूपका ध्यान करके हर्षसे गद्गद होकर शिवजीने संसारके कल्याणार्थ दोनों हाथ जोड़कर भगवान रामचन्द्रकी स्तुति की ॥ १६–२३ ॥

यदेकं व्यापकं लोके तद्रूपं चिन्तयाम्यहम् । सर्वत्रैलोक्यसौख्यार्थं रामभक्त्यतिवृद्धये ॥२५॥
विज्ञानहेतुं विमलायताक्षं प्रज्ञानसंदिव्यसुखैकरूपम् ।
श्रीरामचन्द्रं हरिमादिदेवं विश्वेश्वरं राममहं भजामि ॥२६॥
कविं पुराणं पुरुषं परेशं सनातनं योगिनमीशितारम् ।
अणोरणीयांसमनंतवीर्यं प्राणेश्वरं राममहं भजामि ॥२७॥
नारायणं जगन्नाथमभिरामं जगत्पतिम् । कविं पुराणं वागीशं रामं दशरथात्मजम् ॥२८॥
राजराजं रघुवरं कौसल्यानंदवर्द्धनम् । भर्गं वरेण्यं विश्वेशं रघुनाथं जगद्गुरुम् ॥२९॥
सत्यं सत्यप्रियं श्रेष्ठं जानकीवल्लभं प्रभुम् । सौमित्रिपूर्वजं शान्तं कामदं कमलेक्षणम् ॥३०॥
आदित्यं रविमीशानं घृणिं सूर्यमनामयम् । आनन्दरूपिणं सौम्यं राघवं करुणाकरम् ॥३१॥
जामदग्न्यं तपोमूर्ति रामं परशुधारिणम् । वाक्पतिं वरदं वाच्यं श्रीपतिं पक्षिवाहनम् ॥३२॥
श्रीशार्ङ्गधारिणं रामं चिन्मयानंदविग्रहम् । हलधारिणमीशानं बलरामं कृपानिधिम् ॥३३॥
श्रीवल्लभं कलानाथं जगन्मोहनमच्युतम् । मत्स्यकूर्मवराहादिरूपधारिणमव्ययम् ॥३४॥
वासुदेवं जगद्योनिमनादिनिधनं हरिम् । गोविन्दं गोपतिं विष्णुं गोपीजनमनोहरम् ॥३५॥
गोपालं गोपरीवारं गोपकन्यासमावृतम् । विद्युत्पुंजप्रतीकाशं रामं कृष्णं जगन्मयम् ॥३६॥
गोगोपिकासमाकीर्णं वेणुवादनतत्परम् । कामरूपं कलावंतं कामिनां कामदं प्रभुम् ॥३७॥
मन्मथं मथुरानाथं माधवं मकरध्वजम् । श्रीधरं श्रीकरं श्रीशं श्रीनिवासं परात्परम् ॥३८॥

शिवजीने कहा—जो एक है, जिससे बढ़कर संसारमें और कुछ है ही नहीं। जो अनन्त, नित्य एवं अविनाशी है। जो अकेला रहता हुआ भी समस्त विश्वमें व्याप्त है, मैं भगवानके ऐसे स्वरूपका ध्यान करता हूँ ॥ २४ ॥ २५ ॥ जो विज्ञानके एकमात्र हेतु हैं, जिनकी निर्मल और विशाल आँखें हैं, जो पूर्ण ज्ञानकी अवस्थामें ज्ञानियोंको दिव्यरूप होकर दर्शन देते हैं ऐसे श्रीहरि, आदिदेव तथा विश्वेश्वर रामचन्द्रकी मैं वन्दना करता हूँ ॥ २६ ॥ जो स्वयं कवि हैं, सबसे वृद्ध हैं, सबके स्वामी हैं, सनातन हैं तथा योगियोंके भी स्वामी हैं। जो सूक्ष्मसे भी सूक्ष्म हैं, जिनमें अनन्त पराक्रम है, जो समस्त चराचर जीवोंके प्रभु हैं, ऐसे रामचन्द्रका मैं भजन करता हूँ ॥ २७ ॥ नारायणस्वरूप, समस्त जगत्के स्वामी, अतिशय सुन्दर, वागीश तथा दशरथजीके तनय रामचन्द्रजीको मैं प्रणाम करता हूँ ॥ २८ ॥ जो राजाओंके भी राजा हैं, जो रघुवंशमें सर्वश्रेष्ठ हैं, जो कौसल्याका आनन्द बढ़ानेवाले हैं, जो तेजोमय हैं, जो संसारके त्राणकर्ता हैं, जो संसारके गुरु हैं, जो सत्यस्वरूप है, जिनको सत्य ही प्रिय है, जो सीताजीके पति हैं, जो लक्ष्मणके बड़े भ्राता हैं, जिनका शान्त स्वभाव है, जो अपने भक्तोंकी कामनाओंको पूर्ण करते हैं, कमल सरीखे जिनके नेत्र हैं, जो अदितिके पुत्र हैं, जो सूर्यरूप हैं, जो शिवरूप और आरोग्यस्वरूप हैं, जो आनन्दके साक्षात् मूर्ति हैं, जो सौम्य प्रकृतिके हैं और जो करुणाके भण्डार हैं ॥ २९–३१ ॥ जो जमदग्निके पुत्र (परशुराम) हैं, जो अभिलषित कामनाओंको पूर्ण करते हैं, जो लक्ष्मीपति हैं, जिनका पक्षी (गरुड़) वाहन है, जो लक्ष्मी और शार्ङ्ग नामक धनुष धारण करते हैं, जिनका नित्य आनन्दमय शरीर हैं, जो हलको धारण करनेवाले बलरामस्वरूप हैं, जो लक्ष्मीके प्रिय हैं, जो सब कलाओं-को जानते हैं, जो संसारको मुग्ध करनेमें समर्थ हैं, जिसका कभी विनाश नहीं होता, जो मत्स्य-कूर्म-वराह आदि रूप धारण करते हैं और जो अविनाशी हैं ॥ ३२–३४ ॥ जो वसुदेवके पुत्र, संसारके स्रष्टा, जन्म-मरणसे रहित, इन्द्रियोंको प्रसन्न करनेवाले, इन्द्रियोंके पति, विष्णुस्वरूप, गोपियोंने मनको चुरानेवाले और गौओंके रक्षक हैं, ऐसे राम-कृष्ण तथा जगन्मय भगवान्को मैं प्रणाम करता हूँ ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ जो गौओं और गोपियोंसे घिरे रहते हैं, जो वंशी बजानेमें तत्पर रहते हैं, जो जब जैसा चाहते वैसा अपना स्वरूप लना लेते हैं, जो समस्त कलाओंसे पूर्ण हैं, जो कामनावाले मनुष्योंकी कामनाओंको पूर्ण करते हैं और कामदेवरूपसे सबके

भूतेशं भूपतिं भद्रं भूतिदं भूरिभूषणम् । सर्वदुःखहरं वीरं दुष्टदानवमर्दनम् ॥३९॥
श्रीनृसिंहं महाविष्णुं महांतं दीप्ततेजसम् । चिदानंदमयं नित्यं प्रणवं ज्योतिरूपकम् ॥४०॥
आदित्यमंडलगतं निश्चितार्थस्वरूपिणम् । भक्तिप्रियं पद्मनेत्रं भक्तानामीप्सितप्रदम् ॥४१॥
कौसल्येयं कलामूर्तिं काकुत्स्थं कमलाप्रियम् । सिंहासने समासीनं नित्यव्रतमकल्मषम् ॥४२॥
विश्वामित्रप्रियं दांतं स्वदारनियतव्रतम् । यज्ञेशं यज्ञपुरुषं यज्ञपालनतत्परम् ॥४३॥
सत्यसंधं जितक्रोधं शरणागतवत्सलम् । सर्वक्लेशापहरणं विभीषणवरप्रदम् ॥४४॥
दशग्रीवहरं रुद्रं केशवं केशिमर्दनम् । वालिप्रशमनं वीरं सुग्रीवेप्सितराज्यदम् ॥४५॥
नरवानरदेवैश्च सेवितं हनुमत्प्रियम् । शुद्धं सूक्ष्मं परं शांतं तारकब्रह्मरूपिणम् ॥४६॥
सर्वभूतात्मभूतस्थं सर्वाधारं सनातनम् । सर्वकारणकर्तारं निदानं प्रकृतेः परम् ॥४७॥
निरामयं निराभासं निरवद्यं निरंजनम् । नित्यानन्दं निराकारमद्वैतं तमसः परम् ॥४८॥
परात्परतरं नित्यं सत्यानन्दचिदात्मकम् । मनसा शिरसा नित्यं प्रणमामि रघूत्तमम् ॥४९॥

भूतोद्भवं वेदविदां वरिष्ठमादित्यचंद्रानिलसुप्रभावम् ।
सर्वात्मकं सर्वगतस्वरूपं नमामि रामं तमसः परस्तात् ॥५०॥
निरञ्जनं निष्प्रतिमं निरीहं निराश्रयं कारणमादिदेवम् ।
नित्यं ध्रुवं निर्विषयस्वरूपं निरंतरं राममहं भजामि ॥५१॥
भवाब्धिपोतं भरताग्रजं तं भक्तिप्रियं भानुकुलप्रदीपम् ।
भूताधिनाथं भुवनाधिपत्यं भजामि रामं भवरोगवैद्यम् ॥५२॥
सर्वाधिपत्यं रणरंगधीरं सत्यं चिदानन्दसुखस्वरूपम् ।
सत्यं शिवं सज्जनहृन्निवासं ध्येयं परानन्दमहं भजामि ॥५३॥

मनको उद्विग्न किया करते हैं। जो मथुराके स्वामी हैं, जो लक्ष्मीके पति हैं, जो मकरध्वज, श्रीधर, श्रीकर, श्रीश, श्रीनिवास, परात्पर, भूतेश, भूपति, भद्र (कल्याणमय), भूतिद (सर्वसम्पत्तियोंके दाता), भूरिभूषण, (बहुत से भूषणोंको धारण करनेवाले) सब प्रकारके दुःखोंको हरनेवाले वीर और दुष्ट दानवोंका विनाश करनेवाले हैं, जो श्रीनृसिंह, महाविष्णु, महान् दीप्तिशाली, चिदानन्दमय, नित्य, प्रणव, ज्योतिरूप, आदित्यमण्डलमें विराजमान, निश्चितार्थस्वरूप, भक्तिप्रिय, कमललोचन, भक्तोंकी कामना पूर्ण करनेवाले, कौसल्याके सुवन, कालमूर्ति, काकुत्स्थ, कमलाप्रिय, सिंहासनासीन, नित्यव्रती और पापरहित हैं। जो विश्वामित्रके प्रिय, दान्त (जितेन्द्रिय) और एकपत्नीव्रती हैं। जो यज्ञेश, यज्ञपुरुष, यज्ञकी रक्षामें तत्पर, सत्यसंध, जितक्रोध, शरणागतवत्सल, सब क्लेशोंको हरनेवाले, विभीषणको वरदान देनेवाले, रावणका विनाश करनेवाले, रुद्र, केशव, केशिमर्दी, बालिविनाशक, वीर सुग्रीवको ईप्सित राज्य देनेवाले, नर-वानर और देवताओंसे सेवित, हनुमान्से सेवित, शुद्ध, सूक्ष्म, शान्त, ब्रह्मरूप, सब प्राणियोंके हृदयमें रहनेवाले, सर्वाधार, सनातन, सब कुछ कर्ता-धर्ता, प्रकृतिके मूल कारण, निरामय, निराभास, निरवद्य, निरञ्जन, नित्यानन्द, निराकार, अद्वैत, तमोगुणसे परे, सर्वश्रेष्ठ, नित्य, सत्य, आनन्द और चिन्मयस्वरूप हैं। उन श्रीरामचन्द्रजीको मैं मस्तक झुकाकर प्रणाम करता हूँ ॥ ३७–४९ ॥ जो संसारके जन्मदाता हैं, विद्वानोंमें श्रेष्ठ हैं, सूर्य-चन्द्रमा और अग्निमें जिनका प्रकाश है, जो सर्वात्मा, सर्वस्वरूप और तमोगुणसे परे हैं। ऐसे रामचन्द्रको मैं प्रणाम करता हूँ ॥ ५० ॥ निरञ्जन, निष्प्रतिम, निरीह, निराश्रय, सर्वत्राण, आदिदेव, नित्य, ध्रुव, विषय और स्वरूपसे परे रामचन्द्रजीको मैं प्रणाम करता हूँ ॥ ५१ ॥ जो संसाररूपी महासागरके लिए जहाजके सदृश हैं, जो भरतके बड़े भ्राता, भक्तिप्रिय, भानुकुलके प्रदीप, भूताधिनाथ, भुवनरूपी जहाजके अधिपति और भवरूप रोगके वैद्य हैं, उन रामचन्द्रजीको मैं प्रणाम करता हूँ ॥ ५२ ॥ जो सबके अधिपति, युद्धविद्यामें कुशल, सत्यस्वरूप

कार्यक्रियाकारणमप्रमेयं कविं पुराणं कमलायताक्षम् ।
कुमारवेषं करुणामयं तं कल्पद्रुमं राममहं भजामि ॥५४॥
त्रैलोक्यनाथं सरसीरुहाक्षं दयानिधिं द्वन्द्वविनाशहेतुम् ।
महाबलं वेदनिधिं सुरेशं सनातनं राममहं भजामि ॥५५॥
वेदांतवेद्यं कविमीशितारमनादिमध्यांतमचिंत्यमाद्यम् ।
अगोचरं निर्मलमेकरूपं परात्परं राममहं भजामि ॥५६॥
अशेषवेदात्मकमादिदेवमजं हरिं राममनन्तमूर्तिम् ।
अपारसंवित्सुखमेकरूपं नमामि राम तमसः परस्तात् ॥५७॥
तत्त्वस्वरूप पुरुषं पुराणं स्वतेजसा पूरितविश्वमेकम् ।
राजाधिराजं रविमण्डलस्थं विश्वेश्वर राममह भजामि ॥५८॥
योगींद्रसंघैरपि सेव्यमानं नारायणं निर्मलमादिदेवम् ।
नतोऽस्मि नित्यं जगदेकनाथ हरिं चिदानंमयं मुकुन्दम् ॥५९॥
अशेषविद्याधिपतिं नमामि रामं पुराणं तमसः परस्तात् ।
विभूतिदं विश्वसृजं परेशं राजेंद्रमीशं रघुवंशनाथम् ॥६०॥
अचिंत्यमव्यक्तमनंतरूपं ज्योतिर्मयं राममहं भजामि ।
अशेषसंसारविकारहीनमानंदसपूर्णसुखाभिरामम् ॥६१॥
नारायणं विष्णुमहं भजामि समस्तसाक्षि तमसः परस्तात् ।
मुनींद्रगुह्यं परिपूर्णमेकं कलानिधिं कल्मषनाशहेतुम् ॥
परात्परं यत्परमं पवित्रं नमामि रामं महतो महांतम् ॥६२॥
ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्रश्च देवेंद्रो देवतास्तथा । आदित्यादिग्रहाश्चैव त्वमेव रघुनंदन ॥६३॥
तापसा ऋषयः सिद्धाः साध्याश्च मुनयस्तथा । विप्रा वेदाश्च यज्ञाश्च पुराणं धर्मसंहिताः ॥६४॥

सच्चिदानन्द सुखस्वरूप, सत्य, शिव, सज्जनोंके हृदयमें निवास करनेवाले और परमानन्दस्वरूप रामचन्द्रजीको मैं प्रणाम करता हूँ ॥ ५३ ॥ जो कर्मोंके कारण, अप्रमेय, कवि, धैर्यशाली, पुराण पुरुष, कमलसरीखे विशाल नयनों युक्त, नित्य कुमारवेषधारी, करुणामय तथा कल्पवृक्षके समान सबकी अभिलाषा पूर्ण करनेवाले हैं, उन रामचन्द्रको मैं प्रणाम करता हूँ ॥५४॥ त्रिलोकीनाथ, सरसीरुह (कमल) के समान नेत्रोंवाले, दयानिधि, द्वन्द्व विनाशके एकमात्र हेतु, महाबली, वेदोंके निधान, सुरेश और सनातनस्वरूप रामचन्द्रजीको मैं प्रणाम करता हूँ ॥ ५५ ॥ वेदान्तवेद्य, कवि, ईशिता, आदि-मध्य और अन्तसे रहित, अचिन्त्य, सबके आदिमें उत्पन्न होनेवाले, चक्षुरादि इन्द्रियोंसे अगोचर, निर्मल, एकरूप और तमोगुणसे परे रामचन्द्रजीको मैं प्रणाम करता हूँ ॥ ५६ ॥ ५७ ॥ तत्त्वस्वरूप, पुराण पुरुष, केवल अपने प्रकाशसे समस्त विश्वको प्रकाश देनेवाले, राजाधिराज, रविमण्डलमें निवास करनेवाले और विश्वेश्वरस्वरूप रामचन्द्रजीको मैं प्रणाम करता हूँ। योगीन्द्रोंके समूहसे सेव्यमान, नारायण, निर्मल, आदिदेव, नित्य, जगत्‌के एकमात्र स्वामी, हरि, चिदानन्दमय और मुकुन्दस्वरूप रामचन्द्रको मैं प्रणाम करता हूँ ॥ ५८ ॥ ५९ ॥ समस्त विद्याओंके भण्डार, तमसे परे, पुराणपुरुष, सम्पत्तियोंको देनेवाले, संसारके विकारोंसे पृथक् और सबको आनन्द देनेवाले रामचन्द्रजीको मैं प्रणाम करता हूँ ॥ ६० ॥ ६१ ॥ नारायण, विष्णु, सर्वसाक्षी, तमसे परे, ऋषियोंके ध्यानमें भी कठिनाईसे आनेवाले, परिपूर्णरूप एक, कलानिधि, कल्मषके नाशक, परम पवित्र और बड़ोंसे भी बड़े रामचन्द्रजीको मैं प्रणाम करता हूँ ॥ ६२ ॥ हे रघुनन्दन ! ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, देवेन्द्र, देवता तथा आदित्यादि ग्रह सब कुछ तुम्हीं हो। तपस्वी,

वर्णाश्रमास्तथा धर्मा वर्णधर्मास्तथैव च । नागा यक्षाश्च गन्धर्वा दिक्पाला दिग्गजा दिशः॥६५॥
वसवोऽष्टौ त्रयः काला रुद्रा एकादश स्मृताः । तारका द्वादशादित्यास्त्वमेव रघुनायक ॥६६॥
सप्त द्वीपाः समुद्राश्च नदा नद्यस्तथा द्रुमाः । स्थावरा जंगमाश्चैव त्वमेव रघुनन्दन ॥६७॥
देवतिर्यङ्मनुष्याणां दानवानां दिवौकसाम् । माता पिता तथा भ्राता त्वमेव रघुनन्दन ॥६८॥
सर्वेशस्त्वं परं ब्रह्म त्वद्रूपं विश्वमेव च । त्वमक्षरं परं ज्योतिस्त्वमेव रघुपुंगव ॥६९॥
शान्तं सर्वगतं सूक्ष्मं परं ब्रह्म सनातनम् । राजीवलोचनं रामं प्रणमामि जगत्पतिम् ॥७०॥
ततः प्रसन्नः श्रीरामः प्रोवाच वृषभध्वजम् ।

श्रीराम उवाच

तुष्टोऽहं गिरिजाकांत वृणीष्व वरमुत्तमम् ॥७१॥

श्रीशिव उवाच

यदि तुष्टोऽसि देवेश श्रीराम करुणानिधे । तवाद्य दर्शनेनैव कृतार्थोऽहं न संशयः ॥७२॥
धन्योऽहं कृतकृत्योऽहं पुण्योऽहं पुरुषोत्तम । अद्य मे सफलं कर्म ह्यद्य मे सफलं तपः ॥७३॥
अद्य मे सफलं ज्ञानमद्य मे सफलं श्रुतम् । अद्य मे सफलं सर्वं त्वत्पदांभोजदर्शनात् ॥७४॥
अद्वैतं विमलं ज्ञानं त्वमन्नामस्मरणं तथा । त्वत्पदांभोरुहद्वन्द्वे सद्भक्तिं देहि राघव ॥७५॥
ततः परं सुसंप्रीतो रामः प्राह सदाशिवम् । गिरिजेश महाभाग पुनरिष्टं ददाम्यहम् ॥७६॥

श्रीशिव उवाच

वरं न याचे रघुनाथ युष्मत्पदाब्जभक्तिः सततं ममास्तु ।
इदं प्रियं नाथ वरं प्रयच्छ पुनः पुनस्त्वामिदमेव याचे ॥७७॥

श्रीरामदास उवाच

इत्येवमीडितो रामः प्रादात्तस्मै वरांतरम् । तेनोक्तस्तवराजाय ददौ नानावरान् बहून् ॥७८॥

ऋषि, सिद्ध, साध्य, मुनि, विप्र, वेद, यज्ञ, पुराण तथा धर्मोंकी संहिता ये सब तुम्हीं हो ॥ ६३ ॥ ६४ ॥ हे रघुनायक ! वर्ण, आश्रमधर्म, वर्णधर्म, नाग, यक्ष, गन्धर्व, दिक्पाल, दिग्गज, दिशाएँ, वसु, तीनों काल, एकादश रुद्र, ताराएँ और द्वादश आदित्य ये सब तुम्ही हो ॥ ६५ ॥ ६६ ॥ सातों द्वीप, समुद्र, नद, नदियाँ तथा वृक्ष आदि स्थावर जङ्गम समस्त वस्तु तुम्हीं हो । देव, तिर्यक्, मनुष्य, दानव, देवता, माता, पिता, भ्राता, मैं भी सब तुम्हीं हो ॥ ६७ ॥ ६८ ॥ तुम्हीं सर्वेश हो, स्वरस्वरूप ब्रह्म हो, यह संसार भी तुम्हारा ही रूप है, तुम अक्षर हो, परम प्रधान ज्योति हो । और मैं कहाँ तक बतलाऊँ, हे रघुपुङ्गव ! मेरे सब कुछ एकमात्र तुम्हीं हो ॥ ६९ ॥ शान्त, सर्वगत, सूक्ष्म, परब्रह्म, सनातन, जगत्पति और राजीवलोचन रामचन्द्रजीको मैं प्रणाम करता हूँ । इस प्रकारकी स्तुति सुनकर रामचन्द्रजीने शिवजीसे कहा—हे गिरिजाकांत ! मैं तुम्हारे ऊपर परम प्रसन्न हूँ । जो भी चाहो, सो उत्तम वर माँग लो ॥ ७० ॥ ७१ ॥ श्रीशिवजीने कहा—हे राम ! हे करुणानिधे ! यदि आप मेरे ऊपर प्रसन्न हैं तो मैं आपकी इस प्रसन्न मूर्तिको ही देखकर कृतार्थ हो गया ॥ ७२ ॥ हे पुरुषोत्तम ! मैं धन्य हूँ और अतिशय पवित्र हूँ । आज मेरे सब कार्य सफल हो गये । मेरी तपस्याएँ सफल हुईं, मेरा ज्ञान सफल हो गया और शास्त्रोंका श्रवण करना भी सार्थक हो गया । आपके इन चरणकमलोंके दर्शनसे ही मेरा सब कुछ सफल हो गया ॥ ७३ ॥ ७४ ॥ हे कृपानाथ ! यदि आपको वर ही देना हो तो मुझे अपना अद्वैत तथा विमल ज्ञान दीजिए । मुझे अपने नामका कीर्तन करानेकी शक्ति और अपने इन चरणकमलोंकी सद्भक्ति दीजिए ॥ ७५ ॥ इसके अनन्तर अतिशय प्रसन्न होकर रामचन्द्रजीने शिवजीसे कहा—हे गिरिजेश ! हे महाभाग ! मैं तुम्हारे अभिलषित वरोंको देनेके लिए प्रस्तुत हूँ, माँगो ॥ ७६ ॥ शिवजीने कहा—हे रघुनाथ ! मैं कोई वरदान नहीं चाहता । मैं चाहता यही हूँ कि सदा आपके चरणोंमें मेरी भक्ति बनी रहे । हे नाथ ! मुझे यही वर प्रिय है और यही देनेके लिए मैं आपसे बारम्बार अनुरोध करूँगा

एवं शिवेन यः प्रोक्तः स्तवराजः शुभावहः । स एवाद्य त्वया पृष्टस्तवाग्रे कथितो मया ॥७९॥
अयं श्रीरघुनाथस्य स्तवराजो ह्यनुत्तमः । सर्वसौभाग्यसंपत्तिदायको मुक्तिदः स्मृतः ॥८०॥
कथितो गिरजेशेन तेनादौ सारसंग्रहः । गुह्याद्गुह्यतरो नित्यस्तव स्नेहात्प्रकीर्तितः ॥८१।
यः पठेच्छृणुयाद्वापि त्रिसन्ध्यं श्रद्धयान्वितः । ब्रह्महत्यादिपापानि तत्समानि बहूनि च ॥८२॥
हेमस्तेयसुरापानगुरुतल्पायुतानि च । गोवधाद्युपपापानि चिंतनात्संभवानि च ॥८३॥
सर्वैः प्रमुच्यते पापैः कल्पायुतशतोद्भवैः । मानसं वाचिकं पापं कर्मणा समुपार्जितम् ॥८४॥
श्रीरामस्मरणेनैव व्यपोहति न संशयः । इदं सत्यमिदं सत्यं सत्यं नैवान्यदुच्यते ॥८५।
रामः सत्यं परं ब्रह्म रामात्किंचिन्न विद्यते । तस्माद्रामस्वरूपं हि रामः सर्वमिदं जगत् ॥८६॥
श्रीरामचन्द्र रघुपुङ्गव राजवर्य राजेन्द्र राम रघुनायक राघवेश ।
राजाधिराज रघुनायक रामचंद्र दासोऽहमद्य भवतः शरणागतोऽस्मि ॥८७॥
उत्फुल्लामलकोमलोत्पलदलश्यामाय रामाय चाकामाय प्रशमाय निर्मलगुणग्रामाय रामात्मने ।
ध्यानारूढमुनींद्रमानससरोहंसाय संसारविध्वंसाय स्फुरदोजसे रघुकुलोत्तंसाय पुंसे नमः ॥८८॥
एवं शिष्य मया प्रोक्तो यथा पृष्टस्त्वया मम । स्तवराजो राघवस्य श्रवणात्पापनाशनः ॥८९॥

इति श्रीशतकोटिरामचरितांतर्गते श्रीमदानन्दरामायणे विलासकाण्डे वाल्मीकीये
शंकरकृतरामस्तवराजो नाम प्रथमः सर्गः ॥ १ ॥

द्वितीयः सर्गः

(राम द्वारा सीताके सौन्दर्यका वर्णन)

विष्णुदास उवाच

गुरो ते प्रष्टुमिच्छामि तत्त्वं मां वक्तुमर्हसि । अयोध्यायां राघवेण सीतयाऽतिसुरूपया ॥ १ ॥

॥ ७७ ॥ श्रीरामदासने कहा—इस प्रकार स्तुति करनेपर रामचन्द्रजीने शिवजीके इच्छानुसार वर दिया और अपने मनसे भी उनको बहुतसे ऐसे वर दिये, जिनको शिवजीने माँगा ही नहीं था ॥ ७८ ॥ इस प्रकार शङ्करजी-का कहा हुआ शुभदायक 'रामस्तवराज' मैंने तुम्हारे पूछनेपर कह सुनाया ॥ ७९ ॥ यह रामचन्द्रजीका स्तवराज सब स्तोत्रोंमें श्रेष्ठ है। यह सब प्रकारके सौभाग्य, सम्पत्ति और मुक्तिको देनेवाला है ॥ ८० ॥ शिवजीने वेदोंका सारअंश निकालकर इसमें रख दिया है और यह अत्यन्त अलभ्य वस्तु है। किन्तु तुम्हारे सच्चे प्रेमके वशीभूत होकर मैंने तुमको बतलाया है ॥ ८१ ॥ जो प्राणी सुबह-शाम या तीनों कालमें इसका पाठ करता है, उसके ब्रह्महत्या जैसे महान् पातक तथा सुवर्णका चुराना, मद्यपान, गुरुके बिछौनेपर लेटना, गोवध, किसी प्रकारके मानसिक पाप आदि जो सैकड़ों कल्पसे एकत्रित हो गये हों, वे सब श्रीरामस्तवराजके स्मरणमात्रसे नष्ट हो जाते हैं। यह बात बिल्कुल सच है। इसमें किसी प्रकारका धोखा न समझना चाहिए ॥ ८२-८५ ॥ रामचन्द्र सत्य परब्रह्म हैं। उनसे बढ़कर और कोई है ही नहीं। अतएव यह समस्त संसार रामका ही स्वरूप है ॥ ८६ ॥ हे रामचन्द्रजी ! हे रघुपुङ्गव ! हे राजाओंमें श्रेष्ठ ! हे रघुनायक ! हे राघवेश ! हे राजाधिराज ! हे रामचन्द्र ! मैं एक अकिञ्चन दास आपकी शरणमें आया हूँ ॥ ८७ ॥ नवविकसित निर्मल नील-कमल-दल सरीखे जिनका श्याम स्वरूप है, जिनको किसी प्रकारकी कामना नहीं है, जो पूर्ण शान्तमूर्ति हैं, जो निर्मल गुणोंके राशिस्वरूप हैं, जो ध्यानारूढ़ मुनियोंके मनमानसके हंस हैं, जो अपने भ्रूभङ्गमात्रसे संसारको विध्वंस करनेमें समर्थ हैं, ऐसे रघुवंशभूषण तथा परम पुरुष रामचन्द्रजीको मैं प्रणाम करता हूँ ॥ ८८ ॥ हे शिष्य ! इस तरह मैंने तुम्हारे प्रश्नानुसार यह पापराशिनाशक स्तवराज तुम्हें सुना दिया ॥ ८९ ॥
इति श्रीमदानन्दरामायणे पं० रामतेजपांडेयकृत'ज्योत्स्ना' भाषाटीकासमन्विते विलासकाण्डे प्रथमः सर्गः ॥ १ ॥

विष्णुदासने कहा—हे गुरो ! मैं आपसे यह पूछना चाहता हूँ कि अयोध्यामें परम रूपवती सीताके

कथं भुक्ता वरा भोगाः किं किमाचरितं शुभम् । चरितं तस्य सकलं वद मंगलदायकम् ॥ २ ॥

श्रीरामदास उवाच

सम्यक् पृष्टं त्वया वत्स सावधानमनाः शृणु । रणदीक्षां वाजिमेधदीक्षां च रघुनन्दनः ॥ ३ ॥
निर्वाप्य सीतया रेमेऽयोध्यायां बंधुभिः सुखम् । जानकीं रंजयामास नानाभोगैर्मनोहरैः ॥ ४ ॥
तत्किंचिच्छृणु मांगल्यं विलासचरितं शुभम् । सीतया कोसलेंद्रस्य श्रवणान्मङ्गलप्रदम् ॥ ५ ॥
कः कृत्स्नं चरितं वक्तुं तयोः क्रीडान्वितं क्षमः । अतः संक्षेपतः किंचिद्वक्ष्यामि तव सन्निधौ ॥ ६ ॥
अथ सीतायुतो रामः पार्वत्या शंकरो यथा । क्रीडां चकार कैलासेऽयोध्यायां स तथाऽकरोत् ॥ ७ ॥
हेमरत्नमये दिव्यगेहे वैकुण्ठसन्निभे । निद्रास्थानं राघवस्य मनोज्ञं शशिसन्निभम् ॥ ८ ॥
भित्तौ रत्नोपला यत्र हेम्नः पंकोऽस्ति यत्र हि । यत्र स्तंभाः स्फाटिकाश्च यत्र मारकतोद्भवाः ॥ ९ ॥
प्रतोल्यः शतशो रम्याः शेषं नीलादिभिश्चितम् । मुकुरैरुज्ज्वला यत्र भित्तयश्चित्रचित्रिताः ॥१०॥
यत्र हेममयी भूमिर्यत्र मुक्तामयं शुभम् । वितानं पुष्पहारैश्च मुक्तागुच्छैर्विराजितम् ॥११॥
हेमतंतुमयान्यत्र भित्तिवस्त्राण्यनेकशः । यत्रायुतमनुष्यैश्च संमर्दो नैव जायते ॥१२॥
एवं तद्विस्तृतं रम्यं रत्नदीपैर्विराजितम् । हेमकुम्भा विराजन्ते प्रासादाग्रेषु चित्रिताः ॥१३॥
यत्र चित्राण्यनेकानि मोहयन्ति मृगीदृशाम् । यत्र हेममया रम्याः पर्यंकाश्चित्रचित्रिताः ॥१४॥
हेमकौशेयसंभूततंतुपट्टैर्विगुंफिताः । महार्हवसनैः पुष्पजालैराच्छादिताः शुभाः ॥१५॥
चतुष्कोणे लंबमानमुक्ताघोषैर्विराजिताः । येषु दिव्याः कशिपवस्तथोपबर्हणानि च ॥१६॥
केकिपक्षमयान्येषु चामराणि महांति च । गोपुच्छवालखर्जूरीसंभवादीनि संति हि ॥१७॥

साथ रहते हुए रामचन्द्रजीने किस प्रकारके भोगोंको भोगा और कौन-कौनसे शुभ कार्य किये । इस प्रकार समस्त मङ्गलदायक रामचरित्र आप मुझको सुनाइए ॥ १ ॥ २ ॥ श्रीरामदासने कहा—हे वत्स ! तुमने बहुत ही उत्तम प्रश्न किया है । सावधान होकर सुनो । रामचन्द्रजीने जब रणदीक्षा और अश्वमेघ यज्ञकी दीक्षा इन दोनों दीक्षाओंका काम पूरा कर दिया । तब सीता तथा अपने सब भ्राताओंके साथ राम सुखपूर्वक रहने लगे । उन्होंने विविध प्रकारके भोगोंसे सीताको प्रसन्न किया ॥ ३ ॥ ४ ॥ उनमें विलासका कुछ अंश जो परम मङ्गलदायक है, मैं तुम्हें सुनाता हूँ । सीता-रामका यह चरित्र श्रवण करनेसे कल्याण होता है ॥ ५ ॥ सीता तथा रामके समस्त चरित्र कहनेकी शक्ति तो हममें अथवा किसीमें भी नहीं है । अतएव मैं उनको संक्षिप्त रीतिसे तुम्हें सुनाऊँगा ॥ ६ ॥ अश्वमेघयज्ञके अनन्तर रामचन्द्रजी शङ्कर-पार्वतीके समान सीताजीके साथ कैलास सदृश अयोध्यामें रहकर विहार करने लगे ॥ ७ ॥ सुवर्ण तथा अनेक प्रकारके मणियोंसे रचित एवं वैकुण्ठके समान दिव्य भवनमें चन्द्रमा सदृश स्वच्छ तथा सुन्दर रामचन्द्रजीका शयनकक्ष था ॥ ८ ॥ जिसकी दीवारोंमें रत्नोंके पत्थर सुवर्णके गारेसे जड़े गये थे । जिसमें चारों ओर स्फटिक और मरकत मणिके स्तम्भ लगे हुए थे ॥ ९ ॥ जिसमें नीलम आदि मणियोंके छज्जे बने हुए थे । जिसमें चारों ओर दर्पणोंके लगे रहनेसे वह भवन बिल्कुल श्वेतवर्णका दिखायी देता था । दीवारोंमें कितने ही चित्र लगे हुए थे ॥ १० ॥ उस भवनकी भूमि सोनेकी थी, जिसमें मोतियोंकी झालरसे टँकी हुई चाँदनी लगी थी ॥ ११ ॥ जिसमें सोनेके तारसे बने हुए कपड़ोंकी चादरें जगह-जगह टँगी हुई थीं । वह भवन इतना विशाल था कि उसमें दस हजार मनुष्योंकी भीड़ सहजमें समा जाती थी ॥ १२ ॥ इस प्रकार वह भवन बड़ा विस्तृत तथा साफ-सुथरा था और उसमें रत्नोंके दीपक जला करते थे । प्रासादके अग्रभागमें सोनेके कलश चित्रित किये हुए थे ॥ १३ ॥ उसके हजारों चित्र स्त्रियोंको मुग्ध कर देते थे और उन्हें देखकर स्त्रियोंको अपने तन-बदनकी भी सुधि नहीं रह जाती थी । वहाँ सुवर्णके पलंगोंपर अनेक बिस्तर बिछे हुए थे ॥ १४ ॥ जिनपर सुवर्णके तार और रेशमकी बुनी हुई चादरें पड़ी थीं । जो भवन कीमती कपड़ों और फूलोंसे सजा हुआ था ॥ १५ ॥ जिसके चारों चारों कोनोंमें मोतियोंके बड़े-बड़े झुब्बे लटके हुए थे, जिसमें मखमलकी जड़ाऊ तकियायें लगी हुई थीं ॥ १६ ॥ कहीं मोरके पखनोंके बड़े-बड़े

चतुष्कोणेषु सर्वेषां मंचकानां महोज्ज्वलाः । रत्नदीपाः प्रकाशंते सदैवाग्निशिखोपमाः ॥१८॥
उशीरव्यजनादीनि चामरादीनि संति हि । यत्र ताम्बूलपात्राणि हेमरत्नोद्भवानि च ॥१९॥
तथा निष्ठीवनार्थं हि पात्राणि राजतानि च । यत्र रंभोपमा दास्यः शतशो रत्नभूषिताः ॥२०॥
चामरैर्वीजयंत्यश्च सीतारामावहर्निशम् । यत्र हेममयाश्चित्रा बद्धास्ते पंजराः शुभाः ॥२१॥
ये यागे नृपपत्नीभिः श्रीसीतायाः समर्पिताः । येषु वै केकिनो हंसाः सारसाः सारिकाः शुकाः ॥२२॥
लावकाः कोकिलाद्याश्च नाना येऽस्य पतत्रिणः । नानाशब्दान्प्रकुर्वन्तः शतशस्तेषु संस्थिताः ॥२३॥
तेषां शब्दस्य शिष्य त्वां किं प्राकट्यं वदाम्यहम् । ये रामस्मरणेनैव जीवन्मुक्ता न संशयः ॥२४॥

पक्षिण ऊचुः

जयतु राघवो जानकीयुतो जयत्वखिलराजराजकेश्वरः ।
दशरथात्मजो लक्ष्मणाग्रजो जयतु मापतिस्ताटिकांतकः ॥२५॥
जयतु कौशिकस्याध्वरं गतो जयतु रक्षसां मारको महान् ।
जयतु गौतमाहल्यया स्तुतो जयतु जानकीतातमानितः ॥२६॥
जयतु नः पतिश्चापखंडनो जनकजावरोन्मुक्तमालया ।
नृपसभांगणे कौशिकानुगः परमशोभितश्चातिहर्षितः ॥२७॥
जयतु भूमिजांघ्रयोस्तदा मुदा निजकरोत्पले स्थाप्य राघवः ।
कमलहस्तकेनाकरोच्चर्तिं स रघुनन्दनः पातु नः सुखम् ॥२८॥
जयतु भूमिजालिंगितो महान् जनमनोहरश्चातिशोभनः ।
परशुरामदं धृत्य वै धनुर्निजपितुस्तदाऽदर्शयद् बलम् ॥२९॥
जयतु सीतया भोगकृच्चिरं जयतु कैकयीप्रेरितो वनम् ।
जयतु पर्वते वासकृच्चिरं जयति योऽत्रिणा पूजितो वने ॥३०॥

चमर रक्खे हुए हैं। कहीं सुरागायका चमर रक्खा है । कहीं तालके और कहीं खजूरके बहुतसे पंखे रक्खे हुए हैं ॥ १७ ॥ पलंगके चारों ओर अच्छी रोशनी देनेवाले अग्निशिखा सदृश रत्नमय दीपक रक्खे हुए हैं ॥ १८ ॥ बहुतसे खस आदिके पंखे तथा चमर रक्खे हैं। भगवान्‌के उस विलासभवनके पानदान सुवर्णके हैं। उसमें जगह-जगह हीरा-पन्ना आदि रत्न जड़े हुए हैं ॥ १९ ॥ जितने उगालदान हैं, सब चाँदीके हैं। वहाँ अनेक प्रकारके गहने पहने रंभा जैसी सैकड़ों सुन्दरी नारियाँ राम और सीताको पंखा हाँका करती हैं। जिसमें सोनेके कितने ही पिंजरे बँधे हुए हैं ॥ २० ॥ उनको यज्ञमें आयी हुई रानियोंने सीताजीको उपहारमें दिया था। जिनमें मयूर, हंस, सारस, मैना, बटेर, कोयल आदि सैकड़ों प्रकारके पक्षी कितनी ही तरहकी बोलियाँ बोल रहे थे ॥ २१ ॥ २२ ॥ हे शिष्य ! वे पक्षी क्या बोलते थे, यह मैं तुम्हें स्पष्ट करके बतलाता हूँ। इसमें कोई सन्देह नहीं कि वे पक्षी बारम्बार रामका नाम लेनेसे जीवन्मुक्त हो गये थे ॥ २३ ॥ २४ ॥ पक्षी कहते थे—सीतापति रामचन्द्रजीकी जय हो, अखिलराजराजेश्वरकी जय हो, दशरथात्मज रामचन्द्रजीकी जय हो। लक्ष्मणाग्रज रामकी जय हो। श्रीपति और ताड़काके नाशक रामचन्द्रजीकी जय हो ॥ २५ ॥ विश्वामित्रके यज्ञमें जानेवाले, राक्षसोंके विनाशकारी, गौतम-अहल्या तथा जनकजीसे सम्मानित रामचन्द्रकी जय हो ॥ २६ ॥ हमारे स्वामी, शंकरके धनुषको खण्डन करने तथा सीताजीके हाथोंकी जयमाला पहिननेवाले, परशुरामके दिये हुए धनुषको चढ़ाकर पिता दशरथको अपना पराक्रम दिखानेवाले ॥ २७–२९ ॥ सीताके साथ विलास करनेवाले, कैकेयीकी प्रेरणासे वनको जानेवाले, चिरकाल तक चित्रकूटपर निवास

जयतु स विराधस्य घातकृज्जयतु दूषणादिप्रमर्दनः ।
जयतु यो मृगं मोचयद्भवाज्जयतु यः कबंधं क्षणाज्जहौ ॥३१॥
जयतु वालिहा सेतुकारको जयतु रावणादिमर्दकः ।
जयतु स्वं पदं प्राप सीतया मंगलस्नानकृन्मुदा ॥३२॥
जयतु वाक्यतो भूसुरस्य यः सकलभूतलं पर्यटन् चिरम् ।
जयतु यागकृल्लोकशिक्षया जयतु जानकीं रंजयन् स्थितः ॥३३॥

श्रीरामदास उवाच

रघुवरस्य यत्पक्षिभिः कृतं नवकमुत्तमं यः पठिष्यति ।
तपननिर्गमे भक्तितत्परो निजमनोऽर्थितं संगमिष्यति ॥३४॥

एतादृशे रम्यगेहे मया शिष्य प्रवर्णिते । सीतया स सुखं रेमे चैकपत्नीव्रतस्थितः ॥३५॥
अथ सा जानकी देवी रंजयामास राघवम् । स्थितं मंचकवर्ये तं निजक्रीडादिकौतुकैः ॥३६॥
मंचकस्थश्च श्रीरामस्त्वेकदा सुखनिर्भरः । सीतासौंदर्यमालोक्य वर्णयामास तां मुदा ॥३७॥
हे सीते कंजनयने ब्रह्मणा त्वं कथं चिता । जानाम्यहं वितर्केण तेन त्वं निर्मिताऽसि न ॥३८॥
त्वद्रूपसदृशीं नान्यां पश्यामि जगतीतले । प्रतिपच्चंद्रकलया स्पर्धयंति नखानि ते ॥३९॥
नखमध्या रक्तवर्णाः शुभा दाडिमबीजवत् । अंगुष्ठौ वर्तुलौ रम्यौ शिश्वंगुष्ठोपमौ तव ॥४०॥
मृदुले ते पादतले कंजपत्रांतरोपमे । समे रेखाध्वजयुते स्वस्तिकादिसुचिह्निते ॥४१॥
सीते तेंध्रयूर्ध्वभागौ तौ निर्लोमौ मांसलौ शुभौ । अशिरौ मृदुलौ पीतौ नृपस्त्रीवंदनोचितौ ॥४२॥
पादमूले दधिजेन स्पर्द्धेते रक्तवर्तुले । पादपृष्ठं समे पीने कोमले लोमवर्जिते ॥४३॥

करनेवाले, अत्रि आदि ऋषियोंसे पूजित रामचन्द्रजीकी जय हो ॥ ३० ॥ जिन्होंने विराधको मारा था और दूषणादि राक्षसोंका संहार किया था। जिन्होंने मृगरूपधारी मारीचको मुक्ति दी थी और क्षणमात्रमें कबन्धका विनाश कर दिया था, ऐसे रामचन्द्रकी जय हो ॥ ३१ ॥ बालिको मारनेवाले, समुद्रमें सेतु बाँधनेवाले, रावणादिके नाशक, सीताको लंकासे वापस लाकर अपने राजसिंहासनपर सुशोभित और मंगल-स्नान करके पवित्र रामचन्द्रकी जय हो ॥ ३२ ॥ कुम्भोदर ब्राह्मणकी आज्ञासे चिरकालतक समस्त पृथ्वीका पर्यटन करनेवाले, लोकशिक्षाके निमित्त अश्वमेध यज्ञ करनेवाले और सीताजीको प्रसन्न करते हुए स्थित रामचन्द्रकी जय हो ॥ ३३ ॥ श्रीरामदासजी कहने लगे--यह पक्षियों द्वारा किये हुए नौ श्लोकोंका स्तोत्र वर्षाऋतुमें जो कोई पाठ करेगा, उसकी मनोऽभिलषित कामनाएँ पूर्ण होंगी। जैसा मैं ऊपर कह आया हूँ, ऐसे सुन्दर भवनमें रामचन्द्रजी सीताके साथ सुखपूर्वक एकपत्नी व्रत धारण करके विहार करते थे। उसी प्रकार सीताजी भी नाना प्रकारके कौतुक कर-करके रामचन्द्रजीको प्रसन्न करती थीं ॥ ३४–३६ ॥ एक दिन रामचन्द्रजी पलंगपर बैठे थे। सहसा वे सीताके सौन्दर्यको देखकर कहने लगे—हे कमलनयने सीते ! मैं अपने मनमें बार-बार यही सोचता रहता हूँ कि तुम्हें ब्रह्माजीने कैसे बनाया होगा। मेरा तो जहाँतक ख्याल है कि तुम्हारी रचना ब्रह्माजीने नहीं की है ॥ ३७ ॥ ३८ ॥ बल्कि कोई दूसरा कारीगर तुम्हारी इस शोभाको बनानेके लिए नियुक्त किया गया होगा। क्योंकि तुम्हारे सदृश रूपवती नारी मैंने संसारमें कहीं देखी ही नहीं। तुम्हारे पैरोंके नाखून अपनी अनुपम छटा द्वारा चन्द्रकलासे बाजी मारनेके लिए उतावले हो रहे हैं ॥ ३९ ॥ नाखूनोंकी लाली अनारदानेकी तरह झलक रही है। तुम्हारे वर्तुलाकार और सुन्दर अंगूठे बच्चोंके अंगूठोंकी नाईं कोमल दीखते हैं ॥ ४० ॥ तुम्हारे चरण कमलकी पंखुड़ियोंके सदृश कोमल और सुन्दर हैं। उनमें ध्वजादिकी शुभ रेखाएँ खिंची हैं और मेहावर लगी हुई है। पाँवोंके ऊपरका भाग सुन्दर तथा सुडौल है। उनमें नसें नहीं दिखाई देतीं। इसीसे तो वे चरण बड़ी-बड़ी रानियोंके पूज्य हो रहे हैं ॥ ४१ ॥ ४२ ॥ तुम्हारे पैरके नीचेका हिस्सा मक्खनकी तरह मुलायम है, दोनों गुल्फ लाल-लाल वर्तुलाकार और मोटे

तव गुल्फौ रक्तवर्णौ वर्तुलौ मांसलौ शुभौ । जंघे गोपुच्छसदृशे वर्तुले मांसले शुभे ॥४४॥
निर्लोमे मृदुले पीने ह्यशिरे सरले वरे । वर्तुलौ ते महाजानू मांसलौ बीजपूरवत् ॥४५॥
रंभास्तंभोपमे चोरू मांसलौ त्वतिकोमलौ । पीनौ घनौ वर्तुलौ तौ विलोमौ मे सुखोचितौ ॥४६॥
जघनं मांसलं रम्यं वर्तुलं गजकुंभवत् । पीनं विलोमं सुस्निग्धं मम चित्तैकमोहनम् ॥४७॥
नाहं ते वर्णने शक्तो रतिस्थानस्य भामिनि । गंभीरा वर्तुला नाभिस्तत्र रम्या प्रदृश्यते ॥४८॥
बलित्रयं तु जठरे दृश्यते तिसृवेणिवत् । मृगराजस्य कटिना तुल्यस्ते कटिरुत्तमा ॥४९॥
रम्यं तवोदरं सूक्ष्मं मृदुलं मांसलं शुभम् । विलोमं पीतवर्णं च पुत्रोत्पत्तिविसूचकम् ॥५०॥
वंशस्य शकलेनैव स्पर्द्धते तव मांसलः । पृष्ठस्तंभः कोमलश्च निम्नो लोमविवर्जितः ॥५१॥
पार्श्वेऽतिमृदुले पीते मांसले लोमवर्जिते । कुक्षी पीने लोमहीने मांसले किंचिदुन्नते ॥५२॥
हृदयं कोमलं रम्यं मांसलं पीनमुन्नतम् । विस्तीर्णं लोमहीनं च सुस्निग्धं सौख्यदं मम ॥५३॥
हेमकुंभसमानौ द्वौ कुचौ पीनौ घनौ शुभौ । गजशुडादंडतुल्यौ पीनौ ते कोमलौ भुजौ ॥५४॥
कृशा रम्याः कोमलाश्च तेऽङ्गुल्यो जनकात्मजे । रक्ते पाणितले शंखध्वजमत्स्यादिचिह्निते ॥५५॥
मांसले कोमले प्रोच्चैः सुरेखामण्डिते वरे । करपृष्ठे लोमहीने मांसले कोमले शुभे ॥५६॥
पीनौ स्कंधौ वर्तुलौ ते जत्रुस्ते मांसपूरितः । कम्बुकंठोऽतिपीनश्च सबलित्रय उत्तमः ॥५७॥
मध्ये निम्नं सुपीनं ते चिबुकं वर्तुलं मृदु । प्रवालबिंबसदृशश्चारक्तः कोमलो घनः ॥५८॥
सीते तेऽधोऽधरो भाति मधुरोऽमृतसन्निभः । कुंदपुष्पकलिकया स्पर्द्धन्ते दशनास्तव ॥५९॥
सांद्राः कृत्रिमवर्णैश्च कृष्णवर्णा मनोहराः । हेमपुष्पैर्हेमतंतुबंधैश्चित्रविचित्रिताः ॥६०॥

हैं। जंघायें गौकी पूँछके समान गावदुम एवं मोटी-ताजी हैं ॥ ४३ ॥ ४४ ॥ उनमें न तो कहीं एक भी रोम दिखाई देते हैं न शरीरकी नसें ही । दोनों जघन बीजपूर (बिजौरे नीबू) की तरह मोटे और बर्तुलाकार हैं ॥ ४५ ॥ तुम्हारे दोनों ऊरु केलेके खम्भेकी नाईं मोटे और कोमल हैं। उनका सुन्दर वर्ण और उनकी सुन्दर छटा मुझे बहुत अच्छी लगती है ॥ ४६। जघनभाग भी मोटा, सुन्दर और हाथीके मस्तककी तरह बर्तुल है। वह पीतवर्ण, लोमहीन, सुचिक्कण तथा मनोमोहक है ॥ ४७ ॥ हे सीते ! तुम्हारे रतिस्थानका वर्णन करनेमें मैं सर्वथा असमर्थ हूँ। तुम्हारी नाभी भी गहरी, वर्तुलाकार और सुन्दर है ॥ ४८ ॥ तुम्हारे पेटमें तीन रेखाएँ तीन वेणीके समान दिखाई पड़ती हैं । तुम्हारी कमर मृगराज (सिंह) की तरह पतली है ॥ ४९ ॥ तुम्हारा उदर सूक्ष्म, मृदुल और मांसल है। उसमें कहीं भी लोम नहीं दिखाई पड़ता । वह तीन वर्णका है और उसको देखनेसे भावी पुत्रोत्पत्तिका सूचना मिलती है ॥ ५० ॥ वंशखण्डकी तरह मोटी-ताजी तुम्हारी पीठकी रीढ़ है। दोनों पार्श्वभाग तो अतिकोमल होनेसे देखते ही बनते हैं। कोख भी पीतवर्ण, लोमहीन, कुछ ऊँची एवं मोटी-ताजी है ॥ ५१ ॥ ५२ ॥ हृदय कोमल, रम्य, मांसल, पीला और ऊँचा है। वह लोमहीन है और बहुत दूर तक फैला हुआ है। वह छूनेमें चिकना मालूम होता है । इसलिए मुझे वह बहुत सुन्दर जँचता है ॥ ५३ ॥ स्वर्णकलशकी नाईं मोटे और कठोर तुम्हारे दोनों कुच हैं। तुम्हारी दोनों भुजाएँ हाथीकी सूँडकी तरह मोटी, कोमल और सुन्दर हैं ॥ ५४ ॥ पतली, सुन्दर और कोमल तुम्हारे हाथोंकी उँगलिया हैं। शंख, ध्वज, मकर तथा मत्स्यादि चिह्नों युक्त लाल-लाल तुम्हारी दोनों हथेलियाँ हैं ॥ ५५ ॥ उसी तरह उनका पृष्ठभाग भी लोमहीन, मांसल, कोमल और सुन्दर है ॥ ५६ ॥ बर्तुलाकार, मोटे-ताजे, मांससे अच्छी तरह भरे हुए और शङ्खकी नाईं तुम्हारे दोनों कन्धे हैं। ग्रीवामें तीन सुन्दर रेखाएँ हैं ॥ ५७ ॥ तुम्हारा मध्यभाग भी निम्न, पीन एवं कोमल है । प्रवाल और बिम्बफलकी तरह लाल, कोमल और रसभरा तुम्हारा चिबुक है ॥ ५८ ॥ हे सीते ! अमृतकी तरह मधुर तुम्हारा अधरोष्ठ है। कुन्दकी कलियोंको लज्जित करनेवाले तुम्हारे दाँत हैं ॥ ५९ ॥ उनमें बत्तीसी पड़ी हुई है । पान खाते खाते वे काले हो गये हैं। उनमें जहाँ-तहाँ सुवर्णके तारकी

ऊर्ध्वाधरः कोमलस्ते रक्तवर्णो विभात्ययम् । ऋजु घ्राणमुन्नसं ते दिव्यं भाति मनोहरम् ॥६१॥
तव नेत्रे कंजपत्रतुल्ये दीर्घे मनोहरे । हरिणीनेत्रसदृशे कामबाणाविव प्रिये ॥६२॥
तव कर्णौ घनौ पीनौ बहुभारसहौ वरौ । तव सीतेऽतिसुस्निग्धे प्रोच्चे गंडस्थले शुभे ॥६३॥
कृशे भ्रुवौ चापतुल्ये कृष्णवर्णे सुकोमले । ललाटं तव विस्तीर्णं मांसलं हि समं मृदु ॥६४॥
गङ्गाकूलोपमः सीते सीमंतस्तव सुंदरः । हेमतंतुसमानास्ते केशाः स्निग्धाः सुकोमलाः ॥६५॥
मस्तकस्तव सूक्ष्मश्च वर्तुलो मांसलः शुभः । वेणीबन्धो वरः सीते जघने पतितस्तव ॥६६॥
चंपपुष्पोपमो वर्णः सौकुमार्यमपि प्रिये । सीते तवाननस्पर्द्धी शशांकः क्षयमाप सः ॥६७॥
त्वन्नेत्रविजिता सीते मृगी धावति कानने । सीते त्वद्भ्रुकुटिस्पर्द्धि चापं भग्नं मया पुरा ॥६८॥
तव नेत्रकटाक्षेण मुनीनां मदनोद्भवः । नेत्रयोस्तव चांचल्यं मकरान् लज्जयत्यहो ॥६९॥
तव घ्राणं शुको दृष्ट्वाऽऽत्मानं धिक्करोति हि । दृष्ट्वौष्ठयोः शोणिमां ते सौकुमार्यमपि प्रिये ॥७०॥
सहकारतरोश्चापि रक्तः कोमलपल्लवः । लज्जया हरितो भाति त्यक्त्वा स्वीयां सुरक्ततास् ॥७१॥
सौकुमार्यं तथा त्यक्त्वा लज्जया ते घनोऽपि सः । एवं किं किं मया कान्ते सौदर्यं तव जानकि ॥७२॥
वर्णनीयं महद्दिव्यं तत्र ब्रह्माऽपि कुंठितः । इत्युक्त्वा राघवः सीतां प्रीत्या तां परिषस्वजे ॥७३॥
तच्छ्रुत्वा वर्णनं स्वीयं लज्जयाऽधः कृतानना । किंचित्स्मिताननं कृत्वा तस्थावंके पतेश्च सा ॥७४॥

इति श्रीशतकोटिरामचरितांतर्गते श्रीमदानन्दरामायणे विलासकाण्डे वाल्मीकीये
सीतावर्णनं नाम द्वितीयः सर्गः ॥ २ ॥

चित्रकारी की हुई है। इससे वे और भी सुन्दर मालूम होते हैं ॥ ६० ॥ तुम्हारा ऊपरी होंठ भी कोमल और रक्तवर्ण है। कोमल और ऊँची तुम्हारी नासिका है, जो बड़ी सुन्दर दीखती है ॥ ६१ ॥ कमलकी पंखुड़ियोंकी नाईं सुन्दर तुम्हारी दोनों आँखें हैं। उन्हें चाहे हरिणीके नेत्रोंकी तरह कह लो या कामबाणकी भाँति चित्ताकर्षक कहो ॥ ६२ ॥ तुम्हारे दोनों कान भी घन और पीन हैं। वे बहुतसे गहनोंका बोझ सह सकते हैं। तुम्हारे गंडस्थल अति कोमल और ऊँचे हैं ॥ ६३ ॥ पतली-पतली और काले रंगकी तुम्हारी दोनों भौंहें धनुषाकार दीखती हैं। तुम्हारा ललाट खूब चौड़ा और बराबर है ॥ ६४ ॥ तुहारी माँग गंगाके तटकी तरह सुन्दर दीखती है। सोनेके तारकी भाँति सुन्दर, चिकने और कोमल तुम्हारे केशोंका कलाप है ॥ ६५ ॥ तुम्हारा मस्तक सूक्ष्म, वर्तुल, मांसल और सुन्दर है। तुम्हारे केशोंका वेणीबन्ध जांघतक झूलता है ॥ ६६ ॥ चम्पाके फूलकी तरह तुम्हारा सुन्दर वर्ण है। उसी तरह उसमें कोमलता भी है। हे सीते ! तुम्हारे मुखसे होड़ करनेके कारण चन्द्रमाको क्षयरोग हो गया ॥ ६७ ॥ तुम्हारी आँखोंसे हार मानकर मृगियाँ वनोंको भाग गयीं और इधर-उधर दौड़ती फिरती हैं। हे जनकात्मजे ! सच पूछो तो उस समय धनुषयज्ञमें तुम्हारी इन भौंहोंसे स्पर्धा करनेके ही कारण मैंने धनुषको तोड़कर उसके टुकड़े-टुकड़े कर दिये थे ॥ ६८ ॥ मुझे पूरा विश्वास है कि तुम्हारे नेत्रोंके कटाक्षसे बड़े-बड़े तपस्वियोंके हृदयमें भी कामका वेग प्रादुर्भूत हो जायगा। तुम्हारे नेत्रोंकी चंचलता मछलियोंको भी मात कर रही है। तुम्हारी नाक देखकर तोते अपनेको बार-बार धिक्कारते हैं। तुम्हारे होठोंकी लालिमा और कोमलता देखकर आम्रवृक्षका लाल और नया पत्ता लज्जाके मारे हरा हो गया है। तुम्हारी लालिमाके आगे उसकी लालिमा नहीं ठहर सकी। हे कान्ते ! मैं तुम्हारी सुन्दरताका कहाँ तक वर्णन करूँ ॥ ६९-७२ ॥ इसके वर्णनमें चतुर्मुख ब्रह्मा भी हार मान लेंगे। ऐसा कहकर रामचन्द्रजीने सीताको अपने हृदयसे लगा लिया ॥ ७३ ॥ इस तरह अपनी बड़ाई सुनकर सीता भी लज्जासे नीचा मुँह करके बैठ गयीं। फिर थोड़ा मुसकाकर पतिदेवकी गोदमें जा बैठीं ॥ ७४ ॥ इति श्रीशतकोटिरामचरितान्तर्गते श्रीमदानन्दरामायणे पं० रामतेजपाण्डेयविरचित'ज्योत्स्ना'भाषाटीकायां सीतावर्णनं नाम द्वितीयः सर्गः ॥ २ ॥

तृतीयः सर्गः

(सीताकृत आध्यात्मिक प्रश्नके उत्तरमें रामका देहरामायण-वर्णन)

श्रीरामदास उवाच

अथ सा जानकी रामं विनयाल्लज्जिताऽब्रवीत् । राम राजीवपत्राक्ष किंचित्प्रष्टुं मम प्रभो ॥ १ ॥
वांछाऽस्ति चेत्करोष्याज्ञां तर्हि पृच्छाम्यहं तव । तत्सीतावचनं श्रुत्वा राघवः प्राह जानकीम् ॥ २ ॥
पृच्छस्व सीते यच्चेऽस्ति प्रष्टव्यं मां सुखेन तत् । मा शंकां भज रम्भोरु गुह्यं चापि वदामि ते ॥ ३ ॥
तद्रामवचनं श्रुत्वा नत्वा त प्राह जानकी । राम राम महाबाहो किंचिदुपदिशस्व माम् ॥ ४ ॥
येन मां तव संज्ञानं भवेच्चैव महोज्ज्वलम् । तत्सीतावचनं श्रुत्वा रामचन्द्रोऽब्रवीद्वचः ॥ ५ ॥
सम्यक् पृष्टं त्वया सीते शृणुष्वैकाग्रमानसा । मम ज्ञानाय ते वच्मि परं कौतूहलं शुभम् ॥ ६ ॥

श्रीरामचन्द्र उवाच

सच्चिदानन्दरूपाख्यसागरस्य तदिच्छया । तरंगरूपयाऽऽत्मांशबिंदुः शुद्धो विनिर्गतः ॥ ७ ॥
आत्मनामा मातृभूतबुद्धेर्जठरसंभवः । शुद्धसत्त्वांतःकरणं पिता चात्मन ईरितः ॥ ८ ॥
तस्यात्मनश्च चत्वारो भेदास्ते बंधवः स्मृताः । तूर्यावस्थस्तत्र वरस्ततो जाग्रदवस्थकः ॥ ९ ॥
स्वप्नावस्थस्तृतीयश्चावरः सुषुप्त्यवस्थकः । हृदयाकाशस्तत्स्थानं मनोवेगो बहिर्गमः ॥१०॥
मनोदुर्वृत्तिघातश्च मनोवेगस्य खंडनम् । मायायोगस्ततस्तस्य पूर्वसंस्कारनिग्रहः ॥११॥
ततः कुबुद्धिहेतोर्हि भवारण्येऽटनं चिरम् । दंभस्य निग्रहस्तत्र पंचभूतात्मिका स्थिरा ॥१२॥
आत्मनः पर्णकुटिका विश्रान्तिस्थानमीरिता । कामक्रोधलोभजयस्तत्राशाक्रन्तनं स्मृतम् ॥१३॥
मोहस्य निग्रहस्तत्र शुद्धमायाश्रयस्ततः । रजोरूपा तु या माया जठराग्नी तदा स्मृता ॥१४॥

श्रीरामदास कहने लगे– कुछ देर बाद लज्जा और विनयसे सकुचाती हुई सीताजी रामचन्द्रसे बोलीं– हे प्रभो ! मैं आपसे कुछ पूछना चाहती हूँ ॥ १ ॥ यदि आप आज्ञा दें तो पूछूँ । सीताकी वाणी सुनकर रामचन्द्रजीने कहा–॥ २ ॥ हे प्रिये ! जो कुछ भी तुम्हारी इच्छा हो, आनन्दपूर्वक पूछो । किसी प्रकारकी शङ्का मत करो । यदि कोई गुप्त बात होगी, वह भी मैं तुम्हें बतलाऊँगा ॥ ३ ॥ इस तरहकी बातें सुनकर सीताने कहा—हे महाबाहो राम ! मुझे आप कोई ऐसा उपदेश दें, जिससे मैं आपको अच्छी तरह समझ लूँ । इस बातको सुनकर रामने सीतासे कहा—॥ ४ ॥ ५ ॥ हे देवि सीते ! तुमने बहुत ही अच्छी बात पूछी है । मैं अपने वास्तविक तत्त्वको तुम्हें अच्छी तरह समझाता हूँ, मन एकाग्र करके सुनो । आत्मज्ञान-प्राप्तिके लिए मैं तुम्हें कौतूहलजनक बातें बता रहा हूँ ॥ ६ ॥ रामचन्द्रजी कहने लगे—सत्, चित् और आनन्दरूपी एक महान् सागर है । उसकी इच्छारूपी तरङ्गसे एक परम पवित्र आत्मांशस्वरूप बिन्दु निकला । उसका नाम पड़ा 'आत्मा' । उसकी माता हुई बुद्धि । शुद्ध और सत्त्वमय अन्तःकरण उसका पिता हुआ ॥ ७ ॥ ८ ॥ उस आत्माके चार भेद हुए । वे ही आत्माके चार भाई कहलाये । उनमें सबसे श्रेष्ठ हुई तुरीयावस्था, उससे कुछ न्यून जाग्रदवस्था, फिर स्वप्नावस्था और सबसे निम्न श्रेणीकी सुषुप्ति अवस्था हुई । इन सबका हृदयाकाश स्थान है और मनोवेगसे ये अवस्थायें कभी-कभी बाहर भी हो जाती हैं ॥ ९ ॥ १० ॥ मनकी दुर्वृत्तियोंका खण्डन, मनके आवेगपर आघात और मायाके योगसे पूर्वसंस्कारका दमन करना होता है ॥ ११ ॥ यदि बुद्धि किसी तरह दूषित हुई तो इस संसाररूपी घोर जङ्गलमें बहुत दिनों तक आत्माको भटकना पड़ता है । उस समय पञ्चभूतात्मक आत्माको स्थिर करके दम्भका निग्रह करनेकी आवश्यकता होती है ॥ १२ ॥ केवल आत्मारूपिणी ही एक ऐसी पर्णकुटी है, जहाँ कि शान्ति मिलती है । अन्यत्र सब जगह क्लेश ही है । उस पर्णकुटीमें काम, क्रोध, लोभ, मोहादि शत्रु नहीं जाने पाते । आशाकी भी वहाँ गति नहीं है । वहाँ मोहका भी निग्रह हो जाता है । वहाँ ही शुद्ध-सात्त्विकी मायाका आश्रय प्राप्त होता है । उस समय जब कि रजोगुणमयी

तामस्याश्चैव मायाया वियोगश्च तदा स्मृतः । सुखालाभो महान्क्लेशः शोकभंगस्ततः परम् ॥१५॥
विवेकस्याश्रयस्तत्र भक्त्युद्रेकसमागमः । अविवेकवधश्चापि ह्युत्साहेन समागमः ॥१६॥
अज्ञानतरणोपायस्त्रिगुणाश्रयसद्मनि । लिंगाख्यनिग्रहस्तत्र मदस्य संप्रकीर्तितः ॥१७॥
निग्रहो मत्सरस्यापि ततोऽहंकारनिग्रहः । वियोगो लिंगदेहस्य मायानामैक्यता ततः ॥१८॥
हृदयाकाशगमनमानंदैकसुखं ततः । मायात्यागस्ततश्चैव सात्त्विकया ग्रहणं स्मृतम् ॥१९॥
सात्त्विकया मायया सार्धं हृदयाकाशमुत्तमम् । महाकाशे प्रणयनं सच्चिदानन्दसंज्ञके ॥२०॥
प्रवेशनं सागरे हि मुक्तिर्ज्ञेयाऽऽत्मनः शुभा । सायुज्या सा परिज्ञेया मुक्तिर्मुक्तिचतुष्टये ॥२१॥
एवं मयेयं ते प्रीत्या सीते संज्ञानपेटिका । वेदसारैर्गूढार्थैरज्ञानमतिनाशकैः ॥२२॥
मज्ज्ञानदैः पंचदशश्लोकरत्नैः प्रपूरिता । समर्पिता गृहाण त्वमस्यां बुद्ध्याऽवलोकय ॥२३॥
भविष्यति मम ज्ञानमस्याः सम्यग्विचारतः । तद्रामवचनं श्रुत्वा सीता संज्ञानपेटिकाम् ॥२४॥
निजहृन्मन्दिरे स्थाप्य बुद्धिदृष्ट्या मुहुर्मुहुः । सम्यगुद्घाट्य तूष्णीं सा मुहूर्तमवलोकयत् ॥२५॥
तदा ज्ञात्वाऽथ सकलां निजक्रीडां विदेहजा । विहस्य रघुवीरस्य सा ननामांघ्रिपंकजे ॥२६॥
आनंदनिर्भरा जाता सानंदाश्रुसमन्विता । आनंदोत्फुल्लरोमाञ्चा तूष्णीमासीत्तदा क्षणम् ॥२७॥
आनन्दनिर्भरां सीतां दृष्ट्वा तां राघवोऽब्रवीत् । पेटिकायां त्वया सीते किं दृष्टं तोषकारकम् ॥२८॥
कच्चिद्गतं तवाज्ञानं कच्चिल्लब्धं मम त्वया । संज्ञानं वद मां सीते यथा ज्ञातं त्वया हृदि ॥२९॥

माया जठराग्निमें रहती है ॥ १३ ॥ १४ ॥ तब तमोगुणयी मायाका वियोग हो जाता है । इसमें सुखका नाम नहीं रहता और चारों ओर कराल दुःखकी घटाएँ घिरी दिखाई देती हैं । उसके आगे शोकभङ्गका दर्जा आता है ॥ १५ ॥ उसी समय हृदयमें विवेक उपजता है । साथ ही भक्तिका भी उद्वेग होता है । अज्ञान नष्ट हो चलता है । उत्साहसे स्नेह हो जाता है । तीन गुणवाले इस शरीरीका सबसे प्रधान कर्तव्य यह है कि जिस तरह भी हो सके, अज्ञानसे जीवको छुड़ानेकी चेष्टा करे । जब प्राणी मदका निग्रह कर लेता है, तब वह लिङ्गनिग्रहो कहलाने लगता है ॥ १६ ॥ १७ ॥ मदका निग्रह करके मत्सरका और मत्सरके बाद अहङ्कारका निग्रह करना चाहिए । जिस समय साधक लिङ्गनिग्रही हो जाता है अर्थात् मदको वशमें कर लेता है । उसी समय मायाके परास्त होनेका समय आता है ॥ १८ ॥ वास्तवमें माया और है ही क्या, इन्हीं काम-आदि दुष्टोंके संघसे मायाका निर्माण हुआ करता है । इसके परास्त हो जानेपर प्राणीको आनन्द ही आनन्द रहता है । जब मायाका त्याग हो जाता है, उस समय सात्त्विकी मायाका प्रादुर्भाव होता है । उस सात्त्विकी मायाके साथ प्राणी उत्तम हृदयाकाशका सुख अनुभव करने लगता है । उससे भी उत्कर्ष होनेपर महाकाशका निर्माण होता है । सत्, चित् और आनन्द ये तीनों वहाँ सदा विद्यमान रहते हैं ॥ १९ ॥ २० ॥ इसी महान् समुद्रमें कूद जानेको आत्माकी कल्याणदायिनी मुक्ति कहते हैं । चार प्रकारकी कही हुई मुक्तियोंमेंसे उसीको सायुज्य मुक्ति कहते हैं । हे सीते ! तुम्हारे स्नेहवश मैंने यह ज्ञानकी पिटारी खोलकर रख दी । इसमें गूढ़ अर्थवाले, वेदके सारसे परिपूर्ण तथा अज्ञानबुद्धिको नष्ट करनेवाले पन्द्रह श्लोकरूपी रत्न भरे हुए हैं । इन्हीके द्वारा मेरा मुख्य तत्त्व जाना जा सकता है । यह पिटारी मैं तुम्हें अर्पण करता हूँ । इसे सम्हालो और ज्ञानदृष्टिसे देखो । बार-बार इन बातोंका मनन करो तो मुझे अच्छी तरह समझ लोगी ॥ २१–२४ ॥ इस प्रकार रामकी बातें सुनकर सीताने उस ज्ञानकी पिटारीको अपने हृदयमें रख लिया । फिर उसे खोलकर बुद्धिदृष्टिसे कुछ देर देखती रहीं ॥ २५ ॥ तब सीताने अपनी सब क्रीडाओंका भेद जाना और हँसकर रामचन्द्रजीको प्रणाम किया ॥ २६ ॥ सीताको उस समय एक महान् आनन्दका अनुभव हुआ । उनकी आँखोंमें आँसू आ गये, शरीरके रोंगटे खड़े हो गये और थोड़ी देरके लिए सीताजी अपने आपको भी भूलकर चुप हो गयीं ॥ २७ ॥ इस प्रकार सीताको आनन्दित देखकर रामचन्द्रजीने पूछा—हे सीते ! तुमने उस पेटीमें क्या क्या तृप्तिदायक चीजें देखीं ? जिससे तुम्हें ऐसी प्रसन्नता प्राप्त हुई ॥ २८ ॥ क्यों, अब तो तुम्हारा अज्ञान दूर

ज्ञातं त्वया वा न ज्ञातं वेत्तुमिच्छामि त्वन्मुखात् ।
यदि किंचित्त्वया नार्या ज्ञातं तद्बोधयाम्यहम् ॥ ३० ॥

इति रामवचः श्रुत्वा निमग्नाऽऽनंदसागरे मंचकस्था रामचन्द्रं जानकी वाक्यमब्रवीत् ।।३१।।

श्रीसीतोवाच

राम रावणदर्पघ्न त्वद्दत्ता ज्ञानपेटिका । मयाऽवलोकिता बुद्ध्या लब्धं ज्ञानं तव प्रभो ॥३२॥
निर्गुणो निर्विकारस्त्वं क्रीडेयं सकला त्वया । मत्संगाद्दर्शिता भूम्यां कृत्वा लोकहिताय हि ॥३३॥
पेटिकायां यथा ज्ञातं मया तत्प्रवदामि ते । त्वया पंचदशश्लोकैर्युक्त गुह्यमुत्तमम् ॥३४॥
प्रकटं तत्करोम्यद्य तवाग्रे रघुनन्दन । सर्वेषां मन्दबुद्धीनां हिताय ज्ञानसिद्धये ।।३५॥
जनानां सम्बोधयितुं चरित्रं भवताऽत्र यत् । कृतं तस्य विचारेण ह्यात्मज्ञानं लभेन्नरः ।।३६॥
सच्चिदानन्दरूपी यो विष्णुर्ज्ञेयः स सागरः । भूभारहरणादीच्छा विष्णोर्या जायते शुभा ॥३७॥
स वै ज्ञेयस्तरंगोऽत्र तथात्मांशलवः शुभः । बहिःकृतः सागरात्स आत्माख्यः कथ्यते भुवि ॥३८॥
बुद्धिस्तु जननी चैव कौसल्या साऽत्र कथ्यते । शुद्धसत्त्वांतःकरणं पिता तस्यात्मनः स्मृतः ॥३९॥
राजा दशरथो ज्ञेयः श्रीमान्सत्यपराक्रमः । तस्यात्मनश्च चत्वारो भेदास्ते बन्धवः स्मृताः ।।४०॥
रामसौमित्रिभरतशत्रुघ्ना एव चात्र हि । तुर्यावस्थस्तेषु वरः स त्वं दशरथात्मजः ॥४१॥
ततो जाग्रदवस्थश्च लक्ष्मणः सोऽत्र कथ्ययते । स्वप्नावस्थस्तृतीयश्च भरतोऽपि निगद्यते ॥४२॥
अवरः सुषुप्त्यवस्थस्तु ज्ञेयः शत्रुघ्न एव सः । हृदयाकाशं तत्स्थानमयोध्याऽत्र स्मृता तु सा ॥४३॥
मनोवेगो बहिर्यात्रा विश्वामित्राध्वरे गमः । मनोदुर्वृत्तिघातश्च ताटिकाया वधोऽत्र सः ॥४४॥
मनोवेगस्य यो भंगः स धनुर्भंग उच्यते । मायायोगस्ततस्तस्य मत्पाणिग्रहणं स्मृतम् ।।४५॥
पूर्वसंस्कारनिग्रहो जामदग्नेर्विनिग्रहः । ततः कुबुद्धिहेतोर्हि कैकेय्या वरदानतः ॥४६॥

हुआ ? अच्छा, अब बताओ कि मैं कौन हूँ ? मुझे तुमने अपने मनमें क्या समझा है ? मैं तुम्हारे मुँहसे यह सुनना चाहता हूँ । तुमने मुझे जाना या नहीं ? यदि तुम्हें हमको जाननेमें अब भी कुछ कसर होगी तो मैं समझाऊँगा ॥ २९ ॥ ३० ॥ इस प्रकार रामचन्द्रजीकी बातें सुनकर सीताजी और भी आन्दित हो गयीं और रामचन्द्रसे कहने लगीं ॥ ३१ ॥ सीताजी बोलीं–हे रघुनन्दन ! हे रावणके गर्वको नष्ट करनेवाले राम ! आपने मुझे जो यह ज्ञानकी पिटरी दी है, उसे मैने अपनी ज्ञानदृष्टिसे खूब गौर करके देखा और मुझे आपका ज्ञान प्राप्त हो गया ॥३२॥ आप निर्गुण और निराकार हैं । फिर भी मेरे साथ संसारमें आपने जो-जो लीलाएँ की हैं, उनका उद्देश्य एकमात्र लोकहित है । मैंने इस पिटारीमें जो-जो देखा है, वह बतलाती हूँ । आपने पन्द्रह श्लोकोंमें मुझे जो उत्तम ज्ञान दिया है, उसे मैं आपके सम्मुख प्रकट करती हूँ ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ उससे संसारके समस्त अज्ञानियोंका उपकार होगा अर्थात् उन्हें भी ज्ञानकी प्राप्ति हो जायेगी ॥ ३५ ॥ मनुष्योंको समझानेके लिए आपने इस जगतीतलमें जो-जो चरित्र किये हैं, उनपर अच्छी तरह विचार करनेसे निःसन्देह आत्मज्ञानकी प्राप्ति हो सकती है ॥३६॥ सच्चिदानन्दस्वरूप विष्णु भगवान् ही सागर हैं। भगवान् जो पृथ्वीका भार उतारनेकी इच्छा करते हैं, वही उस सागरकी तरंगें हैं। उसका ही एक विन्दु आत्मांशरूप होकर बाहर आ जाता है। वही आत्मा कहलाता है । उसकी बुद्धिरूपा जननी कौसल्या हैं। शुद्ध और सतोगुणमय अन्तःकरण उस आत्माका पिता होता है, सो साक्षात् श्रीदशरथजी हैं । उस आत्माके चार भेद आपने बतलाये हैं । वे चार भाई राम, लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्नरूप होकर विद्यमान हैं । उनमें तुरीयावस्थाको श्रेष्ठ कहा है । सो इन चारों भाइयोंमें बड़े आप ही हैं ॥ ३७–४१ ॥ जाग्रदवस्थास्वरूप लक्ष्मणजी हैं, स्वप्नावस्थास्वरूप भरतजी तथा सुषुप्ति अवस्थास्वरूप शत्रुघ्नजी हैं । हृदयाकाश स्थान जो आपने बतलाया है, वह यही अयोध्या है ॥४२॥ मनोवेगका दूर होना जो आपने कहा, वही मानों विश्वामित्रके यज्ञमें आपकी यात्रा है । मनकी दुर्वृत्तियोंका घात ही ताड़का-वध है ॥ ४३ ॥ ४४ ॥ मनोवेगका भंजन ही जनकपुरमें धनुष टूटना है । वहाँ मेरा पाणिग्रहण होना ही मायाका

भवारण्येऽटनं प्रोक्तमटनं दंडकेऽत्र ते । दंभस्य निग्रहस्तत्र विराधस्यात्र निग्रहः ॥४७॥
आत्मनः पर्णकुटिका पंचभूतात्मकश्च सः । देहोऽयं पंचवटिका विश्रांत्यर्थं तवात्र सा ॥४८॥
कामस्य निग्रहः प्रोक्तः खरस्यात्र विनिग्रहः । क्रोधस्य निग्रहश्चापि दूषणस्यात्र निग्रहः ॥४९॥
लोभस्य मर्दनं तत्र त्रिशिरानिग्रहोऽत्र हि । तत्राशाकृंतनं प्रोक्तं बाणेनात्र विरूपणम् ॥५०॥
तस्याः सूर्पणखायाश्च मोहस्य निग्रहः स्मृतः । मृगमारीचघातोऽत्र शुद्धमायाश्रयस्ततः ॥५१॥
ममाश्रयस्ते वामांगे सात्त्विकया दंडके वने । रजोरूपा तु या माया जठराग्नौ स्मृता शुभा ॥५२॥
मम रजःस्वरूपायाः प्रवेशश्चानलेऽत्र सः । तामस्याश्चैव मायाया वियोगश्च तदा स्मृतः ॥५३॥
मम तमःस्वरूपाया हरणं रावणेन हि । सुखालाभो महान्क्लेशस्त्वत्तो मद्विरहस्ततः ॥५४॥
शोकवेगस्ततः प्रोक्तः कबंधस्य वधोऽत्र सः । विवेकस्याश्रयस्तत्र सुग्रीवस्याश्रयोऽत्र सः ॥५५॥
भक्त्युद्रेकलाभश्च तव लाभो हनूमतः । अविवेकवधः प्रोक्तश्चात्र वालिवधस्तथा ॥५६॥
उत्साहेन ततः संगः सा विभीषणमैत्रिकी । अज्ञानतरणोपायः सेतुबंधो महोदधौ ॥५७॥
त्रिगुणाश्रयगेहं वै लिंगदेहाह्वये शुभे । त्रिकूटाचलसंस्थायां लंकायां रघुनन्दन ॥५८॥
मदस्य निग्रहस्तत्र कुंभकर्णवधस्त्वया । निग्रहो मत्सरस्यापि मेघनादवधोऽत्र सः ॥५९॥
तत्राहंकारघातश्च रावणस्य वधस्त्वया । मायानामैक्यता चापि त्रिविधा या ममैक्यता ॥६०॥
वियोगो लिंगदेहस्य लंकात्यागस्त्वयाऽत्र सः । हृदयाकाशगमनमयोध्यागमनं पुनः ॥६१॥
आनंदैकसुखं तत्र राज्यभोगस्त्वया सोऽत्र हि । मायात्यागस्ततश्चैव वाल्मीकेराश्रमे मम ॥६२॥
त्यागोऽग्र भावि श्रीराम त्वया सोऽत्र प्रकाशितः । सात्त्विकया ग्रहणं यच्च पुनर्मे ग्रहणं स्मृतम् ॥६३॥
सात्त्विकया मायया सार्द्धं तवोद्योगो मया सह । ततश्च हृदयाकाशं महाकाशे विलापयेत् ॥६४॥

योग है ॥ ४५ ॥ परशुरामका दर्पभञ्जन ही पूर्वसंस्कारका निग्रह है। इसके अनन्तर कुबुद्धिरूपिणी कैकेयीके बरदानसे आपका दण्डकारण्यमें घूमना ही भवारण्यमें भटकना है। दम्भका रोक लेना ही विराधवध है ॥ ४६ ॥ ४७ ॥ पञ्चभूतात्मक आत्मरूपिणी पर्णकुटी जो आपने बतलायी, वह यह शरीर ही है। जो आपके विहार करनेके लिए एक उपयुक्त स्थान है ॥ ४८ ॥ कामका निग्रह करना ही खर राक्षसका वध है और क्रोधका निग्रह दूषणका वध है ॥४९॥ लोभका निग्रह त्रिशिराका वध रहा गया है। आशाका विच्छेद जो आपने बतलाया, वह ही सूर्पणखाका विरूप करना है। मारीच मृगका वध करना ही मोहका निग्रह है। दण्डकवनमें आपने जो सत्त्वगुणमयी मुझको अपने वामभागमें रहनेको कहा था, वह ही शुद्ध मायाका आश्रय है। रजोगुण-रूपसे मेरा अग्निमें प्रवेश करना ही तामसी मायाका वियोग है। तमोगुणरूपसे मेरा रावणके द्वारा हरण होना ही सुखाभाव है। तुम्हारा-हमारा वियोग होना ही महाक्लेश है ॥ ५०-५४ ॥ इसके बाद कबन्धका वध करना ही शोकभङ्ग है। सुग्रीवकी मित्रता ही आश्रय है ॥ ५५ ॥ भक्तिके उद्रेकका लाभ आपको हनुमान्‌जीका मिलना है। बालिका वध करना ही अज्ञानका वध करना है ॥ ५६ ॥ उसके बाद विभीषणके साथ मैत्री होना ही उत्साहका सङ्ग है। समुद्रमें सेतुबन्धन ही अज्ञानसे तरनेका उपाय है ॥ ५७ ॥ आपका त्रिकूट पर्वतपर डेरा डालना ही लिंगात्मक देहमें त्रिगुणका आश्रय करना है ॥ ५८ ॥ कुम्भकर्णका वध ही मदका निग्रह है। मेघनादका वध मत्सरका निग्रह है ॥ ५९ ॥ आपने जो रावणका वध किया है, वह ही अहंकारका नाश है। मायाकी एकता जो आपने कही, वह हम तीनोंका एकत्र हो जाना है ॥ ६० ॥ लङ्काको त्यागना ही लिंगदेहका वियोग है। फिर अयोध्याके लिए पयान करना ही हृदयाकाशका गमन है ॥ ६१ ॥ आपका राज्यभोग करना ही एकमात्र आनन्दका अनुभव करना है। फिर मायाका त्याग जो आपने बतलाया, सो भविष्यमें वाल्मीकिके आश्रममें मेरा त्याग देना ही होगा। सात्त्विकी मायाका ग्रहण जो आपने बतलाया, सो मेरा पुनर्ग्रहण कर लेना होगा ॥ ६२ ॥ ६३ ॥ सात्त्विकी मायाके साथ उद्योग जो आपने कहा, सो मेरे साथ आपका

अयोध्यानगरीमग्रे वैकुण्ठं प्रति नेष्यसि । प्रवेशनं सागरे हि सच्चिदानन्दसंज्ञके ॥६५॥
नररूपं परित्यज्य विष्णुरूपप्रदर्शनम् । नृणां त्वया सैव मुक्तिः सायुज्यात्मन ईरिता ॥६६॥
एवं यद्यत्त्वया राम कृतं कर्म शुभाशुभम् । तत्सर्वं जनबोधाय सर्वेषां च हिताय हि ॥६७॥
कर्तव्यमप्यकर्तव्यं कर्मातीतस्य किं तव । निर्गुणस्यात्मरूपस्य सच्चिदानन्दरूपिणः ॥६८॥
इत्थं त्वयोपदिष्टा मे शुभा संज्ञानपेटिका । अहं तस्या विचारेण जीवन्मुक्ता न संशयः ॥६९॥
देहे रामायणं सर्वं यत्त्वया मम दर्शितम् । पञ्चदशश्लोकरत्नैः कण्ठे तद्धारवत्कृतम् ॥७०॥
श्लोकरत्नमयं यो वै कण्ठे हारं बिभर्ति हि । जीवन्मुक्तः क्षणादेव भविष्यति नरोत्तमः ॥७१॥
देहरामायणं नाम राम यत्कथितं त्वया । नेदृशं कथितं केन न कोऽप्यग्रे वदिष्यति ॥७२॥
मम प्रीत्योपदिष्टं हि त्वयैतद्रघुनन्दन । इत्थं कोऽपि न जानाति ब्रह्मादीनामगोचरम् ॥७३॥
गुह्यं रम्यं सुदुर्बोधं स्वल्पं ज्ञानप्रकाशितम् । देहरामायणं चैतच्छ्रवणात्पातकापहम् ॥७४॥
इति सीतावचः श्रुत्वा प्रहस्य राघवोऽब्रवीत् । विदेहतनये साध्वि धन्याऽसि गजगामिनि ॥७५॥
सम्यग्विचारिता बुद्ध्या त्वया सज्ञानपेटिका । किंचिन्न्यूनं त्वया नैव दृष्टमस्यां यथास्थितम् ॥७६॥
बुद्ध्या ज्ञानं मम ज्ञानं मोहजालनिकृंतनम् । कथनीयमिदं देहरामायणं न कस्यचित् ॥७७॥
एतद्गुह्यतमं प्रोक्तं तव प्रीत्या विदेहजे । दांभिकाय न दातव्यं नास्तिकाय शठाय च ॥७८॥
अभक्ताय द्विजद्वेष्ट्रे परदाररताय च । मलिनायातिक्रूराय निंदकाय जडाय च ॥७९॥
कलौ चैतत्तु वै गुह्यं भविष्यति न संशयः । सहस्रेषु नरः कश्चिज्ज्ञास्यत्येतन्न संशयः ॥८०॥
सर्ववेदांतसारं हि मया ते समुदीरितम् । देहरामायणं चैतद्भुक्तिमुक्तिप्रदं वरम् ॥८१॥

विहार करना है। उसके बाद आपने हृदयाकाशको महाकाशमें मिला देनेको जो कहा है, वह ही आपका अयोध्याको अपने साथ वैकुण्ठ लोकमें ले जाना होगा। इस स्वरूपका परित्याग करके फिर अपने विष्णुस्वरूपको धारण करना ही सच्चिदानंदसंज्ञक सागरमें गोते लगाना होगा ॥६४॥६५॥ नररूपको छोड़कर विष्णुरूप दिखाना ही आत्माकी सायुज्य मुक्ति है ॥ ६६ ॥ इस प्रकार हे रामचन्द्रजी ! आपने इस संसारमें जो जो कर्म किये हैं, वे सब लोगोंको ज्ञानी बनाने और उनका कल्याण करनेके लिए ही हैं ॥ ६७ ॥ इसके सिवाय आप जो कुछ भी कर चलें, वह ही ठीक है। अकर्त्तव्य भी आपके लिये कर्तव्य ही है। क्योंकि आप कर्मसे अतीत हैं, निर्गुण हैं, सच्चिदानन्दरूप हैं ॥ ६८ ॥ इस प्रकार आपके द्वारा उपदिष्ट यह ज्ञानकी पिटारी है। इसपर बार-बार विचार करनेसे मैं तो जीवन्मुक्त हो गयी । इसमें कोई भी संशय नहीं है ॥ ६९ ॥ इस शरीरमें आपने जो १५ श्लोकोंके रामायणका उपदेश दिया, उसे मैंने हारकी तरह अपने गलेमें डाल दिया है ॥ ७० ॥ इन श्लोकरूपी रत्नोंकी मालाको जो प्राणी अपने गलेमें डालेगा, वह पुरुषश्रेष्ठ क्षणमात्रमें जीवन्मुक्त हो जायगा ॥ ७१ ॥ हे राम ! आपने यह जैसा देहरामायण कहा है, वैसा न अब तक किसीने कहा है और न भविष्यमें कोई कहेगा ॥ ७२ ॥ हे रघुनन्दन ! इसे आपने केवल मेरे अनुरागसे प्रकट किया है। इस देहरामायणको कोई भी नहीं जानता। क्योंकि यह ब्रह्मादिक देवताओंको भी अलभ्य है ॥ ७३ ॥ यह गूढ़, रम्य और दुर्बोध ज्ञान थोड़ेमें आपने मुझे बतलाया है। इस देहरामायणके श्रवणसे सब पातक नष्ट हो जाते हैं ॥ ७४ ॥ इस तरह सीताकी बात सुनकर रामचंद्रजीने हँसकर कहा—हे विदेहतनये ! तुम साध्वी हो, धन्य हो। तुमने मेरी ज्ञानकी पिटारीको खूब देखा और इसका जो वास्तविक स्वरूप था, सो भी जान लिया। बुद्धिदृष्टिसे देखनेवालोंके लिये यह देहरामायण मोहका नाश करनेवाला है। यह रामायण जैसे तैसे मनुष्योंसे कहनेकी आवश्यकता नहीं है ॥ ७५-७७ ॥ हे प्रिये सीते ! तुम्हारे अनुरागसे ही मैंने आज इसे तुम्हें बतलाया है । इसे पाखण्डी, नास्तिक तथा दुष्ट पुरुषोंसे मत कहना ॥ ७८ ॥ उन्हें भी न बतलाना, जो ब्राह्मणोंसे द्वेष करते हैं, दूसरेकी बहू-बेटियोंको बुरी दृष्टिसे देखते हैं, जो मलिन प्रकृतिके क्रूर, निन्दक एवं जड़ स्वभावके हैं ॥७९॥ कलियुगमें यह गुप्त रहेगा। हजारों प्राणियोंमें एक-आध मनुष्य ही इसे जान सकेंगे। इसमें कोई सन्देह नहीं है ॥ ८० ॥ यह समस्त

18.

इत्युक्त्वा राघवः सीतां पर्यङ्के रत्नमण्डिते । सुष्वाप सीतया रात्रौ दासीभिर्वीजितः सुखम् ॥८२॥

इति श्रीशतकोटिरामचरितांतर्गते श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये विलासकाण्डे देहरामायणं नाम तृतीयः सर्गः ॥ ३ ॥

चतुर्थः सर्गः

(सीताके विविध अलङ्कारोंका वर्णन)

श्रीरामदास उवाच

चतुर्नाड्यवशिष्टायां निशायां रघुनायकम् । उद्बोधनार्थं संप्राप्ता रतिशालाबहिः स्थिताः ॥ १ ॥
वन्दिनो मागधाः सूता नर्त्तक्यश्च नटादयः । वादयामासुर्वाद्यानि ननृतुश्चाप्सरोगणाः ॥ २ ॥
जगुर्मङ्गलगीतानि स्तोत्राणि विविधानि च । प्राभातिकीं स्तुतिं प्रोचुः कलकण्ठैर्मनोरमैः ॥ ३ ॥

विघ्नेश्वरः सकलविघ्नविनाशदक्षो दक्षात्मजा भगवती हि सरस्वती च ।
दर्पाष्टभैरवगणा नव दिव्यदुर्गा देव्यः सुरास्तु नृपते तव सुप्रभातम् ॥ ४ ॥
भानुः शशी कुजबुधौ गुरुशुक्रमन्दा राहुः सकेतुरदितिर्दितिशादितेयाः ।
शक्रादयः कमलभूः पुरुपोत्तमेन्द्रोः रुद्रः करोतु सततं तव सुप्रभातम् ॥ ५ ॥
पृथ्वी जलं ज्वलनमारुतपुष्कराणि सप्ताद्रयोऽपि भुवनानि चतुर्दशैव ।
शैला वनानि सरितः परितः पवित्रा गङ्गादयो विदधतां तव सुप्रभातम् ॥ ६ ॥
दिक्चक्रमेतदखिलं दिगिभा दिगीशा नागाः सुपर्णभुजगा नगवीरुधश्च ।
पुण्यानि देवसदनानि बिलानि दिव्यान्यव्याहतं विदधतां तव सुप्रभातम् ॥ ७ ॥
वेदाः षडङ्गसहिताः स्मृतयः पुराणं काव्यं सदागमपथो मुनयोऽपि दिव्याः ।
व्यासादयः परमकारुणिका ऋषीणां गोत्राणि वै विदधतां तव सुप्रभातम् ॥ ८ ॥

वेदान्तका निचोड़ मैंने तुम्हें बतला दिया। यह देहरामायण भुक्ति तथा मुक्ति दोनोंका फल देनेवाला है ॥ ८१ ॥ इतना कहकर रामचन्द्रजी सीताके साथ रत्नजटित पलङ्गपर सो गये और दासियाँ पंखा झलने लगीं ॥ ८२ ॥ इति श्रीशतकोटिरामचरितांतर्गते श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये पं० रामतेजपाण्डेयविरचित'ज्योत्स्ना'-भाषाटीकासमन्विते विलासकाण्डे तृतीयः सर्गः ॥ ३ ॥

श्रीरामदासजी कहने लगे—जब चार घड़ी रात बाकी रह जाती थी, तभी भगवान्‌को जगानेके लिए बंदीजन, मागध, सूत, नाचनेवाली वेश्याएँ और नट आदि लोग रतिशालाके बाहर आकर बाजे बजाते थे और नर्तकियां नाचती थीं ॥ १ ॥ २ ॥ अन्य लोग भी मङ्गल-गायन, विविध प्रकारके स्तोत्र पाठतया अपने कोमल कण्ठसे प्रातःकालकी स्तुतियाँ किया करते थे । वे कहते थे—॥ ३ ॥ हे नृपते! समस्त विघ्नसमूहको नष्ट करनेमें निपुण विघ्नेश्वर (गणेशजी), दक्षकुमारी भगवती पार्वती, सरस्वती, अभिमानकी मूर्ति अष्टभैरव-गण, नौ दिव्य दुर्गाएँ तथा अन्यान्य देवतागण ये सब आपका प्रभात मङ्गलमय करें ॥ ४ ॥ सूर्य, चंद्रमा, मङ्गल, बुध, गुरु, शुक्र, शनि, राहु, केतु, दिति तथा अदितिके पुत्र इंद्रादि देवता, ब्रह्मा, विष्णु और महेश ये सब आपका प्रभात मङ्गलमय करें ॥ ५ ॥ पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, तड़ाग, सप्त पर्वत, चतुर्दश भुवन, शैल, वन और भुवनविख्यात गङ्गा आदि नदियाँ आपका प्रभात मङ्गलमय करें ॥ ६ ॥ समस्त दिक्चक्र (दसों दिशाएँ), दिग्गज, दिक्पाल, नाग, सुपर्ण, पर्वतोंकी लताएँ, पवित्र देवालय और गिरिकन्दराएँ ये सब सर्वदा आपका प्रभात मङ्गलमय करें ॥ ७ ॥ षडङ्ग सहित चारों वेद, स्मृति, पुराण, काव्य, अच्छे-अच्छे शतपथ ब्राह्मण आदि ग्रन्थ, व्यास आदि दिव्य मुनिगण तथा ऋषियोंके गोत्र आपका प्रभात मङ्गलमय करें ॥ ८ ॥

इति वंदिजनैः सूतैः स्तोत्रैर्गीतादिभिः स्तुतः । नानापक्षिसमूहैश्च पूर्वोक्तैः पंजरस्थितैः ॥ ९ ॥
स्तुतो वादित्रनिनदैर्नवाद्यस्वनैरपि । सुप्रबुद्धो बभूवाथ रामचन्द्रः ससीतया ॥१०॥
आदौ प्रबुद्धा सा सीता पश्चाद्बुद्धो रघूत्तमः । रामः सुरान्मुनींस्तातं मातरं सरयूं गुरुम् ॥११॥
चिंतामणिं कामधेनुं चिंतयामास चेतसि । ततः सीताऽपि सा दुर्गां गंगां वाणीं रघूत्तमम् ॥१२॥
चिंतयामास कौसल्यां गुरुपत्नीं स्वमातरम् । ततो नत्वा रामचन्द्रं विनयावनता स्थिता ॥१३॥
आवश्यकं तु संपाद्य कृत्वा शौचविधिं क्रमात् । दंतशुद्धिं चकाराथ रामचन्द्रः सविस्तरम् ॥१४॥
आवश्यकं तु संपाद्य कृत्वा शौचविधिं क्रमात् । हुत्वाऽग्निहोत्रविधिना कृत्वा देवार्चनं गृहे ॥१५॥
ददौ दानान्यनेकानि ब्राह्मणेभ्यो यथाक्रमम् । एतस्मिन्नंतरे स्नात्वा सीता देवी प्रपूज्य च ॥१६॥
देवानग्नीन्द्विजान्नत्वा श्वश्रूर्नत्वा यथाक्रमम् । ततो नत्वा रामचन्द्रं तत्पार्श्वे यत्नतः स्थिता ॥१७॥
अथ रामो वसिष्ठस्य मुखात्पौराणिकीं कथाम् । सीतया मातृभिर्युक्तो बंधुभिश्च सुहृज्जनैः ॥१८॥
सम्यक् श्रुत्वैकचित्तेन पूजयामास तं गुरुम् । ततो नत्वा गुरुं रामो गुरुपत्नीं च मातरम् ॥१९॥
सर्वा मातृश्च विप्रांश्च पंडितान् वैदिकान् मुनीन् । योगनिष्ठांस्तपोनिष्टान् विप्रान् ज्योतिर्विदस्तथा॥२०॥
मीमांसकांस्तार्किकांश्च मंत्रशास्त्रविशारदान् । धर्मशास्त्रविदश्चैव वंद्यानन्यान् वयोधिकान् ॥२१॥
पूजयामास श्रीरामः सीतया प्रणनाम तान् । अथ सीता हेमपात्रे पूजोपकरणानि सा ॥२२॥
गृहीत्वा स्वसखीभिश्च नत्वा सुरभिमर्चयत् । नानोपचारैः सम्पूज्य पक्वान्नैर्नवनिर्मितैः ॥२३॥
विचित्रैः पायसाद्यैश्च सा तां धेनुमतोषयत् । ततः प्रदक्षिणां कृत्वा प्रार्थयामास जानकी ॥२४॥
कामधेनो नमस्तुभ्यं पक्वान्नादीनि वेगतः । दिव्यान्नानि भूसुरेभ्यो रामादिभ्यस्त्वमर्पय ॥२५॥
इति सा प्रार्थनां कृत्वा कामधेनोस्तु जानकी । तदधो रुक्मपात्राणि स्थापयामास कोटिशः ॥२६॥

इस प्रकार बहुतसे बन्दीजन, मागध, सूत आदि तथा पालतू पक्षियोंके मृदु वचनों द्वारा जगाये जानेपर सीताके साथ-साथ रामचन्द्रजी सोकर उठ जाते थे ॥ ९ ॥ १० ॥ पहले सीताजी उठतीं, फिर रामचन्द्रजी जागते थे। सोकर उठनेपर रामचन्द्रजी देवताओंको, मुनियोंको, पिताको, माताको, सरयू, गुरु (वसिष्ठ), चिन्तामणि और कामधेनुको मन ही मन स्मरण करते थे। महारानी सीताजी भी दुर्गा, गङ्गा, सरस्वती, रघूत्तम (दशरथजी), अपनी माता, गुरुपत्नी अरुन्धती और अपनी सास कौसल्या आदिका सवेरे सो उठकर स्मरण किया करती थीं। इसके अनन्तर नम्रतापूर्वक रामचन्द्रजीको प्रणाम करके वे अपने नित्यकर्ममें लग जाती थीं ॥ ११–१३ ॥ उधर रामजी भी शौचादि कृत्योंसे निवृत्त होकर अच्छी तरह दातौन करते थे ॥ १४ ॥ तदनन्तर रामतीर्थपर जाकर स्नानादि नित्यनियम करके घरपर लौट आते और अग्निहोत्रविधिके साथ देवताओंका पूजन करते थे ॥ १५ ॥ तब ब्राह्मणोंको दान देते थे। इसी बीच सीताजी भी स्नान करके देवीपूजनसे निवृत्त होकर देवता, अग्नि, ब्राह्मणों और कौसल्या आदि सासुओंको क्रमशः प्रणाम करनेके पश्चात् रामचन्द्रजीकी पदवन्दना करतीं और उनके पास जा बैठती थीं ॥ १६ ॥ १७ ॥ तदनन्तर रामचन्द्रजी गुरु वसिष्ठके मुखसे पुराणोंकी कथाएँ सुनते थे। उस समय सब माताएँ, भाई तथा मित्रमण्डल रामचन्द्रजीके साथ ही रहता था ॥ १८ ॥ खूब सावधानीके साथ कथा सुनकर राम गुरुवसिष्ठकी पूजा करते थे। फिर गुरु, गुरुपत्नी तथा अपनी माताओंको प्रणाम करके माताओं, ब्राह्मणों, पंडितों, वैदिकों, मुनियों, योगनिष्ठ तथा तपःनिष्ठ, ब्राह्मणों, ज्योतिषियों, मीमांसकों, तार्किकों, मंत्रशास्त्रमें निपुण विद्वानों और वयोवृद्ध धर्मशास्त्रियोंकी सीताके साथ-साथ रामचन्द्रजी विधिवत् पूजा करते थे। इसके पश्चात् सीताजी एक सुवर्णके थालमें पूजनकी सामग्रियाँ लेकर ॥ १९–२२ ॥ सखियोंके साथ सुरभी (कामधेनु) की पूजा करती थीं और
19 अनेक पकवान तथा विचित्र रीतिसे तैयार किये गये हविष्यान्नोंको खिलाकर उसे प्रसन्न करती थीं। फिर प्रदक्षिणा करके इस प्रकार कामधेनुकी स्तुति करती हुई कहती थीं—॥ २३ ॥ २४ ॥ हे कामधेनो ! आपको

दिव्यान्नैः परिपूर्णानि चकार सुरभिस्त्वपि ।
ततः शीघ्रं हेमपात्रैर्गृहीत्वान्नानि पृथग्जवात् ॥
परिवेषणार्थं सन्तुष्टा ययौ नूपुरगर्जिता ॥२७॥
एतस्मिन्नन्तरे रामश्चोपाहारार्थमादरात् । विप्रानिष्टान्मन्त्रिणश्च समाहूय सहस्रशः ॥२८॥
उपाविशद्भोजनस्य शालायां तैः समन्वितः । रुक्मपीठे तु सर्वे ते नेमिरेऽचोपमाः स्थिताः ॥२९॥
पीतकौशेयवस्त्राद्यैर्भूषिता रुक्ममण्डनैः । पूजिता राघवेणापि गन्धमाल्यादिभिर्मुदा ॥३०॥
स्त्रीभी रुक्मत्रिपदासु रुक्मपात्राणि च पृथक् । रंगावलीविचित्रायां भूमौ न्यस्तानि तत्पुरः ॥३१॥
हेमोद्भवानि पानीयपात्राण्यपि पृथक् पृथक् । सोमपात्राणि चित्राणि रत्नदीपयुतानि च ॥३२॥
स्थापयामासुः श्रीरामबन्धुपत्न्यस्त्वरान्विताः । एतस्मिन्नन्तरे सर्वैः श्रुतो मंजुलनिःस्वनः ॥३३॥
नूपुराणां किंकिणीनां कंकणानां मनोरमः । रत्नमौक्तिकमालानां घर्षणादुत्थितो महान् ॥३४॥
तं मंजुलस्वनं श्रुत्वा कस्यायं श्रूयते स्वनः । इति संदिग्धचित्तास्ते व्यग्रनेत्रैरितस्ततः ॥३५॥
अपश्यन् ब्राह्मणाद्याश्च तावत्सीतां व्यलोकयन् । तडित्पुंजोपमां दिव्यां शतकोटिरविप्रभाम् ॥३६॥
यस्यांगुलिषु सर्वत्र पादयोर्विविधानि च । मत्स्यकच्छपनक्रादिचिह्नितान्युज्ज्वलानि च ॥३७॥
ददृशू रत्नचित्राणि हैमान्याभरणानि ते । तत ऊर्ध्वं किंकिणीनां पादयोर्नूपुराणि च ॥३८॥
शृंखला विविधा रम्यास्तथा गुर्जरदेशजाः । नानानूपुरभेदाश्च कंकणान्युज्ज्वलानि च ॥३९॥
रत्नकंकणगर्भाणि दिव्यरुक्कोद्भवानि च । ददृशुस्ते हि सीताया माणिक्यचित्रितानि च ॥४०॥
तस्याः कट्यां ददृशुस्ते पीतकौशेयमुज्ज्वलम् । मुक्ताजालरुक्मतंतुपुष्पराजिविराजितम् ॥४१॥
नवीनं गतिचांचल्यात्कृतमंजुलनिःस्वनम् । आदर्शबिंबसंयुक्तं सुगन्धामोदमोदितम् ॥४२॥
वस्त्रोपरि ददृशुस्ते रशनां रुक्मतन्तुजाम् । रत्नकङ्कणगर्भाभिः किंकिणीभिर्विराजिताम् ॥४३॥

नमस्कार है। कृपा करके आप साधु-ब्राह्मणोंके लिए पक्वान्न तथा दिव्यान्नका प्रबन्ध कर दें। जानकीजी इस प्रकार प्रार्थना करके करोड़ों सुवर्णके पात्र कामधेनुके पास मँगवाकर रखवा देती थीं और कामधेनु उन सबको विविध प्रकारके पकवानोंसे भर दिया करती थीं। उन्हीं हेमपात्रोंमेंसे सब पदार्थ ले-लेकर युवतियां नूपुरके शब्दसे उस यज्ञमण्डपको शब्दायमान करती हुई अभ्यागतोंको परोसती थीं ॥ २५–२७ ॥ इसके अनन्तर रामचन्द्रजी अपने साथ हजारों ब्राह्मणों तथा हित-मित्रोंको सादर बुलाकर पाकशालामें सुवर्णके पीढ़ोंपर बिठलाते थे। उस समय पीले कौशेय वस्त्र तथा सुवर्णसे विभूषित विप्रगण एवं मित्रमण्डलका रामचन्द्रजी गन्धमाल्यादिक अनेक उपचारोंसे पूजन करते थे ॥ २८–३० ॥ वहाँ सुवर्णकी तिपाइयोंपर घड़ोंमें जल भर-भरकर रखा था। पास ही जल पीनेके लिए छोटे-छोटे बहुतसे सुवर्णके बर्तन रक्खे हुए थे। उनको झटपट उठा-उठाकर रामचन्द्रजीकी भ्रातृवधुओंने लाकर उनके सामने रख दिया। इतनेमें सबको एक मनोहर ध्वनि सुनाई दी। जो नूपुर, किंकिणी और कंकणके संघर्षसे निकला हुआ शब्द मालूम पड़ता था ॥ ३१–३४ ॥ उस मञ्जुल शब्दको सुनकर यह कैसा शब्द सुनाई दे रहा है, इस तरह सोचते हुए व्यग्र नेत्रोंसे लोग इधर-उधर देखने लगे ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ कुछ देर बाद लोगोंने सीताजीको आते देखा। जो अनेक विद्युत्पुञ्ज एवं सैकड़ों सूर्यकी भाँति प्रकाशमयी थीं। जिनके पाँवोंकी अंगुलियोंमें मछली-कछुए आदिके आकारवाले देदीप्यमान आभूषण पड़े थे ॥ ३७ ॥ रत्नोंकी चमकसे चित्र-विचित्र सुवर्णके आभूषण सुशोभित हो रहे थे। किंकिणीके ऊपर दोनों पैरोंमें नूपुर थे। उसके ऊपर विविध प्रकारकी सुन्दर मेखलायें पड़ी थीं। अनेक तरहके नूपुर और नाना प्रकारके उज्ज्वल कंकण हाथोंमें पड़े हुए थे। सीताजीकी कमरमें एक रेशमी वस्त्र था। जिसमें मोतियोंकी झालर लगी हुई थी और सुवर्णके तारोंसे फूल-पत्तीकी चित्रकारी बनी हुई थी ॥३८–४१॥ गतिकी चंचलतावश उसमेंसे एक मधुर ध्वनि निकल रही थी। उनकी साड़ीमें जगह-जगह मयूर, सिंह, वृष,

केकिसिंहवृषव्याघ्रमृगचित्रविचित्रिताम् । पीतरक्तहरिन्नीलकृष्णमाणिक्यमण्डिताम् ॥४४॥
तत ऊर्ध्वं ददृशुस्ते पदकान्युज्ज्वलानि हि । रंभाफलोपमान्येव हैमान्याभरणानि च ॥४५॥
सकांचनशृंखलानि काचद्रवयुतानि च । नानारत्नविचित्राणि मुकुरैर्मंडितान्यपि ॥४६॥
नानामाणिक्ययुक्तानि दीप्तिमन्त्युज्ज्वलानिहि ततो ददृशुस्ते दिव्यान् रुक्महारान् विचित्रितान्॥ ४७॥
नवरत्नयुतान्हारान्मुक्ताहारांश्च शृंखलाः । मूर्तिमाला रुक्मजाश्च यवमाला विचित्रिताः । ४८॥
पुष्पमालाः कांचनजाः सारिका रत्नमण्डिताः रुक्मगुंजान्विता माला हेमधात्रिफलान्विताः ॥४९॥
प्रवालमणिमुक्तासम्मिश्रिताश्चित्रचित्रिताः । चंपसूक्ष्मकलिकया सदृशा हेममालिकाः ॥५०॥
कण्ठे मंगलसूत्रं च पेटिका रत्नभूषिता । कांचनानां सुसूक्ष्माणां मणीनां विविधानि च ॥५१॥
गुच्छैः कण्ठभूषणानि मुक्तागुच्छयुतान्यपि । ददृशुस्ते हि सीतायाः कण्ठे हैमान्यनेकशः ॥५२॥
रशनासदृशान्येव ग्रीवायां भूषणान्यपि । प्रवालमणिमाणिक्यरचितान्युज्ज्वलानि च ॥५३॥
मुक्तागुच्छान् काचगुच्छान् मणिगुच्छैर्विचित्रितान् ।
प्रवालमणिगुच्छांश्च रत्नपुष्पविगुंफितान् ।।५४॥
ततो ददृशुस्ते सर्वे मैथिलीकुचकचुकीम् । हेमतन्तुभवां चित्रां मुक्तामाणिक्यगुंफिताम् ॥ ५५॥
आदर्शबिंबसंयुक्तां पुष्पराजिविराजिताम् । मयूरशुकवृक्षैश्च लवंगैस्तन्तुनिर्मितैः ॥५६॥
चित्रितां श्रमघर्मेणार्द्रां संलग्नां दृढं तनौ । ततो ददृशुर्भुजयोः केयूरे रत्नमंडिते ॥५७॥
वज्रकंकणसादृश्ये हेममाणिक्यनिर्मिते । रत्नचित्रविचित्राश्च भुजयोः पेटिकाः शुभाः ॥५८॥
हेमतन्तुभवैर्लंबमानगुच्छैः सुमण्डिताः । प्रवालमणिमुक्तानां नानागुच्छैर्युता अपि ॥५९॥
तदधः करयोः सर्वे ददृशुर्भूषणानि ते । रत्नमाणिक्यमुक्ताभिश्चित्रितौ हेमसम्भवौ ॥६०॥
करचूडौ दीप्तिमंतौ हेमपुष्पादिचित्रितौ । काचकंकणमध्यस्थौ चन्द्रसूर्योपमौ त्विषा ॥६१॥

व्याघ्र और मृग आदिके चित्र बने थे। पीले, लाल, हरे, नीले और काले मणि स्थान-स्थानपर जड़े हुए थे ॥ ४२-४४ ॥ उसके ऊपर लोगोंने देखा कि भाँति-भाँतिके आभूषण पड़े हैं । कहीं सोनेकी जंजीरें हैं, कहीं काँचका काम बना है और कहीं तरह-तरहके रत्नोंकी सजावट है ॥ ४५ ॥ ४६ ॥ कई तरहके मणियोंके आभूषण देदीप्यमान हो रहे हैं । नौ रत्नोंसे जड़ा हुआ हार है। मोतियोंकी माला है। सोनेकी जंजीरें हैं । मोतीमाला, सुवर्ण एवं यवकी मालायें पड़ी हुई हैं ॥ ४७ ॥ ४८ ॥ फूलोंकी माला, कञ्चनकी माला, कञ्चन और गुञ्जाकी मिश्रित माला, सुवर्णनिर्मित आँवलेकी माला, प्रबाल तथा अन्यान्य मणियोंसे मिश्रित माला, 'चंपाकी कलीके समान बनी हुई सुवर्णकी माला, गलेका मंगलसूत्र, रत्न-जटित पेटी, सुवर्ण तथा सूक्ष्म मणियोंके बने हुए गुच्छे और मोतियोंके झुब्बोंको लोगोंने सीताके गलेमें देखा ॥ ४९-५२ ॥ ठीक करधनीके समान ही सीताकी ग्रीवाके आभूषण भी दीख पड़ते थे। उनमें भी प्रबाल और मणि-माणिक्य आदि जड़े थे। मोतियोंके गुच्छे, काँचके गुच्छे और रत्नोंके गुच्छोंसे वे रंग-बिरंगे मालूम होते थे । इसके अनन्तर लोगोंने सीताजीकी चोली देखी। वह भी सुवर्णके तारासे बनी, मुक्ता-मणि-माणिक आदिसे सजी और फूलोंसे गुम्फित थी । जिसमें मयूर और तोतोंके चित्र बने थे, ऐसे वृक्षोंसे चित्रित एवं स्वेदबिन्दुओंसे भींगी तथा अंगमें चिपटी हुई वह चोली थी । इसके बाद सीताके रत्नमण्डित बाजूबन्दपर लोगोंकी दृष्टि पड़ी ॥ ५३-५७ ॥ वह भी विविध प्रकारके रत्नोंसे जटित थी और उनकी आभासे चित्र-विचित्र मालूम देती थी । फिर जिसमें जरीके काम किये हुए थे, सीताकी उस कमरपेटिकापर लोगोंकी दृष्टि पड़ी ॥ ५८ ॥ उसमें भी सुवर्णके तारोंके बड़े-बड़े गुच्छे लटक रहे थे । जगह-जगहपर प्रवाल-मणि-मुक्ता आदिकोंके गुच्छे लटके दीख रहे थे ॥ ५९ ॥ फिर दोनों हाथोंमें जो और आभूषण थे, उन्हें लोगोंने देखा । वे भी रत्न-माणिक और मोती आदिसे चित्रित सुवर्णके बने थे ॥ ६० ॥ हाथोंके दोनों कंकण सुवर्णके पुष्पसे सजे हुए

तदूर्ध्वाधः कंकणानि हेमजानि घनानि च । रत्नमाणिक्यमुक्ताभिश्चित्रितान्युज्ज्वलानि च ॥६२॥
प्रवालमणिमुक्तानां करहारादिचित्रितान् । करयोः सारिके दिव्ये ह्यूर्ध्वाधो रत्नमण्डिते ॥६३॥
तदूर्ध्वं कंकणान्येव पुष्पवल्ल्यंकितानि हि । दंतराज्युपमादीनि रत्नहेमोद्भवानि च ॥६४॥
अंगुलीषु ददृशुस्ते मुद्रिका रुक्मनिर्मिताः । रत्नमाणिक्यमुक्ताभिर्नीलमारकतैरपि ॥६५॥
प्रवालचन्द्रकांतैश्च सूर्यकांतैर्विचित्रिताः । नानापुष्पोपमा दिव्याः प्रतिपर्वसमाश्रिताः ॥६६॥
ततो ददृशुः सीताया रम्यं घ्राणेऽतिसोज्ज्वलम् । दिव्यं मयूरं चित्रं च वररुक्मविनिर्मितम् ॥६७॥
मणिमाणिक्यमुक्ताभिर्वररत्नैः सुमण्डितम् । लंबितैर्मौक्तिकादीनां वरगुच्छैः सुवेष्टितम् ॥६८॥
ततो ददृशुः सीतायाः कर्णयोर्भूषणानि ते । मकरध्वजसादृश्ये ताटंके रत्नचित्रिते ॥६९॥
मणिमाणिक्यमुक्ताभिर्गुम्फिते सोज्ज्वले वरे । रत्नपुष्पादिभिश्चित्रैश्चित्रिते रविभास्वरे ॥७०॥
ततो भ्रमरिके दिव्ये रुक्मरत्नविचित्रिते । मुक्ताभिर्गुम्फिते रम्ये हेमपुष्पाणि वै तथा ॥७१॥
कर्णयोः शृंखलाश्चित्रा ददृशू रुक्मनिर्मिताः । मुक्तागुच्छैर्गुम्फिताश्च रत्नमाणिक्यमण्डिताः ॥७२॥
आकर्णाभ्यां च सीमन्तपर्यन्तं भालपार्श्वयोः । हारवद्रुक्मजालानि माणिक्यसहितानि हि ॥७३॥
मुक्तागुच्छैर्गुम्फितानि वैदूर्यचित्रितान्यपि । ततस्तदूर्ध्वं सीताया ददृशुः शिरसि द्विजाः ॥७४॥
सीमन्तस्योत्तरे याम्ये केशेषु शशिभास्करौ । रुक्मजौ रत्नवैदूर्यमणिमुक्ताविचित्रितौ ॥७५॥
नीलकाश्मीरकांतैश्च विद्रुमैरतिशोभितौ । चन्द्रसूर्याविव स्वीयभासा दीपयतो दिशः ॥७६॥
निटिले तिलकं रत्नमणिमुक्ताविराजितम् । हैमं दिव्यमुज्ज्वलं च कोटिसूर्यसमप्रभम् ॥७७॥
ततो ददृशुः सीमंत मुक्ताहारैर्महोज्ज्वलम् । नानारत्नविचित्रं च सर्वेणितिलकावधि ॥७८॥
चूडामणिं च ददृशुस्ते जनकेन समर्पितम् । नानारत्नविचित्रं च मुक्तागुच्छविराजितम् ॥७९॥

थे। काँचकी बनी हुई चूड़ियोंके मध्यमें वे सूर्य और चन्द्रमाकी नाईं मालूम पड़ते थे ॥ ६१ ॥ उनके ऊपर-नीचे सुवर्णके मोटे-मोटे कड़े पड़े थे। वे भी नाना प्रकारके रत्नोंसे विचित्र दीप्ति धारण कर रहे थे ॥ ६२ ॥ उन्हींके ऊपर प्रवाल-मणि मुक्ता आदि रत्नोंसे एक-एक दिव्य सारिकाएँ बनी थीं ॥ ६३ ॥ उनके भी ऊपर रत्ननिर्मित फूलों और लताओंसे जटित कंकण पड़े थे ॥ ६४ ॥ उँगलियोंमें सुवर्णकी बनी रत्न, माणिक्य, नीलम, मरकत मणि आदिसे जटित अनेक अंगूठियाँ थीं। वे भी प्रवाल, चन्द्रकान्त और सूर्यकान्त आदि मणियोंसे विचित्र मालूम होती थीं ॥ ६५ ॥ ६६ ॥ इसके अनन्तर सब लोगोंने सीताकी नासामणिको देखा, जिसमें एक दिव्य स्वर्णमयूर बना हुआ था। वह भी नाना प्रकारके मणियोंसे अलंकृत था ॥ ६७ ॥ उसमें भी मणि-माणिक और मोतियोंके भुब्बे लटक रहे थे ॥६८॥ इसके बाद लोगोंने सीताके कर्णाभूषणोंको देखा। जिनमें मकरध्वजके सदृश विविध रत्नोसे चित्रित झुमके थे। उनमें भी मणि-माणिक और मोतियोंके झुब्बे लटक रहे थे। रत्ननिर्मित पुष्पोंसे वे सूर्यके समान देदीप्यमान हो रहे थे ॥ ६९ ॥ ७० ॥ फिर लोगोंने सीताके कानोंमें पड़ी दो भ्रमरिकाओंको देखा। वे भी सुवर्णकी बनी तथा रत्नोंके जड़ावसे चित्र-विचित्र मालूम होती थीं ॥ ७१ ॥ फिर सबोंने सीताकी उस कर्णशृङ्खलाको देखा, जो सुवर्णकी बनी तथा रत्नजटित थी और उसमें भी मोतियोंके गुच्छे लटक रहे थे ॥ ७२ ॥ कानसे लेकर सीमन्त पर्यन्त ललाटके अगल-बगल स्वर्ण-मणिक्यके आभूषण हारके समान मालूम पड़ते थे ॥ ७३ ॥ इसके अनन्तर सबोंने सीताके मस्तककी ओर देखा, जहाँ केशमें सूर्य और चन्द्रमा दिखाई पड़ते थे। वे भी सुवर्ण-रत्न-वैदूर्य-मणि-मुक्तासे चित्रित थे ॥७४॥७५॥ नीलम, कश्मीर कांतादिक मणियोंसे वे अतिशय शोभित हो रहे थे। वे अपनी अनुपम कान्तिसे दूसरे सूर्य-चन्द्रमाके समान दसों दिशाओंको प्रकाशित कर रहे थे ॥ ७६ ॥ ललाटमें रत्नों और मणि-मुक्ताओंसे बना हुआ तिलक था। वह भी सुवर्णका बना था और कोटि सूर्यके समान उसका प्रकाश था ॥ ७७ ॥ इसके अनन्तर उन्होंने सीताके सीमन्तमें अतिशय दीप्तिमान् एक चूड़ामणि देखा, जो वेणीसे लेकर तिलक पर्यन्त अपनी छटा दिखा रहा था ॥ ७८ ॥

ततो ददृशुः शिरसि मुक्ताजालानि भूसुराः । हेमन्ततन्तुगुंफितानि रत्नपुष्पयुतान्यपि ॥८०॥
मणिवैदूर्यकाश्मीरविद्रुमैश्चित्रितानि हि । तदूर्ध्वं पुष्पजालानि सुगंधीनि व्यलोकयन् ॥८१॥
ततो वेण्यां भूषणानि ददृशुस्ते वराणि हि । नानापक्ष्युपमान्येव माणिक्यचित्रितानि हि ।८२॥
पल्लवांतरवर्तीन्यतिदीप्त्युज्ज्वलानि च । हेमतन्तुमयान् गुच्छान् मुक्ताहारविमिश्रितान्।।८३।
लम्बमानान् ददृशुस्ते मणिमाणिक्यसंयुतान् । वेण्यग्रेसंस्थितान्रम्यान्पुष्पापीडसमन्वितान् ।८४॥
एवं सीतां ददृशुस्ते श्रमन्यस्तविभूषणाम् । सर्वालङ्काररहितां तां द्रष्टुं कोऽपि न क्षमः ॥८५॥
दिव्यालंकाररत्नानां प्रभया हतलोचनाः । वामहस्तेन पात्रं च दर्वीं दक्षिणसत्करे ॥८६॥
दधानां पद्मचरणां रत्नोत्पलकरां वराम् । पद्मास्यां पद्मपत्राक्षीं पद्मगर्भस्वरूपिणीम् ॥८७॥
दिव्यकर्पूरगंधैश्च चन्दनैरपि चर्चिताम् । स्फुरन्मंजीरचरणां दिव्यकंकणमण्डिताम् ।८८॥
स्वपदालक्तवर्णेन गतिं दर्शयतीं निजाम् । रत्नांगदधरां सीतां ददृशुस्ते द्विजादयः ॥८९॥
गजेंद्रगमनां रम्यां दिव्यपुष्पैः सुशोभिताम् । दिव्यमंदारकुसुममालाभिश्च सुशोभिताम् ॥९०॥
कस्तूरीकृततिलकां कुंकुमेन सुशोभिताम् । हरिद्रया कज्जलाद्यैर्मण्डितां च स्मिताननाम् ।९१॥
इति दृष्ट्वा जानकीं तेऽभूवन् चित्रोपमास्तदा । आत्मानं न विदुः सर्वे सीतासौंदर्यविस्मिताः ।।९२॥

इति श्रीशतकोटिरामचरितांतर्गते श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये विलासकांडे
सीताऽलंकारवर्णनं नाम चतुर्थः सर्गः ॥ ४॥

इसके अनन्तर उन राजाओंने सिरपर सुशोभित मोतियोंको देखा, जो सुवर्णके तारमें गुँथे थे और उनके बीच-बीचमें रत्ननिर्मित पुष्प पड़े हुए थे॥ ७९ ॥ ८० ॥ वे भी मणि-वैदूर्य काश्मीर-विद्रुम आदिसे चित्रित थे। उसके बाद उनके ऊपर लगे हुए सुगंधित फूलोंको देखा ॥ ८१ ॥ तदनन्तर वेणीमें लगे हुए सुन्दर आभूषणोंके ऊपर लोगोंकी दृष्टि पड़ी, जो विविध प्रकारके उन माणित्रय-चित्रित पक्षियों जैसे दीखते थे, जो पत्तोंके भीतर बैठे हुए अतिशय दीप्तिमान् हो रहे हों सुवर्णके तारोंसे बने गुच्छे मोतियोंके हारसे मिले तथा मणि-माणिकसंयुक्त थे। वे वेणीके अग्रभागमें लटके थे और उनमें नाना प्रकारके फूल गुँथे हुए थे॥ ८२-८४ ॥ सीताने बोझके डरसे बहुतसे आभूषणोंको निकाल दिया था। फिर भी सब प्रकारके अलङ्कारोंको धारण किये हुएके सदृश दीखनेवाली सीताको लोगोंने देखा सही, किन्तु कोई भी अच्छी तरह नहीं देख सका ॥ ८५ ॥ क्योंकि उन अलंकारोंकी प्रभाके आगे लोगोंकी दृष्टि ही नहीं ठहरती थी। सीताके बाएँ हाथमें एक पात्र था और दाहिने हाथमें कलछी थो ।। ८६ ॥ उनके चरण कमलसरीखे थे। रत्नोंसे बने हुए कमलकी नाईं सीताके हाथ थे। कमलके समान मुख, पद्मपत्रके समान आँखें तथा कदलीके खम्भेके भीतरी भागके समान कोमल स्वरूप था। दिव्य कपूर तथा चन्दनसे उनका समस्त शरीर चर्चित था। छमछम करता हुआ मंजीर पाँवोंमें था और दिव्य कंकण सीताके पाँवोंमें पड़े थे॥ ८७॥ ८८ ॥ रक्तवर्णके चरणोंसे वे अपनी मन्द गति दिखा रही थीं । रत्ननिर्मित बिजायठ हाथमें पड़े थे। इस प्रकारकी सीताको लोगोंने देखा ॥ ८९ ॥ गजेन्द्रके समान उसकी मन्द गति थी। दिव्य पुष्पोंसे सुशोभित तथा दिव्य मंदार विरचित मालाओंसे अलंकृत होकर कस्तूरीका तिलक लगाये हुए थीं, उनकी आँखोंमें काजल लगा था और वे मन्द-मन्द मुसका रही थीं। इस प्रकारकी सीताको देखकर देखनेवाले चित्रलिखित जैसे हो गये और उनके सौन्दर्यसे विस्मित होकर वे सब अपने आपको भूल गये॥९०-९२॥ इति श्रीशतकोटिरामचरितांतर्गते श्रीमदानन्दरामायणे 'ज्योत्स्ना'भाषाटीकासमन्विते विलासकाण्डे चतुर्थः सर्गः ॥ ४ ॥

पञ्चमः सर्गः

(रामसीताका जलविहार)

श्रीरामदास उवाच

अथ सीता क्षणेनैव चकार परिवेषणम् । हेमपात्रेषु सर्वेषां पक्वान्नैर्विविधैर्मुदा ॥ १ ॥
कामधेनूद्भवैश्चैव मण्डकान् पूर्णपूरितान् । वटकान् फेनिकांश्चापि पायसान्युज्ज्वलानि च ॥ २ ॥
पर्पटकान् लड्डुकांश्च कूष्मांडवटकांस्तथा । सुमृष्टतंडुलकृतान् दधिक्षीरं घृतं मधु ॥ ३ ॥
पृथक्कांचनद्रोणेषु जानकी पर्यवेषयत् । शर्कराः श्वेतवर्णाश्च तथैव खंडशर्कराः ॥ ४ ॥
मरिचाद्युपचारैश्च संस्कृतं तक्रमुत्तमम् । घृतपाचितशाकाश्च ह्युपशाका रुचिप्रदाः ॥ ५ ॥
तिलक्षस्मिश्रवटकानार्द्रकं बीजपूरकम् । आम्रादीनां रसांश्चापि रंभादीनि फलान्यपि ॥ ६ ॥
एवमादीन्यनेकानि चोष्यनि विविधानि च । तथा लेह्यानि पेयानि जानकी पर्यवेषयत् ॥ ७ ॥
ततो रामः सुहृन्मित्रैः कथां कुर्वन् सुखेन सः । अकरोदुपहारं च करशुद्धिं विधाय सः ॥ ८ ॥
सर्वेषां निजहस्तेन ददौ तांबूलमुत्तमम् ।स्वयं भुक्त्वाऽथ तांबूलं वासांसि परिधाय सः ॥ ९ ॥
बद्ध्वा वस्त्राणि सर्वाणि दृष्ट्वादर्शे निजं मुखम् ।आरुह्य शिबिकां दिव्यां मुक्तागुच्छविराजिताम्॥१०॥
हैमीं रत्नादिभिश्चित्रां ययौ निजगृहाद्बहिः । बन्धुभिः सचिवैरिष्टैस्तैस्तैः सर्वत्र वेष्टितः ॥११॥
स्तुतो वन्दिजनैः सर्वैर्ययौ स जानकीगृहम् । तत्र नत्वाऽथ कौसल्यां तथा मातर्यथाक्रमम् ॥१२॥
आशीर्भिरीडितस्ताभिर्ययौ रामः सभां वराम् । तत्र सिंहासने स्थित्वा मंत्रिभिर्लक्ष्मणादिभिः ॥१३॥
राजकार्याणि सर्वाणि चकार नीतिमत्तरः । शशास राज्यं धर्मेण बुद्धिमांश्चारुलोचनः ॥१४॥
चारैर्ज्ञात्वा स्थितिं सर्वां स्वराज्यस्य च सर्वथा । शशास राज्यं धर्मेण राघवो दीर्घलोचनः ॥१५॥
अथ सीतोपहारं स्वसखीभिश्चोर्मिलादिभिः । देवराणां कामिनीभिः स्वसृभिश्चाकरोत्सुखम् ॥१६॥
करशुद्धिं विधायाथ भुक्त्वा तांबूलमुत्तमम् । परिधाय हरिद्वस्त्रं तथा रक्तां तु कञ्चुकीम् ॥१७॥

श्रीरामदासने कहा—हे शिष्य ! इसके अनन्तर सीताने क्षण भरमें सबके आगे रक्खे हुए सुवर्णके पात्रोंमें विविध प्रकारके पकवान परोसे । वे पकवान कामधेनुके द्वारा उत्पन्न किये हुए थे। उनमें मण्डक, पूरनपूरी, वटक, फेन, दूधकी बनी खीर आदि, पापड़, लड्डू, कुम्हड़ापाग, चिउड़ा, दही, दूध, घी, शहद आदिकोंको जानकीजीने अलग-अलग स्वर्णनिर्मित पात्रोंमें परोसा ॥ १-३ ॥ सफेद शक्कर, लाल शक्कर, जीरा मिर्च आदि मसाला डालकर बना हुआ रायता, घीमें छौंके हुए नाना प्रकारके शाक, चटनी, तिलकी बनी हुई टिकिया, सूखा बीजपूरक, आमके रस, केले आदिके फल, इसी प्रकार चूसने लायक तरह-तरहके अँचार, चाटने लायक कितनी ही तरहकी चटनी और पीनेके लायक तस्मई आदि वस्तुओंको सीताजीने परोसा ॥ ४-७ ॥ इसके बाद रामचन्द्रजीने मित्रोंके साथ बातें करते हुए भोजन किया और हाथ धोकर सबको अपने हाथसे पान दिया । फिर स्वयं भी पान खाया और कपड़े बदले ॥ ८ ॥ ९ ॥ इसके बाद सब प्रकारके अस्त्र-शस्त्र बाँधकर आइनेमें मुख देखा और मोतियोंके गुच्छोंसे सजाई हुई पालकीपर सवार होकर घरसे बाहर निकले । बान्धव, मन्त्री, मित्र तथा दूत, ये सब चारों ओरसे रामचन्द्रजीको घेरे हुए थे ॥ १० ॥ ११ ॥ बंदीजन रास्तेमें भगवानकी स्तुति करते चलते थे। इस तरह सबको अपने साथ लिये हुए वे माताके भवनमें जा पहुँचे, वहाँ माता कौसल्या तथा अन्य माताओंको प्रणाम करके उनसे आशीर्वाद लिया और उन माताओंको भी साथ लिये हुए सभाभवनमें पहुँचे। वहाँ मन्त्रियों तथा लक्ष्मणादिक भ्राताओंके साथ सिंहासनपर बैठे ॥ १२ ॥ १३ ॥ वहाँपर राज्यसम्बन्धी समस्त कार्योंको खूब अच्छी तरह सोच-विचारकर किया । रामचन्द्रजी गुप्तचरों द्वारा अपने राज्यके सब समाचार मालूम करके धर्मपूर्वक शासन करते थे ॥ १४ ॥ उधर सीताजीने भी अपनी देवरानियों, बहिनों तथा सखियोंके साथ भोजन किया, हाथ धोया और ताम्बूलका उत्तम बीड़ा खाया । हरे रंगकी साड़ी तथा लाल रङ्गकी चोली जिसमें सुवर्णके

हेमतन्तुसुपुष्पाढ्यां मुक्ताजालविगुम्फिताम् । गेहान्तर्वर्त्युपवनशालायां संस्थिताऽभवत् ॥१७॥
सखीभिर्वेष्टिता रम्या घृताऽघोंकोपबर्हणा । ततो दिव्यानलङ्कारान्निजदेहे दधार सा ॥१८॥
ये मया कथिता नैव पूर्वन्यस्तान् श्रमेण तान्। कस्तेषां वर्णने सक्तो भवेदत्र नरोत्तमः ॥१९॥
चतुरास्यः कुण्ठितोऽभूत्पञ्चास्यश्च षडाननः । उच्चैःश्रवाश्च सप्तास्यः सहस्रास्योऽपि वर्णने ॥२०॥
श्रुत्वा सीतामुपवने गतां ते जलयन्त्रिणः । जलयन्त्राणि सर्वाणि चक्रुर्मुक्तानि वेगतः ॥२१॥
रत्नमञ्चकसंस्था सा सीता चामरवीजिता । जलयन्त्रकौतुकानि ददर्श नगवीरुधः ॥२२॥
एतस्मिन्नन्तरे रामो राजकार्याणि कृत्स्नशः। कृत्वा ययौ सभायाः स निजगेहं तु बन्धुभिः ॥२३॥
तदा दुन्दुभिनिर्घोषा नववाद्यस्वना अपि । शङ्खानां गोमुखानां च भेरीणां तुमुलस्वनाः ॥२४॥
बभूवुर्यत्र शब्दाश्च तूर्यादीनां स्वनाः शुभाः । ननृतुर्वारनार्यश्च तुष्टुवुर्मागधादयः ॥२५॥
तं स्वनं जानकी चापि श्रुत्वा चोपवने स्थिता । सम्भ्रमेण समुत्तीर्य मञ्चकाधो वरानना ॥२६॥
वामहस्ते झर्झरीं तां ह्युपपात्रं च दक्षिणे । धृत्वा करे सा वैदेही रामं प्रत्युज्जगाम वै ॥२७॥
एतस्मिन्नंतरे रामस्त्यक्त्वा तां शिबिकां बहिः । विसर्ज्य सकलाँल्लोकान् विवेश बन्धुभिर्गृहे ॥२८॥
एतस्मिन्नन्तरे दास्यः शतशो रुक्मभूषिताः । राघवाग्रे दुद्रुवुस्ताः स्वस्वकर्मसु तत्पराः ॥२९॥
काचित्तं व्यजनेनैव वीजयामास वेगतः । दधार चामरे काचित्काचिदासनमुत्तमम् ॥३०॥
काचित्तांबूलपात्रं सा काचिन्निष्ठीवनस्य च । पात्रं दधार काचित्तु जलकुम्भं मनोरमम् ॥३१॥
काचिद्दधार वस्त्राणां कोशं काचित्तु कार्मुकम् । काचिद्दधार तूणीरं काचित्खड्गं दधार सा ॥३२॥
एवमादीन्यनेकानि तदोपकरणानि ताः । जगृहू रामचन्द्रं तं वेष्टयामासुरादरात् ॥३३॥
ततो रामः शनैःपद्भ्यां ययौ जनकनन्दिनीम्। स्थितां तत्र प्रतीक्षन्तीं पतिं जलरुहेक्षणम् ॥३४॥

तारोंसे जगह-जगह बेल-बूटे बने थे, उसे पहिना और सबके साथ भवनके भीतर ही बने हुए उपवनमें जाकर बैठीं ॥ १५-१७ ॥ वहाँ सखियोंने उन्हें चारों ओरसे घेर लिया और सीताने विविध प्रकारके आभूषण पहने ॥ १८ ॥ जिन थोड़ेसे अलंकारोंको मैं बड़े परिश्रमके साथ खोजकर पहले कह आया हूँ, उन्हें यहाँ पूर्णरूपसे वर्णन करनेमें कौन श्रेष्ठ पुरुष समर्थ होगा ॥ १९ ॥ सीताकी उस अलौकिक शोभाका वर्णन करनेमें चतुरानन ब्रह्मा, पञ्चवक्त्र शिव, षडानन स्वामिकार्तिकेय, सात मुखवाले उच्चैःश्रवा और हजार मुखवाले शेषनागकी भी बुद्धि कुण्ठित हो गयी ॥ २० ॥ जलयंत्रके अधिकरियोंने जब सुना कि सीताजी उपवनमें आ गयी हैं, तब उन्होंने सब फौवारोंको बड़े वेगके साथ छोड़ दिया ॥ २१ ॥ तदनन्तर मणिकी बनी हुई चौकीपर बैठकर सीता फौवारोंके कौतुक तथा वृक्षोंकी शोभा देखने लगीं और दासियां सीताके ऊपर चँवर डुलाने लगीं ॥२२॥ इतनेमें रामचन्द्र भी राज्यसम्बन्धी सब काम करके भाइयोंके साथ अपने भवनसे आये ॥ २३ ॥ उस समय दुन्दुभीके शब्द, नवीन बाजोंकी ध्वनि और शङ्ख, गोमुख, भेरी आदिका घनघोर शब्द होने लगा ॥ २४ ॥ विविध वाद्ययन्त्रोंके शब्द और तुड़ही आदिकी ध्वनि सुनाई देने लगी, वेश्यायें नाचने लगीं और बन्दोजन भगवान्की स्तुति करने लगे ॥ २५ ॥ उन बाजोंके स्वर सुनकर सीता भी घबड़ाहटके साथ चौकीपरसे उतरकर बाँयें हाथमें झारी तथा एक उपपात्र लेकर रामकी ओर चलीं ॥ २६ ॥ २७ ॥ तबतक रामचन्द्रजी भी पालकीसे उतरे और सब लोगोंको विदा करके भ्राताओंके साथ घरके भीतर गये ॥ २८ ॥ इतनेमें विविध प्रकारके अलङ्कारोंको पहने हुए सैकड़ों दासियां अपना-अपना काम करनेके लिये दौड़ पड़ीं ॥ २९ ॥ कोई भगवान्को पंखा झलने लगी । किसीने चमर ले लिया । कोई आसन बिछाने लगी। किसीने पानदान, किसोने उगालदान, किसीने सुन्दर जलपात्र और किसीने कपड़े रखनेकी पेटी सम्हाल ली। किसी दासीने रामजीका धनुष ले लिया । किसीने तरकस लिया और किसीने तलवार ले ली ॥३०-३२॥ इस तरह रामकी सब वस्तुओंको सब दासियोंने चारों ओरसे घेरकर सम्हाल लिया ॥ ३३ ॥ इसके बाद

गृहांगणाराममध्ये संस्थितां सस्मिताननाम् । दृष्ट्वात्मानं विलज्जन्तीं सुनासां चारुलोचनाम् ॥३५॥
कटाक्षैश्चारु पश्यन्तीं सखीभिः परिवेष्टिताम् । तां दृष्ट्वा राघवश्चापि किंचित् कृत्वा स्मिताननम् ॥३६॥
चकाराचमनं सम्यक् सीतार्पितजलेन सः । ततः स्थित्वाऽऽसने पीत्वा जलमग्रे ययौ पुनः ॥३७॥
जलयन्त्रसमीपस्थां शालां सीतासमन्वितः । तस्यां सिंहासने स्थित्वा लक्ष्मणं प्राह राघवः ॥३८॥
गच्छ भोजनशालां त्वं सर्वानाहूय वेगतः । ब्राह्मणादीनुर्मिलादिनारीणां त्वरयस्व हि ॥३९॥
सर्वं कृत्वा यथायोग्यं ततो मां कुरु सूचनाम् । तथेति रावचनाद्भरतेन स शत्रुहा ॥४०॥
लक्ष्मणस्त्वरितो गत्वा सर्वानाहूय वेगतः । वसिष्ठादिमुनीन्मित्रमन्त्रिणः सुहृदस्तथा ॥४१॥
त्वरयामासोर्मिलां च मांडवीं भरतप्रियाम् । श्रुतकीर्ति च सौमित्रिः श्रीरामवचनात्तदा ॥४२॥
एतस्मिन्नन्तरे रामः केसरादिविनिर्मितैः । चित्ररागैः पूरितानि जलयन्त्राण्यनेकशः ॥४३॥
कारयित्वा तेषु सीतां बाहुपाशैर्दृढं मुदा । धृत्वाऽक्षिपत्पृथग्दास्यादिषु पश्यत्सु वै सुखम् ॥४४॥
ततः स्वयं पपातोच्चैर्जलयंत्रेषु वै पृथक् । जलक्रीडां स मैथिल्या चकार रघुनन्दनः ॥४५॥
भुजाभ्यां स समालिंग्य तां मुहुः प्राक्षिपन्मुदा । रञ्जयामास वैदेहीं सुरागाञ्जलिसेचनैः ॥४६॥
ततः सुगन्धतैलानि तथा परिमलानि हि । नानासुगन्धद्रव्याणि माङ्गल्यानि बहूनि च ॥४७॥
दासीभिः शीघ्रमानीय तावुभौ हि परस्परम् । ववर्षतुः सुमाद्यैश्च क्रीडाद्रव्यैर्मनोरमैः ॥४८॥
कराभ्यां जलयंत्राणि मिथस्तौ संमुमोचतुः । रामाक्षिसंज्ञया दास्यः सीतासख्योऽपि सूचिताः ॥४९॥
वस्त्रभित्तिबहिर्दूरं गत्वा तस्थुर्विलज्जिताः । काश्चिद्द्वारेषु तस्थुस्तास्तूष्णीं प्रमुदिताननाः ॥५०॥
अदृष्ट्वाऽयं ततः सीतारामौ रहसि सादरम् । जलयन्त्रेषु तौ क्रीडां चक्रतुः सुचिरं मुदा ॥५१॥
मुष्टिभ्यां जानकी रामं ताडयामास कौतुकात् । सोऽपि तां ताडयामास मुष्ट्या पुष्पसमानया ॥५२॥

रामजी धीरे-धीरे सीताजीकी ओर चले, जो पहले ही से खड़ी-खड़ी रामचन्द्रजीके आनेकी प्रतीक्षा कर रही थीं। जिनका मस्तक रामको देखकर लज्जासे झुका हुआ था, वे सीता गृहांगणमें बने बगीचेमें बैठी थीं। मुसकाता हुआ उनका मुख था। रामचन्द्रजीने देखा कि सुन्दर आँखों और सुडौल नासिकावाली सीता हमें देखकर लजा रही हैं। उनके चारों ओर सखियाँ घेरे खड़ी हैं और रह-रहकर सीता अपनी कनखियोंसे हमको देखती जाती हैं। इस प्रकारकी सीताको देखकर रामचन्द्रजी मुसंकाते हुए उनके पास पहुँचे और सीताके हाथसे प्राप्त जलको लेकर आचमन किया। फिर आसनपर बैठे, जल पिया और सीताके साथ उस बँगलेकी तरफ चले, जो फौवारोंके बीचमें बना हुआ था। वहाँ पहुँचकर राम एक दिव्य सिंहासनपर बैठे और लक्ष्मणसे कहने लगे—॥ ३४–३७ ॥ हे लक्ष्मण ! तुम भोजनशाला जाओ और सब ब्राह्मणों तथा उर्मिलादिक नारियोंसे कहो कि जल्दी भोजन तैयार करें। जैसा मैंने बतलाया है, वैसा करनेके बाद फिर हमें सूचना दो। 'बहुत अच्छा' कहकर लक्ष्मण शत्रुघ्न तथा भरतको साथ लेकर भोजनशालामें पहुँचे। वहाँ वसिष्ठादि मुनियों, मन्त्रियों तथा मित्रोंको बुलाकर शीघ्र तैयार होनेको कहा ॥ ३८–४१ ॥ तदनन्तर लक्ष्मणने मांडवी, श्रुतकीर्ति, उर्मिला आदिको रामचन्द्रजीके आज्ञानुसार यह सन्देश दिया कि तुम शीघ्र भोजनकी तैयारी करो ॥ ४२ ॥ इसके अनन्तर रामचन्द्रजीने केसरादि विविध रङ्गसे रञ्जित जलवाले एक बड़ेसे हौजमें सीताजीको गोदमें लेकर फेंक दिया। सखियाँ हँसती हुई देख रही थीं ॥ ४३ ॥ ४४ ॥ इसके अनन्तर वे स्वयं भी उसमें कूद पड़े और सीताके साथ जलक्रीड़ा करने लगे ॥४५॥ वे बार-बार सीताको उठा-उठाकर जलमें फेंकते, फिर स्वयं कूदते और सीतापर जल उछालते थे। तदनन्तर दासियों द्वारा सुगन्धित तैल तथा विविध प्रकारके परिमल मँगाकर आपसमें एक दूसरेपर डालने लगे। वे हाथमें पिचकारी लेकर एक दूसरेपर केसर आदि मिले हुए जलकी वर्षा करते थे ॥४६–४९॥ रामचन्द्रजीके संकेतसे सखियाँ लज्जाके मारे वहाँसे हट गयीं और दूसरी जगह जा बैठीं। उनमेंसे कुछ स्त्रियाँ प्रसन्नतापूर्वक तम्बूसे बने हुए घेरेके फाटकपर जा बैठीं। इस प्रकार एकान्तमें सीताके साथ रामचंद्रजी बहुत देरतक क्रीड़ा करते रहे ॥ ५० ॥ ५१ ॥ कभी खेल-खेलमें सीताजी रामचन्द्रको मुक्का मार देती थीं,

चुचुम्ब तस्या बिंबोष्ठं चूर्णयामास तत्कुचौ । मुक्त्वा तत्कञ्चुकीबंधमालिंग्य हृदयेन-ताम् ॥५३॥
मुमोच कच्छं श्रीरामः सीतायाः स्वकरेण सः । उड्डीय वस्त्र हस्तेन तद्रम्भोरू ददर्श सः ॥५४॥
ततः करेण तन्नीवीं रामश्चाकर्पयन्मुदा । सीताप्याकर्षयद्वेगाद्रामनीवीं स्मितानना ॥५५॥
एवं परस्परं क्रीडां चक्रतुर्दम्पती मुदा । कः समर्थस्तयोः क्रीडां सविस्तारां निवेदितुम् ॥५६॥
एतस्मिन्नन्तरे रामं भोजनार्थं तु सूचनाद् । कर्तुं ययौ स सौमित्रिः समाहूय सुहृज्जनान् ॥५७॥
निषेधितः स दासीभिर्वनद्वाराद्बहिः स्थितः । ता ऊचुः समयो नायं रामं गन्तुं च न क्षणम् ॥५८॥
स्थिरो भवात्र सौमित्रे रामो रहसि सीतया । करोति जलयन्त्रेषु जलक्रीडां यथासुखम् ॥५९॥
पुनस्ताः प्राह सौमित्रिर्युष्माभिर्वचनेन मे । निवेदनीयं रामाय सूचनार्थं हि लक्ष्मणः ॥६०॥
समागतस्त्वामस्तीति ततो यास्याम्यहं गृहम् । ततस्तासु तदा त्वेका दासी गत्वा रघूत्तमम् ॥६१॥
वस्त्रभित्तेर्बहिः स्थित्वा भयभीताऽतिलज्जिता । कथयामास सौमित्रेर्द्वारि ह्यागमनं शनैः ॥६२॥
तद्दासीवचनं श्रुत्वा जलयंत्रात्तु जानकीम् । बहिःकृत्वा निर्गतश्च रामस्तुष्टमनाः स्वयम् ॥६३॥
जलैरुष्णैः प्रभुः स्नात्वा देहमुद्वर्तनादिभिः । सुगन्धद्रव्यरागादीन् कृत्वा दूरं प्रियान्वितः ॥६४॥
पीतकौशेयवासांसि परिधायाथ दम्पती । ददतुश्चार्द्रवस्त्राणि हेमतंत्वंकितानि च ॥६५॥
दासीभ्यश्चाथ दासेभ्यो रागाद्यैश्चित्रितानि हि । तौ जग्मतुः पुष्पचितमार्गेणाप्यशनगृहम् ॥६६॥
तत्र पूर्वोपचाराधिकैर्नानोपचारकैः । ऊर्मिलादिभिरन्नं यत्कामधेनुसमुद्भवम् ॥६७॥
दर्वीभिः स्वर्णजाभिश्च पात्रेषु परिवेषितम् । मुनीश्वरैश्च गुरुणा सुहृन्मित्रसमन्वितः ॥६८॥
मन्त्रिभिर्वन्धुभिश्चापि रामोऽश्नंस्तोषमाप सः । तत्पात्रं वीजयामास जानकी चामरेण सा ॥६९॥
सविनोदैश्चाद्भुतवाक्यै रञ्जयामास राघवम् । एवं कृत्वा भोजनं तु कृत्वा तांबूलचर्वणम् ॥७०॥

तब राम भी हँसते हुए फूलके समान कोमल मुक्केसे सीताको मार देते थे ॥ ५२ ॥ सीताके बिम्बसदृश लाल होठोंको रामचन्द्रजीने कई बार चूमा, उनके कुचोंका मर्दन किया और चोलीका बन्द खोलकर अपनी छातीसे लिपटाया ॥ ५३ ॥ रामने सीताकी काँछ खोलकर वस्त्रोंको हटा दिया, जिससे कदलीके खम्भेके समान उनकी कोमल जंघाएँ दिखाई पड़ने लगीं ॥ ५४ ॥ तब सीताने भी मुसकाकर रामकी धोती खोल डाली। इस तरह राम और सीतामें विविध प्रकारकी क्रीड़ाएँ होती रहीं। सीता और रामकी क्रीड़ाके सविस्तार वर्णन करनेकी सामर्थ्य भला किसमें है ? हे शिष्य ! यह संक्षिप्तरूपमें मैंने तुम्हें बतलाया है ॥ ५५ ॥ ५६ ॥ इसके अनन्तर भोजन तैयार होनेकी सूचना पहुँची। तब लक्ष्मणने रामचन्द्रके मित्रों आदिको भी बुलवा लिया ॥ ५७ ॥ लक्ष्मण रामको बुलानेके लिए क्रीड़ाभवनके फाटकपर पहुँचे, तैसे ही सखियोंने उन्हें रोका और कहा कि अभी रामचन्द्रजीके पास जानेकी आज्ञा नहीं है। क्योंकि वे इस समय जलक्रीड़ा कर रहे हैं ॥ ५८ ॥ ५९ ॥ उनसे लक्ष्मणने कहा—अच्छा, तुम्हीं जाकर रामसे कहो कि द्वारपर लक्ष्मण भोजनकी सूचना देनेके लिए खड़े हैं ॥ ६० ॥ तुम्हारे ऐसा कह देनेपर मैं अन्दर चला जाऊँगा। लक्ष्मणके आज्ञानुसार उनमेंसे एक दासी रामके समीप गयी और लजाती हुई परदेकी ओटसे धीरे-धीरे उनसे लक्ष्मणके आनेकी खबर सुनायी ॥ ६१ ॥ ६२ ॥ दासीकी बात सुनकर रामने प्रसन्नमनसे सीताको जलयन्त्रके बाहर निकाला और स्वयं भी निकल आये ॥ ६३ ॥ तब गरम जलसे सीता और रामने शरीरमें लगे हुए सुगन्धित उबटन आदिको धोया ॥ ६४ ॥ उसके बाद रेशमके पीले कपड़े पहने। उन बहुमूल्य गीले कपड़ोंको दास-दासियोंको दे दिया। फिर पुष्पोंसे सुशोभित मार्गसे चलकर दोनों भोजनशालामें जा पहुँचे ॥ ६५ ॥ ६६ ॥ वहाँ पूर्वोक्त भोजन-सामग्रीसे भी अधिक कामधेनुसे उत्पन्न तथा उर्मिला आदिके द्वारा सुवर्ण-पात्रोंमें सुवर्णके ही चमचोंसे परोसे हुए व्यञ्जनोंको अनेक मुनियों, मित्रों, मन्त्रियों एवं बन्धु-बान्धवोंके साथ खाते हुए रामचन्द्रजी बहुत प्रसन्न हुए। भोजन करते समय सीताजी पंखा झलती हुई बीच-बीचमें चित्त प्रसन्न करनेवाली कितनी

सीतासमर्पितं रामस्तस्थौ शृण्वन् कथाः सुखम् । मन्त्रिभिर्बन्धुभिर्मित्रैर्गेहांतः सदसि प्रभुः ॥७१॥
सीताऽपि भोजनं कृत्वा दिव्यालंकारमण्डिता । निद्राशालां समासीना सखीभिः परिवेष्टिता ॥७२॥
चकार सारिभिः क्रीडां दासीभिर्वीजिता मुदा । कुर्वन्ती रघुनाथस्य प्रतीक्षां द्वारलोचना ॥७३॥

इति श्रीमच्छतकोटिरामचरितांतर्गते श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये यागकाण्डे
बलक्रीडावर्णनं नाम पञ्चमः सर्गः ॥ ५ ॥

षष्ठः सर्गः

(राम तथा सीताकी दिनचर्या)

श्रीरामदास उवाच

अथ रामो बंधुभिश्च निद्राशालां ययौ मुदा । स्तुतो बंदिजनाद्यैश्च विवेशैकांतमन्दिरम् ॥ १ ॥
विसर्ज्य लक्ष्मणादींश्च दासीभिः परिवारितः । ददर्श जानकीं निद्राशालायां रघुनंदनः ॥ २ ॥
साऽपि ज्ञात्वाऽऽगतं रामं सारिक्रीडां विहाय च । प्रत्युज्जगाम रामाय सखीभिर्नूपुरस्वना ॥ ३ ॥
नत्वा रामं करे धृत्वा मंचके संन्यवेशयत् । दत्त्वा पातुं जलं तस्मै ददौ तांबूलमुत्तमम् ॥ ४ ॥
ततश्चकार श्रीरामो निद्रां सीतासमन्वितः । दासीभिर्वीजितश्चापि पर्यंके रत्नभूषिते ॥ ५ ॥
मुहूर्तमात्रादुत्थाय धृताधोंकोपबर्हणा । तस्थौ सीता मंचकाधस्ततो रामोऽप्यबुध्यत ॥ ६ ॥
दृष्ट्वा समुत्थितं रामं दत्त्वा पातुं जलं पुनः । ददौ सीताऽथ तांबूलं राघवायातिहर्षिता ॥ ७ ॥
रामदास्यस्तथा रामं वीजयामासुरादरात् । केकिपक्षसमुद्भूतैश्चामरै रुक्मभूषितैः ॥ ८ ॥
सीतादास्यस्तथा सीतां वीजयामासुरादरात् । धेनुपुच्छोद्भवैर्दिव्यैश्चामरैर्हेममंडितैः ॥ ९ ॥
ततः सीताकरं धृत्वा द्राक्षावल्या सुमण्डपम् । ययौ रामोऽङ्गणोद्भूतं तस्थौ तदध आसने । १०॥

ही बातें भी करती जाती थीं। इस प्रकार भोजन करके रामने सीताके हाथोंका दिया हुआ पान खाया ॥ ६७-७० ॥ तदनन्तर मन्त्रियों, बन्धुओं तथा मित्रादिकोंके साथ विविध प्रकारकी बातें कहते-सुनते हुए सभाभवनमें पधारे ॥ ७१ ॥ तदनन्तर सीताने भी भोजन किया, कपड़े बदले और नाना प्रकारके अलंकारोंको पहनकर अपने शयनागारमें जा बैठीं। वहाँ सीताकी सखियाँ भी उन्हें चारों ओरसे घेरकर बैठ गयीं ॥ ७२ ॥ सीता वहाँ बैठी हुई सारिका (मैना) के साथ खेलतीं तथा इधर-उधरकी बातें करती हुई रामचन्द्रजीके आनेकी प्रतीक्षा कर रही थीं। यह सब करते हुए भी सीताकी आँखें रामको देखनेके लिए द्वारपर ही लगी हुई थीं ॥ ७३ ॥ इति श्रीशतकोटिरामचरितांतर्गते श्रीमदानंदरामायणे वाल्मीकीये 'ज्योत्स्ना'भाषाटीकायां विलासकांडे पंचमः सर्गः ॥ ५ ॥

श्रीरामदासने कहा—सभाभवनमें कुछ देर बैठनेके अनन्तर राम अपने बन्धुओंके साथ प्रसन्नतापूर्वक शयनागारकी ओर चले। बंदीजन भगवान्‌की स्तुति करने लगे। निद्राशालाके पास जाकर रामने लक्ष्मण आदिको विदा कर दिया। दासियोंके साथ वे भीतर गये और वहाँ बैठी हुई सीताको देखा ॥ १ ॥ २ ॥ सीताने भी जब देखा कि रामजी आ गये हैं, तब अपनी मैनाके साथका खेल बन्द करके धीरे-धीरे उनकी ओर बढ़ीं। उन्हें प्रणाम किया और हाथ पकड़कर पलंगपर बैठा लिया। फिर पीनेके लिए जल दिया और उत्तम ताम्बूल खिलाया ॥ ३ ॥ ४ ॥ इसके बाद रामचन्द्रजी रत्नभूषित पलंगपर सो गये और दासियाँ पंखा झलने लगीं ॥ ५ ॥ क्षण भरके बाद सीता पलंगसे नीचे उतरीं, तब रामजी भी जाग गये ॥ ६ ॥ सीताने जब देखा कि वे भी उठे हैं, तब फिर पीनेके लिए जल और खानेको पान दिया ॥ ७ ॥ रामकी दासियाँ रामको और सीताकी दासियाँ सीताको पंखा झल रही थीं। उन दासियोंके हाथमें मोरके पंखोंका बना हुआ पंखा था और उसमें सुवर्णकी मूठ लगी हुई थी ॥ ८ ॥ कुछ देर बाद रामचन्द्रजी सीताका हाथ अपने हाथमें पकड़े हुए एक अंगूरी लताओंके बने सुन्दर मण्डपमें पहुँचे और उसके आँगनमें एक आसनपर बैठे

उपबर्हणसंस्पृष्टः सीतावामस्थितो मुदा । हस्त्यश्वोष्ट्रमंत्रिराजदूतैः कृत्रिमनिर्मितैः ॥११॥
हेमरत्नहस्तिदन्तसंभूतैरतिचित्रितैः । क्रीडां बुद्धिबलेनैव चकार सीतया सुखम् ॥१२॥
ततः पक्षिकुलैः सर्वैः पंजरस्थैः ससीतया । क्रीडां चकार श्रीरामो दासीभिर्वीजितो मुहुः ॥१३॥
एतस्मिन्नन्तरे तत्र सीतयाऽऽकारिताः पुरा । समाययुर्वारनार्यो ननृतुः शतशस्तदा ॥१४॥
चक्रुर्गीतं सस्वरं ताः षड्जस्वरसमन्वितम् । ततस्ताभ्यो ह्यलङ्कारान् दत्त्वा वस्त्राणि जानकी १५॥
विसर्जयामास ताः सर्वास्ततो राघवमब्रवीत् । स्थित्वा प्रासादवर्येऽद्य कौतुकं हट्टजं त्वया ॥१६॥
द्रष्टुमिच्छाम्यहं राम शीघ्रमुत्तिष्ठ राघव । तत्सीतावचनाद्रामः प्रासादं प्रति सीतया ॥१७॥
गत्वा दिव्यासने स्थित्वा गवाक्षै रुक्मभूषितैः । रत्नोद्भवकपाटैश्च मुक्ताजालविराजितैः ॥१८॥
राजवीथ्यां हट्टजातं ददर्श जनकौतुकम् । सीतायै दर्शयामास कौतुकानि स राघवः ॥१९॥
स्वीयदक्षिणहस्तस्य तर्जन्या मुदिताननः । एतस्मिन्नन्तरे हट्टे द्विजपत्नी तु सीतया ॥२०॥
दृष्टाऽलङ्कारवस्त्राद्यैर्हीना कटिधृताऽर्भका । गच्छन्ती राजमार्गेण कृशा भिक्षार्थमुद्यता ॥२१॥
तां तादृशीं निरीक्ष्याथ दास्याहूय विदेहजा । पप्रच्छ भूषणाद्यैस्त्वं किमर्थं रहिता ह्यसि ॥२२॥
सा प्राह तीर्थयात्रार्थं त्यक्त्वा मां तातलालिता । तातगेहे गतो भर्ता ततोऽपि जरठो मृतः ॥२३॥
गुरुगेहेऽवंतिकायां वर्त्तेते भ्रातरौ मम । न पोषकः कोऽपि गेहेऽधुना सीतेऽस्ति वै मम ॥२४॥
तस्मान्न सन्त्यलङ्कारवासांसि जनकात्मजे । इति तस्या वचः श्रुत्वा रामास्यं सन्निरीक्ष्य सा २५॥
निजालङ्कारवासांसि ददौ तस्यै विदेहजा । ब्राह्मणीं सा पुनः प्राह गच्छ त्वं लक्ष्मणं प्रति ॥२६॥
हेममुद्रा लक्षमितास्त्वं गृहाण ममाज्ञया । तथेति जानकीं पृष्ट्वा सा ययौ लक्ष्मणं तदा ॥२७॥

॥ ९ ॥ १० ॥ रामकी पीठपर तकिया लगी थी और सीता रामके वामभागमें बैठी थीं। वहाँ नकली हाथी, घोड़े, ऊँट, मंत्री और राजदूत आदिके खिलौने रक्खे हुए थे। उनके साथ राम तथा सीताने बड़ी देरतक खेलवाड़ किया। उनमें बहुतसे खिलौने सुवर्ण, हाथीदाँत एवं रत्नोंके बने हुए थे और उनपर बढ़िया रँगाई की हुई थी ॥ ११ ॥ १२ ॥ इसके अनन्तर पिंजड़ेमें बैठे हुए बहुतसे पक्षियोंके साथ रामने क्रीड़ा की। उस समय भी दासियें पंखा झल रही थीं ॥ १३ ॥ इसके बाद सीता द्वारा बुलाई हुई बहुत-सी नर्तकियाँ आकर वहाँ नाचने-गाने लगीं ॥ १४ ॥ वे वेश्यायें षड्जस्वरमें सुन्दर गीत गा-गाकर बहुत देर तक उन्हें सुनाती रहीं। इसके बाद सीताने उनको बहुतसे वस्त्र-अलंकार आदि दे-देकर विदा किया ॥ १५ ॥ उनको विदा करके सीता रामसे कहने लगीं—आज हमारी यह इच्छा है कि आपके साथ छतपर बैठकर बाजारका कौतुक देखूँ ॥ १६ ॥ उठिए और जल्दी चलिए। तदनुसार राम सीताके साथ प्रासादपर गये ॥ १७ ॥ वहाँ एक दिव्य आसनपर बैठकर सुवर्णके बने हुए झरोखोंसे जिनमें विविध प्रकारके रत्नोंके दरवाजे लगे थे और मोतियोंकी झालरें लटकी हुई थीं ॥ १८ ॥ उनमेंसे ही वे राजमार्गके जनसमुदायका कौतुक देखने लगे और सीताको भी दाहिने हाथकी तर्जनी अंगुलीके संकेतसे दिखाने लगे ॥ १९ ॥ इसी बीच सीताने देखा कि एक ब्राह्मणकी पत्नी वस्त्र-अलङ्कारको त्यागे नङ्गी चली आ रही है। उसकी कमरपर एक बच्चा है, उसकी दुबली-पतली देह है और उसके आकारसे मालूम पड़ता है कि वह भिक्षा माँगनेके लिए बाजार आयी है ॥ २० ॥ २१ ॥ उसको यह दशा देखकर सीताने दासी द्वारा उसे अपने पास बुलवाया और पूछा कि तुम इस तरह बिना वस्त्र और आभूषणके बाजारमें किसलिए घूम रही हो ? ॥ २२ ॥ उसने कहा कि मेरे पतिदेव घरमें मुझे अकेली छोड़कर तीर्थयात्राके लिए चले गये। मैं अपने पिताकी बड़ी दुलारी बेटी थी। इसलिए अपना घर छोड़कर पिताके पास गयी तो वहाँ पिताजी वृद्धावस्थाके कारण परलोक चले गये थे ॥ २३ ॥ अवन्तीपुरीमें मेरे पिताके कई छोटे-छोटे बच्चे अर्थात् मेरे भाई हैं, किन्तु मेरा तथा बच्चोंका पालन करनेवाला इस संसारमें कोई नहीं है ॥ २४ ॥ इसी कारण हे जनकात्मजे ! मेरे पास वस्त्र और आभूषण नहीं हैं, जिन्हें मैं पहनूँ। इस प्रकार उसकी बातें सुनकर सीताने एक बार रामकी ओर देखा और अपने सब वस्त्राभूषण उतारकर उस विप्रपत्नीको

पूर्वाधिकानलंकारान् स्वदेहे जानकी पुनः । दधार दिव्यवासांसि हेमतंतूद्भवानि सा ॥२८॥
लक्ष्मण ब्राह्मणी गत्वा सीतावाक्यं न्यवेदयत् । ददौ तस्यै लक्ष्मणोऽपि हेममुद्रास्तथैव सः ॥२९॥
सीतावक्याह्लक्षमिता मृषा मेने न तद्वचः । कः समर्थो रामराज्ये मृषां वक्तुं भवेदिति ॥३०॥
अथ सीताऽपि सौमित्रिं स्वां दासीं प्रेष्य वै तदा । अयोध्यायां तथा राष्ट्रे घोषयामास दुन्दुभिम् ॥३१॥
सप्तद्वीपेषु सर्वत्र पृथग्वर्षेषु सादरम् । काचिन्नारी पुमान् वापि विना सद्वस्त्रभूषणैः ॥३२॥
दृष्टश्चारैर्मया ज्ञातो यद्देशे यत्पुरे कदा । तद्राज्ञश्चास्तु मे दण्डो रामस्यापि विशेषतः ॥३३॥
इति मच्छिक्षितं ज्ञात्वा स्वकोशैः स्वीयराष्ट्रके । वस्त्रालङ्कारभूषाभिर्भूषणीया द्विजादयः ॥३४॥
सप्तद्वीपनृपतयश्चेत्थं सीतासुशिक्षितम् । गजदुन्दुभिघोषेण श्रुत्वा चक्रुस्तथैव च ।३५॥
तदारभ्य जगत्यां न कश्चिद्विगतभूषणः । नारी वा पुरुषो वाऽऽसीत् कुत्राप्यवनिजाभयात्॥३६॥
एवं नानाकौतुकानि भूम्यां सीताऽकरोन्मुदा । अथ रामः सभां गत्वा पुनर्यामे चतुर्थके ॥३७॥
चकार राजकर्माणि धर्मेणैव स्वबन्धुभिः । नटनाटकवेश्यानां कौतुकानि महांति च ॥३८॥
ददर्श स सभामध्ये स्तुतो मागधबंदिभिः । ततः सर्वान्विसृज्याथ ययौ सीतागृहं प्रभुः ॥३९॥
सायसंध्यादिकं कृत्वा हुत्वा होमं यथाविधि । ततो गंधादिभिः पूज्य ब्राह्मणांश्चापि राघवः ॥४०॥
नानोपहारनैवेद्यं दत्त्वा तेभ्यः स्वयं प्रभुः । कृत्वोपहारं श्रीरामः श्रुत्वा पौराणिकीं कथाम् ॥४१॥
कीर्तनैर्हरिदासानां वेश्यानां नर्तनैरपि । पौरोदिताभिर्वार्ताभिर्गायकानां च गायनैः ॥४२॥
सार्धयामां निशां नीत्वा ययौ निद्रास्थलं शनैः । ततो रत्नप्रकाशैः स जगाम जानकीं प्रति ॥४३॥

दे दिये और कहा कि तुम लक्ष्मणके पास चली जाओ और उनसे मेरे आज्ञानुसार एक लाख स्वर्णमुद्रा ले लो। 'बहुत अच्छा' कहकर वह ब्राह्मणी लक्ष्मणके पास गयी ॥ २५–२७ ॥ इसके अनन्तर सीताने फिर उससे दूने गहने पहन लिये और सुवर्णके तारोंसे बने हुए बहुतसे सुन्दर वस्त्रोंको भी धारण किया ॥ २८ ॥ उधर ब्राह्मणी लक्ष्मणके पास गयी और सीताकी आज्ञा सुनायी। लक्ष्मणने जानकीके कथनानुसार उसे एक लाख स्वर्णमुद्रायें दे दी ॥२९॥ ब्राह्मणीकी बातपर लक्ष्मणको कुछ भी संदेह नहीं हुआ। क्योंकि रामचन्द्रजीके राज्यमें किसीको झूठ बोलनेका साहस ही कैसे हो सकता था ॥ ३० ॥ इसके पश्चात् सीताने लक्ष्मणके पास एक दासी द्वारा यह कहला भेजा कि मेरी आज्ञासे अयोध्याके समस्त राज्यमें ढिंढोरा पिटवा दो और सातों द्वीपों तथा भिन्न-भिन्न देशोंमें भी कहला दो कि कोई स्त्री और पुरुष ऐसा न दिखायी दे कि जिसके शरीरपर बढ़िया वस्त्र और आभूषण न हों ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ मेरे गुप्तचर इस बातकी टोह लेनेको सर्वत्र घूमते रहें। यदि कहीं किसी देश या किसी राष्ट्रमें कोई वस्त्राभूषणविहीन देखा जायगा तो उस देशके राजाको मेरा तथा रामचन्द्रजीकी आज्ञाके अनुसार घोर दण्ड भुगतना पड़ेगा ॥ ३३ ॥ मेरी यह आज्ञा सुनकर सब राजे अपने देशकी प्रजाको अपने खजानेके द्रव्यसे उत्तम वस्त्राभूषण तैयार करवाकर बँटवा दें। समस्त ब्राह्मणादि द्विजातियोंको अच्छे-अच्छे वस्त्र-अलङ्कारोंसे अलंकृत करायें ॥ ३४ ॥ तदनुसार सातों द्वीपोंके नृपतियोंने राजदुन्दुभि द्वारा घोषित सीताजीकी उस घोषणाको सुन-सुनकर विधिवत् उसका पालन किया ॥ ३५ ॥ तबसे सीताके भयसे जगतीतलमें कोई ऐसा मनुष्य नहीं दिखाई देता था, जो सुन्दर वस्त्राभूषण न पहने हो ॥ ३६ ॥ इस प्रकार सीताजीने पृथ्वीमण्डलमें न जाने कितने कौतुक किये। तदनन्तर चौथे प्रहर रामचन्द्र अपने भ्राताओंके साथ सभाभवनमें गये ॥ ३७ ॥ वहाँ धर्मपूर्वक राज्यके आवश्यक कार्य सम्पन्न किये। फिर नटोंके नाटक और वेश्याओंके विविध प्रकारके नृत्य देखे, बन्दीजनोंकी स्तुतियाँ सुनीं और सबको विदा करके फिर सीताजीके भवनको लौट गये ॥ ३८ ॥ ३९ ॥ शामको संध्यादिक नित्यकृत्य करके विधिवत् हवन किया। गन्धादिक अनेक उपचारोंसे शिवजी तथा ब्राह्मणोंकी पूजा की ॥ ४० ॥ उन सबको विविध पकवानोंका नैवेद्य देकर स्वयं भोजन किया। पुराणोंकी कथायें सुनीं। तदनन्तर भगवद्भक्तोंका कीर्तन सुना और वेश्याओंके नृत्य देखे। जनपदवासियोंके कुशल-प्रश्न पूछे और

साऽपि प्रत्युज्जगामाथ रत्नदीपैः सखीयुता । ततः स सीतया रामः पर्यङ्के रत्नचित्रिते ॥४४॥
चकार सीतया क्रीडां रंजयामास जानकीम् । ततस्तौ दंपती निद्रां चक्रतुर्वीजितौ मुहुः ॥४५॥
दासीभिर्व्यजनैश्चित्रैश्चामरैर्हेमभूषितैः । एवं रामेण सा सीता सुखमाप पतिव्रता ॥४६॥
सीतया राघवश्चापि सुखमाप विशेषतः । एवं नानाकौतुकानि प्रत्यहं रघुनंदनः ॥४७॥
चकार सीतया सार्द्धं परिपूर्णमनोरथः । कदा चंद्रस्य ज्योत्स्नायामंगणे सद्मनः प्रभुः ॥४८॥
चकार सीतया निद्रां कदा प्रासादमस्तके । कदा प्रासादान्तरे वाऽपि गवाक्षपवनैः शुभैः ॥४९॥
सुखमाप कदा रामः कदा रहसि मंदिरे । कदा कनकशृङ्खलासवितानसुमंचके ॥५०॥
कदा द्राक्षामंडपाधो जलयंत्रसमीपतः । काचभूम्यां रुक्मभूम्यां मणिभूम्यां कदाऽपि वा ॥५१॥
स्फटिकादिसुभूम्यां हि कदा सुष्वाप राघवः । कदा स पुष्पके वाऽपि रंगशालान्तरे कदा ॥५२॥
कदा स चित्रशालायां कदोशीरमये गृहे । कदा पुष्पमये गेहे कदा रंभावने वरे ॥५३॥
कदा पुष्पवाटिकायां कदा वृक्षोर्ध्वसद्मनि । शृङ्खलावृक्षसंबद्धदोलके रत्नचित्रिते ॥५४॥
कदा काष्ठमये दिव्ये मंचके रत्नभूषिते । कदा चकार तुलसीवाटिकायां रघूत्तमः ॥५५॥
निद्रां जनकनंदिन्या सभायामथवा कदा । कदा द्वारोर्ध्वप्रासादे कदैकस्तंभसद्मनि ॥५६॥
कदा स्वगृहदेहल्यां कदा वृंदावनेऽपि च । एवं स सीतया रेमेऽयोध्यायां रघुनंदनः ॥५७।

इति श्रीशतकोटिरामचरितांतर्गते श्रीमदानन्दरामायणे विलासकाण्डे वाल्मीकीये
सीतारामयोर्दिनचर्यावर्णनं नाम षष्ठः सर्गः ॥ ६ ॥

सप्तमः सर्गः

(रामके द्वारा देवांगनाओंको वरदान)

श्रीरामदास उवाच

एकदा राघवं द्रष्टुं तथा स्नातुं मघावपि । शिष्यैः समाययौ व्यासो मुनिभिः परिवेष्टितः ॥ १ ॥

गायकोंके गायन सुनते-सुनते आधी रात बिताकर वे शयनागारमें शयन करनेको चले। हीरे आदि रत्नों द्वारा प्रकाशित मार्गसे चलते हुए राम सीताके पास पहुँचे ॥ ४१-४३ ॥ सीता भी रत्ननिर्मित दीपोंके प्रकाशमें अपनी अनेक सखियोंके साथ रामचन्द्रके पास गयीं और राम सीताके साथ एक रत्नजटित पलङ्गपर बैठ गये ॥ ४४ ॥ रामने कुछ देर तक सीताको प्रसन्न करनेके लिए कुछ खेल किया। फिर दोनों सो गये और दासियाँ पंखा झलने लगीं ॥ ४५ ॥ इस तरह रामके द्वारा सीता तथा सीताके द्वारा राम विविध प्रकारका आनन्द लूटते रहे। जिनकी समस्त कामनाएँ पूर्ण हो चुकी थीं, ऐसे भगवान् रामचन्द्रजीकी यह नित्यकी दिनचर्या थी। उनके यहाँ नित्य ऐसे-ऐसे कौतुक हुआ करते थे। कभी विशाल भवनके आँगनमें, कभी प्रासादपर और कभी खिड़कीदार बढ़िया कमरेमें राम सोते थे ॥ ४६-४९ ॥ कभी जहाँ अनेक प्रकारके मणियोंकी शृङ्खलायें लटकती थीं, ऐसे चाँदनीवाले किसी एकान्त कमरेके सुन्दर मंचपर, कभी अंगूरकी झाड़ीके नीचे, कभी जलयंत्रके समीप, कभी काचभूमिपर और कभी स्फटिकादिसे निर्मित सुन्दर मणिभूमिपर रामचन्द्रजी शयन करते थे ॥ ५० ॥ ५१ ॥ कभी पुष्पक विमानपर, कभी रङ्गशालामें, कभी चित्रशालामें, कभी खसकी टट्टियों-वाले घरोंमें, कभी फूलोंके घरमें, कभी कदलीवनमें, कभी पुष्पवाटिकामें, कभी वृक्षके ऊपर बनी हुई झोपड़ीमें, कभी वृक्षमें बँधी जंजीरोंसे बने हुए झूलेपर, कभी काष्ठोंके बने हुए दिव्य मंचपर और कभी तुलसीकी बनी हुई वाटिकामें रामचन्द्रजी शयन करते थे ॥ ५२-५५ ॥ कभी रामचन्द्रजी सीताके साथ सभाभवनमें, कभी द्वारके किसी एक ऊँचे प्रासादपर, कभी केवल एक स्तम्भपर बने हुए मकानमें, कभी अपने घरकी देहलीपर और कभी वृन्दावनमें सीताके साथ शयन करते थे ॥ ५६ ॥ ५७ ॥ इति श्रीशतकोटिरामचरितांतर्गते श्रीमदानंद-रामायणे वाल्मीकीये पं० रामतेजपाण्डेयविरचित'ज्योत्स्ना'भाषाटीकासमन्विते विलासकांडे षष्ठः सर्गः ॥ ६ ॥

समागतं मुनिं श्रुत्वा तं प्रत्युद्गम्य राघवः । ननाम शिरसा भक्त्या निनाय निजमंदिरम् ॥ २ ॥
दत्त्वा वरासनं तस्मै द्विजेभ्यश्चापि वै पृथक् । दत्त्वाऽऽसनानि दिव्यानि चकार पूजनं पृथक् ॥ ३ ॥
कामधेनूद्भवै रत्नैर्मणिभ्यां संभवैरपि । व्यासं तं भोजयामास मुनिभिर्जानकीपतिः ॥ ४ ॥
तांबूलं दक्षिणां दत्त्वा प्रबद्धकरसम्पुटः । पप्रच्छ कुशलं तस्मै व्यासाय रघुनन्दनः ॥ ५ ॥
सीता तं वीजयामास व्यासं सत्यवतीसुतम् । एतस्मिन्नन्तरे व्यासो रामाय कुशलं निजम् ॥ ६ ॥
निवेद्य पृष्ट्वा तत्क्षेमं तमाह कौतुकात्पुनः । राम राम महाबाहो यथा राज्यं त्वया भुवि ॥ ७ ॥
भुज्यते न तथाऽन्येन केनापि पृथिवीभृता । पुरा भुक्तं न कोऽप्यग्रे भोक्ष्यते पृथिवीपतिः ॥ ८ ॥
अन्यच्चेऽत्र महद्धैर्यमेकपत्नीव्रतं प्रति । दृष्ट्वातिविस्मयश्चित्ते जायते मे रघूत्तम ॥ ९ ॥
कः सहेतात्र तारुण्यकामदावानलं नृपः । पदस्थे यौवने चापि त्वमेवास्मिन्व्रते क्षमः ॥१०॥
इति व्यासवचः श्रुत्वा रामो व्यासं वचोऽब्रवीत् । मया त्रयः कृताः संति नियमा मुनिसत्तम ॥११॥
मुखाद्विनिर्गतं वाच्यमेकमेव विनिश्चितम् । न क्रियते मृषा तच्च नोच्यते ह्यपरं पुनः ॥१२॥
अन्यत्सीता विनाऽन्या स्त्री कौसल्यासदृशी मम । न क्रियते परा पत्नी मनसाऽपि न चिंतये ॥१३॥
तथा यं हन्तुमिच्छामि बाणेनैकेन कोपतः । निहन्यते तदैकेन नान्यं बाणं सृजाम्यहम् ॥१४॥
इत्थं त्रयः कृताः पूर्वं नियमास्त्वत्र भो मुने । सत्या एव भवंत्वग्रेऽखंडितास्तव वाक्यतः ॥१५॥
तथैवास्त्विति सोऽप्याह व्यासः श्रीराघवं तदा । पुनराह मुनिः श्रीमान् व्यासः श्रीराघवं प्रति ॥१६॥
एकपत्नीव्रतस्यास्य फलेनापरजन्मनि । त्वं कृष्णरूपेण बह्वीर्नारीर्भोक्ष्यसि राघव ॥१७॥
तन्मुनेर्वचनं श्रुत्वा विहस्य राघवोऽब्रवीत् । बह्वीश्च कामिनीर्भोक्तुं कृष्णरूपधरोऽप्यहम् ॥१८॥

श्रीरामदास बोले—एक बार रामचन्द्रजीका दर्शन करने तथा चैत्र रामनवमीको स्नान करनेके लिए अपने शिष्योंके साथ व्यासजी अयोध्यामें आये। उनके साथ बहुतसे मुनि भी थे ॥ १ ॥ मुनिका आगमन सुनकर राम स्वयं अगवानी करनेके लिए गये। उनके पास पहुँचकर रामचन्द्रजीने बड़ी भक्तिके साथ प्रणाम किया और अपने भवनमें ले गये ॥ २ ॥ उन्होंने व्यासजीको एक उत्तम आसनपर बिठाया। इसके पश्चात् अन्य ऋषियों एवं शिष्योंको भी सुन्दर आसनपर बैठाकर और विधिपूर्वक कामधेनु तथा रत्नों द्वारा उत्पन्न वस्तुओंसे उन मुनियोंकी अलग-अलग पूजा की और सब मुनियोंके साथ व्यासजीको रामने भोजन कराया ॥ ३ ॥ ४ ॥ बादमें तांबूल और दक्षिणा दी। तब रामने हाथ जोड़कर भगवान् व्याससे कुशल-मङ्गल पूछा ॥ ५ ॥ सीताजी उस समय व्यासजीको पंखा झल रही थीं। इसके बाद व्यासजीने रामको अपना कुशल-मङ्गल सुनाया और कहने लगे—हे महबाहो राम ! आप जैसा राज्य इस पृथ्वीपर कर रहे हैं, वैसा किसी राजाने नहीं किया और भविष्यमें भी कोई नहीं करेगा ॥ ६-८ ॥ इसके अतिरिक्त आप जैसे महिपालका एक पत्नीव्रत पालन करना देखकर मेरे मनमें तो बड़ा आश्चर्य होता है ॥ ९ ॥ इस जगत्में ऐसा कौन राजा है, जो तरुणाईमें कामरूपी दावानलको सहनेमें समर्थ हो। ऐसे ऊँचे पदपर रहकर जवानीके उमङ्गमें एकपत्नीव्रतधारी केवल आप ही हैं ॥ १० ॥ इस प्रकार व्यासजोकी बात सुनकर रामने कहा—हे मुनिसत्तम ! मैंने अपने लिए तीन नियम बना लिये हैं। एक यह कि—॥ ११ ॥ एक बार मेरे मुखसे जो बात निकल जाय, वह ध्रुव होती है। प्राणसङ्कट आनेपर भी बात नहीं बदलेंगे। दूसरी बात यह कि—सीताको छोड़कर संसारकी समस्त स्त्रियाँ मेरे लिये कौसल्याके समान माता हैं। दूसरी स्त्रीको मैं अपने मनसे भी नहीं सोचता ॥ १२ ॥ १३ ॥ तीसरी बात यह कि—मैं जिसे क्रोध करके मारना चाहता हूँ, उसपर केवल एक बाण छोड़ता हूँ। उसीसे उसे मार डालता हूँ, दूसरा बाण नहीं उठाता ॥ १४ ॥ हे मुनिराज ! ऐसा मैंने नियम बना रक्खा है। आपके आशीर्वादसे मेरे ये नियम अखंडित भावसे चल रहे हैं। वेदव्यासने कहा—हे राजन् ! जैसी आपकी इच्छा है, वैसा ही होगा। और सुनिये, जो आप इन जन्ममें एकपत्नीव्रतका पालन कर रहे हैं, इसके फलसे दूसरे जन्ममें आप बहुत-सो स्त्रियाँ पायेंगे ॥ १५-१७ ॥ इस कार व्यासजोकी बात सुनकर रामने कहा—हे महामुने !

द्वारिकायां यदाऽग्रे हि द्वापरे मुनिसत्तम । येन व्रतेन दानेन नियमेनाथवा मुने ॥१९॥
बहुनारीर्निश्चयेन प्राप्स्यामीति वदस्व माम् । इति रामवचः श्रुत्वा व्यासो राघवमब्रवीत् ॥२०॥
सम्यक्पृष्टं त्वया राम दानं ते प्रवदाम्यहम् । एकपत्नीव्रतादेव यद्यपि त्वं च स्त्रीर्बहु ॥२१॥
लभिष्यसि तथाप्यद्य दानं तव वदाम्यहम् । सीताभारसुवर्णेन मूर्तिमेकां रघूत्तम ॥२२॥
एवं षोडशमूर्तीश्च कारय त्वं पृथक् पृथक् । देहि त्वं सरयूनद्यास्तीरे विप्रेभ्य आदरात् ॥२३॥
वस्त्रालङ्कारभूषाद्यैर्दक्षिणाभिश्च ताः शुभाः । अनेन बहुनारीस्त्वं लभिष्यस्यन्यजन्मनि ॥२४॥
तथेति राघवश्चापि मूर्तीः कृत्वा मनोरमाः । ददौ ताः सरयूनद्यां ब्राह्मणेभ्यस्तु षोडश ॥२५॥
ततस्ते ब्राह्मणास्तुष्टा रामायाशीर्ददुर्मुदा । दत्तमेकगुणं राजन् सहस्रगुणितं पुरा ॥२६॥
अस्माकं वचनाद्दानफलं तव भविष्यति । षोडशस्त्रीसहस्राणि त्वं लभिष्यसि निश्चयात् ॥२७॥
तथास्त्वित्याह रामोऽपि ततो विप्रान्व्यसर्जयत् । प्रणम्य पूजितं व्यासं ददावाज्ञां रघूद्वहः ॥२८॥
अथैकदा रामचन्द्रः सीतया सरयूतटे । मधुमासे वस्त्रगेहे स्थितः क्रीडां चकार सः ॥२९॥
एतस्मिन्नंतरेऽयोध्यां नानादेशनिवासिनः । रामतीर्थे मधौ स्नातुं समाजग्मुः सहस्रशः ॥३०॥
सुरा यक्षाः किन्नराश्च गन्धर्वाः पन्नगा नगाः । वल्लयश्च सरितः सर्वास्तीर्थानि मुनयो नृपाः ॥३१॥
अप्सरसः पन्नगाश्च खगाः क्षेत्राणि वानराः । अथैका देवपत्न्यो ज्ञात्वाऽस्पृश्यां विदेहजाम् ॥३२॥
परस्परं ताः संमंत्र्य निशीथे राघवं प्रति । समाजग्मुर्दिव्यवस्त्ररत्नाभरणभूषिताः ॥३३॥
रामसौंदर्यसंभ्रान्ताः कामबाणप्रपीडिताः । ता दृष्ट्वा रामदूतास्ते पप्रच्छू रक्षणस्थिताः ॥३४॥
यूयं किमर्थं संप्राप्ता निशीथेऽत्र भयावहे । कथयध्वं हि नः सर्वं मा शङ्कां कुरुतात्र हि ॥३५॥
ता ऊचू राघवं द्रष्टुं समायाता वयं स्त्रियः । अधुना चेद्राघवस्य दर्शनं न भविष्यति ॥३६॥

आगे द्वापरमें कृष्णरूपसे मैं बहुत सी स्त्रियोंके साथ भोग करूँगा सही, लेकिन वह कौन-सा ऐसा व्रत अथवा दान है, जिसको करनेसे मैं आगेके जन्ममें बहुत-सी नारियोंको पा सकूँगा ॥ १८ ॥ १९ ॥ व्यासदेवने कहा—हे राम ! आपने बहुत ठीक प्रश्न किया है। मैं आपको वह दान बतलाता हूँ। यद्यपि एक नारीव्रतके पुण्यसे ही आपको कितनी ही स्त्रियाँ मिलेंगी। तथापि वह दान बताये देता हूँ। सीताके समान भारके सुवर्णकी एक मूर्ति बनवाइये। फिर उसी तरह सोलह मूर्तियाँ तैयार करा लें और उन्हें विविध प्रकारके वस्त्रों-भूषणोंसे भूषित करके सरयू नदीके तटपर ब्राह्मणोंको दान दे दीजिये ॥ २०–२३ ॥ ऐसा करनेसे आप अगले जन्ममें बहुत सी स्त्रियाँ पायेंगे ॥ २४ ॥ रामचन्द्रने उसे स्वीकार किया। तदनुसार उन्होंने सीताकी सोलह मूर्तियाँ बनवायीं और सरयू नदीके तटपर ब्राह्मणोंको दान दिया ॥ २५ ॥ उन ब्राह्मणोंने प्रसन्न होकर रामको यह आशीर्वाद किया कि आप इस समय जो कुछ हम लोगोंको दे रहे हैं, सो सहस्रगुणा होकर आपको प्राप्त हो ॥ २६ ॥ हम लोगोंके आशीर्वादसे आपको यह फल अवश्य प्राप्त होगा। इसमें कोई सन्देह नहीं है कि आपको भविष्यमें सोलह हजार स्त्रियाँ मिलेंगी ॥ २७ ॥ रामजीने भी कहा कि "ठीक है, ऐसा हो हो" और उन विप्रोंकी तथा व्यासजीकी भली-भाँति पूजा करके विदा किया ॥ २८ ॥ एक बार राम चैत्रमासमें सरयू-तटपर सीताजीके साथ पटगृह (तम्बू) में विहार कर रहे थे। तभी चैत्र रामनवमीपर सरयूस्नान करनेके लिये हजारों यात्री अयोध्या आ पहुँचे ॥ २९ ॥ ३० ॥ बहुतसे देवता, यक्ष, किन्नर, गन्धर्व, पन्नग, पर्वत, नदियाँ, समस्त तीर्थ, मुनि, राजे, अप्सरायें, खग, क्षेत्र, वानर आदि वहाँ स्नान करनेके निमित्त आये। एक दिन देवताओंकी स्त्रियाँ, जब कि सीताजी मासिक धर्ममें थीं, तब आपसमें सलाह करके विविध प्रकारके वस्त्राभूषण पहनकर रामचन्द्रजीके पास गयीं ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ वे सबकी सब रामके सौन्दर्यको देखकर पगली हो गयी थीं। उन्हें देखकर रक्षकोंने पूछा—॥ ३३ ॥ ३४ ॥ तुम लोग कौन हो ? आधी रातके समय यहाँ किस लिये आयी हो ? साफ-साफ बतला दो, घबड़ाओ नहीं ॥ ३५ ॥ उन्होंने कहा कि हम सब स्त्रियाँ रामचन्द्रको

जातो वधस्तदाऽस्माकं जीवितानि नदीजले । इति तासां वचः श्रुत्वा दूतास्ते राघवं जवात् ॥३७॥
दास्या निवेदयामासुः स्त्रीवृत्तं तत्सविस्तरम् । श्रुत्वा दासीमुखाद्रामः सैकते मञ्चके स्थितः ॥३८॥
समाहूय स्त्रियः सर्वा ददर्श रघुनायकः । ताश्चापि दृष्ट्वा श्रीरामं मेनिरे कृतकृत्यताम् ॥३९॥
ततस्ता राघवं नत्वा लज्जयाऽधोमुखाः स्त्रियः । पीडिताः कामबाणैश्च तस्थुः श्रीरामसन्निधौ ॥४०॥
ताः पप्रच्छ राघवोऽप्यागमनस्याथ कारणम् । ता राघव तदा प्रोचुः सर्वं वेत्सि त्वमीश्वर ॥४१॥
ज्ञात्वा तासां रामचन्द्रो हृद्गतं प्राह ताः पुनः । एकपत्नीव्रतं मेऽस्ति चैतज्जन्मनि भोः स्त्रियः ॥४२॥
न ज्ञेयं मे मृषा वाक्यं गम्यतां स्वस्थलं जवात् । माऽभूदधर्मो मद्राज्ये राज्ञां वै निरयप्रदः ॥४३॥
इति राघववाग्बाणैर्भिन्नमर्मस्थलाः स्त्रियः । ययुर्मूर्छां क्षणादेव सिकतायां सहस्रशः ॥४४॥
ता मूर्छाविह्वला दृष्ट्वा रामो विह्वलमानसः । नारीः संतोषयन् प्राह हे नार्यः श्रूयतां मम ॥४५॥
वाक्यं खेदापहं योऽत्र द्वापरे कृष्णरूपधृक् । अहं व्रजे भविष्यामि नन्दगोपेशपालिते ॥४६॥
तदा देवास्तु गोपाला भावि मद्वरदानतः । भविष्यन्ति सुरेशश्च नन्दस्तत्र भविष्यति ॥४७॥
भविष्यथ तदा यूयं गोपिकाः सकला व्रजे । युष्माकं पूरयिष्यामि यथेच्छं वाञ्छितं तदा ॥४८॥
रासक्रीडां हि युष्माभिः करिष्यामि न संशयः । वृन्दावने तु कालिंद्यां सैकते निशि वै चिरम् ॥४९॥
भवध्वं स्वस्थचित्ताश्च गच्छध्वं स्वस्थलं मुदा । इति रामवचोरूपसुधया जीविताः स्त्रियः ॥५०॥
किंचित्तुष्टहृदो रामं नत्वा जग्मुर्निजं स्थलम् । एतस्मिन्नन्तरे तत्र मधुस्नानार्थमादरात् ॥५१॥
मायापुर्याः समायाता रम्या गुणवती शुभा ।

श्रीरामचन्द्र उवाच

का सा प्रोक्ता गुणवती किंशीला कस्य कन्यका ॥५२॥

देखनेके लिए आयी हैं। यदि इसी समय हमको रामके दर्शन नहीं मिलेंगे तो हम सब इस सरयू नदीमें कूदकर अपने प्राण दे देंगी। ऐसी बात सुनकर दूतगण तुरन्त रामके पास दौड़े ॥ ३६ ॥ ३७ ॥ वहां पहुंचकर उन्होंने दासियों द्वारा रामचन्द्रजीके पास सब समाचार कहलाया और स्त्रियोंके उस वृत्तान्तको दासियोंने विस्तारपूर्वक रामको सुना दिया। दासियोंके मुखसे यह सुनकर रामने उन सब देवाङ्गनाओंको बुलवाया। पास पहुँचकर स्त्रियोंने भगवान्‌को देखा। देवाङ्गनाओंने उनकी उस सलोनी छविको देखकर अपनेको कृतकृत्य समझा ॥ ३८ ॥ ३९ ॥ उन्होंने लज्जित होकर भगवान्‌को प्रणाम किया और कामबाणसे पीडित होकर वहींपर बैठ गयीं ॥ ४० ॥ रामने उनके आगमनका कारण पूछा। उन्होंने कहा–आप सबके ईश्वर हैं, भला आपसे कौन बात छिपी रह सकती है। आप सब कुछ जानते हैं ॥ ४१ ॥ उनके मनकी बात जानकर रामने कहा–हे स्त्रियो! इस जन्ममें तो मैं एकपत्नीव्रतधारी हूँ ॥ ४२ ॥ मैं जो कह रहा हूँ, उसे मिथ्या मत समझना। अच्छा, अब तुम लोग अपने-अपने डेरेपर जाओ। ऐसा करो कि जिससे मेरे द्वारा किसी प्रकारका अधर्म न हो। क्योंकि जिस राजाके राज्यमें अधर्म होता है, उसे नरकगामी होना पड़ता है ॥ ४३ ॥ इस तरह रामकी बातें सुनकर कामबाणसे पीडित वे हजारों स्त्रियाँ क्षणभरमें मूर्छित हो गयीं ॥ ४४ ॥ उनको मूर्छित देखकर विह्वलमनस्क रामचन्द्रजी उनको सन्तोष देते हुए कहने लगे—हे नारियों! मेरी बात सुनो, इस तरह अधीर मत होओ ॥ ४५ ॥ जो मैं कहता हूँ, उसे सुनकर तुम्हारा सब खेद दूर हो जायेगा। द्वापरमें मैं कृष्णरूपसे गोपेश नन्द द्वारा पालित व्रजमें जन्म लूँगा। उस समय समस्त देवता मेरे आशीर्वादसे गोप होंगे, इन्द्र नन्दरूपसे जन्म लेंगे और तुम सब उन गोपालोंकी गोपियाँ होओगी। उस समय मैं तुम लोगोंकी समस्त कामनाएँ पूर्ण करूँगा ॥ ४६–४८ ॥ वृन्दावनमें यमुनाकी रेतीमें रात्रिके समय तुम लोगोंके साथ मैं रासक्रीड़ा करूँगा ॥ ४९ ॥ अब तुम लोग स्वस्थ होकर अपने-अपने स्थानको जाओ। इस तरह रामके वचनरूपी सुधासे जीवित और किंचित् सन्तुष्ट होकर वे अपने-अपने स्थानको लौट गयीं। इसके अनन्तर माया-

तद्वदस्व सविस्तारं कस्यासीत्प्रमदा पुरा । इति शिष्यवचः श्रुत्वा रामदासोऽब्रवीत्पुनः ॥५३॥

इति श्रीशतकोटिरामचरितांतर्गते श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये विलासकाण्डे
देवपत्नीवरदानं नाम सप्तमः सर्गः ॥ ७ ॥

अष्टमः सर्गः

(पिंगला वेश्याके कारण रामपर सीताका कोप)

श्रीरामदास उवाच

आसीत्कृतयुगस्यांते मायापुर्यां द्विजोत्तमः । आत्रेयो देवशर्मेति वेदवेदांगपारगः ॥ १ ॥
आतिथेयोऽग्निशुश्रूषी सौरव्रतपरायणः । सूर्यमाराधयन्नित्यं साक्षात्सूर्य इवापरः ॥ २ ॥
तस्यातिवयसश्चासीन्नाम्ना गुणवती सुता । अपुत्रः स स्वशिष्याय चन्द्रनाम्ने ददौ सुताम् ॥३॥
तमेव पुत्रवन्मेने स च तं पितृवद्वशी । तौ कदाचिद्वनं यातौ कुशेध्महरणाय वै ॥ ४ ॥
हिमाद्रिपादे वेगेन चेरतुस्तावितस्ततः । तावत्तौ राक्षसं घोरमपश्येतां पुरःस्थितम् ॥ ५ ॥
भयविह्वलसर्वाङ्गावसमर्थौ पलायितुम् । निहतौ रक्षसा तेन कृतांतसमरूपिणा ॥ ६ ॥
तौ तत्क्षेत्रप्रभावेण धर्मशीलतया पुनः । वैकुण्ठभुवनं यातौ नीतौ विष्णुगणैस्तदा ॥ ७ ॥
यावज्जीवं तु यत्ताभ्यां सूर्यपूजादिकं कृतम् । कर्मणा तेन सन्तुष्टो विष्णुस्ताभ्यां बभूव ह ॥ ८ ॥
शैवाः सौराश्च गाणेशा वैष्णवाः शक्तिपूजकाः । तमेव प्राप्नुवन्तीह वर्षापः सागरं यथा ॥ ९ ॥
एकः स पचधा जातः क्रियया नामभिः किल । देवदत्तो यथा कश्चित्पुत्राद्याह्वाननामभिः ॥१०॥
ततश्च तौ तद्भवनाधिवासिनौ विमानयानौ रविवर्चसावुभौ ।
तत्तुल्यरूपौ हरिसन्निधानगौ दिव्यांगनाचन्दनभोगभोगिनौ ॥११॥

पुरीसे एक गुणवती नामकी सुन्दरी स्त्री वहाँ चैत्रस्नानके निमित्त आयी। विष्णुदासने पूछा—हे गुरो ! वह गुणवती कौन थी, किसकी पुत्री थी और उसका शील-स्वभाव कैसा था ? वह पहले किसकी स्त्री थी ? सो कृपया विस्तारपूर्वक आप मुझे बतलाइए। इस प्रकार विष्णुदासकी बात सुनकर श्रीरामदासने फिर कहना आरम्भ किया ॥ ५०–५३ ॥ इति श्रीशतकोटिरामचरितांतर्गते श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये पं० रामतेज-पाण्डेयविरचित'ज्योत्स्ना'भाषाटीकासमन्विते विलासकाण्डे सप्तमः सर्गः ॥ ७ ॥

श्रीरामदासने कहा—बहुत दिनोंकी बात है कि जब सत्ययुगके अन्तमें मायापुरीमें सब वेदवेदांगपारङ्गत अत्रिगोत्रका देवशर्मा नामक एक ब्राह्मण रहता था ॥ १ ॥ वह अतिथिपूजक, अग्निसेवी, सूर्यकी आराधना करनेवाला तथा दूसरे सूर्यकी नाईं तेजस्वी था ॥ २ ॥ उसको वृद्धावस्थामें एकमात्र गुणवती नामकी कन्या प्राप्त हुई थी, उसके कोई पुत्र नहीं था। सो उसने गुणवतोका विवाह चन्द्र नामके अपने एक शिष्यके साथ कर दिया ॥ ३ ॥ देवशर्मा चन्द्रको पुत्रके समान मानता था। उसी तरह चन्द्र भी देवशर्माको अपने पिता सदृश समझता था। एक दिन वे दोनों कुशा तथा समिधा लानेके लिए जंगलमें गये ॥ ४ ॥ जाते-जाते वे दोनों हिमवान् पर्वतके समीप पहुँचे और इधर उधर घूमने लगे। उसी समय उन्होंने अपने सामने एक बड़े भारी राक्षसको देखा ॥ ५ ॥ उसे देखकर भयसे उनके अंग शिथिल हो गये, जिससे भागनेकी सामर्थ्य नहीं रही और यमराजके समान उस विकराल राक्षसने उनको मार डाला ॥ ६ ॥ वे दोनों उस क्षेत्रके प्रभाव तथा अपनी धर्मशीलतासे विष्णुलोक गये। विष्णुके गण उन्हें वहाँ लिवा ले गये थे ॥ ७ ॥ उन्होंने जन्मभर सूर्यादि देवताओंका पूजन किया था। इस कारण उनपर विष्णुभगवान् बहुत प्रसन्न हुए ॥ ८ ॥ इस संसारमें शैव, सौर, गाणेश, वैष्णव तथा शक्ति-पूजक ये सब भगवान्‌के समीप उसी तरह जाते हैं, जैसे वर्षाका जल समुद्रमें जाता है ॥ ९ ॥ वह अकेला ईश्वर-नाम और कर्मके प्रभावसे पाँच रूपोंमें विभक्त होता है। जैसे अकेला देवदत्त किसी का पुत्र, किसीका भाई, किसीका चाचा कहलाता है। लेकिन वास्तवमें वह देवदत्त ही रहता है ॥ १० ॥ इसके अनन्तर

20

ततो गुणवती श्रुत्वा रक्षसा निहतावुभौ । पितृभर्तृजदुःखार्ता विललाप भृशातुरा ॥१२॥
सा गृहोपस्करान्सर्वान्विक्रीय शुभकर्मकृत् । तयोश्चक्रे यथाशक्ति परलोकक्रियां तदा ॥१३॥
तस्मिन्नेव पुरे वासं चक्रे प्रसूतिजीविनी । विष्णुभक्तिपरा शांता सत्यशौचा जितेन्द्रिया ॥१४॥
व्रताष्टकं तया सम्यगाजन्ममरणात्कृतम् । एकादशीव्रतं सम्यक् सेवनं कार्तिकस्य च ॥१५॥
माघे चैत्रे माधवेऽपि स्नानानि प्रतिवत्सरम् । संमार्जनं विष्णुगेहे स्वस्तिकादिनिवेशनम् ॥१६॥
नित्यं विष्णोः पूजनं च भक्त्या तत्परमानसा । इत्थं व्रताष्टकं सम्यक् सा चकारातिभक्तितः ॥१७॥
एकदा सा गुणवती पौराणिकमुखेन हि । श्रुत्वा महत्फलं शिष्य साकेते सरयूजले ॥१८॥
चैत्रस्नानस्य कैवल्यदायकं जनसंयुता । ययौ श्रीरामनगरीं रामतीर्थेऽवसच्छुभा ॥१९॥
सैकदा राघवं द्रष्टुं सरयूसैकतस्थितम् । वासोगेहे रहः पत्न्या ययौ बंधुसमन्वितम् ॥२०॥
पूजापात्राणि हस्ताभ्यां बिभ्रती द्वारसंस्थिता । प्रतीहारेण रामाय वेदिता सा विवेश ह ॥२१॥
वासोगेहं ददर्शाथ सीतया रघुनायकम् । रत्नमंचकसलग्नं धृताधोंकोपबर्हणम् ॥२२॥
क्रीडन्तं सारिभिः पाशैः सीतया लक्ष्मणेन च । कैकेयीतनयाभ्यां च सखीभिः परिवारितम् ॥२३॥
मयूरपिच्छसम्भूतचामरैः परिवीजितम् । रत्नचित्ररुक्मभवे नूपुरे पदयोर्वरे ॥२४॥
बिभ्रन्तं रशनां कट्यां रत्नरुक्मविभूषिताम् । रत्नरुक्मभवे दिव्यकङ्कणे करयोर्वरे ॥२५॥
बिभ्रन्तं भुजयोर्दिव्यकेयूरे रत्नभूषिते । कण्ठदेशे कौस्तुभं च हृदि चिंतामणिं शुभम् ॥२६॥
बिभ्रन्तं विविधान्हारान् रत्नमाणिक्यनिर्मितान् । तथाजालरुक्मजांश्च मुक्ताहारान् विचित्रितान् ॥२७॥

वे दोनों वैकुण्ठभुवनमें रहने लगे । उन्हें विमानकी सवारी मिली थी और सूर्यके समान उनका तेज था। विष्णुके समान उनका रूप था और उनके शरीरमें दिव्य चन्दन लगा रहता था ॥ ११ ॥ इसके पश्चात् जब गुणवतीने सुना कि मेरे पिता और पति दोनों किसी राक्षस द्वारा मार डाले गये हैं। तब उसे अतिशय दुःख हुआ और वह विलाप करने लगी ॥ १२ ॥ फिर घरमें जो कुछ माल-मताह था, सब वेच डाला और अपनी शक्तिके अनुसार उनकी पारलौकिकी क्रिया पूर्णकी । तबसे वह भीख माँगकर खाती हुई उसी नगरमें रहकर अपना जीवन बिताने लगी। गुणवती विष्णुकी भक्ति करती हुई सत्य-शौच-जितेन्द्रियतादि गुणोंसे पूर्ण हो गयी ॥ १३ ॥ १४ ॥ उसने अपने जीवन भरमें केवल आठ व्रत किये थे। वह एकादशी व्रत, कार्तिकका सेवन, मार्गशीर्ष, चैत्र तथा माघमें प्रतिवर्ष स्नान किया करती थी। वह विष्णुके मन्दिरमें बुहारी देती तथा स्वस्तिकादि रचती थी ॥ १५ ॥ १६ ॥ भक्तिसे और सावधान हृदयसे वह नित्य विष्णुका पूजन करती थी। इस तरह इन आठों व्रतोंको श्रद्धासमेत करती रही। हे शिष्य ! एक दिन उसने एक पौराणिकसे सुना कि चैत्रमासमें अयोध्याके सरयूजलका बड़ा माहात्म्य है और चैत्रमासमें तो वहाँ स्नान करनेसे सहज ही में मुक्ति मिल जाती है। यह सुनकर बहुतसे आदमियोंको साथ लेकर गुणवती चैत्रस्नानके लिए अयोध्या आयी और उसी पावन नगरीमें टिक गयी ॥ १७–१९ ॥ एक दिन गुणवती जहाँ सरयूकी रेतीमें रामचन्द्रजी डेरा डाले हुए थे, वहाँ जा पहुँची। उस समय रामचन्द्रजी पटगृहके किसी एकान्त कमरेमें लक्ष्मण और सीताके साथ बैठे थे। फाटकपर पहुँचकर गुणवतीने प्रतीहारी द्वारा सन्देश भेजा और स्वयं पूजापात्र हाथमें लिये बाहर ही खड़ी रही। प्रतीहारीके लौटनेपर वह अन्दर गयी ॥ २० ॥ २१ ॥ वहाँ पहुँचकर उसने देखा कि रामचन्द्र सीताके साथ रत्नजटित मञ्चपर बैठे थे और तकिया लगी थी ॥ २२ ॥ भगवान् राम सीता, लक्ष्मण, भरत तथा शत्रुघ्न सारिका और पाँसेके साथ खेल रहे थे। सखियाँ चारों ओरसे घेरकर खड़ी थीं ॥ २३ ॥ मयूरके पखनोंके बने हुए पंखे चल रहे थे। उनके दोनों पाँवोंमें रत्नजटित नूपुर और कमरमें रत्नजटित मेखला पड़ी थी । दोनों हाथोंमें जड़ाऊ कंकण पड़े थे ॥ २४ ॥ २५ ॥ हाथोंमें सुवर्णके रत्नभूषित दिव्य केयूर थे । कंठमें कौस्तुभमणि तथा हृदयमें चिन्तामणि था। राम विविध रत्नोंके जड़ाऊ हार पहने थे। सुनहले तथा चित्र-विचित्र मोतियोंके हार उनके गलेमें पड़े थे ॥ २६ ॥ २७ ॥

तुलसीकाष्ठहारांश्च पुष्पहाराननेकशः । प्रवालमणिहारांश्च शृङ्खलाः कांचनोद्भवाः ॥२८॥
पदकानि विचित्राणि रत्नमाणिक्यवंत्यपि । रंभाफलाब्जमदृशानलंकारान्विचित्रितान् ॥२९॥
रत्नमाणिक्यसंयुक्तान्मुकुरैरतिमंडितान् । नीलमारकतैश्चित्रान्रामनामांकितानपि ॥३०॥
अंगुलीष्वपि बिभ्रन्तं हस्तयोर्मुद्रिकाः शुभाः । रत्नमाणिक्यमुक्ताभिश्चित्रा रुक्मविनिर्मिताः ॥३१॥
रामनामांकिताश्चापि पवित्रा उज्ज्वला अपि । रत्नमुक्ताहेममये कर्णयोः कुंडले वरे ॥३२॥
बिभ्रन्तं महिसादृश्यानलंकाराननेकशः । बिभ्रन्तं रविसादृश्यं मुकुटं रत्नचित्रितम् ॥३३॥
नानामणिसमायुक्तं कलशैरतिशोभितम् । मुक्ताप्रवालवैदूर्ययुक्तं हेममयं वरम् ॥३४॥
एवं गुणवती रामं कोटिसूर्यसमप्रभम् । हेमवर्णं महारम्य कंजपत्रायतेक्षणम् ॥३५॥
सोमाननं कंजहस्तं दृष्ट्वा तं प्रणनाम सा । तां समुत्थापयद्रामस्तया सम्यक् प्रपूजितः ॥३६॥
तद्दत्तैरुपहाराद्यैः सुप्रीतस्तां तदाऽब्रवीत् । वरं वरय मामद्य यत्ते मनसि वर्तते ॥३७॥
इति रामवचः श्रुत्वा सा तुष्टा राममब्रवीत् । राम राजीवपत्राक्ष यथेमास्ते सहस्रशः ॥३८॥
दास्यः संति तथा मां त्वमंगीकर्तुमिहार्हसि । इति तद्वचनं श्रुत्वा राघवः प्राह सस्मितः ॥३९॥
कथं त्वं ब्राह्मणी चेत्थं वदस्यद्य शुभव्रते । मत्सेवां कर्तुमिच्छाऽस्ति तत्र तर्हि वदाम्यहम् ॥४०॥
शृणुष्व त्वं गुणवति कृष्णरूपधरो ह्यहम् । द्वापरे द्वारकायां हि भविष्याम्यन्यजन्मनि ॥४१॥
भजिष्यसि तदा मां त्वं स्त्रीरूपेण न संशयः । सत्राजिद्देवशर्मा ते भविष्यति पिता पुनः ॥४२॥
यश्चन्द्रनामा सोऽक्रूरो भविष्यति सखा मम । सत्यभामेति नाम्ना त्वं भविष्यसि प्रिया मम ॥४३॥
तदा कुरुष्व दास्यं मे यत्ते मनसि वर्तते । इति रामवचः श्रुत्वा तुष्टा गुणवती मुहुः ॥४४॥
नत्वा श्रीराघवं सीतां ययौ सा स्वस्थलं प्रति । चैत्रस्नानानन्तरं सा हरिद्वारं ययौ जनैः ॥४५॥

वे तुलसीके काठकी माला, फूलोंकी माला, प्रवाल और मणिकी बनी माला पहने हुए थे। गलेमें विचित्र प्रकारके पदक पड़े थे, जिनमें रत्न और मणिका काम किया हुआ था। रंभाफल तथा कमलकी नाईं उनका आकार था। उनमें जगह-जगह रत्न और मणिसे जड़े हुए छोटे-छोटे शीशे लगे हुए थे। नील मस्तकमणिसे वह चित्र-विचित्र मालूम पड़ता था। उसमें जहाँ-तहाँ रामके नाम लिखे हुए थे ॥ २८-३० ॥ वे दोनों हाथोंकी उँगलियोंमें सुन्दर अंगूठियाँ पहने थे, वे भी रत्न-मुक्ता-माणिक आदिसे जटित एवं सोनेकी बनी हुई थीं ॥ ३१ ॥ उनमें भी रामका नाम लिखा था और वे अंगूठियाँ बड़ी पवित्र तथा उज्ज्वल थी। रत्न तथा मुक्तासे जटित कुण्डल उनके कानोंमें झूल रहे थे। वे पृथ्वीके समान वहुतसे अलंकार तथा सूर्यके समान तेजस्वी हार धारण किये थे ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ मुकुटमें विविध प्रकारके रत्नोंके कलश लगे रहनेसे वह और भी सुन्दर लग रहा था। उसमें भी जगह-जगह मुक्ता-प्रवाल-वैदूर्य आदिका सुन्दर काम बना हुआ था ॥ ३४ ॥ इस तरह करोड़ों सूर्योंके समान तेजस्वी तथा सुवर्णकी भाँति जिनका वर्ण था, कमलपत्रके समान जिनके नेत्र थे, चन्द्रमाके समान जिनका मुख था और कमलकी भाँति हाथ थे, ऐसे रामको गुणवतीने देखा और प्रणाम किया। रामचन्द्रने उसे उठाया और उसने विविध प्रकारके उपचारोंसे रामकी पूजा की ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ और भेंट दिये। जिससे राम अतिशय प्रसन्न होकर कहने लगे कि "तुम्हारी जो इच्छा हो सो वर माँग लो" ॥ ३७ ॥ इस प्रकार रामकी बात सुनकर वह बोली—हे राजीवपत्राक्ष राम! जैसे आपकी ये हजारों दासियाँ हैं, वैसे ही मुझे भी अपनी एक दासी बना लीजिए। उसकी ऐसी बात सुनकर मुसकराते हुए राम कहने लगे—॥ ३८ ॥ ३९ ॥ तुम ब्राह्मणी होकर ऐसी अशुभ बात क्यों कह रही हो? यदि तुम्हें मेरी सेवा करनेकी इच्छा है, तो मैं बतलाता हूँ ॥ ४० ॥ हे गुणवती! सुनो, द्वापरयुगमें मैं कृष्णरूप धारण करके अवतार लूँगा। तब द्वारिकामें तुम मेरी स्त्री होकर इच्छानुसार मेरी सेवा करोगी। इसमें कुछ भी संशय नहीं है। उस समय देवशर्मा यादवश्रेष्ठ सत्राजित तुम्हारा पिता होगा, चन्द्र अक्रूरनामका मेरा मित्र होगा और तुम सत्यभामा नामकी मेरी पटरानी होओगी

आयुःशेषं समाप्याथ गंगायां कुणपं निजम् । सत्वरं स्नानसमये त्यक्त्वा नाकं चिरं गता ॥४६॥
ततः कालांतरेणासीत्सत्राजित्तनया भुवि । बभूव पत्नी कृष्णस्य द्वापरे द्वारकापुरि ॥४७॥
एकदा पिंगलानाम्नी वेश्या रात्रौ विनिद्रितम् । सीतया दिव्यपर्यंके ययौ सा राघवं रहः ॥४८॥
विहाय नूपुरादीनि स्वनवंति पदोः शनैः । इतस्ततो निरीक्षन्ती दिव्यवस्त्रादिभूषिता ॥४९॥
सीताभयात्प्रकंपन्ती कामबाणप्रपीडिता । मण्डिता पुष्पमालाद्यैर्भूषणैरतिशोभिता ॥५०॥
अज्ञाता द्वारपालैः सा निद्रितैर्मञ्चकं ययौ । स्वकरेण पदस्पर्शं कृत्वा रामं प्रबोधयत् ॥५१॥
तदा प्रबुद्धः श्रीरामस्तां ददर्श पुरःस्थिताम् । सा धृत्वा तत्पदे गाढं प्रार्थयामास राघवम् ॥५२॥
राम राजीवपत्राक्ष मया तेऽद्यापराधितम् । त्वं क्षमस्व कृपां कृत्वा मयि चानुग्रहं कुरु ॥५३॥
तत्तस्या वचनं श्रुत्वा ज्ञात्वा तां कामपीडिताम् । तां समाश्वसितुं प्राह राघवः कञ्जलोचनाम् ॥५४॥
एकपत्नीव्रतं मेऽस्मिन्भवे त्वं वेत्सि पिंगले । अतस्त्वत्कामपूर्त्यर्थं वदामि तच्छृणुष्व हि ॥५५॥
यदाऽहं मथुरामग्रे व्रजाच्छ्रीकृष्णरूपधृक् । यास्यामि मातुलं कंसं हत्वा स्थास्यामि तत्पुरीम् ॥५६॥
तदा भजिष्यसि त्वं मां कुब्जारूपेण पिंगले । गच्छ दासीस्वरूपेण तिष्ठ त्वं कंसवेश्मनि ॥५७॥
आयुःक्षये त्विमं देहं विसृज्य बहुभुक्तकम् । इत्युक्त्वा पिंगलां रामो ददावाज्ञां भयात्स्त्रियाः॥५८॥
शिक्षयामास द्वारस्थान्दासान्दासीर्विनिद्रिताः । ततः सीतां प्रबोध्याथ वेश्यावृत्तं न्यवेदयत् ॥५९॥
तच्छ्रुत्वा जानकी रुष्टा त्यक्त्वा पर्यङ्कमुत्तमम् । राघवं प्राह सक्रोधा कथं नाहं प्रबोधिता ॥६०॥
तदैवाद्य मया ज्ञातमेकपत्नीव्रतं मृषा । श्रुत्वादौ पिंगलां तूष्णीं त्वयाऽहं बोधिता ततः ॥६१॥

॥ ४१-४३ ॥ उस समय जैसी तुम्हारी इच्छा होगी, वैसा मेरा सेवा कर लेना । इस प्रकार रामकी बात सुनकर गुणवती बहुत प्रसन्न हुई ॥ ४४ ॥ वह रामचन्द्र तथा सीताको प्रणाम करके अपने डेरेपर लौट गयी । इस प्रकार वह अयोध्यामें चत्रस्नान करके अपने साथियोंके साथ हरिद्वार चली गयी । वहाँपर उसकी जितनी आयु शेष थी, उसे समाप्त करके एक दिन स्नान करनेको गंगाजी गयी और वहीं शरीर त्यागकर स्वर्गलोकको चली गयी ॥ ४५ ॥ ४६ ॥ जन्मान्तरमें गुणवती सत्राजित्की पुत्री होकर जन्मी और कृष्णकी पत्नी बनकर द्वारकामें निवास करने लगी ॥ ४७ ॥ एक दिन पिंगला नामकी एक वेश्या रात्रिके समय रामचन्द्रके पास पहुँची । उस समय राम सीताके साथ एक दिव्य पलंगपर सो रहे थे । वह वहाँ गयी ॥ ४८ ॥ नूपुरादिक बोलनेवाले आभूषणोंको पैरोंसे उतारकर वह सुन्दर कपड़े पहने भयवश इधर-उधर देखती जा रही थी । सीताके भयसे उसके अङ्ग-अङ्ग काँप रहे थे और वह कामके बाणसे पीडित थी । उसने सुगन्धित फूलोंकी माला तथा अनेक आभुषण पहन रक्खा था, जिससे वह बड़ी सुन्दरी मालूम पड़ती थी ॥ ४९ ॥ ५० ॥ जिस समय द्वारपालगण निद्रित थे, तब चुपकेसे भीतर चली आयी और रामचन्द्रके मंचके पास जा पहुँची । उसने हाथसे रामके पैर छूकर उन्हें जगाया ॥ ५१ ॥ राम जाग गये और सामने उस पिंगला वेश्याको देखा, तब वह जोरसे रामके पैरोंको पकड़कर प्रार्थना करने और कहने लगी--हे राम ! हे राजीवपत्राक्ष ! आज मैंने बड़ा भारी अपराध किया है । मेरे ऊपर कृपा करके आप उसे क्षमा कर दें और मेरेपर दया करें ॥ ५२ ॥ ५३ ॥ उसकी यह बातें सुनकर रामने समझ लिया कि यह कामपीडित है । तब उसे आश्वासन देनेके लिए कहने लगे—॥ ५४ ॥ हे पिंगले ! तुम जानती होगी कि इस जन्ममें मैं एकपत्नीव्रतधारी हूँ । अतएव तुम्हारी कामवासनाकी शान्तिका जो उपाय बतलाता हूँ, उसे सावधान होकर सुनो ॥ ५५ ॥ जिस समय कृष्णरूपधारी मैं व्रजसे मथुरा जाऊँगा और कंसको मारकर उस पुरीमें ठहरूँगा । तब हे पिंगले ! तुम कुब्जाके रूपसे मेरी सेवा करोगी । जाओ, मेरे आशीर्वादसे तुम इस शरीरकी शेष आयु बिताकर कंसके यहाँ दासी होओगी । स्त्री (सीता) के भयसे रामने केवल इतना कहकर उसे विदा कर दिया ॥ ५६-५८ ॥ तब उन्होंने द्वारपालों तथा दास-दासी आदिकोंको जगाकर डाँटा-फटकारा और सीताको जगाकर उस वेश्याका समस्त वृत्तान्त कह सुनाया ॥ ५९ ॥ सो सुना तो क्रोधित होकर जानकी शय्या छोड़कर उठ खड़ी हुईं और रामसे कहने लगीं कि वह आयी थी, तब तुमने मुझे

तां विसृज्य चिरादद्य ज्ञातुं ते चरितं मया । मृषा त्वया प्रतिज्ञातं पुरा व्यासमुनेः पुरः ॥६२॥
एकपत्नीव्रतं मेऽस्ति कौसल्यासदृशी मम । अन्या स्त्रीति मृषा वाक्यं कत्थसे त्वं पुनः पुनः ॥६३॥
क्व गतं तद्वचस्तेऽद्य क्व गतं तद्व्रतं तव । अद्यैव जीवितं स्वीयं त्यजामि सरयूजले ॥६४॥

वेश्यायाः पृष्ठसंलग्नां शय्यां नाद्य स्पृशाम्यहम् ।
वेश्यासक्तं स्वामिनं त्वां दृष्ट्वा द्वेषो भवेत्त्वयि ॥६५॥

मृतायां मयि यद्भाव्यं वेश्यासक्तस्य ते भवेत् । वेश्यासक्तपार्थिवस्य चिरं राज्यं न तिष्ठति ।६६॥
इत्युक्त्वा राघवं नत्वा देहत्यागार्थमुद्यता । ययौ वेगेन सरयूं वस्त्रगेहात्तडिन्प्रभा ॥६७॥
गच्छंतीं राघवो दृष्ट्वा मुक्तकच्छः प्रदुद्रुवे । संभ्रमाज्जानकीं धृत्वा भुजाभ्यां सैकतेऽमले ॥६८॥
अब्रवीन्मधुरं वाक्यं मा रुष त्वं विदेहजे । शृणुष्व वचनं मे त्वं दिव्यं ते प्रवदाम्यहम् ।६९॥
मयि ते शपथैरद्य प्रत्ययो न भविष्यति । दुर्घटं यद्ब्रवीषि त्वं तद्दिव्यं प्रवदाम्यहम् ॥७०॥
वद शीघ्रं जनकजे मा क्रोधं भज भामिनि । इति रामवचः श्रुत्वा जानकी प्राह राघवम् ॥७१॥

जानक्युवाच

राम ब्रूयामहं किं ते येन दिव्यं ददामि ते । अनलस्त्वन्मुखोद्भूतो नयने शशिभास्करौ ।७२॥
वासस्ते जलधौ राम पृथ्वीयं विधृता त्वया । शेषस्तल्पस्तवैवाय लक्ष्मणस्तिष्ठते बहिः ॥७३॥
शास्त्राणि त्वन्नखजानि सर्वाण्यत्र न संशयः । यद्यत्पश्यामि तत्सर्वं तव रूपं न संशयः ।७४॥
न दुर्घटं ते दिव्यार्थं किंचित्पश्यामि राघव । किं ब्रूयामधुना तेऽत्र येन मे प्रत्ययो भवेत् ॥७५॥
एकमेवास्ति जानेऽहं तत्कुरुष्व रघूत्तम । इदानीमेव स्वगुरुं समाहूय रघूद्वह ॥७६॥

क्यों नहीं जगाया ? ॥ ६० ॥ आज तुम्हारा एकपत्नीव्रत मालूम हो गया । पिंगला आयी, उसके साथ चुपकेसे भोग कर लिया और जब वह चली गयी, तब मुझे जगाया॥ ६१ ॥ बहुत दिनों बाद आज तुम्हारी यह पोल खुली है। उस दिन व्यासमुनिके सामने जो एकपत्नीव्रत धारण करनेकी कसम खायी थी, सो सब ढोंग था ॥ ६२ ॥ "नहीं सीते !" रामने नम्रतापूर्वक कहा--"वास्तवमें मैं एकपत्नीव्रतधारी हूँ। तुम्हारे सिवाय संसारकी समस्त स्त्रियाँ मेरे लिए कौसल्याके समान हैं। तुम व्यर्थ मेरे ऊपर रुष्ट हो रही हो" ॥ ६३ ॥ तब सीता और भी तमककर कहने लगीं कि तुम्हारी वह प्रतिज्ञावाली बात कहाँ गयी ? वह व्रत कहाँ गया ? आज ही मैं सरयूके जलमें डूबकर अपना जीवन समाप्त कर दूँगी ॥ ६४ ॥ मैं ऐसी शय्यापर अब नहीं सोना चाहती, जिसपर कि एक वेश्याकी पीठ लग चुकी है। तुम्हारे जैसे वेश्यासक्त राजाकी जो दशा होनी होगी, सो होगी । लेकिन यह समझ रखियेगा कि वेश्यासक्त राजाका राज्य ज्यादा दिन नहीं ठहरता ॥६५॥६६॥ इतना कहकर सीताने रामको प्रणाम किया और अपना देह त्याग करनेके लिए पटगृहसे बाहर होकर सरयूके तीरकी ओर चलीं ॥ ६७ ॥ सीताको जाती देखकर राम भी पीछेसे दौड़ पड़े और जलके पास पहुँचनेसे पहले ही उन्हें रेतीमें पकड़ लिया ॥ ६८ ॥ तब वे मीठी-मीठी बातोंमें कहने लगे-हे विदेहजे ! मेरे ऊपर इतना नाराज मत होओ । मेरी बात सुनो-यदि मेरी बातपर विश्वास न हो तो मैं शपथ खानेको भी तैयार हूँ ॥ ६९ ॥ ७० ॥ हे सीते ! बोलो, क्या कहती हो ? हे भामिनि ! इस तरह क्यों कोप करती हो ? इस प्रकार रामकी बात सुनकर सीताने कहा—मैं तुम्हें कुछ कहती तो हूँ नहीं। फिर तुम कसम किसलिए खानेको तैयार हो ? क्यों दिव्य परीक्षा कराना चाहते हो ? फिर यदि मैं दिव्य परीक्षा लेना भी चाहूँ, तो कैसे लूँ ! अग्नि तुम्हारे मुखसे निकला है, सूर्य-चन्द्रमा तुम्हारे दोनों नेत्र हैं, समुद्र तुम्हारा निवासस्थान है, पृथ्वीको तुमने अपने ऊपर रख छोड़ा है, शेष तुम्हारी शय्या है, सो वे भी लक्ष्मणके रूपमें बाहर बैठे हुए हैं ॥ ७१-७३ ॥ इसमें कोई सन्देह नहीं है कि समस्त शास्त्र तुम्हारे नखसे जायमान हुए हैं, मैं जिधर देखती हूँ, जो कुछ भी देखती हूँ, सब तुम्हारा ही रूप है ॥ ७४॥ मैं कोई भी दुर्घट दिव्य (कसम) नहीं देखती,

पदयोस्तस्य शपथं कृत्वा ते प्रत्ययो मम। भविष्यति न संदेहस्तं कुरुष्व रघूत्तम ॥७७॥
इति सीतावचः श्रुत्वा प्रहस्य रघुनन्दनः। दास्या सौमित्रिमाहूय वसिष्ठं प्रैषयत्तदा ॥७८॥
लक्ष्मणः शिबिकारूढः पुरद्वारान्तिकं ययौ। रामवाक्याद्द्वारपोऽपि द्वारमुद्घाटयत्तदा ॥७९॥
गत्वा पुर्यां लक्ष्मणः स गुरोर्द्वारि स्थितोऽभवत्। वसिष्ठद्वारपो दास्या वसिष्ठाय न्यवेदयत् ॥८०॥
निशीथे लक्ष्मणं द्वारमागतं त्विति संभ्रमात्। अरुंधत्या वसिष्ठोऽपि तच्छ्रुत्वा विह्वलोऽभवत्॥८१॥
निशीथे लक्ष्मणश्चात्र किमर्थं मां समागतः। इति विह्वलचित्तः स समाहूयाथ लक्ष्मणम् ॥८२॥
पप्रच्छ गमनस्याथ कारणं मुनिसत्तमः। त नत्वा लक्ष्मणः प्राह रामेण स्मारितोऽसि हि ॥८३॥
कारणं नात्र जानामि समुत्तिष्ठाधुनैव हि। शिबिकाऽधिष्ठिता द्वाराद्बहिस्ते मुनिसत्तम ॥८४॥
इति श्रुत्वा रामवाक्यमरुंधत्याऽतिप्रार्थितः। शिबिकायामरुंधत्या स्थित्वा शीघ्रं ययौ गुरुः ॥८५॥
तत्पृष्ठे शिबिकासंस्थः सौमित्रिस्त्वरितो ययौ। रत्नदीपप्रकाशैश्च वेष्टितो वेत्रपाणिभिः ॥८६॥
समागतं गुरुं ज्ञात्वा प्रत्युद्गम्य रघूत्तमः। दत्त्वासनं वसिष्ठाय सीतया प्रणनाम सः ॥८७॥
कृत्वा पूजां सविस्तारं वस्त्रैराभरणादिभिः। कथयामास सकलं पिंगलावृत्तमादरात् ॥८८॥
कथयामास सीतायाः क्रोधवाक्यान्यपि प्रभुः। दिव्यं दातुं न किंचिच्च दृष्ट्वाऽन्यत् सीतया मम ॥८९॥
विनिश्चितं ते पदयोर्दिव्यं तत्ते वदाम्यहम्। मनसाऽपि न भुक्ता सा मया वेश्याऽथवा परा ॥९०॥
इदं चेद्वचनं सत्यं स्पृशामि तर्हि त्वत्पदे। इत्युक्त्वा राघवः शीघ्रं वसिष्ठपदयोः करौ ॥९१॥
स्वीयौ संस्थाप्य शिरसा प्रणनाम गुरुं पुनः। तद्दृष्ट्वा लज्जिता सीता ज्ञात्वा शुद्धं रघूत्तमम् ॥९२॥

जिससे मेरे मनमें विश्वास हो ॥ ७५ ॥ बहुत कुछ सोच-विचारकर मैंने तो यही निश्चय किया है और आप भी वही करें। अभी अपने गुरु (वसिष्ठ) को बुलाकर यदि आप उनके पैरोंकी शपथ खा लें तो मुझे विश्वास हो जायगा। हे रघूत्तम ! ऐसा करनेसे मेरे हृदयमें किसी प्रकारका संशय नहीं रह सकेगा। अतएव आप यही करें ॥ ७६ ॥ ७७ ॥ इस प्रकार सीताका कथन सुनकर रामने तुरन्त दासी द्वारा लक्ष्मणको बुलवाया और वसिष्ठजीके पास भेजा ॥ ७८ ॥ पालकीपर चढ़कर लक्ष्मण राजद्वारपर पहुँचे। वहाँ पहरेदारोंसे फाटक खुलवाकर तुरन्त गुरु वसिष्ठके दरवाजेपर जा पहुँचे। द्वारपालने दासी द्वारा लक्ष्मणके आनेका सन्देश वसिष्ठके पास भेजवाया ॥ ७९ ॥ ८० ॥ आधी रातके समय लक्ष्मणको द्वारपर आना सुनकर वसिष्ठ तथा अरुन्धती दोनों घबराहटसे विह्वल हो गये ॥ ८१ ॥ वे सोचने लगे कि आधी रातको लक्ष्मण मेरे पास क्यों आये। इस प्रकार व्याकुलताके साथ उन्होंने लक्ष्मणको अपने पास बुलाया ॥ ८२ ॥ और आनेका कारण पूछा। वसिष्ठको प्रणाम करके लक्ष्मणने कहा कि आपको रामने स्मरण किया है ॥ ८३ ॥ आपको बुलानेका कारण मैं भी नहीं जानता। हाँ, यह जानता हूँ कि आप अभी उठकर मेरे साथ चल दें। बाहर पालकी तैयार है ॥ ८४ ॥ इस तरह लक्ष्मण द्वारा रामकी बात सुनकर अरुन्धतीके प्रार्थना करनेपर वसिष्ठ उन्हें भी अपने साथ लिये हुए झटपट चल दिये ॥ ८५ ॥ उनके पीछे-पीछे लक्ष्मणकी पालकी चली। जिस समय वसिष्ठ राजभवनमें पहुँचे, तब चारों ओर रत्नोंके दीपकोंका प्रकाश फैल रहा था। अनेक पहरेदार अपनी-अपनी नौकरीपर डटे हुए थे और बहुतसे वसिष्ठको घेरकर साथ चल रहे थे ॥ ८६ ॥ जब रामने सुना कि गुरुजी आ गये हैं तो उठ तथा थोड़ी दूर आगे जाकर मिले और सीताके साथ उनको प्रणाम किया। फिर एक दिव्य आसनपर बिठाकर वस्त्राभूषणोंसे विधिवत् पूजन करनेके पश्चात् उस पिंगला वेश्याका वृत्तान्त कह दिया ॥ ८७ ॥ ८८ ॥ फिर वह बातें भी बतलायीं, जो क्रोधमें सीताने रामको कही थीं। फिर कहने लगे कि सीताको विश्वभरके किसी भी शपथपर विश्वास नहीं है ॥ ८९ ॥ अन्तमें आपके चरणोंकी शपथ खिलानेपर राजी हुई हैं। मैंने कभी मनसे भी उस वेश्या तथा अन्य किसी स्त्रीके साथ व्रतभङ्ग नहीं किया है ॥ ९० ॥ यदि मेरी ये बातें सच हैं तो मैं आपके पैर छूकर शपथ खाता हूँ। ऐसा कहकर झटपट रामने वसिष्ठजीके पैर पकड़ लिये ॥ ९१ ॥ फिर अपना मस्तक झुकाकर प्रणाम किया। यह देखकर सीता लज्जित हो

प्रणम्य मेऽपराधं तं क्षमस्वेति प्रसादयत् । ततः सीता गुरोः पत्न्यै ददौ चित्राणि भक्तितः ॥९३॥
भूषणानि वराण्येव दिव्यवस्त्राणि सादरम् । रामेण पूजितश्चापि वसिष्ठः पूर्ववत्स्त्रिया ॥९४॥
सहितः शिबिकासंस्थस्तुष्टः स्वीयगृहं ययौ । ततः सीतां समालिंग्य रामो निद्रां चकार सः ॥९५॥
प्रभाते पिंगलां दास्या समाहूयाथ जानकी । धिग्धिक्कृत्वा सखीभिस्तां ताडयामास बंधिताम्॥९६॥
सीतोवाच तदा वेश्यां यस्मान्मेद्यापराधितम् । भविष्यसि त्रिवक्रा त्वं मथुरायां हि कुत्सिता ॥९७॥
वेश्यया प्रार्थिता प्राह कृष्णस्त्वामुद्धरिष्यति ॥९८॥
श्रुत्वा तां बंधितां वेश्यां मोचयामास राघवः ।
एवं नानाकौतुकानि चकार रघुनंदनः । सीतां संरञ्जयामास स्वचरित्रैर्मनोरमैः ॥९९॥

इति श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये विलासकांडे सीताऽलंकारवर्णनं नामाष्टमः सर्गः ॥ ८ ॥

नवमः सर्गः

(सूर्यग्रहणपर रामकी कुरुक्षेत्रयात्रा)

श्रीरामदास उवाच

एकदा सीतया रामः कुरुक्षेत्रं स्वबंधुभिः । ययौ सूर्योपरागे वै स्नातुं पुष्पकसंस्थितः ॥ १ ॥
तत्र देवाः सगन्धर्वाः किन्नराः पन्नगा ययुः । नानाऽऽश्रमेभ्यो मुनयः पार्थिवाश्च सहस्रशः ॥ २ ॥
तत्र स्नात्वा रवौ ग्रस्ते राघवः सीतया सह । चकार नानादानानि हस्त्युष्ट्ररथवाजिनाम् ॥ ३ ॥
ततस्ते पार्थिवाः सर्वे नानोपायनपाणयः । ययुस्ते राघवं द्रष्टुं राजपत्न्यश्च जानकीम् ॥ ४ ॥
अथ सीता राजपत्नीः समालिंग्य वरासने । सखीभिर्मुनिदारैश्च सुखं चोपाविशत्तदा ॥ ५ ॥
एतस्मिन्नन्तरे तत्र सीतया पूजिता स्थिता । लोपामुद्राऽब्रवीद्वाक्यं जानकीं रंजयन्मुदा ॥ ६ ॥
हे सीते कंजनयने धन्याऽसि गजगामिनि । किंचिद्वर्णय रामस्य पौरुषं श्रुतितोषदम् ॥ ७ ॥

गयीं और उन्हें विश्वास हो गया कि रामचन्द्रजी परम पवित्र हैं ॥ ९२ ॥ तब सीताने प्रणाम करके रामसे प्रार्थना की कि मेरी भूल थी, आप मुझे क्षमा करें। इसके अनन्तर सीताने गुरुपत्नी अरुन्धतीको विविध प्रकारके आभूषण वस्त्रादि दिये । रामचन्द्रजीने फिर वसिष्ठजीकी पूजा की। थोड़ी देर बाद गुरुपत्नीके साथ-साथ पालकीपर बैठकर वसिष्ठजी अपने घरको चले गये। तदनन्तर राम भी सीताका आलिंगन करके सो रहे ॥ ९३-९५ ॥ सबेरे दासी द्वारा सीताने पिंगला वेश्याको बुलवाया। उसे बार-बार धिक्कारा और बाँधकर सखियोंके हाथों पिटवाया ॥ ९६ ॥ इसके पश्चात् उस वेश्यासे कहा कि तूने आज बड़ा भारी अपराध किया है। इससे भविष्यमें जब तू जन्म लेगी, तब तेरे शरीरमें तीन कूबड़ होंगे और तुझसे सब घृणा करेंगे ॥ ९७ ॥ तदनन्तर उस वेश्याने अनेक प्रकारसे सीताकी प्रार्थना की। तब सीताने कहा–'अच्छा, जा तेरा उद्धार कृष्णके हाथों होगा'। उधर जब रामने सुना कि पिंगला बँधी पिट रही है, तब उसे छुड़वा दिया ॥ ९८ ॥ इस तरह राम विविध प्रकारके कौतुक करके अपने मनोहर चरित्रोंसे सीताको प्रसन्न करते रहते थे ॥ ९९ ॥ इति श्रीमदानन्द-रामायणे वाल्मीकीये पं० रामतेजपाण्डेयविरचित'ज्योत्स्ना'भाषाटीकासमन्विते विलासकाण्डे अष्टमः सर्गः ॥ ८ ॥

श्रीरामदासने कहा—एक बार रामचन्द्रजी सीता तथा अपने समस्त भ्राताओंके साथ पुष्पक विमानपर सवार होकर सूर्यग्रहणके समय कुरुक्षेत्र गये ॥ १ ॥ वहाँ समस्त देवता, गन्धर्व, किन्नर, पन्नग तथा कितने ही आश्रमोंके मुनि और हजारों राजे आये हुए थे ॥ २ ॥ जब सूर्यग्रहण लगा, उस समय सीताके साथ रामने स्नान किया तथा हाथी-घोड़े-ऊँट और रथ आदि दान दिया ॥ ३ ॥ इसके अनन्तर वहाँ आये हुए राजे अनेक प्रकारके उपहार ले-लेकर रामका दर्शन करने आये और रानियाँ भी सीताको देखनेके लिए उनके साथ आयीं ॥ ४ ॥ जब रानियाँ सीताके पास पहुँचीं तो उन्होंने बड़े आदरके साथ उन्हें उनकी सखियों और मुनिपत्नियोंके साथ एक सुन्दर आसनपर बिठलाया ॥ ५ ॥ सीताके विधिवत् पूजन कर लेनेके बाद मुनिपत्नियोंमेंसे अगस्त्यपत्नी लोपामुद्रा सीताको प्रसन्न करती हुई कहने लगीं—॥ ६ ॥ हे कमलनेत्रे

तत्तस्या वचनं श्रुत्वा वर्णयामास जानकी। स्वपाणिग्रहणात्पत्युः कुरुक्षेत्रावधिं कथाम् ॥ ८॥
लोपामुद्राऽपि तच्छ्रुत्वा विहस्य प्राह जानकीम्। सर्वं योग्यं कृतं सीते राघवेण महात्मना ॥ ९॥
एक एव वृथा क्लेशः कृतस्तेनेति वेद्म्यहम्। महान् श्रमः सेतुबंधे किमर्थं हि कृतः पुरा। १०॥
कथं न कथितं कुम्भजन्मने राघवेण हि। क्षणात्वं चुलुके कृत्वा पीत्वेमं लवणार्णवम् ॥११॥
शुष्कं कृत्वा कपीन्मार्गोऽभविष्यदत एव हि। वृथा ते श्रमिताः सर्वे वानराः सेतुबंधने ॥१२॥
इति तस्या वचः श्रुत्वा सगर्वं जानकी तदा। लोपामुद्रां विहस्याह लोपामुद्रे पतिव्रते। १३।
सम्यक्कृतं राघवेण यत्सेतोर्बंधनं वरम्। तत्कारणं वदाम्यद्य शृणु त्वं स्वस्थमानसा ॥१४॥
शृण्वंत्विमाः समायाता मद्वाक्यं पार्थिवस्त्रियः। बाणेन शोषणीयश्चेत्सागरो राघवेण हि ॥१५॥
भविष्यति तदा हत्या बहवश्चेति शंकितम्। उल्लंघनीयो जलधिश्चेद्रामेण विहायसा ॥१६॥
तदा रामं मनुष्यं च कदा ज्ञास्यति रावणः। हनुमत्पृष्ठमारुह्य गन्तव्यं चेत्परे तटे ॥१७॥
लंकां प्रति तदा रामपौरुषं किं वदन्ति हि। यदि तीर्त्वा प्रगन्तव्यं बाहुभ्यां राघवेण हि ॥१८॥
नोल्लंघनीयं विप्रस्य मूत्रं चेति विशंकितम्। चेन्मुनिः कुंभजन्मा वै प्रार्थनीयः पतिस्तव ।१९।
रामेण चुलुकं कर्तुं तदा तल्लवणांबुधेः। मंत्रितं राघवेणापि तदा हृदि सविस्तरम् ॥२०॥
पीतोऽयं जलधिः पूर्वं श्रुतं क्रोधादगस्तिना। मूत्रद्वाराद्बहिस्त्यक्तो यस्मात्क्षारत्वमागतः ॥२१॥
सर्वथा मूत्रवत्क्षारः स कथं पातुमर्हति। स ऋषिर्मम वाक्येन चुलूकं तु करिष्यति ॥२२॥
भविष्यति ममाकीर्तिः सर्वत्र जगतीतले। मूत्रपानं ब्राह्मणेन स्वकार्यार्थं निजोक्तिभिः ॥२३॥
कारितं येन रामेण सोऽयं चेतीति शंकितः। न मुनिं प्रार्थयायास राघवो धर्मवत्परः ॥२४॥
एवं संमंत्र्य रामेण स्वकीर्त्यै सेतुबंधनम्। कृतं केनापि न कृतं न कोऽप्यग्रे करिष्यति ॥२५॥
येन रामेण जलधौ शिलाः संतारिताः पुरा। सोऽयं दाशरथी रामश्चेति ख्यातिं गतो भुवि ॥२६॥

सीते! हे गजगामिनि! तुम धन्य हो। हमारे कानोंको आनन्द देनेवाले रामजीके किसी पौरुषका तो वर्णन करो॥ ७॥ लोपामुद्राके यह कहनेपर सीताने अपने विवाहसे लेकर कुरुक्षेत्रकी यात्रा पर्यन्तका समस्त वृत्तान्त कह सुनाया॥ ८॥ लोपामुद्राने कथा सुनकर सीतासे कहा—हे सीते! महात्मा रामचन्द्रने अबतक जो कुछ किया, वह बहुत ठीक किया। केवल एक बातमें चूक गये और उन्होंने इतना क्लेश उठाया। मैं नहीं समझ पाती कि लङ्कापर चढ़ाई करते समय रामने समुद्रमें सेतु बनानेका कष्ट क्यों किया॥ ९॥ १०॥ उन्होंने अगस्त्यजीसे क्यों नहीं कह दिया। वे एक अंजलीमें भरकर क्षणभरमें उस खारे समुद्रको पी जाते॥ ११॥ समुद्र सूख जाता और कपियोंको लङ्का जानेके लिए मार्ग मिल जाता। नाहक सेतु बांधनेके लिए उन्होंने उन वानरोंको कष्ट दिया॥ १२॥ इस प्रकार लोपामुद्राकी बात सुनकर सगर्व वाणीमें सीताजी कहने लगीं—हे पतिव्रते लोपामुद्रे! रामने जो सेतु बाँधा, वह बहुत अच्छा किया। मैं उनका कारण भी बतलाती हूँ, आप सावधान होकर सुनें॥ १३॥ १४॥ यहाँ आयी हुई ये राजरानियाँ भी शान्तचित्तसे मेरी बात सुनें। यदि राम अपने बाणसे समुद्रको सुखाते तो बहुतसे प्राणियोंकी हत्या होनेकी आशङ्का थी। यदि राम आकाशमार्गसे समुद्रको लांघ जाते तो रावण और वानर यह कैसे जानते कि राम मनुष्य हैं। यदि हनुमानजीकी पीठपर बैठकर चले जाते॥ १५–१७॥ तब रामका क्या पराक्रम देख पड़ता? यदि हाथोंसे तैरते हुए उस पार चले जाते॥ १८॥ तब उन्हें यह ख्याल होता कि ब्राह्मणके मूत्रको कैसे लाँघूँ। यदि आपके पति अगस्त्यसे उसे पीनेकी प्रार्थना करनेकी सोचते तो यह विचार होता कि एक बार अगस्त्य इस समुद्रको पी चुके हैं और मूत्रमार्गसे बाहर निकाला है। इसीसे यह खारा है॥ १९–२१॥ उसी मूत्रके समान खारे समुद्रको अगस्त्यजी कैसे पियेंगे। मान लिया जाय कि रामके कहनेसे अगस्त्यजी समुद्रको पी जाते तो संसारमें रामका बड़ा अपयश होता कि रामने अपना मतलब साधनेके लिए एक ब्राह्मणको मूत्र पिलाया। इन्हीं बातोंको सोचकर धर्मात्मा रामने अगस्त्यसे समुद्र पीनेको नहीं कहा॥ २२-२४॥ इन बातोंको खूब अच्छी तरह सोच-विचारकर ही रामचन्द्रजीने अपनी कीर्तिवृद्धिके लिए समुद्रपर सेतु

इति सीतावचोभिः सा लोपामुद्रा जिता तदा । तूष्णीमास क्षणं नारीसभायां लज्जिताऽभवत् ॥२७॥
ततो विहस्य वैदेही लोपामुद्रां प्रपूजयत् । मुनिपत्नीश्च संपूज्य प्रार्थयामास तां मुहुः ॥२८॥
मयाऽपराधितं तेऽद्य तत्क्षमस्व पतिव्रते । स्नेहात्प्रसंगतश्चोक्तं त्वदग्रे रामपौरुषम् ।२९॥
त्वद्भर्तुराशिषा रामे पौरुषं चेति वेद्म्यहम् । इति संप्रार्थ्य ताः सर्वा मुनिपत्नीर्व्यसर्जयत् ॥३०॥
पूजिता नृपपत्नीभिर्ययौ सीता रघूत्तमम् । ततो रामोऽपि पृथ्वीशैः पूजितो गजवाजिभिः ॥३१॥
ययौ स नगरीं तुष्टः सीतया गरुडे स्थितः । ये ये समागतास्तत्र कुरुक्षेत्रे रविग्रहे ॥३२॥
ते सर्वे स्वस्थलं जग्मू रामदर्शनहर्षिताः । रामोऽपि नगरीमध्ये पुरस्त्रीभिर्मुहुः पथि ॥३३॥
नीराजितः कुंभदीपैर्ययौ निजगृहं मुदा । रेमे जनकनन्दिन्या चिरकालं यथासुखम् ॥३४॥
एवं रामेण साकेतपुर्यामवनिकन्यया । नानाक्रीडाकौतुकानि कृतान्यतिमहान्त्यपि ॥३५॥
यथा कृता राघवेण सुखं क्रीडा च सीतया । तथैवोर्मिलया रेमे लक्ष्मणोऽपि यथासुखम् ॥३६॥
मांडव्या भरतश्चापि रेमे रामो यथा स्त्रिया । तथैव श्रुतकीर्त्याऽपि शत्रुघ्नः क्रीडनं व्यधात् ॥३७॥
एवं ते स्वीयपत्नीभिः पौराः क्रीडाः प्रचक्रिरे । तथैव विविधद्वीपान्नानादेशनिवासिनः ॥३८॥
रेमिरे तेऽपि पत्नीभिः स्वीयाभिर्मुदिताः सुखम् । सीतया राघवो रेमे यथा गौर्या स शंकरः ॥३९॥
रामे शासितराज्येऽत्र न कोऽपि जगतीतले । परदाररतो वेश्यागामी मादकवस्तुभुक् ॥४०॥
न दरिद्री नैव रोगी चिन्ताग्रस्तो न विह्वलः । न पापात्मा जडो नासीन्न चौरो नापि हिंसकः ॥४१॥
एवं शिष्य मया प्रोक्तं विलासचरितं वरम् । सीतया रामचंद्रस्य साकेते सौख्यदं नृणाम् ॥४२॥
विलासकाण्डमेतद्वै यः पठिष्यति मानवः । प्रातः काले च मध्याह्ने निशायां रामसन्निधौ ॥४३॥

बँधवाया था। जिस कामको न तबतक किसीने किया था और न आगे कोई कर सकेगा, उसे उन्होंने कर दिखाया ॥ २५ ॥ अब सब कोई परस्पर कहते हैं कि जिन रामने समुद्रमें शिला तैरा दिया था, वे ही ये दशरथके पुत्र राम हैं ॥ २६ ॥ इस प्रकार सीताकी बातोंसे लोपामुद्रा परास्त हो गयीं। थोड़ी देरके लिए उस नारीसभामें चुपचाप बैठी हुईं वे कुछ लज्जित-सी हो गयीं ॥ २७॥ फिर हँसकर सीताने लोपामुद्रा तथा अन्यान्य मुनिपत्नियोंकी पूजा की और बारम्बार प्रार्थना करके कहा—॥ २८ ॥ मैंने जो धृष्टता की है, उसे आप क्षमा करें। आपके स्नेह तथा प्रसंग आ जानेपर मैंने इस प्रकार रामके पौरुषका वर्णन किया है ॥ २९ ॥ हमारे पतिदेव राममें जो कुछ पराक्रम है, वह सब आपके स्वामी अगस्त्यजीके ही आशीर्वादसे है। इस प्रकार विनती करके सीताने उन मुनिपत्नियोंको विदा किया ॥ ३० ॥ तदनन्तर राजरानियों द्वारा पूजित होकर सीता रामके पास चली गयीं। राम भी उन देश-देशान्तरसे आये हुए राजाओंसे कितने ही हाथी-घोड़ोंका उपहार लेकर पूजित हुए और प्रसन्नतापूर्वक सीताके साथ गरुड़पर सवार होकर अयोध्याको चल पड़े ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ सूर्यग्रहणके समय कुरुक्षेत्रमें जो लोग स्नान करने आये थे, वे रामके दर्शनसे हर्षित हो-होकर अपने-अपने घरोंको वापस गये। राम भी अयोध्यामें पहुँचकर नागरिक स्त्रियोंके द्वारा नीराजित होते हुए अपने महलोंमें गये। इसके बाद फिर बहुत कालपर्यन्त रामचन्द्रजी सीताके साथ विहार करते रहे ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ इस तरह रामने सीताके साथ अयोध्यामें विविध प्रकारके क्रीड़ा-कौतुक किये ॥ ३५ ॥ जिस तरह राम सीताके साथ आनन्द करते थे, ठीक उसी तरह लक्ष्मण उर्मिलाके साथ सुखपूर्वक विलास करते थे ॥ ३६ ॥ उसी तरह भरत मांडवीके साथ तथा शत्रुघ्न श्रुतकीर्तिके साथ क्रीड़ा करते थे ॥३७॥ पुरवासीगण तथा विविध द्वीप और देशके निवासी भी अपनी-अपनी स्त्रियोंके साथ प्रसन्नतापूर्वक भोग-विलास करते थे। राम तो सीताके साथ उसी तरह आनन्द करते थे, जैसे कैलासपर पार्वतीके साथ शंकरजी स्वच्छंद विहार करते हैं ॥ ३८ ॥ ३९ ॥ रामके शासनकालमें कोई भी मनुष्य दूसरेकी स्त्रियोंपर आसक्त तथा वेश्यागामी नहीं था। न कोई किसी तरहकी मादक वस्तु ही खाता-पीता था ॥ ४० ॥ रामके राज्यमें कोई दरिद्र, रोगी, चिन्तातुर, विह्वल, पापी, मूर्ख, चोर अथवा हिंसक नहीं था ॥ ४१ ॥ हे शिष्य ! मैंने तुम्हें इस प्रकार रामका सुन्दर विलासकाण्ड कह सुनाया। जिसमें राम और सीताका सबके लिए सुखद चरित्र भरा हुआ है ॥४२॥

स ज्ञेयो राघवः साक्षाद्भुवि मानवरूपधृक् । विलासकाण्डपठनाद्धनार्थी धनमाप्नुयात् ।।४४।।
भोगानाप्नोति भोगार्थी पुत्रार्थी पुत्रमाप्नुयात् । विलासकाण्डमेतद्वै राममक्त्येकमानसः ।।
यः शृणोति नरः कश्चित्स सुखं प्राप्नुयाद्भुवि ।।४५।।
विलासकाण्डश्रवणान्नरः पापात्प्रमुच्यते । विलासकाण्डं परमं रम्यं जनमनोहरम् ।।४६।।
आनन्ददायकं चित्रं श्रुतिसौख्यप्रदं महत् । ये पठंत्यथ शृण्वंति सर्वान्कामान् लभंति ते ।।४७।।
धर्मार्थी प्राप्नुयाद्धर्मान्धनार्थी प्राप्नुयाच्छ्रियम् । कामानाप्नोति कामार्थी मोक्षार्थी मोक्षमाप्नुयात् ।।
निशायां मंचके स्थित्वा निजपत्न्या पठेत्तु यः । विलासकांडं षण्मासं तस्य पुत्रो भविष्यति ।।४९।।
अथवा मंचके व्यासं सन्निवेश्याथ तत्पुरः । द्वितीये मंचके स्थित्वा स्वयं दयितया सह ।।५०।।
यः शृणोति निशायां हि विलासाख्यं मनोरमम् । एतत्कांडं पवित्रं च नवमासान् पुनः पुनः ।।५१।।
तस्यापुत्रस्य पुत्रः स्यान्नात्र कार्या विचारणा । पुत्रार्थमेव श्रोतव्यं मञ्चके ह्युपविश्य च ।।५२।।
श्रोतव्यं नान्यकामेषु मञ्चकस्थैर्नरैः कदा । विलासकाण्डमेतद्वै स्त्रीकामाद्यः पठेन्नरः ।।५३।।
स भार्यां प्राप्नुयाद्रम्यां नवमासैर्न संशयः । कुमारी शृणुयादेतत्पत्यर्थं काण्डमुत्तमम् ।।५४।।
पुनः पुनस्तु षण्मासं लभिष्यति वरं पतिम् । विलासकांडमेतद्वै याः शृण्वन्ति वराः स्त्रियः।।५५।।
सौभाग्यलक्ष्म्या न कदा ता विहीना भवन्ति हि । भर्तुरायुष्यवृद्ध्यर्थं स्त्रीभिश्च स्नानपूर्वकम् ।।
श्रवणीयं विलासाख्यमेतत्काण्डं मनोरमम् ।।५६।।
रम्यं विचित्रं मधुरं पवित्रं विलासकांडं हि यथेक्षुदंडम् । पाठादिना पापचयप्रदडं धर्मैककुंड भवरोगदंडम् ।।
इति श्रीशतकोटिरामचरितांतर्गते श्रीमदानन्दरामायणे विलासकाण्डे कुरुक्षेत्रयात्रावर्णनं नाम नवमः सर्गः ।। ९ ।।

जो मनुष्य इस विलासकाण्डका प्रातःकाल, मध्याह्न अथवा रात्रिके समय रामचन्द्रके समीप पाठ करता है, उसे मनुष्यरूप धारण किये हुए साक्षात् राम ही समझना चाहिये । धनको इच्छा रखनेवाला मनुष्य विलासकाण्डका पाठ करनेसे धन पाता है, भोगार्थी भोग पाता है पुत्रार्थी पुत्र पाता है और जो प्राणी इसको सुनता है, वह संसारमें सुखी रहता है ।। ४३–४५ ।। विलासकाण्डको श्रवण करनेसे पापी पापसे छूट जाता है । यह विलासकाण्ड बड़ा सुन्दर और भक्तोंके मनको चुरानेवाला काण्ड है ।। ४६ ।। यह आनन्ददायक एवं विचित्र कथाओंसे भरा हुआ है । इसको सुननेसे कानोंको आनन्द मिलता हैं, जो लोग इसे सुनते अथवा पाठ करते हैं, उनकी सब कामनाएँ पूर्ण होती हैं ।। ४७ ।। इससे धर्मार्थी धर्म पाता, धनार्थी धन पाता, कामार्थी काम पाता तथा मोक्षार्थी मोक्ष पाता है ।। ४८ ।। रात्रिके समय जो मनुष्य छः महीनेतक अपनी स्त्रीके साथ बैठकर इस विलासकाण्डका पाठ करेगा, उसको पुत्र मिलेगा ।। ४९ ।। एक मञ्चपर व्यासको बैठाकर उसके आगे स्वयं अपनी पत्नीके साथ एक दूसरे मंचपर बैठकर रात्रिके समय जो इस मनोरम विलासकाण्डको नौ महीनेतक बार-बार सुनता है, उस अपुत्रके भी पुत्र होता है । इसमें किसी तरहका सन्देह करनेकी आवश्यकता नहीं है। पुत्रकी कामनावालेको मंचपर बैठकर इसे सुनना चाहिए ।। ५०–५२ ।। किसी दूसरी कामनावालेको मंचपर बैठकर यह कथा न सुननी चाहिए । जो स्त्रीकी इच्छासे इसका पाठ करता है, उसको नौ महीनेमें स्त्री अवश्य मिल जाती है । यदि कुमारी कन्या पतिकी कामनासे इस काण्डको सुने तो उसे सुन्दर पति मिलता है। जो सधवा स्त्रियाँ इसको सुनेंगी वे कभी भी अपनी सौभाग्यलक्ष्मीसे विहीन न होंगी अर्थात् उनका सोहाग अटल रहेगा । समस्त नारियोंको अपने पतिकी आयुष्य बढ़ानेके लिए स्नान करके यह विलासकाण्ड सुनना चाहिये ।। ५३– ५६ ।। क्योंकि यह विलासकाण्ड ऊँखके दण्डकी तरह मीठा, विचित्र, मधुर तथा पवित्र है । यह पाठादि करनेवालोंके पापोंको मार भगानेवाला और धर्मका एकमात्र कुण्ड तथा भवरोगके लिये दंडके समान है । इस कांडमें नौ सर्ग तथा ६७८ श्लोक हैं ।। ५७ ।। इति श्रीशतकोटिरामचरितांतर्गते श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये पं० रामतेजपाण्डेयकृत'ज्योत्स्ना'भाषाटीकायां विलासकाण्डे नवमः सर्गः ।। ९ ।।

* इति श्रीमदानन्दरामायणं विलासकाण्डं समाप्तम् *

श्रीसीतापतये नमः

श्रीवाल्मीकिमहामुनिकृतशतकोटिरामचरितान्तर्गतं—

आनन्दरामायणम्

'ज्योत्स्ना'ऽऽह्वया भाषाटीकयाऽऽटीकितम्

जन्मकाण्डम्

प्रथमः सर्गः

(रामका उपवनदर्शन)

श्रीरामदास उवाच

अथ रामः सीतया स साकेते बंधुभिश्चिरम् । क्रीडां चकार विविधां दुर्लभां त्रिदशैरपि ॥ १ ॥
एकदा रघुवीरस्तु सोऽन्तर्वर्त्नीं विदेहजाम् । ज्ञात्वा धात्रीमुखात्तुष्टो ददौ दानान्यनेकशः ॥ २ ॥
ब्राह्मणान् भोजयामास कोटिशः प्रत्यहं मुदा । चकार नानालंकारान्नवीनान् रत्ननिर्मितान् ॥ ३ ॥
सीतायै दिव्यवासांसि हेमतन्तूद्भवानि च । हरितान्यथ पीतानि रक्तानि चित्रितान्यपि ॥ ४ ॥
कारयित्वाऽथ कुशलैर्जनैः सूक्ष्माणि राघवः । विस्तृतान्यतिदीर्घाणि पुष्पवत्सुलघून्यपि ॥ ५ ॥
महर्घाण्यतिरम्याणि ददौ पत्न्यै मुदान्वितः । अथ मासे द्वितीयेऽह्नि रामो द्विजवरैः सह ॥ ६ ॥
वसिष्ठेन पुंसवनसंस्कारं विधिपूर्वकम् । स चकारोत्सवैर्दिव्यैः सीतायाः परमादरात् ॥ ७ ॥
सुमेधां जनकं चापि समाहूय सविस्तरम् । जनकः परमसंतुष्टः सोऽन्तर्वर्त्नीं निजां सुताम् ॥ ८ ॥
दृष्ट्वा पुंसवनोत्साहे सीतारामौ प्रपूजयत् । नानालंकारवासांसि हेमतन्तूद्भवानि च ॥ ९ ॥
हरितान्यथ पीतानि सूक्ष्माण्यथ लघूनि च । विस्तीर्णान्यथ दीर्घाणि सीतायै स ददौ मुदा ॥१०॥

श्रीरामदास कहने लगे—श्रीरामचन्द्रजी सीता भरतादिक भ्राताओंके साथ चिरकाल तक देवताओंको भी दुर्लभ क्रीड़ाएँ करते रहे ॥ १ ॥ एक दिन रामचन्द्रजीने किसी धायके मुखसे सीताके गर्भिणी होनेका समाचार सुना तो विविध प्रकारका दान दिया ॥ २ ॥ तबसे लेकर प्रतिदिन करोड़ों ब्राह्मणोंको हर्षपूर्वक रामचन्द्रजी भोजन कराते थे। अनेक प्रकारके रत्नोंसे जटिल नवीन अलंकार, सुवर्णके तारोंके कामदार दिव्य वस्त्र और हरे, लाल तथा छींटके कपड़े बनाकर रामने सीताजीको दिये, जो बड़े लम्बे चौड़े और फूलसे हल्के थे ॥ ३-५ ॥ वे वस्त्र बहुमूल्य और सुन्दर थे। जब एक मास व्यतीत हो गया और दूसरे महीनेका दूसरा दिन आया, तब रामचन्द्रजीने गुरु वसिष्ठ तथा बहुतसे ब्राह्मणोंके साथ विधिपूर्वक और सोत्साह सीताका पुंसवनसंस्कार किया ॥ ६ ॥ ७ ॥ उस पुंसवनसंस्कारके उत्सवमें रामचन्द्रजीने सीताके पिता बुद्धिमान् जनकजी तथा माता सुमेधाको भी बुलाया। यह समाचार सुनकर जनकजी बहुत प्रसन्न हुए और सीताको गर्भिणी देखकर पुंसवनसंस्कारके समय ही सीता तथा रामचन्द्रजीकी पूजा की, नाना

हस्त्युष्ट्ररथतुरगान् दासीर्दासान्मनोरमान् । शिबिकाश्चापि वासांसि ददौ रामाय सादरम् ॥११॥
एवं संपूज्य श्रीरामं सीतां च जनकः स्त्रियाः । सम्मानितो राघवेण ययौ स्वां मिथिलां पुरीम् ॥१२॥
अथ रामः सीतया स रेमे सन्तुष्टमानसः । गर्भातिभाराक्रांता सा सीता संन्यस्तभूषणा ।१३॥
पांडुवर्णानना दीना कृशाऽपि नितरां बभौ । एकदा राघवं धात्र्या सूचयामास जानकी ॥१४॥
ममेच्छाऽऽराममध्येऽद्य रंतुमस्ति त्वया सह । तथोपवनमध्येऽपि साकेतनगराद्बहिः ॥१५॥
तद्धात्र्यास्यातिप्रियावाक्यं श्रुत्वा चाहूय लक्ष्मणम्। रामोऽब्रवीच्छुभां वाचं मधुरां स्मितपूर्विकाम् ॥१६॥
हे सौमित्रेऽद्य सीताया जाताऽऽरामस्पृहास्ति हि । मया रंतुं ततस्त्वं हि सूचितोऽसि मयाऽधुना ॥१७॥
तथेति रामवाक्यं सोऽप्युररीकृत्य लक्ष्मणः । गत्वा सभायामाहूय त्वरयामास सेवकान् ॥१८॥
चित्रोष्णीषान्वेत्रपाणीन्प्राह वाक्यं स्मिताननः । कथनीयं हट्टमध्ये ह्यारामं याति जानकी ॥१९॥
राघवेण ततो यूयं वणिजस्त्वरयंत्विति । ततः सौमित्रिवचनाच्छ्रुत्वा ते वेत्रपाणयः ॥२०॥
चित्रोष्णीषा रुक्मदण्डा राजमार्गे चतुष्पथे । हट्टं वीथ्यामूर्ध्वहस्तास्तदा प्रोचुर्महास्वरैः ॥२१॥
पौराश्च वणिजः सर्वे तथाऽन्ये व्यवसायिनः । शृण्वंतु हृष्टहृदयाः सीतोद्यानं प्रगच्छति ॥२२॥
राघवेणाभ्यनुज्ञातैर्भवद्भिर्गम्यतां पुरः । एवं सर्वान्निवेद्याथ जग्मुस्ते लक्ष्मण चराः ॥२३॥
दूतानाज्ञापयामास पुनः सौमित्रिरादरात् । वासोगेहानि चित्राणि ह्यारामेषु समंततः ॥२४॥
कल्पनीयानि वेगेन शोधनीया भुवः शुभाः । जलयंत्राणि सर्वाणि शोधनीयानि सादरम् ॥२५॥
नानामांगल्यवस्तूनि सुगंधीनि महांति च । स्थापनीयानि वै तत्र वस्त्राण्यतिलघूनि च ॥२६॥
एवमादीन्यनेकानि कल्पनीयानि सादरम् । भृंगारणीयाः प्रासादाः सर्वे ह्यारामसंभवाः ॥२७॥
दिव्यवस्त्रैस्तोरणाद्यैर्मुक्तागुच्छैर्विराजिताः । तथेति दूतास्ते सर्वे तथा चक्रुस्त्वरान्विताः ॥२८॥

प्रकारके सुनहले गहने तथा कपड़े जो हरे, पीले, लाल रंगसे रंगे हुए तथा फूलकी तरह हल्के थे। उन्हें प्रसन्नतापूर्वक सीताजीको दिया। साथ ही हाथी, घोड़े, रथ, ऊँट, सुन्दर दास-दासी तथा पालकी आदि रामचन्द्रजीको दिया॥ ८-११॥ इस प्रकार राम और सीताकी पूजा करके जनकजी अपनी स्त्रीके साथ मिथिलापुरीको लौट गये॥ १२॥ उधर रामचन्द्रजी प्रसन्नतापूर्वक सीताके साथ विहार करते रहे। गर्भके भारसे लदी तथा समस्त भूषणोंको त्यागे पीले मुख और दुर्बल अङ्गोंवाली भी सीताजी बहुत ही सुन्दर दीखती थीं। एक दिन सीताने किसी धायके द्वारा रामचन्द्रजीके पास यह सन्देश कहला भेजा कि आज आपके साथ बाहरके बगीचेमें घूमनेकी मेरी इच्छा है॥ १३-१५॥ उस धायके मुखसे यह संवाद सुनकर रामचन्द्रने लक्ष्मणको बुलाया और मुस्कराते हुए कहने लगे-हे लक्ष्मण! आज सीता मेरे साथ नगरके बाहरवाले बगीचेमें घूमने जाना चाहती हैं, सो उसका सब प्रबन्ध ठीक कर देना। लक्ष्मणजी 'तथास्तु' कहकर सभामें गये और सेवकोंको बुलाकर जल्दी तैयारी करनेकी आज्ञा दी। रंग-बिरंगी पगड़ी पहने तथा हाथमें बेंतके दण्ड लिये सिपाहियोंसे लक्ष्मणने कहा कि आज रामचन्द्रजी सीताके साथ बगीचे जायँगे। तुमलोग जाकर नगरके व्यापारियोंसे कह दो कि वे लोग जल्दीसे अपनी दूकान बढ़ाकर मार्ग खाली कर दें। इस प्रकार लक्ष्मणकी बातें सुनकर॥ १६-२०॥ रंग-बिरंगी पगड़ी पहने तथा सुनहरे डंडे लिये हुए सिपाही चौरास्ते, गली, बाजार और कूंचोंमें हाथ उठाकर जोर-जोरसे कहने लगे-हे पुरवासियों, व्यापारियों तथा व्यवसायियों! आप लोग प्रसन्नतापूर्वक हमारी बात सुनते जायँ। आज सीताजी बगीचेमें जायँगी। इसलिए आप सब पहले ही से वहाँ चलें। इस प्रकार सबको सुनाकर वे दूत लोग फिर अपनी डयोढ़ीपर अर्थात् लक्ष्मणके पास लौट आये॥ २१-२३॥ लक्ष्मणजीने फिर उनको आज्ञा दी कि बगीचेमें तुम लोग जाओ और स्थान स्थानपर नाना प्रकारकी रहनेकी जगहें बनाओ और बगीचेके चारों ओरकी जमीन खूब अच्छी तरह साफ करा दो। जलयंत्रोंकी भी परीक्षा करके उन्हें ठीक कर दो॥ २४॥ २५॥ विविध प्रकारकी मांगलिक वस्तुयें और महीन कपड़े आदि लाकर वहाँ रक्खो। जो जो चीजें आवश्यक समझी जायँ, वे सब प्रस्तुत रहें। बगीचेके

लक्ष्मणो राघवं गत्वा नत्वा तं प्राह सादरम् । उद्योगसमयोऽद्यैव वर्तते रघुनन्दन ॥२९॥
कुर्यां सिद्धं हि किं यानं सीतायास्तव वा विभो । तत्सौमित्रेर्वचः श्रुत्वा जानकीं राघवोऽब्रवीत् ॥३०॥
सीते यानं वदाद्य त्वं यत्ते मनसि रोचते । तद्रामवचनं श्रुत्वा शिबिकां प्राह जानकी ॥३१॥
रामोऽपि रोचयामास शिबिकामेव वै तदा । तच्छ्रुत्वा लक्ष्मणश्चापि शिबिके रत्नभूषिते ॥३२॥
हेमतन्तूद्भवैर्वस्त्रैः सर्वत्र वेष्टिते शुभे । आनयामास दूतैः सन्मुक्ताजालविराजिते ॥३३॥
आरुरोहाथ श्रीरामः शिबिकां परया मुदा । ततः सीता पांडुरांगो परिमेयविभूषिता ॥३४॥
कृशांगयष्टिर्दासीभिर्दत्तहस्ता ययौ शनैः । शिबिकामारुरोहाथ पृष्ठलग्नोपबर्हणा ॥३५॥
दासीभिर्वीजिता चापि घृतार्थोऽङ्कपबर्हणा । दधार शिबिकामारुरोहाथ पृष्ठलग्नोपबर्हणा ॥३६॥
विगुंफितं च मुक्ताभिः सीता स्वीयकरेण तम् । मुक्ताजालगवाक्षैश्च पश्यन्ती सा मुहुर्मुहुः ॥३७॥
राजमार्गगतान्येव कौतुकानि समन्ततः । ददर्श नृत्यं वेश्यानां सखीभिः परितो वृता ॥३८॥
ततस्ते बान्धवाः सर्वे बन्धुपत्न्यश्च मातरः । शिबिकास्वुपसंविष्टा दिव्यासु च पृथक् पृथक् ॥३९॥
अग्रे ते भ्रातरः सर्वे ततः सर्वाश्च मातरः । सीतायाः बन्धुपत्न्यश्च सर्वेषां पुरतो गुरुः ॥४०॥
एवं ते प्रययुः सर्वे पश्यन्तो राघवं मुहुः । ननृतुर्वारनार्यश्च नेदुर्वाद्यान्यनेकशः ॥४१॥
तुष्टुवुर्बंदिनः सर्वे सीतां च रघुनायकम् । एवं नानासमुत्साहैरारामं स ययौ मुदा ॥४२॥
राघवः सीतया युक्तः सैन्यैः सर्वत्र वेष्टितः । विवेश वासोगेहे स ससीतो रघुनन्दनः ॥४३॥
वासोगेहेषु सर्वे ते तस्थुः पौराः समन्ततः । हट्टाः समन्ततश्चासन्ननृतुर्वारयोषितः ॥४४॥
वासोगेहस्य सीताया भित्तयो वस्त्रनिर्मिताः । पञ्चक्रोशमितायामाश्चासन् विस्तारतोऽपि च ॥४५॥
पञ्चक्रोशमितारामे यत्र रेमे विदेहजा । ददर्श जानकी सम्यगाराम नृपसौख्यदम् ॥४६॥

सब भवन अच्छी तरह सजाये जायँ। उनमें कपड़ेकी झालरें, तोरण और मोतियोंके गुच्छे लटकाये जायें। वहाँ पहुँचकर दूतोंने लक्ष्मणजीके आज्ञानुसार सब कुछ तुरन्त ठीक कर दिया ॥ २६-२८ ॥ तब लक्ष्मण रामचन्द्रजीके पास गये और प्रणाम करके सादर कहने लगे—हे रघुनन्दन ! मैंने आपकी आज्ञासे पूरी तैयारी कर दी है। अब क्या आप और सीताजीके लिए सवारी लानेकी भी आज्ञा दे दूँ ? इस प्रकार लक्ष्मणकी वाणी सुनकर रामचन्द्रजीने सीतासे कहा—सीते ! बतलाओ, आज तुम्हें कौन-सी सवारी चाहिए ? सीताजीने रामजीकी बात सुनकर पालकी पसन्द की और रामजीने अपने लिए भी पालकी ही माँगी। रामचन्द्रजीकी आज्ञासे लक्ष्मणने रत्नोंसे विभूषित दो पालकियाँ मँगवायीं, जिनपर सुनहले कामके ओहार पड़े थे और चारों ओर मोतियोंके झुब्बे लटक रहे थे ॥ २९-३३ ॥ तब प्रसन्नतापूर्वक रामचन्द्रजी पालकीपर सवार हुए और थोड़ेसे भूषणोंको पहने हुए सीता भी दासियोंके हाथके सहारे शनैः शनैः जाकर पालकीपर बैठीं। उसमें चारों ओर तकियायें लगी हुई थीं। दासियाँ पंखे झलने लगीं। ओहार डाल दिया गया और पालकी चल पड़ी। रास्तेमें सीताजी पालकीके झरोखेसे उन दृश्योंको देखती जाती थीं, जो वहाँपर थे। उसके अनन्तर रामचन्द्रजीके और भाई भी तथा उनकी स्त्रियें और मातायें अलग-अलग दिव्य पालकियोंपर बैठ-बैठकर चलीं। आगे-आगे भाइयोंकी, फिर माताओंकी, फिर सीतादिक पत्नियोंकी और सबसे आगे गुरु वसिष्ठजीकी पालकी चली ॥ ३४-४० ॥ इस प्रकार सब लोग रामचन्द्रजीका दर्शन करते हुए चले जा रहे थे। वेश्यायें नाच रही थीं और नाना प्रकारके बाजे बज रहे थे। वन्दीगण सीता और रामजीकी वन्दना कर रहे थे। इस प्रकार कितने ही तरहके उत्साहोंके साथ वे सब बगीचे पहुँचे। रामचन्द्रजी सीताके साथ-साथ सेनाओंसे घिरे हुए एक तम्बूमें उतरे ॥ ४१-४३ ॥ इसके बाद और लोग भी तम्बुओंमें टिके। साथ ही समस्त नगरवासी लोग भी चारों और तम्बुओंमें ठहर गये। चारों ओर हाट लग गयी और वेश्यायें नाचने लगीं ॥ ४४ ॥ जिस स्थानपर रामचन्द्रजी अपने पुरवासी नागरिकोंके साथ ठहरे थे,

रसालयं रसालैस्तैरशोकैः शोकवारणम् । तालैस्तमालैर्हिन्तालैः शालैः सर्वत्र शालितम् ॥४७॥
खपुरैः खपुराकारं श्रीफलैः श्रीफलं किल । गुरुश्रियं त्वगुरुभिः कपिपिंगं कपित्थकैः ॥४८॥
वनश्रियः कुचाकारैर्लकुचैश्च मनोरमम् । सुधाफलसमारंभिरंभाभिः परिशोभितम् ॥४९॥
सुरंगैश्चापि नारङ्गै रङ्गमण्डपवच्छ्रियः । वानीरैश्चापि जम्बीरैर्बीजपूरैः प्रपूरितम् ॥५०॥
मन्दान्दोलितकर्पूरकदलीदलसंज्ञया । विश्रामाय श्रमापन्नानाह्वयंतमिवाध्वगान् ॥५१॥
पुन्नाग इव पुन्नागपल्लवैः करपल्लवैः । कलयन्तमिवालोलैर्मल्लिकास्तवकस्तनम् ॥५२॥
विदीर्णदाडिमैः स्वांतं दर्शयन्ननुरागवत् । माधवीधवरूपेण श्लिष्यंतमिव कानने ॥५३॥
उदुंबरैरवरगैरनंतफलशालिभिः । ब्रह्मांडकोटिबिभ्रन्तमनंतमिव सर्वतः ॥५४॥
पनसैर्वननासाभैः शुकनासैः पलाशकैः । फलाशनाद्विरहिणां पत्रत्यक्तैरिवावृतम् ॥५५॥
कदंबवादिनो नीपान्दृष्ट्वा कंटकितैरिव । समंततो भ्राजमानं कदंबककदंबकैः ॥५६॥
नमेरुभिश्च मेरोश्च शिखरैरिव राजितम् । राजादनैश्च मदनैः सदनैरिव कामिनाम् ॥५७॥
समंततः पट्टवटैरुच्चैः पटकुटीकृतम् । कुटजस्तवकैर्भातमधिष्ठितबकैरिव ॥५८॥
करमर्दैः करीरैश्च करजैश्च कदंबकैः । सहस्रकरवद्भातमर्थिप्रत्युद्गतैः करैः ॥५९॥
नीराजितमिवोद्दीपै राजचंपककोरकैः । सपुष्पशाल्मलीभिश्च जितपद्माकरश्रियम् ॥६०॥
क्वचिच्चलदलैरुच्चैः क्वचित्काञ्चनकेतकैः । कृतमालैर्नक्तमालैः शोभमानं क्वचित् क्वचित् ॥६१॥
कर्कन्धुबन्धुजीवैश्च पुत्रजीवैर्विराजितम् । सतिंदुकेङ्गुदीभिश्च करुणैः करुणालयम् ॥६२॥

उसका विस्तार पांच कोसका था। पांच कोसके लम्बे-चौड़े बगीचेमें जहाँ रामचन्द्रजी ठहरे थे, सीताजी प्रसन्नतापूर्वक विहार करने और उस सुन्दर बगीचेको खूब अच्छी तरह देखने लगीं ॥ ४५ ॥ ४६ ॥ उसमें रसालके वृक्ष वास्तवमें रसके आलय और अशोकके वृक्ष शोकको दूर करनेवाले थे। ताल, तमाल, हिन्ताल और शालके वृक्ष चारों ओर सुशोभित हो रहे थे ॥ ४७ ॥ खपुरके वृक्षोंसे वह बगीचा खपुर (स्वर्ग) सदृश लग रहा था और श्रीफलसे श्रीफलके सदृश था । अगुरुके वृक्षोंसे गम्भीर शोभावाला तथा कैथेके वृक्षोंसे कपिल-वर्णका हो रहा था ॥ ४८ ॥ वनलक्ष्मीके कुचोंके समान लकुच (वड़हर) के वृक्ष लगे हुए थे। अमृतफलकी नाईं केलेसे वृक्ष लगे हुए थे ॥ ४९ ॥ सुन्दर रङ्गवाले नारङ्गीके वृक्षोंसे रङ्गमण्डपकी शोभा हो रही थी। वानीर, जंबीर, बीजपूर आदिके वृक्ष भी उस बगीचेमें कुछ कम नहीं थे ॥ ५० ॥ धीरे-धीरे वायुके झोंकेसे झूमता हुआ केलेका पत्ता मानों थके हुए बटोहियोंको हाथके संकेतसे विश्राम करनेके लिए बुला रहा था ॥ ५१ ॥ पुन्नागकी तरह पुन्नागके पल्लव करपल्लवके समान थे और मल्लिकाके गुच्छे स्तनके समान दीखते थे ॥ ५२ ॥ अनारके फटे हुए फल मानो अपना हृदय फाड़कर हार्दिक प्रेम प्रदर्शित कर रहे थे। गूलरका खूब लम्बा-चौड़ा वृक्ष था, जिसमें असंख्य फल लगे हुए थे। वह करोड़ों ब्रह्माण्डोंको धारण किये हुए साक्षात् अनन्त भगवान्‌के सदृश मालूम पड़ता था। उपवनकी नाकके समान कटहलके वृक्ष तथा तोतेकी नाकके समान पलाशके वृक्ष लगे हुए थे। कण्टकित पुष्पवाले कदम्बके वृक्षोंको देखकर रोमांच हो जाता था ॥५३-५६॥ नमेरुके वृक्षोंको देखकर सुमेरुशृङ्गकी याद आ जाती थी । राजादनके वृक्ष कामियोंको मदनके भवन सदृश दीखते थे ॥ ५७ ॥ चारों ओर लगे हुए पट्टवटके वृक्ष पटकुटीके सदृश दीखते थे । कुटजके गुच्छे बैठे हुए बगुलेके सदृश मालूम पड़ते थे ॥ ५८ ॥ जहाँ तहाँ करौंदे, करीर, कंजे, कदम्ब आदिके बड़ी-बड़ी शाखाओंवाले वृक्ष हजारों हाथ उठाये याचकोंके समान मालूम पड़ते थे ॥ ५९ ॥ राजचम्पक तथा कोरैयाके वृक्ष मानो आरती बनकर उस बगीचेकी आरती उतार रहे थे। फूलोंसे लदे हुए सेमरके वृक्ष कमलवनकी शोभाको भी पराजित कर रहे थे ॥ ६० ॥ कहीं फरफराते हुए पत्तोंवाले केलेके बड़े-बड़े वृक्षोंसे, कहीं सुनहली केतकीके छोटे-छोटे पौधोंसे, कहीं कृतमाल और नक्तमालके वृक्षोंसे वह बगीचा सुशोभित हो रहा था ॥ ६१ ॥ बेर, बंधुजीव तथा पुत्रजीवके वृक्ष लगे थे। तेंदु, इङ्गुदी, करुण आदि वृक्षोंसे वह बगीचा करुणालय हो रहा था । टपकते हुए महुएके फूलोंको देखकर मालूम होता

गलन्मधूककुसुमैर्धरारूपधरं हरम् । स्वहस्तमुक्तमुक्ताभिरर्चयंतमिवानिशम् ॥६३॥
सर्जार्जुनाङ्गनैर्वीजैर्व्यजनैर्वीज्यमानवत् । नारिकेलैः सखर्जूरैर्धृतच्छत्रमिवांबरैः ॥६४॥
अमंदैः पिचुमन्दैश्च मंदारैः कोविदारकैः । पाटलातिंतिणीघोंटाशाखोटैः करहाटकैः ॥६५॥
उद्दंडैश्चापि शेहुंडैर्गुडपुष्पैर्विराजितम् । वकुलैस्तिलकैश्चैव तिलकांकितमस्तकम् ॥६६॥
अक्षैः प्लक्षैः सल्लकीभिर्देवदारुहरिद्रुमैः । सदाफलसदापुष्पवृक्षवल्लिविराजितम् ॥६७॥
एलालवंगमरिचकुलंजनवनावृतम् । जम्ब्वाम्रातकभल्लातशेलुश्रीपर्णिवर्णितम् ॥६८॥
शाकशंखवनं रम्यं चन्दनै रक्तचंदनैः । हरीतकीकर्णिकारधात्रीवनविभूषितम् ॥६९॥
द्राक्षावल्लीनागवल्लीकर्णवल्लीशतावृतम् । मल्लिकायूथिकाकुंदमदयंतीसुगंधितम् ॥७०॥
तुलसीवृक्षषंडैश्च शिक्त्वगस्तिद्रुमैर्युतम् । भ्रमद्भ्रमरमालाभिर्मालतीभिरलंकृतम् ॥७१॥
अलिच्छलागतं कृष्णं गोपी रंतुमनेकशः । सुगंधवातं सुखदं कामसञ्जनकं परम् ॥७२॥
नानामृगगणाकीर्णं नानापक्षिनिनादितम् । नानासरित्सरःस्रोतैः पल्वलैः परितो वृतम् ॥७३॥
उत्सृजंतमिवार्थं वै पतत्पुष्पैरितस्ततः । केकिकेकारवैर्दूरात्कुर्वन्तं स्वागतं किल ॥७४॥
एतादृशं ह्युपवनं जानकी तद्ददर्श सा । तुष्टाऽभूद्दर्शनेनैव विचचार त्वितस्ततः ॥७५॥

इति श्रीशतकोटिरामचरितांतर्गते श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये
जन्मकांडे नाम प्रथमः सर्गः ॥ १ ॥

था कि मानो शिवजी धरणीका रूप धारण किये हुए हैं और अपने ही हाथसे अपनेपर मोतियोंकी वर्षा कर रहे हैं ॥ ६२ ॥ ६३ ॥ सर्ज, अर्जुन, बीजपूर आदिके वृक्षोंसे ऐसा मालूम होता था कि वे सब बगीचेको पंखा झल रहे हैं। नारियल तथा खजूरके वृक्ष छत्र धारण करनेवाले सेवक जैसे थे। अमंद, पिचुमन्द, मन्दार, कोविदार, पाटल, तिंतिणी, घोंटा, शाखोट, करहाटक, ऊँचे डण्डेवाले खेहुंड़ और गुड़हलके वृक्ष भी उस बगीचेमें यत्र-तत्र लगे हुए थे। बकुल और तिलकके वृक्ष उस बगीचेके मस्तकपर तिलकके समान मालूम पड़ते थे ॥ ६४–६६ ॥ अक्ष, प्लक्ष, सल्लकी, देवदारु, हरिद्रुम, सदाफल, सदापुष्प और वृक्षवल्ली आदिके वृक्ष भी उस बगीचेमें लगे हुए थे ॥ ६७ ॥ इलायची, लौंग, मरिच तथा कुलंजनके वृक्षोंसे वह समस्त बगीचा भरा हुआ था। जामुन, आम, भल्लातक, श्रीपर्णी आदि वृक्षोंसे उस बगीचेकी रंगीली शोभा देखते ही बनती थी ॥ ६८ ॥ शाक तथा शंखवनके वृक्षोंसे रमणीक एवं चन्दन, हरीतकी, कर्णिकार, आँवला आदिके वृक्षोंसे वह विभूषित था ॥ ६९ ॥ जिनमें सैकड़ों अंगूरकी लताएँ तथा पानकी बेलें लगी हुई थीं। मल्लिका, जूही, कुन्द और मदयन्तीके वृक्षोंसे वह बगीचा सुगन्धित हो रहा था ॥ ७० ॥ उसमें कितने ही तुलसी, सहिजन तथा अगस्तके वृक्ष लगे हुए थे। जिनपर भौंरोंकी श्रेणी चक्कर काट रही थी, ऐसी मालतीके वृक्षोंसे वह अलंकृत था ॥ ७१ ॥ जिस समय मालतीके समीप भौंरा आता था, तब देखनेवालेके हृदयमें यह उत्प्रेक्षा होती थी कि मानों श्रीकृष्ण गोपियोंके साथ विहार करनेके लिए आये हैं ॥ ७२ ॥ उस बगीचेमें बहुतसे मृग चौकड़ियाँ भरा करते थे, विविध प्रकारके पक्षी बोलते रहते थे, कितनी ही नदियों, तालाबों, सोतों तथा गड़होंसे वह बगीचा घिरा हुआ था ॥ ७३ ॥ बगीचेके वृक्षोंसे गिरे हुए फूल किसी दानीकी धनराशिके समान लगते थे। मयूरोंकी आवाजसे ऐसा मालूम पड़ता था कि मानों वह बगीचा अपने यहाँ आनेवालोंका स्वागत कर रहा है ॥ ७४ ॥ इस प्रकारके उस सुन्दर उपवनको सीताने देखा। देखते ही उनका चित्त प्रसन्न हो गया और वे इधर-उधर घूमने लगीं ॥ ७५ ॥ इति श्रीशतकोटिरामचरितांतर्गते श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये जन्मकाण्डे पं० रामतेजपाण्डेयकृत'ज्योत्स्ना'भाषाटीकायां प्रथमः सर्गः ॥ १ ॥

द्वितीयः सर्गः

(रामसीताका उपवनविहार)

श्रीरामदास उवाच

अथ सीता राघवेण रम्योपवनभूमिषु । क्रीडाश्चकार विविधास्त्रिदशैरपि संस्तुताः ॥ १ ॥
कदा वनांतःप्रासादे कदा वस्त्रगृहेष्वपि । कदाऽऽम्रवृक्षच्छायायां कदा पुष्पवनेषु सा ॥ २ ॥
कदा सा जलयंत्राणां समीपस्थवरासने । कदा सरोवरतटे कदा नद्यास्तटेऽपि च ॥ ३ ॥
नौकास्था सरयूतोये सा रामेणाकरोत्कदा । कदा रात्रौ जलक्रीडां सा दिवाऽपि कदा मुदा ॥ ४ ॥
कदा तटाके नौकास्था कदा रंभावनेषु सा । कदा वृक्षोर्ध्वगेहेषु कदोशीरगृहेष्वपि ॥ ५ ॥
कदा सा सरयूनद्यां निर्मितेषु गृहेषु वा । कदा कृत्रिमगेहेषु पुष्पगेहेषु सा कदा ॥ ६ ॥
कदा सा चित्रशालायां पुष्पके वा कदा मुदा । कदा सा केतकीषण्डे कदैकस्तम्भसद्मनि ॥ ७ ॥
कदा नौकोर्ध्वगेहस्था सरय्वाः सैकते कदा । एकस्तंभोर्ध्वगेहेऽपि सखीभिः परिवेष्टिता ॥ ८ ॥
कदा रामेण रहसि कदा दोलकसंस्थिता । पर्यङ्कचक्रमध्यस्था कदा सा दाडिमीवने ॥ ९ ॥
वृक्षसंबद्धपर्यङ्कसंस्थिता राघवेण हि । चकार सा कदा क्रीडां पांडुरांगी पृथूदरी ॥१०॥
हरिद्वस्त्रयुतारक्तकंचुक्या जानकी बभौ । गोपयित्वा निजं देहं सीता वृक्षदलैर्घनैः ॥११॥
चकार व्याकुलं रामं विनोदेन स्मितानना । ज्ञात्वात्मानं राघवेण दृष्टां सम्यग्विविच्य च ॥१२॥
दुद्राव संभ्रमाद्रामं तत्कंठे दोर्लतेऽकरोत् । एवं सीताराघवयोः क्रीडनं परमाद्भुतम् ॥१३॥
विस्तारेणेह को वक्तुं समर्थः पृथिवीतले । एक एव समर्थोऽभूद्वाल्मीकिर्मुनिसत्तमः ॥१४॥
शतकोटिमितं येन चरितं वर्णितं तयोः । सारं सारं मया यस्माद्विविच्य त्वां प्रवर्ण्यते ॥१५॥
वारस्त्रीणां कदा नृत्यं सीताऽऽरामे ददर्श सा । कदा शुश्राव वाद्यानि मञ्जुलानि महांति च ॥१६॥

श्रीरामदासजी कहने लगे—इसके बाद सीता रामचन्द्रजीके साथ उस रमणीक उपवनमें देवताओं द्वारा प्रशंसित विविध प्रकारकी क्रीड़ाएँ करने लगीं ॥ १ ॥ कभी उस बगीचेके बँगलेमें, कभी तम्बूके भीतर, कभी आम्रवृक्षकी छायामें, कभी फूलोंकी झुरमुटमें, कभी फौवारोंके समीप बने हुए किसी एक सुन्दर आसनपर, कभी सरोवरके तटपर और कभी नदीके समीप जाकर विहार करती थीं ॥ २ ॥ ३ ॥ कभी वे नौकापर सवार होकर सरयूकी धारामें रामके साथ विहार करती थीं । कभी रात्रिके समय और कभी दिनमें ही जल-क्रीड़ा करने लग जाती थीं ॥ ४ ॥ कभी सरोवरमें नौकापर, कभी केलेके वनमें, कभी वृक्षके ऊपर बने हुए भवनमें, कभी खसके बने मकानमें, कभी सरयूके भीतर बने हुए भवनोंमें, कभी बनावटी मकानोंमें, कभी फूलघरमें, कभी चित्रशालामें, कभी पुष्पक विमानपर, कभी केतकीके समूह और कभी एक खंभेके ऊपर बने भवनमें रामके साथ विहार करती थीं ॥ ५–७ ॥ कभी नौकाके ऊपर बने बँगलेमें, कभी सरयूकी रेतीमें, कभी अपनी सब सखियोंके साथ एक स्तंभके ऊपर बनी हुई ऊँची अँटारीपर, कभी रामके साथ एकान्तमें, कभी झूलेपर बैठकर, कभी चक्करदार पलङ्गपर, कभी अनारके बगीचेमें और कभी किसी वृक्षके समान पड़े हुए पलङ्गपर गोरे-गोरे अङ्गवाली सीता रामके साथ-साथ क्रीड़ा करती थीं ॥ ८–१० ॥ वे कभी हरे रङ्गके कपड़े तथा लाल कंचुकी पहनकर रामके साथ क्रीड़ा करती हुई वृक्षोंके पत्तोंमें छिपकर रामको व्याकुल कर देतीं और स्वयं छिपी-छिपी मुस्काती रहती थीं । जब वे समझतीं कि रामने देख लिया है तो दौड़ती हुई आतीं और रामके गलेमें गलबँहियाँ डालकर उनके हृदयसे लिपट जाया करतीं । इस प्रकार सीता तथा रामका अद्भुत कौतुक हुआ करता था ॥ ११–१३ ॥ उसे विस्तारपूर्वक कहनेकी सामर्थ्य भला किसीमें है ? हाँ, एकमात्र महर्षि वाल्मीकिजी समर्थ हुए थे । जिन्होंने सौ करोड़ श्लोकोंमें उनके चरित्रोंका वर्णन किया है । उनमेंसे सार-भाग लेकर मैं तुमसे कह रहा हूँ ॥ १४ ॥ १५ ॥ कभी सीताजी उस बगीचेमें वेश्याओंके नृत्य देखती थीं ।

कदा चित्रकथा रम्याश्चेन्द्रजालानि वा कदा । कदा वंशारोहणादिकौतुकानि ददर्श सा ॥१७॥
कदा स्तम्भोद्भवं दिव्यं ददर्श कौतुकं महत् । कदा कलानां कौशल्यं सूत्रबन्धैर्विनिर्मितम् ॥१८॥
कदा कृत्रिमहस्त्यादिनानारूपाणि वै पतेः । सीता ददर्श कुशलैर्धृतान्यात्मयुतान्यपि ॥१९॥
एवं सीताऽऽरामम‍ध्ये मासमेकं निनाय सा । ययौ रामेण नगरीं नृत्यगीतादिभिः शनैः ॥२०॥
सौधस्थाभिः पुरस्त्रीभिर्वर्षिता कुसुमादिभिः । नीराजिता कुम्भदीपैर्दीपैर्दध्योदनोद्भवैः ॥२१॥
माषतैलसर्षपाद्यैर्नानाबलिभिरादरात् । ययौ निजगृहं सीता राघवेण समन्विता ॥२२॥
एवं नानाकौतुकैश्च नानादोहदपूरणैः । रामस्तां रञ्जयामास साऽपि रामं स्वलीलया ॥२३॥
षष्ठे मासे त्वथ प्राप्ते सीतया राघवो मुदा । सीमन्तोन्नयनं चैव वसिष्ठेन चकार सः ॥२४॥
सुमेधां जनकं चापि समाहूयादरेण हि । ददौ दानान्यनेकानि ब्राह्मणेभ्यो रघूत्तमः ॥२५॥
जनकः पूजयामास रामं स्त्रीबन्धुसंयुतम् । कौसल्यादींश्च साकेतवासिनो वसनादिभिः ॥२६॥
पौराश्च सुहृदः सर्वे भोजनार्थं विदेहजाम् । स्वस्वगेहं पृथङ्निन्युः श्रीरामादिभिरुत्सवैः ॥२७॥
नानावाद्यनिनादैश्च वारस्त्रीनृत्यगायनैः । स्त्रीमुक्तपुष्पवर्षाभिर्नानाकौतुकदर्शनैः ॥२८॥
नानादेशनिवासिन्यः कोटिशस्ता नृपस्त्रियः । समाजग्मुरयोध्यायां सीतां द्रष्टुं मुदान्विताः ॥२९॥
तासां सैन्यैश्च सर्वत्र वेष्टिता नगरी बभौ । ताः सर्वा नृपपत्न्यश्च सीतायाः परमान् वरान् ॥३०॥
दोहदान् पूरयामासुर्दिव्यान्नादिभिरादरात् । ददुर्वस्त्राण्यलंकारान् दिव्यांश्चित्रविचित्रितान् ॥३१॥
स्वस्वदेशोद्भवैर्दिव्यैर्नानावस्तुभिरादरात् । जानकीं पूजयामासुस्ताः सर्वाः पार्थिवस्त्रियः ॥३२॥
स्थित्वा ता मासमेकं तु जग्मुर्देशं निजं निजम् । अथैकदा तु श्रीरामः सुमेधां जनकं तथा ॥३३॥
सीतायाः पुरतः प्राह गुह्यं रहसि हृत्स्थितम् । सीतामदृष्ट्वा सान्निध्ये क्षणाच्च विरहेण ताम् ॥३४॥

कभी मंजुल तथा घनघोर शब्दवाले वाजोंकी धुन सुनती थीं। कभी विविध प्रकारके चित्र देखती थीं, कभी बाजीगरो और बाँसपर चढ़कर नाचनेवालोंके अद्‌भुत खेल देखा करती थीं ॥ १६ ॥ १७ ॥ कभी स्तम्भके सुन्दर कौतुकों तथा सूत्रबन्धसे बँधी कठपुतलीके नाच एवं कभी बनावटी हाथ आदिके विविध रूपोंको देखा करती थीं ॥१८॥१९॥ इस तरह सीताने उस बगीचेमें एक महीना बिताया। फिर नृत्य-गीतादिक देखती-सुनती हुई रामचन्द्रके साथ अपनी नगरी अयोध्याको लौट आयीं ॥ २० ॥ जब सीता और रामने नगरमें प्रवेश किया, उस समय नगरकी स्त्रियोंने अँटारीपर चढ़कर उन दोनोंपर फूलोंकी बर्षा की, आरती उतारी और दही, भात, उर्द, तेल तथा सरसों आदिके बलि दिये। तब राम सीताके साथ अपने महलको गये ॥ २१ ॥ २२ ॥ इस तरह विविध प्रकारकी क्रीडाओंसे रामने सीताको तथा सीताने रामको आनन्दित किया ॥ २३ ॥ जब गर्भका छठाँ महीना आया, तब रामने अपने कुलगुरु वसिष्ठके द्वारा सोताका सीमन्तोन्नयन-संस्कार कराया ॥ २४ ॥ सुमेधा और जनकके पास निमंत्रण भेजकर उन्हें अपने यहाँ बुलवाया और ब्राह्मणोंको रामने विविध प्रकारके दान दिये ॥ २५ ॥ जनकने आकर सीता तथा अपने सब भाइयोंके साथ बैठे हुए राम और कौसल्यादि माताओंका नाना प्रकारके वस्त्राभूषणों द्वारा सत्कार किया ॥ २६ ॥ अयोध्यावासी नागरिकों तथा मित्रोंने रामचन्द्र और सीताको अपने यहाँ भोजन करनेके लिए बुलाया ॥ २७ ॥ अनेक वाद्योंके साथ-साथ वेश्याओंके नृत्य-गान हुए, स्त्रियोंके हाथसे फूलोंकी वर्षा हुई और कितने ही तरहके खेल-तमाशे हुए ॥ २८ ॥ उस समय सीताको देखनेके लिए अनेक देशोंकी राजरानियाँ अयोध्या आयीं ॥ २९ ॥ उनके साथ आयी हुई सेनासे घिरकर वह अयोध्या नगरी और भी सुन्दर लगने लगी। उन रानियोंने अन्नादि दे-देकर सीताकी इच्छा पूर्ण की और आनन्दपूर्वक बहुतसे वस्त्र-अलंकार तथा अपने देशोंकी विशिष्ट वस्तुएँ देकर सीताकी पूजा की ॥ ३०–३२ ॥ वे रानियां एक महीना अयोध्यामें रहकर अपने-अपने देशोंको लौट गयीं। एक दिन जब कि सुमेधा, जनक, सीता तथा रामचन्द्र एकान्तमें बैठे थे। तब रामने कहा—हे महाराज! सीताको अपने पास न देख तथा क्षणभर भी उनसें वियुक्त होकर मैं नहीं रह पाता। जब सीताके पास पहुँच

मयाऽऽगत्य तन्मुखेन्दुसुधया स्वास्थ्यमाप्यते । आत्मानं विह्वलं दृष्ट्वा सीतासान्निध्यमाश्रये ॥३५॥
अधुना जानकीं दृष्ट्वा कामो मेऽतीव बाधते । पञ्चमासोर्ध्वतः संगं गर्हयन्ति मुनीश्वरा ॥३६॥
प्रसूत्यग्रे पञ्चमासैः स्त्री स्वास्थ्यं प्राप्यते पुनः । पञ्चमासैर्विना सङ्गाद्दंपत्योः क्षीणतेरिता ॥३७॥
अत्र किं करणीयं हि वद त्वं श्वशुराद्य माम् । चेत्प्रेषणीया सीतेयं मिथिलां प्रति वै मया ॥३८॥
तर्हि तत्रापि मे गन्तुं भविष्यति समुद्यमः । किंचित्कालं तु सीताया वियोगो येन मे भवेत् ॥३९॥
उपायः स विधातव्यश्चिन्तितोऽस्ति मयाऽपि च । लोकापवादभीत्याऽहं रजकोक्तच्छलादपि ॥४०॥
गङ्गाया दक्षिणे तीरे वाल्मीकेराश्रमे शुभे । त्यजामि जानकीं शुद्धां किञ्चित्कालांतरात्पुनः॥४१॥
एनां समानयिष्यामि प्रत्ययं मां प्रदास्यति ।ततोऽनया चिरं कालं नानाभोगान् भजाम्यहम्॥४२॥
जनकाद्य त्वया तत्र निजपत्न्या सुमेधया । वाल्मीकेराश्रमे गत्वा स्थेयं वर्षाणि पञ्च वै ॥४३॥
तथेत्यंगीचकाराथ जनकोऽपि सुमेधया । सीताऽप्यंगीचकाराथ विहस्य तद्वचः पतेः ॥४४॥
अथ रामो ददावाज्ञां सस्त्रियं जनकं मुदा । स गत्वा मिथिलाराज्ये स्वीयं संस्थाप्य मंत्रिणम्॥४५॥
ययौ सुमेधया शीघ्रं वाल्मीकेराश्रमं मुदा । किंचिद्दासीदाससैन्यवाजिवारणवेष्टितः ॥४६॥
नानोपचारान्सीतार्थं संगृह्य शकटादिभिः । चकार गेहं विपुलं वाल्मीकेश्च सुखावहम् ॥४७॥
सर्वसंपत्तिसंयुक्तं बहुगोमहिषीयुतम् । पूरितं धान्यसंचैश्च वस्त्रैराभरणादिभिः ॥४८॥
कासारोपवनारामपुष्पवाटिशतावृतम् । गवाक्षैश्चन्द्रकान्तानां कपाटैश्च समन्वितम् ॥४९॥
कृष्णागुरुसकर्पूरोशीरमाल्यादिमोदितम् । कांचनीशृंखलाबद्धरत्नपर्यङ्कमण्डितम् ॥५०॥
हंसपारावतपिककेकीशुकनिनादितम् । मुक्तागुच्छवितानाद्यैः शोभितं चित्रचित्रितम् ॥५१॥

जाता हूँ तो इनके मुखचन्द्रकी सुधासे स्वस्थ हो जाता हूँ । जिस समय मुझमें कुछ भी घबराहट होती है, उस समय मैं सीताके ही समीप रहता हूँ ॥ ३३–३५ ॥ इस समय सीताको देखकर मुझे कामपीड़ा हो रही है और मुनियोंकी सलाह यह है कि गर्भाधान हो जानेपर पांच महीने बाद स्त्रीप्रसङ्ग करना निन्दित है ॥ ३६ ॥ प्रसव हो जानेपर पांच महीने बाद ही स्त्री स्वस्थ होती है। बिना पांच महीने बीते प्रसङ्ग करनेसे दोनोंकी हानि ही हानि है। ऐसे असमञ्जसके समय मुझे क्या करना चाहिये, सो आप बताइये। यदि मैं सीताको मिथिला भेज देता हूँ तो मुझे भी वहां जाना पड़ेगा। किन्तु मैं कुछ दिन तक सीतासे अलग रहना चाहता हूँ। जिस तरह मेरी इच्छा पूर्ण हो, वही इस समय करना चाहिए। मैंने तो यह सोच रक्खा है कि लोकापवादके डरसे अथवा उस धोबीके ब्याजसे गङ्गाके दक्षिण तटपर वाल्मीकिके पवित्र आश्रममें कुछ समयके लिए परम शुद्ध जानकीको छोड़ दूँ। थोड़े दिन बाद वापस ले आऊँगा ! फिर मैं इनके साथ चिरकालतक नाना प्रकारके भोगोंको भोगूँगा ॥ ३७–४२ ॥ उस समय आपको अपनी सुमेधाके साथ वाल्मीकिके आश्रमपर जाकर पांच वर्ष पर्यन्त निवास करना होगा ॥ ४३ ॥ सुमेधा और जनकने रामकी सलाह स्वीकार की और सीताने भी हँसकर पतिका कहना मान लिया ॥ ४४ ॥ इसके अनन्तर रामने जनकको अपने देश जानेकी आज्ञा दी । वे अपने देश गये और राज्यका सब भार मंत्रीपर छोड़कर अपनी स्त्री सुमेधाके साथ वाल्मीकि ऋषिके आश्रमको चल दिये। चलते समय अपने साथ कुछ दास, दासी, सैनिक तथा हाथी-घोड़े भी ले लिये ॥ ४५ ॥ ४६ ॥ सीताके लिए बहुत-सी सामग्रियां गाड़ियोंपर लदवाकर साथ ले गये। महर्षि वाल्मीकिके आश्रमको जनकने सब सुखोंका भण्डार बना दिया ॥ ४७ ॥ जनकजीके वहाँ पहुँचनेपर वह आश्रम सब सम्पत्तियों एवं बहुत-सी गौओं और भैंसोंसे भर गया । विविध प्रकारके अन्नों और भाँति-भाँतिके वस्त्राभूषणोंसे वह पूर्ण हो गया ॥ ४८ ॥ आश्रमके पास सैकड़ों पोखरे, उपवन, बगीचे बावली तथा कुएँ तैयार हो गये । चन्द्रकान्त मणिके झरोखों तथा फाटकोंवाले भव्य भवन बने ॥ ४९ ॥ कृष्णागुरु, कपूर, खस तथा विविध प्रकारके सुगन्धित पुष्पोंसे वह आश्रम सुगन्धमय हो गया। जगह-जगह पर सोनेकी जंजीरोंसे सजे रत्नोंके पलङ्ग पड़े हुए थे ॥ ५० ॥ हंस, कबूतर, कोयल, मयूर तथा तोतेके शब्दोंसे

एवं मनोहरं गेहं सीतार्थं जनकोऽकरोत् । श्रीः साक्षाद्गंतुमुद्युक्ता यस्मिन्निवसितु चिरम् ॥५२॥
किं दुर्लभं हि तत्रास्ति वर्णनीयं मयाऽद्य किम् । यस्या नेत्रकटाक्षेण शक्रादीनां विभूतयः ॥५३॥
वाल्मीकये सर्ववृत्तं जनकोऽपि न्यवेदयत् । मुनिश्चाप्यतिसंतुष्टो मेने स्वतपसः फलम् ॥५४॥

इति श्रीशतकोटिरामचरितांतर्गते श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये जन्मकाण्डे द्वितीयः सर्गः ॥ २ ॥

तृतीयः सर्गः

(राम द्वारा सीताका त्याग)

श्रीरामदास उवाच

अथ रामं तु कौसल्याऽब्रवीद्रहसि संस्थिता । सीतां सीमोल्लंघनार्थं शीघ्रं प्रेषय राघव ॥१॥
तन्मातुर्वचनं श्रुत्वा तथेत्युक्त्वा सविस्तरात् । सलक्ष्मणो निजामवां प्राह यन्मन्त्रितं पुरा ॥२॥
वाल्मीकेराश्रमे सीतात्यागादि च सकारणम् । अथ मासेऽष्टमे प्राप्ते रामो राजीवलोचनः ॥३॥
एकांते जनकीं प्राह वीजितो लक्ष्मणेन हि । कल्पयित्वा मिष देवि रजकोक्तं त्वदाश्रयम् ॥४॥
त्यजामि त्वां वने लोकवादाद्भीत इवापरः । त्रिमासात्पंचमासाद्वा सप्त मासात्सुबुद्धिभिः ॥५॥
अन्तर्वत्नी न गम्येति शास्त्राज्ञां रजकच्छलात् । त्वां त्यक्त्वा पालयिष्यामि निकटे वस्तुमक्षमः ॥६॥
त्वां दृष्ट्वा चंद्रवदनां कामो मेऽतीव बाधते । त्वद्वियोगस्तु निर्बन्धाद्विना मेऽत्र कथं भवेत् ॥७॥
तस्मात्कृतोऽयं निर्बन्धः सत्यं विद्धि मनोरमे । पचवर्षानतरेण पुनरागत्य मेऽन्तिकम् ॥८॥
लोकानां प्रत्ययार्थं त्वं शपथं हि करिष्यसि । भूमेर्विवरमार्गेण स्थित्वा सिंहासनोपरि ॥९॥

यह आश्रम शब्दायमान हो रहा था। यत्र तत्र मोतियोंकी झालरवाली चाँदनियाँ टँगी हुई थीं और बहुत-सी तसबीरें भी जहाँ-तहाँ टँगी थीं ॥ ५१ ॥ जनकजीने सीताके लिए इस प्रकारका सुन्दर भवन बनाकर तैयार करवाया। यदि ऐसा दिव्य भवन सीताजीके वास्ते बन गया तो इसमें आश्चर्य ही क्या है। जहाँ निवास करनेके निमित्त साक्षात् लक्ष्मीजी जानेवाली हों, वहाँ कौन वस्तु दुर्लभ हो सकती है। जिसके कटाक्षमात्रसे इन्द्रादि देवताओंकी भी सम्पत्तियाँ बनती-बिगड़ती हैं। उसके विषयमें मैं कहाँ तक वर्णन करूँगा। जनकजीने महर्षि वाल्मीकिको भी वह सब बातें बतला दीं, जिन्हें सुनकर वे बहुत प्रसन्न हुए और सीताके उस भावी आगमनको उन्होंने अपनी तपस्याका फल समझा ॥ ५२-५४ ॥ इति श्रीशतकोटिरामचरितान्तर्गते श्रीमदानन्दरामायणे पं० रामतेजपाण्डेयविरचित'ज्योत्स्ना'भाषाटीकासमन्विते जन्मकाण्डे द्वितीयः सर्गः ॥ २ ॥

श्रीरामदासने कहा—एक दिन एकान्तमें कौसल्याने रामसे कहा कि अब समय हो गया है। शीघ्र सीताको अपनी सीमासे कहीं अलग भेज दो। माताकी बातको रामने स्वीकार किया और वह भी बतलाया, जिसका निर्णय बहुत दिनों पहले कर चुके थे ॥ १ ॥ २ ॥ फिर यह भी कहा कि मेरा इस समय सीताका त्याग करना उचित है। कुछ दिन बाद आठवाँ महीना लगनेपर रामने सीताको एकान्तमें बुलाकर समझाते हुए कहा—देवि! उस दिन एक धोबीने तुम्हारे विषयमें बड़ी कुत्सित आलोचना की थी। उसीके बहाने मैं तुम्हें कुछ दिनोंके लिए वनमें छोड़ दूँगा। इससे दुनिया समझेगी कि मैं लोकापवादसे बहुत डरता हूँ। दूसरी एक बात यह है कि गर्भसे तीसरे, पाँचवें अथवा सातवें महीनेमें स्त्रीका संसर्ग नहीं करना चाहिए। यह शास्त्रोंकी आज्ञा है। इसलिए उस धोबीकी बातोंके ब्याजसे तुम्हें दूर रखकर मैं शास्त्रीय आज्ञाका पालन करूँगा और पास रहनेमें यह न हो सकेगा कि मैं तुमसे न बोलूँ ॥ ३-६ ॥ क्योंकि तुमको देखनेसे मुझे काम सताने लगता है। तुम्हारा वियोग भी बिना किसी बहानेके नहीं हो सकता था। इसलिए मैंने ऐसा प्रबन्ध किया है और इस समय मैं जो कुछ कह रहा हूँ, उसे अक्षरशः सत्य समझो। पाँच वर्षके भीतर ही तुम फिर यहाँ आओगी और संसारको दिखानेके लिए तुम्हें शपथ लेनी होगी ॥ ७ ॥ ८ ॥ उस

यदा गच्छसि पातालं जगत्या पूजिता तदा । भुवं स्तुत्वा भीषयित्वा त्वामंके स्थापयाम्यहम् ॥१०॥
पुत्राभ्यां च मया सीते ततो भोगानवाप्स्यसि । मत्तस्त्वेकः कुशो ज्येष्ठस्तव पुत्रो भविष्यति ॥११॥
मुनस्तपःप्रभावेण भविष्यत्यपरो लवः । वाल्मीकेराश्रमे चैवं कुमारौ द्वौ भविष्यतः ॥१२॥
अग्रे गत्वा च त्वत्पित्रा त्वद्योग्यं च गृहादिकम् । ससुमेधेन सकलं कृतमस्ति ममाज्ञया ॥१३॥
कुरुष्वाद्य मया यत्त्वामुच्यते जनकात्मजे । सात्त्विकी त्वं यथापूर्वं दंडके गौतमीतटे ॥१४॥
मद्वामांगे स्थिता यद्वन्मे वामांगे वसाधुना । वाल्मीकेराश्रमे गन्तुं गुणद्वयविमिश्रिता ॥१५॥
भूत्वा त्वमाश्रमे स्थित्वा मद्वियोगं प्रदर्शय । तत्रापि त्वां कुशोत्पत्तौ दास्यामि दर्शनं रहः ॥१६॥
तथेति रामवचनाज्जानकी सा स्मितानना । रजस्तमोमयीं स्वीयां छायां निर्माय सादरम् ॥१७॥
श्रीराघवस्य वामांगे सत्त्वरूपा लयं ययौ । ततो रामः सभां गत्वा रात्रौ ज्ञानैकविग्रहः ॥१८॥
मंत्रिभिर्मंत्रतत्त्वज्ञैर्दलमुख्यैर्वयोधिकैः । समततो वेष्टितः संस्तस्थौ सिंहासनोपरि ॥१९॥
तत्रोपविष्टं राजानं सुहृदः पर्युपासिरे । हास्यप्रायकथाभिश्च हासयन्तः स्थिताः प्रभुम् ॥२०॥
कथाप्रसगात्पप्रच्छ रामो विजयनामकम् । पौरा जानपदा वा मे किं वदन्ति शुभाशुभम् ॥२१॥
सीतां तां मातरं वा मे भ्रातॄन्वा कैकयीमथ । न भेतव्यं त्वया ब्रूहि शापितोऽसि ममापरि ॥२२॥
इत्युक्तः प्राह विजयो देव सर्वे वदंति ते । कृतं सुदुष्करं कर्म रामेणाविदितात्मना ॥२३॥
तथाप्येवं वदन्ति त्वां जनास्तत्ते वदाम्यहम् । किंतु हत्वा दशग्रीवं सीतामाहृत्य राघवः ॥२४॥
अमर्षं पृष्ठतः कृत्वा स्ववेश्म प्रत्यपादयत् । कीदृशं हृदयं तस्य सीतासंभोगजं सुखम् ॥२५॥

समय तुम जब एक दिव्य सिंहासनपर बैठकर भूमिके विवरमार्गसे पातालको जाने लगोगी । तब मैं भूमिकी प्रार्थना करके या धमकाके तुम्हें वापस ले लूँगा और अपनी गोदमें बिठाऊँगा ॥ ९ ॥ १० ॥ उस समय तुम अपने दो बेटोंको लिये हुए मेरे साथ रहकर विविध प्रकारके सुख भोगोगी । मेरे द्वारा तुमसे एक पुत्र होगा, जिसका नाम पड़ेगा कुश और दूसरा बेटा ऋषि वाल्मीकिके प्रभावसे उत्पन्न होगा, जिसका नाम होगा लव । इस प्रकार वाल्मीकिके आश्रमपर तुम्हारे दो पुत्र होंगे ॥ ११ ॥ १२ ॥ तुम्हारी माताके साथ जनकजी पहले ही उस आश्रमपर जा चुके हैं और उन्होंने तुम्हारे आरामकी सब सामग्रियाँ प्रस्तुत कर दी हैं ॥ १३ ॥ आज मैं तुमको जैसा कह रहा हूँ हे जनकात्मजे ! तुम्हें वही करना पड़ेगा । जैसा उस समय गौतमीके तट-पर तुमने अपनी दो मूर्तियाँ बनायी थीं । उसी प्रकार इस समय भी अपना दो स्वरूप बनाओ और पहलेकी नाईं इस समय भी तुम सात्त्विक रूपसे मेरे वाम अंगमें निवास करो ॥ १४ ॥ १५ ॥ और दूसरे स्वरूपसे वाल्मीकिके आश्रमपर रहकर संसारको मेरे वियोगका दुःख दिखलाओ । आश्रमपर भी जब कुशका जन्म होगा, उस समय आकर मैं तुम्हें एकान्तमें दर्शन दूँगा ॥ १६ ॥ रामकी बात सुनकर सीताने मन्द मुस्कराहटके साथ 'तथास्तु' कहा और रजोगुणमयी तथा तमोगुणमयी सीता अपनी छाया रामके दक्षिण भागमें बैठ गयीं और सत्त्वरूपसे रामके वाम भागमें विलीन हो गयीं ॥ १७ ॥ इसके बाद रामचन्द्रजी सभाभवनमें गये । वहाँ मन्त्रणाकुशल मन्त्रियों तथा कितने ही दरबारियोंसे वेष्टित होकर बैठे । मित्रोंने उस समय भगवान्‌को विविध प्रकारसे पूजा की । तत्पश्चात् तरह-तरहकी हँसी-दिल्लगीकी बातें कर-करके वे परस्पर मनोविनोद करने लगे ॥ १८–२० ॥ प्रसंगवश रामने विजय नामक एक गुप्तचरसे पूछा कि इस समय अयोध्यावासी लोग मुझे किस दृष्टिसे देखते हैं ? उनकी दृष्टिमें मेरा शासन अच्छा है या खराब ? इसके अतिरिक्त सीता, मेरी माताओं, भाइयों अथवा कैकेयीके प्रति लोगोंके हृदयमें कैसा भाव है ? किसी प्रकार डरो मत, जो कुछ मालूम हो साफ-साफ बतला दो । तुम्हें मेरी शपथ है । इस प्रकार रामके पूछनेपर विजयने कहा—हे देव ! आपके किये महान् कार्योंकी सराहना करते हुए लोग प्रशंसा ही करते हैं ॥ २१–२३ ॥ फिर भी आपके विषयमें कुछ लोगोंकी जो दूसरी राय है । उसे भी बतलाता हूँ । वे कहतेहैं कि रामने रावणको मारकर सीताको उससे छुड़ाया और बिना कुछ सोचे-विचारे अपने घरमें बिठाल लिया । हम नहीं समझते कि रामका

या हृता विजने पूर्वं रावणेन वने तदा। अकस्मादपि दुष्कर्म योषितस्त्वमर्षदं भवेत् ॥२६॥
यादृग्भवति वै राजा तादृश्यो नियताः प्रजाः। इति नानाविधा वाचः प्रवदन्ति पुरौकसः ॥२७॥
अन्यत्किंचित्प्रवक्ष्यामि सांप्रतं रजकोदितम्। दुर्मार्गगां स्वरजकीं भार्यां क्रोधवशेन सः ॥२८॥
रजकः प्राह भो रंडे सोऽहं रामो न मैथिलीम्। रावणस्य गृहे स्पष्टं स्थितामंगीचकार यः ॥२९॥
यथेच्छं गच्छ रंडे त्वं नाहं रामवदाचरे। गच्छता च मया मार्गे रजकेन समीरितम् ॥३०॥
इति राम श्रुतं पूर्वं त्वया पृष्ट निवेदितम्। यत्पश्यसि हितं चात्र तत्कुरुष्व रघूत्तम ॥३१॥
श्रुत्वा तद्वचनं रामः स्वजनान्पर्यपृच्छत। तेऽपि नत्वाऽब्रुवन् राममेवमेतन्न संशयः ॥३२॥
ततो विसृज्य सचिवान्विजयं सुहृदस्तथा। आहूय लक्ष्मणं रामो वचनं चेदमब्रवीत् ॥३३॥
लोकापवादस्तु महान्सीतामाश्रित्य मेऽभवत्। सीतां प्रातः समानीय वाल्मीकेराश्रमांतिके ॥३४॥
त्यक्त्वा शीघ्रं रथेन त्वं पुनरायाहि लक्ष्मण। वक्ष्यसे यदि वा किंचिदत्र मां हतवानसि ॥३५॥
छित्वा सीताभुजं लोकप्रत्ययार्थं समानय। इत्युक्त्वा लक्ष्मणं रामः कैकेयीं द्रष्टुमाययौ ॥३६॥
एतस्मिन्नन्तरे सीतां कैकेयी रहसि स्थिता। पप्रच्छ कौतुकात्सीते भित्तौ लेख्य दशाननम् ॥३७॥
मामत्र दर्शयस्वाद्य तां प्राह जानकी तदा। मयाऽवलोकितो नैव कदाऽपि स दशाननः ॥३८॥
यदा हर्तुं पंचवट्यां मां प्राप्तो गौतमीतटे। तदा दृष्टस्तदंगुष्ठो मया दक्षिणपादजः ॥३९॥
तत्सीतावचनं श्रुत्वा कैकेयी प्राह तां पुनः। यथा दृष्टस्त्वयांगुष्ठस्तथा भित्तौ लिखस्व हि ॥४०॥
तथेति जानकी लेख्य तदंगुष्ठं भयानकम्। कैकेय्यै दर्शयामास तामामंत्र्य गृहं ययौ ॥४१॥

हृदय कैसा है, जो इतना अनर्थ होनेपर भी लौटी हुई सीताके साथ विहार करते हुए सुखी हो रहे हैं ॥२४॥२५॥ जो सीता उस दुष्टके द्वारा हरी गयी और कई वर्ष तक उसके घरमें रही, उसके लिए रामको कुछ सोचने-विचारनेकी आवश्यकता क्योंकर नहीं मालूम हुई। उनका क्या बिगड़ा, वे चाहे एक बार कोई दुष्कर्म भी कर लें तो कोई दृष्टि नहीं उठा सकता, लेकिन इसका कुप्रभाव तो प्रजाके ऊपर पड़ेगा। यह साधारण नियम है कि जिस देशका जैसा राजा होता है, प्रजा भी वैसी ही हुआ करती है। इस प्रकारकी बातें बहुतोंके मुँहसे सुनी गयी हैं। एक धोबीने भी एक बात आपके बारेमें कही थी, सो भी कहता हूँ। उसने क्रोधवश अपनी व्यभिचारिणी स्त्रीको संबोधित करके कहा--अरी ओ रण्डे! मैं वह राम नहीं हूँ, जिन्होंने वर्षों रावणके घरमें रही हुई सीताको अङ्गीकार कर लिया है। तेरी जहाँ इच्छा हो जा, मैं रामकी तरह कभी नहीं करूँगा और तुझे नहीं रखूँगा ॥२६-३०॥ मैं रास्तेमें चला जा रहा था, तब धोबीकी बातें सुनी थी। सो पूछनेपर आपको बतला दी। अब आप जो अच्छा समझें, वह करें। विजयकी बातें सुनकर रामचन्द्रजीने अपने मित्रोंसे भी इस विषयमें पूछ-ताछ की। उन लोगोंने भी वही कहा, जो विजयने बतलाया था। इसके बाद रामचन्द्रजीने मन्त्रियों तथा विजयको विदा कर दिया और लक्ष्मणको बुलाया। लक्ष्मणसे रामने कहा--हे लक्ष्मण! सीताके कारण संसारमें लोग हमारी बड़ी निन्दा कर रहे हैं। इससे भी बढ़कर अपवाद होनेकी आशंका है। इसलिए कल सबेरे तुम सीताको रथमें बिठाकर मुनि वाल्मीकिके आश्रमपर छोड़ आओ। इस बातके विपरीत यदि तुम कुछ कहोगे तो तुम्हें हमारी हत्या करनेका पाप लगेगा। हाँ, इतना और करना। वनसे लौटते समय सीताकी एक भुजा भी काटकर लेते आना, जिसे दिखाकर मैं अयोध्यावालोंको विश्वास दिला सकूँगा। इतना कहकर राम कैकेयीके पास चल दिये। इसी बीच कैकेयीने आँगनमें बैठी बातें करते-करते सीतासे कहा-सीते! इस दीवारपर रावणका चित्र लिखकर हमें दिखाओ कि वह कितना बड़ा था। इसके उत्तरमें सीताने कहा--मैंने रावणको कभी देखा ही नहीं ॥ ३१-३८ ॥ हाँ, जब वह पंचवटीमें मुझे हरनेके लिए गया था, तब मैंने उसके दाहिने पैरका अंगूठा देखा था। सीताका उत्तर सुनकर कैकेयीने कहा—अच्छा, उसका अंगूठा जैसा रहा हो, वही इस दीवारपर लिख दो। जानकीने कैकेयीके कथनानुसार दीवारपर उसके भयानक अंगूठेका चित्र लिखकर दिखा दिया और थोड़ी देर बाद अपने

अगुष्ठोपरि कैकेय्या यथायोग्यो दशाननः । लिखितः स्वेन हस्तेन रामं द्रष्टुं कुबुद्धितः ॥४२॥
तावद्रामं समायातं दृष्ट्वा सा संभ्रमान्विता । भित्त्यंतिके राघवाय ददावासनमुत्तमम् ॥४३॥
रामोऽपि नत्वा कैकेयीमासने संस्थितोऽभवत् । ददर्श भित्तौ लिखितं विचित्रं तं दशाननम् ॥४४॥
रामः पप्रच्छ केनात्र लिखितोऽयं दशाननः । कैकेयी कथयामास सीतया लिखितस्त्विति ॥४५॥
यत्र यत्र मनो लग्नं स्मर्यते हृदि तत्सदा । स्त्रियाश्चरित्रं को वेत्ति शिवाद्या मोहिताः स्त्रिया ॥४६॥
कैकेयीवचनं चेत्थं श्रुत्वा रामो महामनाः । सीताश्रयं सभावृत्तं कैकेयीमाह विस्तरात् ॥४७॥
लक्ष्मणेन त्यजाम्यम्ब श्वः सीतां जाह्नवीतटे । सीताभुजं वने छित्त्वा समानयतु मद्गिरा ॥४८॥

सौमित्रिस्त्वां तथा पौरान्दर्शयिष्यति निश्चयात् ।
सीतया लिखितो यस्मात्स्वभुजेन दशाननः ॥४९॥

स्त्रीहत्याभयमालक्ष्य तद्वधे लक्ष्मणो मया । न चोदितश्च तां हिंस्रा भक्षयिष्यंति वै क्षणात् ।५०॥
इति रामवचः श्रुत्वा कैकेयी मुदिताऽभवत् । सीताया विरहाद्रामो नेदं राज्यं प्रशास्यति ॥५१॥
सेवार्थं रामचन्द्रस्य लक्ष्मणोऽपि न शास्यति । तदा श्रीरामवाक्येन भरतो मे प्रशास्यति ॥५२॥
इति संचिंत्य हृदये कैकेयी मुदिताऽभवत् । रामोऽपि नत्वा कैकेयीं सुमित्रां स्वां च मातरम्॥५३॥
सभावृत्तं च कैकयीगेहे यज्जातमादरात् । श्रावयामास सकलं वृत्तं सीताश्रयं प्रभुः ॥५४॥
नत्वा सुमित्रां कौसल्यां रामः सीतागृहं ययौ । सीतया दत्तपाद्यार्घासनमंगीचकार सः ॥५५॥
सभावृत्तं च कैकेयीगेहे यद्दृष्टमादरात् । श्रावयामास तत्कृत्स्नं वृत्तं तं जानकीं मुदा ॥५६॥
तच्छ्रुत्वा जनकीं प्राह कैकेय्या वचनान्मया । अंगुष्ठ एव लिखितस्तयोर्ध्वं लिखितो धिया ॥५७॥
अंगुष्ठस्यानुरूपेण दशास्यो दुष्टबुद्धितः । तत्सीतावचनं श्रुत्वा जानकीमाह राघवः ॥५८॥

महलोंको चली गयीं। सीताके चली जानेपर द्वेषवश कैकेयीने रामको दिखानेके लिए उस अंगूठेके अनुसार रावणके पूरे शरीरका चित्र अपने हाथसे बना दिया ॥ ३९-४२ ॥ इतनेमें कैकेयीने देखा कि राम इसी ओर आ रहे हैं। तब झटपट उसने उस दीवारके पास ही रामजीको बैठनेके लिए आसन डाल दिया। रामने वहां पहुंचकर कैकेयीको प्रणाम किया। फिर आसनपर बैठ गये। थोड़ी देर बाद रामकी दृष्टि उस बने हुए रावणके चित्रपर पड़ी ॥ ४३ ॥ ४४ ॥ रामने पूछा—यहांपर रावणका चित्र किसने बनाया है? उत्तरमें कैकेयीने कहा कि आपकी बहू सीताने यह चित्र लिखा है। जहां जिसका मन लगा रहता है, बार-बार उसीकी याद आती रहती है। यह एक साधारण नियम है। और फिर स्त्रियोंके चरित्रको कौन जान सकता है। शिवादिक देवता भी तो स्त्रीचरित्रका पार नहीं पा सके और वे भी मोहित हो गये ॥४५॥४६॥ कैकेयीकी बातें सुनकर मनस्वी रामचन्द्रजीने कैकेयीको वह बातें भी बतलायीं, जो सभामें विजयके मुँहसे सुनी थीं। इसी सिलसिलेमें उन्होंने यह भी कहा—मातः! कल सबेरे लक्ष्मणके साथ मैं सीताको गंगाजीके तटपर भेज रहा हूँ। वह उसे वहाँ छोड़ देगा और आप तथा पुरवासियोंको दिखानेके लिए मेरे कहनेसे सीताका एक हाथ भी काट लायेगा। क्योंकि सीताने उसी हाथसे तो रावणका यह चित्र बनाया होगा। स्त्रीहत्याके भयसे मैं उसे मारनेकी आज्ञा नहीं दूँगा। लेकिन जब उसके हाथ नहीं रहेंगे तो वह जियेगी कैसे? वनके हिंसक जीव ही उसको खा जायेंगे ॥४७-५०॥ इस प्रकार रामके वचन सुनकर कैकेयी बहुत प्रसन्न हुई और मनही मन सोचने लगी कि सीताके विरहसे दुखी होकर राम राज्यका काम नहीं कर सकेंगे। लक्ष्मण भी रामकी सेवामें लगे रहनेके कारण राज्यका भार अपने ऊपर नहीं लेंगे। उस दशामें विवश होकर राम मेरे बेटे भरतसे राज्यका काम करनेके लिए आग्रह करेंगे। यह सोचकर कैकेयी प्रसन्न हुई। रामजी भी कैकेयीको प्रणाम करके अपने महलोंको चले गये। वहाँ अपनी माता कौसल्या तथा सुमित्राको आदिसे अंततक सीतासम्बन्धी सब वृत्तान्त कह सुनाया। फिर कौसल्या और सुमित्राको प्रणाम करके वे सीताके भवनमें जा पहुंचे। सीताने पाद्य-अर्घ्य-आचमनीयादिसे उनकी पूजा की और रामजी एक आसनपर बैठ गये। इसके

कौटिल्यबुद्धिं कैकेय्याः समग्रां वेद्म्यहं प्रिये । इत्युक्त्वा राघवः सीतामालिंग्यास्यं चुचुंब सः ॥५९॥
सीतया हेमपर्यङ्के भुक्त्वा भोगान्सुपुष्कलान् । विनोदार्थं रघुपतिः प्राह रात्रौ विदेहजाम् ॥६०॥
स्त्रीणां सीते सगर्भाणां वांछितं वांछते मनः । का ते वांछा वदस्व त्वं तच्चे दास्यामि निश्चितम् ॥६१॥
इति रामवचः श्रुत्वा भाविकार्येण यंत्रिता । सा प्राह राघवं रामं नगांस्तीरस्थितांस्तरून् ॥६२॥
मुनीनामाश्रमाँश्चापि ऋषिपत्नीश्च तद्वनम् । वांछते मे मनो द्रष्टुं शीघ्रं प्रेषय तत्र माम् ॥६३॥
इति सीतावचः श्रुत्वा तथाऽस्त्विति रघूत्तमः । प्राह सीते लक्ष्मणः श्वो नेष्यति त्वां ममाज्ञया ॥६४॥
पुनः प्राह रघुश्रेष्ठः सीते ते क्रीडनादिभिः । जपध्यानादिकं सर्वं विस्मृतं तन्मया पुरा ॥६५॥
तत्करोम्यधुना सीते गतायां त्वयि काननम् । इत्युक्त्वा जानकीं रामः सुखं सुष्वाप मंचके ॥६६॥
सीताऽपि चिंतयामास यत्र माता पिता मम । किं मां न्यूनं हि तत्रास्ति किंचिद्वस्त्वादिकं सह ॥६७॥
नाहंनेष्यामिश्वस्तूष्णीं सख्या दास्या समन्विता । लक्ष्मणेन रथे स्थित्वा गच्छामि मुदिता सुखम् ॥६८॥
इति निश्चित्य सा रात्रौ सुखं सुष्वाप मंचके । अथ प्रभाते सोत्थाय स्नाता स्नातं रघूत्तमम् ॥६९॥
पक्वान्नादीनि सत्पात्रे पर्यवेषयदुत्तमम् । उपहारे कृते भर्त्रा स्वयं कृत्वोपहारकम् ॥७०॥
पृष्ट्वोर्मिलादिकाः स्त्रीश्च ततः श्वश्रूः प्रणम्य च । गङ्गातीरस्थितान् वृक्षान्मुनीन्द्रष्टुं समुद्यता ॥७१॥
ताः पप्रच्छ सखीयुक्ता दास्या सस्मार लक्ष्मणम् । ततोऽसौ लक्ष्मणो भ्रात्रा चोदितस्तां ययौ जवात् ॥७२॥
दास्या सख्या तुलस्याथ सीतां कृत्वा रथस्थिताम् । ययौ दक्षिणमार्गेण वायुवेगात्स जाह्नवीम् ॥७३॥
इन्द्राद्या निर्जराश्चक्रुः सीतासन्मार्गसत्क्रियाम् । उल्लंघ्य तमसां पुण्यां गोमतीं जाह्नवीमपि ॥७४॥
यमुनां तां महापुण्यां तथा मंदाकिनीं नदीम् । द्वितीयां तमसां पुण्यां समुल्लंघ्य स लक्ष्मणः ॥७५॥

वाद उन्होंने वह वृत्तान्त बतलाया, जो सभामें तथा कैकेयीके भवनमें हुआ था। सीताने कहा कि माता कैकेयीके कहनेसे मैंने केवल रावणके पैरका अंगूठा बनाया था। वाकी उन्होंने अपनी कल्पनासे रावणका सारा शरीर बनाया होगा। इस तरह सीताके वचन सुनकर रामने कहा—प्रिये ! मैं कैकेयीकी कुटिलताको भली-भाँति जानता हूँ। इतना कहकर रामने सीताको अपनी छातीसे लगा लिया और बड़ी देरतक उनका मुँह चूमते रहे। फिर विनोद करते करते वहीं लेट गये। थोड़ी देर वाद रामने सीतासे कहा—प्रिये ! मैं जहाँतक जानता हूँ, गर्भिणी स्त्रियें कितनी ही चीजें चाहा करती हैं। तुम्हारी भी किसी वस्तुकी इच्छा है ? यदि हो तो बतलाओ, मैं अवश्य दूँगा ॥ ५९–६१ ॥ इस प्रकार रामकी बात सुनकर भावीवश सीताने गङ्गातटनिवासी ऋषियोंके आश्रमों और वनोंको देखनेकी इच्छा प्रकट की और कहा कि मुझे शीघ्र वहाँ भेज दीजिये। राम सीताकी माँग स्वीकार करके कहने लगे—सीते ! कल ही लक्ष्मण तुम्हें गङ्गातटपर ले जायँगे। थोड़ी देर वाद फिर बोले—सीते ! बहुत दिनोंसे तुम्हारे साथ भोग-विलासमें मैं इतना लिप्त हो गया कि जप, तप, ध्यान, धारणा आदि सब कुछ भूल गया था। यदि तुम कुछ दिनके लिए वहाँ चली जाओगी तो मैं कुछ भजन-ध्यान कर लूँगा। इस प्रकार बातें करके राम सो गये। सीता भी अपने मनमें सोचने लगीं कि जहाँपर मेरे पिता-माता आदि परिवारके सब लोग विद्यमान हैं, वहाँ किसी वस्तुकी न्यूनता तो हो नहीं सकती। अतः मैं साथ कुछ न ले जाऊँगी ॥ ६२–६७ ॥ अव कलका दिन मैं वैसे नहीं वीतने दूँगी, बल्कि अपनी सखियों दासियों और लक्ष्मणके साथ हँसी-खुशी वनको अवश्य जाऊँगी। यह निश्चय करके सीता भी आनन्दपूर्वक सो गयीं ॥ ६८ ॥ ६९ ॥ सवेरे सीताने उठकर स्नान किया और भोजन बनाया। उधर रामने भी स्नान कर लिया और भोजन करने बैठे। सीताने बड़े प्रेमसे परोसकर उन्हें भोजन कराया। तदनन्तर स्वयं भोजन किया ॥ ७० ॥ फिर उर्मिला आदि वहनोंसे पूछकर माताओंको प्रणाम किया और गङ्गातटके वनोंमें रहनेवाले मुनियोंको देखनेके लिए जानेको तैयार हो गयीं ॥७१॥ उन्होंने रथ लानेके लिए लक्ष्मणजीको बुलाया। रामचन्द्रके आज्ञानुसार लक्ष्मण शीघ्र रथ लेकर आ पहुँचे ॥ ७२ ॥ सीता अपनी सखियों, दासियों तथा तुलसीवृक्षके साथ रथमें बैठीं और लक्ष्मणने दक्षिण मार्गसे गङ्गातटकी ओर पवनवेगके समान रथको भगाया ॥ ७३ ॥ ७४ ॥

चित्रकूटोपत्यकायां वाल्मीकेराश्रमांतिके । पिप्पलाधो मैथिलीं तां सख्या दास्या वरासने ॥७६॥
निवेश्य नत्वा स प्राह साश्रुनेत्रः सगद्गदः । लोकापवादभीत्या त्वां त्यक्तवान् राघवो वने ॥७७॥
दोषो न कश्चिन्मे मातर्गच्छाश्रमपदं मुनेः ।
इत्युक्त्वा तां परिक्रम्य सख्या दास्याऽपि वीजिताम् ॥७८॥
ययौ रथेन सौमित्रिः पूर्वमार्गेण जाह्नवीम् । शिष्यैः श्रुत्वाऽथ वाल्मीकिर्जनकेन सुमेधसा ॥७९॥
ययौ स्त्रीभिर्द्विजैर्युक्तः पूजयामास जानकीम् । शिबिकायां सन्निवेश्य वीजितां चामरादिभिः ॥८०॥
नानावाद्यनिनादैश्च वेश्यानां नर्तनैर्वरैः । स्तवनैर्मागधादीनां नटादीनां सुगायनैः ॥८१॥
निनाय जनकः सीतां वाल्मीकेराश्रमे मुदा । मुनिपत्न्यो वन्यपुष्पैर्ववर्षुर्जानकीं मुदा ॥८२॥
जानकीशिबिकाग्रे ते दुद्रुवुर्वेत्रपाणयः । एवं विवेश सा सीता वाल्मीकेराश्रमं शनैः ॥८३॥
चक्रुर्नीराजनं दीपैर्मुनिपत्न्यश्च जानकीम् । जानकी हेमपर्यंके धृताधोंकोपबर्हणा ॥८४॥
सुखमापाश्रमे तस्य वाल्मीकेश्च तपस्विनः । जानकीं पूजयामासुर्मुनिपत्न्यः पृथक् पृथक् ॥८५॥
दिव्यान्नैर्वनसंभूतैर्वन्यपुष्पैर्निरन्तरम् । ज्ञात्वा परात्मनो लक्ष्मीं मुनिवाक्येन भक्तितः ॥८६॥
दोहदान् पूरयामासुः सीतयास्ता मुनिस्त्रियः । शिबिकासंस्थिता सीता ददर्श वनकौतुकम् ॥८७॥
यथापूर्वं तु साकेते सुखमाप विदेहजा ।
तथा मुनेराश्रमेऽपि सुखमाप पतिव्रता ॥८८॥

इति श्रीशतकोटिरामचरितांतर्गते श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये
जन्मकाण्डे सीताया वाल्मीक्याश्रमगमनं नाम तृतीयः सर्गः ॥ ३ ॥

जब वे परम पवित्र यमुना, मंदाकिनी तथा तमसा नदीको पार करके चित्रकूटकी तलैटीमें वाल्मीकिआश्रमके समीप पहुँचे, तब लक्ष्मणने रथको रोका और एक पीपल वृक्षकी छायामें आसन बिछा दिया। सब सखियोंके साथ सीताजी उसपर जा बैठीं ॥ ७५ ॥ ७६ ॥ तब आँखोंमें आँसू भरकर गद्गद कण्ठसे लक्ष्मणजी कहने लगे–माता ! लोकापवादके भयसे रामचन्द्रजीने आपको इस वनमें छोड़नेके लिए मुझे आज्ञा दी है। इसमें मेरा कोई दोष नहीं है। अब आप यहाँसे ऋषि वाल्मीकिके आश्रमपर चली जायँ। इतना कहकर लक्ष्मणने सीताकी परिक्रमा की और प्रणाम किया। उस समय दासी और सखियाँ सीतापर पंखा झल रही थी ॥७७॥७८॥ फिर वे अपने रथपर बैठकर उसी मार्गसे अयोध्याके लिए लौट पड़े, जिधरसे गये थे। उधर वाल्मीकिने कुछ शिष्योंसे यह वृतांत सुना तो जनकजी, सुमेधा तथा कितनी ही स्त्रियों और ब्राह्मणोंके साथ वहाँ पहुँचे, जहाँ सीता बैठी थीं। वहाँ पहुँचकर उन्होंने सीताकी पूजा की। फिर उन्हें सुन्दर पालकीमें बिठाया और अपने आश्रमकी ओर चले। रास्तेमें अनेक प्रकारके बाजे बज रहे थे। वेश्यायें नाच रहीं थीं और भाट विरुदावली बखान रहे थे। नट-गायक आदि सुन्दर गायन गा रहे थे ॥ ७९-८१ ॥ जब सीताजी आश्रमपर पहुँच गयीं, उस समय मुनिपत्नियोंने सहर्ष उनपर विविध प्रकारके वनफूल बरसाये ॥ ८२ ॥ उन्होंने आरती उतारी और एक सुवर्णनिर्मित पलंगपर बिठाया ॥ ८३ ॥ वहाँ पहुँचनेपर सीताको बड़ा आनन्द मिला। आश्रमकी ऋषिपत्नियोंने अलग-अलग सीताकी पूजा की ॥ ८४ ॥ उस दिनसे कितने ही तरहके दिव्य अन्न, वनके सुस्वादु फल तथा फूल आदि दे-देकर सीताको सब स्त्रियें प्रसन्न किये रहती थीं। क्योंकि उन लोगोंने वाल्मीकिसे सुन रक्खा था कि सीता कोई साधारण स्त्री नहीं, साक्षात् विष्णुभगवानकी भार्या लक्ष्मी हैं। जब इच्छा होती, तब सीता पालकीपर सवार होकर वनोंको देखनेके लिये जाया करती थीं। सीताको जो सुख अयोध्यामें मिलता था, वही वहाँपर भी सुलभ था ॥ ८५-८८ ॥ इति श्रीशतकोटिरामचरितान्तर्गते श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये जन्मकाण्डे पं० रामतेजपाण्डेयविरचितभाषाटीकायां तृतीयः सर्गः ॥ ३ ॥

चतुर्थः सर्गः

(वाल्मीकिके आश्रममें लव-कुशका जन्म)

श्रीरामदास उवाच

अथ गङ्गातटं गत्वा लक्ष्मणोऽचिन्तयद्धृदि । स्वेच्छया कौतुकात्सीतां मया शुद्धां स त्यक्तवान् ॥ १ ॥
स्वीयकामप्रशान्त्यर्थं शास्त्राज्ञां प्रतिपालयन् । एवं सति पुनस्तेन किं ममाज्ञापितं रहः ॥ २ ॥
वनात्सीताभुजं छित्त्वा नयस्वेत्यतिदुर्घटम् । मयापि शपथं श्रुत्वा न पृष्टः स विचिंत्य च ॥ ३ ॥
अधुना किं करोम्यत्र कथं रामं प्रगम्यते । सीताभुजं विना दृष्ट्वा रामो मां किं वदिष्यति ॥ ४ ॥
छेत्तुं सीताभुजं शक्तो भविष्यामि कथं त्वहम् । ययाऽहं पुत्रवन्नित्यं पालितो लालितस्त्वति ॥ ५ ॥
अधुनाऽग्निं विशाम्यत्र रामायास्यं न दर्शये । एवं निश्चित्य सौमित्रिश्चितां कर्तुं मनो दधे ॥ ६ ॥
एतस्मिन्नन्तरे तत्र विश्वकर्मा विधेर्गिरा । कुठारहस्तो विपिने बभ्राम तक्षरूपधृक् ॥ ७ ॥
तं दृष्ट्वा लक्ष्मणः प्राह त्वं मे साहाय्यमाचर । कुठारेण तरूंश्छित्त्वा चितार्थं देहि मां जवात् ॥ ८ ॥
यथेच्छं वसु दास्यामि त्वामहं निश्चयेन हि । सोऽप्याह लक्ष्मणं वीर चिताहेतुं वदस्व माम् ॥ ९ ॥
सौमित्रिः कथयामास पूर्ववृत्तं सविस्तरम् । तच्छ्रुत्वा सकलं तक्षः सौमित्रिं प्राह सस्मितः ॥ १० ॥
अल्पार्थे स्वीयकुणपं मा जुहाव स्ववाहुज । अहं सीताभुजं कृत्वाऽधुना दास्यामि ते क्षणात् ॥ ११ ॥
इत्युक्त्वा लक्ष्मणं कृत्वा जानकीभुजमुत्तमम् । त्वङ्मांसास्थिस्नायुरक्तपूरितं कंचुकीयुतम् ॥ १२ ॥
सीतालङ्कारसहितं तस्याश्चिह्नविचिह्नितम् । ददौ लक्ष्मणहस्ते तं स्वयमंतर्दधे क्षणात् ॥ १३ ॥
सीताभुजं समादाय लक्ष्मणोऽपि पुरीं ययौ । गतश्रियं निरुत्साहां वात्यातिधूलिधूसराम् ॥ १४ ॥
ददर्श नगरीं स्वीयां नारीहीनगृहोपमाम् । विवेशाधोमुखः पुर्यं नत्वा सदसि राघवम् ॥ १५ ॥

श्रीरामदास बोले—उधर गङ्गातटके समीप पहुंचकर लक्ष्मणने अपने मनमें सोचा कि यद्यपि लङ्कासे लौटनेपर मैंने ही अग्निमें डालकर सीताको पवित्र किया था। फिर भी रामचन्द्रजीने सीता माताका परित्याग कर दिया है ॥ १ ॥ इसमें दो कारण हैं। एक तो रामचन्द्रजीको अपनी कामवासना कम करनी है, दूसरे शास्त्रकी आज्ञाका पालन करना है। अस्तु, रामके आदेशानुसार मैंने सीताका परित्याग तो कर दिया, किन्तु एक और आज्ञा थी कि "लौटते समय सीताकी एक भुजा भी काटकर लेते आना"। यह बहुत ही कठिन काम है। उस समय रामजीने कसम रखा दिया था, इसलिए विशेष बातचीत भी नहीं कर सका ॥ २ ॥ ३ ॥ अब मैं क्या करूँ ? कैसे प्रभुके पास लौटकर जाऊँ ? यदि वे बिना हाथ लिये मुझे लौटे देखेंगे तो क्या कहेंगे और फिर यदि हाथ काटना चाहूँ तो कैसे काटूँ। जिन्होंने अपने बच्चेके समान मेरा दुलार किया, उन सीताके साथ यह कसाईका काम करनेके लिये मैं क्योंकर आगे बढ़ सकूँगा ॥ ४ ॥ ५ ॥ इसलिए सबसे अच्छा उपाय यह है कि यहीं आगमें जलकर मर जाऊँ। रामको मुँह ही न दिखाऊँ तो अच्छा हो। इस प्रकार विचार करके लक्ष्मणने चिता बनानेका निश्चय किया ॥ ६ ॥ इसी बीचमें ब्रह्माके आज्ञानुसार विश्वकर्मा एक बढ़ईका रूप धारण करके हाथमें कुल्हाड़ी लिये वनमें घूमते फिरते वहाँ आ पहुँचे ॥ ७ ॥ लक्ष्मणने विश्वकर्मासे कहा—कृपया आप अपनी कुल्हाड़ीसे थोड़ीसी लकड़ी काटकर मुझे चिता बनानेको दे दीजिये ॥ ८ ॥ आप जितना धन माँगेंगे, दूँगा। बढ़ईने कहा—हे वीर ! आप अपने लिये चिता बनानेका कारण तो हमें बताइये ॥ ९ ॥ लक्ष्मणने आदिसे अन्ततक सारा वृत्तान्त बता दिया। उसे सुनकर मुस्कराते हुए विश्वकर्माने कहा—॥ १० ॥ इतनी-सी बातके लिये आप अपने इस बहुमूल्य शरीरको आगमें मत जलाइये। मैं अभी क्षणभरमें सीताका हाथ बनाकर आपको देता हूँ ॥ ११ ॥ तदनुसार तनिक ही देरमें विश्वकर्माने सीताका ऐसा हाथ बना दिया, जिसमेंसे रुधिर बह रहा था, मांसके लोथड़े झूल रहे थे और कञ्चुकी पड़ी हुई थी ॥ १२ ॥ सीताके उस हाथमें सब चिह्न विद्यमान थे और अलङ्कार पड़े थे। उस हाथको लक्ष्मणके हाथमें देकर विश्वकर्मा अन्तर्धान हो गये ॥ १३ ॥ तब लक्ष्मण वह भुजा लेकर अयोध्यापुरीकी

दर्शयामास सीताया भुजं कङ्कणमण्डितम् । तं निरीक्ष्य भुजं रामोऽधोमुखः प्राह लक्ष्मणम् ॥१६॥
कैकेयीं सुहृदः पौरान् सर्वान् जानपदान्नृपान् । सीताभुजो दर्शनीयस्त्वयाऽद्य मम शासनात् ॥१७॥
तथेत्युक्त्वा लक्ष्मणोऽपि स चकार यथोदितः । भुजं संरक्षयामास पेटिकायां निधाय सः ॥
कैकेयी तं भुजं दृष्ट्वा तुतोष नितरां हृदि ॥१८॥
रामोऽपि सीतारहितः परात्मा विज्ञानदृक्केवल आदिदेवः ।
संत्यज्य भोगानखिलान्विरक्तो मुनिव्रतोऽभून्मुनिसेविताङ्घ्रिः ॥१९॥
अथ सीताऽपि वाल्मीकेर्मुनिपत्नीभिराश्रमे । प्रत्यहं पूजिता वन्यैः सुखं तस्थौ मुदान्विता ॥२ ॥
एवं मासद्वयं तत्र नीत्वा सीताऽऽश्रमे मुनेः । सुदिने सुषुवे रात्रौ पुत्ररत्नं रविप्रभम् ॥२१॥
एतस्मिन्नन्तरे रात्रौ ज्ञात्वा तं समयं प्रभुः । राघवः किंकिणीमालाघंटां मुक्त्वाऽथ बंधुना ॥२२॥
पुष्पकस्य ततस्तस्मिन् स्थित्वाकाशपथा ययौ । वाल्मीकेराश्रमे वेगात्सबन्धुस्तं ननाम सः ॥२३॥
ततो वाल्मीकिना विप्रैर्मितैरेव रघूत्तमः । जातकर्मादिसंस्कारांश्चकार विधिपूर्वकम् ॥२४॥
सीतायाः पुरतः पुत्राननमालोकयन्मुदा । ददौ दानान्यनेकानि सवस्त्राभरणान्यपि ॥२५॥
चकार विधिवच्छ्राद्धं पुत्रजन्ममहोत्सवे । देवदुन्दुभयो नेदुर्ववर्षुः पुष्पवृष्टिभिः ॥२६॥
सुराः सीतां शिशुं रामं ननृतुः खे सुरस्त्रियः । नेदुर्जनकवाद्यानि ननृतुर्वारयोषितः ॥२७॥
तुष्टुवुर्मागधाद्याश्च सीतां रामं शिशुं मुहुः । ऋषिपत्न्यः शिशुं सीतां रामं दीपैः सुभूषिताः ॥२८॥
पृथङ्नीराजनं कृत्वा जगुर्गीतं हि सुस्वरम् । वस्त्राद्यैः पूजयामास ताः सर्वा रघुनन्दनः ॥२९॥
सीतारामौ विदेहोऽपि पूजयामास विस्तरात् । वाल्मीकिस्तु कुशैः शांतिं चकार विधिना शिशोः ॥३०॥

ओर चल पड़े । अयोध्यामें घुसते ही लक्ष्मणने देखा कि एक ही दिनमें अयोध्यापुरी सर्वथा श्रीहीन हो गयी है। जहाँ-तहाँ बवंडर उठ रहे हैं और चारों धूल उड़ती दीखती है । यह सब मिलकर उस दिन अयोध्यापुरी ऐसी लग रही थी, जैसे विना स्त्रीका बिना घर । लक्ष्मण जाते-जाते महलोंमें पहुँचे और रामचन्द्रजीको सीताका हाथ दिखलाया । उस कङ्कण-विमण्डित सीताकी भुजाको देखकर रामने अपना मस्तक झुका लिया और–॥१४–१६॥ इसे ले जाकर माता कैकेयी, मेरे मित्रों, राजाओं एवं पुरवासियों-को दिखला दो, यह मेरी आज्ञा है ॥ १७ ॥ 'तथास्तु' कहकर लक्ष्मणने भी आज्ञाका पालन किया और एक पेटामें सम्हालकर सीताकी भुजा रख ली ॥ १८ ॥ कैकेयीने सीताकी भुजा देखी तो बहुत प्रसन्न हुई। इधर रामचन्द्रजीने सीतासे वियुक्त होकर सब सांसारिक भोगोंको त्याग दिया और तपस्वियोंके समान अपना जीवन बिताने लगे ॥ १९ ॥ उधर सीताजी भी वाल्मीकिके आश्रमपर वहाँकी मुनिपत्नियोंसे पूजित होती हुई सानन्द जीवन बिताने लगीं ॥ २० ॥ इस तरह दो महीना बीतनेपर सीताने शुभ दिन और शुभ घड़ीमें एक पुत्ररत्नको जन्म दिया ॥ २१ ॥ उसी समय रामचन्द्रको भी यह समाचार मिल गया और रात्रिको अपने पुष्पक विमानपर चढ़कर लक्ष्मणजीके साथ आकाशमार्गसे श्रीवाल्मीकिजीके आश्रमपर जा पहुँचे और लक्ष्मण तथा रामने मुनिको प्रणाम किया ॥ २२ ॥ २३ ॥ इसके अनन्तर वाल्मीकिने आश्रममें उपस्थित थोड़ेसे ब्राह्मणोंके साथ बच्चेका विधिवत् जातकर्मादि संस्कार किया ॥ २४ ॥ सीताके समक्ष राम-चन्द्रने हर्षपूर्वक बेटेका मुख देखा और अनेक प्रकारके वस्त्र-आभरण आदि दान करके ब्राह्मणोंको दिये ॥ २५ ॥ उस पुत्र-जन्मकी प्रसन्नतामें रामने नान्दीमुख-श्राद्धादि किया। देवताओंने प्रसन्न होकर दुन्दुभी बजायी और उनपर फूल बरसाये ॥ २६ ॥ सीता और सीताके पुत्रका मुख देखकर देवाङ्गनायें नाचने लगीं । उधर जनकजीके द्वारा नियुक्त बाजेवाले बाजा बजाने लगे और वेश्यायें नाचने लगीं ॥ २७ ॥ बन्दीजन सीता और रामकी स्तुति करने लगे । ऋषिपत्नियोंने सुन्दर थालमें घृतका दीपक जलाकर राम, सीता तथा नवजात शिशुकी आरती उतारी और विविध प्रकारके मङ्गलगान गाये । रामने अनेक तरहके वस्त्राभूषणोंसे उनका सत्कार किया ॥ २८ ॥ २९ ॥ महाराज जनकने भी राम और सीताका विधिवत् पूजन किया और वाल्मीकिने

शांत्यर्थं प्रोक्षितो यस्मात्कुशैस्तस्मात्कुशाह्वयः। वाल्मीकिना राघवाग्रे निश्चितो बालकस्य हि ॥३१॥
एवं नानासमुत्साहैर्नीत्वा तत्र निशां सुखम्। तत्रस्थान् सकलानाह ममात्रागमनस्य हि ॥३२॥
यस्माद्वार्ता बहिर्गच्छेदाश्रमादस्य वै मुनेः। स मे दण्ड्यो भवेदेव शत्रुरूपी न संशयः ॥३३॥
इत्युक्त्वा सकलान्दृष्ट्वा मुनीन्नत्वा पुनः पुनः। सीतामामंत्र्य श्रीरामो यानं भ्रात्राऽऽरुरोह सः ॥३४॥
विहायसा क्षणात्प्राप साकेतं रघुनन्दनः। अवरुह्य विमानात्स पूर्ववन्निद्रितो गृहे ॥३५॥
अथ रामो वाजिमेधशतं कर्तुं मनो दधे। कृत्वा स्वर्णमयीं सीतां वस्त्रालंकारभूषिताम् ॥३६॥
पापिनीं मलिनां दुष्टां भर्तुर्निंदापरायणाम्। भर्तृविद्वेषिणीं क्रूरां चौरकर्मणि तत्पराम् ॥३७॥
भर्तारं घातुमिच्छन्तीं सदा कलहकारिणीम्। परभुक्तां पापरतां भर्तुर्वाक्यविलोपिनीम् ॥३८॥
स्वीयेच्छावर्तिनीं नष्टां मृतां नीतां गतां स्त्रियम्। त्यक्त्वा कुशमयीं विप्रैः कार्या पत्नी स्वकर्मसु ॥३९॥
हैमी कार्या बाहुजैश्च वैश्यैः कार्या तु राजती। शूद्रैः कार्या ताम्रमयी स्वस्वकर्मप्रसिद्धये ॥४०॥
अथवा सर्ववर्णैश्च कार्या पत्नी तु कांचनी। रामोऽपि कृत्वा सौवर्णीमग्निहोत्रं चकार सः ॥४१॥
रावणेन यदा नीता सीता सा दंडके तदा। हेम्नोऽभावात्कुशमयी कृता रामेण जानकी ॥४२॥
अन्ये कुशमयीं पत्नीं विधाय गृहमेधिनः। अग्निहोत्रमुपासन्ते नित्यत्यागोऽतिगर्हितः ॥४३॥
व्यभिचारवती पापा भर्तृविद्वेषिणी तथा। आधाने सा परित्याज्या न वा त्याज्या मतांतरात् ॥४४॥
पक्षे पक्षे नवम्यां हि स्नानं ह्यवभृथाभिधम्। कर्तुं निश्चितवान् रामस्तदा विप्रैः पुरोधसा ॥४५॥
भागीरथ्युत्तरे तीरे यज्ञभूमिं चकार सः। आप्रयागान्मुद्‌गलस्याश्रमो यावच्च दक्षिणे ॥४६॥

विधिपूर्वक कुशासे अभिषेक करते हुए शान्ति-पाठ किया ॥ ३० ॥ शान्तिके निमित्त वाल्मीकिने कुशासे शांति की थी। इसीलिए उन्होंने रामके सामने ही उस बच्चेका नाम कुश रक्खा ॥ ३१ ॥ इस तरह नाना प्रकारके उत्सवोंमें वह रात वहाँ बितायी और पिछली रातको रामने आश्रमके लोगोंसे कहा कि जो कोई मनुष्य मेरे यहाँ आनेका समाचार किसीसे कहेगा, वह मेरा शत्रु होगा और मैं उसको दंड दिये बिना न रहूँगा ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ ऐसा कहकर रामने अयोध्या वापस आनेके लिए लोगोंसे आज्ञा माँगी और मुनियोंको प्रणाम किया। फिर सीतासे पूछकर रामचन्द्रजी लक्ष्मणके साथ विमानपर आरूढ़ हुए और थोड़ी देरमें अयोध्या आकर नित्यकी तरह अपनी शय्यापर सो गये ॥ ३४ ॥ ३५ ॥ कुछ दिन बीतनेके बाद रामने सौ अश्वमेघ यज्ञ करनेका विचार किया। उस समय सीता तो थीं नहीं। इसलिए रामने सुवर्णकी सीता बनाकर यज्ञ करना निश्चित किया। क्योंकि शास्त्रमें लिखा है कि पापिन, मैली-कुचैली, दुष्ट स्वभावकी, निन्दा करनेवाली, पतिसे लड़ाई करनेवाली, क्रूर प्रकृतिकी, चोट्टिन, स्वामीको मारनेकी इच्छा रखनेवाली, सदा लड़ाई करनेवाली, कुलटा, स्वामीकी आज्ञाके प्रतिकूल चलनेवाली और स्वेच्छाचारिणी स्त्री यदि खो जाय, मर जाय या किसीके द्वारा भगा ली जाय अथवा स्वयं भाग जाय तो उसको त्यागकर ब्राह्मण कुशकी, क्षत्रिय सुवर्णकी, वैश्य चाँदीकी और शूद्र ताम्रकी स्त्री बनाकर यज्ञादि कर्म करे ॥ ३६–४० ॥ अथवा सामर्थ्य होनेपर सब जातिके लोग सुवर्णकी नारी बनाकर अपना काम चलायें। इन्हीं शास्त्रीय आज्ञाओंसे रामने सुवर्णकी सीता बनाकर अपना यज्ञ प्रारम्भ किया ॥ ४१ ॥ पहले जब दण्डक वनमें सीता हर ली गयी थीं और रामको रामेश्वर-स्थापनाके समय सीताकी आवश्यकता पड़ी थी, तब उन्होंने सुवर्णके अभावमें कुशकी ही सीता बनाकर रामेश्वरकी स्थापना की थी ॥ ४२ ॥ कुछ गृहस्थ नारीके अभावमें कुशकी स्त्री बनाकर अग्निहोत्र करते हैं, वह भी ठीक है। कहनेका मतलब यह कि स्त्रीके अभावमें किसी प्रकारकी स्त्री अवश्य बना लेनी चाहिए। क्योंकि स्त्रीके बिना कोई भी याज्ञिक कार्य सम्पन्न नहीं होता। कुछ आचार्योंका मत है कि—"व्यभिचारिणी, पापिनी तथा स्वामीसे द्रोह करनेवाली स्त्रीका सदाके लिए परित्याग कर देना चाहिए" कुछका यह मत है कि "परित्याग न भी करे तो कोई हानि नहीं।" ॥ ४३ ॥ ४४ ॥ रामने प्रत्येक नवमीको एक अश्वमेध यज्ञ पूर्ण करनेका निश्चय किया और भागीरथीके उत्तरी तटपर यज्ञशाला बनानेकी बात

जहृयुस्तरतस्तावच्चकार स्वर्णलांगलैः । यस्याश्रमस्य सान्निध्ये भागीरथ्यस्त्युदग्वहा ॥४७॥
रुक्ममय्याऽथ जानक्या यज्ञारंभं चकार सः । अज्ञानदृग्भ्यो द्रष्टुं वै चकार स्वर्णनिर्मिताम् ॥४८॥
वामांगस्थां गुप्तरूपां ज्ञानदृग्भ्यश्च सात्त्विकीम् । बिभ्रत्सदैव श्रीरामो जानकीं लोकमातरम् ॥४९॥
यज्ञान्ते स्वर्णजां सीतां ददौ स्वगुरवे प्रभुः । एवं यज्ञशतेष्वत्र गुरवे शतमूर्तयः ॥५०॥
याः समर्पिता रामेण तासां दानफलेन हि । षोडशस्त्रीसहस्रेभ्यश्चोर्ध्वं स्त्रीणां शतं पुनः ॥५१॥
द्वारकायां कृष्णरूपो विवाहेनोद्वहिष्यति । प्रतियज्ञे श्यामकर्णमश्वं रामो मुमोच ह ॥५२॥
चतुर्दिनाच्चतुर्दिक्षु परिक्रम्य ययौ हयः । एवं सर्वेषु यागेषु ययौ वाजी पृथग्जवात् ॥५३॥
पुष्पकस्थः स शत्रुघ्नो हयरक्षां चकार वै । एवं सदा यज्ञवाटे विरेजे दीक्षया विभुः ॥५४॥
एवं च नवतिसंख्या रामेण नव वै कृताः । चरमस्यापि प्रारम्भं रामो यज्ञस्य सोऽकरोत् ॥५५॥
गंगाया दक्षिणे तीरे मुद्गलस्याश्रमोऽस्ति हि । तत्र तस्यान्तिके गंगोदक्तीरे च उदग्वहे ॥५६॥
दिनानि दश वाल्मीकिर्निशायां सन्ध्ययोरपि । श्रीरामरक्षया चक्रे बालकस्याभिमंत्रणम् ॥५७॥
कुशं नाम तदा चक्रे मुनिरेकादशे दिने । चकार सर्वसंस्कारान् मुनिः श्रीराघवाज्ञया ॥५८॥
एवं स बालकस्तत्र ववृधे मातृलालितः । जनकश्च सुमेधा च नानावस्त्रैः सुशोभनैः ॥५९॥
शोभयामास दौहित्रं नानाव्याघ्रनखादिभिः । बालोऽपि रंजयामास स्वक्रीडाभिर्विदेहजाम् ॥६०॥
एकदा निद्रितं प्रेंखे दृष्ट्वा बालं मुनेः पुरः । अन्यकर्मणि व्यग्रा च सखीं स्वीयां स्वमातरम् ॥६१॥
जनकं चापि सा सीता दृष्ट्वा सर्वान्बहिर्गतान् । आश्विने रविवारे च नद्यां स्नातुं समुद्यता ॥६२॥
मुनिं तं बालरक्षायां कृत्वाऽथ तमसां ययौ । दास्या मार्गेण गच्छंती ददर्श पथि वानरीम् ॥६३॥
कटिस्कंधमस्तकेषु बिभ्रतीं पंच बालकान् । तां दृष्ट्वा स्वशिशुं स्मृत्वाऽचिंतयज्जानकी हृदि ॥६४॥

ठहरायी गयी । प्रयागसे लेकर मुद्गल मुनिके आश्रमपर्यन्त जितना स्थान था, वह सुवर्णके हलसे जोता गया । रामकी उस यज्ञशालाके पास गंगाजी ठीक उत्तरकी ओर बह रही थीं ॥ ४५–४७ ॥ इसके अनन्तर रामने सुवर्णमयी सीताके साथ यज्ञकार्य प्रारम्भ किया । वह सुवर्णकी सीता अज्ञानी लोगोंको देखनेके लिए रखी गयी थी, किन्तु अज्ञानियोंकी दृष्टिमें तो सात्त्विकी जानकी सदा रामके वामभागमें निवास करती थीं ॥४८॥४९॥ प्रत्येक यज्ञके समाप्त हो जानेपर राम वह स्वर्णमयी सीता अपने गुरु वसिष्ठको दान दे दिया करते थे । इस प्रकार प्रत्येक यज्ञकी पूर्णतापर स्वर्णमयी सीता देते-देते रामने सौ सीताओंका दान किया । उस दानके फलस्वरूप आगे कृष्णावतारमें उनको सोलह हजार एक सौ स्त्रियाँ मिलीं । प्रत्येक यज्ञमें राम अपना श्यामकर्ण घोड़ा दिग्विजयके लिए छोड़ते थे । वह चार दिनमें चारों ओर घूमकर लौट आया करता था । साथमें शत्रुघ्न पुष्पक विमानपर बैठकर घोड़ेकी रक्षाके लिए जाया करते थे और रामचन्द्रजी दीक्षा लेकर यज्ञशालामें बैठे रहते थे ॥ ५०–५४ ॥ इस प्रकार रामचन्द्रजीने निन्नानवे यज्ञ पूर्ण किया और अन्तिम सौवाँ यज्ञ भी प्रारम्भ कर दिया ॥ ५५ ॥ गंगाके दक्षिण तटपर मुद्गल नामके एक ऋषिका आश्रम था और उत्तरवाहिनी गंगाके तटपर ही वाल्मीकि संध्याके समय रामके पुत्र कुशका रामरक्षा-मंत्रसे अभिषेक कर रहे थे ॥ ५६ ॥ ५७ ॥ ग्यारहवें दिन वाल्मीकिने बच्चेका नामकरण करके रामके आज्ञानुसार सब संस्कार किया ॥ ५८ ॥ बच्चा भी बड़े लाड़-प्यारके साथ समय बिताता हुआ बढ़ने लगा । जनक और सुमेधा अनेक प्रकारके सुन्दर वस्त्रों और व्याघ्रनख आदि तरह-तरहके अलंकारोंसे अलंकृत करके रखते थे । बच्चा अपने कौतुकोंसे जानकीजीको प्रसन्न किया करता था । एक दिन कुश वाल्मीकिके पास पालनेपर सो गया । सखियाँ अन्य कामोंमें व्यस्त थीं । सीताके माता-पिता कहीं घूमने चले गये थे । उस रोज आश्विन मासके रविवारका दिन था। इसलिए सीताने नदीमें स्नान करनेकी इच्छा की । सीताने वाल्मीकिजीसे बच्चेको देखने रहनेके लिए कह दिया और स्वयं एक दासीको साथ लेकर तमसाकी ओर चल पड़ीं । रास्तेमें सीताने देखा कि एक वानरी अपने पांच बच्चोंको कमर-कन्धे और मस्तकपर बैठाये चली जा रही है । उसे

तिर्यग्योनौ जन्मवत्या वानर्या बालकानहो । स्नेहात्सहैव नीयन्ते धिङ्मां मानवदेहजाम् ॥६५॥
एकं चापि निजं बालं त्यक्त्वा गेहेऽद्य गम्यते । मया विमूढया स्नातुं भुव्यत्र क्षणिकं सुखम् ॥६६॥
इति धिक्कृत्य चात्मानं परिवृत्याश्रमं ययौ । एतस्मिन्नन्तरे गेहे वाल्मीकिर्मुनिपुंगवः ॥६७॥
गतः स लघुशंकार्थं कार्यार्थं बटवो गताः । गृहीत्वा सा कुशं प्रेंखाद्ययौ सीता बहिः पुनः ॥६८॥
दास्या सह नदीं गत्वोषसि स्नानं चकार वै । अदृष्ट्वाऽथ मुनिर्बालं दीर्घं निःश्वस्य वै मुहुः ॥६९॥
सीताशापभयाच्चक्रे लवैर्बालं स पूर्ववत् । तपोबलेन तं प्रोक्ष्य जीवयामास वेगतः ॥७०॥
ज्ञानदृष्ट्या तीव्रतया मुनिना नावलोकितम् । ततः सीताऽपि सुस्नाता दास्या गेहं शनैर्ययौ ॥७१॥
कटौ गृहीत्वा तं बालं रुवन्नूपुरनिःस्वना । प्रेंखेऽन्यं बालकं दृष्ट्वा मुनिं पप्रच्छ जानकी ॥७२॥
प्रेंखे कस्याः शिशुश्चायं सोऽपि दृष्ट्वा तदा कुशम् । कटिप्रदेशे जानक्या विस्मयं परमं गतः ॥७३॥
नमस्कृत्य ततः सीतां सर्वं वृत्तं न्यवेदयत् । अंके निधाय तं बालं सीताया ह्यब्रवीन्मुनिः ॥७४॥
प्रसादान्मम वैदेहि द्वितीयोऽयं सुतस्तव । भवत्वद्य लवो नाम्ना लवैर्यस्माद्विनिर्मितः ॥७५॥
वाल्मीकेर्वचनात्साऽपि शिशुं जग्राह जानकी । मुनिस्तयोर्नाम चक्रे कुशो ज्येष्ठोऽनुजो लवः ॥७६॥
जातकर्मादिसंस्कारान् लवस्यापि चकार सः । तदा निनेदुर्वाद्यानि भूम्यां खेऽपि दिवौकसाम् ॥७७॥
ववर्षुजानकीं बालौ वाल्मीकिं कुसुमैः सुराः । चकार जनकश्चापि सुमेधा परमोत्सवान् ॥७८॥
क्रमेण विद्यासंपन्नौ सीतापुत्रौ विरेजतुः । धनुर्विद्यामस्त्रविद्यां शिक्षयामास तौ मुनिः ॥७९॥
कृत्स्नं रामायणं स्वीयं कृतं तौ शिक्षयन्मुदा । यस्मिन्नानन्दरम्यं च चरित्रं राघवस्य हि ॥८०॥
कुमारौ स्वरसंपन्नौ सुन्दरावश्विनाविव । तन्त्रीलयसमायुक्तौ गायंतौ चेरतुर्वने ॥८१॥
तत्र तत्र मुनीनां तु समाजेषु सुरूपिणौ । गायन्तावपि तौ दृष्ट्वा विस्मिता मुनयोऽब्रुवन् ॥८२॥

देखकर उन्होंने अपने मनमें सोचा कि तिर्यग्योनिकी स्त्री होकर भी यह वानरी कितने प्रेमसे बच्चोंको अपने साथ रखती है। मुझ मानवजातिकी भामिनीको धिक्कार है, जो अपने एक लड़केको आश्रमपर छोड़कर तमसा स्नान करने जा रही हूँ ॥ ५९–६५ ॥ इस तरह अपनेको धिक्कारकर सीता वहाँसे फिर आश्रमको लौट पड़ीं। इसी बीच वाल्मीकिजी लघुशङ्का करनेके लिये बाहर चले गये थे। विद्यार्थी भी अपने-अपने कामसे पहले ही चले जा चुके थे। इतनेमें सीता पहुँचीं। उन्होंमें कुशको उठा लिया और दासीके साथ तमसाकी ओर चली गयीं ॥ ६६ ॥ ६७ ॥ उधर वाल्मीकि लौटकर आये तो उनकी निगाह पालनेपर पड़ी। उसपर बच्चेको नहीं देखा। ऐसी अवस्थामें मुनिराजने एक लम्बी साँस ली और सीताके शापके भयसे अपने तपोबल द्वारा लवसे कुशके समान ही एक बालक और बना दिया ॥६८–७०॥ घबराहटके कारण उन्होंने अपनी ज्ञानदृष्टिसे यह नहीं देखा कि सीता कुशको अपने साथ ले गयी है। कुछ देर बाद स्नान करके सीता भी दासीके साथ धीरे-धीरेसे कुटियामें आयीं ॥ ७१ ॥ वहाँ उन्होंने देखा कि कुशके समान ही अलंकारादिसे विभूषित एक बालक पालनेपर पड़ा सो रहा है। यह देखकर सीताने ऋषिसे पूछा कि यह किसका बच्चा है ? उधर ऋषिने देखा कि कुश तो सीताकी कमरपर है, तब उन्हें बड़ा आश्चर्य हुआ ॥७२॥७३॥ फिर उन्हें नमस्कार करके वाल्मीकिने वह वृत्तांत बतलाया, जिसके कारण उन्हें दूसरा बच्चा बनाना पड़ा था। उसके पश्चात् मुनिने चुमकारकर लवको सीताकी गोदमें दे दिया और कहा—॥७४॥ देवि ! इसे भी सम्हालो। तब सीताने उस बच्चेको भी अंगीकार किया। मुनिने कहा–इन दोनोंमें ज्येष्ठ कुश होगा और कनिष्ठ (छोटा) लव ॥७५॥ इसके अनन्तर उन्होंने लवका भी जातकर्म आदि संस्कार किया। उस समय विविध प्रकारके बाजे बजे। स्वर्गमें देवताओंने भी मंगलवाद्य बजाकर जानकी, शिशु तथा वाल्मीकिके ऊपर फूलोंकी वर्षा की। सुमेधा तथा जनकने विविध उत्सव किये। क्रमशः दोनों पुत्र बड़े हुए। उन्होंने अनेक विद्याओंका अध्ययन किया और महर्षि वाल्मीकिने उनको धनुर्विद्या तथा अस्त्रविद्या भी सिखायी ॥ ७६–७९ ॥ फिर अपनी बनायी सम्पूर्ण रामायणकी भी उन्हें शिक्षा दी। जिसमें रामचन्द्रजीका आनन्ददायक चरित्र वर्णित था ॥ ८० ॥ अश्विनीकुमारकी भाँति सुन्दर वे दोनों बालक मधुर स्वरसे

गन्धर्वेष्विह किन्नरेषु भुवि वा देवेषु देवालये
पातालेष्वथ वा चतुर्मुखगृहे लोकेषु सर्वेषु च ।
अस्माभिश्चिरजीविभिश्चिरतरं दृष्ट्वा दिशः सर्वतो
नाज्ञायीदृशगीतवाद्यगरिमा नादर्शि नाश्रावि च ॥८३॥

एवं स्तुवद्भिरखिलैर्मुनिभिः प्रतिवासरम् । आसते सुखमेकांते वाल्मीकेराश्रमे चिरम् ॥८४॥
रुक्मकंकणमञ्जीरनूपुरैस्तौ विभूषितौ । केयूररशनाहारकुंडलैरतिशोभितौ ॥८५॥
निजक्रीडाकौतुकैश्च बालवाक्यैर्मनोहरैः । सीतां सुमेधां जनकं रञ्जयामासतुर्मुनिम् ॥८६।

इति श्रीशतकोटिरामचरितांतर्गते श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये विलासकाण्डे
कुशलवजन्मकथनं नाम चतुर्थः सर्गः ॥ ४ ॥

पञ्चमः सर्गः

(रामरक्षा-महामंत्र)

विष्णुदास उवाच

श्रीरामरक्षया प्रोक्तं कुशस्य ह्यभिमंत्रणम् । कृतं तेनैव मुनिना गुरो तां मे प्रकाशय ॥ १ ॥
रामरक्षां वरां पुण्यां बालानां शांतिकारिणीम् ।

श्रीशिव उवाच

इति शिष्यवचः श्रुत्वा रामदासोऽब्रवीद्वचः ॥ २ ॥

श्रीरामदास उवाच

सम्यक् पृष्टं त्वया शिष्य रामरक्षाऽधुनोच्यते । या प्रोक्ता शंभुना पूर्वं स्कंदार्थे गिरिजां प्रति ॥ ३ ॥

श्रीशिव उवाच

देव्यद्य स्कंदपुत्राय रामरक्षाभिमंत्रणम् । कुरु तारकघाताय समर्थोऽयं भविष्यति । ४ ॥
इत्युक्त्वा कथयामास रामरक्षां शिवः स्त्रियै । नमस्कृत्य रामचन्द्रं शुचिर्भूत्वा जितेन्द्रियः ॥ ५ ।

वीणाकी झनकारके साथ वनमें रामचरित्र गाया करते थे ॥ ८१ ॥ जहाँ-तहाँ मुनियोंकी मण्डलीमें जब वे दोनों सुकुमार बालक रामचरित्रका गायन करते थे तो सबके मुँहसे सहसा यह वाक्य निकल पड़ता था कि हम लोगोंने अपनी लम्बी आयुमें गंधर्वों, किन्नरों, मनुष्यों, देवताओं, पाताललोकवासियों, ब्रह्मलोकवासियों एवं सारे ब्रह्माण्डवासियोंको अनेक गायकोंके गायन सुने हैं, लेकिन उनमें कहीं न तो मैंने इस प्रकार वाद्यकलाकी निपुणता देखी और न गायनमें ऐसी मिठास ही पायी ॥ ८२ ॥ ८३ ॥ इस तरह सब ऋषियोंसे प्रशंसित होकर वे दोनों एकान्तमें वाल्मीकिके आश्रमपर रहा करते थे । सुवर्णके कङ्कण, नूपुर, केयूर, करधनी, हार तथा कुण्डल पहननेसे वे और भी सुन्दर दीखते थे ॥ ८४ ॥ ८५ ॥ प्रतिदिन उनकी मनोहर बाललीला देख-देखकर मुनि, सीता, सुमेधा और जनकजी मारे खुशीके फूले नहीं समाते थे ॥ ८६ ॥ इति श्रीशतकोटिरामचरित्रान्तर्गते श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये पं० रामतेजपाण्डेयकृतभाषाटीकासमन्विते जन्मकाण्डे चतुर्थः सर्गः ॥ ४ ॥

विष्णुदासने कहा-हे गुरुदेव ! जिस रामरक्षा-मंत्रसे वाल्मीकिने कुशका अभिमंत्रण किया था, उसे हमको बताइए ॥ १ ॥ क्योंकि मैंने सुना है कि वह रामरक्षामंत्र बड़ा पवित्र सुन्दर और बालकोंको शान्ति प्रदान करनेवाला है । शिवजीने कहा-इस प्रकार शिष्यकी प्रार्थना सुनकर श्रीरामदास कहने लगे-हे प्रिय शिष्य ! तुमने बहुत अच्छा प्रश्न किया है। मैं तुम्हें वह रामरक्षामन्त्र बतलाता हूँ, जिसे एक बार शिवजीने पार्वतीको स्वामिकार्तिकेयकी रक्षाके लिए बतलाया था ॥ २ ॥ ३ ॥ श्रीशिवजी बोले—हे देवि ! आज षडाननके

अथ ध्यानम्

वामे कोदंडदंडं निजकरकमले दक्षिणे बाणमेकं
पश्चाद्भागे च नित्यं दधतमभिमतं सासितूणीरभारम् ।
वामेऽवामेव सद्व्यां सह मिलिततनुं जानकीलक्ष्मणाभ्यां
श्यामं रामं भजेऽहं प्रणतजनमनःखेदविच्छेददक्षम् ॥ ६ ॥

अस्य श्रीरामरक्षास्तोत्रमंत्रस्य बुधकौशिकऋषिः श्रीरामचंद्रो देवता राम इति बीजम्
अनुष्टुप् छंदः श्रीरामप्रीत्यर्थे जपे विनियोगः ।

चरितं रघुनाथस्य शतकोटिप्रविस्तरम् । एकैकमक्षरं पुंसां महापातकनाशनम् ॥ ७ ॥
ध्यात्वा नीलोत्पलश्यामं रामं राजीवलोचनम् । जानकीलक्ष्मणोपेतं जटामुकुटमंडितम् ॥ ८ ॥
सासितूणधनुर्बाणपाणिं नक्तंचरान्तकम् । स्वलीलया जगत्त्रातुमाविर्भूतमजं विभुम् ॥ ९ ॥
रामरक्षां पठेत्प्राज्ञः पापघ्नीं सर्वकामदाम् । शिरो मे राघवः पातु भालं दशरथात्मजः ॥१०॥
कौसल्येयो दृशौ पातु विश्वामित्रप्रियः श्रुती । घ्राणं पातु मखत्राता मुखं सौमित्रिवत्सलः ॥११॥
जिह्वां विद्यानिधिः पातु कंठं भरतवंदितः । स्कंधौ दिव्यायुधः पातु भुजौ भग्नेशकार्मुकः ॥१२॥
करौ सीतापतिः पातु हृदयं जामदग्न्यजित् । पार्श्वे रघुवरः पातु कुक्षी इक्ष्वाकुनंदनः ॥१३॥
मध्यं पातु खरध्वंसी नाभिं जांबवदाश्रयः । सुग्रीवेशः कटिं पातु सक्थिनी हनुमत्प्रभुः ॥१४॥
ऊरू रघूत्तमः पातु गुह्यं रक्षःकुलांतकृत् । जानुनी सेतुकृत्पातु जंघे दशमुखांतकः ॥१५॥
पादौ विभीषणश्रीदः पातु रामोऽखिलं वपुः ।
एतां रामबलोपेतां रक्षां यः सुकृती पठेत् । स चिरायुः सुखी पुत्री विजयी विनयी भवेत् ॥१६॥
पातालभूतलव्योमचारिणश्छद्मचारिणः । न द्रष्टुमपि शक्तास्ते रक्षितं रामनामभिः ॥१७॥
रामेति रामभद्रेति रामचन्द्रेति वा स्मरन् । नरो न लिप्यते पापैर्भुक्तिं मुक्तिं च विंदति ॥१८॥

रक्षार्थ तुम्हें रामरक्षामन्त्र बतला रहा हूँ। अथ ध्यानम्। जिन रामचन्द्रजीके बायें हाथमें धनुष, दाहिने हाथमें एक बाण और पीठपर बाणोंसे भरा हुआ तरकस है। जिनकी बायीं तथा दाहिनी ओर लक्ष्मण और सीता हैं। भक्तोंके मनकी पीड़ा नष्ट करनेमें निपुण श्रीरामचन्द्रजीका मैं भजन करता हूँ ॥ ४–६ ॥ विनियोगके अनन्तर—सौ करोड़ श्लोकोंमें विस्तारसे वर्णित भगवान् रामके चरित्रका एक-एक अक्षर महान् पापोंका भी नाश करता है। नीलकमलकी नाईं श्याम तथा राजीवलोचन, जिनके आस-पास लक्ष्मण तथा जानकीजी विराज रही हैं। जिनका मस्तक जटा-मुकुटसे अलंकृत है। तलवार, तरकस, धनुष और बाणको लिये जो राक्षसोंको यमराज सदृश भीषण दीखते हैं। जो जगत्की रक्षाके निमित्त अपने इच्छानुसार जगतीतलपर अवतीर्ण हुए हैं, ऐसे रामका ध्यान करके सब कामनाओंको पूर्ण करने तथा पापोंका नाश करनेवाले रामरक्षामन्त्रका पाठ करे। राघव यह रामचन्द्रजीका नाम मेरे सिरकी रक्षा करे ॥ ७–१० ॥ दशरथात्मज ललाटकी रक्षा करें। कौसल्येय नेत्रोंकी, विश्वामित्रप्रिय कानोंकी, मखत्राता नाककी और सौमित्रवत्सल मुखकी रक्षा करें ॥ ११ ॥ विद्यानिधि जिह्वाकी, भरतवंदित कंठकी, दिव्यायुध दोनों कन्धोंकी, भग्नेशकार्मुक भुजाओंकी, सीतापति हाथोंकी, जामदग्न्यजित् हृदयकी, रघुवर पार्श्वभागकी, इक्ष्वाकुनन्दन पेटकी, खरध्वंसी शरीरके मध्यभागकी, जांबवदाश्रय नाभिकी, सुग्रीवेश कमरकी, हनुमत्प्रभु हड्डियोंकी, रघूत्तम दोनों घुटनोंकी, रक्षःकुलांतकृत् गुदाकी और दशमुखान्तक मेरी जाँघोंकी रक्षा करें ॥ १२–१५ ॥ विभीषणको राज देनेवाले पैरोंको और राम सारे शरीरकी रक्षा करें। जो मनुष्य रामके बलसे परिपूर्ण इस रामरक्षामंत्रका पाठ करता है वह चिरायु, सुखी, पुत्रवान्, विजयी और विनयी होता है ॥ १६ ॥ पाताल-
21. चारी, भूमिचारी, व्योमचारी और छद्मचारी कोई भी भूत-प्रेतादि बाधा रामरक्षा-मंत्रसे अभिमंत्रित जनपर दृष्टिपात नहीं कर सकती। जो मनुष्य राम, रामभद्र अथवा रामचन्द्र इस नामका स्मरण करता है, वह पापसे

जगज्जैत्रैकमंत्रेण रामनाम्नाऽभिरक्षितम् । यः कंठे धारयेत्तस्य करस्थाः सर्वसिद्धयः ॥१९॥
वज्रपंजरनामेदं यो रामकवचं पठेत् । अव्याहताज्ञः सर्वत्र लभते जयमंगलम् ॥२०॥
आदिष्टवान् यथा स्वप्ने रामरक्षामिमां हरः । तथा लिखितवान् प्रातः प्रबुद्धो बुधकौशिकः ॥२१॥
रामो दाशरथिः शूरो लक्ष्मणानुचरो बली । काकुत्स्थः पुरुषः पूर्णः कौसल्यानंदवर्धनः ॥२२॥
वेदांतवेद्यो यज्ञेशः पुराणपुरुषोत्तमः । जानकीवल्लभः श्रीमानप्रमेयपराक्रमः ॥२३॥
इत्येतानि जपेन्नित्यं मद्भक्तः श्रद्धयाऽन्वितः । अश्वमेधायुतं पुण्यं संप्राप्नोति न संशयः ॥२४॥
सन्नद्धः कवची खड्गी चापबाणधरो युवा । गच्छन् मनोरथोऽस्माकं रामः पातु सलक्ष्मणः ॥२५॥
तरुणौ रूपसंपन्नौ सुकुमारौ महाबलौ । पुण्डरीकविशालाक्षौ चीरकृष्णाजिनांबरौ ॥२६॥
फलमूलाशनौ दांतौ तापसौ ब्रह्मचारिणौ । पुत्रौ दशरथस्यैतौ भ्रातरौ रामलक्ष्मणौ ॥२७॥
धन्विनौ बद्धनिस्त्रिंशौ काकपक्षधरौ श्रुतौ । वीरौ मां पथि रक्षेतां तावुभौ रामलक्ष्मणौ ॥२८॥
शरण्यौ सर्वसत्त्वानां श्रेष्ठौ सर्वधनुष्मताम् । रक्षःकुलनिहंतारौ त्रायेतां नो रघूत्तमौ ॥२९॥

आत्तसज्जधनुषाविषुस्पृशावक्षयाशुगनिषंगसंगिनौ ।
रक्षणाय मम रामलक्ष्मणावग्रतः पथि सदैव गच्छताम् ॥३०॥

आरामः कल्पवृक्षाणां विरामः सकलापदाम् । अभिरामस्त्रिलोकानां रामः श्रीमान् स नः प्रभुः ॥३१॥
रामाय रामभद्राय रामचंद्राय वेधसे । रघुनाथाय नाथाय सीतायाः पतये नमः ॥३२॥

श्रीराम राम रघुनंदन राम राम श्रीराम राम राम भरताग्रज राम राम ।
श्रीराम राम रणकर्कश राम राम श्रीराम राम शरणं भव राम राम ॥३३॥

लोकाभिरामं रणरंगधीरं राजीवनेत्रं रघुवंशनाथम् । कारुण्यरूपं करुणाकरं तं श्रीरामचंद्रं शरणं प्रपद्ये ॥
दक्षिणे लक्ष्मणो यस्य वामे च जनकात्मजा । पुरतो मारुतिर्यस्य तं वंदे रघुनंदनम् ॥३५॥

विमुक्त होकर मुक्ति और भुक्तिका भागी होता है ॥ १७ ॥ १८ ॥ समस्त जगत्को जीतनेवाले इस रामरक्षा-मन्त्रको जो मनुष्य कण्ठस्थ कर लेता है तो संसारकी सारी सिद्धियाँ उसके हाथमें आ जाती हैं ॥ १९ ॥ जो प्राणी इस वज्रपंजर रामकवचका पाठ करता है, उसकी आज्ञा कहीं भी नहीं टलती और सर्वत्र उसकी विजय होती है ॥ २० ॥ स्वप्नमें यह रामरक्षामंत्र शिवजीने जैसा बतलाया था, सबेरे सोकर उठते ही विश्वामित्रने उसी तरह लिख लिया ॥ २१ ॥ राम, दाशरथि, शूर, लक्ष्मणानुचर, बली, काकुत्स्थ, पुरुष, कौसल्यानन्दवर्धन, वेदान्तवेद्य, यज्ञेश, पुराणपुरुषोत्तम, जानकीवल्लभ, श्रीमान् तथा अप्रमेय पराक्रम इन नामोंका श्रद्धापूर्वक जप करनेवाला भक्त दस हजार अश्वमेध यज्ञ करनेका फल पाता है। इसमें कोई संशय नहीं है ॥ २२-२४ ॥ सन्नद्धकवची, खड्गी, चापबाणधर, युवा और लक्ष्मणके साथ जाते हुए श्रीरामचंद्र हमारे मनोरथोंकी रक्षा करें ॥२५॥ तरुण, रूपसंपन्न, सुकुमार, महाबली, कमलकी नाईं बड़ी-बड़ी आँखोंवाले, पीतांबरधारी, फल-मूल खानेवाले, उदारप्रकृति, तपस्वी, ब्रह्मचारी, धन्वी, निस्त्रिंशधारी तथा काकपक्षको धारण किये दशरथके दोनों पुत्र राम और लक्ष्मण रास्तेमें जाते समय हमारी रक्षा करें। संसारी जीवोंके आधार, धनुर्धारियोंमें श्रेष्ठ, राक्षसकुलके विनाशक राम और लक्ष्मण मेरी रक्षा करें ॥ २६-२९ ॥ बिल्कुल तैयार धनुष जिसपर बाण चढ़ा है, उसे लिये और अक्षय बाणवाले तूणीरको कसे राम-लक्ष्मण सदा रास्तमें हमारे आगे-आगे चलें ॥ ३० ॥ जो कल्पवृक्षके आराम (बगीचा), समस्त विपत्तियोंके विराम (समाप्ति) और तीनों लोकोंमें अभिराम (सुन्दर) हैं, वे श्रीमान् रामचन्द्रजी हमारे प्रभु हैं ॥३१॥ राम, रामभद्र, सर्वस्रष्टा, रामचंद्र, रघुनाथ, तथा सीताके पति रामचन्द्रजीको मैं प्रणाम करता हूँ ॥ ३२ ॥ हे श्रीराम, हे रघुनन्दन राम, हे भरताग्रज राम, हे रणकर्कश श्रीराम, हे राम, हमको शरण दीजिए ॥ ३३ ॥ संसार भरमें अतिशय सुंदर, संग्राममें निपुण, कमल सरीखे नेत्रोंवाले, रघुवंशके स्वामी करुणाकी मूर्ति और दयाके भण्डार श्रीरामचन्द्रकी मैं शरणमें हूँ ॥ ३४॥ जिनकी दाहिनी ओर लक्ष्मण, बाईं ओर सीता और सामने हनुमानजी उपस्थित हैं, ऐसे रघुनन्दन रामको-मैं

गोष्पदीकृतवारीशं मशकीकृतराक्षसम् । रामायणमहामालारत्नं वंदेऽनिलात्मजम् ॥३६॥
अघौघ तिष्ठ दूरे त्वं रोगास्तिष्ठंतु दूरतः । वरीवर्ति सदाऽस्माकं हृदि रामो धनुर्धरः ॥३७॥
मनोजवं मारुततुल्यवेगं जितेंद्रियं बुद्धिमतां वरिष्ठम् ।
वातात्मजं वानरयूथमुख्यं श्रीरामदूतं शरणं प्रपद्ये ॥३८॥
राम राम तव पादपङ्कजं चिंतयामि भवबन्धमुक्तये ।
वंदितं सुरनरेंद्रमौलिभिर्ध्यायितं मनसि योगिभिः सदा ॥३९॥
रामं लक्ष्मणपूर्वजं रघुवरं सीतापतिं सुन्दरं काकुत्स्थं करुणार्णवं गुणनिधिं विप्रप्रियं धार्मिकम् ।
राजेंद्रं सत्यसन्धं दशरथतनयं श्यामलं शांतिमूर्तिं वन्दे लोकाभिरामं रघुकुलतिलकं राघवं रावणारिम् ।
एतानि रामनामानि प्रातरुत्थाय यः पठेत् । अपुत्रो लभते पुत्रं धनार्थी लभते धनम् ॥४१॥
माता रामो मत्पिता रामचन्द्रः स्वामी रामो मत्सखा रामचन्द्रः ।
सर्वस्वं मे रामचन्द्रो दयालुर्नान्यं जाने नैव जाने न जाने ॥४२॥
श्रीरामनामामृतमन्त्रबीजसंजीवनी चेन्मनसि प्रविष्टा ।
हालाहलं वा प्रलयानलं वा मृत्योर्मुखं वा विशतां प्रविष्टा ॥४३॥
श्रीशब्दपूर्वं जयशब्दमध्यं जयद्वयेनापि पुनः प्रयुक्तम् ।
त्रिःसप्तकृत्वो रघुनाथनाम जपन्निहन्याद्द्विजकोटिहत्याः ॥४४॥
एवं गिरींद्रजे प्रोक्ता रामरक्षा मया तव । मयोपदिष्टा या स्वास्यैर्विश्वामित्राय वै पुरा ॥४५॥

श्रीरामदास उवाच

इति शिवेनोपदिष्टां श्रुत्वा देवी गिरीन्द्रजा । रामरक्षां पठित्वा सा स्कन्दं समभिमंत्रयत् ॥४६॥

वन्दना करता हूँ ॥ ३५ ॥ जिन्होंने समुद्रको गौके खुरभर जलवाला बनाया, राक्षसोंको मच्छड़ोंके समान नष्ट किया और जो रामायणरूपी महामालाके मुख्य रत्न हैं, ऐसे पवनकुमार हनुमान्जीको मैं प्रणाम करता हूँ ॥३६॥ हे पापोंके समूह ! तुम हमसे दूर रहो और हे रोगगण ! तुम हमारे पाससे भाग जाओ । क्योंकि हमारे हृदयमें धनुर्धारी रामचन्द्रजी बैठे हुए हैं ॥ ३७ ॥ मनके सदृश जिनकी गति है, वायुके सदृश जिनका वेग है, जिन्होंने इन्द्रियोंको वशमें कर लिया है, जो बुद्धिमानोंमें श्रेष्ठ हैं। ऐसे वायुके पुत्र, वानरी सेनाके सेनापति और श्रीरामचन्द्रजीके दूत हनुमानकी मैं शरणमें हूँ ॥ ३८ ॥ हे राम ! हे राम ! सांसारिक बन्धनोंसे मुक्त होनेके लिए सुर-नर इन्द्रादि तकके मस्तकोंसे पूजित आपके चरणोंका मैं सदा ध्यान करता हूँ । क्योंकि योगी लोग भी सदा-सर्वदा उन चरणोंके चिन्तनमें लीन रहते हैं ॥ ३९ ॥ लक्ष्मणके ज्येष्ठ भ्राता, रघुवंशमें श्रेष्ठ, सीताके पति, परमरूपवान्, ककुत्स्थके वंशज, करुणाके वारिधि, गुणोंके निधि, ब्राह्मणोंके प्रिय, धर्मके तत्त्वज्ञ, राजाओंके राजा, सत्यप्रतिज्ञ, दशरथके पुत्र, श्यामरूप, शान्तिके मूर्तिस्वरूप, संसारके आनन्ददाता, रघुवंशके तिलक-स्वरूप, रघुवंशज एवं रावणके शत्रु रामचन्द्रजीको मैं प्रणाम करता हूँ ॥ ४० ॥ जो प्राणी सबेरे उठकर इन नामोंका पाठ करता है, वह यदि अपुत्र हो तो उसे पुत्र मिलता है और धनकी इच्छा रखनेवाला हो तो धन मिलता है ॥ ४१ ॥ राम ही मेरे पिता हैं, राम ही माता हैं, वे ही मेरे स्वामी और सखा हैं। दयालु श्रीराम-चन्द्रजी ही मेरे सर्वस्व हैं। उन्हें छोड़कर मैं और किसीको नहीं जानता—किसीको नहीं जानता ॥ ४२ ॥ जिसके हृदयमें रामनामामृतमंत्ररूपिणी संजीवनी विद्यमान रहती है, वह हालाहल, प्रलयानल अथवा मृत्युके मुखमें भी क्यों न कूद जाय, उसको कहीं भी भय नहीं है ॥ ४३ ॥ पहले श्रीशब्द, बादमें रामनाम, फिर जय शब्द, फिर रामनाम, फिर दो बार जयशब्द जोड़कर (अर्थात् श्रीराम जय राम जय जय राम) इक्कीस बार जप करनेवाला प्राणी करोड़ों ब्रह्महत्याओं जैसे महान् पातकोंको भी नष्ट कर देता है ॥ ४४ ॥ हे पार्वती ! मैंने तुम्हें वह रामरक्षामन्त्र बतलाया है, जिसे एक बार स्वप्नमें मैंने महर्षि विश्वामित्रको बतलाया था । श्रीराम-दासने कहा—इस प्रकार शिवजीके बतलाये हुए रामरक्षामन्त्रको सुनकर पार्वतीजीने स्वामिकार्तिकेयका उन्हीं

तस्यास्तेजोबलेनैव जघान तारकासुरम् । षडाननः क्षणादेव कृतकृत्योऽभवत्पुरा ॥४७॥
सैवेयं रामरक्षा ते मयाऽऽख्याताऽतिपुण्यदा । यस्याः श्रवणमात्रेण कस्यापि न भयं भवेत् ॥४८॥
वाल्मीकिनाऽनया पूर्वं कुशाय ह्यभिषेचनम् । कृतं बालग्रहाणां च शांत्यर्थं सा मयोदिता ॥४९॥
बालानां ग्रहशांत्यर्थं जपनीया निरन्तरम् । रामरक्षा महाश्रेष्ठा महाघौघनिवारिणी ॥५०॥
नास्याः परतरं स्तोत्रं नास्याः परतरो जपः । नास्याः परतरं किंचित्सत्यं सत्यं वदाम्यहम् ॥५१॥

इति श्रीशतकोटिरामचरितांतर्गते श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये जन्मकाण्डे
रामरक्षाकथनं नाम पंचमः सर्गः ॥ ५ ॥

षष्ठः सर्गः

(लवका अयोध्यासे कमलपुष्प लाकर माता सीताको देना)

श्रीरामदास उवाच

एकदा जानकी प्राह वाल्मीकिं मुनिपुंगवम् । कथयस्व व्रतं येन रामयोगो भवेन्मम ॥ १ ॥
तत्सीतावचनं श्रुत्वा वाल्मीकिस्तां वचोऽब्रवीत् । प्रतिपद्दिनमारभ्य यावत्सा नवमी सिता ॥ २ ॥
तावन्नवदिनं सीते व्रतं कुरु मयोच्यते । प्रतिपदि रामचन्द्रपादुके धातुनिर्मिते ॥ ३ ॥
कृत्वाऽर्च्यं नवकमलैर्देहि मंत्रांजलिं शुभाम् । ततः पुत्राननाभ्यां त्वं जन्मकाण्डं शुभं शृणु ॥ ४ ॥
अष्टादशकमलैश्च द्वितीयायां शुभांजलिम् । मंत्रैर्देहि पूजनान्ते पतिपादुकयोर्मुदा ॥ ५ ॥
पतिं विना स्त्रिया नान्यत्पूजनीयं हि दैवतम् । जन्मकांडं द्विवारं तु शृणु भक्त्या शुचिव्रते ॥ ६ ॥
एवं वृद्धिर्नवाब्जैश्च कार्या सीते दिने दिने । नवम्यामेकाशीत्यब्जैः पूजयस्व भर्तृपादुके ॥ ७ ॥
नववारं जन्मकांडं पुत्रास्याभ्यां सुखं शृणु । ततो दशम्यां सुस्नातैकाशीति द्विजदंपतीन् ॥ ८ ॥
संपूज्य वस्त्राभरणैर्भोजयस्वात्र मैथिलि । दत्त्वा तेभ्यो दक्षिणास्त्वं विसर्जय प्रणम्य तान् ॥ ९ ॥

मंत्रोंसे अभिमन्त्रण किया ॥ ४५-४६ ॥ उसी मन्त्रके तेज और बलसे षडाननने तारकासुर जैसे महान् शत्रुको मारकर अपना काम पूरा कर लिया था ॥ ४७ ॥ वही रामरक्षामंत्र मैंने तुम्हें बतलाया है। जिसके एक बार श्रवण कर लेनेसे संसारमें किसीका भय नहीं रह जाता ॥ ४८ ॥ इसी रामरक्षा मंत्रसे वाल्मीकिने कुशका अभिषेक किया था। बालकोंका दुःख दूर करनेके लिए इसे मैंने तुम्हें बतलाया है ॥ ४९ ॥ बालकोंका ग्रह शान्त करनेके लिए सदा इसका जप करना चाहिये। यह महान् मंत्र है। यह बड़े-बड़े पापोंके समूहको नष्ट कर देता है। इससे बढ़कर कोई स्तोत्र है ही नहीं। मैं तुमसे सच सच कहता हूँ कि इससे श्रेष्ठ और कोई मंत्र नहीं है ॥ ५० ॥ ५१ ॥ इति श्रीशतकोटिरामचरितांतर्गते श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये पं० रामतेजपाण्डेय-विरचित'ज्योत्स्ना'भाषाटीकासमन्विते जन्मकाण्डे पञ्चमः सर्गः ॥ ५ ॥

श्रीरामदासने कहा—एक दिन सीताजी मुनियोंमें श्रेष्ठ वाल्मीकिसे कहने लगीं कि हमें कोई ऐसा व्रत बतलाइए, जिससे मैं फिर अपने पतिदेव (राम) को प्राप्त कर लूँ ॥ १ ॥ सीताकी उस प्रार्थनाको सुनकर वाल्मीकिने कहा कि प्रतिपदा तिथिसे लेकर नवमी पर्यन्त अर्थात् नौ दिनका मैं जो व्रत बतला रहा हूँ, उसे करो। प्रतिपदाको धातुसे बनी रामकी चरणपादुकाका पूजन करके नौ कमलके फूलोंसे मंत्राञ्जलि दो। इसके अनन्तर अपने पुत्रोंके मुखसे आनन्दरामायणके जन्मकांडकी कथा सुनो ॥ २-४ ॥ फिर द्वितीयाको पादुकाकी पूजा करके अठारह कमलोंकी पुष्पाञ्जलि दो। स्त्रीके लिए पतिके अतिरिक्त दूसरा कोई पूज्य देवता नहीं है। बादमें द्वितीयाको दो बार जन्मकांडकी कथा सुनो ॥ ५ ॥ ६ ॥ इस तरह प्रतिदिन कमलके फूलोंकी संख्या बढ़ाती हुई नवमीको ८१ फूलोंसे पतिकी चरणपादुकाको मंत्राञ्जलि दो और कथाकी भी संख्या बढ़ाती हुई नवमीको अपने पुत्रोंके मुखसे नौ बार जन्मकांडकी कथा सुनो। दशमीको स्नानादि नित्यकर्म करनेके

अनेन व्रतराजेन जन्मकाण्डश्रवादपि । अचिरात्पतिना योगं प्राप्स्यसि त्वं विदेहजे ॥१०॥
संयोगीकरणं नाम व्रतं चेदं सुपुण्यदम् । ये कुर्वंत्यत्र मनुजाः स्वीयैर्योगं लभन्ति ते ॥११॥
तन्मुनेर्वचनं श्रुत्वा जानकी प्राह तं पुनः । बहून्यब्जानि साकेते पुष्पारामजलाशये ॥१२॥
सन्ति कस्तत्र वै गन्तुं समर्थस्त्विह वर्तते । रामाज्ञया रामदूतैः क्रियते रक्षणं सदा ॥१३॥
तत्सीतावचनं श्रुत्वा तत्पुरः संस्थितो लवः । अब्रवीन्मातरं वाक्यं पञ्चवर्षवयःस्थितः ॥१४॥
अम्बारम्भं व्रतस्याद्य त्वं कुरुष्वाचिरादिह । अब्जान्यहं प्रदास्यामि समानीय निरन्तरम् ॥१५॥
तल्लवस्य वचः श्रुत्वा विहस्यालिंग्य बालकम् । चुचुम्ब तन्मुखं सीता लवं वचनमब्रवीत् ॥१६॥
पङ्कजानि कथं वत्स त्वं समानीय दास्यसि । असंख्यातै रामदूतैः क्रियते रक्षणं सदा ॥१७॥
तन्मातृवचनं श्रुत्वा लवः प्राहाथ मातरम् । अम्ब त्वत्स्तन्यपानेन वाल्मीकेः शस्त्रविद्यया ॥१८॥
तथाशीर्भिर्मुनेश्चापि रामस्यापि भयं न मे । पश्याम्ब पौरुषं मेऽद्य मामनुज्ञातुमर्हसि ॥१९॥
इत्युक्त्वा मातरं नत्वा वाल्मीकिं प्रणिपत्य च । आशीर्भिरीडितस्ताभ्यां धृततूणीरकार्मुकः ॥२०॥
वस्त्रालंकारसंयुक्तस्त्वेकाकी रथमास्थितः । ययौ लवस्त्वयोध्यायां श्रीविहीनां जवेन सः ॥२१॥
क्रोशोपरि रथं स्थाप्य पद्भ्यामाराममाययौ । तावन्मध्याह्नसमये गता आरामरक्षकाः ॥२२॥
भोजनार्थं स्वगेहानि लवोऽब्जानि तदाऽहरत् । पुनः स्वस्यंदने स्थित्वा गत्वाऽऽश्रमपदं मुनेः ॥२३॥
नत्वा मुनिं मातरं स्वां पंकजान्यर्पयन्मुदा । मुदिता जानकी चापि व्रतारम्भमथाकरोत् ॥२४॥
एवं सप्तदिनान्यब्जान्यानयामास बालकः । न विदू रामदूतास्ते नीयंतेऽब्जानि चेति हि ॥२५॥
अथाष्टमीदिनेऽयोध्यां पूर्ववत्स लवो ययौ । आरामस्य बहिः स्थाप्य रथं पद्भ्यां ययौ लवः॥२६॥

पश्चात् ८१ द्विजदम्पतीकी वस्त्राभूषण आदिसे पूजा करके उन्हें भोजन कराओ और दक्षिणा देकर विदा करो। इस व्रतराजके करने तथा जन्मकांडकी कथा सुननेसे शीघ्र ही तुम्हारे पति तुम्हें मिल जायँगे ॥७–१०॥ इस व्रतका नाम ही संयोगीकरण व्रत है। जो कोई यह पुनीत व्रत करता है, उसे अपने प्रियजनकी प्राप्ति होती है॥ ११ ॥ वाल्मीकि मुनिकी बात सुनकर सीताने कहा कि अयोध्याके बगीचेवाले सरोवरमें बहुत कमल होता है, वहाँ ही इतने फूल मिल सकेंगे कि जिनसे मैं अपना व्रत पूर्ण कर सकूँ। लेकिन वहाँसे उन्हें लायेगा कौन? रामचन्द्रजीकी आज्ञासे वहाँ बहुतेरे रक्षक उन फूलोंकी रखवाली करते हैं ॥ १२ ॥ १३ ॥ सीताकी बात सुनकर पास खड़े लवने, जिसकी अवस्था पाँच वर्षकी हो चुकी थी, मातासे कहा–॥ १४ ॥ माँ ! तुम आजसे अपना व्रत प्रारम्भ कर दो, मैं नित्य कमलके फूल लाकर तुम्हें दूँगा ॥ १५ ॥ लवकी वीरतापूर्ण वाणी सुनकर सीता हँसीं और छातीसे लगाकर उसका मुख चूमती हुई कहने लगीं—॥ १६ ॥ बेटे ! तुम फूल कैसे लाओगे? वहाँ रामके असंख्य सिपाही उनकी रक्षा करते हैं ॥ १७ ॥ सीताकी बात सुनकर लवने कहा—माता ! तुम्हारे पवित्र स्तनोंके दुग्ध, महर्षि वाल्मीकिकी सिखायी हुई शस्त्रविद्या और उनके आशीर्वादके प्रभावसे मैं रामसे भी नहीं डरता। आप मुझे आज्ञा दें और मेरा पुरुषार्थ देखें ॥ १८ ॥ १९ ॥ इतना कहकर लवने माता तथा वाल्मीकिको प्रणाम किया। फिर उनका आशीर्वाद लेकर धनुष-बाण सहित एक रथपर जा बैठे और उस अयोध्याकी ओर बढ़े, जो बहुत दिनोंसे कान्तिहीन हो चुकी थी ॥ २० ॥ २१ ॥ बगीचेके एक कोस आगे ही लवने अपना रथ रोक दिया और पैदल ही बगीचेमें जा पहुँचे। दोपहरका समय था। बगीचेके रक्षक भोजन करनेके लिए अपने-अपने घर जा चुके थे। इसलिए लवको फूल लेनेमें कोई बाधा नहीं हुई, फूल लेकर लवने अपने रथपर रखा और आश्रमकी ओर चल दिये ॥ २२ ॥ २३ ॥ वहाँ पहुँचकर लवने माता और वाल्मीकिको प्रणाम करके फूलको सामने रखा। जानकीने भी प्रसन्नताके साथ व्रत प्रारम्भ किया ॥ २४ ॥ इस प्रकार सात दिन तक लव बराबर फूल ले गये, लेकिन रामके दूतोंको कुछ भी पता नहीं लगा। आठवें दिन अष्टमी तिथिको रोजकी तरह लव फिर वहाँ गये। रथको बाहर रोका और सरोवरमें पहुँचकर निर्भीक-भावसे फूल तोड़कर लाने लगे। संयोगवश उस दिन सिपाही लोग भोजन करके बगीचेमें पहुँच

गत्वाऽऽरामस्य कासारं गृहीत्वाऽब्जानि निर्भयः। शनैर्यावद्रथं प्राप तावदारामपाऽऽययुः ॥२७॥
ते तादृष्ट्वा लवं साब्जं पप्रच्छुर्विस्मयान्विताः । न त्वं दृष्टः कदाऽस्माभिः श्रीरामानुचरेषु हि॥२८॥
कदारभ्य रामसेवा त्वया चाङ्गीकृता वद । यतस्त्वं निर्भयोऽब्जानि गृहीत्वा गच्छसि प्रभुम्॥२९॥
रामदूतवचः श्रुत्वा विहस्याह लवोऽपि सः । वाल्मीकयनुचरश्चाहं न रामदर्शनं मम ॥३०॥
दासोऽहं मुनिराजस्य वाल्मीकेः शुद्धचेतसः । तदाज्ञया वै नीयन्ते कमलानि मया मुदा ॥३१॥
इति तद्वचनं श्रुत्वा वाल्मीकीयं लवं तदा । ज्ञात्वा दूताः पारकीयं क्रोधाद्वचनमब्रुवन् ॥३२॥
रामस्त्वया न दृष्टोऽत्र न नः पृष्टस्त्वया पुनः । नाज्ञापितोऽसि रामेण नीयंतेऽब्जानि प्रत्यहम् ॥३३॥
न ज्ञातमेतदस्माभिस्त्विदानीं तिष्ठ मा व्रज । अपराध्यसि रामस्य त्वां नेष्यामो वयं प्रभुम् ॥३४॥
इत्युक्त्वा तस्य पन्थानं रुरुधू रामसेवकाः । चतुर्दश शस्त्रहस्ता सशता रामतो यदा ॥३५॥
तान्दृष्ट्वा स्यन्दनस्थः स लवोऽप्याह विहस्य च । यूयं गच्छत श्रीरामं मद्वृत्तं ब्रूतमादरात् ॥३६॥
यद्यस्ति पौरुषं रामे तर्हि यास्यति मां प्रति । तत्तस्य वचनं श्रुत्वा क्रोधाद्दूता वचोऽब्रुवन् ॥३७॥
कथं वत्स मर्तुकामस्त्वमित्थं वल्गसे मुधा । बद्ध्वा त्वां वयमेवाद्य विनेष्यामो रघूत्तमम् ॥३८॥
इत्युक्त्वा ते लवं धर्तुं ययुस्तस्य रथांतिकम् ।तान्दृष्ट्वा निकटं प्राप्तान् रामदूतान्लवोऽपि सः ॥३९॥
टणत्कृत्य महच्चापं शरान्संधाय वेगतः ।अब्रवात्तान्पुनर्वाक्यं माऽऽगन्तव्यं ममान्तिकम्॥४०॥
मार्गणैरधुना युष्मान् त्यजामि राघवान्तिके । इत्युक्त्वा तान्पुनर्दृष्ट्वाऽऽस्मानं धर्तुं समुद्यतान् ॥४१॥
रामाग्रे क्षिपद्बाणैर्लीलयाऽध्वरमण्डपे । चतुर्दश रामदूता लवमार्गणताडिताः ॥४२॥
निपेतुर्मूर्च्छिताः सर्वे रामाग्रे जाह्नवीतटे । शतशो रामदूतास्ते दृष्ट्वा चक्रुः पलायनम् ॥४३॥
लवोऽपि विजयी शीघ्रं पूर्ववत्स्वाश्रमं ययौ । समर्प्याब्जानि सीतायै सर्वं वृत्तं न्यवेदयत् ॥४४॥

गये थे ॥ २५-२७ ॥ लवको फूल लिये देखकर विस्मयपूर्वक वे बोले—हमने तुम्हें कभी रामचन्द्रजीके सेवकोंमें नहीं देखा है ॥ २८ ॥ तुमने कब नौकरी की है ? जो इस तरह निर्भय होकर कमलके फूल ले जा रहे हो ॥ २९ ॥ उन दूतोंकी बात सुनकर हँसते हुए लवने कहा—मैंने तो अभी तक रामको देखा भी नहीं है ॥ ३० ॥ रामका नहीं, मैं महर्षि वाल्मीकिका सेवक हूँ । उन्हींके आज्ञानुसार मैं यहांसे फूल ले जाता हूँ। किन्तु तुमने आज ही हमको देखा है। इसके पहले कभी नहीं देख पाया ॥ ३१ ॥ इस तरह अपनेको वाल्मीकिका सेवक बतलानेपर दूतोंकी समझमें आया कि यह कोई अजनबी मनुष्य है। यह जानते ही वे मारे क्रोधके तमतमा उठे। उन्होंने कहा—॥ ३२ ॥ तुमने न रामकी आज्ञा ली, न हम लोगोंहीसे पूछा और रोज फूल ले जाते हो ॥ ३३ ॥ यह बात हमको मालूम नहीं थी। अस्तु, अब ठहरो। तुम रामचन्द्रजीके अपराधी हो। अतएव हम तुम्हें उनके पास ले चलेंगे ॥ ३४ ॥ ऐसा कहकर उन लोगोंने लवका रास्ता रोक लिया। जब एक सौ चौदह सशस्त्र सैनिकोंने लवको घेर लिया। तब लवने रथपर बैठे ही बैठे उनकी ओर देख तथा हँसकर कहा—तुम लोग रामके पास जाकर हमारा वृत्तान्त कहो ॥ ३५ ॥ यदि राममें कुछ सामर्थ्य होगी तो वे स्वयं मेरे सामने आयेंगे। एक पाँच वर्षके बच्चेकी ऐसी बातें सुनकर दूतोंने क्रोधपूर्वक कहा–॥३६॥३७॥ हे बच्चे ! तुम क्यों मरना चाहते हो, जो ऐसी बढ़-बढ़कर बातें करते हो ? तुमको बाँधकर हमीं लोग उनके पास अभी लिये चलते हैं ॥ ३८ ॥ ऐसा कहकर लवको पकड़नेके लिए कई दूत आगे बढ़े। उनको निकट देखकर लवने तुरन्त अपने धनुषका टंकोर करके उसपर एक बाण चढ़ाया और उनसे कहा—सावधान ! मेरे पास न आना ॥ ३९ ॥ ४० ॥ नहीं मानोगे तो मैं इसी धनुष और बाणसे तुम लोगोंको उठाकर रामके पास फेंक दूँगा। ऐसा कहकर लवने देखा कि वे लोग फिर भी उन्हें पकड़नेका प्रयत्न कर रहे हैं ॥ ४१ ॥ ऐसी दशामें लवने बाणोंसे दूतोंको उठाकर फेंका और वे गङ्गाके समीप रामकी यज्ञशालामें मूर्छित होकर आ गिरे। इस प्रकार लवका पराक्रम देखकर रामके जो सैकड़ों सैनिक वहाँ बचे थे, वे सब इधर-उधर भाग गये ॥ ४२ ॥ ४३ ॥ तब विजयी होकर वे अपने आश्रमकी ओर बढ़े। वहाँ पहुँचकर लवने कमल

चतुर्दश रामदूताः स्वस्थचित्ताश्चिरेण ते । सर्वं वृत्तं राघवाय कथयामासुरादरात् ॥४५॥
तच्छ्रुत्वा रामचन्द्रोऽपि विस्मयाविष्टमानसः । सहस्रदूतानारामरक्षणार्थं प्रचोदयत् ॥४६॥
लवोऽप्यथ नवम्यां स साकेतं पूर्ववद्ययौ । सहस्रं रामदूतास्ते लवं योद्धुं समुद्यताः ॥४७॥
लवस्तानाह युष्माकं स्वामिना राघवेण हि । यदा सीता वने त्यक्ता जयश्रीश्च गता तदा ॥४८॥
युष्माकं राघवस्यापि गच्छध्वं राघवं पुनः । युष्माभिर्मा मया युद्धं कर्तव्यं मरणोन्मुखैः ॥४९॥
सीतात्यागे तु युष्माकं स्वामिनः पौरुषं न साधु । इति ते लववाग्बाणैर्भिन्नमर्मस्थलास्तदा ॥५०॥
दूताः शस्त्राणि मुमुचुर्लवोपरि महास्वनैः । लवोऽपि चापमाकृष्य रामदूतान्स्वमार्गणैः ॥५१॥
प्राक्षिपत्पूर्ववद्रामं तच्छस्त्रौघं निवार्य च । आरामतो यदा दूताश्चक्रुः सर्वे पलायनम् ॥५२॥
ययौ लवः स विजयी पूर्ववत्कमलान्वितः । आश्रमं मातरं नत्वा सर्वं वृत्तं न्यवेदयत् ॥५३॥
पुत्रस्य पौरुषं श्रुत्वा तुतोष जानकी तदा । वृत्तं निवेदयामासु रामदूता रघूत्तमम् ॥५४॥
मूर्च्छां लवशरैः प्राप्ता भिन्नदेहा मखांगणे । राम राम महाबाहो शृणुष्वापूर्वमादरात् ॥५५॥
पञ्चवर्षीयबालेन वयमद्य पराजिताः । वाल्मीकेर्लब्धविद्यः स न जेयो लक्ष्मणादिभिः ॥५६॥
तद्वधे मंत्रयस्वाद्य त्वमुपायं रघूत्तम । सीतात्यागादिवचनैर्नस्तवापि च बालकः ॥५७॥
चकार निंदां श्रीराम गतभीस्त्वेक एव यः । तत्तेषां वचनैर्वृत्तं कृत्स्नमाकर्ण्य राघवः ॥५८॥
संमंत्र्य सचिवैर्दूतं वाल्मीकिं प्रैषयज्जवात् । नत्वा मुनिं रामदूतो रामवाक्यं न्यवेदयत् ॥५९॥
यस्ते शिष्यो महावीरः सोऽपराध्यस्ति वै मम । तं प्रेषयाथवा तेन त्वमागच्छस्व मन्मखम् ॥६०॥

सीताको दिया और उस दिनका सारा हाल कह सुनाया ॥४४॥ जो दूत रामकी यज्ञशालामें गिरे थे, वे बहुत देर तक मूर्छित पड़े रहे। जब चेतना आयी, तब सादर उन्होंने रामको लवका सब समाचार सुनाया ॥४५॥ सो सुनकर रामचन्द्रजीको भी बड़ा आश्चर्य हुआ। उन्होंने फिरसे एक हजार दूतोंको बगीचेकी रखवालीके लिए नियुक्त कर दिया ॥ ४६ ॥ दूसरे दिन अर्थात् नवमीको लव फिर फूल लेनेके लिए बगीचेमें जा पहुँचे। लवने दूतोंको देखकर कहा कि जिस दिन तुम्हारे प्रभु रामने सीताको वनमें भेज दिया, उसी दिन उनकी जयश्री भी विदा हो गयी ॥ ४७ ॥ ४८ ॥ तुम्हें चाहिए कि तुम रामके पास जाकर लड़ाई करनेसे इनकार कर दो। तुम मरणोन्मुख हो। अतएव मैं नहीं चाहता कि तुम्हारे साथ युद्ध करूँ॥ ४६ ॥ सीताको त्यागनेवाले तुम्हारे प्रभु रामके साथ संग्राम करना मुझे उचित नहीं जँचता। इस प्रकार लवके बचनरूपी बाणोंसे सैनिकोंके हृदय विदीर्ण हो गये ॥५०॥ तब उन्होंने लवपर बाणवर्षा आरंभ कर दी। उधर लवने भी अपने बाणोंसे सैनिकोंके प्रहार बचाते हुए अपने बाणोंसे उनको उठा-उठाकर रामके पास फेंकना आरम्भ किया। थोड़ी देरमें ही जब दूत बगीचा छोड़-छोड़कर भाग निकले। तब लव अपनेको विजयी मानते हुए रोजकी तरह फूल लेकर आश्रमको लौट गये। वहाँ पहुँचकर लवने सीता माताको प्रणाम किया और उस दिनका भी सारा हाल सुनाया ॥ ५१–५३ ॥ बेटेका पुरुषार्थ सुनकर सीता परम प्रसन्न हुईं। इधर रामचन्द्रके दूतोंने रामके पास जाकर सब अपनी आपबीती कह सुनायी ॥ ५४ ॥ जिनको लवने अपने बाणसे उठाकर रामके पास फेंका था, वे लोग घायल होकर बहुत देर तक मूर्छित अवस्थामें ही पड़े रहे। जब होशमें आये तो कहने लगे-हे राम! हे महाबाहो! मैं जो कह रहा हूँ, उसे तनिक ध्यान देकर सुनिए। आज हम सब बाल्मीकिके एक शिष्यसे, जिनकी अवस्था अभी पाँच वर्षकी है, परास्त हो गये। मेरा तो यहाँतक विश्वास है कि आपके भ्राता लक्ष्मण आदि भी उसे नहीं हरा सकते॥ ५५ ॥ ५६ ॥ हे रघूत्तम! उसे मारनेके लिए आप कोई उपाय सोचिए। सीतात्याग आदिकी बातें दुहराकर उस एकाकी बालकने हमारी और आपकी भी भरपूर निन्दा की है। उनकी बातें सुनीं तो मंत्रियोंसे परामर्श करके रामने तुरंत कई दूतोंको वाल्मीकिके आश्रमपर भेजा। वे दूत वाल्मीकिके पास पहुँचे और उन्हें प्रणाम करके रामका सन्देश इस तरह सुनाने लगे-॥ ५७–५९ ॥ रामचन्द्रने कहा है कि आपका महावीर शिष्य लव हमारा अपराधी है। उसे या तो हमारे

विस्मृत्यापूर्वमेव त्वं नाहूतोऽसि क्षमस्व तत् । तद्दूतवचनं श्रुत्वा रामीयं मुनिरब्रवीत् ॥६१॥
शिष्यैरागमिष्याम्यध्वरं चाहमेव यास्यामि त्वं व्रज । तथेति रामदूतोऽपि मुनिं नत्वा ययौ मखम् ॥६२॥
जानन्नेव भावि वृत्तमादौ रामो मुनिं मखम् । नाह्वयामास शिष्यास्यं लौकिकीं रीतिमाश्रितः ॥६३॥
स्वीयव्रतसमाप्तिं साऽकरोत्सीताऽपि सादरम् ।

विष्णुदास उवाच

अशक्तश्च कथं कार्यं व्रतमेतद्वदस्व माम् ॥६४॥

श्रीरामदास उवाच

कांचनस्याथवा रौप्यस्याथवा ताम्रनिर्मिते । कार्ये द्वे पादुके रम्ये राघवस्य यथासुखम् ॥६५॥
अभावे कमलानां च पुष्पैरंजलिरीरिता । एकाशीतिदंपतीनां न शक्तिः पूजने तदा ॥६६॥
पूजनीयानि युग्मानि नव शक्त्याऽथवा सुखम् । स्वशक्त्या पूजनं कार्यं वित्तशाठ्यं परित्यजेत् ॥६७॥
अनेकदूरगस्यापि संयोगश्च भवेज्जनात् । भाविकार्याणि वेगेन भविष्यन्ति न संशयः ॥६८॥

इति श्रीशतकोटिरामचरितांतर्गते श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये
जन्मकाण्डे षष्ठः सर्गः ॥ ६ ॥

सप्तमः सर्गः

(राम-लक्ष्मण आदिका लव-कुशके साथ युद्ध)

श्रीरामचन्द्र उवाच

अथ रामोऽपि धर्मात्मा चरमे तुरगाध्वरे । हयं मुमोच शत्रुघ्नस्तस्य पृष्ठे ययौ जवात् ॥१॥
दक्षिणां पश्चिमामाशामुत्तरां तुरगोत्तमः । अतिक्रम्य तथा प्राचीं यज्ञस्थानं न्यवर्तत ॥२॥
नृपतिभ्यः समस्तेभ्यः शत्रुघ्नो वसु कोटिशः । गृहीत्वा तैर्नृपैर्युक्तस्तुरगस्यानुगो ययौ ॥३॥

दूतोंके साथ भेज दीजिए अथवा आप स्वयं अपने साथ लेकर हमारे यज्ञमण्डपमें आइए ॥ ६० ॥ भूलसे मैंने आपको पहले निमन्त्रण नहीं दिया था, सो क्षमा कीजिएगा। इस प्रकार दूतोंके मुखसे रामका सन्देश सुनकर महर्षि वाल्मीकिने कहा-॥ ६१ ॥ हम अपने शिष्योंके साथ स्वयं यज्ञमण्डपमें आयेंगे, तुम लोग जाओ। रामके दूतोंने ऋषिराजके वचन सुनकर प्रणाम किया और वहाँसे प्रस्थान करके रामकी यज्ञशालाको चल पड़े ॥६२॥ राम इस भावी घटनाको पहिलेसे ही जानते थे। इसीलिए लौकिक रीति निभाते हुए शिष्योंके साथ वाल्मीकिजीको पहले यज्ञमें नहीं बुलाया था ॥ ६३ ॥ उधर सीताने भी नौ दिनवाला व्रत समाप्त कर लिया। विष्णुदासने पूछा—जो लोग सामर्थ्यहीन हैं, वे इस व्रतको कैसे करेंगे ? सो बताइए ॥ ६४ ॥ श्रीरामदासने उत्तर दिया—यदि सुवर्णकी पादुका न बनवा सके तो चाँदीकी बनवा ले, वह भी न हो सके तो तामेकी दो चरणपादुकाएँ बनवानी चाहिए ॥ ६५ ॥ यदि उतने कमलके फूल न मिल सकें तो साधारणतया किसी भी फूलकी अंजली दे। यदि इक्यासी द्विजदम्पतीकी पूजा करनेकी सामर्थ्य न हो तो नौ द्विजदम्पतीका ही पूजन करे। उसके भी अभावमें अपनी शक्तिके अनुसार पूजा करे, लेकिन उनमें कंजूसी न होने पाये ॥ ६६॥ ६७॥ इस व्रतको करनेसे चाहे कितनी ही दूरीपर रहनेवाले भी प्रियजनका मिलाप अवश्य हो जाता है। इसके अतिरिक्त जितने भी भविष्यके कार्य होंगे, वे सब सम्पन्न हो जायँगे। इसमें कोई संशय नहीं है ॥ ६८ ॥ इति श्रीमदानन्द-रामायणे वाल्मीकीये पं० रामतेजपाण्डेयकृत 'ज्योत्स्ना' भाषाटीकासमन्विते जन्मकाण्डे षष्ठः सर्गः ॥ ६ ॥

श्रीरामदास बोले—इस प्रकार रामचन्द्रने ९९ अश्वमेध यज्ञ पूर्ण कर लिये। अन्तिम सौवें यज्ञके लिए भी घोड़ा अभिषिक्त करके छोड़ा और शत्रुघ्न उसकी रक्षा करनेके लिए उसके साथ गये ॥ १ ॥ दक्षिण, पश्चिम, पूर्व और उत्तर दिशाकी प्रदक्षिणा करके घोड़ा रामचन्द्रजीके यज्ञमण्डपकी ओर लौट पड़ा ॥ २ ॥ रास्तेमें कितने ही राजाओंसे अनेक प्रकारकी भेंटें ले लेकर उन राजाओंको अपने साथ लिये शत्रुघ्न अश्वसमेत

सेनया चतुरंगिण्या च दशसाहस्रसंख्यया । तस्मिन्विमाने ऋषयः सर्वे राजर्षयस्तथा ॥ ४ ॥
ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः समाजग्मुः सहस्रशः । चरमाध्वरभवं द्रष्टुं रामस्योत्सवमागताः ॥ ५ ॥
वाल्मीकिरपि संगृह्य गायंतौ भूमिजात्मजौ । जगाम यज्ञवाटस्य समीप सीतया सुखम् ॥ ६ ॥
मार्गे नृपसमूहेषु शिबिकास्थां हि जानकीम् । न विदुः पार्थिवाः सर्वे जनास्तेऽपि यथेतरे ॥ ७ ॥
सुमेधया जनकोऽपि ययौ रामाध्वरं प्रति । क्रोशद्वयांतरे पूर्वे यज्ञवाटान्मुनीश्वरः ॥ ८ ॥
कृत्वा पर्णकुटीं रम्यां ताभ्यां युक्तः स सीतया । वाल्मीकिर्गोपयामास पर्णकुट्यां विदेहजाम् ॥ ९ ॥
नृपसेनानिवासेषु जनकश्च सुमेधया । स्वसैन्येन ययौ तूर्णीं रामेणासौ निरीक्षितः ॥१०॥
वाल्मीकिरपि तौ प्राह न्यस्तालंकारमण्डितौ । जटाचीराजिनधरौ सीतापुत्रौ महाधियौ ॥११॥
यत्र तत्र च गायंतौ पुरे वीथिषु सर्वतः । रामस्याग्रे प्रगावेतां शुश्रूपुर्यदि राघवः ॥१२॥
आजन्मकांडात्कांडानि न नेयान्यत्र बालकौ । यदा करोम्यहं चाज्ञां गायेतां सकलं तदा ॥१३॥
न ग्राह्यं तद्युवाभ्यां स यदि किंचित्प्रदास्यति । इति तौ चोदितौ तत्र गायमानौ विचेरतुः ॥१४॥
तथोक्तं ऋषिणा पूर्वं तत्र तत्राभ्यगायताम् । तां तु शुश्राव काकुत्स्थः पूर्वचर्याकृतिं ततः ॥१५॥
अपूर्वपद्यवृत्तादिगेयैश्च समभिप्लुताम् । बालाभ्यां राघवः श्रुत्वा कौतूहलमुपेयिवान् ॥१६॥
अथ कर्मान्तरे रामः समाहूय मुनीश्वरान् । राज्ञश्चैव नरव्याघ्रः पण्डितांश्चैव नैगमान् ॥१७॥
पौराणिकाञ्छब्दविदो गणकांश्च चिकित्सकान् । नानाकौशल्यनिपुणांस्तथा वृद्धान् द्विजादिकान् ॥१८॥
यज्ञवाटे तु तान्पूज्य गायकौ संप्रवेशयत् । ते सर्वे हृष्टमनसो राजानो ब्राह्मणादयः ॥१९॥
रामं तौ दारकौ दृष्ट्वा विस्मिता निर्निमेषकाः । अवोचन्सर्वं एवैते परस्परमथानयोः ॥२०॥
इमौ रामस्य सदृशौ बिंबाद्बिंबमिवोदितौ । जटिलौ यदि न स्यातां न वल्कलधारिणौ ॥२१॥

अयोध्याके समीप आ पहुँचे ॥ ३ ॥ उस समय शत्रुघ्नके साथ दस हजार चतुरङ्गिणी सेना थी । इसके अतिरिक्त उस विमानमें कितने ही ऋषि, ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा वैश्यगण दूर-दूरसे रामचन्द्रके उस अन्तिम यज्ञको देखने आये थे ॥ ४ ॥ ५ ॥ वाल्मीकि भी लव-कुश तथा सीताको अपने साथ लेकर रामके यज्ञमण्डपकी ओर चल पड़े ॥ ६ ॥ रास्तेमें सीता पालकीमें बैठी थीं । अतएव वहाँ राजाओं तथा और लोगोंने नहीं जान पाया कि इसमें कौन हैं ॥ ७ ॥ जनक और सुमेधा भी यज्ञमण्डपको आ रहे थे । जब दो कोस बाकी रह गया, वहीं वाल्मीकीजी सबके साथ एक पर्णकुटीमें ठहर गये और उसी कुटियामें वाल्मीकि ऋषिने जानकीको छुपा दिया ॥ ८ ॥ ९ ॥ जनक अपनी पत्नी सुमेधा तथा सेनाके साथ-साथ रामके यज्ञमण्डपमें जाकर ठहर गये । वहाँ रामसे भेंट हुई ॥ १० ॥ वाल्मीकिने उन दोनों कुमारोंका राजसी वस्त्राभूषण उतार तथा जटा और अचला पहिनाकर कहा कि तुम लोग इधर-उधर गलियोंमें मेरे सिखाये रामचरित्रको गाओ । यदि रामचन्द्र स्वयं सुनना चाहें तो उनको भी सुना देना ॥ ११ ॥ १२ ॥ लेकिन रामके सामने पूरी रामायण तभी गाना, जब मैं कहूँ । रामके जन्मसे लेकर सीतात्याग पर्यन्तकी कथा बिलकुल अभ्यस्त रखो । यदि राम तुम्हें कुछ देना चाहें तो लेनेसे इनकार कर देना । इस प्रकार वाल्मीकिजीके आज्ञानुसार वे दोनों बच्चे रामचरित्र गाते हुए घूमने लगे ॥ १३ ॥ १४ ॥ जहाँ-जहाँ और जिस-जिस प्रकार गुरुजीने जाकर गानेको कहा था, वहाँ-वहाँ जाकर उन्होंने गाया । रामचन्द्रजीके पास भी यह खबर पहुँची और उन्होंने लोगोंसे उनके गायनकी प्रशंसा सुनी ॥ १५ ॥ छोटे-छोटे बच्चोंके मुखसे इस प्रकार रामचरित्रके गानकी बात सुनकर उनके हृदयमें बड़ा कौतूहल हुआ ॥ १६ ॥ बादमें जब रामचन्द्रने अपने यज्ञसम्बन्धी कार्योंसे अवकाश पाया । तब अनेक मुनियों, राजाओं, ब्राह्मणों, वैदिकों, पौराणिकों, वैयाकरणों, ज्योतिषियों तथा अनेक प्रकारकी कलाओंमें निपुण लोगोंको उसी यज्ञशालामें बुलवाया । वहाँ पहुँचनेपर रामने सबकी पूजा की और उन दोनों कुमारोंको बुलवाया । उन राजाओं और ब्राह्मणादिकोंने बच्चोंको बड़े प्रेमसे देखा ॥ १७–१९ ॥ वहाँ लोगोंने एक बार रामकी ओर देखा, फिर बच्चोंकी तरफ निहारा तो उनके आश्चर्यका ठिकाना नहीं रहा । उनकी आँखें निर्निमेष हो गयीं

विशेषं नाधिगच्छामो राघवस्यानयोस्तदा । एवं संवदतां तेषां विस्मितानां परस्परम् ॥२२॥
तदाऽऽह रामदूतोऽपि लवबाणरुजं स्मरन् । रामचंद्रं यज्ञवाटस्थितं वै संभ्रमेण हि ॥२३॥
लवमंगुलिना वीरं दर्शयंश्च मुहुर्मुहुः । राम राम महाबाहो तमेनं पश्य वै लवम् ॥२४॥
येनास्माकं शरौघैश्च प्रक्षिप्य तव सन्निधौ । नीतानि कनकाब्जानि सुगंधीनि निरंतरम् ॥२५॥
सीतात्यागनिमित्तेन येन तेनापि वा मुहुः । कृता निंदा गर्विंतेन त्वद्दण्डैकार्थिना प्रभो ॥२६॥
तव दण्डभयादेव पूर्ववेषं विलोपितः । रथवस्त्राभरणानि शस्त्राण्यपि विहाय च ॥२७॥
घृतानि वल्कलादीनि दीनरूपोऽत्र दृश्यते । त्वयाऽद्य दण्डनीयोऽयं बंधुसारातिगर्वितः ॥२८॥
इति स्वदूतवाक्यानि शृण्वन्नपि रघूत्तमः । प्रेम्णाऽवलोकयामास सुधाक्षिभ्यां शिशू मुहुः ॥२९॥
बालावपि सभासंस्थान्नमस्कृत्य यथाक्रमम् । राघवं स्वपितृव्यांश्च वसिष्ठं प्रणिपत्य च ॥३०॥
उपाचक्रमतुर्गातुं वीणे रणयतः शुभे । ततः प्रवृत्तं मधुरं गांधर्वं गीतमुत्तमम् ॥३१॥
श्रुत्वा तन्मधुरं गीतं रामस्तोषमवाप ह । ताभ्यां श्रुतं स्वचरितं विलासावध्यनुक्रमात् ॥३२॥
यद्यदाचरितं पूर्वं सीतया सह सौख्यदम् । ततोऽपराह्णे श्रीरामः प्रसन्नवदनांबुजः ॥३३॥
उवाच तौ समग्रं वै श्वो गेयं मम सन्निधौ । तथेति रामवचनं तावंगीचक्रतुस्तदा ॥३४॥
ततो रामो लवं प्राह मे यद्यप्यपराधितम् । त्वया पूर्वं तथापि त्वां तुष्टोऽहं नात्र शिक्षये ॥३५॥
त्वद्गीतिमच्चरित्रादि श्रवणादद्य मे मनः । परां विश्रांतिमापन्नं त्वत्कृतं क्षमितं मया ॥३६॥
अधुना मद्भयं त्यक्त्वा त्वं सुखं विचरात्र हि । तद्रामवचनं श्रुत्वा लवो राघवमब्रवीत् ॥३७॥
मयाऽपराधितं राजंस्तव दर्शनकाम्यया । मदपराधितं स्मृत्वात्राहूतोऽहं यतस्त्वया ॥३८॥

और वे आपसमें कहने लगे—२० ॥ एक बिंबसे निकले दूसरे प्रतिबिंबकी भाँति ये दोनों बालक बिल्कुल रामचन्द्रके समान हैं। यदि इनके मस्तकपर जटा न रहे और वल्कल वस्त्र उतार दिये जायँ तो इनमें तथा राममें कोई अन्तर ही नहीं रह जाता। जब सब लोग विस्मित होकर परस्पर इस प्रकार बातें कर रहे थे। तभी लवके बाणोंसे बगीचेवाली मारकी पीड़ाका स्मरण करता हुआ रामका एक दूत घबड़ाकर बोला—॥ २१-२३ ॥ हे राम ! हे महाबाहो ! देखिए, यही लव है। जिसने अपने बाणोंसे उठाकर मुझे आपके पास फेंक दिया था और सुगन्धित कनककमलके फूलोंको हठात् तोड़कर ले जाया करता था ॥ २४॥ २५॥ आपके सीतात्यागविषयक बातको लेकर इसीने बड़े घमण्डके साथ आपकी निन्दा की थी ॥२६॥ ज्ञात होता है कि आपके दण्डसे डरकर इसने रथ तथा वस्त्राभरण त्याग दिये हैं और वल्कलवसन आदि पहन तथा दीनरूप धारण करके आया है। किन्तु मेरा यह परामर्श है कि इस अभिमानीको अवश्य दण्ड दीजिए ॥ २७ ॥ २८ ॥ इस प्रकार दूतकी बातें सुन करके भी रामचन्द्र अपनी अमृतभरी आँखोंसे उन बच्चोंको प्रेमपूर्वक देख रहे थे ॥ २९ ॥ लड़कोंने सभामें पहुँचकर वहाँ बैठे हुए लोगोंको प्रणाम करके रामको, लक्ष्मण आदि अपने चाचाओंको तथा वसिष्ठ आदि गुरुजनोंको प्रणाम किया और वीणा बजाते हुए रामचरित्र गाने लगे। उस समय सभामें जैसे गान्धर्व गायनका रस बरसने लगा ॥ ३० ॥ ३१ ॥ राम उनका मधुर गायन सुनकर बहुत प्रसन्न हुए। गायनमें रामके उस चरित्रका वर्णन था, जो जन्मसे लेकर विलासकाण्ड पर्यन्त सीताके साथ उन्होंने किया था ॥ ३२ ॥ गाते-गाते दोपहरका समय हो गया। तब रामचन्द्रने प्रसन्नतापूर्वक उन बच्चोंसे कहा—अच्छा, आज समय अधिक बीत चुका। इसलिये रहने दो। कल मेरे पास फिर आना और मुझे सारी रामायण सुनाना। रामकी बातको उन्होंने अङ्गीकार कर लिया ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ इसके अनन्तर रामने लवसे कहा—यद्यपि तुम हमारे अपराधी हो, फिर भी मैं तुमपर प्रसन्न हूँ। तुम्हें कोई दण्ड देनेकी इच्छा ही नहीं होती। तुम्हारे गायनोंमें अपनी चरित्रावली सुनकर मेरा हृदय शान्त हो गया है और तुमने जो अपराध किया था, उसे क्षमा करता हूँ ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ अब तुम मुझसे डरो नहीं, निर्भय होकर जहाँ चाहो घूमो। इस प्रकार रामकी बातें सुनकर लवने उत्तर दिया—राजन् ! उस समय

अद्य ते दर्शनेनैव पौरुषं वृद्धिमागतम् । कीर्तिर्मे महती जाता तवाग्रे गायनादपि ॥३९॥
इत्युक्त्वाऽऽसील्लवस्तूष्णीं बन्धुना गंतुमुद्यतः । सभायास्तौ गंतुकामौ स्थलं स्वीयं निरीक्ष्य च ॥४०॥
रामोऽयुतं वसु तयोर्भरतेन प्रदापयत् । दीयमानं सुवर्णं तौ न तज्जगृहतुस्तदा ॥४१॥
राजन् हेम्ना किमेतेन ह्यावां वै वन्यभोजिनौ । कृपावलोकनेनैव पाहि त्वमावयोः सदा ॥४२॥
इति संत्यज्य तद्वित्तं जग्मतुर्मुनिसन्निधिम् । आसीच्छ्रुत्वा स्वचरितं रामो ह्यतिविस्मितः ॥४३॥
कुशोऽपि सकलं वृत्तं वाल्मीकिं मातरं तथा । निवेद्य जाह्नवीं स्नातुं कौतुकेन ययौ सुखम् ॥४४॥
लवो मुनीनां शिशुभिः शिशुक्रीडनमाचरत् । एतस्मिन्नंतरे यत्र लवः क्रीडां चकार ह ॥४५॥
बालकैस्तत्र संप्राप्तास्तुरगाध्वरकारिणः । त्यक्त्वा क्रीडां लवः शीघ्रमश्वं धृत्वोटजांतिके ॥४६॥
वृक्षे बबंध शिशुभिः पूर्ववत् क्रीडनं व्यधात् । ततः खे पुष्पकं प्राप्तं दृष्ट्वा बद्धं तुरङ्गमम् ॥४७॥
ज्ञात्वा बालकृतं सर्वं शत्रुघ्नाद्या विहस्य ते । दूतानाज्ञापयामासुर्मुच्यतां तुरगः सुखम् ॥४८॥
लवस्तानागतान् दृष्ट्वा वायव्यास्त्रेण वै तृणम् । संमन्त्र्य तान् मुमोचाथ लीलया शिशुसंयुतः ॥४९॥
झञ्झावातैस्तदा यानं हस्त्यश्वरथपूरितम् । शत्रुघ्नेनापि तैर्दूतैः खेऽभूत्तद्भ्रमरोपमम् ॥५०॥
तच्छ्रुत्वा रामचन्द्रोऽपि प्रेषयामास सादरम् । सुग्रीवमङ्गदं नीलं मैन्दं जाम्बवतं नलम् ॥५१॥
सुमंत्रं भरतं वायुपुत्रं तार्क्ष्यं विभीषणम् । सुषेणं पार्थिवान्सर्वान् स्वस्वामितबलैर्युतान् ॥५२॥
द्विविदं दधिवक्त्रं च वानरान्मकरध्वजम् । ते लवं दुद्रुवुर्गर्वाद्युद्धं चक्रुस्त्वरान्विताः ॥५३॥
तानागतान् लवो दृष्ट्वा कस्यचित्पतितं भुवि । दूतस्याश्वमोचनार्थमागतस्य शरासनम् ॥५४॥
तूणीरं च स्वयं धृत्वा ययौ योद्धुं त्वरान्वितः । टणत्कृत्य महच्चापं चिंतयामास चेतसि ॥५५॥

मैंने जो अपराध किया था, उसका उद्देश्य एकमात्र यही था कि मैं किसी प्रकार आपसे मिलूँ। आपने भी मेरे अपराधका स्मरण करके भी मुझे बुलाया, सो बड़ी कृपा की ॥ ३७ ॥ ३८ ॥ आज आपके दर्शन करते ही मेरा पुरुषार्थ बढ़ गया और आपके सामने रामचरित्र गानेसे मेरी कीर्ति भी बढ़ी ॥ ३९ ॥ इतना कहकर लव चुप हो गये और अपने भ्राताके साथ आश्रमको जानेकी तैयारी करने लगे। उधर रामने उन बच्चोंके लिए दस हजार स्वर्णमुद्रायें भरतसे दिलवायीं। किन्तु उन्होंने वह धन नहीं लिया। उन्होंने कहा—राजन्! अरण्यमें फल-मूलपर जीवन बितानेवाले हम वनवासी लोग आपकी इस सुवर्णराशिको लेकर क्या करेंगे। बस, आप अपनी कृपादृष्टिसे हमारी रक्षा करते रहिए ॥ ४०–४२ ॥ इस प्रकार उस दानद्रव्यका परित्याग करके वे दोनों वाल्मीकिजीके पास चले गये। बच्चोंके मुँहसे अपना चरित्र सुनकर रामचन्द्रजी बड़े विस्मित हुए ॥ ४३ ॥ उधर कुश आश्रमपर पहुँचे तो वहाँ वाल्मीकि तथा सीताको उस दिनका वृत्तान्त सुनाया और स्नान करनेके लिए गंगाजाको चले गये ॥ ४४ ॥ इधर लव कुछ मुनिकुमारोंके साथ खेलने लगा। इसी बीच जहाँ वे सब खेलते रहे, उसी तरफसे अश्वमेधका घोड़ा चारों ओर घूमकर रामकी यज्ञशालामें जा रहा था। उसे देखते ही कौतुकवश लड़कोंने घेर लिया। लवने आगे बढ़कर घोड़ेको पकड़ा और अपनी कुटियाके किनारे ले जाकर एक वृक्षमें बाँध दिया ॥ ४५ ॥ ४६ ॥ लड़के फिर खेलने लगे। उसी समय आकाशमें पुष्पक विमानपर बैठे हुए शत्रुघ्नने देखा तो बहुत हँसे। उन्होंने सोचा कि यह बच्चोंने खेलवाड़ किया है। शत्रुघ्नने दूतोंसे कहा-जाओ और घोड़ेको वहाँसे छीन ले आओ। दूत लवके पास पहुँचे। त्यों ही लवने एक तिनका उठाया और वायव्य मन्त्रसे अभिमन्त्रित करके उनपर डाल दिया। उसके डालते ही बड़ी जोरसे आँधी चलने लगी और शत्रुघ्न तथा उनके सैनिक हाथी, घोड़े, रथ आदि आकाशमें भौंरोंकी तरह उड़ने लगे ॥ ४७–५० ॥ यह समाचार सुनकर रामने अपने यहाँसे सुग्रीव, अङ्गद, नील, जांबवान्, नल, सुमन्त्र, भरत, हनुमान्, गरुड़, विभीषण, सुषेण तथा देश-देशान्तरसे आये हुए राजाओंको शत्रुघ्नकी सहायताके लिए भेजा। इनके अतिरिक्त द्विविद-दधिवक्त्र आदि वानर तथा मकरध्वज आदि वीर गर्वके साथ युद्धभूमिकी ओर दौड़ पड़े ॥ ५१–५३ ॥ इतनी बड़ी सेनाको सामने देखकर लवने एक साधारण धनुषको, जो घोड़ा छुड़ानेके लिए आये हुए किसी सैनिकका गिर पड़ा था,

पितृव्याद्याः स्थिता योद्धुं मयाऽद्य पुरतस्त्विह । कथमेभिश्च योद्धव्यं मया च समरांगणे ॥५६॥
कथं तीक्ष्णानद्य शरानेतेषु प्रक्षिपाम्यहम् । स्वीयानां वधकर्तारं मां मातामुनिराघवाः ॥५७॥
सहिष्यंति कथं दृष्ट्वा कर्त्तव्यं किं मयाऽधुना । युद्धात्पराङ्मुखोऽहं चेद्गत्वा गच्छामि तं मुनिम्॥५८॥
वाल्मीकिशिक्षिता विद्या तर्हि सा विफला भवेत्। अतः केषामपि वधं विना युद्धं करोम्यहम् ॥५९।
इति निश्चित्य मनसि मेघशब्दवदाह तान् । आगम्यते किमर्थं मां युष्माभिर्ब्रूत वेगतः ॥६०॥
न सीतावत्सुलभोऽहं पीडनार्थमिहाद्य हि । सीताक्लेशानलहरं मां मेघं वेत्थ भो खलाः ॥६१॥

सीतोष्णोच्छ्वसितोग्राग्निज्वालाभिर्वोऽद्य पौरुषम् ।
विदग्धं न स्फुटं लोकान्दर्शनीयं ममापि च ॥ ६२ ॥

इति स्ववाक्शरैर्भिन्नहृदयान्स लवः पुनः । मोहयामास सकलान् मोहनास्त्रं विसृज्य च ॥६३॥
ततो लवः स विजयी सुमंत्रं भरतं तथा । कृत्वा स्वकक्षयोः शीघ्रं कराभ्यां वायुनंदनम् ॥६४॥
सुग्रीवं च मुदा धृत्वा सीतायै तान् प्रदर्शयत् । दृष्ट्वा सीतापि तान् वीरान् मोहनास्त्रेण मोहितान्॥६५॥
पुत्रात्तान् मोचयामास रक्षयामास तान् रहः । तान्नीतान्राघवः श्रुत्वा लक्ष्मणं वाक्यमब्रवीत् ॥६६॥
ईदृशं पौरुषं बंधो रावणेनापि नो कृतम् । यथा कृतं बालकेन करणीयं किमत्र वै ॥६७॥
तद्रामवचनं श्रुत्वा लक्ष्मणः प्राह राघवम् । मा चिंतेयं त्वया कार्या धृत्वाहं तं शिशुं क्षणात् ॥६८॥
त्वत्सन्निधावानयामि सिंहो मृगशिशुं यथा । इत्युक्त्वा राघवं नत्वा रथारूढो ययौ जवात् ॥६९॥
सेनया सचिवैर्युक्तो वाल्मीकेर्वसतिस्थलम् । तमागतं विबुध्याथ लवोऽपि तत्पुरो ययौ ॥७०॥
तं दृष्ट्वा बालकं रम्यं कृपया लक्ष्मणोऽब्रवीत् । मा शिशो त्वं कुरुष्वाद्य साहसं मत्पुरस्त्विह ॥७१॥

उसको हाथमें लिया । पीठपर तरकस बाँधी और युद्ध करनेके लिए धनुषका भयानक टंकार करके मनमें सोचने लगे—मेरे चाचा आदि युद्ध करनेके लिए सामने खड़े हैं। मैं समरभूमिमें इनके ऊपर अपने तीक्ष्ण बाण कैसे चलाऊँगा। स्वजनोंका वध करनेपर माता सीता तथा रामचन्द्रजी मेरे इस दुष्कर्मको भला कैसे सहेंगे। ऐसी अवस्थामें मैं क्या करूँ? यदि युद्धसे मुहँ मोड़कर गुरु वाल्मीकिके पास लौट जाऊँ तो महर्षिकी सिखायी विद्या निष्फल हो जायगी। अतएव इस समय ऐसा युद्ध उपयोगी होगा, जिसमें किसीका वध न हो ॥ ५४-५९ ॥ ऐसा निश्चय करके मेघकी तरह गर्जते हुए लवने कहा– हे दुष्टों! तुमलोग किसलिये मेरी ओर दौड़े चले आ रहे हो? ॥ ६० ॥ माता सीताकी तरह मैं भोला-भाला नहीं हूँ, जो रामकी दी हुई पीड़ाको चुप चाप सह लूँगा। देख लो, सीताके क्लेशरूपी अग्निको बुझानेवाला मैं मेघ हूँ। सीताकी उष्ण उच्छ्वासकी उग्र ज्वालाके सामने आज तुम सबका पुरुषार्थ स्पष्टरूपसे संसारके सामने उपस्थित होगा और दुनिया देखेगी। इस प्रकार पहले लवने अपने वचनरूपी बाणोंसे शत्रुओंके हृदयपर प्रहार किया। तदनन्तर अपने मोहनास्त्रसे वहाँ उपस्थित सारी सेनाको मूर्छित कर दिया ॥ ६१-६३ ॥ इस तरह विजय प्राप्त करके लवने सुमन्त्र और भरतको अपनी काँखमें दबा लिया। हाथोंसे हनुमान्‌जी तथा सुग्रीवको पकड़कर प्रसन्नतापूर्वक माताके पास ले गये और सीताको दिखाया। उन वानरोंको मोहनास्त्रसे मोहित देखकर सीताने उन्हें लवके हाथोंसे छुड़ा दिया। उधर जब रामने यह सुना कि लव मोहनास्त्रसे सैनिकोंको मोहित करके सुग्रीवादिको पकड़ ले गया है। तब एकान्तमें लक्ष्मणसे कहने लगे— हे लक्ष्मण! इस प्रकारका पुरुषार्थ तो रावण भी नहीं दिखा सका था, जैसा कि यहाँ वह छोकरा दिखा रहा है। इस विषयमें क्या करना चाहिये, यह मैं कुछ भी नहीं सोच सका हूँ। इस प्रकार रामकी बात सुनकर लक्ष्मणने कहा—आप कुछ चिन्ता न करें। मैं अभी आता हूँ और क्षणमात्र में उस बच्चेको बन्दी बनाकर आपके पास लाता हूँ ॥ ६४-६९ ॥ ऐसा कहकर लक्ष्मण रथपर बैठे और वेगके साथ चल दिये। एक बड़ी सेना और मन्त्रियोंके साथ लक्ष्मण थोड़ी ही देरमें आश्रमके पास जा पहुँचे। जब लवने सुना कि लक्ष्मण आये हैं तो वे स्वयं उनके सामने गये। लक्ष्मणने जब उस सुन्दर और सुकुमार किन्तु वीर

न समर्थोऽसि वै स्थातुं गच्छ नोचेन्मरिष्यसि । शेषं रामायणं श्रोतुं त्वत्तोऽहं त्वां निहन्मि न ॥७२॥
त्वयाऽपराधितं बाल राघवस्य मुहुर्मुहुः । तत्सर्वमप्यहं वेद्मि तथापि त्वां निहन्मि न ॥७३॥
नीतान् वीरान् समर्प्याथ वाजिना रघुनंदनम् । एहि त्वं शरणं बाल यद्यस्ति जीवितस्पृहा ॥७४॥
तत्सौमित्रेर्वचः श्रुत्वा लवोऽभीतस्तमब्रवीत् । वेद्मि त्वां राघवं चापि सीतात्यागाप्तपौरुषम् ॥७५॥
सीतायामेव युवयोः पौरुषं न लवे मयि । सीतादुःखापनोदार्थं मुनिना निर्मितस्त्वहम् ॥७६॥
युवां जित्वाऽद्य समरे सीतादुःखं प्रमार्जये । मुधा युवाभ्यां सा सीता छलितापि पतिव्रता ॥७७॥
तस्या विनिष्कृतिं चाहं कर्तुमत्र समागतः । सीतादुःखाग्निना युष्मत्पौरुषं दग्धमस्ति तत् ॥७८॥
न स्थातव्यं ममाग्रेऽत्र गच्छध्वं विधवोपमाः । इति ते लववाग्बाणैर्भिन्नमर्मस्थलाश्च वै ॥७९॥
लक्ष्मणाद्या ववर्षुस्तं शस्त्रैरस्त्रैर्लवं क्रुधा । ततो लवश्च स्वैर्बाणैः शस्त्रवृष्टिं निवार्य च ॥८०॥
श्रीरामसचिवादींश्च प्राक्षिपद्यज्ञमण्डपे । ते सर्वे सचिवाद्याश्च लवमार्गणताडिताः ॥८ ॥
भिन्नदेहा लोहिताक्ताः प्रोचू रामं स्खलिद्गिरा । राम त्वं नो पश्यसि किं तूष्णीमध्वरमण्डपे ॥८२॥
उपायं चिंतयस्वान्यं वधे तस्य लवस्य च । शस्त्रैरस्त्रैर्मृतिं युद्धे न गच्छति लवः प्रभो ॥८३॥
साहाय्य कुरु सौमित्रेर्यदि बन्धुं सजीवितम् । त्वमिच्छसि लवशरप्रहाराद्बन्धुवत्सल ॥८४॥
इत्युक्त्वा लववाक्यानि राघवं ते न्यवेदयन् । तानि श्रुत्वा राघवोऽपि तूष्णीमासीत्तदा क्षणम् । ८५॥
लवोऽपि लक्ष्मणं बाणैर्विव्याध दशभिर्दृढम् । आपुंखमग्नास्ते बाणाः शरीरे लक्ष्मणस्य च ॥८६॥
ततः क्रोधपरीतात्मा लक्ष्मणो वेगवत्तरः । लवदेहे स्वशस्त्राणि भवन्ति विफलानि हि ॥८७॥

बालकको सामने देखा तो कृपापूर्वक कहने लगे—देखो बच्चे ! अब मैं आया हूँ। मेरे सामने किसी तरहकी दुष्टता न करना। तुम मेरे सामने नहीं ठहर सकते। जाओ, चले जाओ, नहीं तो तुम नहीं बच सकोगे। अभी हमें तुम्हारे मुखसे बाकी रामचरित्र सुनना है। इसीलिए नहीं मार रहा हूँ। हे अबोध बालक ! तुमने कई बार रामका अपराध किया है। मैं सब जानता हूँ। फिर भी मैं तुमको नहीं मारूँगा ॥ ६९–७३ ॥ यदि तुम्हें अपने प्राणोंका लोभ हो तो तुमने जिन लोगोंको पकड़ लिया है, उन्हें लाकर हमें दे दो और घोड़े-को लेकर मेरे साथ रामचन्द्रजीको शरणमें चलो ॥ ७४ ॥ इस तरह लक्ष्मणका बातें सुनकर लवने कहा—बेचारी सीताके ऊपर अपनी वीरता दिखलानेवाले तुमको और रामको मैं अच्छी तरह जानता हूँ। सीताके ऊपर तुम्हारा जो पुरुषार्थ चला था, वह लवपर नहीं चल सकेगा। सीताके दु:खको दूर करनेके लिए ही महर्षि वाल्मीकिने मेरी रचना की है ॥ ७५ ॥ ७६ ॥ आज मैं तुम दोनोंको जीतकर सीताका दुःख दूर करूँगा। तुमने भोली-भाली सीताके साथ कपटका व्यवहार किया है। उसका प्रतीकार करनेके लिए ही मैं यहाँ आया हूँ। सीताके दुःखरूपी अग्निमें तुमलोगोंका पुरुषार्थ जल चुका है ॥ ७७ ॥ ७८ ॥ तुम लोगोंको चाहिए कि मेरे सामनेसे हट जाओ। इस प्रकार लवके वचनरूपी बाणोंसे लक्ष्मणका हृदय विदीर्ण हो गया ॥ ७९ ॥ ८० ॥ अतः क्रुद्ध होकर सब एक साथ लवपर बाणवर्षा करने लगे। लवने भी अस्त्रोंसे उनके शस्त्रोंका निवारण किया और लक्ष्मणके साथ आये हुए मन्त्री-सैनिक आदिको अपने बाणोंसे उठा-उठाकर रामके यज्ञमण्डपमें फेंक दिया। लवके बाणोंसे आहत मन्त्री आदिकी देहमें जहाँ-तहाँ घाव हो गये थे और उनसे रुधिर बह रहा था। इसी दशामें वे सब रामके पास जाकर कहने लगे—हे राम ! इस यज्ञमण्डमें चुपचाप बैठे-बैठे आप क्या देख रहे हैं ? ॥ ८१ ॥ ८२ ॥ लवको मारनेके लिए कोई दूसरा उपाय सोचिये। हे प्रभो ! लव संग्राममें किसी तरहके अस्त्र-शस्त्रसे नहीं मर रहा है। हे बन्धुवत्सल ! यदि लक्ष्मणको जीवित देखना चाहते हों तो उनकी सहायता करिये। लवके कराल बाणोंके प्रहारसे उन्हें बचाइए। इस तरह वहाँका समाचार सुनानेके बाद उन बातोंको बतलाया, जो लवने रामके विषयमें कही थीं। उनकी बातें सुनकर राम कुछ देरतक चुप बैठे रहे। उधर लवने दस बाणोंसे लक्ष्मणको घायल कर दिया और वे दसों बाण लक्ष्मणके शरीरमें सिरसे लेकर पूँछतक घुस गये थे ॥ ८३–८६ ॥ ऐसी अवस्थामें लक्ष्मण क्रोधसे आप-

दृष्ट्वेति व्यग्रचित्तः सः क्षणं सञ्चिन्त्य वै हृदि । ब्रह्मास्त्रेण लवं बद्ध्वा साश्वं राज्ञे न्यवेदयत् ॥८८॥
ब्रह्मास्त्रं मानयंस्तूष्णीं ययौ राम लवोऽपि सः । राघवस्तं समानीतं दृष्ट्वा लक्ष्मणमब्रवीत् ॥८९॥
जानन्नपि सुतं स्वीयं कौतुकं दर्शयञ्जनान् । महत्कार्यं कृतं बन्धो त्वमेनं विद्धि बाहुजम् ॥९०॥
द्विजहत्याभयं त्यक्त्वा घातयस्वैनमद्य हि । रामं प्रोवाच सौमित्रिर्नायं शस्त्रैर्मरिष्यति ॥९१॥
भरताद्यैर्मया चापि नायं किं ताडितोऽसिभिः । अस्य देहे क्षतं चैकमपि किं दृश्यते त्वया ॥९२॥
तच्छ्रुत्वा राघवः प्राह प्रष्टव्यो बालकस्त्वया । केनोपायेन ते मृत्युर्भवेदिति ममाग्रतः ॥९३॥
गोपायन्ति निजं मृत्युं न शूरा वधशङ्कया । न वदन्त्यनृतं क्वापि स्वबलेनैव जीविताः ॥९४॥
ततः पृष्टो लक्ष्मणेन लवः प्राहाथ लक्ष्मणम् । जलस्य सेचनाद्वृद्धिं स्वीयां ज्ञात्वा मुनेर्गिरा ॥९५॥
कापट्यबुद्ध्या लोकान्हि दर्शयन् स्वपराक्रमम् । जलस्य सेचनेनाद्य मृत्युर्मे निश्चितो भवेत् ॥९६॥
तत्तस्य वचनं श्रुत्वा शिलायां तं निवेश्य च । सेवनं तोयकलशैः कारयामास लक्ष्मणः ॥
अयोध्यावासिभिर्नारीपुरुषैः परमादरात् ॥९७॥
चतुर्मुखैश्च घटैर्वृषानीतैश्च कोटिशः । तथा कार्पटिकैश्चापि रथोष्ट्रवारणादिभिः ॥९८॥
आनयित्वा जलं शीघ्रं सिषेच लवबालकम् । यथा यथा जलैस्तं हि सेचनं चक्रिरे जनाः ॥९९॥
तथा तथा लवस्तत्र व्यवर्द्धत घनो यथा । सप्ततालप्रमाणोऽभूद्वृद्ध्या भीमपराक्रमः ॥१००॥
ततस्तं लक्ष्मणः प्राह त्वया लव मृषेरितम् । नायं तव वधोपायः स्ववृद्ध्यर्थं कृतः खलु ॥१०१॥
लवोऽप्याहाथ सौमित्रं कौटिल्येन प्रतारयन् । यथा तैलक्षते दीपो वृद्धिमंते प्रगच्छति ॥१०२॥
तथायुषः क्षये मेऽपि वृद्धिं पश्य क्षणं त्विमाम् । तद्वाक्यं मानयन्सत्यं सेचयत्तं स लक्ष्मणः ॥१०३॥
जलैर्गाङ्गैः समानीतैः पूर्ववच्च पुनः पुनः । काष्ठसोपानमार्गेण सेचनं चक्रिरे जनाः ॥१०४॥

बबूले हो उठे। उन्होंने कई शस्त्र लवपर चलाये, लेकिन जब उन्हें बेकार होते देखा तो घबड़ा उठे। क्षण भर उन्होंने न जाने क्या सोचा और तब ब्रह्मास्त्रस लवको बांध लिया और घोड़ेको भी साथ लेकर अयोध्यामें रामके पास ले आये ॥ ८७ ॥ ८८ ॥ ब्रह्मास्त्रकी मर्यादा रखनेके लिए लव भी चुपचाप लक्ष्मणके साथ चले गये। जब रामने लवको देखा तो लक्ष्मणसे कहा—यद्यपि मैं जानता हूँ कि यह मेरा ही पुत्र है। फिर भी संसारको शिक्षा देनेके लिये मैं आज्ञा देता हूँ कि द्विजहत्याके भयको दूर करके आज ही इसे मार डालो। इसने बड़े अपराध किये हैं। लक्ष्मणने उत्तर दिया कि यह किसी शस्त्रास्त्रसे नहीं मरेगा ॥ ८९–९१ ॥ हमने तथा भरतजीने इसपर कितनी ही बार तलवारके प्रहार किये हैं, किन्तु देखिए न ! इसके शरीरमें कहीं कोई घाव दीखता है ? ॥ ९२ ॥ रामने कहा—इसीसे पूछो कि तू किस प्रकार मर सकेगा। जो सच्चे शूरवीर होते हैं, वे अपनी मृत्युके उपायको भी नहीं छिपाते। सच्चे वीर कभी झूठ नहीं बोलते ॥ ९३ ॥ ९४ ॥ इस प्रकार पूछनेपर लव कुछ सोचने लगे। एक बार महर्षि वाल्मीकिने लवसे कहा था कि तुम्हारे ऊपर जितना जल डाला जायगा, तुम उतने ही बढ़ोगे। इसी बातका ख्याल करके लवने संसारको अपना पराक्रम दिखानेके लिए लक्ष्मणसे कहा—जलसे सींचनेपर मेरी मृत्यु होगी ॥ ९५ ॥ ९६ ॥ लवकी बात सुनकर लक्ष्मणने लवको पास ही एक पत्थरपर बिठाया और पानीके घड़ोंसे नहलाने लगे। अयोध्यानिवासी बहुतसे नरनारी बड़े आदरके साथ लवपर जल डालने लगे। चार मुँहवाले बड़े-बड़े चमड़ेके मोट बैल, रथ, हाथी, घोड़े, और ऊँटपर लद-लदकर करोड़ोंकी संख्यामें वहाँ आने लगे और वे सब लवके ऊपर डाल दिये गये। जैसे-जैसे पानी पड़ता था, त्यों त्यों लव मेघके समान बढ़ते जाते थे। वह परम वीर बढ़ते-बढ़ते जब सात ताड़की ऊँचाई तक बढ़ा ॥ ९७–१०० ॥ तब लक्ष्मणने कहा—लव ! ज्ञात होता है कि तुम झूठ बोले हो। तुमने मरनके लिये नहीं, अपने बढ़नेका उपाय बताया था ॥ १०१ ॥ लवने भी लक्ष्मणको बहकाकर कहा—दीपक जब बुझनेवाला होता है तो उसकी लौ कितनी बढ़ जाया करती है। उसी तरह आयुके क्षय होनेसे मैं भी बढ़ रहा हूँ। अबकी बार भी लक्ष्मणने लवकी बात सच मानी और उसी तरह लवके ऊपर जलके कलसे डालते रहे ॥१०२॥१०३॥ गङ्गाणीसे

ब्रह्मास्त्रेण विनिर्मुक्तः प्रचचाल लवस्तदा । भुजावास्फालयामास तथोरू बाललीलया ॥१०५॥
तं दृष्ट्वा दुद्रुवुः सर्वे त्यक्त्वा तोयघटानपि । शकृन्मूत्रं प्रमुंचंतो मुक्तकच्छा लवेक्षणाः ॥१०६॥
एतस्मिन्नन्तरे क्रीडन् गंगायां तान्जनान्कुशः । पप्रच्छाद्य मुहुर्नीरं किमर्थं नीयते जवात् ॥१०७॥
जनाः प्रोचुर्लवं हंतुमस्माभिर्नीयते जलम् । विश्वस्तैलंवराक्येन तच्छ्रुत्वा स ययौ कुशः ॥१०८॥
संगृह्य स्वाश्रमाच्चापं तूणीरं देगवत्तरः । लव मोचयितुं चापं टणत्कृत्वाऽध्वरस्थले ॥१०९॥
कुशचापध्वनिं श्रुत्वा तस्थौ तूष्णीं लवः क्षणम् । ततो दृष्ट्वा कुश प्राप्तं ययौ योद्धुं स लक्ष्मणः ॥११०॥
तं दृष्ट्वा स कुशः प्राह छलितौ जानकीलवौ । त्वया रामेण लोकैश्च तयोः कर्तुं विनिष्कृतिम् ॥१११॥

अहं प्राप्तोऽस्मि मां बालं लववत्त्वं न मानय ।
युवयोः पौरुषं नार्यां शिशावस्तीति वेद्म्यहम् ॥११२॥

सीताक्लेशानलज्वालासंदग्धं युवयोर्बलम् । न ममाग्रे स्फुटं कार्यं युवाभ्यामुपहासकृत् ॥११३॥
वाल्मीकिशिक्षितां विद्यां रामं त्वामद्य दर्शये । इत्युक्त्वा तुमुलं युद्धं पितृव्येण चकार सः ॥११४॥
आसन् वृथा जानकीये लक्ष्मणोत्सृष्टमार्गणाः । रामायणात्कुशो ज्ञात्वा शेष एवात्र लक्ष्मणः ॥११५॥
जातोऽस्तीति वधे तस्य गारुडास्त्रं मुमोच सः । क्षात्रधर्मं पुरस्कृत्य न तद्धिंसाभयं दधे ॥११६॥
जानन् युद्धे पितुर्हत्या जाता चेन्न भयं त्विति । तद्दृष्ट्वा खगराजास्त्रं सौमित्रेः कुठिना मतिः ॥११७॥
भयभीतः पृथिव्यां हि पपात लक्ष्मणो रथात् । च्युतं दृष्ट्वा स्वयं तत्र दीक्षायुक्तोऽपि वेगतः ।११८॥
धृत्वा चापं च तूणीरं यज्ञकुण्डाग्रतः स्थितः । चापं संधाय ब्रह्माणं सौमित्रेर्जीविताशया ॥११९॥

जल भर-भरकर आता जा रहा था और सीढ़ी लगाकर लवपर जलकी धार डाली जाती थी ॥ १०४ ॥ उसी समय सबके देखते ही देखते लव ब्रह्मास्त्रसे छूट गया और भुजाएँ तथा ताल ठोंकता हुआ दौड़ने लगा। उसको देखकर वहाँके सारे नर-नारी अपने-अपने कलसोंको छोड़-छोड़कर भाग गये। उसके उस विकराल रूपको देखकर बहुतोंकी धोतियाँ खुल गयीं। कई एकको तो मारे डरके पेशाब टट्टी तक हो गयी ॥ १०५ ॥ १०६ ॥ उधर कुश बच्चोंकी तरह खेलता-कूदता गङ्गाजीके किनारे गया। वहाँ उसने देखा कि बहुतसे लोग पानी भर रहे हैं। उनसे कुशने पूछा—तुमलोग इतना पानी क्यों भरे लिये जा रहे हो ? ॥ १०७ ॥ उन्होंने कहा—लवको मारनेके लिए। यह सुनकर कुश अपने आश्रमपर गया और धनुष-बाण लेकर लवको छुड़ानेके लिए रामकी यज्ञशालाके समीप जा पहुँचा और धनुषका भीषण टंकोर किया ॥ १०८ ॥ १०९ ॥ कुशके धनुषकी टंकोर सुनकर लव कुछ देरके लिए शान्त खड़ा हो गया और कुशसे युद्ध करनेके लिए लक्ष्मणके सामने जा पहुँचे ॥ ११० ॥ लक्ष्मणको देखकर कुशने कहा—तुमने और रामने लव तथा सीताके साथ बड़ा छल किया है। उसीका बदला लेनेके लिए मैं आया हूँ। मुझको लवकी तरह साधारण बालक न समझना। तुम लोगोंकी वीरता स्त्री और छोटे-छोटे बच्चोंपर ही चल सकती है, यह मैं जानता हूँ। सीताके क्लेशरूपी धधकती अग्निमें तुम्हारा बल जल चुका है। अब अपना उपहास करानेके लिए मेरे सामने लड़नेको व्यर्थ आये हो। अच्छा, यदि तुम्हारी यही इच्छा है तो वाल्मीकिकी सिखायी विद्या आज मैं तुम्हें और रामको दिखाता हूँ। ऐसा कहकर कुशने लक्ष्मणके साथ तुमुल युद्ध प्रारम्भ कर दिया ॥ १११–११४ ॥ लक्ष्मणने कुशपर जितने बाण चलाये, वे सब व्यर्थ गये। रामायणकी भविष्यवाणीसे कुशको ज्ञात हो चुका था कि अब लक्ष्मणके सिवाय और कोई वीर बाकी बचा ही नहीं है कि जिसके साथ युद्ध करके मारनेकी आवश्यकता हो। यह सोचकर क्षात्रधर्मके अनुसार उसने चाचाको मारनेमें कोई अपराध न समझकर उन्हें मारनेके लिए गारुडास्त्रका प्रयोग किया ॥ ११५ ॥ ११६ ॥ उस गारुडास्त्रको अपने ऊपर आते देखकर लक्ष्मण सिटपिटा गये। उनको सारी चातुरी भूल गयी और मूर्छित होकर रथसे पृथ्वीपर गिर पड़े। लक्ष्मणको रथसे गिरते देखकर राम दीक्षित होते हुए भी धनुष-बाण लेकर दौड़े और लक्ष्मणको बचानेके लिए उन्होंने कुशके छोड़े हुए गारुडास्त्रपर अपना ब्रह्मास्त्र छोड़ दिया। ब्रह्मास्त्रके पहुँचनेपर गारुडास्त्र आकाशमें ही ठंडा हो

मुमोच बाणमाकाशे गरुडोपरि सादरम् । तेन तच्छांतिमगमद्ब्रह्मास्त्रेण तु गारुडम् ॥१२०॥
ततः कुशः संदधे स सर्पास्त्रं राघवोपरि । उवाच नाहं सीतावत्सुलभश्छलितं त्वया ॥१२१॥
जनान् दर्शयितुं स्वीयं पौरुषं जानकी वने । त्यक्ता त्वया वृथा पूर्वं जानेऽहं तव चेष्टितम् ॥१२२॥
वाल्मीकिशिक्षितां विद्यां ममाद्य त्वं विलोकय । नोचेत्त्वं याहि शरणं वाल्मीकिं जानकीमपि ॥१२३॥
तद्वाक्शरैर्भिन्नमर्मा रामः सार्पं विलोक्य तत् । ओत्वस्त्रं ससृजे घोरं तेन तच्छांतिमाप वै ॥१२४॥
सदधे सारमेयास्त्रं कुशस्तं राघवं पुनः । रामोऽपि मौशलास्त्रेण सारमेयं न्यवारयत् ॥१२५॥
वह्न्यस्त्रं ससृजे घोरं कुशोऽपि राघवं जवात् । न्यवारयच्च तद्रामो मेघास्त्रेण स लीलया ॥१२६॥
वायव्यं ससृजे रामं जानकीजठरोद्भवः । न्यवारयच्च तद्रामः पर्वतास्त्रेण लीलया ॥१२७॥
वज्रास्त्रं ससृजे रामं सीतेयः सोऽतिसम्भ्रमात् । याम्यास्त्रेणाथ रामोऽपि वज्रास्त्रं तन्न्यवारयत् ॥१२८॥
ब्रह्मास्त्रं ससृजे रामं सीतेयः परमादरात् । हाहाकारस्तदा चासीद्राघवस्याध्वरांगणे ॥१२९॥
न्यवारयत्तद्ब्रह्मास्त्रं वैष्णवेन रघूत्तमः । ततो रामं कुशस्तीक्ष्णान्नाराचांश्छतशः पुनः ॥१३०॥
मुमोच राघवश्चापि मार्गणांश्छतशः कुशम् । एवं तत्तुमुलं युद्धं बभूव प्रहरं तयोः ॥१३१॥
तदाऽऽसीत्कौतुकं रामकुशयोर्युध्यतोर्महत् । रामचापविनिर्मुक्ता गता ये ये पतत्रिणः ॥१३२॥
ते ते कुशस्योत्तमांगोपरिष्टाद्धरणीतले । पतंति स्म तथा ये ये कुशचापविनिर्गताः ॥१३३॥
शरास्ते रामचंद्रस्य पतंति स्म पदांतिके । तद्दृष्ट्वा कौतुकं रामो विस्मयाविष्टमानसः ॥१३४॥
आज्ञापयत्स्वसचिवं गच्छ वाल्मीकिसन्निधिम् । पृच्छस्व तं नमस्कृत्य कौ ते शिष्याविमौ बली॥१३५॥
ततो ज्ञात्वाऽनयोर्घाते करिष्यामि मतिं क्षणात् । तथेति रामवचनात्स मन्त्री रथमास्थितः ॥१३६॥
क्रोशद्वयांतरेणैव सव्यं कृत्वा कुशं लवम् । दृष्ट्वा नत्वाऽथ वाल्मीकिं रामवाक्यं न्यवेदयत्॥१३७॥
मुनिः प्राह मन्त्रिणं त्वं वद रामाय मे वचः । सभामध्ये गायनस्य काले श्वो विदितं तव ॥१३८॥

गया ॥ ११७—१२० ॥ इसके अनन्तर कुशने रामपर सर्पास्त्र छोड़ा और कहा—मैं सीताकी तरह सहजमें नहीं छला जा सकूँगा । संसारको दिखानेके लिए तुमने सीतापर अपना पुरुषार्थ दिखाया था । अब यदि सती-साध्वी नारीके साथ तुमने जो विश्वासघात किया है, उसे मैं अच्छी तरह जानता हूँ। यदि सामर्थ्य हो तो महर्षि वाल्मीकिकी दी हुई अस्त्रविद्याका चमत्कार देखो । यदि ऐसा न कर सको तो हाथ बाँधकर वाल्मीकि तथा सीताकी शरणमें चलकर आत्मरक्षाकी भीख माँगो ॥ १२१-१२३ ॥ कुशकी उन नोक-झोंक भरी बातोंको सुनकर रामने कुशके सर्पास्त्रपर विडालास्त्रका प्रयोग किया । जिससे वह शान्त हो गया । फिर कुशने रामपर सारमेयास्त्र चलाया और रामने मौशलास्त्र चलाकर उसका निवारण किया । कुशने रामपर अग्न्यस्त्र चलाया तो रामने मेघास्त्र चलाकर उसको शान्त किया । तब सीताके सुकुमार बेटे कुशने रामपर वायव्यास्त्र चलाया । तब रामने पर्वतास्त्र चलाकर उसका निवारण किया ॥ १२४-१२७ ॥ तब कुशने वज्रास्त्र चलाया और रामने याम्यास्त्र चलाकर उसको शान्त किया॥ १२८ ॥ जब कुशने रामके ऊपर वज्रास्त्र चलाया, उस समय यज्ञशालामें हाहाकार मच गया । किन्तु रामने अपने वैष्णवास्त्रसे उसको व्यर्थ कर दिया । इसके बाद कुशने रामके ऊपर और भी सैकड़ों बाण चलाये ॥ १२९ ॥ १३० ॥ रामने भी उनके प्रतीकारके रूपमें सैकड़ों बाण चलाये । इस प्रकार एक प्रहर तक राम और कुशमें तुमुल युद्ध होता रहा ॥ १३१॥ उस समय बाप-बेटेके युद्धमें यह बड़ा कौतुक था कि जो बाण रामके हाथोंसे छूटते, वे कुशके मस्तकपर गिरते थे तथा कुश द्वारा छूटे बाण रामके पैरोंपर गिरा करते थे । यह कौतुक देखकर विस्मित रामने अपने मंत्रीको बुलाया और उससे कहा कि वाल्मीकिके पास जाकर पूछो कि आपके ये महाबलवान् शिष्य कौन हैं ॥ १३२—१३५ ॥ यह जानकर मैं इनको मारनेका शीघ्र कोई उपाय करूँगा। रामके आज्ञानुसार मन्त्री रथपर सवार हुआ और दो कोस चलकर वाल्मीकिके पास जा पहुँचा । वाल्मीकिको देखकर मन्त्रीने प्रणाम किया और रामका सन्देश सुनाया ॥ १३६ ॥ १३७ ॥ मुनि वाल्मीकिने कहा—उनसे कह दो कि कल

भविष्यति समस्तं हि वृत्तं बालकयोः शुभम् । ततो मन्त्री मुनेर्वाक्यं राघवाय न्यवेदयत् ॥१३९॥
कुशं लवं समाहूय वाल्मीकिरपि तौ मुदा । समालिंग्य कथाभिस्तां निनाय रजनीं सुखम् ॥१४०॥

इति श्रीशतकोटिरामचरितांतर्गते श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये जन्मकाण्डे
कुशलवयोः पराक्रमवर्णनं नाम सप्तमः सर्गः ॥ ७ ॥

अष्टमः सर्गः

(रामका सीताको पुनः स्वीकार करना)

श्रीरामदास उवाच

अथ प्रभाते रामेण समाहूतावुभौ शिशू । नत्वा मुनिं मातरश्च सभायां जग्मतुर्मुदा ॥ १ ॥
वाल्मीकेराज्ञया बालौ जटाकृष्णाजिनांबरौ । जन्मकांडं त्वेकमेव जगतुस्तौ पितुः पुरः ॥ २ ॥
जनैः श्रुत्वा स्वचरितं रामोऽभूदतिविस्मितः ॥ ३ ॥
आसन् जनाश्चापि सर्वे विस्मयाविष्टमानसाः । ज्ञात्वा सीताकुमारौ तौ सन्तोषं परमं ययुः ॥ ४ ॥
एतस्मिन्नन्तरे सर्वे लववाणास्त्रपीडिताः । शत्रुघ्नाद्या ययुस्तत्र यानस्थाश्चाप्तजीविताः ॥ ५ ॥
अंगदाद्याः पार्थिवाश्च मोहनास्त्रैकजीविताः । ययुः सवानराः सर्वे लक्ष्मणोऽपि ययावरुक् ॥ ६ ॥
सर्वे नत्वा रामचन्द्रं तस्थुस्तस्यांतिके मुदा । अथ संमंत्र्य रामोऽपि तौ विसृज्यादरेण हि ॥ ७ ॥
राक्षसेंद्रं लक्ष्मणं च शत्रुघ्नं मकरध्वजम् । खगराजं सुषेणं च जांबवन्तं वचोऽब्रवीत् ॥ ८ ॥
आनयध्वं मुनिवरं ससीतं देवसंमितम् । अद्यास्तु पर्षदां मध्ये प्रत्ययो वै सभांगणे ॥ ९ ॥
गंगाया दक्षिणे तीरे सभा कार्याऽऽयता शुभा । करोतु शपथं सीता ममाग्रे जाह्नवीतटे ॥१०॥
मुनीश्वराद्याः सर्वे तां जानन्तु गतकल्मषाम् । तथा ममापि वाल्मीके शुद्धिं जानंतु वेगतः ॥११॥

जब सभामें ये दोनों रामायण गाने पहुँचेंगे, उस समय सारा वृत्तान्त ज्ञात हो जायगा ॥ १३८ ॥ तदनुसार मंत्री लौट आया और वाल्मीकिने जो कुछ कहा था, सो रामको बतला दिया । उधर वाल्मीकिने लव और कुशको पास बुलाकर हृदयसे लगाया और अनेक प्रकारकी कहानियाँ कहते हुए रात बितायी॥ १३९ ॥ १४० ॥ इति श्रीशतकोटिरामचरितान्तर्गते श्रीमदानन्दरामायणे पं० रामतेजपाण्डेयकृत-'ज्योत्स्ना'भाषाटीकासहिते जन्मकाण्डे सप्तमः सर्गः ॥ ७ ॥

श्रीरामदास बोले--दूसरे दिन सबेरे रामने उन दोनों बालकोंको बुलवाया और वे अपनी माता तथा मुनि वाल्मीकिको प्रणाम करके रामकी सभामें गये ॥ १ ॥ जटा एवं वल्कल वस्त्र धारण किये हुए उन बच्चोंने उस दिन वाल्मीकिके आज्ञानुसार केवल जन्मकाण्डका गान किया ॥ २ ॥ रामने जब अपना चरित्र सुना तो बड़े विस्मित हुए । सभामें बैठे हुए लोगोंको भी बड़ा आश्चर्य हुआ और जब यह जाना कि ये सीताके बेटे हैं तो बहुत ही प्रसन्न हुए ॥ ३ ॥ ४ ॥ उसी समय लवके बाणोंसे पीडित लक्ष्मण-शत्रुघ्न आदि भी वहाँ आ पहुँचे । उनके साथ अङ्गद-हनुमान् आदि जो लवके मोहनास्त्रसे मूर्छित हो गये थे, वे भी आये । वहाँपर सबोंने रामको प्रणाम किया और उनके समीप जाकर बैठ गये । तब रामने अपने मंत्रियोंसे सलाह करके लव कुशको विदा कर दिया ॥ ५-७ ॥ तदनन्तर विभीषण, लक्ष्मण, शत्रुघ्न, मकरध्वज तथा अङ्गदको सम्बोधित करके राम बोले--तुम सब जाकर वाल्मीकिके साथ सीताको यहाँ ले आओ । आज इस सभामें यह निश्चय किया जायगा कि सीता-का क्या अपराध है । इसी पुनीत जाह्नवीके तटपर सीता शपथ खायगी । यहाँपर आये हुए समस्त ऋषिगण जिससे यह समझ जायँ कि सीता सर्वथा निष्कलंक तथा पापोंसे रहित है । साथ ही हमारी ओरसे वाल्मीकिकी भी परीक्षा होगी । इस प्रकार रामके आज्ञानुसार लक्ष्मणादि वाल्मीकिके पास गये और उन्होंने

इति तद्वचनं श्रुत्वा लक्ष्मणाद्या महीं गताः । ऊचुर्यथोक्तं रामेण वाल्मीकिं लक्ष्मणादिकाः ॥१२॥
रामस्य हृद्गतं सर्वं ज्ञात्वा वाल्मीकिरब्रवीत् । समर्चितान् सुमंत्राद्यान् लक्ष्मणाय समर्प्य च ॥१३॥
युष्माभिः कथनीयं यद्वाक्यं श्रीराघवं प्रति । श्वः करिष्यति वै सीता शपथं जनसंसदि ॥१४॥
योषितां परमो देवः पतिरेको न चापरः । पतिं विना गतिः काऽन्या नार्याश्चास्ति जगत्त्रये॥१५॥
लक्ष्मणाद्यास्ततः सर्वे राममागत्य ते पुनः । सुमंत्रादींश्चतुर्वीरान्राघवाय समर्प्य च ॥१६॥
वाल्मीकेर्वचनं हर्षादूचुस्तं रघुनायकम् । वाल्मीकिवचनं श्रुत्वा तुतोष राघवोऽपि च ॥१७॥
सुमंत्रं भरतं वायुपुत्रं वानरनायकः । समालिंग्य चतुर्भ्यः स पुनर्जातानमन्यत ॥१८॥
सीतया पालिताः सर्वे वयं लवजितास्त्विति । कथयामासुः श्रीरामं सुमंत्राद्याः सविस्तरम् ॥१९॥
द्वितीये दिवसे कृत्वा सभां श्रेष्ठां मनोरमाम् । सर्वांस्तस्यां समाहूय रामो वाक्यमथाब्रवीत् ॥२०॥
मुनयः पार्थिवाः सर्वे शृणुत स्वस्थमानसाः । सीतायाः शपथं लोका विजानंत्वशुभं शुभम् ॥२१॥
इत्युक्ता राघवेणाथ लोकाः सीतादिदृक्षवः । ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः शूद्राश्चैव सहस्रशः ॥२२॥
सवानराः समाजग्मुस्तद्दिव्यं द्रष्टुमुद्यताः । ततो मुनिवरस्तूर्णं ससीतः समुपागतः ॥२३॥
अग्रतस्तं मुनिं कृत्वा यांती किञ्चिदवाङ्मुखी । कृतांजलिर्मुदा सीता शनैर्यज्ञं विवेश तम् ॥२४॥
दृष्ट्वा लक्ष्मीमिवायांतीं श्रीविष्णोरनुयायिनीम् । वाल्मीकेः पृष्ठतः सीतां जयघोषं प्रचक्रिरे ॥२५॥
तदा मध्ये जनौघस्य प्रविश्य मुनिपुङ्गवः । सीतासहायो वाल्मीकिस्तदा राघवमब्रवीत् ॥२६॥
इयं दाशरथे सीता सुवृत्ता धर्मचारिणी । त्वया पापात्पुरा त्यक्ता ममाश्रमसमीपतः ॥२७॥
लोकापवादभीतेन यमुनादक्षिणे तटे । प्रत्ययं दास्यते साऽद्य तदनुज्ञातुमर्हसि ॥२८॥
इमौ तु सीतातनयौ कुशस्त्वचो लवो मया । लवैर्विनिर्मितः सीताभयात्प्रत्यग्रचेतसा ॥२९॥

जो कुछ कहा था, सो कह सुनाया ॥ ८–११ ॥ रामके मनकी बात जानकर वाल्मीकिने कहा—आज तुम लोग जाओ और रामसे कह दो कि कल सभामें जाकर सीता सब लोगोंके सामने शपथ खायगी ॥ १२–१४ ॥ स्त्रियोंके लिए पतिके सिवाय और कोई देवता नहीं होता। ऐसी अवस्थामें सीता और कर ही क्या सकती है। पतिके बिना स्त्रीके लिए लोकमें और कोई गति भी नहीं है ॥ १५ ॥ तब लक्ष्मण आदि वहाँसे लौट आये। रामने उनके मुखसे वाल्मीकिका सन्देश सुना तो परम प्रसन्न हुए। वे लोग वहाँसे लौटते समय सुमन्त्र आदि चारों वीरोंको, जिनको कि लवने बन्दी बना रक्खा था, अपने साथ छुड़ा लाये थे। राम उन सबको अपनी छातीसे लगाकर मिले और यह समझा कि इन लोगोंका पुनर्जन्म हुआ है ॥ १६–१८ ॥ उन सबोंने अपना हाल बतलाते हुए कहा कि यद्यपि लवने हम लोगोंको कैद कर लिया था, किन्तु सीताने पूर्णरूपसे हमारी रक्षा की ॥ १९ ॥ दूसरे दिन एक विशाल सभा आयोजित की गयी। उसमें सब लोगोंको सम्बोधित करके रामने कहा—हे देशविदेशसे आये हुए ऋषियों! आज इस सभामें आप लोगोंके समक्ष सीता शपथ खायगी। इससे आप लोगोंको उसके सुकृत तथा दुष्कृतका पता लग जायगा। इस प्रकार रामके वचन सुने तो सब लोग सीताको देखनेके लिए उतावले हो उठे। नगरमें भी यह समाचार पहुँच गया। अतएव इस दिव्य शपथको देखनेकी लालसासे कितने ही ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र वहाँ आ पहुँचे ॥ २०–२२ ॥ थोड़ी देर बाद सीताके साथ वाल्मीकि भी सभामें पधारे। आगे-आगे वाल्मीकि थे और उनके पीछे नीचा सिर किये सीता मन्दगतिसे सभामें आयीं। उस समय सीता और वाल्मीकिको देखकर ऐसा लगता था कि मानों विष्णुके पीछे-पीछे लक्ष्मी चली आ रही हैं। सीताको देखते ही लोगोंने जयजयकार किया और वाल्मीकिजी सभाके बीचमें पहुँचकर रामसे कहने लगे—॥ २३–२६ ॥ हे राम! कुछ दिन हुए, जब आपने लोकापवादके भयसे सीताको मेरे आश्रमके समीप छोड़वा दिया था। आज वह ही सीता आपके सामने शपथ खायगी, आप इसके लिए आज्ञा दें। सीताके इन दोनों पुत्रोंमें कुश आपका तथा लव (जलकी बूँदोंसे) बनाया हुआ मेरा बेटा है। उसे मैंने सहसा सीताके डरसे बनाया था। ये दोनों बेटे

सुताविमौ तु दुर्धर्षौ तथ्यमेतद्ब्रवीमि ते । प्रचेतसोऽहं दशमः पुत्रो रघुकुलोद्वह ॥३०॥
अनृतं न स्मराम्युक्तं यथेमौ तव पुत्रकौ । बहून्वर्षगणान् सम्यक् तपश्चर्या मया कृता ॥३१॥
नोपश्नीयां फलं तस्या दुष्टेयं यदि मैथिली । इत्युक्त्वा राघवस्यांके दक्षिणे स्थाप्य वै कुशम् ॥३२॥
लवं विन्यस्य वामांके तस्थौ तस्याग्रतो मुनिः । रामोऽपि तौ समालिंग्य मूर्ध्न्यवघ्राय सादरम् ॥३३॥
लवस्य मस्तके हस्तं संस्थाप्य जगदीश्वरः । अतिह्रस्वतरं बालं पूर्ववत्सोऽकरोच्च तम् ॥३४॥
ततो रामोऽपि तां सीतां दृष्ट्वा बाहुद्वयान्विताम् । अज्ञात इव संप्राह लक्ष्मणं पुरतः स्थितम् ॥३५॥
त्वया भुजः समानीतः सीताया मां प्रदर्शितुम् । पुरा तमानयस्वाद्य चेदस्ति रक्षितस्त्वया ॥३६॥
तथेत्युक्त्वा लक्ष्मणोऽपि पेटिकान्निहितं भुजम् । सीतायाः पुरतो रामं दर्शयामास सादरम् ॥३७॥
सीताभुजोपमं दृष्ट्वा भुजं मांसादिभिर्युतम् । पञ्चवर्षान्तरे काले ह्यासन् सर्वेऽतिविस्मिताः ॥३८॥
एतस्मिन्नन्तरे तत्र पश्यत्सु सकलेष्वपि । भुजः स गुप्ततां प्राप्तो विश्वकर्मोद्भवः क्षणात् ॥३९॥
तद्दृष्ट्वा कौतुकं लोका ह्यभूवन्नतिविस्मिताः । रामोऽपि विस्मितः प्राह वाल्मीकिं प्रणिपत्य च ॥४०॥
एवमेव महाप्राज्ञ यदुक्तं मां त्वयाऽधुना । प्रत्ययो जनितो मह्यं तव वाक्यैरकिल्विषैः ॥४१॥
लङ्कायामपि दृष्टो मे वैदेह्याः प्रत्ययो महान् । देवानां पुरतस्तेन मन्दिरं संप्रवेशिता ॥४२॥
सेयं लोकभयाद्ब्रह्मन्नपापाऽपि सती पुरा । सीता मया परित्यक्ता तद्भवान् क्षन्तुमर्हति ॥४३॥
मत्तो जातोऽस्ति जानामि कुशोऽयं च लवस्त्वया। लवैर्भ्रांत्या कृतो वेद्मि सीताशापभयान्मुने ॥४४॥
तथापि लोकान्सकलान्द्रष्टुं सीताऽत्र प्रत्ययम् । करोतु शपथं चापि सभायां तव सन्निधौ ॥४५॥
शुद्धायां जगतीमध्ये सीतामङ्गीकरोम्यहम् । तदा तच्छपथं द्रष्टुमासंल्लोकाः समुत्सुकाः ॥४६॥
सभया जानकी चाथ तदा कौशेयवासिना । उदङ्मुखी ह्यधोदृष्टिः प्रांजलिर्वाक्यमब्रवीत् ॥४७॥

असाधारण वीर हैं । कोई भी योद्धा इसके सामने नहीं टिक सका। विधाताका मैं दसवाँ पुत्र हूँ। आज तक मैं कभी झूठ नहीं बोला । अनेक वर्षोंतक मैंने घोर तपस्या की है । यदि सीता किसी तरह भी पापाचारिणी होती तो मैं इसके हाथोंका जलतक न ग्रहण करता। इतना कहकर वाल्मीकिने कुशको रामके दाहिनी बगल तथा लवको बायीं ओर बिठला दिया और स्वयं उसके सामने एक ऊँचे आसनपर बैठे। रामने बड़े स्नेहसे उन बच्चोंका आलिंगन किया, माथा सूँघा और लवके मस्तकपर अपना दाहिना हाथ रखकर कुशके समान ही अवस्थाका उसको भी बना दिया ॥ २७-३४ ॥ इसके अनन्तर रामने सीताकी ओर देखा तो सीताकी दोनों भुजायें ज्योंकी त्यों ठीक देखीं । उन्होंने अज्ञातभावसे लक्ष्मणको आज्ञा दी कि उस समय जो सीताकी भुजा काटकर जङ्गलसे तुम दिखाने लाये थे, यदि वह सुरक्षित रीतिसे रक्खी हो तो यहाँ ले आओ ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ लक्ष्मणने "बहुत अच्छा" कहकर पेटीमें रक्खी भुजा लाकर रामके सामने रख दी ॥ ३७ ॥ इतने दिन बीतनेपर भी ठीक सीताकी भुजाओंके समान लटकते मांसके लोथड़े तथा रुधिरसंयुत भुजाओंको देखकर सभामें जितने लोग बैठे थे, वे बड़े विस्मित हुए ॥ ३८ ॥ इसी बीच लोगोंके देखते ही देखते वह विश्वकर्माकी बनायी भुजा गायब हो गयी। यह कौतुक देखकर लोगोंको और भी आश्चर्य हुआ। तब रामने विस्मित होकर वाल्मीकिसे कहा—हे महाप्राज्ञ ! मुझे तो आपकी बातोंसे ही विश्वास हो गया था कि सीता परम पवित्र है ॥ ३९-४१ ॥ लङ्कामें भी मैंने सीताकी शपथ देखी थी। उस समय देवताओंके समक्ष शपथ लेनेपर ही मैंने इसे अङ्गीकार किया था ॥ ४२ ॥ तथापि लोकापवादके भयसे पवित्र समझकर भी मैंने सीताका परित्याग किया। आप मेरे इस अपराधको क्षमा करें ॥ ४३ ॥ यह भी मैं जानता हूँ कि कुश मेरा पुत्र है और लवको आपने सीताके शापभयसे बनाया था ॥ ४४ ॥ यह सब होते हुए भी इन संसारवालोंको विश्वास दिलानेके लिए सीता इस सभामें शपथ ले ॥ ४५ ॥ यदि इस जनसमाजमें और इस संसारमें सीता शुद्ध सिद्ध हो गयी तो मैं इसको फिरसे अङ्गीकार कर लूँगा। उस समय सीताकी शपथको देखनेके लिए वहाँ बैठे हुए सब लोग उत्सुक हो रहे थे ॥ ४६ ॥ तदनन्तर सभामें रेशमी कपड़े पहने सीता खड़ी हो गयीं और हाथ

रामादन्यमहं चेद्धि मनसाऽपि न चिन्तये। तर्हि मे धरणी देवि विवरं दातुमर्हसि ॥४८॥
एवं शपंत्याः सीतायाः प्रादुरासीन्महाद्भुतम्। भूतलाद्दिव्यमत्यर्थं सिंहासनमनुत्तमम् ॥४९॥
भुवो विवरमार्गेण समानीतं मनोरमम्। नागेन्द्रैर्ध्रियमाणं तद्दिव्यदेहं रविप्रभम् ॥५०॥
भूदेवी जानकीं दोर्भ्यां धृत्वा दुहितरं निजाम्। स्वागतासीति तामुक्त्वाऽऽसने सा संन्यवेशयत् ॥५१॥
वस्त्रालङ्कारस्रग्गंधसुगंधैः पूज्य मैथिलीम्। समालिंग्याथ भूदेवी वीजयामास सादरम् ॥५२॥
तदा शनैः शनैर्भूम्यां गुप्तं सिंहासनं त्वभूत्। सिंहासनस्थां वैदेहीं प्रविशन्तीं रसातलम् ॥५३॥
दृष्ट्वाऽऽकाशस्थिता देवस्त्रियः सर्वास्तु सम्भ्रमात्। निरन्तराभिर्वैदेहीं ववर्षुः पुष्पवृष्टिभिः ॥५४॥
साधुवादश्च सुमहान्बभूव सुरकीर्तितः। अन्तरिक्षे च भूमौ च सर्वं स्थावरजङ्गमम् ॥५५॥
तदा बभूव चकितं सीताशपथदर्शनात्। ऊचुस्ते वसुधा वाचो वानराश्च नरादिकाः ॥५६॥
केचिच्चिन्तापराः केचिदासन्ध्यानपरायणाः। केचिद्रामं निरीक्षन्तः केचित्सीतामचेतसः ॥५७॥
मुहूर्तमात्रं तत्सर्वं तूष्णींभूतमचेतनम्। प्रविशन्तीं भुवं सीतां दृष्ट्वा संमोहितं जगत् ॥५८॥
एतस्मिन्नन्तरे रामः प्रविशन्तीं हि भूतले। विदेहजां तदा स्पृष्ट्वा वामहस्तेन संभ्रमात् ॥५९॥
यां दधार करेणादौ धृत्वा हस्तेन वै भुवम्। ततस्तां प्रार्थयामास भुवं स रघुनन्दनः ॥६०॥

श्रीरामचन्द्र उवाच

देवि त्वं सर्वलोकानां निवासस्थानमुत्तमम्। असि लोकैकमाता त्वं महानीरोर्ध्वतः सदा ॥६१॥
वर्तसे पुण्यरूपा त्वं वसुदा सकलान् जनान्। स्वजठरादौषधीस्त्वं करोषि विश्वतृप्तिदाः ॥६२॥
त्वं दुर्गा त्वं स्वरा लक्ष्मीर्मम विष्णोः प्रिया शुभा। त्वमेवाद्यात्र मे शक्तिर्निर्मिताऽसि मयैव हि ॥६३॥
निजोदराद्ददासि त्वं धातून्प्रीत्या जनान्सदा। श्रमायुक्ता त्वमेवासि खन्ताखन्तादिकर्मसु ॥६४॥

जोड़कर नीची निगाह तथा ऊपर मुँह करके बोलीं-॥ ४७ ॥ हे पृथ्वी माता ! यदि रामके सिवाय अन्य किसीको मैंने अपने हृदयसे भी न सोचा हो तो आप मुझे ऐसी जगह दीजिए कि जिससे मैं आपमें समा जाऊँ ॥ ४८ ॥ इस प्रकार सीताके प्रार्थना करनेपर तुरन्त एक दिव्य सिंहासन पृथ्वीके भीतरसे निकला। उसको बड़े-बड़े नाग अपने सिरपर उठाये हुए थे। सूर्यके समान देदीप्यमान उन नागोंका प्रकाश था ॥ ४९ ॥ ५० ॥ इतनेमें साक्षात् पृथ्वी देवीने अपनी दोनों भुजाओंसे सीताका स्वागत किया। फिर छातीसे लगा तथा गोदमें लेकर उन्हें उस सिंहासनपर बिठाल दिया। इसके अनन्तर वस्त्र-अलंकार-माला-फल आदिसे सीताकी पूजा की और छातीसे लगाकर पंखा झलने लगीं ॥ ५१ ॥ ५२ ॥ इसके बाद धीरे-धीरे वह सिंहासन पृथ्वीके भीतर घुसने लगा। सिंहासनपर बैठी हुई सीताको पातालमें जाती देखकर आकाशमें स्थित सारी देवांगनाएँ उनपर पुष्पोंकी वर्षा करने लगीं ॥ ५३ ॥ ५४ ॥ आकाश और पृथ्वीमें देवताओं और मनुष्योंने साधुवाद किया। सीताकी उस शपथको देखकर समस्त स्थावर-जंगम प्राणी चकित हो गये और अपनी सुधि-बुधि भूलकर परस्पर बातें करने लगे ॥ ५५ ॥ ५६ ॥ उनमें कुछ लोग चिन्तित थे और कुछ ध्यानमग्न। कुछ लोग रामको देख रहे थे। कुछ लोग अपनी सुधि-बुधि भूलकर सीताकी ओर निहार रहे थे ॥ ५७ ॥ मुहूर्तभरके लिए वहाँ सारा समाज सन्न हो गया। सीताको पृथ्वीके भीतर समाती देखकर समस्त संसार मुग्ध हो गया ॥ ५८ ॥ राम सीताको पृथ्वीमें धँसती देखकर अपने सिंहासनसे कूद पड़े और पृथ्वीके पास जा पहुँचे। वे उनका हाथ अपने हाथसे पकड़कर इस प्रकार पृथ्वीसे प्रार्थना करने लगे ॥ ५९ ॥ ६० ॥ श्रीरामचन्द्र बोले—हे देवि ! आप सारे संसारकी निवासभूमि हैं। समस्त जगत्की माता होकर महानीरके ऊपर आप स्थित हैं ॥ ६१ ॥ आप पुण्यरूपा हैं। समस्त जनोंको हर प्रकारकी सम्पत्तियां देनेकी सामर्थ्य रखती हैं। आप अपने उदरसे अनेक प्रकारकी ओषधियाँ उत्पन्न करके सबकी रक्षा करती हैं। आप दुर्गा, स्वरा और विष्णुकी प्रिया लक्ष्मी हैं। आप आदिशक्ति हैं और मैंने ही आपको बनाया है ॥ ६२ ॥ ६३ ॥ आप अपने उदरसे भाँति-भाँतिके धातु निकालकर

जानकी तव कन्येयं श्वश्रूस्त्वं मेऽधुना त्विह । कन्यादानं कुरु मुदा त्वया पूर्वं कृतं न हि ॥६५॥
प्रसीद देवि नोचेन्मे त्वयि क्रोधो भविष्यति ।
श्रीरामदास उवाच
इति संप्रार्थिता चापि राघवेण महात्मना ॥६६॥
नारी काठिन्यभावात्सा नाशृणोद्राघवेरितम् । शनैः शनैरधः सीतासहिता सा जगाम ह ॥६७॥
तां गच्छन्तीं पुनर्दृष्ट्वा भुवं रामो धृतामपि । बभूव क्रोधताम्राक्षस्तदा लक्ष्मणमब्रवीत् ॥६८॥
चापमानय सौमित्रे शिक्षयेऽहं भुवं त्विमाम् । मत्क्षुरोपमबाणेन वसुधेयं विदेहजाम् ॥६९॥
मामद्य दास्यति क्षिप्रमस्य घातं न रोचये । ततोऽसौ लक्ष्मणानीतं करे कोदण्डमुत्तमम् ॥७०॥
धृत्वा ज्यारोपणं कृत्वा शरसंधानमातनोत् । तदा ववौ महान्वायुश्चुक्षुभे लवणार्णवः ॥७१॥
तारा निपेतुर्धरणीं बभूवुः सरजा दिशः । चकम्पे धरणी सापि त्राहीति वदती मुहुः ॥७२॥
कराभ्यां जानकीं धृत्वा रामस्यांके न्यवेशयत् । श्रीरामपदयोः पृथ्वी शिरसा नमनं व्यधात् ॥७३॥
तदा खे देववाद्यानि नेदुः कुसुमवृष्टिभिः । ववर्षुर्जानकीं राम देवसंघा मुदान्विताः ॥७४॥
ततो रामोऽपि तां दृष्ट्वा पदयोर्नमतीं भुवम् । स्वक्रोधं शान्तमकरोत्कराभ्यां चापमार्गणौ ॥७५॥
विसृज्योत्थापयामास स्वकरेणावनिं प्रभुः । ततः सा राघवं नत्वा प्रसाद्य च पुनः पुनः ॥७६॥
दत्त्वा विदेहकन्यायै तं सिंहासनमुत्तमम् । सीतां स्तुत्वाऽथ तां पृष्ट्वा तथा संपूजिताऽपि च ॥७७॥
आमन्त्र्य राघवं पृथ्वी क्षणादंतर्हिताऽभवत् । तदा सीतां जनाः सर्वे पुनर्जातां तु मेनिरे ॥७८॥
जयशब्दैः प्रणमुस्तां चक्रुः पूजां पृथक् पृथक् । ददौ दानान्यनेकानि तदा रामो मुदान्वितः ॥७९॥
नववाद्यनिनादाश्च सम्बभूवुः समन्ततः । ननृतुर्वारनार्यश्च तुष्टुवुर्वन्दिमागधाः ॥८०॥

संसारी लोगोंको प्रीतिपूर्वक प्रदान करती हैं। सूक्त और असूक्त जितने भी कर्म हैं, उनमें आप क्षमारूपा हैं ॥ ६४ ॥ यह सीता आपकी कन्या है । इस नाते आप मेरी सास हैं । आपने विवाहके समय कन्यादान नहीं किया था, सो अब कर दीजिए ॥ ६५ ॥ हे देवि ! आप मेरेपर प्रसन्न हो जायँ । नहीं तो मैं आपके ऊपर क्रुद्ध हो जाऊँगा । श्रीरामदासने कहा—रामके इस तरह प्रार्थना करनेपर भी पृथ्वीने उनकी एक न सुनी । क्योंकि स्वभावसे ही नारियोंका हृदय कठिन हुआ करता है। सीता धीरे-धीरे पृथ्वीतलमें समाती जा रही थीं ॥ ६६ ॥ ६७ ॥ विनय करनेपर भी जब रामने देखा कि पृथ्वी मेरी बातोंपर कुछ ध्यान नहीं दे रही है तो मारे क्रोधके उनकी आँखें लाल हो गयीं और लक्ष्मणसे बोले—॥ ६८ ॥ लक्ष्मण ! मेरा धनुष तो उठा लाओ, मैं पृथ्वीको उसके दुराग्रहका दण्ड दे दूँ । मेरे छुरे सदृश तीक्ष्ण बाणसे डरकर यह सीताको लौटा देगी । इसे मैं मारना नहीं चाहता, चाहता हूँ केवल सीताको इसके हाथोंसे लौटना । तदनुसार तुरन्त लक्ष्मण धनुष उठा लाये । रामने उसे लेकर रोदा ठोक किया और बाण चढ़ाया । उस समय जोरोंसे आँधी चलने लगी, समुद्रमें प्रलयकालकी लहरें उठने लगीं, तारे टूट-टूटकर गिरने लगे और चारों दिशाएँ धूलसे आच्छादित हो गयीं । ऐसी अवस्थामें "त्राहि-त्राहि" करती हुई पृथ्वी काँपने लगी और उसने अपने हाथों सीताको उठाकर रामकी गोदमें बिठा दिया । इसके बाद पृथ्वीने सिर झुकाकर रामके चरणोंकी वन्दना की ॥ ६९–७३ ॥ उस समय स्वर्गमें देवताओंने देववाद्य बजाये और राम तथा सीतापर फूलोंकी वर्षा की ॥ ७४ ॥ इसके बाद जब रामने देखा कि पृथ्वी मेरे चरणमें झुकी हुई विनती कर रही है तो अपना कोप शान्त कर लिया तथा धनुष-बाणका परित्याग करके अपने दोनों हाथोंसे पृथ्वीको उठाया । इसके अनन्तर पृथ्वीने फिर भगवान्‌को बार-बार नमस्कार किया, प्रार्थना की और सीता तथा वह सुवर्णमय सिंहासन रामको समर्पण कर दिया । फिर सीताकी स्तुति की । सीताने भी पृथ्वीकी विधिवत् पूजा की । तत्पश्चात् रामकी आज्ञा लेकर क्षण भरके भीतर ही पृथ्वी अन्तर्धान हो गयी । उस समय सभामें बैठे हुए लोगोंने सीताका पुनर्जन्म समझा ॥ ७५–७८ ॥ सब लोगोंने सीताकी विधिवत् पूजा की और जय-जयकार करके प्रणाम किया । तब रामने अनेक प्रकारके दान दिये ॥ ७९ ॥ भाँति-भाँतिके नवीन बाजे बजे,

सीतायाः शपथो यत्र जाह्नव्या दक्षिणे तटे । सीताकुण्डमिति ख्यातं तत्र तीर्थं बभूव ह ॥८१॥
पातालस्थं जलं पुण्यं सन्तप्तमनलोपमम् । वर्ततेऽद्यापि तत्तीर्थं सीतोष्णश्वासकारणात् ॥८२॥
तदत्र जानकीकुण्डं स्मरणाद्भयनाशनम् । पत्युरायुष्यवृद्धयर्थं स्त्रीभिः सेव्यं सदा शुचि ॥८३॥
ततः सीतायुतो रामः पुत्राभ्यां सहितो मुदा । वस्त्रालङ्कारयुक्ताभ्यां स्नानं ह्यवभृथाह्वयम् ॥८४॥
चकार कथितोत्साहैः पूर्ववच्च सविस्तरम् । अथ यज्ञशतं पूर्णमेवं कृत्वा रघूत्तमः ॥८५॥
जातकर्मादिसंस्कारान् लवस्य विधिनाऽकरोत् । चकार नानादानानि देवान् संपूज्य भक्तितः ॥८६॥
ततो मुनीश्वरान् पूज्य पूजयामास पार्थिवान् । जनकं च सुमेधां च पूजयामास राघवः ॥८७॥
विससर्ज ऋषीन्सर्वान् ऋत्विजो ये समागताः । द्विजाद्यास्तान् धनाद्यैश्च तोषयामास सादरात् ॥८८॥
ततो विसृज्य विप्रांश्च पार्थिवैः सह राघवः । कुमाराभ्यां सीतया च बन्धुभिश्चागमत्पुरीम् ॥८९॥
नीराजितः पुरस्त्रीभिर्वारणस्थो रघूत्तमः । सीतया तनयाभ्यां च ययौ निजगृहं प्रति ॥९०॥
तदा महोत्सवश्चासीदयोध्यायां समन्ततः । चिरकालेन वैदेह्या दर्शनं च जनैः कृतम् ॥९१॥
ततो नृपादिकान् पूज्य विससर्ज रघूद्वहः । जनकं च सुमेधां च ददावाज्ञां निजां पुरीम् ॥९२॥
ततः सीतायुतो रामः पुत्राभ्यां बन्धुभिः सह । पूर्ववत्स सुखं रेमे चिरकालं रघूद्वहः ॥९३॥
रामेण सीतया सार्धं सहस्राणि त्रयोदश । वर्षाण्यत्र कृतं राज्यं कस्मिन्कल्पे द्विजोत्तम ॥९४॥
एकादश सहस्राणि वत्सराणि महान्ति च । तथैकादश वर्षाणि मासा एकादशैव तु ॥९५॥
दिनान्येकादशैवात्र रामेण सीतया सह । अयोध्यायां कृतं राज्यं कस्मिन्कल्पे द्विजोत्तम ॥९६॥
एकादश सहस्राणि चैकादश दिनानि च । सप्तद्वीपवतीपालो रामोऽभूत् कल्पभेदतः ॥९७॥
दशवर्षसहस्राणि दशवर्षशतानि च । रामेण सीतया राज्यं कस्मिन्कल्पे कृतं द्विज ॥९८॥

इति श्रीशतकोटिरामचरितांतर्गते श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये
जन्मकांडे जानकीग्रहणं नामाष्टमः सर्गः ॥ ८ ॥

वेश्याओंने नृत्य किया और बन्दीजनों तथा मागधोंने विविध प्रकारसे स्तुति की ॥ ८० ॥ जाह्नवीके दक्षिणी तटपर जहाँ सीताने शपथ ली थी, वह सीताकुण्डके नामसे एक विख्यात तीर्थ बन गया ॥ ८१ ॥ सीताके उष्ण उच्छ्वास निकलनेके कारण आज भी वहाँ अग्निके सदृश तपता हुआ पवित्र जल निकलता रहता है ॥८२॥ इस जानकीकुण्डके स्मरणमात्रसे सब भय नष्ट हो जाते हैं। अपने पतिकी आयुवृद्धिके लिए स्त्रियोंको इसमें स्नान करना चाहिये ॥ ८३ ॥ इसके बाद सीता तथा अपने पुत्रोंके साथ रामने यज्ञान्तका अवभृथ स्नान किया। यह अवभृथ स्नान भी पूर्वकथित स्नानके सदृश ही उत्साहके साथ हुआ। इस प्रकार रामने सौ यज्ञ पूर्ण करके विधिपूर्वक लवका जातकर्मादि संस्कार किया। अनेक प्रकारके दान दिये और देवताओंका विधिवत् पूजन किया। इसके अनन्तर यज्ञमें आये हुए समस्त ऋषियों तथा राजाओंकी पूजा की और जनक तथा सुमेधाका भी पूजन किया। इसके बाद ऋषियों तथा ऋत्विजोंको धनादिसे सन्तुष्ट करके विदा किया ॥ ८४-८८ ॥ साथ ही ब्राह्मणों तथा राजाओंको भी विदा किया और सीता, पुत्रों तथा बन्धु-बान्धवोंके साथ राम अपनी अयोध्यापुरीको गये ॥८९॥ अयोध्यामें ज्यों ही राम हाथीपर सवार होकर पहुँचे, त्यों ही नगरकी स्त्रियोंने उनकी आरती उतारी और सब लोग अपने महलोंमें गये। उस समय अयोध्यामें चारों ओर महान् उत्सव हो रहा था। बहुत दिनोंसे वियुक्त सीताका लोगोंने दर्शन पाया ॥ ९० ॥ ९१ ॥ कई दिनों बाद रामने जनक, सुमेधा तथा अन्य राजाओंको अपने-अपने नगर जानेकी आज्ञा दी ॥ ९२ ॥ इसके अनन्तर फिर पहलेके समान रामचन्द्रजी सीता तथा पुत्रोंके साथ आनन्दपूर्वक अयोध्यामें रहने लगे ॥ ९३ ॥ किसी कल्पमें रामने सीताके साथ तेरह हजार वर्ष तक राज्य किया, किसी कल्पमें ग्यारह हजार वर्ष तथा किसी कल्पमें ग्यारह हजार वर्ष ग्यारह मास और ग्यारह दिनतक राज्य किया ॥ ९४-९७ ॥ किसी कल्पमें रामने दस हजार दस सौ वर्ष तक राज्य किया है ॥ ९८ ॥ इति श्रीशतकोटिरामचरितांतर्गते श्रीमदानन्दरामायणे पं० रामतेजपाण्डेय-कृत'ज्योत्स्ना'भाषाटीकासहिते जन्मकाण्डे अष्टमः सर्गः ॥ ८ ॥

नवमः सर्गः

(रामादिके बालकोंका उपनयन-संस्कार)

श्रीरामदास उवाच

अथोर्मिला मांडवी च श्रुतकीर्तिः सहैव ताः । बभूवुरंतरात्किंचिदंतर्वत्न्यो महोदराः ॥ १ ॥
तासां चकार सीता सा कौतुकानि च सादरम् । तासां पुंसवनादीनि विविधानि रघूत्तमः ॥ २ ॥
आहूय पत्न्या जनकं कारयामास बन्धुभिः । दोहदान् पूरयामासुस्तासां पौरसुहृत्स्त्रियः ॥ ३ ॥
तासां सर्वान् समुत्साहानेवं कृत्वा रघूत्तमः । वस्त्रालंकारभूषाभिस्तोषयामास ताः सुखम् ॥ ४ ॥
अथोर्मिला सा तनयं सुषुवे परमोदयम् । ततः सा माण्डवी पुत्रं सुषुवे परमे दिने ॥ ५ ॥
ततः सा श्रुतकीर्तिश्च सुषुवे यमलौ सुतौ । कालांतरेणोर्मिलाया द्वितीयस्तनयोऽभवत ॥ ६ ॥
तथाऽपरस्तु मांडव्याः पुत्रः कालांतरादभूत् । जातकर्मादिसंस्कारान् कृत्वा रामः पृथक् पृथक् ॥ ७ ॥
चकार गुरुणा विप्रैर्महोत्साहैर्यथाविधि । लक्ष्मणस्यांगदो ज्येष्ठश्चित्रकेतुः कनिष्ठकः ॥ ८ ॥
मांडव्याः पुष्करो ज्येष्ठः कनिष्ठस्तक्षनामकः । श्रुतकीर्त्याः सुबाहुश्च यूपकेतुः परः स्मृतः ॥ ९ ॥
एवं कृतानि नामानि गुरुणा विधिपूर्वकम् । एतेऽन्तरेण संजाताः काले काले क्रमेण च ॥१०॥
तेऽत्रैकत्र मया प्रोक्ताः संक्षेपेणांग त्वत्पुरः । सर्वेषां जन्मकालेषु सुराः सर्वे मुदान्विताः ॥११॥
वादयामासुर्वाद्यानि ववर्षुः पुष्पवृष्टिभिः । मातृभिः पितृभिर्युक्तान् बालकान् सूर्यसन्निभान् ॥१२॥
राजद्वारि महानासीदुत्सवश्च नृपाज्ञया । निनेदुर्नववाद्यानि ननृतुश्चाप्सरोगणाः ॥१३॥
वादयन्ति स्म तूर्याणि तुष्टुवुर्बन्दिमागधाः । नगरीं शोभयामासुः पताकाध्वजतोरणैः ॥१४॥
सुहृदः पार्थिवाः सर्वे रामादीनां च पूजनम् । वस्त्रैराभरणाद्यैश्च चक्रिरे ते पृथक् पृथक् ॥१५॥
ददुर्दानानि विप्रेभ्यो रामाद्या बंधवश्च ते । ब्राह्मणान् भोजयामासुः श्राद्धानि चक्रुरादरात् ॥१६॥

श्रीरामदास बोले-कुछ काल बाद उर्मिला, माण्डवी तथा श्रुतकीर्तिने साथ साथ गर्भ धारण किया ॥ १ ॥ सीताने इस समयपर बड़ी खुशियाली की और रामने विधिपूर्वक पुंसवनादि संस्कार किये ॥ २ ॥ इस संस्कारके समय जनक तथा सुमेधाको भी रामने बुलवा लिया और उन्हींके द्वारा यह कार्य सम्पन्न हुआ । पुरवासिनी स्त्रियोंने उर्मिलादिकी जो-जो इच्छा हुई, सो पूर्ण किया ॥ ३ ॥ रामने इस प्रकार उत्सव करके अनेक तरहके वस्त्र और आभूषण दिये ॥ ४ ॥ इसके बाद समय पूरा होनेपर उर्मिलाने एक परम तेजस्वी पुत्र उत्पन्न किया और दूसरे दिन माण्डवीके भी एक पुत्ररत्न उत्पन्न हुआ ॥ ५ ॥ इसके अनन्तर श्रुतकीर्तिके एक साथ दो पुत्र उत्पन्न हुए । कुछ दिनों बाद उर्मिलाने एक दूसरा पुत्र और उत्पन्न किया ॥ ६ ॥ इसी प्रकार कालांतरमें माण्डवीके भी एक और पुत्र हुआ । रामने अपने कुलगुरु वसिष्ठके साथ उन पुत्रोंका जातककर्मादि संस्कार किया । लक्ष्मणके ज्येष्ठ पुत्रका नाम अङ्गद और दूसरे बेटेका नाम चित्रकेतु पड़ा ॥ ७ ॥ ८ ॥ माण्डवीके ज्येष्ठ पुत्रका नाम पुष्कर तथा कनिष्ठका तक्ष नाम पड़ा । इसी तरह श्रुतकीर्तिके ज्येष्ठ पुत्रका नाम सुबाहु तथा कनिष्ट बेटेका नाम यूपकेतु पड़ा ॥ ९ ॥ १० ॥ गुरु वसिष्ठने विधिपूर्वक सबका नामकरणादि संस्कार किया । हे शिष्य ! यहाँपर मैंने तुम्हें संक्षेपमें एक ही एक पुत्रका नाम बतलाया है । इनके सिवाय भी बहुतसे पुत्र हुए । प्रत्येक पुत्रके जन्मसमयपर देवतागण हर्षपूर्वक अपने बाजे बजाते और उनपर तथा उनके माता-पितापर पुष्पोंकी वृष्टि किया करते थे । रामचन्द्रजीके आज्ञानुसार राजद्वारपर बड़े-बड़े उत्सव रचाये जाते, नये-नये बाजे बजते और वेश्याएँ नृत्य करती थीं । बन्दीजन तथा सूत-मागध आ-आकर विविध प्रकारकी स्तुतियाँ किया करते थे । पताका-ध्वजा तथा तोरणादिकोंसे अयोध्या नगरीका शृङ्गार किया जाता था । रामके मित्र समस्त राजे अनेक प्रकारके वस्त्राभूषणोंको देखकर उनका पूजन करते थे ॥ ११-१५ ॥ राम-लक्ष्मण आदि चारों भ्राता भी ब्राह्मणोंको दान देते, उन्हें भोजन कराते एवं नान्दीश्राद्धादि कृत्योंको

एवमष्टौ कुमारास्ते रामादीनां मनोरमाः । ववृधुश्चंद्रवदना मातृभिर्लालिताः सुखम् ॥१७॥
शृंखलाबद्धरुक्मादिनिर्मितेषु वरेषु च । प्रखेषु हि कुमारास्ते विरेजू रुक्मभूषिताः ॥१८॥
भाले स्वर्णमयाश्वत्थपर्णान्यतिमहान्ति च । मुक्ताफलाग्रलंबीनि शोभयंति स्म बालकान् ॥१९॥
कंठे रत्नमणिव्रातमध्यद्वीपिनखांचिताः । कर्णयोः स्वर्णसंपन्नरत्नार्जुनसुतालकाः ॥२०॥
सिंजानमणिमंजीरकटिसूत्रांगदैर्युताः । स्मितवक्त्राल्पदशना इंद्रनीलमणिप्रभाः ॥२१॥
अंगणे रिंगमाणाश्च संस्कारैः संस्कृताः शुभाः । ते पितॄन् रञ्जयामासुर्मातॄश्चापि विशेषतः ॥२२॥
नानाशिशुक्रीडनकैश्चेष्टितैर्मुखचुंबनैः । बालकृत्रिमयुद्धैश्च गमनैर्मधुरेरितैः ॥२३॥
ततस्ते बालकाः सर्वे वस्त्रालंकारभूषिताः । सभायां राघवं नत्वा वस्थुः सिंहासनोपरि ॥२४॥
एकदा राघवः प्राह वसिष्ठं सदसि स्थितम् । अवलोकय बालानां त्वं चिह्नानि यथाक्रमम् ॥२५॥
तच्छ्रुत्वा रामवचनं वसिष्ठो भूसुरैः सह । आदौ कुशं समाहूय दृष्ट्वा रामं वचोऽब्रवीत् ॥२६॥

वसिष्ठ उवाच

पंचसूक्ष्मः पंचदीर्घः सप्तरक्तः षडुन्नतः । त्रिपृथुर्लघुगंभीरो द्वात्रिंशल्लक्षणस्त्वयम् ॥२७॥
पंच दीर्घाणि शस्तानि यथा दीर्घायुषोऽत्र च । भुजौ नेत्रे हनुर्जानू नासा च तनयस्य ते ॥२८॥
ग्रीवाजंघामेहनैश्च त्रिभिर्ह्रस्वोऽयमीडितः । स्वरेण सत्त्वनाभिभ्यां त्रिगंभीरः शिशुः शुभः ॥२९॥
त्वक्केशांगुलिदशनाः पर्वाण्यङ्गुलिजान्यपि । तथाऽस्य पंच सूक्ष्माणि सूचयंति परां श्रियम् ॥३०॥
पाण्यंघ्रितलनेत्रांते तालुजिह्वाधरोष्ठकम् । सप्तारुणं च सनखमस्मिन् राज्यसुखप्रदम् ॥३१॥
वक्षः कुक्ष्यालिकस्कन्धकरवक्त्रं षडुन्नतम् । तथाऽत्र दृश्यते बाले महदैश्वर्यभोगभाक् ॥३२॥

किया करते थे। इस तरह रामादि चारों भ्राताओंके आठों कुमार—जिनका चन्द्रमाके समान मुखमण्डल था—माताओंसे लालित होकर बढ़ते जाते थे। सोनेके जंजीरोंसे बंधे हुए एवं तरह-तरहके रत्नोंसे सुसज्जित पालनोंपर वे आनन्दकी किलकारियाँ भरा करते थे ॥ १६ ॥ उन बच्चोंको कितने ही प्रकारके स्वर्णमय आभूषण पहनाये जाते और माथेपर पीपलके पत्तेकी नाईं सुवर्णका पत्ता बनाकर लगाया जाता था। जिसमें छोटे-छोटे मोतियोंके झुब्बे लटकते हुए बड़े भले लगते थे ॥ १७ ॥ १८ ॥ गलेमें रत्नों और मणियोंके समूहके बीचमें व्याघ्रका नख शोभायमान हो रहा था। कानोंमें सुवर्णके कुण्डल झूलते रहते थे और उनमें लगा हुआ हीरा प्रकाशित हो रहा था ॥ १९ ॥ २० ॥ रुनझुन करती हुई मणियोंकी करधनी पड़ी थी। हाथोंमें कङ्कण तथा बिजायठ अपना असाधारण निखार दिखा रहा था। जिस समय वे बच्चे तनिक मुस्करा देते तो इन्द्रनीलमणिके समान उनके छोटे-छोटे दाँत दीखने लगते थे। हाथ और पैरके सहारे आँगनमें रेंगते हुए वे बालक नाना प्रकारके बालविनोद, तरह-तरहकी चालें, मुखचुम्बन, बालकोंमें कृत्रिम युद्ध और मीठी-मीठी बोलीसे अपने-अपने माता-पिताको आनन्दित करते रहते थे। कुछ दिनों बाद वे अच्छे-अच्छे वस्त्राभूषण पहिनकर राजसभामें जाते और वहाँ नियमतः रामचन्द्रको प्रणाम करके अपने आसनपर बैठ जाते थे ॥ २१–२४ ॥ एक दिन राजसभामें बैठे हुए वसिष्ठजीसे रामने कहा—आप कृपया इन बालकोंका शुभाशुभ लक्षण देखकर हमें बतलाइए। यह बात सुनकर वसिष्ठने सबसे पहले कुशको अपने सामने बुलाया और रामसे कहने लगे—॥ २५ ॥ २६ ॥ पाँच प्रकारके लक्षण सूक्ष्म, पाँच ही तरहके दीर्घ, सात रक्त, छः उन्नत, तीन विस्तृत, तीन ही तीन लघु तथा तीन गंभीर सब मिलाकर ३२ प्रकारके लक्षण होते हैं ॥ २७ ॥ जैसे कि इस चिरंजीवी कुशके हाथ, नेत्र, बाहु, घुटने, नाक ये पाँच दीर्घ हैं। अतएव ये बहुत अच्छे हैं। ग्रीवा, जंघा और लिंग इन तीनोंके छोटे होनेसे इसके तीन ह्रस्व हैं। ये भी अच्छे हैं। शब्द, बल तथा नाभि ये तीन गंभीर हैं। इसकी त्वचा, केश, उँगलियाँ, दाँत, शरीरकी संधियाँ तथा नख ये पाँच सूक्ष्म इसकी श्रीकी सूचना दे रहे हैं। हाथ, पैर, तलवे, नेत्रके आस-पासवाले भाग तथा तालु, जिह्वा, अधरोष्ठ और नख ये रक्तवर्णके होनेसे राज्यसुख देनेवाले हैं ॥ २८–३१ ॥ छाती, पेट, कन्धा,

ललाटकटिवक्षोभिस्त्रिविस्तीर्णो यथा ह्यसौ । सर्वतेजो महैश्वर्यं तथा प्राप्स्यति नान्यथा ॥३३॥
अच्छिन्नां तर्जनीं प्राप्य तथा रेखाऽस्य दृश्यते । कनिष्ठामूलनिर्याता दीर्घायुष्यं यया भवेत् ॥३४॥
कमठपृष्ठकठिनावकर्मकरणौ करौ । राज्यहेतू शिशोरस्य पादौ चाध्वनि कोमलौ ॥३५॥
पादौ समांसलौ रक्तौ समौ सूक्ष्मौ सुशोभनौ । समगुल्फौ स्वदेहेन स्निग्धावैश्वर्यसूचकौ ॥३६॥
स्वल्पाभिः कररेखाभिश्चारक्ताभिः सदा सुखी । लिंगेन कृशह्रस्वेन राजराजो भविष्यति ॥३७॥
उत्कटासनगुल्फस्फिङ्नाभिरस्यापि वर्तुला । दक्षिणावर्तमरुण महदैश्वर्यसूचकम् ॥३८॥
धारैका मूत्रके यस्य दक्षिणावर्तिनी यदि । गंधश्च मीनमधुनोर्यदि वीर्यं तदा नृपः ॥३९॥
विस्तीर्णौ मांसलौ स्निग्धौ भुजावस्य सुखोचितौ । वामावर्तौ सप्रलंबौ भुजौ भूरक्षणोचितौ ॥४०॥
श्रीवत्सवज्रचक्राब्जमत्स्यकोदंडदंडभृत् । तथाऽस्य करगा रेखा यथा स्यात्त्रिदिवस्पतिः ॥४१॥
द्वात्रिंशद्दशनश्चायं वरकंबुशिरोधरः । क्रौंचदुदुभिहंसाभ्रस्वरः सर्वेक्षराधिकः ॥४२॥
मधुपिंगलनेत्रोऽसौ नैनं श्रीस्त्यजति क्वचित् । पंचरेखाललाटस्तु तथा सिंहोदरः शुभः ॥४३॥
ऊर्ध्वरेखांकितपदो निःश्वसन्पद्मगन्धवान् । अच्छिद्रपाणिः सुनसो महालक्षणवानयम् ॥४४॥
एवं कुशं निरीक्ष्याथ सर्वान् दृष्ट्वा क्रमेण सः । लवादीनां सुचिह्नानि पूर्ववत्प्राह राघवम् ॥४५॥
ततः प्रीतमना रामः पूजयामास तं गुरुम् । वस्त्रैराभरणैश्चैव ययौ हर्षान्वितो गृहम् ॥४६॥
एतस्मिन्नंतरे सीता भूमिदत्तवरासने । संस्थिता चामरैर्दिव्यैर्दासीभिः परिवीजिता ॥४७॥
सखीभिः सेविता रम्या धृताधोंकोपबर्हणा । मुकुरे स्वं निरीक्षंती मुखं चन्द्रनिभं वरम् ॥४८॥

हाथ, पसलियाँ और मुँह ये छः उन्नत दीखते हैं, जो महान् ऐश्वर्यभोगके दाता हैं ॥३२॥ मस्तक, कमर और छाती ये तीन विस्तीर्ण हैं, जो सब ऐश्वर्योंको देनेवाले हैं। इसमें कोई सन्देह नहीं है ॥ ३३ ॥ हाथकी एक रेखा ठीक तर्जनी पर्यन्त चली गयी है, वह दीर्घायुसूचक है ॥ ३४ ॥ कछुईकी पीठके समान कड़े-कड़े इसके हाथ राज्यप्राप्तिकी सूचना दे रहे हैं। इसके कोमल, बराबर, लाल, पतले, सुन्दर और बराबर एँडीवाले पैर भी इसके राज्यप्राप्तिकी सूचना दे रहे हैं ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ थोड़ी और लाल रङ्गकी रेखाएँ यह बतलाती हैं कि यह सदा सुखी रहेगा। इसका लिंग पतला और छोटा है। इससे यह जाना जाता है कि यह बच्चा भविष्यमें राजाओंका भी राजा होगा। इसका नितम्ब तथा घुटने मजबूत हैं और नाभि गहरी तथा दक्षिणावर्त होकर लाल रङ्गकी है। ये सब भी महान् ऐश्वर्यकी सूचना दे रहे हैं। लक्षणशास्त्रोंमें कहा गया है कि मूत्रत्यागके समय जिसके लिंगसे मूत्रकी केवल एक धार दक्षिणावर्त बहे और उसके वीर्यसे मछली तथा शहदके समान गन्ध निकले तो वह मनुष्य राजा होता है ॥ ३७–३९ ॥ इसकी बड़ी, मोटी और चिकनी भुजाएँ सुख भोगने लायक हैं। लम्बे और वामावर्त बाहुदण्ड पृथ्वीकी रक्षा करनेके योग्य हैं ॥ ४० ॥ श्रीवत्स, वज्र, चक्र, कमल, मत्स्य, धनुष तथा दण्ड आदिके आकारकी ऐसी रेखाएँ इसके हाथोंमें पड़ी हैं, जिससे ज्ञात होता है कि यह देवताओंका भी राजा होगा ॥ ४१ ॥ इसके मुखमें पूरे बत्तीस दाँत हैं। शङ्खके समान सुन्दर इसकी ग्रीवा है। क्रौंच पक्षी, नगाड़ा, हंस तथा मेघके समान गम्भीर इसका स्वर है। इससे जान पड़ता है कि यह संसारके समस्त राजाओंसे बढ़कर होगा ॥ ४२ ॥ मधु (शहद) के समान पिंगल वर्ण इसकी आँखें हैं, इसके ललाटमें पाँच रेखाएँ हैं, सिंहके समान उदर है, इसके पैरोंकी रेखाएँ ऊपरको गयी हैं, इसके श्वाससे कमलकी गन्ध आती है और सुन्दर-सी नासिका है, इन सब लक्षणोंसे ज्ञात होता है कि यह असाधारण लक्षणसम्पन्न बालक है ॥ ४३ ॥ ४४ ॥ इस प्रकार कुशके लक्षणोंको बतलाकर वसिष्ठने बाकी लव आदि बालकोंके भी लक्षण बतलाये। तदनन्तर रामने अनेक प्रकारके वस्त्रों और आभूषणोंसे वसिष्ठकी पूजा की और उनकी आज्ञा लेकर रामचन्द्रजी अपने महलमें चले गये ॥ ४५ ॥ ४६ ॥ वहाँ सीताजी पृथ्वीके दिये हुए सुन्दर सिंहासनपर बैठी थीं। कितनी ही दासियाँ चँवर-पंखे आदि झल रही थीं। बहुत-सी सखियें तरह-तरहकी सेवामें लगी थीं। उस समय सीताजी पीछे तकिया लगाकर बैठी हुई दर्पणमें अपना मुख देख रही थीं। जब उन्होंने सुना कि

रामस्यागमनं श्रुत्वा संचचालासनाञ्जवात् । ततो ददर्श श्रीरामं बालकैः परिवेष्टितम् ॥४९॥
स्वकट्यां यूपकेतुं च दधानमवरं शिशुम् । तथैव दक्षिणे हस्ते दधानं चांगदं शुभम् ॥५०॥
कुशं लवं पुरस्कृत्य सभायां तं शनैः शनैः । तत्पृष्ठे सा ददर्शाथ लक्ष्मणं बालकान्वितम् ॥५१॥
तक्षं कट्यां पुष्करं च दधानं दक्षिणे करे । तत्पृष्ठे भरतं सीता ददर्श मुदितानना ॥५२॥
चित्रकेतुं शिशुं कट्यां दधानं रुक्ममण्डितम् । तथैव दक्षिणे हस्ते सुबाहुं पंकजेक्षणम् ॥५३॥
तत्पृष्ठे सा ददर्शाथ शत्रुघ्नं जनकात्मजा । रामशस्त्राणि बिभ्रंतं सभायांतं शनैः शनैः ॥५४॥
एवं सा राघवं दृष्ट्वा सीता प्रत्युज्जगाम तम् । शिंजन्मंजीररशना पीतकौशेयधारिणी ॥५५॥
कराभ्यां पुरतो यांतं लवं धृत्वा चुचुंब सा । निधाय तं लवं कट्यां धृत्वा हस्तेन तं कुशम् ॥५६॥
ययौ शनैः सा रामेण वदती स्वस्थलं पुनः । सखीभिर्वेष्टिता सीता रंजयामास राघवम् ॥५७॥
अथ रामोऽपि सीतायाः स्थित्वा सिंहासनोपरि । अंकयोः पुरतश्चापि बालकान्सस्थितांश्च सः ॥५८॥
सीतायै दर्शयन् प्रीत्या लालयामास सादरम् । सीतायै राघवः प्राह सभायां गुरुणा पुरा ॥५९॥
यान्युक्तानि सुचिह्नानि शिशूनां तानि विस्तरात् । श्रुत्वा राममुखाचानि सीता तोषं परं ययौ ॥६०॥
राघवः प्राह वैदेहीमूर्मिलापरिवीजिताम् । सीतेऽङ्गदं चित्रकेतुं लक्ष्मणांके निवेशय ॥६१॥
तद्रामवचनं श्रुत्वा सीता शीघ्रं शिशू ययौ । तावदुत्थाय सौमित्रिर्लज्जया गंतुमुद्यतः ॥६२॥
तं गन्तुकामं रामोऽपि दृष्ट्वा तां मांडवीं तथा । श्रुतकीर्ति कंजनेत्रसंज्ञयाऽचोदयत्तदा ॥६३॥
ताभ्यां धृतोऽथ सौमित्रिः स्मितास्याभ्यामुपाविशत्। तात्रचदंकयोः सीता तत्पुत्रौ सन्न्यवेशयत् ॥६४॥
तद्वच्च भरतस्यांके निवेश्य तक्षपुष्करौ । शत्रुघ्नांके सुबाहुं च यूपकेतुं न्यवेशयत् ॥६५॥
ततः सीतां पुनः प्राह स्मितास्यः स रघूद्वहः । वीजयंतूर्मिलाद्याश्च स्वं स्वं स्वामिनमादरात् ॥६६॥

राम आ रहे हैं तो आसनसे उठ खड़ी हुई । उधरसे राम भी बालकोंके साथ सीताके समक्ष आगये ॥ ४७–४९ ॥ उस समय वे अपनी बायीं गोदमें यूपकेतु तथा दाहिनी गोदमें अंगदको लिये हुए थे और लव-कुश आगे-आगे चल रहे थे । उनके पीछे बालकोंको लिये लक्ष्मणको भी आते हुए सीताने देखा ॥ ५० ॥ ५१ ॥ लक्ष्मण तक्षको गोदमें लिये थे और पुष्करको अपने दहिने हाथकी उँगली पकड़ाये चले आ रहे थे । उनके बाद सीताने भरतको आते देखा ॥ ५२ ॥ वे भी चित्रकेतु नामक बच्चेको दायीं गोदमें लिये और दाहिनी गोदमें कमलकी नाईं आँखोंवाले सुबाहु नामक बेटेको लिये हुए थे ॥ ५३ ॥ उनके पीछे सीताने शत्रुघ्नको देखा । वे रामजीके शस्त्रोंको लिये धीरे-धीरे महलोंकी ओर आ रहे थे ॥ ५४ ॥ इस प्रकार उन्हें आते देखकर सीता रामकी ओर बढ़ीं । कमरकी करधनी और क्षुद्रघंटिका अपनी रुनझुनकी ध्वनि कर रही थी और शरीरमें रेशमी पीताम्बर सुशोभित हो रहा था ॥ ५५ ॥ उन्होंने रामके पास पहुँचते ही लवका मुख चूमा । फिर गोदमें उठा लिया और कुशको दाहिने हाथकी उँगली पकड़ाकर रामसे बातें करती हुई चलीं । उस समय भी चारों ओरसे कितनी ही सखियाँ घेरकर सीता तथा रामको प्रसन्न करती हुई चल रही थीं ॥ ५६ ॥ ५७ ॥ इसके अनन्तर रामचन्द्रजी सीताके सिंहासनपर बैठ गये और बच्चोंको गोदमें लेकर खेलाने लगे । कुछ देर बाद रामचन्द्रजीने सीताको वसिष्ठसे सुने हुए बालकोंके शुभ लक्षण कह सुनाये । जिन्हें सुनकर सीता बहुत प्रसन्न हुईं ॥ ५८–६० ॥ उर्मिला सीताके ऊपर पंखा झल रही थीं । इसी समय रामने सीतासे कहा कि अङ्गद और चित्रकेतुको ले जाकर लक्ष्मणकी गोदमें बिठा दो ॥ ६१ ॥ रामकी यह बात सुनकर सीता झटपट बच्चोंके पास पहुँचीं और उन्हें लक्ष्मणकी गोदमें बिठलाना ही चाहती थीं कि लक्ष्मण लज्जाके मारे चलनेको तैयार हो गये ॥ ६२ ॥ लक्ष्मणको जाते देखकर रामने आँखोंसे संकेत कर दिया, जिससे श्रुतिकीर्ति और माण्डवीने लक्ष्मणको पकड़ लिया । तभी सीताने उन दोनों बच्चोंको लक्ष्मणकी गोदमें बिठा दिया ॥ ६३ ॥ ६४ ॥ उसी प्रकार भरतकी गोदमें तक्ष और पुष्कर तथा शत्रुघ्नकी गोदमें सुबाहु और यूपकेतुको बिठलवाया ॥ ६५ ॥ इसके बाद मुस्कराते हुए रामचन्द्रने

ततस्ता दुद्रुवुः सर्वाः सखीभिर्लज्जिता धृताः । व्यजनैर्वीजयामासुः स्वं स्वं कांतं सुलज्जिताः ॥६७॥
एवं नानाकौतुकानि भोजनासनकर्मसु । कारयामास वैदेह्या बंध्वादीनां रघूत्तमः ॥६८॥
अथ रामो वसिष्ठं स एकदा वाक्यमब्रवीत् । कुशस्याथ लवस्यापि व्रतबन्धो विधीयताम् ॥६९॥
तथेति गुरुणा प्रोक्तस्ततो रामः शुभे दिने । गणकान् स समाहूय मंत्रयामास सादरम् ॥७०॥
कुशाय पंचमं वर्षं किंचिन्न्यूनं लवाय च । ज्ञात्वा ते गणकाः सर्वे गुरुशुक्रादिकं बलम् ॥७१॥
दृष्ट्वा पंचांगपट्टेषु राघवं वाक्यमब्रुवन् । ब्राह्मणस्याष्टमे प्रोक्तो द्वादशे क्षत्रियस्य च ॥७२॥
वैश्यस्य षोडशे वर्षे व्रतबंधो मुनीश्वरैः । जन्मात् षष्ठे तथा गर्भात्सप्तमेऽब्दे नृपस्य च ॥७३॥
व्रतबंधो विधातव्यो यत्नतश्च बलार्थिनः । ब्रह्मवर्चसकामस्य कार्यो विप्रस्य पंचमे ॥७४॥
राज्ञो बलार्थिनः षष्ठे वैश्यस्यार्थार्थिनोऽष्टमे । विद्वद्भिश्चोपनयनमेवं शास्त्रेषु निर्णयः ॥७५॥
अतो गर्भाच्च षष्ठेऽब्दे पुत्रयोस्त्वं रघूत्तम । सुखं कुरूपनयनं मुहूर्तं शृणु सादरम् ॥७६॥
अद्यारभ्य पंचदशदिने दत्तं कुशाय हि । पक्षांतरेण तं श्रुत्वा मुहूर्तं रघुनंदनः ॥७७॥
गणकान् धनवस्त्राद्यैः पूज्य लक्ष्मणमब्रवीत् । आकारणीया राजानः सुहृदश्च मुनीश्वराः ॥७८॥
सांतःपुराः सपौराश्च स्वस्वजानपदैः सह । शृङ्गारणीयाऽयोध्येयं परिखाः सप्त सादरम् ॥७९॥
शोधनीयास्तथा सौधसमूहेषु सुधाः शुभाः । दत्त्वा चित्राणि लेख्यानि प्रासादेषु समंततः ॥८०॥
देवालयेषु सर्वेषु सुधा देया मनोरमा । लेखनीयानि चित्राणि स्थाप्यंतां बलयः पृथक् ॥८१॥
बंधनीयाः पताकाश्च रोपणीया ध्वजा अपि । समंततस्तोरणानि बंधनीयानि लक्ष्मण ॥८२॥

सीतासे कहा–अब उर्मिला, श्रुतकीर्ति तथा माण्डवी अपने-अपने पतियोंको पंखा झलें ॥ ६६ ॥ इस बातको सुनकर वे स्त्रियाँ लज्जाके मारे वहाँसे भाग खड़ी हुई । किन्तु सखियाँ दौड़कर उन्हें पकड़ लायीं और अन्तमें उन्हें रामके आज्ञानुसार अपने-अपने पतियोंपर पंखे झलने पड़े ॥ ६७ ॥ इस तरह भोजन, आसन तथा शयनके समय रामचन्द्रजी सीता तथा भ्राताओंके साथ विविध प्रकारके कौतुक किया करते थे ॥ ६८ ॥ कुछ दिन बीतनेपर एक दिन वसिष्ठसे रामने कहा—अब कुश और लवका व्रतबन्ध (यज्ञोपवीत-संस्कार) कर डालना चाहिए ॥ ६९ ॥ वसिष्ठने कहा–अच्छी बात है । एक पवित्र दिवसको रामने बहुतसे ज्योतिषियोंको बुलाकर सलाह की ॥ ७० ॥ जब ज्योतिषियोंको यह बात मालूम हुई कि कुशका पाँचवाँ वर्ष चल रहा है और लवका कुछ कम है । तब उन्होंने गुरु-शुक्रादिका बलाबल देखा ॥ ७१ ॥ पञ्चांगमें सब देख-सुनकर उन्होंने रामसे कहा–ब्राह्मणका उपनयन आठवें वर्षमें, क्षत्रियका बारहवें वर्षमें और वैश्यका सोलहवें वर्षमें यज्ञोपवीत-संस्कार होना चाहिए। यह बड़े-बड़े ऋषियोंने कहा है । अपना वर्चस्व बढ़ानेकी इच्छा रखनेवाले विप्रको गर्भसे पाँचवें वर्षमें, बलवृद्धिकी कामनावाले राजाको छठें वर्षमें एवं धनवृद्धिकी इच्छा रखनेवाले वैश्यको आठवें वर्षमें ही उपनयन-संस्कार करना उचित है। यह शास्त्रोंका निर्णय है ॥ ७२–७५ ॥ अतएव हे रघूत्तम ! आपके बच्चोंका गर्भसे लेकर यह छठां वर्ष चल रहा है। इसलिए इस समय इनका व्रतबन्ध करना अतिशय श्रेयस्कर है। अब बच्चोंके व्रतबन्धके लिए सुन्दर मुहूर्त बतलाता हूँ, सो सुनिए ॥ ७६ ॥ आजसे पन्द्रहवें दिन कुशके यज्ञोपवीतका पवित्र मुहूर्त मिलता है। इस प्रकार एक पक्षके बाद यज्ञोपवीतका मुहूर्त सुनकर रामचन्द्रजीने अनेक प्रकारके धन-वस्त्रसे उन गणकोंकी पूजा की और लक्ष्मणसे कहा कि समस्त राजाओं, मित्रों तथा मुनियोंके पास निमन्त्रण भेजकर कहला दो कि सब लोग अपनी स्त्रियों, पुरवासियों तथा देशवासियोंके साथ इस उपनयनसंस्कारके उत्सवमें मेरे यहाँ पधारें । इस अयोध्या नगरीको अच्छी तरह सजवाओ। इसके आस पासकी सातों खाइयोंको साफ करवा दो ॥ ७७–७९ ॥ महलोंको चूनेसे पुतवा दो। अटारियों और दीवारोंपर नाना प्रकारके चित्र बनवाओ। अयोध्याके समस्त देवालयोंको चूनेसे पुतवाकर उनमें नाना प्रकारकी चित्रकारियाँ करवाओ और तरह-तरहके पूजनका प्रबन्ध कर दो ॥ ८० ॥ ८१ ॥ चारों ओर पताका

वेद्यः कार्या रुक्ममय्यो बन्धनीयाश्च मंडपाः । भृङ्गारणीया हस्त्यश्वशिबिकाश्च सहस्रशः ॥८३॥
अन्यच्चापि यथायोग्यं यद्यज्जानासि लक्ष्मणः । तत्तत्कुरुष्व यन्नोक्तं मया तव रघूत्तम ॥८४॥
तद्रामवचनं श्रुत्वा तथेत्युक्त्वा स लक्ष्मणः । तथा चकार तत्सर्वं यथा रामेण शिक्षितः ॥८५॥
ततो मुहूर्ते श्रीरामः स्नानमभ्यंगपूर्वकम् । कृत्वा कुमारैर्वैदेह्या बंधुस्त्रीभिश्च बंधुभिः ॥८६॥
नानालंकारवस्त्राणि परिधायाथ तैः सह । पुण्याहवाचनं चक्रे गुरुं पूज्य ऋषीश्वरान् ॥८७॥
नांदीश्राद्धादिकं कृत्वा प्रतिष्ठां दैवतस्य च । चकार मंगलैस्तूर्यनादैः सीतासमन्वितः ॥८८॥
ततो ययुः कोटिशस्ते पार्थिवाश्च मुनीश्वराः । सप्तद्वीपांतरस्थाश्च सावरोधाः सवाहनाः ॥८९ ।
तैः साऽयोध्या तदा व्याप्ता विरेजे नितरां तदा । ततो मुहूर्तदिवसे वसिष्ठो ब्राह्मणैर्युतः ॥९०॥
रामस्याथ कुशस्याथ मध्ये धृत्वा वरं वटम् । उवाच मंगलान्येव सुस्वरैर्मधुराक्षरैः ॥९१॥

ध्यात्वा श्रीगणनायकं विधिसुतां शंभुं विधिं माधवं
लक्ष्मीं शैलसुतां विधेस्तु दयितामिंद्रं सुरांस्तान् ग्रहान् ।
पुण्यान्स्थावरनिम्नगाश्च सुमुनीन् स्वीयां कुलस्यांबिकां
तातं मातरमादरेण वटवे भूयात्सदा मंगलम् ॥९२॥

तदेव लग्नं सुदिनं तदेव तारावलं चन्द्रबलं तदेव ।
विद्याबलं दैवबलं तदेव सीतापतेर्यत्स्मरणं विधेयम् ॥९३॥

इति नानामंगलवाद्यैस्तूर्यघोषैर्मनोहरैः । ॐकारघोषैः स गुरुर्मुमोचांतःपटं तदा ॥९४॥
ततस्तं राघवस्याङ्के निवेश्य हवनादिकम् । विधिं कृत्वाऽथ कौपीनं दण्डं चाथ कमण्डलुम् ॥९५॥
बद्ध्वादौ रुक्मजां मौंजीं बबन्धैणाजिनं तदा । ततः कुशाय स गुरुर्गायत्रीमुपदिष्टवान् ॥९६॥
ब्रह्मचर्यव्रतादीनि स कुशायोपदिष्टवान् । कृत्वोक्तविधिना शौचं कुर्यादाचमनं तथा ॥९७॥

लगवाओ और जगह-जगहपर ध्वजा आरोपित करो । सुवर्णकी वेदियाँ बनवायी जायँ ॥ ८२ ॥ ८३ ॥ इनके सिवाय भी जो-जो बातें तुम्हें मालूम हों और मैंने न बतलायी हों, उन्हें भी ठीक कर देना ॥ ८४ ॥ इस प्रकार रामकी बात सुनी तो 'जो आज्ञा' ऐसा कहकर लक्ष्मण चले गये और रामने जैसा बतलाया था, वह सब प्रबन्ध कर दिया ॥ ८५ ॥ जिस दिन मुहूर्त था, उस रोज उबटन लगाकर उन कुमारों तथा सीता और भाइयोंके साथ रामने स्नान किया। नाना प्रकारके वस्त्र-अलंकारादि पहने । वसिष्ठ तथा निमन्त्रणमें आये हुए ऋषियोंका पूजन करके पुण्याहवाचन, नान्दीश्राद्ध, देवताओंकी स्थापना आदि कार्य तुड़ही और नगाड़ेके मंगलमय निनादके साथ राम तथा सीताने सम्पादित किये ॥ ८६–८८ ॥ इसके बाद सातों द्वीपोंके करोड़ों राजे तथा ऋषि अपने-अपने परिवार एवं वाहनोंके साथ वहाँ आ पहुँचे। उन लोगोंसे सारी अयोध्या भरकर बड़ी सुन्दर मालूम पड़ने लगी । यज्ञोपवीत-मुहूर्तके अवसरपर बहुतसे ब्राह्मणोंके साथ वसिष्ठजी राम और कुशके मध्यमें एक सुन्दर कपड़ेका पर्दा बाँधकर मोठे तथा स्पष्ट स्वरमें मङ्गलपाठ करने लगे ॥ ८९–९१ ॥ उन मङ्गलमय श्लोकोंका अर्थ इस प्रकार है-गणेश, सरस्वती, शिव, ब्रह्मा, विष्णु, लक्ष्मी, पार्वती, ब्रह्माणी, इन्द्र, समस्त देवता, सम्पूर्ण ग्रह, पवित्र पर्वत तथा नदियाँ, अच्छे-अच्छे ऋषि, अपनी कुलदेवी तथा माता-पिता इन सबको प्रणाम करके आपलोग प्रार्थना करें कि जिस बच्चेका यज्ञोपवीत संस्कार होनेवाला है, उसका कल्याण हो ॥ ९२ ॥ वही लग्न लग्न है, वही दिन दिन है, वही विद्याबल तथा देवबल है, जिसमें सीतापति रामचन्द्रका स्मरण किया जाय ॥ ९३ ॥ इस तरह विविध प्रकारके मङ्गलमय मन्त्रोंका पाठ करके गुरु वसिष्ठने ॐकार शब्दके साथ पर्दा खोल दिया। तदनन्तर वसिष्ठने लव-कुशको रामकी गोदमें बिठाकर हवनादि विधियोंको सम्पन्न किया । इसके अनन्तर कुशको सुवर्णके तारोंसे बनी करधनी पहनायी, मृगचर्म बाँधा और कौपीन पहनायी। फिर दण्ड-कमण्डलु देकर वसिष्ठजीने कुशको गायत्री-मंत्रका उपदेश दिया ॥ ९४–९६ ॥ फिर ब्रह्मचर्यव्रतके नियम आदि बतलाते हुए कहने लगे कि शास्त्रोंमें जो नियम बतलाये

दन्तान् जिह्वां विशोध्याथ कृत्वा मलविशोधनम् । स्नात्वाऽम्बुदैवतैर्मन्त्रैः प्राणानायम्य यत्नतः ॥९८॥
उपस्थानं रवेः कृत्वा संध्ययोरुभयोरपि । अग्निकार्यं ततः कृत्वा ब्राह्मणानभिवादयेत् ॥९९॥
ब्रुवन्नमुकगोत्रोऽहमभिवादय इत्यपि । धारयन्मेखलां दण्डोपवीताजिनमेव च ॥१००।
अनिंद्येषु चरेद्भैक्ष्यं ब्राह्मणेष्वात्मवृत्तये । वाग्यतो गुर्वनुज्ञातो भुञ्जीतान्नमकुत्सयन् ॥१०१॥
एकान्नं च समश्नीयाच्छ्राद्धेऽश्नीयात्तथाऽऽपदि । द्विवारं नैव भुञ्जीत दिवा क्वापि द्विजोत्तमः॥१०२॥
सायंप्रातर्द्विजोऽश्नीयादग्निहोत्रविधानवित् । मधु मांसं प्राणिहिंसां भास्करालोकनं जले ॥१०३॥
स्त्रियं पर्युषितोच्छिष्टे परिवादं विवर्जयेत् । यथेष्टचेष्टो न भवेद्गुरोर्नयनगोचरे ॥१०४॥
न नाम परिगृह्णीयात्परोक्षेऽप्यविशेषणम् । गुरुनिंदा भवेद्यत्र परिवादस्तु यत्र च ॥१०५॥

श्रुती पिधाय स्थातव्यं यातव्यं वा ततोऽन्यतः ।
न मात्रा न पितुः स्वस्रा न स्वस्रैकान्तशीलता ॥१०६॥

बलवंतींद्रियाण्यत्र मोहयंत्यतिकोविदान् । एवमादान्यनेकानि ब्रह्मचारिव्रतानि हि ॥१०७॥
तस्मै गुरुश्चोपदिश्य ददौ दानान्यनेकशः । भोजयामास तं मात्रा सह नानोत्सवैस्तदा ॥१०८॥
कारयित्वाऽथ पालाशपूजनं विधिपूर्वकम् । तेनापि कुशबालेन देवकस्य विसर्जनम् ॥१०९॥
चकार राघवेणैव सीतया स गुरुस्तदा । ततो रामो नृपतिभिर्जनकेनापि पूजितः ॥११०॥
चकार धनवस्त्राद्यैस्तुष्टान् विप्रान्नृपादिकान् । आचांडालांस्तदा रामस्तोषयामास सादरम् ॥१११॥
एवं नानासमुत्साहैर्मासमेकं निनाय सः । रामो विसर्जयामास ततस्तान्पार्थिवादिकान् ॥११२॥
एवं कालांतराद्रामो व्रतबंधं लवस्य च । चकार पूर्ववद्धर्षात्समाहूय नृपादिकान् ॥११३॥

गये हैं, उनके अनुसार शौचसे निवृत्त होकर दाँत तथा जीभ साफ कर लेनेके बाद वरुण देवतासे सम्बन्ध रखनेवाले मन्त्रोंका पाठ करता हुआ स्नान करे। फिर आचमन-प्राणायामादि करके दोनों शामको सूर्यका उपस्थान करना चाहिये। इसके पश्चात् हवन करके ब्राह्मणोंको प्रणाम करे॥ ९७–९९॥ प्रणाम करते समय यह भी कहता जाय कि अमुक गोत्रका अमुक व्यक्ति मैं आपको प्रणाम करता हूँ। उच्च जातिके लोगों अथवा जहाँतक हो सके, सुपात्र ब्राह्मणोंके यहाँसे भिक्षा माँगकर अपनी जीविका चलाये। किसीकी निन्दा न करे तथा मौनव्रतका पालन करे और जब गुरुकी अनुमति मिल जाय, तभी भोजन करे॥ १००॥ १०१॥ सदा केवल एक अन्नका भोजन करे। श्राद्धादि तथा किसी आपत्तिमय कार्यके आ जानेपर भी दिनमें दो बार भोजन न करे। ब्राह्मणको चाहिये कि केवल सुबह-शाम भोजन करे। मधु तथा मांसका आहार, प्राणिहिंसा, जलमें सूर्यके प्रतिबिम्बका दर्शन, स्त्रीप्रसंग, बासी और जूठा भोजन तथा दूसरेकी निन्दा इन कामोंको छोड़ दे। गुरुके सामने अपने इच्छानुसार जो चाहे, सो न कर डाले॥ १०२–१०४॥ परोक्षमें भी बिना विशेषण लगाये गुरुका नाम न ले। जहाँपर गुरुकी निन्दा हो रही हो अथवा उनकी ठठोली की जाती हो, वहाँ कान ढाँककर बैठे या वहाँसे उठ जाय। अपनी माता, बुआ अथवा बहिनके साथ भी एकान्तमें न बैठे॥ १०५॥ १०६॥ क्योंकि इन्द्रियाँ बड़ी प्रबल होती हैं। वे बड़े-बड़े पण्डितोंको भी बातकी बातमें विचलित कर देती हैं। इस प्रकार गुरुने बहुतसे ब्रह्मचर्य व्रतसम्बन्धी नियम बतलाये॥ १०७॥ इसके अनन्तर अनेक तरहके दान दिये गये। कुशको माताके साथ भोजन कराया गया॥ १०८॥ तब विधिपूर्वक पलाशका पूजन कराया। फिर कुश, सीता तथा रामके द्वारा आहूत देवताओंका पूजन कराया॥ १०९॥ इसके बाद बहुतसे राजाओं तथा जनकजीने रामका पूजन किया। रामने बहुतसे धन-वस्त्रों द्वारा आये हुए राजाओं तथा ब्राह्मणोंको प्रसन्न करके अयोध्यानिवासी चाण्डालसे लेकर ऊँचेसे ऊँचे कुल तकके लोगोंको सादर प्रसन्न किया॥ ११०॥ १११॥ इस तरह नाना प्रकारके उत्सवोंके साथ एक महीनेका समय बिताकर मेहमानीमें आये हुए राजाओं और ऋषियोंको विदा किया॥ ११२॥ कुछ समय बीतनेके बाद उसी तरह उत्साहसे

ततस्तौ बालकौ रम्यौ वेदाध्ययनमुत्तमम् । चक्रतुर्गुरुसान्निध्ये विधिवद्बुद्धिसत्तमौ ॥११४॥
एवं तेषां तु बालानां सर्वेषां रघुनंदनः । व्रतबंधविधानानि यथाकाले महोत्सवैः ॥११५॥
चकार गुरुणा विप्रैः समाहूय नृपादिकान् । विशेषनिंजपुत्राभ्यां चकार स महोत्सवैः ॥११६॥
अकरोदधिकं किंचिन्न न्यूनमकरोद्विभुः । ततस्ते बालकाः सर्वे ब्रह्मचर्यव्रते स्थिताः ॥११७॥
चक्रुस्ते गुरुसान्निध्ये वेदाध्ययनमुत्तमम् । अथ रामोऽपि वैदेह्या बालकैः परिवारितः ॥११८॥
विरेजे स्कन्दगणपादिभिर्देव्या यथा शिवः । अथ ते बालकाः सर्वे कृत्वाऽध्ययनमुत्तमम् ॥११९॥
वेदादीनां गुरुमुखाल्लब्ध्वा ज्ञानं गुरोस्ततः । जग्मुस्तीर्थानि वै कर्तुं सेनया गुरुमंत्रिभिः ॥१२०॥
पृथिव्यां भारते खडे यानि तीर्थानि तानि ते । कृत्वा समाययुः पच मासैः स्वां नगरीं शनैः ॥१२१॥

बालान्समागतान् श्रुत्वा शोभयित्वा निजां पुरीम् ।
प्रत्युज्जगाम सौमित्रिः पुरस्कृत्याथ वारणम् ॥१२२॥

ते दृष्ट्वा लक्ष्मणं नेमुस्तेनालिंगिता अपि । नानोत्सवैर्ययुर्बाला अयोध्याया गृहं प्रति ॥१२३॥
मार्गे मार्गे पुरस्त्रीभिः सौधस्थाभिस्तु वर्षिताः । वृष्टिभिः कुसुमादीनां दीपैर्नीराजिता अपि ॥१२४॥
ततस्ते बालकाः सर्वे सभायां रघुनन्दनम् । नेमुस्तेनालिंगिताश्च ययुः सीतागृहं ततः ॥१२५॥
एतस्मिन्नन्तरे सीतोर्मिला सा मांडवी यथा । श्रुतकीर्तिश्च वेगेन चक्रुर्नीराजनं पृथक् ॥१२६॥
दध्योदनभवैर्दीपैः पक्वान्नैस्तैलपाचितैः । सर्षपैर्लवणैर्माषैस्तोयकुम्भैश्च सादरम् ॥१२७॥

ततस्ते बालकाः सर्वे नेमुः सीतां पृथक् पृथक् ।
ततो नेमुः स्वमातॄश्च पूर्वं नत्वा पितामहीः ॥१२८॥
ततस्ते बालकाः सर्वे ददुर्दानान्यनेकशः ।
ब्राह्मणान् भोजयामासुः कोटिशस्ते पृथक् पृथक् ॥१२९॥

साथ सब लोगोंको बुलाकर लवका यज्ञोपवीतसंस्कार किया ॥ ११३ ॥ फिर वे दोनों बालक गुरु वसिष्ठके पास विधिपूर्वक वेदाध्ययन करने लगे। इसी रीतिसे रामचन्द्रने समय-समयपर लक्ष्मण-भरत आदिके बच्चोंका भी व्रतबन्ध-संस्कार कराया और अपने लड़कोंसे बढ़कर उत्सव-दानादि किये। उसमें किसी प्रकारकी न्यूनता नहीं होने दी। वे बच्चे भी संस्कृत होकर विधिपूर्वक ब्रह्मचर्यके नियमोंका पालन करते हुए गुरुके पास वेदाध्ययन करने लगे। यह सब हो जानेके बाद सीता तथा पुत्रोंके साथ बैठे हुए रामचन्द्रजी पार्वती, गणेश तथा स्वामिकार्तिकेयके साथ बैठे शिवजीके सदृश सुन्दर लगते थे। इसके बाद जब उन बालकोंने अच्छी तरह विद्याध्ययन कर लिया तो एक विशाल सेना, गुरु तथा कितने ही मन्त्रियोंको साथ लेकर तीर्थयात्रा करनेको निकले ॥ ११४–१२० ॥ पृथ्वीके भरतखंडमें जितने तीर्थ हैं, उन्हें करके पाँच महीनेमें वे सब बालक अयोध्या वापस आ गये ॥ १२१ ॥ लक्ष्मणने जब सुना कि लड़के तीर्थयात्रासे अयोध्या लौट आये हैं तो बहुतसे गाजे-बाजे तथा हाथी-घोड़े साथ लेकर अगवानी करने गये ॥ १२२ ॥ जब उन्होंने लक्ष्मणको देखा तो मस्तक झुका-झुकाकर प्रणाम किया और लक्ष्मणने उनको अपनी छातीसे लगा-लगाकर आलिंगन किया। फिर अनेक प्रकारके उत्सवोंके साथ उनको महलोंमें ले चले। रास्तेमें अयोध्याकी नारियाँ अटारियोंपर चढ़-चढ़कर उनपर फूलोंकी वर्षा करतीं और आरती उतारती थीं। इसके बाद बालकोंने राजदरबारमें जाकर रामको प्रणाम किया और वहाँसे सीताके महलोंको गये। वहाँ पहुँचनेपर सीता, उर्मिला, मांडवी तथा श्रुतकीर्तिने अलग-अलग उन बालकोंकी आरती उतारी। पकवान, दही, भात, तेलके बने पकवान, सरसों, नमक, उड़द तथा पानी भरे कलश आदि डरकाकर बलि दी गयी। इसके बाद उन सबोंने कौसल्या आदि तथा पिता और भाइयोंको प्रणाम करके सीता आदि माताओंको प्रणाम किया ॥ १२३–१२८ ॥ इसके बाद उन बालकोंने भाँति-भाँतिके दान दिये और अलग-अलग करोड़ों ब्राह्मणोंको भोजन कराया।

एवं नानोत्सवास्तत्र बभूवू रामसद्मनि । अथ ते बालकाः सर्वे स्यंदनादिषु संस्थिताः ॥१३०॥
दिव्यवस्त्राणि चित्राणि परिधाय समंततः । अयोध्याराजमार्गेषु हट्टेषु च चतुष्पथे ॥१३१॥
आरामोपवनारण्यवाटिकासु नदीतटे । गमनागमने चक्रुः सेनया मंत्रिबालकैः ॥१३२॥
एवं साकेतनगरे बालकैः सीतया सुखम् । रेमे स बंधुभिर्युक्तश्चिरं राजा रघूद्वहः ॥१३३॥
एवं शिष्य मया प्रोक्तं जन्मकांडमिदं तव । कुशादीनां च जन्मानि वर्णितान्यत्र विस्तरात् ॥१३४॥
रम्यं पवित्रमानंददायकं च मनोहरम् । पुत्रपौत्रप्रदं जन्मकांडमेतत्सुखावहम् ॥१३५॥

जन्मकांडमिदं पुण्यं ये शृण्वंति नरोत्तमाः ।
तेषां पुत्रैश्च पौत्रैश्च वियोगो न भविष्यति ॥१३६॥
जन्मकांडमिदं ये भक्त्या शृण्वंति मानवाः ।
तेषां स्त्रीणां वियोगो हि न कदाप्यत्र जायते ॥१३७॥

जन्मकांडमिदं पुण्यं याः शृण्वंत्यत्र वै स्त्रियः । स्वभर्तृभिर्वियोगं ता न गच्छंति यथा रमा ॥१३८॥
ग्रामं देशान्तरं तीर्थं ये गताश्च चिरं नराः । तेषामागमनार्थं हि जन्मकांड पठेदिदम् ॥१३९॥

येषां भावीनि कार्याणि लब्धुं त्वरयते मनः ।
तैर्नरैः पठनीयं वै जन्मकांडं दिने दिने ॥१४०॥
पूर्वे दिने चैकवारं , द्विवारं चापरे दिने ।
एवं नवदिनं वृद्धिस्तथैकेन क्षयोऽपि हि ॥१४१॥
कार्यो नरैः स्वस्थचित्तैस्तेषां कार्यं भविष्यति ।
वर्षमेकं पठेदेवमपुत्रोऽपि लभेत्सुतम् ॥१४२॥
पुत्रार्थी प्राप्नुयात्पुत्रं धनार्थी धनमाप्नुयात् ।
इष्टान् कामांश्च कामार्थी जन्मकाण्डश्रवाल्लभेत् ॥१४३॥

इस तरह रामचन्द्रजीके भवनमें अनेक प्रकारके उत्सव हुए । वे सब रथ, हाथी, घोड़े आदि सवारियोंपर सवार हो-होकर बगीचे, उपवन, वन तथा नदीतट आदिपर अयोध्याके चौराहों तथा बाजारमें अनेक प्रकारके वस्त्र-आभूषण पहनकर मन्त्रियोंके लड़कोंके साथ आने-जाने लगे ॥ १२९–१३२ ॥ इस तरह उस साकेतपुरीमें उन बालकों तथा सीताके साथ आनन्दपूर्वक रामचन्द्रजी रहने लगे । हे शिष्य ! यह जन्मकाण्ड मैंने तुम्हें सुनाया । जिसमें कुश आदि बालकोंकी विस्तृत जीवनी वर्णित है ॥ १३३ ॥ १३४ ॥ यह जन्मकाण्ड परम रम्य, आनन्ददायक, मनोहर, सुख-सौभाग्यको देनेवाला और पुत्र-पौत्रादिका दाता है । जो लोग जन्मकाण्डको सुनते हैं, उनको कभी अपने पुत्रपौत्रादिके वियोगका दुःख नहीं उठाना पड़ता । जो लोग भक्तिपूर्वक इस जन्मकाण्डका श्रवण करते हैं, उनको अपनी स्त्रीका भी वियोग कभी नहीं होता । यदि स्त्रियाँ इसे सुनती हैं तो उन्हें अपने स्वामीसे कभी वियुक्त नहीं होना पड़ता । वलिक लक्ष्मीके समान वे जन्मभर आनन्दसे अपना जीवन बिताती हैं ॥ १३५ ॥ १३६ ॥ यदि किसीके परिवारका कोई मनुष्य किसी तीर्थ या परदेशको चला गया हो तो उसे लौटानेके लिए इस जन्मकाण्डका पाठ करना चाहिए । जिसको अपना कोई भावी कार्य सिद्ध करना हो, उसको चाहिए कि पहले दिन एक बार, दूसरे दिन दो बार, तीसरे दिन तीन बार, इस क्रमसे बढ़ाते-बढ़ाते नवें दिन नौ बार जन्मकाण्डका पाठ करे । नवें दिनसे एक-एक पाठ घटाता हुआ फिर नवें दिन केवल एक पाठ करे । इस तरह यदि स्वस्थचित्तसे इसका पाठ किया जाय तो प्रत्येक कार्यकी सिद्धि हो सकती है। यदि इस विधिसे एक वर्ष पर्यन्त जन्मकाण्डका पाठ किया जाय तो पुत्रहीन व्यक्ति भी पुत्र प्राप्त कर सकता है ॥ १३७–१४२ ॥ कहनेका

आनन्दरामायणमध्यसंस्थं श्रीजन्मकांडं तनयप्रदं च ।
पारायणं संश्रवणं तथा वा करोति यो ना स लभेत्सुपुत्रम् ॥१४४॥

इति श्रीमच्छतकोटिरामचरितांतर्गते श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये जन्मकाण्डे
कुशलवादीनां जन्मकथनव्रतबंधविस्तारो नाम नवमः सर्गः ॥ ९ ॥

जन्मकांडे सर्गा आनन्दरामायणे नवैव ज्ञातव्याः । चतुरुत्तराष्टशतश्लोका विष्णुदासरामदासाभ्यामुपदिष्टाः ॥१॥

उपवनदर्शनम् ॥ १ ॥ उपवनक्रीड़ा ॥ २ ॥ सीतात्यागः ॥ ३ ॥ कुशलवोत्पत्तिः ॥ ४ ॥ रामरक्षा ॥ ५ ॥ कमलहरणम् ॥ ६ ॥ पुत्राभ्यां संग्रामः ॥ ७ ॥ सीताग्रहणम् ॥ ८ ॥ बालानामुपनयनम् ॥ ९ ॥

मतलब यह कि जन्मकाण्डका पाठ करनेसे पुत्रार्थी पुत्र, धनार्थी धन तथा किसी भी प्रकारकी कामनावालेकी कामना पूर्ण हो सकती है। इस आनन्दरामायणके मध्यमें स्थित जन्मकाण्ड सन्तानदायक है। जो मनुष्य इसका पारायण करता या सुनता है, उसे सुपुत्रकी प्राप्ति होती है ॥ १४३ ॥ १४४ ॥ इति श्रीशतकोटिरामचरितांतर्गते श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये पं० रामतेजपाण्डेयविरचित'ज्योत्स्ना'भाषाटीकासहिते जन्मकाण्डे नवमः सर्गः ॥ ९ ॥

इस जन्मकाण्डमें कुल नौ सर्ग तथा आठ सौ चार श्लोकों द्वारा श्रीरामदासने विष्णुदासको उपदेश दिया है। ॥ १ ॥ उन नवों सर्गोंमें ये कथायें वर्णित हैं—(१) उपवनदर्शन, (२) उपवनक्रीडा, (३) सीतात्याग, (४) कुशलवकी उत्पत्ति, (५) रामरक्षा, (६) लव द्वारा कमलहरण, (७) पुत्रोंके साथ रामका संग्राम, (८) सीताका पुनर्ग्रहण और (९) बालकोंका उपनयनसंस्कार।

इति श्रीमदानन्दरामायणे जन्मकाण्डं समाप्तम् ।

श्रीरामचन्द्रार्पणमस्तु

श्रीसीतापतये नमः

श्रीवाल्मीकिमहामुनिकृतशतकोटिरामचरितान्तर्गतं–

आनन्दरामायणम्

'ज्योत्स्ना'ऽभिधया भाषाटीकयाऽऽटीकितम्

विवाहकाण्डम्

प्रथमः सर्गः

(स्वयंवरके प्रसंगमें रामका राजा भूरिकीर्तिकी पुरीको प्रस्थान)

श्रीरामदास उवाच

अथ रामः सभामध्ये मन्त्रिभिः परिवेष्टितः । तस्थौ सिंहासने रम्ये वरछत्रोपशोभितः ॥ १ ॥
एतस्मिन्नन्तरे तत्र कश्चिद्दूतः समाययौ । नत्वा सभायां श्रीरामं स्वामिवृत्तं न्यवेदयत् ॥ २ ॥
पूर्वदेशाधिपतिना राज्ञा श्रीभूरिकीर्तिना । प्रेषितोऽस्मि महाराज द्रष्टुं त्वत्पादपंकजे ॥ ३ ॥
पत्रं पठित्वा श्रीराम कार्या मत्स्वामिने कृपा । इत्युक्त्वा रामदूतस्य करे पत्रं समर्पयत् ॥ ४ ॥
रामदूतोऽपि सौमित्रेः पुरस्तात्पत्रमादरात् । स्थापयामास वेगेन गत्वा तस्थौ निजस्थलीम् ।। ५ ॥
ततः स लक्ष्मणः पत्रं वरबन्धनवेष्टितम् । समुद्घाटय राघवाग्रे पपाठ मंजुलस्वनः ॥ ६ ॥
हेमकृत्रिमपुष्पाद्यैरङ्कितं कुंकुमान्वितम् । दर्शनादेव मांगल्यसूचकं तोषकारकम् ॥ ७ ॥
उवाच पत्रलिखितैरक्षरैर्लक्ष्मणः शनैः । स्थितः श्रीरामपुरतो वरसिंहासनान्तिके ॥ ८ ॥

श्रीमान् श्रीराघवेन्द्रो जयतु दशशिरश्छेदनार्थं जगत्यां
कौसल्यायां नृपेशो दशरथतनयश्चेति नाम्नाऽवतीर्णः ।
तस्याहं भूरिकीर्तिः पदजलरुहयोर्गन्धमाघ्रातुकामः
कृत्वा नैजं शिरस्तु भ्रमरवदनिशं प्रार्थनां प्रार्थयामि ॥ ९ ॥

श्रीरामदास बोले-एक दिन रामचन्द्र सभामें अपने राजसिंहासनपर बैठे थे। उनके ऊपर सुन्दर छत्र लगा हुआ था और उनके चारों ओर कितने ही मंत्री बैठे हुए थे। इसी समय एक दूत आया और वह अपने प्रभुका सन्देश सुनाने लगा। उसने कहा—पूर्व देशके अधिपति महाराज भूरिकीर्तिने आपके चरणोंका दर्शन करनेके लिए मुझे भेजा है। आप मेरे स्वामीपर कृपा करके यह पत्र पढ़ लीजिए। इतना कहकर उसने वह पत्र रामके दूतको दे दिया। उस दूतने लक्ष्मणके हाथमें दिया और प्रणाम करके चुपचाप बैठ गया ॥ १–५ ॥ लक्ष्मणने सुन्दर कपड़ेमें बँधे हुए उस पत्रको खोला और मधुर स्वरसे बाँचकर रामको सुनाने लगे। पत्रपर सुवर्णके फूल बने हुए थे और कुमकुमके छींटे पड़े थे। जिसे देखनेमात्रसे वह मांगल्यसूचक तथा
23. आनन्ददायक प्रतीत होता था ॥ ६ ॥ ७ ॥ पत्रमें जो लिखा था, उसे रामके पास जाकर धीरे-धीरे लक्ष्मण सुनाने लगे–॥ ८ ॥ रघुवंशमें उत्पन्न श्रीरामचन्द्रजीकी जय हो, जो राम रावणको मारनेके लिए दशरथके पुत्र

मम पौत्र्यावुभे राम चंपिका सुमतीति च । तयोः स्वयंवरार्थं ह्यायाताश्च बहवो नृपाः ॥१०॥
बंधुपुत्रैर्बंधुभिस्त्वं स्वसुताभ्यां च मंत्रिभिः । सुहृज्जनैस्तथा पौरैः सावरोधः स्वसेनया ॥११॥
आगच्छस्व मम पुरं मयि कृत्वा महत्कृपाम् । विफलां प्रार्थनां मे त्वं मा कुरुष्व त्विमां प्रभो ॥१२॥
इति पत्रार्थमाकर्ण्य स्वस्थचित्तो रघूत्तमः । स्वयंवरं ततो गन्तुं गुरुणा निश्चयं व्यधात् ॥१३॥
ततोऽब्रवीत्स सौमित्रिमद्य सेनां प्रचोदय । श्वोऽहं गच्छामि पुत्राभ्यां त्वया मंत्रिजनैः सह ॥१४॥
भरतेनापि युष्माकं पुत्रैः शत्रुघ्नसंयुतः । स्वयंवरं सावरोधः पौरैर्जानपदैः सह ॥१५॥
विजयो नगरीं राज्यं पालितुं स्थापितो मया । अद्य वै वस्त्रगेहानि बहिर्नेयानि लक्ष्मण ॥१६॥
पंथानं शोधयंत्वद्य नानादूतास्त्वरान्विताः । गच्छन्तु सकला नार्यः पुष्पकेण विहायसा ॥१७॥
तथेति लक्ष्मणश्चोक्त्वा चकार स यथोदितम् । राघवेण सभामध्ये प्रबद्धकरसंपुटः ॥१८॥
ततो द्वितीयदिवसे प्रभाते रघुनन्दनः । स्नात्वा नित्यविधिं कृत्वा निनायाग्नीन् स पुष्पके । १९॥
स्थापयामास कुण्डेषु भुक्त्वा सह सुहृज्जनैः । ततः सीतां समाहूय त्वरयामास राघवः ॥२०॥
ततः स्त्रियस्तदा सर्वाः सीताद्या रुक्मभूषिताः । यानमारुरुहुः शीघ्रं दिव्यवस्त्रादिमण्डिताः ॥२१॥
ततो रामो गजारूढो वरछत्रोपशोभितः । ययावग्रे चामराद्यैर्वीजितश्च मुहुर्मुहुः ॥२२॥
रामाग्रे वारणारूढो ययौ शीघ्रं गुरुस्तदा । राघवस्य पृष्ठभागे करिस्थो लक्ष्मणो ययौ ॥२३॥
ततः कुशाद्यास्ते ह्यष्टौ बाला जग्मुर्गजस्थिताः । ततो भरतशत्रुघ्नौ जग्मतुर्गजसंस्थितौ ॥२४॥
ततः सर्वे मंत्रिणश्च पौरा जानपदादयः । नानावाहनसंस्थास्ते ययुः सर्वे त्वरान्विताः ॥२५॥
चतुर्दन्ते शुक्लवर्णे वारणैरावतोद्भवे । संस्थितो राघवो रेजे मुक्ताजालविराजिते ॥२६॥
एवं रामः शनैर्मार्गे बंदिमागधसंस्तुतः । शृण्वन् वाद्यनिनादांश्च ययौ पूर्वदिशं शनैः ॥२७॥

होकर कौसल्याकी कोखसे जन्मे हैं। मैं भूरिकीर्ति भ्रमरकी नाईं उनके चरणकमलोंको सूँघनेकी कामनासे रात-दिन प्रार्थना करता रहता हूँ ॥ ९ ॥ हे राम ! मेरी चम्पिका तथा सुमति नामकी दो पौत्रियाँ हैं। उनके स्वयंवरमें बहुतसे राजे आये हुए हैं। अतएव आपसे भी प्रार्थना है कि अपने भ्राताओं, पुत्रों, भ्राताओंके पुत्रों, मंत्रियों, मित्रों, घरकी नारियों, पुरवासियों तथा सेनाके साथ मेरे यहाँ पधारें। हे प्रभो ! मेरी इस प्रार्थनाको विफल मत कीजिएगा ॥ १०–१२ ॥ इस प्रकार उस पत्रकी बातोंको स्वस्थचित्त होकर रामचन्द्रजीने सुना और स्वयंवरमें जानेके लिए गुरु वसिष्ठसे निश्चय किया। इसके बाद रामने लक्ष्मणसे कहा कि आज सेना भेज दो। कल हम, तुम, लव, कुश, मंत्रियों, भरत तथा तुम लोगोंके पुत्रों, स्त्रियों तथा पुरवासियोंको साथ लेकर स्वयंवरमें चलेंगे। विजयको अयोध्या नगरी तथा देशकी रक्षाके लिए नियुक्त कर दिया जाय। हे लक्ष्मण ! तुम आज अभी तम्बू-कनात आदि भेज दो ॥ १३–१६ ॥ झटपट कुछ दूतोंको रास्ता साफ करनेके लिए आगे भेज दो। घरकी सारी स्त्रियोंको पुष्पक विमान द्वारा पहले ही भेज दो ॥ १७ ॥ लक्ष्मणने रामकी सब बातें मान लीं और जैसा उन्होंने कहा था, सो सब ठीक कर दिया ॥ १८ ॥ दूसरे दिन रामने सबेरे उठकर स्नान और नित्यकर्म करनेके अनन्तर सब भ्राताओंके साथ बैठकर भोजन किया। अग्निहोत्रकी अग्नि मँगवाकर पुष्पक विमानपर रखी ॥ १९ ॥ इसके बाद सीताको बुलाया और जल्दी तैयार होनेके लिये कहा ॥ २० ॥ सीता आदि नारियोंने सुनहले वस्त्र तथा आभूषण पहने और पुष्पक विमानपर जा बैठीं ॥ २१ ॥ इसके बाद राम एक सुन्दर हाथीपर बैठकर चले। उस समय उनके ऊपर श्वेत छत्र लगा हुआ था और सेवक उनपर चँवर डुला रहे थे ॥ २२ ॥ सबसे आगे गुरु वसिष्ठका हाथी था, उनके पीछे राम और रामके पीछे लक्ष्मणका हाथी था ॥ २३ ॥ उनके पीछे कुश आदि आठों बच्चों और भरत-शत्रुघ्नका हाथी चल रहा था ॥ २४ ॥ इन सबके पीछे मन्त्री तथा पुरवासी अनेक प्रकारकी सवारियोंपर सवार होकर शीघ्रतासे चले जा रहे थे ॥ २५ ॥ रामचन्द्रजी ऐरावतके कुलमें उत्पन्न चार दाँतवाले तथा मोतियोंके झुब्बोंसे सुशोभित हाथीपर बैठे हुए बड़े सुन्दर लग रहे थे ॥ २६ ॥ इस तरह बन्दीजन-मागध आदिकोंके द्वारा

ववर्षुः सकला नार्यः पुष्पकस्था रघूत्तमम् । पुष्पवृष्टिभिरानन्दपूरिता राघवेक्षणाः ॥२८॥
निनेदुर्नववाद्यानि ननृतुर्वारयोषितः । जगुर्गीतानि रम्याणि पुरतस्ते नटादयः ॥२९॥
एवं रामः शनैर्गत्वा साकेताद्योजनोपरि । सेनानिवेशसंस्थानं निर्मितं तद्ददर्श सः ॥३०॥
अवरुह्य गजेंद्रात्स विवेश वसनगृहम् । एवं रामः शनैर्मार्गे पश्यन् देशान्मनोरमान् ॥३१॥
तीर्त्वा भागीरथीं गङ्गां विलंघ्य कटकान् प्रभुः । ययौ विंशद्दिनैर्भूरिकीर्तेर्देशमनुत्तमम् ॥३२॥
भूरिकीर्तेस्ततो दूतो गत्वा निजप्रभुं जवात् । कथयामास रामस्य मुदाऽऽगमनमादरात् ॥३३॥
भूरिकीर्तिर्नृपः श्रुत्वाऽऽगमनं राघवस्य सः । तुतोष नितरां श्रीमान् रामं प्रत्युद्ययौ जवात् ॥३४॥
स्वपुरीं शोभयामास पताकाध्वजतोरणैः । वारणेन्द्रं पुरस्कृत्य समायातैर्नृपैः सह ॥३५॥
ये ये समागतास्तत्र पार्थिवाश्च स्वयंवरे । विषण्णास्या बभूवुस्ते व्यग्रचित्तास्तथैव च ॥३६॥
स्वचित्ते मंत्रयामासुः कथमत्र स्वयंवरे । त्यक्त्वा श्रीरामबालांश्च कन्येऽस्माकं वरिष्यतः॥३७॥
इति चिंताविष्टचित्ताः प्रत्युज्जग्मू रघूत्तमम् । रामं दूराद्ददृशुस्ते तत्सेनां च त्वरान्विताम् ॥३८॥
ततस्ते राघवं नत्वोपायनानि न्यवेदयन् । रामेणालिंगिताः सर्वे तत्पार्श्वे संस्थितास्तदा ॥३९॥
ततस्तं भूरिकीर्तिस्तु स्वपुत्राभ्यां समन्वितः । नत्वा रामादिकान् पूज्य वस्त्राभरणवाहनैः ॥४०॥
निनाय नगरीं स्वीयां गोपुराट्टालमण्डिताम् । नर्तत्सु वारनारीषु वाद्येषु निनदत्सु च ।४१॥
स्तुवत्सु वन्दिवृन्देषु विवेश नगरीं प्रभुः । तदा तत्पुरनार्यस्ताः श्रुत्वा रामं समागतम् । ४२ ।
विहाय निजकार्याणि दुद्रुवुर्गोपुरादिषु । शीघ्रमारुरुहुः सर्वा ददृशुस्ता रघूत्तम् ।।४३॥
काचित्स्वबालकं त्यक्त्वा रुदन्तं निजमञ्चके । दुद्राव राघवं द्रष्टुं वरप्रासादमस्तके ॥४४॥
तांबूलवीटिकां काचित्कृत्वा यावत्पतिं ददौ । तावच्छ्रुत्वा समायातं रामं दुद्राव सा जवात् ॥४५॥

अपनी विरुदावली सुनते हुए धीरे-धीरे पूर्व दिशाकी ओर चले। उधर पुष्पक विमानपर बैठी हुई स्त्रियाँ रामको निहार-निहारकर उनपर पुष्पवृष्टि करती चल रही थीं ॥ २७ ॥ २८ ॥ उस समय आगे-आगे विविध प्रकारके नये-नये बाजे बज रहे थे। नट अच्छे-अच्छे गाने गाते थे तथा वेश्यायें नाच रही थीं। इस तरह रामचन्द्रजी अयोध्यासे एक योजनकी दूरीपर गये और वहाँ उन्होंने अपनी सेनाका शिविर देखा। उस स्थानपर हाथीसे उतरकर तम्बूके बने हुए डेरेमें ठहरे। इस प्रकार रामचन्द्रजी रास्तेमें अनेक मनोरम देशोंको देखते हुए गङ्गाजीको पार करके बोस दिनमें राजा भूरिकीर्तिकी सुन्दर नगरीके पास पहुँचे ॥ २९–३२ ॥ तुरन्त राजा भूरिकीर्तिके दूतने जाकर अपने स्वामीको श्रीरामके आगमनकी सूचना दी। राजाने यह समाचार सुना तो बहुत प्रसन्न हुए। तुरन्त पताका, ध्वजा तथा तोरण आदिसे सारी नगरी सजवायी और निमन्त्रणमें आये हुए राजाओंको साथ लेकर रामकी अगवानीको चल दिये। रामका आगमन सुनकर जो राजे वहाँ आये थे, वे घबड़ा उठे। उनका मुख मलीन हो गया ॥ ३३-३६ ॥ उन्होंने अपने मनमें विचार किया कि रामके बेटोंके सामने वे कन्याएँ हमें कैसे पसन्द करेंगी। ऐसी चिन्ता करते हुए वे रामकी ओर चले जा रहे थे, तबतक उन लोगोंने दूरसे ही रामको तथा उनकी विशाल सेनाको देखा। रामके पास पहुँचकर उन सबोंने प्रणाम करके उनको विविध प्रकारके उपहार समर्पण किये। राम उन सबको हृदयसे लगा-लगाकर मिले और अपने पास बिठाला ॥ ३७–३९ ॥ इसके बाद राजा भूरिकीर्ति अपने दोनों पुत्रोंके साथ आकर मिले। उन्होंने । रामादिकी अनेक प्रकारके वस्त्राभूषणोंसे पूजा की। इसके अनन्तर आदर समेत सबकी बड़े-बड़े कंगूरों तथा अटारियोंसे सुसज्जित नगरीमें ले चले, जहाँ वेश्यायें नाच रही थीं और विविध प्रकारके बाजे बज रहे थे ॥ ४० ॥ ४१ ॥ एक ओर बन्दीजन विरुदावली बखान रहे थे। उस नगरीकी स्त्रियोंने जब सुना कि रामचन्द्रजी आ रहे हैं तो अपने सारे कामोंको छोड़कर दौड़ पड़ीं। वे अटारियों, छज्जों तथा छतोंपर चढ़-चढ़कर रामको निहारने लगीं ॥ ४२ ॥ ४३ ॥ कोई स्त्री अपने बच्चेको रोता छोड़कर छतकी तरफ दौड़ी। कोई स्त्री पानका बीड़ा लगाकर पतिको देना चाहती थी, इतमें सुना कि राम आ गये हैं तो वेगके साथ दौड़ पड़ी। कोई स्त्री

काचित्त्यक्त्वा भोजनं तु काचित्पाकस्य सत्क्रियाम् ।
काचित्सकबरीहस्ता मुक्तकेशा ययौ जवात् ॥४६॥
पतिनालिंगिता काचिन्निष्कास्य स्वपतेः करम् । ययौ वेगेन ललना वरप्रासादमस्तकम् ॥४७॥
क्षालयन्ती पतेः पादावेकं प्रक्षाल्य कामिनी । यावज्जग्राह साऽन्यं तु तावच्छ्रुत्वा समागतम् ॥४८॥
सीतया रामचंद्रं हि शीघ्रं दुद्राव सा तदा । काचिद्भर्त्रा चुम्ब्यमाना दूरं कृत्वा पतेर्मुखम् ॥४९॥
दुद्राव राघवं द्रष्टुं प्रासादे स्रस्तपल्लवा ।काचिद्विनिद्रिता भर्त्रा त्यक्त्वा निद्रां त्वरान्विता॥५०॥
विस्तीर्णकज्जला मन्दनेत्रा निद्राभरान्विता । नेत्राभ्यां कुंचितान् केशान् वारयंती जवाद्ययौ ॥५१॥
त्यक्त्वाऽभ्यंगं हि काचित्सा कुर्वन्तं करसन्निधिम् । ययौ वेगेन प्रासादं श्रुत्वा राघवमागतम् ॥५२॥
काचिद्भुजे कचुकीं सा कृत्वैके चापरे भुजे । कर्तुकामा ययौ शीघ्रं तथैव प्रमदोत्तमा ॥५३॥
काचिदेके पदे कृत्वा नूपुरादीनि भामिनी । अपरे कर्तुकामा सा तथैवाट्टालमाययौ ॥५४॥
कथयती शुभां वार्तां स्वपत्युः पुरतः स्थिता । श्रुत्वा रामं समायान्तं दुद्राव गजगामिनी ॥५५॥
काचिन्निजपतिं पात्रे कुर्वन्ती परिवेषणम् ।भूमौ त्यक्त्वाऽन्नपात्रं सा ययौ रामं निरीक्षितुम्॥५६॥
काचित्स्नात्वा दिव्यवस्त्रा कुर्वती सा प्रदक्षिणाः । तुलसीं च महादेवं श्रुत्वा रामं ययौ जवात् ।५७।
काचिद्रज्जुघटं कूपे कृत्वा तोयार्थमुद्यता । त्यक्त्वा रज्जुघटं कूपे दुद्रावेंदुनिभानना ॥५८॥
काचित्स्वबालकं स्तन्यं रहः पाययती वधूः । कुचयोर्बालकं धृत्वा तथैव सा ययौ जवात् ॥५९॥
काचित्सा परिधायाथ वस्त्रं कच्छं करेण सा । कर्तुकामा ययौ वेगात्तथैवाट्टालमस्तकम् ॥६०॥
एवं कर्माण्यनेकानि कुर्वत्यस्ताः पुरस्त्रियः । विहाय तानि सर्वाणि ययौ रामं निरीक्षितुम् ॥६१॥
दृष्ट्वा रामं गजस्थं ता ववर्षुः पुष्पवृष्टिभिः । ऊचुः परस्परं नार्यः शतशोऽट्टालसंस्थिताः ॥६२॥
धन्या सा रामजननी कौसल्या या रघूत्तमम् । सुपुवे राजराजानं परिपूर्णमनोरथा ॥६३॥

भोजन करती थी और कोई भोजन बना रही थी। सो उसको ज्योंका त्यों छोड़कर भागी। कोई बालोंको सँवार रही थी, वह केशोंको हाथमें थाम्हे ही दौड़ पड़ी। किसीका पति आलिंगन कर रहा था। इतनेमें रामका आगमन सुना तो स्वामीका हाथ झिड़ककर दौड़ आयी। कोई अपने पतिके पैर धो रही थी, उसने एक पैर धोकर दूसरा पकड़ा ही था कि उसे खबर लगी कि सीताके सहित राम आ रहे हैं, वह तुरन्त दौड़कर प्रासादपर चढ़ गयी। कोई पतिके साथ शय्यापर सोयी थी ॥४४–५०॥ इससे उसकी आँखोंका काजल मुँहभरमें पुत गया, वह भी यह समाचार पाते ही आँखोंके सामनेवाले बालोंको हटाती हुई दौड़ी ॥ ५१ ॥ कोई उबटन लगा रही थी, वह एक हाथसे साड़ी सम्हालती हुई दौड़ पड़ी । किसीका पति कामोन्मत्त होकर आलिंगन करना चाहता था। वह भी एक हाथसे साड़ी सम्हालती हुई चली आयी ॥ ५१ ॥ ५३ ॥ कोई कामिनी नूपुर पहन रही थी। वह केवल एक ही पैरमें उसे पहनकर अपनी अँटारीपर दौड़ पड़ी ॥५४॥ कोई पतिसे बातें कर रही थी। वह जहाँतक बात कर चुकी थी, वहाँ ही छोड़कर दौड़ आयी ॥ ५५ ॥ कोई पतिके लिए भोजन बना रही थी, वह भी पात्रको ज्योंका त्यों छोड़कर रामको देखने लिए दौड़ पड़ी ॥ ५६ ॥ कोई स्नान करके तुलसी तथा महादेवकी प्रदक्षिणा कर रही थी, वह भी रामका आगमन सुनकर उसे अधूरा ही छोड़कर भाग चली ॥ ५७ ॥ कोई चन्द्रमुखी रमणी कुएँपर पानी भरने गयी थी, वह रस्सी और घड़ा कुएँमें ही फेंककर चल पड़ी ॥५८॥ कोई एकान्तमें बच्चेको दूध पिला रही थी, वह बालकको लिये हुए ही दौड़ आयी ॥ ५९ ॥ कोई भोजन आदिके कामोंसे निबटकर अंटारीपर जाना चाहती थी, वह आधे कपड़े पहने हुए ही चली आयी ॥६०॥ इस प्रकार अनेक तरहके कामोंको करती हुई स्त्रियाँ अपना-अपना काम छोड़कर रामके दर्शनके लिए छज्जों और छतोंपर आ खड़ी हुईं ॥ ६१ ॥ हाथीपर बैठे हुए रामको देखकर स्त्रियां उनपर फूलोंकी वर्षा करती हुई आपसमें इस प्रकार बातें करती थीं—॥६२॥ रामकी माता कौसल्या धन्य

काश्चिदूचुश्च सा धन्या सीता जनकनंदिनी । यस्या विंबाधररसमुररीकुरुतेऽत्र सः ॥६४॥
काश्चिदूचुस्तया तप्तं जानक्या दुष्करं तपः । पूर्वजन्मनि यत्पुण्याद्राजराजप्रियाऽभवत् ॥६५॥
काश्चिदूचुर्वयं मन्दभाग्यास्तु जगतीतले । सीतादास्यो न जाताः स्म रामसेवनतत्पराः ॥६६॥
इति नानाविधा वाचस्तासां श्रृण्वन् रघूत्तमः । ययौ स राजमार्गेण नृपकल्पितमन्दिरम् ॥६७॥
तत्रावरुह्य नागेन्द्राद्विवेश वरमंदिरम् । तस्थौ सुखेन जानक्या बंधुभिर्बालकैः प्रभुः ॥६८॥

इति श्रीशतकोटिरामचरितांतर्गते श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये विवाहकाण्डे
स्वयंवरार्थं भूरिकीर्तेः पुरं प्रति श्रीरामगमनं नाम प्रथमः सर्गः ॥ १ ॥

द्वितीयः सर्गः

(राजा भूरिकीर्तिकी पुत्री चम्पिकाका स्वयंवर)

श्रीरामदास उवाच

अथापरदिने रामं भूरिकीर्तिः समाययौ । नत्वा प्राह रघुश्रेष्ठ सभामागन्तुमर्हसि ॥ १ ॥
तथेति राघवश्चोक्त्वा बालकैः रुक्मभूषितैः । रुक्मतन्तूद्भवश्रेष्ठकंचुकोष्णीपमण्डितः ॥ २ ॥
ऊरू पिधाय त्रिमुखैः कटिबंधोत्तरीयकैः । भूषितैरष्टभिः शीघ्रं शिबिकास्थैः समाययौ ॥ ३ ॥
सभायां ये नृपाः पूर्वमासनेषु च संस्थिताः । श्रुत्वा रामं समायांतं सभ्रमात्तत्पुरो ययौ ॥ ४ ॥
चक्रुः सर्वे राघवाय प्रणामान्पार्थिवोत्तमाः । तेषां नामानि रामाय दीर्घशब्दैः पृथक् पृथक् ॥ ५ ॥
चित्रोष्णीषा रामदूताः प्रोचुर्वै वेत्रपाणयः । वस्त्रालंकारभूषाभिर्भूषिता मुदिताननाः ॥ ६ ॥
राजराज नृपश्चायं कर्णाटविषये स्थितः । विजयस्ते प्रणामांश्च करोति त्वं विलोकय ॥ ७ ॥
राघवेंद्र नृपश्चायं श्रीमान् द्रविडदेशजः । कंबुकण्ठो प्रणामांस्ते करोति त्वं विलोकय ॥ ८ ॥
दीनानाथ नृपश्चायं विदर्भविषये स्थितः । अंगनाथः प्रणामांस्ते करोति त्वं विलोकय ॥ ९ ॥

हैं, जिन्होंने राजाधिराज राम जैसे पुत्रको जन्म दिया ॥ ६३ ॥ कोई कहने लगी कि जनकनन्दिनी सीता धन्य हैं कि रामचन्द्रजी जिनके अधररसका पान करते हैं ॥ ६४ ॥ कोई बाली-ज्ञात होता है कि सीताने पूर्वजन्ममें दुष्कर तपस्या की थी, जिसके प्रभावसे वे आज राजराज रामचन्द्रकी प्रिया बधू बनी हैं ॥ ६५ ॥ कुछ स्त्रियाँ कहने लगीं कि हम लोग बड़ी अभागिनी हैं, जो सीताकी दासी होकर भी रामकी सेवा नहीं कर सकीं ॥ ६६ ॥ इस तरह नाना प्रकारकी बातें सुनते हुए रामचन्द्रजी राजमार्गसे चलकर हाथीसे उतरे और राजा भूरिकीर्ति द्वारा सजाये हुए भवनमें गये और सीता, भ्राताओं तथा बालकोंके साथ टिके ॥ ६७ ॥ ६८ ॥
इति श्रीशतकोटिरामचरितान्तर्गत श्रीमदानन्दरामायणे विवाहकाण्डे प्रथमः सर्गः ॥ १ ॥

श्रीरामदास बोले-इसके बाद दूसरे दिन राजा भूरिकीर्ति स्वयं रामके पास पहुँचे और प्रणाम करके कहने लगे—हे रघुश्रेष्ठ ! अब सभामें चलिए । "अच्छा" कहकर रामने भी सुवर्णके अनेक आभूषण पहने, सुवर्णके सूत्रसे बने अच्छे-अच्छे वस्त्र धारण किये, परतलेसे सज्जित कमरबन्द कसा और शिबिकापर बैठकर आठों बालकोंके साथ सभाभवनकी ओर चले ॥ १–३ ॥ जो राजे पहले ही से सभामें आकर बैठे हुए थे, वे रामका आगमन सुनकर अकचका उठे और रामके सामने जा पहुँचे ॥ ४ ॥ उन्होंने भगवानको प्रणाम किया । रङ्ग-बिरङ्गी पगड़ियाँ बाँधे और हाथमें वेंत लिये हुए रामके दूत जोर-जोरसे बोलकर इस प्रकार उनका नाम बतलाने लगे—हे राजाओंके भी राजा राम ! देखिए, कर्णाटक देशका रहनेवाला यह विजय नामका राजा आपको प्रणाम कर रहा है ॥५–७॥ इधर देखिए, हे राघवेन्द्र ! यह द्रविड़ देशका निवासी कम्बुकण्ठ नामका राजा आपको प्रणाम कर रहा है । हे दीनाथ ! यह विदर्भ देशका अधिपति अंगनाथ नामका राजा आपको

महाराज नृपश्चायं मागधे विषये स्थितः । परंतपः प्रणामांस्ते करोति त्वं विलोकय ॥१०॥
सीताकांत नृपश्चायमवंतिस्थः प्रतापवान् । उग्रबाहुः प्रणामांस्ते करोति त्वं विलोकय ॥११॥
रघुवीर नृपश्चायं स्थितो हैहयपत्तने । प्रतीपस्ते प्रणामांश्च करोति त्वं विलोकय ॥१२॥
हे राम नृपतिश्चायं शूरसेने स्थितो महान् । सुषेणस्ते प्रणामांश्च करोति त्वं विलोकय ॥१३॥
कोसलेंद्र नृपश्चायं हरिद्वारस्थितो महान् । नीपान्वये यज्ञकीर्तिः करोति नमनं तव ॥१४॥
अयोध्येश नृपश्चायं कलिंगविषये स्थितः । हेमांगदस्तटेऽब्धेश्च करोति नमनं तव ॥१५॥
रावणारे नृपश्चायं नागपत्तनसंस्थितः । पांड्योऽयं मतिमान् शूरः करोति नमनं तव ॥१६॥
एवं तेषां प्रणामांश्च मानयन् स्वेक्षणादिभिः । विवेश बंधुभिर्बालैः सभायां मन्त्रिभिः प्रभुः ॥१७॥
तत्र सिंहासने दिव्ये पश्चिमायां ततो हरिः । उपाविशत्स पूर्वास्यश्छत्रचामरमण्डितः ॥१८॥
रामस्य सव्ये सौमित्रिकैकेयतनयाः स्थिताः । तस्थुस्तथा रामवामे कुशाद्या मंत्रिबालकाः ॥१९॥
शत्रुघ्नसव्ये संतस्थुः सुमंत्राद्याः सुमन्त्रिणः । सभायामुत्तरे याम्ये पंक्तौ सर्वे नृपादिकाः ॥२०॥
नेमिरेखोपमास्तस्थुः स्वसुहृत्पुत्रमन्त्रिभिः । पश्चिमाभिमुखाः सर्वा ननृतुर्वारयोषितः ॥२१॥
अट्टालसस्था विप्राद्या ददृशुः कौतुकं महत् । ततो नदत्सु वाद्येषु धूपेषु प्रज्वलत्सु च ॥२२॥
नतंत्सु वारनारीषु गायत्सु मागधादिषु । स्तुवत्सु बंदिवृंदेषु सभायां नृपपौत्रिके ॥२३॥
शिबिकास्थे दिव्यवस्त्रदिव्यालंकारमण्डिते । नवरत्नमहामालाधृतरम्यकरोत्पले ॥२४॥
ते समाजग्मतू रम्ये सभाग्रस्थे विरेजतुः । तयोर्नेत्रकटाक्षैश्च भिन्नमर्मस्थला नृपाः ॥२५॥
बभूवुर्विकलाः सर्वे कामबाणैर्विशेषतः । न तदा लेभिरे शर्म शुष्ककण्ठौष्ठतालुकाः ॥२६।
सभां तां चंपिकानाम्नी वह्निकोणाद्विवेश ह । ईशकोणाच्च सुमतिः सभां तां संविवेश ह ॥२७॥

प्रणाम करता है, इसे देखिए ॥ ८ ॥ ९ ॥ हे महाराज ! देखिये, मगध देशका रहनेवाला यह परन्तप नामक राजा आपको प्रणाम करता है ॥ १० ॥ हे सीताकान्त ! अवन्तिदेशका निवासी और महाप्रतापशाली यह उग्रबाहु नामक राजा आपको प्रणाम कर रहा है ॥ ११ ॥ हे रघुवीर ! यह हैहयनगरका रहनेवाला प्रतीप नामक राजा आपको प्रणाम करता है ॥ १२ ॥ हे राम ! शूरसेन नगरका रहनेवाला यह सुषेण नामक राजा आपको प्रणाम करता है। हे कोसलेन्द्र ! यह हरिद्वारका रहनेवाला नीपवंशज यज्ञकीर्ति नामक राजा आपको प्रणाम कर रहा है ॥१३॥१४॥ हे अयोध्येश ! समुद्रतटस्थ कलिंग देशमें रहनेवाला यह हेमांगद नामका राजा आपको प्रणाम करता है। हे रावणारे ! नागपत्तनका रहनेवाला बुद्धिमान् तथा अति पराक्रमी पाण्डय नामक राजा आपको प्रणाम कर रहा है ॥ १५ ॥ १६ ॥ रामचन्द्रजी सबकी ओर निहार तथा संकेत आदिसे लोगों-के प्रणाम स्वीकार करके अपने भ्राताओं और बालकोंके साथ सभाभवनमें पधारे। वहाँ पश्चिमकी तरफ रक्खे हुए एक दिव्य सिंहासनपर पूर्वकी ओर मुख करके बैठे । उस समय भी उनके ऊपर छत्र लगा था और चमर चल रहे थे ॥ १७ ॥ १८ ॥ रामकी दाहिनी बगलमें लक्ष्मण भरत आदि भ्राता बैठे। बायीं ओर कुश आदि सब लड़के तथा मंत्रिपुत्र बैठे। शत्रुघ्नकी दाहिनी बगलमें सुमंत्रादि मन्त्री बैठे। सभाकी उत्तर ओर दक्षिणी पंक्तिमें गोलाकार बनाकर सब राजे सुहृत्-पुत्र तथा मन्त्रियोंके साथ बैठे थे और पश्चिमकी ओर मुख करके वेश्यायें नाच रही थीं ॥ १९-२१ ॥ अटारियोंपर बैठे हुए ब्राह्मण आदि नगरनिवासी वहाँका कौतुक देख रहे थे। इसके अनन्तर जब बाजे बजने लगे, चारों ओरसे धूपकी सुगन्धि उड़ने लगी, वेश्याएँ नाचने लगीं, मागध-नट आदि विविध प्रकारके गायन गाने लगे और बन्दीजन तरह-तरहकी स्तुति करने लगे। उसी समय शिबिकापर चढ़कर दिव्य वस्त्र तथा अलंकार पहिने, नवरत्नोंकी बनी एक बड़ी-सी माला हाथोंमें लिये वे दोनों सुन्दरी कन्यायें सभामें आ पहुँचीं । उनके नेत्रकटाक्षसे घायल तथा कामके बाणोंसे विदीर्णहृदय होकर कितने ही राजे विकल हो गये। उनके होंठ और तालु सूख गये। उस समय कुछ भी अच्छा नहीं लग रहा था। उस सभामें अग्निकोणसे चम्पिका तथा ईशानकोणसे सुमति नामवाली कन्या प्रविष्ट हुई

अथोपमाता वृद्धा सा धृतहस्ताग्रयष्टिका ।सभायां चंपिकानाम्न्यै दक्षिणस्थान्पृथक् पृथक्॥२८॥
क्रमेण वर्णयामास तदा नृपतिसत्तमान् । तथाऽन्या च सभाग्राच्च धृतहस्ताग्रयष्टिका ॥२९॥
सुनन्दाख्याऽतिजरठा सुमत्यै नृपतीन्क्रमात् । वर्णयामासोत्तरस्थानुपमाता पृथक् पृथक् ॥३०॥
अथ सा चम्पिकां प्राह नीत्वा तां नृपतेः पुरः । शिविकास्थां चापमाता नन्दा चामरवीजिता ॥३१॥
राजकन्ये चंपिकेऽत्र शृणुष्व वचनं मम । एनं नृप वर्णयामि पश्य त्वं मदनोपमम् ॥३२॥
पांड्योऽयं मतिमान्नाम्ना नागपत्तनसंस्थितः । शूरो रथी नृपश्रेष्ठः प्रजापालनतत्परः ॥३३॥
यदि ते रोचते चित्ते वरयैनमनुत्तमम् । अस्य त्वं महिषी भूत्वा नागपत्तनसंस्थिता ॥३४॥
क्रीडस्व मुदिताऽनेन वरप्रासादराजिषु । नन्दोक्तं चंपिका श्रुत्वा द्व्यर्थं वाक्यमनुत्तमम् ॥३५॥
न बबन्ध मनस्तस्मिन्नृपतौ मतिमत्तरा । चोदयामास नन्दां तामग्रे गन्तुं नृपान्तरम् ॥३६॥
तदाऽन्यं नृपतिं नन्दा नीत्वा तां शिविकास्थिता । चंपिकां प्राह वेगेन पश्यैनं बालिके नृपम् ॥३७॥
कलिङ्गविषयस्थोऽयं नाम्ना हेमाङ्गदो महान् । कोटिशो वारणेंद्राणां यस्य गण्डस्थलादिषु ॥३८॥
मुक्ताजालातिगुच्छाश्च राजन्ते कमलानने । अस्य त्वं महिषी भूत्वा गवाक्षैः सागरस्य च ॥३९॥
पश्यन्ती कौतुकं बाले करोषि क्रीडनादिकम् । अस्य स्त्रीवृंदमध्ये त्वं भव मुख्याऽद्य कन्यके ॥४०॥
इत्युक्ताऽपि तथा तन्वी नन्दया चंपिका नृपे । तस्मिन् मनो न बबन्धान्यं गन्तुं तामचोदयत् ॥४१॥
सपत्नीभयमालक्ष्य सपत्नीकस्त्यजिष्यति । अमहानिति वाक्ये नन्दया सूचिताऽपि सा ॥४२॥
ततोऽन्यं नृपतिं गत्वा नन्दा प्रोवाच चंपिकाम् । पश्यैनं नृपतिं मुग्धे हरिद्वारनिवासिनम् ॥४३॥
नीपान्वयसमुद्भूतं ह्यब्धाविव निशाकरम् । यज्ञानां नृपतेरस्य कीर्त्या जगति मण्डले ॥४४॥
यज्ञकीर्तिरिति ख्यातः पृथ्वीशः प्रमदाप्रियः । वरयैनं नृपं पुत्रि रुक्मभूषणभूषितम् ॥४५॥

॥ २२–२७ ॥ चम्पिकाके साथ एक उपमाता (धाई) सुनन्दा थी, जो हाथमें एक छोटी-सी छड़ी लिये थी। वह दक्षिणकी तरफ वैठे राजाओंका वर्णन करने लगी ॥ २८–३० ॥ सुनन्दा चम्पिकाको एक राजाके सामने लायी। उस समय भी चम्पिका पालकीपर वैठी थी और उसपर चमर चल रहे थे ॥ ३१ ॥ सुनन्दा चम्पिकाका सम्बोधन करके कहने लगी—हे राजकन्ये चम्पिके ! मेरी वात सुनो—देखो, यह कामदेवके समान सुंदर अति बुद्धिमान् पाण्ड्य नामक राजा नागपत्तनका रहनेवाला, बड़ा पराक्रमी, रथी, सब राजाओंमें श्रेष्ठ और प्रजापालनमें तत्पर है ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ यदि तुम्हें अच्छा लगे तो इसीको पसन्द कर लो। तुम इसकी राजरानी बनकर नागपत्तनमें आनन्दके साथ अच्छे-अच्छे महलोंमें क्रीड़ाए करोगी। सुनन्दाकी ये बातें उसे द्व्यर्थक तथा व्यर्थ-सी जान पड़ीं। उस राजापर उसकी तबीयत नहीं डटी और दूसरे राजाके पास चलनेका संकेत किया ॥ ३४–३६ ॥ फिर सुनन्दा शिविकामें वैठी चम्पिकाको दूसरे राजाके सामने ले जाकर कहने लगी ॥ ३७ ॥ हे बालिके ! इसे देखो, यह महान् कलिंग देशका रहनेवाला हेमाङ्गद नामका राजा है। इसके गण्डस्थलपर हाथियोंकी गजमुक्ताओंसे वने गुच्छे लटकते रहते हैं। इसकी रानी बनकर तुम महलोंकी खिड़कियोंसे समुद्रकी लहरोंके कौतुक देखती हुई विहार करोगी। बस, अब इसे पसन्द करके तुम इसकी समस्त स्त्रियोंकी प्रधान बन जाओ ॥ ३८–४० ॥ इतना कहने-सुननेपर भी उसका मन उस राजापर नहीं जमा और आगे बढ़नेका संकेत किया ॥ ४१ ॥ क्योंकि चम्पिकाको यह ख्याल हुआ कि इसके यहाँ सपत्नी (सौत) का डर हैं। दूसरे "अमहान्" शब्दका प्रयोग करके नन्दाने भी थोड़ा-सा संकेत कर दिया था ॥ ४२ ॥ इसके अनन्तर दूसरे राजाके पास पहुँचकर नन्दा कहने लगी—हे मुग्धे ! इस राजाको देखो, यह हरिद्वारका निवासी है ॥ ४३ ॥ जैसे समुद्रसे चन्द्रमाकी उत्पत्ति हुई है, उसी प्रकार यह पवित्र नीप राजाके वंशमें उत्पन्न हुआ है। अनेक यज्ञोंको करनेसे जगत् भरमें इसकी कीर्ति फैल चुकी है ॥ ४४ ॥ इसीलिए लोग इसे यज्ञकीर्ति कहते हैं। सुवर्णके आभूषणोंसे मण्डित इस राजाको तुम वर लो। यह विस्तृत भूभागका मालिक है और

अस्याद्य महिषी भूत्वा गङ्गावीचिपरम्पराः । नौकास्था पश्यसि त्वं हि वरयैनं नृपोत्तमम् ॥४६॥
अस्य पत्नी वरिष्ठा त्वं भव माऽग्रे व्रजाबले । इत्युक्ताऽपि तया तस्मिन्न वबन्ध निजं मनः ॥४७॥
त्वं वरिष्ठा मा भवेति नन्दयाऽग्रे व्रजेरिता । चोदयामास सा नन्दामग्रे गन्तुं नृपांतरम् ॥४८॥
नन्दाऽप्यन्यं नृपं नीत्वा चपिकां प्राह वेगतः । पश्यैनं नृपतिं मुग्धे शूरसेनाह्वये वरे ॥४९॥
देशे करोति वै राज्यं सुषेणोऽयमनुत्तमः । तुरगा वायुवेगाश्च यस्य पत्न्यो मृगीदृशः ॥५०॥
यस्यांगणे वारनारीनृत्यघोषस्त्वहर्निशम् । वरयैन चंपिकेऽद्य तवाननवदाननम् ॥५१॥
अस्य त्वं महिषी भूत्वा जन्मसाफल्यतां कुरु । वारस्त्रीलंपट श्रुत्वा तथा वाक्यमनुत्तमम् ॥५२॥
न ववन्ध मनस्तस्मिन्नृपतौ तां प्रचोदयत् । अथ सा चोदिता नन्दा तयाऽन्यं नृपतिं क्षणात् ॥५३॥
निनाय शिविकास्थां तां चपिकामाह सादरम् । पश्यैन नृपतिं बाले स्थितं हैहयपत्तने ॥५४॥
सहस्रार्जुनवंशस्य भूषणं कमलोपमम् । प्रतीप इति नाम्नाऽयं ख्यातः शूरो महारथी ॥५५॥
वरयैनं नृपं माऽन्यं गच्छ हेमस्वरूपिणि । अस्य त्वं महिषी भूत्वा रेवायां पतिना सह ॥५६॥
करिष्यसि जलक्रीडां चम्पिके शृणु मद्वचः । इत्युक्ताऽपि तया तन्वी न बबन्ध मनो नृपे ॥५७॥
वरयैनं नृपं मेति नन्दास्यादमहारथी । नृपोऽयं चेति वाक्ये द्वे श्रुत्वा द्व्यर्थविदुत्तमा ॥५८॥
एवं नानानृपाणां सा वर्णनानि पृथक् पृथक् । स्तुतिरूपनिषेधानि शुश्रूषती नृपात्मजा ॥५९॥
जगाम शिविकासंस्था सनन्दा भरतानुजम् । सुमन्त्रादीनतिक्रम्य श्रुत्वा श्रीराममन्त्रिणा ॥६०॥
ततः प्रोवाच सा नन्दा पश्यैनं भरतानुजम् । कोसलेन्द्रस्य रामस्य बन्धुमेकोदरोपमम् ॥६१॥
अयोध्यावासिनं रामराजवाक्यानुवर्तिनम् । वरयैनं चम्पिकेऽद्य श्रुतकीर्त्याः स्वसा भव ॥६२॥
इत्युक्तापि तया तन्वी शत्रुघ्ने निजमानसम् । न बबन्ध श्रुत्वा संज्ञामग्रे गतुं चकार ताम् ॥६३॥

स्त्रियोंसे बड़ा प्रेम करता है। आज यदि तुम इसके साथ ब्याह कर लोगी तो नावपर बैठकर गङ्गाजीकी अपूर्व लहरियोंको देखोगी। मेरी बात मान लो और इसे अपना पति स्वीकार करो। अब आगे मत बढ़ो। ऐसा कहनेपर भी उसका मन उस राजापर नहीं रमा और आगे चलनेका संकेत किया ॥ ४५–४८ ॥ सूनन्दा भी दूसरे राजाके सम्मुख पहुँचकर कहने लगी–हे मुग्धे ! इस राजाकी ओर देखो। यह शूरसेन नामक देशमें रहता हुआ राज करता है। इसका सुषेण नाम है। वायुके समान वेगवाले बहुतसे घोड़े इसके पास हैं। कितनी ही मृगीकी तरह नेत्रोंवाली स्त्रियाँ भी इसके यहाँ हैं। इसके आँगनमें सदा वेश्यायें नाचती रहती हैं। हे चम्पिके ! तू इसे पसन्द कर ले। देख, तेरे ही मुखके समान इसका भी मुँह है। राजमहिषी बनकर तू अपना जीवन सुफल कर ले। उस राजाको वेश्यालम्पट जानकर चम्पिकाका मन उस राजापर भी नहीं रमा और नन्दाको आगे चलनेके लिए संकेत किया। उसके संकेतसे नन्दा चम्पिकाको साथ लिये क्षण भरमें एक दूसरे राजाके पास पहुँचकर बोली–हे बाले ! इस राजाको देखो, यह हैहयपत्तनका रहनेवाला, कमलके सदृश कोमल तथा सहस्रार्जुनका वंशज है। यह बड़ा योद्धा एवं महारथी है और 'प्रतीप' इस नामसे विख्यात है। ॥ ४९–५५ ॥ इसको वरकर तू अपने योग्य सम्मान्य पदपर पहुँचेगी। इसकी महिषी बनकर तू पतिके साथ नर्मदानदीमें सानन्द विहार करेगी ॥ ५६ ॥ इतना कहनेपर भी वह चम्पिकाको अच्छा नहीं लगा। क्योंकि नन्दाने भी कहा था— एनं नृपं मा वर' यानी 'इसे मत पसन्द कर' दूसरे 'अमहारथी' शब्दसे भी तिरस्कार ही किया था। इसलिए वह भी अच्छा नहीं लगा। नन्दाके द्व्यर्थक वाक्योंको वह खूब समझती थी ॥ ५७ ॥ ५८ ॥ इस प्रकार अनेक राजाओंके पृथक् पृथक् वर्णन तथा स्तुतिके अन्तर्गत निषेधवाक्योंको सुनती हुई पालकीपर बैठी ही चम्पिका रामके मन्त्री सुमन्त्रादिकोंको लाँघकर शत्रुघ्नके पास पहुँची ॥ ५९ ॥ ६० ॥ नन्दाने कहा–ये भरतके छोटे भाई हैं, किन्तु रामके सगे भाई जैसे मालूम पड़ते हैं ॥ ६१ ॥ ये अयोध्यामें रहते हैं और राजा रामकी आज्ञाओंका पालन करते हैं । चम्पिके ! तू इन्हींके साथ विवाह करके श्रुतकीर्तिकी बहिन बन जा ॥ ६२ ॥ इतना कहनेपर भी शत्रुघ्नमें उसका मन नहीं

ततः सा भरतं नीत्वा नन्दा तामाह मंजुलम् । शत्रुघ्नस्याग्रगं चैनं कैकेय्या जठरोद्भवम् ॥६४॥
रामसेवारतं शांतं युवानं दयिताप्रियम् । वरयैनं बालिकेऽद्य मांडव्या सरयूजले ॥६५॥
करिष्यसि जलक्रीडां नौकास्था भरतेन हि । ततस्तत्संज्ञया नन्दा लक्ष्मणं चंपिकां जवात् ॥६६॥
नीत्वा सौमित्रिकीर्ति तां वर्णयामास सादरम् । पश्यैनं लक्ष्मणं बाले सुमित्राजठरोद्भवम् ॥६७॥
अयोध्यावासिनं रामसेवासक्तं मनोहरम् । वरयैनं चंपिकेऽद्य मेघनादप्रमर्दनम् ॥
शेषांशसंभवं चोर्मिलाया वीरस्वसा भव ॥६८॥
सर्वान् श्रुत्वा रामसेवासक्तान् पत्नीयुतानपि । छत्रचामरहीनांश्च रोचयामास तान्न सा ॥६९॥
ततस्तत्संज्ञया नन्दा श्रीरामाग्रे स्वयंवरम् । नीत्वा तामाह मधुरं स्तोतुं तं रघुनन्दनम् ॥७०॥
महत्ते चंपिके दैवं येन पश्यसि राघवम् । धन्योऽहमपि या रामं दृष्ट्वा स्तोतुं पुरः स्थिता ॥७१॥
काहं मंदमतिर्नारी क्व रामो गुणसागरः । नाहं तत्स्तवने शक्ता वाल्मीकिर्यत्र कुण्ठितः ॥७२॥
शतकोटिमितैः श्लोकैश्चरित्रं राघवस्य च । मुनिना वर्णितं तच्च शतकोट्यंशवर्णितम् ॥७३॥
तस्याहं वर्णनं किञ्चित्करोमि यच्छृणुष्व तत् । सूर्यवंशभूषणं श्रीदशरथनृपात्मजम् ॥७४॥
कौसल्यातनयं रामं साक्षान्नारायणं विभुम् । ताटिकान्तकरं वीरं गाधिजाध्वरपालकम् ॥७५॥
अहल्योद्धारिणं श्रेष्ठं शिवचापैकखण्डनम् । जानकीवल्लभं रम्यं जामदग्न्यदवानलम् ॥
नृपवृंदैकजेतारं भरतप्राणदायिनम् ॥७६॥
तातात्ज्ञापालकं भ्रात्रा सीतयाऽरण्यवासिनम् । विराधमर्दनं श्यामं खरदूषणमर्दनम् ॥७७॥
त्रिशिरामृगमारीचकबन्धवालिमर्दनम् । समुद्रबंधनं लंकाराक्षसान्तकरं प्रभुम् ॥७८॥
रावणांतप्रकर्तारं सीतया राज्यकारिणम् । तीर्थयज्ञप्रकर्तारं सीताक्रीडनतत्परम् ॥७९॥

लगा और आगे चलनेका संकेत किया ॥ ६३ ॥ इसके बाद नन्दा चम्पिकाको लिये हुए भरतके सामने पहुँचकर कहने लगी—ये शत्रुघ्नके बड़े भाई भरत कैकेयीके गर्भसे उत्पन्न हुए हैं ॥ ६४ ॥ ये श्री रामकी सेवा करते हैं। इन शान्त, युवा एवं दयिताप्रिय भरतको वर ले तो तू मांडवी तथा भरतके साथ सरयूके जलमें विहार करेगी। वे भी ठीक नहीं जँचे तो चम्पिकाका संकेत पाकर नन्दा लक्ष्मणके सामने पहुँची ॥ ६५ ॥ ६६ ॥ वह चम्पिकासे कहने लगी–ये सुमित्राके गर्भसे उत्पन्न लक्ष्मण हैं। ये अयोध्यामें रहते हुए रामकी सेवा करते हैं। तू इन सुन्दर, मेघनादका नाश करनेवाले और शेष भगवान्के अंशसे उत्पन्न लक्ष्मणके साथ ब्याह करके उर्मिलाकी बहिन बन जा ॥ ६७ ॥ ६८ ॥ सब भाइयोंको रामके सेवक, छत्रचमरविहीन तथा ब्याहे सुनकर उसने तीनों भाइयोंमेंसे किसीको भी नहीं पसन्द किया ॥ ६९ ॥ इसके बाद धात्रीके संकेत करनेपर वह आगे बढ़ती हुई रामचन्द्रजीके सामने जा पहुँची। तब धात्री रामकी स्तुति करती हुई इस तरह बोली–॥ ७० ॥ हे चम्पिके! तुम्हारा अहोभाग्य है, जो तुम रामचन्द्रजीको देख रही हो और मैं भी धन्य हूँ, जो रामकी स्तुति करनेके लिए इनके सामने उपस्थित हुई हूँ ॥ ७१ ॥ कहाँ मैं एक मन्दमति नारी और कहाँ गुणोंके सागर रामचन्द्र। मैं इनकी स्तुति करनेमें कैसे समर्थ हो सकती हूँ, जब कि वाल्मीकि जैसे महान् कवि भी पूरी तौरसे वर्णन नहीं कर सके ॥ ७२ ॥ उन्होंने सौ करोड़ श्लोकोंमें जो वर्णन किया है, सो केवल उनके सौ करोड़ अंशोंकी स्तुति हुई है ॥ ७३ ॥ मैं अपनी बुद्धिके अनुसार थोड़ी-सी स्तुति कर रही हूँ, सो सुन। ये सूर्यवंशके भूषण, महाराज दशरथके पुत्र, कौसल्याके तनय और सर्वव्यापक साक्षात् नारायण हैं। इन्होंसे दुष्ट ताड़काका वध करके विश्वामित्रके यज्ञकी रक्षा की है ॥ ७४ ॥ ७५ ॥ इन्होंने अहल्याको शापसे मुक्त किया और शिवधनुष तोड़ा है। ये सीताके वल्लभ, परशुरामके कोपरूपी वनके दवानल, राजाओंके समूहको जीतनेवाले तथा भरतके जीवनदाता हैं ॥ ७६ ॥ ये पिताकी आज्ञाका पालन करनेवाले, भाई तथा सीताके साथ वनोंमें रहनेवाले, विराधके नाशक, श्यामरूपधारी और खर-दूषणके नाशक हैं ॥ ७७ ॥ त्रिशिरा तथा मृगरूप धारण करनेवाले मारीचके वधकर्ता, कबन्ध तथा वालिको मारनेवाले, समुद्रमें सेतु बाँधनेवाले और लंकानिवासी राक्षसोंके विना-

जानकीत्यागकर्तारं सीताग्रहणतत्परम् । कुशलवात्मजाभ्यां च वाज्यर्थं युद्धकारिणम् ॥८०॥
एकपत्नीव्रतं शांतं सत्यभाषणतत्परम् । एकबाणमसंख्यातनामानं मारुतिध्वजम् ॥८१॥
कोविदारध्वजं बाणध्वजं वज्रध्वजं शुभम् । तार्क्ष्यध्वजं पुष्पकस्थं तार्क्ष्यवायुजवाहनम् ॥८२॥
नानाराजावतंसस्थमुक्तादीप्त्यंघ्रिशोभितम् । वरसिंहासनासीनं छत्रचामरमण्डितम् ॥८३॥
वरयैनं चंपिकेऽद्य सीतया भज राघवम् । नववर्षेश्वरश्चायं सप्तद्वीपाधिपोऽपि च ॥८४॥
बाणः पत्नीवचो यस्य नान्यं मा खेदमाचर । नवरत्नमालिकामस्य ग्रीवायां कुरु मा व्रज ॥८५॥
इत्युक्ता नंदया बाला स्वल्पपुण्या विधेर्वशात् । न बबन्ध मनो रामे सीतां संस्मृत्य चंपिका ॥८६॥

एकपत्नीव्रतं रामं सीतया ह्यभजेति च ।
खेदं मा चर तत्कण्ठे मालां मा कुरु चोदिता ॥८७॥

ततस्तत्संज्ञया नंदा तां निनाय कुशं प्रति । प्रोवाच मधुरं वाक्यं कुशवर्णनहर्षिता ॥८८॥
एनं पश्याल्पवयसं श्रीरामतनयं कुशम् । जानकीजठरोद्भूतं ज्येष्ठं भार्यार्थिनं शुभम् ॥८९॥
लवाग्रजं धनुर्वेदनिपुणं विनयान्वितम् । पित्रा संग्रामकर्तारं वाल्मीकिमुनिशिक्षितम् ।९०॥
एनं वृणीष्व बाले त्वं सुरमानवसंस्तुतम् । नवरत्नमयीं मालामस्य कण्ठे सुखं कुरु ॥९१॥

इति नन्दावचः श्रुत्वा चंपिका सा स्मितानना ।
मुमोच मालिकां कण्ठे स्वकराभ्यां कुशस्य हि ॥९२॥

तदा निनेदुर्वाद्यानि तुष्टुवुर्बन्दिमागधाः । लज्जयाऽधोमुखो रेजे सभायां कुशबालकः ॥९३॥
तदा तुष्टो भूरिकीर्तिः कुशांके चम्पिकां शुभाम् । स्थापयामास वेगेन पश्यत्सु नृपतीषु च ॥९४॥

शक महाप्रभु हैं ॥ ७८ ॥ रावणको मारनेवाले, सीताके साथ राज्य करनेवाले, तीर्थ-यज्ञकर्ता एवं सीताके साथ विहारकारी हैं ॥ ७९ ॥ इन्होंने सीताका त्याग किया और फिर वापस बुला लिया। इन्होंने अपना यज्ञ पूर्ण करनेके लिए अपने बेटों लव-कुशके साथ भी युद्ध किया था ॥ ८० ॥ ये एकपत्नीव्रती, शान्त, सत्यभाषी, एक बाण तथा असंख्यनामधारी हैं। ये कोविदारध्वज, बाणध्वज, वज्रध्वज तथा गरुड़ध्वज हैं। पुष्पक, गरुड़ तथा हनुमान्‌जी इनके वाहन हैं ॥ ८१ ॥ ८२ ॥ ये बहुतसे राजाओंके मुकुटमणि हैं और मोतियोंके प्रकाशसे इनका चरण सुशोभित रहता है। ये एक अच्छे सिंहासनपर बैठते हैं और उसपर सुन्दर छत्र-चमर शोभित रहता है ॥८३॥ हे चम्पिके! तू इन्हें वर ले और सीताके साथ रहती हुई इनकी सेवा कर। ये नवों खण्डों एवं सातों द्वीपोंके अधिपति हैं ॥ ८४ ॥ ये किसी अन्य स्त्रीविषयक बातोंको बाणकी नाईं समझते हैं। अब तू किसी प्रकारका सोच-विचार न करके यह नवरत्नोंकी माला इनके गलेमें डाल दे ॥८५॥ इस प्रकार नन्दाके समझानेपर भी भाग्यवश तथा सीताका स्मरण करके राम भी उसे पसन्द नहीं आये ॥ ८६ ॥ दूसरे नन्दाने भी अपने वर्णनमें कहा था कि एकपत्नीव्रती हैं, इसलिए "सीतया अभज" (सीताके साथ रहना पसन्द न कर) ॥८७॥ तत्पश्चात् चम्पिकाके संकेतसे नन्दा उसे कुशके सामने ले गयी और इस तरह कुशका भी वर्णन करती हुई कहने लगी-॥ ८८ ॥ इनको देखो, इनकी अभी थोड़ी उमर है। ये रामके तनय तथा सीताके पुत्र हैं। इनका नाम कुश है। ये लवके बड़े भाई हैं। अभी इनका विवाह नहीं हुआ है। इसलिए ये भार्यार्थी हैं। ये धनुर्वेदमें निपुण, विनीत स्वभाव, पिताके साथ संग्राम करनेवाले और महामुनि वाल्मीकिके शिष्य हैं ॥ ८९ ॥ ९० ॥ अतएव मनुष्यों और देवताओंसे संस्तुत इन कुशको पसन्द करके तू इनके कंठमें यह नवरत्नमयी माला डाल दे ॥ ९१ ॥ इस प्रकार नन्दाकी बात सुनी तो हँसकर उसने अपने हाथोंसे कुशके गलेमें वरमाला डाल दी ॥ ९२ ॥ उस समय विविध प्रकारके बाजे बज उठे और बन्दीजन तथा भाटोंने स्तुति की। उस सभामें लज्जासे नीचा मुख किये बैठा हुआ बालक कुश ही सुन्दर लग रहा था ॥ ९३ ॥ उस समय प्रसन्न होकर राजा भूरिकीर्तिने सब राजाओंके सामने ही चम्पिकाको कुशकी गोदमें बिठा

ददर्श जालरंध्रैस्त प्रासादस्था विदेहजा । मुमोद नितरां स्त्रीभिर्मुमोद राघवोऽपि सः ॥९५॥

इति श्रीशतकोटिरामचरितांतर्गते श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये विवाहकाण्डे चम्पिकास्वयंवरो नाम द्वितीयः सर्गः ॥ २ ॥

तृतीयः सर्गः

(द्वितीय राजकन्या सुमतिके स्वयंवरका वर्णन)

श्रीरामदास उवाच

अथान्यां सा सभाग्राञ्च सुमतिश्चोत्तरस्थितान् । नृपानीशानदिग्भागात्सुनंदा धृतयष्टिका ॥ १ ॥
क्रमेण वर्णयामास शिबिकास्थां सुलोचनाम् । बाले शृणुष्व मे वाक्यं पश्यैनं त्वं नृपोत्तमम् ॥ २ ॥
अवन्तिस्थं चोग्रबाहुनामानं च ह्यनुत्तमम् । नानेन सदृशः कश्चित्पृथिव्यां वर्तते नृपः ॥ ३ ॥
वरयैनं नृपं माऽग्रे गच्छ त्वं गजगामिनि । अस्य त्वं महिषी भूत्वा क्षिप्रानद्याश्च सैकते ॥ ४ ॥
वस्त्रगेहस्थिताऽनेन सुखं क्रीडस्व भामिनि । अनुत्तमं चेति वाक्यं द्व्यर्थं सा सुमतिः पुरा ॥ ५ ॥
श्रुत्वा मैनं वरयेति सुनंदाया वचः पुनः । श्रुत्वा तां चोदयामास सा तां नीत्वा नृपांतरम् ॥ ६ ॥
सुनन्दा सुमतिं प्राह पश्यैनं त्वं नृपं परम् । अंगनाथाह्वयं श्रेष्ठं विदर्भविषयस्थितम् ॥ ७ ॥
पूर्ववत्त्यज मा बाले वृणीष्वैनं नृपोत्तमम् । स्त्रीकामं स्वल्पवयसं भुजकेयूरराजितम् ॥ ८ ॥
अस्य त्वं महिषी भूत्वा पयोष्णीजलवीचिषु । सुखं कुरु जलक्रीडां नृपेणानेन भामिनि ॥ ९ ॥
एनं वृणीष्व मा चेति ह्युपमात्रा सुचोदिता । अग्रे गन्तुं सुनन्दां सा चोदयामास सञ्ज्ञया ॥१०॥
ततोऽन्यं नृपतिं नीत्वा सुनंदा तां वचोऽब्रवीत् । पश्यैनं नृपतिं बाले देशे मागधसंज्ञके ॥११॥
राज्यं करोत्ययं श्रीमान्नाम्ना ख्यातः परंतपः । वरयैनं नृपं माऽग्रे गच्छान्यं पार्थिवोत्तमम् ॥१२॥
अस्य त्व महिषी भूत्वा तप्तनीरप्रपूरिते । ब्रह्मतीर्थे सदा क्रीडां हेमन्ते भज भामिनि ॥१३॥

दिया ॥ ९४ ॥ अटारीके झरोखोसे सीताने यह मङ्गलमय कार्य देखा तो बहुत प्रसन्न हुईं और रामचन्द्रजी भी अत्यधिक प्रसन्न हुए ॥ ९५ ॥ इति श्रीशतकोटिरामचरितांतर्गते श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये पं० रामतेज-पाण्डेयविरचित'ज्योत्स्ना'भाषाटीकासहिते विवाहकाण्डे द्वितीयः सर्गः ॥ २ ॥

श्रीरामदास बोले–तदनन्तर सुनन्दा दूसरी कन्या सुमतिको उत्तरकी ओर बैठे राजाओंके सामने ले जाकर ईशान कोणसे क्रमशः एक-एक राजाको दिखाकर इस प्रकार वर्णन करती हुई बोली—हे बाले! मेरी बात सुनो, राजाओंमें श्रेष्ठ इस राजाको देखो ॥ १ ॥ २ ॥ यह अवन्ति देशका रहनेवाला है। उग्रबाहु इसका नाम है। पृथ्वीतलपर इसके समान कोई राजा नहीं है ॥ ३ ॥ हे गजगामिनि! तू आगे मत बढ़, इसीको वर ले। इसका रानी बनकर तू क्षिप्रा नदीके तटपर बने हुए डेरोंमें आनन्दपूर्वक विहार करेगी। सुनन्दाने "अनुत्तमम्" तथा "एनं मा वरय" इन दो वाक्योंका दो अर्थमें प्रयोग किया था। उसमें एकसे प्रशंसा और दूसरेसे निन्दा होती थी। इसी कारण सुमतिको वह राजा पसन्द नहीं आया और उसने आगे बढ़नेका संकेत किया ॥ ४-६ ॥ सुनन्दा उसे दूसरे राजाके सम्मुख लाकर कहने लगी—यह विदर्भ देशका निवासी अङ्गनाथ नामका राजा है ॥ ७ ॥ तू इसे मत छोड़। इसीको अपना पति बना ले। यह स्त्रीकी इच्छा रखता है। इसकी थोड़ी उमर है और बाहुओंमें केयूर पड़ा हुआ हैं ॥ ८ ॥ इसको पति बनाकर तू पयोष्णी नदीके तरङ्गोंमें इसके साथ सानन्द जलविहार कर ॥९॥ यहाँ भी धात्रीके "एनं मा वृणीष्व (इसे मत वर)" यह वाक्य सुनकर उसने आगे चलनेका संकेत किया ॥ १० ॥ तदनन्तर सुनन्दा उसे दूसरे राजाके सामने ले जाकर बोली—हे बाले! इस राजाको देख, यह नरपति मगध देशमें राज करता है। यह बड़ा श्रीमान् है। इसे लोग परन्तप कहते हैं। बस, तू इसी श्रेष्ठ राजाको अपना पति बना ले—और किसीके पास मत जा ॥ ११ ॥ १२ ॥ इसको अपना पति बनाकर जाड़के दिनोंमें तू सदा ब्रह्मतीर्थके गरम जलमें क्रीड़ा किया करेगी।

मैनं नृपं वरयेति शिक्षिता सा सुनन्दया । चोदयामास तां वृद्धां सा तां निन्ये नृपांतरम् ॥१४॥
सुनंदा बालिकामाह शृणुष्व मृगलोचने । पश्यैनं नृपतिं रम्यं द्राविड़े विषये स्थितम् ॥१५॥
कम्बुकंठाह्वयं श्रेष्ठं कांतिपुर्यां निवासिनम् । एनं नृपं वृणीष्वाद्य मा व्रजान्यं नृपोत्तमम् ॥१६॥
काञ्चिपुर्यामनेन त्वं सर्वतीर्थमनोरमे । क्रीडं भजस्व विस्तीर्णे हेमकञ्जविराजिते ॥१७॥
विष्णुं वरदराजाख्यं शिवमेकाम्बराह्वयम् । पूजयस्व सदाऽनेन कम्बुग्रीवनृपेण च ॥१८॥
वृणीष्वैनं नृपं माऽद्य सामान्यनृपवरयज । इति वृद्धावचः श्रुत्वाऽग्रे तां गन्तुं प्रचोदयत् ॥१९॥
सुनंदाऽन्यं नृपं नीत्वा सुमतिं वाक्यमब्रवीत् । पश्यैनं नृपतिं मुग्धे मत्तमातङ्गगामिनि ॥२०॥
कर्णाटविषयस्थं त्वं विजयं पार्थिवोत्तमम् । कमलास्यं कञ्जहस्तं कमलांघ्रिणमुज्ज्वलम् ॥२१॥
स्मितास्यं कंजनयनं विजयाख्यपुरस्थितम् । शृणुष्व वचनं मेऽद्य वृणीष्वैनं नृपोत्तमम् ॥२२॥
अस्य त्वं महिषी भूत्वा वने कृष्णानदीजले । सुखं नृपेण क्रीडस्व मद्वाक्यं शृणु मा व्रज ॥२३॥
मद्वाक्यं शृणु मेत्युक्ता श्रुत्वा वाक्यमनुत्तमम् । व्रजेति सूचिता बाला चोदयामास तां पुनः ॥२४॥
एवं नानानृपाणां च वर्णनानि पृथक् पृथक् । स्तुतिरूपनिषेधीनि श्रुत्वा द्व्यर्थानि बालिका ॥२५॥
न बबंध मनः कस्मिन्नृपतौ तेषु सा तदा । ततस्तां शिबिकासंस्थां सुनंदा च शनैः क्रमात् ॥२६॥
अतिक्रम्य राममंत्रिबालकानपि पूर्ववत् । युपकेतुं शिशुं नीत्वा बालिकां वाक्यमब्रवीत् ॥२७॥
शत्रुघ्नतनयं बालं यूपकेतुं मनोहरम् । पितृव्यं रामतनयद्वयवाक्यानुवर्तिनम् ॥२८॥
एनं पश्य बालिके त्वं सावधानमना भव । वरयैनं यूपकेतुं माऽग्रे गच्छ नृपात्मजे ॥२९॥
मैनं वरय गच्छाग्रे वृद्धया सेति चोदिता । सुनन्दा चोदयामासाग्रे गन्तुं सुमतिः पुनः ॥३०॥
सुबाहुं पुष्करं तक्षमेवं सा सुमतिः शनैः । चित्रकेतुमङ्गदं च त्यक्त्वा सा तं लवं ययौ ॥३१॥

॥ १३ ॥ यहाँ भी सुनन्दाने "एनं नृपं मा वरय (इस राजाको मत वर)" यह द्व्यर्थक वाक्य कहा था । जिससे सुमतिने आगे चलनेका संकेत किया। तब वह उसे दूसरे राजाके सामने ले गयी ॥ १४ ॥ और कहने लगी—हे मृगलोचने ! इस सुन्दर राजाको देख, यह द्रविड़देशका निवासी है ॥ १५ ॥ इसका कम्बुकंठ नाम है। यह कान्तिपुरीमें रहता है। तू इसे वर ले । अब किसी अन्य राजाको देखनेकी इच्छा मत कर ॥ १६ ॥ कान्तिपुरीमें तू अतिशय विशाल सुवर्णकमलसे युक्त मनोरम सर्वतीर्थमें इसके साथ सानन्द विहार करेगी और इसके साथ वरदराज नामक विष्णु भगवान् तथा एकांबर नामक शिवका पूजन करेगी। साधारण राजाओंकी तरह इसे भी न छोड़, इसको वर ले। इस प्रकार वृद्धा सुनन्दाकी बात सुनकर सुमतिने उसे आगे चलनेका संकेत किया ॥ १७–१९ ॥ तब सुनन्दा उसे दूसरे राजाके पास ले जाकर कहने लगी—हे मुग्धे ! हे मत्तमातङ्गगामिनि ! तू इस राजाको देख ॥ २० ॥ यह कर्णाटक देशका रहनेवाला विजय नामक राजा है। कमलके समान इसका मुख है और कमलके ही समान इसके हाथ-पैर भी हैं ॥ २१ ॥ इसका मुख सदा मुस्कुराता रहता है। कमलकी कलियोंकी नाईं इसकी आँखें हैं। यह विजयपुरका निवासी है। तू मेरी बात मानकर इसे अपना पति बना ले ॥ २२ ॥ इसकी राजमहिषी बनकर तू बनों तथा कृष्णा नदीके जलमें सानन्द विहार करेगी। मेरी बात मानकर तू और आगे मत बढ़ ॥ २३ ॥ "मद्वाक्यं मा शृणु (मेरी बात सुन)" यह बात सुनकर उसने सुनन्दाको आगे चलनेका संकेत किया ॥ २४ ॥ इस प्रकार अनेक राजाओंके वर्णन जो वास्तवमें निषेधमय थे, किन्तु ऊपरसे स्तुतिवाक्य मालूम पड़ते थे। ऐसे द्व्यर्थक वाक्योंको सुन-सुनकर बालिकाने उन राजाओंमेंसे किसीको भी नहीं पसन्द किया। तब सुनन्दा शिबिकामें बैठी हुई सुमतिको लेकर धीरे-धीरे रामके मन्त्रिपुत्रोंको लाँघकर यूपकेतुके सामने गयी और कहने लगी—॥ २५–२७ ॥ ये शत्रुघ्नके सुन्दर पुत्र यूपकेतु हैं। ये पितृव्य (ताऊ) रामके दोनों बेटे कुश-लवके अनुगामी हैं ॥ २८ ॥ हे बालिके ! तू अब अपना मन सावधान करके इन्हें देख। हे नृपात्मजे ! अब आगे न जाकर तू इन्हींको अपना पति बना ले ॥ २९ ॥ "मा एनं वरय अग्रे गच्छ (इसे न वर, आगे चल)" यह सङ्केत पाकर सुमतिने

लवार्पितेक्षणां बालां सुनन्दा वाक्यमब्रवीत् । पश्यैनं बालिके बालं लवं श्रीराघवात्मजम् ॥३२॥
स्त्रीकामं स्वल्पवयसं सीतालालितमुत्तमम् । वाल्मीकिकृपया लब्धविद्यं रम्यं कुशानुजम् ॥३३॥
वृणीष्वैनं सुखेनैव कण्ठेऽस्य मालिकां कुरु । कुशांके चंपिकेयं ते स्वसा यद्वत्स्थिताऽद्य हि ॥३४॥
तथा त्वमपि भो मुग्धे लवांके संस्थिता भव । इति तस्या वचः श्रुत्वा सुनन्दायाः स्मितानना ॥३५॥
लवस्य कण्ठे हर्षेण लज्जयाऽवनतानना । सुमतिर्निजबाहुभ्यामर्पयामास मालिकाम् ॥३६॥
तदा निनेदुर्वाद्यानि जगुस्ते गायकास्तदा । ननृतुर्वारनार्यश्च तुष्टुवुर्बन्दिमागधाः ॥३७॥
भूरिकीर्तिर्नृपस्तुष्टो लवांके सुमतिं तदा । शीघ्रं निवेशयामास परिपूर्णमनोरथः ॥३८॥
तोषमाप रघुश्रेष्ठः सीता प्रासादसंस्थिता । जालरंध्रैः सपत्नीकं लवं दृष्ट्वा तुतोष सा ॥३९॥
ततः सर्वान्नृपान् पूज्य भूरिकीर्तिर्नृपोत्तमः । प्रार्थयामास विनयवचनैस्तत्पुरतः स्थितः ॥४०॥
विवाहकौतुकं दृष्ट्वा भवद्भिर्गम्यतामिति । तथेति ते नृपाः प्रोचुर्ययुर्वासस्थलानि हि ॥४१॥
रामाग्रे संगरं कर्तुमसमर्था गतश्रियः । म्लानानना गतोत्साहाः कामबाणप्रपीडिताः ॥४२॥
रामोऽपि बन्धुभिर्बालैर्ययौ वासस्थल मुदा । अथापरे दिने रामं भूरिकीर्तिः समाययौ ॥४३॥
पुरोधसोपविष्टः सन्नत्वा रामं वचोऽब्रवीत् । द्रष्टव्यो लग्नदिवसः सुमुहूर्तः सुखावहः ॥४४॥
मामंगीकुरु रामाद्य त्वत्पादाश्रयकामुकम् । उभयोस्त्वं मण्डपयोः कार्याण्याज्ञापय प्रभो ॥४५॥
तथेति राघवश्चोक्त्वा वसिष्ठं चोदयत्तदा । सोऽपि रामाज्ञया ज्योतिःशास्त्रज्ञः परिवेष्टितः ॥४६॥
मुहूर्तं कथयामास पञ्चमेऽहनि राघवम् । ततस्तुष्टो भूरिकीर्तिर्गणेशं लग्नपत्रिकाम् ॥४७॥

सुनन्दाको आगे चलनेका संकेत किया ॥ ३० ॥ इसी प्रकार सुबाहु, पुष्कर, तक्ष, चित्रकेतु तथा अंगदको छोड़ती हुई वह लवके पास पहुँची ॥ ३१ ॥ जब सुमति लवकी ओर देखने लगी तब सुनन्दा बोली—हे बाले ! इस बालकको देख, यह रामका पुत्र है । यह अपना विवाह करना चाहता है । इसकी थोड़ी उमर है । सीताके द्वारा इसका पालन-पोषण हुआ है । वाल्मीकिकी कृपासे इसे उत्तम विद्या प्राप्त हुई है और यह कुशका छोटा भाई है ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ तू सानन्द इसे अपना पति बनाकर इसके गलेमें वरमाला डाल दे, जिस तरह तुम्हारी बहिन चम्पिका कुशकी गोदमें बैठी है, उसी तरह ओ मुग्धे ! तू भी लवकी गोदमें बैठ जा । इस प्रकार सुनन्दाकी बात सुनकर वह मुस्करायी और लज्जावश मस्तक झुकाकर उसने अपने हाथोंसे लवके गलेमें वरमाला डाल दी ॥ ३४–३६ ॥ उस समय अनेक प्रकारके बाजे बजे, गायकोंने गाने गाये, वेश्यायें नाचने लगीं और बन्दीजन स्तुति करने लगे ॥ ३७ ॥ महाराज भूरिकीर्तिने प्रसन्न होकर सुमतिको लवकी गोदमें बिठा दिया ॥ ३८ ॥ यह देखकर रामचन्द्रजी तथा अँटारीपर बैठी सीता दोनों प्रसन्न हुए । जब झरोखोंसे सीताने लवकी गोदमें सुमतिको बैठी देखा तो उनकी प्रसन्नताका ठिकाना नहीं रहा ॥ ३९ ॥ इसके अनन्तर राजा भूरिकीर्तिने वहाँ आये हुए सब राजाओंकी पूजा करके विनयपूर्वक प्रार्थना की—॥ ४० ॥ अब आप लोग विवाहका भी उत्सव देखकर जाइएगा । राजाओंने भी उनकी बात स्वीकार कर ली और अपने-अपने डेरेपर चले गये ॥ ४१ ॥ वे सब राजे रामसे युद्ध करनेमें असमर्थ थे । अतएव उनकी श्री नष्ट हो गयी थी, मुख कुम्हला गया था, उत्साह भंग हो गया था और बेचारे कामके बाणोंसे पीडित हो रहे थे ॥ ४२ ॥ राम भी अपने भाइयों और बच्चोंके साथ प्रसन्नतापूर्वक डेरेपर गये । इसके बाद दूसरे दिन राजा भूरिकीर्ति रामके पास पहुँचे ॥ ४३ ॥ पुरोहित उनके साथ था । वे रामके समक्ष बैठे और कहा कि कोई अच्छा लग्न-दिवस तथा सुखदायक मुहूर्त विचारिए । फिर कहा—हे राम ! अपने चरणोंके भक्त मुझ दासकी प्रार्थनाको अङ्गीकार करके दोनों मण्डपोंके लिए जो कार्य करने हों, उनके लिए आज्ञा दीजिए ॥ ४४ ॥ ४५ ॥ "अच्छा" कहकर रामने वसिष्ठकी ओर संकेत किया । वसिष्ठने रामकी आज्ञासे ज्यतिषशास्त्रको जाननेवाले कितने ही पंडितोंके साथ विचार करके उसके पाँचवें दिन विवाहका शुभ मुहूर्त बतलाया । इसके अनन्तर प्रसन्न मनसे भूरिकीर्तिने गणेशजी, लग्नपत्रिका, गणकों, पण्डितों, वैदिक आदिकों तथा रामके साथवाले बंधुजनों और

सम्पूज्य गणकान्सर्वान्पण्डितान्वैदिकादिकान् । बंधुपुत्रादिभिः सर्वैः श्रीरामं पूजयत्तदा ॥४८॥
नत्वा रामं गृहं गत्वा चकार मण्डपादिकम् । रामाज्ञया लक्ष्मणोऽपि चकार मण्डपादिकम् ॥४९॥
तदा वटपुरी रम्या पताकाध्वजतोरणैः । पुरुषोत्तमराजधानी रेजे सागररोधसि ॥५०॥
ततो मुहूर्तसमये वधूच्छिष्टां निशां कुशम् । लवं च लिप्य तैलाक्तं सीताद्या मातरस्तदा ॥५१॥
करकुम्भाँश्चतुर्दिक्षु जलपूर्णान्सदीपकान् । संस्थाप्य स्नापयामासुर्महावाद्यपुरःसरम् ॥५२॥
तैलाभ्यंगं निशायुक्तं सीताद्याः स्वीयबालकैः । सहैव चक्रुरानन्दपूरिता रुक्मभूषिताः ॥५३॥
अभ्यंगपूर्वकं सस्नुस्ते रामाद्यास्तदा मुदा । समाहूय ततः सीतां मुक्तानां स्वस्तिकोपरि ॥५४॥
वसिष्ठो मुनिभिर्युक्तः शिशुभ्यां राघवेण हि । गणपार्चां कारयित्वा पुण्याहादित्रयं क्रमात् ॥५५॥
देशाचारान्कुलाचारानिष्टदेवीं प्रपूज्य च । कारयामास विधिवत्प्रतिष्ठां देवकस्य च ॥५६॥
तदा जनकनंदिन्या रजनीकुंकुमान्विते । विरेजतुः स्वीयदम्बरस्थितायाः पदपंकजे ॥५७॥
सीताद्यास्ताः स्त्रियः सर्वा हरित्पीतारुणैर्वरैः । हेमतंत्वङ्कितैर्वस्त्रैर्विरेजुर्मंडपाङ्गणे ॥५८॥
ततः समाययुः सर्वे मुदा तत्र मुनीश्वराः । स्वयंवरोत्सवे पूर्वं नागता ये सहस्रशः ॥५९॥
श्रुत्वोत्साहं विवाहस्य कुशस्य च लवस्य ते । तान्सर्वान् रामचन्द्रोऽपि वस्त्राभरणधेनुभिः ॥६०॥
पूजयामास विधिवत् सीतया लक्ष्मणादिभिः । भूरिकीर्तिर्नृपैर्युक्तो महावाद्यपुरःसरम् ॥६१॥
स्वयं कुशलवौ गेहं नेतुकामः समाययौ । मण्डपे पूजयामास वीरो राज्ञः सुतस्तदा ॥६२॥
कुशं तथा लवं चापि कनीयान् भूरिकीर्तिजः । हेमतंतूद्भवैर्दिव्यैर्वस्त्रैराभरणादिभिः ॥६३॥
तदा विरेजतुर्बालौ तथा तेऽप्यंगदादयः । ततस्तौ वारणेन्द्रस्थौ दिव्यचामरवीजितौ ॥६४॥
पश्यंतौ नर्तनान्यग्रे वारस्त्रीणां स्मिताननौ । शृण्वंतौ वाद्यघोषांश्च वर्णितौ मागधादिभिः ॥६५॥

पुत्रोंके साथ रामको पूजा की ॥ ४६-४८ ॥ फिर रामको प्रणाम करके घर गये और वहां मंडपादिकी तैयारी करने लगे। रामकी आज्ञासे लक्ष्मण भी अपना मण्डप आदि बनवाने लगे ॥ ४९ ॥ उस समय समुद्रके तटपर स्थित पुरुषोत्तमकी राजधानी वह वटपुरी पताका, ध्वजा तथा तोरणोंसे सुशोभित होकर बड़ी ही सुन्दर दीखने लगी ॥ ५० ॥ इसके बाद मुहूर्तवाले दिन तथा हरदीमातृपूजनवाली रातको कुश और लवको सीतादिक माताओंने उवटन लगाये, तेल लगाया और मण्डपके चारों ओर करकुम्भ (करवा) रक्खा और उसपर दीपक जलाये। फिर बाजोंके साथ उन दोनों वरोंको स्नान कराया ॥ ५१ ॥ ५२ ॥ उन बालकोंके साथ ही सीतादिक माताओंने भी आनन्दित मनसे तेल लगाया ॥ ५३ ॥ फिर उबटन लगाकर उन सबके साथ रामने भी स्नान किया। इसके अनन्तर राम सीताको बुलाकर मोतियोंसे बने हुए स्वस्तिक चौकके ऊपर बैठे और बहुतसे ऋषियोंके साथ आकर वसिष्ठने दोनों बालकोंके साथ रामके द्वारा गणेशजीकी पूजा करवायी और क्रमशः तीन प्रकारके पुण्याहवाचन करवाये ॥ ५४ ॥ ५५ ॥ तत्पश्चात् देशाचार तथा कुलाचारके अनुसार इष्टदेवकी पूजा करके विधिवत् देवताकी स्थापना की ॥ ५६ ॥ उस रात्रिके समय कुमकुम रंजित वस्त्र पहने हुए वे दोनों बालक बहुत ही सुन्दर लग रहे थे ॥ ५७ ॥ इनके सिवाय हरे, पीले, लाल और सुनहले कपड़े पहने स्त्रियाँ भी बहुत भली लग रही थीं ॥ ५८ ॥ इसी समय वे हजारों ऋषि प्रसन्नतापूर्वक वहां आ पहुँचे, जो स्वयंवरके उत्सवमें नहीं आये थे ॥ ५९ ॥ वे भी कुश-लवका विवाहोत्सव सुनकर आ गये। रामचन्द्रजीने भी सीता तथा बन्धुओंके साथ अनेक तरहके वस्त्र-आभूषण तथा गौवें देकर उनकी पूजा की ॥ ६० ॥ ६१ ॥ इसके बाद बहुतसे राजाओंके साथ कुश-लवको लेनेके लिए महाराज भूरिकीर्ति आये। वहाँ पहुँचकर भूरिकीर्तिके छोटे वीर पुत्रने सुवर्णके तारोंके कामदार बहुतसे वस्त्र और आभरण देकर कुश-लवकी पूजा की ॥ ६२ ॥ ६३ ॥ उस समय वे दोनों बालक तथा अङ्गद आदि वीर बच्चे बहुत सुन्दर दीख रहे थे। इसके अनन्तर कुश और लव हाथीपर बैठकर चले। उनपर दिव्य चमर चलने लगे ॥ ६४ ॥ वे दोनों बालक वेश्याओंका नृत्य देखते और विविध प्रकारके बाजोंकी मीठी ध्वनि

सीतादिभिर्वारणीषु संस्थिताभिस्तथा पथि । प्रासादोपरि संस्थाभिर्नारीभिः पुष्पवृष्टिभिः ॥६६॥
हरिद्रापीतधान्यैश्च मांगल्यैर्मौक्तिकैरपि । लाजाभिर्हेमपुष्पैश्च वर्षितावीक्षितौ मुहुः ॥६७॥
जग्मतुर्बालकावेवं पश्यन्तौ कौतुकानि हि । ददर्शतुर्वाटिकाश्च पुष्पैर्वृष्टिविनिर्मिताः ॥६८॥
तथा कृत्रिमवृक्षांश्च पताकाश्च ध्वजांस्तथा । तथौषधिभवान्वृक्षान् वह्निस्पर्शविदीपितान् ॥६९॥

शकटस्थानोपधीभिः पूरितान्कृत्रिमान् जनान् ।
तथा व्याघ्रादिकान्हिस्रानोपधीभिः प्रपूरितान् ॥७०॥
तडित्समानान् गगने प्राकारानौषधीभवान् ।
केकिचक्रोपमादींश्च चन्द्रज्योत्स्नास्तु कृत्रिमाः ॥७१॥

एवं ददर्शतुर्नानाकौतुकानि नृपात्मजौ । ततस्तौ भूरिकीर्तेश्च गत्वा मण्डपमुत्तमम् ॥७२॥
नानामहोत्सवैर्बालौ चामरच्छत्रमण्डितौ । अवरुह्य गजेन्द्राभ्यां तस्थतुर्मण्डपांगणे ॥७३॥
मधुपर्कविधानानि विष्टरादीनि वै क्रमात् । तयोर्गुरू चक्रतुस्तौ ब्राह्मणैः परिवेष्टितौ ॥७४॥
ततो वध्वोः पूजनं च सीतया रघुनन्दनः । चकार गुरुणा युक्तस्तदा स मण्डपांगणे ॥७५॥
ततो लग्नमुहूर्ते तं कुशं चम्पिकया गुरुः । तथा लवं सुमत्यापि पृथग्वेदिकयोस्तदा ॥७६॥
कृत्वा सुसंस्थितौ चोभौ दंपत्योरन्तरे पटौ । धृत्वोभयोः पृथक् चित्रौ नूतनौ हेमतंतुजौ ॥७७॥
नानामंगलघोषांश्च मुनिभिश्चक्रतुर्मुदा । आसन्सर्वे जनास्तूष्णीं शृण्वंतो मंगलस्वनान् ॥७८॥

इति श्रीशतकोटिरामचरितांतर्गते श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये
विवाहकाण्डे चम्पिकासुमतिस्वयंवरवर्णनं नाम तृतीयः सर्गः ॥ ३ ॥

एवं बन्दीजनोंकी स्तुतियां सुनते हुए राजा भूरिकीर्तिके महलोंकी ओर चले जा रहे थे ॥ ६५ ॥ सीतादिक माताएँ हथिनियोंपर बैठी थीं। अँटारियोंपर बैठी हुई नगरवासिनी नारियाँ उनपर फूल बरसा रही थीं। बीच-बीचमें हल्दीसे रंगे पीले रंगके अन्न, मांगल्य मौक्तिक, धानके लावे और सुवर्णके बने फूल भी बरसते जा रहे थे। वे नारियाँ कुश-लवको प्रेमभरी दृष्टिसे निहार रही थीं। इस तरहके कौतुक देखते हुए वे दोनों वालक चले जा रहे थे। रास्तेमें फूलोंकी वर्षा ही से बनी वाटिकाएँ, कृत्रिम वृक्ष, पताका, ध्वजा, मसालेके बने ऐसे वृक्ष जो आगकी चिनगारी पाकर जलनें लगते थे ॥ ६६–६९ ॥ उन्हें और गाड़ीपर बैठे हुए औषधिपूर्ण बनावटी मनुष्यों, मसालेसे भरे हुए व्याघ्र आदि हिंस्र जन्तुओं, औषधिके संयोगसे बिजलीकी नाईं चमकते हुए गगनस्पर्शी भवनों तथा मयूर आदिके छूटते हुए चक्रोंको वे राज़े कौतूहल भरी आँखोंसे देखते जा रहे थे ॥ ७० ॥ ७१ ॥ इस प्रकार मार्गमें अनेक कौतुकोंको देखते हुए वे राजा भूरिकीर्तिके उत्तम मंडपमें पहुँचे। उस समय लोगोंमें महान् उत्साह दिखायी पड़ता था। उन वच्चोंपर छत्र लगे थे और दिव्य चमर चल रहे थे। वहाँ पहुँचकर वे हाथीसे उतरे और मण्डपाङ्गणमें पहुँचे ॥ ७२ ॥ ७३ ॥ उनके गुरुजनोंने ब्राह्मणोंके साथ मधुपर्क विष्टर आदि विधि सम्पन्न किये ॥ ७४ ॥ इसके अनन्तर रामने सीता तथा गुरुजनोंके साथ उस मण्डपमें उन दोनों वहुओंकी पूजा की ॥ ७५ ॥ तदनन्तर लग्नका मुहूर्त आनेपर गुरु वसिष्ठने कुशको चम्पिकाके साथ एवं लवको सुमतिके साथ अलग-अलग वेदीपर विठाला ॥ ७६ ॥ इस तरह दोनों वर-वधुओंको अच्छी तरह विठलाकर उनके बीचमें एक-एक पर्दा डाल दिया और सब लोग चुपचाप गुरु वसिष्ठके मुखसे उच्चरित नाना प्रकारके मांगलिक मंत्रोंको सुनने लगे ॥ ७७ ॥ ७८ ॥ इति श्रीशतकोटिराम-चरितान्तर्गते श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये पं॰ रामतेजपाण्डेयविरचित'ज्योत्स्ना'भाषाटीकासहिते बिवाह-काण्डे तृतीयः सर्गः ॥ ३ ॥

चतुर्थः सर्गः

(लव-कुशके विवाहका वर्णन)

श्रीरामदास उवाच

श्रीसीता रघुनायकश्च गिरिजा शंभुर्गणेशस्तथा
नन्दीषण्मुखलक्ष्मणौ च भरतः कंजोद्भवः शत्रुहा ।
सर्वे ते मुनयः सुराश्च दितिजास्तीर्थादिनद्यो नदाः
दिक्पालाः शशिभास्करौ च हनुमान् कुर्वन्तु वो मंगलम् ॥ १ ॥

तदेव लग्नं सुदिनं तदेव तारावलं चंद्रवलं तदेव । विद्यावलं दैवबलं तदेव सीतापतेर्यत्स्मरणं विधेयम् ॥
एवं मंगलघोषैश्च नानावाद्यपुरःसरम् । ततस्त्वंतःपटौ मुक्त्वाॐपुण्याहमिति स्मरन् ॥ ३ ॥
तयोस्ते पाणिग्रहणविधानं विधिपूर्वकम् । लाजाहोमादिकं सर्वं चक्रुर्मंगलपूर्वकम् ॥ ४ ॥
तदा महावाद्यघोषा निनेदुर्मंडपांगणे । ननृतुर्वारनार्यश्च तदा मागधवन्दिनः ॥ ५ ॥
जगुर्मंगलगीतानि तुष्टुवुस्ते महास्वनैः । तदा दानान्यनेकानि चक्रतुस्तौ नृपोत्तमौ ॥ ६ ॥
भूरिकीर्तिरामचंद्रौ महातोषप्रपूरितौ । अथ तौ बालकौ वध्वौ निजकटयोर्निवेश्य वै ॥ ७ ॥
सीतोर्मिलादिभिः स्त्रीभिर्जग्मतुर्भोजनगृहम् । तत्र गौरीहरौ पूज्य चक्रतुश्चाग्रसिंचनम् ॥ ८ ॥
ततः कुशश्चंपकिया सुमत्या स लवोऽपि च । चक्रतुर्भोजनं चोभौ स्त्रीभिः सर्वत्र वेष्टितौ ॥ ९ ॥
मात्रा सहोपनयने विवाहे भार्यया सह । अन्येन नैव भोक्तव्यं भुक्तं चेत्पतितः स्मृतः ॥१०॥
रामोऽपि बन्धुभिः पौरैः सुहृद्भिः पार्थिवोत्तमैः । चकार भोजनं भूरिकीर्तेः सद्मनि वै मुदा ॥११॥
एवं सीताऽपि नारीभिश्चकार भोजनं तदा । भूरिकीर्तेः स्नुषाभिः सा प्रार्थिता वंदिता मुहुः ॥१२॥
ततो नानासमुत्साहान् भूरिकीर्तिश्चकार सः । अथ तौ बालकौ रम्यौ स्त्रीवाक्यैर्मातृसन्निधौ ॥१३॥
स्वश्वश्रूसन्निधौ चापि स्त्रीभिः सर्वत्र वेष्टितौ । स्वस्वपत्न्याः पदयोः शिरोभ्यां नमनं मुहुः ॥१४॥

श्रीरामदास कहते हैं—'सीता, राम, गिरिजा, शिव, गणेश, नन्दी, स्वामिकार्तिकेय, लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न, ब्रह्मा, समस्त ऋषि, देवता, दैत्य, सारे तीर्थ, नदी, दिक्पाल, चन्द्रमा, सूर्य एवं हनुमान्‌जी ये सब आप लोगोंका कल्याण करें ॥ १ ॥ वही लग्न है, वही सदिन है और तारावल तथा चन्द्रवल भी वही है, जिसमें कि सीतापति रामचन्द्रजीका स्मरण किया जाय ॥ २ ॥ अनेक प्रकारके बाजोंके साथ इस तरह मंगल-घोष करनेके अनन्तर 'ॐपुण्याहम्'' ऐसा उच्चारण करते हुए वसिष्ठजीने अन्तःपटको दूर कर दिया ॥ ३ ॥ विधिपूर्वक हवनादि कृत्यके साथ-साथ उन दोनों वर-वधुओंके पाणिग्रहण-संस्कार किये ॥ ४ ॥ उस समय मण्डपमें महावाद्यघोष हुए, वेश्याएँ नाचीं, मागध और वन्दीजनोंके स्तुतिपाठ हुए और गाने गाये गये। उस समय उन दोनों राजाओं (राम और भूरिकीर्ति) ने अनेक प्रकारके दान दिये ॥ ५ ॥ ६ ॥ दोनों सम्बन्धी उस समय बड़े आनन्दित थे। तदनन्तर दोनों बालक अपनी-अपनी स्त्रीको कमरपर बिठलाकर सीता-उर्मिलादिकोंके साथ भोजनशाला गये। वहाँ उन्होंने शिव-पार्वतीकी पूजा की और अग्रसिंचन-विधि सम्पन्न की ॥ ७ ॥ ८ ॥ तब सब स्त्रियोंसे वेष्टित चम्पिकाके साथ बैठकर कुशने और सुमतिके साथ लवने भोजन किया ॥ ९ ॥ क्योंकि शास्त्रका कहना है कि उपनयनसंस्कारमें माताके साथ एवं विवाहमें अपनी स्त्रीके साथ बैठकर वर भोजन करे और किसीके सङ्ग नहीं। यदि किसी औरके साथ भोजन करे तो वह पतित कहा जाता है ॥ १० ॥ उधर राम भी अपने भाइयों, पुरवासियों, सम्बन्धियों और राजाओंके साथ महाराज भूरिकीर्तिके भवनमें गये और वहाँ भोजन किया ॥११॥ उसी तरह सीताने भी स्त्रियोंके साथ जाकर भूरिकीर्तिकी बहुओंके प्रार्थना करनेपर उन्हींके यहाँ भोजन किया ॥१२॥ इसके पश्चात् राजा भूरिकीर्तिने विविध प्रकारके उत्सव

चक्रतुस्तोषसंपूर्णौ ते तवापि स्मितानन । वधूवराश्च ते सर्वे निशापीता विरेजिरे ॥१५॥
कुंकुमांकितपादौ ते ददतुर्वल्लभाङ्कयोः । एवं नानासमुत्साहैरतिक्रांतं दिनत्रयम् ॥१६॥
चतुर्थे दिवसे रात्रौ वंशपात्रविराजितैः । दीपैर्नीराजितौ चोभौ बालकौ तौ विरेजतुः ॥१७॥
ततस्तौ बालकौ पत्न्यौ स्वस्वपृष्ठे निवेश्य च । चक्रतुस्तांडवं नृत्यं कुशलौ मण्डपांगणे ॥१८॥
मातृश्वश्र्वादिकासु पश्यत्सु च ससादरम् । पारिबर्हं भूरिकीर्तिः कुशाय च लवाय च ॥१९॥
ददौ तुष्टमनाः शीघ्रं रामसम्बन्धहर्षितः । नियुतान्वारणेन्द्रांश्च शिबिकाश्चापि तन्मिताः ॥२०॥
तुरंगान्पञ्चनियुतं नियुतान्स्यन्दनान्ददौ । द्वाभ्यां पृथक् पृथक् पौत्रीधवाभ्यां द्रव्यपूरितान् २१॥
नानालङ्कारवासांसि गा दासीः सेवकांस्तथा । ददौ ताभ्यां भूरिकीर्तिर्येषां संख्या न विद्यते ॥२२॥
एवं सम्मानितस्तेन श्रीरामो भूरिकीर्तिना । सपत्नीकाभ्यां पुत्राभ्यां गजस्थाभ्यां समन्वितः २३॥
सीतया बंधुभिः पौरैः सुहृद्भिर्भ्रातृभिर्नृपैः । पूर्ववदुत्सवाद्यैश्च स ययौ स्वीयमण्डपम् ॥२४॥
वटपुर्यां ततो रामो मासमेकं निनाय सः । चकार सीतया क्रीडां नौकासंस्थौ महोदधौ ॥२५॥
ततः स्नुषाभ्यां श्रीरामो ययौ निजपुरीं सुखम् । अयोध्यायां विजयोऽपि श्रुत्वा रामं समागतम् ॥२६॥
यः पुर्या रक्षणार्थं हि रामेणाज्ञापितः पुरा । स पुरीं शोभयामास पताकाध्वजतोरणैः ॥२७॥
वारणेंद्रं पुरस्कृत्य तूर्यनृत्यपुरःसरम् । विजयो रामसचिवो रामं प्रत्युद्ययौ जवात् ॥२८॥
अथो नदत्सु वाद्येषु रामो बालैः सुहृज्जनैः । स्नुषाभ्यां सीतया बंधुपत्नीभिर्भ्रातृभिः पुरीम् ॥२९॥
विवेश सेनया पौरैः पश्यन्नृत्यादिकं पथि । तदा वेश्या ननृतुस्तुष्टुवुर्बन्दिमागधाः ॥३०॥
स्वस्वपत्नीयुतौ बालौ वरवारणयोः स्थितौ । तदा विरेजतुर्मार्गे स्त्रीभिः पुष्पैः सुवर्षितौ ॥३१॥

किये। उन दोनों बालकोंने स्त्रियोंके कहनेसे माताके पास बैठ तथा अपनी सास आदिसे वेष्टित होकर अपनी-अपनी स्त्रियोंकी वन्दना की ॥ १३ ॥ १४ ॥ उस समय वे वर-वधू अतिशय प्रसन्न होकर मन्द-मन्द मुसका रहे थे। रातके पीले प्रकाशमें वे बड़े सुन्दर दीखते थे ॥ १५ ॥ इसके बाद उन दोनों बहुओंने कुमकुमसे रँगे हुए अपने चरण पतिके गोदमें रख दिये। इस तरह नाना प्रकारके उत्सवोंके साथ तीन दिन बीते ॥ १६ ॥ चौथे दिन रात्रिके समय बाँसके बने पात्रोंमें दीपक रखकर लव-कुशकी आरती की गयी। उस समय भी उनकी सुन्दरता देखने ही योग्य थी ॥ १७ ॥ इसके अनन्तर वे दोनों बालक अपनी-अपनी स्त्रीको पीठपर बिठाकर ताण्डव नृत्य करने लगे ॥ १८ ॥ माता-सास आदि स्त्रियें मण्डपमें बैठी यह कौतुक देख रही थीं। महाराज भूरिकीर्तिने अपने दोनों जामाताओंको खूब दहेज आदि भी दिये ॥ १९ ॥ रामके सम्बन्धसे हर्षित होकर उन्होंने उन्हें एक लाख हाथी, इतनी ही पालकियाँ, पाँच लाख घोड़े, एक लाख रथ, अलग-अलग इतनी ही संख्याकी चीजें द्रव्यसे भरकर दोनों वर-वधुओंको दीं ॥ २० ॥ २१ ॥ इनके सिवाय विविध प्रकारके अलंकार, वस्त्र, गायें, दासी, दास आदि तो इतने दिये कि जिनकी गिनती सम्भव नहीं थी ॥ २२ ॥ भूरिकीर्तिसे इस प्रकार सम्मानित होकर श्रीरामचन्द्र स्त्री समेत दोनों पुत्रोंके साथ हाथीपर सवार होकर सीता, भ्राताओं, पुरवासियों, नातेदारों तथा राजाओंको साथ लिये हुए पूर्ववत् उत्साहके साथ अपने मण्डपमें आये ॥ २३ ॥ २४ ॥ इसके अनन्तर रामने उस वटपुरीमें एक मास विताया। वहाँ वे कभी-कभी नौकापर बैठकर सीताके साथ समुद्रकी सैर करते थे ॥ २५ ॥ इसके बाद उन्होंने दोनों पतोहुओंके साथ आनन्दपूर्वक अपनी पुरीको प्रस्थान किया। उधर अयोध्यामें जब विजयने, जिसको राम नगरीकी रक्षाके लिए छोड़ आये थे, रामके आगमनकी बात सुनी तो उसने ध्वजा-पताका-तोरण आदिसे नगरीको खूब सजाया ॥ २६ ॥ २७ ॥ एक श्रेष्ठ हाथीको आगे करके रामका मन्त्री विजय रामकी अगवानी करने जा पहुँचा ॥ २८ ॥ इसके अनन्तर जब कि विविध प्रकारके बाजे बज रहे थे तब राम अपने पुत्रों, सुहृज्जनों, पतोहुओं, सेना, पुरवासियों तथा
24. सीताके साथ पुरीमें प्रविष्ट हुए ॥ २९ ॥ उस समय वेश्यायें नाच रही थीं और मागध तथा बन्दीजन स्तुति कर रहे थे ॥ ३० ॥ अपनी-अपनी पत्नीके साथ दोनों बालक (कुश और लव) हाथीपर बैठे हुए

एवं रामो गृहं गत्वा बालाभ्यां स्वीयसद्मनि । कारयित्वा रमार्चां स ददौ दानान्यनेकशः ॥३२॥
तदाऽलंकारवस्त्राद्यैः संपूज्य रघुनन्दनः । सुहृदः सकलान्पौरानिष्टान् जानपदान्नृपान् ॥३३॥
आचांडालादिकान्सर्वान् संतुष्टानकरोन्मुदा । ततः स भूरिकीर्तेस्तान् मंत्रिणः सैन्यसंयुतान् ॥३४॥
सम्पूज्य प्रेषयामास स्वदेशं रघुनन्दनः । ततः सर्वान् जानपदान् सुहृदश्च प्लवंगमान् ॥३५॥
विभीषणादिकांश्चाज्ञां गंतुं स्वस्वस्थलं ददौ । ततः सर्वे राघवं ते वस्त्राभरणवाहनैः ॥३६॥
स्वस्वकोशैश्च संपूज्य नत्वा रामं ययुर्मुदा । स्वं स्वं देशं निजैः सैन्यैः श्रीरामेणातिमानिताः ॥३७॥
अथ रामःस्नुषाभ्यांच पुत्राभ्यां बन्धुभिःस्त्रिया । सुखं चकार राज्यं स धर्मेणाप्रतिमं चिरम् ॥३८॥
ततः श्रावणमासस्य दर्शमारभ्य षोडश । प्राप्तान्यब्दे यानि यानि समुत्साहदिनानि हि ॥३९॥
तेषु सर्वेषु तं रामं सावरोधं सबालकम् । स्वपुरीं भूरिकीर्तिः स निनाय परमादरात् ॥४०॥
पूजयामास विधिवद्वस्त्रालंकारवाहनैः । कियद्दिनानि संस्थाप्य ददावाज्ञां पुनः पुनः॥४१॥
संवत्सरसमुत्साहदिनानि षोडशाधुना । विष्णुदास मया तेऽग्रे कथ्यंते तानि वै शृणु ॥४२॥
श्रावणस्याथ मासस्य कूहूः श्रेष्ठा प्रकीर्तिता । भाद्रशुक्लचतुर्थी तु विजया दशमी तथा पुनः ॥४३॥
दीपावल्याश्च चत्वारि दिनान्यतिमहांति च । मार्गशीर्षे पंचमी च सिता षष्ठी तथा पुनः ॥४४॥
संक्रान्तिर्मकराख्या तु तथा च रथसप्तमी । हुताशनी चैत्रशुक्लप्रतिपच्चापि पुण्यदा ॥४५॥
अक्षय्याख्या तृतीया च तथा वै ज्येष्ठपौर्णिमा। पंचमी श्रावणे शुक्ला षोडशैव स्मृतानि हि ॥४६॥
संवत्सरसमुत्साहदिनान्यतिमहांति च । एतेषु भूरिकीर्तिः स रामं नीत्वा प्रपूजयत् ॥४७॥
एवं कुशस्य च तथा लवस्यापि सविस्तरात् । विवाहौ वर्णितौ शिष्य यथा पूर्वं श्रुतौ मया ॥४८॥
यदा श्रीरामचन्द्रस्य वैकुंठारोहणं शुभम् । भविष्यति तदाऽयोध्यापुर्यां वै सरयूजले ॥४९॥

सुशोभित हो रहे थे और मार्गमें नगरकी महिलायें उनपर फूल बरसा रही थीं ॥ ३१ ॥ इस तरह बड़े उत्साहके साथ वे अपने राजभवनमें पहुँचे। वहाँ उन्होंने दोनों बच्चोंके हाथों लक्ष्मीका पूजन कराया और अनेक तरहके दान दिये ॥ ३२ ॥ उस समय रामने अपने सम्बन्धियों, समस्त पुरवासियों, मित्रों, जनपदवासियों और राजाओंसे लेकर साधारण श्रेणीवाले चाण्डालों तकका नाना प्रकारके वस्त्रों और आभूषणोंसे सत्कार करके सबको प्रसन्न किया। इसके पश्चात् महाराज भूरिकीर्तिके मंत्रियों तथा सेनाकी पूजा करके उन्हें विदा किया। इसके बाद जनपदवासियों, सम्बन्धियों, वानरों तथा विभीषण आदि मित्रोंका वस्त्र, भूषण, वाहनादिके दानसे सम्मानित करके अपने-अपने नगरको जानेकी आज्ञा दी ॥ ३३–३६ ॥ इस प्रकार रामके आदर-सत्कारको स्वीकार करके उन लोगोंने भी धनसे रामकी पूजा की और अपने-अपने देशको लौटे ॥ ३७ ॥ इसके बाद राम सीता पुत्रों एवं पुत्रवधुओंके साथ रहते हुए बहुत दिनों तक धर्मानुकूल राज्य करते रहे ॥ ३८ ॥ तदनन्तर श्रावणकी अमावास्यासे लेकर वर्षमें सोलह बड़े-बड़े त्योहारों और उत्साहके दिनोंमें महाराज भूरिकीर्ति अंतःपुर समेत रामको अपने यहाँ सादर बुलाते थे ॥ ३९ ॥ ४० ॥ वहाँ पहुँचनेपर वे वस्त्र-अलंकारादि समर्पण करके रामकी पूजा करते थे। कुछ दिन राम वहाँ रहकर फिर अयोध्या चले आते और बुलावा आनेपर फिर पहुँच जाया करते थे ॥४१॥ हे विष्णुदास ! अब मैं तुम्हें वर्षके उन सोलह दिनोंको बतलाता हूँ जिनकी चर्चा अभी की है, उन्हें सुन लो ॥ ४२॥ श्रावण मासकी अमावस्या, भाद्रपद शुक्लपक्षकी चतुर्थी, कुवारकी विजया दशमी ॥ ४३ ॥ और दीपावलीके आगे-पीछेवाले चार दिन बड़े महत्त्वके होते हैं ॥४४॥ मार्गशीर्षके शुक्लपक्षकी पंचमी तथा षष्ठी, मकरकी संक्रांति, रथसप्तमी और चैत्र शुक्लकी हुताशनी प्रतिपदा भी बड़ी पवित्र तिथि होती है ॥ ४५ ॥ अक्षय तृतीया, ज्येष्ठकी पूर्णिमा और श्रावणके शुक्लपक्षकी नागपंचमी ये वर्षके सोलह दिन उत्तम हैं ॥ ४६ ॥ ये ही संवत्सरके बड़े-बड़े उत्साहदिवस माने गये हैं। इन्हीं दिनों भूरिकीर्ति सपरिवार रामको अपने यहाँ बुलाकर पूजन करते थे ॥ ४७ ॥ हे शिष्य ! जैसा कि मैंने आजके बहुत दिनों पहले कुश तथा लवका बिवाह-वृत्तान्त सुना था, उसी तरह वर्णन किया ॥ ४८ ॥ इसके

कुशः स्त्रिया चंपिकया जलक्रीडां करिष्यति । तस्य दक्षिणहस्तस्य कंकणं रुक्मनिर्मितम् ॥५०॥
सरयूजलमध्ये तु पतिष्यति महोज्ज्वलम् । तत्र तोये कुमुदस्य पन्नगस्य कुमुद्वती ॥५१॥
स्वसा दृष्ट्वा कंकणं तद्गृहीत्वा सद्म यास्यति । कुशोऽपि कंकणार्थं हि बाणं सन्धारयिष्यति ॥५२॥
सरयूशोषणार्थं हि संनद्धश्च भविष्यति । ततः सा कुमुदं गत्वा सरयूः प्रार्थयिष्यति ॥५३॥
सोऽपि दृष्ट्वा कुशं क्रुद्धं स्वसामादाय सादरम् । कुशमागत्य तं नत्वा स्वसां तस्मै प्रदास्यति ॥५४॥
रत्नानि कंकणं दत्त्वा तेन सख्यं करिष्यति । एवं कुमुद्वतीभार्याऽग्रे तस्यान्या भविष्यति ॥५५॥
तस्यां कुशात्सुतनयोऽतिथिर्नाम्ना भविष्यति । चंपिकायां दुहितरः संभविष्यन्ति नो सुताः ॥५६॥
अतिथेः सूर्यवंशोऽग्रे चिरं विस्तारमेष्यति । एवं कुशस्य द्वे पत्न्यौ वर्णिते शिष्य वै मया ॥५७॥
अथ स्वीयगृहे पत्न्याऽकरोत्क्रीडां कुशः सुखम् । तथा स्वीयगृहे पत्न्याऽकरोत्क्रीडां लवोऽपि च ॥५८॥

इति श्रीशतकोटिरामचरितांतर्गते श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये विवाहकाण्डे
कुशलवयोर्विवाहवर्णनं नाम चतुर्थः सर्गः ॥ ४ ॥

पञ्चमः सर्गः

(रामका गन्धर्वकन्याओं और नागकन्याओंको जलदेवीके पंजेसे छुड़ाना)

श्रीरामदास उवाच

एकदा रघुवीरः स सीतया बालवधूभिः । पौरैर्मन्त्रिजनैरिष्टैः पुष्पकस्थो ययौ वनम् ॥ १ ॥
पश्यन्नानाकौतुकानि रंजयन् जानकीं मुदा । ययौ स दंडकारण्यमगस्तेराश्रमान्तिकम् ॥ २ ॥
राममागतमाकर्ण्य कुंभजन्मा मुनीश्वरः । प्रत्युद्गम्य रघुश्रेष्ठं निनाय स्वाश्रमं प्रति ॥ ३ ॥
ततः स मुनिवर्यस्तु स्नात्वा रहसि संस्थितः । अन्नपूर्णां महालक्ष्मीं चिंतयामास चेतसि ॥ ४ ॥

आगे जब कि रामचन्द्रजीका वैकुण्ठारोहण हो जायगा। तब एक समय अयोध्यापुरीके सरयूजलमें कुश अपनी स्त्री चम्पिकाके साथ जलक्रीडा करते रहेंगे । उसी समय कुशके दाहिने हाथका सुवर्णकंकण जलमें गिर पड़ेगा। उस जलमें कुमुद नामक सर्पकी बहिन कुमुद्वती उस कङ्कणको लेकर घर चली जायगी और कुश अपने कङ्कणके लिए धनुषपर बाण चढ़ायेंगे ॥ ४९-५२ ॥ इस प्रकार क्रुद्ध कुश सरयूको सुखा देना चाहेंगे। इसपर सरयू कुमुदके पास जाकर प्रार्थना करेगी ॥ ५३ ॥ कुमुद भी सरयूके कथनानुसार कुशको कुपित देखकर उनके पास आयेगा और उन्हें प्रणाम करके अपनी बहिन कुमुद्वती कुशको दे देगा और बहुतसे रत्न तथा वह खोया हुआ कङ्कण देकर कुशसे मित्रता कर लेगा। इस तरह कुछ समय बाद कुशकी कुमुद्वती नामकी एक दूसरी भार्या भी होगी ॥ ५४ ॥ ५५ ॥ उससे कुशका सुन्दर पुत्र अतिथि होगा। चम्पिकासे कन्यायें ही होंगी, पुत्र नहीं होंगे ॥ ५६ ॥ आगे चलकर उसी अतिथिसे सूर्यवंशका विस्तार होगा। हे शिष्य ! इस प्रकार मैंने कुशकी दोनों पत्नियोंकी कथा कह सुनायी ॥ ५७ ॥ यह सब हो जानेपर कुश अपनी स्त्री चम्पिका तथा लव सुमतिके साथ आनन्दपूर्वक जीवनयापन करेंगे ॥ ५८ ॥ इति श्रीशतकोटिरामचरितांतर्गते श्रीमदानन्दरामायणे प०पाण्डेयरामतेजशास्त्रिविरचितभाषाटीकासहिते विवाहकाण्डे चतुर्थः सर्गः ॥ ४ ॥

श्रीरामदास बोले—एक बार रामचन्द्रजी बालवधुओं, पुरवासियों, मन्त्रियों तथा इष्टजनोंके साथ पुष्पकविमानपर बैठकर अनेक प्रकारके कौतुक देखते और सीताको प्रसन्न करते हुए वनमें गये। वहाँ दण्डकारण्यमें अगस्त्य ऋषिके आश्रमपर जा पहुँचे ॥ १ ॥ २ ॥ जब कि अगस्त्यजीको रामके आनेका समाचार मिला तो अगवानीके लिए स्वयं गये और उन्हें आदरपूर्वक अपने आश्रममें ले आये ॥ ३ ॥ इसके अनन्तर स्नान करके अगस्त्यजी एकान्तमें बैठे और मन ही मन महालक्ष्मी अन्नपूर्णाका ध्यान किया ॥ ४ ॥

तदा तत्तपसा तुष्टाऽऽविर्बभूव सुरेश्वरी। ददौ तस्मै पायसेन पूरितं पात्रमुत्तमम् ॥ ५ ॥
अन्नपूर्णा मुनिं प्राह स्थाल्यास्तु विविधानि हि। पक्वान्नानि यथेष्टानि निष्कास्य तव भामिनी ॥ ६ ॥
सर्वेषामग्रतः शीघ्रं करोतु परिवेषणम्। इत्युक्त्वा साऽन्नपूर्णा तं मुनिमन्तर्दधे तदा ॥ ७ ॥
लोपामुद्रा मुनेः पत्नी स्थाल्या निष्कास्य वेगतः। दिव्यान्नानि विचित्राणि सर्वेषां पुरतस्तदा ॥ ८ ॥
समर्चितानां विप्राणां चकार परिवेषणम्। अथ तुष्टं रघुश्रेष्ठं कंकणे रत्ननिर्मिते ॥ ९ ॥
ददौ मुदा कुम्भजन्मा सीतायै दिव्यकुंडले। एवं संपूजितस्तेन मुनिना रघुनन्दनः ॥१०॥
सहितोऽगस्तिना स्थित्वा पुष्पके पूर्ववत्पुनः। पश्यन्तौ दण्डकारण्ये कौतुकानि समंततः ॥११॥
विचचार रघुश्रेष्ठो दर्शयामास मैथिलीम्। नानावृक्षान्पर्वतांश्च नदीः पक्षिकुलान्मृगान् ॥१२॥
पञ्चाप्सरसरो नाम ददर्शासौ भ्रमन् सरः। तत्तटे राघवो रात्रौ निवासमकरोन्मुदा ॥१३॥
एतस्मिन्नंतरे रात्रौ नृत्यमप्सरसां शुभम्। शुश्राव मधुरं गीतं सीतया मंचके प्रभुः ॥१४॥
तेऽपि सर्वे शुश्रुवुस्तन्नृत्यं गीतं च सुस्वरम्। अदृष्ट्वाऽप्सरसस्तत्र तदा स रघुनन्दनः ॥१५॥
पप्रच्छ कुंभजन्मानं गीतं नृत्यं कुतस्त्विदम्। श्रूयते मुनिशार्दूल वदस्व त्वं सविस्तरम् ॥१६॥
इति रामवचः श्रुत्वा तमगस्तिर्वचोऽब्रवीत्। राम राजीवपत्राक्ष किं त्वं वेत्सि न वै त्विदम् ॥१७॥
सर्वानेतान्मन्मुखेन वृत्तं श्रावयितुं मुदा। चेन्मां पृच्छसि तर्ह्यद्य तवाग्रे प्रवदाम्यहम् ॥१८॥
पुरा गन्धर्वराजस्य पुत्र्यः पंच मनोरमाः। अरजस्का मुदा क्रीडां चक्रुरत्र सरोवरे ॥१९॥
एतस्मिन्नंतरे राम नागकन्याः सरोवरात्। क्रीडार्थं निर्ययुः सप्त बहिरप्राप्तयौवनाः ॥२०॥
तासां परस्परं मैत्री बभूव रघुनन्दन। तत्र ता नागकन्याश्च तथा गन्धर्वकन्यकाः ॥२१॥
यातायातं सदा चक्रुः क्रीडार्थं सरसस्तटे। तपता मुनिना तत्र मुहुर्वाक्यैर्निवारिताः ॥२२॥

उसी समय उनकी तपस्यासे प्रसन्न होकर देवताओंकी भी अधिष्ठात्री देवी अन्नपूर्णा प्रकट हो गयीं। उन्होंने अगस्त्यजीको खीरसे भरा एक पात्र दिया ॥५॥ और कहा कि इस बटलोईमेंसे विविध प्रकारके पकवान निकाल-निकालकर तुम्हारी स्त्री सबके आगे परोस दे। इतना कहकर अन्नपूर्णा अन्तर्धान हो गयीं ॥ ६ ॥ ७॥ इसके अनन्तर जब कि अगस्त्यजीने साथियों तथा विप्रों समेत रामकी पूजा कर ली, तब अगस्त्यजीकी पत्नी लोपामुद्राने उसी पात्रमेंसे पकवान निकाल-निकालकर सबके आगे परोस दिया। भोजनोपरान्त प्रसन्न मनवाले रामको अगस्त्यने एक जोड़ी कङ्कण और सीताको कुण्डल दिये ॥ ८–१० ॥ इस प्रकार अगस्त्यसे सत्कृत होकर राम अगस्त्यको अपने साथ लिये सबके साथ पुष्पक विमानपर जा बैठे और दण्डकारण्यमें चारों ओर विविध प्रकारके कौतुक देखते हुए इधर-उधर घूमने लगे ॥ ११ ॥ १२ ॥ रास्तेमें नाना प्रकारके वृक्ष, पर्वत, नदी, पक्षी आदि सीताको दिखाते हुए वे पंचाप्सर नामक सरोवरपर पहुँचे और वहाँपर रामने रात्रिभर निवास किया ॥ १३ ॥ रात्रिके समय जब कि राम सीताके साथ अपनी शय्यापर सोये थे, तब उन्हें मीठे-मीठे गीत और नृत्यकी ध्वनि सुन पड़ी ॥ १४ ॥ उनके सिवाय रामके साथवालोंने भी वह सुस्वर ध्वनि सुनी, किन्तु अप्सरायें नहीं दीख पड़ीं। तब रामने अगस्त्यसे पूछा–हे मुनिश्रेष्ठ ! आप मुझे यह बतलाइए कि यह नृत्य-गानकी ध्वनि कहाँसे आती सुनायी दे रही है, सो विस्तारपूर्वक हमें बतलाइए ॥ १५-॥ १६ ॥ रामकी बात सुनकर महर्षि अगस्त्यने कहा—हे राजीवलोचन राम ! क्या आप यह वृत्तान्त नहीं जानते ? ॥ १७ ॥ अच्छा, यदि हमीसे कहलाना चाहते हैं तो मैं आपको सुना रहा हूँ ॥ १८ ॥ आजसे बहुत दिनों पहले गन्धर्वराजकी पाँच सुन्दरी कन्यायें, जिनका कि रजोधर्म भी नहीं हुआ था, आनन्दपूर्वक इस सरोवरमें जलक्रीड़ा किया करती थीं ॥ १९ ॥ हे राम ! उसी समय एक बार उस सरोवरसे सात नाग-कन्यायें भी जलक्रीड़ा करनेको निकलीं। उनकी भी बाल्यावस्था थी और यौवनका रंग अभी नहीं चढ़ा था ॥ २० ॥ तदनन्तर उन गन्धर्वकन्याओं और नागकन्याओंमें परस्पर मित्रता हो गयी और वे नित्य उस सरो-वरमें जलक्रीड़ा करनेको आने-जाने लगीं। उसी सरोवरपर तपस्या करते हुए एक तपस्वीने उनको कई बार

आऽऽगच्छध्वं मन्निकटे चेति ता बालभावतः । अमानयंस्यस्तद्वाक्यं समाजग्मुर्निरन्तरम् ॥२३॥
इन्द्रेण बोधिताश्चापि तत्तपोध्वंसनं प्रति । मुनिश्चापि तपोनाशं दृष्ट्वा शापादिना तदा ॥२४॥
विना शापेन तासां स दण्डं सम्मन्त्र्यद्धृदि । आत्मवाक्यगौरवेण जलदेवीः प्रचोदयत् ॥२५॥
तद्वाक्याज्जलदेव्यस्ता मध्याह्ने स्वीयमंदिरम् । निन्युर्धृत्वा बलादेव यत्र केषां गतिर्न हि ॥२६॥
गंधर्वाः पन्नगा यत्र गंतुं शक्ता न चाभवन् । तपोऽन्ते स मुनिः स्वर्गं गतस्ता ह्यत्र संस्थिताः ॥२७॥
ताः सर्वा जलदेवीनां गेहे संत्यधुना प्रभो । इदं वृत्तमाधुनिकं विद्धि राम स्मयप्रदम् ॥२८॥
ता ह्यत्र जलदेवीनां जलांतर्गतसद्मनि । कुर्वन्ति नृत्यगीतानि तासां संश्रूयते ध्वनिः ॥२९॥
एवं राम यथा पृष्टं त्वया सर्वं मया तथा । वृत्तं तवाग्रे कथितं कुरु येन हितं भवेत् ॥३०॥
सर्वासां नागकन्यानां गांधर्वीणां तथा विभो । मुनिना चोदितश्चेत्थं तदा सीतापतिर्मुदा ॥३१॥
लक्ष्मणं प्राह मे चापमानयाद्य क्षणादिह । मुक्त्वा बाणं मोचयामि दग्ध्वा देवीजलस्थिताः ॥३२॥
कन्यकाः पन्नगानां च तथा गंधर्वकन्यकाः । इति तद्रामवाक्यं स श्रुत्वा सौमित्रिरादरात् ॥३३॥
शीघ्रं चापं सतूणीरं ददौ श्रीराघवं प्रति । ततः कोदण्डमुद्यम्य टणत्कृत्य रघूद्वहः ॥३४॥
शरं जग्राह तूणीरं निजनामांकितं शितम् । तदा चचाल धरणी चुक्षुभुः सप्त सागराः ॥३५॥
ववौ घोरतरो वायू रजोव्याप्ता दिशोऽभवन् । तारा निपेतुर्धरणीं दुद्रुवुर्वनचारिणः ॥३६॥
पर्वताः कम्पिता आसन् ववर्षुर्लोहितं घनाः । तज्ज्ञात्वा जलदेव्यस्ताः श्रुत्वा चापध्वनिं महत् ॥३७॥
भयभीताः समाजग्मुस्ताभिः सर्वाभिरादरात् । प्रणेमुस्तास्तदा रामं बालिकास्तास्तु द्वादश ॥३८॥
राघवायार्पयामासुर्दिव्यभूषणभूषिताः । राघवं जलदेव्यस्ताः प्रार्थयामासुरादरात् ॥३९॥
राम राम महाबाहोऽस्माभिर्यदपराधितम् । तत्क्षमस्व रघुश्रेष्ठ मा मुंच स्वपतत्रिणम् ॥४०॥

रोककर कहा—॥ २१ ॥ २२ ॥ यहाँ मेरे पास तुम लोग मत आया करो। किन्तु बालभावसे मुग्ध वे कन्याएँ ऋषिकी बात न मानती हुई नित्य आती-जाती रहीं। इन्द्रने भी ऋषिका तपोभंग करनेके लिए उन कन्याओंको उभाड़ दिया था। अब ऋषिने अपने मनमें विचार किया कि शापादि देकर इन्हें दण्ड देनेसे अपनी तपस्या क्षीण होगी। इसी लिए ऐसा मार्ग निकालना चाहिए कि जिससे इन्हें बिना शापके दण्ड मिल जाय। जलदेवियाँ उन कन्याओंको पकड़कर हठात् अपने घर ले गयीं। जहाँ कि गन्धर्वों तथा पन्नगोंकी भी गति नहीं थी। अपनी तपस्या पूर्ण करके ऋषि तो स्वर्गको चले गये, किन्तु वे कन्यायें इस सरोवरमें जलदेवियोंके पास अब भी विद्यमान हैं ॥ २३–२७ ॥ हे राम ! यह एक आश्चर्यमयी घटना घट गयी थी। वे ही गंधर्वों और पन्नगोंकी कन्यायें जलदेवियोंके घरमें नाच रही हैं, उन्हींके गानेकी मधुर ध्वनि सुनायी देती हैं ॥ २८ ॥ २९ ॥ हे राम ! आपने जैसा पूछा, मैंने कह सुनाया। अब आप ऐसा करिए कि जिससे उन कन्याओंका कल्याण हो। इस प्रकार अगस्त्यजीकी प्रेरणासे रामने लक्ष्मणसे कहा—हे लक्ष्मण ! मेरा धनुष तो ले आओ। मैं क्षण भरमें उन गंधर्वों और नागोंकी कन्याओंको जलदेवियोंके पंजेसे छुड़ा दूँगा। इस तरह रामकी बात सुनकर लक्ष्मणने तुरंत आदरपूर्वक तूणीर तथा धनुष लाकर रामको दे दिया। इसके अनंतर रामने धनुष उठाकर टंकोर किया ॥ ३०–३४ ॥ तदनंतर उन्होंने तरकससे अतितीक्ष्ण बाण निकाला, जिसपर रामका नाम लिखा हुआ था। इससे पृथ्वी डगमगाने लगी और सातों समुद्रोंमें प्रलयङ्कर लहरें उठने लगीं ॥ ३५ ॥ जोरोंसे वायु चलने लगी, दसों दिशायें धूलसे भर गयीं, तारे टूट-टूटकर गिरने लगे, वनैले जीव वन छोड़कर भागने लगे, संसारका पर्वत-वृन्द काँपने लगा और मेघमण्डल रुधिरमयी वर्षा करने लगा। उस सरोवरकी जलदेवियां धनुषका घनघोर टंकोर सुनकर भयभीत हो गयीं। वे तुरन्त उन बारहों कन्याओंको अपने साथ लिये बाहर आयीं और प्रणाम करके दिव्य अलंकारोंसे विभूषित उन कन्याओंको उन्होंने रामको सौंप दिया ॥ ३६–३९ ॥ वे सब इस प्रकार स्तुति करने लगीं। उन्होंने कहा—हे महाबाहो राम ! हमने जो अपराध किया है, सो आप क्षमा

न कश्चित्सूर्यवंशेऽभूत्स्त्रीषु शस्त्रप्रहारकः। त्वयाऽपि रक्षिता पूर्वं क्षीत्वाङ्गूर्जाह्नवीतटे ॥४१॥
यदाऽनया तु शपथः कृतो मैथिलकन्यया। ताटिकादिराक्षसीषु यत्कृतं बाणमोचनम् ॥४२॥
ब्रह्मघ्नीषु त्वया पूर्वं तत्सर्वेषां हिताय च। इति तासां वचः श्रुत्वा विहस्य रघुनन्दनः ॥४३॥
स्थापयामास तूणीरे पूर्ववत्तं स्वमार्गणम्। ततस्ताभिः पूजितः स तदा हृष्टो रघूत्तमः ॥४४॥
जलदेवीर्ददावाज्ञां स्वस्थलं गम्यतामिति। एतस्मिन्नन्तरे तत्र गंधर्वाश्चाथ पन्नगाः ॥४५॥
विदित्वा सकलं रामकृतं रामांतिकं ययुः। नत्वा रामं ससीतं च तथा तं कुम्भसंभवम् ॥४६॥
उपायनान्यनेकानि समर्प्य रघुनन्दनम्। ऊचुस्ते मंजुल वाक्यं प्रबद्धकरसंपुटाः ॥४७॥

इति श्रीशतकोटिरामचरितांतर्गते श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये विवाहकांडे
जलदेवीजीवदानं बालिकामोचनं नाम पञ्चमः सर्गः ॥ ५ ॥

षष्ठः सर्गः

(गन्धर्वों तथा नागोंकी बारह कन्याओंका लक्ष्मणादिके पुत्रोंके साथ विवाह होनेका निश्चय)

गन्धर्वपन्नगा ऊचुः

राम कंजानन स्वामिन्मोचिता बालिकास्त्वया। विवाहानरजस्कानां पुत्रैस्त्वं कर्तुमर्हसि ॥ १ ॥
अद्य धन्या वयं सर्वे नः कुलं पावनं कृतम्। त्वया राम महाबाहो तारिताः स्मो वयं प्रभो ॥ २ ॥
सप्तजन्मसु यत्पुण्यं कृतमस्ति रघूद्वह। अस्माभिस्तेन सम्बन्धस्त्वयाऽद्य भवतु प्रभो ॥ ३ ॥

श्रीरामदास उवाच

इति तेषां वचः श्रुत्वा सीतया स रघूद्वहः। अङ्गीकृत्य वचस्तेषामगस्तिमवलोकयत् ॥ ४ ॥
तदा प्राह कुम्भजन्मा राघवं वचनं मुनिः। रामान्याग्रे कुमुदस्य स्वसा नाम्ना कुमुद्वती ॥ ५ ॥
त्वयि प्राप्ते हि वैकुण्ठं कुशपत्नी भविष्यति। चंपिकायां न तनयो भविष्यति रघूद्वह ॥ ६ ॥

कर दें। हमपर इन बाणोंको आप मत छोड़िये ॥४०॥ अब तक आपके सूर्यवंशमें स्त्रियोंपर शस्त्रका प्रहार करनेवाला कोई भी नहीं हुआ है। आपने भी उस समय गङ्गाजीके किनारे सीताको लिये जाती हुई पृथ्वीकी इसी लिए रक्षा की थी कि वह स्त्री थी। इसके सिवाय आपने जो ताड़कापर शस्त्र छोड़ा, उसका कारण यह था कि वह ब्रह्मघातिनी थी। उसे तो आपने ब्राह्मणोंके कल्याणार्थ मारा था। उनकी ऐसी विनीत बातें सुनीं तो मुस्कुराकर रामने अपने बाणको फिर तरकसमें रख लिया। इसके बाद उन जलदेवियोंसे पूजित रामने प्रसन्न होकर उनसे कहा कि अब तुम लोग अपने स्थानको जाओ। इसके अनन्तर उन गंधर्वों और पन्नगोंने (जिनकी कन्यायें जलदेवियोंके कब्जेमें थीं) जब यह समाचार सुना तो रामके पास आये और सीता, राम तथा अगस्त्यको प्रणाम करके उन्होंने रामको विविध प्रकारकी भेंटें दीं। तदनन्तर हाथ जोड़कर इस प्रकार कहने लगे—॥ ४१-४७ ॥ इति श्रीशतकोटिरामचरितान्तर्गते श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये पं० रामतेजपाण्डेयकृत ज्योत्स्ना'भाषाटीकासहिते विवाहकाण्डे पञ्चमः सर्गः ॥ ५ ॥

गन्धर्व तथा पन्नगगण कहने लगे–हे कमल सरीखे नेत्रोंवाले राम ! आपने हमारी पुत्रियोंको उन जलकन्याओंके हाथसे जैसे छुड़ाया है, उसी तरह अब इनका विवाह भी अपने पुत्रोंके साथ कर लीजिए ॥ १ ॥ आज हम अपनेको धन्य समझते हैं। आज हमारा कुल पवित्र हो गया। हे प्रभो ! आपने हमारा उद्धार कर दिया ॥ २ ॥ हमने अपने सात जन्मोंमें जो पुण्य किया हो, उसके प्रतापसे आज हमारा और आपका सम्बन्ध हो जाय ॥ ३ ॥ श्रीरामदासने कहा–इस प्रकारकी बातें सुनकर महारानी सीता और रामने उनकी प्रार्थना स्वीकार कर ली और अगस्त्यकी ओर निहारने लगे ॥ ४ ॥ अगस्त्यने कहा–हे राम ! जब आप वैकुण्ठधामको चले जायँगे, तब कुमुद्वती कुशकी पत्नी होगी। हे रघूद्वह ! कुशकी वर्तमान स्त्री चम्पिकाके

कुशात्पुत्रः कुमुद्वत्यामतिथिस्तु भविष्यति । राज्यकर्ता वंशकर्ता स एवाग्रे भविष्यति ॥ ७ ॥
अतस्त्वमधुना राम नागकन्याः कुशं विना । सप्त स्वसप्तपुत्रेभ्यः प्रयच्छ विधिना द्विजैः ॥ ८ ॥
पञ्चगंधर्वकन्याश्च यूपकेतुं कुशं लवम् । विना स्वपञ्चपुत्रेभ्यः प्रयच्छ रघुनन्दन ॥ ९ ॥
राक्षसेन विवाहेन यूपकेतुः शिशुस्ततः । अग्रे पत्नी महानेष करिष्यत्यपरां शुभाम् ॥ १० ॥
एवं रामसुताः सर्वे स्वस्वस्त्रीभ्यां यथासुखम् । क्रीडयिष्यंति पौत्रास्तान् भविष्यंति प्रपौत्रकाः ॥११॥
प्रपौत्रस्य प्रपौत्रं त्वं दृष्ट्वा सीतासमन्वितः । सुखं यास्यसि वैकुण्ठं बन्धुभिर्नगरीस्थितैः ॥१२॥
एवं श्रुत्वा मुनेर्वाक्यमंगीकृत्य रघूद्वहः । तासां नामानि पप्रच्छ गन्धर्वान्पन्नगानपि ॥१३॥
तदाऽब्रवीत्स गंधर्वः स्वपुत्रीणां सविस्तरात् । तासां नामानि रामाग्रे पञ्चानां सरसस्तटे ॥१४॥
चन्द्रिका चंद्रवदना चञ्चला चपला चला । एवं नामानि पंचानां क्रमेण रघुनंदनः ॥१५॥
श्रुत्वाऽवलोकयामास पन्नगांस्तेऽपि चाब्रुवन् । कंजानना कंजनेत्रा कंजांघ्री च कलावती ॥१६॥
कलिका कमला चैव मालती सप्त कीर्तिताः । एवं नामानि पंचानां क्रमेण रघुनंदनः ॥१७॥
श्रुत्वा ताः पुष्पके स्थाप्य तैर्निद्रामकरोन्निशि । अथ प्रभाते श्रीरामः हुत्वा स्नात्वा यथाविधि ॥१८॥
गन्धर्वपन्नगांश्चापि तदा वचनमब्रवीत् । एभिर्जनैर्मया साकं विवाहार्थं रसातलम् ॥१९॥
नैव योग्यं समागन्तुं मर्त्यलोकनिवासिना । तस्माच्छृणुध्वं मद्वाक्यं सुहृदः सकलाः शुभम् ॥२०॥
यूयं गत्वा निजस्थानं स्वस्त्रीभिश्च सुहृज्जनैः । आगंतव्यं विवाहार्थमयोध्यां मे यथासुखम् ॥२१॥
अधुनाऽहं तु गच्छामि पुरीमग्रे क्षणेन हि । विहायसा विमानेन पताकाध्वजमालिना ॥२२॥
तथेति रामवचनात्ते गताः स्वस्थलानि हि । रामोऽपि मुनिना ताभिर्बालिकाभिः सुतैः स्त्रिया ॥२३॥
विहायसा पुष्पकस्थो ययौ पश्यन्वनानि सः । अयोध्यां प्रहरेणैव मुदा प्राप रघूद्वहः ॥२४॥

कोई पुत्र नहीं होगा ॥ ५ ॥ ६ ॥ हां, कुमुद्वतीसे कुशके अतिथि नामका पुत्र उत्पन्न होगा और वही पुत्र राज्यकर्ता एवं वंशका बढ़ानेवाला होगा। इससे हे राम! कुशको छोड़कर बाकी सब कुमारोंका विवाह इन कन्याओंके साथ कर दीजिए। इनमेंसे पाँच गन्धर्वकन्याओंको यूपकेतु तथा कुश-लवके अतिरिक्त पाँच पुत्रोंको दे दीजिए ॥ ७–९ ॥ आगे चलकर यूपकेतु राक्षसविवाहके क्रमसे एक अच्छी स्त्रीके साथ बिवाह करेगा ॥ १० ॥ हे राम ! ऐसा करनेसे सब बेटे अपनी-अपनी स्त्रियोंके साथ सुखपूर्वक विहार करेंगे। उनके पौत्र-प्रपौत्र आदि भी होंगे ॥ ११ ॥ प्रकार आप अपने प्रपौत्रके प्रपौत्रोंको देखकर सीता अपने बन्धुओं और पुरवासियोंके साथ वैकुण्ठधामको जायँगे। इस प्रकार अगस्त्यजीकी बात सुनी तो उन्होंने अङ्गीकार कर लिया और उन गन्धर्वों-पन्नगोंसे उनकी कन्याओंके नाम पूछने लगे ॥ १२ ॥ १३ ॥ गन्धर्वराज अपनी पाँच कन्याओंका नाम बतलाते हुए बोले—चन्द्रिका, चंद्रवदना, चंचला, चपला और चला ये इनके नाम हैं ॥ १४ ॥ कन्याओंका नाम सुनकर राम उनकी ओर देखने लगे। फिर पन्नग इस प्रकार अपनी सात कन्याओंके नाम बतलाने लगे–कंजानना, कंजनेत्रा, कंजांघ्री, कलावती, कलिका, कमला और मालती ये सात नाम हैं। इस रीतिसे सबका नाम सुनकर रामने उन कन्याओंको पुष्पक विमानपर चढ़ा लिया और सब साथियोंके साथ सोगये। इसके अनन्तर प्रातःकालके समय राम उठे और विधिपूर्वक स्नान-हवन आदि किया ॥१५–१८॥ फिर वे उन गन्धर्वों तथा पन्नगोंको बुलाकर कहने लगे--हे गन्धर्व तथा पन्नगगण ! मैं मर्त्यलोकका निवासी मनुष्य हूँ। इस कारण मैं अपने बन्धुवर्गके साथ न तो पन्नगोंके यहाँ पातालको जा सकूँगा और न गन्धर्वोंके यहाँ स्वर्गलोकको ही अपने बच्चोंका विवाह करने जा सकूंगा। इससे आप सुहृद्गण मेरी बात सुनें ॥ १९ ॥ २० ॥ आपलोग अपने-अपने घर जायँ और इनका विवाह करनेके लिए वहाँसे स्त्रियों तथा बन्धु-बांधवोंके साथ आनन्दपूर्वक अयोध्या पधारें ॥ २१ ॥ कुछ देर बाद मैं अपने विमान द्वारा आकाशमार्गसे अपनी नगरीको चला जाऊँगा ॥ २२ ॥ "बहुत अच्छा" कहकर वे गन्धर्व तथा पन्नग अपने-अपने स्थानको चले गये। इधर रामचन्द्रजी भी

नीराजितः पुरस्त्रीभिर्विवेश निजमंदिरम् । वसिष्ठगेहे ताः सर्वाः प्रेषयामास राघवः ॥२५॥
अथ रामः सभामध्ये सौमित्रिमिदमब्रवीत् । आकारणीया राजानः सुहृदश्च मुनीश्वराः ॥२६॥
सांतःपुराः सपौराश्च स्वस्वजानपदैः सह । शृङ्गारणीयाऽयोध्येयं परिखाः सप्त सादरम् ॥२७॥
शोधनीयास्तथा सौधसमूहेषु सुधा शुभा । देया चित्राणि लेख्यानि प्रासादेषु समंततः ॥२८॥
देवालयेषु सर्वेषु सुधा देया मनोरमा । लेखनीयानि चित्राणि बलयः स्थाप्यतां पृथक् ॥२९॥
बंधनीयाः पताकाश्च रोपणीया ध्वजा अपि । समंततस्तोरणानि बंधनीयानि लक्ष्मण ॥३०॥
वेद्यः कार्या रुक्ममय्यो बंधनीयाश्च मण्डपाः । शृंगारणीया हस्त्यश्वशिबिकाश्च सहस्रशः ॥३१॥
गंधर्वेभ्यः पन्नगेभ्यो वस्तुं गेहानि वै पृथक् । कुरुष्व नूतनान्यन्नवस्त्राद्यैः पूरितानि च ॥३२॥
अन्यच्चापि यथायोग्यं यद्यज्जानासि लक्ष्मण । तत्तत्कुरुष्व यन्नोक्तं मया तत्र रघूद्वह ॥३३॥
तद्रामवचनं श्रुत्वा तथेत्युक्त्वा स लक्ष्मणः । तथा चकार तत्सर्वं यथा रामेण शिक्षितः ॥३४॥
अथ गन्धर्वराजस्तु तथा वै सप्त पन्नगाः । सुहृद्भिः सावरोधास्ते ययुः शीघ्रं मुदान्विताः ॥३५॥
सर्पा मानवरूपेण हस्त्यश्वरथसंस्थिताः । गन्धर्वाश्चापि सैन्यैस्ते साकेतोपवनं ययुः ॥३६॥
ततस्तानागतान् श्रुत्वा प्रत्युद्गम्य रघूद्वहः । नानावाद्यानि नादैश्च नृत्यैरप्सरसां पुरीम् ॥३७॥
नीत्वा संस्थापयामास विस्तीर्णेषु गृहेषु सः । अथ तैरेकदा रामः सभायां संस्थितः सुखम् ॥३८॥
ज्योतिर्विदः समाहूय वसिष्ठं तत्पुरोधसः । पृथग्विवाहान्कर्तुं स मुहूर्तानतिमंगलान् ॥३९॥
सम्यग्विचारयामास वर्षमध्ये सविस्तरम् । ज्योतिर्विदस्तदा प्रोचुर्मुहूर्तानतिसौख्यदान् ॥४०॥
पक्षांतरेण वैशाखे द्वौ मुहूर्तौ शुभावहौ । तथा ददुर्मुहूर्तौ द्वौ ज्येष्ठे पक्षांतरेण ते ॥४१॥
द्वावेव मार्गशीर्षेऽपि त्रीन् माघे फाल्गुनेऽपि च । एवं द्वादशनारीणां चक्रुर्लग्नविनिश्चयम् ॥४२॥

उन बालिकाओं, अपने पुत्रों तथा स्त्रियोंके साथ पुष्पक विमानपर बैठकर आकाशमार्गसे रास्तेके वनोंको देखते हुए वहाँसे चल दिये और एक प्रहरमें अयोध्या आ गये ॥ २३ ॥ २४ ॥ वहाँ पहुँचनेपर पुरवासिनी स्त्रियोंने उनकी आरती उतारी और उन कन्याओंको वसिष्ठजीके यहाँ भेज दिया ॥ २५ ॥ तदनन्तर रामने सभामें लक्ष्मणसे कहा–सब राजाओं, सम्बन्धियों और मुनियोंके यहाँ निमन्त्रण भेज दो कि सब लोग अपनी स्त्रियों तथा पुरवासियोंके साथ अयोध्या पधारें । सातों परिखाओं समेत अयोध्या नगरीका शृङ्गार करो ॥२६॥ अयोध्याके सब मकान चूनेसे पुतवाये जायँ और उनपर चारों ओर विविध प्रकारके चित्र बनाये जायँ ॥ २७ ॥ समस्त देवालयोंमें अच्छी तरह पुताई की जाय और उनपर भी सुन्दर चित्र बनाकर पूजनका सुप्रबन्ध किया जाय ॥ २८ ॥ २९ ॥ पताकाएँ बाँधी जायँ, ध्वजारोपण किया जाय और मंदिरोंके चारों ओर तोरण बांधे जायँ । जहाँ तहाँ सुवर्णमयी वेदियाँ बनवायी जायँ । हजारों हाथी, घोड़े तथा पालकियोंका शृङ्गार किया जाय । गन्धर्वों-पन्नगोंके रहनेको नये-नये मकान बनवाकर उनमें अच्छी तरह अन्न-वस्त्र आदिका प्रबन्ध कर दो ॥ ३०-३२ ॥ हे लक्ष्मण ! जो मैं कह चुका हूँ, वह और जो नहीं भी बतलाया है और तुम जानते होओ सो भी ठीक कर लो ॥ ३३ ॥ रामकी बात सुनकर लक्ष्मणने जैसा उन्होंने कहा था, तदनुसार सब प्रबंध कर दिया ॥ ३४ ॥ इसके अनन्तर गंधर्वराज और सातों पन्नग अपने सम्बन्धियों तथा स्त्रियोंके साथ हर्षपूर्वक अयोध्याको चल दिये ॥ ३५ ॥ उस समय समस्त सर्प मानव रूप धारण किये हाथी, घोड़े तथा रथपर सवार होकर अयोध्या आये । गंधर्व भी अपनी विशाल सेनाके साथ साकेतपुर आ पहुँचे ॥ ३६ ॥ ॥ ३७ ॥ इसके बाद जब रामचन्द्रजीने सुना कि वे लोग अयोध्या आ गये हैं तो विविध प्रकारके बाजों और नाचके साथ नगरीमें ले आये और खूब लम्बे-चौड़े भवनमें उनको ठहराया । इसके अनन्तर एक समय राम सब लोगोंके साथ सभामें बैठे तो वसिष्ट तथा अनेक ज्योतिषियोंको बुलाया और विवाहके लिए अलग-अलग मुहूर्तका अच्छी तरह विचार करनेको कहा । ज्योतिषियोंने रामके आज्ञानुसार अतिशय सुखदायी मुहूर्त विचारकर कहा कि एक पक्ष बीतनेपर वैशाख मासमें दो मुहूर्त हैं । एक पक्षके अनन्तर ज्येष्ठ मासमें भी दो ही मुहूर्त हैं ॥ ३८–४१ ॥ दो

लवस्याथांगदस्यापि विवाहौ तैर्विनिश्चितौ । ज्योतिर्विद्भिर्वसिष्ठेन वैशाखे राघवाग्रतः ॥४३॥
चित्रकेतोः पुष्करस्य विवाहौ तैर्विनिश्चितौ । ज्येष्ठे मासि क्रमेणैवं पक्षे पक्षे पृथक् पृथक् ॥४४॥
तक्षस्याथ सुबाहोश्च विवाहौ मार्गशीर्षके । पक्षांतरेण रामाग्रे ज्योतिर्विद्भिर्विनिश्चितौ ॥४५॥
यूपकेतोरंगदस्य चित्रकेतोर्विनिश्चिताः । माघमासे विवाहाश्च ज्योतिःशास्त्रविशारदैः ॥४६॥
पुष्करस्याथ तक्षस्य सुबाहोः फाल्गुने शुभे । विवाहा निश्चिताः शिष्य रामाग्रे गणकैस्तदा ॥४७॥
एवं विनिश्चिताः सर्वे विवाहा द्वादश क्रमात् । ज्योतिर्विद्भिर्निश्चिताश्च श्रुत्वा तानर्चयद्विभुः ॥४८॥

इति श्रीशतकोटिरामचरितांतर्गते श्रीमदानंदरामायणे वाल्मीकीये विवाहकांडे
द्वादशविवाहविनिश्चयो नाम षष्ठः सर्गः ॥ ६ ॥

सप्तमः सर्गः

(नागों तथा गंधर्वराजकी कन्याओंका विवाह)

श्रीरामदास उवाच

अथ ते गणकाः सर्वे वसिष्ठस्तत्पुरोधसः । कुमारीणां विभागांश्च चक्रुः श्रीराघवाग्रतः ॥ १ ॥
कंजाननां लवायाथ कंजाक्षीमंगदाय च । गणका निश्चयं चक्रुः कंजांघ्रीं चित्रकेतवे ॥ २ ॥
कलावतीं पुष्कराय तथा तक्षाय कालिकाम् । सुबाहवे च कमलां मालतीं यूपकेतवे ॥ ३ ॥
गणकैः सप्त ता एवं नागकन्या विनिश्चिताः । चंद्रिकामंगदायाथ चन्द्रास्यां चित्रकेतवे ॥ ४ ॥
चञ्चलाख्यां पुष्कराय तक्षाय चपलां तथा । सुबाहवे तु ह्यचलां प्रोचुस्ते गणकादयः ॥ ५ ॥
एवं गंधर्वकन्यास्ताः पंच विप्रैर्विनिश्चिताः । एवं हि निश्चयं कृत्वा गणकादीन् रघूत्तमः ॥ ६ ॥
विसृज्य मैथिलीं गत्वा सर्वं वृत्तं न्यवेदयत् । ततो ययुः कोटिशस्ते पार्थिवाश्च मुनीश्वराः ॥ ७ ॥
सप्तद्वीपांतरस्थाश्च सावरोधाः सबालकाः । नानावाहनसंस्थाश्च पौरैर्जानपदैर्निजैः ॥ ८ ॥

मुहूर्त मार्गशीर्षमें, तीन मुहूर्त माघमें और तीन ही मुहूर्त फाल्गुनमें बतलाया। इस तरह उन बारहों कन्याओंके विवाहकी लग्न बन गयी। तदनंतर वसिष्ठके साथ-साथ उन ज्योतिषियोंने वैशाखवाली लग्नमें लव और अङ्गदके विवाहका मुहूर्त निश्चित किया। चित्रकेतु और पुष्करका विवाह ज्येष्ठमासकी लग्नमें निश्चित हुआ। तक्ष और सुबाहुका विवाह एक पक्ष बाद मार्गशीर्षके दूसरे पक्षमें निश्चित किया ॥ ४२–४५ ॥ यूपकेतु, अङ्गद तथा चित्रकेतुका विवाह माघ मासमें निश्चित हुआ ॥ ४६ ॥ पुष्कर, तक्ष तथा सुबाहुका विवाह रामके समक्ष बैठे हुए ज्योतिषियोंने फाल्गुन मासकी शुभ लग्नमें निश्चित किया ॥ ४७ ॥ इस तरह क्रमशः बारहों विवाहोंके निश्चित हो जानेपर रामने ज्योतिषियोंकी विधिवत पूजा की ॥ ४८ ॥ इति श्रीशतकोटिरामचरितांतर्गते श्रीमदानंदरामायणे पं० रामतेजपाण्डेयविरचितभाषाटीकासहिते विवाहकांडे षष्ठः सर्गः ॥ ६ ॥

श्रीरामदास कहने लगे—उपर्युक्त प्रकारसे विवाह निश्चित हो जानेपर रामके सामने ही वसिष्ठ तथा ज्योतिषियोंने उन कन्याओंका विवाह तैं करके यह तैं किया कि कौन-सी कन्या किसको दी जाय ॥ १ ॥ कञ्जानना नामकी कन्या लवके लिए, कञ्जाक्षी अङ्गदके लिए, कञ्जांघ्री चित्रकेतुके लिए, कलावती पुष्करके लिए, कालिका तक्षके लिए, कमला सुबाहुके लिए और मालती यूपकेतुके लिए देना निश्चित हुआ ॥ २ ॥ ३ ॥ इस प्रकार ज्योतिषियोंने उन सब कन्याओंको देनेका निश्चय कर दिया। चंद्रिका अङ्गदके लिए, चंद्रास्या चित्रकेतुके लिए, चञ्चला पुष्करके लिए, चपला तक्षके लिए और अचला सुबाहुके लिए देनेके लिए उन ज्योतिषियोंने निश्चित किया। इस तरह उन पाँचों गन्धर्वकन्याओंके वरोंका निश्चय हो जानेपर रामने आदरपूर्वक ज्योतिषियोंको विदा किया और स्वयं सीताके पास जा पहुँचे। जो कुछ सभामें निश्चित हुआ था, सो उन्हें कह सुनाया। इसके बाद सातों द्वीपोंमें रहनेवाले करोड़ों मुनीश्वर तथा राजे अपने परिवार और प्रजा समेत नाना प्रकारकी सवारियोंपर सवार होकर अयोध्या आये ॥ ४–८ ॥ उस समय उन लोगोंसे सारी अयोध्या भर

तैः साऽयोध्यापुरी व्याप्ता विरेजे नितरां तदा । ययौ विभीषणश्चाथ सुग्रीवोऽपि प्लवंगमैः ॥ ९ ॥
ययौ स भूरिकीर्तिश्च पुत्राभ्यां शीघ्रमादरात् । ययौ स जनकश्चापि युधाजित्स ययौ तदा ॥१०॥
कौसल्यायाः सुमित्राया बांधवाद्याः समाययुः । अथ रामस्तु वैशाखशुक्ले द्विजवरैः सह ॥११॥
पुरोधसा सुहृद्भिश्च स्नानमभ्यंगपूर्वकम् । कृत्वा लवाय मांगल्यस्नानार्थं स्त्रीः प्रचोदयत् ॥१२॥
ततो मुहूर्तसमये वधूच्छिष्टां निशां लवम् । सम्यग् लिप्य सुतैलाद्रां सीताद्या मातरस्तदा ॥१३॥
स्वयं सस्नुर्मुदा सर्वास्तूर्यनादैः सबालकाः । अथ रामो देवकस्य प्रतिष्ठां ब्राह्मणैः सह ॥१४॥
आदौ कृत्वा गणपतेः पूजां सम्यग्यथाविधि । पुण्याहादित्रयं चापि कृत्वा पूर्वं सविस्तरम् ॥१५॥
चकार विधिवत्तुष्टः पूजयामास वै मुनीन् । ततो मुहूर्तसमये गत्वा पन्नगमंदिरम् ॥१६॥
लवस्य कंजनयनाविवाहं विनिवर्तयत् । चतुर्थे दिवसे वंशपात्रस्थै रत्नदीपकैः ॥१७॥
नीराजितस्तदा रामो विरेजे मंडपे स्त्रिया । ततो निजगृहं गत्वा पूर्वोक्तैरुत्सवादिभिः ॥१८॥
लवेन कारयामास लक्ष्मीपूजनमुत्तमम् । ततो दानान्यनेकानि ददौ स रघुनन्दनः ॥१९॥
ततस्ते पार्थिवाः सर्वे तथा ते पन्नगा अपि । सुहृदश्चाथ गंधर्वाः पौरा जानपदादयः ॥२०॥
पूजयामासुः श्रीरामं वस्त्रैराभरणादिभिः । तथा तान् लक्ष्मणादींश्च कुशाद्यांश्चापि बालकान् ॥२१॥
ततस्ता नृपपत्न्यश्च सुहृत्पत्न्यः पृथक्पृथक् । नागपत्न्यश्च गंधर्वपत्न्यश्चान्यास्तथा स्त्रियः ॥२२॥
सीताद्याः पूजयामासुर्वस्त्रैराभरणादिभिः । सीताऽपि ताः सुहृत्पत्नीस्तथा पार्थिवकामिनीः॥२३॥
पूजयामास विधिवद्वस्त्रैराभरणादिभिः । रामोऽपि सुहृदः पौरान् गन्धर्वान्पन्नगान्नृपान् ॥२४॥
वस्त्रैराभरणैर्यानैः पूजयामास सादरम् । एवं वैशाखमासे तु सिते पक्षे लवस्य च ॥२५॥
कृत्वा विवाहं रामः स कृष्णपक्षे तु माधवे । चकार पूर्ववद्वाद्विवाहं ह्यंगदस्य च ॥२६॥
चित्रकेतोः पुष्करस्य विवाहो रघुनन्दनः । ज्येष्ठमासे शुक्लकृष्णपक्षयोरकरोन्मुदा ॥२७॥

गयी और वह बहुत ही सुन्दर दीखने लगी। बहुतसे वानरोंको साथ लिये हुए सुग्रीव, अपने दोनों बेटोंके साथ राजा भूरिकीर्ति, इनके सिवाय विभीषण, जनक, युधाजित, कौसल्या तथा सुमित्राके बन्धु-बान्धव आदि भी अयोध्यामें आ पहुँचे। इसके बाद वैशाखके शुक्लपक्षमें पुरोहितों तथा विप्रोंके साथ रामने अभ्यङ्ग-पूर्वक स्नान किया और लवको मङ्गलस्नान करानेके लिए स्त्रियोंसे कहा ॥ ९–१२ ॥ सीतादिक माताओंने जब मुहूर्त आया, तब वधूके जूठे हल्दी-तेल तथा उबटन लेकर लवके शरीरमें लगाया और तुड़ही तथा नगाड़े आदि बाजोंके साथ बालकोंके सङ्ग स्वयं भी स्नान किया। उधर रामने ब्राह्मणोंके साथ कुलदेवताकी स्थापना की ॥ १३ ॥ १४ ॥ स्थापनाके पूर्व यथाविधि गणपतिकी पूजा की और विस्तारसे तीन प्रकारका पुण्याहवाचन किया। इसके अनन्तर मेहमानीमें आये हुए मुनियोंकी पूजा करके उन्हें सन्तुष्ट किया। शुभ मुहूर्तमें पन्नगोंके यहाँ गये और वहाँ कञ्जनयनाके साथ लवका विधिवत् विवाह सम्पन्न किया। चौथे दिन बाँसकी छिटनीमें रखे हुए रत्न-दीपकोंसे रामकी आरती उतारी गयी। उस समय राम सीताके साथ बहुत ही सुन्दर दीख रहे थे। इसके अनन्तर पूर्वोक्त उत्सवोंके साथ राम अपने घर गये। वहाँ लवके हाथोंसे अच्छी तरह लक्ष्मीपूजन कराया और अनेक प्रकारके दान दिये ॥ १५–१९ ॥ इसके बाद उन देश-देशान्तरसे आये हुए राजाओं, पन्नगों, सम्बन्धियों, पुरवासियों और जनपदवासियोंने विविध प्रकारके वस्त्रों और आभूषणोंसे राम-लक्ष्मण तथा सब बालकोंकी पूजा की। इसके पश्चात् रानियों, सम्बन्धियोंकी स्त्रियों, नागपत्नियों तथा गंधर्व आदिकी स्त्रियोंको सीता आदि स्त्रियोंने वस्त्र और आभूषण दे-देकर विधिवत् सत्कृत किया। रामने भी सम्बन्धियों, पुरवासियों, गन्धर्वों और पन्नगोंकी वस्त्राभूषणसे भली भाँति पूजा की। इस तरह वैशाख मासके शुक्लपक्षमें लवका विवाह सम्पन्न किया और कृष्णपक्षमें पूर्ववत् उत्साह समेत अङ्गदका विवाह किया ॥ २०–२६ ॥ उसी प्रकार ज्येष्ठके शुक्ल और कृष्ण-

ततः सर्वान्नृपादींश्च ददावाज्ञां सुपूजितान् । ततः पुनस्तानाहूय पूर्ववन्मार्गशीर्षके ॥२८॥
तक्षस्याथ सुबाहोश्च विवाहावकरोत्प्रभुः । ततः सर्वान्नृपान् रामो ददावाज्ञां सुहृज्जनान् ॥२९॥
ततः पुनस्तानाहूय माघमासे सुहृन्नृपान् । यूपकेतोरंगदस्य चित्रकेतोर्महोत्सवैः ॥३०॥
विवाहानकरोद्रामः पार्थिवान्न व्यसर्जयत् । पुष्करस्याथ तक्षस्य सुबाहोश्च महोत्सवैः ॥३१॥
चकार फाल्गुने मासि विवाहान् जानकीधवः । एवं कृत्वा विवाहांश्च रामो द्वादश सादरम् ॥३२॥
नृपैः संपूजितः सर्वान्पूज्याज्ञां नृपतीन् ददौ । पूजयित्वा मुनींश्चापि विससर्ज रघूद्वहः ॥३३॥
गधर्वपन्नगाः सप्त ते साकेतेऽत्र संस्थिताः । रामं मुक्त्वा न ते नैजं स्थलं जग्मुर्मुदान्विताः ॥३४॥
मंत्रिणः प्रेषयामासुः स्वस्वराज्येषु ते पृथक् । यदा रामः स वैकुंठमग्रे गच्छति कालतः ॥३५॥
तदा सांतानिकाँल्लोकांस्ते गच्छन्ति न संशयः । अथ रामः पन्नगानां गन्धर्वाणां च सद्मसु ॥३६॥
वार्षिकेषूत्सवेष्वत्र सावरोधः सुहृज्जनैः । पौरैः स्वीयैर्भोजनादि गत्वा ह्यंगीकरोत्सदा ॥३७॥
सदा महोत्सवाश्चासन्नयोध्यायां गृहे गृहे । आनन्दः सकलानासीन्नासीत्क्वाप्यमंगलम् ॥३८॥
अथ तेषां राघवेण पुत्राणां च पृथक् पृथक् । अष्ट कृत्वा तु गेहानि पृथक्कृत्वा च शांतयः ॥३९॥
तेषु ते स्थापिताः सर्वे स्वस्वस्त्रीभ्यां पृथक् सुखम् । तथा ते लक्ष्मणाद्याश्च पृथग्गेहेषु बांधवाः ॥४०॥
पूर्वमेव स्थापिताश्च स्वस्वपत्न्या मुदान्विताः । सुमित्रायाः स सौमित्रिः स्वीयगेहेऽवसत्सुखम् ॥४१॥
कैकेयी भरतस्याथ गेहे मासमुवास सा । तस्थौ शत्रुघ्नगेहेऽपि मासमेकं यथासुखम् ॥४२॥
एवं सा पुत्रयोर्गेहेऽकरोद्वास मुदान्विता । कौसल्या सा रामगेहे तस्थौ सीतातिसेविता ॥४३॥
ते सर्वे बांधवाः पुत्रा निजयानैश्च सेवकैः । स्वदासीगोधनाद्यैश्च सुखमापुः पृथक् पृथक् ॥४४॥
अथ ते लक्ष्मणाद्याश्च कुशाद्या बालका अपि । स्वस्वगेहेषु वै प्रातः स्नात्वा होमान् शिवार्चनम् ॥४५॥

पक्षमें चित्रकेतु और पुष्करका विवाह सम्पन्न किया ॥ २७ ॥ इसके बाद सब राजाओं और मुनियोंको अपने-अपने घर जानेकी आज्ञा दी । फिर मार्गशीर्षमें सबको बुलाकर तक्ष और सुबाहुका विवाह किया । बादमें सबको अपने देश जानेकी अनुमति देकर माघ मासमें बुलाया और यूपकेतुका विवाह सम्पन्न किया ॥ २८–३० ॥ माघमें आये मेहमानोंको विदा न करके रामने फाल्गुन मासमें पुष्कर, तक्ष तथा सुबाहुका विवाह किया । इस तरह बारहों विवाहोंको करके रामने सब मेहमानोंको स्वयं पूजा की और उनका पूजन स्वीकार किया । तब सबको अपनी-अपनी राजधानियोंको जानेकी अनुमति दी । इसी तरह उन मुनियोंका भी विधिवत् पूजन करके अपने-अपने आश्रमोंको जानेको आज्ञा दी ॥ ३१–३३ ॥ किन्तु गन्धर्व और पन्नगगण अयोध्यामें ही रहे । वे अपने-अपने मन्त्रियोंको राजधानी भेजकर रामके पास रहने लगे । वे तब तक अयोध्यामें रहेंगे, जब तक राम अपने वैकुण्ठलोकको नहीं चले जायँगे । रामके चले जानेपर वे भी सान्तानिक लोकको चले जायेंगे । इसके अतिरिक्त वार्षिक उत्सवों और त्योहारोंपर राम अपने घरकी स्त्रियों, मित्रों तथा सम्बन्धियोंके साथ पन्नगों और गंधर्वराजके यहाँ जाकर भोजन आदि करते थे ॥ ३४–३७ ॥ उन दिनों अयोध्यामें घर-घर उत्सव मनाये जाते थे । उस समय सर्वत्र आनंद था । कहीं भी किसी प्रकारका अमंगल नहीं दिखलायी पड़ता था ॥ ३८ ॥ इसके पश्चात् रामने उन बारहों पुत्रोंके लिए अलग-अलग घर बनवाये और विधिवत् शान्तिपाठ कराके उनको अपनी-अपनी स्त्रियोंके साथ उन घरोंमें बसा दिया । उसी तरह लक्ष्मण आदि भ्राता पहले हीसे अलग-अलग महलोंमें अपनी-अपनी स्त्रियोंके साथ सुखपूर्वक रह रहे थे । सुमित्राके पुत्र लक्ष्मण अपने महलमें आनंदपूर्वक रहते थे ॥ ३९–४१ ॥ कैकेयी एक महीना भरतके यहाँ और एक महीना शत्रुघ्नके यहाँ रहा करती थी । इस तरह अपने दोनों पुत्रोंके साथ रहती हुई वह सुखसे समय बिता रही थी । कौसल्या सीताकी सेवा ग्रहण करती हुई रामके महलोंमें रहती थीं ॥ ४२ ॥ ४३ ॥ वे सब भ्राता और उनके पुत्र अलग-अलग अपनी सवारी, सेवक, दासी, गोधन आदि अपार सम्पत्तियाँ रखकर आनंद ले रहे थे ॥ ४४ ॥ यह सदाका नियम था कि लक्ष्मण आदि सब भ्राता और कुश आदि

गोद्विजार्चादि संपाद्य ततस्ते राघवं ययुः । नत्वा रामं जानकीं ते तस्थुर्दिव्यासनोपरि ॥४६॥
तेषां सर्वाः स्त्रियश्चापि स्नात्वा दुर्गां प्रपूज्य च । गत्वा सीतां प्रणेमुस्तास्तस्थुः सीताज्ञयाऽऽसने ॥४७॥
ततस्ते लक्ष्मणाद्याः कुशाद्याः स्वगुरोर्मुखात् । कथां पौराणिकीं श्रुत्वा जग्मुः स्वं स्वं गृहं प्रति ॥४८॥
ततः सर्वे रामगेहे समाहूता मुदान्विताः । उपाहारान् पृथक् चक्रुर्मध्याह्ने भोजनान्यपि ॥४९॥
एवं तेषां स्त्रियश्चापि समाहूतास्तु सीतया । उपाहारान् भोजनानि चक्रुः सीतागृहे सदा ॥५०॥
कदा मुदा स्वीयगेहे राघवेणाथ सीतया । उपाहारान् भोजनानि चक्रुस्ते ब्राह्मणादिभिः ॥५१॥
एवं तैर्बन्धुभिर्बालैः प्रापतुर्नितरां सुखम् । सीतारामौ कदा नासीत्कलहः क्वापि कस्य हि ॥५२॥

इति श्रीशतकोटिरामचरितान्तर्गते श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये विवाहकाण्डे
द्वादशविवाहवर्णनं नाम सप्तमः सर्गः ॥ ७ ॥

अष्टमः सर्गः

(शत्रुघ्नतनय यूपकेतु द्वारा मदनसुन्दरीका हरण)

श्रीरामदास उवाच

अथैकदा दक्षिणे हि शिवकांत्यां महापुरि । कंबुकंठो नृपः श्रीमान्निजकन्यास्वयंवरम् ॥ १ ॥
कर्तुकामो नृपान्सर्वानाह्वयामास सादरम् । तदा ते पार्थिवाः सर्वे पत्राणि हि पृथक् पृथक् ॥ २ ॥
पूर्ववैरमनुस्मृत्य कुशस्यापि लवस्य च । स्वयंवरे स्वीयमानभंगेनोद्भूतहृत्स्थितम् ॥ ३ ॥
प्रेषयामासुर्नृपतिं न ययुश्च स्वयंवरम् । तेषां पत्राणि सर्वाणि कंबुकंठो ददर्श सः ॥ ४ ॥
सर्वेषु लिखितस्त्वेक एवार्थस्तं वदाम्यहम् । यदि नायांति रामस्य बालकास्ते स्वयंवरे ॥ ५ ॥
वयं सर्वे तर्हि यामो जंबुद्वीपान्तरस्थिताः । तेषामेवमभिप्रायं ज्ञात्वा स नृपतिस्तदा ॥ ६ ॥
न समाहूय श्रीराममाह्वयामास पार्थिवान् । स्वयं चापि स्मरन्वैरं तदेवं रामपुत्रयोः ॥ ७ ॥

बालक सवेरे स्नान करके हवन, शिवार्चन एवं गौ-ब्राह्मणोंकी पूजा करते थे। तब रामके पास जाते और वहाँ सीता तथा रामको प्रणाम करके दिव्य आसनपर बैठते थे ॥ ४५ ॥ ४६ ॥ उसी तरह उनकी स्त्रियाँ भी सवेरे स्नान और दुर्गापूजनसे निवृत्त होकर सीताके पास जातीं, उन्हें प्रणाम करतीं और आज्ञा पाकर दिव्य आसनोंपर बैठती थीं ॥ ४७ ॥ इसके बाद वे सब लोग गुरु वसिष्ठके मुखसे पुराणोंकी कथा सुन-सुनकर अपने भवनोंको जाया करते थे। दोपहरको रामके बुलानेपर साथ-साथ जलपान तथा भोजन करते थे। उसी तरह उनकी स्त्रियाँ भी सीताके बुलानेपर सीताके यहाँ ही आकर जलपान तथा भोजन करती थीं ॥ ४८–५० ॥ कभी-कभी वे लोग राम और बहुतसे ब्राह्मणोंको अपने यहाँ बुलाकर भोजन कराते थे ॥ ५१ ॥ इस तरह उन बन्धुओं और बालकोंके साथ सीता तथा राम बड़े सुखसे जीवन व्यतीत कर रहे थे। किसीके साथ कभी किसी तरहका झगड़ा नहीं होता था ॥ ५२ ॥ इति श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये पं० रामतेजपाण्डेयविरचित-भाषाटीकासहिते विवाहकाण्डे सप्तमः सर्गः ॥ ७ ॥

श्रीरामदास कहने लगे—एक समय दक्षिणकी शिवकांतिपुरीमें वहाँके राजा कम्बुकण्ठने अपनी कन्याका स्वयम्वर करनेके विचारसे सब राजाओंके यहाँ निमन्त्रणपत्र भेजकर बुलवाया। किन्तु कुश-लवके कारण वे महाराज कम्बुकण्ठके यहाँ नहीं आये और एक-एक पत्र लिखकर भेज दिया। कम्बुकण्ठने एक-एक करके सब राजाओंका पत्र देखा ॥ १–४ ॥ उन सब पत्रोंमें एक ही चर्चा थी। वह यह कि यदि रामचन्द्रके लड़के तुम्हारे स्वयंवर न आयें तो हम सब जम्बूद्वीपके राजे तुम्हारे यहाँ आयेंगे—अन्यथा नहीं। राजा कम्बुकण्ठने उनके अभिप्राय समझकर रामचन्द्रजीके पास निमन्त्रण न भेजकर बाकी सब राजाओंको बुलाया। कम्बुकण्ठको स्वयं भी वह बात याद आ गयी कि रामके पुत्रोंने चम्पिका और सुमतिके स्वयंवरमें

चंपिकासुमतिपाणिग्रहणीयं पुरातनम् । ततस्ते पार्थिवाः सर्वे श्रुत्वा रामं हि नागतम् ॥ ८ ॥
सप्तद्वीपांतरस्थाश्च ययुः कांतिपुरीं प्रति । अथ तां कंबुकठस्य कन्यां मदनसुन्दरीम् ॥ ९ ॥
प्रासादसंस्थितां दृष्ट्वा नारदः खात्समाययौ । सखीभिः सा मुनिं पूज्य विनयात्पुरतः स्थिता ॥१०॥
पप्रच्छ नारदं भक्त्या विनयावनता शनैः । कुतः समागतः स्वामिन् गम्यते क्वाधुना वद ॥११॥
भवतां दर्शनेनाद्य पावित्र्यं परमं गता । इति तस्या वचः श्रुत्वा किंचित् स्मित्वा मुनिस्तदा ॥१२॥
तामाह बाले स्वर्लोकादागतोऽस्म्यधुना त्वहम् । अयोध्यायां राघवस्य पुत्राणां तु पृथक् पृथक् ॥१३॥
गेहे संभोक्तुकामोऽद्य निर्गतोऽस्मि विहायसा । एतस्मिन्नंतरे कांतिपुर्याः सैन्यानि वै बहिः ॥१४॥
दृष्ट्वा केषां हि सैन्यानि संतीति हृदि चिंतितम् । ततः पांथमुखाच्छ्रुत्वा तव चात्र स्वयंवरम् ॥१५॥
तदा विनिश्चितं चित्ते मया रामः स्वयंवरे । अत्रैवास्ति ह्यागतश्चेत्तं पश्यामि सबालकम् ॥१६॥
नैवास्ति ह्यागतश्चेद्वै तर्हि यास्याम्यतः परम् । स्वयंवरो विना रामं न भविष्यति सात्मजम् ॥१७॥
पश्याम्यत्रैव तं रामं वृथाऽग्रे गमनं मम । निश्चित्येत्थं समायातस्ततोऽदृष्ट्वा रघूत्तमम् ॥१८॥
कथं रामो नागतोऽत्र चेति पृष्टा नृपा मया । नृपाभिप्रायमाकर्ण्य तदा खिन्नं मनो मम ॥१९॥
सप्तद्वीपपतिं रामं बंधुबालकसंयुतम् । स्वयंवरमनाहूय त्वत्पित्रा निश्चितं नृपैः ॥२०॥
अधुनाऽहं प्रगच्छामि साकेतस्थं रघूत्तमम् । मन्दभाग्याऽसि बाले त्वं स्नुषा राघवसत्पतेः ॥२१॥
यतो जाताऽसि नैवात्र विचित्रा कर्मणो गतिः । इत्युक्त्वा बालिकां पृष्ट्वा नारदो गन्तुमुद्यतः ॥२२॥
ततः संप्रार्थयामास नारदं बालिका मुहुः । खिन्नचित्ताऽश्रुपूर्णाक्षी म्लानास्या स्फुरिताधरा॥२३॥
रोमांचिततनुर्मुग्धा गतश्रीर्गद्गदस्वरा । येनाहं मुनिवर्यात्र स्नुषा श्रीराघवस्य च ॥२४॥
भविष्यामि तथा कार्यं त्वया त्वां शरणं गता । इत्युक्त्वा मुनिवर्यस्य पादयोः स्थाप्य सा शिरः॥२५॥
चकार करुणं बाला तदा तां मुनिरब्रवीत् । मा चिन्तां कुरु रंभोरु समुत्तिष्ठस्व बालिके ॥२६॥

सबसे वैर कर लिया ॥ ५–७ ॥ इसके अनन्तर जब सब राजाओंने यह सुन लिया कि राम नहीं आयेंगे, तब वे कम्बुकण्ठके यहाँ पहुँचे । उधर कम्बुकण्ठकी कन्या मदनसुन्दरीको अँटारीपर देखकर नारदजी आकाश-मार्गसे उतर आये । मदनसुन्दरीने सखियोंके साथ आकर नारदकी पूजा की और उन मुनिके सामने जा बैठी ॥ ८–१० ॥ फिर भक्तिपूर्वक नारदसे पूछने लगी—स्वामिन् ! आप इस समय कहाँसे आ रहे हैं और अब कहाँ जायेंगे, सो बताइए ॥ ११ ॥ आपके दर्शनसे मैं आज परम पवित्र हो गयी। इस प्रकार उसकी बात सुनी तो थोड़ा मुसकाकर नारद कहने लगे—हे बाले ! इस समय मैं स्वर्गलोकसे आ रहा हूँ और रामके सब पुत्रोंके यहाँ अलग-अलग भोजन करनेके लिए अयोध्या जा रहा हूँ। आते समय मैंने कान्तिपुरी नगरीके बाहर सेना देखी। उसे देखकर मुझे बड़ा कौतूहल हुआ। रास्तेमें एक पथिकसे पूछनेपर ज्ञात हुआ कि यहां तुम्हारा स्वयम्वर है तो यह सोचा कि जहाँ तक है, रामचन्द्रजी अपने बालकों समेत यहां अवश्य आये होंगे। चलो, यहाँ ही दर्शन कर लें। यह निश्चय करके मैं यहाँ आया, किंतु रामचन्द्रजीको नहीं देखा तो राजाओंसे पूछा कि राम क्यों नहीं आये ? उन लोगोंने जो कारण बतलाया, उससे मेरा मन बहुत खिन्न हुआ ॥ १२–१९ ॥ सप्तद्वीपके अधिपति राम तथा उनके लड़कोंको न बुलानेका निश्चय करके ही तुम्हारे पिताने और-और राजाओंको बुलाया है ॥ २० ॥ अच्छा, अब मैं अयोध्यामें रामचन्द्रजीके पास जा रहा हूँ। हे बाले ! तुम अभागी हो, जो रामचन्द्रजी जैसे राजराजकी पतोहू नहीं बन रही हो। कर्मकी भी बड़ी विचित्र गति होती है। ऐसा कह और कन्यासे पूछकर नारदजी जाने लगे । तब वह कन्या मदनसुंदरी खिन्न मन, आँसू भरी आँखों, म्लानमुख, काँपते हुए अधरों तथा रोमांचित शरीर होकर गद्गद वाणीसे इस प्रकार विनय करती हुई कहने लगी—आप कोई ऐसी युक्ति करिए कि जिससे मैं रामकी ही पतोहू बनूँ । मैं आपकी शरणमें हूँ। ऐसा कहकर उसने अपना मस्तक मुनिराजके चरणोंमें रख दिया और रोने लगी। तब नारद मुनिने कहा—

भविष्यसि त्वं रामस्य स्नुषा यत्नं करोम्यहम् । इत्युक्त्वा तां समाश्वास्य खमार्गेण मुनिर्ययौ ॥२७॥
एतस्मिन्नंतरेऽयोध्यापुर्याः स्यन्दनसंस्थितः । यूपकेतुर्वनं पश्यंस्तमसातीरमाययौ ॥२८॥
किञ्चित्सैन्ययुतो बालस्तमसायां निगाह्य सः । यावत्संध्यादिकं कर्तुमुपविष्टस्तदा मुनिम् ॥२९॥
ददर्श नारदं नत्वा पूजयामास सादरम् । ततः पप्रच्छ मुनये यूपकेतुः पुरःस्थितः ॥३०॥
कुतः समागतं चेति तच्छ्रुत्वा नारदो मुनिः । सर्वं वृत्तं सविस्तारं कथयामास बालकम् ॥३१॥
तच्छ्रुत्वा सकलं वृत्तं नत्वा तं नारदं मुनिम् । अब्रवीद्बालको वाक्यं सक्रोधः संभ्रमान्वितः ॥३२॥
मुने नृपाणां सर्वेषां द्वेषबुद्धिश्च राघवे । या जाता साऽद्य सर्वेषां ज्ञेयाऽनर्थकरी जवात् ॥३३॥
कबुकंठादिभूपानां सारं पश्याम्यहं रणे । रणे त्वत्कृपया सर्वान् जित्वा तामानयाम्यहम् ॥३४॥
इत्युक्त्वा स ययौ कांतिं पञ्चमेऽहनि सेनया । नारदोऽपि ययौ रामं द्रष्टुं प्रीतमनास्तदा ॥३५॥
रामेण पूजितः प्रेम्णा भोजनार्थं निमंत्रितः । अथ भोजनवेलायां युपकेतुं रघूत्तमः ॥३६॥
अदृष्ट्वा लक्ष्मणं प्राह यूपकेतुर्न दृश्यते । बालेषु तं भोजनार्थं लक्ष्मणात्र समाह्वय ॥३७॥
तदा स मालतीं गत्वा प्रपच्छ लक्ष्मणो जवात् । सा प्राह वनमध्येऽद्य किञ्चित्सैन्ययुतो गतः ॥३८॥
वृत्तमेतद्यथावत्स गत्वा रामं जगाद ह । अथ रामो भोजनादि संपाद्य मुनिना मुदा ॥३९॥
ययौ सभायामासीनस्तं मुनिं वाक्यमब्रवीत् । पञ्चसप्तदिनान्यत्र स्थेयं मद्वचनात्त्वया ॥४०॥
तथेति नारदः प्राह सभायां संस्थितः सुखम् । अथ रात्रौ यूपकेतुमदृष्ट्वा रघुनन्दनः ॥४१॥
उपाहारं कर्तुकामः पुनर्लक्ष्मणमब्रवीत् । आकारय यूपकेतुं नायं दृष्टो मया शिशुः ॥४२॥
तथेति रामवचनात्पुनर्गत्वा तु मालतीम् । पप्रच्छ यूपकेतुं स सा प्राह नागतस्त्विति ॥४३॥
ततः स विह्वलो भूत्वा रामं वृत्तं न्यवेदयत् । रामोऽपि नागतं श्रुत्वा बंधुभ्यां विह्वलोऽभवत् ॥४४॥

हे रम्भोरु ! हे बालिके ! तुम किसी प्रकारकी चिन्ता न करो, उठो ॥ २१–२६ ॥ तुम अवश्य रामकी पतोहू बनोगी। मैं इसके लिए उद्योग करूँगा। ऐसा कह और उसे ढाढ़स बँधाकर नारदजी आकाशमार्गसे चल दिये ॥ २७ ॥ इसी समय यूपकेतू रथपर बैठकर अयोध्यासे निकले और रास्तेके वनोंको देखते हुए तमसा नदीके किनारे पहुँचे ॥ २८ ॥ उस समय थोड़ी-सी सेना उनके साथ थी। उसके साथ यूपकेतुने तमसामें स्नान किया और सन्ध्यावन्दन करनेको बैठे ही थे कि नारदजीको देखा। तब उनको प्रणाम करके सादर पूजन किया। इसके बाद नारद मुनिने विस्तारपूर्वक उस कन्या मदनसुंदरीका सारा वृत्तांत कहा। उसे सुनकर क्रोध और घबराहटसे पूर्ण होकर यूपकेतुने कहा—॥ २९–३२ ॥ हे मुने ! इस समय जो सब राजे रामसे द्वेषबुद्धि रखते हैं, वह उनके लिए अनर्थकारिणी सिद्ध होगी ॥ ३३ ॥ कम्बुकण्ठ आदि राजाओंका बल मैं संग्रामभूमिमें पहुँचकर देखता हूँ। हे मुनिराज ! मैं आपकी कृपासे उन सबको जीतकर मदनसुंदरीको लिये आता हूँ ॥ ३४ ॥ ऐसा कहकर यूपकेतु अपनी सेनाके साथ पाँचवें दिन कान्तिपुरीमें पहुँचे और नारदजी प्रसन्नतापूर्वक रामका दर्शन करनेके लिए अयोध्या चले गये ॥ ३५ ॥ वहाँ पहुँचनेपर रामने प्रेमसे नारदजीका पूजन करके भोजनका निमंत्रण दिया। जब भोजनका समय हुआ, तब यूपकेतुको न देखकर रामने लक्ष्मणसे कहा कि इस समय यूपकेतु नहीं दिखायी देता। हे लक्ष्मण ! और-और बालकोंके साथ उसे भी भोजन करनेके लिए बुलाओ ॥ ३६ ॥ ३७ ॥ रामके आज्ञानुसार लक्ष्मण मालतीके पास पहुँचे और यूपकेतुको पूछा। उसने कहा कि वे अपने साथ थोड़ी-सी सेना लेकर वनको गये हैं ॥ ३८ ॥ यह वृत्तान्त लक्ष्मणने जाकर रामको सुना दिया। तत्पश्चात् मुनिके साथ राम भोजन आदि करके अपने सभाभवनमें गये और वहाँ बैठकर नारद मुनिसे कहने लगे कि आप मेरे कहनेसे पाँच-सात दिन यहाँ ही ठहर जाइये। 'तथास्तु' कहकर नारदजी भी ठहर गये। तदनन्तर भोजनके समय रात्रिमें भी यूपकेतुको न देखकर रामने लक्ष्मणसे कहा—यूपकेतुको बुलाओ। आज मैंने दिनभर उस बच्चेको नहीं देख पाया है ॥ ३९–४२ ॥ 'बहुत अच्छा' कहकर लक्ष्मण फिर मालतीके पास गये और यूपकेतुको पूछा। उसने कहा कि वे अभी तक

ततः सा जानकी श्रुत्वा विह्वला खिन्नमानसा । दुद्राव राघवाग्रे सा सर्वे तूष्णीं कथं स्थिताः ॥४५॥
इति तान् प्राह वैदेही तदा सर्वेऽतिविह्वलाः । त्यक्त्वोपाहारान् वेगेन तच्छोधार्थं समुद्यताः ॥४६॥
तदा तान्विह्वलान्दृष्ट्वा नारदः प्राह राघवम् । कांतिवृत्तं यूपकेतोः प्रयाणादिकमादरात् ॥४७॥
तत्सर्वं राघवः श्रुत्वा किंचित्तुष्टमनास्तदा । लक्ष्मणं प्राह वेगेन शत्रुघ्नोऽद्यैव गच्छतु ॥४८॥
सेनया चतुरंगिण्या जवात्कांतिं कुशादिभिः । तथेति लक्ष्मणश्चोक्त्वा चोपाहारान्विधाय सः॥४९॥
सेनया बालकैर्वेगाच्छत्रुघ्नं प्रेषयन्निशि । रामं नत्वाऽथ शत्रुघ्नः शीघ्रं स्यन्दनसंस्थितः ॥५०॥
ययौ कांतिसमीपं स षष्ठेऽहनि मुदान्वितः । एतस्मिन्नंतरे कांतिपुर्यां तत्र स्वयंवरे ॥५१॥
सभायां राजशार्दूलाः संस्थितास्ते मुदान्विताः । अथ सा शिबिकारूढाऽऽययौ मदनसुन्दरी ॥५२॥
किंचिन्म्लानमुखी दुःखात्स्मरंती नारदेरितम् । वृद्धोपमाता तां सर्वान् दर्शयामास पार्थिवान् ॥५३॥
यूपकेतुस्तदा वेगाद्गत्वा तूर्णीं सभांगणम् । मोहनास्त्रं विसृज्याथ मोहयामास तां सभाम् ॥५४॥
मोहितैर्मोहनास्त्रेण न्यस्तां तद्वाहकैर्भुवि । रथेन शिबिकां गत्वा धृत्वा मदनसुन्दरीम् ॥५५॥
निजाभिधानं संश्राव्य तां तुष्टामकरोत्तदा । अथ सा वरयामास वीरं मदनसुन्दरी ॥५६॥
मुमोच मालां तत्कण्ठे नवरत्नमयीं शुभाम् । ततः स यूपकेतुर्हि रथे मदनसुन्दरीम् ५७॥
निवेश्य कांतिपुर्याः स बहिर्गत्वा स्थिरोऽभवत् । तामाह दयितां वीरस्त्विदानीं त्वं भयं त्यज ॥५८॥
जित्वा सर्वान्नृपानद्य त्वया गच्छाम्यहं पुरीम् । तत्तस्य वचनं श्रुत्वा सा प्राह वचनं तदा ॥५९॥
बहवः संति राजानस्त्वमेकः स्वल्पसेनया । असंख्यातानि सैन्यानि तेषां पश्य समन्ततः॥६०॥
कथं युद्धं भवेदत्र मा कुरुष्वाद्य संगरम् । शीघ्रं मां नय साकेतं ततो रामेण सेनया ॥६१॥

नहीं लौटे ॥ ४३ ॥ यह सुना तो विह्वल होकर लक्ष्मणने रामसे कहा। जब रामने यह सुना तो भ्राताओंके साथ-साथ वे भी विह्वल हो उठे ॥ ४४ ॥ जानकीने सुना तो वह भी विह्वल तथा खिन्न होकर दौड़ती हुई रामके पास पहुँची और कहा कि आप लोग यूपकेतुको अनुपस्थित देखकर भी चुपचाप बैठे हैं ? ॥ ४५ ॥ यह सुनकर सब लोग घबड़ा उठे और भोजन त्यागकर उसे ढूँढ़नेकी तैयारी कर दिये ॥ ४६ ॥ इस प्रकार सबको व्याकुल देखकर नारदजीने रामसे कान्तिपुरीका वृत्तान्त बतलाया और यूपकेतुके प्रस्थानकी भी बात कह सुनायी ॥ ४७ ॥ यह हाल सुना तो रामको थोड़ा सन्तोष हुआ और तुरंत लक्ष्मणको आज्ञा दी कि मेरी चतुरंगिणी सेना लेकर शत्रुघ्न अभी कांतिपुरी जायँ। "बहुत अच्छा" कहकर लक्ष्मणने भोजन आदि कराके रातमें ही सेना और कुश आदि वीर बालकोंके साथ शत्रुघ्नको कांतिपुरी भेजा। रामको प्रणाम करके शत्रुघ्न रथपर सवार हुए और प्रसन्नतापूर्वक प्रस्थान कर दिये ॥ ४८-५० ॥ इस तरह अयोध्यासे चलकर ठीक छठें दिन शत्रुघ्न कांतिपुरीके पास पहुँच गये। उधर कांतिपुरीमें स्वयंवर हो रहा था ॥ ५१ ॥ सभामण्डपमें बहुतसे राजे हर्षपूर्वक बैठे हुए थे। इतनेमें मदनसुन्दरी पालकीमें बैठी हुई सभामें आयी ॥ ५२ ॥ उस समय वह दुःखसे नारदकी बातोंका स्मरण कर रही थी। इस कारण उसका मुख कुम्हलाया हुआ था। सभामें पहुँचकर वृद्धा धात्रीने सब राजाओंको दिखलाया ॥ ५३ ॥ उसी समय वेगके साथ यूपकेतु सभाभवनमें पहुँचे और मोहनास्त्रका प्रयोग करके उन्होंने सारी सभाको मूर्छित कर दिया ॥ ५४ ॥ मोहनास्त्रसे मोहित होकर शिबिकावाहकोंने भी शिबिका जमीनपर रख दी। इतनेमें रथपर बैठे हुए यूपकेतु शिबिकाके पास पहुँचे और मदनसुन्दरीका हाथ पकड़कर अपना नाम बताया, जिससे वह बहुत प्रसन्न हुई और वीर यूपकेतुको वरकर उसने उनके गलेमें वह नवरत्नमयी वरमाला डाल दी। तब प्रसन्न होकर यूपकेतुने मदनसुन्दरीको रथमें बिठा लिया ॥ ५५-५७ ॥ तब कान्तिपुरीसे बाहर निकलकर वे एक स्थानपर रुक गये। वहाँपर उन्होंने मदनसुन्दरीसे कहा कि अब तुम किसी प्रकारका भय न करो ॥ ५८ ॥ मैं सब राजाओंको जीतकर तुम्हारे साथ अयोध्यापुरी चलूंगा। यूपकेतुकी बात सुनकर उसने कहा— ॥ ५९ ॥ वे राजे बहुतसे हैं और तुम अकेले हो, तुम्हारे साथ सेना भी थोड़ी-सी है और देखो न, उनकी असंख्य सेना चारों ओर पड़ी हुई है ॥ ६० ॥

युद्धं कुरु नृपैर्घोरं शृणु मद्वचनं प्रभो । मा साहसं कुरुष्वात्रार्थये त्वां मुहुर्मुहुः ॥६२॥
इति तस्या वचः श्रुत्वा तामाश्वास्य पुनः पुनः । उपसंहारयामास मोहनास्त्रं स लीलया ॥६३॥
तदा ते पार्थिवाः सर्वे श्रुत्वा नीतां वधूं बलात् । शत्रुघ्नतनयेनेति स्त्रीवाक्यैः स्यंदने स्थिताः ॥६४॥
निर्ययुः कोटिशो योद्धुं स्वस्वसेनावृता जवात् । चंपिकायाः सुमत्याश्च पूर्ववैरेण दर्पिताः ॥६५॥
दुद्रुवुर्नेमिमार्गेण ददृशुस्तं रथस्थितम् । युक्तं मदनसुन्दर्या बिभ्रंतं मालिकां हृदि ॥६६॥
ततस्तं मुमुचुः सर्वे नानाशस्त्राणि सैनिकाः । यूपकेतुस्तदा वेगाट्टणत्कृत्य महद्धनुः ॥६७॥
वायव्यास्त्रेण तान्सर्वानुद्धूय दशदिक्षु सः । प्राक्षिपत्पार्थिवान् सैन्यैर्नानावाहनसंस्थितान्॥६८॥
तदा स कंबुकण्ठोऽपि पूर्ववैरमनुस्मरन् । चंपिकायाः सुमत्याश्च स्वयंवरसमुद्भवम् ॥६९॥
निमेषान्निजकन्याया वैरतो हरणं बलात् । महाक्रोधान्निर्ययौ स स्वसैन्येन परिवेष्टितः ॥७०॥
कुर्वन् दुंदुभिघोषांश्च युद्धार्थं यूपकेतुना । यूपकेतुरपि श्रुत्वा दुन्दुभीनां महत्स्वनम् ॥७१॥
कांतिपुर्युत्तरद्वारपुरतः संस्थितो रथी । टणत्कृत्य महच्चापं सन्दधे शरमुत्तमम् ॥७२॥
ये ये वीराः पुरद्वारान्निर्गताश्च बहिः शनैः । तान् जघान क्षणादेव प्रेतैर्द्वारं रुरोध सः ॥७३॥
तं दृष्ट्वा यूपकेतोश्च कंबुकण्ठः पराक्रमम् । ययौ स्वयं स्यन्दनेन प्रेतसंघं विदार्य च ॥७४॥
शेषसैन्येन संयुक्तो यूपकेतुं क्रुधा जवात् । तदाऽऽह यूपकेतुं स मया त्वं सङ्गरं कुरु ॥७५॥
किमेतान्मशकान् हत्वा पौरुष मन्यसे जड । इत्युक्त्वा सप्तभिर्बाणैर्यूपकेतुं जघान सः ॥७६॥
तान्बाणानागतान् दृष्ट्वा यूपकेतुर्निजैः शरैः । तांश्छित्वा नवबाणैस्तच्चापं सारथिनं ध्वजम् ॥७७॥
कवचं मुकुटं छित्वा जघान तुरगानपि । पद्भ्यां तदा कंबुकण्ठो गदामादाय दुद्रुवे ॥७८॥

ऐसी अवस्थामें युद्ध कैसे करोगे ? आज तुम संग्राम न करो। मुझे शीघ्र अयोध्या पहुँचा दो और वहाँसे रामचन्द्रजीकी विशाल सेना लेकर आओ, तब युद्ध करो। हे प्रभो ! ऐसे समय साहस करना ठीक नहीं है। मैं बार-बार यही विनती करती हूँ ॥ ६१ ॥ ६२ ॥ इस प्रकार मदनसुन्दरीकी बात सुनकर उन्होंने उसे आश्वासन दिया और मोहनास्त्रका संवरण कर लिया ॥ ६३ ॥ जब उन राजाओंने स्त्रियोंके मुखसे सुना कि शत्रुघ्नके पुत्र यूपकेतुने मदनसुन्दरीका हरण किया है तो अपने-अपने रथोंपर सवार हो-होकर बड़ी-बड़ी सेना लिये वेगके साथ वे लड़नेको निकल पड़े। एक तो सुमति और चम्पिकाके वरनेका ही वैर उन लोगोंके मनमें था, दूसरे अब मदनसुन्दरीके हरणसे उनके हृदयको और भी ठेस लगी ॥ ६४ ॥ ६५ ॥ फिर क्या था, शत्रुके रथके पहियोंका रास्ता देखते हुए वे चले और थोड़ी ही दूर जाकर उन्होंने देखा कि यूपकेतु मदनसुन्दरीके साथ बैठा है और उसके गलेमें वरमाला पड़ी हुई है ॥ ६६ ॥ देखते ही सब राजाओंने एक साथ उस वीर बालकपर कितने ही शस्त्रोंका प्रहार कर दिया। यूपकेतुने भी वेगके साथ अपने धनुषका टङ्कोर किया ॥ ६७ ॥ और वायव्य अस्त्रका प्रयोग करके उन सब राजाओंको रथ, वाहन तथा सेना समेत उड़ाकर दूर फेंक दिया ॥ ६८ ॥ महाराज कम्बुकण्ठ भी पूर्ववैरका स्मरण करके विशेषकर इस समय वैरवश अपनी कन्याका हरण देखकर अपनी सेनाके साथ यूपकेतुसे युद्ध करनेके लिए दुंदुभीका घोष करते हुए निकल पड़े। यूपकेतुने भी जब दुंदुभीकी गर्जना सुनी तो कांतिपुरीके उत्तरी द्वारपर पहुँचे और अपने धनुषका टङ्कोर करके उसपर एक उत्तम शरका संधान किया ॥ ६९-७२ ॥ उस पुरद्वारसे जो-जो योद्धा निकलते, उनको अपने बाणोंसे यूपकेतु बराबर मारते जाते थे। इससे थोड़ी ही देरमें वह द्वार मृतकोंसे भर गया ॥ ७३ ॥ इस तरह यूपकेतुका पराक्रम देखकर राजा कम्बुकण्ठ स्वयं अपने रथपर सवार होकर उन शवोंको रौंदते हुए बची हुई सेनाके साथ यूपकेतुके सामने जा पहुँचे और क्रोधमें भरकर उन्होंने कहा—अब तू मेरे साथ संग्राम कर ॥ ७४ ॥ ॥ ७५ ॥ अरे जड़ ! इन मच्छड़ोंको मारकर क्या तू अपने पौरुषको पौरुष मानता है ? ऐसा कहकर कम्बुकण्ठने तीन बाणोंसे यूपकेतुपर प्रहार किया ॥ ७६ ॥ उन बाणोंको अपनी ओर आते देखकर यूपकेतुने अपने नौ बाणोंसे कम्बुकण्ठके बाणों, धनुष, सारथी, ध्वजा, कवच और मुकुटको काट डाला और घोड़ोंको भी मार दिया। तब

तावत्सहस्रधा बाणैर्यूपकेतुश्चकार ताम् । ततो बद्ध्वा दृढां मुष्टिं कम्बुकंठस्त्वरान्वितः ॥७९॥
हृदये यूपकेतोस्तां जघानाचलसन्निभाम् । तदा स यूपकेतुस्तं श्वशुरं स्यंदनोपरि ॥८०॥
ध्वजे बबंध वेगेन खड्गं जग्राह सम्भ्रमात् । कंबुकण्ठशिरश्छेदं कर्तुं तं समुपस्थितम् ॥८१॥
दृष्ट्वा धृत्वा करे तस्य सखड्गं सम्भ्रमान्विता । तमाह नत्वा साध्वक्षी तदा मदनसुन्दरी ॥८२॥
विह्वला विगतोत्साहा वेपती ह्यश्रुलोचना । मम तातं कंबुकण्ठमेनं हंसि कथं प्रभो ॥८३॥
मक्षिकापतनं पूर्वं ग्रासे यद्वत्त्वया कृतम् । सुखारम्भे पूर्वमेव दुःखकर्मावलम्बितम् ॥८४॥
मद्वाक्यान्नैव हंतव्यस्तस्मात्त्वां प्रार्थयाम्यहम् । एवं मदनसुन्दर्या वचः श्रुत्वा विहस्य सः ॥८५॥
कराद्विसृज्य तं खड्गं स्वसूतं चोदयन्मुदा । सेनया स ययौ यावत्पथाऽयोध्यां पुरीं प्रति ॥८६॥
तावद्दुंदुभिनिर्घोषानग्रे शुश्राव सेनया । पुनश्चापं दृढीकृत्य यूपकेतुस्तदा पथि ॥८७॥
कस्याग्रे वाहिनी चेति चिंतयामास चेतसि । ततः शरं मुमोचैकं निजनामांकितं बलात् ॥८८॥
योजनांतरसेनायां शरः शत्रुघ्नसन्निधौ । पपात तत्पदाग्रे तं दृष्ट्वा स चकितस्तदा ॥८९॥
शरपुच्छे यूपकेतोर्नाम दृष्ट्वाऽथ शत्रुहा । निश्चितवान्यूपकेतुर्मार्गेऽग्रे वर्तते ध्रुवम् ॥९०॥
ततश्चापे स शत्रुघ्नः स्वनामांकितमुत्तमम् । शरं संधाय विमुखं यूपकेतुं मुमोच ह ॥९१॥
स शरो यूपकेतोश्च मस्तकादूर्ध्वतस्तदा । अपतत्पृष्ठभागे स तं ददर्श पितुः शरम् ॥९२॥
तदा हृष्टो यूपकेतुः कुर्वन्दुंदुभिनिःस्वनान् । गत्वा वेगेन शत्रुघ्नं दृष्ट्वोत्प्लुत्य रथादधः ॥९३॥
ननाम पितरं पत्न्या कबुकंठं प्रदर्शयन् । तदा तं सुहृदं ज्ञात्वा मोचयामास शत्रुहा ॥९४॥
कंबुकंठमुखाच्छ्रुत्वा सर्वं वृत्तं सविस्तरम् । शत्रुघ्नः प्रार्थितस्तेन सुहृदा तत्पुरीं ययौ ॥९५॥

कम्बुकण्ठ पैदल ही गदा लेकर दौड़ पड़े ॥ ७७ ॥ ७८ ॥ यूपकेतुने अपने बाणोंसे उनकी गदाके भी हजार टुकड़े कर दिये। इसके बाद कम्बुकण्ठने यूपकेतुकी छातीपर कठोर घूँसा मारा। तब यूपकेतुने अपने ससुर कम्बुकण्ठको रथकी ध्वजामें बांध लिया और सिर काटनेके लिए वेगके साथ तलवार उठायी ॥ ७९-८१ ॥ इस तरह सिर काटनेको उद्यत एवं हाथमें खड्ग लिये यूपकेतुको देखकर मदनसुन्दरीने प्रणाम किया और आँखोंमें आँसू भरकर कहा—॥ ८२ ॥ हे प्रभो ! मेरे पिता कम्बुकण्ठको आप क्यों मारना चाहते हैं ? पहले ही ग्रासमें मक्खी गिर पड़नेके समान आपने सुखके स्थानमें इस दुःखदायी कर्मको क्यों अपनाया है ? ॥ ८३ ॥ ८४ ॥ आप मेरी बात मानकर इन्हें मत मारिए। मैं आपसे यही प्रार्थना करती हूँ। यह कहती हुई मदनसुन्दरी विकल हो गयी। उसका उत्साह नष्ट हो गया था, वह कांप रही थी और नेत्रोंसे आँसूकी धाराएँ बहाती जा रही थी। इस प्रकार मदनसुन्दरीकी बात सुनकर यूपकेतु मुस्कराये और खड्ग फेंककर अपने सारथीको रथ चलानेका संकेत किया। वे अपनी सेनाके साथ अयोध्यापुरीकी ओर चले ही थे ॥ ८५ ॥ ८६ ॥ इतनेमें आगेसे दुन्दुभीका घोष सुनायी पड़ा। अब अपना धनुष सम्हालकर सोचने लगे कि आगेसे यह किसकी सेना आ रही है। यह सोचकर उन्होंने अपने नामसे अंकित एक बाण वेगपूर्वक छोड़ा ॥ ८७ ॥ ८८ ॥ वह बाण उड़ता हुआ एक योजन तक गया और जहाँ सेना पड़ी हुई थी, वहाँ पहुँचकर शत्रुघ्नके चरणोंके आगे गिरा। उस बाणको देखकर शत्रुघ्न चकित हो गये ॥ ८९ ॥ फिर बाणकी पूँछमें यूपकेतुका नाम देखकर शत्रुघ्नने निश्चय किया कि यूपकेतु आगे रास्तेमें ही है ॥ ९० ॥ तदनन्तर शत्रुघ्नने भी अपने नामसे अंकित एक बाण उठाकर यूपकेतुकी ओर छोड़ा ॥ ९१ ॥ वह बाण यूपकेतुके ऊपरसे होता हुआ पीछे जा गिरा। यूपकेतुने अपने पिताका बाण देखा ॥ ९२ ॥ तब प्रसन्न होकर दुन्दुभी जैसा गर्जन करते हुए वेगके साथ शत्रुघ्नके पास पहुंचे। वहाँ पिताको देखते ही वे रथसे कूद पड़े और अपनी स्त्री मदनसुन्दरीके साथ जाकर शत्रुघ्नको प्रणाम किया और ध्वजामें बँधे हुए कम्बुकण्ठको दिखाया। शत्रुघ्नने उन्हें अपना सम्बन्धी समझकर छुड़ा दिया ॥९३॥९४॥ फिर शत्रुघ्नने कम्बुकण्ठके मुखसे ही विस्तारसे साथ समस्त वृत्तान्त सुना। इसके बाद कंबुकंठके

कांतिपुर्या बहिः स्थित्वा कंबुकंठमतेन सः। आकारणार्थं लग्नाय रामं दूतान्प्रचोदयत् ॥९६॥
तदा ते कंबुकंठस्य शत्रुघ्नस्यापि वेगतः। आकारणार्थं श्रीरामं ययुर्दूता मुदान्विताः ॥९७॥
इति श्रीशतकोटिरामचरितांतर्गते श्रीमदानन्दरामायणे विवाहकाण्डे मदनसुन्दरीहरणं नामाष्टमः सर्गः ॥ ८ ॥

नवमः सर्गः

(रामका वंशविस्तार)

श्रीरामदास उवाच

गत्वाऽयोध्यापुरीं दूता रामं वृत्तं न्यवेदयन्। रामोऽपि श्रुत्वा तद्वृत्तं सीतायै संन्यवेदयत् ॥ १ ॥
ततो मुहूर्ते श्रीरामः सावरोधानुजैः सह। पौरैर्जानपदैः सर्वैः सुहृद्भिः सेनया सह ॥ २ ॥
नारदेन ययौ कांतिमाद्यां मुक्तिपुरीं प्रति। ततः श्रुत्वा कंबुकंठः शीघ्रं राघवमागतम् ॥ ३ ॥
स प्रत्युद्गम्य विनयान्नत्वा संपूजयन्मुदा। यूपकेतुं ततः पूज्य वारणस्थं पुरीं शनैः ॥ ४ ॥
वारस्त्रीनृत्यगीतैश्च तूर्यघोषैर्निनाय सः। ततः कांतिपुरीस्थास्ताः स्त्रियः प्रासादसंस्थिताः ॥ ५ ॥
दृष्ट्वा रामं यूपकेतुं ववर्षुः पुष्पवृष्टिभिः। ततो रामः शनैर्वस्तुं कल्पितं गृहमुत्तमम् ॥ ६ ॥
गत्वा दृष्ट्वा मुहूर्तं तु पूर्वोक्तकौतुकैः सुखम्। यूपकेतोर्विवाहं स चकार परमोत्सवैः ॥ ७ ॥
ततो विवाहं निर्वृत्य कंबुकंठेन पूजिताः। हस्त्यश्वरथपादातदासदासीजनादिभिः ॥ ८ ॥
ययौ मदनसुन्दर्या रामोऽयोध्यापुरीं निजाम्। ततो विवेश नागरीं नेदुर्वाद्यानि वै तदा ॥ ९ ॥
ननृतुर्वारनार्यश्च तुष्टुवुर्मागधादयः। प्रासादस्थाः स्त्रियो रामं ववर्षुः पुष्पवृष्टिभिः ॥१०॥
मार्गे नीराजितः स्त्रीभिर्विवेश निजमन्दिरम्। कारयित्वा रमापूजां ददौ दानान्यनेकशः ॥११॥
सुहृदः पूजयामास राघवो वसनादिभिः। ततो विसर्जयामास सर्वान्स्वस्वस्थलं प्रति ॥१२॥

प्रार्थना करनेपर उनके साथ ही कांतिपुरी गये ॥ ९५ ॥ वहाँ कम्बुकण्ठकी सलाहसे शत्रुघ्न नगरके बाहर ही ठहरे और रामको बुलानेके लिए दूतोंको भेजा ॥ ९६ ॥ उसी समय शत्रुघ्न तथा कम्बुकण्ठके दूत श्रीरामको बुलानेके लिए प्रसन्नतापूर्वक चल पड़े ॥ ९७ ॥ इति श्रीशतकोटिरामचरितांतर्गते श्रीमदानन्दरामायणे पं० रामतेजपाण्डेयविरचित'ज्योत्स्ना'भाषाटीकासहिते विवाहकांडे अष्टमः सर्गः ॥ ८ ॥

श्रीरामदास कहने लगे—वे दूत अयोध्यापुरीमें पहुँचे और रामको कांतिपुरीका सब हाल कह सुनाया। सो सुनकर रामने सीतासे कहा ॥ १ ॥ इसके पश्चात् अच्छे मुहूर्तमें राम अपने अंतःपुरकी नारियों, पुरवासियों, जनपदवासियों, समस्त सम्बन्धियों, नारद तथा सेनाके साथ आदिमुक्तिपुरी अर्थात् कांतिपुरीको चल पड़े। जब कम्बुकण्ठने सुना कि रामचन्द्र पुरीके निकट आ पहुँचे हैं, तब आदरपूर्वक स्वागत करने गये। वहाँ पहुँचकर सविनय प्रणाम किया। इसके अनंतर राम तथा यूपकेतुका पूजन करके हाथीपर बिठाकर धीरे-धीरे पुरीको चले ॥ २–४ ॥ रास्तेमें वेश्यायें नाचती-गाती थीं और तुड़ही आदि विविध प्रकारके बाजे बज रहे थे। उधर जब नगरकी स्त्रियोंने आते देखा तो राम और यूपकेतुपर पुष्पवृष्टि करने लगीं। तत्पश्चात् राम जनवासेमें पहुँचे ॥ ५ ॥ ६ ॥ वहाँ अच्छा मुहूर्त देखकर पूर्वोक्त कौतुकोंके साथ बड़े उत्साहसे यूपकेतुका विवाह किया ॥ ७ ॥ विवाहकी सब रीतियाँ पूरी हो जानेपर कम्बुकण्ठसे पूजित होकर कितने ही हाथी, घोड़े, रथ, पैदल सेना, दास-दासी आदिके साथ मदनसुन्दरीको लेकर अपनी अयोध्यापुरीको चल दिये। अयोध्याके पास पहुँचकर वे अपनी नगरीमें घुसे तो विविध प्रकारके बाजे बजने लगे ॥ ८ ॥ ९ ॥ वेश्यायें नाचने लगीं और मागध-वन्दीजन स्तुति करने लगे। नगरवासिनी महिलाएँ अँटारियोंपर चढ़-चढ़कर रामपर फूल बरसाने लगीं और कुछ स्त्रियाँ मार्गमें आरती उतारने लगीं। इस उत्साहसे राम अपने महल गये। वहाँ उन्होंने लक्ष्मीकी पूजा की और अनेक प्रकारके दान दिये ॥ १० ॥ ११ ॥ इसके अनंतर निमंत्रणमें आये हुए

अथ सप्त कुमाराश्च लवाद्याः स्वस्ववेश्मनि । चक्रुः क्रीडां पृथक् स्त्रीभ्यां कुशश्चंपिकयाऽकरोत् ॥१३॥
चंपिकायां दुहितरः कुशाज्जाताः शुभा नव । कुशस्याग्रे कुमुद्वत्यां भविष्यंत्यष्ट सूनवः ॥१४॥
भविष्यति तथा कन्या त्वेका चंपकमालिनी । ज्येष्ठः पुत्रोऽतिथिरिति नाम्ना राज्यं करिष्यति ॥१५॥
चतुर्दश सुमत्याद्याः स्त्रियः सर्वाः क्रमेण हि । सुषुवुस्तनयानष्ट कन्यैकाऽपि पृथक् पृथक् ॥१६॥
स द्वादशशतं पौत्रान्पौत्रीश्चैव मनोरमाः । त्रयोविंशद्रामचन्द्रो लालयामास सीतया ॥१७॥
कुमुद्वतीभाविपुत्रसहिताः शिशवः शुभाः । विंशच्छतमासंस्ते तथा पौत्र्यस्तडित्प्रभाः ॥१८॥
चतुर्विशन्मिताश्चासन् सर्वाश्चोद्वाहिता नृपैः । तथा श्रीरामपौत्रैश्च नृपकन्या ह्यनेकशः ॥१९॥
काश्चित्स्वयंवरेणैव काश्चिद्राक्षसयोगतः । काश्चिद्गांधर्वयोगेन काश्चिद्वैवाहकर्मणा ॥२०॥
परिणीताः पौरुषेण तासां संख्या न विद्यते । तासां हि संतति वक्तुं कः समर्थो भवेदिह ॥२१॥
एवं स यूपकेतोश्च विवाहश्चरमः शुभः । संपाद्य नारदः श्रीमान्सभायां रघुनन्दनम् ॥२२॥
रामनामसहस्रेण सूतोक्तेनातिभक्तितः । स्तुत्वा श्रीराघवं पृष्ट्वा ययावाकाशवर्त्मना ॥२३॥

श्रीरामदास उवाच

एवं रामेण साकेतपुर्यां भोगाश्चिरं सुखम् । भुक्तास्तेषां वर्णनेऽत्र कः समर्थो भवेन्नरः ॥२४॥
एक एव समर्थोऽभूद्वाल्मीकिस्तपसां निधिः । शतकोटिमितं येन नानाक्रीडादिसंयुतम् ॥२५॥
वर्णितं रामचरितं महामंगलकारकम् । यत्स्मृत्वापि मया किंचित्त्वदग्रे परिवर्णितम् ॥२६॥
एवं रामस्त्वयोध्यायां पुत्रैः पौत्रैः समन्वितः । प्रपौत्रैः पौत्रपौत्रैश्च रंजयामास जानकीम् ॥२७॥
एवं विवाहकाण्डं च शिष्य त्वां परिवर्णितम् । नवसर्गैः पवित्रं च श्रवणान्मंगलप्रदम् ॥२८॥
विवाहकाण्डं परमं ये शृण्वन्त्यपि मानवाः । ते स्त्रीभिः पुत्रपौत्रैश्च वियोगं नाप्नुवंति हि ॥२९॥

सम्बन्धियोंको वस्त्र आदि दे-देकर पूजा की और सबको अपने घर जानेकी अनुमति दी ॥ १२ ॥ इसके बाद लव आदि सातों कुमार अपनी-अपनी स्त्रियोंके साथ अपने-अपने महलोंमें विहार करने लगे और कुश अपनी स्त्री चम्पिकाके साथ केलि करने लगे ॥ १३ ॥ इस तरह कुछ दिनों बाद कुशने चम्पिकासे नौ कन्यायें उत्पन्न कीं। कुमुद्वतीसे आठ पुत्र और चम्पकमालिनी नामकी एक पुत्री भी बादमें उत्पन्न होगी। कुशका सबसे बड़ा पुत्र अतिथि अयोध्यापुरीका राज करेगा ॥ १४ ॥ १५ ॥ इनके सिवाय सुमति आदि चौदह स्त्रियोंने क्रमशः आठ-आठ पुत्र और एक-एक कन्यायें उत्पन्न कीं ॥ १६ ॥ इस तरह राम सीताके साथ बारह सौ पौत्रों तथा तेईस सुन्दर पौत्रियोंका लालन-पालन करते थे ॥ १७ ॥ इसी प्रकार कुमुद्वतीके भावी पुत्रों-पौत्रोंको भी मिलाकर बीस सौ पौत्र और चौबीस पौत्रियाँ हुईं ॥ १८ ॥ जिनका रामने अच्छे-अच्छे राजाओंके साथ विवाह कर दिया और रामके पौत्रोंका विवाह अनेक राजकुमारियोंके साथ हुआ ॥ १९ ॥ उनमेंसे कुछ कुमारियाँ स्वयंवरसे आयीं, कुछ राक्षसविवाहसे आयीं, कुछ गंधर्वविवाहके योगसे आयीं और कुछका शुभ विवाहसम्बन्ध हुआ ॥ २० ॥ इनके सिवाय पौत्रोंके पुरुषार्थसे इतनी राजकुमारियाँ रामके महलोंमें आयीं, जिनकी कोई संख्या ही नहीं है। ऐसी स्थितिमें उनकी सन्तानोंको कौन गिन सकता है ? ॥ २१ ॥ इस प्रकार यूपकेतुका अन्तिम शुभ विवाह सम्पन्न हो जानेपर नारदने सभामें सूतके कहे हुए रामसहस्रनामसे अति भक्तिपूर्वक रामकी स्तुति करके जानेकी आज्ञा माँग ली और आकाशमार्गसे चले गये ॥ २२ ॥ २३ ॥ श्रीरामदासने कहा—इस तरह रामने बहुत समय तक सुख भोगा। उसका वर्णन करनेमें कोई भी प्राणी समर्थ नहीं हो सकता ॥ २४ ॥ बस, एकमात्र तपस्वी वाल्मीकिजी उनके वर्णनमें समर्थ हुए थे। जिन्होंने सौ करोड़ श्लोकोंमें नाना प्रकारकी क्रीड़ाओं सहित रामचरित्रका वर्णन किया। यह रामचरित परम मङ्गलकारक है। इसका स्मरण करके ही मैं तुम्हारे समक्ष कुछ कहनेमें समर्थ हुआ हूँ ॥ २५ ॥ २६ ॥ इस प्रकार राम अपनी अयोध्यापुरीमें पुत्र, पौत्र, प्रपौत्र एवं प्रपौत्रोंके पुत्रोंके साथ रहते हुए सीताको आह्लादित करते रहे ॥ २७ ॥ हे शिष्य ! इस तरह मैंने नौ सर्गयुक्त पवित्र विवाहकाण्डका वर्णन किया, जो सुननेमें सर्वथा मङ्गलदायक है ॥ २८ ॥

धर्मार्थी प्राप्नुयाद्धर्मं धनार्थी धनमाप्नुयात् । कामानाप्नोति कामार्थी मोक्षार्थी मोक्षमाप्नुयात् ३०॥
स्त्रीकामुकैर्नरैरेतत्पठनीयं निरंतरम् । विवाहकाण्डं परमं प्राप्नुवंत्यत्र ते वधूः ॥३१॥
पतिकामा कुमारी चेत्स्नात्वा श्रोष्यति भक्तितः । विवाहकाण्डमेतद्वै मनोज्ञं पतिमाप्नुयात् ॥३२॥
सभार्यश्चेत्पठेदेतच्छृणुयाद्वाऽत्र भक्तितः । इह स्त्रिया सुखं भुक्त्वाऽप्सरोभिर्दिवि मोदते ॥३३॥
सधवा शृणुयादेतद्या नारी कांडमुत्तमम् । विवाहाख्यं कदा भर्त्रा वियोगं नाप्नुयात्तु सा ॥३४॥
सप्तदशदिनैरस्य कार्यं स्त्रीकामुकैर्मुहुः । अनुष्ठानं वर्षमेकं मूर्खोऽपि स्त्रियमाप्नुयात् ॥३५॥
प्रथमे दिवसे सर्गं पठेद्द्वौ च परेऽहनि । नवमे दिवसे सर्गान्क्रमेण संपठेन्नव ॥३६॥
दशमे दिवसेऽष्टैव क्षयस्त्वेकेन वै क्रमात् । एवं सप्तदशदिनैरनुष्ठानं स्मृतं बुधैः ॥३७॥
अथवा सकलं कांडं प्रथमे दिवसे पठेत् । परेऽहनि द्विवारं हि नवमे दिवसे क्रमात् ॥३८॥
नववारं पठेच्चेदं दशमे दिवसे ततः । अष्टवारं पठेत्कांडं क्षयस्त्वेवं क्रमात्स्मृतः ॥३९॥
एवं नरो वर्षमेकमनुष्ठानात्स्त्रियं लभेत् । स्मितवक्त्रां चारुनासां दिव्यरूपां मनोहराम् ॥४०॥

विवाहकाण्डं परमं पवित्रमानन्ददं मङ्गलकारकं च ।
स्त्रीदं मनोज्ञं श्रुतिसौख्यदं वै नरैः सदा संश्रवणीयमेतत् ॥४१॥
आनन्दरामायणमध्यसंस्थं विवाहकांडं परमं हि षष्ठम् ।
शृण्वंति भक्त्या भुवि मानवा ये लभन्ति कामानखिलान्मनोज्ञान् ॥४२॥

इति श्रीशतकोटिरामचरितांतर्गते श्रीमदानन्दरामायणे विवाहकांडे रामवंशविस्तारकथनं नाम नवमः सर्गः ॥९॥
विवाहकांडे सर्गा आनन्दरामायणे नवैव ज्ञातव्याः । पञ्चशताश्च श्लोकाः पञ्चाशीत्युपरिष्ठाः ॥ १ ॥

जो मनुष्य विवाहकाण्डका श्रवण करते हैं, वे अपनी स्त्री तथा पुत्र-पौत्रोंसे कभी भी वियुक्त नहीं होते ॥ २९ ॥ इसको सुननेसे धर्मार्थी धर्मको, धनार्थी धनको, कामी कामको और मोक्षार्थी मोक्षको पा लेता है ॥ ३० ॥ जो लोग स्त्रीकी इच्छा रखते हों, उन्हें चाहिये कि निरन्तर इस विवाहकाण्डका पाठ किया करें। इससे उन्हें स्त्री अवश्य प्राप्त होगी ॥ ३१ ॥ अच्छे पतिको पानेकी इच्छा रखनेवाली कुमारी यदि भक्तिपूर्वक इस कांडको सुने तो सुन्दर पति पायेगी ॥ ३२ ॥ जो सस्त्रीक मनुष्य इस काण्डको पढ़ता या सुनता है तो वह इस जन्ममें स्त्रीके साथ सुख भोगकर स्वर्गमें अप्सराओंके साथ विहार करता है। जो सधवा नारी इस काण्डको सुनती है, वह कभी पतिवियोगका दुःख नहीं पाती। जो लोग स्त्री चाहते हों, वे सत्रह दिनमें एक आवृत्तिके क्रमसे एक वर्ष पर्यन्त अनुष्ठान करें। ऐसा करनेसे मूर्ख मानव भी स्त्री प्राप्त कर सकता है ॥ ३३-३५ ॥ उसका क्रम इस तरह है- पहले दिन एक सर्ग, दूसरे दिन दो सर्ग, तीसरे दिन तीन सर्ग इस क्रमसे नवें दिन नौ सर्गोंका पाठ करे। फिर दसवें दिन आठ सर्ग और ग्यारहवें दिन सात सर्ग ऐसे एक-एक घटाता हुआ सत्रह दिनमें पूरा करे। विद्वानोंने यही अनुष्ठानकी विधि बतलायी है ॥ ३६ ॥ ३७ ॥ अथवा बन पड़े तो पहले रोज विवाहकांडका एक बार पाठ कर जाय, दूसरे रोज दो बार, तीसरे रोज तीन बार, इस रीतिसे बढ़ाता हुआ दसवें दिन नौ बार इस कांडका पाठ करे और ग्यारहवें रोज आठ बार, बारहवें दिन सात बार इस विधानसे घटाता हुआ सत्रहवें दिन केवल एक बार पाठ करे ॥ ३८ ॥ ३९ ॥ इस तरह एक वर्ष तक अनुष्ठान करनेसे वह मुस्कराते मुखड़े, अच्छी नासिका और दिव्य रूपवाली मनोहर स्त्री पाता है ॥ ४० ॥ लोगोंको चाहिए कि इस परम पवित्र, स्त्रीदायक, श्रुतिसुखदायी तथा आनन्द देनेवाले विवाहकांडका नित्य पाठ करें ॥ ४१ ॥ आनन्दरामायणके अन्तर्गत इस छठें विवाहकांडको जो मनुष्य भक्तिपूर्वक सुनते हैं, वे अपनी सब कामनाओंको प्राप्त कर लेते हैं ॥ ४२ ॥ इति श्रीशतकोटिरामचरितांतर्गते श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये पं० रामतेजपाण्डेयविरचरित'ज्योत्स्ना'भाषाटीकासहिते विवाहकांडे नवमः सर्गः ॥ ९ ॥

इस विवाहकांडमें कुल नौ सर्ग हैं और उनमें पाँच सौ पचासी श्लोक कहे गये हैं ॥ १ ॥

इति श्रीमदानन्दरामायणे विवाहकाण्डं समाप्तम् ।

श्रीसीतापतये नमः

श्रीवाल्मीकिमहामुनिकृतशतकोटिरामचरितान्तर्गतं-

आनन्दरामायणम्

'ज्योत्स्ना'ऽभिधया भाषाटीकयाऽऽटीकितम्

राज्यकाण्डम् (पूर्वार्द्धम्)

प्रथमः सर्गः

(रामसहस्रनाम)

विष्णुदास उवाच

रामदास गुरो प्रोक्तं त्वया पूर्वं ममांतिके । विवाहकाण्डचरमसर्गेऽत्र पातकापहे ॥ १ ॥
रामनामसहस्रेण नारदेन महात्मना । सूतोक्तेन सभायां स रामचन्द्रः स्तुतस्त्विति ॥ २ ॥
तत्कीदृशं रामनामसहस्रं मां प्रकाशय । कथं सूतेन कथितं मुनीनामग्रतः पुरा ॥ ३ ॥

श्रीरामदास उवाच

सम्यक् पृष्टं त्वया शिष्य सावधानमनाः शृणु । रामनामसहस्र च सूतोक्तं प्रवदामि ते ॥ ४ ॥
यथा त्वया कृतः प्रश्नः शौनकेन तथा कृतः । सूतः प्राह तदाकर्ण्य शौनकं नैमिषे वने ॥ ५ ॥

श्रीसूत उवाच

एकदा सुखमासीनौ पार्वतीपरमेश्वरौ । अन्योन्याश्लिष्टहृद्बाहू लोकरक्षणतत्परौ ॥ ६ ॥
इन्द्रादिलोकपालैश्च सेवितौ च परात्परौ । पार्वती परिपप्रच्छ तदा धर्माननुक्रमात् ॥ ७ ॥

पार्वत्युवाच

मन्नाथ जगतां नाथ सर्वज्ञ परमेश्वर । त्वत्प्रसादान्मया ज्ञात धर्मशास्त्रमनुत्तमम् ॥ ८ ॥
प्रायश्चित्तं तु पापानां श्रुतं सर्वमशेषतः । ब्रह्महत्यादिपापानां निष्कृतिं वक्तुमर्हसि ॥ ९ ॥

विष्णुदासने कहा—हे गुरो रामदास ! अभी-अभी आप मुझसे कह चुके है कि पातकोंको नष्ट करनेवाले विवाहकांडमें नारदने सूतोक्त रामसहस्रनामसे सभामें रामचन्द्रजीको स्तुति की थी ॥ १ ॥ २ ॥ वह रामसहस्रनाम कैसा है और किस प्रकार श्रीसूतजीने मुनियोंके समक्ष उसे प्रकट किया था। सो आप मुझसे कहें ॥ ३ ॥ श्रीरामदासने कहा—हे शिष्य ! तुमने बहुत उत्तम प्रश्न किया है, सावधान चित्त होकर सुनो। मैं तुम्हें सूतका कहा हुआ रामसहस्रनाम सुनाता हूँ । आज जिस तरह तुम मुझसे पूछ रहे हो, उसी तरह शौनकने सुतजीसे पूछा था । उनका प्रश्न सुनकर नैमिषारण्यमें सूतजीने शौनकसे कहा—एक समय लोकरक्षामें तत्पर शिव और पार्वती गलबहियाँ डाले हुए आनन्दपूर्वक बैठे थे ॥ ४–६ ॥ सर्वश्रेष्ठ देवता शिव और पार्वतीकी सेवामें इन्द्रादि लोकपाल उपस्थित थे। उस समय शिव-पार्वतीमें कोई धार्मिक चर्चा चल रही थी। समय पाकर पार्वतीने शिवजीसे कहा-हे हमारे प्रभु जगत्के प्रभु, सर्वज्ञ एवं परमेश्वर ! आपकी कृपासे मैंने समस्त धर्मशास्त्र जान लिया। पापोंका प्रायश्चित्त किस तरह हो सकता है, सो भी सुन चुकी।

श्रीमहादेव उवाच

शृणु देवि प्रवक्ष्यामि गुह्याद्गुह्यतरं महत् । सनत्कुमारविघ्नेशसंवादं पापनाशनम् ॥१०॥
उपविष्टं गणाध्यक्षमेकान्ते प्रणिपत्य च । सनत्कुमारः पप्रच्छ सर्वधर्मविदां वरम् ॥११॥

सनत्कुमार उवाच

भगवन् सर्वधर्मज्ञ सर्वविघ्नविनाशन । द्विजहत्याहरं धर्मं वक्तुमर्हसि मे प्रभो ॥१२॥
विना भवन्तं धर्मस्य वक्ता नास्ति जगत्त्रये ।

श्रीगणेश उवाच

साधु पृष्टं त्वया ब्रह्मन्सर्वलोकोपकारकम् ॥१३॥
मया चिरं कृतं कर्म स्मारितं भवताऽनघ । पुराऽहं गजरूपेण जातः पर्वतसन्निभः ॥१४॥
ततो वृक्षान्समुत्पाट्य मुनिहिंसां समारभम् । तदा मया मुनिगणा निहता बहवो बलात् ॥१५॥
हाहाकारो महानासीद्ब्राह्मणानां समन्ततः । तदा हत्यासहस्रेण वेष्टितः पतितोऽस्म्यहम् ॥१६॥
निःसंज्ञं मृततुल्यं मां पतितं वीक्ष्य मे पिता । आराध्य जगतामीशं रामं सर्वहृदि स्थितम् ॥१७॥
प्रत्यक्षमकरोद्देव मद्देवो रघुनन्दनम् । तदा प्रोवाच भगवान् श्रीरामः पितरं मम ॥१८॥

श्रीराम उवाच

प्रसन्नोऽस्मि महादेव किं मां प्रार्थयसे प्रभो । दास्यामि यदभीष्टं ते त्रिषु लोकेषु दुर्लभम् ॥१९॥

श्रीमहादेव उवाच

द्विजहत्यासमाविष्टं मम पुत्रमिमं प्रभो । निष्पापं गुरु देवेश यद्यस्ति मयि ते दया ॥२०॥

श्रीगणेश उवाच

तथेत्युक्त्वा तदा तेन कृपयाऽहं निरीक्षितः । तत्क्षणाल्लब्धचैतन्यो निर्मलज्ञानबृंहितः ॥२१॥
बहुभिर्गद्यपद्यैश्च स्तुत्वा त प्रणतोऽभवम् ।

अब आप मुझपर कृपा करके ब्रह्महत्यादि महापापोंकी निष्कृतिका कोई उपाय बतलाइए। श्रीशिवजी बोले—हे देवि ! मैं तुम्हें अतिशय गूढ़ तथा पापनाशक सनत्कुमार और गणपतिका सम्वाद सुनाता हूँ ॥ ७-१० ॥ एक समय जब कि गणेशजी एकान्तमें बैठे हुए थे, तब सनत्कुमारने जाकर उन्हें प्रणाम किया और कहा—हे भगवन् ! समस्त धर्मोंको जाननेवाले तथा विघ्नके विनाशक हे प्रभो ! मुझे ब्रह्महत्याका विनाश करनेवाला कोई धर्म बतलाइये ॥ ११ ॥ १२ ॥ आपके सिवाय तीनों लोकमें कोई भी धर्मका वक्ता मुझे नहीं दीखता। गणपतिने कहा—हे ब्रह्मन् ! तुमने मुझसे बहुत ठाक प्रश्न किया है। इससे सारे संसारका उपकार होगा ॥ १३ ॥ तुमने एक ही बातसे पूर्वमें किये हुए मेरे सब कर्मोंका स्मरण दिला दिया है। पूर्वकालमें मैं गजरूपसे संसारमें जन्मा था और पर्वतकी भाँति लम्बा-चौड़ा मेरा डील डौल था ॥ १४ ॥ उस समय मैंने पहले तो बहुतसे वृक्ष उखाड़े। फिर मुनियोंकी हिंसा आरम्भ कर दां। मैंने अपने अपरिमेय बलसे कितने ही मुनियोंका वध कर पापी बन बैठा ॥ १५ ॥ १६ ॥ मेरे होश-हवास ठिकाने न रहे तथा एक मृतककी नाईं मेरी आकृति हो गयी। मेरी दशा देखकर मेरे पिताने संसारके महाप्रभु रामकी आराधना की। इससे प्रसन्न होकर रामचन्द्रजी मेरे पिताके सम्मुख आये और कहने लगे। रामचन्द्रजा बाल—हे महादेव ! मैं तुम्हारे ऊपर अति प्रसन्न हूँ। बतलाओ, तुम किसलिए इस प्रकार मेरी प्रार्थना कर रहे हो ? तुम्हारी कामना यदि तीन लोकमें दुर्लभ होगी तो भी मैं उसे पूर्ण करूँगा ॥ १७-१९ ॥ श्रीशिवजीने कहा—हे प्रभो ! मेरे पुत्र गणेशको ब्रह्महत्या लग गयी है। हे देवेश ! यदि आपकी मुझपर दया हो तो उसे निष्पाप कर दीजिय ॥२०॥ श्रीगणेशजी सनत्कुमारसे कहने लगे–इस प्रकार मेरे पिताकी बातें सुनकर रामचन्द्रने अपनी कृपाभरी दृष्टिसे एक बार मेरी ओर देखा। उनके देखते ही मैं चैतन्य हो गया। मेरेमें एक निर्मल ज्ञानका तत्क्षण संचार हो गया ॥ २१ ॥ तब बहुतसे गद्य-पद्यों द्वारा मैंने भगवान्की

श्रीरामचन्द्र उवाच

द्विजहत्यासहस्रस्य प्रायश्चित्तं वदामि ते ॥ २२ ॥

जप नामसहस्रं मे हत्याकोटिविनाशकम् । इति गुह्यं ददौ रामस्तत्त्वं नामसहस्रकम् ॥२३॥
तस्य तद्ग्रहणादेव निष्पापोऽहं तदाऽभवम् । तदारभ्यास्मि देवानां पूज्योऽहं मुनिसत्तम ॥२४॥
त्वमप्येतदधीयानो राघवस्य महात्मना । नाम्नां सहस्रं लोकेषु प्रख्यापय महाव्रते ॥२५॥

सनत्कुमार उवाच

धन्योऽस्म्यनुगृहीतोऽस्मि कृतार्थोऽस्मि गणाधिप । त्वत्प्रसादान्मयाऽधीतं रामनामसहस्रकम् ॥२६॥

श्रीमहादेव उवाच

इति विज्ञाप्य देवेशं परिक्रम्य प्रणम्य च । तदादि सततं जप्त्वा स्तोत्रमेतद्वरानने ॥२७॥

अवाप परमां सिद्धिं पुण्यपापविवर्जितः ।

श्रीपार्वत्युवाच

श्रोतुमिच्छामि देवेश तदहं सर्वकामदम् ॥ २८ ॥

नाम्नां सहस्र मां ब्रूहि यद्यस्ति मयि ते दया ।

श्रीमहादेव उवाच

अथ वक्ष्यामि भो देवि रामनामसहस्रकम् । शृणुष्वैकमनाः स्तोत्रं गुह्याद्गुह्यतरं महत् ॥२९॥
ऋषिर्विनायकश्चास्य ह्यनुष्टुप्छन्द उच्यते । परब्रह्मात्मको रामो देवता शुभदर्शने ॥३०॥

ॐअस्य श्रीरामसहस्रनाममालामंत्रस्य विनायक ऋषिः अनुष्टुप् छन्दः श्रीरामो देवता महाविष्णुरिति बीजं गुणभृन्निर्गुणो महानिति शक्तिः सच्चिदानन्दविग्रह इति कीलकं श्रीरामप्रीत्यर्थे जपे विनियोगः

ॐश्रीरामचन्द्राय अंगुष्ठाभ्यां नमः। सीतापतये तर्जनीभ्यां नमः। रघुनाथाय मध्यमाभ्यां नमः। भरताग्रजाय अनामिकाभ्यां नमः। दशरथात्मजाय कनिष्ठिकाभ्यां नमः। हनुमत्प्रभवे करतलकरपृष्ठाभ्यां नमः। श्रीरामचन्द्राय हृदयाय नमः। सीतापतये शिरसे स्वाहा। रघुनाथाय शिखायै वषट्। भरताग्रजाय कवचाय हुम्। दशरथात्मजाय नेत्रत्रयाय वौषट्। हनुमत्प्रभवे अस्त्राय फट्।

स्तुति की और उनके चरणोंमें लोट गया। फिर रामचन्द्रजी कहने लगे–हजारों द्विजहत्याके पापसे उद्धार पानेका उपाय मैं तुम्हें बतलाता हूँ ॥ २२ ॥ मेरे 'रामसहस्रनाम' का जप करोड़ ब्रह्महत्याओंका पाप भी नष्ट कर देता है। ऐसा कहकर रामचन्द्रजीने अपना गुप्त सहस्रनाम मुझे बताया और उसके ग्रहणमात्रसे मेरे पाप नष्ट हो गये। तभीसे हे मुनिसत्तम ! मैं देवताओंका भी पूज्य हो गया हूँ ॥ २३ ॥ २४ ॥ तुम भी इसी रामसहस्रनामका पाठ करते हुए संसारमें इसका प्रचार करो। सनत्कुमारने कहा–मैं धन्य हूँ। मुझपर आपकी बड़ी कृपा है। आपहीकी दयासे मैंने रामसहस्रनाम पा लिया। मैं कृतार्थ हो गया। श्रीशिवजीने कहा—इस तरह उस सहस्रनामको जानकर सनत्कुमारने गणेशजीकी परिक्रमा की, प्रणाम किया और तभीसे नित्य इसका जप करके पुण्यपापसे विवर्जित होकर वे परम सिद्धिको प्राप्त हुए। पार्वतीजी बोलीं–हे देवेश ! सब कामनाओंको पूर्ण करनेवाले रामसहस्रनामको मैं भी जानना चाहती हूँ। यदि आपकी मुझपर दया रहती हो तो मुझे बताइए। शिवजी कहने लगे–हे देवि ! मैं तुम्हें वह पुनीत सहस्रनाम बतलाता हूँ। तुम भी सावधान मन होकर उस गूढ़ातिगूढ़ स्तोत्रको सुनो ॥ २५–२९ ॥ इस रामसहस्रनाम मंत्रमय स्तोत्रके ऋषि विनायक हैं और साक्षात् परब्रह्म राम इसके देवता हैं ॥ ३० ॥ 'ॐ अस्य श्रीराम' इस मंत्रसे विनियोग करके 'श्रीरामचन्द्राय' कहकर अंगुष्ठ, 'सीतापतये' कहकर तर्जनी, 'रघुनाथाय' कहकर मध्यकी अँगुली, 'भरताग्रजाय' कहकर अनामिका, 'दशरथात्मजाय' कहकर कनिष्ठिका, 'हनुमत्प्रभवे' कहकर दोनों करपृष्ठोंका न्यास करे। फिर 'रामचन्द्राय' कहकर हृदय, 'सीतापतये' कहकर सिर, 'रघुनाथाय' कहकर शिखा, 'भरताग्रजाय' से दोनों बाहुमूल, 'दशरथात्मजाय'

अथ ध्यानम्

ध्यायेदाजानुबाहुं धृतशरधनुषं बद्धपद्मासनस्थं
पीतं वासो वसानं नवकमलस्पर्धि नेत्रं प्रसन्नम् ।
वामांकारूढसीतामुखकमलमिलल्लोचनं नीरदाभं
नानालंकारदीप्तं दधतमुरुजटामण्डलं रामचन्द्रम् ॥३१॥
वैदेहीसहितं सुरद्रुमतले हैमे महामण्डपे
मध्ये पुष्पमहासने मणिमये वीरासने संस्थितम् ।
अग्रे वाचयति प्रभंजनसुते तत्त्वं मुनिभ्यः परं
व्याख्यातं भरतादिभिः परिवृतं रामं भजेच्छ्यामलम् ॥३२॥

सौवर्णमंडपे दिव्ये पुष्पके सुविराजिते । मूले कल्पतरोः स्वर्णपीठे सिंहाष्टसंयुते ॥३३॥
मृदुश्लक्ष्णांतरे तत्र जानक्या सह संस्थितम् । रामं नीलोत्पलश्यामं द्विभुजं पीतवाससम् ॥३४॥
स्मितवक्त्रं सुखासीनं पद्मपत्रनिभेक्षणम् । किरीटहारकेयूरकुण्डलैः कटकादिभिः ॥३५॥
भ्राजमानं ज्ञानमुद्राधरं वीरासनस्थितम् । स्पृशन्तं स्तनयोरग्रे जानक्याः सव्यपाणिना ॥३६॥
वसिष्ठवामदेवाद्यैः सेवितं लक्ष्मणादिभिः । अयोध्यानगरे रम्ये ह्यभिषिक्तं रघूद्वहम् ॥३७॥
एवं ध्यात्वा जपेन्नित्यं रामनामसहस्रकम् । हत्याकोटियुतो वाऽपि मुच्यते नात्र संशयः ॥३८॥
ॐ रामः श्रीमान्महाविष्णुर्जिष्णुर्देवहितावहः । तत्त्वात्मा तारकं ब्रह्म शाश्वतः सर्वसिद्धिदः ॥३९॥
राजीवलोचनः श्रीमाँश्छ्रीरामो रघुपुंगवः । रामभद्रः सदाचारो राजेंद्रो जानकीपतिः ॥४०॥
अग्रगण्यो वरेण्यश्च वरदः परमेश्वरः । जनार्दनो जितामित्रः परार्थैकप्रयोजनः ॥४१॥

से दोनों नेत्र छुए तथा 'हनुमत्प्रभवे' कहकर चुटकी बजावे । अथ ध्यानम् । जिनका आजानु बाहु है, जो धनुष-बाण धारण किये हैं, पद्मासन मारकर बैठे हैं, पीले वस्त्र पहने हैं, नूतन कमलदलसे होड़ करनेवाली जिनकी दोनों आँखें हैं, जिनके वामांगमें सीताजी बैठी हैं, सीता तथा राम दोनों आपसमें एक दूसरेके मुखकी शोभा देखनेमें संलग्न हैं, नवीन मेघके सदृश जिनका मुख है, ऐसे विविध प्रकारके अलंकारोंसे अलंकृत तथा लम्बी-लम्बी जटा धारण करनेवाले रामचन्द्रका ध्यान करे ॥ ३१ ॥ कल्पवृक्षके नीचे सीताजीके साथ एक सुन्दर सुवर्णके मण्डपमें पुष्पनिर्मित महासन, जिसमें अनेक प्रकारकी मणियाँ जड़ी हैं, उसपर श्रीराम वीरासनसे बैठे हुए हैं। उनके सामने बैठे हनुमान्जी मुनियोंको परम तत्त्वकी व्याख्या सुना रहे हैं। भरतादि तीनों भ्राता जिनकी अगल-बगल खड़े हैं । ऐसे श्यामस्वरूप रामका भजन करे ॥ ३२ ॥ सुवर्णनिर्मित दिव्य पुष्पक विमान कल्पतरुके नीचे रक्खा है । जिसमें आठ सिंह लगे हैं। जो कोमल और चिकनी है, ऐसी गद्दीपर सीताके साथ बैठे हुए हैं, नीलकमल सरीखे जिनके नेत्र हैं, दो भुजाएँ हैं, पीत वस्त्र हैं, मुस्कुराता हुआ मुख है और वे आनन्दसे बैठे हैं। किरीट, हार, केयूर, कुण्डल और कटकादिसे वे सुशोभित हो रहे हैं। वे एक ओर ज्ञानमुद्रा धारण किये हैं । दूसरी तरफ दायें हाथसे सीताके स्तनोंको सहला रहे हैं॥ ३३-३६ ॥ वसिष्ठ, वामदेव तथा लक्ष्मणादिक जिनकी सेवामें तत्पर हैं। अयोध्या नगरीमें जिनका राज्याभिषेक हो चुका है। ऐसे रघूद्वह रामचन्द्रजीका ध्यान करके सर्वदा इस रामसहस्रनामका पाठ करना चाहिए। ऐसा करनेसे यदि किसीको करोड़ों हत्यायें भी लगी हों तो दूर हो जाती हैं। इसमें किसी प्रकारका संशय नहीं करना चाहिए ॥३७॥३८॥ ॥ ३८ ॥ अब सहस्रनाम कहते हैं--राम, श्रीमान्, महाविष्णु, जिष्णु (सबको जीतनेवाले), देवहितावह (देवताओंका कल्याण करनेवाले), तत्त्वात्मस्वरूप, तारकब्रह्म, शाश्वत, सर्वसिद्धिद (सब प्रकारकी सिद्धियों-को देनेवाले) ॥ ३९ ॥ कमल सरीखे नेत्रवाले, श्रीराम, रघुवंशमें श्रेष्ठ, रामभद्र, सदाचार (पुनीत आचारवाले) राजेंद्र, जानकीके पति ॥ ४० ॥ सबके अग्रेसर, वरेण्य (सर्वश्रेष्ठ), वरद (वरदायक)

विश्वामित्रप्रियो दाता शत्रुजिच्छत्रुतापनः । सर्वज्ञः सर्ववेदादिः शरण्यो वालिमर्दनः ॥४२॥
ज्ञानभव्योऽपरिच्छेद्यो वाग्मी सत्यव्रतः शुचिः । ज्ञानगम्यो दृढप्रज्ञः खरध्वंसी प्रतापवान् ॥४३॥
द्युतिमानात्मवान् वीरो जितक्रोधोऽरिमर्दनः । विश्वरूपो विशालाक्षः प्रभुः परिवृढो दृढः ॥४४॥
ईशः खड्गधरः श्रीमान् कौसल्येयोऽनसूयकः । विपुलांसो महोरस्कः परमेष्ठी परायणः ॥४५॥
सत्यव्रतः सत्यसंधो गुरुः परमधार्मिकः । लोकेशो लोकवंद्यश्च लोकात्मा लोककृद्विभुः ॥४६॥
अनादिर्भगवान् सेव्यो जितमायो रघूद्वहः । रामो दयाकरो दक्षः सर्वज्ञः सर्वपावनः ॥४७॥
ब्रह्मण्यो नीतिमान् गोप्ता सर्वदेवमयो हरिः । सुन्दरः पीतवासाश्च सूत्रकारः पुरातनः ॥४८॥
सौम्यो महर्षिः कोदण्डः सर्वज्ञः सर्वकोविदः । कविः सुग्रीववरदः सर्वपुण्याधिकप्रदः ॥४९॥
भव्यो जितारिषड्वर्गो महोदारोऽघनाशनः । सुकीर्तिरादिपुरुषः कांतः पुण्यकृतागमः ॥५०॥
अकल्मषश्चतुर्बाहुः सर्वावासो दुरासदः १०० । स्मितभाषी निवृत्तात्मा स्मृतिमान् वीर्यवान् प्रभुः ॥५१॥
धीरो दांतो घनश्यामः सर्वायुधविशारदः । अध्यात्मयोगनिलयः सुमना लक्ष्मणाग्रजः ॥५२॥
सर्वतीर्थमयः शूरः सर्वयज्ञफलप्रदः । यज्ञस्वरूपो यज्ञेशो जरामरणवर्जितः ॥५३॥

परमेश्वर, जनार्दन, जितामित्र (शत्रुओंको परास्त करनेवाले), परार्थैकप्रयोजन (परोपकार करना ही जिनका एकमात्र प्रयोजन है), विश्वामित्रके प्रिय, ज्ञाता, शत्रुओंको जीतनेवाले, शत्रुतापन (शत्रुको तपानेवाले), सर्वज्ञ, सर्ववेदादि (समस्त वेदोंके आदि कारण), शरण्य, वालिमर्दन (वालिको परास्त करनेवाले), ज्ञानभव्य, परिच्छेद्य, वाग्मी (कुशल वक्ता), सत्यव्रत, शुचि (पवित्र), ज्ञानगम्य (ज्ञानद्वारा जानने योग्य), दृढ़तम (स्थिर बुद्धिवाले), खरध्वंसी, प्रतापवान्, आत्मवान्, वीर, जितक्रोध (जिन्होंने क्रोधको जीत लिया है), अरिमर्दन (शत्रुको नीचा दिखानेवाले), विश्वस्वरूप (संसार ही जिनका स्वरूप है), विशालाक्ष (बड़ी-बड़ी आँखोंवाले), प्रभु (समस्त जगत्के ईश्वर) परिवृढ़ (सतर्क) ॥ ४१–४४ ॥ ईश (सब संसारके स्वामी), खड्गधर (तलवार धारण करनेवाले), श्रीमान्, कौसल्येय (कौसल्याके पुत्र), अनसूयक (किसीसे ईर्ष्या न करनेवाले), विपुलांस (जिनके खूब चौड़े कन्धे हैं), महोरस्क (जिनकी विशाल छाती है), परमेष्ठी (जो ब्रह्मास्वरूप हैं), सत्यव्रतपरायण (सत्यव्रती), सत्यसंघ (सत्यप्रतिज्ञ), गुरु (सर्वश्रेष्ठ), परम धार्मिक, लोकज्ञ (सब लोकोंके ज्ञाता), लोकवंद्य (सब लोकोंसे वन्दनीय), लोकात्मा (सब लोकोंके आत्मा), लोककृत (लोकोंके रचयिता), विभु (सर्वव्यापी) ॥ ४५ ॥ ४६ ॥ अनादि (जिनका आदि नहीं है), भगवान् (सर्वसम्पत्तिशाली), सेव्य (सेवा योग्य), जितमाय (मायाको जीतनेवाले), रघूद्वह (रघुवंशके उजागरकर्ता), राम, दयाकर (दयाके खानिस्वरूप), दक्ष (सब कार्योंमें निपुण), सर्वज्ञ, सर्वपावन (सबको पुनीत करनेवाले), ब्रह्मण्य (ब्राह्मणभक्त); नीतिमान्, गोप्ता (सर्वरक्षक), सर्वदेवमय, हरि, सुन्दर, पीतवासा (पीले वस्त्र धारण करनेवाले), पुरातन सूत्रकार (सर्वप्राचीन सूत्रकार अर्थात् सूत्ररूपमें ग्रंथोंके रचयिता), पुरातन (सबसे प्राचीन) ॥ ४७ ॥ ४८ ॥ सौम्य (जिनका सरल स्वभाव है), महर्षि, कोदण्ड (धनुर्धर), सर्वज्ञ, सर्वकोविद (सब विषयोंके पूर्ण पण्डित), कवि, सुग्रीववरद (सुग्रीवको अभयवर देनेवाले), सर्वपुण्याधिकप्रद (सब पुण्योंसे भी अधिक फल देनेवाले) ॥ ४९ ॥ भव्य, जितारिषड्वर्ग (जिन्होंने अपने बलसे शत्रुके मंत्र-उत्साहादि छः वर्गोंको जीत लिया है), महोदार (जो सबसे उदार हैं), अघनाशन (पापका नाश करनेवाले, सुकीर्ति (जिनकी सुन्दर कीर्ति है), आदिपुरुष (जो सबके आदि पुरुष हैं), कान्त (सर्वप्रिय), पुण्यकृतागम (पवित्रविचारसम्पन्न), अकल्मष (पापरहित), चतुर्बाहु (चतुर्भुज), सर्वावास (सबके निवासस्थान), दुरासद (बड़ी कठिनाईसे प्राप्य १००) स्मितभाषी (मुस्कुराते हुए बातें करनेवाले), निवृत्तात्मा (जिनकी आत्मा स्वतन्त्र है), जो स्मृतिमान्, वीर्यवान् और सबके प्रभु हैं। धीर, दान्त (उदारप्रकृति), घनश्याम (मेघकी नाईं श्यामस्वरूप), सर्वायुधविशारद (सब शस्त्रास्त्रोंमें निपुण), अध्यात्मयोगनिलय (अध्यात्मयोगके निवास), सुमना (सुन्दर चित्तवाले), लक्ष्मणाग्रज (लक्ष्मणके बड़े भ्राता), ॥ ५०–५२ ॥ तीर्थमय, शूर (असाधारण योद्धा), सर्वयज्ञफलप्रद (सब यज्ञोंके फलदाता) यज्ञस्वरूप

वर्णाश्रमगुरुर्वर्णी शत्रुजित्पुरुषोत्तमः । शिवलिंगप्रतिष्ठाता परमात्मा परात्परः ॥५४॥
प्रमाणभूतो दुर्ज्ञेयः पूर्णः परपुरंजयः । अनन्तदृष्टिरानन्दो धनुर्वेदो धनुर्धरः ॥५५॥
गुणाकरो गुणश्रेष्ठः सच्चिदानन्दविग्रहः । अभिवाद्यो महाकायो विश्वकर्मा विशारदः ॥५६॥
विनीतात्मा वीतरागस्तपस्वीशो जनेश्वरः । कल्याणः प्रह्वतिः कल्पः सर्वेशः सर्वकामदः ॥५७॥
अक्षयः पुरुषः साक्षी केशवः पुरुषोत्तमः । लोकाध्यक्षो महाकार्यो विभीषणवरप्रदः ॥५८॥
आनन्दविग्रहो ज्योतिर्हनुमत्प्रभुरव्ययः । भ्राजिष्णुः सहनो भोक्ता सत्यवादी बहुश्रुतः ॥५९॥
सुखदः कारणं कर्ता भवबन्धविमोचनः । देवचूडामणिर्नेता ब्रह्मण्यो ब्रह्मवर्धनः ॥६०॥
संसारतारको रामः सर्वदुःखविमोक्षकृत् । विद्वत्तमो विश्वकर्ता विश्वकृद्विश्वकर्म च ॥६१॥
नित्यो नियतकल्याणः सीताशोकविनाशकृत् । काकुत्स्थः पुण्डरीकाक्षो विश्वामित्रभयापहः ॥६२॥
मारीचमथनो रामो विराधवधपण्डितः । दुःस्वप्ननाशनो रम्यः किरीटी त्रिदशाधिपः ॥६३॥
महाधनुर्महाकायो भीमो भीमपराक्रमः । तत्त्वस्वरूपस्तत्त्वज्ञस्तत्त्ववादी सुविक्रमः ॥६४॥
भूतात्मा भूतकृत्स्वामी कालज्ञानी महावपुः । अनिर्विण्णो गुणग्रामो निष्कलंकः कलंकहा ॥६५॥
स्वभावभद्रः शत्रुघ्नः केशवः स्थाणुरीश्वरः । भूतादिः शंभुरादित्यः स्थविष्ठः शाश्वतो ध्रुवः ॥६६॥
कवची कुण्डली चक्री खड्गी भक्तजनप्रियः । अमृत्युर्जन्मरहितः सर्वजित्सर्वगोचरः ॥६७॥
अनुत्तमोऽप्रमेयात्मा सर्वात्मा गुणसागरः२०० । समः समात्मा समगो जटामुकुटमण्डितः ॥६८॥
अजेयः सर्वभूतात्मा विष्वक्सेनो महातपाः । लोकाध्यक्षो महाबाहुरमृतो वेदवित्तमः ॥६९॥

(यज्ञके मूर्त रूप), यज्ञेश (यज्ञोंके स्वामी), जरामरणवर्जित (बुढ़ापा और मृत्यु दोनोंसे रहित), वर्णाश्रमगुरु (वर्ण और आश्रमके गुरु), शत्रुजित् (शत्रुओंको जीतनेवाले) पुरुषोत्तम (सब पुरुषोंमें श्रेष्ठ), शिवलिंगप्रतिष्ठाता (विविध शिवलिंगोंके संस्थापक), परमात्मा, परात्पर, प्रमाणभूत (विश्वके प्रमाणस्वरूप), दुर्ज्ञेय (बड़ी कठिनाईसे जानने योग्य), पूर्ण, परपुरञ्जय (शत्रुनगरोंके विजेता), अनन्तदृष्टि (अपारदृष्टि), आनन्द, धनुर्वेदके ज्ञाता, धनुर्धारी, गुणाकर (गुणोंके भण्डार), गुणश्रेष्ठ (सब गुणोंमें श्रेष्ठ), सच्चिदानन्दविग्रह (सत् चित् आनन्द इन तीनोंसे जिनका शरीर बना है), अभिवाद्य (सबके वन्दनीय), महाकाय, विश्वकर्मा, विशारद ॥ ५३–५६ ॥ विनीत आत्मावाले, वीतराग (रागद्वेषशून्य), तपस्वीश (तपस्वियोंके स्वामी), जनेश्वर, कल्याण (कल्याणस्वरूप), प्रह्वति (सदा प्रसन्न), कल्प (स्थिति तथा प्रलयकालके अधिपति), सर्वेश, सर्वकामद, अक्षय, पुरुष, साक्षी, केशव, पुरुषोत्तम, लोकाध्यक्ष, महाकार्य, विभीषणवरप्रद ॥ ५७ ॥ ५८ ॥ आनन्दविग्रह (आनन्दके मूर्त रूप), ज्योतिस्वरूप, हनुमान्के स्वामी, अविनाशी, भ्राजिष्णु (दीप्तिसम्पन्न), सहनशील, भोक्ता, सत्यवादी बहुश्रुत ॥ ५९ ॥ सुखदायी, कारणस्वरूप, कर्त्ता, भवबन्धनसे छुड़ानेवाले, देवताओंके मूर्धन्य, ब्राह्मणभक्त, ब्राह्मणोंके उन्नायक ॥ ६० ॥ संसारसागरसे तारनेवाले, सब दुःखोंसे छुड़ानेवाले, अतिशय विद्वान्, विश्वरचयिता, विश्वकर्त्ता, विश्वके कर्तव्य कर्मस्वरूप ॥ ६१ ॥ नित्य, कल्याणतत्पर, सीताशोकनाशक, काकुत्स्थ, कमलनयन, विश्वामित्रभयहारी ॥ ६२ ॥ मारीचघाती, राम, विराधवधमें निपुण, दुःखस्वप्ननिवारक, रमणीक, किरीटधारी, देवाधिपति ॥ ६३ ॥ विशाल धनुष धारण करनेवाले, विशालकाय, भयानक, भयानक पराक्रम-सम्पन्न, तत्त्वोंके मूर्तरूप, तत्त्वोंके ज्ञाता, तत्त्वविषयके वक्ता, असाधारण पराक्रमी ॥ ६४ ॥ प्राणिमात्रके स्रष्टा, सबके स्वामी, समयके पारखी, विशालशरीरधारी, सदा प्रसन्न, गुणधाम, निष्कलंक, कलंकनाशक ॥ ६५ ॥ स्वभावतः कल्याणकारी, शत्रुनाशक, केशव, चिरस्थायी, ईश्वर, प्राणियोंके आदि, शम्भु, अदिति-तनय, स्थायी, नित्य, अटल ॥ ६६ ॥ कवचधारी, कुण्डलधारी, चक्रधारी, खड्गधारी, भक्तजनोंके प्रिय, अमर, अजन्मा, सबके विजेता, सर्वदर्शी ॥ ६७ ॥ सर्वोत्तम, अप्रमेयात्मा, सर्वात्मा, गुणसागर २०० । सदा सम, प्रकृति, समात्मा, समगामी, जटामुकुटविमण्डित ॥ ६८ ॥ अजेय, सर्वभूतात्मा, विष्वक्सेन, महातपा,

सहिष्णुः सद्गतिः शास्ता विश्वयोनिर्महाद्युतिः । अतींद्र ऊर्जितः प्रांशुरुपेंद्रो वामनो बलिः ॥७०॥
धनुर्वेदो विधाता च ब्रह्मा विष्णुश्च शंकरः । हंसो मरीचिर्गोविंदो रत्नगर्भो महद्द्युतिः ॥७१॥
व्यासो वाचस्पतिः सर्वदर्पितासुरमर्दनः । जानकीवल्लभः श्रीमान् प्रकटः प्रीतिवर्द्धनः ॥७२॥
सम्भवोऽतींद्रियो वेद्यो निर्देशो जाम्बवत्प्रभुः । मदनो मन्मथो व्यापी विश्वरूपो निरंजनः ॥७३॥
नारायणोऽग्रणी साधुर्जटायुप्रीतिवर्द्धनः । नैकरूपो जगन्नाथः सुरकार्यहितः प्रभुः ॥७४॥
जितक्रोधो जितारातिः प्लवगाधिपराज्यदः । वसुदः सुभुजो नैकमायो भव्यः प्रमोदनः ॥७५॥
चण्डांशुः सिद्धिदः कल्पः शरणागतवत्सलः । अगदो रोगहर्ता च मन्त्रज्ञो मन्त्रभावनः ॥७६॥
सौमित्रिवत्सलो धुर्यो व्यक्ताव्यक्तस्वरूपधृक् । वसिष्ठो ग्रामणीः श्रीमाननुकूलः प्रियंवदः ॥७७॥
अतुलः सात्त्विको धीरः शरासनविशारदः । ज्येष्ठः सर्वगुणोपेतः शक्तिमांस्ताटकांतकः ॥७८॥
वैकुण्ठः प्राणिनां प्राणः कमलः कमलाधिपः । गोवर्धनधरो मत्स्यरूपः कारुण्यसागरः ॥७९॥
कुम्भकर्णप्रभेत्ता च गोपिगोपालसंवृतः ३०० । मायावी व्यापको व्यापी रैणुकेयबलापहः ॥८०॥
पिनाकमथनो वंद्यः समर्थो गरुडध्वजः । लोकत्रयाश्रयो लोकभरितो भरताग्रजः ॥८१॥
श्रीधरः संगतिर्लोकसाक्षी नारायणो विभुः । मनोरूपी मनोवेगी पूर्णः पुरुषपुंगवः ॥८२॥
यदुश्रेष्ठो यदुपतिर्भूतावासः सुविक्रमः । तेजोधरो धराधरश्चतुर्मूर्तिर्महानिधिः ॥८३॥
चाणूरमथनो वंद्यः शांतो भरतवंदितः । शब्दातिगो गभीरात्मा कोमलांगः प्रजागरः ॥८४॥
लोकोर्ध्वगः शेषशायी क्षीराब्धिनिलयोऽमलः । आत्मज्योतिरदीनात्मा सहस्रार्चिः सहस्रपात् ॥८५॥
अमृतांशुर्महीगर्तो निवृत्तविषयस्पृहः । त्रिकालज्ञो मुनिः साक्षी विहायसगतिः कृती ॥८६॥
पर्जन्यः कुमुदो भूतावासः कमललोचनः । श्रीवत्सवक्षाः श्रीवासो वीरहा लक्ष्मणाग्रजः ॥८७॥
लोकाभिरामो लोकारिमर्दनः सेवकप्रियः । सनातनतमो मेघश्यामलो राक्षसांतकः ॥८८॥

लोकोंके स्वामी, महाबाहु, अमृत, वेदज्ञोंमें श्रेष्ठ ॥ ६९ ॥ सहिष्णु, सद्गति, शासक, विश्वयोनि, परमकान्तिसम्पन्न, अतीन्द्र (इन्द्रसे श्रेष्ठ), तेजःसम्पन्न, सर्वोच्च, उपेन्द्र, वामन, बलि, ॥ ७० ॥ धनुर्वेदविधाता, ब्रह्मा, विष्णु, शंकर, हंस, मरीचि, गोविन्द, रत्नगर्भ, महातेजस्वी ॥ ७१ ॥ व्यास, बृहस्पति, सभी अभिमानी असुरोंके घातक, जानकीवल्लभ, श्रीमान्, प्रकट, प्रीतिवर्धन ॥ ७२ ॥ संभव, अतीन्द्रिय, वेद्य, निर्देश, जाम्बवान्के स्वामी, मदन, मन्मथ, सर्वव्यापी, विश्वरूप, निरञ्जन ॥ ७३ ॥ नारायण, अग्रणी, साधु, जटायुके प्रीतिवर्धक, अनेकरूप, जगन्नाथ, देवकार्यसाधक, प्रभु ॥ ७४ ॥ जितक्रोध, शत्रुविजेता, सुग्रीवराज्यदायक, वसुदाता, बृहुभुज, विविधमायाधारी, भव्य, प्रमोदन ॥ ७५ ॥ चण्डांशु, सिद्धिदायक, कल्प, शरणागतवत्सल, अगद, रोगहर्ता, मन्त्रज्ञ, मंत्रभावन ॥ ७६ ॥ लक्ष्मणप्रिय, धुर्य, व्यक्त-अव्यक्तरूपधारी, वसिष्ठ, ग्रामीण, श्रीमान्, अनुकुल, प्रियवादी ॥ ७७ ॥ अतुलनीय, सात्त्विक, धीर, धनुर्विद्यामें निपुण, श्रेष्ठ, सर्वगुणसम्पन्न, शक्तिमान्, ताड़काके घातक ॥ ७८ ॥ वैकुण्ठ, प्राणियोंके प्राण, कर्मठ, कमलापति, गोवर्धनधारी, मत्स्यरूपधारी, करुणासागर ॥ ७९ ॥ कुम्भकर्णके नाशक, गोपीगोपालसंवृत ३००, मायावी, व्यापक, व्यापी, रेणुकेय (परशुरामके बलनाशक) ॥ ८० ॥ धनुषभंजक, वंद्य, समर्थ, गरुडध्वज, तीनों लोकोंके आश्रय, लोकभरित, भरतके बड़े भ्राता ॥ ८१ ॥ श्रीधर, सङ्गति, लोकसाक्षी, नारायण, विभु, मनोरूपी, मनोवेगी, पूर्ण, पुरुष-पुंगव ॥ ८२ ॥ यदुश्रेष्ठ, यदुपति, भूतावास, सुविक्रम, तेजोधर, धरावर, चतुर्मूर्ति, महानिधि ॥ ८३ ॥ चाणूरमथन, वंद्य, शान्त, भरतवन्दित, शब्दलिंग, गभीरात्मा, कोमलांग, प्रजागर ॥ ८४ ॥ लोकोर्ध्वगामी, शेषशायी, क्षीराब्धिनिलय, अमल, आत्मज्योति, अदीनात्मा, सहस्रार्चि, सहस्रचरण ॥ ८५ ॥ अमृतांशु, महीगर्त, विषयकी स्पृहासे रहित, त्रिलोकज्ञ, मुनि, साक्षी, विहायसगति, कृती ॥ ८६ ॥ पर्जन्य, कुमुद, भूतावास, कमललोचन, श्रीवत्सवक्षा, श्रीवास, वीरहा, लक्ष्मणाग्रज ॥ ८७ ॥ लोकाभिराम, लोका-

दिव्यायुधधरः श्रीमानप्रमेयो जितेंद्रियः । भूदेववंद्यो जनकप्रियकृत्प्रपितामहः ॥८९॥
उत्तमः सात्त्विकः सत्यः सत्यसन्धस्त्रिविक्रमः । सुवृत्तः सुगमः सूक्ष्मः सुघोषः सुखदः सुहृद् ॥९०॥
दामोदरोऽच्युतः शार्ङ्गी वामनो मथुराधिपः । देवकीनन्दनः शौरि शूरः कैटभमर्दनः ॥९१॥
सप्ततालप्रभेत्ता च मित्रवंशप्रवर्धनः । कालस्वरूपी कालात्मा कालः कल्याणदः ४०० कलिः ॥९२॥
संवत्सरो ऋतुः पक्षो ह्ययनं दिवसो युगः । स्तव्यो विविक्तो निर्लेपः सर्वव्यापी निराकुलः ॥९३॥
अनादिनिधनः सर्वलोकपूज्यो निरामयः । रसो रसज्ञः सारज्ञो लोकसारो रसात्मकः ॥९४॥
सर्वदुःखातिगो विद्याराशिः परमगोचरः । शेषो विशेषो विगतकल्मषो रघुपुङ्गवः ॥९५॥
वर्णश्रेष्ठो वर्णभाव्यो वर्णो वर्णगुणोज्ज्वलः । कर्मसाक्षी गुणश्रेष्ठो देवः सुरवरप्रदः ॥९६॥
देवाधिदेवो देवर्षिर्देवासुरनमस्कृतः । सर्वदेवमयश्चक्री शार्ङ्गपाणी रघूत्तमः ॥९७॥
मनोबुद्धिरहंकारः प्रकृतिः पुरुषोऽव्ययः । न्यायो न्यायी नयी श्रीमान् नयो नगधरो ध्रुवः॥९८॥
लक्ष्मीविश्वम्भरो भर्ता देवेंद्रो बलिमर्दनः । बाणारिमर्दनो यज्वानुत्तमो मुनिसेवितः ॥९९॥
देवाग्रणीः शिवध्यानतत्परः परमः परः । सामगेयः प्रियः शूरः पूर्णकीर्तिः सुलोचनः ॥१००॥
अव्यक्तलक्षणो व्यक्तो दशास्यद्विपकेसरी । कलानिधिः कलानाथः कमलानन्दवर्द्धनः ॥१०१॥
पुण्यः पुण्याधिकः पूर्णः पूर्वः पूरयिता रविः । जटिलः कल्मषध्वांतप्रभंजनविभावसुः ॥१०२॥
जयी जितारिः सर्वादिः शमनो भवभंजनः । अलकरिष्णुरचलो रोचिष्णुर्विक्रमोत्तमः ॥१०३॥
आशुः शब्दपतिः शब्दागोचरो रंजनो लघुः । निःशब्दपुरुषो मायी स्थूलः सूक्ष्मो ५०० विलक्षणः ॥
आत्मयोनिरयोनिश्च सप्तजिह्वः सहस्रपात् । सनातनतमः स्रग्वी पेशलो विजितांबरः ॥१०५॥
शक्तिमान् शखभृन्नाथो गदाधररथांगभृत् । निरीहो निर्विकल्पश्च चिद्रूपो वीतसाध्वसः ॥१०६॥
सनातनः सहस्राक्षः शतमूर्तिर्घनप्रभः । हृत्पुंडरीकशयनः कठिनो द्रव एव च ॥१०७॥
सूर्यो ग्रहपतिः श्रीमान् समर्थोऽनर्थनाशनः । अधर्मशत्रु रक्षोघ्नः पुरुहूतः पुरस्तुतः ॥१०८॥

रिमर्दन, सेवकप्रिय, सनातनतम, मेघश्यामल, राक्षसान्तक ॥ ८८ ॥ दिव्यायुधधर, श्रीमान्, अप्रमेय, जितेन्द्रिय, विप्रवंद्य, पिताके प्रियकर्ता, प्रपितामह ॥ ८९ ॥ उत्तम, सात्त्विक, सत्य, सत्यसन्ध, त्रिविक्रम, सुवृत्त, सुगम, सूक्ष्म, सुघोष, सुखद, सुहृत् ॥ ९० ॥ दामोदर, अच्युत, शार्ङ्गी, वामन, मथुराधिपति, देवकीनन्दन, वासुदेव, शूर, कैटभमर्दन ॥ ९१ ॥ सप्ततालप्रभेत्ता, मित्रवंशवर्धन, कालस्वरूपी, कालात्मा, काल, कल्याणद ४०० कलि, ॥ ९२ ॥ संवत्सर, ऋतु, पक्ष, अयन, युग, स्तव्य, विविक्त, निर्लेप, सर्वव्यापी, निराकुल ॥ ९३ ॥ अनादिनिधन, सर्वलोकपूज्य, निरामय, रस, रसज्ञ, सारज्ञ, लोकसार, रसात्मक ॥ ९४ ॥ सर्वदुःखातिग, विद्याराशि, परमगोचर, शेष, विशेष, विगतकल्मष, रघुपुङ्गव, ॥ ९५ ॥ वर्णश्रेष्ठ, वर्णभाव्य, वर्ण, वर्णगुणोज्ज्वल, कर्मसाक्षी, गुणश्रेष्ठ, देव, सुखप्रद ॥ ९६ ॥ देवाधिदेव, देवर्षि, देवासुरनमस्कृत, सर्वदेवमय, चक्री, शार्ङ्गपाणि, रघूत्तम, ॥ ९७ ॥ मन-बुद्धि-अहंकार, प्रकृति, पुरुष, अव्यय, न्याय, न्यायी, नयी, श्रीमान्, नय, नगधर, ध्रुव, ॥ ९८ ॥ लक्ष्मी-विश्वम्भर, भर्ता, देवेन्द्र, बलिमर्दन, बाणारिमर्दन, यज्वा, उत्तम, मुनिसेवित ॥ ९९ ॥ देवाग्रणी, शिवध्यानतत्पर, परम, पर, सामगेय, प्रिय, शूर, पूर्णकीर्ति, सुलोचन ॥ १०० ॥ अव्यक्तलक्षण, व्यक्त, दशास्यद्विपकेसरी, कलानिधि, कलानाथ, कमलानन्दवर्धन ॥ १०१ ॥ पुण्याधिक, पूर्ण, पूरयिता, रवि, जटिल, कल्मषोंको ध्वस्त करनेवाले, अग्नि ॥ १०२ ॥ जयी, जितारि, सर्वादि, शमन, भवभञ्जन, अलंकरिष्णु, अचल, रोचिष्णु, विक्रमोत्तम ॥ १०३ ॥ आशु, शब्दपति, शब्दागोचर, रंजन, लघु, निःशब्द, पुरुष, मायी, स्थूल, सूक्ष्म ५००, विलक्षण ॥१०४॥ आत्मयोनि, अयोनि, सप्तजिह्व, सहस्रपात्, सनातनतम, स्रग्वी, पेशल, विजिताम्बर ॥ १०५ ॥ शक्तिमान्, शंखभृत्, नाथ, गदाधर, रथांगभृत्, निरीह, निर्विकल्प, चिद्रूप, वीतसाध्वस ॥ १०६ ॥ सनातन,

ब्रह्मगर्भो बृहद्गर्भो धर्मधेनुर्धनागमः । हिरण्यगर्भो ज्योतिष्मान् सुललाटः सुविक्रमः॥१०९॥
शिवपूजारतः श्रीमान् भवानीप्रियकृद्वशी । नरो नारायणः श्यामः कपर्दी नीललोहितः ॥११०॥
रुद्रः पशुपतिः स्थाणुर्विश्वामित्रो द्विजेश्वरः । मातामहो मातरिश्वा विरिंचिर्विष्टरश्रवाः ॥१११॥
अक्षोभ्यः सर्वभूतानां चण्डः सत्यपराक्रमः । बालखिल्यो महाकल्पः कल्पवृक्षः कलाधरः ॥११२॥
निदाघस्तपनो मेघः शुक्रः परबलापहृत् । वसुश्रवाः कव्यवाहः प्रतप्तो विश्वभोजनः ॥११३॥
रामो नीलोत्पलश्यामो ज्ञानस्कंदो महाद्युतिः । कबन्धमथनो दिव्यः कम्बुग्रीवः शिवप्रियः । ११४॥
सुखी नीलः सुनिष्पन्नः सुलभः शिशिरात्मकः । असंसृष्टोऽतिथिः शूरः प्रमाथी पापनाशकृत् ॥११५॥
पवित्रपादः पापारिर्मणिपूरो नभोगतिः । उत्तारणो दुष्कृतिहा दुर्धर्षो दुःसहो बलः६००॥११६॥
अमृतेशोऽमृतवपुर्धर्मी धर्मः कृपाकरः । भगो विवस्वानादित्यो योगाचार्यो दिवस्पतिः॥११७॥
उदारकीर्तिरुद्योगी वाङ्मयः सदसन्मयः । नक्षत्रमानी नाकेशः स्वाधिष्ठानः षडाश्रयः ॥११८॥
चतुर्वर्गफलं वर्णशक्तित्रयफलं निधिः । निधानगर्भो निर्व्याजो निरीशो व्यालमर्दनः ॥११९॥
श्रीवल्लभः शिवारम्भः शांतो भद्रः समंजसः । भूशायी भूतकृद्भूतिर्भूषणो भूतवाहनः ॥१२०॥
अकायो भक्तकायस्थः कालज्ञानी महापटुः । परार्धवृत्तिरचलो विविक्तः श्रुतिसागरः ॥१२१॥
स्वभावभद्रो मध्यस्थः संसारभयनाशनः । वेद्यो वैद्यो वियद्गोप्ता सर्वामरमुनीश्वरः ॥१२२॥
सुरेन्द्रः कारणं कर्मकरः कर्मी ह्यधोक्षजः । धैर्योऽग्रधुर्यो धात्रीशः संकल्पः शर्वरीपतिः ॥१२३॥
परमार्थगुरुर्दृष्टिः सुचिराश्रितवत्सलः । विष्णुर्जिष्णुर्विभुर्यज्ञो यज्ञेशो यज्ञपालकः ॥१२४॥
प्रभुविष्णुर्ग्रसिष्णुश्च लोकात्मा लोकपालकः । केशवः केशिहा काव्यः कविः कारणकारणम् ।१२५॥
कालकर्ता कालशेषो वासुदेवः पुरुष्टुतः । आदिकर्ता वराहश्च वामनो मधुसूदनः ॥१२६॥
नारायणो नरो हंसो विष्वक्सेनो जनार्दनः । विश्वकर्ता महायज्ञो ज्योतिष्मान्पुरुषोत्तमः७००॥१२७

सहस्राक्ष, शतमूर्ति, धनप्रद, हृत्पुण्डरीकशयन, कठिन, द्रव ॥ १०७ ॥ सूर्य, ग्रहपति, श्रीमान्, समर्थ, अनर्थनाशन, अधर्मशत्रु, रक्षोघ्न, पुरुहूत, पुरुष्टुत, ॥ १०८ ॥ ब्रह्मगर्भ, बृहद्गर्भ, धर्मधेनु, धनागम, हिरण्यगर्भ, ज्योतिष्मान्, सुललाट, सुविक्रम ॥ १०९ ॥ शिवपूजारत, श्रीमान्, भवानीप्रियकृत्, वशी, नर, नारायण, श्याम, कपर्दी, नीललोहित, ॥ ११० ॥ रुद्र, पशुपति, स्थाणु, विश्वामित्र, द्विजेश्वर, मातामह, मातरिश्वा, विरिञ्च, विष्टरश्रवा ॥ १११ ॥ अक्षोभ्य, चण्ड, सत्यपराक्रम, बालखिल्य, महाकल्प, कल्पवृक्ष, कलाधर ॥ ११२ ॥ निदाघ, तपन, मेघ, शुक्र, परबलापहारी, वसुश्रवा, हव्यवाह, प्रतप्त, विश्वभोजन ॥ ११३ ॥ राम, नीलोत्पलश्याम, ज्ञानस्कन्द, महाद्युति, कबन्धमथन, दिव्य, कम्बुग्रीव, शिवप्रिय, ॥ ११४ ॥ सुखी, नील, सुनिष्पन्न, सुलभ, शिशिरात्मक, असंसृष्ट, अतिथि, शूर, प्रमाणी, पापनाशकारी ॥ ११५ ॥ पवित्रपाद, पापारि, मणिपूर, नभोगति, उत्तारण, दुर्धर्ष, दुःसह, बल ६०० ॥ ११६ ॥ अमृतेश, अमृतवपु, धर्मी, कृपाकर, भग, विवस्वान्, आदित्य, योगाचार्य, दिवस्पति ॥ ११७ ॥ उदारकीर्ति, उद्योगी, वाङ्मय, सदसन्मय, नक्षत्रमानी, नाकेश, स्वाधिष्ठान, षडाश्रय ॥ ११८ ॥ चतुर्वर्गफल, वर्णशक्तित्रयफल, निधि, निधानगर्भ, निर्व्याज, निरीश, व्यालमर्दन ॥ ११९ ॥ श्रीवल्लभ, शिवारम्भ, शान्त, भद्र, समंजस, भूशायी, भूति, भूतवाहन ॥ १२० ॥ अव्यय, भक्तकायस्थ, कालज्ञानी, महापटु, परार्धवृत्ति, अचल, विविक्त, श्रुतिसागर ॥ १२१ ॥ स्वभावभद्र, मध्यस्थ, संसारभयनाशन, वेद्य, वैद्य, वियद्गोप्ता, सर्वामरमुनीश्वर ॥ १२२ ॥ सुरेन्द्र, कारण, कर्मकर, कर्मी, अधोक्षज, धैर्य, उग्रधुर्य, धात्रीश, संकल्प, शर्वरीपति ॥ १२३ ॥ परमार्थगुरु, दृष्टि, सुचिराश्रितवत्सल, विष्णु, जिष्णु, विभु, यज्ञ, यज्ञेश, यज्ञपालक ॥ १२४ ॥ प्रभु, विष्णु, ग्रसिष्णु, लोकात्मा, लोकपालक, केशव, केशिहा, काव्य, कवि, कारणकारण ॥ १२५ ॥ कालकर्ता, कालशेष, वासुदेव, पुरुष्टुत, आदिकर्ता, वराह, वामन, मधुसूदन ॥ १२६ ॥ नारायण, नर, हंस, विष्वक्सेन, जनार्दन, विश्वकर्ता, महायज्ञ, ज्योतिष्मान्,

वैकुण्ठः पुण्डरीकाक्षः कृष्णः सूर्यः सुरार्चितः । नारसिंहो महाभीमो वज्रदंष्ट्रो नखायुधः ॥१२८॥
आदिदेवो जगत्कर्ता योगीशो गरुडध्वजः । गोविन्दो गोपतिर्गोप्ता भूपतिर्भुवनेश्वरः ॥१२९॥
पद्मनाभो हृषीकेशो धाता दामोदरः प्रभुः । त्रिविक्रमस्त्रिलोकेशो ब्रह्मेशः प्रीतिवर्धनः ॥१३०॥
संन्यासी शास्त्रतत्त्वज्ञो मन्दिरो गिरिशो नतः । वामनो दुष्टदमनो गोविन्दो गोपवल्लभः ॥१३१॥
भक्तप्रियोऽच्युतः सत्यः सत्यकीर्तिर्धृतिः स्मृतिः। कारुण्यः करुणो व्यासः पापहा शांतिवर्द्धनः १३२॥
बदरीनिलयः शान्तस्तपस्वी वैद्युतः प्रभुः । भूतावासो महावासा श्रीनिवासः श्रियः पतिः॥१३३॥
तपोवासो मुदावासः सत्यवासः सनातनः । पुरुषः पुष्करः पुण्यः पुष्कराक्षो महेश्वरः ॥१३४॥
पूर्णमूर्तिः पुराणज्ञः पुण्यदः प्रीतिवर्धनः । पूर्णरूपः कालचक्रप्रवर्तनसमाहितः ॥१३५॥
नारायणः परं ज्योतिः परमात्मा सदाशिवः । शंखी चक्री गदी शार्ङ्गी लांगूली मुसली हली ॥१३६॥
किरीटी कुंडली हारी मेखली कवची ध्वजी । योधा जेता महावीर्यः शत्रुघ्नः शत्रुतापनः ॥१३७॥
शास्ता शास्त्रकरः शास्त्रं शंकरः शंकरस्तुतः । सारथी सात्त्विकः स्वामी सामवेदप्रियः समः ८००॥
पवनः संहितः शक्तिः सम्पूर्णाङ्गः समृद्धिमान् । स्वर्गदः कामदः श्रीदः कीर्तिदः कीर्तिदायकः ॥१३९॥
मोक्षदः पुण्डरीकाक्षः क्षीराब्धिकृतकेतनः । सर्वात्मा सर्वलोकेशः प्रेरकः पापनाशनः ॥१४०॥
वैकुंठः पुण्डरीकाक्षः सर्वदेवनमस्कृतः । सर्वव्यापी जगन्नाथः सर्वलोकमहेश्वरः ॥१४१॥
सर्गस्थित्यन्तकृद्देवः सर्वलोकसुखावहः । अक्षयः शाश्वतोऽनन्तः क्षयवृद्धिविवर्जितः ॥१४२॥
निर्लेपो निर्गुणः सूक्ष्मो निर्विकारो निरंजनः । सर्वोपाधिविनिर्मुक्तः सत्तामात्रव्यवस्थितः ॥१४३॥
अविकारी विभुर्नित्यः परमात्मा सनातनः । अचलो निश्चलो व्यापी नित्यतृप्तो निराश्रयः॥१४४॥
श्यामी युवा लोहिताक्षो दीप्त्या शोभितभाषणः । आजानुबाहुः सुमुखः सिंहस्कन्धो महाभुजः ॥१४५॥
सत्त्ववान् गुणसंपन्नो दीप्यमानः स्वतेजसा । कालात्मा भगवान् कालः कालचक्रप्रवर्तकः ॥१४६॥

पुरुषोत्तम ७०० ॥ १२७ ॥ वैकुण्ठ, पुण्डरीकाक्ष, कृष्ण, सूर्य, सुरार्चित, नारसिंह, महाभीम, वज्रदंष्ट्र, नखायुध ॥ १२८ ॥ आदिदेव, जगत्कर्ता, योगीश, गरुडध्वज, गोविन्द, गोपति, गोप्ता, भूपति, भुवनेश्वर ॥ १२९ ॥ पद्मनाभ, हृषीकेश, धाता, दामोदर, प्रभु, त्रिविक्रम, त्रिलोकेश, ब्रह्मेश, प्रीतिवर्धन ॥ १३० ॥ संन्यासी, शास्त्रतत्त्वज्ञ, मन्दर, गिरीश, नत, वामन, दुष्टदमन, गोविन्द, गोपवल्लभ, ॥ १३१॥ भक्तिप्रिय, अच्युत, सत्य, सत्यकीर्ति, धृति, स्मृति, कारुण्य, करुण, व्यास, पापहा, शान्तिवर्द्धन ॥ १३२ ॥ बदरीनिलय, शान्ति, तपस्वी, वैद्युत, प्रभु, भूतावास, महावास, श्रीनिवास, श्रीपति ॥ १३३ ॥ तपोवास, मुदावास, सत्यवास, सनातन, पुष्कर, पुण्य, पुष्कराक्ष, महेश्वर ॥ १३४ ॥ पूर्णमूर्ति, पुराणज्ञ, पुण्यज्ञ, प्रीतिवर्द्धन, पूर्णरूप, कालचक्रप्रवर्तन, समाहित ॥ १३५ ॥ नारायण, परंज्योति, परमात्मा, सदाशिव, शंखी, चक्री, गदी, शार्ङ्गी, लांगूली, मुसली, हली ॥ १३६ ॥ किरीटी, कुण्डली, हारी, मेखली, कवची, ध्वजी, योधा, जेता, महावीर्य, शत्रुघ्न, शत्रुतापन ॥ १३७ ॥ शास्ता, शास्त्रकर, शास्त्र, शंकर, शंकरस्तुत, सारथी, सात्त्विक, स्वामी, सामवेदप्रिय, सम ८०० ॥ १३८ ॥ पवन, संहृति, शक्ति, सम्पूर्णाङ्ग, समृद्धिमान्, स्वर्गद, कामद, श्रीद, कीर्तिद, कीर्तिदायक ॥ १३९ ॥ मोक्षद, पुण्डरीकाक्ष, क्षीराब्धिकृतकेतन, सर्वात्मा, सर्वलोकेश, प्रेरक, पापनाशन ॥ १४० ॥ वैकुण्ठ, पुण्डरीकाक्ष, सर्वदेवनमस्कृत, सर्वव्यापी, जगन्नाथ, सर्वलोकमहेश्वर ॥ १४१ ॥ सर्ग-स्थितिअन्तकृत्, देव, सर्वलोकसुखावह, अक्षय, शाश्वत, अनन्त क्षयवृद्धिविवर्जित ॥ १४३ ॥ निर्लेप, निर्गुण, सूक्ष्म, निर्विकार, निरञ्जन, सर्वोपाधिविनिर्मुक्त, सत्तामात्रव्यवस्थित ॥ १४३ ॥ अविकारी, विभु, नित्य, परमात्मा, सनातन, अचल, निश्चल, व्यापी, नित्यतृप्त, निराश्रय ॥ १४४ ॥ श्याम, युवा, लोहिताक्ष, शोभितभाषण, आजानुबाहु, सुमुख, सिंहस्कन्ध, महाभुज ॥ १४५ ॥ सत्त्ववान्, गुणसम्पन्न, अपने तेजसे दीप्यमान, कालात्मा, भगवान्, काल,

नारायणः परं ज्योतिः परमात्मा सनातनः । विश्वकृद्विश्वभोक्ता च विश्वगोप्ता च शाश्वतः ॥ ४७॥
विश्वेश्वरो विश्वमूर्तिर्विश्वात्मा विश्वभावनः । सर्वभूतसुहृच्छांतः सर्वभूतानुकंपनः ॥१४८॥
सर्वेश्वरः सर्वशर्वः सर्वदाऽऽश्रितवत्सलः । सर्वगः सर्वभूतेशः सर्वभूताशयस्थितः ॥१४९॥
अभ्यंतरस्थस्तमसश्छेत्ता नारायणः परः । अनादिनिधनः स्रष्टा प्रजापतिपतिर्हरिः ॥१५०॥
नरसिंहो हृषीकेशः सर्वात्मा सर्वदृग्वशी । जगतस्तस्थुषश्चैव प्रभुर्नेता सनातनः ९०० ॥१५१॥
कर्ता धाता विधाता च सर्वेषां पतिरीश्वरः । सहस्रमूर्धा विश्वात्मा विष्णुर्विश्वदृगव्ययः ॥१५२॥
पुराणपुरुषः श्रेष्ठः सहस्राक्षः सहस्रपात् । तत्त्वं नारायणो विष्णुर्वासुदेवः सनातनः ॥१५३॥
परमात्मा परं ब्रह्म सच्चिदानंदविग्रहः । परं ज्योतिः परं धाम पराकाशः परात्परः ॥१५४॥
अच्युतः पुरुषः कृष्णः शाश्वतः शिव ईश्वरः । नित्यः सर्वगतः स्थाणू रुद्रः साक्षी प्रजापतिः ॥१५५॥
हिरण्यगर्भः सविता लोककृल्लोकभृद्विभुः ॐकारवाच्यो भगवान् श्रीभूलीलापतिः प्रभुः ॥१५६॥
सर्वलोकेश्वरः श्रीमान् सर्वज्ञः सर्वतोमुखः । स्वामी सुशीलः सुलभः सर्वगः सर्वशक्तिमान् ॥१५७॥
नित्यः संपूर्णकामश्च नैसर्गिकसुहृत्सुखी । कृपापीयूषजलधिः शरण्यः सर्वशक्तिमान् ॥१५८॥
श्रीमान्नारायणः स्वामी जगतां प्रभुरीश्वरः । मत्स्यः कूर्मो वराहश्च नारसिंहोऽथ वामनः ॥१५९॥
रामो रामश्च कृष्णश्च बौद्धः कल्की परात्परः । अयोध्येशो नृपश्रेष्ठः कुशबालः परंतपः ॥१६०॥
लवबालः कंजनेत्रः कंजांघ्रिः पंकजाननः । सीताकांतः सौम्यरूपः शिशुजीवनतत्परः ॥१६१॥
सेतुकृच्चित्रकूटस्थः शबरीसंस्तुतः प्रभुः । योगिध्येयः शिवध्येयः शास्ता रावणदर्पहा ॥१६२॥
श्रीशः शरण्यो भूतानां संश्रिताभीष्टदायकः । अनंतः श्रीपती रामो गुणभृन्निर्गुणो महान् १००० ॥
एवमादीनि नामानि ह्यसंख्यान्यपराणि च । एकैकं नाम रामस्य सर्वपापप्रणाशनम् ॥१६४॥
सहस्रनामफलदं सर्वैश्वर्यप्रदायकम् । सर्वसिद्धिकरं पुण्यं भुक्तिमुक्तिफलप्रदम् ॥१६५॥

कालचक्रप्रवर्तक ॥ १४६ ॥ नारायण, परंज्योति, परमात्मा, सनातन, विश्वकृत्, विश्वभोक्ता, विश्वगोप्ता, शाश्वत ॥ १४७ ॥ विश्वेश्वर, विश्वमूर्ति, विश्वात्मा, विश्वभावन, सर्वभूतसुहृत्, शान्त, शर्वभूतानुकम्पन ॥१४८॥ सर्वेश्वर, सर्वशर्व, सर्वदा आश्रितवमत्सल, सर्वग, सर्वभूतेश, सर्वभूताशयस्थित ॥ १४९ ॥ अभ्यन्तरस्थ, अन्धकारनाशक, नारायण, पर, अनादिनिधन, स्रष्टा, प्रजापति, हरि ॥ १५० ॥ नरसिंह, हृषीकेश, सर्वात्मा, सर्वदृक्, वशी, स्थावर तथा जंगम विश्वके प्रभु, नेता, सनातन ९०० ॥ १५१॥ कर्ता, धाता, विधाता, सबके पति, ईश्वर, सहस्रमूर्धा, विश्वात्मा, विष्णु, विश्वदृक्, अव्यय ॥ १५२ ॥ पुराणपुरुष, श्रेष्ठ, सहस्राक्ष, सहस्रपात्, तत्त्व, विष्णु, नारायण, वासुदेव, सनातन ॥ १५३ ॥ परमात्मा, परब्रह्म, सच्चिदानन्दविग्रह, परंज्योति, परंधाम, पराकाश, परात्पर, ॥ १५४ ॥ अच्युत, कृष्ण, शाश्वत, शिव, ईश्वर, नित्य, सर्वगत, स्थाणु, रुद्र, साक्षी, प्रजापति ॥ १५५ ॥ हिरण्यगर्भ, सविता, लोककृत्, विभु, ॐकारवाच्य, भगवान्, श्रीभूलीलापति, प्रभु ॥ १५६ ॥ सर्वलोकेश्वर, श्रीमान्, सर्वज्ञ, सर्वतोमुख, स्वामी, सुशील, सर्वग, सर्व-सर्वशक्तिमान्, प्रभु ॥ १५७ ॥ सम्पूर्णकाम, नैसर्गिकसुहृद्, सुखी, कृपापीयूषजलधि, सबके शरण्य ॥ १५८ ॥ श्रीमान्, नारायण, स्वामी, सब भुवनोंके प्रभु, ईश्वर, मत्स्य, कूर्म, वराह, नृसिंह, वामन ॥ १५९ ॥ राम, कृष्ण, बौद्ध, कल्की, परात्पर, अयोध्येश, नृपश्रेष्ठ, कुशके पिता, परन्तप ॥ १६० ॥ लवके पिता, सेतुकृत्, चित्रकूटस्थ, कमलनयन, कमलचरण, कमलमुख, सीताकान्त सौम्यरूप, शिशुजीवनतत्पर ॥ १६१ ॥ शबरीसंस्तुत, प्रभु, योगिध्येय, शिवध्येय, शास्ता, रावणदर्पहा ॥ १६२ ॥ श्रीश, शरण्य, आश्रितोंके अभीष्टदायक, अनन्त, श्रीपति, राम, गुणभृत, निर्गुण, महान् १००० ॥ १६३ ॥ यहाँ रामसहस्रनाम पूर्ण हुआ। इसी तरह और भी भगवान्के बहुतसे नाम हैं, जिनकी गणना ही नहीं की जा सकती। रामका एक-एक नाम सब प्रकारके पापोंको हरने तथा सहस्रनामका फल देनेवाला है। यह रामनाम सब प्रकारकी समृद्धियों एवं

मन्त्रात्मकमिदं सर्वं व्याख्यातं सर्वमंगलम् । उक्तानि तव पुत्रेण विघ्नराजेन धीमता ॥१६६॥
सनत्कुमाराय पुरा तान्युक्तानि मया तव । यः पठेच्छृणुयाद्वापि स तु ब्रह्मपदं लभेत् ॥१६७॥
तावदेव बलं तेषां महापातकदंतिनाम् । यावन्न श्रूयते रामनामपंचाननध्वनिः ॥१६८॥
ब्रह्मघ्नश्च सुरापश्च स्तेयी च गुरुतल्पगः । शरणागतघाती च मित्रविश्वासघातकः ॥१६९॥
मातृहा पितृहा चैव भ्रूणहा वीरहा तथा । कोटिकोटिसहस्राणि ह्युपपापानि यान्यपि ॥१७०॥
संवत्सरं क्रमाज्जप्त्वा प्रत्यहं रामसन्निधौ । निष्कण्टकं सुखं भुक्त्वा ततो मोक्षमवाप्नुयात् ॥१७१॥

सूत उवाच

एवं शौनक पार्वत्यै रामनामसहस्रकम् । यथा शिवेन कथितं मया तेऽद्य निवेदितम् ॥१७२॥

श्रीरामदास उवाच

यथा शिष्य त्वया पृष्टं रामनमसहस्रकम् । तत्स्तोक्तं सविस्तारं मया तेऽद्य निवेदितम् ॥१७३॥
अनेन रामं सदसि नारदः स्तुतवान्मुनिः । रामनामसहस्रेण भुक्तिमुक्तिप्रदेन च ॥१७४॥

श्रीरामनाम्नां परमं सहस्रकं पापापहं सौख्यविवृद्धिकारकम् ।
भवापहं भक्तजनैकपालकं स्त्रीपुत्रपौत्रप्रदसमृद्धिदायकम् ॥१७५॥

इति श्रीशतकोटिरामचरितांतर्गते श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये राज्यकाण्डे पूर्वार्धे रामसहस्रनामकथनं नाम प्रथमः सर्गः ॥ १ ॥

द्वितीयः सर्गः

(कल्पवृक्ष और पारिजातके पृथ्वीपर आनेका कारण)

विष्णुदास उवाच

गुरो त्वया रामनामसहस्रं राघवस्य च । ध्यानं कल्पतरोर्मूले कथितं स्वर्णपीठके ॥ १ ॥

सिद्धियोंका करनेवाला और मुक्ति-मुक्तिका दाता है। हे पार्वति ! मैंने अभी जो सहस्रनाम तुम्हें बतलाया है, यह मन्त्रात्मक और सर्वमंगलकारक है। इसे तुम्हारे पुत्र गणेशजीने स्वयं सनत्कुमारको बतलाया था। उसे मैंने आज तुमसे कहा है। जो कोई इस सहस्रनामको पढ़ता और सुनता है, उसे ब्रह्मपद प्राप्त होता है ॥ १६४–१६७ ॥ महापातकरूपी मतवाले हाथियोंका बल तभी तक रहता है, जब तक रामनामरूपी पंचानन (सिंह) की गर्जना नहीं सुनायी देती ॥ १६८ ॥ जो मनुष्य ब्रह्महत्यारा, मद्यप, गुरुकी शय्यापर शयन करनेवाला तथा चोर हो। जो शरणागतको मारनेवाला, मित्रके साथ विश्वासघात करनेवाला, माता, पिता, भ्रूण (गर्भस्थ संतान) तथा वीर मनुष्यकी हत्या करनेवाला हो तथा जिसने संसारमें करोड़ों पाप किये हों, वह भी यदि श्रीरामके पास बैठकर एक संवत्सर पर्यन्त प्रतिदिन इस स्तोत्रका पाठ करे तो संसारमें निष्कंटक सुख भोगकर अन्तमें मोक्ष पाता है ॥ १६९ ॥ १७० ॥ सूतजी बोले—हे शौनक ! शिवजीने पार्वतीको जिस प्रकार रामका सहस्रनाम सुनाया था, वही मैंने आज तुम्हें बताया है ॥ १७१ ॥ श्रीरामदासने कहा—हे शिष्य ! जैसे तुमने हमसे रामका सहस्रनाम पूछा, वैसे मैंने तुम्हें बतलाया। इसी सहस्रनामसे नारदने सभामें रामजीकी स्तुति की थी। क्योंकि यह स्तोत्र भुक्ति-मुक्ति सब कुछ देनेवाला है ॥ १७२–१७४ ॥ यह रामका सहस्रनाम पापोंका नाशक, सौख्यवर्द्धक, सांसारिक पापोंका नाशक, भक्तजनोंका पालक और स्त्री-पुत्र-पौत्र तथा सम्पत्तिका देनेवाला है ॥ १७५ ॥ इति श्रीशतकोटिरामचरितान्तर्गते श्रीमदानन्दरामायणे पं० रामतेज-पाण्डेयविरचित 'ज्योत्स्ना' भाषाटीकासहिते राज्यकाण्डे पूर्वार्द्धे प्रथमः सर्गः ॥ १ ॥

श्रीविष्णुदासने कहा—हे गुरो ! आपने रामका सहस्रनाम बताते समय कहा था कि कल्पवृक्षके नीचे

संदेहस्तेन मे जातः कल्पवृक्षः कथं भुवि । अयोध्यायां रामगेहे स्वर्गलोकात्समागतः ॥ २ ॥
अमुं मे संशयं छिंधि कृपां कृत्वा ममोपरि ।
सम्यक् पृष्टं विष्णुदास सावधानमनाः शृणु ॥ ३ ॥
एकदा राघवं द्रष्टुं दुर्वासा मुनिरभ्यगात् । शिष्यैः षष्टिसहस्रैश्च वेष्टितोऽचिंतयत्पथि ॥ ४ ॥
विष्णुर्मनुजरूपेण रामो जातोऽत्र वेद्म्यहम् । तथापि लोकान् रामस्य दर्शयिष्यामि पौरुषम् ॥ ५ ॥
एवं निश्चित्य साकेते मुनिः शिष्यैर्विवेश ह । विलंघ्य सोऽष्टकक्षांस्तैः सीतागेहं ययौ मुनिः ॥ ६ ॥
सीतागेहे महद्द्वारसंस्थितं मुनिसत्तमम् । दुर्वाससं शिष्ययुक्तं दृष्ट्वा वै वेत्रपाणयः ॥ ७ ॥
शीघ्रं निवेदयामासुर्दास्या रामं रहः स्थितम् । रामोऽपि श्रुत्वा संप्राप्तं मुनिं प्रत्युज्जगाम सः ॥ ८ ॥
नत्वा तानानयामास सद्म ह्यासनमर्पयत् । एतस्मिन्नन्तरे रामं तिष्ठन्स मुनिसत्तमः ॥ ९ ॥
अब्रवीन्मधुरं वाक्यं शिष्यैः सर्वत्र वेष्टितः । अद्य वर्षसहस्राणामुपवाससमापनम् ॥१०॥
अतो भोजनमिच्छामि मणिधेन्वनलैर्विना । सिद्धमन्नं मुहूर्तेन सशिष्याय समर्पय ॥११॥
मह्यं मनोऽभिलषितं नानापक्वान्नसंयुतम् । तथा मां पूजनार्थं हि शंभोः पुष्पाणि मानवैः ॥१२॥
अदृष्टान्यानयस्वाद्य गार्हस्थ्यं चेत्प्ररक्षसि । नोचेन्नाहं समर्थोऽस्मीत्युक्त्वा मां त्वं विसर्जय ॥१३॥
तन्मुनेर्वचनं श्रुत्वा विहस्य रघुनन्दनः । सर्वमंगीकृतं चेति विनयेनाब्रवीन्मुनिम् ॥१४॥
तद्रामवचनं श्रुत्वा तुष्टस्तं मुनिरब्रवीत् । स्नात्वा सरय्वां शीघ्रं त्वामागच्छामि त्वरां कुरु ॥१५॥
मदुक्तं सफलं कर्तुं सिद्धं बंधूंश्च जानकीम् । तथेत्युक्त्वा मुनिं रामः स्नानार्थं च व्यसर्जयत् ॥१६॥
तदा ते लक्ष्मणाद्याश्च बंधवो जानकी तथा । कुशाद्या बालकाः सर्वे तेऽब्रुवन् भयविह्वलाः ॥१७॥

स्वर्णनिर्मित चौकीपर बैठे हुए भगवानका ध्यान करे ॥ १ ॥ सो सुनकर मुझे यह संदेह हो रहा है कि कल्पवृक्ष स्वर्गलोकसे रामचन्द्रजीके भवनमें कैसे आया । मुझपर कृपा करके आप इस संशयका निवारण कीजिये । श्रीरामदासजीने कहा—हे विष्णुदास ! तुमने बहुत अच्छी बात पूछी है । सावधान होकर सुनो ॥ २ ॥ ३ ॥ एक बार रामचन्द्रजीका दर्शन करनेके लिये साठ हजार शिष्योंसे परिवेष्टित दुर्वासा मुनि अयोध्याको जा रहे थे । रास्तेमें जाते-जाते दुर्वासाने सोचा कि स्वयं विष्णुभगवान् मनुष्यका रूप धारण करके संसारमें आये हैं, यह मैं जानता हूँ । फिर भी आज संसारके साधारण मनुष्योंको मैं उनका पौरुष दिखलाऊँगा ॥ ४ ॥ ५ ॥ ऐसा निश्चय करके वे अपने शिष्योंके साथ अयोध्या नगरीमें प्रविष्ट हुए और सबको साथ लिये हुए आठ चौक लाँघकर सीताके भवनमें जा पहुँचे ॥ ६ ॥ सीताजीके विशाल द्वारपर शिष्यों समेत आये हुए दुर्वासाको देखकर छड़ीदारोंने तुरन्त रामचन्द्रजीको खबर दी । यह समाचार सुनते ही भगवान् दुर्वासा मुनिके पास आ पहुँचे । उन्हें प्रणाम किया और सबको बड़े आदर समेत भवनके भीतर ले गये । वहां बैठनेके लिये उन्हें सुन्दर आसन दिया । आसनपर बैठे हुए दुर्वासाने बड़ी मधुर वाणीमें रामचन्द्रजीसे कहा—महाराज ! आज एक हजार वर्षका मेरा उपवासव्रत पूरा हुआ है । इस कारण मेरे शिष्योंके साथ मुझे भोजन चाहिए। इसके लिये आपको केवल एक मुहूर्तका समय मिलेगा और वह भोजन मणि, कामधेनु तथा अग्निकी सहायतासे न तैयार किया जाय । बस, एक मुहूर्तमें मुझे मेरी इच्छाके अनुकूल भोजन मिले । जिसमें विविध प्रकारके पकवान सम्मिलित रहें । यदि तुम अपना गार्हस्थ्य रखे रहना चाहते होओ तो शिवजीकी पूजाके निमित्त मुझे ऐसे फूल मँगवा दो, जिन्हें अबतक किसीने न देखा हो । यदि ऐसा न कर सकते हो तो साफ-साफ कह दो कि मैं ऐसा करनेमें असमर्थ हूं । यह कहकर मुझे बिदा कर दो ॥ ७–१३ ॥ मुनिकी बातोंको सुनकर मुसकाते हुए राम नम्रतापूर्वक बोले-"मुझे सब कुछ अंगीकार है" ॥ १४ ॥ रामकी बातसे प्रसन्न होकर दुर्वासाने कहा कि मैं शीघ्र सरयूमें स्नान करके आता हूँ ॥ १५ ॥ हमारे कथनानुसार सब चीजोंकी तैयारीके लिए अपने भ्राताओं तथा सीताको भी शीघ्रताके लिए कह देना । 'अच्छा' कहकर रामचन्द्रजीने दुर्वासाको स्नान करनेके लिये

ऊचुः परस्परं सर्वे रामन्यस्तेक्षणाः शनैः । किं याचितं हि मुनिना किं रामोऽग्रे करिष्यति ।।१८।।
विना गोवह्निमणिभिः कथमन्नं प्रदास्यति । ततो गते मुनौ रामः पत्रं सौमित्रिणा तदा ।।१९।।
विलेख्य बद्ध्वा बाणे तन्मुमोच शरमुत्तमम् । स शरो वायुवेगेन शीघ्रं गत्वाऽमरावतीम् ।।२०।।
सुधर्मायां सुरैर्युक्तस्येंद्रस्याग्रे पपात ह । तं शरं मघवा दृष्ट्वा चकितो भयविह्वलः ।।२१।।
कस्यायमिति चोक्त्वा तद्रामनाम व्यलोकयत् । सुवर्णरचितं बाणपुच्छस्थ पापदाहकम् ।।२२।।
ततो ज्ञात्वा राघवस्य शरोऽयमिति देवराट् । तस्मिन्बन्धं विमुच्यासौ पत्रं नत्वा पपाठ च ।।२३।।
एतस्मिन्नंतरे बाणः पुनः श्रीराघवं ययौ । विवेश रामतूणीरे पूर्ववत्संस्थितोऽभवत् ।।२४।।
मघवाऽपि सुधर्मायां श्रावयामास निर्जरान् । राममुद्रांकितं पत्रं भयविस्मयसंयुतः ।।२५।।
मघवंस्त्वं सुखं तिष्ठ स्वर्गेहं त्वां सदा स्मरे । मन्नियोगं शृणुष्वाद्य याचितोऽस्म्यधुना त्वहम् ।।२६।।
विना गोवह्निमणिभिश्चान्नं शिष्यैर्युतेन च । वरैः षष्टिसहस्रैश्च तथाऽन्यैर्मुनिसत्तमैः ।।२७।।
सहस्राब्दक्षुधितेन क्रोधिनाऽतितपस्विना । दुर्वाससा मुहूर्तात्तु मयाऽप्यंगीकृतं हि तत् ।।२८।।
याचितान्यपि पुष्पाणि तेनादृष्टानि मानवैः । मयांगीकृत्य सकलं स्नानार्थं ते विसर्जिताः ।।२९।।
अतः शीघ्रं कल्पवृक्षपारिजातौ समुद्रजौ । प्रेषयस्व क्षणान्मां त्वमविलम्बेन सादरात् ।।३०।।
मा रावणशिरच्छेत्तुः प्रतीक्षां स्वामिषोः कुरु । एवं संश्राव्य तत्पत्रं सुरानिंद्रः सुरैः सह ।।३१।।
संमंत्र्याथ कल्पवृक्षपारिजातौ विगृह्य सः । विमानेन सुरैर्युक्तः श्रीरामनगरीं ययौ ।।३२।।
इन्द्रमागतमाज्ञाय तं प्रत्युद्गम्य लक्ष्मणः । अयोध्यायां निनायेन्द्रं सभास्थं रघुनन्दनम् ।।३३।।
कल्पवृक्षपारिजातौ मघवा रघुनन्दनम् । समर्प्य नत्वा श्रीरामं स उपाविशदासने ।।३४।।
एतस्मिन्नन्तरे शिष्यं दुर्वासा मुनिरब्रवीत् । गत्वा त्वं पश्य रामं तु किं करोत्यधुना गृहे ।।३५।।

भेज दिया ॥ १६ ॥ इधर लक्ष्मणादिक भ्राता, जानकी और कुश आदि बालक सबके सब भयसे विह्वल हो गये और वे रामकी ओर निर्निमेष दृष्टिसे देखते हुए अपने मनमें कहने लगे कि मुनिने बड़ी अद्भुत वस्तुएँ माँगी हैं । देखें, राम अब क्या करते हैं । बिना गौ, मणि तथा अग्निके किस प्रकार भोजन तैयार करके देते हैं ॥१७॥१८॥ मुनिके चले जानेपर रामचन्द्रजीने लक्ष्मणसे एक पत्र लिखवाया । उसे अपने बाणमें बाँधकर धनुषपर चढ़ाया और छोड़ दिया । वह बाण वायुके समान वेगसे अमरावतीपुरीमें जाकर सुधर्मा नामकी देवसभामें इन्द्रके सामने गिरा । उस बाणको इन्द्रने देखा तो भयभीत होकर कहा—॥ १९–२१ ॥ "यह बाण किसका है !" यह कहकर उसपर लिखे रामके नामको देखा और पत्र खोलकर पढ़ा । पत्र ले जानेवाला बाण वहाँसे फिर रामजीके तूणीरमें लौट आया ॥ २२–२४ ॥ भय और विस्मय युक्त इन्द्रने वह पत्र सभामें बैठे हुए देवताओंको सुनाया ॥ २५ ॥ उस पत्रपर लिखा था–"हे इन्द्र ! तुम स्वर्गमें सुखी रहो । मैं सदा तुम्हारा स्मरण किया करता हूँ । हाँ, इस समय तुम्हें मैं एक आज्ञा दे रहा हूँ । आज एक हजार वर्षके भूखे एवं उग्र क्रोधी दुर्वासा मुनि अपने साठ हजार अच्छे शिष्योंके साथ मेरे यहाँ आये हुए हैं । वे ऐसा भोजन चाहते हैं कि जो गौ, मणि अथवा अग्निके द्वारा न बना हो । साथ ही उन्होंने शिवपूजनके लिए ऐसे फूल माँगे हैं, जिन्हें अबतक मनुष्योंने न देखा हो । मैंने उनकी माँगें स्वीकार कर ली हैं । इस समय मैंने उन्हें स्नान करनेको भेज दिया है ॥ २६–२९ ॥ इससे तुम झटपट कल्पवृक्ष और पारिजात, जो कि क्षीरसागरसे निकले हैं, क्षणभरमें आदरपूर्वक मेरे पास भेज दो ॥ ३० ॥ देखो, कहीं रावणका विनाश करनेवाले मेरे बाणकी प्रतीक्षा न करने लगना ।" इस प्रकार वह पत्र देवताओंको सुनाकर इन्द्रदेव तुरन्त सबके साथ मंत्रणा करके कल्पवृक्ष और पारिजात ले तथा देवताओं समेत विमानपर चढ़कर अयोध्यापुरीमें जा पहुँचे ॥ ३१ ॥ ॥ ३२ ॥ लक्ष्मणने जब यह जाना कि देवराज इन्द्र आ गये हैं तो उनके पास गये और आदरपूर्वक अयोध्यामें रामके पास ले आये ॥ ३३ ॥ इन्द्रने पारिजात तथा कल्पवृक्ष रामको अर्पण करके प्रणाम किया । फिर एक

अस्माकं कल्पितं किंचिदन्नमस्त्यथवा न वा।
चिंतायुक्तोऽस्ति वा तूष्णीं संस्थितोऽस्त्यत्र किं कृतम् ॥३६॥
वहिः संपादितं सर्वं मया यद्यन्न याचितम् । रहः स्थितः शनैर्दृष्ट्वा शीघ्रं त्वं याहि मां पुनः ॥३७॥
तथेत्युक्त्वा मुनिं शिष्यः स ययौ राममद्गृहम्। तत्र दृष्ट्वा कल्पवृक्षपारिजातौ सनिर्जरौ ॥३८॥
सनिर्जरेशं रामं च मुदितं सीतयाऽन्वितम् । ततस्तूर्णं ययौ शिष्यः परावृत्य मुनिं प्रति ॥३९॥
कथयामास सकलं यथावृत्तं निरीक्षितम् । तच्छ्रुत्वा शिष्यवचनं दुर्वासा विस्मयान्वितः ॥४०॥
ययौ शिष्यैः परिवृतो विवेश नृपतेर्गृहम् । तं मुनिं राघवो दृष्ट्वा प्रत्युद्गम्य पुनः सुरैः ॥४१॥
नमस्कृत्य मुहुर्वेगाद्ददावासनमुत्तमम् । ततो मुनेः पूजनं स सशिष्यस्य रघूत्तमः ।४२॥
चकार सीतया सार्द्धं लक्ष्मणादिभिरन्वितः । पारिजातप्रसूनानि नेक्षितान्यत्र मानवैः ॥४३॥
ददौ शंभोः पूजनार्थं रामो दुर्वाससे तदा । तानि दृष्ट्वा मुनिस्तूष्णीं तैश्चक्रारेश्वरार्चनम् ॥४४॥
ततः सर्वान्सुरान्पूज्य परिवेषणकर्मणि । चोदयामास श्रीरामो जानकीं लक्ष्मणेन सः ॥४५॥
ततः सा जानकी वेगाद्दिव्यालंकारमण्डिता । कल्पवृक्षपारिजातौ सम्पूज्य नूपुरस्वना ॥४६॥
पात्राणि कल्पवृक्षाधः स्थापयामास कोटिशः । सीता तं प्रार्थयामास कल्पवृक्षं नगोत्तमम् ॥४७॥
क्षीरसागरसंभूत देवानां चिंतितप्रद । दुर्वाससे कल्पवृक्ष सशिष्यायाद्य तोषय ॥४८॥
तत्सीतावचनं श्रुत्वा हेमपात्राणि कोटिशः । चित्रान्नैः पूरयामास क्षणात्कल्पतरुस्तदा ॥४९॥
तैरन्नैर्हेमपात्रेषु जानकी परिवेषणम् । क्षणाच्चकार संतुष्टा ह्युर्मिलाचंपिकादिभिः ॥५०॥
ततस्तुष्टो मुनिर्देवः शिष्यैरशनमादरात् । चकार रघुवीरेण प्रार्थितः स मुहुर्मुहुः ॥५१॥
ततः कृत्वा भोजनं हि करशुद्धिं विधाय सः । तांबूलं दक्षिणां चापि जग्राह रघुनायकात् ।।५२।।

आसनपर जा बैठे ॥ ३४ ॥ उधर सरयूके किनारेसे दुर्वासाने अपना एक शिष्य भेजा और उससे कहा–"तुम जाकर देखो कि राम इस समय क्या कर रहे हैं ॥ ३५ ॥ मैंने जो-जो बतलाया था, उसमें कुछ अन्न तैयार है या नहीं। अथवा अभी तक चिन्ता करते हुए यूँ ही चुपचाप बैठे हैं ॥ ३६ ॥ यदि मेरे आज्ञानुसार काम कर रहे हैं तो अबतक क्या-क्या किया है। मैंने जैसा कहा था, वे सब चीजें उन्होंने इकट्ठी कर लीं या नहीं। कहीं छिपकर चुपचाप यह सब देखो और शीघ्र मेरे पास लौट आओ" ॥ ३७ ॥ "अच्छा" कहकर शिष्य रामचन्द्रजीके भवनमें जा पहुँचा। वहाँ कल्पवृक्ष, परिजात, इन्द्र, देवताओंकी मण्डली एवं प्रसन्न राम तथा सीताको देखकर फिर दुर्वासा मुनिके पास लौट गया और जैसा देखा था, सब समाचार कह सुनाया। शिष्यकी बात सुनकर दुर्वासाको बड़ा आश्चर्य हुआ ॥ ३८–४० ॥ स्नानके बाद शिष्योंको साथ लेकर वे रामचन्द्रजीके सुन्दर भवनमें पहुँचे। मुनि दुर्वासाको देख देवताओंके साथ उठकर रामचन्द्रजीने बड़े आदरके साथ समस्त शिष्यों समेत मुनिको प्रणाम किया और बैठनेके लिये उत्तम आसन देकर सीता तथा लक्ष्मणादिके साथ उनकी पूजा की। मनुष्योंने पारिजातके फूल नहीं देखे थे ॥ ४१–४३ ॥ सो उन फूलोंको शिवपूजनके निमित्त मुनिके सामने रक्खा। दुर्वासाने उन्हें एक बार विस्मित नेत्रोंसे देखा और चुपचाप शिव तथा सब देवताओंका पूजन किया ॥ ४४ ॥ इसके अनन्तर रामचन्द्रजीने लक्ष्मण और जानकीको भोजन परोसनेकी आज्ञा दी ॥ ४५ ॥ तब दिव्यालङ्कारोंको धारण किये सीताने कल्पवृक्ष और पारिजातका पूजन करके करोड़ों बर्तन लाकर उनके नीचे रख दिया और इस प्रकार प्रार्थना करने लगीं–॥ ४६–४७ ॥ "हे क्षीरसागरसे जायमान तथा देवताओंकी अभिलाषा पूर्ण करनेवाले कल्पवृक्ष ! आज शिष्यों समेत दुर्वासाको आप सन्तुष्ट कर दीजिए" ॥४८। सीताकी प्रार्थना सुनकर क्षणभरमें कल्पवृक्षने करोड़ों पात्रोंको विविध प्रकारकी भोजनसामग्रियोंसे भर दिया। उन अन्नोंको उर्मिलादिके साथ सीताने सुवर्णके पात्रोंमें परोसा और महर्षि दुर्वासाने प्रसन्न होकर अपने समस्त शिष्योंके साथ रामचन्द्रजीके द्वारा प्रार्थित होनेपर भोजन करना आरम्भ किया ॥ ४९–५१ ॥ भोजन करनेके बाद उन्होंने

ततः सुराणां पुरतो वेदवाक्यैः सविस्तरम् । दुर्वासा राघवं स्तुत्वा वमाहानंदनिर्भरः ।।५३।।
राम राजीवपत्राक्ष त्वं साक्षाज्जगदीश्वरः । अत्र रावणघातार्थमवतीर्णोऽसि वेद्म्यहम् ।।५४।।
जनांस्त्वत्पौरुषं ज्ञातुं मयैतद्याचितं तव । विना गोवह्निमणिभिर्द्दिव्यान्नं रघुनन्दन ।।५५।।
प्रसूनान्यप्यदृष्टानि मानवैर्जगतीतले । किं राम दुर्घटं तत्र यस्य भ्रूभङ्गमात्रतः ।।५६।।
लयो ब्रह्मादिकानां च जायते संभवोऽपि च । मन्दरं मज्जमानं तु दृष्ट्वा त्वं क्षीरसागरे । ५७ ।
कूर्मरूपेण जातोऽसि धर्तुं तु मन्दराचलम् । निष्कासितानि रत्नानि तदा देवैश्चतुर्दश ।।५८।।
तव साहाय्यमात्रेण सर्वं जानाम्यहं प्रभो । लक्ष्मीः सोमः कामधेनुः कौस्तुभश्च सुधा विषम् । ५९।।
ऐरावतश्चाप्सरसः कल्पवृक्षो भिषग्वरः । उच्चैःश्रवाः पारिजातो सुरा ज्येष्ठेति राघवः ।।६०।।
चतुर्दश सुरत्नानि विभक्तानि पुरा त्वया । देवेभ्यो यानि तान्येते भोक्ष्यंति कृपया तव ।।६१।।
त्वदाज्ञापालिनः सर्वे शङ्कराद्याश्च निर्जराः । सर्वेषां जीवनोपायास्त्वया सर्वे पृथक् पृथक् ।।६२।।
कल्पिता येन रामेण तत्र किं दुर्घटं तव । ममाभिलषितं भोज्यं दातुं त्वत्कौतुकं मया ।।६३।।
अद्यावलोकितं राम जनानपि प्रदर्शितम् । त्वं पाता सर्वलोकानां जनकश्चापि घातकृत् ।।६४।।
अस्माकं गतिदाता त्वं मे क्षमस्वापराधितम् । एवं नानाविधं स्तुत्वा तं प्रणम्य पुनः पुनः ।।६५।।
राममामंत्र्य दुर्वासा ययौ शिष्यैः स्वमाश्रमम्। अथ तान्निर्जरान्प्राह रामः कनकलोचनः ।।६६।।
कल्पवृक्षपारिजातौ गृहीत्वा गम्यतां दिवम् । तद्रामवचनं श्रुत्वा वाक्पतिः प्राह राघवम् ।।६७।।
यावत्कालं तिष्ठसि त्वं भूम्यां तावन्नगोत्तमौ । अयोध्यायां तिष्ठतस्तौ कल्पवृक्षसुरद्रुमौ ।।६८।।
त्वयि वैकुण्ठमायाते दिवं तौ यास्यतो ध्रुवः । तथेति तत्सुरगुरोः प्रतिनंद्य वचः प्रभुः ।।६९।।

हाथ धोया और रामसे ताम्बूल-दक्षिणा ली ॥ ५२ ॥ फिर उन देवताओंके सामने ही वेदवाक्यों द्वारा विस्तारपूर्वक रामचन्द्रजीकी स्तुति की और आनन्दसे गद्‌गद होकर कहने लगे—॥ ५३ ॥ हे राम ! हे कमलदल सरीखे नेत्रोंवाले भगवन् ! मैं जानता हूँ कि तुम साक्षात् जगदीश्वर हो और रावणका विनाश करनेके लिए इस धरातलपर आये हो ॥ ५४ ॥ संसारी जनोंको तुम्हारा पौरुष दिखलानेके लिए ही मैने गो-वह्नि और मणिसे न सिद्ध हुआ अन्न तथा मनुष्योंसे अदृष्ट फूल पूजनेके निमित्त माँगे थे। हे राम ! तुम्हारे लिए यह कुछ दुर्घट कार्य नहीं है। तुम्हारे भ्रूभंगमात्रसे ब्रह्मादिक देवताओंका भी विनाश एवं उद्भव होता है। जिस समय मंदराचलको क्षीरसागरमें तुमने डूबते देखा ॥ ५५ ॥ ५६ ॥ तब कूर्मरूप धरकर उसे अपनी पीठपर उठा लिया था। उस समय एकमात्र तुम्हारी सहायतासे ही देवताओंने क्षीरसागरसे ये चौदह रत्न निकाले थे ॥ ५७ ॥ ५८ ॥ जिनके नाम हैं–लक्ष्मी, चन्द्रमा, कामधेनु, कौस्तुभ, सुधा, विष, ऐरावत, अप्सराएँ, कल्पवृक्ष, धन्वन्तरी, उच्चैःश्रवा, पारिजात, सुरा और अमृत ॥ ५९ ॥ ६० ॥ उन चौदहों रत्नोंको तुमने चौदह देवताओंको बाँट दिया और तुम्हारी ही कृपासे वे सब आनन्दपूर्वक उनका उपभोग कर रहे हैं ॥ ६१ ॥ शंकरादिक समस्त देवता तुम्हारी ही आज्ञाका पालन करते हैं। इस जगत्‌में स्थित सब प्राणियोंके जीवनका उपाय तुम्हीं करते हो ॥ ६२ ॥ तब यदि तुमने हमारे इच्छानुसार भोजनकी सामग्रियें जुटा दीं तो इसमें कोई आश्चर्यकी बात नहीं है। यह तो मुझे इन साधारण श्रेणीके मनुष्योंको तुम्हारा कौतुक दिखाना था, सो दिखा दिया ॥ ६३ ॥ हे राम ! तुम्हीं समस्त लोकोंके रक्षक, स्रष्टा तथा संसारके नाशक हो ॥ ६४ ॥ तुम्हीं हमारे गतिदाता हो। मुझसे जो कुछ त्रुटि हुई हो, सो क्षमा कर दो। इस तरह नाना प्रकारके वाक्यों द्वारा स्तुति करके दुर्वासाने वारम्वार प्रणाम किया और रामचन्द्रजीकी आज्ञा लेकर सब शिष्योंको साथ लिये हुए अपने आश्रमको चल दिये। इसके अनन्तर रामचन्द्रजीने उन देवताओंसे कहा—कल्पवृक्ष और पारिजातको लेकर अब आप लोग भी अपने लोकको जाते जायँ। इस प्रकार रामकी बात सुनकर देवगुरु बृहस्पति कहने लगे—॥ ६५–६७ ॥ "जबतक आप भूमण्डलमें रहेंगे, तबतक कल्पवृक्ष तथा पारिजात ये दोनों भी इस अयोध्यामें ही रहेंगे ॥ ६८ ॥ जब आप अपने वैकुण्ठ लोकको जाने लगेंगे, तब ये भी आपके साथ चले

पुष्पके स्थापयामास कल्पवृक्षसुरद्रुमौ । ततस्ते राघवं नत्वा ययुरिंद्रादिकाः सुराः ॥७०॥
स्वर्गलोकं सुसंतुष्टा राघवेणातिपूजिताः । एवं प्राप्तौ कल्पवृक्षपारिजातौ भुवं दिवः ॥७१॥
तयोरेतत्कारणं ते प्रोक्तं पृष्टं यथा त्वया । तदारभ्य सुरतरू पुष्पकस्थौ विरेजतुः ॥७२॥
साकेते सीतया रामस्ताभ्यां सुखमवाप सः । कल्पवृक्षतले दिव्यपर्यङ्के सीतया सह ॥७३॥
नानाभोगाद्राघवेन्द्रः स बुभोज चिरं सुखम् । अतः पूर्वं मया रामध्यानं कल्पतरोः स्थले ॥७४॥
सहस्रनामसंकेते प्रोक्तं शिष्य तवाग्रतः । तदारभ्य परिजातवृक्षांशाः शतशो भुवि ॥७५॥
पारिजातनगा जाता वर्तन्तेऽद्यापि तेऽत्र हि । नानेन सदृशं पुष्पं वर्तते रामतोषदम् ॥७६॥
कल्पवृक्षांशरूपाश्च ज्ञातव्यास्तत्र मानवैः । अश्वत्थाः सेवनाद्यैश्च सर्ववांछितदायकाः ॥७७॥
पुण्याधिक्येन सेवन्ते नोपेक्षंते युगत्रये । पापाधिक्येनापि सेवां नरा वांछति नो कलौ ॥७८॥

इति श्रीशतकोटिरामचरितांतर्गते श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये विवाहकाण्डे
चम्पिकास्वयंवरो नाम द्वितीयः सर्गः ॥ २ ॥

तृतीयः सर्गः

(रामोपासक तथा कृष्णोपासकका परस्पर मधुर विवाद)

विष्णुदास उवाच

रामदास गुरो भूम्यां रामकृष्णौ वरौ श्रुतौ । मया दशावतारेषु ह्यवतारावुभौ पुरा ॥ १ ॥
तयोरपि च कः श्रेष्ठस्तत्त्वं वद ममाग्रतः । यं श्रुत्वा सर्वदा तस्य श्रोष्येऽहं चरितं शुभम् ॥ २ ॥

श्रीरामदास उवाच

सम्यक् पृष्टं विष्णुदास सावधानमनाः शृणु । रामावतारः श्रेष्ठोऽत्र विज्ञेयः सर्वदा नरैः ॥ ३ ॥
अस्मिन्नर्थे पूर्ववृत्तां कथां शृणु मनोहराम् । द्विजाभ्यां वादरूपेण कीर्तितां पुण्यदायिकाम् ॥ ४ ॥

जायेंगे। रामने सुरगुरु बृहस्पतिकी बात स्वीकार कर ली ॥ ६९ ॥ देवताओंने उन दोनोंको पुष्पक बिमानमें रखकर भगवान्को प्रणाम किया और राम द्वारा पूजित होकर सब अपने अपने लोकको चल गये ॥ ७० ॥ इस प्रकार कल्पवृक्ष और पारिजात स्वर्गसे मृत्युलोकमें आये। उनके आनेका जो कारण था, वह तुम्हारे प्रश्नानुसार मैंने कह सुनाया । तभीसे दोनों सुरतरु पुष्पकमें विराजमान रहे ॥ ७१ ॥ ७२ ॥ अयोध्यामें सीताके साथ रामचन्द्रजी उन्हीं वृक्षोंके नीचे दिव्य पर्यङ्कके ऊपर विहार करते हुए विविध प्रकारके सुखोंको भोगते थे ॥ ७३ ॥ ७४ ॥ इसीलिए मैंने रामसहस्रनामका कथन करते समय कल्पवृक्षके नीचे रामका ध्यान करनेको कहा था। तभीसे पारिजातके सैंकड़ों अंश पृथ्वीतलमें उत्पन्न हुए और वे आज भी इस धरतीतलमें विद्यमान हैं। इसके समान रामचन्द्रजीको प्रसन्न करनेवाला कोई दूसरा फूल नहीं है ॥ ७५ ॥ ७६ ॥ कल्पवृक्षके अंशसे पीपल वृक्षकी भी उत्पत्ति हुई है। उसकी आराधना करनेसे सब प्रकारको कामना पूर्ण होती है ॥ ७७ ॥ अन्य युगोंमें पुण्य अधिक था। इस कारण लोग पीपलके वृक्षकी आराधना करते थे। किन्तु कलियुगमें पापकी अधिकता होनेके कारण लोग उसका पूजन नहीं करना चाहते ॥ ७८ ॥ इति श्रीशतकोटिरामचरितांतर्गते श्रीमदानन्दरामायणे पं० रामतेजपाण्डेयविरचित'ज्योत्स्ना'भाषाटीकासमन्विते राज्यकांडे पूर्वार्द्धे द्वितीयः सर्गः ॥ २ ॥

विष्णुदासने कहा--हे गुरो ! भगवान्के दस अवतारोंमें राम-कृष्ण दो अवतार श्रेष्ठ माने जाते हैं। यह मैंने पहले कई बार सुना है ॥ १ ॥ अब आप हमको यह बतलाइए कि इन दोनों अर्थात् राम और कृष्णमें कौन बड़ा है। जिसको आप श्रेष्ठ बतलायेंगे, मैं सर्वदा उसीका चरित्र सुना करूँगा ॥ २ ॥ श्रीरामदासने कहा--हे विष्णुदास ! तुमने ठीक प्रश्न किया है। सावधान मन होकर सुनो। इन दोनों अवतारोंमें मनुष्यको रामका अवतार ही श्रेष्ठ समझना चाहिए ॥ ३ ॥ इसके लिए एक मनोहर कथा आपसमें दो ब्राह्मणोंके

अयोध्याविषये कश्चिद्द्विजो रामाह्वयस्त्वभूत् । द्वारकायां तथा विप्रः कृष्णाख्योऽभूत्परः सुधीः ॥५॥
चक्रतुः सेवनं चोभौ सर्वदा रामकृष्णयोः । तावेकदा माघमासे प्रयागे मिलितौ द्विजौ ॥ ६ ॥
उभौ स्नात्वा त्रिवेण्यां हि माधवं परिपूज्य च । कथां पौराणिकमुखाच्छ्रोतुं तत्पुरतः स्थितौ ॥ ७ ॥
शुश्रुवतुः कथास्तत्र प्रसंगाद्राघवस्य च । रामाख्यो रामभक्तः स श्रुत्वा राघवसत्कथाम् ॥ ८ ॥
तुष्टस्तं पूजयामास मुदा पौराणिकं तदा । कृष्णाख्यः क्रोधसंयुक्तस्तदा वचनमब्रवीत् ॥ ९ ॥
किं क्लेशिनोऽद्य रामस्य कथां श्रुत्वाऽतिहर्षितः ।
पूजितोऽपि वृथा व्यासस्त्वं मूढोऽसीति वेद्म्यहम् ॥१०॥
नान्यच्चरित्रं कस्यापि पावनं श्रुतितोषदम् । यथा कृष्णस्य मे रम्यं नानाक्रीडापुरःसरम् ॥११॥
तत्कृष्णवचनं श्रुत्वा रामाख्यः प्राह सस्मितः ।

रामोपासक उवाच

रामः क्लेशी कथं प्रोक्तस्त्वया कृष्णः कथं सुखी ॥१२॥
कथं कृष्णस्य ते रम्यं चरितं दुरितापहम् । कथं रामस्य मे रम्यं चरितं नेरितं त्वया ॥१३॥
वदाद्य विस्तरेणैव शृण्वंत्वेते सभासदः ।

कृष्णोपासक उवाच

सम्यक् पृष्टं त्वया राम सावधानमनाः शृणु ॥१४॥
वदामि राघवस्याथ कृष्णस्य चरितं त्वहम् । क्लेशदं तोषदं नृणां शृण्वंत्वेते सभासदः ॥१५॥
तव रामस्य जन्मादौ जातः शापः पितुः पुरा । शापस्यादावपि पुरा तद्धेतो रावणेन हि ॥१६॥
लंकां तत्पितरौ नीतौ प्रारंभे दुःखमीदृशम् । मम कृष्णस्य जन्मादौ तत्पित्रोः सौख्यदायकैः ॥१७॥
विवाहमंगलैः कंसः पूजयामास सादरम् ।

विवादरूपमें कही गयी थी । वह कथा परम पुण्यदायिनी है, उसे सुनो ॥ ४ ॥ एक समय अयोध्यामें राम नामका एक ब्राह्मण रहा करता था। उसी तरह द्वारकापुरीमें कृष्ण नामका विद्वान् विप्र रहता था ॥ ५ ॥ वे दोनों सदा राम और कृष्णकी उपासना किया करते थे। एक समय माघ महीनेमें त्रिवेणीके तटपर उन दोनोंकी भेंट हुई ॥ ६ ॥ उन्होंने त्रिवेणीमें स्नान किया और वेणीमाधवकी पूजा करके किसी करके एक पौराणिकके पास कथा सुननेकी इच्छासे जा बैठे ॥ ७ ॥ दोनों कथा सुन रहे थे। उसमें कहीं रामका प्रसंग आ गया। उसे सुनकर वह राम नामवाला ब्राह्मण वहुत प्रसन्न हुआ और हर्षपूर्वक पौराणिककी भली भाँति पूजा की। इससे कृष्ण नामवाला ब्राह्मण मारे क्रोधके लाल हो गया और कहने लगा–जगत्को कष्ट देनेवाले रामकी कथा सुननेसे तुम्हें क्या लाभ हुआ, जो तुम इतने प्रसन्न हो और तुमने व्यासकी ऐसी पूजा की। मेरी समझमें तो यही आता है कि तुम बड़े मूर्ख हो ॥ ८-१० ॥ मुझे तो और किसीका चरित्र इतना सुन्दर नहीं लगता, जितना श्रीकृष्णका। क्योंकि उस चरित्रमें त्रिविध प्रकारकी लीलाएँ भरी हुई हैं ॥ ११ ॥ कृष्ण नामक ब्राह्मणकी यह बात सुनकर रामोपासक मुसकाता हुआ कहने लगा कि तुमने रामचन्द्रको कैसे दुःखी बतलाया और कृष्णको सुखी ॥ १२ ॥ तुमने कृष्णचरित्रको कैसे पापनाशक बतलाया और रामचन्द्रजीका नाम लेना भी पसन्द नहीं किया। तुम इसे विस्तारपूर्वक कहो। जिससे ये सभासद भी सुनें। कृष्णोपासकने कहा–हे राम ! तुमने वहुत ठीक प्रश्न किया है। अब सावधान होकर सुनो ॥ १३ ॥ १४ ॥ मैं रामचन्द्र तथा कृष्णचन्द्र इन दोनोंका चरित्र सुनाता हूँ। उनमें रामचरित्र कैसा क्लेशप्रद और कृष्णचरित्र कितना सुखकर है, सो सब सभासद सुनते जायँ ॥ १५ ॥ तुम्हारे रामके जन्मके पहले ही उनके पिताको श्रवणके पिताका शाप मिल चुका था। उसके भी पहले उनके माता-पिताको रावण अपनी लंकामें उठा ले गया था। इस प्रकार रामके जन्मके पहले उनके माता-पिताको

रामोपासक उवाच

रे रे शृणु त्वं दुर्बुद्धे न स शापो वरोऽर्पितः ॥१८॥
यत्प्रसादादपुत्रस्य नृपस्य तनयस्त्वभूत् । तथा मद्रामभीत्या तौ नीतावपि विसर्जितौ ॥१९।
दशास्येन तत्पितरौ जन्मादौ पौरुषं त्विदम् । तव कृष्णस्य जन्मादौ पित्रोः कारागृहस्थितिः ॥२०॥
राजभोगनिषेधार्थं शापो यदुकुलाय च । जन्मापि बदिशालायां वियोगश्च तयोरपि ॥२१॥
सहोदरवधश्चापि तद्धेतोर्मातुलेन हि । न बाहुजश्च वैश्यश्च यस्य तातावुभौ स्मृतौ ॥२२॥
गोरक्षकस्य तनयः प्रवासः शैशवेऽपि च ।
परेण पोषितश्चापि कनीयान् बलभद्रतः । एवं नानाविधं दुःखं तव कृष्णस्य नो सुखम् ॥२३॥

कृष्णोपासक उवाच

आत्मार्थं तव रामेण ताटिका स्त्री विदारिता । नार्यां विमोचितो बाणः पित्रोः खेदो वियोगतः ॥२४॥

रामोपासक उवाच

द्विजघ्ना निहता दुष्टा मम रामेण ताटिका । मुनियज्ञरक्षणार्थं मुदा राज्ञाऽर्पितौ शिशू ॥२५॥
तव कृष्णेन रक्षार्थमात्मनः पूतना हता । तथाऽऽत्मार्थं प्राणिहिंसा बहु तेन कृता व्रजे ॥२६॥
गोपैश्च सङ्गतिस्तस्य तथैव गोपरक्षणम् । गोवधः सर्पघातश्च खगवाजिवधस्तथा ॥२७॥
रासभवृषघातश्च चौर्यं द्यूतं वनेऽटनम् । कंबलावरणं शीतपर्जन्योष्णप्रपीडनम् ॥२८॥
क्षुत्तृड्भ्यां पीडनं नित्यं गोपालोच्छिष्टसेवनम् । आत्मार्थं याचितं चान्नं द्विजस्त्रीभ्यो वने मुहुः ॥२९॥
इन्द्रध्वजपूजनादिवृद्धाचारप्रलोपनम् । परस्त्रीगमनं ज्येष्ठनारीभिः क्रीडनं चिरम् ॥३०॥

कितना क्लेश हुआ । इसके विपरीत हमारे कृष्णके जन्मके पहले कंसने उनके माता-पिताको वैवाहिक तथा मङ्गलमयी सामग्रियोंसे पूजा की थी । रामोपासकने कहा—अरे दुर्बुद्धे ! वह रामचन्द्रके पिताको शाप नहीं, बल्कि वरदान मिला था । जिसके प्रसादस्वरूप निपूते महाराज दशरथके घरमें रामचन्द्रादि चारों भाइयोंका जन्म हुआ और हमारे रामचन्द्रजीके डरसे ही रावण उनके माता-पिताको ले जाकर भी अयोध्यामें लौटा गया था ॥ १६–१९ ॥ जन्मके पहले ही मेरे रामचन्द्रजीमें इतना पौरुष था । तुम्हारे कृष्णके जन्मके प्रथम ही उनके माता-पिता कारागारमें बन्द थे । दूसरे यदुकुलको राजभोगनिषेधके निमित्त पहले ही शाप प्राप्त हो चुका था। उनका जन्म भी हुआ तो जेलखानेमें और वहाँ थोड़ी ही देरमें माता-पितासे वियोग हो गया। कृष्णके कितने ही सगे भाई मामाके द्वारा पहले ही मार डाले गये । उनको जो कृत्रिम माता-पिता मिले भी, वे न तो क्षत्रिय थे और न वैश्य ॥ २०–२२ ॥ तुम्हारे कृष्ण एक ग्वालेके लड़के बने । इस प्रकार वे शैशवास्थामें ही प्रवासी हो गये । औरोंने उनकी रक्षा की और तुम्हारे कृष्ण बलरामसे छोटे थे । इसीलिए कृष्णको अनेक प्रकार-का दुःख मिला, सुख कुछ भी नहीं ॥ २३ ॥ कृष्णोपासक बोला—अपनी रक्षा करनेके लिए तुम्हारे रामने ताड़का नामवाली एक स्त्रीका वध किया और रामके वियोगसे उनके माता-पिताको महान् क्लेश हुआ ॥२४॥ रामोपासकने कहा—हमारे रामने ब्राह्मणोंकी हत्या करनेवाली स्त्री ताड़काको मारा था और विश्वामित्रकी यज्ञरक्षाके लिए उन्हें पिता दशरथने प्रसन्नतापूर्वक मुनिके साथ भेजा था॥२५॥ किन्तु तुम्हारे कृष्णने अपने लिए पूतनाको मारा था । इसी प्रकार उन्होंने आत्मरक्षाके लिए व्रजमें और भी बहुत-सी प्राणिहिंसाएँ की थीं ॥२६॥ गोप-ग्वालोंका साथ था और वे गोपोंकी ही रक्षा करते थे । उन्होंने गौ (धेनुकासुर), पक्षी (बकासुर), वाजि (केशी), रासभ तथा वृष आदिको मारा, चोरी की, जुआ खेले और वनोंमें इधर-उधर घूमते रहे । शीत, वर्षा तथा आतपसे बचनेके लिए अपने ऊपर केवल एक कम्बल डाले रहते थे ॥ २६–२८ ॥ भूख-प्याससे दुखी होकर ग्वालोंका जूठन खाते थे । अपने लिए उन्होंने वनमें ब्राह्मणोंकी स्त्रियोंसे बार-बार अन्न माँगा ॥ २९ ॥ इन्द्रध्वज-पूजन आदि वृद्धोंकी कुलपरम्परासे चलनेवाली प्रथाका उन्होंने लोप किया । वे परस्त्रियोंके साथ घूमते

नग्नस्त्रीदर्शनं वह्निप्राशनं दामबन्धनम् । उन्मूलनं च यमयोर्मृत्पर्युषितसेवनम् ॥३१॥
रोदनं नवनीतार्थे मुहुर्मात्रा प्रताडनम् । गोगोपिकासु चास्नेहः पूर्वस्थलविसर्जनम् ॥३२॥
कृता रजकहत्या च युद्धं क्षत्रियवत् कृतम् । गजहत्या मल्लहत्या युद्धं मातुलमर्दनम् ॥३३॥
नैष्ठुर्यमाप्तवर्गेषु राज्यप्राप्तिस्तथैव च । नृपाज्ञावर्तनं चापि क्रीडा दास्या कुरूपया ॥३४॥
युद्धात्पराजयश्चापि रिपवे पृष्ठदर्शनम् । गिरौ दग्धः परैर्ज्ञातः स्वीयस्थलविमोचनम् ॥३५॥
अब्धितीरनिवासश्च बलात्स्त्रीहरणं कृतम् । भौमासुरपरद्रव्यहरणं परस्तुतः ॥३६॥
स्वीयगोत्रवधार्थं हि पांडुजायोपदेशितम् । शनैः स्तेयावरोपाश्च वृक्षार्थं सङ्गरः सुरैः ॥३७॥

कृष्णोपासक उवाच

किं त्वं जल्पसि शृण्वद्य तव रामस्य कामिनः । कस्य सा दुहिता ब्रूहि कृतः स वर्णसङ्करः ॥३८॥
शिवचापस्य भंगेन शिवस्याप्यपराधितम् । जामदग्न्यमानभङ्गकरणं मुद्गलस्य च ॥३९॥
आज्ञां विना लक्ष्मणेन तद्वल्ल्यस्त्रोटिताः शुभाः । सदारण्यचरः स्वार्थं पशुहिंसापरायणः ॥४०॥
वनाश्रमी वन्यजीवी मांसाहारी धनुर्धरः । व्याधकर्मरतः शीतपर्जन्योष्णप्रपीडितः ॥४१॥
पादगामी चर्मवासा जटावल्कलवान्नखी । श्मश्रुधारी तरुच्छायाश्रयी पात्रविवर्जितः ॥४२॥
राक्षसेन हृता पत्नी तव रामस्य कानने । पत्न्यर्थं हि कृतः शोकस्तथा दास्या प्रपूजितः ॥४३॥

रामोपासक उवाच

रामेण मोचिता पत्नी कृता छायामयी पुरा । न सा दासी तु शबरी मुनिसेवनतत्परा ॥४४॥

और अपनेसे बड़ी स्त्रियोंके साथ खेलते फिरते थे । वे नङ्गी नारियोंको देखते थे । उन्होंने मिट्टी खायी और कितने ही बार तो लोगोंके जूठन तक खाये थे । रस्सीसे बाँधे गये तो यमल-अर्जुन नामक दो वृक्षोंको उखाड़ डाला ॥ ३० ॥ ३१ ॥ थोड़ेसे माखनके लिए रोने लगते थे और माता यशोदाके द्वारा बार बार पीटे भी गये । अन्तमें अपनेसे अतिशय प्रेम रखनेवाली गोपिकाओंके प्रति निठुराई करके उस पवित्र वृजधामको छोड़ दिया ॥ ३२ ॥ मथुरामें रजककी हत्या की और (ग्वाले होकर) क्षत्रियोंके समान युद्ध किया । उन्होने गजहत्या और मल्लहत्या करके मामाकी भी हत्या की ॥ ३३ ॥ अपनोंके साथ निठुराई करके उन्होंने राज पाया । फिर भी एक दूसरे राजाकी आज्ञामें बँधकर रहे । बादमें एक कुरूप दासीके साथ क्रीड़ा की ॥ ३४ ॥ युद्ध हुआ तो उसमें पराजित होकर शत्रुको पीठ दिखायी और पर्वतपर जाकर छिपे । शत्रुओंने अपनी समझसे उन्हें जला ही दिया था । फिर अपने स्थान मथुराको छोड़कर समुद्रके किनारे जाकर रहने लगे । वहाँ भी बरवस बहुतेरी स्त्रियोंका हरण किया । भौमासुरके द्रव्योंको उन्होंने चुराया ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ अपने भाइयों तथा कुटुम्बियोंको मारनेके लिए पाण्डवोंको उपदेश दिया । लोगोंने उन्हें स्यमन्तक मणिकी चोरी लगायी । एक वृक्षके लिए उन्होंने देवताओंके साथ संग्राम किया ॥ ३७ ॥ कृष्णोपसक बोला—क्या व्यर्थ बकवास करते हो, सुनो । आज मैं तुम्हारे कामी रामकी करनी तुम्हें सुनाता हूँ । बताओ, जिसको उन्होंने अपनी भार्या बनायी थी, वह वर्णसंकर कन्या थी या नहीं ? ॥ ३८ ॥ शिवजीका धनुष तोड़ करके शिवका अपराध किया । परशुरामका मान भङ्ग किया । मुद्गलकी आज्ञाके बिना ही लक्ष्मण द्वारा उन्होंने लतायें तोड़ मँगवाईं । जङ्गलमें इधर-उधर घूमते हुए पेट भरनेके लिए पशुहिंसा करते थे ॥ ३९ ॥ ४० ॥ बहुत दिनों तक वनमें आश्रम बनाकर रहे । वनके फल-मूल तथा मांस खाते और धनुष धारण किये बहेंलियोंका काम करते रहे । सर्वदा बेचारे शीत-आतप तथा मेहके सताये रहते थे ॥ ४१ ॥ पैदल चलते, चमड़ा पहिनते, बड़े-बड़े नख तथा जटा-वल्कल धारण किये रहते थे । बड़ी-बड़ी दाढ़ी-मूँछ रखाये पेड़ोंकी छायामें रहकर समय बिताते थे । उनके पास एक पात्र भी नहीं रहता था कि जिसमें खा-पी सकें ॥ ४२ ॥ वनमें उनकी स्त्रीको एक राक्षस चुरा ले गया । उसके लिए विविध प्रकारका विलाप करते रहे और उनकी पूजा एक दासी शबरीने की ॥ ४३ ॥ रामोपाससकने

जीवन्मुक्ता तत्कृपया मोक्षमाप शुचिव्रता । तव कृष्णस्य ताः पत्नीर्भोक्ष्यंत्यद्यापि शत्रवः ॥४५॥
जित्वाऽर्जुनं बलादेव हृताः पूर्वं सहस्रशः । स्त्रीजितश्च स्त्रिया दत्तः क्रयक्रीतश्च नारदात् ॥४६॥
सर्वासां कामपूर्त्यर्थं निशि निद्राविवर्जितः । बंधुभ्यां गोपिका भुक्ता मातृतुल्या वयोधिकाः ॥४७॥

कृष्णोपासक उवाच

बंधुना तव रामश्च पशुभीत्या न निद्रितः । बंधुपत्न्यर्पिता तारा सुग्रीवाय यथासुखम् ॥४८॥
वानरैश्च कृता मैत्री स्पर्शितं दुन्दुभेः शवम् । निरर्थकं हतो वाली साहाय्यं वानरैः कृतम् ॥४९॥
वानरो यस्य वै यानं वृथा ताला विदारिताः । सागरो रोधितो येन लङ्का सा ज्वालिता वरा ॥५०॥

रामोपासक उवाच

दरिद्रेण सुदाम्ना ते कृष्णेन मैत्रिकी कृता । न ज्ञेया वानरास्तेऽपि सर्वे देवांशरूपिणः ॥५१॥
कापट्येन हतो येन जरासंधो निरर्थकः । साहाय्यं सर्वदा यस्य कृतं गोपैर्व्रजे वने ॥५२॥
गोपालस्य कृतं यानं क्रीडनं सर्वदा वने । ज्वालिता येन सा काशी सुहृद्रुक्मी विरूपितः ॥५३॥
शिवभक्तेन समरः कृतो बाणेन सादरम् । शिवेनापि कृतं युद्धं चैद्येन निंदितो मुहुः ॥५४॥
परैः पौत्रौ जितौ यस्य येन स्त्रीणां परस्परम् । कृता विषमता चात्र पारिजातार्पणादिभिः ॥५५॥

कृष्णोपासक उवाच

तवापि रामपुत्रेण सुहृद्बद्धो रणे जितः । शिवभक्तदशास्येन रामेण समरः कृतः ॥५६॥
द्विजहत्या कृता येन मुनिना निंदितोऽपि यः । तथा मित्रं जितो यस्य बंधुजेन विभीषणः ॥५७॥
परगेहस्थिता पत्नी पुनर्येनाश्रिता सुखम् । नैष्ठुर्यं च कृतं पत्न्यां स्त्रीणां कामा न पूरिताः ॥५८॥

कहा—हमारे रामने अपनी छायामयी पत्नीको राक्षसके हाथसे छुड़ाया था। जिसको तुम दासी कह रहे हो, वह दासी नहीं, बल्कि मुनियोंकी सेवामें तत्पर शबरी थी ॥ ४४ ॥ रामचन्द्रजीकी कृपासे वह जीवन्मुक्त हो गयी और उसे मोक्ष मिल गया। किन्तु तुम्हारे कृष्णकी पत्नियोंको आज भी उनके शत्रुगण भोग रहे हैं ॥ ४५ ॥ कृष्णकी हजारों स्त्रियोंको अर्जुनसे दस्युलोग छीन ले गये थे। कृष्ण पूरे स्त्रैण थे। उनकी एक स्त्रीने तो उन्हें दान दे दिया था और बादमें उसी सत्यभामाने नारदसे उन्हें खरीदा ॥ ४६ ॥ सब स्त्रियोंकी कामपूर्तिके लिए उन्हें रात-रात भर जागना पड़ता था। दोनों भाइयोंने उन बड़ी स्त्रियोंके साथ क्रीड़ा की थी, जो माताके समान थीं ॥४७॥ कृष्णोपासकने कहा—तुम्हारे राम पशुओंके भयसे रात रात भर जागा करते थे। बड़े भाईकी स्त्री ताराको रामने बड़ी हँसी-खुशीके साथ सुग्रीवको दे दी थी। वानरोंके साथ उन्होंने मैत्री की और दुन्दुभी नामक राक्षसके शवका स्पर्श किया। वालि बेचारेको बिना किसी अपराधके मार डाला। वानरोंने उनकी सहायता की ॥ ४८ ॥ ४९ ॥ वानर ही उनकी सवारीका काम देते थे। बिना किसी प्रयोजनके उन्होंने सात ताल वृक्षोंको काटकर गिरा दिया। सागरमें पुल बनाया और सोनेकी सुन्दर लङ्कापुरी जलवा दी ॥५०॥ रामोपासक बोला-तुम्हारे कृष्णने एक दरिद्र ब्राह्मण सुदामाके साथ मित्रता की थी। जिन्हें तुम वानर कह रहे हो, वे वानर नहीं, बल्कि वानरका शरीर धारण करके सब देवता रामकी सेवाको आये थे ॥ ५१ ॥ तुम्हारे कृष्णने कपट करके व्यर्थ जरासंधका वध करवाया था। वनमें सदा गोपगण उनकी सहायता करते रहते थे ॥ ५२ ॥ उन्होंने गोपोंको अपनी सवारी बनायी और सदा वनमें इधर-उधर खेलते रहे। उन्होंने काशी नगरीको जलवा डाला और अपने सगे साले रुक्मीको कुरूप कर दिया ॥ ५३ ॥ शिवभक्त बाणासुरके साथ उन्होंने युद्ध किया और स्वयं शिवको भी उनके साथ युद्ध करना पड़ा। शिशुपालने उनकी खूब निन्दा की ॥ ५४ ॥ शत्रुओंने उनके पौत्रको जीतकर अपने वशमें कर लिया और पारिजातादिको देते समय अपनी स्त्रियोंमें भी उन्होंने भेदभाव किया ॥ ५५ ॥ कृष्णोपासकने कहा—तुम्हारे रामके बेटेने भी तो अपने ससुरको बाँध लिया और रामने शिवभक्त रावणके साथ युद्ध किया था ॥ ५६ ॥ उन्होंने ब्रह्महत्या तक कर डाली और मुनि अगस्त्यने उनकी अच्छी तरह निन्दा की। अपना काम बनानेके लिए रामने रावणके भाई विभीषणको फोड़कर मित्र

यानारूढा कृता यात्रा वेश्याः स्पृष्टास्तथा रहः। पतिव्रतायां सीतायां दोषारोपः कृतोऽपि च ॥५९॥
पुत्रं हंतुं कृता चाज्ञा शूद्रसिंहवधौ कृतौ। पत्नीसक्ताऽऽश्रिता येन यस्याज्ञा पालिता नृपैः॥६०॥

रामोपासक उवाच

अंते कृष्णस्य ते शापाद्वंशच्छेदो ह्यभूद्द्विज। अब्धिना लोपिता यस्य नगरी द्वारका शुभा ॥६१॥
स्वगोत्रस्य वधस्त्वंते मद्यपानादि यत्कुले। दर्शनं ह्यर्जुनायान्ते येन मित्राय नार्पितम् ॥६२॥
स्वस्थानं गमनं येन कृतमेकाकिना तथा। स क्षतोऽपि कृतस्त्वन्ते व्याधेनाल्पेन पत्रिणा ॥६३॥

कृष्णोपासक उवाच

तव रामेण समरः पुत्रेणापि कृतो महान्। तथा सीता मया त्यक्ता चेति लोकं प्रतार्य च ॥६४॥
वाल्मीकेराश्रमं गत्वा दृष्टौ सीतासुतौ रहः। पिण्याकेन तथेङ्गुद्या पिंडदानादिकं कृतम् ॥६५॥
दंडके तव रामेण स्वपित्रे भ्रमताऽर्पितम्। तथैरावणभुक्तायाः स्पृष्टः स मञ्चकः स्थले ॥६६॥
तथाऽश्वत्थच्छेदनार्थं महान् यज्ञः कृतो मुहुः। स्वमंत्रिणश्च शेषायुःपूर्त्यर्थं सङ्गरोऽपि च ॥६७॥
कारितो यमराजेन पूर्वजेन लवादिभिः। पुष्पास्वादनमात्रादिपत्न्याः शिक्षा तथा कृता ॥६८॥
मम कृष्णेन बालत्वे लीलया पूतना हता। हतास्तृणासुराद्याश्च धृतोऽङ्गुल्या गिरिस्तथा ॥६९॥

रामोपासक उवाच

मम रामेण बालत्वे लीलया ताटिका हता। मारीचाद्या हताश्चापि पर्वतास्तारिता जले ॥७०॥

कृष्णोपासक उवाच

मम कृष्णस्वरूपेण गोपिका मोहिता व्रजे। मोहिता राधिका श्रेष्ठा मदनस्यापि मोहिनी ॥७१॥

रामोपासक उवाच

मम रामेण देवाना मोहिताः स्वीयरूपतः। देवपत्न्यो रहो रात्रौ मातृतुल्या विचिंतिताः ॥७२॥

बनाया ॥ ५७ ॥ दूसरेके घरमें रही हुई स्त्रीको लाकर घरमें रख लिया। फिर उसी स्त्रीके साथ निठुराई की। बहुत-सी स्त्रियाँ कामयाञ्चाके लिये पहुँचीं, किन्तु उनकी कामना उन्होंने पूर्ण नहीं की ॥५८॥ सवारीपर चलकर तीर्थयात्रा की। एकान्तमें वेश्यागमन करके पतिव्रता सीतापर झुठमूठका दोषारोप किया ॥ ५९ ॥ उन्होंने अपने पुत्र लव तकको मारनेकी आज्ञा दे दी और शम्बुक शूद्र तथा सिंहका वध किया ॥ ६० ॥ रामोपासकने कहा—हे द्विज ! अन्तमें तुम्हारे कृष्णका ब्राह्मणके शापसे वंश नष्ट हुआ था। उनकी द्वारिका-पुरीको समुद्रने लय कर लिया ॥ ६१ ॥ उन्होंने मद्यपान करवाकर अपने कुटुम्बियोंका बध किया। अन्तिम समयमें अपने अतिप्रिय मित्र अर्जुनको भी दर्शन नहीं दिया ॥ ६२ ॥ उन्होंने अकेले ही यहाँसे गोलोककी यात्रा की। एक बहेलियेके साधारण बाण द्वारा उन्होंने अपना अन्त किया ॥ ६३ ॥ कृष्णोपासक बोला—तुम्हारे रामने अपने पुत्रके साथ महान् संग्राम किया था। "मैने सीताका परित्याग कर दिया है" ऐसा संसारको दिखलाते हुए भी वाल्मीकिके आश्रमपर जाकर चुपकेसे सीताको और अपने बेटेको देख आये। पिण्याक और इंगुदीके फलसे अपने पिताको पिण्डदान दिया ॥ ६४ ॥ ६५ ॥ जब दण्डकारण्यमें इधर-उधर घूम रहे थे, तब भी इन्हीं फलोंसे पिताका श्राद्ध किया था। ऐरावत द्वारा भोगे हुए मंचको उठाकर पृथ्वीतलमें ले आये ॥ ६६ ॥ अश्वत्थ काटनेके अपराधपर रामने एक महायज्ञ किया। मन्त्रियोंको शेष आयुकी पूर्तिके निमित्त अपने बड़े बेटेको यमराजसे लड़ा दिया और केवल फूल सूँघ लेनेसे स्त्रियोंको भी उन्होंने दण्ड दिया ॥ ६७ ॥ ६८ ॥ हमारे कृष्णने बाल्यकालमें खेल-खेलमें ही पूतनाको मार डाला। तृणासुर आदि दैत्योंको मारकर गोवर्धन गिरिको उँगलियोंपर उठा लिया ॥ ६९ ॥ रामोपासकने कहा—हमारे रामने बाल्यकालके समय खेल-खेलमें ताड़का तथा मारीचादि कितने ही राक्षसोंको मार डाला और पानीमें पत्थर तैराया ॥ ७० ॥ कृष्णोपासक बोला—हमारे प्रभु कृष्णने अपने सुन्दर रूपसे

ताः कृतार्थाः स्ववराद्यतो जातास्तु गोपिकाः । तांबूलोच्छिष्टस्वरसं दासी रामस्य भक्तितः ॥७३॥
पीत्वा यस्यैव वरतो व्रजे सा राधिका ह्यभूत् । अतो मे राघवो धन्यो यस्यैका दयिताऽत्र हि ॥७४॥

कृष्णोपासक उवाच

मम कृष्णेन पत्न्यश्च सहस्राणि हि षोडश । साष्टोत्तरशतान्यत्रोद्वाहिताश्च विधानतः ॥७५॥

रामोपासक उवाच

मम रामस्वरूपेण सर्वास्ता मोहिताः स्त्रियः । मातृवन्मोहितास्तेन वीरेण पुरुषार्थिना ॥७६॥
कृष्णेन रतिकामेन मोहिता गोपिकाः स्त्रियः ।

कृष्णोपासक उवाच

गजेन्द्रो मम कृष्णेन लीलया निहतो द्विज ॥७७॥

रामोपासक उवाच

मम रामेण नागेंद्ररिपुरष्टापदो हतः ।

कृष्णोपासक उवाच

मम कृष्णप्रतापेन यमुना खंडिता त्वभूत् ॥७८॥

रामोपासक उवाच

मम रामप्रतापेन खंडिता जाह्नवी त्वभूत् ।

कृष्णोपासक उवाच

मम कृष्णेन वै स्वर्गादानीतः सुरपादपः ॥७९॥

रामोपासक उवाच

मम रामेण स्वर्गादानीतौ सुरपादपौ ।

कृष्णोपासक उवाच

मम कृष्णेन स्वगुरोर्मातुश्चापि सुता मृताः ॥८०॥
सुजीविताः समानीताः सप्त ताभ्यां निवेदिताः ।

व्रजकी समस्त गोपियोंको मोहित कर लिया और राधानामवाली उस सुन्दरीको मुग्ध कर लिया था, जो अपने असाधारण सौन्दर्यसे कामदेवको भी लजाती थी ॥ ७१ ॥ रामोपासकने कहा—हमारे रामने अपने सौन्दर्यसे देवपत्नियोंको मोहित किया था। वे सब रात्रिके समय एकांतमें रामके पास पहुँचीं। किंतु उन्हें रामने अपनी माताके समान माना और वरदान देकर कृतार्थ किया। वे ही जन्मान्तरमें गोपिकायें हुईं। उस समय रामचन्द्रके मुखसे ताम्बूलके निकाले हुए पीगको पीनेवाली दासी दूसरे जन्ममें राधा हुई। इससे मेरे रामचन्द्र धन्य हैं। क्योंकि वे एकपत्नीव्रतधारी हैं ॥ ७२–७४ ॥ कृष्णोपासकने कहा—हमारे कृष्णचन्द्रजीने सोलह हजार एक सौ आठ स्त्रियोंके साथ विधिवत् विवाह किया था ॥ ७५ ॥ रामोपासकने उत्तर दिया कि हमारे रामचन्द्रजीने अपनी सुन्दरतासे संसारकी समस्त नारियोंको मोह लिया था, किन्तु स्त्रीके भावसे नहीं—अपितु माताके भावसे। क्योंकि हमारे राम वीर और पुरुषार्थी थे ॥ ७६ ॥ कृष्णने गोपोंकी नारियोंपर मोहिनी डाली थी अपनी कामवासनाकी पूर्तिके लिए। कृष्णोपासकने कहा—हे द्विज! हमारे कृष्णने खेल खेलमें कुवलयापीड हाथीको मार डाला था ॥ ७७ ॥ रामोपासक बोला—मेरे रामने अष्टापद नामक राक्षसको खेल-खेलमें मार डाला था। कृष्णोपासकने कहा—मेरे कृष्णने अपने प्रतापसे यमुनाकी धारा खण्डित कर दी थी ॥ ७८ ॥ रामोपासकने कहा—मेरे रामके प्रतापसे गंगा खण्डित हो गयी थी। कृष्णोपासकने कहा—हमारे कृष्ण अपने पराक्रमसे कल्पवृक्ष ले आये ॥ ७९ ॥ रामोपासकने कहा—हमारे

रामोपासक उवाच

मम रामेण साकेते सप्त मर्त्याः सुजीविताः ॥८१॥

कृष्णोपासक उवाच

मम कृष्णेन पौरुष्याद्विप्रस्य जीविताः सुताः ।

रामोपासक उवाच

मम रामेण सचिवः सुमंत्रो जीवितः पुनः ॥८२॥

कृष्णोपासक उवाच

मम कृष्णेन द्रौपद्याः संधितं हि फलं तरौ ।

रामोपासक उवाच

मम रामेण वैदेह्याः संधितं तुलसीदलम् ॥८३॥

कृष्णोपासक उवाच

मम कृष्णप्रतापश्च जनान्संदर्शितः पुरा । दुर्वाससाऽन्नयाञ्चा सा गोपिकानां कृता वृजे ॥८४॥

रामोपासक उवाच

मम रामप्रतापश्च जनान् सन्दर्शितः पुरा । दुर्वाससाऽन्नयाञ्चा सा कृता रामस्य तत्पुरि ॥८५॥

कृष्णोपासक उवाच

मम कृष्णेन रूपाणि बहून्यत्र कृतानि हि ।

रामोपासक उवाच

बहूनि राघवेणापि स्वरूपाणि कृतानि हि ॥८६॥

कृष्णोपासक उवाच

मम कृष्णेन मित्राय दत्तं स्वर्णमयं पुरम् ।

रामोपासक उवाच

मम रामेण मित्राय दत्ता स्वर्णमयी पुरी ॥८७॥

कृष्णोपासक उवाच

सूर्यग्रहे कुरुक्षेत्रे स्नानं कृष्णेन मे कृतम् ।

रामचन्द्रजीने अयोध्यामें बैठे-बैठे स्वर्गसे कल्पवृक्ष तथा पारिजातको मँगा लिया था । कृष्णोपासक बोला—हमारे कृष्णजी अपने गुरुजीके मरे हुए सात पुत्रोंको यमपुरीसे लाये और उन्हें जीवित करके अपने गुरुजीको दे दिया था । रामोपासकने कहा—हमारे रामचन्द्रजीने अयोध्यामें मरे हुए सात मनुष्योंको जीवित कर दिया था ॥ ८० ॥ ८१ ॥ कृष्णोपासकने कहा—हमारे कृष्णने द्रौपदीके कथनानुसार विना फलवाले वृक्षमें भी फल लगा दिया था । रामोपासक बोला—हमारे रामने भी सीताके कहनेपर तुलसीदलके दो टुकड़ोंको जोड़ दिया था ॥ ८२ ॥ ८३ ॥ कृष्णोपासक कहने लगा—हमारे श्रीकृष्णजीने जंगलमें दुर्वासाके अन्न माँगनेपर उनकी माँग पूरी की थी ॥ ८४ ॥ रामोपासक बोला—हमारे रामने भी अयोध्यामें दुर्वासाके अन्न माँगनेपर उनकी इच्छा पूर्ण की थी । इससे हमारे रामका प्रताप सब संसार देख चुका है ॥ ८५ ॥ कृष्णोपासक बोला—हमारे कृष्णने अनेक रूप धारण किये थे । रामोपासकने कहा—हमारे राम भी लंकासे लौटकर अयोध्या आनेपर अनेक रूप धारण करके सबसे एक साथ मिले थे । कृष्णोपासक बोला—श्रीकृष्णने अपने मित्र सुदामाको सुवर्णकी नगरी दे डाली थी । रामोपासकने कहा कि हमारे रामने भी अपने मित्र विभीषणको सोनेकी लंका दे दी थी ॥ ८६ ॥ ८७ ॥ कृष्णोपासक बोला—हमारे कृष्णने सूर्यग्रहणपर कुरुक्षेत्रमें जाकर स्नान किया था । रामो-

रामोपासक उवाच

सूर्यग्रहे कुरुक्षेत्रे रामेणाप्यत्रगाहितम् ॥८८॥

मे रामस्य वचश्चैकं सत्यमेव च नान्यथा। ते कृष्णस्य ह्यनेकानि वचनान्यनृतानि हि ॥८९॥
रामस्य मे शरस्त्वेकः शत्रुनिर्दलनक्षमः। त्रिफलास्तव कृष्णस्य बहवोऽरिषु मार्गणाः ॥९०॥
एका स्त्री मम रामस्य ते कृष्णस्य बहुस्त्रियः। पत्न्याःशय्यां विना नान्या शय्या रामस्य वै मम॥९१॥
स्त्रीणां शय्यां विना बह्वीः शय्याः कृष्णस्य ते द्विज। रामस्थितिर्मध्यदेशे साकेते सरयूतटे ॥९२॥
अब्धेस्तटे पश्चिमे ते स्थितिः कृष्णस्य वै तव। बंधुत्रयं मे रामस्य कृष्णस्यैकोऽग्रजस्तव ॥९३॥
गौमणिः पुष्पकं वृक्षौ कटके मुनिनाऽर्पिते। ऐरावतकुलोद्भूतचतुर्दन्तो गजोऽपि च ॥९४॥
एतानि मम रामस्य नव रत्नानि संति हि। मणिद्वयं पारिजातस्त्वित्ति रत्नत्रयं तव ॥९५॥
कृष्णस्य संति भो विप्र त्वं तं स्तौषि कथं वृथा। सप्तद्वीपेश्वरो रामो मम पृथ्वीशवंदितः ॥९६॥
ईशत्वं जगदीशत्वं ममैव द्वयं स्मृतम्। अतो न मम रामेण तुल्यं कृष्णं विचिंतय ॥९७॥
यस्य चापं हि कोदण्ड यस्याक्षय्याः पतत्रिणः। विप्रेष्टपूरणं यस्य व्रतं नित्यं द्विजोत्तम ॥९८॥
यस्य सिंहासनं छत्रं व्यजनं चामरद्वयम्। यस्य यान पुष्पकं तत्सुपुत्रौ तौ पितुः समौ ॥९९॥
अद्यापि पाल्यते यस्य दत्तं दानं द्विजोत्तमान्। रामनाथपुरस्यैव राज्यं रामस्य मे नृपैः ॥१००॥
तव कृष्णेन किं दत्तं वद यद्वर्ततेऽधुना। करोत्यहर्निशं शंभुश्चापि मे रामचिंतनम् ॥१०१॥
तारकं मे रामनाम काश्यां शंभुर्जनान्सदा। मृत्यून्मुखांस्तारणार्थं द्विजोपदिशति स्वयम् ॥१०२॥
अतएव जनाँश्चापि सर्वत्र मरणोन्मुखान्। स्वीयान्मुहुः शिक्षयंति ध्येयो रामोऽधुना त्विति ॥१०३॥
तथा प्राणिविमोक्षार्थं सदा तच्छववाहकैः। रामरामेति रामेति नाम भूम्यामुदीर्यते ॥१०४॥
यन्नाममहिमा चोक्तं तं स्तौम्यधुना मुहुः। वाल्मीकिनाऽप्यत एव पूर्वं तच्चरितं कृतम् ॥१०५॥

पासकने कहा कि हमारे रामने भी तो कुरुक्षेत्रमें स्नान किया था ॥ ८८ ॥ मेरे राम सदा सत्य बचन बोलते थे, किन्तु तुम्हारे कृष्णकी बहुत-सी बातें झूठी हो गयी थीं ॥ ८९ ॥ मेरे रामका एक वाण शत्रुको मारनेके लिए पर्याप्त होता है, किन्तु तुम्हारे कृष्णके न जाने कितने वाण विफल हो चुके है ॥ ९० ॥ हमारे रामकी केवल एक स्त्री सीता है और तुम्हारे कृष्णकी बहुत सी स्त्रियां हैं। पत्नीकी शय्याके अतिरिक्त हमारे रामकी कोई और शय्या नहीं है, लेकिन तुम्हारे कृष्णकी बहुत-सी ऐसी शय्यायें हैं, जो बिना स्त्रीके हैं। हमारे राम सरयूके तटपर अयोध्यामें रहते हैं ॥ ९१ ॥ ९२ ॥ इसके विपरीत तुम्हारे कृष्ण पश्चिमी समुद्रके किनारे रहते हैं। मेरे रामके तीन भाई हैं और तुम्हारे कृष्णके केवल एक भाई है ॥ ९३ ॥ हमारे रामके पास कामधेनु गौ, मणि, पुष्पक, कल्पवृक्ष, पारिजात, मुनि अगस्त्य द्वारा दिये हुए दो कङ्कण, ऐरावत वंशमें उत्पन्न चतुर्दन्त हाथी ये नौ रत्न सदा विद्यमान रहते हैं। हे विप्र ! तुम्हारे कृष्णके पास दो मणि तथा परिजात बस ये ही तीन रत्न हैं ॥ ९४ ॥ ९५ ॥ तब नाहक ऐसे कृष्णकी क्यों व्यर्थ स्तुति करते हो ? रामचन्द्रजी सात द्वीपोंके स्वामी एवं राजाओंसे भी वन्दित हैं ॥ ९६ ॥ राम ईश भी हैं और जगदीश भी, उनमें दोनों विशेषतायें हैं। तब मेरे रामके बराबर कृष्णको मत मानो। उनके पास धनुष है और अक्षय सायक हैं। वे ब्राह्मणोंकी इच्छा पूर्ण करनेको सदा तत्पर रहते हैं ॥ ९७ ॥ ९८ ॥ जिनके पास सिंहासन है, दो चमर एवं छत्र हैं, जिनके पुष्पक विमानकी सवारी है और पिताके सदृश गुणवाले दो बेटे हैं। जिनका दान दिया हुआ रामनाथपुर आज भी विद्यमान है। तुम्हीं बताओ कि तुम्हारे कृष्णने क्या चीज दानमें दी है, जो आजतक विद्यमान है। साक्षात् शिवजी भी सदा मेरे रामका भजन करते हैं ॥ ९९-१०१ ॥ काशीमें मरणोन्मुख प्राणियोंको शिवजी घूम-घूमकर रामतारक मंत्र सुनाया करते हैं। इसीलिए संसारके लोग मरते समय कहते हैं—"रामका ध्यान करो भैया, रामका भजन करो" ॥१०२॥१०३॥ मृत प्राणीकी मोक्षप्राप्तिके निमित्त ही शवको उठानेवाले लोग भी रामनामका उच्चारण करते चलते हैं ॥ १०४ ॥ जिनके नामकी ऐसी महिमा है, मैं उन रामकी स्तुति करता हूं। इसीलिए

शतकोटिमितं श्रेष्ठं यस्मिन् रामायणे द्विज । कृष्णादीनां चरित्राणि संति ह्यंतर्गतानि हि ॥१०६॥

श्रीरामदास उवाच

एवं तयोर्विवदतोर्द्विजयोश्च परस्परम् । बभूवाकाशजा वाणी तां तौ सर्वे च शुश्रुवुः ॥१०७॥
रामस्याग्रे स्तुतिः केषामपि कर्तुं घटेत न । इति तां खेचरीं वाणीं श्रुत्वा सर्वे सभासदः ॥१०८॥
चक्रुर्जयस्वनान्हस्तैर्वादयंति स्म तालिकाः । तं रामोपासकं सर्वे ववर्षुः पुष्पवृष्टिभिः ॥१०९॥
निर्जरा अपि ते सर्वे विमानस्था मुदान्विताः । तं रामोपासकं प्रीत्या ववर्षुः पुष्पवृष्टिभिः ॥११०॥
तदा कृष्णोपासकः स लज्जया नतमस्तकः । तं रामोपासकं नत्वा प्रार्थयामास वै मुहुः ॥१११॥
तदा रामोपासकोऽपि तं नत्वाऽऽलिंग्य वै दृढम् । उवाच मधुरं वाक्यं शृणु कृष्ण द्विजोत्तम ॥११२॥

न नन्दसूनोः पृथगस्ति रामो न रामतोऽन्यो वसुदेवसूनुः ।
तथाऽप्ययोध्यापुरपालबाले सलक्ष्मणे धावति मे मनीषा ॥११३॥

अतः स्तुतो मया रामः कृष्णस्य निंदनं कृतम् । तवेर्ष्यया द्विजश्रेष्ठ वेद्मि तौ द्वौ समाविति ॥११४॥
राम एवात्र कृष्णश्च कृष्ण एवात्र राघवः । उभयोर्नान्तरं विप्र कौतुकाच्च मयेरितम् ॥११५॥

मानयत्यंतरं यो ना तयोः श्रीरामकृष्णयोः ।

परस्परं स निरये पतिष्यति न संशयः । त्वद्गर्वपरिहारार्थं खेचर्या राघवः स्तुतः ॥११६॥
इत्युक्त्वा सांत्वयित्वा तं रामः कृष्णाह्वयं द्विजम्। तूष्णीं तस्थौ सभामध्ये सभासद्भिः सुपूजितः ११७॥
ततस्तौ माघमासांते स्वं स्वं देशं प्रजग्मतुः । तस्माच्छिष्यावतारेषु न रामसदृशः परः ॥११८॥
अतस्त्वं भज भावेन तस्यैव चरितं शृणु । यदन्यद्वर्णयाम्यग्रे महामंगलकारकम् ॥११९॥

इति श्रीशतकोटिरामचरितांतर्गते श्रीमदानंदरामायणे राज्यकांडे पूर्वार्धे
श्रीरामकृष्णोपासकयोर्विवादो नाम तृतीयः सर्गः ॥ ३ ॥

बहुत दिन पहले वाल्मीकिने रामायण बनाया था ॥ १०५ ॥ जिसकी श्लोकसंख्या सौ करोड़ है और तुम्हारा समस्त कृष्णचरित्र उसमें समा जाता है ॥ १०६ ॥ श्रीरामदासने कहा—जिस समय वे दोनों इस प्रकार परस्पर विवाद कर रहे थे, तभी आकाशवाणी हुई—"रामके आगे स्तुति करनेकी सामर्थ्य किसीमें नहीं है"। उसे उन दोनों तथा अन्य लोगोंने सुना । इस प्रकारकी आकाशवाणी सुनकर वहाँ बैठे हुए समस्त सभासद रामकी जय-जयकार करते हुए तालियाँ बजाने लगे और उस रामोपासकपर पुष्पवृष्टि की ॥ १०७–१०९ ॥ इतना ही नहीं, देवतागण भी विमानोंपर आ-आकर हर्षसे रामोपासकपर फूल बरसाने लगे । तब लज्जासे नतमस्तक होकर कृष्णोपासकने रामोपासकको प्रणाम करके वार-वार विनती की ॥ ११० ॥ १११ ॥ रामोपासकने भी उसे प्रणाम करके छातीसे लगा लिया और कहा—॥ ११२ ॥ हे द्विजोत्तम ! न कृष्णसे पृथक् राम हैं, न राम-से पृथक् कृष्ण हैं। फिर भी अयोध्या नगरीके पालक लक्ष्मणसहित बालरूपधारी रामको ही भजनेकी मेरी इच्छा होती है ॥ ११३ ॥ इसी कारण अभी मैंने रामकी स्तुति की और कृष्णकी निन्दा । यह सब केवल तुम्हारी ईर्ष्यासे कहा-सुनी हुई । नहीं तो वास्तवमें मैं दोनोंको समान समझता हूँ ॥ ११४ ॥ राम ही कृष्ण हैं और कृष्ण ही राम हैं । इन दोनोंमें कोई अन्तर नहीं है । अभी मैंने जो कुछ कहा, वह सब कौतुकमात्र था ॥ ११५ ॥ जो मनुष्य राम और कृष्णमें अन्तर मानता है, उसे नरकगामी होना पड़ेगा । इसमें कोई संशय नहीं है। केवल तुम्हारा गर्व दूर करनेके लिए अभी आकाशवाणीने भी रामकी स्तुति की थी॥ ११६ ॥ ऐसा कह तथा कृष्णनामक द्विजको सान्त्वना देकर सभासदोंसे पूजित होता हुआ राम विप्र सभामें चुपचाप बैठ गया ॥ ११७ ॥ माघमास व्यतीत हो जानेपर वे दोनों अपने-अपने देशको लौट गये । इसीलिये मैं कहता हूँ—हे शिष्य ! समस्त अवतारोंमें रामावतारके सदृश कोई भी अवतार नहीं है ॥ ११८ ॥ अतएव तुम उन रामका भजन करो और उनकी वह कथा सुनो, जो आगे चलकर मैं सुनाऊँगा ॥ ११९ ॥ इति श्रीशतकोटिरामचरितान्तर्गते श्रीमदानन्दरामायणे पं० रामतेजपाण्डेयविरचित'ज्योत्स्ना'भाषाटीकासमन्विते राज्यकाण्डे पूर्वार्द्धे तृतीयः सर्गः ॥ ३ ॥

चतुर्थः सर्गः

(रामका सौ स्त्रियोंको वरदान एवं मूलकासुरोपाख्यान)

श्रीरामदास उवाच

एकदा राघवः शिष्य सभासंस्थो जनैर्वृतः । ददर्श द्राक्षावल्लीनां मंडपे काकमुत्तमम् ॥ १ ॥
उभयोर्नेत्रयोरेकनेत्रमूर्तिसमन्वितम् । अतिदीनं कृशं व्यग्रदृष्टिं दीर्घस्वरं चलन् ॥ २ ॥
मुहुर्मुहुश्च पश्यंतमात्मानं शब्दपूर्वकम् । तं दृष्ट्वा तत्कृपाविष्टः स्मृत्वा क्रोधं पुरा कृतम् ॥ ३ ॥
उवाच काकं श्रीरामः सुखमागच्छ मेऽन्तिकम् । तद्रामवचनं श्रुत्वा द्राक्षावल्ल्याश्च मंडपात् ॥ ४ ॥
शीघ्रमुड्डीय काकस्तु रामाग्रे सदसि स्थितः । रामं पश्यन्दीर्घरवं स चकार मुहुर्मुहुः ॥ ५ ॥
तदा तं राघवः प्राह तत्कृपाविष्टमानसः । नेत्रं विना वरानन्यान् काक याचस्व मां प्रति ॥ ६ ॥
तद्रामवचनं श्रुत्वा काकः प्राहावनीपतिम् कृपावलोकनं राम मय्यस्तु तव सर्वदा ॥ ७ ॥
किं वरैरितरैर्व्यर्थैरिहैव सुखदायकैः । तत्काकवचनं श्रुत्वा रामस्तं वाक्यमब्रवीत् ॥ ८ ॥
द्वीपान्तरेषु यद्वृत्तं भविष्यं भूतमेव च । वर्तमानं च सकलं त्वन्नेत्रविषयेऽस्तु तत् ॥ ९ ॥
भाविकार्याणि सर्वाणि काक त्वं वेत्सि मद्वरात् । जनाः पश्यंतु ते गत्या शकुनांश्च निरंतरम् ॥१०॥
स्थिरत्वे स्थिरकार्याणि गते त्वय्यतिसत्वरम् । भविष्यन्ति हि कार्याणि नराणां शकुनं त्विति॥११॥
पश्यंतु सकला भूमौ जनाः कार्यप्रसिद्धये । ग्रामे गृहप्रवेशे ते वामभागे न चेद्गतिः ॥१२॥
गमने दक्षिणे भागे यदि ते गमनं तदा । लोकानामस्तु शकुनं महामंगलकारकम् ॥१३॥
प्रेतदशाहपिंडाय यदि स्पर्शो भवेन्न ते । साऽस्तु तर्हि गतिस्तेषां प्रेतानां मम वाक्यतः ॥१४॥
अन्तकाले मानवस्य वांछितं नैव पूरितम् । प्रेतदशाहपिंडस्यास्पर्शाज्जानंतु तन्नराः ॥१५॥
प्रेतस्य वंशजः कश्चिद्यद्यत्प्रेतस्य वांछितम् । तत्ते स्पर्शाद्विदित्वा तु स यदा पूरयिष्यति ॥१६॥

श्रीरामदास कहने लगे—हे शिष्य ! एक दिन बहुतेरे मनुष्योंसे घिरे हुए रामचन्द्रजी सभामें बैठे थे। तभी अंगूरकी लताओंमें बैठे एक कौएको देखा कि वह एक ही नेत्रसे दोनों नेत्रोंका काम ले रहा है। कौआ अपनी आकृतिसे अतिदीन, व्यग्रदृष्टि, ऊँचे स्वरवाला और चञ्चल दीखता है ॥ १ ॥ २ ॥ रामचन्द्रजीने देखा कि वह बार-बार मेरी ओर देख रहा है और काँव-काँव करके बोलता भी जाता है। उसकी यह दशा देखकर रामके हृदयमें दया आयी और अपने पहले किये हुए कोपका स्मरण करके कौएसे बोले—हे काक ! यहाँ मेरे पास आओ। यह सुनकर कौआ उस द्राक्षावल्लीसे उड़ा और रामके आगे आकर बैठ गया। सभामें वह रामको देखता हुआ जोर-जोरसे चिल्लाने लगा ॥ ३-५ ॥ रामने कौएसे कहा—तू अपने नेत्रोंके सिवाय जो कुछ भी वर माँगना चाहे, माँग ले ॥ ६ ॥ इस प्रकारकी बातें सुनकर पृथ्वीपति रामसे कौआ कहने लगा-हे राम ! मेरे ऊपर इसी तरह सदा आपकी कृपादृष्टि बनी रहे ॥ ७ ॥ केवल इस लोकमें सुख देनेवाले अन्य वरदानोंको लेकर मैं क्या करूँगा ॥ ८ ॥ कौएकी बात सुनकर रामचन्द्रजीने कहा—किसी द्वीपान्तरमें भी होनेवाला भूत, भविष्य और वर्तमानकी सब बातें तुम्हारी आँखोंके सामने रहेंगी ॥ ९ ॥ होनेवाले अर्थात् भविष्यके सब कार्योंको तुम मेरे वरदानसे जान लोगे। मनुष्य कहीं जाते समय सदा तुम्हारा शकुन देखा करेंगे ॥ १० ॥ जब तुम बैठे रहोगे, तब देखनेवाले पथिकका काम रुक जायगा और तुम चलते रहोगे तो उसका कार्य शीघ्र पूर्ण हो जायगा। इस प्रकार लोग तुम्हारा शकुन देखेंगे ॥ ११ ॥ ग्रामप्रवेश या गृहप्रवेशके समय तुम जिसकी दाहिनी ओरसे निकल जाओगे, वह परम मङ्गलकारक शकुन होगा ॥ १२ ॥ १३ ॥ प्रेतके दशाहपिंडको जब तक तुम नहीं छू लोगे, तब तक उस प्रेतकी सद्गति कदापि नहीं होगी ॥ १४ ॥ यदि प्रेतके दशाहपिंडको नहीं छुओगे तो उसके घरवाले लोग समझेंगे कि अभी प्रेतकी इच्छा पूरी नहीं हुई है। प्रेतका कोई वंशज, तुम जिन-जिन चीजोंको नहीं छुओगे,

तदा पिंडं स्पृशस्व त्वं नोचेन्मा स्पृश सर्वथा । अन्यमेकं वरं दद्मि लिपिमात्रे तु पुस्तके ॥१७॥
यत् किंचिल्लेखकैश्च विस्मृतं तत्र मद्वरात् । कुर्वन्तु पदचिह्नं ते सर्वत्र जगतीतले ॥१८॥
त्वत्पदं पुस्तके दृष्ट्वा जना जानंतु विस्मृतम् । लिखितं पार्श्वभागेषु लेखकैः पुस्तकस्य यत् ॥१९॥
इति दत्त्वा वरान् रामस्तूष्णीमासीत्स्मिताननः । काकोऽपि तुष्टः श्रीरामं नत्वोड्डीय गतस्तदा ॥२०॥
एवं नानाचरित्राणि चकार रघुनन्दनः । एकदा राघवो रात्रौ पारिजाततरोरधः ॥२१॥
निद्रितो हेमपर्यंके जानक्याऽस्पृश्यया विना । एतस्मिन्नंतरे तस्यां रात्रौ ते रामरक्षकाः ॥२२॥
द्वारपाश्चापि दास्यश्च दासाद्याः सकलास्तदा । ययुर्वै कीर्त्तनं श्रोतुं क्वापि रामस्य भक्तितः ॥२३॥
दृष्ट्वा तं समयं वेगात्कामबाणप्रपीडिताः । पौराणां शतनार्यस्ता वस्त्रालंकारभूषिताः ॥२४॥
तारुण्यमदसंभ्रांता हेमकुम्भपयोधराः । चंद्राननाः शुकघ्राणाः कमलांघ्रयो मृगीदृशः ॥२५॥
पीतकौशेयवसना रुक्मनुपूरनिःस्वनाः ।
परस्परं ताः संमंत्र्य प्रथमे वयसि स्थिताः । ययुः सर्वाः पुष्पके श्रीराघवं रहसि स्थितम् ॥२६॥
काचित्तं वीजयामास श्रीरामं व्यजनेन हि । काचिद्दधार रामार्थं स्वकरे पुष्पमालिकाम् ॥२७॥
काचित्तांबूलपात्रं च काचित्कुंभं जलस्य सा । पात्रं निष्ठीवनस्यान्या सा दधार विलासिनी ॥२८॥
दधार चन्दनं काचित्काचिद्दिव्यान्नमुत्तमम् । काचित्पक्वान्ननैवेद्यं काचिद्रंभाफलादिकम् ॥२९॥
एतस्मिन्नंतरे काचित्पादसंवाहनं शनैः । रामस्य कर्तुमुद्युक्ता तत्पदं पाणिनाऽस्पृशत् ॥३०॥
तेन रामः प्रबुद्धोऽभूत्स्मृत्वाऽस्पृश्यां विदेहजाम् । केन मे स्पर्शितः पादश्चकितश्चेत्युपाविशत् ॥३१॥
तावद्ददर्श श्रीरामः शतशश्च पुरः स्थिताः । पौराणां प्रमदाः सर्वा रुक्मालङ्कारमंडिताः ॥३२॥
रामं समुत्थितं दृष्ट्वा प्रणेमुस्तास्तदा भुवि । स्वशिरांसि निधायाथ तुष्टुवुर्विविधोक्तिभिः ॥३३॥

उनको अधूरी समझकर जब पूर्ण करेगा, तब जाकर उस प्रेतको सद्गति प्राप्त होगी । तुम भी उसके दशाहपिण्डको तभी छूना, जब उनका प्रत्येक अंग पूर्ण हो जाय । तुम्हें दूसरा वरदान यह भी देता हूँ कि जो लेखक लिखते समय कुछ भूल जायँगे, वे वहाँपर तुम्हारे पैरका चिह्न बना दिया करेंगे ॥ १५–१८ ॥ पुस्तकके पार्श्वभागमें तुम्हारे पैरका चिह्न देखकर लोग समझ जायँगे कि वहाँपर कुछ भूल है ॥ १९ ॥ इस प्रकार उस कौएको वरदान देकर रामचन्द्रजी मुस्काते हुए चुप हो गये । कौआ भी भगवान्‌को प्रणाम करके वहाँसे उड़ गया ॥ २० ॥ इस तरह रामचन्द्रजी विविध प्रकारकी लीलायें किया करते थे । एक दिन रात्रिके समय पारिजात वृक्षके नीचे रजस्वला सीताके बिना राम अकेले सुवर्णके पलंगपर सो रहे थे । उसी रात्रिमें जितने भी द्वारपाल-दास आदि थे, वे सब भक्तिवश कहीं रामकीर्तन सुननेके लिए चले गये थे ॥ २१–२३ ॥ उसी समय मौका पाकर सौ नारियाँ विविध प्रकारके वस्त्राभूषण धारण किये कामके बाणसे पीडित होकर रामचन्द्रजीके पास जा पहुँचीं ॥ २४ ॥ वे सब तरुणाईके मदसे भरी थीं, सुवर्णकुम्भके समान उनके स्तन थे, चन्द्रमाकी भाँति उनका मुख था, तोतेकी ठोरके समान उनकी नासिका थी, कमलकी नाईं उनके पाँव थे और मृगियोंके समान उनके नेत्र थे ॥ २५ ॥ वे सब पीले वस्त्र धारण किये थीं । सोनेके नूपुर रुनझुन करके बोल रहे थे । उनकी उमर भी बहुत थोड़ी थी । वे सब पुष्पकके समीप एकान्तमें सोये हुए रामचन्द्रजीके पास जा पहुँचीं ॥ २६ ॥ वहाँ जाकर कोई रामको पंखा झलने लगी और कोई अपने हाथमें फूलोंकी माला लेकर उनके उठनेकी प्रतीक्षा करने लगी । किसीने पानदान लिया और किसीने जलसे भरी झारी ली । किसीने पीकदान उठाया, किसी दूसरी विलासिनीने चन्दन लिया, किसीने दिव्य पकवान और कोई नाना प्रकारके फल लेकर रामचन्द्रजीके जागनेकी प्रतीक्षा करने लगी ॥ २७–२९ ॥ इसी बीचमें एक स्त्रीने रामचन्द्रजीका पैर दबानेकी इच्छासे धीरे-धीरे उनका पैर उठाया ॥ ३० ॥ इससे वे चौंक पड़े और सोचने लगे कि सीता तो इस समय अस्पृश्य है, तब यह कौन पैर उठा रहा है । यह विचार करते-करते चकित भावसे वे उठ बैठे ॥ ३१ ॥ तब अपने सामने उपस्थित उन सौ नारियोंपर उनकी दृष्टि पड़ी । तब रामने

ताः सर्वा राघवः प्राह किमर्थमिह पुष्पके । रात्रौ समागताः सर्वास्तथ्यं मां कथ्यतां स्त्रियः ॥३४॥
तद्रामवचनं श्रुत्वा विलज्जंत्यः पुरस्त्रियः । अवाङ्मुखाः संस्थितास्तास्तूष्णीमेव समंततः ॥३५॥
तासु काचित्तदा रामं गतलज्जाऽब्रवीद्वचः । सर्वं जानंति प्रभवो यदर्थमागता वयम् ॥३६॥
उपेक्षणीया नो राम वयं सर्वाः स्त्रियस्त्वया । इति तासामभिप्रायं ज्ञात्वा स रघुनन्दनः ॥३७॥
अब्रवीन्मधुरं वाक्यं शृणुध्वं प्रमदोत्तमाः । एकपत्नीव्रतं मेऽस्ति मातृतुल्याः स्त्रियो मम ॥३८॥
इतराः सकलाः सीतारहिताश्चेह जन्मनि । गच्छध्वं निजगेहानि मा माऽघर्मोऽस्तु मयि नृपे ॥३९॥
राज्यं शासति भो नार्यः क्षमितं वोऽपराधितम् । इति ता रामवाग्बाणैः कामबाणप्रपीडिताः ॥४०॥
ताडिताश्च विशेषेण निपेतुर्मूर्छिता भुवि । पतितास्ता निरीक्ष्याथ सर्वा रामोऽतिविह्वलः ॥४१॥
ता उवाच पुनः शीघ्र सुष्ठुवाक्यैः कृपान्वितः । शृणुध्वं मे वचो नार्यः सकृद्रत्या मया सह ॥४२॥
युष्माकं न भवेत्तुष्टिर्व्रतभङ्गोऽपि मे भवेत् । अतः शृणुत मे वाक्यं यागे पूर्वं मयाऽर्पिताः ॥४३॥
गुरवे रुक्मजाश्चैव सीतायाः शतमूर्तयः । तासां फलेन युष्माभिर्द्वापरे क्रीडनं चिरम् ॥४४॥
करिष्यामि न संदेहः कृष्णरूपेण वै सुखम् । नानानृपाणां युष्माभिर्भवध्वं योषितस्तदा ॥४५॥
भौमासुरश्च युष्माक संहरिष्यति वै यदा । तदा सर्वा मोचयामि हत्वा तं जगतीसुतम् ॥४६॥
करिष्यामि विवाहांश्च युष्माभिर्द्वारकापुरि । स्त्रीषोडशसहस्राणामूर्ध्वतोऽन्याः शतं त्वहम् ॥४७॥
इति रामवचः श्रुत्वा तुष्टास्ताः पुरयोषितः । नत्वा रामं ययुः सर्वास्तूष्णीं स्वं स्वं गृहं प्रति ॥४८॥
ततः स्त्रीस्ता विसर्ज्यासौ रामो दासीः समाह्वयत् । दृष्ट्वा कामपि नो दासीं रामो दासांस्तदाह्वयत् ॥४९॥
तेष्वप्येकं न दृष्ट्वा स द्वारपालान्समाह्वयत् । तानप्यदृष्ट्वा रामस्तु रक्षकांश्च समाह्वयत् ॥५०॥

देखा कि वे सब पुरवासिनी स्त्रियाँ सुवर्णके अलङ्कार पहने हैं। भगवान रामको उठा हुआ देखकर उन्होंने प्रणाम किया और अपना मस्तक पृथ्वीपर रखकर विविध प्रकारसे भगवान्‌की स्तुति करने लगीं ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ उनसे रामने पूछा कि तुम सब यहाँ इतनी रात्रिमें किस लिए आयी हो ? मुझे सच-सच बतला दो ॥ ३४ ॥ रामकी बात सुनकर वे पुरवासिनी स्त्रियाँ लज्जित होती हुई माथा नीचे करके चुपचाप खड़ी रह गयीं ॥ ३५ ॥ किन्तु उनमेंसे एकने निर्लज्ज होकर कहा—हे प्रभो ! आप सब जानते हुए भी हमसे आनेका कारण पूछ रहे हैं ? हम जिस लिए आयी हैं, आप वह सब जानते हैं ॥ ३६ ॥ हे राम ! अब आप हमारी उपेक्षा न कीजिये । इस प्रकारकी बातोंसे राम उनका अभिप्राय समझ गये और मीठी बातोंमें समझाते हुए कहने लगे – हे सुन्दरियों ! मैं एकपत्नीव्रतधारी हूँ । मेरे लिए इस जन्ममें सीताके सिवाय संसारकी सब नारियाँ माताके समान हैं ॥ ३७ ॥ ३८ ॥ तुम सब अपने-अपने घरोंको जाती जाव। मैं राजा हूँ । मेरे ऊपर तुम सब पाप न लादो ॥ ३९ ॥ जब तक मैं प्रजाका शासक हूँ, तबतक ऐसा अनर्थ नहीं हो सकता । जाओ, मैंने तुम्हारा अपराध क्षमा किया । यह सुना तो कामबाणसे पीडित वे स्त्रियाँ रामके वाक्यरूपी बाणोंसे विद्ध और मूछित होकर पृथ्वीपर गिर पड़ीं । उनको इस प्रकार गिरी देखकर रामचन्द्रजी बहुत विह्वल हो गये ॥ ४० ॥ ४१ ॥ वे कृपापूर्वक उनसे कहने लगे–हे नारियों ! मैं तुम्हारा मनोभाव जानता हूँ, किंतु केवल एक बारकी रतिसे तुम लोगोंकी इच्छा नहीं भरेगी और मेरा व्रत भी भंग हो जायगा । इसलिए मेरी बात सुनो-–आजसे बहुत दिनों पहले यज्ञमें मैंने सीताकी सौ सुवर्णमयी मूर्तियाँ दान दी हैं । उन्हींके फलसे द्वापरमें मैं कृष्ण होकर बहुत दिनोंतक तुम सबोंके साथ क्रीड़ा करूँगा ॥ ४२–४४ ॥ तुम सब उस समय अनेक राजाओंकी पुत्रियाँ होकर जन्म लोगी । जब भौमासुर तुम सबको चुरा ले जायगा, तब मैं वहाँ पहुँचकर उसे मारूँगा और तुम्हें उससे छुड़ाऊँगा । तुम सबका विवाह द्वारका-पुरीमें होगा । उस समय तुम्हारी संख्या सोलह हजारसे भी ऊपर रहेगी और मैं मैं ही
27 रहूँगा ॥ ४५–४७ ॥ इस प्रकार रामकी बात सुनकर प्रसन्नतापूर्वक उन्होंने भगवान्‌को प्रणाम किया और चुपचाप अपने-अपने घरोंको लौट गयीं । उन स्त्रियोंको विदा करके रामचन्द्रजीने दासियोंको बुलाया, किन्तु

तेष्वप्येकं न दृष्ट्वा स राघवश्चातिविस्मितः । विमानाट्टालमारुह्य सौमित्रिं वै समाह्वयत् ॥५१॥
उर्मिला रामवाक्यं तच्छ्रुत्वा तं चालयत्पतिम् । उर्मिलाचालनाच्छीघ्र प्रबुद्धोऽभूत्स लक्ष्मणः ॥५२॥
रामवाक्यं सोऽपि श्रुत्वा रतिशालाबहिर्ययौ । दत्त्वा प्रत्युत्तरं राम ययौ वेगेन लक्ष्मणः ॥५३॥
एतस्मिन्नंतरे रामो रोदनं नगराद्बहिः । शुश्राव स्त्रीकृतं घोरं किमिदं चेति विस्मितः ॥५४॥
ततो दृष्ट्वा स सौमित्रिं सर्वं वृत्तं न्यवेदयत् । लक्ष्मणो रामवाक्य तच्छ्रुत्वा दूतान्निजांस्तदा ॥५५॥
प्रेष्य दूतान्कीर्तनस्थानादाह्वयामास वेगतः । रामदूतास्तदोचुस्तान् कथं श्रीरामकीर्तनम् ॥५६ ।
असमाप्तं विहायाद्य गन्तव्यं स्वामिनं प्रति । तेष्वेव केचिदूचुस्ते पालनीया तु सेवकैः ॥५७॥
प्रभोराज्ञाऽद्य चास्माभिर्नो चेन्नः पातक स्पृशेत् । केचिदूचुरिदं तस्य कीर्तनं मङ्गलप्रदम् ॥५८॥
स्वाम्याज्ञाभंगदोषघ्नं कथं त्यक्त्वा प्रगम्यताम् । केचिदूचुः कीर्तनस्थान् श्रुत्वाऽस्मान्स सुखी भवेत् ५९
इति संदिग्धचित्तास्ते न तदा राघवं ययुः । ततो लक्ष्मणदूतास्ते रामं वृत्तं न्यवेदयन् ॥६०॥
ततः किंचित् क्रोधयुक्तः सौमित्रिं प्राह राघवः । मत्कीर्तनसमासक्तान्नाहं दण्डयितुं क्षमः ॥६१॥
तथाप्येतन्न योग्यं हि किंचिच्छिक्षां करोम्यहम् । इत्युक्त्वा तां तु रुदतीं पुनः श्रुत्वा बहिः प्रभुः ॥६२॥
विमानं प्राह गच्छाद्य बहिः पुर्याः स्त्रियं प्रति । तथेति रामवाक्येन ययौ तन्नगराद्बहिः ॥६३॥
यत्र साऽतिविलाप स्त्री करोति सरयूतटे । तामंजननिभां नारीं रुदंतीं राघवोऽब्रवीत् ॥६४॥

राम उवाच

किं ते दुःखं वदस्वाद्य का त्वं रोदिषि वै कथम् । इति रामवचः श्रुत्वा सा रामं वाक्यमब्रवीत् ॥६५॥
चिरकालं करोम्यत्र रोदनं रघुनन्दन । अद्य श्रुतं त्वया राम किंचित्पुण्यचयान्मुनेः ॥६६॥

वहाँ कोई दासी नहीं दिखायी दी। तब सेवकोंको बुलाया। उनमेंसे भी कोई नहीं बोला। तब पहरेदारोंको पुकारा, किंतु उनमेंसे भी कोई नहीं बोला। जिससे रामचन्द्रजीको बड़ा विस्मय हुआ और विमानके ऊपरवाली अँटारीसे लक्ष्मणको पुकारा। रामचन्द्रकी आवाज उर्मिलाको सुनायी दी और उसने तुरन्त लक्ष्मणको जगाया। जागनेपर लक्ष्मणने भी रामकी आवाज सुनी और तत्काल उनकी बातका प्रत्युत्तर देकर तुरन्त रतिशालाके बाहर आकर वेगसे रामचन्द्रजीकी ओर चले ॥ ४८–५३ ॥ इधर रामचन्द्रजीने नगरके बाहर किसी स्त्रीका रोदन सुना। "हैं, यह क्या है !" यह कहकर वे बड़े विस्मित हुए ॥ ५४ ॥ तब तक लक्ष्मण भी आ पहुँचे और रामने उन्हें सब वृत्तांत सुनाया। लक्ष्मणने तुरन्त अपने दूतोंको उस स्थानपर जानेकी आज्ञा दी, जहाँपर कीर्तन हो रहा था। लक्ष्मणके दूतोंने वहाँ पहुँचकर रामके दूतोंसे कहा—चलो, रामचन्द्रजी कबसे तुम सबको बुला रहे हैं। उन सबने जवाब दिया कि बिना रामकीर्तन समाप्त हुए अधूरा छोड़कर हम सब कैसे आयें। उनमेंसे किसीने कहा कि सेवकोंका धर्म है, स्वामीकी आज्ञाका पालन करना ॥ ५५–५७ ॥ यदि उनकी आज्ञा न मानेंगे तो हमको पातक लगेगा। उनमेंसे कोई बोल उठा कि यह रामकीर्तन तो विविध प्रकारके पातकोंको नष्ट करनेवाला है। अब इसको छोड़कर कहाँ जायँगे ॥ ५८ ॥ कुछ लोगोंने कहा कि जब वे हमको कीर्तनमें आया सुनेंगे तो प्रसन्न होंगे ॥ ५९ ॥ इस प्रकार असमञ्जसमें पड़कर वे लोग रामके पास नहीं आये। इधर लक्ष्मणके दूतोंने रामके पास आकर उनका हाल सुनाया ॥ ६० ॥ तब किंचित् क्रोधयुक्त रामने लक्ष्मणसे कहा कि यद्यपि मैं कीर्तन सुननेमें मग्न सेवकोंको दण्ड नहीं दे सकता ॥ ६१ ॥ किन्तु यह भी उचित नहीं है कि मैं उन सबको कुछ शिक्षा भी न दूँ। इतना कहकर रामने फिर वह नगरके बाहरवाला रोदन सुना ॥६२॥ तब उन्होंने विमानको आज्ञा दी कि नगरके बाहर कोई स्त्री रो रही है, तुम उसके पास चलो। 'बहुत अच्छा' कहकर विमान चल पड़ा और सरयूके तटपर जा पहुँचा, जहाँपर वह स्त्री विलाप कर रही थी। अञ्जनके समान उस काली-कलूटी स्त्रीको देखकर रामने पूछा—॥ ६३ ॥ ६४ ॥ तुम्हें क्या कष्ट है ? तुम कौन हो और क्यों इस प्रकार रो रही हो ? रामकी बात सुनकर उस नारीने कहा—॥ ६५ ॥

निर्मिता विधिना पूर्वं निद्रानाम्नी त्वहं प्रभो । दत्तं तेन मम स्थानं कुंभकर्णे चिरं सुखम् ॥६७॥
यावत्कालं स्थिता राम स त्वया निहतो रणे । ततो नष्टनिवासाऽहं गता शीघ्रं विधिं प्रति ॥६८॥
तेन त्वां प्रेषिता राम ततः प्राप्ता त्विमां पुरीम् । सीमाचारभयादस्यां नगर्यां न गतिर्मम ॥६९॥
अत्रैव संस्थिता राम शोचंती सरयूतटे । मे स्थानं वद रामाद्य यत्र स्थास्याम्यहं सुखम् ॥७०॥
तत्तस्या वचनं श्रुत्वा राघवो वाक्यमब्रवीत् । स्मृत्वा दूतकृतं पूर्वं तदा क्रोधेन चोदितः ॥७१॥
निद्रे शृणु वचो मेऽद्य ते स्थानं कीर्तयाम्यहम् । पापात्मानो नरा भूम्यां ये शृण्वंति हि कीर्तनम् ॥७२॥
पुराणश्रवणं वेदपठनं पूजनं जपम् । तपो ध्यानं च होमादि यद्यत् कुर्वन्ति पापिनः ॥७३॥
तेषु त्वं तिष्ठ मद्वाक्याद्धीनदेवनरेष्वपि । जडे बालेऽथ गुर्विण्याशुपवासोत्तरेऽशिवे ॥७४॥
तथा विद्यार्थिनि श्रांते वांते जागरकाशुके । एतेषु ते स्थलं दत्तमेतान्मोहय मद्वरात् ॥७५॥
तद्रामवचनं श्रुत्वा सा तुष्टा प्रणनाम तम् । ययौ रामः स्वनगरीं सुखं निद्रां चकार वै ॥७६॥
तदारभ्य पुरोक्तेषु वासं निद्राऽकरोत्सुखम् । पापात्मनामतो निद्रा बाधते पुण्यकर्मसु ॥७७॥
तदारभ्य सेवकेषु नरेष्वप्यवनीतले । निद्राग्रस्तेषु पुण्यात्मा सहस्रेष्वपि कश्चन ॥७८॥
शुश्राव तत्कीर्तनादि चकार पूजनादिकम् ।

श्रीरामदास उवाच

अथान्यां संप्रवक्ष्यामि कथां सीतायशस्करीम् ॥७९॥
कुंभकर्णस्य पुत्रस्य निकुंभस्य च गुर्विणी । प्रसूत्यर्थं पितुर्गेहं गता द्वीपांतरं प्रिया ॥८०॥
रावणादिवधे जाते तस्यां जातस्तु पौंड्रकः । मायापुर्यां शतशिराः सर्वद्रयकरः पुरा ॥८१॥

हे प्रभो ! यह बहुत समयकी बात है कि जब ब्रह्माने मुझे बनाया था। मेरा नाम निद्रा है और ब्रह्माने मुझपर दया करके कुम्भकर्णकी देहमें रहनेका स्थान दिया। तब मैं बड़े आनन्दसे उसमें रहने लगी ॥ ६६ ॥ ६७ ॥ लेकिन आपने उसे भी मार डाला। मेरे रहनेका एक झोपड़ा था, उसे भी आपने उजाड़ दिया। ऐसी अवस्थामें रोती-कल्पती हुई मैं ब्रह्माके पास गयी और उन्हें अपनी गाथा सुनायी। उन्होंने मुझे आपके पास भेजा और मैं इस जगह आ पहुंची। सीमारक्षकोंके भयसे इस नगरीमें घुसनेका साहस नहीं हुआ। इसलिए इसी सरयूके किनारे बैठी-बैठी विलाप किया करती हूं। हे राम! अब आप कृपा करके मेरे रहनेके लिए कोई स्थान बतला दीजिए, जहां मैं रह सकूं ॥ ६८-७० ॥ इस प्रकार उसकी बात सुनकर रामचन्द्रको पहले दूतकी बातें सोचकर कुछ गुस्सा आ गया और निद्रासे बोले—॥ ७१ ॥ हे निद्रे ! सुनो, मैं तुम्हें तुम्हारे रहनेके लिए स्थान बतलाता हूं। जो पापी मनुष्य मेरा कीर्तन सुनने जायें और वे पुराणश्रवण, वेदपाठ, पूजन, जप, ध्यान आदि जो कुछ भी करने लगें, उनमें तुम अपना डेरा जमाओ। जो लोग हीन प्रकृतिके हों, वे चाहे देवता हों या मनुष्य, जड़, बालक, गर्भिणी स्त्री, व्रतोत्तर भोजन करनेवाले, विद्यार्थी और थके हुए मनुष्योंमें तुम रहो। जो लोग ज्यादा जागते हों, उन लोगोंमें मैं तुम्हें रहनेके लिए स्थान देता हूँ। मेरे वरदानसे तुम इन्हींपर अपना मोहजाल फैलाओ ॥ ७२-७५ ॥ इस प्रकार रामकी बात सुनकर वह प्रसन्न हुई और उसने भगवान्को प्रणाम किया। उधर रामचन्द्र भी अपनी नगरीमें लौट आये और रातभर खूब अच्छी तरह सोये ॥ ७६ ॥ तभीसे ऊपर कहे हुए लोगोंमें निद्रा निवास करने लगी। इसीलिए यदि पापी मनुष्य कोई पुण्यकर्म करने लगता है, तब उसे निद्रा सताती है ॥ ७७ ॥ तभीसे पृथ्वीमण्डलमें निद्राने सेवकोंपर अपना मोहजाल फैलाया। सहस्रों निद्रालु मनुष्योंमें कहीं एक मनुष्य भी मुश्किलसे ऐसा मिलेगा, जो श्रवण-कीर्तन आदि शुभ कर्म करनेवाला पुण्यात्मा हो ॥ ७८ ॥ श्रीरामदास कहने लगे—अब मैं सीताके यशसे भरी एक दूसरी कथा सुना रहा हूं ॥ ७९ ॥ कुम्भकर्णके बेटे निकुम्भकी गर्भिणी स्त्री बच्चा पैदा करनेके लिए किसी दूसरे द्वीपमें रहनेवाले अपने पिताके घर गयी थी ॥ ८० ॥ जब रामके साथ युद्ध करके रावण वंश समेत नष्ट हो

श्रोणानदीतटे चासीद्रावणः क्षीरसागरे । सहायात्पौंड्रकस्तस्योद्वेजयित्वा विभीषणम् ॥८२॥
शताननेन वै सार्धं लंकाराज्यं चकार सः । ततो विभीषणो रामं गत्वा सर्वं न्यवेदयत् ॥८३॥
सीताविभीषणाभ्यां वै रामो लंकां ययौ द्रुतम् । निहत्य रावणं सीता युद्धे रामे जितेऽथ तम् ॥८४॥
विभीषणाय तां लंकां हत्वा तं पौण्ड्रकं ददौ । अथकदा सभासंस्थं राघवं स विभीषणः ॥८५॥
ययौ विषण्णः सचिवैश्चतुर्भिः ससुतः स्त्रिया । नत्वा रामं साश्रुनेत्रश्चोच्छ्वसन् कंपिताधरः ॥८६॥
उवाच सकलं वृत्तं लंकायाः प्रस्खलद्गिरा । राम राजीवपत्राक्ष त्राहि मां शरणागतम् ॥८७॥
मूलर्क्षे कुंभकर्णेन जातः पुत्रः पुरा वने । दूतैस्त्यक्तो वृक्षमूले बालकस्तत्र वर्धितः ॥८८॥
मक्षिकाभिः स्वत्रमनजलस्य विंदुभिर्मुहुः । सोऽधुना तरुणः श्रुत्वा त्वत्कृतं स्वकुलक्षयम् ॥८९॥
तपसा तोष्य ब्रह्माणं तद्वरेणातिगर्वितः । पातालस्थै राक्षसैश्च लंकायां समुपागतः ॥९०॥
मया तेन तु षण्मासं कृतं युद्धं महत्तमम् । मां जित्वा स पुरीं यातस्तदाऽहं सचिवैः स्त्रिया ॥९१॥
सपुत्रो गुप्तमार्गेण भूमिजेन पलायितः । शनैर्विवरमार्गेण लंकाया योजनोपरि ॥९२॥
रात्रौ बहिर्विनिर्गत्य त्विवारात्त्वां समागतः । मूलर्क्षे यः समुत्पन्नस्तरुमूले विवर्द्धितः ॥९३॥
मूलकासुरनाम्नाऽतः परां ख्यातिं गतोऽधुना । संगरे तेन मामुक्तमादौ त्वां तु विभीषणम् ॥९४॥
हत्वा लंकापुरीं प्राप्य ततो गच्छामि राघवम् । मत्पिता निहतो येन निहतं सकलं कुलम् ॥९५॥
तं राम संगरे हत्वाऽऽनृण्यं गच्छाम्यहं पितुः । आगमिष्यति सोऽत्रापि त्वां योद्धुं रघुनन्दन ॥९६॥
इदानीं यद्धितं चाग्रे तत्कुरुष्व रघूत्तम । तत्तस्य सकलं वृत्तं श्रुत्वा रामोऽतिविस्मितः ॥९७॥
लक्ष्मणं प्राह वेगेन पार्थिवान् जगतीतले । स्वस्वराज्यस्थितान्सर्वान्दूतैराकारयाधुना ॥९८॥

गया तो उस गर्भसे पौण्ड्रक नामका पुत्र जायमान हुआ ॥ ८१ ॥ श्रोणानदीके तटपर मायापुरी नामकी नगरीमें एक सौ सिरवाला रावण रहता था। उसके २०० भुजायें थीं। पौण्ड्रकने उस रावणकी सहायतासे विभीषणको परास्त कर दिया और शतानन रावणके साथ लंकाका राज्य स्वयं करने लगा। उस समय विभीषण रामके पास गये और उन्होंने अपना सब वृत्तान्त सुनाया ॥ ८२ ॥ ८३ ॥ मित्रकी उस दुःखभरी कहानीको सुनकर राम सीता और विभीषणके साथ लंकाको चल दिये। वहाँ पहुँचकर उन्होंने उस सौ मुँहवाले रावण तथा पौण्ड्रकको मारा और फिर विभीषणको लंकाके सिंहासनपर बिठालकर अयोध्या लौट आये। इसके बाद एक दिन राम अपनी सभामें बैठे थे। तब अपनी स्त्री, पुत्र तथा मंत्रियोंके साथ विषण्ण भावसे बैठे हुए विभीषणने कहा—हे राम! हे राजीवपत्राक्ष! मैं आपकी शरणमें हूँ, मेरी रक्षा कीजिए ॥ ८४–८७ ॥ बहुत दिनोंकी बात है, जब मूल नक्षत्रमें कुम्भकर्णके एक पुत्र हुआ था। कुम्भकर्णने दूतों द्वारा उस लड़केको जङ्गलमें छोड़वा दिया। वहाँ मधुमक्खियोंने उसके मुँहमें मधुकी एक-एक बूँद टपकाकर उसकी रक्षा की। वह इस समय बड़ा हुआ है। जब उसने लोगोंके मुँहसे यह सुना कि रामने मेरे पिता तथा कुटुम्बियोंका नाश किया है ॥ ८८ ॥ ८९ ॥ तब उग्र तपस्या द्वारा उसने ब्रह्माको संतुष्ट करके वर प्राप्त कर लिया। वरके प्रभावसे गर्वित होकर पातालनिवासी राक्षसोंकी सहायतासे उसने लङ्कापर चढ़ाई कर दी। मैंने छः महीने तक उसके साथ घमासान युद्ध किया। अन्तमें उसने हमें परास्त करके लङ्कापर अधिकार कर लिया। ऐसी अवस्थामें मैं आधी रातको अपने पुत्र, स्त्री एवं मंत्रियोंके साथ एक सुरङ्गके रास्तेसे भागा ॥ ९०–९२ ॥ एक योजन दूर भाग जानेपर ठहर गया, जब रात्रि व्यतीत हो गयी। तब आगे बढ़ा और आपके पास आ पहुँचा। वह मूल नक्षत्रमें पैदा हुआ तथा वृक्षोंके नीचे उसका पालन-पोषण हुआ है। इसीलिए लोग उसे मूलकासुर कहते हैं। युद्ध करते-करते एक बार उसने मुझसे कहा था कि इस रणभूमिमें पहले तुझको मारकर लङ्कापर अधिकार कर लेनेके बाद मैं उस रामके पास जाऊँगा, जिसने मेरे पिता तथा मेरे कुलका संहार किया है ॥ ९३–९५ ॥ संग्रामभूमिमें रामको मारकर मैं अपने पितृऋणसे उऋण हो जाऊँगा। हे रघुनन्दन! मैं जहाँतक जानता हूँ, शीघ्र ही वह आपसे भी युद्ध करनेके लिए आयेगा ॥ ९६ ॥ ऐसी अवस्थामें आप जो उचित समझें सो करें। विभीषणका हाल

तथेति रामवचनाद्दूतान्नाज्ञापयत्तदा । लक्ष्मणस्तेऽपि वेगेन गत्वा दूताः समागताः ॥९९॥
प्रोचुः सभायां श्रीरामं नृपाणां वचनानि ते । केचिन्नृपाः पालयंति तवाज्ञां रघुनन्दन ॥१००॥
केचिन्न पालयंत्याज्ञां तव तत्कारणं शृणु । चंपिकायाः सुमत्याश्च स्वयंवरसमुद्भवम् ॥१०१॥
दुःखं हृदयसंस्थं यत्तदद्यापि गतं न हि । यूपकेतुशराघातभिन्नमर्मस्थलाः पुनः ॥१०२॥
स्मृत्वा मदनसुन्दर्या दुःखं कांत्युद्भवं नृपाः । आज्ञां न पालयंत्यद्य तव राघव सत्प्रभो ॥१०३॥
पालिता यैस्तवाज्ञा ते सुग्रीवाद्या नृपोत्तमाः । स्वस्वकोटिबलैर्युक्ताः समायांताः सहस्रशः ॥१०४॥
तद्दूतवचनं श्रुत्वा रामो राजीवलोचनः । प्राह प्राणघातांस्ते स्पृहयंति नृपाधमाः ॥१०५॥
आदौ हत्वा कौंभकर्णिं तान्गच्छामि ततस्त्वहम्। इत्युक्त्वा सुदिने रामः सेनया बंधुभिर्जगाद् ॥१०६॥
मूलकासुरघातार्थमादौ पुर्या बहिर्ययौ । किंचित्सैन्ययुतं पुर्यां यूपकेतुं न्यवेशयत् ॥१०७॥
कुशाद्याः सप्त बालास्ते रामेण सह निर्ययुः । विमाने सकलां सेनां स्थापयामास राघवः ॥१०८॥
तावत्ते पार्थिवाः सर्वे नानावाहनसंस्थिताः । वेष्टिताः स्वस्वसैन्यैश्च नत्वा रामं पुरः स्थिताः ॥१०९॥
तान्रामः स्थापयामास विमाने सैन्यसंयुतान् । अष्टादशपद्ममितैः कपिभिः कपिराड् ययौ ॥११०॥
आरुरोह विमानाग्र्यं कपिभी राघवाज्ञया । ततः सीतां विना रामः स्वयं स्थित्वा तु पुष्पके ॥१११॥
पश्यन्नानाविधान् देशान्ययौ लङ्कां विहायसा । यात्राकाले यथा यानरवताऽऽसीत्तथा पुनः ॥११२॥
ततो रामं समायातं श्रुत्वा स मूलकासुरः । ययौ लङ्काबहिर्योद्धुं राघवेण बलीयसा ॥११३॥
दशकोटिमितां सेनां बिभ्रन् स वरदर्पितः । ततस्ते राक्षसाः पद्भिर्निहन्युः प्लवगान् मुहुः ॥११४॥
वानरा राक्षसांश्चापि निहन्युस्तान्दृषन्नगैः । एवं बभूव तद्युद्धं तुमुलं दिनसप्तकम् ॥११५॥

सुनकर राम बड़े विस्मित हुए ॥ ९७ ॥ तुरन्त लक्ष्मणसे उन्होंने कहा कि संसारमें जितने राजे हैं, उनके पास दूत भेजकर शीघ्र बुलवा लो ॥ ९८ ॥ लक्ष्मणने रामके आज्ञानुसार दूत भेजे। दूतोंने शीघ्र लौटकर रामसे कहा—हम लोग सब राजाओंके पास हो आये । उनमें कुछ राजे तो आपकी आज्ञाका पालन कर रहे हैं और कुछ नहीं ॥ ९९ ॥ १०० ॥ इसका कारण यह है कि चम्पिका और सुमतिके स्वयंवरके समय उनके हृदयमें जो क्षोभ उपजा था, वह अब तक ज्यों का त्यों बना है। फिर यूपकेतुकी मारसे उनका हृदय अलग विदीर्ण हो चुका है ॥१०१॥१०२॥ जब वे मदनसुन्दरीकी उस अनोखी शोभाको याद करते हैं तो उनका कलेजा टुकड़े-टुकड़े हो जाता हैं। इन्हीं कारणोंसे वे आपकी आज्ञाका पालन नहीं करना चाहते ॥ १०३ ॥ जिन सुग्रीव आदि नृपतियोंने आपकी आज्ञाका पालन किया है, वे अपने दलबल समेत अयोध्या आ रहे हैं ॥ १०४ ॥ दूतकी बात सुनकर रामचन्द्रने कहा—वे नीच राजे अबतक हमारे साथ ईर्ष्याभाव रखते हैं ? अस्तु, पहले कुम्भकर्णके बेटे मूलकासुरको मारकर उन लोगोंपर भी चढ़ाई करूँगा। इस प्रकार निश्चय करके रामने शुभ दिन और मुहूर्तमें अपनी विशाल सेना तथा लक्ष्मण-भरत आदि भ्राताओंके साथ मूलकासुरको मारनेके लिए अयोध्यासे प्रस्थान कर दिया ॥१०५॥१०६॥ पुरीके बाहर आकर उन्होंने कुछ सेनाके साथ यूपकेतुको अयोध्याकी रक्षाके लिए छोड़ दिया और बाकी कुश आदि सात लड़कोंको अपने साथ ले गये। रामने यात्राके समय सारी सेनाको पुष्पक विमानपर बिठा लिया ॥ १०७ ॥ १०८ ॥ रास्तेमें रामके अनुगामी राजे भी अपनी अपनी सेनाके साथ आकर रामसे मिल गये ॥ १०९ ॥ उन लोगोंको भी रामने विमानमें बिठा लिया। इस यात्रामें सुग्रीव अठारह पद्म बन्दरोंके साथ आये थे ॥ ११० ॥ उनको भी रामने पुष्पकपर बिठाल लिया। इसके अनन्तर सीताको छोड़कर राम विमानपर बैठे। आकाशमार्गसे अनेक देशोंको देखते हुए वे लङ्काकी ओर बढ़े और अल्प समयमें ही निर्दिष्ट स्थानपर पहुँच गये। उधर जब मूलकासुरने यह समाचार सुना तो रामचन्द्रके साथ युद्ध करनेके लिए दस करोड़ सेना लेकर लङ्काके बाहरवाले मैदानमें आ डटा ॥ १११–११३ ॥ उस समय ब्रह्माके वरदानसे वह बड़े घमण्डमें था। फिर क्या कहना था, राक्षसगण वानरोंको लातोंसे मारने लगे। वानरयूथने पहाड़के बड़े-बड़े टुकड़ों तथा वृक्षोंसे

तत्र ये ये मृता युद्धे वानरास्तान्स मारुतिः । द्रोणाचलं समानीय जीवयामास पूर्ववत् ॥११६॥
ततः सा राक्षसी सेना चतुर्थांशावशेषिता । तान्नष्टान् राक्षसेन्द्रः स दृष्ट्वा क्रोधयुतस्तदा ॥११७॥
मंत्रिणश्चोदयामास तथा सेनापतीन् बलैः । तानागतान् रणभुवं रामवीराः सहस्रशः ॥११८॥
शतघ्नीभिर्हस्तयंत्रैर्भिन्दिपालभुशुण्डिभिः । परिघैः पट्टिशैः शूलैः कुंतैः खड्गैर्विमर्दयन् ॥११९॥
तेऽपि तालैस्तमालैश्च हिंतालैश्च दृषन्नगैः । शालैः शिलाभिः श्रीरामवीरान् संमर्दयन् रणे ॥१२०॥
पुनर्युद्धं महद्यासीत्तुमुलं रोमहर्षणम् । ततस्तान् मंत्रिणः सर्वांस्तथा सेनापतीनपि ॥१२१॥
रामवीराः क्षणेनैव चक्रुः संयमनीगतान् । तान् सर्वान्निहतान् श्रुत्वा क्रोधेन मूलकासुरः ॥१२२॥
स्वयं दिव्यरथे स्थित्वा किञ्चित्सैन्ययुतो ययौ । तमागतं नृपा दृष्ट्वा ययुर्योद्धुं सहस्रशः ॥१२३॥
ववर्षुः शरजालैश्च चक्रुर्दुन्दुभिनिःस्वनान् । तान्सर्वान् राक्षसेंद्रः स चकार भुवि मूर्छितान् ॥१२४॥
तान् मूर्छितान्नृपान्दृष्ट्वा योद्धुं तेन पुनर्ययुः । सुमंत्राद्या मंत्रिणश्च राघवस्याज्ञया बलैः ॥१२५॥
तान्सर्वान्मूर्छितान् बाणैश्चकार मूलकासुरः । मूर्छितान्मंत्रिणो दृष्ट्वा कुशाद्या बालका ययुः ॥१२६॥
ततो बभूव तुमुलं युद्धं तल्लोमहर्षणम् । ततः कुशः स्वबाणौघैर्लंकायां मूलकासुरम् ॥१२७॥
प्राक्षिपद्धट्टमध्ये स पपात पुनरुत्थितः । ततोऽभिचारिकं होमं रथशस्त्रार्थमुत्तमम् ॥१२८॥
कर्तुं विवेश स गुहां बद्ध्वा द्वाराण्यनेकशः । ततो विभीषणः प्राह होमधूमं निरीक्ष्य च ॥१२९॥
राघवं कल्पवृक्षाधः संस्थितं बंधुवेष्टितम् । होमं करोत्ययं दुष्टः प्रेषयस्व कपीन्पुनः ॥१३०॥
होमे समाप्तेऽजेयः स भविष्यति महासुरः । एतस्मिन्नंतरे ब्रह्मा ययौ रामं सुरैर्युतः ॥१३१॥
नत्वा तं राघवश्चापि पूजयामास सादरम् । तदाऽऽह राघवं ब्रह्मा वरस्त्वस्मै मयार्पितः ॥१३२॥

प्रहार करना आरम्भ कर दिया । इस तरह सात दिन तक उन दोनों सेनाओंमें घमासान युद्ध होता रहा ॥ ११४ ॥ ११५ ॥ उस संग्राममें जो जो वानर मरते थे तो हनुमान्‌जी द्रोणाचल पर्वतवाली औषधि लाकर उन्हें जीवित कर दिया करते थे ॥ ११६ ॥ आठवें रोज राक्षसोंकी एक चौथाई सेना रह गयी, शेष सब मार डाले गये। मूलकासुरने जब देखा कि अब थोड़ेसे राक्षस बचे रह गये हैं तो क्रुद्ध होकर अपने मन्त्रियों, सेनापतियों और सेनाको भेजकर उसने बड़ी वीरताके साथ लड़नेको ललकारा। उधर जब रामदलके वीरोंने देखा कि राक्षसोंकी और भी सेना आ गयी है और वे अपनी तोपों, तलवारों, बन्दूकों आदिसे मेरी सेनाको मारकर ढेर किये दे रहे हैं तब वे भी ताल, तमाल, हिंताल आदि वृक्षों तथा पर्वतकी बड़ी-बड़ी चट्टानोंको लेकर फिर तुमुल युद्ध करने लगे और थोड़ी ही देरमें शत्रुके मंत्री, सेनापति तथा सेनाको यमपुर पहुंचा दिया ॥ ११७-१२१ ॥ जब मूलकासुरने सुना कि वह सेना भी साफ हो गयी तो मारे क्रोधके तमतमा उठा और स्वयं एक दिव्य रथपर सवार हो तथा थोड़ी-सी सेना साथ लेकर लड़नेको चल पड़ा। रामके पार्श्ववर्ती राजाओंने जब उसे लड़नेको तैयार देखा तो वे हजारों राजे भी परिकर बाँध-बाँधकर मैदानमें आ गये ॥ १२२ ॥ १२३ ॥ उन लोगोंने दुन्दुभीकी घनघोर गर्जनाके साथ उस राक्षसपर बाणवर्षा प्रारम्भ कर दी, लेकिन मूलकासुरने क्षणभरमें उन लोगोंको मूच्छित कर दिया ॥ १२४ ॥ जब राजाओंको मूच्छित देखा तो रामचन्द्रकी आज्ञासे सुमन्त्र आदि मन्त्री अपना-अपनी सेनाके साथ लड़नेके लिए जा डटे। मन्त्री भी बेहोश हो गये तो कुश आदि बालक जाकर लड़ने लगे ॥ १२५ ॥ १२६ ॥ कुश आदिके पहुंचनेपर वहाँ भीषण युद्ध हुआ। कुछ देर बाद कुशने अपने बाणोंसे मूलकासुरको उठाकर फेंक दिया और वह लङ्काकी बाजारमें जा गिरा। किन्तु तुरन्त उठ खड़ा हुआ और उत्तम शस्त्र तथा रथ प्राप्त करनेकी इच्छासे एक कन्दरामें घुस गया, द्वार बन्द कर लिया और वहाँ आभिचारिकी क्रियाके अनुसार हवन आदि करने लगा ॥ १२७ ॥ १२८ ॥ जब विभीषणने हवनके धुएँको देखा तो भाइयोंकी मण्डलीमें कल्पवृक्षके नीचे बैठे हुए रामचन्द्रके पास जाकर इस प्रकार कहने लगे—हे राम ! वह दुष्ट कन्दरामें बैठा हवन कर रहा है। अतएव फिर वानरोंको भेजिए। यदि कहीं हवन सम्पन्न हो गया तो फिर वह किसीसे भी नहीं जीता जा सकेगा। इसी बीचमें बहुतसे देवताओंके साथ

यदा वीरान्मे मृत्युर्भवत्विति पुरा मम । अनेन याचितं राम तपोन्तेऽङ्गीकृतं मया ॥१३३॥
अतोऽस्य पुरुषान्मृत्युर्न भविष्यति राघव । स्त्रीहस्तान्मरणं चास्य विद्धि त्वं रघुनन्दन ॥१३४॥
अन्यत् किंचित् प्रवक्ष्यामि कारणं मरणेऽस्य हि । एकदा शोकयुक्तेन पुराऽनेन द्विजाग्रतः ॥१३५॥
सीताचंडीनिमित्तेन जातो मे हि कुलक्षयः । इति यन्निष्ठुरं वाक्यमुक्तं तन्मुनिभिः श्रुतम् ॥१३६॥
तेष्वेकस्तं मुनिः क्रोधाद्ददौ शापं हि राक्षसम् । या चंडीति त्वयोक्ता साऽद्यैव त्वां मारयिष्यति१३७॥
तन्मुनेर्वचनं श्रुत्वा तं जघान स राक्षसः । तद्भीत्या मुनयः सर्वे तूष्णींभूताः स्थिता पुरा ॥१३८॥
तस्मात्तन्मुनिवाक्येन ममापि वरदानतः । सीताहस्तान्मृतिश्चास्य भविष्यति न संशयः ॥१३९॥
अतः सीतां समानीय तयैनं जहि राक्षसम् । इत्युक्त्वा राममामंत्र्य ययौ वेधा निजं पदम् ॥१४०॥
रामोऽपि ब्रह्मवचनं श्रुत्वा प्राह विभीषणम् । मूलकासुरहोमाय न कार्यं विघ्नमद्य हि ॥१४१॥
सीतायामत्र यातायां विघ्नं कार्यं प्लवंगमैः । इत्युक्त्वा गरुडं प्राह रामः पुष्पकसंस्थितः ॥१४२॥
अयोध्यां गच्छ शीघ्रं त्वं वायुपुत्रेण मद्गिरा । तामत्रानय वैदेहीं स्वपृष्ठे तां निवेश्य च ॥१४३॥
समंततस्त्वां दुष्टेभ्यः पथि रक्षतु मारुतिः ।
तथेति रामवचनमुररीकृत्य सादरम् । तावुभौ राघवं नत्वाऽयोध्यां शीघ्रं प्रजग्मतुः ॥१४४॥

इति श्रीशतकोटिरामचरितांतर्गते श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये राज्यकाण्डे पूर्वार्द्धे शतनारीवरप्रदानं मूलकासुराख्यानं नाम चतुर्थः सर्गः ॥ ४ ॥

पञ्चमः सर्गः

(राम-सीताविरह)

श्रीरामदास उवाच

अथ भूमिसुताऽयोध्यापुर्यां सा हृदि राघवम् । स्मरंत्यासीत्तद्विरहाद्व्याकुला नाप शं क्षणम् ॥ १ ॥

ब्रह्माजी वहाँ आ गये ॥ १२९-१३१ ॥ रामने उनको प्रणाम करके विधिवत् पूजन किया । थोड़ी देर बाद ब्रह्माने रामसे कहा-हे रघुनन्दन ! बहुत दिनोंकी बात है, मूलकासूर घोर तपस्या कर रहा था । अन्तमें माँगनेपर मैंने उसे यह वरदान दिया था कि तुम किसी वीरके मारनेसे नहीं मरोगे ॥१३२॥१३३॥ अतएव पुरुषके हाथसे इसकी मृत्यु न होगी । यह किसी स्त्रीके हाथों मारा जा सकेगा ॥ १३४ ॥ एक कारण यह भी है कि एक बार शोकाकुल होकर मूलकासुरने एक ब्राह्मणमंडलीके समक्ष कहा था कि चंडी सीताके कारण ही मेरे कुलका नाश हुआ है । इस निष्ठुर बातको सुनकर एक ऋषिने उसको शाप दे दिया कि जिस सती-साध्वी सीताके लिए तू ऐसे अपमानजनक शब्दोंका प्रयोग कर रहा है, वही सीता तुझे भी शीघ्र ही मारेगी ॥ १३५-१३७ ॥ मुनिका शाप सुनकर मूलकासुरने उसे तुरन्त मार डाला । फिर उसके डरसे शेष ऋषि चुपचाप बैठे रह गये । मेरे कहनेका मतलब यह है कि उस ऋषिके शाप तथा मेरे वरदानसे सीताके हाथों ही इस अधमकी मृत्यु होगी । इसमें कोई संदेह नहीं है ॥ १३८-१४० ॥ रामने ब्रह्माकी बातें सुनकर विभीषणसे कहा कि आज मूलकासुरके यज्ञमें विघ्न डालनेकी कोई आवश्यकता नहीं है । जब सीता यहाँ आ जायें, तब वानरोंको उसके यज्ञमें विघ्न डालनेकी आज्ञा दी जायगी । फिर राम गरुड़से कहने लगे—तुम जाओ और सीताको अपनी पीठपर बिठाकर यहाँ ले आओ ॥ १४१-१४३ ॥ चलते समय रास्तेमें हनुमानजी दुष्टोंसे उनकी रक्षा करते रहेंगे । रामचन्द्रकी आज्ञाको सादर स्वीकार करके वे दोनों वहाँसे अयोध्याके लिए चल पड़े ॥ १४४ ॥ इति श्रीशतकोटिरामचरितान्तर्गते श्रीमदानन्दरामायणे पं० रामतेजपाण्डेयविरचित'ज्योत्स्ना'भाषाटीकासहिते राज्यकांडे पूर्वार्द्धे चतुर्थः सर्गः ॥ ४ ॥

श्रीरामदासने कहा—उधर रामचन्द्रजीके चले जानेपर सीता अयोध्यामें श्रीरामका स्मरण करती हुई उनके वियोगसे व्याकुल रहा करती थीं । क्षण भरके लिए भी उनके हृदयको चैन नहीं मिलती थी ॥ १ ॥

प्रासादे सा कदा तस्थौ कदा प्रासादमूर्धनि । कदा द्राक्षामंडपाधः कदा संन्यस्तभूषणा ॥ २ ॥
वारस्त्रीणां कदा नृत्यं ददर्श जनकात्मजा । कदा जयार्थं रामस्य कार्तवीर्यमपूजयत् ॥ ३ ॥
कदाऽकरोच्च तुलसीशिवाश्वत्थान् प्रदक्षिणाः । मन्युसूक्तानि विप्रैश्च पाठयामास जानकी ॥ ४ ॥
गोमयेनांजनेयं सा कुर्व्यां कृत्वाऽर्च्य जानकी । अकरोत्प्रत्यहं पुच्छवृद्धिं स्वांगुलिमात्रतः ॥ ५ ॥
शतरुद्रीयसूक्तस्य जयार्थं राघवस्य सा । दुर्गायाः पूजनं नित्यं चकार नियतव्रता ॥ ६ ॥
गणेशं मारुतिं शम्भुं स्थण्डिले स्थाप्य प्रेमतः । चकार बद्ध्वा द्वाराणि गवाक्षैः सेचयज्जलम् ॥ ७ ॥
कार्तवीर्यस्य यंत्राणि स्थापयामास जानकी । मंचके राघवेन्द्रस्य पूजयामास सर्वदा ॥ ८ ॥
कदा सखीमध्यगा सा त्यक्तालंकारमण्डना । जलयंत्रांतिके निद्रां नाप तद्विरहाग्निना ॥ ९ ॥
कदा निरीक्ष्य प्रासादे काकमाह विदेहजा । यदि शीघ्रं राघवस्य दर्शनं मे भविष्यति ॥१०॥
तर्हि त्वं गच्छ वेगेन नो चेदत्र स्थिरो भव । तत्सीतावचनं श्रुत्वा काकस्तूड्डीय वेगतः ॥११॥
तेन किंचित्समाश्वस्ता पवनं प्राह जानकी । स्पृष्ट्वा त्वं राघवांगानि मां स्पर्शं कर्तुमर्हसि ॥१२॥
कदा चंद्रं निशि प्राह त्वं स्पृष्ट्वा शीतलैः करैः । श्रीरामं मां स्पृशस्वाद्य स्वकरैः सुखकारकैः ॥१३॥
शुक्लपक्षे द्वितीयायां सीताऽलंकारमण्डिता । स्नात्वा प्रासादशिखरात्सखीभिः परिवेष्टिता ॥१४॥
अपश्यच्छशिनं हर्षादेनं रामोऽद्य पश्यति । अन्तरेणाद्य रामस्य संयोगो मां भवेदिति ॥१५॥
रामे गते कदा सीता हरिद्राकज्जलादिकैः । नात्मानं भूषयामास ह्यत्रिपत्न्यर्पितं विना ॥१६॥
चंदनं पुष्पमालाश्च पुष्पशय्यां विदेहजा । नांगीचकार श्रीरामविरहानलपीडिता ॥१७॥
शकुनान् सा ददर्शाथ श्रीरामदर्शनेच्छया । तुष्टाऽभूच्छकुनैः श्रुत्वा शीघ्रं रामसमागमः ॥१८॥

वे कभी अटारीपर, कभी छतपर और कभी अंगूरोंकी झाड़ीमें अपने वस्त्राभूषण उतारकर बैठी रहती थीं ॥ २ ॥ कभी वेश्याओंके नृत्य देखकर जी बहलाना चाहतीं और कभी रामचन्द्रको विजयकामनासे कार्तवीर्य भगवान्का पूजन करती थी ॥ ३ ॥ तुलसी-पीपल आदिके वृक्षोंकी प्रदक्षिणा करती थीं । ब्राह्मणों द्वारा मन्यु-सूक्तका पाठ करवाती थीं । कभी पृथ्वीपर गोबरसे हनुमान्जीकी प्रतिमा बनकर पूजन करतीं और हर रोज एक अंगुल उनकी पूँछ बढ़ाया करती थीं ॥ ४ ॥ ५ ॥ रामचन्द्रकी जयके लिए ब्राह्मणों द्वारा सौ-सौ रुद्रीका पाठ करवातीं और दुर्गाजीकी पूजा करती थीं ॥ ६ ॥ गणेश, मारुति तथा शिव, इनको जलमें बिठालकर दरवाजे बन्द कर लेतीं । फिर खिड़कीसे उनपर जलधारा डाला करती थीं ॥ ७ ॥ रामचन्द्रजीके मंचपर कार्तवीर्यके यंत्र स्थापित करके सदा-सर्वदा उनका पूजन करती थीं ॥ ८ ॥ कभी सहेलियोंमें बैठी-बैठी अपने अलंकारोंको फेंक देतीं और सखियाँ उन्हें फौवारेके पास ले जाकर सुलानेकी चेष्टा करतीं, फिर भी निद्रा नहीं आती थी ॥ ९ ॥ कभी अँटारीपर बैठे हुए कौएको देखकर सीता कहने लगतीं—"यदि मुझे शीघ्र रामचन्द्रके दर्शन होनेवाले हों तो ऐ कौए ! तू यहाँसे उड़ जा, नहीं तो बैठ" सीताकी बात सुनकर कौआ उड़ जाता । उससे सीताके हृदयको बहुत कुछ ढाढ़स बँध जाया करता था ॥ १० ॥ ११ ॥ इसके बाद सीता पवनसे कहतीं—"हे पवन ! तुम पहले रामचन्द्रजीका स्पर्श करके मुझे स्पर्श करो तो बड़ा उपकार हो" ॥ १२ ॥ रात्रिके समय कभी-कभी चन्द्रमासे विनय करतीं—हे चन्द्रदेव ! तुम अपनी ठंढी किरणोंसे रामचन्द्रके शरीरका स्पर्श करके उन सुखदायिनी किरणोंको मेरेपर डालो ॥ १३ ॥ शुक्लपक्षकी द्वितीयाको सीता विविध प्रकारके वस्त्र और आभूषणोंको पहनकर सखियोंके साथ प्रासादके ऊपर जातीं और इस भावनासे चन्द्रदेवका दर्शन करतीं कि राम आज जहाँ कहीं भी होंगे, चन्द्रमाका दर्शन अवश्य करेंगे । ईश्वर चाहेंगे तो शीघ्र ही हमारा और उनका मिलन होगा ॥ १४ ॥ १५ ॥ जबसे रामचन्द्रजी गये थे, तबसे उन्होंने अपने शरीरमें न हल्दी लगायी, न आँखोंमें काजल दिया और न किसी प्रकारके वस्त्राभूषण पहने ॥ १६ ॥ श्रीरामचन्द्रके विरहानलसे पीडित सीताने चन्दन, पुष्प, फूलकी मालाएँ, फूलकी शय्या आदि कुछ भी नहीं अङ्गीकार किया ॥ १७ ॥ रामके दर्शनोंकी इच्छासे वे सदा शकुन उठाया करती थीं । यदि

भवेदिति सखीयुक्ता ददौ सर्वान्सुर्शर्कराः । कदा परगृहं सीता न ययौ राघवं विना ॥१९॥
नैका तस्थौ कापि सीता स्वाभ्यंगोद्वर्तनं जहौ । न मिष्ठान्नं न ताम्बूलं न गीतं केशबंधनम् ॥२०॥
अंगीचकार श्रीरामविरहानलदीपिता । संभाषणं स नान्येन पुरुषेणाकरोत्कदा ॥२१॥
नाकरोत्सस्मितं वक्त्रं नोर्ध्वास्याऽन्यं ददर्श सा । अन्याक्षिगोचरा नाभून्न संतुष्टाऽभवत्कदा ॥२२॥
पर्यंके शयनं सीता नाकरोद्राघवं विना । मुकुरे न ददर्शेत्थं मुखं विरहपांडुरम् ॥२३॥
न दधौ वसनं चित्रं न चित्रां कंचुकीं दधौ । न तस्थौ द्वारदेशे सा देहल्यंगणभूमिषु ॥२४॥
न ययौ सरयूं स्नातुं ययौ नोपवनं वनम् । आरामं न ययौ सीता न तथा पुष्पवाटिकाम् ॥२५॥
न चकार स्वतो दूरं मांगल्यानि विदेहजा । वस्तूनि द्विजपत्नीस्तैस्तोषयामास जानकी ॥२६॥
नियमानकरोन्नाना देवीनां च पृथक् पृथक् । नियमैश्च व्रतैस्तस्थौ स्त्रयं नित्यं विदेहजा ॥२७॥
वटकानां महामालामर्पयामि हनूमते । मोदकान् गणराजाय दास्यामि पूरणान्वितान् ॥२८॥
सिद्धान्नेनापि नैवेद्य ते दास्यामि गणाधिप । दुर्गे त्वां बलिदानं च करिष्यामि प्रसीद मे ॥२९॥
चण्डिके त्वां प्रदास्यामि रक्तं जिह्वोद्भवं त्वहम् । सुष्ठ्वन्नं मापसंयुक्तं बलिदीपसमन्वितम् ॥३०॥
शीघ्रं रामो जयं प्राप्य शिशुभिर्यातु वै पुरीम् । मंदवारे करिष्यामि पंच चोपोषणान्यहम् ॥३१॥
नोपभोक्ष्यामि मधुरं नोपभोक्ष्याम्यहं घृतम् । मासमेकं करिष्यामि व्रतान्येवं सविस्तरात् ॥३२॥
कृष्णपक्षे तृतीयायां चतुर्थ्यां वा महेश्वरि । किंचित्किंचिन्मासि मासि तिलवृद्धिं विधाय च ॥३३॥
गुडेनाहं तिलान्भोक्ष्ये यावच्छ्रीरामदर्शनम् । भविष्यति कुशाद्यैश्च लक्ष्मणाद्यैश्च बंधुभिः ॥३४॥
सत्वरं नवरात्रं च सखीभिश्च करोम्यहम् । एकस्मिन्नेव दिवसे नवभिः प्रभुदर्शने ॥३५॥

शकुन अच्छा उठ जाता तो बड़ा हर्ष होता था। वे समझतीं कि शीघ्र ही रामचन्द्रजीका दर्शन होगा। इसी खुशीमें सखियोंको वे मिठाईयाँ बाँटती थीं। जबसे राम परदेश गये, तबसे वे किसीके घर नहीं गयीं ॥ १८ ॥ १९ ॥ तभीसे सीता कभी अकेली नहीं बैठतीं, शरीरमें उबटन नहीं लगातीं, मिठाई नहीं खातीं, ताम्बूल नहीं चबातीं और अपने केशोंको भी नहीं सँवारती थीं। जबसे राम गये, तबसे उन्होंने किसी पुरुषके साथ संभाषण नहीं किया ॥ २० ॥ २१ ॥ कभी किसीसे मुस्कुराकर नहीं बोलीं, ऊपर मुँह उठाकर किसीकी ओर नहीं निहारा, कभी किसी पुरुषने उन्हें नहीं देख पाया और कभी भी उनकी आत्माको चैन नहीं मिली ॥ २२ ॥ रामके विरहसे पीडित सीताने कभी शय्यापर शयन नहीं किया और विरहसे पीले पड़े हुए अपने मुखमण्डलको शीशेमें नहीं देखा। न उन्होंने कभी रङ्ग-बिरङ्गे कपड़े पहने और न रङ्ग-विरङ्गी चोली ही धारण की। तबसे वे कभी दरवाजेके चौखटपर नहीं खड़ी हुईं ॥ २३ ॥ २४ ॥ सरयू-स्नान करनेको नहीं गयीं और किसी वन या उपवनमें सैर करने नहीं गयीं। किसी बगीचे तथा पुष्पवाटिकामें भी नहीं गयीं ॥ २५ ॥ तबसे उन्होंने कोई मांगलिक कार्य नहीं किया। अनेक प्रकारकी वस्तुएँ दे-देकर उन्होंने ब्राह्मणियोंको प्रसन्न किया और कितने ही तरहके व्रत करके अनेक देवियोंकी पूजाएँ कीं। इस तरह बहुतसे व्रतोंको करके वे अपने उन नीरस दिनोंको बिताती रहीं ॥ २६ ॥ २७ ॥ सदा इस तरह मनौती मानती थीं—हे देवियों और देवताओं ! यदि रामचन्द्रजी विजयी होकर अपने भाइयों और पुत्रों समेत शीघ्र अयोध्या वापस आयें तो हे हनुमान्जी ! मैं बड़ी भारी माला बनवाकर आपको पहनाऊँगी। हे गणेशजी ! आपको पूरी और लड्डूका भोग लगाऊँगी। अनेक प्रकारके पकवान बनवाकर आपको समर्पण करूँगी। हे दुर्गे ! मेरे ऊपर प्रसन्न होओ। यदि राम लौट आएँ तो आपके लिए बलिदान करूँगी। हे चण्डिके ! मैं आपको विविध प्रकारके स्वादिष्ट अन्नों तथा बलिदीपके साथ अपनी जीभका रक्त चढ़ाऊँगी ! पाँच मङ्गलवारका व्रत करूँगी। एक महीने तक मिठाई और घी न खाऊँगी ॥ २८-३२ ॥ हे महेश्वरी ! कृष्णपक्षकी तृतीया तथा चतुर्थीको थोड़े-थोड़े गुड़के साथ तिल खाऊँगी। यह व्रत तब तक चलता रहेगा, जब तक मुझे लक्ष्मणादि भ्राताओंके साथ श्रीरामचन्द्रजीके दर्शन नहीं मिलेंगे ॥ ३३ ॥ हे चण्डिके ! यदि मुझे

रविवारे करिष्यामि रवेऽहं पूजनं तव । इत्थं दिने दिने सीता नियमानकरोत्तदा ॥३६॥
ब्राह्मणैरर्घ्यदानं च कारयामास जानकी । न सा सुष्वाप रात्रौ तु दिवा वा वरवर्णिनी ॥३७॥
एवं दिने दिने सीता श्रीरामविरहातुरा । न शमाप क्वापि देवी श्रीरामार्पितमानसा ॥३८॥
एवं ता उर्मिलाद्याश्च चंपिकाद्यापि वै स्त्रियः । स्वस्वस्वामिवियोगाग्निज्वलिता व्याकुलाः क्षणम् ३९॥
न सुखं क्वापि वै प्रापुः स्वकांतार्पितमानसाः । सर्वास्ता लुलुठुर्नार्यो मणिभूमौ मृगीदृशः ॥४०॥
काचिन्नर्तयति क्रीडामयूरं न मुदा तदा । शुकं न पाठयत्यन्या पञ्जरस्थं कुतूहलात् ॥४१॥
लालयेन्नकुलं नान्या नालापयति सारिकाम् । अपराऽतीव संतप्ता नैव खेलति सारसैः ॥४२॥
भेजिरे न विलासं ता रेमिरे नैव मंदिरे । सखीभिरूचिरे नालं वीणावाद्यं न शुश्रुवुः ॥४३॥
कल्पद्रुमप्रसूतं यद्रववत्तत्सुधोपमम् । मंदारकुसुमामोदं न पपुर्मधुरं मधु ॥४४॥
योगिन्य इव ता शुभ्रा नासाग्रन्यस्तलोचनाः । अलक्ष्यध्यानसंधानाः स्वनाथार्पितमानसाः ॥४५॥
चंद्रकांतमणिच्छन्ने स्रवद्वारिकणद्रवैः । क्षणं वातायने स्थित्वा जलयंत्रेक्षणं क्वचित् ॥४६॥
रचयंति क्षणं शय्या दीर्घिका भोजिनीदलैः । वीज्यमानाः सखीभिस्ताः शीतलैः कदलीदलैः ॥४७॥
इत्थं युगसमां रात्रिं दिनं ता मेनिरे सदा । कथञ्चिद्धारणां कृत्वा विह्वलाः सज्वराः स्थिताः॥४८॥
एतस्मिन्नंतरे सीता नियमैश्च व्रतादिभिः । समानीतावाञ्जनेयगरुडावीयतुः पुरीम् ॥४९॥
प्रास्फुरच्च भुजो वामः सीताया नयनं तथा । सुचिह्नं मन्यमाना सा किंचित्तुष्टाऽभवत्तदा ॥५०॥
अथ तौ कंपनोद्भूतगरुडौ सदसि स्थितम् । अयोध्यायां यूपकेतुं वृत्तं कथयतो जवात् ॥५१॥
तच्छ्रुत्वा यूपकेतुः स वृत्तं सीतां न्यवेदयत् । सा तु तुष्टमनाः सीता तस्मिन्नेव दिने शुभे ॥५२॥

शीघ्र मेरे प्रभुका दर्शन मिल जाय तो मैं अपनी सहेलियोंके साथ नवरात्रका व्रत करूँगी ॥ ३४ ॥ ३५ ॥ हे सूर्य भगवान्! प्रत्येक रविवारको मैं आपका विधिवत् पूजन करूँगी। इस प्रकार रामके वियोगवाले दिनोंमें सीता प्रतिदिन अनेक प्रकारकी मनौती माना करती थीं ॥ ३६ ॥ वे ब्राह्मणोंसे अर्घ्यदान कराती रहती थीं। रात-दिन कभी नहीं सोती थीं। इस तरह रामके वियोगसे दुःखिनी सीता कहीं भी सुख नहीं पाती थीं ॥ ३७ ॥ ३८ ॥ इसी तरह उर्मिला और चम्पिकादिक स्त्रियाँ भी अपने-अपने स्वामियोंके वियोगरूपी अग्निसे दग्ध होकर व्याकुल रहती थीं। वे समस्त स्त्रियाँ अपने महलोंकी मणिमयी भूमियोंपर लोट-लोटकर दिन काटती थीं। उन्हें संसारके किसी भी प्रदेशमें आनन्द नहीं मिलता था ॥ ३९ ॥ ४० ॥ उनमेंसे न कोई क्रीड़ामयूर नचाती, न पिंजरेमें बैठे हुए तोतेको पढ़ाती, न पाले हुए नेवलेको प्यार करती, न मैना पढ़ाती और न कोई स्त्री सारसोंके साथ खेलवाड़ ही करती थी ॥ ४१ ॥ ४२ ॥ उन्होंने किसी सुखका उपभोग नहीं किया। महलोंमें उन्होंने आनन्द नहीं लिया। वे न अपनी सहेलियोंके साथ हँसी-दिल्लगी करती थीं, न वीणा बजातीं और न सुनती थीं ॥ ४३ ॥ कल्पवृक्षके पुष्पसे उत्पन्न कुसुमकी अमृतसरीखी सुगन्धिका भी उपयोग नहीं करती थीं ॥ ४४ ॥ वे नारियाँ योगियोंसे समान अपनी दृष्टि नासाग्रभागमें रोककर रात-दिन अपने-अपने पतियोंका ध्यान किया करती थीं। उन्होंने अपना-अपना मन अपने-अपने पतियोंको अर्पण कर दिया था ॥ ४५ ॥ वे झरोखेमें लगे हुए चन्द्रकान्त मणिके समीप, जिसमें सदा रातके समय जलकी धारा बहा करती थी, वहाँ बैठकर कुछ देर उसीको निहारा करती थीं ॥ ४६ ॥ कभी कमलके पत्तोंकी शय्यापर सोतीं और सखियोंसे केलेके पत्तोंका पंखा झलवाती थीं ॥ ४७ ॥ इस प्रकार एक-एक रात्रिको युगके समान मानकर बड़े सन्तापसे विह्वल होकर समय बिताती थीं। जब सीता इतनी कठिन यंत्रणा भोग रही थीं, उसी समय गरुड़ और हनुमान्‌जी वहाँ आ पहुँचे। सहसा सीताकी बायीं आँख तथा भुजा फड़कने लगीं। इसे शुभ शकुन मानकर वे अपने मनमें कुछ प्रसन्न हुईं ॥ ४८–५० ॥ थोड़ी देर बाद गरुड़ और हनुमान्‌जी राजसभामें बैठे हुए यूपकेतुके पास पहुँचे और उन्होंने रामका सन्देश सुनाया ॥ ५१ ॥ उसे सुनकर यूपकेतुने सीताको बतलाया और रामके आज्ञानुसार सीता उसी दिन कुछ ब्राह्मणों, पुरोहितों

रामवाक्यादारुरोह गरुडं वेगवत्तरम् । अग्निहोत्रं पुरस्कृत्य ऋत्विग्भिश्च पुरोधसा ॥५३॥
पतिं विनाऽग्निना नारी सीमामुल्लङ्घ्य न व्रजेत् । स दोषोऽत्र न विज्ञेयः सीतोद्योगो विहायसा ॥५४॥
भये प्राप्ते प्रवासोऽपि स्त्रीणामुक्तोऽग्निभिः सह । पतिना रहितानां च न दोषः कथ्यतेऽत्र हि ॥५५॥
भूमिगैर्ब्राह्मणाद्यैश्च न देवचरितं चरेत् । ततः स रक्षयामास मारुतिस्तां समंततः ॥५६॥
पश्यंती विविधान् देशान् सीता लंकां ययौ मुदा । ददर्श कल्पवृक्षाधः पुष्पकस्थं रघूत्तमम् ॥५७॥
ननाम शिरसा भक्त्या साऽवरुह्य खगाधिपात् । तां दृष्ट्वा राघवः प्राह सीते तेऽद्य मुखं कथम् ॥५८॥
विवर्णमंगयष्टिस्ते कृशाऽद्य परिलक्ष्यते । तद्रामवचनं श्रुत्वा जानकी सस्मितानना ॥५९॥
विलज्जंती विनोदेन राघवं प्राह सादरम् । स्वामिंस्त्वद्विरहादेतत्सर्वं त्वं विद्धि राघव ॥६०॥
न निद्रामि न जागर्मि नाश्नामि न पिबाम्यहम् । ध्यायाम्यहं केवलं त्वां योगिनीव वियोगिनी॥६१॥
निद्रादरिद्रनयना स्वप्नेऽपि न तवाननम् । आनंदि सर्वथा यन्मे मंदभाग्या विलोकये ॥६२॥
त्वदाननप्रतिनिधिर्विधुर्विधुरया मया । उदितोऽपि न चालोकि तापं वै त्यक्तुकामया ॥६३॥
त्वदालापसमालापं कलयन् किल काकलीम् । कोकिलोऽपि मयाऽऽकर्णि नालकाकीर्णकर्णया ॥६४॥
त्वदंगसंगमधुरो धवधूपितया मया । नानिलोऽपि मयालिंगि क्वचिद्विश्रांतया भृशम्॥६५॥
नाना यमाश्च नियमा जयार्थं तव राघव । कुर्वत्या मम नैवाभूत्सुखं त्वद्विरहाग्निना ॥६६॥
ततो विहस्य श्रीरामस्तामलिंग्य पुनः पुनः । कराभ्यां तत्स्तनौ स्पृष्ट्वा पपौ बिंबाधरामृतम् ॥६७॥
अथापरदिने रामः स्नात्वा स्नातां विदेहजाम् । अस्त्रविद्यां शस्त्रविद्यामस्त्राह्वानविसर्जने ॥६८॥

तथा अग्निको साथ लेकर गरुड़पर जा बैठीं ॥ ५२ ॥ ५३ ॥ यह एक नियम है कि स्त्री बिना अग्निके अपने गाँवकी सीमाको लाँघकर कहीं नहीं जाती। अग्निको साथ ले लेनेसे वह दोष नहीं रहता ॥ ५४ ॥ दूसरे एक जगह शास्त्र यह भी आज्ञा देता है कि यदि किसी प्रकारके खतरेका अवसर आ जाय तो अग्निको साथ लेकर वह प्रवास भी कर सकती है। यदि उस समय वह पतिसे वियुक्त हो तो उसको ऐसा करनेपर कोई दोष नहीं लगता ॥ ५५ ॥ मर्त्यलोकनिवासियों तथा ब्राह्मणोंको चाहिए कि वे देवताओंका अनुकरण न करें। अस्तु, सीता गरुड़पर सवार हुईं। हनुमान्‌जी सीताकी रक्षा करने लगे और सीता रास्तेके अनेक देशोंको देखती हुई लङ्काकी तरफ चलीं। इस प्रकार बहुत शीघ्र लङ्कामें पहुँचकर उन्होंने देखा कि रामचन्द्रजी वहाँ कल्पवृक्षके नीचे बैठे हुए हैं ॥ ५६ ॥ ५७ ॥ वहाँ पहुँचीं तो उतरकर उन्होंने रामचन्द्रको प्रणाम किया। रामने कहा—सीते! मैं देखता हूँ कि तुम्हारा मुँह कुम्हलाया हुआ है और शरीर दुर्बल हो गया है। रामकी बात सुनकर मुस्कराती हुई सीता लज्जाके साथ कहने लगीं—हे स्वामिन्! यह सब आपके विरहका प्रभाव है ॥ ५८-६० ॥ मुझे न नींद आती है, न जाग ही पाती हूँ और न खाती-पीती हूँ। आपसे वियुक्त होकर योगिनीके समान सदा आपका ध्यान किया करती हूँ ॥ ६१ ॥ निद्राकी दरिद्र मेरी आँखें स्वप्नमें आपके ही मुखको देखा करती हैं। उसीमें इनको आनन्द मिलता है ॥ ६२ ॥ आपके मुखका प्रतिनिधिस्वरूप चन्द्रमा भी उदित होता है तो मुझे अच्छा नहीं लगता। सन्तापको दूर करनेकी कामनासे भी उसकी ओर निहारनेको मन नहीं करता ॥ ६३ ॥ यद्यपि तुम्हारी ही बोलोंकी तरह कोकिलकी बोल होती है, किन्तु वह भी सुननेकी इच्छा नहीं होती। उसकी बोल कानोंको शूलके समान लगती है ॥ ६४ ॥ यद्यपि तुम्हारे अङ्गोंके स्पर्शके समान ही मधुर धूपके सुगंधसे मिली वायु भी है, किन्तु उसका भी मैंने कभी आलिंगन नहीं किया ॥ ६५ ॥ आपकी विजयके लिए मैं विविध प्रकारके व्रतों और उपवासोंको करती रही। आपकी विरहाग्निसे संतप्त होनेके कारण कभी मुझे सुख नहीं मिला ॥ ६६ ॥ इसके अनन्तर हँसकर रामने बार-बार सीताको अपनी छातीसे लगाया, स्तनस्पर्श किया और होठोंको चूमा ॥ ६७ ॥ इसके बाद दूसरे दिन रामने स्नान किया, सीताको भी स्नान करवाया और सब अस्त्रविद्या, शस्त्रविद्या एवं उनके आवाहन तथा विसर्जनकी रीति सिखलायी। कहनेका तात्पर्य यह कि उन्होंने थोड़े ही समयमें सीताको समस्त धनुर्वेदकी शिक्षा दे दी। रामकी आज्ञासे लक्ष्मणने रथ तैयार

शिक्षयामास सकलां धनुर्विद्यां सविस्तराम् । रामाज्ञया लक्ष्मणोऽपि रथं सिद्धं चकार सः ॥६९॥
दारुकः सारथिर्यस्मिन् शस्त्राण्यस्त्राण्यनेकशः । गदापद्मं तु यत्रास्ति यत्रास्ति गरुडो ध्वजे ॥७०॥
यस्मिन् शैव्यश्च सुग्रीवस्तथा चैव बलाहकः । मेघपुष्पश्च चत्वारो वायुगास्तुरगोत्तमाः ॥७१॥
यत्र छत्रं वरं दिव्यं हेमदंडं विराजते । यस्मिन् शुक्ले चामरे द्वे यस्मिन्कीलादिरुक्मजम् ७२।
तं रथं राघवो दृष्ट्वा जानकीं वाक्यमब्रवीत् । सीते स्थित्वा स्यंदनेऽस्मिन् जहि त्वं मूलकासुरम् ७३।
तथेति रामवाक्याच्छायां सीता प्रचोदयत् । तामसी साऽपि तं नत्वा परिक्रम्य पुनः पुनः ॥७४॥
आरुरोह रथं वेगाद्‌घोरा घर्घरनिःस्वना । एतस्मिन्नंतरे रामप्रेरिता वानरोत्तमाः ॥७५॥
लंकां गत्वा पूर्ववच्च हवनाद्यं प्रचालयन् । ततस्ते वानराः सर्वे ययुः श्रीराघवं पुनः ॥७६॥
ययौ स्थित्वा रथे योद्धुं क्रोधेन मूलकासुरः । मार्गे भुवि पपातास्य मुकुटः स्खलितो भुवि ॥७७॥
अनिवर्त्यासुरो गर्वाद्ययौ रणभुवं जवात् । सीताछायाऽपि सैन्येन ययौ सा लक्ष्मणादिभिः ॥७८॥

इति श्रीशतकोटिरामचरितांतर्गते श्रीमदानन्दरामायणे राज्यकांडे पूर्वार्धे सीताविरहो नाम पञ्चमः सर्गः ॥ ५ ॥

षष्ठः सर्गः

(रामके द्वारा राज्यका विभाजन)

श्रीरामदास उवाच

अथ छाया टणत्कृत्य शार्ङ्गं तच्च महद्धनुः । ययौ रणभुवं वेगात्तां ददर्शासुरोऽपि सः ॥ १ ॥
करालदंष्ट्रानयनां विद्युत्पिंगशिरोरुहाम् । तालजंघां शूर्पपादां दरिवक्त्रां घनप्रभाम् ॥ २ ॥
लोमशां प्रलम्बिजिह्वां विदीर्णास्यां महच्छिराम् । तां दृष्ट्वा कौंभकर्णिः स भीतः प्राह स्खलद्गिरा ॥ ३ ॥
का त्वं समागताऽत्यत्र किमर्थं योद्धुमिच्छसि । मम सर्वं वदस्व त्वं मदग्रे मा स्थिरा भव ॥ ४ ॥

किया ॥ ६८ ॥ ६९ ॥ उस रथका दारुक सारथी था, विविध प्रकारके अस्त्र-शस्त्र एवं गदा-पद्म उसमें रक्खे थे और रथके ऊपर गरुड़से अंकित पताका फहरा रही थी ॥ ७० ॥ उसमें शैव्य, सुग्रीव, मेघपुष्प और बलाहक नामवाले चार घोड़े जुते हुए थे ॥ ७१ ॥ उसपर बढ़िया छत्र लगा था और सुवर्णके दण्ड लगे दो सफेद चमर रक्खे थे। उस रथमें जगह-जगह सुवर्णकी कीलें लगी हुई थीं ॥ ७२ ॥ इस प्रकार उस सुसज्जित रथको देखकर रामने सीतासे कहा—सीते ! अब तुम इस रथपर बैठकर मूलकासुरको मारो ॥ ७३ ॥ सीताने रामकी बात अङ्गीकार की और अपनी तामसी छायाको प्रेरित किया। उस तामसी छायारूपिणी सीताने बार-बार रामकी प्रदक्षिणा की और घर्घर शब्द करते हुए रथपर जा बैठीं। उसी समय रामके द्वारा प्रेरित वानर लङ्कामें पहुँचे और उन्होंने मूलकासुरको हवनकर्मसे विचलित कर दिया। फिर लौटकर वे वानर रामके पास पहुँचे और सब समाचार सुनाया। उधर मूलकासुर कुपित होकर रथपर जा बैठा और संग्रामके लिए चल पड़ा। जाते-जाते रास्तेमें एक जगह उसका मुकुट माथेसे खिसककर जमीनपर गिरा और वह स्वयं भी फिसलकर गिर पड़ा ॥ ७४–७७ ॥ फिर भी वह लौटा नहीं, उसी गर्वके साथ रणभूमिमें पहुँचा। इधर सीता भी रथपर बैठीं और अपने लक्ष्मणादि वीर सैनिकोंके साथ रणभूमिकी ओर चल पड़ीं ॥ ७८ ॥ इति श्रीशतकोटिरामचरितांतर्गते श्रीमदानन्दरामायणे पं० रामतेजपांडेयकृत'ज्योत्स्ना'भाषाटीकासमन्विते राज्यकांडे पूर्वार्द्धे पंचमः सर्गः ॥ ५ ॥

श्रीरामदासने कहा–इसके अनन्तर उस छायामयी सीताने अपने धनुषका विकराल टंकोर किया और संग्रामभूमिमें जा डटीं। तब मूलकासुरने भी उन्हें देखा ॥ १ ॥ उस समय सीताके बड़े-बड़े दाँत, डरावनी आँखें, बिजलीके समान पीतवर्णके केशपाश, तालकी नाईं लम्बी-चौड़ी जाँघें, सूपकी तरह चौड़े पैर, कन्दराके समान भयावना तथा मेघके समान काला मुँह, लपलपाती जीभ और बड़ा भारी माथा था। उन्हें देखकर कुंभकर्णके बेटेने घबराकर कहा–॥ २ ॥ ३ ॥ तुम कौन हो ? यहाँ युद्ध करनेके लिये क्यों आयी हो ? इन बातोंका

यदि जीवितुमिच्छाऽस्ति न मे स्त्रीष्वस्ति पौरुषम् । अथ सा रामसीताभ्यां विमानान्मुहुरीक्षिता ॥ ५ ॥
तमुवाच तदा छाया गिरा निर्दरती गिरीन् । मूलकासुर तां सीतां चंडां मां विद्धि चंडिकाम् ॥ ६ ॥
यन्निमित्तात्कुलं नष्टं तव लंका प्रधर्षिता । मत्पक्षपातिनं विप्रं पूर्वं त्वं हतवानसि ॥ ७ ॥
तस्यानृण्यं गमिष्यामि त्वां हत्वाऽद्य रणाजिरे । इत्युक्त्वा चापमानम्य पंचबाणैर्जघान तम् ॥ ८ ॥
ततः सोऽपि धनुर्धृत्वा छायां बाणान्मुमोच ह । तद्युद्धं पार्थिवाद्यास्ते जीविता ये हनूमता ॥ ९ ॥
ददृशुर्वानराः सर्वे पुष्पकाट्टालसंस्थिताः । सीतया रघुवीरस्तु कल्पवृक्षतले स्थितः ॥१०॥
रुक्ममाणिक्यपर्यंके दासीभिः परिवीजितः । उपबर्हणपृष्ठः स धृताधोंकोपबर्हणः ॥११॥
युद्धं ददर्श तच्छायामूलकासुरयोर्महत् । मूलकासुरसंत्यक्तान् बाणांश्छाया समागतान् ॥१२॥
छित्वा स्वबाणजालैस्तानन्पुनर्बाणान्मुमोच सा । चतुर्भिस्तुरगान् हत्वा मुकुटं कवचं धनुः ॥१३॥
सा बिभेद त्रिभिर्बाणैस्तदा पद्भ्यां महासुरः । गत्वाऽन्यं रथमारुह्य छायां योद्धुं पुनर्ययौ ॥१४॥
ततश्छायां मुमोचासौ वह्न्यस्त्रं मूलकासुरः । छाया मुमोच मेघास्त्रं तद्वह्न्यस्त्रं न्यवर्तयत् ॥१५॥
पर्वतास्त्रं कौम्भकर्णिस्ततश्छायां मुमोच सः । न्यधारयत्तच्छाया सा पवनास्त्रेण पार्वतम् ॥१६॥
पुनर्मुमोच वेगेन सर्पास्त्रं मूलकासुरः । गारुडास्त्रेण तच्छाया चकार विफलं क्षणात् ॥१७॥
एवं तत्तुमुलं युद्धं बभूव दिनसप्तकम् । तदा छाया महारौद्रा चंडिकाऽस्त्रेण तं रिपुम् ॥१८॥
हंतुकामा महास्त्रं तन्मुमोच मूलकासुरम् । तदा चचाल जगती मर्यादामब्धयस्तदा ॥१९॥
लंघयामासु रजसा व्याप्ताश्चासंस्तदा दिशः । चण्डिकास्त्रं तु चिच्छेद मूलकासुरसच्छिरः ॥२०॥
पपात कायो लंकायां राजद्वारि महच्छिरः । हाहाकारो महानासीत्लंकायां रक्षसां तदा ॥२१॥

उत्तर दो और यदि तुम्हें अपने प्राण प्रिय हों तो मेरे आगेसे हट जाओ। स्त्रियोंसे लड़नेके लिए मुझमें पुरुषार्थ नहीं है। थोड़ी ही देर बाद सीता आकाशमें रामके साथ विमानपर बैठी हुई दिखायी पड़ीं ॥ ४॥ ५॥ वहाँ हीसे अपनी घनघोर वाणीमें पर्वतोंको भी कँपाती हुई सीता कहने लगी—हे मूलकासुर! इस समय उग्र रूप धारण किये मैं चण्डिका सीता हूँ, । जिसके कारण तुम्हारा सारा कुल नष्ट हो गया था और लंका ध्वस्त हो गयी थी, वही सीता मैं हूँ। तुमने मेरे पक्षपाती एक ब्राह्मणको मार डाला है ॥ ६ ॥ ७ ॥ उसके बदले आज तुम्हें मारकर मैं उसके ऋणसे मुक्त हो जाऊँगी। इतना कहकर सीताने अपना धनुष उठाया और तड़ातड़ पाँच बाणोंसे मूलकासुरपर प्रहार किया ॥ ८ ॥ इसके अनन्तर उस दैत्यने भी अपना धनुष सम्हालकर सीताके ऊपर कई बाण चलाये। उन दोनोंके उस तुमुल युद्धको देखनेके लिए वे बहुतसे राजे तथा वानर पुष्पक विमानपर बैठे थे, जिनको हनुमानजीने संजीवनी बूटीसे जीवित कर दिया था ॥ ९ ॥ थोड़ी देर बाद वानरोंने देखा कि राम सीताके साथ कल्पवृक्षकी छायामें स्वर्णजटित आसनपर बैठे हैं ॥ १० ॥ दासियाँ पंखा झल रही हैं और उनके आगे-पीछे तकिया लगी हुई है ॥ ११ ॥ रामचन्द्रजी वहींसे बैठे-बैठे छायामयी सीता तथा मूलकासुरका युद्ध देखते रहे। सीता मूलकासुरकी ओरसे आये बाणोंको शीघ्रताके साथ काट-काटकर अपने बाणोंको उसके ऊपर छोड़ती जाती थीं। चार बाणोंसे सीताने मूलकासुरके रथमें जुते घोड़ों और तीनसे उसके माथेका मुकुट, धनुष तथा कवच काट डाला ॥१२॥१३॥ ऐसी अवस्थामें वह पैदल दौड़ता हुआ गया और एक दूसरे रथपर सवार होकर फिर सीतासे युद्ध करनेके लिए आ डटा ॥ १४ ॥ वहाँ पहुँचते ही उसने सीतापर वह्न्यस्त्र छोड़ा। सीताने मेघास्त्रका प्रयोग करके उसके वह्न्यस्त्रको शान्त कर दिया ॥ १५ ॥ फिर उसने सीतापर पर्वतास्त्र छोड़ा। सीताने पवनास्त्र छोड़कर उसका निवारण किया। इसके अनन्तर वेगके साथ उसने सर्पास्त्र चलाया। सीताने गरुडास्त्र छोड़कर उसे व्यर्थ कर दिया ॥ १६ ॥ १७ ॥ इस प्रकार सीता और मूलकासुरमें सात दिन पर्यन्त महान् युद्ध होता रहा। तदनन्तर कुपित होकर सीताने मूलकासुरका नाश करनेके लिए अपना एक महान् अस्त्र चलाया। जिससे पृथ्वी डगमगाने लगी और समुद्र अपनी मर्यादाको लाँघकर बड़ी-बड़ी लहरें उछालने लगा ॥ १८ ॥ १९ ॥ दसों दिशाएँ धूलसे व्याप्त हो गयीं और उन चण्डीरूपधारिणी

निनेदुर्देववाद्यानि देवाश्चाकाशसंस्थिताः । ववर्षुः कुसुमैश्छायां रामं सीतां मुहुर्मुहुः ॥२२॥
ततो निवर्त्य सा छाया ययौ सीतांतिकं पुनः । नत्वा रामं च सीतां च सीतादेहे लयं ययौ ॥२३॥
तदा निनेदुर्वाद्यानि ननृतुश्चाप्सरोगणाः । तुष्टुवुर्मागधाद्याश्च जगुर्गीतं नटादयः ॥२४॥
ततः सुरगणैः सर्वैर्वेधाः श्रीराघवं ययौ । नत्वा रामं च सीतां च तुष्टाव जानकीं मुदा ॥२५॥

ब्रह्मोवाच

जनकजात्मजे राघवप्रिये कनकभासुरे भक्तपालिके ।
दशरथात्मजप्राणवल्लभे तव पदांबुजालिः शिरोऽस्तु मे ॥२६॥
मूलकासुरप्राणघातके रामरक्षिते रामसेविते ।
राममोहिनि स्यंदनस्थिते त्वत्पदांबुजालिः शिरोऽस्तु मे ॥२७॥
राममञ्चकाधिष्ठिते रमे रामजीविते रामलालिते ।
रामसंस्तुते रामरंजिते त्वत्पदाम्बुजालिः शिरोऽस्तु मे ॥२८॥
लोकपावनि श्रीरजे वरे भूमिकन्यके लोकपालिके ।
पद्मलोचने धरात्मजे परे त्वत्पदांबुजालिः शिरोऽस्तु मे ॥२९॥
कंजलोचने नागगामिनि स्वीयसत्सुखे रम्यरूपिणि ।
रुक्मभूषिते मौक्तिकांकिते त्वत्पदांबुजालिः शिरोऽस्तु मे ॥३०॥
जलरुहानने चित्रवासिनि त्वमवसि सर्वदा स्वीयसेवकान् ।
मुनिरिपून् सदा दुःखदायिके त्वत्पदांबुजालिः शिवोऽस्तु मे ॥३१॥

सीताके उस महान् अस्त्रने बातकी बातमें मूलकासुरके मुण्डको शरीरसे अलग कर दिया ॥ २० ॥ उसका धड़ लंकाके राजद्वारपर जा गिरा । इस घटनासे लङ्कानगरीके दैत्योंमें हाहाकार मच गया ॥ २१ ॥ उधर देवताओंने प्रसन्न होकर अपनी दुन्दुभी बजायी, अपने-अपने विमानोंपर बैठकर वे आकाशमें आये और राम तथा सीतापर उन्होंने पुष्पवृष्टि की ॥ २२ ॥ इसके बाद सीताकी छाया रणांगणसे लौटकर रामके समीप पहुंची । वहां वह राम तथा सात्त्विकी सीताको प्रणाम करके उन्हीके स्वरूपमें लय हो गयी ॥ २३ ॥ उस समय फिर देवताओंने अपने मंगलवाद्य बजाये और अप्सराएँ नाचने लगीं । मागध-बन्दीजनादिकोंने सीताकी स्तुति की और नटोंने उनका यशोगान किया ॥ २४ ॥ थोड़ी देर बाद ब्रह्माजी समस्त देवताओंके साथ रामचन्द्रके पास पहुँचे और उनको तथा सीताको प्रणाम करके इस प्रकार स्तुति करने लगे । ब्रह्माने कहा-हे जनकात्मजे ! हे सुवर्णदृश दमकनेवाली भव्यमूर्तिधारिणी सीते ! हे राघवप्रिये ! हे भक्तोंका पालन करनेवाली माँ ! हे रामचन्द्रकी प्रेयसी ! हमें ऐसा आशीर्वाद दो कि हमारा मस्तक सदा तुम्हारे चरणकमलका भौंरा बना रहे ॥ २५ ॥ २६ ॥ हे मूलकासुरघातिनि ! हे रामरक्षिते ! हे रामसेविते ! हे रामको मुग्ध करनेवाली ! हे रथपर आरूढ़ होकर दुष्टोंका दर्प दूर करनेवाली सीते ! हमें आशीर्वाद दो कि हमारा मस्तक सदैव तुम्हारे चरणकमलका भ्रमर बना रहे ॥ २७ ॥ हे रामके साथ दिव्य सिंहासनपर बैठनेवाली ! हे लक्ष्मी ! हे रामजीविते ! हे रामलालिते ! हे रामसंस्तुते ! हे रामरञ्जिते सीते ! हमें आशीर्वाद दो कि हमारा मस्तक सदा तुम्हारे चरणकमलका भ्रमर बना रहे ॥ २८ ॥ हे लोकपावनि ! हे श्री ! हे अजे ! हे वरे ! हे भूमिकन्यके ! हे लोकपालिके ! हे पद्मलोचने ! हे धरात्मजे सीते ! हमें आशीर्वाद दो कि हमारा मस्तक सर्वदा तुम्हारे चरणकमलका मधुकर बना रहे ॥ २९ ॥ हे कंजलोचने ! हे गजगामिनि ! हे स्वीयसत्सुखे ! हे रम्यरूपिणि ! हे रुक्मभूषिते ! हे मौक्तिकांकिते सीते ! हमें आशीर्वाद दो कि हमारा मस्तक सर्वदा तुम्हारे चरणोंका भौंरा बना रहे ॥ ३० ॥ हे कमल सरीखे मुखवाली सीते ! हे चित्रवसने ! तुम सदा अपने भक्तोंकी रक्षा करती हो । ऋषियोंको दुःख देनेवाले राक्षसोंको दुःख देनेवाली हे सीते ! तुम ऐसा कुछ करो कि जिससे हमारा मस्तक सर्वदा तुम्हारे चरणकमलका भृङ्ग बना रहे ॥ ३१ ॥

त्वन्मुखेक्षणाद्रक्षसां पतिः प्राप संक्षयं रामसत्प्रिये ।
त्वद्दृगेक्षणाल्लज्जिता मृगी त्वत्पदांबुजालिः शिरोऽस्तु मे ॥३२॥
कुशलवांबिके जलरुहानने जलरुहेक्षणे पापदाहिके ।
मधुरसुस्वने नूपुरस्वने त्वत्पदांबुजालिः शिरोऽस्तु मे ॥३३॥
घ्राणमुत्तमं ते स्मितानने तेऽधरः शुभो बिंबसन्निभः ।
अद्य वै त्वया मूलकासुरो मारितो रणे तारिता वयम् ॥३४॥
ब्रह्मणेरितं नवकमुत्तमं भास्करोदये पठपि यः पुमान् ।
सर्ववांछितं लभति सोऽत्र ना प्राप्नुयात्सुखं रामसन्निधिम् ॥३५॥

इति स्तुत्वाऽमरैर्ब्रह्मा वस्त्रालंकारमण्डनैः । सीतां रामं च संपूज्य राघवेणापि पूजितः ॥३६॥
प्रययौ राममामंत्र्य सत्यलोकं मनोरमम् । ततो विभीषणः प्राह लंकायां न त्वया पुरा ॥३७॥
समागतमिदानीं त्वं मां कृतार्थं कुरु प्रभो । तथेति प्रतिनंद्याथ तद्वाक्यं रघुनन्दनः ॥३८॥
विमानेन ययौ लंकामध्ये मित्रगृहं प्रति । ततो विभीषणं राज्ये लंकायां त्वभ्यषेचयत् ॥३९॥
तदा महोत्सवश्चासील्लंकायां परमाद्भुतः । ततो विभीषणो रामं सीतां ताँल्लक्ष्मणादिकान् ॥४०॥
वस्त्रैराभरणै रत्नैः पूजयामास सादरम् । अर्पयामास सर्वस्वं स्वीयं रामाय राक्षसः ॥४१॥
तदा कपिलवाराहमूर्ति रावणपूजिताम् । रामस्तां रोचयामास सोऽपि रामाय तां ददौ ॥४२॥
मनसा कपिलेनैव पुरा मूर्तिर्विनिर्मिता । चिरकालं तमाराध्य लब्धा मघवता तु या ॥४३॥

हे रामसत्प्रिये ! तुम्हें देखते ही राक्षसोंका राजा मूलकासुर नष्ट हो गया। तुम्हारी आँखोंकी शोभा देखकर मृगी लज्जित हो जाती है। इस प्रकार सुन्दर स्वरूपवाली हे सीते ! हमें यही आशीर्वाद दो कि हमारा मस्तक सदा तुम्हारे चरणकमलका भ्रमर बना रहे ॥ ३२॥ हे कुश-लवकी माता ! हे कमलके समान मुखवाली ! हे कमलके समान आँखोंवाली ! हे पापोंको नष्ट करनेवाली ! हे मीठे स्वरवाली ! हे नूपुर सदृश मधुर स्वरवाली सीते ! हमें आशीर्वाद दो कि हमारा मस्तक सदा तुम्हारे चरणकमलोंका भौंरा बना रहे ॥ ३३ ॥ हे मुस्कुराहट भरे मुखवाली सीते ! तुम्हारी नासिका बहुत सुन्दर है। बिंबफलके समान तुम्हारे लाल ओष्ठ हैं। आज तुमने संग्रामभूमिमें मूलकासुरको मार डाला। इससे हमलोगोंका उद्धार हो गया ॥३४॥ श्रीरामदासने कहा–जो प्रातःकालके समय ब्रह्माजीके द्वारा स्तुति किये गये इन नौ श्लोकोंका पाठ करता है, उसकी समग्र कामनाएँ पूर्ण हो जाती हैं और अन्त समयमें उसे रामचन्द्रजीके समीप स्थान मिलता है ॥ ३५ ॥ इस तरह ब्रह्माने स्तुति करके विविध प्रकारके वस्त्राभूषणोंसे राम और सीताकी पूजा की। रामने भी ब्रह्माजीका विधिवत् पूजन किया ॥ ३६ ॥ तदनन्तर रामसे आज्ञा लेकर समस्त देवताओंके साथ ब्रह्मा अपने लोकको लौट गये। तब विभीषणने भगवान्से प्रार्थना की कि पहले जब आप रावणको मारनेके लिए लंकामें आये थे तो पिताकी आज्ञा न होनेके कारण आपने नगरीमें प्रवेश नहीं किया था ॥ ३७ ॥ किन्तु अबकी बार आप मेरे घर पधारकर मुझे कृतार्थ कीजिए। रामने वह प्रार्थना स्वीकार कर ली और अपने पुष्पक विमानपर बैठकर लंकामें अपने मित्र विभीषणके भवनमें पधारे। वहाँ पहुँचकर रामने विभीषणका अभिषेक करके लंकाके राजसिंहासनपर बिठाला। उस समय लंकामें बड़ा उत्सव मनाया गया। इसके बाद विभीषणने राम, सीता तथा लक्ष्मणादिका विविध रत्नों और वस्त्राभूषणोंसे सत्कार किया। तत्पश्चात् उन्होंने अपनी सारी सम्पत्ति रामको अर्पण कर दी ॥ ३८–४१ ॥ उस समय विभीषणकी सारी सम्पत्तिमेंसे रामको कपिलवाराहकी मूर्ति अच्छी लगी। जिसकी पूजा रावण स्वयं करता था। विभीषणने रामको वह मूर्ति दे दी ॥ ४२ ॥ उस मूर्तिके विषयमें ऐसा सुना जाता है कि कपिल भगवान्ने अपनी मनःशक्तिसे उस मूर्तिकी रचना की थी। बहुत दिनों तक कपिल मुनिने स्वयं उसकी पूजा की। उसके बाद वह इन्द्रके हाथ लग गयी।

तं जित्वा रावणेनैव समानीता निजां पुरीम् । यां सदा पूजयामास लंकायां रावणश्चिरम् ॥४४॥
विभीषणेन सा दत्ता राघवाय दृषन्मयी । तां मूर्तिं स्थापयामास विमाने रघुनन्दनः ॥४५॥
ततः सीताऽथ रामेण देवरैर्बालकैर्मुदा । अशोकवनिकां गत्वा शिंशपावृक्षमुत्तमम् ॥४६॥
दर्शयामास रामाय यत्र पूर्वं स्थिता स्वयम् । ततो वामकरेणैव रामस्य हि कनिष्ठिकाम् ॥४७॥
धृत्वा दक्षिणहस्तस्य सीता बभ्राम तद्वनम् । स्नानासनादिकं पूर्वं यत्र यत्र कृतं वने ॥४८॥
रामं नीत्वा तत्र तत्र दर्शयामास जानकी । ततस्तां त्रिजटां सीता वस्त्रैराभरणादिभिः ॥४९॥
कृत्वाऽतितुष्टां रामाग्रे सरमां वाक्यमब्रवीत् । अनया रक्षिता पूर्वं राक्षसीग्रहभीतितः ॥५०॥
मत्तुल्या माननीयेयं सर्वदा सरमे त्वया । इत्युक्त्वा सरमाहस्ते त्रिजटाकरमर्पयत् ॥५१॥
ततो वासस्थलं सीता ययौ रामेण सा शनैः । एवं निकुंभिलादीनि दृष्ट्वा नानास्थलानि हि ॥५२॥
पुष्पकस्थो ययौ रामो विभीषणसमन्वितः । विभीषणस्य सचिवं लंकायां संन्यवेशयत् ॥५३॥
रामः करे धनुर्धृत्वा लंकायाः परितस्तदा । प्रदक्षिणोपमं वेगाद्भ्रामयामास सादरम् ॥५४॥
ततो विभीषणं प्राह वचनं रघुनन्दनः । राक्षसेंद्र मया चापं रक्षार्थं भ्रामितं तव ॥५५॥
ततो रामो विमानेन ययौ शीघ्रं विहायसा । विभीषणस्य रक्षार्थं तस्यैवानुमतेन च ॥५६॥
मच्चापरेखाऽप्यन्येषां दुःखोचीर्या भविष्यति । अमुं बाणं मया दत्तं त्वं गृहाण विभीषण ॥५७॥
मम नाम्नांकितं तीक्ष्णं तव प्राणस्य रक्षकम् । चापरेखा बाणहस्तं येयं त्वां धर्षयिष्यति ॥५८॥
मद्बाणहस्तं त्वां कश्चिन्न रिपुर्धर्षयिष्यति । इत्युक्त्वा तं ददौ बाणं विभीषणकरे प्रभुः ॥५९॥
प्रणनाम मुदा रामं बाणहस्तो विभीषणः । ततो रामो विमानेन पश्यन् देशान् मनोरमान् ॥६०॥

जब रावणने इन्द्रसे संग्राम करके उन्हें पराजित किया। तब रावण उस मूर्तिको इन्द्रसे छीन लाया और बहुत समय तक उसका पूजन करता रहा ॥ ४३ ॥ ४४ ॥ आज उसे ही विभीषणने रामको अर्पण कर दिया। रामने बड़े प्रेमसे उसे अपने पुष्पक विमानपर रक्खा ॥ ४५ ॥ इसके पश्चात् अपने पति राम और लक्ष्मणादि देवरों तथा कुश आदि बच्चोंके साथ सीता उस शिंशपा वृक्षके नीचे पहुँचीं, जहाँ रावणके हर ले जानेपर बहुत दिनों तक रह चुकी थीं। वहाँ पहुँचकर सीताने बतलाया कि यह वही स्थान है, जहाँ आपसे वियुक्त होकर मैं बहुत दिन तक रही। इसके अनन्तर रामके दाहिने हाथकी उँगली पकड़कर सीता अशोकवाटिकामें इधर-उधर घूमती हुई उन स्थानोंको दिखलाने लगीं, जहाँ स्नानादि कृत्य करती थीं। घूमती-घूमती सीता त्रिजटाके स्थानपर पहुँचीं और विविध प्रकारके वस्त्राभूषणोंसे त्रिजटाका सत्कार किया ॥ ४६–४९ ॥ जब त्रिजटा प्रसन्न हो गयी तो विभीषणकी स्त्री सरमासे सीताने कहा—जिस समय राक्षसियाँ अपना भयानक मुँह दिखाकर मुझे डराती-धमकाती थीं, तब यह त्रिजटा ही मेरी रक्षा करती थी। हे सरमे! मैं तुमसे विनयपूर्वक कहती हूँ कि सर्वदा तुम मेरी ही तरह इसका सम्मान करना। इतना कहकर सीताने त्रिजटाका हाथ सरमाके हाथोंमें थम्हा दिया ॥ ५० ॥ ५१ ॥ इस तरह घूम-फिरकर राम सीताके साथ डेरेपर पहुँचे और लंकामें मन्त्रीको राज्यकी देख-भाल करनेके लिए छोड़कर विभीषणको अपने साथ लिये हुए ही अयोध्याको प्रस्थान कर दिया। अपने भक्त विभीषणके प्रार्थना करनेपर रामने उसकी रक्षाके लिए अपना धनुष उठाकर बड़े वेगके साथ लंकाके चारों ओर घुमाया और इस प्रकार कहने लगे–हे राक्षसेन्द्र! मैंने तुम्हारी रक्षाके लिये यह धनुष घुमाया है। मेरे धनुषकी यह रेखा शत्रुके लिए दुस्तर होगी। तुम्हें यह बाण भी दे रहा हूँ, इसे ग्रहण करो ॥ ५२–५७ ॥ इसमें मेरा नाम लिखा हुआ है। यह सदा तुम्हारे प्राणोंका रक्षक होगा। एक बात और भी है। वह यह कि तुम इस बाणको लिये हुए मेरे धनुषकी इस रेखाको लांघोगे तो तुम्हें यह कोई कष्ट नहीं पहुँचायेगी ॥ ५८ ॥ मेरा बाण जब लिये रहोगे, उस समय कोई शत्रु भी तुम्हारे ऊपर आक्रमण नहीं करेगा। इतना कहकर रामने अपना बाण विभीषणको दे दिया ॥ ५९ ॥ बाणको हाथोंमें लेकर विभीषणने रामको प्रणाम किया। इसके अनन्तर राम पुष्पक विमानपर

पूजितो दानमानैश्च नृपैः स्वनगरीं ययौ । तदा निनेदुर्वाद्यानि ननृतुश्चाप्सरोगणाः ॥६१॥
प्रत्युज्जगाम श्रीरामं यूपकेतुः सनागरः । प्रासादशिखरारूढाः पौरन्दार्यः सहस्रशः ॥६२॥
सीतां रामं निरीक्ष्याथ ववर्षुः पुष्पवृष्टिभिः । ततो विवेश श्रीरामः सभां तां पार्थिवैः सह ॥६३॥
विवेश स्वीयगेहं सा जानकी तुष्टमानसा । गेहे कपिलवाराहमूर्तिं रामो न्यवेशयत् ॥६४॥
एकदा राघवस्तुष्टः शत्रुघ्नाय हि तां ददौ । सीताऽपि सा पुरा यान्यान्यमाँश्च नियमादिकान्॥६५॥
सङ्कल्पयामास सर्वांस्तांश्चकार यथाविधि । उद्यापनान्यनेकानि सर्वेषां साऽकरोन्मुदा ॥६६॥
एकदा मुनयः सर्वे यमुनातीरवासिनः । आजग्मू राघवं द्रष्टुं भयाल्लवणरक्षसः ॥६७॥
कृत्वाऽग्रे तु मुनिश्रेष्ठं भार्गवं च्यवनं द्विजाः । असंख्याताः सशिष्यास्ते रामादभयकांक्षिणः ॥६८॥
तान् पूजयित्वा परया भक्त्या रघुकुलोद्वहः । उवाच मधुरं वाक्यं हर्षयन् मुनिमंडलम् ॥६९॥
करवाणि मुनिश्रेष्ठाः किमागमनकारणम् । धन्योऽस्मि यदि यूयं मां प्रीत्या द्रष्टुमिहागताः॥७०॥
सुदुष्करं वा यत्कार्यं भवतां तत्करोम्यहम् । आज्ञापयन्तु मां भृत्यं ब्राह्मणा दैवतं हि मे ॥७१॥
तच्छ्रुत्वा सहसा हृष्टश्च्यवनो वाक्यमब्रवीत् । मधुनाम्ना महादैत्यः पुरा राम कृते युगे ॥७२॥
आसीदतीव धर्मात्मा देवब्राह्मणपूजकः । तस्मै तुष्टो महादेवो ददौ शूलमनुत्तमम् ॥७३॥
तं शूलेनेन यं हंसि स तु भस्मीभविष्यति । रावणस्यानुजा तस्य भार्या कुंभीनसी स्मृता ॥७४॥
तस्यां तु लवणो नाम राक्षसो भीमविक्रमः । आसीद्दुरात्मा दुर्धर्षो देवब्राह्मणहिंसकः ॥७५॥
मधुः स तव हस्तेन मृतः पूर्वं यतस्तदा । मधुसूदननामाऽभून्मधुघाताद्रघूत्तम ॥७६॥
पीडिता लवणेनाद्य वयं त्वां शरणं गताः । तच्छ्रुत्वा राघवोऽप्याह मा भैर्वो मुनिपुंगवाः ॥७७॥

बैठे और अनेक देशोंको देखते हुए अयोध्याको चल पड़े ॥ ६० ॥ रास्तेमें अनेक राजाओंकी भेंटोंको स्वीकार करते हुए वे अपनी नगरीमें पहुँचे । रामके वहाँ पहुँचनेपर नाना प्रकारके बाजे बजे और अप्सराएँ नाचीं ॥ ६१ ॥ यूपकेतु बहुतसे लोगोंको साथ लिये हुए रामकी अगवानी करने पहुँचे । अयोध्यानिवासिनी नारियोंने कोठेपर चढ़कर सीता और रामका दर्शन कर-करके उनपर पुष्पोंकी वृष्टि की । इसके बाद राम अनेक महिपालोंके साथ अपने सभाभवनमें गये । सीता अपने महलोंमें चली गयीं । बादमें रामचन्द्रजीने वहाँ कपिलवाराह मूर्तिकी स्थापना की ॥६२-६४॥ एक दिन रामचन्द्रजीने प्रसन्न होकर वह मूर्ति शत्रुघ्नको दे दी । सीताने रामके वियोगकालमें जिन व्रतों और नियमोंकी मनौती मानी थी, उनको बड़े विधि-विधान समेत सम्पन्न करके उनका उद्यापन भी यत्नके साथ किया ॥६५॥६६॥ एक दिन यमुना तटपर रहनेवाले सब ऋषि लवणासुर नामक राक्षससे भयभीत होकर रामके पास आये ॥ ६७ ॥ उन लोगोंने भार्गव च्यवन ऋषिको अपना अगुवा बनाया और हजारोंसे अधिक संख्यामें एकत्रित होकर रामके पास जा पहुँचे ॥ ६८ ॥ रामने उन लोगोंका विधिवत् पूजन किया और उनको प्रसन्न करते हुए इस प्रकार कहने लगे—हे श्रेष्ठ मुनिगण ! आप लोग किस कार्यसे मेरे पास आये है ? आपकी जो आज्ञा हो, उसे पूर्ण करनेके लिये मैं तैयार हूँ । मैं अपनेको धन्य समझता हूँ जो आप सब मुझे देखनेके लिए मेरे यहाँ पधारे ॥ ६९ ॥ ७० ॥ यदि कोई अत्यन्त दुष्कर कार्य होगा तो मैं उसे भी करनेके लिए बराबर प्रस्तुत हूँ । क्योंकि ब्राह्मण मेरे लिए देवता सदृश हैं । आपलोग बिना किसी अड़चनके मुझ सेवकको आज्ञा दीजिए ॥ ७१ ॥ इस प्रकार रामकी बात सुनकर उनमेंसे च्यवन नामक ऋषि गद्गद होकर कहने लगे—हे राम ! बहुत दिन हुए, मधु नामका एक महादैत्य हुआ था । वह ब्राह्मणोंका पूजक एवं बड़ा धर्मात्मा था । उसकी इस सहृदयतासे प्रसन्न होकर शिवजीने उसे एक त्रिशूल दिया और कहा—॥ ७२ ॥ ७३ ॥ तुम इस त्रिशूलसे जिसे मारोगे, वह भस्म हो जायगा । रावणके छोटे भाई कुम्भकर्णकी कुम्भीनसी नामकी भार्या थी । उससे लवण नामके एक राक्षसकी उत्पत्ति हुई । जो बड़ा भारी दुरात्मा, दुर्धर्ष तथा देवताओं
28. और ब्राह्मणोंके लिए दुखदायी है ॥ ७४ ॥ ७५ ॥ सत्ययुगमें आपने मधुनामके राक्षसको मारा था । इसीलिए आपका मधुसूदन नाम पड़ा था । मधुके समान ही आज लवणासुरसे अकुलाकर हम आपकी शरणमें आये

लवणं नाशयिष्यामि गच्छंतु विगतज्वराः । इत्युक्त्वा प्राह रामोऽपि शत्रुघ्नं सदसि स्थितम् ॥७८॥
अद्य त्वामभिषेक्ष्यामि मथुराराज्यकारणात् । तद्रामवचनं श्रुत्वा शत्रुघ्नो वाक्यमब्रवीत् ॥७९॥
नाङ्गीकरोम्यहं राज्यं त्वं मां निजपदात्प्रभो । न दूरं कुरु राजेन्द्र प्रार्थयामीति ते मुहुः ॥८०॥
तत्तस्य वचनं श्रुत्वा शत्रुघ्नस्य रघूत्तमः । तथैव भरतं प्राह न सोऽप्यङ्गीचकार तत् ॥८१॥
ततो रामः सुबाहुं च यूपकेतुं द्विजैर्नृपैः । अभिषिच्याब्रवीद्वाक्यं शत्रुघ्नं पुरतः स्थितम् ॥८२॥
दत्त्वा तस्मै शरं दिव्यं निजनामाङ्कितं शुभम् । अनेनैव हि बाणेन लवणं लोककंटकम् ॥८३॥
हनिष्यसि क्षणादेव वृत्रं देवपतिर्यथा । स तु संपूज्य तं शूलं गेहे गच्छति काननम् ॥८४॥
भक्षणार्थं हि जंतूनां घातं कर्तुं समुद्यतः । स तु नायाति सदनं यावद्वनचरो भवेत् ॥८५॥
तावदेव पुरद्वारि तिष्ठ त्वं धृतकार्मुकः । योत्स्यते स त्वया क्रुद्धस्तदा बाणेन घातय ॥८६॥
अनेनैकेन बाणेन क्षणादेव मरिष्यति । तं हत्वा लवणं क्रूरं तद्वने मधुसंज्ञिते ॥८७॥
निर्माय मथुरानाम्नीं नगरीं यमुनातटे । तस्यां स्थाप्य सुबाहुं वै पत्नीभ्यां बालकैः सह ॥८८॥
यूपकेतुं च विदिशानगरे शत्रुनिषूदन । संस्थाप्य दयिताभ्यां च सैन्येन बालकैः सह ॥८९॥
ततो ममान्तिकं याहि शीघ्रं शत्रुनिषूदन । अश्वानां पंचसाहस्रं रथानां च तदर्धकम् ॥९०॥
गजानां षट्शतान्येव पत्तीनामयुतत्रयम् । आगमिष्यन्ति त्वत्पश्चादग्रे साधय राक्षसम् ॥९१॥
आगते त्वयि पश्चाद्धि नृपान् जेतुं पुनस्त्वहम् । गंतुमिच्छामि तस्मात्त्वं शीघ्रमागच्छ मां प्रति ॥९२॥
इत्युक्त्वा मूर्ध्न्यवघ्राय शत्रुघ्नं रघुनन्दनः । प्रेषयामास तैर्विप्रैराशीर्भिरभिनन्दितः ॥९३॥
शत्रुघ्नोऽपि नमस्कृत्य रामं मधुवनं ययौ । निनाय पूजनार्थं तां मूर्तिं सोप्यात्मनः प्रियाम् ॥९४॥
अग्रे संप्रेष्य शत्रुघ्नं ततः श्रीरघुनन्दनः । सुबाहुयूपकेतू तौ स्वस्वस्त्रीभ्यां च बालकैः ॥९५॥

हैं। मुनिश्रेष्ठ च्यवनकी बात सुनकर रामने कहा—हे ऋषियों ! आप लोग मत डरें ॥ ७६ ॥ ७७ ॥ आप सब अपने-अपने आश्रमको जाते जायें । मैं उस दुष्ट लवणासुरको मारूँगा । उनसे इतना कहकर राम शत्रुघ्नसे बोले—शत्रुघ्न ! आज मैं तुम्हारा अभिषेक करके तुम्हें मथुरा राज्यको भेजूँगा । उत्तरमें शत्रुघ्नने कहा—हे राजेन्द्र ! मुझे राज्य नहीं चाहिए । मेरे ऊपर कृपा करके आप मुझे अपने चरणोंसे दूर न कीजिए । इसके बाद रामने वही बात भरतसे कही और उन्होंने भी अस्वीकार कर दिया ॥ ७८–८१ ॥ तब रामने सुबाहु और यूपकेतुको तैयार करके अनेक ब्राह्मणोंके साथ उनका अभिषेक किया और सामने बैठे हुए शत्रुघ्नको अपने नामसे अङ्कित बाण देते हुए कहा कि लोगोंके लिए कंटकस्वरूप लवणासुरको तुम इसी बाणसे क्षण भरमें उसी तरह मार डालोगे, जैसे इन्द्रने वृत्रासुरको मारा था। वह लवणासुर सदा घरमें उस त्रिशूलका पूजन करके जङ्गलमें पशुओंको मारनेके लिए चला जाया करता है। सो तुम ऐसे ही समय उसके घर पहुँचो, जब वह वनको चला गया हो । उसके द्वारपर तबतक बैठे रहो, जबतक वह वनसे न लौट आये। जब वह आये तो उसे भीतर जानेका अवसर मत दो, द्वारपर ही छेड़-छाड़ करके युद्ध शुरू कर दो। वह भी तुरन्त क्रोधातुर होकर लड़ने लगेगा । तब तुम इसी बाणसे उसे क्षणभरमें मार डालोगे। उस दुष्ट लवणासुरको मारकर मधुवनमें ॥८२–८७॥ यमुना नदीके तटपर मथुरा नामकी नगरी बसा तथा उसमें स्त्री-बच्चों समेत सुबाहुको बिठालकर विदिशा नगरीमें बच्चों तथा सेनाके साथ जाकर यूपकेतुको राजगद्दीपर बिठा देना । यह सब काम करके हे शत्रुनिषूदन ! तुम फिर मेरे पास लौट आओ । तुम आगे-आगे जाओ, तुम्हारे पीछे पाँच हजार घोड़े, ढाई हजार रथ, छः सौ हाथियाँ और तीस हजार पैदल सैनिक तुम्हारी सहायताके लिए भेजता हूँ । जब तुम वहाँसे लौट आओगे, तब मैं एकबार फिर राजाओंको जीतनेके लिये यात्रा करूँगा ॥ ८८–९२ ॥ इतना कहकर रामने शत्रुघ्नका माथा सूँघा और अनेकशः आशीर्वाद देकर उन ब्राह्मणोंके साथ भेज दिया ॥ ९३ ॥ शत्रुघ्न भी रामको प्रणाम करके मधुवनकी ओर चल पड़े । साथमें रामकी दी हुई वह कपिल वाराहकी मूर्ति भी लेते गये । रामने उन विप्रोंके साथ

प्रेषयामास सैन्यैश्च दासीदासैश्च गोधनैः । शत्रुघ्नोऽपि तथा चक्रे यथा रामेण शिक्षितः ॥९६॥
हत्वा तं लवणं वेगान्मधुरामकरोत्पुरीम् । स्फीतान् जनपदांश्चक्रे माथुरान्दानमानतः ॥९७॥
मथुरायां सुबाहुं तं स्थाप्य स्त्रीभ्यां सुतादिभिः । स्त्रीभ्यां पुत्रैर्यूपकेतुं विदिशानगरे तथा ॥९८॥
संस्थाप्य सैन्यैः शत्रुघ्नो मथुरायां कियद्दिनम् । स्थित्वा सुबाहवे मूर्तिं तदा तुष्टो ददौ सुखम् ॥९९॥
अद्यापि मथुरायां सा मूर्तिस्तत्रैव वर्तते । शत्रुघ्नोऽपि ततः सैन्यैः शीघ्रं रामांतिकं ययौ॥१००॥
सर्वं वृत्तं राघवाय कथयामास सादरम् । अथैकदा स भरतः कैकेयीनन्दनो महान् ॥१०१॥
युधाजिता मातुलेन ह्याहूतोऽगात्ससैनिकः । रामाज्ञया गतस्तत्र हत्वा गंधर्वनायकान् ॥१०२॥
तिस्रः कोटीः पुरे द्वे तु निवेश्य रघुनन्दनः । पुष्करं पुष्करावत्यां पूर्वमेवाभिषेचितम् ॥१०३॥
अयोध्यायां राघवेण स्थापयामास सेनया । स्त्रीभ्यां पुत्रैर्दासदासीजनाद्यैः परिवेष्टितम् ॥१०४॥
ततो मुहूर्ते भरतस्तक्षं तक्षशिलाह्वये । नगरे स्थापयामास राघवेणाभिषेचितम् ॥१०५॥
अयोध्यायां पूर्वमेव महामंगलपूर्वकम् । स्त्रीभ्यां पुत्रादिभिस्तक्षस्तस्थौ तक्षशिलाह्वये॥१०६॥
उभौ कुमारौ सौमित्रे गृहीत्वा पश्चिमां दिशम् । गत्वा मल्लान्विनिर्जित्य दुष्टान्सर्वापकारिणः ॥१०७॥
पुनरागत्य भरतो रामसेवापरोऽभवत् । ततः प्रीतो रघुश्रेष्ठो लक्ष्मणं वाक्यमब्रवीत् ॥१०८॥
द्वावंगदचित्रकेतू महासत्त्वपराक्रमौ । मयाभिषेचितौ वीरौ स्त्रीभ्यां पुत्रबलैर्युतौ ॥१०९॥
द्वयोर्द्वे नगरे कृत्वा गजाश्वधनरत्नके । स्थापयित्वा तयोः पुत्रौ शीघ्रमागच्छ मां पुनः॥११०॥
रामाज्ञां स पुरस्कृत्य गजाश्वबलवाहनैः । गत्वा हत्वा रिपून् सर्वान् गजाश्वेऽङ्गदनामकः॥१११॥
धनरत्ने चित्रकेतू स्थापयामास देहजौ । स्वस्वस्त्रीभ्यां बालकैश्च दासीदासैर्बलान्वितौ ॥११२॥
सौमित्रिः पुनरागत्य रामसेवापरोऽभवत् । अथ रामः समाहूय गणकान् परिपूज्य च ॥११३॥

आगे-आगे शत्रुघ्नको और पीछे स्त्रियों-बालकों समेत सुबाहु एवं यूपकेतुको उपर्युक्तसंख्यक सेनाके साथ भेज दिया। वहाँ पहुँचकर शत्रुघ्नने ठीक वैसा ही किया, जैसा रामने कहा था। इस प्रकार शीघ्र ही उन्होंने लवणासुरको मारकर मथुरा नगरी बसायी। मथुरावासियोंको अनेक प्रकारका दान-मान देकर मथुराको कुछ दिनोंमें ही उन्होंने एक सुन्दर नगरी बना दी। शत्रुघ्नने एक विशाल सेनाके साथ सुबाहुको वहाँकी गद्दीपर बिठाला और स्त्री तथा पुत्रों समेत यूपकेतुको अपने साथ लेकर विदिशा नगरीको प्रस्थान कर दिया ॥ ९४-९८ ॥ वहाँ पहुँचकर यूपकेतुको गद्दीपर बिठाया। इसके बाद फिर मथुरा लौट आये और कुछ दिन वहाँ रहे। एक रोज प्रसन्न होकर शत्रुघ्नने वह कपिलवाराहकी मूर्ति सुबाहुको दे दी : आज भी मथुरामें वह मूर्ति विद्यमान है। इसके अनन्तर शत्रुघ्न सेनाके साथ रामके पास अयोध्या आये और वहाँ पहुँचकर उन्होंने रामको मथुराका सब समाचार सुनाया ॥ ९९ ॥ १०० ॥ एक समय कैकेयीनन्दन भरत अपने मामा युधाजित्के बुलावेपर रामकी आज्ञासे बहुतेरे सैनिकोंके साथ ननिहाल गये। वहाँ गन्धर्वोंको मारा और तीन करोड़ नागरिकोंको विभक्त करके दो पुरी बसायी। वहाँपर पूर्वसे ही अभिषिक्त पुष्करको राजगद्दीपर बिठाला। तदनन्तर कितने ही दासी-दास तथा स्त्री-पुत्रोंको साथ लेकर पुष्कर वहाँ रहने लगे ॥ १०१-१०४ ॥ इसके बाद भरतने तक्षको तक्षशिला नामकी नगरीमें अभिषिक्त करके बिठाला। यह सब काम करके भरत अयोध्या लौट आये और फिर पहलेकी तरह रामचन्द्रजीकी सेवा करने लगे। इसके बाद एक दिन प्रसन्न होकर रामने लक्ष्मणसे कहा—लक्ष्मण ! तुम अपने दोनों पुत्रोंको साथ लेकर पश्चिम दिशाकी ओर जाओ। वहाँ सब लोगोंका अपकार करनेवाले दुष्ट मल्लोंको जीतकर अंगद तथा चित्रकेतु इन दोनों बेटोंकी, जिनका अभिषेक मैं पहले हो कर चुका हूँ, वहाँकी गद्दीपर बिठाल दो। वहाँ दो पुरी बसाकर गज-वाजि तथा धनसे परिपूर्ण करके मेरे पास लौट आओ ॥ १०५-११० ॥ रामकी आज्ञा स्वीकार करके लक्ष्मण दोनों पुत्रोंको साथ लेकर बहुतेरी सेनाके साथ वहाँ पहुँचे और बातकी बातमें

अवनीं जेतुमुद्युक्तो मुहूर्तं तानपृच्छत । ततस्तैर्गणकैर्दत्तो मुहूर्तः परमः शुभः ॥११४॥
तं श्रुत्वा तान् पुनः पूज्य सर्वान् रामो व्यसर्जयत् ।
ततो रामोऽब्रवीद्वाक्यं लक्ष्मणं पुरतः स्थितम् ॥११५॥
अवनिस्थान्नृपान् जेतुं सोऽहं गच्छामि पार्थिवैः । विमानेनैव गच्छामि सेनां चोदय सत्वरम् ॥११६॥
नानाशस्त्राणि यंत्राणि वाहनानि समंततः । स्थापयस्व विमानेऽद्य शतघ्न्यः शतशो वराः॥११७॥
धनधान्यतृणादीनां संग्रहं कुरु पुष्पके । पुरीं गोप्तुं सुमंत्रोऽस्तु सैन्येन परिवेष्टितः ॥११८॥
एवमाज्ञाप्य सौमित्रिं श्रीरामो जानकीगृहम् । ययौ चकार सौमित्रिर्यथा रामेण शिक्षितः ॥११९॥

इति श्रीशतकोटिरामचरितांतर्गते श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये राज्यकाण्डे पूर्वार्द्धे राज्यविभागो नाम षष्ठः सर्गः ॥ ६ ॥

सप्तमः सर्गः

(रामकी भारतवर्षपर विजय)

श्रीरामदास उवाच

अथ रामो रहः सीतां स्वोद्योगमवदच्छनैः । अवनिस्थान्नृपान् जेतुं पुत्राभ्यां बन्धुभिर्नृपैः ॥ १ ॥
तद्रामवचनं श्रुत्वा जानकी प्राह लज्जिता । नाहं त्वद्विरहं सोढुं समर्था रघुनन्दन ॥ २ ॥
त्वयाऽहमवनीं द्रष्टुं यास्यामि जगतां प्रभो । तथेत्युक्त्वा रघुश्रेष्ठो लालयामास जानकीम् ॥ ३ ॥
एतस्मिन्नन्तरे सर्वा उर्मिलाद्याः स्त्रियश्च ताः । कुशस्य च लवस्यापि पत्न्यः श्रुत्वाऽवनेर्जयम् ॥ ४ ॥
कर्तुं रामसमुद्योगं पुत्राभ्यां बन्धुभिर्नृपैः । जानकीं प्रार्थयामासुर्यास्यामोऽद्य त्वया सह ॥ ५ ॥
स्वस्वकांतवियोगं च सोढुं नैव क्षमा वयम् । सीता तासां वचः श्रुत्वा राघवं श्राव्य तद्वचः ॥ ६ ॥

शत्रुओंको परास्त करके गजाश्वपुरमें अङ्गदको तथा धनरत्नपुरमें चित्रकेतुको बिठाल दिया और वहाँसे लौटकर लक्ष्मण फिर रामकी सेवामें लग गये । इसके अनन्तर रामने ज्योतिषियोंको बुलाकर उनकी पूजा की और पृथ्वीविजय करनेके लिए शुभ मुहूर्त पूछा । उन गणकोंने भी रामको बहुत ही बढ़िया मुहूर्त बताया ॥ १११–११४ ॥ मुहूर्त सुनकर रामने फिर उनकी पूजा की और विदा कर दिया । फिर रामने लक्ष्मणसे कहा–मैं पृथ्वीपर रहनेवाले समस्त राजाओंको जीतनेके लिए विमानसे यात्रा करूँगा । तुम जाकर सेनाको तैयार करके भेजो । विविध प्रकारके अस्त्र-शस्त्र और सैकड़ोंकी संख्यामें अच्छी-अच्छी तोपें लेकर मेरे विमानमें रखवाओ । खर्चके लिए धन-धान्य तथा घास आदिका ठीकसे प्रबन्ध करके पुष्पक विमानमें रखवा दो । अयोध्यापुरीकी रक्षाके लिए कुछ सेनाके साथ सुमन्त्र यहाँपर ही छोड़ दिये जायँगे ॥ ११५ ॥ ॥ ११६ ॥ इस प्रकार आज्ञा देकर राम अपने रनिवासमें चले गये और लक्ष्मण रामके आज्ञानुसार सेना आदिकी तैयारीमें लग गये ॥ ११७–११९ ॥ इति श्रीशतकोटिरामचरितांतर्गते श्रीमदानन्दरामायणे पं० रामतेजपाण्डेयविरचित'ज्योत्स्ना'भाषाटीकासमन्विते राज्यकांडे पूर्वार्धे षष्ठः सर्गः ॥ ६ ॥

श्रीरामदास फिर कहने लगे–इसके पश्चात् राम एकान्तमें सीतासे बोले कि मैं अपने पुत्रों तथा बान्धवोंको साथ लेकर पृथ्वीके राजाओंको जीतनेके लिए जाऊँगा । इस प्रकारकी बात सुनी तो लज्जित होकर सीताने रामसे कहा–हे रघुनन्दन ! मैं आपका विरह नहीं सहन कर सकूँगी । मैं भी इस पृथ्वीतलको देखनेके लिए आपके साथ-साथ चलूँगी । रामने सीताकी माँग स्वीकार कर ली ॥१–३॥ यह खबर धीरे-धीरे उर्मिलादिक स्त्रियों तथा कुश-लव आदिकी पत्नियोंके पास पहुँची और उन्होंने सीतासे प्रार्थना की कि आप हमको भी अपने साथ ले चलें । हम भी अपने-अपने पतियोंका वियोग सहन करनेमें असमर्थ हैं । सीताने उनकी बातें सुनीं तो रामसे

रामाज्ञया तदा सर्वास्तोषयन्ती वचोऽब्रवीत् । आगंतव्यं मया साकं युष्माभिर्निश्चयेन हि ॥७॥
गच्छध्वं स्वीयगेहानि सर्वास्तुष्टा गतज्वराः । एवं सीतावचः श्रुत्वा तदा ताः कंजलोचनाः ॥८॥
सीतां नत्वा ययुः सर्वाः सन्तुष्टा मुदिताननाः । स्वस्वगेहानि वेगेन रुक्मनूपुरनिःस्वनाः ॥९॥
अथ रामस्तु तां रात्रिं निनाय सीतया सुखम् । ब्राह्मे मुहूर्ते श्रुत्वा स बन्दिगातं मनोरमम् ॥१०॥
रामः प्रबुद्धस्तु जवात्कृतशौचादिसत्क्रियः । स्नात्वा नित्यविधिं कृत्वा कृत्वा शंभोः प्रपूजनम् ११॥
कथां पौराणिकीं श्रुत्वा दत्त्वा दानान्यनेकशः । कृत्वोद्योगविधानं च संपूज्य गणनायकम् ॥१२॥
कृत्वाऽऽभ्युदयिकं श्राद्धं घृतश्राद्धं सविस्तरम् । कामधेनुं कल्पवृक्षं पुष्पकं च सुरद्रुमम् ॥१३॥
मणिद्वयं पृथक् पूज्य सर्वैः कृत्वा तु भोजनम् । धृत्वा वस्त्राणि शस्त्राणि बद्ध्वा मातॄः प्रणम्य च॥१४॥
ययौ स शिबिकारूढः पुष्पकं बन्धुभिर्नृपैः । पुत्राभ्यां सचिवैः सैन्यैः सेवकैर्वाहनादिभिः ॥१५॥

यानमारुरुहुः सर्वाः सीताद्यास्ताः स्त्रियः शुभाः ॥१६॥

कौसल्याद्या मातरश्च तस्थुर्याने यथासुखम् । यात्राकाण्डे यथा शिष्य विमानरचना पुरा ॥१७॥
ते वर्णिता मया तद्वदधुनाऽऽसीच्छुभा पुनः । तदा निनेदुर्वाद्यानि तष्टुवुर्मागधादयः ॥१८॥
ननृतुर्वारनार्यश्च नटा गानं प्रचक्रिरे । अथ रामोऽब्रवीद्यानं गच्छ पूर्वदिशं प्रति ॥१९॥
तथेत्युक्त्वा पुष्पकं तद्ययावाकाशवर्त्मना । नत्वा रामं सुमंत्रोऽपि तस्थौ पुर्यां यथासुखम् ॥२०॥
पूर्वदेशे नृपाः सर्वे श्रुत्वा रामं समागतम् । प्रत्युज्जग्मू राघवेंद्रं प्रबद्धकरसंपुटाः ॥२१॥
प्रणेमुस्ते रमानाथं नानोपायनपाणयः । पूजयामास श्रीरामं नीत्वा राज्यं निजं निजम् ॥२२॥
रामाज्ञयाससैन्याश्च तस्थुर्याने नृपोत्तमाः स्वकोशादीनि रामाय समर्प्य स्थिरमानसाः ॥२३॥
मागधान् समतिक्रम्य विमानेन रघूत्तमः । पश्यन्नानाविधान् देशान् भूरिकीर्तेः पुरं ययौ ॥२४॥

सलाह की। फिर रामके आज्ञानुसार सीता सबको प्रसन्न करती हुई कहने लगीं—तुम लोग भी मेरे साथ चलो। अब कोई चिन्ता मत करो और अपने-अपने महलोंमें जाकर हमारे साथ चलनेकी तैयारी करो। इस तरह सीताकी बात सुनकर कमल सरीखे नेत्रोंवाली उन स्त्रियोंने सीताको प्रणाम किया और प्रसन्नतापूर्वक सुनहले नूपुरोंका झंकार करती हुई अपने महलोंको चली गयीं ॥३–९॥ तदनन्तर रामने सीताके साथ वह रात्रि सुखपूर्वक वितायी। ब्राह्म मुहूर्तमें उन्होंने बन्दीजनोंके मुखसे गीत सुना तो जागे। तब शीघ्र शौचादि क्रियायें कीं और स्नानादि नित्यकर्म करनेके पश्चात् शिवजीका विधिवत् पूजन किया ॥ १० । ११ ॥ बादमें पौराणिकी कथाएँ सुनीं, अनेक प्रकारके दान दिये और अनेक उपचारोंसे गणपतिकी पूजा की ॥ १२ ॥ तब आभ्युदयिक श्राद्ध तथा घृतश्राद्ध करके कामधेनु, कल्पवृक्ष, पुष्पक, पारिजात वृक्ष तथा दोनों मणियोंका पूजन किया। इसके बाद अपनी समस्त माताओंको प्रणाम करके कपड़े पहने, अनेक प्रकारके शस्त्र बाँधे और बन्धुओं तथा कितने ही राजाओंके साथ पालकीमें सवार होकर पुष्पक विमानके पास जा पहुँचे ॥ १३–१५ ॥ वहाँ अपने पुत्रों, मन्त्रियों, सेनाओं, सेवकों तथा वाहनों समेत विमानपर पहले सीतादि स्त्रियाँ और कौसल्यादि माताएँ सवार हुईं। रामदासने कहा–हे शिष्य ! यात्राकाण्डमें मैं जिस प्रकार यानकी रचना कह आया हूँ ॥ १६॥ १७॥ ठीक उसी तरह इस यानकी भी रचना थी। उनकी यात्राके समय अनेक प्रकारके बाजे बजे और मागध तथा बन्दीजनोंने स्तुति की, वेश्यायें नाचीं और गायकोंने गाने गाये। इसके अनन्तर रामने विमानको पूर्व दिशाकी ओर चलनेकी आज्ञा दी ॥ १८ ॥ १९ ॥ तब पुष्पक रामके आज्ञानुसार आकाशमार्गसे उड़ता हुआ चला। रामको प्रणाम करके सुमन्त्र अयोध्यापुरीमें आनन्दपूर्वक रहने लगे ॥ २० ॥ जब पूर्व देशके लोगोंने सुना कि राम आये हैं तो वहाँके बड़े-बड़े राजे हाथ जोड़कर उनके पास गये ॥ २१ ॥ सामने पहुँचकर उन्होंने भगवानको प्रणाम किया और अनेक प्रकारकी भेंटें उनकी सेवामें उपस्थित कीं और विधिवत् पूजन किया ॥ २२ ॥ इसके बाद उन्होंने अपना समस्त कोश आदि रामको अर्पण कर दिया और उनकी आज्ञासे

तेनातिपूजितो रामः शनैर्यानेन दक्षिणाम् । ययावब्धितटेनैव द्राविडं देशमुत्तमम् ॥२५॥
कृष्णातीरप्रदेशांस्तान् पश्यन् रामः शनैः शनैः । कांतिं ययौ विमानेन कंबुकंठोऽपि राघवम् ॥२६॥
पूजयामास विधिवत्कोशाद्यैः सुहृदं निजम् । आरवारं महादेशं तथा तच्चोलमण्डलम् ॥२७॥
समतिक्रम्य श्रीरामस्तत्रस्थैः पूजितो नृपैः । ययौ स केरलान् देशानांध्रं कर्णाटकं ययौ ॥२८॥
पूजितो विजयेनापि विजयापुरवासिना । कोंकणस्थान्नृपान् जित्वा महाराष्ट्रं ययौ प्रभुः ॥२९॥
दुर्गं दवगिरिं नाम चकार स्ववशं क्षणात् । तथान्यान्यपि दुर्गाणि स्वाधीनान्यकरोद्विभुः ॥३०॥
कृत्वा विराटदेशं च देशान् विंध्याचलाश्रितान् । पश्यन् ययौ स रेवायास्तीरेणोंकारमीश्वरम् ॥३१॥
मालवस्थान्नृपान् जित्वा ययौ रामः स उज्जयाम् । उग्रबाहुं रणे जित्वा ययौ हैहयपत्तनम् ॥३२॥
जित्वा प्रतीपं श्रीरामः स ययौ हस्तिनापुरम् । एतस्मिन्नन्तरे सोमवंशजास्ते त्रयो नृपाः ॥३३॥
पुरूरवास्तथाऽगच्छचाल्पसैन्येन वै पुरात् । रामेण संगरं कर्तुं नानावाहनसंस्थितः ॥३४॥
ययुर्ववर्षुः शस्त्राणि पुष्पकस्थं रघूत्तमम् । युद्धं बभूव तैः साकं त्रिदिनं रोमहर्षणम् ॥३५॥
तदासीद्रक्तपूर्णा सा जाह्नवी पापनाशिनी । चतुर्थे दिवसे रामस्तान् जित्वा तत्पुरं ययौ ॥३६॥
सुषेणं वानराणां च वैद्यं वानरसेनया । गजाह्वये पुरे स्थाप्य तांस्त्रीन् सोमान्वयोद्भवान् ७॥
कारागृहस्थितान् कृत्वा सुग्रीवाद्यै रघूत्तमः । ययौ स मथुरां द्रष्टुं सुबाहुपरिपालिताम् ॥३८॥
दृष्ट्वा सुबाहुं राज्यस्थं विदिशानगरं ययौ । यूपकेतुं तत्र दृष्ट्वा राज्यस्थं तेन वन्दितः ॥३९॥
कुरुक्षेत्रं पुष्करं च दृष्ट्वा रामो विहायसा । मरुं च समतिक्रम्य ययौ गुर्जरमुत्तमम् ॥४०॥
प्रभासं च ततो गत्वा मल्लदेशं ययौ ततः । गजाश्वनगरे दृष्टांगदं राज्यपदस्थितम् ॥४१॥
धनरत्नेश्चित्रकेतुं दृष्ट्वा राज्यपदस्थितम् । आनर्तं स ययौ रामस्तत्रस्थैः परिपूजितः ॥४२॥

अपनी सेनाके साथ पुष्पके विमानपर सवार होकर रामके साथ-साथ चले ॥ २३ ॥ मगध देशको लाँघकर राम रास्तेके अनेक देशोंको देखते हुए भूरिकीर्ति नामके राजाकी राजधानीमें पहुँचे ॥ २४ ॥ उनसे पूजित होकर विमान द्वारा धीरे-धीरे दक्षिण दिशाको चले और समुद्रतटसे चलकर द्रविड़ देशमें जा पहुँचे ॥ २५ ॥ कृष्णा नदीके आस-पासवाले देशोंको देखते हुए राम कांतिदेशमें जा पहुँचे । वहाँ कम्बुकण्ठ नामके राजाने उनका आदर-सत्कार किया और फिर वहाँसे आरवार महादेश और चोलदेशको लाँघकर ॥ २६ ॥ २७ ॥ वहाँके राजाओंसे पूजित होते हुए केरल देशको गये । वहाँ विजयपुरमें रहनेवाले विजय नामके राजासे पूजित होकर कोंकणदेशमें रहनेवाले राजाओंको परास्त करके महाराष्ट्रमें पहुँचे ॥ २८ ॥ २९ ॥ वहाँ देवगिरि नामके किलेको क्षणभरमें अपने अधीन करके और भी बहुतसे किलोंको अपने कब्जेमें कर लिया ॥ ३० ॥ इसके अनन्तर विराट देशमें जाकर विंध्याचलके आस-पासवाले देशोंको देखते हुए रेवातटसे ओंकारेश्वर पहुँचे । वहाँ मालव देशके राजाओंको जीतकर उज्जयिनी गये । वहाँपर राजा उग्रबाहुको जीतकर हैहयनगरमें गये ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ उसके समीपवर्ती राजाओंको जीतकर श्रीरामचन्द्र हस्तिनापुरी पहुँचे । तभी सोमवंशी तीन राजे तथा पुरूरवा नामक राजा थोड़ीसी सेना लेकर रामचन्द्रसे युद्ध करनेके लिए आ पहुँचा ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ वहाँ पहुँचते ही पुष्पक विमानपर बैठे हुए रामके ऊपर उन लोगोंने शस्त्रोंकी वर्षा प्रारम्भ कर दी । तब उनके साथ रामने तीन दिन तक लोमहर्षण युद्ध किया । उस समय जाह्नवी रक्तसे पूर्ण हो गयी थी । चौथे दिन रामने उनको परास्त करके उनकी पुरीपर अधिकार कर लिया ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ हस्तिनापुरीमें वानरोंके वैद्य सुषेणको गद्दीपर बिठाकर सोमवंशी राजाओंको जेलमें ठूँस दिया और वहाँसे सुबाहु-परिपालित मथुरा पुरीको देखनेके लिए गये ॥ ३७ ॥ ३८ ॥ सुबाहुको राज्यगद्दीपर आसीन देखकर विदिशा नगरीको गये । वहाँ यूपकेतुने रामका विधिवत् आदर-सत्कार किया । वहाँसे कुरुक्षेत्र-पुष्कर आदि तीर्थोंको देखकर आकाशमार्गसे रामचन्द्रजी मरुदेशको लाँघते हुए गुजरात गये ॥ ३९ ॥ ४० ॥ फिर प्रभासक्षेत्र जाकर मल्लदेश गये । वहाँ गजाश्वपुरमें अङ्गदको राज्यासनपर देखकर धनरत्न नामक नगरके राज्यासनपर बैठे हुए चित्रकेतुको देखा ।

प्रययौ पुष्करं द्रष्टुं राज्यस्थं पुष्करावतीम् । ततो रामो विमानेन ययौ तक्षशिलाह्वये ॥४३॥
तक्षं दृष्ट्वा पदस्थं तं ययौ भरतमातुलम् । युधाजिता पूजितः स रामो राजीवलोचनः ॥४४॥
ययौ विहायसा शीघ्रं शकदेशं मनोरमम् । जित्वा यवनदेशस्थान्नृपान् सर्वान् रघूत्तमः ॥४५॥
पश्यन्नानाविधान् देशांस्ताम्रदेश ययौ ततः । ततो मायापुरीं गत्वा कलापग्राममाययौ ॥४६॥
नरनारायणौ दृष्ट्वा चोपास्यौ रघुनन्दनः । उपासकं नारदं च वर्षे भारतसंज्ञके ॥४७॥
तान्नत्वाऽर्च्य रघुश्रेष्ठस्तत्रस्थैः परिपूजितः । भारतेशं रणे हत्वा तत्पदे स्थाप्य स्वानुगम् ॥४८॥
भारतं पृष्ठतः कृत्वा पुण्यदेशं मनोरमम् । योजनानां सहस्रैश्च नवभिः परिविस्तृतम् ॥४९॥
अग्रे ददर्श श्रीरामो हिमालयमहाचलम् । योजनानां सहस्राभ्यां रम्यं विपुलमुत्तमम् ॥५०॥
त्रिसप्ततिसहस्रैश्च दीर्घः प्रोक्तस्तु योजनैः । तत्र नानाकौतुकानि ददर्श रघुनन्दनः ॥
दर्शयामास वैदेह्यै विमानस्थो मुदान्वितः ॥५१॥

इति श्रीशतकोटिरामचरितांतर्गते श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये राज्यकाण्डे पूर्वार्धे भारतवर्षजयो नाम सप्तमः सर्गः ॥ ७ ॥

अष्टमः सर्गः

(रामद्वारा जम्बूद्वीप-विजय)

श्रीरामदास उवाच

अथ ह स किंपुरुषं नाम वर्षं नवसहस्रयोजनविस्तीर्णं स्वीयानादिसिद्धराममूर्तिदेवतोपास्यविराजमानपवनसुतोपासकमधिष्ठितमुपजगाम ॥ १ ॥ तत्र ह वाव दर्शितनाकौतुकस्तद्वर्षनृपसमूहपरिवेष्टितः पुष्पकसमधिष्ठितो नववाद्यस्वनपुरःसरः पुरतोऽनुससार ॥ २ ॥ अथ हेमकूट नाम पर्वतमतिकमनीयं द्विसहस्रयोजनविपुलमेकाशीतिसहस्रयोजनदीर्घं नानाधातुविराजितं समुन्नत-

---

इसके बाद आनर्त देशको गये । वहाँवालोंने रामका अच्छी तरह सत्कार किया ॥ ४१ ॥ ४२ ॥ वहाँसे पुष्करावती-के राज्यासनपर बैठे हुए पुष्करको देखने गये । फिर तक्षशिलाकी राजधानीमें सिंहासनपर बैठे हुए तक्षको देखकर भरतके ननिहाल गये । वहाँ पहुँचनेपर राजा युधाजित्ने रामका पूजन किया ॥ ४३ ॥ ४४ ॥ इसके बाद आकाशमार्गसे सुन्दर शकदेशको गये । वहाँ यवनदेशमें रहनेवाले राजाओंको जीतकर अनेक प्रकारके देशोंको देखते हुए ताम्रदेशको गये । फिर मायापुरी होते हुए कलापग्रामको गये ॥ ४५ ॥ ४६ ॥ वहाँ सबके उपास्य नर-नारायणका दर्शन करके नारदका दर्शन किया । फिर भारतसंज्ञक देशमें गये । वहाँ संग्राम करके भारतनरेशको मार डाला और अपने किसी सेवकको वहाँका राजा बनाकर नौ हजार योजन विस्तृत पुण्यदेश (पूना) को गये ॥ ४७–४९ ॥ इसके अनन्तर महापर्वत हिमालयके पास गये, जो एक हजार योजन है । वहाँ रामने अनेक प्रकारके कौतुक देखे । फिर विमानपरसे ही सीताको भी वहाँका कौतुक दिखाया ॥ ५० ॥ ५१ ॥ इति श्रीशतकोटिरामचरितांतर्गते श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये पं० रामतेजपाण्डेय-विरचित "ज्योत्स्ना" भाषाटीकासमन्विते राज्यकाण्डे पूर्वार्द्धे सप्तमः सर्गः ॥ ७ ॥

श्रीरामदास कहने लगे—इसके अनन्तर राम नौ हजार योजन विस्तृत किम्पुरुष नामक देशको गये । जहाँ बहुतसे देवताओं तथा हनुमानुजीकी मूर्तिके साथ रामकी अनादि मूर्ति स्थापित थी ॥ १ ॥ उस देशमें अनेक प्रकारके कौतुक देखते हुए वहाँके राजाओंसे परिवेष्टित होकर पुष्पक विमानपर बैठे-बैठे आगे बढ़े ॥ २ ॥ जाते-जाते अतिशय कमनीय हेमकूट पर्वतपर पहुँचे, जो दो हजार योजन विस्तृत

शिखरगिरिराजमानं पुष्पकसमधिष्ठितो रघुनाथ उपजगाम ॥ ३ ॥ अथ तृतीयं वर्षं नाम नवसहस्रयोजनपरिमितं नृसिंहोपास्यप्रह्लादोपासकविराजमानमतिकमनीयं दशरथतनयः समनुययौ ॥ ४ ॥ तद्वर्षवासिनृपवरवृन्दतुमुलसंग्रामसम्पादितजयश्रीरिपुकोशादिपूजितनृपदयिताराऽर्तिकनीराजितजनकजादर्शितमानकौतुकध्वजपताकातोरणघंटाकिंकिणीविराजमानपुष्पकसमधिष्ठितः श्रीरघुनन्दन उपजगाम ॥ ५ ॥ अथ निषधं नाम पर्वतं द्विसहस्रयोजनविपुलं नवतिसहस्रयोजनदीर्घमतिकमनीयं स रघुनन्दनो नयनगोचरं चकार ॥ ६ ॥ अथ सुवर्णाद्रिसमंततश्चतुर्दिक्षु समानमानमिलावृतं नाम चतुर्थं वर्षं चतुस्त्रिंशत्सहस्रयोजनपरिमितं स रघुनायक उपजगाम ॥ ७ ॥ तत्र ह वाव मेरोराश्रयभूते मेरोर्दक्षणदिक्स्थिते मेरुमंदरपर्वतेऽतिविराजमाने समुन्नतजंबूवृक्षमतिविशालं जंबूद्वीपाख्यसूचकं सफलमपूर्वमतिकमनीयं स रामचंद्रोऽवनिदुहित्रे दर्शयामास ॥ ८ ॥

ततो मेरुपश्चिमतो मेरोराश्रयभूते सुपार्श्वपर्वते विराजमानकदंबवृक्षमतिसमुन्नतमतिविपुलमतिकमनीयं पुष्परंजितं स रघुनायको नेत्रविषयं चकार ॥ ९ ॥ अथ मेरोरुत्तरतस्तस्याश्रयभूते कुमुदनाम्नि पर्वते विराजमानमतिसमुन्नतं वटवृक्षमतिविशालमतिस्थूलं स कौसल्यानंदनो नृपसमूहविराजितो जनकजायै दर्शयामास ॥ १० ॥ अथ मेरुपूर्वतस्तस्याश्रयभूते मंदरपर्वते विराजमानमतिविशालमतिसमुन्नतमतिस्थूलं सहकारवृक्षमतिकमनीयं सुपक्वमधुरघटतुल्यफलभारविनम्रं पश्यन्स रघुंवंशभूषणो जनकजाजानिः ॥ ११ ॥ तत्रेलावृते विराजमानसंकर्षणोपास्यरुद्रोपासकं स रघुनायको दयितासहायः शिरसा प्रणनाम ॥ १२ ॥ तद्वर्षवासिनृपप्रबद्धकरकमलशिरोवंदितपदजलरुहद्वंद्वः स रघुनायकः पूर्वदिशमनुजगाम ॥ १३ ॥ अथ स गंधमादनपर्वतं द्विसहस्रयोजनविपुलं चतुस्त्रिंशत्सहस्रयोजनदीर्घं नयनगोचरं चकार ॥ १४ ॥ अथ भद्राश्वं नाम पंचमं वर्षमेकत्रिंशत्सहस्रयोजनदीर्घं हयग्रीवोपास्यभद्राश्वोपासकसमधिष्ठितं स रघुनायक उपजगाम ॥ १५ ॥ तत्र क्वचित्संग्रामस्तद्वर्षविराजमाननृपसमूहेभ्यः क्वचिच्छरणागतप्रबद्धकरयुगलावनिपतिभ्यः स्वकरभारान्लभमानः स

तथा इक्यासी हजार योजन लम्बा था, जिसपर अनेक प्रकारकी धातुयें विद्यमान् थीं। जिसके ऊँचे-ऊँचे शिखर आकाशसे बातें कर रहे थे ॥ ३ ॥ उसके आगे तीसरे देशमें गये, जो नृसिंह भगवान्के भक्त प्रह्लादका बसाया हुआ था ॥ ४ ॥ उस देशके राजाओंसे तुमुल संग्राम करके राम विजयश्री लाभ करते हुए शत्रुओंकी सम्पत्ति अपने अधीन करके सीताको मार्गमें विविध प्रकारके कौतुक दिखाते हुए कितने ही ध्वजा, पताका, तोरण, घंटा और किंकिणीसे सुशोभित पुष्पकविमानपर बैठे हुए आगे बढ़े ॥ ५ ॥ इसके अनन्तर दो हजार योजन विस्तृत तथा नौ हजार योजन लम्बे अति सुन्दर निषध पर्वतपर पहुँचे ॥ ६ ॥ उसके आगे चारों ओर सुवर्ण पर्वतोंसे परिवेष्टित इलावृत नामक चतुर्थ देशमें गये। जो चौवालिस हजार योजन लम्बा-चौड़ा था ॥ ७ ॥ वहाँ सीताको सुमेरु पर्वतके दक्षिण ओर खूब ऊँचे और अतिशय विशाल जम्बूद्वीपको सूचित करनेवाले एक बड़े भारी जामुनके वृक्षको दिखाया ॥ ८ ॥ इसके अनन्तर पश्चिमकी ओर सुपार्श्व पर्वतपर बड़े भारी कदम्ब वृक्षको देखा, जो बहुत ऊँचा और फूलोंसे लदा हुआ था ॥ ९ ॥ इसके अनन्तर मेरुके उत्तर ओर कुमुद नामक पर्वतपर अतिशय विशाल सर्वस्थूल एक वटवृक्ष सीताको दिखाया ॥ १० ॥ मेरुके उत्तर ओर उसके पासवाले मंदर पर्वतपर स्थित खूब लम्बे चौड़े, खूब पके तथा घड़ेके बराबर फलोंसे लदे एक आम्रवृक्षको देखा ॥ ११ ॥ उस इलावृतमें बलरामजीके पूज्य रुद्रभगवान्को सीताके साथ रामने प्रणाम किया ॥ १२ ॥ उस देशके निवासी राजाओंने हाथ जोड़कर रामको प्रणाम किया और राम वहाँसे आगे पूर्व दिशाकी ओर बढ़े ॥ १३ ॥ तदनन्तर वे गन्धमादन पर्वतपर पहुँचे, जो दो हजार योजन चौड़ा तथा चौंतीस हजार योजन लम्बा था ॥ १४ ॥ तदनन्तर भद्राश्व नामक पाँचवें देशमें पहुँचे, जो एकतीस हजार योजन लम्बा था और वहाँ हयग्रीवके उपास्य भद्राश्व भगवान् रहते थे ॥ १५ ॥ उस देशके बहुतसे

जनकजाजानिरुपययौ परिवृत्य पश्चिमाभिमुखः ॥ १६ ॥ अथ मेरोः पश्चिमदिक्स्थितं माल्यवंतं पर्वतं द्विसहस्रयोजनविस्तीर्णं चतुस्त्रिंशत्सहस्रयोजनदीर्घमतिक्रमनीयं स जनकजारञ्जनो नयनगोचरं चकार ॥ १७ ॥ तत्पश्चिमतः केतुमालं नाम षष्ठं वर्षं एकत्रिंशत्सहस्रयोजनविस्तीर्णं चतुस्त्रिंशत्सहस्रयोजनदीर्घं कामदेवोपास्यलक्ष्म्युपासिकासमधिष्ठितमनोहरं स रामचन्द्रोऽनुजगाम ॥ १८ ॥ तद्वर्षनृपसमूहमुकुटावंतसपरागपूजितचरणाविंदयुगलः स रघुकुलदीपकः सीतया पुष्पकस्थोऽतिमुदमवाप ॥ १९ ॥ अथ मेरोरुत्तरतः स नीलपर्वतं द्विसहस्रयोजनविस्तीर्णं नवतिसहस्रयोजनदीर्घं रघुकुलतिलको नयनविषयं चकार ॥ २० ॥ अथ रम्यकं नाम सप्तमं वर्षं नवसहस्रयोजनपरिमितं मत्स्योपास्यमनूपासकविमानमधिष्ठितः स रघुनन्दन उपजगाम ॥ २१ ॥ तत्रस्थैरवनिपालैः स्वकोशादिपूजितः स रघुनायकः सीतां रञ्जयन् पुरतोऽनुससार ॥ २२ ॥ तस्योत्तरतः श्वेतपर्वतं द्विसहस्रयोजनविस्तीर्णमेकाशीतिसहस्रयोजनदीर्घमतिक्रमनीयं स स्वलोचनविषयं चकार ॥ २३ ॥ अथ हिरण्मयं नामाष्टमं वर्षं नवसहस्रयोजनपरिमितं कूर्मोपास्यार्यमोपासकमधिष्ठितमतिक्रमणीयं स समनुययौ ॥ २४ ॥ तद्वर्षवासिनृपदयिताशिरोभूषणमणितेजोदीपितजानकीचरणारविंदयुगलमीक्षमाणः स रघुनन्दनो मुदमवाप ॥ २५ ॥ तस्योत्तरतः शृङ्गवन्तं पर्वतं द्विसहस्रयोजनविस्तीर्णं त्रिसप्ततिसहस्रयोजनदीर्घं स रघुनन्दनो ददर्श ॥ २६ ॥ अथोत्तकुरुवर्षं नवमं नवसहस्रयोजनपरिमितं वाराहोपास्यभूम्युपासिकासमधिष्ठितमनोहरं स रामचंद्रस्तमनुययौ ॥ २७ ॥ तद्वर्षचारिरणत्कंपितावयवनृपमहावतंसमणिमुक्ताविराजितपदजलरुहद्वंद्वः स रघुनायको मुदमवाप ॥ २८ ॥ अथ रामो लवं जम्बूद्वीपपतिं करिष्यामीति निश्चित्य कियद्दिनं तदधिकारे विजयं नाम स्वमन्त्रिणं स्थापयामास ॥ २९ ॥ एतेषां जम्बूद्वीपांतर्गतवर्षाणां तथा सर्वद्वीपांतर्गतवर्षाणां यानि यानि नामानि

राजाओंके साथ रामने संग्राम किया और बहुतोंको शरणमें आ जानेपर क्षमा प्रदान किया। तदनन्तर सबसे कर लेते हुए वहाँसे लौटकर पश्चिम दिशाकी ओर बढ़े ॥ १६ ॥ इसके बाद मेरु पर्वतके पश्चिम माल्यवान् पर्वतपर पहुँचे, जो दो हजार योजन विस्तृत तथा चौंतीस हजार योजना लम्बा था ॥ १७ ॥ इसके आगे केतुमाल नामक छठें देशमें पहुँचे, जो इकतीस हजार योजन विस्तृत एवं चौंतीस हजार योजन लम्बा था और वहाँ कामदेवकी उपासिकाएँ रहती थीं ॥ १८ । जब उस देशके राजाओंने अपना मुकुटविभूषित मस्तक रामचन्द्रजीके चरणोंपर रख दिया तो सीता तथा रामको बड़ी प्रसन्नता हुई ॥ १९ ॥ फिर मेरु पर्वतके उत्तर ओर विराजमान नील पर्वतको देखा, जो दो हजार योजन विस्तृत तया नब्बे हजार योजन लम्बा था ॥ २० ॥ इसके अनन्तर रमणक नामके सातवें देशमें पहुँचे, जो नौ हजार योजन विस्तृत था। वहाँ मत्स्यभगवान्‌के बहुतसे उपासक लोग रहा करते थे ॥ २१ ॥ वहांके राजाओंने अपना कोश आदि देकर रामकी पूजा की और रघुनाथजी सीताको प्रसन्न करते हुए आगे बढ़े ॥ २२ ॥ उसके उत्तर ओर रामने श्वेत पर्वतको देखा, जो दो हजार योजन विस्तृत तथा इक्यासी हजार योजन लम्बा था ॥ २३ ॥ इसके बाद हिरण्मय नामके आठवें देशमें पहुँचे, जहाँ अधिकांश कूर्म भगवान् तथा सूर्य नारायणके उपासक लोग रहा करते थे ॥ २४ ॥ उस देशके राजाओंकी स्त्रियोंने जब जानकीके चरणोंमें मस्तक रखकर प्रणाम किया तो रामचन्द्रजोको बड़ी प्रसन्नता हुई ॥ २५ ॥ उसके उत्तर दो हजार योजन विस्तृत तथा तिहत्तर हजार योजन लम्बे शृङ्गवान् नामक पर्वतको देखा ॥ २६ ॥ इसके अनन्तर नवें देश उत्तर कुरुमें पहुँचे, जो हजार योजन लम्बा-चौड़ा था। वहाँ विशेष करके वाराह भगवान्‌के उपासक तथा भूमिकी उपासिका स्त्रियाँ रहा करती थीं ॥ २७ ॥ जब उस देशके राजे संग्रामभूमिमें भयसे काँपकर रामके चरणोंमें लोट गये, तब रामको बड़ी प्रसन्नता हुई ॥ २८ ॥ इसके बाद रामने जम्बूद्वीपके राजाको मार डाला और मनमें यह निश्चय किया कि यहाँसे लौटकर अयोध्या पहुँचनेपर लवको जम्बूद्वीपका अधिपति बनाऊँगा। तबतक कुछ दिनोंके लिए अपने विजय नामके मन्त्रीको वहाँकी देख-भाल करनेके लिए छोड़ दिया ॥ २९ ॥ जम्बूद्वीपके अन्तर्गत जितने राज्य थे, वे सब प्रियव्रत नामक राजाके पौत्रोंके नामसे प्रसिद्ध

तानि प्रियव्रतनृपपौत्रनामसूचितानि सन्ति । तेषु ये ये नृपा जायंते ते तद्वर्षनामसूचिता एव भवंत्यतः सर्वेषां पृथक् नामानि मयाऽत्र नोच्यंते ॥ ३० ॥ एवं जम्बूद्वीपमायामविस्ताराभ्यां लक्षयोजनपरिमितमतिकमनीयं समवर्तुलं पुष्करपत्रोपमं नववर्षमण्डितं स रघुनायकः स्ववशं चकार ॥ ३१ ॥ मेरुपर्वताग्रेऽष्टपुर्योऽष्टदिक्पालानां संति । तत्पालकाः सुराधीशवह्नियमनिर्ऋतिवरुणवायुकुबेरेशास्ते सर्वे ममाज्ञां परिपालयंत्विति निश्चित्य स रघुनायकस्तान् प्रति जगाम ॥ ३२ ॥ ता अष्टपुर्यः पृथक् पृथक् सार्धद्विसहस्रयोजनपरिमाणेनायामविस्तारतो ज्ञातव्याः ॥ ३३ ॥ मेरुलक्षयोजनमुन्नतो मूर्ध्नि द्वात्रिंशत्सहस्रयोजनविततो मूले षोडशसहस्रयोजनविततश्चाधः षोडशसहस्रयोजनमितो भूम्यां प्रविष्टश्चतुरशीतिसहस्रयोजनमितो भूम्या बहिर्धत्तूरपुष्पवद्दृश्यते ॥ ३४ ॥ तत्र मेरुपर्वताग्रेऽष्टदिक्पालपुरीणां मध्ये ब्रह्मपुरी दशसहस्रयोजनायामविस्तारतो ज्ञातव्या ॥ ३५ ॥ सर्वे वर्षमर्यादीभूताष्टपर्वता दशसहस्रयोजनसमुन्नता ज्ञातव्याः ॥ ३६ ॥ वर्षदीर्घता पर्वतसमाना ज्ञातव्या ॥ ३७ ॥ जम्बूद्वीपस्योपद्वीपानष्टौ हैक उपदिशंति ॥ ३८ ॥ सगरात्मजरथान्वेषण इमां महीं परितो निखनद्भिरुपकल्पितान् ॥ ३९ ॥ तद्यथा स्वर्णप्रस्थः चन्द्रशुक्ल आवर्तनो रमणकः मंदरहरिणः पाञ्चजन्य सिंहलो लङ्का चेति ॥ ४० ॥ तेषु लंकां विना सप्तसु यदा यद्यत्समीपं तदा तत्र तत्र गत्वा तत्रस्थानुपद्वीपपालकान् श्रीरामचन्द्रः स्ववशांश्चकार ॥ ४१ ॥ भारतेलावृतवर्षाभ्यां विना सप्तसु वर्षेष्वसंख्याता नद्यो गिरयश्च संति । तेषां विस्तारं को वक्तुं क्षमः ॥४२॥ अथेलावृतसंस्थिता मुख्यनद्य एवोच्यंते ॥ ४३ ॥ अरुणोदाजंबुनदीपयोदधिघृतमधुगुडान्नांबरशय्यासनाभरणसंज्ञा नदास्तदा पञ्च मधुधारानद्यस्तथा सीताऽलकनंदाचक्षुर्भद्रेति मेरोरधश्चतुर्दिक्षु पतिता जाह्नवीभेदाश्चत्वार एवमिलावृतनद्यः ॥ ४४ ॥ तासु सीता पूर्वसमुद्रं चक्षुर्भद्रा पश्चिमसमुद्रं भद्रोत्तरसमुद्रमलकनंदा दक्षिणस्यां दिशि भारते वर्षे जलनिधिं प्रविशति ॥ ४५ ॥ भारतेऽस्मिन्

थे । जहाँका जो राजा था, उसीके नामसे वह राज्य विख्यात था । इसीलिये सबका अलग-अलग नाम मैं नहीं बतला रहा हूँ ॥ ३० ॥ इस प्रकार एक लाख योजन लम्बे-चौड़े, अतिशय सुन्दर एवं वर्तुलाकार कमलपत्रके समान विराजमान जम्बूद्वीपको उन्होंने जीत लिया ॥ ३१ ॥ मेरुपर्वतके आगे आठ लोकपालोंको आठ पुरियाँ हैं । वे सब भी मेरी आज्ञाका पालन करें । इसी विचारसे रामचन्द्रजी आगे बढ़े ॥ ३२ ॥ वे आठों पुरियाँ अलग-अलग अढ़ाई-अढ़ाई हजार योजन लम्बी-चौड़ी हैं । मेरु पर्वत एक लाख योजन उँचा है और उसकी चोटीपर बत्तीस हजार योजन लम्बा-चौड़ा मैदान है । नीचे सोलह हजार योजन विस्तार है और सोलह ही हजार योजन वह पृथ्वीके भीतर समाया हुआ है । चौरासी हजार योजनकी लम्बाई-चौड़ाईवाला वह पर्वत धतूरके फूलकी तरह दीखता है ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ मेरु पर्वतके आगे पूर्वोक्त आठ पूरियोंमें ब्रह्मपुरीकी लंबाई-चौड़ाई विस्तारमें ठीक दस हजार योजन है ॥ ३५ ॥ जिन-जिन पर्वतोंपर वे आठों पुरियाँ हैं, वे प्रत्येक पर्वत दस-दस दजार योजन ऊँचे हैं ॥ ३६ ॥ प्रत्येक पुरीका विस्तार पर्वतके विस्तारकी तरह ही समझना चाहिए ॥३७॥ जंबूद्वीपके भी आठ उपद्वीप हैं ॥३८॥ जिस समय महाराज सगरके साठ हजार पुत्र समुद्रको खोद रहे थे, तब उन्होंने ही इन द्वीपोंकी रचना की थी ॥ ३९ ॥ उन आठों द्वीपोंके नाम इस प्रकार हैं—स्वर्णप्रस्थ, चंद्रशुक्ल, आवर्त, रमणक, मन्दरहरिण, पांचजन्य, सिहल और लङ्का ॥ ४० ॥ इनमेंसे लङ्काको छोड़कर शेष सब द्वीपोंमें जाकर वहाँके राजाओंको रामने अपने वशमें कर लिया ॥ ४१ ॥ भारत और इलावर्तको छोड़कर सातों देशोंमें असंख्य पर्वत और नदियाँ हैं, जिनका विस्तार बतलानेमें कोई समर्थ नहीं है ॥ ४२ ॥ इलावृत द्वीपमें जो मुख्य-मुख्य नदियाँ हैं, उन्हें ही हम बतलाते हैं। वे हैं—॥ ४३ ॥ अरुणोदा, जंबुनदी, दूध, घी, मधु, गुड़, अन्न, वस्त्र, शय्या, आसन और आभरणसंज्ञक नदियाँ हैं । इनमें पाँच नदियाँ तो ऐसी हैं, जिनमें सदा मधुकी धारा बहती रहती है । मेरु पर्वतसे सीता, अलकनन्दा, चक्षु, भद्रा तथा जाह्नवी ये पाँच नदियाँ निकली हैं

वर्षे सरिच्छैलाः सन्ति बहवः ॥ ४६ ॥ तद्यथा मलयो मंगलप्रस्थो मैनाकस्त्रिकूटः ऋषभः कुटकः सह्यो देवगिरिर्ऋष्यमूकः श्रीशैलो वेंकटो महेंद्रो वारिधरो विंध्यः शक्तिमानृक्षगिरिः पारियात्रो द्रोणश्चित्रकूटो गोवर्धनो रैवतकः ककुभो नीलो गोकामुख इन्द्रकीलः कामगिरिश्चेत्यन्ये च शतसहस्रशः शैलास्तेषां नितंबप्रभवा नदा नद्यश्च संत्यसंख्याताः ॥ ४७ ॥ चद्रवशा ताम्रपर्णी अवटोदा कृतमाला वैहायसी कावेरी वेणी पयस्विनी शर्करावर्ता तुंगभद्रा कृष्णा वेणा भीमरथी निर्विन्ध्या पयोष्णी तापी मही सुरसा नर्मदा चर्मण्वती सिंधुः शोणश्च नदौ महानदी वेदस्मृतिः ऋषिकुल्या त्रिसामा कौशिकी मंदाकिनी यमुना सरस्वती दृषद्वती गोमती सरयू रोधस्वती सप्तवती सुषोमा शतद्रुश्चन्द्रभागा मरुधन्वा वितस्ता असिक्नी विश्वेति महानद्यः ॥ ४८ ॥ एवं शिष्य रघुनायको नायकः सोपद्वीपं जम्बुद्वीपं स्ववशं कृत्वा लक्षयोजनविस्तीर्णं जंबूद्वीपपरिखोपमं समुल्लंघ्य पुष्पकस्थः प्लक्षं नाम द्वितीयं द्वीपं ददर्श ॥ ४९ ॥

इति श्रीशतकोटिरामचरितांतर्गते श्रीमदानंदरामायणे वाल्मीकीये राज्यकांडे पूर्वार्धे जंबूद्वीपजयो नामाष्टमः सर्गः ॥ ८ ॥

नवमः सर्गः

(राम द्वारा प्लक्षादि छः द्वीपोंकी विजय)

श्रीरामदास उवाच

अथ रामो ययौ श्रीमान् प्लक्षद्वीपं मनोरमम् । द्विलक्षयोजनमितं सप्तवर्षसमन्वितम् ॥ १ ॥
उपास्यो यत्र वै सूर्यो ब्राह्मणाश्च ह्युपासकाः । द्वीपाख्याकृच्च यत्रास्ति प्लक्षवृक्षो हिरण्मयः ॥ २ ॥
यथाऽऽरामाद्बहिर्ज्ञेयाः परिखाश्च समंततः । जंबूद्वीपाच्च क्षारोदाद्बहिर्द्वीपस्तथा त्वयम् ॥ ३ ॥

॥ ४४ ॥ उनमेंसे सीता पूर्व समुद्रमें, चक्षुर्भद्रा पश्चिम समुद्रमें और अलकनन्दा दक्षिण समुद्रमें जाकर मिलती है ॥ ४५ ॥ भारतवर्षमें भी बहुत-सी नदियाँ और पर्वत हैं ॥ ४६ ॥ मलय, मंगलप्रस्थ, मैनाक, त्रिकूट, ऋषभ, कुटक, सह्य, देवगिरि, ऋष्यमूक, श्रीशैल, वेंकट, महेन्द्र, वारिवर, विन्ध्य, शक्तिमान्, ऋक्षगिरि, पारियात्र, द्रोण, चित्रकूट, गोवर्धन, रैवतक, ककुभ, नील, गोकामुख, इन्द्रकील और कामगिरि ये पर्वत हैं। इनके अतिरिक्त और भी बहुत-से पर्वत हैं, जिनकी तलैटीसे बहुतसे नद और नदियाँ निकली हैं। जैसे—॥ ४७ ॥ चन्द्रवशा, ताम्रपर्णी, अवटोदा, कृतमाला, वैहायसी, कावेरी, वेणी, पयस्विनी, शर्करावती, तुङ्गभद्रा, कृष्णा, वेणा, भीमरथी, गोदावरी, निर्विन्ध्या, तापी, मही, सुरसा, नर्मदा, चर्मण्वती। सिंधु और शोण ये दोनों महानद हैं। वेदस्मृति, ऋषिकुल्या, त्रिसामा, कौशिकी, मन्दाकिनी, यमुना, सरस्वती, दृषद्वती, गोमती, सरयू, रोधस्वती, सप्तवती, सुषोमा, शतद्रु, चन्द्रभागा, मरुधन्वा, वितस्ता, असिक्नी और विश्वा ये महानदियाँ हैं ॥ ४८ ॥ हे शिष्य ! इस प्रकार उपद्वीपों समेत जम्बुद्वीपको अपने वशमें करके राम एक लाख योजन विस्तृत लवणसमुद्र, जो कि जम्बूद्वीपको खाईंके समान था, उसे पार करके पुष्पक विमान द्वारा प्लक्ष नामके एक दूसरे द्वीपमें जा पहुँचे ॥ ४९ ॥ इति श्रीशतकोटिरामचरितान्तर्गते श्रीमदानन्दरामायणे पं० रामतेजपांडेयविरचित'ज्योत्स्ना'भाषाटीकासमन्विते आनन्दरामायणे राज्यकांडे पूर्वार्धे अष्टमः सर्गः ॥ ८ ॥

श्रीरामदासने कहा—इसके बाद श्रीमान् रामचन्द्र अतिशय मनोरम प्लक्षद्वीपको गये, जो दो लाख योजन विस्तृत था और उसमें सात देश थे ॥ १ ॥ वहाँ सबके आराध्य देवता सूर्य और देवाराधक ब्राह्मण थे। वहाँ सुवर्णका एक बड़ा-सा प्लक्ष (पाकड़) का वृक्ष था और उस प्लक्षके ही कारण उसका प्लक्षद्वीप नाम पड़ा था ॥ २ ॥ जिस तरह किसी बगीचेके चारों ओर खाईं बना दी जाय, ठीक उसी तरह उसको चारों ओरसे

मेरोः पूर्वदिशायां वै तत्र वर्षं शिवाह्वयम् । आदौ ययौ रामचन्द्रः क्षणादेव विहायसा ॥ ४ ॥
नदी यत्रारुणा नाम्नी सर्वपापप्रणाशिनी । तस्यां स्नात्वा रघुश्रेष्ठः शीघ्रं तद्वर्षपं ययौ ॥ ५ ॥
तेन वर्षाधिपेनैव युद्धमासीत्सुदारुणम् । तं जित्वा पञ्चमासैश्च तैश्च पार्थिवसत्तमैः ॥ ६ ॥
पूजितो रघुनाथस्तु वज्रकूटाचलं ययौ । वज्रकूटं महाश्रेष्ठं द्वयोः सागरयोः स्थितम् ॥ ७ ॥
परस्परं वर्षयोश्च सीमाभूतं ददर्श सः । तं गिरिं पृष्ठतः कृत्वा वर्षं यवयसं ययौ ॥ ८ ॥
नृम्णानदीजले स्नात्वा ययौ यावयसेश्वरम् । तेन संपूजितो रामस्ततस्तद्वर्षपार्थिवैः ॥ ९ ॥
सहितः पुष्पकेनैवमुपेंद्रसेनपर्वतम् । दृष्ट्वा कृत्वा पृष्ठतस्तं सुभद्रं वर्षमाययौ ॥१०॥
आंगीरसीनदीतोये स्नात्वा स रघुनायकः । वर्षाधिपेन कोशैः संपूजितः पार्थिवैः सह ॥११॥
ज्योतिष्मन्तं गिरिं गत्वा तं कृत्वा पृष्ठतः क्षणात् । शांतिवर्षेऽथ सावित्रीनदीतोये विगाह्य च ॥१२॥
तद्वर्षेशं नृपं जित्वा तथा तद्वर्षसंस्थितान् । नृपान् जित्वा क्षणादेव सुवर्णपर्वतं ययौ ॥१३॥
ततो गत्वा क्षेमवर्षं सुप्रभातानदीजले । स्नात्वा रामः क्षेमपेन स्वकोशैः परिपूजितः ॥१४॥
हिरण्यष्ठीवनामानं गिरिं रम्यं विलंघ्य च । वर्षेऽमृते तन्नृपेण पार्थिवैः परिपूजितः ॥१५॥
ऋतंभरानदीतोये चकार स्नानमादरात् । मेघमालं गिरिं त्यक्त्वा पृष्ठतः पुष्पकेण हि ॥१६॥
वर्षेऽभये तन्नृपतिं क्षणाज्जित्वा रणे प्रभुः । सत्यंभरानदीतोये स्नात्वा स रघुसत्तमः ॥१७॥
सुचंद्राख्यं नृपं प्लक्षद्वीपेशं तीक्ष्णसंगरैः । कृत्वा वै स्वपदाक्रान्तं तेन तद्द्वीपपार्थिवैः ॥१८॥
मणिकूटं गिरिवरं समतिक्रम्य वै क्षणात् । इक्षुरसोदनामानं द्विलक्षयोजनं वरम् ॥१९॥
तीर्त्वा तं सागरं भीमं प्लक्षस्य परिखोपमम् । तथा च शाल्मलीद्वीपं चतुर्लक्षमितं ययौ ॥२०॥
द्वीपाख्याकृच्च यत्रास्ति शाल्मली द्वीपपादपः । यत्रोपास्यश्च सोमोऽस्ति तत्रस्थास्तदुपासकाः ॥२१॥
विस्तारद्वीपमानानि दीर्घतायाः स्मृतानि च । तत्र क्रमेण वर्षाणि कथ्यंते पूर्ववन्मया ॥२२॥

लवण-समुद्र घेरे हुए था ॥ ३ ॥ मेरुपर्वतकी पूर्व ओर प्लक्षद्वीपमें शिवजीके नामका एक देश था । रामचन्द्रजी क्षणमात्रमें आकशमार्गसे वहाँ पहुँचे ॥ ४ ॥ वहाँपर सब पापोंका नाश करनेवाली अरुणा नदी बहती थी । जिसमें उन्होंने स्नान किया और उस देशके राजाके पास गये ॥ ५ ॥ उस राजाके साथ रामका भयङ्कर युद्ध छिड़ गया । पाँच महीनेतक घमासान युद्ध होनेके पश्चात् वहाँका राजा रामके वशमें आ गया और उसने उनकी पूजा की ॥ ६ ॥ फिर वहाँसे वज्रकूटाचलपर गये । वह पर्वत दो सागरोंके बीचमें स्थित होकर दोनों देशोंकी सीमाका काम कर रहा था । उसको लाँघकर यवयस नामक देशको गये ॥ ७ ॥ ८ ॥ वहाँ उन्होंने नृम्णा नदीमें स्नान किया और यवयस देशवाले राजाके पास गये । उसने रामकी पूजा की । इसके बाद रामने वहाँके भी बहुतसे राजाओंको अपने पुष्पक विमानपर बिठा लिया और आगे उपेन्द्रसेन नामक पर्वतपर पहुँचे । उसे देखकर वे सुभद्र देशको गये ॥ ९ ॥ १० ॥ वहाँ आंगिरसी नदीमें स्नान करनेके पश्चात् वहाँके राजासे मिले । उसने बहुतसे धनका व्यय करके रामचन्द्र तथा उनके साथवाले राजाओंका सत्कार किया ॥ ११ ॥ फिर ज्योतिष्मान् नामक पर्वतको लाँघकर वे शान्तिदेशको गये । वहाँ सावित्री नदीमें स्नान करके उस देशके राजाको परास्त किया और उसके आगे सुवर्ण पर्वतपर गये । वहाँसे क्षेमदेशमें पहुँचे । वहाँ रामने सुप्रभाता नामकी नदीमें स्नान किया और क्षेमदेशके राजाने रामका विधिवत् पूजन किया ॥ १२–१५ ॥ इसके अनन्तर ऋतंभरा नदीमें स्नान करके मेघमाल नामके पर्वतको लाँघते हुए राम अभय देशमें पहुँचे । वहाँके राजाको क्षणमात्रमें जीतकर सत्यंभरा नदीमें स्नान किया । फिर सुचन्द्र नामक राजा, जो प्लक्षद्वीपका शासक था, उसे भयानक युद्धमें हराकर वहाँके बहुत-से राजाओंको अपने साथ लेकर इक्षुरसोद नामके भयंकर समुद्रको पार किया । वह प्लक्षद्वीपकी खाईके समान दो लाख योजन विस्तृत था । वहाँसे चलकर शाल्मली द्वीपमें पहुँचे, जो चार लाख योजन विस्तृत था ॥ १६–२० ॥ वहाँ एक विशालका शाल्मली (सेमर) का

मेरोः पूर्वदिगारभ्य सर्वत्र क्रम उच्यते । सुरोचनं सौमनस्यं तथा रमणकं शुभम् ॥२३॥
देववर्षं पारिभद्रनामाप्यायनमनुत्तमम् । अविज्ञातं सप्तमं च सप्त वर्षाणि वै क्रमात् ॥२४॥
अनूमती सिनीवाली तथैव च सरस्वती । कुहूश्च रजनी नन्दा राका नद्यः प्रकीर्तिताः ॥२५॥
शतशृंगो वामदेवो कुंदश्च कुमुदस्तथा । पुष्पवर्षः पञ्चमश्च सहस्रश्रुतिरुत्तमः ॥२६॥
स्वरसः पर्वताः सप्त ज्ञेयाः सीमासु वै क्रमात् । एतेषु सप्तवर्षेषु वर्षपालान् विजित्य सः ॥२७॥
जित्वा द्वीपेश्वरं रामः सुबाहुं मुदमाययौ । सुरोदं च चतुर्लक्षमितं तीर्त्वा पयोनिधिम् ॥२८॥
कुशद्वीपमष्टलक्षमितं रामो ययौ क्षणात् । तत्रोपास्यो जातवेदाः सर्वेषां द्वीपवासिनाम् ॥२९॥
द्वीपाख्याकृच्च यत्रास्ति कुशस्तम्बः सुरैः कृतः । तत्र क्रमेण वर्षाणि कीर्त्यंते सप्त वै मया ३०॥
वसुं च वसुदानं च तथा दृढरुचिं शुभम् । नाभिगुप्तं तथा सत्यव्रतं विविक्तमुत्तमम् ॥३१॥
वामदेवं सप्तमं च वर्षं ज्ञेयं क्रमेण हि । रसकुल्या मधुकुल्या मित्रविंदा नदी शुभा ॥३२॥
श्रुतिविंदा देवगर्भा तथा चैव घृतच्युता । मंत्रमाला क्रमेणैव नद्यः सप्तसु वै क्रमात् ॥३३॥
चतुःशृङ्गश्च कपिलश्चित्रकूटो मनोरमः । देवानीक ऊर्ध्वरोमा द्रविणश्चक्र ईरितः ॥३४॥
एते सीमासु वर्षाणां गिरयः सप्त वै क्रमात् । एतेषु सप्तवर्षेषु संस्थितान्पार्थिवोत्तमान् ॥३५॥
राघवः संगरे जित्वा लब्ध्वा चानुत्तमं यशः । कुशद्वीपपतिं जित्वा महासेनं तुतोष सः ॥३६॥
अष्टलक्षमितं तीर्त्वा घृतोदं सागरोत्तमम् । क्रौंचद्वीपं ययौ रामः पुष्पकेणातिभास्वता ॥३७॥
कुशद्वीपाच्च स ज्ञेयो द्विगुणो द्वीप उत्तमः । द्वीपाख्याकृच्च यत्रास्ति क्रौञ्चनामा गिरिर्महान् ॥३८॥
यत्रोपास्योऽस्मयो देवो हरिस्तद्द्वीपवासिनाम्। तत्रापि सप्त वर्षाणि कथ्यंतेऽत्र क्रमेण हि ॥३९॥
आमं मधुरुहं मेघपृष्ठं चैव मनोहरम् । सुधामानं च भ्राजिष्ठं लोहितार्णं वनस्पतिम् ॥४०॥

वृक्ष था। इसीलिए वह देश शाल्मली द्वीपके नामसे विख्यात था। वहाँ चन्द्रदेव सबके आराध्य देवता हैं और वहाँके निवासी चन्द्रमाकी ही उपासना करते हैं। पीछे जिन द्वीपोंका जो विस्तार कह आये हैं, उन्हींके अनुसार वह भी विस्तृत था। वहाँके जो देश हैं, अब उनको बतलाता हूँ ॥ २१ ॥ २२ ॥ मेरुके पूर्व ओरसे लेकर क्रमशः सब देशोंका नाम कहूँगा। जैसे—सुरोचन, सौमनस्य, रमणक, देववर्ष, पारिभद्र, आप्यायन और अविज्ञात ये सात देश उस द्वीपमें हैं ॥ २३ ॥ २४ ॥ वहाँपर अनूमती, सिनीवाली, सरस्वती, कुहू, रजनी, नन्दा और राका ये नदियाँ हैं ॥ २५ ॥ शतशृङ्ग, वामदेव, कुन्द, कुमुद, पुष्पवर्ष, सहस्रश्रुति और स्वरस ये उस देशके सात पर्वत हैं, जो उसकी सीमाका काम कर रहे हैं। इन सातों देशोंके राजाओंको रामने जीत लिया ॥ २६ ॥ २७ ॥ इसके अनन्तर उस द्वीपके अधीश्वरको जीतकर चार लाख योजनके लगभग लम्बे-चौड़े सुरासमुद्रको लाँघकर वे सुबाहुके पास पहुँचे ॥ २८ ॥ फिर क्षणमात्रमें राम आठ लाख योजन विस्तृत समुद्रको लांघकर कुशद्वीप गये। उस द्वीपके समस्त निवासी अग्निके उपासक हैं ॥ २९ ॥ द्वीपके नामको स्पष्ट करनेके लिए वहाँपर एक कुशका जंगल देवताओं द्वारा लगाया हुआ है। अब वहाँके जो सात देश हैं, उनको बतलाते हैं— ॥ ३० ॥ वसु, वसुदान, दृढ़रुचि, नाभिगुप्त, सत्यव्रत, विविक्त और सातवाँ वामदेव नामक देश है। उन सातों देशोंमें रसकुल्या, मधुकुल्या, मित्रविन्दा, श्रुतिविन्दा, देवगर्भा, घृतच्युता तथा मन्त्रमाला ये सात नदियां हैं। चतुःशृङ्ग, कपिल, चित्रकूट, देवानीक, ऊर्ध्वरोमा, द्रविण और चक्र ये सात पर्वत उस द्वीपमें हैं ॥ ३१–३४ ॥ इन सातों देशोंके राजाओंको रामने जीतकर कुशद्वीपके अधिपति महासेन नामक राजाको भी उन्होंने जीत लिया। इससे रामको प्रसन्नता हुई ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ फिर आठ लाख योजन विशाल घृतोद नामके सागरको पार करके वे अपने देदीप्यमान पुष्पक विमान द्वारा क्रौञ्चद्वीप गये ॥ ३७ ॥ कुशद्वीपकी अपेक्षा यह द्वीप दुगुना लम्बा-चौड़ा है। वहाँ उस द्वीपका नाम सार्थक करनेके लिये एक विशाल क्रौञ्च पर्वत है ॥ ३८ ॥ वहाँके समस्त निवासी वरुणके उपासक हैं और विष्णुभगवान्

एतानि सप्त वर्षाणि ज्ञातव्यान्युत्तमानि हि । वर्द्धमानो भोजनश्च तथोपवर्हणो महान् ॥४१॥
नन्दश्च नन्दनश्रेष्ठः सर्वतोभद्र एव च । शुक्ला सप्ताचलाः प्रोक्ता सीमासु परमाः शुभाः ४२॥
अमृता अमृतौघा च तथा चैवार्यका शुभा । तथा तीर्थवती रम्या वृत्तिरूपवती तथा ॥४३॥
पवित्रवती सुपुण्या वै शुक्लेति सप्त कीर्तिताः । सप्तवर्षेषु नद्यश्च स्नानात्पातकनाशनाः ॥४४॥
एतेषु सप्तवर्षेषु पार्थिवेभ्यो निजं प्रभुः । करभारं पृथग्लब्ध्वा तैः सर्वैः परिपूजितः ॥४५॥
क्रौंचद्वीपपतिं युद्धे जित्वा तं कञ्जलोचनम् । हस्त्युष्ट्ररथतुरगैः कोशाद्यैस्तेन पूजितः ॥४६॥
स्तुतो मागधवर्यैश्च नितरां मुदमाप सः । ततस्तीर्त्वा तु क्षीरोदं क्रौंचद्वीपसमं मुदा ॥४७॥
शाकद्वीपं ययौ रामो द्वात्रिंशल्लक्षसंमितम् । द्वीपाख्याकृच्च यत्रास्ति शाकवृक्षोऽतिरञ्जनः॥४८॥
यत्रोपास्यो वायुरूपी हरिस्तद्द्वीपवासिनाम् । तत्रापि सप्त वर्षाणि कथ्यंते पूर्ववन्मया ॥४९॥
पुरोजवं नाम वर्षं तथा तच्च मनोजवम् । पवमानं महच्छ्रेष्ठं धूम्रानीकं मनोरमम् ॥५०॥
बहुरूपं चित्ररूपं विश्वाधारं तथा स्मृतम् । एवं सप्तसु वर्षेषु नद्यश्चापि ब्रवीम्यहम् ॥५१॥
अनघा च तथाऽऽयुर्दा चोभयस्पृष्टिरेव च । तथाऽपराजिता पुण्या शुभा पञ्चपदी स्मृता ॥५२॥
सहस्रश्रुतिरन्या सा प्रोक्ता निजधृतिस्तथा । एवं सप्तसु वर्षेषु सप्त नद्यः शुभावहाः ॥५३॥
उरुशृङ्गो बलभद्रस्तथान्यः शतकेसरः । सहस्रस्रोतोऽन्यः प्रोक्तो देवपालो महानसः ॥५४॥
ईशानाः पर्वताः सप्त सीमास्वेते प्रकीर्तिताः । एवं सप्तसु वर्षेषु तत्र तत्र नृपोत्तमैः ॥५५॥
पूजितो रघुनाथः स शाकद्वीपपतिं रणे । सुन्दराख्यं नृपं युद्धे सप्ताहोभिर्महाबलम् ॥५६॥
जित्वा संपूजितस्तेन वादयामास दुन्दुभीम् । तीर्त्वा तं दधिमंडोदं द्वात्रिंशल्लक्षसंमितम् ॥५७॥
चतुःषष्टिलक्षमितं पुष्करद्वीपमाययौ । मेखलावत्तस्य मध्ये पर्वतं कंकणोपमम् ॥५८॥
मानसोत्तराचलाख्यं तं ददर्श रघूद्वहः । द्वे वर्षे तत्र वै प्रोक्ते पूर्वं रमणकं शुभम् ॥५९॥

वहाँके देवता हैं । उस द्वीपमें भी बड़े-बड़े सात देश हैं । उन्हें बतलाते हैं—॥ ३९ ॥ आम, मधुरुह, मेघपृष्ठ, सुधामा, भ्राजिष्ठ, लोहितार्ण और वनस्पति ॥ ४० ॥ ये हो क्रौंचद्वीपके सात देश हैं । वर्धमान, भोजन, उपवर्हण, नन्द, नन्दन, सर्वतोभद्र और शुक्ल ये सात विशाल पर्वत चारों ओरसे उस द्वीपको घेरे हुए हैं ॥ ४१ ॥ ४२ ॥ अमृता, अमृतौघा, आर्यका, तीर्थवती, वृत्तिरूपवती, पवित्रवती और पुण्या ये पवित्र नदियाँ उन सातों देशोंमें बहती हैं । जिनमें स्नान करनेसे समस्त पातक नष्ट हो जाते हैं ॥ ४३ ॥ ४४ ॥ इन सातों देशोंके राजाओंसे रामने अलग-अलग कर लिया और उन राजाओंने रामकी पूजा की ॥ ४५ ॥ तदनन्तर रामने क्रौंचद्वीपके अधीश्वरको संग्रामभूमिमें परास्त किया और उससे बहुतेरे हाथी, घोड़े, रथ, ऊँट आदिका उपहार पाकर पूजित हुए ॥ ४६ ॥ वहाँपर वन्दीजनोंने रामकी स्तुति की, जिससे रामचन्द्रजी परम प्रसन्न हुए । इसके बाद क्षीरोदनामक समुद्रको पार करके क्रौंचद्वीपके समान ही बत्तीस लाख योजनके लगभग विस्तृत शाकद्वीपमें गये । जहाँपर द्वीपके नामको चरितार्थ करनेवाला एक बड़ा भारी शाकवृक्ष है ॥ ४७ ॥ ४८ ॥ वहाँपर वायुरूप धारण करनेवाले विष्णुभगवान्के उपासक रहते हैं । वहाँ भी सात देश हैं, जिन्हें कह रहा हूँ—॥ ४९ ॥ पुरोजव, मनोजव, पवमान, धूम्रानीक, चित्ररूप, बहुरूप और विश्वाधार ये ही सात देश हैं । अनघा, आयुर्दा, उभयदृष्टि, अपराजिता, पञ्चपदी सहस्रश्रुति तथा निजधृति ये नदियाँ उन सातों देशोंमें बहती हैं । उरुशृङ्ग, बलभद्र, शतकेसर, सहस्रस्रोत, देवपाल, महानस और ईशान ये सात पर्वत उन देशोंको सीमापर स्थित हैं । उन सातों देशोंके राजाओंने रामकी पूजाकी और सुन्दरनामक शाकद्वीपके अधीश्वरको उन्होंने सात दिन पर्यन्त युद्ध करके हरा दिया ॥ ५०–५६ ॥ इसके बाद उसने भी रामकी पूजा की । रामके इस सुकृत्यसे प्रसन्न होकर देवताओंने दुन्दुभी बजायी । तत्पश्चात् राम बत्तीस लाख योजन विस्तृत दधिमण्डोद नामक समुद्रको पार करके चौंसठ लाख योजन विस्तृत पुष्करद्वीपमें पहुँचे । जिसके मध्यमें मेखलाके समान मानसाचल

अपरं तद्धातकीत्याख्यातं ते कंकणोपमम् । तद्वर्षपौ नृपौ जित्वा ततो द्वीपेश्वरं नृपम् । ६०॥
उत्तरांगाह्वयं रामः परां मुदमवाप सः । ददर्श पुष्करं तत्र द्वीपाख्याकारकं वरम् ॥६१॥
कमलासनस्य यज्ज्ञेयं ब्रह्मणः परमासनम् । तत्र कर्ममयं लिंगं ब्रह्मलिंगं जनोऽर्चयत् ॥६२।
वर्षयोर्बहुला नद्यः पापनिष्कृंतनक्षमाः । दशसाहस्रमानेन प्रांशुर्ज्ञेयः स पर्वतः ॥६३॥
तस्मिन् गिरौ पूर्वभागे पुरी मघवतः शुभा । देवधानीति नाम्ना सा मनोज्ञा ज्वलनप्रभा ॥६४॥
गिरौ तस्मिन् दक्षिणस्यां दिशि संयमनी पुरी । यमराजस्य सा ज्ञेया मनोज्ञा ज्वलनप्रभा ॥६५॥
पश्चिमे वरुणस्याथ पुरी निम्लोचनी स्मृता । उत्तरस्यां तु कौबेरी पुरी ख्याता विभावरी ॥६६॥
भिन्नाः पुर्यस्त्विमा ज्ञेया मेरुस्थाभ्यःशुभावहाः यथा नृपस्य स्थानानि ह्यनेकानि तथा त्विमाः ॥
सर्वे सीमापर्वतास्ते विस्तीर्णाश्च पृथक् स्मृताः । द्विसहस्रयोजनैश्च प्रोच्चतां ते वदाम्यहम् ॥६८॥
सर्वेषां दशसाहस्रैर्योजनैः प्रोच्चतेरिता । ततस्तीर्त्वा तु शुद्धोदं पुष्करद्वीपसंमितम् ॥६९॥
सीतायाः कौतुकार्थं हि स जगाम रघूत्तमः । उद्धारार्थं स्वावलोकात्तत्रस्थानां नृणामपि ॥७०॥

ततोऽग्रे भूमिं सार्धसप्तलक्षोत्तरसार्द्धकोटि (१५७५००००) परिमितां क्वचित् प्राणिसहितां रघुनन्दनो ददर्श ॥ ७१ ॥ तैः सर्वभूमिनिवासिभिः संपूजितो रघुनन्दनो मैथिलीरंजनार्थमग्रे जगाम ॥ ७२ ॥ सैकचत्वारिंशत्सहस्रसप्तलक्षोत्तरं सार्द्धकोटि (१५७४१०००) योजनपरिमितं मेरुमानसोत्तराचलयोरंतराले मानं ज्ञातव्यम् ॥ ७३ ॥ ततोऽग्रे आदर्शतलोपमां कांचनीं भूमिं देवैरधिष्ठितां चैकोनचत्वारिंशल्लक्षोत्तरकोट्यष्ट (८३९०००००) परिमितां दृष्ट्वा देवैः संपूजितः श्रीरामचन्द्रो मुदमवाप ॥ ७४ ॥ ततोऽग्रे लोकालोकपर्वतं सार्द्धद्वादशकोटि (१२५०००००) परिमितं विस्तीर्णोच्चतया भूमिप्राकारोपमं केनाप्यविलंघ्य स रघुनन्दनो ददर्श ॥ ७५ ॥ यस्मिन्नष्टदिक्षु द्विरदपतयः ऋषभः पुंडरीकः पुष्करचूडः कुमुदो वामनः पुष्पदंतोऽपराजितः सुप्रतीक इत्यष्टौ दिग्गजाः

पर्वत विद्यमान है, उसे रामने देखा। उस द्वीपमें दो प्रधान देश हैं—पहला रमणक देश और दूसरा धातकी। ये दोनों देश उस द्वीपके कङ्कणके समान हैं। रामने उन देशोंके राजाओं तथा पुष्करद्वीपके स्वामी उत्तरांगको जीत लिया, जिससे उन्हें बड़ी प्रसन्नता हुई। इसके अनन्तर उस द्वीपके नामको सार्थक करनेवाले पुष्कर सरोवरको देखा ॥ ५७–६१ ॥ वह सरोवर ब्रह्माका एक विशेष आसन है। यहाँपर कर्ममय ब्रह्माकी मूर्तिको लोग पूजते हैं ॥ ६२ ॥ उन दोनों देशोंमें पापको नष्ट करनेमें समर्थ बहुत-सी नदियाँ बहती हैं। वह पर्वत दस हजार योजनके लगभग ऊँचा है। उसपर पूर्वकी ओर इन्द्रकी देवधानीपुरी है। पश्चिम ओर वरुणकी निम्लोचनी नामकी पुरी है। उत्तर ओर कुबेरकी अलकापुरी है ॥ ६३–६६ ॥ मेरु पर्वतपर देवताओंकी जो पुरियाँ हैं, उनके अतिरिक्त इन्हें समझना चाहिए। जैसे राजाके एक नहीं, अनेक स्थान होते हैं, उसी तरह इनके विषयमें भी जानना चाहिए ॥ ६७ ॥ उसके आस-पास जितने सीमापर्वत हैं। वे सब अलग-अलग दो-दो हजार योजन ऊँचे हैं। इस तरह सब मिलाकर दस हजार योजन उनकी उँचाई है। इसके बाद रामचन्द्रजी शुद्धोद नामक समुद्रको पार करके सीताके कौतुक या यह कहिये कि उस द्वीपके निवासियोंको अपने दर्शनोंसे कृतार्थ करनेके लिये आगे बढ़े ॥ ६८–७० ॥ डेढ़ करोड़ साढ़े सात लाख योजन विस्तृत भूभाग जहाँ कहीं-कहीं मनुष्योंकी आबादी थी, उस देशको देखा ॥७१॥ वहाँके निवासियोंने सीतारामकी पूजा की और ये लोग आगे बढ़े ॥ ७२ ॥ मेरु और मानसोत्तराचलके बीचमें डेढ़ करोड़ साढ़े सात लाख एकतालीस हजार योजन परिमित अन्तराल है। इसके अनन्तर रामने शीशेके समान चमकती कांचनमयी भूमि देखी, जहाँ कि देवतालोग रहते हैं। जिसका विस्तार आठ करोड़ उनतालिस लाख योजन है। वहाँके भी निवासियोंने रामकी पूजा की और वे प्रसन्न हुए। इसके अनन्तर साढ़े बारह करोड़ योजन परिमित विस्तीर्ण तथा ऊँचे लोकालोक नामक पर्वतको देखा, जिसे कि आजतक कोई नहीं लाँघ सका है ॥ ७३–७५ ॥ जहाँकी

सकललोकास्स्थितिहेतवः ॥ ७६ ॥ तस्मिन्नेव गिरिवरे भगवान् परममहापुरुषो महाविभूतिपतिः सकललोकहिताय आस्ते ॥ ७७ ॥ ततः परस्ताद्योगेश्वरगतिं विशुद्धामुदाहरन्ति ॥ ७८ ॥ एवं पञ्चाशत्कोटिगुणितो भूगोलको ज्ञेयः ॥ ७९ ॥ एवं पञ्चविंशतिकोटिमितां भूमिं लोकालोकमध्यवर्तिनीं स रघुनन्दनः स्ववशां कृत्वाऽऽकाशपथा परिवर्त्य सर्वान् द्वीपान् पूर्ववत्पश्यन् जंबुद्वीपे भारतवर्षमध्यगतां स्वां राजधानीमयोध्यां सप्तद्वीपनृपपरिवेष्टितोऽन्वययौ ॥ ८० ॥ ततो रामोऽयोध्यानिकटं गत्वा दूतैः स्वागमनं सुमंत्रं सूचयामास ॥ ८१ ॥

समायातं रामचन्द्रं श्रुत्वा स मंत्रिसत्तमः । अयोध्यां भूषयामास पताकाध्वजतोरणैः ॥८२॥
वारणेन्द्रं पुरस्कृत्य पौरैर्जानपदैः सह । प्रत्युद्गम्य रामचन्द्रं नत्वाऽयोध्यां निनाय सः॥८३॥
तदा निनेदुर्वाद्यानि ननृतुश्चाप्सरोगणाः । तुष्टुवुर्मागधाद्याश्च नटा गानं प्रचक्रिरे ॥८४॥
रामागमनमाकर्ण्य पौरनार्यः सुभूषिताः । प्रासादशिखरारूढा ववर्षुः पुष्पवृष्टिभिः ॥८५॥
राजद्वारं विमानेन शनैः स रघुनन्दनः । गृह्णन् पौरोपायनानि स्त्रीभिर्नीराजितः पथि ॥८६॥
ययौ यानादवरुह्य सभायां निज आसने । तस्थौ समन्ततः सर्वैर्नृपैश्च परिवेष्टितः ॥८७॥
ततः स्थलानि सर्वेषां वस्तुमाज्ञाप्य लक्ष्मणम् । दधिश्राद्धादि सम्पाद्य कृतकार्यममन्यत ॥८८॥
आत्मानं सकलान्पृथ्वीस्थितान् जित्वा समुद्धतान् । ततस्तैः सप्तद्वीपस्थैः पार्थिवैः परिपूजितः ॥८९॥
रामः स्वभ्रातरं विप्रैर्भरतं भारताधिपम् । चकार पार्थिवैर्युक्तो लक्ष्मणानुमतेन सः ॥९०॥
आदावेव वसिष्ठेन ह्युक्तं भरतनाम तत् । विचिंत्येदं भावि वृत्तं जातकर्मणि निश्चितम् ॥९१॥
पूर्वमाज्ञापितं स्वीयसेवकं भरतस्य च । रक्षणे तं रामचन्द्रः कार्यान्तरमकल्पयत् ॥९२॥

आठों दिशाओंमें ऋषभ, पुण्डरीक, पुष्करचूड, कुमुद, वामन, पुष्पदन्त, अपराजित और सुप्रतीक ये सभी लोकोंको अपने सिरपर धारण करनेवाले आठ दिग्गज विद्यमान हैं ॥ ७६ ॥ उसी पर्वतके ऊपर परममहापुरुष और महाविभूतिपति भगवान् समस्त संसारके हितकी कामनासे रहा करते हैं ॥ ७७ ॥ इसके आगे विशुद्ध योगेश्वरोंकी ही गति है, ऐसा लोग कहते हैं ॥ ७८ ॥ इस प्रकार सब मिलाकर पचास करोड़गुना विस्तृत भूगोल है। उनमेंसे पचीसको अपने वशमें करके राम आकाशमार्गसे लौटकर रास्तेके विविध द्वीपोंको देखते हुए जम्बुद्वीपके भारतवर्षस्थ अयोध्या नामकी अपनी राजधानीमें सातों द्वीपोंके राजाओंके साथ वापस आये ॥७९—८१॥ अयोध्याके समीप पहुँचकर रामने एक दूत द्वारा सुमन्त्रको अपने आगमनकी सूचना दी। सुमंत्रने रामका आगमन सुना तो पताका, ध्वजा तथा तोरणादिकसे अयोध्याको सुसज्जित करवाया ॥ ८२ ॥ फिर एक बड़े भारी हाथीको आगे करके पुरवासी जनोंके साथ रामके समक्ष पहुँचे और उन्हें प्रणाम करके अयोध्या लाये ॥ ८३ ॥ उस समय अनेक प्रकारके बजे वाजे, अप्सराएँ नाचीं, गायकोंने गाने गाये और बन्दीजनोंने स्तुति की ॥ ८४ ॥ रामका आगमन सुनकर अयोध्याकी स्त्रियाँ भाँति-भाँतिके वस्त्राभूषण पहनकर अपने कोठोंपर चढ़ गयीं और वहाँसे फूलोंकी वर्षा करने लगीं ॥ ८५ ॥ रामचन्द्रजी धीरे-धीरे पुरवासियोंकी भेंटें स्वीकार करते हुए पुष्पक विमान द्वारा अपने राजद्वारपर पहुँचे। रास्तेमें स्त्रियोंने रामकी आरती उतारी ॥ ८६ ॥ राजद्वारपर पहुँचे तो पुष्पक विमानसे उतरकर सभाभवनमें गये और अपने सिंहासनपर बैठे। उनके साथ जो राजे आये थे, वे भी सिंहासनके चारों ओर बैठ गये ॥ ८७ ॥ इसके अनन्तर सब मेहमानोंको ठहरनेके लिए स्थान बतलानेके निमित्त लक्ष्मणसे कहकर राम दधिश्राद्धादि कार्योंमें लग गये। इस प्रकार पृथ्वीपर रहनेवाले उद्धत राजाओंको परास्त करके रामने अपनेको कृतकृत्य समझा। इसके अनन्तर उन सातों द्वीपोंके राजाओंने फिरसे रामकी पूजा की ॥ ८८ ॥ ८९ ॥ तदनन्तर लक्ष्मणसे सलाह लेकर रामने भरतको भारतवर्षका अधिपति बना दिया ॥ ९० ॥ इस भावी बातको सोचकर ही वसिष्ठने भरतका नाम भरत रक्खा था ॥ ९१ ॥ पहले जिस सेवकको रामचन्द्रजीने भारत देशकी रक्षाके

जंबूद्वीपतिं रामश्चकार स्वसुतं लवम् । लवोऽपि विजयं स्वीयसचिवं चाकरोन्मुदा ॥९३॥
नवस्वपि च वर्षेषु यातायातं पुनः पुनः । चकार विजयेनैव पुनः कार्यार्थमादरात् ॥९४॥
शत्रुघ्नो यौवराज्ये स्वे भरतेनाभिषेचितः । यौवराज्यपदे स्वीये कृत्वा रामः कुशं सुतम् ॥९५॥
चकार लक्ष्मणं मुख्यं सचिवेषु सुमन्त्रिणम् । सप्तद्वीपपतिः श्रीमान्स्वयमासीद्रघूत्तमः ॥९६॥
स्वस्वकार्येषु सर्वे ते ह्यासन् तत्परमानसाः । ततः सर्वान्नृपान्पूज्य ददावाज्ञां रघूद्वहः ॥९७॥
ततस्ते राघवं दत्त्वा ययुः स्वं स्वं स्थलं मुदा । ततो भारतवर्षस्य परामर्शं सदा मुदा ॥९८॥
चकार भरतः श्रीमान् भरताधिपतिः प्रभुः । जंबूद्वीपपरामर्शं स चकार लवस्तथा ॥९९॥
सप्तद्वीपपरामर्शं रामचन्द्रः कुशेन च । लक्ष्मणेन सहैवापि स्वयमेवाकरोत्प्रभुः ॥१००॥

इति श्रीशतकोटिरामचरितांतर्गते श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये राज्यकाण्डे पूर्वार्द्धे कुशादिषड्द्वीपविजयदर्शनं नाम नवमः सर्गः ॥ ९ ॥

दशमः सर्गः

(रामका संन्यासी, शूद्र तथा गृध्रको दण्डदान)

श्रीरामदास उवाच

एकदा राघवः सारमेयदीर्घरवं मुहुः । राजद्वाराद्बहिः श्रुत्वा सभास्थो दूतमब्रवीत् ॥१॥
कथं दीर्घस्वरेणैव श्वाऽद्य क्रोशति पश्यताम् । तथेति रामदूतोऽपि गत्वा राजसभाबहिः ॥२॥
न्यवारयत्सारमेयं राजद्वारात्स्वधर्षणैः । रामं नत्वाऽब्रवीद्वाक्यं तूष्णीं श्वा क्रोशति प्रभो ॥३॥
मया निवारितो दूरं गतः स रावणांतक । ततो द्वितीयदिवसे तच्छब्दान् राघवोऽशृणोत् ॥४॥
दूतेन पूर्ववच्चापि सारमेयो निवारितः । ततस्तृतीये दिवसे तद्रावानशृणोत्प्रभुः ॥५॥
तदातिचकितः प्राह लक्ष्मणं पुरतः स्थितम् । श्वाऽयं दिनत्रयं बन्धो कथं क्रोशति संततम् ॥६॥

लिए नियुक्त किया था, उसे दूसरे काममें लगा दिया ॥ ९२ ॥ इसके अनन्तर अपने लव नामक बेटेको जंबूद्वीपका अधिपति बनाया । लवने विजय नामके उस सेवकको मंत्री बना लिया, जिसे कि रामचन्द्रजीने कुछ दिन तक भरतखण्डकी देखभाल करनेके लिए नियुक्त किया था ॥ ९३ ॥ लव विजयके साथ कार्यवश नवों द्वीपोंमें बराबर आया-जाया करते थे ॥ ९४ ॥ भरतने अपनी जगह शत्रुघ्नका युवराजपदपर अभिषेक कर दिया । रामने कुशको युवराजके पदपर अभिषिक्त करके लक्ष्मणको अपना सर्वश्रेष्ठ मन्त्री बनाया । किन्तु सातों द्वीपोंके अधिपति राम स्वयं थे ॥ ९५ ॥ ९६ ॥ ये सब लोग अपने कार्योंको बड़ी तत्परताके साथ निभाते थे । इसके अनन्तर रामने साथ आये हुए राजाओंको अपने देश जानेकी आज्ञा दी और वे रामचन्द्रजीको प्रणाम करके अपने-अपने देशको चले गये ॥ ९७ ॥ भारतवर्षका शासन भरतजी प्रसन्नतापूर्वक करते थे । जंबूद्वीपका शासन लव करते थे और भरत, कुश तथा लक्ष्मणसे सलाह लेकर रामचन्द्रजी सातों द्वीपोंका शासन कर रहे थे ॥ ९८-१०० ॥ इति श्रीशतकोटिरामचरितान्तर्गते श्रीमदानन्दरामायणे पं० रामतेजपाण्डेयविरचित-'ज्योत्स्ना'भाषाटीकासहिते राज्यकाण्डे नवमः सर्गः ॥ ९ ॥

श्रीरामदास कहने लगे—एक समय रामचन्द्रजी सभामें बैठे थे । सहसा कई बार एक कुत्तेके रोनेकी आवाज सुनी तो दूतसे बोले—॥ १ ॥ देखो तो इतने ऊँचे स्वरमें कुत्ता क्यों चिल्ला रहा है । रामके आज्ञानुसार दूत कुत्तेके पास गया । उसे धमकाकर वहाँसे हटा दिया और रामसे जाकर कहा—हे रावणान्तक ! उसे मैने दूर भगा दिया है, अब वह नहीं चिल्लायेंगा । दूसरे दिन फिर रामने उसी प्रकार उस कुत्तेका रोदन सुना तो दूतसे भगवाया ॥२-५॥ तीसरे दिन फिर उसका रुदन सुनकर रामने लक्ष्मणसे कहा—आज तीन दिनसे

किं दुःखं सारमेयाय प्रष्टव्यं मत्पुरस्त्वया । तथेति लक्ष्मणो दूतानब्रवीत्संभ्रमान्वितः ॥७॥
सभामाकारणीयः श्वा युष्माभिस्त्वद्य सादरम् । तथेति रामदूतास्ते सारमेयं वचोऽब्रुवन् ॥८॥
आकारितोऽसि रामेण त्वमेहि राघवांतिकम् । त्वद्दैवं फलितं चाद्य पूर्वपुण्योदयेन हि ॥९॥
रामदूतवचः श्रुत्वा तुष्टः श्वा तान्वचोऽब्रवीत् । देवगृहे यज्ञवाटहोमशालासु वै तथा ॥१०॥
वृन्दावने सभायां च मठे पार्थिवसद्गृहे । गोष्ठे पुण्यस्थले पुण्ये तीर्थे देवालयेऽपि च ॥११॥
पाकस्थाने रतिस्थाने स्नानसंध्यास्थलादिषु । गन्तुं नार्हा वयं पापयोनिस्था वाच्यतां प्रभुः ॥१२॥
ततस्ते विस्मयाविष्टास्तद्वाक्यं राममब्रुवन् । राघवस्तद्वचः श्रुत्वा विहस्य सम्भ्रमेण च ॥१३॥
आनीयतां पादुके मे त्विति दूतान् वचोऽब्रवीत् । ततस्तैरर्पिते दिव्ये पादुके कृत्य पादयोः ॥१४॥
रत्नदण्डं करे धृत्वा शनैः सर्वैः समन्वितः । मुद्रिकारत्नहारेण मणिद्वयविराजितः ॥१५॥
मुकुटेनावतंसेन केयूराभ्यां समन्वितः । नूपुराभ्यां कंकणाभ्यां कुण्डलाभ्यां सुशोभितः ॥१६॥
पदकैः श्रृंखलाभिश्च वरवस्त्रैर्विराजितः । राजद्वाराद्बहिर्देशे सारमेयांतिकं ययौ ॥१७॥
कृत्वा दंडं स्वकक्षेऽथ किंचिद्वक्रः स्थितः प्रभुः । कृत्वा वामजान्वधो स्वां जंघां रामः स दक्षिणाम् ॥१८॥
अब्रवीत्सारमेयं तं किंचित्कृत्वा स्मिताननम् । मदग्रे वद किं दुःखं सारमेय तवास्ति यत् ॥१९॥
मद्राज्ये सहसा माऽस्तु दुःखं केषां कदापि च । इति रामगिरं श्रुत्वा सारमेयः पुनः पुनः ॥२०॥
नमस्कृत्वा राघवेंद्रं छिन्नपादोऽब्रवीन्मुदा । मदर्थं श्रमितोऽस्यत्र चिरं जीव दयानिधे ॥२१॥
निरपराधो यतिना ग्राव्णाऽत्राहं प्रताडितः । छिन्नपादोऽस्मि राजेंद्र त्वामद्य शरणं गतः ॥२२॥
तद्वाक्यं राघवः श्रुत्वाऽऽकारयामास दण्डिनम् । रामाज्ञया यतिश्चापि विह्वलो राघवं ययौ ॥२३॥
दृष्ट्वा यतिं तं श्रीरामस्तदा वचनमब्रवीत् । स्वामिन् किमर्थं युष्माभिश्छिन्नः पादोऽस्य वै शुनः ॥२४॥

यह कुत्ता क्यों राजदरबारके समक्ष आकर रोता है। मेरे सामने बुलाकर पूछो कि उसे किस बातका कष्ट है। लक्ष्मणने भी घबड़ाकर दूतोंको आज्ञा दी कि जाओ और आदरपूर्वक उस कुत्तेको सामने ले आओ। "बहुत अच्छा" कहकर दूत कुत्तेके पास पहुंचे और उससे कहने लगे—॥ ६-८ ॥ आज पूर्वसंचित पुण्योंसे तुम्हारा भाग्योदय हुआ है। चलो, श्रीरामचन्द्रजी तुम्हें बुला रहे हैं ॥ ९ ॥ दूतोंकी बात सुनी तो प्रसन्न होकर कुत्ता कहने लगा—देवालय, यज्ञशाला, हवनगृह, तुलसीका बगीचा, सभा, मठ, राजभवन, गोशाला, पवित्र तीर्थ, रसोईघर, रतिस्थान तथा स्नान-सन्ध्यादि करनेके स्थानोंपर मैं जानेके अयोग्य हूं। क्योंकि मेरा जन्म पापयोनिमें हुआ हैं। तुम जाकर रामसे कह दो ॥ १० ॥ ११ ॥ इतना सुनकर वे दूत बड़े विस्मित हुए और जैसा उसने कहा था, जाकर रामको सुना दिया। राम उसकी बात सुनकर हँस पड़े और दूतोंसे कहा कि हमारा खड़ाऊँ ले आओ! दूतोंने आज्ञाका पालन किया। रामने खड़ाऊँ पहिना, एक रत्नजटित छड़ी हाथमें ली और सब लोगोंके साथ उस कुत्तेकी ओर चले। उस समय रामचन्द्रके हाथोंमें अंगूठियाँ थीं, रत्ननिर्मित हार गलेमें था, मस्तकपर मुकुट तथा कानोंमें कुण्डल झूल रहे थे, भुजाओंमें बिजायठ और कङ्कण था। गलेमें हार तथा सिकड़ियाँ शोभित हो रही थीं। इनके सिवाय और भी कई प्रकारके आभूषण और सुन्दर वस्त्र सुशोभित हो रहे थे। इस तरह सज-धजकर राम कुत्तेके पास जा पहुँचे ॥ १२-१७ ॥ वहाँ पहुँचे तो छड़ी बगलमें दबा ली और बाएँ घुटनेको तनिक मोड़कर कुछ तिरछे खड़े हो गये ॥ १८ ॥ पुचकारकर राम कुत्तेसे बोले—हे सारमेय! तुम्हें जो कुछ कष्ट हो, वह मुझे बताओ ॥ १९ ॥ क्योंकि मैं चाहता हूँ कि मेरे राज्यमें किसीको किसी प्रकारका कष्ट न हो। इस तरह प्रभुकी बात सुनकर कुत्तेने रामको अनेकशः प्रणाम किया और हर्षित होकर कहने लगा--हे दयानिधे! आपने मेरे लिए बड़ा कष्ट किया, जो यहां पधारे। हे महाराज! मैंने कोई अपराध नहीं किया था। फिर भी एक संन्यासीने पत्थरसे मुझे ऐसा मारा कि जिससे मेरा पैर टूट गया। इसीसे दुःखी होकर मैं आप की शरणमें आया हू ॥ २० ॥ २१ ॥ २२ ॥ उसकी बात सुनकर रामने उस संन्यासीको बुलवाया।

तद्ग्रामवचनं श्रुत्वा यतिः प्राह रघूत्तमम् । भिक्षार्थं भ्रमतो मार्गे भिक्षान्नं स्पर्शितं मम ॥२५॥
शुनाऽनेन राघवेन्द्र मध्याह्ने क्षुधितस्य च । मयाऽतः क्रोधचित्तेन शुनेऽस्मै ह्यपराधिने ॥२६॥
धर्षितुं चोपलः क्षिप्तस्तेन भिन्नं पदं शुनः । तद्यतेर्वचनं श्रुत्वा पुनस्तं प्राह राघवः ॥२७॥
ज्ञानहीनः पशुश्चायं भक्ष्यं स्वीयं निरीक्ष्य च । स्पर्शितस्त्वां तस्य दोषो नैवायं वेद्म्यहं यते ॥२८॥
त्वमेवास्यस्यापराधी तद्दण्डं सोढुमर्हसि । इत्युक्त्वा सारमेयं तं राघवो वाक्यमब्रवीत् ॥२९॥
यतिश्चायं तेऽपराधी तव हस्तेऽर्पितो मया । यं त्वमिच्छसि वै कर्तुं तस्मै दण्डं सुखं कुरु ॥३०॥
तद्रामवचनं श्रुत्वा सारमेयोऽब्रवीत् प्रभुम् । शिवालयाधिपत्ये च स्थापनीयो यतिः प्रभो ॥३१॥
तथेति रामचन्द्रोऽपि शिविकायां निवेश्य तम् । स्रग्वस्त्रचन्दनाद्यैश्च सम्पूज्याथ यतिं मुदा ॥३२॥
वाद्यघोषैर्नर्तनाद्यैरुत्सवैश्च शिवालयम् । नीत्वा शिवालयस्याधिपत्ये संस्थापयत्प्रभुः ॥३३॥
तदाऽज्ञानाद्यतिर्दैवं फलितं चेत्यमन्यत । ततो रामो जनैर्युक्तः स्वां सभां संविवेश ह ॥३४॥
तत्संवं कौतुकं दृष्ट्वा पौराः प्रोचू रघूत्तमम् । कथं शुनाऽद्य यतये शिक्षेदृक्साधिता प्रभो ॥३५॥
अन्नार्थं भ्रमतस्तस्य यतेर्दत्तं पदं महत् । तेनातिसौख्यं सञ्जातं यतये शिक्षितं न तत् ॥३६॥
तत्पौरवचनं श्रुत्वा राघवस्तान् वचोऽब्रवीत् । प्रष्टव्यः श्वा तु युष्माभिर्वः सन्देहं हरिष्यति ॥३७॥
तथेति सारमेयं तं पप्रच्छुर्नागराश्च तत् । तान्प्रोवाच सारमेयः शृणुध्वं यन्मयोच्यते ॥३८॥
कृषिसञ्जातधान्यौघखलसम्मानकारिणः । शिवालयमठारामदानग्रामाधिकारिणः ॥३९॥
अनाथस्त्रीबालवित्तहारिणः क्रूरनिःस्वनाः । गोविप्रशिववित्तस्य हारिणोऽन्यायकारिणः ॥४०॥

रामके आज्ञानुसार वह संन्यासी भी विह्वल भावसे रामके पास आया ॥ २३ ॥ रामने उसको प्रणाम किया और कहने लगे–कहिए स्वामीजी ! आपने किस अपराधसे इन कुत्तेका पैर तोड़ डाला ? ॥ २४ ॥ उसने उत्तर दिया कि मैं भिक्षा लिये रास्तेसे जा रहा था । तभी इसने मेरा भिक्षान्न छू दिया । वह मध्याह्नका समय था । मैं भूखा था । इसके उस अपराधसे मुझे क्रोध आ गया और इसको धमकानेकी इच्छासे मैंने एक पत्थर फेंककर मारा । वह इसके पैरमें लगा, जिससे इसका पैर टूट गया । यतिकी बात सुनकर राम उससे कहने लगे— ॥ २५–२७ ॥ यह एक ज्ञानविहीन पशु है । यदि इसने अपना भक्ष्य पदार्थ देखकर आपको छू दिया तो मैं इसमें इसका कोई दोष नहीं समझता । यह तो इसकी स्वाभाविक प्रकृति है । इसलिए आप ही इसके अपराधी हैं । यतिके प्रति इतना कहकर कुत्तेसे कहने लगे–यह संन्यासी तुम्हारा अपराधी है । मैं इसे तुम्हें सौंपता हूँ । तुम जो दण्ड चाहो, इसे दे सकते हो ॥ २८–३० ॥ रामकी बात सुनकर कुत्तेने कहा–इसे किसी शिवालयका महन्थ बना दिया जाय ॥ ३१ ॥ रामने उसकी बात स्वीकार कर ली और सुन्दर वस्त्र, चन्दन तथा माला आदिसे यतिको सुशोभित करके एक पालकीमें बिठाया और विविध प्रकारके बाजे बजाते हुए उत्सवके साथ एक शिवालयमें ले गये और उसे वहाँका महन्थ बना दिया ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ उस समय अज्ञानतावश यतिने अपना भाग्योदय समझा । कुछ देर बाद रामचन्द्रजी अपने साथियों समेत राजसभामें लौट आये ॥ ३४ ॥ इस प्रकारका कौतुक देखकर कितने ही उत्सुक नागरिकोंने रामसे कहा-हे प्रभो ! इस कुत्तेने यतिको इस प्रकारका दण्ड क्यों दिया ? यतिने तो पत्थरसे उसकी टांग तोड़ दी और जब आपने कुत्तेको उसके कियेका दण्ड देनेके लिए कहा तो उसने दण्डके स्थानपर यतिको महन्थ बनवा दिया ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ इस प्रकार नागरिकोंकी बात सुनकर रामने कहा कि आप लोग उस कुत्तेसे ही पूछ लें कि उसने ऐसा क्यों किया। वह आप लोगोंकी शङ्काका भली भाँति समाधान कर देगा ॥ ३७ ॥ रामके आज्ञानुसार उन लोगोंने कुत्तेसे पूछा तो उसने कहा–मैं जो कुछ कहता हूँ, उसे सावधान होकर आप लोग सुनें ॥ ३८ ॥ खेतमें उत्पन्न अन्न रखानेवाले, शिवालय, मठ, बगीचा, दानग्राम इन स्थानोंके अधिपति, अनाथ स्त्री तथा बालकोंके धनका अपहरण करनेवाले, गाली-गलौज करनेवाले, गो-विप्र तथा शिवके लिए अर्पित धनका अपहरण करनेवाले, अन्याय करनेवाले, राजाके घरपर पहुँचे हुए याचकको भगानेवाले, दूसरेका धन हड़पनेवाले, प्रायश्चित्तके

30

नृपगेहे प्रविष्टानां याचकानां निवारिणः । परद्रव्यापहर्त्तारः प्रायश्चित्ताधिकारिणः ॥४१॥
विप्रभोजनद्रव्यस्य होमद्रव्यस्य हारिणः । बहुद्रव्यापहर्तारश्चैते सर्वेऽन्यजन्मनि ॥४२॥
गच्छन्ति वै शुनो योनिं सत्यमेतद्वचो मम । मया मठाधिपत्याच्च लब्धा योनिः शुनः स्वयम् ॥४३॥
अतो मयाऽद्य यतये शिक्षितुं पदमर्पितम् । इति तद्वाक्यमाकर्ण्य नागराश्छिन्नसंशयाः ॥४४॥
ते ययुः स्वीयगेहानि ययौ श्वाऽपि निजस्थलम् । देहांते स यतिर्जातः शुनो योनौ स्वकिल्बिषात् ॥४५॥
आप स श्वा शुभां मुक्तिं भुक्त्वादौ स्वीयकिल्बिषम् । न ज्ञेयोऽयं यतिः शिष्य साकेतेऽत्र मृतस्त्विति४६
स्थलान्तरे मृतश्चायं गतः कार्यार्थमात्मनः । अयोध्यायां मृतानां च पुनर्जन्म न विद्यते ॥४७॥
क्व यतिः सारमेयत्वं क्व स श्वा क्व गतिश्च सा । गहना कर्मणश्चात्र गतिर्ज्ञेया महात्मभिः ॥४८॥
क्व यतिः सारमेयः क्व न्यायश्चेत्थं रमापतेः । आसीत्सत्यः सदैवात्र नान्यायस्तन्मुखेक्षणात् ॥४९॥
अथैकदा तु साकेतवासिनो भूसुरस्य च । पञ्चत्वं पञ्चवर्षीयः पुत्रः प्राप्तः शिशुः प्रियः ॥५०॥
तदा विप्रः सपत्नीकस्तत्प्रेतमरुणोदये । राजद्वारं समानीय रुरोदोच्चैः स्वरैर्मुहुः ॥५१॥
अब्रवीत् पुत्रशोकेन व्यथितः क्रोधसंयुतः । सीतामालिंग्य राजेन्द्र कथं त्वं निद्रितोऽसि हि ॥५२॥
त्वद्राज्येऽधर्मतः कस्य मृतो मे बालकः प्रियः । त्वत्तोऽधर्मोऽथवान्याच्च जातोऽधर्मो न वेद्म्यहम् ५३॥
नृपे पापिनि म्रियन्ते नरा ह्यल्पायुषः श्रुतम् । यस्य राज्ये जनैः सर्वैर्योऽधर्मः क्रियते भुवि ॥५४॥
सोऽपि ज्ञेयो नृपस्यैव यतस्तेषां न शिक्षितम् । अतस्तेऽधर्मिणो राज्ञो राज्ये मेऽयं शिशुर्मृतः ॥५५॥
उपायं चिंतयस्वास्य जीवनेऽद्य जवान्नृप । नोचेदावां चितिं चारोहावस्तनयेन हि ॥५६॥
स्मर वृत्तं श्रवणस्य हेतोर्यज्जनकाय ते । जातं शापादिकं पूर्वं तद्वदत्रापि ते भवेत् ॥५७॥

लिए दिये धनको ग्रहण करनेवाले, ब्राह्मणभोजनके लिए जुटाई सामग्रीमेंसे चोरी करनेवाले और बेईमानी करके अधिक धन इकट्ठा करनेवाले लोग मरकर दूसरे जन्ममें कुत्तेकी योनिमें जन्म पाते हैं ॥ ३९–४२ ॥ इस प्रसङ्गमें मैंने जो बातें कहीं हैं, वे सब सत्य हैं। मैंने स्वयं मठाधिपत्यके कारण ही कुत्तेकी योनि पायी है ॥ ४३ ॥ उस संन्यासीको उसकी करनीका फल देनें ही के लिए मैंने उसे यह पद दिलाया है। इस प्रकार उसकी बात सुनकर सारे पुरवासियोंका सन्देह निवृत्त हो गया और सब लोग अपने-अपने घरोंको चले गये। कुत्ता भी अपने स्थानको चला गया। उस संन्यासीने मठाधिपत्यके मदमें आकर जो पाप किये, उनसे जन्मान्तरमें उसे कुत्तेकी योनि मिली ॥ ४४ ॥ ४५ ॥ वह कुत्ता जिसने कि रामचन्द्रजीके यहाँ दावा किया था, उसे कुछ दिनों बाद शुभ गति मिली। किन्तु वह यति जो अपने पापोंसे कुत्ता हुआ था, अयोध्यामें न मरकर किसी दूसरे स्थानपर मरा। इस लिए उसे मुक्ति नहीं मिली। जो लोग अयोध्यामें शरीर त्याग करते हैं, वे जन्म-मरणके बन्धनसे मुक्त हो जाते हैं। कर्मकी गति बड़ी विचित्र होती है। कहाँ वह कुत्ता होकर भी मुक्त हो गया और वह यति होकर भी कुत्ता हो गया ॥ ४६ ॥ ४७ ॥ ४८ ॥ कहाँ कुत्ता और कहाँ संन्यासी। रामने उन दोनोंका कितना अच्छा न्याय किया। सच तो यह है कि रामके राज्यमें किसीका मुँह देखकर न्याय नहीं किया जाता था। बल्कि जो न्याय्य बात होती, वही होती थी ॥ ४९ ॥ एक समय अयोध्यामें एक ब्राह्मणके पंचवर्षीय बालककी मृत्यु हो गयी ॥ ५० ॥ सबेरा होते ही वे ब्राह्मणदम्पती बच्चेके शवको लेकर राजद्वारपर आये और बड़े जोर-जोरसे रोने लगे ॥ ५१ ॥ पुत्रशोकसे कुपित होकर उस ब्राह्मणने कहा हे राम! सीताको गोदमें लेकर तुम अब भी आनन्दके साथ पड़े सो रहे हो? ॥ ५२ ॥ तुम्हारे राज्यमें किसीके अधर्मसे मेरे बच्चेकी मृत्यु हुई है। इसमें तुम्हारा कोई अधर्म है अथवा किसी दूसरेका। यह मैं नहीं जानता ॥ ५३ ॥ मैंने ऐसा सुना है कि राजाके अधर्मी होनेसे ही उसके राज्यमें अकाल मृत्यु होती है। जिस राजाके राज्यमें अधर्म होता है, उसका भी कारण राजा ही होता है। क्योंकि वह अपनी प्रजाको अच्छी तरह शिक्षा नहीं देता। इससे यह निश्चित है कि तुम अधर्मी हो। इसी लिए मेरे बालककी मृत्यु हुई है ॥ ५४ ॥ ५५ ॥ अतएव हे राजन्! इसके लिए शीघ्र कोई उपाय करो, नहीं तो हम दोनों (स्त्री-पुरुष)

ततो विप्रप्रिया प्राह सीतां प्रोच्चस्वरेण हि । कथं त्वं पतिमालिंग्य निद्रिताऽसि सुखं शुभे ।।५८।।
त्वमप्यसि पुत्रवती मे दुःखं चात्मनः कुरु । उपायं कारयस्त्वाद्य भर्त्राऽस्य जीवने शिशोः ।।५९।।
इति तद्दंपतीवाक्यं श्रुत्वा सर्वे पुरौकसः । आसन्व्यग्रचित्तास्ते प्रेतमावार्य संस्थिताः ।।६०।।
सीतारामावपि तयोर्वाक्यं श्रुत्वाऽतिविह्वलौ । विनिर्गतौ रतिशालाबहिस्तद्दुःखदुःखितौ ।।६१।।
निवार्य बंदिगीतानि राजद्वारं तयोः पुरः । वेगेन जग्मतुः पद्भिः सीतारामौ गतश्रियौ ।।६२।।
दृष्ट्वा सीतां च रामं च तौ शोकं चक्रतुर्मुहुः । तावाश्वास्य रामचन्द्रस्तदाऽऽह गद्गदाक्षरः ।।६३।।
मा शोकं कुरुतश्चोभौ मद्गिरं शृणुतस्त्विति । कृत्वोपायं हि युवयोः पुत्रं संजीवयाम्यहम् ।।६४।।
न जीवितश्चेद्युवयोः पुत्रस्तर्ह्यर्पये कुशम् । गिरं सत्याभिमां चोभौ पश्यतस्त्विह मेऽद्य हि ।।६५।।
ततः सीता विप्रपत्नीमाश्वास्याह गिरं शुभाम् । रामेण ते प्रतिज्ञातं कुशदानेन भामिनि ।।६६।।
अहमप्यद्य ते वच्मि तव दुःखस्य शांतये । न जीवितश्चेद्रामेण मयाऽयं त्वच्छिशुः प्रियः ।।६७।।
तर्हि त्वद्दुःखशांत्यर्थमर्पयेऽहं लवं प्रियम् । ताभ्यां कुशलवाभ्यां त्वं पुत्रदुःखं त्यजिष्यसि ।।६८।।
भजिष्यसि त्वं मत्सौख्यमतः शोकं कुरुष्व मा । ततः प्राह द्विजं रामस्त्वं पत्न्याऽत्र स्थिरो भव ।।६९।।
मा कुरुष्व मुहुः खेदं त्वत्पुत्रं जीवयाम्यहम् । इत्युक्त्वा लक्ष्मणेनैव तैलद्रोण्यां शवं शिशोः ।।७०।।
निधाय कृमिदुर्गन्धदुस्फुरणप्रशांतये । स्वयं स्नात्वा नित्यविधिं चाकरोत्खिन्नमानसः ।।७१।।
ततः सभासंस्थितः सन् वसिष्ठं प्राह राघवः । राज्यं शासति धर्मेण तत्रायं वै शिशुः कथम् ।।७२।।

अपने प्रिय पुत्रके साथ चितामें जलकर भस्म हो जायँगे ॥ ५६ ॥ श्रवणके वृत्तान्तका स्मरण करो। जिस प्रकार तुम्हारे पिता द्वारा अपने पुत्रवधके दु:खसे दुखी होकर उसके माँ-बापने दशरथको शाप देकर अपने प्राण त्याग दिये थे, वही दशा हमारी भी होगी ॥ ५७ ॥ इसके अनन्तर ब्राह्मणीने जोरोंके साथ सीताको संबोधित करके कहा—हे शुभे ! तुम क्यों पतिका आलिंगन करके आनन्दके साथ सो रही हो ? तुम भी पुत्रवती हो। इस कारण मेरे दुःखकी ओर ध्यान देकर मेरे बच्चेको जिलानेके लिये अपने पति द्वारा शीघ्र कोई उपाय करवाओ ॥ ५८ ॥ ५९ ॥ इस प्रकार उस विप्रदम्पतीके वाक्य सुनकर वहाँके सब पुरवासी व्याकुल हो उठे और उस शवको चारों ओरसे घेरकर खड़े हो गये ॥ ६० ॥ उधर राम तथा सीता दोनों ब्राह्मणकी बातोंसे विह्वल होकर रतिशालासे बाहर निकल आये। नीचे आकर रामने बन्दीजनोंकी स्तुति तथा गाने-बजानेवालोंके गाने-बाजे रोक दिये और वेगके साथ दौड़ते हुए उन दोनोंके पास पहुँचे। उस समय उस दु:खसे सीता तथा रामका मुख कुम्हला गया था ॥ ६१ ॥ ६२ ॥ महाराज राम तथा सीताको देखकर वे दोनों और भी जोर-जोरसे चिल्ला-चिल्लाकर रोने लगे। उनको आश्वासन देते हुए गद्गद कण्ठसे रामने कहा कि आप लोग इतने व्याकुल न हों, मैं जो कुछ कह रहा हूँ उसे सुनें। मैं कोई उपाय करके तुम्हारे पुत्रको जीवित करूँगा ॥ ६३ ॥ ६४ ॥ यदि तुम्हारे बेटेको जीवित न कर सकूँगा तो मैं अपना पुत्र कुश आपको दे दूँगा। मेरी बातको सत्य समझकर आप विश्वास करें ॥ ६५ ॥ इसके अनन्तर सीताने विप्रपत्नीके पास जाकर कहा—हे भामिनी ! तुम सुन रही हो कि रामने क्या प्रतिज्ञा की है ? तुम्हारे संतोषके लिए मैं भी प्रतिज्ञा करती हूँ कि यदि रामचन्द्रजी आपके बच्चेको जीवित न कर सकें तो मैं अपने छोटे पुत्र लवको दे डालूँगी। उन दोनों पुत्रोंके पानेसे तुम्हारा पुत्रशोक दूर हो जायगा ॥ ६६–६८ ॥ अब शोक मत करो। तुम्हारा पुत्र न जिया तो अभी जो सुख मैं भोग रही हूँ, वह तुमको प्राप्त होगा। इसके अनन्तर रामने ब्राह्मणसे कहा कि आप अपनी पत्नीके साथ यहाँ बैठें और किसी प्रकारका खेद न करें। मैं आपके बेटेको जीवित करूँगा। इतना कहकर रामने लक्ष्मणसे कहकर एक तेलसे भरी हुई नौका मँगायी। जिससे शव सड़े-गले नहीं, उसमेंसे दुर्गन्ध न निकले या कीड़े न पड़ें। इस विचारसे उस शवको उसमें रखवा दिया और स्वयं खिन्न होकर सन्ध्यादि नित्यकृत्य करनेको चले गये। इसके अनन्तर सभामें बैठकर रामने अपने कुलगुरु वसिष्ठसे कहा कि जब मैं धर्मपूर्वक राज्यशासन कर रहा हूँ तब

बाल्यत्वे पञ्चतां प्राप्तस्तत्रोपायं विचिंत्यताम् । इति यावद्गुरुं रामः प्रोवाच तावदम्बरात् ॥७३॥
नारदः प्रययौ वीणां रणयन् तत्सभां जवात् । प्रत्युद्गम्याथ तं रामः परिपूज्य यथाविधि ॥७४॥
संश्राव्य सकलं वृत्तं पुनः पप्रच्छ तं मुनिम् । त्वयोपायोऽत्र वक्तव्यः शिशोश्चास्य प्रजीवने ॥७५॥
पुत्राभ्यां हि प्रतिज्ञातं द्विजाय सीतया मया । किमर्थं मम राज्येऽधो मृतस्त्वीदृङ्न वेद्मयहम् ॥७६॥
तद्रामवचनं श्रुत्वा राघवं प्राह नारदः । राम त्वद्विषयेऽधर्मं न कोऽप्याचरते जनः ॥७७॥
भूम्यां सर्वत्र द्रष्टव्यं त्वया गत्वाऽद्य मद्गिरा । यद्यप्यहं विजानामि भूम्यां वृत्तं च जानतः ॥७८॥
तथापि जनशिक्षार्थं त्वामेव प्रेषयाम्यहम् । त्वं दृष्ट्वाऽधर्मनिरतं जनं शिक्षय सादरम् ॥७९॥
अधर्मोच्छेदनेनायं जीवयिष्यति वै शिशुः । तथेति राघवश्चोक्त्वा विसर्ज्य नारदं मुनिम् ॥८०॥
सीतया नागरैः सर्वैर्भ्रातृभिर्गुरुणा सह । पुत्राभ्यां मन्त्रिभिर्युक्तः पुष्पकं चारुरोह सः ॥८१॥
एतस्मिन्नन्तरेऽग्रेऽभून्महान्कोलाहलस्तदा । तं श्रुत्वा चकितो रामः स ददर्श समन्ततः ॥८२॥
तावद्ददर्श पुरतः पौरैः संवेष्टितां स्त्रियम् । शवमप्यपरं शृङ्गवेरतश्च समागतम् ॥८३॥
रामं दृष्ट्वा पुष्पकस्थं रुदती ब्राह्मणी पुरः । दीर्घस्वरेण प्रोवाच हस्ताभ्यां हृदि ताड्य सा ।८४॥
राम राम महाबाहो ते राज्ये गतभर्तृका । अहं जाताऽस्मि त्वद्दोषान्मां दृष्ट्वा त्वं न लज्जसे ॥८५॥
मद्भर्तारं जीवयैनं नोचेच्छापं ददामि ते । इति तस्या वचः श्रुत्वा राघवः खिन्नमानसः ॥८६॥
अब्रवीन्मधुरं वाक्यं ब्राह्मणीं तोषयन्मुहुः । क्रोधं शमय रम्भोरु ते भर्तारं प्रजीवये ॥८७॥
अस्यैव हेतोर्गच्छामि त्वं मद्गेहे सुखं वस । इत्युक्त्वाऽऽश्वास्य तां रामस्तच्छवं चापि पूर्ववत्॥८८॥
तैलद्रोण्यां स्थापयित्वा सुमंत्रं वाक्यमब्रवीत् । आगमिष्याम्यहं यावत्तावत्कस्यापि नो शवम् ॥८९॥

इस ब्राह्मणके बच्चेकी अकाल मृत्यु क्यों हुई ॥ ६९–७२ ॥ इसके लिये कोई उपाय सोचना चाहिये । इस प्रकार रामने गुरु वसिष्ठसे प्रश्न किया ही था कि इतनेमें आकाशमार्गसे वीणा बजाते हुए नारदजी उस सभाभवनमें आ पहुँचे । रामचन्द्रजीने उठकर नारदकी पूजा की और सारा वृत्तान्त कह सुनाया । इसके पश्चात् वे बोले-हे मुनिराज ! आप ही इस विप्रपुत्रके जीवनका कोई उपाय बतलाइये । हमने तथा सीताने यह प्रतिज्ञा की है कि यदि इस बालककी मैं जीवित न कर सका तो अपने दोनों पुत्र कुश तथा लव उस विप्रको अर्पण कर दूँगा । मेरे राज्यमें इस प्रकार अकाल मृत्यु केसे हुई, यह मुझे मालूम नहीं हो रहा है ॥ ७३–७६ ॥ इस प्रकार रामके वचन सुनकर नारदने कहा—हे राम ! तुम्हारे राज्यमें कोई भी मनुष्य किसी प्रकारका अधर्म नहीं करता । फिर भी मेरे कथनानुसार आपको यह उचित है कि अपने राज्यभरमें घूमकर देखें । यदि कहीं कोई किसी तरहका अधर्माचरण करता हुआ दीखे तो उसे आप दण्ड दें । इस प्रकार अधर्मका मूलोच्छेद करनेपर यह ब्राह्मणबालक जीवित हो जायगा । रामने भी नारदकी सलाह मान ली । नारद मुनिको सादर विदा करके राम सीता, कुछ नगरवासी जनों, अपने भ्राताओं, गुरु वसिष्ठ, दोनों पुत्रों तथा मन्त्रियोंको साथ लेकर पुष्पक विमानपर आरूढ़ हुए ॥ ७७–८१ ॥ उसी समय आगेको ओरसे जोरोंका कोलाहल सुनाई पड़ा । उसे सुनकर राम और भी विस्मित हुए और चारों ओर निहारने लगे । तबतक उन्होंने देखा कि एक स्त्रीको चारों ओरसे बहुतसे पुरवासी घेरे हुए हैं । उनके आगे शृङ्गवेरपुरकी तरफसे एक और शव लदा हुआ आ रहा है । स्त्रीने जब रामको पुष्पक विमानपर बैठे देखा तो अपने हाथोंसे छाती पीटकर कहने लगी—हे राम ! हे राम !! तुम्हारे राज्यकालमें विधवा होकर मैं यहाँ आयी हूँ । मुझे इस दशामें देखकर तुम्हें लाज नहीं आती ? मेरे पतिकी मृत्यु तुम्हारे ही अधर्मसे हुई है । इस कारण जैसे बने, तैसे मेरे पतिको जिलाओ । नहीं तो मैं शाप दे दूँगी । इस प्रकार उस स्त्रीकी बात सुनकर रामने खिन्न होकर मीठी वाणीसे आश्वासन देते हुए उत्तर दिया—हे रंभोरु ! तुम क्रोधका परित्याग करके शान्त होओ । मैं तुम्हारे पतिको जिला दूँगा । मैं भी इसी कामके लिए जा रहा हूँ । तुम आनन्दके साथ मेरे भवनमें चलकर रहो । इस तरह उसे समझा-बुझाकर रामने उस शवको भी पहलेके समान तेलकी नौकामें रखवाया और सुमन्त्रको सचेत कर दिया कि

त्वया वह्नौ ज्वालनीयं रक्षणीयं प्रयत्नतः । सर्वानपि त्वया भूम्यां श्राव्यं दुंदुभिनिःस्वनैः ॥९०॥
न कस्यापि शवं दग्धं क्वापि कार्यं जनैस्त्विति । तथेति राघवं चोक्त्वा दूतैः संश्राव्य तद्वचः ॥९१॥
सुमंत्रः सकलान् भूस्थान् साकेते न्यवसत्सुखम् । रामोऽपि पुष्पकेणैव पश्चिमां चोत्तरां दिशम् ॥९२॥
पूर्वामपि शनैः पश्यन् दक्षिणाभिमुखो ययौ । एतस्मिन्नंतरेऽयोध्यापुर्यां पञ्च शवानि हि ॥९३॥
समानीतानि तैलस्य द्रोण्यां तान्यपि पूर्ववत् । सुमंत्रः स्थापयामास श्रीरामस्याज्ञयाऽऽदरात् ॥९४॥
तेषु पञ्चशवेष्वेव चैकं मधुपुरि स्थितम् । क्षत्रियस्य च तज्ज्ञेयं समानीतं सुहृज्जनैः ॥९५॥
प्रयागस्थं द्वितीयं च शवं वैश्यस्य तत्स्मृतम् । पूर्वे वयसि पञ्चत्वात्समानीतं हि तज्जनैः ॥९६॥
हस्तिनापुरसंस्थं तत्तृतीयं शवमीरितम् । तैलकारस्य तज्ज्ञेयं समानीतं हि तज्जनैः ॥९७॥
शवं चतुर्थं तज्ज्ञेयं हरिद्वारस्थितं द्विज । लोहकारस्नुषायाश्च समानीतं हि तज्जनैः ॥९८॥
उज्जयिनीस्थं पञ्चमं च शवं ज्ञेयं महामते । चर्मकारदुहितायाः समानीतं हि तज्जनैः ॥९९॥
एवं पञ्च शवान्यासन् पूर्वे द्वे ब्राह्मणस्य च । सप्तायोध्यापुरीमध्ये शवान्येवं स्थितानि हि ॥१००॥
रामोऽपि दंडकं पश्यन् स बभ्राम समंततः । ययौ विंध्याचलं धीमान् रेवावारिपरिप्लुतम् ॥१०१॥
तत्र वृक्षे लंबमानं धूमं पातुमधोमुखम् । शूद्रं निरीक्ष्य स्वर्गेच्छं तं हंतुं समुपस्थितः । १०२॥
तदा तं राघवः प्राह भो शूद्र शृणु मद्वचः । ब्राह्मणादित्रिभिर्वर्णैस्तपः कार्यं न चेतरैः ॥१०३॥
शूद्रैश्च द्विजशुश्रूषा सदा कार्याऽतिभक्तितः । द्विजकृत्यं त्वया चात्र कृतं पापात्मना जड ॥१०४॥
इदानीं त्वां हनिष्यामि जीवयिष्यामि तान्मृतान् । तुष्टोऽहं त्वां त्वत्तपसा वरं वरय वांछितम् ॥१०५॥
इति रामवचः श्रुत्वाऽधोमुखो रामपादजः । उवाच भयभीतः सन्नत्वा रामं मुहुर्मुहुः ॥१०६॥
राम रावणदर्पघ्न यदि तुष्टोऽसि मां प्रभो । तर्हि ते वरयाम्यद्य येन शूद्रगतिर्भवेत् ॥१०७॥

जबतक मैं लौट न आऊँ, तबतक तुम किसी भी शवका अग्निसंस्कार न करने देना ॥ ८२–८९ ॥ साथ ही मेरे राज्यमें यह डुग्गी पिटवा दो कि जबतक मैं लौट न आऊँ, तबतक कोई भी शव न जलाया जाय। सुमन्त्रने रामकी आज्ञा स्वीकार करके दूतों द्वारा ढिंढोरा पिटवाकर रामकी वह आज्ञा सब लोगोंको सुनवा दी और आनन्दपूर्वक राज-काज देखते हुए रहने लगे। उधर रामचन्द्रजी पुष्पक विमानपर बैठकर पश्चिम तथा उत्तरकी दिशाओंको धीरे-धीरे अच्छी तरह देखते हुए दक्षिण दिशाकी ओर बढ़े। इसी बीच अयोध्यामें पाँच शव और आकर एकत्र हो गये। उन्हें भी सुमन्त्रने पूर्ववत् तेलकी नौकामें रखवा दिया ॥ ९०–९४ ॥ उन पाँचोंमेंसे एक शव मधुपुर गाँवमें रहनेवाले एक क्षत्रियका था। जिसे उसके सुहृज्जन रामके दरबारमें ले आये थे। दूसरा शव प्रयागनिवासी एक वैश्यका था। थोड़ी ही अवस्थामें उसकी मृत्यु हो गयी थी। इसी लिए उसके घरवाले रामके पास ले आये। तीसरा शव हस्तिनापुरनिवासी एक तेलीका था। उसे भी उसके घरवाले रामके पास ले आये थे। चौथा शव हरिद्वारनिवासी एक लोहारकी पुत्रवधूका था। पाँचवाँ शव उज्जयिनीनिवासी एक चमारकी लड़कीका था और उसके घरवाले उसे अयोध्या ले आये थे। इस प्रकार ये पाँच शव तथा पूर्वके दो ब्राह्मणके सब मिलाकर अयोध्यामें सात शव एकत्र हो गये ॥ ९५–१०० ॥ रामचन्द्रजी भी दण्डकारण्यमें अच्छी तरह घूमकर रेवानदीसे परिप्लुत विन्ध्यपर्वतकी ओर बढ़े। वहाँ उन्होंने देखा कि एक शूद्र उलटा टँगा है और नीचे आगकी धूनी धधक रही है। वह शूद्र धुआँ पीता हुआ मुँह बाये लटका हुआ है। इस प्रकारकी उग्र तपस्या करके स्वर्ग चाहनेवाले उस शूद्रको राम मारनेके लिए तैयार ही गये और उसके पास जाकर कहने लगे–हे शूद्र! ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा वैश्य इन तीनों वर्णोंके लिए ही तपस्या करनेका विधान है, शूद्रोंके लिए नहीं। उन्हें तो सर्वदा इन तीनों वर्णोंकी सेवा करनी चाहिए। अरे जड़! तुझ पापीने अपने धर्मका उल्लंघन करके द्विजोंके समान कर्म किया है ॥ १०१—१०४ ॥ इस समय मैं तुझे मारकर उन लोगोंको जीवित करूँगा, जो तेरे धर्मविरुद्ध आचरणसे अकालमृत्युके ग्रास बने हैं। मैं तेरी इस तपस्यासे प्रसन्न हूँ। बोल, तेरी क्या कामना है? इस प्रकार रामकी वाणी सुनकर भयभीत हो

ममापि येन कीर्तिः स्यात्तं वरं दातुमर्हसि । इति शूद्रवचः श्रुत्वा रामस्तुष्टोऽब्रवीद्वचः ॥१०८॥
मम रामेति यन्नाम तच्छूद्रैः सर्वदैव हि । जपनीयं कीर्तनीयं चिंतनीयं मुहुर्मुहुः ॥१०९॥
भविष्यति गतिस्तेषामनेन मत्परो भव । तवानेनोपकारेण कीर्तिः शूद्रेषु वै भवेत् ॥११०॥
इति रामवरं श्रुत्वा पुनः शूद्रोऽब्रवीद्वचः । शूद्राः कलौ मंदधियो भविष्यंति रघूत्तम ॥१११॥
व्यग्रचित्ता भविष्यंति कृषिकर्मादिभिः प्रभो । तदा तेषां कुतो बुद्धिर्जपादिषु भविष्यति ॥११२॥
अतस्तदनुरूपोऽद्य वरो देयो विचार्य च । तत्तस्य वचनं श्रुत्वा रामस्तुष्टोऽब्रवीत् पुनः ॥११३॥
परवन्दनकालेषु रामरामेति सर्वदा । शूद्रा वदंतु सर्वत्र तेन तेषां गतिर्भवेत् ॥११४॥
तवापीयं कथाकीर्तिः स्मरिष्यंति मदंघ्रिजाः । त्वं मया निहतस्त्वद्य वैकुंठं प्रति यास्यसि ॥११५॥
पुनर्ययाचे श्रीरामं वरमन्यं स्वकारणात् । अस्मिन् शैले सदा तिष्ठ सीतालक्ष्मणसंयुतः ॥११६॥
अंशतस्ते पूर्वमेव दर्शनं मम ये नराः । करिष्यन्ति ततः पश्चाद्ये नरास्तव दर्शनम् ॥११७॥
कुर्वन्ति सहितं भक्त्या मोक्षमेव व्रजंति ते । मद्दर्शनं विना मर्त्यास्त्वां पश्यंत्यविचारतः ॥११८॥
तेषामुद्धरणं राम कुरु मद्वचनात् प्रभो । तथोवाच तदा रामो भक्तिं तस्मै ददौ हरिः ॥११९॥
इति कृत्वा सुसंतुष्टं हत्वा शूद्रं रघूत्तमः । जीवयामास विप्रादीन्सप्त साकेतसंस्थितान् ॥१२०॥
तदारभ्यात्र शूद्रैस्तु विष्णुदासावनीतले । परवन्दनकालेषु रामरामेति कीर्त्यते ॥१२१॥
तं हत्वा रघुवीरः स परिवृत्य मुदान्वितः । सीतां नानाकौतुकानि दर्शयन्स्वपुरीं ययौ ॥१२२॥
एतस्मिन्नंतरे मार्गे गृध्रोलूकौ निरीक्षितौ । विवदमानौ रामेण चात्मानं द्रष्टुमागतौ ॥१२३॥
तावुवाच रघुश्रेष्ठः किमर्थं हि युवामुभौ । विवदमानौ संप्राप्तौ मां ब्रूतस्त्वद्य विस्तरात् ।१२४॥

और नीचा मस्तक किये हुए बार-बार प्रणाम करके उस शूद्रने कहा—हे रावणके अभिमानको दूर करनेवाले राम ! यदि वास्तवमें आप मेरे ऊपर प्रसन्न हैं तो मुझे वह वरदान दीजिये कि जिससे शूद्रजातिको भी सद्गति प्राप्त हो, साथ ही मेरा भी उद्धार हो जाय । इस तरह शूद्रकी दीनतापूर्ण बात सुनकर रामचन्द्रजी बहुत प्रसन्न हुए और कहने लगे—॥ १०५–१०८ ॥ "राम" इस पवित्र नामका जो शूद्र सदा जप, कीर्तन तथा चिन्तन करते रहेंगे, उन लोगोंको सद्गति प्राप्त होगी और तुम भी इस तपस्याको छोड़कर मेरा चिन्तन करो। तुम्हारे इस उपकारसे शूद्रोंमें तुम्हारी कीर्ति होगी। इस प्रकार रामचन्द्रजीके द्वारा वर पाकर शूद्रने कहा—हे रघुसत्तम ! आगे महाप्रचण्ड कलियुग आनेवाला है। उसमें शूद्रजातिके लोग बड़े मूर्ख होंगे। वे सर्वदा अपनी खेती-बारीके काममें ही व्यस्त रहेंगे। ऐसी अवस्थामें उन्हें जप तथा कीर्तन करनेका अवसर ही कहाँ मिलेगा। इन शुभ कर्मोंकी ओर उनकी बुद्धि कैसे जायगी। अतएव उनके अनुरूप कोई वरदान दीजिए। उसकी यह बात सुनी तो प्रसन्न होकर रामने कहा कि वे लोग एक-दूसरेको प्रणाम-आशीषके समय "राम-राम" ऐसा कहेंगे, इसीसे उनका उद्धार हो जाया करेगा ॥ १०९–११४ ॥ उस शूद्रसमाजमें तुम्हारी बड़ी कीर्ति होगी। आज तुम हमारे हाथों मरकर वैकुण्ठधामको प्राप्त होओगे। इसके अनन्तर उसने रामसे यह वर माँगा कि आप सीता तथा लक्ष्मणके साथ सर्वदा इस पर्वतपर निवास करें ॥ ११५ ॥ ११६ ॥ जो लोग यहाँ आकर पहले मेरा दर्शन करनेके पश्चात् आपका दर्शन करें, उनको मोक्षपद प्राप्त हुआ करे। इसके सिवाय जो लोग भ्रमवश बिना मेरा दर्शन किये ही आपका दर्शन कर लें, उनका भी उद्धार हो जाय। रामने 'तथास्तु' कहकर भक्तिका वर दिया और उसे मारकर उन अकाल मृत्युसे मरे हुए लोगोंको जीवित किया, जो ब्राह्मण-क्षत्रियादि सात प्राणी अयोध्यामें मरे पड़े थे ॥ ११७–१२० ॥ हे विष्णुदास ! तभीसे इस पृथ्वीतलमें शूद्रलोग आपसमें प्रणाम-आशीषके अवसरपर "राम-राम" कहा करते हैं। शूद्रको मारकर हर्षपूर्वक रामचन्द्रजी सीताको रास्तेके अनेक मनोहर दृश्योंको दिखाते हुए अयोध्याके लिए लौट पड़े। उसी बीच एक गृध्र और उलूक परस्पर विवाद करते हुए रामके दर्शनोंके लिए उनके सम्मुख आये। रामने उन्हें देखकर

तद्रामवचनं श्रुत्वा तदोलूकोऽब्रवीत् प्रभुम् । मया पूर्वं कृतं राम नगोपरि गृहं वने ॥१२५॥
तत्काले मया त्यक्तं तत्र गृध्रोऽस्ति संस्थितः । नानेन दीयते मह्यं मम गेहं रघूत्तम ॥१२६॥
तदुलूकवचः श्रुत्वा गृध्रमाह रघूद्वहः । किमर्थं दीयते नास्य त्वया गृध्र गृहं वद ॥१२७॥
तदा गृध्रोऽब्रवीद्वाक्यं राघवं दीर्घनिःस्वनः । मया पूर्वं कृतं राम नगोपरि गृहं वने ।।१२८॥
तत्काले मया त्यक्तं तदोलूकः कियद्दिनम् । स्थितस्तेनापि तत्त्यक्तं तत्राहं संस्थितः पुनः ॥१२९॥
वृथाऽयं स्पर्द्धते राम मत्वा गेहं ममेति च । माऽधर्मं कुरु राजेंद्र त्वद्वंशेऽभून्न पातकी ॥१३०॥
तावुवाच रघुश्रेष्ठो युवाभ्यां हि यदा गृहम् । कृतं तस्यात्र कः साक्षी तदा तौ नेति चोचतुः ॥१३१॥
विमानस्थांस्तदा सर्वान्राघवः प्राह सस्मितः । इदमप्यद्य सम्प्राप्तं दुर्घटं मां पुरस्त्विह ॥१३२॥
कथं न्यायोऽत्र वै कार्यः कस्मै गेहं प्रदीयताम् । तद्रामवचनं श्रुत्वाऽऽसन्सर्वेऽतिविस्मिताः ॥१३३॥
तदोलूकं विभुः प्राह कृतं गेहं त्वया कदा । उलूकः प्राह भूश्चेयं यदा जाता तदा कृतम् ॥१३४॥
तदुलूकवचः श्रुत्वा गृध्रं रामोऽवलोकयत् । गृध्रः प्राह यदा चेयं महानीरेऽवनिस्तदा ॥१३५॥
चूतवृक्षे कृतं विद्धि पुरा गेहं मया विभो । तद्गृध्रवचनं श्रुत्वा तदा तं प्राह राघवः ॥१३६॥
कथं विनाऽऽश्रयेणासीन्महानीरे नगस्तदा । नोक्तोऽक्षयवटः सोऽपि चूतवृक्षस्त्वया स्मृतः॥१३७॥
तस्माद्वृथा त्वया गृध्र स्पर्ध्यतेऽनेन निश्चितम् ।
मयाऽद्य तव वाक्येन धिक् त्वां दुष्टपतत्रिणम् ॥१३८॥
इत्युक्त्वा राघवो दूतैस्तं गृध्रं पर्वतोपरि । त्रिशूलाग्रेषु चारोप्य प्रेषयामास स्वं पदम् ॥१३९॥
धन्यः स गृध्रो विज्ञेयो रामाग्रे यस्य वै मृतिः । अभूत्तद्दर्शनमपि यस्य देहविसर्जने ॥१४०॥

कहा कि तुम लोग क्यों लड़ रहे हो ? मुझे विस्तारपूर्वक कारण बतलाओ ॥ १२१–१२४ ॥ रामकी बात सुनकर उलूकने कहा कि मैंने एक वृक्षपर रहनेके लिए एक घोंसला बनाया था। कार्यवश उसी समय उसे छोड़कर मुझे स्थानान्तरको चला जाना पड़ा और यह गृध्र उसमें रहने लगा। अब मेरे माँगनेपर यह मुझे मेरा घोंसला नहीं दे रहा है। इस प्रकार उलूककी बात सुनकर रामने गृध्रसे कहा कि तुम इसका घोंसला इसे क्यों नहीं देते ? गृध्रने तड़पकर कहा—हे राम ! पहले मैंने उस वृक्षपर वह घोंसला बनाया था। कुछ दिनोंके लिए मैं बाहर चला गया तो यह उलूक उसमें रहने लगा। फिर यह जब उसे छोड़कर कहीं चला गया तो मैं आकर अपने घरमें रहने लगा। यह व्यर्थ हमसे लड़ाई कर रहा है। हे राम ! इसकी बातोंमें आकर कहीं आप अधर्म न कीजियेगा। क्योंकि आपके वंशमें कभी कोई पातकी नहीं हुआ है ॥ १२५–१३० ॥ उन दोनोंसे रामने कहा कि तुमने उस घोंसलेको बनाया था, इसका कोई साक्षी दे सकते हो ? इस प्रकारके प्रश्न होनेपर वे दोनों चुप हो गये। क्योंकि उन दोनोंके पास कोई गवाह नहीं था। ऐसी दशामें मुस्कराते हुए रामने विमानपर बैठे हुए लोगोंसे कहा कि यह विकट समस्या आगे आ गयी है। इस झगड़ेका कैसे न्याय हो ? किसको वह घोंसला दिया जाय ? इस तरह रामकी बात सुनकर सब लोग भौंचकसे रह गये। किसीको कोई युक्ति नहीं सूझी ॥ १३१–१३३ ॥ फिर रामने उलूकसे कहा कि तुमने कब अपना घोंसला बनाया था। उसने उत्तर दिया कि मैंने अपना निवासस्थान उस समय बनाया था, जब इस पृथ्वीकी रचना हुई थी। इस प्रकार उलूककी बात सुनकर रामने गृध्रकी ओर देखा। गृध्रने उत्तर दिया कि मैंने उस घोंसलेको आमके वृक्षपर उसी समय बना लिया था, जब पृथ्वी जलमग्न थी—उसका उद्धार ही नहीं हुआ था। गृध्रसे रामने कहा कि जब पृथ्वीकी उत्पत्ति ही नहीं हुई थी, तब वह आमका वृक्ष किसके सहारे खड़ा था। वृक्षोंमें तुमने अक्षयवट भी नहीं बताया, जो किसी तरह रह भी जाता है। इसलिए मालूम पड़ता है कि तुम्हारी बात झूठ है। तुम उलूकको व्यर्थ सता रहे हो। तुम जैसे दुष्ट पक्षीको धिक्कार है ॥ १३४–१३८ ॥ इतना कहकर रामने दूतों द्वारा गृध्रको शूलीपर चढ़वाकर उसे अपना परम पद दे दिया। वह गृध्र धन्य था, जिसकी मृत्यु रामके सम्मुख हुई और रामका दर्शन करते हुए उसने अपने प्राणोंका परित्याग किया। इस प्रकार उसे

दत्त्वा गेहमुलूकाय ययौ रामो निजां पुरीम् । विवेश नगरीं नृत्यवाद्यगीतपुरःसरम् ॥१४१॥
शिशुं विप्रं क्षत्रियं च वैश्यं चापि चतुर्थकम् । तैलकारं पञ्चमं च लोहकारस्नुषां तथा ॥१४२॥
चर्मकारदुहितरं सप्तैतान्हि सुजीवितान् । दृष्ट्वा रामः समायातानात्मानं द्रष्टुमादरात् ॥१४३॥
तुतोष नितरां पत्न्या तैः सर्वैः संस्तुतो मुहुः । ततः संपूज्य तान् सर्वान् विससर्ज रघूद्वहः ॥१४४॥
तदा महोत्सवश्चासीदयोध्यायां समन्ततः । एवं नानाचरित्राणि चकार रघुनन्दनः ॥१४५॥

इति श्रीशतकोटिरामचरितांतर्गते श्रीमदानंदरामायणे वाल्मीकीये राज्यकांडे पूर्वार्द्धे यतिशूद्रगृध्रशिक्षोपकरणं नाम दशमः सर्गः ॥ १० ॥

एकादशः सर्गः

(चार विप्रकन्याओंको रामका वरदान)

श्रीरामदास उवाच

अथैकदा रामचन्द्रो मृगयार्थं वनं ययौ । सीतया बन्धुभिः सैन्यैर्हस्त्यश्वरथपत्तिभिः ॥१॥
पश्यन् वनानि सर्वाणि मृगयारसिको भृशम् । कौतूहलसमाविष्ट आखेटव्यूहसंवृतः ॥२॥
उपानद्गूढपादश्च नीलोष्णीषी हरिच्छदः । नीलगोधांगुलित्राणो धनुष्पाणिः शरी नृपः ॥३॥
अश्वारूढः खड्गचर्मधारी भूपैः पदातिभिः । वेष्टितः कवची रामो विवेश गहनं वनम् ॥४॥
सीतया जालरंध्रैश्च वारं वारं निरीक्षितः । स रामो बन्धुवर्गैश्च पुत्राभ्यां नृपसत्तमैः ॥५॥
क्रीडां तदाऽकरोत्तत्र कुंजेषु मृगयन्मृगान् । हन्यतां हन्यतामेषो मृगो वेगात्पलायते ॥६॥
इति जल्पन् स्वभृत्येषु स्वयमुत्पत्य हंन्ति च । गांधारेषु च रम्येषु वनेषु विपुलेषु च ॥७॥
उल्लङ्घितमहास्रोता युवा पञ्चास्यविक्रमः । इतस्ततः पुनर्याति क्वचित्पश्यन् वनस्थलीम् ॥८॥

दण्ड देकर घोंसला उलूकको दे दिया और वहाँसे अपनी अयोध्या नगरीकी ओर चल पड़े। अयोध्यामें पहुँचे तो क्या देखा कि वहाँ नाच-गान हो रहे हैं। ब्राह्मणका लड़का, मधुरपुरवाला ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, तेली एवं लोहारकी पतोहू तथा चमारकी लड़की ये सब जीवित होकर रामके दर्शनोंको खड़े हैं। उनको जीवित देखकर सीता समेत राम अत्यन्त प्रसन्न हुए। वहाँ पहुँचे तो लोगोंने रामकी स्तुति की और रामने भी उनका सत्कार करके उनके ग्रामोंको भेज दिया। उस समय अयोध्या भरमें चारों ओर उत्सव ही उत्सव दीखता था। इस तरह राम अनेक प्रकारको लीलायें करते रहते थे ॥ १३९–१४५ ॥ इति श्रीशतकोटिराम-चरितान्तर्गते श्रीमदानन्दरामायणे पं० रामतेजपाण्डेयविरचित'ज्योत्स्ना'भाषाटीकासमन्विते राज्यकाण्डे पूर्वार्द्धे दशमः सर्गः ॥ १० ॥

श्रीरामदास कहने लगे—इसके बहुत दिनों बाद रामचन्द्रजी एक समय शिकार खेलनेके लिए सीता तथा भ्राताओं और बहुतसे हाथी-घोड़े आदिको साथ लेकर वनमें गये। मृगयाके आनन्दसे आनन्दित होकर वे बहुतसे वनोंको देखते हुए इधर-उधर घूम रहे थे। उस समय उनके साथ शिकार खेलानेवाले भीलोंका एक बहुत बड़ा दल था। रामचन्द्रजी जूता पहने थे, नीले रङ्गकी पगड़ी मस्तकपर बँधी थी, हरे कपड़े पहने हुए थे और नीले ही रङ्गकी गोधांगुली उँगलियोंमें बँधी थी। हाथमें धनुष-बाण धारण किये थे ॥ १–३ ॥ वे घोड़ेपर सवार थे, तलवार और ढाल बगलमें झूल रही थी। बहुतसे पैदल चलनेवाले राजे उनके साथ थे और उनके शरीर पर कवच पड़ा था। इस प्रकारका वेश धारण किये वे गहन वनमें जा पहुँचे। उस समय सीता पालकीकी खिड़कियोंसे रामकी ओर निहार रही थीं और रामचन्द्रजी अपने भ्राताओं और मित्रोंके साथ कुञ्जोंमें मृगोंको ढूँढते हुए हर्षपूर्वक मृगया कर रहे थे। कभी-कभी 'मारो-मारो, यह मृग वेगसे भागा जा रहा है' इस प्रकार चिल्ला पड़ते। यदि कोई उसे मारनेको नहीं पहुँच पाता तो वे उसे स्वयं मार दिया करते थे। एक

विटपोड्डीनसंत्रस्तलीनकेकिकुलाकुलाम् । हरिणीगणसंत्रस्तां धावच्छ्वापददिङ्मुखाम् ॥ ९ ॥
क्वचित्फेरवफूत्कारझिल्लीरावविभीषिताम् । खड्गयूथैः क्वचिल्लक्ष्मीं दधानामिव दंतिनाम् ॥१०॥
क्वचित्कोटरसंविष्टशुकां नादविनादिनीम् । मृगारिपदमुद्राभिर्मुद्रितां च क्वचित् क्वचित् ॥११॥
शार्दूलनखनिर्भिन्नरोहिद्रक्तारुणां क्वचित् । पीवरस्तनभारार्तसुस्निग्धमहिषीगणैः ॥१२॥
अवरोधाजिरक्षोणिं सूचयन्तीमिव क्वचित् । क्वचिद्वृक्षघनच्छायां वनपुष्पसुगंधिनीम् ॥१३॥
क्वचिल्लतागृहद्वारभ्रूमंडलसतोरणाम् । अर्धनिःसृतनिर्मोकनागभीममहद्बिलाम् ॥१४॥
वृत्तास्याजगरैर्व्याप्तां क्वचिन्निर्मुक्तसर्पिणीम् । क्वचिद्दावानलज्वालाशिखाव्याप्तमहीरुहाम् ॥१५॥
ज्वलन्निकुंजनिर्गच्छद्वृकव्याघ्रत्रसद्भटाम् । व्यमुचंस्तु शुनां यूथं शशकेषु क्वचित् क्वचित् ॥१६॥
पल्वलेषु च विश्रांतः पुनर्याति वनांतरम् । ततो मध्याह्नसमये निवासं सरसस्तटे ॥१७॥
कारयामास सेनायाः सीतायाश्च रघूत्तमः । स्वयं मुदाऽकरोत्क्रीडामाखेटव्यूहसंवृतः ॥१८॥
दुद्राव मृगपृष्ठेषु मुक्त्वा बाणं जघान तान् । एवं खेलति राजेंद्रे व्याघ्रवर्गे च वै द्विज ॥१९॥
तत्र कोलाहलत्रस्तः पंचास्यो निर्गतो वनात् । स केसरी महावेगस्तीक्ष्णदंष्ट्रो भयावहः ॥२०॥
स्फुरदंगसमाक्रांतदुर्गमार्गमहीतलः । कदाचिद्गगनारूढः कदाचिद्भूमिगश्चलः ॥२१॥
न रयाल्लक्ष्यतां याति धन्विनां पृष्ठगामिनाम् । क्वचिद्दृष्टिपथं याति दर्शनागोचरः क्वचित् ॥२२॥
वक्रस्रोतोऽतिगंभीरं कंटकीद्रुमसंकुलम् । वृकव्याघ्रसमाकीर्णं पर्वतैश्च भयंकरम् ॥२३॥
प्रविष्टो विषमारण्यं रामस्तस्य पदानुगः । दूराद्दूरं ततो गत्वा देशाद्देशं च निर्जनम् ॥२४॥

झाड़ीको छोड़कर दूसरीमें और दूसरीको छोड़कर तीसरीमें, इस तरह बार बार इधर-उधर वनस्थलीमें दौड़ रहे थे ॥ ४–८ ॥ उस समय वहाँ वृक्षोंपर रहनेवाले मयूरके परिवार मारे डरके वृक्षोंके खोढ़रोंमें छिप जाते, हरिणियाँ चकित नेत्रोंसे इधर-उधर निहारती हुई भाग जातीं, बनैले जीव कोलाहलसे त्रस्त होकर अपनी माँदसे निकल पड़ते, कहीं अपने बिलसे निकलकर सर्पगण फुफकार मारते थे और कहीं झींगुरोंकी भीषण झनकार सुनाई देती थी। कहीं गैंड़ोंके समान शोभाको धारण किये हुए हाथी भाग रहे थे, कहीं कोटरमें बैठे हुए तोते अनेक प्रकारकी बोलियाँ बोल रहे थे, कहीं शेरोंके पैरोंके निशान दिखाई देते थे और कहीं किसी सिंहके द्वारा मारे गये हरिणके रुधिरसे पृथ्वी रक्तवर्ण हो गयी थी। कहींकी भूमि बड़े-बड़े स्तनोंवाली भैंसोंसे अन्तःपुरके आँगनसदृश मालूम पड़ती थी और कहींकी पृथ्वी घने वृक्षोंकी छायासे छायामयी हो गयी थी। कहीं वनपुष्पकी सुगन्धिसे वह स्थली सुगन्धमयी हो रही थी और कहीं प्राकृतिक रीतिसे लतामण्डप बन गया था। उसपर जो भौंरे मँडरा रहे थे, वे उसके तोरण सदृश जान पड़ते थे। कहीं साँपके शरीरसे आधी केंचुली छूटकर बिलके मुखपर लगी थी। इस प्रकार बड़े-बड़े सर्पोंकी बिलें दिखाई पड़ती थीं ॥ ९–१४ ॥ कहीं मुँह बाये हुए बड़े-बड़े अजगर सर्प बैठे थे। कहीं साँपोंकी केंचुलियाँ दिखायी देती थीं। कहींपर दावानल लगनेके कारण जलते हुए निकुञ्जोंमेंसे व्याघ्र-वृक आदि बड़े-बड़े जन्तु निकल निकलकर भाग रहे थे। रामके साथ आये हुए शिकारी खरगोशोंपर कुत्ते दौड़ा रहे थे। कोई तलैया मिल जानेपर वे लोग वहाँ कुछ देर विश्राम करके आगे दूसरे वनमें चले जाते थे और मध्याह्नके समय किसी बड़े सरोवरपर सीता आदिके साथ आराम करते थे ॥ १५–१७ ॥ तीसरे पहर उठकर फिर शिकारमें लग जाते थे। रामचन्द्रजी किसी भी मृगको देखकर उसके पीछे दौड़ पड़ते और उसे बाणोंसे मार डालते थे। इस प्रकार रामचन्द्रजी मृगया कर ही रहे थे, तभी दूसरी ओरसे 'सिंह आया–सिंह आया' यह कोलाहल होने लगा। सिंह इससे ऊबकर और भी वेगसे चला। उसके बड़े-बड़े दाँत थे। देखनेमें वह बड़ा भयावना मालूम पड़ता था। वह बड़े वेगसे दुर्गम मार्गको तै करता हुआ इन लोगोंकी ओर बढ़ता आ रहा था। वह कभी छलांग मारकर आकाशमार्गसे चलता और कभी पृथ्वीपर दौड़ता चलता था ॥ १८–२१ ॥ अतिशय वेगसे भागनेके कारण उसका पीछा करनेवाले लोग कभी उसे देख पाते थे—कभी नहीं। इस तरह भागता हुआ वह एक ऐसे दुर्गम स्थानपर पहुँच गया, जहाँ एक टेढ़ा-

एकाकी हयमारूढो विवेश गिरिगह्वरम् । सर्वे व्याधाश्च दूताश्च लक्ष्मणाद्याश्च बंधवः ॥२५॥
रामादर्शनसंभ्रांता बभ्रमुस्त इतस्ततः । अथ रामः केसरिणं जघान शितपत्रिणा ॥२६॥
ततः स दिव्यरूपेण नत्वा प्राह रघूत्तमम् । पुरा विद्याधरश्चाहं मया भुक्ता पतिव्रता ॥२७॥
मुनिपत्नी हठेनैव तया शप्तस्त्वहं क्रुधा । सिंहवन्निग्रहो यस्मात्त्वया मयि कृतोऽद्य हि ॥२८॥
अतस्त्वं मद्गिरा सिंहो भवाद्यैव महावने । तदा मया प्रार्थिता सा पुनर्मामाह राघव ॥२९॥
चिराद्रामशरस्पर्शाच्छापान्मुक्तिर्भवेत्तव । अतोऽद्य त्वच्छरस्पर्शाच्छापान्मुक्तश्चिरादहम् ॥३०॥
इत्युक्त्वा राममामंत्र्य स स्वर्गं प्रययौ मुदा । ततः स रामचंद्रोऽपि तुरगस्थो मुदान्वितः ॥३१॥
तत्र तस्थौ क्षणं यावत्तावत्तद्गिरिगह्वरे । गुहाद्वारि शिलामेकां ददर्श योजनायताम् ॥३२॥
महतीं तां शिलां दृष्ट्वा रामो विस्मितमानसः । धनुष्कोट्याऽक्षिपद्दूरं गुहायां संविवेश ह ॥३३॥
कियद्दूरं ततो गत्वाऽग्रे प्रकाशं ददर्श सः । तत्र द्रोण्यां पर्वतस्य तपस्यंत्यः स्त्रियः प्रभुः ॥३४॥
ददर्श रामश्चत्वारः किंचिदंतरसंस्थिताः । अस्थिचर्मावशिष्टैश्च देहैर्दृग्गोचरीकृताः ॥३५॥
श्वासैः संजीविताश्चेति ज्ञातवांस्ता रघूत्तमः ॥३६॥
निजरूपाणि चत्वारि कृत्वादौ तत्पुरः स्थितः । अब्रवीन्मधुरं वाक्यं भिन्नरूपेण ताः पृथक् ॥३७॥
वरयध्वं वरान्नार्यः प्रसन्नोऽहं रघूत्तमः । ततस्ता रामसंस्पर्शान्मांसरक्तादिधातुभिः ॥३८॥
पूरितानि शरीराणि ददृशुर्नयनैर्निजैः । श्रुत्वा तद्रामवाक्यं तास्तदा स्वपुरतोऽक्षिभिः ॥३९॥

भेड़ा नाला बह रहा था। बहुतसे कँटीले वृक्षोंकी झाड़ियाँ उसके आस-पास उगी थीं। चारों ओरसे पर्वतकी दीवारें खड़ी थीं और भेड़िये तथा व्याघ्र आदि हिंसक जीव उसमें भरे पड़े थे। ऐसी अवस्थामें भी राम उसके पीछे-पीछे दौड़ते चले जा रहे थे। उस समय रामचन्द्रजी अपने साथियोंसे बिछुड़कर बहुत दूर निर्जन वनमें उसके साथ निकल गये। अन्तमें वह सिंह पर्वतकी एक विशाल कन्दरामें घुस गया और रामचन्द्रजी भी घोड़ेपर चढ़े हुए उसके साथ कन्दरामें घुस गये। इधर रामके लक्ष्मणादि भ्राता, उनके दूत तथा शिकार खेलानेवाले बहेलिये घबराकर रामको इधर-उधर खोजने लगे। उसी समय रामने सिंहको एक विकराल बाणसे मारा ॥ २२–२६ ॥ तब वह एक दिव्य पुरुषके रूपमें परिणत हो और उनको प्रणाम करके कहने लगा—हे राम! मैं पहले विद्याधर था। मैंने एक बार एक पतिव्रता मुनिपत्नीके साथ हठात् भोग किया। जिससे कुपित होकर उसने मुझे शाप दे दिया कि तूने सिंहके समान बरबस मेरी आबरू उतारी है, इसलिए मेरी वाणीसे तू अभी सिंह हो जा। इस प्रकार शाप पा जानेपर मैंने उससे विनती की तो उसने कहा कि आजसे बहुत दिनों बाद जब रामचन्द्रजी तुझे अपने बाणसे मारेंगे, तब तू शरस्पर्श होते ही शापसे मुक्त हो जायगा। सो बहुत समय बाद आपकी दयासे मैं आज उस शापसे मुक्त हो गया। इस तरह अपना पूर्ववृत्तांत सुनानेके बाद उसने रामसे आज्ञा माँगी और अपने लोकको चला गया। रामचन्द्रजी अपने घोड़ेपर बैठे ही बैठे थोड़ी देर वहाँ ठहरे तो उन्होंने क्या देखा कि उस गुहाद्वारपर योजनों लम्बी-चौड़ी एक शिला लगी हुई है। इतनी बड़ी शिला देखकर राम विस्मित हुए और अपने धनुषकी कोरसे उसे दूर हटा दिया। तब वे उसके भीतर घुसे। कुछ दूर आगे जानेपर उन्हें कुछ प्रकाश-सा दिखायी पड़ा। और आगे बढ़े तो उन्होंने क्या देखा कि चार स्त्रियाँ तपस्या करती हुई बैठी हैं। उनके शरीरमें हड्डी और चमड़ेके सिवाय मांसका नाम भी नहीं था। उनका श्वास चल रहा था। इससे उनको यह ज्ञात हुआ कि वे स्त्रियाँ अभी मरीं नहीं, प्रत्युत जीवित हैं। ऐसी अवस्थामें रामने अपना चार शरीर बनाया और सबके सम्मुख जाकर कहने लगे—"हे नारियों! तुम्हारी जो इच्छा हो, वह वर माँग लो। मैं राम तुम लोगोंकी तपस्यासे प्रसन्न हूँ।" इसके अनन्तर रामने अपने हाथों उनके शरीरका स्पर्श किया। जिससे उनकी सूखी देहमें रक्त-मांसादिका संचार हो गया ॥ २७–३८ ॥ शरीर भर जानेपर उन सबोंने अपने नेत्रोंसे रामको देखा। उस समय प्रत्येक स्त्रीके सामनेवाले राम कोटि सूर्यकी दीप्तिके समान देदीप्यमान

नार्यो विलोकयामासुः सर्वाः श्रीरघुनायकान् । कोटिसूर्यप्रतीकाशांश्चापबाणासिधारिणः ॥४०॥
हयारूढान्नृवेषेण सर्वासां पुरतः स्थितान् । चतुर्मूर्तीश्चैकरूपास्ता दृष्ट्वा कंजलोचनाः ॥४१॥
अतिविस्मयमापन्नास्तदोचुस्तान् पृथक् पृथक् । के यूयं वाजिमस्था हि कुतः सर्वे समागताः ॥४२॥
यूयं देवा दानवा वा गम्यते क्वाधुना पुरः । अस्माकं कथ्यतां सर्वं किमर्थं भाषिता वयम् ॥४३॥
अस्माकं दुःशरीराणि कमनीयानि वै कथम् । जातान्यद्य महादैत्यो दुदुभिः सोऽस्ति वा मृतः ॥४४॥
इति तासां वचः श्रुत्वा राघवस्ता वचोऽब्रवीत् । अहं चतुर्भिर्देहैश्च रामस्त्वेको न संशयः ॥४५॥
सप्तद्वीपपतिः श्रीमान् सूर्यवंशसमुद्भवः । मृगयार्थं समायातः केसरी निहतो वने ॥४६॥
धनुष्कोट्या शिलां त्यक्त्वा युष्मदंतिकमागतः । स्वकरस्पर्शमात्रेण शरीराणि शुभानि हि ॥४७॥
मया कृतानि युष्माकं वालिना दुंदुभिर्हतः । स मया निहतो वाली रावणस्यान्तकारिणा ॥४८॥
संभाषिता वरान् दातुं यूयं सर्वा मयाऽद्य हि । नाग्रेऽस्ति मम कार्यं हि परिवर्त्य पुरीं व्रजे ॥४९॥
यत्पृष्टं तन्मया चोक्तं का यूयं कथ्यतां मम । किमर्थं दुंदुभिः पृष्टः का वांछा व्रियतां वरान् ॥५०॥
तद्रामवचनं श्रुत्वा दुन्दुभिर्निहतस्त्विति । शिलां निष्कासिता चापि सर्वास्तुष्टा परा ययुः ॥५१॥
ऊचुः सर्वास्तदा राममानन्दोत्फुल्ललोचनाः । वयं ब्राह्मणपुत्र्यश्च चत्वारस्त्वथ षोडश ॥५२॥
सहस्राणि नृपाणां च वैश्यानां कन्यकाः पुरा । समानीता बलादेव तेन दुन्दुभिना प्रभो ॥५३॥
लक्षस्त्रीभिर्विवाहांश्च सर्वानेकदिने त्वहम् । करोमीति मन्यमानः स्त्रीरत्नानि जहार सः ॥५४॥
यानि यानि जहार स्त्रीरत्नानि रघुनन्दन । अस्यां द्रोण्यां स्थाप्य तानि दत्त्वा द्वारि शिला वराम् ॥५५॥
अचलां त्वद्विनान्यैश्च स्त्रीः समानेतुमादरात् । पुनश्चिरं गतो दैत्यो वयमत्रैव सस्थिताः ॥५६॥

हो रहे थे और धनुष-बाण तथा तलवार लिये हुए थे ॥ ३९ ॥ ४० ॥ वे मनुष्यका वेश धारण करके घोड़ेपर सवार होकर एक-एक स्वरूपसे उन चारोंके सम्मुख खड़े थे और उन सब स्त्रियोंका भी समान स्वरूप था और एक ही तरहकी वेष-भूषा थी। ऐसे रामको देखकर उन स्त्रियोंको बड़ा आश्चर्य हुआ और वे कहने लगीं—"आप लोग कौन हैं ? घोड़ेपर सवार होकर कहाँसे आप आ रहे हैं ? आप सब देवता हैं या दानव ? आप कहाँ जायँगे ? कृपया हमें यह भी बतलाइये कि आप हमसे क्यों बात करना चाहते हैं ? हम लोगोंका यह जीर्ण-शीर्ण शरीर इस प्रकार सुन्दर कैसे हो गया ? वह दुष्ट दुन्दुभी जीवित है या मर गया ?" ॥ ४१–४४ ॥ इस प्रकार उनकी बातें सुनकर रामने उन सबसे कहा—"सूर्यवंशमें उत्पन्न और सातों द्वीपोंका अधिपति राम नामका मैं एक राजा हूँ। इस समय अपने एक ही रूपको चार भागोंमें विभक्त करके तुम सबके सम्मुख उपस्थित हुआ हूँ। मै यहाँ जङ्गलमें शिकार खेलने आया था और इसी कन्दरामें मैंने एक सिंहको मारा है। फिर तुम्हारे गुफा द्वारपर एक लम्बी-चौड़ी शिला देखी। उसे अपने धनुषकी कोरसे दूर हटाकर तुम्हारे समीप आया और अपने हाथके स्पर्शसे तुम्हारे जीर्ण शरीरको पवित्र तथा सुन्दर बना दिया है। दुन्दुभी राक्षसको वालिने मार डाला। रावणका विनाश करनेवाले मुझ रामने उस बालीको भी मार डाला है ॥ ४५–४८ ॥ केवल तुम्हें वरदान देनेकी इच्छासे मैंने तुमसे संभाषण किया है। अब यहाँसे आगे जानेका हमारा कोई कार्यक्रम नहीं है। इससे अपनी अयोध्या नगरीको लौट जाऊँगा। तुमने हमसे जो कुछ पूछा, मैंने उसका उत्तर दे दिया। अब यह बताओ कि तुम कौन हो ? दुन्दुभीको तुमने क्यों पूछा ? तुम्हारी क्या कामना है ? इच्छित वर मुझसे माँग लो।" जब उन सबोंने रामके मुखसे यह सुना कि दुन्दुभी मार डाला गया और हमारे द्वारपर लगी हुई शिला भी हट गयी है तो वे बहुत प्रसन्न हुईं और आनन्दसे प्रफुल्लित होकर उन्होंने कहा—हे राम ! बहुत दिन हुए, वह दुन्दुभी राक्षस हम चार ब्राह्मणकी पुत्रियों तथा सोलह हजार क्षत्रियों तथा वैश्योंकी कन्याओंको हर लाया था। उसकी यह हार्दिक इच्छा थी कि मैं एक ही दिनमें एक लाख स्त्रियोंके साथ विवाह करूँगा। इसी विचारसे वह अच्छी-अच्छी कन्याओंका अपहरण किया करता था ॥ ४९–५४ ॥ हे रघुनन्दन ! वह जिन सुन्दरियोंको लाता था, उन्हें इसी कन्दरामें डालकर दरवाजेपर एक इतनी बड़ी शिला लगा दिया करता

वर्तन्तेऽग्रे नृपाणां च वैश्यानां बालिकाः प्रभो । वायुपर्णाशिनाः सर्वाः श्रीविष्ण्वर्पितमानसाः ॥५७॥
तत्तासां वचनं श्रुत्वा भिन्नरूपैः पुनः प्रभुः । ता उवाच स्त्रियः सोऽहं विष्णुरेव न संशयः ॥५८॥
तद्रामवचनं श्रुत्वा पुनस्ता राममब्रुवन् । दर्शयस्व निजं विष्णुरूपं चेत्सत्यवागसि ॥५९॥
ततस्ता दर्शयामास विष्णुरूपं निजं प्रभुः । तानि चत्वारि रूपाणि परावर्त्य रघूत्तमः ॥६०॥
ततस्ताः पुरतो विष्णुं दृष्ट्वा नेमुः स्वमस्तकैः । ततो विष्णुः स ताः प्राह वः संदेहो गतो न वा ॥६१॥
ता ऊचुर्दर्शनात्तेऽद्य भवक्लेशा गता हि नः । कियांस्तु तत्र सन्देहस्त्वज्ञानजनितः प्रभो ॥६२॥
ततः पुनः क्षणाद्रामो रूपं ता दर्शयन्मुदा । एकमेव हि सर्वासां मध्ये जनकजापतिः ॥६३॥
ततो रामोऽब्रवीत्ताः स वरं वरयतामिति । ता ऊचुः कामबाणेन पीडिता राघवं मुदा ॥६४॥
भव भर्ता त्वमेवाद्य गांधर्वविधिना वने ।
अस्माभिस्त्वं कुरुष्वात्र सुखं क्रीडां चिरं प्रभो ॥६५॥
ततो नय पुरीं स्वीयां नस्त्वं माऽन्यद्विचिंतय । तत्तासां वचनं श्रुत्वा राघवो वाक्यमब्रवीत् ॥६६॥
एकपत्नीव्रतं मेऽस्ति न वाक्य मम वै मृषा । ततस्ता विह्वला भूत्वा निपेतुर्जगतीतले ।।६७॥
पुनस्ताः प्राह रामः स शृणुध्वं वचनं मम । द्वापरे कृष्णरूपेण यूयं क्रीडां भजिष्यथ ॥६८॥
मित्रविंदा नाग्नजिती भद्राऽन्या लक्ष्मणाह्वया । एवं नामानि युष्माकं भविष्यंति तदा मया ॥६९॥
भविष्यंति विवाहाश्च सर्वासां नात्र संशयः । तदा नानाविधान् भोगान् भजध्वं वै मया सह ॥७०॥
तद्रामवचनं श्रुत्वा किंचित्तुष्टमनाः स्त्रियः । रामं प्रोचुः पुनर्वाक्यं त्वमग्रे गन्तुमर्हसि ॥७१॥
ताभिः शनैस्ततो रामो ययौ तुरगसंस्थितः । योजनोपरि ताः सर्वाः सहस्रं षोडशाः शुभाः ॥७२॥

था कि जिसे आपके सिवाय किसी अन्य व्यक्तिमें हटानेकी सामर्थ्य नहीं थी । वह हम लोगोंको इस कन्दरामें डालकर कहीं चला गया है । तबसे हम ब्राह्मणों, क्षत्रियों और वैश्याओंकी कन्याएँ यहां पड़ी हुई हैं । वायु तथा वृक्षोंका पत्तियां हमारा भोजन हैं और श्रीविष्णुभगवान्के चरणोंमें हमने अपने मन लगा दिये हैं। इस प्रकार उनकी बात सुनकर सबके समक्ष एक-एक स्वरूपसे खड़े श्रीरामचन्द्रजीने कहा कि जिन विष्णुमें तुमने अपना मन लगा रखा है, वह मैं ही हूँ । रामकी बात सुनकर उन स्त्रियोंने कहा कि यदि तुम यह सच कह रहे हो तो अपना विष्णुरूप हमें दिखाओ । इसके अनन्तर भगवान्ने अपने उन चारों स्वरूपोंको अपनेमें समेट लिया और विष्णुरूपसे सबको दर्शन दिया । जब उन्होंने विष्णुभगवान्को अपने सम्मुख देखा तो मस्तक झुकाकर प्रणाम किया। विष्णुभगवान्ने उनसे पूछा कि अब तो तुम्हारा सन्देह निवृत्त हुआ ? उन्होंने कहा कि आपके इन पुनींत दर्शनोंसे मेरा सब क्लेश दूर हो गया तो फिर अज्ञानसे जायमान सन्देहके विषयमें क्या कहना है ॥ ५५-६२ ॥ क्षणभरके बाद वे फिर रामके स्वरूपसे उनके सम्मुख खड़े दिखाई दिये और उनसे बोले कि तुम लोगोंकी जो इच्छा हो, वह वर माँगो। तब कामबाणसे पीड़ित होकर उन स्त्रियोंने कहा कि यदि आप हमारे ऊपर प्रसन्न हैं तो हम लोगोंके साथ गान्धर्व विवाह करके हमारे पति बनिये और अधिक समयतक आनन्दपूर्वक इस कन्दरामें हम लोगोंके साथ विहार कीजिए। उनकी यह प्रार्थना सुनकर रामने कहा कि ऐसा तो नहीं हो सकता। क्योंकि मैं एकपत्नीव्रतधारी हूँ। मैं कभी झूठ नहीं बोलता, तुमसे सच कह रहा हूँ। यह बात सुनते ही वे स्त्रियाँ मूर्छित होकर पृथ्वीपर गिर पड़ीं ॥ ६३-६७ ॥ ऐसी दशामें राम उनको समझाते हुए कहने लगे—इस प्रकार अधीर न होकर मेरी बात सुनो । अभी तो नहीं द्वापर युगमें कृष्णरूपसे मैं तुम लोगोंके साथ विहार करूँगा। मित्रविन्दा, नाग्नजिती, भद्रा तथा लक्ष्मणा इस प्रकार तुम लोगोंका नाम पड़ेगा और उस समय तुम सबका विवाह मेरे साथ होगा। इसमें कोई सन्देह नहीं है। उस समय तुम सब मेरे साथ नाना प्रकारके सुख भोगोगी। रामकी बातोंको सुनकर उनका मन कुछ सन्तुष्ट हुआ और कहा कि अब आप चाहें तो जा सकते हैं। राम उन चारों कन्याओंके साथ धीरे-धीरे आगे बढ़े । एक योजन आगे जाकर गण्डकी नदीके किनारे एक झाड़में

ददर्श गण्डकीतीरे वृक्षषण्डे रघूद्वहः। निमीलितदृशः शुष्कास्तपसा दग्धयौवनाः ॥७३॥

इति श्रीशतकोटिरामचरितांतर्गते श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये राज्यकाण्डे पूर्वार्धे
द्विजकन्याचतुष्टयवरदानं नामैकादशः सर्गः ॥ ११ ॥

द्वादशः सर्गः

(सोलह हजार ललनाओं तथा कालिन्दी आदि चार स्त्रियोंको रामका बरदान)

श्रीरामदास उवाच

अथ रामः शनैः सर्वाः स्पृष्ट्वा निजकरेण ताः। कृत्वा तारुण्यपूरौघपूरिताः प्राह सादरम् ॥ १ ॥
पूर्ववत्सकलं वृत्तं सर्वाः संश्राव्य विस्तरात्। वरं वरयतां शीघ्रमित्युक्त्वा च रघूत्तमः ॥ २ ॥
हतं तं दुन्दुभिं श्रुत्वा हर्षोत्फुल्लाननाः स्त्रियः। पूर्ववद्विष्णुरूपाणि सहस्राणि हि षोडश ॥ ३ ॥
सन्दर्शितानि रामेण तावंति च स्थितानि हि। रामरूपाणि ता दृष्ट्वा ज्ञात्वा विष्णुं परात्परम् ॥ ४ ॥
तं वरान्वरयामासुस्त्वन्नो भर्ता भव प्रभो। ततो राममुखाच्छ्रुत्वा चैकपत्नीव्रतस्थितम् ॥ ५ ॥
परस्परं ताः सम्मन्त्र्य प्रोचुः सर्वा मृगीदृशः। मया वृतस्त्वया चायं त्वया वृतस्तथा मया ॥ ६ ॥
एवं तासु च सर्वासु वदन्तीषु रघूत्तमः। श्रुत्वा तद्वचनं शिष्य तदा चित्तेऽविचारयत् ॥ ७ ॥
इमा वदंति किं सर्वा मां श्रुत्वाऽपि व्रतस्थितम्। बलात्कारेण मां भोक्तुं मन्त्रयन्ति परस्परम् ॥ ८ ॥

ब्रह्मरुद्रमघवादयः सुरा ये च सिद्धमुनयः पुरातनाः।
तेऽपि योगबलिनो विमोहिता लीलया तदबलाभिरद्भुतम् ॥ ९ ॥
योषितां नयनतीक्ष्णसायकैर्भ्रूलतासुदृढचापनिर्गतैः।
धन्विना मकरकेतुना हतः कस्य नो पतितो मनोमृगः ॥१०॥
तावदेव दृढचित्तता नृणां तावदेव गणना कुलस्य च।
तावदेव तपसः प्रगल्भता तावदेव नियमव्रतादयः ॥११॥

उन सोलह हजार स्त्रियोंको देखा। वे सब आँखें मूँदे थीं, तपस्यासे उनका शरीर सूख गया था और यौवन नष्ट हो चला था ॥ ६८–७३ ॥ इति श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये पं० रामतेजपाण्डेयविरचित'ज्योत्स्ना' भाषाटीकासहिते राज्यकाण्डे पूर्वार्द्धे एकादशः सर्गः ॥ ११ ॥

श्रीरामदास बोले—इसके अनन्तर रामने अपने हाथके स्पर्शसे उन सबको यौवनपरिपूर्ण कर दिया तो वे भी पहलेवाली चारों स्त्रियोंके समान अपना वृत्तान्त बता गयीं। रामने उनसे कहा कि तुम्हारी जो इच्छा हो, वह वरदान मुझसे माँग लो। उन्होंने भी जब दुन्दुभीके मरनेका समाचार सुना तो बहुत प्रसन्न हुईं। इसके अनन्तर रामने उन्हें भी अपना विष्णुरूप दिखा तथा सोलह हजार रामरूप धरकर प्रत्येक स्त्रीको अलग-अलग दर्शन दिया। स्त्रियोंने इस प्रकार रामरूपको देखकर उन्हें सर्वश्रेष्ठ विष्णुभगवान् जाना ॥ १–४ ॥ उन्होंने भी पहलेवालियोंकी तरह रामसे प्रार्थना की कि आप मेरे पति बनें। जब उनको रामने अपनेको एकपत्नीव्रती बतलाया तो वे आपसमें सलाह करके कहने लगीं कि जैसे मैंने इनको पसन्द किया है, उसी तरह तुमने भी तो किया है। तब आओ, हम सब मिलकर कोई ऐसा प्रयत्न करें कि जिससे हमारी कामना पूर्ण हो जाय। इस प्रकार जब रामने उनकी सलाह सुनी तो अपने हृदयमें विचार करने लगे कि एकपत्नीव्रतमें स्थित देखकर भी ये स्त्रियाँ बरबस मेरे साथ संभोग करना चाहती हैं ॥ ५–८ ॥ ब्रह्मा, रुद्र, इन्द्रादिक देवता एवं जितने पुरातन सिद्ध-मुनि हो गये हैं, वे सब योगी होकर भी कामिनियोंकी अद्भुत लीलासे मुग्ध हो गये थे ॥ ९ ॥ स्त्रियोंके नेत्ररूपी सायकको धनुर्धारी कामदेव जिसके ऊपर छोड़ता है तो किसका मनरूपी

यावदेव वनितोत्सवासवैर्न माद्यति द्रुतमदेन पूरुषः ।
मोहयंतु मदयन्तु रागिणं योषितः स्वचरितैर्मनोहरैः ॥१२॥
मोहयन्ति मदयन्ति मामिमा धर्मरक्षणपरं हि कैर्गुणैः ।
मांसरक्तमलमूत्रपूरिते योषितां वपुषि निर्गुणेऽशुचौ ॥१३॥
कामिनस्तु परिकल्प्य चारुतामारभन्ति सुविमूढचेतसः ।
दारुणः परिकीर्तिताऽङ्गनासन्निधिर्विमलबुद्धिवर्तिभिः ॥१४॥
यावदेव न समीपमागतास्तावदेव हि व्रजाम्यदृश्यताम् ।
तर्हि मे व्रतमिदं सुनिर्मलं नान्यथा कथमहं करोम्यहम् ॥१५॥
अथवा किं करिष्यन्ति मामेकदयिताप्रियम् । इति निश्चित्य श्रीरामस्तत्र तूष्णीं स्थितोऽभवत् ॥१६॥
एतस्मिन्नन्तरे सर्वास्तास्तं प्रोचुर्नृपोत्तमम् । वृतस्त्वं नूनमस्माभिर्नात्र कार्या विचारणा ॥१७॥
एकपत्नीव्रतं किं ते पार्थिवस्य रघूत्तम । अस्ति चेत्पूर्णतां प्राप्तं तत्फलं भोक्तुमर्हसि ॥१८॥
इत्युक्त्वा तास्तदा सर्वा गत्वा तत्संनिधिं जवात् । सव्यापसव्यबन्धेन भुजपाशान् प्रचक्रिरे ॥१९॥
तद्दृष्ट्वा राघवः प्राह शृणुध्वं वचनं मम । युष्माभिरुच्यते भद्रमनुकूलं प्रियं वचः ॥२०॥
व्रतिनस्तन्न योग्यं मे मा खेदं गन्तुमर्हथ । आकर्ण्य रामवाक्यानि तमूचुस्ताः समन्ततः ॥२१॥
सकामध्वनिनोत्कण्ठाः कोकिला इव माधवे ।

षोडशसहस्रस्त्रिय ऊचुः

धर्मादर्थोऽर्थतः कामः कामाद्धर्मफलोदयः ॥२२॥
इत्येव निश्चयं शास्त्रे वर्णयन्ति विपश्चितः । स कामो व्रतबाहुल्यात्पुरस्ते समुपस्थितः ॥२३॥
सेव्यतां विविधैर्भोगैः स्वर्गभूमिरियं ततः । श्रुत्वा तद्वचनं तासां रामस्ताः प्राह सस्मितः ॥२४॥

मृग उस बाणसे घायल नहीं हो जाता ॥ १० ॥ मनुष्यका चित्त तभी तक दृढ़ रहता है, तभी तक कुलकी मर्यादा रहती है, तभी तक तपस्यामें मन लगता है, तभी तक नियम-व्रत आदि होते हैं, जबतक स्त्रियोंके चञ्चल कटाक्षोंसे पुरुषका मन मतवाला नहीं हो जाता और जबतक स्त्रियाँ उनपर मोहिनी डालकर अपने मनोहारी हाव-भावोंसे पागल नहीं बना देतीं ॥ ११ ॥ १२ ॥ ये मुझे अपनी धर्मरक्षामें तत्पर जानकर भी अपने गुणोंसे मुग्ध करना चाहती हैं। मांस, रक्त और मल-मूत्रसे परिपूर्ण स्त्रियोंकी अपवित्र देहपर कामी पुरुष सौन्दर्यकी कल्पना करके आनन्द लूटते हैं। मेरी समझसे तो वे लोग पूरे बावले हैं। क्योंकि विमल बुद्धिवाले लोगोंका कहना तो यह है कि स्त्रियोंका संसर्ग बड़ा ही दारुण परिणामकारी होता है। अच्छा, जबतक ये मेरे समीप नहीं आ जातीं। इसी बीच मैं यदि चल दूँ तो अच्छा हो, मेरा व्रत निर्मल रह जाय। इसके सिवाय और कोई उपाय भी तो नहीं दीखता ॥ १३-१५ ॥ अच्छा, यह भी देख लूँ कि ये मेरे साथ क्या करती हैं। यह निश्चय करके रामचन्द्रजी चुपचाप बैठ गये ॥ १६ ॥ उसी समय उन सब स्त्रियोंने एक स्वरसे कहा कि हम लोगोंने आपको अपना पति मान लिया है। अब आप किसी प्रकारका विचार मत करिये ॥ १७ ॥ हे राम ! क्या आपने एकपत्नीव्रत पालन किया है ? यह यदि सत्य है तो अब उससे प्राप्त फलका उपभोग कीजिए ॥ १८ ॥ ऐसा कहकर वे सब उनके पास पहुँचीं और दाहिनी-बायीं दोनों भुजाओंसे रामको अपने भुजपाशमें भर लेनेकी चेष्टा करने लगीं ॥ १९ ॥ ऐसी अवस्थामें रामने उनसे कहा कि आप सब जो कुछ कह रही हैं, वह ठीक ही है। किन्तु हमारे जैसे व्रती मनुष्यके लिए वह उचित नहीं है। इस लिए तुम सब किसी प्रकारका खेद न करके ऐसी दुश्चेष्टासे अलग हो जाओ। इस तरह रामकी वाणी सुनकर चारों ओरसे वे सब कहने लगीं। उस समय कामवश उनके कण्ठकी ध्वनि वसन्त ऋतुके कोकिलके समान मधुर सुनाई देती थी ॥ २० ॥ २१ ॥ सोलह हजार स्त्रियाँ बोलीं—धर्मसे अर्थकी प्राप्ति होती है, अर्थसे काम प्राप्त होता है और कामसे धर्मफल मिलता है। विद्वान् लोग शास्त्रोंका यही निर्णय बतलाते हैं। वही काम आपके

श्रीरामदास उवाच

वरान् दास्यामि युष्माकं नान्यं श्रोष्यामि किंचन । इत्युक्ताः पुनरूचुस्ताः किं त्वं वदसि राघव ॥२५॥

ता ऊचुः

दिव्यौषधं ब्रह्मधियो रसायनं सिद्धिर्निधिः साधुकला वरांगनाः ।
मन्त्रस्तथा चान्नजले च धर्मतो नेमे निषेव्याः सुधिया समागताः ॥२६॥
कार्यं तु दैवाद्यदि सिद्धिमागतं तस्मिन्नुपेक्षां न च यांति नीतिगाः ।
यस्मादुपेक्षा न पुनः फलप्रदा तस्मान्न दीर्घीकरणं प्रशस्यते ॥२७॥
सांद्रानुरागाः कुलजन्मनिर्मलाः स्नेहार्द्रचित्ताः सुगिरः स्वयम्वराः ।
कन्याः सुरूपाः परिपूर्णयौवना धन्या लभन्तेऽत्र नरास्तु नेतरे ॥२८॥

क वयं भूरिसौंदर्यः क्वैकपत्नीव्रतं तव । तस्मादस्मानिदानीं त्वं मा निराकर्तुमर्हसि ॥२९॥
गांधर्वेण विवाहेन नान्यथा नोऽस्तु जीवितम् । श्रुत्वा वाक्यं तु तत्तासां राघवः प्राह ताः पुनः ॥३०॥
मो मृगाक्ष्यः कथं त्याज्यो धर्मो धर्मविचक्षणैः । धर्मश्चार्थश्च कामश्च मोक्षश्चैतच्चतुष्टयम् ॥३१॥
यथोक्तं सफलं ज्ञेयं विपरीतं तु निष्फलम् । तस्मान्मयोक्तं यत् पूर्वमेकपत्नीव्रतं निजम् ॥३२॥

अस्मिन् जन्मनि तन्नाहं त्यक्तुमिच्छामि भोः स्त्रियः ।
एवं श्रुत्वाऽऽशयं तस्य ताः समीक्ष्य परस्परम् ॥३३॥

करात्करान् प्रमुच्यास्य जगृहुरंघ्रिं तदाऽबलाः । अन्योन्यमंघ्रिं रामस्य भुजौ तु जगृहुश्च ताः ॥३४॥
एवं ताभिर्वेष्टमानमात्मानं वीक्ष्य राघवः । अन्तर्धानमगात्तत्र तासां मध्ये क्षणात् प्रभुः ॥३५॥
किं कुर्वंति त्विमाः सर्वा ह्यन्तर्धानं गते मयि । एवं तासां कौतुकं हि गुप्तरूपो ददर्श सः ॥३६॥

व्रतकी प्रबलतासे स्वयं प्राप्त हुआ ॥ २२ ॥ २३ ॥ विविध प्रकारके भोगोंका उपभोग करेंगे तो इसमें सन्देह नहीं है कि यह मर्त्यलोक ही आपके लिये स्वर्ग वन जायगा। उनकी बात सुनकर चकराये हुए रामचन्द्रजी कहने लगे कि सिवाय वर माँगनेके मैं तुम्हारी एक बात भी नहीं सुनूँगा। रामके ऐसा कहनेपर उन स्त्रियोंने कहा—हे राघव ! आप कह क्या रहे हैं? ॥२४॥२५॥ दिव्य औषधि, ब्रह्मको जाननेसे सम्बन्ध रखनेवाली बातें, रसायन, सिद्धिके खजाने, निधियाँ, अच्छी कलायें, अच्छी स्त्री और अन्न-जल पाकर सज्जनजन कभी नहीं छोड़ते ॥ २६ ॥ जो कोई काम दैवात् सिद्ध हो सकता है तो नीतिज्ञ जन उसकी कभी उपेक्षा नहीं करते। फिर उसकी उपेक्षा करनेसे कोई लाभ नहीं हो तो उसकी उपेक्षा ही क्यों की जाय। व्यर्थका आडम्बर बढ़ानेको क्या आवश्यकता ? ॥ २७ ॥ गाढ़े प्रेमयुक्त, अच्छे कुलमें उत्पन्न, जिनका चित्त स्नेहसे आर्द्र हो गया हो, जो अच्छी-अच्छी बातें करती हों, जो वरके पास स्वयं आ पहुँची हों, जिनका सुन्दर स्वरूप हो और जिनका यौवन भी पूरी तरह उभड़ आया हो। ऐसी स्त्रियोंको जो लोग पाते हैं, वे धन्य हैं। साधारण श्रेणीके लोग ऐसी स्त्रियोंको नहीं पाते ॥ २८ ॥ कहाँ हम जैसी सुन्दरी स्त्रियाँ और कहाँ आपका एकपत्नीव्रत। इस कारण हम फिर भी कहती हैं कि आप हमारा निरादर न कीजिए ॥ २९ ॥ बिना आपके साथ गान्धर्व विवाह किये हम लोग नहीं जी सकेंगी। उनकी बात सुनकर रामने कहा। श्रीराम बोले—हे मृगके समान नेत्रोंवाली स्त्रियों ! तुम कैसे यह कह रही हो कि कामको प्राप्त देखकर धर्मका परित्याग कर दो। धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष ये चार पदार्थ हैं। यदि एकके बाद एकका अच्छी तरह साधन किया जाता है तो वह सफल होता है। अन्यथा निष्फल हो जाता है अथवा विपरीत फल सामने आता है। अतः जो मैंने अपने एकपत्नीव्रतका कारण बतलाया है, उसका परित्याग नहीं कर सकता। इस प्रकार रामका आशय जानकर वे आपसमें एक दूसरेका मुँह
30 निहारने लगीं ॥ ३०–३३ ॥ तदनन्तर हाथ छोड़कर स्त्रियोंने रामका पैर पकड़ लिया, किन्तु कुछ स्त्रियोंने हाथ भी पकड़े रखा ॥ ३४ ॥ इस तरह उन लोगोंसे अपनेको घिरा हुआ देखकर राम वहीं ही अन्तर्धान हो गये।

अदृष्ट्वा राघवं सर्वास्ताः क्षणात्प्रमदोत्तमाः । दृष्ट्वा तदद्भुतं कर्म विस्मयाविष्टमानसाः ॥३७॥
वित्रस्तहृदयाः सर्वाः कुरंग्य इव कातराः । संभ्रांतनयना दीना इत्यूचुस्ताः परस्परम् ॥३८॥
व्याप्तं च हृदयं तासां तदैव विरहाग्निना । ज्वलज्ज्वालानलेनैव सुस्निग्धं सार्द्रकाननम् ।३९॥
त्यजेंद्रजालिकां मायां कांत दर्शय सत्वरम् । स्वात्मानं नर्मणा युक्तं प्राग्ग्रासे मक्षिकाऽपतत् ॥४०॥

स्त्रिय ऊचुः

हा कष्टं दर्शितः कस्माद्धात्रा किं रचितं त्विदम् ।
ज्ञातं महत्तमं तापं दातुं नस्त्वं समागतः ॥४१॥
कच्चित्ते निर्दयं चेतः कच्चिदस्मान् परीक्षसि ।
कच्चिद्रुष्टोऽसि हे कांत कच्चिन्मुष्णासि नो मनः ॥४२॥
कच्चिन्नो प्रत्ययोऽस्मासु कच्चिदस्मासु नो रतिः ।
कच्चिद्विनोदयसि नः कच्चिन्मायाविशारदः ॥४३॥

कच्चिच्चित्ते प्रवेष्टुं त्वं वेत्सि विज्ञानलाघवम् । कच्चिद्विनापराधं हि त्वमस्मासु प्रकुप्यसि ।४४॥
कच्चिद्दुःखं न जानासि परेषां विप्रलंभजम् । त्वद्दर्शनं विना नूनं हृदयेश्वर सांप्रतम् ॥४५॥
न जीवामोऽथ जीवामः पुनस्त्वद्दर्शनाशया । अस्मांस्तत्र नय त्वं हि यत्र नाथ गतो ह्यसि ।४६॥
सर्वथा दर्शनं देहि कारुण्यं भज सर्वथा । पर्यन्तं न हि पश्यंति कस्यचित्सज्जना जनाः ॥४७॥

इत्थं विलप्य ताः सर्वाः प्रतीक्ष्य च बहुक्षणम् ।
रामं द्रष्टुं वने सर्वा बभ्रमुस्ता इतस्ततः ॥४८॥
वृक्षान् वनेचरान् रामो दृष्टोऽस्माकं पतिर्न वा ।
एवं सर्वास्तु पप्रच्छू रामविश्लेषसज्वराः ॥४९॥

रे रे पिप्पल वृक्षाणामधिपस्त्वं ब्रवीहि नः । रामो दृष्टोऽथ वा नैव वयं त्वां शरणं गताः ।५०॥

फिर भी ये क्या करती हैं, यह देखनेके लिए राम गुप्तरूपसे वहाँ खड़े-खड़े देख रहे थे ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ क्षणभरमें रामको अलक्षित देखकर वे बहुत चकरायीं । फिर व्याकुल होकर हरिणियोंकी नाईं चञ्चल नेत्रोंसे इधर-उधर देखती हुई आपसमें कहने लगीं ॥ ३७ ॥ ३८ ॥ उस समय उनका हृदय विरहाग्निसे पूर्ण हो गया था । उनकी उस विरहाग्निकी ज्वालासे उस जङ्गलमें भी थोड़ी देरके लिए करुणाकी धारा बहने लगी ॥ ३९ ॥ वे बोलीं—हे कान्त ! इस ऐन्द्रजाल (ठगहारी) मायाका परित्याग करके हमें शीघ्र दर्शन दीजिए । हमने आपसे हँसी की और पहले ही ग्रासमें मक्खी गिरनेके समान इतना बड़ा विघ्न आकर उपस्थित हो गया ॥ ४० ॥ कितने दुःखकी बात है । हे विधातः ! तुम्हारी क्या इच्छा है ? हे चित्तचोर ! जान पड़ता है कि तुम हम सबको सन्ताप देनेके लिए ही यहाँ आये थे ॥ ४१ ॥ तुम्हारा हृदय ही निष्ठुर है या हम लोगोंकी परीक्षा ले रहे हो । हमसे नाराज हो या हमारा चित्त चुरा रहे हो ? ॥ ४२ ॥ क्या हमारे ऊपर तुम्हारा विश्वास नहीं है ? क्या हमसे प्रेम नहीं करते हो ? हम लोगोंके साथ ठठोली तो नहीं कर रहे हो ? क्योंकि तुम मायाजाल फैलानेमें भी बड़े निपुण हो ॥ ४३ ॥ तुम किसीके चित्तमें घुसनेका कोई वैज्ञानिक एवं सूक्ष्म साधन जानते हो । बिना किसी अपराधके हमसे इतने क्यों रूठ गये हो ? ॥ ४४ ॥ दूसरेको धोखा देनेमें जो दुःख होता है, क्या तुम उसे नहीं जानते ? बिना तुम्हारा दर्शन पाये हम लोग नहीं जी सकेंगी और यदि जीयेंगी भी तो तुम्हारे दर्शनोंकी ही इच्छासे, अन्यथा नहीं । हे नाथ ! हमें भी वहाँ ही ले चलिये, जहाँ आप गये हों ॥ ४५ ॥ ४६ ॥ दया करके हमें दर्शन दीजिए। सज्जनजन कभी किसीका दुःख नहीं देख सकते ॥ ४७ ॥ इस तरह बहुत देरतक विलाप करके उन्होंने उनके आनेकी प्रतिक्षा की । तब भी जब वे नहीं आये, तब वे उनको ढूँढनेके लिए वनमें इधर-उधर घूमने लगीं ॥ ४८ ॥ रास्तेके प्रत्येक वृक्ष और वनैले पशुओंसे वे रामविरहिणिया यह

भो भो तुलसि नो नाथस्त्वया रामो निरीक्षितः । वद शाखामृग त्वं नो वने रामो निरीक्षितः ॥५१॥
त्वं कोकिल सदा शब्दान् करोषि परमान् शुभान् ।
वदाद्य जानकीकांतस्त्वयाऽरण्ये निरीक्षितः ॥५२॥
भो कदंब-वद्स्व त्वं तव पृच्छामहे वयम् । दीनानाथो रमानाथः सीतानाथस्त्वयेक्षितः ॥५३॥
पिक त्वमुचरं देहि सदा शब्दान् करोषि हि । पतिर्नः श्रीपतिः सीतापतिर्दृष्टोऽथवा न वा ॥५४॥
भो वारण मदोन्मत्त नृवारणसमः प्रभुः ।
सप्तद्वीपपतिः श्रीमान् रामोऽरण्ये निरीक्षितः ॥५५॥
शुक नः कथयाद्य त्वं प्रभुर्दृष्टोऽथ वा न वा ।
वद पुण्ये सरिच्छ्रेष्ठे किं तूष्णीं संस्थिताऽधुना ॥५६॥
नः प्रभुः सप्तद्वीपानां प्रभुरत्र निरीक्षितः ।
भो वायो कथयाद्य त्वं सीतारामो निरीक्षितः ॥५७॥

श्रीरामदास उवाच

एवं ता रामविश्लेषसंभ्रांताः शुशुचुर्वने । ततस्ता गंडकीतीरं गत्वा गीतं प्रचक्रिरे ॥५८॥

स्त्रिय ऊचुः

किं प्रभो त्वया जानकी यदा तेन रक्षसाऽरण्यमध्यतः ।
स्वस्थलं हृता गौतमीतटात्तत्कृते त्वया नैव शोचितम् ॥५९॥१॥
त्वद्वियोगतस्तप्तमानसाः सर्वतो वने शोकमागताः ।
एकदा प्रभो देहि दर्शनं देहि नो वरान् माऽस्तु वै रतिः ॥६०॥२॥
नो वांछामो राघव त्वचो रतिमद्य यद्दत्तं भूसुरजाभ्यो वरदानम् ।
तद्वत्त्वं पूरय कामान्वरदानैर्वांछामस्ते सेवनमग्रचे जननेऽपि ॥६१॥३॥

पूछती जाती थीं कि तुमने हमारे पति रामको तो इधर कहीं नहीं देखा है ? ॥ ४९ ॥ वे कहती थीं कि हे वृक्षोंके राजा पिप्पलदेव ! हमें बताओ कि तुमने रामको तो नहीं देखा है ? हम आपकी शरणमें हैं ॥५०॥ हे तुलसी देवी ! तुमने तो रामको नहीं देखा है ? हे वानरगण ! इस वनमें तुमने कहीं रामको तो नहीं देखा है ? ॥ ५१ ॥ हे कोकिल ! तू बड़ी मीठी वाणी बोलता है, अब उसी वाणीमें हमें यह बता दे कि तूने वनमें कहीं रामचन्द्रको तो नहीं देखा है ? ॥ ५२ ॥ हे कदम्ब ! तुझसे हम सब स्त्रियाँ यही पूछना चाहती हैं कि तूने सीतापति रामको तो कहीं नहीं देखा ? ॥ ५३ ॥ अरे पिक ! तू सदा 'पीकहा-पीकहा' बोलता रहता है । अब हमें यह बता कि तूने कहीं जानकीवल्लभ रामको देखा है ? देखा हो तो बतला दे ॥ ५४ ॥ हे मतवाले गजराज ! मनुष्योंमें हाथीके समान श्रेष्ठ रामचन्द्रजीको तो तूने नहीं देखा है ? ॥ ५५ ॥ हे शुक ! तू ही बता दे कि इस वनमें कहीं रामको देखा है ? हे पवित्र नदी ! तू क्यों चुप है ? सप्तद्वीपके अधीश्वर और हम लोगोंके प्रभु रामचन्द्रजीको तो तूने नहीं देखा है ? यदि देखा हो तो बता दे। हे वायो ! कहो, तुमने इस वनमें कहीं सीतापति रामको देखा है ? ॥ ५६ ॥ ५७ ॥ श्रीरामदास कहने लगे—इस प्रकार रामके वियोगसे पगली-सी होकर वे स्त्रियाँ विलाप करती हुई चलती-चलती गण्डकी नदीके किनारे जाकर इस तरह प्रार्थनाभरे गायन गाने लगी—॥ ५८ ॥ हे प्रभो ! जब रावण वनमेंसे सीताका हरण करके अपनी राजधानी लङ्काको ले गया था, तब क्या उनके लिए आपने कोई शोक नहीं किया था ? ॥ ५९ ॥ १ ॥ हे नाथ ! आपके वियोगसे हमारा हृदय जला जा रहा है । शोकसे व्याकुल होकर हम सब इस वनमें आ पहुँची हैं। हे प्रभो ! हमें एक बार अपना दर्शन दे दें और कोई वरदान भी दे डालें। यदि आप हमसे प्रेम नहीं करना चाहते तो न करिए ॥ ६० ॥ २ ॥ हे राघव ! अबतक हम सब कामवासनामय रतिसुख चाहती थीं । अब उसकी इच्छा भी नहीं रह गयी । जिस प्रकार आपने ब्राह्मणकी कन्याओंको वरदान दिया था, उसी

अस्माभिर्यच्चंचलभावादपराद्धं तत्सर्वं त्वं मा स्मर पूर्वं करुणातः ।
नः प्राणास्ते दर्शनहेतोस्तनुमध्ये तिष्ठंति त्वां पदपल्लवयाच्ञा क्रियतेऽद्य ॥६२॥४॥
भो भो राघव मा रुष्ट त्वं क्रोधं मा भज दासीष्वद्य ।
पर्यंतं न हि पश्यंतीत्थं वांछामो न हि त्वत्तः कामम् ॥६३॥५॥
देहि त्वं निजदर्शनलाभं जन्मान्यत्रेऽर्पय नो वरदानम् ।
पाहि त्वं शरणं ह्युपयाताः सर्वांस्तारय नः प्रणमामः ॥६४॥६॥
राम त्वं किं निर्दयहृदयस्त्वसि नः किं नायात्यद्य स्त्रीजनकरुणा हृदये ते ।
इत्थं क्रोधं त्वत्पदयुगले पतितासु कर्तुं विष्णो नार्हसि वरदो भव नोऽद्य ॥६५॥७॥
बाले दीने स्त्रीजनविमले तनये स्वे नो कुर्वन्तीत्थं बहुविमला मतिमंतः ।
क्रूरं क्रोधं त्वं त्यज वरदो भव नोऽद्य वारं वारं करकमलैस्त्वां प्रणमामः॥६६॥८॥
हे स्वामिन् राघव रमेश्वर रावणारे सीतापते रिपुनिषूदन कंजनेत्र ।
त्वं देहि राम निजदर्शनमद्य विष्णो दुःखार्णवात्परतटं नय कामिनीर्नः ॥६७॥९॥
त्वत्पादपद्मवरसेवनमर्थयामो जन्मांतरे कुरु दयां करुणासमुद्र ।
नोचेत्तवाद्य विरहान्निजजीवितानि त्यक्ष्याम एव नियतं सहसाऽद्य नद्याम् ॥६८॥१०॥

श्रीरामदास उवाच

नारीगीतं राघवश्चापि श्रुत्वा प्रत्यक्षोऽभूत्कामिनीनामथाग्रे ।
दृष्ट्वा रामं ताः स्त्रियश्चातितुष्टाः प्रोत्फुल्लास्यास्तं प्रणेमुः शिरोभिः ॥६९॥११॥
नारीगीतं मानवश्चापि श्रुत्वा सर्वान् कामान्प्राप्नुयान्निश्चयेन ।
तस्मादेतत्सर्वदा कीर्तनीयं श्लोकार्कीयं प्रापठं छन्दचित्रम् ॥७०॥१२॥

तरह वरदान देकर हमारी भी कामना पूर्ण करें। हम किसी अगले जन्ममें ही आपकी सेवा करना चाहती हैं ॥६१॥३॥ हमने करुणावश अथवा चंचलतासे कोई अपराध किया हो तो उसे आप भूल जायें। मेरे प्राण आपके दर्शनार्थ व्याकुल हैं। इस समय हम आपके दर्शनोंकी ही भीख माँग रही हैं ॥ ६२ ॥ ४ ॥ हे राघव! आप नाराज न हों और दासियोंपर क्रोध न दिखलायें। हम सब आपसे कामवासनाकी पूर्ति नहीं चाहतीं ॥ ६३ ॥ ५ ॥ इस समय आप हमें अपना दर्शन और दूसरे जन्मके लिये वरदान दें। हम सब आपकी शरणमें हैं। आप हमारी रक्षा करके हमारा निस्तार करिए। हम आपको प्रणाम करती हैं ॥ ६४ ॥ ६ ॥ हे राम! क्या आप इतने निर्दयी हैं कि जो हम स्त्रियोंको इस प्रकार दुखी देखकर भी आपके हृदयमें दया नहीं आती? हे विष्णो! आपके पैरोंमें पड़ी हुई हम अबलाओंपर आपको इस प्रकार क्रोध नहीं करना चाहिए। हमपर दया करके हमें वरदान दीजिए ॥ ६५ ॥ ८ ॥ बुद्धिमान् लोग बच्चोंपर, गरीब स्त्रियोंपर तथा अपनी सन्तानपर इस प्रकार कोप नहीं किया करते। इस कारण अपने क्रूर कोपका प्रत्याहार कीजिए। हम सब हाथ जोड़कर प्रणाम करती हैं, हमें वरदान दीजिए ॥ ६६ ॥ ७॥ हे नाथ! हे राघव! हे रमेश्वर! हे रावणारे! हे सीतापते! हे रिपुनिषूदन! हे कञ्जनेत्र! हे विष्णो! हे राम! अपना दर्शन देकर आप हम कामिनियोंको दुःखसागरसे पार कीजिए॥६७॥९॥ हे करुणाके समुद्र! अब दया कीजिए। हम दूसरे जन्ममें आपकी सेवा करनेकी इच्छुक हैं। हम आपसे यही भिक्षा माँगती हैं। यदि ऐसा नहीं करेंगे तो आपके विरहदुःखसे दुःखित हम सब स्त्रियाँ इसी गण्डकी नदीमें कूदकर अपने प्राण त्याग देंगी ॥ ६८ ॥ १० ॥ रामदासने कहा—इस प्रकार उन कामिनियोंका विलाप सुनकर रामचन्द्रजी उनके सामने प्रकट हो गये। रामको प्रत्यक्ष देखकर वे स्त्रियाँ बहुत प्रसन्न हुईं और विकसित वदन होकर बार-बार प्रणाम करने लगीं ॥ ६९ ॥ ११ ॥ प्रत्येक मनुष्य इस नारीगीतको सुनकर अपनी अभिलषित कामनाएँ पूर्ण कर सकता है। इसलिए लोगोंको चाहिए कि सदा इस नारीगीत-

अथ रामो ददौ ताभ्यो वरांस्तास्तोषयन् प्रभुः । यूयं शृणुध्वं भो नार्यः पुरा व्यासाग्रतो मया ॥७१॥
बहुस्त्रीहेतुना रुक्ममूर्तयः षोडशार्पिताः ।
तासां दानेन संतुष्टास्ते विप्रा मां तदाऽब्रुवन् ॥७२॥
फलं सहस्रगुणितं भवास्तु रघुनन्दन । अतस्तत्फलतश्चाहं द्वापरे कृष्णरूपधृक् ॥७३॥
करोमि पाणिग्रहणं युष्माकं द्वारकापुरि ।
यूयं नानानृपाणां च भवध्वं बालिकास्तदा ॥७४॥
भौमासुरस्तदाऽयं वै दुंदुभिस्तु भविष्यति । भौमासुरश्च युष्माकं पूर्ववत्स हरिष्यति ॥७५॥
तदा सर्वा मोचयामि हत्वा तं जगतीसुतम् ।
ततो मया सुखेनैव क्रीडध्वं हि यथारुचि ॥७६॥
एवं ता रामवाक्यं तच्छ्रुत्वा प्रमुदिताननाः ।
आनन्दोत्फुल्लनयनाः सुखमापुर्वराङ्गनाः ॥७७॥
एतस्मिन्नंतरे रामं पश्यन्तो लक्ष्मणादयः । शनैस्तत्राययुस्तत्र पदांकितपथा प्रभुम् ॥७८॥
षोडशस्त्रीसहस्राणां मध्ये दृष्ट्वा रघूत्तमम् । परं विस्मयमापुस्ते प्रणेमुर्जगदीश्वरम् ॥७९॥
श्रुत्वा राममुखात्सर्वं यथावृत्तं सविस्तरम् । सर्वे सन्तुष्टमनसस्तस्थुः श्रीराघवाग्रतः ॥८०॥
ततो रामाज्ञया दूताः शतशोऽथ सहस्रशः ।
वाहनान्यानयामासुः सेनावासस्थलान्मुदा ॥८१॥
तेषु ताः स्त्रीः सुसंस्थाप्य वाहनेषु रघूत्तमः ।
शनैः सेनानिवासे स ययौ सीतांतिके प्रभुः ॥८२॥
ततस्ता जानकीं नेमुः सीतां वृत्त रघूत्तमः । यथा वृत्तं तथा सर्वं कथयामास कौतुकात् ॥८३॥
ततस्ताः पूजयामास वस्त्राभरणैरसौ । ततो रामः स कासारं सेनावासस्थलांतिके ॥८४॥

के श्लोकोंका पाठ किया करें ॥ ७० ॥ १२ ॥ इसके अनन्तर उनको वरदान देते हुए रामचन्द्रजी कहने लगे—हे स्त्रियों ! बहुत दिनोंकी बात है कि मैंने एक समय बहुत-सी स्त्रियोंको पानेकी इच्छासे व्यासजीके सम्मुख सुवर्णकी सोलह स्त्रियाँ बनवाकर ब्राह्मणोंको दान दिया था। इससे प्रसन्न होकर उन विप्रोंने हमसे कहा—हे रघुनन्दन ! तुम्हें इस दानका सहस्रगुना फल प्राप्त होगा अर्थात् सोलहके बदले सोलह हजार स्त्रियाँ प्राप्त होंगी। अतएव उनके आशीर्वादानुसार द्वापरमें कृष्णका रूप धारण करके ॥ ७१–७३ ॥ मैं तुम सबोंका द्वारकापुरीमें पाणिग्रहण करूँगा। उस जन्ममें तुम अनेक राजाओंकी कन्याएँ होओगी। दुन्दुभी राक्षस जिसको कि बालिने मार डाला है, उस जन्ममें भौमासुर होगा और इस जन्मके समान ही तुम्हारा हरण करेगा ॥ ७४ ॥ ७५ ॥ उस समय मैं भौमासुरको मारकर तुम सबोंको छुड़ाऊँगा और तबसे तुम सब सानन्द हमारे साथ विहार करोगी ॥ ७६ ॥ इस प्रकार रामके वाक्य सुनकर उनका चेहरा खिल उठा और वे अत्यन्त आनन्दित हुईं ॥ ७७ ॥ इसी समय रामको खोजते हुए उनके पैरोंके निशान देखते-देखते लक्ष्मणादि साथी भी वहीं आ पहुंचे। जब उन्होंने सोलह हजार स्त्रियोंके बीचमें रामको देखा तो बड़े विस्मित हुए और जगदीश्वर रामको उन लोगोंने प्रणाम किया ॥ ७८ ॥ ७९ ॥ जब रामने उन स्त्रियोंका वास्तविक वृत्तान्त बतलाया तो वे बहुत प्रसन्न हुए और रामके आगे बैठ गये ॥ ८० ॥ इसके अनन्तर रामकी आज्ञासे हजारों वाहन आये। जिनपर उन स्त्रियोंको बिठाकर रामचन्द्रजी शिविरकी ओर चले, जहाँ कि सीताजी बैठी थीं ॥ ८१ ॥ ८२ ॥ वहाँ पहुंचकर उन सब स्त्रियोंने सीताको प्रणाम किया और रामने उनका जो सच्चा-सच्चा हाल था, सो कह सुनाया ॥ ८३ ॥ इसके बाद सीताने अनेक वस्त्रों-आभरणोंसे उनका सत्कार किया। थोड़ी देर बाद रामने अपने शिविरके पास ही एक उत्तम सरोवर देखा, जो अपनी

ददर्श सुमहच्छ्रेष्ठं स्पर्द्धयंतमपां पतिम् । घनपादपमध्यस्थं सुतीर्थसलिलं शुभम् ॥८५॥
विशालं विकचांभोजमधुमत्तमधुव्रतम् । पद्मिनीपत्रसंयुक्तं छन्नं मरकतैरिव ॥८६॥
स्वच्छंदमुच्छलन्मत्स्यं स्वच्छं साधुमनो यथा । चलज्जलचरोद्भिन्नवीचिराजिविराजितम् ॥८७॥
अन्तर्ग्राहगणक्रूरं खलानामिव मानसम् । क्वचिच्छैवालदुर्गम्यं कृपणस्येव मंदिरम् ॥८८॥
नानाविहङ्गसर्वार्तिं शमयंतं दिवानिशम् । उदारमिव सर्वस्वैरापन्नार्तिहरं महत् ॥८९॥
तपयंतं हिमाम्भोभिः श्वापदान्स्वपितनिव । हरंतं सर्वसंतापं हिमांशुमिव चाह्निकम् ॥९०॥

तं दृष्ट्वाऽभूत्सुसंतुष्टः सीतया रघुनन्दनः ।
तत्र स्नात्वा सुखं रामः कृतमाध्याह्निकक्रियः ॥९१॥

भुक्त्वा बन्धुजनैः सर्वैराखेटगणसंवृतः । उवास सरस्तीरे रम्याः संकथयन्कथाः ॥९२॥

ततः शरासने बाणं कृत्वा रात्रौ स्थितास्तरौ ।
व्याधाः संधानमास्थाय रुरुधुः ककुभां पथः ॥९३॥

एवं स्थितेषु वीरेषु वने विस्तार्य वागुराः । निशार्धे निर्गतं यूथं शूकराणां सरस्तटे ॥९४॥
चरित्वा सारसीकंदान् पपात व्याधसंकुले । राज्ञा विद्धास्तदा क्रोडा व्याधैश्च बहवो हताः ॥९५॥

क्षणेनैव वराहास्ते विद्धाः पेतुर्महीतले ।
तान्हत्वा तुमुलं नादं चक्रुर्व्याधाः सुदर्पिताः ॥९६॥

धावन्तोऽपि मुदा तत्र मिलिता यत्र भूपतिः । तानादाय भटैर्भूपः सेनावासं ययौ पुनः ॥९७॥

एवं सप्तदिनान्येव स्थित्वा रामो वने सुखम् ।
भुक्त्वा नानाविधान् भोगान् सीतया स्वपुरीं ययौ ॥९८॥

गहराईसे समुद्रको मात कर रहा था। उसके आस-पास घनी वृक्षावली लगी हुई थी, स्थान-स्थानपर घाट बने हुए थे और पवित्र जल भरा था ॥ ८४ ॥ ८५ ॥ उसका लम्बाई चौड़ाई भी थोड़ी नहीं थी, खिले हुए कमलके फूलोंपर भौंरे गुञ्जार रहे थे, फैले हुए पुरइनके बड़े-बड़े पत्ते मरकतके समान सुन्दर लग रहे थे ॥ ८६ ॥ सज्जन प्राणीके मनकी तरह स्वच्छन्दतापूर्वक मछलियाँ उछल रही थीं। जलचर प्राणियोंके इधर-उधर चलनेके कारण बार-बार उसमें लहरें उठ रही थीं ॥ ८७ ॥ खल मनुष्यके हृदयके समान उसमें कितने ही घड़ियाल भरे थे। कहीं-कहीं कंजूस प्राणीके घरकी तरह सेवार भरे थे, इससे उसमें प्रविष्ट होना दूभर लगता था ॥ ८८ ॥ दिनरात कितने ही पक्षी आश्रय लेकर अपनी थकावट दूर कर रहे थे। इससे वह सरोवर किसी ऐसे सज्जनके समान मालूम पड़ता था, जो अपना सर्वस्व लुटाकर गरीबों तथा शरणागत जनोंकी रक्षामें तत्पर हो ॥ ८९ ॥ अपने ठंडे जलसे वह उसी तरह वनैले जीवोंकी प्यास बुझा रहा था, जैसे चन्द्रमा दिन भरके परिश्रमसे दुःखी जनोंकी समस्त पीड़ा रातमें हरमे लिया करता है ॥ ९० ॥ उस सरोवरको देखकर सीता तथा रामचन्द्र बहुत प्रसन्न हुए। उसमें स्नान किया, मध्याह्न कालकी नित्यक्रियायें कीं और भोजन किया। फिर सारे शिकारियोंको साथ लेकर उसी तड़ागके समीप डेरा डाल दिया और अनेक तरहकी कहानियाँ कहते-कहते समय काटने लगे ॥ ९१ ॥ ९२ ॥ जब रात्रिका समय हुआ तो बहेलियोंने अनेक सामान लेकर चारों ओरसे उस तड़ागको घेर लिया और रामचन्द्रजी अपना धनुष-बाण ठीक करके एक वृक्षके ऊपर जा बैठे ॥ ९३ ॥ जब कि व्याधे जाल बिछाकर तत्परताके साथ सरोवरके चारों तरफ बैठ गये और ठीक आधी रातका समय हुआ, तब बनैले शूकरोंका एक यूथ आ पहुँचा ॥ ९४ ॥ तालाबमें उत्पन्न कन्द खाकर वह शूकरयूथ बहेलियोंके ऊपर टूट पड़ा। उस समय बहुतसे शूकरोंको रामचन्द्रजीने मार डाला और बहुतोंको बहेलियोंने समाप्त कर दिया ॥ ९५ ॥ क्षणभरमें वे सारे शूकर मार डाले गये। उनको मारनेके अनन्तर व्याधोंने प्रसन्नताका कोलाहल मचाया ॥ ९६ ॥ तब बहेलिये मारे खुशीके दौड़ते हुए उस स्थानपर पहुँचे, जहाँ रामचन्द्रजी बैठे थे। तब राम उन सबोंको तथा

तदा विप्रान्नृपान् वैश्यान् समाहूय रघूत्तमः ।
या यस्य दुहिता नारी या यस्य पुत्रपुत्रिका ॥९९॥
तस्मै तस्मै ददौ तां तामेवं सर्वा व्यसर्जयत् ।
वस्त्रालंकारभूषाद्यैः शोभयित्वा पृथक् पृथक् ॥१००॥
ते विप्राद्याः पुनर्जाता मेनिरे निजबालिकाः ।
ततः स्वं स्वं पुरं नीत्वा नृपा वैश्याः प्रभोर्गिरा ॥१०१॥
नृपपुत्रैर्वैश्यपुत्रैस्तासां चक्रुः सुमंगलम् । रामप्रसादात्ताः प्रापुः पतिसंगसुखं स्त्रियः ॥१०२॥
ताश्चापि द्विजपुत्र्यस्तु पितॄणामेव सद्मसु ।
निन्युः स्त्रीयायुषं तत्र व्रतचर्यादिभिः सुखम् ॥१०३॥
विवाहकालातिक्रमणान्न ता उद्वाहिता द्विजैः ।
जन्मांतरेण ता सर्वाः कृष्णः पत्नीः करिष्यति ॥१०४॥
अथ रामः सुबाहोश्च पुत्रस्य मथुरां पुरीम् । विवाहार्थं सीतया स पौरैर्जानपदैर्ययौ ॥१०५॥
तत्र वैवाहिकं कर्म संपाद्य रघुनन्दनः । तस्थौ तत्र कियत्कालं मथुरायां यथासुखम् ॥१०६॥
एकदा जानकीवाक्यात्कालिंद्याः सैकते शुभे । निशायां हेमपर्यंके सुखं सुष्वाप राघवः ॥१०७॥
एतस्मिन्नंतरे दासीर्दासान् दृष्ट्वा विनिद्रितान् ।
स्त्रीरूपेणाथ कालिंदी रामांघ्रिं संस्पृशच्छनैः ॥१०८॥
ततो रामः प्रबुद्धोऽभूद्ददर्श पुरतः स्थिताम् ।
सूर्यस्य तनयां पुण्यां कालिंदीं कंजलोचनाम् ॥१०९॥
दिव्यालंकारवस्त्राढ्यां दिव्यनूपुरगर्जिताम् । नीलोत्पलदलश्यामां हेमकुंभपयोधराम् ॥११०॥
स्मिताननां सुरंभोरु किंकिणाजालमालिकाम् ।
केयूरकुंडलाढ्यां तां प्रोत्तुङ्गजघनां वराम् ॥१११॥

सैनिकोंको साथ लेकर अपने शिविरको लौट आये । इस प्रकार सात दिन वनमें रहते हुए अनेक तरहके सुखोंका उपभोग करके राम अपनी अयोध्यापुरीको लौट पड़े ॥ ९७ ॥ ९८ ॥ इसके अनन्तर दुन्दुभी द्वारा हरण की हुई उन कन्याओंको जो जिसकी पुत्री थी, उन-उन राजाओं, ब्राह्मणों तथा वैश्योंको बुलाकर दे दी और उन बालिकाओंको वस्त्राभूषणादिसे अलंकृत करके विदा कर दिया ॥ ९९ ॥ १०० ॥ वे ब्राह्मणादिक अपनी कन्याओंका पुनर्जन्म मानकर रामके आज्ञानुसार अपने-अपने घरोंको ले गये और नृपों तथा वैश्योंने अच्छे वरोंके साथ उनका विवाह कर दिया । रामचन्द्रजीकी कृपासे उन सबको पतिके साथ विहार करनेका सुख प्राप्त हुआ ॥१०१॥१०२॥ उनमेंसे जो ब्राह्मणकी बालिकायें थीं, वे विवाहकाल व्यतीत हो जानेके कारण विवाह न करके यूँही पिताके घरपर व्रत-उपवासादि करके अपना जीवन यापन करने लगीं । क्योंकि उनको यह विश्वास हो गया था कि दूसरे जन्ममें स्वयं श्रीकृष्णचन्द्रजी मेरे पति होंगे ॥ १०३ ॥ १०४ ॥ कुछ दिनों बाद सुबाहुका विवाह करनेके लिये रामचन्द्रजी सीताके साथ मथुरापुरी गये ॥ १०५ ॥ वहाँपर विवाहका सारा कार्य सम्पादन करके कुछ दिन मथुरामें ही रहे ॥ १०६ ॥ एक दिन सीताके कहनेसे रामचन्द्रजी यमुनाके तटपर सोये । उस समय वहाँके सब दासों और दासियोंको निद्रित देखकर एक स्त्रीका रूप धारण किये यमुना स्वयं रामके पास गयी और धीरेसे उनका पैर पकड़ा ॥ १०७ ॥ १०८ ॥ उसके ऐसा करनेपर रामचन्द्रजी जाग गये और सामने सूर्यकी पुत्री तथा कमलके समान नेत्रोंवाली कालिन्दीको देखा ॥ १०९ ॥ उस समय उसके शरीरमें दिव्य वस्त्राभूषण पड़े थे । पैरोंमें सुन्दर नूपुर छनछना रहे थे । नील कमलकी पंखुड़ियोंके समान उसका रङ्ग था और सुवर्णकलशके समान उसके स्तन थे ॥ ११० ॥ मुस्कराता हुआ मुख

तां तादृशीं प्रभुर्दृष्ट्वा क्षणं तूर्णीं व्यचिन्तयत् । धन्यो विधाता येनेयं कालिंदी रचिता पुरा ॥११२॥
इत्याश्चर्यमना भूत्वा तत्सौंदर्यं व्यलोकयत् । अथ रामः स तां प्राह तदागमनकारणम् ॥११३॥
सा प्राह तं विलज्जंती सर्वं त्वं वेत्सि राघव । ततो रामोऽब्रवीद्वाक्यं चैकपत्नीव्रतं मम ॥११४॥
इह जन्मनि कालिंदि त्वं याहि स्वस्थलं जवात् ।
यावत्सीता प्रबुद्धा न जायेत तावदेव हि ॥११५॥
सा रामवाक्शरेणैव भिन्नमर्मस्थला भुवि । मूर्च्छामवाप तत्रैव तां दृष्ट्वा सोऽब्रवीत् पुनः ॥११६॥
उत्तिष्ठोत्तिष्ठ कालिंदि शृणु त्वं वचनं मम । द्वापरे कृष्णरूपेण त्वां करिष्याम्यहं स्त्रियम् ॥११७॥
विवाहेनैव गच्छाद्य तदा भोक्ष्यसि मत्सुखम् ।
इति श्रुत्वा रामवाक्यं किंचित्तुष्टमना नदी ॥११८॥
नत्वा रामं ययौ तूर्णीं रामध्यानपराऽभवत् ।
ततो रामोऽपि सैन्येन सीतया स्वपुरीं ययौ ॥११९॥
एवं साकेतनगरे रामः स्त्रीबंधुदेहजैः ।
चरितान्यकरोन्नाना पापघ्नानि श्रवादिना ॥१२०॥

इति श्रीशतकोटिरामचरितांतर्गते श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये राज्यकाण्डे पूर्वार्द्धे षोडशसहस्राधिककालिंद्यादिपञ्चस्त्रीवरदानं नाम द्वादशः सर्गः ॥ १२ ॥

था, केलेके खम्भेकी नाईं उसकी जंघाएँ थीं। किंकणी, केयूर, कुण्डल आदि आभूषण अपनी छटा दिखा रहे थे ॥ १११ ॥ इस प्रकारकी एक अपरिचित नारीको अपने सामने देखकर राम थोड़ी देर तक यह सोचते रहे कि विधाता धन्य है, जिसने कालिन्दी जैसी नारीकी रचना की है ॥ ११२ ॥ इस प्रकार विचार करते हुए वे उसका सौन्दर्य देखते रहे। इसके अनन्तर उससे कहने लगे-तुम अपने आनेका कारण बतलाओ ॥ ११३ ॥ रामकी बात सुनकर सकुचाती हुई कालिन्दीने कहा—हे राघव! तुम सब कुछ जानते हो। फिर रामने कहा कि हे कालिन्दी! इस जन्ममें मैंने एकपत्नीव्रत धारण कर रक्खा है। इसलिये सीता जाग जाय, इसके पहले ही तुम यहाँसे चली जाओ ॥ ११४ ॥ ११५ ॥ रामके ये वाक्य बाणके समान उसके हृदयमें लगे, जिससे वह वहींपर मूर्च्छित होकर गिर पड़ी। फिर रामने कहा—कालिन्दी! उठो-उठो, मेरी बात तो सुनो। द्वापर-युगमें मैं कृष्ण होकर तुम्हें अपनी स्त्री बनाऊँगा, आज तुम लौट जाओ। जन्मान्तरमें तुम मेरे साथ विहार करके सुखी होओगी। इस प्रकारकी बात सुनकर यमुनाको कुछ सन्तोष हुआ ॥ ११६–११८ ॥ तदनन्तर रामको प्रणाम करके उनका ध्यान करती हुई वह लौट गयी। उधर राम भी अपनी सेना तथा सीताके साथ अयोध्या चले गये ॥ ११९ ॥ इस तरह रामचन्द्रजी साकेतपुरीमें अपने पुत्रों तथा सीताके साथ अनेक लीलायें किया करते थे, जिनका श्रवण करनेसे समस्त पाप नष्ट हो जाते हैं ॥ १२० ॥ इति शतकोटि-रामचरितांतर्गते श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये पं० रामतेजपांडेयविरचित'ज्योत्स्ना'भाषाटीकासमन्विते राज्यकाण्डे पूर्वार्द्धे द्वादशः सर्गः ॥ १२ ॥

॥ इति राज्यकाण्डं पूर्वार्द्धं समाप्तम् ॥

श्रीरामचन्द्रार्पणमस्तु ।

श्रीसीतापतये नमः

श्रीवाल्मीकिमहामुनिकृतशतकोटिरामचरितान्तर्गतं—

आनन्दरामायणम्

'ज्योत्स्ना'ऽभिधया भाषाटीकयाऽऽटीकितम्

राज्यकाण्डम् (उत्तरार्द्धम्)

त्रयोदशः सर्गः

(राम द्वारा राज्यभरमें हास्यपर प्रतिबन्ध)

श्रीरामदास उवाच

अथैकदा रमाजानिः सुहृद्भिः सदसि स्थितः । वीजितश्चामरेणैव लक्ष्मणेनातिशोभितः ॥ १ ॥
एतस्मिन्नन्तरे तत्र पौरः कश्चित्सभास्थितः । वाराङ्गनानां नृत्यादिं दृष्ट्वा हास्यं चकार सः ॥ २ ॥
तद्धास्यं राघवः श्रुत्वा सस्मार पूर्वचेष्टितम् । लंकायां युद्धसमये रावणस्य शिरांसि खात् ॥ ३ ॥
रामबाणान्मृतिं लब्ध्वाऽस्माभिश्चेति विहस्य च । श्रीरामं वन्दनं कर्तुं पतन्ति स्म प्रभुं पुनः ॥ ४ ॥
तेषां विक्रालतां दृष्ट्वा दंतादीनां रघूत्तमः । मामत्तुं हि पुनर्यान्ति शिरांस्येतानि खादिति ॥ ५ ॥
रामो भीत्या पुनस्तानि खे शिरांस्यक्षिपच्छरैः । एकोत्तरशतान्येव वारं वारं त्वरान्वितः ॥ ६ ॥
तद्वृत्तं राघवः स्मृत्वा किं दशास्यस्य वै शिरः । समागतं सभामध्येऽत्रेति पार्श्वेऽव्यलोकयत् ॥ ७ ॥
मायाविनो राक्षसाश्च संत्यत्रेति विचिंत्य च । एवं यदा यदा हास्यं स शुश्राव रघूत्तमः ॥ ८ ॥

श्रीरामदासजी बोले—एक दिन रामचन्द्रजी अपने मित्रोंके साथ सभामें बैठे थे। उस समय रामपर चँवर चल रहे थे और लक्ष्मण रामके पास बैठे हुए थे। इसलिए रामकी शोभा कईगुना अधिक दिखायी दे रही थी ॥ १ ॥ इसी समय सभाका कोई नागरिक वेश्याओंका नृत्य देखकर जोरोंके साथ हँस पड़ा ॥ २ ॥ उस हास्यको सुना तो रामको उस समयकी एक बात याद आ गयी, जब वे लंकामें रावणके मस्तकोंको अपने बाणोंसे काटकर आकाशमें उड़ा देते थे तो वे मस्तक यह समझकर कि रामके बाणोंसे मेरी बुद्धि ठिकाने आयी है। इस भावसे हँसते हुए ऊपरसे फिर नीचे आकर रामके चरणोंमें लोटते हुए वन्दना करने लगते थे ॥ ३ ॥ ४ ॥ उनके दाँतों आदिकी विकरालता देखकर रामको यह ख्याल होता था कि ये मस्तक मुझे खाने आ रहे हैं। इस लिए उन्हें फिर बाणों द्वारा आकाशमें उड़ा दिया करते थे। यह उपाय रामको एक दो बार नहीं – पूरे एक सौ एक बार करने पड़े थे ॥ ५ ॥ ६ ॥ उसी बातको स्मरण करके रामने सोचा कि कहीं रावणके मस्तक ही तो इस सभामें आकर ठहाका नहीं मार रहे हैं। इस भावसे उन्होंने अपने आस-पास विस्मयभरे नेत्रोंसे देखा ॥ ७ ॥ क्योंकि उनका ख्याल था कि राक्षस मायावी होते हैं, शायद यहाँ भी आ जायें तो क्या आश्चर्य है। इस तरह राम जब कभी किसीका हास्य सुनते

तदा तदा पूर्ववृत्तं स्मृत्वा पार्श्वे व्यलोकयत् । ततो रामः क्षणं चित्ते चिंतयामास सादरम् ॥ ९ ॥
यदा यदा श्रूयतेऽत्र हास्यं केनापि यत्कृतम् । तदा तदा दशास्यस्य शिरोहास्यं स्मराम्यहम् ॥१०॥
मायाविनो राक्षसास्ते मां विस्मार्य पुनश्चिरात् । मामत्तुमत्र यास्यंति त्विति मत्वा स्वचेतसि ॥११॥
अन्यच्च निंदितं हास्यं नीतिशास्त्रेषु सर्वदा । अतो हास्यं वर्जयामि सर्वेषां भूनिवासिनाम् ॥१२॥
इति निश्चित्य हृदये लक्ष्मणं वाक्यमब्रवीत् । दुंदुभिं घोषयस्वाद्य पुर्यां राष्ट्रेऽवनीतले ॥१३॥
स्मिताननो नरः कश्चिन्नारी वाऽथ सुहृच्च वा । सीता वा तनयो बंधुः स मे दंड्यो भवेदिति ॥१४॥
तथेति रामवाक्यात्स घोषयामास दुन्दुभिम् । पौरा जनपदाः सर्वे श्रुत्वा शिक्षाध्वनिं प्रभोः ॥१५॥
रामदंडभयात् सर्वे न चक्रुस्ते स्मिताननम् । वारांगनानृत्यगीते नटगीतप्रवर्तने ॥१६॥
स्त्रीभिः सुहृद्भिर्मित्रैश्च विनोदानुत्सवान् वरान् । मांगल्यानि च कर्माणि हास्यकारीणि नाचरन् ॥१७॥
वंशस्तंभकलाभिश्च कौतुकानि हि यानि च । तूर्यघोषादिमाङ्गल्यकर्माणि विविधाः कथाः ॥१८॥
सांवत्सरोत्सवान् सर्वान् यात्रायज्ञोत्सवान् शुभान् । कौतुकानुत्सवांश्चैव विवाहादिषु कर्मसु ॥१९॥
वार्ताश्चित्रकथाश्चापि न चक्रुश्च कदा जनाः । ययौ नावश्यकात्कार्याद्विना सदसि कः प्रभुम् ॥२०॥
पुराणानीतिहासांश्च न पठन्ति स्म केचन । गर्भाधाने पुत्रजन्मनामकर्मादिपूत्सवान् ॥२१॥
पौरा जानपदाः सर्वे सप्तद्वीपनिवासिनः । एतानि हास्यकारीणि नानाकर्माणि भूतले ॥२२॥
रहस्यपि न चक्रुस्ते रामदण्डभयात् कदा । एवमासीद्वर्षमेकं तदा भूम्यां कदापि हि ॥२३॥
स्मिताननं कस्य नासीन्न चक्रुर्मंडनादिकम् । तदोत्साहदेवताश्च नानाकर्माङ्गदेवताः ॥२४॥
इन्द्राय कथयामासुस्तद्वृत्तं जगतीभवम् । इंद्रादीनां सुराणां च कर्मांगपूजनादि हि ॥२५॥
नासीद्यदा जगत्यां हि तदेंद्रोऽकथयद्विधिम् । तदा सुरान्विधिः प्राह न रामाग्रे बलं हि नः ॥२६॥

तो उनका ध्यान उसी ओर आकृष्ट हो जाया करता था और अपने बगल-बगल निहारने लगते थे। इस समय रामने उस हास्यको सुनकर क्षणभर विचार किया और लोगोंसे कहने लगे—॥ ८ ॥ ९ ॥ जब कभी मैं किसीका हास्य सुनता हूँ तो मुझे रावणकी हँसी स्मरण आ जाया करती है और यह ख्याल होता है कि वे मायावी राक्षस जिनको कि मैंने मार डाला है, धोखा देकर मुझे खानेके लिए लिए तो नहीं आ गये हैं ॥ १० ॥ ॥ ११ ॥ दूसरे नीतिशास्त्रमें भी हास्यकी निन्दा की गयी है । इसीलिए आजसे मैं भूतलपर रहनेवालोंको हँसनेकी मनाही करता हूँ। इसके बाद लक्ष्मणसे बोले कि मेरे राष्ट्र तथा पृथ्वीतल भरमें डुग्गी पिटवाकर कहला दो कि कोई स्त्री, पुरुष, मेरा मित्र, स्वयं सीता तथा मेरे बेटे या भाई भी न हँसें। जो इस आज्ञाके विपरीत चलेगा, उसे दण्ड भुगतना पड़ेगा ॥ ११–१४ ॥ लक्ष्मणने रामके आज्ञानुसार चारों ओर दुंदुभी बजवाकर रामकी यह आज्ञा घोषित करा दी। जितने पुरवासी अथवा देशवासी थे, उन्होंने प्रभुकी इस शिक्षाध्वनिको सुनकर दण्डके भयसे हमेशाके लिये हँसना छोड़ दिया। वेश्याओंके नृत्य, गाने, नाटक, स्त्रियों या मित्रोंके साथ हँसी-दिल्लगी आदि ऐसे सब कार्य बन्द कर दिये गये, जिनमें हँसी आनेका अन्देशा रहता था ॥ १५–१७ ॥ उस समय बाँसपर चढ़कर नाचने आदिकी कला, तुड़ही-नगाड़े आदिके बाजे, यात्रा, यज्ञ, सांवत्सरिक उत्सव, विवाह आदि मङ्गल कार्योंमें भी हँसी लानेवाले खेल-कूद और गप-शप आदि बातोंको बन्द कर दिया और बिना किसी विशेष कामके कोई रामकी सभामें भी नहीं जाता था ॥ १८–२० ॥ लोगोंसे पुराण-इतिहास आदिका भी पढ़ना छोड़ दिया। गर्भाधान, पुत्रजन्म, नामकर्म आदि उत्सवोंमें हँसी न आने देनेका पूरा-पूरा ध्यान रक्खा जाने लगा। मतलब यह कि सारे पुरवासी एवं देशवासी हास्योत्पादक कामोंको नहीं करते थे। रामके दण्डभयसे कोई एकान्तमें भी नहीं हँसता था। यह व्यवस्था एक वर्ष तक चलतीरही। इस बीचमें भूतलनिवासियोंमेंसे किसीका भी मुखमण्डल मुस्कराता हुआ नहीं दीखा और किसीने भी अपना शृङ्गार आदि नहीं किया। ऐसी अवस्थामें कितने ही कर्माङ्गदेवता और बहुतसे उत्साहदेवता एकत्रित होकर इन्द्रके पास गये ॥ २१–२४ ॥ उन्होंने पृथ्वीतलके उस समाचारको कह सुनाया । जब इन्द्रने सुना कि हम देवताओं-

नैवोपदेष्टुं योग्यः स ममापि जनकस्तु यः । युक्त्या कार्यं साधयामि येन वोऽद्य हितं भवेत् ॥२७॥
इत्याश्वास्य सुरान् सर्वान्विधिर्भूमण्डलं ययौ । अयोध्यायाश्च सीमायां दृष्ट्वा वेधाः सुपिप्पलम् ॥२८॥
स्वयं विवेश तन्मध्ये दृष्ट्वा पांथान् जहास सः । एतस्मिन्नंतरे कश्चित्काष्ठभारवहः पुमान् ॥२९॥
श्रुत्वा पिप्पलहास्यं वचेन दीर्घं जहास सः । ततः स भारवाहश्च ययौ हट्टे प्रभोः पुरीम् ॥३०॥
काष्ठभारविक्रयार्थं तत्र स्मृत्वा स्मितं हृदि । चलपत्रस्य सोऽत्युच्चैर्न समर्थो निरोधितुम् ॥३१॥
भारवाहस्य हास्यं तद्राजदूतोऽथ शुश्रुवे । राजदूतो जहासोच्चैर्न समर्थो निरोधितुम् ॥३२॥
राजदूतः सभां गत्वा भारवाहस्य यत् स्मितम् । हृदि स्मृत्वा जहासोच्चैस्तच्छ्रुत्वा ते सभासदः ॥३३॥
सभायां जहसुः सर्वे तच्छ्रुत्वा राघवोऽपि सः । उच्चैर्जहास सदसि वरसिंहासने स्थितः ॥३४॥
रामो विचारयामास किमर्थं हसितं मया । यन्निमित्तं सदा दण्डं पौरान् जानपदान्निजान् ॥३५॥
अहं करोमि सोऽद्याहं सभायां हसितः कथम् । दण्डयिष्यति मां कोऽद्य किं मां पौरा वदंति हि ॥३६॥
अस्माकमेव शिक्षाऽस्ति सर्वदा राघवस्य सा । स कथं हसितश्चाद्य सर्वेषां पुरतः स्फुटम् ॥३७॥
शिक्षां करिष्यति विभोः कोऽस्य त्विति वदंति ते । मानयिष्यंति नावस्ते ममाग्रे शिक्षितं भुवि ॥३८॥
ममैतन्न व्रतं योग्यमिति रामस्त्वमन्यत । पुनर्जहास श्रीरामस्तन्निरोद्धुं न स क्षमः ॥३९॥
ततो रामोऽब्रवीत्पौरान् सभास्थान्स स्मिताननः । किमर्थं हसिता यूयं येभ्यो हास्यं ममापि हि ॥४०॥
समागतं सभामध्ये पौराः प्रोचुर्नृपोत्तमम् । दृष्ट्वा त्वद्दूतहास्यं हि तेनास्माकं समागतम् ॥४१॥
तद् पौरवचनं श्रुत्वा दूतमाह रघूत्तमः । त्वया किमर्थं हसितं सोऽब्रवीद्रघुनन्दनम् ॥४२॥

के कर्माङ्ग पूजनादि सत्कार्य लुप्त होते जा रहे हैं तो ब्रह्माके पास जाकर यह बात बतायी। ब्रह्माने कहा कि रामचन्द्रजीके आगे हम लोगोंमें कुछ भी शक्ति नहीं है ॥ २५ ॥ २६ ॥ मैं उन्हें उपदेश नहीं दे सकता। क्योंकि वे मेरे पिता हैं। इसलिए मैं किसी युक्तिसे अपना कार्यसाधन करूँगा कि जिससे आप लोगोंका कल्याण हो ॥ २७ ॥ इस प्रकार उन्हें आश्वासन देकर ब्रह्माजी भूमण्डलकी ओर चल पड़े। अयोध्याकी सीमापर एक विशाल पिप्पल वृक्षको देखकर वे स्वयं उसके भीतर प्रविष्ट हो गये और उस रास्तेसे आने-जानेवाले लोगोंको देख-देखकर जोरोंसे हँसने लगे। उसी समय एक लकड़हारा लकड़ीका बोझ माथेपर रखे हुए वहाँ आ पहुँचा। उसे भी देखकर पीपलके भीतर बैठे हुए ब्रह्माजी हँसे ॥ २८ ॥ २९ ॥ पीपलकी हँसी सुनकर लकड़हारा दूने जोरसे हँसा और लकड़ीका बोझा लिये हुए अयोध्या नगरीमें जा पहुँचा। रास्तेमें उसे पीपलकी हँसीवाली बात याद आ गयी और ठहाका मारकर हँस पड़ा। लेकिन क्षण भर बाद उसे रामकी मनाहीका स्मरण हो आया, जिससे बेचारा शंकित हो उठा ॥ ३० ॥ ३१ ॥ लकड़हारेको हँसते देखकर चौराहे-पर खड़ा सिपाही भी अपनी हँसी नहीं रोक सका ॥ ३२ ॥ सिपाही सभामें गया तो उसे वहाँ लकड़हारेकी हँसी याद आ गयी, जिससे वह हँस पड़ा। सिपाहीको हँसते देखा तो सभामें बैठे हुए लोग भी अपनी हँसी नहीं रोक सके और वे भी हँसने लगे ॥ ३३ ॥ तमाम सभाके लोगोंको हँसते देखकर रामचन्द्रजी भी हँसने लगे ॥ ३४ ॥ तब रामचन्द्रजी तुरन्त हँसी रोककर सोचने लगे—और लोग हँसें तो हँसें, मैं क्यों हँसा? जब मैं सारे भूतलवासियोंको इस कामसे रोक रहा हूँ और दण्ड देता हूँ। तब मैं क्यों हँसा? मुझे कौन दण्ड देगा? और ये पुरवासी क्या कहेंगे? यही न कि राम दूसरोंको ही शिक्षा देते हैं, प्रजाके वास्ते ही दण्डविधान करते हैं और स्वयं जो मनमें आता है, सो कर डालते हैं। सब लोगोंके लिए तो हँसनेकी मनाही कर दी है, किन्तु स्वयं हजारों मनुष्योंके सामने ठठाकर हँसते हैं ॥ ३५–३७ ॥ इसका परिणाम यह होगा कि वे भविष्यमें मेरी बात नहीं मानेंगे। यह सब विचारकर रामने यह ठहराया कि मैंने बड़ी भारी भूल की है। लेकिन क्षणभर बाद ही रामको फिर हँसी आ गयी। पूरी चेष्टा करके भी वे हँसनेसे नहीं रुक सके ॥ ३८ ॥ तब रामचन्द्रजी सभाके लोगोंसे कहने लगे-आपलोग किस बातपर हँसे? आप लोगोंको हँसते देख-कर मैं भी हँस पड़ा। सभामें बैठे हुए पुरवासियोंने उत्तर दिया कि आपके सिपाहीको हँसते देखकर हमें

भारवाहस्य हास्यं तत् स्मृत्वा प्रहसितं मया । तद्दूतवचनं श्रुत्वा भारवाहं तदा प्रभुः ॥४३॥
दूतैरानीय सदसि तमाह रघुनन्दनः । मा भीतिं भज मत्तस्त्वं सत्यं ब्रूहि ममाग्रतः ॥४४॥
हट्टे किमर्थं हसितं त्वयाऽद्य कथयस्व माम् । स भारवाहश्चकितः शुष्ककंठोष्ठतालुकः ॥४५॥
वेपमानः स्खलद्वाचा राघवं वाक्यमब्रवीत् । अयोध्यायाश्च सीमायामश्वत्थस्य मयाऽद्य हि ॥४६॥
दृष्ट्वा प्रहसितं राजन् हट्टे हास्यं तथा कृतम् । तदपूर्वां तद्गिरं स प्रभुः श्रुत्वा सुविस्मितः ॥४७॥
दूतानुवाच श्रीरामस्त्वनेन सह वेगतः । यूयं गत्वाऽद्य द्रष्टव्यं किं सत्यं कथ्यते न वा ॥४८॥
अनेन भारवाहेन ते तथेति त्वरान्विताः । गत्वाऽश्वत्थसमीपं हि ददृशुस्ते स्मितं मुहुः ॥४९॥
तदाश्चर्याच्च ते दूताः प्रहसंतोऽतिवेगतः । अश्वत्थसहितं रामं गत्वा सर्वे न्यवेदयन् ॥५०॥
तद्दूतवचनं श्रुत्वा राघवश्चातिविस्मितः । राज्ये ममैतद्दुश्चिह्नं मे शिक्षां लोप्तुमुद्यतम् ॥५१॥
इति निश्चित्य मनसि दूताँश्चाज्ञापयत्तदा । छिद्यतां चलपत्रः स ममाज्ञाभंगकारकः ॥५२॥
तद्रामवचनादेव शतशोऽथ सहस्रशः । कुठारपाणयः शीघ्रमश्वत्थं दुद्रुवुस्तदा ॥५३॥
हास्यमानं नगं दृष्ट्वा ते सर्वेऽतीव विस्मिताः । कुठारैस्तं तदा छेत्तुमुद्यता राघवाज्ञया ॥५४॥
तांश्छेत्तुकामान् सकलान् प्राप्तान् स्वनिकटं विधिः । दूतान्सन्ताडयामासोपलैरश्वत्थनिर्गतैः ॥५५॥
उपलैश्छिन्नभिन्नांगास्ते दूता लोहितांकिताः । कोलाहलं प्रकुर्वंतो रामं वृत्तं न्यवेदयन् ॥५६॥
ततोऽतिविस्मितो रामः पुनर्दूतान् सहस्रशः । प्रेषयामास तं छेत्तुं धनुर्बाणासिधारिणः ॥५७॥
तेऽपि गत्वा नगं तेन ताडिता उपलैर्दृढम् । छिन्नांगा राघवं वेगात्सर्वं वृत्तं न्यवेदयन् ॥५८॥
ततो रामोऽतिसंक्रुद्धः सुमंत्रं सेनया युतम् । प्रेषयामास तं वृक्षं छेत्तुं बुद्धिपुरःसरम् ॥५९॥

हँसी आ गयी ॥ ३९–४१ ॥ पुरवासियोंकी बात सुनकर रामने सिपाहीसे पूछा कि तुम क्यों हँसे ? उसने कहा कि एक लकड़हारेको हँसते देखकर मुझे हँसी आ गयी। दूतकी बात सुनकर रामने दूतों द्वारा लकड़हारेको पकड़वा मँगाया और उससे कहा कि किसी प्रकारका भय न करके मुझे यह बतलाओ कि तुम बाजारमें क्यों हँसे थे ? ॥ ४२–४४ ॥ लकड़हारा रामकी बात सुनकर चौकन्ना हो गया। उसके कंठ, ओष्ठ और तालु सूख गये, शरीर काँपने लगा और भर्राये हुए स्वरसे उसने उत्तर दिया कि अयोध्याके समीप ही एक पीपलका वृक्ष है। मैंने बाजार आते समय उस वृक्षकी हँसी सुनी और हँस पड़ा। नगरमें आया तो यहाँ भी एकाएक वह बात याद आ गयी और चेष्टा करके भी मैं हँसीको नहीं रोक सका। उसकी यह बात सुनकर मुस्कराते हुए रामचन्द्रजीने दूतोंको आज्ञा दी कि तुम लोग इसके साथ जाकर देखो कि यह जो कह रहा है, वह ठीक है या नहीं ॥ ४५–४८ ॥ उस भारवाहीके साथ-साथ दूत चले, पीपलके समीप गये और उसकी हँसी सुनी तो स्वयं खूब हँसे और लौटकर रामको वहाँका सच्चा वृत्तांत सुना दिया ॥ ४९ ॥ ५० ॥ दूतोंकी बात सुनकर राम बहुत विस्मित हुए और सोचने लगे कि हमारे राज्यमें यह एक बड़ा दुश्चिह्न उत्पन्न होकर मेरे शासनको ही लुप्त कर देना चाहता है। इस प्रकार विचार करके रामने दूतोंको आज्ञा दी कि उस पीपलके वृक्षको काट डालो। क्योंकि वह मेरी आज्ञा भङ्ग कर रहा है ॥ ५१ ॥ ५२ ॥ रामके आज्ञानुसार सैंकड़ों हजारों व्यक्ति कुठार ले-लेकर उस वृक्षकी ओर चल पड़े। उस समय भी उस वृक्षको हँसते देखकर वे सब उसे काटनेको उद्यत हो गये। उनको देखकर ब्रह्मा उस वृक्षपरसे ही पत्थरके टुकड़े फेंक-फेंककर मारने लगे। इस उत्पातसे कितने ही लोगोंको गहरी चोट आयी। रुधिरसे उनका शरीर भींग गया और चिल्लाते हुए उन्होंने रामके पास पहुँचकर वहाँका हाल बतलाया ॥ ५३–५६ ॥ सो सुनकर रामको और भी आश्चर्य हुआ और फिर हजारों दूतोंको वह वृक्ष काटनेके लिए भेजा। धनुष बाण एवं तलवार धारण किये हुए वे दूत जब वृक्षके पास पहुँचे तो फिर ब्रह्माने पत्थर फेंक-फेंककर मारा, जिससे भिन्नमस्तक हो उन सबने लौटकर रामको यह समाचार सुनाया ॥ ५७ ॥ ५८ ॥ तब रामने कुपित होकर बहुत-सी सेनाके साथ

सुमंत्रो राघवं नत्वा सेनया तं नगं ययौ । तावदश्वत्थपाषाणैरग्रे गन्तुं न स क्षमः ॥६०॥
ततो राघवभीत्या स शनैः सैन्येन तत्पुरः । ययौ तावन्नगोद्भूतैः पाषाणैस्ताडितोऽपतत् ॥६१॥
सुमंत्रं पतितं दृष्ट्वा हाहाकारो महानभूत् । अयोध्यायां च सर्वत्र तदद्भुतमिवाभवत् ॥६२॥
सुमंत्रं पतितं श्रुत्वा पुत्राभ्यां रघुनन्दनः । सैन्येन प्रेषयामास शत्रुघ्नं तं नगं पुनः ॥६३॥
ततस्तत्कौतुकं श्रुत्वा पौरनार्यः सहस्रशः । प्रासादशिखरारूढा ऊर्ध्वास्यास्तं व्यलोकयन् ॥६४॥
तर्जन्या दर्शयामासुः सोऽश्वत्थश्चेति ता मिथः । वामहस्तं भ्रुवोः स्थाप्य रविदीप्तीर्न्यवारयन् ॥६५॥
कुञ्चितानलकान्नेत्रपतितान् करपल्लवैः । स्त्रियो निवार्य प्रासादगोपुराट्टालसंस्थिताः ॥६६॥
निद्रासंभ्रान्तनयनाश्चान्योन्यं दर्शयन्नगम् । एवं तन्नगरं सर्वं चकितं चाभवत्तदा ॥६७॥
शत्रुघ्नोऽथ पुराद्यावत्सैन्येन निर्गतो बहिः । तावत्तद्रथवाहाश्च संस्थिता एव ते पथि ॥६८॥
ताडिता अपि सूतेन नोत्तस्थुस्तुरगोत्तमाः । कुशस्याथ लवस्यापि रथवाहास्तथैव च ॥६९॥
ताडिता रुक्मदंडैश्च नोत्तस्थुः पथि सस्थिताः । आश्चर्येणाथ तद्वृत्तं राघवाय न्यवेदयन् ॥७०॥
रामोऽपि श्रुत्वा चकितस्तदा चित्तेऽविचारयत् । विचारः करणीयोऽत्र ह्यविचारोऽद्य नोचितः ॥७१॥
अस्त्यत्र कारणं किञ्चित्प्रष्टव्योऽद्य पुरोहितः । जानन्नपि रमानाथः स्वयं सर्वं तथापि सः ॥७२॥
मानुषं भावमाश्रित्य पुरोहितमथाह्वयत् । सोपि रामाज्ञया शीघ्रं तां सभां प्रययौ गुरुः ॥७३॥
प्रत्युद्गम्य गुरुं रामो ददावासनमुत्तमम् । ततः सम्पूज्य विधिवत् सर्वं वृत्तं न्यवेदयत् ॥७४॥
तच्छ्रुत्वा राघवं प्राह वसिष्ठो मुनिसत्तमः । वाल्मीकिस्त्वद्य प्रष्टव्यो येन ते चरितं कृतम् ॥७५॥
तद्गुरोर्वचनं श्रुत्वा वाल्मीकिं स समाह्वयत् । सोऽपि रामाज्ञया शीघ्रं ययौ श्रीराघवं प्रति ॥७६॥

सुमन्तको वृक्ष काटनेके लिए भेजा। सुमन्त रामको प्रणाम करके अश्वत्थकी ओर बढ़े। किन्तु वृक्षसे थोड़ी दूरपर ही थे। इतनेमें पत्थरोंकी वर्षा होने लगी। जिससे उस वृक्षके पासतक नहीं पहुँच सके ॥ ५९ ॥ ६० ॥ लेकिन रामके भयसे सुमन्त पीछे न लौटकर आगे ही बढ़ते गये और उधरसे बराबर पत्थरोंकी वृष्टि होती रही। जिससे वे घायल होकर गिर पड़े ॥ ६१ ॥ सुमन्तको गिरा देखा तो सेनामें घोर कोलाहल होने लगा। सारे अयोध्यावासियोंको वह एक अनहोनी-सी बात मालूम पड़ी ॥ ६२ ॥ सुमन्तको घायल सुना तो रामने अपने दोनों पुत्रोंके साथ एक बड़ी सेना भेजी ॥ ६३ ॥ इस कौतुकको सुना तो नगरकी बहुत-सी स्त्रियाँ अपनी-अपनी अटारियोंपर चढ़कर मस्तक उठाये हुए उस वृक्षको देखने लगीं और सूर्यके प्रकाशका निवारण करनेके लिए अपना बायाँ हाथ भौहोंपर रख-रखकर एक दूसरीको परस्पर उँगलियोंसे वह वृक्ष दिखाने लगीं ॥ ६४ ॥ ६५ ॥ नेत्रके सामने आये हुए केशोंको हटाती हुई वे स्त्रियाँ मकानकी छतों, कंगूरों और अटारियोंपर अधिक-से-अधिक संख्यामें एकत्र हो गयीं ॥ ६६ ॥ कितनोंकी आखें उस वृक्षको निहारते-निहारते नींदकी बोझसे बोझिल हो गयीं। इस तरह उस समय सारा नगर विस्मित हो रहा था ॥ ६७ ॥ उधर शत्रुघ्न अपनी सेना लेकर चले। नगरसे बाहर निकले ही थे कि उनके रथवाले घोड़े रास्तेमें बैठ गये और कोचवानके बार-बार मारनेपर भी नहीं उठे। यही दशा कुश और लवके भी रथकी हुई। उनके घोड़े भी रास्तेमें बैठ गये और कितने ही डंडे खानेपर भी नहीं उठे तो वे सब लौटकर आश्चर्यके साथ रामके पास पहुँचे और यह हाल बताया ॥ ६८-७० ॥ यह सुना तो वे मनमें विचारने लगे कि इस विषयमें पूर्णतया विचार करके काम करनेकी आवश्यकता है। आज अविचारितासे काम नहीं चलनेका है ॥ ७१ ॥ इसमें अवश्य कोई कारण है। अतः पहले पुरोहितको बुलाकर पूछ लेना जरूरी है। यद्यपि रामचन्द्रजी सब कुछ जानते थे, फिर भी मनुष्यभावसे उन्होंने पुरोहितको बुलवाया। रामके आज्ञानुसार तुरन्त गुरुजी राजसभामें जा पहुँचे। तब राम गुरुके आगे गये और एक उत्तम आसनपर बिठाकर पूजन करनेके अनन्तर सारा वृत्तान्त कह सुनाया ॥ ७२-७४ ॥ यह सब सुनकर गुरु वसिष्ठने कहा कि इस विषयमें आप वाल्मीकिजीसे पूछ-ताछ करें तो अच्छा होगा। क्योंकि उन्होंने ही आपके चरित्रको बनाया है ॥ ७५ ॥ गुरुके आज्ञानुसार रामने वाल्मीकि

प्रत्युद्गम्य मुनिं रामो ददावासनमुत्तमम् । नत्वा सम्पूज्य विधिवत् सर्वं वृत्तं न्यवेदयत् ॥७७॥
ततो विहस्य वाल्मीकिः प्रोवाच रघुनन्दनम् । सर्वं वेत्सि भवान् राम किमर्थं मां तु पृच्छसि ॥७८॥
त्वं चेत्पृच्छसि रामात्र मानुषं भावमाश्रितः । तर्हि ते कथयाम्यद्य शृणुष्व रघुनन्दन ॥७९॥
त्वयाऽत्र वर्जितं हास्यं त्वद्भिया सकलैर्जनैः । हास्यकारीणि कर्माणि संत्यक्तान्यवनीतले ॥८०॥
विवाहादिसमुत्साहाः कथावार्तादिकौतुकम् । मङ्गलोत्साहगीतानि नृत्यं यज्ञादिसत्क्रियाः ॥८१॥
यात्राः संवत्सरोत्साहास्त्यक्ता एवावनीतले । यद्यत् कर्म तोषकारि हास्यकारि च तन्नरैः ॥८२॥
एकसम्वत्सरं नात्र क्रियते रघुनन्दन । उत्साहदेवताः सर्वास्तथा कर्माङ्गदेवताः ॥८३॥
इन्द्रादिलोकपालाश्च दृष्ट्वा स्वीय प्रपूजनम् । लुप्तं भूम्यां ततो राम तद्वृत्तं कथयन्विधिम् ॥८४॥
ततो विधिश्च तच्छ्रुत्वाऽसमर्थस्त्वां निवेदितुम् । त्वयि कुंठितसामर्थ्यः सोऽश्वत्थे संप्रवेशितः ॥८५॥
हितार्थं निर्जराणां च सोऽद्य तिष्ठति पिप्पले । प्रक्षिपत्युपलान् राम छेत्तुकामान् समागतान् ॥८६॥
तन्मुनेर्वचनं श्रुत्वा राघवः क्रोधमाययौ । अहमेवाद्य गच्छामि सारं पश्यामि ब्रह्मणः ॥८७॥
कथं नाम रघुश्रेष्ठः स्वशिक्षां परिवर्तयेत् । इत्युक्त्वाज्ञापयामास स्वीयां सेनां तदा प्रभुः ॥८८॥
ततस्तं बोधयामास वाल्मीकिर्मुनिसत्तमः ।
क्रोधं त्यज रघुश्रेष्ठ शृणुष्व वचनं मम । सच्चिदानन्दरामस्त्वमानन्दचरितं तव ॥८९॥
मयाऽस्ति वर्णितं राम तत् किंचित्पुत्रयोर्मुखात् । त्वयाऽपि यज्ञसमये श्रुतं गङ्गातटे पुरा ॥९०॥
यस्य संश्रवणादेवानन्दरूपो भवेन्नरः । हास्यं वर्जयसि त्वं चेत्तर्हि ते चरितं त्विदम् ॥९१॥
न जनाः कीर्तयिष्यंति सुखरूपं स्मितं विना । अन्यत् किंचित् प्रवक्ष्यामि प्रभो वृत्तं तवाग्रतः ॥९२॥
शतकोटिमितं तेऽत्र चरितं यन्मया कृतम् । पुरा त्वया विविक्तं यत् सर्वत्र रघुनन्दन ॥९३॥

को बुलवाया। यह सन्देश पाते ही वाल्मीकि रामसे मिलनेको चल पड़े ॥ ७६ ॥ वहाँ पहुँचनेपर रामने उठकर उनकी अगवानी की और एक सुन्दर आसनपर बिठाकर पूजन किया। फिर जो कुछ वृत्तान्त बताना था, सो बताया ॥ ७७ ॥ यह सब सुना तो हँसकर वाल्मीकिने कहा—हे राम ! आपसे कुछ छिपा नहीं है, आप सब जानते हैं। फिर हमसे क्यों पूछते हैं ? ॥ ७८ ॥ हाँ, यदि मानवभावका आश्रय लेकर आप हमसे पूछते हैं तो बताता हूँ, सुनिए ॥ ७९ ॥ आपने अपने राज्यमें हँसनेकी मनाही कर दी है। इससे सब लोगोंने ऐसे शुभ कार्योंका करना बन्द कर दिया है, जो हँसी-खुशीसे ही सम्पन्न हो सकते हैं ॥ ८० ॥ विवाह, कथावार्ता, खेल-तमाशे, नाच-गान, यज्ञादि सत्क्रियाएँ, यात्रा और सांवत्सरिक उत्सव आदि कर्म लोग नहीं कर रहे हैं। कहनेका मतलब यह कि जितने कार्य हृदयको आनन्दित करनेवाले हैं, वे सब आज एक वर्षसे बन्द हैं। इससे व्याकुल होकर समस्त उत्साहदेवता, कर्माङ्गदेवता तथा इन्द्रादि लोकपाल भूमण्डलपर अपनी पूजाको लुप्त होते देख ब्रह्माके पास गये और उन्हें अपना दुःख सुनाया ॥ ८१–८४ ॥ इसके बाद ब्रह्माजी आपसे कुछ कहने-सुननेमें असमर्थ होकर उस पीपल वृक्षमें गुप्तरूपसे प्रविष्ट हो गये हैं। देवताओंकी कल्याणकामनासे वे आज भी उसमें बैठे हुए हैं। जो कोई उस वृक्षको काटनेके लिये जाता है, वे उसपर पत्थर बरसाते हैं ॥ ८५ ॥ ८६ ॥ मुनिराज वाल्मीकिके मुखसे यह हाल सुनकर रामको क्रोध आ गया और उन्होंने कहा कि आज मैं स्वयं जाकर ब्रह्माका पराक्रम देखता हूँ। रघुवंशका एक श्रेष्ठ क्षत्रिय अपने आदेशमें किसी प्रकारका उलट-फेर नहीं कर सकता। इतना कहकर रामने अपनी सेना तैयार करनेकी आज्ञा दी ॥ ८७ ॥ ८८ ॥ तब वाल्मीकि समझाने लगे—हे रघुश्रेष्ठ ! इस प्रकार क्रोध न करके मेरी बात सुनिये। आप साक्षात् सच्चिदानन्दस्वरूप ब्रह्म हैं और आपका चरित्र लोगोंको आनन्दित करनेवाला है। उसे मैंने ही बनाकर आपके पुत्रोंके मुखसे यज्ञशालामें सुनवाया था, उसे आपने भी सुना है। फिर जिसके सुनने मात्रसे मनुष्य आनन्दमग्न हो जाता है, ऐसे पुनीत चरित्रको लोग—यदि आप न हँसनेका नियम रखेंगे—तो नहीं सुन सकेंगे। क्योंकि कथा सुनकर आनन्दको प्राप्त लोग हँसे बिना नहीं रह सकेंगे। इसके सिवाय हे प्रभो ! मुझे आपसे कुछ और भी कहना

भागाद्भारतवर्षांतर्गताद्रामायणात् प्रभो। सारं सारं प्रगृह्याथ यद्यद्रम्यं मनोरमम् ॥ ९४ ॥
कथानकं तेन तेन व्यासेन मुनिनाऽत्र हि। अष्टादश पुराणानि तथोपपुराणानि च ॥ ९५ ॥
कृतान्यन्येऽपि मुनयः षट्शास्त्रादीन्यनेकशः। अग्रे सर्वे करिष्यंति सारं रम्यं प्रगृह्य च ॥ ९६ ॥
ततोऽग्रे शोकरूपं च यत्त्वया दंडके वने। चतुर्दशवत्सरैश्च कैकेयीदुष्टभावतः ॥ ९७ ॥
कृतं चरित्रं सीताया विरहादि च राघव। तत् किंचिच्छेषभूतं हि चतुर्विंशत्सहस्रकम् ॥ ९८ ॥
तावन्मात्रं वदिष्यन्ति यद्वाल्मीकेः कृतं त्विति। तत्सर्वं सकलं ज्ञात्वा भावि वृत्तं रघूत्तम ॥ ९९ ॥
शोकस्तदुपयोगश्च पूर्वमेव मयेरितः। युद्धं प्रभाते श्रोतव्यं शोकश्चैवापराह्णके ॥१००॥
रतिर्निशायां श्रोतव्याऽऽनन्दरामायणं सदा। युद्धं ज्ञेयं भारतं हि रतिर्भागवतं स्मृतम् ॥१०१॥
शेषभूतं चतुर्विंशसहस्रं शोक उच्यते। तव भाविवरेणैतदानन्दचरितं तव ॥१०२॥
शतकोटिमितं पूर्वं यन्मयैव विनिर्मितम्। नवकांडमितं रम्यं यद्द्वादशसहस्रकम् ॥१०३॥
नवोत्तरशतं सर्वं क्वचित् स्थास्यति भूतले। तव भाविवराद्राम न कोऽप्येतां मनोरमाम् ॥१०४॥
अष्टोत्तरशतैः सर्गैर्निर्मितां मेरुणान्विताम्। तव कीर्तनमालां नो खंडयिष्यति भूतले ॥१०५॥
नवकाण्डयुतं रम्यं दृष्ट्वा त्वत्तुष्टिहेतवे। एतद्धि रक्षयिष्यंति यावच्चन्द्रदिवाकरौ ॥१०६॥
यदा तत् खंडितं पूर्वं व्यासेन मुनिना तत्र। शतकोटिमितं रामचरितं यन्मया कृतम् ॥१०७॥
तदा किंचिद्धितं दृष्ट्वाऽहं तूष्णीमेव संस्थितः। भविष्यंति कलौ मन्दमतयोऽल्पायुषो नराः ॥१०८॥
न समर्था मम ग्रन्थं त्विमं श्रोतुं कदापि हि। अतो व्यासेन मुनिना मत्काव्यं यत्पृथक् कृतम् १०९
तत्सम्यगित्यहं मत्वा परां तुष्टिं गतः प्रभो। अतस्त्वां प्रार्थयाम्यद्य नवकांडमितं त्विदम् ॥११०॥
आनन्दरामचरितं न विरूपय राघव। वर्जयिष्यसि चेद्धास्यं तदा दुःखमयं प्रभो ॥१११॥

है। मैंने जो सौ करोड़ श्लोकोंमें आपके चरित्रका वर्णन किया है, उसे हे रघुनन्दन ! आप कुछ समय पहले कई भागोंमें बांट चुके हैं ॥ ८९–९३ ॥ उनमेंसे जो भाग भारतवर्षके लिये चुना था, उसके सार अंशको लेकर जो कथानक अच्छे थे, सुननेमात्रसे समझमें आ जाते या कानोंको प्रिय लगते थे, उन्हींके आधारपर व्यासदेवने अष्टादश पुराणों तथा उपपुराणोंको बना दिया है। इनके अतिरिक्त भी बहुतसे ऋषि उन्हींकी सहायतासे षट्शास्त्र आदि कितने ही शास्त्र बनायेंगे ॥ ९४–९६ ॥ कुछ ही समय बीतनेके बाद कैकेयीकी दुष्टतासे आपको चौदह वर्ष पर्यन्त जो दुःख झेलने पड़े थे, सीताके विरह आदिका दुःख जो चौबीस हजार श्लोकोंसे कुछ कम है, उतने ही चरित्रको लोग मुझ वाल्मीकिका बनाया हुआ मानेंगे। इस भावी स्थितिको समझकर ही मैंने आपके उतने शोकमय चरित्रको विशेष उत्साहके साथ लिखा है। सब लोगोंको चाहिये कि सबेरे युद्ध-चरित्र तथा दोपहरके बाद शोक-चरित्रका श्रवण करें। युद्धचरित्रका मतलब महाभारत, रति-चरित्रका श्रीमद्भागवत तथा बाकी चौबीस हजार श्लोकोंका मतलब शोकचरित्र माना गया है। आपके भावी वरदानके प्रभावसे आपका यह आनन्दरामायण, सौ करोड़ श्लोकोंवाला मेरा बनाया रामचरित्र, नौ काण्डोंवाला द्वादश सहस्रात्मक रामचरित्र एवं एक सौ नौ श्लोकोंवाली रामायण ये सब पृथ्वीतलमें कहीं न कहीं रहेंगे ही। आपके भावी वरदानसे एक सुन्दर कीर्तनमाला, जिसमें १०८ सर्ग हैं, सुमेरकी मनकासदृश अलगसे लगी है, इसका कोई भी खण्डन नहीं कर सकेगा। इस नौ काण्डोंवाले चरित्रको लोग आपकी प्रसन्नताके लिए तबतक सम्हालेंगे, जब तक कि संसारमें सूर्य-चन्द्र विद्यमान रहेंगे ॥ ९७–१०६ ॥ मेरे बनाये सौ करोड़ श्लोकोंवाले रामचरित्रका खण्डन करके जब व्यासजीने १८ पुराण बनाये थे, तब उससे किसी प्रकारका कल्याण देखकर ही मैं चुप रह गया था। उस समय मेरे विचारमें आया कि आगे चलकर कलियुगमें लोग मन्दबुद्धि तथा अल्पायु होंगे। इस कारण वे मेरे इतने बड़े ग्रन्थको कभी नहीं सुन सकेंगे। व्यासजीने मेरे काव्यसे कथायें अलग करके जो पुराणोंको बनाया, सो बहुत अच्छा किया। उससे

भविष्यति शेषवद्धि चैतच्चापि मनोहरम् । अतस्ते कथयाम्यद्य येन ते शिक्षितं भुवि ॥११२॥
भविष्यति मृषा नैव येन तुष्टास्तु देवताः । भविष्यंति जनाश्चापि सत्या मत्कविता भवेत् ॥११३॥
जना हसंतु सर्वत्र दंतानां दर्शनं विना । आस्यमाच्छाद्य वस्त्रेण कदा कौतुकदर्शनात् ॥११४॥
हास्यं लक्ष्मीसूचकं हि हसितं सौख्यदायकम् । मांगल्यं हसितं चैतद्धास्याच्छ्रेष्ठं न किंचन ॥११५॥
नारी स्मितानना यस्मिन् गेहे तन्मन्दिरं स्मृतम् । लक्ष्म्याऽपि स्थीयते तत्र निश्चलं रघुनन्दन ॥११६॥
स एव पुरुषो धन्यो यस्य स्याच्च स्मिताननम् । स एव पुरुषो निंद्यो यस्यास्यं क्रोधसंयुतम् ॥११७॥
प्रमदा निंदिता सापि यस्याः क्रोधयुतं मुखम् । गर्हयंत्यतिहास्यं हि सर्वदा ते मुनीश्वराः ॥११८॥
अतस्त्वां प्रार्थयाम्येतन्मानय त्वं वचो मम । न करोति विधिर्गर्वं त्वां तातं वेत्ति राघव ॥११९॥
आनयिष्यामि शरणं तवाहं चतुराननम् । एवं वाल्मीकिवचनमंगीकृत्य रघूत्तमः ॥१२०॥
एवमस्त्विति तं प्राह मुनिं तद्वाक्यगौरवात् । तद्रामवचनं श्रुत्वा वाल्मीकिस्तुष्टमानसः ॥१२१॥
शिष्यं संप्रेष्य ब्रह्माणमानयामास पिप्पलात् । अश्वाः सर्वे समुत्तस्थुर्ययुस्ते नगरीं प्रति ॥१२२॥
ययौ सैन्येन शत्रुघ्नो रामपार्श्वे स्थितोऽभवत् । रामपुत्रौ समायातौ पितुरग्रे निषेदतुः ॥१२३॥
रामाज्ञया भारवाहस्ततो दूतैर्विसर्जितः । कृतेंद्रेण सुधावृष्टिः सुमन्त्राद्याः सुजीविताः ॥१२४॥
सुमंत्राद्या रामदूतास्तत्क्षणं राघवं ययुः । नत्वा रामं सुमंत्रः स रामपार्श्वे स्थितोऽभवत् ॥१२५॥
ततः सुरैर्ययाविंद्रः श्रीरामं प्रणनाम सः । रामं नत्वाऽब्रवीद्ब्रह्मा मया यदपराधितम् ॥१२६॥
तत्क्षमस्व रघुश्रेष्ठ त्वत्पाल्याः सर्वदा वयम् । पुराऽस्माकं हितार्थं हि त्वया रामावनीतले ॥१२७॥

मुझे बड़ी प्रसन्नता है। अतएव आज आपसे मैं प्रार्थना करता हूँ कि इस नौ काण्डवाले आनन्दरामायणकी शोभा न बिगाड़िए। यदि आप सदाके लिए लोगोंका हँसना रोक देंगे तो बड़ा अनर्थ होगा। मेरी रामायण किसी कामकी नहीं रह जायगी। इसीलिये मैं आपसे कहता हूँ कि कोई ऐसा उपाय कीजिए, जिससे आपके आदेशमें भी किसी प्रकारका अन्तर न पड़े और देवता तथा मनुष्य भी प्रसन्न रहें और मेरी कविता भी सत्य हो जाय ॥ १०७-११३ ॥ लोग हँसें सही, किन्तु उनके दाँत न दिखायी दें। किसी कौतुकको देखकर यदि लोगोंको हँसी आ जाय तो कपड़ेसे मुँह ढाँककर हँसें ॥ ११४ ॥ क्योंकि हँसी लक्ष्मीसूचक है, हँसी सबको सुख देनेवाली वस्तु है और हँसी मंगलमयी मानी गयी है। कहनेका भाव यह कि हँसीसे बढ़कर कोई चीज है ही नहीं ॥ ११५ ॥ जिस घरमें मुस्काती हुई नारी रहती है, वह घर देवमंदिरके समान पवित्र होता है और लक्ष्मी वहाँपर ही निवास करती है। हे रघुनन्दन! इसमें किसी प्रकारका संशय नहीं है ॥ ११६ ॥ वही पुरुष धन्य है, जिसका मुखमण्डल सदा हँसता हुआ दीखे और वही पुरुष अधम है, जिसका मुख सदा क्रोधसे युक्त रहे ॥ ११७ ॥ वह स्त्री भी निन्द्य है, जो सदा क्रोधयुक्त मुँह बनाये रहती है। बड़े-बड़े मुनिगण आदि हास्यकी सदासे निन्दा करते आये हैं ॥ ११८ ॥ अतएव मैं आपसे प्रार्थना करता हूँ कि मेरी यह बात मान लीजिए। ब्रह्मा किसी तरह अभिमान न करके आपको अपने पिताके समान मानते हैं ॥ ११९ ॥ मैं स्वयं जाकर ब्रह्माको आपकी शरणमें लाऊँगा—वे आपसे क्षमा माँगेंगे। रामने वाल्मीकिके वाक्यगौरवको समझकर उनकी बात मान ली और कहा कि जैसा आप कहते हैं, वैसा ही होगा। रामकी स्वीकृति सुनकर वाल्मीकि परम प्रसन्न हुए और अपना एक शिष्य भेजकर उस पीपलपरसे ब्रह्माजीको बुलवाया। यह हो जानेपर शत्रुघ्न तथा लव-कुशके जो घोड़े अबतक रास्तेमें बैठे थे, वे उठ खड़े हुए और अयोध्याको वापस चल दिये। शत्रुघ्न और लव-कुश भी अपनी सेना लिये हुए आये और रामके पास जाकर बैठ गये ॥ १२०—१२३ ॥ रामकी आज्ञासे दूतोंने लकड़हारेको छोड़ दिया। इन्द्रने आकर अमृतकी वर्षा की। जिससे सुमंत्रादि जो योद्धा मूर्छित पड़े थे, वे सचेत हो गये ॥ १२४ ॥ इसके अनन्तर वृक्षको काटनेके लिए गये हुए लोग रामके पास आये। सुमन्त्र रामके पास जाकर बैठ गये। थोड़ी देर बाद देवताओंके साथ-साथ इन्द्र और ब्रह्मा भी रामकी सभामें आये और बैठ गये। रामको प्रणाम

अवताराश्च बहवो धृत्वा नो रिपवो हताः । शंखासुरो वेदहर्ता मत्स्यरूपेण संरितः ॥१२८॥
तथाऽस्माकं सुधां दातुं मज्जंतं मंदराचलम् । दृष्ट्वा स कूर्मरूपेण त्वया पृष्ठे धृतो गिरिः ॥१२९॥
मत्पृथ्वीति स्पर्द्धमानं हिरण्याक्षं निहत्य च । त्वया वाराहरूपेण जलात्पृथ्वी समुद्धृता ॥१३०॥
प्रह्लादवचनात्स्तम्भादाविर्भूय त्वया पुरा । नरसिंहस्वरूपेण हिरण्यकशिपुर्हतः ॥१३१॥
तथा राज्यं हृतं दृष्ट्वा पुरा तु मघवंस्त्वया । बलिर्वामनरूपेण पाताले विनिवेशितः ॥१३२॥
नृपैरधर्मनिरतैर्दृष्ट्वा व्याप्तां भुवं पुरा । त्वयैकविंशद्वारं हि जामदग्न्यस्वरूपिणा ॥१३३॥
पितुर्वैरं पुरस्कृत्य निःक्षत्री पृथिवी कृता । दशास्यकुम्भकर्णौ तौ रामरूपेण राक्षसौ ॥१३४॥
पत्नीवैरं पुरस्कृत्य त्वया दुष्टौ हताविह । उद्धारितौ तौ स्वगणौ द्विवारं देवशापतः ॥१३५॥
एकवारं पुनस्त्वग्रे त्वं तावेवोद्धरिष्यसि । तद्ब्रह्मवचनं श्रुत्वा वसिष्ठो मुनिसत्तमः ॥१३६॥
सर्वं जानन्नपि जनान्ज्ञातुं पप्रच्छ तं विधिम् ॥१३७॥

इति श्रीशतकोटिरामचरितांतर्गते श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये राज्यकाण्डे
उत्तरार्धे रामह्रास्यप्रतिरोधो नाम त्रयोदशः सर्गः ॥ १३ ॥

चतुर्दशः सर्गः

(वाल्मीकिकी जन्मगाथा तथा बहुतेरे मंत्रोंका निरूपण)

श्रीरामदास उवाच

कौ गणौ देवशप्तौ तौ कथमुद्धारितौ वद । पुरा द्विवारं रामेणाग्रे कथं चोद्धरिष्यति ॥१॥
तद्वसिष्ठवचः श्रुत्वा विधिः प्राह विहस्य तम् । सर्वं वेत्सि भवान् लोकान् ज्ञापितुं मां हि पृच्छसि ॥२॥
तदा वदाम्यहं सर्वं गणयोः शापकारणम् । एकदाऽयं महाविष्णुर्वैकुण्ठे रमया रहः ॥३॥
संस्थितश्च तदा द्वारि विष्णुं द्रष्टुं सुरोत्तमौ । तावश्विनीकुमारौ हि समाजग्मतुरादरात् ॥४॥

करनेके पश्चात् ब्रह्माने कहा—मैंने जो कुछ अपराध किया है, सो क्षमा करें । हे रघुश्रेष्ठ ! आपका कर्तव्य है कि आप हमारी रक्षा करें । पहले भी आपने हमारी रक्षा करनेके लिए पृथ्वीतलपर कितने ही अवतार लेकर हमारे शत्रुओंको मारा है । वेदको चुरानेवाले शंखासुरको आपने मत्स्यका रूप धारण करके मारा था ॥१२५-१२८॥ हम सबोंको अमृत पिलानेकी इच्छासे, समुद्रमन्थनके समय जब मन्दराचल डूबा जा रहा था, तब कूर्मरूप धारण करके उसे अपनी पीठपर रक्खा था । "यह पृथ्वी मेरी है" इस प्रकार कहकर डींग मारनेवाले हिरण्याक्षको मारकर आपने वाराहरूप धारण करके जलमें डूबी हुई पृथ्वीका उद्धार किया ॥ १२९ ॥ १३० ॥ प्रह्लादके वचनसे आप खम्भेसे प्रकट हुए और हिरण्यकशिपुका संहार किया । जब दैत्योंने इन्द्रसे राज्य छीन लिया था, तब आपने वामनरूप धारण करके भीख माँगी और बलिको पाताल लोक भेज दिया ॥१३१॥१३२॥ जब इस पृथ्वीमण्डलमें पापी राजाओंका अत्याचार देखा तो परशुरामका रूप धारण करके पितृवैरके व्याजसे पृथ्वीको क्षत्रियविहीन कर दिया । रावण और कुम्भकर्णको आपने पत्नीवैरके बहाने यमपुर पहुँचाया । दो बार आपने देवताओंके शापसे अपने गणोंकी रक्षा की है और भविष्यमें फिर एक बार उनका उद्धार करेंगे । ब्रह्माकी बातको सुनकर सब कुछ जानते हुए भी वसिष्ठने ब्रह्माजीसे पूछा—॥ १३३-१३७ ॥ इति श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये पं० रामतेजपाण्डेयविरचित 'ज्योत्स्ना' भाषाटीकासमन्वितें राज्यकांडे उत्तरार्द्धे त्रयोदशः सर्गः ॥१३॥

वसिष्ठजी कहने लगे—वे दोनों कौनसे गण थे, जिनको देवताओंका शाप प्राप्त हुआ था और रामने उनका उद्धार किया था और फिर भी उद्धार करेंगे, सो कहिए ॥ १ ॥ इस प्रकार
31. वसिष्ठकी बातसुनकर ब्रह्माने हँसकर कहा—आप सब कुछ जानते हैं, किन्तु मुझे ज्ञान प्राप्त करानेके लिए मुझसे पूछ रहे हैं तो मैं भी उन गणोंके शापका कारण बतलाता हूँ । एक समय महाविष्णु एकान्तमें

समागतौ देववैद्यौ तौ दृष्ट्वा द्वाररक्षकौ । जयविजयनामानौ तयोरग्रे प्रजग्मतुः ॥ ५ ॥
ताभ्यां वैद्यौ तदा प्रोक्तौ विष्णुस्तिष्ठति वै रहः । नायं कालो दर्शनस्य तच्छ्रुत्वा प्रोचतुः सुरौ ॥ ६ ॥
अधुना द्रष्टुमिच्छावो विष्णुं कथयतां गणौ । द्वारावयोरागमनं युवां शृणुत चेरितम् ॥ ७ ॥
तत्तयोर्वचनं श्रुत्वा तौ पुनः प्रोचतुर्गणौ । न गच्छावो महाविष्णुमावां लक्ष्म्या रहः स्थितम् ॥८॥
एवं त्रिवारं ताभ्यां तौ प्रोक्तौ नेत्यूचतुर्गणौ । तदाऽश्विनीकुमारौ तौ प्रोचतुः क्रोधमूर्च्छितौ ॥ ९ ॥
आवयोर्वचनं नैव युवाभ्यां हि श्रुतं गणौ । यतस्त्रिवारं तस्माद्धि युवां जन्मत्रयं भुवि ॥१०॥
लभथश्च न संदेहस्तच्छ्रुत्वा वचनं तयोः । गणावपि तयोः शापं ददतुर्देववैद्ययोः ॥११॥
विनापराधतः शापो यस्माद्दत्तस्तु चावयोः । एकवारं युवां चापि जन्मातश्चस्तु वै भुवि ॥१२॥
एवं परस्परं शापं लब्ध्वा हाहेति चुक्रुशुः । तदा कोलाहलश्चासीदाह्वयामास तान् हरिः ॥१३॥
ततस्तत्सकलं वृत्तं प्रोचुस्ते जगदीश्वरम् । चत्वारस्ते महाविष्णुं प्रार्थयामासुरादरात् ॥१४॥
येन शीघ्रं विमुक्तिः स्यात्तन्नो वद महेश्वर । ततः प्रोवाच तान् विष्णुर्मुक्तिः शीघ्रं शुभाऽत्र हि ॥१५॥
मयि भक्त्या विरोधिन्या जायते नात्र संशयः । सप्तजन्मांतरेणैव मद्भक्त्या जायते गतिः ॥१६॥
युष्माकं रोचते या सा भक्तिः कार्याऽवनीतले । तद्विष्णोर्वचनं श्रुत्वा ते प्रोचुर्जगदीश्वरम् ॥१७॥
नोऽस्तु भक्त्या विरोधिन्या शीघ्रं ते दर्शनं पुनः । तथेत्युक्त्वा रमानाथस्तान् सर्वान् स व्यसर्जयत् १८॥
ते जन्मानि ततः प्रापुर्जगत्यां मुनिसत्तम । जयो जातो हिरण्याक्षो हिरण्यकशिपुस्तथा ॥१९॥
जातोऽत्र विजयः पूर्वं तौ हतौ विष्णुना पुरा । वाराहरूपिणाऽनेन हिरण्याक्षो विदारितः ॥२०॥
नरसिंहस्वरूपेण हिरण्यकशिपुर्हतः । ततः पुनर्जन्म तौ हि द्वितीयं प्रापतुर्भुवि ॥२१॥

लक्ष्मीके साथ बैठे थे । उसी समय उनके दर्शनार्थ अश्विनीकुमार वहाँ जा पहुँचे ॥ २-४ ॥ उन देववैद्योंको देखकर जय-विजय नामक दोनों द्वारपाल उनके सामने पहुँचे और कहने लगे—इस समय भगवान् एकान्तमें हैं । अतएव आप लोग दर्शन नहीं कर सकेंगे । यह सुनकर वे दोनों देवता बोले—विष्णुभगवान्से जाकर कह दो कि हम अभी इसी समय आपका दर्शन करना चाहते हैं । देवताओंकी बात सुनकर जय-विजयने कहा कि हम अभी उनके पास नहीं जायँगे । वे लक्ष्मीके साथ एकान्तमें बैठे हैं ॥ ५-८ ॥ इस तरह तीन बार अश्विनीकुमारोंके कहनेपर भी जब जय-विजयने उनकी बात नहीं मानी तो क्रुद्ध होकर उन्होंने शाप देते हुए कहा कि तीन बार तुम लोगोंने मेरी बातका उल्लंघन किया है, इसलिए तुम्हें तीन बार पृथ्वीलोकमें जन्म लेना पड़ेगा । उनके इस शापको सुनकर जय-विजयने भी अश्विनीकुमारोंको शाप देते हुए कहा कि विना अपराध तुमने हमको शाप दिया है । अतएव तुम दोनोंको भी एक बार पृथ्वीतलपर जन्म लेना पड़ेगा ॥९-१२॥ इस प्रकार आपसमें शाप पाकर वे चारों हाहाकार करके पछताने लगे और वैकुण्ठभरमें कोलाहल मच गया । तब विष्णुभगवान्ने उनको अपने पास बुलाया ॥ १३ ॥ भगवान्ने उनका वृतान्त सुना । इसके अनन्तर आदरपूर्वक उन चारोंने भगवान्से प्रार्थना की—॥ १४ ॥ हे महेश्वर ! जिससे हमलोग शीघ्र इस शापसे मुक्त हो जायँ, हमें आप वही उपाय बतलायें । विष्णुभगवान्ने उन्हें समझाते हुए कहा कि घबड़ाओ नहीं, शीघ्र ही तुम लोग शापसे मुक्त हो जाओगे । किन्तु उपाय दो हैं । एक यह कि तुमलोग हमारी भक्तिसे विरोधभाव रखो । दूसरे उपायसे हमारी भक्ति करके मुक्ति पानेकी चेष्टा करो । यदि मेरी भक्तिके विरुद्ध रहोगे तो शीघ्र मुक्ति मिल जायगी और भक्तिके साथ चाहोगे तो सात बार जन्म लेना पड़ेगा । इन दोनोंमेंसे जो उपाय अच्छा जँचे, उसे चुन लो । इस प्रकार विष्णुकी बात सुनकर उन लोगोंने उत्तर दिया कि हम आपकी भक्तिके विरुद्ध भाव रक्खेंगे, जिससे शीघ्र मुक्त हो जायँ । भगवान्ने भी "अच्छी बात है" यह कहकर उन लोगोंको विदा कर दिया ॥ १५—१८ ॥ तदनन्तर वे लोग मृत्युलोकमें आकर जन्मे । उनमें जय हिरण्याक्ष नामका तथा विजय हिरण्यकशिपु राक्षस होकर जन्मा । इसके अनन्तर वाराहरूप धारण करके विष्णुभगवान्ने हिरण्याक्षको मारा और नरसिंह-स्वरूप धरकर हिरण्यकशिपुका संहार किया ॥ १९ ॥ २० ॥ दूसरे जन्ममें

जयो जातो रावणोऽत्र कुम्भकर्णस्तथाऽपरः । जातो विजयनामा हि रामेणानेन तौ हतौ ॥२२॥
तावश्विनीकुमारौ हि एक ऐरावणः स्मृतः । मैरावणश्च त्वपरं एवं तौ जनितावधः ॥२३॥
पाताले वरदानाच्च रामहस्तान्मृतिं गतौ । अग्रे जयः शिशुपालो भविष्यति न संशयः ॥२४॥
विजयो दंतवक्त्रश्च भविष्यत्यवनीतले । द्वापरे कृष्णरूपेण शिशुपालं हरिः स्वयम् ॥२५॥
वधिष्यति दंतवक्त्रं तथैव मुनिसत्तम । एवं जन्मत्रयं शापाद्भुक्त्वा तौ भगवद्गणौ ॥२६॥
जयविजयनामानौ पूर्ववत् स्थास्यतः शुभौ । द्वारदेशेऽस्य वै विष्णोर्वैकुण्ठे दुःखवर्जिते ॥२७॥
तावश्विनौ देववैद्यौ पूर्ववद्दिवि तौ स्थितौ । एवं मुने त्वया पृष्टं तन्मया परिवर्णितम् ॥२८॥
भगवद्गणयोः शापकारण च पुरातनम् । एवं राघव चाग्रे त्वं द्वापरे परमे शुभे ॥२९॥
जरासंधादिवीरैश्च कंसाद्यैरपि भूतलम् । खिन्नं दृष्ट्वाऽत्रावतीर्य कृष्णरूपेण लीलया ॥३०॥
सर्वान्हत्वा तोषयुक्तं करिष्यसि महीतलम् । तान् बौद्धान्बुद्धरूपेण कलावग्रे विजेष्यसि ॥३१॥
वर्णसंकरमालक्ष्य कलेरंते रघूत्तम । कल्किरूपेण सकलान्संहरिष्यसि लीलया ॥३२॥
एवं दशावताराश्च तथान्येऽपि सहस्रशः । त्वया हितार्थमस्माकं धृताश्चाग्रे धरिष्यसि ॥३३॥

श्रीरामदास उवाच

एवं स्तुवन्तं ब्रह्माणं समालिंग्य रघूत्तमः । संनिवेश्यासने प्राह स्वदर्थं च मुनेर्गिरा ॥३४॥
हास्यमाज्ञापितं किञ्चिज्जनाः कुर्वंतु ते सुखम् । यथा वाल्मीकिना प्रोक्तं तथा मा विस्तरोस्तु वै ॥३५॥
तद्रामवचनं श्रुत्वा तदा हृष्टाः सुरादयः । प्रपच्छ च वाल्मीकिं सभायां रघुनन्दनः ॥३६॥
ममावतारतः पूर्वं त्वया मच्चरितं कृतम् । कथं ज्ञातं त्वया पूर्वं केन त्वाद्युपदेशितम् ॥३७॥
पूर्वजन्मनि कस्त्वं हि किं पुण्यं हि त्वया कृतम् । तत्सर्वं विस्तरेणैव कथयस्वाद्य मां प्रति ॥३८॥

वे दोनों रावण और कुम्भकर्ण होकर जन्मे और भगवानने रामका रूप धारण करके उन्हें मारा ॥ २१ ॥ २२ ॥ दोनों अश्विनोकुमारोंमेंसे एक ऐरावण एवं दूसरा मैरावणके रूपसे धरतीपर आया और पाताललोकमें रामके हाथों उन दोनोंकी मृत्यु हुई । अगले जन्ममें जब शिशुपाल तथा विजय दन्तवक्त्रके नामसे जन्मेगा। द्वापरमें भगवान् कृष्णरूपसे उन दोनोंका संहार करेंगे । इस तरह आपसके शापा-शापीसे ये लोग तीन जन्ममें अपनी करनीका फल भोगकर फिर पहलेकी तरह जय-विजयके नामसे भगवान्के द्वारपाल हो जायँगे, तब उन्हें फिर कोई क्लेश नहीं होगा ॥ २३–२७ ॥ तबसे अश्विनीकुमार भी आनन्दके साथ स्वर्गलोकमें निवास करेंगे। हे मुनिराज ! आपने हमसे जो कुछ पूछा, वह मैंने बतलाया। इसका सारांश यह निकला कि उन दोनों भगवद्गणोंके लिए एक प्राचीन शाप कारण था। उसमें कोई नयी बात नहीं थी। हे राघव ! आगे द्वापर युगमें भी पृथ्वी जब कंस तथा जरासंघ आदि दुष्टोंके अत्याचारोंसे घबड़ा जायगी, तब आप कृष्ण अवतार लेकर दुष्टोंका संहार करते हुए पृथ्वीका भार उतारेंगे। उसी प्रकार कलियुगमें बुद्धका रूप धारण करके आप बौद्धोंको पराजित करेंगे ॥ २८–३१ ॥ हे रघूत्तम ! कलियुगके अन्तमें जब समस्त संसार वर्णसङ्कर हो जायगा, तब आप कल्किरूप धारण करके सबका संहार करेंगे । इस तरह दस क्या, हजारों अवतार आपने हम लोगोंके कल्याणार्थ लिया है और भविष्यमें भी लेंगे ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ श्रीरामदास बोले—इस तरह स्तुति करते हुए ब्रह्माको रामने हृदयसे लगा लिया और अपनी बगलमें बिठाकर कहा कि वाल्मीकिके कथनानुसार मैं आज्ञा देता हूँ कि तुम्हारे सुखके लिये लोग हँसें या जो कुछ करें, मुझे कोई आपत्ति नहीं है। वाल्मीकिने जो कहा है, उसके अनुसार मेरी प्रजाके लोग काम करेंगे ॥ ३४ ॥ ३५ ॥ रामकी इस बातको सुनकर जितने देवता थे, वे सब प्रसन्न हो गये। इसके पश्चात् रामने वाल्मीकिसे कहा कि मेरे अवतारसे पहले ही आपने मेरा चरित्र रामायण बना डाला है। सो भविष्यकी बातें आपको कैसे मालूम हुई ? उन्हें किसने बतायी थीं ? ॥ ३६ ॥ ३७ ॥ पूर्वजन्ममें आप कौन थे और आपने कौनसे पुण्यकार्य किये थे, सो मुझसे कहिए । इस प्रकार रामके प्रश्न

तद्रामवचनं श्रुत्वा वाल्मीकिर्मुनिपुङ्गवः । सभायां राघवं सर्वं वक्तुं समुपचक्रमे ॥३९॥

वाल्मीकिरुवाच

सम्यक् पृष्टं त्वया राम सावधानमनाः शृणु । राम त्वन्नाममहिमा वर्ण्यते केन वा कथम् ॥४०॥
यत्प्रभावादहं राम ब्रह्मर्षित्वमवाप्तवान् । शृणु राघव मत्तस्त्वं कथा मे पूर्वजन्मनः ॥४१॥
पंपातीरे द्विजः कश्चिच्छंखो नाम महायशाः । गुरोः सिद्धिं गतश्चागान्नदीं गोदावरीं प्रति ॥४२॥
तीर्त्वा भीमरथीं पुण्यां कांतारे कंटकाविले । निर्जले विजने घोरे वैशाखे तापकर्षितः ॥४३॥
वनं चोपविवेशासौ मध्याह्नसमये द्विजः । तदा कश्चिद्दुराचारी व्याधश्चापधरः शठः ॥४४॥
निर्घृणः सर्वभूतेषु कालांतक इवापरः । तं कुण्डलधरं विप्रं दीक्षितं भास्करोपमम् ॥४५॥
खड्गेन भीषयित्वा तु जग्राह कुंडलादिकम् । उपानहौ तच्छत्रं च वस्त्राणि च कमण्डलुम् ॥
पश्चाद्धित्वाऽथ तं विप्रं गच्छेत्याह स मूढधीः ॥४६॥

तथा स गच्छन्पथि शर्कराविले सूर्यांशुतप्ते जनवर्जिते खरे ।
संतप्तपादस्तृणगोपिते स्थले क्वचिच्च वस्त्रोपरि संस्थितोऽभवत् ॥४७॥
स वै द्रुतं तापतप्तोऽपि तिष्ठन्हाहेति वादी प्रजगाम विप्रः ।
दृष्ट्वा मुनिं तं बहुखिन्नमानसं मध्यं गते पूष्णि यदाऽतितीव्रे ॥४८॥
व्याधस्य जाता मतिरीदृशी वै तस्मै ददामीति च पादरक्षे ।
स्वीयेन धर्मेण तु तस्करेण वने गृहीतं सकलं च तन्मे ॥४९॥

चौर्येण च स्वधर्मेण यद्गृहीत वनान्तरे । तदीयमेव तत्सर्वं व्याधानां धर्मनिर्णयः ॥५०।
तस्मादुपानहौ दास्ये मुहुर्दुःखापनुत्तये । तेन श्रेयो भवेद्यच्च तद्भवेन्मम पापिनः ॥५१॥
जीर्णौ चोपानहावेतौ ह्रस्वौ स्तश्च पदोर्मम । न चाभ्यामस्ति मे कार्यं तस्मात्तस्मै ददाम्यहम् ॥५२॥

करनेपर वाल्मीकिजीने बतलाना प्रारम्भ किया। उन्होंने कहा—आपने बहुत अच्छा प्रश्न किया है, सावधान चित्त होकर सुनिये। हे राम! आपके नामकी महिमाका वर्णन कौन कर सकता है, जिसके प्रभावसे आज मैं ब्रह्मर्षिपदपर बैठा हूँ। अच्छा, पहले अपने पूर्वजन्मका वृत्तान्त ही बतलाता हूँ। पम्पा सरोवरके पास कोई एक महान् यशस्वी शङ्ख नामका ब्राह्मण रहता था। उसने गुरुके पाससे सिद्धि प्राप्त की और कुछ दिनों बाद गोदावरी नदीपर गया। उसे पार करके भीमरथी नदी पार किया और एक ऐसे निर्जन वनमें पहुँचा, जहाँ जलतक मिलना कठिन था। वह वैशाखका महीना था। मारे गर्मीके उसका जी बेचैन था। दोपहरके समय थककर वह उसी वनमें बैठ गया। उसी समय धनुष-बाण लिये एक दुष्ट व्याध उसके पास आ पहुँचा ॥ ३८-४४ ॥ वह दूसरे यमराजके समान भयानक और निर्दयी था। उसने उस सूर्यके समान तेजस्वी ब्राह्मणको तलवारसे भयभीत करके उसके कुण्डलादि आभूषण, जूते, छतरी, वस्त्र तथा कमण्डलु आदि छीन लिये। इसके बाद उसने "जाओ" कहकर छोड़ दिया ॥ ४५ ॥ ४६ ॥ बेचारा ब्राह्मण कङ्कड़-पत्थर तथा सूर्यके तापसे जलती हुई बालुकाव्याप्त मार्गसे चलने लगा। जब उसके पैर ज्यादा जलने लगते तो किसी तृण आदिपर पैर ठंढा करके आगे बढ़ता था। चलते-चलते जब पैर बहुत जलने लगे तो वह कपड़ा बिछाकर एक स्थानपर बैठ गया ॥ ४७ ॥ थोड़ी देर बाद उठकर उस कड़ाकेकी धूपमें पैरके जलनेसे हाहाकार करता हुआ वह फिर आगे बढ़ा। उस ब्राह्मणको जलती दुपहरीमें इस तरह दुःखित देखकर व्याधके मनमें आया कि मैंने इसकी सारी वस्तुयें तो छीन ली हैं। न हो, इसे इसके जूते लौटा दूँ। इसकी सब चीजें छीनकर मैने अपने धर्मका पालन किया ही है। हे राम! वनमें आने-जानेवाले पथिकोंके सामान छीन लेना, उन चोरोंके धर्ममें सम्मिलित है। उस चोरने सोचा कि इसके जूते इसे दे डालूँ तो इसका क्लेश दूर हो जायगा और उससे जो पुण्य होगा, सो मुझ

इति निश्चित्य मनसि तूर्णं गत्वा ददौ च तौ । शर्करातप्तपादाय द्विजवर्याय सीदते ॥५३॥
उपानहौ गृहीत्वाऽसौ निर्वृतिं च परां ययौ । सुखी भवेति तं प्राह शंखस्तं पुनरब्रवीत् ॥५४॥
पूर्वपुण्येन ते जाता शुभा बुद्धिर्वनेचर । यया बुद्ध्याऽद्य वैशाखे त्वया दत्तावुपानहौ ॥५५॥
इति तद्वचनं श्रुत्वा शंखं व्याधोऽब्रवीद्वचः । किं मयाऽऽचरितं पूर्वं तत्सर्वं वक्तुमर्हसि ॥५६।

शंख उवाच

आतपो बाधते घोरो नात्र छाया न वै जलम् । तस्मात्स्थलांतरं गत्वा यत्र छायांबु वर्तते ॥५७॥
तत्र गत्वा जलं पीत्वा सुच्छायां च समाश्रितः । ततस्ते सुकृतं पूर्वं सविस्तारं वदाम्यहम् ॥५८॥
इत्युक्तो मुनिना तेन व्याधः प्राह कृतांजलिः । इतोऽविदूरे सलिलं वर्तते च सरोवरे ॥५९॥
कपित्थास्तत्र वै संति फलभारेण पीडिताः । गच्छात्रस्तत्र संतुष्टिर्भविता नात्र संशयः ॥६०॥
व्याधेनैवं समादिष्टस्तेन साकं ययौ मुनिः । किंचिद्दूरं ततो गत्वा ददर्शाग्र्यं सरोवरम् ॥६१॥
स्नात्वा मध्याह्नवेलायां तस्मिन्सरसि निर्मले । वाससी परिधायाथ कृत्वा माध्याह्निकीः क्रियाः ॥६२॥
देवपूजां तथा कृत्वा फलमूलमतंद्रितः । व्याधोपनीतं सुस्वादु कपित्थं श्रमहारि च ।।६३॥
भुक्त्वा सुखं जलं पीत्वा सुच्छायां च समाश्रितः । सुखोपविष्टस्तं प्राह पूर्वपुण्यं वदामि ते ॥६४॥
शाकले नगरे पूर्वं द्विजस्त्वं वेदपारगः । स्तंभो नाम महापापी तथा श्रीवत्सगोत्रजः ॥६५॥
तवेष्टा गणिका काचित्तदाऽऽसीत्संगदोषतः । त्यक्तनित्यक्रियो नित्यं शूद्रवन्मूर्खमार्गगः ॥६६।
शून्याचारस्य मूढस्य परित्यक्तक्रियस्य च । ब्राह्मणी ते तदाऽन्यासीद्भार्या कांतिमयी तथा ॥६७॥
सा त्वां पर्यचरत्सुभ्रूः सवेश्यं ब्राह्मणाधमम् । उभयोः क्षालयंती च पादौ त्वत्प्रियकाम्यया ॥६८॥
उभयोरप्यधः शेते उभयोर्वचने रता । वेश्यया वार्यमाणाऽपि हितकार्ये द्वयोः स्थिता ॥६९॥

पापीके पक्षमें अच्छा ही होगा ॥ ४८-५१ ॥ ये जूते भी पुराने और छोटे हैं। इसलिए मेरे पैरमें न आयेंगे। तब इसे दे ही डालूँ। इस प्रकार निश्चय करके दौड़ता हुआ वह उस धूप तथा कंकड़ियोंके गड़नेसे दुःखी ब्राह्मणके पास पहुँचा और उसे उसके जूते दे दिये ॥५२॥५३॥ जूता मिलनेपर उसे बड़ा आनन्द मिला और ब्राह्मणने कहा—तुम सुखी होओ। हे वनेचर ! पूर्वजन्मके किसी पुण्यसे तुम्हारी ऐसी बुद्धि हुई है। जिससे तुमने वैशाख महीनेमें इस जूतेका दान दिया है ॥ ५४ ॥ ५५ ॥ इस प्रकार शङ्खकी बात सुनकर व्याधने कहा कि पूर्वजन्ममें मैंने कौनसा पुण्य किया था। सो आप विस्तारपूर्वक मुझे बताइये ॥ ५६ ॥ ब्राह्मणने कहा कि इस समय मुझे घाम ज्यादा लग रहा है। इस जगहपर न तो पानी है, न छाया ही है। इसलिए किसी एक स्थानपर चलो, जहाँ कि छाया और पानी मिल सके। वहाँपर ही मैं तुम्हें तुम्हारे पूर्वजन्मका वृत्तांत सुनाऊँगा ॥५७॥५८॥ इस प्रकार ब्राह्मणकी बात सुनी तो हाथ जोड़कर व्याधेने कहा कि पास ही सरोवरमें पानी है और उसके आस-पास बहुतसे कैथेके वृक्ष फलसे लदे हुए विद्यमान हैं। वहाँपर चलनेसे आप सन्तुष्ट हो जायँगे, इसमें कोई सन्देह नहीं है ॥ ५९ ॥ ६० ॥ व्याधेके ऐसा कहनेपर ब्राह्मण उसके साथ चलकर उस सरोवरके पास पहुँचा। दोपहरके समय उसने स्नान किया, कपड़े पहने और मध्याह्नकालकी क्रियायें पूरी कीं। फिर देवताका पूजन करके व्याधेके लाये हुए कैथेके फल खाये, सरोवरका मीठा पानी पिया और छायामें सुखसे बैठकर विप्र बोला—अब मैं तुम्हारे पूर्वजन्मके पुण्य बतलाता हूँ ॥ ६१-६४ ॥ पूर्वजन्ममें शाकल नामकी नगरीमें तुम वेदपरगामी स्तम्भ नामके ब्राह्मण थे। श्रीवत्स गोत्रमें तुम्हारा जन्म हुआ था, किन्तु तुम बड़े भारी पापी थे। दुःसङ्गके दोषवश तुम एक वेश्यापर मुग्ध हो गये। तुमने अपनी सारी नित्य-क्रियायें छोड़ दीं और शूद्रके समान मूर्खोंके मार्गपर चलने लगे। तुम जैसे मूर्ख तथा आचार विहीन ब्राह्मणके घरमें एक अति रूपवती ब्याही भार्या भी थी। वह उस वेश्याकी तथा तुम्हारी खूब सेवा करती थी। तुम्हें प्रसन्न रखनेकी इच्छासे वह तुम दोनोंके पैर धोती थी ॥ ६५-६८ ॥ तुम दोनोंकी अपेक्षा नीची शय्यापर

एवं शुश्रूषयंत्या हि भर्तारं वेश्यया सह । जगाम सुमहान्कालो दुःखिताया गृहीतले ॥७०॥
अपरस्मिन्दिने भर्ता माहिष्यं मूलकान्वितम् । अभक्षयत्क्षुद्रकर्मा निष्पावांस्तिलमिश्रितान् ॥७१॥
तमपथ्यमशित्वा तु वमंश्चैव व्यरेचयत् । अपथ्याद्दारुणो रोगो व्यजायत भगंदरः ॥७२॥
स दह्यमानो रोगेण दिवारात्रं तु भूरिशः । यावदास्ते गृहे वित्तं तावद्वेश्या च संस्थिता ॥७३॥
गृहीत्वा सकलं वित्तं पश्चान्नोवास मन्दिरे । अन्यस्य पार्श्वमासाद्य तस्थौ घोराऽतिनिर्घृणा ॥७४॥
ततः स दीनवदनो व्याधिबाधासुपीडितः । उक्तवान्सुरुदन्भार्यां रुजा व्याकुलमानसः ॥७५॥
परिपालय मां देवि वेश्यासक्तं सुनिष्ठुरम् । न मयोपकृतं किंचित्तव सुन्दरि पावनि ॥७६॥
यो भार्यां प्रणतां पापो नानुमन्येत मूढधीः । स षंढो भवतीत्यत्र दश जन्मानि सप्त च ॥७७॥
दिवारात्रं महाभागे निन्दितः साधुभिर्जनैः । पापयोनिमवाप्स्यामि त्वां साध्वीमवमन्य वै ॥७८॥
अहं क्रोधेन दग्धोऽस्मि सदा निष्ठुरभाषणः । एवं ब्रुवाणं भर्तारं कृताञ्जलिपुटाऽब्रवीत् ॥७९॥
न दैन्यं भवता कार्यं न व्रीडा कांत मां प्रति । न चापि त्वयि मे क्रोधो वर्तते सुमनागपि ॥८०॥
पुरा कृतानि पापानि दुःखानि भवंति हि । तानि यः क्षमते साध्वी पुरुषो वा स उत्तमः ॥८१॥
यन्मया पापया पापं कृतं वै पूर्वजन्मनि । तद्भुञ्जन्त्या न मे दुःखं न विषादः कथंचन ॥८२॥
इत्येवमुक्त्वा भर्तारं सा सुश्रूरन्वपालयत् । आनीय जनकाद्वित्तं बन्धुभ्यो वरवर्णिनी ॥८३॥
क्षीरोदवासिनं विष्णु भर्तुर्देहे व्यचिन्तयत् । शोधयन्ती दिवारात्रौ पुरीषं मूत्रमेव च ॥८४॥
नखेन कर्षती भर्तुः कृमीन्देहाच्छनैः शनैः । न सा स्वपिति रात्रौ तु दिवा वा वरवर्णिनी ॥८५॥
भर्तुर्दुःखेन संतप्ता दुःखितेदमथाब्रवीत् । देवाश्च पांतु भर्तारं पितरो ये च विश्रुताः ॥८६॥
कुर्वंतु रोगहीनं मे भर्तारं हतकल्मषम् । चंडिकायै प्रदास्यामि रक्तं मांसं मुखोद्भवम् ॥८७॥

सोती और दोनोंकी आज्ञाका पालन करती रहती थी। यद्यपि वेश्या उसे अपनी सेवा करनेसे रोकती, फिर भी वह न मानती और तुम दोनोंकी परिचर्यामें रात-दिन लगी रहती थी। इस तरह सेवा करते-करते उस दुखियाके बहुत दिन बीत गये। एक दिन स्तम्भने तिलमिश्रित कुछ ऐसी चीजें खा लीं, जिसमें कै दस्त होने लगा और कुछ दिनों बाद उसने अतिदारुण भगन्दर रोगका रूप धारण कर लिया ॥ ६९-७२ ॥ उस रोगसे स्तम्भ रात-दिन गलने लगा। जब तक घरमें सम्पत्ति थी, तब तक वेश्या रही। बादमें घरकी रही-सही पूँजी चुराकर निकल भागी और किसी दूसरेके घर जा बैठी। ऐसी अवस्थामें रोता हुआ स्तम्भ अपनी स्त्री-से कहने लगा—॥ ७३-७५ ॥ हे देवि ! मुझ वेश्यागामी तथा निष्ठुर पुरुषकी रक्षा करो। हे सुन्दरि ! हे पावनि ! मैंने जीवनभरमें तुम्हारा कोई उपकार नहीं किया है। शास्त्र कहता है कि जो पापी शीलवती भार्या-का निरादर करता है, वह सत्रह जन्म तक नपुंसक होकर जन्म लेता है। अच्छे पुरुष ऐसे मनुष्योंकी रात-दिन निन्दा करते हैं। तुम जैसी सती-साध्वी नारीका अपमान करके मुझे किसी नीच योनिमें जाना पड़ेगा ॥ ७६-७८ ॥ क्योंकि मैं सदा तुम्हारे ऊपर कुपित रहता और रूखी बातें बोला करता था। इस प्रकार दीनभावसे प्रार्थना करते हुए पतिसे स्त्रीने हाथ जोड़कर कहा—हे कान्त ! आप किसी प्रकार दुखी न हों और उन बीती बातोंके लिए पश्चात्ताप न करें। मुझे तुम्हारेपर उनके लिए कोई चिन्ता या क्रोध नहीं है ॥ ७९ ॥ ८० ॥ अपने पूर्वजन्मके किये हुए पाप ही दुःखरूपसे प्राप्त होते हैं। जो स्त्री या पुरुष उन दुःखोंको सह लेता है, वे उत्तम हैं। मुझ पापिनीने पूर्वजन्ममें जो पाप किये थे, उनको भोगते हुए मुझे किसी तरह का दुःख या विषाद नहीं है ॥ ८१ ॥ ८२ ॥ इतना कहकर उसने अपने पतिको ढाढ़स बँधाया और पिता तथा भ्राताओंके पाससे धन माँग लाकर सेवा करने लगी। वह उस रोगी पतिके शरीरमें क्षीरसागरनिवासी विष्णुभगवान्का निवास मानती हुई रात-दिन मल-मूत्र उठाकर सेवा करती रही ॥ ८३ ॥ ८४ ॥ पतिके शरीरमें पड़े हुए कीड़ोंको नाखूनसे निकालती रहती थी। इस प्रकार सेवा करनेसे रात-दिन कभी उसे सोनेतक की छुट्टी नहीं मिलती थी। स्वामीके दुःखसे दुःखित होकर वह देवताओंको मनाती, पितरोंसे विनती करती

सुष्टन्नं माहिषोपेतं भर्तुरारोग्यहेतवे । मोदकानपि दास्यामि विघ्नेशाय महात्मने ॥८८॥
मन्दवारे करिष्यामि सदैवाहमुपोषणम् । नोपभोक्ष्यामि मधुरं नोपभोक्ष्यामि वै घृतम् ॥८९॥
तैलाभ्यङ्गविहीनाऽहं सदा स्थास्यामि भूतले । जीवत्वयं रोगहीनो भर्ता मे शरदां शतम् ॥९०॥
एवं सा व्याहरद्देवी वासरे वासरे गते । तदा चागान्मुनिः कश्चिन्महात्मा देवलाह्वयः ॥९१॥
वैशाखमासे घर्मार्तः स ययौ तस्य वै गृहे । तदा ते भार्यया चोक्तं वैद्योऽयं गृहमागतः ॥९२॥
तेन ते रोगहानिः स्यात्तस्यातिथ्यं करोम्यहम् । यदाज्ञापयसि त्वं मां नोचेन्नैव करोम्यहम् ॥९३॥
ज्ञात्वा त्वां धर्मविमुखं भिषग्व्याजेन वंचितम् । तस्यातिथ्यं तु वै कर्तुं दत्ताऽऽज्ञा वै पुरा त्वया ॥९४॥
तस्य पत्नी तदा तुष्टा पूजयामास सा मुनिम् । पादावनेजनं कृत्वा तज्जलं मूर्ध्नि तेऽवहत् । ९५॥
पातुं तुभ्यं ददौ तीर्थं त्वामुक्त्वा भेषजं त्विति । पानकं च ददौ तस्मै घर्मार्ताय महात्मने ॥९६॥
दिव्यान्नैर्भोजयामास सुगन्धव्यजने ददौ । त्वयाऽनुमोदिता सायं घर्मतापं न्यवारयत् ॥९७॥
स प्रातरुदिते सूर्ये मुनिर्ग्रामांतरं ययौ । अथ चाल्पेन कालेन सन्निपातोऽभवत्तव ॥९८॥
त्रिकटुं मुख आधात्सा भर्ताऽङ्गुलिमखण्डयत् । कफेन दन्तपंक्तिभ्यां मीलिताभ्यां दृढं तदा ॥९९॥
ते वक्त्रेऽङ्गुलिखण्डं तत्स्थितमेवातिकोमलम् । खंडयित्वांगुलिं तस्याः पञ्चत्वं त्वं गतः पुरा ॥१००॥
शय्यायां सुमनोज्ञायां स्मरंस्तां पुंश्चलीं हृदि । मृतं विज्ञाय भर्तारं भार्या कांतिमयी तव ॥१०१॥
विक्रीत्वा वलये स्वे त्वां गृहीत्वा चंदनं बहु । चक्रे चितिं तेन साध्वी मध्ये कृत्वा पतिं तदा ॥१०२॥
समालिंग्य भुजाभ्यां ते पादौ चाश्लिष्य पादयोः । मुखे मुखं निजं कृत्वा हृदये हृदयं तथा ॥१०३॥
गुह्ये कृत्वा तु गुह्यं स्वमेवं सा राममानसा । दाहयामास कल्याणी भर्तुर्देहं रुजान्वितम् ॥
आत्मना सह तन्वङ्गी ज्वलिते जातवेदसि ॥१०४॥

एवं वरा सा ललना पतिव्रता दंदह्यमाने सुसमिद्धवह्नौ ।
विमुच्य देहं सहसा जगाम पतिं नमस्कृत्य मुरारिलोकम् ॥१०५॥

और चण्डिकाके समीप यह प्रार्थना करती-हे देवि ! यदि मेरे पतिदेव शीघ्र अच्छे हो जायँ तो मैं महिषके रक्त और मांससे मिला हुआ अन्न आपको समर्पण करूँगी। पतिदेव यदि अच्छे हो जायँ तो मैं गणेशजीको लड्डू चढ़ाऊँगी और प्रत्येक शनिवारका व्रत करूँगी । मैं मिठाई खाना छोड़ दूँगी, घी भी नहीं खाऊँगी, शरीरमें तेल और उबटन लगाना त्याग दूँगी और सर्वदा जमीनपर सोऊँगी । लेकिन मेरे पतिदेव रोगमुक्त हो जायँ और सैकड़ों वर्ष जीवित रहें ॥८५-९०॥ इस तरह वह नित्य मानता माना करती थी । इसी बीच एक दिन महात्मा देवल ऋषि सहसा उसके घर पहुँचे। वह वैशाखका महीना था। स्तम्भकी स्त्री पतिके पास जाकर कहने लगी कि एक कोई वैद्य एकाएक मेरे घर आ गया है। वह अवश्य किसी उपायसे आपका रोग नष्ट कर देगा। आप यदि आज्ञा दें तो मैं उसकी सेवा करूँ, नहीं तो नहीं ॥ ९१-९३ ॥ स्तम्भ (तुम) ने सेवा करनेकी आज्ञा दे दी। स्त्रीने प्रसन्न मनसे देवलकी पूजा की। उनके चरण धोकर उस जलको माथे चढ़ाया और थोड़ा-सा जल दवाके व्याजसे स्तम्भ (तुम) को भी पिला दिया। फिर उन देवल ऋषिको उसने पानी पिलाया। अच्छे-अच्छे पकवान बनाकर भोजन कराया और तुम्हारे कहनेसे उनको पंखा भी झलकर उनका सन्ताप दूर किया ॥ ९४-९७ ॥ रातभर देवलऋषि उनके घर रहे और सबेरे दूसरे गाँवको चले गये। थोड़े दिन बाद स्तम्भको (तुमको) सन्निपात हो गया। स्त्रीने त्रिकटु (सोंठ, मिर्च, पीपल) का काढ़ा बनाकर स्तम्भके (तुम्हारे) मुखमें दिया, इतनेमें कफके प्रकोपसे दाँत जकड़ गये और तुमने स्त्रीकी एक उँगली काट ली। तुम्हारे मुखमें वह कोमल उँगली पड़ी ही रही और तुम्हारी मृत्यु हो गयी ॥ ९८-१०० ॥ मरणकालमें शय्यापर पड़े हुए उसी पुंश्चली वेश्याका स्मरण करते-करते तुमने प्राण त्याग दिया। जब उस सतीने जाना कि तुम्हारी मृत्यु हो गयी है तो अपने दोनों कंकण बेचकर बहुत-सी चन्दनकी लकड़ी खरीदी और उसको चिता बनायी। फिर दोनों भुजाओंसे भुजाएँ, पैरसे पैर, मुखसे मुख तथा हृदयसे

त्वमन्तकाले गणिकेच्छया हि देहं त्यक्त्वा त्यक्तकर्मा दुरात्मा ।
व्याधजन्म प्रापितं घोरधर्मे हिंसासक्तः सर्वदोद्वेगकारी ॥१०६॥
दत्ता त्वया पानकमर्पितुं वै मासेऽनुज्ञा माधवे सद्द्विजाय ।
भिषग्व्याजात्तेन जाता सुबुद्धिर्धर्मं कर्तुं पादरक्षेऽर्पिते ये ॥१०७॥
घृतं मूर्ध्ना पादशौचावशेषं जलं मुनेः सर्वपापापहारि ।
तेनैव ते सङ्गतिर्मे वनेऽस्मिन् जाता श्रोतुं स्वीयपुण्यं मतिश्च ॥१०८॥
मुखे कृत्वांगुलिं यस्मान्मृतः पूर्वभवांतरे । तस्मादत्र वने मांसाहाररतेऽभूद्वनेचर ॥१०९॥
वेश्या सा भिल्लिनी जाता भार्या या तव वर्तते । शय्यायां मरणात्तेऽत्र शयनं भुवि सर्वदा ॥११०॥
इति ते सर्वमाख्यातं पूर्वजन्मनि यत्कृतम् । तत्कर्म पुण्यं पापं च दृष्टं दिव्येन चक्षुषा ॥१११॥
अतः परं भावि वृत्तं शृणु तेऽहं वदामि वै । कृणुर्नाम मुनिस्त्वग्रे कस्मिंश्चिच्च सरोवरे ॥११२॥
करिष्यति तपस्तीव्रं चान्नव्यापारवर्जितः । पश्चात्तपोविरामांते तन्नेत्राभ्यां बहिः स्रुतम् ॥११३॥
वीर्यं दृष्ट्वोरगी काचित्स्वयं स्खलितमंजसा । ग्रहीष्यति ऋतोः काले तस्मात्त्वत्पुण्यतस्तदा ॥११४॥
किराताः पालयिष्यंति किरातस्त्वं भविष्यसि । उपानहावर्पितेऽद्य यस्मात्त्वत्पुण्यतस्तदा ॥११५॥
भविष्यति सङ्गतिस्ते वने सप्तमुनीश्वरैः । तेषां प्रसादाद्वाल्मीकिर्मुनिस्त्वं हि भविष्यसि ॥११६॥
यस्त्वं रामकथां दिव्यां सुप्रबन्धैः करिष्यसि ।

वाल्मीकिरुवाच

इति व्याधं समादिश्य धर्मान्वैशाखजानपि ॥११७॥
उपदिश्य सविस्तारं प्रतस्थे गौतमीं तदा । स शंखः कुण्डलाद्यैश्च तद्दत्तैस्तुष्टमानसः ॥११८॥
व्याधोऽपि शङ्खवचनात्तस्मिन्नेव वने चिरम् । वन्यैर्वैशाखमासीयान्धर्मान्प्रीत्याऽकरोच्छुभान् ॥११९॥

हृदयका आलिंगन करके तुम्हारे साथ धधकती चितामें शरीरको त्यागकर वह राममें रमी पतिव्रता स्त्री सती होकर वैकुण्ठलोकको चली गयी ॥ १०१–१०५ ॥ अपने ब्राह्मणोचित कार्योंको त्यागे हुए तुमने अन्तसमयमें वेश्याका चिन्तन करते हुए प्राण त्यागे थे। इससे सर्वदा उद्वेगकारी तथा हिंसामें आसक्त इस घोरकर्ममय व्याधेकी योनिमें उत्पन्न हुए हो। उस समय वैशाख महीनेमें आये हुए देवल ऋषिकी पूजाके लिए तुमने अपनी स्त्रीको आज्ञा दे दी थी, उसी पुण्यसे तुम्हारे हृदयमें धर्मबुद्धि उत्पन्न हुई है। इसीसे इस समय तुमने मेरे जूते वापस दे दिये हैं। तुम्हारी स्त्रीने दवाके ब्याजसे ब्राह्मणका चरण-जल तुम्हारे माथे चढ़ाया था, उसी पुण्यसे आज हमारी भेंट हुई है और तुम अपने पूर्वजन्मका वृत्तांत सुन रहे हो ॥ १०६–१०८ ॥ तुमने पूर्वजन्ममें अपनी स्त्रीकी उँगली काट ली थी। इसलिए हे वनेचर! इस समय तुम माँसाहारी हो। वह वेश्या इस समय भीलिनी है। मरते समय तुम शय्यापर ही पड़े रहे, इस कारण इस जन्ममें तुम्हें सर्वदा भूमिपर शयन करना पड़ता है। मैंने अपनी योगदृष्टिसे तुम्हारे पूर्वजन्मके पाप-पुण्य देखकर तुम्हें बतलाया है ॥ १०९–१११ ॥ इसके अनन्तर अब मैं तुम्हें तुम्हारे भावी जीवनका हाल बतलाता हूँ, सुनो। कृणुनामके कोई तपस्वी अन्न त्यागकर एक सरोवरके निकट तपस्या करते रहेंगे। तपस्याके अन्तमें उनकी आँखोंसे वीर्य निकलेगा। उसे देखकर कोई सर्पिणी खा जायगी। उसीके उदरसे तुम किरातके रूपमें उत्पन्न होओगे ॥ ११२–११४ ॥ किरात लोग तुम्हारी रक्षा करेंगे और तुम उन्हींके साथ रहोगे। जो तुम इस समय मुझे मेरा जूता वापस दे रहे हो, इसी पुण्यसे एक बार तुम्हारी सप्त ऋषियोंसे भेंट होगी और उनकी दयासे तुम वाल्मीकि नामक ऋषि होओगे ॥ ११५ ॥ ११६ ॥ अपनी अच्छी रचनासे तुम रामकथाका निर्माण करोगे। वाल्मीकिजी कहते हैं कि इस प्रकार वैशाख मासका धर्म तथा विविध उपदेश देकर व्याधसे कुण्डल आदि पाकर प्रसन्न मन शङ्ख गौतमी नदीकी ओर चले गये। व्याधेने भी शंखके उपदेशसे वनैले फलमूल द्वारा ही वैशाख मासके धर्मोंकी

व्याधजन्मात्यये जाते कृणुः पुत्रस्त्वहं ततः। पन्नगीजठरोद्भूतस्त्वरण्ये रघुनन्दन ॥१२०॥
अहं पुरा किरातेषु किरातैः सह वर्द्धितः। जन्ममात्रं द्विजत्वं मे शूद्राचाररतः सदा ॥१२१॥
शूद्रायां बहवः पुत्राश्चोत्पन्ना मेऽजितात्मनः। ततश्चौरैश्च संगत्य चौरोऽहमभवं पुनः ॥१२२॥
धनुर्बाणधरो नित्यं जीवानामंतकोपमः। एकदा मुनयः सप्त दृष्टा महति कानने ॥१२३॥
स्वतेजसा प्रकाशंतो ज्वलनार्कसमप्रभाः। तानन्वधावं लोभेन तेषां सर्वपरिच्छदान् ॥१२४॥
गृहीतुकामस्तत्राहं तिष्ठतां तिष्ठतामिति। अब्रुवन् मुनयोऽपृच्छन् किमायासि द्विजाधम ॥१२५॥
अह तानब्रवं किंचिदादातुं मुनिसत्तमाः। पुत्रदारादयः संति बहवो मे बुभुक्षिताः ॥१२६॥
तेषां संरक्षणार्थाय चरामि गिरिकानने। ततो मामूचुरव्यग्राः पृच्छ गत्वा कुटुम्बकम्॥१२७॥
यो यो मया प्रतिदिनं क्रियते पापसंचयः। यूय तद्भागिनः किं वा नेति नेति पृथक् पृथक्१२८॥
वयं स्थास्यामहे यावदागमिष्यसि निश्चयात्। यत्पापं ब्रह्महत्यायां यत्पापं मद्यपानतः ॥१२९॥
तेन पापेन लिम्पामो यदि गच्छामहे वयम्। यत्पापं हेमचौर्येण गुरुदारागमाच्च यत् ॥१३०॥
तेन पापेन लिंपामो त्वामपृष्ट्वा वनेचर। चेद्व्रजामो वयं सर्वे इतस्ते पृष्ठतो बहिः ॥१३१॥
संसर्गजनितं पापं ब्रह्मस्वहरणाच्च यत्। तेन पापेन लिंपामो यदि गच्छामहे वयम् ॥१३२॥
एवं तच्छपथैर्नानाविधैः प्रत्ययमागतः। तथेत्युक्त्वा गृहं गत्वा मुनिभिर्यदुदीरितम् ॥१३३॥
अपृच्छं पुत्रदारादींस्तैरुक्तोऽहं रघूत्तम। पातं तवैव तत्सर्वं वयं तु फलभागिनः ॥१३४॥
तच्छ्रुत्वा जातनिर्वेदो विचार्य पुनरागतः। मुनयो यत्र तिष्ठंति करुणापूर्णमानसाः ॥१३५॥
मुनीनां दर्शनादेव शुद्धांतःकरणोऽभवम्। धनुरादि परित्यज्य दंडवत्पतितोऽस्म्यहम् ॥१३६॥

निभाया। व्याधेका जीवन बितानेके पश्चात् मैं पन्नगीकी योनिसे कृणुका पुत्र होकर जन्मा। मैं उस समय किरातों ही में बढ़ा और उन्हींके साथ रहने लगा। केवल जन्म मेरा ब्राह्मणके वीर्यसे हुआ था। किन्तु कर्म मेरा सर्वथा शूद्रोचित था ॥ ११७-१२१ ॥ एक शूद्रासे मेरा विवाह हुआ और उससे कई पुत्र उत्पन्न हुए। कुछ दिनों बाद मैं चोरोंसे जा मिला और धनुष-बाण धारण करके संसारी जीवोंके लिए यमराज सदृश भयानक चोर हो गया। एक बार मैंने एक विकराल जङ्गलमें सप्त ऋषियोंको देखा ॥ १२२ ॥ १२३ ॥ जलती हुई अग्नि तथा सूर्यके समान उनका प्रकाश था। उन्हें देखते ही उनके कपड़े-लत्ते छीननेके लिए मैं जोरोंसे दौड़ पड़ा और "ठहरो-ठहरो" कहकर चिल्लाने लगा। तब ऋषियोंने कहा—अरे द्विजाधम! क्यों दौड़ा आ रहा है? ॥ १२४ ॥ १२५ ॥ मैंने उत्तर दिया कि आपसे कुछ लेनेके लिये। क्योंकि मेरे परिवारसे सब लोग भूखे बैठे हैं। उन्हींका पालन-पोषण करनेके लिए मैं वन-वन घूम रहा हूँ। तब सप्तर्षियोंने हमसे कहा—अपने कुटुम्बियोंसे जाकर पूछो कि मैं जो नित्य यह पापकी कमाई कर रहा हूँ। तुम लोग अलग-अलग बतलाओ कि उस पापका फल भी भोगोगे या नहीं? ॥ १२६-१२८ ॥ यह विश्वास रक्खो कि जबतक तुम लौटकर नहीं आओगे, तब तक मैं यहाँ ही रहूँगा। जो पाप ब्रह्महत्या करनेमें और जो पाप मद्य पीनेमें लगते हैं, हमलोग उन्हीं पापोंके भागी हों, जो बिना तुम्हारे आये यहाँसे जायँ। जो पाप सोना चुराने या गुरुपत्नीके साथ व्यभिचार करनेमें होता है, हमलोग उन पापोंके भागी हों, यदि तुमसे बिना पूछे यहाँसे जायँ ॥ १२९-१३१ ॥ संसर्गजनित अथवा ब्राह्मणका धन हड़प लेनेसे जो पातक लगता हो, हम सब उस पापके भागी हों, यदि यहाँसे पीठ पीछे हटें ॥ १३२ ॥ इस तरह उनके विविध प्रकारकी कसमें खानेपर मुझे विश्वास हुआ और अपने घर गया। वहाँ जैसा उन ऋषियोंने कहा था, उसी तरह घरके लोगोंको इकट्ठा करके मैंने पुत्र-स्त्री आदिसे पूछा। उन्होंने उत्तर दिया कि तुम जो पाप कर रहे हो, उससे हमें कोई मतलब नहीं। हम तो केवल फल चाहते हैं ॥ १३३ ॥ १३४ ॥ उनकी बात सुनकर मुझे बड़ा दुःख हुआ और मैं लौटकर फिर वहीं आया, जहाँ दयासे परिपूर्ण हृदयवाले वे सप्तर्षि बैठे मेरा रास्ता देख रहे थे ॥ १३५ ॥ उन मुनियोंके दर्शन ही से मेरा हृदय पवित्र हो गया। तुरन्त धनुष-बाण आदि शस्त्रास्त्र फेंककर मैं उनके चरणोंमें दण्डवत् लोट गया ॥ १३६ ॥

रक्षोघ्नं मां मुनिश्रेष्ठाः पतितं नरकार्णवे । इत्यग्रे पतितं दृष्ट्वा मामूचुर्मुनिसत्तमाः ॥१३७॥
उत्तिष्ठोत्तिष्ठ भद्रं ते सफलः सत्समागमः । उपदेक्ष्यामहे तुभ्यं किंचित्तेनैव मोक्ष्यसे ॥१३८॥
परस्परं समालोक्य दुर्वृत्तोऽयं द्विजाधमः । उपदेश्य एव सद्वृत्तस्तथापि शरणं गतः ॥१३९॥
रक्षणीयः प्रयत्नेन मोक्षमार्गोपदेशतः । इत्युक्त्वा राम ते नाम व्यत्यस्ताक्षरपूर्वकम् ॥१४०॥
मुनयो मामुपदिदिशुर्मत्कृपापूर्णमानसाः । एकाग्रमनसाऽत्रैव मरेति जप सर्वदा ॥१४१॥
आगच्छामः पुनर्यावत्तावदुक्तं सदा जप । इत्युक्त्वा प्रययुः सर्वे मुनयो दिव्यदर्शनाः ॥१४२॥
अहं यथोपदिष्टस्तैस्तथाऽकरवमंजसा । जपन्नेकाग्रमनसा बाह्यं विस्मृतवानहम् ॥१४३॥
साक्ष्यर्थं तपसस्तत्र दंडोऽग्रे स्थापितो मया । एवं बहुतिथे काले गते निश्चलरूपिणः ॥१४४॥
सर्वसङ्गविहीनस्य वल्मीकोऽभून्ममोपरि । दण्डोऽग्रे स नगो रम्यो बभूव मत्तपोबलात् ॥१४५॥
ततो युगसहस्रांते ऋषयः पुनरागमन् । मामूचुर्निर्गमस्वेति तच्छ्रुत्वा तूर्णमुत्थितः ॥१४६॥
वल्मीकान्निर्गतश्चाहं नीहारादिव भास्करः । मामप्याहुर्मुनिगणा वाल्मीकिस्त्वं मुनीश्वरः ॥१४७॥
वल्मीकात्संभवो यस्माद्द्वितीयं जन्म तेऽभवत् । इत्युक्त्वा ते ययुर्दिव्यां गतिं रघुकुलोत्तम ॥१४८॥
अहं ते रामनाम्नश्च प्रभावादीदृशोऽभवम् । एकदा शम्भुवचसाऽयं विधिः श्रुतवांस्तव ॥१४९॥
चरितं वेदवाक्यैश्च कैलासे परमे शुभे । अनेन विधिना तच्च कथितं नारदाय हि ॥१५०॥
नारदः कथयामास वेदवाक्यैर्ममात्र तत् । ततः क्रौंचं हतं दृष्ट्वा व्याधेन तमसातटे ॥१५१॥
शोचन्तीं सांत्वयन्क्रौंचीं ममास्यान्निर्गतस्तदा । द्वात्रिंशदक्षरैः प्रोक्तः शोकः श्लोकत्वमागतः ॥१५२॥

और कहने लगा–हे मुनिश्रेष्ठ ! मैं नरकके महासमुद्रमें गिर गया हूँ, मेरी रक्षा करिए ॥ १३७ ॥ इस तरह मुझे आगे पड़ा देखकर उन्होंने कहा–"उठो ! उठो !! आज हम लोगोंका समागम तुम्हारे लिये बड़ा ही कल्याणकारी हुआ । हम तुम्हें कोई ऐसा उपदेश देंगे, जिससे तुम सब पापोंसे छूट जाओगे ।" इसके बाद उन लोगोंने परस्पर मंत्रणा करके कहा—नियम तो यह है कि सदाचारी मनुष्यको ही उपदेश देना चाहिये । यह ब्राह्मणाधम एक असाधारण दुराचारी है । फिर भी हमलोगोंकी शरण आया है । इसलिये इसे कोई उपदेश देकर इसकी रक्षा करनी चाहिये । इस प्रकार निश्चय करके हे राम ! उन्होंने आपके उलटे अक्षरोंके नाम (मरा) का उपदेश दिया और हमसे कहा कि तुम एकाग्र मनसे 'मरा' नामका जप करते रहो । जब तक हमलोग उधरसे लौटकर न आयें, तब तक तुम बराबर इस नामका जप करते रहना । ऐसा कहकर वे दिव्यदृष्टि ऋषिगण वहाँसे चले गये ॥ १३८–१४२ ॥ जैसा उन्होंने बतलाया था, ठीक उसी तरह मैं एकाग्र मनसे जप करने लगा । मेरा मन उस जपमें इतना रम गया कि मुझे अपने शरीरकी भी सुधि नहीं रही ॥ १४३ ॥ साक्षीके लिए मैंने अपने सामने एक दण्ड गाड़ दिया था । इस तरह निश्चल भावसे भजन करते-करते बहुत दिन बीत गये और वल्मीकों (दीमकों) ने मेरे शरीरपर मिट्टीका ढेर लगा दिया । मेरे तपोबलसे वह सामनेका गड़ा हुआ दण्ड एक सुन्दर वृक्ष बन गया ॥ १४४ ॥ १४५ ॥ एक हजार युग बीतनेके बाद वे सप्तऋषिगण फिर लौटे और मेरे बिमौटेके समीप खड़े होकर उन्होंने पुकारा और कहा कि "निकलो" । उसे सुनकर मैं तुरन्त उठ खड़ा हुआ । जिस समय बिमौटेके भीतरसे मैं निकला, उस समय मेरी शोभा वैसी ही थी, जैसी कि कुहरेके भीतरसे निकले हुए सूर्यनारायणकी होती है । तब मुझसे मुनियोंने कहा कि वल्मीक (बिमौटे) से तुम्हारा पुनर्जन्म हुआ है । इसलिये तुम मुनीश्वर वाल्मीकि हो गये हो ॥ १४६–१४८ ॥ इतना कहकर वे ऋषि दिव्य (आकाश) मार्गसे चले गये । आपके रामनामके प्रभावसे मैं ऐसा ऋषि हो गया । एक बार श्रीशिवजीके मुखसे इन ब्रह्माजीने वेदसे मथकर निकाले हुए आपके चरित्रको सुना था ॥ १४९ ॥ तब इन्हीं (ब्रह्मा) ने उसे अपने बेटे नारदको बताया और उन्होंने वह सारा चरित्र हमें सुनाया । कुछ समय बाद एक व्याधे द्वारा मारे गये क्रौंचके दुःखसे दुःखिता क्रौंचीको देखकर मुझे जो शोक हुआ, वही शोक बत्तीस अक्षरोंवाले श्लोकके रूपमें मेरे मुखसे निकल पड़ा (श्लोक यह है–मा निषाद प्रतिष्ठा त्वमगमः

ततोऽपि विधिनाऽनेन चरितं ते प्रवर्णितम् । समागत्य तु संक्षेपादर्पिता मे वरा अपि ॥१५३॥
ततोऽस्य ब्रह्मणो वाक्यात्कृतवांश्चरितं तव । आनन्ददायकं रम्यं शतकोटिप्रविस्तरम् ॥१५४॥
एवं त्वया यथा पृष्टं तथा सर्वं निवेदितम् । एवं वाल्मीकिवाक्यैश्च सर्वं जानन्नपि प्रभुः ॥१५५॥
पृष्ट्वा श्रोतुं जनान्सर्वान् श्रावयामास राघवः । एतस्मिन्नन्तरे रामं वाक्पतिः प्राह सादरम् ॥१५६॥
राम किं चरितं गेयं तवानन्दस्वरूपिणः । यस्य नामाद्यवर्णैश्च शब्दमात्रोऽत्र गीयते ॥१५७॥
लौकिका वैदिका वापि अकाराद्यास्तु षोडश । स्वरास्तथैव वर्णाश्च चतुस्त्रिंशच्छुभावहाः ॥१५८॥
ककाराद्याः क्षकारांता मन्त्ररूपाः शुभावहाः । एवं वर्णाश्च पञ्चाशद्ये कीर्त्यंते नरैर्भुवि ॥१५९॥
ते त्व न्नामाद्यवर्णाश्च सर्वे ज्ञेया रघूत्तम । तव नामाद्यवर्णैश्च व्याप्तं सर्वं चराचरम् ॥१६०॥
चराचराणां सर्वेषां यानि नामानि तानि ते । तेषु वर्णपरत्वेन नामान्यद्य वदामि ते ॥१६१॥

संक्षेपाच्चव पंचाशत्तानि शृण्वन्तु सज्जनाः ।
ओमनन्ता १ नन्दमय २ श्रेष्टापूर्तफलप्रदः ३ ॥१६२॥
ईश्वरश्च ४ तथोत्कृष्ट ५ श्चोर्ध्वरेता ६ ऋतंभरः ७ ।
ऋयुक्तश्च ८ लृशश्चैव ९ लृपक १० श्चक ११ एव च ॥१६३॥
ऐश्वर्यद १२ श्चोजदश्च १३ तथैवौदार्यचंचुरः १४ ।
अंतरात्मा १५ चार्द्धगर्भ १६ स्तथैव करुणाकरः १७ ॥१६४॥
खड्गी च १८ गतिदश्चैव १९ घनश्याम २० स्तथैव च ।
ङणन २१ श्चमिताशेषदुष्कृतश्च २२ तथैव हि ॥१६५॥
छत्री २३ जगन्मय २४ श्चैव झषरूपी २५ ञटेश्वरः २६ ।
टणत्कारिधनु २७ ष्ठानवन्धो २८ डमरुसत्करः २९ ॥१६६॥
ढुणुल्लुनितपापश्च ३० णकर्णश्च ३१ तथैव हि ।
तपोरूप ३२ स्थव ३३ श्चैव दक्षो ३४ धन्वी ३५ तथैव च ॥१६७॥

शाश्वतीः समाः ॥ यत्क्रौञ्चमिथुनादेकमवधीः काममोहितम् ॥) ॥ १५०–१५२ ॥ इसके अनन्तर इन ब्रह्माजीने आकर मुझे संक्षेपरूपसे आपका चरित्र सुनाया और वरदान भी दिया । तव इन्हींके कहनेसे मैंने सौ करोड़ श्लोकोंमें आपका चरित्र रचा ॥ १५३ ॥ १५४ ॥ आपने जैसे पूछा, वह सब वृत्तान्त मैंने कह सुनाया । यद्यपि रामचन्द्रजी इन सब बातोंको जानते थे, किन्तु संसारके लोगोंको सुनानेके लिये उन्होंने वाल्मीकिजीसे इस प्रकारके प्रश्न किये थे । इसके बाद ब्रह्माजी बोले—॥ १५५ ॥ १५६ ॥ हे राम ! आप जैसे आनन्दस्वरूपके चरित्रका कोई कहाँ तक गान करेगा । जिसके नामके पहसे ही अक्षरमें संसारके सारे शब्द आ जाते हैं । लौकिक तथा वैदिक अकारादि सोलह स्वर और ककारसे लेकर क्षकार पर्यन्त चौंतिस वर्ण ये पचास अक्षर, जिन्हें कि संसारी लोग जानते हैं । वे सब आपके नामके पहले ही अक्षरमें आ जाते हैं, आपके नामके पहले अक्षरसे सारा विश्व व्याप्त है ॥ १५७–१६० ॥ इस चराचर संसारमें जितने नाम लिये जाते हैं । उन्हें वर्णक्रमसे मैं आपको वतला रहा हूँ । संक्षेपमें वे पचास नाम हैं । उनको सज्जन लोग सुनते जायँ—अकारसे 'अनन्त' । आकारसे 'आनन्दमय' । इकारसे 'इष्टापूर्तफलप्रद' । ईकारसे 'ईश्वर' । उकारसे 'उत्कृष्ट' । ऊकारसे 'ऊर्ध्वरेता' । ऋकारसे 'ऋतंभर' । ऋकारसे 'ऋणमुक्त' । लृसे 'लृश' । लृसे 'लृपक' । एसे 'एक' । ऐसे 'ऐश्वर्यद' । ओसे 'ओजद' । औसे 'औदार्यचंचुर' । अंसे 'अंतरात्मा' । अःसे 'अर्द्धगर्भ' तथा कसे 'करुणाकर' ॥ १६१–१६४ ॥ खसे 'खड्गी' । गसे 'गतिद' । घसे 'घनश्याम' । ङसे 'ङणन' । चसे 'चमिताशेषदुष्कृत' । छसे 'छत्री' । जसे 'जगन्मय' । झसे 'झषरूपी' । ञसे 'ञटेश्वर' । टसे 'टणत्कारिधनु' । ठसे 'ठानवन्व' । डसे 'डमरुसत्कर' ॥ १६५ ॥ ॥ १६६ ॥ ढसे 'ढणुल्लुनितपाप' । णसे 'णकर्ण' । तसे 'तपोरूप' । थसे 'थव' । दसे 'दत्त' । धसे 'धन्वी' ॥१६७॥

नष्टोद्धरणधीरश्च ३६ तथैव परमेश्वरः ३७ ।
तथा फलप्रदश्चैव ३८ तथा बलिवरप्रदः ३९ ॥१६८॥
भगवान् ४० मधुघाती च ४१ तथा यज्ञफलप्रदः ४२ ।
रघुनाथश्च ४३ लक्ष्मीशो ४४ वशिष्ठश्च ४५ तथैव हि ॥१६९॥
शरण्यः ४६ षड्गुणैश्वर्यसंपन्नश्च ४७ तथैव हि ।
सर्वेश्वरो ४८ हयग्रीवः ४९ क्षमी ५० नामानि ते त्विति ॥१७०॥

पंचाशद्वर्णचिह्नानि चैभिर्वर्णैर्जगत्त्रयम् । व्याप्तं श्रीराम सर्वत्र घवर्णेन घटः स्मृतः ॥१७१॥
पवर्णेन पटो ज्ञेयस्त्वेवं वर्णात्मकं जगत् । एकैकस्य च वर्णस्य भेदैर्नामानि ते पृथक् ॥१७२॥
नाहं समर्थो व्याख्यातुं पञ्चास्योऽपि न च क्षमः । यत्र शेषः सहस्रास्यो वर्णने कुंठितस्त्वभूत् ॥१७३॥
एवं ते तद्दिमा राम कोऽत्र वर्णयितुं क्षमः । तथापि धन्यो वाल्मीकिर्येन ते चरितं कृतम् ॥१७४॥

शतकोटिमितं राम तवैव कृपया प्रभो ।

श्रीरामदास उवाच

इत्युक्त्वा स गुरुर्देवै राघवेणापि पूजितः ॥१७५॥

पृष्ट्वा रामं ययौ स्वर्गं सत्यलोकं ययौ विधिः । वाल्मीकिश्चापि प्रययौ चित्रकूटं निजाश्रमम् ॥१७६॥
तदारभ्य जनाः सर्वे चक्रुर्हास्यं मुदैव ते । मांगल्यकर्माण्युत्साहकर्माणि जगतीतले ॥१७७॥
चक्रुः सर्वे पूर्ववच्च नातिहास्यं प्रचक्रिरे । स्त्रीभिर्नराः सुसन्तुष्टाः क्रीडाहास्यादि चक्रिरे ॥१७८॥

इति श्रीशतकोटिरामचरितांतर्गते श्रीमदानंदरामायणे वाल्मीकीये राज्यकाण्डे उत्तरार्धे वाल्मीकिजन्मतत्तन्मंत्रवर्णनं नाम चतुर्दशः सर्गः ॥ १४ ॥

नसे 'नष्टोद्धरणधीर'। पसे 'परमेश्वर'। फसे 'फलप्रद'। बसे बलिवरप्रद'। भसे 'भगवान्'। मसे 'मधुघाती'। यसे 'यज्ञफलप्रद'। रसे 'रघुनाथ'। लसे 'लक्ष्मीश'। वसे 'वशिष्ठ'। शसे 'शरण्य'। षसे 'षड्गुणैश्वर्यसम्पन्न'। ससे 'सर्वेश्वर'। हसे 'हयग्रीव'। क्षसे 'क्षमी' ॥ १६८–१७० ॥ ये ही पचास नाम पचासों अक्षरोंके आधार हैं और इन्हींसे आकाश, पाताल, मृत्यु ये तीनों लोक व्याप्त हो रहे हैं। घवर्णसे घटका बोध होता है और पवर्णसे पट जाना जाता है। घट और पट इन दोनों शब्दोंके ही अन्तर्गत समस्त जगत् है। एक-एक वर्णके भेदसे सम्पूर्ण नामोंका वर्णन करनेकी सामर्थ्य मुझमें नहीं है ॥ १७१ ॥ १७२ ॥ मैं ही नहीं, यदि पंचास्य अर्थात् शिवजीको बतलाना पड़े तो वे भी असमर्थ ही रहेंगे। जिसकी महिमाका वर्णन करनेमें एक सहस्र मुखवाले शेषजी भी असमर्थ हो गये, उसका वर्णन कौन कर सकेगा। फिर भी वाल्मीकिजो धन्य हैं, जिन्होंने सौ करोड़ श्लोकोंसे आपके चरित्रका वर्णन किया है ॥ १७३ ॥ १७४ ॥ हे प्रभो! जो कुछ वाल्मीकिजीने किया है, सो सब आपकी कृपा है। श्रीरामदास कहते हैं कि इतना कहकर समस्त देवताओंके साथ देवगुरु बृहस्पति स्वर्गलोकको चले गये और ब्रह्माजी भी रामसे पूछकर अपने सत्यलोकको लौट गये। वाल्मीकिजी अपने आश्रम चित्रकूटको चल दिये ॥ १७५ ॥ १७६ ॥ उसी समय सब लोग आनन्दके साथ हँसने-खेलने और संसारमें पहलेकी तरह मंगलमय तथा उत्साहमय सारे कार्य करने लगे। तबसे लोग प्रसन्नताके साथ परस्पर हँसी-दिल्लगी करने लगे। फिर भी अतिहास्य कोई नहीं करता था ॥ १७७ ॥ १७८ ॥
इति श्रीशतकोटिरामचरितान्तर्गते श्रीमदानन्दरामायणे पं० रामतेजपाण्डेयविरचित'ज्योत्स्ना'भाषाटीकासहिते राज्यकाण्डे उत्तरार्धे चतुर्दशः सर्गः ॥ १४ ॥

पञ्चदशः सर्गः

(राम और रामराज्यकी विशेषतायें)

श्रीरामदास उवाच

रामराज्ये सदानन्दः सर्वानासीज्जनान्भुवि । नासीत्कुत्रापि कलहश्चौर्यं निंदाभयं तदा ॥ १ ॥
राज्यमासीदसापत्नं समृद्धबलवाहनम् । ऋषिभिर्हृष्टपुष्टैश्च रम्यं हाटकभूषणैः ॥ २ ॥
संजुष्टमिष्टापूर्तानां धर्माणां नित्यकर्तृभिः सदा संपन्नशस्यं च सुचिरं क्षेत्रसंकुलम् ॥ ३ ॥
सुदेशं सुप्रजं सुस्थं सुतृणं बहुगोधनम् । देवतायतनानां च राजिभिः परिराजितम् ॥ ४ ॥
सुयूपा यत्र वै ग्रामाः सुतवित्तर्द्धिराजिताः । सुपुष्पकृत्रिमोद्यानाः सुसदाफलपादपाः ॥ ५ ॥
सुपद्मानीककासारा राजन्ते यत्र भूमयः । सदम्भा निम्नगाराजिर्यत्र सन्ति न मानवाः ॥ ६ ॥
कुलान्येव कुलीनानि न चान्यायधनानि च । विभ्रमो यत्र नारीषु न विद्वत्सु च कर्हिचित् ॥ ७ ॥
नद्यः कुटिलगामिन्यो न यत्र विषये प्रजाः । तमोयुक्ताः क्षपा यत्र बहुलेषु न मानवाः ॥ ८ ॥
रजोयुजः स्त्रियो यत्र न धर्मबहुला नराः । धनैरनन्धो यत्रास्ति जनो नैव च भोजनात् ॥ ९ ॥
अनयस्यास्पदं यत्र न च वै राजपूरुषः । दण्डः परशुकुद्दालवालव्यजनराजिषु ॥१०॥
आतपत्रेषु नान्यत्र क्वचित् क्रोधोऽपराधजः । अन्यत्राक्षिकवृन्देभ्यः क्वचिन्न परिदेवनम् ॥११॥
आक्षिका एव दृश्यन्ते यत्र पाशैकपाणयः । जाड्यवार्ता जलेष्वेव स्त्रीमध्या एव दुर्बलाः ॥१२॥

श्रीरामदास बोले—हे शिष्य ! रामचन्द्रजीके राज्यमें संसारके सब लोगोंको सदा आनन्द ही आनन्द रहता था। उस समय न कहीं चोरी होती, न लड़ाई-झगड़ा होता, न कोई किसीकी निन्दा करता और न कोई किसीसे डरता था ॥ १ ॥ राज्य भी उस समय शत्रुओंसे रहित और विविध प्रकारके वाहन तथा सेनासे परिपूर्ण था। रामराज्यमें ऋषिगण हृष्ट-पुष्ट थे और राज्यके रहनेवाले लोग सोने-चाँदीके गहनोंसे लदे रहते थे। इष्ट-आपूर्त आदि धार्मिक कृत्य होते रहते थे और सारे खेत धान्यसे परिपूर्ण रहा करते थे ॥ २ ॥ ३ ॥ भाव यह है कि उस समय समस्त देश सुखी था, प्रजा प्रसन्न थी और रहन-सहन उत्तम था। गौओंके चरनेको सुन्दर घास उपजती थी। गोधनकी अधिकता थी। सारा देश देवालयोंसे भरा पड़ा था ॥ ४ ॥ उस राज्यके सब गाँवोंमें यज्ञके सुन्दर यूप गड़े हुए थे। प्रजाके सब लोग धन-धान्यसे परिपूर्ण रहते थे और अच्छे-अच्छे फूलों तथा सदा फल देनेवाले कृत्रिम बगीचोंसे सारा राज्य भरा रहता था ॥ ५ ॥ सदा बहनेवाली कितनी ही नदियाँ राज्यकी भूमिपर बह रही थीं। ऐसे ही कुछ स्थान बचे थे, जहाँ कि मनुष्यों-का निवास नहीं था। बाकी सारी पृथ्वी मनुष्योंसे भरी थी ॥ ६ ॥ उस समयके सभी मनुष्य कुलीन थे। अन्याय नहीं होता था और धनकी कमी नहीं रहती थी। उस समय स्त्रियोंमें विभ्रम (लज्जा) दीखता था, किन्तु पण्डितोंमें विभ्रम (बड़ी भूल) नहीं रहता था ॥ ७ ॥ उस समय देशमें कुटिल (टेंढ़ी-बेंड़ी) बहनेवाली नदियाँ थी, किन्तु प्रजा कुटिलता (दुष्टता) से सर्वथा बची हुई थी। कृष्णपक्षकी रात्रिमें केवल तम (अंधकार) था, मनुष्योंमें तम (तामस गुण) नहीं दीखता था यानी सारे मनुष्य उस समय सात्त्विक थे ॥ ८ ॥ स्त्रियाँ रजोयुक्त (रजस्वला) होती थीं, पुरुष रजोयुक्त (राजस गुणयुक्त) नहीं थे। उस समय राज्यके लोग पैसेसे (अन्ध) अन्धे नहीं थे, किन्तु अन्ध (अन्न) से कोई अनन्ध नहीं था। अर्थात् सब लोग खाने-पीनेमें सुखी दीखते थे। उस समय राजपुरुषों (अधिकारियों) में अन्याय नहीं दीखता था। दण्ड केवल कुल्हाड़ी, कुदाल तथा पंखों ही में दीखता था। प्रजापर राजाको दण्डप्रयोगकी आवश्यकता ही नहीं पड़ती थी ॥ ९ ॥ १० ॥ सन्ताप (घाम) केवल छतरियोंपर रहता था। रामराज्यकी प्रजामें सन्ताप (मानसिक दुःख) नहीं रहता था। केवल रथ हाँकनेवाले सारथियोंके हाथमें पाश (घोड़े या बैलकी रास) रहता था, किन्तु प्रजाके किसी मनुष्यको पाश (फाँसीका दण्ड) मिलता नहीं देखा गया। जड़ता (ठंढक) की बात केवल जलमें रहती थी।

कठोरहृदया यत्र सीमन्तिन्यो न मानवाः । औषधेष्वेव यत्रास्ति कुष्ठयोगो न मानवे ॥१३॥
वेधोऽभ्यंतःसु रत्नेषु शूलं मूर्तिकरेषु वै । कंपः सात्त्विकभावोत्थो न भयात्क्वापि कस्यचित् १४॥
संज्वरः कामजो यत्र दारिद्र्यं कलुषस्य च । दुर्लभत्वं पातकस्य सुकृतं न च वस्तुनः ॥१५॥
इभा एव प्रमत्ता वै युद्धं वीच्योर्जलाशये । दानहानिर्गजेष्वेव द्रुमेष्वेव हि कण्टकाः ॥१६॥
जनेष्वेव विहारा वै न कस्यचिदुरःस्थली । बाणेषु गुणविश्लेषो बन्धोक्तिः पुस्तके दृढा ॥१७॥
दण्डत्यागः सदैवास्ति यत्र पाशुपते जने । दण्डवार्ता सदा यत्र कृतसंन्यासकर्मणाम् ॥१८॥
मार्गणाश्चापकेष्वेव भिक्षुका ब्रह्मचारिणः । यत्र क्षपणका एव दृश्यन्ते मलधारिणः ॥१९॥
प्रायो मधुव्रता एव यत्र चचलवृत्तयः । इत्यादिगुणवद्देशे रामो राज्यं शशास सः ॥२०॥
धर्मेण राजा धर्मज्ञः सीतारामः प्रतापवान् । चकार राज्यं निर्द्वन्द्वमयोध्यायां सुनिश्चलम् ॥२१॥
विधाय राजधानीं तां विस्तृतां परिखान्विताम् । एधांचक्रे महाबुद्धिः प्रजा धर्मेण पालयन् ॥२२॥
तताप सूर्य इव स दुर्हृदां हृदि नेत्रयोः । सोमवत्सुहृदामासीन्मानसेषु स्वकेष्वपि ॥२३॥
अखण्डमाखण्डलवद् कोदण्डं कलयन्रणे । पलायमानैरालोकि शत्रुसैन्यवलाहकैः ॥२४॥
स धर्मराजवद्राजा धर्माधर्मविवेचकः । अदण्ड्येऽदण्डयन्नासो दण्ड्यांश्च परिदण्डयन् ॥२५॥
पाशीव पाशयांचक्रे वैरिचक्रं विदूरगः । सोऽभूत्पुण्यजनाधीशो रिपुराक्षसवर्द्धनः ॥२६॥
जगत्प्राणसमानश्च जगत्त्राणनतत्परः । राजराजः स एवाभूत्सर्वेषां धनदः सताम् ॥२७॥

किसी मनुष्यमें जड़ता (मूर्खता) नहीं थी । केवल स्त्रियोंकी कमरमें दुर्बलता रहती थी, मनुष्योंके हृदयमें नहीं ॥११॥१२॥ कठोरता स्त्रियोंके स्तनमें रहती थी, पुरुषोंके हृदयमें नहीं । केवल औषधोंमें कुष्ठ (कूठ औषधविशेष) का योग दीखता था, किसी मनुष्यमें कुष्ठरोग नहीं था ॥ १३ ॥ वेध (छिद्र) केवल रत्नोंमें रहता था । शूल (छोनी) केवल मूर्ति बनानेवाले कारीगरोंके हाथमें रहता था । केवल सात्त्विक भावके उदय होनेपर लोगोंको कम्प होता था–भयसे नहीं । दुर्लभता पातककी थी और सुकृतसे कोई वस्तु अलभ्य नहीं थी ॥ १४ ॥ १५ ॥ मतवाले हाथी होते थे, मनुष्य नहीं । युद्ध जलकी लहरोंमें ही देखा जाता था । दानहानि (मदके प्रवाहका रुक जाना) केवल हाथियोंमें थी । वृक्षोंमें ही कण्टक (काँटे) रहते थे ॥ १६ ॥ मनुष्योंमें विहार होता था, किन्तु किसीकी उरस्थली (छाती) ऐसी नहीं देखी गयी, जो विहार (हारसे रहित) हो । केवल बाणोंमें गुणविश्लेष (प्रत्यञ्चाका वियोग) था, दृढ़बन्धोक्ति (कठिन बन्धनकी बात) केवल पुस्तकोंके लिए थी ॥ १७ ॥ शिवभक्तोंके लिए केवल दण्डत्याग किया जाता था । यानी उनसे दण्ड नहीं लिया जाता था । केवल संन्यासियोंमें दण्डवार्ता (दण्डग्रहण-सम्बन्धी बातचीत) होती थी ॥ १८ ॥ मार्गण (बाण) केवल धनुषपर रहते थे, प्रजामें कोई मार्गण (भिखारी) नहीं था । केवल ब्रह्मचारी भिक्षुक थे । केवल क्षपणक (संन्यासी) लोग मल (चीवर वस्त्र) धारी थे ॥ १९ ॥ प्रायः भौंरोंमें चंचलता दीखती थी । इस प्रकारके गुणवान् देशमें रामचन्द्रजी राज्य करते थे ॥ २० ॥ धर्मका तत्त्व जाननेवाले प्रतापशाली रामचन्द्रजीने बहुत दिनों तक निर्द्वन्द्वभावसे राज्य किया । उन्होंने अनेक प्रकारकी खाइयोंसे सुसज्जित करके अयोध्याको अपनी राजधानी बनायी और धर्मपूर्वक प्रजापालन करते हुए प्रजाकी भलीभाँति उन्नति की ॥ २१ ॥ २२ ॥ वे शत्रुओंके हृदयमें सदा सूर्यकी भाँति तपते थे और मित्रोंके हृदयमें चन्द्रमाकी तरह ठंढक पहुँचाते थे । इन्द्रके समान समरांगणमें अपना धनुष चमकाते हुए शत्रुसेनारूपी मेघोंको भगा देते थे । ऐसा बराबर देखा गया है । महाराज रामचन्द्रजी धर्मराजकी तरह भलीभाँति धर्म-अधर्मकी विवेचना करके काम करते थे । जो दण्डके योग्य नहीं होता था, उसे दण्ड नहीं देते थे और जो दण्डके योग्य होता, उसे अवश्य दण्ड देते थे । शत्रुओंके समूहको यमराजकी तरह उन्होंने बाँध रक्खा था । रिपुरूपी राक्षसोंका भी उपकार करके रामचन्द्रजी संसारके सब महात्माओंसे ऊँचे पदपर पहुँच चुके थे ॥ २३–२६ ॥ जगत्की रक्षामें तत्पर रामचन्द्रजी जगत्के प्राण समान थे । अच्छे मनुष्योंको धनकी सहायता देकर वे स्वयं राजराज (कुबेर) हो रहे थे । शत्रुओंको भय दिखाकर रुद्र बन गये थे । यही कारण था कि जिससे

स एव रुद्रमूर्तिश्च प्रैक्षिष्ट रिपुभीषणे । विश्वेदेवास्ततस्तं तु स्तुवन्ति च भजन्ति च ॥२८॥
असाध्यः स हि साध्यानां वसुभ्यो वसुनाधिकः। ग्रहाणां विग्रहधरो दस्रतोऽजस्ररूपधृक् ॥२९॥
मरुद्गणानगणयंस्तुषितांस्तोषयन् गुणैः । सर्वविद्याधरो यस्तु सर्वविद्याधरेष्वपि ॥३०॥
अगर्वानिव गन्धर्वान्यश्चक्रे निजगीतिभिः । ररक्षुर्यक्षरक्षांसि तद्दुर्गं स्वर्गसोदरम् ॥३१॥
नागा नागांस्तिरश्चक्रुस्तस्य राज्ये बलीयसः । दनुजा मनुजाकारं कृत्वा तं तु सिषेविरे ॥३२॥
जाता गुह्यचरा यस्य गुह्यकाः परितो नृषु । संसेविष्यामहे राजन् सुरास्त्वां स्वस्ववैभवैः ॥३३॥
वयं ततस्त्वद्विषये सुरावासोऽपि दुर्लभः । इत्युक्त्वा रामचन्द्रं ते मघवाद्याः सिषेविरे ॥३४॥
अशिक्षयत्क्षितिपतेरिह यस्य तुरङ्गमान् । आशुगश्चाशुगामित्वं पावमाने पथि स्थितः ॥३५॥
अगजान्यस्य तु गजान्नगवर्ष्मसु वर्ष्मणः । अजस्रदानिनो दृष्ट्वाऽभवन्नन्येऽपि दानिनः ॥३६॥
सदोऽजिरे च बोद्धारो योद्धारश्च रणाजिरे । न शास्त्रैर्विजितः कश्चिन्न शस्त्रैः केनचित्क्वचित् ॥३७॥
न नेत्रविषये जाता विषये यस्य भूभृतः । सदा नष्टपदा द्वेष्यास्तथा नष्टापदः प्रजाः ॥३८॥
कलवानेक एवास्ति त्रिदिवेऽपि दिवौकसाम् । तस्य क्षोणीभृतः क्षोण्यां जनाः सर्वे कलालयाः ॥३९॥
एक एव हि कामोऽस्ति स्वर्गे सोऽप्यङ्गवर्जितः। साङ्गोपाङ्गाश्च सर्वेषां सर्वे कामा हि तद्भुवि ॥४०॥
तस्योपवर्तनेऽप्येको न श्रुतो गोत्रभित्क्वचित् । स्वर्गे स्वर्गसदामीशो गोत्रभित्परिकीर्तितः ॥४१॥
क्षयी च तस्य विषये कोऽप्याकर्णि न केनचित् । त्रिविष्टपे क्षपानाथः पक्षे पक्षे क्षयिष्यते । ४२॥
नाके नवग्रहाः संति देशास्तस्यानवग्रहाः । हिरण्यगर्भः स्वर्लोकेष्वेक एव प्रकाशते ॥४३॥
हिरण्यगर्भाः सर्वेषां तत्पौराणामिहालयाः । सप्ताश्च एकः स्वर्लोके नितरां भासतेंऽशुमान् ॥४४॥

सब विश्वेदेव उनकी स्तुति और भजन करते थे। वे साध्य (द्वादश देवताविशेष) के लिए भी असाध्य थे। वसु (धन) की अधिकतासे वे अष्टवसुओंसे भी श्रेष्ठ थे। नवग्रहोंके साक्षात् स्वरूप थे और अश्विनीकुमारके समान सदा सुन्दर रूप धारण किये रहते थे ॥ २७–२९ ॥ वे अपने असाधारण पराक्रमसे मरुद्गणोंसे भी श्रेष्ठ थे। कितने ही सद्गुणोंसे वे छत्तीस तुषितोंको प्रसन्न कर चुके थे। वे समस्त विद्याधरोंके शिरोमणि थे और अपने गीतके माधुर्यसे उन्होंने गन्धर्वोंका भी गर्व खर्व कर दिया था। संसारभरके यक्ष-राक्षस स्वर्गके समान कमनीय रामके किलेकी रक्षा करते थे ॥ ३० ॥ ३१ ॥ स्वर्गलोकके हाथी रामके हस्तिसमूहसे पराजित हो गये थे। सारी दुनियाके दानव मनुष्यका वेष बना-बनाकर रामकी सेवा कर रहे थे ॥ ३२ ॥ उनके गुप्तचर राज्यके मनुष्योंमें घुसकर अपना मतलब सिद्ध करनेके लिए गुह्यकों (मणिभद्रादिकों) से भी बाजी मार चुके थे। इन्द्रादि देवता रामके समीप जाकर कहते थे—'राजन् ! हमारे पास जो कुछ वैभव है, वह सब लगाकर हम आपकी सेवा-शुश्रूषा करनेको प्रस्तुत हैं' ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ इस संसारमें जिसके घोड़े वायु देवताको भी जल्दी चलना सिखाते थे, जिसके पर्वतके समान ऊँचे बड़े-बड़े हाथियोंकी अजस्रदानिता (सतत मदप्रवाह अथवा दानशीलता) देखकर संसारके कृपण मनुष्य भी दानी बन गये थे। जिसकी राजसभाके बुद्धिमान् पण्डित और सेनाके बड़े-बड़े योद्धा शास्त्र तथा शस्त्रसे कभी पराजित नहीं हुए थे ॥ ३५–३७ ॥ उन रामके राज्यमें जैसे शत्रु कहीं नहीं दीखता था, वैसे ही प्रजामें कभी किसी प्रकारकी विपत्ति भी नहीं दिखायी देती थी ॥ ३८ ॥ देवताओंके स्वर्ग जैसे राज्यमें केवल एक कलावान् चन्द्रमा था, किन्तु रामके राज्यमें सब मनुष्य कलाके भण्डार थे। स्वर्गमें केवल एक कामदेव था, सो भी अनङ्ग (अर्थात् बिना शरीरका)। किन्तु रामराज्यके सारे मनुष्य सांगोपांग कामदेव (जैसे सुन्दर) थे। रामके राज्यभरमें खोजनेपर भी कोई गोत्रभित् (जातिसे बहिष्कृत) मनुष्य नहीं मिल सकता था, किन्तु स्वर्गमें देवताओंके राजा स्वयं गोत्रभित् (इन्द्र) थे ॥ ३९–४१ ॥ राम-राज्यमें कोई क्षयी (क्षयरोगी) नहीं सुना गया, किन्तु स्वर्गमें चन्द्रमा पक्ष-पक्षमें क्षय होते रहते हैं ॥ ४२ ॥ स्वर्गमें सर्वदा नौ ग्रह रहते हैं, किन्तु रामका राज्य अनवग्रह (यानी आपसी

सदंशुकाः प्रतिगृहं बह्वश्वास्तत्पुरौकसः । सदप्सरा यथा स्वर्भूस्तत्पुर्यपि सदप्सराः ॥४५॥
एकैव पद्मा वैकुण्ठे गीयते विष्णुवल्लभा । तत्पौराणां गृहेष्वासञ्छतपद्मा पृथक् पृथक् ॥४६॥
अनीतयश्चलद्धामा न राजपुरुषाः क्वचित् । गृहे गृहेऽत्र धनदा नाक एकोऽलकापतिः ॥४७॥
एवं रामो महान् श्रेष्ठः शौटीर्यगुणशोभनः । सौभाग्यशोभी रूपाढ्यः शौर्यौदार्यगुणान्वितः ॥४८॥
विजितानेकसमरः श्रीसमर्पितमार्गणः । सीतारंजितवामांग उग्रः परपुरंजयः ॥४९॥
अनेकगुणसंपूर्णः पूर्णचंद्रनिभद्युतिः । सततावभृथक्लिन्नमूर्धजः क्षितिपर्षभः ॥५०॥
प्रजापालनसपन्नः कोशप्रीणीतभूसुरः । पार्वतीकांतचरणयुगलध्यानतत्परः ॥५१॥
विश्वेश्वरकथालापपरिक्षिप्तदिनक्षपः । सीतासंक्षालितपदस्तत्क्रीडापरितोषितः ॥५२॥
शशास राज्यं धर्मेण बन्धुपुत्रसमन्वितः । रामे शासति साकेतपुर्यां राज्यं सुखेन वै ॥५३॥
हृष्टाः पुष्टाः प्रजाः सर्वाः फलवंतोऽभवन्नगाः । आसन्सदा सुकुसुमैर्विनम्राः सौख्यदा नृणाम् ॥५४॥
एकपत्नीव्रताः सर्वे पुमांसस्तस्य मण्डले । नारीषु काचिन्नैवासीदपतिव्रतधर्मिणी ॥५५॥
अनधीतो न विप्रोऽभून्न शूरो नैव बाहुजः । वैश्योऽनभिज्ञो नैवासीदर्थोपार्जनकर्मसु ॥५६॥
अनन्यवृत्तयः शूद्रा द्विजशुश्रूषणं प्रति । तस्य राष्ट्रे समभवन्सीतारामस्य भूपतेः ॥५७॥
अविप्लुतब्रह्मचर्यास्तद्राष्ट्रे ब्रह्मचारिणः । नित्यं गुरुकुलाधीना वेदग्रहणतत्पराः ॥५८॥

लड़ाई-झगड़ेसे रहित था । स्वर्गमें केवल एक हिरण्यगर्भ (विष्णुभगवान्) रहते हैं; किन्तु रामराज्यके प्रत्येक घर हिरण्यगर्भ थे अर्थात् उनमें सुवर्ण भरे हुए थे। स्वर्गमें केवल एक सप्ताश्व अंशुमान् (सूर्य) हैं, किन्तु रामके राज्यमें प्रत्येक व्यक्ति अंशुमान् (अच्छे कपड़े पहननेवाले) और सातको कौन कहे, कितने ही घोड़े बाँधनेवाले लोग विद्यमान थे। जिस तरह स्वर्गमें अच्छी-अच्छी अप्सराएँ हैं, उसी तरह रामके राज्यमें भी बहुत-सी अच्छी-अच्छी अप्सराएँ रहती थीं ॥ ४३-४५ ॥ ऐसा कहा जाता है कि स्वर्गमें केवल एक विष्णुकी प्रिया पद्मा (लक्ष्मी) हैं, किन्तु रामके राज्यमें सैकड़ोंसे भी अधिक पद्मपति (पद्मसंख्यक रुपये रखनेवाले) लोग थे। रामके राज्यमें कभी किसी प्रकारका अकाल नहीं पड़ा और ऐसे राजपुरुष नहीं थे, जो कान्तिविहीन रहे हों। स्वर्गमें केवल कुबेर धनद (लेन-देनके व्यवहारी) हैं, किन्तु रामके राजमें असंख्य धनद थे ॥ ४६ । ४७ ॥ इस तरह रामचन्द्र अनेक सद्गुणोंसे युक्त और सर्वश्रेष्ठ थे। रामचन्द्र सौभाग्य, रूप, शौर्य और औदार्य आदि गुणोंसे युक्त थे। अनेक युद्धोंमें उन्होंने विजय पायी थी और संसारकी दरिद्रताको उन्होंने लक्ष्मीके हाथों सौंप दिया था। उनके वामभागमें सीताजी बैठी रहती थीं। इस कारण उनकी शोभा और भी बढ़ गयी थी। वे सबसे उग्र तथा शत्रुओंके नगरको विजय करनेमें सिद्धहस्त थे। अनेक गुणोंके एकत्रित होनेसे वे पूर्ण हो चुके थे और पूर्ण चन्द्रमाके समान उनकी कान्ति थी। सर्वदा अवभृथ (यज्ञान्त) स्नान करनेसे उनके केश भींगे रहते थे और सब राजाओंमें श्रेष्ठ माने जा चुके थे ॥ ४८-५० ॥ प्रजाका पालन करनेमें वे पूर्णतया दत्तचित्त रहते थे और खजानेके धनसे ब्राह्मणोंको प्रसन्न रखते थे। वे सदा शिवके ध्यानमें तत्पर रहते थे। वे सर्वदा शिवजीकी कथाएँ कहते-सुनते दिन-रात बिताते थे। सीता उनके पैर धोया करती थीं । उनके साथ विविध प्रकारकी क्रीड़ायें करनेसे राम प्रसन्न रहते थे ॥ ५१ ॥ ५२ ॥ उन्होंने भाइयों और पुत्रोंके साथ रहकर अच्छी तरह राज किया। रामके शासनकालमें प्रजा सुखी तथा हृष्ट-पुष्ट रहती थी और वृक्ष फल-फूलसे लदे रहनेके कारण झुके रहते और मनुष्योंको सुखी रखते थे ॥ ५३ ॥ ५४ ॥ उनके राजमें सब पुरुष एकपत्नीव्रती थे और स्त्रियोंमें भी कोई ऐसी नहीं थीं, जो अपने पातिव्रतधर्मका पालन न करती हो ॥ ५५ ॥ उस समय कोई ऐसा ब्राह्मण नहीं था, जो बिना पढ़ा हो और कोई क्षत्रिय भी ऐसा नहीं था, जो योद्धा न रहा हो। कोई ऐसा वैश्य नहीं था, जो धन कमानेकी कलासे अनभिज्ञ हो। राजा रामके शासनकालमें राज्य भरके शूद्र और किसी प्रकारकी वृत्ति न करके एकमात्र द्विजों (ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्यों) की सेवामें लगे रहते थे। उनके राज्यमें ब्रह्मचर्यकी रक्षा करते हुए

अन्येऽनुलोमजन्मानः प्रतिलोमभवा अपि । स्वपारम्पर्यतो द्रष्टुं मनाग्वर्त्म न तत्यजुः ॥५९॥
अनपत्यो न तद्राष्ट्रे धनहीनस्तु कोऽपि न विरुद्धसेवी नो कश्चिदकालमृतिभाङ् च ॥६०॥
न शठा नैव वाचाटा वञ्चका नो न हिंसकाः । न पाखंडा नैव भंडा न रंडा नैव शौंडिकाः ॥६१॥
श्रुतिघोषो हि सर्वत्र शास्त्रवादः पदे पदे । सर्वत्र सुभगालापा मुदा मंगलगीतयः ॥६२॥
वीणावेणुप्रवादाश्च मृदंगधुरस्वनाः । सोमपानं विनाऽन्यत्र पानगोष्ठी न कर्णगा ॥६३॥
मांसाशिनः पुरोडाश नैवान्यत्र कथंचन । न दुरोदरिणो यत्राधर्मिणो न च तस्कराः ॥६४॥
पुत्रस्य पित्रोः पदयोः पूजनं देवपूजनम् । उपवासो व्रतं तीर्थं देवताराधनं परम् ॥६५॥
नारीणां भर्तृपदयोः स्वर्चनं तद्वचःश्रुतिः । समर्चयति सततं निजमग्रजमादरात् ॥६६॥
समर्चयंति मुदिता भृत्याः स्वामिपदाम्बुजम् । हीनवर्णैरग्रवर्णो वर्ण्यते गुणगौरवैः ॥६७॥
वरिवस्यंति भूयोऽपि त्रिकाल भूमिदेवताः । सर्वत्र सर्वे विद्वांसः समर्चन्ते मनोरथैः ॥६८॥
विद्वद्भिश्च तपोनिष्ठास्तपोनिष्ठैर्जितेंद्रियाः । जितेंद्रियैर्ज्ञाननिष्ठा ज्ञानिभिः शिवलिंगिनः ॥६९॥
मंत्रपूतं महार्हं च विधियुक्तं सुसंस्कृतम् । वाडवानां मखाग्नौ च हूयतेऽहर्निशं हविः ॥७०॥
वापीकूपतडागानामारामाणां पदे पदे । शुचिभिर्द्रव्यसंभारैः कर्तारो यत्र भूरिशः ॥७१॥
तद्राष्ट्रे हृष्टपुष्टाश्च दृश्यन्ते सर्वजातयः । अनिन्द्यसेवासंपन्ना विना मृगयुसैनिकान् ॥७२॥
यस्य राज्ये पताकासु चंचला श्रीर्न राष्ट्रके । ऐरावतस्त्वेक एव शुभ्रः स्वर्गे गजो महान् ॥७३॥
चतुर्दन्तो रामराज्ये तद्वन्नागाः सहस्रशः । इन्दुसूर्यावुभावेव शोभेते गगनांगणे ॥७४॥
रामराज्येऽत्र नारीणां सीमंतस्था अनेकशः । वृषोऽस्त्येकः स कैलासे गीयते परमः सितः ॥७५॥

गुरुकुलमें रहकर वेदाध्ययन करते थे ॥ ५६–५८ ॥ अनुलोम जातिमें उत्पन्न लोगोंने यह कभी नहीं चाहा कि मैं अपने दर्जेसे ऊँचे पद रहूँ । रामके राजमें कोई सन्तानविहीन तथा निर्धन नहीं था और कोई ऐसा भी नहीं था, जो अपनी मर्यादाके विरुद्ध आचरण करनेवाला हो । उनके राजमें कोई अकाल मृत्युका ग्रास नहीं बन सका । उस समय न कोई शठ, न बकवादी, न वंचक, न हिंसक, न पाखण्डी, न भाँड़, न स्त्रीविहीन और न धूर्त ही था ॥ ५९–६१ ॥ पद-पदपर वेदध्वनि तथा शास्त्रसम्बन्धी वाद-विवाद सुनायी देता था । चारों ओर अच्छी-अच्छी बातें, हँसी-खुशीके मंगलगीत, वीणा-वंशी तथा मृदंगका मीठा स्वर सुनायी पड़ता था । सोमपानके सिवाय और किसी मादक वस्तुके खाने-पीनेकी बात नहीं सुनायी देती थी । यज्ञके अतिरिक्त दूसरे समयपर मांस खानेवाले मनुष्य, जुआड़ी, अधर्मी और चोर कहीं भी नहीं थे ॥ ६२–६४ ॥ पुत्रके लिए माता-पिताके पदपूजन ही देवपूजन, उपवास, व्रत, देवताराधन और तीर्थ था । नारीके लिए अपने पतिके चरण-पूजन और उनकी बातें वेदवाक्य सदृश मानना ही सबसे श्रेष्ठ धर्म माना जाता था । सदा छोटा भाई बड़े भाईकी पूजा करता था । सेवक प्रसन्न मनसे अपने मालिककी सेवा करते थे । नीच जातिका मनुष्य अपनेसे ऊँचे वर्णवालेका गुण-गौरव बखानता था ॥ ६५–६७ ॥ सब लोग ब्राह्मणोंकी पूजा करते और विद्वानोंके मनोरथ पूर्णकरनेको उद्यत रहते थे । विद्वान्से तपस्वी, तपस्वीसे जितेन्द्रिय तथा जितेन्द्रियसे भी ज्ञानी मनुष्य श्रेष्ठ माना जाता था और ज्ञानीसे भी संन्यासी उच्च पदपर माने जाते थे ॥ ६८ ॥ ६९ ॥ सदा मंत्रसे पवित्र किया हुआ हवि विप्रोंके मुखाग्निमें पड़ता रहता था ॥ ७० ॥ बावली, कूप, तड़ाग तथा पद-पदपर बगीचा लगवानेवाले और पवित्र द्रव्योंको एकत्र करके यज्ञादि शुभ कर्म करनेवाले कितने ही धर्मात्मा रहा करते थे ॥ ७१ ॥ रामके राजमें सब जातिके मनुष्य हृष्ट-पुष्ट दिखायी पड़ते थे । शिकारी तथा सैनिकोंके सिवाय सब लोग सराहनीय कामोंमें लगे हुए थे । उनके राज्यमें लक्ष्मीकी चंचलता केवल पताकामें रहती थी, राष्ट्रमें नहीं । स्वर्गमें केवल एक ऐरावत हाथी बड़ा, चतुर्दन्त और श्वेत वर्णका है । किन्तु रामके राज्यमें हजारों हाथी चार दाँतवाले तथा श्वेत वर्णके थे । स्वर्गमें केवल सूर्य और चन्द्रमा प्रकाश करते हैं, किन्तु रामराज्य-की स्त्रियोंके केशोंमें (मणिके) वैसे-वैसे अनेक चन्द्रमा-सूर्य चमकते दिखाई देते थे ॥ ७२–७४ ॥ सुना

तद्वद्वृषा रामराज्ये कृषिकर्मणि योजिताः । एणोऽस्त्येकश्चंद्रलोके कृष्णवर्णो मनोरमः ॥७६॥
तद्वदत्र शिशूनां हि क्रीडार्थं संत्यनेकशः । अप्सरःसु वरा स्वर्गे गीयते सा तिलोत्तमा ॥७७॥
गेहे गेहे संति नार्यः सर्वास्त्वत्र तिलोत्तमाः । रुक्मभूषणभूषाढ्या गतिनूपुरनिःस्वनाः ॥७८॥
सहस्राक्षोऽस्त्येक एव महान्स्वर्गे प्रगीयते । रामराज्ये चामराणि सहस्राक्षीण्यनेकशः ॥७९॥
सुधापानं त्वेकमेव स्वर्गेऽस्ति परमं वरम् । तद्वन्नानारसानां च पानमत्र गृहे गृहे ॥८०॥
सुधापानेन संहृष्टा यथा स्वर्गसुरोत्तमाः । दयिताऽधरपानेन तथाऽत्र सुखिनो जनाः ॥८१॥
सागरेष्वेव सा दृष्टा मर्यादा सर्वदा नरैः । रामराज्येऽत्र बालेषु मर्यादा सर्वदेक्ष्यते ॥८२॥
विचरंति गजारूढाः श्रूयंते पार्थिवाः पुरा । पौरा जानपदाः सर्वे विचरंत्यत्र ते गजैः ॥८३॥
पूर्वं श्रुतं शिशूनां हि चुंबनं दिवसे मुहुः । रामराज्येऽनिशं नारीचुंबनानि मुहुर्मुहुः ॥८४॥
क्रीडा परिमलद्रव्यैः फाल्गुने सा श्रुता पुरा । क्रीडां परिमलद्रव्यैः पौराश्चक्रुः सदाऽत्र ते ॥८५॥
एवं तद्रामराज्यं हि महामंगलसंयुतम् । आसीदनुपमेयं च श्रवणान्मंगलप्रदम् ॥८६॥

इति श्रीशतकोटिरामचरितांतर्गते श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये राज्यकाण्डे
उत्तरार्धे रामराज्यवर्णनं नाम पंचदशः सर्गः ॥ १५ ॥

षोडशः सर्गः

(रामका लव-कुश तथा भ्राताओंको राजनीतिक उपदेश)

श्रीरामदास उवाच

एकदा राघवः श्रीमान्समाहूय कुशं लवम् । लक्ष्मणं भरतं चापि शत्रुघ्नं रहसि स्थितः ॥ १ ॥

जाता है कि कैलासपर एक ऐसा बैल है, जो अतिशय धवल वर्णका है। किन्तु रामराज्यमें वैसे-वैसे कितने ही बैल हल जोतनेका काम करते थे। चन्द्रलोकमें एक ऐसा मृग है, जो बड़ा सुन्दर और कृष्ण वर्णका है। किन्तु रामराज्यमें लड़कोंको खेलनेके लिए वैसे-वैसे कितने ही मृग रहा करते थे। सुनते हैं कि स्वर्गलोकमें कोई तिलोत्तमा नामकी बड़ी सुन्दरी अप्सरा है ॥ ७५-७७ ॥ किन्तु रामराज्यमें घर-घरको स्त्रियाँ तिलोत्तमाके समान सुन्दरी तथा सुवर्णके भूषणोंसे भूषित होकर चलते समय नूपुरका रुनझुन शब्द करती चलती थीं ॥ ७८ ॥ सुनते हैं कि स्वर्गमें केवल एक सहस्राक्ष (इन्द्र) है, किन्तु रामके यहाँ अनेकों सहस्राक्ष चमर चलते थे। स्वर्गमें केवल अमृत पान करनेकी वस्तु है और रामराजमें घर-घर विविध प्रकारकी रसमयी पेय वस्तुयें विद्यमान रहा करती थीं ॥ ७९ ॥ ८० ॥ जिस तरह अमृतको पीकर देवता स्वर्गमें प्रसन्न रहते हैं, उसी प्रकार स्त्रीके अधरोष्ठका पान करके अयोध्याके सब मनुष्य प्रसन्न रहते थे ॥ ८१ ॥ आजतक संसारी मनुष्योंने केवल समुद्रकी मर्यादा देखी थी (यानी वह अपनी सीमाके बाहर जाता नहीं देखा गया), किन्तु रामके राज्यमें छोटे-छोटे बच्चोंमें भी मर्यादा दिखायी देती थीं ॥ ८२ ॥ सुनते हैं कि पहले राजा ही लोग हाथियोंपर चढ़कर इधर-उधर घूमते-फिरते थे, किन्तु रामके राजमें सारे पुरवासी और देशवासी हाथियोंपर सवार होकर घूमते-फिरते दिखायी देते थे ॥ ८३ ॥ सुनते हैं कि पहले लोग बच्चोंको ही बार-बार चूमते थे, किन्तु रामके राजमें स्त्रियोंको भी लोग बड़े आनन्दके साथ दिन-रातमें अनेकों बार चूमते थे ॥ ८४ ॥ सुना जाता है कि पहले फाल्गुनके महीनेमें ही रङ्ग तथा सुगन्धित वस्तुएँ एक-दूसरेपर छोड़ते हुए लोग फाग खेलते थे, किन्तु रामके राजमें लोग सर्वदा वैसे खेल खेला करते थे ॥ ८५ ॥ इस प्रकार रामका राज्य महामङ्गलमय अनुपमेय और नाममात्र सुननेसे ही कल्याणदायक हो रहा था ॥ ८६ ॥ इति श्रीशतकोटिरामचरितान्तर्गते श्रीमदानन्दरामायणे पं० रामतेजपाण्डेयकृत 'ज्योत्स्ना' भाषाटीकासहिते राज्यकाण्डे उत्तरार्धे पंचदशः सर्गः ॥१५॥

श्रीरामदासने कहा कि एक बार श्रीमान् रामने एकान्तमें लव, कुश, लक्ष्मण, भरत तथा शत्रुघ्नको

राजनीतिं विस्तरेण शिक्षयामास सादरम् । शृणु वत्स कुशाद्य त्वं यूयं सर्वे लवादिकाः ॥ २ ॥
शृणुतात्र स्वस्थचित्ता राजनीतिं वदाम्यहम् । कुश त्वं पृथिवीपालो भविष्यसि गते मयि ॥ ३ ॥
वैकुंठं शृणु तस्मात्त्वं सावधानमना भव । अनृतं नैव वक्तव्यं नृपेणा चिरजीविना ॥ ४ ॥
नातिकामी न वै क्रोधी राजा स सुखमर्हति । परदाररतिस्त्याज्या सर्वथा पार्थिवेन हि ॥ ५ ॥
सत्यं शौचं दया क्षांतिरार्जवं मधुरं वचः । द्विजगोयतिसद्भक्तिः सप्तैते शुभदा गुणाः ॥ ६ ॥
निद्रालस्यं मद्यपानं द्यूतं वारांगनारतिः । अतिक्रीडाऽतिमृगया सप्त दोषा नृपस्य च ॥ ७ ॥
पुत्रवत्पालनीयाश्च प्रजा नृपतिना भुवि । षष्ठांशः करभारश्च राज्ञा ग्राह्यः सदैव हि ॥ ८ ॥
ज्ञेयं चारैः सदा वृत्तं पृथिव्याः पार्थिवेन वै । परराष्ट्रे सदा दूता नानावेषविरूपिताः ॥ ९ ॥
पंच पंचाथवा द्वौ द्वौ प्रेषणीया नृपेण हि । न विश्वसेत्पारकीयजने दूते नृपोत्तमः ॥१०॥
दण्डो भेदस्तथा साम दानं कालोचितं चरेत् । स्वकार्यं साधयेद्युक्त्या काले प्राप्तं नृपोत्तमः ॥११॥
मनसा चिंतितं कार्यं कथनीयं न कस्यचित् । कृत्वा कार्यं दर्शनीयं जनान्मंत्रिजनानपि ॥१२॥
मासे मासे स्वकोशस्य परामर्शो नृपोत्तमैः । गृहणीयः सर्वदैव विश्वसेत्सेवकेषु न ॥१३॥
वर्षे वर्षे नगर्याश्च प्राकारस्य नृपोत्तमैः । परिखानां परामर्शः कार्यो मन्त्रिजनैः सह ॥१४॥
चतुर्मासेषु शस्त्राणां मार्गाणां पार्थिवोत्तमः । परामर्शः सदा कोष्ठागारादीनां प्रकारयेत् ॥१५॥
पक्षे पक्षे वारणानां तुरंगाणां तथाऽष्टभिः । दिवसैर्मासमात्रेण वस्त्राणां पार्थिवोत्तमैः ॥१६॥
परामर्शः सदा कार्यः पिकादीनां त्रिभिर्दिनैः । सीमाचारजनानां च षण्मासैश्च नृपोत्तमैः ॥१७॥
परामर्शः सदा कार्यस्तथा जानपदस्य च । मासे मासे स्वसैन्यस्य वापीनामयनेन हि ॥१८॥

बुलाया ॥ १ ॥ उन्हें विस्तारपूर्वक राजनीतिकी शिक्षा देते हुए कहने लगे—हे वत्स कुश तथा भरतादिक भ्राताओं ! तुम लोग स्वस्थचित्त होकर सुनो । मैं तुम्हें राजनीतिकी शिक्षा दे रहा हूँ । हे कुश ! मेरे वैकुण्ठ चले जानेपर तुम राजा होओगे । इसलिये तुम विशेष रीतिसे मेरी शिक्षाको सुन रक्खो । जिस राजाको चिरकाल तक इस संसारमें जीवित रहना हो, उसे चाहिये कि वह झूठ कभी न बोले ॥ २–४ ॥ जो राजा कामी और क्रोधी नहीं होता, वही सुखसे रह सकता है । राजाको चाहिये कि वह दूसरेको स्त्रीसे प्रेम न करे ॥ ५ ॥ सत्य, शौच (पवित्रता), दया, क्षमा, स्वभावमें कोमलता, मीठी बातें, ब्राह्मण-गौ-सन्त तथा सज्जनोंपर श्रद्धा, ये सात गुण राजाके लिए परम कल्याणकारी हैं ॥ ६ ॥ निद्रा, आलस्य, मद्यपान, द्यूत (जुआ), वेश्याओंसे प्रेम, ज्यादा खेल-कूद और अधिक शिकार खेलना, ये राजाके सात दोष हैं ॥ ७ ॥ राजाको चाहिए कि वह राज्यकी प्रजाका पुत्रके समान पालन करे और उससे आयका षष्ठांश कर सर्वदा लेता जाय ॥ ८ ॥ राजाका यह कर्तव्य है कि वह गुप्तचरों द्वारा राज्य भरका समाचार मालूम करता रहे । दूसरे राजाके राज्यकी भी गति-विधि देखनेके लिए वेष बदलकर पाँच-पाँच या दो-दो दूत नियुक्त कर दे । अपने दूतोंके सिवाय किसी और व्यक्तिपर विश्वास न करे ॥ ९ ॥ १० ॥ समय-समयपर जैसा उचित समझे, साम-दान आदि नीतियोंका प्रयोग करता रहे । समय पाकर युक्तिके साथ अपना कार्य साधन करे ॥ ११ ॥ जो कार्य अपने मनमें सोचे, वह किसीसे न कहे । स्वयं चुपचाप करता रहे । नौकरोंके विश्वासपर राज-काज न छोड़ दे ॥ १२ ॥ महीने-महीने अपने खजानेकी देख-भाल स्वयं करे । नौकरोंके ही विश्वासपर न छोड़ दे ॥ १३ ॥ साल-सालभर बाद अपने मंत्रियोंके साथ नगरकी खाई आदिकी भी जाँच करे ॥ १४ ॥ चार-चार महीनेमें अपने शस्त्रों, मार्गों तथा कोठार आदिका निरीक्षण करता रहे ॥ १५ ॥ एक पक्षमें या आठवें रोज हाथी-घोड़े आदि देखे । महीने-महीने कपड़ोंको देख-रेख करे ॥ १६ ॥ प्रति तीसरे दिन अपने यहाँ पाले हुए सुग्गे-कोयल आदि चिड़ियोंको देखे और हर छठवें महीने अपनी सीमापर नियुक्त अधिकारियोंकी निगरानी करे । सर्वदा अपने राजमें रहनेवाले मनुष्योंपर ध्यान रक्खे । महीने महीने सेनाकी देखभाल करे और छठवें महीने राज्यके कुएँ-बावली आदि

कार्यः पुष्पवाटिकानां मासे मासे नृपोत्तमैः । परामर्शः स्वयं गत्वाऽथ वा मन्त्रिजनोत्तमैः ॥१९॥
वर्षे वर्षे सशुद्योगः षण्मासैरथवा त्रिभिः । मासैर्नृपेण स्वे राष्ट्रे कार्यः सैन्येन यत्नतः ॥२०॥
देवानां ब्राह्मणानां च गुरूणां यतिनां तथा । असंतोषो नैव कार्यः पार्थिवेन कदाऽपि हि ॥२१॥
द्रव्यादायं सदा पश्येत्स्वव्ययं तु निरीक्षयेत् । आदायस्य चतुर्थांशैर्व्ययः कार्यो नृपोत्तमैः ॥२२॥
तृतीयांशेन वा कार्यस्त्वर्धांशेन कदापि न । इष्टाः कार्या मन्त्रिणश्च नातिकोपं समाचरेत् ॥२३॥
नातिमान्या मन्त्रिणश्च वर्धनीयाः कदापि न । न विरोध्याः कदा राज्ञा दुर्गपालास्तथैव च ॥२४॥
आकराणां पट्टणानां दुर्गाणां गिरिवासिनाम् । अरण्यवासिनां सिंधावुपद्वीपनिवासिनाम् ॥२५॥
सिन्धुतीरस्थितानां च नानादेशनिवासिनाम् । वर्षान्तरस्थितानां च द्वीपांतरनिवासिनाम् ॥२६।
द्वीपे द्वीपे पृथग्वर्षवासिनां पार्थिवोत्तमैः । परामर्शः सदा कार्यश्चारैः पक्षांतरेण हि ॥२७।
परराष्ट्राद्गुप्तरूपैः काषायांबरधारिभिः । अवधूतादिवेषैश्च तथा कार्पटिकोपमैः ॥२८॥
वणिग्रूपधरैर्दूतैर्वृत्तं वेद्यं नृपोत्तमैः । तत्र तत्राधिपाः सर्वेऽब्देऽब्दे कार्यास्तु नूतनाः ॥२९॥
एक एव चिरं राज्ञा न स्थाप्यः सेवकः क्वचित् । परसैन्यानि वेद्यानि द्रष्टव्यं स्वबलं सदा ॥३०॥
परराष्ट्रागतो दूतः स्वीयराष्ट्रे विलोकयेत् । पृष्टश्चेन्नैव दण्ड्यः स परदूतं न शिक्षयेत् ॥३१॥
परदूतो मोचनीयः सम्मानेन नृपोत्तमैः । स्वसीमारक्षिणो दूताः शिक्षणीया मुहुर्मुहुः ॥३२॥
परदूतः कथं मुक्तः स्वीयराष्ट्रे पुरेऽथवा । अद्यारभ्य सूक्ष्मदृष्ट्या द्रष्टव्यं चेति पार्थिवैः ॥३३॥
अग्रेसरं पार्श्वगौ च पश्चाद्भागस्य रक्षकम् । सेनापतिं मन्त्रिणं च स्वीयं प्रतिनिधिं तथा ॥३४॥
सूतं चामरहस्तं च दूतं निकटवर्तिनम् । दानमानैस्तोषयेच्च सदा राज्ञा सुबुद्धिना ॥३५।
देशं कालं बलं कोशं निजोत्साहं नृपोत्तमैः । आदौ बुद्ध्या निरीक्ष्याथ रिपोश्चापि परीक्षयेत् ॥३६॥

देखे ॥ १७ ॥ १८ ॥ महीने-महीने बगीचोंमें स्वयं जाकर देखभाल करे या मन्त्रियोंको भेज दे ॥ १९ ॥ साल-साल भर बाद, छठें अथवा तीसरे महीने सेनाके साथ-साथ राजा अपने राज्यमें दौरा करे। इस बातका सदा ध्यान रक्खे कि देवताओं, ब्राह्मणों, यतियों तथा गुरुजनोंमें किसी प्रकारका असन्तोष न फैलने पाये ॥ २० ॥ २१ ॥ धनका आय-व्यय स्वयं देखे और आयका चतुर्थांशमात्र व्यय करे। किसी विकट समस्याके आ जानेपर आयका तृतीयांश खर्च करे, किंतु आयका आधा खर्च कभी भी न होने पाये। मन्त्रियोंको सदा प्रसन्न रक्खे। न विशेष क्रोध करे और न किसीसे विशेष प्रेम ही रक्खे। दुर्गकी रक्षा करनेवालोंके साथ कभी विरोध न करे॥ २२–२४ ॥ खानोंके पास रहनेवाले, राजधानीसे दूर किसी नगरमें रहनेवाले, दुर्ग तथा पर्वतनिवासी, जंगलमें रहनेवाले, समुद्रके टापुओंमें निवास करनेवाले, समुद्र-तटपर रहनेवाले, विदेशोंमें रहनेवाले, द्वीपान्तरके निवासियों तथा किसी भी देशके रहनेवाले लोगोंकी प्रत्येक पक्षमें राजा देख-भाल करता रहे ॥ २५–२७ ॥ गुप्तरूपधारी, संन्यासीवेषधारी, अवधूत, वणिक् तथा नागाका वेश बनाकर दूसरेके राजमें घूमनेवाले गुप्तचरोंसे अन्य राष्ट्रका समाचार मालूम करता रहे। उन दूसरे-दूसरे देशोंमें प्रति वर्ष नये-नये अधिकारी बदलता जाय ॥ २८ ॥ २९ ॥ राजाको यह उचित है कि किसी प्रदेशका अधिकारी बनाकर किसी नौकरको ज्यादा दिनों तक उस प्रदेशमें न रहने दे। दूसरे राजाओंकी सेना तथा अपना सैन्यबल बराबर देखता रहे ॥ ३० ॥ यदि किसी दूसरे राष्ट्रका गुप्तचर अपने राष्ट्रमें दिखायी दे जाय तो उसे किसी प्रकारका दण्ड न दे। दूसरे राज्यके दूतको दण्ड न देना नीतिशास्त्रका नियम है। यदि दूसरे देशका दूत मिल जाय तो राजाको चाहिए कि उसे सम्मानपूर्वक छोड़ दे। अपने सीमाप्रांतमें रहनेवाले निजी दूतोंको बराबर शिक्षा देता रहे। यदि दूसरे राष्ट्रका दूत मिल जाय तो राजाको चाहिए कि सूक्ष्मदृष्टिसे इस बातपर विचार करे कि उस देशके राजाने किस लिए मेरे राष्ट्रमें अपना दूत भेजा है ॥ ३१–३३ ॥ जो अपने आगे चलनेवाले हों या पीछे चलते हों, उनकी तथा सेनापति, मंत्री, अपने प्रतिनिधि, सारथी, चमर डुलानेवाले तथा पास रहनेवाले लोगोंको दान-मानसे प्रसन्न रक्खे ॥ ३४ ॥ ३५ ॥ देश, काल,

निजमित्रा नृपाः सर्वे तथा स्वसुहृदो नृपाः । सुहृदां सुहृदश्चापि मित्रमित्रान्परीक्षयेत् ॥३७॥
निजमित्रबलं दृष्ट्वा मित्रमित्रबलं तथा । बलं स्वसुहृदां चापि स्वसुहृत्सुहृदां बलम् ॥३८॥
आदौ नृपैः परीक्ष्याथ रिपोश्चैव निरीक्षयेत् । के स्वीयाः पार्थिवा राष्ट्रे पारकाया नृपाश्च के ॥३९॥
सुहृदः स्वनृपाणां च बलं तेषां निरीक्षयेत् । द्रष्टव्या रिपवः स्वीया रिपूणां रिपवस्तथा ॥४०॥
दृष्ट्वा रिपूणां रिपुभिः कार्या राज्ञा हि मैत्रिकी । परस्य शत्रुः पाल्यो न पाल्यश्चेत्त पराक्षयेत् ॥४१॥
पाल्यं शत्रुबलं दृष्ट्वा शत्रुमित्रबलं तथा । पाल्यं शत्रुसुहृत्सैन्यं दृष्ट्वा पाल्यं सुरक्षयेत् ॥४२॥
परराष्ट्रे चारनेत्रैर्नद्यो दुर्गाणि पर्वताः । अरण्यानि दुष्टमार्गाश्चोरमार्गा जलाशयाः ॥४३॥
ज्ञातव्याः स्वपुरे पूर्वमुद्योगश्च ततश्चरेत् । परराष्ट्रेऽपि बुद्ध्या हि गन्तव्यं पार्थिवैः सुखम् ॥४४॥
यत्राग्रे गमनं स्वीयं केषां वाच्यं न तत्कदा । पूर्वे गन्तुं निजेच्छा चेन्निक्षिपेदुत्तरे ध्वजम् ॥४५॥
उत्तराभिमुखः कार्यः सेनावासो नृपेण हि । अग्रेसर चोत्तरं हि नृपेणाज्ञाप्य सादरम् ॥४६॥
क्रोशार्द्धान्ते गतं दृष्ट्वा गच्छेत्पूर्वे स्वयं नृपः । एवं ध्वजः कदा याम्ये पश्चिमे वा परागिदशि ॥४७॥
परराष्ट्रे रोपणीयश्चारैर्वृत्तं तु वेदयेत् । स्वराष्ट्रे गमनं यस्यां दिशि तस्यां नृपोत्तमैः ॥४८॥
रोपणीयो ध्वजः प्रोच्चैः सेनावासस्तथाचरेत् । यन्त्राणामायुधानां च वाहनानां बलस्य च ॥४९॥
राज्ञा वृद्धिः सदा कार्या कार्यो धान्यादिसंग्रहः । राष्ट्रे दुर्गे पुरे स्वीये पत्तने निर्जले वने ॥५०॥
जलाशयाः शुभाः कार्याः कृत्वा कोशव्ययं बहु । प्राकारार्थेऽथ दुर्गार्थेऽथ जलार्थे यो व्ययः कृत ॥५१॥
न ज्ञेयः स व्ययो राज्ञा ज्ञेयं रक्षणमात्मनः । धर्मार्थे यो व्ययो जातः सोऽग्रे ज्ञेयस्तु संग्रहः ॥५२॥
आपदर्थे धनं रक्षेद्दारान्रक्षेद्धनैरपि । आत्मानं सततं रक्षेद्दारैरपि धनैरपि ॥५३॥
पादमुद्रामितं द्रव्यं राज्ञा दायो निरीक्षयेत् । नावलोक्यं यथाकालं व्यये तत्कोटिसंमितम् ॥५४॥

बल, कोश और अपना उत्साह देखकर अच्छी तरह विचारे और शत्रुके भी बल आदिका निरीक्षण-परीक्षण करे। फिर अपना बल, मित्रबल, मित्रके मित्रका बल और अपने सुहृद्के सुहृदोंका बल देखकर राजाको चाहिये कि अपने शत्रुका बलाबल देखे। तब इस बातपर विचार करे कि कौन राजे अपना साथ देनेवाले हैं और कौन शत्रुका ॥ ३६-४० ॥ इसके बाद उसे चाहिए कि शत्रुओंके शत्रुसे मित्रता करे। दूसरेके शत्रुकी पहले तो रक्षा ही न करे और यदि रक्षा करे भी तो खूब अच्छी तरह देख-भालकर ॥ ४१ ॥ यदि शत्रुकी सेना किसी प्रकार अपने पास आ ही जाय तो उसकी रक्षा करे। शत्रुके मित्रकी सेना एवं शत्रुके सुहृद्का सेनाकी भी रक्षा करे ॥ ४२ ॥ दूसरेके राष्ट्रमें गुप्तचरोंको नियुक्त करके वहाँके पर्वतों, नदियों, वनों, दुष्टोंके रास्तों, गुप्तचरोंके रास्तों तथा जलाशय आदिपर दृष्टि रखकर अच्छी तरह समझ ले। पहले अपने राज्यकी रक्षाका पूर्ण प्रबन्ध करके ही किसी दूसरेके राज्यपर चढ़ाई करे ॥ ४३ ॥ ४४ ॥ जहाँ अपनेको जाना हो, वह सच्ची बात कभी किसीको भी न बताये। यदि पूर्वकी ओर यात्रा करनी हो तो उत्तरकी तरफ झण्डा भेजे और सेनाके ठहरनेका शिविर आदि भी उत्तरकी ओर ही बनवाये। सेना भी उत्तरकी ओर ही चले, किन्तु आधा कोस आगे जाकर पूर्वकी ओर मुड़कर राजाको जहाँ जाना हो, वहाँ जाय। इसी तरह कभी झण्डेको दक्षिणकी ओर तथा कभी पश्चिम दिशाकी ओर भेजे ॥ ४५-४७ ॥ किसी दूसरे राजाके राष्ट्रमें झण्डेको गाड़कर गुप्तचरों द्वारा वहाँका हाल-चाल मालूम करे। अपने राज्यमें उसी ओर झण्डा गाड़े, जिस ओर अपनेको जाना हो ॥ ४८ ॥ शिबिर आदि भी उसी तरफ बनवाये। राजाको चाहिये कि अपने यहाँ तोप-बन्दूक आदि यन्त्र तथा अन्य आयुध, वाहन और सेनाको सदा बढ़ाता हुआ धन-धान्य आदिका भी भली प्रकार संग्रह करता रहे। अपने राष्ट्र, किलाओं, बाजारों, अपनी खास राजधानी तथा निर्जल वनोंमें प्रचुर धन खर्च करके बड़े-बड़े जलाशय बनवा दे। जो धन आस-पासकी खाईं, किले, जलाशय आदिमें खर्च हो, उसे खर्च न समझे। उसे तो अपनी रक्षाका साधन माने। धर्मकार्यमें जो व्यय हो, उसे आगेके लिए संग्रह माने ॥ ४९-५२ ॥ आपत्तिसे बचनेके लिए धनकी रक्षा करे, धनसे भी श्रेष्ठ समझकर स्त्रीकी रक्षा

न सेनारहितं राज्ञा गंतव्यं स्वपुराद्बहिः । नैकाकी विचरेद्ग्रामे नैकाकी क्वापि संविशेत् ॥५५॥
नैकाकी क्वापि वै स्थेयं न पद्भ्यां विचरेद्बहिः । न गच्छेत्परगेहेषु वारं वारं नृपोत्तमः ॥५६॥
न विश्वसेद्द्वारपालं जलद रजक तथा । धौतवस्त्राणि बुद्ध्या हि नृपः सम्यक् परीक्षयेत् ॥५७॥
तांबूलवीटिका ग्राह्यांतरा दृष्ट्वा परार्पिता । परदत्तं जलं ग्राह्यं राज्ञाऽक्षिभ्यां विलोक्य च ॥५८॥
फलानि परदत्तानि परीक्षेत्पार्थिवोत्तमः । दूरस्थितैर्नृपैर्भाव्यं न तेषां निकटे चरेत् ॥५९॥
सभां राज्ञा प्रगंतव्यं द्विवारं त्वेकदाऽथवा । अर्धयामं सभामध्ये स्थेयं राज्ञा न वै चिरम् ॥६०॥
स्वद्वेष्टा नगराद्राष्ट्राद्बहिः कार्यो नृपोत्तमैः । पादौ प्रसार्य न स्थेयं सभायां नृपसत्तमैः ॥६१॥
न बाहुबन्धनं जान्वोः कृत्वा स्थेयं नृपोत्तमैः । नातिस्मितं कदा कार्यं सभाया पार्थिवोत्तमैः ॥६२॥
सभायां समलैर्वस्त्रैर्न गन्तव्यं कदा नृपैः । गणिका गणका वैद्या गायका वन्दिनो नटाः ॥६३॥
पण्डिता धर्मशास्त्रज्ञास्तार्किका वैदिका द्विजाः । सदा पाल्या नृपेणैते दानमानैरहर्निशम् ॥६४॥
न विश्वसेन्नापिताय तोषयेत्तं धनादिभिः । प्रजानां गौरवं कार्यं दण्डयेन्न वृथा प्रजाः ॥६५॥
क्लेशयुक्ताः प्रजाः सर्वा नैव कार्याः कदाचन । राज्यद्वारस्थितैर्दूतैः सर्वैः ते पार्थिवोत्तमाः ॥६६॥
मुक्तकंचुकबन्धाश्च विमुक्तकटिबन्धनाः । सम्यग्दृष्ट्वा न्यस्तशस्त्राः प्रेषणीया नृपोत्तमम् ॥६७॥
राजाज्ञया नृपं नत्वाऽऽसने चोपविशेत्क्रमात् । नृपैर्माण्डलिकैः सर्वैः स्थातव्यं पुरतोऽथवा ॥६८॥
संमील्य हस्तौ पादौ च राजन्यस्तविलोचनैः । न हसेद्राजपुरतो न जृम्भेन्न क्षुवेन्मुहुः ॥६९॥
तथा न ष्ठीवनं कार्यं सर्वैर्माण्डलिकैर्नृपैः । आगमे गमने सर्वैर्वन्दनीयो नृपो मुहुः ॥७०॥
नात्युच्चैः संवदेद्राजसान्निध्ये पार्थिवेतरैः । कंचुकेन विना राजा सभायां नोपसंविशेत् ॥७१॥

करे और स्त्री तथा धनसे भी बढ़कर अपनी रक्षा करनी चाहिए ॥ ५३ ॥ अपनी आयमेंसे एक चवन्नी भी किसीसे पाना हो तो लेकर छोड़े । किन्तु समय पड़नेपर यदि करोड़ोंके खर्चकी आवश्यकता पड़ जाय तो खर्च कर दे, रुपयेका मुँह न देखे । अपने नगरके बाहर बिना सेनाके कहीं न जाय । अपने ग्राममें भी अकेला न घूमे-फिरे और न कहीं अकेला बैठे ॥ ५४ ॥ ५५ ॥ कहीं अकेला न ठहरे, न पैदल चले और बार बार किसीके घर न जाय । द्वारपाल, पानी देनेवाले सेवक और धोबी इनपर कभी भी विश्वास न करे । कपड़ा धुलकर आये तो राजाको चाहिए कि अपनी बुद्धिसे खूब अच्छी तरह उसकी परीक्षा करके ही पहने । पानका बीड़ा खानेको आये तो पहले उसे किसी दूसरेको खिलाकर स्वयं दूसरा बीड़ा खाय। पानी पीनेको आये तो अच्छी तरह उसकी परीक्षा करके अपना आँखों देखकर पिये ॥ ५६-५८ ॥ दूसरेके दिये फलोंकी भी भली भाँति परीक्षा कर ले । जो राजे मिलने आयें, उनसे दूरसे ही बातचीत करे । न स्वयं उनके पास जाय और न उन्हें अपने पास आने दे । प्रतिदिन एक या दो बार सभामें जाय और आधे पहरसे अधिक वहाँ न ठहरे । अपनेसे द्वेष करनेवालोंको नगरसे बाहर कर दे । सभामें कभी पैर फैलाकर न बैठे और न घुटनोंको सिकोड़कर हा बैठा करे । राजाको चाहिये कि सभामें कभी ज्यादा न हँसे ॥ ५९-६२ ॥ सभामें कभी मैले कपड़े पहिनकर न जाय । गणिका, गणक (ज्योतिषी), वैद्य, गायक, बन्दीजन, नट, पंडित, धर्मशास्त्री, सैनिक, वैदिक तथा ब्राह्मण इनका दान-मान आदिसे सदा सम्मान करता रहे ॥ ६३ ॥ ६४ ॥ नाईपर कभी भी विश्वास न करे। उसे हमेशा रुपये-पैसे देकर प्रसन्न रक्खे । सब लोगोंका सम्मान करता हुआ प्रजाको व्यर्थ दंड न दे ॥ ६५ ॥ इस बातका सदा ध्यान रक्खे कि प्रजाके लोगोंको किसी प्रकारका क्लेश न होने पाये । राजद्वार-पर रहनेवाले दूतोंको चाहिये कि जो राजे मिलने आयें, उनके लबादे उतरवाकर परतले खुलवा दे । जो कुछ अस्त्र-शस्त्र उनके पास हों, उन्हें अलग रखवा दे । फिर अच्छी तरह देख-भालकर राजासे मिलनेको भीतर जाने दे ॥ ६६ ॥ ६७ ॥ जो कोई राजासे मिलने जाय, वह राजाको प्रणाम करके संकेतित आसनपर बैठे । जो माण्डलिक राजे हों, उनके लिये राजाके सामने कुर्सी डाली जाय । वे राजाके सामने हाथ-पैर समेटकर राजाकी ओर निहारते हुए बैठें । राजाके सामने न हँसे, न जम्हाई ले और न बार-बार छीके ॥६८॥ न बार-बार

मृगयायां वारणेंद्रो नैव हन्यो नृपोत्तमैः । नांतर्वत्नी मृगी राज्ञा हन्तव्या विपिने कदा ॥७२॥
न निद्रितश्च हन्तव्यः पिबन्नीरं वनेचरः । तथा स्वशरणं प्राप्तो विश्वस्तो वा कदाचन ॥७३॥
क्रीडासक्तो वने प्राणी नैव हन्यो नृपोत्तमैः । सीमाचारानष्टदिक्षु संस्थाप्य मृगयां चरेत् ॥७४॥
रात्रौ मित्रेण सहितस्तूष्णीमेव नृपोत्तमः । आत्मानं कंबलेनैव सनाच्छाद्य बहिश्चरेत् ॥७५॥
पुरद्वारस्थितानां च ह्यर्गलादि निरीक्षयेत् । जनानां भाषितं सर्वं श्रोतव्यं हि शुभाशुभम् ॥७६॥
एवं स्वयं प्रगंतव्यमथवा प्रेषयेद्धितम् । रात्रौ रात्रौ पुरे बुद्ध्या श्रोतव्यं सकलेरितम् ॥७७॥
न कार्यः कलहो गेहे गृहकृत्यं सभास्थितैः । न वाच्यमणुमात्रं हि न तूष्णीं ष्ठीवनं चरेत् ॥७८॥
न कंडूयेच्च शिरो राजा सभायां स्वकरेण वै । श्रुत्वा रिपूणामुत्कर्षं न त्यजेद्धैर्यमात्मनः ॥७९॥
पलायनं न संग्रामाद्राज्ञा कार्यं कदाचन । न रिपूणां निजा पृष्ठिर्दर्शनीया कदाचन ॥८०॥
नोडुपेन तरेद्राजा नदीं मुख्यां कदापि हि । सेतुं विना नदी राज्ञा नोत्तीर्या हि कदाचन ॥८१॥
नोत्तीर्या नौकया राज्ञा नदी क्वापि सुतादिभिः । कार्या नैव जलक्रीडा नौकायां स्वसुतैः सह ॥८२॥
न स्थेयं हट्टमध्ये हि तथा चैव चतुष्पथे । न ताडयेन्निजां पत्नीं तथा पुत्रं न ताडयेत् ॥८३॥
स्वमुद्राङ्कितपत्रेण विना केषां पुराद्बहिः । न निर्गमः प्रकर्तव्यस्तथैवागमनं नृणाम् ॥८४॥
कर्तुमाज्ञापनीयं न मुद्रापत्रांकितं विना । नारण्ये लुण्ठनं चौरैः पथि कार्यं नृपोत्तमैः ॥८५॥
न कार्यं मुण्डनं राज्ञा विना तीर्थं कदाचन । पर्वकाले गृहे नैव स्नातव्यं पार्थिवोत्तमैः ॥८६॥
न पादेन स्पृशेच्चापं न पादेन शरं स्पृशेत् । नातिक्रीडेत्सारिकाभिर्द्विजैर्वादं न वै चरेत् ॥८७॥
न तिष्ठेद्द्वारदेशे वै न स्थातव्यं नृपैर्भुवि । राज्ञा मार्गे न वै स्थेयं न खेदं नृपतिर्भजेत् ॥८८॥
तोयानयनमार्गे हि स्त्रीणां स्तेयं नृपेण न । धान्यं समर्घं कर्तुं वै दण्डयेद्व्यवसायिनः ॥८९॥

थूके। जब राजाके सामने जाय और लौटे, तब बराबर राजाको प्रणाम करे ॥ ६९ ॥ ७० ॥ राजाके सामने जोर-जोरसे बात न करे। राजाको चाहिए कि वह सभामें कवच धारण किये बिना न बैठे। जब शिकार खेलने जाय तो वहाँ हाथी तथा गर्भिणी मृगीका शिकार कभी न करे ॥ ७१ ॥ ७२ ॥ जो जीव पानी पी रहा हो, जो सोया हो और जो भाग करके अपनी शरण आया हो, ऐसे जीवोंका शिकार कभी न करे। शिकार खेलने जाय, तब आठों दिशाओंमें कुछ लोगोंको नियुक्त करके शिकार खेलें। रात्रिके समय अपने किसी मित्रके साथ कम्बल ओढ़कर महलसे बाहर निकले ॥ ७३–७५ ॥ पुरद्वारके फाटकोंमें लगे हुए अर्गला-दण्ड आदि देखे। रात्रिमें लोग जो अटपटी बातें कर रहे हों, उन्हें सावधान मनसे सुने। इस प्रकार प्रत्येक रात्रिको स्वयं जाय या अपने विश्वासपात्र मित्रको भेज दिया करे, जो हर रात्रिमें लोगोंकी बातें सुनता रहे। घरमें लड़ाई-झगड़ा न करे। सभामें कोई घरेलू काम-काज न करे। घरसे सम्बन्ध रखनेवाली कोई बात भी न करे। सभामें चुपचाप बैठे और थूके नहीं। सभामें सिर न खुजलावे। शत्रुका उत्कर्ष सुनकर धैर्य न छोड़े। राजाको चाहिए कि कभी संग्रामभूमिसे भागे नहीं और शत्रुको कभी अपनी पीठ न दिखाये ॥ ७६–८० ॥ राजाको चाहिए कि कभी अपने बालबच्चोंके साथ नौकापर चढ़कर नदी न पार करे। अपने लड़कोंके साथ नौकापर बैठकर जलक्रीड़ा न करे ॥ ८१ ॥ ८२ ॥ बाजारमें या किसी चौराहेपर न बैठे। अपनी स्त्री और पुत्रको न धमकाये। राज्यका मुहर लगा पत्र देकर लोगोंको अपने नगरसे बाहर जाने दे। यही नियम नगरके भीतर आनेवालोंके लिए भी रक्खे। वनों तथा रास्तोंमें चोरी करनेवालोंको ऐसा मौका न मिलने पाये, जिससे वे चोरी कर सकें ॥ ८३–८५ ॥ तीर्थके सिवाय किसी दूसरी जगह राजा मुण्डन न कराये। कोई पर्वकाल आ पहुँचे तो घरमें स्नान न करे, बल्कि किसी तीर्थको चला जाय। धनुष और बाणको पैरसे न छुए। चौपड़-पचीसी आदि न खेले। ब्राह्मणोंके साथ ज्यादा वाद-विवाद न करे। अपने द्वारपर तथा खाली जमीनपर न बैठे। रास्तेमें भी कभी न बैठे और किसी तरहका खेद न करे ॥ ८६–८८ ॥ जिस रास्तेसे स्त्रियाँ पानी भरने जाती-आती हों, वहाँ कभी न बैठे। अन्नोंको सस्ते भावसे

दृष्ट्वा किंचिन्महर्घं तु स्वीयराष्ट्रे हि भूभृता । न्यूनः कार्यः करभारः किंचिद्देशसुखाय च ॥९०॥
नातिशाठ्यं कदा कार्यमौदार्यं दर्शयेज्जनान् । द्रव्यं गृहीत्वा राज्ञा हि मोचनीया न तस्कराः ॥९१॥
मुखं दृष्ट्वा न वै कार्यो राज्ञा न्यायः कदापि हि । न न्यायश्च परैः कार्यः स्वयमेव प्रकारयेत् ॥९२॥
अर्तानां सकलं वृत्तं श्रोतव्यं सादरं नृपैः । आर्त आकारणीयो हि निकटे कृपया नृपैः ॥९३॥
आत्मानं मानयेन्नैव वैद्यं च गणकं नटम् । पण्डितं वैदिकं वीरं गायकं कृतधर्मिणम् ॥९४॥
यज्ञो दानं जपो होमः सन्ध्या ध्यानं शिवार्चनम् । स्नानं पुराणश्रवणं भक्त्या कार्यं नृपोत्तमैः ॥९५॥
न मादकं वस्तु सेव्यं न कृच्छ्रादिकमाचरेत् । न यात्रा स्वपदा कार्या सप्तद्वीपाधिपेन हि ॥९६॥
फलाहारश्च कर्तव्यो राज्ञा ह्येकादशीदिने । निर्जलश्चोपवासश्च न कार्यः पृथिवीभृता ॥९७॥
येन यद्याचितं राज्ञे भूसुरेणार्पयेच्च तत् । तस्मै विप्राय राज्ञा हि नृपा भूसुरदेवताः ॥९८॥
उत्साहे बन्धनान्मोच्या ये ये क्रोधात्सुरक्षिताः । निजाज्ञाभंगतां दृष्ट्वा ज्ञेयं स्वीयं हृतं शिरः ॥९९॥
स्वीयदूतापमानो यः स स्वीयश्चिंतयेन्नृपः । स्वीयदूतस्य सम्मानो राज्ञा ज्ञेयः स आत्मनः ॥१००॥
एवं कुश मया प्रोक्ता राजनीतिः सविस्तरा । दिनचर्या मया यद्वत्क्रियते त्वं तथा कुरु ॥१०१॥

इति श्रीशतकोटिरामचरितांतर्गते श्रीमदानन्दरामायणे राज्यकांडे राजनीतिशिक्षणं नाम षोडशः सर्गः ॥ १६ ॥

सप्तदशः सर्गः

(कुशकी पुत्री हेमाका स्वयम्वर)

श्रीरामदास उवाच

एकदा कुशकन्याया हेमायाश्च स्वयंवरम् । अयोध्यायां चकाराथ रामश्चातिमहोत्सवैः ॥ १ ॥
समाहूता नृपाः सर्वे नानाद्वीपांतरस्थिताः । समाजग्मुः सुवेषाश्च सभायां तस्थुरासने ॥ २ ॥

बिकवानेके लिए बनियोंको दण्ड देता रहे। यदि अपने राष्ट्रमें मँहगी बढ़ जाय तो राजाको चाहिये कि देशको सुखी रखनेके लिए करभार कुछ हल्का कर दे ॥ ८९ ॥ ९० ॥ कभी अतिशठता न करे और रुपये लेकर चोरोंको न छोड़े। राजाको यह उचित है कि मुँहदेखा न्याय न करे। न्याय करनेका भार दूसरोंके ऊपर न डालकर स्वयं करे। यदि कोई दुखी राजाके पास अपना दुःख सुनाने पहुँचे तो राजाको चाहिये कि दुखियोंके सारे दुःख आदरपूर्वक सुने। दुखिया मनुष्यसे किसी प्रकारकी घृणा न करके उसे अपने पास बुलाये और उसकी दुःखमयी कहानी सुने। किसी तरहका घमण्ड न करे। वैद्य, ज्योतिषी, नट, पण्डित, वैदिक, वीर, गायक और धर्मात्मा इनका आदर करे। यज्ञ, दान, जप, होम, सन्ध्या, शिवार्चन, स्नान और पुराणश्रवण आदि शुभ कार्य भक्तिपूर्वक करता रहे ॥ ९१–९५ ॥ राजाको चाहिये कि प्रत्येक एकादशीको केवल फलाहार करके रहे और कभी भी निर्जल उपवास न करे। राजाके समीप पहुँचकर ब्राह्मण जो माँगे, सो दे। क्योंकि ब्राह्मण देवताके समान होता है। क्रोधवश जिन-जिन लोगोंको जेलमें डाल दिया गया हो, कोई उत्साहका समय आनेपर उन्हें छोड़ दे। यदि किसीके द्वारा आज्ञा भंग हो रहा हो तो अपना सिर कट गया समझे। अपने दूतका अपमान अपना अपमान और अपने दूतका सम्मान अपना सम्मान जाने। हे कुश ! इस प्रकार मैंने तुम्हें सारी राजनीति बतला दी। रह गयी दिनचर्याकी बात, सो मैं जैसा करता हूँ वैसे ही तुम भी करते चलो ॥ ९६–१०१ ॥ इति श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये पं० रामतेजपाण्डेयविरचित 'ज्योत्स्ना' भाषाटीकासमन्विते राज्यकांडे उत्तरार्द्धे षोडशः सर्गः ॥ १६ ॥

श्रीरामदास कहने लगे—रामने एक समय कुशकी पुत्री हेमाका स्वयंवर बड़े धूमधामके साथ ठाना। उसमें द्वीप-द्वीपान्तरके अनेक राजे अच्छे-अच्छे वस्त्राभूषणसे सुसज्जित होकर आये और सुन्दर-सुन्दर

ययुर्देवाः सगन्धर्वा मुनयोऽपि समाययुः ॥ ३ ॥
तदा सभायामानीता हेमालङ्कारभूषिता । आरुह्य शिबिकायां तु रुक्ममय्यां वरानना ॥ ४ ॥
नवरत्नमयीं मालां बिभ्रती सा स्वयम्वरा । ददर्श नृपतीन्सर्वान्नृपपुत्रान्सविस्तरम् ॥ ५ ॥
तद्भ्रूचापविनिर्मुक्तैस्तत्कटाक्षपतत्रिभिः । संभिन्नास्ते नृपाः सर्वे के वयं न विदुस्तदा ॥ ६ ॥
एतस्मिन्नन्तरे तत्रावन्तिनाथसुतो महान् । चित्रांगदो सभायाश्च तां जहार कुशात्मजाम् ॥ ७ ॥
दृष्ट्वा कार्यान्तरव्यग्रान्रामादीन्वेगवत्तरः । मोहनास्त्रेण सकलान्वीरान् कृत्वातिमोहितान् ॥ ८ ॥
रथे निवेश्य तां हेमां हेमाभां वेगवत्तरः । चित्रांगदो बहिर्गत्वा क्रोशमात्रे स्थितोऽभवत् ॥ ९ ॥
किं तूष्णीं चौरवन्नेया मयेयं कुशबालिका । इति निश्चित्य मेधावी तस्थौ चित्रांगदो महान् ॥१०॥
एतस्मिन्नन्तरे पुर्यां हाहाकारो महानभूत् । नीता हेमा चोग्रबाहोः पुत्रेणातिबलीयसा ॥११॥
नृपाः सर्वे समुत्तस्थुः सभायां खिन्नमानसाः । उपसंहरिते तेन मोहनास्त्रेऽविसम्भ्रमात् ।१२॥
चित्रांगदेन योद्धुं ते स्वसैन्यैर्निर्ययुर्नृपाः । बहिः साकेतनगरात् क्रोधादारक्तलोचनाः ॥१३॥
तूष्णीमेवोग्रबाहुः स ददर्श पुत्रकौतुकम् । एतस्मिन्नन्तरे सर्वे तद्रथं पार्थिवोत्तमाः ॥१४॥
संवेष्ट्य कोटिशः शस्त्रैर्ववृषुश्चोग्रबाहुजम् । तदा चित्रांगदो वीरो वायव्यास्त्रेण पार्थिवान् ॥१५॥
गगने भ्रमयामास वाहनाद्यैः समन्वितान् । ततो रामाज्ञया सप्त लवाद्या निर्ययुः पुरात् ॥१६॥
उत्सवार्थं समायाताः स्वस्वराज्यात्तु बालकाः । अङ्गदाद्या निजैः सैन्यैः सलवाः सङ्गरं ययुः ॥१७॥
तदा बभूव तुमुलं युद्धं तल्लोमहर्षणम् । चित्रांगदं ववर्षुस्ते नानाशस्त्राणि राघवाः ॥१८॥
चित्रांगदः स्वबाणौघैर्भित्त्वा शस्त्राणि तानि हि । निजबाणैर्यूपकेतुं चकार विरथं क्षणात् ॥१९॥
तथा चकार विरथं सुबाहुं पुष्करं तथा । तक्षकं चित्रकेतुं च ह्यङ्गदं बलवत्तरः ॥२०॥

आसनोंपर बैठे। यह बात राजाओं ही तक नहीं थी, बल्कि देवता, गन्धर्व, ऋषि-मुनि, विद्याधर, नाग, किन्नर भी आ-आकर उस उत्सवमें सम्मिलित हुए थे। इन सबके आ जानेपर एक सुवर्णकी पालकीमें बैठी सुमुखी सुन्दरी हेमा हाथोंमें नवरत्नोंसे बनी माला लिये आ पहुँची। सभाके प्राङ्गणमें पहुँचकर उसने वहाँपर बैठे हुए समस्त राजाओं तथा राजपुत्रोंकी ओर ध्यानसे देखा ॥ १-५ ॥ हेमाकी भौंहरूपी धनुषसे छूटे हुए कटाक्ष-रूपी बाणोंसे घायल होकर सबके सब राजे अपने आपको भूल गये। उनको यह भी ज्ञान न रहा कि हम कौन हैं। उसी समय अवन्तिदेशके राजा अग्रबाहुका पुत्र चित्रांगद कुशकी पुत्रीका हरण करके ले भागा। उसने देखा कि राम आदि बड़े-बूढ़े अपने कर्मोंमें व्यस्त हैं। बस, उसने एक मोहनास्त्र छोड़ा। जिससे वहाँ निमन्त्रणमें आये हुए राजे मोहित हो गये। तब वह सुवर्णके समान तेजस्विनी हेमाको रथपर बिठाकर भगा ले गया और वहाँसे एक कोसकी दूरीपर जाकर रुका। उसने अपने मनमें सोचा कि चोरोंकी तरह हेमाको लेकर भाग जाना ठीक नहीं है। इसलिए वहाँ वह ठहर गया ॥६-१०॥ उधर सारी पुरीमें यह हाहाकार मच गया कि राजा उग्रबाहुका पुत्र चित्रांगद हेमाका हरण कर ले गया ॥ ११ ॥ चित्रांगदके द्वारा मोहनास्त्रका संवरण हो जानेपर सब राजे होशमें आकर उठे और अपनी-अपनी सेना लेकर क्रोधसे लाल-लाल आँखें किये अयोध्यासे बाहर निकले ॥ १२ ॥ १३ ॥ वहाँपर ही बैठा हुआ राजा उग्रबाहु अपने पुत्रका कौतुक देख रहा था। उसी समय सब राजे चित्रांगदके पास पहुँचे और उसका रथ चारों ओरसे घेरकर शस्त्रोंकी वर्षा करने लगे। तब चित्रांगदने वायव्य अस्त्र चलाया। जिससे सब राजे अपनी सेना तथा वाहनके साथ आकाशमण्डलमें उड़ने लगे। इसके अनन्तर रामकी आज्ञासे लव आदि सातों बेटे नगरसे निकल पड़े। उनके अतिरिक्त उत्सव-में आये हुए राजकुमार भी अपनी-अपनी सेना लेकर लड़नेको चल दिये। उस समय चित्रांगदके साथ रोंगटे खड़े कर देनेवाला तुमुल युद्ध होने लगा। रघुवंशके वे बालक चित्रांगदपर विविध प्रकारके अस्त्र-शस्त्र चलाने लगे ॥ १४ – १८ ॥ अपने बाणोंसे प्रहार बचाते हुए चित्रांगदने अपने शस्त्रोंसे क्षणभरमें यूपकेतुका रथ ध्वस्त कर डाला। उस वीर बालकने थोड़ी ही देरमें सुबाहु, पुष्कर, तक्ष, चित्रकेतु तथा अंगदको भी विरथ कर

तद्दृष्ट्वा कौतुकं तस्य ज्ञात्वा तत्तपसः फलम् । लवश्चिच्छेद बाणौघैस्तद्धनुर्दिव्यमुत्तमम् ॥२१॥
ततो लवः स्वबाणौघैरुग्रबाहुसुतं मुदा । चकार व्याकुलं शीघ्रं तद्दृष्ट्वा लवचेष्टितम् ॥२२॥
उग्रबाहुर्ययौ योद्धुं लवेन वेगवत्तरः । लवस्तमपि बाणौघैश्चकार विरथं क्षणात् ॥२३॥
उग्रबाहुस्तदा वीरोऽन्ये रथे चारुरोह सः । ववर्ष निशितैर्बाणैर्मूर्छयामास तं लवम् ॥२४॥
लवं विमूर्छितं दृष्ट्वा हाहाकारो महानभूत् । तदा ययौ कुशो योद्धुमुग्रबाहुनृपेण वै ॥२५॥
कुशमागतमाज्ञाय ह्यङ्गदाद्यास्तदा पुनः । रथस्था युयुधुस्तेन उग्रबाहुनृपेण वै ॥२६॥
पुनस्तानङ्गदादींश्च चकार विरथान्नृपः । तदा कुशः स्वबाणौघैरुग्रबाहुं नृपं क्षणात् ॥२७॥
चकार विरथं वीरश्चिच्छेद तस्य कार्मुकम् । उग्रबाहुस्तदा व्यग्रो बभूव चकितस्तदा ॥२८॥
तं धृत्वा स कुशस्तोषाद्वादयामास दुन्दुभीम् । अथोग्रबाहुं ससुतं निन्ये श्रीरामसन्निधिम् ॥२९॥
रामस्तं मोचयामास मत्वा तं सुहृदं वरम् । तदा रामो विजयिने कङ्कणं मुनिनाऽर्पितम् ॥३०॥
ददौ कुशाय प्रीत्या स पुरतः कुम्भजन्मनः । कुशस्तदाऽतिशुशुभे वरकंकणमण्डितः ॥३१॥
तदा कुशो मुनिं प्राह नत्वा तं कुम्भसम्भवम् । त्वया लब्धं कुतश्चेदं कङ्कणं वद मां मुने ॥३२॥
तत्तस्य वचनं श्रुत्वाऽगस्तिः प्राह कुशं मुदा । पुरेन्द्ररिपवो वत्स बहवः सागरेण हि ॥३३॥
कृताः स्वांतर्निवासाश्च तदाऽहं नाकपार्थितः । कृत्वा स्वचुलुकेऽब्धिं तं पीतवाँल्लीलयैव हि ॥३४॥
ततो लुप्तां द्वीपयोर्हि मर्यादां मध्यवर्तिनीम् । दृष्ट्वा पुनर्नाकिपेन प्रार्थितो हतशत्रुणा ॥३५॥
मूत्रवत्सागरं भीमं सजीवं मुक्तवानहम् । तदाऽब्धिनाऽर्पितं मह्यं कुश तत्कङ्कणं वरम् ॥३६॥
नानारत्नविचित्रं च रवितेजोविराजितम् । तद्रामायार्पितं पूर्वं मया तेन तवार्पितम् ॥३७॥

दिया। इस कौतुकको देखकर लवने समझ लिया कि यह सब चमत्कार उसकी तपस्याका है। यह विचारकर लवने अपनी बाणवर्षासे चित्रांगदके उस उत्तम धनुषको काट डाला और इतनी शीघ्रतासे बाणवर्षा की कि चित्रांगद व्याकुल हो गया ॥ १९–२२ ॥ ऐसी अवस्थामें उग्रबाहु (चित्रांगदका पिता) स्वयं लवके साथ युद्ध करनेके लिये रणमें उतर पड़ा, किन्तु लवने थोड़ी ही देरमें उसका भी रथ ध्वस्त कर दिया। तब उग्रबाहु तुरन्त एक दूसरे रथपर बैठकर युद्ध करने लगा और अपने तीखे बाणोंकी मारसे लवको मूर्छित कर दिया। उसे मूर्छित देखकर संग्रामभूमिमें हाहाकार मच गया। तभी उग्रबाहुसे युद्ध करनेके लिए रामका दूसरा पुत्र कुश भी आ पहुंचा। कुशको आया देखकर वे अङ्गद आदि रघुवंशी राजकुमार रथोंपर बैठ बैठकर उत्साहपूर्वक उग्रबाहुसे युद्ध करने लगे। किन्तु उग्रबाहुने अपने युद्धकौशलसे थोड़ी ही देरमें अङ्गद आदि सभी राजकुमारोंके रथोंको नष्ट कर डाला। उधर अपने भ्राताओंपर प्रहार करते देखकर कुशने उग्रबाहुको क्षणभरमें विरथ कर दिया और उसका धनुष काट डाला। उग्रबाहु उस समय आश्चर्यके साथ व्यग्र हो उठा ॥ २३–२७ ॥ तब कुशने झटपट उन बाप-बेटोंको बन्दी बना लिया और अपनी विजयदुन्दुभी बजवा दी। चित्रांगद तथा उग्रबाहुको अपने साथ लेकर कुश रामचन्द्रजीके सामने गये। वहाँ पहुँचनेपर उग्रबाहुको अपना मित्र समझकर रामने छुड़ा दिया और विजयी कुशको अगस्त्य ऋषिके समक्ष अगस्त्यका ही दिया हुआ कङ्कण दिया। उस कङ्कणके पहिननेसे कुशकी शोभा और भी बढ़ गयी ॥ २८–३१ ॥ इसके बाद कुशने अगस्त्यऋषिसे कहा—हे मुने ! आपने यह कङ्कण कहाँ पाया था ? सो हमसे कहिए ॥ ३२ ॥ कुशकी बात सुनकर अगस्त्यने कहा—हे वत्स ! आजके बहुत समय पहले इन्द्रके बहुतेरे शत्रु समुद्रके भीतर घर बनाकर रहा करते थे। इन्द्रके प्रार्थना करनेपर मैंने समुद्रको चुल्लूमें भरकर पी लिया। जब इन्द्रने अपने सारे शत्रुओंको मार डाला, तब दो द्वीपोंके मध्यकी सीमाको नष्ट देखकर इन्द्रने मुझसे समुद्रको फिर पूर्ववत् बना देनेकी प्रार्थना की ॥३३–३५॥ तब मैंने मूत्रके मार्गसे फिर समुद्रको सजीव करके बहा दिया। उसी समय समुद्रने मुझे उपहारके रूपमें यह कङ्कण दिया था ॥ ३६ ॥ अनेक प्रकारके रत्नोंसे जटित तथा सूर्यके तेजकी नाईं तेजोमय यह कङ्कण मैंने रामको दे

तन्मुनेर्वचनं श्रुत्वा कुशस्तं प्राह वै पुनः । लवस्य जीवनोपायं वद मामद्य भो मुने ॥३८॥
कुशस्य वचनं श्रुत्वाऽगस्तिस्तं प्राह सादरम् । विमूर्च्छितो यदा पूर्वं भरतः पथि पार्थिवैः ॥३९॥
मूर्छितः पतितश्चास्ति रणे रिपुशरैर्हतः । मुद्गलाश्रमतो वल्ल्यस्तदाऽऽनीताः शुभावहाः ॥४०॥
सौमित्रिणा तदाऽद्य त्वं मुद्गलाश्रमतः पुनः । महौषधी समानीय जीवयैनं लवं जवात् ॥४१॥
अथवा त्वं हनूमंतं प्रेषयस्वाश्रमं मुनेः । एवं यावच्च स मुनिः कथयामास तं कुशम् ॥४२॥
तावत्तद्वचनं श्रुत्वा मुनेर्मारुतिना क्षणात् । समानीयाश्रमाद्वल्लीर्मुद्गलस्य तपोनिधेः ॥४३॥
ताभिस्तं जीवयामास लवं सैन्यसमन्वितम् ।

विष्णुदास उवाच

गुरो तस्यैव च मुनेर्मुद्गलस्याश्रमे कथम् ॥४४॥
मृतसंजीवनीवल्ल्यादिका वल्ल्योऽत्र निर्गताः । कथं ता हि समीपस्था विस्मृत्य द्रोणपर्वतम् ॥४५॥
प्रेषितोऽञ्जनिपुत्रः स तेन जांबवता पुरा । अमुं मत्संशयं छिंधि कृपां कृत्वा मुनीश्वर ॥४६॥

श्रीरामदास उवाच

यदा मातुर्विमोक्षार्थममृतस्य खगाधिपः । कलशं स्वमुखे धृत्वा नाकलोकात्समानयत् ॥४७॥
तदा तत्कलशाद्वेगाद्बिंदुस्तत्रापतत्पुरा । तद्धेतोर्मुद्गलस्यापि मुनेस्तपःप्रभावतः ॥४८॥
आसन् वल्ल्यश्च तस्यैव ह्याश्रमे हि द्विजोत्तम । नैता वेद शुभा वल्लीर्जांबवान्स वनेचरः ॥४९॥
द्रोणाचलं त्वतस्तेन प्रेषितो वायुनन्दनः । इति त्वया यथा पृष्टं तथा ते विनिवेदितम् ॥५०॥
इदानीं शृणु शिष्य त्वं शुभां तां प्राक्तनीं कथाम् । ततो लवादिकाः सर्वे ययुस्ते स्वपुरीं मुदा ॥५१॥
नत्वा मुनिं च रामादींस्तस्थुः श्रीराघवाग्रतः । ततो महोत्सवश्चासीत्पुर्यां तल्लवदर्शनात् ॥५२॥
ततो दृष्ट्वा लवं रामो जीवितं वायुजेन हि । समालिंग्य दृढं प्रेम्णा परं तोषमवाप सः ॥५३॥

दिया और रामने इसे आज तुम्हें दिया है ॥ ३७ ॥ मुनिकी बात सुनकर कुशने कहा—अब हमें कोई ऐसा उपाय बतलाइए, जिससे लव जीवित हो जाय ॥ ३८ ॥ वह इस समय शत्रुओंके अस्त्रोंसे घायल होकर रणभूमिमें पड़ा हुआ है। कुशकी प्रार्थना सुनकर अगस्त्यने कहा—उस समय जब कि जनकपुरके मार्गमें राजाओंने भरतको मूर्छित कर दिया था, तब मुद्गल ऋषिके आश्रमसे कल्याणदायिनी लताएँ लक्ष्मण द्वारा आयी थीं। उसी प्रकार आज तुम मुद्गलके आश्रमसे वह लता लाकर लवको भी जीवित कर लो ॥३९–४१॥ अथवा हनुमान्‌जीको भेज दो। ये ही वह लता ले आयेंगे। मुनिकी बात सुनते ही हनुमान्‌जी चल पड़े और थोड़ी ही देरमें मुद्गलऋषिके आश्रमसे वह लता लाकर रख दी और उन्हीं लताओंसे कुशने क्षणमात्रमें सेना समेत लवको जीवित कर लिया। इतनी कथा सुनकर विष्णुदासने कहा—हे गुरो ! वे मृतसञ्जीवनी लताएँ मुद्गल ऋषिके आश्रमपर आकर कैसे उग गयीं। फिर जब वे इतनी समीप थीं, तब लक्ष्मणकी मूर्छाके समय जाम्बवान्‌ने हनुमान्‌जीको द्रोणाचलपर क्यों भेजा–हे मुनीश्वर ! मेरे ऊपर कृपा करके मेरी इस शंकाका समाधान कीजिये ॥ ४२–४६ ॥ श्रीरामदासने कहा—जिस समय अपनी माताको छुड़ानेके लिए गरुड़ स्वर्गसे चोंचमें अमृतकलश लेकर चले तो मुद्गल ऋषिके आश्रमपर जाते ही कलशमेंसे अमृतकी एक बूँद वहाँ गिर पड़ी। इसीलिए और ऋषिके तपोबलसे उसी स्थानपर वे मृतसञ्जीवनी बल्लरियाँ उग गयीं। वनचर जाम्बवान् इस स्थानकी लताओंको जानते ही नहीं थे। इसी कारण हनुमान्‌जीको द्रोणाचलपर भेजा था ॥ ४७ ॥ ४८ ॥ जैसा तुमने प्रश्न किया, मैंने उसका उत्तर दे दिया। अच्छा, अब अपनी पुरानी कथापर आ जाओ—उसे सावधान मनसे सुनो। उस औषधिसे जीवित लव आदि वीर लौटकर सहर्ष अपनी अयोध्यापुरीमें आ गये ॥ ४९–५१ ॥ रामकी सभामें पहुँचकर लव आदिने वसिष्ठजीको प्रणाम किया और रामके सामने बैठ गये। लवको देखनेसे उस रोज पुरीभरमें बड़ा उत्साह था। जब रामने देखा कि हनुमान्‌जीके पुरुषार्थसे लव जीवित होकर

ततो रामो वायुजाय कंकणे रत्नमंडिते । ददौ परमसंतुष्टस्ताभ्यां स शुशुभे कपिः ॥५४॥
ततो लवाय श्रीरामस्त्वपरं कंकण वरम् । ददावगस्तिना दत्तं पूर्वं यद्रत्नमडितम् ॥५५॥
लवस्तेनातिशुशुभे वरकंकणमण्डितः । लवस्तदा मुनिं प्राह नत्वा तं कुम्भसम्भवम् ॥५६॥
त्वया लब्धं कुतश्चेदं कंकणं वद मां मुने । ततस्तद्वचनं श्रुत्वाऽगस्तिः प्राह लवं मुदा ।५७॥
एकदा दंडकारण्येऽहं स्नातुं हि गतः सरः । तस्मिन्स्नात्वा नित्यविधिं कृत्वा तत्र स्थितः क्षणम्५८
एतस्मिन्नंतरे तत्र खात्स्वर्गी समुपागतः । दिव्यं विमानमारूढः शतस्त्रीपरिवेष्टितः ॥५९॥
दिव्यमाल्यांबरधरो दिव्यगन्धादिचर्चितः । स स्वर्गी खात्समायातो यावत्तावत्सरोवरात् ॥६०॥
शवं विनिर्गतं श्रेष्ठं स्फुरितं हि भयंकरम् । दुर्गन्धसहितं दुष्टं प्राप्तं तत्सरसस्तटम् ॥६१॥
अवरुह्य विमानश्चात्स स्वर्गी तच्छवं ययौ । छित्वा तच्छवमांसं वै भक्षयामास सादरम् ॥६२॥
ततः पीत्वा जलं स्वर्गी विमानं चारुरोह सः । निमग्नं तच्छवं चापि पुनस्तस्मिन्सरोवरे ॥६३॥
स्वर्गिणं गतुकामं तं दृष्ट्वाऽहं चातिविस्मितः । अब्रुवं मधुरं वाक्यं रे रे दिव्यस्वरूपधृक् ॥६४॥
क्षणं तिष्ठोत्तरं देहि कौतुकं ते मयेक्षितम् । ईदृशस्ते शवाहारः कथं स्वर्गनिवासिनः ॥६५॥
इति मद्वचनं श्रुत्वा स स्वर्गी प्राह मां तदा । सम्यक् पृष्टं त्वया ब्रह्मन् शृणु सर्वं मयोच्यते ॥६६॥
सुदेवाख्यो हि वैदर्भो नृपतिश्चाभवत्पुरा । तत्पुत्रौ श्वेतसुरथौ श्वेतोऽहं पार्थिवोऽभवम् ॥६७॥
नैव दानं मया तस्मिन् जन्मन्यत्र कृतं कदा । स्वीयराज्यमदोद्धतः पापकर्मरतः सदा ॥६८॥
ततोऽपुत्री त्वहं राज्ये कृत्वा तं सुरथानुजम् । वार्धके तु वनं प्राप्तपस्तीव्रं समाचरम् ॥६९॥
एकदा स्नातुमुद्युक्तो निमग्नोऽहं सरोवरे । ततो मृतो दिवं प्राप्तस्त्वहं स्वीयतपोबलात् ॥७०॥

सामने बैठे हैं तो प्रेमपूर्वक मारुतिको छातीसे लगा लिया और बड़े प्रसन्न हुए ॥ ५२ ॥ ५३ ॥ इसके बाद रामने हनुमान्‌जीको रत्नोंसे खचित दो कंकण दिये। जिन्हें पहननेसे हनुमान्‌जी बहुत सुन्दर दीखने लगे। फिर रामजीने एक दूसरा कंकण जिसे अगस्त्यजीने दिया था, वह लवको दे दिया। उस बहुमूल्य कंकणको पहिननेसे लव भी अतिशय सुशोभित हुए। तब लवने अगस्त्यजीको प्रणाम करके कहा—॥ ५४—५६ ॥ हे मुनिराज! यह कंकण आपको कहाँ मिला था? सो हमें बतलाइए। इस प्रकार लवका प्रश्न सुनकर अगस्त्य परम प्रसन्नतापूर्वक कहने लगे—॥ ५७ ॥ एक बार मैं दण्डकारण्यमें एक सरोवरपर स्नान करने गया। वहाँ स्नान-नित्यकर्म आदि कर लेनेपर थोड़ी देरके लिए बैठ गया ॥ ५८ ॥ इसी बीच आकाशमार्गसे एक स्वर्गीय प्राणी सैंकडों स्त्रियोंसे घिरा हुआ दिव्य विमानपर आरूढ़ होकर वहाँ आया ॥ ५९ ॥ वह दिव्य माल्य आदि धारण किये हुए दिव्य गन्धसे चर्चित था। उस स्वर्गीके आते ही सरोवरसे एक भयानक दूषित तथा दुर्गन्धपूर्ण शव निकलकर तटपर आ लगा ॥ ६० ॥ ६१ ॥ इसके अनन्तर वह स्वर्गीय प्राणी अपने विमानसे उतरकर उस शवके पास पहुँचा और उसके मांसको उसके बड़े प्रेमसे खाया। फिर जल पिया और अपने विमनपर जा बैठा। उधर शव फिर डूब गया। उस गमनोन्मुख स्वर्गीके पास पहुँचकर मैंने उससे कहा—हे दिव्यस्वरूपधारिन्! थोड़ी देरके लिए रुककर मेरी बातोंका उत्तर देते जाओ। तुम्हारे इस कार्यको देखकर मुझे बड़ा कौतूहल हुआ है। अच्छा, हमें यह बताओ कि इस प्रकार स्वर्गीय प्राणी होकर भी तुम मुर्दा क्यों खाते हो? ॥ ६२–६५ ॥ मेरी बात सुनकर उसने उत्तर दिया—हे ब्रह्मन्! तुमने बहुत अच्छा प्रश्न किया है। सुनो, मैं सब बतलाता हूँ पूर्वसमयमें विदर्भ देशके अधिपति सुदेव नामके एक राजा थे। उनके श्वेत और सुरथ नामके दो पुत्र थे। जिनमें श्वेत मैं था और राज्य भी मेरे ही हाथोंमें था ॥ ६६ ॥ ६७ ॥ उस जन्ममें राज्यमदसे मत्त होकर मैंने कोई दान नहीं किया। हमेशा पापकर्ममें रत रहा ॥ ६८ ॥ मेरे कोई सन्तति नहीं थी। इसलिए वृद्धावस्थामें अपने छोटे भाई सुरथको मैने राज्यासनपर बिठा दिया और जंगलमें जाकर कठोर तपस्या करने लगा। एक बार स्नान करनेके लिए एक सरोवरमें डुबकी लगायी सो वहीं डूबकर मर गया। मरनेके बाद अपनी तपस्याके प्रभावसे मैं स्वर्गलोकमें पहुँचा। तपस्याके फलस्वरूप वहाँ

तपसश्च फलैस्तत्र ममासन्सर्वसंपदः । अदृष्टा भक्षितुं किञ्चिन्मया पृष्टः सुराधिपः ॥७१॥
वर्तन्ते विविधास्तत्र मम भोगाः सुदुर्लभाः । कथं नासीद्भक्षणार्थं कथं मेऽत्र सुखं भवेत् ॥७२॥
इति मद्वचनं श्रुत्वा मामिंद्रः प्राह सस्मितः । नैव दानं त्वया भूमौ कृतं राज्यमदेन हि ॥७३॥
अदत्तं लभ्यते नैव नृप पुण्यैः कदेतरैः । अतस्त्वं प्रत्यहं गत्वा विमानेन सरोवरम् ॥७४॥
भक्षयस्व शवं पुष्टं मिष्टान्नैः पोषितं च यत् । चिरकालं भवेत्तच्चे क्षय यास्यति नैव तत् ॥७५॥
इतीन्द्रवचनं श्रुत्वा स पृष्टश्च पुनर्मया । दिव्यान्नानि कथं चाहं प्राप्नुयां तद्वदस्व माम् ॥७६॥
इति मद्वचनं श्रुत्वा तदेंद्रः प्राह मां पुनः । अधुना दण्डकारण्यं वर्तते हीनमानुषम् ॥७७॥
विंध्यवृद्धिनिषेधार्थमगस्तिः सुरयाचितः । यदा यास्यति पत्न्या वै मुक्त्या काशीं हि दण्डकम्॥७८॥
सरस्यस्मिंस्तदा स्नात्वा स्थितं पश्यसि तं मुनिम् । तदा तस्मै कंकणं स्वं देहि तोयैः परिप्लुतम् ॥७९॥
तेन कंकणदानेन दिव्यांधः प्राप्स्यसे नृप । इतींद्रवचनं श्रुत्वा तदारभ्य चिरं मुने ॥८०॥
अत्रागत्य शवाहारः क्रियते वै सदा मया । एतावत्कालपर्यंतं नात्र कश्चिन्मयेक्षितः ॥८१॥
मया दृष्टस्त्वमेवात्र वेद्मि त्वां कुम्भसंभवम् । अद्य त्वया तारितोऽहं दानं स्वीकुरु मे त्विदम् ॥८२॥

अगस्त्य उवाच

इत्थं स्वर्गी स मामुक्त्वा ददौ कंकणमुज्ज्वलम् । मह्यं सार्द्धं ततः स्वर्गं ययौ स्वर्गी मुदा युतः ॥८३॥
तदारभ्य शवं तोयात्तद्बहिस्तत्र ययौ कदा । दिव्यान्नानि तु संप्राप नाकलोके यथासुखम् ॥८४॥
इति यत्कंकणं लब्धं मया लव पुरा वने । अर्पितं राघवायेदं तेन तथापि तेऽर्पितम् ॥८५॥

श्रीरामदास उवाच

इत्यगस्त्यवचः श्रुत्वा लवः पप्रच्छ तं पुनः । किमर्थं दण्डकारण्यं तद्बभूव विजनं वद ॥८६॥

अगस्त्य उवाच

इक्ष्वाकुवंशसंभूतोऽभून्नृपो विंध्यदक्षिणे । नाम्ना दण्डकेति ख्यातः पापकर्मरतः सदा ॥८७॥

सब चीजें तो विद्यमान थीं, लेकिन खानेके लिए कुछ नहीं था। तब मैने इन्द्रसे कहा—हे देवेन्द्र! यहाँ मेरे भोगनेके लिए तो और सब कुछ है, किन्तु खानेक लिए कुछ भी नहो दीखता। बताइए, इस तरह मैं क्योंकर सुखी रह सकूँगा ॥ ६९–७२ ॥ मेरी बातको सुनकर मुस्कराते हुए इन्द्र कहने लगे—तुमने राज्यमद वश पृथ्वीपर कोई दान नहीं किया था। बिना दिये कुछ भा नहीं मिलता। इसलिए तुम प्रतिदिन विमानसे जाकर उस मिष्टान्नसे परिपुष्ट अपने शरीरको खा आया करो। वह बहुत दिनों तक नष्ट न होकर ज्योंका त्यों बना रहेगा ॥ ७३–७५ ॥ इस प्रकार इन्द्रकी बात सुनकर मैंने कहा—यह बतलाइये कि मुझे स्वर्गीय अन्न किस तरह प्राप्त होंगे? मेरी बात सुनकर इन्द्रने उत्तर दिया कि अभी तो दण्डकारण्य मनुष्यविहीन है। जब विन्ध्य पर्वतकी वृद्धि रोकनेके लिए अगस्त्यजी देवताओंके प्रार्थना करनेपर काशी छोड़कर दण्डकारण्यको जायें, तब तुम उसी सरोवरमें स्नान करके अपना कंकण उन ऋषिको दे देना ॥७६–७९ ॥ उस कंकणके दानसे तुम्हें स्वर्गीय अन्न मिलने लगेगा। अतएव इंद्रके आज्ञानुसार मैं बहुत दिनोंसे आकर यह शव खाया करता हूँ। इतने दिन बीत गये, किन्तु यहाँ मुझे कोई नहीं दिखायी पड़ा ॥ ८० ॥ ८१ ॥ आज तुम्हीं दीख रहे हो। इससे ज्ञात होता है कि तुम अगस्त्य ऋषि ही हो। आज तुमने मेरा उद्धार कर दिया। अब कृपा करके मेरे दानको स्वीकार करो ॥ ८२ ॥ अगस्त्यने कहा कि इस तरह कहकर उस स्वर्गीय प्राणीने अपने कंकण उतारकर हमें दे दिये और प्रसन्न मनसे विमानपर सवार होकर स्वर्गलोकको चला गया। तबसे वह शव उस सरोवरमें कभी नहीं उतराया और वह स्वर्गी स्वर्गलोकमें दिव्य अन्नोंको पाने लगा। हे लव! मैने जिस कङ्कणको उस समय दण्डकारण्यमें पाया था, उसे रामको दिया और रामने आज आपको दे डाला है। श्रीरामदासने कहा—तब लवने अगस्त्यसे पूछा कि उस वनका दण्डक यह नाम क्यों पड़ा? अगस्त्य कहने

एकदा स वनं यातो मृगयार्थं स्वसेनया। ततो दृष्ट्वा मृगं राजा मृगपृष्ठे प्रदुद्रुवे ॥८८॥
एकाकी हयमारूढो देशाद्देशान्तरं ययौ। एवं हि गच्छतस्तस्य मृगोऽदृश्योऽभवत्तदा ॥८९॥
ततः सोऽतितृषाक्रांतः प्रययौ वै जलाशयम्। तत्र पीत्वा जलं स्वच्छं स राजा सरसस्तटे ॥९०॥
अज्ञात्वा स्वगुरोश्चेति भृगोराश्रममाययौ। तत्र तातविहीनां तामरजस्कां भृगोः सुताम् ॥९१॥
दृष्ट्वा चन्द्राननां राजा सोऽभूत्कामविमोहितः। ततस्तां प्रार्थयामास रत्यर्थं साऽब्रवीन्नृपम् ॥९२॥
स्ववशा नृप नैवाहं ताताधानाऽस्मि सांप्रतम्। बहिर्भृगुस्तव गुरुर्गतस्त्वां वेद्म्यहं नृपम् ॥९३॥
यदि मामिच्छसि त्वं हि तर्हि तं स्वगुरुं भृगुम्। प्रार्थयित्वा भज सुखं मां पत्नीं त्वं विधाय च ॥९४॥
इत्युक्तोऽपि तया राजा दंडस्तां कामपीडितः। भुक्त्वा सुखं बलादेव जगाम नगरीं निजाम् ॥९५॥
ततोऽरजस्का सा बाला दृष्ट्वा तातं समागतम्। शोचन्ती सकलं वृत्तं श्रावयामास विह्वला ॥९६॥
तद्वृत्तं स मुनिः श्रुत्वाऽञ्जलौ कृत्वा जलं क्रुधा। अब्रवीत्स्वसुतां बालां सांत्वयन् रक्तलोचनः ॥९७॥
दंडेन सह दंडस्य राज्यं वै शतयोजनम्। भवत्वद्य क्षणाद्दग्धं मद्वाक्याच्च समंततः ॥९८॥
हीनोदकं तथा चास्तु तथा नष्टचराचरम्। इति तच्छापमाकर्ण्य तातं सम्प्रार्थ्य बालिका ॥९९॥
प्रार्थयामास शापस्य सवाऽवधिं विनयान्विता। ततो भृगुः सुतामाह यदा यास्यति कुंभजः ॥१००॥
मुनिः काश्यास्त्वमुं देशं तदाऽयं सजलो भवेत्। देशस्तथाऽत्र वासं हि करिष्यंति मुनीश्वराः ॥१०१॥
अरण्यं दंडहेतोर्हि जातं तस्मात्सदा नराः। अमुं देशं वदिष्यन्ति दंडकारण्यमेव हि ॥१०२॥
यदा भविष्यत्यग्रेऽत्र रामागमनमुत्तमम्। भविष्यन्ति तदाऽग्रेऽत्र नानाक्षेत्राणि दण्डके ॥१०३॥
रामप्रसादात् क्षेत्राणि भविष्यन्ति ततो जनाः। रामक्षेत्रमिति सदा वदिष्यन्ति हि दण्डकम् ॥१०४॥
मुनिरामप्रसादाच्च देशोऽयं पूर्ववत्पुनः। भविष्यत्युत्तमः पुण्यः सौख्यदश्च मनोरमः ॥१०५॥

लगे—इक्ष्वाकुवंशमें उत्पन्न दण्डक नामका एक बड़ा पापी राजा था। वह सदा पापकर्ममें रत रहा करता था ॥ ८३-८७ ॥ एक बार वह शिकार खेलनेके लिए अपनी सेनाके साथ वनमें गया। वहाँ एक मृगके पीछे राजाने अपना घोड़ा दौड़ाया। वह अकेला ही उस मृगके पीछे पीछे भागता हुआ देशान्तरमें जा पहुँचा और वहाँ वह मृग गायब हो गया। इसके बाद बहुत प्यासा वह राजा एक जलाशयके तटपर गया। वहाँ जल पिया, किन्तु उसे यह नहीं ज्ञात हुआ कि मैं अपने गुरु भृगुके आश्रमपर पहुँच गया हूँ। वहाँ भृगुकी कन्या थी। जिसको कि अभी रजोधर्म नहीं हुआ था। उस चन्द्रमाके सदृश मुखवाली (चन्द्रानना) कन्याको देखकर राजा काममोहित हो गया और उसके समीप जाकर रतिके लिए प्रार्थना की। कन्याने उत्तर दिया कि हे राजन्! मैं स्वतन्त्र नहीं हूँ। इस समय मेरे ऊपर पिताका अधिकार है और भृगु (मेरे पिता) इस समय कहीं बाहर गये हुए हैं। मैं आपको जानती हूँ ॥ ८८-९३ ॥ यदि आप मुझे चाहते हों तो अपने गुरु (भृगु) से जाकर कहें और मुझे अपनी पत्नी बनाकर आनन्दके साथ भोग करें। उसके ऐसा कहनेपर भी राजाने एक न सुनी और हठात् उसके साथ भोग करके अपनी नगरीको लौट गया। इसके अनन्तर जब उसके पिता भृगु घर आये तो विलाप करती हुई उस अरजस्का कन्याने सारा समाचार कह सुनाया। इस वृत्तान्तको सुनते ही भृगु मारे क्रोधके लाल हो गये और अञ्जलीमें जल भरकर कन्याको सान्त्वना देते हुए उन्होंने शाप दिया कि दण्डकके साथ-साथ उसका सौ योजन राज्य चारों ओरसे जलकर भस्म हो जाय ॥ ९४-९८ ॥ उतनी जगहपर जल भी न रहे और न कोई जीव ही निवास करे। इस प्रकार शाप सुनकर कन्याने विनयपूर्वक प्रार्थना की कि अपने इस शापकी अवधि भी नियत कर दीजिये। कन्याके प्रार्थना करनेपर भृगुने कहा कि जब अगस्त्य ऋषि काशी छोड़कर विन्ध्यके उस पार चले जायँगे। उस समय वह स्थान सजल हो जायगा और वहाँ बड़े-बड़े ऋषि निवास करेंगे। राजा दंडकके दुराचारसे उस देशकी ऐसी दशा हुई है। इसीलिए लोग उसे दण्डकारण्य कहा करेंगे ॥९९-१०२॥ आगे चलकर जब रामचन्द्रजी उस देशमें जायँगे तो उसमें कितने ही क्षेत्र बन जायँगे और तबसे लोग उसी दंडकारण्यको रामक्षेत्रके नामसे पुकारेंगे ॥ १०३ ॥ १०४ ॥ अगस्त्य

देशेभ्यः सकलेभ्यश्च सुपुण्यं दण्डकं भवेत् । दण्डकेन समो देशो न भूतो न भविष्यति ॥१०६॥
इति तां बालिकामुक्त्वा भृगुस्तस्थुं हिमालयम् । ययौ तां मुनये दत्त्वा विधिना मुनिसंवृतः ॥१०७॥
भृगोः शापाच्च दण्डेन दग्धं तद्राज्यमुत्तमम् । शतयोजनमानं तदभवद्धि समंततः ॥१०८॥
मद्रामागमनाभ्यां च ततः स्वस्थं बभूव तत् । पूर्ववद्दंडकारण्यं चराचरसमाकुलम् ॥१०९॥
इति त्वया यथा पृष्टे तथा लव मयोदिते । कंकणस्य दण्डकस्य विचित्रे त्वां कथानके ॥११०॥

श्रीरामदास उवाच

इत्यगस्तिमुखाच्छ्रुत्वा लवस्तुष्टोऽभवत्तदा । नत्वा मुनिं च श्रीरामसेवायां तत्परोऽभवत् ॥१११॥
अथ रामश्चोत्सवेन तस्मै चित्रांगदाय ताम् । हेमां ददौ विवाहेन महामंगलपूर्वकम् ॥११२॥
पारिबर्हं ददौ कोटिसंमितं वारणादिकम् । महान्महोत्सवश्चासीदयोध्यायां प्रभोर्गृहे ॥११३॥
ततो विसर्जयामास चोग्रबाहुं नृपं प्रभुः । मुनयः पार्थिवाश्चापि ययुः स्वं स्वं स्थलं प्रति ॥११४॥

इति श्रीशतकोटिरामचरितांतर्गते श्रीमदानंदरामायणे वाल्मीकीये राज्यकांडे उत्तरार्धे
हेमास्वयंवरो नाम सप्तदशः सर्गः ॥ १७ ॥

अष्टादशः सर्गः

(राम द्वारा ब्राह्मणोंको रामनाथपुर राज्यका दान)

श्रीरामदास उवाच

अथ रामस्त्वयोध्यायां रंजयामास जानकीम् । जुगोप मेदिनीं कृत्स्नां सप्तसागरमेखलाम् ॥ १ ॥
राममुद्रां विना कस्य साकेते शस्त्रधारिणः । नैवासीत्सुप्रवेशश्च रामराज्ये कदाचन ॥ २ ॥
नैवासीन्निर्गमश्चापि विना मुद्रां कदा बहिः । राममुद्रांकितं पत्रं गृहीत्वा ते नृपोत्तमाः ॥ ३ ॥
गमनागमने चक्रुर्भूम्यां कुत्राप्यकुण्ठिताः । राममुद्रास्वरूपं च ते वदामि शृणुष्व तत् ॥ ४ ॥

मुनि तथा रामचन्द्रकी कृपासे वह देश फिर ज्योंका त्यों हो जायगा और वहांके लोग सुखी हो जायँगे। फिर वहाँ सुन्दरता दिखायी देने लगेगी। वह पृथ्वीके समस्त देशोंसे पवित्र देश माना जाने लगेगा ॥ १०५ ॥ उस बालिकासे भृगुने कहा—भविष्यमें लोग कहेंगे कि दण्डकारण्यके समान न कोई देश हुआ है और न होगा ॥१०६॥ ऐसा कहकर भृगुने उसे एक मुनिको सौंप दिया और स्वयं बहुतसे ऋषियोंके साथ तपस्या करनेको हिमालय-पर्वतपर चले गये। इस प्रकार भृगुके शापसे दण्डकका सौ योजन राज्य जल-भुनकर राख हो गया ॥ १०७ ॥ ॥ १०८ । हमारे और रामके आगमनसे वह फिर पूर्ववत् हो गया और उसमें विविध प्रकारके जीव-जन्तु आकर निवास करने लगे। इस प्रकार हे लव ! तुमने हमसे जो प्रश्न किये, सो दण्डकारण्य तथा इस कंकण-विषयक कथानक कह सुनाया ॥ १०९ ॥ ११० ॥ श्रीरामदासने कहा—इस तरह अगस्त्यकी बात सुनकर लव परम प्रसन्न हुए और अगस्त्यजीको प्रणाम करके श्रीरामचन्द्रकी सेवामें लग गये ॥ १११ ॥ इसके अनन्तर रामने उत्सवके साथ उस हेमा कन्याका विधिवत् ससमारोह विवाह करके चित्राङ्गदको दे दिया। उन्होंने कन्याके विवाहमें दहेजस्वरूप बहुतसे हाथी-घोड़े आदि करोड़ोंकी सम्पत्तिका दान दिया। इसके बाद महाराज उग्रबाहुको विदा किया और निमंत्रणमें आये हुए राजे तथा ऋषिगण अपने-अपने स्थानको लौट गये ॥ ११२–११४॥ इति श्रीशतकोटिरामचरितान्तर्गते श्रीमदानन्दरामायणे पं० रामतेजपाण्डेयविरचित'ज्योत्स्ना'-भाषाटीकासहिते राज्यकाण्डे उत्तरार्धे सप्तदशः सर्गः ॥ १७ ॥

श्रीरामदास बोले—इसके बाद रामचन्द्र सीताको प्रसन्न करते हुए सप्तसागर मेखलावाली पृथ्वीकी रक्षा करते रहे। रामके राज्यमें कोई भी शस्त्रधारी मनुष्य बिना राममुद्रा-अंकित पत्र लिये नहीं आता था और बिना मुद्राके कोई बाहर भी नहीं जाने पाता था। राममुद्रासे चिह्नित पत्र लेकर संसार भरके राजे जहाँ चाहते

तिर्यगूर्ध्वं पञ्चदश रक्ता रेखाः प्रकल्पयेत् । पीता प्रथमिका पंक्तिश्चतुर्दिक्षु प्रकारयेत् ॥ ५ ॥
पंक्तिर्द्वितीया शुभ्रैव ज्ञातव्या च तथाऽष्टमी । ततश्चेशदिगारभ्य तृतीयायां प्रकल्पयेत् ॥ ६ ॥
वक्ष्यमाणपदान्येव कृष्णानि हि समाचरेत् । आरंभश्चोत्तरस्यां हि समाप्तिर्दक्षिणे स्मृता ॥ ७ ॥
पश्चिमाभिमुखा स्थाप्या मुद्रा तत्रात्मसम्मुखा । पूर्वास्येन सदा स्थेयं तदा कर्त्रा विनिश्चयात् ॥ ८ ॥
प्रथमं हि द्वितीयं च चतुर्थं षष्ठसप्तमे । अष्टमं नवमं चैव तथैकादशमुच्यते ॥ ९ ॥
तमश्चतुर्थ्यां पंक्तौ हि चतुर्थं षष्ठसप्तमे । तथैकादशमं ज्ञेयं पञ्चमायाः क्रमोऽधुना ॥१०॥
प्रथमं हि द्वितीयं च चतुर्थं षष्ठसप्तमे । नवमैकादशे चापि षष्ठायाश्च क्रमोऽधुना ॥११॥
प्रथमं हि द्वितीयं च चतुर्थं षष्ठमुत्तमम् । नवमैकादशे चापि सप्तमी सकलाऽसिता ॥१२॥
नवम्याः प्रथमं कृष्णं द्वितीयं हि चतुर्थकम् । षष्ठं हि सप्तमं चापि नवमं दशमं स्मृतम् ॥१३॥
तथैव द्वादशं चापि दशम्याश्च क्रमोऽधुना । चतुर्थं च तथा षष्ठं सप्तमार्के तथाऽसिते ॥१४॥
एकादश्याश्च प्रथमं द्वितीय हि चतुर्थकम् । षष्ठाष्टनवमान्येव दशमार्के तथाऽसिते ॥१५॥
द्वादश्याः प्रथमं कृष्णं द्वितीयं हि चतुर्थकम् । षष्ठं च सप्तमं चापि ह्यष्टमं नवमं तथा ॥१६॥
दशमार्कें तथा प्रोक्ता कृष्णा कृत्स्ना त्रयोदशी । एवं बुद्ध्या पूरयित्वा राजा रामेति वै स्फुटम् ॥१७॥
सितवर्णं रामनाममुद्रायां हि निरीक्षयेत् । एवं राममुद्रिकायाः स्वरूपं ते मयोदितम् ॥१८॥
एवं मुद्रांकितां रामः शिलां विप्रेभ्य आदरात् । ददौ साद्यापि भूम्यां हि रामनाथपुरेऽस्ति हि ॥१९॥

विष्णुदास उवाच

किमर्थं भूसुरेभ्यश्च राघवेण समर्पिता । रामनाथपुरे पूर्वं स्वीयमुद्रांकिता शिला ॥२०॥
तत्सर्वं विस्तरेणैव कथयस्वाद्य मां गुरो । आश्चर्यं च त्वया प्रोक्तं श्रोतुमिच्छामि त्वन्मुखात् ।२१।

श्रीरामदास उवाच

एकदा राघवं श्रुत्वा विप्रा वांछितदायिनम् । हर्षाद्ब्रह्मपुरस्थास्ते दाक्षिणात्या द्विजोत्तमाः ॥२२॥

जाते-जाते, कहीं भी उन्हें रोक नहीं थी। अब मैं तुम्हें राममुद्राका स्वरूप बताता हूँ, सो सुनो ॥ १-४ ॥ लाल रंगकी खड़ी-बेड़ी पन्द्रह रेखाएँ खींचे। उसमें चारों ओरकी पहली पंक्ति पीले रङ्गसे रंगे ॥ ५ ॥ दूसरी और आठवीं पंक्ति सफेद ही रहने दे। इसके बाद ईशानकोणसे लेकर तीसरी रेखातक आगे कही जानेवाली पंक्तियाँ काले रंगसे लिखे। लिखावट उत्तरकी तरफसे प्रारम्भ करके दक्षिणमें समाप्त करनी चाहिए ॥६॥७॥ मुद्राका मुख सदा सामने अर्थात् पश्चिमाभिमुख बनाये और स्वयं पूर्वको ओर मुख करके बैठे ॥ ८ ॥ पहली, दूसरी, चौथी, छठवीं, सातवीं, आठवीं, नवीं, ग्यारहवीं और पाँचवीं रेखाकी चौकियाँ तथा पहली, दूसरी, चौथी, छठवीं, नवीं, ग्यारहवीं तथा सातवीं चौकी यह सब काले रङ्गकी रहेंगी। फिर नवीं रेखाकी पहली, दूसरी, चौथी, छठीं और सातवीं चौकी भी काले रङ्गकी रहेगी ॥ ९-११॥ फिर ग्यारहवीं रेखाकी पहली, दूसरी, चौथी, छठीं, आठवीं, नवीं तथा दसवीं चौकी भी काले रङ्गकी रहेगी। बारहवीं रेखाकी पहली, तीसरी, दूसरी, चौथी, छठीं, सातवी, आठवीं, नवीं, दसवीं, बारहवीं तथा तेरहवीं चौकी भी काले रङ्गकी रहेगी। इस प्रकार अपनी बुद्धिमें उपर्युक्त कोष्ठकोंको पूर्ण करनेसे "राजा राम" यह शब्द साफ साफ सफेद वर्णोंमें लिख जायगा ॥ १२-१७ ॥ इस तरह मैंने तुम्हें रामसुद्राका स्वरूप बतलाया। इसी प्रकारकी मुद्रासे चिह्नित शिला रामने ब्राह्मणोंको दानस्वरूप दी थी, जो आज भी रामनाथपुरमें रहनेवाले ब्राह्मणोंके पास विद्यमान है ॥१८॥१९॥ विष्णुदासने पूछा कि रामने रामनाथपुरवाले उन ब्राह्मणोंको वह अपनी मुद्रासे अङ्कित शिला किस लिये दी थी ? यह सब कथा विस्तारपूर्वक हमें बतलाइये। आपने यह आश्चर्यभरी बात कह दी। इसका पूरा विवरण मैं आपके ही मुखसे सुनना चाहता हूँ ॥ २० ॥ २१ ॥ श्रीरामदास कहने लगे कि एक समय रामचन्द्रकी यह

ययुस्ते राघवं द्रष्टुमयोध्यायां मुदान्विताः ॥२३॥
गन्धर्वराजगेहे स भोजनं कर्तुमुद्यतः । स्नात्वा तत्र सुहृद्गेहे सीतया बन्धुभिः सुखम् ॥२४॥
पुत्राभ्यां भोजनं कर्तुमासने संस्थितोऽभवत् । गन्धर्वराजः श्रीरामं पूजयामास सादरम् ॥२५॥
परिवेषितानि पात्राणि सुहृत्स्त्रीभिस्तदा जवात् । दिव्यान्नैर्मधुरैश्चित्रैः पक्वान्नैर्विविधैरपि ॥२६॥
एतस्मिन्नन्तरे विप्रा रामनाथपुरस्थिताः । सुहृद्गेहे गतं रामं श्रुत्वा तत्र ययुर्मुदा ॥२७॥
गन्धर्वराजद्वारस्थैर्दूतैः श्रीराघवाय हि । भूसुराणामागमनं तदा शीघ्रं निवेदितम् ॥२८॥
तद्दूतवचनं श्रुत्वा राघवश्चातिसम्भ्रमात् । प्रत्युद्गम्य स्वयं विप्रान्ननाम शिरसा प्रभुः ॥२९॥
गन्धर्वराजगेहे तान्नीत्वा दत्त्वाऽऽसनानि हि । स्नातुमाज्ञापयत्सर्वान् भोजनार्थं रघूत्तमः ॥३०॥
तदा ते मन्त्रयामासुर्विप्राः सर्वे परस्परम् । भोजनात्पूर्वमेवैनं याचनीयं स्ववांछितम् ॥३१॥
केचिदूचुस्तदा विप्रा निर्बंध च रघूत्तमे । नोपेक्षाऽस्ति सदैवायं ददाति द्विजवांछितम् ॥३२॥
व्रतमेवास्य रामस्य द्विजवांछितपूरणम् । एवं तान्मन्त्र्यमाणांश्च रामो दृष्ट्वाऽब्रवीद्वचः ॥३३॥
ज्ञातं मयाऽभिलषितं युष्माकं मुनिपुङ्गवाः । राज्येच्छया समायाताः किमर्थं श्रमिता द्विजाः ॥३४॥
कथं न प्रेषितः शिष्यस्तद्वाक्येनैव वै मया । वांछाऽभविष्यद्युष्माकं पूरिता क्षणमात्रतः ॥३५॥
एवं तान्ब्राह्मणानुक्त्वा लक्ष्मणं प्राह राघवः । मया ब्रह्मपुरस्याद्य विप्रेभ्यो राज्यमर्पितम् ॥३६॥
शिलायां लिख मन्नाम दानं दत्तमिदं त्विति । तथेति रामवाक्येन लक्ष्मणश्चातिसम्भ्रमात् ॥३७॥
टङ्कारान्समाहूय शिलामानीयतामिति । शीघ्रमाज्ञापयामास ते जग्मुर्वेगवत्तराः ॥३८॥
एतस्मिन्नंतरे विप्राः प्रोचुस्ते राघवं मुदा । कृत्वाऽशनं लेखनीया शिला पश्चाद्रघूत्तम ॥३९॥
किमर्थं क्रियते राम त्वरा लेखनकर्मणि । परिवेषितानि पात्राणि वयं चापि क्षुधार्दिताः ॥४०॥

प्रशंसा सुनकर कि वे ब्राह्मणोंकी कामना पूर्ण करते हैं। दक्षिण देशके रहनेवाले बहुतसे ब्राह्मण हजारोंकी संख्यामें एकत्रित होकर रामसे मिलने गये। उधर राम प्रसन्न मनसे गन्धर्वराजके भवनमें भोजन करने गये हुए थे। सीता तथा भ्राताओंके साथ उन्होंने वहाँ ही स्नान किया था और अपने दोनों बेटोंके साथ चौकीपर भोजन करने बैठे थे। गन्धर्वराजने सादर रामका पूजन किया ॥ २२–२५ ॥ गन्धर्वराजके घरकी स्त्रियों तथा मित्रोंने शीघ्रतासे दिव्यान्न तथा विविध प्रकारके पकवान आदि परोसना प्रारम्भ किया ॥ २६ ॥ इसी समय रामनाथपुरके निवासी विप्रगण रामके द्वारपर आये तो उन्हें ज्ञात हुआ कि राम अपने सम्बन्धीके घर गये हैं। बस, वे लोग भी गन्धर्वराजके यहाँ जा पहुँचे और द्वारपालोंने रामको यह खबर दी कि रामनाथपुरके ब्राह्मण आये हैं। दूतकी बात सुनकर स्वयं राम तुरन्त उठे और उन लोगोंके पास जाकर प्रणाम किया और उन्हें गन्धर्वराजके घरमें ले गये। आसनपर बिठाकर उनसे स्नान-भोजन करनेके लिये कहा ॥ २७–३० ॥ उस समय उन सबोंने मंत्रणा करके निश्चय किया कि भोजन करनेके पहले ही हम लोग अपनी माँग उपस्थित कर दें। उनमेंसे कुछने कहा कि इतनी जल्दी क्या है, राम कभी याचकोंकी उपेक्षा नहीं करते। बल्कि वे सदा ब्राह्मणोंकी याञ्चा पूरी करनेको तैयार रहते हैं। इन रामका यही व्रत है कि ब्राह्मणोंकी माँगें पूर्ण किया करें। इस प्रकार परस्पर सलाह करते हुए ब्राह्मणोंको देखकर रामने कहा कि हम आप लोगोंकी इच्छाको जान गये हैं। आप लोग राज्यकी इच्छासे मेरे पास आये हैं। सो इसके लिए आपने इतना परिश्रम क्यों किया ? ॥ ३१–३४ ॥ आप अपने किसी शिष्यको ही भेज दिये होते तो मैं क्षणभरमें आपकी इच्छा पूर्ण कर देता ॥ ३५ ॥ इस तरह उन ब्राह्मणोंसे कहकर रामने लक्ष्मणसे कहा कि आज मैंने ब्रह्मपुरका राज्य ब्राह्मणोंको दान दे डाला है। एक शिलापर मेरा नाम लिखाओ और उसमें यह भी लिखवा दो कि मैंने ब्राह्मणोंको ब्रह्मपुरका
33. राज्य दान दे दिया है। "बहुत अच्छा" कहकर लक्ष्मणने तुरन्त पत्थर खोदनेवाले सन्तरासोंको बुलवाया और एक बड़ी शिला मँगवायी। दूत लक्ष्मणके आज्ञानुसार तुरन्त चल पड़े ॥ ३६–३८ ॥ तब उन विप्रोंने रामसे

तत्तेषां वचनं श्रुत्वा फलभारान्विचित्रितान् । पुरस्तात्स्थापयामास विप्राणां वरमादरात् ॥४१॥
उवाच मधुरं वाक्यं राघवः स्मितपूर्वकम् । फलानीमानि भो विप्रा भक्षयध्वं यथासुखम् ॥४२॥
लेखयित्वा शिलायां हि यदा मुद्रां करोम्यहम् । तदाऽशनादिकं कर्म सर्वमन्यत्करोम्यहम् ॥४३॥
क्षणं वित्तं क्षणं चित्तं क्षणिकं च स्वजीवितम् । यमोऽतिनिर्घृणः सोऽस्ति धर्मं शीघ्रमतश्चरेत् ॥४४॥
शतं विहाय भोक्तव्यं सहस्रं स्नानमाचरेत् । लक्षं त्यक्त्वा तु दातव्यं कोटिं त्यक्त्वा शिवं भजेत् ४५
कोटिविघ्नानि गीतायां दशकोटीनि जाह्नवीम् । शतकोटीनि जायन्ते दाने विघ्नानि भूसुराः ॥४६॥
अतः कार्या त्वरा दाने सर्वदा तु नरोत्तमैः । निद्रायाः पूर्वकाले तु निद्रायाः परतस्तथा ॥४७॥
भोजनात्पूर्वकाले तु भोजनात्परतस्तथा । क्षणे क्षणे मतिर्भिन्ना जायतेऽत्र द्विजोत्तमाः ॥४८॥
तस्मात्कार्या त्वरा दाने मतिर्या प्रथमे क्षणे । कृता क्षणेनापरे साऽस्त्येतदेव मतं मम ॥४९॥
एतस्मिन्नन्तरे तत्र दृषत्कारैः शिला वरा । समानीता गण्डकीजा नवहस्ता समन्ततः ॥५०॥
तस्यान्ते लेखयामासुर्दृषत्काराः स्फुटाक्षरैः । सूर्यवंशोद्भवेनाथ सप्तद्वीपेश्वरेण हि ॥५१॥
त्रेतायां दाशरथिना रामराज्ञा द्विजोत्तमान् । मया ब्रह्मपुरस्यैव राज्यदानं कृतं मुदा ॥५२॥
यावत्तपति खे भानुर्यावदस्त्यत्र मे कथा । यावत्प्रवर्तते वायुस्तावद्दानं ममास्त्विदम् ॥५३॥
सम्मान्योऽयं धर्मसेतुर्द्विजानां काले काले पालनीयो भवद्भिः ।
सर्वानेतान् भाविनः पार्थिवेंद्रान् भूयो भूयो याचते रामचन्द्रः ॥ ५४ ॥
एवं विलेख्य श्रीरामः शिलायां निजमुद्रिकाम् । रामनामांकितां वायुपुत्रेणास्पर्शयत्तदा ॥५५॥
आंजनेयस्य भारेण शिला जाता तदङ्किता । राजारामेति तस्यान्ते ददृशुश्च स्फुटाक्षरम् ॥५६॥

कहा कि आप पहले भोजन कर लीजिये, तब शिलालेख लिखवाइयेगा । हे राम ! आप लिखनेको इतनी जल्दी क्यों कर रहे हैं ? पात्रोंमें सामग्रियाँ परोसी जा चुकी हैं और हम लोग भी भूखे हैं ॥ ३९ ॥ ४० ॥ उनकी बात सुनी तो रामने बोझके बोझ विविध प्रकारके फल मँगवाकर उनके सामने रखवा दिये और कहा–हे विप्रगण ! आप लोग सुखसे यह फल खाइए । हम तो शिला लिखवाकर और उसपर अपनी मुहर अंकित कर देनेके बाद ही भोजन करेंगे ॥४१॥४२॥४३॥ धन क्षणस्थायी है, चित्तवृत्ति क्षणिक है, अपना जीवन भी क्षणभंगुर है और यमराज बड़ा निर्दयी है । इसलिये जितने शीघ्र हो सके, धार्मिक काम पूर्ण कर डाले ॥ ४४ ॥ सौ काम सामने हों तो उन्हें त्यागकर पहले भोजन करना चाहिए, सहस्र कामोंको त्यागकर पहले स्नान करना चाहिए, लाख कामोंको त्याग करके पहले दान करना चाहिए एवं करोड़ों कामोंको छोड़कर पहले शिवका भजन करना चाहिए ॥ ४५ ॥ हे विप्रो ! गीताका पाठ करते समय करोड़ विघ्न, गंगास्नानमें दस करोड़ विघ्न और दान-कर्ममें सौ करोड़ विघ्न आकर उपस्थित होते हैं ॥ ४६ ॥ इसलिये सज्जनोंको चाहिए कि दानमें सर्वदा शीघ्रता करें ! निद्राके पूर्वकालमें, निद्रासे उठनेके बाद, भोजनके पहले और भोजनके बाद क्षण क्षणमें बुद्धि बदला करती है । इसीलिए प्रथम क्षणमें जैसी अपनी बुद्धि हो गयी हो, उसके अनुसार दानकर्म शीघ्र कर डालना चाहिये । यह मेरा निजी मत है ॥ ४७–४९ ॥ उसी समय संतरासोंने नौ हाथकी लम्बी-चौड़ी गण्डकी नदीकी एक अच्छी-सी शिला लाकर रामके सामने रख दी ॥ ५० ॥ इसके अनन्तर सन्तरासोंने साफ-साफ अक्षरोंमें उस शिलापर खोदकर लिखा कि "सूर्यवंशमें उत्पन्न और सप्तद्वीपके अधीश्वर महाराज दशरथका पुत्र मैं राजा राम प्रसन्नतापूर्वक ब्रह्मपुरका राज्य दान करके ब्राह्मणोंको दे रहा हूँ ॥ ५१ ॥ ५२ ॥ जब तक कि आकाशमें सूर्य देवता. तपते रहें, जब तक संसारमें मेरा नाम रहे और जब तक कि पवन चलता रहे, तब तक मेरा यह दान दान माना जाय ॥ ५३ ॥ मेरे आगे जो राजे होनेवाले हैं, उनसे मैं राम बार-बार यही भीख माँगता हूँ कि "ब्राह्मणोंके इस धर्मसेतुकी आप लोग सदा रक्षा करते रहिएगा" ॥ ५४ ॥ इस प्रकार लिखवाकर रामने हनुमानजीके द्वारा उसपर अपनी रामनामांकित मुहर लगवा दी ॥ ५५ ॥ हनुमानजीके भारसे शिलापर रामकी मुहर खुद गयी और उसमें "राजा राम" यह शब्द साफ-

रामनाथेन यद्दत्तं पुरदानं द्विजोत्तमान् । रामनाथपुरं चेति तदारभ्य प्रथां गतम् ॥५७॥
तस्य ब्रह्मपुरमिति नाम प्राथमिकं स्मृतम् । रामनाथपुरं चेति तस्यैवाख्याऽपरा स्मृता ॥५८॥
शिलाभारमितं द्रव्यं दक्षिणार्थं निधाय सः । तां शिलां पूज्य विप्रेभ्यः श्रीरामः सीतया ददौ ॥५९॥
ततोऽब्रवीद्वायुपुत्रं भोजनानन्तरं त्वया । विमानेन शिला नेया रामनाथपुरं द्विजैः ॥६०॥
कंबुकण्ठं ततः पत्रं लेखयामास राघवः । ब्राह्मणानां त्वया कार्यं साहाय्यं सर्वदेति वै ॥६१॥
ततस्तुष्टा द्विजाः सर्वे ददुराशीः सहस्रशः । चकार भोजनं रामस्ततस्तैः परिवेष्टितः ॥६२॥
ततः सर्वे विमानेन ययुर्विप्राः पुरं प्रति । तान्पृष्ट्वा मारुतिश्चापि विमानेन ययौ पुनः ॥६३॥
एवं चकार दानानि सप्तद्वीपांतरेषु हि । सहस्रशो रामचन्द्रस्तेषां संख्या न विद्यते ॥६४॥
रामनाथपुरस्थास्ते विप्राः कालांतरेण वै । दुष्टराज्यभयादग्रे तां शिलां भयविह्वलाः ॥६५॥
तटाके प्रक्षिपिष्यन्ति ततः कष्टं भजन्ति ते । मर्तुकान् द्विजान्दृष्ट्वा तटाकान्मारुतिः पुनः ॥६६॥
बहिर्निष्कास्यति शिलामग्रे कालान्तरेण हि ।

विष्णुदास उवाच

किं कष्टं भूसुरानग्रे भविष्यति स्वजीविते ॥६७॥
यतस्ते त्यक्तुकामाश्च भविष्यन्ति वदस्व तत् ।

श्रीरामदास उवाच

अग्रे कश्चिद्दुष्टराजा भविष्यत्यवनीतले ॥६८॥
स तान्निबध्य विप्रांश्च तद्राज्यहरणेच्छया । वदिष्यति कलौ राजा युष्माकं दानमर्पितम् ॥६९॥
यदि रामेण तद्दानपत्रं मे दृष्टिगोचरम् । करणीयं न चेच्छीघ्रं यावत्कालं पुरोद्भवम् ।७०॥
युष्माभिर्वसु यद्भुक्तं तत्सर्वं दीयतां मम । नोचेत्सर्वान्वधिष्यामि भूसुराणां यमस्त्वहम् ॥७१॥
ततस्ते ब्राह्मणाः सर्वे श्रुत्वेदं नृपतेर्वचः । भयभीता मंत्रयित्वा नृपं प्रोचुस्त्वरान्विताः ॥७२॥

साफ दिखायी देने लगा ॥ ५६ ॥ रामने ब्राह्मणोंको वह पुर दान दिया था, इसीसे उसका रामनाथपुर नाम पड़ गया ॥ ५७ ॥ पहले उसका ब्रह्मपुर नाम था। जबसे रामने उसको दान दे दिया, तभीसे रामनाथपुर उसकी संज्ञा हुई ॥ ५८ ॥ उस शिलाके तौल भर द्रव्य दक्षिणाके निमित्त रखकर सीताके साथ रामने उन विप्रोंकी पूजा की और वह शिला उनको दे दी ॥ ५९ ॥ इसके बाद रामने हनुमान्जीसे कहा कि भोजन कर लेनेके बाद इन ब्राह्मणोंके साथ जाकर यह शिला रामनाथपुरमें पहुँचा आना ॥ ६० ॥ इसके बाद रामने कम्बुकण्ठको एक पत्र लिखवाकर उन ब्राह्मणोंको दिया। जिसमें लिखा था कि आप सदा इन ब्राह्मणोंकी सहायता करते रहें ॥ ६१ ॥ तदनन्तर प्रसन्न मनसे विप्रोंने आशीर्वाद दिया और रामने उन सबके साथ बैठकर भोजन किया ॥ ६२ ॥ इसके अनन्तर वे सब विप्र पुष्पक विमानपर बैठकर अपने आश्रमको चले और रामसे पूछकर हनुमान्जी भी विमानपर बैठकर उनके साथ-साथ गये ॥ ६३ ॥ इस तरह सातों द्वीपोंमें रामने हजारों दान किये। ठीक तरहसे जिनकी सही संख्या नहीं जानी जा सकती ॥ ६४ ॥ रामनाथपुरमें रहनेवाले वे विप्र भविष्यमें दुष्ट राजाओंके भयसे उस शिलाको तालाबमें फेंक देंगे, जिससे उनको बड़ा कष्ट प्राप्त होगा। जब वे मरनेपर उतारू हो जायँगे तो हनुमान्जी उस शिलाको फिर निकालेंगे ॥६५॥ विष्णुदासने पूछा कि ब्राह्मणोंको आगे चलकर अपने जीवनमें कौन-सा कष्ट उठाना पड़ेगा ॥ ६६ ॥ ६७ ॥ जिसके लिये उन्हें वह शिला त्यागनी पड़ेगी, सो कहिये। श्रीरामदासने कहा कि पृथ्वीतलमें आगे चलकर एक कोई दुष्ट राजा होगा ॥ ६८ ॥ वह कलियुगी राजा उन ब्राह्मणोंको मारकर उनका राज्य छीननेकी इच्छासे कहेगा कि यदि रामने तुमको यह राज्य दान करके दिया है तो वह दानपत्र दिखाओ। नहीं तो इतने दिनों तक इस राज्यकी जितनी आय तुम लोगोंने ली है, वह सब लाकर दे दो। नहीं तो मैं सबको मार डालूँगा। क्योंकि ब्राह्मणोंके लिए मैं

मासेनैकेन पत्रं ते दर्शयिष्यामहे वयम् । ततो मुमोच तान्राजा तेऽपि तूष्णीं पुरं ययुः ॥७३॥
तटाकस्य तटं भित्त्वा प्रवाहाः शतशस्ततः । मोचयामासुः सर्वत्र नांतं तस्य जलस्य ते ॥७४॥
ददृशुः सकला विप्रास्ततस्ते प्राणसंकटम् । ज्ञात्वा तत्र निराहारा निषेदुः सरसस्तटे ॥७५॥
राघवं परमात्मानं चिंतयामासुरादरात् । एवं मासे त्वतिक्रान्ते वधं ज्ञात्वात्मनो नृपात् ॥७६॥
भयात्प्राणांस्त्यक्तुकामा ह्यासंस्तस्मिन् जलाशये । तदा तेषां स्त्रियः पुत्राश्चक्रुः कोलाहलं भृशम् ॥७७॥
तान्सर्वान्सांत्वयामासुर्नानानीत्युत्तरैर्द्विजाः । स्वयं स्नात्वा द्विजाः सर्वे ददुर्दानान्यनेकशः ॥७८॥
चक्रुः प्रदक्षिणाः सप्त तटाकायोत्तराननाः । ऊचुर्दीर्घस्वरेणैव प्रबद्धकरसंपुटाः ॥७९॥
हे राम जानकीकांत त्वद्दानादीदृशी गतिः । जाताऽस्माकं मृतान्नस्त्वं सर्वान्विद्धि रघूत्तम ॥८०॥
पुरोद्भवं तु यद्द्रव्यं पूर्वजैर्भुक्तमेव तत् । एतावत्कालपर्यन्तमस्माभिश्चाधुना कुतः ॥८१॥
तत्प्रदेयमसंख्यातमतस्त्यक्ष्याम जीवितम् । इत्युक्त्वा ब्राह्मणाः सर्वे निमील्य नयनानि ते ॥८२॥
चिंतयामासुः स्वीयेष्टां देवतां मरणोत्सुकाः । एतस्मिन्नंतरे तत्र देवागारे हनूमतः ॥८३॥
पाषाणमूर्तेः प्रकटः संबभूवाञ्जनीसुतः । दीर्घस्वरेण तान् प्राह भूसुरान्सम्भ्रमाद्धरिः ॥८४॥
यूयं मा जीवितान्यद्य त्यजध्वं ब्राह्मणोत्तमाः । आगतो राघवस्याहं दासोऽञ्जनिसमुद्भवः ॥८५॥
इति तद्वचनं श्रुत्वा द्विजास्ते विस्मयान्विताः । उन्मील्य नयनान्यग्रे ददृशुर्वायुनन्दनम् ॥८६॥
दीर्घबाहुं महाघोरं पिंगकेशविराजितम् । जरठं पर्वताकारं रामनामप्रभाषिणम् ॥८७॥
तं दृष्ट्वा ते द्विजाः सर्वे प्रणेमुर्हृष्टमानसाः । कथयामासुस्तं सर्वं स्वीयं वृत्तं सविस्तरम् ॥८८॥
ततः स मारुतिर्वेगात्सरसस्तां शिलां बहिः । निष्कास्य विप्रवर्यैस्तैः शिलां धृत्वा स्वयं कपिः ॥८९॥

यमराज हूँ ॥ ६९–७१ ॥ राजाकी ऐसी बात सुनकर ब्राह्मण भयभीत हो तथा परस्पर सलाह करके उससे बोले कि एक महीनेमें मैं आपको वह दानपत्र खोजकर दिखाऊँगा। यह सुनकर राजाने ब्राह्मणोंको छोड़ दिया और वे चुपचाप लौटकर अपने-अपने घर चले गये ॥ ७२ ॥ ७३ ॥ वहाँ पहुँचकर उन्होंने उस तालाबका बाँध तोड़ दिया। जिससे सैकड़ों सोते वह निकले और चारों ओर फैलकर वहनेपर भी तड़ागका जल नहीं चुका। जब ब्राह्मणोंने देखा कि अब प्राण सङ्कटमें आ गया है तो सबके सब उसीके एक ऊँचे कगारपर उपवास करते हुए बैठ गये और परमात्मा रामचन्द्रजीका ध्यान करने लगे। इस प्रकार एक महीना बात जानेपर जब उन विप्रोंने सोचा कि अब वह दुष्ट राजा हमको मार डालेगा तो भयसे अपने प्राण त्यागनेके लिए तैयार हो गये। उस समय उनके घरकी स्त्रियाँ तथा बच्चे अत्यधिक दुःखित होनेके कारण सबके सब चिल्ला-चिल्लाकर रोने लगे ॥ ७४–७७ ॥ तब उन्होंने स्त्रियों-बच्चोंको अनेक प्रकारकी नीतिमयी बातें सुनाकर सान्त्वना दी। स्वयं उन विप्रोंने स्नान करके नाना प्रकारके दान दिये। फिर उन्होंने उस तालाबकी सात परिक्रमा की और उत्तरकी ओर मुख करके खड़े हो गये। हाथ जोड़कर ऊँचे स्वरसे वे कहने लगे–हे राम! हे जानकीकान्त!! तुम्हारे दिये हुए दानसे आज हमारी यह दुर्दशा हो रही है। हे रघूत्तम! अब तुम हम लोगोंको मरा हुआ समझो ॥ ७८–८० ॥ पूर्वकालमें हमारे पूर्वजोंने जो धन इस राज्यसे पाया, वह सब उन्हीं लोगोंने खर्च कर दिया। अब हम कहाँसे असंख्य धन लाकर इस राजाको दें। उतना धन जुटाना हमारी शक्तिके बाहर है। अतएव हम अपने शरीरको त्याग देंगे। इतना कहकर उन मरणोन्मुख विप्रोंने नेत्र मूँद लिये और अपने इष्टदेवका ध्यान करने लगे। उसी समय पासके देवालयमें पाषाणमयी मूर्तिसे हनुमानजी प्रकट हुए और जोर-जोरसे चिल्लाकर कहने लगे —॥ ८१–८४ ॥ हे ब्राह्मणों! तुम लोग अपने प्राण मत त्यागो। रामचन्द्रजीका सेवक अञ्जनीपुत्र मैं हनुमान् आगया। इस प्रकार उनकी बात सुनकर विस्मित भावसे उन सबोंने नेत्र खोलकर हनुमान्‌जीको देखा ॥ ८५ ॥ ८६ ॥ उस समय उन हनुमान्‌जीका लम्बा तथा भयानक हाथ था, पीले-पीले केश थे, बूढ़ी अवस्था थी, पर्वताकार शरीर था और वे निरन्तर रामनामका उच्चारण करते जाते थे ॥ ८७ ॥ उनको देखा तो प्रसन्न चित्तसे उन ब्राह्मणोंने प्रणाम किया और विस्तारपूर्वक अपने

जगाम दुष्टराजानं दर्शयामास तां शिलाम् । राममुद्रांकितां दृष्ट्वा लिपिं राजाऽतिविस्मितः ॥९०॥
तं तदा रोपयामास शूलाग्रे वायुजो नृपम् । तस्मिन्नेव तटाके हि यत्र विप्राः स्थिताः पुरा ॥९१॥
नृपं मोचयितुं ये ये राजदूताः समाययुः । तान्सर्वान्मर्दयामास पुच्छेनैव स मारुतिः ॥९२॥
द्विजहृत्तापशमनाद्धृत्तापशमनं सरः । बभूव नाम्ना तत्पुण्यं तत्र श्रीवायुसूनुना ॥९३॥
राज्यदानेन रामस्यौदार्यं लोकान्प्रदर्शितुम् । उदारराघवेशाख्यः शम्भुः संस्थापितः शुभः ॥९४।

उदारराघवश्चेति नाम्ना मूर्तिः प्रतिष्ठिता ।
स्नानादिना तत्सरसि नृणां तापत्रयं न हि ॥९५॥

ततः प्राह पुनर्विप्रान्हनूमांस्तुष्टमानसान् । भूम्यां कृत्वा गुहां श्रेष्ठां तत्रेयं स्थाप्यतां शिला ॥९६।
न भयं वोऽस्तु भो विप्रा युष्माकं सन्निधस्त्वहम् । सर्वदाऽस्मि न भेतव्यं स्मरध्वं रघुनन्दनम् ॥९७॥

इत्युक्त्वा गुप्तरूपोऽभूत्स्त्रीयमूर्त्यां द्विजाग्रतः ।
तां शिलां स्थापयामासुर्भूम्यामेवातियत्नतः ॥९८॥

ततस्तुष्टा द्विजाः सर्वे जग्मुः स्वं स्वं गृहं प्रति । तदाऽऽरभ्य न केनापि तेषां राज्यं हृतं कदा ॥९९॥
एवं शिष्य मया प्रोक्ता कथा भावी तवाग्रतः । पूर्वमेव ज्ञानदृष्ट्या कौतुकार्थं सविस्तरा ॥१००॥

अद्यापि तत्र तैर्विप्रैस्तद्राज्य भुज्यते सदा ।
ये ये जाता नृपा भूम्यां रामाज्ञां मानयन्ति ते ॥१०१॥

एवं नाना कौतुकानि राघवेण कृतानि हि । पुत्राभ्यां सीतयाऽयोध्यापुर्यां बंधुजनैः सह ॥१०२॥

इति श्रीशतकोटिरामचरितांतर्गते श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये राज्यकाण्डे
रामनाथपुरराज्यप्रदानं नामाष्टादशः सर्गः ॥ १८ ॥

सारा वृत्तान्त कह सुनाया ॥ ८८ ॥ इसके अनन्तर हनुमान्‌जीने वह शिला उस तालावसे निकालकर उनके आगे रख दी और ब्राह्मणोंने उसे उस दुष्ट राजाके पास ले जाकर दिखाया। राममुद्राके चिह्नसे चिह्नित उस शिलाको देखकर राजा बहुत चकराया ॥ ८९ ॥ ९० ॥ तभी हनुमान्‌जी उस राजाको पकड़कर उसी सरोवरके तटपर ले गये और शूलीपर चढ़ा दिया। राजाको छुड़ानेके लिए जो सिपाही उनके पास आये, हनुमान्‌जीने अपनी लम्बी पूँछके प्रहारसे ही उन सबको मार डाला ॥ ९१ ॥ ९२ ॥ ब्राह्मणोंका सन्ताप हनुमान्‌जीने उसी सरोवरपर हरण किया था, इसलिए उस सरोवरका 'हृत्तापशमन' नाम पड़ गया ॥ ९३ ॥ राज्यदानसे रामकी उदारता संसारको दिखानेके लिए उसी स्थानपर हनुमान्‌जीने उदारराघवेश नामक शिवलिंगकी स्थापना की ॥ ९४ ॥ उस सरोवरमें स्नान करनेसे मनुष्योंके दैहिक, दैविक और मानसिक ये तीनों ताप दूर हो जाते हैं ॥ ९५ ॥ इसके बाद हनुमान्‌जीने उन प्रसन्नचित्त विप्रोंसे कहा--पृथ्वीमें एक गुफा बनाकर उसीमें यह शिला रख दो ॥ ९६ ॥ हे विप्रो ! तुमको किसी प्रकारका भय नहीं है। मैं सदा तुम्हारे पास रहूँगा। तुम सब सर्वदा भगवान् रामका स्मरण करते रहो। इतना कहकर सबके समक्ष हनुमान्‌जी अपनी उसी पाषाणमयी प्रतिमामें लीन हो गये। जैसा कि हनुमान्‌जीने बतलाया था, विप्रोंने गुफा खोदकर बड़े यत्नसे वह शिला उसीके भीतर रख दी ॥ ९७ ॥ ९८ ॥ इसके अनन्तर प्रसन्न मनसे वे ब्राह्मण लौटकर अपने-अपने घरोंको चले गये। तबसे किसी राजाने उनके राज्यका हरण नहीं किया। श्रीरामदास कहते हैं—हे शिष्य ! मैंने भावी वृत्तान्त तुम्हें कह सुनाया। आज भी वे ही ब्राह्मण उस राज्यका उपभोग कर रहे हैं। पृथ्वीतलपर जितने राजे हुए, वे बरावर रामकी आज्ञाको मानते आये हैं। इस प्रकार अयोध्यामें राम अपने पुत्रों, सीता तथा भाइयोंके साथ नाना प्रकारके कौतुक करते रहे ॥ ९९–१०२ ॥ इति श्रीशतकोटिरामचरितान्तर्गते श्रीमदानन्दरामायणे पं० रामतेजपाण्डेयविरचित'ज्योत्स्ना'भाषाटीकासहिते राज्यकाण्डे उत्तरार्द्धे अष्टादशः सर्गः ॥ १८ ॥

एकोनविंशः सर्गः

(रामकी दिनचर्या)

श्रीरामदास उवाच

शृणु शिष्य वदाम्यद्य रामराज्ञः शुभावहा । दिनचर्या राज्यकाले कृता लोकान् हि शिक्षितुम् ॥ १ ॥
प्रभाते गायकैर्गीतैर्बोधितो रघुनन्दनः । नववाद्यनिनादांश्च सुखं शुश्राव सीतया ॥ २ ॥
ततो ध्यात्वा शिवं देवीं गुरुं दशरथं सुरान् । पुण्यतीर्थानि मातॄश्च देवतायतनानि च ॥ ३ ॥
नानाक्षेत्राण्यरण्यानि पर्वतान्सागरांस्तथा । नदांश्चैव नदीः पुण्यास्ततः सीतां ददर्श सः ॥ ४ ॥
प्रणमन्तीं समुत्थाप्य धृत्वा सीताकरं प्रभुः । मञ्चकादवतीर्याथ दासीभिः परिवेष्टितः ॥ ५ ॥
बहिः कक्षां शनैर्गत्वा सम्पाद्यावश्यकं प्रभुः । ययौ पुनः स दासीभिः क्रीडाशालां रघूत्तमः ॥ ६ ॥
कृत्वा शौचविधिं रामो दन्तशुद्धिं चकार सः । ततः स्नानं कदा गेहे सरय्वां वाऽकरोत् प्रभुः ॥ ७ ॥
आरुह्य शिबिकायां स भूसुरैर्यानसंस्थितैः । वेष्टितः सरयूं गत्वा यानं मुक्त्वा तटे प्रभुः ॥ ८ ॥
पद्भ्यामेव शनैर्गत्वा सरयूं प्रणिपत्य च । सरय्वाः पुरतः स्थाप्य नारिकेलं सदक्षिणम् ॥ ९ ॥
सताम्बूलं पुनर्नत्वा स्तुत्वा सम्यक् प्रसाद्य च । स्नात्वा यथाविधानेन ब्रह्मघोषपुरःसरम् ॥१०॥
प्रातः सन्ध्यां ततः कृत्वा ब्रह्मयज्ञं विधाय च । दत्त्वा दानान्यनेकानि ययौ गेहं रथेन हि ॥११॥
रुक्मबन्धैर्वेष्टितेन रौप्यरत्नमयेन च । सुस्नातसूततुरगयुक्तेन ध्वनितेन च ॥१२॥
हुत्वा होमं विधानेन शिवं सम्पूज्य सादरम् । कौसल्यां च सुमित्रां च कैकेयीं च समर्चयत् ॥१३॥
कामधेनुं कल्पवृक्षं पारिजातं तु पुष्करम् । चिंतामणिं कौस्तुभं च पूज्य सीतायुतो हरिः ॥१४॥
मुनिवृक्षं वटं बिल्वमश्वत्थं तुलसीं तथा । शमीं पलाशं दूर्वां च राजवृक्षमपूजयत् ॥१५॥
भानुं सम्पूज्य तं नत्वा सम्पूज्य द्वारदेवताम् । गोवृषाश्ववारणांश्च रथं शस्त्राणि भूसुरान् ॥१६॥
कोष्ठागाराणि कोशांश्च पाकशालामपूजयत् । सिंहासनं तथा छत्रं चामरे व्यजने तथा ॥१७॥

श्रीरामदास बोले—हे शिष्य ! सुनो, अब मैं रामचन्द्रजीकी दिनचर्या बताता हूँ। जिसे वे सबको शिक्षा देनेके लिए किया करते थे। राम प्रतिदिन प्रातःकाल गायकोंके गीत तथा बाजोंके मीठे स्वर सुनकर सीताके साथ जागते थे। इसके अनन्तर शिव, देवी, गुरु, देवताओं, दशरथ, पवित्र तीर्थों, माताओं, देवमन्दिरों, अनेक प्रकारके क्षेत्रों, अरण्यों, पर्वतों, सरोवरों, नदों और नदियोंका स्मरण करके सीताको देखते थे ॥१-४॥ प्रणाम करती हुई सीताको उठाकर राम उनका हाथ पकड़े हुए मंचसे उतरते थे। फिर बहुत-सी दासियोंसे घिरे हुए जाते और आवश्यक कार्योंका संपादन करते थे । इसके बाद दासियोंके साथ-साथ क्रीड़ाशालाको जाते और वहाँ शौचविधि करनेके पश्चात् दन्तशुद्धि करते थे। इसके अनन्तर कभी घरपर और कभी सरयूमें जाकर स्नान करते थे ॥ ५-७ ॥ जब सरयूस्नानको जाते तो पालकीपर सवार हो तथा बहुतसे ब्राह्मणोंसे परिवेष्टित होकर जाते और तटपर पहुँचते ही पालकीसे उतर जाते एवं पैदल चलकर सरयूके आगे पानदक्षिणायुक्त नारियल रखकर प्रणाम और प्रार्थना करते थे। फिर ब्राह्मणोंके वेदघोषके साथ स्नान करते थे। इसके बाद प्रातःकालीन सन्ध्या तथा ब्रह्मयज्ञ करके ब्राह्मणोंको विविध प्रकारके दान देते और रथपर सवार होकर महलोंको लौटते थे ॥ ८-११ ॥ उस रथमें स्थान-स्थानपर सुवर्णसूत्रके बन्धन लगे रहते और श्वेतवर्णके वस्त्र लटकते रहते थे। सरयूमें सारथी तथा घोड़े नहाये रहते थे और उस रथमेंसे एक प्रकारकी ध्वनि निकलती रहती थी ॥ १२ ॥ इसके अनन्तर विधानपूर्वक हवन करके राम सादर शिवजीका पूजन करते और कौसल्या, सुमित्रा और कैकेयीकी पूजा करते थे ॥ १३ ॥ फिर कामधेनु, कल्पवृक्ष, पारिजात, पुष्पकविमान, चिंतामणि, कौस्तुभ आदिकी सीताके साथ-साथ राम पूजा करते थे। पश्चात् अगस्त्य, वट, बिल्व, पीपल, तुलसी, शमी, पलाश, दूर्वा, राजवृक्ष तथा सूर्यभगवान्की पूजा करके द्वारदेवताको नमस्कार और पूजन करते थे। तदनन्तर

संपूज्य मुकुटं रामः पूजयामास मञ्चकम् । दीपिकां दर्पणं पूज्य पुस्तकादीनपूजयत् ॥१८॥
पुनः संपूज्य स्वगुरुं पूर्वं विप्रेषु पूजितम् । उच्चासनस्थितं नत्वा कथां शुश्राव तन्मुखात् १९॥
पुत्राभ्यां बन्धुभिः पत्न्या पण्डितैः परिवेष्टितः । ततः संप्रार्थितो रामः सीतया स मुहुर्मुहुः ॥२०॥
विप्रादिभिश्चोपाहारं चकार स्वस्थमानसः । कामधेनूद्भवैश्चान्नैः कल्पवृक्षसमुद्भवैः ॥२१॥
मणिद्वयनिर्मितैश्च वह्नौ सीताकृतैरपि । ततो भुक्त्वा हि तांबूलं विभ्रद्वासांसि राघवः ॥२२॥
बद्ध्वा कटिं दिव्यवस्त्रैः शस्त्राण्यपि दधार सः । एतस्मिन्नन्तरे पूर्वं समाहूतो ययौ भिषक् ।।२३॥
गणकोऽपि राघवेण प्रत्युद्गम्यातिमानितौ । निषेदतू राघवाग्रे पूजयामास तौ प्रभुः ॥२४॥
ततो भिषक् सुखं स्थित्वा राघवाग्रे तदाज्ञया । ददर्श दक्षिणकरे नाडीं रामस्य सादरम् ॥२५॥
रत्नमुद्राकंकणाद्यैः शोभितस्योज्ज्वलस्य च । करस्यांगुष्ठमूले या धमनी जीवसाक्षिणी ॥२६॥
तच्चेष्टया सुखं दुःखं ज्ञायते च भिषग्वरैः । अतस्तां वैद्यवर्यः स सूक्ष्मबुद्ध्या व्यलोकयत् ॥२७॥
रामकर्णे विहस्याह रात्रावाचरितः श्रमः । तद्वैद्यवचनं श्रुत्वाऽकरोद्रामः स्मिताननम् ॥२८॥
ततो वैद्याय तांबूलं ददौ रामः सदक्षिणम् । ततः स गणकः प्राह विस्तार्य सुस्फुटाक्षरम् ॥
पञ्चाङ्गपत्रं चित्रं च राघवाग्रे स्थितः सुधीः ॥२९॥
विघ्नेश्वरो ब्रह्महरीश्वराः सुरा भानुः शशी भूमिसुतो बुधः शुभः ।
गुरुश्च शुक्रः शनिराहुकेतवः सर्वे ग्रहा मंगलदा भवंतु ते ॥३०॥
लक्ष्मीः स्यादचला तिथिश्रवणतो वारात्तथाऽऽयुश्चिरं नक्षत्रं कृतपापसंचयहरं योगो वियोगापहः ।
सर्वाभीष्टकरं तथैव करणं पंचांगमेतत्स्फुटं श्रोतव्यं प्रतिवासरे द्विजमुखाच्छ्रेयस्करं संग्रहम् ॥३१॥
स्वस्ति श्रीराघवाद्यास्ति तिथिश्च दशमी सिता । भानुवारः सुनक्षत्रं पुष्याख्यं त्वद्य वर्तते ॥३२॥

वृष, अश्व, हाथी, रथ, शास्त्र, ब्राह्मण, कोठार, कोश, पाकशाला, सिंहासन, छत्र, चमर, व्यजन, मुकुट, मञ्च, दीपिका और दर्पणकी पूजा करके पुस्तकादिकोंका पूजन करते थे ॥ १४–१८ ॥ फिर ऊँचे आसनपर बैठे अपने गुरुकी पूजा और नमस्कार करके उनके मुखसे कथा सुनते थे ॥ १९ ॥ इसके अनन्तर अपने भ्राताओं, पुत्रों और पण्डितोंके साथ बार-बार सीताके प्रार्थना करनेपर ब्राह्मणोंके सङ्ग स्वस्थ मनसे कामधेनु, कल्पवृक्ष और दोनों मणियोंसे उत्पन्न तथा अग्निपर बनाये अन्नका भोजन करके पान खाते थे। तदनन्तर सुन्दर कपड़े पहिन तथा दिव्य वस्त्रसे कमर कसके भाँति-भाँतिके अस्त्र-शस्त्र धारण करते थे। इसके बाद पहलेसे ही बुलाये हुए वैद्य तथा ज्योतिषी आते। उनको आते देखकर राम उठ खड़े होते और दो पग आगे बढ़कर स्वागत करके उन्हें लाते एवं अतिशय सम्मान करते थे। वे आकर सामने बैठ जाते और राम उनकी पूजा करते थे ॥२०–२४॥ इसके बाद वैद्य आनन्दपूर्वक बैठकर रामके आज्ञानुसार रत्न, मुद्रा तथा कंकण आदिसे सुशोभित उनके दाहिने हाथकी नाड़ी देखता था। हाथके अंगूठेकी नीचेवाली जो जीवसाक्षिणी नामकी नाड़ी है, उसे देखकर वैद्यगण प्राणीके सुख दुःख जान लिया करते हैं। इसलिए वह वैद्य अपनी सूक्ष्म बुद्धिसे देखता और कानमें कहता कि 'रातको ज्यादा मेहनत किये हैं न ?' वैद्यकी बात सुनकर राम मुस्करा देते थे ॥ २५–२८ ॥ इसके बाद राम दक्षिणाके साथ वैद्यजीको पान देते थे। तदनन्तर ज्योतिषीजी स्वच्छ अक्षरों और चित्रोंसे सुसज्जित पञ्चांग फैलाकर रामके सामने बैठते और इस प्रकार मङ्गलाचरण तथा पञ्चांग-श्रवणका माहात्म्य सुनाते थे। विघ्नेश्वर (गणेशजी), ब्रह्मा, महेश, समस्त देवता, सूर्य, शनि, चन्द्रमा, मङ्गल, बुध, बृहस्पति, शुक्र, राहु, केतु आदि सारे ग्रह आपके मंगलदाता हों ॥ २९ ॥ ३० ॥ तिथिके सुननेसे लक्ष्मी अचल होती है, वारके श्रवणसे आयु बढ़ती है, नक्षत्रश्रवण पुराकृत पापोंके समूहको नष्ट करता है, योग अपने प्रियजनके वियोगसे बचाता तथा करण सब प्रकारकी मनःकामना पूर्ण करता है। अतएव ब्राह्मणके मुखसे प्रतिदिन इनका श्रवण करना चाहिए। क्योंकि यह प्राणियोंका सब प्रकारसे कल्याण करता है ॥ ३१ ॥ स्वस्तिश्री रामचन्द्रजी ! आज शुक्लपक्षकी दशमी तिथि है, रविवासर है, पुष्यनामक सुनक्षत्र है,

ऐंद्रयोगो महानद्य ववाख्यं करणं शुभम् । कर्कस्थितोऽद्य चन्द्रोऽस्ति द्वितीयस्ते रघूत्तम ॥३३॥
मासोऽयं चैत्रमासोऽस्ति वसंताख्य ऋतुस्त्वयम् । सुखं कुरुष्व राज्यं त्वं चिरं तिष्ठावनीतले ॥३४॥
सर्वेऽपि सुखिनः सन्तु सर्वे सन्तु निरामयाः । सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद्दुःखमाप्नुयात् ।३५।
एवं ज्योतिर्विदा गीतं पञ्चाङ्गं रघुनन्दनः । श्रुत्वा तं दक्षिणां दत्त्वा सतांबूलां ननाम सः ॥३६॥
ततो रामं ययौ वेगान्मालाकारो मनोहरान् । रामाग्रे वंशपात्रस्थान्पुष्पहारान्न्यवेदयत् ॥३७॥
रामस्तान्सकलेभ्यश्च दत्त्वाऽबिभ्रत्स्वयं ततः । पुत्राभ्यामवतंसांश्च नत्वाऽबिभ्रत्स्वयं करे ॥३८॥
एतस्मिन्नन्तरे रामं नापितः प्रययौ जवात् । मुकुरं दर्शयामास रुक्मबन्धनरंजितम् ॥३९॥
तत्रादर्शे ददर्शाथ स्वमुखं रघुनन्दनः । चन्द्रोपमं सुस्मितं च कंजलोचनशोभितम् ॥४०॥
ऋजुनासं मांसलं च श्मश्रुयुक्तं सुवर्तुलम् । वरकुण्डलमुक्तानां वरदीप्त्याऽतिभासुरम् ॥४१॥
प्रोच्चगण्डस्थलं सुभ्रु त्रिवलीभालमण्डितम् । रुक्मरत्नसमुद्भूतमुकुटेनातिशोभितम् ॥४२॥
एवं मुखं निरीक्ष्याथ तुतोष नितरां प्रभुः । ततो ययौ धूपपाणिर्धूपं स्थाप्य प्रभोः पुरः ॥४३॥
नत्वा रामं दूतमध्ये तस्थिवान्राघवाग्रतः । ततो रामः शिबिकायां स्थित्वा गेहाद्बहिर्ययौ ॥४४॥
ददर्श मागधादींश्च बहिःकक्षस्थितान् प्रभुः । ततस्ते मागधा रामं नत्वा दीर्घस्वरेण वै ॥४५॥
सूर्यवंशभवान्सर्वान्नृपान्संवर्णयंस्तदा । ततस्ते वन्दिनः सर्वे तुष्टुवू रघुनन्दनम् ॥४६॥
नानातत्कृतचारित्रै रावणादिवधादिकैः । ततस्ते चारणा गानं प्रचक्रुर्मुदिताननाः ॥४७॥
नटा वेश्याश्च ननृतुर्नानावाद्यपुरःसरम् । अन्ये चक्रुर्विनोदांश्च यैः सन्तुष्येत्स राघवः ॥४८॥
ततो निनेदुर्वाद्यानि नववाद्यस्वना अपि । ततस्तृतीयकक्षायां ददर्श नृपनन्दनः ॥४९॥
वारणेंद्रांश्च तुरगान् शिबिकाश्च रथांस्तथा । नानालंकारयुक्तांश्च वरवस्त्रैः समन्वितान् ॥५०॥

ऐन्द्रयोग है और कर्क राशिमें वैठा चन्द्रमा आपकी राशिसे दूसरे स्थानपर है ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ यह चैत्रका महीना है, वसन्त ऋतु है, आप आनन्दपूर्वक राज्य करें और बहुत दिनोंतक इस पृथ्वीतलपर रहें। सब सुखी हों, सब नीरोग हों, सब लोग मङ्गलमय दिन देखें और कोई किसी प्रकारका दुःख न देखे ॥ ३४ ॥ ३५ ॥ इस प्रकार ज्योतिषीके कहे पञ्चांगको सुन और उसे ताम्बूल-दक्षिणा देकर विदा करते थे ॥ ३६ ॥ इसके बाद वेगके साथ माली बाँसकी टोकरीमें फूलोंकी मालाएँ लाकर रामको नजर करता था ॥ ३७ ॥ उन मालाओंको वहाँ उपस्थित सब लोगोंमें बाँटकर राम स्वयं भी पहनते थे ॥ ३८ ॥ इसके अनन्तर नाई आता। वह सुवर्णके चौखटेसे सुसज्जित दर्पण रामको दिखाता था ॥ ३९ ॥ शीशेमें राम चन्द्रमाके समान सुन्दर, मुस्कराहट युक्त और कमलके समान नेत्रोंवाला अपना मुख देखते थे ॥ ४० ॥ वह मुख छोटी-सी नासिकासे युक्त, भरा हुआ, गोलाकार, अच्छे-अच्छे कुण्डलों तथा मोतियोंके गुच्छोंसे अतिशय शोभायमान एवं तेजोमय था ॥ ४१ ॥ दोनों कपोल ऊँचे थे, सुन्दर-सी त्रिवली अर्थात् तीन लकीरें माथेमें पड़ी थीं। वे सुवर्ण और रत्नोंसे सुशोभित मुकुट मस्तकपर धारण किये थे ॥ ४२ ॥ इस प्रकार अपना मुखमण्डल देखकर राम बहुत प्रसन्न होते थे। इसके पश्चात् एक सेवक आता, जिसके हाथोंमें सुलगती हुई धूप रहती थी। वह धूपदानी रामके सामने रख तथा नमस्कार करके दूतोंके बीचमें प्रभुके सामने बैठ जाया करता था। इसके अनन्तर शिबिकामें बैठकर राम घरसे बाहर निकलते थे ॥ ४३ ॥ ४४ ॥ बाहरके आँगनमें बन्दीजन खड़े रहते थे, उन्हें राम देखते थे और जब रामको वे देखते तो प्रणाम करके ऊँचे स्वरसे रामके पूर्वपुरुषोंका यश गाने लगते और फिर रामकी स्तुति करते थे ॥ ४५ ॥ ४६ ॥ वे उनके किये रावणवध आदि चरित्रोंका विशद वर्णन करते थे। तदनन्तर चारणगण प्रसन्नमुख होकर गाना गाते और नट तथा वेश्यायें नाना प्रकारके बाजोंके तालपर नाचने लगती थीं। कितने ही लोग विनोद करने लगते, जिससे कि राम प्रसन्न हों ॥ ४७ ॥ ४८ ॥ इसके बाद कितने ही प्रकारके बाजे बजने लगते थे। तब राम दूसरे आँगनसे तीसरेमें पहुँचते थे ॥ ४९ ॥ वहाँ बहुतसे हाथी, घोड़े, पालकियाँ और

ततश्च रथकक्षायां नृपान्पौरान्सुहृज्जनान् । समागतान्दर्शनार्थं ददर्श रघुनन्दनः ॥५१॥
ततः पञ्चमकक्षायां पुष्पकं पुष्पवाटिकाः । दूतान्ददर्श श्रीरामः शस्त्रहस्तान्सहस्रशः ॥५२॥
ततः स षष्ठकक्षायामश्वारूढान्सहस्रशः । वीरान्ददर्श श्रीरामः प्रबद्धकरसम्पुटान् ॥५३॥
ततः सप्तमकक्षायां ययौ रामः सभां प्रति । शिबिकायाश्चावतीर्य शनैः सिंहासनं ययौ ॥५४॥
सव्यं कृत्वा नमस्कृत्य सोपानैः स शनैः प्रभुः । सिंहासनमारुरोह वरछत्रसुशोभितम् ॥५५॥
दधार छत्रं सौमित्रिश्चामरं भरतस्तदा । शत्रुघ्नो व्यजनं रम्यं पादुके वायुनन्दनः ॥५६॥
सुग्रीवो जलपात्रं च वरादर्शं विभीषणः । दधार हस्ते ताम्बूलपात्रं स बालिनन्दनः ॥५७॥
वस्त्रकोशं जांबवांश्च दधार वेगवत्तरः । तस्थौ सिंहासने रामः स पृष्ठांकोपबर्हणः ॥५८॥
तस्थौ पृष्ठे लक्ष्मणश्च भरतः सव्यपार्श्वके । शत्रुघ्नोऽसौ वामपार्श्वे पुरतो वायुनन्दनः ॥५९॥
वायव्यकोणे रामस्य सुग्रीवः संस्थितोऽभवत् । ईशान्यां राक्षसेन्द्रः स आग्नेय्यामङ्गदः स्थितः॥६०॥
नैर्ऋत्यां जांबवांश्चापि पौराः सर्वे समन्ततः । राघवाग्रे नृपाः सर्वे स्थिताः सम्बद्धपाणयः ॥६१॥
पार्श्वयोस्ते राघवस्य प्रोच्चस्थाने मुनीश्वराः । पुरतो ननृतुः सर्वा वारवेश्याः सहस्रशः ॥६२॥
ततो वीरास्ततो दूताः सभायां संस्थिताः क्रमात् । निषेदुर्मुनयः सर्वे रामपुत्रौ निषेदतुः ॥६३॥
राममित्रा निषेदुस्ते तथा रामाज्ञया नृपाः । ये ये मुख्या निषेदुस्ते तथा पौराः सुहृज्जनाः ॥६४॥
एभ्योऽन्ये ते स्थिता एव न निषेदुः प्रभोः पुरः । तेषां मध्ये रामचन्द्रः शुशुभेऽनुपमस्तदा ॥६५॥
सेवकाद्या न निषेदुः सुमन्त्र एव तस्थिवान् । एवं स्थित्वा सभायां स कृत्वा कार्याण्यनेकशः ॥६६॥
नानाकार्येषु बन्धूंश्च पुत्रावाज्ञाप्य राघवः । दृष्ट्वा नानाकौतुकानि पूर्ववद्गृहमाययौ ॥६७॥
तदा निनेदुर्वाद्यानि गोमुखादीन्यनेकशः । श्रुत्वा वाद्यनिनादांश्च जानकी सम्भ्रमात्पुरः ॥६८॥

रथ खड़े रहते थे। जिनमें अनेक प्रकारके अलङ्कार लगे रहते और अच्छे कपड़ोंका ओहार पड़ा रहता था। ॥ ५० ॥ इसके बाद उस आँगनमें बाहरसे आये हुए उन राजाओं, पुरवासियों और मित्रोंको देखते थे, जो वहाँ रामकी प्रतीक्षामें पहले ही से उपस्थित रहा करते थे ॥ ५१ ॥ फिर पाँचवीं चौकमें पुष्पकविमान, पुष्पवाटिका तथा शस्त्र धारण किये हजारों सिपाहियोंको देखते थे ॥ ५२ ॥ फिर छठीं चौकमें जाकर हाथ जोड़े हुए हजारों घोड़सवार वीरोंको देखते थे ॥ ५३ ॥ इसके बाद सातवीं चौकमें पहुँचकर अपनी राजसभामें जाते थे। वहाँ पालकीसे उतरकर सिंहासनके पास जाते थे ॥ ५४ ॥ दाहिनी ओर सिंहासनको प्रणाम करके शनैः शनैः सीढ़ियोंसे चढ़कर सिंहासनपर बैठते थे। वह सिंहासन छत्रसे सुशोभित रहता था ॥ ५५ ॥ रामके बैठ जानेपर लक्ष्मण छत्र लेते, भरत चमर लेते, पंखा शत्रुघ्नजी लेकर खड़े होते और हनुमान्‌जी रामकी चरणपादुका लिये रहते थे। इनके सिवाय सुग्रीव जलकी झारी, विभीषण एक सुन्दर-सा दर्पण, अङ्गद ताम्बूलका पात्र और वस्त्रकी सन्दूक जाम्बवान् लिये रहते थे। राम पीठपर तकिया लगाकर सिंहासनपर बैठते और उनके पीछे लक्ष्मण, दाहिनी ओर भरत, बायीं ओर शत्रुघ्न, सामने पवनकुमार, वायव्य कोणमें सुग्रीव, ईशान कोणमें विभीषण और आग्नेय कोणमें अङ्गद खड़े होते थे ॥ ५६–६० ॥ नैर्ऋत्य कोणमें जाम्बवान् रहते और बहुतसे पुरवासी चारों ओर खड़े रहते थे। रामचन्द्रजीके आगे सब राजे हाथ जोड़-जोड़कर खड़े रहा करते थे ॥ ६१ ॥ रामके दाहिने बायें दोनों ओर एक ऊँचे आसनपर मुनिगण बैठते थे। सामने हजारों वेश्यायें नाचती थीं ॥ ६२ ॥ इसके बाद वीरगण और फिर दूतगण खड़े रहा करते थे। समस्त ऋषीश्वर तथा दोनों राजकुमार भी आकर अपने-अपने आसनपर बैठ जाते थे ॥ ६३ ॥ रामके मित्र तथा राजे रामके आज्ञानुसार बैठते थे। जो नगरके मुख्य निवासी थे, वे तथा मित्रगण भी बैठते थे ॥ ६४ ॥ इनके सिवाय और लोग रामके सामने नहीं बैठते थे, उन्हें खड़े ही रहना पड़ता था। उन सबोंके बीचमें रामकी एक अनुपम शोभा होती थी ॥ ६५ ॥ सेवक आदिमेंसे कोई भी नहीं बैठता था। उनमेंसे केवल सुमन्त्र बैठते थे। इस प्रकार सभामें बैठ और नाना प्रकारके राजकार्य करके भाइयों और बेटोंको कितने ही काम सौंपकर विविध प्रकार-

प्रत्युद्गम्य तोयहस्ता तत्प्रतीक्षां चकार सा । रामोऽपि पूर्वल्लोकान्सप्तकक्षास्वनुक्रमात् ॥६९॥
प्रविशन्सकलानाशां ददौ तांस्तान्स्वतोषयत् । ततोऽग्रे बन्धुभिर्गेहं पुत्राभ्यां संविवेश सः ॥७०॥
ददर्श जानकीं रामः पीतकौशेयधारिणीम् । साऽपि रामं ययौ सीता लज्जयाऽवनतानना ॥७१॥
वक्त्रनेत्रकटाक्षैश्च मोहयन्ती रघूत्तमम् । नानालङ्कारसंयुक्ता वरनूपुरनिःस्वना ॥७२॥
ततो रामो जलं स्पृष्ट्वा धृत्वा सीताकरं मुदा । लक्ष्मणादीन्संविसर्ज्य सीतागेहं विवेश सः ॥७३॥
बहिर्दृष्टं श्रुतं वाऽपि यद्यत्कौतुकमुत्तमम् । तत्सर्वं जानकीं प्राह तोषयामास तां मुहुः ॥७४॥
ततः सर्वान् समाहूय भोजनार्थं समुद्यतः । स्नानं कृत्वा स मध्याह्नं कर्म चक्रे रघूत्तमः ॥७५॥
तर्पयित्वा पितॄंश्चापि नैवेद्यान् शम्भवे ददौ । वैश्वदेवं ततः कृत्वा बलिदानं विधाय सः ॥७६॥
दत्त्वा भूतबलिं चापि पितॄंश्चापि स्वधेति च । बहिस्त्यक्त्वा काकबलिं त्वतिथीन्पूज्य सादरम् ॥७७॥
यतींश्च ब्राह्मणान्पूज्य हेमपात्रेषु राघवः । परिवेष्टितेषु जानक्या त्रिपदासु धृतेषु च ॥७८॥
तैः सर्वैर्भोजनं चक्रे स्नुषाभिर्वीजितो मुदा । करशुद्धिं ततः कृत्वा भुक्त्वा तांबूलमुत्तमम् ॥७९॥
ददौ तेभ्यो दक्षिणाश्च विप्रेभ्यो रघुनायकः । गत्वा शतपदं रामो निद्राशालां ययौ शनैः ॥८०॥
एतस्मिन्नंतरे सीता भुक्त्वा रामान्तिकं ययौ । वीजयामास श्रीरामं मञ्चकस्थं पुरःस्थिता ॥८१॥
चकार निद्रां श्रीरामो मञ्चके सीतया सह । ता दास्यो वीजयामासुर्दिव्यालङ्कारभूषिताः ॥८२॥
ततः प्रबुद्धा सा सीता प्रबुद्धोऽभूद्रमापतिः । सारिभिः सीतया क्रीडां तथा बुद्धिबलेन हि ॥८३॥
नानाकृत्रिमसैन्यैश्चाकरोदन्यैरपि प्रभुः । ततो द्राक्षामण्डपाधो जलयंत्रादिकौतुकम् ॥८४॥
दृष्ट्वा पक्षिकुलान्सर्वान्पञ्जरस्थान्ददर्श सः । गत्वा सोपानमार्गेण प्रासादाग्रे पुरीं निजाम् ॥८५॥

के कौतुक देखनेके बाद पहिलेकी तरह अपने घरको लौट आते थे ॥ ६६ ॥ ६७ ॥ उस समय गोमुखादि बाजे बजने लगते थे। उन बाजोंको सुनकर घबड़ायी हुई सीता हाथमें जलकी झारी लेकर रामके आनेकी प्रतीक्षा करने लगती थीं। राम भी पहलेकी तरह सातों चौक लांघकर ॥ ६८ ॥ ६९ ॥ चलते हुए सब लोगोंको प्रसन्न करते जाते थे। फिर भाई तथा पुत्रोंके साथ आगे बढ़ते हुए अपने भवनमें जाते थे ॥ ७० ॥ वहां पीले रङ्गके रेशमी कपड़े पहने सीताको देखते और सीता भी लज्जाके मारे सिर झुकाये अपने तिरछे नेत्रकटाक्षोंसे रामको मुग्ध करती हुई सामने जाती थीं। उस समय सीताके अलङ्कारों और नूपुरोंकी अनेक प्रकारकी झनकार सुनायी पड़ती थी ॥ ७१ ॥ ७२ ॥ इसके बाद राम जल लेकर हाथ-पैर धोते, कुल्ला करते और सीताका हाथ अपने हाथसे पकड़कर उठते थे। तब लक्ष्मण आदिको विदा करके सीताके महलोंमें जाते थे ॥ ७३ ॥ वहाँपर बाहर जो कुछ कौतुक देखे रहते, वह सब एक-एक करके सीताको सुनाते हुए उन्हें प्रसन्न करते थे ॥ ७४ ॥ इसके बाद सब लोगोंको भोजनका बुलावा भेजते और स्वयं स्नान करके मध्याह्नकालीन कर्म करते थे ॥ ७५ ॥ पितरोंका तर्पण करके शिवजीके लिये नैवेद्य अर्पण करते थे। फिर बलिवैश्वदेव करते और काकबलि आदि देते थे ॥ ७६ ॥ तदनन्तर भूतबलि देकर पितरोंकी 'स्वधा' शब्दका उच्चारण करके तृप्त करते, काकबलि बाहर निकाल देते और उसके बाद आदरपूर्वक अतिथियोंका सत्कार करते थे ॥ ७७ ॥ ब्राह्मणों और यतियोंका पूजन कर लेनेके पश्चात् सामने तिपाईपर रक्खे हुए सुवर्णके पात्रोंमें जानकीके हाथों परोसे अनेक प्रकारके पकवानोंको सब लोगोंके साथ खाते थे। उस समय सब पुत्रवधुयें उन लोगोंको पंखा झला करती थीं। भोजन करनेके पश्चात् हाथ धोते और उत्तम ताम्बूल खाकर ब्राह्मणोंको दक्षिणा देते थे। फिर सौ पग चलकर अपनी निद्राशालामें पहुँच जाते थे ॥ ७८–८० ॥ इसी बीच सीता भी भोजन करके रामके पास पहुँच जातीं और वहाँ मञ्चके ऊपर बैठे हुए रामके पास बैठकर पंखा झलने लगती थीं ॥ ८१ ॥ बादमें राम सीताके साथ शय्यापर शयन करते थे, तब दासियाँ उनपर पंखा झलने लगती थीं ॥ ८२ ॥ कुछ देर शयन करनेके बाद सीता उठ जातीं और राम भी जाग जाते थे। तब राम सीताके साथ बुद्धिबलसे कुछ देरतक चौंसर आदिके खेल खेलते थे। फिर अंगूरकी झाड़ीके नीचे बने

वनारामान्वितां दृष्ट्वा हट्टवीथ्याऽतिरंजिताम् । शनैर्ययौ प्रभुर्गोष्ठं नानधेनूर्ददर्श सः ।८६॥
तां सम्प्रेष्य गृहं सीतां स्वदासीपरिवेष्टिताम् । द्वारांतिकं ययौ रामस्तत्र ते लक्ष्मणादयः ॥८७॥
चक्रुः प्रणामं श्रीरामं तैः सहैव शनैः शनैः । वाजिशालां ययौ रामो दृष्ट्वा तत्र स वाजिनः ॥८८॥
गजशालामुष्ट्रशालां दृष्ट्वा रामः शनैः शनैः । ददर्श शस्त्रशालां च व्याघ्रशालां प्रभुर्ययौ ॥८९॥
दृष्ट्वाऽथ शिविकाशालां माहिषेयीं विलोक्य च । महिषीवृंषशालां च रथशालां ददर्श सः ॥९०॥
आरुह्य स्यंदने रामः शनैः सर्वैर्बहिर्ययौ । सप्तकक्षाः समुल्लंघ्य तत्रस्थैः पूर्ववज्जनैः ॥९१॥
सर्वैर्युक्तश्चाष्टमां तां श्रेष्ठां कक्षां ददर्श सः । तत्र यन्त्राणि श्रेष्ठानि शतघ्नीः शकटस्थिताः ॥९२॥
तृणकाष्ठादिसद्मानि दूतस्थानान्यपश्यत । ततो नवमकक्षायां ददर्श रघुनन्दनः ॥९३॥
शस्त्रपाणीन्वारणस्थान् तुरगस्थाननेकशः । रक्षयन्ति हि ये सर्वे स्वीयं गेहं त्वहर्निशम् ॥९४॥
एवं स नवकक्षाश्च समुल्लंघ्य रघूत्तमः । बहिः स सप्तनो दृष्ट्वा परिखाः सजला नव ॥९५॥
शनैः पश्यन्नयोध्यां तां राजमार्गे मुदान्वितः । शीघ्रं ययौ पुरद्वारं ददर्श द्वाररक्षकान् ॥९६॥
नवकक्षास्त्वयोध्यायाः समुल्लंघ्य शनैः प्रभुः । परिखाश्च नवापश्यत्तोयवह्न्यादिपूरिताः ॥९७॥
ततो नानावनारामकौतुकानि रघूत्तमः । पश्यन्स बन्धुपुत्रैश्च सरय्वास्तीरमाययौ ॥९८॥
तत्र स्थित्वा सुनौकायां क्रीडां कृत्वा कियत्क्षणम् । नद्यास्तटे सभायां स तस्थौ सैन्ययुतः प्रभुः ॥९९॥
तत्रापि वारवेश्यानां पश्यन्नृत्यानि राघवः । कियत्कालमतिक्रम्य ययौ शीघ्रं ततः पुरीम् ॥१००॥
ततः शनैः सभां गत्वा पूर्वोक्तैश्चोपचारकैः । लक्ष्मणाद्यैः सेवितश्च तस्थौ सिंहासनोपरि ॥१०१॥
ततः कृत्वा ह्यनेकानि नानाकार्याणि राघवः । आज्ञाप्य बन्धुपुत्रांश्च पूर्ववत्स गृहं ययौ ॥१०२॥

फौवारे आदि देखते थे ॥ ८३ ॥ ८४ ॥ फिर पींजरोंमें पाले हुए पक्षियोंको देखते थे। तत्पश्चात् सीढ़ीके मार्गसे सर्वोच्च प्रासादपर चढ़ जाते और वहांसे वनों और बगीचोंसे अलंकृत, बाजारों तथा गलियोंसे अतिरंजित अपनी अयोध्यापुरीको देखते थे। फिर धीरे-धीरे गोशालामें जाते और वहांकी गौओंको देखा करते थे ॥ ८५ ॥ ॥ ८६ ॥ इसके अनन्तर दासियों समेत सीताको घर भेज देते और स्वयं फोहारेकी ओर जाते थे। वहाँ लक्ष्मण आदि भ्राता रामको सविनय प्रणाम करते थे ॥ ८७ ॥ फिर उनको साथ लेकर राम धीरे-धीरे अश्वशालाको जाते। वहाँ घोड़ोंको देखकर ॥ ८८ ॥ गजशाला और उष्ट्रशालाको देखते हुए अस्त्रशाला तथा व्याघ्रशालाका अवलोकन करते थे ॥ ८९ ॥ फिर शिविकाशाला और महिषीशालामें जाकर शिविकाओं तथा भैंसोंको देखनेके बाद रथशाला देखते थे ॥ ९० ॥ तत्पश्चात् एक रथपर सवार होकर शनैः शनैः बाहरकी तरफ जाया करते थे। बादमें महलके सातों चौकोंको लांघते एवं पहलेकी तरह उपस्थित सब लोगों देखते हुए आठवें फाटकवाले आंगनमें पहुंचते थे। वहांपर लड़ाइयोंमें काम आनेवाले कितने ही यन्त्र तथा बहुत-सी तोपें रक्खी रहती थीं ॥ ९१ ॥ ९२ ॥ उन्हें देखकर दूतोंके निवाससंस्थान तथा तृण-काष्ठादिके संग्रहभवनको देखनेके अनन्तर नवें आंगनमें पहुंचते थे ॥ ९३ ॥ वहां यह देखते थे कि हाथमें शस्त्र लिये घोड़े और हाथीपर सवार होकर सिपाही रात-दिन अपने-अपने स्थानोंकी रक्षा कर रहे हैं ॥ ९४ ॥ इस प्रकार नवों कक्षाओंको लाँघकर कोटके चारों ओर जलसे भरी बाहरकी नौ खाइयोंको देखते थे ॥ ९५ ॥ इसके बाद राजमार्गसे चलकर अयोध्याको देखते हुए शीघ्र पुरद्वारपर पहुँचते और वहांपर रहनेवाले द्वाररक्षकोंकी देख-रेख करते थे ॥ ९६ ॥ फिर अयोध्याकी नौ कक्षाओंको लाँघकर जल और अग्निसे परिपूर्ण नौ परिखाएँ और अनेक बाग-बगीचेके कौतुक देखते हुए अपने भाइयों और पुत्रोंके साथ सरयूके तीर पहुँचते थे ॥ ९७ ॥ ९८ ॥ वहाँ एक अच्छी नौकापर बैठ तथा कुछ देरतक सैर करके सेनाके शिबिरमें जाते और सैनिकोंके साथ सभामें बैठते थे ॥ ९९ ॥ वहाँ कुछ समय तक वेश्याओंके नृत्य देखकर पुरीमें लौट आया करते थे ॥ १०० ॥ तदनन्तर सभामें जाते और पूर्वमें जो कह आये हैं, उन सबके साथ लक्ष्मणादि भ्राताओंसे सेवित होकर सिंहासनपर बैठते थे ॥ १०१ ॥ वहाँ अनेक कार्योंको करनेके पश्चात् भाइयों और पुत्रोंको अपने-अपने घर जाने-

सायंकाले ततः संध्यां कृत्वा हुत्वा यथाविधि । गंधाद्यैरुपचारैश्च शिवं सम्पूज्य भक्तितः ॥१०३॥
कृत्वोपहारं विप्रैश्च पुत्राभ्यां बन्धुभिः सह । शिबिकायां पुनः स्थित्वा देवतायतनेषु च ॥१०४॥
साकेतस्थेषु श्रीरामो गत्वा नत्वा शिवादिकान् । नानाविधान्देवसंघान् फलैः पुष्पैरपूजयत् ॥१०५॥
देवालयेषु सर्वेषु सुराणां तेषु राघवः । शृण्वन्नानाकीर्तनानि वारस्त्रीनर्तनान्यपि ॥१०६॥
पश्यन्नानाकौतुकानि परां मुदमवाप सः । वाहनारूढदेवानामपश्यत्कौतुकानि च ॥१०७॥
ततो ययौ ब्राह्मणेन हट्टमार्गेण राघवः । रत्नदीपप्रकाशैश्च विवेश निजमंदिरम् ॥१०८॥
ततो नानाकथामिश्र वार्ताभिः पुत्रबन्धुभिः । सार्धयामां निशां नीत्वा रतिगेहे विवेश सः ॥१०९॥
एतस्मिन्नंतरे तत्र सीताऽग्रे रतिमन्दिरे । पुष्पशय्यादि सम्पाद्य तत्प्रतीक्षां चकार सा ॥११०॥
तावदायांतमालोक्य सहसोत्थाय जानकी । धृत्वा हस्ते राघवेंद्रं रतिशालां निनाय सा ॥१११॥
सर्वा विसर्ज्य दासीश्च मुक्ताजालान्यनेकशः । समंततो विमुच्याथ तस्थौ रामः स मंचके ॥११२॥
ततस्तां मैथिलीं धृत्वा मंचके संन्यवेशयत् । नाना क्रीडां विधायाथ तस्थौ रामः स मंचके ॥११३॥
ततस्तुष्टं रमानाथं जानकी लज्जिताऽब्रवीत् । राम राजीवपत्राक्ष किंचित्पृच्छामि मे वद ॥११४॥
कुशजन्मानन्तरं हि कथं गर्भो मया न वै । धार्यते कारणं त्वस्य किमस्ति तद्वदस्व माम् ॥११५॥
तत्सीतावचनं श्रुत्वा सस्मितं प्राह राघवः । हे सीते कंजनयने सम्यक् पृष्टं त्वया मम ॥११६॥
तत्सर्वं ते वदाम्यद्य तच्छृणुष्व सुमध्यमे । किमर्थं च बहून् पुत्रांस्त्वत्र त्वं वांछसि प्रिये ॥११७॥
सद्वंशे बहवः पुत्रा न योग्यास्त्वत्र वै भुवि । कदैकस्य दुराचारात्कुलस्य लांछनं भवेत् ॥११८॥
अतएव ममेच्छा न बहुपुत्रेषु मैथिलि । मदिच्छया त्वया गर्भो धार्यते न कदाचन ॥११९॥
पुत्रस्त्वेकः प्रतीक्ष्यो हि यः कुलं भूषयेद्गुणैः । किं जाता बहवः पुत्रा दुष्टास्ते कुमयो यथा ॥१२०॥

की आज्ञा देकर स्वयं भी अपने घर चले जाते थे ॥ १०२ ॥ सायंकालके समय विधिपूर्वक सन्ध्या और हवन करके धूप-दीप-गन्धादि उपचारोंसे भक्तिपूर्वक शिवजीकी पूजा करते थे ॥ १०३ ॥ फिर भोजन करके पुत्रों तथा बाँधवोंके साथ पालकीमें बैठकर देवताओंके मन्दिरोंको जाते थे ॥ १०४ ॥ साकेतपुरी (अयोध्या) के सब मन्दिरोंमें जाकर शिवादिक देवताओंको नमस्कार करके फल-फूलसे पूजन करते थे ॥ १०५ ॥ उन्हीं देवालयोंमें थोड़ी देर तक हरिकीर्तन सुनते तथा गणिकाओंका नृत्य देखते थे ॥ १०६ ॥ इस प्रकार विविध कौतुकोंको देखकर राम बहुत प्रसन्न होते थे । तदनन्तर देवताओंकी सवारीके कौतुक देखते थे ॥ १०७ ॥ इसके बाद सवारीपर चढ़कर रत्नके बने दीपकोंके प्रकाशमें चलते हुए राजमार्गसे अपने घर जाते थे ॥ १०८ ॥ फिर पुत्रों तथा भ्राताओंके साथ कुछ देरतक इधर-उधरकी बातें करते और डेढ़ पहर रात बीतनेके बाद रतिशालामें प्रविष्ट होते थे ॥ १०९ ॥ उधर सीता अपनी रतिशालामें फूलोंकी शय्या बिछाकर रामके आनेकी प्रतीक्षा करती रहती थीं ॥ ११० ॥ वे रामको आते देखतीं तो तुरन्त आगे बढ़तीं और उनका हाथ पकड़कर रतिशालाके भीतर ले जाती थीं ॥ १११ ॥ वहाँ सीताकी सेवामें उपस्थित दासियोंको विदा करके रामचन्द्र कमरेकी सारी खिड़कियाँ खोलकर शय्यापर बैठते थे ॥ ११२ ॥ इसके बाद सीताका हाथ पकड़कर उन्हें भी बैठाते और विविध क्रीड़ा करके सीताको प्रसन्न करने लग जाते थे ॥ ११३ ॥ इस प्रकार प्रसन्न रामको देखकर एक दिन सीताने लज्जित भावसे कहा—हे राजीवपत्राक्ष राम ! मैं आपसे यह पूछना चाहती हूँ कि कुशके जन्म लेनेके बाद फिर मेरे गर्भ क्यों नहीं रहता ? इसका कारण बतलाइये ॥ ११४–११५ ॥ इस प्रकार सीताका प्रश्न सुनकर मुस्कुराते हुए राम कहने लगे—हे कमलनयनी सीते ! तुमने बहुत अच्छा प्रश्न किया है । मैं सब कारण बतलाता हूँ ॥ ११६ ॥ हे सुमध्यमे ! तुम सावधान होकर सुनो । हे प्रिये ! पहले मुझे यह बतलाओ कि तुम अधिक पुत्र क्यों चाहती हो ? ॥ ११७ ॥ इस संसारके अच्छे कुलमें अधिक पुत्र होना ठीक नहीं है । बहुतेरे पुत्रोंमें यदि एक पुत्र भी दुराचारी निकल गया तो सारे कुलपर लाञ्छन लग जाता है ॥ ११८ ॥ इसलिये हे मैथिलि ! मुझे अधिक पुत्रोंकी इच्छा नहीं है । मेरी इच्छा न रहनेके कारण ही तुम्हें गर्भ नहीं रहता ॥११९॥

द्वावेवास्तां कदाचिच्च यथा नेत्रे भुजौ यथा । यथा तौ शशिसूर्यौ च यथाऽहं लक्ष्मणस्तथा ॥१२१॥
तथापि जातौ द्वौ पुत्रौ माऽग्रेऽस्तु संततिस्त्वतः । ततः प्राह पुनः सीता न जाता दुहिता मम ॥१२२॥
एकाऽपि कारणं तत्र किमस्ति तद्वदस्व माम् । तत्सीतावचनं श्रुत्वा जानकीं प्राह राघवः ॥१२३॥
त्वत्कन्या च मया कस्मै देयाऽत्र जगतीतले । मत्समानो नृपः कोऽस्ति सप्तद्वीपपतिर्महान् ॥१२४॥
यस्य पत्न्यै त्वया कार्यं शिरसा नमनं तदा । को वरोऽस्ति जगत्यां हि नृपस्य तनयो महान्॥१२५॥
प्रक्षालनीयौ चरणौ विवाहे यस्य वै मया । अतएव ममेच्छाऽभूत्कन्यायामपि नो प्रिये ॥१२६॥
कुशादीनां तु याः कन्यास्तास्ते किं नैव बालिकाः। किं यौवनमदात्सीते मोहं प्राप्ताऽसि भूतले ॥१२७॥
आत्मानं विस्मृताऽस्यद्य त्रैलोक्यजननीमिति । यदत्र विश्वे स्त्रीरूपं दृश्यते तत्तवांशजम् ॥१२८॥
पौरुषं दृश्यते यच्च तच्च सर्वं ममांशजम् । अत्र स्त्रीपुरुषा ये च ते पुत्रदुहितास्तव ॥१२९॥
एष्टव्या बहवः पुत्रा यद्येकोऽपि गयां व्रजेत् । इति यद्वचनं सीते सामान्यं विद्धि नो वरम् ॥१३०॥
एकः स तनयो धन्यः कुलं यस्तारयेन्निजम् । कृमितुल्याश्च ते पुत्राः शतशो दुष्टमार्गगाः ॥१३१॥
इति यद्वचनं सीते वरिष्ठं तत्स्मृतं बुधैः । अन्यत्ते कारणं वच्मि यस्मात्ते बहवः सुताः ॥१३२॥
मया नैवार्पितास्त्वत्र तच्छृणुष्व शुचिस्मिते । विनोदात्ते वदाम्यद्य माऽन्यथा कुरु मद्वचः ॥१३३॥
बहुपुत्रैश्च नारीणां तारुण्यं स्थास्यते न हि । मत्वेति तव तारुण्यच्छेदिनी बहुसन्ततिः ॥१३४॥
न मयाऽत्रार्पिता सीते गुह्यं विद्धीति मे प्रिये । यदीच्छाऽस्ति बहूनां ते तनयानां विदेहजे ॥१३५॥
तर्हि ते द्वापरे कृष्णरूपेण द्वारकापुरि । दश पुत्रान् प्रदास्यामि तदा तेषां सुखं भज ॥१३६॥

केवल एक ऐसे पुत्रकी इच्छा करनी चाहिए कि जो अपने अलौकिक गुणोंसे कुलको विभूषित कर सके। कोड़ों-की तरह व्यर्थ जन्म लेनेवाले बहुतेरे दुष्ट पुत्रोंसे क्या लाभ ॥ १२० ॥ बस, ये दोनों चिरञ्जीवी रहें। ये मेरे दो नेत्र, दो भुजा, चन्द्र-सूर्य और हमारे तथा लक्ष्मणके सदृश हैं। तुम्हारे दो बेटे तो हो ही गये हैं, अब और सन्तति न हो यही ठीक है। फिर सीताने कहा—लेकिन हमारी कोई कन्या क्यों नहीं हुई ? ॥ १२१ ॥ १२२ ॥ इसका क्या कारण है ? सो हमसे कहिये। सीताका यह प्रश्न सुनकर रामने कहा कि यदि तुम्हारे कन्या होता तो मैं किसको देता ? संसारमें कौन ऐसा है, जो मेरा जामाता बन सके ? हमारे बराबर कौन राजा है, जो सातों द्वीपोंका अधीश्वर है ॥ १२३ ॥ १२४ ॥ जिसकी स्त्रीको तुम मस्तक झुकाकर प्रणाम कर सको। संसारमें कौन ऐसा वर मिल सकता है कि विवाहमें जिसके पैर मैं अपने हाथोंसे धोता। इसी कारण मैंने पुत्रीकी इच्छा नहीं की ॥१२५॥१२६॥ फिर कुश आदिके जो कन्याएँ उत्पन्न हुई हैं, वे क्या तुम्हारी नहीं हैं ? हे सीते! यौवन-के मदसे तुम पागल तो नहीं हो गयी हो ? ॥ १२७ ॥ जो तीनों लोकोंकी माता होकर भी ऐसी ऊटपटांग बात कर रही हो। इस संसारमें जितना स्त्रीरूप दीखता है, वह सब तुम्हारे ही अंशसे जायमान हुआ है ॥१२८॥ संसारमें जितना भी पुरुषरूप है, वह मेरे अंशसे उत्पन्न हुआ है। यहाँ जितने पुरुष-स्त्री हैं, वे सब तुम्हारे लड़के और लड़कियाँ हैं ॥ १२९ ॥ शास्त्रोंमें जो यह बात कही गयी है कि "एक ही नहीं, मनुष्यको कई पुत्र उत्पन्न करनेकी इच्छा रखनी चाहिए। सम्भव है कि उनमेंसे कोई ऐसा सपूत निकल आये, जो गयामें श्राद्ध करके कुलका उद्धार करे।" यह एक साधारण बात है। यह कोई श्रेष्ठ उक्ति नहीं कही जा सकती ॥ १३० ॥ मेरी रायमें तो अपने कुलका विस्तार करनेवाला केवल एक पुत्र हो। दूषित मार्गपर चलनेवाले कीड़ेकी तरह उत्पन्न सैकड़ों बेटोंसे कोई लाभ नहीं ॥ १३१ ॥ मैं जिस बातका कह रहा हूँ, बहुतसे विद्वानों-ने उसे श्रेष्ठ माना है। दूसरा कारण भी बतलाता हूँ कि मैंने तुमसे कई पुत्र क्यों नहीं उत्पन्न किये। हे शुचिस्मिते! मैं विनोदवश इस बातको कह रहा हूँ। इसे व्यर्थ मत जाने देना, ठीकसे समझना ॥ १३२ ॥ बहुत पुत्रोंके होनेसे स्त्रीकी तरुणाई नहीं रह जाती। बहुत सन्तान होनेसे तुम्हारे यौवनका नाश हो जाता ॥ १३३ ॥ १३४ ॥ यही सोचकर मैंने अधिक सन्तति नहीं उत्पन्न की। यह गुप्त रहस्य जानना। हे विदेहजे! फिर भी बहुत सन्तान पानेकी ही तुम्हारी इच्छा हो तो द्वापरमें कृष्णरूपसे मैं तुम्हें

कन्यामपि तदैकां तेऽहं दास्यामि न संशयः । तदा ते बहुपुत्रैश्च तारुण्यं स्थास्यते न हि ॥१३७॥
अतः स्त्रीणां सहस्राणि षोडशैकशतं पुनः । तथा मुख्यास्त्वष्ट नार्यस्त्वया सह करोम्यहम् ॥१३८॥
तदा बहूनां पुत्राणां स्नुषाणां त्वं सुखं भज । अहं चापि बहुस्त्रीणां तदा सौख्यं भजामि वै ॥१३९॥
इति रामवचः श्रुत्वा तदा सीता स्मितानना । राघवं हर्षिता प्राह वाक्चातुर्यं कुतः प्रभो ॥१४०॥
एतल्लब्धं त्वया राम येन रञ्जयसीह माम् । एवं प्रोक्ता मया शिष्य दिनचर्या रमापतेः ॥१४१॥

इति श्रीशतकोटिरामचरितांतर्गते श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये राज्यकाण्डे उत्तरार्द्धे रामदिनचर्यावर्णनं नामैकोनविंशः सर्गः ॥ १९ ॥

विंशः सर्गः

(भगवानके विविध अवतार)

श्रीरामदास उवाच

अथैकदा वसिष्ठं हि प्रभाते चाब्रवील्लवः । किंचित्ते प्रष्टुमिच्छामि तत्त्वं वद मुनीश्वर ॥ १ ॥
सर्वं यद्यपि जानामि वाल्मीकेश्च प्रसादतः । तथापि लोकान्सकलान् ज्ञातुं पृच्छामि तेऽद्य हि ॥२॥
यदाऽस्माभिर्निशायां हि सर्वैर्निद्रा विधीयते । तदा संश्रूयते कर्णे मस्तत्स्कस्य वै ध्वनिः ॥ ३ ॥
अमुं मत्संशयं छिंधि परं कौतूहलं गुरो । लवस्येति वचः श्रुत्वा वसिष्ठस्तमथाब्रवीत् ॥ ४ ॥
बह्व्यश्च ब्रह्महत्याश्च रावणेन कृताः पुरा । येन देहेन सोऽद्यापि लंकायां ज्वलते लव ॥ ५ ॥
रावणो रामहस्तेन वधान्मुक्तिं गतः क्षणात् । रामचिंतनपुण्येन वैरबुद्ध्या कृतेन च ॥ ६ ॥
आत्मनः सकलं पापं तेन दग्धं पुरैव हि । देहेन न कृतं तस्य देवानां नमनं पुरा ॥ ७ ॥
सम्मार्जनादिकं कर्म देवागारेऽपि नो कृतम् । न कृता तीर्थयात्रा हि तेन देहेन भक्तितः ॥ ८ ॥

दस बेटे दूँगा। उस समय तुम बहुत सन्तानका भी सुख भोग लेना ॥ १३५ ॥ १३६ ॥ उस समय मैं तुम्हें एक कन्या भी दूँगा। इसमें कोई संशय नहीं है। किन्तु इतना अवश्य होगा कि अधिक सन्तान होनेसे तुम्हारा यौवन ढल जायगा ॥ १३७ ॥ इसी कारण मुझे सोलह हजार एक सौ स्त्रियोंके साथ विवाह करना पड़ेगा और तुम्हारे साथ आठ मेरी मुख्य स्त्रियाँ भी होंगी ॥ १३८ ॥ उस समय तुम बहुतसे पुत्रों और बहुओंका सुख भोगोगी और मैं भी बहुतसी स्त्रियोंका सुख भोग लूँगा ॥ १३९ ॥ इस प्रकार रामकी बात सुनकर सीताने मुसकाकर कहा—हे प्रभो ! तुमने बातचीत करनेको इतनी चतुराई कहाँसे सीखी ? जिससे इस तरह मेरा मनोरंजन कर रहे हो। इस तरह रामने बहुत देर तक आपसमें बातें कीं और दोनों एक दूसरेका आलिंगन करके आधी रातके समय सो गये। हे शिष्य ! मैंने इस प्रकार तुम्हें रामचन्द्रकी दिनचर्या सुनायी ॥ १४० ॥ १४१ ॥ इति श्रीशतकोटिरामचरितान्तर्गते श्रीमदानन्दरामायणे पाण्डेयरामतेजशास्त्रिकृत'ज्योत्स्ना' भाषाटीकासहिते राज्यकाण्डे उत्तरार्धे एकोनविंशः सर्गः ॥१९॥

श्रीरामदास कहने लगे—एक दिन सबेरे लवने वसिष्ठसे कहा कि हे मुनीश्वर ! मैं आपसे कुछ पूछना चाहता हूँ, उसे आप बताइए ॥ १ ॥ यद्यपि वाल्मीकिजीकी कृपासे मैं सब कुछ जानता हूँ। फिर भी संसारी लोगोंको ज्ञान प्राप्त करानेके लिए आज आपसे पूछ रहा हूँ ॥ २ ॥ जब कि रात्रिमें हम लोग सोते हैं, तब कानमें चौंकनीकी तरह किसकी ध्वनि सुनायी देती है ॥ ३ ॥ मेरे इस संशयका निवारण करिए। इसका मुझे बड़ा कौतूहल है। लवकी बात सुनकर वसिष्ठने कहा—॥ ४ ॥ रावणने जिस देहसे बहुत-सी ब्रह्महत्याएँ की थीं, हे लव ! वह देह आज भी लंकामें जल रही है ॥ ५ ॥ रामके हाथों वध होने, रामका स्मरण करने और उनके साथ वैरबुद्धि रखनेसे रावण क्षण भरमें मुक्त हो गया। आत्माके सारे पापोंको वह पहले ही जला

न देहेन न निष्कामं तपश्चर्याव्रतं कृतम् । न देहः श्रमितस्तस्य शीतोष्णसहनादिभिः ॥९॥
एतादृशस्तस्य देहो बहुब्राह्मणहिंसकः । लङ्कायां ज्वलतेऽद्यापि निशायां श्रूयतेऽत्र सः ॥१०॥
ज्वालानां भस्त्रवच्छब्दो यः पृष्टो मां त्वया लव । जनशब्दाद्दिने नैव श्रूयतेऽत्र जनैः सदा ॥११॥
चितायां यस्य चाद्यापि वायुपुत्रेण प्रत्यहम् । काष्ठभारशतं नीत्वा लङ्कायां क्षिप्यते मुहुः ॥१२॥
यदा तत्पापशांतिः स्यात्तदा भस्मीभविष्यति । अन्यत्ते कारणं वच्मि तच्छृणुष्व शिशो लव ॥१३॥
देहान्ते रावणेनापि रामाय याचितो वरः । वरेण येन लोकानां स्मरणं मे भविष्यति ॥१४॥
स त्वया मे वरो देयस्तच्छ्रुत्वा राघवोऽब्रवीत् । त्वद्देहज्वलिनि ज्वालाशब्दः सर्वे जना भुवि ॥१५॥
श्रोष्यन्ति सप्तद्वीपेषु तेन ते स्मरणं सदा । भविष्यति हि सर्वेषां ब्रह्मांडांतर्निवासिनाम् ॥१६॥
एवं श्रुत्वा दशास्यः स वरं रामे लयं ययौ । एवं यच्च त्वया पृष्टं तत्सर्वं कथितं मया ॥१७॥
गुरोरिति वचः श्रुत्वा तं नत्वा स लवोऽपि च । स्वगेहं गतसंदेहः प्रययौ शिविकास्थितः ॥१८॥
एकदा बन्धुभिर्गेहे पुत्राभ्यां सीतया सह । मुनिभिर्गुरुणा रामः संस्थितः प्राह हर्षितः ॥१९॥

श्रीरामचन्द्र उवाच

शृण्वंतु मुनयः सर्वे सर्वे शृण्वंतु बान्धवाः । पुत्रौ सीता मन्त्रिणश्च सर्वाः शृण्वन्तु मातरः ॥२०॥
यथा यथाऽवतारेऽस्मिन् सुखं भुक्तं हि सीतया । न तथाऽन्येषु सर्वेषु ह्यवतारेषु वै कदा ॥२१॥
अवतारास्तु बहवः शतशोऽत्र मया धृताः । नानाकार्याणि वै कर्तुं तेषां संख्या न विद्यते ॥२२॥
सप्तावतारास्तेष्वेव श्रेष्ठास्त्वत्र मया धृताः । ईदृशं न सुखं तेषु कदा भुक्तं मया भुवि ॥२३॥
शंखासुरो महादैत्यः पूर्वं जातो महोदधौ । येन वेदा हृताः सर्वे सत्यलोकात् कृते युगे ॥२४॥
तदर्थं मत्स्यरूपेण ह्यवतारो मया धृतः । तं हत्वा क्षणमात्रेण विष्णुरूपं मया धृतम् ॥२५॥

चुका था, किन्तु शरीरसे उसने कभी देवताओंको नमस्कार भी नहीं किया ॥ ६ ॥ ७ ॥ न कभी देवमन्दिरकी सफाई की, न उस शरीरसे तीर्थयात्रा की, न अपने शरीरसे कोई निष्काम तपश्चर्या की और न शीत-उष्णको ही सहन करके शरीरसे परिश्रम किया। ब्राह्मणोंकी हत्या करनेवाली उसकी देह आज भी लङ्कामें जल रही है। उसीका शब्द प्रत्येक मनुष्यको सुनाई देता है। ज्वालाकी धकधकाहटका निनाद धौंकनीकी तरह सुनाई पड़ता है ॥ ८–१० ॥ दिनके समय मनुष्योंके कोलाहलसे वह शब्द नहीं सुन पड़ता। आज भी हनुमान्जीको रोज सौ भार लकड़ी उसकी चितामें डालनी पड़ती है ॥ ११ ॥ १२ ॥ जब उसके पाप नष्ट होंगे, तब कहीं उसका शरीर जलेगा। हे बच्चे लव! मैं एक दूसरा कारण भी बतलाता हूँ, सो सुनो ॥ १३ ॥ अपने देहान्तके समय रावणने रामसे यह वरदान माँगा था कि आप हमें कोई ऐसा वर दीजिए, जिससे संसारके लोग मेरा भी स्मरण किया करें ॥ १४ ॥ रामने कहा कि तुम्हारी देह जलानेवाली आगका धक्-धक् शब्द सातों द्वीपोंके हर एक व्यक्तिको सुनाई पड़ता रहेगा। इसीसे सबको तुम्हारी याद आती रहेगी ॥ १५ ॥ १६ ॥ इस प्रकारका वरदान पाकर वह रामके शरीरमें लीन हो गया। इस तरह तुमने हमसे जैसा प्रश्न किया, सो सब कह सुनाया ॥ १७ ॥ गुरुकी बात सुनकर लवका सन्देह निवृत्त हो गया और वे पालकीमें बैठकर अपने घर चले गये ॥ १८ ॥ एक दिन सब भाइयों, पुत्रों, सीता तथा गुरुके साथ रामचन्द्रजी बैठे थे। प्रसङ्गवश हर्षित होकर राम कहने लगे—॥ १९ ॥ समस्त ऋषि, मेरे सब भाई, दोनों बेटे, सीता, समस्त मन्त्री और माताएँ सब लोग मेरी बात सुनें ॥ २० ॥ मैंने इस अवतारमें सीताके साथ जितना सुख भोगा है, उतना किसी भी अवतारमें नहीं भोगा ॥ २१ ॥ विविध प्रकारके कार्यसाधन करनेके लिए मैंने इतने अवतार लिये, जिनकी कोई संख्या नहीं है ॥ २२ ॥ फिर भी मेरे सात अवतार मुख्य हैं, लेकिन उन सातोंमें भी मैंने इतना आनन्द नहीं पाया ॥ २३ ॥ आजसे बहुत दिनों पहले महोदधिमें एक शङ्खासुर नामका दैत्य हुआ था, जो सत्यलोकसे चारों वेदोंको चुरा ले गया था। उसके लिये मैंने मत्स्यरूप धारण किया और उसे मारकर फिर विष्णुरूपधारी बन गया ॥ २४ ॥ २५ ॥ उस मत्स्य तथा तिर्यक् (वराह) योनिमें कोई विशेष सुख नहीं था।

किं सुखं झषजात्यां हि तिर्यग्योन्यपि गर्हिता । अतस्तस्मिन्नवतारे न स्थितं हि चिरं मया ॥२६॥
ततः समुद्रमथने मज्जंतं मन्दराचलम् । दृष्ट्वा धृत्वा कूर्मरूपं स्वपृष्ठे पर्वतो धृतः ॥२७॥
तच्चापि गर्हितं रूपं मत्वा नैव चिरं धृतम् । किं वारिचरजात्यां हि सुखं तत्र भवेज्जले ॥२८॥
ततो दृष्ट्वा सागरे हि मज्जन्तीं पृथिवीं मया । क्रोडरूपं महद्धृत्वा दंष्ट्रायामवनिर्धृता ॥२९॥
मम पृथ्वीति संस्पर्धी हिरण्याक्षो मया हतः । किं सुखं पशुयोन्यां हि गर्हितायां भवेज्जले ॥३०॥
अतस्तस्मिंश्चावतारे न लब्धं हि सुखं मया । प्रह्लादवचनात्स्तम्भान्नारसिंहस्वरूपधृक् ॥३१॥
अवतीर्णस्त्वहं भूम्यां हिरण्यकशिपुः क्षणात् । मया तदा हतः क्रोधात्तद्रूपमतिभास्वरम् ॥३२॥
यद्भयान्निकटं कोऽपि प्रह्लादाच्च विनाऽपरः । न मानवः स्थितो भूम्यां तत्र वार्ता सुखस्य का॥३३॥
तदाऽतिक्रोधरूपेण सिंहयोन्यां तु किं सुखम् । मयाऽनुभूतं विपुलं सुखेच्छातृप्तिमाप न ॥३४॥
ततो बलेर्मोहनार्थं खर्वरूपं तु वामनम् । धृत्वा कृत्वा त्रिपद्याश्च भूमेः पातालगः कृतः ॥३५॥
तत्र किं मुनिदेहेन वने सौख्यं भवेन्मम । न यत्रास्ति यथायोग्यं देहमप्यतिसुन्दरम् ॥३६॥
तत्र का सुखवार्ताऽस्ति भूम्यां मे ब्रह्मचारिणः । अतस्तदैव सहसा नाकलोकं गतं मया ॥३७॥
पुनर्विप्रोद्भवेनैव जामदग्न्यस्वरूपिणा । एकविंशतिवारं हि निःक्षत्रा पृथिवी कृता ॥३८॥
सहस्रार्जुननामा स महावीरो हतस्तदा । तच्चापि क्रोधसंयुक्तं मुनिरूपं मया धृतम् ॥३९॥
सुखवार्ता मुनीनां हि का तत्र वनचारिणाम् । ज्ञात्वेत्थं जन्मना तेन तपश्चर्या मया कृता ॥४०॥
किं सुखं तपतस्तत्र वने मे जातमुत्तमम् । एवं षड् वै धृताः पूर्वमवतारा मया भुवि ॥४१॥
न जाता सुखवार्ताऽपि तत्र क्वापि मुनीश्वराः । द्वापरेऽग्रे कृष्णरूपं गोकुलेऽत्र करोम्यहम् ॥४२॥

इसीलिये उस अवतारमें उस रूपसे मैं ज्यादा दिनोंतक नहीं रहा ॥ २६ ॥ इसके बाद समुद्रमन्थनके समय जब मैंने मन्दराचल पर्वतको डूबते देखा, तब कूर्म (कछुए) का रूप धारण करके उस पर्वतको अपनी पीठपर धारण किया ॥ २७ ॥ उस स्वरूपको भी अच्छा न समझकर मैं अधिक दिनोंतक उस रूपमें नहीं रहा । भला जलचर जाति तथा जलमें रहकर मैं सुखी कैसे हो सकता था ? ॥ २८ ॥ तदनन्तर पृथ्वीको समुद्रमें डूबती देखकर मैंने क्रोड (शूकर) रूप धारण करके पृथ्वीको अपने दाँतोंपर रखकर उठाया ॥ २९ ॥ इस पृथ्वीपर मेरा राज्य है। अतएव यह पृथ्वी मेरी है। इस प्रकार डींग मारनेवाले हिरण्याक्ष नामक असुरका मैंने संहार किया। पशुयोनिमें रहकर भी हमें कोई विशेष सुख नहीं मिला। इसलिए उस रूपको भी जल्दी ही त्याग दिया। फिर प्रह्लादके कथनानुसार नृसिंहरूप धारण करके खंभेसे निकलना पड़ा ॥ ३० ॥ ३१ ॥ उस समय अवतार लेकर मैंने क्षणमात्रमें हिरण्यकशिपुको समाप्त कर दिया। मेरा वह रूप बड़ा तेजस्वी था ॥ ३२ ॥ उसके भयसे प्रह्लादके सिवाय मेरे पास जानेकी सामर्थ्य किसीमें नहीं थी। बताओ, ऐसी योनिमें मैं सुखी कैसे रह सकता था। उस समय मेरा वह क्रोधपूर्ण रूप था, दूसरे सिंहकी योनि थी। उस योनिको मैंने अनुभव कर लिया। इच्छा थी कि इस रूपमें मैं कुछ आनन्द पाऊँ, लेकिन नहीं पा सका ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ तत्पश्चात् बलिको नीचा दिखानेके लिए मैंने बहुत ही छोटा वामनका रूप धारण किया और तीन पैरोंमें सारी त्रिलोकी नापकर बलिको पाताल लोकमें भेज दिया ॥ ३५ ॥ उस समय भी एक तो मुनिका वेष, दूसरे वनोंमें रहना, तीसरे शरीर भी जितना चाहिए उतना सुन्दर नहीं था ॥ ३६ ॥ वनचरकी दशामें पृथ्वीपर रहकर सुख कहाँ था ? इसी लिए उस रूपको भी शीघ्र त्यागकर मैं स्वर्गलोकको लौट गया ॥ ३७ ॥ फिर मैंने ब्राह्मणरूपसे परशुरामका अवतार लेकर इक्कीस बार पृथ्वीको क्षत्रियशून्य कर डाला। उसी समय महावीर सहस्रार्जुनका वध किया। उस समय भी एक क्रोधी मुनिका रूप धारण करना पड़ा था ॥ ३८ ॥ ३९ ॥ वनमें रहनेवाले मुनियोंको भला कब सुख मिल सकता था। यह समझकर मैंने उस जन्ममें भी तपस्या ही की ॥ ४० ॥ उस तपस्वी जीवनमें वनोंमें रहकर मुझे क्या सुख मिला होगा, इसका आप लोग भी अनुमान कर सकते हैं। इस तरह मैंने छः

नेदृशं तत्र भोक्ष्यामि सुखं शृणुत विस्तरात् । कारागृहस्थितिः पित्रोर्जन्मादावेव मे भवेत् ॥४३॥
मातृपितृविहीनश्च तदा स्थास्यामि शैशवे । पारकीये नन्दगेहे वृद्धिं गच्छामि गोकुले ॥४४॥
गोपवेषस्य किं सौख्यं गोपृष्ठे भ्रमतो मम । स्त्रीगोनागाश्वपक्ष्यादि बहूंस्तत्र निहन्म्यहम् ॥४५॥
देवपत्नीवरात्कुर्यां परस्त्रीगमनादिकम् । नानाचौर्यादि दुष्कर्म कृत्वाऽहं गोकुले ततः ॥४६॥
मथुरायां हनिष्यामि सगजं कंसमातुलम् । तत्र दास्या रतिं कुर्यां नैष्ठुर्यं गोपिकादिषु ॥४७॥
यद्भुक्ता गोपिकाः सर्वा रामो बन्धुर्भजिष्यति । अन्यच्च कालयवनभयान्मे हि पराभवः ॥४८॥
न पराभवतो दुःखं किंचिदस्ति जगत्त्रये । ततोऽहं स्वस्थलं त्यक्त्वा तटाके सागरस्य च ॥४९॥
स्थास्यामि स्वल्पकालं हि चिरकालं न मे स्थितिः । न स्थलं मध्यदेशे हि न राज्यं मे भविष्यति ॥५०॥
विना राज्येन किं सौख्यं पराज्ञावशवर्तिनः । छत्रादिराज्यभोगाश्च तस्मिन् जन्मनि मे न हि ॥५१॥
बहुस्त्रीणामेकदेहस्तदाऽयं मे भविष्यति । तदा कासां सुखं देयं दुःखं कासां तदा मया ॥५२॥
एवं सदा व्यग्रचित्तस्तासां रंजनकर्मणि । तत्र का सुखवार्त्ताऽस्ति निशायां भ्रमतो मम ॥५३॥
घटिकायां च षट्त्रिंशत्पंचशतगृहाणि हि । पर्यटन्नप्यष्टविंशत्स्त्रीगेहानि तदा मम ।५४॥
शेषाणि गंतुं नैवास्ति कालो भानुरुदेष्यति । त्रिंशद्घटीमयी रात्रिस्त्वेवं मे सा गमिष्यति ॥५५॥
तदा मे भ्रमतो रात्रौ कुतो निद्रा कुतः सुखम् । यदा भवेन्निशावृद्धिः किंचिन्निद्रां तदाऽऽप्नुयाम् ॥५६॥
यस्येच्छाऽस्त्यत्र दुःखं हि भोक्तुं तेन नरेण हि । कर्तव्या बह्वयः पत्न्यो द्रष्टव्यं तत्फलं ततः ॥५७॥
एवं भवेन्न मे सौख्यं द्वापरे कृष्णजन्मनि । भविष्यत्यवतारस्य समाप्तिर्विप्रशापतः ॥५८॥

अवतार लिये ॥ ४१ ॥ लेकिन उन छहोंमें मुझे सुखका नाम भी नहीं मिला। आगे द्वापर युगमें इस पृथ्वीपर गोकुलमें कृष्णरूपे मैं अवतार लूँगा ॥ ४२ ॥ लेकिन ऐसा सुख उस अवतारमें भी नहीं पा सकूँगा। सुनिए, उस अवतारका विवरण विस्तारपूर्वक आप लोगोंको बतलाता हूँ। जन्मके पहले ही मेरे माता-पिता कारागारमें रहेंगे ॥ ४३ ॥ शैशव कालमें ही माता-पितासे वियुक्त होकर एक अन्य व्यक्ति (नन्द) के घर गोकुलमें रहकर पलूँगा। उस गोपवेषसे गौओंके पीछे-पीछे घूमनेमें मुझे क्या सुख मिलेगा? फिर गो (वत्सासुर), स्त्री (पूतना), नाग (कालिया), अश्व (केशी) तथा पक्षी (बकासुर) को मारूँगा ॥४४॥४५॥ देवस्त्रियोंके वरदानसे परस्त्रीगमन आदि (पाप) करूँगा। फिर गोकुलमें चोरी आदि दुष्कर्म कर लेनेके बाद मथुरा जाकर हाथी कुवलयापीडके साथ मामा कंसको मारूँगा। वहाँ मुझे गोपियोंके साथ निठुराई करके दासी (कुबड़ी) के साथ विलास भी करना पड़ेगा ॥ ४६ ॥ ४७ ॥ जिन गोपियोंको मैंने भोगा होगा, भविष्यमें बलरामजी उन्हें भोगेंगे। फिर कालयवनके भयसे मुझे परास्त भी होना पड़ेगा ॥ ४८ ॥ पराजयसे बढ़कर संसारमें और कोई दुःख नहीं हो सकता। फिर समुद्रके किनारे अपना निवासस्थान बनाकर कुछ दिनों तक वहाँ ही रहूँगा। यह निश्चित है कि उस अवतारमें भी मैं अधिक दिनतक संसारमें न रहूँगा। मध्य देशमें निवासस्थान न रहनेके कारण मेरे पास कोई राज्य भी नहीं रहेगा ॥ ४९ ॥ ५० ॥ राज्यरहित होकर दूसरेकी आज्ञामें रहनेसे भला क्या सुख मिल सकता है? उस जन्ममें राजाओंकी उपभोग्य वस्तुयें छत्र-चमर आदि भी मेरे पास नहीं रहेंगे ॥ ५१ ॥ बहुत-सी स्त्रियोंके बीच मेरा अकेला शरीर रहेगा। उस समय रात-दिन यही चिन्ता रहा करेगी कि इनमेंसे किसे सुख दें और किसे दुःख। सदा मुझे उनका मनुहार करना पड़ेगा। भला रातभर एक घरसे दूसरे घरकी दौड़ मारनेमें मुझे क्या सुख मिल सकता है? ॥५२॥५३॥ उस समय एक घड़ीमें पाँच सौ छत्तीस घरोंका चक्कर लगानेपर भी अट्ठाईस घर छूट जायेंगे और यही सोचना पड़ेगा कि सूर्योदयका समय हो रहा है, अब किसीके यहाँ जानेका समय नहीं है। इस तरह तीस घड़ीकी रातें बीतेंगी ॥ ५४ ॥ ५५ ॥ उस समय रातभर घूमनेमें निद्रा तथा सुख क्योंकर मिल सकेगा? हाँ, जब रात कुछ बड़ी होगी तो चाहे घड़ी
34. आधी घड़ी सोनेके लिये समय मिल जाय ॥ ५६ ॥ जिस मनुष्यको संसारमें दुःख भोगनेकी इच्छा हो, वह कई स्त्रियोंको रख ले और फिर देखे उसका फल ॥ ५७ ॥ भाव यह है कि मुझे उस अवतारमें भी कुछ सुख

ततो दैत्यान्यज्ञकर्मसक्तान्दृष्ट्वा पुनस्त्वहम् । कलावग्रे बुद्धरूपं धरिष्याम्यतिमोहनम् ॥५९॥
निजवाक्यैर्मतिस्तेषां दैत्यानां यज्ञकर्मतः । परिवर्त्य कियत्कालं स्थास्यामि जगतीतले ॥६०॥
तदाऽहं मौनमाश्रित्य मलिनः केशलुञ्चकः । युगादिजीवधारी च सर्वेषामुपदेशकृत् ॥६१॥
अहिंसनव्रतं सर्वान् दर्शयिष्याम्यहं जनान् । तज्जन्मन्यतिदुःखं मे केशयूकामलादिना ॥६२॥
ततोऽग्रेऽहं धरिष्यामि कल्किरूपं महत्कलेः । अंते दृष्ट्वा जनानां च सर्वत्र वर्णसंकरम् ॥६३॥
भूत्वाऽत्र विप्रदेहेन खड्गधारी हयस्थितः । संहारं क्षणमात्रेण दुष्टानां हि करोम्यहम् ॥६४॥
सोऽवतारो नातिचिरं मम स्थास्यति भूतले । न तत्र सुखलेशोऽपि मे भविष्यति भूसुराः ॥६५॥
प्रवर्तयिष्यति पुनस्ततोऽग्रे तत् कृतं युगम् । पूर्ववच्च पुनस्तत्र ह्यवतारान्करोम्यहम् ॥६६॥
एवं नवावतारेषु न भुक्तं हि सुखं मया । अतस्त्वस्मिन्नवतारे सुख भुक्तं यथेच्छया ॥६७॥
नानेन सदृशः कश्चिदवतारोऽत्रनीतले । पूर्वं भूतो ममाग्रेऽपि न भविष्यति वै कदा ॥६८॥
सप्तलोकाधिपत्यं च नारी सीता च वर्तते । यत्रेमौ बालकौ पुत्रौ महावीरौ धनुर्धरौ ॥६९॥
यत्र त्वेते बंधवश्च त्रैलोक्यजयिनः शुभाः । कामधेन्वादिरत्नानि सप्त यत्र ममान्तिके ॥७०॥
साक्षादयं वेदरूपो वसिष्ठस्त्वस्ति मे गुरुः । आर्यावर्ते पुण्यदेशेऽयोध्यायां वसतिर्मम ॥७१॥
राज्यभोगादिभोगानां भोक्ताऽहं त्वत्र नोऽपरः । यत्र सत्यव्रतं मेऽस्ति यत्रैकदयिताव्रतम् ॥७२॥
यत्रैकेनैव बाणेन मया बाल्यादिका हताः । यत्रैकैव हि सीताया मम शय्या न चापरा ॥७३॥
यत्राप्रतिहताज्ञा मे त्रैलोक्ये हि मुनीश्वराः । यत्र यानं पुष्पकं तु यत्र दूतोऽञ्जनीसुतः ॥७४॥
सुग्रीवराक्षसेन्द्रौ च यत्र मित्रे ममांतिके । कोदण्डसदृशं चापं यत्र मेऽरिनिषूदनम् ॥७५॥
सूर्यवंशे यत्र जन्म ततो दशरथो वरः । कौसल्या यत्र जननी यत्राहं स्ववशः सदा ॥७६॥

नहीं मिलेगा। अन्तमें ब्राह्मणके शापसे मेरे उस अवतारकी समाप्ति होगी ॥ ५८ ॥ इसके अनन्तर कलिमें दैत्योंको यज्ञकर्म करते देखकर मैं अतिशय मनोमोहक बौद्ध अवतार लूँगा ॥ ५९ ॥ अपनी बातोंसे उन दुष्टोंकी मति यज्ञकी ओरसे फेरकर कुछ दिनों तक मैं संसारमें रहूँगा ॥ ६० ॥ उस समय मैं मौनव्रत धारण करके मैले-कुचैले कपड़े पहने और कितने ही जूँ आदि जीवोंको शरीरमें पाले हुए सारे संसारके लोगोंको उपदेश दूँगा। सबको अहिंसाव्रतका अभिनय दिखाऊँगा। उस जन्ममें बालोंमें पड़े हुए जूएँ, कपड़ोंके चीलर तथा खटमल आदिसे महान् दुःख उठाना पड़ेगा ॥ ६१ ॥ ६२ ॥ फिर कलियुगके अन्तमें सब लोगोंको वर्णसंकर होते देखकर मैं कल्कि अवतार लूँगा ॥ ६३ ॥ उस जन्ममें एक विप्रके यहाँ उत्पन्न हो और घोड़ेपर सवार होकर क्षणमात्रमें दुष्टोंका संहार कर डालूँगा ॥ ६४ ॥ हे ब्राह्मणों ! वह अवतार भी चिरस्थायी नहीं होगा। अतएव उसमें भी मैं कुछ सुख नहीं भोग सकूँगा ॥ ६५ ॥ उसके बाद फिर सत्ययुग आ जायगा और मैं पहलेकी तरह फिर अवतार लेता रहूँगा ॥ ६६ ॥ इस तरह नौ अवतारोंमें कुछ सुख नहीं मिलेगा। किन्तु इस अवतारमें मैंने अपने इच्छानुसार सुख भोग लिया है ॥ ६७ ॥ इस अवतारके समान कोई अवतार जगतीतलमें न हुआ है, न होगा ॥ ६८ ॥ जिसमें सातों द्वीपोंका प्रभुत्व, सीता जैसी स्त्री, कुश-लव जैसे महावीर और धनुर्धारी पुत्र, तीनों लोकोंको जीतनेवाले भ्राता और कामधेनु आदि सात रत्न विद्यमान हैं ॥ ६९ ॥ ७० ॥ जहाँ वेदके साक्षात् स्वरूप वसिष्ठ जैसे गुरु हैं, आर्यावर्त जैसे पवित्र देशमें निवासस्थान है, राज्यभोगको प्रतिद्वन्द्विता करनेवाला और कोई नहीं है, जहाँ सत्यका व्रत है, जहाँ अटल एकपत्नीव्रत है ॥ ७१ ॥ ७२ ॥ जहाँ केवल एक बाणसे शत्रुको मारनेकी सामर्थ्य है, जहाँ सीताकी और हमारी एक शय्या है ॥ ७३ ॥ जहाँ मुनिगण बेरोक-टोक जहाँ चाहें, तहाँ भी जा सकते हैं। जहाँ कि पुष्पकविमान जैसी सवारी है ॥ ७४ ॥ सुग्रीव और विभीषण जैसे मित्र हैं, शत्रुओंका नाश करनेवाला कोदण्ड जैसा धनुष है ॥ ७५ ॥ सूर्यवंशमें जन्म हुआ है, दशरथ जैसे पिता और कौसल्या जैसी

सुमेधासदृशी यत्र मे श्वश्रूः स्नेहवर्धिनी । विदेहः श्वशुरो यत्र विद्यादो यत्र गाधिजः ॥७७॥
लक्ष्मणो यत्र मे मन्त्री सरयूर्यत्र मे नदी । पार्श्वगा ह्यङ्गदाद्याश्च चतुर्दन्तो गजो महान् ॥७८॥
द्विजेच्छापूरणं यत्र व्रतं मेऽकुण्ठितं सदा । इदं वैकुण्ठसदृशं गृहं यत्रातिभासुरम् ॥७९॥
चिंतामणिरलंकारो हृदये यत्र वर्तते । एकादश सहस्राणि वर्षाण्यायुश्चिरं मम ॥८०॥
अनम्रं मे शिरश्चेदं केषामप्यवनीभृताम् । एवं मया सुखं भुक्तमिह जन्मनि भूसुराः ॥८१॥
नाल्पा वाप्युर्वरिताऽस्ति सुखेच्छा मम भूतले । अतएवावतारोऽयं पूर्णरूपान्मया धृतः ॥८२॥
भूतभाव्यावतारा ये तेंऽशादेव मया धृताः । यद्गतं तु वने पूर्वं सीतया बन्धुना मया ॥८३॥
तच्च लोकोपदेशार्थं भूभारहरणाय च । जनोपदेशः कीदृक् स कृतस्तं प्रवदाम्यहम् ॥८४॥
पितुर्वचो माननीयं यद्यप्यतिश्रमप्रदम् । पुत्रैरित्युपदेशार्थं मया वाक्यं पितुः कृतम् ॥८५॥
न तदा किं मृषा कर्तुं पितुर्वाक्यं बलं मयि । तथापि लोकशिक्षार्थं तद्वाक्यं पालितं मया ॥८६॥
न हंतव्या मया क्रोधाद्दुष्टा किं कैकयी तदा । तथा सा मंथरा चापि मे राज्ये विघ्नकारिणी ॥८७॥
किं तदा कुंठिता शक्तिः कैकेयीमंथरावधे । स्त्रीहत्या नैव कर्तव्या चेति सर्वान्सुशिक्षितम् ॥८८॥
सापत्नमातृवाक्यं तु पालनीयं स्वमातृवत् । स्वसुखार्थं वधोऽन्यस्य न कर्तव्यो जनैरिति ॥८९॥
उपदेष्टुं मया नैव कैकयीमंथरे हते । न बंधुहिंसा कर्तव्या परराज्यं न कांक्षयेत् ॥९०॥
अहमुपदिशन्नित्थं जनान्बंधुर्हतो न मे । मृते पितर्यपि हृतं न तद्राज्यं बलान्मया ॥९१॥
राज्यासक्ता नरा भूम्यां भोगासक्ता भवन्तु न । उपदेष्टुं जनानित्थमहं पूर्वं वनं गतः । ९२॥
मातृपितृसुहृत्पुत्रस्नेहासक्तिं न कारयेत् । इत्थं मयोपदिशता त्यक्तः स्नेहस्तदा द्विजाः ॥९३॥

माता है, जहाँ कि मैं सदा स्वाधीन रहता हूँ ॥ ७६ ॥ स्नेहको बढ़ानेवाली सुमेधा जैसी सास है, विदेह जैसे ससुर हैं, विश्वामित्र जैसे विद्यादाता गुरु हैं ॥ ७७ ॥ लक्ष्मण जैसे मंत्री हैं, सरयू जैसी नदी है, अङ्गदादि वीर अङ्गरक्षक हैं, बड़ा भारी चतुर्दन्त हाथी है ॥ ७८ ॥ ब्राह्मणोंकी इच्छा पूर्ण करना जैसा अकुण्ठित व्रत हैं, वैकुण्ठके समान सुन्दर भवन है ॥ ७९ ॥ चिन्तामणि जैसा अलङ्कार सदा हृदयपर रहता है, जहाँ ग्यारह हजार वर्षोंकी लम्बी आयु है ॥ ८० ॥ किसी भी राजाके सामने न झुकनेवाला यह मस्तक है। यहाँ जो सुख है, सो क्या अन्यत्र मिल सकता है ? हे विभो ! इस संसारमें मैंने जिन सुखोंका भोग किया है, सो बतला दिया ॥ ८१ ॥ अब मेरे हृदयमें किसी प्रकारका भी सुखभोग करनेकी कामना शेष नहीं रह गयी है। इसीलिए मैंने पूर्णरूपसे इस अवतारको धारण किया था। भूत तथा भविष्यके अवतारोंमें जो अंश बाकी रह गये थे, उनके समेत यह अवतार लिया है। जो बाल्यकालमें सीता तथा भाईके साथ वनकी यात्रा की थी, वह दुःख भोगनेके लिए नहीं। बल्कि दुनियाँके लोगोंको उपदेश देनेके लिए की थी। उससे मैंने संसारी जनोंको कौन-सा उपदेश दिया है, सो भी बतला रहा हूँ ॥ ८२–८४ ॥ चाहे अतिशय परिश्रमसाध्य हो, फिर भी पिताकी बात माननी चाहिये। यह उपदेश देनेके लिए मैंने उस समय पिताकी आज्ञाका पालन किया था ॥८५॥ क्या पिताकी बात टालनेकी सामर्थ्य मुझमें नहीं थी ? थी, पर लोकशिक्षाके लिये उनकी बात मान ली थी ॥८६॥ क्या उस समय दुष्टा कैकेयी तथा राज्यतिलकमें विघ्न डालनेवाली पापिनी मन्थराके वध करनेका पराक्रम मुझमें नहीं था ? था, पर उनको दण्ड न देकर मैंने संसारको यह शिक्षा दी कि स्त्रीका वध कभी भी न करना चाहिए और अपनी सौतेली माँकी आज्ञाका भी उसी तरह पालन करना चाहिए, जैसे लोग अपनी सगी माताका करते हैं। दूसरे मुझे लोगोंको यह भी उपदेश देना था कि अपने सुखके लिए परायेका वध न करना चाहिए। इसीसे कैकेयी और मन्थराको नहीं मारा ॥ ८७–८९ ॥ अपने भाईकी हिंसा न करे और दूसरेका राज्य न हड़पना चाहे। यह उपदेश देनेहीके लिये मैंने भरतपर आँख नहीं उठायी, उन्हें नहीं मारना
35 चाहा। पिताके स्वर्गवासी हो जानेपर भी मैंने उस राज्यको नहीं स्वीकार किया ॥ ९० ॥ ९१ ॥ राज्यमें आसक्त लोग सर्वथा विलासी न हो जायँ, यह उपदेश देनेके लिए ही मैं वनको गया था ॥ ९२ ॥ माता, पिता, मित्र,

सुखं दुःखं समं ज्ञेयं सुखं हर्षो न मानयेत् । शोकः कार्यो विपत्तौ न चेति लोकान् प्रदर्शितम् ॥९४॥
राज्यसौख्यं मया त्यक्त्वा भुक्ताः क्लेशास्तदा वने । कामादीनां रिपूणां च दुष्टानां हि वधो भुवि ॥९५॥
जनैः कार्यं सदा चेति ह्युपदेष्टुं मया वने । बहवो निहतास्तत्र राक्षसा मुनिहिंसकाः ॥९६॥
स्त्रीसंगः सर्वदा त्याजस्त्वेकाकी च तपश्चरेत् । नासक्तं निजचित्तं हि स्त्रीषु कार्यं नरैः कदा ॥९७॥
इत्थं मयोपदिशता सीतायाश्च तदा वने । वियोगो दर्शितो लोकान् मत्तो भिन्ना न जानकी९८॥
कदापि जायते विप्राः सत्यं चेदं ब्रवीम्यहम् । आर्तस्य रक्षणं कार्यं कार्यो दुष्टस्य निग्रहः ॥९९॥
मयोपदिशता चेत्थं जनान्सुग्रीवराक्षसौ । रक्षितौ निहतौ वालिरावणावितरे हताः ॥१००॥
कीर्तिः कार्या जनेष्वत्र मयोपदिशता त्विति । पाषाणास्तारिता नीरे किमाकाशगतिर्न मे ॥१०१॥
यद्यपि शुद्धे स्वे चित्ते विरुद्धं च जनेषु यत् । त्यक्तव्यं तत्प्रियं चापि मयोपदिशता त्विति ।१०२॥
जनानपापान् ज्ञात्वाऽपि लंकायां दिव्यदानतः । लोकापवादभीत्या सा पुरा त्यक्ताऽत्र जानकी॥१०३॥
स्वयमेवात्र यत्त्यक्तं शुद्धं ज्ञात्वा हि तत्पुनः । अंगीकार्यं जनैर्बुद्ध्या मयोपदिशता त्विति ॥१०४॥
जनानंगीकृता सीता पुरा त्यक्ता मया शुभा । एकपत्नीव्रतादीनि राजकर्माण्यनेकशः ॥१०५॥
अश्वमेधादियज्ञश्च सदाचारो जपस्ततः । स्नानसंध्याधिकं यद्यन्मयाऽत्र क्रियते सदा ॥१०६॥
तत्सर्वं जनशिक्षार्थं मुक्तसंगस्य किं मम । कर्मातीतस्य भो विप्राः सदानन्दस्वरूपिणः ॥१०७॥
अहं सदाऽऽनंदमयः सुखात्मा सुखदो नृणाम् । अवतारपरत्वेन सुखं दुःखं मयाऽकथि ॥१०८॥
यदत्र भवतामग्रे कौतुकार्थं न संशयः । उपासकानां तोषार्थमवतारः स्वयं मया ॥१०९॥

पुत्र आदिके स्नेहमें अधिक आसक्त न हो जाना चाहिए। यह उपदेश देते हुए मैंने स्नेहका परित्याग कर दिया था।। ९३ ॥ सुख-दुःख दोनोंको समान समझना चाहिए। सुखमें न विशेष हर्षित हो, न दुःखमें घबड़ाये। यह उपदेश देनेके लिए ही मैंने राज्यसुखको ठोकर मारकर वनके क्लेशोंको अपनाया था। काम-क्रोध आदि दुष्ट शत्रुओंको मारना चाहिए ॥ ९४ ॥ ९५ ॥ यह उपदेश देनेके लिए ही मैंने वनमें रहकर बहुतसे मुनिहिंसक राक्षसोंको मारा था ॥९६॥ स्त्रियोंमें अधिक आसक्त होना ठीक नहीं, बल्कि उनका सङ्ग त्यागकर दूर रहता हुआ तपस्या करे ॥ ९७ ॥ यह उपदेश देनेके लिए मैंने वनमें सीताको भेजकर उनसे वियोग दर्शाया था। वास्तवमें सीता हमसे पृथक् कभी नहीं हो सकतीं ॥ ९८ ॥ हे ब्राह्मणों ! यह सब बातें मैंने सर्वथा सत्य कही हैं। मनुष्यमात्रको चाहिए कि वह दुखी जनकी रक्षा करे और दुष्टोंको दण्ड दे ॥ ९९ ॥ सुग्रीव और विभीषणकी रक्षा करके दुष्ट वालि और रावणको मारकर संसारको मैंने यही उपदेश दिया है ॥ १०० ॥ इस संसारमें मनुष्यको चाहिए कि वह अपनी कीर्तिका विस्तार करे। इसीलिए मैंने समुद्रके पानीमें पत्थर तैराये थे। वैसे मैं चाहता तो क्या आकाशमार्गसे चलकर लङ्का नहीं पहुँच सकता था? ॥ १०१ ॥ यदि कोई वस्तु अपनेको प्रिय हो, किन्तु दुनियाँवालोंके विरुद्ध हो तो उस प्रिय वस्तुका भी परित्याग कर देना चाहिए। यह उपदेश देनेके लिए ही मैंने लङ्कामें अग्निको साक्षी दे तथा पवित्र जानकर भी लोकापवादके भयवश सीताका परित्याग कर दिया था ॥ १०२ ॥ १०३ ॥ भ्रमवश यदि किसी पवित्र वस्तुको त्याग दे और बादमें मालूम हो कि वह शुद्ध है तो उसको फिरसे अङ्गीकार कर लेना चाहिये। यह उपदेश देनेके लिये ही मैंने पहले त्यागी हुई भी सीताको फिर स्वीकार कर लिया। इसी प्रकार एकपत्नीव्रत, अनेक तरहके राज्यकार्य, अश्वमेधादि यज्ञ, सदाचार, जप, तप, स्नान, संध्या आदि जितना भी काम हम करते हैं, सो सब लोगोंको उपदेश देनेके लिए ही कर रहे हैं ॥ १०४–१०६ ॥ वैसे तो संसारी मायाजालसे अलग, सदा आनन्दस्वरूप, कर्मसे परे, सदा आनन्दमय, सुखात्मा और समस्त मनुष्योंके सुखदाता मुझ रामके लिए इन सब बातोंसे क्या मतलब ? ये सुख दुःख जो बताये, वे अवतारके आधारपर आप लोगोंके कौतुकके लिए कहे हैं, इसमें कोई संशय नहीं है। अपने भक्तोंके सन्तोषार्थ विशेष-गुणसम्पन्न ये अवतार गिनाये, वास्तवमें मेरे लिए सब अवतार बराबर हैं। किन्तु अपनी बुद्धिसे भली भाँति

विशेषगुणवानुक्तः सन्ति सर्वे समा मम । सम्यग्बुद्ध्या विचाराच्च वरिष्ठः सकलेष्वयम् ॥११०॥
द्वावतारौ जलचरौ तथा वनचरौ च द्वौ । द्वौ तौ च वल्कलधरौ एको वैश्यश्च गोपकः ॥१११॥
एकस्तु मलिनश्चापि परश्च क्षणिकस्तथा । एवं भूता भविष्याश्चावतारास्तोषदा न मे ॥११२॥
अयं सर्वविशिष्टोऽत्र ह्युपासकजनप्रियः । अवतारस्त्वहं वेद्मि सेवनान्मंगलप्रदः ॥११३॥
चरित्राण्यतिरम्याणि पातकघ्नानि वै मया । कृतान्यस्मिन्नवतारे श्रवणान्मुक्तिदानि हि ॥११४॥
सदा जना भजंत्यत्र ह्यवतारममुं मम । भक्ता येऽस्यावतारस्य ते मेऽतीव प्रियाःसदा ॥११५॥
एवं सर्वमिदं विप्रा आनन्देन मयोदितम् । दोषमारोपयंत्यस्मिन्नवतारेऽपि ये जनाः ॥११६॥
ते मद्द्वेष्या नरकेषु पतंति सह पूर्वजैः ।

श्रीरामदास उवाच

एवमुक्त्वा रामचन्द्रः सम्पूज्य हि मुनीश्वरान् ॥११७॥
विसृज्य सकलान्सीतां रंजयामास राघवः । एवं शिष्य मया प्रोक्तमवतारप्रवर्णनम् ॥११८॥

इति श्रीशतकोटिरामचरितांतर्गते श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये राज्यकांडे उत्तरार्धे अवतारवर्णनं नाम विंशः सर्गः ॥ २० ॥

एकविंशः सर्गः

(रामका अपने दासको वरदान देते हुए दो रूप धारण करना)

श्रीरामदास उवाच

एकदा जानकीं द्रष्टुं सप्तद्वीपांतरस्त्रियः । मुनीनां पार्थिवानां च सुहृदां व्यवसायिनाम् ॥ १ ॥
सामान्यक्षत्रियाणां च वैश्यानां च सहस्रशः । चैत्रस्नानमिषेणैव ययुर्वाहनसंस्थिताः ॥ २ ॥
दृष्ट्वा समागतास्ताश्च जानकी गजगामिनी । प्रत्युद्गम्यानयामास स्त्रीशालामतिसादरात् ॥ ३ ॥

विचार करके मैं इस निश्चयपर पहुँचा हूं कि समस्त अवतारोंमें यह रामवतार सर्वश्रेष्ठ है ॥ १०७–११० ॥ दो अवतार जलचर रूपके, दो वनचर, दो वल्कधारी, एक वैश्यवर्णका गोपरूप, एक मलिनवेशवाला और एक क्षणिक ये भूत तथा भविष्यके सारे अवतार मेरे मनके नहीं हैं—इनसे मैं प्रसन्न नहीं हूँ ॥१११॥ ॥ ११२ ॥ मैं जहांतक जानता हूँ, समस्त अवतारोंमें उपासक जनोंको प्रिय तथा सेवनसे मङ्गलप्रद यही रामावतार है ॥ ११३ ॥ इस अवतारमें मैंने जितने काम किये हैं वे सब अतिशय रम्य, पातकोंको नष्ट करनेवाले तथा सुननेसे मुक्ति देनेवाले हैं ॥ ११४ ॥ भक्तोंको चाहिये कि मेरे इसी अवतारका भजन करें । जो लोग इसकी उपासना करते हैं, वे मुझे सदासे अत्यन्त प्रिय हैं ॥ ११५ ॥ हे विप्रो ! यह सब रहस्य मैंने आनन्दके साथ आप लोगोंको सुनाया । जो लोग मेरे इस अवतारमें भी दोषारोप करते हैं, वे मेरे शत्रु होकर अपने पूवजोंके साथ नरकमें गिरते हैं ॥ ११६ ॥ श्रीरामदास कहते हैं—इस प्रकारकी बातें करके रामने उन मुनियोंका पूजन किया और सबको विदाई दी ॥ ११७ ॥ तत्पश्चात् सीताको प्रसन्न करनेवाली बात करने लगे । हे शिष्य ! मैंने इस तरह तुम्हारे समक्ष सभी अवतारोंका वर्णन किया ॥ ११८ ॥ इति श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये पं० रामतेजपाण्डेयविरचित'ज्योत्स्ना'भाषाटीकासहिते राज्यकाण्डे उत्तरार्द्धे अवतारवर्णन नाम विंशः सर्गः ॥ २० ॥

श्रीरामदास कहने लगे-एक बार सीताको देखनेके लिये सातों द्वीपोंकी स्त्रियां जिनमें मुनियोंको, राजाओंकी, मित्रोंकी, व्यवसायियोंकी ॥ १ ॥ साधारण श्रेणीके क्षत्रियोंकी तथा वैश्योंकी हजारोंकी संख्यामें नारियां चैत्रस्नानके ब्याजसे अनेक प्रकारके वाहनोंपर सवार हो-होकर अयोध्या आयीं ॥ २ ॥ उन्हें आती देखकर गजके समान मन्दगतिसे चलनेवाली सीता शीघ्र उनके आगे पहुंचीं और आदरके साथ अपनी स्त्रीशालामें ले गयीं ॥३॥

पूजयामास ताः सर्वा नानालंकारभूषणैः । ताः सर्वाः पूजयामासुः सीतां सिंहासनस्थिताम् ४ ॥
दिव्यालकारवस्त्राद्यैर्नानादेशोद्भवैर्वरैः । परिवार्य ततः सीतां तस्थुः सर्वाः स्त्रियश्च ताः ॥ ५ ॥
श्रुत्वा सीतामुखाद्रामचरित्राणि सहस्रशः । तास्तुष्टाः श्रोतुमुद्युक्तास्तत्पाणिग्रहणं शुभम् ॥ ६ ॥
स्मितास्यास्ताः स्त्रियः सर्वास्तदा प्रोचुर्विदेहजाम् । त्वत्पाणिग्रहणोत्साहं श्रोतुं वांछामहे वयम् ॥ ७ ॥
तत्सर्वं विस्तरेणाद्य वक्तुमर्हसि जानकि । इति तासां वचः श्रुत्वा लज्जया जानकी तदा ॥ ८ ॥
स्वां सखीं नोदयामास तुलसीं रुक्मभूषिताम् ।

तुलस्युवाच

शृणुध्वं सकला नार्यः पाणिग्रहणमुत्तमम् ॥ ९ ॥
जानक्याः कथयाम्यद्य महामंगलदायकम् । वस्तोषार्थं हि संक्षेपाच्छ्रवणात्पुण्यवर्द्धनम् ॥१०॥
साकेताद्रघुनंदनेन स मुनिर्भ्रात्रा युतेनाश्रमं स्वं गत्वा विनिहत्य राक्षसबलं तेनैव यज्ञं निजम् ।
संपाद्याशु रथस्थितश्च मिथिलामार्गे हरेरंघ्रिणः संस्पर्शाद्गतकल्मषां समकरोद्भार्यां मुनेर्गाधिजः ॥११ ।
गत्वा गाधिजसंयुतश्च मिथिलां भ्रात्रा सभासंस्थितश्चापाधः पतितं निरीक्ष्य च रिपुं स्वीयं मुनेराज्ञया ।
तं नत्वा गिरिजेश्वरस्य च धनुः कृत्वा त्रिखंडं क्षणात्सीताहस्तविसर्जितां निजगले मालां दधौ राघवः१२
बन्धूनां च निजं विधाय मिथिलापुर्यां विवाहान् शुभान् पितृभ्यां सह भार्यया रघुपती राज्ञाऽतिसंपूजितः
त्यक्त्वा तां मिथिलां ययौ निजपुरीं मार्गे क्रुधा तिष्ठतो दुर्दर्पं जमदग्निजस्य धनुषा सोपाहरल्लीलया१३॥
एवं नार्यश्च सीताया विवाहः कथितो मया । युष्माभिः कौतुकात्पृष्टो यः सर्वमंगलप्रदः ॥१४॥

श्रीरामदास उवाच

एवं स्त्रियश्च ताः श्रुत्वा परमां मुदमाप्नुयुः । ततस्ताः पूजयामासुः पुनः सीतां मुदान्विताः ॥१५॥

सीताने अनेक तरहके भूषणोंसे उनकी पूजा की और उन स्त्रियोंने भी सिंहासनपर बिठलाकर दिव्य अलङ्कारोंसे सीताका पूजन किया। इसके अनन्तर वे सब सीताको चारों ओरसे घेरकर बैठ गयीं ॥ ४ ॥ ५ ॥ सीताके मुखसे रामके सहस्रों चरित्र सुनकर वे बहुत प्रसन्न हुईं और उन्होंने सीताके मुखसे ही सीताका विवाहसम्बन्धी वृत्तान्त सुननेकी इच्छा प्रकट की ॥ ६ ॥ वे मुस्कुराती हुई सीतासे कहने लगीं कि हम आपके विवाह-समारोहका वृत्तान्त सुनना चाहती हैं ॥ ७ ॥ हे सीते ! वह सारा हाल विस्तारपूर्वक हमको सुनाइए। इस प्रकार उनका प्रश्न सुनकर सीता लज्जावश कुछ नहीं बोलीं और अपनी सहेली तुलसीको, जो कि सुवर्णमय आभूषण पहने बैठी थी, संकेत किया और तुलसी कहने लगी—आप लोग सीताके मङ्गलमय विवाहका वृत्तान्त सुनें ॥ ८ ॥ ९ ॥ आप लोगोंको प्रसन्न करनेके लिए उस महामङ्गलदायी और सुननेसे पुण्य बढ़ानेवाले विवाहका मैं संक्षेपमें वर्णन करती हूँ ॥ १० ॥ अयोध्यापुरीसे विश्वामित्र राम और लक्ष्मणको साथ लिये हुए अपने आश्रम पहुँचे। वहाँ राम-लक्ष्मणने राक्षसोंकी प्रबल सेनाका संहार किया और मुनि विश्वामित्रके यज्ञ कर लेनेके बाद रथपर बैठकर मुनिके साथ दोनों भाई मिथिलाकी ओर चले। रास्तेमें विश्वामित्रने रामके चरणोंका स्पर्श कराकर गौतम ऋषिकी पत्नी अहल्याको शापसे मुक्त कराया ॥ ११ ॥ फिर मुनिके साथ जनकपुर पहुँचे। स्वयम्वरके समय रामने सभामें मुनि विश्वामित्रकी आज्ञासे शिवके धनुषको प्रणाम किया और क्षण भरमें उसे तोड़कर तीन टुकड़े कर डाले। फिर सीताके हाथोंकी वरमालाको रामने अपने गलेमें धारण किया ॥ १२ ॥ इसके अनन्तर रामने मिथिलापुरीमें ही अपना और अपने सब भाइयोंका विवाह किया। फिर पत्नी, पिता, माता आदिके साथ जनकसे पूजित होकर राम मिथिलासे अयोध्याको चले। रास्तेमें क्रोधी परशुराम मिले और उनके वैष्णव धनुषको चढ़ाकर रामने उनके दुर्दर्पको दूर कर दिया ॥ १३ ॥ हे नारियों! तुमने कौतुक वश सीताके जिस सर्वमङ्गलप्रद विवाह-वृत्तान्तको पूछा था, सो मैंने कह सुनाया ॥ १४ ॥ श्रीरामदास कहते हैं कि इस प्रकार सीताके विवाहका वर्णन सुनकर वे स्त्रियाँ बहुत

सीतया पूजिताः सर्वास्तां नत्वामंत्र्य जानकीम् । चैत्रस्नानं समाप्याथ जग्मुः स्व स्वं स्थलं प्रति ॥१६॥
अथैकदा गुरोरास्याद्रामाग्रे संस्थितो लवः । शृण्वन्पुराणं पप्रच्छ श्रोतुं सर्वान् जनान्गुरुम् ॥१७॥
गुरो ते प्रष्टुमिच्छामि तत्त्वं वद मुनीश्वर । पुस्तकेषु च सर्वत्र पत्रे पत्रे पृथक् पृथक् ॥१८॥
एकत्र लिख्यते श्रीति रामेत्येकत्र लिख्यते । किमर्थं मानवैस्तच्च तत्सर्वं कथयस्व मात् ॥१९॥
इति तद्वचनं श्रुत्वा गुरुस्तं वाक्यमब्रवीत् ।

वसिष्ठ उवाच

सम्यक् पृष्टं त्वया वत्स लोकसंदेहहृत्परम् ॥२०॥
श्रीरामचरितं पूर्वं व्यासेन मुनिना पृथक् । अष्टादश पुराणानि तथोपपुराणानि च ॥२१॥
कृतान्यन्यैश्च मुनिभिः षट्शास्त्रादीन्यनेकशः । श्रीरामचरितादेव श्लोकमात्रमपीह यत् ॥२२॥
सर्वमस्तीति तद्बोद्धुमादावेकत्र श्रीति च । विलिख्यैकत्र रामेति तन्मध्ये परिलिख्यते ॥२३॥
अनया संज्ञया सर्वे ज्ञास्यंत्वग्रे जना भुवि । श्रीराम मध्ये लिखितं श्रीरामचरितादिदम् ॥२४॥
कृतमस्ति पृथक् भिन्नं पुरा व्यासादिभिस्त्विति । एतस्मात्कारणाद्बाल सूचनार्थं विलिख्यते ॥२५॥
श्रीरामेति पृथक् पत्रे सर्वत्र जगतीतले । अन्यत्ते कारणं वच्मि तच्छृणुष्व शिशो लव ॥२६॥
अशुद्धं लिखितं यच्चाज्ञानतो भ्रांतितोऽपि हि । पत्रं तच्चातिशुद्धं हि भवत्विति मनीषया ॥२७॥
श्रीरामेति च सर्वत्र पत्रे पत्रे विलिख्यते । यदङ्कितं श्रीरामेति नाम्ना पत्रं तु लेखकैः ॥२८॥
ज्ञेयं तच्चाति शुद्धं हि गतदोषस्तु लेखकः । भवत्यत्र जगत्यां हि सत्यं लव वदाम्यहम् ॥२९॥
इति श्रुत्वा गुरोर्वाक्यं वसिष्ठं प्रणिपत्य च । लवः स गतसन्देहस्तूष्णीमासीन्मुदान्वितः ॥३०॥
एकदा रघुनाथस्तु मंचकोपरि संस्थितः । मुखात्तांबूलस्य रसं प्रथमं दोषकारकम् ॥३१॥
त्यक्तुकामो न ददर्श पात्रं निष्ठीवनस्य सः । तस्यांतिके स्थिता दासी नाम्ना वै सुगुणेति च ॥३२॥

प्रसन्न हुईं और उन्होंने फिरसे सीताका पूजन किया ॥ १५ ॥ सीताने भी फिर उनका पूजन किया और वे सीताको प्रणाम करके और उनसे आज्ञा लेकर चैत्रस्नान समाप्त हो जानेपर अपने-अपने घर चली गयीं ॥ १६ ॥ इसके बाद एक दिन गुरु वसिष्ठ बैठे पुराणोंकी कथा सुना रहे थे। रामचन्द्रजी और लव भी बैठे हुए थे। कथा सुनते-सुनते लवने सब लोगोंको ज्ञान प्राप्त करानेके लिए वसिष्ठसे कहा—॥१७॥ हे गुरो ! मैं आपसे कुछ पूछना चाहता हूँ, सो बताइए । प्रायः ऐसा देखा जाता है कि सब पुस्तकोंके पन्ने-पन्नेमें एक ओर 'श्री' और दूसरी ओर 'राम' ऐसा लिखा जाता है। लोग ऐसा क्यों करते हैं ? यह कृपया हमें बता दीजिये ॥ १८ ॥ १९ ॥ इस प्रकार लवका प्रश्न सुनकर वसिष्ठने कहा—हे वत्स ! तुमने बहुत अच्छा प्रश्न किया है। इससे बहुतोंका सन्देह दूर हो जायगा ॥ २० ॥ पहले व्यास मुनिने श्रीरामचन्द्रके चरित्रात्मक अठारह पुराण और अठारह ही उपपुराण बनाये ॥ २१ ॥ उसी तरह और-और ऋषियोंने षट्शास्त्र आदि बनाकर तैयार किये । सब ग्रंथोंके सभी श्लोक श्रीरामचरित्रसे बने हैं। इसी बातको बतलानेके लिए प्रत्येक पन्नेमें 'श्री' लिखकर 'राम' लिखा जाता है ॥ २२ ॥ २३ ॥ इस संकेतसे संसारके मनुष्य पुस्तक देखकर यह समझेंगे कि ये सब ग्रंथ श्रीरामचरितके अन्तर्गत हैं। हे वत्स ! श्रीराम लिखनेका एक कारण यह है, जो बता चुका । दूसरा भी बतलाते हैं—हे लव ! सो भी सुन लो ॥ २४–२६ ॥ अज्ञानतासे या भ्रमवश पन्नेमें जो कोई शब्द अशुद्ध लिख गया हो, वह पन्ना अत्यन्त शुद्ध हो जाय। इस विचारसे भी पन्नेमें लेखकगण श्रीराम लिखते हैं ॥ २७ ॥ २८ ॥ ऐसा करनेसे अशुद्ध भी शुद्ध हो जाता है और लेखकको कोई दोष नहीं लगता। हे लव ! मैं तुमको यह सब सच्ची बातें बतला रहा हूँ ॥ २९ ॥ इस प्रकार समाधान सुनकर लवका सन्देह निवृत्त हो गया और वे चुपचाप बैठ गये ॥ ३० ॥ एक बार राम मंचपर बैठे थे । मुखमें ताम्बूल था। ताम्बूलका प्रथम रस दोषकारक होता है, इस ख्यालसे उन्होंने थूकना चाहा। किन्तु निष्ठीवनपात्र (ओगालदान) नहीं दिखायी पड़ा । रामके पास ही खड़ी सुगुणा नामकी दासी रामकी इच्छा

तादृशं राममालोक्यं पात्रं दूरं विलोक्य च । कृत्वा पात्रं स्वहस्तास्यामंजलावेव तद्रसम् ॥३३॥
रामेण मुक्तमास्याच्च जग्राह वेगवत्तरा । ततः सा प्राशनं रामोच्छिष्टं दासी चकार तत् ॥३४॥
महाप्रसादं तं मत्वा दैवाल्लब्धं विचिंत्य च । तदाऽतितुष्टः श्रीरामस्तस्यै तत्कर्मणाऽब्रवीत् ॥३५॥
वरयस्व वरं दासि यत्ते मनसि वर्तते । तद्रामवचनं श्रुत्वा दासी प्राह रघूत्तमम् ॥३६॥
एकपत्नीव्रतं तेऽस्ति सांप्रतं त्विह जन्मनि । जन्मांतरे त्वया संगं वांछामि रघुनायक ॥३७॥
तत्तस्या वचनं श्रुत्वा राघवो वाक्यमब्रवीत् । यदाऽग्रे कृष्णरूपेण गोकुलेऽवतराम्यहम् ॥३८॥
तदा राधेति नाम्नी त्वं गोपिकासु भविष्यसि । तदा मया चिरं क्रीडां त्वं भोक्ष्यसि न संशयः॥३९॥
तदा ममातिप्रीता त्वं गोपिकासु भविष्यसि । इति दासी रामचन्द्राद्वरं लब्ध्वा तुतोष सा ॥४०॥
अन्यच्छृणु विष्णुदास रामचन्द्रकथानकम् । यत्प्रोच्यते मया तेऽग्रे महत्कौतुककारकम् ॥४१॥
एकदा राघवः श्रीमान्सभायामासनोपरि । संस्थितो बन्धुभिः पुत्रैर्मन्त्रिभिः पुरवासिभिः ॥४२॥
एतस्मिन्नंतरे कश्चिद्ब्रह्मचारी समाययौ । युवा दण्डधरः श्रेष्ठः कमंडलुकरः शुचिः ॥४३॥
ऐणकृष्णाजिनधरः काषायवसनो व्रती । तं दृष्ट्वा राघवः श्रीमानवतीर्य वरासनात् ॥४४॥
प्रत्युद्गम्याथ तं नत्वाऽऽसने समुपवेश्य च । पूजयामास विधिना धेनुमग्रे निवेद्य च ॥४५॥
ततः सम्पूजितं विप्रं राघवो वाक्यमब्रवीत् । अद्य धन्योऽस्म्यहं विप्र यतस्ते दर्शनं मम ॥४६॥
कार्यमाज्ञाप्यतां किंचिद्यदर्थं भवताऽऽगतम् । तद्राघववचः श्रुत्वा ब्रह्मचारी वचोऽब्रवीत् ॥४७॥
वाल्मीकिना प्रेषितोऽहं यस्मात्तच्छृणु राघव । यष्टुकामो महायज्ञं स वाल्मीकिर्महामुनिः ॥४८॥
त्वामाकारयितुं मां त्वन्निकटं वगवत्तरम् । प्रेषितवानतस्त्वं हि सीतया बन्धुभिः सह ॥४९॥
प्रस्थानं कुरु राजेन्द्र मुहूर्तस्त्वद्य वर्तते । एवं वदति श्रीरामं भूसुरे सदसि स्थिते ॥५०॥

समझ गयी, किन्तु पात्र दूर था। इसलिए रामको थूकनेके लिए उसने अपनी अञ्जली फैला दी ॥ ३१—३३ ॥ रामने भी वह प्रथम रस उसके हाथमें थूक दिया। दासी उसको लेकर तुरन्त चाट गयी। उसने मनमें सोचा कि यह महाप्रसाद है और भाग्यवश आज मुझे मिल गया है। उसके इस व्यवहारसे राम बड़े प्रसन्न हुए और उन्होंने कहा—॥ ३४ ॥ ३५ ॥ अरी दासी ! तेरी जो इच्छा हो, वह वर माँग ले। रामकी बात सुनकर उसने कहा—इस जन्ममें आप एकपत्नीव्रती हैं। इसलिए हे रघुनायक ! मैं दूसरे जन्ममें आपके साथ एकान्त-सहवास करना चाहती हूँ ॥ ३६ ॥ ३७ ॥ उसकी यह बात सुनकर रामने कहा कि अगले जन्ममें मैं कृष्णरूपसे गोकुलमें अवतार लूँगा, तब तुम राधा नामसे विख्यात एक गोपपत्नी होओगी। उस समय बहुत दिनों तक तुम मेरे साथ क्रीडाका सुख भोगोगी, इसमें कोई संशय नहीं है ॥ ३८ ॥ ३९ ॥ व्रजकी सारी गोपियोंमें तुम मुझे सबसे प्रिय होओगी। दासी इस तरह रामचन्द्रजीसे वरदान पाकर प्रसन्न हो गयी ॥ ४० ॥ हे विष्णुदास ! रामचन्द्रजीकी एक दूसरी कथा भी मैं तुम्हारे आगे कह रहा हूँ। वह बड़ा कौतूहलजनक है ॥ ४१ ॥ एक समय राम सभामें सिंहासनपर भाइयों, पुत्रों तथा मंत्रियोंके साथ बैठे थे ॥ ४२ ॥ उसी समय एक युवा ब्रह्मचारी दण्ड धारण किये और हाथमें कमण्डलु तथा पवित्र मृगचर्म लिये और काषाय वस्त्र धारण किये वहाँ आ पहुँचा। उसे देखते ही श्रीमान् रामचन्द्रजी आसनसे उठ खड़े हुए। थोड़ा आगे बढ़कर उसे प्रणाम किया और एक अच्छे आसनपर बिठलाया। फिर गोदान देकर उन्होंने उसकी पूजा की ॥ ४३-४५ ॥ पूजन कर लेनेके पश्चात् रामने कहा—हे विप्र ! आज आपके दर्शनसे मैं अपनेको धन्य समझता हूँ ॥ ४६ ॥ अच्छा, अब आप मुझे वह आज्ञा दीजिए कि जिसके लिए आप यहाँ आये हों। रामकी यह बात सुनकर ब्रह्मचारी कहने लगा—॥ ४७ ॥ श्रीवाल्मीकिजीने मुझे आपके पास भेजा है। वे एक महायज्ञ करना चाहते हैं। इसीलिए आपको बुलानेके लिए हमें भेजा है। हे राजेन्द्र ! आज बड़ा अच्छा मुहूर्त है। अतएव सीता तथा अपने भ्राताओंके साथ आप शीघ्र प्रस्थान कर दीजिए। इस प्रकार वह

समाययौ ब्रह्मचारी द्वितीयो गाधिजाश्रमात् । तं दृष्ट्वा पूर्ववद्रामः प्रत्युद्गम्य द्विजोत्तमम् ॥५१॥
आसनेऽन्ये चोपवेश्य पूजयामास सादरम् । ततस्तत्पुरतः स्थित्वा तं प्रपच्छ रघूत्तमः ॥५२॥
यदर्थं श्रमितोऽसि त्वं तन्ममाज्ञाप्यतां मुने । तद्रामवचनं श्रुत्वा ब्रह्मचारी वचोऽब्रवीत् ॥५३॥
राम त्वां गाधिजेनाहं प्रेषितोऽस्मि जवेन हि । यष्टुकामो महायज्ञं विश्वामित्रोऽस्ति राघव ॥५४॥
त्वं तेनाकारितश्चासि प्रस्थानं कुरु सत्वरम् । ब्रह्मचारिणोस्तद्वाक्यमुभयोः स रघूत्तमः ॥५५॥
श्रुत्वा विहस्य प्रोवाच द्विजाभ्यां वै तथेति च । तदाश्चर्यं जनाः प्रापुः प्रोचुस्ते तु परस्परम् ॥५६॥
कथमद्योभयोः साकं रामो गच्छति तन्मखौ । केचिदूचू राघवाय किमशक्यं तथाऽत्र हि ॥५७॥
यथा स्त्रीणां वने पूर्वं यथाऽस्माकं हि दर्शनम् । यथा गतोऽस्ति लंकायाः पुरा भरतदर्शने ॥५८॥
भिन्नरूपेण रामेण सर्वेषामर्पितं पृथक् । तद्वदत्रापि द्विविधा भूत्वा गत्वा च तन्मखौ ॥५९॥
किमाश्चर्यमिदं चाद्य किमशक्यं परात्मनि । एवं वदत्सु पौरेषु लक्ष्मणं प्राह राघवः ॥६०॥
अद्यैवाहं गमिष्यामि भोजनानन्तरं बहिः । वासोगेहानि नेयानि बहिः सेनां प्रचोदय ॥६१॥
आज्ञापनीयं वाद्यानां ध्वनिं कर्तुं हि सेवकान् । तद्रामवचनं श्रुत्वा तथेत्युक्त्वा स लक्ष्मणः ॥६२॥
कारयामास वाद्यानां ध्वनिं दूतैश्च संभ्रमात् । सैन्यं प्रचोदयामास बहिर्वासोगृहाण्यपि ॥६३॥
नेतुमाज्ञापयामासुर्दूतास्ते निन्युरादरात् । ततो रामोऽपि विप्राभ्यां गृहं गत्वा विदेहजाम्॥६४॥
सर्वं वृत्तं निवेद्याथ कृत्वा विप्रैर्हि भोजनम् । सीतां च करिणीपृष्ठे बंधुनाऽऽरोहयत् प्रभुः ॥६५॥
पुष्पके पौरनारीश्च करिणीषूर्मिलादिकाः । समारोहयच्छ्रीरामः स्वयं तस्थौ गजोपरि ॥६६॥
लक्ष्मणाद्या गजेष्वेव ते समारुरुहुस्तदा । निनेदुश्चाथ वाद्यानि ननृतुर्वारयोषितः ॥६७॥

ब्राह्मण कह ही रहा था कि इतनेमें एक दूसरा ब्रह्मचारी विश्यामित्रके आश्रमसे आ पहुँचा। पहलेकी तरह रामने उसका भी स्वागत किया ॥ ४८–५१ ॥ उसे एक दूसरे आसनपर बिठाकर उन्होंने उसकी भी उसी तरह पूजा की। इसके अनन्तर उसके भी आगे बैठकर उन्होंने कहा कि जिस कार्यके लिए आपने कष्ट किया हो, मुझे आज्ञा दीजिए। रामकी बात सुनकर ब्रह्मचारीने कहा—॥ ५२ ॥ ५३ ॥ हे राम ! मुझे विश्वामित्र-जीने आपके पास भेजा है। वे एक महायज्ञ करना चाहते हैं। उसमें उन्होंने आपको बुलाया है। इसलिए आप शीघ्र प्रस्थान कीजिए। रघूत्तम राम उन दोनों ब्रह्मचारियोंके सन्देश सुनकर मुसकराए ॥ ५४ ॥ ५५ ॥ उन दोनोंसे कहा—"अच्छा चलेंगे"। इस बातको सुनकर सभाके लोनोंको बड़ा विस्मय हुआ। वे परस्पर कहने लगे—॥ ५६ ॥ राम इन दोनोंके साथ जाकर कैसे उन दोनों यज्ञोंमें सम्मिलित हो सकेंगे। किसीने कहा कि रामके लिए अशक्य कौन-सा काम है, वे क्या नहीं कर सकते ? ॥ ५७ ॥ जैसे वनमें उन्होंने उन हजारों स्त्रियोंको हजारों रूपोंसे दर्शन दिया था। जिस प्रकार लंकासे लौटकर आनेपर भरत-मिलापके समय प्रत्येक मनुष्यसे मिले थे ॥ ५८ ॥ उसी तरह इस समय भी राम अपना दो रूप बनाकर दोनों जगह चले जायँगे ॥ ५९ ॥ इसमें आश्चर्य करनेकी बात ही कौन-सी है। जिसकी आत्मा इतने ऊँचे दर्जेपर पहुँच गयी है और जो साक्षात् परमात्मा है, उसके लिए अशक्य कोई काम नहीं है। इस तरह लोग आपसमें बतकही कर रहे थे, तभी रामने लक्ष्मणसे कहा—॥ ६० ॥ लक्ष्मण ! आज ही भोजन करनेके पश्चात् हमलोग बाहर चलेंगे। तम्बू कनात आदि भेजवा दो और सेना भी तैयार करवाओ ॥ ६१ ॥ वाद्य बजानेके लिए सेवकोंको आज्ञा दे दो। रामकी आज्ञा सुनकर लक्ष्मणने "तथास्तु" कहा ॥ ६२ ॥ तत्काल उन्होंने दूतोंको तुड़ही बजानेकी आज्ञा दी। लक्ष्मणके आज्ञानुसार सेवक सब सामान ठीक करने लगे। इसके अनन्तर राम उन दोनों ब्रह्मचारियोंके साथ सीताके महलोंमें गये ॥६३॥६४॥ जानकीजीको भी निमन्त्रणका समाचार सुनाया और दोनों ब्राह्मणोंके साथ भोजन किया। फिर बन्धुओंके साथ सीताको हाथीपर सवार कराया। बाकी पुरवासिनी नारियोंको पुष्पक विमानपर एवं उर्मिलादिको हाथीपर बिठलाया। उन सबको सवारियोंपर बिठाकर स्वयं भी एक हाथीपर सवार हुए और लक्ष्मणादि भी हाथीपर बैठे। उस समय विविध प्रकारके बाजे बजने लगे और

तुष्टुवुर्मागधाद्याश्च प्रजगुः सुस्वरं नटाः । एवं समाययौ रामस्तदा वासोगृहाणि सः ॥६८॥
तां रात्रिं समतिक्रम्य प्रभाते रघुनन्दनः । स्नात्वा नित्यविधिं कृत्वा गजारूढोऽभवत्पुनः ॥६९॥
क्रोशद्वयं ततो गत्वाऽग्रे द्वौ मार्गौ निरीक्ष्य च । ससैन्ये द्वे निजे देहे चकार रघुनन्दनः ॥७०॥
तदा द्वयोर्मार्गयोश्च ससैन्यौ सीतया युतौ । पुत्राभ्यां बन्धुभिर्युक्तौ द्वौ रामौ सकला जनाः ॥७१॥
ददृशुः पुष्पके द्वे च द्वौ जातौ ब्रह्मचारिणौ । वाल्मीकीयो ब्रह्मचारी त्वेकः स स्वं गुरुं ययौ ॥७२॥
विश्वामित्राध्वरं चान्यः श्रीरामेण मुदा युतः । गाधिजेयो ब्रह्मचारी त्वेकः स स्वं गुरुं ययौ ॥७३॥
वाल्मीकेरध्वरं चान्यः श्रीरामेण ययौ मुदा । एवं ते सारमेयांताः सर्वदेहद्वयानि हि ॥७४॥
निजानि ददृशुस्तत्र विस्मयाविष्टमानसाः । एवं तौ रघुवीरौ हि तयोर्मुन्योस्तदाश्रये ॥७५॥
ससैन्यौ सीतया युक्तौ बन्धुपुत्रसमन्वितौ । जग्मतुर्वै मुनिभ्यां हि प्रत्युद्गम्यातिपूजितौ ॥७६॥
तयोर्यागौ विधायाथ परिपूर्णौ पुनः पुरीम् । समाजग्मतुः श्रीरामौ ससैन्यौ पूर्ववन्मुदा ॥७७॥
यत्र द्वे निजदेहे वै कृते तत्र रघूत्तमौ । समागत्य पुनश्चैकं निजदेहं चकार सः ॥७८॥
वाल्मीकीयो ब्रह्मचारी विश्वामित्रद्विजस्तथा । भिन्नदेहे त्वेकरूपं भजतस्तौ तदा द्विजौ ॥७९॥
ससैन्यं पुष्पकं चापि बभूवैकं तु पूर्ववत् । ततः श्रीरामचन्द्रः स विवेश नगरीं निजाम् ॥८०॥
तदा निनेदुर्वाद्यानि ननृतुर्वारयोषितः । पौरनार्यो विमानस्था ववर्षुः पुष्पवृष्टिभिः ॥८१॥
तुष्टुवुर्मागधाद्याश्च प्रजगुस्ते नटादयः । एवं नानाकौतुकानि पश्यन्मार्गे शनैः शनैः ॥८२॥
ययौ निजगृहं रामः सभायां संविवेश ह । सीताऽपि निजगेहं सा संविवेशोर्मिलादिभिः ॥८३॥
एवं भूसुर रामेण कौतुकानि महान्ति च । अमानुषाणि यान्यत्र कृतानि च सहस्रशः ॥८४॥
वाल्मीकिना विस्तरेण वर्णितानि हि कृत्स्नशः । सारं सारं मया तेभ्यः संगृह्याथ कथानकम् ॥८५॥

वेश्यायें नाचने लगीं ॥ ६५–६७ ॥ बन्दीजन रामको विरुदावली सुनाने तथा नटगण मीठे मीठे स्वरोंमें गाने लगे। इस प्रकार अपने राजभवनसे प्रस्थान करके राम रास्तेमें बने हुए डेरेपर पहुँचे ॥ ६८ ॥ वह रात्रि रामने वहाँ बितायी । सवेरे उठे तो स्नानादि नित्यक्रिया की और फिर हाथीपर बैठकर चल दिये ॥ ६९ ॥ दो कोस आगे जानेपर जहाँसे विश्वामित्र तथा वाल्मीकिके आश्रमोंके रास्ते अलग होते थे, वहाँसे उन्होंने सेना समेत अपना दो स्वरूप बना लिया ॥ ७० ॥ उस समय दोनों रास्तेमें राम सेना, सीता तथा पुत्रवधू आदिसे युक्त होकर चले। उस समय जितने भी मनुष्य साथ थे, वे सब एकके दो दिखायी दिये ॥ ७१ ॥ पुष्पक विमान भी दो हो गया और दोनों ब्रह्मचारियोंमेंसे एक रामको विश्वामित्रके आश्रमकी ओर ले चला, दूसरा वाल्मीकिके आश्रमको ॥ ७२ ॥ ७३ ॥ उस समय मनुष्यसे लेकर साथके कुत्ते तक दो हो-होकर दिखायी दे रहे थे। वे लोग अपने दो शरीरोंको देख-देखकर बड़े विस्मित हुए ॥ ७४ ॥ इस प्रकार वे दोनों राम अपनी-अपनी सेना, सीता और बन्धुओंके साथ दोनों आश्रमोंको चले। जब कि आश्रमपर पहुँचे तो दोनों ऋषियोंने अगवानी करके उनकी पूजा की ॥ ७५ ॥ इस प्रकार पहुँच-पहुँचकर उन दोनोंका यज्ञ समाप्त हो जानेपर फिर वे दोनों राम पहलेकी तरह अयोध्याको लौटे ॥ ७६ ॥ ७७ ॥ जाते समय जिस स्थानपर रामने अपना दो रूप बनाया था, वहाँ पहुँचनेपर फिर एक हो गये। विश्वामित्रका ब्रह्मचारी तथा वाल्मीकिका ब्राह्मण ये दोनों भी एक ही एक हो गये ॥ ७८ ॥ ७९ ॥ उसी तरह पुष्पकविमान और सेना भी एक हो गयी। इस प्रकार श्रीरामचन्द्रजी आनन्दपूर्वक अपनी अयोध्या नगरीमें प्रविष्ट हुए ॥ ८० ॥ उस समय भी नाना प्रकारके बाजे बजे और वेश्यायें नाचीं। पुरवासिनी नारियोंने पुष्पक विमानसे रामपर फूलोंकी वर्षा की, बन्दीजनोंने स्तुति की और गानेवालोंने अच्छे-अच्छे गायन गाये। इस प्रकार रास्तेमें तरह-तरहके कौतुक देखते हुए धीरे-धीरे ॥ ८१ ॥ ८२ ॥ वे अपने भवनमें गये और सभामें पहुँचकर राजसिंहासनपर बैठे। सीता उर्मिला आदिके साथ महलके भीतर गयीं ॥ ८३ ॥ हे विप्र ! रामने हजारों प्रकारके जिन महान् और अलौकिक कामोंको किया था, उनका वाल्मीकिने विस्तृत वर्णन किया है और मैंने तो उसमेंसे सारभागमात्र लेकर सब कथा सुनायी

तवाग्रे कथ्यते शिष्य संक्षेपेणाज्ञया प्रभोः । त्वं धन्योऽसि यदर्थं च रामेणाज्ञापितस्त्वरम् ॥८६॥
वक्तुं स्वचरितं पुण्यं रम्यमानन्ददायकम् । वाल्मीकिश्चापि धन्यः स माधि संवादमावयोः ॥८७॥
यः पूर्वं विरचितवान् स्वीयकालेऽत्र भूतवत् । यथा रामस्य चरितं पूर्वं रामावतारतः ॥८८॥
एवं संवर्णितं कृत्स्नं गोप्यं यच्च कृतं रहः । न वाल्मीकोपमः कश्चित्कविर्भूतो भविष्यति ॥८९॥

इति श्रीशतकोटिरामचरितांतर्गते श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये राज्यकाण्डेउत्तरार्धे दासीवरदानं तथा रामादीनां देहद्वयकरणं नामैकविंशः सर्गः ॥ २१ ॥

द्वाविंशः सर्गः

(सीता द्वारा टूटा तुलसीपत्र पुनः डालमें जोड़ना)

श्रीरामदास उवाच

इदानीं रामचन्द्रस्य लीलाकौतुकमुत्तमम् । अन्यद्रम्यं वर्ण्यते हि मया तच्छृणु सादरम् ॥ १ ॥
एकदा राघवस्तस्थौ सभायामासनोपरि । बन्धुभिर्मन्त्रिवर्गैश्च पौरैर्जानपदैः सह ॥ २ ॥
पुत्राभ्यां च सुहृद्भिश्च मित्रैर्मन्त्रिजनैः सह । एतस्मिन्नन्तरे भूरिकीर्तिना सुहृदा चरैः ॥ ३ ॥
द्राक्षाफलादिभिः पूर्णास्तथा पुष्पैः सुपूरिताः । करंडिकाः प्रेषिताश्च राघवार्थं सहस्रशः ॥ ४ ॥
ताः सर्वा राघवो दृष्ट्वा प्रेषयामास जानकीम् । युक्ता सखीभिः सीता सा क्रीडाशालास्थिता मुदा॥ ५ ॥
दृष्ट्वा करण्डिकाः सर्वास्त्वेकामुद्घाटयत्तदा । तस्यां तामरसान्येन दृष्ट्वा रम्याणि जानकी ॥ ६ ॥
करेणादाय पद्मं च राघवायार्पणं विना । सा तत्सुगन्धं जग्राह वारं वारं मुदान्विता ॥ ७ ॥
करण्डिकां पूर्ववच्च समाच्छाद्य विदेहजा । स्थापयामास गेहेषु सर्वास्ताश्च करण्डिकाः ॥ ८ ॥
तद्वृत्तं रामचन्द्रोऽपि सर्वं ज्ञात्वा सभास्थितः । चित्ते विचारयामास वारं वारं मुदान्वितः ॥ ९ ॥
सीतयेदं कृतं कर्म योग्यं भुवि स्मृतं न हि । यन्मया पतिनाऽभुक्ते पद्ममास्त्राघ्रितं तया ॥१०॥

है ॥ ८४ ॥ ८५ ॥ क्योंकि प्रभुने मुझे ऐसा ही करनेकी आज्ञा दी थी । तुम धन्य हो, जिसके लिए भगवान्ने स्वयं मुझे कथा सुनानेकी आज्ञा दी है ॥ ८६ ॥ वे महर्षि वाल्मीकि धन्य हैं, जिन्होंने हमें और तुमको सुनने-सुनानेके लिए भूतकालकी तरह भविष्यका सारा रामचरित्र रामावतारके पहिले ही लिख डाला था ॥८७॥८८॥ वह वर्णन भी इतना सच्चा किया कि रामने जो कार्य गुप्तरूपसे एकान्तमें किये थे, वह सब लिख दिया । वाल्मीकिके समान न कोई कवि हुआ है, न होगा ॥ ८९ ॥ इति श्रीशतकोटिरामचरितान्तर्गते श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये पं० रामतेजपाण्डेयविरचित'ज्योत्स्ना'भाषाटीकासहिते राज्यकाण्डे उत्तरार्धे एकविंशः सर्गः ॥ २१ ॥

श्रीरामदासने कहा--अब मैं तुम्हें रामका एक दूसरा रम्य और उत्तम चरित्र सुनाता हूँ । उसे आदर-पूर्वक सुनो ॥ १ ॥ एक समय रामचन्द्रजी सिंहासनपर बैठे हुए थे । उस समय उनके समस्त भ्राता, मन्त्री, पुरवासी, दोनों पुत्र, सम्बन्धी तथा मित्र आदि भी उपस्थित थे । उसी समय उनके सुहृद् राजा भूरिकीर्तिने दूतों द्वारा अंगूर आदि विविध प्रकारके फलोंसे भरी हुई बहुत सी पिटारियाँ भेजीं ॥ २-४ ॥ उनको देखकर रामने उसे भीतर सीताके पास भेजवा दिया । उस समय सीता अपनी सखियोंके साथ क्रीड़ाभवनमें थीं ॥ ५ ॥ उन पिटारियोंको देखा तो बड़ी उत्सुकताके साथ खोल-खोलकर कुछ पिटारियाँ देखीं, किन्तु उनके भीतर कमलका फूल भरा दीख पड़ा ॥ ६ ॥ तब प्रसन्न मनसे सीताने उसमेंसे एक कमलका फूल निकाला और रामको अर्पण किये बिना ही सूँघ लिया ॥ ७ ॥ तदनन्तर पिटारियोंको पहलेकी तरह ठीक करके घरमें रखवा दिया ॥ ८ ॥ सभामें बैठे बैठे ही रामको यह बात मालूम हो गयी । उन्होंने बार-बार इसपर विचार किया ॥ ९ ॥ तब उन्होंने सोचा कि सीताने यह ठीक नहीं किया, जो मेरे सूँघे बिना ही कमल सूँघ

अग्रेऽप्येवं स्त्रियः सर्वाः करिष्यंत्यत्र वै भुवि । सीतादर्शितमार्गेण तस्माच्छिक्षां करोम्यहम् ॥११॥
एवं मनसि निश्चित्य ततः स रघुनन्दनः । तूष्णीमेव गृहं गत्वा पूर्ववज्जानकीं मुदा ॥१२॥
रंजयामास विविधैर्नानाक्रीडादिकौतुकैः । सीताऽपि पेटिकाः सर्वा राघवाग्रे सहस्रशः ॥१३॥
आनीय दर्शयामास फलपुष्पादिपूरिताः । रामोऽपि दृष्ट्वा ताः सर्वाः समुद्घाट्य पृथक् पृथक् ॥१४॥
प्रेषयामास बंधूनां गेहेषु दश पंच च । फलादीनां पेटिकाश्च नानाचित्रविचित्रिताः ॥१५॥
मातॄणां सकलानां च गृहेष्वपि तथा पुनः । पुत्रयोः सुहृदां चापि मंत्रिणां च गुरोस्तथा ॥१६॥
पौराणां चापि गेहेषु सेवकानां गृहेष्वपि । दासीभ्यश्च शुभा दत्त्वा पेटिकाः सप्त पञ्च च ॥१७॥
सीतायै शतशो दत्त्वा मुदा ताभ्यो रघूत्तमः । फलानि दश पञ्चाष्ट स्वयं भुक्त्वा ततः परम् ॥१८॥
पद्मादीनि सुपुष्पाणि विभज्य पूर्ववत्पुनः । सीतायै शतशो दत्त्वा स्वयमंगीचकार सः ॥१९॥
अज्ञात इव तद्वृत्तं गोपयामास चेतसि । अथैकदा जनकजा हरिदिन्यामुपोषणम् ॥२०॥
कृत्वाऽपरे दिने स्नात्वा ययौ वृन्दावनांतिकम् । तुलसीं पूजयित्वा तां सा चकार प्रदक्षिणाः ॥२१॥
एतस्मिन्नंतरे सीता निराहारा श्रमान्विता । त्यक्त्वा प्रदक्षिणामार्गं किंचिदेव चचाल सा ॥२२॥
चलितायाश्च सीतायाः पल्लवेन हि वाससः । पत्रमेकं तुलस्याश्च पपात भुवि वै तदा ॥२३॥
तत्पत्रं जानकी दृष्ट्वा द्वादश्यां त्रुटितं शुभम् । ज्ञात्वाऽधर्मः कृतश्चेति भयभीताऽभवत्तदा ॥२४॥
ततः सा तत्करेणैव गृहीत्वा पत्रमुत्तमम् । नत्वा वृंदावने सीता चिक्षेप परमादरात् ॥२५॥
ततः प्रदक्षिणाः कृत्वा प्रार्थयित्वा मुहुर्मुहुः । तुलसीं सा ययौ गेहं रञ्जयामास राघवम् ॥२६॥
एतस्मिन्नंतरे तत्र नारदश्च समाययौ । वीणावाद्यस्वनेनैव कुर्वन्कीर्तनमुत्तमम् ॥२७॥
पालय मां दीनमिति राघवेति पुनः पुनः । पालय मां दीनमिति मनुं पञ्चदशाक्षरम् ॥२८॥

लिया ॥ १० ॥ यदि मैं इस समय चुप रह जाता हूँ तो सीताके दिखाये इस मार्गपर चलकर सब स्त्रियाँ ऐसा ही करने लगेंगी। इसलिए सीताको इसकी सजा देता हूँ ॥ ११ ॥ ऐसा निश्चय करके राम चुपचाप सीताके घर पहुँचे ॥ १२ ॥ वहां सदाकी तरह विविध प्रकारके क्रीड़ा-कौतुक करके उन्होंने सीताको प्रसन्न किया। सीताने भी वह सब पिटारियाँ मँगवाकर रामके आगे रख दीं। वे सब नाना प्रकारके फलों-फूलोंसे भरी थीं। रामने भी उन्हें अलग-अलग खोलकर देखा ॥ १३ ॥ १४ ॥ उनमेंसे पन्द्रह पिटारियाँ भाइयोंके यहाँ भिजवा दीं। इसके बाद सब माताओंके पास भेजीं। उसी तरह दोनों पुत्रों, सम्बन्धियों, मन्त्रियों, गुरुजनों, पुरवासियों, सेवकों तथा दासियोंके घर भी पाँच-पाँच सात-सात पिटारियाँ भिजवायीं। इसके अनन्तर सैकड़ों पिटारियाँ सीताको दीं और उनमेंसे स्वयं भी दस-पांच फल निकालकर खाये ॥ १५–१८ ॥ इसके बाद कमल आदि अच्छे-अच्छे फूलोंको पूर्ववत् विभक्त करके सैकड़ों फूल सीताको दिये और स्वयं भी लिये ॥ १९ ॥ किन्तु सीताने रामको अर्पण किये बिना ही जो फूल सूँघ लिया था, उस बातको जानते हुए भी राम अनजान जैसे बने रहे। इसके अनन्तर एक दिन सीताने एकादशीका व्रत किया ॥ २० ॥ दूसरे दिन वे वृन्दावन (तुलसीकी बगीची) में गयीं। वहाँ तुलसीकी पूजा करके प्रदक्षिणा करने लगीं ॥ २१ ॥ उस समय एकादशीका व्रत करनेसे उन्हें थकावट-सी लगी थी। जिससे प्रदक्षिणाका मार्ग छोड़कर वे दूसरी ओर चलने लगीं ॥ २२ ॥ चलते-चलते सीताके कपड़ोंका पल्ला लगनेसे तुलसीका एक पत्र टूटकर पृथ्वीपर गिर पड़ा ॥ २३ ॥ द्वादशीके दिन उस गिरे पत्रको देखकर सीताने सोचा—"ओह ! मैंने बड़ा भारी अधर्म कर डाला" यह सोचकर वे कुछ भयभीत-सी हो गयीं ॥ २४ ॥ इसके पश्चात् सीताने वह पत्र उठा लिया और उसे प्रणाम करके आदरसे उसी वृन्दावनमें फेंक दिया ॥ २५ ॥ ऐसा करनेके बाद प्रदक्षिणा करके बारम्बार प्रार्थना की। फिर महलमें जाकर रामचन्द्रजीका मनोरञ्जन करने लगीं ॥ २६ ॥ इसी समय वीणा बजाते और हरिकीर्तन करते हुए नारदजी वहाँ आ पहुँचे ॥ २७ ॥ वे आते ही "मुझ दीन-

कीर्तयामास स मुनिर्वारं वारं मुदान्वितः । कलकंठस्वरेणैव महापातकनाशनम् ॥२९॥
॥ पालय मां दीनं राघव पालय मां दीनम् ॥ इति मंत्रः ।
तं मुनिं राघवो दृष्ट्वा प्रत्युद्गम्याथ भक्तितः । नत्वाऽऽसने संनिवेश्य पूजयामास सादरम् ॥३०॥
ततः प्रक्षाल्य तत्पादौ सीतया रघुनन्दनः । धेनुं निवेद्य गंधाद्यैः पूज्य तं मुनिपुंगवम् ॥३१॥
हेमपात्रं भोजनार्थं मुनेरग्रे निवेश्य च । परिवेषणार्थं श्रीरामस्त्वरयामास जानकीम् ॥३२॥
सीताऽपि कामधेनूत्थवरान्नानि विगृह्य सा । हेमपात्रे ययौ वेगात्पात्रेषु परिवेषणम् ॥३३॥
कर्तुं कंकणमंजीरकिंकिणीनूपुरस्वना । तां दृष्ट्वा नारदः सीतां प्राह श्रीराघवं तदा ॥३४॥
राम राजीवपत्राक्ष नाहं सीतासमर्पितैः । दिव्यान्नैरशनं चाद्य करिष्यामि रघूत्तम ॥३५॥
तन्मुनेर्वचनं श्रुत्वा सीताऽऽसीच्चकिता तदा । अज्ञात इव रामोऽपि संभ्रमेण मुनिं तदा ॥३६॥
पप्रच्छ कारणं व्यग्रः सर्वकर्ता स्वयं प्रभुः । किं कारणं वद मुने किमर्थमनयाऽर्पितैः ॥३७॥
अन्नैस्त्वं भोजनं नाद्य करोषि मुनिपुङ्गव । इति रामवचः श्रुत्वा नारदो वाक्यमब्रवीत् ॥३८॥

नारद उवाच

सीतयाऽद्य कृतं पापं किं त्वं वेत्सि न वै प्रभो । यदि त्वं नैव जानासि तर्हि शृणु वदामि ते ॥३९॥
द्वादश्यां तुलसीपत्रमनयाऽद्य निकृंतितम् । यद्यसत्यं तर्हि पश्य गत्वा वृन्दावने प्रभो ॥४०॥
संक्रमेषु चतुर्दश्योर्द्वादश्योः पातपर्वसु । तुलसीं न हरेत्संध्योर्भृग्वंगारापराह्णके ॥४१॥
नष्टे सूर्येन्दुग्रहणे प्रसूतिमरणे तथा । तुलसीं ये निकृंतंति ते छिंदंति हरेः शिरः ॥४२॥
द्वादश्यां तुलसीपत्रं धात्रीपत्रं तु कार्तिके । लुनाति यो नरो गच्छेन्निरयानतिगर्हितान् ॥४३॥
अकाले तुलसीपत्रं छेदयंत्यः स्त्रियः पुमान् । पत्रमेकं ब्रह्महत्यासममाहुर्मनीषिणः ॥४४॥
एवं तु वचनं सर्वैर्मुनिभिर्हि प्रकीर्त्यते । पुरुषाणामयं दोषस्तत्र स्त्रीणां कथाऽत्र का ॥४५॥

की रक्षा करो । हे राघव ! मेरा पालन करो" इस महापातक-नाशक पञ्चदशाक्षर मन्त्रका सहर्ष उच्चारण करने लगे ॥ २८ ॥ २९ ॥ "पालय मां दीनम्, राघव पालय मां दीनम् ।" यह पञ्चदशाक्षर मन्त्रका स्वरूप है। राम नारदको देखते ही उठ खड़े हुए । उन्होंने आगे बढ़कर प्रणाम किया और आसनपर बिठाला । तब सादर पूजन किया ॥ ३० ॥ सीताके साथ रामने मुनिके पैर धोये और गोदान दिया । इसके पश्चात् उनके सामने सुवर्णके पात्र रक्खे और शीघ्र परोसनेके लिये सीतासे कहा ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ सीता भी कामधेनुसे उत्पन्न अच्छे-अच्छे सामान परोसनेके लिये कङ्कण, मञ्जीर तथा नूपुरकी ध्वनि करती हुई चलीं । सीताको चलती देखकर नारदने रामसे कहा—हे राम ! हे राजीवपत्राक्ष !! मैं आज सीताके हाथों परोसे हुए दिव्यान्न नहीं खाऊँगा ॥ ३३–३५ ॥ मुनिकी बात सुनकर सीता चकरा गयीं और सब-कुछ करनेवाले स्वयं प्रभु रामने भी अनजान बनकर विस्मित हो व्यग्रभावसे पूछा—क्यों मुनिराज ! आज आप सीताके हाथका अन्न क्यों नहीं ग्रहण करेंगे ? इस प्रकार रामकी बात सुनकर नारदने कहा—॥ ३६–३८ ॥ आज इन्होंने एक बड़ा पाप किया है । सो क्या आपको नहीं मालूम है ? अच्छा मैं ही सुनाता हूँ ॥ ३९ ॥ आज द्वादशीको इन्होंने तुलसीपत्र तोड़ डाला है । यदि आप मेरी बात सच न मानते हों तो स्वयं चलकर देख लीजिये ॥ ४० ॥ संक्रान्ति, चतुर्दशी, द्वादशी, प्रतिदिन सबेरे-साँझके समय, शुक्र और मङ्गलके दिन तथा दोपहरके बाद, सूर्य-चन्द्रग्रहणके समय, घरमें सन्तति होनेपर या किसीका देहान्त होनेपर जो लोग तुलसीका पत्र तोड़ते हैं, वे मानों तुलसीका पत्र न तोड़कर भगवान्‌का सिर काटते हैं ॥ ४१ ॥ ४२ ॥ जो द्वादशीको तुलसीपत्र तोड़ता है या कार्तिकमासमें आँवलेकी पत्तियाँ नोचता है, वह अतिशय निन्दित नरकमें जाता है ॥ ४३ ॥ जो लोग असमयमें तुलसीका एक भी पत्र तोड़ते हैं । विद्वान् लोग ऐसोंको ब्रह्महत्यारा कहते हैं ॥ ४४ ॥ इस प्रकारका वचन समस्त मुनियोंने कहा है । फिर जब पुरुषोंके लिये ऐसा नियम बना हुआ है तो स्त्रियोंके लिये क्या

एतन्निमित्तं श्रीराम सीतया परिवेषितैः । वरान्नैर्भोजनं नाद्य करिष्यामि व्रतस्थितः ॥४६॥
तन्मुनेर्वचनं श्रुत्वा राघवः प्राह तं पुनः । मुने त्वमेव सीतां मे पूतां कर्तुमिहार्हसि ॥४७॥
वरदानं व्रतं वाऽपि येन पूतां भवेत्क्षणात् । त्वामहं प्रार्थयाम्यद्य स्वीयं पल्लवमुत्तमम् ॥४८॥
प्रसार्य शिरसा चापि नमस्कृत्य पुनः पुनः । तद्रामवचनं श्रुत्वा नारदो वाक्यमब्रवीत् ॥४९॥
ब्रह्महत्यादिपापानां निष्कृत्यर्थं मुनीश्वरैः । प्रायश्चित्तानि चोक्तानि संति नानाविधानि च ॥५०॥
द्वादश्यां तुलसीपत्रच्छेदनाघप्रशांतये । प्रायश्चित्तं मया नैव दृष्टं राघवसत्तम ॥५१॥
उपायस्त्वेक एवात्र वर्तते रघुनन्दन । पातिव्रतबलात्सीता पत्रं तत्तुलसीं पुनः ॥५२॥
योजयिष्यति मेऽग्रेऽद्य तर्हि पूता भविष्यति । क्षणादेव न सन्देहः सत्यमेव वचो मम ॥५३॥
तन्मुनेर्वचनं श्रुत्वा रामः सीतां व्यलोकयत् । तदा सीताऽब्रवीद्वाक्यं शृणु ब्रह्मसुतोत्तम ॥५४॥
अद्याहं योजयिष्यामि पत्रं तत्तुलसीं पुनः । पातिव्रत्यबलेनैव तवाग्रे पश्य कौतुकम् ॥५५॥
इत्युक्त्वा जानकी देवी तत्पात्रमन्नपूरितम् । पाकस्थाने पुनर्नीत्वा स्थापयामास वेगतः ॥५६॥
ततो वृंदावनं सीता ययौ नूपुरनिःस्वना । नारदो रामचन्द्राद्या ययुर्वृन्दावनं प्रति ॥५७॥
तदा ता उर्मिलाद्याश्च चंपिकाद्याः स्त्रियो ययुः । लक्ष्मणाद्या बंधवश्च कुशश्चाथ लवस्तथा ॥५८॥
तेषां मध्यगता सीता तदा वृंदावनस्थिता । नत्वा तां तुलसीं भक्त्या प्राह वाक्यं सखीयुता ॥५९॥
भो भो तुलसि मद्वाक्यं शृणुष्वाद्य सुशोभने । पातिव्रतबलं पूर्णं मयि यद्यस्ति पावनम् ॥६०॥
तर्ह्यस्य तव पत्रस्य त्वयि सन्धिर्भविष्यति । एवमुक्त्वा जानकी सा यावत्पश्यति वै पुरः ॥६१॥
तावत्पत्रं तुलस्यां तत्सधिं नैव गतं तदा । तदा विषण्णा सा सीता बभूव चकिताऽपि च ॥६२॥
तदा देवाः सगंधर्वा यक्षा नागाः सकिन्नराः । गुह्यका ऋषयः सर्वे तद्द्रष्टुं कौतुकं ययुः ॥६३॥
ततः सीतां विषण्णां तां दृष्ट्वा स नारदो मुनिः । एकांते जानकीं नीत्वा बोधयामास सादरम् ॥६४॥

कहना ॥ ४५ ॥ इसी कारण आज व्रतका पारण करनेके समय मैं सीताका परोसा अन्न नहीं खाऊँगा ॥ ४६ ॥ इस प्रकार नारदकी बात सुनकर रामने कहा–हे मुने ! तब तुम्हीं सीताको पवित्र कर दो ॥ ४७ ॥ यह वरदान तथा व्रत जिस उपायसे पवित्र हो सके, वैसा करो । एतदर्थ मैं हाथ जोड़कर प्रार्थना करता हूँ और मस्तक झुकाकर पुनः पुनः नमस्कार करता हूँ। रामका विनय सुनकर नारदने कहा—॥ ४८ ॥ ४९ ॥ ब्रह्महत्यादि पापोंसे छुटकारा पानेके लिये तो मुनीश्वरोंने अनेक प्रकारके प्रायश्चित्त बतलाये हैं ॥ ५० ॥ किन्तु द्वादशीको तुलसीपत्र तोड़नेसे जो पातक होता है । उसका प्रायश्चित्त तो मैने कहीं देखा ही नहीं ॥ ५१ ॥ हे रघुनन्दन ! इस विषयमें केवल एक उपाय है । वह यह कि सीता अपने पातिव्रतके बलसे वह पत्र फिर वृक्षमें जोड़ दे तो ये क्षणमात्रमें पवित्र हो सकती हैं । इसमें कोई सन्देह नहीं है । मैं जो कह रहा हूँ. सो सत्य है ॥ ५२ ॥ ५३ ॥ नारदके ऐसा कहनेपर रामने सीताकी ओर देखा । सीताने कहा—हे ब्रह्माके पुत्रोंमें श्रेष्ठ पुत्र नारद ! ॥ ५४ ॥ अभी मैं आपके सामने ही अपने पातिव्रतके बलसे उस तुलसीपत्रको डालमें जोड़ दूँगी, आप यह कौतुक देखें ॥५५॥ ऐसा कहकर सीता वह अन्नपात्र वेगके साथ लौटा ले गयीं और रख दिया ॥५६॥ इसके अनन्तर वे वृन्दावनमे गयीं । नारद और राम भी वहाँ पहुँचे ॥ ५७ ॥ उर्मिलादिक स्त्रियाँ तथा लक्ष्मणादि बन्धु एवं लव-कुश आदि पुत्र भी वृन्दावनमें पहुँचे ॥ ५८ ॥ उन सबके बीचमें सीताने उस तुलसीके वृक्षको प्रणाम किया और भक्तिपूर्वक कहने लगीं—॥ ५९ ॥ हे सुशोभने तुलसि ! मेरी बात सुनो । यदि मुझमे पातिव्रतका बल हो तो यह टूटा हुआ पत्र फिर तुम्हारे अङ्गमें जुड़ जाय । ऐसा कहकर सीताने सामने पत्र देखा तो वह जुटा नहीं, यों ही पड़ा था । उस समय आश्चर्यके साथ-साथ सीताको बड़ा विषाद भी हुआ ॥ ६०–६२ ॥ समस्त देवता, गन्धर्व, यक्ष, नाग, किन्नर, गुह्यक तथा ऋषिगण वह कौतुक देखनेको एकत्रित हो गये थे ॥ ६३ ॥ जब सीताको इस प्रकार दुःखित देखा तो नारद मुनि उन्हें एकान्तमें ले गये और आदरपूर्वक समझाया । नारदने

शृण्वत्र कारणं सीते सर्वं त्वां प्रवदाम्यहम् । पतिव्रताभिर्नारीभिर्विना स्वपतिना मुदा ॥६५॥
पुष्पादीनां सुगन्धोऽपि नावघ्राह्यः कदाचन । सोऽवघ्राहितः पूर्वं मुदा तामरसस्य च ॥६६॥
तद्बुद्ध्वा रामचन्द्रेण मायेयं रचिताऽद्य हि । तदिच्छया तुलस्याश्च तत्पत्र पतितं भुवि ॥६७॥
त्वद्धस्तपल्लवाग्रेण शिक्षां कर्तुं तवात्र हि । रामस्यांतर्गतं ज्ञात्वा दोषारोपः कृतस्त्वयि ॥६८॥
मया सीते क्षमस्वाद्य मा क्रोधं भज मां प्रति । नारीणामुपकारार्थं तेन त्वामद्य शिक्षितम् ॥६९॥
नोचेत्त्वद्दर्शितपथा स्त्रियः सर्वाः पतिं विना । एवमेवाचरिष्यन्ति नानाभोगान्मुदान्विताः ॥७०॥
इदानीं शृणु मद्वाक्यं येन श्रीराघवाग्रतः । पत्रस्य च तुलस्याश्च दृढा सन्धिर्भविष्यति ॥७१॥
वृन्दावने पुनर्गत्वा त्वं ब्रूहि यन्मयोच्यते । विना पद्मसुगन्धस्यावघ्राणाद्यदि रक्षितम् ॥७२॥
पातिव्रत्यं ममास्त्यत्र तर्ह्येतत्तुलसीदलम् । तुलस्यां संधिमाप्नोतु नोचेन्नाप्नोतु वै त्विदम्॥७३॥
अनेन वचनेनाद्य तत्पत्रं सन्धिमाप्नुयात् । तुलस्याः क्षणमात्रेण पूर्ववच्च भविष्यति ॥७४॥
अतस्त्वं याहि तुलसीं विषादं भज मा रमे । इत्युक्त्वा सीतया शीघ्रं तुलसीं नारदो ययौ ॥७५॥
सीताऽपि तुलसीं नत्वा शृण्वत्सु सकलेष्वपि । समूहेषु मुनीनां च देवादीनां वचोऽब्रवीत् ॥७६॥
विना पद्मसुगन्धस्यावघ्राणाद्यदि रक्षितम् । पातिव्रत्यं मयाऽस्त्यत्र तर्ह्येतत्तुलसीदलम् ॥७७॥
तुलस्याः संधिमाप्नोतु नोचेन्नाप्नोतु वै त्विदम् । एवं वदति जानक्या वाक्ये पत्रं क्षणेन तत् ॥७८॥
प्राप्तं सन्धिं पूर्ववच्च पश्यत्सु सकलेष्वपि । तदा निनेदुर्वाद्यानि देवानां राघवस्य च ॥७९ ।
देवनार्यो विमानाग्रे संस्थिताः पुष्पवृष्टिभिः । ववर्षुर्जानकीं रामं विप्रा ऊचुर्जयस्वनान् ॥८०॥
तदा सीतां समालिङ्ग्य राघवो मुदिताननाम् । आह तुष्टमनाः श्रीमान् वसनाहारभूषितः ॥८१॥
हे सीते कञ्जनयने मुनीनामपि मोहिनि । नेदं मया शिक्षितं ते सर्वस्त्रीणां सुशिक्षितम् ॥८२॥
धर्मसंस्थापनार्थाय साधूनां पालनाय च । दुष्टानां च विनाशाय मयेदं रूपमाश्रितम् ॥८३॥

कहा–हे सीते ! इस पत्रके न जुटनेमें जो कारण है, वह मैं बतलाता हूँ। पतिव्रता स्त्रियोंको चाहिए कि यदि उनके पतिने हर्षपूर्वक सुगन्ध न लिया हो तो स्वयं भी पुष्पादिकका सुगन्ध न लें। आपने उस रोज रामके सूँघे विना ही कमलका फूल सूँघ लिया था ॥ ६४–६६ ॥ रामको यह बात मालूम हो गयी थी। इसीसे उन्होंने यह माया रची है। तुलसीका पत्र भी उन्हींकी इच्छासे टूट गया था ॥ ६७ ॥ आपको शिक्षा देने ही के लिए उन्होंने ऐसा किया है। रामकी इच्छा देखकर ही मैंने आपपर दोषारोप किया है। सो क्षमा करें। मेरे ऊपर कुपित न हों। नारीजातिको शिक्षा देनेके लिए ही उन्होंने यह कौतुक रचकर आपको उपदेश दिया है ॥ ६८ ॥ ६९ ॥ वे यदि ऐसा न करेंगे तो आपके बताये मार्गके अनुसार संसारकी समस्त स्त्रियाँ अपने-अपने पतिको अलग करके स्वयं विविध प्रकारके भोगोंका उपभोग करने लगेंगी ॥ ७० ॥ सुनिए, अब मैं बतलाता हूँ कि किस तरह वह पत्र वृक्षमें जुड़ेगा ॥ ७१ ॥ आप फिर वृन्दावनमें जाकर कहें कि उस कमलका फूल सूँघनेके सिवाय यदि मेरा पातिव्रत धर्म सुरक्षित हो तो यह पत्र जुड़ जाय और यदि मैं अपने धर्मको सुरक्षित न रख सकी होऊँ तो न जुड़े ॥ ७२ ॥ ७३ ॥ आपके इस वचनसे तत्काल वह जुड़कर पहिलेकी तरह हरा-भरा हो जायगा ॥ ७४ ॥ हे लक्ष्मीस्वरूपिणी सीते ! अब चलें, किसी प्रकारका विषाद न करें। ऐसा कहकर नारदजी सीताके साथ साथ उस वृक्षके पास गये ॥ ७५ ॥ सीता भी जब समस्त परिवारके सभी लोग तथा सारे देवता एकत्र होकर सुन रहे थे, तब उन्होंने कहा—॥ ७६ ॥ यदि उस कमलका सुगन्ध लेनेके अतिरिक्त मेरा पातिव्रत धर्म सुरक्षित हो तो यह तुलसीदल अपने स्थानपर जुड़ जाय, अन्यथा नहीं जुड़े। सीताके ऐसा कहते ही क्षणमात्रमें वह पत्र पहलेकी तरह वृक्षमें जुड़ गया। सब लोग खड़े यह कौतुक देख रहे थे। पत्रके जुड़ते ही देवताओंने बाजे बजाये और देवनारियोंने पुष्पवृष्टि की एवं ब्राह्मणोंने एक स्वरसे जयजयकार किया ॥ ७७–८० ॥ इसके बाद रामने सीताको हृदयसे लगा लिया और प्रसन्न मनसे कहा कि हे मुनियोंके भी मनको मोहनेवाली सीते ! यह मैंने तुम्हींको नहीं, समस्त नारीजातिको शिक्षा दी है। धर्मकी

पातिव्रत्यं सदा स्त्रीभिः पालनीयं धियेति च । मया ते शिक्षितं सीते मा विषादं भज प्रिये ॥८४॥
इत्याश्वास्य मुहु सीतां कृत्वा तामतिहर्षिताम् । विसर्जयित्वा श्रीरामः सुरादीन्समपूजयत् ॥८५॥
ततः सर्वान्नारदादीन् जानकी परिवेषणम् । वेगाच्चकार मुदिता स्वेदबिंदंकितानना ॥८६॥
ततः सर्वे नारदाद्याश्चक्रुर्भोजनमुत्तमम् । ततो भुक्त्वाऽथ तांबूलं रामं तुष्टाव नारदः ॥८७॥

श्रीनारद उवाच

श्रीरामं मुनिविश्रामं जनसद्धामं हृदयारामं सीतारञ्जनसत्यसनातनराजारामं घनश्यामम् ।
नारीसंस्तुतकालिंदीनतनिद्राप्रार्थितभूपालं रामं त्वां शिरसा सततं प्रणमामिच्छेदितसत्तालम् ॥८८॥
नानाराक्षसहन्तारं शरधर्तारं जनताधारं वालीमर्दनसागरबन्धननानाकौतुककर्तारम् ।
पौरानन्ददनारीतोषकस्तूरीयुतसद्भालं रामं त्वां शिरसा सततं प्रणमामि च्छेदितसत्तालम् ॥८९।
श्रीकांतं जगतीकांतं स्तुतसद्भक्तं बहुसद्भक्तं सद्भक्तहृदयेप्सितपूरकपद्माक्षं नृपजाकांतम् ।
पृथ्वीजापतिविश्वामित्रसुविद्यादर्शितसच्छीलं रामं त्वां शिरसा सततं प्रणमामि च्छेदितसत्तालम् ॥९०॥
सीतारंजितविश्वेशं धरपृथ्वीशं सुरलोकेशं ग्रावोद्धारणरावणमर्दनतद्भ्रातृकृतलंकेशम् ।
किष्किंधाकृतसुग्रीवं प्लवगवृन्दाधिपसत्पालं रामं त्वां शिरसा सततं प्रणमामि च्छेदितसत्तालम् ॥९१॥
श्रीनाथं जगतां नाथं जगतीनाथं नृपतीनाथं भूदेवासुरनिर्जरपन्नगगन्धर्वादिकसन्नाथम् ।
कोदण्डधृततूणीरान्वितसंग्रामे कृतभूपालं रामं त्वां शिरसा सततं प्रणमामि च्छेदितसत्तालम् ॥९२॥
रामेशं जगतामीशं जम्बुद्वीपेश नतलोकेशं वाल्मीकिकृतसंस्तवहर्षितसीतालालितवागीशम् ।
पृथ्वीश हृतभूभारं नतयोगींद्रं जगतीपालं रामं त्वां शिरसा सततं प्रणमामि च्छेदितसत्तालम् ॥९३॥

स्थापना करने, सज्जनोंका रक्षा तथा दुष्टोंका विनाश करनेके लिये ही मैंने यह अवतार लिया है। स्त्रियोंको अपनी बुद्धिसे पातिव्रत धर्मकी रक्षा करनी चाहिए। यह मैंने तुम्हें उपदेश दिया है। इससे कहीं कुपित न हो जाना ॥ ८१–८४ ॥ इस प्रकार बारम्बार सीताको आश्वासन देकर रामने उन्हें फिर हर्षित कर दिया और उन आये हुए देवताओंका पूजन किया ॥ ८५ ॥ फिर नारदादि मुनियोंको साथ लेकर महलमें गये। वहाँ जल्दीसे सीताने भोजन परोसा ॥ ८६ ॥ इसके अनन्तर सबोंने भोजन किया। फिर ताम्बूल खाकर नारद रामकी स्तुति करने लगे ॥ ८७ ॥ नारदने कहा—मैं उन रामको मस्तक झुकाकर प्रणाम करता हूँ, जो मुनियोंके विश्राम-स्थान हैं, निजजनोंके सुन्दर धाम हैं, हृदयको आनन्द देनेवाले, सीताको प्रसन्न रखनेवाले, सत्य, सनातन, राजा राम, मेघकी तरह श्याम स्वरूपधारी, यमुना आदिसे वन्दित, निद्रासे प्रार्थित उन भूपाल रामको, जिन्होंने बड़े भारी सात तालके वृक्षोंको एक बाणसे गिरा दिया था, मैं प्रणाम करता हूँ ॥ ८८ ॥ अनेक राक्षसोंके प्राण लेनेवाले, धनुर्बाणधारी, जनताके आधार, बालिके नाशक, समुद्रमें सेतु बांधने और अनेक प्रकारके कौतुक करनेवाले, पुरवासियोंके आनन्ददाता, नारियोंके प्रसन्नकर्ता और माथेमें कस्तूरीका तिलक लगानेवाले आप रामको मैं प्रणाम करता हूँ ॥ ८९ ॥ लक्ष्मीके पति, जगत्पति, अच्छे अच्छे भक्तोंसे वन्दित, जिनके बहुतसे भक्त हैं, जो मानसिक कामना पूर्ण करनेवाले तथा पृथ्वीकी पुत्री सीताके पति हैं, विश्वामित्रकी सुविद्यासे जिनका शील उत्तम हो गया है, ऐसे महान् सात तालके वृक्षोंको काटनेवाले आप रामको मैं मस्तक नवाकर प्रणाम करता हूँ ॥ ९० ॥ सीताको प्रसन्न करनेवाले, समस्त विश्वके ईश, पृथ्वीके ईश, देववृन्दके अधिपति, (अहल्यारूपी) पत्थरका उद्धार करनेवाले, रावणके विनाशकारी, रावणके भ्राता विभीषणको लंकेश बनानेवाले, सुग्रीवको किष्किन्धाका अधिपति बनानेवाले, वानरोंके अधिपति सुग्रीवकी भली-भाँति रक्षा करनेवाले और महान् तालके वृक्षोंको काटनेवाले रामको मैं प्रणाम करता हूँ ॥ ९१ ॥ लक्ष्मीके नाथ, जगतीके नाथ, जगत्के नाथ, राजाओंके राजा, विप्र, असुर, देवता, पन्नग तथा गन्धर्वोंके नायक, धनुष और तरकस लेकर संग्राममें लड़नेवाले राजा राम जिन्होंने महान् तालवृक्षोंको काट गिराया था, मैं उनको प्रणाम करता हूँ ॥ ९२ ॥ ईश, जगत्के ईश, जम्बुद्वीपके ईश, समस्त लोकपालोंके

चिद्रूपं जितसद्भूपं नतसद्दिक्पं नतसद्भूपं सप्तद्वीपजवर्षजकामिनिसंनीराजितपृथ्वीपम् ।
नानापार्थिवनानोपायनसम्यक्तोषितसद्भूपं रामं त्वां शिरसा सततं प्रणमामि च्छेदितसत्तालम् ॥९४॥
संसेव्यं मुनिभिर्गेयं कविभिः स्तव्यं हृदि संधार्यं नानापण्डिततर्कपुराणजवाक्यादिकृतसत्काव्यम् ।
साकेतस्थितकौसल्यासुतगन्धाद्यंकिनसद्भालं रामं त्वां शिरसा सततं प्रणमामि च्छेदितसत्तालम्॥९५॥
भूपालं घनसन्नीलं नृपसद्बालं कलिसङ्कालं सीताजानिवरोत्पललोचनमन्त्रीमोचिततत्कालम् ।
श्रीसीताकृतपद्मास्वादनसम्यक्शिक्षिततत्कालं रामं त्वा शिरसा सततं प्रणमामि च्छेदितसत्तालम् ९६॥
हे राजन् नवभिः श्लोकैर्भुवि पापघ्नं नवकं रम्यं मे बुद्धया कृतमुत्तमनूतनमेतद्राघव मर्त्यानाम् ।
स्त्रीपौत्रान्नादिकक्षेमप्रदमस्मत्सद्वरदश्वालं रामं त्वां शिरसा सततं प्रणमामि च्छेदितसत्तालम् ॥९७॥

श्रीरामचन्द्र उवाच

एवं स्तुत्वा रमानाथं राघवं भक्तवत्सलम् । प्रणम्याज्ञां प्रभोः प्राप्य प्रययौ नारदो मुदा ॥९८॥
अमरा मुनयः सर्वे जग्मुस्ते स्वस्थलानि वै । एवं श्रीरामचन्द्रेण नररूपधरेण च ॥९९॥
कौतुकानि विचित्राणि कृतानि जगतीतले । कस्तान्यत्र क्षमो वक्तुं विस्तरेण द्विजोत्तम ॥१००॥
तेषु यद्यद्राघवेण स्मारितं त्विह वै मम । तत्तत्प्रकथ्यते शिष्य तवाग्रे राघवाज्ञया ॥१०१॥

इति श्रीशतकोटिरामचरितांतर्गते श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये राज्यकाण्डे
उत्तरार्द्धे सीतया तुलसीपत्रसन्धिर्नाम द्वाविंशः सर्गः ॥ २२ ॥

प्रभु वाल्मीकिसे नमस्कृत, प्रसन्न सीताके द्वारा लालित, वागीश, पृथ्वीश, भूभारहारी, योगीन्द्रोंसे नमस्कृत, जगतीके पालक और विशाल तालवृक्षको काट गिरानेवाले रामको मैं मस्तक झुकाकर प्रणाम करता हूँ ॥ ९३ ॥ चिद्रूप, अच्छे-अच्छे राजाओंको भी परास्त करनेवाले, अच्छे-अच्छे दिक्पालोंसे नमस्कृत, बड़े-बड़े राजाओंसे नमस्कृत, सप्तद्वीप तथा समस्त देशमें उत्पन्न नारियोंसे नीराजित, पृथ्वीके पालक, अनेक राजाओंके द्वारा अनेक प्रकारके उपहार देकर प्रसन्न किये गये राजा राम जिन्होंने विशाल तालके वृक्षोंको काट गिरांया था, उन रामको मैं मस्तक झुकाकर प्रणाम करता हूँ ॥ ९४ ॥ जो मुनियोंके सेव्य, मंत्रियोंसे गेय, हृदयमें धारण करने योग्य, अनेक पंडितों द्वारा विविध प्रकारके तर्क-पुराण तथा काव्योंसे सत्कृत एवं साकेत-निवासिनी कौसल्याके पुत्र हैं और गन्धादि द्रव्योंसे जिनका मस्तक अलंकृत है, सात तालके वृक्षोंको काट गिरानेवाले आप रामको मैं मस्तक झुकाकर प्रणाम करता हूँ ॥ ९५ ॥ भूपाल, मेघके समान श्यामस्वरूप, महाराज दशरथके अच्छे पुत्र, पापोंके लिये कालस्वरूप, सीतापति, सुन्दर, कमलकी नाईं आखोंवाले, प्रबल कालके गालसे अपने मन्त्रीको तत्काल छुड़ानेवाले, पतिको विना अर्पण किये कमलका फूल सूँघ लेनेपर सीताको भलीभांति शिक्षाके दाता, विशाल तालके वृक्षोंको काट गिरावाले उन रामको मैं मस्तक झुकाकर प्रणाम करता हूँ ॥ ९६ ॥ हे राजन् ! संसारके प्राणियोंका पाप नष्ट करनेवाले इन नौ श्लोकोंसे मैंने अपनी बुद्धिके अनुसार आपकी स्तुति की है । मेरे वरदानसे यह स्तुति स्त्री-पुत्र आदि सब वस्तुओंको देनेवाली होगी। विशाल तालके वृक्षोंका भेदन करनेवाले रामको मैं मस्तक झुकाकर प्रणाम करता हूँ ॥ ९७ ॥ श्रीरामदासने कहा—इस प्रकार भक्तवत्सल, रमानाथ, राघव, रामचंद्रकी स्तुति करके और उनसे आज्ञा लेकर नारदजी प्रसन्नतापूर्वक वहांसे विदा हुए ॥ ९८ ॥ तब सब देवता तथा मुनिगण भी अपने-अपने स्थान-को चले गये। नररूपधारी रामचंद्रने ऐसे-ऐसे कितने ही कौतुक किये हैं। हे द्विजोत्तम ! विस्तारपूर्वक उनका वर्णन करनेके लिए इस संसारमें कौन समर्थ हो सकता है ? ॥ ९९ ॥ १०० ॥ उन चरित्रोंमेंसे स्वयं रामचंद्रजीने जो जो चरित्र हमें स्मरण कराया है, वह-वह उन्हींकी आज्ञासे मैंने तुम्हारे आगे कहा है ॥ १०१ ॥ इति श्रीशतकोटिरामचरितान्तर्गते श्रीमदानन्दरामायणे पं० रामतेजपाण्डेयकृत'ज्योत्स्ना'भाषा-टीकासहिते राज्यकाण्डे उत्तरार्द्धे द्वाविंशः सर्गः ॥ २२ ॥

त्रयोविंशः सर्गः

(आनन्दरामायणकी महिमा)

श्रीरामदास उवाच

अथ रामः स वैदेह्या बन्धुभिस्तनयादिभिः । चकार राज्यं धर्मेण लोकवंद्यपदांबुजः ॥ १ ॥
एतस्मिन्नन्तरेऽयोध्यापुर्यां श्रीरघुनायकम् । नत्वैकदाऽब्रवीद्दूतो हे राम कञ्जलोचन ॥ २ ॥
करोमि तव सेवां न तपश्चर्यां करोम्यहम् । ददस्वाज्ञां मम त्वं हि गच्छामि निजमन्दिरम् ॥ ३ ॥
तथेति राघवेणोक्तः स ययौ निजमन्दिरम् । तत्र गत्वा शुचिर्भूत्वाऽऽनन्दरामायणं शुभम् ॥ ४ ॥
पठित्वा नवरात्रं तु ततस्तूर्णं बहिर्ययौ । एतस्मिन्नन्तरे एकदेशे पौरा मृतं नृपम् ॥ ५ ॥
दृष्ट्वा तस्य सुतं बालं ज्ञात्वा कर्तुं हि मन्त्रिणम् । चक्रुस्ते निश्चयं तत्र केचिद्रूचुरयं शुभः ॥ ६ ॥
केचिदूचुरयं नैव कार्यो मन्त्री खलस्त्वयम् । एवं विवदमानास्ते चक्रुर्वै निश्चयं तदा ॥ ७ ॥
करिणी निजशुण्डाग्रमालया यं वरिष्यति । सोऽस्तु मन्त्री निश्चयेन ततस्तां करिणीं वरैः ॥ ८ ॥
वस्त्रलङ्कारभूषाद्यैः शोभयामासुरादरात् । तच्छुण्डायां रत्नमालां दत्त्वा तां मुमुचुस्तदा ॥ ९ ॥
ततस्ते नववाद्यानि वादयामासुरादरात् । तदा सा करिणी ग्रामाद्बहिस्तूर्णं ययौ शनैः ॥१०॥
अयोध्यायाःपथाऽयोध्यां ययौ देशान् विलंघ्य सा । तत्पृष्ठे सकलाः पौरा नानावाहनसंस्थिताः ॥११॥
ययुस्तूर्णं कौतुकेन कोटिशो मुदिताननाः । ततः सा कारिणी गत्वाऽयोध्यां हट्टस्थितं तदा ॥१२॥
तं दूतं वरयामास येन पारायणं कृतम् । आनन्दरामचरितस्याहो तत्कौतुकं महत् ॥१३॥
बभूव सकलान् लोकान् ततस्तं मालयांकितम् । करिण्या मन्त्रिणं चक्रुस्ते पौरा ये समागताः ॥१४॥
तं निन्युः करिणीसंस्थं पत्नीपुत्रसमन्वितम् । स्वदेशे मन्त्रिणं चक्रुस्तदद्भुतमिवाभवत् ॥१५॥

श्रीरामदास कहने लगे—इसके अनन्तर संसारसे वन्दित राम जब सीता, पुत्रों और भ्राताओंके साथ धर्मपूर्वक राज्य कर रहे थे ॥ १ ॥ उसी समय एक दूतने अयोध्यापुरीमें रामके पास जाकर कहा कि हे कमललोचन राम ! अब आपकी सेवा न करके मैं तपस्या करना चाहता हूँ । मुझे आज्ञा दीजिए तो अपने घर जाऊँ ॥ २ ॥ ३ ॥ रामने उसकी प्रार्थना स्वीकार कर ली और वह अपने घर चला गया । वहाँ पवित्र मनसे उसने नौ रात्रि तक इस कल्याणदायक आनंदरामायणका पाठ किया और बादमें घरसे बाहर निकला । उसी समय एक देशका राजा मर गया था ॥ ४॥ ५॥ उसका पुत्र बालक था। सो उसके लिये किसीको मंत्री बनानेकी आवश्यकता पड़ी । अब पुरवासियोंमें मंत्रणा होने लगी कि किसको मंत्री बनाया जाय । कोई किसीको कहता कि अमुक मनुष्य अच्छा है, उसे मंत्री बना दिया जाय । किन्तु उसकी बात काटकर दूसरा कहता कि नहीं, वह बड़ा दुष्ट है । उसे मंत्री नहीं बनाया जा सकता । इस तरह परस्पर झगड़ा करते करते यह निश्चय हुआ कि ॥ ६ ॥ ७ ॥ राजाकी हथिनी अपनी सूँड़में माला लेकर जिसके गलेमें डाल दे, वही व्यक्ति राजकुमारका मंत्री बनाया जाय । तदनुसार अच्छे-अच्छे वस्त्र-आभूषण आदि पहिनाकर हथिनीको सुसज्जित किया गया और उसकी सूँड़में एक माला देकर उसे छोड़ दिया ॥ ८ ॥ ९ ॥ इसके बाद वे लोग हर्षसे बाजे बजाने लगे । वह हथिनी धीरे-धीरे नगरसे बाहर निकली ॥ १० ॥ वहाँसे चलकर वह अयोध्या पहुँची । उसके पीछे अनेक प्रकारके वाहनोंपर सवार होकर नागरिक लोग भी कौतुकवश बड़े वेगके साथ प्रसन्न मनसे अयोध्या तक चले आये । उस हथिनीने बाजारमें खड़े उस मनुष्यके गलेमें माला डाल दी जिसने नौ रात तक आनंदरामायणका पाठ किया था । उन लोगोंके लिये यह एक असाधारण कौतुककी बात हुई ॥ ११–१३ ॥ तब माला पहिने हुए उस दूतको लोगोंने राजकुमारका मंत्री चुन लिया । उसी हथिनीपर विठाकर पत्नी-पुत्र समेत उसे अपने देश ले गये और राजकुमारके

ततः परस्परं श्रुत्वा राजदूताः सहस्रशः । नानादेशेषु सर्वत्र साकेतेऽपि तदा मुदा ॥१६॥
राजसेवां परित्यज्य जग्मुस्ते स्वगृहाणि हि । ततः सर्वे स्वगृहेष्वानन्दरामायणस्य च ॥१७॥
केचित्पारायणं चक्रुः केचित्तच्छ्रवणं मुदा । केचित्तत्पठनं वाऽपि केचिच्चक्रुश्च कीर्तनम् ॥१८॥
केचिच्चक्रुश्च व्याख्यानमेवं तन्निष्ठमानसाः । बभूवुः सकला दूताः कोटिशो जगतीतले ॥१९॥
तदा केन धनं लब्धं केन लब्धं महद्धनम् । केन राजपदं लब्धं केन लब्धं गृहं वरम् ॥२०॥
केन ग्रामाधिकारश्च केन लब्धा कृषिर्वरा । केन वृत्तिः शुभा लब्धा केन स्वर्गो मनोरमः ॥२१॥
केन लब्धं तु पातालं कैर्लोका विविधाः शुभाः । लब्धं कैश्चित्सूर्यपदं लब्धं स्वर्गं मनोहरम् ॥२२॥
केचिदिन्द्रपदं प्रापुः केचिदग्निपुरं गताः । केचित्ते धर्मराजस्य लोकं वा निर्ऋतेरपि ॥२३॥
वरुणस्याथ वायोश्च कुबेरस्येश्वरस्य च । लोकान् जग्मुस्तदा दूतास्तदद्भुतमिवाभवत् ॥२४॥
केचिज्जग्मुश्चन्द्रलोकं केचिद्ध्रुवपदं गताः । केचित्ते ब्रह्मलोकं च वैकुण्ठं चापि केचन ॥२५॥
एवं यथा यस्य पुण्यं दूतस्यान्यजनस्य च । आनन्दरामचरितपाठश्रवणसम्भवम् ॥२६॥
तथा तस्य गतिर्जाता सद्य एवावनीतले । तदा कोऽपि न कस्यासीद्दूतो देशान्तरेष्वपि ॥२७॥
त्यक्त्वा सेवां समस्ताश्च राघवस्यापि ते गताः । रामं पृष्ट्वा गताः केचिदपृष्ट्वैव गताः परे ॥२८॥
एवं सर्वत्र देशेषु दूताभावोऽभवत्तदा । एकदा राघवं द्रष्टुं गन्तुं सर्वे नृपोत्तमाः ॥२९॥
सैन्यान्याकारयामासुः स्वीयानि तु पृथक्पृथक् । तदा कुत्रापि सैन्यानि ददृशुर्न नृपोत्तमाः ॥३०॥
आः किमेतदिति प्रोक्त्वा स्वसुहृद्भिः सुतादिभिः। ययुस्ते राघवं द्रष्टुं विस्मयाविष्टमानसाः ॥३१॥
तानागतान्नृपान् ज्ञात्वा तान्पुरो गन्तुमादरात् । आकारयत्स्वसैन्यानि न तदा प्राप लक्ष्मणः ॥३२॥

मन्त्रि-पदपर बिठा दिया। यह घटना एक अद्भुत प्रकारसे घट गयी ॥ १४ ॥ ॥ १५ ॥ फिर क्या था, जब
रामके दूतोंको यह खबर मिली तो अयोध्यापुरीके तथा अन्यान्य देशोंके हजारों दूत प्रसन्नतापूर्वक अपनी-अपनी
नौकरी छोड़कर घर चले गये। घरपर कुछने आनन्दरामायणका पाठ करना प्रारम्भ किया ॥ १६ ॥ १७ ॥
कुछ इसे दूसरेके मुखसे सुनने लगे, कुछ इसका पारायण करने लगे और कुछ लोग इसके कीर्तनमें लग गये
॥ १८ ॥ कुछ लोग इसकी व्याख्या करने लगे और कुछने चारों ओरसे अपनी चित्तवृत्ति हटाकर इसी
आनन्दरामायणमें लगा दी। इस तरह राजसेवा छोड़कर आनन्दरामायणका आराधन करनेवालोंकी संख्या
संसारमें करोड़ोंके लगभग हो गयी ॥ १९ ॥ ऐसा करनेसे कुछको धन मिला, कुछको बहुत अधिक सम्पदा
मिली, किसीको राज्यपद प्राप्त हुआ और किसीको अच्छा-सा घर मिला ॥ २० ॥ कुछको ग्रामका अधिकार
मिला, किसीको अच्छी खेती मिली, किसीको सुन्दर जीविका मिली और किसीको मनोरम स्वर्गलोक
प्राप्त हुआ ॥ २१ ॥ किसीको पाताललोक मिला और कुछ लोगोंको विविध प्रकारके अच्छे-अच्छे लोक प्राप्त हुए
और कुछ लोगोंको सूर्यलोक मिला ॥ २२ ॥ कुछ लोगोंको इन्द्रपद प्राप्त हुआ, कुछ अग्निलोकको गये, कुछ
धर्मराजके लोक तथा कितने ही लोग निर्ऋतिलोकको चले गये ॥ २३ ॥ कुछ अरुणलोकको, कुछ कुबेरलोकको,
कुछ चन्द्रलोकको, कुछ ध्रुवलोकको, कुछ ब्रह्मलोकको तथा कुछ लोग वैकुण्ठलोकमें जा पहुँचे ॥ २४ ॥ २५ ॥
इस तरह आनन्दरामायणके पाठसे उन दूतों तथा अन्य लोगोंको भी वे ही लोक प्राप्त हुए, जिनका जैसा
पुण्य था। इस प्रकार पृथ्वीलोकमें सबको शुभ गति प्राप्त हुई। उस समय अयोध्या तथा देशान्तरमें भी
कोई सिपाही नहीं रहा ॥ २६ ॥ २७ ॥ सब रामका भी सेवा त्याग-त्यागकर चले गये थे। उनमेंसे कुछ लोग तो
रामसे पूछकर गये थे, कुछ बिना पूछे-जाँचे ही चले गये ॥ २८ ॥ इस तरह उस समय सारा देश
दूतविहीन हो रहा था। एक बार संसारके जितने अच्छे-अच्छे राजे थे, वे सब रामचन्द्रजीसे मिलने जानेके
लिये तैयार हुए। उन्होंने जब साथ चलनेके लिए सेना बुलायी तो पता चला कि सेना है ही नहीं
36 ॥ २९ ॥ ३० ॥ यह खबर पाकर राजाओंने कहा—आह! यह क्या हुआ? विस्मितभावसे वे अपने-अपने
मित्रों और पुत्रोंको साथ लेकर अयोध्या आये ॥ ३१ ॥ जब अयोध्यामें लक्ष्मणको यह सम्वाद मिला तो

ततो निवेदयामास तद्वृत्तं राघवाय सः। तच्छ्रुत्वा राघवोऽप्यासीद्विस्मयाविष्टमानसः ॥३३॥
सुहृज्जनैर्युतं बन्धुं लक्ष्मणं प्रेष्य पार्थिवान्। स्वपुरीमानयामास ते नेमू रघुनायकम् ॥३४॥
ततस्ते तस्थुः सदसि सेनावृत्तं न्यवेदयन्। रामोऽपि कथयामास स्वसेनावृत्तमादरात् ॥३५॥
तदा विहस्य श्रीरामः समाहूय निजं गुरुम्। पृष्टवान्मम सैन्यानि नृपाणां चापि वै गुरो ॥३६॥
किं जातानि क वै सन्ति तद्वदस्व सविस्तरम्। तद्रामवचनं श्रुत्वा कृत्वा ध्यानं क्षणं गुरुः ॥३७॥
तदा प्राह सभामध्ये विहस्य रघुनन्दनम्। राम राम महाबाहो सर्वं वेत्सि त्वमेव हि ॥३८॥
यदि पृच्छसि मां राम तर्हि सर्वं वदाम्यहम्। शतकोटिमितं रामचरितं तव पावनम् ॥३९॥
वाल्मीकिना कृतं पूर्वं तन्मध्ये रघुनन्दन। आनन्दरामचरितं नवकांडसमन्वितम् ॥४०॥
तस्य श्रवणपाठाद्यैः सर्वसैन्येषु ये नराः। ते गतास्त्वत्पदं केचित्केचिल्लोकांतरादिषु ॥४१॥
न संति भुवि सैन्यानि सत्यं राम वचो मम। नवकाण्डमितं तच्च रम्यमानन्ददायकम् ॥४२॥
तस्यैतच्छ्रवणाद्विद्धि फलं रघुकुलोद्भव। येन ते हीनजातिस्था दूताश्च मुक्तिगामिनः ॥४३॥
सारकांडश्रवादेव संसारान्मुच्यते नरः। यात्राकाडेन यात्राणां लभ्यते मानवैः फलम् ॥४४॥
यागकांडेन यज्ञानां लभ्यते फलमुत्तमम्। विलासकांडश्रवणादप्सरोभिर्विमोदते ॥४५॥
जन्मकांडेन चाप्नोति नरः पुत्रादिसंततिम्। विवाहकांडश्रवणाद्भुवि रम्यां स्त्रियं लभेत् ॥४६॥
राज्यकांडेन राज्यं हि मानवैर्भुवि लभ्यते। कांडं मनोहरं श्रुत्वा लभ्यते मानसेप्सितम् ॥४७॥
पूर्णकांडश्रवादेव [illegible] पूर्णस्य पदं लभेत्। सर्वं तान्मानवैः श्रुत्वाऽऽनन्दरामायणं भुवि ॥४८॥
सच्चिदानन्दरूपे ते लीनो भवति मानवः। एवं राम त्वया पृष्टं तत्सर्वं कथितं मया ॥४९॥
यदग्रेऽत्र चिकीर्षा ते तत्कुरुष्व रघूत्तम। इति रामं वसिष्ठस्तु यावत्प्राह नृपाग्रतः ॥५०॥

उन्होंने राजाओंकी अगवानी करनेके लिए सेना बुलवायी तो उन्हें भी सेना नहीं मिली ॥ ३२ ॥ लक्ष्मणने रामको यह वृत्तान्त सुनाया तो राम भी भौंचक-से रह गये ॥ ३३ ॥ अन्तमें रामने भी अपने परिवारके लोगोंको भेजकर राजाओंकी अगवानी करायी । राजाओंने अपनी-अपनी सेनाका समाचार सुनाया। सो सुनकर रामने आदरपूर्वक अपना भी सब हाल कहा ॥ ३४ ॥ ३५ ॥ तदनन्तर रामने अपने कुलगुरु वसिष्ठको बुलवाया और हँसकर उनसे कहा—हे गुरो ! हमारा तथा इन राजाओंकी सेना कहाँ चली गयी है, सो विस्तारपूर्वक बतलाइए। रामकी बात सुनकर वसिष्ठने कहा—हे राम ! हे महाबाहो ! आप स्वयं सब बातोंको जानते हैं ॥ ३६–३८ ॥ फिर भी यदि हमसे पूछ रहे हैं तो बतलाता हूँ। बहुत दिनों पहले महर्षि वाल्मीकिने सौ करोड़ श्लोकोंमें आपके पावन चरित्रका वर्णन किया था। उसके मध्यमें नौ काण्डोंका आनन्दरामायण है ॥ ३९ ॥ ४० ॥ उसका श्रवण तथा पाठ करनेसे आपकी सेनाके सारे सैनिकोंमेंसे कुछ तो आपके परमपद (वैकुण्ठ) को और कुछ अन्यान्य लोकोंको चले गये हैं ॥ ४१ ॥ हे राम ! आप मेरी इस बातको सच मानिए। इस समय संसारमें कोई भी सेना नहीं है। नौ काण्डोंवाला आनन्ददायक एवं रमणीक वह आनन्दरामायण है ॥ ४२ ॥ उसका श्रवण करनेसे नीच जातिवाले लोग भी मुक्तिपद प्राप्त कर लेते हैं ॥ ४३ ॥ सारकाण्डके श्रवणसे प्राणी संसारसे मुक्त हो जाता है। यात्राकाण्डके श्रवणसे तीर्थोंकी यात्राका पुण्य प्राप्त होता है ॥ ४४ ॥ यागकाण्डसे यज्ञोंका शुभ फल प्राप्त होता है। विलासकाण्डके श्रवणसे प्राणी स्वर्गकी अप्सराओंके साथ आनन्द करता है ॥ ४५ ॥ जन्मकाण्डके श्रवणसे पुत्रादि सन्तति पाता है। विवाहकाण्डको सुननेसे मनुष्य संसारमें सुन्दरी स्त्री पाता है ॥ ४६ ॥ राज्यकाण्डके सुननेसे प्राणी राज्यपद पाता है और मनोहरकाण्डके सुननेसे अपनी अभिलाषाके अनुसार सब वस्तुयें पा जाता है ॥ ४७ ॥ पूर्णकाण्डके श्रवणसे पूर्णपद प्राप्त होता है और समस्त आनन्दरामायण श्रवण करके मनुष्य सच्चिदानन्दस्वरूप परमात्मामें लीन हो जाता है। हे राम ! आपने मुझसे जो पूछा, सो सब मैंने

तावद्भूम्यां हि किं जातं तच्छृणुष्व सविस्तरम् । गतिं श्रुत्वा तु दूतानां नानादेशेषु ये नराः ॥५१॥
तेऽपि सर्वे तदानन्दरामायणश्रवादिभिः । नानाविमानसंस्थास्ते ययुः स्वर्लोकमुत्तमम् ॥५२॥
शून्यं दृष्ट्वा निजं लोकं यमो विधिसमन्वितः । कैलासे शंकरं गत्वा सर्वं वृत्तं न्यवेदयत् ॥५३॥
शिवः श्रुत्वा विहस्याथ यमेन केन दुर्गया । ययौ स वृषभारूढः साकेतं वेष्टितोऽमरैः ॥५४॥
शिवमागतमाज्ञाय प्रत्युद्गम्य रघूद्वहः । सिंहासने शिवं देव्या निवेश्य पूजनं व्यधात् ॥५५॥
ससीतो ब्रह्मणश्चापि सुराणां च यमस्य च । एतस्मिन्नंतरे ब्रह्मा राघवं प्राह वै तदा ॥५६॥
राम राजीवपत्राक्ष यमं पश्य निरुद्यमम् । शून्या संयमनी जाताऽऽनन्दरामायणश्रवात् ॥५७॥
शून्योजातोऽस्तिभूलोकः खेऽत्रकाशो न दृश्यते । सर्वेषां तत्र वै वस्तुमग्रे किंचिद्विचारय ॥५८॥
इति तस्य वचः श्रुत्वा समाहूय रघूत्तमः । शत्रुघ्नं प्रेष्य वाल्मीकिं तस्मै वृत्तं न्यवेदयत् ॥५९॥
सोऽपि श्रुत्वा विहस्याथ राघवं वाक्यमब्रवीत् । येन मत्कवितानाशो न भविष्यति वै भुवि ॥६०॥
तथा सुखं च सर्वेषां तेन तत्कुरु राघव । तथेति राघवश्चोक्त्वा तदा वचनमब्रवीत् ॥६१॥
सप्तजन्मार्जितं पुण्यं ममार्चनसमुद्भवम् । यस्य स्यात्तस्य चानन्दरामायणकथारुचिः ॥६२॥
भविष्यति न सर्वेषां भवत्वत्र कदाचन । इति रामवचः श्रुत्वा सर्वे सन्तुष्टमानसाः ॥६३॥
ययुः स्वं स्वं पदं देवाः स्वं स्वं देश नृपा ययुः । तदारभ्य विष्णुदास शतकोटिमिते शुभे ॥६४॥
रामायणे शिवेनोक्तमानन्दाख्यमिदं शुभम् । रामायण क्वचित्कुत्र कांश्चिद्वेत्स्यति मानवः ॥६५॥
न भूम्यां सकला लोका वेत्स्यंति द्वापरे कलौ । सप्तजन्मार्जितं पुण्यं येषां वेत्स्यंति ते नराः ॥६६॥

कह सुनाया ॥ ४८ ॥ ४९ ॥ भविष्यमें आप जो कुछ करना चाहते हों, सो करते चलिए। इस प्रकार वसिष्ठ रामसे कह ही रहे थे, तब तक पृथ्वीमण्डलमें क्या हुआ सो कहते हैं। उन दूतोंकी गति सुनकर संसारमें जितने मनुष्य थे ॥ ५० ॥ वे अब आनन्दरामायणके पठन और श्रवणसे अनेक प्रकारके विमानोंपर चढ़-चढ़कर उत्तम स्वर्गलोकको चले गये ॥ ५१ ॥ ५२ ॥ अपने लोकको शून्य देख यमराज ब्रह्माको साथ लेकर शंकरजीके पास पहुंचे और प्रणाम करके उन्हें सारा वृत्तान्त कह सुनाया ॥ ५३ ॥ शिवजी यह समाचार सुनकर ब्रह्मा, पार्वती और यमराजको साथ ले तथा बहुतसे देवताओंसे वेष्टित होकर अयोध्यामे रामके पास गये ॥ ५४ ॥ जब रामको यह समाचार मिला कि शिवजी आये हैं तो प्रेमपूर्वक अगवानी करके पार्वतीके साथ शिवजीको एक दिव्य सिंहासनपर बिठाकर उनकी पूजा की ॥ ५५ ॥ इसके अनन्तर ब्रह्मा तथा यमादि देवताओंकी भी पूजा की। थोड़ी देर बाद ब्रह्माने रामसे कहा—॥ ५६ ॥ हे राजीवपत्राक्ष राम ! सर्वथा निरुद्यम इन यमराजकी ओर निहारिए। आनन्दरामायणके श्रवणसे इनकी संयमनी पुरी सूनी हो गयी है ॥ ५७ ॥ भूलोक खाली हो चुका है और स्वर्गमें उन सबके रहनेके लिए कुछ जगह हां नही रह गयी है। अब उनको रहनेके लिए कोई और स्थान सोचिये ॥ ५८ ॥ इस प्रकार शिवजाकी बात सुनकर रामने शत्रुघ्नको बुलाया और उनको यह समाचार सुनानेके लिये वाल्मीकिके पास भेजा ॥ ५९ ॥ शत्रुघ्न गये और वाल्मीकिको बुला लाये। रामके मुखसे यह वृत्तान्त सुना तो वाल्मीकि हँसकर कहने लगे—जिस तरह संसारमें मेरी कविताका नाश न हो ॥ ६० ॥ और सब लोग प्रसन्न भी रहें, ऐसा कोई उचित उपाय सोचकर करिये। रामने उनकी बात मान ली और बोले—॥ ६१ ॥ मेरा पूजन करते-करते जिनके पास सात जन्मोंका पुण्य एकत्रित होगा, उनकी ही रुचि आनन्दरामायण सुननेकी होगी ॥ ६२ ॥ भविष्यमें साधारण लोगोंकी रुचि ही इस ओर नहीं होगी। इस प्रकार रामको वाणी सुनकर सबका मन प्रसन्न हो गया ॥ ६३ ॥ तब देवतागण अपने-अपने लोकोंको तथा राजा लोग अपने-अपने देशोंको लौट गये। तभीसे हे विष्णुदास ! शतकोटिरामचरितान्तर्गत इस आनन्दरामायणके विषयमें ऐसा हो गया कि कहीं-कहीं कोई ही कोई मनुष्य आनन्दरामायणको जानने लगा ॥ ६४ ॥ ६५ ॥ द्वापर और कलिमें तो बहुत ही कम लोग इसे जाननेवाले होंगे। क्योंकि उस समयसे यह नियम बन गया है कि रामचन्द्रके पूजनसे सात जन्मोंके पुण्य जब एकत्रित होंगे, तब आनन्दरामायणमें

तद्रामवचनाद्भूम्यां बभूव पूर्ववत्तदा । नाभूत्कस्य कदा मेधाऽऽनंदरामायणं प्रति ॥६७॥
सहस्रेषु नरः कश्चित्सप्तजन्मसु पुण्यवान् । आनन्दरामचरितं वेद स्तोत्रं न चापरः ॥६८॥
इति श्रीशतकोटिरामचरितांतर्गते श्रीमदानंदरामायणे वाल्मीकीये राज्यकांडे
उत्तरार्द्धे आनन्दरामायणमहिमावर्णनं नाम त्रयोविंशः सर्गः ॥ २३ ॥

चतुर्विंशः सर्गः

(रामका यमको उपदेश, सुमन्त्रका वैकुण्ठगमन और प्रजाको रामकी शिक्षा)

श्रीरामदास उवाच

एकदा संस्थितं रामं सभायां सेवकोऽब्रवीत् । राजराज महाराज रविवंशैकमण्डन ॥ १ ॥
सुमंत्रस्तेऽतिवृद्धः स मन्त्री नाकं गतः प्रभो । तत्पत्न्यस्तेन गन्तुं त्वामाज्ञां पृच्छन्ति राघव ॥ २ ॥
तद्दूतवचनं श्रुत्वा चांकतः खिन्नमानसः । शीघ्रं सुमन्त्रगेहे स ययौ यानेन राघवः ॥ ३ ॥
सुमन्त्रजन्मपट्टे तस्यायुःसंख्यां ददर्श सः । जन्मकालात्सहस्राणि नव नवशतानि च ॥ ४ ॥
नवनवतिवर्षाणि मासास्त्वेकादशैव हि । एकविंशद्दिनाश्चातिक्रांताः शेषा दिना नव ॥ ५ ॥
ज्ञात्वेत्थं रामचन्द्रः स तदा प्राह गुरुं प्रति । कृते युगे तु लक्षायुः सहस्रं द्वापरे स्मृतम् ॥ ६ ॥
शतवर्षं कलौ प्रोक्तं सहस्राणि दशैव च । त्रेतायां कथितं चायुस्तन्मद्राज्ये मृषा कृतम् ॥ ७ ॥
यमेन मामवज्ञाय मद्दण्डं लब्धुमिच्छता । दिनानि नव शेषाणि सति मे मन्त्रिणः कथम्॥ ८ ॥
यमेन नीतस्त्वद्यैव यमं बद्ध्वा नयाम्यहम् । सुमन्त्रं जीवयाम्यद्य पश्य मे त्वं पराक्रमम् ॥ ९ ॥
इत्युक्त्वा गरुडारूढः कोदण्डं कलयन् करे । वेगेन रघुनाथः स ययौ संयमनीं पुरीम् ॥१०॥
तावन्मार्गे सुमन्त्रं तं पाशबद्धं यमानुगः । गच्छन्तं राघवो दृष्ट्वा तान्सर्वांस्ताडयन्मुहुः ॥११॥
सुमंत्रं मोचयामास लिंगरूपधरं प्रभुः । तदा ते राघवं प्रोचुश्चापराद्धं तवाद्य किम् ॥१२॥

लोगोंकी रुचि होगी और तभी लोग इसे जानेंगे। तबसे रामके कथनानुसार किसीकी बुद्धि आनन्दरामायणकी ओर नहीं गयी ॥ ६६ ॥ ६७ ॥ क्योंकि हजारोंमें कहीं एक-आध मनुष्य हो सात जन्मोंका पुण्यवान् होगा और वही आनन्दरामायणको जान पायेगा ॥ ६८ ॥ इति श्रीशतकोटिरामचरितान्तर्गते श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये पं० रामतेजपाण्डेयरचित-'ज्योत्स्ना'भाषाटीकासहिते राज्यकाण्डे उत्तरार्द्धे त्रयोविंशः सर्गः ॥ २३ ॥

श्रीरामदास कहने लगे--एक बार राम अपनी सभामें बैठे थे। तभी एक सेवकने आकर कहा—हे राजराज ! हे सूर्यवंशके अलङ्कारस्वरूप महाराज ! आपके बूढ़े मन्त्री सुमन्त्र स्वर्ग चले गये। उनकी स्त्रियाँ सती होकर पतिका अनुसरण करनेके लिये आपकी आज्ञा चाहती हैं ॥ १ ॥ २ ॥ इस प्रकारका सन्देश सुनकर राम एक रथपर सवार होकर सुमन्त्रके घर गये ॥ ३ ॥ वहाँ उन्होंने उनकी जन्मकुण्डली मँगाकर देखी, जिससे ज्ञात हुआ कि ९९९९ वर्ष ग्यारह महीना सुमन्त्रकी आयु थी। जिसमें सब तो बीत गये, केवल नौ दिन बाकी रह गये थे ॥ ४ ॥ ५ ॥ ऐसा जानकर रामने गुरु वसिष्ठको बुलवाकर उनसे कहा कि सत्ययुगमें मनुष्यकी आयु लाख वर्षोंकी, द्वापरमें हजारकी, कलियुगमें सौ वर्षकी तथा त्रेतायुगमें दस हजार वर्षकी कही गयी है। सो यमराजने मेरे राज्यमें मेरा अपमान करके उस नियमका उल्लंघन किया है ॥ ६ ॥ ७ ॥ ऐसा ज्ञात होता है कि वह मेरे द्वारा दण्ड पाना चाहता है। मेरे मन्त्रीकी आयुमें अभी नौ दिन बाकी हैं तो यम उसे यहाँसे क्यों ले गया। मैं आज यमको बाँधकर लाता हूँ और सुमन्त्रको जिलाता हूँ। मेरा पराक्रम देखिए ॥ ८ ॥ ९ ॥ ऐसा कहकर राम गरुड़पर बैठे और धनुषका टङ्कोर करते हुए यमकी संयमनी पुरीको चल दिये। तब तक रास्ते ही में उन्होंने पाशबद्ध सुमन्त्रको ले जाते हुए कुछ यमदूतोंको देखा। देखते ही रामने यमदूतोंको मारकर लिंगरूपधारी सुमंत्रको छुड़ा लिया। तब यमदूतोंने विनयपूर्वक

अस्माभिश्चेदृशो दंडो यतोऽस्माकं कृतस्त्वया । तदा तान्राघवः प्राह दिनान्यायुर्नवास्य हि ॥१३॥
वर्तन्ते शेषभूतानि कथमद्यैव नीयते । भविष्यन्ति दिनान्यग्रे यदा नव यमानुगाः ॥१४॥
तदाऽऽनेयः सुखेनायं न निषेधं करोम्यहम् । इति रामवचः श्रुत्वा तमूचुस्ते यमानुगाः ॥१५॥
अपूर्वमभवज्जन्म सुमन्त्रस्यास्य राघव । मातुर्योन्या बहिश्चास्य मुखं हस्तौ विनिर्गतौ ॥१६॥
पूर्वं ततोऽस्य दशमे दिवसे दैवयोगतः । उदरादीन्यधोऽङ्गानि पदांतानि शनैः शनैः ॥१७ ।
विनिर्गतानि श्रीराम सुमन्त्रै रक्षितो बुधैः । यस्माज्जन्मन्ययं तस्मात्सुमंत्राख्याऽस्य मार्पिता१८॥
अतः पूर्वदिनारभ्य संख्ययाऽऽयुः प्रपूरितम् । अस्य तु तद्दिनारभ्य मंख्यया दिवसा नव ॥१९॥
शेषभूताश्च भवता कीर्त्यन्ते ये रघूत्तमाः । अतोऽस्माकं नापराधः संदिग्धं जन्म चास्य हि॥२०॥
वृथाऽयं नीयते राम वृथा शिक्षाऽपि नः कृता । इति तेषां वचः श्रुत्वा रामः प्राह यमानुगान् ॥२१॥
अस्य सौत्यदिनो ज्ञेयोऽप्रथमो हि यमानुगाः । यस्मिन् दिने सुप्रसूतिरभवच्चास्य मातृकान् ॥२२॥
उत्साहदिवसो ज्ञेयः स एव जातकं तथा । तस्मिन्नेव दिनेऽस्यात्र कृतं पित्रा द्विजोत्तमैः॥२३॥
ज्योतिर्विदा जन्मपत्रे स एव लिखितो दिनः । अतः शेषदिनाः सत्यं ज्ञेयास्तस्यायुषो नव ॥२४॥
अतो युष्माभिर्गन्तव्यं नेयोऽयं दशमे दिने । पुनरागत्य सान्निध्यान्मे निषेधं करोमि न ॥२५॥
इति रामवचः श्रुत्वा तूष्णीमेव यमानुगाः । साश्रुनेत्राश्च छिन्नांगा यमराजं शनैर्ययुः ॥२६॥
रामोऽपि परिवर्त्याथ ययौ स्वनगरीं प्रति । स्त्रीभिर्नीराजितो मार्गे विवेश मन्त्रिणो गृहम् ॥२७॥
तावत्सर्वान्प्रमुदितान्सुमत्रेण समन्वितान् । ददर्श रामचन्द्रः स तावद्दृष्ट्वा रघूत्तमम् ॥२८॥
प्रणनाम सुमन्त्रः स पूजयामास राघवम् । ततो रामो ययौ गेहं सर्वे प्रमुदिताननाः ॥२९॥
दिनानि नव शेषायुर्ज्ञात्वा दानादिकं सुधीः । चकार प्रत्यहं भक्त्या सुमन्त्रो राघवाज्ञया ॥३०॥

कहा—हमने आपका क्या अपराध किया था, जिसके लिए आपने हमें ऐसा दण्ड दिया ? रामने कहा कि अभी इसके जीवनके नौ दिन बाकी हैं ॥ १०–१३ ॥ तब तुम आज ही इसे क्यों लिये जा रहे हो ? जब इसके दिन पूरे हो जायँ, तब आकर आनन्दपूर्वक ले जाना। तब मैं भी कुछ नहीं बोलूँगा। इस प्रकार रामकी वाणी सुनकर यमके अनुचर कहने लगे—॥ १४ ॥ १५ ॥ हे राघव ! इसका जन्म भी एक अपूर्व प्रकारसे हुआ था। पहिले दिन माताकी योनिसे इसके दोनों हाथ तथा मुख बाहर निकल आया था। तदनन्तर दसवें दिन धीरे-धीरे इसके और अङ्ग निकले थे ॥ १६ ॥ १७ ॥ अच्छे मंत्रोंसे पण्डितोंने इसकी रक्षा कर ली थी। अतएव इसका सुमन्त्र नाम पड़ा था ॥ १८ ॥ इसके पूर्व दिनसे अर्थात् जिस दिन इसका हाथ तथा मस्तक बाहर आया, उस दिनसे लेकर आज तकमें इसकी आयु समाप्त हो गयी। आप जो इसके नौ दिन बाकी बतलाते हैं, वे संदिग्ध हैं। इसलिए हे राम ! हमारा कुछ दोष नहीं है ॥ १९ ॥ २० ॥ आप व्यर्थ इसे छीने लिये जाते हैं, हमको व्यर्थ आपने मारा भी है। उनकी बात सुनकर यमदूतोंसे रामने कहा—॥ २१ ॥ हे यमानुचर ! वह अन्तका दिन अर्थात् जिस दिन माताके गर्भसे इसका अच्छी तरह जन्म हुआ है, वही जन्मका दिन माना जायगा ॥ २२ ॥ जिस दिन इसके जन्मका उत्सव मनाया गया है, वास्तवमें वही जन्मदिन है। उसी रोज इसके पिता तथा ज्योतिषियोंने इसका जन्म लिखा है। इसलिए अभी इसके नौ दिन बाकी हैं ॥ २३ ॥ २४ ॥ तुम लोग जाओ और दसवें दिन आकर इसे ले जाना। तब मैं तुम लोगोंको नहीं रोकूँगा ॥ २५ ॥ रामकी बात सुन और छिन्नअङ्ग होकर आँखोंमें आँसू भरे हुए वे दूत यमलोकको लौट गये ॥ २६ ॥ राम भी लौटकर अयोध्या चले आये। यहाँ स्त्रियोंने उनकी आरती उतारी और राम सुमन्त्रके घर गये ॥ २७ ॥ वहाँ सब लोगोंको सुमन्त्रके साथ प्रसन्न देखा। सुमन्त्रने रामको देखते ही प्रणाम किया और उनकी पूजा की । इसके बाद राम अपने भवन गये । तबसे सब लोग परम प्रसन्न रहे ॥ २८ ॥ २९ ॥ सुमन्त्रने अपने जीवनके केवल नौ दिन बाकी जानकर रामके आज्ञानुसार खूब दान-पुण्य

अथ ते यमदूताश्च साश्रुनेत्राः समागताः । उष्णीषाणि करैः क्रोधादास्फाल्य भुवि चाब्रुवन् ॥३१॥
कथं करोष्यधिकारं तवाज्ञाकारिणां त्विमाम् । दृष्ट्वाऽवस्थां न लज्जा ते जायते हृदये यम ॥३२॥
ताड्यास्माकं राघवेण सुमंत्रो मोचितः पथि । दिनानि नव शेषायुः पूर्त्यर्थमधुना वयम् ॥३३॥
देहत्यागं जले कुर्मो न जीविष्याम भो यम । तद्दूतवचनं श्रुत्वा प्रजज्वाल यमस्तदा ॥३४॥
प्राह दूतानद्य रामं बद्ध्वा दण्डं करोम्यहम् । चोदनीयानि सैन्यानि देवेन्द्रं सूचयाम्यहम् ॥३५॥
इत्युक्त्वा त्वरितो गत्वा वृत्तमिंद्रं न्यवेदयत् । पुनरिंद्रं यमः प्राह साहाय्यं क्रियतां मम ॥३६॥
तत्तस्य वचनं श्रुत्वा देवेंद्रो यममब्रवीत् । किं भ्रांतोऽसि यमाद्य त्वं विष्णुना योद्धुमिच्छसि ३७॥
गच्छ तूष्णीं संयमनीं रामस्य किं करिष्यसि । तद्भिया हि पुरा दत्तौ मया तौ सुरपादपौ ॥३८॥
एवं तद्वचनं श्रुत्वा वह्निलोकं ययौ यमः । अग्निना भाषितस्त्वेवं निर्ऋतिं वरुणं तथा ॥३९॥
वायुं कुबेरमीशानं रविं चन्द्रं बुधं गुरुम् । शुक्रं शनैश्चरं राहुं केतुं भूमिसुतं प्रवम् ॥४०॥
प्रार्थयामास युद्धाय साहाय्यं क्रियतामिति । उत्तराणीन्द्रवत्सर्वे ददुर्भ्रान्तं यमं हि ते ।४१॥
ततो गत्वा विधिं चापि पातालांतरवासिभिः । सप्तद्वीपवासिनश्च यमः संप्रार्थयन्नृपान् ॥४२॥
तेऽप्युचुर्न करिष्यामः साहाय्यं राघवाग्रतः । ततः क्रोधसमाविष्टः स्वसैन्येन समन्वितः ॥४३॥
रामेण सङ्गरं कर्तुमयोध्यां स यमो ययौ । स्वगणैः सह वेगेन महामहिषसंस्थितः ॥४४॥
अयोध्यां वेष्टयामास नवद्वारविराजिताम् । नवप्राकारसहितां शतघ्नीयन्त्रसंयुताम् ॥४५॥
नवभिः परिखाभिश्च समन्तात्परिवेष्टिताम् । दृढरत्नकपाटाढ्यां रत्नभित्तिविराजिताम् ॥४६॥
सरयूवेष्टितां रम्यां रविकोटिसमप्रभाम् । नानाप्रासादवृन्दैश्च पताकाध्वजशोभिताम् ॥४७॥

आरम्भ कर दिया ॥ ३० ॥ उधर वे यमदूत यमके आगे पहुंचे और अपनी पगड़ी जमीनमें फेंककर कहने लगे—॥ ३१ ॥ हे यमराज ! तुम कैसे अपने अधिकारकी रक्षा करते हो ? अपने आज्ञाकारी हम सेवकोंकी यह दशा देखकर तुम्हें लाज नहीं आती ? ॥ ३२ ॥ रास्तेमें रामने मारकर सुमन्त्रको छुड़ा लिया । क्योंकि उसके जीवनके नौ दिन बाकी थे। राम वह नौ दिन पूरा कर लेनेपर सुमन्त्रको आने देंगे ॥ ३३ ॥ अब हम लोग जलमें डूबकर अपने प्राण दे देंगे। इस प्रकार दूतोंकी बात सुनकर यमराज मारे क्रोधके लाल हो गये ॥ ३४ ॥ उन्होंने दूतोंसे कहा—घबड़ाओ मत, आज ही रामको बाँधकर मैं उनकी इस धृष्टताका दण्ड दूँगा। तुम जाकर सेना तैयार करो। तबतक मैं इन्द्रको सूचित करता आऊँ ॥ ३५ ॥ ऐसा कहकर यमराज तुरंत इन्द्रके पास गये। उन्हें सारा हाल सुनाया और सहायता करनेकी प्रार्थना की ॥ ३६ ॥ यमराजकी बात सुनकर इन्द्रने कहा—यमराज ! क्या तुम पागल हो गये हो, जो विष्णुभगवान्‌के साथ युद्ध करना चाहते हो ? ॥ ३७ ॥ चुपचाप अपनी संयमनी नगरीको लौट जाओ। रामका तुम क्या कर लोगे ? उनसे डरकर मैंने अपने हाथोंसे पारिजात और कल्पवृक्ष इन दोनों देववृक्षोंको उठाकर दे आया था ॥ ३८ ॥ ऐसा वचन सुनकर यम अग्निलोक गये, उनसे सहायता माँगी तो अग्निने भी वैसा ही उत्तर दिया। इसके अनन्तर निर्ऋति, वरुण, ॥ ३९ ॥ वायु, कुबेर, ईशान, रवि, चन्द्र, बुध, गुरु, शुक्र, शनि, राहु, केतु तथा मङ्गललोक गये ॥ ४० ॥ सर्वत्र उन्होंने सहायताकी प्रार्थना की, किन्तु उस मतवाले यमराजको सबने इन्द्रके समान ही शुष्क उत्तर दिया ॥ ४१ ॥ तब यमराज लौटकर ब्रह्माके पास गये। पातालमें रहनेवाले राजाओं तथा सप्तद्वीपके राजाओंसे भी जाकर सहायताकी प्रार्थना की ॥ ४२ ॥ किन्तु उन्होंने भी कहा कि रामके विरुद्ध मैं तुम्हारी सहायता नहीं करूंगा। इसके बाद क्रोधाविष्ट होकर यमराज अपनी ही सेना लेकर रामके साथ युद्ध करने अयोध्या चले। उस समय उनके समस्त गण साथ थे और यमराज एक बड़े भारी भैंसेपर सवार थे ॥ ४३ ॥ ४४ ॥ वहां पहुंचकर उन्होंने चारों ओरसे उस अयोध्या नगरीको घेर लिया। जिसमें नौ बडे-बड़े फाटक थे और नौ ही खाइयां खुदी थीं। कितनी ही बन्दूकें और तोपें रक्खी थीं। जिनमें रत्नजटित कपाट लगे थे और रत्न ही की दीवार चुनी हुई थी ॥ ४५ ॥ ४६ ॥ जिनके उत्तर सरयू बह रही थी और करोड़ों सूर्यके प्रकाशकी नाईं जिसका

यमेन' वेष्टितां दृष्ट्वा पुरीं रामो महामनाः । लवमाज्ञापयामास गच्छ योद्धुं यमेन हि ॥४८॥
लवस्तदा रथारूढो दुन्दुभीनां महास्वनैः ।
अयोध्याया बहिर्गत्वा चकार सङ्गरं महत् ॥४९॥
तदा लवशराघातछिन्नदेहा यमानुगाः । निपेतुः क्षणमात्रेण कोटिशो रणभूमिषु ॥५०॥
तान्सर्वान्निहतान् दृष्ट्वा यमो महिषसंस्थितः । चकार तुमुलं युद्धं लवेन क्रोधभासुरः ॥५१॥
स्वबाणौघैर्यमः शीघ्रं रथं सूतं बलं धनुः ।
कवचं मुकुटं चापि चिच्छेद स लवस्य च ॥५२॥
तदा लवश्चातिक्रुद्धः स्वसैन्येन स्थित पुनः । चकार सङ्गरं घोरं यमेनातिभयंकरम् ॥५३॥
तदाऽमरा विमानस्था ददृशुर्युद्धकौतुकम् । ततो लवः स्वबाणौघैर्महिषं मूर्छितं भुवि ॥५४॥
कृत्वा तं ताडयामास शतबाणैर्यमं जवात् ।
ततो यमोऽप्यतिक्रुद्धो यमदण्डं मुमोच तम् ॥५५॥
तं दण्डं मोचितं दृष्ट्वा ब्रह्मास्त्रं सन्दधे लवः । ब्रह्मास्त्रमागतं दृष्ट्वा यमदण्डो न्यवर्तत ॥५६॥
तदा यमोऽति विकलः पलायनपरोऽभवत् । ब्रह्मास्त्रं तस्य पृष्ठे तद्ययौ कालानलप्रभम् ॥५७॥
तदा दृष्ट्वा रविः शीघ्रं स्वीयां भिन्नां प्रकल्प्य च ।
रथे मूर्तिं ययौ वेगात् प्रार्थयामास तं लवम् ॥५८॥
रे रे बाल यमं त्राहि चोपसंहारयाद्य हि । त्वयोत्सृष्टं ब्रह्मास्त्रं त्वमेवास्त्रविदां वरः ॥५९॥
त्वं मे वंशसमुद्भूतस्त्वयं मे तनयो यमः । कथं स्वपूर्वजं त्वद्य त्वं यमं हन्तुमिच्छसि ॥६०॥
चेदेको मूर्खतां यातः सर्वे मूर्खा भवन्ति न ।
शत्रुं रणात्परिभ्रष्टं वीरास्तं रक्षयन्ति हि ॥६१॥

प्रकाश था। उसमें नाना प्रकारके महल बने थे और वह पुरी बहुत-सी पताकाओं तथा ध्वजाओंसे अलंकृत थी ॥ ४७ ॥ यमराजसे घिरी अयोध्याको देखकर रामने लवसे कहा—तुम यमराजसे युद्ध करनेके लिए जाओ ॥ ४८ ॥ तब दुन्दुभीके विकराल निनादके साथ लव रथपर आरूढ़ होकर अयोध्याके बाहर आये और यमराजके साथ भयङ्कर युद्ध किया ॥ ४९ ॥ उस समय लवके बाणोंसे निहत होकर यमके करोड़ों अनुयायी क्षणमात्रमें धराशायी हो गये ॥ ५० ॥ उन सबोंको मरा देखकर क्रोधसे तमतमाये हुए यमराजने स्वयं लवके साथ तुमुल युद्ध प्रारम्भ कर दिया ॥ ५१ ॥ यमराजने अपने विकराल बाणोंकी वर्षासे शीघ्र लवके रथ, सारथी, धनुष, कवच तथा मुकुटको काट डाला ॥ ५२ ॥ तब अत्यन्त कुपित लवने एक दूसरे रथपर आरूढ़ होकर यमराजके साथ महाभयंकर युद्ध प्रारम्भ कर दिया ॥ ५३ ॥ उस समय समस्त देवता अपने विमानोंपर आरूढ़ होकर समरक्षेत्रमें आये और वह युद्ध देखने लगे। इसके अनन्तर लवने अपने बाणोंकी वर्षासे यमराजके भैंसेको मूर्छित कर पृथ्वीपर लोटा दिया और वेगके साथ बाण चलाते हुए सौ बाणोंकी वर्षासे यमराजपर प्रहार किया। तब यमराजने अतिशय क्रुद्ध होकर लवपर यमदण्ड छोड़ा ॥ ५४ ॥ ५५ ॥ यमदण्डको देखकर लवने ब्रह्मास्त्र चला दिया, जिससे यमदण्ड लौट पड़ा। तब यम विकल होकर भाग निकले और कालानलके समान ब्रह्मास्त्र उनके पीछे-पीछे चला ॥ ५६ ॥ ५७ ॥ उस ब्रह्मास्त्रको देखकर सूर्यने समझा कि इससे यम नहीं बच सकता। मेरा बेटा अवश्य मारा जायगा। तब सूर्यदेव स्वयं रथपर आरूढ़ होकर लवके पास आये और प्रार्थना करने लगे ॥ ५८ ॥ सूर्यने कहा—अरे अरे हे बच्चे! इस अस्त्रको लौटाकर यमको बचाओ। तुम्हींने इसे चलाया है और तुम्हीं इसका निवारण भी कर सकते हो। तुम अस्त्रविद्या जाननेवालोंमें सर्वश्रेष्ठ हो ॥ ५९ ॥ तुम हमारे वंशमें उत्पन्न हुए हो और यम भी मेरा ही पुत्र है। क्या अपने पूर्वज यमको ही तुम मार डालना चाहते हो? ॥ ६० ॥ यदि एक लड़का मूर्ख हो गया तो क्या उसके साथ सब मूर्ख हो

इत्यादिनानावचनैः प्रार्थितो रविणा यदा ।
तदा लवोऽपि संहारं चकारास्त्रस्य ब्रह्मणः ॥६२॥
ततो लवं पुरस्कृत्य यमेन तपनः पुरीम् । विवेश रघुनाथस्य दर्शनार्थं मुदान्वितः ॥६३॥
तदा के देववाद्यानि नेदुः कुसुमवृष्टिभिः । लवं ववर्षुरमरा ननृतुश्चाप्सरोगणाः ॥६४॥
पौरनार्यो लवं मार्गे ववर्षुः पुष्पवृष्टिभिः । गोपुराट्टालसंस्थाश्च ददृशुस्तं मुहुर्मुहुः ॥६५॥
नेदुर्नानासुवाद्यानि ननृतुर्वारयोषितः । तुष्टुवुर्मागधाद्याश्च जगुर्गंधर्वकिन्नराः ॥६६॥
एवं नानासमुत्साहैः स्त्रीभिर्नीराजितः पथि ।
ययौ स विजयी बालः प्रणनाम रघूत्तमम् ॥६७॥
रविमागतमाज्ञाय प्रत्युद्गम्य रघूत्तमः । नत्वा रविं करे धृत्वा सभायां संविवेश ह ॥६८॥
ततः सिंहासने भानुं निवेश्य स्वीयपूर्वजम् । पूजयामास श्रीरामः षोडशैरुपचारकैः ॥६९॥
तदाऽब्रवीद्रविं रामः सभायां पुरतः स्थितः ।
पूर्वजस्त्वं क्षमस्वाद्य यल्लवेनापराधितम् ॥७०॥
तद्रामवचनं श्रुत्वा रामं प्राह रविस्तदा । त्वन्नाभिकमलाद्ब्रह्मा समुद्भूतो रघूत्तम ॥७१॥
मरीच्याद्या विधेः पुत्रा मरीचेः कश्यपः सुतः ।
कश्यपाच्च समोत्पत्तिः पौत्रपौत्रस्त्वहं तव ॥७२॥
क्षमस्व मम पुत्रेण यद्यमेनापराधितम् । एवं संप्रार्थ्य श्रीरामं चासने संन्यवेशयत् ॥७३॥
यमेन कारयामास रघुनाथाय वन्दनम् । तदा समाययुर्देवा नेमुः सर्वे रघूत्तमम् ॥७४॥
रामोऽपि सकलान्देवान्पूजयामास सादरम् ।
ततो रामाज्ञया चेन्द्रः सुधावृष्ट्या रणे मृतान् ॥७५॥
शीघ्रमुत्थापयामास सर्वान्वीरान्सवाहनैः । ततो रामो यमं प्राह यावद्राज्यं करोम्यहम् ॥७६॥

जायेंगे । वीर लोग संग्रामभूमिसे भागे हुए शत्रुकी भी रक्षा ही करते हैं ॥ ६१ ॥ इस प्रकार कितनी ही बातोंसे सूर्यके प्रार्थना करनेपर लवने ब्रह्मास्त्रका सम्वरण कर लिया ॥ ६२ ॥ इसके अनन्तर लवको आगे करके यमराजके साथ-साथ सूर्य रामचन्द्रका दर्शन करनेके लिए हर्षपूर्वक अयोध्या नगरीमें गये ॥ ६३ ॥ उस समय देवताओंने अपने बाजे बजाये, लवपर फूलोंकी वर्षा की और अप्सरायें नाचने लगीं ॥ ६४ ॥ पुरवासिनी स्त्रियें भी रास्तेमें कोठेपरसे फूल बरसाती हुई बार-बार लवको निहार रही थीं ॥ ६५ ॥ उस समय विविध प्रकारके बाजे बजे, गणिकायें नाचने लगीं और मागध, गन्धर्व तथा किन्नरगण स्तुति करने लगे ॥ ६६ ॥ इस तरह अनेक उत्सवोंके साथ रास्तेमें आरती उतरवाता हुआ वह विजयी बालक लव रामके पास पहुँचा और प्रणाम किया ॥ ६७ ॥ रामने सूर्यभगवानका आगमन सुनकर उनकी अगवानी की, प्रणाम किया और हाथ पकड़कर सभाभवनमें ले गये ॥ ६८ ॥ इसके अनन्तर अपने पूर्वज सूर्यको रामने सिंहासन-पर बिठलाया और षोडशोपचारसे उनकी पूजा की ॥ ६९ ॥ फिर रामने सूर्यभगवान्से कहा—आप हमारे पूर्वज हैं । अतएव लवने जो कुछ अपराध किया हो, सो क्षमा कीजिये ॥ ७० ॥ रामकी ऐसी बात सुनकर सूर्यने भगवान्से कहा—हे रघूत्तम ! आपही के नाभिकमलसे ब्रह्माजी उत्पन्न हुए थे और उनसे मरीचि आदि उत्पन्न हुए । मरीचिसे कश्यप हुए और कश्यपसे मैं उत्पन्न हुआ हूँ । अतएव मैं आपके पौत्रका पौत्र हूँ ॥७१॥ ॥ ७२ ॥ हमारे पुत्र यमने जो अपराध किया हो, सो क्षमा करिये । इस प्रकार विनय करके सूर्यने रामको आसनपर बिठलाया और यमसे प्रणाम करवाया । इसके बाद समस्त देवतावृंद वहाँ आ पहुँचे और उन्होंने रामचन्द्रजीकी वन्दना की ॥ ७३ ॥ ७४ ॥ रामने भी सादर सब देवताओंकी पूजा की । इसके बाद राम-की आज्ञासे इन्द्रने संग्राममें मरे हुए लोगोंपर अमृतकी वर्षा की और वाहनसमेत समस्त वीरोंको उठा-

तावत्त्वया तु पूर्णायुर्नरो नेयो न चेतरः ।
तद्रामवचनं श्रुत्वा तथेत्याह यमस्तदा ॥७७॥
ततः प्राप्ते सुदशमे दिने स्त्रीभिर्विगाह्य सः । सुमन्त्रो राघवं नत्वा तदग्रे जीवितं जहौ ॥७८॥
ततः स दिव्यदेहाभिः स्वस्त्रीभिर्दिव्यदेहधृक् ॥७९॥
सुमन्त्रः पूजितः सर्वैर्विमाने संस्थितो बभौ । रामाग्रे मरणादेव सुरैः सर्वत्र वेष्टितः ॥८०॥
ततः दृष्ट्वा रवी रामं यमेन स्वस्थलं ययौ ।
ययौ सुमन्त्रः स्वस्त्रीभिर्वैकुण्ठं निर्जरा दिवम् ॥८१॥
रामः सुमन्त्रपुत्रेण तत्क्रियादि सुमन्तुना । कारयित्वा यथाशास्त्र तत्पदे तं न्यवेशयत् ॥८२॥
ततो रामो लक्ष्मणेन पृथिव्यां घोषयन्मुहुः ।
गजन्यस्तां दुन्दुभिं स्वां पताकाध्वजशोभिताम् ॥८३ ।
तथेति लक्ष्मणश्चापि दूतानाज्ञापयत्तदा । दूतास्तेऽथ गजारूढाः सप्तद्वीपान्तरेषु हि ॥८४॥
रामाज्ञां श्रावयामासुर्जनान्दुन्दुभिनिःस्वनैः । अपूर्णायुर्मृतः कश्चिन्नेतव्यो राघवं प्रति ॥८५॥
पौराणिकाः स्थापनीया गेहे ग्रामे पृथक् पृथक् ।
नित्यनैमित्तिकं कर्म न त्याज्यं वै कदाचन ॥८६॥
नावमान्या भूसुराश्च द्वेषः कार्यो न कस्यचित् । हव्यं कव्य सदा देयं दण्डनीयाश्च तस्कराः ॥८७॥
शासनीया दुराचारतत्परा ये जना भुवि । वन्दनीया सदा माता वन्दनीयः सदा पिता ॥८८॥
पूजनीयाः सदा देवाः कार्यो धर्मो निरन्तरम् ।
चैत्रस्नानं सदा कार्यमयोध्यायामथापि वा ॥८९॥
रामतीर्थेषु सर्वत्र कार्या धर्मा विशेषतः ।
द्वारकां सदा गत्वा कार्यं वैशाखमज्जनम् ॥९०॥
ऊर्जे काश्यां पञ्चनपदे स्नातव्यं विधिपूर्वकम् । गत्वा प्रयागं प्रत्यब्दं कर्तव्यं माघमज्जनम् ॥९१॥

कर खड़ा किया । तदनन्तर रामने यमराजसे कहा कि जबतक मैं पृथ्वीपर शासन करता रहूँ, तबतक तुम उन्हीं मनुष्योंको अपने लोकमें ले जाओ, जिनकी आयु पूर्ण हो गयी हो और किसीको नहीं । रामकी बात सुनकर यमराजने कहा कि "ऐसा ही होगा" ॥ ७५–७७ ॥ इसके पश्चात् दसवें दिन स्त्रियोंको साथ लेकर सुमन्त्रने रामको प्रणाम करके उनके सामने ही प्राण त्याग किया ॥ ७८ ॥ सुमन्त्रकी स्त्रियोंने भी उसी समय प्राण त्याग दिया और उन स्त्रियोंके साथ दिव्यरूप धारण करके सुमन्त्र सब लोगोंसे पूजित होते हुए विमानपर बैठकर अतिशय शोभित हुए । रामके समक्ष मरनेसे वे समस्त देवताओंके साथ दिव्यलोकको गये ॥ ७९ ॥ ॥ ८० ॥ इसके पश्चात् सूर्य भी रामसे आज्ञा लेकर यमके साथ लौट पड़े । रामने सुमन्त्रके पुत्र सुमन्तुके हाथों सुमंत्रकी क्रिया करवायी और पिताके आसनपर उसी पुत्रको बिठाला ॥ ८१ ॥ ८२ ॥ तदनन्तर रामने लक्ष्मणको पृथ्वीतलमें इस बातकी घोषणा करनेकी आज्ञा दी ॥ ८३ ॥ लक्ष्मणने भी "बहुत अच्छा" कहकर दुन्दुभी बजानेवालोंको आज्ञा दे दी । वे हाथीपर सवार हो तथा सातों द्वीपोंमें जा-जाकर नगाड़े बजाते हुए रामकी आज्ञा सुनाने लगे । उन्होंने कहा—राजा रामचन्द्रका आदेश है कि यदि मेरे राज्यमें कोई मनुष्य बिना आयु पूर्ण हुए ही मरे तो उसे मेरे पास ले आया जाय ॥ ८४ ॥ ८५ ॥ घर-घर तथा गाँव-गाँवमें पुराणोंको जाननेवाले पौराणिक रक्खे जायँ । कोई मनुष्य अपने नित्य-नैमित्तिक कर्मोंको न छोड़े ॥ ८६ ॥ ब्राह्मणोंका कोई अपमान न करे, कोई किसीके साथ द्वेषभाव न रक्खे, कोई किसीके द्रव्यको न ले और चोरोंको दण्ड दे ॥ ८७ ॥ जो लोग दुराचारी हों, उनपर कड़ा शासन किया जाय । धर्म-कर्म सदा होता रहे । अयोध्यामें अथवा किसी अन्य रामतीर्थमें जाकर लोग चैत्रस्नान किया करें ॥ ८८ ॥ ८९ ॥ विशेषतः

चातुर्मास्यव्रतादीनि कर्तव्यानि व्रतानि हि । प्रत्यंगणेषु तुलसी पूजनीया हि सर्वदा ॥९२॥
न निराकरणीयोऽत्र त्वतिथिश्च कदाचन ।
न विप्रयाञ्चा कर्तव्या मृषा क्वापि कदाचन ॥९३॥
यदीच्छेत्स ततो देयं सर्वस्वं ब्राह्मणाय वै । ग्रामे गृहे क्वचिन्नैव कलहं तु समाचरेत् ॥९४॥
सदा गुरुर्वन्दनीयः कर्तव्यं श्रवणं सदा । प्रातःस्नानं सदा कार्यं होतव्या विधिनाऽग्नयः ॥९५॥
कार्यो जपः शंकरस्य ध्येयो नित्यं महेश्वरः । एकांते हि तपः कार्यं द्वाभ्यामध्ययनं तथा । ९६॥
त्रिभिर्गीतानि कार्याणि चतुर्भिर्विचरेत्पथि ।
परदाररतिस्त्याज्या नावलोक्याऽन्यकामिनी ॥९७॥
परलक्ष्म्याः स्पृहा कार्या न नरैश्च कदाचन । तीर्थं विना पुण्यकाले न स्नातव्यं गृहेष्वपि ॥९८॥
न द्वेष्या गणका वैद्यास्ते पोष्याश्च पुरे पुरे । न वेश्यागमनं कार्यं न दासीं स्पृहयेद्धृदि ॥९९॥
नित्यकर्म यथाकाले कर्त्तव्य सर्वदा नरैः ।
नावमान्या हि गुरवः परनिंदां न कारयेत् ॥१००॥
जलाशया वने कार्या रोपणीया नगाः पथि । धर्मशाला पृथक्कार्या न नग्नां वीक्षयेद्वधूम् ॥१०१॥
अन्नसत्राणि कार्याणि पुरे ग्रामे वने तथा । प्रकुर्वन्तु वने रक्षां मार्गस्थानां वनेचराः ॥१०२॥
भयं माऽस्तु वने क्वापि निशायां मार्गगामिनाम् ।
वैश्येभ्यस्तु करो ग्राह्यो नेतरेषां कदाचन ॥१०३॥
पादयोः पादुके धृत्वा तीर्थं देवं गुरुं प्रति । गोष्ठं वृन्दावनं होमशालां गच्छेन्न सर्वदा ॥१०४॥
पारायणानि ग्रंथानां वेदानां च सदा नरैः ।
कर्तव्यानि तु निष्कामं मासकार्याणि कारयेत् ॥१०५॥

लोग धर्म-कर्म करते रहें। द्वारकापुरीमें जाकर लोग वैशाखस्नान करें ॥ ९० ॥ कार्तिक मासमें काशीकी पञ्चगङ्गामें और प्रतिवर्ष माघमासमें प्रयाग जाकर स्नान करें ॥ ९१ ॥ चातुर्मास आदिका व्रत करते रहें। हर एक घरके आँगनमें तुलसीकी पूजा होती रहनी चाहिए ॥ ९२ ॥ मेरे राज्यमें कभी कोई आये हुए अतिथिका अनादर न करे । कभी कोई किसी ब्राह्मणकी माँग व्यर्थ न करे ॥ ९३ ॥ यदि वह चाहता हो तो ब्राह्मणके लिये अपना सर्वस्व दे डाले । किसी घर या गाँवमें कोई लड़ाई-झगड़ा न करे ॥ ९४ ॥ सदा गुरुकी वन्दना करे, उनसे सर्वदा धर्मग्रंथ सुनता रहे, नित्य प्रातःस्नान करे और विधिपूर्वक अग्निहोत्र करता रहे ॥ ९५ ॥ नित्य शिवजीका ध्यान और जप करता हुआ एकान्तमें तपस्या करे। दो व्यक्ति साथ बैठकर अध्ययन करें, तीन मनुष्य साथ बैठकर गायें-बजायें और चार मनुष्य साथ होकर टहलने निकलें। दूसरोंकी स्त्रीसे प्रेम न करें, दूसरेकी स्त्रीको देखें भी नहीं ॥ ९६ ॥ ९७ ॥ दूसरेकी लक्ष्मीको पानेकी इच्छा न करे, किसी पर्वकालके समय घरमें स्नान न करे, बल्कि किसी तीर्थस्थानपर चला जाय ॥ ९८ ॥ ज्योतिषी तथा वैद्यके साथ कोई बिगाड़ न करे। यदि किसी दूसरे गाँवमें भी रहते हों तो उनका पालन करे। न कोई वेश्यागमन करे और न दासीसे प्रेम करे ॥ ९९ ॥ ठीक समयपर लोग अपने नित्यकर्म करते रहें। गुरुजनोंका अपमान कभी न करे और न दूसरोंकी निन्दा ही करे । वनोंमें जलाशय बनवाये। अलग-अलग धर्मशालायें बनवाये। कभी नङ्गी स्त्रीको न देखे ॥ १०० ॥ १०१ ॥ पुर, ग्राम और वनोंमें जहाँ-तहाँ अन्नक्षेत्र खोले। वनचर मनुष्य वनमें पहुँचे हुए पथिकोंकी रक्षा करें ॥ १०२ ॥ रात्रिके समय भी चलनेवालोंको वनमें किसी प्रकारका भय न रहे। केवल वैश्योंसे कर लिया जाय और लोगोंसे नहीं ॥ १०३ ॥ पाँवमें जूता पहिनकर किसी तीर्थस्थान देवता तथा गुरुके पास न जाय। गोशाला तथा तुलसीकी बगीचीमें भी जूता पहिनकर न जाय ॥ १०४ ॥ धर्मग्रंथों और वेदोंका पारायण सर्वदा सब लोग निष्कामभावसे करते रहें ॥ १०५ ॥

यतयो वन्दनीयाश्च भोजनीया गृहे गृहे । यतये कमण्डलवः कौपीनं पादुकां तथा ॥१०६॥
वंशदण्डाः सदा देयाः सदा तोष्याः सुभाषणैः ।
न खेदयेद्वधूं स्त्रीयां दिने निद्रां न कारयेत् ॥१०७॥
हरिदिन्यां न भोक्तव्यमुपोष्या च चतुर्दशी ।
कृष्णपक्षभवा तस्यां रात्रौ कार्यं शिवार्चनम् ॥१०८॥
नानामहोत्सवाद्यैश्च यथाविधिपुरःसरम् । अष्टमी कृष्णपक्षस्य सदोपोष्या शुभा तिथिः ॥१०९॥
देवालयेषु कर्तव्या बलयो भक्तिपूर्वकाः । नानापक्वान्ननैवेद्यान्देवेभ्यश्च समर्पयेत् ॥११०॥
धेनुदानं वाजिदानं गजदानं प्रकारयेत् । भूसुरेभ्यः प्रदेयानि गृहदानानि सादरम् ॥१११॥
गेहे गेहे सदा कार्यं धेनुविप्रप्रपूजनम् ।
वसन्ते चन्दनं देयं छत्राणि व्यजनानि च ॥११२॥
पानकं जलकुंभांश्च कार्यं पादावनेजनम् । दधि तक्रं हि जबीर देयं विप्रेभ्य आदरात् ॥११३॥
कार्तिके दीपदानानि रात्रौ जागरणानि च । तुलसीसेवनं धात्रीछायामाश्रित्य भोजनम् ॥११४॥
गीतनृत्यादिकरणं विष्णोरग्रे निरन्तरम् ।
त्रिपुरारेः समीपे हि पौर्णिमायां हि कार्तिके ॥११५॥
करणीयो महादाहो घृताक्तवर्तिकादिभिः । माघे देयानि काष्ठानि कंबलांश्चित्रितास्तथा ॥११६॥
चैत्रे तांबूलदानं च तथा रम्भाफलानि च । उर्वारुकानि देयानि चन्दनं दधितक्रकम् ॥११७॥
आदर्शदान कस्तूरीदानं जातीफलस्य च । एलाकर्पूरदानानि मधुमासि प्रकारयेत् ॥११८॥
पदाऽग्रजं न स्पृशेच्च न पादं घर्षयेत्पदा । द्वाभ्यां कराभ्यां कंडूतिं मस्तकस्य न कारयेत् ॥११९॥
दातव्यः करभारो हि विना विप्रैर्नृपाय हि ।
नोपेक्षणीयो राज्ञश्च जनैर्दण्डः कदाचन ॥१२०॥
माननीयाश्च श्वशुराः पोष्याः पाल्याः सदैव हि । सुहृदस्तोषणीयाश्च मित्रे कोपं न कारयेत् ॥१२१॥

महात्माओंकी वन्दना की जाय और घर-घर भोजन कराया जाय। उन्हें कमण्डलु, कौपीन, चरणपादुका आदि दान दिया जाय ॥ १०६ ॥ उन्हें बाँसकी छड़ी भी दे और मीठी-मीठी बातोंसे प्रसन्न करे। कभी कोई अपनी स्त्रीको दुःखित न करे और दिनमें शयन न करे। एकादशीको अन्नका आहार न करे और कृष्णपक्षकी चतुर्दशीका भी व्रत किया करे। उस रात्रिमें लोग उत्साहसे शिवजीका पूजन करें ॥ १०७ ॥ १०८ ॥ कृष्णपक्षकी अष्टमीका भी व्रत सब लोग किया करें। क्योंकि यह बड़ी शुभ तिथि है ॥ १०९ ॥ देवालयोंमें भक्तिपूर्वक पूजन करके विविध प्रकारके नैवेद्य देवताओंको समर्पित किये जायँ ॥ ११० ॥ लोग समय-समयपर धेनुदान, वाजिदान, गजदान आदि दान आदरपूर्वक ब्राह्मणोंको दिया करे ॥ १११ ॥ घर-घरमें सदा गौओं तथा विप्रोंका पूजन होता रहना चाहिये। वसन्त ऋतुमें चन्दन, छत्र तथा पंखेका दान करें ॥ ११२ ॥ पानी पीनेके लिये लोटा, जल भरनेके लिए घड़ा, पैर धोनेके लिए झारी, दही, मट्ठा और नीबूका दान ब्राह्मणोंको दे ॥ ११३ ॥ कार्तिक मासमें दीपदान, रात्रिको जागरण, तुलसीकी सेवा और आँवलेकी छायामें भोजन करे ॥ ११४ ॥ निरन्तर विष्णुभगवान्के सामने नाचे-गाये। कार्तिकको पूर्णिमाको शिवजीके सामने घीमें भीगी बत्ती आदिका महादान करे। माघ मासमें लकड़ियों तथा रङ्ग-बिरङ्गे कम्बलका दान करे ॥ ११५ ॥ ११६ ॥ चैत्रमें ताम्बूल तथा केलेके फल दान करके अगर, चन्दन, दही और मट्ठा आदि दे ॥ ११७ ॥ वैशाखके महीनेमें शीशा, कस्तूरी, जायफल, इलायची तथा कपूरका दान करे ॥ ११८ ॥ पैरसे बड़े भाईको न छुए, पैरसे पैर न रगड़े, दोनों हाथोंसे सिर न खुजलाये ॥ ११९ ॥ ब्राह्मणके अतिरिक्त सब लोग राजाको राज्यकर देते रहें। राजाके दिये दण्डकी उपेक्षा न करे ॥ १२० ॥ अपने-अपने श्वशुरकी इज्जत करे

न कर्तव्यो रिपूणां च विश्वासश्च कदाचन।
कार्पण्यं नैव कर्तव्यं दानकर्मसु सर्वदा ॥१२२॥
न द्यूतेन कदा कार्या क्रीड़ा दारिद्र्यसूचिनी।
न श्रोतव्या कदा वार्ता मद्यानां च नरोत्तमैः ॥१२३॥
तीर्थयात्रा सदा कार्या कृच्छ्रकादि समाचरेत्। कार्यं लिंगार्चनं नित्यं कोटिलिंगानि श्रावणे ॥१२४॥
कर्तव्यानि नरैर्भक्त्या सदैवापि च कारयेत्। लघुरुद्रान्महारुद्रानतिरुद्रान्समाचरेत् ॥१२५॥
दानानि पुस्तकानां च कर्तव्यानि निरन्तरम्।
कीर्तनानि च कार्याणि देवागारेषु वा गृहे ॥१२६॥
साधूनां पूजनं कार्यं नमस्कार्यः सदा रविः। ग्रामे ग्रामे वायुपुत्रप्रतिमाः सर्वदा पृथक् ॥१२७॥
सिंदूराक्ताश्च तैलाक्ताः पूजनीया निरन्तरम्। चतुर्थ्यां गणराजस्य पूजनानि प्रकारयेत् ॥१२८॥
अर्पयेद्गणराजाय मोदकान्पूणपूरितान्।
पञ्च खाद्यानि सिंदूरदूर्वादीन्यर्पयेत्सदा ॥१२९॥
सदाऽऽत्मचर्चा कर्त्तव्या स्तोत्रपाठान्प्रकारयेत्।
गीतायाः पठनं वेदानध्यापयेत्सदा ॥१३०॥
सदैव शांतिसूक्तानि पुण्यसूक्तान्यनेकशः। पुण्यं पुरुषसूक्तं च श्रीसूक्तादीनि वै पठेत् ॥१३१॥
सदा धर्मे मतिः कार्या कार्यो धर्मस्य संग्रहः। दुष्टबुद्धिः सदा त्याज्या पातकं परिमार्जयेत्। ३२।
ज्ञातव्यं चपल चायुः क्रूरो ज्ञेयो यमो महान्।
दारुणा नारकी पीडा स्मर्तव्या हृदि सर्वदा ॥१३३॥
गतस्तातो मृता माता गतश्च प्रपितामहः। पितामहो गतश्चेति गमनं स्वं निरीक्षयेत् ॥१३४॥
गतं यथाऽत्र बालत्वं तारुण्यं च गतं यथा।
यथा गच्छति वार्द्धक्यं स्मरध्वं यमशासनम् ॥१३५॥

और नौकरोंका सदा पालन करता रहे। अपने नातेदारोंको प्रसन्न रक्खे। मित्रपर कोप न करे ॥ १२१ ॥ कभी भी शत्रुपर विश्वास न करे और दानादि कर्मोंमें कभी कृपणता न करे। कभी जुवा न खेले। क्योंकि यह दरिद्रताको पास बुलानेवाला रोग है। अच्छे लोग कभी मदिराकी बात भी न सुनें ॥ १२२ ॥ १२३ ॥ सदा तीर्थोंकी यात्रा करे और कभी-कभी कृच्छ्रचान्द्रायण आदि व्रत भी किया करे। प्रतिदिन शिवलिंगका पूजन करें और श्रावणमासमें एक करोड़ शिवलिंग बनाकर उनकी पूजा करे ॥ १२४ ॥ बन पड़े तो सदा ऐसा करे। लघुरुद्र, महारुद्र एवं अतिरुद्र इन तीनों यज्ञोंको बराबर करता जाय ॥ १२५ ॥ निरन्तर पुस्तकदान करे। घरमें अथवा देवालयमें जाकर प्रतिदिन कीर्तन करे ॥१२६॥ सब लोग साधुओंका पूजन और प्रतिदिन सूर्यको नमस्कार करें। गाँव-गाँवमें हनुमान्जीकी मूर्तियाँ रक्खी जायें ॥ १२७ ॥ तेलसे मिला सिंदूर लगाकर नित्य उनकी पूजा की जाय। प्रत्येक चतुर्थी तिथिको गणेशजीका पूजन किया जाय ॥ १२८ ॥ मोदक तथा पूरनपूरी आदि पकवान बनाकर गणेशजीको अर्पण करे और सिन्दूर-दूर्वा आदि भी चढ़ाये ॥ १२९ ॥ प्रतिदिन आत्मज्ञान-सम्बन्धी चर्चा, स्तोत्रपाठ, गीताका अध्ययन तथा वेदोंका अध्ययन-अध्यापन करता रहे ॥ १३० ॥ नित्य शान्तिसूक्त तथा श्रीसूक्त आदिका पाठ किया करे ॥ १३१ ॥ सदा अपनी बुद्धि धर्ममें स्थित रक्खे और धर्मका संग्रह करता चले। दुष्ट बुद्धिका परित्याग करे और किये हुए पापोंसे छूटनेका उपाय करता रहे ॥ १३२ ॥ आयुको चंचल तथा यमराजको महाक्रूर समझे। नरककी दारुण पीड़ाओंका सदा स्मरण करता रहे ॥ १३३ ॥ यह सोचता रहे कि पिताजी चले गये, माता मर गयी, पितामह और प्रपितामह भी चल बसे, अब हमारी बारी है। जिस तरह बाल्यकाल गुजर गया, तरुणाई बीत गयी, उसी तरह यह बुढ़ा-

गता दंता गते नेत्रे श्लथा जाता त्वगत्र हि । कृष्णकेशाः सिता जाता मृत्युर्ज्ञेयः पुरःस्थितः ॥१३६॥
दाने विलंबो नो कार्यः कार्यं चित्तं सुनिर्मलम् । तुषवच्च धनं देयं मा कार्पण्यात्प्ररक्षयेत् ॥१३७॥

एवं श्रीरामदूतास्ते सप्तद्वीपांतरस्थितान् ।
श्रावयित्वा राघवाज्ञां महादुंदुभिनिःस्वनैः ॥१३८॥
अयोध्यां स्वां ययुः सर्वे रामं वृत्तं न्यवेदयन् ।
संश्राविता तवास्माभिश्चाज्ञा सर्वान् जनान्मुहुः ॥१३९॥

सप्तद्वीपेषु सर्वत्र दुंदुभीनां महास्वनैः । तत्तेषां वचनं श्रुत्वा रामस्तुष्टोऽभवत्तदा ॥१४०॥
एव रामेण भूम्यां हि चरित्राणि महांति च । आचरितान्यनेकानि कस्तान्यत्र वदिष्यति ॥१४१॥

एवं शिष्य मया प्रोक्तं राज्यकांडं मनोरमम् ।
चतुर्विंशत्सुसर्गैश्च महामङ्गलकारकम् ॥१४२॥

राज्यकांडं नृपा यत्र पठन्ति भक्तितत्पराः । न ते राज्यात्परिभ्रष्टा भवन्ति हि कदाचन ॥१४३॥
राज्यकांडं महापुण्यं महामांगल्यदायकम् । ये शृण्वंति नरा भूम्यां ते मांगल्यं भजन्ति हि ॥१४४॥
एकैकवर्धितैः सर्गैरेकैकेन क्षयेन च । सप्तचत्वारिंशद्दिनैरनुष्ठानं सुसिद्धिदम् ॥१४५॥

आधिपत्यं नराः प्राप्य राज्यकांडं पठन्ति ये ।
आधिपत्यात्परिभ्रष्टा न भवन्ति कदाचन ॥१४६॥

राज्यकांडं पठित्वा तु रणे वादे जयो भवेत् । शरणं शत्रवः शीघ्रं यास्यन्त्येतच्छ्रवादिना ॥१४७॥

आनन्दरामायणमध्यसंस्थं ये राज्यकांडं मनुजाः पठन्ति ।
राज्याच्च्युता राज्यपदं लभन्ते भवन्ति भ्रष्टा न तु ते पदस्थाः ॥१४८॥
आनदरामाणमेतदुत्तमं तत्रापि कांडेषु विचित्रमुत्तमम् ।
श्रीराज्यकांडं परमं सुसौख्यदं सदाऽतिभक्त्या श्रवणीयमादरात् ॥१४९॥

वस्था भी चली जायगी, यह सोचकर यमके कठोर शासनका स्मरण करे ॥ १३४ ॥ १३५ ॥ दांत टूट गये, आँखोंसे कम सूझने लगा, शरीरके चमड़े ढीले पड़ गये और काले-काले बाल श्वेत हो गये। तब यह समझे कि अब मृत्यु सामने आकर खड़ी है ॥ १३६ ॥ दानमें विलम्ब न करे और अपना चित्त निर्मल रक्खे। भूसीकी तरह समझकर धनका दान करे। कंजूस बनकर उसकी रक्षा न करे ॥ १३७ ॥ इस तरह सातों द्वीपोंमें रहनेवालोंको रामकी आज्ञा सुनाकर वे दूत रामके पास लौट गये और उनको सब समाचार सुनाते हुए कहने लगे—हे राघव ! हमने सप्तद्वीपके निवासियोंको दुन्दुभीकी गर्जनाके साथ आपकी आज्ञा सुना दी। उनकी बात सुनकर राम प्रसन्न हुए ॥ १३८–१४० ॥ इस प्रकार रामने इस पृथ्वीतलपर कितने ही बड़े-बड़े काम किये। उन सबको पूरी तरह बतलानेवाला कौन है ? ॥ १४१ ॥ हे शिष्य ! इस रीतिसे मैंने तुम्हें चौबीस सर्गोंमें महा मङ्गलकारक मनोहारी राज्यकाण्ड सुनाया ॥ १४२ ॥ भक्तितत्पर होकर राजा लोग यदि इस राज्यकाण्डको पढ़ेंगे-सुनेंगे तो वे कभी भी अपने-अपने राज्यसे च्युत न होंगे ॥ १४३ ॥ यह राज्यकाण्ड बड़ा पवित्र और महामङ्गलदायक है। जो मनुष्य पृथ्वीतलपर इसे सुनेंगे, उनका सदा कल्याण होगा ॥ १४४ ॥ प्रतिदिन एक-एक सर्ग बढ़ाता हुआ और पूरा होनेपर एक-एक कम करता हुआ यदि इसका अनुष्ठान करे तो यह सब प्रकार-की सिद्धियाँ प्रदान करता है ॥ १४५ ॥ कहींका आधिपत्य पाकर जो इसका पाठ करते हैं, वे अपने आधिपत्यसे कभी भी भ्रष्ट नहीं होते ॥ १४६ ॥ राज्यकाण्डका पाठ-पूजन आदि करनेसे शत्रु शीघ्र अपनी शरणमें आ जाते हैं ॥ १४७ ॥ आनन्दरामायणके अन्तर्गत इस राज्यकाण्डको जो लोग पढ़ते हैं, वे यदि राज्यसे भ्रष्ट हो गये हों तो फिर राज्याधिकारी हो जाते हैं। फिर कभी वे उससे भ्रष्ट नहीं होते ॥ १४८ ॥ पहले तो आनन्दरामायण ही उत्तम है, फिर उसके सब काण्डोंमें यह राज्यकाण्ड उत्तम है। यह हर तरह सुखदायक

राज्यस्थितैर्वा व्यवसायतत्परैः सदैव चैतच्छ्रवणीयमादरात् ।
उत्साहकाले व्रतबन्धमङ्गले विवाहकाले पठनीयमुत्तमम् ॥१५०॥
श्रीराज्यकांडं श्रुतिसौख्यदायकं पुण्येषु कालेषु पठन्ति ये नराः ।
लभंति सौख्यान्यतिमङ्गलानि ते गच्छंति विष्णोर्वरयानगाः पदम् ॥१५१॥
पुण्यं पवित्रं परमं विचित्रं श्रीरामचन्द्रस्य कथानकं सदा ।
भक्त्या मुनीनामपि मङ्गलप्रदं श्रोतव्यमेतत्पठनीयमादरात् ॥१५२॥

इति श्रीशतकोटिरामचरितांतर्गते श्रीमदानंदरामायणे वाल्मीकीये राज्यकाण्डे उत्तरार्धे उमामहेश्वरसंवादे तथा रामदासविष्णुदाससंवादे यमशिक्षाकरणं सुमंत्रवैकुण्ठारोहणं प्रजोपदेशकरणं नाम चतुर्विंशः सर्गः ॥२४॥

है। इसलिए इसको सादर श्रवण करना चाहिए ॥ १४९ ॥ कोई राजा हो या वाणिज्यमें लगा हो, उसे यह काण्ड सुनते रहना चाहिए। विशेषकर जब कोई विवाह-व्रतबन्ध आदि उत्साहका समय हो, तब इसे अवश्य सुने ॥ १५० ॥ सुननेमें सुख देनेवाले इस काण्डको जो किसी पवित्र समयमें पढ़ते या सुनते हैं, वे अंत समयमें विमानपर चढ़कर विष्णुलोकको जाते हैं ॥ १५१ ॥ परम पवित्र और अति विचित्र श्रीरामचन्द्रका यह कथानक मुनियोंको भी मंगलदाता है। अतएव सादर इसका पठन और श्रवण करना चाहिए ॥ १५२ ॥
इति श्रीशतकोटिरामचरितांतर्गते श्रीमदानंदरामायणे पं० रामतेजपाण्डेयविरचित 'ज्योत्स्ना' भाषाटीकासहिते राज्यकाण्डे उत्तरार्द्धे चतुर्विंशः सर्गः ॥ २४ ॥

॥ इति राज्यकाण्डं उत्तरार्द्धं समाप्तम् ॥

श्रीरामचन्द्रार्पणमस्तु

श्रीसीतापतये नमः

श्रीवाल्मीकिमहामुनिकृतशतकोटिरामचरितान्तर्गतं-

आनन्दरामायणम्

'ज्योत्स्ना'ऽभिधया भाषाटीकयाऽऽटीकितम्

मनोहरकाण्डम्

प्रथमः सर्गः

(लघुरामायण)

विष्णुदास उवाच

गुरो ते प्रष्टुमिच्छामि यत्त्वं वक्तुमर्हसि । वेदवाक्यैः पुरा प्रोक्तं नारदेन महात्मना ॥ १ ॥
रामायणं वाल्मीकये संक्षेपाच्चेति तेऽकथि । तावदेवार्थमादाय श्लोकरूपं वदस्व माम् ॥ २ ॥

श्रीरामदास उवाच

सम्यक् पृष्टं त्वया वत्स सावधानमनाः शृणु । यत्पृष्टं च त्वया सर्वं तद्वदामि तवाग्रतः ॥ ३ ॥
नारदाद्वेदवाक्यैश्च यथा वाल्मीकिना श्रुतम् । तावदेवार्थमादाय तेन वाल्मीकिना पुरा ॥ ४ ॥
शतश्लोकमितं रामचरितं पापनाशनम् । शतकोटिमितायां स्वकवितायां मनोरमम् ॥ ५ ॥
आदावेवोक्तमेवास्मि तत्त्वाग्रे वदाम्यहम् । शतकोटिमितं रम्यं लघुरामायणाह्वयम् ॥ ६ ॥
कूजन्तं राम रामेति मधुरं मधुराक्षरम् । आरुह्य कविताशाखां वंदे वाल्मीकिकोकिलम् ॥ ७ ॥
वाल्मीकेर्मुनिसिंहस्य कवितावनचारिणः । शृण्वन्रामकथानादं को न याति परां गतिम् ॥ ८ ॥

विष्णुदासने कहा—हे गुरो! मैं आपसे यह पूछना चाहता हूँ कि वेदवाक्योंका सारांश लेकर संक्षेपमें नारदजीने महर्षि वाल्मीकिसे कौन सी रामायण कही थी? उसी सार वस्तुको श्लोकरूपमें बनाकर वाल्मीकिने आपको सुनाया था, वह हमसे भी कहिए ॥ १ ॥ २ ॥ श्रीरामदासने कहा–हे वत्स! तुमने अच्छा प्रश्न किया है। अब सावधान होकर सुनो। तुमने जो प्रश्न किया है, उसका उत्तर तुम्हारे आगे कह रहा हूँ ॥ ३ ॥ जब वाल्मीकिजीने नारदके मुखसे वेदवाक्योंसे संकलित रामचरित्र सुन लिया, तब उसी अर्थको लेकर उन्होंने सौ श्लोकोंमें पापनाशक लघुरामायणकी रचना की और अपने रामायणके आदिमें उन्होंने उसी लघुरामायणको स्थान दिया। वही सौ श्लोकोंवाला लघुरामायण आज मैं तुम्हारे आगे कह रहा हूं ॥ ४–६ ॥ कवितारूपिणी शाखापर बैठकर मीठे-मीठे अक्षरोंमें रामनामका गान करनेवाले
36. वाल्मीकिरूपी कोकिलकी मैं वन्दना करता हूँ ॥ ७ ॥ कवितारूपी वनमें विहार करनेवाले तथा मुनियोंमें सिंह-सदृश वाल्मीकिकी रामकथारूपिणी गर्जनाको सुनकर संसारमें कौन ऐसा प्राणी है, जो उत्तम गतिको न

यः पिबन्सततं रामचरितामृतसागरम् । अतृप्तस्तं मुनिं वंदे प्राचेतसमकल्मषम् ॥ ९ ॥
गोष्पदीकृतवारीशं मशकीकृतराक्षसम् । रामायणमहामालारत्नं वंदेऽनिलात्मजम् ॥१०॥
अंजनीनंदनं वीरं जानकीशोकनाशनम् । कपीशमक्षहंतारं वंदे लङ्काभयङ्करम् ॥११॥
उल्लंघ्य सिंधोः सलिलं सलीलं यः शोकवह्निं जनकात्मजायाः ।
आदाय तेनैव ददाह लंकां नमामि तं प्रांजलिरांजनेयम् ॥१२॥
मनोजवं मारुततुल्यवेगं जितेन्द्रियं बुद्धिमतां वरिष्ठम् ।
वातात्मजं वानरयूथमुख्यं श्रीरामदूतं मनसा स्मरामि ॥१३॥
रामाय भद्राय रामचन्द्राय वेधसे । रघुनाथाय नाथाय सीतायाः पतये नमः ॥१४॥
जितं भगवता तेन हरिणा लोकधारिणा । अनेन विश्वरूपेण निर्गुणेन गुणात्मना ॥१५॥

इति मंगलाचरणम्

तपःस्वाधायनिरतं तपस्वी वाग्विदां वरम् । नारदं परिपप्रच्छ वाल्मीकिर्मुनिपुंगवम् ॥ १ ॥
को न्वस्मिन्साप्रतं लोके गुणवान्कश्च वीर्यवान् । धर्मज्ञश्च कृतज्ञश्च सत्यवाक्यो दृढव्रतः ॥ २ ॥
चारित्रेण च को युक्तः सर्वभूतेषु को हितः । विद्वान्कः कः समर्थश्च कश्चैकः प्रियदर्शनः ॥ ३ ॥
आत्मवान्को जितक्रोधो द्युतिमान्कोऽनसूयकः । कस्य बिभ्यति देवाश्च जातरोषस्य संयुगे ॥ ४ ॥
एतदिच्छाम्यहं श्रोतुं परं कौतूहलं हि मे । महर्षे त्वं समर्थोऽसि ज्ञातुमेवंविधं नरम् ॥ ५ ॥
श्रुत्वा चैतत्त्रिलोकज्ञो वाल्मीकेर्नारदो वचः । श्रूयतामित्युपामंत्र्य प्रहृष्टो वाक्यमब्रवीत् ॥ ६ ॥
बहवो दुर्लभाश्चैते ये त्वया कीर्तिता गुणाः । मुने वक्ष्याम्यहं बुद्ध्वा तैर्युक्तः श्रूयतां नरः ॥ ७ ॥

प्राप्त होता हो ? कोई नहीं ॥ ८ ॥ जो निरन्तर रामचरितरूपी अमृतसागरका पान करते हुए भी कभी नहीं तृप्त होने पाते, ऐसे कल्मषरहित श्रीवाल्मीकि मुनिको मैं प्रणाम करता हूँ । विशाल समुद्रको जिन्होंने गौके खुर डूबने योग्य बनाया, राक्षसोंको मच्छड़ समझा और जो इस रामायणरूपिणी महामालाके रत्न हैं, उन हनुमान्जीको मैं प्रणाम करता हूँ ॥ ९ ॥ १० ॥ अञ्जनीके सुपूत, जानकीके शोकनाशक, वानरोंके प्रभु, अक्षयकुमारके संहारकारी तथा लंकाके लिए भयावने वीर मारुतिकी मैं वन्दना करता हूँ ॥ ११ ॥ जो खेल-खेलमें समुद्रकी जलराशिको लाँघकर लङ्का पहुँचे, वहाँ सीताके शोकरूपी अग्निको लेकर जिन्होंने उसीसे सारी लंकाको भस्म कर दिया, उन अञ्जनीनन्दनको मैं हाथ जोड़कर प्रणाम करता हूँ ॥ १२ ॥ जिनमें मनके समान वेग है, वायुके सदृश त्वरा है, जिन्होंने इन्द्रियाँ जीत ली हैं, जो बुद्धिमानोंमें श्रेष्ठ हैं, ऐसे वायुके पुत्र, वानरसंघके मुखिया और श्रीरामके दूत हनुमान्को मैं मनसे स्मरण करता हूँ ॥ १३ ॥ राम, रामभद्र, रामचन्द्र, विधातास्वरूप, रघुवंशके नाथ, जगन्नाथ और सीतापति रामचन्द्रजीको मैं प्रणाम करता हूँ ॥ १४ ॥ भगवान्, संसारके पालक, अज, और विश्वरूप उन रामने निर्गुण होकर भी सगुणरूपसे सारे संसारको अपने वशमें कर लिया है ॥ १५ ॥

इति मङ्गलाचरणम् ।

विद्वानोंमें श्रेष्ठ, तपस्या और स्वाध्यायमें संलग्न मुनिश्रेष्ठ नारदसे तपस्वी वाल्मीकिने पूछा– ॥ १ ॥ इस संसारमें इस समय गुणवान्, पराक्रमशाली, धर्मज्ञ, कृतज्ञ, सत्यवक्ता और अपने व्रतपर दृढ़ कौन है ? ॥ २ ॥ कौन ऐसा है, जो सच्चरित्रयुक्त है ? कौन सब प्राणियोंके हितमें लगा हुआ है और कौन ऐसा है जो विद्वान्, समर्थ तथा देखनेमें सुन्दर है ॥ ३ ॥ कौनसा ऐसा पुरुष है जो आत्मज्ञानी, कोधको वशमें किये हुए तथा तेजस्वी है और दूसरेसे ईर्ष्या नहीं करता ? संग्रामभूमिमें जिसके कुपित होनेपर देवता भी भयभीत होजायँ, ऐसा कौन है ? ॥ ४ ॥ यह मैं सुनना चाहता हूँ । उसे जाननेके लिए मुझे बड़ा कौतूहल है । हे महर्षि ! आप उक्त प्रकारके पुरुषको जान सकते हैं ॥ ५ ॥ त्रिलोकीके ज्ञाता नारद वाल्मीकिकी बात सुनकर बोले—अच्छा, सुनो । इस तरह संबोधन करके महर्षि नारद कहने लगे—॥ ६ ॥ हे मुने ! आपने जिन गुणोंका वर्णन किया है, वे बहुत ही दुर्लभ हैं । फिर भी मैं अच्छी तरह विचार करके

इक्ष्वाकुवंशप्रभवो रामो नाम जनैः श्रुतः । नियतात्मा महावीर्यो द्युतिमान्धृतिमान्वशी ॥ ८ ॥
बुद्धिमान्मतिमान्वाग्मी श्रीमान् शत्रुनिबर्हणः । विपुलांसो महाबाहुः कम्बुग्रीवो महाहनुः ॥ ९ ॥
महोरस्को महेष्वासो गूढ़जत्रुररिंदमः । आजानुबाहुः सुशिराः सुललाटः सुविक्रमः ॥१०॥
समः समविभक्तांगः स्निग्धवर्णः प्रतापवान् । पीनवक्षा विशालाक्षो लक्ष्मीवान् शुभलक्षणः ॥११॥
धर्मज्ञः सत्यसन्धश्च प्रजानां च हिते रतः । यशस्वी ज्ञानसंपन्नः शुचिर्वश्यः समाधिमान् ॥१२॥
प्रजापतिसमः श्रीमान् धाता रिपुनिषूदनः । रक्षिता जीवलोकस्य धर्मस्य परिरक्षिता ॥१३॥
रक्षिता स्वस्य धर्मस्य स्वजनस्य च रक्षिता । वेदवेदांगतत्त्वज्ञो धनुर्वेदे च निष्ठितः ॥१४॥
सर्वशास्त्रार्थतत्त्वज्ञः स्मृतिमान् प्रतिभानवान् । सर्वलोकप्रियः साधुरदीनात्मा विचक्षणः ॥१५॥
सर्वदाऽभिगतः सद्भिः समुद्र इव सिंधुभिः । आर्यः सर्वसमश्चैव सदैव प्रियदर्शनः ॥१६॥
स च सर्वगुणोपेतः कौसल्यानन्दवर्धनः । समुद्र इव गांभीर्ये धैर्येण हिमवानिव ॥१७॥
विष्णुना सदृशो वीर्ये सोमवत्प्रियदर्शनः । कालाग्निसदृशः क्रोधे क्षमया पृथिवीसमः ॥१८॥
धनदेन समस्त्यागे सत्ये धर्म इवापरः । तमेवंगुणसम्पन्नं रामं सत्यपराक्रमम् ॥१९॥
ज्येष्ठ ज्येष्ठगुणैर्युक्तं प्रियं दशरथः सुतम् । प्रकृतीनां हिते युक्तं प्रकृतिप्रियकाम्यया ॥२०॥
यौवराज्येन सयोक्तुमैच्छत्प्रीत्या महीपतिः । तस्याभिषेकसंभारान्दृष्ट्वा भार्या च कैकयी ॥२१॥
पूर्वं दत्तवरा देवी वरमेनमयाचत । विवासनं च रामस्य भरतस्याभिषेचनम् ॥२२॥
स सत्यवचनाद्राजा धर्मपाशेन संयतः । निर्वासयामास सुतं रामं दशरथः प्रियम् ॥२३॥

उन गुणोसे युक्त मनुष्यको बतलाता हूँ ॥ ७ ॥ जिसके विषयमें मैं आपसे कुछ कहना चाहता हूँ, उन्हें लोग राम कहते हैं । वे आत्मज्ञानी, महाबल:, तेजस्वी, धर्मशील और जितेन्द्रिय हैं ॥ ८ ॥ वे बुद्धिमान्, नीतिज्ञ, वक्ता, श्रीमान् और शत्रुओंके विनाशक हैं। उनका खूब लम्बा-चौड़ा कन्धा है। लम्बी-लम्बी भुजायें हैं। शंखकी तरह उनकी ग्रोवा है और विशाल पुट्ठे हैं ॥ ९ ॥ उनकी विशाल छाती है। वे हाथोंमें विशाल धनुष धारण किये रहते हैं । उनकी पसलियाँ छिपी रहती है। वे शत्रुओंका दमन करनेकी प्रबल शक्ति रखते हैं, जानु (घुटनों) तक पहुँचनेवाले उनके हाथ हैं, सुन्दर माथा है, बढ़िया ललाट है, सराहनीय पराक्रम है, बराबर और सुडौल उनके अंग हैं, मनोहारिणी छवि है और उनका प्रताप भी साधारण नहीं है। उनकी सुदृढ़ छाती है, बड़ी-बड़ी आँखें हैं, वे लक्ष्मीसम्पन्न हैं और उनमें सभी शुभ लक्षण विद्यमान हैं ॥ १० ॥ ११ ॥ वे धर्मज्ञ और सत्यसंघ (अपनी प्रतिज्ञाको निभानेवाले) हैं। वे सदा प्रजाके हितमें रत रहते हैं । वे यशस्वी, ज्ञानसंपन्न, पवित्र, वशी और समाधिमान् हैं ॥ १२ ॥ वे राम प्रजापतिके समान श्रीमान्, जगत्के पालक एवं शत्रुओंके विनाशक हैं। वे समस्त संसारकी तथा धर्मकी सर्वथा रक्षा करते हैं ॥ १३ ॥ वे धर्मके रक्षक हैं और निज जनोंकी रक्षा करते हैं। वे वेद-वेदाङ्गके सारे तत्त्वोंको जानते हैं और धनुर्वेदमें एक असाधारण प्रतिभा रखते हैं ॥ १४ ॥ वे संपूर्ण शास्त्रोंके अर्थ तथा तत्त्वको जाननेवाले, समृद्धिमान्, प्रतिभाशाली, सबको प्रिय, साधु, अदीनात्मा और पण्डित हैं ॥ १५ ॥ जैसे समुद्र नदियोंसे मिलता है, वैसे ही वे सदा सज्जनोंसे मिलते हैं और उनका दर्शन सबको सुखदायी होता है ॥ १६ ॥ वे राम सर्वगुणसंपन्न, कौसल्याका आनन्द बढ़ानेवाले, समुद्रके तुल्य गम्भीर तथा हिमालयके समान धैर्यशाली हैं ॥ १७ ॥ वे वीर्य एवं बलमें विष्णुके सदृश हैं। चन्द्रमाके सदृश सबको उनका दर्शन प्रिय है। वे क्रोधमें कालाग्निके समान और क्षमामें पृथ्वीके समान हैं ॥ १८ ॥ त्यागमें कुबेरके सदृश, सत्यमें दूसरे धर्मराजके समान तथा सब गुणोंसे युक्त हैं। सब पुत्रोंमें बड़े, प्रजाके हितमें संलग्न एवं प्रजाप्रिय उन सत्यपराक्रम रामको राजा दशरथने प्रजाके हित्के लिए युवराज बनानेका निश्चय किया। श्रीरामके अभिषेककी तैयारी देखकर पूर्वकालमें वरप्राप्त दशरथकी प्यारी रानी कैकेयीने उसी समय अपने पतिसे रामके निर्वासन तथा भरतके राज्याभिषेकका वर माँगा ॥ १९॥२०॥२१॥२२ ॥ तदनुसार

स जगाम वनं वीरः प्रतिज्ञामनुपालयन् । पितुर्वचननिर्देशात्कैकेय्याः प्रियकारणात् ॥२४॥
तं व्रजंतं प्रियो भ्राता लक्ष्मणोऽनुजगाम ह । स्नेहाद्विनयसंपन्नः सुमित्रानंदवर्द्धनः ॥२५॥
भ्रातरं दयितो भ्रातुः सौभ्रात्रमनुदर्शयन् । रामस्य दयिता भार्या नित्यं प्राणसमा हिता ॥२६॥
जनकस्य कुले जाता देवमायायेव निर्मिता । सर्वलक्षणसंपन्ना नारीणामुत्तमा वधूः ॥२७॥
सीताऽप्यनुगता रामं शशिनं रोहिणी यथा । पौरैरनुगतो दूरं पित्रा दशरथेन च ॥२८॥
शृङ्गवेरपुरे सूतं गंगाकूले व्यसर्जयत् । गुहमासाद्य धर्मात्मा निषादाधिपतिं प्रियम् ॥२९॥
गुहेन सहितो रामो लक्ष्मणेन च सीतया । ते वनेन वनं गत्वा नदीस्तीर्त्वा बहूदकाः ॥३०॥
चित्रकूटमनुप्राप्य भरद्वाजस्य शासनात् । रम्यमावसथं कृत्वा रममाणा वने त्रयः ॥३१॥
देवगंधर्वसंकाशास्तत्र ते न्यवसन्सुखम् । चित्रकूटं गते रामे पुत्रशोकातुरस्तदा ॥३२॥
राजा दशरथः स्वर्गं जगाम विलपन्सुतम् । गते तु तस्मिन् भरतो वसिष्ठप्रमुखैर्द्विजैः ॥३३॥
नियुज्यमानो राज्याय नैच्छद्राज्यं महाबलः । स जगाम वनं वीरो रामपादप्रसादकः ॥३४॥
गत्वा तु सुमहात्मानं रामं सत्यपराक्रमम् । अयाचद्भ्रातरं राममार्यभावपुरस्कृतः ॥३५॥
त्वमेव राजा धर्मज्ञ इति रामं वचोऽब्रवीत् । रामोऽपि परमोदारः सुमुखः सुमहायशाः ॥३६॥
न चैच्छत्पितुरादेशाद्राज्यं रामो महाबलः । पादुके चास्य राज्याय न्यासं दत्त्वा पुनः पुनः ॥३७॥
निवर्तयामास ततो भरतं भरताग्रजः । स काममनवाप्यैव रामपादावुपस्पृशन् ॥३८॥
नन्दिग्रामेऽकरोद्राज्यं रामागमनकांक्षया । गते तु भरते श्रीमान्सत्यसन्धो जितेन्द्रियः ॥३९॥
रामस्तु पुनरालक्ष्य नागरस्य जनस्य च । तत्रागमनमेकाग्रो दण्डकान्प्रविवेश ह ॥४०॥

सत्यवचनरूपी धर्मके बन्धनमें बँधे हुए राजा दशरथने अपने प्रिय पुत्र रामको निर्वासित कर दिया ॥ २३ ॥ वीर राम माता कैकेयीकी भलाई और पिताकी प्रतिज्ञाका पालन करनेके निमित्त उनकी आज्ञा मानकर वनको चल दिये ॥ २४ ॥ सुमित्राका आनन्द बढ़ानेवाले स्नेह और विनय-संपन्न प्रिय भ्राता लक्ष्मणने भाईको वन जाते देखा तो उन्होंने भी स्नेहवश उनका साथ दिया ॥ २५ ॥ सुमित्रानन्दन लक्ष्मण भली भाँति भ्रातृत्व निभाते थे और रामकी भार्या सीता सदैव रामको प्राणके समान प्रिय समझती हुई उनके हितमें संलग्न रहती थीं। वह जनकके कुलमें उत्पन्न, देवमायासे निर्मित, सभी शुभ लक्षणोंसे युक्त एवं सब नारियोंमें एक उत्तम नारी थीं ॥ २६ ॥ २७ ॥ जिस तरह रोहिणी चन्द्रमाका अनुगमन करती है, सीताने भी रामका उसी प्रकार अनुगमन किया। उस समय पुरवासी तथा पिता दशरथ भी थोड़ी दूरतक रामके साथ गये ॥ २८ ॥ गंगाके किनारे शृंगवेरपुरमें पहुँचकर रामने सारथी (सुमन्त्र) को विदा किया और निषादोंके राजा धर्मात्मा एवं प्रिय मित्र निषादराजसे भेंट की ॥ २९ ॥ निषाद, लक्ष्मण और सीताके साथ-साथ राम एक वनके बाद दूसरे वन तथा बड़ी-बड़ी नदियोंको पार करके भरद्वाजकी आज्ञासे चित्रकूट वनमें एक सुन्दर आश्रम बनाकर रहने लगे ॥ ३० ॥ ३१ ॥ देवताओं तथा गन्धर्वों आदिके समान वे तीनों वहाँ सानन्द रह रहे थे। रामके वन जाते ही पुत्रवियोगसे शोकातुर राजा दशरथ पुत्र रामके लिए विलाप करते करते अपने प्राण त्याग दिये। उनके देहावसानके अनन्तर वसिष्ठादि मुख्य मुख्य ब्राह्मणोंने राज्य ग्रहण करनेके लिए भरतसे बहुत कहा, किन्तु और भरत राज्यके प्रति अनिच्छा प्रगट करके रामको मनानेके लिए वनको चल दिये ॥ ३२–३४ ॥ भरतने पराक्रमी रामचन्द्रजीसे प्रार्थना करते हुए कहा—हे धर्मज्ञ ! आप ही अयोध्याके राजा बनें। परमौदार, सुमुख और कीर्तिशाली रामचन्द्रने पिताकी आज्ञाका पालन अपना धर्म समझकर राज्यसे अनिच्छा प्रकट की और भरतको समझाकर राज्यके लिये अपनी पादुका दो और लौटनेका बार-बार अनुरोध किया ॥ ३५–३७ ॥ इस प्रकार रामने भरतको लौटाया और अपनी कामना सफल होते न देख भरत भी रामके चरणोंका स्पर्श करके अयोध्या लौट आये ॥ ३८ ॥ तदनन्तर रामके आगमनकी प्रतीक्षा करते हुए भरत नन्दिग्राममें रहकर करने लगे । भरतके चले जानेपर सत्यसंध, श्रीमान् एवं जितेन्द्रिय

प्रविश्य तु महारण्यं रामो राजीवलोचनः । विरोध राक्षसं हत्वा शरभगं ददर्श सः ।।४१।।
सुतीक्ष्णं चाप्यगस्त्यं च ह्यगस्त्यभ्रातरं तथा । अगस्त्यवचनाच्चैव जग्राहैंद्र शरासनम् ।।४२।
खड्गं च परमप्रीतस्तूणी चाक्षयसायकौ । वसतस्तस्य रामस्य वने वनचरैः सह ।। ३।।
ऋषयोऽभ्यागमन्सर्वे वधायासुरक्षसाम् । स तेषां प्रतिशुश्राव राक्षसानां वधाय च ।।४४।।
प्रतिज्ञातश्च रामेण वधः संयति रक्षसाम् । ऋषीणामग्निकल्पानां दंडकारण्यवासिनाम् ।।४५।।
तेन तत्रैव वसता जनस्थाननिवासिनी । विरूपिता शूर्पणखा राक्षसी कामरूपिणी ।।४६।।
ततः शूर्पणखावाक्यादुद्युक्तान् सर्वराक्षसान् । खरं त्रिशिरसं चैव दूषणं चैव राक्षसम् ।।४७।।
निजघान रणे रामस्तेषां चैव पदानुगान् । वने तस्मिन्निवसतां जनस्थाननिवासिनाम् ।।४८।।
रक्षसां निहतान्यासन्सहस्राणि चतुर्दश । ततो ज्ञातिवधं श्रुत्वा रावणः क्रोधमूर्छितः ।।४९।।
सहायं वरयामास मारीचं नाम राक्षसम् । वार्यमाणः सुबहुशो मारीचेन स रावणः ।।५०।।
न विरोधो बलवता क्षमो रावण तेन ते । अनादृत्य तु तद्वाक्यं रावणः कालचोदितः ।।५१।।
जगाम सहमारीचस्तस्याश्रमपदं तदा । तेन मायाविना दूरमपवाह्य नृपात्मजौ ।।५२।।
जहार भार्यां रामस्य हत्वा गृध्र जटायुषम् । गृध्रं च निहतं दृष्ट्वा हृतां श्रुत्वा च मैथिलीम् ।।५३।।
राघवः शोकसंतप्तो विललापाकुलेंद्रियः । ततस्तेनैव शोकेन गृध्रं दग्ध्वा जटायुषम् ।।५४।।
मार्गमाणो वने सीतां राक्षसं स ददर्श ह । कबन्धं नामरूपेण विकृतं घोरदर्शनम् ।।५५।।
तं निहत्य महाबाहुर्ददाह स्वर्गतश्च सः । स चास्य कथयामास शबरीं धर्मचारिणीम् ।।५६।।
श्रमणां धर्मनिपुणामभिगच्छेति राघव । सोऽभ्यगच्छन्महातेजाः शबरीं शत्रुसूदनः ।।५७।।
शबर्या पूजितः सम्यग्रामो दशरथात्मजः । पंपातीरे हनुमता सङ्गतो वानरेण ह ।।५८।।

राम वहाँ नित्य नगरवासियोंकी भीड़ आती देखकर दण्डकारण्यको चल पड़े ।। ३९ ।। ४० ।। कमलके सदृश नेत्रोंवाले रामने उस महारण्यमें जाकर विराध राक्षसको मारा और शरभङ्ग ऋषिसे मिले ।। ४१ ।। उस वनमें सुतीक्ष्ण, अगस्त्य तथा अगस्त्यके भाई इत्यादिसे मिले । वहाँ ही अगस्त्यके दिये हुए इन्द्रधनुष, तलवार, तरकस तथा बाण ग्रहण किये और वनचरोंके साथ निवास करने लगे ।। ४२ ।। ४३ ।। एक दिन वहाँके सब ऋषि राक्षसोंके वधका अनुरोध करनेके लिए रामके पास आये । तदनन्तर रामने दण्डकारण्यनिवासी उन अग्निके समान तेजस्वी ऋषियोंके समक्ष पृथ्वीके सारे राक्षसोंका वध करनेकी प्रतिज्ञा की ।। ४४ ।। ४५ ।। वहीं हो रामने जनस्थाननिवासिनी तथा कामरूपिणी राक्षसी शूर्पणखाकी नाक-कान काटकर कुरूप किया ।। ४६ ।। तदनन्तर रामने शूर्पणखा द्वारा भेजे हुए सेना सहित खर, त्रिशिरा तथा दूषणादि राक्षसोंको मारा और जनस्थाननिवासी चौदह हजार राक्षसोंको कालके गालमें पहुँचा दिया । इस प्रकार अपनी जातिका संहार होते सुनकर रावण क्रोधसे मूर्छित हो गया और अपनी सहायताके लिए मारीच नामके राक्षसको बुलाया । मारीचने अनेक प्रकारसे समझाते हुए कहा – हे रावण ! बलवान्के साथ विरोध करना ठीक नहीं है, किन्तु कालप्रेरित रावणने उसकी एक भी बात नहीं मानी और उसके साथ रामके आश्रमपर पहुँचा । वहाँ वह मायावी मारीच मृग बनकर राजा दशरथके पुत्र राम और लक्ष्मणको दूर भगा ले गया ।।४७-५२।। इसी बीचमें रावण जटायु नामके गिद्धको मारकर रामकी पत्नी सीताको हर ले गया । गिद्धको मरा हुआ देख एवं सीताका हरण सुनकर राम शोकसे संतप्त होकर विलाप करने लगे और उसी शोकावस्थामें जटायुको अपने हाथोंसे जलाकर परम पद पहुँचाया ।। ५३ ।। ५४ ।। वनमें सीताको ढूँढ़ते-ढूँढ़ते रामने एक महाभयङ्कर तथा विचित्र रूपवाले कबन्ध नामक राक्षसको देखा ।। ५५ ।। महाबाहु रामने उसे मारकर जला दिया । जब वह स्वर्गको जाने लगा तो उसीने धर्मचारिणी शबरीका पता बताया ।। ५६ ।। और कहा-हे राघव ! वह धर्मनिपुणा श्रमणा नामकी शबरी है, आप उसके पास जाइए । तदनुसार महातेजस्वी एवं शत्रुविनाशकारी रामचन्द्रजी शबरीके पास गये ।। ५७ ।। शबरीने रामका बड़ा आदर किया । वहाँसे पम्पासरपर जाकर राम हनुमान्‌जीसे मिले ।।५८।।

हनुमद्वचनाच्चैव सुग्रीवेण समागतः । सुग्रीवाय च तत्सर्वं शंसद्रामो महाबलः ॥५९॥
आदितस्तद्यथावृत्तं सीतायाश्च विशेषतः । सुग्रीवश्चापि तत्सर्वं श्रुत्वा रामस्य वानरः ॥ ६०॥
चकार सख्यं रामेण प्रीतश्चैवाग्निसाक्षिकम् । ततो वानरराजेन वैरानुकथनं प्रति ॥६१॥
रामायावेदितं सर्वं प्रणयाद्दुःखितेन च । प्रतिज्ञातं च रामेण तदा वालिवधं प्रति ॥६२॥
वालिनश्च बलं तत्र कथयामास वानरः । सुग्रीवः शङ्कितश्चासीन्नित्यं वीर्येण राघवे ॥६३॥
राघवप्रत्ययार्थं तु दुन्दुभेः कायमुत्तमम् । दर्शयामास सुग्रीवो महापर्वतसन्निभम् ॥६४॥
उत्स्मयित्वा महाबाहुः प्रेक्ष्य चास्थि महाबलः। पादांगुष्ठेन चिक्षेप संपूर्णं दशयोजनम् ॥६५॥
बिभेद च पुनस्तालान्सप्तैकेन महेषुणा । गिरिं रसातलं चैव जनयन्प्रत्ययं तदा ॥६६॥
ततः प्रीतमनास्तेन विश्वस्तः स महीपतिम् । किष्किन्धां रामसहितो जगाम च गुहां प्रति ॥६७॥
ततोऽगर्जद्धरिवरः सुग्रीवो हेमपिंगलः । तेन नादेन महता निर्जगाम हरीश्वरः ॥६८॥
अनुमान्य तदा तारां सुग्रीवेण समागतः । निजघान च तत्रैनं शरेणैकेन राघवः ॥६९॥
ततः सुग्रीववचनाद्धत्वा वालिनमाहवे । सुग्रीवमेव तद्राज्ये राघवः प्रत्यपादयत् ॥७०॥
स च सर्वान्समानीय वानरान्वानरर्षभः । दिशः प्रस्थापयामास दिदृक्षुर्जनकात्मजाम् ॥७१॥
ततो गृध्रस्य वचनात्संपातेर्हनुमान्बली । शतयोजनविस्तीर्णं पुप्लुवे लवणार्णवम् ॥७२॥
तत्र लङ्कां समासाद्य पुरीं रावणपालिताम् । ददर्श सीतां ध्यायन्तीमशोकवनिकां गताम् ॥७३॥
निवेदयित्वाऽभिज्ञानं प्रवृत्तिं च निवेद्य च । समाश्वास्य च वैदेहीं मर्दयामास तोरणम् ॥७४॥
पञ्च सेनाग्रगान्हत्वा सप्त मन्त्रिसुतानपि । शूरमक्षं विनिष्पिष्य ग्रहणं समुपागमत् ॥७५॥

हनुमान्‌जीके कहनेपर राम सुग्रीवसे मिले और महाबली रामचन्द्रजीने उसे अपना सारा हाल कह सुनाया ॥ ५९ ॥ रामने भी सुग्रीवसे अपना सब वृत्तान्त कहा और सीताहरणका हाल विशेषरूपसे वर्णन किया । सो सुनकर सुग्रीवने प्रसन्नचित्तसे अग्निको साक्षी देकर रामसे मित्रता की और वानरराज सुग्रीवने भी बालिके साथ अपने वैरका हाल बतलाया ॥ ६० ॥ ६१ ॥ दुःखित सुग्रीवने बड़ी नम्रता तथा प्रेमपूर्वक रामसे अपना सब हाल कहा । यह सुनकर रामने वालिको मारनेका प्रण किया ॥ ६२ ॥ तब सुग्रीवने वालिके बलका वर्णन किया । क्योंकि उसे सन्देह था कि वे बालिको मार सकेंगे या नहीं ॥ ६३ ॥ तत्पश्चात् सुग्रीवने रामकी परीक्षा लेनेके लिए पर्वतके समान लम्बा-चौड़ा दुन्दुभि राक्षसका कङ्काल दिखाया ॥ ६४ ॥ महाबाहु रामने मुस्कराकर उसे देखा और उस राक्षसकी ठठरीको पैरके अंगूठेसे उठाकर दस योजन दूर फेंक दिया ॥ ६५ ॥ फिर सात तालके वृक्षोंको एक ही बाणसे काट तथा पर्वत और रसातलको भेदकर सुग्रीवके हृदयमें यह दृढ़ विश्वास उत्पन्न कर दिया कि हम वालिको मारनेमें समर्थ हैं ॥ ६६ ॥ रामके पराक्रमको देखा तो विश्वास करके सुग्रीव बड़ी प्रसन्नतापूर्वक रामके साथ किष्किन्धा नामके पर्वतकी गुफाके द्वारपर पहुँचा ॥ ६७ ॥ वहाँ पहुँचकर सुवर्णके समान पीतवर्ण वानरश्रेष्ठ सुग्रीवने घोर गर्जना की । उस भयङ्कर गर्जनको सुनते ही बन्दरोंका राजा वालि किष्किन्धाके बाहर निकल आया ॥ ६८ ॥ उस समय ताराकी बात न मानते हुए और उसका अनादर करके वालि सुग्रीवके साथ युद्ध करनेके लिए आया और एक ही बाणसे उसे रामने यमपुर पहुँचा दिया ॥ ६९ ॥ सुग्रीवसे की हुई प्रतिज्ञाके अनुसार वचनबद्ध होनेके कारण रामने वालिकी मृत्युके पश्चात् किष्किन्धाका राज्य सुग्रीवको दे दिया ॥ ७० ॥ इसके अनन्तर कपिराज सुग्रीवने सीताका पता लगानेके लिए दसों दिशाओंमें बहुतसे बन्दरोंको भेजा ॥ ७१ ॥ सम्पाती गिद्ध द्वारा सीताका पता पाकर महाबली हनुमान्‌ने सौ योजन विस्तृत क्षारसमुद्रको लाँघकर पार किया ॥ ७२ ॥ रावणसे सुरक्षित लङ्कामें जाकर हनुमानने अशोक वनमें बैठी तथा रामका ध्यान करती हुई सीताको देखा ॥ ७३ ॥ तब हनुमान्‌जीने सीतासे रामका सारा समाचार एवं सन्देश कहा । सीताको आश्वासन देकर रणमें पाँच सेनापतियों, सात मन्त्रिपुत्रों और परमवीर अक्षयकुमारको मारकर स्वयं ब्रह्मपाशमें बँध गये

अक्षेणोन्मुक्तमात्मानं ज्ञात्वा पैतामहाद्वरात् । मर्दयन्राक्षसान्वीरो मंत्रिणस्तान्यदृच्छया ॥७६॥
ततो दग्ध्वा पुरीं लङ्कां ऋते सीतां च मैथिलीम् । रामाय प्रियमाख्यातुं पुनरायान्महाकपिः ॥७७॥
सोऽभिगम्य महात्मानं कृत्वा रामं प्रदक्षिणम् । न्यवेदयदमेयात्मा दृष्टा सीतेति तत्त्वतः ॥७८॥
ततः सुग्रीवसहितो गत्वा तीरं महोदधेः । समुद्रं क्षोभयामास शरैरादित्यसन्निभैः ॥७९॥
दर्शयामास चात्मानं समुद्रः सरितां पतिः । समुद्रवचनाच्चैव नलं सेतुमकारयत् ॥८०॥
तेन गत्वा पुरीं लङ्कां हत्वा रावणमाहवे । रामः सीतामनुप्राप्य परां व्रीडामुपागमत् ॥८१॥
तामुवाच ततो रामः पुरुषं जनसंसदि । अमृष्यमाणा सा सीता विवेश ज्वलनं प्रति ॥८२॥
ततोऽग्निवचनात्सीतां ज्ञात्वा विगतकल्मषाम् । कर्मणा तेन महता त्रैलोक्यं सचराचरम् ॥८३॥
सदेवर्षिगणं तुष्टं राघवस्य महात्मनः । बभौ रामः सुसंतुष्टः पूजितः सर्वदैवतैः ॥८४॥
अभिषिच्य तु लंकायां राक्षसेंद्रं विभीषणम् । कृतकृत्यस्तदा रामो विज्वरः प्रमुमोद ह ॥८५॥
देवताभ्यो वरं प्राप्य समुत्थाप्य च वानरान् । अयोध्यां प्रस्थितो रामः पुष्पकेण सुहृद्वृतः ॥८६॥
भरद्वाजाश्रमं गत्वा रामः सत्यपराक्रमः । भरतस्यांतिके रामो हनूमन्तं व्यसर्जयत् ॥८७॥
पुनराख्यायिकां जल्पन्सुग्रीवसहितस्तदा । पुष्पकं तत्समारुह्य नन्दिग्रामं ययौ तदा ॥८८॥
नन्दिग्रामे जटां हित्वा भ्रातृभिः सहितोऽनघः । रामः सीतामनुप्राप्य राज्यं पुनरवाप्तवान् ॥८९॥
न पुत्रमरणं केचिद्द्रक्ष्यंति पुरुषाः क्वचित् । नार्यश्चाविधवा नित्यं भविष्यंति पतिव्रताः ॥९०॥
प्रहृष्टमुदितो लोकस्तुष्टः पुष्टः सुधार्मिकः । निरामयो ह्यरोगश्च दुर्भिक्षभयवर्जितः ॥९१॥
ना चाग्निजं भयं किंचिन्नाप्सु मज्जंति जंतवः । न वातजं भयं किंचिन्नापि ज्वरकृतं तथा ॥९२॥
न चापि क्षुद्भयं तत्र न तस्करभयं तथा । नगराणि च राष्ट्राणि धनधान्ययुतानि च ॥९३॥

॥ ७४ ॥ ७५ ॥ इसके बाद ब्रह्माके वरदानसे उस ब्रह्मपाशसे अपनेको मुक्त देखकर हनुमान्ने रावणके मन्त्रियों तथा बड़े बड़े राक्षसोंको मारा । तदनन्तर सीताके निवासस्थानको छोड़ सारी लङ्का जलाकर रामको सीताका वृत्तान्त सुनानेके लिये लौट आये ॥ ७६ ॥ ७७ ॥ वली हनुमान्ने महात्मा रामचन्द्रजीके पास जाकर उनकी प्रदक्षिणा की और लङ्काका सारा वृत्तान्त सुना दिया ॥ ७८ ॥ तदनन्तर राम सुग्रीवके साथ समुद्रतटपर गये और सूर्यके समान अपने तेजस्वी बाणोंसे समुद्रको क्षुभित किया ॥ ७९ ॥ तब नदियोंका पति समुद्र हाथ जोड़कर रामके समक्ष आया और उसकी सलाहसे रामने नल द्वारा सेतु तैयार करवाया ॥ ८० ॥ उस सेतुसे लङ्कामें पहुँचकर रामने रावणको मारा । फिर सीताको पाकर अत्यन्त लज्जित हुए ॥ ८१ ॥ उस समय रामने भरी सभामें सीताको कुछ कटु वचन कहे । जिसे सहनेमें असमर्थ होकर परम सती सीता अग्निमें प्रविष्ट हो गयीं ॥ ८२ ॥ तदनन्तर अग्निके कथनानुसार रामने सीताको निष्पाप समझा । रामके इस कर्मसे सचराचर त्रिलोकी, देवता तथा ऋषि सब लोग प्रसन्न हुए । प्रसन्न हृदय राम देवताओंसे पूजित होकर बहुत शोभित हुए ॥ ८३ ॥ ८४ ॥ तदनन्तर लङ्कामें राक्षसश्रेष्ठ विभीषणको राजतिलक देकर राम सन्ताप-से मुक्त, कृतकृत्य एवं आनन्दित हुए ॥ ८५ ॥ वहाँ देवताओंसे वर पाकर वानरों तथा प्रियजनोंके साथ पुष्पक विमानसे अयोध्याको लौट पड़े ॥ ८६ ॥ भरद्वाजके आश्रम प्रयागमें पहुँचकर सत्यपराक्रम रामने हनुमान्को भरतके पास भेजा ॥ ८७ ॥ फिर परस्पर वार्तालाप करते हुए सुग्रीवके साथ पुष्पकविमानपर बैठे राम नन्दिग्रामको चले ॥ ८८ ॥ वहाँ पहुंचे तो भाइयोंके साथ जटा त्यागकर निष्पाप रामने सीताको पाकर पुनः राज्य प्राप्त किया ॥ ८९ ॥ रामके राज्यमें लोग हृष्ट, पुष्ट, सन्तुष्ट, सुखी, धार्मिक, नीरोग तथा दुर्भिक्षादिके भयसे रहित रहते थे । उस समय पिताके सामने किसीके पुत्रकी मृत्यु नहीं होती थी । उस राज्यकी स्त्रियाँ सौभाग्यवती एवं पतिव्रता होती थीं ॥ ९० ॥ ९१ ॥ उस समय अग्निका भय, जलमें डूबनेका भय, वायुसंबंधी भय, ज्वरादिका भय, पेटकी चिन्ता तथा चोर आदिका भय नहीं रहता था । सारे नगर और सारे राष्ट्र धन-धान्यपूर्ण थे ॥९२॥९३॥ उस राज्यमें सत्ययुगकी भाँति सब लोग सदैव सुखी रहते थे । सौ

नित्यप्रमुदिताः सर्वे यथा कृतयुगे तथा । अश्वमेधशतैरिष्ट्वा तथा बहुसुवर्णकैः ॥९४॥
गवां कोट्ययुतं दत्त्वा ब्रह्मलोकं गमिष्यति । असंख्येयं धनं दत्त्वा ब्राह्मणेभ्यो महायशाः ॥९५॥
राजवंश्यान् शतगुणान्स्थापयिष्यति राघवः । चातुर्वर्ण्यं च लोकेऽस्मिन्स्वे स्वे लोके नियोक्ष्यति९६॥
दशवर्षसहस्राणि दशवर्षशतानि च । रामो राज्यमुपासित्वा ब्रह्मलोकं प्रयास्यति ॥९७॥
इदं पवित्रं पापघ्नं पुण्यं वेदैश्च संमितम् । यः पठेद्रामचरितं सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥९८॥
एतदाख्यानमायुष्यं पठन् रामायणं नरः । सपुत्रपौत्रः सगणः प्रेत्य स्वर्गे महीयते ॥९९॥

पठन् द्विजो वागृषभत्वमीयात्स्यात्क्षत्रियो भूमिपतित्वमीयात् ।
वणिग्जनः पण्यपतित्वमीयाज्जनश्च शूद्रोऽपि महत्त्वमीयात् ॥१००॥

एवं शिष्य नारदेन मुनिना यच्च धीमता । वाल्मीकये वेदवाक्यैर्यावन्मात्रं विवेदितम् ॥१०१॥
तावदेवार्थमादाय श्लोकबद्धं मनोरमम् । वाल्मीकिना कृतं पूर्वं लघुरामायणाभिधम् ॥१०२॥
शतश्लोकमितं स्वीयकवितायां च तन्मया । तत्राग्रे कथितं सर्वं श्रवणात्पुण्यवर्द्धनम् ॥१०३॥
ब्रह्मदत्तवरेणैव सर्वं ज्ञात्वा स वै मुनिः । शतकोटिमितां रामक्रीडां श्लोकैर्बबन्ध ह ॥१०४॥

इति श्रीमदानन्दरामायणे मनोहरकांडे लघुरामायणं नाम प्रथमः सर्गः ॥ १ ॥

द्वितीयः सर्गः

(कौसल्यादि माताओंका वैकुण्ठवास)

श्रीनारद उवाच

अथैकदा सभामध्ये पौरा जानपदादयः । ज्ञात्वा रामं परात्मानं पप्रच्छुर्विनयान्विताः ॥ १ ॥
राम राम महाराज किंचिदुपदिशस्व नः । विषयासक्तचित्तानां ज्ञानं येन भविष्यति ॥ २ ॥
इति तेषां वचः श्रुत्वा राघवः सस्मितोऽब्रवीत् । निरन्तरं ह्युपदेशो युष्माभिः श्रूयते न किम् ॥ ३ ॥
प्रहरे प्रहरे रात्रौ मद्दूतैः क्रियते सदा । अस्तु तच्च गतं पूर्वमिदानीं सकलैर्जनैः ॥ ४ ॥

अश्वमेध यज्ञ करके सुवर्णयुक्त अनेक कोटि गौएँ विधिपूर्वक विद्वान् ब्राह्मणोंको देकर राम हजारों राजाओंके वंशकी स्थापना करके चारों वर्णोंको अपने अपने धर्मपर नियुक्त करेंगे ॥ ९४–९६ ॥ ग्यारह हजार वर्ष तक राज्य करके राम अपने ब्रह्मलोकको चले जायँगे ॥ ९७ ॥ पवित्र, पापनाशक, पुण्यकारी तथा वेदसंमत इस रामचरितको जो प्राणी पढ़ेगा, वह समस्त पापोंसे मुक्त हो जायगा ॥ ९८ ॥ यह रामायणकी कथा आयुवर्द्धिनी है। इसको पढ़नेसे मनुष्य पुत्र-पौत्रोंसे शोभित होकर मरनेके बाद स्वर्गलोकमें पूजित होता है ॥९९॥ इस लघु रामायणको पढ़नेसे ब्राह्मण विद्वान् होता है, क्षत्रिय भूमिका स्वामी होता है, वैश्य व्यापारमें सफल होता है और शूद्र महत्त्व पाता है ॥१००॥ इस प्रकार हे शिष्य ! बुद्धिमान् नारदने वेदवाक्योंके आधारपर वाल्मीकिजीसे जितना रामचरित्र कहा था ॥ १०१ ॥ उतना ही अर्थ लेकर वाल्मीकिने पहले १०० श्लोकोंसे श्लोकबद्ध करके अपनी कवितामें इस लघुरामायणकी रचना की । सो मैंने तुम्हारे आगे कहा । इसे सुननेसे पुण्यकी वृद्धि होती है ॥ १०२ ॥ १०३ ॥ मुनिराज वाल्मीकिने ब्रह्माजीके दिये हुए वरदानके प्रभावसे सब कुछ जानकर सौ करोड़ श्लोकोंमें रामचरितका वर्णन किया ॥ १०४ ॥ इति श्रीशतकोटिरामचरितांतर्गते श्रीमदानन्दरामायणे पं० रामतेजपाण्डेयकृत 'ज्योत्स्ना' भाषाटीकासहिते मनोहरकाण्डे प्रथमः सर्गः ॥ १ ॥

श्रीरामदासने कहा—एक दिन सभामें पुरवासियों तथा जनपदवासियोंने रामको परमात्मा समझकर विनयपूर्वक कहा—॥ १ ॥ हे राम ! हे महाराज ! हम लोगोंको कुछ उपदेश दीजिए। जिससे हम विषयासक्त मनवालोंको भी ज्ञान प्राप्त हो जाय ॥ २ ॥ उनकी बात सुनकर मुसकाते हुए रामने कहा—क्या नित्य आप लोग हमारे उपदेशोंको नहीं सुनते ? ॥ ३ ॥ रात्रिके समय पहर-पहरपर मेरे दूत उपदेश देते

अथ तद्वचनं निशायां बुद्धिपूर्वकम् । श्रुत्वा विचार्य पश्चान्मां प्रष्टव्यं यत्तु रोचते ॥ ५ ॥
तथेति रामवचनात्सर्वे गत्वा निजं निजम् । गेहं ते स्वस्थचित्ताश्च स्वस्त्रीभिर्मञ्चकादिषु ॥ ६ ॥
दूतवाक्ये दत्तकर्णा रात्रौ तस्थुरनिद्रिताः । तावत्ते रामदूताश्च सार्द्धयामे सदीपकाः ॥ ७ ॥
धृतशस्त्रा दण्डहस्ता नानावाहनसंस्थिताः । गजेषु दुन्दुभीन्धृत्वा तथा वाद्यान्यनेकशः ॥ ८ ॥
धृत्वा पृथक् पृथङ्नानायानेषु मंजुलानि हि । राजमार्गेषु सर्वत्र दीर्घशब्दानुदीरयन् ॥ ९ ॥
हे जनाः श्रूयतां सर्वे किं मोहेन विनिद्रिताः । नेयं निद्रा समीचीना कदाऽनर्थो भविष्यति ॥१०॥
स्वस्थचित्तास्त्वद्य सर्वे भूत्वा नः श्रूयतां वचः । नवद्वाराण्ययोध्यायामेकं तु लघु वर्तते ॥११॥
रामराज्ये भयं नेति कारणाद्द्वाररक्षकैः । दीयन्ते वा न दीयन्ते कवाटादीनि वै तदा ॥१२॥
नार्गला शृंखलादीनि सन्ति द्वारेषु भो जनाः । कृष्णवर्णो महाँश्चोरो याम्याशायां स्थितस्त्विति ॥१३॥
श्रूयते न कदा दृष्टः केनापि भुवि सांप्रतम् । एवं सत्यपि नोपेक्षा रोगशांत्यै प्रकार्यते ॥१४॥
गुप्तरूपास्तस्य दूताः साकेते विचरंति हि । न ज्ञायते कदाऽस्माभिर्नागरा इव संस्थिताः ॥१५॥
आगतश्चेत्परो दूतस्त्वेके दुर्गे तदा क्षणात् । भेदं कृत्वा तु सर्वत्र दुर्गपालो निहन्यते ॥१६॥
इत्थं श्रुतं सदाऽस्माभिस्ततस्त्वस्यां सहस्रशः । वर्तन्ते परदूताश्च नानावेषधरा जनाः ॥१७॥
जीवत्वयं चिरं राजा एवं सत्यपि नो भयम् । अयोध्यायां जायते हि तद्बलं को वदिष्यति ॥१८॥
एभिर्दूतैस्तस्य राज्ञ आत्मारामस्य चात्र हि । करणीयं प्रभोः किं हि सच्चिदानन्दरूपिणः ॥१९॥
तेषां भयं तु युष्माकं दुर्बलानां सदाऽस्ति हि । अजापुत्रो दुर्बलोऽत्र बल्यर्थं दीयते जनैः ॥२०॥
दत्तो बलिस्तु सिंहस्य कदा केन श्रुतोऽत्र न । अतो यूयं हीनबलाः किं निशायां विनिद्रिताः ॥२१॥

रहते हैं, सो क्या आप नहीं जानते ? अस्तु, जो समय गया सो गया । आज सब लोग रातको ध्यानसे मेरे दूतोंकी बातें सुनें और उनपर विचार करें। इसके बाद जो आप लोगोंकी इच्छा हो सो पूछिएगा ॥ ४ ॥ ५ ॥ "तथास्तु" कहकर वे सब अपने-अपने घर गये और अपनी-अपनी स्त्रियोंके साथ पलङ्गपर पड़े-पड़े जागते हुए रामके दूतोंके शब्दपर कान लगाये रहे। डेढ़ पहर रात बीतनेपर हाथोंमें दीपक लिये, दण्ड तथा अनेक प्रकारके शस्त्र धारण किये, एक हाथीपर दुन्दुभी तथा विविध प्रकारके बाजे बजाते हुए गलियों तथा राजमार्गोंपर घूमते और उन बाजोंका घोर निनाद करते हुए वे दूत आये और कहने लगे—॥ ६–९ ॥ हे पुरवासियो ! क्या तुम मोहनिद्रामें पड़े सो रहे हो ? यह नींद अच्छी नहीं है। इससे कभी बड़ा भारी अनर्थ हो जायगा। आज तुम लोग स्वस्थ चित्तसे मेरी बात सुनो। इस अयोध्यामें कुल नौ द्वार हैं और एक छोटा सा दसवाँ द्वार भी है ॥ १० ॥ ११ ॥ रामके राज्यमें कोई भय नहीं है । इस ख्यालसे द्वारपाल कभी द्वार बन्द करते हैं, कभी नहीं भी बन्द करते ॥ १२ ॥ इन द्वारोंमें न कोई अर्गलादण्ड हैं और न जंजीरें ही लगी है । सुनते हैं कि नगरकी दक्षिण ओर कोई एक काला चोर रहता है, किन्तु इस नगरमें आज तक उसे किसीने नहीं देखा। यह होते हुए भी रोगशान्तिके विषयमें उपेक्षा न करनी चाहिए ॥ १३ ॥ १४ ॥ उसके दूत गुप्तरूपसे अयोध्यामें घूमते रहते हैं। यदि हम लोग असावधान रहे और उसका एक भी दूत किलेमें घुस आया तो वह क्षणभरके भीतर हमारा भेद लेकर सब दुर्गपालोंको मार डालेगा ॥ १५ ॥ १६ ॥ हमने यह भी सुना है कि उस चोरके हजारों दूत नाना प्रकारके वेश धारण करके घूमते हैं ॥ १७ ॥ हमारे राजा राम चिरञ्जीवी हों। जिनके प्रतापसे उन शत्रुओंके इतना करनेपर भी कोई भय नहीं है । उन रामके बलका वर्णन कौन कर सकता है ॥ १८ ॥ शत्रुके दूत इन आत्माराम और सच्चिदानन्दस्वरूप रामका क्या कर सकते हैं ? ॥ १९ ॥ हाँ, उन दूतोंसे यदि कुछ भय है तो वह तुम्हारे जैसे दुर्बलोंको है । ससारी लोग दुर्बल जीव बकरेका ही बलिदान करते हैं ॥ २० ॥ आज तक कहीं यह नहीं सुना गया किसीने सिंहको बलि दी हो । इस प्रकार निर्बल होकर भी तुम लोग रातको सोते हो ? ॥ २१ ॥

कदा कृत्वाऽत्र ते भेदं चोरमत्रानयंति हि । स कालो ज्ञायते नैव तस्मान्निद्रा शुभा न हि ॥२२॥
स्वस्थचित्तास्त्यक्तनिद्रास्त्वस्यांपुर्यामहर्निशम् । यूयं भूत्वा सदा खड्गः शितो धार्यः स्वसन्निधौ ॥२३॥
कवचानि शरीरेषु सदा धार्याणि भो जनाः । धैर्यं धृत्वा न भेतव्यं यो जागर्ति निरन्तरम् ॥२४॥
अयोध्यायां न तस्यास्ति चौरादपि कदा भयम् । नैतद्विस्मरणीयं हि सदाऽस्माकं वचः शुभम् ॥२५॥
सावधानाः सावधानाः सावधानाः सदा जनाः । भवध्वं चात्र साकेतपुरि स्थाहि निरन्तरम् ॥२६॥
इत्युक्त्वा ते राजदूताः कृत्वा दुंदुभिनिःस्वनान् । वादयामासुर्वाद्यानि मंजुलानि महान्ति च ॥२७॥
एवं सर्वत्र पुर्यां ते विचेरू रामसेवकाः । एवं निशायां तैर्दूतैस्त्रिवारं किंचिदंतरात् ॥२८॥
पौराद्या बोधिताः प्रापुर्ज्ञानं तस्य विचारतः । ततः प्रभाते ते सर्वे पौरा जानपदादयः ॥२९॥
सभायां राघवं नत्वा तुष्टाः प्रोचुः पुरः स्थिताः । राम राजीवपत्राक्ष त्वद्दूतवचनानि हि ॥३०॥
श्रूयन्तेऽत्र सदाऽस्माभिर्न विचारस्तदा कृतः । अद्यास्माभिर्निशायां हि त्वद्दूतवचनं शुभम् ॥३१॥
श्रुत्वा कृतो विचारो हि हृदि बुद्ध्या तवाज्ञया । लब्धं ज्ञानं प्रभोऽस्माभिस्त्वज्ञानं तद्गतं हि नः ॥३२॥
नेदानीमुपदेशं हि त्वत्तो वांछाम राघव । इति तेषां वचः श्रुत्वा तान्रामः प्राह सस्मितः ॥३३॥
कथं लब्धं हि तज्ज्ञानं किं श्रुतं किं विचिंतितम् । तन्मेऽग्रे कथनीयं हि विस्तरेण यथाक्रमम् ॥३४॥
इति रामवचः श्रुत्वा जनाः प्रोचुर्मुदान्विता । शृणु राम महाबाहो यल्लब्धं ज्ञानमुच्यते ॥३५॥
मोह एव निशा ज्ञेया निद्रा भ्रांतिस्तु कथ्यते । नेयं भ्रांतिः समीचीनाऽनर्थो मृत्युर्ग्रसिष्यति ॥३६॥
अयोध्येयं स्वीयदेहस्तत्र छिद्राणि वै नव । लघु तन्मस्तके ज्ञेयं दंताद्या द्वाररक्षकाः ॥३७॥
पक्ष्मौष्ठादीनि द्वारेषु कपाटानीरितानि च । प्राणाश्च ते राजदूताः पुर्यां नित्यमटंति हि ॥३८॥

न जाने कब वे तुम्हारा भेद लेकर उस चोरको यहाँ बुला लायें। उस समयको कोई जान नहीं सकता। इसलिए इस प्रकार सोना ठीक नहीं है ॥ २२ ॥ तुम सब निद्रा त्यागकर रात-दिन इस पुरीमें जागते रहो और अपने पास एक तीक्ष्ण खड्ग रखो ॥ २३ ॥ शरीरपर कवच धारण करो, हृदयमें धैर्य रखो, किसीसे डरो नहीं। जो इस तरह जागता है ॥ २४ ॥ उसे इस अयोध्यामें उस चोरसे कोई डर नहीं है। हमारे इन हितकर वचनोंको कभी भूलना मत ॥ २५ ॥ हे अयोध्यावासियो! फिर भी तुमसे कहता हूँ सावधान! सावधान!! इस पुरीमें सदा सावधान होकर रहना ॥ २६ ॥ इतना कहकर वे दूत दुन्दुभी तथा अन्यान्य मङ्गलमय वाद्य बजाने लगे ॥ २७ ॥ इस रीतिसे दूत रातभर सारी अयोध्यामें घूम-घूमकर थोड़ी-थोड़ी देरमें तीन-तीन बार लोगोंको वही बात सुना-सुनाकर सजग करते रहे ॥ २८ ॥ दूतोंकी बतायी बातोंपर विचार कर-करके वे सब नगरनिवासी ज्ञानी हो गये। सब नागरिक और जनपदवासी सभामें रामके पास पहुँचे और प्रणाम करके कहने लगे–हे राजीवपत्राक्ष राम! वैसे तो हम नित्य आपके दूतोंकी बातें सुनते थे। किन्तु अभीतक उसपर विचार नहीं किया था। आज रात्रिमें उनकी बातें सुनकर हमने उनपर आपके आज्ञानुसार विचार भी किया है। हे प्रभो! अब हमारा अज्ञान नष्ट हो गया और ज्ञान प्राप्त हो गया है ॥ २९-३२ ॥ हे राघव! अब मैं आपसे उपदेश नहीं सुनना चाहता। इस तरह उनकी बात सुनकर मुस्कराते हुए राम कहने लगे–॥ ३३ ॥ अच्छा, हमें यह तो बताओ कि वह ज्ञान तुम्हें कैसे प्राप्त हुआ और तुम लोगोंने उसपर किस प्रकार विचार किया है। सो विस्तारसे कह सुनाओ ॥ ३४ ॥ रामका प्रश्न सुनकर वे लोग प्रसन्नतासे कहने लगे– हे राम! जो ज्ञान प्राप्त हुआ है, सो हमलोग कहते हैं। सुनिये ॥३५॥ मोह रात्रि है और भ्रान्ति निद्रा है। यह भ्रान्ति कभी अच्छी नहीं मानी जा सकती। इसके फेरमें पड़नेसे अनर्थ यह होगा कि एक न एक दिन मृत्यु धर दबायेगी ॥ ३६ ॥ अयोध्या अपना शरीर है। इसमें मुँह-कान आदि नौ द्वार हैं और दसवां द्वार मस्तकमें है। जिसे लोग ब्रह्मरंध्र कहते हैं और दांत आदि इन द्वारोंके रक्षक हैं ॥ ३७ ॥ आँखकी पलकें और और ओष्ठ आदि इनके दरवाजे हैं। प्राण ही राजदूत हैं। जो सदा इस पुरीमें चक्कर लगाते

आत्मा ज्ञेयस्त्वत्र राजा जीवश्चेन्द्रियदेवता । ज्ञेयाश्च देहनगरे पौरास्तत्र रघूत्तम ॥३९॥
कालो ज्ञेयो महाचीरः त्रिदोषाद्या गदाश्च ये । कालस्य सेवका ज्ञेया नागरा इव संस्थिताः ॥४०॥
दुर्बलास्तेऽत्र जीवाद्यास्तेषामेवास्ति तद्भयम् । किं मोहे पतिता भ्रांताः कालमत्रानयन्ति ते ॥४१॥
न ज्ञायते मृत्युकालस्तस्माद्भ्रांतिः शुभाऽत्र न । ज्ञानमेव महाखड्गो वैराग्यं तीक्ष्णता त्वसेः ॥४२॥
सच्छीलं कवचं ज्ञेयं धैर्यं भक्तिर्दृढा त्वयि । आत्मज्ञानेन जागर्ति न तस्यास्ति भयं कदा ॥४३॥
सावधानं ज्ञाननिष्ठं भवितव्यं सदाऽत्र हि । वाद्यानि वचनान्येव साधनं बोधदानि वै ॥४४॥
सदा धृतानि हृदये तानि बुद्ध्याऽवलोकयेत् । मोहक्षयः प्रभातोऽयमिदानीं त्वत्पुरः स्थितः ॥४५॥
त्वमेवात्मा सभेयं ते निवासस्थानमीरितम् । तवाग्रे ये स्थिताः सर्वे वयं त्वां मुक्तिमागताः ॥४६॥
किमिदानीं ते प्रष्टव्यं वोपदेश्यं त्वयाऽद्य किम् । तव कीर्तनमात्रेण नरा मुक्तिं लभंति हि ॥४७॥
वयं त्वदन्तिकाः सर्वे मुक्ता एव न संशयः । इति तेषां वचः श्रुत्वा सस्मितः प्राह तान्प्रभुः ॥४८॥

सम्यग्बुद्ध्या परिज्ञातं सुखे स्थेयं सदा जनाः ।
नान्यथा स्वमतिः कार्याऽऽत्मनो रामं पृथक् स्थितम् ॥४९॥

इत्युक्त्वा सकलान्रामो ययौ सीतागृहं मुदा । पौराद्या गतमोहास्ते चात्मानं मेनिरे परम् ॥५०॥
एवं रामेण भोः शिष्य दूतवाक्यैः सुबोधिताः । पौराः सर्वे यथा तच्च मया ते विनिवेदितम् ॥५१॥
एकदा कैकयी राममागत्य प्रणिपत्य सा । अब्रवीन्मधुरं वाक्यं विनयात्पुरतः स्थिता ॥५२॥
राम राजीवपत्राक्ष मया यदपराधितम् । पुराऽज्ञानात्त्वया तच्च क्षन्तव्यं वै कृपालुना ॥५३॥
अहं ते शरणं प्राप्ता मामुद्धर जगत्पते । किंचिदुपदिशस्व त्वं येनाज्ञानं विनश्यति ॥५४॥

रहते हैं ॥ ३८ ॥ इनमें आत्मा राजा है और जीव तथा इन्द्रियाँ इस नगरके निवासी हैं ॥ ३९ ॥ काल महान् चोर है और वात, पित्त, कफ आदि उसके सेवक छुपे वेशमें नागरिकोंकी तरह रहते हैं ॥ ४० ॥ इस नगरमें जीव आदि नागरिक दुर्बल हैं। अतएव उन्हींको चोरका विशेष भय रहता है। यदि वे नागरिक मोहग्रस्त होकर भ्रममें पड़ जायँ तो अवसर पाकर वे चोरके सेवक अवश्य अपने स्वामी कालको बुला लायेंगे ॥ ४१ ॥ मृत्युका समय किसीको मालूम नहीं है। इस कारण गाफिल रहना ठीक नहीं है। इसके लिए ज्ञान खड्ग है और वैराग्यको उसकी तीखी धार समझनी चाहिए ॥ ४२ ॥ सदाचार कवच है और आपमें दृढ़ भक्तिका होना ही धैर्य है। जो मनुष्य आत्मज्ञानपूर्वक नित्य जागता रहता है, उसे कभी किसी प्रकारका भय नहीं रहता ॥ ४३ ॥ सदा सब लोगोंको ज्ञाननिष्ठ होना चाहिए, यहीं सावधान रहनेका मतलब है। साधुओंके ज्ञानदायक वातोंके समान उन दूतोंके बाजे हैं ॥ ४४ ॥ सब लोगोंको चाहिए कि इन बातोंको हृदयमें रखें और अपनी बुद्धिदृष्टिसे देखें। इस प्रकार हे राम ! आज हमारे मोहनाशका प्रभाव आपके सामने उपस्थित है ॥ ४५ ॥ आप ही आत्मा हैं और यह सभा आपका निवासस्थान है। आपके सामने हम जितने लोग उपस्थित हैं, सब मुक्त हो गये हैं ॥ ४६ ॥ और आपसे क्या पूछना है और क्या हमारे लिए आपको उपदेश देना है ? हमारा तो यह विश्वास है कि आपके नाम-कीर्तनमात्रसे प्राणी मुक्त हो जाते हैं ॥ ४७ ॥ आपके समीप पहुँचे हुए हम सब लोग मुक्त हैं। इसमें कोई सन्देह नहीं है। इस तरह उनकी बात सुनकर मुसकाते हुए राम बोले—॥ ४८ ॥ तुम लोगोंने अपनी बुद्धिसे सब कुछ समझ लिया है। अब आनन्दपूर्वक रहो। कभी अपनी बुद्धिमें यह बात न आने देना कि राम मुझसे अलग हैं ॥ ४९ ॥ ऐसा कहकर राम प्रसन्नतापूर्वक सीताके महलमें चले गये। जिन पुरवासियोंमें किसी प्रकारका अज्ञान था, अब वह सब नष्ट हो गया और वे आत्मज्ञानी बन गये ॥ ५० ॥ हे शिष्य ! जिस तरह रामके दूतोंसे उनकी प्रजा जागृत हुई, वह सारी कथा मैंने कह सुनायी ॥ ५१ ॥ एक समय कैकेयी रामके पास गयी और प्रणाम करके मीठी-मीठी बातोंमें कहने लगी—॥ ५२ ॥ हे कमलपत्रके समान नेत्रोंवाले राम ! मैंने उस समय अज्ञानवश जो अपराध किया था, उसे क्षमा कर दो। क्योंकि तुम कृपालु हो ॥ ५३ ॥ मैं जगत्पते ! हे तुम्हारी शरणमें आयी हूँ। मेरा उद्धार करो और मुझे कोई ऐसा उपदेश

तत्तस्या वचनं श्रुत्वा रामो राजीवलोचनः । उवाच कैकयीं वाक्यं मधुरं प्रहसन्निव ॥५५॥
न त्वया मेऽपराद्धं हि मच्छन्दाच्च सरस्वती । स्थित्वा तवास्ये सा प्राह वरयाञ्चादि यत्पुरा ॥५६॥
त्वं च कैकेयि शुद्धाऽसि त्वयि क्रोधो न मेऽस्ति वै । श्वस्त्वां नीत्वोपदेशं हि कारयिष्यति लक्ष्मणः ॥५७॥
इत्युक्त्वा तां विसर्ज्याथ लक्ष्मणं राघवोऽब्रवीत् । शिबिकास्था हि कैकेयी श्वः प्रभाते गिरा मम ॥५८॥
त्वया नेया बहिः पुर्याः सरय्वाश्च तटं प्रति । अविसमूहसंस्थानं वर्तते यत्र तत्र हि ॥५९॥
अविवृन्दांतिकं नीत्वा कैकेयीं शिबिकास्थिताम् । अविवाक्यानि श्राव्याणि मुहूर्तं मम वाक्यतः ॥६०॥
आनेतव्या ततश्चेयं कैकेयी मम सन्निधौ । इति तद्रामवचनं श्रुत्वा स लक्ष्मणोऽपि च ॥६१॥
तथेत्युक्त्वा तदा रामं तूष्णीं तस्थौ तदग्रतः । अथ प्रभाते सौमित्रिर्गत्वा भरतमन्दिरे ॥६२॥
शिबिकायां स कैकेयीं समारुह्य मुदान्विताम् । दासीभिः सेवकैश्चैव वेष्टितां वेत्रपाणिभिः ॥६३॥
तां निनाय बहिः पुर्याः सरय्वाश्च तटे वरे । अवियूथांतिकं यानं स्थापयामास लक्ष्मणः ॥६४॥
सुस्नातां कैकयीं विप्रास्ते ज्ञात्वा दक्षिणेच्छया । दुद्रुवुः शिबिकापृष्ठे लक्ष्मणस्तान्न्यवारयत् ॥६५॥
अतिमूर्खाश्च पंग्वाद्या ये ते ज्ञेया द्विजादयः । दानार्हाः पण्डिता नैते श्रोत्रिया न प्रतिष्ठिताः ॥६६॥
ततो दूतान्निराकृत्य मुक्ताजालानि लक्ष्मणः । ऊर्ध्वं कृत्वा स्वहस्ताभ्यां कैकेयीं वाक्यमब्रवीत् ॥६७॥
पश्य कैकेयि मातस्त्वमवियूथं पुरःस्थितम् । रामेण प्रेषिताऽसि त्वमुपदेशार्थमादरात् ॥६८॥
तत्सौमित्रिवचः श्रुत्वाऽऽश्चर्ययुक्ताऽथ कैकयी । प्रतारिताऽहं रामेण किमत्र प्रेष्य सादरम् ॥६९॥
इति तर्कान्कुर्वती सा तस्थौ तूष्णीं क्षणं तदा । तावच्छुश्राव सा मे मे त्वविवाक्यानि वै मुहुः ॥७०॥
तानि श्रुत्वाऽथ कैकेयी तदा चित्तेऽविचारयत् । मे मे त्विति मुहुश्चात्र किमर्थं वचनानि हि ॥७१॥
अव्यः सर्वा वदंत्यत्र गूढोऽर्थस्त्वत्र वर्तते । ततो निमील्य कैकेयी नेत्रं ध्यात्वा क्षणं हृदि ।७२॥

दो, जिससे मेरा अज्ञान नष्ट हो जाय ॥ ५४ ॥ इस प्रकार कैकेयीकी बात सुनकर मीठी हँसी हँसते हुए राम कहने लगे—॥ ५५ ॥ हे माता ! तुमने हमारा कोई अपराध नहीं किया है। उस समय हमारी ही इच्छासे सरस्वतीने तुम्हारे मुखमें बैठकर वह वर मँगवाया था ॥ ५६ ॥ हे कैकेयी ! तुम शुद्ध हो, तुम्हारे ऊपर मेरे हृदयमें कुछ भी क्रोध नहीं है। कल लक्ष्मण तुम्हें कहीं ले जाकर उपदेश दिला देंगे ॥ ५७ ॥ ऐसा कहकर उसे विदा कर दिया और लक्ष्मणसे कहा कि हमारे कथनानुसार कल कैकेयीको नगरके बाहर सरयूतटपर जहाँ कि भेड़ें रहती हैं, वहाँ ले जाओ और उन भेड़ोंके मुखसे ही थोड़ेसे उपदेशमय वाक्य सुनवाकर कैकेयीको यहाँ मेरे पास ले आओ। इस प्रकार रामकी आज्ञा सुनकर लक्ष्मणने वैसा करना स्वीकार कर लिया और चुपचाप रामके सम्मुख बैठे रहे। इसके अनन्तर सवेरे लक्ष्मणजी भरतके भवनमें पहुँचे ॥ ५८–६२ ॥ वहाँसे कैकेयीको पालकीमें बिठाकर दास-दासी तथा छड़ीदार आदिके साथ उसे अयोध्यापुरीके बाहर सरयूतटपर जहाँ कि भेड़ें रहती थीं, ले गये। वहाँ पहुँचकर उन्होंने रथ रोक दिया ॥ ६३ ॥ ६४ ॥ जब कि सरयूतटसे लक्ष्मण पालकीके साथ जा रहे थे, तब घाटके ब्राह्मणोंने समझा कि कैकेयी स्नान करके लौट रही हैं। फिर क्या था, झुण्डके झुण्ड ब्राह्मण दक्षिणा लेनेके लिये दौड़ पड़े। लक्ष्मणने उन्हें रोका। क्योंकि वे सब ब्राह्मण महामूर्ख, पंगु और अन्धे आदि थे। उनमेंसे कोई भी ब्राह्मण ऐसा न था, जो प्रतिष्ठित श्रोत्रिय रहा हो ॥ ६३–६६ ॥ जब लक्ष्मणके मना करनेपर भी उन लोगोंने पीछा नहीं छोड़ा, तब विवश होकर उन्होंने सेवकों द्वारा उन्हें हटवाया और मोतियोंकी लड़ीके बने पर्देको अपने हाथसे उठाकर कैकेयीसे कहा—॥ ६७ ॥ हे माँ कैकेयी ! सामने भेड़ोंकी झुण्डकी ओर देखो। रामचन्द्रजीने आदरपूर्वक तुम्हें इन्हींसे उपदेश लेनेके लिये भेजा है ॥ ६८ ॥ लक्ष्मणकी बात सुनकर उसे बड़ा आश्चर्य हुआ और वह अपने मनमें सोचने लगी—"रामने यहाँ भेजकर मुझे धोखा तो नहीं दिया है।" इस प्रकार तरह-तरहके तर्क-वितर्क करती हुई कैकेयी क्षणभर चुपचाप बैठी रही। तभी उसने कई बार भेड़ोंके मुखसे "मे-मे" की ध्वनि सुनी ॥ ६९ ॥ ७० ॥ सो सुनकर कैकेयीने अपने मनमें सोचा कि भेड़ें बार-बार "मे-मे" क्यों करती हैं। इसमें कोई न कोई गूढ़ भाव छुपा हुआ

सर्वं ज्ञात्वा गताज्ञाना तुतोष नितरां तदा । ततः स्मितानना प्राह लक्ष्मणं पुरतः स्थितम् ॥७३॥
लब्धं ज्ञानं मया बाल नय मां राघवं प्रति । इति तस्या वचः श्रुत्वा मुक्ताजालान्विमुच्य सः ।७४॥
दूतान्दूरगतान्वेगादाहूय नगरीं प्रति । कैकेयीमानयामास सीतागेहं विवेश सा ॥७५॥
तत्र दृष्ट्वा समासीनं सीतया रघुनंदनम् । बद्ध्यमानं स्वशिरसि चित्रोष्णीषं करेण हि ॥७६॥
सीताकरधृतादर्शे पश्यन्तं स्वमुखोत्पलम् । तं नत्वा परया भक्त्या कैकेयी वाक्यमब्रवीत् ॥७७॥
राम ते कृपया लब्धमविवाक्यविचारतः । सद्ज्ञानं मे गतो मोहश्चेदानीं न प्रयोजनम् ॥७८॥
उपदेशेन ते राम सदा मुक्ताऽस्मि राघव । तत्तस्या वचनं श्रुत्वा सस्मितः प्राह तां विभुः ॥७९॥
कथं ज्ञातं त्वया ज्ञानं विचारश्च कथं कृतः । तत्सर्वं विस्तरेणैव ममाग्रे वद कैकयि ॥८०॥
तद्रामवचनं श्रुत्वा कैकेयी प्राह राघवम् । शृणु राम यथा लब्धं ज्ञान तत्ते वदाम्यहम् ॥८१॥
मयाऽविवचनान्येव तत्राबियूथसन्निधौ । श्रुत्वा मे मे त्विति मया हृदये मन्त्रितं क्षणम् ॥८२॥
मे मे त्विति ममैताश्च श्रावयंति मुहुर्मुहुः । श्रुत्वा मे मे त्विति मया चेद्वाच्य तर्हि वै मया ॥८३॥
मे मे प्रकथ्यते नित्यं पशुपुत्रगृहादिषु । अतो वक्तुं नोपदेशोऽयं मामेताभिरुच्यते ॥८४॥
तर्ह्ययं चोपदेशोऽद्य निषेधे मा प्रकीर्त्यते । अतोऽहं न कदा मे मे प्रवदामीत्यतः परम् ॥८५॥
मे माता मे सुतश्चायं मे बंधुर्मे गृहं वरम् । मे राज्यं मे सपत्नीयं मे सापत्न्यसुतस्त्वयम् ॥८६॥
मे शरीरमिदं कांतं मे दिव्याभरणं वरम् । मे मंथरा प्रिया दासी पुत्रादीत्यशुभा मतिः ॥८७॥
याऽस्ति मे मे त्विति सा त्यक्तव्येति मामता । बोधयामासुर्वचनैः स्वीयैः स्पष्टं रघूत्तम ॥८८॥
अन्यद्राम नरान्सर्वांस्ताश्चान्यो बोधयंति हि । ममेबुद्ध्या सदाऽस्माभिः पूर्वजन्मनि वर्तितम् ॥८९॥
देहस्त्वतो ह्यवेर्लब्धो युष्माभिर्मे मतिस्तु मा । सर्वतः साऽत्र त्यक्तव्या नांगीकार्या कदाचन ॥९०॥

है। इसके बाद उसने आँखें बन्द कर लीं और थोड़ी देर तक गौर करके सोचने लगी ॥ ७१ ॥ ७२ ॥ उसका सारा भेद ज्ञात हो जानेपर वह बहुत प्रसन्न हुई और मुस्कराकर लक्ष्मणसे कहा—वत्स ! मुझे ज्ञान प्राप्त हो गया। अब रामके पास ले चलो। उसकी बात सुनकर लक्ष्मणने पालकीपर परदा डाल दिया ॥ ७३ ॥ ७४ ॥ दूरपर बैठे हुए दूतोंको जोरसे बुलाया और नगरीको लौट आये। कैकेयीको सीताके महलोंमें पहुँचा दिया और वह भीतर चली गयी ॥७५॥ वहाँ पहुँचकर कैकेयीने देखा कि राम सीताके पास बैठे हुए सिरपर एक विचित्र प्रकारकी पगड़ी बाँध रहे हैं ॥ ७६ ॥ सीता हाथोंमें शीशा लिये दिखा रही हैं और राम अपना मुखकमल देखते जा रहे हैं। कैकेयीने पहुँचते ही रामको प्रणाम किया और कहने लगी—॥ ७७ ॥ हे राम ! आपकी कृपासे मैंने भेड़ोंके वाक्यों द्वारा सद्ज्ञान प्राप्त कर लिया। मेरा मोह नष्ट हो गया। अब मुझे आपके उपदेशोंकी आवश्यकता नहीं रही। हे राघव ! मैं सदाके लिए मुक्त हो गयी। इस प्रकार कैकेयीकी बात सुनकर मुस्कराते हुए राम बोले—॥ ७८ ॥ ७९ ॥ तुम्हें ज्ञान कैसे प्राप्त हुआ ? सब विस्तारपूर्वक मुझे बतलाओ ॥ ८० ॥ रामके इस प्रश्नको सुनकर कैकेयीने कहा—हे राम ! सुनो, मुझे जिस प्रकार ज्ञान प्राप्त हुआ है, सो सुनाती हूँ ॥ ८१ ॥ उस भेड़के समूहके पास पहुँचकर मैंने उनके मुखसे निकले हुए "मे-मे" का शब्द सुना। फिर थोड़ी देर तक हृदयमें विचार किया। तब मैंने स्थिर किया कि भेंड़ें "मे-मे" करके मुझे यह सुनाती हैं कि संसारके लोग जो सर्वदा अपने बालबच्चों, घरद्वार, पशु आदिमें 'यह मेरा-यह मेरा है' ऐसी बुद्धिके भ्रममें पड़कर अपना सर्वस्व नष्ट कर डालते हैं। यह ठीक है। इसलिए हे राम ! अबसे मैं इस ममताके बन्धनमें कभी भी नहीं पड़ूँगी ॥ ८२–८५ ॥ अभी तक तो मैं—यह बेटा है, यह भाई है, यह मेरा सुन्दर घर है, यह मेरा राज्य है, यह मेरी सौत है, यह सौतेला लड़का है, यह सुन्दर शरीर है, ये दिव्य मेरे अलंकार हैं, यह मेरी प्रिय दासी मंथरा है, ये मेरे बच्चे हैं आदि ममताके जञ्जालमें फँसी थी। इसके लिए उन भेड़ोंने मुझे स्पष्ट उपदेश दिया है कि ममता त्याग दो ॥ ८६–८८ ॥ मेरे अतिरिक्त संसारके अन्यान्य लोगोंको भी ये यही उपदेश देती रहती है कि पूर्वजन्मकी ममताबुद्धिने ही मुझे इस दशाको पहुँचाया है और यह भेड़का शरीर मिला है। अतएव तुम

मेमेमत्या गतिर्जाता याऽस्माकं सकला जनाः। मेमेबुद्धया हि युष्माकं गतिः सैव भविष्यति ॥९१॥
एवं ता बोधयन्त्यत्र जनान्स्ववचनैः सदा। न तद्वाक्य जनैर्बुद्धया कदा चित्ते विचार्यते ॥९२॥
तासां वाक्योपदेशेन प्रसादात्तव राघव। मेमेबुद्धिर्गता मत्तस्त्वतो मुक्ताऽस्म्यहं त्विह ॥९३॥
मे देहस्त्विति या बुद्धिर्यदासक्ता मयाऽत्र हि। तदा किं शेषमस्त्यत्र संसारे दुःखदायके ॥९४॥
अस्त्वयं वा लयं यातु देहो वारितरङ्गवत्। कः पुत्रः कस्य को भ्राता सर्वं ब्रह्म न संशयः ॥९५॥
अहमेव परं ब्रह्म मत्तो ब्रह्म परं न हि। सर्वं यद्दृश्यते चेदं मायेयं तव राघव ॥९६॥
नश्वरं बुद्बुदाकारं ज्ञातं चेदं मया प्रभो। इति तस्या वचः श्रुत्वा श्रीरामः प्राह सस्मितः ॥९७॥
सम्यक् विचारित बुद्धया त्वयाविवाक्यमुत्तमम्। गच्छेदानीं सुखं तिष्ठ जीवन्मुक्ताऽसि कैकयि ॥९८॥
तद्रामवचनं श्रुत्वा कैकेयी तोषपूरिता। देहाभिमानहीना सा नत्वा सीतां रघूत्तमम् ॥९९॥
ययौ भरतगेहं हि नासक्ता क्वापि सा त्वभूत्। एवं शिष्य मया प्रोक्तमविवाक्योपदेशतः ॥१००॥
यथा ज्ञानं हि कैकेय्यै जातं तत्कथितं तव। इदानीं शृणु यच्चान्यत्ते वदामि कुतूहलम् ॥१०१॥
सुमित्रा त्वेकदा रामं सीतया रहसि स्थितम्। निरीक्ष्य नत्वा तं प्राह राम राजीवलोचन ॥१०२॥
किंचित्ते प्रार्थयाम्यद्य किंचिदुपदिशस्व माम्। तत्तस्या वचनं श्रुत्वा तामाह रघुनन्दनः ॥१०३॥
का त्वं चेति वदादौ मां पश्चादुपदिशामि ते। गच्छ गेहं स्वस्थबुद्धया हृदि सम्यग्विचार्य च॥१०४॥
श्वो मामेत्य मम प्रश्नस्योत्तरं देहि वै ततः। अहमुपदेक्ष्याम्यस्त्र येन तुष्टा भविष्यसि ॥१०५॥
तद्रामवचनं श्रुत्वा सुमित्रा विस्मितानना। तूष्णीमेव ययौ गेहं रामवाक्यं व्यचिन्तयत्। १०६॥
काऽहं पृष्टा राघवेण किं वा देयं मयोत्तरम्। काऽहं देवी चासुरी वा मानवी राक्षसी तथा ॥१०७॥
मानुषी चेत्यहं मत्वा यदि रामं वदामि वै। तर्हि नानाशरीराणि भ्रियन्ते नटवन्मया ॥१०८॥

लोगोंको चाहिए कि इस ममताका परित्याग कर दें, इसको अंगीकार कभी न करें ॥ ८९ ॥ ९० ॥ 'यह मेरा है' इस बुद्धिसे भेड़योनि प्राप्ति-रूपिणी जो गति हमारी हुई है, वही गति तुम्हारी भी होगी ॥ ९१ ॥ अपने वचनोंसे वे सर्वदा सब लोगोंको उपदेश देती रहती हैं। किंतु संसारी लोग उनकी बातोंपर विचार नहीं करते ॥ ९२ ॥ हे राघव ! आपकी दया और उन भेड़ोंके शब्दसे मेरी ममताबुद्धि नष्ट हो गयी है। इसलिए अब मैं मुक्त हो गयी हूँ ॥ ९३ ॥ "यह देह मेरी है" इस विचारमें मैं आसक्त थी। वह दुःखदायिनी आसक्ति नष्ट हो गयी, तब और रह ही क्या गया है। यहाँ कौन किसका बेटा है, कौन किसकी माता है ? सब सच्चिदानन्दमय ब्रह्मका रूप है। इसमें कोई संशय नहीं है ॥९४॥९५॥ मैं ही परब्रह्म हूँ। मुझसे परे कुछ है ही नहीं। हे राघव ! संसारमें जो कुछ दिखायी पड़ रहा है, वह सब तुम्हारी माया है ॥ ९६ ॥ मैंने इस अधम शरीरको पानीके बुलबुलेकी तरह नश्वर समझ लिया है। इस प्रकार कैकेयीकी बातें सुनकर मुस्कराते हुए राम बोले—॥ ९७ ॥ ठीक है, तुमने भेड़ोंकी बातपर बहुत अच्छा विचार किया है। अब जाओ और सुखसे अपने घरमें बैठो। हे कैकेयि ! अब तुम जीवन्मुक्त हो गयीं ॥ ९८ ॥ रामकी बात सुनकर प्रसन्न मन कैकेयी देहाभिमानसे रहित होकर सीता तथा रामको प्रणाम करके अपने बेटे भरतके भवनमें चली गयी और तबसे वह किसी वस्तुमें आसक्त नहीं हुई। इस प्रकार भेड़ोंकी बातसे कैकेयीको किस तरह ज्ञान प्राप्त हुआ था, सो वृत्तांत कह सुनाया। अब मैं तुम्हें एक और कुतूहल भरा वृत्तांत सुनाता हूँ ॥ ९९–१०१ ॥ एक दिन राम सीताके साथ किसी एकान्त स्थानमें बैठे थे। तब तक सुमित्रा वहाँ आ पहुँची और कहने लगीं—हे राजीवलोचन राम ! मैं तुमसे विनय करती हूँ कि मुझे भी कुछ उपदेश दे दो। उसकी बात सुनकर रामने कहा—पहले मुझे यह बतलाओ कि तुम कौन हो ? अपने घर जाओ और स्वस्थबुद्धिसे विचार करके कल मेरे पास आकर बताओ। उस समय मैं तुम्हें ऐसा उपदेश दूँगा, जिससे तुम बहुत प्रसन्न होओगी ॥ १०२–१०५ ॥ इस तरह रामका आदेश सुनकर वह आश्चर्य भरे मनसे उसी बातको सोचती हुई चुपचाप चली गयी ॥ १०६ ॥ वह सोचने लगी कि

तदा केदं मानुषीत्वमन्यजात्यां घटेच्च मे । तदाहं मानुषी नैव न चैवान्या कदाचन ॥१०९॥
मानुषी राक्षसी चेतीमानि नामानि तानि न । देहस्यैवात्र कथ्यंते देहस्तु नश्वरः स्मृतः ॥११०॥
देहाद्भिन्नास्मि काप्यन्या याऽहं रूपाण्यनेकशः। धरामि सर्वदा भूम्यां सा काऽहं चेति वेद्मि न ॥१११॥
इदानीं तु मया ज्ञातं यथा विष्णुस्तथा त्वहम् । नानारूपाणि सोऽप्यत्र मत्स्यादीनि दधाति हि॥११२॥
तथा नानास्वरूपाणि धार्यन्तेऽत्रापि वै मया । एवमेव हि वक्तव्यं तर्हि मे तस्य चांतरम् ॥११३॥
स्ववशोऽस्ति महाविष्णुस्त्वहं विष्णुवशा सदा । अतो विष्णोः कला चाहं सत्यमेव संशयः ॥११४॥
विष्णोर्मे नैव भेदोऽस्ति यथा गङ्गा स्थले घटे । एकैवास्त्यत्र तद्वच्च विष्णुरेवाहमस्मि हि ॥११५॥
अहमेव यदा विष्णुस्तदा किं चावशेषितम् । यत्प्रष्टव्यं तु रामाय जीवन्मुक्ताऽहमस्मि वै ॥११६॥
एवं सुमित्रा संचिंत्य गताज्ञाना मुदान्विता । अतिक्रम्य निशां तां सा प्रभाते राघवं ययौ ॥११७॥
गत्वा राम तदा प्राह मया रात्रौ विचिंतितम् । का त्वं पृष्टा त्वया पूर्वं तर्ह्यहं ब्रह्म राघव ॥११८॥
त्वत्तो नान्यच्च प्रष्टव्यं त्वद्भिन्नाऽहं कदापि न । इत्युक्त्वा सा यथा गेहे निशि स्वे हृदि मंत्रितम्॥११९॥
तत्सर्वं श्रावयित्वा तं जीवन्मुक्ताऽभवत्तदा । सुमित्रां राघवोऽप्याह सम्यग्बुद्ध्या विचिंतितम्१२०॥
जीवन्मुक्ताऽसि चाम्ब त्वं गच्छ गेहं सुखं वस । ततः सुमित्रा संतुष्टा गतमोहा रघूत्तमम् ॥१२१॥
सीतां चापि पृथक् नीत्वा ययौ लक्ष्मणमंदिरम् । एवं शिष्य मया प्रोक्तं काऽहं चेति विचारतः ॥१२२॥
जीवन्मुक्ता सुमित्रा सा बभूव सुखनिर्भरा । अन्यच्च ते वदाम्यद्य तच्छृणुष्व द्विजोत्तम ॥१२३॥

रामने हमसे यही पूछा है न कि मैं कौन हूँ ? सो इसका क्या उत्तर दूँ। आखिर मैं देवी हूँ, दानवी हूँ, राक्षसी हूँ या मानुषी हूँ, क्या हूँ ? यदि रामसे जाकर कह दूँ कि मैं मानुषी हूँ, तो भी नहीं बनता। क्योंकि ऐसा कहनेसे हमें नाटकके पात्रकी तरह अनेक रूप धारण करने पड़ते हैं। इससे निश्चय हुआ कि मैं न मानुषी हूँ, न और ही कुछ। पूर्वकथित मानुषी-राक्षसी आदि सारी संज्ञाएँ इस देहकी हैं और यह देह नाशवान् पदार्थ है। इससे यह मालूम होता है कि इस शरीरसे पृथक् ही मैं कोई हूँ और पृथ्वीपर तरह-तरहके रूप धारण करती हूँ। लेकिन यह जो मैं हूँ, क्या हूँ ? यह नहीं जानती ॥ १०७–१११ ॥ हाँ, अब यह ज्ञात हुआ। जिस तरह भगवान् अनेक रूप धारण करके इस पृथ्वीमण्डलमें आते हैं, ठीक उन्हींकी तरह मैं भी हूँ। वे भी मत्स्य-कूर्म आदि कितने अवतार धारण करके आते-जाते हैं। वैसे ही समय-समयपर विविध प्रकारके रूप धारण करके जगत्में मैं भी आती-जाती हूँ। फिर हममें और विष्णुभगवान्में अन्तर ही क्या है ? ॥११२॥११३॥ अन्तर यही है कि विष्णु स्वाधीन हैं और मैं विष्णुभगवान्के अधीन हूँ। अतएव यह निश्चय हुआ कि मैं विष्णुभगवान्की एक कला हूँ ॥ ११४ ॥ अब यह भी निश्चित हो गया कि हममें और भगवान्में कोई भेद नहीं है। जिस तरह गङ्गाका जल गङ्गाके प्रवाहमें रहता हुआ गङ्गाजल रहता है, उसी तरह घड़ेमें आकर भी गङ्गाजल ही रहता है। इसका सार यह निकला कि हममें और भगवान्में कोई भेद नहीं है। हम और भगवान् एक ही हैं। जब मैं स्वयं विष्णुभगवान् हूँ तो बाकी क्या रहा, जो जाकर रामसे पूछूँ। मैं तो जीवन्मुक्त हूँ ॥११५॥११६॥ इस प्रकार विचार करनेसे उनका अज्ञान नष्ट हो गया। वह रात्रि बिताकर सबेरे प्रसन्नतापूर्वक रामके पास पहुँचीं ॥ ११७ ॥ वहाँ रामको प्रणाम करके सुमित्रा कहने लगीं–कल आपने मुझसे जो पूछा था कि मैं कौन हूँ ? सो विचार करनेपर मुझे मालूम हुआ कि मैं साक्षात् ब्रह्म हूँ ॥ ११८ ॥ अब मुझे आपसे कुछ भी नहीं पूछना है। क्योंकि मैं आपसे पृथक् हूँ ही नहीं। ऐसा कहकर रात्रिको उन्होंने अपने हृदयमें जैसा विचार किया था सो कह सुनाया। वह सब सुनकर वह वास्तवमें जीवन्मुक्त हो गयी। यह सोचकर रामने कहा– हे माता ! तुमने बहुत ठीक विचार किया है ॥ ११९ ॥ १२० ॥ अब तुम जीवन्मुक्त हो गयीं। जाकर आनन्दसे अपने घरमें निवास करो। इससे सुमित्राका मोह नष्ट हो गया और वे राम तथा सीता दोनोंको अलग-अलग प्रणाम करके लक्ष्मणके यहाँ चली गयीं। हे शिष्य ! इस विचारसे कि मैं कौन हूँ, सुमित्रा जीवन्मुक्त हो गयीं और उनके आनन्दका ठिकाना नहीं रहा। हे द्विजोत्तम ! मैं तुम्हें एक और वृत्तान्त बतलाता हूँ, सो सुनो

एकदा राघवं दृष्ट्वा कौसल्या जननी रहः । आसने चित्रशालायां सीतया सह संस्थितम् ॥१२४॥
पप्रच्छ नत्वा श्रीरामं ज्ञात्वा विष्णुं परात्परम् । राम राम महाबाहो किंचिदुपदिशस्व माम् ॥१२५॥
तन्मातृवचनं श्रुत्वा तां विहस्याह राघवः । श्वःप्रभाते समुत्थाय गत्वा गोष्ठं कियत्क्षणम् ॥१२६॥
श्रुत्वा गोवत्सवाक्यानि सम्यक्तानि विचिंतय । ममांतिकं ततो याहि त्वमम्ब वचनान्मम ॥१२७॥
उपदेशं करिष्यामि ततोऽहं त्वां न संशयः । तद्रामवचनं श्रुत्वा कौसल्या विस्मिता तदा ॥१२८॥
नत्वा रामं ससीतं च तूष्णीमेव गृहं ययौ । ततो निशामतिक्रम्य कौसल्या साऽरुणोदये ॥१२९॥
गोष्ठं गत्वा क्षणं स्थित्वा धेनुवत्सवचांसि सा । अहं मा त्विति शुश्राव सुश्रांता वै मुहुर्मुहुः ॥१३०॥
तानि वाक्यानि वत्सानां श्रुत्वा चित्तेऽविचारयत् । अहं मा त्विति वत्साश्च किं वदंति मुहुर्मुहुः ॥१३१॥
इमानि किं बोधयंति मां वत्साश्च मुहुर्मुहुः । इत्युक्त्वा सा क्षणं ध्यात्वा हृदि सम्यग्विचार्य च १३२॥
वत्सवाक्यैश्च कौसल्या गताज्ञानाऽभवत्क्षणात् । ततस्तुष्टा ययौ राम नत्वा तं प्राह हर्षिता ॥१३३॥
राम विष्णो रमानाथ वत्सवाक्यैः सुबोधिता । त्वयैवाहं रामचंद्र गताज्ञानाऽस्मि राघव ॥१३४॥
तवोपदेशवांछा मे न किंचिदस्त्यतः परम् । लब्ध्वा ज्ञानं मया राम त्वत्तो भिन्ना कदास्मि न १३५॥
तन्मातृवचनं श्रुत्वा कौसल्यां राघवोऽब्रवीत् । वत्सवाक्यैः कथं लब्धं त्वया ज्ञान वदस्व माम् १३६॥
तद्रामवचनं श्रुत्वा कौसल्या प्राह राघवम् । अहं मा त्विति वाक्यानि तेषां श्रुत्वा रघूत्तम ॥१३७॥
इमानि किं बोधयंति मां वत्सोक्तानि वै मुहुः । एवं विचारितं ध्यात्वा क्षणं स्वहृदये मया ॥१३८॥
वाक्यार्थश्च मया ज्ञातस्त्वहं मा कथ्यतां जनाः । वत्सास्त्वेवं बोधयंति न ज्ञायेत जनैस्तु यत् ॥१३९॥
अहशब्दो देहपदो यदा त्यक्तो मयाऽत्र हि । अहं देहि त्वहं माता चेति बुद्धिर्गता मम ॥१४०॥

॥ १२१-१२३ ॥ एक दिन सीताके साथ रामको चित्रशालामें देखकर उनकी माता कौसल्या उस एकान्त स्थानमें रामके पास पहुँचीं । उन्हें विष्णुभगवान् समझकर प्रणाम किया और कहने लगीं—हे महाबाहो राम ! मुझे भी कुछ उपदेश दे दो । तुम्हारे उपदेशसे मुझे शुभ ज्ञानकी प्राप्ति हो जायगी ॥१२४॥१२५॥ माता-की ऐसी बात सुनी तो उन्होंने मुस्कराकर कहा कि सवेरे आप गोशालामें जाइए और वहाँपर कुछ देर तक बछड़ोंकी आवाज सुनकर उसपर अच्छी तरह विचार कीजिये, फिर मेरे पास आइए । उस समय इसमें कोई सन्देह नहीं है कि मैं तुम्हें उपदेश दूँगा । रामकी उस बातको सुनकर कौसल्या विस्मित भावसे सीता और रामको प्रणाम करके अपने महलोंमें लौट आयीं । तदनन्तर रात्रि बीतनेपर सवेरे अरुणोदयके समय कौसल्या गोशालेमें पहुँचीं, वहाँ थोड़ी देर तक उन्होंने बछड़ोंकी आवाज सुनी । बछड़े "अहंमा-अहंमा" की आवाज लगा रहे थे और कौसल्या शान्त चित्तसे उसे सुन रही थीं ॥ १२६-१३० ॥ बछड़ोंके उन शब्दोंको सुनकर उन्होंने अपने मनमें विचार किया कि बछड़े बार-बार "अहं मा-अहं मा" की जो आवाज लगा रहे हैं, इसका क्या मतलब है । ये बछड़े बार-बार आवाज लगाकर किस बातका ज्ञान करा रहे हैं । ऐसा सोचकर कौसल्या-ने थोड़ी देर तक ध्यानपूर्वक इस बातपर विचार किया, जिससे क्षणभरमें उनका अज्ञान नष्ट हो गया और प्रसन्न मनसे रामके पास पहुँचीं । वहाँ रामको प्रणाम करके कहने लगीं—॥ १३१-१३३ ॥ हे रमानाथ ! हे राम ! हे विष्णो ! आपके कथनानुसार मैंने बछड़ोंकी बोली सुनी । जिससे मेरा अज्ञान नष्ट हो गया । इससे अब हमें आपका उपदेश सुननेकी इच्छा नहीं है । इस प्रकार ज्ञान होनेपर मैं तुममें और अपनेमें कोई भेद नहीं देखती ॥ १३४ ॥ १३५ ॥ इस तरह कौसल्याकी बात सुनकर रामने उनसे कहा कि उन बछड़ोंके शब्दसे तुम्हें ज्ञान किस प्रकार प्राप्त हुआ, सो मुझे बतलाओ ॥ १३६ ॥ रामकी बात सुनकर कौसल्याने कहा कि उनके "अहं मा-अहं मा" शब्दसे मुझे जिज्ञासा हुई कि ये बछड़े अपने वाक्योंसे किस बातका बोध करा रहे हैं । ऐसा क्षणभर तक अपने मनमें विचार किया ॥ १३७ ॥ १३८ ॥ तब मुझे उसका अर्थ ज्ञात हो गया । जिसका तात्पर्य यह था कि 'हे संसारीजनों ! 'अहं मा वद' "मैं हूँ, ऐसा अहंकार मत करो ।" वे बछड़े सदा लोगोंको यह पुनीत उपदेश देते रहते हैं । फिर भी लोग नहीं समझ पाते ॥ १३९ ॥ मैंने

देहबुद्धिर्यदा नष्टा तदा किं शेषमस्ति हि । सुखं दुःखं तु देहाय न मे किंचिद्रघूत्तम ॥१४१॥
तिष्ठत्वयं वा पततु देहो भोगाश्रयः प्रभो । अहं त्वदंश एवात्र पृथगुपाधितः स्मृता ॥१४२॥
यथा कुम्भे रविर्भिन्नो दृश्यतेऽत्र ह्युपाधितः । त्वत्तोऽहं न कदा भिन्ना ब्रह्मैवास्म्यहमेव वै ॥१४३॥
इति तन्मातृवचनं श्रुत्वा रामः स्मिताननः । कौसल्यामाह मातस्त्वं मुक्ताऽस्यद्य न संशयः ॥१४४॥
सम्यग्विचारितं चित्ते वत्सवाक्यं सविस्तरम् । गच्छ तिष्ठ सुखं गेहे त्विमां बुद्धिं दृढां कुरु ॥१४५॥
किमर्थं न मया पूर्वं युष्मान्स्ववचनेन हि । उपदेशः कृतस्त्वम्ब तत्सर्वं त्वं निबोधय ॥१४६॥
उपदेष्टा गुरुर्ज्ञेयो युष्माकं तनयस्त्वहम् । कथं युष्मानत्र मातस्त्वहं चोपदिशामि वै ॥१४७॥
स्त्रीणां पतिर्गुरुर्ज्ञेयः स्त्रीभिर्नान्यो गुरुः कदा । कार्यस्तस्मान्मया नैव युष्मान् स्वास्योपदेशितम् १४८॥
पौराणां च गुरुस्तातस्तथा स्वीयपुरोहितः । अतस्तेषामपि मया दूतवाक्योपदेशितम् ॥१४९॥
परास्यैरेव युष्माकमुपदेशः कृतो मया । गच्छ गेहे सुखं तिष्ठ सदा मां परिचिंतय ॥१५०॥
तद्रामवचनं श्रुत्वा कौसल्या तुष्टमानसा । रामं नत्वा ययौ गेहं संतुष्टा संस्थिता सुखम् ॥१५१॥
एवं ता रामचन्द्रेण बोधिता मातरः शुभाः । स्वस्वायुषः क्षये सर्वाः स्वदेहान्मुमुचुः सुखम् ॥१५२॥
रामसान्निध्यमात्रेण विमानवरसंस्थिताः । जग्मुः सर्वास्तु वैकुण्ठं राघवेणैव सत्कृताः ॥१५३॥
शिष्य तासां महद्भाग्यं यासां रामादिभिस्त्रिभिः । परलोक्यादि सत्कर्म स्वहस्तैर्विनिवर्तितम् ॥१५४॥
एवं शिष्य मया प्रोक्ता तासामूर्ध्वगतिस्तव । उपदेशास्तथा तासां प्रोक्ताश्चाप्यत्र ते मया ॥१५५॥
इति श्रीशतकोटिरामचरितांतर्गते श्रीमदानन्दरामायणे मनोहरकांडे मातृवैकुण्ठारोहणं नाम द्वितीयः सर्गः ॥ २ ॥

जबसे यह समझ लिया है कि यह 'अहं' शब्द देहसे सम्बन्ध रखता है—आत्मासे नहीं। तबसे मैंने इसका परित्याग कर दिया है। ऐसा करनेसे मेरी यह देहबुद्धि भी नष्ट हो गयी है कि मैं देहवती हूँ ॥१४०॥ जब कि देह-बुद्धि नष्ट हो गयी, तब फिर बाकी ही क्या रह गया। हे रघुसत्तम ! मैंने समझा है कि सांसारिक सुख-दुःख इस देहके लिए हैं, मेरे (आत्मा) के लिए नहीं ॥ १४१ ॥ भोगोंकी आश्रयरूपिणी यह काया रहे या नष्ट हो जाय। हे प्रभो ! वास्तवमें तो मैं आपका एक अंश हूँ। माताशब्द तो केवल उपाधिमात्र है ॥ १४२ ॥ उसी तरह जैसे कि घाममें घट रख देनेपर उसमें एक सूर्य और दिखायी देने लगता है। आपसे अलग होकर मैं कभी रह ही नहीं सकती। मैं ही ब्रह्म हूँ ॥ १४३ ॥ इस प्रकार माताकी बात सुनकर मुस्कराते हुए राम कहने लगे–हे माता ! तुम आज मुक्त हो गयीं। इसमें कुछ भी संशय नहीं है ॥ १४४ ॥ तुमने उन बछड़ोंकी बोलीपर बहुत ठीक विचार किया है। अब जाओ, आनन्दसे घरपर रहो और अपनी इस बुद्धिको दृढ़ बनाये रक्खो ॥ १४५ ॥ हे माताओं ! जब आप लोगोंने मुझसे उपदेश सुनना चाहा था और मैंने कुछ न कहकर एक-एक व्याजसे उपदेश दिया, उसका भी कारण सुनो ॥ १४६ ॥ इसमें यह भेद है कि उपदेश देनेवाला गुरु होता है, किन्तु मैं आपका पुत्र हूँ। ऐसी दशामें उपदेश किस तरह दूँ ? ॥ १४७ ॥ शास्त्र भी कहता है कि स्त्रीका गुरु एकमात्र पति होता है, उसका उपदेष्टा और कोई हो ही नहीं सकता। स्त्रियोंको चाहिये भी यही कि पतिके सिवाय और किसीको अपना गुरु न बनायें। इसी लिए मैंने आपको अपने मुँहसे कुछ भी उपदेश नहीं दिया ॥ १४८ ॥ १४९ ॥ बल्कि दूसरों ही के मुखसे उपदेश दिलाया। जाओ, घरमें आनन्दपूर्वक बैठो और सदा मेरा ध्यान करती रहो ॥ १५० ॥ रामकी बात सुनकर कौसल्या प्रसन्न मनसे अपने महलोंमें चली गयीं और सुखसे रहने लगीं ॥ १५१ ॥ इस तरह रामचन्द्रजीके द्वारा उपदेश पाकर वे माताएँ बहुत दिनों तक आनन्दसे रहीं और आयु समाप्त हो जानेपर उन्होंने शरीर त्याग दिया ॥१५२॥ रामके पास रहनेके कारण अच्छे-अच्छे विमानोंपर बैठकर वे सब वैकुण्ठधाम गयीं ॥ १५३ ॥ हे शिष्य ! उन माताओंका बड़ा भाग्य था, जिन की पारलौकिक क्रियाओंको राम-लक्ष्मण आदिने स्वयं सम्पन्न किया ॥ १५४ ॥ इस प्रकार हे शिष्य ! मैंने उन माताओंकी ऊर्ध्वगतिसे संबन्ध रखनेवाली बातें तथा उपदेश आदि कह सुनाया ॥ १५५ ॥ इति श्रीशतकोटिरामचरितान्तर्गते श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये पं० रामतेजपाण्डेयकृत'ज्योत्स्ना'भाषाटीकासहिते मनोहरकाण्डे द्वितीयः सर्गः ॥ २ ॥

तृतीयः सर्गः

(रामपूजाका विस्तार)

विष्णुदास उवाच

कथं श्रीराघवस्यात्र रामोपासकमानवैः । कार्या वै मानसी पूजा बहिःपूजा तथा शुभा ॥ १ ॥
कथं चोपासना ग्राह्या गुरो श्रीराघवस्य च । का श्रेष्ठोपासना चात्र कः श्रेष्ठोऽत्र गुरुस्तथा ॥ २ ॥
के के मंत्रा राघवस्य भक्तानां सिद्धिदायकाः । तिथिस्तोषदा तस्य किं किं तत्तोषवर्द्धनम् ॥ ३ ॥
कः श्रेष्ठोऽत्र वरो देवो यस्य ग्राह्या ह्युपासना । तत्सर्वं विस्तरेणैव गुरो त्वं वक्तुमर्हसि ॥ ४ ॥

श्रीरामदास उवाच

सम्यक् पृष्टं त्वया शिष्य सावधानमनाः शृणु । सर्वं तद्विस्तरेणाद्य त्वदग्रे कथ्यते मया ॥ ५ ॥
आदौ गुरुं परीक्ष्यात्र तच्चिह्नैश्च द्विजोत्तम । उपदेशस्ततस्तस्माद्ग्राह्यस्तीर्थे विधानतः ॥ ६ ॥
गुरोश्चैवात्र चिह्नानि तवादौ प्रवदाम्यहम् । क्रोधी कुष्ठी महारोगी मलिनो निर्घृणो जडः ॥ ७ ॥
अपण्डितो निंदकश्च लोलुपो विषयातुरः । दांभिको गर्वसंयुक्तः पापात्मा दुष्टवंशजः ॥ ८ ॥
घाती परद्रोहकर्त्ता परद्रव्यापहारकः । अजितात्मा वेदबाह्यः परदाररतः सदा ॥ ९ ॥
परदोषारोपकश्च कृपणश्चाजितेन्द्रियः । वेददेवद्विजातीनां यतितीर्थगवामपि ॥१०॥
तुलसीवह्निसूर्याणां द्वेष्टा योग्यो गुरुर्न हि । वेत्ता सकलधर्माणां शास्त्रेषु परिनिष्ठितः ॥११॥
सत्यवाङ् मितभुग्ज्ञानी कलावान्द्विजवंशजः । सत्कर्मनिष्ठो धर्माणामुपदेष्टा सुबुद्धिदः ॥१२॥
योगाभ्यासकलाभिज्ञो योगवान्समदर्शनः । कृतकर्मा तीर्थसेवी धर्माधर्मविवेचकः ॥१३॥
ब्रह्मचारी गृहस्थो वा वानप्रस्थाश्रमी यतिः । स्वाश्रमाचारसन्निष्ठो बुद्धिमान्विजितेन्द्रियः ॥१४॥

विष्णुदासने कहा—हे गुरो ! इस संसारमें रामकी उपासना करनेवालोंको रामकी मानसी पूजा किस प्रकार करनी चाहिए ? ॥ १ ॥ और फिर गुरुके पाससे उपासना किस प्रकार ग्रहण करनी चाहिए ? समस्त उपासनाओंमें सर्वश्रेष्ठ उपासना कौन-सी है, और श्रेष्ठ गुरु कैसा होता है, सो भी बतला दीजिए ॥ २ ॥ साथ ही यह भी बतलाइए कि रामके कौन-कौनसे ऐसे मन्त्र हैं, जिनसे भक्तोंको आनन्द प्राप्त होता है । कौन-कौन-सी तिथियाँ ऐसी हैं, जिनसे भक्तोंका मन सन्तुष्ट होता है ॥ ३ ॥ इस संसारमें कौन श्रेष्ठ देवता हैं, जिसकी उपासना की जाय । हे गुरो ! यह सब आप हमें विस्तारपूर्वक बतलाइये ॥ ४ ॥ श्रीरामदासने कहा—हे शिष्य ! तुमने बहुत अच्छी बात पूछी है । मैं तुम्हारे प्रश्नके अनुसार सारी बातें विस्तारपूर्वक कहता हूँ । सावधान होकर सुनो ॥ ५ ॥ लोगोंको चाहिये कि पहले गुरुकी परीक्षा करके उनके चिह्न समझें । इसके अनन्तर किसी पवित्र तीर्थमें उनसे विधिवत् उपदेश ग्रहण करे ॥ ६ ॥ प्रसङ्गवश पहले मैं तुम्हें गुरुके लक्षण बतलाता हूँ । जो क्रोधी, कुष्ठी, ग्रहरोगका रोगी (जिसको भूत-वैताल आदि लगते हों), मैला-कुचैला, निर्दयी, जड़ ॥ ७ ॥ अपण्डित (अच्छा-बुरा न जाननेवाला), निन्दक, लोलुप, विषयी, पाखण्डी, अभिमानी, पापी, दूषित कुलमें उत्पन्न ॥ ८ ॥ विश्वासघाती, दूसरेसे द्रोह करनेवाला, दूसरेका धन अपहरण करनेवाला, अजितात्मा (जिसने अपनी आत्माको नहीं जीता है), वेदसे बहिष्कृत (नास्तिक), दूसरेकी स्त्रीसे प्रेम करनेवाला ॥ ९ ॥ दूसरेपर दोषारोप करनेवाला, कृपण (कंजूस) तथा वेद, देवता, ब्राह्मण, सन्त, तीर्थ, गौ, तुलसी, अग्नि और सूर्य इनसे द्वेष रखनेवाला हो । ऐसोंको भूलकर भी गुरु नहीं बनाना चाहिए । जो सब धर्मोंका ज्ञाता, शास्त्रोंपर विश्वास करनेवाला ॥ १० ॥ ११ ॥ सच बोलनेवाला, मिताहारी, ज्ञानी, कलाविद् ब्राह्मणके वंशमें उत्पन्न, अच्छे कामोंमें लगा हुआ, धर्मका उपदेष्टा, अच्छी बुद्धि देनेवाला ॥ १२ ॥ योगाभ्यासकी कलाओंका ज्ञाता, योगी, सबको समान दृष्टिसे देखनेवाला, केवल उपदेश न देकर स्वयं कर्म करनेवाला, तीर्थसेवी, धर्म-अधर्मकी विवेचना करनेमें निपुण ॥ १३ ॥ ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थाश्रमी, योगी,

क्षमी कृपालुर्मृदुवाक् सुमुखः सौम्यदर्शनः । अनिद्रश्च समुद्योगी शांतात्मा परतोषकृत् ॥१५॥
औदार्यवान् ज्ञाननिष्ठः शुचिस्त्यक्तपरिग्रहः । इत्यादिगुणयुक्तो यः स गुरुः परमोत्तमः ॥१६॥
तस्य सेवां चिरं कृत्वा सेवया तं प्रसाद्य च । तस्मादुपासना ग्राह्या सुतीर्थे विधिपूर्विका ॥१७॥
उपासनास्त्रयः संति सात्त्विकी राजसी तथा । तामसी च तृतीया सा गर्हिताऽत्र निगद्यते ॥१८॥
भूतवेतालकूष्मांडपिशाचानामुपासना । सा ज्ञेया तामसी घोरा देवानां सात्त्विकी स्मृता १९॥
यक्षाणां राक्षसानां च या ज्ञेया सा तु राक्षसी । शैवा सौराश्च गाणेशाः शाक्ताश्च वैष्णवास्तथा ॥२०॥
अवतारास्त्वसंख्याताः पंचानां सन्ति भूतले । तेषामुपासना ग्राह्या गुरोरास्याद्द्विजातिभिः ॥२१॥
पंचानामवतारेषु विष्णोरेव वदाम्यहम् । चतुश्चत्वारिंशन्मितानवतारान्महत्तमान् ॥२२॥
पुरुषोत्तमो विधिश्चैव रुद्रो नारायणस्तथा । हंसोऽथ दत्तात्रेयश्च कुमारो ऋषभस्तथा ॥२३॥
हयग्रीवस्तथा मत्स्यः कूर्मो वाराह एव च । नारसिंहो वामनश्च जामदग्न्यस्तथैव च ॥२४॥
रामः कृष्णस्तथा बौद्धः कल्किर्यज्ञो हरिस्तथा । वालखिल्योद्धारकश्च पृथुर्धन्वंतरिस्तथा ॥२५॥
मोहिनी नारदो व्यासः कपिलः केशवस्तथा । माधवश्चाथ गोविंदो मधुसूदन एव च ॥२६॥
त्रिविक्रमः श्रीधरश्च पद्मनाभस्तथा स्मृतः । दामोदरस्तथा संकर्षणः प्रद्युम्न एव च ॥२७॥
अनिरुद्धोऽक्षजश्च ह्यच्युतश्च जनार्दनः । उपेंद्रश्च हृषीकेशस्त्वेते ज्ञेया महत्तमाः ॥२८॥
मत्स्याद्या अवताराश्च दशैतेऽपि चोत्तमा । दशावतारमध्येऽपि रामकृष्णौ महत्तमौ ॥२९॥
ताभ्यामपि वरः पूर्वः सत्यसंधो रघूत्तमः । एकपत्नीव्रतो वीरस्त्वेकबाणो नृपोत्तमः ॥३०॥
सप्तद्वीपपतिः श्रीमांश्छत्रचामरमंडितः । एवं ज्ञात्वोपासनाऽत्र ग्राह्या श्रीराघवस्य च ॥३१॥
गुरूपदिष्टविधिना सुमुहूर्ते शुभस्थले । अथवा तत्तद्देवानां ग्राह्या तज्जन्मसत्तिथौ ॥३२॥

जिस आश्रममें हो उनके नियमोंका पालन करनेवाला, बुद्धिमान्, इन्द्रियोंको वशमें रखनेवाला, ॥ १४ ॥ क्षमाशील, कृपालु, मधुरभाषी, अच्छे मुखवाला, सौम्यदर्शी, कम सोनेवाला, सदा उद्योगमें लगा हुआ, शान्तात्मा, दूसरोंको प्रसन्न करनेमें तत्पर, ॥ १५ ॥ उदार, ज्ञाननिष्ठ, पवित्र और दान आदि ग्रहण करनेसे पराङ्मुख, इन गुणोंसे विभूषित पुरुष ही उत्तम गुरु होता है ॥ १६ ॥ ऐसे गुरुकी बहुत दिनोंतक सेवा करके उसे प्रसन्न करे । तब किसी अच्छे तीर्थमें उससे विधिपूर्वक उपासनाका उपदेश ग्रहण करे ॥ १७ ॥ उपासना भी तीन प्रकारकी होती है । सात्त्विकी, राजसी और तामसी । इनमेंसे तामसी उपासना निन्दित मानी गयी है ॥ १८ ॥ भूत, वैताल, कूष्माण्ड और पिशाच आदिकी घोर उपासना तामसी कही गयी है । देवताओंकी उपासना सात्त्विकी कही जाती है ॥ १९ ॥ यक्षों और राक्षसोंकी उपासना राजसी उपासना कहलाती हैं । शिव, सुर्य, गणेश, शक्ति तथा विष्णु इन पाँचों देवोंके असंख्य अवतार हैं । लोगोंको चाहिये कि गुरुके मुखसे इन्हीं पाँच देवोंमेंसे किसी एककी उपासना ग्रहण करें ॥ २० ॥ २१ ॥ ऊपर कहे गये देवताओंमेंसे मैं यहाँ विष्णु भगवान्के बड़े-बड़े चौवालिस अवतार बतला रहा हूँ ॥ २२ ॥ पुरुषोत्तम, गरुड़, नारायण, हंस, दत्तात्रेय, कुमार, ऋषभ, हयग्रीव, मत्स्य, कूर्म, वराह, नृसिंह, वामन, परशुराम, ॥ २३ ॥ २४ ॥ राम, कृष्ण, बौद्ध, कल्कि, यज्ञ, हरि, वालखिल्य, उद्धारक, पृथु, धन्वतरि, मोहिनी, नारद, व्यास, कपिल, केशव, माधव, गोविन्द, मधुसूदन, ॥ २५ ॥ २६ ॥ त्रिविक्रम, श्रीधर, पद्मनाभ, दामोदर, संकर्षण, प्रद्युम्न, अनिरुद्ध, अधोक्षज, अच्युत, जनार्दन, उपेन्द्र और हृषीकेश ये श्रेष्ठ अवतार माने गये हैं । इन अवतारोंमें भी मत्स्य-कूर्मादि दस अवतार श्रेष्ठ माने जाते हैं और इन दसोंमें भी राम और कृष्ण श्रेष्ठ माने गये हैं ॥ २७ ॥ २८ ॥ २९ ॥ इन दोनोंमें भी सत्यप्रतिज्ञ रामचन्द्र सबसे श्रेष्ठ हैं । क्योंकि ये एकपत्नीव्रती, वीर, एक बाणधारी और सब राजाओंमें श्रेष्ठ हैं ॥ ३० ॥ ये सातों द्वीपोंके अधिपति, श्रीमान्, छत्र और चमरसे सुशोभित हैं । ऐसा समझकर भक्तोंको चाहिए कि गुरुके द्वारा उपदिष्ट विधिके अनुसार अच्छे मुहूर्त तथा पवित्र स्थानमें श्रीरामचन्द्रजीकी उपासनाका मन्त्र लें । अथवा ऊपर गिनाये देवताओंमेंसे जिसपर जिसकी रुचि हो, उसीको

चैत्रे मासि दिने पक्षे नवम्यां रामजन्मनि । उपासनानन्तरं हि रामं भक्त्या प्रपूजयेत् ॥३३॥
एवं यस्यावतारस्य गृहीतोपासना नरैः । तैस्तस्य जन्मदिवसे कार्या पूजा महोत्सवैः ॥३४॥
अतो दशावताराणां शिष्य जन्मदिनानि ते । प्रोच्यन्तेऽत्र शृणुष्व त्वं येषु तान्पूजयेन्नरः ॥३५॥
चैत्रे तु शुक्लपञ्चम्यां भगवान्मीनरूपधृक् । ज्येष्ठे तु शुक्लद्वादश्यां कूर्मरूपधरो हरिः ॥३६॥
चैत्रकृष्णनवम्यां तु हरिर्वाराहरूपधृक् । वैशाखेऽभूच्चतुर्दश्यां शुक्लपक्षे नृकेसरी ॥३७॥
मासि भाद्रपदे शुक्ले द्वादश्यां वामनस्त्वभूत् । वैशाखे जामदग्न्यस्तु तृतीयायां सिते त्वभूत् ॥३८॥
चैत्रशुक्लनवम्यां तु मध्याह्ने राघवस्त्वभूत् । कृष्णाष्टम्यां श्रावणे हि कृष्णोऽभून्मथुरापुरि ॥३९॥
पौषशुक्ला सप्तमी या बुद्धजन्मतिथिस्तु सा । माघशुक्लतृतीया तु कल्किनः सा तिथिः स्मृता॥४०॥

अह्नो मध्ये वामनो रामरामौ मत्स्यः क्रोडश्चापराह्णे विभागे ।
कूर्मः सिंहो बुद्धकल्की च सायं कृष्णो रात्रौ कालसाम्ये च पूर्वे ॥४१॥

एवं तज्जन्मकालश्च ज्ञात्वा तेषामुपासकैः । उत्सवः परमः कार्यस्तत्तद्देवप्रपूजने ॥४२॥
नित्यपूजा प्रकर्तव्या भक्त्या तेषामुपासकैः । विशेषाज्जन्मदिवसे कार्यं तत्पूजनं मुदा ॥४३॥
गुरोर्गृहीतो यो मन्त्रस्तं नित्यं हृदये जपेत् । राममन्त्रास्त्वनेकाश्च शतवर्णात्मको मनुः ॥४४॥
पञ्चाशद्वर्णकश्चापि द्विचत्वारिंशदक्षरः । द्वात्रिंशदक्षरश्चाथ सप्तविंशाक्षरस्तथा ॥४५॥
पञ्चविंशद्वर्णकश्च चतुर्विंशाक्षरस्तथा । एकविंशद्वर्णकश्च विंशद्वर्णात्मकस्तथा ॥४६॥
अष्टादशवर्णकश्च षोडशाक्षर एव च । पञ्चदशवर्णकश्च चतुर्दशाक्षरस्तथा ॥४७॥
त्रयोदशाक्षरश्चापि द्वादशाक्षर एव च । एकादशाक्षरश्चापि तथा मन्त्रो दशाक्षरः ॥४८॥
नवाक्षरोऽष्टवर्णात्मा सप्ताक्षरमनुस्तथा । षडक्षरो राममन्त्रस्तथा पञ्चाक्षरो मनुः ॥४९॥

जन्मतिथिपर उसकी उपासना ग्रहण करे ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ रामकी उपासना ग्रहण करनेवालोंको चाहिए कि चैत्रमासके शुक्लपक्षमें नवमी (रामजन्म) के दिन उपासना ग्रहण करें। उसके बाद भक्तिपूर्वक रामका पूजन करें ॥ ३३ ॥ इस तरह जिस अवतारकी उपासना ग्रहण करनी हो, उसके जन्मदिवसपर महान् उत्सवके साथ पूजा करनी चाहिए ॥ ३४ ॥ हे शिष्य ! अब मैं तुम्हें दसों अवतारोंके जन्मदिवस बतलाता हूँ। जिनमें लोगोंको अपने उपास्य देवताका पूजन करना चाहिए ॥ ३५ ॥ चैत्र शुक्ल पञ्चमीको भगवान्ने मत्स्यावतार लिया था। ज्येष्ठ शुक्लपक्षकी द्वादशीको भगवान्ने कूर्मरूप धारण किया था। चैत्र कृष्ण नवमीको भगवान्ने वाराहरूप धारण किया था। वैशाख शुक्ल चतुर्दशीको नृसिंहरूप धारण किया था ॥ ३६ ॥ ३७ ॥ भाद्रपद शुक्ल द्वादशीको वामनरूप धारण किया था। वैशाख शुक्ल तृतीयाको ये परशुराम बने थे ॥ ३८ ॥ चैत्र शुक्ल नवमीको मध्याह्नकालमें भगवान्ने रामका अवतार लिया था। भाद्रपद कृष्णपक्षकी अष्टमीको भगवान्ने मथुरामें कृष्णरूपसे अवतार लिया था ॥ ३९ ॥ पौष शुक्ल सप्तमीको बुद्धकी जन्मतिथि होती है। माघ शुक्ल तृतीयाको कल्कि भगवान्की जन्मतिथि होती है ॥ ४० ॥ दोपहरके समय वामन, राम और कल्कीका जन्म हुआ था। मत्स्य-वाराह इन दोनोंका जन्म दिनके तीसरे पहर हुआ था। कूर्म, नृसिंह, बुद्ध और कल्कीका अवतार सन्ध्याके समय हुआ था और श्रीकृष्णचन्द्रजीका जन्म आधी रातको हुआ था ॥ ४१ ॥ इस प्रकार अपने-अपने उपास्य देवोंका जन्मकाल जानकर उस समय महान् उत्सव मनाते हुए उनकी पूजा करनी चाहिए ॥ ४२ ॥ उपासकोंको उचित है कि नित्य अपने आराध्य देवकी पूजा करें। विशेषकर उनके जन्मदिवसको उत्सव और पूजन अवश्य करना चाहिये ॥ ४३ ॥ गुरुसे जो मन्त्र मिले, हृदयमें सर्वदा उसका जप करता रहे। राममन्त्र भी अनेक प्रकारके हैं। उनमेंसे एक सौ अक्षरोंका, एक पचास अक्षरोंका, एक बयालिस अक्षरोंका, एक बत्तीस अक्षरोंका, एक सत्ताइस अक्षरोंका, एक चौबीस अक्षरोंका, एक इक्कीस अक्षरोंका, एक बीस अक्षरोंका, ॥ ४४-४६ ॥ एक अठारह अक्षरोंका, एक सोलह अक्षरोंका, एक पन्द्रह अक्षरोंका, एक चौदह अक्षरोंका, एक तेरह अक्षरोंका, एक बारह अक्षरोंका, एक ग्यारह अक्षरोंका, एक दश

चतुर्वर्णात्मकश्चापि तथा वर्णत्रयात्मकः । द्व्यक्षरो राममन्त्रश्च मनुस्त्वेकाक्षरोऽपि च ॥५०॥
एवं नानाविधा मन्त्राः शतशोऽथ सहस्रशः । गुरोस्त्वेको गृहीत्वाऽत्र जपेच्छ्रीरामसन्निधौ ॥५१॥
उपासनाविधानं च रामोपासकमानवैः । यथा मन्त्रस्य रूपं हि विज्ञेयं मंत्रशास्त्रतः ॥५२॥
अधुना मानसी पूजाविधानं च मयोच्यते । यद्दण्डके सुतीक्ष्णाय कथितं कुम्भजन्मना ॥५३॥
सुतीक्ष्णस्त्वेकदाऽगस्त्यं दृष्ट्वा रहसि संस्थितम् । प्रणम्य परया भक्त्या प्रोवाच विनयान्वितः ॥५४॥

सुतीक्ष्ण उवाच

हृदये मानसी पूजा कीदृशी च वद प्रभो । उपचारैः कतिविधैः पूज्यते रघुनन्दनः ॥५५॥

अगस्त्य उवाच

रामं पद्मविशालाक्षं कालाम्बुदसमप्रभम् । स्मितवक्त्रं सुखासीनं चिन्तयेच्चित्तपुष्करे ॥५६॥
रागादिकलुषं चित्तं वैराग्येण सुनिर्मलम् । कृत्वा ध्यायेत्सदा रामं भवबन्धविमुक्तये ॥५७॥
प्रातः शुद्धवपुर्भूत्वा शौचादिभिरतंद्रितः । विविक्तदेशमाश्रित्य ध्यानं पूजां समारभेत् ॥५८॥
नाभिकुन्दसमुद्भूतं कदलीकुसुमोपमम् । अष्टपत्रं स्निग्धवर्णं ध्यायेद्धृदयपंकजम् ॥५९॥
तत्पद्मं रामनाम्नैव फुल्लं कृत्वाऽस्य मध्यमे । भावयेत्सूर्यसोमाग्निमण्डलानुत्तरोत्तरम् ॥६०॥
तस्योपरि न्यसेद्दिव्यं पीठं रत्नमयोज्ज्वलम् । तन्मध्ये राघवं ध्यायेत्सूर्यकोटिसमप्रभम् ॥६१॥
इंदीवरनिभं शांतं विशालाक्षं सुवक्षसम् । उद्यद्दीधितमद्भास्वत्कुण्डलाभ्यां विराजितम् ॥६२॥
सुनासं सुकिरीटं च सुकपोलं शुचिस्मितम् । विज्ञानमुद्रं द्विभुजं कंबुग्रीवं सुकुन्तलम् ॥६३॥
नानारत्नमयैर्दिव्यहारैर्भूषितमव्ययम् । विद्युत्पुञ्जप्रतीकाशं वस्त्रयुग्मधरं हरिम् ॥६४॥

अक्षरोंका, एक नौ अक्षरोंका, एक आठ अक्षरोंका, एक सात अक्षरोंका, एक छ अक्षरोंका, एक पाँच अक्षरोंका, एक चार वर्णोंका, एक तीन अक्षरोंका, एक दो अक्षरोंका और एक एक अक्षरका राममंत्र है ॥ ४७–५० ॥ एक तरह अनेक प्रकारके राममंत्र हैं। उपासकको चाहिये कि उनमेंसे किसी भी एक मंत्रको गुरुसे ग्रहण करे और श्रीरामचन्द्रजीके पास बैठकर उसका जप करे ॥ ५१ ॥ रामकी उपासना करनेवालोंको चाहिए कि उपासनाकी विधि और मन्त्रका स्वरूप मन्त्रशास्त्रसे समझ लें ॥ ५२ ॥ अब मैं यहाँ रामकी मानसी पूजाका विधान बतला रहा हूँ। जिसे कि दण्डक वनमें अगस्त्यजीने सुतीक्ष्ण ऋषिको बतलाया था ॥ ५३ ॥ एक दिन अगस्त्यजी एकान्तमें बैठे थे। उसी समय सुतीक्ष्णने जाकर परम भक्तिसे अगस्त्यको प्रणाम किया और विनयपूर्वक कहने लगे ॥ ५४ ॥ सुतीक्ष्णने कहा—हे प्रभो ! उपासकोंको मानसी पूजा कैसे करनी चाहिये। इस पूजामें किन-किन उपचारोंसे रामका पूजन किया जाता है, सो आप बतलाइए ॥ ५५ ॥ अगस्त्यने कहा कि उपासकको चाहिए कि पहले वह अपने हृदयरूपी कमलपर बैठे हुए रामका इस प्रकार ध्यान करे—जिनके कमलकी तरह विशाल नेत्र हैं। काले मेघके समान नील वर्ण हैं। मुस्कराता हुआ मुख है और वे आनन्दपूर्वक बैठे हैं ॥ ५६ ॥ उपासकका यह भी कर्तव्य है कि राग-द्वेष आदिसे कलुषित चित्तको वैराग्यसे निर्मल कर ले। तब भवपाशसे मुक्त होनेके लिए रामका ध्यान करे ॥ ५७ ॥ सवेरे शरीरको पवित्र करके तन्द्राको सर्वथा छोड़कर किसी एकान्त स्थानमें ध्यान और पूजन करे ॥ ५८ ॥ नाभि-कुण्डसे निकले हुए कदलीपुष्पके समान आठ दलोंवाले और चिकने हृदयरूपी कमलका ध्यान करे ॥ ५९ ॥ उस कमलको रामनामसे विकसित करके बीचमें सूर्य, सोम एवं अग्निमण्डलसे भी अधिक प्रकाशमान तेजका ध्यान करे ॥ ६० ॥ उसपर रत्नमय उज्ज्वल चौकी रखनेकी भावना करके उसके बीचोबीच करोड़ों सूर्यके समान प्रकाशमान रामका ध्यान करे ॥ ६१ ॥ कमलकी नाईं जिनकी विशाल आँखें है। दमकती हुई दीप्तिसे प्रकाशित कुण्डल जिनके कानोंमें पड़े हैं ॥ ६२ ॥ जिनकी सुन्दर नासिका है, जो सुन्दर किरीट धारण किये हैं, जिनका सुन्दर कपोल है, मीठी मुसकान है, वे विज्ञानमुद्रा धारण कियेहैं, उनकी दो भुजाएँ है, शंखके समान ग्रीवा है, उनके काले और चमकते हुए केशपाश हैं, जो अनेक रत्नोंसे गुथी दिव्य माला पहने हैं, जिनका कभी भी

वीरासनस्थं संतानतरुमूलनिवासिनम् । महासुगन्धलिप्ताङ्गं वनमालाविराजितम् ॥६५॥
वामपार्श्वे स्थितां सीतां चामीकरसमप्रभाम् । लीलापद्मधरां देवीं चारुहासां शुभाननाम् ॥६६॥
पश्यंतीं स्निग्धया दृष्ट्या दिव्यां कल्पविराजिताम् । छत्रचामरहस्तेन लक्ष्मणेन सुसेवितम् ॥६७॥
हनुमत्प्रमुखैर्नित्यं वानरैः परिवारितम् । स्तूयमानं ऋषिगणैः सेवितं भरतादिभिः ॥६८॥
सनन्दनादिभिश्चान्यैर्योगिवृंदैः स्तुतं सदा । सर्वशास्त्रार्थकुशलं योगज्ञं योगसिद्धिदम् ॥६९॥
एवं ध्यात्वा रामचन्द्रं मणिद्वयसुशोभितम् । शुद्धेन मनसा रामं पूजयेत्सततं हृदि ॥७०॥

इति ध्यानम् ।

आवाहयामि विश्वेशं जानकीवल्लभं विभुम् । कौसल्यातनयं विष्णुं श्रीरामं प्रकृतेः परम् ॥७१॥
राजाधिराज राजेन्द्र रामचन्द्र महीपते । रत्नसिंहासनं तुभ्यं दास्यामि स्वीकुरु प्रभो ॥७२॥
श्रीरामागच्छ भगवन् रघुवीर रघूत्तम । जानक्या सह राजेन्द्र सुस्थिरो भव सर्वदा ॥७३॥
रामचन्द्र महेष्वास रावणांतक राघव । यावत्पूजां समाप्येऽहं तावत्त्वं सन्निधौ भव ॥७४॥
रघुनन्दन राजर्षे राम राजीवलोचन । रघुवंशज मे देव श्रीरामाभिमुखो भव ॥७५॥
प्रसीद जानकीनाथ सुप्रसिद्ध सुरेश्वर । प्रसन्नो भव मे राजन् सर्वेश मधुसूदन ॥७६॥
शरणं मे जगन्नाथ शरणं भक्तवत्सल । वरदो भव मे राजन् शरणं मे रघूत्तम ॥७७॥
त्रैलोक्यपावनानन्त नमस्ते रघुनायक । पाद्यं गृहाण राजर्षे नमो राजीवलोचन ॥७८॥
परिपूर्ण परानन्द नमो रामाय वेधसे । गृहाणार्घ्यं मया दत्तं कृष्ण विष्णो जनार्दन ॥७९॥
ॐनमो वासुदेवाय तत्त्वज्ञानस्वरूपिणे । मधुपर्कं गृहाणेमं राजाराजाय ते नमः ॥८०॥

विनाश नहीं होता, जो विद्युत्पुंजके समान दमकते हुए वस्त्रोंके जोड़े पहने हैं, वीरासनसे बैठे हैं, कल्पवृक्षके नीचे निवास करते हैं, उत्तम सुगन्धि जिनके शरीरभरमें मली हुई है और जो वरमाला धारण किये हुए हैं ॥६३–६५॥ जिनके बायें बगलमें सीताजी बैठी हैं, उनका भी सुवर्ण सरीखा तेज है, वे हाथोंमें लीलापद्म लिये हैं, मुखपर मन्द मुस्कराहट है, सुन्दर चेहरा है और प्रेमभरी दृष्टिसे रामको निहारती हुई कल्पवृक्षके नीचे बैठी हैं। हाथमें छत्र और चमर लेकर लक्ष्मणजी रामकी सेवा कर रहे हैं ॥ ६६ ॥ ६७ ॥ हनुमान आदि वानरोंसे वे नित्य घिरे रहते हैं। कितने ही ऋषि स्तुति करते हैं और भरत आदि भ्राता उनकी सेवा कर रहे हैं। सनन्दन आदि कितने ही योगी उनकी स्तुति कर रहे हैं। वे राम समस्त शास्त्रोंके अर्थ जाननेमें कुशल हैं। योगक्रियाको भी वे जानते हैं और योगसिद्धिके दाता हैं ॥ ६८ ॥ ६९ ॥ कौस्तुभ तथा चिन्तामणि इन दोनों मणियोंसे सुशोभित रामचन्द्रका ध्यान करके शुद्ध मनसे नीचे लिखी विधिके अनुसार सदा हृदयमें उनका पूजन करे ॥ ७० ॥ संसारके ईश, जानकीके वल्लभ, कौसल्याके पुत्र, प्रकृतिसे पर और विष्णुरूपधारी श्रीरामका मैं आवाहन करता हूँ ॥ ७१ ॥ हे राजाओंके राजा रामचन्द्र ! हे महीपते ! मैं आपको रत्नमय सिंहासन देता हूं, उसे स्वीकार करें ॥ ७२ ॥ हे श्रीराम ! हे भगवन् ! हे रघुवीर ! हे रघूत्तम ! हे राजेन्द्र ! आप जानकीजीके साथ आइये और इस हृदयासनपर बैठिए ॥ ७३ ॥ हे रामचन्द्र ! हे महान् धनुष धारण करनेवाले ! हे रावणान्तक ! हे राघव ! जब तक मैं पूजन समाप्त न कर लूं, तब तक आप मेरे पास रहिए ॥ ७४ ॥ हे रघुनन्दन ! हे राजर्षे ! हे राजीवलोचन राम ! हे रघुवंशज ! हे देव ! हे श्रीराम ! आप मेरे सम्मुख प्रकट हों ॥ ७५ ॥ हे जानकीनाथ ! हे सुप्रसिद्ध सुरेश्वर ! आप मेरेपर प्रसन्न हों। हे राजन् ! हे सर्वेश ! हे मधुसूदन ! आप मेरेपर प्रसन्न हों ॥ ७६ ॥ हे जगन्नाथ ! मैं आपकी शरणमें हूँ। हे भक्तवत्सल ! आप मेरे वरदाता हों। हे रघूत्तम ! मैं आपकी शरणमें हूँ ॥ ७७ ॥ हे अनन्त ! हे त्रैलोक्यपावन ! हे रघुनायक ! आपको प्रणाम है। हे राजर्षे ! इस पद्यको ग्रहण करिए। हे राजीवलोचन राम ! आपको प्रणाम है ॥ ७८ ॥ परिपूर्ण परमानन्द ब्रह्मरूपधारी रामको प्रणाम है। हे कृष्ण ! हे विष्णो ! हे जनार्दन ! मेरे दिये हुए अर्घ्यको आप ग्रहण करें ॥ ७९ ॥ तत्त्वज्ञानके साक्षात् स्वरूप वासुदेवको प्रणाम है। हे राजराज ! आपको प्रणाम है। आप मेरे

नमः सत्याय शुद्धाय बुध्न्याय ज्ञानरूपिणे । गृहाणाचमनं देव सर्वलोकैकनायक ॥८१॥
ब्रह्मांडोदरमध्यस्थैस्तीर्थैश्च रघुनन्दन । स्नापयिष्याम्यहं भक्त्या त्वं गृहाण जनार्दन ॥८२॥
संतप्तकांचनप्रख्यं पीतांबरमिमं हरे । संगृहाण जगन्नाथ रामचन्द्र नमोऽस्तु ते ॥८३॥
श्रीरामाच्युत यज्ञेश श्रीधरानन्द राघव । ब्रह्मसूत्रं सोत्तरीयं गृहाण रघुनायक ॥८४॥
किरीटहारकेयूररत्नकुंडलमेखलाः । ग्रैवेयकौस्तुभं हारं रत्नकंकणनूपुरान् ॥८५॥
एवमादीनि सर्वाणि भूषणानि रघूत्तम । अहं दास्यामि ते भक्त्या संगृहाण जनार्दन ॥८६॥
कुंकुमागरुकस्तूरीकर्पूरोन्मिश्रचन्दनम् । तुभ्यं दास्यामि विश्वेश श्रीराम स्वीकुरु प्रभो ॥८७॥
तुलसीकुन्दमन्दारजातिपुन्नागचम्पकैः । कदंबकरवीरैश्च कुसुमैः शतपत्रकैः ॥८८॥
नीलांबुजैर्बिल्वदलैः पुष्पमाल्यैश्च राघव । पूजयिष्याम्यहं भक्त्या संगृहाण नमोऽस्तु ते ॥८९॥
वनस्पतिरसैर्दिव्यैर्गन्धाढ्यैः सुमनोहरैः । रामचन्द्र महीपाल धूपोऽयं प्रतिगृह्यताम् ॥९०॥
ज्योतिषां पतये तुभ्यं नमो रामाय वेधसे । गृहाण दीपकं राजंस्त्रैलोक्यतिमिरापहम् ॥९१॥
इदं दिव्यान्नममृतं रसैः षड्भिर्विराजितम् । श्रीराम राजराजेन्द्र नैवेद्यं प्रतिगृह्यताम् ॥९२॥
नागवल्लीदलैर्युक्तं पूगीफलसमन्वितम् । तांबूलं गृह्यतां राम कर्पूरादिसमन्वितम् ॥९३॥
मङ्गलार्थं महीपाल नीराजनमिदं हरे । संगृहाण जगन्नाथ रामचन्द्र नमोऽस्तु ते ॥९४॥

अथ नमस्काराष्टकमन्त्राः

ॐ नमो भगवते श्रीरामाय परमात्मने । सर्वभूतांतरस्थाय ससीताय नमो नमः ॥९५॥
ॐ नमो भगवते श्रीराम रामचन्द्राय वेधसे । सर्ववेदांतवेद्याय ससीताय नमो नमः ॥९६॥
ॐ नमो भगवते श्रीविष्णवे परमात्मने । परात्पराय रामाय ससीताय नमो नमः ॥९७॥

किये हुए इस पूजनको ग्रहण करिए ॥ ८० ॥ सत्य, शुद्ध, बुध्न्य और ज्ञानस्वरूप भगवान्को प्रणाम है। हे देव ! हे सर्वलोकैकनायक ! मेरे दिये हुए इस आचमनको आप ग्रहण करें ॥ ८१ ॥ ब्रह्माण्डमें जितने तीर्थ हैं, उनके जलसे मैं आपको स्नान कराऊँगा। सो आप स्वीकार करें ॥ ८२ ॥ हे हरे ! अच्छी तरह तपाये हुए सुवर्णके समान इस पीताम्बरको आप ग्रहण कीजिए। हे जगन्नाथ ! हे रामचन्द्र ! आपको प्रणाम है ॥ ८३ ॥ हे श्रीराम ! हे अच्युत ! हे यज्ञेश ! हे श्रीधरानन्द ! हे राघव ! हे रघुनायक ! उत्तरीय वस्त्रके साथ दिये हुए मेरे इस यज्ञोपवीतको आप ग्रहण करें ॥ ८४ ॥ किरीट, हार, केयूर, रत्नजटित कुण्डल, मेखला, माला, कौस्तुभका हार, रत्नजटिल कंकण, नूपुर, इस प्रकार सब तरहके आभूषण मैं आपको भक्तिपूर्वक दूँगा। सो आप ग्रहण करिए ॥ ८५ ॥ ८६ ॥ कुमकुम, अगुरु, कस्तूरी तथा कर्पूरसे मिश्रित चन्दन हे विश्वेश ! हे श्रीराम ! हे प्रभो ! मैं आपको दूँगा। सो आप स्वीकार करें ॥ ८७ ॥ तुलसी, कुन्द, मन्दार, जूही, पुन्नाग, चम्पक, कदम्ब, करवीर तथा शतपत्रके फूल, नीलकमल, बिल्वपत्र और पुष्पमाल्योंसे मैं आपका पूजन करूँगा। उसे आप ग्रहण करें। मैं आपको प्रणाम करता हूँ ॥ ८८ ॥ ८९ ॥ वनस्पतिके दिव्य रसों और सुगन्धसे मिश्रित दिव्य धूप आपको आघ्रापन कराऊँगा। हे रामचन्द्र ! हे महीपाल ! आप इसे ग्रहण करें ॥ ९० ॥ संसारके सारे ज्योतिर्मय पदार्थोंके पति हे राम ! हे वेधः ! आपको नमस्कार है। हे राजन् ! तीनों लोकका अंधकार नष्ट करनेवाले इस दीपकको आप ग्रहण करिए। छः रसोंसे युक्त तथा अमृतके समान सुस्वादु यह दिव्यान्न तैयार है। हे श्रीराम ! हे राजराजेन्द्र ! आप इस नैवेद्यको ग्रहण करिए ॥ ९१ ॥ ९२ ॥ पानके पत्तोंसे जोड़े हुए, सुपारी तथा कर्पूरादि मसालोंसे युक्त इस ताम्बूलको आप ग्रहण करें ॥ ९३ ॥ हे महीपाल ! हे हरे ! मङ्गलके निमित्त दिये हुए मेरे इस नीराजनको आप ग्रहण करें। हे जगन्नाथ ! हे रामचन्द्र ! आपको प्रणाम है ॥ ९४ ॥ अब आठ नमस्कार बतलाते हैं। भगवान्, श्रीराम, परमात्मा, सब प्राणियोंके भीतर रहनेवाले, सीताके साथ रामचन्द्रजीको प्रणाम है ॥ ९५ ॥ भगवान् श्रीरामचन्द्र, वेधा और सब वेदांत जाननेवाले सीताके पति रामको प्रणाम है ॥ ९६ ॥ भगवान् विष्णु, परमात्मा, परात्पर एवं सीताके साथ विराजमान रामको प्रणाम है ॥ ९७ ॥

ॐनमो भगवते श्रीरघुनाथाय शार्ङ्गिणे। चिन्मयानन्दरूपाय ससीताय नमो नमः ॥९८॥
ॐनमो भगवते श्रीराम श्रीकृष्णाय चक्रिणे। विशुद्धज्ञानदेहाय ससीताय नमो नमः ॥९९॥
ॐनमो भगवते श्रीवासुदेवाय श्रीविष्णवे। पूर्णानन्दैकरूपाय ससीताय नमो नमः ॥१००॥
ॐनमो भगवते श्रीराम रामभद्राय वेधसे। सर्वलोकशरण्याय ससीताय नमो नमः ॥१०१॥
ॐनमो भगवते श्रीरामायामिततेजसे। ब्रह्मानन्दैकरूपाय ससीताय नमो नमः ॥१०२॥

इति नमस्काराष्टकमन्त्राः।

नृत्यगीतादिवाद्यादिपुराणपठनादिभिः। राजोपचारैरखिलैः सन्तुष्टो भव राघव ॥१०३॥
विशुद्धज्ञानदेहाय रघुनाथाय विष्णवे। अन्तःकरणसंशुद्धिं देहि मे रघुनन्दन ॥१०४॥
नमो नारायणानंत श्रीराम करुणानिधे। मामुद्धर जगन्नाथ घोरात्संसारसागरात् ॥१०५॥
रामचन्द्र महेष्वास शरणागततत्पर। त्राहि मां सर्वलोकेश तापत्रयमहानलात् ॥१०६॥
श्रीकृष्ण श्रीकर श्रीश श्रीराम श्रीनिधे हरे। श्रीनाथ श्रीमहाविष्णो श्रीनृसिंह कृपानिधे ॥१०७॥
गर्भजन्मजराव्याधिघोरसंसारसागरात्। मामुद्धर जगन्नाथ कृष्ण विष्णो जनार्दन ॥१०८॥

श्रीराम गोविंद मुकुंद कृष्ण श्रीनाथ विष्णो भगवन्नमस्ते।
प्रौढारिषड्वर्गमहाभयेभ्यो मां त्राहि नारायण विश्वमूर्ते ॥१०९॥

श्रीरामाच्युत यज्ञेश श्रीधरानन्द राघव। श्रीगोविन्द हरे विष्णो नमस्ते जानकीपते ॥११०॥
ब्रह्मानन्दैकविज्ञानं त्वन्नामस्मरणं नृणाम्। त्वत्पदांबुजसद्भक्तिं देहि मे रघुवल्लभ ॥१११॥

नमोऽस्तु नारायण विश्वमूर्ते नमोऽस्तु ते शाश्वत विश्वयोने।
त्वमेव विश्वं सचराचरं च त्वामेव सर्वं प्रवदंति सन्तः ॥११२॥
नमोऽस्तु ते कारणकारणाय नमोऽस्तु कैवल्यफलप्रदाय।
नमो नमस्तेऽस्तु जगन्मयाय वेदांतवेद्याय नमो नमस्ते ॥११३॥

भगवान्, श्रीरघुनाथ, शार्ङ्गी, चिन्मयानन्दस्वरूप और सीतापति रामको प्रणाम है ॥ ९८ ॥ भगवान्, श्रीरामकृष्ण, चक्री, विशुद्ध ज्ञानदेहधारी, सीताके साथ रामको प्रणाम है ॥ ९९ ॥ भगवान् श्रीवासुदेव-स्वरूप, विष्णु, पूर्णानन्दस्वरूप सीताके साथ रामको प्रणाम है ॥ १०० ॥ भगवान्, श्रीरामभद्र, वेधा (ब्रह्मा) और सब लोगोंके शरणदाता सीताके साथ रामको प्रणाम है ॥ १०१ ॥ जो अनन्त तेजधारी भगवान् रामचन्द्रजी हैं। उन ब्रह्मानन्दके एकमात्र रूपधारी सीताके साथ रामको प्रणाम है ॥ १०२ ॥ हे राघव ! मेरे नृत्य, गीत, वाद्य तथा पुराण-पठन आदि समस्त राजोचित उपचारोंसे आप प्रसन्न हों ॥ १०३ ॥ विशुद्ध ज्ञानरूप देह धारण करनेवाले श्रीरघुनाथजीको प्रणाम है। हे रघुनन्दन ! आप हमें अन्तःकरणकी शुद्धि प्रदान करिए॥ १०४ ॥ हे नारायण ! हे अनन्त ! हे श्रीराम ! हे करुणानिधे ! आपको प्रणाम है। हे जगन्नाथ ! हमारा घोर संसारसागरसे उद्धार करें ॥ १०५ ॥ हे रामचन्द्र ! हे महेष्वास ! हे शरणागत-तत्पर ! हे सर्वलोकेश ! हमें तापत्रयरूपी महानलसे बचाइए ॥ १०६ ॥ हे कृष्ण ! हे श्रीश ! हे श्रीराम ! हे श्रीनिधे ! हे श्रीनाथ ! हे महाविष्णो ! हे श्रीनृसिंह ! हे कृपानिधे ! गर्भ, जन्म, जरा तथा व्याधिस्वरूप घोर संसारसागरसे मुझे उबारिए। हे जगन्नाथ ! हे कृष्ण ! हे विष्णो ! हे जनार्दन ! ॥१०७।१०८॥ हे श्रीराम ! हे गोविन्द ! हे मुकुन्द ! हे कृष्ण ! हे श्रीनाथ ! हे विष्णो ! हे भगवन् ! आपको नमस्कार है। हे नारायण ! हे विश्वमूर्ति ! प्रौढ़ अरिषड्वर्गके महाभयसे मेरी रक्षा करिए ॥ १०९ ॥ हे श्रीराम ! हे अच्युत ! हे यज्ञेश ! हे श्रीधरानन्द राघव ! हे गोविन्द ! हे हरे ! हे विष्णो ! हे जानकीपते ! आपको नमस्कार हैं ॥ ११० ॥ हे रघुवल्लभ ! आपका नामस्मरण ब्रह्मानन्दके विज्ञानको उत्पन्न करता है। आप हमें अपने चरणकमलकी सद्भक्ति प्रदान करिए ॥ १११ ॥ हे कारणोंके भी कारण ! आपको नमस्कार है। हे कैवल्य फल प्रदान करनेवाले प्रभो ! आपको प्रणाम है। हे जगन्मय ! हे वेदान्तवेद्य ! आपको नमस्कार है, नमस्कार है ॥ ११२ ॥ हे भरतके अग्रज !

नमो नमस्ते भरताग्रजाय नमोऽस्तु यज्ञप्रतिपालनाय।
अनंत यज्ञेश हरे मुकुंद गोविंद विष्णो भगवन्मुरारे ॥११४॥
श्रीवल्लभानन्द जगन्निवास श्रीराम राजेंद्र नमो नमस्ते।
श्रीजानकीकांत विशालनेत्र राजाधिराज त्वयि मेऽस्तु भक्तिः ॥११५॥

तप्तजाम्बूनदेनैव निर्मितं रत्नभूषितम्। स्वर्णपुष्पं रघुश्रेष्ठ दास्यामि स्वीकुरु प्रभो ॥११६॥
हृत्पद्मकर्णिकामध्ये सीतया सह राघव। निवस त्वं रघुश्रेष्ठ सर्वैरावरणैः सह ॥११७॥
मनोवाक्कायजनितं कर्म यद्वा शुभाशुभम्। तत्सर्वं प्रीतये भूयान्नमो रामाय शार्ङ्गिणे ॥११८॥
अपराधसहस्राणि क्रियंतेऽहर्निशं मया। दासोऽयमिति मां मत्वा क्षमस्व रघुपुंगव ॥११९॥
नमस्ते जानकीनाथ रामचन्द्र महीपते। पूर्णानन्दैकरूप त्वं गृहाणार्घ्यं नमोऽस्तु ते ॥१२०॥
एवं यः कुरुते पूजां बहिर्वा हृदयेऽपि च। सकृत्पूजनमात्रेण राम एव भवेन्नरः ॥१२१॥
किं पुनः सततं ब्रह्मण्येवं पूज्य स्थितो हि सः। सर्वान्कामानवाप्नोति चेह लोके परत्र च ॥१२२॥
एवं सुतीक्ष्ण ते प्रोक्तं यथा पृष्टं त्वया मम। हृदये मानसीपूजाविधानं राघवस्य च ॥१२३॥

श्रीरामदास उवाच

एवं शिष्य सुतीक्ष्णाय मुनयेऽगस्तिना पुरा। यत्प्रोक्तं तन्मया सर्वं तव प्रोक्तं सविस्तरात् ॥१२४॥
शिष्याधुना बहिःपूजाविधानं च मयोच्यते। नरः प्रातः समुत्थाय कृत्वा शौचादिकाः क्रियाः १२५॥
स्नात्वा संध्यादिकं कृत्वा देवपूजां समारभेत्। तीर्थे देवालये वाऽपि गोष्ठे पुण्यस्थलेषु च ॥१२६॥
नद्यास्तटे देवगेहे तुलसीसन्निधौ तथा। लिप्त्वा भूमिं गोमयेन ततो पद्मानि लेखयेत् ॥१२७॥
सितरक्तहरित्पीतनीलकृष्णादिसंभवैः। नानावर्णैश्चित्रितानि तत्र पूजां समारभेत् ॥१२८॥

हे यज्ञका प्रतिपालन करनेवाले! आपको नमस्कार है, नमस्कार है। हे अनन्त! हे यज्ञेश! हे हरे! हे मुकुन्द! हे विष्णु! हे मुरारे! हे श्रीवल्लभ! हे अनन्त! हे जगन्निवास! श्रीराम! हे राजेन्द्र! आपको नमस्कार है। हे श्रीजानकीकान्त! हे विशालनेत्र! हे राजाधिराज! आपमें मेरी भक्ति हो ॥ ११३–११५ ॥ तपाये हुए सुवर्णसे निर्मित और रत्नोंसे विभूषित यह सुवर्णपुष्प मैं आपको अर्पण करता हूँ। हे प्रभो! इसे आप स्वीकार करें ॥ ११६ ॥ हृदयरूपी कमलके बीचोबीच सीता तथा समस्त आवरणोंके साथ उसपर बैठिए॥ ११७ ॥ मन, वचन अथवा शरीरसे मैंने जो शुभ या अशुभ कर्म किया हो, वह सब आपकी प्रसन्नताका कारण बने। हे धनुर्धारी राम! मैं आपको प्रणाम करता हूँ ॥ ११८ ॥ हे रघुपुंगव! रात-दिन मैं हजारों प्रकारके पातक करता हूँ। मुझे अपना दास समझकर आप क्षमा कर दें ॥ ११९ ॥ हे जानकीनाथ! हे महीपते! हे रामचन्द्र! आपको नमस्कार है। हे पूर्णानन्दनस्वरूप! मैं आपको अर्घ्य देता हूँ, इसे आप ग्रहण करें ॥ १२० ॥ इस रीतिसे जो मनुष्य हृदयके भीतर या बाहर पूजन करता है, वह केवल एक बारके पूजनसे साक्षात् राम हो जाता है ॥ १२१ ॥ फिर उसके लिए क्या कहना, जो रात-दिन उसीमें लीन रहता हो। वह प्राणी इहलोक और परलोक, दोनोंकी अभीष्ट कामनाएँ प्राप्त कर लेता है। हे सुतीक्ष्ण! तुमने हमसे जैसे पूछा, उस प्रकार मैंने मानसी पूजाका सारा विधान कह सुनाया ॥ १२२ ॥ १२३ ॥ श्रीरामदासने कहा – हे शिष्य! इस तरह सुतीक्ष्ण मुनिके लिए अगस्त्य ऋषिने उस समय जो विधान बतलाया था, सो मैंने विस्तारपूर्वक तुम्हें बतला दिया ॥ १२४ ॥ हे शिष्य! अब मैं बाह्यपूजाका विधान बतला रहा हूँ। उपासकको चाहिये कि प्रातःकाल उठे और शौचादिसे निवृत्त होकर स्नान-संध्या आदि करे। फिर किसी तीर्थ, देवालय, गोशाला या पवित्र स्थानमें देवपूजा प्रारम्भ करे ॥ १२५ ॥ १२६ ॥ ऊपर बताये स्थानोंके सिवाय किसी नदीतटपर, देवमन्दिर तथा तुलसीके पास गोबरसे लीपकर सफेद, लाल, हरे, पीले, नीले, काले, इस तरह नाना प्रकारके रंगोंसे चित्र-विचित्र पद्म बनाकर पूजन प्रारम्भ करे ॥ १२७ ॥ १२८ ॥ एक आसन एक हजार आठ श्रीरामनामका बनता है। एक आसन आठ

अष्टोत्तरसहस्रश्रीरामलिंगात्मकासनम् । वाष्टोत्तरशतं श्रीमद्रामलिंगात्मकासनम् ॥१२९॥
अष्टोत्तरसहस्रश्रीरामभद्रासनं हि वा । वाष्टोत्तरशतं श्रीमद्रामभद्रासनं शुभम् ॥१३०॥
बहून्यन्यांनि शतशः संति लघ्वासनानि हि । तेषां मध्यादेकमेवासनं संस्थाप्य चित्रितम् ॥१३१॥
पीठोपरि कृतं वस्त्रं पत्रादिष्वपि वा कृतम् । आसनोपरि जानक्या राघवादीन्निवेशयेत् ॥१३२॥
आसने सर्वतोभद्रमध्ये पद्मोपरि न्यसेत् । सीतया राघवं रम्यं वरसिंहासने स्थितम् ॥१३३॥
रामस्य पृष्ठभागे च लक्ष्मणं स्थापयेत्ततः । रामस्य दक्षिणे पार्श्वे भरतं विन्यसेच्छुभम् ॥१३४॥
रामस्य वामपार्श्वे हि शत्रुघ्नं विन्यसेच्छुभम् । पुरतो रामचन्द्रस्य वायुपुत्रं तु विन्यसेत् ॥१३५॥
रामस्य वायुदिग्भागे सुग्रीवं स्थापयेत्ततः । ईशान्यां रामचन्द्रस्य विन्यस्य च विभीषणत् १३६॥
रामस्य वह्निदिग्भागे विन्यसेदं गदं ततः । नैर्ऋत्यां रामचंद्रस्य जांबवंतं तु विन्यसेत् ॥१३७॥
पूज्यपूजकयोर्मध्ये प्राग्दिग्ज्ञेयाऽर्चने त्विह । सर्वशास्त्रेष्वेवमेव निर्णयः कथ्यते बुधैः ॥१३८॥
लक्ष्मणस्य करे देयं छत्रं मुक्ताविराजितम् । भरतस्य करे देयं चामरं रुक्ममण्डितम् ॥१३९॥
शत्रुघ्नस्य करे देयं व्यजनं चित्रितं शुभम् । हनूमतः करे देयं रामस्य पादुकाद्वयम् ॥१४०॥
सुग्रीवस्य करे देयं जलपात्रं मनोहरम् । करे विभीषणस्यापि देयं मुकुरमुत्तमम् ॥१४१॥
देयं तांबूलपात्रं च वालिनन्दनसत्करे । जांबवतः करे देयो वस्त्रकोशो महत्तमः । १४२॥
नवायतनमेवं हि स्थापयेद्राघवस्य च । अथवा पञ्चायतनं स्थापयेदासनोपरि ॥१४३॥
सीतया रामचन्द्रं च मध्ये पृष्ठे तु लक्ष्मणम् । भरतं सव्यपार्श्वे च शत्रुघ्नं वामपार्श्वके ॥१४४॥
पुरतो वायुपुत्रं च पूर्वोक्तैरुपचारकैः । एवं संस्थापयेद्भक्त्या रामं भद्रासनोपरि ॥१४५॥
अथवा सीतया रामं मध्ये स्थाप्य ततः परम् । रामस्य पृष्ठे सौमित्रिं रामाग्रे वायुनन्दनम् ॥१४६॥
स्थाप्यैवं पूजयेद्भक्त्या रामं धृतशरासनम् । अथवा सीतया रामं लक्ष्मणं परिपूजयेत् ॥१४७॥

सौ रामके नामसे अङ्कित करके बनाया जाता है। एक हजार आठ नामोंसे अङ्कित करके एक श्रीरामभद्रासन बनता है। दूसरा एक सौ आठ नामोंसे अङ्कित करके श्रीरामभद्रासन बनता है ॥ १२९ ॥ १३० ॥ इसी तरह बहुतसे और भी छोटे-छोटे आसन बनते हैं। उनमेंसे रंगकर कोई एक आसन बनाये ॥ १३१ ॥ इस आसनकी रचना वस्त्र बिछाकर पीढ़ेपर करे। उसके ऊपर जानकी तथा राम आदिको बैठाये ॥ १३२ ॥ सर्वतोभद्रके मध्यमें बने हुए कमलके ऊपर पहले एक सुन्दर सिंहासनपर राम तथा सीताको बिठाले ॥ १३३ ॥ रामके पीछे लक्ष्मणको स्थापित करे। रामके दाहिने बगल भरतको स्थापित करे और रामके पार्श्वमें शत्रुघ्नको बिठाले। रामचन्द्रजीके आगे हनुमानजीकी स्मापना करे ॥ १३४ ॥ १३५ ॥ रामके वायव्य कोणमें सुग्रीवकी स्थापना करे। ईशानकोणमें विभीषणको स्थापित करके अग्निकोणमें अङ्गदको तथा नैर्ऋत्यकोणमें जाम्बवान्‌की स्थापना करे ॥ १३६ ॥ १३७ ॥ पूज्य और पूजक इन दोनोंके लिए प्राची दिशा ही पूजन करनेमें श्रेष्ठ है। पण्डितोंका कहना है कि समस्त शास्त्रोंमें इसी प्रकारका निर्णय किया गया है ॥ १३८ ॥ लक्ष्मणके हाथमें मोतियोंसे सुसज्जित छत्र दे। भरतके हाथसे सुवर्णसे मण्डित चमर दे ॥ १३९ ॥ शत्रुघ्नके हाथमें चित्रित व्यजन (पंखा) दे और हनुमान्‌जीके हाथमें रामकी दोनों पादुकाएँ दे ॥ १४० ॥ सुग्रीवके हाथमें मनोहर जलपात्र और विभीषणके हाथमें उत्तम शीशा दे ॥ १४१ ॥ अङ्गदके हाथमें सुन्दर ताम्बूलपात्र दे, जाम्बवान्‌के हाथमें कपड़ोंकी पेटी दे। इस तरह श्रीरामचन्द्रजीके नवायतनकी स्थापना करे ॥१४२॥१४३॥ मध्यभागमें सीताके साथ रामचन्द्रजीको बिठाले, पीछे लक्ष्मणको, दाहिने बगल भरतको, बायें बगल शत्रुघ्नको तथा सामने हनुमान्‌जीको पूर्वोक्त उपचारोंके साथ बिठाले । इस तरह सुन्दर आसनपर रामकी स्थापना करे। इसे ही रामपञ्चायतन कहते हैं ॥ १४४ ॥ १४५ ॥ अथवा सीताके साथ-साथ रामको मध्यमें बिठालकर रामके पीछे लक्ष्मण और आगे हनुमान्‌जीकी स्थापना करके धनुर्धारी रामका पूजन करे। अथवा सीताके साथ राम और लक्ष्मणकी पूजा

सीतानुजौ विना पूजा रामस्यैकस्य नाचरेत् । कृता चेद्विघ्नकर्त्री सा भवेदत्र न संशयः ॥१४८॥
नवायतनपूजा सा श्रेष्ठा ज्ञेया शुभप्रदा । या पञ्चायतनी पूजा ज्ञेया सा मध्यमाऽत्र हि ॥१४९॥
त्रिदैवत्या तु या पूजा कनिष्ठा सा निगद्यते । अतिकनिष्ठा पूजा सा द्विदैवत्या स्मृता हि सा ॥१५०॥
कोदण्डं वामहस्ते च तूणीरं वामपार्श्वके । निजनामाङ्कितं बाणं दधानं दक्षिणे करे ॥१५१॥
एवं श्रीराघवं स्थाप्य ततः पूजां समारभेत् । आत्मनो वामभागे च जलकुम्भं निधाय हि ॥१५२॥
आत्मनो दक्षिणे भागे पूजापात्रं निवेशयेत् । आत्मनः पुरतः पात्रं स्थापयेद्विस्तृतं वरम् ॥१५३॥
प्राङ्मुखः सुखमासीनो धृतपद्मासनः शुचिः । मौनी धृताक्षतुलसीमालो निश्चलमानसः ॥१५४॥
बद्धग्रंथिशिखः शुद्धवस्त्रो धृतपवित्रकः । शुद्धद्वारावतीमृत्कृत्तिलको मुद्रिकांकितः ॥१५५॥
नत्वादौ गणराजं च तिथिवारादि कीर्तयेत् ।
भूमिशुद्धिं भूतशुद्धिं न्यासौ कृत्वा यथाक्रमम् । प्रोक्षणीपात्रमेकं तु जलपूर्णं प्रकारयेत् ॥१५६॥
दूर्वागन्धाक्षतपुष्पैस्तत्पात्रं परिपूरयेत् । प्रोक्षयेत्तेन नीरेण पूजाद्रव्यं सहात्मना ॥१५७॥
पाद्यार्घ्याचमनार्थं तु त्रीणि पात्राणि विन्यसेत् । गणराजं पूजयित्वा सम्पूज्य वरुणं ततः ॥१५८॥
पांचजन्यं पूजयित्वा प्रोक्षयेत्तज्जलैरपि । पूजाद्रव्यं पूर्ववच्च स्वात्मानं च भुवं तथा ॥१५९॥
धेनुशङ्खचक्रपक्षिराजमुद्राः प्रदर्शयेत् । शैली दारुमयी लौही लेप्या लेख्या च सैकती ॥१६०॥
मनोमयी मणिमयी प्रतिमाऽष्टविधा स्मृता । अथ ध्यायेद्रामचन्द्रं ससीतं पुरतः स्थितम् ॥१६१॥
द्विभुजं धृततूणीरं चापबाणधृतायुधम् । दिव्यालङ्कारसंयुक्तं पीतकौशेयवाससम् ॥१६२॥
सलक्ष्मणं सशत्रुघ्नं भरतेन समन्वितम् । हनुमत्सेवितपदं सिंहासनविराजितम् ॥१६३॥
सितछत्रसमायुक्तं दिव्यचामरवीजितम् । विभीषणसमायुक्तं सुग्रीवपरिवंदितम् ॥१६४॥

करे ॥ १४६ ॥ १४७ ॥ सीता और लक्ष्मणके बिना अकेले रामकी पूजा कभी न करे । यदि ऐसी पूजा की जाती है तो वह प्रायः विघ्न करनेवाली ही हुआ करती है । इसमें कोई संशय नहीं है ॥ १४८ ॥ नवायतनपूजा सर्वश्रेष्ठ और पञ्चायतन पूजा मध्यम होती है ॥ १४९ ॥ त्रिदेवकी पूजा कनिष्ठ कही गयी है । वह पूजा तो अत्यन्त कनिष्ठ होती है, जिसमें केवल दो देवताओंकी पूजा की जाती है ॥ १५० ॥ जिनके बायें हाथमें धनुष और बायें बगल तरकस है, अपने नामसे अङ्कित बाण दाहिने हाथमें है ॥ १५१ ॥ इस तरहके रामचन्द्रकी स्थापना करके पूजा प्रारम्भ करे । पूजा करते समय वामभागमें एक कलश भी अवश्य रख लेना चाहिए ॥ १५२ ॥ अपने दाहिने बगल पूजापात्र रखना चाहिए और आगे भी विस्तृत पात्र रखना उचित है ॥ १५३ ॥ उपासकको चाहिए कि आनन्दपूर्वक पूर्वकी ओर मुख करके पद्मासनसे बैठे और निश्चल मन करके तुलसीकी माला लिये, शिखामें ग्रन्थि दिये, हाथोंमें पवित्री तथा शरीरमें पवित्र वस्त्र धारण किये, द्वारकाकी शुद्ध मृत्तिकाका तिलक लगाकर ॥ १५४ ॥ १५५ ॥ पहले गणेशजीको प्रणाम करे । फिर क्रमशः तिथि-वार आदिका उच्चारण करके भूमिशुद्धि, भूतशुद्धि तथा अंगन्यास-करन्यास करके प्रोक्षणीपात्रमें जल भरे । दूर्वा, गन्धाक्षत, पुष्प आदि उसमें डाले और प्रोक्षणीपात्रके जलसे पास रखी हुई पूजनसामग्रीका प्रोक्षण करे । पाद्य, अर्घ्य एवं आचमनके लिये सामने तीन पात्र रखे । फिर गणेशजी, वरुण तथा पाञ्चजन्य शङ्खका पूजन करके उसके जलसे अपना, पूजन-सामग्री तथा पृथ्वीका प्रोक्षण करे ॥ १५६–१५९ ॥ इसके अनन्तर सुरभी, शंख, चक्र, गरुड एवं राममुद्राका प्रदर्शन करे । पत्थरकी, काष्ठकी, चूना-ईंटकी, रङ्गसे बनी, चित्रकारी की हुई, बालुकामयी, मानसी और मणिमयी ये आठ प्रकारकी प्रतिमाएं होती हैं । ऊपर बतलायी क्रियायें कर लेनेके बाद उपासकको चाहिए कि सीताके साथ बैठे हुए इस प्रकारके रामका ध्यान करे–जिनके दो भुजाएं हैं, जो तूणीर तथा धनुष-बाण आदि विविध प्रकारके शस्त्र धारण किये हैं, उनके शरीरमें दिव्य अलङ्कार पड़े हैं और वे पीला कौशेय वस्त्र धारण किये हैं ॥ १६०–१६२ ॥ लक्ष्मण, भरत एवं शत्रुघ्न उनके साथ हैं, हनुमान्‌जी उनके चरणकी सेवा कर रहे हैं और राम उत्तम सिंहासनपर बैठे हैं ॥१६३॥ ऊपर सफेद छत्र लगा है, दिव्य चमर चल रहे हैं, विभीषण और सुग्रीव

जाम्बवता समायुक्तमङ्गदेन परिष्टुतम् । अयोध्यावासिनं राममेवं हृदि विचिंतयेत् ॥१६५॥
सीताराम समागच्छ मदग्रे त्वं स्थिरो भव । गृहाण पूजां मद्‌चां कृतमावाहनं तव ॥१६६॥
हिरण्मयं रत्नयुक्तं नानाचित्रविचित्रितम् । सिंहासनं सवस्त्रं च ह्यासनार्थं ददामि ते ॥१६७॥
चन्दनागुरुसंयुक्तैर्जलैस्तीर्थसमुद्भवैः । पाद्यं गृहाण श्रीराम मया दत्तं प्रसीद मे ॥१६८॥
पुष्करादिषु तीर्थेषु गङ्गादिषु सरित्सु च । यत्तोयं तन्मयाऽऽनीतं दत्तमर्घ्यं गृहाण भोः । १६९ ।
सुगन्धवासितं तोयं बहुतीर्थसमुद्भवम् । आचमनार्थमानीतं गृहाण त्वं सुरेश्वर ॥१७०॥
हरिद्राकुंकुमैर्युक्तं सुगन्धद्रव्यमिश्रितम् । सुगन्धस्नेहसंमिश्रमुद्वर्त्तनमथास्तु ते ॥१७१॥
कामधेनूद्भवं क्षीरं नन्दिन्या दधि सुन्दरम् । कपिलाया घृतं श्रेष्ठं मधु विंध्याद्रिसंभवम् ॥१७२॥
सितोपलसमानाम सितायुक्तं मनोहरम् । पञ्चामृतं मयाऽऽनीतं स्नानार्थं त्वं गृहाण भोः ॥१७३॥
गङ्गा च यमुना चैव गोदावरी सरस्वती । नर्मदा सिंधुकावेरी सरयू गण्डकी तथा ॥१७४॥
ताम्रपर्णी भीमरथी कृष्णा वेणी महानदी । गोमती सागराः सप्त पयोष्णी भवनाशिनी ॥१७५॥
पूर्णा तापी तुङ्गभद्रा क्षिप्रा वेगवती तथा । पिनाकी प्रवरा सिन्धुफेणा सार्द्धत्रयो नदाः । १७६॥
घृतमाला कृतमाला मही निक्षेपिका तथा । पयोष्णी प्रेमगङ्गा च चित्रगङ्गा करानदी ॥१७७॥
नीरा चर्मण्वती वृद्धा वंजरा च पुनः पुनः । सिंधुक्षीरा च वैकुण्ठाऽलकनन्दा च वारणा ॥१७८॥
इत्यादिसर्वतीर्थेषु यत्तोयं वर्तते शुभम् । तन्मयाऽऽनीममद्यात्र स्नानं कुरु रघूत्तम ॥१७९॥
पुनराचमनं रम्यं सर्वतीर्थसमुद्भवम् । गृहाण रघुनाथ त्वं दीयते यन्मया तव ॥१८०॥
सुवर्णतन्तुभिश्चित्रं पीतकौशेयसंभवम् । वस्त्रयुग्मं प्रदास्यामि गृहाण रघुनायक ॥१८१॥
शुद्धं हेममयं रम्यं नवतन्तुसमुद्भवम् । ब्रह्मग्रन्थिसमायुक्तं ब्रह्मसूत्रं प्रगृह्यताम् ॥१८२॥

आगे खड़े वन्दना कर रहे हैं ॥ १६४ ॥ जाम्बवान्‌के साथ-साथ अङ्गदजी खड़े स्तुति कर रहे हैं। इस प्रकार अयोध्यावासी रामका मनमें ध्यान करे ॥ १६५ ॥ और कहे–हे सीताराम ! आप मेरे सामने आकर बैठिए। मैं आपका पूजन करूँगा। मैं आपका आवाहन करता हूँ। आप आइए और मेरी पूजा स्वीकार करिए ॥ १६६ ॥ सुवर्णका बना हुआ तथा रत्नखचित होनेसे चित्र-विचित्र मालूम पड़नेवाला और सुन्दर वस्त्रसे वेष्टित सिंहासन मैं आपको बैठनेके लिए देता हूँ ॥ १६७ ॥ चन्दन और पुष्पसे मिले हुए तीर्थोंके जलका पाद्य बनाकर आपको देता हूँ। इसे आप स्वीकार करें और मेरे ऊपर प्रसन्न हों ॥ १६८ ॥ पुष्कर आदि तीर्थों तथा गङ्गा आदि नदियों-से लाये जलका अर्घ्य बनाकर मैं आपको देता हूँ, इसे स्वीकार करिए ॥ १६९ ॥ सुगन्धसे वासित एवं कितने ही तीर्थोंसे लाया हुआ जल मैं आपको आचमनके लिए देता हूँ। हे सुरेश्वर ! इसे आप ग्रहण कीजिए ॥ १७० ॥ हल्दी-कुमकुम और बहुतसे सुगन्धद्रव्योंसे मिश्रित तथा सुगन्धमय तेल आदिसे मिला हुआ जल मैं आपको स्नान करनेके लिये देता हूँ ॥ १७१ ॥ कामधेनुका दूध, नन्दिनी गौका दही, कपिला गौका घृत, विन्ध्य-पर्वतसे उत्पन्न उत्तम मधु, ॥ १७२ ॥ सफेद पत्थरके समान चमकती हुई चीनीसे मिला पंचामृत मैं आपको स्नान करनेके लिए देता हूँ। इसे आप ग्रहण करिए ॥ १७३ ॥ गङ्गा, यमुना, गोदावरी, सरस्वती, नर्मदा, सिन्धु, कावेरी, सरयू, गण्डकी, ताम्रपर्णी, भीमरथी, कृष्णा, वेणी, महानदी, गोमती, सातों सागर, भवनाशिनी, पयोष्णी, पूर्णा, तापी, तुङ्गभद्रा, क्षिप्रा, वेगवती, पिनाकी, प्रवरा, सिन्धुफेणा, साढ़े तीन नद, घृतमाला, कृतमाला, मही, निःक्षेपिका, पयोष्णी, प्रेमगङ्गा, चित्रगङ्गा, करानदी, नीरा, चर्मण्वती, वृद्धा, बञ्जरा, सिन्धुक्षीरा, वैकुण्ठा, अलकनन्दा, वारणा इत्यादि ॥ १७४–१७८ ॥ नदियोंमें जो पवित्र जल विद्यमान है, वह मैं आज यहाँ ले आया हूँ। हे रघूत्तम ! आप इसीसे स्नान कीजिए ॥ १७९ ॥ सब तीर्थोंका पवित्र जल मैं आपको पुनराचमनके लिये दे रहा हूँ। इसे आप ग्रहण कीजिए ॥१८०॥ सुवर्णके सूत्रोंसे बना तथा चित्र-विचित्र दीखनेवाला पीत कौशेय वस्त्र मैं आपको दे रहा हूँ, इसे स्वीकार करिये ॥ १८१ ॥ शुद्ध, सुवर्णमय,

मुकुटं कुण्डले रम्ये मुद्रिकाः कङ्कणे तथा । नूपुरे रशनामालाः केयूरे रत्नमण्डिते ॥१८३॥
इत्यादीन्परमान् दिव्यान्स्वर्णमाणिक्यनिर्मितान् । त्वदर्थं च मयानीतानलंकारान् गृहाण भोः ॥१८४॥
छत्रं सव्यजनं रम्यं चामरद्वयसंयुतम् । त्वदर्थं च मयाऽऽनीतं गृह्णीष्व रिपुसूदन ॥१८५॥
सुगंधं चंदनं दिव्यं कृष्णागुरुविमिश्रतम् । रक्तचंदनसंयुक्तं गृह्णीष्व त्वं मयार्पितम् ॥१८६॥
अक्षतांश्च वरान् दिव्यान्मुक्ताफलविनिर्मितान् । कस्तूर्या कुंकुमेनाक्तान् गृहाण परमेश्वर ॥१८७॥
माल्यादीनि सुगन्धीनि मालत्यादीनि वै प्रभो । मयाऽऽहृतानि पूजार्थं गृहाण रघुनायक ॥१८८॥
वनस्पतिरसोद्भूतं गन्धाढ्यं गन्धमुत्तमम् । आघ्रेयं सर्वदेवानां धूपं गृह्णीष्व राघव ॥१८९॥
साज्यं त्रिवर्तिसंयुक्तं वह्निना योजितं मया । दीपं गृहाण भो राम त्रैलोक्यतिमिरापह ॥१९०॥
भक्ष्यभक्तेन संयुक्तं सपायसघृतान्वितम् । शर्करामधुसंयुक्तं नैवेद्यं प्रतिगृह्यताम् ॥१९१॥
आम्रादीनि सुपक्वानि फलानि विविधानि च । समर्पितानि ते राम गृह्णीष्व रघुनन्दन ॥१९२॥
पूगीफलसमायुक्तं नागवल्लीदलैर्युतम् । जातीचतुष्टययुतं तांबूलं स्वीकुरु प्रभो ॥१९३॥
हिरण्यं ब्रह्मसंभूतं वह्नितेजःसमुद्भवम् । दीयते दक्षिणार्थं ते गृह्णीष्व रघुनंदन ॥१९४॥
एवं मया षोडशकोपचाराः संविस्तरं ते कथिताः शिवोऽत्र ।
आवाहनाद्याश्च हि दक्षिणांताः शेषां च पूजां सकलां हि वक्ष्ये ॥१९५॥
पंचवर्तिसमायुक्तं कपिलाऽऽज्यविमिश्रितम् । वह्निना योजितं रम्यं गृह्णीष्व त्वं निराजनम् ॥१९६॥
जाती चंपकमन्दारौ केतकी तुलसी तथा । दमनो मुनिकुन्दे च ह्यनंतं त्विति वै नव ॥१९७॥
एभिर्नवविधैः पुष्पैर्मन्त्रपुष्पाणि राघव । मयार्पितानि गृह्णीष्व प्रसीद परमेश्वर ॥१९८॥
यानि कानि च पापानि जन्मांतरकृतानि च । तानि सर्वाणि नश्यतु प्रदक्षिणं पदे पदे ॥१९९॥

रम्य, नवीन सूत्रसे बना तथा ब्रह्मग्रन्थियुक्त ब्रह्मसूत्र मैं आपको देता हूं। इसे आप स्वीकार करिये ॥ १८२ ॥ मुकुट, रम्य कुण्डल, मुद्रिका, कंकण, नुपूर, स्वर्णनिर्मित जंजीरकी माला, रत्नमण्डित केयूर इत्यादि परम रम्य, दिव्य, स्वर्ण और माणिक्यसे बने अलंकार मैं आपके लिए लाया हूं। इन्हें आप ग्रहण करिए ॥ १८३ ॥ १८४ ॥ व्यजन और चमर संयुक्त छत्र मैं आपके लिए लाया हूँ। हे रिपुसूदन ! इसे आप स्वीकार करिए ॥ १८५ ॥ सुन्दर, गन्धयुक्त, दिव्य, कृष्ण अगुरुमिश्रित तथा लाल चन्दन मिला चन्दन मैं आपके लिए लाया हूँ, सो आप ग्रहण कीजिए ॥ १८६ ॥ मोतीके टुकड़ोंसे बनाया हुआ कस्तूरी और कुमकुममिश्रित अक्षत मैं आपको समर्पण करता हूँ, इसे आप ग्रहण करें ॥ १८७ ॥ मालती आदि सुगन्धित फूलोंसे बनी माला मैं आपको पूजाके निमित्त लाया हूँ, हे रघुनायक ! इसे आप ग्रहण कीजिए ॥ १८८ ॥ वनस्पतिके रससे उत्पन्न, गन्धयुक्त, उत्तम सुगन्धवाला और सब देवताओंके सूँघने योग्य धूप आपके लिए लाया हूँ, इसे ग्रहण कीजिए ॥ १८९ ॥ घीसे भीगी तीन बत्तियोंवाले दीपकको लाया हूँ। हे तीनों लोकोंका अन्धकार दूर करनेवाले राम ! इसे आप ग्रहण करिए ॥ १९० ॥ खाने योग्य अन्न, दूध घी, चीनी तथा मधुमिश्रित नैवेद्य मैं आपको अर्पण करता हूँ, इसे ग्रहण करिए ॥ १९१ ॥ आम्र आदि खूब पके अच्छे-अच्छे फल मैं आपको अर्पण करता हूँ, इसे ग्रहण करें ॥ १९२ ॥ सुपाड़ी युक्त पानके पत्तोंसे जोड़ा हुआ और अनेक मसालोंसे युक्त ताम्बूल आप ग्रहण करें ॥ १९३ ॥ हे रघुनन्दन ! ब्रह्मसे उत्पन्न तथा अग्निके तेजसे जायमान सुवर्ण मैं दक्षिणाके लिए आपको देता हूँ, उसे आप स्वीकार करें ॥ १९४ ॥ हे वत्स ! इस तरह मैंने विस्तारपूर्वक आवाहनसे दक्षिणा तकके षोडश उपचारोंको कह सुनाया। शेष पूजाविधि आगे बतलाता हूँ ॥ १९५ ॥ पाँच बत्तियोंसे युक्त, कपिला गौके घृतसे मिश्रित एवं अग्निसे संयोजित रम्य नीराजन मैं आपको अर्पण करता हूँ, सो स्वीकार करिए ॥ १९६ ॥ जूही, चम्पा, मन्दार, केतकी, तुलसी, दमनक, अनन्त और दो प्रकारके मुनिकुन्द इन नौ फूलोंका मन्त्रपुष्प मैं आपको देता हूँ। हे परमेश्वर ! इसे स्वीकार करिए और मेरेपर प्रसन्न होइए ॥ १९७ ॥ १९८ ॥ जन्मान्तरमें भी मैंने जिन किन्हीं पापोंको किया हो, वे नष्ट हो जायें।

उरसा शिरसा दृष्टया मनसा वचसा तथा ।पद्भ्यां कराभ्यां जानुभ्यां साष्टांगश्च नमोस्तुते२००॥
आवाहनं न जानामि न जानामि विसर्जनम् । पूजां चैव न जानामि क्षम्यतां परमेश्वर ॥२०१।
मंत्रहीनं क्रियाहीनं भक्तिहीनं रघूत्तम । यत्पूजितं मया देव परिपूर्णं तदस्तु मे ॥२०२॥
एवं श्रीरामचन्द्रस्य भक्त्या कार्यं प्रपूजनम् । निरंतरं तथा कार्यं नवम्यां च विशेषतः ॥२०३॥

विष्णुदास उवाच

गुरो नवविधैः पुष्पैस्त्वया पुष्पांजलिः कथम् । निवेदितोऽत्र रामस्य पूजने तद्वदस्व माम् ॥२०४॥
त्वत्तो नानाविधाः पूजाः सुराणां च मया श्रुताः । पूर्वं तासु श्रुतो नैव नवपुष्पांजलिः कदा ॥२०५॥

श्रीरामचन्द्र उवाच

सम्यक् पृष्टं त्वया शिष्य सावधानमनाः शृणु । आसीत्पुरा द्विजवरः कावेर्या उत्तरे तटे ॥२०६॥
रामनाथपुरे कश्चित्सुन्दराख्योऽतिभक्तिमान् । तस्यासन्नव पुत्राश्च रामचिंतनतत्पराः ॥२०७॥
चन्द्रोऽतिचद्रश्चद्राभश्चन्द्रास्यश्चंद्रशेखरः । चन्द्रांशुर्जितचन्द्रश्च चन्द्रचूडोऽष्टमः स्मृतः ॥२०८॥
रामचन्द्रश्चेति नव गृहाभाश्च नव स्मृताः । एकदा ते त्वयोध्यायां रामं भक्तकृपाकरम् ॥२०९॥
द्रष्टुं ययुश्चैत्रमासे तस्थुस्ते सरयूतटे । तावत्तत्र समायाता नानादेशांतरस्थिताः ॥२१०॥
जनौघानां कोटयश्च नानावाहनसंस्थिताः । सरय्वां रामतीर्थे हि चैत्रस्नानमादरात् ॥२११॥
तेषां समागतानां हि संमर्दस्तत्र वै ह्यभूत् । संमर्दाद्रामचन्द्रस्य तेषां नाभूच्च दर्शनम् ॥२१२॥
तदा ते मंत्रयामासुर्नव विप्राः परस्परम् । कथं श्रीराघवस्यात्र संमर्दे दर्शनं भवेत् ॥२१३॥
चेज्जातं त्वतियत्नेन तर्हि तत्किं न दर्शनम् । यावत्स्वस्थेन मनसा राघवो न निरीक्षितः ॥२१४॥
तावत्तद्दर्शनं नैव तुष्टिं नो जनयिष्यति । तदा चन्द्रोऽब्रवीज्ज्येष्ठस्त्वत्रैव रामदर्शनम् ॥२१५॥

एक-एक पग चलकर मैं आपकी प्रदक्षिणा करता हूँ ॥ १९९ ॥ हृदयसे, मस्तकसे, दृष्टिसे, मनसे, वचनसे, हाथोंसे, पैरोंसे और घुटनोंसे मैं साष्टांग प्रमाण करता हूँ ॥ २०० ॥ हे परमेश्वर ! न मैं आवाहन करना जानता हूँ, न विसर्जन करना आता है । पूजन करना भी मैं नहीं जानता । यदि कुछ भ्रम हुआ हो तो आप क्षमा करें ॥ २०१ ॥ हे रघूत्तम ! मंत्रसे, क्रियासे और भक्तिसे हीन मैंने जो कुछ पूजा की है, हे देव ! वह सब परिपूर्ण हो जाय ॥ २०२ ॥ इस तरह निरन्तर भक्तिपूर्वक पूजन करना चाहिए और नवमीको विशेष करके ऐसा करना उचित है ॥ २०३ ॥ विष्णुदासने कहा–हे गुरो ! इस पूजनके प्रसङ्गमें आपने नौ प्रकारके फूलोंसे पुष्पाञ्जलि देनेकी विधि क्यों बतलायी है ? सो आप हमसे कहिये ॥ २०४ ॥ अबतक आपने मुझे बहुतसे देवताओंका विविध पूजन बताया, किन्तु उनमें नवपुष्पाञ्जलि आपने कहीं नहीं बतलायी ॥ २०५ ॥ श्रीरामदासने कहा—हे शिष्य ! तुमने बहुत अच्छा प्रश्न किया है, सो सावधान मन होकर सुनो । बहुत दिनोंकी बात है, कावेरी नदीके उत्तर तटपर रामनाथपुरमें अति भक्तिमान् सुन्दर नामका एक ब्राह्मण रहता था । वह रामका ध्यान करता था । रामका ध्यान करनेवाले उस भक्तके नौ बेटे थे ॥ २०६ ॥ २०७ ॥ चन्द्र, अतिचन्द्र, चन्द्राभ, चन्द्रास्य, चन्द्रशेखर, चन्द्रांशु, जितचन्द्र, चन्द्रचूड़ और गृहाभ रामचन्द्र ये उन लड़कोंके नाम थे । एक बार चैत्रके महीनेमें वे नवों लड़के भगवान् रामचन्द्रका दर्शन करनेके लिये अयोध्या गये । वहाँ पहुँचकर वे सरयूके तटपर पहुँचे । तब तक अनेक देशोंके रहनेवाले करोड़ों मनुष्य चैत्रमास-स्नानके लिये अनेक प्रकारकी सवारियोंपर चढ़कर वहाँ आ पहुँचे ॥ २०८–२११ ॥ उन आये हुए लोगोंकी भारी भीड़के कारण वे नवों ब्राह्मणकुमार रामचन्द्रजीका दर्शन नहीं पा सके ॥ २१२ ॥ उस समय उन्होंने परस्पर मंत्रणा की कि इस प्रकारकी भीड़में रामचन्द्रजीका दर्शन कैसे हो ॥२१३॥ बहुत प्रयत्न करनेपर यदि थोड़ा-सा दर्शन हो भी जाय तो जबतक अच्छी तरह उन्हें न देख सकूँ तो दर्शनसे लाभ ही क्या ? ॥ २१४ ॥ उस क्षणिक दर्शनसे हमें सन्तोष नहीं होगा । उनमेंसे ज्येष्ठ भ्राता चन्द्र बोला कि हमलोग तीव्र तपस्या करके यहीं ही रामचन्द्रजीका

वयं तीव्रेण तपसा प्राप्स्यामस्तप्यतां तपः । तच्चन्द्रवचनं श्रुत्वा पुनः प्रोचुर्द्विजोत्तमाः ॥२१६॥
एककाले तु सर्वेषां तपतामन्तरेण हि । कस्यादौ रामचन्द्रश्च दास्यत्यत्र प्रदर्शनम् ॥२१७॥
कस्य दास्यति पश्चाच्च विदितं तद्भविष्यति । कस्यास्मासु दृढा भक्तिर्विदिता सा भविष्यति ॥२१८॥
एवं परस्परं चोक्त्वा ते सर्वे द्विजसूनवः । त्यक्ताहारा वायुभक्षाश्चैकांते तत्परेण हि ॥२१९॥
गत्वाऽतिदूरं संमर्दाच्चेरुः सर्वे तपो महत् । तत्सर्वं राघवो ज्ञात्वा सर्वसाक्षी जगत्प्रभुः ॥२२०॥
तेषां स्वदर्शनं दातुं नवमे दिवसे मुदा । मंत्रायामास श्रीरामः क्षणं चित्ते समास्थितः ।२२१॥
एककाले तु सर्वेषां यदि दास्यामि दर्शनम् । तर्ह्येव तुष्टिः सर्वेषां भविष्यति न चेन्नहि ॥२२२॥
अतोऽद्याहं करिष्यामि नव रूपाणि निश्चयात् । एवं संमंत्र्य श्रीरामो लक्ष्मणं प्राह सादरम् ॥२२३॥
शिबिकामानयस्वाद्य बहिर्गच्छाम्यहं मुदा । तथेति रामवाक्येन शिबिकां लक्ष्मणस्तथा ॥१२४॥
आनयामास दूतैः स राघवाय न्यवेदयत् । तदा सिंहासनाद्रामश्चोत्तीर्य शिबिकास्थितः ॥२२४॥
बन्धुभिर्मंत्रिवर्यैश्च सुहृन्मित्रादिभिर्युतः । बहिः शनैरयोध्याया ययौ रामो मुदान्वितः ॥२२६॥
ततस्तं जनसंमर्दं समतिक्रम्य राघवः । चकार नव रूपाणि ह्यात्मनः परमेश्वरः ॥२२७॥
शिबिकाः सुहृदो भ्रातॄन्दूतान्मित्रान्सवाहनान् । चकार नवधा रामस्तदा स क्षणमात्रतः ॥२२८॥
निरीक्षितुं समायाता नात्मानं तान् जनानपि । चकार नवधा रामस्तदद्भुतमिवाभवत् ॥२२९॥
ततस्तैस्तैर्जनैर्मित्रैर्दूतैर्बन्धुजनैः सह । नवानां भूसुराणां हि ययावग्रे रघूत्तमः ॥२३०॥
ततस्ते भूसुराः सर्वे तदैकसमये प्रभुम् । आत्मनः पुरतो रामं ददृशुस्तं पृथक् पृथक् ॥२३१॥
तच्चुष्टमनसः सर्वे प्रणेमू रघुनन्दनम् । शिबिकाभ्यस्ततो रामस्त्ववरुह्य पृथक् पृथक् ।२३२॥
नवरूपधराः सर्वान्विप्रानालिंग्य सादरम् । ऊचुर्मधुरया वाचा प्रसन्नमुखपङ्कजाः ॥२३३॥

दर्शन पा लेंगे। चन्द्रकी इस रायको सुनकर वे सब बोल उठे कि यदि हम सब भाई एक साथ तपस्या करने लग जायँ तो रामचन्द्रजी किसको पहले दर्शन देंगे ॥ २१५–२१७ ॥ और किसको सबसे पीछे? इससे यह बात भी ज्ञात हो जायगी कि हममेंसे किसकी भक्ति दृढ़ है ॥ २१८ ॥ इस तरह परस्पर बातचीत करके वे सब ब्राह्मणबालक उस भीड़से दूर जा बैठे और भोजन त्यागकर केवल जल पीते हुए एकाग्र मनसे तपस्या करने लगे। सारे संसारके साक्षी तथा निखिल जगत्के प्रभु रामचन्द्रसे यह बात छिपी नहीं रही ॥ २१९ ॥ २२० ॥ नवें दिन उन्होंने अपनी सभामें उनको दर्शन देनेके विषयमें मन्त्रणा की ॥ २२१ ॥ इसके बाद क्षण भर अपने मनमें विचार किया कि यदि उनको एक ही समयमें दर्शन न दूँगा तो वे सन्तुष्ट नहीं होंगे ॥ २२२ ॥ इस कारण आज मैं नौ रूप धारण करूँगा। ऐसा निश्चय करके उन्होंने लक्ष्मणसे आदरपूर्वक कहा—॥ २२३ ॥ हे लक्ष्मण! पालकी मँगाओ। आज मैं बाहर घूमने जाऊँगा। बहुत अच्छा कह तथा दूतों द्वारा लक्ष्मणने पालकी मँगवाकर रामचन्द्रजीको इसकी खबर दी। तब सिंहासनसे उतरकर राम पालकीमें बैठे और भाईयों, मन्त्रियों, सम्बन्धियों तथा मित्रोंके साथ धीरे-धीरे अयोध्यासे बाहर निकले ॥ २२४–२२६ ॥ उस विशाल भीड़को पार करके रामचन्द्रने नौ रूप धारण किया ॥ २२७ ॥ क्षण भरके भीतर रामने पालकी, सम्बन्धी, सब भाई, दूत तथा वाहन समेत सब मित्रोंको नौ रूपमें परिणत कर दिया ॥ २२८ ॥ केवल अपने तथा अपने साथियों ही की उन्होंने नौ संख्या नहीं बनायी, बल्कि जो लोग वहाँ दर्शन करने आये थे, उनको भी उन्होंने नौ संख्यामें विभक्त कर दिया। यह एक विचित्र बात हुई ॥ २२९ ॥ इसके अनन्तर उन मनुष्यों, मित्रों, दूतों, बन्धुजनों तथा ब्राह्मणोंके आगे-आगे रामचन्द्रजी चलने लगे ॥ २३० ॥ फिर क्या था, उन नवों ब्राह्मणोंने एक ही समयमें प्रभुको अपने-अपने आगे खड़े देखा ॥ २३१ ॥ इससे प्रसन्न होकर उन्होंने रामको प्रणाम किया। इसके बाद वे नवों राम अपनी-अपनी पालकियोंसे उतरे और उन ब्राह्मणोंको गलेसे लगाया। फिर मीठी-मीठी वाणीमें उनसे बोले ॥ २३२ ॥ २३३ ॥ उन्होंने कहा—हे ब्राह्मणों! आप लोगोंने बड़ा कष्ट किया है।

भो विप्राः श्रमिता यूयं युष्माकं कृतनिश्चयम् । बुद्ध्वा वयं पृथक् रूपैर्जाताः स्मो नवधाऽद्य हि २३४॥
एकाकालेऽत्र तपतां सर्वेषां दर्शनं निजम् । कस्य देयं तु पूर्वं हि पश्चात्कस्य प्रदीयताम् ॥२३५॥
इति सम्मन्त्र्य हृदयेन त्वद्यैकसमयेन हि । युष्माकं दर्शनं दत्तं वरयध्वं वरानितः ॥२३६॥
रामाणां वचनं श्रुत्वा ते प्रोचुर्भूसुरोत्तमाः । येनास्माकं भवेत्कीर्तिः स वरो दीयतां तु नः ॥२३७॥
तत्तेषां वचनं श्रुत्वा रामाः प्रोचुर्द्विजान्पुनः । युष्माकं दर्शनार्थं हि नवरूपधरा वयम् ॥२३८॥
अद्य जाता यतस्तस्माद्युष्माकं नामभिः सदा । नव रामाः परा ख्यातिं गमिष्यन्त्यवनीतले ॥२३९॥
अस्माकं नव यत्किंचित्तत्प्रियं हि भविष्यति । ते तेषां तु रामाणां वाक्यं श्रुत्वा द्विजोत्तमाः ॥२४०॥
सन्तुष्टस्ते नता नेमुः स्वं स्वं रामं मुहुर्मुहुः । तदा सर्वे जना रामान् लक्ष्मणान् भरतादिकान्॥२४१॥
आत्मानं नवधा जातान्दृष्ट्वा विस्मयमागताः । ततो रामाः शिविकासु स्थित्वा पृष्ट्वा द्विजोत्तमान्२४२॥
परावृत्य ययुः सर्वे मार्गे त्वेकोऽभवत्पुनः । सर्वे जातास्त्वेकरूपास्तथा ते विस्मयं ययुः ।.२४३।
ततो रामो बन्धुभिश्च पूर्ववन्नगरीं ययौ । गत्वा गेहे तु सीतायै सर्वं वृत्तं न्यवेदयत् ॥२४४॥
अतस्ते नव विप्राणां नामभिर्जगतीतले । ख्यातिं रामा ययुस्तत्र नव यद्यच्च तत्प्रियम् ॥२४५॥
यथार्का द्वादश प्रोक्ता एकविंशद्गणाधिपाः । रुद्रा एकादश प्रोक्ता यथाष्ट भैरवाः स्मृताः ॥२४६॥
नव दुर्गा यथा त्वत्र तथा रामा नव स्मृताः । प्रियं द्वादश सूर्याय एकादश शिवप्रियम् ॥२४७॥
एकविंशत्प्रियं यद्गणेशाय महात्मने । प्रियमष्ट भैरवाय दुर्गायै तु नव प्रियम् ॥२४८॥
यथा यथाऽत्र रामाय नव शिष्य प्रियं सदा । तस्मान्नवविधैः पुष्पैरञ्जलिस्तत्प्रियो मतः ॥२४९॥

इति श्रीमदानन्दरामायणे मनोहरकांडे रामपूजाद्यविस्तारो नाम तृतीयः सर्गः ॥ ३ ॥

आपके कष्टको देखकर ही मैं अलग-अलग रूप धारण करके एक ही समयमें सबके समक्ष आया हूँ ॥ २३४ ॥ मैंने अपने मनमें सोचा कि ये सब भाई एक साथ एक ही समयमें तपस्या करने बैठे हैं। ऐसी अवस्थामें मैं किसे पहले दर्शन दूँ और किसे पीछे ॥ २३५ ॥ यह विचारकर मैंने आज एक ही समय तुम लोगोंको दर्शन दिया है। अब अपने इच्छानुसार वर भी माँग लो ॥ २३६ ॥ उनकी वाणी सुनकर ब्राह्मणोंने कहा—हे प्रभो ! जिससे संसारमें हमारी कीर्ति हो, हमें आप वही वरदान दीजिये ॥ २३७ ॥ इस तरह उनकी बात सुनकर रामने उन ब्राह्मणोंसे कहा कि आप लोगोंको दर्शन देनेके लिये मैंने नौ रूप धारण किया है। अतएव आप लोगोंके नामसे ही मैं नौ रामके नामसे विख्यात होऊँगा ॥ २३८ ॥ २३९ ॥ जो कोई भी नौ चीजें मुझे देगा, वे हमें अतिशय प्रिय होंगी। इस तरह उनकी बात सुनकर प्रसन्न मनसे उन ब्राह्मणोंने बार-बार रामको प्रणाम किया। उधर रामके साथवाले लक्ष्मण भरत आदि लोग अपनेको नौ संख्यामें देखकर बड़े चकराये। तदनन्तर वे सब राम पालकियोंमें बैठे और उन ब्राह्मणोंसे पूछकर अयोध्याके लिये लौट पड़े ॥ २४०–२४२ ॥ रास्तेमें रामने उन नवों रामोंका रूप समेट लिया और फिर ज्योंके त्यों एक राम हो गये। यह घटना देखकर भी लोगोंको बड़ा विस्मय हुआ ॥ २४३ ॥ इस तरह राम अपने बान्धवोंके साथ नगरीको गये। घर पहुँचकर उन्होंने सीताको उस दिनका सारा समाचार कह सुनाया ॥२४४॥ हे शिष्य ! इसी कारण राम उन नौ नामोंसे विख्यात हुए और जो-जो चीजें नौ संख्याकी दी जाती हैं, वे उन्हें विशेष प्रिय हुआ करती हैं ॥ २४५ ॥ जैसे बारह आदित्य माने गये हैं, इक्कीस गणेशजी, ग्यारह रुद्र, आठ भैरव तथा नौ दुर्गायें मानी गयी हैं, उसी तरह राम भी नौ माने जाते हैं ॥ २४६ ॥ बारह संख्याकी चीजें सूर्यको, एकादशसंख्यक रुद्रको, इक्कीस गणेशजीको, आठ भैरवको और नौ वस्तुयें दुर्गाको प्रिय होती हैं ॥ २४७ ॥ २४८ ॥ इसी तरह जो चीजें नौ होंगी, रामको अत्यंत प्रिय हुआ करेंगी। इसीलिये नौ प्रकारके फूलोंसे अञ्जलीदानका विधान मैंने बतलाया है ॥ २४९ ॥ इति श्रीशतकोटिरामचरितान्तर्गते श्रीमदानन्दरामायणे 'ज्योत्स्ना' भाषाटीकासहिते मनोहरकांडे तृतीयः सर्गः ॥ ३ ॥

चतुर्थः सर्गः

(लघुरामतोभद्रका विस्तार)

श्रीविष्णुदास उवाच

स्वामिंस्त्वया रामनाम्नामष्टोत्तरसहस्रकम् । भद्रमुक्तं तथा चाष्टोत्तरशतमनुत्तमम् ॥ १ ॥
रामनाम्नां भद्रमुक्तं रामचन्द्रप्रपूजने । तत्कीदृशे ते तु भद्रे लेखनीये मनोरमे ॥ २ ॥
ते मां विस्तरतो ब्रूहि यथाऽहं वेद्मि तत्त्वतः । तयोर्ये ये विशेषाश्च भद्रयोस्तेऽपि मां वद ॥ ३ ॥

श्रीरामदास उवाच

शृणु शिष्य प्रवक्ष्यामि भद्राणां रचनाः शुभाः । यथा पृष्टा त्वया मह्यं रामनाम्नां मनोरमाः ॥ ४ ॥
अष्टोत्तरशतं रामलिंगतोभद्रमुत्तमम् । आदौ मया विस्तरेण कथ्यते तन्निशामय ॥ ५ ॥
अत्रोपास्या राममुद्रा रुद्रश्चोपासकः स्मृतः । श्रीरामलिंगतोभद्रमत एवोच्यते बुधैः ॥ ६ ॥
तिर्यगूर्ध्वं तदा रेखा द्वे शते रेखयाऽधिके । तत्रादौ कृष्णपरिधिस्ततो रक्तः सितस्ततः ॥ ७ ॥
ततः पीतश्च परिधिः कोणेन्दुस्त्रिपदः स्मृतः । चन्द्राग्रे शृंखला कृष्णा स्मृता द्वादशपादिका ॥ ८ ॥
हरिता च ततो वल्ली त्रयोविंशत्पदात्मिका । ततः पीता शृंखला च स्मृता द्वादशपादिका ॥ ९ ॥
विंशत्पादभवं भद्रं रक्तं वापी सिता ततः । त्रयोदशपदा ज्ञेया लिंगं षड्विंशपादजम् ॥१०॥
कृष्णश्चतुष्पदो मूर्द्धा नाभिर्युग्मपदः स्मृतः । मूलस्कंधौ षट्पदजौ पार्श्वे तुर्यपदात्मके ॥११॥
ततो रक्तश्च परिधिर्मर्यादाख्योऽर्कपादजः । ततो मुद्रा तुर्यतुर्यभूमिपादमिता स्मृता ॥१२॥
ततो मर्यादापरिधिर्लिङ्गमुद्राः पुनः पुनः । एवं हरा नव ज्ञेया मुद्राश्चाष्टौ प्रकीर्त्तिताः ॥१३॥
परिधयः षोडशैव ह्यन्ते लिंगोर्ध्ववार्श्वके । तिर्यग् भद्रं नवपदैः पीतं वा हरितं क्वचित् ॥१४॥
रक्तभद्रोर्ध्वतः शेषपादानि यानि संति हि । यथेच्छं चित्रवर्णैश्च शृंखलार्थे नियोजयेत् ॥१५॥

विष्णुदासने कहा—हे स्वामिन् ! आपने हमें रामनामका अष्टोत्तर सहस्रका भद्र (आसन) और अष्टोत्तरशत नामका भद्र रामचन्द्रकी पूजाके प्रसङ्गमें बतलाया है । उन भद्रोंको किस प्रकार बनाना चाहिए, यह हमें विस्तारपूर्वक बतलाइए। जिससे कि मैं ठीक तरहसे समझ सकूँ। उनको जो विशेषतायें हों सो भी हमें बतला दीजिए ॥ १–३ ॥ श्रीरामदास बोले—हे शिष्य ! उन भद्रोंकी रचनाका प्रकार जिस तरह तुमने पूछा है, सो मैं पहले अष्टोत्तरशत रामलिंगतोभद्रका रचनाप्रकार विस्तारपूर्वक बतला रहा हूँ, सुनो ॥ ४ ॥ ५ ॥ इसमें राममुद्रा उपास्य है और रुद्र उपासक हैं। इसी कारण लोग इसे रामलिंगतोभद्र कहते हैं ॥ ६ ॥ यह भद्र बनानेवालेको चाहिए कि सीधी और बेड़ी दो सौ रेखाएँ खींचे । उसमें पहलेकी परिधि काली, फिर लाल, फिर सफेद रक्खे ॥ ७ ॥ इसके बादकी परिधि पीली और फिर कोणमें त्रिपद चन्द्रका आकार बनाये । चन्द्रमाके आगे काले रङ्गकी ऐसी शृङ्खला बनाये, जिसमें द्वादश पाद (कोष्ठक) विद्यमान हों। फिर हरे रङ्गकी तेईस पादकी बल्ली बनावे। फिर द्वादश पादकी पीली शृङ्खला रक्खे ॥ ८ ॥ ९ ॥ फिर बीस पादका भद्र बनाये। तदनन्तर सफेद रङ्गकी वापीका निर्माण करे। जिसके तेईस पाद बने हों। फिर छब्बीस पादका लिंग बनाये । फिर चार पाद (कोष्ठक) का काले रङ्गसे मस्तक बनाये, फिर दो पादकी नाभि बनाये। उसके दो मूल स्कन्द छः-छः पादोंके बनाये और चार पादका पार्श्वभाग बनाये। फिर बारह पादकी मर्यादा बनाये, जो लाल रङ्गसे रङ्गी हो । फिर चार-चार पादोंकी मुद्रा बनाये। फिर मर्यादाकी परिधि एवं लिङ्गमुद्रा बनाये । इसी तरह नौ शिव एवं आठ मुद्रायें बनाये ॥ १०–१३ ॥ फिर लिंगके ऊपर और बगलमें सोलह परिधियोंकी रचना करे। फिर नौ पादोंसे कहीं पीले और कहीं हरे रङ्गके भद्र बनावे ॥ १४ ॥ रक्त भद्रके ऊपर जितने भी चरण हों, उनकी शृङ्खलाके लिए चित्र-

मध्यलिंगस्कंधयोश्च सिते नेत्रे स्मृते शुभे। पीते लिंगस्कंधयोश्च शृंखले त्रित्रिपादजे ॥१६॥
अधोमुखं हरोर्ध्वं च रक्तं भद्रं द्विषट्पदम्। तिर्यग्भद्रे तु हरिते स्मृतेऽष्टादशपादजे ॥१७॥
ततः पंक्तेरूर्ध्वभागे हरितः परिधिः स्मृतः। तत ऊर्ध्वं पीतवर्णः प्रोक्तश्च परिधिः शुभः ॥१८॥
एवं प्रोक्ता प्रथमेयं पंक्तिः सर्वत्र कारयेत्। द्वितीयाया विशेषं च वक्ष्यामि न पुरेरितम् ॥१९॥
सप्त मुद्रा हरा ह्यष्टौ परिधयश्चतुर्दश। भद्रं रक्तं षट्पदं च शेषं सर्वं तु पूर्ववत् ॥२०॥
तृतीयायां ततः पंक्तौ मुद्राः पञ्च शिवा रसाः। परिधयो दश ज्ञेया भद्रं त्रिंशत्पदात्मकम् ॥२१॥
ततः पंक्तौ चतुर्थ्यां तु त्रीशा मुद्राचतुष्टयम्। परिधयोऽष्ट विज्ञेया भद्रं च नव वेदजम् ॥२२॥
हरित्पीतयोर्मध्ये हि लोहितः परिधिः स्मृतः। पञ्चमायां ततः पंक्तौ मुद्रैका शङ्करद्वयम् ॥२३॥
परिधयश्च चत्वारि भद्रं नवतिपादजम्। हरिद्रक्तपीतवर्णा परिधयश्च पूर्ववत् ॥२४॥
षष्ठायां च ततः पंक्तौ मुद्रैका परिधिद्वयम्। नव वेदभवं भद्रं तिस्रः परिधयोऽपि च ॥२५॥
मध्येऽपि सर्वतोभद्रं वेदनेत्राग्निपादजम्। त्रिपदेंदुः शृंखलाश्च कृष्णाः पञ्चपदा मताः ॥२६॥
एकादशपदा वल्ली भद्रं नवपदात्मकम्। चतुर्विंशत्पदा वापी पीतश्च परिधिः स्मृतः ॥२७॥
पदेषु षोडशस्वेव मध्ये पद्मं यथारुचि। कर्णिका पीतवर्णा च शेषं बुद्ध्या नियोजयेत् ॥२८॥
एतदष्टोत्तरशतं रामलिंगात्मकं स्मृतम्। तत्र मुद्रास्वरूपं च वेदवेदेंदुभिः स्मृतम् ॥२९॥
राज्यकाण्डे उत्तरार्धस्य सर्गेऽष्टादशमे पुरा। उक्तं मुद्रास्वरूपं च तथाप्यत्र तु कथ्यते ॥३०॥
पंक्तयोऽर्कमितास्तत्र सर्वा द्वादशपादजाः। तासु पूर्वदिगारम्य क्रमेणैव प्रपूरयेत् ॥३१॥
प्रथमा सप्तमी चोभे पंक्ती कृष्णे प्रपूरयेत्। ऊर्ध्वाधः पंच पंचैव पंक्तयस्तत्क्रमं ब्रुवे ॥३२॥
पंचपंक्तिषु चोर्ध्वं हि प्रथमायाः प्रपूरयेत्। प्रथमं चेशदिग्जं च कृष्णवर्णं न चापरम् ॥३३॥

विचित्र वर्णोंका बनाये ॥ १५ ॥ मध्यलिंगके दोनों कन्धोंपर सफेद रङ्गके दो नेत्र रहें। लिंगके स्कन्धमें पीले रङ्गकी तीन-तीन पादोंवाली दो शृङ्खलाएँ रहें ॥ १६ ॥ शिवके ऊपर अधोमुखके ढंगपर आठ पाद (कोष्ठक) से लाल रङ्गका भाग रहेगा। अष्टादश पादका तिरछा भद्र हरे रङ्गसे बनेगा ॥ १७ ॥ पंक्तिके ऊर्ध्वभागमें हरे रङ्गकी परिधि रहेगी। उसके ऊपर पीले वर्णकी परिधि रहेगी ॥ १८ ॥ उक्त रीतिसे प्रथम पंक्ति बनायी जायगी। अब दूसरी पंक्तिकी विशेषताएँ बतलाता हूँ, जो पहले नहीं बतलायी थीं ॥ १९ ॥ दूसरी पंक्तिमें सात मुद्रा, आठ शिव एवं चौदह परिधियाँ रहेंगी। यह भद्र छ पैरोंवाला एवं लाल रङ्गका रहेगा और तीस पादका भद्र बनेगा ॥ २० ॥ २१ ॥ चौथी पंक्तिमें तीन शिव, चार मुद्रा, आठ परिधियाँ और चार पादका भद्र बनेगा ॥ २२ ॥ हरे-पीलेके मध्यमें लाल रङ्गकी परिधि रहेगी। पाँचवीं पंक्तिमें एक मुद्रा रहेगी और दो शिव रहेंगे ॥ २३ ॥ चार परिधि रहेगी और नब्बे पादका भद्र बनेगा। बाकी हरे-लाल-पीले वर्णकी परिधियाँ पूर्ववत् रहेंगी ॥ २४ ॥ छठवीं पंक्तिमें एक मुद्रा, दो परिधि, चार पादकी नौ और तीन परिधियाँ रहेंगी ॥ २५ ॥ मध्यमें तीन सौ चौबीस पादका सर्वतोभद्र रहेगा, तीन पादकी चन्द्राकार शृङ्खला रहेगी और पाँच पादकी कृष्ण बल्लियाँ रहेंगी ॥ २६ ॥ इसमें एकादश पादकी वल्ली रहेगी और नौ पादका भद्र रहेगा। चौबीस पादकी वापी रहेगी और वह पीले रङ्गकी रहेगी ॥ २७ ॥ सोलह पादोंके बीचमें अपनी पसन्दके माफिक कमल रहेगा। उसकी कर्णिकाएँ पीले रङ्गकी होंगी! बाकी सब अवयव अपनी रुचिके अनुसार होंगे ॥ २८ ॥ यह मैने अष्टोत्तरशत रामलिंगतोभद्र बतलाया है। इसमें मुद्राका स्वरूप १४४ रहेगा ॥ २९ ॥ यद्यपि राज्यकाण्डके उत्तरार्द्ध भागके अट्ठारहवें सर्गमें कह आये हैं। फिर भी मुद्राका स्वरूप यहाँ बतला रहे हैं ॥ ३० ॥ इसमें कुल बारह पंक्तियाँ होती हैं और हर पंक्तियोंमें बारह पाद (कोठे) होते हैं। पूर्व दिशासे आरम्भ करके उन्हें पूर्ण करना चाहिए ॥ ३१ ॥ पहली और सातवीं पंक्ति काले रङ्गसे रंगी रहनी चाहिए। ऊपर-नीचे पाँच-पाँच पंक्तियाँ रहेंगी। उनका क्रम बतलाते हैं ॥ ३२ ॥ ऊपरकी पाँच

तदर्धश्च द्वितीयायाः प्रथमं च द्वितीयकम् । चतुर्थं सप्तमं षष्ठं ह्यष्टमं सत्रमं तथा ॥३४॥
तथैकादशमं चापि कृष्णवर्णानि पूरयेत् । तदधश्च तृतीयायाश्चतुर्थं षष्ठसप्तमे ॥३५॥
तथैकादशमं चापि कृष्णवर्णानि पूरयेत् । चतुर्थ्यास्तदधश्चापि प्रथमं च द्वितीयकम् ॥३६॥
चतुर्थं सप्तमं षष्ठं नवमं रुद्रसंमितम् । तदधः पञ्चमायाश्च प्रथमं च द्वितीयकम् ॥३७॥
चतुर्थं च तथा षष्ठं नवमैकादशे तथा । राजेति द्वेऽक्षरे शुक्ले द्रष्टव्ये पञ्चपंक्तिषु ॥३८॥
पञ्चपंक्तित्रधश्चाथ प्रथमायाश्च पूर्ववत् । तदधश्च द्वितीयायाः प्रथमं च द्वितीयकम् ॥३९॥
चतुर्थं सप्तमं षष्ठं नवमं दशमं ततः । तथा चैव द्वादशमं कृष्णवर्णानि पूरयेत् ॥४०॥
तृतीयायाश्चतुर्थं च षष्ठमर्कं च सप्तमम् । चतुर्थ्याः प्रथमं षष्ठं द्वितीयं च चतुर्थकम् ॥४१॥
अष्टमं नवमं चार्कं दशमं चापि पूरयेत् । पञ्चमायाः प्रथमं च द्वितीयं च चतुर्थकम् ॥४२॥
षष्ठमर्काष्टमं चापि सप्तमं दशमं तथा । नवमं कृष्णवर्णानि रामेति द्वेऽवलोकयेत् ॥४३॥
राजा रामेति चत्वारि ह्यक्षराणि निरीक्षयेत् । व्यत्ययाद्रामराजेति बुद्ध्या कार्येऽक्षरे नरैः ॥४४॥
अथवा राम रामेति तृतीयं नाम कारयेत् । विशेष तत्र वक्ष्यामि ह्यधः पञ्चसु पंक्तिषु ॥४५॥
पंक्तेश्चतुर्थ्याः प्रथमं पदं कृष्णेन कारयेत् । नाकारस्तेन द्रष्टव्यो रामनामावलोकयेत् ॥४६॥
अथवा राम रामेति विशेषश्चोर्ध्वपङ्क्तिषु । प्रथमा पूर्ववज्ज्ञेया द्वितीयायास्ततः परम् ॥४७॥
प्रथमं च द्वितीयं च तृतीयं पञ्चमं तथा । अष्टमं नवमं षष्ठं तथैकादशमं त्वपि ॥४८॥
तृतीयायाश्च प्रथमं रुद्रं षष्ठं च पंचमम् । चतुर्थ्याः प्रथमं चैव द्वितीयं च तृतीयकम् ॥४९॥
पञ्चमं सप्तमं चापि ह्यष्टम नवमं तथा । तथैकादशमं चापि कृष्णवर्णानि पूरयेत् ॥५०॥
पञ्चमायाः प्रथमं च द्वितीयं च तृतीयकम् । पञ्चमं सप्तमं षष्ठ ह्यष्टमं नवमं तथा ॥५१॥
तथैकादशमं चापि रामेति द्वेऽक्षरे सिते । नामान्येतानि चत्वारि चतुष्पार्श्वेषु योजयेत् ॥५२॥

पंक्तियों भरे और पहली तथा ईशानकोणकी पंक्तिको काले रङ्गसे रङ्गकर बाकीको खाली छोड़ दे ॥ ३३ ॥ उसके नीचे दूसरी पंक्तिकी पहली, दूसरी; चौथी, छठवीं, सातवीं, नवीं तथा ग्यारहवीं पंक्तिको काले रङ्गसे भरे। उसके नीचे तीसरा, चौथा, छठाँ, सातवाँ और ग्यारहवाँ कोष्ठ काले रङ्गसे भरे। चौथी पंक्तिका पहला दूसरा, चौथा, सातवाँ, छठाँ, नवाँ और ग्यारहवाँ कोठा काले रङ्गसे रंगे। उसके नीचे पाँचवीं पंक्तिका पहला, दूसरा, चौथा, छठाँ, नवाँ और ग्यारहवाँ कोष्ठक काले रङ्गसे भरे जायँगे। बाकी कोठे खाली रहेंगे। इन पाँचों पंक्तियोंमें "राजा" ये दो अक्षर सफेद रङ्गके दीखने चाहिए ॥ ३४–३८ ॥ प्रथम पंक्तिके नीचेवाले पाँच कोठोंको पूर्ववत् रक्खे। उनके नीचे दूसरी पंक्तिका पहला, दूसरा, चौथा, सातवाँ तथा बारहवाँ कोठा काले रङ्गसे भरे ॥ ३९ ॥ ४० ॥ तीसरी पंक्तिका चौथा, छठाँ, बारहवाँ तथा सातवाँ कोष्ठक पूर्ववत् रक्खे। चौथी पंक्तिका प्रथम, दूसरा, चौथा, छठाँ, बारहवाँ, आठवाँ, सातवाँ, दसवाँ और नवाँ कोष्ठक काले रंगसे भरे। जिससे 'राम" यह दो अक्षर साफ दिखाई दें ॥ ४१–४३ ॥ यह सब हो जानेपर उसमें "राजाराम" ये चार अक्षर दिखलाई देने लगेंगे। अपनी बुद्धिसे उसीको उलटकर "रामराजा" भी भर सकते हैं। अथवा राम राम राम इन तीनों नामोंकी कल्पना करे। नीचेकी पाँच पंक्तियोंमें जो विशेषताएँ हैं, वह मैं बतलाऊँगा ॥ ४४ ॥ ४५ ॥ चौथी पंक्तिका पहला कोष्ठक काले रँगसे भर दे। इससे उस स्थानका आकार नहीं दीखेगा और "राम" यह साफ-साफ मालूम पड़ने लगेगा ॥ ४६ ॥ अथवा "राम राम" यह स्थापित करे। इसकी पहली पंक्ति पूर्ववत् रहेगी। इसके बाद दूसरी पंक्तिका पहला, दूसरा, तीसरा, पाँचवाँ, आठवाँ, नवाँ, छठाँ तथा ग्यारहवाँ कोष्ठक, तीसरी पंक्तिका पहला, ग्यारहवाँ, छठाँ, पांचवाँ, चौथी पंक्तिका पहला, दूसरा, तीसरा, पाँचवाँ, सातवाँ, आठवाँ, नवाँ तथा ग्यारहवाँ कोष्ठक कृष्णवर्णसे भर दे ॥ ४७–५० ॥ पञ्चम पंक्तिका पहला, दूसरा, तीसरा, पाँचवाँ, छठाँ, आठवाँ, नवाँ तथा ग्यारहवाँ कोष्ठक भी काले रंगसे भर दे। ऐसा करनेमें

लघुमुद्रान्वितं रामलिंगाख्यं भद्रमुच्यते । मया शिष्याधुना तच्चं शृणुष्व स्वस्थमानसः ॥५३॥
तिर्यगूर्ध्वमेकपञ्चाशद्रेखास्तत्पदेषु च । सप्त सप्तपदा ते द्वौ परिधी पीतवर्णके ।५४॥
कार्यौ तत्र कोणदेशेष्विन्दुस्त्रिपदशुक्लकः । शृङ्खलर्तुपदा कृष्णा त्रयोदशपदा लता ॥५५॥
हरितेशो वसुपदः कृष्णवर्णः प्रकारयेत् । त्रिपदं लोहितं ज्ञेयं भद्रं वल्ल्यन्तिकस्थितम् ॥५६॥
षष्टिपादात्मिका मुद्रा तत्रेन्द्रियदिक्स्थिता । त्यक्त्वा पंक्तिकोणकोष्ठं सिंधुसिंधुमितस्तथा ॥५७॥
सिंध्वर्तुपंक्ती च सप्तमायाः पंक्तेः पदं त्वधः । मषिणा पूरयेत्तत्र भाति रामेति सत्पदम् ॥५८॥
तत्रादावग्निमुद्रा स्यात्सीमापरिधयस्तथा । रक्तलिङ्गद्वयं भद्रं तथा लिङ्गोपरि स्थितम् ॥५९॥
पदद्वयं पीतवर्णं वीथीवल्ल्या नियोजयेत् । द्वितीये त्वेकमुद्रा द्वौ परिधी द्वौ शिवौ मतौ ॥६०॥
भद्रं नवपदं लिङ्गवल्ल्योर्मध्ये रसात्मकम् । भद्रं पातं लिङ्गोपरि रक्तं तुर्यपदात्मकम् ॥६१॥
लिंगस्कन्धपदे द्वे द्वे हरिते वीथिकाऽपि च । भद्राणि त्रीणि ज्ञेयानि पीतं द्वे लोहितेऽत्र हि ।.६२।
ततोऽन्तः सर्वतोभद्रं कार्यं तत्र तु वापिका । चतुर्विंशत्पदं भद्रमंककोष्ठ लते सिते ॥६३॥
त्रिपदोऽब्जः पञ्चपदा शृंखला परिधिस्ततः । मध्ये पद्म रक्तवर्णं रचयेद्वा विचित्रितम् ॥६४॥
पीतशुक्लरक्तकृष्णाश्चांते परिधयो मताः । एतत्षोडशमुद्राभी रामलिङ्गाख्यभद्रकम्॥६५॥
सदानन्दमयं रामं चिज्ज्योतिषमनामयम् । सर्वावभासकं नित्यं स्वात्मानं समुपास्महे ॥६६॥
चन्द्रकलं रामलिंगतोभद्रं यद्विकल्पितम् । निर्विकारं नास्ति तस्मिन्विवेकः स विविच्यते ॥६७॥
कल्पितः स नरो राजा रामलिंगयुतः स्मृतः । रमणाद्राम इत्युक्तो योगिगम्यः परं महः ॥६८॥
लीयन्ते यत्र भूतानि निर्गच्छन्ति यतः पुनः । तेन लिङ्गं परं व्योमेत्युक्तं ब्रह्मविदुत्तमैः ॥६९॥

"राम" ये दो अक्षर सफेद दीखने लगेंगे । इन चारों नामोंको चारों ओर रख दे ॥ ५१ ॥ ५२ ॥ हे शिष्य ! अब लघुमुद्रान्वित रामलिंगतोभद्र बतलाता हूँ। सो तुम स्वस्थचित्त होकर सुनो ॥ ५३ ॥ खड़ी और बेंड़ी ५१ रेखाएँ खींचे । उनके सात सात खानोंमें पीले रंगकी दो परिधियाँ बनाये ॥ ५४ ॥ कोणभागमें तीन कोष्ठकोंमें सफेद रंगके दो इन्दु बनावे । छ कोष्ठकोंकी एक शृङ्खला और तेरह कोष्ठकोंकी लता बनावे ॥ ५५ ॥ आठ पादका हरे रंगका शिव बनावे। लाल रङ्गसे बल्लीके पास ही तीन पादका भद्र बनावे ॥ ५६ ॥ साठ पादकी मुद्रा और चन्द्रमा याम्य कोणमें रहेगा । प्रत्येक कोण और छठें कोष्ठकको छोड़कर ऊपर बतलायी गयी मुद्रा रखनी चाहिए । इसके अनन्तर सातवीं पंक्तिके नीचेके कोष्ठकोंको काली स्याहीसे भर दे तो "राम" ऐसा स्पष्ट दिखायी देने लगेगा ॥ ५७ ॥ ५८ ॥ उसके आदिमें अग्निमुद्रा और उसकी बाकी परिधियाँ लाल रङ्गसे रंगे। दोनों लिंगोंके भद्र तथा लिंगके ऊपर स्थित दोनों पाद पीतवर्णसे रंगने चाहिये । इसमें कई वीथां तथा बल्लियाँ बनानी चाहियें। दूसरीमें एक मुद्रा, दो परिधि, दो शिव, नौ पादोंका भद्र, लिंग और वल्लोके मध्यमें छः भद्र बनावे । लिंगके ऊपरवाला भद्र पीले रङ्गका हो और चार कोष्ठकोंको लाल रङ्गसे रंगना चाहिये ॥ ५९-६१ ॥ लिंगके स्कन्धस्थानमें दो-दो हरे रङ्गके भद्र रहेंगे और वीथियाँ हरे ही रङ्गकी रहेंगी । यहाँपर तीन भद्र रहेंगे, एक पीला और दो लाल । इसके मध्यभागमें सर्वतोभद्र बनेगा । जिसमें चोबीस कोष्ठक रहेंगे, नौ कोष्ठकोंकी लता बनेगी और शिव भी बनेंगे ॥ ६२ ॥ तीन पादका अब्ज (कमल) और पाँच पादकी शृङ्खला और परिधि रहेगी । मध्यमें रक्तवर्ण या कई रङ्गके कमल बनावे ॥ ६३ ॥ ६४ ॥ इसके अन्तमें पीले, सफेद, लाल और काले रङ्गकी परिधि रहेगी । इन षोडश मुद्राओंसे रामलिंगतोभद्र बनता है ॥ ६५ ॥ सदा आनन्दमय, चित्, ज्योतिर्मय, व्याधिरहित और सबके अवभासक, ऐसे अपने आत्मारूप रामकी मैं उपासना करता हूँ ॥ ६६ ॥ सोलह कलाओंका यह रामलिंगतोभद्र जो मैंने बतलाया है, वह विचार-विहीन नहीं है। उसमें जो विचार है, अब उसकी विवेचना करते हैं ॥ ६७ ॥ राजाराम इस चिह्नका निर्माण करनेवाला मनुष्य धन्य है। सब लोगोंको आनन्द देनेके कारण रामका "राम" यह नाम पड़ा है । योगीजनोंकी ही गति उनतक है। उनका सर्वोत्कृष्ट तेज है ॥ ६८ ॥ उन्हींमें संसारके सब प्राणी लीन होते हैं और फिर

लिङ्ग्यते चिंत्यते येन भावेन भगवान् शिवः । लिंगरूपी स रामेति लिंगं चेति द्विनामकः ॥७०॥
बहूनि सन्ति नामानि रामेशस्य महात्मनः । रजांसि गणयेत्कोऽपि भूमेर्नैवाखिलेशितुः ॥७१॥
तस्मिन्यत्सर्वतोभद्रं हृदयं तत्प्रकीर्तितम् । तत्र पद्ममष्टपत्रं सकेसरसकर्णिकम् ॥७२॥
तत्स्थानं रामलिंगस्य ध्यानार्थं परिकल्पितम् । अन्यथा सर्वगस्यास्य कथं देशादिभेदता ॥७३॥
दिग्ज्योतिः परमात्मायं स्वमायावशतां गतः । धर्मार्थकाममोक्षार्थं सृष्ट्युपाधिं प्रविष्टवान् ॥७४॥
तस्य चैतन्यचन्द्रस्य षोडशेमाः कलाः पराः । चिद्व्याप्ताश्च द्वारभूता घटादीन्विषयानिह ॥७५॥
प्रकाशयन्ति गृह्णन्ति त्यजन्ति च स्वभावतः । बुद्धिरेकाऽत्यन्तसिता सन्निकृष्टा शिवात्मनः ॥७६॥
अतो ज्ञानप्रधाना सा तज्ज्ञातं चक्षुरादिषु । प्रसृतं रूपशब्दादीन् जानाति सुविशेषतः ॥७७॥
चतुर्द्धा वृत्तिभेदेन प्रोक्ता तत्त्वार्थदर्शिभिः । प्रयोजनं न तेनात्र प्रकृतं तद्विविच्यते ॥७८॥
क्रियाप्रधानः प्राणश्च पञ्चधाऽसौ स्ववृत्तितः । प्राणापानौ तथा व्यानः समानोदानकाविति ॥७९॥
वागादिकर्मेन्द्रियेषु क्रिया प्राणाश्रया मता । श्रवणं नयनं घ्राणं त्वग्रसनेन्द्रियं तथा ॥८०॥
पञ्चेमानि चेन्द्रियाणि ज्ञानद्वाराणि वै विदुः । वाक्पाणिपादपायूपस्थाश्च कर्मेन्द्रियाणि च ॥८१॥
एवं षोडशसंख्यानं कलानामुच्यते बुधैः । तासु सर्वासु चैतन्यं रामनामेति विश्रुतम् ॥८२॥
प्रविष्टं दीप्यते शश्वत्तेन विश्वं विचेष्टते । अनादिसंसारतरुः कर्ममूलफलात्मकः ॥८३॥
देहाभिमानिनो जीवाः फलभोगाय पक्षिणः । यथाकर्म सुखं दुःखं खादन्ति स्वेश्वरार्पितम् ॥८४॥
कश्चिज्जन्मसहस्रेषु ज्ञानवान् जायते यदा । तदात्मस्थं रामरूपं ज्ञात्वा मोक्षी भवत्यलम् ॥८५॥

उन्हींमेंसे आविर्भूत होते हैं । इसी कारण ब्रह्मको जाननेवाले श्रेष्ठ लोगोंने इसे परम व्योम कहा है ॥ ६९ ॥ जिस भावसे भगवान् शिवकी पूजा की जाती है। वे ही राम लिंग और राम इन दो नामोंसे पुकारे जाते हैं ॥ ७० ॥ उन महात्मा रामके बहुतसे नाम हैं । संसारका कोई प्राणी पृथ्वीके रजकणोंको भले ही गिन ले। किन्तु भगवान्के नामोंकी गणना कोई भी नहीं कर सकता ॥७१॥ उसमें जो सर्वतोभद्र है, वही हृदय जानना चाहिये । उसमें आठ पत्रोंका केसर और पंखुड़ियों युक्त जो कमल है, वह रामके लिङ्गका ध्यान करनेके लिए ही बनाया जाता है । नहीं तो सर्वव्यापी भगवान्की देशादिभेदता किस प्रकार मानी जाती ॥ ७२ ॥ ७३ ॥ चिज्ज्योतिर्मय वे परमात्मा अपनी मायाके वशीभूत होकर धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इस चतुर्वर्गका साधन करनेके लिए ही संसारमें आये थे ॥ ७४ ॥ उस चैतन्य चन्द्रकी षोडश कलाएँ सर्वश्रेष्ठ मानी गयी हैं। वे संसारकी सब वस्तुओंमें विद्यमान रहती हैं ॥ ७५ ॥ ये स्वभावसे ही सबको प्रकाशित करतीं, समय पड़नेपर फिर छोड़ देतीं और कभी-कभी फिर अपनेमें समेट लिया करती हैं। पवित्र आत्मावालोंके लिए बुद्धिमात्र कला है और वह सबके पास रहती है ॥ ७६ ॥ इसीसे वह चक्षु आदिमें रहती हुई ज्ञानप्रधान मानी जाती है। वह शब्दरूपादि संसारमें फँसे हुए पदार्थोंको अच्छी तरह जानती है ॥ ७७ ॥ वह वृत्तिभेदसे चार प्रकारकी मानी गयी है। यहाँ उसके विषयमें विशेष विवेचनकी कोई आवश्यकता नहीं जान पड़ती। अतएव इस विषयमें वास्तविक विवेचना करते हैं ॥ ७८ ॥ अपनी वृत्तिके अनुसार प्राणक्रिया प्रधान मानी जाती है और इसके पाँच भेद हैं—प्राण, अपान, व्यान, समान तथा उदान ॥ ७९ ॥ वाक् आदि कर्मेन्द्रियों-की सारी क्रियाएँ प्राणाश्रयी हुआ करती हैं। श्रवण, नयन, घ्राण (नाक), त्वचा और जीभ ॥ ८० ॥ ये ही पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ मानी गयी हैं। वाक्, पाणि (हाथ), पाद, पायु (गुदा), उपस्थ (लिङ्ग), ये पाँच कर्मेन्द्रियाँ हैं ॥ ८१ ॥ इसीलिए कलाओंकी सोलह संख्या कही गयी है। उन सबोंमें उन रमानायकी चेतना शक्ति विद्यमान रहती है ॥ ८२ ॥ उन्हींके प्रवेशसे यह संसार देदीप्यमान होता है और उन्हींकी चेष्टासे सचेष्ट रहा करता है। वे अनादि संसाररूपी वृक्ष हैं और सबको कर्मानुसार फल देते हैं ॥ ८३ ॥ देहका अभिमान करनेवाले जीव पक्षियोंकी तरह अपने प्रभुके दिये हुए सुख-दुःखरूपी कर्मोंको भोगते हैं ॥ ८४ ॥ हजारों बार जन्म लेनेके बाद कहीं कोई ज्ञानवान् होता है और अपनी आत्मामें स्थित रामका रूप जानकर मोक्षपद-

इन्द्रियाणि पराण्येव तेभ्यो बुद्धिः परा मता । तत्परः परमात्मा च सर्वसाक्षी विनिश्चितः ॥८६॥
द्वौ सुपर्णावेकवृक्षं समाश्रित्य स्थितौ तयोः । एकः सारफलं स्वादु खादत्यन्यो विचक्षते ॥८७॥
त्रिषु धामसु यद्भोग्यं भोक्ता भोग्यश्च यद्भवेत् ।
तेभ्यो विलक्षणः साक्षीत्याह चाथर्वणी श्रुतिः ॥८८॥
यच्चास्तीह यत्स्फुरति यच्चानन्दयति स्वयम् । यस्मिंश्च महसि प्रख्ये सर्वे वेदाः समन्विताः ॥८९॥
विषयादि धीपर्यन्तं जडं सर्वमनात्मकम् । यस्यार्थे च प्रियं चैतत्स रामात्मा महाप्रियः ॥९०॥
सर्वेषां प्राणिनां स्वात्मा परप्रेमास्पदो मतः । स तु सर्वत्रैक एव नेह नानास्ति गच्छति ॥९१॥
चिद्रामं हृद्गतं ज्ञात्वा योऽसौ सोऽहमितीरया । आचार्यदत्तया सम्यक् परमोपासन गतः ॥९२॥
आवृत्तिरसकृन्न्यायात्फलीभूते परात्मनि । बोधदार्ढ्ये पुनस्तस्य न कार्यं विद्यते भवे ॥९३॥
सर्वेऽप्युपायाः शास्त्रेषु यज्ज्ञानार्थं प्रयोजिताः । स चेद्दैशिकशब्देन हृद्याविः किं परं ततः ॥९४॥
दृष्टेऽस्मिन्नचिते भद्रं यद्येवं प्रविचार्यते । तदा चित्ते परा प्रीतिर्जायते विदुषां सताम् ॥९५॥
नमो रामाय शांताय लिङ्गरूपधराय च । शम्भवे विष्णवे तुभ्यं शङ्कराय शिवात्मने ॥९६॥
अथवाऽऽद्ये स्थले भद्रं कार्यं नवपदात्मकम् । तिर्यग् भद्रं षट्पदजं रक्तपीतेऽत्र ते स्मृते ॥९७॥
द्विद्विपादात्मके कार्ये शेषं सर्वं हि पूर्ववत् । रामतोभद्रमेतच्च केवलं रामतुष्टिदम् ॥९८॥
स्थले द्वितीयभद्रं हि रक्तं विंशत्पदात्मकम् । तिर्यग् भद्रं नवपदैः पीतं चित्रे तु शृङ्खले ॥९९॥
नत्वेशानं राममानन्दकन्दं मायातीतं निर्विकारं निरीहम् ।
विद्याधीशं षड्गुणैकाश्रयं च वक्ष्ये भद्रं रामनामांकितं तत् ॥१००॥

को प्राप्त होता है ॥ ८५ ॥ पहले तो इन्द्रियाँ ही प्रधान हैं, उनसे बुद्धि श्रेष्ठ है और उससे भी श्रेष्ठ सर्वसाक्षी परमात्मा है ॥ ८६ ॥ दो पक्षी एक वृक्षपर बैठे हैं। उनमेसे एक तो मीठे-मीठे फल खा रहा है, दूसरा टुकुर-टुकुर ताकता है ॥ ८७ ॥ तीनों धामोंमें जो भोग्य वस्तु, भोक्ता तथा भोग्य पदार्थ हैं। उन सबसे साक्षी परमात्मा विलक्षण है। यह अथर्व वेद कहता है ॥८८॥ इस शरीरमें जो चलायमान रहता है और जिसके तेजसे आनन्दको प्राप्त होता है। उसके विषयमें सब वेद एकमत होकर कहते हैं कि विषयसे लेकर बुद्धिपर्यंन्त सब वस्तुएँ जड़ और आत्मविहीन हैं। जिसके लिए ये सब प्रिय मालूम होते हैं, वे परमात्मा राम सर्वप्रिय हैं ॥८९॥९०॥ संसारके सब प्राणियोंको अपनी आत्मा सबसे बढ़कर प्रिय होती है। यद्यपि वह एक है, फिर भी अनेक रूपोंसे विद्यमान दीखता है ॥ ९१ ॥ जो प्राणी 'सोऽहं' इस भावनासे चिन्मय रामको अपने हृदयमें सदा वर्तमान समझकर आचार्य द्वारा दी हुई दीक्षासे रामकी उपासना करता है, वह परमात्माकी दी हुई श्रद्धाके फलीभूत होनेपर अनेकों बार इस संसारमें जन्म लेता है, किन्तु ज्ञानके दृढ़ हो जानेपर फिर संसारमें उसे कुछ करना बाकी नहीं रह जाता अर्थात् उसकी मुक्ति हो जाती है ॥ ९२ ॥ ९३ ॥ शास्त्रोंमें जितने भी उपाय बतलाये गये हैं, उनका एकमात्र प्रयोजन ज्ञान प्राप्त करना है। यदि वह सांसारिक उपायोंसे प्राप्त हो सके तो फिर क्या कहना ॥ ९४ ॥ यदि उक्त प्रकारसे बनाये हुए भद्रका ध्यानसे देखकर उसपर विचार किया जाय तो विद्वानोंके हृदयमें ईश्वरके प्रति महाप्रीतिका उत्पत्ति होती है ॥ ९५ ॥ शान्त, लिङ्गरूपधारी, शम्भु, विष्णु, शङ्कर तथा शिवात्मा रामको प्रणाम है ॥ ९६ ॥ यदि उक्त प्रकारका भद्र अपनेको न रुचे तो नौ पादका भद्र बनावे। इस तिरछे भद्रमें छः पाद (कोष्ठक) होंगे और दो भद्र लाल और पीले रहेंगे ॥ ९७ ॥ फिर दूसरा लाल भद्र बीस पादका होगा। तिरछा भद्र नौ पादका होगा। इसका पीला रङ्ग रहेगा और कई रङ्गोके मेलसे इसमें दो-दो पादोंकी दो शृंखलाएँ बनायी जायेंगी ॥ ९८ ॥ बाकी सब पूर्ववत् रहेगा। इस भद्रका नाम रामतोभद्र है और यह केवल रामचन्द्रको प्रसन्न करनेवाला है ॥ ९९ ॥ आनन्दकन्द, मायातीत, निर्विकार, निरीह, विद्याके स्वामी और षड्गुणोंके एकमात्र आश्रय शिवको यह भद्र नहीं प्रसन्न कर सकता। इसलिए मैं

प्रागुत्तरा द्विशतमंकनवाधिका २९९ श्च रेखाः समाः सुपरिकल्प्य पदेषु तासाम् ।
कोणांतराऽत्र उपरींदुशकुंतसंख्याः २१ पीताश्च ते परिधयः परिकल्पनीयाः ॥१०१॥
कोणाब्जशृंखललताः सितकृष्णनीला भद्राणि भिन्नरचनान्यरुणानि तानि ।
मुद्राश्च तत्परिधयश्च सिताश्च रक्ताः संपूरिताश्च जनयंति रतिं मुनीनाम् ॥१०२॥
मुद्रा तु षष्टिपदसंवलिता च तत्र पंक्ती विहाय यमवासवदिक्तनस्थे ।
प्रत्येककोणकपदानि चतुष्टयादि पंक्तिद्वयं रसतुरीयकमञ्जनाभम् ॥१०३॥
कृत्वा पदैकमधतस्त्वथ सप्तमायास्तेनातिसुन्दरतरं परिभाति सारम् ।
रामेति द्व्यक्षरमुमेशजपं निधानं प्राणप्रायाणसमये जपतां महोदयम् ॥१०४॥
रचयेदादितः सम्यग्यावद्विंशस्थलावधि । सर्वत्र राममुद्रासु मध्येषु परिधिद्वयम् ॥१०५॥
आदौ तत्त्वमिता मुद्रास्त्रयोविंशन्मितास्ततः । द्वाविंशैकविंशविंशषट्सप्तदशमापराः ॥१०६॥
ह्यष्टचतुर्दशत्रयोदशद्वादशरुद्रकः । नवाष्टसप्तषट्तुर्यत्रिद्व्येकाश्चाप्यनुक्रमात् ॥१०७॥
भद्रं षोडशपादं च विंशत्त्रिंशत्षडग्निकम् ।
चंद्रकलं तत्त्वमितं त्रिंशाक्षिसिंधुविंशकम् ॥१०८॥
तत्त्वषडग्निनेत्रांबुनिधिविंशन्नभोऽग्निकम् ।
षट्त्रिंशत्पोडशपदं तत्त्वे त्रिंशद्द्विसिंधुकम् ॥१०९॥
विंशत्कोष्ठं क्रमादेवं भवेत्पार्श्वचतुष्टये । एकत्रिंशत्पदे भद्रमेककोष्ठं च वापिका ॥११०॥
चतुर्विंशपदा कार्या परिध्यन्तोऽहणांबुकम् । भद्रोपरि यत्र यत्र पदान्युर्वरितानि च ॥१११॥
तिर्यक् भद्रशृंखलार्थे यथेच्छं पूरयेद्धिया । सर्वत्र शृङ्खलाः पञ्चपदजैकादशी लता ॥११२॥
त्रिपदश्च शशी ज्ञेयः परिधयो बहिः क्रमात् । कृष्णरक्तशुक्लपीताश्चतुर्दिक्षु समंततः ॥११३॥
एतदष्टोत्तरदशशतं १००८ ज्ञेयं रामस्य भद्रकम् ।
अथवा मनु १४ रेखानां वृद्धिं कृत्वा प्रकल्प्य च ॥११४॥

एक दूसरा भद्र बतला रहा हूं ॥ १०० ॥ पहले उत्तरकी ओरसे २९९ रेखा खींचे। उसमें २१ कोष्ठकोंसे पीले रंगकी परिधियाँ बनावे ॥ १०१ ॥ कोणमें कमल बनाकर सफेद, काले और नीले रंगकी शृङ्खला और लताएँ बनावे। उनमें बने सब कोष्ठक भिन्न-भिन्न प्रकारके लाल रङ्गके रहेंगे। उसमें बनी सफेद और लाल रङ्गकी मुद्रायें मुनियोंके हृदयमें भी अनुराग उत्पन्न किये बिना नहीं रहतीं ॥ १०२ ॥ इसमें साठ कोष्ठकोंकी मुद्रा बनायी जाती है, किन्तु दक्षिण-पूर्व तथा दक्षिण कोणकी पंक्तियाँ सादी छोड़ दी जाती हैं। प्रत्येक कोणके चार पाद, दो पंक्ति तथा छठीं और चौथी पंक्ति काले रङ्गकी रहेगी ॥ १०३ ॥ इसके अतिरिक्त सातवीं पंक्तिके नीचे एक पाद काले रङ्गका बनावे तो वह भद्रके सारकी तरह बहुत ही सुन्दर लगेगा। राम यह दो अक्षर शिवजीके जपपुञ्जका एक बड़ा खजाना है। यदि प्राण निकलते समय इसका जप किया जाय तो बड़ा कल्याण हो ॥ १०४ ॥ आदिसे लेकर बाईसवें कोष्ठक पर्यन्त भद्रकी रचना करता जाय। हर एक राम-मुद्राके बीचमें दो परिधियाँ रहेंगी ॥ १०५ ॥ पहले पच्चीस मुद्रायें रहेंगी। इसके बाद बाईस, इक्कीस, बीस, अठारह, सत्तरह,, सोलह, चौदह, तेरह, बारह, ग्यारह, नौ, आठ, सात, छ, चार, तीन, दो, एक ये मुद्रायें रहेंगी, ॥१०६॥१०७॥ इस भद्रमें बीच, तीस, छत्तीस, सोलह, पच्चीस, तीस, बयालीस, बीस, पच्चीस, छत्तीस, बयालीस, ॥ १०८ ॥ १०९ ॥ इस प्रकार बीस-बीस कोठे चारों ओर रहेंगे। इक्कीस कोष्ठकका भद्र रहेगा और नौ कोष्ठकोंकी वापी बनेगी ॥ ११० ॥ चौबीस कोष्ठकोंसे परिधिके पास कमल बनेगा। जो पाद बाकी बचे हों, उन्हें अपनी बुद्धिसे भरे। इसमें पाँच पादोंकी शृङ्खलाएँ रहेंगी और ग्यारह पादकी लताएँ बनायी जायँगी ॥ १११ ॥ ११२ ॥ तीन पादका चन्द्रमा बनेगा और उसके आस-पास चारों ओर काली, लाल, सफेद तथा

परिधिस्तत्र लिङ्गानामेविंशाधिकं शतम् । वाप्यो भद्राणि चंद्रादिचतुःपार्श्वेषु योजयेत् ॥११५॥
चतुर्विंशपदं लिङ्गं वाप्यष्टशतपादिका । द्वे भद्रे नव नव पदे ह्यष्ट ह्यष्ट पदानि षट् ॥११६॥
त्रिंशल्लिङ्गानि वाप्यस्तु सप्तविंशन्मिता मताः । एकस्मिन् पार्श्वके लिङ्गाधिक्ये भद्रे प्रकल्पयेत् ११७॥
ह्यष्टह्यष्टपदे शेषाण्यंककोष्ठानि योजयेत् । लिंगं कृष्णं सिता वाप्यः शेषं सर्वं पुरोदितम् ॥११८॥
पदानि शेषभूतानि यत्र यत्रेह तानि च । भद्रशृंखलयोग्यानि तदर्थे विनियोजयेत् ॥११९॥
कृष्णरक्तशुक्लपीता अंते परिधयो मताः । एवं लिंगयुतं रामतोभद्रं परिकीर्तितम् ॥१२०॥
अनेन देवौ सुप्रीतौ रामेशौ भवतस्त्विह । रामस्य पूजनार्थं हि त्विदं प्रोक्तं वरासनम् ॥१२१॥
आचार्यान् ज्ञानसंपन्नान्नत्वा तेषां प्रसादतः । वक्ष्येऽहं रामतोभद्राकृतिं च शंभुसंयुताम् ॥१२२॥
प्रकृतिं रामतोभद्रं विकृतिं लिंगसंयुतम् । अन्ये विकाराः संज्ञेया ह्येवं कतिविधोच्यते ॥१२३॥
तिर्यगूर्ध्वमगन्यधिकाः शतरेखाः प्रकल्पयेत् । तत्पदेषु परिधयः षट्षडन्ते पडेव तु ॥१२४॥
पीताः कोणेषु त्रिपदः शुक्लेन्दुः शृंखलाऽसिता । पञ्चपदैकादशिका वल्लरी भद्रसंक्रमात् ॥१२५॥

सिन्धुषोडशसूर्यर्तुयुगषोडशकोष्ठकम् ।
कल्पयेत्त्वष्टकोष्ठेषु राममुद्रां हि पूर्ववत् ॥१२६॥
अष्टौ षष्ठ च पञ्चसिंधुवह्निचन्द्रमिताः शुभाः ।
तासां सीमापरिधयस्त्वेकास्तु लोहिताः ॥१२७॥

रजनीशनेत्रसिंधुपंक्तिषु मध्यमाख्यः । मर्यादाख्याः परिधयो भवंति द्विगुणीकृताः ॥१२८॥
अंतिमे तु परिध्यन्ते सर्वतोभद्रकं लिखेत् । विशेषस्तत्र वापी तु चतुर्विंशपदात्मिका ॥१२९॥
भद्रं नवपदं पद्मं परिध्यंतः सुलोहितम् । पीता तत्कर्णिका कार्या अन्ते परिधयोऽपि च ॥१३०॥

पीलीं परिधियाँ रहेंगी ॥ ११३ ॥ यह एक हजार आठ नामोंका भद्र है। अथवा चौदह रेखाओंकी कल्पना करके उनकी वृद्धि करे। उसमें एक सौ इक्कीस कोष्ठकोंकी परिधि बनेगी। वापी-भद्र आदि पहलेकी तरह रक्खे ॥ ११४ ॥ ११५ ॥ चौबीस कोष्ठकोंका लिंग बनेगा और अठारह पादकी वापी बनायी जायगी। दो भद्र नौ-नौ पादके रहेंगे और दस-दस पादोंके छः भद्र बनाये जायँगे ॥ ११६ ॥ उनमें तीस तथा बीस पादोंके लिंग रहेंगे और सत्ताइस पादोंकी वापी बनायी जायेगी। जो कुछ बाकी पाद बचें, उनमें दस-दस पादोंसे दो भद्रोंकी रचना करे ॥ ११७ ॥ बाकी नौ कोष्ठकोंको यथास्थान रक्खे। इसमें लिंग काला और वापी सफेद रहेगी। बाकी सब पहलेके भद्रोंकी तरह ज्योंके त्यों रहेंगे ॥ ११८ ॥ बाकी जितने पाद हैं, वे सब भद्र और शृङ्खलाके काममें आ जायँगे ॥ ११९ ॥ काले, लाल, सफेद और पीले रङ्गकी इसकी परिधियाँ रहेंगी। इस प्रकारके लिंगसे रामतोभद्रकी रचना बतलायी गयी ॥ १२० ॥ इस भद्रसे राम तथा शिवजी दोनों प्रसन्न होते हैं। यहाँ रामका पूजन करनेके लिये वरासन बतलाया गया ॥ १२१ ॥ अब मैं ज्ञानसम्पन्न आचार्योंको प्रणाम करके उनकी कृपासे शम्भुसंयुक्त रामतोभद्रकी रचनाका प्रकार बताऊँगा ॥ १२२ ॥ इसमें रामतोभद्रकी प्रकृति विकृत रहती है। और भी कई तरहकी विकृतियाँ इसमें होती हैं ॥ १२३ ॥ खड़ी और ब्रेंड़ी कुल एक सौ तीन रेखाएँ खींचे। इसमें भी छ-छ पादोंकी परिधियाँ रहेंगी ॥ १२४ ॥ कोनोंमें तीन-तीन पाद पीले रङ्गके रहेंगे। चन्द्रमा उज्ज्वल रहेगा और शृङ्खला काले रङ्गकी रहेगी। सोलह पादकी वल्लरी बनायी जायगी ॥ १२५ ॥ चार, सोलह, बारह, छ, चार, सोलह पादके क्रमसे कोष्ठकोंमें पूर्ववत् राममुद्राकी रचना करे ॥ १२६ ॥ आठ, छ, पाँच, चार, तीन, एक, इस पादक्रमसे इसकी परिधियाँ बनेंगी और एक परिधि लाल रङ्गकी रहेगी ॥ १२७ ॥ एक, दो, चार और दस इनकी द्विगुणित क्रमसे मर्यादाख्या परिधियाँ होती हैं ॥ १२८ ॥ अन्तिम परिधिके बीचमें सर्वतोभद्र बनाना चाहिये। यहाँ यह विशेषता है कि इसमें चौबीस चौबीस कोष्ठकोंकी वापी बनायी जायगी ॥ १२९ ॥ नौ कोष्ठकोंका भद्र बनेगा और परिधिके भीतर लाल

पीतशुक्लरक्तकृष्णवर्णा यत्र पदानि च । भद्रोर्ध्वं शेषभूतानि तानि युक्त्या प्रपूरयेत् ॥१३१॥
तिर्यग्भद्रशृंखलाद्यैः पीतचित्रे च ते स्मृते । एतदष्टोत्तरशतं रामतोभद्रमीरितम् ॥१३२॥

एकं संसारशून्यं सकलसुखनिधिं सच्चिदानन्दकन्दं
मायायोगेन विश्वात्मकमिदममलं ब्रह्मविष्ण्वीशसंज्ञम् ।
सृष्टिस्थित्यन्तहेतुं निगमकविनुतं सर्वभूतात्मभूतं
सर्वज्ञं सर्वशक्तिं रणहरममृतं तन्महो भावयेऽहम् ॥१३३॥

नत्वा श्रीदेशिकेंद्रस्य पादाब्जममरप्रदम् । वक्ष्ये चाध्यात्मिकीं सूक्तिं सतां चित्तचमत्कृतिम् ॥१३४॥
पशूनां नखरोमादि सर्वमर्थाय कल्पते । मृतस्य नरदेहस्य सृष्टिर्दोषात्रहोदिता ॥१३५॥
एकमेवामुना साध्यं ज्ञानं यत्स्वस्वरूपदम् । तद्विना तु पशुभ्यश्च नरो हीनतरो मतः ॥१३६॥
प्रतिभावान्पुण्यतमः श्रद्धावान् गुर्वधोक्षजे । कोटिष्वेकः स्वयं साक्षान्नरो नारायणो भवेत् ॥१३७॥
केनचिद्रामतोभद्रं मुदा षष्टिपदात्मिका । रामांकिता च संक्लृप्ते विविच्यते च ते उभे ॥१३८॥
लोकाः सप्त यथांडेऽस्मिंस्तथा तत्र प्रकल्पिताः। तेनेयं रचना तुल्या ज्ञात्वा हृत्स्थमुदीर्यते ॥१३९॥
ब्रह्मांडं रामतोभद्रं मुद्राभूतानि संमताः । रामचैतन्ययुक्तानि सम्मतानि तु सूरिभिः ॥१४०॥
यस्यां स्यान्मुदितं वस्तु सा मुद्रेति निगद्यते । मुद्रेत चिह्नितं चाथ पिहितं ह्यर्थतो भवेत् ॥१४१॥
तद्वत्सर्वासु चैतासु ब्रह्ममुद्रितमुच्यते । तथाप्यासां सबाह्यांतश्चैतन्यः संप्रकाशते ॥१४२॥
आच्छादितोऽपि कलशे स्फटिकेऽन्तर्बहिः किल । दीपः प्रकाशते कस्तं लोपयेच्च तथेष्यते ॥१४३॥
मूषासिक्तं ताम्ररसं तदाकारं प्रपद्यते । तथा ब्रह्म निराकारं मुद्राकारं विभासते ॥१४४॥

रङ्गका कमल रहेगा। पीले रङ्गसे उस कमलके दल बनाये जायँगे ॥ १३० ॥ पीले, सफेद, लाल और काले रङ्गकी परिधियाँ रहेंगी। भद्रसे बाकी बचे जितने कोष्ठक हों; उन्हें युक्तिके साथ रंगोंसे पूर्ण कर दे ॥१३१॥ इसकी शृङ्खलाएँ तथा भद्र पीले और विविध रंगके होंगे ॥ १३२ ॥ मैं भगवान्‌के उस रूपका ध्यान करता हूँ जो संसारमें अकेला है, समस्त सुखका निधान है, सच्चित् और आनन्दकन्द है। जिसने अपनी मायाके योगसे इस निर्मल विश्वके प्रभुओंको ब्रह्मा, विष्णु और शिवके नामसे अभिहित कर रक्खा है। जो सृष्टि, पालन और विनाशका हेतु है। जिसको ऋषियोंने बार-बार स्तुति की है, जो सब प्राणियोंका प्राण है, जो सब कुछ जानता है, जिसके पास सब प्रकारकी शक्तियाँ हैं, जो संग्रामका अन्तक और अमृतस्वरूप है ॥ १३३ ॥ अब मैं श्रीदेशिकेन्द्रके अमरपद प्राप्त करानेवाले चरणकमलको प्रणाम करके सज्जनोंके चित्तमें चमत्कार उत्पन्न करनेवाली आध्यात्मिकी सूक्तियोंका वर्णन करूँगा ॥ १३४ ॥ मृत पशुओंके नख-लोम आदि सब पदार्थ काम आ जाते हैं, किन्तु मनुष्यके मर जानेपर यह मालूम होता है कि विधाताने इसकी सृष्टि करके बड़ा भारी अपराध किया है ॥ १३५ ॥ इस शरीरसे आत्माका स्वरूप पहचाननेकी साधना को जा सकती है। यदि यह काम नहीं किया तो वह मनुष्य पशुसे भी हीन माना जायगा ॥ १३६ ॥ करोड़ों मनुष्योंमें कहीं कोई एक मनुष्य पवित्र गुरु तथा भगवान्‌में श्रद्धा रखनेवाला होता है। जो ऐसा होता है, वह साक्षात् नारायण ही है ॥ १३७ ॥ कुछ लोग ऊपर बतलाये हुए रामतोभद्रकी रचना करके उसमें साठ कोष्ठकोंकी मुद्रा बनाकर इस प्रकार विवेचना करते हैं—॥ १३८ ॥ जैसे ब्रह्माण्डमें कितने ही लोक हैं, ठीक उसी तरह यह रामतोभद्र भी है ॥ १३९ ॥ रामतोभद्र ब्रह्माण्ड है, इसकी मुद्रामें ही प्राणिसमूह बसते हैं। उसमें रामरूप चैतन्य (जीव) है। ऐसा कितने ही तत्त्वदर्शियोंने कहा है ॥ १४० ॥ जिसमें कोई वस्तु मुद्रित हो (अर्थात् लपेटकर रक्खी हो) उसे लोग मुद्रा कहते हैं। मुद्रितका अर्थ है—चिह्नित या पिहित (पिरोया हुआ)। यह सारी सृष्टि ब्रह्मसे मुद्रित है। फिर भी इसके बाहर चैतन्यता प्रकाशित हो रही है ॥ १४१ ॥ १४२ ॥ स्फटिक मणिका कलश बना और उसके भीतर दीपक रखकर चाहे वह चारों ओरसे ढाँक दिया जाय, फिर भी दीपकका प्रकाश कोई लुप्त नहीं कर सकता। ठीक यही दशा उस ब्रह्मकी भी है ॥ १४३ ॥ जिस तरह कि

पुरश्चक्रे प्रभुः सर्वाः पुरः पुरुष आविशत् । इत्युक्तं कण्वशाखायां अन्यत्रापि हि पठ्यते ॥१४५॥
एको वशी सर्वभूतांतरात्मेति श्रुतेर्यद्वचः । एको देवः सर्वभूतेष्विति चैवांपरा श्रुतिः ॥१४६॥
पुरः सृष्टाः परेशेन नैव ताभिस्तुतोष सः । सृष्ट्वेमां मानुषीं मुद्रां परं तोषमवाप सः ॥१४७॥
देवताश्चान्नभुक्त्यर्थं दृष्ट्वेमां पौरुषीं तनुम् । हर्षादाहुश्च सुकृतं वतेति श्रूयते स्फुटम् ॥१४८॥
पुरुषं त्वेवाविस्तरमात्मेत्याह श्रुतिः स्वयम् । पुरा सृष्टैः सर्वभूतैरतुष्टहृदयः स्वराट् ॥१४९॥
ब्रह्मावलोमधिषणं नरं दृष्ट्वा मुदं गतः । इत्यस्माभिर्विष्णुदास श्रूयते भगवद्वचः ॥१५०॥
मुदं करोति देवस्य द्रावयेद्दुःखपातके । इति मुद्रानिरुक्तिश्च मन्त्रशास्त्रेऽपि श्रूयते ॥१५१॥
अतः सर्वेषु देहेषु सद्रूपग्रहणं कृतम् । स्वर्गापवर्गयोश्चैषोऽधिकारोऽस्मिन्न चेतरे ॥१५२॥
लोके प्रसिद्धिर्यः कश्चिद्राजमुद्रांकितो नरः । अधिकारीति मन्यंते पूजयंत्यादरादिभिः ॥१५३॥
तथानयांकितो जीवोऽधिकारी शास्त्रभूमिषु । नान्याभिर्यो निभिर्ज्ञातुं शक्यते स्वात्मनः पदम् १५४॥
तस्मिंश्चैव नरोपाधौ पदानि षष्टि संति हि । तानि संक्षेपतः सम्यक् प्रदर्श्यन्तेऽवबुद्धये ॥१५५॥
अविद्याकामकर्माणि भोक्तृभोगौ सुषुप्तिका । षट्पदानि तु ज्ञेयानि देहे कारणसंज्ञके ॥१५६॥
तमोऽज्ञानमविद्येति शब्दा एकार्थवाचिनः । अतो गुणाग्रहो नात्र दृश्यते षट्सु भो द्विज ॥१५७॥
लिंगे पुर्यष्टकेऽविद्याकामकर्मग्रहः स्मृतः । तथाप्यत्र तु हेतुत्वात्त्रयाणां ग्रहणं कृतम् ॥१५८॥
कार्याभावेऽप्यवस्थानात्कारणे कारणात्मना । कामस्य कर्मणश्चात्र विद्यते सूक्ष्मरूपता ॥१५९॥
अविद्या या मुख्यतोऽत्र विद्यते कारणात्मना । वस्तुतस्तु न कामोऽत्र कामना वा श्रुतेर्मतम् ॥१६०॥

सुवर्णमें तामा डाला जाता है तो सुवर्ण उसे अपने रंगमें मिला लेता है। यही दशा उस निराकर ब्रह्मकी भी है ॥ १४४ ॥ प्रभुने पहले इस जगत्की सृष्टि की। तदनन्तर उसमें पुरुषका समावेश किया। ऐसा कठशाखामें कहा गया है। अन्य स्थानोंमें भी ऐसे ही वाक्य कहे गये हैं। उन्हें भी बतलाता हूँ ॥ १४५ ॥ श्रुतिका कथन है कि सब प्राणियोंकी अन्तरात्मामें रहनेवाला एक ही परमात्मा है। दूसरी श्रुति भी इसी बातकी पुष्ट करती हुई कहती है कि वह एक ही देवता है, जो संसारके सब प्राणियोंमें विद्यमान रहता है ॥ १४६ ॥ सृष्टिकर्ताने पहले अनेक तरहकी सृष्टियाँ कीं, किन्तु इससे उसे सन्तोष नहीं हुआ। फिर जब उसने इस मानुषी मुद्राकी सृष्टि की, तब उसे बड़ी प्रसन्नता हुई ॥ १४७ ॥ अन्नका भोग करनेके लिए देवताओंने पुरुषका शरीर देखा तो हर्षसे गद्गद होकर बोल उठे—आपने यह बहुत अच्छा कियां, जो मानुषी शरीरकी सृष्टि कर दी ॥ १४८ ॥ विस्तारविहीन सूक्ष्म आत्माको ही श्रुतिने पुरुष कहा है। पहले ब्रह्माने और-और प्राणियोंकी सृष्टि की, किन्तु उनका हृदय प्रसन्न नहीं हुआ और जब ब्रह्मको प्राप्त करनेवाले मनुष्योंको उन्होंने देखा तो बहुत प्रसन्न हुए। हे विष्णुदास ! इस प्रकार हम लोगोंने भगवद्वाक्य सुने हैं—॥ १४९ ॥ १५० ॥ वह ब्रह्म देवताओंको प्रसन्न करता हुआ सब दुःखों और पातकोंको पानी-पानी करके बहा देता है। इस प्रकार मुद्राओंकी निरुक्ति मंत्रशास्त्र-में भी की गयी है ॥ १५१ ॥ इसीलिए उसने सब देहोंमें सद्रूपको अपना घर बनाया है। स्वर्ग और अपवर्गका अधिकार भी इसी नरजातिको दिया गया है—औरोंको नहीं ॥ १५२ ॥ संसारमें भी यह बात प्रसिद्ध है कि जिस मनुष्यके पास राजाकी-मुहरका कोई प्रमाणपत्र होता है। उसे लोग अधिकारी समझते हैं और उसकी पूजा करते हैं ॥ १५३ ॥ उसी प्रकार इस रामतोभद्रकी मुद्रासे अङ्कित जीव शास्त्रभूमिका अधिकारी माना जाता है। अन्य योनिके जीव अपना-अपना आत्मपद नहीं जान सकते ॥ १५४ ॥ नरकी उपाधिमें कुल साठ पद हैं। उनको जाननेके लिए यहाँ अच्छी तरह बतलाते हैं ॥ १५५ ॥ कारणसंज्ञक देहमें अविद्या, काम, कर्म, भोक्ता, भोग और सुषुप्तिके स्थान हैं ॥ १५६ ॥ हे द्विज ! तम, अज्ञान और अविद्या इन तीनों शब्दोंका एक ही मतलब है। इससे इसमें किसी गुणका ग्रहण किया जाना नहीं दीखता ॥ १५७ ॥ सातवें शरीररूपमें अविद्या, काम और कर्मको ग्रहण किया गया है। फिर भी कारण वश इन तीनोंको ग्रहण ही करना पड़ता है ॥ १५८ ॥ कारणका चाहे कोई कार्य हो या न हो, वहाँ कारणरूपसे रहता ही है।

अष्टत्रिंशत्पदानीह विद्यन्ते सूक्ष्मदेहके । दशेंद्रियाणि पंचैव प्राणा बुद्धिर्मदस्त्विति ॥१६१॥
सप्तदशात्मकं लिंगं प्रसिद्धं शास्त्रसम्मतम् । पञ्चविषयग्रहणं पञ्च कर्मक्रियास्ततः ॥१६२॥
पञ्च संप्राणव्यापाराः संकल्पो निश्चयस्त्विति । सप्तदश चैव धर्माः प्रसिद्धाः शास्त्रसंमताः ॥१६३॥
स्वप्नाभिमानिनौ भोगौ रजश्चेति चतुष्टयम् ।देवानामिंद्रियाणां च स्थानाभावेऽप्रवृत्तितः पदे॥१६४॥
स्थूलदेहे षोडशैव पदानि सम्मतानि हि । गणाः सप्तदश तेषामपानव्यानयोः पदे ॥१६५॥
पायुत्वक्स्थानयोर्ज्ञेये वाचोरसि निकेतने । प्राणस्य मनसश्चापि बुद्धिस्थाने पदं त्विति ॥१६६॥
पदानि द्वादशे मासि भोक्तृभोगौ तथा गुणः । अवस्था जागृतिश्चेति कथितानि मनीषिभिः ॥१६७॥
मुद्रामेतादृशीं प्राप्य वेद वेदात्मचित्पदम् । तस्य जन्म कृतार्थं स्यान्महती नष्टिरन्यथा ॥१६८॥
मुद्रारूपं विविच्यैव यन्नाम्नां सांकितेति च । उक्तं तदधुना किंचित्संक्षेपेण निरुच्यते ॥१६९॥
रामेति लोकरमणाद्रमन्ते योगिनोऽमले । परमानन्दपदे नित्यं तेन राम इतीर्यते ॥१७०॥
रसेनैवामुना सर्वे जीवा जीवन्ति नान्यथा । इमं रसमयं लब्ध्वा भवंत्यानन्दिनोऽखिलाः ॥१७१॥
विशता येन विश्वेषु सर्वं चेतयते जगत् । न तं चेतयते कश्चित्स राम इति कीर्त्यते ॥१७२॥
सत्ता येनाखिलं विश्वं स देवेति प्रतीयते । असत्सत्ताप्रदः साक्षाद्राम इत्यभिधीयते ॥१७३॥
यथा प्रसिद्धं रामेति ब्रह्मणे ह्यभिधानकम् । तथा लिंगं पदं व्योम निष्कलः परमात्मनः ॥१७४॥
लीयन्ते यत्र भूतानि निर्गच्छन्ति यतः पुनः । तेन लिंगं पदं व्योम निष्कलः परमः शिवः ॥१७५॥
इति शास्त्रविदां वाणी श्रूयते तत्त्वदर्शिनाम् । अतः सर्वाणि नामानि रूपाणि चांतरात्मनः ॥१७६॥
संति तेन शब्दभेदे रूपभेदेऽपि सर्वथा । तत्त्वतो नैव भेदोऽस्ति ह्यर्थस्यैकस्य वस्तुनः ॥१७७॥

उस शरीरमें काम और कर्म ये दोनों सूक्ष्मरूपसे रहते हैं ॥ १५९ ॥ इस कारणात्मामें अविद्याकी प्रधानता है। वास्तवमें न इसमें काम रहता है और न कामना ही रहती है। यह श्रुतिका सिद्धान्त है ॥ १६० ॥ इस सूक्ष्म देहमें कुल साठ पद हैं। दस पद इन्द्रियका, पाँच पद प्राणका, बुद्धि, मन और लिंगका सत्रह पद शास्त्रोंमें कहा गया है। पाँच पद विषय ग्रहण करनेवाली इन्द्रियोंका, पाँच कर्मक्रियाओंका और पाँच प्राणोंके व्यापारका। कुल सत्रह ही पद धर्मशास्त्रसम्मत हैं॥ १६१–१६३ ॥ स्वप्न, अभिमानी, भोग और रज ये चार देवताओं और इन्द्रियोंमें प्रवृत्ति नहीं कर पाते। इसलिए स्थूल शरीरमें सोलह ही पद माने गये हैं। किन्तु गण सप्रहका ही रहेगा। उनमेंसे दो पद अपान और व्यान वायुका है ॥ १६४ ॥ १६५ ॥ पायु और त्वक्स्थानका दो पद, वाणी और हृदयका दो पद, प्राण, मन तथा बुद्धिके एक एक पद ॥ १६६ ॥ ये बारह पद, भोक्ता और भोगका पद, इन्हें विद्वानोंने गुण, अवस्था तथा जागृति कहा है ॥ १६७ ॥ इस प्रकारकी मुद्रा प्राप्त करके प्राणी वेदका अविनाशी पद पा लेता है। इसको पानेसे जन्म कृतार्थ हो जाता है। अन्यथा नष्ट ही हो जाता है ॥ १६८ ॥ मुद्राके रूपकी विवेचना करके उसके नामोंसे संकेतित मुद्राओंकी अब संक्षेपरूपसे बतलाते हैं ॥ १६९ ॥ संसारके प्राणियोंको आनन्द देनेके कारण भगवानका 'राम' नाम पड़ा है। योगीगण इसी अमल परमानन्द पदमें आनन्द लेते हैं। इस लिए भी राम 'राम' कहे जाते हैं ॥ १७० ॥ इसी रससे संसारके सब जीव जीते हैं, इस सरस पदको पाकर लोग आनन्दमय हो जाते हैं ॥ १७१ ॥ जो जगत्में प्रविष्ट होकर सारे जगत्को चैतन्य कर देता है। जिस रामको चैतन्य करनेवाला कोई भी नहीं है, वे ही राम 'राम' कहे जाते हैं ॥ १७२ ॥ जिन भगवन्की सत्ता समस्त विश्वमें है। वे इसी कारण देवता कहलाते हैं। वे असत् जगत्में भी अपनी सत्ता बनाये रखते हैं। अतएव लोग उन्हें राम कहते हैं ॥ १७३ ॥ जिस तरह उनका राम यह नाम प्रसिद्ध हुआ। उसी तरह परमात्माके लिङ्ग और रूप भी हैं। ॥ १७४ ॥ लोग लिंगका अर्थ इस प्रकार करते हैं—जिसमें जगत्के सब प्राणी अन्तमें लीन होते और सृष्टिके आदिमें जिससे प्रादुर्भूत होते हैं, उसीकी लिंग संज्ञा है। वह लिंग, शून्य निष्कल और परम कल्याणकारी है॥ १७५ ॥ इस प्रकार तत्त्वदर्शी शास्त्रज्ञोंकी बातें सुनायी पड़ती है। इससे यह

स ब्रह्मा स शिवश्चाथ स हरिः स सुरेश्वरः । सोऽक्षरः परमश्चैव स स्वराडिति वेदवाक् ॥१७८॥
यस्येमे सच्चिदानन्दाः स व्याप्तः सर्ववस्तुषु । तेनास्ति च प्रियं भाति वस्तुमात्रं प्रदृश्यते ॥१७९॥
आम्नायेषु च सर्वेषु रामब्रह्मात्मकीर्तनम् । आदिमध्यावसानेषु श्रूयते गुर्वनुग्रहात् ॥१८०॥
ऐतरेयके आत्मा वा इदमेकः पुरा जनैः । आसीत्तेनैव लोकानां पालानां सृष्टिरिच्छया ॥१८१॥
कृतार्थः सर्वदेवानामन्नभुक्त्यर्थमीप्सितम् । ददावायतनं चान्नं सृष्टं तेभ्यस्ततः परम् ॥१८२॥
विचार्य स्वीयस्वामित्वं सीमाद्वारा प्रविष्टवान् । तत्रात्मानं ब्रह्म ततं दृष्ट्वैवोपेंद्रतां किल ॥१८३॥
कोऽयमात्मेति संप्रश्ने येन पश्यति जिघ्रति । इत्यादिभिर्विनिर्णीतं तदेतद्धृदयादिभिः ॥१८४॥
प्रज्ञानस्यास्य नामानि चोक्त्वा तत्सर्वता समा । एष ब्रह्मेत्यादिशब्दैर्दर्शित चाखिलं जगत् ।।१८५॥
प्रज्ञानेत्रं च प्रज्ञाने प्रतिष्ठंतेत्यनेन हि । प्रज्ञानं ब्रह्म श्रुत्यान्ते त्रिकालेष्विति दर्शितम् ॥१८६॥
तद्राम सच्चिदानन्दघनानन्तं न संशयः । तैत्तिरीयकशाखायां ब्रह्मणे लक्षणं पुरा ॥१८७॥
सत्यं ज्ञानमनन्तं सङ्कीर्त्य वेदगुहादिकम् । यश्चासावश्नुते कामान्सर्वान्युगपदेव हि ॥१८८॥
फलं ज्ञानस्य चोक्त्वाऽथ तस्माद्ब्रह्मात्मकं किल । क्रमोत्पत्तिर्हि भूतानां कोशपंचकवेदनम् ॥१८९॥
तत्फलं तदनात्मत्वं संप्रदर्श्यान्तरत्वतः । पुच्छं ब्रह्मेति निर्णीय तदसत्सत्प्रतीतितः ॥१९०॥
असत्सद्भवति ह्येवं संकीर्त्य च ततः परम् । कामयित् तदेवेह स्वात्मानं जगदात्मना ॥१९१॥
कृत्वा तस्मिन् प्रविष्टैव सच्चासच्चाभवत्किल । अपानप्राणयोश्चेष्टा यस्यास्तित्वे प्रजायते ॥१९२॥
आत्मैव रस एवैष आनन्दयति चाखिलान् । भयहेतुस्तदेवेह वातादीनां प्रदर्शितम् ।।१९३॥
मानुषारभ्य ब्रह्मांता आनन्दा ये शतोत्तराः । विंदवस्ते परब्रह्मानन्दस्येति विनिश्चितम् ॥१९४॥

निश्चय हुआ कि उस अन्तरात्माके ही नाम और रूपभेद रहते हुए भी वास्तवमें सब एक हैं। इसकी वास्तविक स्थितिमें कोई भी अन्तर नहीं आता ॥ १७६ ॥ १७७ ॥ वे ही ब्रह्मा, वे ही शिव, वे ही विष्णु और वे ही देवराज इन्द्र है। वे ही अक्षर ब्रह्म और वे ही वेदवाक्य तथा विश्वके सम्राट् हैं ॥ १७८ ॥ वे ही सब वस्तुओंमें सत् चित् और आनन्द रूपसे व्याप्त रहते हैं। इसीके कारण सब चीजें अच्छी लगती हैं॥ १७९ ॥ सब वेदोंमें रामरूपी ब्रह्मका कीर्तन विद्यमान है । गुरुजनोंके अनुग्रहसे आदि, मध्य, अन्त सब समयमें रामहीका कीर्तन सुनायी पड़ता है ॥ १८० ॥ ऐतरेय उपनिषदमें लिखा है कि सर्वप्रथम यह आत्मा अकेला था। उसकी यह इच्छा हुई कि हम लोकों और लोकपालोंकी सृष्टि करें ॥ १८१ ॥ ऐसा विचार होनेपर उसने सृष्टिके मनुष्य तथा देवता इन दोनोंकी और उनसे पहले अन्नकी सृष्टि की ॥ १८२ ॥ तदनन्तर उन्होंने अपने-अपने स्वामित्वका विचार किया और एक सीमामें देवताओंके राजा इन्द्र बने ॥ १८३ ॥ जो कि इस संसारको देवता तथा संसारकी वस्तुएँ सूँघता है, वह कौन है ? इसका ज्ञान आदि नाम बतलाते हुए "यह ब्रह्म ही सब कुछ है" आदि वाक्योंसे उन्होंने इस प्रश्नको हल किया और बतलाया कि सत्, चित्, आनन्दसे लेकर घन पर्यन्त राम ही राम हैं। पूर्व समय तैत्तिरीयक शाखामें ब्रह्मका लक्षण बतलाते हुए रामको सत्य, ज्ञान और अनन्तकी उपाधि दी है । इस संसारमें जो एक साथ भोगोंको भोगता और खाता-पीता है, वह ब्रह्म ही है । इससे भी यह तैं पाया गया कि समस्त सृष्टि ब्रह्ममयी है । सब प्राणियोंकी क्रमोत्पत्ति, पंचकोशका ज्ञान और आत्माकी विभिन्नता आदि दिखाकर बतलाया है कि सत् और असत्की प्रतीतियोंसे इन सबका मूल कारण ब्रह्म ही है॥ १८४-१९० ॥ ऐसा कहकर कहा कि सत् और असत् यह क्या वस्तु है? इस प्रश्नको हल करते हुए कहते हैं कि जो जगत्में आकर और जगत्की आत्मा बनकर कामनाओंको चाहता हुआ उनमें लीन हो जाता है, वही सत् है। जिसके अस्तित्वसे प्राण और अपानकी चेष्टा जायमान होती है, उसे असत् कहते हैं ॥ १९१ ॥ १९२ ॥ यह आत्मा ही सारे संसारको आनन्दित करता है । वातादिका एकमात्र वही भयहेतु है ॥ १९३ ॥ मनुष्यसे लेकर ब्रह्मपर्यन्त तथा इसके भी आगे जो आनन्दविन्दु है, वह एकमात्र परब्रह्मानन्दका ही आभास है।

स यथायं नरोपाधावादित्येयश्च वर्तते । स एक इति ज्ञातारं पापं पुण्यं कृताकृते ॥१९५॥
न संतापयतस्त्वेवं सम्यक् सर्वं प्रकीर्तितम् । यद्ब्रह्ममहिमाऽपेक्ष्यः तद्रामेति न संशयः ॥१९६॥
छांदोग्येऽपि स वेदेति ब्रह्मोपक्रम्य ब्रह्मणः । तेजोऽबन्नादिका सृष्टिः सन्मूला सा स्थितिर्हृतिः॥१९७॥
जीवात्मना प्रवेशश्च व्याकृतिर्नामरूपयोः । श्वेतकेतोस्त्वंपदस्य तत्पदेनैक्यताऽपि च ॥
सदसंभावनायां च सद्भावे च बहूक्तिवा ॥१९८॥
तज्ज्ञाने च गुरोर्ज्ञानं ज्ञानान्मोक्षोऽपुनर्भवः ।
सत्यब्रह्माभिसंधस्येत्येवं सद्ब्रह्मकीर्तनम् । तद्रामेति परं ब्रह्म सृष्टिस्थित्यंतहेतुकम् ॥१९९॥
अन्यस्यामपि शाखायां प्रश्नप्रत्युक्तितः स्फुटम् ।मनःप्राणेंद्रियाणां यन्मनः प्राणेन्द्रियं हि तत् ॥२००॥
सर्वेषामनुभूतेः सद्विदिताविदितात्परम् । विषयो नेन्द्रियादीनामित्युक्त्वा तस्य शोधनम्२०१॥
सर्वदर्शी सर्ववेत्तृदेवानां जयकारणम् । तदज्ञानं च देवानां गुरोर्ज्ञानमुपास्तिवा ॥२०२॥
विद्यैव नान्यन्मानुष्यं प्राप्य जन्म न वेद चेत् । विनष्टिर्महती तस्य चेति प्रोक्तं ततः परम् ॥२०३॥
अध्यात्माधिदैवभिदा विद्यासाधनमेव च । ब्रह्मज्ञानेन पापानां हानिस्तत्प्राप्तिरित्ययम् ॥२०४॥
ब्रह्मणो महिमा श्रुत्या कीर्तितो व्यासतः स्वयम् । तद्रामेति गुरोर्ज्ञेय नान्यथा ग्रन्थकोटिभिः ॥२०५॥
मुंडकेऽपि परा विद्या विषयो ब्रह्म ब्रह्मणः । सृष्टिश्चानेकदृष्टांतैरुक्ता तस्मिंश्च संस्थिता ॥२०६॥
लयश्चापि हि तत्रैव विश्वं सर्वं हि तन्मयम् । तारेण धनुषा वेद्य लक्ष्य आत्मार्पणं तथा ॥२०७॥

ऐसा निश्चित है। जो मनुष्यकी उपाधिमें सूर्य विद्यमान है। उस एकमात्र प्रभुको जान लेनेपर कर्म-अकर्म तथा पाप-पुण्य कुछ शेष नहीं रह जाता ॥ १९४ ॥ १९५ ॥ तब किसी प्रकारका सन्ताप नहीं झेलना पड़ता। ये सब गुण जिसमें हैं, वह ब्रह्म ही है। उसकी महिमा देखकर निश्चित होता है कि वह ब्रह्म श्रीरामचन्द्रजी ही हैं। इसमें संशय नहीं है ॥ १९६ ॥ छान्दोग्य उपनिषद्में भी कहा है कि ब्रह्मसे ही अन्नादिककी सृष्टि हुई है और उन्हींके आधारसे इस जगत्का पालन-पोषण होता है ॥ १९७ ॥ जीवात्माके द्वारा ही आत्माका प्रवेश होता है, किन्तु देहके आधारवश उसके नाम और रूपमें अन्तर पड़ जाता है। श्वेतकेतुको उसके पिताने शिक्षा दी थी कि उस पद यानी ब्रह्मपदके साथ एकता होना ही मुक्तिका सर्वप्रशस्त साधन है। जब तक सत् पदका लाभ नहीं होता, तब तक एकता रहती है और सद्भावके विद्यमान रहनेपर एकताके स्थानपर बहुत्व आ जाता है। उस सत् पदका ज्ञान होनेसे गुरु द्वारा ज्ञान प्राप्त होता है और ज्ञान प्राप्त होनेपर पुनर्जन्मविहीन मोक्षपद प्राप्त होता है ॥ १९८ ॥ सत्यरूप ब्रह्ममें जिसकी लगन लग जाती है, उसका इतना ही ब्रह्मकीर्तन है कि वह राम ही परब्रह्म हैं। उन्हींके द्वारा इस जगत्की सृष्टि, पालन और प्रलय होता है ॥ १९९ ॥ अन्य शाखाओंमें भी प्रश्न और उत्तरके रूपमें अनेक प्रश्न और प्रत्युक्तियाँ हुई हैं। उनसे भी यही सिद्ध होता है कि मन, प्राण और इन्द्रियोंका जो मन, प्राण और इन्द्रिय है। वह ब्रह्म ही है। वह सत्यस्वरूप ब्रह्म ज्ञान और अज्ञान इन दोनोंसे परे है। यही सबका अनुभव है। किन्तु वह इन्द्रियोंके विषयगोचर नहीं होता अर्थात् अनुभवसे ही जाना जाता है। यह कहकर उसका संशोधन किया गया है ॥ २०० ॥ २०१ ॥ वह ब्रह्म सब कुछ देखता है, सब जानता है, देवताओंके विजयका कारण है और वह देवताओंके लिए भी अज्ञात रहता है। गुरुकी उपासना करनेसे ही ज्ञानकी प्राप्ति होती है ॥ २०२ ॥ विद्या ही मनुष्यका मनुष्यत्व है। इस संसारमें जन्म लेकर जिसने विद्या नहीं पायी तो यह उसका एक बहुत बड़ा विनाश है। ऐसा कहा गया है ॥ २०३ ॥ अधिदेवको भी भेदन करनेवाले ब्रह्मज्ञानसे विद्याका साधन होता है, पापोंका नाश होता है और अन्तमें उसे ब्रह्मकी प्राप्ति होती है ॥ २०४ ॥ श्रुतिने स्वयं विस्तारपूर्वक ब्रह्मकी महिमाका गान किया है। इसलिए जिज्ञासुको चाहिए कि वह गुरुसे रामका ज्ञान प्राप्त करे। वैसे करोड़ों ग्रन्थ पढ़नेसे भी उनका सच्चा ज्ञान नहीं प्राप्त हो सकता ॥२०५॥ मुण्डक उपनिषदमें कहा गया है कि ब्रह्म और ब्रह्मका विषय जाननेके लिए गुरु प्रधान है। उक्त उपनिषदने अनेक दृष्टान्तोंसे सृष्टिका वर्णन किया है ॥ २०६ ॥ वह कहती है कि यह सारी सृष्टि उसी ब्रह्ममें स्थित है और अन्तमें उसीमें

महिमातिशयस्तस्य तद्भासा भात्यशेषकम् । अगोचरं च सर्वेषां ध्यायमानोऽनुपश्यति ॥२०८॥
वेद हि तं गुहायां योऽविद्याग्रंथिं भिनत्ति सः । कृपया वृणुते ब्रह्म यं कश्चन सुसाधकम् ॥२०९॥
तेनैव लभ्यते साक्षान्नान्यथा यत्नतोऽपि हि । अथवा यं परेश तं प्राप्तुमिच्छति साधकः ॥२१०॥
तेनैव हेतुना लभ्यो नान्यथा साधनान्तरैः । बलहीनादिभिर्नेदं लभ्यते तैस्तु लभ्यते ॥२११॥
संन्यासयोगतः सत्त्वं शुद्धं येषां विचारतः । ते परान्तेन कालेन परिमुच्यन्ति नान्यथा ॥२१२॥
यथा नद्यः समुद्रेऽस्तं गच्छन्ति नामरूपतः । तथा विद्वान्कला देवप्रतिष्ठायां च संक्षयम् ॥२१३॥
प्रारब्धकर्मणां साक्षान्मोक्षमेत्यपुनर्भवम् । यो वेद परमं ब्रह्म स ब्रह्म भवतीति च ॥२१४॥
सर्वं समुदितं यस्मात्तद्रामब्रह्मचिद्घनम् । पूर्णमदः पूर्णमिति कंडिकायां समासतः ॥२१५॥
आदिमध्यावसानेषु पूर्णं ब्रह्मैव निश्चितम् । पूर्णं परोक्षरूपेण जातं तत्पदसञ्ज्ञितम् ॥२१६॥
प्रत्यक्ष त्वंपदाख्येन स्थितं भूतमयेषु च । पूर्णान्निरूपकात्पूर्णं सोपाधिकमिहोच्यते ॥२१७॥
तत्पूर्णं शास्त्रशास्तृभ्यां स्वाविद्याज्ञानतः स्वयम् । स्वखण्डैकरसं लक्ष्यमादायोपनिषद्गिरा ॥२१८॥
निर्गतोपाधिकं सर्वं पूर्णमेवावशिष्यते । तद्राम परमं ब्रह्म योगिध्येयं सनातनम् ॥२१९॥
सर्वधर्मानवेधेन श्रुतिगीतं परात्परम् । अहं कृत्स्नस्य जगतः प्रभवः प्रलयस्तथा ॥२२०॥
मत्तः परतर नान्यत्किञ्चिदस्ति धनञ्जय । मयि सर्वमिद प्रोतं सूत्रे मणिगणा इव ॥२२१॥
इत्याह भगवान् साक्षाद्वेदेऽपि तज्जलानिति । एवं सर्वासु श्रुतिषु स्मृत्यादिषु यदीरितम् ॥२२२॥

लय भी हो जायगी। क्योंकि समस्त विश्व उसीका स्वरूप है। लोगोंको चाहिए कि जैसे धनुर्धारी एक लम्बे-चौड़े धनुषसे लक्ष्य बेधना सीखता है । उसी तरह वे धीरे-धीरे उस ब्रह्मके लिए आत्मसमर्पण करना सीखें ॥ २०७ ॥ उस ब्रह्मको बड़ी महिमा है । उसीके तेजसे यह जगत् प्रकाशमान है । वह सबसे छुपा हुआ है, किन्तु ध्यान द्वारा देखा भी जा सकता है ॥ २०८ ॥ जो प्राणी हृदयरूपिणी कन्दरामें बैठे हुए ब्रह्मको जान लेता है, वह अविद्याको कठिन गाँठोको काट डालता है और किसी अच्छे साधकको ढूँढ़ लेता है। वही प्राणी इन साधनोंसे उसे साक्षात् रूपसे प्राप्त कर सकता है। अन्यथा किसी प्रकार वह नहीं प्राप्त हो सकता। इसके अतिरिक्त जिस किसी भी साधन द्वारा ईश्वरकी प्राप्ति करनेकी अभिलाषा हो तो पूर्वोक्त साधनोंसे ही वह प्राप्त हो सकता है, अन्य साधनोंसे नहीं। जो लोग कि निर्बल हैं, वे इस पदको नहीं प्राप्त कर सकते। वह तो उन्हींको मिल सकता है, जिनका हृदय संन्यास एवं सद्विचारोंसे शुद्ध हो चुका है। वे ही लोग ब्रह्मपदको प्राप्त होकर कालपाशसे मुक्त होते हैं, और लोग नहीं ॥ २०९–२१२ ॥ जिस तरह कि नदियाँ नाम और रूपके साथ अन्तमें समुद्रमें जाकर मिल जाती हैं। उसी प्रकार ज्ञानी मनुष्य ज्ञानरूपिणी कलाकी प्रतिष्ठामें लीन हो जाता है ॥ २१३ ॥ वह अपने प्रारब्ध कर्मोंसे अपुनर्भव मुक्तिपदको प्राप्त होता है। जो उस परब्रह्मको जानता है, वह साक्षात् ब्रह्म ही हो जाता है ॥ २१४ ॥ जिससे यह संसार बना है, वह राम ही चिद्घनस्वरूप ब्रह्म है। कण्डिकाओंमें भी संक्षिप्त रूपसे इसी प्रकार कहा गया है कि बस, वह ही पूर्ण है। बाकी सब अपूर्ण हैं ॥ २१५ ॥ आदि, मध्य और अन्त सर्वत्र ब्रह्म ही पूर्ण है। यह निश्चित है। परोक्षरूपसे भी वही पूर्ण माना जा चुका है ॥ २१६ ॥ वह प्रत्यक्षरूपसे सब प्राणियोंमें रहता है। इस पूर्णके निरूपणसे वह सोपाधि कहा जाता है ॥ २१७ ॥ वह शास्त्र और शास्ता इन भावोंसे स्वयं अपनी अविद्यमानताका नाश करता हुआ उपनिषद्की बातोंके आधारपर सब काम करता है ॥ २१८ ॥ जब कि उसकी उपाधि नष्ट हो जाती है तो वह पूर्णरूपसे शेष होकर अकेला रह जाता है। जो कुछ करने-धरनेवाले हैं, वे योगियोंके ध्येय एकमात्र राम हैं ॥ २१९ ॥ समस्त धर्मोंका निषेध करते हुए श्रुतियों द्वारा भगवान्ने स्वयं यह कहा है कि मैं इस संसारका प्रभव (उत्पन्नकर्ता) और प्रलय (नाशक) हूँ ॥ २२० ॥ हे धनंजय ! मुझसे परे और कुछ है ही नहीं। यह समस्त विश्व मुझमें उसी तरह पिरोया हुआ है, जैसे धागेमें मणियोंके दाने पिरोये रहते हैं ॥ २२१ ॥ ऐसा भगवान्ने वेदोंमें कहा है। उसी तरह श्रुतियों और स्मृतियोंमें भी कहा है कि परब्रह्म राम जो

तद्राम परमं ब्रह्म योगिगम्यमनामयम् । अनन्तनामरूपैश्च विश्वाकारं स्वमायया ॥२२३॥
भूत्वा सर्वेषु भूतेषु व्यापकं भूतचालकम् । स्फुटमप्यस्फुटं तेषामज्ञानं स्वात्मनः सदा ॥२२४॥
ब्रह्मज्ञाने परो हेतुः सर्वेऽपि बहिरीक्षकाः । मानवाः सन्ति तेनेदं चिद्ब्रह्म न प्रकाशते ॥२२५॥
पराञ्चि खानि प्रभुणा सृष्टानि चेक्षते पराक् । वीक्षन्ते नांतरात्मानं प्रसिद्धं श्रुत्युदीरितम् ॥२२६॥
सर्वोऽपि मनुजो दासो वित्तस्त्रीतनुजात्मनाम् । किंवा स्वः कामदासोयं तेनांतश्चिन्न काशते ॥२२७॥
यदि भूयात्सदानंदःस्वात्मा साक्षी गुणात्परः । तदा किन्नाम रोचेत व्यासादन्यन्नरस्य हि ॥२२८॥
आत्मानं चेद्विजानीयादयमस्मीति पूरुषः । किमिच्छन् कस्य कामाय शरीरमनुसंज्वरेत् ॥२२९॥
इत्याह च श्रुतिः साध्वी बृहदारण्यगा वयम् । यस्त्वात्मरतिरेव स्यादात्मतृप्तश्च मानवः ॥२३०॥
आत्मन्येव च सन्तुष्टस्तस्य कार्यं न विद्यते । इति साक्षाज्जगन्नाथोऽर्जुनाय प्रोक्तवान्स्वयम् ॥२३१॥
भोगासक्तः पुमान्पूर्वमेकाकी रमते न च । एषणात्रयसम्बद्धो यततेऽर्थाय नित्यदा ॥२३२॥
स लोकोऽपुत्रिण श्रुत्वा पुत्रोत्पादनतत्परः । जायां सम्पादयत्यादावतियत्नेन मूढधीः ॥२३३॥
पुत्रानुत्पाद्य क्लेशेन देवतीर्थादिसेवया । कुटुम्बभरणार्थं च यागार्थं वा धनेच्छया ॥२३४॥
अनिशं दह्यते चित्ते न प्राप्नोति यथेप्सितम् । शास्त्रज्ञोऽपि सत्क्रियावानर्थदासः प्रतिग्रहम् ॥२३५॥
धनिनां यात्यगवतां ग्रामे कौलेयको यथा । अव्युत्पन्नमतीनां तु का वार्ता स्वात्मचिंतने ॥२३६॥
अनेकपुण्यपुञ्जैः सत्कुले जन्माप्य साधुभिः । सज्जते सद्भिरुक्तेन मार्गेणेति यदा तदा ॥२३७॥
रामब्रह्मदर्शनार्थं मुद्रां स्वां पूरयत्युत । युक्त्या न दत्तया सद्भिर्न स्वयाऽमूलया क्वचित् ॥२३८॥

योगियोंके ध्यानगम्य और व्याधिविहीन हैं। अपने अनन्तरूपसे अपनी माया द्वारा विश्वके आकारवाले बनकर सब प्राणियोंमें विद्यमान रहते हुए जगत्का संचालन करते हैं। जो लोग ज्ञानसे पराङ्मुख हैं, उनके आगे स्फुट या अस्फुट भावसे सामने रहता हुआ भी वह ईश्वर नहीं दीखता ॥ २२२-२२४ ॥ उस ब्रह्मके ज्ञानमें अपनी आत्मा ही सर्वप्रधान हेतु है। संसारी जीवोंकी आँखें केवल बाहरकी चीजोंको देखती हैं। यही कारण है कि उन्हें वह चिद्ब्रह्म दृष्टिगोचर नहीं होता ॥ २२५ ॥ एक प्रसिद्ध श्रुतिमें भगवान्ने कहा है कि प्राणियोंकी आँखें मैंने बाहर बनायी है। इसलिए लोग अन्तरात्माको नहीं देख पाते ॥ २२६ ॥ संसारके सब मनुष्य अपने धन, स्त्री और पुत्रके दास बने रहते हैं। इसी कारण अन्तरात्मा उन्हें दीखती ही नहीं ॥ २२७ ॥ यदि उनके दास न होकर सदा आनन्दमय रहें, त्रिगुणसे परे हों और अपनी आत्माको साक्षी बनाकर सब कार्य करें तो उन्हें जञ्जालकी बातें रुचें ही नहीं ॥२२८॥ यदि लोग आत्माको जानकर यह समझ लें कि मैं ही वह परम पुरुष ब्रह्म हूँ तो फिर किसके लिए अपने शरीरको सांसारिक ज्वालामें भूनें। यह बृहदारण्यकोपनिषद्में कहा गया है। इसके अतिरिक्त गीतामें स्वयं भगवान्ने अर्जुनसे कहा है कि जो प्राणी और किसी ओर अपनी चित्तवृत्ति न लगाकर आत्मासे प्रेम करता है, आत्मामें ही तृप्त रहता है और आत्मामें सन्तोष करता है। उसके लिए संसारमें कुछ भी करना शेष नहीं रह जाता अर्थात् उसीसे उसका सब काम पूर्ण हो जाता है ॥ २२९-२३१ ॥ भोगोंमें आसक्त प्राणी पहले एकाएक इस ओर नहीं झुकता। वह तो तीन प्रकारकी इच्छाओंके चक्करमें पड़कर सदा धन पानेकी चेष्टा करता रहता है ॥ २३२ ॥ वह मूर्ख किसीसे यदि स्वयं को अपुत्री सुनता है तो पुत्रके उत्पादनमें तत्पर हो जाता है और इसके लिए जितनी चेष्टा कर सकता है, करता है ॥ २३३ ॥ देवताओं तथा तीर्थोंकी सेवासे यदि पुत्र उत्पन्न कर लेता है तो कुटुम्बके भरण-पोषण तथा यज्ञके लिए धनकी इच्छासे मन ही मन रात-दिन जला करता है, फिर भी अपनी कामना नहीं पूर्ण कर पाता। चाहे शास्त्रज्ञ पंडित तथा सत्तम क्रियावान् ही क्यों न हो, यदि वह धनका लोभी है तो धनियोंके घर कुत्तोंकी तरह दौड़ता रहता है। फिर यदि कोई व्युत्पन्नमति (समझदार) नहीं है तो उसके लिए आत्मचिन्तनकी चर्चा किस कामकी ॥ २३४-२३६ ॥ अनेक प्रकारके पुण्य एकत्रित होनेपर प्राणी अच्छे कुलमें जन्म और सज्जनोंकी संगति पाता है। फिर उनकी बातोंपर चलता हुआ कभी-कभी रामरूप ब्रह्मके दर्शनार्थ मुद्राओंको भी पूर्ण करनेका उपाय करता है और

तं पूरणप्रकारं तु संक्षेपेणोच्यतेऽधुना ।यथा लोकेऽञ्जनं सम्यक् संपाद्य पूर्यतेऽक्षि च ॥२३९॥
निधिः प्रत्यक्षतस्तस्य दर्शनं याति नान्यथा । एवमत्रापि तत्तुल्यं साधनं यच्चतुष्टयम् ॥२४०॥
सम्पाद्य चेक्षते शुद्धं रामेति पदमव्ययम् । मायाव्यसितवर्णं यद् ब्रह्म तत्साधनं यथा ॥२४१॥
शुद्धाविद्यामयं चेति प्रोच्यते तत्त्वदर्शिभिः । शास्तृशास्त्रं च शास्यश्च मिथ्याऽविद्यामयं त्रयम्२४२॥
ज्ञानोत्तरमिति मतं तस्माच्चद्वर्णमीरितम् ।
चतुष्पादसाधनं तत्पूर्णमित्यभिधीयते । प्रत्येकं साधनं यच्च चतुःसाधनमुच्यते ॥२४३॥
विवेकवैराग्यशमादिषट्कं मुमुक्षुता चेति प्रसिद्धमेतत् ।
लक्ष्माणि प्रत्येकमुशत्तमानि प्रोक्तान्यमीषां स्मृतिभूमिकासु २४४॥
साधनानां चतुष्कं च ह्येषणात्यागपूर्वकम् । संन्यासश्च गुरोः सेवाश्रयणादित्रयं ततः ॥२४५॥
पूर्वोत्तरसमाधी च पुञ्ज एकादशात्मकः । एतेषां तु मिथः साक्षात्प्राणाद्या सङ्गतिर्मया ॥२४६॥
मुमुक्षया तु न्यासादि षण्णां साक्षादिहोच्यते । समाधिरुत्तरश्चापि पृथगेवेति सम्मतः ॥२४७॥
पूर्वत्रयाणां न विना मुमुक्षा षडभिरादरः । एतैः साधनसंघैश्च पदानि पूरयत्यलम् ॥२४८॥
सर्वाणि तानि प्रोच्यन्ते श्रोतॄणामवबुद्धये । दशेंद्रियाणि तेषां तु गोलकानि नवैव तु ॥२४९॥
प्राणापानौ मनोबुद्धी तस्माद्धर्माश्च तन्मिताः । बुद्धेर्ज्ञानं यथाऽप्तोश्च क्रिया तत्तंत्रता मता ॥२५०॥
उभयेंद्रियधर्माणामतोऽमीषामनाग्रहः । सप्तविंशतिसंख्यानि पदानीमानि साधनैः ॥२५१॥
योग्यानि लांछितुं सम्यक् पूरयत्येव सर्वथा । तदा यत्परमं ब्रह्म रामेति पदमव्ययम् ॥२५२॥
भाति प्रत्यक्षतस्तेन कृतकृत्यो हि जायते । एतावता विधानेन रामतोभद्रमुद्रिके ॥२५३॥
रामश्च कथितश्चाथ सर्वतोभद्रमीर्यते । स्थानतो नामतश्चापि संशयस्यापनुत्तये ॥२५४॥

यदि उसके साथी सज्जन युक्तिसे उसे सही रास्तेपर ले जाते हैं तो वह अपनी साधना पूरी भी कर लेता है ॥२३७॥२३८॥ उसको पूर्ण करनेका प्रकार मैं यहाँ संक्षिप्त रूपसे कहता हूँ। जैसे संसारमें देखा जाता है कि आँखोंमें एक प्रकारका अंजन लगाकर लोग छिपे हुए खजानोंको भी प्रत्यक्ष देख लेते हैं। उसी प्रकार पूर्वजों द्वारा बताये हुए चारों साधनोंका सम्पादन करके प्राणी "राम" इस शुद्ध और नाशरहित पदको प्राप्त कर लेता है। जिस तरह कि मायावी और असित वर्णोंवाला ब्रह्म सद्ब्रह्मकी प्राप्तिका साधन है। उसी तरह तत्त्वदर्शियोंने शुद्ध और विद्यमान साधन बतलाये हैं। शास्ता, शास्त्र और शास्य ये तीनों मिथ्या और अविद्यामय हैं ॥ २३९-२४२ ॥ संसारमें जितने भी सिद्धान्त हैं, वे सब प्राणीको ज्ञानके पास पहुँचाते हैं। जितने चतुष्पाद साधन हैं, वे पूर्ण कहे जाते हैं और प्रायः सब साधन चतुष्पाद ही हुआ करते हैं ॥ २४३ ॥ स्मृतिकी भूमिकामें विवेक, वैराग्य, शम, दम आदि छ धर्म और मोक्षकी इच्छाका उत्पन्न होना ये साधकके उत्तम चिह्न बतलाये गये हैं ॥ २४४ ॥ उन साधनोंमें सबसे पहला साधन इच्छाओंका त्याग करना है। फिर संन्यास, गुरुकी सेवा, श्रवण, भजन, कीर्तन, पूर्वोत्तर समाधि तथा एकादश प्रकारके पुञ्ज ही साधन हैं। इन सबके साथ प्राण आदिकी संगति होती है ॥ २४५ ॥ २४६ ॥ मोक्ष पानेके लिए यहाँपर छः प्रकारके न्यास आदि काममें लाने चाहिये। किन्तु उत्तर समाधि इससे अलग ही रहेगी, यह बात सब लोग मान चुके हैं ॥ २४७ ॥ पूर्वकी तीन समाधियोंके बिना मोक्ष नहीं प्राप्त हो सकता। इन साधनसमूहोंसे सब पद सरल रीतिसे पूर्ण हो जाते हैं ॥ २४८ ॥ सुननेवालोंको बोध करानेकी इच्छासे उनको यहाँ बतला रहे हैं। उनके विचारमें कुल दस इन्द्रियाँ हैं और नौ गोलक हैं ॥ २४९ ॥ अतएव प्राण, अपान, मन, बुद्धि, इन इन्द्रियोंसे. इतने ही प्रकार-के धर्म उत्पन्न हुए। बुद्धिसे ज्ञानकी उत्पत्ति हुई। प्राणेन्द्रिय अपने इच्छानुसार जो चाहे वह करे, उसके लिए कोई नियम नहीं है ॥ २५० ॥ ज्ञानेन्द्रिय और कर्मेन्द्रिय इन दोनों प्रकारकी इन्द्रियोंके धर्मसे और प्राणके धर्मसे कोई सम्बन्ध नहीं है। इस तरह इन सत्ताइस प्रकारके पदोंको साधन करके पूर्ण करना चाहिए। ऐसा करनेपर जो अव्यय-परब्रह्म रामका पद है, वह प्रत्यक्ष दीखने लगता है। जिससे प्राणी कृतकृत्य हो

कल्याणं सर्वतः पुंसां चिंतनाद्यस्य ब्रह्मणः । तद्भद्रवाचकं मुख्यं मंगलानां च मंगलम् ॥२५५॥
यत्र यद्व्यज्यते साक्षात्तन्नाम्ना तदुदीर्यते । अधिदैवं तथाऽध्यात्मं सर्वतोभद्रमिष्यते ॥२५६॥
विविच्यतेऽत्रोभयं च प्रोच्यते वस्तुव्यक्तये । अधिदैवे तु यद्भद्रं तदादावुच्यतेऽमलम् ॥२५७॥
अंडहृद्ब्रह्मलोकस्तु सर्वतोभद्रमुच्यते । तेनैव भद्रं सर्वेषां लोकानामिति हि स्थितिः ॥२५८॥
तत्र स्वर्णमयं वेश्म निर्मितं प्रभुणा स्वयम् । तत्पद्ममिति विज्ञेयं यत्र कार्यचितिः स्वयम् ॥२५९॥
न्यासेन सर्वसत्त्वानां गतानां सर्वयोगिनाम् । प्राणोपासननिष्ठानां ब्रह्मणा चित्प्रकाशते ॥२६०॥
ब्रह्मणा सह ते सर्व इति स्मृतिरथागमः । क्रममुक्तेस्त्वयं पंथाः श्रुतिस्मृतिमतोऽमलः ॥२६१॥
आध्यात्मे हृदये यत्तत्सर्वतोभद्रमीर्यते । तेन भद्रेण कल्याणं सर्वेष्ववयवेष्विह ॥२६२॥
तत्र यत्पुण्डरीकं तद्ब्रह्मणः स्थानमुच्यते । श्रुतावेवं प्रसिद्धिर्हि दहरांबुजवेश्मतः ॥२६३॥
साधनसंपत्संयुक्तास्तस्मिन्ये तु समाहिताः । गुरूपदिष्टया युक्त्या तेषां ब्रह्म प्रकाशते ॥२६४॥
परमः पुरुषो भूमौ स एवाधस्तथोपरि । इत्यादिश्रुत्या यत्प्रोक्तं तन्न पारोक्षमित्यपि ॥२६५॥
आह चाहमेवाधस्तादित्यादिसमव्याप्तिताम् । गूढानामपि सर्वेषां देहेऽहमिति दृश्यते ॥२६६॥
माभूत्संभ्रम इत्यर्थमात्मैवेति पुनर्वचः । एकात्मरूपयोस्तयोर्भेदशङ्कानिवृत्तये ॥२६७॥
सर्वास्वुपनिषत्स्वेवं ब्रह्म द्वैतं सुनिश्चितम् । ब्रह्मैवदममृतमित्याह चाथर्वणी श्रुतिः ॥२६८॥
तत्त्वमेव त्वमेवैतदिति कैवल्यगं वचः । तत्त्वमसीति छांदोग्ये ब्रह्मात्मैक्यं न भेदधीः ॥२६९॥
एकत्वं पदयोः स्पष्टं श्रुत्या यत्प्रतिपादितम् । साक्षान्मुक्तेः कारणं तद्बोधस्तेषां स एव हि ॥२७०॥

जाता है। इतने विधानोंसे रामतोभद्रकी मुद्रायें बतायीं और रामस्वरूप भी बतलाया। अब सन्देह नष्ट करनेके लिए प्रसंगवश सर्वतोभद्रका स्वरूप बतला रहे हैं ॥ २५१–२५४ ॥ जिस ब्रह्मका स्मरण करनेसे प्राणियोंका सब प्रकार कल्याण होता है, उसे लोग भद्र कहते हैं। भद्र एक वस्तु है और मङ्गलका भी मङ्गलकारी है ॥ २५५ ॥ जहाँ कि वह ब्रह्म साक्षात् रूपसे अधिदैव या अध्यात्म रीतिसे व्यज्यमान होता है, उसीको लोग सर्वतोभद्र करते हैं ॥ २५६ ॥ अब यहाँ इसकी वास्तविकताको दिखानेके लिए उन दोनों प्रकारोंको दिखलाते हैं। अधिदैवके अन्तर्गत जो भद्र रहता है, उस विमल भद्रको पहले बतलाते हैं ॥ २५७ ॥ इस अण्डको हरण करनेवाला लोक ब्रह्मलोक कहलाता है और उसीकी सर्वतोभद्र संज्ञा भी है। क्योंकि उसी लोकसे सबका कल्याण होता है और उसीके सहारे सब लोकोंकी स्थिति बनी हुई है ॥ २५८ ॥ वहाँपर प्रभुने स्वयं एक सुवर्णमय घर बनाया है। उसे पद्म या कार्यकी चेतना, जो चाहो सो कह लो ॥ २५९ ॥ न्यासके द्वारा सब प्राणियों, सब योगियों तथा प्राणकी उपासनामें लगे हुए प्राणियोंको वह नित्य पद दीखने लगता है ॥ २६० ॥ इससे ब्रह्म भी भासमान होने लगता है। यह स्मृतिका मत है और वेद भी इसी मतको स्वीकार करते हैं। वास्तवमें तो यह पवित्र मार्ग श्रुति और स्मृति इन दोनोंको मान्य है ॥ ३६१ ॥ अध्यात्मका जो हृदय है, उसे लोग सर्वतोभद्र कहते हैं। उस भद्रसे सब अवयवयोंका कल्याण होता है ॥ २६२ ॥ वहाँपर जो कमल है, वह ब्रह्मका स्थान है। श्रुतियोंमें भी यह बात प्रसिद्ध है कि साधनरूपा सम्पत्तिके सम्पत्तिशाली जो लोग वहाँ रहते हैं, उन लोगोंको गुरुजनोंकी उपदिष्ट मुक्ति द्वारा ब्रह्म प्रकाशमान दीखने लगता है ॥ २६३ ॥ २६४ ॥ नीचे, ऊपर तथा मध्य इन तीनों स्थानोंमें वह पुरुष विद्यमान रहता है। इन श्रुतियोंमें जो कुछ कहा गया है, वह परोक्षमें नहीं प्रत्यक्ष ही जानना चाहिये ॥ २६५ ॥ प्रभुने स्वयं कहा है कि सूर्य आदिके साथ मैं संसारमें व्याप्त रहता हूँ और संसारी मूढ़ोंके शरीरमें भी रहता हूँ ॥ २६६ ॥ किसीको भ्रम न हो इस विचारसे "आत्मा एव" आदि वाक्योंको फिर-फिर दुहराया गया है। "एकात्मारूपी उस आत्माके भेदकी शंकाकी निवृत्त करनेके बिए सब उपनिषदोंमें उस ब्रह्मको अद्वैत बतलाया गया है। "ब्रह्म एव इदं अमृतं" आदि अथर्व वेदमें कहा गया है ॥ २६७ ॥ २६८ ॥ 'तत्त्वमेव' तथा 'त्वमेवैतत्' इन श्रुतियोंसे तथा 'तत्त्वमसि' इस छान्दोग्यके महावाक्यसे ब्रह्मके एकत्वका प्रति-

यच्च किंचिज्जगत्सर्वं दृश्यते श्रूयतेऽपि वा । अंतर्बहिश्च तत्सर्वं व्याप्य नारायणः स्थितः ॥२७१॥
इदं सर्वं यदयमात्मैकमेवाद्वितीयकम् । सर्वं खल्विदमित्यादिश्रुतयो यद्ब्रुवन्ति हि ॥२७२॥
सर्वभूतेषु चात्मानं सर्वभूतानि चात्मनि । संपश्यन्नात्मयाजीति परमार्थं मनोर्वचः ॥२७३॥
एतादृशेन बोधेन भूत्वा ब्रह्मात्मरूपकाः । कृतकृत्याः स्वयं तीर्त्वा सच्छिष्यान्ग्राहयंति च २७४॥
अत्रोक्तं श्रुत्यभिप्रायं जानन्ति विदुषोऽखिलान् । किं बहूक्तेन चोद्दिष्टं संक्षेपेणोपसंहृतम् ॥२७५॥

नारायणाच्युत जनार्दन वासुदेव गोविन्द माधव मुकुन्द रमेश विष्णो ।
संकर्षणाज नरसिंह परावरात्मन्रामोरुगाय शिव वामन पाहि शिष्यम् ॥ २७६॥

येनेदं विकृतं विश्वं विशता येन चेतनम् । यत्स्थितं यत्प्रतिष्ठं च तस्मै सर्वात्मने नमः२७७॥
इदानीं रामतोभद्रस्याष्टोत्तरशतस्य च । नानाभेदाः प्रकथ्यन्ते लघुमुद्रान्वितस्य हि ॥२७८॥
पूर्वोक्तेऽष्टाविंशतीनां रेखावृद्धिं प्रकल्पयेत् । परिधी द्वावधिकौ तत्पंक्त्योर्लिङ्गानि योजयेत् ॥२७९॥
प्रथमे तिथिमितीशाश्चतुर्विंशत्पदात्मकाः । वाप्यः षोडशसंख्यातास्त्रयोदशपदात्मिकाः ॥२८०॥
भद्रं तत्त्वमितं चाथ द्वितीयेऽर्कमिताः शिवाः । वाप्यस्त्रयोदशमिता ह्यष्टादशपदात्मिकाः ॥२८१॥
भद्रमर्कपदं शेषं यथापूर्वं प्रकल्पयेत् । एतद्रामलिंगतोभद्रशतं च वसूत्तरम् ॥२८२॥
अथवाऽऽद्ये रसमुद्रा रसेमा वापिकाश्च षट् । त्रयोदश पदाः कार्या भद्रं चन्द्रकलात्मकम् ॥२८३॥
द्वितीये पंच मुद्राश्च लिंगषट्कं च वापिकाः । तन्मिताश्च भद्रकर्मपदमग्रेऽष्टमावधि ॥२८४॥
तुर्यपंचतुर्यनेत्रचन्द्रसंख्याश्च मुद्रिकाः । षण्नेत्रनेत्रनयननेत्रेन्दुशंकरांस्तथा ॥२८५॥
भद्रं षट्पदमर्कांघ्रि षट्पदं विंशपादकम् । षोडशांघ्रियुग्मपादं क्रमाज्ज्ञेयं विचक्षणैः ॥२८६॥

पादन किया गया है। वही मुक्तिका कारण है और उसका बोध होनेसे तो प्राणी साक्षात् ब्रह्म ही हो जाता है ॥ २६९ ॥ २७० ॥ इस जगत्में बाहर-भीतर जो कुछ देखा और सुना जाता है, उन सबमें व्याप्त होकर वह नारायण स्थित है ॥ २७१ ॥ इस जगत्में जो कुछ है, उसमें एकमात्र वही अद्वितीय आत्मा है। "सर्वं खल्विदं ब्रह्म" आदि वाक्योंसे श्रुतियाँ भी यही बात कहती हैं ॥ २७२ ॥ जो प्राणी संसारकी सब वस्तुओंमें अपनेको देखता है और सब प्राणियोंका प्रतिबिम्ब अपनेमें देखता है। उस आत्मज्ञानीके लिये यह कोई साधारण बात नहीं है। यह मनु भगवान्का कथन है ॥ २७३ ॥ इस प्रकारके ज्ञानसे लोग ब्रह्मात्मरूप होकर अपनेको कृतकृत्य मानते हुए स्वयं तो तरते ही है, साथ ही अपने अच्छे शिष्योंको भी यह उपदेशामृत पिलाकर भवसागरसे पार उतार देते हैं ॥ २७४ ॥ यहाँपर बतलायी हुई श्रुतियोंके अभिप्रायोंको विद्वान् लोग अच्छी तरह जानते हैं। अधिक कहना-सुनना व्यर्थ है। संक्षेपमें इस उद्देश्यका उपसंहार कर दिया गया है ॥२७५॥ हे नारायण, अच्युत, जनार्दन, वासुदेव, गोविन्द, माधव, मुकुन्द, रमेश, विष्णो, संकर्षण (बलराम), कृष्णके बड़े भ्राता, नरसिंह, परावरात्मन्, राम, गरुड़गामिन्, शिव, वामन ! आप इस शिष्यकी रक्षा कीजिए ॥ २७६ ॥ संसारी जीवोंमें प्रविष्ट होकर जिसने इस विश्वको चेतन किया है, जिसमें सब जीव स्थित हैं, जिसमें सब प्रतिष्ठित हैं, ऐसे सर्वात्मा रामको प्रणाम है ॥ २७७ ॥ अब लघुमुद्राके साथ-साथ एक सौ आठ रामतोभद्रोंके अनेक भेद बतलाते हैं ॥ २७८ ॥ पूर्वोक्त २८ रेखाओंकी वृद्धि करे। उसमें दो परिधि अधिक बनावे। फिर उनमें लिंगों-की योजना करे ॥ २७९ ॥ प्रथम पंक्तिमें १५ ईश और सोलह पादोंका २५ भद्र बनावे ॥ २८० ॥ फिर दूसरी पंक्तिमें १२ शिव और १८ पादोंकी १३ वापी बनानी चाहिए। पहलेकी तरह १२ पादोंका भद्र बनावे। यह रामलिंगतोभद्र १०८ संख्याका है ॥ २८१ ॥ २८२ ॥ अथवा छः मुद्रा, छः ईश और १३ पादसे छः वापिकायें बनावे और १६ पादका भद्र बनावे ॥ २८३ ॥ दूसरी पंक्तिमें पाँच मुद्रा बनावे और लिंग तथा छः ही वापी बनावे। आगे आठवीं पंक्तिसे लेकर चार, पाँच, दो, एक, इन संख्याओंकी मुद्रायें बनावे। फिर छः, दो, दो, दो, दो, एक, इस क्रमसे शिवकी रचना करे। इनमें छः पादका, बारह पादका, दो पादका, बीस पादका, सोलह पादका, चार पादका क्रमशः प्रत्येक पंक्तियोंमें भद्र बनेंगे। ऐसा विद्वानोंको जानना चाहिए ॥२८४-२८६॥

अथवाऽष्टपदे मुद्रां विधाय तत्स्थलिंगकम् । रचयेत्स्थानके तुर्ये भद्रं विंशत्पदात्मकम् ॥२८७॥
सर्वत्र समसुद्रासु मध्ये च परिधिद्वयम् । मुद्रा सीमालिंगगता वाप्यर्द्धा तुर्यकोष्ठका ॥२८८॥
लिंगस्कन्धगता कोष्ठा वर्णैरिष्टैः प्रकल्पयेत् । वल्लिवाप्योर्मध्यगानि पदान्युर्वरितानि तु ॥२८९॥
भद्रशृङ्खलयोग्यानि तदर्थं विनियोजयेत् । अथवाऽऽद्ये दश मुद्रा सीमापरिधयस्तथा ॥२९०॥
भद्रमर्कपदं मध्ये परिधी द्वे प्रकल्पयेत् । एवमग्रे परिधयस्तृतीयेऽष्टैव मुद्रिकाः ॥२९१॥
चतुष्पादात्मकं भद्रं पञ्च मुद्राश्च पञ्चमे । अर्कपादात्मकं भद्रं नात्र द्वौ परिधी स्मृतौ ॥२९२॥
सप्तमेऽग्निमिता मुद्रा भद्रं तुर्यपदात्मकम् । द्वये त्रयोदशेशाश्च वाप्यश्चापि चतुर्दश ॥२९३॥
भद्रं तत्त्वमितं तुर्ये नवेशा दश वापिकाः । भद्रं तत्त्वमितं षष्ठे पंचेशा वापिकाश्च षट् ॥२९४॥
भद्रं तत्त्वमितं शेषं यथापूर्वं प्रकल्पयेत् । अथवाऽऽद्ये पञ्चदश शिवा नेत्रेऽष्ट मुद्रिकाः ॥२९५॥
शिवद्वयं त्रिषट्पादं त्रिषट्पादा च भद्रिकाः । षट्तुर्ये पंच मुद्राः स्युर्बाणे सिंधुमितास्तथा ॥२९६॥
पृष्ठे द्वे मुद्रिके मुद्रा गिरौ मुद्रा गजैस्तथा । शिवद्वयं वापिके च सप्तमान्तं भवेदिदम् ॥२९७॥
भद्रमानं तत्त्वकोष्ठ षट्षोडशरवितु च । विंशषोडशभिश्चापि क्रमेणैवं प्रकल्पयेत् ॥२९८॥
यद्वा द्वौ मुद्रिकामेकां मध्यलिंग प्रकल्पयेत् । भद्रमिंदुकुलं कृत्वा तल्लिंगं रचयेद्गजे ॥२९९॥
भद्रे गजे तत्त्वकोष्ठं शेषं सर्वं तु पूर्ववत् । अथवाद्यत्रिपंक्तिषु पंचाऽश्वग्निमिताञ्छिवान् ॥३००॥
मुद्रामध्ये नियोज्याथ मर्यादापरिधिस्तथा । भद्रसंख्या तु प्रथमा षट्पदा च द्व्यार्किका ॥३०१॥
द्वितीया त्रिंशकोष्ठा स्याद् द्वे द्वे वाप्यौ च लिंगके। रचयेत्पार्श्वयोः सम्यक् शेषं सर्वं पुरोदितम् ॥३०२॥
अथवोक्ताः प्रथमतः सप्त षट्पंचतुर्यकाः । वह्निचन्द्रचन्द्रमुद्राः सीमापरिधयस्तथा ॥३०३॥
षट्सु स्थानेषु च शिवास्तुर्यमिताः स्मृताः । विशेषस्तु लिंगद्वयं बाणैस्त्रिषट् त्रिषट् पदम् ॥३०४॥

अथवा आठ पादकी मुद्रा बनाकर चौथे स्थानमें लिंगकी रचना करे और बीस पादका भद्र बनावे ॥ २८७ ॥ जितनी समसंख्यक मुद्रायें हों, उन सबके मध्यमें दो परिधि बनावे। लिंगकी सीमामें मुद्रा और चार पादकी वापी बनावे ॥ २८८ ॥ लिंगके कन्धेके कोष्ठकोंको अपने इच्छानुसार किसी रङ्गसे रङ्ग दे। वल्ली और वापीके बीचवाले बचे कोष्ठकोंकी, यदि वे भद्र तथा लिंगकी रचनाके योग्य हों तो उन्हें उसी काममें ले आये। अथवा आदिकी दस मुद्राओं और सीमाकी परिधियोंको आदिमें योजित कर दे ॥ २८९ ॥ २९० ॥ बीचमें बारह पादका भद्र बनावे और दो परिधियोंकी रचना करे। इसी तरह तीस पंक्तिमें केवल आठ मुद्राओंकी योजना करे ॥ २९१ ॥ चार पादका भद्र बनावे और पाँचवें स्थानमें मुद्रायें बनाकर बारह पादका भद्र बनावे। विशेषता केवल इतनी होगी कि इनमें दो परिधियाँ नहीं रहेंगी और चार पादका भद्र बनेगा। इसमें तेरह ईश रहेंगे और चौदह वापियाँ बनेंगी ॥ २९२ ॥ २९३ ॥ चौथेमें २५ पादका भद्र बनेगा, नौ ईश रहेंगे, दस वापी बनेगी और २५ भद्र बनेंगे। छठेंमें पाँच ईश, छः वापी, पच्चीस भद्र, बाकी सब पूर्ववत् रहेंगे। अथवा आदिमें पन्द्रह शिव अट्ठाइस मुद्रायें, नौ पादके दो शिव और नौ ही पादोंकी मुद्रायें बनावे। चौथेमें छः या पाँच मुद्रायें, पाँचवेमें सात मुद्रायें, छठेमें दो मुद्रायें, सातवेंमें एक मुद्रा, आठवेंमें एक मुद्रा, दो शिव और दो वापी रहेंगी। यह क्रम आदिसे लेकर सातवें स्थान तक चलेगा ॥ २९४–२९७ ॥ इनमें भद्रका मान पच्चीस, छः, सोलह, बारह, छः, बीस, सोलह, इस प्रकार हैं। बनानेवालेको चाहिए कि क्रमशः इनकी योजना करे ॥ २९८ ॥ अथवा दो मुद्रायें बनाकर एकको लिंग-के मध्यमें रक्खे और सोलह कोष्ठकोंका भद्र बनाकर सातवेंसे लिङ्गकी रचना करे ॥ २९९ ॥ सातवेंमें पच्चीस कोष्ठकोंका भद्र बनावे। बाकी सब पूर्ववत् रक्खे। अथवा आदिकी तीन पंक्तियोंमें पाँच, सात, तीन, संख्याओं-का शिव बनावे ॥ ३०० ॥ मुद्राके मध्यमें मर्यादा और परिधिकी रचना करे। भद्रकी संख्या पहले जितनी ही
40 रहेगी और छः, दो या बारह पाद उनमें रहेंगे ॥ ३०१ ॥ दूसरी पंक्ति बीस कोष्ठकोंकी रहेगी और लिंगके बगलमें दो वापियोंकी रचना करे। बाकी सब पूर्ववत् रहेगा ॥ ३०२ ॥ अथवा आदिसे लेकर छठीं पंक्ति तथा सात, छः,

वाप्योऽपि तन्मिताः कार्या भद्राणि वक्ष्यमाणतः। तत्त्वकोष्ठं कलाकोष्ठं तुर्यकोष्ठं च षट्पदम् ॥३०५॥
षट्पदं च कलाकोष्ठं शेषं सर्वं पुरोदितम्। अथवा प्रथमाद्यावत्पञ्चमस्थानकावधि ॥३०६॥
षट् षट् पञ्च तुर्यवह्निमुद्राश्च मध्यशङ्करान्। तुर्यनेत्राक्षिनेत्राक्षिमर्यादापरिधींस्तथा ॥३०७॥
विशेषस्तु लिंगद्वयं बाणैः षट् त्रिषट् पदम्। भद्रसंख्येन्दुकलेन्दुकलाकर्तुरसान्मिकाम् ॥३०८॥
प्रकल्प्यारचयेद्बुद्धया शेषं सर्वं पुरोदितम्। एवं नानाविधा भद्रा बहवः सन्ति भो द्विज ॥३०९॥

इति श्रीशतकोटिरामचरितांतर्गते श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये मनोहरकांडे श्रीरामदासविष्णुदास-सम्वादे लघुरामतोभद्रविस्तारो नाम चतुर्थः सर्गः ॥ ४ ॥

पञ्चमः सर्गः

(रामलिंगतोभद्र तथा अनेक लिंगतोभद्रोंका रचनाप्रकार)

श्रीरामदास उवाच

पूर्वोक्तश्रेष्ठमुदीर्य रामतोभद्रविस्तरान्। वदाम्यहं तवाग्रे हि विष्णुदास शृणुष्व तान् ॥ १ ॥
तिर्यगूर्ध्वरक्तरेखा एकषष्टिमिताः शुभाः। अन्तात्कृष्णरक्तशुक्लपीताः परिधयः क्रमात् ॥ २ ॥
द्वादशांते पीतकृष्णरक्तशुक्लाः पुनः स्मृताः। पञ्चमः पीतवर्णोऽपि सर्वतोभद्रमालिखेत् ॥ ३ ॥
बहिः पंक्तौ द्वादशांते सीमापरिधयः स्मृताः। पीता वा लोहिताः कार्या मध्ये द्वौ परिधी स्मृतौ ॥४॥
ततो मध्यगेहयोर्द्वे मुद्रिके वेदवर्णके। चतुःपार्श्वेषु चत्वारि नामानि पूर्ववल्लिखेत् ॥ ५ ॥
कोणगेहेषु कोणेन्दुस्त्रिपदः शुक्लवर्णकः। एकादशपदा कृष्णा शृङ्खला पीतवर्णका ॥ ६ ॥
दशपदा शृङ्खलाऽन्या वल्लरी हरिता स्मृता। एकोनविंशत्पदजा भद्रं रक्तं नवात्मकम् ॥ ७ ॥

चार, पाँच, तीन, दो अथवा एक मुद्रा बनावे और सीमाकी परिधियोंकी ओर छहों स्थानोंमें चार-चार शिवोंकी रचना करे। विशेषता केवल इतनी रहेगी कि पाँच या नौ-नौ पादोंके लिंग बनेंगे। बावियाँ पूर्वोक्त संख्याके अनुसार ही रहेंगी, किन्तु भद्रकी संख्या वक्ष्यमाण संख्याके अनुसार रहेगी। कुछ भद्र पच्चीस कोष्ठकोंके कुछ सोलह कोष्ठकोंके, कुछ चार कोष्ठकोंके, कुछ छः कोष्ठकोंके, फिर छः कोष्ठकों, कुछ सोलह कोष्ठकोंके इस प्रकार भद्र बनेंगे। बाकी सब पहलेके समान ही होंगे। अथवा पहली पंक्तिसे पाँचवीं पंक्ति पर्यन्त ॥ ३०३-३०६ ॥ छः, पाँच, चार, तीन मुद्रायें बनावे। बीचमें चार, दो, दो, दो, दो शिवकी रचना करे और मर्यादा तथा परिधियोंको ठीकसे बनाकर रक्खे ॥ ३०७ ॥ विशेषता इतनी है कि पाँच, तीन, छ, तीन, छः पादका लिंग बनावे। इसमें भद्रकी संख्या सोलह, सोलह तथा छः रहेगी। इस तरह कल्पना करके अपनी बुद्धिसे रचना करे। बाकी सब पूर्ववत् रहेंगे। इस प्रकार हे द्विज! इस भद्रके बहुतसे भेद हैं, ॥ ३०८ ॥ ३०९ ॥ इति श्रीशतकोटिरामचरितान्तर्गते श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये पं० रामतेजपाण्डेयकृत-'ज्योत्स्ना'भाषाटीकासहिते मनोहरकाण्डे चतुर्थः सर्गः ॥ ४ ॥

श्रीरामदास कहते हैं—हे विष्णुदास! अब मैं तुम्हारे आगे पूर्वोक्त रामतोभद्रका विस्तार बतलाता हूँ। उसे तुम सावधान मनसे सुनो ॥ १ ॥ भद्र बनानेवालेको चाहिए कि बेंड़ा और सीधी ६१ रेखायें खींचे। अन्तमें काली, लाल, सफेद तथा पीली परिधियाँ बनावे ॥ २ ॥ बारहवीं पंक्तिके आगे पीत, कृष्ण, रक्त तथा शुक्ल रङ्गकी सीमापरिधियाँ रहेंगी। चाहे तो पाँचवां स्थान पीले रङ्गसे भी बना सकता है। बारहके बाद बाहरकी पंक्तिमें पीले या लाल रङ्गकी परिधि रहेगी। बीचमें और दो परिधियां बनेंगी ॥ ३ ॥ ४ ॥ इसके अनन्तर मध्यके दोनों घरोंमें चार रङ्गोंकी दो मुद्राएँ बनेंगी। इसके अनन्तर चारों बगल पूर्ववत् चार नाम लिखने चाहिए ॥ ५ ॥ कोणवाले कोष्ठकमें तीन पाद और शुक्लवर्णका इन्दु बनावे। ग्यारह पादकी शृङ्खला बनावे और उसे कृष्ण वर्णकी रखे। दस पादकी एक दूसरी शृङ्खला पीले रङ्गसे बनावे। हरे रङ्गसे उन्नीस पादकी

त्रयोदशपदा वापी सिताऽन्यत् त्रिपदात्मकम् । रक्तं भद्रं पीतभद्रं तिर्यङ्नवपदात्मकम् ॥ ८ ॥
भद्रया शृंखला रक्ता द्विपदैव समन्ततः । अष्टमुद्रात्मकं रामतोभद्रं ते मयोदितम् ॥ ९ ॥
त्यक्त्वा पीतां शृखलां वा लिंगं कृष्ण त्रिपट्पदम् । खण्डवाप्यश्चतुष्पादजा भद्रं लोहितं रसैः ॥१०॥
तिर्यग्भद्रं पीतवर्णे निधिजं वेदजं तथा । लिङ्गोर्ध्वं मालिका रक्ता त्रिपदा वा त्रिलोचना॥११॥
अष्टमुद्रात्मकं चैतत्सलिंगं रामभद्रकम् । तियगूर्ध्वं त्रिपञ्चाशद्रेखाः सर्वं हि पूर्ववत् ॥१२॥
मुद्रिकापरिधीनां च षट्कं स्वेच्छं प्रपूरयेत् । चतुर्मुद्रात्मकं चैतत्सलिंगं वापि पूर्ववत् ॥१३॥
तिर्यगूर्ध्वं त्रिसप्ताश्च रेखाः कार्याः सुलोहिताः । तासु चतुर्षु पार्श्वेषु कार्याः परिधयः क्रमात् ॥१४॥
कृष्णरक्तशुक्लपीता द्वादशांते पदेषु च । कार्यः पुनश्चतुःपार्श्वे परिधिः पीतवर्णकः ॥१५॥
तदग्रे रक्तवर्णश्च परिधिर्हि समन्ततः । ततोऽष्टपदः परितः परिधिः पीतवर्णकः ॥१६॥
ततः षष्ठपदोर्ध्वं च पुनः पीताः प्रकारयेत् । आद्यस्थाने च सीमाख्याः पीता परिधोऽथवा ॥१७॥
रक्ता वेदमिताः कार्या द्वादशांते पदेषु च । कोणगृहे पूर्ववच्च मध्ये च मुद्रिकात्रयम् ॥१८॥
ततो द्वितीयस्थाने हि चंद्रः कृष्णा च शृंखला । सप्तपदा वल्लरा च चतुर्दशसु पादिका ॥१९॥
वल्ल्योर्नियोजनं कार्यं रक्त भद्रं हि षट्पदम् । त्रयोदशपदा कार्या वाप्यो वेदमिताः सिताः ॥२०॥
षड्विंशत्पदजाः कार्यास्त्रिशिवाः कृष्णवर्णकाः । वाप्यस्त्रयोदश लेख्या हि लिंगमध्ये पदेषु च ॥२१॥
रामेति रामनामानि मध्या कंकणवत्स्यपि । मूर्द्धा चतुष्पदो ज्ञेयः पादाभ्यां कण्ठ ईरितः ॥२२॥
चतुष्पदौ लिंगपार्श्वौ पादस्कन्धौ हि षट्पदौ । शिवनेत्रस्थले शुक्ले द्वे पदे रचयेद्धिया ॥२३॥
वाप्युपरिष्ठाच्छेषाणि यानि ह्यष्टपदानि च । तेषु रक्तानि त्राण्यादौ पञ्च पीतानि चोपरि ॥२४॥
मध्येऽथ सर्वतोभद्रे पूर्ववच्चैव नो परम् । सर्वलिङ्गरामभद्रत्रयमेकं मयेरितम् ॥२५॥

वल्लरी बनाये । लाल रङ्गसे नौ पादका भद्र बनावे ॥ ६ ॥ ७ ॥ सफेद रङ्गसे तेरह पादकी वापी बनावे । तीन पादसे लाल रङ्गका एक दूसरा भद्र बनावे । रङ्गसे नौ पादका एक तिरछा भद्र और बनावे ॥ ८ ॥ इन दोनों भद्रोंकी शृङ्खला लाल रङ्गकी और चारों तरफसे केवल दो पादकी रहेगी । इस प्रकार अष्टमुद्रात्मक रामतोभद्र मैने तुमको बतलाया ॥ ९ ॥ अथवा पीली शृंखलाको छोड़कर काले रङ्गसे नौ पादका लिङ्ग बनावे । चार पादकी एक खण्डवापी और छः पादसे लाल रङ्गका भद्र बनाये ॥ १० ॥ ऊपर बतलाये तिरछे और पीले भद्रमें सात या चार पादका भद्र बनावे । लिंगके ऊपर लाल रङ्गकी मालिका या तीन पादके शिव बनावे ॥ ११ ॥ यह अष्टमुद्रात्मक सलिङ्गरामतोभद्र है। पूर्ववत् सीधी और वेंड़ी तिरपन रेखायें खींचे ॥ १२ ॥ मुद्रा और परिधियोंके छः छः पादोंको अपने इच्छानुसार पहलेके समान पूर्ण करे। यह चतुर्मुद्रात्मक रामलिङ्गतोभद्र कहाता है। इसके सिवाय सब चीजें पूर्ववत् रहती हैं ॥ १३ ॥ लाल रङ्गसे सीधी और वेंड़ी तिहत्तर रेखाएं खीचे और क्रमशः चारों बगल परिधियाँ बना दे ॥ १४ ॥ बारह पादोंका काला, लाल तथा शुक्ल वर्णोंका भद्र बनावे। फिर उसके चारों ओर पीले वर्णकी परिधि बनाये ॥ १५ ॥ उसके आगे चारों ओरसे लाल रंगकी परिधि बनावे। फिर आठ पादका परिधि उसके चारों तरफ बनावे ॥ १६ ॥ ऊपरको ओर छः पादकी परिधि पीले रंगसे बनावे। आदिम स्थानमें सीमा नामकी परिधियाँ अथवा लाल रंगसे चार परिधियाँ बनावे। पहलेकी तरह कोणके घरोंमें तीन मुद्रायें बनावे ॥ १७ ॥ १८ ॥ इसके अनन्तर दूसरे स्थानमें चन्द्रमा बनाकर काले वर्णकी शृङ्खला बनावे। सात पादकी बल्लरी अथवा चौदह पादोंसे वल्लरियोंका निर्माण करे और लाल रङ्गसे छः पादका भद्र बनावे। सात पादसे सफेद रंगकी चार वापियाँ बनाये ॥ १९ ॥ २० ॥ तदनन्तर काले रंगसे छब्बीस पादोंके तीन शिव बनावे। लिंगके मध्यवाले कोष्ठकोंमें तेरह वापियाँ बनावे ॥ २१ ॥ फिर उनमें स्याहीसे कङ्कणके समान रामके नाम लिखे। इसमें चार पादसे मस्तक, दो पादसे कंठ, चार पादसे लिंग और पार्श्वभाग, छः पादसे स्कन्ध, तीन पादसे पैर बनावे। सफेद रंगके दो पाद बाकी रहने दे ॥ २२ ॥ २३ ॥ अथवा ऊपरसे जो आठ पाद बाकी बचे हैं,

एतद्द्वादशमुद्राभी रामलिंगात्मकं शुभम् । अतिरम्यं विचित्रं च रामतुष्टयर्थमीरितम् ॥२६॥
तिर्यगूर्ध्वमंकसप्त रेखाः सर्वं हि पूर्ववत् । चतुर्मुद्रात्मकं भद्रं यथा तद्वच्च मध्यमे ॥२७॥
आद्ये तिस्रः स्थले मुद्रा सीमापरिधयस्तथा । मध्ये त्रयस्त्रयो ज्ञेया ह्यन्ते द्वौ द्वौ शुभौ स्मृतौ॥२८॥
ततः षोडशमुद्राभी रामतोभद्रमीरितम् । अन्तर्गेहे कृते लिंगे सलिंगं षोडशात्मकम् ॥२९॥
तिर्यगूर्ध्वभूमिबाणवेदरेखाः ४५१ सुलोहिताः । अष्टमुद्रात्मकं मध्ये रामतोभद्रकं लिखेत् ॥३०॥
तियगूर्ध्वं परिधयः पीताश्चैव समन्ततः । द्वादशांते रचनीया बहिः परिधयोऽपि च ॥३१॥
पूर्ववत् कोणगेहानि मुद्राणां च क्रमोऽधुना । उक्ते द्वे मुद्रिके पूर्वं तदधो वेदमुद्रिकाः ॥३२॥
मध्ये सर्वत्र परिधिद्वयं नान्यस्थलं कदा । ततो रसमिता ह्यष्टविशेषः पञ्चमे स्थले ॥३३॥
षण्मुद्रिका वेद वाप्यश्चतुरशीतिपादकाः । वाप्यन्तर्गतकुण्डश्च कृष्णं द्वादशपादजम् ॥३४॥
वापीपार्श्वेषु भद्राणि चत्वारि लोहितानि च । पृथक् पृथक् पञ्चदशपदैर्ज्ञेयानि तानि हि ॥३५॥
षष्ठे स्थाने द्वादशैव मुद्रा ह्यग्रे चतुर्दश । षोडशाष्टादशवाथ विंशद्द्वाविंशमुद्रिकाः ॥३६॥
चतुर्विंशाथ षड्विंशा ह्यष्टाविंशत्सुमुद्रिकाः । त्रिंशद्द्वात्रिंशन्मुद्राणां स्थाने षोडश मुद्रिकाः ॥३७॥
वाप्यः षोडश विज्ञेया मध्ये वापीद्वयं स्मृतम् । अष्टोत्तरसहस्रं च रामतोभद्रमीरितम् ॥३८॥
तिर्यगूर्ध्वं हि वस्वंकबाणरेखाः सुलोहिताः । सर्वलिंगरामभद्रवत्क्रममेकं पुरेरितम् ॥३९॥
तदत्र मध्ये लेख्यं हि मध्यमुद्रास्थले शिवः । द्विसप्ततिपदैः कार्यः कृष्णवर्णः प्रकारयेत् ॥४०॥
षट्त्रिंशद्रामनामानि वै लेख्यानि च हस्ततः । कृष्णा तत्कर्णिका कार्या चतुर्भिश्च शिरः स्मृतम्॥४१॥
कटिश्चतुष्पदैः कार्या पार्श्वे द्वादशपादजे । स्कन्धा विंशत्पदैर्ज्ञेयो मूलं त्रिंशत्पदात्मकम् ॥४२॥

उनके आदिवाले तीन पादोंकी लाल रङ्गसे और पाँच पीले रङ्गसे रंगे ॥ २४ ॥ उनके बीचमें पूर्ववत् सर्वतोभद्रकी रचना करे। इस प्रकार मैंने तुमको तीन भद्रका रामतोभद्र बतलाया ॥ २५ ॥ यह द्वादश मुद्राओंसे युक्त लिङ्गात्मक रामतोभद्र अतिरम्य, विचित्र तथा रामको प्रसन्न करनेवाला है ॥ २६ ॥ साधी और बेंड़ी उन्नासी रेखायें पहलेकी तरह खींचे । ऊपर जैसे चतुर्मुद्रात्मक रामतोभद्र बतला आये हैं, उसी तरह बीचमें भद्रकी रचना करे ॥ २७ ॥ आदिके पादमें तीन मुद्रायें बनाकर पहलेके समान सीमाकी परिधि बनावे। बीचमें तीन तीन और अन्तमें भी तीन-तीन परिधियाँ देना शुभ है ॥ २८ ॥ यह षोडशमुद्रात्मक रामतोभद्र मैंने तुमको बतलाया। यदि इसके मध्यभागमें लिंगकी भी रचना कर दी जाय तो यही सलिङ्ग-रामतोभद्र हो जायगा ॥ २९ ॥ उनका क्रम इस प्रकार है—सीधी और तिरछी ४५१ रेखायें लाल रङ्गसे खींचे। उनके बीचमें अष्टमुद्रात्मक रामतोभद्र लिखे ॥ ३० ॥ इसके चारो ओर पीले रङ्गकी परिधियाँ रहेंगी। वे परिधियाँ द्वादश पादके अन्तरपर बनायी जायँगी ॥ ३१ ॥ पहलेकी तरह कोणवाली मुद्राओंका क्रम बतला रहे हैं। सबके ऊपर दो मुद्रायें और उनके नीचे चार मुद्रायें बनावे ॥ ३२ ॥ सब तरफ दो परिधियाँ बनावे। इसके बाद छः मुद्रायें बनावे। फिर आठ मुद्रायें बनावे। पञ्चम स्थानमें कुछ विशेषता है, सो बताते हैं ॥३३॥ इसमें छः मुद्रायें, चौरासी पादकी चार वापी और उस वापीके अन्तर्गत काले रङ्गसे बारह पादका कुंड बनावे ॥ ३४ ॥ वापीके आस-पास लाल रङ्गके चार भद्र बनेंगे। वे अलग-अलग पन्द्रह पादोंके बनाये जायँगे ॥३५॥ छठीं पंक्तिमें केवल बारह ही मुद्रायें रहेंगी । आगे चौदह, फिर बीस, बाईस, चौबीस, छब्बीस, अट्ठाइस, तीस, बत्तीस, ये मुद्रायें रहेंगी। और अपने स्थानपर पूर्ववत् वे सोलह मुद्रायें रहेंगी। इसमें वापी भी सोलह रहेंगी और मध्यमें दो वापियाँ रहेंगी । इस तरह मैंने तुम्हें अष्टोत्तरसहस्र रामतोभद्रका क्रम बतलाया ॥ ३६–३८ ॥ लाल रङ्गसे खड़ी बेड़ी और ५९८ रेखाएँ । जैसा कि मैंने पहले ही सर्वलिङ्गात्मक रामतोभद्रकी रचनाका प्रकार बतलाया है। उसी तरह यहाँ भी बनावे। उसके बीचमें मुद्राकी जगहपर बहत्तर पादके शिवकी रचना करे। इसका वर्ण लाल रहेगा। अथवा हाथसे ३६ रामनाम लिखे। काले रंगसे उनकी कर्णिका और चार पादसे सिर बनावे ॥ ३९–४१ ॥ चार पादकी कटि

षड्विंशपादजे ज्ञेये द्वे वापीशकले सिते। द्वाभ्यां शिवस्य वै नेत्रे सिते शेषपदानि हि ॥४३॥
पञ्च रक्तानि चत्वारि पीतानि शिवकर्णयोः।
स्थाने तृतीये मुद्राश्च तिस्रो द्वौ शंकरौ वरौ। स्थाने चतुर्थे मुद्राश्च चत्वारस्त्रिशिवाः स्मृताः ॥४४॥
एवमग्रे क्रमेणैव विशेषं कथयाम्यहम्। स्थाने चतुर्दशे मुद्राश्चतुर्दश शिवास्तथा ॥४५॥
पञ्चदशे हि विज्ञेया एवमग्रे धिया लिखेत्। कोणस्थगेहयोः कार्यौ द्वौ शिवौ च त्रिषट्पदौ ॥४६॥
अष्टमुद्रात्मके भद्रे सलिंगे च कृतौ यथा। मुद्राभ्यो लिंगवृद्धिर्हि कर्तव्या चरमावधि ॥४७॥
स्थाने द्वाविंशतितमे मुद्रा द्वादश चेरिताः। त्रयोविंशच्च लिङ्गानि बहिः परिधयस्ततः ॥४८॥
एवं युक्त्या रचनीयं शेष सर्वं पुरोदितम्।
अष्टोत्तरसहस्रं च रामलिंगात्मकं त्विदम्। रामासनं वरिष्ठं हि राघवस्यातितुष्टिदम् ॥४९॥
तिर्यगूर्ध्वं बाणशास्त्रभूमिरेखाश्च पूर्ववत्। अष्टमुद्रात्मकं मध्ये परिधयः समंततः ॥५०॥
तिर्यगूर्ध्वं द्वादशांते बहिः परिधयस्तथा। मध्ये सीमापरिधिद्वयं नान्यत्स्थले कदा ॥५१॥
नेत्रस्थाने वेदमुद्रा विशेषश्च तृतीयके। तिस्रो वाप्यस्त्रिमुद्राश्च ह्यष्टमे च चतुर्थके ॥५२॥
पञ्चमे दश मुद्राश्च शेषं सर्वं पुरोदितम्। अष्टोत्तरशतं रामतोभद्रं ते मयोदितम् ॥५३॥
तिर्यगूर्ध्वं त्रिपूर्णाक्षिरेखाः कार्याश्च पूर्ववत्। सर्वलिंग रामभद्रत्रयमेके पुरोदितम् ॥५४॥
तदत्र मध्ये लेख्यं हि मध्यमुद्रा स्थले सिता। वापी कार्या द्वादशांते परिधयश्च पूर्ववत् ॥५५॥
तिर्यगूर्ध्वं शुभा कार्या बहिः परिधयस्तथा। स्थाने तृतीया मुद्राश्च तिस्रो द्वौ शंकरौ वरौ ॥५६॥
चतुर्थे वेदमुद्राश्च त्रयस्ते शंकराः स्मृताः। पञ्चमे पंच मुद्राश्च चत्वारश्च हरा वराः ॥५७॥
षष्ठे स्थाने च षण्मुद्राः शिवाः सप्त प्रकीर्तिताः। कोणस्थगेहयोः कार्यौ द्वौ हरौ च त्रिषट्पदौ ॥५८॥

बनावे। बारह पादसे दोनों पार्श्व और बीस पादका स्कन्ध बनावे ॥ ४२ ॥ छब्बीस पादसे शिव तथा वापी बनावे और दोनोंसे शिवजीके सफेद नेत्र बनावे ॥ ४३ ॥ बाकी कोष्ठेकोंमेंसे पाँच कोष्ठक लाल रङ्गसे, चार पीले रङ्गसे दसवीं तथा तीसरी पंक्तिमें तीन मुद्रायें और दो शंकर बनावे। चौथी पंक्तिमें चार मुद्रायें और तीन शिव बनावे ॥ ४४ ॥ इस क्रमसे बनानेके अनन्तर इसमें जो कुछ विशेषतायें हैं, उन्हें बतला रहा हूँ। चौदहवीं पंक्तिमें चौदह मुद्रायें और चौदह ही शिव बनावे ॥ ४५ ॥ यही क्रम पन्द्रहवीं पंक्तिमें भी रहेगा। बाकी सब अपनी बुद्धिके अनुसार पूर्ण करे। दोनोंके कोनों घरोंमें नौ-नौ पादके दो शिव बनावे ॥ ४६ ॥ अष्टमुद्रात्मक रामतोभद्रको लिङ्गसंयुक्त कर लेनेके बाद अन्तपर्यन्त मुद्राके अनुसार लिङ्गकी वृद्धि करता जाय ॥ ४७ ॥ बाईसवीं पंक्तिमें बारह मुद्रायें बनावे। उसीमें तेईस लिङ्ग बनाकर बारहकी परिधियाँ भी बनावे ॥ ४८ ॥ इस प्रकार युक्तिके साथ इस रामतोभद्रको बनावे। शेष अंश पहलेके समान ही रहेगा। यह अष्टोत्तरसहस्रात्मक रामतोभद्र रामचन्द्रजीको प्रसन्न करनेवाला सर्वश्रेष्ठ आसन है ॥ ४९ ॥ सीधी तथा तिरछी १६५ रेखायें खींचे और अष्टमुद्रात्मक रचना करे। उसके बीचमें भद्र रहेगा। चारों ओरसे बारहवीं पंक्तिके बाद परिधियाँ रहेंगी। मध्यमें सीमा-परिधियें रहेंगी और किसी पंक्तिमें कुछ भी नहीं रहेगा ॥ ५० ॥ ५१ ॥ इसकी दूसरी पंक्तिमें चार मुद्रायें रहेंगी। तीसरी पंक्तिमें कुछ विशेषता है, सो बतलाते हैं। आठवीं और चौथी पंक्तिमें क्रमशः तीन वापी और तीन मुद्रायें बनावे ॥ ५२ ॥ पांचवीं पंक्तिमें दस मुद्रायें बनाकर बाक़ी पूर्ववत् रक्खे। यह मैंने तुमको अष्टोत्तरशत रामतोभद्र बतलाया ॥ ५३ ॥ सीधी और तीखी २०३ रेखाएँ खींचे। फिर पूर्वोक्त रीतिके अनुसार भद्रत्रयात्मक रामतोभद्रकी रचना करके उसीके समान समस्त लिंगोंकी स्थापना करे ॥ ५४ ॥ इसके मध्य पहली पंक्तिमें सफेद रंगका एक भद्र और सफेद रङ्गकी ही एक वापी बनावे। फिर पहलेकी तरह बारह पंक्तियोंके बाद परिधियां बनावे ॥ ५५ ॥ बाहरकी तीखी और सीधी परिधियाँ बनाकर तीसरी पंक्तिमें पांच मुद्रा और दो शिव बनावे ॥ ५६ ॥ चौथी पंक्तिमें चार मुद्रा और तीन शंकर बनावे। पाँचवीं पंक्तिमें पाँच मुद्रा और चार शिवकी रचना करे ॥ ५७ ॥

अष्टमुद्रात्मके भद्रे सलिंगे च कृतौ यथा । स्थाने च सप्तमे मुद्राः सप्त लिंगानि चाष्ट वै ॥५९॥
कोणस्थगृहयोः कार्यौ द्वौ हरौ च त्रिषट्पदौ । एतदष्टोत्तरशतं रामलिंगात्मकं स्मृतम् ॥६०॥
षष्ठे स्थाने कोणगेहेऽथवा शंभुं न कारयेत् । स्थाने तृतीये मुद्रैका वाप्यौ द्वौ द्वौ हरावपि ॥६१॥
एतच्छतात्मकं भद्रं रामलिङ्गात्मकं मया । अष्टोत्तरशते रामतोभद्रे वह्निसद्मनि ॥६२॥
षडेव मुद्राः कर्तव्या अंते स्थाने हि पंचमे । पंच मुद्राः पञ्च वाप्यः शतमुद्रात्मकं त्विदम् ॥६३॥
अष्टोत्तरसहस्रे श्रीरामतोभद्रके वरे । बाणस्थाने हि षड् वाप्यो वेदमुद्राः प्रकाश्येत् ॥६४॥
सहस्ररामसुद्राणां रामतोभद्रमीरितम् । अष्टोत्तरसहस्रे श्रीरामलिंगात्मकासने ॥६५॥
स्थाने चतुर्दशे कोणगेहे शंभुं न कारयेत् । मुद्रास्थाने च द्वौ वाप्यौ मध्ये क्वापि न कारयेत्॥६६॥
सहस्ररामसुद्राणां रामलिंगात्मकं त्विदम् । षोडश रामतोभद्रे चाद्यस्थाने विदिक्षु च ॥६७॥
मध्यमुद्रास्थले वाप्यस्तिस्रः कार्या महत्तमाः । त्रयोदशात्मकं चैतद्रामतोभद्रमीरितम् ॥६८॥
अथवाऽऽद्यस्थले मध्यमुद्रासु वेददिक्षु च । वेदवाप्योऽपरे स्थाने तिस्रश्चैव त्रिदिक्षु च ॥६९॥
वाप्यश्चैतद्विज्ञातव्यं नवमुद्रात्मकं शुभम् । रामतोभद्रकं रम्यं राघवस्यातिहर्षदम् ॥७०॥
तिर्यगूर्ध्वं बाणपूर्णभूमिरेखाश्च पूर्ववत् । त्रयोदशात्मके मध्ये स्थाने तु मुद्रिकात्रयम् ॥७१॥
मुद्रामध्ये हि द्वौ वाप्यौ परिधयोऽर्कमध्यमाः । द्वौ द्वौ सर्वत्र संयोज्यौ तत्त्वमुद्रात्मकं त्विदम् ॥७२॥
ज्ञातव्यं रामतोभद्रं तोषदं तत्त्ववादिनाम् । कोणगेहेषु लिङ्गानि नेत्रस्थाने हि पश्चिमे ॥७३॥
कार्यं वापीस्थले लिंगं पञ्चविंशतिमं वरम् । पञ्चविंशतिमुद्राभी रामलिंगात्मकं त्विदम् ॥७४॥
अथोच्यन्ते दैवतानि रामासनभवानि च । मध्येऽथ सर्वतोभद्रे समाराध्यात्र तत्सुरान् ॥७५॥
वह्नौ बहिस्तु लिंगेषु रुद्रं वापीषु वै नलम् । सुग्रीवं तत्र भद्रेषु तिर्यग् भद्रेषु वै गजम् ॥७६॥
पीतासु च शृङ्खलासु ह्यंगदं परिकल्पयेत् । पीतशृङ्खलाभावे तं तिर्यग्भद्र चतुष्पदे ॥७७॥

छठीं पंक्तिमें छः मुद्रा तथा सात शिव बनावे । कोनेवाले दो घरोंमें नौ नौ पादके शिव बनावे ॥ ५८ ॥ लिंगयुक्त अष्टमुद्रात्मक रामतोभद्र बना लेनेपर उसकी सातवीं पंक्तिमें सात मुद्रा और आठ लिंग बनावे ॥ ५९ ॥ कोनेवाले दोनों घरोंमें नौ-नौ पादोंके दो शिव बनावे। इस तरह अष्टोत्तर-शतलिंगात्मक रामतोभद्र बतलाया ॥ ६० ॥ छठीं पंक्ति अथवा कोणवाले घरमें शिवको न बनावे। तीसरी पंक्तिमें एक मुद्रा, दो वापी तथा दो शिवकी रचना करे ॥ ६१ ॥ यह शतलिंगात्मक रामतोभद्र बतलाया । पूर्वोक्त अष्टोत्तरसहस्र रामतोभद्रकी चौदहवीं पंक्तिमें केवल छः मुद्रा, अन्तवाली पाँचवीं पंक्तिमें पाँच मुद्रा और पाँच वापी बनावे तो इसे लोग शतमुद्रात्मक रामतोभद्र कहते हैं ॥ ६२ ॥ ६३ ॥ पूर्वोक्त अष्टोत्तरसहस्र रामतोभद्रकी पाँचवीं पंक्तिमें छः वापी और चार मुद्रायें बनावे तो इसे लोग सहस्र-रामतोभद्र कहते हैं । रामलिंगात्मक अष्टोत्तरसहस्र रामतोभद्रकी चौदहवीं पंक्तिके कोणवाले घरमें शिव-की रचना न करे और मुद्राके स्थानमें बीचों-बीच दो वापियें बना दे और कुछ न बनावे ॥ ६४ ॥ ६५ ॥ ६६ ॥ इसे लोग रामलिंगात्मक सहस्ररामतोभद्र कहते हैं । षोडश रामतोभद्रकी पहली पंक्तिकी तीनों दिशाओंमें मध्यमुद्राके स्थानमें बड़ी-बड़ी तीन वापियें बनाये तो लोग इसे त्रयोदशात्मक रामतोभद्र कहते हैं ॥६७॥६८॥ अथवा पहली पंक्तिके मध्यमें मुद्राओं तथा चारों ओर चार वापी बनावे और तीन दिशाओंमें तीन वापीकी रचना करे ॥ ६९ ॥ रामचन्द्रजीको प्रसन्न करनेवाला यह नौ मुद्रात्मक रामतोभद्र है ॥ ७० ॥ बेड़ी और सीधी पन्द्रह रेखायें पूर्ववत् त्रयोदशभद्रात्मक रामतोभद्रके समान खींचे । उसके बीचमें तीन मुद्रायें बनावे ॥ ७१ ॥ मुद्राके बीचमें दो वापियोंकी रचना करे और मध्यमें सूर्य बनाकर परिधि बनावे । दो-दो पादकी परिधियाँ बनावे। इसे लोग तत्त्वमुद्रात्मक रामतोभद्र कहते हैं ॥ ७२॥ यह रामतोभद्र तत्त्ववादियोंके लिए आनन्ददायक है । कोण-के घरोंमें लोकोंकी रचना करे । पश्चिमकी ओर नेत्रके स्थानमें पच्चीस लिंग बनावे । यह पञ्चविंशतिमुद्रात्मक रामतोभद्र कहलाता है ॥७३॥७४॥ अब रामासनके देवताओंको बतलाते हैं। सर्वतोभद्रके बीच तथा सर्वतोभद्रके

कृष्णवर्णशृङ्खलासु समावाह्य विभीषणम् । बल्लीषु च जांबवन्तं मैंदं खंडेंदुषु स्मरेत् ॥७८॥
द्विविधं परिधिष्वेव मुद्रायां राघवं श्रिया । मुद्रायाः पश्चिमे चाथ दक्षिणे ह्युत्तरं पुरः ॥७९॥
लक्ष्मणं भरतं चापि शत्रुघ्नं वायुनन्दनम् । पूज्यपूजकयोर्मध्ये ज्ञेया पूर्वदिगत्र हि ॥८०॥
सितापरिधिष्वत्रैव सुषेणं परिचिन्तयेत् । सर्वत्र पदमात्रेषु चिंतयेत्सर्ववानरान् ॥८१॥
बहिस्त्रिपरिधिष्वेव त्रिवेणीं परिचिंतयेत् । चतुर्दिक्पालाभिमुखा हरा रुद्राश्च वापिकाः ॥८२॥
कर्तव्या वात्माभिमुखाः कार्या वा पद्मसंमुखाः। चतुर्दिक्पालाभिमुखा एवं भद्रेषु मेऽकथि ॥८३॥
पक्षत्रये वरिष्ठास्ता वदंतीत्थं मुनीश्वराः । पूर्वोक्तभद्रे देवान् हि संपूज्यादौ ततः परम् ॥८४॥
समारभेद्राघवस्य श्रेष्ठां पूजां सविस्तराम् । पद्मस्य कर्णिकायां च ससीतं राघवं न्यसेत् ॥८५॥
अष्टपद्मदलेष्वेव तस्यावरणदेवताः । पूजयेदिति सर्वत्र बुधैस्तु परिकथ्यते ॥८६॥
पद्मे सङ्कोचमालक्ष्य प्रकारान्तरमुच्यते । सर्वतोभद्रकमले धान्यराशौ घटं न्यसेत् ॥८७॥
जलपूर्णं च तस्यास्ये केतकीपत्रपूरिते । ताम्रपात्रं विस्तृतं च न्यस्य तंडुलपूरितम् ॥८८॥
तत्र वस्त्रे सावरणं रामचन्द्रं प्रपूजयेत् । शैली दारुमयी लौही लेप्या लेख्या च सैकती ॥८९॥
मनोमयी मणिमयी प्रतिमाऽष्टविधा स्मृता । सर्वेषु रामभद्रेषु मुद्रापूज्यो रघूत्तमः ॥९०॥
पूजकश्च शिवो ज्ञेयो भद्राद्या रामपार्षदाः । श्रीरामलिंगतोभद्रमत एवोच्यते बुधैः ॥९१॥
एवं नानाविधा भेदा बहवः संति भो द्विज । श्रीमद्रामतोभद्राणां येषां संख्या न विद्यते ॥९२॥
मया भेदाः कियंतोऽत्र तवाग्रे विनिवेदिताः । नरैर्बुद्ध्या प्रकर्तव्याः पूजनार्थं रमापतेः ॥९३॥
हेमतंतुभवं चैवं कार्यमासनमुत्तमम् । राघवार्थं महच्छ्रेष्ठं रौप्यतन्तुभवं तु वा ॥९४॥

देवताओंका आवाहन करे। इसके बाद बाहरके लिंगोंमें रुद्रका, वापियोंमें नलका, भद्रोंमें सुग्रीवका, तिरछे भद्रोंमें गोका ॥ ७५ ॥ ७६ ॥ और पीले रङ्गकी शृङ्खलाओंमें अङ्गदका आवाहन करे। आदि भद्रकमें पीत शृङ्खलाका अभाव हो तो तिरछे भद्रमें अङ्गदका आवाहन करे ॥ ७७ ॥ कृष्णवर्णकी श्रृंखलाओंमें विभीषणका, बल्लियोंमें जाम्बवान्का और खण्डेन्दुओंमें मैन्दका आवाहन करे ॥ ७८ ॥ परिधिके भीतरवाली मुद्रामें सीताके साथ-साथ रामका आवाहन करे। मुद्राके पश्चिम, दक्षिण, उत्तर तथा पूर्वकी ओर क्रमशः लक्ष्मण भरत, शत्रुघ्न और हनुमान्जीका आवाहन करे। यहाँ पूज्य-पूज्यक दोनोंके लिए पूर्वदिशा उत्तम मानी गयी है ॥ ७९ ॥ ८० ॥ सफेद रङ्गकी परिधियोंमें सुषेणका तथा बाकी सब स्थानोंमें सारे वानरोंका आवाहन करना चाहिए। बाहरकी तीनों परिधियोंमें त्रिवेणीका आवाहन करे। हर, रुद्र और वापिकाओंको चारों दिक्पालोंके अभिमुख कर दे ॥ ८१ ॥ ८२ ॥ यह विद्या बतानेवाले आचार्यने मुझे बतलाया है कि प्रत्येक भद्रमें हर, रुद्र तथा वापिकाओंको अपने सम्मुख करे या पद्मके आकारका बना दे अथवा दिक्पालोंके अभिमुख कर देना चाहिए ॥ ८३ ॥ मुनिगण ऐसा कहते हैं कि इन तीनों पक्षोंमें सर्वश्रेष्ठ पक्ष यह है कि पूर्वोक्त भद्रमें देवता आदिकोंकी पूजा करके रामचन्द्रजीका विस्तृत पूजन प्रारम्भ करे। पद्मकी कर्णिकामें सीताके सहित रामचन्द्रजीका न्यास करे। आठ दलवाले कमलमें उनके आवरण-देवताओंका पूजन करना चाहिए। पण्डितोंका कथन है कि यह नियम सर्वत्रके लिए है ॥ ८४–८६ ॥ यदि कमलमें कोई सङ्कोच दीखे तो उसके लिए प्रकारान्तर बतलाते हैं। सर्वतोभद्रके कमलमें धान्यकी राशिपर घट स्थापन करे ॥ ८७ ॥ केतकीके पत्रसे भरे हुए घटके मुँहपर चावलसे भरा एक बड़ा-सा तामेका बर्तन रखे। उसके वस्त्रपर आवरणदेवताके साथ श्रीरामचन्द्रजीकी पूजा करे। हर-एक भद्रमें पत्थरकी, लकड़ी, लोहेकी, चूने-ईंटकी, बालूकी, रङ्गसे रङ्गकर बनायी हुई, मनसे कल्पित अथवा मणिमयी इन आठ प्रकारोंमें जो रुचे, उसकी प्रतिमा बनाकर श्रीरामका पूजन करना चाहिए ॥ ८८ ॥ ८९ ॥ ९० ॥ शिवजी पूजक हैं और भद्र आदि रामजीके पार्षद हैं। इसीलिये विद्वान् लोग इसे श्रीरामलिंगतोभद्र कहते हैं ॥ ९१ ॥ हे द्विज ! इस तरह श्रीरामतोभद्रके बहुतसे भेद हैं। जिनकी कोई संख्या ही नहीं है ॥ ९२ ॥ यह मैंने उनमेंसे कुछ भेद बतलाये हैं। लोगोंको उचित है कि रामकी पूजाके लिए बुद्धि

अथवा पट्टकूलस्य चैव कार्यं वरासनम् । अथवा लेखयेत्पत्रे सर्वाभावे द्विजोत्तमैः ॥९५॥
भूर्जपत्रे विलिखितं विशेषात्सिद्धिदं नृणाम् । वा वस्त्रोपरि लेख्यं वा कर्तव्यं चित्रतन्तुभिः ॥९६॥
विनासनेन या पूजा सा पूजा निष्फला भवेत् । रामभद्रासने पूजा सा पूजाऽतिफलप्रदा ॥९७॥
यद्यद्रामपरं कर्म तत्तच्च द्विजपुंगवैः । रामासनस्थितं रामं पुरस्कृत्य समारभेत् ॥९८॥
रामभद्रासनैर्हीनं यत्कर्म तच्च निष्फलम् । तस्मादेवं स्वमेवैतत्कर्तव्यं रामपूजने ॥९९॥
अष्टोत्तरसहस्रं च रामलिंगात्मकं हि यत् । आसनं तद्वरिष्ठं हि राघवस्यातितोषदम् ॥१००॥
तदधो रामतोभद्रमष्टोत्तरसहस्रकम् । तदधो रामलिंगाख्यमष्टोत्तरशतात्मकम् ॥१०१॥
तदधो रामतोभद्रमष्टोत्तरशतात्मकम् । तदधः पञ्चविंशच्छ्रीरामभद्रासनं शुभम् ॥१०२॥
तदधो रामतोभद्र षोडशात्मकमीरितम् । त्रयोदशात्मकं रामतोभद्र तदधः स्मृतम् ॥१०३॥
द्वादशं च नवाख्यं च ह्यष्टमुद्रात्मकं तथा । चतुर्मुद्रात्मकं वापि पूर्वतश्चापरं ह्यधः ॥१०४॥
एवं क्रमेण ज्ञेयानि रामभद्रासनानि हि । श्रेष्ठासनेषु या पूजा तस्याः श्रेष्ठं फलं स्मृतम् ॥१०५॥
लघ्वासनेषु या पूजा तादृशं तत्फलं स्मृतम् । एवं ज्ञात्वा फलं बुद्ध्या श्रेष्ठमेवासनं शनैः ॥१०६॥
यत्नेनैव प्रकर्तव्यं रामोपासनं मानवैः । प्रतिवर्षं नवीनं च कार्यमासनमादरात् ॥१०७॥
एकस्मिन्ह्यासने पूजा न वर्षादूर्ध्वतः शुभा । एवं शिष्यासनानां च भेदाः पृष्टास्त्वया पुरा ॥१०८॥
तवाग्रे हि मयाख्याताः श्रीरामस्यातितोषदाः । त्वत्पृष्टरामतोभद्रवर्णनस्य प्रसङ्गतः ॥१०९॥
स्मारिता रामचंद्रस्य किंचिल्लीला मयाऽद्य हि । वदाम्यहं तवाग्रे तां त्वं शृणुष्व द्विजोत्तम ॥११०॥
प्रत्यब्दं श्रावणे मासे गुरुवाक्याद्रघूत्तमः । चत्वारिंशद्दङ्कमितसुवर्णस्य पृथक् पृथक् ॥१११॥

लगाकर भद्रोंमें उनकी रचना करें ॥ ९३ ॥ उपासकको चाहिए कि सुवर्णके तारोंका एक सुन्दर आसन रामचन्द्रजीके लिए बनवावे। यदि सुवर्णके तारका न हो सके तो चाँदीके तारका हो बनवा ले। वह भी न बन पड़े तो रेशमके सूतका अच्छा-सा आसन बनवावे। यदि इनमेंसे कोई भी न बनवा सके तो किसी पत्तेपर आसन लिखवा ले ॥ ९४ ॥ ९५ ॥ भूर्जपत्रपर लिखा हुआ आसन विशेष सिद्धिदायक होता है। इसके अतिरिक्त कपड़ेपर लिखवा ले या रङ्गीन सूतसे बुनवा ले ॥ ९६ ॥ विना आसनके जो पूजा की जाती है, वह व्यर्थ होती है और रामभद्रासनके ऊपर जो पूजाकी जाती है, वह अतिशय फलदायिनी हुआ करती है ॥ ९७ ॥ द्विजश्रेष्ठ ब्राह्मणोंको चाहिए कि श्रीरामचन्द्रके प्रीत्यर्थं जो-जो कार्य करना हो, वह रामको सामने करके उनके आगे ही करे ॥ ९८ ॥ रामभद्रासनसे रहित जो काम होता है, वह निष्फल होता है। इससे रामके पूजनमें आसनकी रचना अवश्य करे ॥ ९९ ॥ जो अष्टोत्तरसहस्र रामलिंगात्मक भद्र है, वह रामचन्द्रजीको अत्यन्त प्रसन्न करनेवाला सर्वश्रेष्ठ आसन है ॥ १०० ॥ उससे कुछ मध्यम अष्टोत्तर-सहस्र रामतोभद्र है। उससे भी मध्यम अष्टोत्तरशत रामलिङ्गात्मक भद्र है ॥ १०१ ॥ उससे मध्यम अष्टोत्तरशत रामतोभद्र तथा उससे मध्यम पञ्चविंशत् श्रीरामभद्रासन है ॥ १०२ ॥ उससे मध्यम षोडशात्मक रामतोभद्र है। उससे मध्यम त्रयोदशात्मक रामतोभद्र है ॥ १०३ ॥ उससे भी न्यून क्रमशः द्वादशात्मक, नवात्मक, अष्टमुद्रात्मक, चतुर्मुद्रात्मक भद्र है ॥ १०४ ॥ इस क्रमसे रामचन्द्रके आसनोंको जानना चाहिए। जितने ही श्रेष्ठ आसनपर पूजा की जाती है, वह उतनी ही अधिक फलवती हुआ करती है ॥ १०५ ॥ जितने ही साधारण आसनपर पूजा की जाती है, उतना ही साधारण फल भी प्राप्त होता है। ऐसा समझकर रामकी उपासना करनेवालोंको चाहिए कि बुद्धि लगाकर धीरे-धीरे श्रेष्ठ आसनकी ही रचना करें और प्रतिवर्ष पूजनके समय नयी-नयी किस्मके आसन बनाया करें ॥ १०६ ॥ १०७ ॥ एक किस्मके आसनपर एक वर्षसे अधिक समयतक पूजन करना अच्छा नहीं होता। हे शिष्य ! तुमने पहले हमसे आसनोंका भेद पूछा था। सो रामको प्रसन्न करनेवाले उन भेदोंको मैंने तुम्हारे सामने कह सुनाया। हाँ, तुम्हारे पूछे हुए रामतोभद्रके प्रसङ्गवश मुझे रामचन्द्रजीकी एक लीला याद आ गयी है। हे द्विजोत्तम ! उसे मैं

प्रत्यहं लक्षलिंगानि कृत्वा पत्न्या युतोऽर्चयेत् । अष्टोत्तरसहस्रैश्च लिंगैर्यद्भद्रमुत्तमम् ॥११२॥
तच्छंभोरासनं ज्ञेयं महाप्रीतिविवर्द्धनम् । तन्मध्यगतकमले चैकं लिंगं निवेश्य च ॥११३॥
षोडशैरुपचारैस्तत्संपूज्य स रघूत्तमः । हेममुद्रां दक्षिणार्थं दत्त्वा संपूज्य भूसुरम् ॥११४॥
तस्मै लिंगं सासनं तद्दौ प्रत्येकमादरात् । एवं स कोटिलिंगानि त्रयस्त्रिंशद्दिनैर्ददौ ॥११५॥
एवं व्रतं श्रावणे हि प्रतिवर्षेऽकरोद्विभुः । दिव्यैराभरणैर्वस्त्रैर्द्विजा रामार्पितैर्बभुः ॥११६॥
हेमतंतुसमुद्भूतान्यकरोदासनानि सः । उद्यापनं च हवनं चकार रघुनंदनः ॥११७॥

विष्णुदास उवाच

अष्टोत्तरसहस्रैर्यल्लिङ्गतोभद्रमीरितम् । कथं कार्यं तस्य भेदा विस्तराद्वक्तुमर्हसि ॥११८॥
हेमतंतुसमुद्भूतमकरोदासनं विभुः । स हैमान्यपि लिंगानि चाकरोच्च वराणि हि ॥११९॥
दिव्यैराभरणैर्वस्त्रैरकरोत्स द्विजार्चनम् । अशक्तौ तद्व्रतं सिद्ध्येत्कथं तद्वक्तुमर्हसि ॥१२०॥

श्रीरामदास उवाच

शक्तौ च पट्टकूलस्य कंबलस्याथवा नरैः । कार्यं तदथवा वस्त्रे तंतुभिश्च प्रकारयेत् ॥१२१॥
लेख्यं वस्त्रेऽथवा रंगैर्लेख्यं पत्रादिसत्स्थले । अशक्तौ रजतान्येव लिंगानि ताम्रजानि च ॥१२२॥
किंवा पारदभूतानि स्फाटिकान्यौपलानि वा । दारुजानि चंदनैर्वा गोमयेन मृदाऽपि वा ॥१२३॥
कृत्वा लिंगानि पूज्यानि स्वशक्त्या पूजयेद्द्विजान् । इदानीं लिंगतोभद्ररचनां ते वदाम्यहम् ॥१२४॥
तिर्यगूर्ध्वं रक्तरेखा द्वे शतेऽष्टादश स्मृताः । तासां पदानामेकेन पूर्णसंख्या भवेदिह ॥१२५॥
पीताः परिधयः कार्याः षट्पदान्तेऽत्र सर्वतः । युगेंदुसंमितास्तेषु लिंगादि रचयेद्धिया ॥१२६॥
चतुष्कोणेषु शशिनस्त्रिपदैः परिकल्पयेत् । तदग्रे शृङ्खला पञ्चपादैः कार्या च सर्वतः ॥१२७॥

तुम्हारे आगे कह रहा हूँ, सुनो ॥१०८॥१०९॥११०॥ गुरु वसिष्ठके आज्ञानुसार रामचन्द्रजी प्रत्येक श्रावणमासमें चौवालिस टंक सुवर्णसे प्रतिदिन एक-एक लाख शिवलिंग बनाकर अपनी स्त्रीके साथ उनका पूजन करते थे। अष्टोत्तरसहस्रलिंगात्मक जो भद्र है, वह उत्तम माना जाता है। वही श्रीशिवजीका प्रीतिवर्द्धक आसन है। उसके मध्य विद्यमान कमलमें एक लिंग रखकर वे उसका षोडशोपचारसे पूजन करते और दक्षिणाके निमित्त ब्राह्मणोंको सुवर्णमयी मुद्राका दान दिया करते थे। वह लिंग तथा आसन भी उन्हीं ब्राह्मणोंको मिला करता था। इस तरह श्रीरामचन्द्रजी तैंतीस दिनोंमें एक करोड़ शिवलिंग बनवाकर दान दिया करते थे ॥१११-११५॥ वे सर्वव्यापक भगवान् प्रतिवर्ष श्रावणमासमें इस व्रतका पालन करते थे। उसी समय विविध प्रकारके दिव्य आभरण पा-पाकर रामराज्यके ब्राह्मण सुशोभित होते थे ॥ ११६ ॥ उस समय रामचन्द्रजीने सुवर्णतन्तुका ही आसन बनवाया और उद्यापन तथा हवन कराया ॥ ११७ ॥ विष्णुदासने कहा—अभी आपने जो दो अष्टोत्तरसहस्र लिंगतोभद्र बतलाया है, उसके भेद किस प्रकार करने चाहिये। सो विस्तारपूर्वक आप हमें बतलाइये ॥ ११८ ॥ मैंने माना कि रामचन्द्रजी सुवर्णतन्तुका आसन और सुवर्णके लिंग बनवाते थे। दिव्य वस्त्रों और आभूषणोंसे ब्राह्मणोंकी पूजा करते थे। लेकिन जिसमें उतनी सामर्थ्य नहीं है, उसका व्रत किस प्रकार सिद्ध हो, यह भी हमें बतलाइये ॥ ११९ ॥ १२० ॥ श्रीरामदासने कहा कि यदि न सामर्थ्य हो तो रेशमके या कम्बलके सूतसे अथवा साधारण कपड़ेपर आसनकी बुनाई करा ले ॥ १२१ ॥ अथवा पत्र आदिपर रङ्गसे लिखवा ले। यदि सुवर्णमय लिंग बनवानेकी शक्ति न हो तो चाँदी, ताँबा, पारा, स्फटिकमणि, लकड़ी, चन्दन, गोबर अथवा मिट्टीका लिंग बनाकर पूजन करे। जितनी अपनी सामर्थ्य हो, उतने ही ब्राह्मणोंका पूजन करे। अब मैं तुम्हें लिंगतोभद्रकी रचनाका प्रकार बतला रहा हूँ ॥ १२२-१२४ ॥ वेंड़ी और खड़ी २१८ रेखाएँ लाल रङ्गसे खींचे। इस प्रकार रेखा खींचनेसे पूर्वोक्त २१८ कोष्ठक बन जायेंगे ॥ १२५ ॥ इस भद्रमें छः छः पादवाली पीले रङ्गकी परिधियाँ बनेंगी। उनमें अपनी बुद्धिसे चौदह लिंग आदि बनावे ॥ १२६ ॥ उसके चारों कोनोंमें तीन-तीन पादके चन्द्रमा बनावे। उसके आगे चारों तरफ पाँच पादकी शृंखलायें बनायी जायेंगी

एकादशपदा वल्ली वापी त्रिदशपादिका । अष्टादशपदैः शम्भुः सर्वत्रैवं लिखेत्क्रमात् ॥१२८॥
तत्र प्रथमपरिधेरर्वाक् लिंगानि योजयेत् । त्रिरेकादशसंख्यानि वाप्यस्त्वेवाधिकास्ततः ॥१२९॥
भद्रेऽर्कार्कपदैः कार्या द्वितीये लिंगसंततिः । एकत्रिंशन्मिता कार्या भद्रे नवनवात्मके ॥१३०॥
तृतीये नवनेत्रेशसंख्या भद्रे तु षट् पदे । तुर्ये षड्विंशलिंगानि भद्रेऽर्कार्कपदे मते ॥१३१॥
पञ्चमे तुर्यनेत्रेशा भद्रे नवनवात्मके । षष्ठे द्वादशलिंगानि भद्रे षट् षट् पदे स्मृते ॥१३२॥
सप्तमे लिंगविततिरेकोनविंशत्संख्यकाः । भद्रेऽर्कार्कपदे ज्ञेयेऽष्टमे सप्तदशेश्वराः ॥१३३॥
भद्रे नवनवपदे नवमे मनुशंकराः । भद्रे शशिकलासंख्ये दशमेऽर्कमिताः शिवाः ॥१३४॥
भद्रेऽर्कार्कपदे ज्ञेये तथा त्वेकादशे दश । शिवा नव नवपदे भद्रे ज्ञेये मनोरमे ॥१३५॥
द्वादशे सप्त लिंगानि भद्रे चन्द्रकलात्मके । त्रयोदशे पञ्च हरा भद्रेऽर्कार्कपदे मते ॥१३६॥
चतुर्दशे त्रिलिंगानि भद्रे नवनवात्मके । चरमे ततस्तु रचयेत्सर्वतोभद्रमुत्तमम् ॥१३७॥
खंडेंदुस्त्रिपदः कोणे शृंखला षट्पदात्मिका । त्रयोदशपदा वल्ली वापी तत्त्वमितिर्मता ॥१३८॥
भद्रे षोडश षोडशपदेऽन्तः परिधिर्भवेत् । तदन्तरे पञ्च पञ्च पदैः पद्मं समुद्धरेत् ॥१३९॥
विचित्रं चित्रवर्णं च श्वेतेन्दुः शृङ्खलाऽसिता । वापी शुक्लाऽसितः शंभू रक्तं भद्रे प्रकल्पयेत् ॥१४०॥
नीला वल्लीश्वरस्कंधकोष्ठाश्चित्रा यथारुचि । यत्र यत्र पदानीह शेषभूतानि तानि तु ॥१४१॥
यथायोग्यं धिया तत्र शृङ्खलार्थे नियोजयेत् । शुक्लरक्तकृष्णवर्णा ह्येते परिधयस्त्रयः ॥१४२॥
वा पूर्वप्रीतपरिधिं दत्त्वा देवालयस्ततः । एतेषां परिधीनां वै पदान्यष्टाधिकानि हि ॥१४३॥
नोक्तानि पूर्वसंख्याया ज्ञात्वेत्थं वृद्धिमाचरेत् । अग्रेऽप्येवं हि बोद्धव्यं परिधीनां चतुष्टये ॥१४४॥
एतदष्टोत्तरदशशतं भद्रं लिंगोद्भवं स्मृतम् । एकस्त्वयं प्रकारो हि प्रकारांतरमुच्यते ॥१४५॥

॥ १२७ ॥ ग्यारह पादकी वल्ली और तेरह पादकी वापी बनायी जायगी। अट्ठारह पादके शंभु बनाये जायँगे। इसी क्रमसे लिखे ॥ १२८ ॥ उसमें पहली परिधिके पहले लिंगोंकी योजना करे। इसके अनन्तर चौंतीस वापियाँ बनावे ॥ १२९ ॥ तत्पश्चात् भद्रमें बारह बारह पादके ३१ लिंग बनावे। फिर तीसरी पंक्तिमें नौ-नौ पादके २९ भद्र बनाये। फिर छः पादके दो भद्रोंकी रचना करे। चौथी पंक्तिमें बारह-बारह पादके २६ लिंग बनावे ॥ १३० ॥ १३१ ॥ पाँचवीं पंक्तिमें नौ-नौ पादके २४ शिव बनावे। छठीं पंक्तिमें छ-छः पादके भद्रोंमें १२ लिंगोंकी रचना करे ॥ १३२ ॥ सातवीं पंक्तिमें बारह पादवाली १९ लिंगोंकी श्रेणी बनावे। आठवीं पंक्तिके नौ पादके भद्रोंमें १७ शिव बनावे। नवीं पंक्तिके सोलह-सोलह पादात्मक भद्रोंमें १४ शङ्कर बनावे। दसवीं पंक्तिके बारह-बारह पादके भद्रोंमें बारह शिव बनावे ॥ १३३ ॥ १३४ ॥ ग्याहवीं पंक्तिके नौ-नौ पादात्मक भद्रोंमें दस शिवकी रचना करे ॥ १३५ ॥ बारहवीं पंक्तिके सोलह-सोलह पादात्मक भद्रोमें सात लिंगोंकी रचना करे। तेरहवीं पंक्तिके बारह-बारह पादात्मक भद्रोंमें पाँच शिव बनावे ॥१३६॥ चौदहवीं पंक्तिके नौ-नौ पादात्मक भद्रोंमें तीन लिंगोंकी रचना करे। अन्तमें उत्तम सर्वतोभद्र बनावे ॥ १३७ ॥ कोणभागमें तीन पादका एक खंडेन्दु और छः पादकी शृंखला बनावे। तेरह पादकी वल्ली और पच्चीस कोष्ठककी वापी बनावे ॥ १३८ ॥ भद्रमें सोलह-सोलह पादकी परिधि बनावे। इसके बाद पाँच-पाँच पादका कमल बनावे ॥ १३९ ॥ उस कमलका रङ्ग चित्र-विचित्र रहेगा। दल श्वेतवर्ण और शृङ्खला काले वर्णकी रहेगी। वापी सफेद, शिव शुक्ल, लाल भद्र, नील वल्ली रहेगी और वल्ली तथा शिवके स्कन्धवाले कोष्ठक अपने इच्छानुसार चित्र-विचित्र वर्णके बनाये। इससे भी जो पाद शेष बचें, वे अपने इच्छानुसार रङ्गसे रङ्गे जाकर शृंखलानिर्माणके काममें आ जायँगे। अन्तकी तीन परिधियाँ सफेद, लाल और काले वर्णकी रहेंगी ॥१४०–१४२॥ अथवा पहली परिधि पीले रङ्गकी बनाकर तीन परिधियाँ और बनावे। इन सब परिधियोंमें आठ पाद अधिक रहा करेंगे ॥ १४३ ॥ किन्तु ये पाद पूर्वसंख्या-की गणना करते समय नहीं गिनाये हैं। ऐसा समझकर वृद्धि करे। इसके आगे चारों परिधियोंमें भी यही क्रम रहेगा ॥ १४४ ॥ यही अष्टोत्तरसहस्र रामतोभद्रका क्रम है। यह एक प्रकार हुआ। अब दूसरा प्रकार

द्वे शते सप्त पञ्चाशद्रेखाः पूर्वोत्तराः स्मृताः । पीताः परिधयः कार्याः पट्पदांतेऽत्र सर्वतः ॥१४६॥
सप्तेंदुसंख्या रचयेल्लिङ्गानां योजयेद्धिया । सर्वतस्तन्मिता चाद्या नवनेवमिता परा ॥१४७॥
सप्ताक्षिसंमिता त्वन्या वक्ष्यमाणानि धारय । बाणाक्षाग्निनयना नेत्रनेत्राथ विंशतिः ॥१४८॥
गजेंदुगिरिचन्द्रा च बाणेंदुहुतभुक् शशी । रुद्रा दशान्यष्टमिता षट् चत्वारि त्रिचन्द्रमाः ॥१४९॥
प्रतिपंक्तिमेकवापी लिंगेभ्यस्त्वधिका भवेत् । चतुर्विंशत्पदं लिंगं वापी वसुविदुपादिका ॥१५०॥
भद्रसंख्या क्रमेणैव जानीयाद्वक्ष्यमाणतः । पूर्वपंक्तौ च पञ्चम्यां नवम्यां हि तथैव च ॥१५१॥
त्रयोदश सप्तदशयोर्भद्रं विंशपदैः स्मृतम् । द्वितीयायां च षष्ठ्यां च दशम्यां च तनौ तथा ॥१५२॥
चतुर्दश्यां स्मृतं भद्रं पञ्चविंशपदैः स्मृतम् । तृतीयायां च सप्तम्यामकादश्यां तथैव च ॥१५३॥
पञ्चदश्यां हि पंक्तौ च भद्रं त्रिंशपदात्मकम् । षड्त्रिंशद्भिः पदैर्भद्रं चतुर्थ्यां च ततः स्मृतम् ॥१५४॥
वस्वर्कषोडशीष्वेव भद्र षोडशपादजम् । सर्वकोणेषु त्रिपदश्चन्द्रः शृङ्खलिकापदैः ॥१५५॥
पञ्चभिरेकादशभिर्लता कार्या ततोऽन्तरे । सर्वतोभद्रकं रम्यं चतुर्विंशैस्तु वापिका ॥१५६॥
भद्रं नवपदं सर्वपार्श्वेष्वेवं प्रकल्पयेत् । परिध्यन्तर्भवेत्पद्मं रक्तं चित्रं यथारुचि ॥१५७॥
कृष्णं लिंगं शृङ्खलाऽपि भद्र रक्तं च वापिका । श्वेतः शशी सितो ज्ञेयस्तथा नीला स्मृता लता ॥१५८॥
शिष्टानीह पदान्येव भद्राद्यर्थं नियोजयेत् । पीतशुक्लकृष्णरक्ता ह्यन्ते परिधयः स्मृताः ॥१५९॥
अष्टोत्तरसहस्राख्यं लिंगतोभद्रकं त्विदम् । एवं विकल्पतः प्रोक्ता रचना द्विविधा मया ॥१६०॥
अथान्यच्चे प्रवक्ष्यामि प्रकारांतरमुत्तमम् । सैकविंशच्छतैर्लिंगैर्लिङ्गतोभद्रमादरात् ॥१६१॥
अष्टाष्टरेखाः प्राग् याम्याः पश्चिमोत्तरदिक्षु च । सप्ताशीतिपदेष्वेव लिङ्गानां पञ्च पंक्तयः ॥१६२॥
तासु प्राथमिकायाश्च विस्तारः कथ्यतेऽधुना । पृथक् कोणेषु त्रिपदैः शशी श्वेतस्तदग्रतः ॥१६३॥

बतलाते हैं ॥ १४५ ॥ पूर्व और उत्तरके क्रमसे २५८ रेखायें खींचे । छः-छः पादके अन्तमें चारों ओर परिधियाँ बनावे ॥ १४६ ॥ अपनी बुद्धिके अनुसार १७ लिंग बनावे । चारों ओर १७ लिंग रहेंगे, किन्तु आदिकी पंक्ति में २९ लिंग रहेंगे ॥ १४७ ॥ इसके आगे चलकर २७ लिंग बतलानेवाले हैं । सो भी समझ लो । इसके आगे २५, फिर २३, फिर २२, फिर २०, इसके बाद १७, फिर १८, फिर १३, ग्यारह, दस, आठ, छः, चार, तीन और एक लिंग रहेंगे ॥ १४८ ॥ १४९ ॥ प्रत्येक पंक्तिमें लिंगकी अपेक्षा एक वापी अधिक रहेगी । चौबीस पादका लिंग और अठारह पादकी वापी बनेगी ॥ १५० ॥ आगे चलकर जैसा बतलानेवाले हैं, उस क्रमसे भद्र-की संख्या जाननी चाहिए । पहली, पाँचवीं, नवीं, तेरहवीं और सत्रहवीं पंक्तिमें बीस पादका भद्र बनाना चाहिए । दूसरी, छठीं, दसवीं तथा चौदहवीं पंक्तिमें पच्चीस पादका भद्र बनाना चाहिए । तीसरी, सातवीं, ग्यारहवीं तथा पन्द्रहवीं पंक्तिमें तीस पादका भद्र बनावे । चौथी पंक्तिमें छत्तीस पादका भद्र बनावे ॥१५१–१५४॥ आठवीं, बारहवीं तथा सोलहवीं पंक्तिमें सोलह पादका भद्र बनाना चाहिए । हर एक कोनेमें तीन पादका चन्द्रमा बनेगा और पाँच पादकी शृङ्खला बनेगी । इसके अनन्तर ग्यारह पादकी बल्ली बनायी जायगी । तब सर्वतोभद्र बनेगा और चौबीस पादकी वापी बनेगी । सब ओर नौ पादका भद्र बनेगा और परिधिके बीचमें लाल रङ्गका अथवा जैसी अपनी रुचि हो, वैसा कमल बनावे ॥ १५५–१५७ ॥ लिंग और शृङ्खला काली, भद्र लाल, वापी सफेद, चन्द्रमा सफेद और बल्ली काली रहेगी ॥ १५८ ॥ बाकी सब भद्र आदिके लिए नियत कर दे । पीत, शुक्ल, काली और लाल, क्रमशः अन्तमें ये परिधियाँ रहेंगी ॥ १५९ ॥ यह अष्टोत्तरसहस्र नामका लिंगतोभद्र है । इस तरह विकल्पसे मैंने रचनाके दो प्रकार बतलाये ॥ १६० ॥ अब मैं तुम्हें दूसरा और उत्तम प्रकार बतलाता हूँ । इक्कीस सौ लिंगोंसे इस लिंगतोभद्रकी रचना होगी ॥ १६१ ॥ अट्ठासी रेखायें पूर्व-पश्चिम तथा अट्ठासी ही रेखायें उत्तर-दक्षिण खींचे । सत्तासी पादोंमें केवल लिंगके लिए पाँच पंक्तियाँ छोड़ दी जायेंगी ॥ १६२ ॥ अब मैं पहली पंक्तिका विस्तार बतलाता हूँ । प्रत्येक कोणमें तीन-

शृङ्खला कृष्णवर्णा च पदैः पञ्चभिरुत्तमा । तस्याः पार्श्वद्वये कार्ये वल्ल्यौ हरितवर्णके ॥१६४॥
पृथगेकादशपदैस्ततः पीते तु शृंखले । षड्भिः पदैरुभयतो भद्रं षोडशपादजम् ॥१६५॥
आरक्तं च सिता वाप्यो दशाष्टादशपादजाः । कृष्णान्यष्टादशपदैर्नव लिंगानि कारयेत् ॥१६६॥
मस्तकोपरि भद्रस्य लोहिते शृङ्खले शुभे । द्वाभ्यां पदाभ्यां च पृथङ् मध्ये हरितशृंखला ॥१६७॥
रचिता त्रिपदा रम्या वापीनां मस्तकोपरि । आरक्ते द्वे पदे कार्ये चैकं हरितशृङ्खला ॥१६८॥
उभयोः पार्श्वयोर्लिङ्गमस्तकस्य सिते पदे । एवं सर्वत्र बोद्धव्यं परिधिः पीतवर्णकः ॥१६९॥
सप्ताशीतिपदैश्चैव समाप्ता प्रथमा ततिः । प्रोच्यतेऽग्रे द्वितीया तु पंक्तिस्त्रिसप्तपादजा ॥१७०॥
शशी च शृङ्खलावल्ल्यौ शृंखले द्वेऽत्र पूर्ववत् । भद्रं विंशपदैर्ज्ञेयं नव वाप्यस्त्रयोदशैः ॥१७१॥
पदैरष्टात्र लिङ्गानि भद्रयोर्मस्तकोपरि । द्वाभ्यां कार्ये शृंखलेऽत्र लोहिते सुचरे तयोः ॥१७२॥
द्विपदा शृंखला पीता हरिता त्रिपदा स्मृता । आरक्तं च पदं कार्यं वापीनां मस्तकोपरि ॥१७३॥
पूर्ववत्सकलं ज्ञेयमेकषष्टिपदैः शुभाः । परिधिः पीतवर्णश्च जाता पंक्तिर्द्वितीयका ॥१७४॥
ऊनैकेन पदा षष्टिपदैः पंक्तिस्तृतीयका । भद्र षड्भिः पदैः प्रोक्तं सप्तलिङ्गानि कारयेत् ॥१७५॥
वसु वाप्यः स्मृताः शेषं पूर्ववच्च प्रकीर्तितम् । सप्तचत्वारिंशत्पदैः परिधिश्च प्रकीर्तितः ॥१७६॥
जाता तृतीया पंक्तिर्हि चतुर्थ्यर्थं निगद्यते । पञ्चचत्वारिंशत्पदैरियं पंक्तिरुदाहृता ॥१७७॥
भद्रमर्कपदैर्ज्ञेयं पञ्च वाप्योऽत्र कीर्तिताः । तुर्यलिंगानि कार्याणि भद्रस्य मस्तकोपरि ॥१७८॥
आरक्ता षट्पदा वल्ली परिधिस्त्रिस्त्रिभिः पदैः । जाता चतुर्थपंक्तिर्हि पंचमैकत्रिभिः पदैः ॥१७९॥
भद्रं नवपदं ज्ञेयं त्रिवाप्यौ द्वौ हरौ स्मृतौ । त्रिपदा शृखला रक्ता भद्रस्योपरि कीर्तिता । १८०॥
एकोनविंशतिपदः परिधिः संप्रकीर्तितः । जातेयं पंचमा पंक्तिस्त्वग्रे सप्तदशैः पदैः ॥१८१॥

तीन पादका श्वेत चन्द्रमा बनावें। पाँच पादसे काले रंगकी सुन्दर शृंखला बनावे। उसके दोनों बगल हरे रंगसे ग्यारह पादकी बल्लियाँ बनावे। इसके बाद छः पादसे पीले रंगकी शृंखला बनावे और सोलह पादसे दोनों ओर भद्र बनावे, जिसका रंग लाल रक्खे॥ १६३–१६५॥ तदनन्तर अठ्ठाईस पादसे सफेद वापियें बनाये। अट्ठारह पादसे काले रंगके नौ लिंगोंकी रचना करे। भद्रके मस्तकपर लाल रंगकी दो शृखलायें बनावे। दो पादोंसे अलग और बीच-बीचमें हरे रंगकी शृंखला बनावे॥ १६६॥ १६७॥ जिसमें कुल तीन पाद रहेंगे। वापीके मस्तकपर लाल रंगकी दो पादोंकी शृंखला हरे रंगकी बनेगी। आस-पास तथा लिंगके मस्तकपर सफेद रंगसे दो पादकी शृङ्खला बनेगी। इसी तरह सर्वत्र जानना चाहिये। इसकी परिधियाँ पीत वर्णकी रहेंगी। इस तरह सत्तासी पादोंकी पहली पंक्ति समाप्त हुई। अब तिहत्तर पादोंवाली दूसरी पंक्तिके विषयमें कहते हैं॥ १६८–१७०॥ इसमें चन्द्रमा, शृंखलायें तथा बल्लियाँ ये पूर्व पंक्तिके समान रहेंगी। बीस पादका भद्र और तेरह पादकी नौ वापियें बनेंगी। तेरह ही पादोंसे भद्रके मस्तकपर आठ लिंग बनाये जायँगे। उसी जगह दो पादोंसे लाल रंगकी दो शृङ्खलायें बनावे। दो पादसे पीली शृंखला और तीन पादकी हरी शृङ्खला बनाये। वापीके मस्तकपर कुछ लाल पाद रक्खे॥ १७१–१७३॥ बाकी सब चीजें पहली पंक्तिके समान ६१ पादोंसे बनेंगी। दूसरी पंक्तिकी परिधि पीले वर्णकी रहेगी। यह दूसरी पंक्ति समाप्त हो गयी॥ १७४॥ उनसठ पादकी तीसरी पंक्ति रहेगी। छ-छ पादोंसे एक भद्र, सात लिंग और आठ वापियें बनावे। बाकी सब पहली पंक्तिकी तरह रहेगा। इसमें सैंतालिस पादोंकी परिधि बनायी जायगी॥ १७५॥ १७६॥ इस प्रकार तीसरी पंक्ति समाप्त हुई। अब चौथी पंक्तिके विषयमें बतलाते हैं। यह चौथी पंक्ति पैंतालिस पादोंकी रहेगी॥ १७७॥ इसमें बारह पादका एक भद्र बनेगा। पाँच वापियें बनेंगी। भद्रके मस्तकपर चार लिंग बनेंगे॥ १७८॥ छः पादोंसे बिल्कुल लाल वर्णकी बल्ली बनेगी। तीन-तीन पादोंकी परिधि बनेगी। इस तरह चौथी पंक्ति समाप्त हुई। पाँचवीं पंक्ति कुल इकतीस पादोंकी रहेगी॥ १७९॥ इसमें नौ पादका भद्र बनेगा, तीन वापियें बनेंगी और दो शिवकी रचना की जायगी। भद्रके मस्तकपर लाल रंगकी तीन पादवाली

चतुष्कोणं समं तत्र सर्वतोभद्रमालिखेत् । तस्यापि क्रम एवायं त्रिपदश्च शशी सितः ॥१८२॥
कृष्णाः पंचपदैः कार्याः शृंखलाः सर्वतः शुभाः । पदैरष्टादशैर्लिंगं पश्चिमे तस्य पार्श्वयोः ॥१८३॥
त्रयोदशपदैर्वाप्यौ भद्रं तुर्यपदात्मके । याम्यप्रागुत्तरेष्वेव मध्ये तिस्रश्च वापिकाः ॥१८४॥
भद्रं नवपदैः कार्या वल्ल्यो दशपदात्मिकाः । वल्ल्योः स्थाने पश्चिमेऽत्र ह्याद्यन्ते हरिते पदे ॥१८५॥
मध्येऽत्र त्रुटिता वल्ली भद्रं यच्च नवात्मकम् । तस्योपरि पदाभ्यां हि रक्ताऽत्र शृंखला स्मृता ॥१८६॥
वापीनां मस्तके कार्यं पदं रक्तं च पार्श्वयोः । सिते द्वे द्वे पदे कार्ये परिधिः पंचपादजः ॥१८७॥
रक्तमष्टदलं मध्ये कार्यं नवपदात्मकम् । कर्णिका पीतवर्णा च बाह्याः परिधयः क्रमात् ॥१८८॥
पीतशुक्लरक्तकृष्णाः सैकविंशशतात्मकम् । कथितं लिंगतोभद्रं सर्वेषां मुकुटोपमम् ॥१८९॥
प्रकारांतरमन्यच्च शृणु शिष्य ब्रवीमि ते । तिर्यगूर्ध्वं कृता रेखास्त्र्यधिकाः शतसंख्यकाः॥१९०॥
शतं द्व्यधिककोष्ठेषु रचयेल्लिंगपंक्तयः । नवाष्टरसचत्वारि द्व्येकसंख्याश्चतुर्दिशम् ॥१९१॥
लिंगसंख्याधिका वापी प्रतिपंक्ति भवेदिह । षट्सु परिधयस्तत्र षट्पदांते तु वापिकाः ॥१९२॥
कोणेष्विंदुः शृंखला च वल्ली च रचयेत्क्रमात् । त्रिपंचैकादशपदे लिंगं त्र्यष्टमितं त्रिषट् ॥१९३॥
वापी भद्राणि क्रमशः षट्त्रिंशद्विंशतत्त्वजम् । त्रिंशत्षट्त्रिंशद्विंशच्चांत्यपंक्तेश्च पार्श्वके ॥१९४॥
एकस्मिन् रचयेल्लिङ्गद्वयं भद्रे रसात्मके । तस्योपरि भवेत्सर्वतोभद्रं तत्र वापिका ॥१९५॥
चतुर्विंशत्पदं भद्रमंकसंख्या ततः परम् । परिध्यन्ते तुर्यतुर्यपदैः पद्मं समुद्धरेत् ॥१९६॥
चित्रं वा लोहितं लिंगशृंखले कृष्णवर्णके । हरिता वल्लरी भद्रं रक्तं शुद्धेऽब्जवापिके ॥१९७॥
एकविंशोत्तरशतं लिंगतोभद्रमीरितम् । प्रकारांतरमन्यच्च शृणु शिष्य ब्रवीमि ते ॥१९८॥

शृङ्खला बनायी जायगी ॥ १८० ॥ उन्नीस पदोंको परिधि बनायी जायगी । इस तरह यह पाँचवीं पंक्ति समाप्त हुई । आगे छठीं पंक्ति कुल सत्रह पदोंकी रहेगी ॥ १८१ ॥ इसके चारों कोनोंमें सर्वतोभद्रकी रचना करे । उसका क्रम इस प्रकार है । इसमें तीन पादसे सफेद रङ्गका चन्द्रमा बनेगा ॥ १८२ ॥ पाँच पादोंसे चारों ओर काले रङ्गकी शृङ्खला बनावे । अट्ठारह पादका लिंग बनाकर उसके दोनों बगल तेरह पादकी दो वापियें बनावे । दक्षिण, पूर्व तथा उत्तर दिशाओंके मध्यमें तीन वापियें बनावे ॥ १८३ ॥ १८४ ॥ नौ पादोंसे भद्र बनाकर दस पादोंकी बल्लियाँ बनावे । पश्चिमवाली दोनों बल्लियाँ हरे रङ्गकी रहेंगी ॥ १८५ ॥ इस पंक्तिके बीचकी बल्ली टूट जायगी और नौ पादवाले भद्रके स्थानमें लाल रंगकी शृङ्खला रहेगी ॥ १८६ ॥ वापीके मस्तकपर काले रंगका पाद रहेगा और आस-पासके दो पाद सफेद ही रहेंगे। पाँच परिधियाँ बनेंगी ॥ १८७ ॥ बीचमें लाल और नौ पादका अष्टदल कमल बनेगा। इसकी कर्णिका पीली रहेगी और परिधियाँ क्रमशः पीली लाल और काली रहेंगी ॥ १८८ ॥ यह मैंने एकविंशतिशतात्मक लिंगतोभद्रका क्रम बतलाया । अबतक जितने भी भद्र बतलाये हैं, उनमें सर्वतोभद्र मुकुटके समान रहेगा ॥ १८९ ॥ हे शिष्य ! अब मैं प्रकारान्तर बतलाता हूँ, सुनो । खड़ी और वेंड़ी कुल १०३ रेखायें खींचे ॥ १९० ॥ उनमेंसे १०२ कोष्ठमें लिंगकी पंक्तियाँ बनाये । इसके चारों ओर नौ, आठ, छ, चार, दो और एक संख्याके कोष्ठक लिंगके लिये निर्धारित होंगे ॥ १९१ ॥ प्रत्येक पंक्तिमें लिंगसंख्याकी अपेक्षा वापीकी संख्या अधिक रहेगी। छः पादोंकी परिधियाँ रहेंगी । उसके बाद वापी रहेगी ॥ १९२ ॥ कोनोंमें इन्दु, शृङ्खला तथा बल्ली बनायी जायगी । क्रमशः तीन, पाँच और ग्यारह पादोंसे २४ लिंग बनाये जायेंगे और अट्ठारह वापी बनेगी। फिर क्रमशः छत्तीस, बीस, पच्चीस, तीस, छत्तीस और बीस भद्र बनाये जायेंगे। अन्तिम पंक्तिके बगल एक स्थानपर छःछः पादके दो भद्र बनावे । उसके ऊपर सर्वतोभद्र रहेगा । चौबीस पादकी वापी बनेगी और नौ भद्र बनाये जायेंगे। परिधिके अनन्तर सोलह-सोलह पादके पद्म बनावे ॥ १९३-१९६ ॥ उन कमलोंका रंग चित्रवर्ण अथवा लाल रहेगा। लिंग और शृङ्खलायें काले रंगकी रहेंगी । बल्लरी हरे रंगकी, भद्र लाल और कमल तथा वापी सफेद वर्णकी होगी ॥ १९७ ॥ यह मैंने तुम्हें एकविंशोत्तरशत लिंगात्मक भद्रकी रचनाका प्रकार बतलाया ।

षडधिकाशीतिरेखास्तिर्यगूर्ध्वं प्रकल्पयेत् । पञ्चाशीति पदानि स्युः पंक्तयस्तत्र सर्वतः ॥१९९॥
तत्र षट् षट् पदान्ते स्यात्परिधिः पीतवर्णकः । सर्वतोऽनेन विधिना चतुःपरिधयः क्रमात् ॥२००॥
तेषु वै पंक्तिकोष्ठेषु लिंगादि रचयेद्धिया । कोणेषु त्रिपदचन्द्रस्तदादि शृंखला मता ॥२०१॥
ततो वल्ली ततो भद्रं वापी लिंगं क्रमाद्भवेत् । तत्र प्रथमपंक्तौ तु शृंखला पञ्चपादिका ॥२०२॥
एकादशपदा वल्ली शृंखला षट्पदात्मिका । भद्रमेकपदं वापी त्रिषट् कोष्ठैः प्रकल्पयेत् ॥२०३॥
ईशानस्तन्मिते कार्य एवं ते नवसंख्यया । भवन्ति वाप्यो दश ता भद्रद्वयमभीप्सितम् ॥२०४॥
द्वितीयपंक्तौ वापी तु त्रयोदशपदा मता । भद्रं तु षड्दशपदं शेषं पूर्वं समीरितम् । २०५॥
अष्टौ लिंगानि वाप्यस्तु भवन्ति नवसंमिताः । तृतीयायां तुर्यपदं भद्रं शेषं तु पूर्ववत् ॥२०६॥
अष्टौ वाप्यः सप्त हराः क्रमशः स्युः समुद्घृताः । द्वे वाप्यावन्तिमे त्र्यूने त्रिभिः कोष्ठैस्तु संस्मृते ॥२०७॥
चतुर्थपंक्तौ वाप्यस्तु चतस्रः शंकरत्रयम् । भद्रं द्विदशकं ज्ञेयं शेषं पूर्ववदुद्धरेत् ॥२०८।
चतुर्थपरिध्युपरि बाणान्ते परिधिर्भवेत् । तत्पंक्तौ शृंखले न्यूने पदेनैकेन वल्लरी ॥२०९॥
द्वाभ्यां पदाभ्यां चन्द्रस्तु यथापूर्वं प्रकल्पयेत् । भद्रद्वयं षट्षट्पदं त्वन्यं भद्रे नवात्मके ॥२१०॥
त्रयोदशपदैर्वापी तत्र तत्र प्रकल्पयेत् । भद्रयोरूर्ध्वं स्याद्भद्रद्वयं षट्षट्पदं शुभम् ॥२११॥
संसृष्टानि पदान्येव शृंखलार्थे नियोजत् । तस्योपरि परिधिस्तत्र बाणांते परिकल्पयेत् ॥२१२॥
उभयोरन्तरे वापी त्रयोदशपदात्मिका ॥२१३॥
भद्रद्वयं षट्षट्पदं शेषं सर्वं यथोदितम् । अन्तिमेऽन्तः पञ्चपञ्चपदैः पद्मं समुद्धरेत् ॥२१४॥
रक्तं वा चित्रवर्णं च श्वेतश्चन्द्रोऽसिता मता । शृंखला हरिता वल्ली पीतं तच्छृङ्खलाद्वयम् ॥२१५॥
रक्तं भद्रं सिता वापी लिंगं कृष्णं प्रकल्पितम् । लिङ्गस्कंधगताः कोष्ठाः शोभाकोष्ठाः प्रकल्पयेत् २१६॥

हे शिष्य ! अब मैं तुम्हें प्रकारान्तर बतला रहा हूँ, सुनो ॥ १९८ ॥ सीधी और टेढ़ी छियासी-छियासी रेखायें खीचे । ऐसा करनेपर उसमें चारों ओर पचासी-पचासी पादकी एक-एक पंक्तियाँ तैयार होंगी ॥ १९९ ॥ उसमें छ-छः पादके बाद पीले रंगकी परिधि रहेगी । इस रीतिसे क्रमशः चार परिधियाँ बनेंगी उनकी पंक्ति तथा कोष्ठकमें अपनी बुद्धिके अनुसार लिंग आदिकी रचना करे । प्रत्येक जोड़ोंमें तीन-तीन पादका इन्दु बनावे और उसके आदिमें शृङ्खलाकी रचना करे ॥ २०० ॥ २०१ ॥ फिर उसके बाद बल्ली, फिर छः पादकी शृङ्खला, एक पादका भद्र और अट्ठारह कोष्ठकी वापीका निर्माण करे ॥ २०२ ॥ २०३ ॥ उतनी ही संख्याके शिव बनावे । इस प्रकार दस वापियें और दो भद्र बनेंगे ॥ २०४ ॥ दूसरी पंक्तिमें तेरह पादकी वापी बनेगी । सोलह पादका भद्र बनेगा । बाकी सब चीजें पहली पंक्तिके समान रहेंगी ॥ २०५ ॥ तीसरी पंक्तिमें आठ लिंग, नौ वापियें और चार पादका एक भद्र रहेगा । बाकी सब चीजें पूर्ववत् रहेंगी ॥ २०६ ॥ आठ वापी, सात शिव एवं अन्तमें तीन पादकी दो वापी बनेगी ॥ २०७ ॥ चौथी पंक्तिमें चार वापी, तीन शंकर, बारह भद्र बनेंगे । बाकी सब पहली पंक्तिके समान रहेगा ॥ २०८ ॥ चौथी परिधिके ऊपर पाँचवीं परिधिके बाद भी परिधि रहेगी । इस पंक्तिमें पूर्व पंक्तिकी अपेक्षा एक कम शृंखला रहेगी और एक पादकी बल्लरी बनायी जायगी ॥ २०९ ॥ तदनन्तर पहलेकी तरह दो पादोंका चन्द्रमा बनावे । छ-छ पादके दो भद्र बनावे । बाकी दो भद्र नौ नौ पादके रहेंगे ॥ २१०॥ अपने-अपने स्थानपर तेरह-तेरह पादकी वापी बनाये । दोनों भद्रोंके ऊपर छ छ पादके दो भद्र बनावे ॥ २११ ॥ शृंखलाके लिये बने पादोंको नियुक्त करे । उसके ऊपर पाँच पादके अनन्तर परिधिकी रचना करे ॥ २१२ ॥ इन दोनोंके बीच तेरह पादकी एक वापी बनायी जायगी ॥ २१३ ॥ छः छः पादके बाद दो भद्र बनावे । बाकी सब पूर्ववत् रक्खे । अन्तिम पंक्तिमें पाँच-पाँच पादोंके कमल बनावे । उसका वर्ण लाल अथवा बहुरंगा रहे । चन्द्रमा सफेद और शृङ्खला काले वर्णकी रहेगी । इसी प्रकार बल्लरी हरी, उसकी दोनों शृङ्खलायें पीली, लाल भद्र; सफेद वापी और काला लिंग रहेगा । लिंगके स्कन्धवाले कोष्ठक शोभाके लिये रहेंगे ॥ २१४–२१६ ॥

पदानि शेषभूतानि यत्र क्क च भवन्ति हि । तानि तत्र यथायोग्यं धिया सम्यङ्नियोजयेत्॥२१७॥
यद्वा तुर्यपरिध्यूर्ध्वमेकादशपदात्परम् । परिधिः स्यात्तयोर्मध्ये कोणे चन्द्रो यथोदितः॥२१८॥
शृङ्खला दशपादा स्याद्वल्ली स्यादेकविंशतिः । शृङ्खलाऽन्या रुद्रपदा भद्रं त्रिंशत्पदात्मकम् ॥२१९॥
एकषष्टिपदैर्वापी सम्यग्बुद्ध्या प्रकल्पयेत् । अथवा द्वे पदे चान्ये संयोज्य गिरिहस्तिषु ॥२२०॥
पदेषु रचयेद्बुद्ध्या लिंगानां पक्तयः क्रमात् । नवाष्टरसत्रीण्येका शेषं पूर्वं यथोदितम् ॥२२१॥
विशेषस्तत्र भद्रेषु षड्लिंगे षोडशात्मकम् । एकलिंगे विंशपदं द्वाभ्यामन्यत्र चाधिकम् ॥२२२॥
पूर्ववत्सर्वतोभद्र पञ्चवर्णास्तु पूर्ववत् । पीतशुक्लरक्तकृष्णा वहिः परिधयः स्मृताः ॥२२३॥
एतदष्टोत्तरशतं लिंगतोभद्रमीरितम् । प्रकारान्तरमन्यत्ते शृणु शिष्य ब्रवीमि यत् ॥२२४॥
तिर्यगूर्ध्वं गता रेखा नवाष्टलोहिताः स्मृताः । तत्कोष्ठेष्वब्धिनेत्राग्निकोष्ठकै रचयेद्धिया ॥२२५॥
सर्वतोभद्रकं रम्यं परितः परिधिर्मतः । ततो रसरसांते स्युश्चतुःपरिधयः शुभाः ॥२२६॥
तत्र चतुर्षु पार्श्वेषु कोणेंदुस्त्रिपदः स्मृतः । शृंखला पञ्चभिर्वल्ली त्वेकादशपदा मता ॥२२७॥
लिंगं चतुर्विंशपदं वापी त्वष्टादशा भवेत् । नव सप्त तथा पंचयुगनेत्रमिताः शिवाः ॥२२८॥
पञ्चपंक्तय एव स्युर्वापिकैकाधिका ततः । तुर्यलिंगानि द्वे वाप्यौ त्रयोदशपदात्मिके ॥२२९॥
षडंकार्करसरसभद्रसंख्या क्रमाद्भवेत् । सर्वतोभद्रके वापी युगनेत्रमिता तथा ॥२३०॥
नवकोष्ठमितं भद्रं शेष सर्वं तु पूर्ववत् । ततोऽन्तःपरिधिः कार्यस्तत्र पद्मं समुद्धरेत् ॥२३१॥
श्वेतोऽब्जः शृंखला कृष्णा नीला वल्लरिकाऽरुणा । भद्रं वापी सिता कृष्णं लिंगं परिधयोऽन्तिमाः २३२॥
पीतशुक्लरक्तकृष्णा ज्ञेयाः पीताश्च मध्यमाः । एतदष्टोत्तरशतं लिंगतोभद्रमीरितम् ॥२३३॥

इनमें जहाँ कोई कोष्ठक बाकी बच जाय, उसे अपनी इच्छासे जिस रंगसे चाहे रंग दे ॥ २१७ ॥ अथवा चौथी
परिधिके ऊपर ग्यारहवें पादके आगे एक परिधि बनावे । उसके बीचवाले कोणमें उक्त प्रकारसे चंद्रमा बनावे
॥ २१८ ॥ इसमें पहली शृङ्खला दस तथा दूसरी ग्यारह पादकी बनेगी और भद्र तीस पादका रहेगा ॥ २१९ ॥
एकसठ पादकी बापी बनेगी । उन सबको अच्छी तरह मन लगाकर बनावे । अथवा और दो पादोंकी योजना
करके सातवें और दसवें पादमें अपनी बुद्धिसे लिंगोंको रचना करे । नौ, आठ, छः, तीन और एक
यह उनकी संख्या रहेगी । बाकी सब पूर्ववत् रहेगा ॥ २२० ॥ २२१ ॥ इन भद्रोंमेंसे छः लिंगवाले भद्रमें एक
सोलह पादका और दूसरा बीस पादका लिंग रहेगा । दोसे अधिक लिंगवाले भद्रमें पूर्ववत् सर्वतोभद्रकी रचना
होगी । इसके बाहरको परिधियाँ पोत, रक्त तथा कृष्ण वर्णको रहेंगी ॥ २२२ ॥ २२३ ॥ यह मैने तुम्हें
अष्टोत्तरशत लिंगतोभद्रका प्रकार बतलाया । अब दूसरा प्रकार बतलाता हूँ, सुनो ॥ २२४ ॥ खड़ो और बेंड़ी
कुल नवासी रेखायें खींचे । उसके कोनेवाले चार, दो, तीन कोष्ठकोंसे सुन्दर सर्वतोभद्र बनावे । उसके चारों
ओर परिधि रक्खे । इसके अनन्तर छः छः पादोंके बाद परिधियोंकी रचना करे ॥ २२५ ॥ २२६ ॥ उसके चारों
तरफके कोनोंमें तीन-तीन पादके चन्द्रमा बनावे । पाँच पादसे शृङ्खला और ग्यारह पादकी वल्ली बनावे ॥२२७॥
चौबीस पादका लिंग और अट्ठारह पादकी वापी बनानी होगी । इसमें नौ, सात, पाँच, चार, दो क्रमशः
शिव बनाये जायँगे ॥ २२८ ॥ इसमें कुल पाँच पंक्तियाँ रहेंगी और वापियोंकी संख्या एक-एक करके बढ़ती
जायगी । इसमें चार लिंग और तेरह-तेरह पादकी दो वापियाँ रहेंगी ॥ २२९ ॥ छ, नौ, बारह, छः, छः, इस
क्रमसे भद्रकी संख्या रहेगी । सर्वतोभद्रमें चार और दो वापी बनेगी ॥ २३० ॥ इनमें नौ कोष्ठकका भद्र
बनेगा । बाकी सब बातें पहलेके समान रहेंगी । इस प्रकार भद्रकी रचना कर लेनेके बाद उसके भीतर
परिधि बनाकर कमलकी रचना करे ॥ २३१ ॥ कमलका रंग सफेद रहेगा और उसकी शृंखला काली रहेगी ।
40. बल्लरियाँ नीली तथा भद्र लाल रहेगा । वापी सफेद, लिंग काला और अन्तिम परिधियाँ नोली, सफेद, लाल
तथा कृष्ण वर्णकी रहेंगी । यह भी एक प्रकारका अष्टोत्तरशत लिंगतोभद्र बतलाया ॥ २३२ ॥ २३३ ॥ अथवा

तिर्यगूर्ध्वं पञ्च पञ्च रेखाः कार्या सुलोहिताः । तत्कोष्ठेषु परिधयः षट् षडंते त्रयः स्मृताः ॥२३४॥
त्रिद्व्यङ्कलिंगरचना चतुर्विंशतिपादिका । वापी त्वष्टादशपदा षट्त्रिंशद्द्विदशाङ्ककम् ॥२३५॥
भद्रं भद्रं पीतमन्यद्भद्रपार्श्वे प्रकल्पयेत् । प्रथमं नवपादं स्याद्द्वितीयं षट्पदात्मकम् ॥२३६॥
वापीपार्श्वे च त्रिपदा शृंखला लोहिता भवेत् । प्रतिपार्श्वे भवेदेतच्छृंखला पञ्चपादिका ॥२३७॥
एकादशपदा वल्ली त्रिपदश्चन्द्र ईरितः । चतुर्विंशपदैर्ज्ञेयं लिंगं परमसुन्दरम् ॥२३८॥
मध्ये चन्द्रः शृंखला च त्रिपदा षट्पदा लता ।
भद्रमर्कपदं लिंगमष्टाविंशत्पदात्मकम् । लिंगमस्तकपार्श्वस्थे पदानि पीतकानि तु ॥२३९॥
लिंगं कृष्णं सिता वापी भद्रं रक्तं सितः शशी । शृंखला कृष्णहरिता वल्ली वर्णास्त्वितीरिताः॥२४०॥
परिधिः पीतवर्णः स्यात्पदान्युर्वरितानि तु । यथेष्टं रञ्जयेदेतद्बाणाक्षिलिंगसाधनम् ॥२४१॥
पीतशुक्लरक्तकृष्णा बाह्याः परिधयः क्रमात् । प्रकारांतरमन्यद्वा शृणु शिष्य ब्रवीम्यहम् ॥२४२॥
चन्द्राब्धिपदसंख्यासु सर्वतस्तत्त्वसंमितम् । लिंगपीठं विरचयेत्षडंते परिधी मतौ ॥२४३॥
तयोरर्वाग्लिंगपंक्तिद्वयं सम्यक् प्रकल्पयेत् । अष्टादशपदं लिंगं वापी त्रिदशपादिका ॥२४४॥
त्रिपदोऽब्जः शृंखला च पञ्चपादे शवल्लरी । प्रथमा युगलिंगाऽन्या पंक्तिर्लिङ्गद्वयान्विता ॥२४५॥
आद्यौ भद्रं नवपदं परं भद्रं तु षट्पदम् । परिध्यंते त्रयस्त्रिंशत्कोष्ठैर्लिङ्गं प्रकल्पयेत् ॥२४६॥
मूलस्कंधौ सप्तसप्तपदजौ षट्पदैः शिरः । पंचपंचपदैः पार्श्वौ कटिः शभोस्त्रिपादजः ॥२४७॥
चतुर्दिक्षु हरस्यास्य चतुर्भद्रं नवांघ्रिकम् । चंद्रोऽत्र त्रिपदो ज्ञेयः शृखला द्विपदा स्मृता ॥२४८॥
वल्लरी पंचपादा स्याच्छृङ्खलाऽन्या त्रिपादजा । लिंगस्कंधगताः कोष्ठाः पीताःकार्याः शुभावहाः२४९॥

सीधी और तीखी लाल वर्णकी पाँच-पाँच रेखायें खींचे। उसके कोष्ठकोंमें छः परिधियाँ और छः परिधिके आगे फिर तीन परिधि बनावे ॥ २३४ ॥ चौबीस पादसे तीन, दो अथवा नौ लिंग बनाना होगा। अट्ठारह पादकी वापी बनेगी। छत्तीस, बीस, नौ इन संख्यकोंके भद्र बनावे ॥ २३५ ॥ उन भद्रोंके पास ही दूसरे पीत वर्णके दो भद्रोंकी रचना करे। जिसमें पहला नौ पादका और दूसरा छः पादका रहेगा ॥ २३६ ॥ वापीके पास तीन पादकी लाल शृंखला रहेगी। इस प्रकार हर बगलमें पाँच-पाँच पादकी शृंखलायें रहेंगी ॥ २३७ ॥ इसमें ग्यारह पादकी वल्लरी और तीन पादकी लता रहेगी। बारह पादका लिंग बनेगा ॥ २३८ ॥ मध्यमें एक चन्द्रमा, तीन पादकी शृंखला और छः पादकी लता रहेगी। बारह पादका भद्र और अट्ठाइस पादका लिंग बनेगा। लिंगके मस्तकपर तथा बगलमें पीले वर्णके कुछ खाली कोष्ठक भी रहेंगे ॥ २३९ ॥ इसमें लिंग कृष्ण, वापी उज्ज्वल, लाल भद्र, उज्ज्वल चन्द्रमा, काली शृंखला, हरित वर्णकी वल्लरी ये वर्ण रहेंगे ॥ २४० ॥ इसकी परिधि पीले वर्णकी रहेगी। बाकी जितने कोष्ठक बचें, उनको अपने इच्छानुसार जैसा चाहे वैसा रङ्ग दे। पच्चीस लिंग इस भद्रके प्रधान साधन माने गये हैं ॥ २४१ ॥ बाहरकी परिधियाँ पीली, सफेद, लाल तथा काली रहेंगी। हे शिष्य! अब मैं तुम्हें इसी भद्रका प्रकारान्तर बतला रहा हूँ ॥ २४२ ॥ एकतालिस पादोंमें पच्चीस लिङ्ग और छः लिंगके बाद दो परिधि बनावे ॥ २४३ ॥ उन दोनों परिधियोंके पहले दो पंक्तियोंमें लिङ्गोंकी रचना करे। इसमें अट्ठारह पादका लिंग बनेगा और तेरह पादकी वापी बनायी जायगी ॥ २४४ ॥ तीन पादका कमल और पाँच-पाँच पादके शिव तथा वल्लरीकी रचना की जायगी। पहिली पंक्तिमें चार और अन्य पंक्तियोंमें दो लिंग रहा करेंगे ॥ २४५ ॥ पहला भद्र नौ पादका रहेगा। बाकी सब भद्र छः छः पादके रहेंगे। परिधिके बाद तेंतीस पादका लिंग बनावे ॥ २४६ ॥ इसके मूल स्कन्ध सात-सात पादके रहेंगे। छः पादका मस्तक, पाँच-पाँच पादोंका पार्श्वभाग और तीन पादकी कटि बनेगी ॥ २४७ ॥ शिवके चारों ओर नौ-नौ पादके चार भद्र बनाये जायेंगे। इसमें चन्द्रमा तीन पादका, शृंखला दो पादकी, वल्लरी पाँच पादकी और दूसरी शृंखला तीन पादकी रहेगी। लिंगके स्कन्धवाले खाली कोष्ठक पीले रङ्गसे रङ्ग दिये

अन्यानि शेषभूतानि पदानि पूरयेद्धिया । यथेच्छं वै परिधयः कार्या वेदमिता बहिः ॥२५०॥
पञ्चविंशच्छिवैरेतौ प्रकारौ द्वौ मयोदितौ । अतिप्रियौ शंकराय ज्ञातव्यौ द्विजसत्तम ॥२५१॥
नमस्कृत्य महद्ब्रह्म गुरुपादसरोरुहम् । संसारतारक वक्ष्ये कथामध्यात्मसंग्रहाम् ॥२५२॥
पंचविंशतिसंख्याकं लिंगतोभद्रमीप्सितम् । केनचित् कल्पितं तत्किं तत्त्वं तत्कथ्यते स्फुटम् २५३॥
लिंगतोभद्रमित्येतन्निरुक्तमर्थतद्भवेत् । लिंगं गमकमित्याहुर्ज्ञानं ज्ञापकमित्यपि ॥२५४॥
पीयूषवापनाद्वापी भद्रं भद्रसमीक्षणात् । साध्यशब्दाः प्रसिद्धा हि वर्तन्ते साधनेष्वपि ॥२५५॥
तस्मिन् शुक्लमुत नीलमित्यादिश्रुतिशासनात् । वर्णा अपि परस्मिंस्तूपासनार्थं भवन्ति हि ॥२५६॥
तद्ब्रह्म परमं लिङ्गं मङ्गलं भद्रवाचकम् । मङ्गलं मङ्गलानां च शिवं शांतमिति स्फुटम् ॥२५७॥
लीयंते यत्र भूतानि निर्गच्छन्ति यतः पुनः । तेन लिंगं परं व्योम निष्कलः परमः शिवः ॥२५८॥
सत्त्वं रजस्तमोवर्णत्रयं मायासु वेष्टितम् । मनश्चन्द्रो महामोहः शृङ्खला स्नेहवल्लिका ॥·५९॥
तैरिदं सर्वतरतत्त्वं वेष्टितं घटव्योमवत् । तिर्यगूर्ध्वमहङ्कारः प्रसृतः पटतन्तुवत् ॥२६०॥
तेन स्थानानि जातानि लक्षाणां चतुरष्ट हि । गुणास्तेषु प्रपूर्यन्ते यथा चित्रपटो भवेत् ॥२६१॥
आसीदेकं पुरा तत्त्वं तस्मिन्मायानियोगतः । कामो बहुधा भवति भवेयमिति सादरम् ॥२६२॥
एकः सन्निति चात्मानं स्वयमकुरुतेति च । इन्द्रो मायाभिरिति च एकधा बहुधेति हि ॥२६३॥
ऊचुश्च श्रुतयः साध्यो ब्रह्मणो भवनं प्रति । तज्जलानिति च श्रुत्वा न ततोऽस्ति हि किंचन ॥२६४॥
यद्यप्येवं तथाप्यस्मिन्न स्थितिर्मोहतो भवेत् । यावदहंकृतो भावस्तावत्संसार आयतः ॥२६५॥
भिन्नोऽहमिति हृद्ग्रन्थौ न संसारस्तदाश्रयः । गते तेजस्यंबु याति स्वप्नो निद्रानुगो यथा ॥२६६॥

जायँगे ॥ २४८ ॥ २४९ ॥ बाकी जितने कोष्ठक खाली बचें, उन्हें अपने इच्छानुसार रङ्ग दे । बाहरकी ओर स्वेच्छासे चार परिधियाँ बनाये ॥ २५० ॥ ये दोनों प्रकार मैंने पच्चीस शिवके बतलाये हैं । हे द्विजसत्तम ! ये दोनों भद्र शिवजीको परम प्रसन्न करनेवाले हैं ॥ २५१ ॥ अब मैं अपने गुरुके महद्ब्रह्मस्वरूप चरणकमलको प्रणाम करके ससारतारक एक आध्यात्मिक कथा सुनाऊँगा ॥ २५२ ॥ किसीने पञ्चविंशति लिङ्गतोभद्र-की रचना क्यों की ? अब उसका स्पष्ट तत्त्व बतलाता हूँ ॥ २५३ ॥ पहले 'लिङ्गतोभद्र' इस शब्दका अर्थ बताते हुए कहते हैं कि लिंगको गमक, ज्ञान अथवा ज्ञापक नामसे पुकारा जाता है ॥ २५४ ॥ पीयूष (अमृत) का वपन करनेसे वापीका 'वापी' यह नाम पड़ा है । भद्र यानी कल्याणका समीक्षण करनेसे 'भद्र' का भद्र नाम रखा गया है । प्रत्येक साधनोंमें उसके साध्य शब्द बतलाये जाते हैं ॥ २५५ ॥ "तस्मिन् शुक्लमुत नीलम्" आदि श्रुतियोंके कथनानुसार उपासनाके लिए वर्णकी भी आवश्यकता पड़ती है ॥ २५६ ॥ वह परब्रह्म ही लिंग एवं मङ्गलवाचक भद्र शब्दसे अभिहित होता है । मङ्गलका भी मङ्गल करनेवाला शिव अर्थात् शान्त कहलाता है ॥ २५७ ॥ प्रलयके समय जिसमें सब प्राणी लीन हों और सृष्टिकालमें उसीमेंसे निकल आयें उसीको 'लिङ्ग' कहते हैं । ऐसा कौन है ? वह परम व्योम, कलारहित तथा परम मङ्गलकारी शिव है ॥ २५८ ॥ सत्त्व, रज और तम ये तीन वर्ण मायाके जालसे वेष्टित है । इसमें मन चन्द्रमा, महामोह शृंखला और स्नेह बल्लरियाँ हैं ॥ २५९ ॥ इन सबसे आत्मा उसी तरह वेष्टित है, जैसे व्योम (आकाश) से घट-पट आदि जगत्के पदार्थ वेष्टित रहते हैं । उसपर भी तन्तुके समान अहङ्कारने उसे चारों ओरसे घेर रखा है ॥ २६० ॥ इसीसे चौरासी लाख योनियोंकी उत्पत्ति हुई है । उनमें गुणोंका उसी तरह समावेश हो जाता है, जैसे एक कपड़ेपर कई रङ्ग चढ़ा दिये जायें, जिससे उसका रङ्ग विचित्र प्रकारका हो जाय ॥ २६१ ॥ सृष्टिके पहले केवल एक तत्त्व यानी ब्रह्म था । मायाके योगसे उसमें बहुत प्रकारकी कामनायें उत्पन्न हुईं । तब उसे अकेले ब्रह्मने मायायोगसे अपने इच्छानुसार उस अकेले रूपसे बहुतेरे रूप बना लिये ॥ २६२ ॥ २६३ ॥ इसके अनन्तर श्रुतियोंने ब्रह्मकी उत्पत्तिके लिए "तज्जलान्" इस श्रुतिसे उस ब्रह्मकी प्रार्थना की । तब ब्रह्मकी उत्पत्ति हुई ॥ २६४ ॥ यद्यपि ये सब कार्य हुए हैं । तथापि मोहवश इसमें ब्रह्मकी स्थिति नहीं हो सकती । जबतक

एतदर्थं विरक्तः सन् जिज्ञासुः श्रेय उत्तमम् । आश्रयेत्सद्गुरुं साक्षाद्ब्रह्मभूतं निरामयम् ॥२६७॥
तेन प्रबोधितः सिद्धमात्मानं संतमात्मनि । जानीयाद्ब्रह्मभावेन जगच्चित्तं स्थितं सदा ॥२६८॥
ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशे संस्थितोऽमलः । एकोऽद्वितीयः परमो नांतः प्रज्ञादिलक्षणः ॥२६९॥
अक्षरः सच्चिदानन्दोऽमरोऽजर उशत्तमः । निर्विकारो निराकारो निरामय उदीरितः ॥२७०॥
अलिंगोऽरूप एवासावेकत्वगणनात्परः । मायया लिंगरूपीव ह्येक इत्यभिधीयते ॥२७१॥
पुरुषश्च प्रकृतिश्च व्यक्तोऽहंकार एव च । चतुर्लिङ्गानि प्रोक्तानि लक्षणानि शिवस्य च । २७२॥
कार्यकारणभूतानामेकमेव हि पञ्चकम् । सत्त्वं रजस्तम इति वसुलिंगानि चात्मनः ॥२७३॥
दशेंद्रियाणि च मनो बुद्धिर्द्वादशकं स्मृतम् । लिंगानां परमेशस्य विवेकोऽत्र प्रतिष्ठितः ॥२७४॥
इति कारणलिंगानि कार्यलिंगान्यनेकशः । शतं सहस्रमयुतं कोटिशः संति संख्यया ॥२७५॥
सर्वाणि ज्ञापकान्येव शिवस्य परमात्मनः । वस्तुतस्तु परं तत्त्वं सजातीयादिहीनकम् ॥२७६॥
विचारे वर्तमाने तु तंत्वाद्येव पटादि न । एवं सर्वं शिवो भाति न सर्वं शिव एव हि ॥२७७॥
बिन्दुनादमकारादि मात्रत्रयमुदीरितम् । आत्मैव पञ्चधा साक्षात्तथा ब्रह्मेश्वरो हरिः ॥२७८॥
विधिरुद्रौ पञ्च पञ्च सद्योजातादिरूपकः । शुद्धः साक्षी तथा प्राज्ञस्तैजसो विश्व एव च ॥२७९॥
सच्चित्सुखत्रयं नामरूपे ब्रह्मैव केवलम् । जातं पञ्चात्मकं नान्यद्ब्रह्मैवेदमिति श्रुतिः ॥२८०॥
प्रधान महदहं च पञ्चतन्मात्रकं च तत् । अष्टप्रकृतिरित्येतच्छास्त्रेषु परिगीयते ॥२८१॥

अहंभाव है, तभीतक इस संसारका विस्तार है ॥ २६५ ॥ "अहं" इस ग्रन्थिके भिन्न होते ही न संसार रहता है और न उसका आश्रय ही रह जाता है। तेजके विलीन होते ही जलका भी नाश हो जाता है। जैसे कि निद्राका नाश होनेके साथ ही स्वप्न भी नष्ट हो जाता है ॥ २६६ ॥ इसलिए जिज्ञासुको चाहिए कि वह विरक्त, साक्षात् ब्रह्मस्वरूप तथा रोग-शोकरहित किसी सद्गुरुकी शरण ले ॥ २६७ ॥ जब कि उसके उपदेशोंसे वह प्रबुद्ध हो जाय और अपनी आत्मामें ही सिद्ध हो जाय, तब अपने जगत्स्वरूप चित्तको ब्रह्मभावसे देखे ॥ २६८ ॥ सब प्राणियोंके हृदयमें वह अमल ईश्वर निवास करता है। वह एक, अद्वितीय और सर्वश्रेष्ठ है। न उसका अन्त है और न प्रज्ञा आदि लक्षणोंसे ही वह जाना जा सकता है ॥ २६९ ॥ वह अक्षर (कभी नष्ट न होनेवाला), सच्चिदानन्द, अजर, अमर और सबसे श्रेष्ठ विद्वान् है। इसलिये वह निर्विकार, निराकार और निरामय कहलाता है ॥ २७० ॥ उसका न कोई रूप है, न लिङ्ग है। वह अकेला रहकर भी गणनासे परे है। वह अपनी मायाके साथ लिङ्गरूपमें दीखता है, किन्तु वास्तवमें रहता है अकेला ही ॥२७१॥ पुरुष, प्रकृति, व्यक्त, अहंकार, ये चिह्न उस लिङ्गरूप ब्रह्मको पहचाननेके लिए बताते हैं ॥ २७२ ॥ प्राणियोंका कार्य, कारण, सत्त्व, रज, तम इनको भी कुछ लोग आत्माका लक्षण बताते हैं ॥ २७३ ॥ कुछ लोग दस इन्द्रिय तथा मन और बुद्धि, इन बारहको भी उसके चिह्न बतलाते हैं। इस प्रकार यहाँ उस परमेश्वरके लिंगोंका विचार किया गया है ॥ २७४ ॥ ऊपर बतलाये हुए सब चिह्न कार्यके हैं। इनके अतिरिक्त कारणके भी बहुतसे लिंग हैं। इन लिंगोंकी संख्या सैकड़ा, हजार, दस हजार एवं करोड़ों पर्यन्त है ॥ २७५ ॥ उस मङ्गलमय परमात्माकी तो संसारकी समस्त वस्तुएँ ही ज्ञापक हैं। लेकिन वास्तवमें वही सर्वप्रधान तत्त्व है और उसका कोई सजातीय और विजातीय नहीं है ॥ २७६ ॥ अच्छी तरह विचार हो जानेपर यही निश्चित होता है कि वह केवल तन्तु ही है, पट आदि नहीं ॥ २७७ ॥ जिस तरह बिन्दुमात्रसे वह अकारादि मात्रात्रयात्मक कहा जाता है। उसी तरह वह ब्रह्म, ईश्वर या हरि अकेला रहता हुआ भी पाँच प्रकारका है ॥ ७८ ॥ सद्योजातादि रूपधारी विधि (ब्रह्मा) और शिव भी पाँच ही पाँच प्रकारका है। वह स्वयं शुद्ध, साक्षी, प्राज्ञ, तैजस तथा विश्वरूप है ॥ २७९ ॥ नाम और रूपके भेदसे वह सत्, चित् तथा आनन्द तीन प्रकारका है। किन्तु वह अकेला ही है। "ब्रह्मैवेदम्" इस श्रुतिसे भी यही सिद्ध होता है कि वह अकेला ब्रह्म ही पाँच प्रकारका हुआ था ॥ २८० ॥ प्रधान, महत्, अहङ्कार, पाँच तन्मात्रायें और

अष्टमूर्तिस्वरूपं सद्भवशर्वादिनामभृत् । वस्वष्टकस्वरूपेण मायया भाति सर्वतः ॥२८२॥
ज्योतिर्लिङ्गद्विषट्कं च द्वादशादित्यनामकम् । दशेंद्रियमनोबुद्धिनामभिर्भाति सत् स्फुटम् ॥२८३॥
दशेंद्रियाणि च प्राणपंचकं भोग्यपंचकम् । चेतश्चतुष्कमात्मैव पंचविंशमतो बुधैः ॥२८४॥
लक्षाणां चतुरशीति भोगायतनविस्तरः । तस्यैव कल्प्यते भ्रांत्या कर्मभिर्गुणभेदतः ॥२८५॥
जाग्रत्स्वप्नसुषुप्तिं च भोगस्थानानि चात्मनः । भोगो भोक्ता भोजयिता सर्वं ब्रह्मैव न पृथक् ॥२८६॥
अध्यात्ममधिदैवं च ह्यधिभूतमिति त्रिधा । स्थूलं सूक्ष्मं कारणं च सर्वं ब्रह्मैव न पृथक् ॥२८७॥
एतज्ज्ञानं च ध्यानं च विवेकश्च विरागिता । जीवेश्वरजगद्भानमात्मैवेति न तु पृथक् ॥२८८॥
सर्वं खल्विदमिति चेदं सर्वं यदयमात्मना । ब्रह्मैवेदं सर्वमिति श्रुतयः प्रवदंति हि ॥२८९॥
अयं सिद्धस्य विषयो यत्सर्वात्मनि दर्शनम् । आरुरुक्षुः शांतदांतस्तितिक्षुः सर्वतो भवेत् ॥२९०॥
स्वदेशे प्राप्तपुरुषं निबध्नंति वशीकृतम् । तेनामी विषयाः प्रोक्ता मुमुक्षुस्तान् विवर्जयेत् ।२९१॥
विविक्तसेवी लघ्वाशीत्यादि भागवतं वचः । किं बहूक्तेन विधिना समाप्तं शास्त्रहृद्गतम् ।२९२॥

दत्तं मे गुरुणा किमप्यजडमानंदात्मवस्त्वद्वयं
यत्सेवात इदं तदात्मकमहं त्वं चाशु नष्टं तमः ।
आपूर्णं सहसोदितं मह ऋतं गभीरमव्याकृतं
येनाच्छादितमिन्दुसूर्यपवनं विश्वं विशेषात्मकम् ॥२९३॥

तिर्यगूर्ध्वगता रेखाश्चत्वारिंशत्समाः शुभाः । तासामंकत्रिकोष्ठेषु परिधी द्वौ प्रकल्पयेत् ॥२९४॥
सप्तांते प्रथमाऽन्यास्तु ततो वाणांतकोष्ठके । तन्मध्ये रुद्ररुद्रेषु पदेष्वष्टादशैः पदैः ॥२९५॥

आठ प्रकृतियाँ ये शास्त्रोंमें बतलायी गयी हैं ॥ २८१ ॥ उन आठों मूर्तियोंका स्वरूप सद्भव-शर्व आदि नामोंसे विख्यात है और मायावश वे आठ वस्तुओंके नामसे भी अभिहित होते हैं ॥ २८२ ॥ आठ ज्योतिर्लिंग, द्वादश आदित्य, दस इन्दियाँ, मन और बुद्धि इन नामोंसे भी वह विश्वमें स्पष्ट दिखायी देता है ॥ २८३ ॥ दस इन्द्रियाँ, पाँच प्राणवायु, भोग्यपंचक और चार प्रकारका चित्त यह सब मिलाकर वह पच्चीस प्रकारका माना गया है ॥ २८४ ॥ चौरासी लाख योनियाँ ही उसके भोगरूपी घरका विस्तार है। भ्रान्तिवश या गुण-कर्मके भेदसे उसीमें इन सबकी कल्पना की जाती है ॥ २८५ ॥ जाग्रत्, स्वप्न और सुषुप्ति ये आत्माके भोगस्थान हैं। भोग, भोक्ता, भोज्य ये सब वह ब्रह्म ही हैं और कोई नहीं ॥ २८६ ॥ अध्यात्म, अधिदेव, अधिभूत, स्थूल और सूक्ष्मका कारण एकमात्र ब्रह्म ही है ॥ २८७ ॥ यह ज्ञान, ध्यान, विवेक, विरागिता, जीव, ईश्वर, जगत्का भान यह सब वह आत्मा ही है और कोई नहीं ॥ २८८ ॥ "सर्वं खल्विदं ब्रह्म" "यदयमात्मा" "ब्रह्मैवेदम्" ये श्रुतियाँ भी इसी बातको पुष्ट करती हैं ॥ २८९ ॥ संसारकी सब वस्तुओंको अपनी आत्मामें देखना, यह विषय सिद्धपुरुषोंका है । जो प्राणी सिद्धिके शिखरपर चढ़ना चाहता हो । उसे चाहिये कि वह शान्त, दान्त (इन्द्रियोंका दमन करनेवाला) और तितिक्षु बने ॥ २९० ॥ अपने देशमें आये हुए पुरुषको ये सांसारिक विषय बाँध लेते हैं। इसीसे इन्हें लोग विषय (विशेषेण सिन्वन्तीति विषयाः। अर्थात् भली-भाँति जकड़ लेनेवाले) कहते हैं। मुमुक्षु प्राणीको चाहिए कि इनका परित्याग कर दे ॥ २९१ ॥ "एकान्त स्थानमें रहे, थोड़ा खाय" इत्यादि बात भगवानने गीतामें स्वयं कही हैं। यहाँ विशेष विधि-विधान बतलानेकी आवश्यकता नहीं है। हृदयमें ज्ञानका प्रकाश होते ही सारे शास्त्र समाप्त हो जाते हैं ॥ २९२ ॥ यदि किसी सद्गुरुने कृपा करके जड़तारहित आनन्दात्मक ज्ञानरूप वस्तु दे दी तो 'वह' 'हम' सब एक हैं। यह भाव उत्पन्न होनेसे हृदयका अज्ञानान्धकार नष्ट हो गया। एक अनिर्वचनीय प्रकाश और चन्द्रमा-सूर्य तथा पवनपर भी आधिपत्य जमानेवाली शक्तिसे सहसा यह विश्व आलोकित हो उठा, तब और किसी उपदेशकी आवश्यकता ही क्या है ? ॥ २९३ ॥ सीधी और टेढ़ी चालीस रेखायें बराबर-बराबर खींचे । उनके उनतालीस कोष्ठकोंमें दो परिधियें बना दे ॥ २९४ ॥ सात

लिंगमेकं खंडवाप्यौ तुर्यतुर्यपदात्मिके । अष्टकोष्ठात्मकं भद्रं प्रोक्तं पार्श्वचतुष्टये ॥२९६॥
शृङ्खला द्विपदा चन्द्रं त्रिपदा वल्लरी तथा । पंचपादैः स्मृता वल्ल्यो त्रिपार्श्वेषु निमीलयेत् ॥२९७॥
द्वितीये त्रिपदश्चंद्रः शृंखला वेदपादिका । वल्ली नवपदा भद्रत्रयं नवपदात्मकम् ॥२९८॥
त्रयोदशपदं वापीद्वयं पार्श्वे तु शृङ्खले । द्विपदे रक्तवर्णे च भद्रं तुर्यपदं हरित् ॥२९९॥
प्रतिपार्श्वे भवेदेतत्प्रथमाधःसु योजयेत् । प्रतिपार्श्वे चतुर्लिंग वापीनां पञ्चकं तथा ॥३००॥
अष्टादशपदं लिंगं वापी त्रयोदशात्मिका । भद्रं रसपदैर्ज्ञेयं वल्ली रुद्रपदात्मिका ॥३०१॥
शृङ्खला पञ्चभिः पादैस्त्रिपदश्चंद्र ईरितः । लिंगोपरितना वीथी नीलवल्ल्या नियोजयेत् ॥३०२॥
यद्वा रसांते परिधिं विधाय तदनन्तरम् । त्रिलिंगान्येकलिंगं च द्वयोः पंक्त्योः प्रकारयेत् ॥३०३॥
आदौ चन्द्रकलं भद्रं पदमर्कपदैः स्मृतम् । शृङ्खलापञ्चभिर्वल्ली रुद्रकोष्ठा समीरिता ॥३०४॥
वापीचतुष्टयं पूर्वं परं वापीद्वयं स्मृतम् । पूर्ववत्सकलं ज्ञेयं बाह्याः परिधयः क्रमात् ॥३०५॥
पीतशुक्लरक्तकृष्णा ज्ञेयाः संख्याधिकाः शुभाः । एतत्सप्तेन्दुलिंगाख्यं पीठं सम्यगुदाहृतम् ॥३०६॥
अथवाऽस्मिन्त्रिकोष्ठानि वर्द्धयित्वा क्रमेण तु । षष्ठांते परिधी कार्यौ तत्र लिङ्गानि योजयेत् ॥३०७॥
प्रथमे त्रीणि लिंगानि द्वितीये चैकमीरितम् । चतुर्विंशपदैर्लिङ्गं वाप्यष्टादशपादजा ॥३०८॥
आदौ वेदमिता वाप्यो द्वे वाप्यौ च द्वितीयके । आदौ नवपदं भद्र द्वितीयेऽर्कपदं स्मृतम् ॥३०९॥
चंद्रवल्ल्यादिपूर्वोक्तं मध्ये लिंगं प्रकारयेत् । अष्टविंशपदैर्ज्ञेयं चतुःपादैः शिरः कटिः ॥३१०॥
अर्कार्कपदे खडवाप्यौ द्विपदशृङ्खलाः । पञ्चपादा स्मृता वल्ली त्रिपदा पीतशृङ्खला ॥३११॥
अर्कपदैश्चतुर्दिक्षु मध्ये भद्रचतुष्टयम् । चंद्रश्च त्रिपदः कोणे शिवमस्तकपार्श्वके ॥३१२॥

कोष्ठकोंके बाद पहिली परिधि बनाकर बाको परिधियाँ पाँच-पाँच कोष्ठकोंके बाद बनावे। उनके बीचमें एक सौ इक्कीस पादोंमेंसे अट्ठारह-अट्ठारह पादका एक एक लिंग बनावे। फिर चार-चार पदकी दो खण्डवापियोंकी रचना करे। इसके चारों बगल अष्टकोष्ठात्मक भद्र बनावे ॥ २९५ ॥ २९६ ॥ इसके बाद दो पादकी शृङ्खला, एकसे चन्द्रमा और तीन पादकी वल्लरी बनाकर इसके तीन बगलमें पाँच पाँच पादकी वल्लरियाँ बनावे ॥ २९७ ॥ दूसरी पंक्तिमें तीन पादका चन्द्रमा, चार पादकी शृङ्खला, नौ पादकी वल्लरी, नौ-नौ पादके तीन भद्र, तेरह पादकी दो वापियें, बगलमें दो लाल शृङ्खलायें और चार पादसे हरे भद्रकी रचना करे ॥ २९८ ॥ २९९ ॥ यह क्रम प्रत्येक पार्श्वभागमें रहेगा। प्रत्येक पार्श्वभागमें चार लिंग, पाँच वापी, अट्ठारह पादका लिंग, तेरह पादकी वापी, छः पादका भद्र, बारह पादकी वल्लरी, फिर पाँच पादकी वल्लरी और तीन पादका चन्द्रमा बनेगा। लिंगके ऊपरकी वीथी नीली रहेगी और उसके साथ-साथ वल्लरी भी नीली रहेगी ॥ ३०० ॥ ३०१ ॥ ३०२ ॥ अथवा छः कोष्ठकके बाद परिधि बनाकर तीन लिंग या एक लिंग दोनों पंक्तियोंमें बनावे ॥ ३०३ ॥ पहले सोलह पादका भद्र बनाकर बारह पादोंकी शृङ्खला और बारह कोष्ठकोंमेंसे पाँच पादकी बल्लरी बनावे ॥ ३०४ ॥ पहले चार वापी और फिर दो वापीकी रचना करे। बाकी सब पूर्ववत् रहेंगे और बाहरकी परिधियाँ क्रमशः पीली, सफेद, लाल और काली रहेंगी। यह सप्तेन्दुलिंगात्मक पीठ मैंने अच्छी तरह बतलाया ॥ ३०५ ॥ ३०६ ॥ अथवा इसी पीठमें दो कोष्ठक और बढ़ाकर छःके बाद दो परिधि बनावे और इस प्रकार लिंगोंकी योजना करे ॥ ३०७ ॥ प्रथम पंक्तिमें तीन और दूसरीमें एक लिंग बनावे। इसी पीठमें चौबीस पादका लिंग बनेगा और अट्ठारह पादकी वापी बनेगी ॥ ३०८ ॥ आदिमें चार वापियें और दूसरेमें दो वापी रहेगी। आदिमें नौ पादका भद्र बनेगा और दूसरेमें बारह पादका भद्र बनेगा। चन्द्रमा तथा वल्लरी आदि पूर्वोक्त नियमके अनुसार ही रहेंगे और मध्यमें लिंगकी रचना की जायगी। उसमें अट्ठाइस पाद रहेंगे और चार पादसे सिर तथा कमरकी रचना होगी। बारह-बारह पादसे दो खण्डवापियाँ बनायी जायँगी। दो पादकी शृङ्खलायें बनेंगी। पाँच पादकी वल्लरी बनायी जायगी। तीन पादसे पीतवर्णकी शृङ्खला बनेगी ॥ ३०९ ॥ ३१० ॥ ३११ ॥ बारह पादसे चारों ओरकी शृङ्खला बनेगी।

नेत्रार्थे द्वे पदे शुक्ले शेषाणि च पदानि हि । लिंगपार्श्वे पंच पंच यथेच्छं तानि पूरयेत् ॥३१३॥
पीतशुक्लरक्तकृष्णा बहिःपरिधयो मताः । एतत्सप्तदशलिंगैर्लिङ्गतोभद्रमीरितम् ॥३१४॥
दशकं कारणानां च प्राणानां पञ्चकं मनः । षोडशैताः कला आत्मा साक्षी सप्तदशः स्मृतः ॥३१५॥
अर्कलिंगात्मकं भद्रं शृणु शिष्य मयोच्यते । प्रागुदीच्या गता रेखाः षट्त्रिंशद्धि प्रकल्पयेत् ३१६॥
पदानि द्वादशशतं पञ्चविंशतिरेव च । खंडेंदुस्त्रिपदः कोणे शृङ्खला षट्पदात्मिका ॥३१७॥
त्रयोदशपदा वल्ली भद्रं तु नवभिः पदैः । भद्रोर्ध्वं त्रिपदा ज्ञेया द्वितीया पीतशृङ्खला ॥३१८॥
त्रयोदशपदा वापी लिङ्गमष्टादशैः स्मृतम् । लिंगं नियम्य पंक्तौ तु शोभा कोष्ठाश्चतुर्दश । ३१९॥
तेषामुपरि पंक्तौ तु कोष्ठाः सप्तदशैव तु । पूजापंक्तिः सिता ज्ञेया परितः परिकल्पिता ॥३२०॥
पूजापंक्त्यंतरापंक्तौ कोष्ठा अशीतिसख्यया । परिधिः स च विज्ञेयो मंडलांतरयोर्द्वयोः ॥३२१ ।
परिध्यंतरकोष्ठेषु सर्वतोभद्रमालिखेत् । विशेषश्चात्र वज्ञेयो शृङ्खला षट्पदा भवेत् ॥३२२॥
त्रयोदशपदा वल्ली भद्रं तु द्वादशैः पदैः । पचविंशत्पदा वापी परिधिः षोडशात्मकः ॥३२३॥
मध्ये नवपदैः पद्मं कर्णिकाकेसरान्वितम् । सत्त्वं रजस्तमोवर्णाः परितो मंडलस्य च ॥३२४॥
त्रयः परिधयः कार्यास्तत्र द्वाराणि कारयेत् । सितेंदुः शृङ्खला कृष्णा वल्ली नीला प्रपूरयेत् ॥३२५॥
भद्रं रक्तं शृंखलाऽन्या पीता वापी सिता स्मृता । लिंगानि कृष्णवर्णानि पार्श्वेषु द्वादशैव तु ॥३२६॥
परिधिः पीतवर्णः स्यात्कमलं पञ्चवर्णकम् । कर्णिका च केसराणि पीतवर्णानि कारयेत् ॥३२७॥
प्रकारांतरमन्यत्ते शृणु शिष्य मयोच्यते । पूर्वोत्तरगता रेखा सप्तविंशन्मिताः शुभाः ॥३२८॥
तत्षट्त्रिंशत्पदेष्वेव सर्वतोभद्रमुत्तमम् । अब्धिनेत्राग्निकोष्ठैश्च रचयेत्पूर्ववच्छुभम् ॥३२९॥

मध्यमें चार भद्र बनेंगे । कोणमें तीन पादका चन्द्रमा बनेगा। शिवजीके मस्तकके पास नेत्रके लिए दो पाद सादा ही छोड़ दे । जितने पाद हैं, उनमेसे लिंगके आस-पासवाले पाँच-पाँच पादोंको अपने इच्छानुसार पूर्ण करे ॥ ३१२ ॥ ३१३ ॥ बाहरकी सब परिधियाँ पीत, शुक्ल, रक्त तथा कृष्ण वर्णकी रहेंगी। यह सप्तदशलिंगात्मक भद्रकी रचनाका प्रकार बतलाया गया ॥ ३१४ ॥ दस इन्द्रियोंकी, पाँच प्राणोंकी, एक मनकी ये सोलह कलायें होती हैं और सत्रहवाँ आत्मा साक्षी माना जाता है ॥ ३१५ ॥ हे शिष्य ! अब मैं द्वादशलिंगात्मक लिंगतोभद्रकी रचनाका प्रकार बतलाता हूँ, सुनो। पूर्व-पश्चिम तथा उत्तर-दक्षिणको ओर छत्तीस-छत्तीस रेखायें खींचे ॥ ३१६ ॥ इसमें कुल बारह सौ पच्चीस पाद होंगे। तीन पादसे खण्डेन्दु बनेगा और कोणकी ओर छः पादकी शृङ्खला रहेगी ॥ ३१७॥ तेरह पादकी दो वल्लरी, नौ पादका भद्र, भद्रके ऊपर तीन पादकी पीली शृंखला, तेरह पादकी वापी और अट्ठारह पादका लिंग बनाकर पंक्तिमें चौदह कोष्ठक शोभाके लिये रहने दे। उनके ऊपरवाली पंक्तिमें सत्रह कोष्ठक रहेंगे और चारों ओरसे सफेद रङ्गकी एक पूजापंक्ति रहेगी ॥ ३१८–३२० ॥ पूजापंक्तिकी भीतरवाली पंक्तिमें अस्सी कोष्ठक रहेंगे। वे उन पंक्तियोंके बीचमें परिधिका काम देंगे ॥ ३२१ ॥ परिधिके भीतरवाले कोष्ठकोंसे सवतोभद्रकी रचना करे। इस भद्रमें जो विशेषता है, उसे समझ लो। इसकी शृङ्खला छः पादकी रहेगी ॥ ३२२ ॥ तेरह पादकी बल्लरी बनेगी। बारह पादका भद्र रहेगा। पच्चीस पादकी वापी रहेगी और सोलह पादका परिघि बनेगी ॥ ३२३ ॥ बीचमें नौ पादका एक कमल बनेगा, जिसमें कर्णिका तथा केसर आदि भी रहेंगे। मण्डलके चारों ओर सत्त्व, रज, तम इन तीनों गुणोंकी रचना करनी होगी ॥ ३२४ ॥ इसमें तीन परिधियाँ रहेंगी और कई द्वार भी रहेंगे। इसमें उज्ज्वल चन्द्रमा, काली शृंखला, नील बल्लरी और लाल भद्र रहेगा। दूसरी शृंखला पीत वर्णकी और वापी सफेद रहेगी। आस-पास कृष्ण वर्णके बारह लिंग बनेंगे ॥ ३२५ ॥ ३२६ ॥ परिधि पीले रङ्गकी और कमल पाँच रंगका बनेगा। उसकी कर्णिका तथा केसर पीतवर्णका रहेगा ॥ ३२७ ॥ हे शिष्य ! अब मैं इसका एक दूसरा प्रकार बतला रहा हूँ। पूर्व-पश्चिम तथा उत्तर-दक्षिण दोनों ओर सत्ताईस-सत्ताईस रेखायें खीचे ॥ ३२८ ॥ इसके छत्तीस पादोंसे सर्वतोभद्र तथा ३२४ पादसे अन्य वस्तुओंकी रचना करे

परिधिरतत्समंताच्च प्रकल्प्यः पीतवर्णकः । अष्टोत्तरशतैर्लिंगतोभद्रं कथितं यथा ॥३३०॥
तस्य चतुर्षु पार्श्वेषु रचयेदर्कलिंगकम् । कोणे कोणे त्रिपदोऽब्जः शृखला सप्तपादिका ॥३३१॥
वल्लीमनुपदा भद्रं षट्पदं त्रींदुवापिका । लिंगं षड्विंशपदजं भद्रं स्याद्वापिकोपरि ॥३३२॥
लिङ्गपार्श्वपदान्येव षट् पीतानि प्रकल्पयेत् । लिंगोपरितना वीथी नीला वल्ल्योर्नियोजयेत् ३३३॥
चतुष्पदैर्लिङ्गशिरस्तथा परिधयो बहिः । सर्वाणि तु यथापूर्वमुक्तवर्णैः सुरञ्जयेत् ॥३३४॥
चतुर्विंशतिरालेख्या रेखाः प्राग्दक्षिणायताः । कोणेषु शृङ्खला पंचपदा वल्ल्यश्च पार्श्वतः ॥३३५॥
पदैर्नवभिरालेख्याश्चतर्भिर्लघुशृङ्खलाः । लघुवल्ल्यः पदैः षड्भिस्ततोऽष्टादशभिः पदैः ॥३३६॥
कृत्वा लिंगानि वाप्यस्तु त्रयोदशभिरन्तरा । ततो वीथीद्वयेनैव पीठं कुर्याद्विचक्षणः ॥३३७॥
तस्य पादाः पंचपदा द्वाराण्यपि तथैव च । एकाशीतिपदं मध्ये पद्मं स्वस्तिकमिष्यते ॥३३८॥
कोणेषु शृंखलाः कार्याः पदैस्त्रिभिरतः परम् । पदैश्चतुर्भिर्दिक्षु स्युर्भद्राण्येषां समंततः ॥३३९॥
एकादशपदे वल्ल्यौ मध्येऽष्टदलमालिखेत् । पद्मं नवपदं ह्येतल्लिंगतोभद्रमिष्यते ॥३४०॥
शृंखला कृष्णवर्णेन वल्ली नीलेन पूरयेत् । रक्तेन शृंखला लघ्वी वल्ली पीतेन पूरयेत् ॥३४१॥
लिंगानि कृष्णवर्णानि श्वेतेनाप्यथ वापिका । पीठं स्वपादं श्वेतेन पीतेन द्वारपूरणम् ॥३४२॥
मध्ये स्युः शृखला रक्ता वल्लीर्नीलेन पूरयेत् । भद्राणि पीतवर्णानि पीता पंकजकर्णिजा ॥३४३॥
दलानि श्वेतवर्णानि यद्वा चित्राणि कल्पयेत् । तिस्रो रेखा बहिः कार्याः सितरक्तासिताः क्रमात्३४४॥
ऊर्ध्वलिंगोद्भवं ह्यष्टलिंगतोभद्रमुच्यते । अन्यन्मयातिरम्यं तच्छृणु शिष्यात्र कौतुकात् ३४५॥
अष्टाविंशतिरेखाश्च तिर्यगूर्ध्वं समंततः । सप्तत्रिंशतिकोष्ठेषु षडन्ते परिधयः स्मृताः ॥३४६॥
कोणेषु त्रिपदैश्चन्द्रः शृङ्खला पञ्चपादिका । वाप्यर्कपादजा भद्रषट्कं षट्षट्पदात्मकम् ॥३४७॥

॥ ३२९ ॥ उसके चारों ओर पीतवर्णकी परिधि बनावे। पहले जो मैंने अष्टोत्तरशतात्मक लिंगतोभद्र बतलाया है, उसके चारों बगल द्वादश लिंगकी रचना करे। प्रत्येक कोणमें तीन पादका कमल बनाकर सात पादकी शृंखला बनावे ॥ ३३० ॥ ३३१ ॥ फिर चौदह पादकी वल्लरी, छ पादका भद्र, तीन तीन पादका चन्द्रमा और वापी तथा छब्बीस पादका लिंग वापिकाके ऊपर बनाया जायगा ॥ ३३२ ॥ लिंगके बगलवाले छः पाद पीले रङ्गसे रङ्ग दिये जायें। लिंगके ऊपरवाली शृङ्खला नील वल्लरियोंके बीचमें नियुक्त कर दे ॥ ३३३ ॥ चौदह पादसे लिंग, मस्तक तथा परिधियाँ बनावे। बाकी सब जैसा ऊपर कह आये है, उसके अनुसार ही रहने दे ॥ ३३४ ॥ पूर्व-पश्चिम तथा उत्तर-दक्षिणकी ओर चौबीस-चौबीस रेखायें खींचे। कोणमें पाँच पादकी शृङ्खला तथा नौ पादोंकी वल्लरियाँ बनावे। चार पादकी छोटी शृङ्खला बनावे। छः पादकी लघु वल्लरी बनावे। अट्ठारह पादोंसे लिंग एवं तेरह पादकी वापियाँ बनावे। फिर दो वीथियोंसे पीठकी रचना करे ॥ ३३५–३३७ ॥ उस पीठका पैर पाँच पादसे तथा द्वार पाँच पादसे बनाकर मध्यमें इक्यासी पादका कमल बनेगा ॥ ३३८ ॥ तीन-तीन पादोंसे कोनोंमें शृङ्खलायें बनावे। चारों दिशाओंमें चार-चार पादके भद्र बनेंगे ॥ ३३९ ॥ ग्यारह पादकी दो वल्लरियाँ बनावे। नौ पादसे मध्यमें अष्टदल कमलकी रचना करे। यह भी एक प्रकारका लिङ्गतोभद्र है ॥ ३४० ॥ इसमें भी शृङ्खला कृष्ण वर्ण और वल्लरी नीले रङ्गसे पूर्णकी जायगी। रक्त वर्णसे लघु शृङ्खला एवं पीत वर्णसे शेष वल्लरीकी पूर्ति की ज़ायगी ॥ ३४१ ॥ इसके लिंग कृष्ण वर्णके और वापी सफेद रङ्गकी रहेगी। इसकी पीठ और इसके पाद भी श्वेत रहेंगे और पीत वर्णसे इसके द्वार रंगे जायेंगे ॥ ३४२ ॥ मध्यमें रक्त वर्णकी शृंखला और नील वर्णसे वल्लरी पूर्ण की जायगी। सब भद्र पीतवर्णके रहेंगे और कमलकी कर्णिका भी पीले रङ्गकी रहेगी ॥ ३४३ ॥ कमलके दलोंको सफेद या चित्र वर्णसे पूर्ण करे। बाहर तीन रेखायें रहेंगी और क्रमशः उनका वर्ण उज्ज्वल, रक्त तथा कृष्ण रहेगा ॥ ३४४ ॥ अब हम ऊर्ध्वलिंगात्मक अष्टलिङ्गतोभद्रकी रचनाका दूसरा प्रकार बतलाते हैं, उसे मन लगाकर सुनो ॥ ३४५ ॥ सीधी और तिरछी अट्ठाईस-अट्ठाईस रेखायें खींचे। सत्ताईस कोष्ठक पर्यन्त छः छः कोष्ठकके बाद परिधियाँ रहेंगी ॥ ३४६ ॥ कोणमें

ऊर्ध्वे भद्रे रविपदे पदैरष्टादशैः शिवाः । आत्मनोऽभिमुखाः सर्वे कार्या ह्यष्ट शुभावहाः ॥३४८॥
त्रयोदशांघ्रिजा वापी तत्त्रयं पश्चिमे स्मृतम् । पूर्वे त्वेका द्वे शकले शेषं सर्वं तु पूर्ववत् ॥३४९॥
तिर्यग्भद्रे वेदपदे पदन्यूनोर्ध्ववल्लरी । दक्षिणोत्तरतश्चापि वापीनां शकलाष्टकम् ॥३५०॥
उभयोर्लिङ्गयोर्माला सा त्रिभिर्नयनैः स्मृता । सर्वत्र नेत्रे द्वे ज्ञेये दक्षिणोत्तरयोस्त्रिभिः ॥
पृथक् चत्वारि भद्राणि ह्यधोभद्रे चतुष्पदे ॥३५१॥
दक्षिणोत्तरदिग्भागे पूर्ववल्यौ च संधयेत् । त्र्यन्ते मध्ये तु परिधिः पञ्चविंशैर्जलेरुहम् ॥३५२॥
शृंखला द्विपदा मध्ये वल्ली षट्पादजा स्मृता । वाप्यः पञ्चपदैर्ज्ञेया भद्रं वेदपदात्मकम् ॥३५३॥
सिता वापी शिवः कृष्णः पद्मभद्रे च लोहिते । तिर्यग्भद्र लिंगमाले परिधी पीतवर्णकौ ॥३५४॥
नेत्रेन्दू धवलौ कृष्णा शृंखला हरिता लता । पदत्रयं हि वाप्यूर्ध्वं तद्यथारुचि पूरयेत् ॥३५५॥
पीतशुक्लरक्तकृष्णा बहिः परिधयः स्मृताः । अष्टलिंगात्मकं ज्ञेयं लिंगतोभद्रमुत्तमम् ॥३५६॥
अथवाऽन्यौ द्वौ प्रकारौ प्रोच्येते शृणु तावपि । द्वात्रिंशच्चरणेष्वेवं चतुर्लिङ्ग तथाऽष्टकम् ॥३५७॥
युक्त्या विरचयेत्तत्र विशेषोऽथ निगद्यते । आद्य लिंगं चतुर्विंशपदमष्टेंदुवापिका ॥३५८॥
भद्रं विंशपदं चान्यल्लिंगमष्टादशात्मकम् । भद्रं नवपदं शेषं यावदवधि योजयेत् ॥३५९॥
रेखास्त्वष्टादश प्रोक्ताश्चतुर्ल्लिंगसमुद्भवे । कोणेन्दुस्त्रिपदः श्वेतस्त्रिपदैः कृष्णशृङ्खला ॥३६०॥
वल्ली सप्तपदा नीला भद्रं रक्तं चतुष्पदम् । भद्रपार्श्वे महालिंगं कृष्णमष्टादशैः पदैः ॥३६१॥
शिवपार्श्वे तु वापीं च कुर्यात्पञ्चपदां सिताम् । पदमेकं तथा पीतं भद्रं वाप्यस्तु मध्यतः ॥३६२॥
शिरसि शृंखला पार्श्वं कुर्यात्पीतं पदत्रयम् । लिंगानां स्कन्धतः कोष्ठा विंशत्यो रक्तवर्णकाः ।३६३॥

तीन पादका चन्द्रमा रहेगी और पाँच पादकी शृंखला बनायी जायगी। बारह पादकी वापी और छः-छः पादके छः भद्र बनेंगे ॥ ३४७ ॥ ऊपरके दोनों भद्र बारह पादके रहेंगे और अठ्ठारह पादके भद्र बनाये जायँगे। इन सबको अपने अभिमुख बनावे ॥ ३४८ ॥ तेरह पादोंकी कुल वापियाँ रहेंगी। तिसमें पश्चिमकी ओर तीन वापी, पूर्वकी ओर एक वापी तथा दो खण्डवापी बनायी जायगी। शेष सब पूर्ववत् रहेंगे ॥ ३४९ ॥ इसमें बेड़ा भद्र चार पादका और तीन पादकी ऊर्ध्ववल्ली रहेगी। दक्षिण और उत्तरकी ओर खाण्डवापियें रहेंगी ॥ ३५० ॥ तीन नेत्रोंसे इन दोनों लिङ्गोंकी माला बनायी जायगी। दक्षिण और उत्तर दो-दो और तीन-तीन पादोंके दो नेत्र बनेंगे। चार भद्र पृथक् बनाये आयँगे और उनमें नीचेवाले दोनों भद्र चार पादके रहेंगे ॥ ३५१ ॥ दक्षिण और उत्तरकी ओर दो बल्लियोंकी योजना की जायगी। तीन पादसे मध्यमें परिधि बनेगी और पच्चीस पादका कमल बनेगा ॥ ३५२ ॥ इसमें शृंखला दो पादकी और मध्यमें छः पादसे वल्ली बनायी जायगी। पाँच पादकी वापियाँ बनेंगी और चार पादका भद्र बनेगा ॥ ३५३ ॥ इसकी वापियाँ सफेद, शिव कृष्ण, पद्म और भद्र रक्तवर्णके रहेंगे। तिरछा भद्र, लिङ्ग, माला तथा दोनों परिधियाँ पीत वर्णकी रहेंगी ॥ ३५४ ॥ नेत्र तथा इन्दु ये दोनों सफेद रहेंगे। शृंखला काली और लता हरी रहेगी। वापीके ऊपरवाले तीन पादोंको जैसी अपनी रुचि हो, उस प्रकार रङ्गकर बनावे ॥ ३५५ ॥ इसके बाहरकी परिधियाँ क्रमशः पीली, सफेद, लाल तथा काली रहेंगी। यह मैंने तुमको अष्टलिङ्गात्मक लिंगतोभद्र बतलाया ॥३५६॥ अब इसके अन्य दो प्रकार बतलाते है, उन्हें भी सुन लो। तेईस चरणोंसे चार या आठ लिंग युक्तिपूर्वक बनावे। अब उसमें जो विशेषतायें हैं, उन्हें बतलाते हैं। आदिवाली पंक्तिमें चौबीस पादकी अठ्ठारह वापिएँ बनेंगी ॥ ३५७ ॥ ६५८ ॥ बीस पादका भद्र बनेगा। दूसरा लिंग अठ्ठारह पादका बनेगा। नौ पादका भद्र बनेगा। बाकी सब पहलेके समान बनेंगे ॥ ३५९ ॥ चतुर्लिङ्गात्मक भद्रमें अठ्ठारह रेखायें खींचे। इसमें भी कोणका चन्द्रमा तीन पादका और कृष्ण वर्णकी शृंखला रहेगी ॥ ३६० ॥ सात पादसे नीले रङ्गकी बल्लरी, चार पादसे रक्त वर्णका भद्र और भद्रके पास अठ्ठारह पादसे कृष्ण वर्णका महालिंग बनावे ॥ ३६१ ॥ शिवके पास पाँच पादकी सफेद वापी बनावे।

परिधिः पीतवर्णस्तु पदैः षोडशभिः स्मृतः । पदैस्तु नवभिः पश्चात्पद्मं चित्रं सकर्णिकम् ॥३६४॥
तिर्यगूर्ध्वं गता रेखाः कार्याः स्निग्धास्त्रयोदश । कोणेंदुस्त्रिपदः कार्यः शृंखला त्रिपदा स्मृता ॥३६५॥
वल्ली च षट्पदा नीला रक्तं भद्रं प्रकल्पयेत् । पदैर्द्वादशभिः स्पष्टमुत्तरे पूर्वदक्षिणे ॥३६६॥
पश्चिमायां महारुद्रमष्टाविंशतिकोष्ठके । लिंगपार्श्वे तथा मूर्ध्नि ह्यष्ट कोष्ठास्तु पीतकाः ॥३६७॥
लिंगमेकं तथा गौर्यास्तिलकं प्रोक्तमण्डले । पूजयेन्मण्डले चैत्र तस्य गौरी प्रसीदति ॥३६८॥
प्रागुदीच्यां गता रेखाः कुर्यादेकोनविंशतिः । खण्डेंदुस्त्रिपदः कोणे शृङ्खला पञ्चभिः पदैः ॥३६९॥
एकादशपदा वल्ली भद्रं तु नवभिः पदैः । चतुर्विंशत्पदा वापी परिधिर्विंशकैः पदैः ॥३७०॥
मध्यं षोडशभिः कोष्ठैः पद्ममष्टदलं स्मृतम् । श्वेतेंदुश्शृंखला कृष्णा वल्ली नीलेन पूरयेत् ॥३७१॥
भद्रारुणं सिता वापी पीते परिधिकर्णिके ।
रक्तं वा चित्रितं पद्मं बाह्याः सत्त्वरजस्तमाः । सर्वतोभद्रकं चेदं कर्त्तव्यं सर्वकर्मसु ॥३७२॥
एवं लिंगतोभद्राणां रचनाः कथिता मया । एताः शिवपरा ज्ञेया न योग्या विष्णुपूजने ॥३७३॥
रामलिंगात्मकं योग्यं श्रीविष्णोरर्हणस्य च । पूजने त्वेक एवात्र तद्विस्तारेण कथ्यते ॥३७४॥
शिवस्य पूजने लिंगमुपास्यं परिचिंतयेत् । उपासिका राममुद्रा ज्ञेया तद्वद्भवानपि ॥३७५॥
लिंगतोभद्रवच्चात्र समावाह्यातिबुद्धितः । रामतोभद्रक यच्च ज्ञेयं विष्णुपरं हि तत् ॥३७६॥
रमा रामेति वर्णवच्चिह्नितं भद्रकं कृतम् । धिया देवीपरं तच्च ज्ञातव्यं सर्वकर्मसु ॥३७७॥

इति श्रीशतकोटिरामचरितांतर्गते श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये मनोहरकांडे रामदासविष्णुदास-संवादे रामलिंगतोभद्राणां तथा लिंगतोभद्राणां रचनाप्रकारकथनं नाम पञ्चमः सर्गः ॥ ५ ॥

एक पादका एक पीला भद्र बनावे। मध्यमें वापी, मस्तकपर शृंखला, बगलमें पीले रङ्गके तीन पाद और लिंग, स्कन्धमें लाल वर्णके बीस कोष्ठक बनावे ॥ ३६२ ॥ ३६३ ॥ सोलह पादोंसे पीत वर्णकी परिधि और उसके आगे नौ पादोंसे विविध वर्णकी कर्णिकायुक्त कमल बनावे ॥ ३६४ ॥ तीखी और सीधी तेरह रेखायें खींचे। कोणमें तीन पादका चन्द्रमा बनावे ॥ ३६५ ॥ पीले वर्णसे छः पादकी वल्ली और रक्त वर्णका भद्र बनावे। फिर उत्तर-पूर्व-दक्षिण तथा पश्चिम कोणमें बारह पादोंसे अट्ठाईस कोष्ठकोंमें महारुद्रका निर्माण करे। लिंगके बगलमें तथा मस्तकके आठ कोष्ठकोंको पीले रङ्गसे रङ्गे ॥ ३६६ ॥ ३६७ ॥ इसके मण्डलमें गौरीका लिङ्ग बनावे। जो प्राणी इस मण्डलका पूजन करता है, उसपर गौरी प्रसन्न होती हैं ॥ ३६८ ॥ पूर्व और उत्तरकी ओर १९ रेखायें खींचे। कोणमें तीन पादका चन्द्रमा बनावे। पाँच पादकी शृंखला, ग्यारह पादकी वल्ली और नौ पादोंसे भद्रकी रचना करे। चौबीस पादकी वापी और बीस पादकी परिधि बनावे ॥ ३६९ ॥ ३७० ॥ मध्यमें सोलह पादका अष्टदल कमल बनावे। इस भद्रमें चन्द्रमा सफेद, शृंखला काली, वल्ली नीली, भद्र लाल, वापी सफेद, परिधि पीले वर्णकी, कर्णिका लाल और विविध वर्णका कमल बनावे। बाहर सत्त्व, रज और तम रहेगा। इस सर्वतोभद्रको सब कामोंमें बनाना चाहिए ॥ ३७१ ॥ ३७२ ॥ यह सब लिङ्गतोभद्रकी रचनाका प्रकार मैंने बतलाया है। ये सब शिवकी पूजामें ही काम देंगे, विष्णुपूजनमें नहीं ॥ ३७३ ॥ विष्णुकी पूजामें श्रीरामलिंगतोभद्रका ही उपयोग करना चाहिए। प्रत्येक पूजनमें एक देवताकी ही प्रधानता रहती है। इसी बातको अब विस्तारपूर्वक बतला रहे हैं ॥ ३७४ ॥ शिवकी पूजामें लिङ्ग उपास्य रहता है। इसलिये उसीका ध्यान करना चाहिए। इसमें उपासिका राममुद्रा है और लिंगतोभद्रके समान ही इसमें भी आवाहन किया जाता है। रामतोभद्र विष्णुपरक है ॥३७५॥३७६॥ इसमें रमा राम ये वर्ण चिह्नित किये हुए रहते हैं। इसलिए कुछ लोग रामतोभद्रको देवीपरक भी कहते हैं। अस्तु, कहनेका भाव यह है कि यह भद्र सब कामोंमें प्रयुक्त किया जा सकता है ॥ ३७७ ॥ इति श्रीशतकोटिरामचरितान्तर्गते श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये पं० रामतेजपाण्डेयकृत'ज्योत्स्ना'भाषाटीकासहिते मनोहरकाण्डे पञ्चमः सर्गः ॥ ५ ॥

षष्ठः सर्गः

(रामतोभद्रमें देवताओंकी स्थापनाविधि तथा रामनवमीकी कथा)

अथ सर्वतोभद्रं तद्देवताश्च लिख्यन्ते । प्राणानायस्य देशकालौ स्मृत्वा रामतोभद्रदेवतास्थापनं वा रामलिंगतोभद्रदेवतास्थापनं वा रमानामतोभद्रदेवतास्थापनं वा रमानामतोभद्रदेवतास्थापनं करिष्य इति संकल्प्य । ब्रह्मजज्ञानमिति मन्त्रस्य वामदेवऋषिः त्रिष्टुप्छन्दः ब्रह्मादेवता ब्रह्मस्थापने विनियोगः ॥ 'ब्रह्मजज्ञानं०' सर्वतोभद्रमध्ये ब्रह्माणमावाहयामि ॥ १ ॥ उत्तरे वापीप्रांतभागे 'आप्यायस्वस०' सोमाय नमः सोममावाहयामि ॥२॥ ईशान्यां खंडेंदौ 'तमीशानंज०' ईशानाय नमः ईशानमावाहयामि ॥ ३ ॥ पूर्वस्यां वाप्यां 'त्रातारमिंद्र०' इन्द्राय नमः इन्द्रमावाहयामि ॥ ४ ॥ आग्नेय्यां खंडेंदौ 'अग्निदूतं०' अग्नये नमः अग्निमावाहयामि ॥ ५ ॥ दक्षिणस्यां वाप्यां 'यमायत्वांगिर०' यमाय नमः यममावाहयामि ॥ ६ ॥ नैर्ऋत्यां खंडेंदौ 'असुन्वंतं०' निर्ऋतये नमः निर्ऋतिमावाहयामि ॥ ७ ॥ पश्चिमायां वाप्यां 'तत्त्वायामि०' वरुणाय नमः वरुणमावाहयामि ॥ ८ ॥ वायव्ये खंडेंदौ 'आनोनियुद्भिः०' वायवे नमः वायुमावाहयामि ॥ ९ ॥ वायुसोममध्ये भद्रे 'निवेशनीसंगमनीवसूनां०' ध्रुवं अध्वरं सोम अपः अनिलं अनलं प्रत्यूषं प्रभासमित्यष्टवसूनावाहयामि ॥ १० ॥ सोमेशानमध्ये भद्रे 'नमस्ते रुद्र०' वीरभद्रं शंभु गिरिशं अजैकपादं अहिर्बुध्न्यं पिनाकिनं भुवनाधीश्वरं कपालिनं दिक्पतिं स्थाणुं रुद्रमित्येकादश रुद्रानावाहयामि ॥ ११ ॥ ईशानेंद्रमध्ये भद्रे 'आकृष्णेन०' भगं वरुण सूर्यं वेदांगं भानुं रविं गभस्ति हिरण्यरेतसं दिवाकरं मित्रं आदित्यं विष्णुमिति द्वादशादित्यानावाहयामि ॥ १२ ॥ इन्द्राग्निमध्ये भद्रे 'अश्विना तेजसा चक्षु०' अश्विनीकुमाराभ्यां नमः अश्विनौ देवावावाहयामि ॥ १३ ॥ अग्नियममध्ये भद्रे 'समाश्चर्षणिर्धृतो०' सपैतृकान् देवानावाहयामि ॥ १४ ॥ यमनिर्ऋतिमध्ये भद्रे 'अभित्यं देवं०' यक्षेभ्यो नमः यक्षानावाहयामि ॥ १५ ॥ निर्ऋतिवरुणयोर्मध्ये भद्रे

अब सर्वतोभद्र और उसके देवताओंके आवाहन तथा स्थापनको विधि बतलाते हैं। प्राणायामपूर्वक देश-काल आदिका उच्चारण करके "रामतोभद्रके देवताका स्थापन, लिंगतोभद्रके देवताका स्थापन, रामनामतोभद्रकें देवताका स्थापन अथवा रमारामतोभद्रके देवताका स्थापन करूँगा।" ऐसा संकल्प करके "ब्रह्मजज्ञानम्" आदि मंत्रको पढ़ता हुआ विनियोग करे । "ब्रह्मजज्ञानम्" यह मंत्र पढ़कर ब्रह्माका आवाहन करे । उत्तर वापीके पास 'आप्यायस्व' यह मंत्र पढ़कर सोमका आवाहन करे ॥ १ ॥ २ ॥ ईशानके खण्डेन्दुमें 'तमीशानं' इस मंत्रसे ईशका आवाहन करे ॥ ३ ॥ पूर्वको वापीमें 'त्रातारं' इस मंत्रसे इन्द्रका आवाहन करे ॥ ४ ॥ अग्निकोणके इन्दुमें 'अग्निदूतं' इस मंत्रसे अग्निका आवाहन करे ॥ ५ ॥ दक्षिण वापीमें 'यमायत्वा' इस मंत्रसे यमका आवाहन करे ॥ ६ ॥ नैर्ऋत्यके खण्डेन्दुमें 'असुन्वतं' इस मंत्रसे निर्ऋतिका आवाहन करे ॥ ७ ॥ पश्चिम वापीमें 'तत्त्वायामि' इस मंत्रसे वरुणका आवाहन करे ॥ ८ ॥ वायव्य कोणके खण्डेन्दुमें 'आनो नियुद्भिः' इस मंत्रसे वायुका आवाहन करे ॥ ९ ॥ वायु और सोमके मध्यवाले भद्रमें 'निवेशसीसंग' इस मंत्रसे ध्रुव, अध्वर, सोम आदि आठ वसुओंका आवाहन करे ॥ १० ॥ सोम और ईशानके मध्यवाले भद्रमें 'नमस्तेरुद्र' इस मंत्रसे वीरभद्र, शम्भु, गिरिश, अजैकपाद, अहिर्बुध्न्य, पिनाकी, भुवनाधीश्वर, कपाली, दिक्पति, स्थाणु और रुद्र इन एकादश रुद्रोंका आवाहन करे ॥ ११ ॥ ईशान और इन्द्रके मध्यवाले भद्रमें 'आकृष्णेन' इस मन्त्रसे भग, वरुण, सूर्य, वेदांग, भानु, रवि, गभस्ति, हिरण्यरेतस, दिवाकर, मित्र, आदित्य और विष्णु इन द्वादश सूर्योंका आवाहन करे ॥ १२ ॥ इन्द्र और अग्निके मध्यवाले भद्रमें 'अश्विना तेजसा' इस मन्त्रसे अश्विनीकुमारोंका आवाहन करे ॥ १३ ॥ अग्नि और यमके मध्यवाले भद्रमें 'समाश्चर्षणिः'

'आयंगौः०' भूतनागेभ्यो नमः भूतान्नागानावाहयामि ॥ १६ ॥ वरुणवायुमध्ये भद्रे 'नदीभ्यः पौञ्जिष्टं' गन्धर्वाप्सरोभ्यो नमः गन्धर्वाप्सरस आवाहयामि ॥ १७ ॥ ब्रह्मसोममध्ये वाप्यां 'यदक्रंदः प्रथमं०' स्कंदाय नमः स्कंदमावाहयामि ॥ १८ ॥ 'नमः शंभवे०' नंदीश्वराय नमः नंदीश्वरमावाहयामि ॥१९॥ 'भद्रं कर्णेभिः०' शूलाय नमः शूलमावाहयामि ॥ २० ॥ 'विश्वकर्मा-हज०' महाकालाय नमः महाकालमावाहयामि ॥ २१ ॥ ब्रह्मेशानमध्ये वल्लीषु 'आदितिर्द्यौरं०' ऋक्षादिभ्यो नमः ऋक्षादीनावाहयामि ॥२२॥ ब्रह्मेंद्रमध्ये वाप्यां 'श्रीश्चते०' दुर्गायै नमः दुर्गामा-वाहयामि ॥ २३ ॥ 'इदं विष्णु०' विष्णवे नमः विष्णुमावाहयामि ॥२४॥ ब्रह्माग्निमध्ये वल्लीषु 'उदीरिता०' स्वधायै मनः स्वधामावाहयामि ॥ २५ ॥ ब्रह्मयममध्ये वाप्यां 'अरंमृत्यो०' मृत्यवे नमः मृत्युमावाहयामि ॥ २६ ॥ ब्रह्मवरुणमन्ये वाप्यां 'गणनांत्वा०' गणपतये नमः गणपति-मावाहयामि ॥२७॥ ब्रह्मवरुणमध्ये वाप्यां 'शन्नोदेवी०' अद्भ्यो नमः अप आवाहयामि ॥ २८ ॥ ब्रह्मवायुमध्ये वल्लीषु 'मरुतोयस्य०' मरुते नमः मरुतमावाहयामि ॥ २९ ॥ ब्रह्मणः पादमूले कर्णिकाधः 'स्योनापृथिवि०' पृथ्व्यै नमः पृथ्वीमावाहयामि ॥३०॥ तत्रैव 'पञ्च नद्यः सरस्वती०' गंगादिसर्वनदीरावाहयामि ॥ ३१ ॥ तत्रैव 'धाम्नोधाम्नोराजंस्ततोवरुण०' सप्तसागरेभ्यो नमः सप्त-सागरानावाहयामि ॥३२॥ ततः कर्णिकोपरि नाममंत्रेण भैरवे नमः गदामावाहयामि ॥ ३३ ॥ ततः पीतपरिधौ सोमादिसन्निधौ क्रमेण आयुधानि । सोमसमीपे गदायै नमः गदामावाहयामि ॥ ३४ ॥ ईशानसमीपे शूलाय नमः शूलमावाहयामि ॥३५॥ इन्द्रसमीपे वज्राय नमः वज्रमावाहयामि ॥३६॥ अग्निसमीपे शक्तये नमः शक्तिमावाहयामि ॥३७॥ यमसमीपे दंडाय नमः दंडमावाहयामि । ३८॥ निर्ऋतिसमीपे खड्गाय नमः खड्गमावाहयामि ॥ ३९ ॥ वरुणसमीपे पाशाय नमः पाशमावाह-यामि ॥४०॥ वायुसमीपे अंकुशाय नमः अंकुशमावाहयामि ॥४१॥ पुनः सोमस्योत्तरे सदा समीपे

इस मन्त्रसे सपैतृक विश्वेदेवका आवाहन करे ॥ १४ ॥ यम और निर्ऋतिके बीचवाले भद्रमें 'अभित्यं देवं' इस मन्त्रसे यज्ञोंका आवाहन करे ॥ १५ ॥ निर्ऋति और वरुणके बीचवाले भद्रमें 'आयंगौः' इन मन्त्रसे भूतों और नागोंका आवाहन करे ॥ १६ ॥ वरुण और वायुके मध्यमें 'नदीभ्यः' इस मन्त्रसे गन्धर्वों और अप्सराओं-का आवाहन करे ॥ १७ ॥ ब्रह्मा और सोमके मध्यवाली वापीमें 'यदक्रन्दः' इस मन्त्रसे स्कन्दका आवाहन करे ॥ १८ ॥ 'नमः शंभवे' में नन्दीश्वर, 'भद्रं कर्णभिः' से शूल और 'विश्वकर्मा' इस मन्त्रसें महाकालका आवाहन करे ॥ १९ ॥ २० ॥ २१ ॥ ब्रह्मा और ईशानके मध्यवाली वल्लियोंमें 'आदितिर्द्यौः' इस मन्त्रसे नक्षत्र आदिका आवाहन करे ॥ २२ ॥ ब्रह्मा और इन्द्रके मध्यवाली वापीमें 'श्रीश्च ते' इस मन्त्रके दुर्गाका आवाहन करे ॥ २३ ॥ 'इदं विष्णुः' इस मन्त्रसे विष्णुका आवाहन करे ॥ २४ ॥ ब्रह्मा और अग्निके मध्यवाली वल्लीमें 'उदीरिता' इस मन्त्रसे स्वधाका आवाहन करे ॥ २५ ॥ ब्रह्मा और यमके मध्यवाली वापीमें 'अरं मृत्यो' इस मन्त्रसे मृत्युका आवाहन करे ॥ २६ ॥ ब्रह्मा और निर्ऋतिके मध्यवाली वल्लियोंमें 'गणानां त्वा' इस मन्त्रसे गणपतिका आवाहन करे ॥ २७ ॥ ब्रह्मा और वरुणके मध्यवाली वापीमें 'शन्नो देवी' इस मन्त्रसे जलका आवाहन करे ॥ २८ ॥ ब्रह्मा और वायुके मध्यवाली वल्लियोंमें 'मरुतो यस्य' इस मन्त्रसे मरुत्का आवाहन करे ॥ २९ ॥ ब्रह्माके पाँवके पासवाला कर्णिकाके नीचे 'स्योना पृथ्वि' इस मन्त्रसे पृथ्वीका आवाहन करे ॥ ३० ॥ वहाँ ही 'पञ्चनद्यः' इस मन्त्रसे गंगा आदि सब नदियोंका आवाहन करे ॥ ३१ ॥ वहाँ ही 'धाम्नो धाम्नो' इस मन्त्रसे सप्त सागरोंका आवाहन करे ॥ ३२ ॥ इसके बाद कर्णिकाके ऊपर नाममन्त्रसे भैरवका आवाहन करे ॥ ३३ ॥ पीत परिधिमें सोम आदिके पास क्रमशः आयुधोंका आवाहन करे । गदाके नाम-मन्त्रसे गदाका, ईशानके समीप शूलके नाममन्त्रसे शूलका, इन्द्रके समीप वज्रका, अग्निके पास शक्तिका, यमके समीप दण्डका, निर्ऋतिके पास खड्गका और वरुणके पास पाशका आवाहन करे ॥३४-४०॥ फिर वायुके

गौतमाय नमः गौतममावाहयामि ॥४२॥ ईशान्यां भरद्वाजाय नमः भरद्वाजमावाहयामि ॥४३॥ पूर्वे विश्वामित्राय नमः विश्वामित्रमावाहयामि ॥४४॥ आग्नेय्यां कश्यपाय नमः कश्यपमावाहयामि ॥४५॥ दक्षिणे जमदग्नयेनमः जमदग्निमावाहयामि ॥४६॥ नैर्ऋत्यां वसिष्ठाय नमः वसिष्ठमावाहयामि ॥४७॥ पश्चिमे अत्रये नमः अत्रिमावाहयामि ॥४८॥ वायव्यां अरुन्धत्यै नमः अरुंधतीमावाहयामि ॥४९॥ पुनः पूर्वादिक्रमेण पूर्वे विश्वामित्रसमीपे ऐन्द्र्यै नमः ऐन्द्रीमावाहयामि ॥५०॥ आग्नेय्यां कौमार्यै नमः कमौरीमावाहयामि ॥५१॥ दक्षिणे ब्राह्म्यै नमः ब्राह्मीमावाहयामि ॥५२॥ नैर्ऋत्यां वाराह्यै नमः वाराहीमा० ॥५३॥ पश्चिमे चामुंडायै नमः चामुंडामा० ॥५४॥ वायव्ये वैष्णव्यै नमः वैष्णवींमा ॥५५॥ उत्तरे माहेश्वर्यै नमः माहेश्वरीमा० ॥ ५६ ॥ ईशान्यां वैनायक्यै नमः वैनायकीमा० ॥ ५७ ॥ अष्टदलमध्ये सूर्याय नमः सूर्यमा० ॥ ५८ ॥ बाह्यपूर्वाद्यष्टदिक्षु यथास्थानेषु पूर्वे सोमाय नमः सोममा० ॥५९॥ आग्नेय्यां भौमाय नमः भौममा० ॥६०॥ दक्षिणे बुधाय नमः बुधमा० ॥ ६१ ॥ नैर्ऋत्यां बृहस्पतये नमः बृहस्पतिमा० ॥ ६२ ॥ पश्चिमे शुक्राय नमः शुक्रमा० ॥६३॥ वायव्यां शनैश्चराय नमः शनैश्चरमा० ॥६४॥ उत्तरे राहवे नमः राहुमा० ॥६५॥ ईशान्यां केतवे नमः केतुमा० ॥ ६६ ॥ एता देवताः सर्वतोभद्रे प्रतिष्ठाप्य ततः परिधिभूतपंक्तौ सुषेणाय नमः सुषेणमा० ॥ ६७ ॥ सर्वेषु लिंगेषु रुद्राय नमः रुद्रमा० ॥६८॥ सर्वासु वापीषु नलाय नमः नलमा० ॥६९॥ सर्वेषु भद्रेषु सुग्रीवाय नमः सुग्रीवमा० ॥७०॥ सर्वेषु तिर्यग्भद्रेषु गवयाय नमः गवयमा० ॥७१॥ सर्वासु पीतश्रृङ्खलासु अंगदाय नमः अंगदमावा० ॥ ७२ ॥ सर्वासु कृष्णश्रृङ्खलासु विभीषणाय नमः विभीषणमा० ॥७३॥ सर्वासु वल्लीषु जांबवते नमः जांबवंतमा० ॥७४॥ सर्वेषु खंडेषु मैंदाय नमः मैंदमा० ॥ ७५ ॥ सर्वासु परिधिषु द्विविदाय नमः द्विविदमा० ॥७६॥ मुद्रायां रामजानकीभ्यां नमः रामजानकीमा० ॥ ७७ ॥ मुद्रायाः पश्चिमे पीतपरिधौ लक्ष्मणाय नमः लक्ष्मणमा० ॥७८॥ मुद्राया उत्तरे भरताय नमः भरतमा० ॥७९॥ मुद्राया दक्षिणे शत्रुघ्नाय नमः शत्रुघ्नमा० ॥८०॥ मुद्रायाः पुरतः वायुपुत्राय नमः वायुपुत्रमा० ॥८१॥ बहिस्त्रिपरिधिषु श्वेतपरिधौ

समीप अंकुशका आवाहन करे ॥ ४१ ॥ तदनन्तर सोमके उत्तर और गदाके पास गौतमका आवाहन करे ॥ ४२ ॥ ईशान कोणमें भरद्वाजका, पूर्वमें विश्वामित्रका, आग्नेयमें कश्यपका, दक्षिणमें जमदग्निका, नैर्ऋत्यमें वसिष्ठका, पश्चिममें अत्रिका और वायव्यकोणमें अरुन्वतीका आवाहन करे ॥ ४३-४९ ॥ फिर पूर्व आदि दिशाओंके क्रमसे पूर्वमें विश्वामित्रके समीप ऐंद्रीका आवाहन करे ॥ ५० ॥ आग्नेय कोणमें कौमारीका, दक्षिणमें ब्राह्मीका, नैर्ऋत्यमें वाराहीका, पश्चिममें चामुण्डाका, वायव्यमें वैष्णवीका, उत्तरमें माहेश्वरीका और ईशान कोणमें वैनायकीका आवाहन करे ॥५१-५७॥ अष्टदलके मध्यमें सूर्यका आवाहन करे, बाहरके पूर्व आदि आठों दिशाओंमें यथास्थान निम्नलिखित देवताओंका आवाहन करे। पूर्वमें सोमका आग्नेय कोणमें भौमका, दक्षिणमें बुधका, नैर्ऋत्यमें बृहस्पतिका, पश्चिममें शुक्रका वायव्यमें शनैश्चरका, उत्तरमें राहुका और ईशान कोणमें केतुका आवाहन करे ॥ ५८-६६ ॥ सर्वतोभद्रमें इन देवताओंकी स्थापना करके परिधिभूत पंक्तियोंमें सुषेणका आवाहन करे ॥ ६७ ॥ सब लिंगोंमें रुद्रका सब वापियोंमें नलका, सब भद्रोंमें सुग्रीवका, सब तीखे भद्रोंमें गवयका, सब पीत श्रृंखलाओंमें अङ्गदका और सब कृष्ण श्रृंखलाओंमें विभीषणका आवाहन करना चाहिए ॥ ६९-७३ ॥ सब वल्लियोंमें नाममन्त्रसे जाम्बवान्‌का आवाहन करे ॥ ७४ ॥ उसी प्रकार सब खण्डोंमें मैंदका, सब परिधियोंमें द्विविदका, मुद्रामें राम और जानकीका आवाहन करे ॥ ७५ ॥ ७६ ॥ ७७ ॥ मुद्राकी पश्चिमवाली पीत परिधिमें लक्ष्मणका आवाहन करे ॥७८॥ मुद्राके उत्तर ओर भरतका आवाहन करे ॥ ७९ ॥ मुद्राके दक्षिण ओर शत्रुघ्नका आवाहन करे ॥ ८० ॥ मुद्राके आगे

भागीरथ्यै नमः भागीरथीमा० ॥ ८२ ॥ रक्तपरिधौ सरस्वत्यै नमः सरस्वतीमा० ॥८३॥ कृष्णपरिधौ यमुनायै नमः यमुनामा० ॥ ८४ ॥ एवमेव रमारामभद्रेऽप्यावाहनं कार्यम्। रमारामभद्रे मुद्रायामेव विशेषः। आदौ रमामावाह्य राममावाहयेत्। एवमावाहनं कृत्वा षोडशोपचारैः पूजयेत्। शेषान्नेन दिग्बलिः कार्यः ॥

इति आनन्दरामायणांतर्गतरामतोभद्रदेवतास्थापनविधिः ।

अथ रामनवमीकथा

श्रीरामदास उवाच

शिष्य यद्यत्प्रियं तस्मै रामाय तद्वदाम्यहम्। मासेषु चैत्रमासस्तु राघवस्यातिवल्लभः ॥ १ ॥
पक्षयोः सितपक्षस्तु प्रियोऽस्ति राघवस्य हि। सर्वासु तिथिषु श्रेष्ठा नवमी राघवप्रिया ॥ २ ॥
सूर्यवंशसमुद्भूतस्तस्माच्च भानुवासरः। प्रियोऽतिराघवस्यैव नक्षत्रेषु पुनर्वसुः ॥ ३ ॥
चंपकः पुष्पजातौ हि तुलसी वै तथैव च। अथवा नवकं चापि पुष्पाणां राघवप्रियम् ॥ ४ ॥
जातिश्चंपकमंदारौ तुलसी मुनिमालती। दमनः केतकी सिंही पुष्पाणां नवकं स्मृतम् ॥ ५ ॥
तथा नवविधं चान्नं राघवस्यातिवल्लभम्। मोदको लड्डुको मंडो पूर्णगर्भाथ फेणिका ॥ ६ ॥
वटकः पर्पटः खाद्यं घृतपक्वं नवं त्विति। एतानि नव भक्ष्याणि राघवस्य प्रियाणि हि ॥ ७ ॥
अथवाऽन्यत्प्रवक्ष्यामि दिव्यान्ननवकं शुभम्। मोदको लड्डुको मंडो वटकः फेणिका तथा ॥ ८ ॥
वरान्नमोदनः शाकं पायसं नवकं शुभम्। अन्यच्छृणुष्व भो शिष्य नवान्नं राघवप्रियम् ॥ ९ ॥
एकाशीतिकुडवं च गोक्षीरं तण्डुलास्तथा। सपादद्विकुडवाश्च मुद्गाश्च वितुषास्तथा ॥१०॥
कुडवस्त्वेक एवाथ शर्करा कुडवा नव। त्रिकुडवं मधु प्रोक्तं घृतं च कुडवद्वयम् ॥११॥
मारीचं कुडवाष्टांशमितं नारीफलं तथा। कुडवस्त्वेक एवाथ जातीपत्रिस्तथैव च ॥१२॥

हनुमान्‌जीका आवाहन करे ॥ ८१ ॥ बाहरकी तीन परिधियोंमेंसे श्वेत परिधिमें भागीरथी गंगाजीका आवाहन करे ॥ ८२ ॥ रक्त परिधिमें सरस्वतीजीका आवाहन करे ॥ ८३ ॥ काली परिधिमें यमुनाका आवाहन करे ॥ ८४ ॥ रमा और रामके भद्रमें भी इसी तरह आवाहन करना चाहिए। रमानामक भद्रकी मुद्रामें ही विशेषता है। पहले रमाका आवाहन करके रामका आवाहन करना चाहिए। इस तरह आवाहन करके षोडशोपचारसे पूजन करे और बाकी बचे अन्नसे दिग्बलि दे ॥

इति रामतोभद्रदेवतास्थापनविधिः ।

श्रीरामदासने कहा—हे शिष्य! रामचन्द्रजीको जो-जो वस्तुयें प्रिय हैं, अब उन्हें बतलाता हूँ। सब महीनोंमें चैत्रका महीना रामको प्रिय है ॥ १ ॥ शुक्ल कृष्ण इन दोनों पक्षोंमें रामको शुक्लपक्ष प्रिय है। सब तिथियोंमें नवमी तिथि प्रिय है ॥ २ ॥ सूर्यवंशमें रामका जन्म हुआ था। इसलिये उन्हें रविवार विशेष प्रिय है। सब नक्षत्रोंमें उन्हें पुनर्वसु नक्षत्र प्रिय है ॥ ३ ॥ फूलोंमें चम्पक तथा तुलसी प्रिय हैं। नौ पुष्प रामको विशेष प्रिय हैं ॥४॥ जैसे—जूही, चम्पा, मन्दार, तुलसी, वैजयन्ती, मालती, दमनक, केतकी और सिंही इन्हीं फूलोंको एकत्र करके रामचन्द्रको अर्पित करना चाहिये ॥५॥ उसी तरह नौ प्रकारका अन्न भी भगवान्‌को प्रिय है। वे नवों ये हैं-मोदक, लड्डुक, मण्ड, पूरनपूड़ी, बटक, बताशफेनी, पापड़, खाखड़ा घीमें बना हुआ पक्वान्न, ये नौ भी भक्ष्य पदार्थ रामचन्द्रजीको प्रिय हैं ॥ ६ ॥ ७ ॥ अब दूसरे नौ प्रकारके खाद्य पदार्थ बतलाते हैं—मोदक, लड्डुक, मंड, वटक, फेणिका, भात, शाक, पर्पट और पायस ये ही नौ अन्न हैं। हे शिष्य! अब रामको दूसरे प्रिय अन्न बतलाते हैं ॥ ८ ॥ ९ ॥ एक्यासी कुडव गौका दूध, उतना ही चावल, सवा दो कुडव छिल्का उतारी हुई मूँग ॥ १० ॥ एक कुडव चीनी, तीन कुडव मधु, दो कुडव घी, एक कुडवका अष्टमांश काली मिर्च, एक कुडव नारियलकी गरी, एक कुडवका अष्टमांश जावित्री, इनको मिलाकर बनाया हुआ पाक रामचन्द्रजीको प्रिय है। इसलिये लोगोंको चाहिये कि ये पदार्थ बनाकर भगवान्‌को अर्पण करें ॥ ११ ॥ १२ ॥

ग्राह्या मरिचमानेन नवान्नं नवभिस्त्विदम् । तोषदं रामचन्द्रस्य भक्त्या कार्यं सदा नरैः ॥१३॥
लघुं नवान्नं वक्ष्यामि नैवेद्यार्थं निरंतरम् । कुडवा नव गोक्षीरं तंडुलाः कुडवस्य च ॥१४॥
चतुर्थांशमिता ग्राह्याः कुडवाष्टांशसंमिताः । ग्राह्या वितुषमुद्गाश्च कुडवार्धं सिता स्मृता ॥१५॥
घृतं मुद्गसमं ग्राह्यं तावन्मानं मधु स्मृतम् । तावन्मानं श्रीफलं च मरिचं टंकसंमितम् ॥१६॥
टंकार्धा जातिपत्रश्च नवान्नं लघु कीर्तितम् । कुडवोऽर्कटंकमितष्टंको माषचतुष्टयम् ॥१७॥
लघु नवान्नमेतच्च राघवाय निवेदयेत् । निरंतरं हि पूजायां राघवस्यातिहर्षदम् ॥१८॥
चूतजम्बुकपित्थाश्च बीजपूरं च दाडिमम् । खजूरीं नारिकेलं च कदलीफलमेव च ॥१९॥
पनसं चेति रामाय फलानि नव सर्वदा । एतान्यतिप्रियाण्यत्र पूजायां तन्निवेदयेत् ॥२०॥
कीवाफल च जंबीरं नारंगं स्निग्धमज्जकम् । जातीफलं मातुलुंगं तथा द्राक्षाफलं शुभम् ॥२१॥
उर्वारुकं तथा धात्रीफलं चैतानि वै नव । फलानि रामपूजायामुक्तानि मुनिभिः सदा ॥२२॥
नवोपचारस्तांबूलो राघवाय निवेदयेत् । नागवल्लीः क्रमुकं च खदिरः सौध एव च ।२३॥
जातीपत्रो लवंगं च जातीफलवरांगके । एला चेति नवविधस्तांबूलः कीर्त्यते बुधैः ॥२४॥
नवराजोपचारांश्च राघवाय निवेदयेत् । छत्रं सिंहासनं यानं चामरं व्यजनं तथा ॥२५॥
पानतांबूलपत्रं च पात्रं निष्ठीवनस्य च । वस्त्रकोशश्चेति राज्ञामुपचारा नव स्मृताः ॥२६॥
नवाथ भोग्यवस्तूनि राघवाय निवेदयेत् । चंदनं पुष्पमालां च द्रव्यं परिमलं तथा ॥२७॥
अवतंसः फलं चापि सुगंधतैलमुत्तमम् । ताम्बूलं कस्तुरी चापि तथा रक्ताक्षताः शुभाः ॥२८॥
एतानि भोग्यवस्तूनि राघवाय निवेदयेत् । नवोपचाराः शय्याऽपि राघवाय समर्पयेत् ॥२९॥
पर्यङ्कतूलिका रम्या वितानं चोपबर्हणम् । आदर्शो दीपिका तोयपात्रं प्रावरणं शुभम् ॥३०॥
व्यजनञ्चेति शय्यायाश्चोपचारा नव स्मृताः । नव वस्त्राणि रामाय देयान्यतिमहांति च ॥३१॥
पीतांबरमुत्तरीयं चोष्णीषं कंचुकं तथा । उष्णीषोर्ध्वस्थितं दिव्यं तथा च कटिबंधनम् ॥३२॥

॥ १३ ॥ अब मैं अर्पण करने योग्य लघु नवान्न बतलाता हूँ— नौ कुडव गायका दूध, एक कुडवका चतुर्थांश चावल, कुडवका अष्टमांश बिना छिलकेकी धुली मूंग, आधा कुडव चीनी, मूंगके बराबर ही घी, उतना ही मधु, उतना ही श्रीफल, एक टंक काली मिर्च, आधा टंक जातिपत्र, ये लघु नवान्न कहलाते हैं । बारह टंकका एक कुडव होता है और चार मासेके बराबर एक टंक होता है। यह लघु नवान्न रामचन्द्रजीको अर्पण करना चाहिए। यदि निरन्तर यह नवान्न रामचन्द्रजीको अर्पण किया जाय तो भगवान् अतिशय प्रसन्न होते हैं ॥ १४-१८ ॥ आम, जामुन, कैथा, बीजपूर, अनार, खजूर, नारियल, केला और कटहल ये नौ फल रामचन्द्रजीको अतिशय प्रिय हैं। पूजामें इन्हें भी अर्पण करना चाहिये। कुम्हड़ा, नीबू, नारङ्गी, कसेरू, जायफल, बिजौरा, अंगूर, ककड़ी तथा आँवला ये नौ फल रामकी पूजामें आना आवश्यक है ॥ १९-२२ ॥ उसी तरह नौ उपचारोंके साथ ताम्बूल भी रामचन्द्रजीको अर्पण करना चाहिये। ताम्बूलके नौ उपचार ये हैं-पान, सुपारी, खैर, चूना, जावित्री, जायफल, कपूर, केसर और इलायची। नौ राजोपचार भी रामचन्द्रजीको अर्पण करने चाहिए। जैसे-छत्र, सिंहासन, रथ, चमर, पंखा, गिलास, पानदान, ओगालदान और कपड़ेकी पिटारी, ये ही राजाओंके नौ उपचार बतलाये गये हैं। उसी प्रकार नौ भोग्य वस्तु भी रामचन्द्रजीको अर्पण करना चाहिए। वे वस्तुयें इस प्रकार जाननी चाहिये-चन्दन, फूलोंकी मालाएँ, इत्र आदि सुगन्वित द्रव्य, तरह-तरहके फल, उत्तम सुगन्धित तेल, ताम्बूल, कस्तूरी और लाल अक्षत, इन भोग्य वस्तुओंको रामचन्द्रजीको अर्पण करे। इसी तरह नौ उपचारयुक्त शय्या भी देनी चाहिये ॥ २३-२९ ॥ पलङ्ग, गद्दा, बढ़िया चाँदनी, तकिया, शीशा, दीपक, जलपात्र, चदरा और व्यजन, ये शय्याके नौ उपचार हैं। इसी तरह अत्यन्त सुन्दर नौ कपड़े भी रामचन्द्रजीको अर्पण करे ॥ ३० ॥ ३१ ॥ जैसे-पीताम्बर, उपरना, पगड़ी, कंचुकी, पगड़ीके ऊपर बँधनेवाला

मुखशोधनवस्त्रं च त्रिमुखं ह्यंकयोग्यकम् । तथा प्रावरणं दिव्यं नव वस्त्राणि भो द्विज ॥३३॥
नव दिव्यास्त्वलंकारा देयाः श्रीराघवाय हि । कुंडले कंकणे माला केयूरे नूपुरे तथा ॥३४॥
पदकं कटिसूत्रं च शृङ्खला मुद्रिकेति च । एते नव त्वलंकारा देया रामाय भक्तितः ॥३५॥
एवं शिष्य मया रामप्रीतिदानि महांति च । नवकान्यतिरम्याणि तवाग्रे कीर्तितानि हि ॥३६॥
मुख्यास्त्वत्र पदार्था हि नवकेषु मया स्मृताः । एभ्यस्त्वन्ये पदार्थाश्च ये ये संति सहस्रशः ॥३७॥
ते सर्वे राघवायातिभक्त्या देयास्तु पूंजने । प्रत्यहं रामचन्द्रस्य त्रिकालं पूजनं नरैः ॥३८॥
कार्यं वित्तानुसारेण न कदा शाठ्यमाचरेत् । प्रतिपद्दिनमारभ्य यावच्च नवमीतिथिः ॥३९॥
तावद्विशेषतः कार्यं प्रत्यहं रामपूजनम् । विविधैर्मण्डपाद्यैश्च संपूज्य रघुनन्दनम् ॥४०॥
पारायणं तदग्रे हि कर्तव्यं नवभिर्दिनैः । आनंदरामचरितं पठनीयं तु सर्वदा ॥४१॥
नवम्यां राघवं रामतीर्थे वाहनसंस्थितम् । नीत्वा मंगलतूर्याद्यैर्ध्वजाद्यैर्दुन्दुभिस्वनैः ॥४२॥
अभिषेकस्तत्र कार्यो रुद्रसूक्तैः सुपुण्यदैः । तथा पुरुषसूक्तेन श्रीसूक्तेन तथैव च ॥४३॥
विष्णुसूक्तादिभिः सूक्तैरभिषिच्य रघूत्तमम् । पूजनं विस्तरेणाथ कृत्वा गेहं समानयेत् ॥४४॥
ततो हरेः कीर्तनानि स्वयं कार्याणि वा परैः । गायकैः करणीयानि वेश्याभिर्नर्त्तनान्यपि ॥४५॥
ततः स्वयमुपोष्याथ भक्त्या विप्रप्रपूजनम् । कार्यं वै गायकानां च पूजनं विस्तरेण हि ॥४६॥
रात्रौ जागरणं कार्यं कथाभिर्गीतनृत्यकैः । दशम्यां प्रातरुत्थाय स्नात्वा सपूज्य राघवम् ॥४७॥
मध्याह्ने रामचन्द्रस्य पूजनं ब्राह्मणेषु हि । कार्यं तस्य विधानं ते वदाम्यद्य शृणुष्व तत् ॥४८॥
एकं युग्मं तु विप्रस्य विप्राष्टं च निमंत्रयेत् । भूमिं गृहे विलिख्याथ गोमयेनातिविस्तृताम् ॥४९॥
रंगवल्ल्याश्च पद्मानि नीलपीतादिवर्णकैः । तत्र समंततः कृत्वा मध्ये सिंहासनं शुभम् ॥५०॥
स्थाप्य तत्र महावस्त्रैरासनं परिकल्पयेत् । अष्टोत्तरसहस्रं च रामलिंगात्मकं शुभम् ॥५१॥

दिव्य वस्त्र, कमरबन्द, रुमाल, अल्फी तथा दुपट्टा ये नौ दिव्य वस्त्र श्रीरामचन्द्रजीको देना चाहिए ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ इसी तरह नौ प्रकारके दिव्य अलङ्कार भी समर्पण करे। कुण्डल, कंकण, माला, केयूर, नूपुर, पदक, कटिसूत्र (करधन), सिकड़ी और मुँदरी, ये नौ अलङ्कार रामचन्द्रजीको भक्तिपूर्वक देने चाहिये ॥ ३४॥ ॥ ३५ ॥ हे शिष्य ! इस तरह मैंने रामको प्रसन्न करनेवाले अतिरम्य नवक (नौ वस्तुओंका संग्रह) बतलाया। इनमें मैंने मुख्य-मुख्य चीजोंका ही दिग्दर्शन कराया है। इनके अतिरिक्त भी हजारों पदार्थ हैं। पूजामें उन्हें भी भक्तिपूर्वक अर्पण करना चाहिए। भक्तको उचित है कि प्रतिदिन रामचन्द्रजीकी त्रिकाल पूजन करे ॥ ३६–३८ ॥ अपनी जैसी सामर्थ्य हो, उसके अनुसार खर्च भी करे। रामचन्द्रजीको पूजामें कभी कार्पण्य तो करना हो नहीं चाहिए। प्रतिपदासे लेकर नवमी पर्यन्त प्रतिदिन विशेष पूजन करनेका विधान है। वह इस प्रकार है-चित्र-विचित्र मंडप बनाकर उसमें रामचन्द्रजीकी पूजा करके उनके आगे नौ दिनोंमें इस आनन्दरामायणका पारायण करे ॥ ३९–४१ ॥ नवमीको भगवान्‌को सवारीपर बिठाकर मंगलमय तुड़ही-नगाड़े आदि बाजों तथा ध्वजा आदिके साथ परम पवित्र रुद्रसूक्त, पुरुषसूक्त, श्रीसूक्त तथा विष्णुसूक्त आदिसे रामतीर्थमें रामचन्द्रजीका अभिषेक करे। इसके अनन्तर विस्तारपूर्वक पूजन करके उन्हें घरपर ले जाय ॥ ४२–४४ ॥ रातको स्वयं हरिकीर्तन करे या और लोगोंसे करावे। तदनन्तर भक्तिपूर्वक विप्रों तथा गायकोंका पूजन करे ॥ ४५ ॥ ४६ ॥ कथा, गीत तथा नृत्य आदि करता हुआ रात्रिभर जागरण करे। दशमीको सवेरे उठकर स्नान करे और रामचंद्रजीका पूजन करके मध्याह्नके समय ब्राह्मणोंके बीचमें उनका पूजन करे। हे शिष्य ! मैं उसका विधान बतलाता हूँ, सुनो ॥ ४७ ॥ ४८ ॥ एक ब्राह्मणदम्पती तथा आठ अन्य ब्राह्मणोंको निमन्त्रित करे। घरकी भूमिको गोबरसे खूब फैलावमें लिपवावे। फिर नील-पीत आदि वर्णोंसे चारों ओर चौक पुरवाकर बीचमें शुभ सिंहासन रक्खे ॥ ४९ ॥ ५० ॥ तदनन्तर बड़े-बड़े वस्त्रोंसे सिंहासनको

अथवाऽष्टोत्तरशतं रामलिंगात्मकं शुभम् । अष्टोत्तरसहस्रं वा रामतोभद्रमुत्तमम् ॥५२॥
अथवाऽष्टोत्तरशतं रामतोभद्रमुत्तमम् । सिंहासने निधायाथ रामस्यासनमुज्ज्वलम् ॥५३॥
भद्रोपरि सपत्नीकं तत्र विप्रं निवेशयेत् । पश्चिमाभिमुखे वामभागे तत्स्त्रीं निवेशयेत् ॥५४॥
सीतारामौ तु दम्पत्योरावाह्य तदनन्तरम् । तत्पृष्ठे लक्ष्मणं विप्रं चिंतयेच्च ततः परम् ॥५५॥
भरतं रामसव्ये तु आवाह्य भूसुरे तथा ॥५६॥
विप्रेऽञ्जनिसुतं चापि रामस्याग्रे विचिंतयेत् । रामस्य वायुदिग्भागात्सुग्रीवादीन् विचिंतयेत् ॥५७॥
चतुष्कोणेषु विप्रेषु ततः पूजनमाचरेत् । नवायतनपूजेयं ज्ञेया श्रीराघवस्य हि ॥५८॥
अथवा पञ्चायतनं पञ्चविप्रेषु चिंतयेत् । ससीत शक्तिहीनेन नरेण सर्वदा शुचि ॥५९॥
अथवा यतिनं रामस्थाने भक्त्या निवेशयेत् । पूगीफलमयीं सीतां यतिवामे निवेश्य च ॥६०॥
कार्यं सम्यक्पूजनं च ततो गेहे सुवासिनीम् । सीतां मत्वा पुनः पूज्य भोजनीया सविस्तरम् ॥६१॥
आदौ सीताराघवयोः कृत्वा पूजनमुत्तमम् । ततः पूजा तु सर्वेषां कार्या नानोपचारकैः ॥६२॥
क्रमेण लक्ष्मणादीनामुपचारैस्तु षोडशैः । अथवा सह तन्त्रेण रामपूजनमाचरेत् ॥६३॥
आदावावाह्य विप्रेषु देयमासनमुत्तमम् । ततः प्रक्षाल्य पादौ च सर्वेषां च पृथक् पृथक् ॥६४॥
यतिपादोदकं भिन्नं स्थापनीयं नरोत्तमैः । ततः पृथक् पृथगर्घ्यान् दत्त्वा सुचन्दनादिभिः ॥६५॥
ततश्चाचमनं दत्त्वा स्नानार्थं जलमुत्सृजेत् । ततो वस्त्रं समर्प्याथ देयान्याभरणानि हि ॥६६॥
समर्प्य ब्रह्मसूत्राणि गन्धं देयं मनोहरम् । ततो रक्ताक्षता देयाः पुष्पमालास्तथाऽपराः ॥६७॥
ततो मांगल्यवस्तूनि ततश्छत्रं च चामरम् । व्यजनं च ततो देयं देयस्तूणीरकस्तथा ॥६८॥
देया बाणाश्च चापानि देयानि हि पृथक् पृथक् । दत्त्वा परिमलादीनि भोग्यवस्तूनि विस्तरात् ॥६९॥
धूपो देयस्तथा दीपो नैवेद्यो दीयतां ततः । अथवाऽन्यच्छर्करादि नैवेद्यार्थं समर्पयेत् ॥७०॥

सँवारे। उसपर अष्टोत्तरशत अथवा अष्टोत्तरसहस्र लिंगात्मक भद्र अथवा रामतोभद्र बनाकर भद्रके ऊपर विप्रदम्पतीको बिठाये। विप्रके वामभागमें पश्चिमाभिमुख उसकी स्त्री बैठे ॥ ५१–५४ ॥ तदनन्तर उसी विप्रदम्पतीमें सीतारामका आवाहन करके ब्राह्मणके पीछे लक्ष्मणका आवाहन करे ॥ ५५ ॥ ब्राह्मणके दाहिनी ओर भरतका ध्यान करे। रामचन्द्रजीके आगे उस ब्राह्मणमें ही अञ्जनीपुत्रका ध्यान करे। रामके वायव्य कोणमें सुग्रीव आदिका ध्यान करे ॥ ५६ ॥ ५७ ॥ फिर चारों कोनोंमें ब्राह्मणोंका पूजन करे। यह श्रीरामचन्द्रजीका नवायतन पूजन है ॥ ५८ ॥ अथवा पाँच ब्राह्मणोंमें रामका पञ्चायतन पूजन करे। लेकिन यह विधान उसीके लिए है कि जो सामर्थ्यविहीन हो ॥ ५९ ॥ अथवा रामचन्द्रजीके स्थानमें यतिकी स्थापना करे। सुपारीमें सीताकी कल्पना करके उसे यतिके वामभागमें रख दे ॥ ६० ॥ तदनन्तर अच्छी तरह रामका पूजन करे। इसके बाद सोहागिन विप्रपत्नीको सीता मानकर विस्तारपूर्वक पूजन करे और भोजन कराये ॥ ६१ ॥ पहले सीता और रामचन्द्रजीका पूजन करके अन्य लोगोंका भी नाना प्रकारके उपचारोंसे पूजन करे। क्रमशः लक्ष्मण आदिका षोडश उपचारोंसे पूजन करे। अथवा शास्त्रानुसार रामका पूजन करे ॥ ६२ ॥ ६३ ॥ पहले विप्रोंका आवाहन करके उत्तम आसन दे। फिर अलग-अलग उन लोगोंके पैर धोकर यतिका पादोदक अलग रख दे। तदनन्तर अच्छे चन्दन आदिसे पृथक्-पृथक् अर्घ्य आदि दे ॥ ६४ ॥ ६५ ॥ तदनन्तर आचमनके लिए जल देकर स्नानके लिए जल छोड़े। तत्पश्चात् वस्त्र प्रदान करके आभूषण समर्पित करे ॥ ६६ ॥ फिर यज्ञोपवीत देकर मनोहर गन्धदान दे। इसके बाद लाल अक्षत एवं पुष्पमाला दे ॥ ६७ ॥ इसके पश्चात् मांगल्य वस्तुयें, फिर छत्र, चमर, व्यजन तथा तूणीर दे। तदनन्तर धनुष-बाण
41. आदि देकर इत्र आदि भोग्य वस्तुओंको विस्तारपूर्वक प्रदान करे ॥ ६८ ॥ ६९ ॥ तदनन्तर धूप, दीप, नैवेद्य दे। यदि नैवेद्यके लिए कोई पकवान आदि न बना सके तो उसके निमित्त शर्करा आदि प्रदान करे ॥ ७० ॥

नानाफलानि देयानि देयस्तांबूल उत्तमः । दक्षिणां च ततो दत्त्वा देयो मुकुर उज्ज्वलः ॥७१॥
नीराजनं ततः कृत्वा मंत्रपुष्पाणि दीयताम् । प्रदक्षिणानमस्कारानेव कृत्वा ततः परम् ॥७२॥
नृत्यगीतादिकं कृत्वा प्रार्थयेद्रघुनायकम् । विनिमील्य करौ पादौ रामाग्रे संस्थितैर्नरैः ॥७३॥

वामे भूमिसुता पुरस्तु हनुमान् पृष्ठे सुमित्रासुतः
शत्रुघ्नो भरतश्च पार्श्वदलयोर्वाय्यव्यकोणादिषु ।
सुग्रीवश्च विभीषणश्च युवराट् तारासुतो जाम्बवान्
मध्ये नीलसरोजकोमलरुचिं रामं भजे श्यामलम् ॥७४॥
रामो हत्वा दशास्यं द्विजवचनगुरुत्वेन यात्राऽस्त्रयज्ञान्
कृत्वा भुक्त्वातिभोगानवनितलविशंतीं गृहीत्वाऽथ सीताम् ।
लब्ध्वा नानासुतास्तास्त्ववनितलगतान्पार्थिवादींश्च जित्वा
कृत्वा नानोपदेशान् गजपुरनिकटे स्वीयलोकं जगाम ॥७५॥

नवकाण्डमयः श्लोकः पठित्वाऽयं हरेः पुरः । ततः क्षमाप्य श्रीरामं पूजां तस्मै समर्पयेत् ॥७६॥
मया मासव्रते रामनवम्यां यत्प्रपूजनम् । पारायणादिकं सर्वं नवरात्रेऽपि यत्कृतम् ॥७७॥
तत्सर्वं तेऽर्पितं त्वद्य प्रसन्नो भव मे प्रभो । नवायतनपूजेयं या कृता नवमीदिने ॥७८॥
नवविप्रेषु साऽप्यद्य तेऽर्पिता राम वै मया । त्वं गृहाण यथाशक्त्या कृतां तां त्वं प्रसीद मे ॥७९॥
एवं समर्प्य रामाय सकलं पूजनादिकम् । ततो भोजनरीत्या तान् सन्निवेश्याथ भोजयेत् ॥८०॥
पुनर्दत्त्वा तु तांबूलं दक्षिणां तु विसर्जयेत् । ततः स्वयं विप्रतीर्थं गृहीत्वा वै ततः परम् ॥८१॥
यतिपादोदकं प्राश्य देवतीर्थं ततः परम् । गृहीत्वा भोजनं कार्यं सुहृन्मित्रजनैः सह ॥८२॥
समर्पितं यद्व्रतये ततश्च ब्राह्मणाय हि । देयं स्वगुरवे सर्वं ब्रह्मसूत्रादिकं शुभम् ॥८३॥
एवं व्रतं राघवस्य पक्षे पक्षे प्रकारयेत् । अथवा शुक्लपक्षे हि कार्यं व्रतमिदं शुभम् ॥८४॥

इसके बाद नाना प्रकारके फल, ताम्बूल, दक्षिणा, सुन्दर दर्पण, नीराजन, मन्त्रपुष्प, प्रदक्षिणा, नमस्कार आदि क्रमशः समर्पण करे । तदनन्तर नृत्य-गीत आदि करके सब लोग सामने खड़े होकर रामचन्द्रजीसे प्रार्थना करें ॥ ७१ ॥ ७२ ॥ ७३ ॥ वामभागमें सीता, सामने हनुमान्‌जी, पीछे लक्ष्मणजी, दोनों बगल भरत और शत्रुघ्न, वायव्य आदि कोणोंमें सुग्रीव, विभीषण, युवराज अङ्गद, जाम्बवान् आदि खड़े हैं और उनके बीचमें बैठे हुए नील कमलके समान कोमल दीप्तिसम्पन्न श्याम स्वरूपधारी रामका मैं भजन करता हूँ ॥ ७४ ॥ रामने रावणको मारकर ब्राह्मणके वाक्यरूपी गौरवसे प्रेरित हो यात्रा तथा अस्त्रयज्ञ आदि किये और विविध प्रकारके भोग भोगे । फिर पाताललोक जाती हुई सीताको उन्होंने पृथ्वीसे वापस लिया । इसके बाद पृथ्वी-मण्डलके बड़े-बड़े राजाओंको परास्त करके हस्तिनापुरके आस-पासवाले बहुतसे देशोंको जीता । उन राजाओं-की कुमारियोंके साथ अपने पुत्रोंके ब्याह किये और अन्तमें अपने परम धामको चले गये ॥ ७५ ॥ इस नौ काण्डात्मक श्लोकको रामके सामने पढ़कर क्षमा माँगे और की हुई पूजा भगवान्‌को अर्पण करे ॥ ७६ ॥ साथ ही यह कहता जाय कि हे प्रभो ! मैंने इस मासव्रतमें रामनवमी तथा नवरात्रमें जो पूजन-पारायण आदि किया है, वह सब आपको अर्पण है । हे प्रभो ! आप मेरे ऊपर प्रसन्न हों । रामनवमीको जो नौ विप्रोंमें मैंने आपकी नवायतन पूजा की है, वह भी आपको अर्पित है । यथाशक्ति की हुई इस पूजा-को स्वीकार करके आप मुझपर प्रसन्न हों ॥ ७७–७९ ॥ इस तरह रामको सब पूजन आदि समर्पण करके विधिवत् उन विप्रोंको आसनपर बिठलाकर भोजन कराये ॥ ८० ॥ फिर ताम्बूल और दक्षिणा देकर उन्हें विदा करे । तदनन्तर स्वयं ब्राह्मणोंके चरणोदक, यतियोंके पादोदक एवं देवताओंके चरणोंके पुनीत चरणजलसे आचमन करके नातेदारों, मित्रों तथा बान्धवोंके साथ स्वयं भोजन करे ॥ ८१ ॥ ८२ ॥ तदनन्तर

मासे मासे सर्वदैव रामोपासकमानवैः । एवं मासव्रतं प्रोक्तं राघवस्यातितोषदम् ॥८५॥
संति व्रतान्यनेकानि जगत्यां पुण्यदानि हि । तथाप्यनेन सदृशं न भूतं न भविष्यति ॥८६॥
व्रतानामुत्तमं चैतद्भुक्तिमुक्तिप्रदायकम् । अवश्यमेव कर्तव्यं रामोपासकमानवैः ॥८७॥
एवं शिष्य मया प्रोक्तं व्रतानामुत्तमं व्रतम् । सविस्तारं तवाग्रे हि राघवस्यातितोषदम् ॥८८॥

विष्णुदास उवाच

श्रीरामनवमीमासव्रतस्योद्यापनं वद । कदा कार्यं कथं कार्यं गुरो कृत्वा कृपां मयि ॥८९॥

श्रीरामदास उवाच

सम्यक् पृष्टं त्वया वत्स सावधानमनाः शृणु । नवसंवत्सरं मासनवमीव्रतमुत्तमम् ॥९०॥
कृत्वा चोत्थापनं कार्यं चैत्रे श्रीरामजन्मनि । नवम्यां समुपोष्याथ कर्तव्यमधिवासनम् ॥९१॥
गृहे वृन्दावने वाथ गोष्ठे देवगृहादिषु । संमार्जनं गोमयेन कार्यं वा चन्दनादिभिः ॥९२॥
ततः पाषाणचूर्णैश्च नानापद्मादिकानि हि । भुवि संलेखनीयानि नीलपीतादिवर्णकैः ॥९३॥
रञ्जनीयानि रम्याणि ततः पत्रादिसंस्थले । पूर्वोक्तरामभद्राणां मध्ये त्वेकं वरासनम् ॥९४॥
लिखित्वा चित्रवर्णैश्च प्रोक्तैरेवं सुरञ्जयेत् । तस्योपरि महान् रम्यश्चित्रवर्णश्च मंडपः ॥९५॥
देयो द्वाराणि चत्वारि कार्याणि तोरणानि च । कदलीस्तंभयुक्तानि चेक्षुदण्डयुतानि च ॥९६॥
नानाघंटाकिंकिणीभिर्ध्वनितान्युज्ज्वलानि च । रम्यादर्शमंडितानि विचित्राणि शुभानि च ॥९७॥
चित्रध्वजैर्वितानैश्च मुक्ताहारैर्युतान्यपि । अथ तद्रामभद्रस्थे कलशे वारिपूरिते ॥९८॥
ताम्रपात्रे रामचन्द्रं नवायतनचिह्नितम् । सीतया पूजयेद्रात्रौ महोत्साहपुरःसरम् ॥९९॥
नवपलमितां मूर्तिं हैमीं कृत्वा प्रपूजयेत् । सीता हैमी प्रकर्तव्या शुभाऽष्टपलसंमिता ॥१००॥
राजसास्ते लक्ष्मणाद्याः पृथक् पञ्चपलैः स्मृताः । अशक्तौ च तदर्धेन तदर्धार्धेन वै पुनः ॥१०१॥

यतियों तथा ब्राह्मणोंको जो कुछ दिया हो, वही अपने गुरुको भी दे ॥ ८३ ॥ इस तरह हर पक्षमें रामचन्द्रजीका व्रत करे। अथवा दोनों पक्षोंमें न कर सके तो केवल शुक्लपक्षमें यह रामव्रत करे ॥ ८४ ॥ रामकी उपासना करनेवालेके लिए रामको प्रसन्न करनेवाला यह मासव्रत मैंने बतलाया ॥ ८५ ॥ यद्यपि संसारमें बहुतसे पुण्यदायक व्रत हैं। फिर भी इस व्रतके बराबर न कोई व्रत हुआ है और न होगा ॥ ८६ ॥ यह सब व्रतोंमें उत्तम और भुक्ति-मुक्ति देनेवाला व्रत है। रामके उपासकोंको यह व्रत अवश्य करना चाहिए ॥ ८७ ॥ हे शिष्य ! इस प्रकार रामको अत्यन्त प्रसन्न करनेवाला सब व्रतोंमें उत्तम व्रत मैंने विस्तारपूर्वक तुम्हें कह सुनाया ॥ ८८ ॥ विष्णुदासने कहा—अब आप मुझपर कृपा करके यह बताइए कि श्रीरामनवमीके व्रतका उद्यापन कब और कैसे करना चाहिए ॥ ८९ ॥ श्रीरामदासने कहा—हे वत्स ! तुमने बहुत ही अच्छी बात पूछी है। इसे सावधान मन होकर सुनो। दो वर्ष पर्यन्त रामका मासनवमी व्रत करना चाहिए। इसके बाद चैत्र मासमें श्रीरामनवमीके दिन इसका उद्यापन करना चाहिए ! यह कार्य नवमीको उपवास करके किया जाना चाहिए ॥ ९० ॥ ९१ ॥ घरमें, वृन्दावन (तुलसीकी बगीची) में, गोशालामें अथवा किसी मन्दिरमें चन्दन या गोबरसे चौका दिलाकर पाषाणके चूर्ण आदिसे अनेक प्रकारके नील-पीत कमल आदि बनावे ॥ ९२ ॥ ९३ ॥ इसके बाद पत्र आदिपर पूर्वोक्त रामभद्रोंमेंसे किसी एक भद्रको बनावे। उसके बीचमें एक सुन्दर आसन रक्खे ॥ ९४ ॥ आसन भी अनेक प्रकारके रङ्ग-बिरङ्गे रङ्गोंसे रङ्गे और उसके ऊपर अतिशय सुन्दर और चित्रवर्णका मण्डप बनावे ॥ ९५ ॥ उसमें चार द्वार बनाकर केलेके खंभे तथा इक्षुदण्डके साथ-साथ तोरण लगावे ॥ ९६ ॥ उसमें अनेक प्रकारके घंटा किंकिणी आदि बाजे बाँधकर उसका शृंगार करे। उसे चित्र-विचित्र ध्वजा, वितान, मोतियोंके हार आदिसे सुसज्जित करे। इसके अनन्तर रामतोभद्रके बीचमें जलपूर्ण कलशपर ताम्रका पात्र रखकर नवायतनके चिह्नसे चिह्नित सीता समेत रामका पूजन करे ॥ ९७-९९ ॥ नौ पलकी सुवर्णमयी राममूर्ति बनवानी चाहिए। आठ पलकी सीतामूर्ति बनेगी ॥ १०० ॥ लक्ष्मण आदि-

तस्याप्यर्धं तदर्धार्धं वित्तशाठ्यं न कारयेत् । षोडशैरुपचारैश्च पूजोक्ता निशि जागरः ॥१०२॥
दशम्यां प्रातरुत्थाय स्नात्वा संपूज्य राघवम् । राममंत्रेण हवनं कार्यं नवसहस्रकम् ॥१०३॥
तिलाद्यैः पायसाद्यैश्च नवान्नेनाथ तत्स्मृतम् । तद्दशांशेन क्षीरेण तर्पणं हि प्रकारयेत् ॥१०४॥
तस्यापि च दशांशेन मार्जनं द्विजभोजनम् । कर्ममुद्रां हस्तमुद्रां वसने ब्रह्मसूत्रकम् ॥१०५॥
चित्रासनमुत्तरीयं मुकुटं झर्झरीं तथा । कांस्यपात्रं भोजनस्य नवान्नेन प्रपूरितम् ॥१०६॥
घृतपात्रं कांस्यमयं नवान्नोपरि संस्थितम् । पादुके पुस्तकं दिव्यं यत्किंचिद्राघवस्य च ॥१०७॥
तांबूलं दक्षिणां चापि प्रत्येकं भूसुराय हि । अर्पयेत्सकलं चेत्थमेवं सर्वान् समर्पयेत् । १०८॥
ततो गुरुं समभ्यर्च्य प्रणम्य च पुनः पुनः । तामर्चामर्पयेत्सर्वां गुरवे दक्षिणान्विताम् ॥१०९॥
ततो गुरुं प्रार्थयेत्तं प्रणम्य च पुनः पुनः । मासे मासे नवम्यां तु सोद्यापनव्रतं मया ॥११०॥
यत्कृतं नव वर्षाणि तेन तुष्यतु राघवः । अग्रेऽपि यावज्जीवामि तावत्कालं करोम्यहम् ॥१११॥
व्रतानामुत्तमं चेदं तुष्ट्यर्थं राघवस्य च । गुरो त्वत्कृपया रामो मां प्रसीदतु सीतया ॥११२॥
एवं संप्रार्थ्य स्वीयं तं गुरुं नत्वा विसर्जयेत् । ततः स्वयं हि भुंजीत सुहृन्मित्रसुतादिभिः ॥११३॥
एवमुद्यापनं कृत्वा कार्यमग्रे व्रतं पुनः । मासे मासे राघवस्य न त्याज्यं सर्वथा नरैः ॥११४॥
एकादशीव्रतं नित्यं यथा तत्क्रियते नरैः । तथा मासव्रतं चेदं नित्यमेव स्मृतं बुधैः ॥११५॥
अशक्तेन यथाशक्त्या कार्यमुद्यापनं व्रतम् । उपोष्या नवमी शुक्ला सर्वदैव नरैर्भुवि ॥११६॥
नवम्यां शुक्लपक्षे यो भुंक्तेऽन्नं मूढधीर्नरः । रौरवे कल्पपर्यंतं तस्य वासः स्मृतो बुधैः ॥११७॥
एवं शिष्य त्वया यच्च पृष्टं तत्ते निवेदितम् । का तेऽन्या श्रोतुमिच्छास्ति तां वदस्व वदामि ते११८॥

की मूर्तियाँ पाँच-पाँच पल चाँदीकी बनेंगी। यदि ऐसा करनेकी सामर्थ्य न हो तो उससे आधे वजनकी मूर्ति बनवाये और यदि वह भी न कर सके तो आधेके आधे वजनकी मूर्तियाँ बनवानी चाहिए। वह भी न हो सके तो उसके भी आधे वजनकी बनवाये, किन्तु कंजूसी न करे। षोडश उपचारोंसे पूजन तथा रात्रिको जागरण अवश्य करना चाहिए ॥ १०१ ॥ १०२ ॥ दशमीको सबेरे उठकर स्नान और रामका पूजन करके नौ हजार हवन करे ॥ १०३ ॥ हवन तिलसे, खीरसे अथवा नवान्नसे करना उचित है। तदनन्तर हवनके दशांश दूधसे तर्पण करे। उसका भी दशांश माजन करे और मार्जनका भी दशांश ब्राह्मणोंको भोजन करावे। इसके अनन्तर हस्तमुद्रा तथा कर्ममुद्राके साथ वस्त्र, यज्ञोपवीत, चित्रासन, उत्तरीय वस्त्र, मुकुट, झारी, भोजनके लिए नवान्नसे पूर्ण कांस्यपात्र, घृतपात्र, इन सबके साथ कांस्यमय पात्रोंमें नवान्नपर रखकर चरणपादुका, दिव्य आनन्दरामायणकी पुस्तक, ताम्बूल, दक्षिणा, ये सब वस्तुयें प्रत्येक ब्राह्मणको दे ॥ १०४–१०७ ॥ तदनन्तर गुरुका पूजन करके उसे एक गौ दे और दक्षिणा समेत वह पूजनसामग्री गुरुको अर्पण करे ॥ १०८ ॥ १०९ ॥ इसके बाद गुरुको वारम्वार प्रणाम करके कहे—हे गुरो! महीने महीने उद्यापनके साथ मैंने जो नौ वर्षपर्यन्त रामव्रत किया है। उससे श्रीरामचन्द्रजी प्रसन्न हों। आगे भी जब तक जीवित रहूँगा, बराबर यह उत्तम व्रत भगवान्‌को प्रसन्न करनेके लिए करता रहूँगा। हे गुरो! आपकी कृपासे मुझपर सीता और राम प्रसन्न हों ॥ ११०–११२ ॥ इस प्रकार प्रार्थना करनेके बाद अपने गुरुजीको प्रणाम करके उनको विदा करे। इसके बाद सम्बन्धियों, मित्रों और पुत्रादिकोंके साथ स्वयं भी भोजन करे ॥ ११३ ॥ इस तरह उद्यापन करके महीने-महीने यह व्रत करता रहे, त्यागे नहीं ॥ ११४ ॥ जिस तरह लोग एकादशीका व्रत करते हैं। उसी तरह यह मासव्रत भी सदा करते रहना चाहिए ॥ ११५ ॥ यदि विशेष सामर्थ्य न हो तो अपनी शक्तिके अनुसार ही इसका उद्यापन करे। संसारके लोगोंको चाहिए कि सर्वदा शुक्लपक्षकी नवमीको अवश्य उपवास किया करें ॥ ११६ ॥ जो मूर्ख मनुष्य शुक्लपक्षकी नवमीको अन्न खाता है, उसे एक कल्पतक रौरव नरकमें निवास करना पड़ता है। यह बात कितने ही विद्वानोंकी कही हुई है ॥ ११७ ॥ रामदासने कहा—हे शिष्य! तुमने जो पूछा, वह मैंने तुमसे कहा। अब और क्या सुनना चाहते हो, वह बतलाओ तो मैं कहूँ ॥ ११८ ॥

विष्णुदास उवाच

गुरो त्वया राघवस्य श्रीरामनवमीव्रतम् । मासे मासे प्रकर्तव्यमिति प्रोक्तं ममाग्रतः ॥११९॥
तत्केनाचरितं पूर्वं सिद्धिर्लब्धाऽत्र केन हि । तत्सर्वं विस्तरेणैव वद कृत्वा कृपां मयि ॥१२०॥
अन्यत्ते प्रष्टुमिच्छामि तत्त्वं मां वक्तुमर्हसि । अशक्तेन नरेणेदं व्रतं कार्यं कथं महत् ॥१२१॥

श्रीरामचन्द्र उवाच

सम्यक् पृष्टं त्वया शिष्य सावधानमनाः शृणु । आसीत्पुरा द्विजः कश्चित्केरले रामतत्परः ॥१२२॥
नाभूत्तस्य विवाहोऽत्र निर्धनस्य जनस्य च । नासीत्तस्मै गेहमपि न माता न पिताऽपि च । १२३॥
तस्यैको नियमश्चासीद्दरिद्रस्य च तं शृणु । नित्यं प्रातः समुत्थाय कृतमालानदीजले ॥१२४॥
स्नात्वा नदीसिकतायां सिकतावेदिका नव । कृत्वा तत्र जनकजासहितं रघुनन्दनम् ॥१२५॥
पत्रनिर्मितश्रीरामलिंगात्मकवरासने ।मध्यमायां वेदिकायां संस्थाप्य धातुनिर्मितम्॥१२६॥
अष्टदिक्षु वेदिकासु तरुपत्रासने पृथक् । समंततो राघवस्य लक्ष्मणादीन्न्यवेशयत् ॥१२७॥
ततः स राघवं प्राह रामं राजीवलोचनम् । कर्तुमावश्यकं कर्म गन्तुमर्हसि सत्वरम् ॥१२८॥
इत्युक्त्वा तं स्वयं पृष्ठे निवेश्य रघुनन्दनम् । कियद्दूरं रहो वृक्षखंडे गत्वा द्विजोत्तमः ॥१२९॥
रामं तृणभुवि स्थाप्य तदग्रे पात्रमुत्तमम् । सजलमृत्तिकां चापि संस्थाप्य च जवन हि ॥१३०॥
किंचिद्दूरं स्वयं गत्वा स्थितवान् स कियत्क्षणम् । रामांतिकं पुनर्गत्वा पादप्रक्षालनादिकम् ॥१३१॥
अकरोन्मृत्तिकाशौचं च तस्य स्वकरेण हि । दत्त्वाऽन्यपात्रतोयेन रामायाचमनं ततः ॥१३२॥
दंतकाष्ठेन तद्दंतान्संशोध्य भक्तिपूर्वकम् । गंडूषार्थं जल दत्त्वा कवोष्णं शीतलं पुनः ॥१३३॥
समर्प्याचमनार्थं स वस्त्रेणास्यं प्रमार्जयत् ।संमार्ज्य हस्तौ पादौ च रामस्य वाससा द्विजः॥१३४॥
तं विगृह्य पुनः पृष्ठे नम्रीभूतः शनैः शनैः । सिकतावेदिकायां च पूर्वस्थाने न्यवेशयत् ॥१३५॥
एवं सीतां लक्ष्मणं च भरतं लवणांतकम् । सुग्रीवादीन् पृथक् नीत्वावश्यकादीन्यकारयत्॥१३६॥

विष्णुदासने कहा–हे गुरो ! अभी आपने हमसे कहा है कि महीने-महीने श्रीरामनवमी व्रत करना चाहिए ॥११९॥ इस व्रतको किसने किया था और इसके प्रभावसे किसको सिद्धि प्राप्त हुई थी ? कृपा करके यह विस्तारपूर्वक हमें बतलाइये ॥ १२० ॥ हाँ, एक बात मैं आपसे और पूछना चाहता हूँ । वह यह कि जो प्राणी असमर्थ है, वह यह व्रत कैसे करे ? ॥ १२१ ॥ श्रीरामदासने कहा–हे शिष्य ! तुमने बहुत अच्छा प्रश्न किया है, सावधान मनसे सुनो । एक समय रत्न (केरल) देशमें रामकी भक्तिमें तत्पर एक ब्राह्मण रहा करता था ॥ १२२ ॥ दीनताके कारण न उसका ब्याह हुआ था, न घर-द्वार था और न माता-पिता ही थे ॥ १२३ ॥ किन्तु उस दरिद्रका एक नियम था, उसे सुनो । वह प्रतिदिन सबेरे उठता तो एक सुन्दर माला बनाता । फिर नदीमें स्नान करके बालूमें नौ वेदियाँ बनाकर उनपर पत्र निर्माण करके श्रीरामलिंगके आसनपर मध्यवेदीमें धातु-निर्मित रामकी प्रतिमा बैठाकर तरुपत्रके आसनोंपर चारों ओर राम-लक्ष्मण आदिको बिठालता था ॥१२४॥१२५॥ ॥ १२६ ॥ १२७ ॥ इसके बाद राजीवलोचन रामसे कहता-हे राम ! मैं आपका पूजन करूँगा । इसलिए कृपा करके पधारिए ॥ १२८ ॥ ऐसा कहकर रामको अपनी पीठपर लादता और कुछ दूर एकान्तकी झाड़ियोंमें ले जाकर किसी घास उगी हुई जगहपर बिठलाता । उनके आगे जलसे भरा हुआ उत्तम पात्र और मृत्तिका रखकर स्वयं वहाँसे कुछ दूरीपर जाकर बैठता और थोड़ी देर बाद लौटकर आता तो अपने हाथोंसे उनका पादप्रक्षालन और मृत्तिकाशुद्धि आदि कराता । फिर एक दूसरे पात्रके द्वारा जल देकर रामको कुल्ले कराता था ॥ १२९–१३२ ॥ तदनन्तर काष्ठकी दातौनसे उनके दाँत माँजकर पहले कुछ गरम और बादमें शीतल जलसे कुल्ले करवाता था । इसके बाद तौलियेसे उनके मुँह आदि पोंछकर हाथ पैर आदि पोंछता और फिर अपनी पीठपर लेकर धीरे-धीरे सिकताकी बनी हुई वेदिकापर बिठाल दिया करता था ॥ १३३–१३५ ॥ इसी तरह सीता, लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न और सुग्रीव आदिको पृथक्-पृथक्

ततः पृथक्कवोष्णेन तैलाभ्यगान्विधाय सः । नीरेणास्नापयत् सर्वान् कृत्वा चोद्वर्तनान्यपि ॥१३७॥
ततो भूर्जादिपत्राणि वस्त्रार्थं स पृथग्ददौ । ततः पत्रैः फलैः पुष्पैर्लब्धैस्तानचर्यत्क्रमात् ॥१३८॥
ततः स स्थूलव्रीहीणां कृत्वौदनमनुत्तमम् । स्नात्वा माध्याह्निकं कृत्वा पुनःसंपूज्य राघवम् ॥१३९॥
दत्त्वौदनस्य नैवेद्यं वैश्वदेवं विधाय च । किंचिद्भिक्षामतिथये मत्स्यान्ग्रामण्डजादिकान्॥१४०॥
दत्त्वा पृथक् पृथक् विप्रश्चक्रे रामाज्ञयाऽशनम् । ततो रामं पुनः पृष्ठे समारोहयदादरात् ॥१४१॥
ततः सीतां ततः सर्वान् लक्ष्मणादीन्क्रमेण हि । पूजोपकरणं सर्वं पेटिकायां निधाय सः ॥१४२॥
कृत्वा तां पेटिकां कक्षे जगामाथ शनैर्द्विजः । स वनारामोपवनं गत्वा रामं वचोऽब्रवीत् ॥१४३॥
राम राजीवपत्राक्ष वनारामादिकौतुकम् । जानकीसहितः पश्य नानांडजमृगादिकान् ॥१४४॥
ततो ययौ ग्रामहट्टं दर्शयन्कौतुकं विभुम् । संमर्दे ताडयामास मार्गार्थं यान् स यष्टिना॥१४५॥
तेऽपि तत्कौतुकाविष्टा जनाः कोपं न मेनिरे । एवं नानाकौतुकानि दर्शयामास राघवम् ॥१४६॥
ततः शून्ये तृणगृहे राम तानवरुह्य च । काष्ठनिर्मितपर्यंके कारयामास निद्रितान् ॥१४७॥
ततो वेगाद्धट्टमध्ये गत्वा स ब्राह्मणोत्तमः । याञ्चया तंडुलान् तैलं घृतं शाकं फलानि च ॥१४८॥
नागवल्लीदलादीनि क्रमुकं कुंकुमादिकम् । लब्ध्वा ताम्रमयं किंचिद्द्रव्यं रामान्तिकं ययौ १४९॥
तद्ग्रामवासिनः सर्वे ये ये हट्टे स्थिता जनाः । स्वस्वनानाव्यवसायतत्परास्ते द्विजोत्तमम् ॥१५०॥
श्रीरामनिष्ठं त दृष्ट्वा ददुस्तद्याचितं मुदा । विप्रः शून्यगृहे रामं रामाग्रे दीपमुत्तमम् ॥१५१॥
प्रज्वाल्यारार्तिकं कृत्वा गन्धाद्यैः परिपूज्य च । वीजयामास रामादीन् पल्लवेन मुदान्वितः ॥१५२॥
ततः स्तुत्वा मुहुर्जप्त्वा कृत्वा चापि प्रदक्षिणाः । चकार कीर्तनं वक्ष्यमाणैः सन्मनुभिर्द्विजः ॥१५३॥

ले जाकर शौचविधि पूर्ण किया करता था ॥ १३६ ॥ तदनन्तर राम-सीता आदिके शरीरमें तेल लगाकर थोड़े गरम जलसे स्नान कराता था। तदनन्तर भोजपत्र आदिके पत्ते कपड़ेके लिए प्रदान करता और पत्र, फल, पुष्प आदि जो कुछ मिल जाता, उससे क्रमशः उनका पूजन किया करता था ॥ १३७ ॥ १३८ ॥ फिर मोटे चावलका उत्तम भात बनाता और स्नान तथा मध्याह्नकालको संध्या आदि क्रियायें कर लेनेके बाद रघुनाथजीकी पूजा करता और बलिवैश्वदेव करके वह भातका भोग उनके सामने रखता था। तदनन्तर उसमेंसे कुछ अतिथियोंके भिक्षार्थ, कुछ मछलियों और पक्षियोंके लिए, कुछ गौओं तथा चींटी आदिके लिए निकालकर रामकी आज्ञा पा जानेपर स्वयं भोजन किया करता था। तदनन्तर फिर रामको आदरपूर्वक पीठपर लादकर क्रमशः सीता-लक्ष्मण आदिको तथा पूजनकी सामग्री पेटोमें भरकर पेटी बगलमें दबाता और सबको पीठपर बैठाकर वहांसे चलता था। इसके बाद किसी सुन्दर बगोचेमें पहुँचकर रामसे कहता—हे राजीवलोचन राम ! सीताके साथ आप इस बगीचेका तथा बगीचेमें रहनेवाले पशु-पक्षियोंका अवलोकन करिए ॥ १३९-१४४ ॥ इसके बाद वह गाँववाले बाजारमें जाता और अपने भगवान्‌को वहाँके कौतुक दिखाता था। उस समय भीड़में भगवानके लिए रास्ता बनाते समय वह किसीको डण्डेसे मार भी देता तो कोई बुरा नहीं मानता था। इस तरह वह नित्य रामचन्द्रजीको नाना प्रकारके कौतुक दिखाया करता था ॥ १४५ ॥ १४६ ॥ इसके बाद वह सूनी तृणशालामें ले जाकर उन लोगोंको उतारता और काठकी खटोलीपर सुला दिया करता था ॥ १४७ ॥ तदनन्तर तुरन्त वह बाजारमें जाता और चावल, तेल, घी, साग, फल, फूल, पान, सुपारी, कुमकुम तथा कुछ पैसे माँगकर अपने रामके पास लौट आया करता था ॥ १४८ ॥ १४९ ॥ उस ग्राममें रहनेवाले अनेक प्रकारके व्यवसायोंमें लगे हुए लोग उसे अद्वितीय रामभक्त समझकर वह जो कुछ माँगता, सो दे दिया करते थे। विप्र सूने घरमें पहुँचकर रामके आगे उत्तम दीपक जलाता, फिर आरती उतारता और धूप, दीप, गन्ध आदिसे उनकी पूजा करके किसी पल्लव आदिसे पंखे झला करता था ॥ १५०-१५२ ॥ तत्पश्चात् वह रामकी स्तुति, जप तथा प्रदक्षिणा करके आगे कहे जानेवाले मंत्रों द्वारा हरिकीर्तन किया करता था।

ततस्तु याचितान्येव वस्तूनि मिश्रितानि हि । पृथक्कृत्वा तु सर्वेषां त्रीन् भागांश्च चकार सः॥१५४॥
द्वौ भागौ स स्वनिकटे स्थाप्यैकं भागमुत्तमम् । मित्रगेहे न्यासभूतं नवम्यर्थं चकार सः ॥१५५॥
ततः स्वयं द्वारमध्ये चकार शयनं द्विजः । पुनः प्रभाते चोत्थायाचम्य गीतादिभिः प्रभुम्॥१५६॥
तालत्राद्यैः प्रबोध्याथ तान्पृष्ठे स्थाप्य पूर्ववत् । नदीतीरं ययौ विप्रः पूजयामास पूर्ववत् ॥१५७॥
एवं नित्यपूजनं च चकारादृतमानसः । नवम्यां च विशेषेण पूजयित्वाऽथ राघवम् ॥१५८॥
स्वयञ्चोपोषणं कृत्वा स्वयं चक्रे सुकीर्तनम् । रात्रौ जागरणं चापि राघवं पूज्य वै पुनः ॥१५९॥
चकार कीर्तनैश्चाथ नर्तनाद्यैः स्वयं कृतैः । ततः प्रभाते श्रीरामं दशम्यां परिपूज्य च ॥१६०॥
प्रतिपद्दिनमारभ्य नवरात्रेऽथ यत्कृतम् । आनंदरामचरितपरायणमनुत्तमम् ॥१६१॥
तत्समाप्य पूजयित्वा पुस्तकं ब्राह्मणान्नव । निमंत्रितान् समाहूय तेष्वेवैकं सपत्निकम् ॥१६२॥
द्विजमाकारयामास ततः संचिततंदुलाः । मित्रगेहे न्यासभूतास्तेषां कृत्वौदनं शुभम् ॥१६३॥
यथा संचितशाकादि तथा लब्धानि यानि सः । तानि सर्वाणि संस्कृत्य वरान्नीदीनि चाकरोत् ॥१६४॥
वालुकावेदिकायां वै मध्ये पत्नीयुतं द्विजम् । अष्टकोणेषु विप्रांस्तानष्ट संवेश्य वै क्रमात् ॥१६५॥
षोडशैरुपचारैस्तान् पूजयामास भक्तितः । रंभादलेषु च ततो विस्तीर्णेषु द्विजोत्तमः ॥१६६॥
चकार तैः कृतैरन्नैः स मुदा परिवेषणम् । ततस्ते भोजनं चक्रुस्तद्भक्त्याऽतिमुदान्विताः ॥१६७॥
ततो दत्त्वा सुतांबूलं दक्षिणां तान् प्रणम्य च । विसर्जयामास विप्रांस्ततश्चक्रेऽशनं द्विजः ॥१६८॥
एवं विप्रो मासि मासि नवायतनपूजनम् । नवम्याः पारणायाश्च दिवसे दशमीदिने ॥१६९॥
चकार नवविप्रेषु याञ्चां कृत्वाऽपि भक्तितः । एवं गतानि वर्षाणि नव तस्य द्विजन्मनः ॥१७०॥
एकदा श्रावणे मासि तद्ग्रामे सेनया नृपः । कश्चिद्ययौ तदा विप्रः स्वस्थले निशि निद्रितः॥१७१॥

था। कुछ देर बाद उन माँगकर लायी हुई वस्तुओंका तीन भाग करके दो भाग तो अपने पास रख लेता, बाकी एक भाग अपने निकटवर्ती मित्रके यहाँ नवमीके उत्सवके लिये धरोहरके तौरपर रख आया करता था ॥ १५३–१५५ ॥ इन सब नित्य-नियमोंसे निबटकर वह द्वारपर शयन करता और फिर सबेरे उठकर गीतापाठ आदिसे भगवान्‌जी स्तुति करता हुआ ताली बजाकर राम आदिको जगाता और नित्य-नियमके अनुसार फिर उनको अपनी पीठपर लादकर नदीके तटपर पहुँच जाया करता और पूर्वोक्त विधिसे पूजन करता था ॥ १५६ ॥ १५७ ॥ इस तरह आदर भरे मनसे वह नित्य पूजन किया करता था । किन्तु नवमीको उपवास करके विशेष उपकरणोंके साथ पूजन करके भलो प्रकार कीर्तन और रात्रिके समय जागरण करता था ॥ १५८ ॥ १५९ ॥ फिर दशमीके दिन रामका पूजन करके प्रतिपदासे लेकर नवरात्र पर्यन्त आनन्दरामायणका पारायण करता था ॥ १६० ॥ उसे समाप्त करके नौ ब्राह्मणोंका पूजन करता था । तदनन्तर एक ब्राह्मणदम्पतीको बुलाकर मित्रके घरमें इकट्ठा किये हुए तण्डुलसे बढ़िया भात बनाकर जो कुछ शाक आदि एकत्र होता, उसे भी भली भाँति बना करके अच्छी तरह बालुकाकी बनी हुई वेदीपर बीचमें उस सपत्नीक ब्राह्मणको बिठालता और कोनोंमें उन आठ विप्रोंको बिठालकर षोडश उपचारोंसे भक्तिपूर्वक उनका पूजन करता था। तदनन्तर केलेके पत्तोंको उनके आगे बिछाकर उन बने हुए अन्नोंको बड़ी प्रसन्नताके साथ परोसता था और वे ब्राह्मण उसकी भक्तिसे गद्गद होकर बड़े प्रेमसे भोजन करते थे ॥ १६१–१६७ ॥ इसके बाद बढ़िया पान तथा दक्षिणा देकर उन ब्राह्मणोंको विदा करता । तब स्वयं भी भोजन करता था ॥ १६८ ॥ इस तरह वह ब्राह्मण प्रतिमासकी नवमी तथा दूसरे पारणवाले दिन नौ ब्राह्मणोंमें नवायतनका पूजन किया करता था ॥ १६९ ॥ इस तरह उस ब्राह्मणके नौ वर्ष बीत गये ॥ १७० ॥ एक बार श्रावणके महीनेमें उसके यहाँ एक बड़ी सेना अपने साथ लिये एक राजा आ पहुँचा, किन्तु ब्राह्मण रात्रिके समय अपने घरमें पड़ा सो रहा था ॥ १७१ ॥

एतस्मिन्नन्तरे वृष्टिपीडिता नृपसेवकाः । ग्रामे गेहानि विविशुः शून्यगेहं ययुर्दश ॥१७२॥
अश्वारूढाः सशस्त्रास्ते द्वारमध्ये द्विजोत्तमम् । दृष्ट्वा विनिद्रितं प्रोचुर्द्विजोत्तिष्ठ जवेन हि ॥१७३॥
मार्गं देहि वयं वृष्टया पीडिताः स्मश्चिर बहिः। शून्यगेहेऽत्र स्थास्यामः सुखं साश्वाः ससेवकाः॥१७४॥
तत्तेषां वचनं श्रुत्वा सम्भ्रमेण द्विजोऽब्रवीत् । रामचन्द्रः सीतयात्र निद्रितोऽस्ति स्वबंधुभिः॥१७५॥
न वर्ततेऽत्र युष्माकं स्थलं सत्यं वचो मम । गच्छध्वं नगरे नानास्थलान्यन्यानि सन्ति हि॥१७६॥
तत्तस्य वचनं श्रुत्वा राजदूताः पुनर्द्विजम् ।प्रोचुस्ते ह्यस्ति श्रीरामः सोऽपि निर्यातु वै बहिः॥१७७॥
सीतया बंधुभिर्युक्तः स्थलं नो देहि भो द्विज । पुनराह द्विजस्तान् स कथं रामं विनिद्रितम् ॥१७८॥
प्रबुद्धं वै करोम्यद्य निशायां राजसेवकाः । युष्माकं प्रार्थना त्वद्य क्रियते वै मया मुहुः ॥१७९॥
प्रणम्य विधिवद्यूयं गच्छध्वं वै स्थलांतरम् । ततस्तन्निग्रहं दृष्ट्वा तेऽतिवृष्टया प्रपीडिताः ॥१८०॥
तं विप्रं ताडयांचक्रुस्तदा प्राह द्विजोत्तमः । रामं बहिः करोम्यद्य तिष्ठध्वं राजसेवकाः ॥१८१॥
इत्युक्त्वाऽऽचम्य श्रीरामं भूसुरो वाक्यमब्रवीत् । रामोत्तिष्ठ बहिर्दुष्टाः स्थिताः संत्यश्वसंस्थिताः॥१८२॥
तेषां वस्तुं स्थलं देहि वयं यामो बहिर्निशि । इत्युक्त्वा निजपृष्ठे तानारोहयत्स पूर्ववत् ॥१८३॥
ततः कृत्वा महाकोशं वस्त्रादीनां द्विजोत्तमः । धृत्वा कक्षे तोयकुम्भं धृत्वा वामकरेण सः ॥१८४॥
यष्टिं धृत्वा सव्यहस्ते शनैर्द्वाराद्बहिर्ययौ । ते द्विजं तादृशं दृष्ट्वा भ्रांतं तं मेनिरे खलाः ॥१८५॥
ततो दृष्ट्वाऽतिवृष्टिं स गेहाग्राधो बहिर्द्विजः । नम्रीभूतस्तदा तस्थौ गेहे संविविशुः खलाः ॥१८६॥
ततोऽतिश्रमितो विप्रश्चिंतयामास चेतसि । पुराणे वायुपुत्रस्य मया सारं श्रुतं बहु ॥१८७॥
तत्सर्वं तु मृषा त्वद्य किमस्त्यत्र प्रयोजनम् । इति निश्चित्य विप्रः स क्रोधेन महता वृतः ॥१८८॥
शीघ्रं घटं भुवि स्थाप्य वामहस्तेन मारुतेः । पुच्छं धृत्वा प्राक्षिपत्तमाकाशे वेगवत्तरः ॥१८९॥

इसी समय बरसातसे सताये हुए कुछ राजसेवक ब्राह्मणके घरको खाली समझकर द्वारपर पहुँचे ॥ १७२ ॥ वे सशस्त्र सेवक घोड़ेपर सवार थे। द्वारपर पहुँचते ही ब्राह्मणको जगाते हुए उन्होंने कहा—हे ब्राह्मण ! जल्दी उठो, मुझे जगह दो । मैं बड़ी देरसे भीग रहा हूँ। इस सूने घरमें मैं अपने सेवकों और घोड़ोंके साथ ठहरूँगा ॥ १७३ ॥ १७४ ॥ इस प्रकार उनकी बात सुनकर घबड़ाहटके साथ ब्राह्मणने कहा कि इस घरमें रामचन्द्रजी अपने बन्धुओंके साथ सो रहे हैं। यहाँ आप लोगोंके लिए जगह खाली नहीं हैं। मेरी इस बातको सच मानिएगा। नगरमें चले जाइए । वहाँ आप लोगोंको बहुत जगहें मिल जायँगी ॥ १७५ ॥ इस प्रकार ब्राह्मणके वचन सुनकर सिपाहियोंने कहा कि यदि इस घरमें राम हैं तो उन्हें भी बाहर निकाल दो और हम लोगोंको ठहरनेके लिये जगह खाली कर दो । ब्राह्मणने कहा—हे राजसेवक ! जब कि राम सो रहे हैं तो उन्हें कैसे जगाऊँ। मैं आप लोगोंसे प्रार्थना करता हूँ कि दूसरी जगह चले जाइए। इस प्रकार ब्राह्मणका हठ देखकर उन वृष्टिपीडित राजसेवकोंने उसे मारा। ब्राह्मणने कहा—अच्छा, हे राजसेवको ! ठहरिए, मैं अभी रामचन्द्रजीको बाहर किये देता हूँ ॥ १७६–१८१ ॥ ऐसा कहकर उसने आचमन किया और रामके पास जाकर कहा—हे राम ! उठिए। बाहर वे दुष्ट घुड़सवार खड़े हैं। आप उनको रहनेके लिए यह जगह खाली कर दीजिए, हमलोग रातों-रात कहीं दूसरे स्थानपर चले चलें। ऐसा कहकर ब्राह्मणने रोजकी तरह उनको अपनी पीठपर लादा ॥ १८२ ॥ १८३ ॥ इसके बाद उसने वस्त्रोंकी एक बड़ी गठरी बनाकर काँखमें दबायी, पानीका घड़ा बायें हाथमें लिया और दाहिने हाथमें छड़ी लेकर धीरे-धीरे बाहर निकला। इस तरह तैयारी करके जाते हुए ब्राह्मणको देखकर उन सिपाहियोंने समझा कि यह कोई पागल है ॥ १८४ ॥ १८५ ॥ विप्र बाहर निकला तो देखा कि बड़े जोरोंमें वृष्टि हो रही है। ऐसी अवस्थामें वह ब्राह्मण झुककर बारजेके नीचे खड़ा हो गया और सिपाही भीतर घुस गये ॥ १८६ ॥ खड़े-खड़े जब थक गया तो मन ही मन सोचने लगा कि मैंने तो पुराणोंमें सुना था कि हनुमान्‌जीमें बड़ा बल है ॥ १८७ ॥ लेकिन ये सब बातें झूठी हैं। ऐसा सोचकर उसने छड़ी दीवारसे सटाकर खड़ी कर दी, बायें हाथके घड़ेको

तदा सा मारुतेर्धातुमयी मूर्तिः शुभावहा । गत्वाऽऽकाशे गर्जनां वै चकारातिभयंकराम् ॥१९०॥
तां गर्जनां महावीरा ग्रामस्थाश्च बहिः स्थिताः । श्रुत्वाऽतिभयसंत्रस्ता मृताः सर्वे क्षणेन हि ॥१९१॥
अश्वा नागा वृषाद्याश्च मृताः सर्वे तदा क्षणात् । तद्वद्ग्रामे बहिर्वाऽपि चरं पुरुषसंज्ञितम् ॥१९२॥
पुत्रगर्भाश्च नारीणां सर्वे प्रापुः क्षयं तदा । तदा स पुरुषस्त्वेको न मृतो ब्राह्मणोत्तमः ॥१९३॥
कृपया रामचन्द्रस्य मारुतेः कृपयाऽपि च । ततः प्रभाते ता नार्यः सर्वान्स्वपुरुषान्मृतान् ॥१९४॥
दृष्ट्वाऽतिविस्मयं प्रापुस्ताभिर्नैव श्रुतो ध्वनिः । तदा विप्रं जीवितं तं दृष्ट्वा पंकेऽपि मारुतिम् ॥१९५॥
पतितं विस्मयाविष्टाः पप्रच्छुस्तं द्विजोत्तमम् । ततः स सकलं वृत्तं नारीः संश्रावयत्तदा ॥१९६॥
ततस्ताः प्रार्थयित्वा तं चक्रुः स्त्रीयपुराधिपम् । सोऽपि रामाज्ञया राज्यं चकार तत्पुरस्य च ॥१९७॥
पुरस्थितानां नारीणां स एवासीत्पतिस्तदा । तन्मारुतेर्गर्जितं हि काले काले तु पूर्ववत् ॥१९८॥
अद्यापि श्रूयते तस्मिन्नगरे घनशब्दवत् । तच्छ्रुत्वा पुत्रगर्भाश्च प्रस्खलंति हि योषिताम् ॥१९९॥
स्त्रियः सहस्रशश्चासन् पुरुषस्त्वेक एव सः । तदारभ्य तत्स्त्रीराज्यं कथ्यते मानवोत्तमैः ॥२००॥
ततः कालान्तरेणैव स विप्रश्च मृतो यदा । तदा स्वपूर्वपुण्येन विष्णुसायुज्यमाप सः ॥२०१॥
ततस्ताभिस्तु नारीभिः कश्चित्पांथः समागतः । स एव क्रियते भर्ता न तं ता मोचयंति हि ॥२०२॥
ज्ञात्वा तं गर्जनाकालं पुरुषान्विवरेषु हि । गोपयित्वा दुंदुभीनां शंखानां निःस्वनादिभिः॥२०३॥
न श्रावयंति तेषां तं ध्वनिं मारुतसंभवाम् । अतिक्रांतेऽथ तत्काले तान्पुनर्जी वितानिति ॥२०४॥
मत्वा नानोत्सवैः पूज्य तैर्भोगं ता भजंति हि । नार्या तच्छास्यते राज्यं सदैव द्विजसत्तम ॥२०५॥
स्त्रीणामेव सदोत्पत्तिर्जायते पुरुषस्य न । तद्राज्यनिकटस्था ये देशास्तेष्वपि भो द्विज ॥२०६॥

जमीनमें रख दिया और बायें हाथसे हनुमान्‌जीकी पूँछ पकड़कर बड़े क्रोध और वेगके साथ आकाशमें उछालकर फेंका ॥ १८८ ॥ १८९ ॥ हनुमान्‌जीकी वह धातुमयी मूर्ति आकाशमें पहुँचकर बड़े जोरसे गरजी ॥ १९० ॥ वह भीषण गर्जना उन सिपाहियों, गाँववालों तथा बाहरवालोंको भी सुनायी दी। उसे सुनते ही सब घबड़ा-घबड़ाकर मर गये । उस गर्जनासे घोड़े, हाथी और बैल आदि पुरुषनामधारी जितने जीव थे, उनमेंसे उस ब्राह्मणके सिवाय और कोई नहीं बचा। यहाँ तक कि स्त्रियोंके गर्भमें जो बच्चे थे, वे भी मर गये। किन्तु श्रीरामचन्द्रजीकी कृपा और हनुमान्‌जीकी दयासे वह ब्राह्मण ज्योंका त्यों खड़ा रह गया। सबेरा हुआ तो उन नारियोंने, जिनके पति रातको मर गये थे, अपने स्वामीको मृत देखा तो बड़ी चकरायीं। तदनन्तर जब उन्होंने उस ब्राह्मणको जीवित तथा हनुमान्‌जीकी मूर्ति कीचड़में पड़ी देखी तो उस ब्राह्मणसे वे सब पूछने लगीं। ब्राह्मणने उन स्त्रियोंको रात्रिका सारा हाल कह सुनाया ॥ १९१–१९६ ॥ इसके अनन्तर उन स्त्रियोंने प्रार्थना करके ब्राह्मणको उस नगरीका राजा बना दिया। रामचन्द्रजीकी आज्ञासे वह विप्र वहाँका राज करने लगा ॥ १९७ ॥ उस समय उस नगरीकी सब स्त्रियोंका वही पति था। हनुमान्‌जीकी वह गर्जना कभी-कभी विकराल मेघगर्जनके समान अब भी सुनायी पड़ जाया करती है। उसे सुनकर जिन स्त्रियोंके उदरमें पुत्र रहता है, उनका गर्भ गिर जाया करता है ॥ १९८॥ १९९॥ उस विप्रके पास हजारों स्त्रियाँ थीं और उनके बीचमें वह अकेला पुरुष था। तभीसे लोगोंने उसे स्त्रीराज्य कहना प्रारम्भ कर दिया। कुछ दिनों बाद जब उस विप्रकी मृत्यु हुई तो अपने पूर्वार्जित पुण्यके प्रभावसे उसे विष्णुकी सायुज्य मुक्ति मिली ॥२००॥ ॥ २०१ ॥ इसके बाद जो कोई राही पुरुष मिल जाता, उसे ही वे स्त्रियाँ अपना पति बना लिया करती थीं और उसे किसी तरह नहीं छोड़ती थीं ॥ २०२ ॥ यदि कभी हनुमान्‌जीकी गर्जनाका समय आ जाता तो वे स्त्रियाँ उस पुरुषको बिलमें छिपा दिया करतीं। जिससे उसे वह गर्जना न सुन पड़े, इसलिए नगाड़े-शंख आदि बाजे बजाने लगती थीं । जब वह समय कुशलपूर्वक बीत जाता तो नारियाँ अपने पतियोंका पुनर्जीवन मानकर बड़ी खुशियाली मनातीं और उसीके साथ भोग करती हुई अपना समय बिताया करती थीं। हे द्विजोत्तम ! तबसे सदा वहाँपर स्त्रियोंका ही राज्य रहता है । स्त्रियाँ ही वहाँकी प्रजापर शासन करती हैं

मारुतेः शब्दसंस्पृष्टवायुना स्पर्शिता नराः । अशक्ता एव जायंते न तेष्वासीत्सुपौरुषम् ॥२०७॥
अतस्तेषामशक्तानां वीर्यक्षीणतया द्विज । भवन्ति दुहितर एवं कचित्पुत्रः प्रजायते ॥२०८॥
आधिक्ये रजसः कन्या शुक्राधिक्ये सुतो भवेत् । नपुंसकः समत्वेन यथेच्छा पारमेश्वरी ॥२०९॥
अन्यत्ते कारणं वच्मि न भवन्ति सुता यतः । कारणं शृणु तस्येदं विष्णुदास द्विजोत्तम ॥२१०॥
तेषु देशेषु नार्यश्च निजराज्यमदेन हि । रतिकालेऽधः पुरुषं कृत्वा क्रीडां भजंति ताः॥२११॥
न स्वीयां रतिकाले ताः पृष्ठं भूमिं स्पृशंति हि । अतएव रतिकाले शुक्रं तु स्रवते बहिः ॥२१२॥
सूक्ष्मछिद्रे तथा गर्भस्थाने तन्नैव गच्छति । नासानयनकर्णानां द्वे द्वे रंध्रे प्रकीर्तिते ॥२१३॥
मेहनापानवक्त्राणामेकैकं रंध्रमुच्यते । दशमं मस्तके प्रोक्तं रंध्राणीति नृणां विदुः ॥२१४॥
स्त्रीणां त्रीण्यधिकानि स्युः स्तनयोर्गर्भवर्त्मनः । सूचिकाग्रसमान्येव तानि छिद्राणि संति हि ॥२१५॥
गर्भछिद्रं रतिकाले किंचिद्विकसितं द्विज । भूत्वा मार्गं तु वीर्यस्य ददाति पुरुषस्य च ॥२१६॥
तन्मार्गेण गत वीर्यं चेत् सम्यक् पुरुषस्य च । गर्भस्थाने तदा पुत्रो जायते नात्र संशयः ॥२१७॥
स्वल्पं प्रविष्टं वीर्यं च तदा कन्या प्रजायते । रजसश्चाधिकत्वेन जानीह्येवं विनिश्चयम् ॥२१८॥
तस्माद्यदाऽधः शेते वै तद्देशेषु नरोत्तमः । रतिकाले तस्य वीर्यमूर्ध्वं गच्छति नैव तत् ॥२१९॥
यदि दैववशात्किंचिद्गतं स्त्रीरंध्रमार्गतः । तदा दैववशात्पुत्रो जायते सोऽपि षंढवत्॥२२०॥
अतएव हि तद्देशे बहुकन्या भवन्ति हि । एवं ते कारणं प्रोक्तं कन्योत्पत्तेर्द्विजोत्तम ॥२२१॥
एवं सर्वेषु देशेषु चेन्नार्या अधिकं बलम् । अस्ति तर्हि भवेत्कन्या पुत्रः पुरुषसारतः ॥२२२॥

॥ २०३–२०५ ॥ वहाँपर विशेष करके कन्याओंकी ही उत्पत्ति होती है, पुरुष तो बहुत ही कम होते हैं। हनुमान्‌जीकी गर्जनासे मिली वायुके संस्पर्शसे उस राज्यके आस-पासवाले राज्यके लोग भी प्रायः अशक्त (नपुंसक) होते हैं। इसलिए वहाँके पुरुषोंका वीर्य कमजोर होता है और अधिकांश कन्यायें ही उत्पन्न होती हैं, पुत्र तो शायद ही कभी कहीं हो जाता हो ॥ २०६ ॥ २०७ ॥ २०८ ॥ जब कि स्त्रीके रजकी अधिकता होती है तो कन्या और पुरुषके वीर्यकी अधिकता होती है, तब पुत्र होता है। यदि पुरुषका वीर्य और स्त्रीका रज ये दोनों बराबर हो जाते हैं, तब नपुंसक उत्पन्न होता है। इन बातोंके सिवाय सबसे मुख्य बात तो यह है कि परमेश्वरकी जैसी इच्छा होती है, वही होता है ॥ २०९ ॥ हे द्विजोत्तम विष्णुदास ! वहाँ विशेष करके कन्याओंके उत्पन्न होनेका एक कारण और भी है, उसे सुनो ॥ २१० ॥ उस देशकी स्त्रियाँ अपने राज्यमदसे मतवाली हो पुरुषको नीचे सुला तथा स्वयं ऊपर लेटकर रति करती हैं। रतिकालके समय वे अपनी पीठको जमीनमें नहीं लगने देतीं। इसीलिए पुरुषका वीर्य बाहर ही रह जाता है। गर्भके सूक्ष्म छिद्रतक वह नहीं पहुँच पाता। पुरुषके नाक, नेत्र और कान इनमें दो-दो छिद रहते हैं ॥ २११–२१३ ॥ लिंग, गुदा तथा मुखमें एक-एक छिद्र रहता है। ये सब मिलाकर नौ हुए और दसवाँ छिद्र ब्रह्मांडमें होता है। ऐसा लोगोंने बतलाया है ॥ २१४ ॥ किन्तु स्त्रियोंके तीन छिद्र अधिक होते हैं। दो छिद्र दोनों स्तनोंमें और एक गर्भके रास्तेमें। गर्भके मार्गवाला छिद्र सुईकी नोकके समान बारीक होता है ॥ २१५ ॥ किन्तु रतिकालमें गर्भवाला छिद्र कुछ चौड़ा होकर पुरुषके वीर्यको भीतर जानेके लिये रास्ता दे देता है ॥ २१६ ॥ उस मार्गसे गया हुआ वीर्य यदि अच्छी तरह अपने स्थान तक पहुँच जाता है, तब पुत्रकी उत्पत्ति होती है। इसमें कोई संशय नहीं है। यदि उस समय गर्भाशयमें कम वीर्य जाता है तो कन्याकी उत्पत्ति हुआ करती है। क्योंकि ऐसी दशामें स्त्रीका रज अधिक और पुरुषका वीर्य कम पड़ जाता है ॥ २१७ ॥ २१८ ॥ इसीसे जब वहांवाले पुरुष नीचे लेटते हैं, तब उनका वीर्य गर्भाशयके छिद्र तक नहीं पहुँच पाता। यदि दैववश कभी थोड़ा-सा वीर्य उछलकर ऊपर स्त्रीके गर्भाशय तक पहुँच भी जाता है, तब नपुंसक उत्पन्न होता है ॥ २१९ ॥ २२० ॥ इसी कारण उस देशमें अधिकांश कन्यायें ही होती हैं। हे द्विजोत्तम ! मैंने इस प्रकार तुम्हें वहाँ विशेष कन्याओंके उत्पन्न होनेका कारण बतलाया ॥ २२१ ॥ यह प्रायः सब देशोंमें देखा जाता है कि जिस जगह स्त्री बलवती होती है तो कन्या

तस्मात्पुत्रार्थिना नारी पोषणीया कदापि न । पोषयेच्च सदाऽऽत्मानं नानाखाद्यरसायनैः ॥२२३॥
अतएव हि वैद्याश्च पालनीयाः सदा नरैः । बलाबलप्रवेत्तारस्तैर्ज्ञेयं स्वबलाबलम् ॥२२४॥
पुष्टदेहं निरीक्ष्याथ न ज्ञेयं त्वधिकं बलम् । वातेनापि पुमान्पुष्टो जायतेऽत्र सदैव हि ॥२२५॥
अतो वैद्यं विना तच्च न ज्ञास्यसि बलाबलम् । अतो वैद्यास्ते प्रष्टव्याः सदा भक्तिपुरःसराः ॥२२६॥
मंत्रे तीर्थे द्विजे देवे वैद्येऽथ गणके गुरौ । यादृशी भावना स्वीया सिद्धिर्भवति तादृशी ॥२२७॥
अतो वैद्योक्तमार्गेण सदा गच्छेन्नरोत्तमः । बलाबलविचारेण पुत्रा एव भवंति हि ॥२२८॥
एक एव वरः पुत्रः किं जाता दश कन्यकाः । पुन्नाम्नो नरकात्पुत्रस्तारयेत्स्वकुलं क्षणात् ॥२२९॥
कन्या स्वीयदुराचारात्क्षणान्निजपितुः कुलम् । तथा भर्तुः कुलं चापि नरके पातयेच्च सा ॥२३०॥
तस्मान्नरैश्च पुत्रार्थं यत्नः कार्यस्त्वहर्निशम् । एष्टव्या बहवः पुत्रा यद्येकोऽपि गयां व्रजेत् ॥
यजेत वाऽश्वमेधेन नीलं वा वृषमुत्सृजेत् ॥२३१॥
जीवतो वाक्यकरणात्प्रत्यब्दं भूरि भोजनात् । गयायां पिंडदानेन त्रिभिः पुत्रस्य पुत्रता ॥२३२॥
एवं शिष्य त्वया पृष्टमसक्तेन कथं व्रतम् । कार्यं तच्च मया सर्वं भूसुरस्य कथानकम् ॥२३३॥
तवाग्रे कथितं रम्यं रम्यं त्वत्तोषार्थमनुत्तमम् । तस्य व्रतस्य सामर्थ्यात्स दरिद्रो द्विजोत्तमः ॥२३४॥
लब्ध्वा तद्विपुलं राज्यं भुक्त्वा भोगान् मनोरमान् ।
सायुज्यं प्राप विष्णोश्च स्वायुषश्च क्षये द्विजः ॥२३५॥
एवं तद्रामचन्द्रस्य व्रतं कोऽत्र तु नाचरेत् । सुखेन भुक्तिदं चात्र परलोके विमुक्तिदम् ॥२३६॥
मुनिभिश्च सुरैर्नागैर्गंधर्वैः किन्नरैर्नृपैः । सदाऽनुभावितं चेदं व्रतानामुत्तमं व्रतम् ॥२३७॥

ही जनमती हैं और पुरुष बली हो तो पुत्रकी उत्पत्ति अधिक होती है ॥ २२२ ॥ इसलिए जिन लोगोंको पुत्रकी अभिलाषा हो, उन्हें चाहिए कि स्त्रियोंको ज्यादा माल खिलाकर तगड़ी न करें। बल्कि स्वयं बढ़िया चीजें तथा रसायन खाकर बलवान् बनें ॥ २२३ ॥ लोगोंको यह भी उचित है कि बलाबल जाननेवाले अच्छे वैद्योंको अपने नगरमें रक्खें और समय-समयपर उनसे परीक्षा करा लिया करें ॥ २२४ ॥ शरीर-को मोटा देखकर ही यह न समझ ले कि इसमें अधिक बल है। सदा ऐसा देखा गया है कि लोग वायुसे भी मोटे हो जाया करते हैं ॥ २२५ ॥ इसीसे वैद्यके बिना बलाबल ठीक तौरसे नहीं जाना जा सकता। अतएव लोगोंको चाहिए कि सदा वैद्योंसे आदरपूर्वक अपने स्वास्थ्यके विषयमें पूछताछ करते रहें ॥ २२६ ॥ मंत्रमें, तीर्थमें, ब्राह्मणमें, वैद्यमें, देवता और ज्योतिषीमें, जैसी जिसकी भावना रहती है, वैसा ही उसे फल मिलता है ॥ २२७ ॥ अतएव वैद्य जिस तरह बतलाये, उसी तरह लोग चलें। यदि अच्छी तरह बलाबलका विचार करके पुरुष स्त्रीके साथ रति करे तो पुत्र ही होगा, इसमें कुछ भी संशय नहीं है ॥ २२८ ॥ केवल एक पुत्रका होना अच्छा, किन्तु दस कन्याओंका होना ठीक नहीं है। यदि पुत्र होता है तो वह क्षणमात्रमें अपने कुलको 'पुं'नामक नरकसे तार देता है ॥ २२९ ॥ इसके विपरीत कन्या दुराचार करके अपने पिता तथा पति दोनों कुलोंको क्षणभरमें नरकमें गिरा देती है ॥ २३० ॥ इसीलिए लोगोंको चाहिए कि सदा पुत्रके लिये यत्न करें। एक ही पुत्रसे सन्तोष न कर ले, बल्कि कइयोंको इच्छा रक्खे। न मालूम उनमेंसे कौन गयामें जाकर पिण्डदान कर आये या अश्वमेघ यज्ञ करें अथवा नील वृषभ (काला साँड़) छोड़े ॥ २३१ ॥ जबतक पिता रहे, तबतक उसका कहना माने। मर जानेपर प्रतिवर्ष बहुतसे ब्राह्मणोंको भोजन कराये और गयामें जाकर पिंडदान करे। इन्हीं तीन कामोंसे पुत्रकी पुत्रता सार्थक होती है ॥ २३२ ॥ इस प्रकार हे शिष्य ! तुमने मुझसे जो पूछा था कि अशक्त प्राणी किस प्रकार व्रत करे। सो मैंने एक ब्राह्मणकी कथा सुनाकर समझा दिया। इस व्रतकी सामर्थ्यसे वह दरिद्र ब्राह्मण विपुल राजलक्ष्मी तथा तरह-तरहके मनोरम भोगोंको भोगकर आयु समाप्त होने-पर विष्णुभगवान्की सायुज्य मुक्तिको प्राप्त हुआ ॥ २३३-२३५ ॥ इस प्रकार उन रामचंद्रजीके व्रतको कौन नहीं करेगा, जो इस लोकमें आनन्दके साथ भुक्ति और परलोकमें मुक्ति प्रदान करनेवाला है ॥ २३६ ॥ अनेक

स्त्रीपुत्रधनदं चैतत्सर्वसौख्यप्रदं नृणाम् । इहलोके परे चापि विष्णोः सायुज्यदायकम् ॥२३८॥
संति व्रतान्यनेकानि स्वर्गे मर्त्ये रसातले । तथापि रामनवमीसमानं व्रतमुत्तमम् ॥२३९॥
विष्णुदास द्विजश्रेष्ठ न भूतं न भविष्यति । तस्मात्सदा नरैः कार्यं व्रतं चेदं महत्तमम् ॥२४०॥
एवं त्वया यथा पृष्टं तथा ते विनिवेदितम् । किमन्यच्छ्रोतुमिच्छास्ति तद्वदस्व वदामि ते ॥२४१॥

इति श्रीशतकोटिरामचरितांतर्गते श्रीमदानंदरामायणे वाल्मीकीये राज्यकांडे
वादिकाव्ये नवमीकथावर्णनं नाम षष्ठः सर्गः ॥ ६ ॥

सप्तमः सर्गः

(लक्षरामनामोद्यापनविधि)

विष्णुदास उवाच

अन्यद्गुरो राघवस्य तुष्टिदं किं वदस्व तत् ।

श्रीरामदास उवाच

शृणुष्व विष्णुदास त्वं यत्तेऽहं प्रवदामि च । तुष्ट्यर्थं रामचन्द्रस्य नित्यं पत्रे तु मानवैः ॥ १ ॥
लेखनीयं रामनामशतानि नव प्रत्यहम् । अथवाऽष्टोत्तरशतं पूजनीयं सविस्तरम् ॥ २ ॥
एवं कोटिमितं लेख्यं लक्षं वा तु ततः परम् । हवनं हि दशांशेन कर्तव्यं विधिपूर्वकम् ॥ ३ ॥
इदं विष्णुरिति ऋचा तिलाज्यैः पायसेन वा । नवान्नेनाथवा कार्यं राघवं परिपूज्य च ॥ ४ ॥
हवनांगे राघवादिदेवानां पूजने नरैः । आसनार्थं तु भद्रं च स्थापनीयं प्रयत्नतः ॥ ५ ॥
अष्टोत्तरसहस्रं च रामलिंगात्मकं शुभम् । अथवाऽष्टोत्तरशतं रामलिंगात्मकं शुभम् ॥ ६ ॥
अष्टोत्तरसहस्रं वा रामतोभद्रमुत्तमम् । अथवाऽष्टोत्तरशतं रामतोभद्रमुत्तमम् ॥ ७ ॥
एवं होमं लेखनं च पूजनादि च यत्कृतम् । अर्पयेद्रघुनाथाय तत्सर्वं त्वतिभक्तितः ॥ ८ ॥

मुनियों, देवताओं, नागों, गन्धर्वों, किन्नरों और राजाओंने कितने ही वार इस व्रतका अनुष्ठान किया है ॥ २३७ ॥ यह व्रत इस लोकमें स्त्री-पुत्र-धन तथा सब सुख देनेवाला है और परलोकमें विष्णुभगवान्‌की सायुज्य-मुक्ति प्रदान करता है ॥ २३८ ॥ हे द्विजश्रेष्ठ विष्णुदास ! वैसे तो स्वर्ग, मर्त्य और रसातलमें बहुतसे व्रत हैं। किन्तु उनमेंसे रामनवमी व्रतके बराबर न कोई व्रत है और न होगा। इसी कारण लोगोंको चाहिए कि सदा इस रामनवमीके महान् व्रतको करें ॥ २३९ ॥ २४० ॥ इस तरह तुमने जो कुछ हमसे पूछा, सो कह सुनाया। अब और क्या सुनना चाहते, हो सो कहो ॥ २४१ ॥ इति श्रीशतकोटिरामचरितान्तर्गते श्रीमदानन्द-रामायणे वाल्मीकीये पं० रामतेजपाण्डेयकृत'ज्योत्स्ना'भाषाटीकासहिते मनोहरकांडे षष्ठः सर्गः ॥ ६ ॥

विष्णुदासने कहा—हे गुरो ! रामचन्द्रजीको प्रसन्न करनेवाली कोई और युक्ति बतलाइए। रामदास कहने लगे—हे विष्णुदास ! मैं तुम्हें जो बतला रहा हूँ, उसे सुनो। रामकी प्रीतिकी इच्छा रखनेवाले मनुष्योंको चाहिए कि कागजपर प्रतिदिन नौ सौ या एक सौ आठ रामनाम लिखकर विस्तारके साथ उनका पूजन करें ? ॥ १ ॥ २ ॥ इस तरह लिखते हुए जब एक करोड़ अथवा एक लाख नामोंको लिख ले तो उनका दशांश विधिवत् हवन करे ॥ ३ ॥ हवन 'इदं विष्णुः०' इन मन्त्रसे करे। तिल, घी और खीरसे हवन करना चाहिए। यदि ये वस्तुएँ न इकट्ठी हो सकें तो नवीन अन्नसे रामका पूजन करके हवन करना चाहिए ॥ ४ ॥ हवन-के अङ्गोंमें भद्रआदि बनाकर राघवआदि देवताओंका पूजन करके अष्टोत्तरसहस्रात्मक रामलिंगतोभद्र अथवा अष्टोत्तरशत रामलिंगात्मक भद्र बनावे। अथवा अष्टोत्तरसहस्र रामतोभद्र या अष्टोत्तरशत रामतोभद्रकी रचना करे ॥ ५-७ ॥ इस तरह होम-लेखन-पूजन आदि जो कुछ करे, सब भक्तिपूर्वक रामचन्द्रजीको अर्पण कर दे ॥८॥

विष्णुदास उवाच

त्वया गुरो शुभं प्रोक्तं रामनामप्रलेखनम् । न तस्योद्यापनं प्रोक्तं तद्वदस्व ममाधुना ॥ ९ ॥

श्रीरामदास उवाच

शृणु शिष्य भविष्यां ते कथां वक्ष्यामि भूतवत् । रामनामोद्यापनस्य विस्तरेण मनोरमाम् ॥१०॥
पाण्डुपुत्रो महावीरो बंधुभिश्च युधिष्ठिरः । स्त्रिया मात्रा भ्रष्टराज्यो वने वासं करिष्यति ॥११॥
तं द्रष्टुं द्वापरे कृष्णः कदा गच्छति वै वने । तं कृष्णं पूजयित्वा स तस्मै प्रश्नं करिष्यति ॥१२॥

युधिष्ठिर उवाच

देवदेव जगन्नाथ भक्तानां वरदायक ।किंचित्त्वां प्रष्टुमिच्छामि मयि तुष्टोऽसि चेत्प्रभो ॥१३॥
लक्ष्मीप्राप्तिकरं पुण्यं पुत्रपौत्रप्रवर्द्धनम् । व्रतमाख्याहि देवेश राज्यभ्रष्टस्य मेऽधुना ॥१४॥

श्रीकृष्ण उवाच

गुह्याद्गुह्यतमं श्रोतुं यदि वांछसि भूपते । तदा निगदतो मत्तः सकाशाच्छृणु सादरम् ॥१५॥
रामनाम्नः परं नास्ति मोक्षलक्ष्मीप्रदायकम् । तेजोरूपं यदव्यक्तं रामानामाभिधीयते ॥१६॥
तस्मात्तन्नाम जप्त्वा वै रामरूपो भवेन्नरः । एतदेव हि रामेण मारुतिं प्रति भाषितम् ॥१७॥

युधिष्ठिर उवाच

कस्मिन्काले हनुमते रामेणैवोपदेशितम् । एतद्विस्तरतो ब्रूहि सुमते रुक्मिणीपते ॥१८॥

श्रीकृष्ण उवाच

पुरा रामावतारे च सीता नीता सुरारिणा । हनूमंतं समाहूय रामचन्द्रोऽब्रवीद्वचः ॥१९॥

श्रीरामचन्द्र उवाच

वायुसूनो महावीर सीतान्वेषणहेतवे । समस्तां दक्षिणदिशं गत्वा शुद्धिं समानय ॥२०॥

श्रीहनुमान् उवाच

रघुनाथ जगन्नाथ दक्षिणस्यां हि सागरः । बहवो राक्षसाः संति तत्र शक्तिः कथं मम ॥२१॥

विष्णुदासने कहा–हे गुरो ! आपने रामनाम लिखनेकी जो युक्ति बतलायी, वह बहुत ही उत्तम है । लेकिन उसका उद्यापन नहीं बतलाया । उसे भी मुझे अभी बतला दीजिए ॥ ९ ॥ श्रीरामदास कहने लगे-हे शिष्य ! मैं तुम्हें भविष्यकी एक कथा भूतकालमें समन्वित करके बतला रहा हूँ ॥ १० ॥ पांडुके पुत्र युधिष्ठिर जब राज्यसे वञ्चित हो गये, तब अपनी माता तथा बन्धुओंको साथ लेकर वनोंमें निवास करने लगे ॥ ११ ॥ उनको देखनेके लिए कृष्णचन्द्रजो वनमें गये । तब उन लोगोंने बड़े आदरसे श्रीकृष्णकी पूजा की और युधिष्ठिरने कहा—हे देवदेव ! हे जगन्नाथ ! हे भक्तोंको वर देनेवाले ! यदि आप मुझपर प्रसन्न हों तो मैं आपसे कुछ पूछना चाहता हूँ ॥ १२ ॥ १३ ॥ हे देवेश ! यह तो आप जानते ही हैं कि इस समय मैं राज्यसे भ्रष्ट हो चुका हूँ । अतएव आप मुझे कोई ऐसा व्रत बतलाइए । जो लक्ष्मीको देनेवाला, पवित्र और पुत्र-पौत्रको बढ़ानेवाला हो ॥ १४ ॥ श्रीकृष्णचन्द्रजीने कहा—हे भूपते ! यदि आप हमसे गुप्त व्रत सुनना चाहते हैं तो मैं कहता हूँ, आप सुनियें ॥ १५ ॥ रामनामके जपसे बढ़कर मोक्ष और लक्ष्मीको देनेवाला और कोई उपाय नहीं है । यह तेजोरूप और अव्यक्त है ॥ १६ ॥ इसी कारण रामनामका जप करके लोग रामरूप हो जाते हैं । यही बात स्वयं रामचन्द्रजीने हनुमान्‌जीसे कही थी ॥ १७ ॥ युधिष्ठिरने कहा–हे रुक्मिणीपते ! रामचन्द्रने हनुमान्‌जीसे कब इस बातकी चर्चा की थी ? श्रीकृष्णजीने कहा–रामावतारमें जब कि रावण सीताको हर ले गया, तब रामने हनुमान्‌जीको बुलाकर कहा–॥ १८ ॥ १९ ॥ हे महावीर ! हे वायुसुनो ! तुम सीताजीको खोजनेके लिए प्राची दक्षिण दिशामें भ्रमण करो और शीघ्र उनका समाचार लाओ ॥ २० ॥ श्रीहनुमान् बोले-हे जगन्नाथ !

श्रीरामचन्द्र उवाच

मारुते रावणादीनां राक्षसानां निवारकम् । मंत्रं ददामि सुगमं येन सर्वजयी भवेत् ॥२२॥

श्रीहनुमानुवाच

महाराज कृपासिंधो दीनानां त्वं सुतारकः । उपदेशोऽधुना कार्यस्तस्य मंत्रस्य तत्त्वतः ॥२३॥

श्रीरामदास उवाच

इति श्रुत्वा च तद्वाक्यं रहस्याहूय सत्वरम् । मारुतेर्दक्षिणे कर्णे श्रीरामेत्युपदेशितः ॥२४॥
तस्य मंत्रस्य सकलं पुरश्चरणमुत्तमम् । लक्षसंख्यं विधायाशु प्रतस्थे दक्षिणां दिशम् ॥२५॥
तन्मंत्रस्य प्रभावेण नानाजलचराचरम् । दुर्गमं सागरं तीर्त्वा लंकामध्ये समाययौ ॥२६॥
न स लेभे तत्र शुद्धिमशोकाख्यवनं गतः । वृक्षमूले स्थितां सीतां दूरतोऽग्रे ददर्श सः ॥२७॥
तां दृष्ट्वा शीघ्रमागत्य हर्षनिर्भरमानसः । सीतायाश्चरणौ नत्वा दंडवत्पतितो भुवि ॥२८॥
अत्यंतं सूक्ष्मवपुषं बालकाकारसंयुतम् । तं भूमौ पतितं दृष्ट्वा सीता वचनमब्रवीत् ॥२९॥
आगतोऽसि कुतो बाल कुत्रत्यः कस्य बालकः ।

श्रीहनुमानुवाच

सीता माता पिता रामो रामचन्द्रसमीपतः ॥३०॥

समागतोऽस्मि हनुमान् ग्राह्यैका मुद्रिका त्वया । रामनामांकितां मुद्रां शुद्धकांचननिर्मिताम् ॥३१॥
ज्ञात्वा रामस्य सा सीता परमं तोषमाययौ । तां ज्ञात्वा तोषसहितामांजनेयोऽब्रवीद्वचः ॥३२॥
मातः क्षुधाऽत्यर्थयति मम त्वद्यातिक्लेशकारिणी । अस्मिन्वनेऽतिमधुरः फलसंघोऽतिदुर्लभः ॥३३॥
तवाज्ञयाऽहं सीतेऽद्य करिष्ये भक्षणं ध्रुवम् ।

सीतोवाच

भो बालक महावीर रावणोऽस्ति वनाधिपः ॥३४॥

हे रघुनाथ ! दक्षिण दिशामें तो विशाल सागर है और बहुतसे राक्षस हैं, फिर वहाँपर मेरी शक्ति कैसे काम देगी ? ॥ २१ ॥ श्रीरामचन्द्रजीने कहा—हे मारुते ! रावण आदि राक्षसोंका निवारण करनेवाला मैं एक बहुत ही सरल मंत्र बताता हूँ । जिसकी सहायतासे सर्वत्र तुम्हारी विजय होगी ॥ २२ ॥ हनुमान्‌जीने कहा—हे महाराज ! हे कृपासिन्धो ! आप दीनोंका उद्धार करते हे । हे प्रभो ! हमें उस मन्त्रका अच्छी तरह उपदेश दीजिए ॥ २३ ॥ श्रीरामदास कहते हैं—हनुमान्‌जीके इस प्रकार विनय करनेपर रामने उन्हें एकान्तमें ले जाकर उनके कानमें 'श्रीराम' इस नामका उपदेश दिया ॥ २४ ॥ हनुमान्‌जीने उस मन्त्रका उत्तम रीतिसे एक लाख जप करके दक्षिण दिशाको प्रस्थान किया ॥ २५ ॥ उसी मंत्रके प्रभावसे विविध प्रकारके जलजन्तुओंसे भरे दुर्गम सागरको पार करके वे लङ्का पहुँच गये ॥ २६ ॥ वहाँ बहुत खोज करनेपर भी सीताका पता न पाकर अशोक वनमें गये, तब वहाँ एक वृक्षके नीचे बैठी हुई सीताको दूरसे देखा ॥ २७ ॥ सीताको देखकर उनका हृदय हर्षसे भर आया और तुरन्त उनके पास पहुँचकर प्रणाम किया । फिर दण्डकी तरह पृथ्वीमें लोट गये ॥ २८ ॥ उस समय हनुमान्‌जीने बच्चेके समान अपना एक छोटा-सा रूप धारण कर रक्खा था । उनको पृथ्वीमें पड़े देखकर सीताने कहा—॥ २९ ॥ बच्चे ! तुम कहाँसे आये हो ? कहाँ तुम्हारा घर है और तुम किसके बेटे हो ? हनुमान्‌जीने कहा कि सीता मेरी माता हैं और पिता श्रीरामचन्द्र हैं । इस समय मैं उन्हींके पाससे आ रहा हूँ ॥ ३० ॥ मेरा नाम हनुमान् है । आप इस अंगूठीको लीजिये । यह शुद्ध सुवर्णकी बनी हुई है और इसमें श्रीरामचन्द्रजीका नाम लिखा हुआ है ॥ ३१ ॥ जब सीताको यह ज्ञात हुआ कि यह मुद्रिका रामजीकी है तो वे बहुत प्रसन्न हुईं । सीता माताको प्रसन्न देखकर हनुमान्‌जीने कहा–माँ ! मुझे बड़ी भूख लगी है । इससे बड़ा कष्ट हो रहा है । इस बगीचेमें मैं बहुत मीठे और दुर्लभ फल देख रहा हूँ ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ यदि

न शक्तिर्न च शक्यं ते कथं त्वं भक्षयिष्यसि ।

हनुमानुवाच

श्रीरामेति परो मन्त्रः शस्त्रं मे हृदयांतरे ॥३५॥

तेन सर्वाणि रक्षांसि तृणरूपाणि सांप्रतम् । इत्युक्त्वाऽथ तदीयाज्ञां गृहीत्वा वनभूरुहान् ॥३६॥
उन्मूलनं चकाराथ श्रुत्वा रक्षांसि चाययुः । युद्धं च तुमुलं जातं पश्चान्मन्त्रप्रभावतः ॥३७॥
दलितं राक्षसबलं दग्धा लंका हनूमता । पुनर्गत्वाऽशोकवनं सीतां नत्वा च मारुतिः ॥३८॥
तदलंकारमादाय रामचन्द्रं समाययौ । रामायालंकृतिं दत्त्वा तस्थौ तत्पादसन्निधौ ॥३९॥
रामोऽलंकृतिमादाय तच्छ्रुत्वा मुदितोऽभवत् । रामनामप्रभावोऽयं महाराज युधिष्ठिर ॥४०॥

तस्मात्त्वमपि राजेन्द्र रामनामजपं कुरु ।

युधिष्ठिर उवाच

कथं जपो विधेयोऽस्य पुरश्चरणकं फलम् ॥४१॥
कथमुद्यापनं चैव सर्वमाख्याहि यत्नतः ॥४२॥

श्रीकृष्ण उवाच

अथवा पुस्तके लेख्यं स्मरणं हृदयेऽथवा । कोटिसंख्यापरिमितमथवा लक्षसंमितम् ॥४३॥
मंत्रा नानाविधाः सन्ति शतशो राघवस्य च । तेभ्यस्त्वेकं वदाम्यद्य तव मंत्रं युधिष्ठिर ॥४४॥

श्रीशब्दमाद्यं जयशब्दमध्यं जयद्वयेनापि पुनः प्रयुक्तम् ।
त्रिःसप्तकृत्वो रघुनाथनामजपो निहन्याद्द्विजकोटिहत्याः ॥४५॥

अनेनैव च मन्त्रेण जपः कार्यः सुमेधसा । लक्षसंख्ये कृते तस्मिन्नुद्यापनविधिं चरेत् ॥४६॥

आप आज्ञा दें तो मैं थोड़ेसे फल तोड़कर खा लूँ। सीताने कहा—हे महावीर बालक! इस बगीचेका मालिक रावण है ॥ ३४ ॥ तुममें कुछ भी शक्ति नहीं मालूम पड़ रही है। तब तुम किस तरह फल खाओगे? हनुमान्‌जीने कहा कि मेरे हृदयमें 'श्रीराम'के नामका एक प्रबल शस्त्र है। उसके प्रभावसे लङ्काके सब राक्षस मेरे सामने तिनकेके बराबर हैं। ऐसा कह और सीताजीकी आज्ञा पाकर हनुमान्‌जी बगीचेमें घुस पड़े और पेड़ोंको उखाड़-उखाड़कर फेंकने लगे। यह समाचार सुनकर बहुतसे राक्षस आ गये और उनके साथ तुमुल युद्ध हुआ। किन्तु अन्तमें श्रीरामनाममन्त्रके प्रभावसे हनुमान्‌जीने उन सब राक्षसोंको मार डाला और लङ्का नगरीको भी जलाकर राख कर दिया। फिर लौटकर अशोकवनमें गये। वहाँ सीताको प्रणाम किया ॥ ३५–३८ ॥ फिर उनका अलंकार लेकर रामचन्द्रजीकी ओर लौट पड़े। रामके पास पहुँचकर उन्होंने वह अलंकार रामको दिया और उनके चरणोंके पास बैठ गये ॥ ३९ ॥ रामने वह अलंकार हाथमें ले लिया और सीताका समाचार सुना तो बहुत प्रसन्न हुए। हे युधिष्ठिर! यह सब रामनामका माहात्म्य है ॥ ४० ॥ इसलिए हे राजन्! तुम भी रामनामका जप करो। युधिष्ठिरने कहा – हे कृष्ण! इस रामनामके जप करनेका क्या विधान है? इसका पुरश्चरण कैसे किया जाना है और उद्यापनकी क्या विधि है? यह सब आप हमें अच्छी तरह समझाइए। श्रीकृष्णचन्द्रजीने कहा—हे राजेन्द्र! साधकको चाहिए कि स्नान करके किसी पवित्र स्थानपर बैठे और तुलसीकी मालापर रामनामका जप करे। अथवा किसी पुस्तकपर लिखे या हृदयमें स्मरण करे। जपकी संख्या एक करोड़ अथवा एक लाख होनी चाहिए ॥ ४१–४३ ॥ वैसे तो रामचन्द्रजीके अनेक मन्त्र हैं, किन्तु उनमेंसे एक उत्तम मन्त्र मैं तुमको बतलाता हूँ ॥ ४४ ॥ पूर्वमें श्रीराम शब्द, मध्यमें जय शब्द और अन्तमें दो जय शब्दोंसे मिला हुआ (श्रीराम जय राम जय जय राम) राममन्त्र यदि इक्कीस बार जपा जाय तो वह करोड़ों ब्रह्महत्याओंके पापोंको नष्ट कर देता है ॥ ४५ ॥ बुद्धिमान् साधकको चाहिये कि

जपाच्छतगुणं पुण्यं रामनामप्रलेखने । लक्षे लक्षे पृथक्कार्यमुद्यापनमनुत्तमम् ॥४७॥
उद्यापनविधानं च संक्षेपेण वदामि ते । पूर्वेद्युरुपवासी स्याद्रात्रौ मंडपिकांतरे ॥४८॥
रामलिंगात्मके भद्रे रामतोभद्रकेऽथवा । अष्टोत्तरसहस्राख्ये ह्यष्टोत्तरशतेऽथवा ॥४९॥
धान्यराशौ मध्यदेशे कलशं स्थापयेत्ततः । तन्मुखे स्वर्णपात्रे वै वरवस्त्रोपशोभिते ॥५०॥
सीतालक्ष्मणसंयुक्तां राघवप्रतिमां शुभाम् । आमाषात्पलपर्यन्तां सौवर्णीं प्रतिमां चरेत् ॥५१॥
राजती वा ताम्रमयी वित्तशाठ्यं न कारयेत् । उपचारैः षोडशभिः पूजयेत्सुसमाहितः ॥५२॥
रामनामांकितं हेमपत्रं तत्पुरतोऽर्चयेत् । कथां श्रुत्वा च विधिवद्देवदेवं क्षमापयेत् ॥५३॥
सापराधं च शरणं त्वद्भक्तिनिरतं हि माम् । दीनानाथ कृपासिन्धो त्राहि संसारसागरात् ॥५४॥
रात्रौ जागरणं कृत्वा गीतवाद्यैश्च मंगलैः । ततः प्रभातसमये स्नात्वा होमं समारभेत् ॥५५॥
दशांशेनैव होमः स्यात्तद्दशांशेन तर्पणम् । गव्येन पयसा कार्यं राममंत्रेण यत्नतः ॥५६॥
तस्यापि च दशांशेन कुर्याद्‍ब्राह्मणभोजनम् । आचार्याय सवत्सां गां सालंकारां सवाससाम् ॥५७॥
भक्त्याऽर्पयेत्ससुवर्णां व्रतसंपूर्तिहेतवे । अन्यानपि द्विजांस्तोष्य राज्यं लक्ष्मीं समाप्नुयात् ५८॥
पुत्रार्थी लभते पुत्रं धनार्थी लभते धनम् । नानादानानि तीर्थानि प्रदक्षिणतपांसि च ॥५९॥
तानि सर्वाणि लक्षांशसमान्यस्य भवंति च । निष्कामो वा सकामो वा यः कुर्याद्भक्तिसंयुतः ॥६०॥
तस्य सर्वेऽपि लक्षांशसमान्यस्य भवंति च । लिखित्वा पुस्तकं वापि वरं रामायणस्य च ॥६१॥
एवमुद्यापनं कार्यं श्लोकसंख्यादशांशतः । पूर्ववद्धवनं कार्यं तद्दशांशाच्च तर्पणम् ॥६२॥

इसी मन्त्रका जप करे और जब जपकी संख्या एक लाख हो जाय, तब उद्यापन करे ॥ ४६ ॥ जपकी अपेक्षा सौगुना अधिक पुण्य रामनामके लिखनेमें है। साधकको चाहिये कि जब जब रामनामकी लेखसंख्या पूरी एक लाख हो जाय, तब तब उद्यापन करे ॥ ४७ ॥ अब संक्षेपमें उद्यापनकी भी विधि बतलाता हूँ। जिस दिन उद्यापन करना हो, उस दिनके एक दिन पहले उपवास करे और रात्रिके समय उद्यापनके लिये बनायी हुई भण्डपिकामें या रामलिङ्गात्मक भद्र तथा रामतोभद्र, अष्टोत्तरसहस्राख्य या अष्टोत्तरशताख्य भद्रमें धान्यराशि स्थापित करके उसके मध्यमें कलश रक्खे। कलशके मुखपर एक स्वर्णपात्र रखकर उसपर सुन्दर कपड़ा ओढ़ावे और सीता-लक्ष्मणके साथ-साथ रामकी शुभ प्रतिमा स्थापित करे। प्रतिमा कमसे कम एक मासे सोनेकी होनी चाहिये ॥ ४८–५१ ॥ यदि सुवर्णकी प्रतिमा न बन सके तो चाँदी या तामेकी बनवा ले। किन्तु कंजूसी करना ठीक नहीं है। प्रतिमा स्थापन करनेके अनन्तर षोडश उपचारोंसे उसकी पूजा करे ॥ ५२ ॥ रामनामसे अंकित सुवर्णपात्र प्रतिमाके सामने रखकर उसकी भी पूजा करे और भगवान्‌की कथा सुनकर क्षमा-प्रार्थना करे ॥ ५३ ॥ फिर कहे—हे दीनानाथ ! हे अनाथनाथ ! हे कृपासिन्धो ! मैं बड़ा अपराधी हूँ, किन्तु आपका भक्त हूँ। मुझे इस संसार-सागरसे उबारिए ॥ ५४ ॥ रातभर गाने और बाजे आदिके साथ जागरण करे और सबेरे उठे तो स्नान आदि नित्यकर्मोंसे निबटकर होम करे ॥ ५५ ॥ जितना जप करके पुरश्चरण किया गया हो, उसका दशांश हवन और हवनका दशांश तर्पण करना चाहिये। तर्पण गौके दूधसे करनेका विधान है ॥ ५६ ॥ तदनन्तर तर्पणका दशांश ब्राह्मणभोजन कराये और व्रत पूर्ण करनेके लिए आचार्यको वस्त्राभूषणसे अलंकृत एक सवत्सा गौ दे ॥ ५७ ॥ आचार्यके अतिरिक्त जो और-और ब्राह्मण आये हों, उन्हें भी प्रसन्न करे। ऐसा करनेसे प्राणीको राज्य एवं लक्ष्मीकी प्राप्ति होती है ॥ ५८ ॥ जो पुत्र चाहते हों, उन्हें पुत्र और जो धन चाहते हों, उन्हें धनकी प्राप्ति होती है। संसारमें जितने दान, तीर्थ, प्रदक्षिणा तथा तपस्यायें हैं, वे सब इस व्रतके लक्षांशके बराबर हैं। जो मनुष्य निष्काम या सकाम भावसे भक्तिपूर्वक यह व्रत करता है, उसकी सब कामनायें पूर्ण हो जाती हैं। यदि इस आनन्दरामायणकी पुस्तक लिखकर किसी विद्वान् ब्राह्मणको दी जाय तो उसके पुण्यका तो किसी तरह वर्णन ही नहीं किया जा सकता ॥ ५९–६१ ॥ इसके उद्यापनका विधान एक इस प्रकारका हुआ। दूसरा प्रकार यह है कि आनन्दरामायणकी जितनी श्लोकसंख्या है,

तस्यापि च दशांशेन कुर्याद्ब्राह्मणभोजनम् । पूर्वश्लोकेन वाऽन्येन हवनादि प्रकीर्तितम् ॥६३॥
अथवा ग्रंथश्लोकानां दशांशैर्हवनं स्मृतम् । अथवाऽग्रे वक्ष्यमाणरीत्या वै शकुनस्य च ॥६४॥
श्लोकं निष्कास्य वै ग्रंथादाचरेद्धवनादिकम् । अथवा रामगायत्र्या राममंत्रैस्तु वाऽऽचरेत् ॥६५॥
हेमपत्रे त्वेक एव लेख्यः श्लोकः शुभावहः । अर्चयित्वा पूर्ववच्च हेमपत्रे सविस्तरम् ॥६६॥
राममूर्तेः पुरः स्थाप्य सर्वं तद्गुरवेऽर्पयेत् । श्रीरामकवितां कृत्वा त्वेवमुद्यापनं नरैः ॥६७॥
अवश्यमेव कर्तव्यं कविताफलमीप्सुभिः । देवालयगजाश्वानां वृक्षाणां वापिकूपयोः ॥६८॥
सर्वापणानां पण्यानां चिह्नार्थं योषितां नृणाम् । काव्यानां च कवीनां च पश्वादीनां च सर्वशः ॥६९॥
राजप्रासादवास्तूनां नामकर्म विशिष्यते । विना कर्णोपदेशेन स्थावराणां विधानकम् ॥७०॥
कृत्वा नामकर्मणश्च कार्यमुद्यापन ततः । लक्षपुष्पैः पूजनादि यद्यच्छ्रीराघवस्य च ॥७१॥
संतोषार्थं कृतं तस्य कार्यमुद्यापनं वरम् । एवं राजन् मया सर्वं तवाग्रे विनिवेदितम् ॥७२॥
रामनामप्रभावेण स्वीयं राज्यं लभिष्यसि ।

श्रीरामदास उवाच

युधिष्ठिरस्तु तच्छ्रुत्वा करिष्यति यथाविधि ।७३॥
मासत्रयेण तस्यैव राज्यप्राप्तिर्भविष्यति । अन्ते च परमं स्थानं गमिष्यति मनोर्बलात् ॥७४॥
एवं कथा भविष्या च तवाग्रे विनिवेदिता । रामनाममहिमानमिमं नरः शृणोति यः ॥७५॥
परमभक्तिसमेतः पुत्रपौत्रजवत्सुखम् । भुवि भुक्त्वा प्राप्नुयात्परमं मोक्षपदं तु सः ॥७६॥
नित्यं व्याख्या श्रीरामाग्रे कर्तव्या स्वतिभक्तितः । आनंदरामचरितस्याथवाऽन्यस्य विस्तरात् ॥७७॥
सर्गस्य वाऽर्धसर्गस्य पादसर्गस्य वा तथा । नवश्लोकमिता वापि श्लोकमात्रस्य वा तथा ॥७८॥

उसके दशांशसे हवन करे। हवनका दशांश ब्राह्मणभोजन कराये। यह उद्यापनका दूसरा प्रकार हुआ। अब तीसरा प्रकार बतलाते हैं। आगे बतलाये जानेवाले क्रमके अनुसार इस ग्रंथमेंसे उतने श्लोक निकालकर हवन आदि करे। अथवा रामगायत्री या राममन्त्रसे हवन आदि करे॥ ६२–६५ ॥ सुवर्णके पत्रपर केवल एक श्लोक या पूर्वकथित विस्तृत रीतिसे कई श्लोक लिखकर उसकी पूजा करे और अन्तमें उसे गुरुको अर्पित कर दे। अथवा रामचन्द्रजीके विषयकी कोई एक कविता बनाकर उद्यापन करे॥ ६६ ॥ ६७ ॥ जिन लोगोंको कविताका फल पानेकी इच्छा हो, उन्हें तो उद्यापन अवश्य करना चाहिए। कोई देवालय, गजशाला तथा अश्वशाला बनवाते समय, वृक्ष लगाते समय, बावली या कुएँकी प्रतिष्ठाके समय, किसी पुरुष या स्त्रीके विवाहके समय यह उद्यापनविधि अवश्य करनी चाहिये। इनके अतिरिक्त कविता या काव्य बनानेके समय और राजप्रासादके निर्माणकालमें भी उद्यापन करना लाभदायक है। उद्यापनके अनन्तर रामचन्द्रजीको प्रसन्न करनेके लिये जैसा कि पीछे बतला आये हैं, उसके अनुसार एक लाख पुष्पोंसे रामकी पूजा करे। इसके सिवाय भी श्रीरामचन्द्रजीको प्रसन्न करनेके लिये जो-जो साधन बतलाये गये हैं, उन्हें उद्यापनके समय अवश्य करे। इस प्रकार हे राजन्! मैंने आपके समक्ष उद्यापनकी विधि बतलायी॥ ६८–७२ ॥ यदि ऐसा करेंगे तो इसमें कोई संशय नहीं है कि रामनामके प्रभावसे आप अपने खोये हुए राज्यको फिर वापस पा जायँगे। श्रीरामदास कहते हैं—श्रीकृष्णचन्द्रजीकी बतलायी हुई रीतिके अनुसार युधिष्ठिर तीन मास तक इस व्रतका विधान करनेसे अपना राज्य फिर पा जायँगे और उसी मंत्रके बलसे अन्तमें परमधामको प्रस्थान करेंगे॥ ७३ ॥ ७४ ॥ हे विष्णुदास! मैंने तुम्हें यह भविष्यकी कथा बतलायी है। जो मनुष्य भक्तिपूर्वक इस रामनामकी महिमाका श्रवण करता है, वह संसारमें जबतक रहता है, तबतक पुत्र-पौत्र आदि सांसारिक सुखोंको भोगता है और अन्तमें मोक्षपद प्राप्त करता है॥ ७५ ॥ ७६ ॥ रामभक्तको चाहिये कि प्रतिदिन श्रीराम-चन्द्रजीके सामने इस आनन्दरामायण अथवा किसी दूसरे रामचरितकी भक्तिपूर्वक विस्तारसे व्याख्या किया करे॥ ७७ ॥ यह आवश्यक नहीं कि व्याख्या ग्रन्थके अधिक अंशकी हो। वह चाहे एक सर्गकी,

श्लोकार्धं श्लोकपादं वाऽऽनंदरामायणस्थितम् । ये पठंति नरा नित्यं ते नरा मुक्तिभागिनः ॥७९॥

येऽश्वत्थमूले मुनिवृक्षमूले तथा तुलस्याश्च समीपदेशे ।
पुण्यस्थले भास्करभूसुराग्रे श्रीरामचन्द्रस्य पुरः सदैव ॥८०॥
तथा सभायां द्विजवृन्दमध्ये नद्यास्तटे वा रघुनायकस्य ।
आनन्दरामायणमादरेण पठंति धन्या भुवि मानवास्ते ॥८१॥

रामायणं लिखित्वा तु दातव्यं भूसुराय हि । समग्रं वा कांडमेकं सर्गो वाऽतिसुपुण्यदः ॥८२॥
सर्गस्त्वेकः प्रत्यहं हि लिखित्वा भूसुराय हि । संपूज्य देयश्चानंदरामायणप्रमुद्भवः ॥८३॥
अशक्तेन नव श्लोकाः सदा देया विलेख्य च । प्रीत्यर्थं रामचन्द्रस्य विप्रेभ्यः परिपूज्य वै ॥८४॥
नित्यदानमेतदेव कर्तव्यं सर्वदा नरैः । नित्यं सुवर्णमुद्राया दानेन यत्फलं स्मृतम् ॥८५॥
तत्फलं प्रत्यहं सर्गदानेन लभ्यते नरैः । नानेन सदृशं दानं राघवस्यातितोषदम् ॥८६॥
तस्मादवश्यमेवैतद्दानं कार्यं निरंतरम् । श्रीरामचन्द्रतुष्ट्यर्थं नवपूगफलैस्तथा ॥८७॥
नागवल्लीनवदलैस्तांबूलः सोपचारकः । पृथङ्नवभूसुरेभ्यो देयो नित्यं सदक्षिणः ॥८८॥
अशक्तेनैक एवापि देयस्तांबूल उत्तमः । न तांबूलसमं दानं किंचिदस्ति जगत्त्रये ॥८९॥
ताम्बूलः शुद्धिदः प्रोक्तस्ताम्बूलो मंगलप्रदः । ताम्बूलः श्रीकरो ज्ञेयस्तांबूलो राघवप्रियः ॥९०॥
तस्मात्प्रयत्नतस्त्वया देयस्तांबूल उत्तमः । सदा रामं पूजयेच्च सदा रामं विचिंतयेत् ॥९१॥
श्रीरामस्मरणं नित्यं कार्यं भक्त्या मुहुर्मुहुः । यस्य वाण्यां रामनाम हस्तौ पूजनतत्परौ ॥९२॥
श्रीरामचरितान्येव श्रोतुकामा च यच्छ्रुतिः । रामतीर्थानि रामेशान् रामक्षेत्राणि यानि च ॥९३॥
यदंघ्री गंतुकामौ तु रामपूजोत्सवान् वरान् । संद्रष्टुकामौ यन्नेत्रौ स धन्यः पुरुषः स्मृतः ॥९४॥

आधे सर्गकी, सर्गके चतुर्थांशकी, नौ श्लोकोंकी, केवल एक श्लोककी, आधे श्लोककी, आधे या चौथाई श्लोककी, जैसे बने व्याख्या अवश्य करता जाय। जो लोग नित्य ऐसा करते हैं, वे मनुष्य अवश्य मुक्तिके भागी होते हैं ॥ ७८ ॥ ७९ ॥ जो लोग पीपलके नीचे, अगस्त्य वृक्षके नीचे, तुलसीके पास, किसी पवित्र स्थानमें, सूर्यदेव या ब्राह्मणके सामने अथवा रामचन्द्रजीके समक्ष, किसी सभामें, ब्राह्मणोंकी मण्डलीमें या नदीके तटपर जो लोग आनन्दरामायणमें लिखे हुए चरित्रका पाठ करते हैं, वे मनुष्य धन्य हैं ॥ ८० ॥ ८१ ॥ समग्र एक काण्ड अथवा एक सर्ग आनन्दरामायण लिखकर यदि किसी ब्राह्मणको दिया जाय तो भी बड़ा पुण्य होता है। रामके उपासकको चाहिये कि नित्य एक सर्ग आनन्दरामायण लिखकर उसकी पूजा करे और किसी ब्राह्मणको दान दे दे ॥८२॥८३॥ यदि पूरा सर्ग लिखनेमें असमर्थ हो तो रोज केवल नौ श्लोक ही लिखकर उसकी पूजा करे और रामचन्द्रजीको प्रसन्न करनेके लिये विप्रको दान दे दिया करे ॥८४॥ लोगोंको चाहिये कि और दानोंके चक्करमें न पड़कर सर्वदा इसीका दान दिया करें। नित्य सुवर्णकी मुद्रा दान करनेसे जो फल मिलता है, वही फल केवल एक सर्ग आनन्दरामायण लिखकर दान देनेसे प्राप्त होता है। रामचन्द्रजीको प्रसन्न करनेवाला इससे बढ़कर और कोई भी दान नहीं है ॥ ८५ ॥ ८६ ॥ अतएव निरन्तर अवश्यमेव इसका दान करना चाहिए। अथवा रामचन्द्रजीको प्रसन्न करनेके लिए नौ सुपाड़ी अथवा अन्य वस्तुओं और दक्षिणाके साथ नौ पानके पत्ते नौ ब्राह्मणोंको दान दिया करे। यदि ऐसा न कर सके तो केवल एक ताम्बूलदान दिया करे। क्योंकि तीनों लोकोंमें ताम्बूलदानके बराबर ओर कोई भी दान नहीं है। ताम्बूल शुद्धि देनेवाला, मङ्गलप्रद, लक्ष्मीको बढ़ानेवाला और रामचन्द्रको प्रिय है ॥ ८७–९० ॥ इसीलिये लोगोंको चाहिये कि प्रयत्न करके उत्तम ताम्बूलका दान करें, सदा सब लोग रामकी पूजा करें, रामका ध्यान धरें और रामका स्मरण करें। जिनकी वाणीमें रामनाम विराजमान है, जिनके हाथ रामकी पूजामें लगे हुए हैं, जिनके कान रामका गुणानुवाद सुननेमें लगे हैं, जिनके पाँव रामेश्वर, रामतीर्थ और रामक्षेत्रमें जाते रहते हैं और जिनके नेत्र रामपूजनोत्सव देखनेमें लगे

राम रामेति रामेति ये वदंति जना भुवि । महापातकिनस्तेऽत्र मुक्तिं यांति न संशयः ॥९५॥
रामचन्द्रेति मंत्रोऽस्ति वागस्ति वशवर्तिनी । तथापि निरये घोरे पतंतीत्यद्भुतं महत् ॥९६॥
श्रीरामनामामृतमंत्रबीजसञ्जीवनी चेन्मनसि प्रविष्टा ।
हालाहलं वा प्रलयानलं वा मृत्योर्मुखं वा विशतां कुतो भीः ॥९७॥
आसने च तथा निद्राकाले भोजनकर्मणि । क्रीडने गमने नित्यं राममेव विचिंतयेत् ॥९८॥
श्रवणीयः कीर्त्तनीयश्चिंतनीयः सदा नरैः । गेयश्च रामो ह्युपदेश्यो राम एवावनीतले ॥९९॥
स्वर्गे सुराणाममृतं यथाऽस्ति परमं शुभम् । रामनामामृतं भूम्यां क्षयं नाप्नोति वै कदा ॥१००॥
गोपीचन्दनलिप्तांगो राममुद्रांकितो नरः । रामनामोच्चारकश्च तुलसीकाष्ठमालिकः ॥१०१॥
शंखचक्रगदापद्मधारको राममानसः । यस्त्वत्र स नरो धन्यो नेतरश्च कदाचन ॥१०२॥
स एव पुरुषोऽग्र्यो यो रामनाम सदा वदेत् । स एव पुरुषो निंद्यस्त्वत्र रामं स्मरेन्न यः ॥१०३॥
ये नराः शिवसद्भक्तिं कृत्वा निंदन्ति राघवम् । पूर्ववच्च खरास्तेऽपि नरा ज्ञेयाऽवनीतले ॥१०४॥
राम एव हरो ज्ञेयः शिव एव रघूत्तमः । उभयोर्नांतरं ज्ञेयं भेददृङ् नारकी नरः ॥१०५॥
रामशंकरयोरत्र भिन्नत्वं येन मानितम् । अजागलस्तनवच्च तस्य जन्म वृथा गतम् ॥१०६॥
शम्भोश्च हृदयं रामो रामस्य हृदयं शिवः । नैवांतरं कल्पनीयं कुतर्कैर्विविधैर्नरैः ॥१०७॥
रामेति द्व्यक्षरं नाम ये वदन्ति त्वहर्निशम् । न कस्यापि भयं तेषां जीवन्मुक्ताश्च ते नराः ॥१०८।
राममुद्रांकितं दृष्ट्वा नरं ते यमकिंकराः । पलायन्ते दश दिशः सिंह दृष्ट्वा गजा यथा ।।१०९॥
ललाटे पृष्ठदेशे च कुक्ष्योर्द्वे जठरे तथा । हृदये भुजयोर्द्वे हि मस्तके त्विति वै नव ॥११०॥

रहते हैं, वे पुरुष धन्य हैं ॥ ९१–९४ ॥ जो लोग इस संसारमें 'राम-राम' यह नाम जपते हैं, वे महापातकी होते हुए भी मुक्तिको प्राप्त होते हैं ॥ ९५ ॥ जिनके पास 'रामचन्द्र' यह मन्त्र है और वाणी अपने वशमें है, फिर भी वे लोग घोर नरकमें पड़ते हैं, यह महान् आश्चर्यकी बात है ॥ ९६ ॥ श्रीरामनामरूपी अमृतमन्त्र-बीजकी सञ्जीवनी यदि मनमें बैठ गयी तो हलाहल विष, प्रलयानल और मृत्युके मुखमें भी घुस जानेसे कोई भय नहीं रह जाता ॥ ९७ ॥ लोगोंको तो चाहिए कि उठते, बैठते, सोते, खाते, पीते, खेलते, कूदते या कहीं आते-जाते समय एकमात्र रामका ध्यान करें ॥ ९८ ॥ सदा उन्हींके गुणानुवाद सुनें। उन्हींके चरित्रका कीर्तन करें और उन्हींका गुण गायें ॥ ९९ ॥ स्वर्गमें जिस प्रकार अमृत परम मङ्गलकारी है। उन्हींके सदृश भूमण्डलपर कभी भी न नष्ट होनेवाला रामनामरूपी अमृत है ॥ १०० ॥ जो मनुष्य गोपीचन्दन लगाते, राममुद्रासे अङ्कित रहते, रामनामका उच्चारण करते, तुलसी (काष्ठ) की माला पहनते, शंख, चक्र, गदा और पद्मका चिह्न धारण करते और मनमें सब समय रामका स्मरण करते हैं। ऐसे प्राणी जहाँपर रहते हैं, वह स्थान और वे मनुष्य धन्य हैं ॥ १०१ ॥ १०२ ॥ वही पुरुष सब पुरुषोंका अगुआ बन सकता है, जो सदा रामनामका जप किया करता है और वही पुरुष निन्दाका भाजन है, जो कभी रामचन्द्रजीका स्मरण नहीं करता ॥ १०३ ॥ जो मनुष्य शिवजीकी भक्ति करके रामचन्द्रजीकी निन्दा करते हैं, उन्हें इस भूमण्डलमें गधा समझना चाहिये ॥ १०४ ॥ राम ही शिव हैं और शिव ही राम हैं। इन दोनोंमें कोई अन्तर नहीं है। जो प्राणी इनमें कोई भेदभाव मानता है, वह नरकगामी होता है ॥ १०५ ॥ इस संसारमें जिसने राम और शिवमें कोई भेद माना तो बकरीके गलेके स्तनके समान उसका जीवन वृथा गया ॥ १०६ ॥ शिवजीके हृदय राम हैं और रामके हृदय शिवजी हैं । लोगोंको चाहिए कि विविध प्रकारके कुतर्कोंमें पड़कर इनमें कोई भेद न मानें ॥ १०७ ॥ जो लोग रात दिन 'राम' ये दो अक्षर कहा करते हैं, उन्हें किसीका भय नहीं रह जाता और वे प्राणी जीवन्मुक्त हो जाते हैं ॥ १०८ ॥ राममुद्रासे चिह्नित मनुष्यको देखकर यमके दूत उसी तरह दसों दिशाओंमें भाग जाते हैं, जैसे सिंहको देखकर हाथी भाग खड़े होते हैं ॥ १०९ ॥ अतएव लोगोंका यह परम कर्तव्य है कि गोपीचन्दनसे अङ्कित राममुद्रा धारण करें। क्योंकि राममुद्रा महान् श्रेष्ठ वस्तु है और सब प्रकारके

रामसुद्रा धारणीया गोपीचंदनचिह्निता । राममुद्रा महाश्रेष्ठा सर्वदोषनिकृंतनी ॥१११॥
सदा देहे नरैर्धार्या गोपीचन्दनचिह्निता । राममुद्राऽस्ति यद्देहे तं पापं स्पृशते न हि ॥११२॥
स्तुतिः सदैव रामस्य स्तोत्रैः कार्या त्वहर्निशम् । प्राचीनैश्च नवीनैश्च स्वबुद्ध्या रचितैरपि ॥११३॥
स वाग्विर्गो जनताऽघविप्लवो यस्मिन्प्रतिश्लोकमबद्धवत्यपि ।
नामान्यनंतस्य यशोऽङ्कितानि यच्छृण्वन्ति गायन्ति गृणन्ति साधवः ॥११४॥
कवित्वमत्यशुद्धं च रामनाम्नांकितं च यत् । तज्ज्ञेयमतिशुद्धं च श्रवणात्पातकापहम् ॥११५॥
यस्मिन् रामस्य कृष्णस्य चरित्राणि महांति च । कवित्वे तत्पुण्यतमं सदा गेयं महत्तमैः ॥११६॥
शृणु शिष्य तवाग्रेऽन्यद्गुह्यं किंचिद्ब्रवीम्यहम् । कवितविषयं यच्च सर्वसन्देहनाशकम् ॥११७॥
अश्वत्थामा बलिर्व्यासो हनूमांश्च विभीषणः । कृपः परशुरामश्च सप्तैते चिरजीविनः ॥११८॥
एवं यद्वचनं शिष्य प्रोच्यते सर्वदा बुधैः । तदग्रे सर्वदा सत्यं ज्ञेयं कलियुगेऽपि च ॥११९॥
येषु मंत्रबलं भूम्यां वर्ततेऽत्र नरेषु हि । अश्वत्थामांशभूतास्ते ज्ञेयाश्च पुरुषा बुधैः ॥१२०॥
न्यायोपार्जितद्रव्येण राज्यं कुर्वन्ति धर्मतः । बल्यंशभूतास्ते ज्ञेया मानवा जगतीतले ॥१२१॥
रामस्तुतिं कवित्वे ये चरित्रं वर्णयंति च । व्यासांशभूतास्ते ज्ञेया मानवा जगतीतले ॥१२२॥
ये ये वीरास्त्वत्र भूम्यां वायुपुत्रांशरूपिणः । ते ते ज्ञेया नरास्तस्य चिरजीवित्वसूचकाः ॥१२३॥
ये ये शांता रामभक्ताः संत्यत्र मानवा भुवि । विभीषणांशभूतास्ते ज्ञेयाश्च सकलैर्जनैः ॥१२४॥
ये धैर्यवंतो योद्धारः संत्यत्र मानवा भुवि । कृपाचार्यांशभूतास्ते ज्ञेयाः सर्वे बुधैः सदा ॥१२५॥
ये वीराः क्रोधयुक्तास्तेऽत्र सर्वेऽवनीतले । जामदग्न्यंशभूताश्च सदा ज्ञेया नरोत्तमैः ॥१२६॥

दोषोंको नष्ट करती है। अतएव ललाट, पृष्ठदेश, दोनों कुक्षि, उदर, हृदय, दोनों भुजाओं और मस्तक इन स्थानोंमें भी राममुद्राओंको धारण करना चाहिए ॥ ११० ॥ १११ ॥ ये मुद्रायें धारण करना परमावश्यक है। क्योंकि जिसके शरीरमें राममुद्रा विद्यमान रहती हैं, उसे किसी प्रकारका पातक नहीं लगता ॥ ११२ ॥ उपासकोंको यह भी उचित है कि विविध प्रकारके स्तोत्रों द्वारा रामचन्द्रजीकी स्तुति करे। वे स्तोत्र प्राचीन हों, नवीन हों या अपनी बुद्धिसे बनाये गये हों ॥ ११३ ॥ रामके यशसे अङ्कित भगवान्के गुणानुवादसम्बन्धी वचनोंका प्रवाह प्राणियोंके महान् पातकोंको भी बहा ले जाता है। अतः लोग इसे सुनें, गायें और मनन करें। रामके नामसे अङ्कित कविता चाहे अतिशय अशुद्ध हो, फिर भी उसे अतिशुद्ध मानना चाहिये। उसके सुननेसे सब तरहके पातक नष्ट हो जाते हैं ॥ ११४ ॥ ११५ ॥ जिस कवितामें राम और कृष्णके महान् चरित्रोंका वर्णन किया गया हो, वह अत्यन्त पवित्र होता है। बड़े लोगोंको चाहिए कि सदा ऐसी कविताका गान करें ॥ ११६ ॥ श्रीरामदासजी विष्णुदाससे कहते हैं—हे शिष्य! अब मैं तुम्हारे आगे सब प्रकारके सन्देहोंको निवृत्त करनेवाला एक गुप्त कविताका विषय कह रहा हूँ ॥ ११७ ॥ अश्वत्थामा, बलि, व्यास, हनुमान्, विभीषण, कृपाचार्य और परशुराम ये सात चिरञ्जीवी हैं ॥ ११८ ॥ प्रायः पण्डित लोग इस बातको कहा करते हैं। इसे इस कलियुगमें भी सत्य ही मानना चाहिए ॥ ११९ ॥ इस पृथ्वीपर जिन लोगोंके पास मन्त्रबल विद्यमान है, उनको अश्वत्थामाका अंशज मानना चाहिए ॥ १२० ॥ जो राजे न्यायोपार्जित द्रव्यसे धर्मपूर्वक राज्य करते हैं, उनको इस संसारमें बलिके अंशसे उत्पन्न समझना चाहिये ॥ १२१ ॥ जो लोग कविता करते हुए रामकी स्तुति करते या उनके चरित्रोंका वर्णन करते हैं, जगतीतलमें उन मनुष्योंको व्यासके अंशसे उत्पन्न मानना चाहिये ॥ १२२ ॥ इस भूमण्डलमें जो वीर हैं, वे सब हनुमान्जीके अंशज हैं। ऊपर बतलाये हुए गुण ही उक्त प्रकारके मनुष्योंके चिरञ्जीवित्वकी सूचना देते रहते हैं ॥ १२३ ॥ इस पृथ्वीमें जितने शान्त रामभक्त हैं, उन्हें सब लोग विभीषणके अंशसे उत्पन्न समझें ॥ १२४ ॥ इस संसारमें जो धैर्यके साथ युद्ध करनेवाले लोग हैं, उन्हें कृपाचार्यके अंशसे उत्पन्न समझना चाहिये ॥ १२५ ॥ इस पृथ्वीमण्डलमें जितने क्रोधी वीर हैं, उन सब लोगोंको

चिरंजीवीति व्यासः कः कथं ज्ञेयो जनैर्भुवि । तस्य स्वरूपं वक्ष्यामि सावधानमनाः शृणु ॥१२७॥
ये गीर्वाण्या कवित्वानि करिष्यंत्यवनीतले । व्यासांशभूतास्ते ज्ञेयाः पंडिता मानवास्त्विह १२८॥
ये रामचंद्रं कृष्णं च शिवं स्तुत्या स्तुवंति हि । वर्णयंति चरित्राणि ते ज्ञेया व्यासमूर्तयः ॥१२९॥
ये राजानं च गणिकां नारीं राज्ञः सभां तथा । नरं स्तुवंति स्तुत्या ते न ज्ञेया व्यासमूर्तयः ॥१३०॥
यावद्भूम्यां तु रामस्य चरित्राणि स्तुवीत हि । तावदत्र स्मृतो व्यासस्ततो मुक्तिं गमिष्यति ॥१३१॥
किं फलं कस्य पाठाच्च तद्‌ब्रवीमि तवाधुना । शृणु स्वस्थमनाः शिष्य विस्तरेणोच्यते च यत् ॥१३२॥

इति श्रीमदानंदरामायणे मनोहरकांडे रामनामलक्षोद्यापनादिवर्णनं नाम सप्तमः सर्गः ॥ ७ ॥

अष्टमः सर्गः

(वेदादिकोंको फलश्रुति)

श्रीरामदास उवाच

शिरोव्याहृतिसंयुक्ता गायत्री परिकीर्तिता । वेदाक्षराणां तुल्या सा शतेन मुनिभिः स्मृता ॥ १ ॥
चतुःशतेन गायत्र्याः संमितं परिकीर्तितम् । पावमानं महासूक्तं षट्शतश्च सुपुण्यदम् ॥ २ ॥
तथोपनिषदः पुण्या गायत्र्यक्षरसंख्यया । प्रोच्यते पुण्यदा लोके पुण्यसूक्तानि यान्यपि ॥ ३ ॥
संहितापाठतः प्रोक्तं द्विगुणं पदपाठतः । त्रिगुणं क्रमपाठे स्यज्जटापाठे तु षड्गुणम् ॥ ४ ॥
महाभारतपाठस्तु वेदतुल्यः प्रकीर्तितः । पुराणानां तदर्धेन स्मृतीनां च तथोच्यते । ५ ॥
भारते भगवद्गीता तथा नामसहस्रकम् । गायत्र्याश्च समं प्रोक्तं पुण्ये पापक्षयेऽपि च ॥ ६ ॥
पाठेन यत्फलं प्रोक्तमर्थज्ञानाच्चतुर्गुणम् । सद्भक्तेभ्यः श्रवणाच्च पुण्यं दशगुणं स्मृतम् ॥ ७ ॥

परशुरामके अंशसे उत्पन्न समझना चाहिये ॥ १२६ ॥ चिरञ्जीवी व्यासको इस संसारमें कैसे पहचानना चाहिए। इसके लिए उसका स्वरूप बतलाते हैं। तुम सावधान होकर सुनो ॥ १२७ ॥ जो-जो लोग संस्कृत वाणीमें कविता करेंगे, वे पण्डित पुरुष व्यासके अंशके उत्पन्न माने जायँगे ॥ १२८ ॥ जो लोग रामचन्द्र, कृष्णचन्द्र तथा शिवजीकी स्तुतियां करें या उनके चरित्रका वर्णन करें, उनको व्यासकी साक्षात् मूर्ति समझना चाहिये ॥ १२९ ॥ जो लोग राजा, गणिका, स्त्री, राज-सभा तथा किसी व्यक्ति-विशेषकी स्तुति करते हैं, वे व्यासकी मूर्ति नहीं माने जा सकते ॥ १३० ॥ इस पृथ्वीपर प्राणी जबतक रामजी स्तुति करता है, तबतक वह व्यास रहता है और अन्तमें मुक्तिपद प्राप्त करता है ॥ १३१ ॥ किसी ग्रन्थका पाठ करनेसे क्या फल होता है, अब मैं इस बातको बतलाऊँगा। हे शिष्य! तुम स्वस्थ मन होकर सुनो, मैं विस्तारपूर्वक बतलाता हूँ ॥ १३२ ॥ इति श्रीमदानन्दरामायणे पं० रामतेजपाण्डेयविरचित-'ज्योत्स्ना'भाषाटीकासहिते मनोहरकांडे सप्तमः सर्गः ॥ ७ ॥

श्रीरामदास कहने लगे-वेदकी शिरोव्याहृतिसे युक्त सौ अक्षरोंवाली गायत्री कही गयी है ॥ १ ॥ चार सौ गायत्रीके बराबर पावमान नामक महासूक्त है, जिसमें छः सौ ऋचाओंका समावेश किया गया है ॥ २ ॥ गायत्रीकी अक्षरसंख्याके अनुसार उपनिषदोंके पाठसे पुण्य प्राप्त होता है ॥ ३ ॥ संहितापाठको अपेक्षा दुगुना पुण्य पदपाठ करनेमें है। क्रमके पाठ करनेमें तिगुना पुण्य है और जटाके पाठसे छगुना पुण्य होता है ॥ ४ ॥ महाभारतका पाठ वेदपाठ सदृश होता है। पुराणोंका पाठ आधे वेदपाठका पुण्य देनेवाला है और उससे भी आधा पुण्य स्मृतियोंके पाठसे होता है ॥ ५ ॥ महाभारतके अन्तर्गत भगवद्गीता और विष्णुसहस्रनाम, ये दोनों गायत्रीके समान पुण्यदायक एवं पापक्षयकारी माने गये हैं ॥ ६ ॥ पाठसे जितना पुण्य होता है, उससे चौगुना पुण्य उसका अर्थ समझनेसे होता है और अच्छे-अच्छे भक्तोंको सुनानेसे दसगुना पुण्य प्राप्त होता

भूमिदानं यथा लोके महादानमितीरितम् । विद्यादानं दशगुणं ततोऽपि स्यात्फलप्रदम् ॥ ८ ॥

विष्णुदास उवाच

कस्मै दानं प्रकर्तव्यं सुवर्णस्येतरस्य वा । कथं वा पात्रतामेति ब्राह्मणश्चेतरोऽथवा ॥ ९ ॥

श्रीरामदास उवाच

वसन् गुरुकुले यस्तु भिक्षान्नाशी श्रुतिं पठन् । अधीत्य शाखां पूर्णां स यथोक्तं लभते फलम् ॥१०॥
शिष्यस्याध्यापकस्यापि संहितां पठतः फलम् । प्रत्यक्षरं तु गायत्रीसकृत्पाठफलं लभेत् ॥११॥
पदपाठे तदर्द्धं स्यात्तदर्द्धं क्रमपाठतः । संहितापाठतो द्विघ्नं गाथापाठफलं स्मृतम् ॥१२॥
ततोऽप्युपनिषत्पाठैर्द्विगुणं फलमीरितम् । पाठे च पाठने तुल्यं फलं वै गुरुशिष्ययोः ॥१३॥
अधीतात्त्रिगुणं तु स्यात्फलं वै कंठपाठतः । तदर्द्धं लेख्यपाठात्तु फलमुक्तं मनीषिभिः ॥१४॥
अधीत्यापि न यस्य स्यात्कंठपाठसमं स्वतः । कृते यत्नेऽपि दैवेन स लभेत्पाठमात्रजम् ॥१५॥
प्रज्ञायामपि सत्यां तु विस्मरेत् पठितां श्रुतिम् । अनास्थया प्रमादेन मृतो गर्दभतां व्रजेत् ॥१६॥
यावद्वेदोत्थवर्णानां पठितानां च विस्मृतिः । तावद्वर्षाणि भुक्त्वा स खरयोनिं ततः परम् ॥१७॥
पाठपुण्यार्जितं लोकं लभते नात्र संशयः । स्वशाखां प्रथमं यस्तु पठित्वाऽन्यां पठेदपि ॥१८॥
प्रत्यक्षरं तु लभते गायत्र्या द्विगुणं फलम् । पठित्वापि स्वकां शाखां रामोत्कर्षं न वेत्ति यः ॥१९॥
रामपूजायुतश्चापि सोऽर्द्धं फलमवाप्नुयात् । वर्जितो रामभक्त्या यः केवल पाठको भवेत् ॥२०॥
लभेत्फलस्य तुर्यांशं तद्द्वेषान्निष्फलं भवेत् । अङ्गानि वेदाश्चत्वारो मीमांसा न्यायविस्तरः ॥२१॥
पुराणं धर्मशास्त्रं च विद्या ह्येताश्चतुर्दश । आयुर्वेदो धनुर्वेदो गांधर्वं चार्थशास्त्रकम् ॥२२॥

है ॥ ७ ॥ जिस तरह कि संसारमें भूमिदान एक महान् दान माना गया है, विद्यादान उससे भी दसगुना फल देनेवाला होता है ॥ ८ ॥ विष्णुदासने पूछा—हे गुरो ! सुवर्ण अथवा किसी अन्य वस्तुका दान किसको देना चाहिए । ब्राह्मण अथवा किसी इतर जातिका मनुष्य किस तरह पात्रताको प्राप्त होता है, सो हमें बतलाइए ॥ ९ ॥ श्रीरामदास बोले-हे शिष्य ! जो ब्राह्मण गुरुकुलमें रहता, भिक्षाका अन्न खाता और वेदका अध्ययन करता हुआ पूरी शाखाका अध्ययन कर लेता है, उसे ऊपर बतलायी रीतिके अनुसार फल प्राप्त होता है ॥१०॥ संहिताका अध्ययन करता हुआ ब्राह्मण संहिताके जितने अक्षरोंका पाठ करता है, उसे उतने ही गायत्रीमंत्रोंके जपका फल प्राप्त होता है ॥ ११ ॥ पदपाठसे उसका आधा क्रमपाठसे उसका भी आधा और गाथाके पाठसे ड्योढ़ा फल मिलता है ॥ १२ ॥ गाथापाठसे उपनिषद्के पाठका दुगुना फल प्राप्त होता है। ऊपर बतलाये संहिता आदिके पढ़नेसे शिष्यको जो फल प्राप्त होता है, उतना ही फल पढ़ानेवाले गुरुको भी मिलता है ॥ १३ ॥ पुस्तक सामने रखकर अध्ययन करनेकी अपेक्षा कण्ठस्थ पाठ करनेमें तिगुना फल प्राप्त होता है। इसका भी आधा फल उसे प्राप्त होता है, जो लिखी हुई पुस्तकसे पाठ करता है । ऐसा प्राचीन मुनियोंने कहा है ॥ १४ ॥ जो ब्राह्मण विद्याका अध्ययन करके भी उसको कण्ठस्थ करनेका यत्न नहीं करता, उसे केवल पाठ करनेका पुण्य प्राप्त होता है और कुछ नहीं ॥ १५ ॥ जो मनुष्य बुद्धि रहते हुए भी पढ़ी हुई श्रुतियोंको अनास्थाके कारण भुला देता है वह मरनेके बाद गधेका जन्म पाता है ॥ १६ ॥ पढ़कर भी वेदोंके जितने अक्षर वह ब्राह्मण भुलाता है, उतने दिन तक वह गधेकी योनिमें रहकर पाठके पुण्यसे अर्जित लोकमें जाकर निवास करता है। इसमें कोई सन्देह नहीं है। अपने वेदकी शाखाका अध्ययन करके जो ब्राह्मण दूसरे ब्राह्मणोंको पढ़ाता है, वह शाखाके प्रत्येक अक्षरसे अर्जित लोकमें जाकर निवास करता है। इसमें कोई सन्देह नहीं है। अपनी शाखाका अध्ययन करके भी जो यह नहीं जानता कि रामका कितना महत्त्व है। वह रामका पूजन करता हुआ भी पूजनका केवल आधा फल पाता है । जो प्राणी रामकी भक्तिसे रहित केवल अध्यापकमात्र है, वह उस पाठनके चतुर्थांश फलका भागी होता है। जो अध्यापक रामसे द्वेष रखता है, उसका अध्यापन कार्य भी व्यर्थ हो जाता है। चारों वेद, वेदांग, मीमांसा, न्याय, पुराण तथा

उपविद्याश्चतस्रः स्युरेवमष्टादश स्मृताः । शिक्षा कल्पो व्याकरणं निरुक्तं छन्दो ज्योतिषम् ॥२३॥
इत्यंगानि तु वेदस्य योऽधीते तत्फलं शृणु । संहितापाठतोऽप्यर्धं लभते पाठतः फलम् ॥२४॥
शिक्षा घ्राणं तु वेदस्य कल्पः पाणी प्रकीर्तितौ । मुखं व्याकरणं प्रोक्तं निरुक्तं श्रोत्रमुच्यते ॥२५॥
ज्योतिषं नयनं प्राहुश्छन्दः पादाविति स्मृतौ । शिक्षाकल्पनिरुक्तानां छन्दसश्चार्थनिश्चये ॥ २६॥
सद्योगं प्रकुर्वंति फलं तेषां चतुर्गुणम् । भवेत्पाठात्ततो ज्योतिःशास्त्रार्थज्ञानतः फलम् ॥२७॥
संहितापाठजं पुण्यं गणितज्ञो लभेत्फलम् । ज्योतिषां संहिताज्ञानादर्धं तु लभते फलम् ॥२८॥
जातकप्रश्नयोगेन न किंचित्पुण्यमीरितम् । वेदाध्ययनहीनो यो जातकप्रश्नमात्रवित् ॥२९।
न वेत्ति गणितं यस्तु ज्ञेयो नक्षत्रसूचकः । दानं नार्हति विप्रस्तु सर्वकर्मसु गर्हितः ॥३०॥
स्वल्पामपि च स्वां शाखां योऽनधीत्य द्विजाधमः । अंगादिष्वन्यशास्त्रेषु सक्तः स तु विगर्हितः ॥३१॥
किञ्चिच्छाखामधीत्यापि यश्चोपनिषदः पठेत् । ज्ञानाधिक्याय शास्त्राणां वेदज्ञानार्थमेव वा ॥३२॥
अधीते ज्ञानपात्रं स्यात्पुण्याधिक्येन युज्यते । यतो विप्रेषु वृद्धत्वं पूज्यत्वं ज्ञानतः स्मृतम् ॥३३॥
ज्ञानाधिक्येषु तेषु स्यात्पात्रापात्रविचारणा । पुण्याधिक्येन वाज्ञेया पाठकानां च पवित्रता ॥३४।
ज्ञानिपाठकयोर्मध्ये ज्ञानी पुण्याधिको यतः । ततः पूज्यत्वमस्य स्याज्ज्ञानिनस्त्विति मे मतम् ॥३५।
न हि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते । प्रियो हि ज्ञानिनोऽत्यर्थं रामः सोपि च तत्प्रियः ३६॥
परं वादिजये शक्तिर्यस्य स्याच्चतुरति पुनः । स एव श्रेष्ठतां याति पाठकानां शतादपि ॥३७॥
वेदादिसर्वविद्यानामर्थज्ञानाय यः पठेत् । शास्त्रं व्याकरणं नाम लभेद्वेदसमं फलम् ॥३८॥
ज्ञानाधिक्येन लभते वेदार्थज्ञानजं फलम् । मीमांसा द्विविधा प्रोक्ता कर्मणो ब्रह्मणस्तथा ॥३९॥

धर्मशास्त्र, ये चौदह विद्यायें हैं। आयुर्वेद, धनुर्वेद, गन्धर्व और अर्थशास्त्र ॥ १७–२२ ॥ वे चार उपविद्यायें हैं–शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्द और ज्योतिष ये छ वेदके अङ्ग हैं। इनके अध्ययनका जो फल होता है, उसे सुनो। इनका पाठ करनेसे संहितापाठका आधा फल मिलता है ॥ २३ ॥ २४ ॥ वेदकी नासिका शिक्षा, कल्प दोनों हाथ, मुख व्याकरण, निरुक्त कान, ज्योतिष नेत्र और छन्द (काव्य) पैर हैं। जो शिक्षा, कल्प, निरुक्त तथा छन्द इनका अर्थ समझनेके लिए उद्योग करते हैं, उन्हें वेदपाठका चतुर्गुण फल प्राप्त होता है। वेदका पाठ करनेसे ज्योतिषशास्त्रके अर्थज्ञानका भी फल मिल जाता है ॥ २५ ॥ ॥ २६ ॥ २७ ॥ गणितको जाननेवाला विद्वान् संहितापाठका पुण्य पाता है। संहिताका ज्ञान रहनेसे ज्योतिषशास्त्रके अध्ययनका आधा पुण्य मिलता है ॥ २८ ॥ किन्तु ज्योतिषमें भी जो विद्वान् केवल जातकका प्रश्नमात्र जानता है और वेदाध्ययनविहीन है, उसे कुछ भी पुण्य नहीं होता। वह कोरा जातक प्रश्नका ज्ञाता ही कहा जायगा ॥ २९ ॥ जो ब्राह्मण गणित नहीं जानता, सब कर्मोंमें निन्दित वह विप्र किसी प्रकारका दान लेनेका अधिकारी नहीं कहा जा सकता ॥ ३० ॥ जो ब्राह्मण अपनी वेदशाखाका अध्ययन करके केवल व्याकरण-ज्योतिष आदि वेदाङ्गोंमें ही लगा रहता है, वह द्विजाधम भी निन्दित होता है ॥ ३१ ॥ जो ब्राह्मण थोड़ा भी अपनी शाखाका अध्ययन करके अपना ज्ञान बढ़ानेके लिए उपनिषद् तथा शास्त्रोंको पढ़ता है, वह वास्तविक ज्ञानपात्र बनकर अधिकसे अधिक पुण्यका भागी होता है। क्योंकि ब्राह्मणोंमें वृद्धत्व या पूज्यत्व ये दोनों गुण ज्ञानसे ही आते हैं ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ ज्ञानकी मात्राकी अधिकतासे ही उन लोगोंमें पात्र और अपात्रका विचार करना चाहिए। पाठकोंके भी पुण्यको अधिकता तथा न्यूनतासे ही पात्रापात्रका विचार किया जा सकता है ॥ ३४ ॥ ज्ञानी और पाठक इन दोनोंमें ज्ञानी विशेष पुण्यात्मा समझा जाता है। इसलिये मेरे मतसे तो पाठककी अपेक्षा ज्ञानी अधिक पूज्य है ॥ ३५ ॥ इस संसारमें ज्ञानसे बढ़कर कोई वस्तु पवित्र नहीं है। ज्ञानीको रामचन्द्रजी अतिप्रिय हैं और रामको ज्ञानी प्रिय है ॥ ३६ ॥ किन्तु पाठकोंमें तो यह प्रथा है कि सैकड़ों पाठकोंमेंसे भी वही श्रेष्ठ माना जाता है, जो वादीको अपनी चतुराईसे परास्त कर सके ॥ ३७ ॥ जो मनुष्य वेद आदिके ज्ञानके लिये व्याकरण आदि शास्त्रोंका अध्ययन करता है, उसे वेदाध्ययनका ही

वेदार्थज्ञानतुल्याया द्वितीयायाः फलं शृणु । प्रत्यक्षरं तु लभते गायत्रीशतजं फलम् ॥४०॥
ये तूपयोगिनःसाक्षाद्ग्रन्थास्तेभ्यो भवंति हि । तेऽप्यर्थफलदा ज्ञेया व्यवधानाच्च पादशः ॥४१॥
वेदोपनिषदामर्थे ज्ञानाधिक्याय चेत्पठेत् । प्रदीपं सर्वविद्यानां यो विद्वान्न्यायविस्तरान् ॥४२॥
वेदार्थज्ञानतुल्यं तु फलं तस्य प्रकीर्तितम् । केवलं जीविकार्थं तु यः पठेन्न्यायविस्तरम् ॥४३॥
हेतुवादरतो ब्रह्मजिज्ञासां नैव यः पठेत् । स शृगालो भवेदेव पठिताक्षरसंख्यया ॥४४॥
वर्षाणि नात्र संदेहो वृथाभाषणतत्परः । पुराणं वैष्णवं मात्स्यं कौर्मं भागवतं तथा ॥४५॥
आदित्यं गारुडं स्कान्दं मार्कण्डेयमथाष्टमम् । ब्रह्मब्रह्मांडलैंग्यानि ब्रह्मवैवर्तमेव च ॥४६॥
भविष्योत्तरमाग्नेयं पाद्मं वामनमेव च । वाराहं चैव वायव्यं ह्यष्टादशानि वै त्विति ॥४७॥
महापुराणान्येतानि रामायणभवानि हि । रामायणात्पुराणानि व्यासेन खण्डितानि हि ॥४८॥
अतः पुराणं नामाभूदेतेषां जगतीतले । आदौ कृतानि यान्यत्र तेषां ज्येष्ठत्वसूचकः ॥४९॥
महाशब्दः प्रोच्यते हि वैष्णवादिषु पट्त्रिषु । पुराणानां तु सर्वेषां फल शिष्य ब्रवीम्यहम् ॥५०॥
वेदतुल्यफलं पाठे श्रवणे च तदर्द्धकम् । अर्थश्रवणतश्चास्य पुण्यं दशगुणं स्मृतम् ॥५१॥
वक्तुः स्याद्द्विगुणं पुण्यं व्याख्यातुश्च शताधिकम्। अन्यान्युपपुराणानि सति तेषां फलं शृणु ॥५२॥
विष्णुधर्मोत्तरं शैवं बृहन्नारदमेव च । भगवतीपुराणं च लघुनारदमेव च ॥५३॥
भविष्यत्पर्वषष्ठं स्यात्तन्त्रं भागवतं तथा । अष्टमं नारसिंहं स्यात्पुराणं रेणुकाभिधम् ॥५४॥
दशमं तत्त्वसारं स्याद्वायुप्रोक्तं तथैव च । नंदिप्रोक्तं द्वादशं स्याच्चथा पाशुपताभिधम् ॥५५॥
यमनारदसंवादस्तथा हंसपुराणकम् । विनायकपुराणं च बृहद्ब्रह्मांडमेव च ॥५६॥
पुण्यं विष्णुरहस्यं स्यादिति ह्यष्टादशानि वै । एतान्युपपुराणानि पुराणार्धफलानि च ॥५७॥

फल मिलता है ॥ ३८ ॥ जब ज्ञान बढ़ जाता है तो उसे आपसे आप वेदका अर्थ ज्ञात हो जाता है। मीमांसाशास्त्रके दो प्रकार हैं। एक कर्मपरक दूसरा ब्रह्मपरक ॥३९॥ इन दोनोंमें पहले अर्थात् कर्मका मार्ग बतलानेवाले मीमांसाका अध्ययन करनेसे वेदाध्ययनका पुण्य प्राप्त होता है और दूसरे ब्रह्मज्ञापक मीमांसाको पढ़नेसे जो पुण्य होता है, उसे सुनो। उत्तर मीमांसाका अध्ययन करनेवाला प्राणी जितने अक्षरोंको पढ़ता है, प्रत्येक अक्षरसे उसे सौ गायत्रीके जपका पुण्य प्राप्त होता है ॥ ४० ॥ ऐसे लोग बड़े ही उपयोगी विद्वान् होते हैं और ग्रन्थोंकी उत्पत्ति उन्हीं लोगोंसे होती है ॥४१॥ जो मनुष्य वेदों और उपनिषदोंके अर्थज्ञानार्थ विद्याओंके प्रदीपस्वरूप न्यायशास्त्र पढ़ते हैं, उन्हें वेदार्थज्ञानके तुल्य फल मिलता है। किन्तु जो केवल जीविकाके लिये न्यायशास्त्रका अध्ययन करता है और केवल हेतुवादमें संलग्न रहकर ब्रह्मजिज्ञासाके निमित्त नहीं पढ़ता। वह झूठा मनुष्य न्यायके जितने अक्षर पढ़े रहता है, उतने ही वर्षों तक शृगाल हो-होकर जन्म लेता है। इसमें कोई संशय नहीं है। अब पुराणोंको गिनाते हैं—वैष्णव, मत्स्य, कूर्म, भागवत, ॥ ४२–४५ ॥ आदित्य, गरुड़, स्कन्द, मार्कण्डेय, ब्रह्म, ब्रह्माण्ड, लिंग, ब्रह्मवैवर्त, भविष्योत्तर, आग्नेय, पद्म, वामन, वाराह और वायु ये अष्टादश महापुराण हैं ॥ ४६ ॥ ४७ ॥ ये सभी महापुराण रामायणसे ही उत्पन्न हुए हैं। किन्तु व्यासजीने रामायण और पुराण इन दोनोंमेंसे बहुतसे अंश काट दिये हैं ॥ ४८ ॥ इसी कारण इनका पुराण यह नाम पड़ा है। सबसे पहले जो पुराण बनाये गये, उनका ज्येष्ठसूचक महाशब्द है। हे शिष्य! अब मैं तुम्हें पुराणोंके पाठका फल सुना रहा हूँ ॥ ४९ ॥ ५० ॥ पुराणोंका पाठ करनेसे वेदपाठका फल मिलता है और उन्हें सुननेमें उससे आधा फल मिला करता है। किन्तु पुराणोंके अर्थका श्रवण करनेमें उससे दसगुना अधिक फल होता है ॥५१॥ वक्ताको दुगुना और व्याख्या करनेवालेको सौगुना पुण्य होता है। इनके अतिरिक्त अठारह उपपुराण भी हैं। अब उनका नाम सुनो— ॥ ५२ ॥ विष्णुधर्मोत्तर, शैव, बृहन्नारद, भगवतीपुराण, लघुनारद, भविष्यत्‌का छठाँ पर्व, भागवत, नरसिंह, रेणुका ॥ ५३ ॥ ५४ ॥ दसवाँ तत्त्वसार, वायु द्वारा कहा हुआ ग्यारहवाँ, नदी द्वारा कहा हुआ बारहवाँ, पाशुपत, मय और नारदका सम्वाद, हंसपुराण, विनायकपुराण, बृहद्ब्रह्मांड और पवित्र

भारतं वेदतुल्यं स्यादर्थतोऽधिकमुच्यते । तत्रापि भगवद्गीता विष्णोर्नामसहस्रकम् ॥५८॥
दशाधिकफलं प्रोक्तं भारतादपि सर्वशः । श्रोताऽर्धं फलमाप्नोति भक्तितः शृणुयात्तु यः ॥५९॥
भारतं त्वितिहासश्च रामायणसमुद्भवम् । यद्वेदपाठपुण्यं तज्ज्ञेयं रामायणस्य च ॥६०॥
पाठात्तदर्द्धं श्रवणे व्याख्यातुश्च दशाधिकम् । वाल्मीकिना कृतं यच्च शतकोटिप्रविस्तरम् ॥६१॥
तत्सर्वेषामादिभूतं महामंगलकारकम् । रामायणादेव नाना संति रामायणानि हि ॥६२॥
शेषभूतं चतुर्विंशत्सहस्रं प्रथमं स्मृतम् । तथा च योगवासिष्ठमध्यात्माख्यं तथास्मृतम् ॥६३॥
वायुपुत्रकृतं चापि नारदोक्तं तथा पुनः । लघुरामायणं चैव बृहद्रामायणं तथा ॥६४॥
अगस्त्युक्तं महाश्रेष्ठं साररामायणं तथा । देहरामायणं चापि वृत्तरामायणं पुनः ॥६५॥
ब्रह्मरामायणं रम्यं भारद्वाजं तथैव च । शिवरामायणं क्रौंचं भारतस्य च जैमिनेः ॥६६॥
आत्मधर्मं श्वेतकेतुऋषेश्चैव जटायुषः ॥६७॥
रवेः पुलस्तेर्देव्याश्च गुह्यकं मंगलं तथा । गाधिजं च सुतीक्ष्णं च सुग्रीवं च विभीषणम् ॥६८॥
तथाऽऽनंदरामायणमेतन्मंगलकारकम् । एवं सहस्रशः संति श्रीरामचरितानि हि ॥६९॥
कः समर्थोऽस्ति तेषां हि संख्यां वक्तुं सविस्तरात् ।
शतकोटिमितादेव विभक्तानि पृथक् पृथक् ॥७०॥
सर्वेष्वप्यानंदसंज्ञं वरिष्ठं प्रोच्यते त्विदम् । अस्य पाठेन यत्पुण्यं तत्ते शिष्य वदाम्यम् ॥७१॥
शतकोटिमितं श्रुत्वा यत्फलं लभ्यते नरैः । फलमस्य तदर्द्धं हि ज्ञेयं शिष्य शुभप्रदम् ॥७२॥
श्रवणाद्द्विगुणं पाठे व्याख्यातुश्च दशाधिकम् । तस्मादेतत्सदाऽऽनंदसंज्ञं श्राव्यं नरोत्तमैः ॥७३॥
नानेन सदृशं किंचिद्भूतं नाग्रे भविष्यति । सर्वेष्वपि च शास्त्रेषु पाञ्चरात्रागमोऽधिकः ॥७४॥

विष्णुरहस्य ये अष्टादश उपपुराण हुए । इनका पाठ करनेसे पुराणपाठका आधा फल मिलता है ॥ ५५ ॥ ॥ ५६ ॥ ५७ ॥ महाभारत तो साक्षात् वेदके समान है । उसमें कही हुई भगवद्गीता और विष्णुसहस्रनाम ये दोनों महाभारतसे भी दसगुना अधिक फल देते हैं । जो श्रोता भक्तिपूर्वक उन्हें सुनता है, वह आधा फल पाता है । महाभारत रामायणसे ही निकला हुआ इतिहास है । वेदके पाठसे जो पुण्य होता है, वही फल रामायणके पाठमें है ॥ ५८–६० ॥ मूल-मूल पाठ करनेसे आधा पुण्य मिलता है और व्याख्या करनेसे दसगुना अधिक फल प्राप्त होता है । सौ करोड़ श्लोकोंके विस्तारमें वाल्मीकिने जिस रामायणकी रचना की है, वह सब रामायणोंका मूल और महामङ्गलकारक है । उस रामायणसे ही विविध प्रकारकी रामायणोंकी रचना हुई है ॥ ६१ ॥ उसीके परिशिष्ट अंशसे बनी और वर्तमान समयमें चलती हुई चौबीस हजार श्लोकोंवाली वाल्मीकिरामायण, योगवासिष्ठ, अध्यात्मरामायण, वायुपुत्र (हनुमान्‌जी) की रामायण, नारदरामायण, लघुरामायण, बृहद्रामायण, अगस्त्यजीकी बनायी महाश्रेष्ठ साररामायण, देहरामायण, वृत्तरामायण, भारद्वाजरामायण, शिवरामायण, क्रौंचरामायण, भरतरामायण, जैमिनिरामायण आदि बहुतेरी रामायणें हैं ॥ ६२–६६ ॥ इनके अतिरिक्त आत्मधर्मकी, जटायुकी, श्वेतकेतु ऋषिकी, पुलस्त्यकी, देवीजीकी, विश्वामित्रकी, सुतीक्ष्णकी, सुग्रीवकी, विभीषणकी और यह मङ्गलमय आनन्दरामायण, इस तरह रामचरित्रका वर्णन करनेवाली हजारों रामायणें बनी हैं ॥ ६७–६९ ॥ उन सबकी सविस्तार संख्या बतलानेमें कोई भी समर्थ नहीं हो सकता । वाल्मीकिजीके सौ करोड़ श्लोकात्मक रामायणसे ही इन सबका निर्माण हुआ है ॥ ७० ॥ किन्तु ऊपर गिनायी हुई सब रामायणोंमें यह आनन्दरामायण ही श्रेष्ठ है । ऐसा लोगोंने कहा है । इसके पढ़नेसे क्या पुण्य होता है, सो हे शिष्य ! मैं तुमको इसका माहात्म्य बतला रहा हूँ ॥ ७१ ॥ पूर्वोक्त शतकोटिसंख्यात्मक वाल्मीकिरामायणके सुननेसे जो पुण्य प्राप्त होता है, उसका आधा पुण्य इस आनन्दरामायणके पाठसे होता है । इसको सुननेसे दुगुना और व्याख्या करनेसे दसगुना पुण्य होता है । इस कारण लोगोंको चाहिए कि इस आनन्दरामायणका श्रवण करें ॥ ७२ ॥ ७३ ॥ इसके सदृश पवित्र कोई ग्रन्थ न अबतक हुआ है और न

भगवद्गीतया तुल्यं फलं तस्याखिलस्य च । भारतीयकथाबंधं सद्भक्तैरेव निर्मितम् ॥७५॥
तत्काव्यं यः पठेत्प्राज्ञो दशांशं फलमाप्नुयात् । यद्भक्तैर्निर्मितं तत्तु शतांशफलदं स्मृतम् ॥७६॥
यः करोति स्वयं काव्यं कल्पयित्वा स्वयंकथाम्। तच्छ्रमो व्यर्थतामेति तदध्येता च दोषभाक् ॥७७॥
पौराणीं भारतीं वापि तथा रामायणस्थिताम् । तथा ह्युपपुराणस्थां कथां ग्रथति यः स्वयम् ॥७८॥
रामभक्तोऽपि लभते शक्रलोकाधिवासताम् । प्रत्यक्षरं वर्षमेकं वासस्तस्य भवेद्ध्रुवम् ॥७९॥
रामभक्तः पुराणेभ्यः कथां ग्रथति यः पुनः । व्यासमूर्तिः स लभते बृहस्पतिसलोकताम् ॥८०॥
दौहित्रपोषितः शिष्य आरामश्च जलाशयः । सद्ग्रन्थकरणं पुत्रः ते पुत्रा वै प्रकीर्तिताः ॥८१॥
एवं भूम्यामंशभूतैर्नरैस्ते विचरंति हि । अश्वत्थामादयः सप्त ये चिरंजीविनः सदा ॥८२॥
अतः श्रीरामभक्तैश्च कवित्वैस्तत्स्तुतिः कृता । सापि मान्या सदा श्राव्या पठनीया बुधैर्मुहुः ॥८३॥
भारताच्च शतांशेन फलदात्री स्मृताऽत्र हि । निंदंति ये भक्तकृतां कवितां ते खराः स्मृताः ॥८४॥
तत्तद्भाषाकृतं काव्यं रामवर्णनसंयुतम् । भारतस्य सहस्रांशं श्रोतुर्वक्तुः फलं स्मृतम् ॥८५॥
निर्मातुस्तु भवेत्पुण्यं साधुशब्दशतांशतः । गीर्वाणीकविताकर्ता सोऽपि व्यासांश ईरितः॥८६॥
स्वस्वभाषाकवित्वानां कर्तारस्ते कवीश्वराः । गीर्वाणीकविता चापि पदान्वयसमन्विता ॥८७॥
अर्थप्रमाणसहिता सैव मान्या न चेतरा । नरस्तुतिं तु यः कुर्याज्जीविकार्थं कविः क्वचित् ॥८८॥
निष्फलस्तच्छ्रमः प्रोक्तस्तदध्येता च दोषभाक् । उन्मादेन तु यः कुर्यात्कामिनीनां तु वर्णनम् ॥८९॥
स हि श्वयोनिं प्राप्नोति वर्षाण्यक्षरसंख्यया । वेदोक्तार्थानुसारेण मन्वाद्याः स्मारकाः स्मृता॥९०॥

भविष्यमें होगा । सब शास्त्रोंसे पाञ्चरात्रके आगमको विशेष महत्त्व दिया गया है। उसका पाठ करनेसे भगवद्गीता-पाठके तुल्य फल प्राप्त होता है । महाभारतके कथानकोंको और जिनको अच्छे-अच्छे भगवद्भक्तोंने बनाया है ॥ ७४ ॥ ७५ ॥ उन काव्योंको जो मनुष्य पढ़ता है, उसे रामायणके पाठका दशांश पुण्य प्राप्त होता है । अन्य भक्तोंके बनाये काव्योंका अध्ययन करनेसे शतांश फल मिलता है ॥ ७६ ॥ जो मनुष्य कथाकी कल्पना करके स्वयं काव्य बनाता है, उसका परिश्रम व्यर्थ जाता है और उसका पाठ करनेवाला भी दोषका भागी बनता है ॥ ७७ ॥ जो कवि पुराणोंमें, महाभारतमें, रामायणमें तथा उपपुराणोंमें लिखी हुई कथाओंका संग्रह करता है। वह रामभक्त होकर इन्द्रलोकमें निवास करता है । वह प्राणी जितने अक्षरोंको लिखे रहता है, उतने ही वर्षतक इन्द्रलोकमें रहता है ॥ ७८ ॥ ७९ ॥ जो रामभक्त पुराणोंसे कथाओंका संग्रह करता है, वह साक्षात् व्यासदेवके समान पूज्य होता हुआ बृहस्पतिके लोकमें निवास करता है ॥ ८० ॥ अपनी लड़कीका लड़का, पोष्य पुत्र, शिष्य, बगीचा, तालाब तथा सद्ग्रन्थकी रचना, अपना निजी पुत्र, इतने सत्पुत्र माने गये हैं ॥ ८१ ॥ वे लोग अंशभूत मनुष्यों अर्थात् अश्वत्थामा आदि जो सात चिरंजीवी बतलाये गये हैं, उनके साथ पृथ्वीमंडलपर विचरते हैं ॥ ८२ ॥ अतएव बहुतेरे रामभक्तोंने अपनी कवितामें श्रीरामकी स्तुति की है। इसलिए लोग उनकी भी कविताओंका आदर करें, वारम्बार सुनें और पढ़ें ॥ ८३ ॥ रामभक्तोंकी कविता महाभारतका शतांश फल देनेवाली होती है । जो लोग किसी रामभक्तकी बनायी कविताका निरादर करते हैं, वे एक प्रकारके गधे हैं ॥ ८४ ॥ संस्कृतभाषाके अतिरिक्त और-और भाषाओंमें रामके चरित्रवर्णन युक्त कवितायें श्रोता-वक्ताको महाभारतके सहस्र अंशका फल देनेवाली होती हैं ॥ ८५ ॥ अच्छे शब्दोंमें की हुई कविता कविको शतांश फल देती है । संस्कृतमें कविता करनेवाला प्राणी व्यासका अंश होता है ॥ ८६ ॥ अपनी-अपनी भाषामें कविता करनेवाले कवीश्वर अथवा संस्कृतमें रचना करनेवाले कवियोंमेंसे जिनकी कविता पद और अन्वय संयुक्त हो, जिसमें अर्थ तथा प्रमाण दोनों विद्यमान हों, वे ही मान्य हैं, और नहीं । जो कवि अपने स्वार्थके लिए किसी मनुष्यकी स्तुतिमयी कविता करता है, उसका परिश्रम व्यर्थ जाता है अन्य उसका अध्ययन करनेवाला प्राणी भी दोषका भागी बनता है। जो कवि उन्मादवश स्त्रियोंका वर्णन करता है, वह कवितामें लिखे हुए जितने अक्षर हैं, उतने वर्षतक श्वानकी योनिमें

तेषां वै स्मृतयो नाम नानाधर्मप्रवर्तकाः । तत्र केचिद्वैदिकेषु कर्मस्वधिकृताः परे ॥९१॥
अवैदिकेषु मन्त्रेषु केचित्पशुसमाः स्मृताः । अवैदिकेऽवपि प्रोक्तो नाधिकारो भवेन्नृणाम् ॥९२॥
ब्रह्मचारी गृहस्थो वा वानप्रस्थो यतिस्तथा । प्रोक्ता ह्याश्रमिणस्त्वेते भिन्नधर्माण एव च ॥९३॥
कदा कुत्र कथं कर्म केन कार्यमिति स्फुटम् । धर्मशास्त्रं तु निर्णीतमन्यथा दोषभाग्भवेत् ॥९४॥
अदेशे यत्कृतं व्यङ्गमकालेनाधिकारिणा । प्रत्येकं तद्भवेद्व्यर्थं प्रत्यवायोऽधिको भवेत् ॥९५॥
तस्मादावश्यकं तत्तु विप्राणां च विशेषतः । स्मृत्यर्थं ज्ञानतो वापि वेदार्थज्ञानतोऽधिकम् ॥९६॥
ऋग्वेदस्योपवेदः स्यादायुर्वेदो हि वैदिकः । परेषामुपकाराय स्वस्यारोग्यार्थमेव वा ॥९७॥
जीविकार्थमप्यसौ हि पठितव्यो द्विजातिभिः । ब्राह्मणं रोगिणं क्षीणमुपचारेण जीवयेत् ॥९८॥
ब्रह्महत्याभवं पापं तस्य नश्यति वै ध्रुवम् । यतः स लभते पुण्यं चतुःकृच्छ्रसमुद्भवम् ॥९९॥
एवं पुण्यं भवेत्तस्य तत्तद्वर्णानुसारतः । यत्ने कृतेऽपि यो रोगी न जीवत्यायुषः क्षयात् ॥१००॥
सोऽप्यर्धफलमाप्नोति नात्र कार्या विचारणा । जीविकार्थं तु यः कुर्यादुपविद्याचतुष्टयम् ॥१०१॥
इह लोके फलं तस्य परलोके न किञ्चन । नरं रोगार्णवे मग्नं योऽभ्युद्धरति मानवः ॥१०२॥
कस्तेन न कृतो धर्मः कां वा पूजां न सोऽर्हति । गतश्रीर्गणकान् द्वेष्टि गतायुश्च चिकित्सकान् ॥१०३॥
गतश्रीश्च गतायुश्च ब्राह्मणान् द्वेष्टि मूढधीः । गांधर्वमप्यधीयीत रामाग्रे यश्च गायति ॥१०४॥
तद्भक्तियुक्तो लभते गांधर्वं लोकमुत्तमम् । धनुर्वेदो दंडनीतिर्ब्राह्मणानां तु जीविका ॥१०५॥
क्षत्रियाणां तु सा प्रोक्ता वेदादर्धफलप्रदा । ज्ञातिष्वेतेषु सर्वेषु पुण्यं ज्ञानानुसारतः ॥१०६॥

रहता है। वेदोक्त अर्थोंके अनुसार मन्वादि स्मृतियें बनी हैं। जिनसे विविध प्रकारके धर्मोंका आविष्कार हुआ है। उनमेंसे कुछ धर्मवाले वैदिक कर्मोंके अधिकारी हैं। कुछ वेदविहीन मन्त्रोंसे सब कर्म करते हैं और कुछ बिल्कुल पशुकी तरह अपना जोवन बिताते हैं। उन लोगोंको अवैदिक कर्म करनेका भी अधिकार नहीं दिया गया है ॥ ८७-९२ ॥ ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ अथवा संन्यासी ये भिन्न-भिन्न मिश्रित धर्म माने गये हैं ॥ ९३ ॥ कब कहां और कैसा कर्म करना चाहिये, ये सब बातें धर्मशास्त्रसे ही निर्णीत की जा सकती हैं। यदि उनसे निर्णय किये विना कोई कर्म किया जाता है तो दोषका भागी बनना पड़ता है ॥ ९४ ॥ को कर्म अदेशमें, अङ्गरहित, विना समयके अथवा अनधिकारी व्यक्ति द्वारा किया जाता है, वह सब व्यर्थ होता है और पुण्यके स्थानमें पाप ही होता है ॥ ९५ ॥ इसलिये कर्मोंके विषयमें धर्मशास्त्रसे निर्णय कर लेना आवश्यक है। तिसमें भी ब्राह्मणोंको तो अवश्य ऐसा कर लेना चाहिए। अपने ज्ञानकी अपेक्षा स्मृतिकी आज्ञा और स्मृतिसे भी वेदकी आज्ञा विशेष माननीय है ॥ ९६ ॥ ऋग्वेदका उपवेद आयुर्वेद है। उसे परोपकारके लिए अथवा अपनी आरोग्यताके लिये या जीविकाके लिए भी द्विजातियोंको अवश्य पढ़ना चाहिए। यदि कोई ब्राह्मण रोगी होनेके कारण दुर्बल हो गया हो तो उसे दवा देकर भला-चङ्गा कर देना चाहिये ॥ ९७ ॥ ९८ ॥ ऐसा करनेसे दवा देनेवालेके ब्रह्महत्या सदृश पातक भी अवश्य नष्ट हो जाते हैं। साथ ही उसे चार कृच्छ्र चान्द्रायण व्रतके पुण्यकी प्राप्ति होती है ॥ ९९ ॥ इस तरह पृथक्-पृथक् वर्णोंके अनुसार पुण्य होता है। यदि यत्न करनेपर भी कोई रोगी आयु पूरी हो जानेके कारण न बच सके तो भी दवा देनेवालेको आधा पुण्य होता ही है। इसमें किसी प्रकारका विचार करनेकी आवश्यकता नहीं है। जो मनुष्य अपनी जीविका चलानेके लिए चारों उपविद्याओंका उपयोग करता है, उसे इस लोकमें अवश्य फल मिलता है, किन्तु परलोकमें कुछ भी नहीं मिलता। जो मनुष्य रोगरूपी समुद्रमें डूबे हुए किसी मनुष्यका उद्धार करता है ॥ १०० ॥ १०२ ॥ उसने कौन-सा धर्म नहीं कर लिया और कौन-सी पूजा नहीं की। अर्थात् उसने सब कुछ कर लिया। जिस प्राणीकी श्री नष्ट हो जाती है, वह ज्योतिषियोंसे द्वेष करता है। जिसकी आयु क्षीण हो जाती है, वह वैद्योंसे द्वेष करता है। गतश्री एवं गतायु ये दोनों प्राणी ब्राह्मणोंसे द्वेष किया करते हैं। जो मनुष्य गन्धर्वविद्या (संगीत) का अध्ययन करके रामचन्द्रजीके सम्मुख गाता है, उसे उत्तम गन्धर्वलोककी प्राप्ति होती है।

विवेकस्तस्य कर्तव्यो द्रव्यदाने विशेषतः । अन्नस्य क्षुधितः पात्रं पानीयस्य पिपासितः ॥१०७॥
द्रव्यदाने तु कर्तव्यं विशेषात्पात्रवीक्षणम् । खलायां गवि दुग्धं स्याद्दुग्धमप्युरगे विषम् ॥१०८॥
पात्रापात्रविचारेण सत्पात्रे दानमुत्तमम् । यथा पुण्याधिकं पात्रं तथा दानं फलाधिकम् ॥१०९॥
ज्ञानाधिक्याद्भवेत्पुण्याधिक्यात्पात्रं श्रमेण वा। रामभक्तश्च पात्रं स्याद्रामभक्तो न सर्वथा ॥११०॥
रामद्वेषी वर्जनीयो दर्शनालापनादिषु । संगतश्च भवेत्पूतस्तद्भक्तानां तु नान्यथा ॥१११॥
यच्छक्तेरधिकं दद्यात्तद्दानं परिकीर्तितम् । वित्तशाठ्येन यद्दानं न तद्दानं स्मृतं बुधैः ॥११२॥
देशकालविशेषेण तत्तत्पात्रविशेषतः । दानस्य फलमुद्दिष्टमधिकं न्यूनमेव च ॥११३॥
विप्रशुल्कं तु यो मूढो न दद्याच्छक्तिसंभवम् । विष्ठाक्रिमिर्भवेदेव सुवर्णैरेव संख्यया ॥११४॥
दिव्यवर्षाणि नैवात्र त्वया कार्यस्तु संशयः । यत्तु ज्ञानवता कर्म क्रियते पुण्यदायकम् ॥११५॥
अधिकं तत्फलं प्रोक्तमज्ञानिकृतकर्मणः । यथा यथाऽधिकं ज्ञानं पापहानिस्तथा तथा ॥११६॥
यत्तु ज्ञानवता कर्म क्रियते पापकारकम् । तन्न्यूनफलदं प्रोक्तमज्ञानिकृतपातकात् ॥११७॥
यथा यथाऽधिकं ज्ञानं पापहानिस्तथा तथा । यथैधांसि समिद्धोऽग्निर्भस्मसात्कुरुते क्षणात् ॥११८॥
ज्ञानाग्निर्दुष्टकर्माणि भस्मसात्कुरुते तथा । वर्णाधिक्यं यथा हेम्नो वह्निसंगेन जायते ॥११९॥
पुण्याधिकं तथा शिष्य ज्ञानिसंगेन जायते । पुण्येन वर्द्धते पुण्यं पापं स्वल्पं च जायते ॥१२०॥
पापेन पापवृद्धिश्च पुण्यं स्वल्पं च जायते । अतिसूक्ष्मो विचारोऽयं दुर्ज्ञेयः स्थूलदृष्टिभिः ॥१२१॥
तथाप्येवं विचार्यं स्यात्तत्तज्ज्ञानानुसारतः । यस्तु सत्यधिकारेऽपि ज्ञाने वा पठनेऽपि वा ॥१२२॥

धनुर्वेद और दण्डनीति, ये दोनों ब्राह्मणोंकी जीविकायें हैं ॥ १०३–१०५ ॥ किन्तु क्षत्रियोंको वे वेदपाठका फल देती हैं। ऊपर बतलायी हुई सब जातियोंमें ज्ञानके अनुसार ही पुण्य होता है। इसलिये लोगोंको चाहिए कि विशेष करके द्रव्यदानके विषयमें विचार करें। भूखेको अन्नदान और प्यासेको पानी पिलाना श्रेष्ठ धर्म है ॥ १०६ ॥ १०७ ॥ द्रव्यदान देते समय पात्रका विचार करना आवश्यक है। क्योंकि दुष्ट गौमें भी दूध होता है और सर्पके पेटमें पहुँच जानेपर दूध भी विष बन जाता है ॥ १०८ ॥ इस तरह पात्र और अपात्रका विचार करके सत्पात्रमें दान देना अच्छा है। दानका पात्र जितना ही अच्छा होगा, उतना ही अधिक पुण्य होगा ॥ १०९ ॥ इस पात्र और अपात्रका विचार, ज्ञानकी अधिकता, पुण्यकी अधिकता तथा परिश्रमकी अधिकता देखकर किया जाता है। जो मनुष्य रामका भक्त है, वही पात्र है और जो रामभक्तिसे रहित है, उसीको अपात्र जानना चाहिए। जो मनुष्य रामसे द्वेष रखता हो, उसका दर्शन और उससे सम्भाषण आदि कदापि न करे। जो रामके भक्तोंका साथ करता है, वह अपवित्र मनुष्य भी पवित्र हो जाता है ॥ ११० ॥ १११ ॥ अपनी शक्तिसे अधिक जो दान दिया जाता हैं, वही दान दान है और कंजूसीके साथ जो दान दिया जाता है, वह दान दान नहीं है ॥ ११२ ॥ देश-काल एवं पात्र अपात्रको विशेषताके अनुसार अधिक या न्यून फल कहा गया है ॥ ११३ ॥ जो मनुष्य ब्राह्मणको पारिश्रमिक नहीं देता, वह उन पैसोंकी संख्याके अनुसार दिव्य वर्षों तक विष्ठाका क्रिमि बना रहता है। इसमें किसी प्रकारका संशय नहीं करना चाहिये। ज्ञानवान् मनुष्य जिन पवित्र कर्मोंको करता है, अज्ञानियोंकी अपेक्षा उसे अधिक फल मिलता है। जैसे-जैसे ज्ञानकी मात्रा बढ़ती जाती है, वैसे-वैसे उसके पाप नष्ट होते जाते हैं ॥ ११४–११६ ॥ ज्ञानी मनुष्य यदि कोई पाप करता है तो अज्ञानियों द्वारा किये पातकोंकी अपेक्षा उसे पापका भी न्यून ही कुफल मिलता है ॥ ११७ ॥ जैसे-जैसे ज्ञान होता जाता है, वैसे-वैसे पाप अपने आप नष्ट होते जाते हैं। जिस तरह जलती हुई अग्नि लकड़ियोंको जलाती है, उसी तरह ज्ञानाग्नि समस्त कर्मोंको भस्म कर डालती है। जिस तरह अग्निके संयोगसे कंचनकी कान्ति अधिक हो जाती है, उसी तरह ज्ञानियोंका सङ्ग करनेसे पुण्यकी मात्रा बढ़ती जाती है। पुण्यसे पुण्य बढ़ता है और पाप कम होता जाता है ॥ ११८–१२० ॥ पापसे पापकी वृद्धि होती है और पुण्य कम होता जाता है। यह बड़ा ही सूक्ष्म विचार है और स्थूलदृष्टिवालोंके लिए तो और

प्रयत्नं नैव कुर्वीत स नरो जायते पशुः । ज्ञानाद्वाऽध्ययनाद्वापि पुण्यं विप्रस्य वर्धते ।१२३॥
इति संक्षेपतः प्रोक्तमेतत्पृष्टं त्वयाऽनघ । उभयं चाप्यनेनैव पुण्यं पापमथापि वा ॥१२४॥
धर्मास्तु बहवः संति तथा पापान्यनेकशः । तत्र तत्रोदितान्येव प्रायश्चित्तानि वै बुधैः ॥१२५॥
कर्तव्यानि जनैस्तानि सम्यग्बुद्ध्याविविच्य च । सर्वसारमिदं प्रोक्तं रहस्यं पुरतस्तव ॥१२६॥
ग्रहणीयं प्रयत्नेन न ह्यभक्ताय दीयताम् । शुश्रूषवे साधवे च रामभक्ताय दीयताम् ॥१२७॥

इति शतकोटिरामचरितांतर्गते श्रीमदानंदरामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये मनोहरकाण्डे
सर्वेषां वेदादीनां फलश्रुतिर्नामाष्टमः सर्गः ॥ ८ ॥

नवमः सर्गः

(रामकी विशेषकालीन पूजा)

विष्णुदास उवाच

गुरोऽन्यद्रामचन्द्रस्य विशेषेण च पूजनम् । यस्मिन्काले प्रकर्तव्यं तं कालं कथयस्व माम् ॥ १ ॥

श्रीरामदास उवाच

शृणु शिष्य प्रवक्ष्यामि कालं पुण्यतमं शुभम् । वदामि रामचन्द्रस्य पूजनार्थं विशेषतः ॥ २ ॥
माघस्य शुक्लपक्षस्य या पुण्या पञ्चमी तिथिः । पुण्या श्रीपञ्चमीनाम्नी सा ख्याताऽस्ति जगत्त्रये॥३॥
तदारभ्य सार्धमासद्वयं रामं महोत्सवैः । पूजयेत्पञ्चमीं यावद्वैशाखे कृष्णपक्षजाम् ॥ ४ ॥
माघकृष्णचतुर्थ्याश्च नवमी मधुशुक्लजा । यावत्तावत्फलाहारी चैकाशीति दिनानि हि ॥ ५ ॥
सीतारामस्य नित्यं हि केचित्कुर्वन्ति पूजनम् । पौर्णिमांताः स्मृताश्चात्र मासाः सर्वत्र भो द्विज ॥ ६ ॥
प्रत्यहं वाहनारूढं कृत्वा रामं महोत्सवैः । भेरीदुन्दुभिनिर्घोषैर्महावाद्यपुरःसरैः ॥ ७ ॥

भी कठिन है ॥ १२१ ॥ यह सब होते हुए भी तत्त्वज्ञानके अनुसार इसपर विचार करना ही चाहिए । जो मनुष्य अधिकारी होता हुआ भी ज्ञानके लिए प्रयत्न नही करता, वह पशुयोनिमें जन्म पाता है । ज्ञान अथवा अध्ययनसे विप्रका पुण्य बढ़ता है ॥ १२२ ॥ १२३ ॥ हे अनघ ! तुमने जो कुछ पूछा, मैने उसे संक्षेपमें कह सुनाया । लोगोंको चाहिए कि इसीके अनुसार पाप और पुण्यका निर्णय कर लिया करें ॥ १२४ ॥ पुण्य और पाप ये दोनों बहुत प्रकारके हैं । पण्डितोंने समय-समयपर पापके प्रायश्चित्त बतलाये हैं ॥ १२५ ॥ लोगोंको चाहिए, कि उनको अपनी बुद्धिसे अच्छी तरह विचारकर करें । सब धर्मोंका सार एवं रहस्य मैने तुम्हारे आगे कह सुनाया । इसे यत्नके साथ ग्रहण करना चाहिए । इसे भक्तिविहीन प्राणीको न देकर उसे देना चाहिए जो शुश्रूषु, साधु एवं रामभक्त हो ॥ १२६ ॥ १२७ ॥ इति श्रीशतकोटिरामचरितांतर्गतश्रीमदानन्द-रामायणे पं० रामतेजपाण्डेयकृत 'ज्योत्स्ना' भाषाटीकासहिते मनोहरकाण्डे अष्टमः सर्गः ॥ ८ ॥

श्रीविष्णुदासने कहा—हे गुरो ! रामचन्द्रजीका विशेष पूजन किस समय करना चाहिए । वह समय आप मुझे बतलाइये ॥ १ ॥ श्रीरामदासने कहा—हे शिष्य ! सुनो, मैं तुम्हें रामकी पूजाका परम पुनीत समय बतलाता हूँ । रामचन्द्रजीका पूजन करनेके लिये वह समय बहुत ही उपयोगी होता है । माघमासके शुक्लपक्षकी पञ्चमी तिथि बड़ी ही पवित्र तिथि है । श्रीपञ्चमी उसका नाम है । इसी नामसे वह तीनों लोकमें विख्यात है ॥ २ ॥ ३ ॥ तबसे लेकर जबतक वैशाखके कृष्णपक्षकी पञ्चमी न आ जाय अर्थात् ढाई महीनेतक महान् उत्सवोंके साथ रामचन्द्रजीका पूजन करे ॥ ४ ॥ माघके कृष्णपक्षकी चतुर्थीसे चैत्रके शुक्लपक्षकी नवमी तक अर्थात् इक्यासी दिन केवल फलाहार करके रहे ॥ ५ ॥ जो लोग नित्य सीतारामका पूजन करते हैं, उनके लिए पूर्णिमान्त ही माना जाता है ॥ ६ ॥ प्रतिदिन वाहनपर बैठे हुए रामको भेरी-दुन्दुभी आदि बाजे-गाजे, वेश्याओंके नृत्य, छत्र, चमर, तोरण, विविध प्रकारकी पुष्पवर्षा, नाना प्रकारके स्तोत्र-पाठ, तरह-तरहके सुगन्धित

वारस्त्रीणां नृत्यगीतैश्छत्रचामरतोरणैः । नानाकुसुमवर्षाद्यैर्नानास्तोत्रादिपाठनैः ॥८॥
नानापरिमलद्रव्याञ्जलीनां मोचनादिभिः । नानामांगल्यवस्तूनामंजलीभिः सुशोभनैः ॥९॥
नानाकुसुमरंगाणां तैलानां च परस्परम् । रामं च वारनार्यश्च जलयन्त्रैः करे धृतैः ॥१०॥
मुहुर्मुहुः सिंचनाद्यैस्तथा स्त्रीणां सुगायनैः । द्विजानां वेदघोषैश्च धूपैर्नीराजनादिभिः ॥११॥
सहकारारामध्ये नीत्वैवं परमोत्सवैः । सहकारवृक्षबद्धदोलके तं निवेशयेत् ॥१२॥
नागेन वा पुष्पकेण शेषयानेन वाजिना । रथेन गरुडेनापि तथा सिंहासनेन च ॥१३॥
तथा शिविकया वापि वायुपुत्रेण वा तथा । यानैर्नवभिरेतैश्च सदा नेयो रघूत्तमः ॥१४॥
आम्रवृक्षाराममध्ये वल्लीपुष्पनगान्विते । अवनिं चन्दनैर्लिप्त्वा विकीर्य कुसुमानि च ॥१५॥
आच्छाद्य नानावस्त्रैश्च शोभनीयाऽवनिः शुभा । हेमसिंहासनस्यैव कृत्वा दोलकमुत्तमम् ॥१६॥
चूतवृक्षस्य शाखायां तं बद्ध्वा शृंखलादिभिः । तत्र श्रीरामतोभद्रे रामचन्द्रं प्रपूजयेत् ॥१७॥
नानानवविधैः पुष्पैः षोडशैरुपचारकैः । संपूज्य सीतया बंधुसुग्रीवाद्यैः समन्वितम् ॥१८॥
आंदोलयेद्दोलकं तं शिशुबालकवच्छनैः । नर्तितव्या वारवेश्यास्तदाऽग्रे शतशो मुदा ॥१९॥
गायनीया गायकाश्च नर्तितव्या नटादयः । वादनीयानि वाद्यानि ज्वालनीयाः सुधूपकाः ॥२०॥
वीजनीयश्चामराद्यैः सीतया रघुनन्दनः । तद्दासैः कीर्तनान्येव कारयित्वा महोत्सवैः ॥२१॥
पुनः पूज्य पूर्ववच्च समानीतो गृहं प्रति । सपूजनीयः श्रीरामः कुंभदीपार्तिकादिभिः ॥२२॥
एवं नित्यं सार्धमासद्वयं रामं प्रपूजयेत् । चूतवृक्षतले नीत्वा पूजयेच्च सविस्तरम् ॥२३॥
यदा रामश्च सीता च वहिर्नेया निजगृहात् । तदा तयोर्नयनाधः कस्तूर्यंगुलिनाऽसिताः ॥२४॥
देयाश्च बिंदवो यत्नात्परदुर्दृष्टिनाशनाः । एवं दोलापूजनं च शिष्य ते कथितं मया ॥२५॥
विशेषं शृणु तत्रापि कथ्यते यो मयाऽधुना । वसंतपूजनात्पूर्वदिवसे गणनायकम् ॥२६॥
माघशुक्लचतुर्थ्यां हि पूजयेद्विघ्ननाशनम् । माघशुक्लचतुर्थ्यां तु नक्तव्रतपरायणः ॥२७॥

द्रव्योंका अंजलीदान, विविध प्रकारके पुष्पोंके रङ्गों तथा तैलोंसे परस्पर वेश्याओंके पिचकारी छोड़ने, स्त्रियोंके सुन्दर गायन, ब्राह्मणोंके वेदघोष, धूप, नीराजन आदि करता हुआ आमके बगीचेमें ले जाय और वहां भगवानको आम्रवृक्षमे पड़े हिंडोलेपर बिठाले ॥ ७—१२ ॥ हाथीसे, पुष्पकसे, शेषकी सवारीसे, घोड़ेसे, रथसे, गरुडसे, सिंहासनसे, शिबिका द्वारा तथा वायुपुत्र द्वारा, इन नौ सवारियोंपर रामको ले जाना चाहिए ॥ १३ ॥ १४ ॥ आम्रवृक्षके बगीचे जिसमें कि बल्लरियों तथा पुष्पोंके वृक्ष लगे हों, पृथ्वीको चन्दनसे लीपकर फूल बिखेरे ॥ १५ ॥ नाना प्रकारके वस्त्रोंसे ढांककर उस पृथ्वीका शृंगार करे । सुवर्णका सिंहासन बनाकर शृंखला आदि-के द्वारा आमके वृक्षमें झूला डालकर रामको बिठाले और सर्वतोभद्र बनाकर उनकी पूजा करे ॥ १६ ॥ १७ ॥ तदनन्तर विविध तथा नौ प्रकारके फूलों एवं षोडश उपचारोंसे सीता, बन्धु तथा सुग्रीव आदि मित्रोंके साथ भगवान्‌का पूजन करके बच्चोंकी तरह उस झूलेको धीरे-धीरे रस्सी खींचकर झुलाये । उनके आगे सैंकड़ों वेश्यायें नचायें, गायकोंसे गाने गवाये, नटोंसे नृत्य कराये, विविध प्रकारके वाजे बजवाये और नाना प्रकारके धूप-दीप आदि जलाये ॥ १८–२० ॥ सीता तथा रामपर चमर आदि हांके और रामभक्तोंको बुलाकर कीर्तन आदि कराये ॥ २१ ॥ इसके बाद पूर्वोक्त विधिके अनुसार फिर पूजन करके रामचन्द्रजीको घरपर ले आये । घर पहुंचनेके बाद भी कलश, दीप तथा आरती आदिसे रामकी पूजा करे ॥ २२ ॥ इस तरह प्रतिदिन ढाई महीने तक आम्रवृक्षके नीचे भगवान् रामका पूजन करे ॥ २३ ॥ जब राम और सीताको घरसे बाहर जाना हो तो उनकी आंखोंके नीचे कस्तूरीकी काली बिन्दी लगा दे ॥ २४ ॥ इसको लगानेसे लोगोंकी दुर्दृष्टि उनपर नहीं पड़ेगी । हे शिष्य ! इस प्रकार मैंने तुम्हें दोलापूजनका प्रकार बतलाया ॥ २५ ॥ इसमें भी जो

ये ढुंढिं पूजयिष्यंति तेऽर्च्याः स्युस्सुरद्रुहाम् । माघमासे चतुर्थ्यां तु तस्मिन्काल उपोषितः ॥२८॥
अर्चयित्वा विघ्नराजं जागरं तत्र कारयेत् । चतुर्थी कुन्दनाम्नीयं कुन्दपुष्पैः प्रपूजयेत् ॥२९॥
माघशुक्लपंचमी सा ज्ञेया श्रीपंचमी शुभा । तस्यां तिथौ रमानाथं रामचन्द्रं श्रियाऽर्चयेत् ॥३०॥
माघशुक्लचतुर्थ्यां तु वरमाराध्य च श्रिया । पञ्चम्यां कुन्दकुसुमैः पूजां कुर्यात्समृद्धये ॥३१॥
नीत्वा रामं चूतवृक्षतले दोलकसंस्थितम् । सीतारामं पूजयेच्च गेहे वाऽथ प्रपूजयेत् ॥३२॥
प्रवृत्ते मधुमासे तु प्रतिपद्युदिते रवौ । कृत्वा चावश्यकार्याणि संतर्प्य पितृदेवताः ॥३३॥
वंदयेद्धोलिकाभूमिं सर्वदुःखोपशांतये । वंदिताऽसि सुरेंद्रेण ब्रह्मणा शंकरेण च ॥३४॥
अतस्त्वं पाहि मां देवि भूते भूतिप्रदा भव । चैत्रे मासि महापुण्ये पुण्ये तु प्रतिपद्दिने ॥३५॥
यस्तत्र श्वपचं स्पृष्ट्वा स्नानं कुर्यान्नरोत्तमः । न तस्य दुरितं किंचिन्नाधयो व्याधयो नृप ॥३६॥

वृत्ते तुषारसमये सितपञ्चदश्याः प्रातर्वसंतसमये समुपस्थिते च ।
संप्राश्य चूतकुसुमं सह चंदनेन सत्यं हि विप्रपुरुषोऽथ समाः सुखी स्यात् ॥३७॥

चूतमग्रं वसंतस्य माकंद कुसुमं तव । सचन्दनं पिबाम्यद्य सर्वकामार्थसिद्धये ॥३८॥
पञ्चम्यां माघमासेऽपि चूतपुष्पं सचन्दनम् । प्राशनीयं नरैर्भक्त्या कलकंठो भविष्यति ॥३९॥
चूतपुष्पप्राशनेन कोकिलास्वरवत्स्वरः । भविष्यति मानवानां कलकंठो मनोरमः ॥४०॥
सीतारामं चूतपुष्पैस्तथा कोमलपल्लवैः । पूजयेत्प्रत्यहं भक्त्या दोलकस्थं महोत्सवैः ॥४१॥
चैत्रकृष्णप्रतिपदि चूतपुष्पं सचन्दनम् । पीत्वा महोत्सवेनैव सीतारामं प्रपूजयेत् ॥४२॥

विशेष बातें हैं, उन्हें बतला रहा हूँ। वसन्तपूजासे एक दिन पहले गणेशजीका पूजन करे ॥ २५ ॥ २६ ॥ माघशुक्ल चतुर्थीको गणपतिका पूजन तथा उपवास करना चाहिए ॥ २७ ॥ इस तरह जो व्रत और गणपतिका पूजन करता है, वह प्राणी देवताओं तथा असुरोंका भी पूजनीय हो जाता है। इसलिए लोगोंको चाहिए कि माघशुक्लकी चतुर्थीको उपवास करके गणेशजीका पूजन और रात्रि भर जागरण करें। इसका नाम 'कुन्द'चतुर्थी है। इसलिये इस रोज कुन्दके फूलोंसे गणेशजीका पूजन करना चाहिये ॥ २८ ॥ २९ ॥ माघशुक्लकी पञ्चमीको 'श्रीपंचमी' समझकर उस रोज रामचन्द्रजीका श्रीसे पूजन करना चाहिए। इससे यह मतलब निकला कि माघ शुक्ल चतुर्थीको श्रीसे पूजन करके पञ्चमीको कुन्दके फूलोंसे अपनी समृद्धिके लिये पूजन करे ॥ ३० ॥ ३१ ॥ विशेष अच्छा तो यह हो कि रामचन्द्रजीको आम्रवृक्षके नीचे ले जाय और झूलेमें बिठाकर पूजन करे। यदि ऐसा न कर सके तो घर ही में पूजन कर ले ॥ ३२ ॥ चैत्रमास लगते ही प्रतिपदाको सूर्योदयके समय आवश्यक कामोंसे निबटकर पितरोंका तर्पण करे और सब प्रकारके दुःखकी शान्तिके निमित्त होलिकाभूमिकी वन्दना करता हुआ कहे-हे होलिके ! इन्द्र, ब्रह्मा तथा शङ्करजीने आपकी वन्दना की है ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ अतएव हे देवि ! तुम मेरे लिये भी विभूतिदायिनी बन जाओ। परम पवित्र चैत्रके महीनेमें पुष्य नक्षत्र और प्रतिपदाको जो मनुष्य श्वपच (डोम) को छूकर स्नान करता है, उसे न किसी प्रकारका पातक लगता है और न किसी प्रकारकी आधि-व्याधि ही सताती है ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ जाड़ेके दिन बीत जाने और वसन्त ऋतुके आनेपर चैत्रशुक्लपक्षकी पूर्णिमाको प्रातःकाल चन्दनके साथ आमका बौर चाटे तो हे विप्र ! वह प्राणी साल भर बड़े सुखसे रहता है ॥ ३७ ॥ बौरको चाटते समय 'चूतमग्रं वसन्तस्य' यह मंत्र पढ़ता जाय। जिसका मतलब यह है कि हे सहकार वृक्ष ! मैं वसन्तऋतुके अग्रिम भागमें तुम्हारा फूल चन्दनके साथ इस वास्ते चाट रहा हूँ कि मेरी सब अभिलषित कामनायें पूर्ण हो जायें ॥ ३८ ॥ माघमासकी वसन्त पञ्चमीको भी चन्दनके साथ बौर चाटना चाहिये। ऐसा करनेसे उसका स्वर कोकिलके समान मीठा हो जाता है ॥ ३९ ॥ उस दिन आम्रपुष्पका प्राशन करनेसे प्रत्येक मनुष्यका स्वर कोयलके स्वरकी तरह मीठा हो सकता है ॥ ४० ॥ प्रतिदिन सीता तथा रामको झूलेमें बिठाकर आमके बौर तथा कोमल पल्लवोंसे सोत्साह पूजन करे ॥ ४१ ॥ चैत्रकृष्णकी प्रतिपदाको चन्दनके साथ आमका

एवं तच्च दिनं नीत्वा ततश्चाग्रे दिनत्रयम् । नानोत्सववसुगीताद्यैर्नीत्वा चैव ततः परम् ॥४३॥
पञ्चम्यां चैत्रकृष्णेऽपि सौभाग्यद्रव्यमङ्गलैः । स्नात्वा केशरपालाशकृतरागैः शुभात्रहैः ॥ ४४॥
चित्रितानि हि वासांसि परिधाय नरोत्तमः । नानासुगंधतैलाद्यैरभ्यङ्गं तूर्यनिस्वनैः ॥४५॥
जानक्यै रामचन्द्राय कृत्वा तीर्थोदकैः शुभैः । केशरादिभी रागैश्च वासांसि चित्रितानि हि ॥४६॥
दत्त्वा रामाय सीतायै ततो भक्त्या प्रपूजयेत् । वसंतोद्भवपुष्पैश्च नानामंगलपूर्वकम् ॥४७॥
नानादानानि देयानि निजमांगल्यहेतवे । नानासुगंधद्रव्याणि गृहीत्वा च परस्परम् ॥४८॥
एकैकोपरि सिंचेच्च महामांगल्यदायकम् । मिष्टान्नैर्भोजयेद्विप्रान् स्वयं चापि सुहृज्जनैः ॥४९॥
भोक्तव्यं तु वसंततौं पञ्चम्यां मानवैः सुखम् । वसन्तपञ्चमीनाम्नी महापुण्यात्मिका सिता ॥५०॥
पक्षे पक्षे तु पञ्चम्यामारभ्य माघपञ्चमीम् । एवं रामं पूजयेच्च यावद्वैशाखपञ्चमी ॥५१॥
विशेषेण नवम्यां हि पक्षे पक्षे प्रपूजयेत् । अथवा माघशुक्लायां कृष्णायां चैत्रमासि वै ॥५२॥
कृष्णायां माधवे चापि पञ्चम्यां पूजयेन्नरः । महोत्साहेन श्रीरामो दोलकस्थोऽतियत्नतः ॥५३॥
ततश्चैत्रशुक्लपक्षे प्रतिपदि नरोत्तमैः । तैलाभ्यङ्गं स्वयं कृत्वा रामायाभ्यङ्गमाचरेत् ॥५४॥
पूजयेन्नवरात्रं तं यावत्सा नवमी तिथिः । वत्सरादौ वसंतादौ बलिराज्ये तथैव च ॥५५॥
तैलाभ्यङ्गमकुर्वाणो नरकं प्रतिपद्यते । अतीते फाल्गुने मासि प्राप्ते चैत्रे महोत्सवे ॥५६॥
पुण्येऽह्नि विप्रकथिते प्रपादानं समारभेत् । प्रपामुत्सर्जयेद्विद्वान्मंत्रेणानेन मानवः ॥५७॥
अरण्ये निर्जले देशे पथि ग्रामेऽथवा शुभा । प्रपेयं सर्वसामान्याद्भूतेभ्यः प्रतिपादिता ॥५८॥
अस्याः प्रदानात्पितरस्तृप्यन्तु हि पितामहाः । अनिवार्यं ततो देयं जलं मासचतुष्टयम् ॥५९॥
देवालयेषु लिंगानां देयास्तोयगलंतिकाः । प्रपां दातुमशक्तेन विशेषाद्धर्ममीप्सुना ॥६०॥

और पीकर सीतारामकी पूजा करनी चाहिए ॥ ४२ ॥ इस तरह वह दिन तथा आगेवाले तीन दिन विताकर आगेवाले तीन दिन विविध प्रकारके उत्सवोंके साथ विताये । तदनन्तर चैत्रकृष्ण पञ्चमीको मंगलमय सौभाग्यद्रव्योंके साथ स्नान करके केसरका उवटन लगाकर तरह-तरहके कपड़े पहने और नाना प्रकारके बाजोंके साथ सुगन्धित तेल आदि लगाकर जानकी तथा रामको पुनीत तीर्थजलसे स्नान कराके चित्र-विचित्र वस्त्र पहनाये । इसके अनन्तर वसन्तके पुष्पोंसे भक्तिपूर्वक पूजन करे और अपने कल्याणके निमित्त नाना प्रकारके दान दे । इसके अनन्तर नाना प्रकारके सुगन्धित द्रव्यमिश्रित जलोंको लेकर लोग परस्पर एक दूसरेपर छोड़ें । अच्छे-अच्छे पदार्थ ब्राह्मणोंको भोजन करायें और स्वयं भी अपने मित्रोंके साथ भोजन करें ॥ ४३-४९ ॥ यह वसन्त पञ्चमी बड़ी पवित्र तिथि है । इसलिये लोगोंको चाहिए कि इस रोज अच्छे-अच्छे पदार्थ बनाकर स्वयं खायें और अपने सगे-सम्वन्धियोंको भी खिलायें ॥ ५० ॥ इस तरह माघ मासके शुक्लपक्षकी पञ्चमीसे लेकर वैशाख पञ्चमी पर्यन्त रामकी पूजा करनी चाहिये ॥५१॥ विशेषकर प्रत्येक पक्षकी नवमीको पूजन करे अथवा माघके शुक्लपक्षमें, चैत्रके कृष्णपक्षमें और वैशाखके भी कृष्णपक्षमें पञ्चमीको रामचन्द्रजीको पालनेमें बैठाकर अतिप्रयत्न और उत्साहके साथ पूजन करे ॥ ५२ ॥ ५३ ॥ इसके वाद चैत्र शुक्लपक्षकी प्रतिपदाको स्वयं अपने शरीरमें उवटन लगाये ॥ ५४ ॥ इस तरह नौ रात्रि पर्यन्त अर्थात् जबतक नवमी तिथि न आये, तबतक संवत्सरके आदिमें जो प्राणी तेल-उवटन नहीं लगाता, वह नरकगामी होता है । फाल्गुनमासकी समाप्ति और चैत्रमासके प्रारम्भमें किसी पवित्र दिन अथवा ब्राह्मण जो दिन बतला दे उस रोजसे पौशाला बैठाकर जलदान प्रारम्भ करे। विद्वान् मनुष्यको चाहिए कि प्रपादानके प्रारम्भमें 'अरण्ये प्रान्तरे' इत्यादि मन्त्रका उच्चारण कर लिया करे ॥ ५५-५७ ॥ अरण्य, निर्जल प्रदेश, रास्ता अथवा ग्राममें सर्वसाधारणके लिए इस पौसरेकी स्थापना कर रहा हूँ । इसके दानसे मेरे पिता-पितामह आदि पितर तृप्त हों । इस प्रकार उसकी स्थापना करके चार महीने तक निरन्तर जलदान करे ॥ ५८ ॥ ५९ ॥ यदि कोई प्राणी प्रपादानका पुण्य प्राप्त करना चाहता हो और उसमें दान करनेकी सामर्थ्य न हो तो उसे चाहिए वह शिवालयमें शिवलिंगपर

प्रत्यहं धर्मघटको वस्त्रसंवेष्टिताननः । ब्राह्मणस्य गृहे देयः शीतामलजलः शुचिः ॥६१॥
तांबूलफलधान्यैश्च दक्षिणाभिः समन्वितः । एष धर्मघटो दत्तो ब्रह्मविष्णुशिवात्मकः ॥६२॥
अस्य प्रदानात्सफलाः सर्वे सन्तु मनोरथाः । अनेन विधिना यस्तु धर्मकुम्भं प्रयच्छति ॥६३॥
प्रपादानफलं सोऽपि प्राप्नोतीह न संशयः । तृतीयायां चैत्रशुक्ले सीतारामौ प्रपूजयेत् ॥६४॥
कुंकुमागुरुकर्पूरमणिवस्त्रसुगंधकैः । स्रग्गंधधूपदीपैश्च दमनेन विशेषतः ॥६५॥
आंदोलयेत्ततः सीतारामौ च दोलकस्थितौ । वसन्तमासमासाद्य तृतीयायां द्विजोत्तम ॥६६॥
सौभाग्याय तदा स्त्रीभिः सौभाग्यशयनव्रतम् । कार्यं महोत्सवेनैव सुखं पुत्रसुखेप्सुभिः ॥६७॥
विशेष चात्र वक्ष्यामि तृतीयायां द्विजोत्तम । तृतीयायां तु नारीभिः शुक्लपक्षे मधौ शुभे ॥६८॥
स्नात्वा मृण्मयदुर्गं हि कार्यं चित्रविचित्रितम् । तत्राष्टादश धान्यानि वापयेत्तदनंतरम् ॥६९॥
पुष्पवृक्षांश्छुभांस्तत्र वापयेत्सर्वतस्ततः । जलयंत्राणि कार्याणि चित्राण्यपि विलेखयेत् ॥७०॥
तूर्यद्वाराणि कार्याणि पूर्ववन्मंडपादिकम् । यथा श्रीरामपूजायामुक्तं तद्वत्प्रकारयेत् ॥७१॥
दुर्गोपरि घटं स्थाप्य सजलं पुष्पगुंफितम् । दोलकं च ततो न्यस्य घटपृष्ठे महच्छुभम् ॥७२॥
कांचनीं राजतीं मूर्तिं सीतायाः परिकल्प्य च । रामस्यापि शुभां मूर्तिं कृत्वा तौ पूजयेत्ततः ॥७३॥
दोलकोपरि संस्थाप्य मासमेकं प्रपूजयेत् । केचिच्छिष्यात्र पार्वत्या शिवेन च प्रपूजनम् ॥७४॥
वदन्ति मुनयस्तत्र निर्णयं शृणु वक्ष्यते । रामस्य हृदयं शंभुः श्रीरामो हृदयं स्मृतः ॥७५॥
शंकरस्य तथा गौरीहृदयं जानकी स्मृता । जानक्या हृदयं गौरी शिवा नैवांतरं कदा ॥७६॥
रामस्य च शिवस्यापि सीतागिरिजयोस्तथा । ये मानयंति वै भेदं तेषां वासस्तु रौरवे ॥७७॥
अतश्चैत्रतृतीयायां सीतारामौ प्रपूजयेत् । अशक्तौ ताम्रजे मूर्ती कार्ये वा काष्ठनिर्मिते ॥७८॥

घड़ा बाँधकर जलधारा देनेका प्रबन्ध करे ॥ ६० ॥ उन दिनों प्रतिदिन एक घड़ेमें ठण्ढा और निर्मल जल भरके उसका मुँह कपड़ेके बाँधकर ताम्बूल, फल, धान्य तथा दक्षिणा आदिके साथ किसी सुपात्र ब्राह्मणके घर दे आया करे। यह ब्रह्मा-विष्णु-शिवमय घटदान करनेसे मेरे सब मनोरथ सफल हो जायँ। दान करते समय यह कहता जाय। जो प्राणी इस रीतिसे धर्मकुम्भका दान करता है, उसे प्रपादानका फल प्राप्त होता है। इसमें कुछ संशय नहीं है ॥ ६१–६४ ॥ चैत्र शुक्लपक्षकी तृतीयाको कुमकुम, अगुरु, कर्पूर, मणि, वस्त्र तथा सुगन्धित मालाओं, विशेषकर दमनकके फूलसे सीतारामका पूजन करे ॥ ६५ ॥ इसके बाद झूलेपर बिठाल-कर झूला झुलावे। जिनको पुत्रसुख आदि पाना हो, वे स्त्रियाँ वसन्तमाससे लेकर तृतीया तक एक महान् उत्सवके साथ सौभाग्यशयन व्रत करें ॥ ६६ ॥ तृतीयामें कुछ विशेषतायें हैं, सो तुम्हें बतलाता हूँ। उस चैत्रशुक्लकी तृतीयाको स्नान करके मिट्टीका एक चित्र-विचित्र दुर्ग बनावे। उसमें अठारह प्रकारके धान्य बोये। वहाँपर अच्छे-अच्छे फूलोंके वृक्ष लगाये और उसमें नाना प्रकारके जलयन्त्रोंकी रचना करे ॥ ६७–७० ॥ उस दुर्गमें पहलेकी तरह मण्डप आदि बनावे। जैसा कि पहले श्रीरामपूजाके प्रकरणमें बतला आये हैं ॥ ७१ ॥ उस दुर्गके ऊपर जलसे पूर्ण और पुष्पसे गुम्फित घटका स्थापन करे। घटके पीछे झूला रखकर सुवर्ण या चाँदी-की सीताजीकी मूर्ति बनवाये और रामचन्द्रजीकी भी सुन्दर प्रतिमा बनवाकर दोनोंकी पूजा करे। इस प्रकार झूलेपर बिठालकर एक मास तक पूजन करे। हे शिष्य ! पार्वतीजीके साथ शिवजीकी पूजा करे, कुछ लोग ऐसा कहते हैं। अब इस विषयका निर्णय तुम्हें सुनाता हूँ ! रामचन्द्रजी शिवजीके हृदय हैं और शिवजी राम-के हृदय हैं ॥ ७२–७५ ॥ उसी तरह गौरी सीताजीका हृदय हैं और सीताजी गौरीका हृदय हैं। इन दोनोंमें कोई अन्तर नहीं है ॥ ७६ ॥ राम, शिव और सीता तथा गिरिजामें जो लोग किसी प्रकारका भेदभाव
43. मानते हैं, वे रौरव नरकमें वास करते हैं ॥ ७७ ॥ इसीलिये चैत्रकी तृतीयाको सीतारामका पूजन करना चाहिए। यदि सामर्थ्य न हो तो सुवर्ण या चाँदीकी प्रतिमा न बनवाकर ताम्र अथवा काष्ठकी बनवाये ॥ ७८ ॥

पाषाणनिर्मिते चापि मूर्ती कार्ये यथासुखम् । प्रत्यहं मंगलद्रव्यैः सर्वस्त्रीभिः प्रपूजयेत् ॥७९॥
मासमेकं तु नारीभिः स्नानं हि शीतलाभिधम् । अवश्यमेव कर्तव्यं सीतातीर्थे विशेषतः ॥८०॥
यत्र यत्र रामतीर्थं तस्य वामेऽवनीतले । सीतातीर्थं तत्र तत्र ज्ञेयं सीताकृतं शुभम् ॥८१॥
चैत्रशुक्लतृतीयायामारभ्याक्षय्यसंज्ञिता । यावत्तृतीया वैशाखशुक्ला तावन्निरन्तरम् ॥८२॥
शीतलासंज्ञकं स्नानं स्त्रीभिः सीतार्थमाचरेत् । चैत्रशुद्धतृतीयायामक्षय्यायां तथापि च ॥८३॥
तृतीयायां तु नारीभिस्तैलाभ्यंगं प्रकारयेत् । अन्यत्र दिवसे स्त्रीभिस्तैलाभ्यंगं न कारयेत् ॥८४॥
प्रत्यहं चोत्सवाः कार्याः सीतायाः पुरतः शुभाः । सुवासिनीपूजनं च कार्यं भक्त्या दिने दिने ॥८५॥
सुवासिनीनां देयानि वायनानि शुभानि च । निरंतरं पूजनार्थं यदि शक्तिर्न वर्त्तते ॥८६॥
तदा कार्यं चैकदिने सुभगानां प्रपूजनम् । सुवासिनीनां देयं हि प्रत्यहं भोजनं वरम् ॥८७॥
नानापक्वान्नसंयुक्तं घृतपायससंयुतम् । अलंकारांश्च वस्त्राणि कंचुक्यादि च यच्छुभम् ॥८८॥
भर्तुरायुष्यवृद्ध्यर्थं नारीभिर्देयमुत्तमम् । एवं स्नात्वा मासमात्रं शीतलास्नानमुत्तमम् ॥८९।
अक्षय्यायां तृतीयायां पूजयित्वा विशेषतः । त्रिंशत्सुवासिनीभ्यश्च दातव्यं भोजनादिकम् ॥९०॥
गुरुपत्नीं निजां पूज्य तस्यै सर्वं विसर्जयेत् । एवं स्त्रीणां व्रतं प्रोक्तं मासमात्रं द्विजोत्तम ॥९१।
अन्यद्विशेषं वक्ष्यामि तवाग्रे शृणु चोत्तमम् । अशोककलिकाभिस्तु चैत्रशुक्लाष्टमीदिने ॥९२॥
सीतारामौ पूजयित्वा महामंगलपूर्वकम् । अशोककलिकाश्चाष्टौ ये पिबंति पुनर्वसौ ॥९३॥
चैत्रे मासि सिताष्टम्यां न ते शोकमवाप्नुयुः । त्वामशोककराभीष्टं मधुमाससमुद्भवम् ॥९४॥
पिबामि शोकसंतप्तो मामशोकं सदा कुरु । पुनर्वसुबुधोपेतां चैत्रे मासि सिताष्टमीम् ॥९५॥

आवश्यकता पड़नेपर पत्थरकी प्रतिमा बनवायी जा सकती है। इस तरह मूर्ति बनवाकर सुखपूर्वक विविध मङ्गलमय द्रव्योंसे स्त्रियोंके साथ पूजन करे ॥ ७९ ॥ एक महीना स्त्रियोंके साथ शीतला नामक स्नान करे। यदि सीतातीर्थमें जाकर स्नान करे तो विशेष अच्छा है ॥ ८० ॥ जहाँ-जहाँ रामतीर्थ है, वहाँ-वहाँके रामके वामभागमें सीताका बनाया सीतातीर्थ भी विद्यमान रहता है ॥ ८१ ॥ चैत्र शुक्लपक्षकी तृतीया-से लेकर जबतक वैशाखकी अक्षय तृतीया न आये, तबतक निरन्तर सीतातीर्थमें जाकर शीतलास्नान करे ॥ ८२ ॥ स्त्रियोंको भी चाहिये कि सीताजीको प्रसन्न करनेके लिए स्नान करें। चैत्र शुक्लपक्षकी तृतीया तथा अक्षय तृतीयाको स्त्रियोंके साथ शरीरमें तेलकी मालिश करानी चाहिये। इसके सिवाय और किसी रोज स्त्रियोंके साथ तैल लगानेका विधान नहीं है ॥ ८३ ॥ ८४ ॥ प्रतिदिन स्त्रीके साथ-साथ सीताके समक्ष तरह-तरहके उत्सव करना चाहिए। नित्य भक्तिपूर्वक स्त्रियोंका पूजन करना भी श्रेयस्कर है ॥ ८५ ॥ सोहागिन स्त्रियोंको इन दिनोंमें बायन देना भी उचित है। यदि निरन्तर पूजन करनेकी सामर्थ्य न हो तो केवल एक ही दिन सोहागिन स्त्रियोंका पूजन करे और उन्हें विविध पक्वान्न युक्त अच्छा-अच्छा भोजन करायें ॥ ८६ ॥ ८७ ॥ नाना प्रकारके वस्त्र-आभूषण आदि भी वे स्त्रियाँ अवश्य दिया करें, जो अपने पतिकी आयुवृद्धि करना चाहती हों। इस तरह एक महीना शीतलास्नान करनेके बाद अक्षय तृतीयाको विशेष रीतिसे पूजन करके तीस सोहागिन स्त्रियोंको नाना प्रकारके भोजन-वस्त्र आदि दे ॥ ८८–९० ॥ इसके बाद अपने गुरुकी पत्नीका पूजन करके उसे भी वस्त्र-आभूषण आदि प्रदान करे। हे द्विजोत्तम! इस तरह मैंने तुम्हें स्त्रियोंके लिए एक मासका व्रत बतलाया ॥ ९१ ॥ अब मैं कुछ विशेष बातें बतलाता हूँ, सो सुनो। चैत्रशुक्ल अष्टमीको अशोककी कलियोंसे सीता और रामका पूजन करके जो लोग आठ अशोककी कली पीसकर पुन-र्वसु नामक नक्षत्रमें पीते हैं, उन्हें कभी किसी प्रकारका शोक नहीं करना पड़ता। उस कलीका पान करते समय "त्वामशोककराभीष्ट" इस मन्त्रका पाठ करते रहना चाहिये। मन्त्रका अर्थ इस प्रकार है—हे अशोक! तुम्हारा जैसा नाम है, उसी प्रकार तुम लोगोंको शोकरहित भी करते हो। इसी कारण चैत्रमासमें उत्पन्न तुम्हारी कलिकाको मैं पी रहा हूँ। तुम मुझे सदा शोकरहित किये रहना। जो लोग पुनर्वसु नक्षत्र तथा

प्रातस्तु विधिवत्स्नात्वा वाजपेयफलं लभेत् । चैत्रे नवम्यां प्राक्पक्षे दिवा पुण्ये पुनर्वसौ ॥९६॥
उदये गुरुगौरांश्वोः स्वोच्चस्थे ग्रहपंचके । मेषे पूषणि संप्राप्ते लग्ने कर्कटकाह्वये ॥९७॥
आविरासीन्महाविष्णुः कौसल्यायां परः पुमान् । तस्मिन्दिने तु कर्तव्यमुपवासव्रतं नरैः ॥९८॥
तत्र जागरणं कुर्याद्रघुनाथपुरे जनैः । चैत्रशुद्धा तु नवमी पुनर्वसुयुता यदि ॥९९॥
सैव मध्याह्नयोगेन महापुण्यतमा भवेत् । केवलापि सदोपोष्या नवमीशब्दसंग्रहात् ॥१००॥
तस्मात्सर्वात्मना सर्वैः कार्यं वै नवमीव्रतम् । श्रीरामनवमी प्रोक्ता कोटिसूर्यग्रहादिका ॥१०१॥
उपोषणं जागरणं पितॄनुद्दिश्य तर्पणम् । तस्मिन् दिने तु कर्तव्यं ब्रह्मप्राप्तिमभीप्सुभिः॥१०२॥
सर्वेषामप्ययं धर्मो भुक्तिमुक्त्यैकसाधनः । अशुचिर्वापि पापिष्ठः कृत्वेदं व्रतमुत्तमम् ॥१०३॥
पूज्यः स्यात्सर्वभूतानां यथा रामस्तथैव सः । यस्तु रामनवम्यां वै भुंक्ते मोहात्तु मूढधीः ॥१०४॥
कुंभीपाकेषु घोरेषु पच्यते नात्र संशयः । अकृत्वा रामनवमीव्रतं सर्वव्रतोत्तमम् ॥१०५॥
व्रतान्यन्यानि कुरुते न तेषां फलभाग्भवेत् । आचार्यं चैव संपूज्य भृणुयात्प्रार्थयेन्निशि ॥१०६॥
श्रीरामप्रतिमादानं करिष्येऽहं द्विजोत्तम ।भक्त्याचार्य भव प्रीतः श्रीरामोऽसि त्वमेव च॥१०७॥
स्वगृहे चोत्तमे देशे दानस्योज्ज्वलमंडपम् । शंखचक्रहनूमद्भिः प्राग्द्वारे समलंकृतम् ॥१०८॥
गरुत्मच्छार्ङ्गबाणैश्च दक्षिणे समलंकृतम् । गदाखड्गांगदैश्चैव पश्चिमे सुविभूषितम् ॥१०९॥
पद्मस्वस्तिकनीलैश्च कौबेरे समलंकृतम् । मध्ये हस्तचतुष्काढ्यं वेदिकायुक्तमायतम् ॥११०॥
अष्टोत्तरसहस्रैश्च रामलिंगात्मकं शुभम् । आस्तीर्य रामतोभद्रं वेदिकायामनुत्तमम् ॥१११॥
ततः संकल्पयेदेवं राममेव स्मरन् द्विज । अस्यां रामनवम्यां च रामाराधनतत्परः ॥११२॥

बुधवारसे युक्त चैत्रकृष्णकी अष्टमीको प्रातःकाल विधिपूर्वक स्नान करते हैं, उन्हें वाजपेय यज्ञका फल प्राप्त हाता है। चैत्रकृष्णकी नवमीको जब कि पुनर्वसु नक्षत्र था, उदित वृहस्पति तथा चन्द्रमाके साथ-साथ पाँच ग्रह उच्चस्थानमें वैठे थे, सूर्य मेष राशिपर थे, कर्कलग्न थी, उसी समय महाविष्णु भगवान् राम कौसल्यासे उत्पन्न हुए थे। इसलिए लोगोंको उस रोज उपवास करना चाहिए ॥ ९२–९८ ॥ लोगोंको उचित है कि इस तिथिको अयोध्यापुरीमें जाकर रात्रिभर जागरण करें। चैत्रशुक्लकी नवमी यदि पुनर्वसु नक्षत्रसे युक्त हो तो वह महापुण्यवती मानी जाती है। यदि पुनर्वसु नक्षत्रयुक्त नवमी न हो तो भी व्रत करना ही चाहिए। क्योंकि सर्वत्र नवमी इस शब्दका ही संग्रह किया गया है ॥ ६६ ॥ १०० ॥ इसलिए सब लोगोंको अच्छी तरह नवमीका व्रत करना चाहिए। यह रामनवमी करोड़ों सूर्यग्रहणसे भी अधिक पुनीत मानी जाती है ॥ १०१ ॥ जिन लोगोंको ब्रह्मप्राप्तिकी इच्छा हो, उन्हें चाहिए कि उस दिन उपवास, जागरण तथा पितरोंको तृप्त करनेके उद्देश्यसे तर्पण करें ॥ १०२ ॥ क्योंकि सब लोगोंके लिए यह धर्म भुक्ति और मुक्तिका साधक है। यदि कोई मनुष्य अपवित्र या पापी हो तो इस व्रतको करनेसे वह उसी प्रकार सब प्राणियोंका पूज्य हो जाता है, जैसे रामचन्द्रजी स्वयं सबके आराध्यदेव हैं। जो मूढ़ रामनवमीको भोजन करता है ॥ १०३ ॥ १०४ ॥ वह बहुत समय तक कुम्भीपाक आदि घोर नरकोंमें पड़कर सड़ता है। सब व्रतोंमें श्रेष्ठ इस रामनवमीका व्रत न करके जो प्राणी और-और व्रतोंको करता है, उसे वह व्रत करनेका फल नहीं मिलता। व्रतके दिन रात्रिको आचार्यकी पूजा करके प्रार्थना करे—हे द्विजोत्तम ! आज मैं भक्तिसे श्रीरामचन्द्रजीकी प्रतिमाका दान करूँगा। हे आचार्य ! आप मेरे ऊपर प्रसन्न हों ॥ १०५ ॥ १०६ ॥ १०७ ॥ तदनन्तर अपने घरके किसी उत्तम स्थानपर बढ़िया मण्डप बनावे। उसके पूर्वद्वारपर शंख-चक्र एवं हनुमान्जीकी स्थापना करे ॥ १०८ ॥ दक्षिण द्वारपर गरुड़, धनुष तथा बाणको स्थापित करे। उत्तर दिशामें कमल तथा स्वस्तिककी स्थापना करके उसे अलंकृत करे। बीचमें चार हाथकी लम्बी-चौड़ी वेदी बनावे। वेदीपर अष्टोत्तरसहस्र रामलिंगात्मक रामतोभद्रकी रचना करे ॥ १०९–१११ ॥ इसके अनन्तर हे द्विज ! श्रीरामचन्द्रजीका स्मरण करता हुआ संकल्प करे कि इस रामनवमीको श्रीरामचन्द्रजीकी आराधनामें तत्पर

उपोष्याष्टसु यामेषु पूजयित्वा यथाविधि । इमां स्वर्णमयीं रामप्रतिमां च प्रयत्नतः ॥११३॥
श्रीरामप्रीतये दास्ये रामभक्ताय धीमते । प्रीतो रामो हरत्वाशु पापानि सुबहूनि मे ॥११४॥
अनेकजन्मसंसिद्धान्यभ्यस्तानि महांति च । ततः स्वर्णमयीं रामप्रतिमां पलमानतः ॥११५॥
निर्मितां द्विभुजां दिव्यां वामांकस्थितजानकीम् । बिभ्रतीं दक्षिणकरे ज्ञानमुद्रां मनोरमाम् ॥११६॥
वामेनाधःकरेणाराद्देवीमालिंग्य संस्थिताम् । सिंहासने राजते च पलद्वयविनिर्मिते ॥११७॥
अशक्तो यो महानत्र स तु वित्तानुसारतः । पलेन वा तदर्धेन तदर्धार्धेन वा पुनः ॥११८॥
सौवर्णं राजतं वापि कारयेद्रघुनन्दनम् । पार्श्वे भरतशत्रुघ्नौ धृतछत्रकरावुभौ ॥११९॥
चापद्वयमसमायुक्तं लक्ष्मणं चापि कारयेत् । मातुरंकगतं राममिंद्रनीलसमप्रभम् ॥१२०॥
पञ्चामृतस्नानपूर्वं सम्पूज्य विधिवत्ततः । अशोककुसुमैर्युक्तमर्घ्यं दद्याद्विचक्षणः ॥१२१॥
दशाननवधार्थाय धर्मसंस्थापनाय च । राक्षसानां विनाशाय दैत्यानां निधनाय च ॥१२२॥
परित्राणाय साधूनां जातो रामः स्वयं हरिः । गृहाणार्घ्यं मया दत्तं भ्रातृभिः सहितोऽनघ ॥१२३॥
दिवैवं विधिवत्कृत्वा रात्रौ जागरणं चरेत् ।ततः प्रातः समुत्थाय स्नानसंध्यादिकाः क्रियाः।१२४॥
समाप्य विधिवद्रामं पूजयेद्विधिवन्मुने । ततो होमं प्रकुर्वीत मूलमंत्रेण मंत्रवित् ॥१२५॥
पूर्वोक्तमंडपे कुंडे स्थंडिले वा समाहितः । लौकिकाग्नौ विधानेन शतमष्टोत्तरं शनैः ॥१२६॥
साज्येन पायसेनैव स्मरन् राममनन्यधीः । ततो भक्त्या सुसंतोष्य ह्याचार्यं पूजयेद्द्विजः ॥१२७॥
ततो रामं स्मरन् दद्यादेवं मंत्रमुदीरयन् । इमां स्वर्णमयीं रामप्रतिमां समलंकृताम् ॥१२८॥
चित्रवस्त्रयुगच्छन्नां रामोऽहं राघवाय ते । श्रीरामप्रीतये दास्ये तुष्टो भवतु राघवः ॥१२९॥
इति दत्त्वा विधानेन दद्याद्वै दक्षिणां ध्रुवम् । ब्रह्महत्यादिपापेभ्यो मुच्यते नात्र संशयः ॥१३०॥

होकर मैं आठ प्रहरतक उपवास करके यह स्वर्णमयी प्रतिमा रामचन्द्रजीकी प्रसन्नताके लिये किसी बुद्धिमान् रामभक्तको दूँगा । इससे श्रीरामचन्द्रजी प्रसन्न हों और मेरे उन महापापोंको हर लें, जो मैंने अनेक जन्मोंके अभ्यासवश किये हों। तदनन्तर एक पल सुवर्णकी बनी रामकी प्रतिमा, जिसमें दो भुजाएँ बनी हों, वामभुजामें सीताजी और दाहिनी भुजामें ज्ञानमुद्रा विराजमान हो ॥ ११२-११६ ॥ वे बायें हाथसे देवीका आलिंगन किये दो पल चाँदीकी बनी चौकीपर बैठे हों ॥ ११७ ॥ जो प्राणी सर्वथा असमर्थ हो, वह अपने वित्तानुसार एक पल, आधा पल अथवा आधेके भी आधे पल सुवर्ण या चाँदीकी प्रतिमा बनवाये। रामके पास ही छत्र और चमर लिये भरत तथा शत्रुघ्न खड़े हों और दो धनुष धारण किये लक्ष्मणजीकी प्रतिमा बनावे। माताकी गोदमें विराजमान इन्द्रनीलमणिकी प्रभाके समान प्रभाशाली रामको पंचामृतसे स्नान कराकर विधिवत् पूजन करे और अशोक पुष्पयुक्त अर्घ्य प्रदान करे। अर्घ्य देते समय 'दशाननवधार्थाय' आदि मंत्र पढ़ता जाय । जिसका अर्थ इस प्रकार है—॥ ११८-१२१ ॥ रावणको मारने, धर्मका स्थापन, राक्षसोंका विनाश और साधुओंकी रक्षाके लिए स्वयं विष्णु भगवान्ने अवतार लिया था। सब भ्राताओंके साथ आप मेरे इस अर्घ्यको स्वीकार करिए ॥ १२२ ॥ १२३ ॥ यह सब विधि-विधान दिनको करके रात्रिभर जागरण करे । सवेरे उठकर स्नान-संध्या आदि क्रियायें करके विधिवत् पूजन करे। फिर मंत्रको जाननेवाला यजमान मूलमन्त्रसे होम करे ॥ १२४ ॥ १२५ ॥ यह हवनविधि पूर्वोक्त मण्डपमें अथवा स्थण्डिलमें किया जाय और लौकिक अग्निमें विधानपूर्वक एक सौ आठ आहुतियाँ धीरे-धीरे दी जायँ। इसकी सामग्रीमें घृत और खीरका रहना आवश्यक है। हवन करते समय अपने चित्तको इधर-उधर न दौड़ाकर रामका स्मरण करते रहना चाहिए ॥ १२६ ॥ १२७ ॥ तदनन्तर 'इमां स्वर्णमयीं' इस मन्त्रका उच्चारण करता हुआ प्रतिज्ञा करे कि सब तरहसे अलंकृत यह सुवर्णमयी रामकी प्रतिमा श्रीरामचन्द्रजीको प्रसन्न करनेके हेतु मैं दान करूँगा। इससे श्रीरामजी प्रसन्न हों ॥ १२८ ॥ १२९ ॥ इस

एवं शिष्य चैत्रमासे नवम्यां भूसुराय हि । दानं देयं राघवस्य रामसंतुष्टिहेतवे ॥१३१॥
अन्यद्विशेषं वक्ष्यामि चैत्रे मासि शृणुष्व तत् । चैत्रस्य शुक्लैकादश्यां दोलकस्थं रघूत्तमम् ॥१३२॥
पूजयेन्मानवो भक्त्या आम्रवृक्षतले स्थितम् । चैत्रमासस्य शुक्लायामेकादश्यां तु वैष्णवैः ॥१३३॥
आंदोलनीयो देवेशः सलक्ष्मीको महोत्सवैः । द्वादश्यां चैत्रमासस्य शुक्लायां दमनोत्सवः ॥१३४॥
बौधायनादिभि प्रोक्तः कर्तव्यः प्रतिवत्सरम् ।
ऊर्जे व्रतं मधौ दोला श्रावणे तंतुपूजनम् । चैत्रे च दमनारोपमकुर्वाणो व्रजत्यधः ॥१३५॥
वह्निर्विरिंचो गिरिजा गणेशः फणी विशाखो दिनकृन्महेशः ।
दुर्गाऽन्तको विश्वहरिः स्मरश्च शर्वः शशी वै तिथिषु प्रपूज्याः ॥१३६॥
अथ चैत्रपौर्णिमायां भक्त्या रामं प्रपूजयेत् । सीतया दोलकस्थं वै दमनेन महोत्सवैः ॥१३७॥
चैत्री चित्रायुता चेत्स्यात्तदा पुण्य महातिथिः । ज्ञेया सर्वाधिका सा हि स्नानदानजपादिषु ॥१३८॥
स्त्रीभिर्देयं चित्रवस्त्रं तस्याः सौभाग्यदायकम् । सीतारामौ चित्रवस्त्रैः पूजनीयौ महोत्सवैः ॥१३९॥
मंदे वार्के गुरौ वापि वारेष्वेतेषु चैत्रिका । तत्राश्वमेधजं पुण्यं स्नानश्राद्धादिभिर्लभेत् ॥१४०॥
संवत्सरकृताचार्यः साफल्यायाखिलान् सुरान् । दमनेनार्चयेच्चैत्र्यां विशेषेण रघूत्तमम् ॥१४१॥
चैत्रस्नानोद्यापनं च तिथौ तस्यां स्मृतं बुधैः ॥१४२॥
अथ वैशाखकृष्णायां पञ्चम्यां परमोत्सवैः । सीतारामौ प्रपूज्याथ दोलकस्थौ तु बंधुभिः ॥१४३॥
उद्यापनं तत्र कार्यं महाफलमभीप्सुना । वैशाखे कृष्णपक्षे तु चतुर्थ्यां समुपोष्य च ॥१४४॥

विधानसे दान देकर पृथ्वीकी दक्षिणा दे । ऐसा करनेसे प्राणी ब्रह्महत्या आदि पातकोंसे भी मुक्त हो जाता है। इसमें कोई संशय नहीं है ॥१३०॥ हे प्रिये ! इस प्रकार चैत्र मासकी नवमी तिथिको रामजीके प्रीत्यर्थ ब्राह्मणको दान दे ॥ १३१ ॥ चैत्रमासमें और कुछ विशेषतायें हैं, उन्हें कहता हूँ। चैत्रशुक्लपक्षकी एकादशीको झूलेमें बिठालकर आम्रवृक्षके नीचे रामकी पूजा करनी चाहिए ॥ १३२ ॥ १३३ ॥ तदनन्तर झूला झुलानेका विधान है। इसके बाद चैत्रशुक्ल द्वादशीको दमनोत्सव मानना चाहिए ॥ १३४ ॥ यह बौधायन आदि आचार्योंका मत है। ऐसा हर वर्ष करना चाहिए। कार्तिकमासमें व्रत, चैत्रमासमें दोलाविरोहण, चैत्रमें दमनारोपण और श्रावणमें तन्तुपूजन करना चाहिए। जो रामभक्त इस प्रकारके व्रत नहीं करता, उसकी अधोगति होती है ॥ १३५ ॥ अग्नि, ब्रह्मा, गिरिजा, गणेश, नागदेवता, कार्तिकेय, सूर्य, शिवजी, दुर्गा, यमराज, विश्वेदेव, विष्णुभगवान्, कामदेव, रुद्र और चन्द्र इन देवताओंका अपनी-अपनी तिथियोंपर पूजन करनेका विधान है। ऊपर गिनाये हुए सब देवता एक-एक तिथिके स्वामी हैं। जैसे—प्रतिपदाके अग्नि, द्वितीयाके ब्रह्मा, तृतीयाकी स्वामिनी गिरिजा, चतुर्थीके गणेश आदि ॥ १३६ ॥ चैत्रशुक्लपक्षकी पूर्णिमाको भक्तिपूर्वक सीता सहित रामको झूलेपर बिठालकर दमन नामक महोत्सवके साथ पूजन करना चाहिए ॥ १३७ ॥ यदि ऊपर बतायी हुई चैत्रकी पूर्णिमा चित्रा नक्षत्रसे युक्त हो तो उस पूर्णिमाको स्नान, दान और जप आदिमें महापुण्यदायिनी समझना चाहिए ॥ १३८ ॥ स्त्रियोंको चाहिए कि उस रोज तरह-तरहके वस्त्रदान दें। इससे उनके सौभाग्यकी वृद्धि होती है। उसी दिन महान् उत्सवके साथ सीता तथा रामकी पूजा करनी चाहिए ॥ १३९ ॥ शनिवार, रविवार अथवा गुरुवार इन वारोंमें यदि चैत्रकी पूर्णिमा पड़े तो इसमें स्नान-दान तथा श्राद्ध करनेसे अश्वमेध यज्ञका फल प्राप्त होता है ॥ १४० ॥ पूरे सालभरके लिए किसी विद्वान्को आचार्य बनाकर अपनी कामना सफल करनेके लिए समस्त देवताओंकी विशेषतः रामकी दमन नामक महोत्सवसे पूजा करनी चाहिए ॥ १४१ ॥ चैत्रस्नानका उद्यापन भी इसी तिथिको करना चाहिए। ऐसा विद्वानोंका कथन है ॥ १४२ ॥ उस तिथिको उद्यापन करनेसे महाफलकी प्राप्ति होती है। वैशाखकृष्ण चतुर्थीको उपवास करके रात्रिके समय पृथ्वीपर सोये। सबेरे किसी पवित्र स्थानमें मण्डप आदि बनाकर रामलिंगात्मक

निशायां च प्रकर्तव्यमधिवासनमुत्तमम् । शुचौ देशे मंडपादि कृत्वा पूर्वोक्तवच्छुभम् ॥१४५॥
रामलिंगात्मके भद्रे धान्यराशौ महत्तमम् । सजलं कलशं स्थाप्य ताम्रपात्रं तु तन्मुखे ॥१४६॥
स्थाप्य वस्त्रे दोलकस्थं रामचन्द्रं प्रपूजयेत् । हैमो वा राजतो वापि दोलकस्त्रिपलैः स्मृतः ॥१४७॥
हैमी पलमिता राममूर्तिः कार्या मनोरमा । तावन्मिता रुक्ममूर्तिः सीतायाश्चापि कारयेत् ॥१४८॥
नानोपचारैः संपूज्य रात्रौ जागरणं चरेत् । नृत्यगीतमंगलाद्यैः पुराणश्रवणादिभिः ॥१४९॥
प्रभाते तं पुनः पूज्य रामं सीतासमन्वितम् । सहस्रं हवनं कार्यं तिलाज्यपायसादिना ॥१५०॥
तर्पणं राममंत्रेण क्षीरेणैव प्रकारयेत् । ततो गुरुं सपत्नीकं संपूज्य वसनादिभिः ॥१५१॥
रामाय प्रार्थयेद्भक्त्या प्रबद्धकरसंपुटः । सार्द्धमासद्वयं राम वसंते तव पूजनम् ॥१५२॥
दोलकस्थस्य जानक्या यथाशक्त्या मया कृतम् । प्रसीदानेन श्रीराम मामुद्धर भवार्णवात् ॥१५३॥
एवं संप्रार्थ्य श्रीरामं तामर्चां मूर्तिसंयुताम् । दद्यात्स्वगुरवे भक्त्या तं प्रणम्य पुनः पुनः ॥१५४॥
पंचसप्ततियुग्मानि ह्यष्टात्रिंशन्मितानि वा । तदर्धान्यथवा शक्त्या भोजयेद्गुरुणा सुखम् ॥१५५॥
ततः स्वयं सुहृन्मित्रैः कार्यं वै भोजनं सुखम् । अशक्तोऽपि यथाशक्त्या व्रतमेतत्तु सर्वदा ॥१५६॥
करोतु रामतुष्ट्यर्थं वसंतपूजनं वरम् । एवं शिष्य त्वया पृष्टं विशेषेण च पूजनम् ॥१५७॥
सीतारामस्य तत्प्रोक्तं दोलकस्थस्य ते मया ।

विष्णुदास उवाच

गुरो ते प्रष्टुमिच्छामि यत्त्वं वद सविस्तरात् ॥१५८॥
कया कामनया कस्य कार्यं पूजनमुत्तमम् । तत्सर्वं कथयस्वाद्य मयि कृत्वा परां कृपाम् । १५९॥

श्रीरामदास उवाच

सम्यक् पृष्टं त्वया वत्स सावधानमनाः शृणु । ब्रह्मवर्चसकामस्तु यजेत ब्रह्मणस्पतिम् ॥१६०॥
इंद्रमिंद्रियकामस्तु प्रजाकामः प्रजापतीन् । देवीं मायां तु श्रीकामस्तेजस्कामो विभावसुम् ॥१६१॥

भद्रमें एक बड़ा भारी धान्यराशिका स्थापन करके उसपर सजल कलश रखे और उनके सामने एक ताम्र-पात्र धरे। फिर झूलेपर कपड़ा बिछाकर रामजीको बिठाले और उनकी पूजा करे। वह झूला तीन पल सुवर्ण, चाँदी या ताम्रका बनावे। एक पल सुवर्णसे रामकी प्रतिमा बनावे। इसी वजनके सुवर्णसे सीताकी प्रतिमा भी बनानी चाहिए ॥ १४३-१४८ ॥ इसके अनन्तर नाना प्रकारके उपचारोंसे पूजन करके रातभर जागरण और उस समय नृत्य-गीत आदि मङ्गलमय कार्य करे ॥ १४९ ॥ सबेरे फिर रामकी पूजा करके तिल, घी तथा खीर आदिसे सहस्र हवन और राममन्त्रका उच्चारण करता हुआ दूधसे तर्पण करे। तत्पश्चात् सपत्नीक गुरुकी वस्त्र-आभरण आदिसे पूजा करे ॥ १५० ॥ १५१ ॥ इसके बाद हाथ जोड़कर रामकी प्रार्थना करता हुआ कहे—हे राम ! मैंने ढाई महीनेतक वसन्त ऋतुमें सीताके साथ आपकी पूजा की है। मेरे इस कार्यसे आप प्रसन्न हों और भवसागरसे मेरा उद्धार करें ॥ १५२ ॥ १५३ ॥ इस तरह प्रार्थना करनेके अनन्तर प्रतिमा समेत वह पुजापा अपने गुरुको दे दे और उन्हें बार-बार प्रणाम करे ॥ १५४ ॥ इसके बाद डेढ़ सौ, अड़तीस अथवा अपनी शक्तिके अनुसार इससे अर्धसंख्यक ब्राह्मणोंको भोजन करावे ॥ १५५ ॥ इसके पश्चात् अपने सम्बन्धियों और मित्रोंके साथ साथ स्वयं भी भोजन करे । कोई प्राणी यदि अशक्त हो तो उसे अपनी शक्तिके अनुसार ही यह व्रत और वसन्तऋतुमें राम-चन्द्रजीका पूजन करना चाहिए । हे शिष्य ! तुमने मुझसे रामकी पूजाके विषयमें जो प्रश्न किया था । सो मैंने दोलस्थ राम तथा सीताके पूजनके विषयकी सब बातें कह सुनायीं । विष्णुदासने कहा—हे गुरो ! मैं आपसे कुछ और पूछना चाहता हूँ । वह आप विस्तारपूर्वक हमें बतलाइए । यदि आप ऐसा करेंगे तो बड़ी कृपा होगी । दया करके आप हमें यह बतलाइए कि किस कामनासे किस देवताका पूजन करना चाहिए ॥ १५६-१५९ ॥ श्रीरामदासने कहा—हे वत्स ! तुमने बहुत अच्छा प्रश्न किया है । सावधान मनसे सुनो ! जिसको अपना ब्रह्मतेज बढ़ाना हो, उसे ब्रह्मणस्पतिका पूजन करना चाहिए ॥ १६० ॥ इन्द्रियकी कोई

वसुकामो वसून् रुद्रान्वीर्यकामोऽथ वीर्यवान् । अन्नादिकामस्त्वदितिं स्वर्गकामोऽदितेःसुतान् ॥१६२॥
विश्वान् देवान् राज्यकामः साध्यान्संसाधको विशाम् ।
आयुष्कामोऽश्विनौ देवौ पुष्टिकाम इलां यजेत् ॥१६३॥
प्रतिष्ठाकामः पुरुषो रोदसी लोकमातरौ । रूपाभिकामो गंधर्वान् स्त्रीकामोऽप्सर उर्वशीम् ॥१६४॥
आधिपत्यकामः सर्वेषां यजेत परमेष्ठिनम् । यज्ञं यजेद्यशस्कामः कोशकामः प्रचेतसम् ॥१६५॥
विद्याकामस्तु गिरिशं दांपत्यार्थमुमां सतीम् । धर्मार्थ उत्तमश्लोकं तंतुं तन्वन् पितॄन्यजेत् ॥१६६॥
रक्षाकामः पुण्यजनानोजस्कामो मरुद्गणान् ।राज्यकामो मनून्देवान् निर्ऋतिं त्वभिचरयन्जेत् ॥१६७॥
कामकामो यजेत्सोममकामः पुरुषं परम् । अकामः सर्वकामो वा मोक्षकाम उदारधीः ॥१६८॥
तीव्रेण भक्तियोगेन यजेत रघुनन्दनम् । रामेण सदृशो देवो न भूतो न भविष्यति ॥१६९॥
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन रामचन्द्रं प्रपूजयेत् । तस्याद्यवर्णसामर्थ्याद्यद्वस्त्वत्र रादिकम् ॥१७०॥
परं श्रेष्ठत्वमापन्नं विस्तारेण वदाम्यहम् । रुक्मं रत्नं रथो रामा राक्षसो रजतं रजः ॥१७१॥
रक्षा रणो रमा रक्तं रजको रागरामठौ । राजा रोगो रवी रात्री राज्यं रजस्वला तथा ॥१७२॥
एवमादीन्यनेकानि श्रेष्ठान्येवात्र भो द्विज । रुक्मं पीतं महार्हं च रत्नं रम्यं सुदुर्लभम् ॥१७३॥
रथो यानं वरिष्ठं च रामा यस्या इदं जगत् । राक्षसो देवभयदो रजतं तत्सुदुर्लभम् ॥१७४॥
रजः साक्षात्परमाणुर्नित्यः सोऽत्र प्रकीर्त्यते । रक्षा रक्षाकरी ज्ञेया रणो जयकरः स्मृतः ॥१७५॥

कामना पूर्ण करनेकी अभिलाषा हो तो इन्द्रकी, सन्तानकी इच्छा हो तो प्रजापतिकी, श्रीवृद्धिकी इच्छा हो तो मायादेवीकी, तेजोवृद्धिकी अभिलाषा हो तो सूर्यभगवान्की, धनवृद्धिकी इच्छा हो तो आठों वसुओंकी, पराक्रमकी अभिलाषा हो तो रुद्रभगवान्की, अन्न आदिकी इच्छा हो तो अदितिकी, स्वर्णकी इच्छा हो तो अदितिके पुत्रों अर्थात् देवताओंको, ॥ १६१ ॥ १६२ ॥ राज्यकी इच्छा हो तो इलाकी, प्रतिष्ठा चाहनेवालेको लोकमाताओंकी, सौन्दर्यकी अभिलाषा हो तो गन्धर्वोंकी, स्त्रीकी कामना हो तो उर्वशी आदि अप्सराओंकी और आधिपत्यकी इच्छा हो तो सब देवताओंकी पूजा करे। जिसे यश पानेकी इच्छा हो, उसे यज्ञ करना चाहिये। कोशकी इच्छा हो तो वरुणकी, विद्याकी इच्छा हो तो शिवकी, दाम्पत्यसुखकी इच्छा हो तो पार्वती जीकी, धर्मकी अभिलाषा हो तो उत्तमश्लोक (विष्णु भगवान्) की और वंशविस्तारकी इच्छा हो तो पितरोंकी पूजा करनी चाहिए ॥ १६३–१६६ ॥ आत्मरक्षाकी इच्छा हो तो पुण्यजनोंकी, तेजोवृद्धिकी अभिलाषा हो तो मरुद्गणोंकी, राज्यकी इच्छा हो तो चौदह मनुओंकी, आभिचारिकी क्रिया करनी हो तो राक्षसोंकी, मनोऽभिलषित काम-पूर्तिकी इच्छा हो तो चन्द्रमाकी, निष्काम होनेकी अभिलाषा हो तो परम पुरुष परमेश्वरकी, अकाम या सकामभावसे मोक्षकी कामना रखता हो तो उसे चाहिए कि तीव्र भक्तियोगसे रघुनन्दन रामचन्द्रकी पूजा करे। रामचन्द्रजीके समान न कोई देवता हुआ है और न हो न होगा ॥ १६७–१६९ ॥ अतएव हर तरह प्रयत्न करके रामचन्द्रजी पूजा करे। उनके नामके आदिम वर्ण 'र' की सामर्थ्यसे संसारमें जितनी वस्तुयें रकारादि हैं, वे सब अतिशय श्रेष्ठ मानी गयी हैं। उन वस्तुओंको अब मैं विस्तारपूर्वक बतला रहा हूँ। जैसे–रुक्म (सुवर्ण), रत्न, रथ, रामा (स्त्री), राक्षस (विभीषण आदि), रजत (चाँदी), रज (धूलि), रक्षा, रण, रमा (लक्ष्मी), रक्त, रजक (धोबी), राग, रामठ (हींग), राजा, रोग, रवि (सूर्य) रात्रि, राज्य, रजस्वला आदि अनेक नाम श्रेष्ठ माने गये हैं। ऊपर बताया हुआ रुक्म (सुवर्ण) पीतवर्णकी बहुमूल्य धातु है। रत्न देखनेमें सुन्दर लगता है और कठिनाईसे प्राप्त होता है। रथ एक श्रेष्ठ सवारी है। रामा (स्त्री) वह वस्तु है, जिससे जगत् उत्पन्न हुआ है। राक्षस ऐसे भयानक होते हैं, जिनसे देवता भी भयभीत रहा करते हैं। रजत (चाँदी) भी एक दुर्लभ वस्तु है। रज (धूलि) साक्षात् परमाणु और नित्य है। रक्षा रक्षाकारी है। रण (संग्राम) विजयदायक होता है ॥ १७०–१७५ ॥

रमा सा दुर्लभा त्वत्र रक्तेऽस्ति रक्तता वरा । रजको निर्मलकरो रागः प्रीतिः सुखप्रदा ॥१७६॥
रामठः शुद्धिदोऽन्नस्य रुचिदश्च प्रकीर्तितः । राज्यं सौख्यकरं श्रेष्ठं पुत्रदा सा रजस्वला ॥१७७॥
एवं यद्यद्रकाराद्यं तत्तच्छ्रेष्ठं भुवि स्मृतम् । रामाद्यवर्णसामर्थ्याद्विष्णुदास मयेरितम् ॥१७८॥
अन्यच्छिष्य शृणुष्व त्वं यन्मया कथ्यते तव । यथा प्रोक्ता रामनाममुद्रा तव मया शुभा ॥१७९॥
तथा नान्यस्य देवस्य नाममुद्रा प्रजायते । रामनाम विना नाममुद्रिकायां स्फुटाक्षरम् ॥१८०॥
न कदा दृश्यते स्पष्टमेतच्च महदद्भुतम् । अत्र प्रभावो रामस्य त्वं विद्धि द्विजपुङ्गव ॥१८१॥
अतएव रामनाम काश्यां विश्वेश्वरः सदा । स्वयं जप्त्वोपदिशति जंतूनां मुक्तिहेतवे ॥१८२॥
सं ाराणर्वसंमग्नं नरं यस्तारयेन्मनुः । स एव तारकस्त्वत्र राममंत्रः प्रकथ्यते ॥१८३॥
तारकाख्यस्त्वयं रामनाममंत्रो न चेतरः । अत एवांतकालेऽपि मर्तुकामनरस्य च ॥१८४॥
कर्णे सर्वत्र देवेशरामनामोपदिश्यते । अन्तकाले नृणां रामस्मरणं च मुहुर्मुहुः ॥१८५॥
इति कुर्वन्त्युपदेशं मानवा मुक्तिहेतवे । अन्यच्चापि शववाहैः सदा लोकैर्मुहुर्मुहुः ॥१८६॥
रामनामैव मुक्त्यर्थं शवस्य पथि कीर्त्यते । रामनाम्नः परो मंत्रो न भूतो न भविष्यति ॥१८७॥
रामनाम्नो जपो नित्यं क्रियते शंभुनापि च । पार्वत्या नारदेनापि वायुपुत्रादिभिः सदा ॥१८८॥
रमयति जनान् रामो रमते वा सदात्मनि । राक्षसानां मारणाद्वा रामनाम महत्तमम् ॥१८९॥
रसातलाद्रकारो हि त्वकारोऽवनिसंभवः । महर्लोकान्मकारश्च त्रिवर्णात्मकमुच्यते ॥१९०॥
रकारेण निजं भक्तं भवाब्धेः परिरक्षति । अकारेणातिसौख्यं हि स्वभक्तस्य करोति यत् ॥१९१॥
मनोरथान्मकारेण ददाति स्वजनस्य यत् । अथवा निजभक्तस्य मरणादि मुहुर्मुहुः ॥१९२॥

रमा (लक्ष्मी) इस संसारमें दुर्लभ है । रक्तमें एक असाधारण लालिमा विद्यमान रहा करती है। रजक (धोबी) मलको धोकर साफ करता है। राग प्रीतिका नाम है, जिसने सारे संसारको अपनी मुट्ठीमें कर रक्खा है ॥१७६॥ रामठ (हींग) अन्नको पवित्र करनेवाली और एक रुचिकर वस्तु है। राज्य सुखकारी होता है। रजस्वला स्त्री पुत्रदायिनी होती है। इस तरह जितने भी रकारादि वर्णके नाम हैं, वे सब श्रेष्ठ माने गये हैं। हे विष्णुदास ! जैसा मैंने तुम्हें बताया है, इन सबोंके श्रेष्ठ होनेका कारण वही रामके आदिम वर्णकी समानता है ॥ १७७ ॥ १७८ ॥ हे शिष्य ! अब दूसरी बात तुमसे कहता हूँ, । उसे सुनो। जिस तरह पहले मैं तुम्हें रामनामकी मुद्रायें बतला आया हूँ, वैसी नाममुद्रा और किसी देवताकी नहीं है। रामनामके बिना किसी नाममुद्रामें इस प्रकार [राजाराम) जैसा स्फुट अक्षर नहीं बनता। यह एक अद्भुत बात है। हे द्विजपुङ्गव! इसमें तुम रामका ही प्रभाव जानो ॥ १७९–१८१ ॥ इसीलिए काशीमें विश्वनाथजी रामनामका जप करके प्राणियोंको मुक्त होनेका उपदेश स्वयं दिया करते हैं ॥ १८२ ॥ जो मन्त्र संसाररूपी समुद्रमें डूबे हुए मनुष्योंको तार सके, उसी राममन्त्र की 'तारक' संज्ञा है ॥ १८३ ॥ एकमात्र यह रामका नाम ही तारक है। इसीलिए सर्वत्र किसीके मरते समय उसके कानमें रामनामका ही उपदेश दिया जाता है। मुमूर्षु प्राणीकी मुक्तिके लिए उससे बार-बार यही कहा जाता है कि 'राम' का स्मरण करो। शवको ले जानेवाले लोग राम नामका ही कीर्तन करते हैं । रामनामसे श्रेष्ठ कोई मन्त्र न आज तक हुआ है और न होगा ॥ १८४–१८७ ॥ स्वयं शिवजी भी नित्य रामनामका ही जप किया करते हैं। उसी तरह हनुमान्‌जी, नारद तथा पार्वतीजी भी सदा रामनामका जप करती हैं ॥ १८८ ॥ भक्तोंके हृदयमें विहार करने या नित्य रमण करने अथवा राक्षसोंका संहार करनेके कारण ही रामनाम सर्वश्रेष्ठ माना जाता है ॥ १८९ ॥ 'राम' इस शब्दमें रकार रसातल लोकसे, अकार भूमण्डलसे एवं मकार महर्लोकसे आया है। इसी कारण यह त्रिवर्णात्मक राममन्त्र है ॥ १९० ॥ वे श्रीरामचन्द्रजी रकारके द्वारा भवसिन्धुसे अपने भक्तोंकी रक्षा करते हैं। आकारसे निज भक्तोंको अतिशय सौख्य प्रदान करते हैं । मकारसे अपने भक्तोंकी कामना पूर्ण करते हैं अथवा मकारसे बार-बार अपने भक्तोंकी मरण आदि बाधाएँ दूर करते रहते हैं।

निवारयति तत् शीघ्रं रामनाम वरं ततः । अयमेव सदा जप्यो रामेति द्व्यक्षरो मनुः ॥१९३॥

इति श्रीशतकोटिरामचरितांतर्गते श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये मनोहरकाण्डे उत्तरार्द्धे विशेषकालपरत्वेन पूजाविस्तारो नवमः सर्गः ॥ ९ ॥

दशमः सर्गः

(अयोध्यामें चैत्रमासकी महिमाका वर्णन)

श्रीरामदास उवाच

एवं शिष्य त्वया पूर्वं ये ये प्रश्नाः कृताः शुभाः । श्रीरामविषये ते ते मयोक्ताः परमादरात् ॥ १ ॥
इदानीं ते पुनः श्रोतुमिच्छाऽस्ति तां वदस्व माम् । यद्यत्पृच्छसि भो वत्स तत्सर्वं ते वदाम्यहम् ॥२॥

श्रीमहादेव उवाच

एवं गुरोर्वचः श्रुत्वा विष्णुदासोऽब्रवीत्पुनः ।

विष्णुदास उवाच

गुरो त्वयाऽयोध्यायां चैत्रमासफलं महत् ॥३॥
प्रोक्तं तद्विस्तरेणाद्य कथयस्व ममांतिकम् । किं दानं किं फलं तत्र कमुद्दिश्य चरेद्व्रतम् ॥४॥
को विधिश्च कदारंभः सर्वं विस्तरतो वद । यत्सरय्वां रामतीर्थे स्नातव्यं चेति कीर्तितम् ॥५॥

श्रीरामदास उवाच

साधु साधु महाप्राज्ञ शुभः प्रश्नः कृतस्त्वया । अधुना चैत्रमासस्य महिमा प्रोच्यते मया ॥६॥
मासानां प्रथमो मासश्चैत्रमासः प्रकीर्त्यते । मातेव सर्वजीवानां सदैवेष्टफलप्रदः ॥७॥
दानयज्ञव्रतसमः सर्वपापप्रणाशनः । धर्मसारः क्रियासारस्तपःसारः सदाऽर्चितः ॥८॥
विद्यानां वेदविद्येव मंत्राणां प्रणवो यथा । भूरुहाणां सुरतरुर्धेनूनां कामधेनुवत् ॥९॥

इसलिए रामनाम सर्वश्रेष्ठ मंत्र है । अतएव लोगोंको चाहिए कि 'राम' इस दो अक्षरके मंत्रको सदैव जपते रहें ॥ १९२ ॥ १९३॥ इति श्रीशतकोटिरामचरितान्तर्गते श्रीमदानन्दरामायणे पं० रामतेजपाण्डेयकृत-'ज्योत्स्ना'भाषाटीकासहिते मनोहरकाण्डे नवमः सर्गः ॥ ९ ॥

श्रीरामदास बोले—इस तरह हे शिष्य ! अबतक तुमने हमसे रामविषयक जो-जो प्रश्न किये, मैंने उनका उत्तर आदरपूर्वक दिया ॥ १ ॥ अब तुम्हें जो कुछ सुनना हो, सो कहो । हे वत्स ! हमसे तुम जो भी पूछोगे, वह सब मैं तुम्हें बतलाऊँगा ॥ २ ॥ श्रीशिवजी बोले—अपने गुरुके इन वचनोंको सुनकर विष्णुदास फिर बोले । विष्णुदासने कहा—हे गुरो ! आप अयोध्यामें चैत्रमासका बड़ा फल कह आये हैं । अब उसे विस्तारपूर्वक कहिए । उसमें क्या दान करना चाहिए, उसके करनेसे क्या फल होता है और किस उद्देश्यसे वह व्रत किया जाता है । इस व्रतको करनेकी क्या विधि है । इसे कब आरम्भ करना चाहिए । यह सब आप मुझे विस्तारपूर्वक बतलाइए । सरयूके रामतीर्थमें स्नान करना चाहिए, यह जो आप कह चुके है । इसका भी विधि-विधान बता दीजिए ॥ ३-५ ॥ श्रीरामदासने कहा-ठीक है, हे महाबुद्धिमान् शिष्य ! तुमने बहुत ही सुन्दर प्रश्न किया है । अब मैं चैत्रमासकी महिमा बतला रहा हूँ ॥ ६ ॥ सब मासोंमें चैत्रमास वर्षका सर्वप्रथम मास माना गया है । यह मास सब प्राणियोंका माताके समान हितकारी है और सबको अभीष्ट फल देता है ॥ ७ ॥ यह समस्त दानों, यज्ञों और व्रतोंके समान फलदायक है । यह सब धर्मोंका सार, समस्त क्रियाओंका सार और सब प्रकारकी तपस्याओंका सार है ॥ ८ ॥ यह मास सब विद्याओंमें वेदविद्याके समान, सब मन्त्रोंमें प्रणव (ॐकार) मन्त्रके समान, वृक्षोंमें पारिजातके समान, गौओंमें काम-

शेषवत्सर्वनागानां पक्षिणां गरुडो यथा। देवानां तु यथा विष्णुर्वर्णानां ब्राह्मणो यथा ॥१०॥
प्राणवत्प्रियवस्तूनां भार्येव सुहृदां यथा। आपगानां यथा गंगा तेजसां तु रविर्यथा ॥११॥
आयुधानां यथा वज्रं धातूनां कांचनं यथा। वैष्णवानां यथा रुद्रो रत्नानां कौस्तुभो यथा ॥१२॥
पुष्पेषु च यथा पद्मं सरसां मानसं यथा।
मासानां धर्महेतूनां चैत्रमासस्तथा स्मृतः। नानेन सदृशो लोके विष्णुप्रीतिविधायकः ॥१३॥
चैत्रस्नाने च निरते मीने प्रागरुणोदयात्। लक्ष्मीसहायो भगवान्प्रीतिं तस्मिन्करोत्यलम् ॥१४॥
जंतूनां प्रीणनं यद्वदन्नेनैव हि जायते। तद्वच्चैत्रे च स्नानेन विष्णुः प्रीणात्यसंशयः ॥१५॥
यश्चैत्रस्नाननिरतान् जनान् दृष्ट्वाऽनुमोदते। तावताऽपि विमुक्ताघो विष्णोर्लोके महीयते ॥१६॥
सकृत्स्नात्वा मीनसंस्थे सूर्ये प्रातः कृताह्निकः। महापापैर्विमुक्तोऽसौ विष्णुसायुज्यमाप्नुयात् ॥१७॥
स्नानार्थं चैत्रमासे यः पादमेकं चलेद्यदि। सोऽश्वमेधायुतानां च फलं प्राप्नोत्यसंशयः ॥१८॥
अथवा कूटचित्तस्तु कुर्यात्संकल्पमात्रकम्। सोऽपि क्रतुशत पुण्यं लभत्येव न संशयः ॥१९॥
यो गच्छेद्धनुरायामं स्नातुं मीनगते रवौ। सर्वबंधविनिर्मुक्तो विष्णोः सायुज्यमाप्नुयात् ॥२०॥
त्रैलोक्ये यानि तीर्थानि ब्रह्मांडान्तर्गतानि च। तानि सर्वाणि भो शिष्य संति बाह्यजलेऽल्पके ॥२१॥
तावद्गर्जंति पापानि गर्जन्ति यमशासने। यावन्न कुरुते जंतुश्चैत्रे स्नानं जलाशये ॥२२॥
तीर्थादिदेवताः सर्वाश्चैत्रे मासि द्विजोत्तम। बहिर्जलं समाश्रित्य सदा संनिहिताः शिशो ॥२३॥
सूर्योदयं समारभ्य यावत् षड्घटिकावधि। तिष्ठंति चाज्ञया विष्णोर्नराणां हितकाम्यया ॥२४॥
तत्राप्यकुर्वतां स्नानं शापं दत्वा सुदारुणम्। स्वस्थानं यांति भो शिष्य तस्मात्स्नानं समाचरेत् ॥२५॥

धेनुके समान, सर्पोंमें शेषनागके समान, पक्षियोंमें गरुड़के समान, देवताओंमें विष्णुभगवान्के सदृश और वर्णोंमें ब्राह्मणके समान श्रेष्ठ है ॥ ६ ॥ १० ॥ संसारकी प्रिय वस्तुओंमें प्राणकी भाँति, मित्रोंमें भार्याकी तरह, नदियोंमें गङ्गाकी तरह, तेजस्वियोंमें सूर्यकी नाईं, शास्त्रोंमें वज्रकी तरह, धातुओंमें सुवर्णकी तरह, वैष्णवोंमें रुद्रभगवान्के समान, रत्नोंमें कौस्तुभ मणिकी तरह, फूलोंमें कमलकी तरह, तालावोंमें मानसरोवरकी तरह धर्महेतुक सब मासोंमें यह चैत्रमास सर्वश्रेष्ठ है। संसारमें विष्णुके प्रति प्रीति बढ़ानेवाला और कोई मास नहीं है ॥ ११-१३ ॥ जब कि मीन लग्नपर सूर्य हों, ऐसे चैत्रमासमें अरुणोदयके पहले स्नान करनेसे लक्ष्मीके साथ-साथ विष्णुभगवान् भी प्रसन्न होते हैं ॥१४॥ जिस तरह संसारके प्राणी अन्नसे जीवित तथा प्रसन्न रहते हैं। उसी तरह चैत्रमासमें स्नान करनेसे विष्णुभगवान् तृप्त होते हैं। इसमें कोई संशय नहीं है ॥ १५ ॥ जो मनुष्य किसीको चैत्रस्नानमें संलग्न देखकर उसका अनुमोदन करता है, तो इतने ही से उसके सब पाप छूट जाते हैं और वह प्राणी विष्णुलोकमें सम्मान पाता है ॥ १६ ॥ जब कि सूर्य मीन राशिपर हों, ऐसे समय केवल एक बार प्रातःकालके समय स्नान और नित्यकर्म करनेवाला प्राणी बड़े-बड़े पापोंसे मुक्त होकर विष्णुभगवान्की सायुज्य मुक्ति पाता है ॥ १७ ॥ चैत्रमासमें स्नानके निमित्त जो मनुष्य एक पग भी चलता है, वह दस हजार अश्वमेध यज्ञका फल पाता है ॥ १८ ॥ जो प्राणी स्थिर चित्तसे चैत्रस्नानका संकल्पमात्र करता है, वह भी सैंकड़ों यज्ञ करनेका फल प्राप्त कर लेता है। इसमें कोई संशय नहीं है ॥ १९ ॥ मीनगत सूर्यके समय जो प्राणी एक धनुष विस्तृत मार्ग भी चैत्रस्नानके लिए चलता है, वह सब बन्धनोंसे छूटकर विष्णुकी सायुज्य मुक्ति पाता है ॥ २० ॥ त्रैलोक्य या ब्रह्माण्डके अन्तर्गत जितने भी तीर्थ हैं, वे सब उस समय वहींके थोड़ेसे जलमें विद्यमान रहते हैं ॥ २१ ॥ जब तक प्राणी चैत्रमासमें किसी जलाशयमें स्नान नहीं करता, तभीतक यमराजके आज्ञानुसार सब पातक गरजते हैं ॥ २२ ॥ हे शिशो ! सभी तीर्थ और सब देवता चैत्रमासमें जलके बाहर आकर ठहर जाते हैं ॥ २३ ॥ सूर्योदयसे लेकर छः घड़ी दिन चढ़े तक विष्णुभगवान्के आज्ञानुसार सब देवता मनुष्योंके कल्याणार्थ जलके बाहर बैठे रहते हैं ॥ २४ ॥ उस समय भी यदि कोई स्नान नहीं करता तो

न हि चैत्रसमो मासो न कृतेन समं युगम् । न च वेदसमं शास्त्रं न तीर्थं गंगया समम् ॥२६॥
न जलेन समं दानं न सुखं भार्यया समम् । न हि चैत्रसमं लोके पवित्रं कवयो विदुः ॥२७॥
तस्मादयं चैत्रमासः शेषशायिप्रियः सदा । अव्रतेन नयेद्यस्तु चांडालश्च स जायते ॥२८॥

यथा गृहं सर्वगुणोपपन्नं परिच्छदैर्हीनमशोभते तथा ।
यथैव कन्या सकलैस्तु लक्षणैर्युक्ताऽपि जीवत्पतिलक्षणोज्झिता॥२९॥
शाकं तु यद्वल्लवणेन हीनं न शोभते सर्वगुणोपपन्नम् ।
यथा ललामैश्च विना सभा तैर्वस्त्रेण हीना ललना च शिष्य ॥
तथाऽन्यमासेषु कृतो हि धर्मश्चैत्रेण हीनश्च वृथैव याति ॥३०॥

तस्मात्सर्वप्रयत्नेन येन केनापि देहिना । चैत्रमासस्य यो धर्मः कर्तव्य इति निश्चयः ॥३१॥

न नंदसूनोः पृथगस्ति रामो न रामतोऽन्यो वसुदेवसूनुः ।
अतस्त्वयोध्यापुरपालकस्य चैत्रे तु कार्यं विधिवत्प्रपूजनम् ॥३२॥

जानकीकांतमुद्दिश्य मीनसंस्थे दिवाकरे । प्रातः स्नात्वा जपेद्राममन्यथा नरकं व्रजेत् ॥३३॥
चैत्रमासो हि सकलः सीताराघवदैवतः । यद्यत्कर्म हि तत्सर्वं तमुद्दिश्य चरेन्नरः ॥३४॥
जानकीकांत हे राम चैत्रे मीनगते रवौ । प्रातःस्नानं करिष्यामि निर्विघ्नं कुरु राघव ॥३५॥
चैत्रेऽद्य मीनगे भानौ प्रातःस्नानपरायणः । अर्घ्यं तेऽहं प्रदास्यामि गृहाण रघुनायक ॥३६॥
गंगाद्याः सरितः सर्वास्तीर्थानि जलदा नदाः । प्रतिगृह्य मया दत्तमर्घ्यं सम्यक् प्रसीदथ ॥३७॥
ब्रह्माद्या देवताः सर्वा ऋषयो ये च वैष्णवाः । ते गृह्णंतु मया दत्तं प्रसीदंत्वर्घ्यदानतः ॥३८॥

उसे दारुण शाप देकर वे देवता अपने स्थानको चले जाते हैं । अतएव हे शिष्य ! इस समय अवश्य स्नान करना चाहिए ॥ २५ ॥ चैत्रके समान कोई मास नहीं है, सत्ययुगके समान कोई युग नहीं है, वेदके समान कोई शास्त्र नहीं है, गंगाके समान कोई तीर्थ नहीं है, जलदानके समान कोई दान नहीं है, भार्याके समान कोई सुख नहीं है, उसी तरह चैत्रके समान और कोई वस्तु पवित्र नहीं है ॥ २६ ॥ २७ ॥ इसीलिए यह चैत्रमास सदा विष्णुभगवान्‌का प्रिय रहा है । जो मनुष्य बिना व्रत किये ही यह मास बिता देता है, वह चंडाल होता है ॥ २८ ॥ जिस तरह कि सर्वगुणसम्पन्न होकर भी बिना छाजनके घर नहीं अच्छा लगता, जिस तरह कि कोई कन्या सब सुलक्षणोंमें युक्त होती हुई भी जीवत्पतिका न हो तो वह नहीं अच्छी मालूम होती, जिस तरह कि नमकके बिना शाक अच्छा नहीं लगता, जिस तरह बिना उत्सवकी सभा नहीं अच्छी लगती, जैसे वस्त्रविहीन नारी नहीं शोभित होती, उसी तरह और-और मासोंमें धर्मकार्य करनेसे भी कोई लाभ नहीं होता अर्थात् वह व्यर्थ हो जाता है ॥ २९ ॥ ३० ॥ अतएव कोई भी मनुष्य हो, उसे चैत्रमासके धर्मका पालन करना ही चाहिए ॥ ३१ ॥ श्रीकृष्णसे पृथक् श्रीराम नहीं हैं और न श्रीरामसे पृथक् श्रीकृष्ण ही हैं । इसलिए यह उचित है कि चैत्रमासमें अयोध्यापुरीपालक श्रीरामचन्द्रजीका विधिवत् पूजन करे ॥ ३२ ॥ जब कि सूर्यदेव मीन राशिपर चले गये हों, उस समय प्रातःस्नान करके रामनामका जप करना चाहिए । जो ऐसा नहीं करता, वह नरकगामी होता है ॥ ३३ ॥ सारे चैत्रमासके देवता राम और सीता ही हैं । अतएव उस समय जो कुछ भी कार्य करे, वह सब उन्हींके उद्देश्यसे करे ॥ ३४ ॥ स्नानके पहले इस तरह प्रतिज्ञा करनी चाहिए कि हे जानकीकान्त ! हे राम ! सूर्यके मीन राशिपर जानेके अनन्तर मैं चैत्रमासमें प्रातः-स्नान करूँगा । कृपया मेरे इस पुनीत स्नानकार्यको निर्विघ्न समाप्त होने दीजिए ॥ ३५ ॥ आज सूर्य-देवके मीन राशिपर चले जानेके अनन्तर मैं प्रातःस्नान करके आपको अर्घ्य दूँगा । हे रघुनायक ! उसे आप स्वीकार करिएगा । गंगा आदि सब नदी, सारे तीर्थ, मेघ तथा नद आदिका जल लाकर मैं आपको अर्घ्य प्रदान कर रहा हूँ, इससे आप प्रसन्न हो ॥ ३६ ॥ ३७ ॥ ब्रह्मा आदि देवता, समस्त नदियाँ और सब वैष्णव

ऋषभः पापिनां शास्ता यम त्वं समदर्शनः । गृहाणार्घ्यं मया दत्तं यथोक्तफलदो भव ॥३९॥
इति चार्घ्यं समर्प्याथ पश्चात्स्नानं समाचरेत् । वाससी परिधायाथ कृत्वा कर्माणि सर्वशः ॥४०॥
जानकीकांतमभ्यर्च्य प्रसूनैर्मधुसंभवैः । श्रुत्वा रामकथां दिव्यामेतन्मासप्रशंसिनीम् ॥४१॥
कोटिजन्मार्जितात्पापान्मुक्तो मोक्षमवाप्नुयात् । चैत्रे यः कांस्यभोजी हि तथा चाश्रुतसत्कथः ॥४२॥
न स्नातश्चाप्यदाता च नरकानेव विंदति । यथा माघः प्रयागे हि स्नातव्यः पुण्यमिच्छता ॥४३॥
कार्तिकोऽपि यथा काश्यां पञ्चगंगाजले स्मृतः । द्वारकायां यथा प्रोक्तो वैशाखो माधवप्रियः ॥४४॥
अयोध्यायां रामतीर्थे तथा चैत्रे प्रकीर्तितः । प्रयागे मासमात्रेण यत्फलं प्राप्यते नरैः ॥४५॥
अयोध्यायां रामतीर्थे सकृत्स्नानेन तत्फलम् । वैशाखद्वादशभवं पुण्यं यद्गोमतीजले ॥४६॥
तत्पुण्यं सरयूतोयेऽयोध्यायां प्राप्यते नरैः । चैत्रे मासि त्रिभिः स्नानै रामतीर्थे न संशयः ॥४७॥
कार्तिके पंचगङ्गायां यैः स्नानं द्वादशाब्दकम् । अयोध्यायां रामतीर्थे चैत्रे पक्षेण तत्फलम् ॥४८॥
अयोध्या दुर्लभा लोके नराणां पापकारिणाम् । तावद्गर्जन्ति पापानि यावद्दृष्टा न सा पुरी ॥४९॥
अयोध्याया यदाऽभावस्तदा रामकृतानि च । जगत्यां यानि तीर्थानि तत्र स्नानं विधीयताम् ॥५०॥
यत्रायोध्यापुरी नास्ति स्नानार्थं सरयूर्न च । रामतीर्थं न यत्रास्ति तदा तीर्थेषु कारयेत् ॥५१॥
तैलाभ्यंगं दिवास्वापस्तथा वै कांस्यभोजनम् । खट्वानिद्रा गृहे स्नानं निषिद्धस्य च भक्षणम् ॥५२॥
चैत्रे तु वर्जयेदष्टौ द्विर्भुक्तं नक्तभोजनम् । चैत्रे मासे तु मध्याह्ने श्रांतानां च द्विजन्मनाम् ॥५३॥
पादावनेजनं कुर्याचद्व्रतं तु व्रतोत्तमम् । मार्गेऽध्वगानां यो मर्त्यः प्रपादानं च चैत्रके ॥५४॥

ऋषि मेरे इस अर्घ्यदानको ग्रहण करते हुए प्रसन्न हों ॥ ३८ ॥ हे पापियोंपर शासन करनेवाले यमदेवता ! आप समदर्शी हैं। मेरे इस अर्घ्यदानको ग्रहण करिए और यथोचित फल दीजिए ॥ ३९ ॥ इस तरह अर्घ्य समर्पण करनेके अनन्तर स्नान करे। तदनन्तर कपड़े बदलकर और कोई काम करना चाहिए ॥ ४० ॥ इसके बाद वसन्त ऋतुमें उत्पन्न फूलोंसे जानकीकान्तका पूजन करे और चैत्रमासकी प्रशंसा करनेवाली कथायें सुने ॥ ४१ ॥ ऐसा करनेसे करोड़ों जन्मके एकत्रित पातक नष्ट हो जाते हैं। जो मनुष्य चैत्रमासमें काँसेके पात्रमें भोजन करता है और अच्छी-अच्छी कथायें नहीं सुनता, न किसी पवित्र तीर्थमें स्नान करता है और न दान ही देता है, उसे नरकके सिवाय और किसी गतिकी प्राप्ति नहीं होती। जिस तरह कि पुण्यप्राप्तिके लिए लोग माघमासमें प्रयागस्नान करते हैं ॥ ४२ ॥ ४३ ॥ जैसे कार्तिकमासमें काशीकी पञ्चगङ्गामें स्नान करते हैं, जैसे वैशाखमासमें द्वारकाजीमें स्नान करते हैं, उसी तरह रामभक्तोंको चाहिए कि चैत्रमासमें अयोध्या-स्नान अवश्य करें। एक महीना प्रयागमें स्नान करनेसे जो फल प्राप्त होता है, वही फल अयोध्याके रामतीर्थमें केवल एक बारके स्नानसे मिल जाता है। बारह बार वैशाखमासमें द्वारकाकी गोमती नदीमें स्नान करनेसे जो फल मिलता है, वही फल अयोध्याके सरयूजलमें स्नान करनेसे प्राप्त होता है। किन्तु वह फल तब मिलता है, जब चैत्र मासमें तीन बार रामतीर्थमें स्नान किया जाय ॥ ४४–४७ ॥ बारह बरस तक कार्तिकमें काशीकी पंचगङ्गामें स्नान करनेसे जो फल प्राप्त होता है, वही फल केवल एक पक्षतक अयोध्या-की सरयूजीमें स्नान करनेसे प्राप्त होता है ॥ ४८ ॥ पापियोंके लिए अयोध्या दुर्लभ तीर्थ है। पापगण तभी तक गर्जन करते हैं, जबतक प्राणी अयोध्यापुरीका दर्शन नहीं कर लेता ॥ ४९ ॥ यदि किसी भावुक भक्तको अयोध्या प्राप्त न हो सके तो रामचन्द्रजीने जिन तीर्थोंका निर्माण किया हो, वहाँपर स्नान करे ॥ ५० ॥ जहाँ कि न अयोध्या है, न सरयूजी हैं और न कोई रामतीर्थ ही है। वहाँ जो कोई भी तीर्थ हो, उसीमें स्नान कर ले ॥ ५१ ॥ तेल लगाना, दिनमें सोना, कांस्यपात्रमें भोजन करना, चारपाईपर सोना, घरमें स्नान करना, किसी प्रकारका निषिद्ध भोजन, रात्रिके समय भोजन तथा दिनमें दो बार भोजन इन आठ बातोंको चैत्रमासमें छोड़ देना चाहिए। चैत्रमासमें जो प्राणी दोपहरके समय थके हुए ब्राह्मणोंके पैर धोता है, वह मानो सर्वोत्तम व्रत करता है। जो प्राणी चैत्रमासमें राह चलनेवालोंको जल पिलाता है और रास्तेमें

मार्गे छायां तु यः कुर्यात्स स्वर्गे च महीयते । सलिलं सलिलाकांक्षी छायार्थी छायमिच्छति ।५५।।
व्यजनं व्यजनाकांक्षी दानमेतत्तु चैत्रके ।
जलं छत्रं तु व्यजनं दानं मीने विशिष्यते । चैत्रे मासे तु सप्राप्ते ब्राह्मणाय कुटुम्बिने ।।५६।।
अदत्त्वोदककुंभं तु चातको भुवि जायते । चैत्रे देयं जलं चान्नं देया शय्या मनोरमा ।।५७।।
आदर्शदानं तांबूलगुडदानं प्रकारयेत् । गोधूमतुवरीदानं दानं दध्योदनस्य च ।।५८।।
घृतयुक्तं कांस्यपात्रं दानमिक्षुरसस्य च । तथा श्रीफलदानं च दानं चाम्रफलस्य च ।।५९।।
सूक्ष्मवस्त्रमंचकयोः पानपात्रं कमंडलुम् । यतीनां दंडदानं वै तैलदानं मठेषु च ।।६०।।
जीर्णोद्धारं मठानां च घंटानां करणं तथा । प्रासादकरणं चैव वापीकूपादिकं तथा ।।६१।।
मार्गस्थानां छत्रदानं मध्याह्नेऽतिथिपूजनम् । करपात्रं यतीनां च गोग्रासं तु गवामपि ।।६२।।
एतानि चैत्रमासे तु दानानि कथितानि हि । फलं शाकं तु मूलं च कंदं पुष्पं तु चन्दनम् ।।६३।।
उशीरः शीतलं द्रव्यं कर्पूरं कस्तुरी शुभा । दीपदानं धेनुदानं गेहदानं तथा स्मृतम् ।।६४।।
गोरसानां पृथग्दानं यतिब्राह्मणभोजनम् । सुवासिनीपूजनं च रामनामप्रलेखनम् ।।६५।।
पुस्तकानां तथा दानं तथा कुंकुमकेसरे । जातीफलं लवगाश्च जातिपत्रीवरांगके ।।६६।।
धातकीं नागरं धूपं बीजपूरं कलिंगकम् । जंबीरं पनसश्चैव कपित्थं मातुलुंगकम् ।।६७।।
कूष्मांडदानमारामकरणं मार्गशोधनम् । तथोपानहदानं च गजवाजिभवं तथा ।।६८।।
एतानि चैत्रमासे तु दानानि कथितानि हि । यानि चैत्रे तु वर्ज्यानि तानि ते प्रवदाम्यहम् ।।६९।।
सर्वाणि चैव मांसानि क्षौद्रं सौवीरकं तथा । राजमाषादिकं चापि चैत्रस्नायी प्रवर्जयेत् ।।७०।।
परान्नं च परद्रोहं परदारागमं तथा । तीर्थघ्नानि सदैवेह चैत्रस्नायी प्रवर्जयेत् ।।७१।।
द्विदलं तिलतैलं च तथाऽन्नं शल्यदूषितम् । भावदुष्टं शब्ददुष्टं चैत्रस्नायी तु वर्जयेत् ।।७२।।

छायाका प्रबन्ध करता है, वह स्वर्गलोकमें जाकर वहाँवालोंके द्वारा पूजित होता है। इस मासमें लोगोंको चाहिए कि जो मनुष्य पंखा चाहता हो, उसे पंखा दे। जो छाताका इच्छुक हो, उसे छ ता दे। जो पानी चाहता हो, उसे पानी पिलाये। यह दान विशेष करके चैत्रमासके लिए बड़ा ही उपयोगी है। जो मनुष्य चैत्रमास आनेपर किसी कुटुम्बी ब्राह्मणको जलभरा घटदान नहा देता, वह मरकर चातक होता है। इसीलिए चैत्रमासमें जल, अन्न तथा सुन्दर शय्याका दान देना चाहिये ।। ५२–५७ ।। इनके अतिरिक्त दर्पणका दान, ताम्बूल और गुड़का दान, गेहूँ, तोरी, दही, चावल, घीसे भरे हुए कांस्यपात्रका दान, ऊँखके रसका दान, बेलका दान, आमका दान, महीन कपड़े और पलंगका दान, जल पीनेका पात्र, कमण्डलु तथा संन्यासियोंके लिये दण्डदान, मठोंमें तेलका दान, मठोंका जीर्णोद्धार, घंटाघर बनवाना, मकान बनवाना, कुआँ-बावली आदि बनवाना, मार्गमें चलनेवालोंके लिये छत्रदान, दोपहरके समय अतिथियोंका पूजन, यतियोंको कमण्डलु-दान और गौओंको गोग्रासदान ये चैत्रमासके दान बतलाये गये हैं। इनके अतिरिक्त चैत्रमासमें ये दान और बतलाये गये हैं। जैसे—फल, शाक, मूल, कन्द, पुष्प, चन्दन ।। ५८–६३ ।। खस, इसी तरह और-और ठण्ढी चीजें, कपूर, कस्तूरी, दीपदान, धेनुदान, गृहदान, गोरसदान, यतियों और ब्राह्मणोंको भोजनदान, सोहागिन स्त्रियोंका पूजन, रामनामका लेखन, पुस्तकदान, कुमकुम और केसरका दान, जायफल, लौंग, जाविश्री ।। ६४–६६ ।। धातकी, नागरमोथा, धूप, बीजपूर, तरबूज, जम्भीरी नीबू, कटहल, कैथा, कूष्माण्डदान, बगीचा लगवाना, रास्ता साफ करवाना, जूतेका दान, हाथी एवं घोड़ेका दान, ये सब दान चैत्रमासके लिए कहे गये हैं। अब मैं तुम्हें यह बतलाता हूँ कि चैत्रमासमें किन-किन वस्तुओंका परित्याग करना चाहिए ।। ६७–६९ ।। चैत्रस्नान करनेवालेको सब प्रकारके मांस, मधु, कांजी एवं राजमाष आदि वस्तुओंका परित्याग कर देना चाहिए ।। ७० ।। दूसरेका अन्न, दूसरेसे द्रोह और दूसरेकी स्त्रीके साथ समागम, चैत्रस्नायी इन कामोंको सर्वदाके लिए छोड़

देववेदद्विजानां च गुरुगोव्रतिनां तथा । स्त्रीराजमहतां निंदां चैत्रस्नायी विवर्जयेत् ॥७३॥
प्राण्यंगमामिष चूर्णं फले जंबीरमामिषम् । धान्ये मसूरिका प्रोक्ता चान्नं पर्युषितं तथा ॥७४॥
ब्रह्मचर्यमधःसुप्तिः पत्रावल्यां च भोजनम् । चतुर्थकाले भुंजीत कुर्यादेवं सदा व्रती ॥७५॥
संवत्सरप्रतिपदि तैलाभ्यंगं तु कारयेत् । चैत्रस्नायी नरोऽन्यत्र तैलाभ्यंगं न कारयेत् ।७६॥
अलाबुं चापि वृंताकं कूष्मांडं बृहतीफलम् । श्लेष्मातकं कलिंगं च कपित्थं चैव वर्जयेत् ॥७७॥
रजस्वलां त्यज म्लेच्छपतितव्रातकैः सह । द्विजद्विड्वेदबाह्यैश्च न वदेत्सर्वदा व्रती ॥७८॥
पलांडुं लशुनं चैव छत्राकं गृजनं तथा । नालिकामूलकं शिग्रुं चैत्रस्नायी विवर्जयेत् ।।७९॥
एभिः स्पृष्टं श्वपाकैश्च सूतकान्नं च वर्जयेत् । द्विपाचितं च दग्धान्नं चैत्रस्नायी विवर्जयेत् ॥८०॥
एतानि वर्जयेन्नित्यं व्रती सर्वत्र तेष्वपि । कृच्छ्राद्यं च प्रकुर्वीत स्वशक्त्या रामतुष्टये ॥८१॥
क्रमात्कूष्मांडबृहतीछत्राकं मैलकं तथा । श्रीफलं च कलिंगं च फलं धात्रीभवं तथा ॥८२॥
नारिकेलमलाबुं च पटोलं बदरीफलम् । चर्मवृन्ताककं वल्लीशाकं तुलसिजं तथा ॥८३॥
शाकान्येतानि वर्ज्यानि क्रमात्प्रतिपदादिषु । धात्रीफलं रवौ तद्वद्वर्जयेत्सर्वदा गृही ॥८४॥
एभ्योऽन्यद्वर्जयेत्किंचिद्रामप्रीतये नरः । दत्त्वा व्रतांते विप्राय भक्षयेत्सर्वदैव हि ॥८५॥
फल्गुनीपौर्णिमारभ्य यावच्चैत्री तु पौर्णिमा । चैत्रस्नानं तु तावद्धि नरैः कार्यं च भक्तितः ॥८६॥
अथवा मीनगो भानुर्यावत्तावत्प्रकारयेत् । दशमीं फाल्गुनीं शुद्धां समारभ्य मधोः सिता ।८७॥
यावद्भवेत्तु दशमी तावत्स्नानं प्रकारयेत् । स्नानस्यैवं त्रयो भेदाः शिष्य ते समुदीरिताः ॥८८॥
चैत्रशुक्लतृतीयाया यावद्वैशाखसंभवा । तृतीया शुक्लपक्षस्य ह्यक्षय्येति स्मृताऽत्र या ॥८९॥

दे। क्योंकि ये तीर्थके सब पुण्योंको नष्ट करनेवाले उत्पात हैं ॥ ७१ ॥ दाल, तिलका तेल, कंकड़-पत्थर मिला हुआ अन्न, भावसे दूषित और शब्ददूषित अन्नोंको चैत्रस्नायी मनुष्य न खाय ॥ ७२ ॥ देवता, वेद, ब्राह्मण, गुरुजन, गोव्रती, स्त्री, राजा और अपनेसे बड़ोंकी निन्दाका भी परित्याग कर देना चाहिए ॥ ७३ ॥ प्राणियोंके अङ्गका मांस, मांस-मत्स्यका चूर्ण, फलोंमें जंभीरी नीबू, धान्योंमें मसूर और जूठा अन्न ये सब मांसतुल्य होते हैं। इसलिए इनको न खाय। ब्रह्मचर्य, पृथ्वीपर शयन, पत्तलमें भोजन और चौथे पहरमें भोजन करता हुआ व्रती मनुष्य इन नियमोंका बराबर पालन करे ॥ ७४ ॥ ७५ ॥ केवल संवत्सरकी समाप्तिवाली प्रतिपदाको शरीरमें तेल लगाये और किसी समय नहीं ॥ ७६ ॥ लौवा, भंटा, कुम्हड़ा, छोटा भण्टा, लिसोड़ा, तरबूज तथा कैथा, इन वस्तुओंको न खाना चाहिए ॥ ७७ ॥ म्लेच्छ, पतित, रजस्वला, चाण्डाल, द्विजद्वेषी तथा वेदसे बहिष्कृत मनुष्योंसे बात भी न करे ॥ ७८ ॥ प्याज, लहसुन, छत्राक (भुइँफोर), गाजर, मूली तथा सहिजन इन वस्तुओंको भी चैत्रस्नायी मनुष्य न खाय ॥ ७९ ॥ ऊपर बतलाये पतितों, कुत्ते तथा कौएसे संस्पृष्ट एवं सूतकके अन्नका भी परित्याग कर देना चाहिए। दो बारका पकाया और जला हुआ अन्न भी चैत्रस्नायी मनुष्य न खाय ॥ ८० ॥ ऊपर बतायी चीजें न खाय और अपनेसे बन पड़े तो रामचन्द्रजीको प्रसन्न करनेके लिए कृच्छ्रचान्द्रायण आदि व्रत भी करे ॥ ८१ ॥ कुम्हड़ा, भंटा, भुइँफोड़, मूली, बेल, तरबूज, आँवलेका फल, नारियल, लौआ, परवल, बैर, चर्मवृन्ताक, वल्लीशाक और तुलसी, इन्हें क्रमशः प्रतिपदा आदि तिथियोंको न खाय। उसी तरह रविवारको धात्रीफल (आँवला) न खाय ॥ ८२-८४ ॥ इनके अतिरिक्त भी रामको प्रसन्न करनेके लिए अपनी तरफसे कुछ वस्तुओंका परित्याग कर दे। किन्तु व्रतसमाप्तिके अनन्तर ब्राह्मणको उस वस्तुका दान देकर खाय तो कोई हर्ज नहीं है ॥ ८५ ॥ फाल्गुनकी पूर्णिमासे लेकर चैत्रकी पूर्णिमा पर्य्यन्त भक्तिपूर्वक चैत्रस्नानका व्रत करना चाहिये ॥ ८६ ॥ अथवा जबतक सूर्य मीन राशिपर रहें, तबतक व्रत करता रहे। फाल्गुन कृष्णपक्षकी दशमीसे लेकर चैत्रशुक्लकी दशमी तक स्नान करना चाहिए। इस तरह हे शिष्य ! इस चैत्रस्नानके भेद मैंने तुमको बतलाये ॥ ८७ ॥ ८८ ॥ चैत्रशुक्लकी तृतीयासे लेकर वैशाख शुक्लपक्षकी

तावच्च शीतला गौरी स्नातव्या सुखलब्धये । सीतातीर्थे तु नारीभिः पूजनीया च जानकी ॥९०॥
तृतीया या तु चैत्रस्य सितपक्षोद्भवा तथा । वैशाखशुक्लपक्षे या तृतीयाऽक्षय्यसंज्ञिका ॥९१॥
नारी या शीतलागौरीव्रतस्नानपरायणा । अभ्यंगं सा करोत्वनयोस्तिथ्योर्नान्यदिने कदा ॥९२॥
त्रिंशच्च तिथयः पुण्याश्चैत्रमासे महत्तमाः । तथापि हि विशेषोऽत्र तिथीनां वर्ण्यते मया ॥९३॥
चैत्रमासे कृष्णपक्षे पंचमी दशमी तथा । एकादशी द्वादशी च शिवरात्रिस्त्वमा तथा ॥९४॥
एताः शुभाश्चैत्रकृष्णे महापातकनाशनाः । इदानीं चैत्रमासस्य सितपक्षोद्भवाः शुभाः ॥९५॥
वर्ण्यन्ते तिथयः श्रेष्ठा नराणां हितकाम्यया । सांवत्सरप्रतिपदमारभ्य दशमीदिनम् ॥९६॥
यावत्तावच्छुभाः सर्वाः स्नानदानादिकर्मणि । यत्कृतं च प्रतिपदि स्नानदानव्रतादिकम् । ९७॥
द्वितीयायां च तत्प्रोक्तं द्विगुणं नात्र संशयः । यत्कृतं च द्वितीयायां भक्त्या स्नानादिकं नरैः ॥९८॥
द्विगुणं तत्तृतीयायां चैत्रमासे नृपोत्तम । एवं सर्वासु तिथिषु यावत्स्यान्नवमी शुभा ॥९९॥
एवं विशेषो ज्ञातव्यो यथाऽग्रादिक्षुचर्वणात् । यथा क्षीराद्दधि प्रोक्तं दध्नस्तु नवनीतकम् ॥१००॥
नवनीताद्घृतं यद्वत्तथाऽत्र तिथिनिर्णयः । चैत्रमासस्तु मासानां तत्र पक्षः सितो वरः ॥१०१॥
सितपक्षे क्रमेणैव यावत्सा नवमी तिथिः । तावदेकैकशः श्रेष्ठा सर्वासु नवमी वरा ॥१०२॥
यस्यां जातं रामजन्म धर्मसंस्थापनाय हि । तस्मात्तिथिस्तु सा ज्ञेया कर्मनिर्मूलनक्षमा ॥१०३॥
तस्यां दत्तं हुतं जप्तं यत्किंचिच्च कृतं शुभम् । सर्वं तदक्षयं विद्यान्नात्र कार्या विचारणा ॥१०४॥
प्रतिपद्दिनमारभ्य नवरात्रमुपोषयेत् । प्रत्यहं रघुवीरस्य पूजनं चैत्र कारयेत् ॥१०५॥
संवत्सरप्रतिपदि ध्वजाः सौधोपरि स्थिताः । दिव्यवस्त्रैश्च माल्यैश्च मंडिताश्च मनोरमाः ॥१०६॥

अक्षयतृतीया तक इस संसारमें शीतला गौरीका निवास रहता है। इसलिए स्त्रियोंको सुखप्राप्तिके लिए सीतातीर्थमें जाकर स्नान तथा सीताजीका पूजन करना चाहिए ॥ ८९ ॥ ९० ॥ चैत्रशुक्लपक्षकी तृतीया तथा वैशाखशुक्लकी तृतीया ये दोनों तृतीयायें अक्षय्यसंज्ञक मानी गयी हैं ॥ ९१ ॥ अतएव जो नारी शीतला गौरीका व्रत कर रही हो, उसे चाहिए कि इन दोनों तिथियोंको शरीरमें तेल लगाये। इनके सिवाय और किसी अन्य दिनमें ऐसा करना वर्जित है ॥ ९२ ॥ वैसे तो चैत्रमासकी तीनों तिथियाँ पवित्र हैं। फिर भी इनमें जो विशेषता है, उसे मैं तुमको सुनाता हूँ ॥ ९३ ॥ चैत्र कृष्णपक्षकी पञ्चमी, दशमी एकादशी, द्वादशी, त्रयोदशी, अमावस्या, ये चैत्र कृष्णपक्षकी तिथियाँ बड़ी पवित्र और महान् पातकोंका नाश करनेवाली कही गयी हैं। अब मैं चैत्रके शुक्लपक्षकी शुभ तिथियाँ गिना रहा हूँ ॥ ९४ ॥ ९५ ॥ इससे मनुष्योंका बड़ा कल्याण होगा। यह मेरा दृढ़ विश्वास है। संवत्सर-समाप्तिकी प्रतिपदासे लेकर दशमी पर्यन्त जितनी तिथियाँ हैं, वे सब स्नान दान आदि कर्मोंमें शुभ कही गयी हैं। उनमें भी प्रतिपदाको स्नान-दान आदि करनेका जो फल शास्त्रोंमें कहा गया है, उसमें द्वितीया द्विगुणित फलदायक होती है। द्वितीयाको जो फल कहा है, उससे तृतीयामें द्विगुणित फल होता है। इस तरह नवमी तिथि पर्यन्त सब तिथियाँ शुभ हैं। इनमें इसी प्रकारकी विशेषता है कि जैसे उँखका रस प्रथम गाँठसे लेकर आखिरी गाँठतक क्रमशः मीठा होता है। जैसे गौसे दूध होता है, दूधसे दही तैयार होता है, दहीसे मक्खन निकलता है और मक्खनसे घी तैयार होता है। उसी तरह यहाँ तिथियोंका भी निर्णय होता है। पहले तो सब मासोंमें चैत्रमास ही श्रेष्ठ है। उनमें भी शुक्लपक्ष श्रेष्ठ है और शुक्लपक्षमें भी प्रतिपदासे लेकर नवमी तककी तिथियाँ श्रेष्ठ हैं। उनमें भी नवमी तिथि सर्वप्रधान तिथि है ॥ ९६–१०२ ॥ नवमी तिथिको धर्मकी स्थापना करनेके लिए रामका जन्म हुआ था, इसीसे वह तिथि समस्त कर्मोंको नष्ट करनेवाली मानी गयी है ॥ १०३ ॥ उसमें जो कुछ दान दिया जाता, हवन किया जाता, तप किया जाता अथवा जो कोई भी शुभ कर्म किया जाता है, वह सब अक्षय होता है। इसमें संशय कोई करनेकी आवश्यकता नहीं हैं ॥ १०४ ॥ इसलिए लोगोंको चाहिए कि प्रतिपदा तिथिसे लेकर नौ रात्रितक उपवास करके रामचन्द्रजीका पूजन करें ॥ १०५ ॥ संवत्सरकी प्रतिपदाको मकानके ऊपर दिव्य वस्त्र

रामजन्मसूचनार्थं प्रीत्यर्थं राघवस्य च । गृहे गृहे नरैः कार्याः पूजनीयाश्च भक्तितः ॥१०७॥
गृहे देवालये वाऽथ गोष्ठे वृन्दावने शुभे । संमार्जनादिकं नित्यं कार्यं चन्दनवारिभिः ॥१०८॥
ततः पाषाणचूर्णैश्च नानापद्मादिकानि हि । लेखनीयानि भूम्यां तु नीलपीतादिवर्णकैः ॥१०९॥
अष्टोत्तरसहस्राख्यं रामतोभद्रमुत्तमम् । शताख्यं वा लिखेद्भद्रमथवाऽन्यन्मनोरमम् ॥११०॥
तस्योपरि महान् रम्यश्चित्रवर्णश्च मण्डपः । देयो द्वाराणि चत्वारि कार्याणि तोरणानि च ॥१११॥
कदलीस्तंभयुक्तानि ह्रीक्षुदण्डयुतानि च । नानाघण्टाकिंकिणीभिर्ध्वनितान्युज्ज्वलानि च ११२॥
रम्यादर्शैर्मंडितानि विचित्राणि शुभानि च । नानाचित्रवितानैश्च मुक्ताहारैर्युतानि च ॥११३॥
तस्यां षोडशमाषैश्च प्रतिमा कांचनोद्भवा ॥११४॥
द्विभुजा रामचन्द्रस्य सर्वलक्षणलक्षिता । चतुर्विंशतिमाषैश्च प्रतिमा रजतोद्भवा ॥११५॥
कौशल्यायाः शुभा कार्या पूजनीया मनोरमा । यथावित्तानुसारेण पूजयेत्प्रत्यहं नरः ॥११६॥
भेरीमृदंगतूर्यैश्च गीतनृत्यादि कारयेत् । नानापकान्ननैवेद्यैरुपचारैः सुपूजयेत् ॥११७॥
प्रतिपद्दिनमारभ्य यावत्तु नवमीदिनम् । रामायण तावदेव पठनीयमिदं शुभम् ॥११८॥
यद्वै वाल्मीकिना गीतं श्रवणान्मंगलप्रदम् । आनन्दसंज्ञकं रम्यं पठनीयं मनोरमम् ॥११९॥
नव कांडानि नवभिर्दिनैरेव पठेन्नरः । दिवसे दिवसे कांडं पठनीयं प्रयत्नतः ॥१२०॥
अथवा प्रत्यहं सर्गाः पठितव्यास्तु द्वादश । शेषस्त्वेकः कदा मध्येऽधिकः सोऽपि पठेन्नरः॥१२१॥
अष्टोत्तरशतैः सर्गै रामकीर्तनमालिका । मेरुयुक्ता पठेदेवं रामाग्रे नवभिर्दिनैः ॥१२२॥
सर्वतीर्थेषु यत्पुण्यं सर्वदानेषु यत्फलम् । रामायणस्य पठनात्तत्फलं नवरात्रके ॥१२३॥

और माला आदिसे अलंकृत ध्वजायें रामजन्मकी सूचक तथा रामको प्रसन्न करनेके लिए घर-घर स्थापित करके भक्तिपूर्वक उनका पूजन करना चाहिए ॥१०६॥१०७॥ घरमें, देवालयमें, गोशालामें तथा तुलसीकी बगीची-में उन दिनों चन्दनके जलका छिड़काव करना चाहिए ॥ १०८ ॥ इसके बाद पत्थरके चूर्णसे नील-पीत आदि वर्णोंवाले कमल आदि बनाने चाहियें । तदनन्तर अष्टोत्तरसहस्रात्मक रामतोभद्र या शतात्मक अथवा जो अपनेको जँचें, उस भद्रकी रचना करे ॥ १०९ ॥ ११० ॥ उसके ऊपर अतिशय सुन्दर चित्र-विचित्र वर्णोंका मण्डप बनाये । उस मण्डपमें चार द्वार बनावे और स्थान-स्थानपर तोरणकी स्थापना करे ॥ १११ ॥ जहाँ-तहाँ केलेके खम्भे तथा इक्षुदण्ड खड़े करे। उनमें तरह-तरहके घण्टे और किंकिणी आदि लगा दे, जिनकी मधुर ध्वनि सुनायी पड़ती रहे ॥ ११२ ॥ जहाँ-तहाँ सुन्दर और बड़े-बड़े शीशे लगा दे, विविध प्रकारके चित्र लगावे, तरह-तरहकी चाँदनी छतमें लगावे और मोतियोंके झब्बे लटकावे। उसमें सुवर्णमय एवं रत्नमण्डित मंचकी रचना करे और उसपर अच्छे-अच्छे कपड़ोंकी मनोरम शय्या बिछावे । फिर उसपर सोलह मासेकी कांचनमयी प्रतिमा स्थापित करे ॥ ११३ ॥ ११४ ॥ रामचन्द्रजीकी वह सुवर्णमयी प्रतिमा सब सुलक्षणोंसे लक्षित होनी चाहिए। इसके अनन्तर चौबीस पलकी रजतमयी प्रतिभा कौसल्याकी बनावे और उसकी पूजा करे। जैसी अपनी सामर्थ्य हो, उसके अनुसार प्रतिदिन पूजन करे ॥ ११५ ॥ ११६ ॥ उनके सामने भेरी, मृदंग, तुरही आदि बाजे बजावे और नाचे-गावे । नाना प्रकारके नैवेद्यों और उपचारोंसे पूजन करे ॥ ११७ ॥ प्रतिपदा तिथिसे लेकर नवमी तिथि पर्यन्त इस आनन्दरामायणका पाठ करे ॥ ११८ ॥ इसका वाल्मीकि मुनिने गान किया है। यह सुननेमें मंगलप्रद और मनोरम है। इससे इसका पाठ आवश्यक है ॥ ११९ ॥ इसके नौ कांडोंको नौ दिनोंमें समाप्त करना चाहिए । पाठ करनेवालेको चाहिए कि प्रयत्नपूर्वक प्रतिदिन एक-एक कांडका पाठ करे ॥ १२० ॥ यदि ऐसा न हो सके तो प्रतिदिन बारह सर्गोंका पाठ करे। ऐसा पाठ करनेसे एक सर्ग बाकी बचेगा। उसे बीचमें किसी रोज पूरा कर देना चाहिए ॥ १२१ ॥ इस तरह अष्टोत्तरशत सर्गात्मक इस रामकीर्तन-मालिकाका नौ दिनोंमें रामचन्द्रजीके समक्ष पाठ करना चाहिए ॥ १२२ ॥ सब

श्लोकं वा श्लोकपादं वा यद्रामायणसंभवम् । नवरात्रे पठिष्यंति चैत्रे ते मोक्षभागिनः ॥१२४॥
एवं हि प्रत्यहं कार्यं कौसल्यारामपूजनम् । सपुत्राणां तु नारीणां तत्र कार्यं प्रपूजनम् ॥१२५॥
सपुत्रद्विजवर्णानां विशेषात्पूजनं स्मृतम् । वस्त्राद्यलङ्कारयुतं चित्रभोजनभोजितम् ॥१२६॥
एवं कृत्वा विधिं सर्वं नवम्यां च विशेषतः । पूजयित्वा रामचन्द्रं वाहनारूढमुत्तमम् ॥१२७॥
भेरीमृदंगघोषैश्च तूर्यदुन्दुभिनिःस्वनैः । वारस्त्रीकृतनृत्यैश्च गायकानां च गायनैः ॥१२८॥
एवं नानासमुत्साहैर्मंडितं छत्रशोभितम् । चामरैर्वीज्यमानं च पुष्पके संस्थितं वरम् ॥१२९॥
रामतीर्थांतिकं नीत्वा पञ्चामृतघटैर्वरैः । स्नापयेद्रघुवीरं हि पुण्यतोयैस्ततः परम् ॥१३०॥
रुद्रसूक्तैर्विष्णुसूक्तैः सहस्रैर्नामभिस्तु वा । मांगल्यद्रव्यसंमिश्रैर्जलैस्तमभिषेचयेत् ॥१३१॥
मांगल्यवरद्रव्यैश्च युक्तं तन्मंगलाभिधम् । प्रोच्यते मंगलस्नानं तच्चैत्रे दुर्लभं नृणाम् ॥१३२॥
तत्पंचामृततीर्थं तु तीर्थमध्ये विनिक्षिपेत् । तत्र सर्वैर्जनैः शीघ्रं स्नातव्यं तदनन्तरम् ॥१३३॥
सहस्रावभृथस्नानैर्यत्फलं प्राप्यते नरैः । तत्फलं रामचन्द्रस्य मंगलस्नानकारणात् ॥१३४॥
पुष्करादिषु तीर्थेषु गङ्गाद्यासु सरित्सु च । प्राप्यते यत्फलं स्नानान्मङ्गलस्नानकृच्च यत् ॥१३५॥
एवं रामं तु संस्नाप्य सीतायुक्तं प्रपूज्य च । पुनः पूर्वोक्तवाद्यादि मंगलैरानयेद्गृहम् ॥१३६॥
गृहे रामं पुनः पूज्य रामायणकृतं वरम् । पारायणं समाप्याथ पुस्तकं पूजयेच्छुभम् ॥१३७॥
नानोत्सवैर्दिनं नीत्वा कार्यं जागरणं निशि । दशम्यां प्रातरुत्थाय भोजयित्वा द्विजान् बहून् ॥१३८॥
पूजयित्वा पुनः सर्वं गुरवे तन्निवेदयेत् । ततः स्वयं सुहृन्मित्रैः कुर्याद्भोजनमुत्तमम् ॥१३९॥
एवं व्रतं समाख्यातं चैत्रस्य नवरात्रके । अतस्तन्नवरात्रे हि श्रेष्ठं चैत्रं महत्तमम् ॥१४०॥
नवरात्रेऽपि सा रामनवमी परमार्थदा । तत्समाना तिथिर्नान्या चैत्रमासे शुभप्रदा ॥१४१॥

तीर्थोंमें और सब दानोंमें जो पुण्य है, वही फल नवरात्रमें इस रामायणके पाठ करनेमें है ॥ १२३ ॥ नवरात्रमें जो लोग एक श्लोक अथवा श्लोकके एक चरणका भी पाठ करेंगे, वे मोक्षके भागी होंगे ॥१२४॥ इस तरह प्रतिदिन कौसल्या और रामका पूजन करना चाहिए । उस समय पुत्रवती स्त्रीके पूजनका विधान है ॥ १२५ ॥ इस अवसरपर पुत्रवान् ब्राह्मणोंके भी पूजनका विशेष महत्त्व माना गया है । पूजनके बाद उन्हें विविध प्रकारके वस्त्र, अलङ्कार और तरह-तरहके भोजन दे ॥ १२६ ॥ इस विधिसे नवरात्रमें विशेषकर नवमी तिथिको वाहनपर आरूढ़ रामका पूजन करके भेरी, मृदंग, तुड़ही, दुन्दुभी आदिके गम्भीर निनाद, गणिकाओंके नृत्य, गायकोंके गायन आदि नाना प्रकारके उत्साहोंसे मंडित, सुन्दर छत्रसे सुशोभित, चमरसे अलंकृत, पुष्पक विमानपर आरूढ़ रामचन्द्रजीको रामतीर्थपर ले जाकर पञ्चामृतके घड़ों तथा पवित्र जलोंसे स्नान करावे ॥ १२७–१३० ॥ स्नान कराते समय रुद्रसूक्त, विष्णुसूक्त अथवा सहस्रनामावलीका पाठ करता जाय । पहले ही जलमें विविध प्रकारके मङ्गलमय द्रव्य मिला ले ॥ १३१ ॥ इस तरह मङ्गलद्रव्य मिले जलसे स्नान करानेको मङ्गलस्नान कहते हैं । यह चैत्रमासमें किया जाता है और बड़ी कठिनाईसे लोगोंको ऐसा सुयोग प्राप्त होता है ॥ १३२ ॥ उस स्नानके पञ्चामृतको किसी तीर्थमें डाल दे और पूजामें जितने लोग सम्मिलित हुए हों, वे सब उस तीर्थमें जाकर स्नान करें । तभी प्राणीको मङ्गलस्नानका फल प्राप्त होता है ॥ १३३ ॥ १३४ ॥ पुष्कर आदि तीर्थों तथा गङ्गा आदि नदियोंमें स्नान करनेसे जो फल मिलता है, वही फल मङ्गलस्नान करनेवालेको प्राप्त होता है ॥ १३५ ॥ इस तरह सीता समेत रामको स्नान कराकर उनकी पूजा करे और पूर्वोक्त बाजे-गाजेके साथ फिर उन्हें अपने घर ले आवे ॥ १३६ ॥ घरपर रामको लाकर उनकी पूजा करे । तदनन्तर आनन्दरामायणका पारायण समाप्त करके पुस्तककी पूजा करे ॥ १३७ ॥ नाना प्रकारके उत्सव मनाता हुआ दिन बिताये और रात-भर जागरण करे । दशमीको सवेरे उठे और नित्यकृत्यसे निवटकर बहुतेरे ब्राह्मणोंको भोजन कराये ॥ १३८ ॥ इसके बाद गुरुकी पूजा करके उन्हें सब वस्तुयें दान दे । तत्पश्चात् सम्बन्धियों और मित्रोंके साथ स्वयं भोजन करे ॥ १३९ ॥ चैत्रके नवरात्रमें इस तरह व्रत करनेका विधान बतलाया गया है । इसीलिए लोगोंने चैत्रके

अतः परं प्रवक्ष्यामि चैत्रोद्यापनकं विधिम् । यत्कृत्वा सफलं सर्वं चैत्रस्नानं तु जायते ॥१४२॥
चैत्रे मासि सिते पक्षे या वै ह्येकादशी तिथिः । सर्वासु तिथिषु श्रेष्ठा चोपोष्या व्रतकारिभिः ॥१४३॥
श्रेष्ठा सा द्वादशी ज्ञेया तस्यां तु यमपूजनम् । कार्यं दध्योदनं दत्त्वा जलकुंभः प्रदीयताम् ॥१४४॥
तिस्रश्च तिथयः श्रेष्ठाश्चैत्रे मासि महत्तमाः । त्रयोदशी तथाभूता पौर्णमासी तथैव च ॥१४५॥
यासु स्नानञ्च दानं च सर्ववांछितदायकम् । यैर्न स्नातं चैत्रमासे न स्नातं नवरात्रके । १४६॥
तैस्तु चांत्यदिने स्नात्वा चैत्रस्नानफलं लभेत् । तासु श्रेष्ठा पौर्णिमा हि सर्वपातकनाशिनी ॥१४७॥
तस्यामुद्यापनं प्रोक्तं चैत्रस्नानफलाप्तये । उपोष्य च चतुर्दश्यां पूर्ववन्मण्डपादिकम् ॥१४८॥
कृत्वा तस्मिन् धान्यराशौ कलशं वारिपूरितम् । स्थापयित्वा तदुपरि हेमपात्रं सुविस्तृतम् ॥१४९॥
पंचरत्नयुतं स्थाप्य वस्त्रेणाच्छादयेच्च तत् । तस्मिन्सीतायुतं रामं सौवर्णं विधिपूर्वकम् ॥१५०॥
भ्रातृभिर्वायुपुत्रेण सुग्रीवेण समन्वितम् । विभीषणांगदाभ्यां तु जांबवत्सहितं तथा ॥१५१॥
पूजयेद्देवदेवेशं परमं गुर्वनुज्ञया । उपचारैः षोडशभिर्नानाभक्ष्यसमन्वितैः ॥१५२॥
रात्रौ जागरणं कुर्याद्गीतवाद्यादिमंगलैः । ततस्तु पौर्णमास्यां च सपत्नीकान् द्विजोत्तमान्॥१५३॥
त्रिंशन्मितानथैकं वा स्वशक्त्या वा निमन्त्रयेत् । ततस्तान्भोजयेद्विप्रान्पायसान्नादिना व्रती ॥१५४॥
अतो देवा इति द्वाभ्यां जुहुयात्तिलसर्पिषा । प्रीत्यर्थं देवदेवस्य देवानां च पृथक् पृथक् ॥१५५॥
दक्षिणां च यथाशक्त्या प्रदद्याच्च ततो नमेत् । पुनर्देवं समभ्यर्च्य देवांश्च तुलसीं तथा ॥१५६॥
ततो गां कपिलां तत्र पूजयेद्विधिना व्रती । गुरुव्रतोपदेष्टारं वस्त्रालंकारमण्डनैः ॥१५७॥
सपत्नीकं समभ्यर्च्य ततो विप्रान् क्षमापयेत् । युष्मत्प्रसादाद्देवेशः सुप्रसन्नोऽस्तु वै मम ॥१५८॥

नवरात्रको बहुत ही श्रेष्ठ माना है ॥ १४० ॥ नवरात्रमें भी रामनवमी परमार्थदायिनी है । इसके समान शुभप्रद तिथि चैत्रमास भरमें कोई भी नहीं है ॥ १४१ ॥ इसके अनन्तर चैत्रके उस उद्यापनका विधान बतलाते हैं, जिसके करनेसे चैत्रस्नान सफल हो जाता है ॥ १४२ ॥ चैत्रमासके शुक्लपक्षमें जो एकादशी पड़ती है, वह सब तिथियोंमें श्रेष्ठ होती है । इसलिए चैत्रव्रत करनेवालोंको यह एकादशीव्रत अवश्य करना चाहिए ॥ १४३ ॥ इसी तरह चैत्र शुक्लपक्षकी द्वादशी भी श्रेष्ठ है । इस रोज दही-भातसे यमका पूजन करके जलसे पूर्ण घड़ेका दान करना चाहिए ॥ १४४ ॥ चैत्रमास भरमें तीन तिथियाँ श्रेष्ठ हैं । जैसे–द्वादशी, त्रयोदशी और पूर्णिमा ॥ १४५ ॥ इनमें स्नान-दान करनेसे ये तिथियाँ सब कामनाओंको पूर्ण करती हैं । जिसने चैत्रस्नान नहीं किया और जो नवरात्रस्नान भी नहीं कर पाया, वह अन्तिम दिन अर्थात् पूर्णिमाको स्नान करके चैत्र-स्नानका फल प्राप्त कर लेता है । क्योंकि चैत्र भरकी सब तिथियोंसे पूर्णिमा तिथि श्रेष्ठ है और सब पातकोंको नष्ट करती है ॥ १४६ ॥ १४७ ॥ अतः चैत्रस्नानका फल पानेके लिए इस पूर्णिमामें भी उद्यापन करना चाहिए । इसका विधान यह है कि चतुर्दशीको उपवास करके पूर्ववत् मण्डप आदि बनाये और उसमें धान्यराशि तथा वारिपूर्ण कलश रखकर उसके ऊपर एक बड़ासा स्वर्णपात्र रखे ॥ १४८ ॥ १४९ ॥ उसमें पञ्चरत्न डालकर वस्त्रसे ढाँक दे । तदनन्तर सीता, लक्ष्मण आदि भ्राताओं, हनुमान्‌जी, सुग्रीव, विभीषण, अङ्गद तथा जाम्बवान् सहित रामकी सुवर्णमयी प्रतिमा स्थापित करके गुरुकी आज्ञासे देव-देवेश रामकी षोडश उपचारों एवं विविध भक्ष्य पदार्थोंसे पूजन करे ॥ १५०–१५२ ॥ रात्रि भर जागरण करता हुआ गावे-बजावे और सबेरे तीस सपत्नीक ब्राह्मणों अथवा जैसी सामर्थ्य हो, उसके अनुसार ब्राह्मणोंको बुलाकर खीर-पूड़ी आदि भोजन करावे ॥ १५३ ॥ १५४ ॥ इसके बाद 'अतो देवा' इस मन्त्रके द्वारा तिल और घीसे हवन करे । इस हवनसे देवदेव राम तथा अन्यान्य देवताओंको प्रसन्न किया जाता है ॥ १५५ ॥ यह सब करनेके बाद ब्राह्मणोंको यथाशक्ति दक्षिणा देकर प्रणाम करे । फिर समस्त देवताओं तथा तुलसी देवीका फिरसे पूजन करके विधिपूर्वक कपिला गौका पूजन करे और नाना प्रकारके वस्त्र-आभूषण देकर व्रतके उपदेष्टा सपत्नीक गुरुकी पूजा करे ॥ १५६ ॥ १५७ ॥ यह सब करनेके बाद ब्राह्मणोंसे क्षमाप्रार्थना करता हुआ

व्रतादस्माच्च यत्पापं सप्तजन्मकृतं मया । तत्सर्वं नाशमायातु स्थिरा मे चास्तु संततिः ॥१५९॥
मनोरथास्तु सफलाः संतु नित्यं ममार्चनात् । देहांते वैष्णवं स्थानं मम चास्त्वतिदुर्लभम् ॥१६०॥
इति क्षमाप्य तान् विप्रान् प्रसाद्य च विसर्जयेत् । तामर्चां गुरवे दद्याद्रत्नयुक्तां सदा व्रती ॥१६१॥
ततः सुहृत्प्रियैर्युक्तः स्वयं भुंजीत भक्तिमान् । एवमुद्यापनविधिश्चैत्रस्नानफलाप्तये ॥१६२॥
सविस्तरश्च कर्तव्यश्चैत्रस्नानपरायणैः । एवं यः कुरुते सम्यक् चैत्रस्नानव्रतं नरः ॥१६३॥
सर्वपापैर्विनिर्मुक्तो विष्णुसायुज्यमाप्नुयात् । सर्वव्रतैः सर्वतीर्थैः सर्वदानैश्च यत्फलम् ॥१६४॥
तत्कोटिगुणितं पुण्यं सम्यगस्य विधानतः । देहस्थितानि पापानि नाशमायांति तद्भयात् ॥१६५॥
क्व यास्यामो वदंत्येवं यच्चैत्रव्रतकृन्नरः । तस्मादवश्यमेवैतच्चैत्रस्नानं समाचरेत् ॥१६६॥
श्रीचैत्रव्रतकथनं पठन्ति भक्त्या ये वै तद्द्विजयतिवैष्णवान्वदंति ।
ते सम्यक् व्रतकरणात् फलं लभन्ते तत्सर्वं कलुषविनाशनं लभन्ते ॥ १६७॥

इति श्रीशतकोटिरामचरितांतर्गते श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये मनोहरकांडे
आदिकाव्ये चैत्रमहिमावर्णनं नाम दशमः सर्गः ॥ १० ॥

एकादशः सर्गः

(चैत्रस्नानका माहात्म्य)

विष्णुदास उवाच

किमर्थं सर्वमासेषु चैत्रमासः स्मृतो वरः । तत्कारणं वदस्वाद्य गुरो संतोषहेतवे ॥ १ ॥

श्रीरामदास उवाच

शृणु शिष्य महाबुद्धे सम्यक् पृष्टं त्वया मम । ब्रह्मप्रार्थनया विष्णुर्यदा भूम्यां द्विजोत्तम ॥ २ ॥
अयोध्यापालकस्याथ राज्ञो दशरथस्य हि । कौसल्यायास्तु भार्याया जठरान्निर्गतो बहिः ॥ ३ ॥

कहे कि आप लोगोंकी कृपासे देवेश रामचन्द्रजी हमपर सदा प्रसन्न रहें ॥ १५८ ॥ मैंने सात जन्म तक जो पाप किये हों, वे इस व्रतसे नष्ट होजायँ और मेरी सन्तति स्थायी हो ॥ १५९॥ इस पूजनके प्रभावसे मेरे सब मनोरथ सफल हों और देहान्त होनेपर हमें अतिशय दुर्लभ वैकुण्ठ धाम प्राप्त हो ॥ १६० ॥ इस तरह क्षमायाचना करके उन ब्राह्मणोंको प्रसन्न करता हुआ विदा करे और रत्न तथा प्रतिमा समेत पूजनकी सब वस्तुयें गुरुको दान दे दे ॥ १६१ ॥ इसके बाद नातेदारों और मित्रोंके साथ भोजन करे । इस तरह चैत्रमासका फल प्राप्त करनेके लिए उद्यापन करनेका विधान है ॥ १६२ ॥ जो लोग चैत्रमासके व्रतमें लगे हों, उन्हें विस्तारसे यह उद्यापन करना चाहिए । जो मनुष्य अच्छी तरह चैत्रस्नानका व्रत करता है, वह सब पातकोंसे छूटकर विष्णुभगवान्की सायुज्य मुक्ति प्राप्त करता है । समस्त व्रतों, सब तीर्थों और समस्त दानोंसे जो फल प्राप्त होता है, उसका करोड़ोंगुना अधिक फल इस चैत्रमासके व्रतसे प्राप्त होता है । इसके भयसे चैत्रव्रतीके देहमें रहनेवाले समस्त पातक नष्ट हो जाते हैं । वे पाप कहते हैं कि अब हम कहाँ जायँ ? अतः चैत्रव्रत करनेवाले मनुष्यको चैत्रस्नान अवश्य करना चाहिए ॥ १६३–१६६ ॥ जो लोग इस चैत्रव्रतकी कथाको पढ़ते या विप्र तथा संन्यासी वैष्णवोंको सूनाते हैं, वे अच्छी तरह व्रत करनेका फल पाते हैं और उनके समस्त पातक नष्ट हो जाते हैं ॥ १६७॥ इति श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये पं० रामतेजपाण्डेयकृत 'ज्योत्स्ना'-भाषाटीकासहिते मनोहरकाण्डे दशमः सर्गः ॥ १० ॥

विष्णुदास बोले—हे गुरुदेव ! सब मासोंमें यह चैत्रमास क्यों श्रेष्ठ माना गया है ? सो मेरे सन्तोषके लिए कहिए ॥ १ ॥ श्रीरामदासने कहा–हे महाबुद्धिमान् शिष्य ! तुमने बहुत ही अच्छा प्रश्न किया है । मैं

चैत्रे मासि सिते पक्षे नवम्यां परमे दिने । पुनर्वस्त्वर्क्षनक्षत्रे प्रोच्चस्थे ग्रहपंचके ॥ ४ ॥
मध्याह्ने प्रकटो जातः श्रीरामो राजसद्मनि । आनन्दश्च तदा जातः सर्वत्र जगतीतले ॥ ५ ॥
देवदुंदुभयो नेदुः पुष्पवृष्टिः शुभाऽपतत् । राजसद्मनि वाद्यानां संघा नेदुः पृथक् पृथक् ॥ ६ ॥
ननृतुर्वारनार्यश्च जगुर्गीतं मनोरमम् । तदा सर्वे हि भूमिस्था जना द्रष्टुं शिशुं शुभम् ॥ ७ ॥
प्रययुर्नृपजं बालं दृष्ट्वा मुदमवाप्नुयुः । नानाविमानमारूढा दिवि देवाः सवासवाः ॥ ८ ॥
मिलिता राघवं द्रष्टुं कौसल्याजठरोद्भवम् । ब्रह्मा रुद्रश्च सूर्यश्च देवेंद्रादिसुराः शुभाः ॥ ९ ॥
उत्सवान् विदधुः सर्वे तदा श्रीरामजन्मनि । एवमुत्साहसमये देवा हर्षाद्दिवि स्थिताः ॥१०॥
नमस्कृत्वा रामचन्द्रं तुष्टुवुर्विविधैः स्तवैः । प्रोचुस्तदा सुराः सर्वे हर्षाद्देवं रघूत्तमम् ॥११॥
अद्य धन्या वयं देव मुक्ताश्चासुरजाद्भयात् । यन्निमित्तं त्वया देव ह्यवतारः कृतो भुवि ॥१२॥
अस्माकं हर्षकालोऽयं देवदेव कृपानिधे । तस्मादयं सदा पुण्यः श्रेष्ठः कालो भविष्यति ॥१३॥
त्वं चाप्यंगीकुरुष्वाद्य देह्यस्मै सुबहून् वरान् । इति तेषां वचः श्रुत्वा देवानां राघवः शुभम् ॥१४॥
तुतोष नितरां तेषु देवेषु भगवान्हरिः ।

श्रीराम उवाच

सम्यक् प्रोक्तं सुराः सर्वे तत्त्रैलोक्योपकारकम् ॥१५॥
भवद्भिः प्रार्थितोऽहं तु हर्षकाले महत्तमे । शृणुध्वं वचनं मेऽद्य यद्धर्षात्प्रोच्यते मया ॥१६॥
सर्वेषामेव मासानां श्रेष्ठश्चायं भविष्यति । वैशाखात्कार्तिकः श्रेष्ठः कार्तिकान्माघ एव च ॥१७॥
माघमासाद्वरश्चायं चैत्रमासो भविष्यति । चैत्रमासे कृतं दत्तं हुतं स्नातं विचिंतितम् ॥१८॥
सर्वं कोटिगुणं प्रोक्तमयोध्यायां विशेषतः । यच्छ्रेयश्चाश्वमेधेन यद्गोमेधेन वै फलम् ॥१९॥
यत्फलं सोमयागेन तच्चैत्रे स्नानमात्रतः । सूर्यग्रहे कुरुक्षेत्रे यच्छ्रेयः स्नानदानतः ॥२०॥

उसका उत्तर देता हूँ। सुनो–॥ २ ॥ अयोध्या नगरीके पालक महाराज दशरथकी रानी कौसल्याके उदरसे चैत्रमासके शुक्लपक्षकी नवमी तिथिको पुनर्वसु नक्षत्रमें जब कि पाँच ग्रह ऊँचे स्थानमें बैठे थे, तब मध्याह्नके समय अवधेश दशरथके घरमें श्रीरामचन्द्रजी अवतरे। उस समय जगतीतलमें सर्वत्र आनन्द छा गया ॥३–५॥ देवताओंने दुन्दुभियाँ बजायीं और पुष्पवृष्टि की। राजाके महलोंमें अलग-अलग विविध प्रकारके बाजे बजे ॥ ६ ॥ वेश्यायें नाचने और गाने लगीं। उस समय पृथ्वीमण्डलके प्रमुख मनुष्य उस बच्चेको देखनेके लिए आये और उसे देख-देखकर बड़े प्रसन्न हुए। उसी तरह नाना प्रकारके विमानोंपर चढ़-चढ़कर इन्द्र आदि देवता भी एकत्र होकर कौसल्याके गर्भसे उत्पन्न रामको देखनेके लिए आये। उस समय ब्रह्मा, रुद्र, सूर्य तथा देवेन्द्र आदि देवताओंने श्रीरामचन्द्रजीके जन्मके उपलक्ष्यमें विविध उत्सव किये। इस तरह उत्साहके समय आकाशमें विद्यमान देवता रामको प्रणाम करके नाना प्रकारके स्तोत्रोंसे स्तुति कर रहे थे। समय पाकर देवताओंने रामसे कहा—॥ ७–११ ॥ हे देव ! आज हम लोग धन्य हैं। अब हम लोग राक्षसोंके भयसे मुक्त हो गये। क्योंकि इसीलिए आपने अवतार लिया है ॥ १२ ॥ हे देव ! हे कृपानिधे ! यह हम लोगोंके लिए महान् हर्षका समय है। इसीके कारण यह पवित्र समय सर्वश्रेष्ठ माना जायगा ॥ १३ ॥ अब भी इस बातको अङ्गीकार करते हुए इस समयको बहुतसे वरदान दीजिए। उनकी ऐसी बात सुनकर भगवान् रामचन्द्रजी उनपर बहुत प्रसन्न हुए और कहा–हे देवताओं ! आपलोगोंने बड़ी अच्छी बात कही है और तीनों लोकोंके उपकार करनेवाले विविध स्तोत्रोंसे स्तुति की है। इससे मैं बहुत प्रसन्न होकर कहता हूँ—॥ १४–१६ ॥ यह मास सब मासोंमें श्रेष्ठ होगा । वैशाखसे कार्तिक श्रेष्ठ है, कार्तिकसे माघ श्रेष्ठ है और माघसे भी यह चैत्रमास श्रेष्ठ होगा। इस मासमें किया हुआ दान, हवन, स्नान और ध्यान यह सब कर्म करोड़गुना फल देगा और अयोध्यामें तो उससे भी विशेष फल प्राप्त होगा । जो फल अश्वमेधसे होता है, जो फल गोमेधसे होता है

तच्छ्रेयः स्यान्मधौ स्नानादयोध्यायां सुरोत्तमाः। अत्र वै सरयूतीरे रावणं लोकरावणम् ॥२१॥
हत्वा तत्पापशांत्यर्थं करिष्यामि क्रतुं शुभम्। यत्र यागसमाप्तिर्हि भविष्यति सुरोत्तमाः ॥२२॥
तत्तीर्थं मम नाम्ना हि ख्यातिं श्रेष्ठां गमिष्यति। अयोध्यायां रामतीर्थे सरयूजलमध्यगे ॥२३॥
चैत्रस्नानं प्रकुर्वाणास्ते नरा मोक्षभागिनः। यथा माघः प्रयागे हि स्नातव्यः सुखमिच्छता॥२४॥
कार्तिकोऽपि यथा काश्यां पञ्चगंगाजले स्मृतः। द्वारकायां यथा प्रोक्तो वैशाखो माधवप्रियः ॥२५॥
अयोध्यायां रामतीर्थे तथा चैत्रो भविष्यति। सर्वेषामेव मासानामादौ श्रेष्ठो भविष्यति ॥२६॥
चैत्रमासे तु संप्राप्ते सर्वे देवाः सवासवाः। बहिर्जले समाश्रित्य तिष्ठध्वं हि ममाज्ञया। २७॥
एवं हरिस्तान् मघवादिकान् सुरानुक्त्वा सुरैस्तैश्च नमस्कृतो बभौ।
वृषेद्रमारुह्य शिवो निजं स्थलं ययौ सुरास्तेऽपि ययुर्निजं स्थलम् ॥२८॥
तस्मात्सर्वेषु मासेषु मुख्यश्चैत्रः प्रकीर्त्यते। मासादौ प्रथमः सर्वैः प्रोच्यते हि वराद्धरेः ॥२९॥
एवं शिष्य यथा पृष्टं तथा ते विनिवेदितम्। कारण चैत्रमासस्य रामचन्द्रवरादिकम् ॥३०॥

विष्णुदास उवाच

स्वामिन् गुरो त्वया चैत्रस्नानं पुण्यतमं स्मृतम्। तत्केनाचरितं पूर्वं का सिद्धिस्तत्प्रभावतः ॥३१॥
तत्सर्वं विस्तरेणैव ममाग्रे त्वं निवेदय।

श्रीरामदास उवाच

सम्यक् पृष्टं स्वस्थमनाः शृणु त्वं यन्मयोच्यते ॥३२॥
मम तातो नृसिंहाख्यः पुराऽत्रासीद् द्विजोत्तमः। तस्यैको नियमश्चासीत्प्रत्यहं भूसुरोत्तमम् ॥३३॥
एकमब्जकक्षेत्रस्थं द्विजमन्नार्थिनं स्वपि। स्नुषास्त्रीपुत्रतनयदासीदासादिभिर्युतम् ॥३४॥

और सोमयागसे जिस फलकी प्राप्ति होती है, उस फलकी प्राप्ति इस चैत्रमासके स्नानमात्रसे हो जाया करेगी। कुरुक्षेत्रमें सूर्यग्रहणके समय स्नान दानसे जो श्रेय प्राप्त होता है ॥ १७-२० ॥ वह श्रेय चैत्रमासमे अयोध्याजीमें स्नान करनेसे प्राप्त होगा। इस सरयू नदीके तटपर लोगोंको रुलानेवाले रावणको मारकर ब्रह्महत्याके पापकी शान्तिके लिए मैं शुभ यज्ञ करूँगा। हे देवताओ! जिस स्थानपर वह यज्ञ समाप्त होगा, वह स्थान मेरे नामसे विख्यात होगा। जो लोग अयोध्या, रामतीर्थ तथा सरयूजीके जलमें चैत्रस्नान करेंगे, वे अवश्य मोक्षभागी होंगे। जिस तरह सुखकी इच्छा रखनेवालोंका माघमें प्रयाग-स्नान करना आवश्यक होता है ॥ २१-२४ ॥ जिस तरह कार्तिकमें काशीकी पंचगंगाके जलमें स्नान करनेका विधान है और जिस तरह वैशाखमें द्वारकास्नान कल्याणकारी माना गया है, उसी तरहका माहात्म्य चैत्रमासमें अयोध्याके रामतीर्थका होगा। यह मास सब मासोंके आदिमें और सबसे श्रेष्ठ माना जायगा ॥ २५ ॥ २६ ॥ चैत्रमासके आनेपर इन्द्रसमेत समस्त देवता यहाँ आकर निवास करें। यह मेरी आज्ञा है ॥ २७ ॥ विष्णुभगवान्ने इन्द्र आदि देवताओंसे ऐसा कहा और देवताओंने उनको प्रणाम किया। जिससे भगवान्की एक असाधारण कान्ति चमक उठी। तदनन्तर शिवजी नन्दीपर सवार होकर अपने स्थानको चले गये। अन्य देवता भी अपने-अपने स्थानको चल पड़े ॥ २८ ॥ इसी कारण चैत्रमास सब मासोंमें श्रेष्ठ माना जाता है और भगवानके वरदानसे सब मासोंके आदिमें गिना जाता है ॥ २९ ॥ इस प्रकार हे शिष्य! जैसा तुमने पूछा, वह रामचन्द्रजीके वरदान आदिका वृत्तान्त मैंने कह सुनाया ॥ ३० ॥ विष्णुदासने कहा—हे स्वामिन्! हे गुरो! आपने पवित्र चैत्रस्नानका विधान बतलाया। अब यह बताइए कि इस व्रतको किसने किया था और इससे उसे कौन-सी सिद्धि प्राप्त हुई थी ॥ ३१ ॥ यह सब विस्तारपूर्वक आप हमें बतलाइए। श्रीरामदासने कहा—तुमने बहुत अच्छा प्रश्न किया है। अब मैं जो कुछ कहता हूँ, उसे सुनो ॥३२॥ मेरे पिता नृसिंहका एक नियम था। वे कमलपुरनिवासी एक ब्राह्मणको पुत्र-कलत्र एवं दास-दासी समेत बुलाकर सारे कुटुम्बको भोजन कराते और अच्छी तरह आदर-सत्कार करते थे।

कुटुम्बभोजं तस्मै संपूज्यान्नैर्विधोयताम् । लक्ष्मीनाम्नी तु मन्माता तावुभौ रामतत्परौ ॥३५॥
पुत्रोत्पत्तिमदृष्ट्वा तौ वृद्धौ पुत्रार्थमुद्यतौ । स्वदोषपरिहारार्थमुपायं कर्तुमुद्यतौ ॥३६॥
निवासाख्ये पुरे गत्वा दंपती मोहिनीं शुभाम् । स्वीयेष्टदेवतामम्बां प्रवरातीरवासिनीम् ॥३७॥
दृष्ट्वा देव्याश्च तौ सेवां नित्यं तत्र प्रचक्रतुः । गते बहुतिथे काले वरदा या महालया ॥३८॥
प्रसन्ना त द्विजं भूत्वा प्राह तद्दोषशांतये । हे नृसिंह महाबुद्धे गच्छायोध्यापुरीं प्रति ॥३९॥
तत्र वै सरयूतीये रामतीर्थे महत्तमे । चैत्रे मासि वसंततौं यदा स्यान्मीनगो रविः ॥४०॥
चैत्रस्नानं मासमेकं कुरु तत्र द्विजोत्तम । पातकं सकलं त्यक्त्वा पुत्रं प्राप्यस्यस्यनुत्तमम् ॥४१॥
इति देव्या वचः श्रुत्वा द्विजश्चिंतापरस्तदा । ययौ मार्गे हृदि ध्यायन्नयोध्याख्यां पुरीं शुभाम् ॥४२॥
चिंतया परया व्याप्तः कथं गंतुं हि शक्यते । मयाऽयोध्यापुरी दूरमितः कष्टं च जीवितम् ॥४३॥
इति चिंतायुतो मार्गे क्वचित्तिष्ठन्क्वचित्स्खलन् । भार्यायाश्च करे घृत्वा वृद्धश्चैवं ययौ द्विजः ॥४४॥
एवं गोदावरीतीरं गत्वा स्नात्वा द्विजोत्तमः । राममूर्ति पुरः स्थाप्य पूजयामास भक्तितः ॥४५॥
तावत्तस्मै प्रसन्नोऽभूद्रामो देव्याः प्रसादतः । द्विजं प्राह रघुश्रेष्ठो भो नृसिंह द्विजोत्तम ॥४६॥
माऽयोध्यां त्वमितो गच्छ शृणु मे वचनं शुभम् । इतः पूर्वे ह्यदूर हि योजनद्वयसमितम् ॥४७॥
प्रतिष्ठानाभिधं क्षेत्रं गोदाया उत्तरे तटे । तत्रास्ति रामतीर्थं हि मन्नाम्ना च मया कृतम् ॥४८॥
तत्र त्वं गच्छ विप्रेंद्र स्नात्वा शीघ्रं हि भार्यया । चैत्रमासे वसंततौं यदा स्यान्मीनगो रविः ॥४९॥
तदा कुरु विशेषेण पूजयित्वा च मां शुभम् । पापक्षयः पुत्रलाभो भविष्यति न संशयः ॥५०॥
इत्युक्त्वा रघुवीरस्तु तत्रैवांतरधीयत । यत्र गंगाह्रदे रामः प्रसन्नोऽभूद् द्विजाय हि ॥५१॥
तस्मात्स वै रामह्रदो नाम्ना सर्वत्र कीर्त्यते । तद्रामवचनाद्विप्रः प्रतिष्ठानपुरं ययौ ॥५२॥
मासमेकं च वै स्थित्वा चैत्रस्नानं चकार ह । सूर्योदये समुत्थाय कृतशौचादिसत्क्रियः ॥५३॥

लक्ष्मीनाम्नी मेरी माता और पिता ये दोनों असाधारण रामभक्त थे ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ किन्तु वृद्धावस्था पर्यन्त पुत्रका अभाव देखकर उन्होंने अपना दोष शान्त करनेके लिए उपाय करना प्रारम्भ किया ॥ ३५ ॥ इसके लिए वे प्रवराके तीरपर रहनेवाली अपनी इष्टदेवी अम्बा मोहनीके पास गये ॥ ३६ ॥ उनका दर्शन करके उन्होने बहुत दिनों तक देवीकी आराधना की । कुछ दिनों बाद देवी प्रसन्न होकर कहने लगीं—हे महाबुद्धिमान् नृसिंह ! तुम यहाँसे अयोध्यापुरी जाओ । वहाँके महातीर्थ सरयू नदीके जलमें जब वसन्त ऋतुके समय सूर्य मीनराशिपर जायें, तब एक महीने चैत्रस्नान करो । ऐसा करनेसे तुम्हारे सब पातक नष्ट हो जायेंगे और तुम्हें पुत्रकी प्राप्ति होगी ॥ ३७–४१ ॥ देवीकी यह बात सुनकर वे अयोध्यापुरीका ध्यान करते हुए चले । उन्हें यह बड़ी चिंता थी कि अयोध्यापुरी तो यहाँसे बहुत दूर है और मुझे अपना जीवन भी भारी हो रहा है ॥ ४२ ॥ ४३ ॥ ऐसा सोचते हुए वे कभी बैठ जाते, कभी गिर पड़ते और कभी अपनी स्त्रीका हाथ पकड़कर वे मेरे वृद्ध पिता चलते थे ॥ ४४ ॥ इस तरह किसी प्रकार वे गोदावरीके तटतक पहुँचे । वहाँ उन्होंने स्नान किया और सामने रामकी मूर्ति रखकर भक्तिपूर्वक पूजन करने लगे ॥ ४५ ॥ तबतक देवीके आशीर्वादसे रामचन्द्रजी प्रसन्न होकर सामने आये और कहने लगे—हे द्विजोत्तम नृसिंह ! अब तुम अयोध्या मत जाओ । यहाँसे केवल तीन योजन दूर गोदावरीके उत्तर तटपर प्रतिष्ठान नामक क्षेत्र है। वहाँ मेरे नामसे प्रसिद्ध रामतीर्थ है। मैंने ही उसकी स्थापना की है ॥ ४६–४८ ॥ तुम वहाँ जाओ और चैत्रमासमें जब सूर्य मीन राशिपर जायें, तब भार्याके साथ स्नान करके मेरा विधिवत् पूजन करो । ऐसा करनेसे तुम्हारे सब पातक नष्ट हो जायेंगे और तुम्हें पुत्रकी प्राप्ति होगी । इसमें कोई संशय नहीं है ॥ ४९ ॥ ५० ॥ ऐसा कहकर रामचन्द्रजी वहीं हो अन्तर्धान हो गये । जिस गङ्गानामक सरोवरके तटपर राम प्रसन्न हुए थे, वह स्थान रामह्रदके नामसे विख्यात हुआ । रामके कथनानुसार ब्राह्मणदेवता अपनी भार्याके साथ उस प्रतिष्ठानतीर्थको गये

स्नात्वा तस्मिन् रामतीर्थे सरयूमंगलसमन्विते । रामचन्द्रं स्वर्णगिरौ पूजयामास भक्तितः ॥५४॥
प्रदक्षिणाः स्वर्णगिरेश्चकार नव प्रत्यहम् । नवपुष्पैश्च नैवेद्यैः पूजयामास राघवम् ॥५५॥
चैत्रशुक्लतृतीयाया यावद्वैशाखसंभवा । तृतीया शीतला गौरी स्नानं चक्रे च भार्यया ॥५६॥
एवं मासं व्रतं कृत्वा स द्विजस्तुष्टमानसः । अब्जकं प्रति मार्गेण ययौ लक्ष्म्या समन्वितः ॥५७॥
यावन्मार्गे द्विजोऽगच्छत्तावद्दृष्टास्त्रिभिर्नरैः । पिशाचैः क्षुत्तृषाक्रांतैस्तानुद्धार्य सभार्यया ॥५८॥
ययौ स्वनगरं रम्यं गोदानाभिविराजितम् । चैत्रस्नानप्रभावेण जातस्तस्मात्सुतस्त्वहम् ॥५९॥
तस्मान्मया ते कथितं वरं हि स्नानं मधौ ते सरयूजले वै ।
साकेतपुर्यां नररामतीर्थे भुक्तिप्रदं मोक्षदमुत्तम च ॥६०।

विष्णुदास उवाच

कथं पिशाचयोन्यास्ते मुक्ता विप्रेण वै त्रयः । कस्मात्पापाच्च ते सर्वे पैशाचीं योनिमाश्रिताः ॥६१॥
तत्सर्वं विस्तरेणैव श्रोतुमिच्छामि त्वन्मुखात् ।

श्रीरामदास उवाच

शृणु शिष्य प्रवक्ष्यामि रम्भानाम्नी वराऽप्सराः ॥६२॥
चैत्रे स्नात्वा वरायोध्यासरयूनिर्मले जले । आर्द्रवस्त्रयुता चारुहास्यालंकारमण्डिता ॥६३॥
गृहीत्वा सरयूतोयं रत्नकांचननिर्मिते । पात्रे रामेश्वरं सेतौ द्रष्टुं मौनेन सा जवात् ॥६४॥
ययावाकाशमार्गेण पिशाचा यत्र ते त्रयः । तदार्द्रवस्त्रचांचल्याद्बिंदुभिः प्रोक्षिताश्च ते ॥६५॥
क्रूरस्वभावमुत्सृज्य चाश्चर्यं परमं ययुः । पूर्वजन्मानुस्मरणमभूत्तेषां तदा नृप ॥६६॥
विस्मयाविष्टचित्तास्ते तां दृष्ट्वाऽप्सरसं दिवि । बहुधा प्रार्थयामासुस्तान्सा पप्रच्छ संज्ञया ॥६७॥

॥ ५१ ॥ ५२ ॥ वहाँ रहकर उन्होंने एक मास पर्यन्त चैत्रस्नान किया। उनका यह नियम था कि प्रतिदिन सूर्योदयमें पहले सोकर उठ जाते और नित्यकृत्यसे निबटकर सरयूमङ्गमपर विद्यमान तीर्थमें स्नान करते और भक्तिपूर्वक स्वर्णगिरिपर रामचन्द्रजीकी पूजा किया करते थे ॥ ५३ ॥ ५४ ॥ प्रतिदिन वे उस स्वर्णगिरिकी नौ परिक्रमा करते और नौ पुष्पों और विविध प्रकारके नैवेद्योंसे रामका पूजन करते थे। वह व्रत उनका तबतक चलता रहा, जबतक वैशाखके शुक्लपक्षकी तृतीया नहीं आयी। तृतीयाके आनेपर उन्होंने शीतलागौरी नामक स्नान किया ॥ ५५ ॥ ५६ ॥ इस तरह एक मास तक व्रत करके प्रसन्न चित्तसे वे ब्राह्मणदेवता अपनी पत्नीके साथ कमलपुरको चले ॥ ५७ ॥ जाते-जाते रास्तेमें उनको तीन पिशाच मिले। वे तीनों बड़े भूखे थे। मेरे पिता-माताने उनका उद्धार किया और अपने नगरको गये। उसी चैत्रस्नानके प्रभावसे मैं उनका पुत्र होकर जन्मा ॥ ५८ ॥ ५९ ॥ इसीलिए मैने चैत्रमासमें अयोध्याके पवित्रतीर्थमें भुक्ति-मुक्तिप्रद सरयूजलमें स्नानका विधान बतलाया है ॥ ६० ॥ विष्णुदासने कहा–वे तीनों पिशाच किस तरह उस पिशाचयोनिसे छूटे और किस पापसे वे पिशाचयोनिमें पड़े थे। यह वृत्तान्त भी विस्तारपूर्वक मैं आपके मुखसे सुनना चाहता हूँ। श्रीरामदास कहने लगे–हे शिष्य ! सुनो, यह कथानक भी मैं कहता हूँ। रम्भा नामकी एक सुन्दरी अप्सरा थी ॥ ६१ ॥ ६२ ॥ उसने चैत्रमासमें अयोध्याके सरयूजलमें स्नान किया। उसके कपड़े भींग गये थे, मन्द मुस्कान उसके होठोंपर खेल रही थी और उसके अंगमें पड़े हुए विविध प्रकारके आभूषण अपनी असाधारण शोभा दिखा रहे थे ॥ ६३ ॥ स्नानके अनन्तर उसने रत्न और कंचनसे बने हुए पात्रमें रामेश्वर शिवको स्नान करानेके लिये सरयूजल भरा और मौन होकर आकाशमार्गसे रामेश्वरको चल पड़ी। जाते-जाते वह उस स्थानपर पहुंची, जहाँ वे तीनों पिशाच रहते थे। रम्भाके भींगे वस्त्रसे पानीकी कई बूंदें गिरकर इन पिशाचोंपर पड़ीं ॥ ६४ ॥ ६५ ॥ इससे उनका क्रूर स्वभाव छूट गया और उन्हें पूर्वजन्मकी सब बातें याद आ गयीं ॥ ६६ ॥ तदनन्तर वे तीनों विस्मित होकर बहुत तरहसे प्रार्थना करने लगे। रम्भाने संकेतमें उनसे पूछा—॥ ६७ ॥

कस्माद्यूयं पिशाचा हि जातास्तत्कथ्यतां मम । इति तत्करकृत्संज्ञाप्रेरितास्ते त्रयस्तदा ॥६८॥
तेषु द्वौ वर्तमानौ हि कथयामासतुश्च ताम् । शृणु भामिनि चावां हि पूर्वजन्मनि भूसुरात् ॥६९॥
विरजायां समुत्पन्नौ श्रोत्रियाद्धरशर्मणः । उभावध्ययनं कर्तुं कंचिन्नारायणाह्वयम् ॥७०॥
शुश्रूषया तोषयित्वा गुरुं तत्रैव तस्थतुः । नारायणसुतां चारुहासां चन्द्रनिभाननाम् ॥७१॥
दृष्ट्वा परस्परं मैत्र्यं बहुधा प्रार्थ्य तां स्त्रियम् । आवाभ्यां च हि सा भुक्ता तज्ज्ञातं गुरुणा चिरात् ॥७२॥
आवाभ्यां च ददौ शापं तस्यै चाप्यशपत्क्रुधा । युवां चापि कुमारीयं पिशाचत्वं गमिष्यथ ॥७३॥
ततोऽस्माभिस्त्रिभिस्तं तु मुनिं नत्वा पुनःपुनः । शापस्यांतस्ततो लब्धस्तच्छृणुष्व मनोरमे ॥७४॥
चैत्रमासे नृसिंहाख्यः कश्चिद्विप्रश्च कानने । ददाति स्नानजं पुण्यं तदोद्धारो भविष्यति ॥७५॥
एवं जाता पिशाचा हि वयं त्वद्वस्त्रबिंदुभिः । प्रोक्षिताः स्मोऽद्य तैर्जाता पूर्वजन्मस्मृतिः शुभा ७६॥
तत्तेषां वचनं श्रुत्वा ज्ञात्वा शापस्य मोक्षणम् । सांत्वयित्वा करेणैव शीघ्रं स नृहरिः स्त्रिया ॥७७॥
आगमिष्यति मा चिंतां कुरुतेति वरांगना । ययौ रामेश्वरं शीघ्रं पूजयित्वा गता दिवम् ॥७८॥
चैत्रमासे ह्यतिक्रांते मार्गे स नृहरिर्द्विजः । भार्यया सहितो दृष्टः पिशाचैस्तैः पिता मम ॥७९॥
स्थित्वा दूरं च ते सर्वे तमूचुर्नृहरिं द्विजम् । नैजं वृत्तं समस्तं हि शापस्यापि विमोक्षणम् ॥८०॥
तच्छ्रुत्वा नृहरिर्विप्रस्तान्प्रोवाच मुदान्वितः । मा भेतव्यं पिशाचत्वाद्यथा शंभुद्विजेन सः ॥८१॥
राक्षसो मोचितः पूर्वं मोचयिष्याम्यहं तथा ।

पिशाच उवाच

कः शंभुश्च कदा मुक्तो राक्षसः कः सविस्तरम् ॥८२॥

तुमलोग इस पिशाचयोनिको क्यों प्राप्त हुए हो, सो कहो। इस प्रकार रम्भाके हाथोंका संकेत पाकर उन तीनोंमेंसे दो बोले–हे भामिनी ! सुनो, पूर्वजन्ममें हम दोनों विरजा नाम्नी स्त्रीद्वारा हर शर्मा नामक ब्राह्मणसे उत्पन्न हुए थे। अवस्थानुसार हम दोनों विद्या पढ़नेके लिए नारायण नामक एक गुरुके यहाँ गये। वहाँ उनकी सेवा करते हुए रहने लगे। गुरुजीकी एक सुन्दरी कन्या थी। उसकी मनोहारिणी मुस्कान थी और चन्द्रमा-के समान मुख था॥ ६८–७१॥ उसे देखकर हम दोनोंने उससे मित्रता कर ली और समय पाकर बहुत अनुनय-विनय करके हम दोनोंने उसके साथ भोग किया। बहुत दिनों बाद यह बात गुरुजीको ज्ञात हो गयी॥ ७२॥ उन्होंने कुपित होकर हमें तथा उस कन्याको शाप देते हुए कहा कि इस कुमारीके साथ तुम दोनों पिशाच हो जाओ॥ ७३॥ इसके बाद हम तीनोंने उन मुनीश्वरको बार-बार प्रणाम करके किसी तरह शापके अन्तका वचन पाया। सो भी सुन लो॥ ७४॥ उन्होंने कहा कि चैत्रमासमें कोई नृसिंह नामका ब्राह्मण इस वनमें आयेगा और वह अपने चैत्रस्नानका पुण्य तुम्हें प्रदान करेगा, तब तुम्हारा उद्धार होगा॥ ७५॥ इस तरह हमलोगोंको यह पिशाचयोनि मिली। आज हम आपके वस्त्रबिन्दुसे प्रोक्षित हो गये। इस कारण हमें पूर्वजन्मकी सब बातें याद आ गयी हैं॥ ७६॥ इस प्रकार उनकी बात सुनकर रम्भाने संकेतमें ही कहा कि तुम लोग धैर्य रखो। अब शीघ्र ही नृसिंह ब्राह्मण अपनी स्त्रीके साथ इस वनमें आनेवाले हैं॥ ७७॥ तुमलोग किसी प्रकारकी चिन्ता मत करो। इतना कहकर रम्भा रामेश्वर चली गयी। वहाँ उसने शिवजीका पूजन किया और आकाशमार्गसे ही लौटकर स्वर्गको चली गयी॥ ७८॥ चैत्रमास बीतनेपर नृसिंह अपनी भार्याके साथ उस वनमें पहुँचे और उन पिशाचोंको देखा॥ ७९॥ वे तीनों पिशाच नृसिंहके पास न आकर थोड़ी दूरपर खड़े हो गये और अपने पूर्वजन्मका वृत्तांत एवं शापसे मुक्ति पानेका उपाय कह सुनाया॥ ८०॥ उनकी बात सुनकर मेरे पिताजीने कहा–तुम लोग घबड़ाओ नहीं। जिस प्रकार शम्भुनामक ब्राह्मणने उस राक्षसको पिशाचयोनि-से मुक्त किया था, उसी तरह मैं भी तुम लोगोंको इस योनिसे मुक्त कर दूँगा। उनकी बात काटकर पिशाचों-मेंसे एकने कहा कि शम्भु विप्र कौन थे और वह राक्षस कौन था? यह वृत्तान्त विस्तारपूर्वक आप हमें

कथयस्व द्विजश्रेष्ठ कृपां कृत्वा तु कौतुकात् ।

नृसिंह उवाच

शृणुध्वं कथयिष्यामि यद्वृत्तं च पुरातनम् ॥८३॥

शिवकांचीपुरीमध्ये कश्चिद्विप्रः शुचिव्रतः । शंभुनामा चिरं कालं तस्थौ स च स्वभार्यया ॥८४॥
स कस्मिंश्चिद्दिने विप्रश्चैकांबरशिवांतिके । पौराणिकमुखाच्चैत्रमासमाहात्म्यवर्तिनीम् ॥८५॥
कथां श्रोतुं समायातस्तत्र श्रुत्वा महत्फलम् । अयोध्यायां हि चैत्रस्य स्नानात्कैवल्यदायकम्॥८६॥
ततो बहुगते काले संस्मरन् तां कथां शुभाम् । ज्ञात्वा समागतं चैत्रं स्वगृहान्निर्गतस्तदा ॥८७॥
भार्यया सहितो विप्रः शनैर्मार्गेण वै ययौ । तीर्त्वा तां जाह्नवीं रम्यां यावदग्रे स गच्छति ॥८८॥
तावद्दृष्टो हि भिल्लेन कर्कशाख्येन कानने । गृहीत्वा सशरं चापं धर्षयित्वा च भूसुरम् ॥८९॥
लुलुंठ कर्कशः क्रूरो वस्त्रेणैकेन तं द्विजम् । मुमोच तस्य पाथेयं गृहीत्वा सकलं शुभम् ॥९०॥
द्विजोऽपि प्रार्थयामास कर्कशं च पुनः पुनः । वस्त्रादिकं गृहाण त्वं भक्ष्यपिष्टं ददस्व माम् ॥९१॥
तत्तस्य वचनं श्रुत्वा मुक्त्वा तद्वस्त्रबंधनम् । सर्वं ददर्श पाथेयं नानाविधमनुत्तमम् ॥९२॥
तस्मिन्ददर्श स व्याधो दश रंभाफलानि वै । अपक्वान्यतिशुष्काणि ततश्चित्तेऽविचारयत् ॥९३॥
एतैः फलैर्न मे कार्यं जानामि ब्राह्मणोत्तमम् । तर्हि दास्याम्यहं दीनं क्षुधाक्रांतं च सस्त्रिकम् ॥९४॥
इति निश्चित्य स व्याधो ददौ तानि द्विजन्मने । गृहीत्वाऽभक्षयद्विप्रः प्रारम्भे भार्यया मधौ ॥९५॥
तद्रंभाफलदानेन कर्कशस्य तदा शुभा । जाता बुद्धिः क्षणादेव सात्त्विकी क्रूरता गता ॥९६॥

एवं पिशाचाः सकलास्ततः परं भिल्लाय तस्मै तु शुभा मतिर्बभूव ।
समागतं चात्र कुतः स पृष्टवान् विप्रं स वै प्राह वने च कर्कशम् ॥९७॥

शम्भुरुवाच

कांचीपुर्याः समायातो गम्यतेऽयोध्यकां पुरीम् । चैत्रमासेऽवगाहार्थं सरयूनिर्मले जले ॥९८॥

बतलाइए । हे द्विजश्रेष्ठ ! हमपर इतनी कृपा करिए । नृसिंह कहने लगे–अच्छा सुनो । मैं एक पुरातन कथा तुम लोगोंको सुनाऊँगा ॥ ८१–८३ ॥ शिवकांचीपुरीमें पवित्रव्रतधारी एक ब्राह्मण रहता था । उसका नाम शम्भु था । वह बहुत दिनों तक अपनी स्त्रीके साथ उस नगरीमें रहा ॥ ८४ ॥ एक दिन वह ब्राह्मण किसी वनमें एकांबर नामक शिवके समीप पौराणिकके मुखसे चैत्रमास-माहात्म्यकी कथा सुनने गया । वहाँ पहुँचकर उसने चैत्रमासमें अयोध्यास्नानका बड़ा फल सुना ॥ ८५ ॥ बहुत दिनों बाद उस कथाका स्मरण करके वह चैत्रमास लगनेके पहले ही अयोध्या जानेके लिए अपने घरसे निकल पड़ा । उसने अपने साथ अपनी स्त्रीको भी ले लिया था । वह धीरे-धीरे अयोध्याकी ओर चला । राहमें गंगाजी पड़ीं तो उन्हें पार किया । वहाँसे थोड़ी दूर आगे गया ही था कि वनमें कर्कश नामका एक भील धनुष-बाण लिये हुए मिला । उसने ब्राह्मण-देवताको धमकाकर सब कुछ छीन लिया और केवल एक कपड़ा पहनाकर छोड़ दिया । यहाँ तक कि उसने इन लोगोंका पवित्र पाथेय भी ले लिया ॥ ८६–९० ॥ तब ब्राह्मणने उससे प्रार्थना की कि मेरे कपड़े-लत्ते सब कुछ ले लो । लेकिन रास्तेमें खानेकी वस्तुओंवाली वह पोटली वापस दे दो ॥ ९१ ॥ ब्राह्मणकी बात सुनकर कर्कशने वह पोटली खोली और देखा कि उसमें बहुत-सी खाने-पीनेकी चीजें बँधी हैं ॥ ९२ ॥ उस व्याधेने उसमें दस केलेके फल भी देखे । वे फल कच्चे और सूखे हुए थे । उन फलोंको देखकर उसने मनमें सोचा कि इन फलोंकी तो हमें कोई अवाश्यकता है नहीं, फिर इसे क्यों न दे दूँ ॥ ९३ ॥ ९४ ॥ ऐसा निश्चय करके उसने केले वापस दे दिये और उस सपत्नीक ब्राह्मणने चैत्रमासके प्रारम्भमें वे केलेके फल खाये ॥ ९५ ॥ उस रम्भाफलके दानसे कर्कश व्याधके हृदयमें शुभ बुद्धिका प्रादुर्भाव हो गया । जिससे उसकी क्रूरता नष्ट हो गयी और सात्त्विकता आ गयी ॥ ९६ ॥ हे पिशाचो ! जब उस भीलकी मति पवित्र हो गयी तो उसने

इति विप्रवचः श्रुत्वा पुनः पप्रच्छ कर्कशः । किं लभ्यते हि स्नानेन तन्मे वद सविस्तरम् ॥९९॥
पुनः प्राह स विप्रेंद्रः कर्कशं भक्तितः फलम् । स्नानेन मधुमासे हि रघुनाथः प्रसीदति ॥१००॥
प्रसादात्सकलान्भोगान् लभंते मानवा भुवि । अंते मोक्षोऽपि भो भिल्ल लभ्यते नात्र संशयः ॥१०१॥
इति विप्रवचः श्रुत्वा पुनः पप्रच्छ कर्कशः । मोक्षस्वरूपं कथय कृपां कृत्वा ममोपरि ॥१०२॥
तत्तस्य वचनं श्रुत्वा पत्नीं प्राह द्विजोत्तमः । पश्य पश्य वरारोहे कौतुकं महदद्भुतम् ॥१०३॥
यद्रंभाफलदानेन चैत्रे मासि वरानने । अयं क्व भिल्लजातीयः क्व प्रश्नश्चेदृशः शुभः ॥१०४॥
मोक्षस्वरूपज्ञानार्थं तस्माद्दानं प्रशस्यते । इत्युक्त्वा तां प्रियां विप्रः कर्कशं प्राह सादरम् ॥१०५॥
साधु साधु महाव्याध सम्यक्प्रश्नः कृतस्त्वया । इदानीं प्रोच्यते मोक्षस्वरूपं तन्निशामय ॥१०६॥
स मोक्षस्त्वं हि जानीहि यतो नास्ति पुनर्भवः । इति विप्रवचः श्रुत्वा पुनः पप्रच्छ कर्कशः ॥१०७॥

तस्य प्राप्तिर्यथा स्यान्मे तन्मे वद द्विजोत्तम ।
शृणु कर्कश तत्प्राप्तिर्यथा स्यात्तद्वदामि ते ॥१०८॥

दारपुत्रगृहादीनां प्रीतिं मुक्त्वा जनार्दनम् । दिवारात्रं चिंतयित्वा सर्वदेहस्य चालकम् ॥१०९॥
आत्मानं बहुपुण्यौघैर्निर्मलीकृत्य मानसम् । तत्स्वरूपे यदा तिष्ठेत्स मुक्तो नेतरो जनः ॥११०॥
एवं वदति विप्रेंद्रे व्याधो मुक्त्वा शरं धनुः । शंभुपादौ जवान्नत्वा त्राहि त्राहीति वै वदन् ॥१११॥
प्रोवाच द्विजवर्यं स व्याधो मामुद्धरेति च । एतस्मिन्नंतरे तत्र राक्षसो घोरदर्शनः ॥११२॥
दुद्राव दीर्घशब्देन यत्रासंस्ते त्रयो वने । आयांतं राक्षसं दृष्ट्वा चक्रुस्ते तु पलायनम् ॥११३॥
तावज्जवेन तान् धर्तुं निकटं राक्षसो ययौ । तं दृष्ट्वा निकटं शंभुस्तुंबिकां सजलां निजाम् ॥११४॥

उन ब्राह्मण देवतासे पूछा कि आप किस कार्यसे इधर आ पहुँचे ? ॥ ९७ ॥ शम्भुने उत्तर दिया कि मैं कांचीपुरीसे आया हूँ और अयोध्या जा रहा हूँ। वहाँ चैत्रमासमें स्नान करूँगा ॥ ९८ ॥ इस तरह ब्राह्मणकी बात सुनकर कर्कशने कहा कि चैतस्नानसे क्या लाभ होता है ? यह आप विस्तारपूर्वक हमें बतलाइए ॥ ९९ ॥ ब्राह्मण भक्तिपूर्वक कर्कशको चैत्रमासके स्नानका फल बतलाने लगा। उसने कहा कि चैत्रस्नानसे भगवान् रामचन्द्र प्रसन्न होते हैं ॥ १०० ॥ संसारके प्राणी उन्हींकी कृपासे सब प्रकारके सुखोंको भोगते हैं और अन्तमें उन्हें मोक्ष भी मिलता है। इसमें कोई संदेह नहीं है ॥ १०१ ॥ इस तरह विप्रकी बात सुनकर कर्कशने कहा कि कृपा करके आप हमें मोक्षका स्वरूप बतलाइए ॥ १०२ ॥ इस प्रकार कर्कशका प्रश्न सुनकर ब्राह्मणने अपनी पत्नीसे कहा—प्रिये ! देखो तो कितने आश्चर्यकी बात है। चैत्रमासमें केलेके फलोंके दानसे यह भील कैसे-कैसे प्रश्न कर रहा है। इतनी बात अपनी स्त्रीसे कहकर ब्राह्मण प्रेमपूर्वक कर्कशसे कहने लगा— ॥ १०३–१०५ ॥ हे महाव्याध ! तुम्हारा प्रश्न बहुत ठीक है। अब मैं तुमको मोक्षका स्वरूप बतला रहा हूँ। तुम सावधान मनसे सुनो ॥ १०६ ॥ मोक्ष उसे कहते हैं, जिसे पाकर प्राणीको फिर जन्म न लेना पड़े। इस तरह ब्राह्मणकी बात सुनकर कर्कशने फिर कहा—उसकी प्राप्ति मुझे जिस तरह हो सके, वह उपाय बतलाए। शम्भु ब्राह्मणने कहा—हे कर्कश ! जिस तरह तुम्हें मोक्षकी प्राप्ति हो सकती है। वह उपाय मैं बतलाता हूँ, सुनो ॥ १०७ ॥ १०८ ॥ जो मनुष्य स्त्री, पुत्र, गृह आदिकी प्रीतिका परित्याग करके रात-दिन सब प्राणियोंके संचालक भगवान् जनार्दनका ध्यान करता है और बहुतेरे पुण्योंसे अपने चित्तको निर्मल करके उन्हींके स्वरूपमें लौ लगाये रहता है, वही प्राणी मुक्त होता है और कोई नहीं ॥ १०९ ॥ ११० ॥ ऐसा कहनेपर कर्कशने अपना धनुष-बाण फेंक दिया और वेगके साथ शम्भुके पैरोंपर गिर पड़ा और कहने लगा—हे ब्राह्मणदेवता ! हमारी रक्षा करो। उसी समय एक राक्षस दौड़ता हुआ उस स्थानपर आ पहुँचा, जहाँ ये तीनों बैठे वार्तालाप कर रहे थे। राक्षसको आते देखकर वे तीनों भागे। राक्षस भी उन्हें पकड़नेके लिए

कृत्वोच्चां प्राक्षिपत्तस्मिन् रामचन्द्रं स्मरन् मुखे। मंत्रितं रामनाम्ना च यत्तोयं मधुमासि वै ॥११५॥
तत्सेकाद्राक्षसस्यापि जाता पूर्वभवस्मृतिः। ततः स राक्षसो दूरं स्थित्वा शंभुं व्यजिज्ञपत् ॥११६॥
मामुद्धर मुनिश्रेष्ठ घोराद्राक्षसदेहतः। शरणं ते गतोऽस्म्यद्य जाता पूर्वस्मृतिर्मम ॥११७॥
इति तत्कौतुकं दृष्ट्वा राक्षसं प्राह स द्विजः। कस्मात्ते राक्षसत्वं हि जातं तत्त्वं वदाऽधुना ॥११८॥
राक्षसः प्राह वेगेन शंभुं वृत्तं निजं तदा। जनस्थाने पुरा चाहं विप्रः कर्मपराङ्मुखः ॥११९॥
प्रतिग्रहपरः पापी दुर्मार्गव्यसनी सदा। एतस्मिन्नंतरे चैत्रे मम भार्या सती शुभा ॥१२०॥
स्नानार्थं रामतीर्थं सा मामपृष्ट्वा गृहाद्ययौ। सा मार्गे च मया दृष्टा धृत्वा मार्गे च तां शुभाम्॥१२१॥
प्रोक्ता क्रोधान्मया रंडे मामपृष्ट्वा क्व यास्यसि। सा प्राह भयभीता तु रामतीर्थं प्रगम्यते ॥१२२॥
मधुमासेऽत्रगाहार्थं न मया दुष्कृतं कृतम्। एवं श्रुत्वापि तद्वाक्यं ताडिता सा मया बलात्॥१२३॥
प्रेषिता स्वगृहं मार्गात्ततः कालांतरे गते। मृतोऽहं च तदा नीतो यमलोकं यमानुगैः ॥१२४॥
चित्रगुप्तोऽपि दृष्ट्वा मां धिक्कृत्वापि पुनः पुनः। यमराजं स वै प्राह धर्षयन्मां स्वगर्जितैः ॥१२५॥
भो धर्मराज पापोऽयं चैत्रस्नाननिवारकः। भुक्त्वादौ राक्षसीं योनिं निरयान् भोक्तुमर्हति १२६॥
इति तद्वचनं श्रुत्वा यमः प्राहानुगांस्तदा। भो भटा राक्षसी योनिर्दीयतां निर्जने वने ॥१२७॥
पापिनेऽस्मै च मद्वाक्यात्ततस्तैश्च यमानुगैः। दत्त्वा मे राक्षसीं योनिं त्यक्त्वा चात्र गता यमम्१२८॥
तदारभ्य वने चाहं क्षुत्तृषापरिपीडितः। पञ्चत्रिंशत्सहस्राणि वर्षाण्यत्र स्थितश्चिरम् ॥१२९॥
किं मया सुकृतं पूर्वं कृतं यस्माद्वने तव। संगतिश्चाद्य वै जाता साधुसंगो गतिप्रदः ॥१३०॥
इति तद्वचनं श्रुत्वा शंभुर्ध्यात्वा क्षणं हृदि। ज्ञात्वा तत्सुकृतं पूर्वं राक्षसाय न्यवेदयत् ॥१३१॥
शृणु राक्षस यत्पूर्वं कृतं वै सुकृतं त्वया। तस्माज्जाता संगतिर्मे वने निर्मानुषे शुभा ॥१३२॥

बिल्कुल समीप पहुंच गया। उसे निकट देखकर शम्भुने रामचन्द्रजीका स्मरण करके अपनी तुम्बीका जल उस राक्षसके मुखमें फेंक दिया। रामनामसे अभिमन्त्रित जलके पड़नेसे उस राक्षसको अपने पूर्वजन्मका स्मरण हो आया। इसलिए वह दूर ही खड़ा होकर ब्राह्मणसे कहने लगा—हे मुनिराज! इस घोर राक्षसदेहसे आप मेरी रक्षा करिए। मैं आपकी शरण हूँ। आपके जलाभिषेकसे मुझे अपने पूर्वजन्मका स्मरण हो आया है॥ १११-११७॥ इस प्रकारका कौतुक देखकर ब्राह्मणने उस राक्षससे कहा—पहले तुम हमें यह बतलाओ कि इस राक्षसदेहको किस तरह प्राप्त हुए॥११८॥ राक्षसने अपने पूर्वजन्मका हाल बताना प्रारंभ किया। उसने कहा—इसके पहले मैं अपने कर्मोंसे पराङ्मुख एक ब्राह्मण था॥ ११९॥ उस समय मैं जैसे-तैसे दान लेता हुआ दुराचार और व्यसनोंमें अपना जीवन बिता रहा था। उसी समय मेरी स्त्री बिना मुझसे पूछे ही चैत्रस्नान करनेके लिए रामतीर्थको चल पड़ी। मैंने उसे रास्तेमें देखा तो पकड़ लिया और उससे कहा—अरी रांड़! बिना हमसे पूछे तू कहाँ जा रही है? भयभीत होकर उसने उत्तर दिया कि मैं चैत्रस्नान करनेके लिए रामतीर्थ (अयोध्या) जा रही हूँ॥१२०-१२२॥ ऐसा करनेमें मैंने कोई पाप नहीं समझा, इसीलिए चल पड़ी। ऐसी निष्कपट बात सुनकर भी मैंने उसे बहुत मारा और घर लौटा दिया। कुल दिन बाद मेरी मृत्यु हुई और यमके दूत पकड़कर मुझे यमलोक ले गये॥ १२३॥ १२४॥ चित्रगुप्तने मुझे देखा तो बहुत धिक्कारा और धमकाकर यमराजसे कहा—हे धर्मराज! इस पापीने अपनी स्त्रीको चैत्रस्नानसे रोका था। अतएव यह पहले राक्षसी योनिको भोगकर नरक भोगनेका अधिकारी है॥ १२५॥ १२६॥ इस प्रकार चित्रगुप्तकी बात सुनकर धर्मराजने अपने अनुचरोंको आज्ञा दी कि इसे किसी निर्जन वनमें राक्षसी योनि दे दो। उनके आज्ञानुसार यमदूत मुझे इस वनमें छोड़कर लौट गये। तभीसे भूखे-प्यासे रहकर मैंने पैंतीस हजार वर्ष बिताये हैं॥ १२७-१२९॥ मुझे नहीं मालूम कि मैंने कौन-सा पुण्य किया था, जिसके प्रभावसे इन निर्जन वनमें आप जैसे सज्जनके सद्गतिप्रद दर्शन प्राप्त हुए॥ १३०॥ उसकी बात सुनकर शंभुने क्षणभर अपने हृदयमें उसके पूर्व सुकृतका ध्यान किया और कहने लगा-॥ १३१॥ हे राक्षस! तुमने पूर्वजन्ममें जो सुकृत किया था, वह

एकादश्यां चैत्रशुक्ले कृत्वान्यश्राद्धभोजनम् । तांबूलो दक्षिणायुक्तः कट्यां वस्त्रे त्वया धृतः ॥१३३॥
द्वादश्यां प्रातरुत्थाय गत्वा स्नानं त्वया कृतम् । पतितः स हि तांबूलो विस्मृत्या गौतमीतटे ॥१३४॥
दक्षिणासहितो दृष्टः स केनापि द्विजेन वै । गृहीत्वा स हि द्वादश्यां न ज्ञातश्च त्वया पुनः १३५॥

तांबूलदानाद्धरचैत्रमासे जाता वने मेऽद्य हि संगतिस्ते ।
तस्मान्मधौ राक्षस मानवैर्हि तांबूलदानं करणीयमेतत् ॥१३६॥

इत्युक्त्वा राक्षसं शंभुश्चैत्रमाहात्म्यमुत्तमम् । उभाभ्यां श्रावयित्वाऽथ कर्कशं वाक्यमब्रवीत्॥१३७॥
भो कर्कश महाबुद्धे शृणुष्व वचनं मम । आगच्छ त्वं सहैवाद्य मयाऽयोध्यापुरीं प्रति ॥१३८॥
सरयूस्नानमात्रेण मधौ पापाद्विमोक्ष्यसे । इत्युक्त्वा कर्कशं शंभुस्ततः प्रोवाच राक्षसम् ॥१३९॥
भो राक्षस त्वमत्रैव मासमात्रं स्थिरो भव । अयोध्यायां प्रवेशश्च राक्षसानां न विद्यते ॥१४०॥
अतोऽहं मधुमासे हि स्नात्वाऽनेन पथा पुनः । यदागच्छामि कांचीं त्वां चोद्धरिष्याम्यहं तदा१४१ ।
मा संदेहोऽस्तु ते चित्ते शपथेन ब्रवीम्यहम् । यत्पापं ब्रह्महत्यायास्तथा गोयतिनिंदनात् ॥१४२॥
नोद्धृत्य त्वां हि गच्छामि तर्हि तन्मयि तिष्ठतु । मद्यपाने च यत्पापं हेमस्तेयादिकं च यत् ॥१४३॥
नोद्धृत्य त्वां हि गच्छामि तर्हि तन्मयि तिष्ठतु । यत्पापं भ्रूणहत्यायास्तथा चैत्रे ह्यमज्जनात् ॥१४४॥
नोद्धृत्य त्वां हि गच्छामि तर्हि तन्मयि तिष्ठतु । इत्यादि शपथैस्तर्हि राक्षसं हर्षयन् द्विजः ॥१४५॥
यावत्पश्यति सर्वत्र तावज्जातं हि कौतुकम् । व्याधाय चैत्रमासस्य माहात्म्यस्योपदेशतः ॥१४६॥
तरवः फलिनो जाता परितो दशयोजनम् । पत्रैः पुष्पैर्विनम्राश्च सौगंधः पवनो ववौ ॥१४७॥
नद्यस्तोयं वहंत्यश्च ननृतुर्बर्हिणो वने । तद्दृष्ट्वा कर्कशश्चापि चैत्रमाहात्म्यकीर्तनात् ॥१४८॥
दुर्वनं सुवनं जातं चैत्रश्रैष्ठ्यममन्यत । ततस्ते हि त्रयस्तस्माद्वनान्मार्गेण निर्गताः ॥१४९॥

मैं बतला रहा हूँ । उसीके प्रभावसे हमारा-तुम्हारा साक्षात्कार हुआ है । एक बार तुमने चैत्रशुक्ल एकादशीको किसीके यहां भोजन किया, तांबूल दक्षिणा ली और एक वस्त्रमें रखकर उसे तुमने अपनी कमरमें लपेट लिया ॥१३२॥ द्वादशीको तुम सबेरे उठे और गङ्गास्नान करने चले गये । वह कमरमें लिपटी हुई दक्षिणा और तांबूल भूलसे गौतमी नदीके तटपर गिर गया । उसे किसी ब्राह्मणने उठा लिया, किन्तु उसके विषयमें तुम्हें कुछ ख्याल नहीं था ॥१३३–१३५॥ चैत्रमासमें उस दक्षिणा और तांबूलके दानसे ही आज इस निर्जन वनमें हमसे साक्षात्कार हुआ है । देखो, चैत्रमें तांबूलके दानका कितना बड़ा माहात्म्य है । अतएव इस मासमें तांबूलदान अवश्य करना चाहिए ॥ १३६ ॥ इस तरह उस राक्षसको चैत्रमासका माहात्म्य सुनाकर शम्भुने कर्कशसे कहा—हे महाबुद्धिमान् कर्कश ! मेरी बात मानो और आज ही मेरे साथ अयोध्यापुरीको चल दो ॥ १३७ ॥ १३८ ॥ चैत्रमासमें सरयूस्नानमात्रसे तुम सब पापोंसे मुक्त हो जाओगे । ऐसा कर्कशसे कहकर शंभुने उस राक्षससे कहा कि तुम महीने भर इसी स्थानपर रहो । क्योंकि अयोध्यानगरीमें राक्षसलोग नहीं जा सकते ॥ १३९ ॥ १४० ॥ इस कारण जब मैं चैत्रस्नान करके उधरसे लौटूँगा और यहाँ आऊँगा, तब तुम्हारा उद्धार करूँगा ॥ १४१ ॥ तुम इसमें कुछ संशय मत करो । मैं कसम खाता हूँ कि ब्राह्मणहत्या करने तथा गौ एवं मुनियोंकी निन्दा करनेसे जो पातक होता है, वह पातक मुझे लगे, यदि मैं तुम्हारा उद्धार किये बिना जाऊँ । मद्य पीने और सुवर्ण चुरानेसे जो पातक होता है, यदि मैं तुम्हारा उद्धार किये बिना जाऊँ तो मुझे वे पातक लगें । जो पाप भ्रूणहत्या तथा चैत्रमासमें स्नान न करनेसे लगता है, वह मुझे लगे । यदि बिना तुम्हारा उद्धार किये बिना जाऊँ । इस तरह विविध प्रकारकी शपथें खाकर शंभुने उस ब्रह्मराक्षसको आश्वासन दिया । इसके बाद जब व्याधने चारों ओर दृष्टि उठाकर देखा तो चैत्रस्नानका माहात्म्य सुननेके कारण उस वनके दस योजन तक उसे सब वृक्ष फल-फूलसे लदे दिखायी दिये और सुगन्धित वायु चलने लगी ॥ १४२–१४७ ॥ उस वनकी सब नदियोंमें घनघोर निनाद करता हुआ जल बहने लगा और मयूरमण्डली

शनैः शनैरयोध्यायाः पश्यपश्यन्वनस्थलीम् । तावच्छब्दो महान् जातः सिंहमातंगसंभवः ॥१५०॥
धावन्नग्रे तु मातंगः पृष्ठे धावंश्च केसरी । एवं तौ शंभुसान्निध्यं प्राप्तौ कलहकारिणौ ॥१५१॥
मार्गरोधकरौ दुष्टौ तौ दृष्ट्वा शंभुरब्रवीत् । पश्य कर्कश विघ्नानि चैत्रस्नाने पदे पदे ॥१५२॥
संभवंतीति वै बुद्ध्वा चैत्रस्नानं न लंघयेत् । काश्यां विवाहे गीतायां गतायां रामचिंतने ॥१५३॥
चैत्रस्नाने महादाने विघ्नानि संभवन्ति हि । एवं वदति विप्रेंद्रे तौ दुष्टौ करिसिंहकौ ॥१५४॥
चैत्रामश्रवात्पूर्वजन्मस्मृत्याऽतिविस्मितौ । भूत्वा वै त्राहि त्राहीति कृत्वा दीर्घं महारवम् ॥१५५॥
शरणं द्विजवर्याय जग्मतुः शंभुशर्मणे । सोऽपि शंभुश्च ताभ्यां हि पृष्टवान् तत्कृपान्वितः१५६॥
किमर्थं दुष्टजातिर्हि प्राप्ता तत्कथ्यतां मम । इति विप्रवचः श्रुत्वा केसरी वाक्यमब्रवीत् ॥१५७॥
सेतौ रामेश्वरक्षेत्रे पूर्वजन्मन्यहं द्विजः । निंदकः सर्वधर्माणां पाखण्डोक्त्यैकतत्परः ॥१५८॥
कदाचिच्चैत्रमासे तु तत्र श्रीरामसंज्ञके । तीर्थे जनसमूहे च श्रुत्वा पौराणिकीं कथाम् ॥१५९॥
पौराणिकेन कथितां चैत्रमाहात्म्यसूचिकाम् । कृतवान् निंदनं चाहं वारं वारं पुनः पुनः ॥१६०॥
तन्मत्कृतं निंदनं च कश्चिद्विप्रस्तपःस्थितः । शुश्राव सकलं दुष्टं तेन शप्तोऽस्म्यहं तदा ॥१६१॥
क्रूरां जातिं त्वरं गच्छ यदा चैत्रेशकीर्तनम् । भविष्यति महारण्ये शापशांतिस्तदेति च ॥१६२॥
एवं प्रोक्तं मया सर्वं पूर्वजन्मनि यत्कृतम् । तेन शापेन जातोऽस्मि केसरी भयकारकः ॥१६३॥
चैत्रामश्रवाज्जाता पूर्वस्मृतिरनुत्तमा । इदानीं रक्ष मां विप्र त्वं चैतत्सिंहदेहतः ॥
इति सिंहस्य वृत्तं तु ज्ञात्वोवाच गजं द्विजः ॥१६४॥
कस्माच्च मातंग गतोऽसि दुष्टजातौ वदस्वाद्य महाघसंघात् ।
स चापि मातंगवरः समस्तं वृत्तं निजं चाकथयच्च जीर्णम् ॥१६५॥

नाचने लगी । चैत्रमासिक कीर्तनके माहात्म्यसे वनको यह सुषमा देखकर कर्कशने भी चैत्रमासको सब मासोंसे श्रेष्ठ माना । तदनन्तर वे तीनों उस वनसे मार्गसे अयोध्याके लिए चल पड़े ॥१४८॥१४९॥ वे वनस्थलीकी शोभा देखते हुए चले जा रहे थे । तबतक उन्होंने सिंह और हाथीका महान् गर्जन सुना ॥१५०॥ आगे-आगे हाथी भागा जा रहा था और उसे पीछेसे सिंह खदेड़ता जाता था । लड़ते हुए वे दोनों उसी मार्गपर आ पहुँचे, जहाँसे ये तीनों अयोध्या जा रहे थे ॥ १५१ ॥ उन दुष्टोंको रास्ता रोकते देखकर शंभुने कर्कशसे कहा—देखो ककश ! चैत्रस्नान करनेवालेके पद-पदपर विघ्न आते हैं। किन्तु लोगोंको चाहिए कि विघ्न-बाधाओंसे डरकर पीछे न हटे। काशी-वासमें, पुत्र-पुत्रीके विवाहमें, गीतापाठमें, रामका ध्यान करनेमें, चैत्रस्नानमें और तुला आदि महादानमें बड़े-बड़े विघ्न आया करते हैं । ब्राह्मणके उन शब्दोंको सुनकर उन दोनों दुष्टों (हाथी और सिंह) को अपने पूर्वजन्मका स्मरण हो आया । जिससे 'मेरी रक्षा करो-मेरी रक्षा करो' इस तरह कहते हुए वे चिल्लाने लगे ॥ १५२--१५५ ॥ वे उस शम्भुनामक ब्राह्मणकी शरणमें गये । शम्भु भी उनपर दयालु होकर उनसे पूछने लगे कि तुम लोगोंको यह दुष्टयोनि क्यों मिली ? यह वृत्तान्त हमें सुनाओ । इस तरह विप्रका प्रश्न सुनकर सिंहने कहा— ॥ १५६ ॥ १५७ ॥ इसके पूर्ववाले जन्ममें मैं रामेश्वरक्षेत्रका निवासी एक ब्राह्मण था। मैं सब धर्मोंका निन्दक था और पाखण्डसे भरी बातें किया करता था ॥ १५८ ॥ एक बार चैत्रके महोनेमें श्रीरामतीर्थमें एक ब्राह्मणके मुखसे मैंने चैत्रमासका माहात्म्य सुन लिया और उसकी भरपूर निन्दा की। मेरी उन निन्दाकी बातोंको पास ही बैठे हुए किसी तपस्वी ब्राह्मणने सुन लिया और उसने उसी समय मुझे शाप देते हुए कहा—तूने चैत्रमासकी निन्दा की है। इसलिए तू किसी क्रूरजातिमें जाकर जन्म ले । जब कि एक वनमें तू किसी ब्राह्मणके मुखसे चैत्रमासका माहात्म्य सुनेगा, उस समय तेरे शापकी शान्ति होगी ॥ १५९–१६२ ॥ हे विप्र ! इस तरह मैंने आपको अपने पूर्वजन्मका वृत्तान्त कह सुनाया । उसीके शापसे मैं महाभयदायिनी इस सिंहकी योनिमें आ पड़ा हूँ ॥ १६३ ॥ आज आपके मुखसे चैत्रमासमें रामनाम सुननेसे मुझे मेरे पूर्वजन्मकी बातें स्मरण हो गयीं । हे विप्र ! अब मुझे इस सिंहयोनिसे बचाइए ॥ १६४ ॥ इस प्रकार सिंहको बात

शृणु विप्र प्रवक्ष्यामि पूर्ववृत्तं मया कृतम् । रामनाथपुरे चाहं कावेर्या उत्तरे तटे ॥१६६॥
विप्रः परमदुर्वृत्तः सर्वशास्त्रपराङ्मुखः । लक्ष्मीभरमदाक्रांतः पण्यस्त्रीभोगकारकः ॥१६७॥
एकदा सुहृदा चाहं भोजनार्थं निमन्त्रितः । श्राद्धाहे मधुमासे हि शुक्ले श्रीनवमीदिने ॥१६८॥
मया भुक्तं सुहृद्गेहे नवम्यां द्विजसत्तम । तेन शापेन जातोऽस्मि करिजातौ न संशयः ॥१६९॥
सर्वदा प्रतिमासेऽपि नवम्यां न हि भोजनम् । कार्यं विशेषतो रामनवम्यां निंदितं च तत् ॥१७०॥
इदानीं न हि जानामि केन पुण्येन तेऽत्र वै । संगतिश्च वने जाता सर्वेषां परमार्तिहृत् ॥१७१॥
इति तस्य वचः श्रुत्वा शंभुर्ध्यानेऽविचारयत् । ज्ञात्वा मातंगपुण्यं तु प्रोवाच करिणं द्विजः ॥१७२॥
शृणु मातग वक्ष्यामि यत्पुण्यं च त्वया कृतम् । पूर्वजन्मनि तत्सर्वं येन मे संगतिर्वने ॥१७३॥
जाता त्वामुद्धरिष्यामि मा चिंतां कुरु सर्वथा । रामनाथपुरे रम्ये कावेरीतटशोभिते ॥१७४॥
रामायणकथा चैत्रे श्रुता श्रीनवमीदिने । रामतीर्थे त्वया स्नातं दृष्टो रामेश्वरः शिवः ॥१७५॥
तेन पुण्येन ते जाता संगतिर्मम कानने । इदानीं शृणु सिंह त्वं शृणोतु च करी महान् ॥१७६॥
साकेते मधुमासे हि स्नात्वाऽनेन पथा पुनः । यदा गच्छामि तां कांचीं युवामुद्धारयाम्यहम् ॥१७७॥
मा संदेहोऽत्र कर्तव्यः शपथैः प्रब्रवीम्यहम् । संतोषार्थं युवाभ्यां हि प्रोच्यन्ते शपथा मया ॥१७८॥
परस्त्रीगमनात्पापं तथा मित्रवधादिकम् । युवां नोद्धृत्य गच्छामि तर्हि तन्मयि तिष्ठतु ॥१७९॥
ब्रह्मस्वहरणात्पापं यत्स्मृतं मातृनिंदनात् । युवां नोद्धृत्य गच्छामि तर्हि तन्मयि तिष्ठतु ॥१८०॥
इत्युक्त्वा द्विजवर्यः स स्त्रिया भिल्लेन संयुतः । करिसिंहौ वने स्थाप्य गच्छन्मार्गे शनैः शनैः ॥१८१॥

सुनकर ब्राह्मणने हाथीसे कहा कि तुम किस पापसे इस दुष्टयोनिमें आये हो ? तब हाथीने अपने पूर्वजन्मका हाल सुनाते हुए कहा-हे विप्र ! मैं भी अपने पूर्वजन्मका वृतान्त सुनाता हूँ, सुनिए। उस जन्ममें मैं कावेरी नदीके उत्तरी तटपर रामनाथपुर नामक नगरमें बड़ा दुराचारी, सब शास्त्रोंसे पराङ्मुख, धनके मदसे मतवाला और वेश्यालम्पट ब्राह्मण था। एक बार चैत्रमासमें नवमीको मेरे किसी मित्रने श्राद्धमें भोजन करनेके लिए मुझे निमन्त्रण दिया ॥१६५–१६८॥ तदनुसार हे द्विजश्रेष्ठ ! नवमीके दिन मैने मित्रके यहाँ भोजन किया। उसी पापसे इस हाथीकी योनिमें आ पड़ा हूँ ॥ १६९ ॥ क्योंकि शास्त्रोंका यह विधान है कि प्रत्येक मासकी नवमीको किसीके यहाँ भोजन न करे। यदि ऐसा न हो सके तो चैत्रशुक्ल रामनवमीको तो अवश्य इस बातपर ध्यान दे ॥ १७० ॥ मैं नहीं जानता कि किस पुण्यसे इस समय सब प्रकारके क्लेशोंको हरनेवाला आपका सत्संग प्राप्त हुआ ॥ १७१ ॥ उसकी यह बात सुनकर शम्भुने क्षणभर अपने मनमें ध्यान किया और उसके पुण्यको जानकर कहने लगा–हे मातंग ! सुनो, तुमने जो पुण्य किया है सो मैं तुम्हें बतलाता हूँ। उसीके प्रभावसे आज हमसे भेंट हुई है॥ १७२ ॥ ॥ १७३ ॥ अब तुम घबड़ाओ मत, मै तुम्हारा हर तरहसे उद्धार करूँगा। उस जन्ममें तुमने रमणीक कावेरीके तटपर स्थित रामनाथपुरमें श्रीरामनवमीको रामकी कथा सुनी थी। उस दिन तुमने रामतीर्थमें स्नान और रामेश्वर शिवका दर्शन भी किया था॥ १७४ ॥ १७५ ॥ उसी पुण्यसे आज इस वनमें हमसे भेंट हुई है। अब हे मातंग और सिंह ! मेरी बात सुनो, मैं इस समय चैत्रमासका स्नान करनेके लिए अयोध्या जा रहा हूँ। स्नान करके जब मैं कांचीकी ओर लौटूँगा, तब यहाँ आकर तुम दोनोंका उद्धार करूँगा॥ १७६ ॥ १७७ ॥ मेरी बातपर किसी प्रकारका संदेह मत करना। तुम्हारे विश्वासके लिए मैं शपथ खाता हूँ, सुनो ॥ १७८ ॥ यदि मैं तुम्हारा उद्धार किये बिना जाऊँ तो परस्त्रीगमन करने और मित्रको मारनेसे जो पातक लगता है, मैं उस पातकका भागी बनूँ ॥ १७९ ॥ जो पाप ब्राह्मणका धन हड़पने और माताकी निन्दा करनेमें होता है, उन सब पापोंका भागी बनूँ, यदि तुम्हारा उद्धार किये बिना जाऊँ ॥ १८० ॥ इतना कहकर उस श्रेष्ठ ब्राह्मणने अपनी स्त्री तथा उस भीलको साथ लिया और वहाँसे अयोध्याके लिए चल पड़ा। उसने हाथी तथा सिंहको उस वनमें ही छोड़ दिया ॥ १८१ ॥

ददर्शान्यपथा यान्तं श्रेष्ठं कार्पटिकोत्तमम् । वहन्तं रामलिंगार्थं श्रेष्ठं भागीरथीजलम् ॥१८२॥
शम्भुः पप्रच्छ तं नत्वा नम्रं कार्पटिकोत्तमम् । कुतः समागतं विप्र गम्यते क्वाधुना वद ॥१८३॥

कार्पटिक उवाच

प्रयागादागतं विद्धि मां त्वं भूसुरसत्तम । मधुमासेऽत्रगाहार्थमयोध्यां प्रति गम्यते ॥१८४॥
इदानीं त्वं निजं वृत्तं वद ब्राह्मणसत्तम । कुतः समागतं चात्र गम्यते क्वाधुना वद ॥१८५॥
इति तद्वचनं श्रुत्वा शम्भुः प्रोवाच तं तदा । शिवकांच्याः समायातमयोध्यां प्रति गम्यते ॥१८६॥
चैत्रमासेऽत्रगाहार्थं गम्यते कथितं मया । इति शम्भुवचः श्रुत्वा पुनः कार्पटिकोत्तमः ॥१८७॥
पप्रच्छ द्विजवर्याय कौतुकाविष्टमानसः । शिवकांच्यां शंभुनामा कश्चिद्विप्रोऽस्ति भो द्विज १८८॥
तत्तस्य वचन श्रुत्वा पुनः शम्भुस्तमब्रवीत् । बहवः शम्भुनामानो वर्तन्ते द्विज तत्र हि ॥१८९॥
कस्त्वया पृच्छयते तस्य वद गोत्रोपनामनी । इति विप्रवचः श्रुत्वा पुनः कार्पटिकोऽब्रवीत् ॥१९०॥

भारद्वाजकुलोत्पन्नं चक्रगोप्युपनामकम् ।
महादेवसुतं सर्ववेदशास्त्रविशारदम् । ब्राह्मणं शंभुनामानं जानीषे त्वं न वा वद ॥१९१॥

एवं महाकार्पटिकेन सर्वं गोत्रोपनामादिकमादरेण ।
प्रोक्तं यथा तत्र स भूसुरोऽपि ज्ञात्वा निजं सर्वमथावदत्तम् ॥ १९२ ॥

भो भो कार्पटिकश्रेष्ठ किमर्थं त्वं हि पृच्छसि । तद्वदस्व सविस्तारं मा शंकां कुरु चात्र हि ॥१९३॥

कार्पटिक उवाच

शृणु विप्र प्रवक्ष्यामि यदर्थं पृच्छयते मया । यदाऽहं गतवान् गंगासागरं द्रष्टुमादरात् ॥१९४॥
सीताकुण्डसमीपे हि देशे कैकटनामके । दृष्टोऽहं मार्गमध्ये च पिशाचेनोग्ररूपिणा ॥१९५॥
मां हन्तुं निकटं प्राप्तं तं दृष्ट्वाऽहं तदा द्विज । श्रीरामकीर्तनं दीर्घं कृतवान् भयकम्पितः ॥१९६॥
कीर्तनाद्रामचन्द्रस्य स पिशाचः पलायनम् । मत्तः कृत्वा दूरदेशे स्थित्वा शुश्राव कीर्तनम् ॥१९७॥

रास्तेमें शम्भुने एक कावाँरथी विप्रको देखा, जो रामेश्वर शिवके लिए गंगाजी का उत्तम जल लिये जा रहा था ॥ १८२ ॥ उसे देखकर शम्भुने पूछा—हे विप्र ! इस समय तुम कहाँसे आ रहे हो और कहाँ जाओगे ? ॥ १८३ ॥ उसने उत्तर दिया – हे ब्राह्मणश्रेष्ठ ! इस समय मैं प्रयागसे आ रहा हूँ और चैत्रस्नान करनेके लिए अयोध्या जा रहा हूँ ॥ १८४ ॥ अब आप अपना वृतान्त बतलाते हुए कहिए कि कहाँसे आये हैं और कहाँ जायँगे ? ॥ १८५ ॥ ब्राह्मणका प्रश्न सुनकर शम्भुने कहा कि मैं शिवकाञ्चीसे आता हूँ और अयोध्या जा रहा हूँ ॥ १८६ ॥ हमें भी चैत्रस्नान करना है। इस प्रकार शम्भुकी बात सुनकर ब्राह्मणने कहा कि हे द्विज ! शिवकाञ्चीमें कोई शम्भु नामका ब्राह्मण रहता है ? ॥ १८७ ॥ १८८ ॥ ब्राह्मणकी बातके उत्तरमें शम्भुने कहा, कि शिवकांचीमें बहुतसे शम्भु नामके ब्राह्मण हैं ॥ १८९ ॥ आप किस शम्भुको पूछते हैं ? जिसे पूछते हों, उसका गोत्र और उपनाम बतलाइए। शम्भुकी बात सुनकर उस ब्राह्मणने कहा कि जिन्हें मैं पूछता हूँ, वे भारद्वाज कुलमें उत्पन्न हुए हैं और चक्रगोपी उनका उपनाम है । वे महादेवके पुत्र हैं। वे सब वेदों और शास्त्रोंको जानते हैं। उन शम्भुको आप जानते हैं या नहीं, सो बतलाइए ॥ १९० ॥ १९१ ॥ इस तरह ब्राह्मणके मुखसे अपना गोत्र और उपनाम आदि सुनकर शम्भुने कहा—हे ब्राह्मणश्रेष्ठ ! तुम शम्भुको क्यों पूछ रहे हो, मुझे विस्तारपूर्वक बतलाओ। इसमें किसी प्रकारका सन्देह मत करो ॥ १९२ ॥ १९३ ॥ कार्पटिकने कहा—हे विप्र ! जिसलिए मैं उन्हें पूछ रहा हूँ, सो बतलाता हूँ । जब कि मैं गंगासागरका दर्शन करने गया था तो सीताकुण्डके समीप कैकट देशमें मुझे एक उग्ररूपधारी पिशाचने देख लिया ॥ १९४ ॥ १९५ ॥ वह मारनेके लिये बिल्कुल मेरे पास आ पहुँचा। मैं उसे देखकर जोर-जोरसे रामनामका कीर्तन करने और भयसे काँपने लगा ॥ १९६ ॥ रामनामके कीर्तनसे वह भाग खड़ा हुआ और मेरे पाससे थोड़ी दूरपर रुककर कीर्तन

तस्माज्जाता पूर्वजन्मस्मृतिस्तस्य शुभावहा। त्राहि त्राहीति मां प्राह मया पृष्टः स वै पुनः ॥१९८॥
कस्मात्पिशाचदेहे त्वं जातस्तद्वद सत्वरम्। इति मे वचनं श्रुत्वा पिशाचः प्राह मां पुनः ॥१९९॥
कांचीपुर्यां द्विजश्चाहं ढुण्ढिनामा पुरा स्थितः। नान्नदानं मया पूर्वं कृतं स्वल्पमपि क्वचित् ॥२००॥
तस्मात्पिशाचदेहत्वं प्राप्तं कार्पटिकोत्तम। इति तस्य वचः श्रुत्वा पुनः प्रोक्तः स वै मया ॥२०१॥
कथं पिशाचयोन्यास्तु ते मुक्तिश्च भविष्यति। ततः पुनः स मां प्राह यदि मे तनयः शुचिः ॥२०२॥
चैत्रे दर्शे ममोद्देशादन्नदानं करिष्यति। भविष्यति ममोद्धारस्तत्क्षणान्नात्र संशयः ॥२०३॥
इति तद्वचनं श्रुत्वा पुनः प्रोक्तः स वै मया। वर्तते क्व सुतस्ते हि किंनामा वद मां प्रति ॥२०४॥
तस्तेन यथा प्रोक्तं भारद्वाजाद्य चिह्नजम्। तत्प्रोक्तं च मया सर्वं निकटे तव भो द्विज ॥२०५॥
पिशाचं हि पुनश्चाहमुक्तवान् तद्वदाम्यहम्। रामेशार्थं भो पिशाच नीयते जाह्नवीजलम् ॥२०६॥
मया करंडमध्ये हि यदा गच्छामि दक्षिणाम्। दिशं कालेन कांचीं हि प्रवेक्ष्यामि यदा तदा ॥२०७॥
तव पुत्राय वृत्तं हि कथयिष्याम्यहं तव। इति मद्वचनं श्रुत्वा सन्तोषं परमं गतः ॥२०८॥
पिशाचः प्राह मां विप्र स्तुत्वा नत्वा पुनः पुनः। अवश्यमेव वक्तव्यं मे वृत्तं मम सूनवे ॥२०९॥
यथा दृष्टं त्वया पांथ यथोक्तं च मया तव। अन्यच्च कथ्यतां तस्मै मम पुत्राय सादरम् ॥२१०॥
मधुदर्शेऽन्नदानस्य महिमा श्रूयते दिवि। अतस्त्वं हि ममोद्देशेनान्नदानं मधौ कुरु ॥२११॥
एवमुक्त्वा स पिशाचः शपथं मां चकार ह। न ब्रूषे स्मरणं कृत्वा मम पुत्राय तद् द्विज ॥२१२॥
भविष्यति वृथा सर्वयात्रा तव महामते। इति मद्वचनं श्रुत्वा सांत्वयित्वा च तं पुनः ॥२१३॥
निर्गतोऽस्मि मधौ स्नातुमयोध्यां गंतुमादरात्। कृत्वाऽयोध्यापुरीमध्ये चैत्रस्नानं महाफलम् ॥२१४॥
यदा गच्छामि तां कांचीं तदा तस्मै वदाम्यहम्। अतएव मया पृष्टस्तव शंभुर्द्विजोत्तमः ॥२१५॥

सुनने लगा ॥ १९७ ॥ उस कीर्तनके श्रवणसे उसे अपने पूर्वजन्मका स्मरण आ गया और जोरोंके साथ 'त्राहि-त्राहि' कहकर चिल्लाने लगा। मैंने उससे पूछा कि तुम क्यों इस पिशाचशरीरको प्राप्त हुए हो, सो मुझे शीघ्र बताओ। मेरी बात सुनकर पिशाचने कहा—॥ १९८ ॥ १९९ ॥ हे विप्र ! पूर्वजन्ममें कांचीपुरीनिवासी मैं ढुण्ढिनामका ब्राह्मण था। उस जन्ममें मैने कहीं थोड़ा भी अन्नदान नहीं किया था ॥ २०० ॥ इसी कारण इस पिशाचदेहको प्राप्त हुआ हूँ। उसकी बात सुनकर मैंने कहा—किस उपायसे तुम पिशाचयोनिसे मुक्त होओगे ? यह सुनकर उसने कहा कि यदि चैत्रकी अमावस्याको मेरा पुत्र मेरे लिए अन्नदान करे तो तत्क्षण मेरा उद्धार हो जाय, इसमें कोई संशय नहीं है ॥ २०१ ॥ २०२ ॥ २०३ ॥ इस प्रकार उसकी बात सुनकर मैने पूछा कि तुम्हारा वह लड़का कहाँ रहता है ? सो हमें बतलाओ ॥ २०४ ॥ इसके बाद उसने मुझे सब परिचय बतला दिया, जो अभी मैने आपसे कहा है ॥ २०५ ॥ फिर मैंने कहा—हे पिशाच ! मैं इस कांवरमें गंगाजल लिये रामेश्वर शिवपर चढ़ाने जा रहा हूँ। कुछ दिनों बाद जब मैं दक्षिण दिशाकी ओर लौटूँगा तो कांचीपुरी अवश्य जाऊँगा। वहाँ पहुँचकर तुम्हारे बेटेको तुम्हारा सब समाचार कह सुनाऊँगा। मेरी बात सुनकर वह बहुत प्रसन्न हुआ और मुझे बार-बार प्रणाम करके उसने कहा—हे विप्र ! मेरा वृतान्त मेरे पुत्रसे अवश्य कहिएगा ॥ २०६-२०९ ॥ आपने मेरी जो अवस्था देखी है, जो कुछ मैंने आपको बतलाया है और इसके अतिरिक्त भी जो उचित समझिए, वह मेरे लड़केसे कह दीजिएगा ॥ २१० ॥ सुनता हूँ कि चैत्रमासमें अन्नदान करनेका बड़ा माहात्म्य है। इसीलिए तुम चैत्रमासमें मेरे उद्देश्यसे अन्नदान करो। ऐसा कहकर उसने मुझे शपथ दिलायी कि यदि आप ख्याल करके मेरे सन्देशको मेरे पुत्र से नहीं कहेंगे तो हे महामते ! आपकी यात्रा व्यर्थ हो जायगी। उसकी बात सुनकर मैंने बारम्बार उसे सान्त्वना दी और चैत्रस्नान करनेके निमित्त अयोध्या चल पड़ा। महाफलदायी चैत्रमासका स्नान करनेके अनन्तर जब मैं कांची जाऊँगा तो उसके पुत्रको पिशाचका सन्देश सुना दूँगा। इसीलिए मैने आपसे शम्भुके विषयमें पूछताछ की है।

प्रोक्तं गोत्रादिभिर्लिङ्गं वर्तते चेद्वदस्व माम् । इति शंभुः पितुर्वृत्तं ज्ञात्वा मूर्छां गतस्तदा ॥२१६॥
आश्वासितश्च भिल्लेन विप्रः प्रोवाच तं पुनः । भो भोः कार्पटिकश्रेष्ठ न मत्तोऽस्ति नरोऽधमः॥२१७॥
यस्त्वया पृछ्यते शंभुः सोऽहं विद्धि न संशयः । मया पुत्रेण न कृतं स्वपितुर्मोक्षदायकम् ॥२१८॥
अन्नदानादिकं कर्म धिग्धिङ्मेऽयं वृथा भवः । इदानीं तव वाक्येन दास्याम्यन्नं मधौ पितुः ॥२१९॥
एवं शम्भुः कार्पटिकाय चोक्त्वाऽयोध्यां रम्यां दूरतो वै ददर्श ।
ते प्रणेमुस्तां दंपतीपांथभिल्लास्ततः शंभुश्चाब्रवत्कर्कशं सः ॥२२०॥

शंभुरुवाच

पश्य पश्य महाभिल्ल महायोध्यापुरीं शुभाम् । यस्यां स्नातुं समायाता दृश्यंते कोटिशो जनाः॥२२१॥
जनौघानां ध्वनिश्चायं श्रूयते मेघशब्दवत् । नानाध्वजपताकाश्च दृश्यंते चेन्द्रचापवत् ॥२२२॥
यथा वाद्यध्वनिश्चायं श्रूयते हि मनोहरः । अग्निहोत्राग्निधूमौघैर्व्याप्तं पश्य नभोऽङ्गणम् ॥
कैलासगिरिसाभ्यानि पश्य सौधानि कर्कश ॥२२३॥
नवप्रतोलीपरिखावलयीकृतमेखलाम् । उत्तुङ्गहर्म्याँ विलसत्पताकाशतसंकुलाम् ॥२२४॥
अभ्रंलिहमहासौधसुवर्णकलशोज्ज्वलाम् । पश्यायोध्यापुरीं श्रेष्ठां सरयुतीरनादिताम् ॥२२५॥
हाटकोद्घाटिता रत्नखचितैर्या कपाटकैः । सुसवृत्तैर्विवृत्तैः स्वैरुन्मिषंतीव लक्ष्यते ॥२२५॥
दोधूयमानैर्मरुता पताकांचलसूचितैः । आह्वयंतीव पुरतो लक्ष्यते पथिकान् जनान् ॥२२७॥
अधःकृताधोभुवना जेतुमेकामरावतीम् । प्रासादशूलव्याजेन सन्नद्धेवाद्य लक्ष्यते ॥२२८॥
पवित्रेऽस्मिन्महाक्षेत्रे निवसंति तिरोहिताः । ब्रह्मेशहरिभिः सर्वदेवास्ते ऋषयोऽमलाः ॥२२९॥
कुबेरस्पर्द्धया यत्र चिन्वंति वसुसंचयान् । दातुं भोक्तुं जनाः सर्वे स्वधर्मनिरताः सदा ॥२३०॥
गेहे गेहे सदानन्द एवासीद्यत्र वै पुरि । येषां प्रक्षालयंति स्म चरणान् वासवादिकाः ॥२३१॥

इस तरह अपने पिताकी हालत सुनकर शम्भु मूर्च्छित हो गया ॥ २११—२१५ ॥ उसकी यह दशा देखकर उस भील और ब्राह्मणने उसे बहुत कुछ आश्वासन दिया। होशमें आनेपर शम्भुने कहा-हे कार्पटिकश्रेष्ठ ! जिस शम्भुके बारेमें आप पूछ रहे हैं, वह मैं ही हूँ। मेरे बराबर अधम और कोई नहीं हो सकता। मुझ अधम पुत्रने अपने पिताकी मुक्तिके लिए कुछ भी अन्नदान नहीं किया। मेरे जन्मको धिक्कार है ! मैं अब आपके कथनानुसार इस चैत्रमासमें अवश्य अन्नदान दूंगा ॥ २१६ ॥ २१७ ॥ २१८ ॥ २१९ ॥ ऐसा कहकर शम्भु चल पड़ा और रम्य अयोध्या नगरीको दूरसे देखकर स्त्री-पुरुष, शम्भु, पथिक एवं भीलने प्रणाम किया और शम्भुने कर्कशसे कहा—हे महाभिल्ल ! इस अयोध्यापुरीको देखो, जिसमें स्नान करनेके लिए करोड़ों मनुष्य आये हुए हैं ॥ २२० ॥ २२१ ॥ महान् जनसमुदायकी ध्वनि मेघगर्जनके समान सुनायी दे रही है। उड़ती हुई विविध प्रकारकी पताकायें इन्द्रधनुषके समान दीख रही हैं। बाजोंकी मनोहर ध्वनि सुनायी देती है। अग्निहोत्रके धूमसे सारा आकाशमण्डल भर गया है। हे कर्कश ! यहाँ कैलासशिखरके समान उज्ज्वल और ऊँची अट्टालिकायें दीख रही हैं ॥ २२२ ॥ नयी-नयी अटारियों और परिखाओंसे सारी नगरी घिरी हुई है। ऊँचे-ऊँचे भवन बने हैं और उनमें सैकड़ों पताकायें फहरा रही हैं। आकाशको चूमनेवाले बड़े-बड़े भवनोंपर सुवर्णके कलशोंसे अयोध्यापुरी शोभित हो रही है। रत्नमें खचित और सुवर्णसे मण्डित दरवाजोंसे भरी नगरी उनके खुलने और बन्द होनेपर ऐसा लगता है कि वह पलकें खोल-मूँद रही है। पताकारूपी आँचल पवन द्वारा उड़नेसे ज्ञात होता है कि यह नगरी दूर ही से पथिकोंको बुला रही है ॥ २२३–२२७ ॥ इस नगरीने अपनी शोभासे पाताललोकको भी नीचा दिखा दिया है। अब केवल अमरावती पुरीको जीतना बाकी है। सो ऐसा लगता है कि प्रासादरूपी शूलको लिये हुए यह पुरी उसे भी जीतनेकी तैयारी कर रही है। इस पुनीत क्षेत्रमें ब्रह्मा, विष्णु और शिवके साथ-साथ सब देवता और ऋषि गुप्तरूपसे निवास करते हैं ॥ २२८ ॥ २२९ ॥ यहाँके निवासी कुबेरको जीतनेके लिए और दान तथा भोगके वास्ते धन बटोर रहे हैं ॥ २३० ॥ इसी पुरीमें

ते द्विजाः कस्य नो वंद्या अयोध्यानगरीस्थिताः । औदार्ये कल्पतरवो गांभीर्ये सागरा इव ॥२३२॥
क्षमया क्षमया तुल्या जंगमा निगमा इव । दैन्यग्राहमहाम्भोधिग्रासागस्त्यमहर्षयः ॥२३३॥
निवसंति द्विजा यत्र वंद्याः सर्वमहीभुजाम् । चतुर्वर्गफलोपेतं चतुराश्रमभुज्ज्वलम् ॥२३४॥
चातुर्वर्ण्यमिहैवास्ते चतुराम्नायमार्गगम् । कृमिकीटपतङ्गानां विना ज्ञानसमाधिभिः ॥२३५॥
अत्र निर्वाणपदवी सुलभाऽस्ति वनेचर । एनःपानघटान् भोक्तुं तरंगानंकुशानिव ॥२३६॥
बिभर्ति सरयूतोयं निःश्रेणिर्भोगमोक्षयोः । पश्य स्फाटिकसोपाननिविष्टमुनिसंस्तुताम् ॥२३७॥
सरयूनदीमुत्तरीयां कृतामिव पुराऽनया । इन्द्रनीलमहातुंगप्रतोलीचारुदर्शनः ॥२३८॥
रामचन्द्रस्य दिव्योऽयं प्रासादस्तुङ्गतोरणः । प्रतोली यस्य घटिता काश्मीरैरुपलैरलम् ॥२३९॥
सीतायाश्च महानेष प्रासादो रत्नतोरणः । नानारत्नैर्मण्डितश्च हेमस्तंभविराजितः ॥२४०॥
स्फाटिकैरुपलैश्चित्रः सरयूतीरसंश्रितः । रामतीर्थसमीपेऽयं सीतारामस्य वै परः ॥२४१॥
प्रासादो विमलो भाति तप्तकांचननिर्मितः । पताकाभिर्विचित्राभिः कलशैः सुविराजितः ॥२४२॥

उत्तप्तजांबूनदरत्नकुम्भः प्रवालवैदूर्यनिबद्धभूमिः ।
हेमप्रतोलीरचितः स एव प्रासादवर्योऽस्ति हि लक्ष्मणस्य ॥२४३॥

चातुर्यं यत्र विश्रान्तं सकलं विश्वकर्मणः । सोऽयं भरतराजस्य प्रासादो हेमतोरणः ॥२४४॥
तथा देदीप्यमानोऽयं रत्नभित्तिविनिर्मितः । प्रसादो दृश्यते रम्यः शत्रुघ्नस्य शुभावहः ॥२४५॥
स्फाटिकैर्भित्तिभिश्चित्रः प्रोच्चः कनकरेखितः । प्रासादो वायुपुत्रस्य दृश्यतेऽयं महोज्ज्वलः ॥२४६॥

य एष मुक्ताफलजालशोभी सुदर्शनांकः खगराजकेतुः ।
कुशस्य रम्यस्त्वयमाविरास्ते प्रासादकुम्भः किमु बालसूर्यः ॥२४७॥

सदा आनन्द छाया रहता है। जहाँके निवासी ब्राह्मणोंके पैर इन्द्रादि देवता भी धोया करते हैं, तब वे भला किसके वन्दनीय न होंगे। यहाँके विप्र उदारतामें कल्पवृक्ष, गम्भीरतामें समुद्र, क्षमामें पृथ्वी, जंगमोंमें वेद तथा दारिद्रयरूपी महान् समुद्रके शोषणमें अगस्त्यके सदृश हैं। संसारके सब राजे इनको मस्तक झुकाकर प्रणाम करते हैं। इनको धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इन चारों पदार्थोंमेंसे किसीकी भी कमी नहीं रहती। ये आनन्दके साथ ब्रह्मचर्य, गार्हस्थ्य, वानप्रस्थ एवं संन्यास, इन चारों आश्रमोंका उपभोग करते हैं ॥ २३१–२३४ ॥ यहाँपर चारों वेदोंके अनुसार चार वर्णके लोग निवास करते हैं। हे वनेचर! यहाँ ज्ञान और समाधिके बिना ही कीट-पतङ्ग आदिकोंके लिए भी मुक्ति सुलभ है। यहाँ पापरूपी घड़ोंका जल पीनेके लिए योग और मोक्षकी निसेनी बनकर सरयूका जल शोभित हो रहा है। देखो न! स्फटिक मणिकी बनी सीढ़ियोंपर मुनिगण बैठे हुए स्तुति कर रहे हैं। अयोध्याकी उत्तर दिशामें इन्द्रनीलमणिसे बने मार्गके समान सुन्दर सरयू नदी बह रही है ॥ २३५–२३८ ॥ यह रामचन्द्रजीका दिव्य और ऊँचा प्रासाद है, जिसमें ऊँचे कंगूरे बने हुए हैं। इसके आस-पासके मार्ग कश्मीरके पत्थरोंसे बने हैं ॥ २३९ ॥ इस ओर सीताका महाभवन दिखाई पड़ता है। जिसमें रत्नके तोरण और सुवर्णके स्तम्भ लगे हुए हैं ॥ २४० ॥ जहाँ तहाँ स्फटिक मणिके पत्थर लगे हैं, जिससे यह चित्र-विचित्र मालूम पड़ रहा है। रामतीर्थके पास ही सीता-रामका एक दूसरा भवन सुवर्णसे बना है। उसमें भी विचित्र प्रकारकी पताकायें लगी हैं और सुन्दर कलश सुशोभित हो रहे हैं ॥ २४१ ॥ २४२ ॥ जिसमें तपाये सुवर्ण तथा रत्नोंके कलश हैं, सुन्दर प्रवाल और वैदूर्यमणिकी दीवारें बनी हैं। इसके भी आस-पास सुवर्णके मार्ग बने हैं। यह श्रीलक्ष्मणजीका भवन है ॥ २४३ ॥ वह सामनेका भवन जिसके बनानेमें विश्वकर्माकी सारी चातुरी समाप्त हो चुकी है, श्रीभरतजीका भवन है। इसमें भी सुवर्णके तोरण लगे हुए हैं ॥ २४४ ॥ रत्नोंसे बनी दीवारवाला यह रम्य प्रासाद शत्रुघ्नजीका है ॥ २४५ ॥ अतिशय ऊँचा और स्फटिक मणिसे बनी दीवारका यह सुवर्णमय प्रासाद वायुपुत्र श्रीहनुमान्जीका है ॥ २४६ ॥

प्रासादोऽयं लवस्यात्र बहुरत्नविराजितः । यत्र चित्राण्यनेकानि मोहयन्ति मृगीदृशाम् ॥२४८॥
चक्षूंषि जातरागाणि योगिनामपि मानसम् । विन्यस्तरत्नविन्यासः शातकुंभभुवो बहिः ॥२४९॥
हेषयंतीव सततं रत्नसानुमहाप्रभाम् । रत्नप्रासादसंयुक्तामयोध्यां पश्य सुप्रभाम् ॥२५०॥
यदंगणं क्षालयती नदीयं स्वीयैर्जलैः सोऽयमनर्घ्यरत्नः ।
अभ्रंकषैर्हेममयैः स्वकुंभैर्विराजितोऽयं खलु चित्रकेतोः ॥२५१॥
दिव्यप्रवालघटिते कपाटे यत्र चञ्चले । प्रासादोऽयमंगदस्य रुक्मभित्तिविनिर्मितः ॥२५२॥
गरुडोद्गारघटितप्रतोलीपरिशोभितः । प्रासादः पुष्करस्यायं नयनानंदनो नृणाम् ॥२५३॥
विशुद्धजांबूनददिव्यभूमिर्लसत्पताकस्त्रिदशाभिवंद्यः ।
प्रासाद एषः परमो मनोज्ञस्तक्षस्य वीरस्य महान् विभाति ॥२५४॥
यस्याधिभूमिं नवरत्नसिंहस्त्रिभिः पदैर्यो विजितास्त्रयोऽपि ।
लोकश्चतुर्थो न हि दृश्यतेऽतः पदं समुद्यम्य किमाविरास्ते ॥२५५॥
अघौघमत्तकरिणां घटा दारयितुं किमु । उदस्तचरणो यस्य रत्नसिंहो विराजते ॥२५६॥
सोऽयं हेमभित्तिमयः प्रासादः प्रोन्नतः शुभः । सुबाहोः पश्य भो भिल्लरत्नसानुविराजितः ॥२५७॥
रत्नप्रवालस्फटिकनीलकाश्मीरनिर्मितः । प्रासादोऽयं यूपकेतोर्महान् दीप्तिमयः शुभः ॥२५८॥
कह्लारैरुत्पलैः शोणैररविन्दैः शतच्छदैः । विराजितं पापहरं रामतीर्थं प्रदृश्यते ॥२५९॥
इंदूत्पलै रविदलैर्निबद्धा यस्य भूमयः । हरंति ग्रीष्मसंतापं निष्यंदसीकरोत्करैः ॥२६०॥
अमंदकुरुविंदानां विन्यासैर्यत्र चारुभिः । मुह्यन्ति शुकचेतांसि मुद्गदाडिमशंकया ॥२६१॥
एवं पश्य शुभां रम्यां पताकाभिर्विराजिताम् । भिल्लायोध्यां मुक्तिपुरीं द्वितीयाममरावतीम् ।।२६२॥

जिसमें मोतियोंकी झालरें लगी हैं, सुदर्शन चक्र एवं गरुड़के चिह्नसे चिह्नित पताकायें फहरा रही हैं, बालसूर्यकी तरह सुन्दर यह भवन कुशका है ॥ २४७ ॥ बहुतेरे रत्नोंसे विराजित यह लवका दिव्य भवन है, जिसमें बने हुए चित्र स्त्रियोंका मन मोह लेते हैं ॥ २४८ ॥ जहाँ कि योगियोंकी भी आँखें पहुँचकर रागमयी बन जाती है, जिस नगरीके भवनोंमें विविध प्रकारके रत्नोंकी पच्चीकारी की हुई है, जिसके बाहरकी भूमि सुवणमयी है, जिसकी अटारियाँ सुवर्णकूटकी तरह देदीप्यमान हो रही हैं, ऐसी अयोध्यापुरीको देखो । जिसके प्रांगणको धोती हुई यह सरयू नदी विराजमान है । आकाशको छूनेवाले बड़े-बड़े प्रासादोंके कलशोंसे सुशोभित यह पुरी साक्षात् चित्रकेतु गन्धर्वकी पुरीके समान सुन्दर दीख रही है ॥ २४९-२५१ ॥ दिव्य प्रवाल मणिसे बने हुए कपाट जिसमें लगे हैं और सुवर्णकी दीवारें बनी हैं, यह अङ्गदका भवन है । गरुड़मणिकी जिसमें प्रतोलियाँ बनी हैं, नयनोंको आनन्द देनेवाला वह भवन पुष्करका हैं । जिसको फर्श विशुद्ध सुवर्णकी बनी है और सुन्दर पताकायें जिसमें फहरा रही हैं, यह परम मनोज प्रासाद वीर तक्षका है ॥ २५२–२५४ ॥ इधर देखो, नवरत्नमय सिंह विद्यमान है । इस नवरत्नमय सिंहकी बड़ी महिमा है । इसके प्रभावसे वामन भगवान्ने तीन पैरसे तीनों लोकोंको नाप लिया था । चौथा कोई लोक ही नहीं बचा था, जिसे नापते ॥ २५५ ॥ जिसके घरमें ऊपरको पैर उठाये नवरत्नका सिंह विराजमान हो तो अघ (पाप) रूपी मतवाले हाथियोंका उसे कुछ भी भय नहीं रह जाता ॥ २५६ ॥ हेमभित्तिमय रत्नके शिखरसे विराजित यह प्रासाद सुबाहुका है ॥ २५७ ॥ रत्न, प्रवाल, स्फटिक और नील काश्मीरसे निर्मित यह प्रासाद यूपकेतुका है ॥ २५८ ॥ कह्लार, उत्पल, शोण, अरविन्द तथा शतपत्रसे विराजित समस्त पापोंको हरनेवाला यह रामतीर्थ दिखलायी पड़ रहा है ॥ २५९ ॥ जिसकी भूमि चन्द्रकान्त मणिसे बनी है । अतएव टपकते हुए ठण्ढे जलकी बूँदोंके गिरनेसे ग्रीष्म-ऋतुका सन्ताप दूर हो जाता है । दमकते हुए कुरुविन्द मणिके लगे रहनेसे यहाँ शुकोंको मूँग और अनारके फलका भ्रम हो जाता है ॥ २६० ॥ २६१ ॥ इस प्रकारकी सुन्दर, रम्य और पताकाओंसे विराजित दूसरी

यत्र कार्त्तस्वरघटाः प्रतोलीशिरसि स्थिताः । रामं द्रष्टुमनंतास्तं प्राप्ताः सूर्या इवाबभुः ॥२६३॥

नृसिंह उवाच

एवमुक्त्वा कर्कशेन पत्न्या कार्पटिकेन च । सहितश्च तदा शंभुस्तां पुरीं संविवेश सः ॥२६४॥
रामतीर्थं ततो गत्वा कृत्वा क्षौरादिकं विधिम् । उपोष्य दिनमेकं हि तीर्थश्राद्धं चकार सः ॥२६५॥
अमावास्यां शुभां चैत्रे प्राप्तां ज्ञात्वा द्विजोत्तमः। मुक्त्यर्थं स्वपितुश्चक्रे ह्यन्नदानं यथाविधि ॥२६६॥
तच्चैत्रमासे रजनीशसंक्षये दत्तं पितुर्यच्छुभदं मनोहरम् ।
विप्रेण चान्नं पथिकस्य वाक्यतस्तस्मात्पिशाचः सुरसद्म निरिथतः ॥२६७॥
अयोध्यायां ततः शंभुः कृत्वा चैत्रेऽवगाहनम् । उद्यापनविधिं चापि यथोक्तं च चकार सः ॥२६८॥
कर्कशोऽपि मधौ स्नात्वा मुक्त्वा पापौघभूधरम् । अयोध्यानगरीमध्ये साधुवृत्त्याऽवसच्चिरम् ॥२६९॥
श्रीरामचिंतनं कुर्वन्निनायायुष्यसंक्षयम् । ततः प्राप हरेर्लोकमयोध्यामरणेन सः ॥२७०॥
शंभुश्चापि मधौ स्नानं कृत्वा कांचीपुरीं पुनः । गंतुं प्रतस्थे श्रीरामं नत्वाऽयोध्यां पुनः पुनः॥२७१॥
भार्यया सहितः शंभुस्तेन कार्पटिकेन च । ययौ पूर्वेण मार्गेण यत्र तौ करिकाहली ॥२७२॥
स्थापितौ शपथैः कृत्वा शनैस्तत्र समागमत् । दत्त्वा दिनद्वयं पुण्यमुभाभ्यां मधुमासजम् ॥२७३॥
दत्त्वा स्वीयांजलौ तोयं तयोर्मुक्तिं चकार सः । ततस्तौ करिसिंहौ च दिव्यमाल्यानुलेपितौ ॥२७४॥
दिव्यं विमानमारुह्य विष्णुलोकं गतावुभौ । ततोऽग्रे द्विजवर्यः सः ययौ मार्गेण भार्यया ॥२७५॥
स यत्र राक्षसः पूर्वं स्थापितः शपथैर्वने । तं दृष्ट्वा राक्षसश्रेष्ठं भार्यां प्राह द्विजोत्तमः ॥२७६॥
अयि काश्याह्वये रम्ये शृणु मे वचनं शुभम् । या त्वया शीतला गौरी स्नाता वै सरयूजले ॥२७७॥
तस्यैकदिवसस्याद्य देहि पुण्यं शुभावहम् । राक्षसाय हि मद्वाक्याद्गृहीत्त्व जलमंजलौ ॥२७८॥

अमरावतीपुरीके समान देदीप्यमान इस अयोध्यापुरीको देखो ॥ २६२ ॥ जहां कि प्रतोलीके मस्तकपर विराजमान सुवर्णके भवन ऐसे दीख रहे हैं, जैसे अनन्त सूर्य एक साथ रामचन्द्रजीका दर्शन करने आ गये हों ।।२६३॥ नृसिहने कहा—इस तरह कहकर अपनी पत्नी, कार्पटिक तथा कर्कशके साथ-साथ शम्भु अयोध्या पुरीमें प्रविष्ट हुआ ॥ २६४ ॥ पहले रामतीर्थपर पहुँचकर उसने क्षौर आदि कराया और एक दिनका उपवास करके तीर्थश्राद्ध किया ॥ २६५ ॥ जब चैत्रकृष्ण अमावास्या तिथि आयी तो उसने अपने पिताकी मुक्तिके लिए विधिवत् अन्नदान किया ॥ २६६ ॥ उस चैत्रमासमें अमावास्याको शम्भुने कार्पटिकके कथनानुसार जो अन्नदान किया, उसके पुण्यसे तत्काल उसका पिता पिशाचयोनिसे मुक्त होकर स्वर्गको चला गया ॥ २६७ ॥ तदनन्तर शम्भुने अयोध्यामें चैत्रस्नान और शास्त्रोक्त विधिसे उसका उद्यापन किया। कर्कश भी चैत्रस्नान करके सब पापोंसे मुक्त हो गया और साधुवृत्तिसे उसने अयोध्यामें ही बहुत दिन बिताये ॥ २६८ ॥ २६९ ॥ अन्तमें रामका स्मरण करते-करते उसने शरीर त्याग दिया । अयोध्यामें मरनेसे उसे विष्णुलोककी प्राप्ति हुई ॥ २७० ॥ शम्भुने भी स्नान करनेके बाद श्रीरामचन्द्रजीको बारम्बार प्रणाम करके काञ्चीपुरीको जानेकी तैयारी की ॥ २७१ ॥ अपनी स्त्री और उस कार्पटिकको साथ लेकर शम्भु उसी मार्गसे लौटकर उधर चला, जहाँ कि अयोध्या जाते समय सिंह और हाथीको छोड़ आया था ॥ २७२ ॥ वहाँ पहुँचकर उसने हाथमें जल लिया और चैत्रस्नानके पुण्यमेंसे दो दिनका पुण्य देकर उन दोनोंकी उस योनिसे मुक्ति कर दी। इसके अनन्तर वे दोनों हाथी और सिंह दिव्यमाल्यसे अलंकृत हो और दिव्य विमानपर आरूढ़ होकर विष्णुलोकको चले गये । ॥ २७३–२७५ ॥ जाते-जाते वह उस स्थानपर पहुँचा, जहाँ कि जाते समय शपथ करके उस राक्षसको वनमें छोड़ आया था । वहाँ राक्षसको सामने देखकर शम्भुने अपनी स्त्रीसे कहा—हे काशिके ! जो तुमने शीतला गौरीका व्रत किया है । हाथमें जल लेकर उसके एक दिनका पुण्य इस राक्षसको दे दो ॥ २७६–२७८ ॥

इति शंभुवचः श्रुत्वा पद्मनेत्रा कृशोदरी । काशीनाम्नी द्विजपत्नी ददौ पुण्यं निजं तदा ॥२७९॥
ततः स राक्षसश्रेष्ठस्त्यक्त्वा देहं मलीमसम् । दिव्यं विमानमारुह्य नत्वा भार्यायुतं द्विजम् ॥२८०॥
दिव्यमाल्यांबरधरो हरिलोकं जगाम सः । शंभुश्चापि प्रियायुक्तो मधुमासं विवर्णयन् ॥२८१॥
ययौ कांचीपुरीं श्रेष्ठां जनान् वृत्तं निवेदयन् । भो पिशाचा यथा पृष्टं भवद्भिश्च कथानकम् ॥२८२॥
तत्सर्वं च मयाऽऽख्यातं राक्षसोद्धारणादिकम् ।

श्रीरामदास उवाच

इत्युक्त्वा नृहरिर्विप्रो गृहीत्वा स्वांजलौ जलम् ॥२८३॥

ददौ दिनद्वयस्यास्य पुण्यं चैत्रकृतं निजम् । ततः प्रोवाच भार्यां तु रम्ये चन्द्रप्रभे प्रिये ॥२८४॥
या त्वया शीतलागौरी स्नाता सीताकृते वरे । तीर्थे तस्य दिनैकस्य देहि पुण्यं शुभानने ॥२८५॥
पिशाचिन्यै समुद्धर्तुं मा विचारोऽस्तु वै हृदि । इति भर्तृवचः श्रुत्वा रम्या पंकजलोचना ॥२८६॥
लक्ष्मीनाम्नी मम माता ददौ पुण्यं निजं तदा । ततः पिशाचास्ते सर्वे मुक्ताः शीघ्रं शुभावहाः ॥२८७॥
निजरूपाणि वै प्रापुः प्रणेमुर्नृहरिं जवात् । नत्वा स्तुत्वा पुनर्नत्वा नृसिंहं त प्रियायुतम् ॥२८८॥
आपृच्छ्य जग्मिरे सर्वे स्वगुरोराश्रमं प्रति । गुरुश्चापि सुतां स्त्रीयां तां ददावतिहर्षितः ॥२८९॥
तयोर्ज्येष्ठाय शिष्याय कनिष्ठायापरां सुताम् । स्त्रीयोदरसमुत्पन्नां ददावप्रतिमां वराम् ॥२९०॥
ततस्तौ सस्त्रियौ विप्रौ जग्मतुस्तौ मुदान्वितौ । स्वस्वपितुश्चाश्रमं हि तयोस्तौ पितरावपि ॥२९१॥
दृष्ट्वा पुत्रौ समायातौ सस्त्रियौ तोषमापतुः । नृहरिश्च प्रियायुक्तोऽब्जकं प्रति समाययौ ॥२९२॥
चैत्रस्नानेन तत्पुत्रो रामदासाभिधस्त्वहम् । जातस्ततस्तौ देहान्ते जग्मतुर्वैष्णवं पदम् ॥२९३॥
एवं शिष्य मधुस्नानमहिमा बहुभिर्नरैः । देवैः सिद्धैश्च गंधर्वैः सदाऽनुभवितोऽस्ति हि ॥२९४॥
तस्मान्मधाववश्यं हि स्नातव्यं मानवोत्तमैः । रामतीर्थेषु सर्वत्र रामचन्द्रं प्रपूजयेत् ॥२९५॥

इस प्रकार शंभुकी आज्ञा सुनकर उस काशी नाम्नी द्विजपत्नीने अपना पुण्य उसको दे दिया ॥ २७९ ॥ इसके प्रभावसे उस राक्षसने अपनी वह अधम देह छोड़ दी और दिव्य विमानपर चढ़कर ब्राह्मण तथा ब्राह्मण-पत्नीको प्रणाम करता हुआ विष्णुलोकको चला गया। शम्भु भी चैत्रमासके माहात्म्यका वर्णन करता हुआ कांचीपुरीको चल पड़ा। हे पिशाचगण ! आप लोगोंने जो कथा पूछी, सो राक्षसोंके उद्धारसे सम्बन्ध रखनेवाली सब बातें कह सुनायीं। रामदासने कहा–ऐसा कहकर नृसिंहने अंजलीमें जल लिया और अपने चैत्रस्नानके पुण्यमेंसे दो दिनका पुण्य उसे दे दिया। फिर अपनी स्त्रासे कहा कि तुमने चैत्रमें जो शीतला गौरीका स्नान किया है। उसमेंसे एक दिनका पुण्य इस पिशाचिनीको दे दो ॥ २८०–२८५ ॥ इससे इसका उद्धार हो जायगा। इसपर कुछ विचार मत करो। इस प्रकार स्वामीकी आज्ञा सुनकर उस कमलनयनीने अपना पुण्य दे दिया। तब शीघ्र ही वे सब पिशाचयोनिसे मुक्त होकर ॥ २८६ ॥ २८७ ॥ अपने-अपने रूपको प्राप्त हो गये। इसके अनन्तर उन्होंने नृसिंहको प्रणाम किया, बारम्बार उनकी स्तुति की और उनसे पूछकर अपने गुरुके आश्रमको चले गये। गुरुने भी अतिशय हर्षित होकर अपनी कन्या उन्हें दे दो। उनमेंसे ज्येष्ठ भ्राताको ज्येष्ठ कन्या तथा कनिष्ठको एक दूसरी सगी कन्या समर्पित की ॥ २८८–२९० ॥ इसके अनन्तर वे दोनों अपनी-अपनी स्त्रीको साथ लेकर पिताके आश्रमपर गये ॥ २९१ ॥ उनके माता-पिता भी स्त्रीके साथ अपने बेटेको आते देखकर प्रसन्न हुए। नृसिंह भी अपनी भार्याके साथ अब्जक नगरको चल पड़े ॥ २९२ ॥ चैत्रस्नानके पुण्यसे उनके एक पुत्र हुआ, जिसका नाम रामदास है और वह मैं हूँ। कुछ दिनों बाद मेरे माता-पिताका देहांत हो गया और वे विष्णुलोकको प्राप्त हुए ॥२९३॥ हे शिष्य ! इस प्रकार चैत्रस्नानकी महिमाका कितने ही मनुष्य, देवता, सिद्ध तथा गन्धर्वोंने अनुभव किया है ॥ २९४ ॥ इस कारण अच्छे मनुष्योंको चाहिए कि चैत्रमासमें अवश्य

एवं त्वया यथा पृष्टं तथा सर्वं निवेदितम् । मया काऽन्या स्पृहा तेस्ति श्रोतुं तद्वद वच्म्यहम् २९६॥

इति श्रीशतकोटिरामचरितांतर्गते श्रीमदानंदरामायणे वाल्मीकीये मनोहरकांडे
चैत्रस्नानमाहात्म्ये एकादशः सर्गः ॥ ११ ॥

द्वादशः सर्गः

(श्रीरामचन्द्र द्वारा अद्वैतभावका प्रदर्शन)

विष्णुदास उवाच

गुरोऽन्यद्रामचन्द्रस्य चरित्रं वद मां प्रति । शृण्वतो मे मुहुर्नास्ति तृप्तिः श्रोतुं स्पृहैधते ॥ १ ॥

श्रीरामदास उवाच

सम्यक् पृष्टं त्वया शिष्य सावधानमनाः शृणु । एकदा हयमारूढो पुत्रबंधुबलैः सह ॥ २ ॥
वनं ययौ विहारार्थं रामचन्द्रो मुदान्वितः । तत्र दृष्ट्वा मृगं श्रेष्ठं तं हन्तुं रघुनन्दनः ॥ ३ ॥
बाणमाकृष्य तत्पृष्ठे ययौ वेगेन सादरम् । वनाद्वनांतरं रामा मृगस्य च पदानुगः ॥ ४ ॥
एकाकी हयमारूढो विवेश गहन वनम् । पश्चाद्दूरस्थिताः सर्वे लक्ष्मणाद्या बलैः सह ॥ ५ ॥
रामोऽपि निजबाणेन मृगं हत्वा वनेऽचरत् । निर्जलेऽतितृषाक्रांतः क्षुधाव्याप्तोऽप्यभूत्तदा ॥ ६ ॥
ततो रामो वृक्षतले क्षणं तस्थौ श्रमान्वितः । तावत्तं शबरी काचिद् दृष्ट्वा रामं मुदान्विता ॥ ७ ॥
नृपं ज्ञात्वा राजचिह्नैस्तं प्रणम्य पुरःस्थिता । तां दृष्ट्वा राघवोऽप्याह वाक्यं शबरि मे शृणु ॥ ८ ॥
लक्ष्मणाद्याः स्थिता दूरं क्षुत्तृड्भ्यां पीडितोऽस्म्यहम् ।
किंचिद्यत्नं कुरुष्वात्र येन मेऽद्य सुखं भवेत् ॥ ९ ॥
तद्रामवचनं श्रुत्वा शबरी वाक्यमब्रवीत् । इतोऽविदूरे श्रीराम दुर्गास्ति सरसस्तटे ॥१०॥
भौमवारेऽद्य नार्यश्च बहवोऽत्र समागताः । तत्र त्व च मया राम यदि यास्यसि सांप्रतम् ॥११॥

स्नान करके रामतीर्थोंमें जाकर रामचन्द्रजीका पूजन करें ॥२९५॥ तुमने जो पूछा, मैंने सब कुछ कह सुनाया। अब क्या सुननेकी इच्छा है, सो कहो। मैं सुनाऊँ ॥ २९६ ॥ इति श्रीशतकोटिरामचरितान्तर्गते श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये पं० रामतेजपाण्डेयकृत'ज्योत्स्ना'भाषाटीकासहिते मनोहरकांडे एकादशः सर्गः ॥ ११ ॥

विष्णुदास बोले–हे गुरो ! अब रामचन्द्रजीका कोई और चरित्र सुनाइए। क्योंकि रामचरित्र सुनते-सुनते मुझे तृप्ति नहीं होती। जितना ही सुनता हूँ, सुननेकी इच्छा बढ़ती जाती है ॥ १ ॥ श्रीरामदासने कहा–हे शिष्य ! तुमने बहुत ही अच्छी बात कही है, अब सावधान मनसे मेरी बात सुनो। एक बार घोड़ेपर सवार होकर रामचन्द्रजी अपने भाइयों, पुत्रों तथा सेनासे साथ मृगयाविहार करनेके लिए वनमें गये। वहाँ एक अच्छा-सा मृग देखा और उसे मारनेके लिए धनुषपर बाण चढ़ाकर उसके पीछे-पीछे दौड़ चले। जाते जाते वे गहन वनमें पहुँच गये। फिर भी राम एक वनसे दूसरे और दूसरेसे तीसरे वनमें मृगके पीछे-पीछे दौड़ते चले जा रहे थे। लक्ष्मण आदि साथी सेनाके साथ-साथ बहुत पीछे छूट गये ॥ २-५ ॥ अन्तमें बड़ी दूर जाकर रामने उस मृगको मारा। वह स्थान निर्जल था और उन्हें भूख-प्यास जोरोंसे लगी थी ॥ ६ ॥ वहाँ ही वे एक वृक्षके नीचे बैठ गये। उसी समय किसी शबरीने रामको देखा और उनकी वेश-भूषासे पहचान लिया कि ये कोई राजा हैं। वह रामके पास जा तथा प्रणाम करके सामने बैठ गयी। उसे देखकर रामने कहा—हे शबरी ! तू मेरी बात सुन ॥ ७ ॥ ८ ॥ मेरे लक्ष्मण आदि साथी पीछे छूट गये हैं। मैं भूख-प्याससे बहुत दुखी हूँ। तू कोई ऐसा उपाय कर कि जिससे मेरा दुःख दूर हो जाय ॥ ९ ॥ इस प्रकार रामकी बात सुनकर शबरीने कहा—हे राम ! यहाँसे थोड़ी दूरपर तालाबके

तर्हि तत्र विचित्रान्नैस्तुष्टिं प्राप्स्यसि वै क्षणात् । ततस्या वचनं श्रुत्वा शबरीं प्राह राघवः ॥१२॥
अहमत्रैव तिष्ठामि प्रतीक्षार्थं कुशस्य च । लवस्य लक्ष्मणादीनां सैन्यस्य वनवासिनि ॥१३॥
गच्छ त्वमेव तां दुर्गां स्त्रीमें वृत्तं निवेदय । तद्रामवचनं श्रुत्वा तथेत्युक्त्वा त्वरान्विता ॥१४॥
स्त्रीर्गत्वा शबरी प्राह शृणुध्वं वचन मम रामो राजीवपत्राक्षो मृगयां कर्तुमागतः ॥१५॥
अविदूरे वृक्षतले क्षुधाक्रांतः स्थितोऽस्ति हि । तेनाहं प्रेषिताऽस्म्यद्य सूचनार्थं वरानना: ॥१६॥
युष्माकं कथितं वृत्तं तस्य गच्छाम्यहं पुनः । शबर्यास्तद्वचः श्रुत्वा ता नार्यः संभ्रमान्विताः॥१७॥
अभिनंद्य निजैर्वाक्यैः शबरीं तां मुहुर्मुहुः । परस्परं तदा प्रोचुस्ता नार्यः शतशो मुदा ॥१८॥
धन्योऽद्य दिवसोऽस्माकं यस्मिन् राघवदर्शनम् । भविष्यति वरान्नैश्च तोषयामो रघूत्तमम् ॥१९॥
आदौ दुर्गां पूजायित्वा नैवेद्यं तां निवेद्य च । ततः समर्प्य रामाय भोक्ष्यामश्च वयं ततः ॥२०॥
इति संमंत्र्य तां नार्यो रुक्मालङ्कारमण्डिताः । पीतकौशेयवासिन्यो वरास्या मृगलोचनाः ॥२१॥
विप्रक्षत्रियवैश्यानां शूद्राणां चापि वेगतः । नैवेद्यपात्रैस्तां दुर्गां ययुर्नूपुरनिःस्वनाः ॥२२॥
एतस्मिन्नंतरे देवी स्वालयस्य समंततः । कपाटानि दृढं बद्ध्वा तूष्णींमासीद्गिरीन्द्रजा ॥२३॥
ततस्ता द्वारमासाद्य द्वारं बद्धं निरीक्ष्य च । बभ्रमुः सर्वद्वाराणि न मार्गं लेभिरे स्त्रियः ॥२४॥
तदाश्चर्यमनाः सर्वा द्वारदेशे स्थिताः क्षणम् । तावद्देवालयाच्छब्दो निर्गतः शुश्रुवुः स्त्रियः ॥२५॥
अहमेवात्र सीताऽस्मि रामः साक्षान्महेश्वरः । ये भिन्नं मानयंत्यत्र मां सीतां राघवं हरम् ॥२६॥
ते कोटिकल्पपर्यन्तं पच्यन्ते रौरवेषु हि । अतो यूयं हि भो नार्यो मन्नाथं च जगत्प्रभुम् ॥२७॥
तोषयध्वं वरान्नैश्च तच्छेषेण त्वहं ततः । तुष्टा भवामि गच्छध्वं क्षुधितं तं रघूत्तमम् ॥२८॥
इति नार्यो वचः श्रुत्वा देव्यास्ता विस्मयान्विताः । दुद्रुवुर्गजगामिन्यः शबरीचरणानुगाः ॥२९॥

किनारे एक दुर्गा-मन्दिर है ॥ १० ॥ आज मङ्गलवार है । इसलिए वहाँ बहुत-सी स्त्रियें आयी होंगी । यदि मेरे साथ वहाँ चलें तो आपको नाना प्रकारके विचित्र अन्न खानेको मिलेंगे । जिससे आप क्षणभरमें तृप्त हो जायँगे । शबरीकी सलाह सुनकर रामने उत्तर दिया कि मैं यहाँ कुश आदिकी प्रतीक्षा करता हुआ बैठता हूँ। हे वनवासिनि ! तू ही जाकर उन स्त्रियोंको मेरा हाल सुना दे । रामके आज्ञानुसार शबरी तुरन्त चल पड़ी ॥ ११-१४ ॥ उसने वहाँ पहुँचकर उन स्त्रियोंसे कहा—कमलके समान नेत्रोंवाले भगवान् रामचन्द्र यहाँ शिकार खेलने आये थे । वे पास ही पेड़के नीचे भूखे-प्यासे बैठे हैं । उन्होंने आप लोगोंको यह संदेश सुनानेके लिये मुझे भेजा है ॥ १५ ॥ १६ ॥ अब आप लोग जो कुछ कहें, वह जाकर मैं रामचन्द्रजीको सुना दूँ । शबरीकी बात सुनी तो विस्मित भावसे उन्होंने शबरीको धन्यवाद दिया और कहा—॥ १७ ॥ १८ ॥ हमारे लिए आजका दिन धन्य है, जिसमें श्रीरामचन्द्रजीके दर्शन प्राप्त होंगे और हम अच्छे-अच्छे अन्नोंसे उन्हें सन्तुष्ट करेंगी ॥ १९ ॥ हम पहले दुर्गाजीकी पूजा करके उनको नैवेद्य चढ़ायेंगी । उसके बाद रामको भोजन कराकर स्वयं भोजन करेंगी ॥ २० ॥ यह सुनकर सुवर्णके अलंकारोंसे अलंकृत, पीले कपड़े पहने, सुन्दर मुख एवं मृगीके समान नेत्रोंवाली वे ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्रके घरोंकी स्त्रियें तुरन्त हाथोंमें नैवेद्यके पात्र लेकर नूपुरकी मनोहर ध्वनि करती हुई चल पड़ीं ॥ २१ ॥ २२ ॥ उधर दुर्गाजीने चारों ओरसे मन्दिरका फाटक बन्द कर लिया और भीतर चुपचाप बैठ गयीं ॥ २३ ॥ वे स्त्रियाँ मन्दिरमें पहुँचीं तो द्वार बन्द पाया । एक एक करके वे सब द्वारोंपर घूम आयीं । लेकिन किसी तरफसे भी उन्हें भीतर जानेका मार्ग नहीं मिला ॥ २४ ॥ ऐसी अवस्थामें वे विस्मित होकर वहीं बैठ गयीं । थोड़ी देर बाद मन्दिरके भीतरसे यह वाणी सुनायी दी, जिसे उन स्त्रियोंने सुना—॥ २५ ॥ मैं ही सीता हूँ और राम साक्षात् शिव हैं । जो हममें और सीतामें, राममें तथा शिवमें भेद मानते हैं, वे करोड़ों जन्म पर्यन्त रौरव नरकमें सड़ते हैं । इस कारण हे स्त्रियो ! पहले तुमलोग अच्छे-अच्छे अन्नोंसे मेरे प्रभु रामको प्रसन्न करो । उनसे जो बचे, सो लाकर मेरी पूजा करो । इससे मैं प्रसन्न हूँगी । अच्छा, अब तुम लोग जाओ । रामचन्द्रजी भूखे-प्यासे बैठे हैं ॥२६-२८॥

ततः सा शबरी ताभ्यो दर्शयामास राघवम् । ता नेत्रपंकजैः सर्वा दृष्ट्वा नत्वा रघूत्तमम् ॥३०॥
दिव्यान्नानि पुरः स्थाप्य हेमपात्रैर्जलान्यपि । ततस्तं प्रार्थयामासुः स्त्रियः सर्वा पुरःस्थिताः ॥३१॥
त्वयाऽद्य तारिता राम वयं नार्यः सहस्रशः । शबरीं प्रेष्य गहने वनेऽत्र परमादरात् ॥३२॥
अन्नानि स्वीकुरुष्व त्वं देव्या त्वां प्रेषितानि हि । तत्तासां वचनं श्रुत्वा राघवः प्राह सस्मितः ॥३३॥
देव्या किमुक्तं भो नार्यः कथनीयं ममाद्य तत् । ताः प्रोचू राघवं नार्यो दुर्गावाक्यं सविस्तरम् ॥३४॥
दुर्गावाक्यं शृणुष्वाद्य त्वहमेवात्र जानकी । रामः साक्षान्महादेवो नात्र भेदः कदाचन ॥३५॥
मानयंत्यत्र भेद ये रौरवेषु पतंति ते । अतो रामं तोषयित्वा तदुच्छिष्टं त्वहं ततः ॥३६॥
भोक्ष्यामि नार्यो गच्छध्वं क्षुधार्तं रघुनंदनम् । देव्येत्थं भाषितं राम ततस्त्वां समुपागताः ॥३७।
अग्रे त्वं पूर्वपुण्यैर्नो भुंक्ष्वान्नं रघुनन्दन । ततस्ताः प्राह श्रीरामो विहस्य मुदिताननः ॥३८॥
यदि देवीवचः सत्यं तर्ह्यत्र गहने वने । सीतारूपेण सा दुर्गा मां समायातु सत्वरम् ॥३९॥
युष्मन्नारीसमूहात्तु काचिन्नारी गिरींद्रजाम् । गत्वा मद्वचनं दुर्गां श्रावयत्वद्य कौतुकात् ॥४०॥
तद्रामवचनं श्रुत्वा त्वेका स्त्री स्त्रीकदंबकात् । गत्वा दुर्गां रामवाक्यं श्रावयामास सादरम् ।।४१।।
दुर्गा श्रुत्वा रामवाक्यं तथेत्युक्त्वा तु तां स्त्रियम् ।
किञ्चित्कपाटमुद्घाटय सीतारूपेण निर्ययौ ॥४२॥
ततः पुनर्दृढं बद्ध्वा कपाटं जानकी त्वरात् । तोयपात्रं करे धृत्वा ययौ रामं स्मितानना ॥४३॥
नमस्कृत्वा रामचद्रं तत्पार्श्वे संस्थिताऽभवत् । तदा ताः सकला नार्यस्तत्रभूवन् विस्मिता हृदि ॥४४॥
ततो रामो वरान्नानि विप्रस्त्रीणां तथा पुनः । क्षत्रियाणां च नारीणां भोक्तुं स्नानार्थमुद्यतः ॥४५॥
ततः शरासने बाण संधाय जगदीश्वरः । भुवं भित्त्वाऽथ पातालाज्जालं तत्र समानयत् ॥४६॥

इस तरह देवीकी बात सुनकर वे सब गजगामिनी स्त्रियें विस्मित होकर शबरीके पीछे-पीछे चलीं ॥ २९ ॥ वहाँ जाकर शबरीने उन सब स्त्रियोंको रामचन्द्रजीका दर्शन कराया । उन नारियोंने कमल सरीखे नेत्रोंवाले रामको देखा और प्रणाम किया । इसके बाद दिव्य भोजन सामने रखकर सुवर्णके पात्रोंमें जल भरकर रक्खा और उन सब स्त्रियोंने एक स्वरसे भगवान्से प्रार्थना की—॥ ३० ॥ ३१ ॥ हे राम ! आपने शबरीके द्वारा अपने आनेका संदेश भेजकर हम लोगोंको तार दिया है ॥ ३२ ॥ साक्षात् दुर्गाजीके द्वारा भेजवाये इन खाद्य पदार्थोंको आप स्वीकार करें । उनकी बातोंको सुना तो मुसकाकर राम बोले—हे नारियो ! दुर्गाजीने हमारे विषयमें क्या कहा था, सो तो बतलाओ । स्त्रियाँ विस्तारपूर्वक दुर्गाजीके द्वारा कही गयी बातें बतलाती हुई कहने लगीं—उन्होंने कहा था कि राम साक्षात् महेश्वर हैं और मैं जानकी हूँ । जो लोग हम दोनोंमें किसी प्रकारका भेद मानते हैं, वे रौरव नरकमें पड़ते हैं । इसलिए तुमलोग पहले रामको भोजन कराके प्रसन्न कर आओ । उनसे जो कुछ बचेगा, सो मैं सहर्ष स्वीकार करूँगी । हे स्त्रियो ! अब तुमलोग उन भूखे रामजीके पास जाओ । इस तरह देवीकी बात सुनकर हम सब आपके पास दौड़ आयीं ॥ ३३–३७ ॥ अब हमारे पूर्वसंचित पुण्योंके प्रतापसे इस अन्नको ग्रहण करिए । इसके अनन्तर हँसकर श्रीरामचन्द्रजीने कहा—॥ ३८ ॥ यदि देवीकी बात सच है तो वे सीतारूपसे यहाँ मेरे पास आयें ॥ ३९ ॥ तुममेंसे कोई स्त्री जाकर मेरा यह सन्देश दुर्गाजीको सुना आये ॥ ४० ॥ रामके आज्ञानुसार उनमेंसे एक स्त्री दौड़ती हुई दुर्गाजीके पास पहुँचा और रामका संदेश कह सुनाया ॥ ४१ ॥ उस स्त्रीके मुखसे इस प्रकार रामका संदेश सुनकर दुर्गाजीने थोड़ासा दरवाजा खोला और सीतारूपसे बाहर निकल आयीं ॥ ४२ ॥ उन्होंने मन्दिरके दरवाजेको मजबूत बन्द किया और हाथमें जलपात्र लेकर मुसकराती हुई रामकी ओर चल पड़ीं ॥ ४३ ॥ वहाँ पहुँचकर उन्होंने रामको प्रणाम किया और उनकी बगलमें जा बैठीं । यह कौतुक देखकर सब स्त्रियाँ बहुत विस्मित हुईं ॥ ४४ ॥ इसके बाद राम उन ब्राह्मणों, क्षत्रियों तथा वैश्योंकी स्त्रियोंका अन्न खानेके लिए स्नान करनेको उद्यत हुए ॥ ४५ ॥ एतदर्थ रामने अपने धनुषपर बाण चढ़ाया और पृथ्वीको फोड़कर पाताल-

तत्र सस्नौ रामचन्द्रः कृत्वा माध्याह्निकं ततः । यावद्भोक्तुं मनश्चक्रे तावत्तेऽपि समाययुः ॥४७॥
कुशाद्याः सर्वसैन्यैश्च रामवाजिपदानुगाः । ते सर्वे जानकीं दृष्ट्वा विस्मयं परमं ययुः ॥४८॥
ततस्ते शबरीवाक्यात्सर्वं श्रुत्वा कुशादिकाः । गतमोहा रामचन्द्रं मेनिरे चन्द्रशेखरम् ॥४९॥
सीतां गिरींद्रजां चापि मेनिरे ते विनिश्चयात् । ततो रामः कुशाद्यैश्च मुदा सैन्येन सीतया ।।५०॥
भुक्त्वा पीत्वा जलं स्वच्छं वाक्यं स्त्रीः प्राह सादरम् । वरयध्वं वरान्नार्यो युष्माकं यत्तु रोचते ॥५१॥
तद्रामवचनं श्रुत्वा स्त्रियः प्रोचू रघूत्तमम् । येनास्माकं भवेत्कीर्तिस्तं वरं दातुमर्हसि ॥५२॥
ततः प्राह रामचन्द्रस्ता नारीस्तुष्टमानसः । मम नामास्तु युष्माकं रामेति जगतीतले ॥५३॥
युष्माकं मयि सद्भक्तिः पुरुषेभ्योऽपि चाधिका । भविष्यति सदा नार्यो वरेण मम निश्चयात् ॥५४॥
देवे विप्रे कथायां च धर्मे भक्तिर्भविष्यति । सदा यूयं पवित्राश्च भवध्वं सधवाः स्त्रियः ॥५५॥
मांगल्ये शकुने सर्वकर्मसु च पुरःसराः । यूयं भवध्वं सर्वत्र त्रिवेणीधृतमस्तकाः ॥५६॥
मम बाणात्कृतं तीर्थं मन्नाम्नेदं भविष्यति । इति रामवचः श्रुत्वा स्त्रियः प्रोचू रघूत्तमम् ॥५७॥
जन्मांतरेऽपि त्वं राम दर्शनं देहि नः पुनः । तच्चासां वचनं श्रुत्वा राघवो वाक्यमब्रवीत् ॥५८॥
द्वापरे कृष्णरूपेण युष्माकं दर्शनं मम । भविष्यति वने यज्ञे त्वन्नयाञ्चाप्रसंगतः ॥५९॥
द्विजपत्न्यस्तदा यूयं भविष्यथ स्त्रियो वने । इयं तु शबरी पत्नी विप्रस्यैव भविष्यति ॥६०॥
मद्दर्शनार्थमुद्युक्तामेनामस्याः पतिर्यदा । स्तम्भे बद्ध्वा महादण्डं स करिष्यति वै गृहे ॥६१॥
तदेयं मद्गतमना वने यास्यति मां प्रति । भिन्नदेहेन शबरी कौतुकं तद्भविष्यति ॥६२॥
तदा यूयं स्त्रियः सर्वास्तद्दृष्ट्वा कौतुकं महत् । भूत्वाऽत्र मद्गतमना मां ध्यात्वा सर्वदा हृदि ॥६३॥
अंते मल्लोकमासाद्य मोक्ष्यथ सुखमुत्तमम् । रामेति तारकं नाम मम नित्यं हि सर्वदा ॥६४॥

लोकसे जल निकाला ॥ ४६ ॥ उससे स्नान किया और मध्याह्न कालकी क्रियाओंसे फुरसत पायी । तब जैसे ही भोजन करनेको तैयार हुए, तैसे ही कुश आदि भी सेनाके साथ उस स्थानपर आ पहुँचे । उन्होंने वहाँ जानकीको देखा तो उनके आश्चर्यका ठिकाना नहीं रहा ॥ ४७ ॥ ४८ ॥ फिर शबरीके मुखसे उन्होंने सब समाचार सुना, तब उन लोगोंको विश्वास हुआ कि रामचन्द्रजी साक्षात् शिव ही हैं ॥ ४९ ॥ और सीताजी साक्षात् पार्वती हैं । तत्पश्चात् रामचन्द्रजीने कुश आदि बालकों तथा सेनाके साथ भोजन किया, स्वच्छ जल पिया और उन स्त्रियोंसे कहा–'हे स्त्रियों ! अब तुम लोगोंकी जो इच्छा हो, वह वर माँग लो' ॥ ५० ॥ ५१ ॥ इस तरह रामकी बात सुनकर स्त्रियाँ बोलीं कि जिससे संसारमें हमारी सुकीर्ति हो, कोई ऐसा वरदान दीजिये ॥ ५२ ॥ श्रीरामचन्द्रजीने प्रसन्न होकर उन नारियोंसे कहा कि जो नाम हमारा है, वही तुम्हारा भी "रामा" यह नाम विख्यात होगा ॥ ५३ ॥ हे स्त्रियों ! हमारे वरदानके प्रभावसे पुरुषोंकी अपेक्षा नारियोंकी हमारेमें विशेष भक्ति रहेगी ॥ ५४ ॥ देवता, ब्राह्मण, हरिकथा एवं धर्ममें तुम्हारी विशेष रुचि रहा करेगी । तुम जैसी सधवा स्त्रियाँ सदा पवित्र रहेंगी ॥ ५५ ॥ अपने मस्तकपर तीन वेणी धारण करनेवाली स्त्रियाँ किसी मङ्गलमय कार्य तथा शकुन आदि सब कार्योंमें आगे-आगे चलेंगी ॥ ५६ ॥ मेरे बाणसे इस सरोवरकी रचना हुई है । अतएव यह तीर्थ मेरे ही नामसे विख्यात होगा । इस तरह रामके द्वारा वरदान पाकर उन स्त्रियोंने कहा–हे राम ! आप जन्मान्तरमें भी हम लोगोंको अपना दर्शन दीजिएगा । उनकी बात सुनकर रामने कहा–द्वापरमें अन्न माँगनेके प्रसङ्गमें ही कृष्णरूपसे मैं तुम लोगोंको दर्शन दूँगा ॥ ५७–५९ ॥ उस समय जब वनमें तुम हमें मिलोगी, तब तुम सब ब्राह्मणकी स्त्रियें रहोगी । यह शबरी भी उस समय द्विजपत्नी होगी ॥ ६० ॥ मेरे दर्शनके लिए जानेको उद्यत इस नारीको जब इसका पति खम्भेमें बाँधकर दण्ड देगा तो यह अपना मन मुझे अर्पण करके अन्य रूपसे मेरे समीप चली आयेगी । उस समय यह कौतुक देखकर तुम सब बड़ी विस्मित होओगी और तबसे मुझमें अपना मन लगाकर सर्वदा मेरा ध्यान करोगी ॥ ६१–६३ ॥ अन्तमें मेरे

युष्माभिर्जपनीयं वै तेनास्तु गतिरुत्तमा । इति दत्त्वा वरांस्तास्यः सीतामाह पुरःस्थिताम् । ६५॥
सुखं याहि स्थलं स्वीयं तथेत्युक्त्वा विदेहजा । रामं प्रणम्य स्त्रीयुक्ता ययौ देवालयं पुनः ॥६६॥
देवालयगता भूत्वा दुर्गारूपं दधार सा । तदातिविस्मयं प्राप्तुस्ता नार्यो निजचेतसि ॥६७॥
तास्तां दुर्गां प्रपूज्याथ नार्यो जग्मुः स्थलं निजम्। रामोऽपि बन्धुपुत्राद्यैर्ययौ निजपुरीं प्रति ॥६८॥
ततो गेहे कुशः सीतां पप्रच्छ वनचेष्टितम् । दृष्टवच्च यथा वृत्तं तथा सीता न्यवेदयत् ।६९॥
ततस्ते लक्ष्मणाद्याश्च मेनिरे राघवं हरम् । सीतां साक्षान्महादुर्गां मेनिरे गतविभ्रमाः ॥७०॥
एवं शिष्य जनानां च रामेण परमात्मना । द्वैतबुद्धिः खंडिताऽत्र वने कृत्वा तु कौतुकम् ॥७१॥
एवं वरेण रामस्य रामा नार्यत्र कथ्यते । तासामपि मनुश्चायं स्मृतो रामेति द्व्यक्षरः ॥७२॥
नान्यो मन्त्रोऽस्ति नारीणां शूद्राणां चापि भो द्विज । सर्वेभ्यो मन्त्रवर्येभ्यो रामस्त्वायं मनुर्वरः ॥७३॥
त्रासे भये महापापे बाधायां सर्वदा नरैः । रामेति द्व्यक्षरो मंत्रः कीर्त्यते जगतीतले ॥७४॥
कृत्वा पापं महाघोरं पश्चात्तापेन यो नरः । सकृद्रामेति मंत्रं हि कीर्तयेच्छुद्धिमाप्नुयात् ॥७५॥
रामेति मंत्रराजोऽयं गमने भोजने तथा । शयने क्रीडने रात्रौ स्थिते कार्यांतरे नरैः ॥७६॥
जपनीयः सर्वदैव संध्ययोरुभयोरपि । चतुर्वर्णैः सदा जप्यश्चतुराश्रमवासिभिः ॥७७॥
नास्य मंत्रस्य कालोऽस्ति जपार्थं कालरूपिणः । तस्माज्जनैर्जपनीयः सर्वदा मनुरुत्तमः ॥७८॥
राममंत्रो मुखे यस्य देहो मुद्रांकितस्तथा । राममुद्रांकितं वस्त्रं यस्य तं नेक्षयेद्यमः ॥७९॥
राममुद्रांकितं वस्त्रं समुद्रं वस्त्रमुच्यते । सर्ववस्त्रेषु तच्छ्रेष्ठं पवित्रं पापनाशकम् ॥८०॥
समुद्रं वसनं देहे बिभ्रतं मानवोत्तमम् । कृतं पापं न लिप्येत पद्मपत्रमिवांभसा ॥८१॥
समुद्रवस्त्रसंयुक्तं दृष्ट्वा भुवि नरोत्तमम् । यमदूताः पलायते सिंहं दृष्ट्वा मृगा यथा ॥८२॥

लोकको प्राप्त करके तुम सब उत्तम सुख भोगोगी । मेरे 'राम' इस तारक मंत्रको तुम लोग सदा जपती रहना, इससे तुम्हें उत्तम गति प्राप्त होगी । इस तरह उन स्त्रियोंको वरदान देकर सामने बैठी हुई सीताजीसे कहा कि अब आप आनन्दसे अपने मन्दिरको जाइए । 'तथास्तु' कहकर वे भी उन स्त्रियोंके साथ मन्दिरकी ओर चली गयीं ॥ ६४–६६ ॥ देवालयमें पहुँचकर उन्होंने फिर पहलेकी तरह दुर्गाका रूप धारण कर लिया । उस समय वे स्त्रियाँ और भी विस्मित हुईं ॥ ६७ ॥ इसके बाद उन स्त्रियोंने दुर्गाकी पूजा की और अपने-अपने घरोंको चली गयीं । राम भी अपने बन्धुओं, पुत्रों एवं सेना आदिको साथ लेकर अयोध्या चल दिये ॥ ६८ ॥ घर पहुँचकर कुशने सीतासे वह वृत्तान्त पूछा तो सीताने इस तरह सब कह सुनाया कि जैसे उन्होंने अपनी आँखों सब कुछ देखा हो ॥ ६९ ॥ तबसे लक्ष्मण आदिने सन्देहरहित होकर रामको महेश्वर और सीताको महादुर्गा माना ॥ ७० ॥ हे शिष्य ! अपने भक्तोंकी द्वैत बुद्धिको दूर करनेके लिए ही रामने वनमें इस प्रकारका कौतुक किया था ॥ ७१ ॥ रामचन्द्रजीके वरदानसे ही स्त्रियाँ रामा कहलाती हैं । उन लोगोंके लिए भी 'राम' यह दो अक्षरोंका मंत्र बतलाया गया है ॥ ७२ ॥ स्त्रियों और शूद्रोंके लिए इसके सिवाय और कोई मन्त्र नहीं है। सब मन्त्रोंमें यह राममन्त्र सर्वश्रेष्ठ है ॥ ७३ ॥ किसी प्रकार त्रास, बाधा या भय आनेपर लोग इसी नामका उच्चारण करते हैं ॥ ७४ ॥ महाघोर पाप करके भी जो प्राणी पश्चात्तापपूर्वक 'राम' इस मन्त्रका कीर्तन करता है, उसकी शुद्धि हो जाती है ॥ ७५ ॥ लोगोंको चाहिए कि कहीं जाते समय, भोजन करते समय, सोते समय, खेलते-कूदते समय अथवा कोई भी कार्य करते समय और सायंकालको, चाहे वे किसी वर्ण तथा किसी आश्रमके हों, राम इस मन्त्रका जप करते रहें । क्योंकि यह बड़ा उत्तम मन्त्र है ॥ ७६–७८ ॥ जिसके मुखमें राममन्त्र है, जिसका शरीर रामनामसे अंकित है और जिसकी देहपर राममुद्रासे अंकित वस्त्र पड़ा रहता है, उसे यमराज नहीं देख पाते ॥७९॥ राममुद्रासे अंकित वस्त्र समुद्र वस्त्र कहलाता है। यह वस्त्र सबमें श्रेष्ठ, पवित्र और पापनाशक होता है ॥ ८० ॥ उस समुद्र वसनधारी प्राणीको किसी प्रकारका पातक नहीं लगता । जैसे कमलके पत्तेपर जलका असर नहीं होता ॥ ८१ ॥ समुद्र वस्त्र धारण किये हुए मनुष्यको

पुरैकदा तु मुनयः संमंत्र्योचू रघूत्तमम् । राम राम महाबाहो कलावग्रे द्विजोत्तमाः ॥८३॥
व्यग्रचित्ता मंदधियो भविष्यन्त्यवनीतले । निजजाठरपूर्त्यर्थं द्वाराद्द्वारं भ्रमंति हि ॥८४॥
कुतोऽवकाशः स्मरणे तव तेषां भविष्यति । अतस्तेषां हितार्थाय त्वां याचामोऽद्य राघव ॥८५॥
तेषां हितार्थं किंचित्त्वमुपायं वक्तुमर्हसि । तत्तेषां वचनं श्रुत्वा मुनीनां रघुनन्दनः ॥८६॥
उवाच वाक्यं संतुष्टस्तान्मुनीन्प्रहसन्प्रभुः । सम्यगुक्तं मुनिश्रेष्ठाः शृणुध्वं वचनं मम ॥८७॥
मम मुद्रांकितं वस्त्रं कलौ धार्यं जनैः सुखम् । मम मुद्रांकितं वस्त्रं बिभ्रतं मानवोत्तमम् ॥८८॥
न स्पर्शेत्पातकं किंचित्कृतं चापि नरेण हि । शङ्खचक्रगदापद्मनाममुद्रांकितं शुभम् ॥८९॥
वस्त्रं धार्यं नरैर्भक्त्या मुद्रयैवांकितं तु वा । शङ्खादिपञ्चभिर्युक्तं सदा वस्त्रं मम प्रियम् ॥९०॥
मन्मुद्रयांकितं वापि वस्त्रं मत्तोषदं स्मृतम् । स्नात्वा धार्यं सदा तच्च जपकाले विशेषतः ॥९१॥
मलमूत्रोत्सर्जने च शयने क्रीडने तथा । अशुचौ च क्षये वृद्धौ हट्टे राजसभासु च ॥९२॥
पथि दुर्जनसंसर्गे मुद्रावस्त्रं न धारयेत् । तथा भोजनकालेऽपि विहारे नैव धारयेत् ॥९३॥
स्नानकाले व्रते तीर्थे पूजायां पितृकर्मणि । होमे दाने जपे कृच्छ्रचांद्रायणव्रतादिषु ॥९४॥
नित्यकर्मसु काम्येषु तथा नैमित्तिकेष्वपि । तथा तपःसु मन्मुद्रावस्त्रं धार्यं सदैव हि ॥९५॥
मम मुद्रांकितं वस्त्रं बिभ्रतं मनवोत्तमम् । अहं मोक्षं प्रदास्यामि सत्यं सत्यं मुनीश्वराः ॥९६॥
एवं श्रुत्वा रामवाक्यं मुनयस्ते मुदान्विताः । रामं पृष्ट्वाऽऽश्रमं स्वं स्वं ययुस्ते मुदिताननाः ॥९७॥
तस्मात्सदा राममुद्रावस्त्रं धार्यं नरैर्भुवि । रामेति द्व्यक्षरो मंत्रो जपनीयस्तु सर्वदा ॥९८॥
राममुद्रा शुभा धार्या गोपीचन्दनसंयुता । सदाऽत्र मानवैर्भक्त्या रामतोषार्थमादरात् ॥९९॥

देखकर यमके दूत उसी तरह भागते हैं, जैसे सिंहको देखकर मृग भाग जाते हैं ॥ ८२ ॥ एक बार बहुतसे मुनि एकत्र होकर रामसे बोले—हे महाबाहो ! आगे चलकर कलियुगमें ब्राह्मण बड़े मन्दबुद्धि होंगे और पेट पालनेके लिये व्यग्र रहते हुए द्वार-द्वार घूमेंगे ॥ ८३ ॥ ८४ ॥ उनको आपका स्मरण करनेके लिए अवकाश कैसे मिलेगा। अतएव उनके कल्याणार्थ हम आपसे यह भिक्षा माँग रहे हैं कि उनके हितके लिये कोई उपाय बतला दीजिए। उन मुनियोंकी बात सुनकर रामचन्द्रजी प्रसन्न मनसे बोले कि आपने बहुत उत्तम प्रश्न छेड़ा है। अच्छा सुनिए ॥ ८५–८७ ॥ उन लोगोंको चाहिए कि सदा मेरी मुद्रासे अंकित वस्त्र धारण करें। जो मेरी मुद्रासे अंकित कपड़े पहने रहेंगे, उनसे यदि किसी प्रकारका पातक भी हो जायगा तो वह उनको नहीं लगेगा। इसलिए वे सदा शङ्ख, चक्र, गदा और पद्मसे अङ्कित कपड़े पहनें। यह भी न हो सके तो केवल मेरे नाम ही से चिह्नित कपड़े पहनें। शंख आदिसे चिह्नित वस्त्र भी मुझे बड़े प्रिय हैं ॥ ८८–९० ॥ राममुद्रासे अंकित वस्त्र मुझे प्रसन्न करते हैं। इसलिए लोगोंको चाहिए कि स्नान करके ऐसे ही कपड़े पहनें और जपके समय इसके लिए विशेष ध्यान रखें ॥ ९१ ॥ मलमूत्र त्यागते समय, बिछौनेपर, खेलते समय, अपवित्रावस्थामें, किसी कुटुम्बीके मरनेपर, बाजारमें, राजसभामें, रास्तेमें और दुर्जनोंके ससर्गमें इस मुद्रावस्त्रको कभी भी न पहने। भोजन करते समय और स्त्रीके साथ विहार करते समय भी इसे न पहने ॥ ९२ ॥ ९३ ॥ स्नान करनेके अनन्तर, व्रतमें, तीर्थमें, पूजा करते समय, पितृश्राद्ध करते समय, होम, दान, जप आदि करते समय, चान्द्रायण आदि व्रतमें, नित्यकर्म करते समय, काम्य कर्ममें, कोई नैमित्तिक कर्म करते समय और तपस्या करते समय मेरी मुद्रासे अंकित वस्त्र अवश्य पहनना चाहिए॥ ९४ ॥ ९५ ॥ हे मुनीश्वरों ! यह बात बिल्कुल सत्य है कि मेरी मुद्रासे अंकित वस्त्र पहननेवालोंको मैं स्वयं मुक्ति देता हूँ ॥ ९६ ॥ इस प्रकार रामकी बात सुनकर वे सब बहुत प्रसन्न हुए और रामसे आज्ञा लेकर अपने-अपने आश्रमोंको चले गये ॥ ९७ ॥ इसीलिये लोगोंको यह चाहिए कि हमेशा राममुद्रासे अंकित कपड़े पहनें और 'राम' इस दो अक्षरके मंत्रका जप करें ॥ ९८ ॥ गोपीचन्दनसे राममुद्रा

पूजा सदा राघवस्य कार्याऽत्र मानवैर्भुवि । सदा स्नानं रामतीर्थे नरैः कार्यं प्रयत्नतः ॥१००॥
सदा रामायणं चेदं श्रवणीयं नरैर्भुवि । चिंतनीयः सदा रामो जन्ममृत्युनिवारकः ॥१०१॥
स्तोतव्यः कीर्तनीयश्च वन्दनीयोऽत्र राघवः । न किंचिदणुमात्रं हि विना रामं सदाऽऽचरेत् ॥१०२॥
हनुमत्कवचं दिव्यं पठित्वाऽऽदौ नरैर्भुवि । ततः श्रीरामकवचं पठनीयं हि सर्वदा ॥१०३॥
पठंति रामकवचं हनुमत्कवचं विना । अरण्ये रोदनं तैस्तु कृतमेत्र न संशयः ॥१०४॥
स्तोत्राणामुत्तमं स्तोत्रं सर्वभीतिनिवारकम् । श्रीरामकवचं नित्यं पठनीयं नरैर्भुवि ॥१०५॥

विष्णुदास उवाच

गुरोऽहं श्रोतुमिच्छामि हनुमत्कवचं शुभम् । तथैव रामकवचं वद कृत्वा कृपां मयि ॥१०६॥

श्रीरामदास उवाच

सम्यक् पृष्टं त्वया वत्स सावधानमनाः शृणु । हनुमत्कवचं रामकवचं च वदामि ते ॥१०७॥

इति श्रीशतकोटिरामचरितांतर्गते श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये मनोहरकांडे
आदिकाव्ये रामेणाद्वैतप्रदर्शनं नाम द्वादशः सर्गः ॥ १२ ॥

त्रयोदशः सर्गः

(हनुमत्कवच तथा रामकवच)

श्रीरामदास उवाच

एकदा सुखमासीनं शंकरं लोकशंकरम् । पप्रच्छ गिरिजाकांतं कर्पूरधवलं शिवम् ॥ १ ॥

पार्वत्युवाच

भगवन् देवदेवेश लोकनाथ जगत्प्रभो । शोकाकुलानां लोकानां केन रक्षा भवेद्ध्रुवम् ॥ २ ॥
संग्रामे संकटे घोरे भूतप्रेतादिके भये । दुःखदावाग्निसंतप्तचेतसां दुःखभागिनाम् ॥ ३ ॥

धारण करें। इससे श्रीरामचन्द्रजी प्रसन्न होंगे ॥ ९९ ॥ संसारमें मनुष्योंको चाहिए कि सदा रामचन्द्रजीकी पूजा करें और प्रयत्न करके रामतीर्थमें स्नान करें ॥ १०० ॥ सर्वदा इस आनन्दरामाणका पाठ करते हुए जन्म और मृत्युका दुःख दूर करनेवाले रामचन्द्रजीका ध्यान करते रहें। उन्हींकी स्तुति करें और उन्हींका गुणानुवाद गायें। कहनेका भाव यह है कि रामचन्द्रके भजनके सिवाय कोई और काम न करें ॥१०१॥१०२॥ पहले हनुमत्कवचका पाठ करके श्रीरामकवचका पाठ किया करें ॥ १०३ ॥ जो लोग हनुमत्कवचका पाठ किये बिना ही श्रीरामकवचका पाठ करते हैं, वे मानो अरण्यरोदन करते हैं। इसमें कोई संशय नहीं है ॥ १०४ ॥ सब स्तोत्रोंमें उत्तम तथा सब प्रकारके भयका निवारण करनेवाले श्रीरामकवचका पाठ सांसारिक मनुष्योंको अवश्य करना चाहिए ॥ १०५ ॥ विष्णुदासने कहा—हे गुरो ! हम आपके मुखसे हनुमत्कवच और रामकवच सुनना चाहते हैं। मेरे ऊपर कृपा करके बतलाइए ॥ १०६ ॥ रामदासने कहा-हे वत्स ! तुमने बहुत अच्छा प्रश्न किया है। मैं हनुमत्कवच और रामकवच इन दोनों कवचोंको कहूँगा। तुम सावधान होकर सुनो ॥ १०७ ॥ इति श्रीशतकोटिरामचरितान्तर्गते श्रीमदानन्दरामायणे पं० रामतेजपाण्डेयविरचित'ज्योत्स्ना' भाषाटीकासहिते मनोहरकाण्डे द्वादशः सर्गः ॥ १२ ॥

श्रीरामदास कहने लगे-एक बार संसारका कल्याण करनेवाले शिवजी बैठे हुए थे। उसी समय पार्वतीजीने कहा-हे भगवन् ! हे देवदेवेश ! हे लोकनाथ ! हे जगत्प्रभो ! जो लोग किसी प्रकारके शोकसे व्याकुल हों, उनकी किस प्रकार रक्षा की जा सकती है ? जो लोग घोर संग्राम, महान् संकट, भूत प्रेत आदिकी बाधाओं अथवा दुःखरूपी दावानलसे जल रहे हों, उनके उद्धारार्थ कौन उपाय किया जा सकता है ? ॥ १-३ ॥

शृणु देवि प्रवक्ष्यामि लोकानां हितकाम्यया । विभीषणाय रामेण प्रेम्णा दत्तं च यत्पुरा ॥ ४ ॥
कवचं कपिनाथस्य वायुपुत्रस्य धीमतः । गुह्यं तत्ते प्रवक्ष्यामि विशेषाच्छृणु सुन्दरि ॥ ५ ॥
उद्यदादित्यसंकाशमुदारभुजविक्रमम् । कंदर्पकोटिलावण्यं सर्वविद्याविशारदम् ॥ ६ ॥
श्रीरामहृदयानन्दं भक्तकल्पमहीरुहम् । अभयं वरदं दोर्भ्यां कलये मारुतात्मजम् ॥ ७ ॥
हनुमानंजनीसूनुर्वायुपुत्रो महाबलः । रामेष्टः फाल्गुनसखः पिंगाक्षोऽमितविक्रमः ॥ ८ ॥
उदधिक्रमणश्चैव सीताशोकविनाशनः । लक्ष्मणप्राणदाता च दशग्रीवस्य दर्पहा ॥ ९ ॥
एवं द्वादश नामानि कपींद्रस्य महात्मनः । स्वापकाले प्रबोधे च यात्राकाले च यः पठेत् ॥१०॥
तस्य सर्वभयं नास्ति रणे च विजयी भवेत् । राजद्वारे गह्वरे च भयं नास्ति कदाचन ॥११॥

उल्लंघ्य सिंधोः सलिलं सलीलं यः शोकवह्निं जनकात्मजायाः ।
आदाय तेनैव ददाह लंकां नमामि तं प्राजलिरांजनेयम् ॥१२॥

ॐनमो हनुमते सर्वग्रहान् भूतभविष्यद्वर्तमानान् समीपस्थान् सर्वकालदुष्टबुद्धीनुच्चाटय परबलान् क्षोभय मम सर्वकार्याणि साधय साधय ॐह्रां ह्रौं हूं फट् । घे घे घे ॐशिवसिद्धं ॐह्रां ॐह्रीं ॐहूं ॐह्रैं ॐह्रौं ॐह्रः स्वाहा । परकृतयंत्रमन्त्रपराहंकारभूतप्रेतपिशाचदृष्टिसर्वविघ्नदुर्जनचेष्टाकुविद्यासर्वोग्रभयानि निवारय निवारय बन्ध बन्ध लुंठ लुंठ विलुंच विलुंच किलि किलि किलि सर्वकुयन्त्राणि दुष्टवाचं ॐफट् स्वाहा । ॐअस्य श्रीहनुमत्कवचस्तोत्रमन्त्रस्य श्रीरामचन्द्र ऋषिः । श्रीहनुमान् परमात्मा देवता । अनुष्टुप्छन्दः । मारुतात्मज इति बीजम् । अंजनीसूनुरिति शक्तिः । लक्ष्मणप्राणदातेति कीलकम् । रामदूतायेत्यस्त्रम् । हनुमान् देवता इति कवचम् । पिंगाक्षोऽमितविक्रम इति मन्त्रः । श्रीरामचन्द्रप्रेरणया रामचन्द्रप्रीत्यर्थं मम सकलकामनासिद्ध्यर्थं जपे विनियोगः । अथांगुलिन्यासः । ॐह्रां अजनीसुताय अंगुष्ठाभ्यां नमः । ॐह्रीं रुद्रमूर्तये तर्जनीभ्यां नमः । ॐहूं रामदूताय मध्यमाभ्यां नमः । ॐह्रैं वायुपुत्राय अनामिकाभ्यां नमः। ॐह्रौं अग्निगर्भाय कनिष्ठिकाभ्यां नमः । ॐह्रः ब्रह्मास्त्रनिवारणाय करतलकरपृष्ठाभ्यां नमः । एवं हृदयाद्यंगन्यासं कृत्वा ।

अथ ध्यानम्

ध्यायेद्बालदिवाकरद्युतिनिभं देवारिदर्पापहं

श्रीमहादेवजीने कहा—हे देवि ! मैं संसारकी कल्याणकामनासे तुम्हें वह हनुमत्कवच बतलाता हूँ, जिसे रामने विभीषणको दिया था । यद्यपि वह एक गुप्त वस्तु है, फिर भी मैं तुम्हें बतलाता हूँ । हे सुन्दरी ! सुनो ॥ ४ ॥ ५ ॥ उदयकालीन सूर्यके समान प्रकाशवान्, लम्बी भुजाओं और अनुपम पराक्रमवाले, करोड़ों कामदेवके समान सुन्दर, सब विद्याओंमें विशारद, श्रीरामजीके हृदको आनन्द देनेवाले, भक्तोंके लिए कल्पवृक्षके समान, भयरहित एवं वरदाता हनुमानजीकी मैं हाथ जोड़कर वन्दना करता हूँ ॥ ६ ॥ ७ ॥ हनुमान्, अञ्जनीपुत्र, वायुसूनु, महाबलवान्, रामके प्रिय, अर्जुनके मित्र, पीली आँखोंवाले, अनन्तबलशाली, समुद्रको लाँघनेवाले, सीताका शोक नष्ट करनेवाले, लक्ष्मणके प्राणदाता, रावणका अभिमान दूर करनेवाले, इन बारह नामोंको जो मनुष्य सोते या जागते समय अथवा कहीं जाते समय पढ़ता है, उसे कहीं किसी प्रकारका भय नहीं रह जाता और संग्राममें उसकी विजय होती है । राजद्वार-कन्दरा आदि किसी भी स्थानमें उसे किसी प्रकारका भय नहीं रहता । जिसने समुद्रकी जलराशिको खेल-खेलमें लाँघकर सीताकी शोकरूपिणी आगको लेकर उसीसे सारी लंका जलाकर राख कर डाली, ऐसे हनुमानजीको मैं हाथ जोड़कर प्रणाम करता हूँ ॥ ८–१२ ॥ इस प्रकार प्रणाम करनेके अनन्तर 'ॐनमो हनुमते सर्वग्रहान्' यहाँसे लेकर एवं 'हृदयाद्यंगन्यासं कृत्वा' तकके मन्त्रोंका उच्चारण करता हुआ विनियोग और अंगन्यास आदि करे । प्रातः-

देवेन्द्रप्रमुखं प्रशस्तयशसं देदीप्यमानं रुचा।
सुग्रीवादिसमस्तवानरयुतं सुव्यक्ततत्त्वप्रियं
संरक्तारुणलोचनं पवनजं पीतांबरालंकृतम् ॥ १ ॥
उद्यन्मार्तण्डकोटिप्रकटरुचियुतं चारुवीरासनस्थं
मौंजीयज्ञोपवीताभरणरुचिशिखं शोभितं कुण्डलांकम्।
भक्तानामिष्टदं तं प्रणतमुनिजनं वेदनादप्रमोदं
ध्यायेद्देवंविधेमं प्लवगकुलपतिं गोष्पदीभूतवार्धिम् ॥ २ ॥
वज्रांगं पिंगकेशाढ्यं स्वर्णकुण्डलमंडितम्। निगूढमुपसंगम्य पारावारपराक्रमम् ॥ ३ ॥
स्फटिकाभं स्वर्णकांतिं द्विभुजं च कृतांजलिम्। कुण्डलद्वयसंशोभि मुखांभोजं हरिं भजे ॥ ४ ॥
सव्यहस्ते गदायुक्तं वामहस्ते कमण्डलुम्। उद्यद्दक्षिणदोर्दण्डं हनुमंतं विचिंतयेत् ॥ ५ ॥

अथ मंत्रः

ॐनमो हनुमते शोभिताननाय यशोऽलंकृताय अंजनीगर्भसम्भूताय रामलक्ष्मणानन्दाय कपिसैन्यप्रकाशनपर्वतोत्पाटनाय सुग्रीवसाह्यकरणपरोच्चाटनकुमारब्रह्मचर्यगंभीरशब्दोदय ह्रीं सर्वदुष्टग्रहनिवारणाय स्वाहा। ॐनमो हनुमते एहि एहि एहि सर्वग्रहभूतानां शाकिनीडाकिनीनां विषमदुष्टानां सर्वेषामाकर्षयाकर्षय मर्दय मर्दय छेदय छेदय मर्त्यान्मारय मारय शोषय शोषय प्रज्वल प्रज्वल भूतमण्डलपिशाचमण्डलनिरसनाय भूतज्वरप्रेतज्वरचातुर्थिकज्वरब्रह्मराक्षसपिशाचछेदनक्रियाविष्णुज्वरमहेशज्वरान् छिंधि छिंधि भिंधि भिंधि अक्षिशूले शिरोऽभ्यन्तरे ह्यक्षिशूले गुल्मशूले पित्तशूले ब्रह्मराक्षसकुलप्रबलनागकुलविषनिर्विष झटिति झटिति। ॐ ह्रीं फट् घे घे स्वाहा। ॐनमो हनुमते पवनपुत्र वैश्वानरमुखपापदृष्टिहनुमतेको आज्ञाफुरे स्वाहा। स्वगृहे द्वारे पट्टके तिष्ठ तिष्ठति तत्र रोगभय राजकुलभयं नास्ति तस्योच्चारणमात्रेण सर्वे ज्वरा नश्यन्ति। ॐ ह्रां ह्रीं ह्रूं फट् घे घे स्वाहा।

कालके सूर्य सरीखा जिनका तेजस्वी स्वरूप है, जो राक्षसोंका अभिमान दूर करनेमें समर्थ हैं और जो देवताओंमें एक प्रमुख देवता माने जाते हैं। जिनका प्रशस्त यश तीनों लोकोंमें फैला हुआ है। जो अपनी असाधारण शोभासे देदीप्यमान हो रहे हैं। सुग्रीव आदि बड़े-बड़े वानर जिनके साथ हैं। जो सुव्यक्त तत्त्वके प्रेमी हैं। जिनकी आंखे अतिशय लाल-लाल हैं। पीले वस्त्रोंसे अलंकृत उन हनुमान्जीका मैं ध्यान करता हूँ ॥ १ ॥ उदय होते हुए करोड़ों सूर्यके समान जिनका प्रकाश है। जो सुन्दर वीरासनसे बैठे हुए हैं। जिनके शरीरमें मौंजी-यज्ञोपवीत आदि पड़े हैं और उनकी किरणोंसे जो और भी शोभासम्पन्न दीख रहे हैं। जिनके कानोंमें पड़े हुए कुण्डल अपनी मनोहर शोभा दिखा रहे हैं। भक्तोंकी कामना पूर्ण करनेवाले, मुनिजनोंसे वन्दित, वेदके मन्त्रोंकी ऋचा सुनकर प्रसन्न होनेवाले, वानरकुलके अग्रणी और समुद्रको गौके खुर भर जलवाला बना देनेवाले हनुमान्जीका ध्यान करना चाहिए ॥ २ ॥ वज्रके समान कठोर जिनका शरीर है, मस्तकपर पीला केश सुशोभित हो रहा है और कानोंमें सुवर्णके कुण्डल पड़े हैं, ऐसे हनुमान्जीका मैं अतिशय आग्रहके साथ ध्यान करता हूँ। क्योंकि उनके पराक्रमरूपी समुद्रकी कोई थाह नहीं है ॥ ३ ॥ स्फटिकमणिके समान अथवा सुवर्ण सरीखी जिनकी कान्ति है, दो भुजायें हैं, जो हाथ जोड़े खड़े हैं, दोनों कानोंमें पड़े दो सुवर्णके कुण्डल सुशोभित हो रहे हैं, ऐसे कमलके समान सुन्दर मुखवाले हनुमान्जीका मै ध्यान करता हूँ ॥ ४ ॥ जिनकी दाहिनी भुजामें गदा है, वायें हाथमें कमण्डलु है और जिनकी दाहिनी भुजा कुछ ऊपर उठी हुई है, ऐसे हनुमान्जीका ध्यान करना चाहिये ॥ ५ ॥ अथ मन्त्रः—"ॐ नमो हनुमते" यहाँसे लेकर "ह्रां, ह्रीं, ह्रूं, फट् घे घे स्वाहा" यहाँ तक हनुमत्कवचमन्त्र कहा गया है।

श्रीरामचन्द्र उवाच

हनुमान् पूर्वतः पातु दक्षिणे पवनात्मजः । पातु प्रतीच्यां रक्षोघ्नः पातु सागरपारगः ॥ १ ॥
उदीच्यामूर्ध्वतः पातु केसरीप्रियनन्दनः । अधस्तु विष्णुभक्तस्तु पातु मध्यं च पावनिः ॥ २ ॥
लंकाविदाहकः पातु सर्वापद्भ्यो निरन्तरम् । सुग्रीवसचिवः पातु मस्तकं वायुनन्दनः ॥ ३ ॥
भालं पातु महावीरो भ्रुवोर्मध्ये निरन्तरम् । नेत्रे छायापहारी च पातु नः प्लवगेश्वरः ॥ ४ ॥
कपोले कर्णमूले च पातु श्रीरामकिंकरः । नासाग्रमंजनीसूनुः पातु वक्त्रं हरीश्वरः ॥
वाचं रुद्रप्रियः पातु जिह्वां पिंगललोचनः ॥ ५ ॥
पातु देवः फाल्गुनेष्टश्चिबुकं दैत्यदर्पहा । पातु कण्ठं च दैत्यारिः स्कन्धौ पातु सुरार्चितः ॥ ६ ॥
भुजौ पातु महातेजाः करौ च चरणायुधः । नखान्नखायुधः पातु कुक्षौ पातु कपीश्वरः ॥ ७ ॥
वक्षो मुद्रापहारी च पातु पार्श्वे भुजायुधः । लंकानिभंजनः पातु पृष्ठदेशे निरंतरम् ॥ ८ ॥
नाभिं च रामदूतस्तु कटिं पात्वनिलात्मजः । गुह्यं पातु महाप्राज्ञो लिंगं पातु शिवप्रियः ॥ ९ ॥
ऊरू च जानुनी पातु लंकाप्रासादभंजनः । जंघे पातु कपिश्रेष्ठो गुल्फौ पातु महाबलः ॥
अचलोद्धारकः पातु पादौ भास्करसन्निभः ॥ १० ॥
अङ्गान्यमितसत्त्वाढ्यः पातु पादांगुलींस्तथा । सर्वांगानि महाशूरः पातु रोमाणि चात्मवित् ॥११॥
हनुमत्कवचं यस्तु पठेद्विद्वान्विचक्षणः । स एव पुरुषश्रेष्ठो भुक्तिं मुक्तिं च विंदति ॥१२॥
त्रिकालमेककालं वा पठेन्मासत्रयं नरः । सर्वान् रिपून् क्षणाज्जित्वा स पुमान् श्रियमाप्नुयात्॥
मध्यरात्रे जले स्थित्वा सप्तवारं पठेद्यदि । क्षयापस्मारकुष्ठादितापत्रयनिवारणम् ॥१४॥

अब हनुमत्कवच प्रारम्भ होता है । श्रीरामचन्द्रजी बोले–हनुमान् पूर्व दिशाकी रक्षा करें, पवनात्मज दक्षिण दिशाकी रक्षा करें और रक्षोघ्न (राक्षसोंको मारनेवाले) हनुमान्‌जी पश्चिम दिशाकी रक्षा करें ॥ १ ॥ समुद्रको पार करनेवाले हनुमान्‌जी उत्तर दिशाकी रक्षा करें, केसरीके प्रिय पुत्र ऊपरकी रक्षा करें, नीचेकी ओर विष्णु-भक्त रक्षा करें, मध्यभागकी पावनि (पवनपुत्र) रक्षा करें ॥ २ ॥ सब प्रकारकी आपत्तियोंसे लङ्काको जलानेवाले रक्षा करें, सुग्रीवके मन्त्री मस्तककी रक्षा करे, वायुनन्दन ललाटकी रक्षा करें, भौंहोंके मध्यभागको महाबीरजी रक्षा करें, छायाका अपहरण करनेवाले हनुमान्‌जी मेरे नेत्रोंकी रक्षा करें ॥ ३ ॥ ४ ॥ कपोलोंकी प्लवगेश्वर रक्षा करें, श्रीरामचन्द्रजीके सेवक कानके मूलभागकी रक्षा करें, नासिकाके अग्रभागका अञ्जनीसूनु रक्षा करें, हरीश्वर मुखकी रक्षा करें ॥ ५ ॥ रुद्रप्रिय वाक्यकी रक्षा करें, पीली आँखोंवाले हनुमान्‌जी जिह्वाकी रक्षा करें, अर्जुनके मित्र श्रीहनुमान्‌जी चिबुकभागकी रक्षा करें, दैत्योंका दर्प दूर करनेवाले कण्ठकी रक्षा करें, चरणसे आयुधका काम लेनेवाले हाथोंकी रक्षा करें, नखके आयुध धारण करनेवाले हनुमान् नखोंकी रक्षा करें, कपियोंके ईश्वर कुक्षिकी रक्षा करें ॥ ६ ॥ ७ ॥ मुद्राका अपहरण करनेवाले वक्षस्थलकी रक्षा करें, भुजासे ही शस्त्रका काम लेने-वाले पार्श्वभागकी रक्षा करें, लंकाका विनाश करनेवाले मेरे पृष्ठभागकी रक्षा करें ॥ ८ ॥ रामके दूत नाभिभाग-की रक्षा करें, वायुके पुत्र कटिभागकी रक्षा करें, महान् प्रज्ञाशाली गुह्यभागकी रक्षा करें शिवके प्रिय लिंगकी रक्षा करें ॥ ९ ॥ लंकाके प्रासादोंका नाश करनेवाले घुटनों तथा जानुभागकी रक्षा करें, कपिश्रेष्ठ जंघेकी रक्षा करें, महाबलवान् गुल्फभागकी रक्षा करें ॥ १० ॥ पर्वतोंको उखाड़नेवाले मेरे दोनों पैरोंकी रक्षा करें, सूर्यके समान कान्तिशाली हनुमान्‌जी मेरे समस्त अंगोंकी रक्षा करें, अमित बलवाले हनुमान्‌जी मेरे पैरकी अँगुलि-योंकी रक्षा करें, महाशूरवीर मेरे सब अङ्गोंकी रक्षा करें, आत्माको जाननेवाले हनुमान्‌जी मेरे शरीरकी समस्त रोगोंसे रक्षा करें ॥ ११ ॥ जो भी विचक्षण विद्वान् इस हनुमत्कवचका पाठ करता है, वही सब पुरुषोंमें श्रेष्ठ होता है और सारी भुक्ति-मुक्ति उसीको मिलती है ॥ १२ ॥ जो मनुष्य तीन महीने तक तीनों काल अथवा एक ही कालमें इस हनुमत्कवचका पाठ करता है, वह सब शत्रुओंको पराजित करके अतुल लक्ष्मीका भंडार प्राप्त करता है ॥ १३ ॥ यदि आधी रातके समय जलमें खड़ा होकर सात बार इस कवचका पाठ करे तो क्षय, अपस्मार, कुष्ठ एवं दैहिक, दैविक और भौतिक ये तीनों प्रकारके ताप दूर हो जाते हैं ॥ १४ ॥

अश्वत्थमूलेऽर्कवारे स्थित्वा पठति यः पुमान् । अचलां श्रियमाप्नोति संग्रामे विजयं तथा ॥१५॥
बुद्धिर्बलं यशो धैर्यं निर्भयत्वमरोगताम् । सुदार्ढ्यं वाक्स्फुरत्वं च हनुमत्स्मरणाद्भवेत् ॥१६॥
मारणं वैरिणां सद्यः शरणं सर्वसम्पदाम् । शोकस्य हरणे दक्षं वंदे तं रणदारुणम् ॥१७॥
लिखित्वा पूजयेद्यस्तु सर्वत्र विजयी भवेत् । यः करे धारयेन्नित्यं स पुमान् श्रियमाप्नुयात् ॥१८॥
स्थित्वा तु बन्धने यस्तु जपं कारयति द्विजैः । तत्क्षणान्मुक्तिमाप्नोति निगडात्तु तथैव च ॥१९॥

ईश्वर उवाच

भान्विदोश्चरणारविंदयुगलं कौपीनमौंजीधरं कांचिश्रेणिधरं दुकूलवसनं यज्ञोपवीताजिनम् ।
हस्ताभ्यां धृतपुस्तकं च विलसद्धारावलिं कुण्डलं यश्चालं विशिखं प्रसन्नवदनं श्रीवायुपुत्रं भजे ॥२०॥
यो वारांनिधिमल्पपल्वलमिवोल्लंघ्य प्रतापान्वितो वैदेहीघनशोकतापहरणो वैकुण्ठभक्तप्रियः ।
अक्षाद्यर्जितराक्षसेश्वरमहादर्पापहारी रणे सोऽयं वानरपुङ्गवोऽवतु सदा योऽस्मान्समीरात्मजः ॥२१॥

वज्रांगं पिंगनेत्रं कनकमयलसत्कुण्डलाक्रांतगण्डं
दंभोलिस्तंभसारं प्रहरणसुवशीभूतरक्षोधिनाथम् ।
उद्यल्लांगूलसप्तप्रचलचलधरं भीममूर्तिं कपींद्रं
ध्यायेत्तं रामचन्द्रं भ्रमरदृढकरं सत्त्वसारं प्रसन्नम् ॥२२॥

वज्रांगं पिंगनेत्रं कनकमयलसत्कुण्डलैः शोभनीयं
सर्वापीडयादिनाथं करतलविधृतं पूर्णकुम्भं दृढं वा ।
भक्तानामिष्टकारं विदधति च सदा सुप्रसन्नं हरीशं
त्रैलोक्यत्रातुकामं सकलभुवि गतं रामदूतं नमामि ॥२३॥

जो मनुष्य रविवारको पीपलके नीचे बैठकर इस स्तोत्रका पाठ करता है, उसे अचल लक्ष्मी प्राप्त होती है और वह विजयी होता है ॥ १५ ॥ बुद्धि, बल, यश, धैर्य, निर्भयत्व, अरोगिता, दृढ़ता और वाक्यचापल्य, ये सब हनुमान्जीके ध्यानसे प्राप्त हो सकते हैं ॥ १६ ॥ जो सब वैरियोंको मारनेवाले और सब संपत्तियोंके निधान हैं, जो शोकका अपहरण करनेमें अतिशय कुशल हैं, मैं उन रणदारुण हनुमान्जीको प्रणाम करता हूँ ॥ १७ ॥ जो मनुष्य लिखकर इस कवचका पूजन करता है, वह सर्वत्र विजयी होता है और जो अपनी भुजाओंमें हमेशा बाँधे रहता है, उसे लक्ष्मी प्राप्त होती है ॥ १८ ॥ यदि प्राणी किसी तरह बन्धनमें पड़ गया हो, वह ब्राह्मणों द्वारा इस कवचका जप कराये तो तत्क्षण बन्धनसे मुक्त हो जाता है ॥ १९ ॥ शिवजी बोले-सूर्य और चन्द्रमाके समान शोभासम्पन्न जिसके चरणकमल हैं, जो कौपीन और मौंजी धारण किये हैं, जो कांची श्रेणियों को पहने हैं, वस्त्र धारण किये हैं, यज्ञोपवीत तथा मृगचर्म अलग सुशोभित रहा है, जो हाथमें पुस्तक लिये हैं और चमकता हुआ हार जिनके वक्षस्थलपर सुशोभित हो रहा है। ऐसे प्रसन्न मुखवाले वायुपुत्रको मैं प्रणाम करता हूँ। जो समुद्रको एक साधारण तलैया समझकर लाँघ गये, जिन्होंने सीताके महाशोक और तापको हर लिया, विष्णु भगवान्की भक्तिके प्रेमी, संग्राममें अक्षयकुमार आदि उद्दंड राक्षसोंके दर्पको दूर करनेवाले वानर-पुंगव तथा वायुके पुत्र हनुमान् हमारी रक्षा करें। जिनका वज्रके समान शरीर है, पीली-पीली आँखें हैं, सुवर्णमय कुंडलोंसे जिनका कपोलभाग भरा हुआ है, वज्रस्तंभके समान जिनका मजबूत शरीर है, रावणको मारनेके लिये जिन्हें तुरन्त शस्त्र मिल गया था, उन पूँछ ऊपर उठाये, सात पर्वतोंको लादे और भयङ्कर रूपधारी हनुमान्जीका ध्यान करना चाहिये। साथ ही उन श्रीरामचन्द्रजीका भी ध्यान करना उचित है, जो सब सत्त्वोंके सार हैं और सदा प्रसन्न रहते हैं ॥ २०-२२ ॥ वज्रके समान कठिन जिनकी देह है, सुवर्णके कुंडल जिनके कानोंमें पड़े हैं, जो सब आभूषणोंके स्वामी हैं, जिन्होंने अपनी हथेलीमें पूर्णकुम्भको धारण कर रक्खा है, जो भक्तोंकी कामना पूर्ण करते हैं, जो सर्वदा प्रसन्न रहते हैं और तीनों लोकोंकी रक्षा करनेकी कामना रखते हैं, समस्त भुवनमें

वामे करे वैरिभिदं वहंतं शैलं परं शृङ्खलहारकंठम् ।
दधानमाच्छाद्य सुपर्णवर्णं भजे ज्वलत्कुंडलमांजनेयम् ॥२४॥
पद्मरागमणिकुंडलत्विषा पाटलीकृतकपोलमंडलम् ।
दिव्यदेहकदलीवनांतरे भावयामि पवमाननंदनम् ॥२५॥
यत्र यत्र रघुनाथकीर्तनं तत्र तत्र कृतमस्तकांजलिम् ।
बाष्पवारिपरिपूर्णलोचनं मारुतिं नमत राक्षसांतकम् ॥२६॥
मनोजवं मारुततुल्यवेगं जितेंद्रियं बुद्धिमतां वरिष्ठम् ।
वातात्मजं वानरयूथमुख्यं श्रीरामदूतं शिरसा नमामि ॥२७॥

विवादे दिव्यकाले च द्यूते राजकुले रणे । दशवारं पठेद्रात्रौ मिताहारो जितेंद्रियः ॥२८॥
विजयं लभते लोके मानवेषु नरेषु च । भूते प्रेते महादुर्गेऽरण्ये सागरसंप्लवे ॥२९॥
सिंहव्याघ्रभये चोग्रे शरशस्त्रास्त्रपातने । शृंखलाबंधने चैव कारागृहनियंत्रणे ॥३०॥
कोपे स्तम्भे वह्निचक्रे क्षेत्रे घोरे सुदारुणे । शोके महारणे चैव ब्रह्मग्रहनिवारणम् ॥३१॥
सर्वदा तु पठेन्नित्यं जयमाप्नोति निश्चितम् । भूर्जे वा वसने रक्ते क्षौमे वा तालपत्रके ॥३२॥
त्रिगंधिना वा मष्या वा विलिख्य धारयेन्नरः । पंचसप्तत्रिलोहैर्वा गोपितः सर्वतः शुभम् ॥३३॥
करे कट्यां बाहुमूले कंठे शिरसि धारितम् । सर्वान्कामानवाप्नोति सत्यं श्रीरामभाषितम् ॥३४॥
अपराजित नमस्तेऽस्तु नमस्ते रामपूजित । प्रस्थानं च करिष्यामि सिद्धिर्भवतु मे सदा ॥३५॥
इत्युक्त्वा यो व्रजेद्ग्रामं देशं तीर्थांतरं रणम् । आगमिष्यति शीघ्रं स क्षेमरूपो गृहं पुनः ॥३६॥

इति वदति विशेषाद्राघवे राक्षसेंद्रः प्रमुदितवरचित्तो रावणस्यानुजो हि ।
रघुवरपदपद्मं वंदयामास भूयः कुलसहितकृतार्थः शर्मदं मन्यमानः ॥३७॥

भुवनमें विराजमान उन रामदूत हनुमानजीको मैं प्रणाम करता हूँ ॥ २३ ॥ जो बाँयें हाथमें शत्रुओंको मारनेवाला पर्वत लिये हैं, जिनके कण्ठमें शृङ्खलाका हार और देदीप्यमान सुवर्णका कुण्डल कानोंमें पड़ा हुआ है, मैं ऐसे हनुमान्‌जीको प्रणाम करता हूँ ॥ २४ ॥ कुण्डलमें जड़े हुए पुखराज मणिकी कान्तिसे जिनका कपोल पाटल वर्णका हो गया है, केलेके वनमें खड़े और दिव्य रूप धारण किये हनुमान्‌जीका मैं ध्यान करता हूँ ॥ २५ ॥ जहाँ-जहाँ रामकी कथा होती है, वहाँ माथा झुका तथा हाथ जोड़कर जो खड़े रहते हैं और आँसूसे जिनके नेत्र भरे रहते हैं, राक्षसोंका अन्त करनेवाले उन हनुमान्‌जीको प्रणाम करो ॥ २६ ॥ मनके समान जिनका वेग है, जिन्होंने इन्द्रियोंको जीत लिया है और जो बुद्धिमानोंमें श्रेष्ठ हैं, ऐसे वायुपुत्र एवं वानरयूथके मुखिया श्रीरामदूतको मैं मस्तक झुकाकर प्रणाम करता हूँ ॥ २७ ॥ किसीसे बहस करते समय, जुआ खेलते समय, शपथ खाते समय, राजकुलमें, संग्राममें और रात्रिमें मिताहार होकर जितेन्द्रियतापूर्वक दस बार जो इस कवचका पाठ करता है, वह सब मनुष्यों और शत्रुओंपर विजय प्राप्त कर लेता है। भूत, प्रेत, महादुर्ग, अरण्य और सागरमें बह जानेपर, सिंह व्याघ्र आदिका भय आ जानेपर, बाण तथा अस्त्र-शस्त्रके गिरनेपर, जंजीरोंसे बँध जानेपर, कारागृहमें बन्द हो जानेपर, किसीके कुपित होनेपर, अग्निकी लपटमें पड़ जानेपर किसी दारुण क्षेत्रमें, शोकके समय, महासंग्राममें और ब्रह्मराक्षसका निवारण करते समय इन सब समयोंमें इसका पाठ करना चाहिए। ऐसा करनेसे उसकी विजय होती है। भूर्जपत्रपर, लाल कपड़ेपर, रेशमी वस्त्रपर, तालपत्रपर ॥ २८–३२ ॥ त्रिगंध अथवा स्याहीसे लिख एवं पञ्च, सप्त तथा त्रिलोहसे बनी ताबीजमें रखकर हाथ, कमर, भुजा, कण्ठ या मस्तकपर जो मनुष्य इसे बाँधता है, उसकी सब कामनायें पूर्ण होती हैं। यह रामका कहा वचन कभी झूठ नहीं हो सकता ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ कभी भी पराजित नहीं होनेवाले और रामसे पूजित हे हनुमान्‌जी! मैं आपको प्रणाम करता हूँ। मैं जिस कामसे बाहर जा

तं वेदशास्त्रपरिनिष्ठितशुद्धबुद्धिं शर्मप्रदं सुरमुनींद्रनुतं कपींद्रम् ।
कृष्णत्वचं कनकपिंगजटाकलापं व्यासं नमामि शिरसा तिलकं मुनीनाम् ॥३८॥
य इदं प्रातरुत्थाय पठेत कवचं सदा । आयुरारोग्यसंतानैस्तस्य स्तव्यः स्तवो भवेत् ॥३९॥
एवं गिरींद्रजे श्रीमद्धनुमत्कवचं शुभम् । त्वया पृष्टं मया प्रीत्या विस्तराद्विनिवेदितम् ॥४०॥

श्रीरामदास उवाच

एवं शिवमुखाच्छ्रुत्वा पार्वती कवचं शुभम् । हनूमतः सदा भक्त्या पपाठ तन्मनाः सदा ॥४१॥
एवं शिष्य त्वयाऽप्यत्र यथा पृष्टं तथा मया । हनुमत्कवचं चेद तवाग्रे विनिवेदितम् ॥४२॥
इदं पूर्वं पठित्वा तु रामस्य कवचं ततः । पठनीयं नरैर्भक्त्या नैकमेव पठेत्कदा ॥४३॥
हनुमत्कवचं चात्र श्रीरामकवचं विना । ये पठंति नराश्चात्र पठनं तद्वृथा भवेत् ॥४४॥
तस्मात्सर्वैः पठनीयं सर्वदा कवचद्वयम् । रामस्य वायुपुत्रस्य सद्भक्तैश्च विशेषतः ॥४५॥

इति हनुमत्कवचम्

अथ रामकवचम्

इदानीं रामकवचं शृणु शिष्य वदामि ते । परं गुह्यं पवित्रं च सर्ववांछितपूरकम् ॥४६॥
सुतीक्ष्णस्त्वेकदाऽगस्तिं प्रोवाच रहसि स्थितम् ।
भगवन् परमानंद तत्त्वज्ञ करुणानिधे । गुरो त्वं मां वदस्वाद्य स्तोत्रं रामस्य पावनम् ॥४७॥
आजानुबाहुमरविंददलायताक्षमाजन्मशुद्धरसहासमुखप्रसादम् ।
श्यामं गृहीतशरचापमुदाररूपं रामं सराममभिराममनुस्मरामि ॥४८॥
शृणु वक्ष्याम्यहं सर्वं सुतीक्ष्ण मुनिसत्तम । श्रीरामकवचं पुण्यं सर्वकामप्रदायकम् ॥४९॥

रहा हूँ, वह काम पूरा हो जाय ॥ ३५ ॥ ऐसा कहकर जो किसी दूसरे गाँवको जाता है, वह कुशलपूर्वक अपना काम पूरा करके शीघ्र लौटता है ॥ ३६ ॥ इस प्रकार रामचन्द्रजीके कहनेपर रावणके भ्राता विभीषण परम प्रसन्न हुए। उन्होंने रामके चरणोंकी वन्दना की और सपरिवार अपनेको धन्य माना ॥ ३७ ॥ समस्त वेदों और शास्त्रोंमें जिनकी बुद्धि प्रविष्ट है, देवता तथा मुनिगण जिनकी वन्दना करते हैं, ऐसे शुभदाता हनुमान्‌जी और जिनके शरीरकी त्वचा कृष्णवर्णकी है, सुवर्णके समान पीली जिनकी जटा है, ऐसे मुनियोंके अग्रणी श्रीव्यासजीको मैं मस्तक झुकाकर प्रणाम करता हूँ ॥ ३८ ॥ जो मनुष्य सवेरे उठकर सदा इस कवचका पाठ करता है, उसे आयु-आरोग्य और सन्तान आदि सब वस्तुयें प्राप्त हो जाती हैं और सब लोग उसकी स्तुति करने लग जाते हैं ॥ ३९ ॥ हे गिरीन्द्रजे ! जैसा तुमने प्रश्न किया, उसके अनुसार मैंने तुम्हें हनुमत्कवच बतलाया ॥ ४० ॥ श्रीरामदास कहते हैं—हे शिष्य ! इस तरह शिवजीके मुखसे हनुमत्कवच सुनकर पार्वतीजीने उसी दिनसे तन्मयताके साथ उसका पाठ आरम्भ कर दिया ॥ ४१ ॥ जैसे तुमने पूछा, मैंने भी तुमको हनुमत्कवच कह सुनाया ॥ ४२ ॥ पहले इसका पाठ करके ही भक्तिपूर्वक श्रीरामकवचका पाठ करना चाहिये। अकेले किसी भी कवचका पाठ न करे ॥ ४३ ॥ जो लोग हनुमत्कवचका पाठ किये विना रामकवचका पाठ करेंगे, उनका वह पाठ व्यर्थ हो जायगा ॥ ४४ ॥ इस लिए सब लोगोंको चाहिए कि सदा दोनों कवचोंका पाठ किया करें। रामके भक्त तो इस बातपर विशेष ध्यान रक्खें ॥ ४५ ॥ हे शिष्य ! अब तुमको रामकवच बतलाता हूँ। यह भी परम गोप्य, परम पवित्र और सब कामनाओंका पूर्ण करनेवाला कवच है ॥४६॥ एक बार सुतीक्ष्णने अपने गुरु अगस्त्यको एकान्तमें देखकर कहा—हे भगवन् ! हे परमानन्ददाता ! हे तत्त्वज्ञ ! हे करुणानिधे ! आज हमें श्रीरामचन्द्रजीका कोई पुनीत स्तोत्र सुनाइए ॥ ४७ ॥ अगस्त्यने कहा कि जानुपर्यन्त जिनकी बाहु हैं, कमलदलके समान जिनके विशाल नेत्र हैं, जन्मसे ही जिनका प्रसन्नमुख है, जिन्होंने धनुष और बाणको धारण कर रक्खा है, जिनका उदार रूप है, ऐसे अभिराम रामका मैं ध्यान करता हूँ ॥४८॥ हे मुनिसत्तम

अद्वैतानन्दचैतन्यशुद्धसत्त्वैकलक्षणः । बहिरंतः सुतीक्ष्णात्र रामचन्द्रः प्रकाशते ॥५०॥
तत्त्वविद्यार्थिनो नित्यं रमते चित्सुखात्मनि । इति रामपदेनासौ परब्रह्माभिधीयते ॥५१॥
जय रामेति यन्नाम कीर्तयन्नभिवर्णयेत् । सर्वपापैर्विनिर्मुक्तो याति विष्णोः परं पदम् ॥५२॥
श्रीरामेति परं मंत्रं तदेव परमं पदम् ।
तदेव तारकं विद्धि जन्ममृत्युभयापहम् । श्रीरामेति वदन् ब्रह्मभावमाप्नोत्यसंशयम् ॥५३॥
अस्य श्रीरामकवचस्य अगस्त्यऋषिः अनुष्टुप्छन्दः सीतालक्ष्मणोपेतः श्रीरामचन्द्रो देवता
श्रीरामचन्द्रप्रसादसिद्ध्यर्थं जपे विनियोगः ।
अथ ध्यानं प्रवक्ष्यामि सर्वाभीष्टफलप्रदम् । नीलजीमूतसंकाशं विद्युद्वर्णाम्बरावृतम् ॥५४॥
कोमलांगं विशालाक्षं युवानमतिसुन्दरम् । सीतासौमित्रिसहितं जटामुकुटधारिणम् ॥५५॥
सासितूणधनुर्बाणपाणिं दानवमर्दनम् । सदा चोरभये राजभये शत्रुभये तथा ॥५६॥
ध्यात्वा रघुपतिं युद्धे कालानलसमप्रभम् । चीरकृष्णाजिनधरं भस्मोद्धूलितविग्रहम् ॥५७॥
आकर्णाकृष्टसशरकोदडभुजमंडितम् । रणे रिपून् रावणादींस्तीक्ष्णमार्गणवृष्टिभिः ॥५८॥
सहरंतं महावीरमुग्रमैंद्ररथस्थितम् । लक्ष्मणाद्यैर्महावीरैर्वृतं हनुमदादिभिः ॥५९॥
सुग्रीवाद्यैर्महावीरैः शैलवृक्षकरोद्यतैः । वेगात्करालहुंकारैर्भुग्भुकारमहारवैः ॥६०॥
नदद्भिः परिवादद्भिः समरे रावण प्रति । श्रीराम शत्रुसंघान्मे हन मर्दय खादय ॥६१॥
भूतप्रेतपिशाचादीन् श्रीरामाशु विनाशय । एवं ध्यात्वा जपेद्रामकवचं सिद्धिदायकम् ॥६२॥
सुतीक्ष्ण वज्रकवचं शृणु वक्ष्याम्यनुत्तमम् । श्रीरामः पातु मे मूर्ध्नि पूर्वे च रघुवंशजः ॥६३॥
दक्षिणे मे रघुवरः पश्चिमे पातु पावनः । उत्तरे मे रघुपतिर्भालं दशरथात्मजः ॥६४॥

सुतीक्ष्ण ! सुनिए, मैं आज सब कामनाओंको पूर्णकरनेवाला रामकवच बतलाऊँगा ॥ ४९ ॥ हे सुतीक्ष्ण ! इस संसारके बाहर-भीतर सब स्थानोंमें वे अद्वैत, आनन्दस्वरूप, शुद्ध और सत्त्वगुणमय रामचन्द्रजी प्रकाशित हो रहे हैं ॥ ५० ॥ परमात्माके तत्त्वको जाननेकी इच्छा रखनेवाले लोग जिसके चित्सुखमें आनन्द लूटते हैं, वे ही परब्रह्म 'राम' इस नामसे पुकारे जाते हैं ॥ ५१ ॥ जो मनुष्य 'जय राम' इस मंत्रका कीर्तन करता है, वह सब पापोंसे छूटकर विष्णुभगवान्के परम पदको प्राप्त होता है ॥ ५२ ॥ श्रीराम यह सर्वश्रेष्ठ मन्त्र है, यह परमपद है, यह मृत्यु-भय आदिको दूर कर देता है और श्रीराम कहता हुआ प्राणी परब्रह्मको प्राप्त होता है। इसमें कोई संशय नहीं है। विनियोगके बाद सब कामनाओंको पूर्ण करनेवाला ध्यान बतला रहा हूँ। जिनका नील मेघके समान श्याम शरीर है, जो बिजलीके समान चमकते हुए पीले वस्त्रको धारण किये हुए हैं, जिनके कोमल अङ्ग हैं, बड़ी-बड़ी आँखें हैं, जो अतिशय सुन्दर और युवा हैं, जिनके साथ सीता और लक्ष्मण विद्यमान हैं, जो जटा-मुकुट धारण किये हैं, तलवार, तरकस, धनुष-बाण हाथमें लिये हैं और जो दानवोंका संहार करते हैं। मनुष्यको चाहिए कि राजभय, चोरभय और संग्रामका भय आ जाय तो कालानलके समान क्रुद्ध रामचन्द्रजीका ध्यान करे। जो पीताम्बर तथा कृष्णमृगचर्म धारण किये हैं और धूलिसे जिनका शरीर धूसरित हो रहा है ॥ ५३–५७ ॥ कानतक जिन्होंने धनुषकी डोरी खींच रक्खी है, संग्रामभूमिमें रावण आदि राक्षसोंपर जो तीक्ष्ण बाणवृष्टि कर रहे हैं ॥ ५८ ॥ इन्द्रके रथपर बैठे जो महावीर शत्रुका संहार करनेमें लगे हुए हैं और जो लक्ष्मण हनुमान्जी आदि वीरोंसे घिरे हुए हैं ॥ ५९ ॥ जिनके साथ सुग्रीव आदि योद्धा हाथमें पाषाणखण्ड और बड़े-बड़े वृक्ष लिये शत्रुओंका संहार कर रहे हैं। ऐसे हे राम ! इसको मारो—इसको खा-जाओ और भूत, प्रेत, पिशाच आदिको नष्ट कर दो। इस प्रकार रामचन्द्रजीका ध्यान करके सिद्धिदायक रामकवचका जप करे ॥ ६० ॥ ६१ ॥ ६२ ॥ अगस्त्यजी कहते हैं कि हे सुतीक्ष्ण ! मैं अतिशय उत्तम वज्रकवच कहता हूँ। श्रीराम मेरे मस्तक और पूर्व दिशाकी रक्षा करें । दक्षिणकी ओर रघुवर तथा

भ्रुवोर्दूर्वादलश्यामस्तयोर्मध्ये जनार्दनः । श्रोत्रं मे पातु राजेंद्रो दृशौ राजीवलोचनः ॥६५॥
घ्राणं मे पातु राजर्षिर्गंडं मे जानकीपतिः । कर्णमूले खरध्वंसी भालं मे रघुवल्लभः ॥६६॥
जिह्वां मे वाक्पतिः पातु दंतवल्ल्यौ रघूत्तमः । ओष्ठौ श्रीरामचन्द्रो मे मुखं पातु परात्परः ॥६७॥
कंठं पातु जगद्वंद्यः स्कंधौ मे रावणांतकः । वक्षो मे पातु काकुत्स्थः पातु मे हृदयं हरिः ॥६८॥
सर्वाण्यंगुलिपर्वाणि हस्तौ मे राक्षसांतकः । वक्षो मे पातु काकुत्स्थः पातु मे हृदयं हरिः ॥६९॥
स्तनौ सीतापतिः पातु पार्श्वौ मे जगदीश्वरः । मध्यं मे पातु लक्ष्मीशो नाभिं मे रघुनायकः ॥७०॥
कौसल्येयः कटिं पातु पृष्ठं दुर्गतिनाशनः । गुह्यं पातु हृषीकेशः सक्थिनी सत्यविक्रमः ॥७१॥
ऊरू शार्ङ्गधरः पातु जानुनी हनुमत्प्रियः । जंघे पातु जगद्व्यापी पादौ मे ताटिकांतकः ॥७२॥
सर्वांगं पातु मे विष्णुः सर्वसंधीननामयः । ज्ञानेन्द्रियाणि प्राणादीन्पातु मे मधुसूदनः ॥७३॥
पातु श्रीरामभद्रो मे शब्दादीन्विषयानपि । द्विपदादीनि भूतानि मत्संबंधीनि यानि च ॥७४॥
जामदग्न्यमहादर्पदलनः पातु तानि मे । सौमित्रिपूर्वजः पातु वागादीनींद्रियाणि च ॥७५॥
रोमांकुराण्यशेषाणि पातु सुग्रीवराज्यदः । वाङ्मनोबुद्ध्यहंकारैर्ज्ञानाज्ञानकृतानि च ॥७६॥
जन्मान्तरे कृतानीह पापानि विविधानि च । तानि सर्वाणि दग्ध्वाशु हरकोदंडखंडनः ॥७७॥
पातु मां सर्वतो रामः शार्ङ्गबाणधरः सदा । इति श्रीरामचंद्रस्य कवच वज्रसंमितम् ॥७८॥
गुह्याद्गुह्यतमं दिव्यं सुतीक्ष्ण मुनिसत्तम । यः पठेच्छृणुयाद्वापि श्रावयेद्वा समाहितः ॥७९॥
स याति परमं स्थानं रामचन्द्रप्रसादतः । महापातकयुक्तो वा गोघ्नो वा भ्रूणहा तथा ॥८०॥
श्रीरामचन्द्रकवचपठनाच्छुद्धिमाप्नुयात् । ब्रह्महत्यादिभिः पापैर्मुच्यते नात्र संशयः ॥८१॥

पश्चिमकी पावन (पवनपुत्र) रक्षा करें। उत्तरकी ओर रघुपति और ललाटकी दशरथात्मज रक्षा करें। दूर्वादलके समान श्याम जनार्दन भौंहोंके मध्यभागकी रक्षा करें, कानोंकी राजेन्द्र, आँखोंकी राजीवलोचन ॥ ६३-६५ ॥ नाककी राजर्षि, गंडस्थलकी जानकीपति, कर्णमूलकी खरध्वंसी और रघुवल्लभ ललाटकी रक्षा करें ॥ ६६ ॥ उसी प्रकार जिह्वाकी रक्षा वाक्पति, दन्तवल्लीकी रघूत्तम, दोनों होठों और मुखकी रक्षा परात्पर भगवान् करें ॥ ६७ ॥ कंठकी जगद्वन्द्य, दोनों कन्धों रावणान्तक और मेरी दोनों भुजाओंको रक्षा वालिको मारनेवाले धनुर्बाणधारी राम करें ॥ ६८ ॥ मेरी सब उँगलियों और दोनों हाथोंकी रक्षा राक्षसान्तक, वक्षस्थलकी काकुत्स्थ और हरिभगवान् मेरे हृदयकी रक्षा करें ॥ ६९ ॥ दोनों स्तनोंको सीतापति, पार्श्वभागकी जगदीश्वर, मध्यभागकी लक्ष्मीपति और नाभिकी श्रीरघुनाथजी रक्षा करें ॥ ७० ॥ कमरकी कौसल्येय, पीठकी दुर्गतिनाशन, गुप्तभागकी हृषीकेश और सत्यविक्रम भगवान् हड्डियोंकी रक्षा करें ॥ ७१ ॥ शार्ङ्गधर भगवान् दोनों घुटनोंकी, हनुमान्‌जीके प्रिय दोनों जानुभागकी, जगद्व्यापी दोनों जाँघोंकी और ताडुकाका नाश करनेवाले भगवान् मेरे पैरोंकी रक्षा करें ॥ ७२ ॥ विष्णुभगवान् मेरे सब अङ्गोंकी, अनामय मेरे शरीरकी, सन्धियोंकी और मधुसूदन भगवान् मेरे प्राणादि तथा ज्ञानेन्द्रियोंकी रक्षा करें ॥ ७३ ॥ श्रीरामभद्र मेरे शब्दादि विषयोंकी रक्षा करें। मुझसे सम्बन्ध रखनेवाले जितने दो पैरके जन्तु (मनुष्य) हों, उनकी रक्षा महान् दर्पको नष्ट करनेवाले परशुराम भगवान करें। सौमित्रिपूर्वज (राम) मेरी वाक् आदि इन्द्रियोंकी रक्षा करें ॥ ७४ ॥ ७५ ॥ सुग्रीवको राज्य देनेवाले श्रीरामचन्द्रजी मेरे सारे रोमकूपोंकी रक्षा करें। मन, बुद्धि, अहङ्कार, ज्ञान एवं अज्ञानसे किये हुए इस जन्म तथा जन्मान्तरके पातकोंको जलाकर भस्म करते हुए शिवजीका धनुष तोड़नेवाले धनुर्बाणधारी श्रीराम मेरी सब ओर रक्षा करें। हे मुनिसत्तम सुतीक्ष्ण ! यह वज्रसदृश रामकवच गूढ़से भी गूढ़ है। जो प्राणी इसे पढ़ता, सुनता या दूसरोंको सुनाता है, वह रामचन्द्रकी कृपासे परम धामकी प्राप्ति करता है। वह चाहे महापातकी, गोघाती या भ्रूणहत्याकारी ही क्यों न हो ॥ ७६-८० ॥ इस श्रीरामकवचका पाठ करनेसे प्राणी शुद्ध होकर ब्रह्महत्या आदि पातकोंसे भी मुक्त हो जाता है। इसमें कोई संशय नहीं है

श्रोः सुतीक्ष्ण यथा पृष्टं त्वया मम पुरा शुभम् । तथा श्रीरामकवचं मया ते विनिवेदितम् ॥८२॥

श्रीरामदास उवाच

एवं शिष्य त्वया पृष्टं श्रीरामकवचं वरम् । हनुमत्कवचं चापि तथा ते विनिवेदितम् ॥८३॥
वायुपुत्रस्य रामस्य कवचेऽत्र नरैर्भुवि । विना सीताकवचेन पठनीयं न वै कदा ॥८४॥
आदौ पठित्वा कवचं वायुपुत्रस्य धीमतः । पठनीयं ततः सीताकवचं सौख्यवर्द्धनम् ॥८५॥
ततः श्रीरामकवचं पठनीयं महत्तमम् । एवमेव हि मंत्राश्च जपनीयास्त्रयः क्रमात् ॥८६॥

विष्णुदास उवाच

गुरोऽहं श्रोतुमिच्छामि सीतायाः कवचं शुभम् । तथान्यान्यपि वैदेह्याः स्तोत्रादीनि वदस्व तत्॥८७॥
सीतायास्तोषदं भूरयां तत्सर्वं विस्तरेण च ।

श्रीमहादेव उवाच

इति तद्वचनं श्रुत्वा रामदासोऽब्रवीद्वचः ॥८८॥

इति श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये मनोहरकांडे कवचद्वयवर्णनं नाम त्रयोदशः सर्गः ॥ १३ ॥

चतुर्दशः सर्गः

(सीताकवच आदिका निरूपण)

श्रीरामदास उवाच

श्रृणु शिष्य प्रवक्ष्यामि सीतायाः कवचं शुभम् । पुरा प्रोक्तं सुतीक्ष्णाय पृच्छते कुंभजन्मना ॥ १ ॥
एकदा कुंभजन्मान सुतीक्ष्णः प्राह वै मुनिः । रहः स्थितं गुरु दृष्ट्वा प्रणम्य भक्तिपूर्वकम् ॥ २ ॥

सुतीक्ष्ण उवाच

गुरोऽहं श्रोतुमिच्छामि सीतायाः प्रीतिदानि हि ।
यानि स्तोत्राणि कर्माणि तानि त्वं वक्तुमर्हसि ॥ ३ ॥

अगस्तिरुवाच

सम्यक् पृष्टं त्वया वत्स सावधानमनाः श्रृणु । आदौ वक्ष्याम्यहं रम्यं सीतायाः कवचं शुभम् ॥ ४ ॥

॥ ८१ ॥ हे सुतीक्ष्ण ! जैसा तुमने मुझसे पूछा था, मैंने श्रीरामकवच तुम्हें सुना दिया ॥ ८२ ॥ श्रीरामदास कहते हैं–हे शिष्य ! तुमने हमसे श्रीरामकवच और हनुमत्कवच पूछा था, सो मैंने कह सुनाया ॥ ८३ ॥ रामकवच तथा हनुमत्कवचका पाठ सीताकवचके विना न करना चाहिए ॥ ८४ ॥ पहले बुद्धिमान् वायुपुत्रके कवचका पाठ करके सुख बढ़ानेवाले सीताकवचका पाठ करना चाहिए ॥८५॥ उसके बाद सर्वश्रेष्ठ श्रीरामचन्द्रकवचका पाठ करना चाहिए । इस तरह इन तीनों कवचोंका एक साथ पाठ करे ॥ ८६ ॥ विष्णुदासने कहा–हे गुरो ! मैं सीताकवच तथा सीताके अन्यान्य स्तोत्रोंको सुनना चाहता हूँ, सो आप मुझसे कहिए ॥ ८७ ॥ जिससे सीताजी प्रसन्न हो सकें, वह सब स्तुतियाँ विस्तारपूर्वक कहें । श्रीमहादेवजीने कहा कि इस प्रकार विष्णुदासकी बात सुनकर रामदास बोले ॥ ८८ ॥ इति श्रीशतकोटिरामचरितान्तर्गते श्रीमदानन्दरामायणे पं० रामतेजपाण्डेयकृत 'ज्योत्स्ना'भाषाटीकासहिते मनोहरकांडे त्रयोदशः सर्गः ॥ १३ ॥

श्रीरामदास कहने लगे—हे शिष्य ! अब मैं सीताकवच बतलाता हूँ, जिसे अगस्त्यजीने सुतीक्ष्णसे कहा था ॥ १ ॥ एक बार जब कि अगस्त्यजी एकान्तमें बैठे थे, सुतीक्ष्णने जाकर भक्तिपूर्वक प्रणाम किया और कहा—हे गुरो ! मैं सीताजीको प्रसन्न करनेवाले स्तोत्र और कवच सुनना चाहता हूँ । आप कृपा करके

या सीताऽवनिसंभवाऽथ मिथिलापालेन संवर्द्धिता पद्माक्षनृपतेः सुता नलगता या मातुलुङ्गोद्भवा ।
या रत्ने लयमागता जलनिधौ या वेदपारं गताऽलं या सा मृगलोचना शशिमुखी मां पातु रामप्रिया॥५॥

अस्य श्रीसीताकवचस्तोत्रमंत्रस्य अगस्तिऋषिः । श्रीसीता देवता । अनुष्टुप्छन्दः । रामेति बीजम् । जनकजेति शक्तिः । अवनिजेति कीलकम् । पद्माक्षसुतेत्यस्त्रम् । मातुलुङ्गीति कवचम् । मूलकासुरघातिनीति मन्त्रः । श्रीसीतारामचन्द्रप्रीत्यर्थं सकलकामनासिद्ध्यर्थं जपे विनियोगः । अथ अंगुलिन्यासः ॥ ॐ ह्रां सीतायै अंगुष्ठाभ्यां नमः । ॐ ह्रीं रामायै तर्जनीभ्यां नमः । ॐ ह्रूं जनकजायै मध्यमाभ्यां नमः । ॐ ह्रैं अवनिजायै अनामिकाभ्यां नमः । ॐ ह्रौं पद्माक्षसुतायै कनिष्ठिकाभ्यां नमः । ॐ ह्रः मातुलुङ्ग्यै करतलकरपृष्ठाभ्यां नमः ॥ एवं हृदयाद्यङ्गन्यासः कार्यः ।

अथ ध्यानम्

सीतां कमलपत्राक्षीं विद्युत्पुञ्जसमप्रभाम् । द्विभुजां सुकुमारांगीं पीतकौशेयवासिनीम् ॥ ६ ॥
सिंहासने रामचन्द्रवामभागस्थितां वराम् । नानालङ्कारसंयुक्तां कुण्डलद्वयधारिणीम् ॥ ७ ॥
चूड़ाकंकणकेयूररशनानूपुरान्विताम् । सीमते रविचन्द्राभ्यां निटिले तिलकेन च ॥ ८ ॥
मयूराभरणेनापि घ्राणेऽतिशोभितां शुभाम् । हरिद्रां कज्जलं दिव्यं कुङ्कुमं कुसुमानि च ॥ ९ ॥
बिभ्रतीं सुरभिद्रव्यं सुगन्धस्नेहमुत्तमम् । स्मितानना गौरवर्णां मंदारकुसुमं करे ॥१०॥
बिभ्रन्तीमपरे हस्ते मातुलुङ्गमनुत्तमम् । रम्यहासां च बिंबोष्ठीं चन्द्रवाहनलोचनाम् ॥११॥
कलानाथसमानास्यां कलकण्ठमनोरमाम् । मातुलुङ्गोद्भवां देवीं पद्माक्षदुहितां शुभाम् ॥१२॥
मैथिलीं रामदयितां दासीभिः परिवीजिताम् । एवं ध्यात्वा जनकजां हेमकुम्भपयोधराम् ॥१३॥
सीतायाः कवचं दिव्यं पठनीयं शुभावहम् । १४ ॥
श्रीसीता पूर्वतः पातु दक्षिणेऽवतु जानकी । प्रतीच्यां पातु वैदेही पातूदीच्यां च मैथिली ॥१५॥
अधः पातु मातुलुंगी ऊर्ध्वं पद्माक्षजाऽवतु । मध्येऽवनिसुता पातु सर्वतः पातु मां रमा ॥१६॥

कहिए ॥ २ ॥ ३ ॥ अगस्त्यजीने कहा–हे वत्स ! तुमने बहुत अच्छा प्रश्न किया है, सावधान होकर सुनो। पहले मैं सीताजीका कवच सुनाता हूँ ॥ ४ ॥ जो सीता पृथ्वीसे उत्पन्न हुईं और मिथिलानरेशके द्वारा पाली-पासी गयीं, जो मातुलुङ्गसे उत्पन्न होकर पद्माक्ष नामक राजाकी पुत्री कही गयीं, जो समुद्रके रत्नोंमें लीन हुईं और चार बार लङ्का गयीं, ऐसी चन्द्रवदनी, मृगनयनी और रामकी प्रेयसी सीता मेरी रक्षा करे ॥ ५ ॥ "अस्य श्री" से लेकर "एवं हृदयाद्यङ्गन्यासः" यहाँ तक विनियोग तथा अङ्गन्यासका विधान बतलाया गया है। इसके बाद ध्यान है। जिसका अर्थ इस प्रकार जानना चाहिए—कमलकी पंखुड़ियोंके समान जिनके नेत्र हैं, विद्युत्पुञ्जके समान जिनकी दीप्ति है, जिनके दो भुजायें हैं और जो पीताम्बर पहने हैं। जो सिंहासनपर रामके वामभागमें बैठी हैं, कानोंमें कुंडल पहने हैं, जूड़ेमें चूड़ामणि, भुजाओंमें केयूर तथा कमरमें करधनी पहने हैं, जिनके सीमन्तभागमें सूर्य-चन्द्रमाके समान आभूषण सुशोभित हो रहे हैं, माथेमें तिलक लगा हुआ है, नाकमें मयूरके आकारका सुन्दर आभूषण पड़ा है ॥ ६–९ ॥ हरिद्रा, काजल, कुंकुम, विविध प्रकारके फूल तथा तरह तरहके सुगंधित द्रव्य और इत्र आदि गमक रहे हैं, जिनका मुस्कराता हुआ मुखमण्डल है, गौर वर्ण है, जो एक हाथमें मन्दारके फूल लिये हैं, दूसरे हाथमें उत्तम मातुलुङ्ग विराजमान है, जिनकी मृदु मुस्कान है, बिंबके समान ओष्ठ है, मृगके नेत्रोंके समान जिनके नेत्र हैं, चन्द्रमाके समान मुख है, कोयलके समान जिनकी मीठी वाणी है, जो मातुलुङ्ग (बिजौरा नीबू) से उत्पन्न होनेवाली पद्माक्ष नृपतिकी पुत्री और रामकी भामिनी हैं, जिन्हें दासियाँ पंखे झल रही हैं, सुवर्णकलशके समान जिनके स्तन हैं, ऐसी सीताका ध्यान करके इस दिव्य सीताकवचका पाठ करना चाहिए ॥ १०–१४ ॥ पूर्वकी ओर सीता मेरी रक्षा करें, दक्षिणकी तरफ जानकी रक्षा करें, पश्चिमकी वैदेही रक्षा करें, उत्तरकी मैथिली रक्षा करें ॥ १५ ॥ निचले

स्मितानना शिरः पातु पातु भालं नृपात्मजा । पद्माऽवतु भ्रुवोर्मध्ये मृगाक्षी नयनेऽवतु ॥१७॥
कपोले कर्णमूले च पातु श्रीरामवल्लभा । नासाग्रं सात्त्विकी पातु पातु वक्त्रं तु राजती ॥१८॥
तामसी पातु मद्वाणीं पातु जिह्वां पतिव्रता । दंतान् पातु महामाया चिबुकं कनकप्रभा ॥१९॥
पातु कंठं सौम्यरूपा स्कंधौ पातु सुरार्चिता । भुजौ पातु वरारोहा करौ कंकणमंडिता ॥२०॥
नखान् रक्तनखा पातु कुक्षौ पातु लघूदरा । वक्षः पातु रामपत्नी पार्श्वे रावणमोहिनी ॥२१॥
पृष्ठदेशे वह्निगुप्ताऽवतु मां सर्वदैव हि । दिव्यप्रदा पातु नाभिं कटिं राक्षसमोहिनी ॥२२॥
गुह्यं पातु रत्नगुप्ता लिंगं पातु हरिप्रिया । ऊरू रक्षतु रंभोरूर्जानुनी प्रियभाषिणी ॥२३॥
जंघे पातु सदा सुभ्रूर्गुल्फौ चामरवीजिता । पादौ लवसुता पातु पात्वंगानि कुशाम्बिका ॥२४॥
पादांगुलीः सदा पातु मम नूपुरनिःस्वना । रोमाण्यवतु मे नित्यं पीतकौशेयवासिनी ॥२५॥
रात्रौ पातु कालरूपा दिने दानैकतत्परा । सर्वकालेषु मां पातु मूलकासुरघातिनी ॥२६॥
एवं सुतीक्ष्ण सीतायाः कवचं ते ममेरितम् । इदं प्रातः समुत्थाय स्नात्वा नित्यं पठेत्तु यः ॥२७॥
जानकीं पूजयित्वा च सर्वान्कामानवाप्नुयात् । धनार्थी प्राप्नुयाद्द्रव्यं पुत्रार्थी पुत्रमाप्नुयात् ॥२८॥
स्त्रीकामार्थी शुभां नारीं सुखार्थी सौख्यमाप्नुयात् । अष्टवारं जपनीयं सीतायाः कवचं सदा ॥२९॥
अष्टभ्यो विप्रवर्येभ्यो नरः प्रीत्याऽर्पयेत्सदा । फलपुष्पादिकादीनि यानि तानि पृथक् पृथक् ॥३०॥
सीतायाः कवचं चेदं पुण्यं पातकनाशनम् । ये पठंति नरा भक्त्या ते धन्या मानवा भुवि ॥३१॥
पठंति रामकवचं सीतायाः कवचं विना । तथा विना लक्ष्मणस्य कवचेन वृथा स्मृतम् ॥३२॥
तस्मात्सदा नरैर्जाप्यं कवचानां चतुष्टयम् । आदौ तु वायुपुत्रस्य लक्ष्मणस्य ततः परम् ॥३३॥
ततः पठेच्च सीतायाः श्रीरामस्य ततः परम् । एवं सदा जपनीयं कवचानां चतुष्टयम् ॥३४॥

इति सीताकवचम् ।

भागकी मातुलुंगी, ऊपर पद्माक्षजा, मध्यभागकी अवनिसुता और चारों ओर रमा रक्षा करें ॥ १६ ॥ स्मितानना मुखकी, नृपात्मजा मस्तककी, भौंहोंके बीचमें पद्मा और मेरे नेत्रोंकी मृगाक्षी रक्षा करें ॥ १७ ॥ श्रीरामचन्द्रजीकी प्रेयसी कपोल और कर्णमूलकी रक्षा करें। सात्त्विकी नासिकाके अग्रभागकी, राजसी मुखकी, तामसी वाणीकी, पतिव्रता जिह्वाकी, महामाया दाँतोंकी, कनकप्रभा चिबुककी, सौम्यरूपा कण्ठकी, सुरार्चिता कन्धोंकी, वरारोहा बाहुकी और कंकणमंडिता हाथोंकी रक्षा करें ॥ १८–२० ॥ रक्तनखा नाखूनोंकी, लघूदरा कुक्षिकी, रामपत्नी वक्षस्थलकी, रावणमोहिनी पार्श्वभागकी और वह्निगुप्ता सदा मेरे पृष्ठदेशकी रक्षा करें। दिव्यप्रदा मेरी नाभिकी और राक्षसमोहिनी कमरकी रक्षा करें ॥ २१ ॥ २२ ॥ रत्नगुप्ता गुह्यकी और हरिप्रिया लिंगकी रक्षा करें। रंभोरु मेरे दोनों घुटनोंकी और प्रियभाषिणी जानुभागकी रक्षा करें ॥२३॥ सुभ्रू जाँघोंकी, चामरवीजिता गुल्फकी तथा कुशाम्बिका शरीरके सब अङ्गोंकी रक्षा करें ॥२४॥ नूपुरनिःस्वना पैरकी उँगलियों-की और पीताम्बरधारिणी मेरे रोमोंकी रक्षा करें ॥ २५ ॥ रात्रिके समय कालरूपा, दिनको दानैकतत्परा और सब समय मूलकासुरघातिनी मेरी रक्षा करें ॥ २६ ॥ हे सुतीक्ष्ण ! इस प्रकार मैंने तुम्हें सीताकवच बतलाया। जो प्राणी सवेरे स्नानके बाद नित्य इसका पाठ करके जानकीजीकी पूजा करता है, वह अपनी सब इच्छायें पूर्ण कर लेता है। धनको चाहनेवाला धन और पुत्रकी अभिलाषा रखनेवाला पुत्र पाता है ॥ २७ ॥ २८ ॥ स्त्रीकी कामनावाला सुन्दरी स्त्री और सुख चाहनेवाला सौख्य पाता है। उपासकको चाहिए कि सदा आठ बार सीता-कवचका जप करे। आठ ब्राह्मणोंको फल-पुष्प आदि वस्तुयें पृथक्-पृथक् दान दे ॥ २९ ॥ ३० ॥ यह सीताकवच बड़ा पवित्र और पापोंका नाशक है। जो लोग भक्तिपूर्वक इसका पाठ करते हैं, वे प्राणी संसारमें धन्य हैं ॥ ३१ ॥ जो लोग सीता तथा लक्ष्मणकवचका पाठ करते हैं, उनका वह पाठ व्यर्थ हो जाता है ॥ ३२ ॥ इसलिए लोगोंको चाहिए कि सदा इन चारों कवचोंका पाठ करें। इसका क्रम इस प्रकार है-पहले हनुमान्जीका, फिर लक्ष्मणका, इसके बाद सीताका, तदनन्तर श्रीरामकवचका पाठ करना चाहिए

एवं सुतीक्ष्ण सीतायाः कवचं ते मयेरितम् । अतः परं शृणुष्वान्यत्सीतायाः स्तोत्रमुत्तमम् ॥३५॥
यस्मिन्नष्टोत्तरशतं सीतानामानि संति हि । अष्टोत्तरशतं सीतानाम्नां स्तोत्रमनुत्तमम् ॥३६॥
ये पठंति नरास्त्वत्र तेषां च सफलो भवः । ते धन्या मानवा लोके ते वैकुंठं व्रजंति हि ॥३७॥

अस्य श्रीसीतानामाष्टोत्तरशतमंत्रस्य अगस्तिऋषिः । अनुष्टुप् छन्दः । रमेति बीजम् । मातुलुंगीति शक्तिः । पद्माक्षजेति कीलकम् । अवनिजेत्यस्त्रम् । जनकजेति कवचम् । मूलकासुरमर्दिनीति परमो मन्त्रः । श्रीसीतारामचन्द्रप्रीत्यर्थं सकलकामनासिद्ध्यर्थं जपे विनियोगः । अथांगुलिन्यासः । ॐसीतायै अंगुष्ठाभ्यां नमः । ॐरमायै तर्जनीभ्यां नमः । ॐमातुलुंग्यै मध्यमाभ्यां नमः । ॐपद्माक्षजायै अनामिकाभ्यां नमः । ॐअवनिजायै कनिष्ठिकाभ्यां नमः । ॐजनकजायै करतलकरपृष्ठाभ्यां नमः । अथ हृदयादिन्यासः । ॐसीतायै हृदयाय नमः । ॐरमायै शिरसे स्वाहा । ॐमातुलुंग्यै शिखायै वषट् । ॐपद्माक्षजायै नेत्रत्राय वषट् । ॐजनकात्मजायै अस्त्राय फट् । ॐमूलकासुरमर्दिन्यै इति दिग्बंधः ॥

अथ सीताऽष्टोत्तरशतनाम स्तोत्रम् ।

वामांगे रघुनाकस्य रुचिरे या संस्थिता शोभना या विप्राधिपयानरम्यनयना या विप्रपालानना ।
विद्युत्पुंजविराजमानवसना भक्तार्तिसंखण्डना श्रीमद्राघवपादपद्मयुगलन्यस्तेक्षणा साऽवतु ॥३८॥
श्रीसीता जानकी देवी वैदेही राघवप्रिया । रमाऽवनिसुता रामा राक्षसांतप्रकारिणी ॥३९॥
रत्नगुप्ता मातुलुंगी मैथिली भक्ततोषदा । पद्माक्षजा कंजनेत्रा स्मितास्या नूपुरस्वना ॥४०॥
वैकुंठनिलया मा श्रीर्मुक्तिदा कामपूरणी । नृपात्मजा हेमवर्णा मृदुलांगी सुभाषिणी ॥४१॥
कुशांबिका दिव्यदा च लवमाता मनोहरा । हनुमद्वन्दितपदा मुग्धा केयूरधारिणी ॥४२॥
अशोकवनमध्यस्था रावणादिकमोहिनी । विमानसंस्थिता सुभ्रूः सुकेशी रशनान्विता ॥४३॥

॥ ३३ ॥ ३४ ॥ अगस्त्यजी कहते हैं—हे सुतीक्ष्ण ! इस तरह मैंने तुम्हें सीताकवच सुनाया । इसके अनन्तर सीताजीका एक दूसरा स्तोत्र सुनाता हूँ ॥ ३५ ॥ जिसमें एक सौ आठ सीताके नाम गिनाये गये हैं । इसलिए इसका नाम "सीताऽष्टोत्तरशतनाम" रखा गया है ॥ ३६ ॥ जो मनुष्य इसका पाठ करते हैं, उनका जन्म सफल हो जाता है । वे मनुष्य धन्य हैं और वे अन्तमें वैकुण्ठलोकको जाते हैं ॥ ३७ ॥ "अस्य श्री" यहाँसे "मूलकासुरमर्दिन्यै" यहाँ तक विनियोग तथा अंगन्यास आदिका विधान बतलाया गया है ॥ अथ ध्यानम् ॥ जो एक सुन्दर सिंहासनपर रामके वामांगमें बैठी हैं, मृगके नेत्रोंकी भाँति जिनके नेत्र हैं, जो चन्द्रवदनी हैं, जो बिजलीके समूहकी तरह दमकनेवाले कपड़े पहने हैं, जो अपने भक्तोंकी पीड़ा दूर करनेमें कुछ भी कसर नहीं रखतीं, जिनके नेत्र श्रीरामचन्द्रजीके चरणोंमें लगे हुए हैं, वे सीता हमारी रक्षा करें ॥ ३८ ॥ अब यहाँसे शतनाम चलता है । जैसे—(१) श्रीसीता, (२) जानकी, (३) देवी, (४) वैदेही अर्थात् विदेह जनककी पुत्री, (५) राघवप्रिया, (६) रमा, (७) अवनिसुता (पृथ्वीकी कन्या), (८) रामा, (९) राक्षसान्तप्रकारिणी (राक्षसोंका नाश करनेवाली), (१०) रत्नगुप्ता, (११) मातुलुंगी, (१२) मैथिली, (१३) भक्ततोषदा (भक्तोंको प्रसन्न करनेवाली), (१४) पद्माक्षजा (पद्माक्षनामक राजाकी कन्या), (१५) कंजनेत्रा (कमलके समान नेत्रोंवाली), (१६) स्मितास्या (जिनका मुस्कराता हुआ मुख है), (१७) नूपुरस्वना, (१८) वैकुण्ठनिलया (वैकुण्ठलोकमें निवास करनेवाली), (१९) मा, (२०) श्री, (२१) मुक्तिदा, (२२) कामपूरणी (अपने भक्तोंकी इच्छा पूरी करनेवाली), (२३) नृपात्मजा, (२४) हेमवर्णा, (२५) मृदुलाङ्गी (जिनका कोमल अङ्ग हैं), (२६) सुभाषिणी, ॥ ३९-४१ ॥ (२७) कुशाम्बिका (कुशकी माता), (२८) दिव्या (लंकासे लौटनेपर रामके कटु वाक्य सुनकर शपथ खानेवाली, (२९) लवमाता, (३०) मनोहरा, (३१) हनुमद्वन्दितपदा (हनुमान्‌जीने जिनके चरणोंकी वन्दना की थी), (३२) मुग्धा, (३३) केयूरधारिणी, (३४) अशोकवनमध्यस्था (अशोकवनमें निवास करनेवाली)

रजोरूपा सत्त्वरूपा तामसी वह्निवासिनी । हेममृगासक्तचित्ता वाल्मीक्याश्रमवासिनी ॥४४॥
पतिव्रता महामाया पीतकौशेयवासिनी । मृगनेत्रा च बिंबोष्ठी धनुर्विद्याविशारदा ॥४५॥
सौम्यरूपा दशरथस्नुषा चामरवीजिता । सुमेधादुहिता दिव्यरूपा त्रैलोक्यपालिनी ॥४६॥
अन्नपूर्णा महालक्ष्मीर्धीर्लज्जा च सरस्वती । शांतिः पुष्टिः क्षमा गौरी प्रभाऽयोध्यानिवासिनी ॥४७॥
वसंतशीतला गौरी स्नानसंतुष्टमानसा । रमानामभद्रसंस्था हेमकंकणमण्डिता ॥४८॥
सुरार्चिता धृतिः कांतिः स्मृतिर्मेधा विभावरी । लघूदरा वरारोहा हेमकंकणमण्डिता ॥४९॥
द्विजपत्न्यर्पितनिजभूषा राघवतोषिणी । श्रीरामसेवनरता रत्नताटंकधारिणी ॥५०॥
रामवामांगसंस्था च रामचन्द्रैकरंजनी । सरयूजलसंक्रीडाकारिणी राममोहिनी ॥५१॥
सुवर्णतुलिता पुण्या पुण्यकीर्तिः कलावती । कलकण्ठा कंबुकण्ठा रंभोरुर्गजगामिनी ॥५२॥
रामार्पितमना रामवंदिता रामवल्लभा । श्रीरामपदचिह्नांका रामरामेति भाषिणी ॥५३॥
रामपर्यङ्कशयना रामांघ्रिक्षालिनी वरा । कामधेन्वन्नसन्तुष्टा मातुलुंगकरे धृता ॥५४॥
दिव्यचन्दनसंस्था श्रीमूलकासुरमर्दिनी । एवमष्टोत्तरशतं सीतानाम्नां सुपुण्यदम् ॥५५॥
ये पठंति नरा भूम्यां ते धन्याः स्वर्गगामिनः । अष्टोत्तरशतं नाम्नां सीतायाः स्तोत्रमुत्तमम् ॥५६॥
जपनीयं प्रयत्नेन सर्वदा भक्तिपूर्वकम् । सति स्तोत्राण्यनेकानि पुण्यदानि महांति च ॥५७॥

---

(३५) रावणादिकमोहिनी, (३६) विमानसंस्थिता. (३७) सुभ्रू (३८) सुकेशी, (३९) रशनान्विता, (४०) रजोरूपा (४१) सत्त्वरूपा, (४२) तामसी, (४३) वह्निवासिनी (अग्निमें निवास करनेवाली), (४४) हेममृगासक्तचित्ता (सुवर्णके मृगमें जिनका मन आसक्त हो गया था), (४५) वाल्मीक्याश्रमवासिनी (वाल्मीकि ऋषिके आश्रममें निवास करनेवाली) ॥४२–४४॥ (४६) पतिव्रता, (४७) महामाया, (४८) पीतकौशेयवासिनी (रेशमी पीताम्बर धारण करनेवाली), (४९) मृगनेत्रा, (५०) बिम्बोष्ठी, (५१) धनुर्विद्याविशारदा (धनुर्विद्यामें निपुण), (५२) सौम्यरूपा, (५३) दशरथस्नुषा, (५४) चामरवीजिता, (५५) सुमेधादुहिता, (५६) दिव्यरूपा, (५७) त्रैलोक्यपालिनी, (५८) अन्नपूर्णा, (५९), महालक्ष्मी, (६०) धी, (६१) लज्जा, (६२) सरस्वती, (६३) शान्ति, (६४) पुष्टि, (६५) क्षमा, (६६) गौरी, (६७ प्रभा, (६८) अयोध्यानिवासिनी, (६९) वसन्तशीतला, (७०) गौरी, (७१) स्नानसन्तुष्टमानसा (वसन्तऋतुमें शीतला गौरी व्रतके अवसरपर स्नान करनेसे सन्तुष्ट होनेवाली), (७२) रमानामभद्रसंस्था, (७३) हेमकुम्भपयोधरा, (७४) सुरार्चिता, (७५) धृति, (७६) कान्ति, (७७) स्मृति, (७८) मेधा, (७९) विभावरी, (८०) लघूदरा, (८१) वरारोहा, (८२) हेमकंकणमंडिता, ॥ ४८–४९ ॥ (८३) द्विजपत्न्यर्पितनिजभूषा (जिसने अपने सब आभूषण एक ब्राह्मणीको दे दिये थे), (८४) राघवतोषिणी, (८५) श्रीरामसेवनरता, (८६) रत्नताटंकधारिणी (रत्नके बने कर्णफूल पहननेवाली) ॥ ५० ॥ (८७) रामवामांगस्था, (८८) रामचन्द्रैकरञ्जनी, (८९) सरयूजलसंक्रीड़ाकारिणी (सरयूजीके जलमें विहार करनेवाली), (९०) राममोहिनी, (९१) सुवर्णतुलिता, (९२) पुण्या, (९३) पुण्यकीर्ति, (९४) कलावती, (९५) कलकण्ठा, (९६) कम्बुकण्ठा, (९७) रम्भोरु, (९८) गजगामिनी, (९९) रामार्पितमना, (१००) रामवन्दिता, (१०१) रामवल्लभा, (१०२) श्रीरामपदचिह्नांका (जिनके हृदयमें श्रीरामचन्द्रजीके चरणका चिह्न विद्यमान है), (१०३) रामरामेतिभाषिणी (सदा राम-राम कहनेवाली) (१०४) रामपर्यंकशयना, (१०५) रामांघ्रिक्षालिनी (रामके पैर धोनेवाली), (१०६) कामधेन्वन्नसन्तुष्टा, (१०७) मातुलुंगकरेधृता, (१०८) दिव्यचन्दनसंस्था मूलकासुरघातिनी (दिव्य चन्दनपर स्थित एवं मूलकासुरका नाश करनेवाली) ये एक सौ आठ सीताजीके नाम बड़े पुण्यदायी हैं ॥ ५१–५५ ॥ जो लोग इस अष्टोत्तरशतनामका पाठ करते हैं, वे धन्य और स्वर्गगामी होते हैं । यह स्तोत्र सर्वोत्तम है ॥ ५६ ॥ इसलिए लोगोंको चाहिए कि सदा भक्तिपूर्वक इसका पाठ किया करें । यद्यपि बहुतसे बड़े-बड़े और-और पुण्यदायक स्तोत्र हैं, किन्तु हे भूसुर ! वे सब इसके

नानेन सदृशानीह तानि सर्वाणि भूसुर । स्तोत्राणामुत्तमं चेदं भुक्तिमुक्तिप्रदं नृणाम् ॥५८॥
एवं सुतीक्ष्ण ते प्रोक्तमष्टोत्तरशतं शुभम् । सीतानाम्नां पुण्यदं च श्रवणान्मंगलप्रदम् ॥५९॥
नरैः प्रातः समुत्थाय पठितव्यं प्रयत्नतः । सीतापूजनकालेऽपि सर्ववांछितदायकम् ।.६०॥
अन्यत्सीतातोषदानि व्रतादीनि महांति च । यानि संत्यद्य ते शिष्य तानि सम्यग्वदाम्यहम् ॥६१॥
नारीभिस्तु सदा कार्यं सीतायास्तुष्टिहेतवे । वसन्तशीतलागौरीस्नानं तीर्थे तु तत्कृते ॥६२॥
यत्र सीताकृतं तीर्थं रामतीर्थं न वर्तते । तथा लक्ष्म्याश्च गौर्याश्च सरस्वत्यादियोषिताम् ॥६३॥
तीर्थेषु च सदा कार्यं तदभावे नदीषु च । यत्र यत्र रामतीर्थं तद्वामे जानकीकृतम् ॥६४॥
ज्ञेयं तीर्थं तु सर्वत्र नैकं ज्ञेयं तु राघवम् । वसन्तशीतलागौरीस्नानं सौभाग्यवर्द्धनम् ॥६५॥
न कुर्वंत्यत्र या नार्यः स्नानं ताःसप्तजन्मसु । भवन्ति विधवास्तस्मात्सदा स्नानं समाचरेत् ॥६६॥

सुतीक्ष्ण उवाच

भो गुरो शीतलागौरीस्नानस्योद्यापनं कथम् । स्त्रीभिः कार्यं वदस्वाद्य सविस्तारं शुभावहम् ॥६७॥

अगस्तिरुवाच

सम्यक् पृष्टं त्वया शिष्य सुतीक्ष्ण शृणु सादरम् । चैत्रमासे सिते स्त्रीभिस्तृतीयायाः सदाऽत्र वै ॥६८॥
कार्यं तु शीतलागौरीस्नानं त्रिंशद्दिनानि हि । वैशाखस्य सिते पक्षे द्वितीयायामुपोष्य च ॥६९॥
स्त्रीभिश्च विधिना कार्यं निशायामधिवासनम् । पूर्ववच्च प्रकर्तव्यं मण्डपादिकमुत्तमम् ॥७०॥
तत्र रमानामभद्रमष्टोत्तरसहस्रकम् । अथवाऽष्टोत्तरशतं सूक्ष्माण्यन्यानि वा क्रमात् ॥७१॥
स्थापनीयं मध्यदेशे तन्मध्ये पङ्कजोपरि । धान्यराशौ तोयपूर्णः स्थापनीयो घटः शुभः ॥७२॥
तन्मुखे ताम्रपात्रं च स्थापनीयं तु विस्तृतम् । आच्छाद्य पात्रं कौशयवस्त्रेण तन्मनोरमम् ॥७३॥
तस्मिन्सीतारामयोश्च द्वे मूर्ती रुक्मनिर्मिते । स्थापनीये पूजनीये षोडशैरुपचारकैः ॥७४॥
नवमाषात्मको रामः सीताऽष्टमाषनिर्मिता । निजशक्त्याऽथवा कार्ये द्वे मूर्ती रजतस्य वा ॥७५॥

बराबर नहीं हो सकते । यह स्तोत्र सब स्तोत्रोंमें उत्तम तथा भुक्ति-मुक्तिदायक है ॥ ५७ ॥ ५८ ॥ हे सुतीक्ष्ण ! इस तरह मैंने तुमसे सीताजीका अष्टोत्तरशतनाम कहा, जो पुण्यदायक और सुननेसे मङ्गलदाता है ॥ ५९ ॥ लोगोंको चाहिये कि रोज सबेरें उठकर और सीताका पूजन करके अवश्य इसका पाठ करें। ऐसा करनेसे उनकी कामनायें पूर्ण हो जायेंगो । इसके अतिरिक्त और भी बहुतसे ऐसे व्रत आदि हैं, जिनसे सीताजो प्रसन्न हो सकती हैं। हे शिष्य! उन्हें आज मैं तुम्हें बतलाया हूँ ॥ ६० ॥ ६१ ॥ सीताजी-को प्रसन्न करनेके लिए स्त्रियोंको चाहिए कि सीताके द्वारा स्थापित किसी भी तीर्थमें जाकर शीतलागौरीका व्रत करें ॥ ६२ ॥ यदि आस-पास कोई सीतातीर्थ न हो तो लक्ष्मी, गौरी तथा सरस्वती आदि किसी भी देवीके तीर्थमें उक्त व्रत करें। यदि वह भी न हो तो किसी नदीके तटपर जाकर व्रत करें। जहाँ-जहाँ रामतीर्थ है, उसके वामभागमें सीतातीर्थ अवश्य रहता है । कहींपर भी अकेला रामतीर्थ नहीं रहता। वसन्तशीतला गौरी नामक व्रत स्त्रियोंका सौभाग्य बढ़ाता है ॥ ६३-६५ ॥ जो स्त्रियाँ इस व्रतको नहीं करतीं, वे सात जन्म तक तक विधवा रहकर जीवन बिताती हैं। इससे स्त्रियोंको सदा शीतलागौरीका स्नान करना चाहिए ॥ ६६ ॥ सुतीक्ष्णने कहा–हे गुरो ! इस शीतला गौरीका स्नान करनेके अनन्तर इसका उद्यापन कैसे करना चाहिए। सो मुझे आप विस्तारपूर्वक बताइए ॥ ६७ ॥ अगस्त्यजीने कहा–हे शिष्य सुतीक्ष्ण ! तुमने बहुत अच्छा प्रश्न किया है, सुनो । चैत्रशुक्ल तृतीयासे लेकर तीस दिनतक शीतलागौरीका स्नान करे और वैशाख शुक्ल द्वितीयाको उपवास करके रात्रिके समय पूर्वोक्त विधिके अनुसार मण्डप आदि बनावे ॥ ६८–७० ॥ उसमें अष्टोत्तरसहस्रात्मक रमानामतोभद्र, अष्टोत्तरशतात्मक या और कम संख्याका भद्र बनाकर उसके मध्यमें कमलपर धान्यराशि रखकर जलसे भरा घट स्थापित करे ॥ ७१ ॥ ७२ ॥ कलशके मुखपर एक बड़ा-सा ताम्रपात्र रक्खे और उसको रेशमी वस्त्रसे ढांक दे ॥ ७३ ॥ उसपर सुवर्णकी बनी हुई सीता

गन्धपुष्पधूपदीपनैवेद्यवसनादिकम् । सर्वं पृथगष्टविधं जानक्यै तु निवेदयेत् ॥७६॥
ततः स्त्रीणां वायनानि वस्त्रालंकारवस्तुभिः । कुंकुमादिपूरितानि देयानि विविधानि च ॥७७॥
देयानि कांस्यपात्राणि पक्वान्नपूरितानि च । त्रयस्त्रिंशत्तथा वाऽष्टौ स्त्रीभिर्देयानि शक्तितः ॥७८॥
त्रयस्त्रिंशच्च युग्मानि भोजयेच्च प्रयत्नतः । अथवाऽष्टौ यथाशक्त्या भोजनीयानि षड्रसैः ॥७९॥
रात्रौ जागरणं कार्यं गीतवाद्यादिमंगलैः । प्रातःकाले तृतीयायां स्नात्वा सम्पूज्य जानकीम् ८०।
होमश्चापि प्रकर्तव्यः सीतामन्त्रेण यत्नतः । तिलाज्यैः पायसैश्चापि सहस्राण्यष्टभूसुरैः ॥८१॥
मुद्गहीनं नवान्नं च ज्ञेयमष्टान्नमुत्तमम् । तत्सीतातोषदं ज्ञेयं तेन वा जुहुयात्सुखम् ॥८२॥
ततः स्वयं सुहृन्मित्रैर्भोक्तव्यं च यथासुखम् । एवमुद्यापनविधिस्तवाग्रे विनिवेदितः ॥८३॥

श्रीरामदास उवाच

अगस्तिना सुतीक्ष्णाय यदिदं कथितं पुरा । तत्सर्वं च त्वया पृष्टं मया तेऽद्य निवेदितम् ॥८४॥

विष्णुदास उवाच

कथं रमानामभद्रं कार्यं स्त्रीभिः प्रपूजने । तत्सर्वं विस्तरेणाद्य कथयस्व ममाग्रतः ॥८५॥

श्रीरामदास उवाच

यथा प्रोक्तं मया शिष्य रामतोभद्रमुत्तमम् । कार्यं रमानामभद्रं तथैव सकलं शुभम् ॥८६॥
किंचिद्विशेषस्तत्रास्ति तत्तुभ्यं कथयाम्यहम् । लिंगस्थलेषु कर्तव्या वापिकाश्चैव पूर्ववत् ॥८७॥
मुद्रायामेव किंचिच्च विशेषोऽस्ति शृणुष्व तत् । नकारश्च मकारश्च पूर्ववद्रचयेदधः ॥८८॥
ऊर्ध्वं रमेत्यक्षरे द्वे रचनीये तु पूर्ववत् । एवं कृत्वा रमानाम श्वेतवर्णं निरीक्षयेत् ॥८९॥
एतद्रमानामभद्रं देवानां पूजनादिषु । नानाकर्मसु सर्वेषु कर्तव्यं च प्रयत्नतः ॥९०॥
विना रमानामभद्राद्यानि देव्याः कृतानि हि । पूजनादीनि कर्माणि तानि ज्ञेयानि मानवैः ॥९१॥

और रामकी दो मूर्ति रक्खे और षोडशोपचारसे उनका पूजा करे ॥ ७४ ॥ मूर्तियोंमें नौ मासे सुवर्णसे रामको और आठ मासे सुवर्णसे सीताकी मूर्ति बनवावे। यदि ऐसा न हो सके तो अपनी शक्तिके अनुसार चाँदी-की दो प्रतिमायें बनवा ले ॥ ७५ ॥ इसके अनन्तर गन्ध, पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य तथा आठ प्रकारके वस्त्र आदि सीताको अर्पण करे ॥ ७६ ॥ इसके बाद वस्त्र-अलंकार आदि वस्तुयें तथा कुमकुम आदिके साथ विविध प्रकारके बायन दे ॥ ७७ ॥ तदनन्तर तरह-तरहके पकवानसे भरकर तैंतीस, आठ अथवा तीन कांस्यपात्र अर्पण करे ॥ ७८ ॥ इसके बाद तैंतीस ब्राह्मणदम्पती, आठ ब्राह्मण अथवा जैसी अपनी सामर्थ्य हो, उसके अनुसार ब्राह्मणदम्पतियोंको भोजन कराये ॥ ७९ ॥ रात्रिभर गीत-वाद्य आदि मङ्गलमय कार्य करता हुआ जागरण करे। तृतीयाको प्रातःकाल स्नान करके जानकीजीका पूजन करे और तिल, घी तथा खीरसे आठ ब्राह्मणोंके साथ सीतामन्त्रसे होम करे ॥ ८० ॥ ८१ ॥ मूँगको छोड़कर अन्य नौ प्रकारके अन्न सीताजोको बहुत प्रिय हैं। यदि हो सके तो उन्हींसे हवन करे ॥ ८२ ॥ इसके बाद अपने हित-मित्रादिके साथ सुखपूर्वक भोजन करे। इस तरह उद्यापनविधि मैंने तुमसे कही ॥ ८३ ॥ श्रीरामदासने कहा—तुम्हारे प्रश्नके अनुसार मैंने वह सब बातें कह दीं, जो सुतीक्ष्णको अगस्त्यजीने बतलायी थीं ॥ ८४ ॥ विष्णुदासने कहा कि जब स्त्रियाँ पूजन करने लगें तो रमानामक भद्रकी रचना किस प्रकार करें। यह आप हमें विस्तारपूर्वक बतलाइए ॥ ८५ ॥ श्रीरामदासने कहा—पहले मैंने जो रामतोभद्र रचनाकी विधि बतायी है, ठीक उसी तरह रमानामतोभद्रको भी रचना होगी ॥ ८६ ॥ ८७ ॥ इसकी मुद्रामें थोड़ीसी विशेषता है। सो मैं तुमको बताये देता हूँ, सुनो। नाकार और मकार ये दोनों पहलेकी ही तरह निचले भागमें बनावे ॥ ८८ ॥ ऊपर रमा इन दो अक्षरोंकी भी पहले ही की तरह रचना करे। ऐसा कर लेनेके बाद रमा इस नामको भद्रके श्वेत भागमें उभड़ा देखे ॥ ८९ ॥ देवी आदिकी पूजाके अवसरपर अथवा और-और प्रकारके शुभ कर्मोंमें प्रयत्न करके इस रमानामतो भद्र-

अकृतान्यत्र तस्माद्धि कर्तव्यं यत्नतस्त्विदम् । कृता रमानामभद्रे या पूजा मानवैर्भुवि ॥९२॥
सा देव्यै तोषदा ज्ञेया तस्मात्कार्या प्रयत्नतः । पूर्वोक्तानि दैवतानि तान्येवात्र विचिन्तयेत् ॥९३॥
आवाहयेच्च मुद्रायां जानकीं रघुनन्दनम् । अन्यच्छृणुष्व भो शिष्य सीतारामप्रपूजने ॥९४॥
रमानामतोभद्रं च कार्यं वा मानवैर्भुवि । तच्चापि पूर्ववत्सर्वं कर्तव्यं मानवैर्धिया ॥९५॥
इदं सीतारामयोश्च पूजनार्थं प्रकल्पयेत् । रामनाम्ना रमानाम्ना इदं भद्रं महच्चमम् ॥९६॥
यत्र द्वयोर्नामनी च रमा रामेति चोत्तमे । रमारामतो भद्रं च तस्माच्छ्रेष्ठं प्रकारयेत् ॥९७ ।
रामाप्तनोपमान्येव दैवान्यत्र विचिंतयेत् । एवं शिष्य त्वया पृष्टं यद्यत्तत्तन्मयोदितम् ॥९८॥
का तेऽन्यास्ति स्पृहा श्रोतुं वद तां तद्वदाम्यहम् ।

विष्णुदास उवाच

कवचं लक्ष्मणस्यापि पठनीयमिति स्मृतम् ॥९९॥
पुरा गुरो त्वया तच्च मां वदस्व सविस्तरात् । भरतस्यापि कवचं शत्रुघ्नस्य तथा वद ॥१००॥

श्रीरामदास उवाच

एवमेव सुतीक्ष्णेन पृष्टं च कुंभजन्मना । पुरा तद्विस्तरेणाद्य तवाग्रे कथयाम्यहम् ॥१०१॥

सुतीक्ष्ण उवाच

गुरो त्वया पुरा प्रोक्तं कवचं लक्ष्मणस्य च । पठनीयं जनैश्चेति तन्मामद्य प्रकाशय ॥१०२॥
भरतस्यापि कवचं शत्रुघ्नस्य तथा वद ।

अगस्तिरुवाच

सम्यक् पृष्टं त्वया वत्स सावधानमनाः श्रृणु । आदौ सौमित्रिकवचं कथ्यतेऽद्य मया शुभम् ॥१०३॥

इति श्रीशतकोटिरामचरितांतर्गते श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये मनोहरकांडे
सीतारामकवचादिनिरूपणं नाम चतुर्दशः सर्गः ॥ १४ ॥

की रचना करे ॥ ९० ॥ बिना रमानामतोभद्रके देवीपूजन आदि जितना भी कृत्य किया जाता है, वह सब व्यर्थ हो जाया करता है। अतएव रमानामतोभद्रकी स्थापना अवश्य करनी चाहिये। रमानामतोभद्र-में लोग जो पूजन आदि करते हैं, वह सफल होता है ॥ ९१ ॥ ९२ ॥ उससे देवी प्रसन्न होती हैं। इस कारण यत्नपूर्वक ऐसा करना चाहिए। पूर्वमें जितने देवता कह आये हैं, वे सब इस भद्रमें भी रहेंगे ॥९३॥ हाँ, यह बात अवश्य है कि इस भद्रमें राम और सीताका आवाहन करे। हे शिष्य! सीतारामके पूजनके विषयमें और भी कुछ विशेष बातें हैं। उन्हें कहता हूँ, सुनो ॥ ९४ ॥ कोई भी पूजन करते समय रमानाम-तोभद्रकी स्थापना अवश्य करे। उस भद्रमें पूर्वोक्त रीतिके अनुसार ही सब बातें रहेंगी ॥ ९५ ॥ सीता और रामकी पूजाके निमित्त इसकी स्थापना की जाती है और केवल रामनामतोभद्र अथवा केवल रामतोभद्रसे यह भद्र श्रेष्ठ है ॥ ९६ ॥ इस भद्रमें रमा और राम इन दोनोंके नाम आ जाते हैं। इसीलिए यह भद्र सर्वश्रेष्ठ माना गया है ॥ ९७ ॥ रामतोभद्रमें कहे हुए ही देवता इस भद्रमें रहेंगे। इस तरह हे शिष्य! तुमने हमसे जो पूछा, वह मैंने तुमसे कहा ॥ ९८ ॥ अब क्या सुननेकी इच्छा है सो बताओ, मैं कहूँ। विष्णुदास बोले—आपने कहा था कि लक्ष्मणके कवचका भी पाठ करना चाहिए। सो उसे भी बताइए ॥९९॥१००॥ श्रीरामदास-ने कहा कि इसी तरह सुतीक्ष्णने भी अगस्त्यजीसे प्रश्न किया था। सो उन्होंने सुतीक्ष्णसे जो कुछ कहा था, वही मैं तुमसे कह रहा हूँ ॥ १०१ ॥ सुतीक्ष्णने कहा—हे गुरो! आपने एक बार हमसे कहा था कि लोगोंको लक्ष्मणकवचका भी पाठ करना चाहिए। सो कृपा करके आप हमें लक्ष्मणकवच बताइए। उसके साथ-साथ भरत तथा शत्रुघ्नकवच भी बतला दीजिए। अगस्त्यने कहा—हे वत्स! तुमने बहुत उत्तम प्रश्न किया है। साव-धान होकर सुनो। पहले मैं लक्ष्मणकवचका ही वर्णन कर रहा हूँ ॥ १०२ ॥ १०३ ॥ इति श्रीमदानन्दरामायणे पं० रामतेजपाण्डेयविरचित'ज्योत्स्ना'भाषाटीकासहिते मनोहरकाडे चतुर्दशः सर्गः ॥ १४ ॥

पञ्चदशः सर्गः

(लक्ष्मण-भरत तथा शत्रुघ्नकवच)

सौमित्रिं रघुनायकस्य चरणद्वंद्वेक्षण श्यामलं बिभ्रन्तं स्वकरेण रामशिरसि छत्रं विचित्रं वरम् ।
बिभ्रंतं रघुनायकस्य सुमहत्कोदंडबाणासने तं वंदे कमलेक्षणं जनकजावाक्ये सदा तत्परम् ।। १ ।।

ॐ अस्य श्रीलक्ष्मणकवचमंत्रस्य । अगस्त्यऋषिः । अनुष्टुप्छंदः । श्रीलक्ष्मणो देवता । शेष इति बीजम् । सुमित्रानंदन इति शक्तिः । रामानुज इति कीलकम् । रामदास इत्यस्त्रम् । रघुवंशज इति कवचम् । सौमित्रिरिति मंत्रः । श्रीलक्ष्मणप्रीत्यर्थं सकलमनोऽभिलषितसिद्ध्यर्थं जपे विनियोगः । अथांगुलिन्यासः । ॐ लक्ष्मणाय अंगुष्ठाभ्यां नमः । ॐशेषाय तर्जनीभ्यां नमः । ॐसुमित्रानंदनाय मध्यमाभ्यां नमः । ॐ रामानुजाय अनामिकाभ्यां नमः । ॐ रामदासाय कनिष्ठिकाभ्यां नमः । ॐ रघुवंशजाय करतलकरपृष्ठाभ्यां नमः । एवं हृदयाद्यगन्यासः । ॐलक्ष्मणाय हृदयाय नमः । ॐ शेषाय शिरसे स्वाहा । ॐ सौमित्राय शिखायै वषट् । रामानुजाय कवचाय हुम् । रामदासाय नेत्रत्रयाय वौषट् । रघुवंशजाय अस्त्राय फट् । ॐसौमित्रये इति दिग्बंधः ।

अथ ध्यानं लक्ष्मणकवचम्

रामपृष्ठस्थितं रम्यं रत्नकुंडलधारिणम् । नीलोत्पलदलश्यामं रत्नकंकणमंडितम् ।। २ ।।
रामस्य मस्तके दिव्यं बिभ्रन्तं छत्रमुत्तमम् । वीरं पीतांबरधरं मुकुटेनातिशोभितम् ।। ३ ।।
तूणीरे कार्मुके चापि बिभ्रन्तं च स्मिताननम् । रत्नमालाधरं दिव्यं पुष्पमालाविराजितम् ।। ४ ।।
एवं ध्यात्वा लक्ष्मणं च राघवन्यस्तलोचनम् । कवच जपनीयं हि ततो भक्त्याऽत्र मानवैः ।। ५ ।।
लक्ष्मणः पातु मे पूर्वे दक्षिणे राघवानुजः । प्रतीच्यां पातु सौमित्रिः पातूदीच्यां रघूत्तमः ।। ६ ।।
अधः पातु महावीरश्चोर्ध्वं पातु नृपात्मजः । मध्ये पातु रामदासः सर्वतः सत्यपालकः ।। ७ ।।
स्मिताननः शिरः पातु भालं पातूर्मिलाधवः । भ्रुवोर्मध्ये धनुर्धारी सुमित्रानंदनोऽक्षिणी ।। ८ ।।
कपोले राममंत्री च सर्वदा पातु वै मम । कर्णमूले सदा पातु कबन्धभुजखण्डनः ।। ९ ।।

अगस्त्यजीने कहा—मैं उन लक्ष्मणजीकी वन्दना करता हूँ, जो सदा रघुनाथजीके दोनों चरणकमल देखा करते हैं, जो अपने हाथसे रामचन्द्रजीके सिरपर छत्रकी छाया किये रहते हैं। जो कन्धेपर रामचन्द्रजीका धनुष धारण किये रहते हैं। जो सर्वदा जानकीजीकी आज्ञाका पालन करनेमें तत्पर रहते हैं और कमलके समान जिनकी आँखें हैं ।। १ ।। "अस्य श्री" से लेकर ॐसौमित्रये इति दिग्बंधः" यहाँ तक विनियोग और अंगन्यासकी विधि बतलायी गयी है। उसके आगे लक्ष्मणजीका ध्यान है—जो रामचन्द्रजीके पीछे बैठे हैं, जिनका मनोहर स्वरूप है, रत्नजटित कुण्डल जिनके कानोंमें झूल रहे हैं, नील कमलके समान जिनके मुखकी आभा है और जिनके हाथोंमें रत्नजटित कंकण पड़े हैं ।। २ ।। वीर लक्ष्मण रामके ऊपर दिव्य छत्र लगाये हुए हैं, सुन्दर पीताम्बर पहने हैं और मुकुटसे जो अतिशय शोभायमान दीख रहे हैं ।। ३ ।। जो तूणीर तथा धनुष धारण किये हैं, मुस्कराता हुआ जिनका मुखारविन्द है, रत्नोंकी माला जिनके गलेमें पड़ी है, जिनका दिव्य वेष है और जो फूलोंकी मालाओंसे और भी सुन्दर दीख रहे हैं ।। ४ ।। इस प्रकार रामचन्द्रजीपर दृष्टि लगाये लक्ष्मणजीका ध्यान करके लोगोंको चाहिए कि भक्तिपूर्वक लक्ष्मणकवचका पाठ करें ।। ५ ।। लक्ष्मणजी मेरे पूर्वभागकी रक्षा करें और दक्षिणभागमें राघवानुज पश्चिम ओर सौमित्रि तथा उत्तर भागकी रघूत्तम रक्षा करें ।। ६ ।। निचले भागमें रघुवीर, ऊपर नृपात्मज, मध्यमें रामदास और चारों ओर सत्यपालक रक्षा करें ।। ७ ।। सिरकी स्मिता-

नासाग्रं मे सदा पातु सुमित्रानंदवर्द्धनः । रामन्यस्तेक्षणः पातु सदा मेऽत्र मुखं शुचि ॥१०॥
सीतावाक्यकरः पातु मम वाणीं सदाऽत्र हि । सौम्यरूपः पातु जिह्वामनन्तः पातु मे द्विजान् ॥११॥
चिबुकं पातु रक्षोघ्नः कंठं पात्वसुरार्दनः । स्कन्धौ पातु जितारातिर्भुजौ पंकजलोचनः ॥१२॥
करौ कंकणधारी च नखान् रक्तनखोऽवतु । कुक्षिं पातु विनिद्रो मे वक्षः पातु जितेन्द्रियः ॥१३॥
पार्श्वे राघवपृष्ठस्थः पृष्ठदेशं मनोरमः । नाभिं गंभीरनाभिस्तु कटिं च रुक्ममेखलः ॥१४॥
गुह्यं पातु सहस्रास्यः पातु लिंगं हरिप्रियः । ऊरू पातु विष्णुतल्पः सुमुखोऽवतु जानुनी ॥१५॥
नागेंद्रः पातु मे जंघे गुल्फौ नूपुरवान्मम । पादावंगदतातोऽव्यात् पात्वंगानि सुलोचनः ॥१६॥
चित्रकेतुपिता पातु मम पादांगुलीः सदा । रोमाणि मे सदा पातु रविवंशसमुद्भवः ॥१७॥
दशरथसुतः पातु निशायां मम सादरम् । भूगोलधारी मां पातु दिवसे दिवसे सदा ॥१८॥
सर्वकालेषु मामिंद्रजिद्धंताऽवतु सर्वदा । एवं सौमित्रिकवचं सुतीक्ष्ण कथितं मया ॥१९॥
इदं प्रातः समुत्थाय ये पठंत्यत्र मानवाः । ते धन्या मानवा लोके तेषां च सफलो भवः ॥२०॥
सौमित्रेः कवचस्यास्य पठनान्निश्चयेन हि । पुत्रार्थी लभते पुत्रान् धनार्थी धनमाप्नुयात् ॥२१॥
पत्नीकामो लभेत्पत्नीं गोधनार्थी तु गोधनम् । धान्यार्थी प्राप्नुयाद्धान्यं राज्यार्थी राज्यमाप्नुयात् २२
पठितं रामकवचं सौमित्रिकवचं विना । घृतेन हीनो नैवेद्यस्तेन दत्तो न संशयः ॥२३॥
केवलं रामकवचं पठितं मानवैर्यदि । तत्पाठेन सुसंतुष्टो न भवेद्रघुनंदनः ॥२४॥
अतः प्रयत्नतश्चेदं सौमित्रिकवचं नरैः । पठनीयं सर्वदैव सर्ववांछितदायकम् ॥२५॥

नन, ललाटकी उर्मिलावर, भौंहोंके बीचमें धनुर्धारी और आँखोंकी सुमित्रानन्दन रक्षा करें ॥ ८ ॥ कपोलकी राममन्त्री सदा रक्षा करते रहें और कानोंकी जड़में कबन्धकी भुजाका खण्डन करनेवाले लक्ष्मणजी रक्षा करते रहें ॥ ९ ॥ सुमित्राका आनन्द बढ़ानेवाले मेरी नासिकाके अग्रभागकी रक्षा करें। रामकी ओर निहारते हुए लक्ष्मण सर्वदा मेरे मुखकी रक्षा करें ॥ १० ॥ सीताकी आज्ञाका पालन करनेवाले लक्ष्मणजी सर्वदा मेरी वाणीकी रक्षा करें। सौम्यरूपधारी जिह्वाकी तथा अनन्तरूपधारी लक्ष्मण मेरे दाँतोंकी रक्षा करें ॥ ११ ॥ राक्षसोंके वधकारी मेरे चिबुककी रक्षा करें, असुरोंको परास्त करनेवाले कण्ठकी रक्षा करें, शत्रुको जीतनेवाले मेरे कन्धोंकी रक्षा करें और कमल सरीखे नत्रोंवाले लक्ष्मण मेरी भुजाओंकी रक्षा करें ॥ १२ ॥ कंकणको धारण करनेवाले हाथकी रक्षा करें, लाल लाल नखोंवाले मेरे नखोंकी रक्षा करें, निद्रासे रहित लक्ष्मणजी मेरी कोखकी रक्षा करें और जितेन्द्रिय लक्ष्मणजी मेरे वक्षस्थलकी रक्षा करें ॥ १३ ॥ रामचन्द्रजीके पीछे बैठनेवाले लक्ष्मणजी मेरे पृष्ठभागकी रक्षा करें, गम्भीर नाभिवाले लक्ष्मणजी नाभिकी तथा सुवर्णमयी मेखलावाले मेरी कमरकी रक्षा करें ॥ १४ ॥ शेषरूपवाले लक्ष्मण मेरी गुदाकी तथा हरिप्रिय लक्ष्मण मेरे लिंगकी रक्षा करें। विष्णुके सदृश रूपवाले लक्ष्मणजी घुटनोंकी तथा सुन्दर रूपधारी मेरे जानुभागकी रक्षा करें ॥ १५ ॥ सर्पोंके राजा मेरी जंघाओंकी, नूपुरधारी मेरे गुल्फभागकी, अङ्गदतात मेरे पैरोंकी तथा सुन्दर आँखोंवाले लक्ष्मणजी मेरे समस्त अङ्गोंकी रक्षा करें ॥ १६ ॥ चित्रकेतुके पिता मेरे पैरकी उँगलियों तथा सूर्यवंशमें उत्पन्न होनेवाले लक्ष्मण मेरे रोमकी रक्षा करें ॥ १७ ॥ रात्रिके समय दशरथके पुत्र मेरी करें और दिनके समय भूगोलधारी लक्ष्मणजी मेरी रक्षा करते रहें ॥ १८ ॥ इन्द्रजित् (मेघनाद) को मारनेवाले सर्वदा मेरी रक्षा करते रहें। हे सुतीक्ष्ण ! इस तरह मैंने तुम्हें लक्ष्मणकवच कह सुनाया ॥ १९ ॥ जो लोग सबेरे उठकर इस कवचका पाठ करते हैं, वे मनुष्य धन्य हैं और उनका जन्म सफल है ॥ २० ॥ लक्ष्मणजीके इस कवचका पाठ करनेसे पुत्रार्थी पुत्र तथा धनार्थी धन पाता है। इसमें कोई संशय नहीं है ॥ २१ ॥ पत्नीकी कामनावाला प्राणा पत्नी, गोधन चाहनेवाला गोधन, धान्यका इच्छुक धान्य और राज्यकी इच्छा रखनेवाला राज्य पाता है ॥ २२ ॥ बिना लक्ष्मणकवचका पाठ किये रामकवचका पाठ उसी तरह व्यर्थ जाता है, जिस तरह घीके बिना नैवेद्य लगाया जाय ॥ २३ ॥ केवल रामकवचका पाठ करनेसे रामचन्द्रजी विशेष प्रसन्न नहीं होते ॥ २४ ॥ इसलिए

अतः परं भरतस्य कवचं ते वदाम्यहम्। सर्वपापहरं पुण्यं सदा श्रीरामभक्तिदम् ॥२६॥
कैकेयीतनयं सदा रघुवरन्यस्तेक्षणं श्यामलं सप्तद्वीपपतेर्विदेहतनयाकांतस्य वाक्ये रतम्।
श्रीसीताधवसव्यपार्श्वनिकटे स्थित्वा वरं चामरं धृत्वा दक्षिण सत्करेण भरतं तं वीजयंतं भजे ॥२७॥

ॐ अस्य श्रीभरतकवचमंत्रस्य अगस्त्यऋषिः । श्रीभरतो देवता अनुष्टुप्छंदः। शंख इति बीजम् । कैकेयीनंदन इति शक्तिः । भरतखंडेश्वर इति कीलकम्। रामानुज इत्यस्त्रम्। सप्तद्वीपेश्वरदास इति कवचम्। रामांशज इति मन्त्रः। श्रीभरतप्रीत्यर्थं सकलमनोरथसिद्ध्यर्थं जपे विनियोगः। अथांगुलिन्यासः। ॐ भरताय अंगुष्ठाभ्यां नमः। ॐ कैकेयीनंदनाय मध्यमाभ्यां नमः। ॐ भरतखण्डेश्वराय अनामिकाभ्यां नमः। ॐ रामानुजाय कनिष्ठिकाभ्यां नमः। ॐ शखाय शिरसे स्वाहा। ॐ कैकेयीनंदनाय शिखायै वषट्। ॐ भरतखंडेश्वराय कवचाय हुम्। ॐ रामानुजाय नेत्रत्रयाय वौषट्। ॐ सप्तद्वीपेश्वरदासाय अस्त्राय फट्। रामांशजाय चेति दिग्बंधः।

अथ सध्यानं भरतकवचम्

रामचन्द्रसव्यपार्श्वे स्थितं कैकेयजासुतम्। रामाय चामरेणैव वीजयन्तं मनोरमम् ॥२८॥
रत्नकुंडलकेयूरकंकणादिविभूषितम्। पीतांबरपरीधानं वनमालाविराजितम् ॥२९॥
मांडवीधौतचरणं रशनानूपुरान्वितम्। नीलोत्पलदलश्यामं द्विजराजसमाननम् ॥३०॥
आजानुबाहुं भरतखंडस्य प्रतिपालकम्। रामानुजं स्मितास्यं च शत्रुघ्नपरिवंदितम् ॥३१॥
रामन्यस्तेक्षणं सौम्यं विद्युत्पुञ्जसमप्रभम्। रामभक्तं महावीरं वंदे तं भरतं शुभम् ॥३२॥
एवं ध्यात्वा तु भरतं रामपादेक्षणं हृदि। कवच पठनीय हि भरतस्येदमुत्तमम् ॥३३॥
ॐपूर्वतो भरतः पातु दक्षिणे कैकयीसुतः। नृपात्मजः प्रतीच्यां हि पातूदीच्यां रघूत्तमः ॥३४॥
अधः पातु श्यामलांगश्चोर्ध्वं दशरथात्मजः। मध्ये भारतवर्षेशः सर्वतः सूर्यवंशजः ॥३५॥

लोगोंको चाहिए कि प्रयत्न करके सब प्रकारकी कामना पूर्ण करनेवाले इस लक्ष्मणकवचका पाठ अवश्य करें ॥ २५ ॥ हे सुतीक्ष्ण ! अब मैं तुम्हें श्रीभरतजीका कवच बताऊँगा, जो पापोंको हरनेवाला, पवित्र एवं श्रीरामचन्द्रकी भक्ति देनेवाला है ॥ २६ ॥ मैं उन भरतजीकी बन्दना करता हूँ, जो श्रीरामचन्द्रजीकी ओर निहार रहे हैं। जिनका श्याम स्वरूप है। जो सातों द्वीपोंके अधिपति रामचन्द्रजीकी आज्ञामें तत्पर रहते हैं। जो रामकी दाहिनी ओर बैठकर दाहिने हाथसे सुन्दर चमर हाँक रहे हैं। उन भरतजीका मैं ध्यान करता हूँ ॥ २७ ॥ "अस्यश्री" से लेकर "रामांशजाय चेति दिग्बंधः" तक अंगन्यास आदिकी विधि बतलायी गयी है। इसके बाद ध्यान है-श्रीरामचन्द्रजीकी दाहिनी ओर बैठकर रामपर चमर चलाते हुए सुन्दर रत्नजटित कुण्डल, केयूर तथा कंकण आदिसे विभूषित, पीताम्बर धारण किये, वनमालासे अलंकृत, जिनके चरण मांडवी धोती हैं, रशना और नूपुरसे विराजित, नील कमलके समान श्यामस्वरूप एवं चन्द्रमाके समान मुखवाले ॥ २८-३० ॥ जानुपर्यन्त भुजाओंवाले, भरतखण्डके प्रतिपालक, रामके छोटे भ्राता, शत्रुघ्नसे परिवन्दित, मुस्कुराहटयुक्त मुखवाले, रामकी ओर दृष्टि लगाये हुए, सौभाग्यस्वरूप, विद्युत्पुंजके समान प्रभाशाली, रामभक्त एवं महापराक्रमी भरतजीका ध्यान करके थोड़ी देरतक रामचन्द्रजीके चरणोंका स्मरण करें। उसके बाद इस भरतकवचका पाठ करे ॥ ३१-३३ ॥ पूर्वकी ओर भरत मेरी रक्षा करें, दक्षिणकी तरफ कैकेयीसुत और पश्चिमकी ओर नृपात्मज मेरी रक्षा करें। उत्तरकी ओर रघूत्तम मेरी रक्षा करें ॥ ३४ ॥ नीचे श्यामल अङ्गोंवाले, ऊपर दशरथात्मज, मध्यमें भारतवर्षके प्रभु, चारों ओर सूर्यवंशमें उत्पन्न होनेवाले

शिरस्तक्षपिता पातु भालं पातु हरिप्रियः । भ्रुवोर्मध्यं जनकजावाक्यैकतत्परोऽवतु ॥३६॥
पातु जनकजामाता मम नेत्रे सदाऽत्र हि । कपोले मांडवीकांतः कर्णमूले स्मिताननः ॥३७॥
नासाग्रं मे सदा पातु कैकेयीतोषवर्द्धनः । उदारांगो मुखे पातु पातु वाणीं जटाधरः ॥३८॥
पातु पुष्करतातो मे जिह्वां दंतान् प्रभामयः । चिबुकं वल्कलधरः कंठे पातु वराननः ॥३९॥
स्कन्धौ पातु जितारातिर्भुजौ शत्रुघ्नवंदितः । करौ कवचधारी च नखान् खड्गधरोऽवतु ॥४०॥
कुक्षौ रामानुजः पातुः वक्षः श्रीरामवल्लभः । पार्श्वे राघवपार्श्वस्थः पातु पृष्ठं सुभाषणः ॥४१॥
जठरं च धनुर्धारी नाभिं शरकरोऽवतु । कटिं पद्मेक्षणः पातु गुह्यं रामैकमानसः ॥४२॥
राममित्रैः पातु लिंगमूरू श्रीरामसेवकः । नंदिग्रामस्थितः पातु जानुनी मम सर्वदा ॥४३॥
श्रीरामपादुकाधारी पातु जंघे सदा मम । गुल्फौ श्रीरामबन्धुश्च पादौ पातु सुरार्चितः ॥४४॥
रामाज्ञापालकः पातु ममांगान्यत्र सर्वदा । मम पादांगुलीः पातु रघुवंशविभूषणः ॥४५॥
रोमाणि पातु मे रम्यः पातु रात्रौ सुधीर्मम । तूणीरधारी दिवसे दिक्पातु मम सर्वदा ॥४६॥
सर्वकालेषु मां पातु पांचजन्यः सदा भुवि । एवं श्रीभरतस्येदं सुतीक्ष्ण कवचं शुभम् ॥४७॥
मया प्रोक्तं तवाग्रे हि महामंगलकारकम् । स्तोत्राणामुत्तमं स्तोत्रमिदं ज्ञेयं सुपुण्यदम् ॥४८॥
पठनीयं सदा भक्त्या रामचन्द्रस्य हर्षदम् । पठित्वा भरतस्येदं कवचं रघुनन्दनः ॥४९॥
यथा याति परं तोषं तथा स्वकवचेन न । तस्मादेतत्सदा जप्यं कवचानामनुत्तमम् ॥५०॥
अस्यात्र पठनान्मर्त्यः सर्वान्कामानवाप्नुयात् । विद्याकामो लभेद्विद्यां पुत्रकामो लभेत्सुतम् ॥५१॥
पत्नीकामो लभेत्पत्नीं धनार्थी धनमाप्नुयात् । यद्यन्मनोभिऽलषितं तत्तत्कवचपाठतः ॥५२॥

भरत मेरी रक्षा करें ॥ ३५ ॥ तक्षके पिता मेरे मस्तककी रक्षा करें, हरिप्रिय मेरे ललाटकी रक्षा करें, जानकीकी आज्ञामें तत्पर रहनेवाले भरतजी भौंहोंके मध्यभागकी रक्षा करें ॥ ३६ ॥ सीताको माताके समान मानने वाले भरतजी मेरी आँखोंकी रक्षा करें। माण्डवीके प्रियतम मेरे कपोलोंकी रक्षा करें। मुसकाते मुख-मण्डलवाले भरतजी मेरे कर्णमूलकी रक्षा करें ॥ ३७ ॥ कैकेयीके आनन्दको बढ़ानेवाले मेरे नासाग्रकी, उग्र अङ्गवाले मुखकी और जटाधारी भरत मेरी वाणीका रक्षा करें ॥ ३८ ॥ पुष्करके पिता जिह्वाको, प्रभामय दाँतोंकी, वल्कलधारी चिबुककी और सुन्दर मुखवाले भरत मेरे कण्ठका रक्षा करें ॥३९॥ शत्रुको जीतनेवाले मेरे कन्धोंकी, शत्रुघ्नवन्दित भुजाओंकी, कवचधारी हाथोंकी और खड्गधारी नखोंकी रक्षा करें ॥ ४० ॥ रामके छोटे भ्राता उदरकी, श्रीरामवल्लभ वक्षस्थलकी, रामके पास बैठनेवाले भरतजी पसलियोंकी और सुन्दर भाषण करनेवाले पृष्ठभागकी रक्षा करें ॥ ४१ ॥ धनुर्धारी जठरकी, शरकर नाभिको, कमलके समान नेत्रोंवाले कमरको और एकमात्र रामनामका स्मरण करनेवाले मेरे गुह्यभागकी रक्षा करें ॥ ४२ ॥ रामके मित्र लिंगकी रक्षा करें, श्रीरामके सेवक ऊरुभागकी और नन्दिग्राममें रहनेवाले भरत सर्वदा मेरे जानुभागकी रक्षा करें ॥४३॥ श्रीरामकी पादुकाको धारणकरनेवाले मेरी जंघाओंकी, श्रीरामबन्धु दोनों गुल्फभागकी तथा सुरार्चित भरतजी मेरे पैरोंकी रक्षा करें ॥ ४४ ॥ रामकी आज्ञा पालन करनेवाले सर्वदा मेरे सब अङ्गोंकी और रघुवंशके उत्तम भूषण मेरे पैरकी उँगलियोंकी रक्षा करें ॥ ४५ ॥ रम्य वपुधारी भरतजी मेरे मित्र लोगोंकी, रात्रिके समय सुन्दर बुद्धिवाले और तूणीरधारी भरत दिनके समय सब दिशाओंकी रक्षा करें ॥४६॥ पाञ्चजन्य सब समय मेरी रक्षा करते रहें। हे सुतीक्ष्ण ! इस प्रकार मैने तुम्हें श्रीभरतजीका कवच कह सुनाया। यह बड़ा मङ्गलकारी, सब स्तोत्रोंमें उत्तम और भली भाँति पुण्यदाता है ॥ ४७ ॥ ४८ ॥ लोगोंको चाहिए कि श्रीरामचन्द्रजीको आनन्द देनेवाले इस भरत-कवचका पाठ करके ही रामकवचका पाठ किया करें। इस कवचके पाठसे रामचन्द्र जितने प्रसन्न होते हैं, उतने अपने कवच अर्थात् रामकवचका पाठ सुनकर नहीं प्रसन्न होते। इस कारण लोगोंको चाहिये कि सब कवचोंमें श्रेष्ठ इस कवचका पाठ अवश्य करें ॥ ४९ ॥ ५० ॥ इस कवचका पाठ करनेसे प्राणी सब कामनाओंको प्राप्त कर लेता है। विद्याकी कामनावाला विद्या, पुत्रकी इच्छा रखनेवाला पुत्र, पत्नी चाहनेवाला पत्नी और

लभ्यते मानवैरत्र सत्यं सत्यं वदाम्यहम् । तस्मात्सदा जपनीयं रामोपासकमानवैः ॥५३॥

अथ शत्रुघ्नकवचम्

अथ शत्रुघ्नकवचं सुतीक्ष्ण शृणु सादरम् । सर्वकामप्रदं रम्यं रामसद्भक्तिवर्द्धनम् ॥५४॥

शत्रुघ्नं धृतकार्मुकं धृतमहातूणीरबाणोत्तमं पार्श्वे श्रीरघुनन्दनस्य विनयाद्वामे स्थितं सुन्दरम् ।
रामं स्वीयकरेण तालदलजं धृत्वाऽतिचित्रं वरं सूर्याभं व्यजनं सभास्थितमहं तं वीजयंतं भजे ॥५५॥

ॐ अस्य श्रीशत्रुघ्नकवचमंत्रस्य अगस्तिऋषिः । श्रीशत्रुघ्नो देवता । अनुष्टुप्छंदः । सुदर्शन इति बीजम् । कैकेयीनन्दन इति शक्तिः । श्रीभरतानुज इति कीलकम् । भरतमंत्रीत्यस्त्रम् । श्रीरामदास इति कवचम् । लक्ष्मणांशज इति मंत्रः । श्रीशत्रुघ्नप्रीत्यर्थं सकलमनःकामनासिद्धयर्थं जपे विनियोगः । अथांगुलिन्यासः । ॐ शत्रुघ्नाय अंगुष्ठाभ्यां नमः । ॐ सुदर्शनाय तर्जनीभ्यां नमः । ॐकैकेयीनंदनाय मध्यमाभ्यां नमः । ॐभरतानुजाय अनामिकाभ्यां नमः । ॐभरतमंत्रिणे कनिष्ठिकाभ्यां नमः । ॐ श्रीरामदासाय करतलकरपृष्ठाभ्यां नमः । एवं हृदयादिन्यासः । लक्ष्मणांशजेति दिग्बंधः ।

अथ ध्यानम्

रामस्य संस्थितं वामे पार्श्वे विनयपूर्वकम् । कैकेयीनन्दनं सौम्यं मुकुटेनातिरंजितम् ॥५६॥
रत्नकंकणकेयूरवनमालाविराजितम् । रशनाकुंडलधरं रत्नहारसनूपुरम् ॥५७॥
व्यजनेन वीजयंतं जानकीकांतमादरात् । रामन्यस्तेक्षणं वीरं कैकेयीतोषवर्द्धनम् ॥५८॥
द्विभुजं कंजनयनं दिव्यपीतांबरान्वितम् । सुभुजं सुंदरं मेघश्यामलं सुन्दराननम् ॥५९॥
रामवाक्ये दत्तकर्णं रक्षोघ्नं खड्गधारिणम् । धनुर्बाणधरं श्रेष्ठं धृततूणीरमुत्तमम् ॥६०॥
सभायां संस्थितं रम्यं कस्तूरीतिलकांकितम् । मुकुटस्थावतंसेन शोभितं च स्मिताननम् ॥६१॥
रविवंशोद्भवं दिव्यरूपं दशरथात्मजम् । मथुरावासिनं देवं लवणासुरमर्दनम् ॥६२॥
एवं ध्यात्वा तु शत्रुघ्नं रामपादेक्षणं हृदि । पठनीयं वरं चेदं कवचं तस्य पावनम् ॥६३॥
पूर्वे त्ववतु शत्रुघ्नः पातु याम्ये सुदर्शनः । कैकेयीनन्दनः पातु प्रतीच्यां सर्वदा मम ॥६४॥

धनार्थी धन प्राप्त करता है । इस तरह उसे जिस किसी वस्तुकी इच्छा होती है, वे सब इस कवचके पाठसे प्राप्त हो जाती हैं ॥ ५१ ॥ ५२ ॥ यह बात मैं बिल्कुल सच कह रहा हूँ—झूठ कुछ भी नहीं । रामकी उपासना करनेवालोंको चाहिए कि सदा इस कवचका पाठ किया करें ॥ ५३ ॥ हे सुतीक्ष्ण ! अब मैं तुम्हें शत्रुघ्नकवच बताऊँगा । तुम आदरपूर्वक सुनो । यह शत्रुघ्नकवच भी सब कामनायें पूर्ण करने और रामकी सद्भक्ति बढ़ानेवाला है ॥ ५४ ॥ धनुष धारण करनेवाले, बड़ा-सा तरकस धारण किये, श्रीरामचन्द्रजीके पास वामभागमें खड़े, अपने हाथसे ताड़का पंखा झलते हुए, सूर्यके समान अतिशय विचित्र उस पंखेकी दीप्ति है, ऐसे शत्रुघ्नजीको मैं प्रणाम करता हूँ ॥ ५५ ॥ "अस्य श्री" से लेकर "लक्ष्मणांशजेति दिग्बन्धः" तक अङ्ग-न्यास आदिकी विधि बतलायी गयी है । इसके आगे ध्यान है—रामके पास वामभागमें विनयपूर्वक खड़े कैकेयीके आनन्ददाता, सौम्यस्वरूप, मुकुटसे अतिरंजित, रत्नजटित कंकण, केयूर तथा वनमालासे अलंकृत, सिकड़ी और कुण्डल धारण किये, रत्नहार तथा सुन्दर नूपुर पहने, आदरपूर्वक रामचन्द्रजीको पंखा झलते और रामकी ओर निहारते हुए, कैकेयीका आनन्द बढ़ानेवाले वीर, जिनके दो भुजायें हैं, कमल जैसे नेत्र हैं, दिव्य पीताम्बर पहने, सुन्दर भुजावाले, मेघके सदृश श्यामल तथा सुन्दर मुखवाले, रामकी बातोंमें कान लगाये, राक्षसोंको मारनेवाले, खड्ग धारण किये, धनुष और बाणसे सुसज्जित, बड़ा सा तूणीर धारण किये, सभामें स्थित, रम्य, कस्तूरीका तिलक लगाये, मुकुट और कुण्डलसे सुशोभित, मुस्कराते मुखवाले, सूर्यवंशमें जायमान, दिव्यरूपधारी, दशरथके पुत्र, मथुरानिवासी लवणासुरका मर्दन करनेवाले और श्रीरामके चरणोंमें

पातूदीच्यां रामबन्धुः पात्वधो भरतानुजः । रविवंशोद्भवश्चोर्ध्वं मध्ये दशरथात्मजः ॥६५॥
सर्वतः पातु मामत्र कैकेयीतोषवर्द्धनः । श्यामलांगः शिरः पातु भालं श्रीलक्ष्मणांशजः ॥६६॥
भ्रुवोर्मध्ये सदा पातु सुमुखोऽत्रावनीतले । श्रुतकीर्तिपतिर्नेत्रे कपोले पातु राघवः ॥६७॥
कर्णौ कुंडलकर्णोऽव्यान्नासाग्रे नृपवंशजः । मुखं मम युवा पातु वाणीं पातु स्फुटाक्षरः ॥६८॥
जिह्वां सुबाहुतातोऽव्याद्यूपकेतुपिता द्विजान् । चिबुकं रम्यचिबुकः कंठं पातु सुभाषणः ॥६९॥
स्कन्धौ पातु महातेजा भुजौ राघववाक्यकृत् । करौ मे कंकणधरः पातु खड्गी नखान्मम ॥७०॥
कुक्षिं रामप्रियः पातु पातु वक्षो रघूत्तमः । पार्श्वे सुरार्चितः पातु पातु पृष्ठिं वराननः ॥७१॥
जठरं पातु रक्षोघ्नः पातु नाभिं सुलोचनः । कटिं भरतमंत्री मे गुह्यं श्रीरामसेवकः ॥७२॥
रामार्पितमनाः पातु लिंगमूरू स्मिताननः । कोदंडपाणिः पात्वत्र जानुनी मम सर्वदा ॥७३॥
राममित्रः पातु जंघे गुल्फौ पातु सनूपुरः । पादौ नृपतिपूज्योऽव्याच्छ्रीमान्पादांगुलीर्मम ॥७४॥
पात्वंगानि समस्तानि ह्युदारांगः सदा मम । रोमाणि रमणीयोऽव्याद्रात्रौ पातु सुधार्मिकः ॥७५॥
दिवसे सत्यसंधोऽव्याद्भोजने शरसत्करः । गमने कलकंठोऽव्यात्सर्वदा लवणांतकः ॥७६॥
एवं शत्रुघ्नकवचं मया ते समुदीरितम् । ये पठंति नरास्त्वेतत्ते नराः सौख्यभागिनः ॥७७॥
शत्रुघ्नस्य वरं चेदं कवचं मंगलप्रदम् । पठनीयं नरैर्भक्त्या पुत्रपौत्रप्रवर्द्धनम् ॥७८॥
अस्य स्तोत्रस्य पाठेन यं यं कामं नरोऽर्थयेत् । तं तं लभेन्निश्चयेन सत्यमेतद्वचो मम ॥७९॥
पुत्रार्थी प्राप्नुयात्पुत्रं धनार्थी धनमाप्नुयात् । इच्छाकामं तु कामार्थी प्राप्नुयात्पठनादिना ॥८०॥
कवचस्यास्य भूम्यां हि शत्रुघ्नस्य विनिश्चयात् । तस्मादेतत्सदा भक्त्या पठनीयं नरैः शुभम् ॥८१॥

नेत्र लगाये हुए शत्रुघ्नजीका ध्यान करके इस उत्तम शत्रुघ्नकवचका पाठ करना चाहिए ॥५६-६३॥ पूर्वकी ओर शत्रुघ्न, दक्षिण तरफ सुदर्शन और पश्चिम ओर कैकेयीनन्दन हमारी रक्षा करें ॥ ६४ ॥ उत्तरमें रामबन्धु, नीचे भरतके छोटे भ्राता, ऊपर सूर्यवंशज और मध्यमें दशरथात्मज मेरी रक्षा करें ॥ ६५ ॥ कैकेयीको आनन्द देनेवाले मेरी चारों ओर रक्षा करें । श्यामल अङ्गवाले शत्रुघ्न मस्तककी और लक्ष्मणके अंशज मेरे ललाटकी रक्षा करें ॥ ६६ ॥ सुन्दर मुखवाले सदा मेरे भौंहोंके मध्यभागकी, श्रुतकीर्तिके पति नेत्रोंकी तथा राघव दोनों कपोलोंकी रक्षा करें ॥ ६७ ॥ कानोंमें कुण्डल धारण करनेवाले मेरे कानोंकी, नृपवंशज नासिकाके अग्रभागकी युवारूपधारी शत्रुघ्न मेरे मुखकी एवं स्फुट अक्षर बोलनेवाले मेरी वाणीकी रक्षा करें ॥ ६८ ॥ सुबाहुके पिता कन्धोंकी, यूपकेतुके पिता दाँतोंकी, सुन्दर चिबुकवाले मेरे चिबुककी और सुन्दर बातें करनेवाले मेरे कण्ठकी रक्षा करें ॥ ६९ ॥ महातेजस्वी कन्धोंकी, रामकी आज्ञा पालन करनेवाले भुजाकी, कंकणधारी मेरे हाथोंकी और खड्गको धारण करनेवाले शत्रुघ्न नखकी रक्षा करें ॥ ७० ॥ रामके प्रिय मेरे उदरकी, रघूत्तम वक्षस्थलकी, सुरार्चित पार्श्वभागकी और वरानन पृष्ठभागकी रक्षा करें ॥ ७१ ॥ रक्षोघ्न जठरकी, सुलोचन नाभिकी, भरतके मंत्री कटिभागकी और श्रीरामसेवक गुह्यप्रदेशकी रक्षा करें ॥ ७२ ॥ जिन्होंने अपना मन रामको अर्पित कर दिया है वे शत्रुघ्न लिंगकी, मुसकाते मुखवाले ऊरुभागकी और हाथोंमे धनुष धारण करनेवाले सर्वदा मेरी जानुओंकी रक्षा करें ॥ ७३ ॥ राममित्र जाँघोंकी, सुन्दर नूपुर पहननेवाले गुल्फकी, नृपतिपूज्य पैरोंकी और श्रीमान् मेरी उँगलियोंकी रक्षा करें ॥ ७४ ॥ उदार अङ्गवाले शत्रुघ्न सदा मेरे समस्त अङ्गोंकी रक्षा करें। रमणीय आकृतिवाले मेरे लोमोंकी, रात्रिके समय सुधार्मिक, दिवसके समय सत्यसंध, भोजनके समय सुन्दर बाण धारण करनेवाले, गमनके समय सुन्दर वाणी बोलनेवाले और सब समय लवणासुरको मारनेवाले शत्रुघ्न मेरी रक्षा करें ॥ ७५ ॥ ७६ ॥ इस तरह मैंने तुम्हें शत्रुघ्नकवच कह सुनाया । जो लोग भक्तिपूर्वक इसका पाठ करते हैं, वे सुखभागी होते हैं ॥ ७७ ॥ यह कवच बड़ा सुन्दर, मंगलप्रद तथा पुत्र-पौत्र बढ़ानेवाला है ॥ ७८ ॥ इन स्तोत्रका पाठ करनेवाला प्राणी जो-जो वस्तुयें चाहता है, उन्हें अवश्य पाता है । मेरी बात सच मानो । इसमें कोई संशय नहीं है ॥ ७९ ॥ पुत्र चाहनेवाला पुत्र, धन चाहनेवाला धन तथा जो प्राणी जो

आदौ नरैर्मारुतेश्च पठित्वा कवचं शुभम् । ततः शत्रुघ्नकवचं पठनीयमिदं शुभम् ॥८२॥
पठनीयं भरतस्य कवचं परमं ततः । ततः सौमित्रिकवचं पठनीयं सदा नरैः ॥८३॥
पठनीयं ततः सीताकवचं भाग्यवर्द्धनम् । ततः श्रीरामचन्द्रस्य कवचं सर्वथोत्तमम् ॥८४॥
पठनीयं नरैर्भक्त्या सर्ववांछितदायकम् । एवं षट् कवचान्यत्र पठनीयानि सर्वदा ॥८५॥
पठनं षट्कवचानां श्रेष्ठं मोक्षैकसाधनम् । ज्ञात्वाऽत्र मानवैर्भक्त्या कार्यं यः पठनं सदा ॥८६॥
अशक्तेनात्र चत्वारि पठनीयानि सादरम् । हनूमतश्च सौमित्रेः सीताया राघवस्य च ॥८७॥
इमानि पठनीयानि चत्वारि कवचानि हि । चतुर्णां कवचानां च पठने मानवस्य च ॥८८॥
न यद्यत्रावकाशश्चेत्तदा त्रीणि पठेन्नरः । मारुतेश्चाथ सीतायास्तथा श्रीराघवस्य च ॥८९॥
त्रयाणां कवचानां च न पाठावसरो यदा । पठनार्थं मानवस्य तदा द्वे कवचे स्मृते ॥९०॥
मारुतेश्चाथ रामस्य सीताया राघवस्य वा । नैकमेव पठेच्चात्र श्रीरामकवचं शुभम् ॥९१॥
अवकाशे कवचानां षट्कमेव सदा नरैः । पठनीयं क्रमेणैव कर्तव्यो नालसः कदा ॥९२॥
यदाऽवकाशो नास्त्येव तदा तेषां सुखाप्तये । मया विशेषः प्रोक्तोऽयं न सर्वेषां मयेरितः ॥९३॥

इति शत्रुघ्नकवचम् ।

श्रीरामदास उवाच

एवं शिष्य त्वया यद्यत्पृष्टं तत्तन्मयोदितम् । अन्यत्किंचित्प्रवक्ष्यामि तच्छृणुष्वाद्य सादरम् ॥९४॥
गीतैः प्रबंधैः श्रीरामः सदा गेयोऽत्र मानवैः । वीणावाद्यादिभिर्भक्त्या नृत्यान्यपि समाचरेत् ॥९५॥
दशरथनंदनेति पूर्वमुक्त्वा ततः परम् । मेघश्यामेति वै चोक्त्वा तथा रविकुलेति च ॥९६॥
मंडनराजारामेति द्वात्रिंशाक्षरजपस्त्वयम् । मनुः सदा जपनीयो वीणावाद्येन सुस्वरम् ॥९७॥

दशरथनंदन मेघश्याम रविकुलमंडन राजाराम इति मनुः ।

कीर्तनेऽस्य मनोर्नैव कार्यो न्यासो जपे स्मृतः । एवं सर्वेषु मंत्रेषु बोद्धव्यं मानवैर्भुवि ॥९८॥

भो चाहता है, सो उसे मिलता है ॥ ८० ॥ इस भूमण्डलमें शत्रुघ्नकवच बड़ा उत्तम है। अतएव मनुष्यको अवश्य इसका पाठ करना चाहिए ॥ ८१ ॥ लोगोंको चाहिए कि पहले हनुमत्कवचका पाठ करके इस शत्रुघ्न-कवचका पाठ करें ॥ ८२ ॥ इसके बाद भरतकवच और भरतकवचके बाद सौमित्रकवचका पाठ करें ॥ ८३ ॥ इसके बाद भाग्यको बढ़ानेवाले सीताकवचका पाठ करके श्रीरामकवचका पाठ करें ॥ ८४ ॥ इस तरह सब वांछित फल देनेवाले छः कवचोंका प्रतिदिन पाठ करते रहें ॥ ८५ ॥ इन छहों कवचोंका पाठ श्रेष्ठ और मोक्षका साधन है। ऐसा समझकर लोगोंको सर्वदा इनका पाठ करते रहना चाहिए ॥ ८६ ॥ यदि ऐसा न कर सके तो हनुमान्जी, लक्ष्मण, सीता तथा रामके कवचका पाठ करे। यदि इन चारोंके पाठ करनेका समय किसी प्राणीको न मिले तो हनुमान्जी, सीता तथा रामके कवचका ही पाठ करें॥ ८७-८९ ॥ यदि तीन कवचके पाठ करनेका भी अवसर न मिल सके तो हनुमान तथा राम इन दोनों कवचोंका ही पाठ करे। किन्तु इतना अवश्य ध्यान रक्खे कि ऊपर बतलाये कवचोंमेंसे किसी एकका अथवा रामकवचका ही पाठ करके न रह जाय ॥ ९० ॥ ९१ ॥ जब समय मिले, तब छहों कवचोंका क्रमशः पाठ करे। आलस्यवश टाल न दे ॥९२॥ यदि किसी विशेष अड़चनके कारण कुछ भी समय न मिल सके, तभीके लिए यह परिहार बतलाया गया है। यह सब समय और सबके लिए लागू नहीं है॥९३॥ रामदासने कहा-हे शिष्य ! तुमने हमसे जो पूछा, वह सुनाया। अब और कुछ बातें बतला रहा हूँ, उन्हें आदरपूर्वक सुनो ॥ ९४ ॥ लोगोंको यह भी चाहिए कि सदा गीत-कविता आदिसे रामचन्द्रजीका गुण गाया करें और वीणा आदि वाद्योंके साथ भक्तिपूर्वक नाचें ॥ ९५ ॥ पहले "दशदयनन्दन" ऐसा कहकर "मेघश्याम' फिर "रविकुलमण्डन" ऐसा कहकर "राजाराम" कहते हुए "दरशयनन्दन मेघश्याम रविकुलमण्डन राजाराम" इस मन्त्रका कीर्तन और जप किया करें ॥ ९६॥ ९७ ॥ इस

रामजयेति चोक्त्वा तु त्रिवारं चात्र सुस्वरम् । रामेति द्वेऽक्षरे त्वन्ते सोक्त्वा वीणास्वरेण च ॥९९॥
चतुर्दशाक्षरश्चायं कीर्तनार्थं मयेरितः ॥१००॥
राम जय राम जय राम जय राम इति मनुः ।
मंत्रशास्त्रेषु ये मंत्रास्ते जपार्थं प्रकीर्तिताः । इमे मंत्राः कीर्तनार्थं ज्ञातव्या मानवोत्तमैः ॥१०१॥
एतेषामपि चेद्भक्त्या मंत्राणां च जपः कृतः । तदा भस्मीभविष्यंति तेषां पापानि वै क्षणात् ॥१०२॥
अन्यान् मंत्रान् प्रवक्ष्यामि तान् शृणुष्व द्विजोत्तम । राजीवलोचनेत्युक्त्वा मेघश्यामेति वै ततः ॥१०३॥
तथा सीतारंजनेति राजारामेति वै ततः । एकोनविंशद्वर्णश्च राममंत्रस्त्वयं स्मृतः ॥१०४॥
राजीवलोचन मेघश्याम सीतारंजन राजाराम इति मंत्रः ।
अयं मंत्रः सुस्वरेण कीर्तनीयो मुहुर्मुहुः । वीणास्वरेण संयुक्तश्चासने गमनेऽपि च ॥१०५॥
श्रीशब्दपूर्वं जयशब्दमध्यं जयद्वयेनापि पुनः प्रयुक्तम् ।
त्रिःसप्तकृत्वा रघुनाथनाम जपं निहन्याद्‌द्विजकोटिहत्याः ॥१०६॥
त्रयोदशाक्षरश्चायं राममंत्रः शुभावहः । जपनीयः कीर्तनीयः सर्वदाऽयं मुहुर्मुहुः ॥१०७॥
श्रीराम जय राम जय जय राम इति मनुः ।
अयं मंत्रः सुस्वरेण तथा वीणास्वरादिना । कीर्तनीयो मुदा मर्त्यैर्मंत्रशास्त्रेऽप्ययं स्मृतः ॥१०८॥
तस्मात्सदा जपनीयः सर्वसिद्धिप्रदायकः । अष्टादशाक्षरं मंत्रं त्वन्यं शृणु शुभावहम् ॥१०९॥
उक्त्वा सीतारजनेति मेघश्यामेति वै ततः । कौसल्यासुतेत्युक्त्वाथ राजारामेति वै ततः ॥११०॥
सीतारंजन मेघश्याम कौसल्यासुत राजाराम इति मनुः ।
अष्टादशाक्षरश्चायं कीर्तनीयो महामनुः । वीणास्वरसमेतश्च कलकंठेन सुस्वरः ॥१११॥
रविवरकुलजातं वन्दे चेति प्रकीर्त्य च । सुरभूसुरेत्युक्त्वाऽग्रे गीतं चेति ततः परम् ॥११२॥

मन्त्रका जप करते समय न्यास आदि करनेकी कोई आवश्यकता नहीं रहती। इसी तरह आगे बतलाये जानेवाले मन्त्रोंके भी विषयमें जानना चाहिए ॥ ९८ ॥ "रामजय" ऐसा तीन बार कहकर वीणाके स्वरसे "राम" इस दो अक्षरका उच्चारण करना चाहिए। यह चतुर्दशाक्षरात्मक मन्त्र मैंने भक्तोंको कीर्तन करनेके लिए बतलाया है। "राम जय राम जय राम राम जय राम" यह मन्त्र है। मन्त्रशास्त्रमें जितने मन्त्र बतलाये गये हैं, वे सब जप करनेके लिए हैं। किन्तु ये मन्त्र कीर्तन करनेके लिए भी लिखे गये हैं ॥ ९९-१०१ ॥ यदि भक्तिपूर्वक इनका जप भी किया जाय तो क्षणभरमें जप करनेवालेके सारे पातक जल जायँगे ॥ १०२ ॥ हे द्विजोत्तम! तुम्हें मैं और भी बहुतसे मन्त्र बतलाऊँगा। 'राजीवलोचन' ऐसा कहकर 'मेघश्याम' तथा 'सीतारञ्जन' और 'राजाराम' ऐसा कहे। यह उन्नीस अक्षरोंका मन्त्र है ॥ १०३ ॥ १०४ ॥ 'राजीवलोचन मेघश्याम सीतारञ्जन राजाराम' यह मन्त्र है। अच्छी तरह मीठे स्वरसे बारम्बार इस मन्त्रका कीर्तन करता रहे। चलते-फिरते उठते बैठते सदा इस मन्त्रका कीर्तन करे ॥ १०५ ॥ आदिमें 'श्री' उसके बाद 'जय' फिर दो जयके बीचमें 'राम' इक्कीस बार नाम जपनेवाला मनुष्य करोड़ों ब्रह्महत्याके पातक नष्ट कर देता है ॥ १०६ ॥ यह त्रयोदशाक्षर राममंत्र बड़ा कल्याणदायक है। इसलिए लोगोंको चाहिए कि बारम्बार इस मन्त्रका जप और कीर्तन करते रहें ॥१०७॥ "श्रीराम जय राम जय जय राम" यह मन्त्र है। लोगोंको उचित है कि इस मन्त्रको वीणा आदिके स्वरके साथ-साथ प्रीतिपूर्वक कीर्तन करें। मंत्रशास्त्रमें भी इस मंत्रका उल्लेख है ॥ १०८ ॥ इसलिए सर्वदा इस मंत्रका जप भी करना चाहिए। क्योंकि यह सब प्रकारकी सिद्धियोंको देनेवाला है। अब मैं एक और अष्टादशाक्षर मंत्र बतला रहा हूँ। वह भी बड़ा मंगलकारी है ॥ १०९ ॥ "सीतारंजन" ऐसा कहकर "मेघश्याम" फिर "कौसल्यासुत" कहकर "राजाराम" कहना चाहिए ॥ ११० ॥ "सीतारंजन मेघश्याम कौसल्यासुत राजाराम" यह मन्त्र है। इस अष्टादशाक्षर महामन्त्रका कीर्तन करना चाहिए। कीर्तन वीणाके स्वर-के साथ तथा कोकिलके समान मीठे स्वरोंमें होनेसे विशेष लाभदायक होता है ॥ १११ ॥ "रविवरकुलजातं

सप्तदशसुवर्णश्च राममंत्रस्त्वयं शुभः । कीर्तनीयः सुस्वरं हि वीणावाद्यस्वरादिना ॥११३॥

रविवरकुलजातं वन्दे सुरभूसुरगीतम् इति मनुः ।

विष्णुदास शृणुष्वान्यान् राममंत्रान् शुभावहान् । येषां स्मरणमात्रेण महत्पापं लयं व्रजेत् ॥११४॥
कौसल्यासुतेत्युक्त्वाथ रामेति द्वेऽक्षरे तथा । तथा सीतारंजनेति मेघश्यामेति वै ततः ॥११५॥
षोडशाक्षरमंत्रोऽयं कीर्तनीयः शुभावहः । वीणास्वरपूर्वकश्च कलकंठेन सुस्वरः ॥११६॥

कौसल्यासुत राम सीतारंजन मेघश्याम इति मनु ।

षोडशाक्षरमंत्रोऽयं कीर्तनीयः सदा नरैः । सर्वपापक्षयकरः सर्ववांछितदायकः ॥११७॥
दशरथनंदनेति पूर्वमुक्त्वा ततः परम् । मेघश्यामेति वै चोक्त्वा सीतेति द्वेऽक्षरे ततः ॥११८॥
रंजनेति ततश्चोक्त्वा राजारामेति वै ततः । विंशाक्षरमनुश्चायं महापातकनाशनः ॥११९॥

दशरथनन्दन मेघश्याम सीतारंजन राजाराम इति मनुः ।

अयं विंशाक्षरो मन्त्रः कीर्तनीयः सुखप्रदः । वीणास्वरसमेतश्च महापुण्यप्रदः स्मृतः ॥१२०॥
वंदे रघुवीरमिति चोक्त्वा चैव ततः परम् । उक्त्वा सीताकान्तमिति रणधीरमिति क्रमात् ॥१२१॥
चतुर्दशाक्षरश्चायं राममंत्रः शुभावहः । कीर्तनीयो जनैर्भक्त्या महामंगलकारकः ॥१२२॥

वंदे रघुवीरं सीताकांतं रणधीरम् इति मनुः ।

जय राम जय राम संकीर्त्य सुस्वरं ततः । जय जयेति संकीर्त्य रामेति द्वेऽक्षरे पुनः ॥१२३॥
चतुर्दशाक्षरश्चायं तृतीयः कथितो मनुः । कीर्तनीयो जनैर्नित्यं महापातकनाशनः ॥१२४॥

जय राम जय राम जय जय राम इति मनुः ।

मनुः सीताराघवेति पंचवर्णात्मकः स्मृतः । जपनीयः कीर्तनीयो वीणावाद्येन सुस्वरः ॥१२५॥

सीताराघव इति मनुः

वन्दे" इसका उच्चारण करके "सुरभूसुर" ऐसा कहकर "गीतम्" का उच्चारण करे ॥११२॥ सत्रह सुन्दर वर्णों-से इस शुभ राममंत्रकी रचना की गयी है। लोगोंको चाहिए कि वीणा आदि वाद्योंके साथ मीठे स्वरसे इस मंत्रका कीर्तन किया करें ॥ ११३ ॥ "रविवरकुलजातं वंदे सुरभूसुरगीतम्" यह मत्रका स्वरूप है। रामदास कहते हैं कि हे विष्णुदास! अब मैं और-और बहुतसे शुभ मंत्र तुम्हें बता रहा हूँ, सुनो। जिनके स्मरणमात्रसे बड़े बड़े पाप भी नष्ट हो जाते हैं ॥ ११४ ॥ "कौसल्यासुत" ऐसा कहकर 'राम' इसका उच्चारण करे। तदनन्तर "सीतारंजन" और उसके बाद "मेघश्याम" कहे ॥ ११५ ॥ यह षोडशाक्षर मंत्र बड़ा शुभ है। इसीलिए लोगोंको चाहिए कि मीठी आवाजसे वीणा आदि वाद्योंके साथ-साथ इसका कीर्तन करें ॥ ११६ ॥ "कौसल्यासुत राम सीतारंजन मेघश्याम" यही मंत्रका स्वरूप है। इस षोडशाक्षर मंत्रका लोग सर्वदा कीर्तन करें। क्योंकि यह समस्त पापोंका नाशक और सब प्रकारकी अभिलषित कामनाओंका पूर्ण करनेवाला महामंत्र है ॥ ११७ ॥ "दशरथनन्दन" ऐसा कहकर पहले "मेघश्याम" और उसके बाद "सीता" इन दो अक्षरोंको कहकर "रञ्जन" ऐसा कहते हुए "राजाराम" कहे। यह बीस अक्षरोंवाला राममंत्र बड़े-बड़े पातकोंका नाशक है ॥ ११८ ॥ ११९ ॥ "दशरथनन्दन मेघश्याम सीतारञ्जन राजाराम" यही इस मंत्रका स्वरूप है। भक्तोंको चाहिए कि सब प्रकारका सुख देनेवाले इस विंशाक्षर मंत्रका मीठे स्वर तथा वीणा आदि वाद्योंके साथ कीर्तन करें। क्योंकि यह बड़ा पुण्यदायक मंत्र है॥१२०॥ "वन्दे वीरं रघुवीरम्" ऐसा कहकर "सीताकान्तम्" तथा "रणधीरम्" ये वाक्य कहें ॥ १२१ ॥ यह परम सुखदायक चतुर्दशाक्षरात्मक राममंत्र है। लोगोंको उचित है कि महामंगल करनेवाले इस मंत्रका भक्तिपूर्वक कीर्तन करें ॥ १२२ ॥ "वन्दे रघुवीरं सीताकान्तं रणधीरम्" यह इस मंत्रका स्वरूप है। "जय राम जय राम" ऐसा कहकर "जयजय" ऐसा कहते हुए "राम" ये दो अक्षर कहें। "जय राम जय राम जय जय राम" यह इस मंत्रका स्वरूप है। चतुर्दशाक्षर मंत्रोंमें यह तीसरा मंत्र है। लोगोंको चाहिए कि महापातकोंका नाश करनेवाले इस मंत्रका कीर्तन किया करें ॥ १२३ ॥ १२४ ॥

भजेति द्वेऽक्षरे पूर्वं सीतारामंमिति क्रमात् । मानसेति ततश्चोक्त्वा भजेति द्वेऽक्षरे पुनः ॥१२६॥
ततो राजाराम इति मंत्रः पञ्चदशाक्षरः । कीर्तनीयो मनुश्चाय वीणावाद्येन सुस्वरः ॥१२७॥

भज सीतारामं मानस भज राजारामम् इति मनुः ।

श्रीसीताराममित्युक्त्वा वन्दे चोक्त्वा ततः पुनः । श्रीराजाराममिति च कीर्तयेत्सुस्वरं मुहुः ॥१२८॥
द्वादशाक्षरमंत्रोऽयं कीर्तनीयः सदा जनैः । वीणावाद्यादिना पुण्यः सर्ववांछितदायकः ॥१२९॥

श्रीसीतारामं वन्दे श्रीराजारामम् इति मनुः ।

रावणमर्दनेत्युक्त्वा रामेत्युक्त्वा ततः परम् । राघवेति ततश्चोक्त्वा वाली चेति ततःक्रमात् ॥१३०॥
मर्दनेति पुनश्चोक्त्वा रामेति द्वेऽक्षरे पुनः । स्मृतोऽष्टादशवर्णैश्च द्वितीयोऽयं मनुः शुभः ॥१३१॥

रावणमर्दन राम राघव वालीमर्दन रामेति मनुः ।

अयं मंत्रः कीर्तनीयः सर्वदा मानवोत्तमैः । श्रीसीताराममितिं च मानसेति ततः परम् ॥१३२॥
भजेति द्वेक्षरे चोक्त्वा रामेति द्वेऽक्षरे पुनः । राममिति द्वेऽक्षरे च मंत्रोऽयं परमः शुभः ॥१३३॥
चतुर्दशाक्षरश्चायं चतुर्थश्च मयेरितः । कीर्तनीयः सुस्वरोऽयं वीणावाद्यपुरःसरः ॥१३४॥

श्रीसीतारामं मानस भज राजारामम् इति मनुः ।

सीताराम जयेत्युक्त्वा राजारामेति वै ततः । अयं दशाक्षरो मंत्रः कीर्तनीयोऽत्र सुस्वरः ॥१३५॥

सीताराम जय राजाराम इति मनुः ।

श्रीसीताराममिति च वंदे राममिति क्रमात् । जय रामं ततश्चोक्त्वा त्रयोदशाक्षरो मनुः ॥१३६॥
कीर्तनीयः सदा मर्त्यैः सर्वपातकनाशनः । वीणावाद्यादिना नित्यं द्वितीयोऽयं मनुः स्मृतः१३७॥

श्रीसीतारामं वंदे रामं जय रामम् इति मनुः ।

मां पाह्यतीति चोक्त्वादौ दीनं राघव चेति हि । त्वत्पदयुगलीनं वै चेत्येष षोडशाक्षरः ॥१३८॥

'सीताराघव" यह पंचवर्णात्मक राममंत्र है। पूर्ववत् मीठे स्वर और वीणा आदि वाद्योंके साथ इस मंत्रका कीर्तन और जप करे ॥ १२५ ॥ "सीताराघव" यह इस मंत्रका स्वरूप है। पहले "भज" यह शब्द कहकर "सीतारामम्" कहे। उसके बाद "मानस" यह शब्द कहकर "भज राजारामम्" ऐसा कहे। यह पंचदशाक्षरात्मक राममंत्र है। इसे भी जपे या मीठे स्वर तथा वीणा आदि वाद्योंके साथ कीर्तन करे॥ १२६–१२८ ॥ "भज सीतारामं मानस भज राजारामम्" यह इस मंत्रका स्वरूप है। पहले "श्रीसीतारामम्" ऐसा कहकर "वन्दे" कहे और उसके बाद "श्रीराजारामम्" कहकर इस मंत्रका कीर्तन करे। यह द्वादशाक्षरात्मक मंत्र है। "श्रीसीतारामं वन्दे श्रीराजारामम्" यह इस मंत्रका स्वरूप है। लोगोंको उचित है कि सब प्रकारकी कामनायें पूर्ण करनेवाले इस मंत्रका जप और कीर्तन करें ॥१२९॥ पहले "रावणमर्दन" फिर "राम" उसके बाद "राघव" फिर "वालीमर्दन" तदनन्तर "राम" ऐसा कहे। अष्टादशाक्षर मंत्रोंमें यह दूसरा मंत्र है। "रावणमर्दन राम राघव वालीमर्दन राम" यह इस मन्त्रका स्वरूप है। सज्जनोंको चाहिए कि सर्वदा इस मन्त्रका जप किया करें। पहले "सीतारामम्" उसके बाद "मानस" फिर "भज" और उसके पश्चात् "राजारामम्" ऐसा कहें। यह बड़ा पवित्र मन्त्र है ॥ १३०–१३४ ॥ चतुर्दशाक्षरात्मक मंत्रोंमें यह चौथा मन्त्र है। इसका भी वीणा आदि वाद्योंके साथ कीर्तन तथा जप करना चाहिए। "श्रीसीतारामं मानस भज राजारामम्" यही इस मंत्रका स्वरूप है। पहले "सीताराम जय" फिर "राजाराम" ऐसा कहे। यह दशाक्षर राममंत्र है। लोगोंको चाहिए कि मीठे स्वरसे इस मंत्रका भी कीर्तन किया करें ॥ १३५ ॥ "सीताराम जय राजाराम" यही इस मंत्रका स्वरूप है। पहले "सीतारामम्" फिर "वंन्दे रामम्" और इसके बाद "जय राम" ऐसा कहें। यह त्रयोदशाक्षर राममंत्र है। संसारके प्राणियोंको चाहिए कि वीणा आदि वाद्योंके साथ नित्य इस मन्त्रका कीर्तन करें॥ १३६ ॥ १३७ ॥ "श्रीसीतारामं वन्दे रामं जय रामम्" यह मंत्रका स्वरूप है। पहले "मां पाहि अति"

कीर्त्तनीयो मनुर्मर्त्यैः सर्वपातककर्त्तनः । वीणावाद्यस्वरेणोच्चैः कलकंठेन सुस्वरः ॥१३९॥

मां पाह्यतिदीनं राघव त्वत्पदयुगलीनमिति ।

द्वितीयोऽयं मया प्रोक्तो मंत्रो वै षोडशाक्षरः ॥१४०॥

जय जयेति वै चोक्त्वा राघवेति ततः परम् । सप्ताक्षरमनुश्चायं कीर्तनीयः सदा नरैः ॥१४१॥

जय जय राघव इति मनुः ।

जयजयेति संकीर्त्य तथा रघुवरेति च । अष्टाक्षरमनुश्चायं कीर्तनीयः सदा नरैः ॥१४२॥

जय जय रघुवर इति मनुः ।

त्वं मां पालयेत्युक्त्वा सीतारामेति वै पुनः । नवाक्षरमनुश्चरमनुश्चायं कीर्तनीयः सदा नरैः ॥१४३॥

वीणावाद्यस्वरेणैव महापातकनाशनः ॥१४४॥

त्वं मां पालय सीताराम इति मनुः ।

सीताराम जयेत्युक्त्वा मनुः षडक्षरः स्मृतः । कीर्तनीयः सदा मर्त्यैर्वीणावाद्येन सुस्वरः ॥१४५॥

सीताराम जय इति मनुः ।

श्रीसीतारामेति मनुर्ज्ञेयः पञ्चाक्षरः शुभः । कीर्तनीयः सदा मर्त्यैर्वीणावाद्येन सुस्वरः ॥१४६॥

श्रीसीताराम इति मनुः ।

सीतारामेति मनुश्चतुर्वर्णात्मकः स्मृतः ।

सीताराम इति मनुः ।

श्रीरामेति त्र्यक्षरश्च रामेति द्व्यक्षरो मनुः ॥१४७॥

श्रीराम इति मनुः । राम इति मनुः ।

राकारो बिंदुना युक्तश्चैकवर्णात्मको मनुः । अयं सदा जपनीयः कीर्तनीयो न वै कदा ॥१४८॥

रां इति मनुः ।

रामजयेति चोक्त्वाऽऽदौ सीतारामेति वै ततः । राघवेति ततश्चोक्त्वा मंत्रस्त्वेकादशाक्षरः ॥१४९॥

फिर "दीनं राघव" इसके बाद "त्वत्पदयुगलीनम्" ऐसा कहे। यह षोडशाक्षर मन्त्र सब प्रकारके पापोंको काटनेवाला है। इसलिए लोगोंको चाहिए कि वीणा आदि बाजों और कोकिला जैसे मीठे तथा ऊँचे स्वरसे इस मन्त्रका कीर्तन करें ॥ १३८ ॥ १३९ ॥ "मां पाह्यतिदीनं राघव त्वत्पदयुगलीनम्" यह इस मन्त्रका स्वरूप है। षोडशाक्षर मन्त्रोंमें यह दूसरा मन्त्र है ॥ १४० ॥ पहले 'जय जय' ऐसा कहकर "राघव" कहे। यह सप्ताक्षर मन्त्र है। लोगोंको इसका भी कीर्तन करते रहना चाहिए ॥ १४१ ॥ "जय जय राघव" यह इस मंत्रका स्वरूप है। "जय जय" कहकर "रघुवर" कहे। यह अष्टाक्षर मंत्र है। लोगोंको इसका भी जप करते रहना चाहिए ॥ १४२ ॥ "जय जय रघुवर" यह इस मंत्रका स्वरूप है। "त्वं मां पालय" ऐसा कहकर "सीताराम" ऐसा कहे। यह नवाक्षर मन्त्र है। लोगोंको इस मन्त्रका भी जप तथा कीर्तन करते रहना चाहिये। क्योंकि यह बड़े-बड़े पापोंका नाशक है ॥ १४३ ॥ १४४ ॥ "त्वं मां पालय सीताराम" यह इस मन्त्रका स्वरूप है। "सीताराम जय" यह षडक्षर राममन्त्र है। संसारके लोगोंको चाहिए कि वीणा आदि वाद्योंके साथ इस मन्त्रका भी कीर्तन करें। "सीताराम जय" यह मन्त्रका स्वरूप है। "श्रीसीताराम" यह पञ्चाक्षर राम-मन्त्र है। यह भी महान् पातकोंका नाशक है। इसलिए लोगोंको इसका जप तथा कीर्तन करते रहना चाहिए ॥ १४५ ॥ १४६ ॥ "श्रीसीताराम" यह मन्त्रका स्वरूप है। "सीताराम" यह चतुर्वर्णात्मक राममन्त्र है। "श्रीराम" यह त्र्यक्षर राममन्त्र है। "राम" यह द्व्यक्षर मन्त्र कहा गया है ॥ १४७ ॥ "श्रीराम" और "राम" यह मन्त्रका स्वरूप है। राकारको बिन्दुयुक्त (रां) कर देनेसे एकाक्षर राममन्त्र हो जाता है। लोगोंको

राम जय सीताराम राघवेति मनुः ।

दशरथनंदनेति रघुकुलेति वै ततः । भूषणेति ततश्चोक्त्वा कौसल्येति ततः परम् ॥१५०॥
विश्रामेति ततश्चोक्त्वा पंकजलोचनेति च । रामेति द्व्यक्षरे चापि ह्यष्टाविंशाक्षरो मनुः ॥१५१॥
अयं सदा कीर्तनीयो वीणावाद्येन सुस्वरः । प्रोक्तः पातकविध्वंसी सर्ववांछितदायकः ॥१५२॥

दशरथनंदन रघुकुलभूषण कौसल्याविश्राम पंकजलोचन रामेति मनुः ।

सीताराम जयेत्युक्त्वा राघवेति ततः परम् । रामेति द्व्यक्षरे चापि मंत्रस्त्वेकादशाक्षरः ॥१५३॥
कीर्तनीयः सुस्वरोऽयं मंत्रो वीणास्वरेण च । महापातकहृत्प्रोक्तः सर्ववांछितदायकः ॥१५४॥

सीताराम जय राघव रामेति मनुः ।

एकादशाक्षरश्चायं मंत्रः प्रोक्तो मयाऽत्र हि । द्वितीयः परमः श्रेष्ठो महापातकनाशनः ॥१५५॥
पंचवटीस्थितेत्युक्त्वा रामजयजयेति च । दशरथनन्दनेति रामेति द्व्यक्षरे तथा ॥१५६॥
एकविंशाक्षरश्चायं कीर्तनीयो महामनुः । कलकण्ठेन मर्त्यैश्च महापातकनाशनः ॥१५७॥

पञ्चवटीस्थित राम जय जय दशरथनंदन रामेति मनुः ।

दशरथसुतेत्युक्त्वा बालं वंदे त्विति क्रमात् । रामं घननीलमिति मंत्रोऽयं षोडशाक्षरः ॥१५८॥
तृतीयोऽयं मया प्रोक्तः कीर्तनीयो मनोरमः । वीणावाद्यस्वरेणैव महापुण्यविवर्द्धनः ॥१५९॥

दशरथसुतबालं वंदे रामं घननीलमिति मनुः ।

कोदंडखंडनेत्युक्त्वा दशशिरमर्दनेति च । कौसल्यासुत रामेति सीतारंजन चेति वै ॥१६०॥
राजारामेति वै चोक्त्वा ह्येकोनत्रिंशवर्णकः । कीर्तनीयो मनुश्चायं वीणावाद्येन सुस्वरः ॥१६१॥

कोदंडखंडन दशशिरमर्दन कौसल्यासुत राम सीतारंजन राजारामेति मनुः ।

चाहिए कि इस एकाक्षर मन्त्रका केवल जप करें, कीर्तन नहीं ॥ १४८ ॥ "रां" यह एकाक्षर मन्त्रका स्वरूप है। पहले "राम जय" कहकर "सीताराम" और इसके बाद "राघव" ऐसा कहे। यह एकादशाक्षरात्मक राममन्त्र है ॥ १४९ ॥ "राम जय सीताराम राघव" यह इस मन्त्रका स्वरूप है। पहले "दशरथनन्दन" फिर 'रघुकुल' फिर "भूषण" फिर "कौसल्याविश्राम" फिर "पंकजलोचन" और इसके बाद "राम" ऐसा कहे। यह अट्ठाईस अक्षरोंका राममन्त्र है ॥ १५० ॥ १५१ ॥ लोगोंको वीणा आदि वाद्योंके साथ मीठे स्वरसे सदा इस मन्त्रका जप और कीर्तन करना चाहिए। क्योंकि यह सब प्रकारका पातक नष्ट करनेवाला और अभीष्ट कामनाओंका पूरा करनेवाला मन्त्र है। "दशरथनन्दन रघुकुलभूषण कौसल्याविश्राम पंकजलोचन राम" यह इस मन्त्रका स्वरूप है। "सीताराम जय" ऐसा कहकर "राघव" और उसके बाद "राम" ऐसा कहे। यह एकादशाक्षर मन्त्र है ॥ १५२ ॥ १५३ ॥ यह भी सब प्रकारका पातक नष्ट करनेवाला है। "सीताराम जय राघव राम" यह इस मन्त्रका स्वरूप है। इसलिए लोगोंको चाहिए कि वीणा आदि वाद्योंके साथ मीठे स्वरसे इसका जप और कीर्तन करें। क्योंकि सब प्रकारकी कामनायें इससे पूर्ण हो जाती हैं ॥ १५४ ॥ 'पञ्चवटीस्थित' ऐसा कहकर "राम जय जय" और उसके बाद "दशरथनन्दन राम" ऐसा कहे। यह एकविंशाक्षर राममहामन्त्र है। इसका भी मीठे स्वरसे कीर्तन करना चाहिए। क्योंकि यह महामन्त्र बड़े-बड़े पातकोंको नष्ट कर देता है ॥ १५५ ॥ १५६ ॥ 'पञ्चवटीस्थित राम जय जय दशरथनन्दन राम' यह इस एकविंशाक्षर राममन्त्रका स्वरूप है। "दशरथसुत" ऐसा कहकर "बालं वन्दे" और इसके बाद "रामं घननीलम्" यह कहे। यह षोडशाक्षर राममन्त्र है। षोडशाक्षर मन्त्रोंमें यह बड़े-बड़े पातकोंको नष्ट करनेवाला महामंत्र है। इसे भी वीणा आदि बाजोंके साथ मीठे स्वरसे गाना चाहिए। क्योंकि यह अतिशय पुण्यवर्धनकारी मंत्र है ॥ १५७ ॥ १५८ ॥ "दशरथसुतबाल वन्दे रामं घननीलम्" यह इस मन्त्रका स्वरूप है। "कोदण्डखंडन" ऐसा कहकर "दशशिरमर्दन" इसके बाद "कौसल्यासुत राम सीतारंजन" और "राजाराम" कहे। यह मन्त्र एकोनत्रिंशाक्षरात्मक है। इसका भी वीणा आदि वाद्योंके साथ मीठे

कोदंडभंजनेत्युक्त्वा रावणमर्दनेति च । कौसल्येति ततश्चोक्त्वा विश्रामेति ततः परम् ॥१६२॥
सीतारंजनेति ततो राजारामेति वै ततः । सप्तविंशाक्षरश्चायं मनुः प्रोक्तः शुभप्रदः ॥१६३॥

कोदंडभंजन रावणमर्दन कौसल्याविश्राम सीतारंजन राजारामेति मनुः ।

कोदंडखंडनेत्युक्त्वा वालीताडन चेति वै । लंकादाहनेति ततः पाषाणतारणेति च ॥१६४॥
रावणमर्दनेत्युक्त्वा रविकुलेति वै ततः । भूषणेति ततश्चोक्त्वा कौसल्येति ततः परम् ॥१६५॥
विश्रामेति ततश्चोक्त्वा सीतारंजन चेति वै । राजारामेति वै चोक्त्वा पंचाशदक्षरो मनुः ॥१६६॥
अयं सदा कीर्तनीयो वीणावाद्येन सुस्वरः । मंत्राणां हि वरिष्ठोऽयं महापातकनाशनः ॥१६७॥

कोदंडखंडन वालीताडन लंकादाहन पाषाणतारण रावणमर्दन रविकुलभूषण
कौसल्याविश्राम सीतारंजन राजारामेति मनुः ।

एवं नानाविधा मंत्राः सन्ति शिष्य सहस्रशः । सहस्रवर्षपर्यन्तं कस्तान् वक्तुं भवेत् क्षमः ॥१६८॥
एते सर्वे कीर्तनाया वीणावाद्येन सुस्वराः । इमे मंत्रा जपनीया न ज्ञेया मानवोत्तमैः ॥१६९॥
मंत्रशास्त्रेषु ये प्रोक्तास्ते जप्या एव मानवैः । ते मन्त्राः कीर्तनीया न कीर्तनीयास्त्विमे स्मृताः १७०॥
एतान् मंत्रान् पुरस्कृत्य प्रबंधा विविधाः शुभाः । रचनीया बुद्धिमद्भिर्नानाभाषाभिरादरात् ॥१७१॥
ये ये नोक्ता मया मन्त्रास्तान् युक्त्या रचयेन्नरः। रचने नैव दोषोऽस्ति तैस्तुष्टो जायते हरिः ॥१७२॥
मंत्रैः प्रबंधैः काव्यैश्च स्तुतिभिः कीर्तनादिभिः । प्राचीनैर्वा कल्पितैर्वा रामो गेयः सदा नरैः ॥१७३॥
येन केन प्रकारेण कार्यं राघवचिंतनम् । पापराशिः क्षणाद्दग्धा श्रीरामचिंतनेन हि ॥
भवत्यत्र न संदेहः पावकेन यथा कुटी ॥१७४॥
दंभेन वातिभक्त्या वा निष्कामाद्वा सकामतः । यद्यत्र राघवो गीतस्तेन पापं हुतं भवेत् ॥१७५॥

स्वरसे कीर्तन करना चाहिए ॥ १५९ ॥ १६० ॥ "कोदण्डखण्डन दशशिरमर्दन कौसल्यासुत राम सीतारंजन राजाराम" यह इस मन्त्रका स्वरूप है । "कोदण्डभञ्जन" कहकर "रावणमर्दन" इसके बाद "कौसल्याविश्राम" और "सीतारंजन राजाराम" कहे । यह सप्तविंशाक्षरात्मक शुभ राममन्त्र है ॥ १६१ ॥ १६२ ॥ "कोदण्डभंजन रावणमर्दन कौसल्या विश्राम सीतारञ्जन राजाराम" यह इस मन्त्रका स्वरूप है । "कोदण्डखण्डन" कहकर "वालीताडन" और इसके बाद क्रमशः "लङ्कादाहन" "पाषाणतारण" "रावणमर्दन" "रविकुलभूषण" "कौसल्याविश्राम" और "सीतारञ्जन राजाराम" ऐसा कहे । यह पञ्चाशदक्षरात्मक राममन्त्र है। इसे भी वीणा आदि बाजोंके साथ मीठे स्वरसे गाना चाहिए । यह मन्त्र सब राममन्त्रोंसे श्रेष्ठ है और बड़े-बड़े पातक नष्ट कर देता है ॥ १६३–१६६ ॥ "कोदण्डखण्डन वालीताडन लङ्कादाहन पाषाणतारण रावणमर्दन रविकुलभूषण कौसल्याविश्राम सीतारञ्जन राजाराम" यह इस मन्त्रका स्वरूप है । हे शिष्य ! इस प्रकार हजारों राममन्त्र हैं। जिन्हें कोई हजारों वर्ष तक कहता जाय, फिर भी पूरी तौरसे नहीं कह सकता ॥ १६७ ॥ ऊपर बतलाये सब मन्त्रोंको वीणा आदि वाद्योंके साथ मीठे स्वरसे गाना चाहिए। श्रेष्ठ मनुष्योंको यह भी जान लेना चाहिए कि ये सब मन्त्र जपनेके लिए नहीं, बल्कि कीर्तन करनेके लिए हैं। इनके अतिरिक्त मन्त्रशास्त्रोंमें जितने मन्त्र बतलाये गये हैं, वे सब जपनेके लिए हैं, कीर्तन करनेके लिए नहीं। बुद्धिमान् कवियोंको चाहिए कि इन्हीं मन्त्रोंके आधारपर विविध भाषाओंमें विविध प्रकारके प्रबन्धोंकी रचना करें ॥ १६८–१७० ॥ मैंने जिन-जिन मन्त्रोंको नहीं बतलाया है, उन्हें भी बुद्धिमान् लोग चाहें तो बनाकर काममें ला सकते हैं। उन मन्त्रोंकी रचना करनेमें कोई दोष नहीं होता, बल्कि ऐसा करनेसे भगवान् प्रसन्न होते हैं ॥ १७१ ॥ मन्त्र, प्रबन्ध, काव्य, स्तुति, कीर्तन ये सब प्राचीन हों या अपनी ओरसे नये बनाये गये हों, उनका कीर्तन करना चाहिए। किसी भी प्रकारसे रामका स्मरण करना जरूरी है । क्योंकि रामका ध्यान करनेसे सारी पापराशि उसी तरह क्षणभरमें जल जाती है । जैसे फूसकी कुटीमें आग लगती है तो क्षणभरमें उसे जलाकर भस्म कर देती है ॥ १७२–१७४ ॥ दम्भसे, भक्तिसे, निष्काम या सकाम जिस किसी तरह भी रामनामका कीर्तन करनेसे पाप जल जाते हैं ॥१७५॥

यथा वह्निस्तूलराशिं स्पर्शितः कामनां विना । कामेन वा दहत्येव क्षणात्तद्वन्न संशयः ॥१७६॥
मंत्रैः प्रबन्धैः काव्यैश्च नानाचारित्रवर्णनैः
अत्यशुद्धैः स्तुतो रामः कल्पितैरपि स्वेच्छया । तैश्च तुष्टो भवत्यत्र श्रीरामो नात्र संशयः ॥१७७॥
विनाश्रयेण रामस्य यत्कृतं स्तवनादिकम् । तेनापि तुष्टः श्रीरामो भवत्येव न संशयः ॥१७८॥
आश्रयेणापि या निन्दा कृता श्रीराघवस्य च । सा भवेन्नरकायैव नात्र कार्या विचारणा ॥१७९॥
किं शास्त्रैश्च पुराणैश्च पठितैः पाठितैरपि । यदि रामे रतिर्नास्ति तैर्भवेन्मानवस्य किम् ॥१८०॥
रामप्रीतियुतस्यात्र मूर्खस्यापि नरस्य च । तद्भाषाकृतस्तुत्याद्यैः प्रसन्नो जायते हरिः ॥१८१॥
रामचन्द्रस्य प्राप्त्यर्थं यत्कृतं मानवैर्भुवि । तेनातितुष्टः श्रीरामो भवत्येव न संशयः ॥१८२॥
रामो गेयश्चिन्तनीयोऽत्र रामः स्तव्यो रामः सेवानीयोऽत्र रामः ।
ध्येयो रामो वंदनीयोऽत्र रामो दृश्यो रामः सर्वभूतान्तरेषु ॥१८३॥
इति श्रीशतकोटिरामचरितांतर्गते श्रीमदानंदरामायणे वाल्मीकीये मनोहरकांडे
लक्ष्मणादीनां कवचादिनिरूपणं नाम पंचदशः सर्गः ॥ १५ ॥

षोडशः सर्गः

(हनुमत्पताकारोपण व्रत)

श्रीरामदास उवाच

एवं यद्यत्त्वया पृष्टं तन्मया परिवर्णितम् । किमन्यच्छ्रोतुकामस्त्वं तद्वदस्व वदामि ते ॥ १ ॥

विष्णुदास उवाच

रामायणं नरः श्रुत्वा किं विधानं समाचरेत् । तत्त्वं वद महाभाग यद्यस्ति तत्सविस्तरम् ॥ २ ॥

श्रीरामदास उवाच

रामायणे श्रुते दद्याद्रथं हेममयं सुधीः । चतुर्भिर्वाजिभिर्युक्तं तथा क्षौमपताकया ॥ ३ ॥

जिस तरह बड़ीसे बड़ी रुईकी राशिको अग्नि जला डालती है, उसी तरह किसी कामनासे या बिना कामना हीके रामका कीर्तन तत्क्षण पापराशिको भस्म कर देता है। इसमें कोई संशय नहीं है ॥ १७६ ॥ मन्त्र प्रबन्ध तथा विविध प्रकारके चरित्रोंसे पूर्ण काव्योंसे या अपने बनाये अतिअशुद्ध पदोंसे ही रामका कीर्तन किया जाता है तो भी भगवान् प्रसन्न होते हैं। इसमें कोई सन्देह नहीं है ॥ १७७ ॥ बिना किसी आधारके भ बने काव्योंसे रामकी स्तुति करनेसे रामचन्द्रजी प्रसन्न होते हैं। यदि रामका आधार लेकर काव्य बनाया जाय और उसमें भगवान्की निन्दा की जाय तो वह नरकका ही साधन होता है। इसमें कोई सन्देह नहीं है ॥ १७८ ॥ १७९ ॥ यदि राममें प्रीति नहीं है तो बहुतेरे शास्त्रों और पुराणोंके पठन-पाठनसे कुछ भी लाभ नहीं होता ॥ १८० ॥ राममें प्रीति रखनेवाला मनुष्य चाहे मूर्ख ही हो, किन्तु वह यदि अपनी टूटी-फूटी भाषामें भगवान्का गुण गाता है तो उससे भगवान् प्रसन्न होते हैं ॥ १८१ ॥ इनके अतिरिक्त रामचन्द्रजीकी प्राप्तिके लिए जो कुछ भी उपाय किये जाते हैं, उनसे भगवान् अतिशय प्रसन्न होते हैं। इसमें कोई संशय नहीं है ॥ १८२ ॥ इसलिए लोगोंको चाहिए कि सदा रामका गुण गायें, उनका स्मरण करें, सेवा करें, ध्यान करें, और संसारके प्रत्येक प्राणीमें भगवान्की अलौकिक ज्योतिका दर्शन करें ॥ १८३ ॥ इति श्रीशतकोटिरामचरितान्तर्गते श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये पं० रामतेजपाण्डेयकृत 'ज्योत्स्ना' भाषाटीकासहिते मनोहरकांडे पञ्चदशः सर्गः ॥ १५ ॥

श्रीरामदास बोले—हे शिष्य! तुमने मुझसे जो कुछ पूछा, सो मैंने कह सुनाया। अब क्या सुनना चाहते हो, सो कहूँ ॥ १ ॥ विष्णुदासने कहा—आनन्दरामायण सुननेके अनन्तर लोगोंको क्या-क्या विधान करना चाहिए, सो आप विस्तारपूर्वक हमें बतलाइए ॥ २ ॥ श्रीरामदासने कहा—इस रामायणको सुननेके अनन्तर

एतैश्चैव समायुक्तं किङ्किणीनादनादितम् । संपादितैश्च सम्यग्वै धेनुं दद्यात्पयस्विनीम् ॥ ४ ॥
ब्राह्मणान् भोजयेत्पश्चात् शतमष्टोत्तरं सुधीः । एवं कृते विधाने तन्महाकाव्यं फलप्रदम् ॥ ५ ॥
रामायणं भवेन्नूनं नात्र कार्या विचारणा । यस्मिन् रामस्य संस्थानं रामायणमथोच्यते ॥ ६ ॥
एवं त्वया यथा पृष्टं मया तत्ते निवेदितम् ।

विष्णुदास उवाच

किंचिद्व्रतं हनुमतस्त्वं मां वक्तुमिहार्हसि ॥ ७ ॥

श्रीरामदास उवाच

यदा रामस्त्रिकूटाद्रौ नागपाशैस्तु पीडितः । नारदस्य वचः श्रुत्वा सस्मार विनतासुतम् ॥ ८ ॥
तदाऽसौ काश्यपो वीरः समागत्य रणांगणे । प्रणाममकरोत्तस्मै रामायामिततेजसे ॥ ९ ॥
निवार्य पन्नगास्त्रं तन्मेघनादसमीरितम् । तुष्टाव रघुवीरं तंससैन्यं च सलक्ष्मणम् ॥१०॥
उवाच प्रणिपत्याथ रामभद्रं खगेश्वरः ।

गरुड़ उवाच

आश्चर्यमिदमत्यंतं यद्भवानस्मरद्धि माम् ॥११॥
सति वीरे महारुद्रे सगणे श्रीहनूमति । सुग्रीवे च नले नीले सुषेणे जाम्बवत्यपि ॥१२॥
अङ्गदे दधिवक्त्रे च तारे च तरले तथा । मैंदे सति महावीर्ये किं मेऽत्रास्ति प्रयोजनम् ॥१३॥

श्रीराम उवाच

भवद्भीतिभुरागत्य विद्रुताश्च भुजङ्गमाः । एतेषु सत्सु वीरेषु किमु सैन्यमपीडयन् ॥१४॥

गरुड़ उवाच

रामदेव महाबाहो कपीनां चरितं शृणु । आत्मनोऽपि समाविष्टान्मा कुरुष्वात्र गर्हणम् ॥१५॥
साक्षात्त्वं भगवान्विष्णुर्लक्ष्मीस्तु जनकात्मजा । सौमित्रिः फणिराजोऽयं रुद्राश्च कपयः स्मृताः ॥१६॥

बुद्धिमान् मनुष्यको उचित है कि वह चार घोड़ों जुते और रेशमी पताकासे सुशोभित रथ कथावाचक ब्राह्मणको दान दे। विविध प्रकारसे अलंकृत गौका दान करे। इसके बाद एक सौ आठ ब्राह्मणोंको भोजन कराये। जो प्राणी आनन्दरामायण सुनकर ऐसा करता है, उसे इस महाकाव्यके श्रवण करनेका फल प्राप्त होता है। इसमें कोई संशय नहीं करना चाहिए। जिसमें श्रीरामचन्द्रजीका निवास हो, वही रामायण है अथवा जिसमें राम विद्यमान रहें, वह रामायण है ॥ ३-६ ॥ इस तरह तुमने मुझसे जैसा प्रश्न किया, मैंने उसका उत्तर दे दिया। विष्णुदासने कहा—हे गुरो! अब मुझे हनुमान्‌जीका भी शुछ व्रत बतला दीजिए ॥ ७ ॥ श्रीरामदासने कहा—जिस समय राम त्रिकूट पर्वतपर नागपाशमें बँध गये थे, उस समय उन्होंने नारदके कथनानुसार गरुड़का स्मरण किया। उसी समय गरुड़जी वहाँ जा पहुँचे और उन्होंने संग्रामभूमिमें भगवान्‌को प्रणाम किया ॥ ८ ॥ ९ ॥ तदनन्दर मेघनाद द्वारा प्रेरित नागपाशका निवारण करके समस्त सेना और लक्ष्मण सहित रामकी स्तुति की। फिर प्रणाम करके गरुड़जी भगवान् रामचन्द्रजीसे कहने लगे—हे प्रभो! यह सोचकर मुझे आश्चर्य होता है कि श्रीहनुमान्‌जीके रहते हुए भी मुझ दासको आपने स्मरण किया ॥ १० ॥ ११ ॥ हनुमान्‌जीके अतिरिक्त सुग्रीव, नल, नील, सुषेण, जाम्बवान्, अङ्गद, दधिवक्त्र, तार, तरल, मैंद आदि वीर थे। इन वीरोंके रहते हुए श्रीमान्‌को मुझे स्मरण करनेकी आवश्यकता क्यों पड़ी? ॥ १२ ॥ १३ ॥ श्रीरामचन्द्रजीने कहा—आपके भयसे सब सर्प भाग गये, किन्तु ये लोग यहाँ रहकर भी स्वयं उनके पाशमें बँध गये थे ॥ १४ ॥ गरुड़जी बोले—मैं आपको वानरोंका चरित्र सुनाता हूं, सुनिए। यद्यपि यहां बहुतसे आत्मीय वानर बैठे हैं, फिर भी मैं कहूँगा। इन लोगोंको चाहिए कि मेरी बातको अपनी निन्दाके रूपमें न मानें ॥ १५ ॥ आप साक्षात् विष्णु भगवान्

सुग्रीवो वीरभद्रोऽयं शम्भुरेष स्मृतो नलः । विद्धि दाशरथे नूनं गिरिशो नील एव च ।।१७।।
महायशाः सुषेणोऽयं जांबवांश्चाप्यजैकपात् । अहिर्बुध्न्यस्त्वंगदोऽत्र दधिवक्त्रः पिनाकधृक् ।।१८।।
अयुताजित्त्वयं तारः स्थाणुश्च तरलो मतः । मैंदो भर्गतनुः साक्षात् हनुमान् भगवान् स्मृतः।।१९।।
अवतीर्णा महारुद्रास्त्वदर्थं रघुनन्दन । अवसन् सर्वदेशेषु नानापर्वतमध्यतः ।।२०।।
धृत्वा च कपिरूपाणि अवतेरुर्महीतले । सर्वेऽपि कपितां प्राप्ताः कारण तद्ब्रवीमि ते ।।२१।।
पुरा देवासुरैः सिंधोर्मथिता व्याधयोऽभवन् । नानापीडाकराः सर्वा लूताविस्फोटकादयः ।।२२।।
तैरेव व्याधिभिः सर्वं पीडितं जगतीतलम् । ऋषयोऽपि नृपालाश्च ब्रह्माणं शरणं ययुः ।।२३।।
ऊचुश्च जगतां नाथं ब्रह्माणं कमलोद्भवम् । त्राहि त्राहि जगन्नाथ व्याधिभ्यो जगतीमिमाम् ।।२४।।
पीडितां दारुणैर्दोषैर्ज्वराद्यैश्च महोल्बणैः । त्रिदोषैर्जर्जरीभूतां विभ्रमैर्व्याकुलीकृताम् ।।२५।।
औषधानि न सिद्ध्यन्ति मंत्रयंत्राणि चैव हि । पीडयन्ति महारोगा मानवान्नाशकारिणः ।।२६।।
एतत्ते कथितं सर्वं ब्रह्मंस्त्वत्पुरतः सुधीः ।।२७।।
तत्तेषां वचनं श्रुत्वा रुद्रात्संप्रार्थयद्विधिः । तेऽपि श्रुत्वा ब्रह्मवाक्यं रुद्रा एकादशामलाः ।।२८।।
समाश्वास्य विरिंचिं ते वीरभद्रादयः सुराः । संभूय वानरश्चैव सुग्रीवप्रमुखा इमे ।।२९।।
पर्यटन् पर्वताग्राणि मण्डलानि च सर्वशः । नादयन्तो जगत्सर्वं बुभुक्कारैः सुदारुणैः ।।३०।।
क्ष्वेडितैः क्रीडनैस्तेषां व्याधयो नाशमाप्नुयुः । ततस्तु सकलां दृष्ट्वा वानरैर्वेष्टितां भुवम् ।।३१।।
तुतोष भगवान्ब्रह्मा ददौ तेभ्यो वरान् बहून् ।

ब्रह्मोवाच

युष्मास्वपि च मुद्राऽस्तु मृतसंजीवनी कला ।।३२।।
आज्ञाऽस्तु सर्वजगति वेगोऽस्तु मनसः समः । युष्मान्स्मरंति ये मर्त्याः पूजयन्ति भवत्तनूः।।३३।।

हैं, श्रीसीताजी लक्ष्मी, लक्ष्मण शेष भगवान्, ये सब वानर रुद्रगण, सुग्रीव वीरभद्र और नल साक्षात् शिवजीके अंशज शंभु हैं। हे दाशरथे ! ये नील भी शिवजीके अंशज गिरिश हैं। इसी तरह महायशस्वी सुषेण महायशा, जाम्बवान् अजैकपात्, अङ्गद, अहिर्बुध्न्य, दधिवक्त्र, पिनाकधृक्, तार, अयुताजित्, तरल स्थाणु, मैद भर्गतनु और हनुमानजी साक्षात् शिव हैं ॥ १६-१९ ॥ ये ग्यारहों रुद्र आपके लिए उत्पन्न होकर सब देशोंमें अनेक पर्वतोंपर रहते थे ॥ २० ॥ किन्तु अब वानरका रूप धारण करके इस पृथ्वीतलपर आये हैं। ये सब वानर क्यों हुए, इसका कारण भी मैं आपको बतला रहा हूँ ॥ २१ ॥ एक समय देवताओं तथा दैत्योंने मिलकर समुद्रका मन्थन किया। उससे अनेक दुःख देनेवाले लूता और विस्फोट आदि बहुतसे रोग उत्पन्न हुए ॥ २२ ॥ उन रोगोंमे तीनों लोक संकटमें पड़ गये। ऐसी अवस्थामें बहुतसे ऋषि और देवता एकत्र होकर ब्रह्माजीकी शरणमें गये और कहने लगे--हे जगन्नाथ ! इन दारुण व्याधियोंसे इस विश्वकी रक्षा करिए ॥ २३ ॥ २४॥ संसारके प्राणियोंको ज्वर आदि भयङ्कर रोगों और वात, पित्त तथा कफ इन तीन दोषोंने घेर लिया है। इनकी शान्तिके लिए जिस किसी औषधि तथा यंत्र-मंत्र आदिका प्रयोग किया जाता है, वह भी सफल नहीं हो पाता। मनुष्योंको नष्ट करनेवाले रोग सदैव उन्हें सताते रहते हैं ॥ २५ ॥ २६ ॥ हे ब्रह्मन् ! इस तरह मैंने लोगोंके कष्ट आपको कह सुनाये ॥ २७ ॥ उनकी ऐसी बात सुनकर ब्रह्माजीने रुद्रोंसे प्रार्थना की । ब्रह्मवाक्य सुनकर वे वीरभद्र आदि एकादश रुद्रगण ब्रह्माको सान्त्वना देकर सुग्रीव प्रभृति वानर होकर बड़े-बड़े पर्वतों तथा जङ्गलोंमें मण्डल बाँधकर घूमते हुए अपने दारुण शब्द तथा क्रीड़ासे उन व्याधियोंको नष्ट करने लगे ॥ २८-३० ॥ इसके बाद समस्त पृथ्वीको वानरोंसे वेष्टित देखकर ब्रह्माजी बड़े प्रसन्न हुए और बहुतसे वरदान दिये। ब्रह्माजीने कहा कि तुम लोगोंकी मुद्राओंमें अमृत संजीवनी नामकी कला विद्यमान रहेगी ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ तुम्हारा वेग मनके समान होगा। जो लोग तुम्हारे

पताका विविधाः कृत्वा चित्रतोरणसंयुताः । भक्ष्यभोज्यानि खाद्यानि लेह्यं पेयं च सर्वशः॥३४॥
युष्मानुद्दिश्य ये मर्त्या जुह्वन्ति हि हुताशने । हविः पुण्यतमं रुद्रांस्तेषां सिद्धिर्न संशयः ॥३५॥
पायसेनैव साज्येन तथैव तिलसर्पिषा । यजंति भवतां वृंदं ते यांति परमं पदम् ॥३६॥
एवं वै रुद्रमखिलं गाथा वैश्वानरीस्तथा । मानस्तोकेति वा मंत्रो मनोज्योतिरथापि वा ॥३७॥
भवतां यजनं चात्र गायत्र्या वा प्रकीर्तितम् । एवं ये मानवा लोके विधानं परिकुर्वते ॥३८॥
व्याधिं मुक्त्या सुखासीनास्त्वन्ते यात्यक्षयं पदम् ।

गरुड़ उवाच

इति राम पुरावृत्तं कपीनां कथितं मया ॥३९॥
एषु रुद्रेषु सर्वेषु हनुमान्भद्रनायकः ॥४०॥
विधानं तत्र कर्तव्यं यत्रास्ते हनुमत्तनुः । गोपुरे हनुमन्मूर्तिः शिलायां च पतिष्ठिता ॥४१॥
तत्र सर्वं प्रकर्तव्यं विधानं सुरसत्तमः ।

श्रीराम उवाच

केन केन प्रकारेण क्रियते कपिपूजनम् ॥४२॥
पताकाः कीदृशीस्तत्र कति कार्या विहङ्गम । हवनं कति संख्याकं किं द्रव्यं को जपोऽत्र वै ॥४३॥
किं दानं केन विधिना तन्ममाचक्ष्व सुव्रत ।

गरुड़ उवाच

जनमारे समुत्पन्ने ग्रामे वा पत्तनेऽपि वा ॥४४॥
प्रभवत्यौषधं नैव मणिमन्त्रपुरःक्रियाः । विधानं तत्र कर्तव्यमेकादश्यां तिथौ नृप ॥४५॥
प्रातःकाले समुत्थाय कृतशौचो द्विजोत्तमः । स्नात्वा गङ्गाजले पुण्ये तिलामलकसंस्कृतः ॥४६॥
एकादश द्विजान् श्रेष्ठान्सोपवासान्निमन्त्रयेत् । जागरस्तैस्तु कर्तव्यः सर्वोपस्करसंयुतः ॥४७॥
आदौ तु मण्डपं कृत्वा सर्वत्रापि सुशोभितम् । पुष्पमण्डपिकामध्ये मण्डपे स्थापयेद्वरान् ॥४८॥

शरीरकी पूजा और स्मरण करेंगे । विविध रङ्गकी पताकायें, चित्र-विचित्र तोरण, तरह-तरहके भक्ष्य-भोज्य तथा पेय पदार्थ आपके उद्देश्यसे जो अग्निमें हवन करेंगे, उनको रुद्रसिद्धि प्राप्त होगी । इसमें कोई संशय नहीं है ॥ ३३-३५ ॥ जो लोग घी मिलाकर खीरका हवन करते हैं, उनको परम पद प्राप्त होता है ॥ ३६ ॥ इस प्रकार "एवं वै रुद्रमखिलं" इस मन्त्रसे अथवा 'वैश्वानरो" या "मानस्तोके" इस मन्त्र तथा "मनोज्योति" इस मन्त्र अथवा गायत्रीमन्त्रसे आपके लिए हवन करनेका विधान है। जो लोग संसारमें इस विधिका पालन करते हैं, वे सब प्रकारकी व्याधियोंसे मुक्त होकर अक्षय पद प्राप्त करते हैं । गरुड़जीने कहा—हे राम ! यह मैंने बानरोंका एक प्राचीन इतिहास कह सुनाया ॥ ३७-३९ ॥ इन ग्यारहों रुद्रोंमें हनुमान्जी सबके मुखिया हैं । इसलिए ऊपर बतलाये हुए सब विधान उसी स्थानपर करने चाहिए, जहां कि हनुमान्जीकी मूर्ति विद्यमान हो । अथवा गोपुर या किसी पाषाणखण्डपर हनुमानजीकी मूर्ति स्थापित करके पूर्वलिखित विधिसे पूजन करे । श्रीरामचन्द्रजीने पूछा—हे पक्षिराज ! किस-किस प्रकारसे कपिपूजन करना चाहिय ॥ ४०-४२ ॥ इनकी पूजामें कैसी पताका बनवाये, कितनी आहुतियाँ दे, किस मन्त्रका जप करे और किस-किस विधिसे क्या दान करे ? हे सुव्रत ! ये सब बातें हमें बतलाइए । गरुड़ने कहा—हे प्रभो ! जिस समय ग्रामीण या नागरिक मनुष्योंपर महामारी जैसी विपत्ति आ पड़े । मणि-मन्त्र आदिका प्रभाव कोई काम न करे तो एकादशी तिथिको यह विधान सम्पन्न करे ॥ ४३-४५ ॥ किसी उत्तम ब्राह्मणको चाहिए कि वह प्रातःकाल उठे । शरीरमें तिल और आँवले लगाकर पवित्र जलसे स्नान करे । इसके अनन्तर उपवास किये हुए ग्यारह ब्राह्मणोंको निमन्त्रित करे और सब सामग्रियें एकत्रित करके उन लोगोंके साथ रातभर जागरण करे ॥ ४६ ॥ ४७ ॥ पहले चारों ओरसे सुशोभित मंडप तैयार करवाये और उसमें फूलोंका एक छोटा-सा मन्दिर बनाकर बीचमें

पंचामृतैस्तु स्नपनं रुद्रेभ्यः परिकल्पयेत् । ततस्तु कुसुमैः पूजा शतपत्रादिभिः शुभैः ॥४९॥
चन्दनं च सकर्पूरं रुद्रेभ्यो लेपनं वरम् । दशांगधूपमादद्याद्दीपैर्नीराजयेत्ततः ॥५०॥
नैवेद्यं विविधं दद्यात्तांबूलेनैव संयुतम् । एकादश पताकास्तु पटैः सुपरिकल्पयेत् ॥५१॥
या या यस्मै समुद्दिष्टा पताका च सुशोभना । तस्य तस्यैव रूपं तु तस्यामेव प्रकल्पयेत् ॥५२॥
एवं कृते विधाने च सुपताकासुतोरणैः । प्रातःकाले तु राजेन्द्र जागरांते द्विजोत्तमः ॥५३॥
कृतस्नानो नदीतोये होमं कुर्यात्समाहितः । पायसेन तु साज्येन तथैव तिलसर्पिषा ॥५४॥
अयुतं हवनं कृत्वा पुनः पूजां प्रकल्पयेत् । पताका हनुमद्द्वारे तस्यैव च निधापयेत् ॥५५॥
राजद्वारे तु सौग्रीवीं सौषेणीमापणे न्यसेत् । नलनीलपताके च शिवद्वारे तु विन्यसेत् ॥५६।
तारस्य तरलस्यापि मैंदस्य ह्यंगदस्य च । ग्रामाद्बहिश्चतुर्दिक्षु मार्गेषु स्थापयेद्धिया ॥५७॥
जलस्थाने जांबवतीं दाधिवक्त्रीं चतुष्पथे । स्थापयेत्परमां दिव्यां महावाद्यादिमंगलैः ॥५८॥
द्वारदेशे जनानां च रुद्रमूर्तिं विलेखयेत् । चित्रितां पञ्चवर्णैश्च ग्रामसूत्रैश्च वेष्टयेत् ।५९॥
प्रत्यहं कारयेद्विद्वान् भक्त्या ब्राह्मणतर्पणम् ।दद्याद्वस्त्राणि ऋत्विग्भ्यो सालंकाराणि भूरिशः ॥६०॥
छत्राणि करपत्रैश्च पादुकाश्च विशेषतः । धेनुं पयस्विनीं दद्यादाचार्याय सवत्सकाम् ॥६१॥
सदक्षिणां सवस्त्रां च सालंकारां गुणान्विताम् । द्विजाय महिषीं दद्यात्तथैव पृथिवीपते ॥६२॥
अन्येभ्यो ब्राह्मणेभ्यश्च सप्त धान्यानि भूरिशः । लवणं सघृतं देयं तैलं च सगुडं तथा ॥६३॥
शय्यादानानि भूरीणि छत्राणि विविधानि च । एतत्कृत्वा विधानं च राजा क्षेममवाप्नुयात् ॥६४॥
रुद्र एवात्र निर्दिष्टो जपः सर्वैः सुलक्षणः । अथवा हवनं शस्तं मानस्तोक इति स्फुटम् ॥६५।

इति हनुमत्पताकाभिधानं व्रतम् ।

इति श्रीशतकोटिरामचरितांतर्गते श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये मनोहरकांडे
हनुमत्पताकारोपणव्रतवर्णनं नाम षोडशः सर्गः ॥ १६ ॥

वानरोंको स्थापित करे ॥ ४८ ॥ तदनन्तर उन रुद्रोंको पञ्चामृतसे स्नान कराये और शतपत्र आदिके फूलोंसे विधिवत् पूजन करे । कपूर मिले हुए चन्दनका लेपन, दशांग धूपका आघ्राण और नीराजन करे । फिर ताम्बूलके साथ विविध प्रकारके नैवेद्य समर्पित करे और अच्छे वस्त्रोंसे ग्यारह पताका बनवाये । जो पताका जिस रुद्रके लिए निर्धारित की गयी हो, उसमें उसका चित्र बनवाये ॥ ४९–५२ ॥ ये विधियाँ करनेके अनन्तर सुन्दर पताका आदि समर्पित करे । वह ब्राह्मण सबेरे उठे और नदीके जलमें स्नान करके सावधानतापूर्वक तिल और घी मिले खीरसे अग्निकुण्डमें दस हजार आहुतियाँ दे । इसके बाद फिर उन सबकी पूजा करे । हनुमान्‌जीके द्वारपर हनुमान्‌जीकी पताका, राजद्वारपर सुग्रीवकी पताका, आपण (बाजार) में सुषेणकी और शिवद्वारपर नल-नीलकी पताका स्थापित करे ॥ ५३–५६ ॥ तत्पश्चात् तार, तरल, मैंद और अङ्गदकी पताकाओंको ग्रामके बाहर चारों दिशाओंसे स्थापित करे ॥ ५७ ॥ जलस्थानपर जाम्बवान् और चौराहेपर दधिवक्त्रकी पताकाको विविध वाद्योंकी ध्वनिके साथ स्थापित करे । मनुष्योंके द्वारदेशपर पाँच वर्णोंसे चित्रित रुद्रमूर्ति बनाये और ग्रामसूत्रोंसे उसे परिवेष्टित करे ॥ ५८ ॥ ५९ ॥ समझदार लोगोंको चाहिए कि प्रतिदिन ब्राह्मणोंको अच्छी तरह भोजन करायें और ऋत्विजोंको विविध आभूषण और वस्त्र दान दें ॥ ६० ॥ छत्र, पादुका तथा दूध देनेवाली सवत्सा गौ आचार्यको दे । उस गौके साथ पर्याप्त दक्षिणा, अलंकार, वस्त्र आदि भी दे । उस यज्ञमें जो ब्राह्मण ब्रह्मा बना हो, उसे एक भैंसका दान दे ॥ ६१ ॥ ६२ ॥ इसके अतिरिक्त और जितने ब्राह्मण हों, उन्हें भी शय्यादान और छत्र आदि दे । जो राजा इस विधानसे रुद्रयज्ञ करता है, उसका सब प्रकारसे कल्याण होता है ॥ ६३ ॥ ६४ ॥ इस विधानमें रुद्रमन्त्र अथवा "मानस्तोके" यह मन्त्र जपना लाभकारी होता है ॥ ६५ ॥ इति श्रीशतकोटिरामचरितांतर्गते श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये पं० रामतेजपाण्डेयकृत 'ज्योत्स्ना' भाषाटीकासहिते मनोहरकांडे षोडशः सर्गः ॥ १६ ॥

सप्तदशः सर्गः

(श्रीरामचन्द्रोपदिष्ट साररामायण)

श्रीरामदास उवाच

विष्णुदास त्वया यद्यत्पृष्टं तत्तन्मयेरितम् । रामाज्ञया तव प्रीत्याऽऽनन्दचारित्रमुत्तमम् ॥ १ ॥
रामेणैव समास्येन तवोपदिष्टमादरात् । त्वय्यस्ति रामसंप्रीतिस्तस्माद्रामेण मे द्विज ॥ २ ॥
आज्ञापितं पूजनांते पुरा तव तपोबलात् । आनन्दरामचरितं ममेदं मंगलप्रदम् ॥ ३ ॥
विष्णुदासाय विप्राय कथयस्वेति वै मुहुः । त्वदर्थं पूजनांते मे दर्शनं दत्तवान्निजम् ॥ ४ ॥
नवोत्तरशतश्लोकसाररामायणेन च । पुरा मे ग्रथितेनात्र रामेण स्मारितोऽप्यहम् ॥ ५ ॥
श्रीराघवोपदिष्टेन महामंगलदेन च । नवाधिकशतश्लोकसाररामायणेन च ॥ ६ ॥
यद्यन्मया विस्मृतं च श्रुतं पूर्वकथानकम् । मम तच्चापि स्मारितं वाल्मीकिमुखनिर्गतम् ॥ ७ ॥
ततो मया विष्णुदास राघवस्याज्ञया तव । शतकोटिमिताद्रामचरितात्संविविच्य च ॥ ८ ॥
सारं सारं च कथितं महामांगल्यकारकम् ।

विष्णुदास उवाच

त्वयैतत्कथितं चेदमानन्दसंज्ञकं मम ॥ ९ ॥
श्रीरामचरितं रम्यं मम तोषार्थमुत्तमम् । शतकोटिमितात्तत्किं कथितं च विविच्य च ॥१०॥
अथवा भारतखंडांतर्भागादुक्तं वदस्व तत् ।

श्रीरामदास उवाच

शतकोटिमितं कृत्स्नं मया रामायणं शुभम् ॥११॥
विविच्य ज्ञानदृष्ट्याऽत्र तवेदमुपदेशितम् । विशेषात्स्मारितं चापि साररामायणश्रवात् ॥१२॥
रामोपदेशिताद्रम्यात्ततस्ते कथितं मया ।

विष्णुदास उवाच

शतकोटिमिते रामचरिते पातकापहे ॥१३॥
कति कांडानि सर्गाश्च तन्मां वक्तुं त्वमर्हसि ।

श्रीरामदास कहा—हे विष्णुदास ! तुमने हमसे जो कुछ पूछा, सो मैंने कह सुनाया। यह समस्त आनन्दरामायण रामचन्द्रजीकी आज्ञासे अथवा यूँ कहो कि साक्षात् रामचन्द्रजीने ही मेरे मुखसे कहा है। तुम्हारे हृदयमें रामकी भक्ति है । इसीलिये उस दिन पूजनके अन्तमें तुम्हारे तपोबलसे प्रसन्न होकर उन्होंने मुझे तुमको आनन्दरामायण सुनानेकी आज्ञा दी थी। उन्होंने कहा था—यह आनन्दरामायण बड़ा मंगलकारी ग्रन्थ है, तुम इसे विष्णुदासको सुनाओ। तुम्हारे ऊपर प्रसन्न होकर ही मैं पूजनके अन्तमें तुम्हें अपना दर्शन दे रहा हूँ ॥ १-४ ॥ रामचन्द्रजीके स्मरण करानेपर ही मैंने एक सौ नौ श्लोकोंमें रामायणका सार सुनाया था। जिन-जिन कथानकोंको मैं भूल गया था। वे भी वाल्मीकिजीके मुखसे निकले रामायण द्वारा स्मरण होते गये ॥ ५-७ ॥ इसके बाद मैंने रामचन्द्रजीकी आज्ञासे रामायणके मुख्य-मुख्य अंश लेकर कहा है। विष्णुदास बोले कि आपने मुझे आनन्द देनेके लिये यह रम्य आनन्दरामायण कहा है तो कृपा करके अब यह भी बतलाइए कि सौ करोड़ संख्यात्मक रामायणसे आपने कहाँ कहाँसे क्या-क्या अंश लेकर कहा है?॥८-१०॥ अथवा भारतखण्डसे कौन-कौन अंश लिये हैं ? श्रीरामदास कहने लगे-पूरी रामायण सौ करोड़ श्लोकोंकी है ॥ ११ ॥ ज्ञानकी दृष्टिसे विवेचना करके मैंने तुम्हें इसका उपदेश दिया है । हमें तो रामायणके सारका श्रवण

श्रीरामचन्द्र उवाच

नव लक्षाणि कांडानि शतकोटिमिते द्विज ॥१४॥

सर्गा नवतिलक्षाश्च ज्ञातव्या मुनिकीर्तिताः । कोटीनां च शतं श्लोकमानं ज्ञेयं विचक्षणैः ॥१५॥

विष्णुदास उवाच

गुरोऽहं श्रोतुमिच्छामि यत्त्वां श्रीराघवेण हि । उपदिष्टं मदर्थं हि साररामायणं शुभम् ॥१६॥

नवोत्तरशतश्लोकसंमितं च मनोहरम् । तत्त्वं वदाधुना पुण्यं वरं कौतूहलं मम ॥१७॥

श्रीरामदास उवाच

सम्यक् पृष्टं त्वया शिष्य सावधानमनाः शृणु । साररामायणं तेऽद्य प्रोच्यते रामकीर्तितम् ॥१८॥

आविर्भूत्वा पूजनांते मदग्रे भ्रातृभिः श्रिया । मां प्रोवाच रघुश्रेष्ठः प्रसन्नमुखपंकजः ॥१९॥

(अथ साररामायणम्)

श्रीरामचन्द्र उवाच

रामदास शृणुष्वाद्य यत्सारं प्रोच्यते तव । चरितं सकलं स्वीयं मया तत्त्वं सविस्तरम् ॥ १ ॥

विष्णुदासाय शिष्याय मद्भक्तिनिरताय च । कथयस्व तथाऽन्यच्च ज्ञानाद्दृष्टं यथाश्रुतम् ॥ २ ॥

यथा भारतखंडान्तर्मार्गे चापि त्वयेक्षितम् । स्मरणार्थं त्वहं किंचित्तत्र वक्ष्यामि सादरम् ॥ ३ ॥

पार्वतीशिवसंवादः सूर्यवंशार्धपार्थिवाः । मत्पित्रोर्हरणं लंकां रावणेन विसर्जनम् ॥ ४ ॥

दशरथविवाहश्च कैकेय्यै द्विवरार्पणम् । कैकेय्यै द्विजशापश्च वरदानकराय च ॥ ५ ॥

राज्ञः शापो वैश्यहत्या शृष्यशृंगार्थमुद्यमः । ऋष्यशृङ्गमुनेस्तेजःप्रतापाद्वह्निनाऽर्पितम् ॥ ६ ॥

पायसं तद्विभक्तं च गृध्री भागं गिरौ नयत् । अंतर्गर्भा नृपपत्न्यस्तासामासन्मुदोहदाः ॥ ७ ॥

ततो भूम्या ब्रह्मणा मे प्रार्थनं मंथराजनिः । चैत्रे मासि ममोत्पत्तिर्बंधुभिश्च हनूमता ॥ ८ ॥

बालक्रीडा मत्कृता च व्रतबंधस्ततो मम । वेदाभ्यासो वसिष्ठाच्च तीर्थयात्रा च बंधुभिः ॥ ९ ॥

करनेसे ही बहुत-सी बातें याद आ गयी थीं । उन्हींको रामकी आज्ञासे मैंने तुम्हें सुनाया है ॥ १२ ॥ १३॥ विष्णुदासने पूछा—उस शतकोटिसंख्यात्मक रामायणमें कितने काण्ड और कितने सर्ग हैं ? सो कृपा करके हमें बतलाइए । श्रीरामदासने कहा—हे द्विज ! सौ करोड़ संख्यात्मक रामायणमें कुल नौ लाख काण्ड तथा नब्बे लाख सर्ग हैं ॥ १४ ॥ कुल मिलाकर उस रामायणमें सौ करोड़ श्लोक हैं ॥ १५ ॥ विष्णुदासने कहा—हे गुरो ! अब मैं आपसे वह रामायण सुनना चाहता हूँ, जिसे स्वयं रामचन्द्रजीने आपको बतलाया था ॥ १६ ॥ जिसमें एक सौ नौ श्लोक हैं । कृपया अब मुझे वह सुनाइए । उसको सुननेके लिए मेरे हृदयमें बड़ा कौतूहल है ॥ १७ ॥ श्रीरामदासने कहा—हे शिष्य ! तुमने बहुत अच्छा प्रश्न किया है । सावधान होकर सुनो । आज मैं तुम्हें वह साररामायण सुनाऊँगा, जिसे श्रीरामचन्द्रजीने मुझसे कहा था ॥ १८ ॥ एक दिन जब कि मेरा पूजन समाप्त हो गया था, तब भगवान अपने तीनों भ्राताओंके साथ मेरे समक्ष आये । उन्होंने प्रसन्न होकर यही साररामायण कहा था ॥ १९ ॥ श्रीरामचन्द्रजीने कहा—हे रामदास ! मेरे चरित्रोंका जो सार अंश है, सो तुमसे कह रहा हूँ । इसे विस्तृतरूपसे तुम विष्णुदास नामके अपने शिष्यको सुनाना । क्योंकि वह मेरी भक्तिमें निमग्न है । इन चरित्रोंके अतिरिक्त तुमने अपने ज्ञानसे जो कुछ देखा-सुना हो या भारतखंडमें देखा हो, वह सब भी उसे सुना देना । स्मरण रखनेके लिए कुछ चरित्र मैं तुम्हें बतला रहा हूँ ॥ १–३ ॥ शिव-पार्वती-संवाद, आधे सूर्यवंशज राजाओंका चरित्र, मेरे माता-पिताका हरण, रावण द्वारा उनका लंका भेजा जाना, दशरथविवाह, कैकेयीको दो वरदान देना, कैकेयीके लिए ब्राह्मणका शाप, वरदान देनेवाले विप्रको राजाका शाप, वैश्यहत्या, ऋष्यशृङ्गको लानेका उद्योग, ऋष्यशृङ्गके प्रभावसे अग्निद्वारा महाराज दशरथको पायस मिलना ॥ ४–६ ॥ उसके हिस्से लगानेपर उनका एक भाग एक गृध्रीका पर्वतपर लेकर चली जाना, रानियोंका गर्भिणी होना, भूमिके साथ ब्रह्माका आकर मेरी स्तुति करना, मंथराकी उत्पत्ति, चैत्रमासमें अपने सब भाइयों तथा हनुमान्‌जीके साथ मेरी उत्पत्ति, मेरी की हुई बाललीलायें, मेरा यज्ञोपवीतसंस्कार, वसिष्ठके पास वेदाध्ययन

विश्वमित्राद्धनुर्विद्या ताटिकामर्दनं वने । प्रारम्भो रणदीक्षायाः सुबाहोर्मर्दनं मखे ॥१०॥
मारीचक्षेपणं चापि ह्यहल्योद्धरणं मया । स्वयंवरं च शापश्च मुनिपत्न्याः सविस्तरम् ॥११॥
नौकापेन हि गङ्गायां मदंघ्रिक्षालनं कृतम् । शैवं धनुर्जामदग्न्यन्यस्तं भग्नं सभांगणे ॥१२॥
सीतोत्पत्तिश्च सीताया लङ्कागमननिर्गमौ । बंधूनां मे विवाहाश्च जामदग्न्यपराजयः ॥१३।
दीपावल्युत्सवश्चापि नृपैः पथि महारणः । जीवनं भरतस्यापि मङ्काविं मुनिनेरितम् ॥१४॥
वृंदाशापः पितुः पुण्यं कैकेयीपूर्वकर्म च । ततो मद्दिनचर्या च गर्भाधानमहोत्सवः ॥१५॥
नारदाग्रे प्रतिज्ञा मे यौवराज्यार्थमुद्यमः । कैकेयीवरदानेन दंडके गमनं मम ॥१६॥
दर्शनं गुहकस्यापि सीतावाक्यं च जाह्नवीम् । भारद्वाजवाल्मीकयोर्दर्शनं च गिरौ स्थितिः ॥१७॥
काकाक्षिभेदनं चापि राज्ञश्च मरणं पुरि । दर्शनं भरतस्यापि भरतस्य विसर्जनम् ॥१८॥
सीतायास्तिलकोऽरण्येऽनसूयाभूषणार्पणम् । विराधमर्दनं मार्गे नानाऽऽश्रमविलोकनम् ॥१९॥
अगस्तेश्चाथ गृध्रस्य दर्शनं सांबमर्दनम् । विरूपणं शूर्पणखायाः खरादीनां प्रमर्दनम् ॥२०॥
सीतादेहविभागश्च मारीचस्य वधो मया । सीताया हरणं लंकां संगरश्च जटायुषः ॥२१॥
इन्द्रेण पायसं दत्तं सीतायै गिरिजेक्षणम् । कबंधमर्दनं मार्गे शबर्या पूजितस्त्वहम् ॥२२॥
ततः सख्यं कपींद्रेण शिरशः क्षेपणं मया । छेदनं सप्तताडानां सर्पेण मालिका हृता ॥२३॥
बालेर्घातो मया तत्र सीताशुद्ध्यर्थमुद्यमः । हनूमताऽब्धितरणं लंकायां जानकीक्षणम् ॥२४॥
मंदोदरीसमुत्पत्तिर्वनपाक्षादिमर्दनम् । लङ्कादाहश्च देहान्तं कर्तुं सिद्धोऽभवत्कपिः ॥२५॥
जांबूनदवृक्षशाखाकथाऽब्धेस्तरणं पुनः । बहुमुद्रादर्शनं च सेतुबंधस्ततः परम् ॥२६॥
विभीषणाभिषेकश्च विश्वनाथकथा शुभा । गंधमादनेशाख्यानं संगरश्च ततः परम् ॥२७॥

भ्राताओंके साथ तीर्थयात्रा, विश्वामित्रसे धनुर्विद्याकी प्राप्ति, ताड़कासंहार, रणदीक्षाका प्रारम्भ, यज्ञभूमिमें सुबाहुका मर्दन, मारीचका समुद्रपार फेंका जाना, मेरे द्वारा अहल्याका उद्धार, सीतास्वयंवरमें गमन, अहल्याके शापकी विस्तृत कथा ॥७-११॥ गंगामें निषाद द्वारा मेरे पैर धोया जाना, परशुरामजीके द्वारा लाकर रखे हुए शङ्करजीका धनुष मेरे द्वारा तोड़ा जाना, सीताकी उत्पत्ति, सीताका लंका जाना और वहाँसे फिर वापस आना, मेरा तथा मेरे भ्राताओंका विवाह, परशुरामकी पराजय, ॥ १२ ॥ १३ ॥ दीपावलीका उत्सव, रास्तेमें राजाओंके साथ महान् संग्राम, भरतका पुनर्जीवन, बृन्दाका शाप, मेरे पिताके पुण्य, कैकेयीके पूर्वकर्म, मेरी दिनचर्या, गर्भाधानमहोत्सव, ॥ १४ ॥ १५ ॥ युवराज न बननेके लिए नारदके समक्ष मेरी प्रतिज्ञा, मुझे युवराजपदपर अभिषिक्त करनेकी तैयारियाँ, कैकेयीके वरदानसे दण्डक-वनगमन, निषादके साथ वार्तालाप, गङ्गाजीके लिए सीताकी कुछ मनौतियाँ, भारद्वाज और वाल्मीकि ऋषिके दर्शन, चित्रकूट पर्वतपर निवास, जयन्तके नेत्रभेदन, अयोध्यामें महाराज दशरथकी मृत्यु, भरतजीका दर्शन और विसर्जन ॥ १६-१८ ॥ वनमें मेरे द्वारा सीताके माथेमें तिलक लगाया जाना, अनुसूया द्वारा भूषणार्पण, विराधमर्दन, अनेक आश्रमोंके दर्शन, ॥ १९ ॥ अगस्त्य और गृध्रके दर्शन, साम्बमर्दन, शूर्पणखाका विरूपकरण, खर आदि राक्षसोंका संहार, सीताके शरीरका विभाजन, मेरे द्वारा मारीचका वध, सीताहरण, रावण-जटायुसंग्राम, इन्द्र द्वारा सीताके लिए पायस प्रदान, कबन्धमर्दन, शबरी द्वारा पूजित होकर सुग्रीवके साथ मित्रता, दुन्दुभीके अस्थिको फेंकना, सात तालोंका भेदन, सर्पद्वारा मालिकाहरण, मेरे द्वारा बालिका संहार, सीताका पता पानेके उद्योगकी तैयारियाँ, हनुमानजी द्वारा समुद्रलंघन, लंकामें जानकीजीका दर्शन, मन्दोदरीकी उत्पत्ति-कथा, अशोकवनमें हनुमान्जीके द्वारा राक्षसोंका मारा जाना, लङ्कादहन, हनुमान्जीका शरीर त्याग करनेका आयोजन, ॥ २०-२५ ॥ जाम्बूनद वृक्षकी शाखाका वृत्तान्त, पुनः सिन्धुसंतरण, बहुमुद्रादर्शन, सेतुबन्धन, विभीषणका अभिषेक, विश्वनाथकी कथा, गन्धमादन पर्वतस्थ शिवजीका वृत्तान्त, राम-रावणसंग्राम, काल-

कालनेमिवधश्चाथ तथैरावणमर्दनम् । मैरावणमर्दनं च मया मंचकभंजनम् ॥२८॥
कुंभकर्णवधश्चापि मेघनादस्य मर्दनम् । ततो होमस्य विध्वंसस्ततो रावणमर्दनम् ॥२९॥
सीताया दिव्यदानं च स्वपुरीगमनं मम । रणदीक्षासमाप्तिश्च राज्याभिषेचनं मम ॥३०॥
उत्पत्ती रावणादीनामिंद्रजेतृपराक्रमः । मानभंगो रावणस्य वालिसुग्रीवजन्मनी ॥३१॥
वायुपुत्रजन्मकर्म वरदानं हनूमतः । शापोऽपि वायुपुत्राच्च ह्यगस्तेश्च विसर्जनम् ॥३२॥

इति सारकाण्डम् ॥ १ ॥

गंगायात्रासमुद्योगः सरयूभेदनं ततः । मया स्वबाणरेखा च सीतावाक्यविसर्जनम् ॥३३॥
कुंभोदरस्य वाक्येन पृथ्वीयात्रा मया कृता । कुमारीवरदानं च सुरभी केन मेऽर्पिता ॥३४॥
चिंतामणेः शिवाल्लाभस्ततोऽयोध्याप्रवेशनम् ।

इति यात्राकाण्डम् ॥ २ ॥

आरंभो वाजिमेधस्य पृथ्व्यां वाजी विमोचितः ॥३५॥
तुरगाय ससैन्याय मार्गदानं तु गंगया । पृथ्वीप्रदक्षिणां कृत्वा वाटेऽश्वस्य प्रवेशनम् ॥३६॥
तमसातटशाला च कुंभोदरप्रदर्शनम् । अष्टोत्तरशत नाम्नां मम स्तोत्रं मुनीरितम् ॥३७॥
दिनचर्याध्वजारोपावभृथोत्सवो मम । सीतादानं च तन्मुक्ती रामतीर्थादिवर्णनम् ॥३८॥
ततो यज्ञसमाप्तिश्च दश यज्ञा विशेषतः ।

इति यागकाण्डम् ॥ ३ ॥

ततो मम स्तवराजः क्रीडाशालाप्रवर्णनम् ॥३९॥
पक्षिणां नवकं स्तोत्रं जानक्या वर्णनं मया । देहरामायणं पत्न्यै मया कथितमुत्तमम् ॥४०॥
दिनचर्या पुनर्मे हि सीतालंकारवर्णनम् । पक्वान्नानां च विस्तारो जलक्रीडा च सीतया ॥४१॥
माध्याह्निकं भोजनादि मम कर्मप्रवर्णनम् । द्विजपत्न्यै भूषणानां दानं जनकजाकृतम् ॥४२॥
रात्रौ नानास्थलेष्वत्र क्रीडाश्च विविधाः स्त्रियः । रुक्मषोडशमूर्तीनां न्यासाग्रे दानमर्पितम् ॥४३॥

नेमिवध, ऐरावणमर्दन, मैरावणवध, मंचभञ्जन, कुम्भकर्णवध, मेघनादमरण, होमविध्वंस तथा रावणवध, ॥ २६–२९ ॥ सीताकी शपथ, अयोध्या पुनरागमन, रणदीक्षाकी समाप्ति, मेरा राज्याभिषेक, रावण आदिकी उत्पत्ति और मेघनादके पराक्रमकी कथा, रावणका मानभंग, वालि-सुग्रीवके जन्मकी कथा, वायुपुत्रके जन्म-कर्मका वृत्तान्त, हनुमान्‌जीके लिए वरदान, हनुमान्‌जीके लिए शाप और अगस्त्यऋषिका विसर्जन, इतनी कथायें सारकाण्डमें कही गयी हैं ॥ १ ॥ ३०–३२ ॥ गंगायात्राकी तैयारी, सरयूभेदन, मेरे द्वारा बाणकी रेखा खिचना, कुम्भोदरके वाक्यसे मेरी पृथ्वीयात्रा, कुमारीको वरदान, मेरे लिए ब्रह्मा द्वारा सुरभी-दानका वृत्तान्त ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ शिवजीके पाससे चिन्तामणिकी प्राप्ति और फिर अयोध्या वापस आना, ये इतनी कथायें यात्राकाण्डमें कही गयी हैं ॥ २ ॥ अश्वमेध यज्ञका आरम्भ, पृथ्वीप्रदक्षिणाके लिए घोड़ेका छोड़ा जाना, गङ्गाजीका मेरी सेना तथा घोड़ेके लिए रास्ता देना, समस्त पृथ्वी घूमकर घोड़ेका वापस आना, कुम्भोदर द्वारा तमसाकी तटशालाका अवलोकन, कुम्भोदर द्वारा कहा हुआ मेरा शतनामस्तोत्र, ॥ ३५–३७ ॥ मेरी दिनचर्या, ध्वजारोपण, अवभृथोत्सव, सीतादान, रामतीर्थ आदिका वर्णन, यज्ञसमाप्ति और दस यज्ञोंका वर्णन, ये इतनी कथायें यागकाण्डमें कही गयी हैं ॥३॥ इसके बाद मेरा स्तवराज, क्रीडाशालाका वर्णन, ॥ ३८ ॥ ३९ ॥ नौ पक्षियोंका स्तोत्र, मेरे द्वारा जानकीकी शोभाका वर्णन, मेरे द्वारा सीताके लिए देहरामायणका वर्णन ॥ ४० ॥ मेरी दिनचर्या, सीताके अलङ्कारोंका वर्णन, पकवानोंका विस्तार और सीताके साथ जलक्रीडा ॥ ४१ ॥ तदनन्तर भोजन आदि मेरे मध्याह्नकालीन कर्मोंका वर्णन, सीताजीके द्वारा विप्रपत्नीके

ततो निर्जरपत्नीभ्यो वरदानं मयाऽर्पितम् । गुणवत्यै वरदानं पिंगलायै वरार्पणम् ॥४४॥
सीतायाः प्रत्ययार्थं च दिव्यदानं मया मुदा । कुरुक्षेत्रेऽगस्तिपत्न्या संवादे जानकीजयः ॥४५॥

इति विलासकाण्डम् ॥ ४ ॥

सीताया दोहदार्थं हि क्रीडाऽऽरामादिषु कृता । सीमंतोन्नयनादीनि नानाकर्माणि वै ततः ॥४६॥
विसर्जितश्च जनको वाल्मीकेराश्रमं मया । सीतया द्वे निजे रूपे कृतं मद्वाक्यगौरवात् ॥४७॥
अंगुष्ठयोग्यो लिखितः कैकेय्या रावणो महान् । लोकानां रजकस्यापि ह्यपवादाद्विदेहजा ॥४८॥
मया रजस्तमोयुक्ता त्यक्ताऽऽनीतश्च तद्भुजः । गुप्तरूपेण पुत्रस्य कृतं गत्वा तु जातकम् ॥४९॥
शतयज्ञा मया गत्वा कृताः श्रीजाह्नवीतटे । वाल्मीकिना लवानां च लवः पुत्रः कृत परः ॥५०॥
तयोः कृतं तु मुनिना रामरक्षाभिमंत्रणम् । कमलानां च हरणे लवस्य विजयो महान् ॥५१॥
रामायणस्य श्रवणं पुत्राभ्यां मयाऽध्वरे । युद्धं लवकृतं चाथ जलैस्तस्याभिषेचनम् ॥५२॥
मम युद्धं कुशेनाथ सीतायाः शपथस्ततः । सीताया ग्रहणं चापि विशंत्या भूतलं पुनः ॥५३॥
ततो यज्ञसमाप्तिश्च बन्धुपुत्रजनिस्ततः । बालक्रीडोपनयनं वेदानां ग्रहणं क्रमात् ॥५४॥
बालानां शुभचिह्नानि सीतायाः पुत्रलालनम् । सर्वेषां व्रतबंधाश्च तेषां यातास्ततः परम् ॥५५॥

इति जन्मकाण्डम् ॥ ५ ॥

भूरिकीर्तेः पत्रिकया तत्पुरं गमनं मम । व्यग्रताऽऽसीत्पुरस्त्रीणां दर्शनार्थं तदा मम ॥५६॥
वंदितोऽहं नृपैः सर्वैस्तदा राजसभांगणे । क्रमेण वर्णनं चापि पार्थिवानां हि नदया ॥५७॥
कुशकंठे चम्पिकया रत्नमालाविसर्जनम् । क्रमेण वर्णनं चाथ पार्थिवानां सुनन्दया ॥५८॥
सुमत्या रत्नमालाया लवकण्ठे विसर्जनम् । उत्साहोऽथ विवाहस्य नानासम्मानपूर्वकः ॥५९॥
गमनं हि स्नुषाभ्यां च सीतया स्वपुरीं मम । निग्रहो जलदेवीनां बालकानां प्रमोचनम् ॥६०॥

लिए भूषणदान, बहुत-सी स्त्रियोंके साथ रात्रिके समय क्रीडा और सुवर्णमयी षोडश स्त्रियोंका दान, देवपत्नियोंके लिए मेरा वरदान, गुणवती और पिङ्गलाके लिए वरदान ॥ ४२–४४ ॥ सीताके विश्वासार्थ मेरी शपथ, कुरुक्षेत्रमें अगस्त्यकी पत्नीके साथ बातचीतमें जानकीकी विजय, इतनी कथायें विलासकाण्डमें वर्णित हैं ॥ ४ ॥ ४५ ॥ सीताकी गर्भकालीन इच्छा पूर्ण करनेके लिए बगीचे आदिमें विहार, सीमन्तोन्नयन आदि विविध संस्कार, मेरे द्वारा राजा जनकको वाल्मिकिके आश्रमपर भेजा जाना, मेरे कहनेसे सीताका दो रूप धारण करना, ॥ ४६ ॥ ४७ ॥ सीताके अङ्कित अंगुष्ठके अनुसार कैकेयी द्वारा रावणका पूरा स्वरूप बनाया जाना, अपनी प्रजाके कतिपय लोगों और एक धोबीके मुखसे अपनी निन्दा सुनकर मेरे द्वारा सीताका परित्याग और उनकी भुजा काटकर मँगवाना, गुप्तरूपसे वाल्मीकिके आश्रमपर पहुँचकर बच्चेका जातकर्म-संस्कार करना, गङ्गाजीके तटपर मेरे द्वारा सौ अश्वमेध यज्ञ सम्पादित होना, वाल्मीकि द्वारा जल-बिन्दुओंसे लव नामक दूसरे पुत्रकी सृष्टि होना, फिर उन दोनों बच्चोंका वाल्मीकि द्वारा रामरक्षामन्त्रसे अभिमन्त्रित होना, कमलहरण करते समय लवकी एक बड़ी विजय ॥ ४८–५१ ॥ यज्ञभूमिमें लवकुशके मुखसे मेरा रामायणश्रवण, उनके साथ मेरे सैनिकोंका युद्ध और जलके घड़ोंसे लवको स्नान कराया जाना, मेरे साथ कुशका संग्राम, सीताकी शपथ, पृथ्वीमें प्रवेश करती हुई सीताको मेरे द्वारा पुनः ग्रहण करना, यज्ञसमाप्ति, मेरे भ्राताओंकी पुत्रोत्पत्ति, बच्चोंकी बालक्रीडा, बच्चोंका उपनयनसंस्कार, बच्चोंका वेदाध्ययन, बालकोंके शुभ चिह्नका वर्णन, सीता द्वारा पुत्रोंका लालन-पालन, सब पुत्रोंका व्रतबंध (उपनयन संकार) ॥ ५२–५५ ॥ ये इतनी कथायें जन्मकाण्डमें हैं ॥ ५ ॥ भूरिकीर्तिकी पुत्रीके स्वयंवरका समाचार पाकर मेरा प्रस्थान, उस पुरीकी स्त्रियों-की मेरे दर्शनके लिए व्यग्रता, वहाँके सब राजाओंका मेरी वन्दना करना, नन्दा द्वारा सब राजाओंकी शोभा और वैभवका वर्णन, चम्पिकाका कुशके गलेमें रत्नमाला डालना, सुमति द्वारा लवके कण्ठमें मालाप्रक्षेप, विविध सम्मानपूर्वक विवाहोत्सव, सीता और अपनी पुत्रवधुओंके साथ रामका अयोध्याको लौटना, जलदेवी द्वारा

सर्वेषां तु विवाहाश्च पृथक् पुत्रगृहाणि हि । कांतिपुर्याश्च मदनसुन्दरीहरणं ततः ॥६१॥
यूपकेतोर्विवाहश्च पौत्राणां गणना ततः । पौत्रीणां गणना चापि सर्वैः सौख्यं ततो मम ॥६२॥

इति विवाहकाण्डम् ॥ ६ ॥

सहस्रनामस्तोत्रं मे कल्पवृक्षसुरद्रुमौ । समानीतौ मया स्वर्गाद्भवं दुर्वाससेक्षणात् ॥६३॥
मत्कृष्णोपासकयोश्च संवादश्च परस्परम् । काकाय वरदानं च शतस्त्रीणां वरार्पणम् ॥६४॥
स्थानान्युक्तानि निद्रायै कृतः क्रोधोऽनुगादिषु । शतस्रोष्णों रावणस्य पौंड्रकस्य वधोऽपि च ॥६५॥
सीताया विरहो जातो हतश्च मूलकासुरः । सीतायाश्च स्तुतिः कैन लंकायां च प्रवेशनम् ॥६६॥
लंकायाः परितश्चापं भ्रामयित्वा पुरीं गतः । लाभः कपिलवाराहमूर्तेर्दत्ता च बंधवे ॥६७॥
लवणासुरघातश्च मथुरायां निवेशनम् । पुत्राणां राज्यभागाश्च सप्तद्वीपजयो मया ॥६८॥
यतिशूद्रगृध्रशिक्षा सप्तप्रेतसुजीवनम् । शूद्राणां वरदानं च द्विजस्त्रीणां वरार्पणम् ॥६९॥
षोडशस्त्रीसहस्राणां वराश्च मृगया मम । कालिंद्यै वरदानं च पिप्पलं छेत्तुमुद्यमः ॥७०॥

इति राज्यकाण्डं पूर्वार्धम् ॥ ७ ॥

वाल्मीकेर्वचनाद्धास्यं कर्तुमाज्ञापितं जनान् । शापोऽश्विनीकुमाराभ्यां गणयोश्च परस्परम् ॥७१॥
ब्रह्मणा मेऽवताराणां वर्णनं च पृथक्कृतम् । जन्मत्रयं च वाल्मीकेर्वरदानस्मृतिर्मम ॥७२॥
मद्राज्यवर्णनं चाथ हेमायाश्च स्वयंवरम् । चित्रांगदेन संग्रामः कथा कंकणयोस्तथा ॥७३॥
लवस्य जीवदानं च राममुद्रा सविस्तरा । रामनाथपुरदानं विप्रैर्दृष्टश्च मारुतिः ॥७४॥
दिनचर्या मम ततः स्वल्पसंततिकारणम् । कर्णध्वनेः कथा चापि मेऽवतारेष्वयं वरः ॥७५॥
पत्रपार्श्वे श्रीरामेति लेखनस्य च कारणम् । सुगुणायै वरदानं द्वे रूपे च मया धृते ॥७६॥
तुलसीपत्रसंधिश्च रामायणश्रुतेः फलम् । सुमंत्रजीवदानं च संग्रामश्च यमेन हि ॥७७॥

बच्चोंका निग्रह और मेरे द्वारा उनका उद्धार ॥ ५६–६० ॥ सब बच्चोंका विवाह, सब बालकोंके लिए अलग-अलग गृहनिर्माण, कान्तिपुरीसे मदनसुन्दरीका हरण, यूपकेतुका विवाह, मेरे पोतों और पोतियोंकी गणना, सब लोगोंके साथ मेरा सौख्यवर्णन, ॥ ६१ ॥ ६२ ॥ ये इतनी कथायें विवाहकांडमें कही गयी हैं ॥ ६ ॥ मेरा सहस्रनामस्तोत्र, मेरे द्वारा कल्पवृक्ष और पारिजातका स्वर्गसे अयोध्या लाया जाना, मेरे और कृष्णके उपासकका संवाद, कौएके लिए मेरे द्वारा वरदान, सौ स्त्रियोंके लिए वरदान, अपने अनुचर आदिपर क्रोध, निद्राके लिए स्थानकथन, शतमुख रावण तथा पौंड्रकका वध, मेरा और सीताका विरह, मूलकासुरका वध, ब्रह्मा द्वारा सीताकी स्तुति और मेरा लंकामें प्रवेश, ॥ ६३–६६ ॥ लंकाकी चारों ओर धनुषकी रेखा बनाकर अपनी पुरीको प्रस्थान, बन्धुके लिए कपिलवाराहकी मूर्तिका दान, लवणासुरका वध, मथुरामें प्रवेश, पुत्रोंके लिए राज्यविभाजन, मेरे द्वारा सातों द्वीपोंकी विजय, यति-शूद्र और गृध्रका न्याय, सप्त प्रेतोंका पुनर्जीवन, शूद्रोंको वरदान, द्विज स्त्रियोंके लिए वरार्पण, सोलह हजार स्त्रियोंके लिए वरदान, मृगयावर्णन, कालिन्दीके लिए वरदान, पीपल वृक्ष काटनेके लिए उद्योग ॥ ६७–७० ॥ ये इतना कथायें राज्यकाण्डके पूर्वार्द्धमें वर्णित है ॥ ७ ॥ मेरे द्वारा हास्यपर प्रतिबंध, वाल्मीकिके परामर्शानुसार लोगोंको हँसनेके लिए मेरे द्वारा आज्ञा दिया जाना, अश्विनीकुमारों और मेरे गणोंमें परस्पर शापप्रदान, ब्रह्माजीके द्वारा मेरे अवतारोंका वर्णन, वाल्मीकिके वरदानसे तीन जन्मोंतकका स्मरण रहना, मेरे राज्यका वर्णन, हेमाका स्वयंवरवर्णन, चित्रांगदके साथ संग्राम, दोनों कंकणोंकी कथा, लवको जीवनदान, सविस्तार राममुद्राका वर्णन, रामनाथपुरका दान, विप्रों द्वारा हनुमान्‌जीका दर्शन ॥७१–७४॥ मेरी दिनचर्या, स्वल्प सन्ततिका कारण, कर्णध्वनिकी कथा, अन्य अवतारोंमें एक विशेष वरदान, पोथीके पन्नेकी बगलमें "श्रीराम" यह लिखनेका कारण, सुगुणाको वरदान, मेरा दो रूप धारण करना ॥ ७५ ॥ ७६ ॥ तुलसीपत्र-

सप्तद्वीपेषु सर्वत्र धर्मशिक्षा मया कृता ।

इति राज्यकाण्डमुत्तरार्धम् ॥ ७ ॥

नारदोक्तं शतश्लोकैश्चरितं मम पावनम् ॥७८॥

पौराणामुपदेशश्च अन्मातॄणां परास्यतः । मनःपूजा बहिःपूजा नररूपधरस्त्वहम् ॥७९॥
रामलिंगतोभद्राणां नानाभेदा विचित्रिताः । मासनवम्या विस्तारः कथा स्त्रीराज्यसंभवा ॥८०॥
मम नामलेखनस्योद्यापनं दानविस्तरः । चिरंजीवित्वविस्तारो वेदादीनां श्रुतेः फलम् ॥८१॥
सार्द्धमासद्वयं नाम ते व्रतं तिथिविस्तरः । गौरीव्रतस्य विस्तारो दोलके मम पूजनम् ॥८२॥
नवम्यां मूर्तिदानं च मदनोत्सवविस्तरः । काम्यदैवतविस्तारो रकाराद्यक्षरो गुणः ॥८३॥
मम नाम्नश्च महिमा मन्नामार्थ उदाहृतः । चैत्रव्रतस्य विस्तारो राक्षसादिगतिः स्मृता ॥८४॥
अद्वैतं दर्शितं लोकान्नारीणां च वरार्पणम् । मन्मुद्रावस्त्रमहिमा कवचं मे हनूमतः ॥८५॥
सीताया लक्ष्मणादीनां कवचानि पृथक् पृथक् । शीतलाव्रतमाहात्म्यं तस्य चोद्यापनं तथा ॥८६॥
रामनामतोभद्रं च मंत्राश्च कीर्तनाय च । पताकारोपणं नाम व्रतं मारुतितोषदम् ॥८७॥
मयोपदिष्टमेतत्ते साररामायणं त्वयि । हनूमता शरसेतोर्र्जुनस्यात्र खंडनम् ॥८८॥

इति मनोहरकाण्डम् ॥ ८ ॥

वाल्मीकिना सोमवंशनृपवृत्तनिवेदनम् । पुत्रयोरभिषेकश्च प्रस्थानं हस्तिनापुरम् ॥८९॥
ततो महान्संगरश्च पुत्रयोश्च जयो मम । ब्रह्मणा प्रार्थना मेऽत्र वाल्मीकेश्च कुशस्य च ॥९०॥
रिपुस्त्रीणां प्रार्थनया सीता पुत्रं न्यवारयत् । ततो विधेश्च वाक्येन वैकुंठ गन्तुमुद्यमः ॥९१॥
सोमवंशोद्भवायाथ दत्तं वै हस्तिनापुरम् । आजमीढाभिषेकश्च सर्वेषां च विसर्जनम् ॥९२॥
कुशस्य गमनं स्वीयपुरि राज्यं शशास सः । सर्पस्वसुः कुमुद्वत्या वारवंशसमुद्भवः ॥९३॥

की सन्धि, रामायणश्रवणका फल, सुमंत्रके लिए जीवनदान, यमराजके साथ संग्राम, सप्तद्वीपमें सर्वत्र मेरा धर्मशिक्षाका प्रचार किया जाना, ॥ ७७ ॥ ७८ ॥ ये इतनी कथायें राज्यकाण्डके उत्तरार्धमें वर्णित हैं ॥ ७ ॥ नारद द्वारा सौ श्लोकोंमें मेरे पावन चरित्रका वर्णन, पुरवासियोंके लिए उपदेश, दूसरों द्वारा अपनी माताओंके लिए उपदेश, मनःपूजा, बहिःपूजा, रामलिङ्गतोभद्रके अनेक भद्र, मासनवमीका विस्तार, स्त्रीराज्यकी उत्पत्तिकी कथा, मेरे नामलेखनका उद्यापन, दाना विस्तार, चिरञ्जीवित्वका विस्तार, वेदोंके श्रवणका फल ॥७९–८१॥ ढाई महीनेके लिए व्रत, तिथिका विस्तार, गौरीव्रतका विस्तार, दोलकमें मेरी पूजा, नवमीको मूर्तिदानकी विधि, मदनोत्सवका विस्तार, काम्य देवताओंका विस्तार, रकारादि अक्षरोंके गुणवर्णन, मेरे नामोंकी महिमा, मेरे नामके लिए उदाहृत चैत्रव्रतका विस्तार, राक्षसादि गतियोंका वर्णन, लोगोंको अद्वैत स्वरूपका दर्शन, स्त्रियोंके लिए वरार्पण, मेरी मुद्रा, मेरे नामसे अङ्कित वस्त्रकी महिमा, हनुमत्कवचका वर्णन ॥८२–८५॥ राम, सीता, लक्ष्मण, भरत तथा शत्रुघ्नकंवच, शीतला व्रतका माहात्म्य, शीतला व्रतका उद्यापन, रामनामतोभद्र मंत्रका कीर्तन, पताकारोहण और हनुमान्‌जीको प्रसन्न करनेवाले व्रतका वर्णन ॥ ८६ ॥ ८७ ॥ इस तरह मैंने तुम्हें साररामायण सुना दिया। इसी रामायणके अन्तर्गत हनुमान्‌जीके द्वारा अर्जुनके शरसेतुके खण्डनकी भी कथा वर्णित है ॥ ८८ ॥ इतनी कथाएँ मनोहरकाण्डमें बतलाई गयी हैं ॥ ८ ॥ वाल्मीकिवर्णित सोमवंशके राजाओंका वृत्तान्त, दोनों पुत्रोंका अभिषेक, हस्तिनापुरके स्थानका वर्णन, दोनों पुत्रोंके साथ मेरा महासंग्राम, मेरी विजय, ब्रह्माजीके द्वारा मेरी, वाल्मीकिकी तथा लवकुशकी स्तुति, रिपु-स्त्रियोंकी प्रार्थनासे सीताका अपने पुत्रोंको युद्ध करनेसे रोकना, ब्रह्माके वाक्यसे मेरी वैकुण्ठयात्राकी तैयारी, सोमवंशियोंके लिए हस्तिनापुरका राज्यदान, आजमीढ़का राज्याभिषेक, सब लोगोंकी विदाई ॥ ८९–९२ ॥ लवकुशका अपनी राजधानीमें पहुँचना और वहाँ शासन करना, कुमुद्वतीसे सन्तानोत्पत्ति, लक्ष्मण एवं सुग्रीव आदि वानरों तथा

वरदानं लक्ष्मणाय वानरेभ्यस्तथा मया । अयोध्यासंस्थितानां च ततो देहविसर्जनम् ॥९४॥
वानरास्ते सुरा जाताः सीता जाता रमा मम । लक्ष्मणः पन्नगो जातः शंखोऽभूद्भरतस्तदा ॥९५॥
सुदर्शनं च शत्रुघ्नो विष्णुरूपधरस्त्वहम् । तदोर्मिलादिकानां च प्रयाणं सर्वयोषिताम् ॥९६॥
नीराजनं सुरस्त्रीभिस्तेषां सांतानिकं पदम् । शंभुना संस्तुतश्चाहं गरुडारोहणं मम ॥९७॥
पुष्पवृष्टिर्मयि तदा वैकुंठे गमनं मम । वैकुण्ठे रमया स्थित्वा देवानां च विसर्जनम् ॥९८॥
सूर्यवंशानुक्रमश्चानन्दरामायणस्य च । कांडसंख्या सर्गसंख्या ग्रंथसंख्या फलश्रुतिः ॥९९॥
रामायणश्रवणस्योद्यापनं च महत्तमम् । ग्रंथदानमनुष्ठानं प्रकाराः पञ्च वै ततः ॥१००॥
अनुष्ठानोद्यापनं च शकुनस्य च विस्तरः । संवादस्य पूर्णतापि युवयोर्गुरुशिष्ययोः ॥१०१॥
आशंकाछेदनं देव्याः कलाऽस्य पठनस्य च । रामायणस्य महिमा चैकश्लोकेन वै त्विदम् ॥१०२॥

मम ध्यानं चेशदेव्योः संवादस्यापि पूर्णता ।

इति पूर्णकाण्डम् ॥ ९ ॥

एवं मया रामदास साररामायणं तव ॥ १०३ ॥

स्मरणार्थं चरित्राणां संक्षेपेण निवेदितम् । इदं गोप्यं त्वया कार्यं महत्पुण्यप्रदं स्मृतम् ॥१०४॥
शतकोटिमितग्रन्थात्सारं सारं मयोदितम् । कः क्षमः सकलं वक्तुं विना वाल्मीकिना भुवि ॥१०५॥
स एव धन्यो वाल्मीकिर्येन मच्चरितं कृतम् । साररामायणमिदं ये पठन्त्यत्र मानवाः ॥१०६॥
तेभ्यो भुक्तिश्च मुक्तिश्च द्विज दास्याम्यहं मुदा । कृत्स्नं रामायणं श्रोतुं पठितुं वा नरोत्तमान् ॥१०७॥
अवकाशो यदा नास्ति तदैतत्संपठेन्नरः । अन्यद्यद्यन्मया कर्म कृतं पूर्वं शुभाशुभम् ॥१०८॥
तन्मच्छन्दात्त्वन्मुखान्निर्गमिष्यति निश्चयम् । त्वद्दृष्टिगोचरं कृत्स्नं चरितं मे भविष्यति ॥१०९॥
विष्णुदासाय शिष्याय वद त्वमधुना सुखम् ॥११०॥

अयोध्यावासियोंके लिए वरदान, अपनी देहका त्याग, वानरोंका अपना शरीर छोड़कर फिर देवता बनना, सीताका लक्ष्मी बन जाना, लक्ष्मणका शेषरूप हो जाना, भरतका पांचजन्य शङ्ख होना, शत्रुघ्नका सुदर्शन चक्र हो जाना और मेरा विष्णुरूप धारण करना, उर्मिला आदि स्त्रियोंका प्रयाण, देवाङ्गनाओं द्वारा सब लोगोंकी आरती, शिवजी द्वारा मेरी स्तुति, मेरा गरुड़ारोहण, मेरे ऊपर पुष्पवृष्टि, मेरा वैकुण्ठगमन, वैकुण्ठमें लक्ष्मीके साथ विराजमान होकर देवताओंका विसर्जन, ॥ ९३-९८ ॥ सूर्यवंशकी अनुक्रमणिका, आनन्दरामायणकी काण्डसंख्या, सर्गसंख्या, रामायणश्रवणका महाफल, ग्रन्थदानविधि, अनुष्ठानके पाँच प्रकार, ॥ ९९ ॥ १०० ॥ अनुष्ठान, उद्यापन, शकुनका विस्तार, तुम दोनों गुरु शिष्योंके संवादकी पूर्णता, देवीका आशंकाछेदन, इसके पाठकी कलाएँ, रामायणके एक-एक श्लोकके पाठकी महिमा, मेरा ध्यान और शिव-पार्वतीके संवादकी समाप्ति, ये इतनी कथायें पूर्णकाण्डमें कही गयी हैं ॥ ९ ॥ हे रामदास ! इस तरह मैंने तुम्हें संक्षेपमें साररामायण बतलायी। इससे तुमको मेरे चरित्रोंका स्मरण करनेमें बड़ा सहायता मिलेगी। यह बड़ी पुण्यदायक रामायण है। इसलिए इसे सदा गुप्त रखना । सौ करोड़ संख्यावाली रामायणका सार अंश लेकर ही इसे मैंने तुमको बताया है । वाल्मीकिके सिवाय भला और कौन है, जो पूरे तौरसे रामायणका वर्णन कर सके ॥ १०१-१०५ ॥ वे वाल्मीकिजी धन्य हैं, जिन्होंने अच्छी तरह मेरे चरित्रोंका वर्णन किया है । जो लोग इस साररामायणका पाठ करते हैं । उन्हें मैं भुक्ति और मुक्ति सब कुछ देता हूँ। यदि किसी सज्जनको पूरी रायायण पढ़ने या सुननेका अवकाश न मिले तो उन्हें इस साररामायणका ही पाठ कर लेना चाहिए । इनके अतिरिक्त भी मैंने जो शुभ अशुभ कर्म किये हैं, वे मेरी इच्छासे तुम्हें मेरे चरित्र वर्णन करते समय अपने-आप स्मरण होते जाएँगे। मेरे सारे चरित्र तुम्हारे दृष्टिगोचर होंगे ॥ १०६-१०९ ॥ अब तुम इसे अपने शिष्य विष्णुदासको आनन्दके साथ सुनाओ ॥ ११० ॥

श्रीरामदास उवाच

एवं श्रीरामचंद्रेण यथाऽत्र कथितं मम । साररामायणं रम्यं तदिदं ते निवेदितम् ॥१११॥
इदं रम्यं पवित्रं च महापातकनाशनम् । सर्वदा मानवैर्जप्यं भुक्तिमुक्तिप्रदायकम् ॥११२॥
कृत्स्नं रामायणं श्रुत्वा यत्फलं प्राप्यते नरैः । तदस्य पठनादेव सत्यं सत्यं वचो मम ॥११३॥
तस्मान्नृभिः सदा जप्यं सर्वेषां शांतिकारकम् । पुत्रपौत्रप्रदं स्त्रीदं महत्सौख्यप्रदं नृणाम् ॥११४॥
रामायणानि शतशः सन्ति शिष्यावनीतले । तथाऽप्यनेन सदृशं न भूतं न भविष्यति ॥११५॥

इति श्रीशतकोटिरामचरितांतर्गते श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये मनोहरकाण्डे रामदास-विष्णुसंवादे श्रीरामचन्द्रोपदिष्टं साररामायणं नाम सप्तदशः सर्गः ॥ १७ ॥

अष्टादशः सर्गः

(हनुमान्‌जीके द्वारा अर्जुननिर्मित शरसेतुभंजन)

श्रीविष्णुदास उवाच

कपिध्वजोऽर्जुनश्चेति मया पूर्वं श्रुतं गुरो । तन्नामकारणं मां त्वं विस्तराद्वक्तुमर्हसि ॥१॥

श्रीरामदास उवाच

सम्यक् पृष्टं त्वया शिष्य सावधानमनाः शृणु । द्वापरान्तं भाविकथां त्वां वदामि चमत्कृताम् ॥२॥
एकदा कृष्णरहितोऽर्जुनः स्यन्दनसंस्थितः । ययावरण्ये विचरन्मृगयार्थं हि दक्षिणाम् ॥३॥
एकाकी सूतसंस्थाने स्थित्वा तत्कृत्यमाचरन् । हत्वा वने मृगान्धन्वी मध्याह्ने स्नातुमुद्यतः ॥४॥
ययौ रामेश्वरं सेतौ धनुष्कोट्यां विगाह्य च । मध्याह्नकृत्यं संपाद्य पुनः स्यंदनसंस्थितम् ॥५॥
अब्धेस्तटे विचचार किंचिद्गर्वसमन्वितः । एतस्मिन्नंतरेऽरण्ये पर्वतोपरि संस्थितम् ॥६॥
ददर्श मारुतिं वीरः सामान्यकपिरूपिणम् । राम रामेति जल्पंतं पिंगलोमधरं शुभम् ॥७॥

दास बोले—जिस तरह रामचन्द्रजीने मेरे समक्ष साररामायणका वर्णन किया था, सो मैंने कह सुनाया ॥१११॥ यह साररामायण दिव्य, पवित्र और महान् पातकोंको नष्ट करनेवाला है। लोगोंको चाहिए कि भुक्ति और मुक्ति देनेवाले इस रामायणका पाठ करें ॥ ११२ ॥ पूरी रामायणके सुननेसे जो फल प्राप्त होता है, वही फल इस साररामायणके भी श्रवण करनेसे प्राप्त हो जाता है। मेरी बात सर्वथा सत्य है ॥ ११३ ॥ इसीलिए लोगोंको सर्वदा इसका पाठ करते रहना चाहिए। क्योंकि यह सबको शान्ति प्रदान करता है। यह पुत्र, पौत्र, स्त्री तथा महान् सुखोंका दाता है ॥ ११४ ॥ हे शिष्य ! वैसे तो इस पृथ्वीतलमें सैंकड़ों रामायणें हैं, किन्तु इसके समान अबतक न कोई रामायण हुई है और न आगे होगी ॥ ११५ ॥ इति श्रीशतकोटिरामचरितान्तर्गते श्री-मदानन्दरामायणे वाल्मीकीये पं० रामतेजपाण्डेयकृत'ज्योत्स्ना'भाषाटीकासहिते मनोहरकाण्डे साररामायणं नाम सप्तदशः सर्गः ॥ १७ ॥

विष्णुदास बोले—हे गुरो ! मैं कभी आपके मुखसे अर्जुनका कपिध्वज यह नाम सुन चुका हूँ। उनका यह नाम क्यों पड़ा, सो कृपा करके आप हमें बतलाइए ॥ १ ॥ श्रीरामदास कहने लगे—हे शिष्य ! तुमने बहुत ही उत्तम प्रश्न किया है। सावधान होकर सुनो। यद्यपि यह कथा द्वापरके अन्तकी है, फिर भी तुम्हें बतलाता हूँ ॥ २ ॥ एक दिन कृष्णजीको छोड़कर अकेले अर्जुन वनमें शिकार खेलने गये और घूमते-घूमते दक्षिण दिशाकी ओर चले गये ॥३॥ उस समय सारथीके स्थानपर वे स्वयं थे और घोड़ोंको हाँकते हुए चले जा रहे थे। इस तरह वनमें घूम-घूमकर दोपहरके समय तक उन्होंने बहुतसे वनजन्तुओंको मारा। इसके बाद स्नान करनेकी तैयारियाँ करने लगे ॥ ४ ॥ स्नान करनेके लिये वे सेतुबन्ध रामेश्वरके धनुषकोटितीर्थपर गये, वहाँ स्नान किया और कुछ गर्वसे समुद्रके तटपर घूमने लगे। तभी उन्होंने एक पर्वतके ऊपर साधारण वानरका स्वरूप धारण करके हनुमान्‌जीको बैठे देखा। उस समय हनुमान्‌जी रामनाम जप रहे थे।

तमर्जुनोऽब्रवीद्वाक्यं किं नामास्ति कपे तव । तदर्जुनवचः श्रुत्वा विहस्य कपिरब्रवीत् ॥८॥
यत्प्रतापाच्च रामेण शिलाभिः शतयोजनम् । बद्धोऽयं सागरे सेतुस्तं मां त्वं विद्धि वायुजम् ॥९॥
इति तद्गर्वसहितं वाक्यं श्रुत्वाऽर्जुनस्तदा । गर्वाद्विहस्य प्रोवाच मारुतिं पुरतः स्थितम् ॥१०॥
वृथा रामेण सेत्वर्थं श्रमः पूर्वं कृतस्त्वयम् । कथं तेन शरैः सेतुं कृत्वा कार्यं कृतं न हि ॥११॥
तदर्जुनवचः श्रुत्वा मारुतिः प्राह तं पुनः । मत्तुल्यकपिभारेण शरसेतुः पयोनिधौ ॥१२॥
न्युब्जिष्यतीति मत्वा तं नाकरोद्रघुनन्दनः । तत्कपेर्वचनं श्रुत्वाऽर्जुनो मारुतिमब्रवीत् ॥१३॥
कपिभाराद्यदा सेतुर्जले मग्नो भविष्यति । धनुर्विद्या धन्विनः का तदा वानरसत्तम ॥१४॥
अधुनाऽहं करिष्यामि शरसेतुं तवाग्रतः । त्वं तस्योपरि नृत्यादि कुरुष्वात्र यथासुखम् ॥१५॥
धनुर्विद्यां ममाद्य त्वं कपे पश्यतुमर्हसि । तदर्जुनगिरं श्रुत्वा तमाह सस्मितः कपिः ॥१६॥
ममाग्रयंगुष्ठभारेण शरसेतुस्त्वया कृतः । चेन्मग्नः स्यात्समुद्रे हि तदा कार्यं त्वयाऽत्र किम्॥१७॥
तत्कपेर्वाक्यमाकर्ण्य सोऽर्जुनः प्राह तं पुनः । यदि मग्नः शरसेतुस्त्वद्भाराच्चर्ह्यहं कपे ॥१८॥
विशाम्यत्रानलं सत्यं त्वं चाप्यद्य पणं वद । तत्प्रतिज्ञां कपिः श्रुत्वाऽर्जुनं वचनमब्रवीत् ॥१९॥
मया स्वांगुष्ठभारेण त्वत्सेतुश्चेन्न लोपितः । तर्हि त्वद्ध्वजसंस्थोऽहं तव साहाय्यमाचरे ॥२०॥
तथाऽस्त्वित्यर्जुनः प्राह टणत्कृत्य महद्धनुः । निर्ममे शरसंजालैः सेतुं दृढतरं घनम् ॥२१॥
शतयोजनविस्तीर्णं सागरस्योर्ध्वतः स्थितम् । तं सेतुं मारुतिर्दृष्ट्वार्जुनाग्रेऽङ्गुष्ठभारतः ॥२२॥
अकरोत्सागरे मग्नं क्षणमात्रेण लीलया । तदा देवाः सगंधर्वाः किन्नरोरगराक्षसाः ॥२३॥
विद्याधराश्चाप्सरसः सिद्धाद्या गगनस्थिताः । मारुतिं ह्यर्जुनस्याग्रे ववर्षुः पुष्पवृष्टिभिः ॥२४॥
तत्कर्मणाऽर्जुनश्चापि चितां कृत्वाऽब्धिरोधसि । निवारितोऽपि कपिना देहं त्यक्तुं समुद्यतः ॥२५॥

पीले रङ्गके रोएँ उनके शरीरपर बड़े अच्छे लग रहे थे ॥ ५-७ ॥ उन्हें देखकर अर्जुनने पूछा—हे वानर ! तुम कौन हो ? तुम्हारा नाम क्या है ? अर्जुनका प्रश्न सुना तो हँसकर हनुमान्‌जी बोले कि जिनके प्रतापसे रामचन्द्रजीने समुद्रपर सौ योजन विस्तृत सेतु बनाया था, मैं वही वायुपुत्र हनुमान् हूँ ॥ ८ ॥ ९ ॥ इस तरह गर्वभरे वचन सुनकर अर्जुनने भी गर्वसे हँसकर कहा कि रामने व्यर्थ इतना कष्ट उठाया। उन्होंने बाणोंका सेतु बनाकर क्यों नहीं अपना काम चला लिया ॥ १० ॥ ११ ॥ अर्जुनकी बात सुनकर हनुमान्‌जीने कहा—हम जैसे बड़े बड़े वानरोंके बोझसे वह बाणका सेतु डूब जाता, यही सोचकर उन्होंने ऐसा नहीं किया ॥ १२ ॥ १३ ॥ अर्जुनने कहा—हे वानरसत्तम ! यदि वानरोंके बोझसे सेतु डूब जानेका भय हो तो उस धनुर्धारीकी धनुर्विद्याकी ही क्या विशेषता रही ॥ १४ ॥ अभी इसी समय मैं अपने कौशलसे बाणोंका सेतु बनाये देता हूँ, तुम उसके ऊपर आनन्दसे नाचो-कूदो ॥ १५ ॥ इस प्रकार मेरी धनुर्विद्याका नमूना भी देख लो। अर्जुनकी ऐसी बात सुनकर हनुमान्‌जी मुसकराते हुए कहने लगे कि यदि मेरे पैरके अंगूठके बोझसे ही आपका बनाया सेतु डूब जाय तो क्या करियेगा ? ॥ १६ ॥ १७ ॥ हनुमान्‌जीकी बात सुनकर अर्जुनने कहा कि यदि तुम्हारे भारसे सेतु डूब जायगा तो मैं चिता लगाकर उसकी आगमें जल मरूँगा। अच्छा, अब तुम भी कोई बाजी लगाओ। अर्जुनकी बात सुनकर हनुमान्‌जी कहने लगे कि यदि मैं अपने अंगूठेके ही भारसे तुम्हारे बनाये सेतुको न डुबा सकूँगा तो तुम्हारे रथकी ध्वजाके पास बैठकर जीवनभर तुम्हारी सहायता करूँगा ॥ १८-२० ॥ "अच्छा, यही सही" ऐसा कहकर अर्जुनने अपने धनुषका टंकोर किया और अपने बाणोंके समूहसे बहुत थोड़े समयमें एक सुदृढ़ सेतु बनाकर तैयार कर दिया ॥ २१ ॥ उस सेतुका विस्तार सौ योजन था और वह सागरके ऊपर ही उतरा रहा था। उस सेतुको देखकर हनुमान्‌जीने उनके सामने ही अपने अंगुठके भारसे डुबा दिया। उस समय गन्धर्वोंके साथ-साथ देवताओंने हनुमान्‌जीपर फूलोंकी वर्षा की ॥ २२-२४ ॥ हनुमान्‌जीके इस कर्मसे खिन्न होकर अर्जुनने

एतस्मिन्नन्तरे कृष्णस्तं प्राह बटुरूपधृक्। ज्ञात्वाऽर्जुनमुखात्सर्वं पूर्ववृत्तं पणादिकम् ॥२६॥
उभाभ्यां यद्यच्चरितं पूर्वं तच्च वृथा गतम्।
साक्षित्वेन विना कर्म सत्यं मिथ्या न बुध्यते ॥२७॥
साक्षित्वेनाधुना मेऽत्र युवाभ्यां कर्म पूर्ववत्।
कर्तव्यं तदहं दृष्ट्वा सत्यं मिथ्या वदाम्यहम् ॥२८॥
तद्वटोर्वचनं श्रुत्वा द्वावूचतुस्तथेति च। ततश्चकार गांडीवी शरसेतुं हि पूर्ववत् ॥२९॥
सेतोरंतर्गतं चक्रं श्रीकृष्णश्चाकरोत्तदा।
ततः स्वांगुष्ठभारेण कपिः सेतुं प्रपीडयत् ॥३०॥
सेतुं दृढं कपिर्ज्ञात्वा पादजानुकरादिभिः।
बलेन पीडयामास स सेतुस्तैश्चचाल न ॥३१॥
तदा तूष्णीं हनूमान्स मंत्रयामास चेतसि। पूर्वं मयांगुष्ठभारात्सेतुश्चाब्धौ विलोपितः ॥३२॥
हस्तादिभिः कथं नायमिदानीं न विलुप्यते।
कारणं बटुरेवात्र बटुर्नायं हरिस्त्वयम् ॥३३॥
अस्तीत्यहं विजानामि स्मृतं पूर्ववरादिकम्।
मद्गर्वपरिहारोऽद्य कृष्णेनानेन कर्मणा ॥३४॥
कुतोऽस्त्यत्र क कृष्णाग्रे मन्मर्कटसुपौरुषम्। इति निश्चित्य मनसि कपिः सोऽर्जुनमब्रवीत् ॥३५॥
जितं त्वया बटोर्योगात्तत्र साहाय्यमाचरे।
नायं बटुस्त्वयं कृष्णः सेतुचक्रप्रवेशकृत् ॥३६॥
त्वत्साहाय्यार्थमायातः सत्यं ज्ञातो मयाऽर्जुन।
अनेन रामरूपेण त्रेतायां मे वरोऽर्पितः ॥३७॥

समुद्रके तटपर ही चिता तैयार की और हनुमान्‌जीके रोकनेपर भी वे उसमें कूदनेको उद्यत हो गये ॥ २५ ॥ इसी समय एक ब्रह्मचारीका रूप धारण करके श्रीकृष्णचन्द्रजी वहाँ आये और उन्होंने अर्जुनसे चितामें कूदनेका कारण पूछा। अर्जुनके मुखसे ही सब बात मालूम करके कहा कि तुम लोगोंने उस समय जो बाजी लगायी थी, वह निःसार थी। क्योंकि उस समय तुम्हारी बातोंका कोई साक्षी नहीं था। साक्षीके बिना साँच झूठका कोई ठिकाना नहीं रहता। इस समय मैं तुम्हारे समय साक्षीके रूपमें विद्यमान हूँ। अब तुम लोग फिर पहलेकी तरह कार्य करो तो मैं तुम्हारे कर्मोंको देखकर विजय-पराजयका निर्णय करूँगा ॥ २६–२८ ॥ ब्रह्मचारीकी बात सुनकर दोनोंने कहा–ठीक है और फिर अर्जुनने पूर्ववत् सेतुकी रचना की ॥२९॥ अबकी बार सेतुके नीचे कृष्णचन्द्रजीने अपना सुदर्शन चक्र लगा दिया। सेतु तैयार होनेपर हनुमानजी पूर्ववत् अपने अंगूठेके भारसे उसे डुबाने लगे ॥ ३० ॥ जब हनुमान्‌जीने अबकी बार सेतुको मजबूत देखा तो पैरों, घुटनों तथा हाथोंके बलसे उसे दबाया, किन्तु वह जौ भर भी नहीं डूबा ॥ ३१ ॥ चुपचाप हनुमान्‌जीने सोचा कि पहले तो मैंने अंगूठेके ही बोझसे सेतुको डुबा दिया था तो फिर यह हाथ-पैर आदि मेरे पूरे शरीरके बोझसे भी क्यों नहीं डूबता। इसमें ये ब्रह्मचारीजी ही कारण हैं। ये ब्राह्मण नहीं, बल्कि साक्षात् कृष्णचन्द्रजी हैं और मेरे गर्वका परिहार करनेके लिए ही इन्होंने ऐसा किया है। वास्तवमें है भी ऐसा ही। भला, इन भगवान्‌के सामने हम जैसे वानरकी सामर्थ्य ही क्या है। ऐसा निश्चय करके हनुमान्‌जीने अर्जुनसे कहा कि आपने इन ब्रह्मचारीकी सहायतासे मुझे परास्त कर दिया है। ये कोई बटु नहीं, साक्षात् भगवान् हैं। इन्होंने सेतुके नीचे अपना सुदर्शन चक्र लगा दिया है ॥३२–३६॥ हे अर्जुन! हमें यह बात मालूम हो गयी है कि ये आपकी

दास्यामि दर्शनं तेऽहं द्वापरे कृष्णरूपधृक्। तत्सत्यं वचनं चाद्य कृतं त्वत्सेतुहेतुतः ॥३८॥
इत्यर्जुनं कपिर्यावदब्रवीत्तावदग्रतः।
बटुरेवाभवत्कृष्णः पीतवासा घनप्रभः ॥३९॥
तद्दर्शनोर्ध्वरोमाऽभूत्प्रणनामांजनीसुतः।
आलिंगितोऽपि कृष्णेन स मेने कृतकृत्यताम् ॥४०॥
चक्रं ययौ यथास्थानं श्रीकृष्णस्याज्ञया तदा। सागरेण स्वकल्लोलैः शरसेतुर्विलोपितः ॥४१॥
तदाऽर्जुनो गर्वहीनो मेने कृष्णेन जीवितः।
कृष्णस्तदाऽर्जुनं प्राह त्वया रामेण स्पर्द्धितम् ॥४२॥
हनूमता धनुर्विद्या तवातोऽत्र मृषा कृता।
यत्प्रतापादिति गिरा त्वयाऽपि वायुनन्दन ।४३॥
रामेण स्पर्द्धितं यस्मात्तस्मादर्जुन संजितः। अतः परं वीतगर्वस्त्वं मां भज निरन्तरम् ॥४४॥
इत्युक्त्वा मारुतिं पृष्ट्वाऽर्जुनेन तत्पुरं ययौ।
अतः कपिध्वजश्चेति जनैरर्जुन ईर्यते ॥४५॥
इति भाविकथा पृष्टा त्वया साऽपि मयोदिता।
किमग्रे श्रोतुकामोऽसि तत्पृच्छस्व वदामि ते ॥४६॥

विष्णुदास उवाच

गुरोऽधुना राघवस्य वैकुंठारोहणोत्सवम्।
मां वदस्व सविस्तारं येनाहं तोषमाप्नुयाम् ॥४७॥

श्रीरामदास उवाच

पूर्णकांडं तावदद्याहं वदिष्यामि शृणुष्व तत्।

सहायताके लिए ही यहाँ आये हैं। यही रूप धारण करके त्रेतामें रामने हमें वरदान दिया था कि द्वापरके अन्तमें मैं तुम्हें कृष्णरूपसे दर्शन दूँगा। आपके सेतुके बहाने इन्होंने अपना वरदान भी आज पूरा कर दिया ॥ ३७॥ ३८ ॥ हनुमान्‌जी अर्जुनसे ऐसा कह ही रहे थे कि इतनेमें भगवान् अपने बटुरूपको त्यागकर कृष्ण बन गये। उस समय वे पीले वस्त्र पहने थे और नवनीरदके समान उनका श्याम शरीर था। उन कृष्णचन्द्रजीका दर्शन करते ही हनुमान्‌जीके रोंगटे खड़े हो गये और उन्होंने उन्हें साष्टांग प्रणाम किया। जब श्रीकृष्णने हनुमान्‌जीको उठाकर अपने हृदयसे लगाया, तब हनुमान्‌जीने अपनेको कृतकृत्य मान लिया ॥३९॥४०॥ श्रीकृष्णके आज्ञानुसार चक्र सेतुसे निकलकर अपने स्थानको चला गया और अर्जुनका बनाया सेतु भी समुद्रकी तरंगोंमें लुप्त हो गया ॥ ४१ ॥ इस तरह अर्जुनका गर्व नष्ट हो गया और उन्होंने समझा कि कृष्णने हमें जीवित रख लिया। कुछ देर बाद श्रीकृष्णजीने अर्जुनसे कहा कि तुमने रामके साथ स्पर्धा की थी। इसलिए हनुमान्‌जीने तुम्हारी धनुर्विद्याको व्यर्थ कर दिया था। इसी प्रकार हे पवनसुत ! तुमने भी रामसे स्पर्द्धा की थी। इसी कारण तुम अर्जुनसे परास्त हुए। तुम्हारा गर्व नष्ट हो गया। अब आनन्दके साथ मेरा भजन करो। ऐसा कह और हनुमान्‌जीसे पूछकर श्रीकृष्ण अर्जुनके साथ हस्तिनापुर चले गये। हे शिष्य ! इसी कारण अर्जुन कपिध्वज कहे जाते हैं ॥ ४२-४५ ॥ यद्यपि तुमने हमसे यह भविष्यकी कथा पूछी थी, फिर भी मैने कह सुनाया। अब आगे क्या सुनना चाहते हो सो बताओ। मैं तुमको सुनाऊँ ॥ ४६ ॥ विष्णुदासने कहा—हे गुरो ! अब मैं रामचन्द्रजीके वैकुण्ठारोहणका वृत्तान्त सुनना चाहता हूँ। सो आप विस्तापूर्वक हमें बताइए, जिससे हमारे हृदयको सन्तोष हो। श्रीरामदासने कहा—आगे मैं तुमसे पूर्वकांड कहनेवाला हूँ। उसमें भगवानके वैकुण्ठारोहणका वृत्तांत तुम्हें अच्छी तरह सुननेको मिलेगा ॥४७॥

यस्मिंश्च रामचन्द्रस्य वैकुण्ठारोहणोत्सवम् ।।४८।।
इदं मनोहरं कांडं मया ते समुदीरितम् ।
ये शृण्वंति नरा भूम्यां तेषां रामे रतिर्भवेत् ।।४९।।
मनोऽभिलषितान् कामांस्ते लभन्ते न संशयः ।
पुत्रार्थी प्राप्नुयात्पुत्रं धनार्थी धनमाप्नुयात् ।।५०।।
इदं रम्यं पवित्रं च श्रवणान्मंगलप्रदम् ।
पठनीयं प्रयत्नेन रामसद्भक्तिवर्द्धनम् ।।५१॥
आनन्दरामायणमध्यसंस्थं मनोहरं कांडमिदं विचित्रम् ।
पठंति शृण्वंति गृणन्ति मर्त्यास्ते स्वीयकामानखिलान् लभंते ।।५२।।
इदं पवित्रं परमं विचित्रं नानाचरित्रं त्वतिपुण्यदं च ।
सदा नरैः श्राव्यमिदं मुदा श्रीसीतापतेर्भक्तिविवृद्धिकारि ।।५३।।

इति श्रीशतकोटिरामचरितांतर्गते श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये मनोहरकांडे रामदासविष्णुदाससंवादे हनूमता शरसेतुभंगो नाम अष्टादशः सर्गः ॥ १८ ॥

मनोहरकांडे सर्गा आनन्दरामायणेऽष्टादश ज्ञातव्याः ।
एकत्रिंशच्छताः श्लोका रामदासमुनिना पापनुदः प्रोक्ताः ॥ १ ॥

अथ मनोहरकांडे प्रकरणानुक्रमः ।

लघुरामायणम् ॥ १०४ ॥ वैकुंठारोहणम् ॥ १५५ ॥ रामपूजा ॥ २७५ ॥ लघुरामतोभद्रम् ॥३०९॥ रामलिंगतोभद्रम् ॥३७७॥ नवमीव्रतम् ॥२४१॥ रामनवम्युद्यापनम् ॥ १३२ ॥ वेदादिकाव्यपूजा ॥१२७॥ विशेषकालपूजा ॥ १९३ ॥ चैत्रमहिमावर्णनम् ॥ १६७ ॥ पिशाचमुक्तिः

॥ ४८ ॥ मैंने तुम्हें यह मनोहरकांड सुनाया है। जो लोग इस कांडको सुनते हैं, उन्हें रामचन्द्रजीकी भक्ति प्राप्त होती है ॥ ४९ ॥ वे अपना मनोऽभिलषित फल प्राप्त कर लेते हैं। इसमें कोई संशय नहीं है। इसको सुननेवाला यदि पुत्र चाहता हो तो पुत्र और धनार्थी धन पाता है ॥ ५० ॥ यह कांड बड़ा रम्य, पवित्र और सुननेसे मङ्गलदायक है। इसलिए लोगोंको प्रयत्न करके इसका पाठ करना चाहिए। इसके पाठसे रामके चरणोंमें भक्ति बढ़ती है ॥ ५१ ॥ आनन्दरामायणके अन्तर्गत यह मनोहरकांड बड़ा विचित्र है। जो लोग इसका पठन-श्रवण तथा मनन करते हैं, वे अपनी सारी कामनायें पूर्ण कर लेते हैं ॥ ५२ ॥ यह कांड परम पवित्र, विचित्र, भगवान्‌के विविध चरित्रोंसे भरा हुआ और अतिशय पुण्यप्रदायक है। इसलिए लोगोंको चाहिए कि रामकी भक्ति बढ़ानेवाले इस मनोहरकांडका अवश्य श्रवण करें ॥ ५३ ॥ इति श्रीशतकोटिरामचरितान्तर्गते श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये पं० रामतेजपाण्डेयकृत'ज्योत्स्ना'भाषाटीकासहिते मनोहरकाण्डे अष्टादशः सर्गः ॥ १८ ॥

इस मनोहरकाण्डमें कुल अठारह सर्ग हैं और इसमें रामदास मुनिने पापनाशकारी एकतीस सौ श्लोक कहे हैं ॥ १ ॥ मनोहकांडका प्रकरणानुक्रम—लघुरामायणमें १०४ श्लोक, वैकुण्ठारोहणमें १५५, रामपूजामें २७५, लघुरामतोभद्रमें ३०९, रामलिंगतोभद्रमें ३७७, नवमीव्रतमें २४१, रामनवमीउद्यापनमें १३२,

॥२९६॥ अद्वैतवर्णनम् ॥ १०७ ॥ कवचद्वयम् ॥ ८८ ॥ सीताकवचम् ॥ १०३ ॥ लक्ष्मण-भरत-शत्रुघ्नकवचानि ॥ १८२ ॥ हनुमत्पताकारोपणम् ॥६५॥ साररामायणम् ॥ १५२ ॥ शरसेतुभङ्गः ॥ ५३ ॥ इति प्रकरणानि । एवं मिलित्वा मनोहरकांडे श्लोकसंख्या ॥३१००॥ इयं मंत्रवृत्तादि-रहिता संख्याऽस्ति ।

वेदादिकाव्यपूजामें १२७, विशेषकालकी पूजामें १९३, चैत्रमहिमावर्णनमें १६७, पिशाचमुक्तिमें २९६, अद्वैतवर्णनमें १०७, हनुमत्कवच तथा रामकवचमें ८८, सीताकवचमें १०३, लक्ष्मण भरत तथा शत्रुघ्नकवचमें १८२, हनुमत्पताकारोपणमें ६५, साररामायणमें १५२ और शरसेतुभङ्गमें ५३ श्लोक कहे गये हैं और ये ही १८ प्रकरण वर्णित हैं। सब मिलाकर ३१०० श्लोक इस काण्डमें हैं। किन्तु यह संख्या मन्त्र और वृत्त आदि-की संख्या छोड़कर बतायी है।

॥ इति आनन्दरामायणे मनोहरकाण्डं समाप्तम् ॥

श्रीरामचन्द्रार्पणमस्तु ।

श्रीसीतापतये नमः

श्रीवाल्मीकिमहामुनिकृतशतकोटिरामचरितान्तर्गतं—

आनन्दरामायणम्

'ज्योत्स्ना'ऽभिधया भाषाटीकयाऽऽटीकितम्

पूर्णकाण्डम्

प्रथमः सर्गः

(सोमवंशी राजाओंकी कथाका विस्तार)

श्रीरामदास उवाच

अथ शासति राजेन्द्रे रामे सीताभिरञ्जिते । सभायामेकदा दूतः सुषेणस्य गजाह्वयात् ॥ १ ॥
समाययौ स विकलो रामं नत्वाऽब्रवीद्वचः । राम राजीवपत्राक्ष सोमवंशोद्भवैर्नृपैः ॥ २ ॥
संवेष्टितं गजपुरं नलाद्यैश्चिरजीविभिः । तद्दूतवचनं श्रुत्वा राघवोऽतीव विस्मितः ॥ ३ ॥
वसिष्ठं प्राह मद्राज्ये न कदा पार्थिवोत्तमाः । समागता मया योद्धुं किमिदानीं हि श्रूयते ॥ ४ ॥
किं कारणं गुरो ह्यत्र विचारय सविस्तरम् । तद्रामवचनं श्रुत्वा तं गुरुः प्रत्यभाषत ॥ ५ ॥
प्रष्टव्यमद्य वाल्मीकिं येन ते चरितं कृतम् । तच्छ्रुत्वा लक्ष्मणं प्रेष्य समाहूयाथ तं मुनिम् ॥ ६ ॥
सीतया पूजनं कृत्वा रामो वृत्तं न्यवेदयत् । वाल्मीकिस्तु तदा प्राह रामं किंचिद्विहस्य सः ॥ ७ ॥
किं त्वं न वेत्सि राजेन्द्र विनोदान्मां तु पृच्छसि । श्रृणुष्व तर्हि मे वाक्यं सर्वे श्रृण्वन्तु ते प्रियाः ॥ ८ ॥
एकादश सहस्राणि वत्सराणि तथा पुनः । एकादश समाश्चापि मासास्त्वेकादशैव हि ॥ ९ ॥

श्रीरामदास कहने लगे—जब कि रामचन्द्रजी सीताके साथ सुख भोगते हुए अयोध्याका राज कर रहे थे। उन्हीं दिनों सुषेणका एक घबड़ाया हुआ दूत हस्तिनापुरसे आ पहुँचा। उसने भगवान्‌को प्रणाम करके कहा—हे राजीवपत्राक्ष राम! सोमवंशी राजे नल आदिने हस्तिनापुरको चारों ओरसे घेर लिया है। दूतकी यह बात सुनकर रामचन्द्रजी बड़े विस्मित हुए॥ १–३ ॥ वे गुरु वसिष्ठसे बोले—हे गुरुवर! यह मैं क्या सुन रहा हूँ? आज तक तो कभी ये राजे मेरे साथ युद्ध करने नहीं आये थे ॥ ४ ॥ कृपा करके आप इसपर सविस्तार विचार करिए। रामकी बात सुनकर वसिष्ठजीने कहा कि यह बात आप वाल्मीकिजीसे पूछें। क्योंकि उन्होंने ही आपके चरित्रकी रचना की है। यह सुनकर रामने लक्ष्मणको भेजकर वाल्मीकिजीको बुलवाया ॥ ५ ॥ ६ ॥ वाल्मीकिके आनेपर सीताके साथ-साथ रामने उनकी पूजा की और हस्तिनापुरका सब समाचार कह सुनाया। वाल्मीकिने हँसकर कहा—क्या आपको ये बातें नहीं मालूम हैं? मालूम हैं। किन्तु कौतुक वश आप हमसे पूछ रहे हैं। अच्छा, आपकी यही इच्छा है तो सुनिए। आपके प्रियजन भी सावधानीके साथ मेरी बात सुनें ॥ ७ ॥ ८ ॥ ग्यारह हजार ग्यारह वर्ष, ग्यारह महीना, ग्यारह दिन, ग्यारह घड़ी और ग्यारह पलका समय

एकादश दिनान्यत्र घटिकाश्चापि तन्मिताः । एकादश पलान्येव ते राज्यं निश्चितं मया ॥१०॥
शतकोटिमिते काव्ये पुरैव तेऽवतारतः ।
तन्मध्येऽत्र ह्यतीतानि सहस्राणि तथा समाः । अतीताः शेषभूताश्च मासाः शेषं दिनादिकम् ॥११॥
अष्टादशदिनैर्न्यूनमग्रे वर्षं प्रभोऽत्र यत् । शेषभूतं सङ्गरेण परिपूर्णं भविष्यति ॥१२॥
अयं कालोऽवतारस्य समाप्तेस्ते समागतः । गत्वा भागीरथीं पुण्यां पूर्वजेनावनीतलम् ॥१३॥
प्रापितां तव राजेन्द्र तस्यां स्नात्वा यथाविधि । स्तुतो ब्रह्मादिकैः सर्वैः पदं स्वीयं गमिष्यसि ॥१४॥
तन्मुनेर्वचनं श्रुत्वा राघवो वाक्यमब्रवीत् । एतावत्कालपर्यन्तं नलाद्याः कुत्र संस्थिताः ॥१५॥
कुतोऽधुना समायातास्तत्सर्वं विस्तराद्वद । तद्रामवचनं श्रुत्वा वाल्मीकिर्वाक्यमब्रवीत् ॥१६॥
शृणु राम महाबाहो सर्वं ते कथयाम्यहम् । अत्रिर्मुनिः पुरा राम पूर्णिमायां कृते युगे ॥१७॥
वैशाख्यामेकदा सोमं दृष्ट्वा नारीमुखोपमम् । मुमोच वीर्यं भूम्यां स तस्मात्पुत्रो बभूव ह ॥१८॥
सोमस्य दर्शनाज्जातः सोमाख्यः स बभूव ह । सोऽरण्ये जाह्नवीतरे चकार तप उत्तमम् ॥१९॥
एतस्मिन्समये तत्र कश्चिद्धस्ती समाययौ । निहतः पक्षिभिस्तत्र तद्दृष्ट्वा कौतुकं महत् ॥२०॥
सोमो विचारयामास पक्षिभिर्निहतः करी । अस्या भूम्याः प्रभावोऽयं पुरं तत्र चकार सः ॥२१॥
हस्तिनाशात्पुरं जातं तस्माच्चद्धस्तिनापुरम् । तत्र पौरैः कृतो राजा सोम एव रघूत्तम ॥२२॥
तस्य जातो बुधः पुत्रस्तावुभौ जगतीतलम् । सद्वीपं स्ववशं कृत्वा सुरलोकं प्रजग्मतुः ॥२३॥
तत्र जित्वा सुरान्सर्वान्सुरस्त्रीभिश्च संयुतौ । मुक्त्वा देवान्स्वर्गलोके निवासं चक्रतुर्मुदा ॥२४॥
तयोर्ददौ वरान्ब्रह्मा युवां मद्वंशसंभवौ । युवाभ्यां मोचितस्त्वद्य देवसंघयुतस्त्वहम् ॥२५॥
युवाभ्यां तर्ह्यहं वच्मि वरांश्छृणुत बालकौ । युष्मद्वंशे नृपाः केचिदग्रे त्रिपुरुषोर्ध्वतः ॥२६॥

आपको राज्य करनेके लिए मैंने निर्द्धारित किया था ॥ ६ ॥ १० ॥ ये बातें मैं आपके अवतारके पहले ही अपने शतकोटिसंख्यात्मक रामायणमें लिख चुका हूँ । वे ग्यारह हजार ग्यारह वर्ष व्यतीत हो गये । अब ग्यारह महीना और ग्यारह दिन तथा घड़ी-पल आदि ही बाकी बचे हैं ॥११॥ सब मिलाकर अष्टादश दिवस न्यून एक वर्ष बाकी हैं। वह समय संग्राममें समाप्त होगा ॥ १२ ॥ आपके अवतारका समय समाप्त हो रहा है। अब आप अपने पूर्वज अर्थात् भगीरथ द्वारा लायी हुई गङ्गामें विधिवत् स्नान करके ब्रह्मादिक समस्त देवताओंसे संस्तुत होकर अपने परम धामको जायँगे ॥ १३ ॥ १४ ॥ वाल्मीकिकी बात सुनकर रामने कहा कि अबतक ये नल आदि राजे कहाँ थे ? ॥ १५ ॥ इस समय कहाँसे आ गये है, यह सब आप हमें विस्तारपूर्वक बतलाइए । रामका वचन सुनकर वाल्मीकि बोले-हे राम ! हे महाबाहो ! मैं सब कुछ कहता हूं, सुनिए । बहुत दिन हुए, सत्ययुगमें अत्रि ऋषिने वैशाखकी पूर्णिमाको चन्द्रमाका मुख एक स्त्रीके समान सुन्दर देखकर अपना वीर्य त्याग दिया और उससे एक पुत्र उत्पन्न हुआ ॥ १६-१८ ॥ चन्द्रमाको देखनेसे वह पुत्र उत्पन्न हुआ था। इसलिए वह सोम कहलाया और वनमें जाकर गङ्गाजीके तटपर उत्तम तप करने लगा ॥ १९ ॥ उसी समय वहाँ एक हाथी आ गया। उस हाथीको कुछ पक्षियोंने मिलकर मार डाला। यह महाकौतुक देखकर सोमने अपने मनमें सोचा कि यहाँके पक्षियोंने हाथीको मार डाला है । यह अवश्य इस भूमिका ही प्रभाव है। ऐसा विचार करके सोमने उसी स्थानपर एक नगर बसाया ॥ २० ॥ २१ ॥ उसी स्थानपर पक्षियोंने हाथीका विनाश किया था, इस कारण उसका हस्तिनापुर नाम पड़ गया। हे रघूत्तम ! वहाँके पुरवासियोंने आग्रह करके सोमको ही वहाँका राजा बनाया ॥ २२ ॥ सोमके बुध नामका पुत्र हुआ। फिर क्या था, बुध और सोमने मिलकर सब द्वीपोंको अपने अधीन कर लिया और कुछ दिनोंके अनन्तर स्वर्गलोकको गये ॥ २३ ॥ उन्होंने स्वर्गमें देवताओंको जीतकर छोड़ दिया और वे सस्त्रीक वहाँ रहने लगे ॥ २४ ॥ उन दोनोंको ब्रह्माने अनेक वरदान दिये। ब्रह्माने

अन्यैः पराजिताः सप्त पुरुषा न भवंति हि । इति दत्त्वा वरं ब्रह्मा ययौ निजपदं प्रति ॥२७॥
ततः सोमाय दौहित्री दत्ता पद्मावती शुभा । इन्द्रेण तत्र तौ सोमबुधौ स्वैरं स्थितौ चिरम् ॥२८॥
बुधस्य तनयो भूम्यां नाम्नाख्यातः पुरूरवाः । चकार राज्यं धर्मेण तथा तद्धस्तिनापुरे ॥२९॥
तस्य पुत्रश्च गव्योऽभूद्गव्यपुत्रोऽल्प उच्यते । अल्पपुत्रो नल श्रीमान् दिक्पालान् जेतुमुद्यतः ॥३०॥
राज्ये पुरूरवादींश्च त्रीन् स्थाप्य निजपूर्वजान् । सप्तद्वीपनृपैर्युक्तः प्रययौ मेरुमुन्नतम् ॥३१॥
आदौ जित्वा स वह्निं हि यमं जित्वाऽथ निर्ऋतिम्। प्रययौ वरुणं जेतुं रावणादिभिरन्वितः ॥३२॥
एतस्मिन्नंतरे राम तूर्णं सैन्येन रावणः । प्रययौ नाकलोकं हि सुरानिंद्रादिकान् रणे ॥३३।
जित्वा निनाय स्वां लंकां सोमो युद्धाय सात्मजः। निर्ययौ सुहृदः सर्वान्सेन्द्रान् मोचयितुं सुरान् ३४॥
तदा निवारयामास ब्रह्मा सोमं त्वरान्वितः । विष्णुर्भूत्वा नृवेषेण रावणं हि हनिष्यति ॥३५'।
त्वं माऽद्य रावणं याहि वरस्तस्मै मयाऽर्पितः । तद्ब्रह्मवचनं श्रुत्वा ययौ सोमोऽमरावतीम् ॥३६॥
भूम्यां नलस्ततो गत्वा वरुणं पवनं तथा । जित्वा कुबेरमीशानं कृतकार्यममन्यत ॥३७॥
आत्मानं च ततः स्वर्गे चेंद्रं जेतुं समुद्यतः । एवं नलेन भ्रमता गतं तच्च कृतं युगम् ॥३८॥
त्रेतायुगसमाप्तौ स ददर्श सकलं बलम् । तत्राऽदृष्ट्वा रावणं स दूताच्छ्रुत्वाऽवनौ स्थिति ॥३९॥
देवान्स्ववशगान् कृत्वा लंकां स्वां स गतः पुराः । तत्र मार्गे तु भ्रमतो नलस्य नघुकः सुतः ॥४०॥
पुत्रस्तस्य जातीकरस्तत्सुतो वसुदः स्मृतः । तस्य पुत्रो लघुश्रुतः सुरथस्तत्सुतः स्मृतः ॥४१॥
अजमीढस्तु तत्पुत्रस्त्वेवं वंशोऽभवत्पथि । ततः स मंत्रयामास नलो मंत्रिजनैः सह ॥४२॥
किमर्थमिंद्रलोकं तं गन्तव्यमधुना यदि । भुवि देवाः समानीता लङ्कायां रावणेन हि ॥४३।

कहा-तुम दोनों मेरे वंशज हो। तुमने मेरे सहित समस्त देवताओंको जीतकर भी छोड़ दिया है। इसलिए मैं तुम्हें यह वरदान देता हूँ कि तुम्हारे वंशमें तीन पीढ़ीके आगे सात पुश्त तक जितने राजे होंगे, वे किसीसे भी पराजित नहीं होंगे। इस प्रकार वरदान देकर ब्रह्मा अपने स्थानको चले गये ॥ २५-२७ ॥ इसके अनन्तर इन्द्रने पद्मावती नामकी अपनी सुन्दरी नतिनी सोमको दे दी। इस तरह वे सोम और बुध आनन्दके साथ बहुत दिनों तक स्वर्गलोकमें रहे ॥ २८ ॥ बुधका पुत्र इस संसारमें पुरूरवा नामसे विख्यात हुआ। उसने धर्मपूर्वक हस्तिनापुरमें राज्य किया ॥ २९ ॥ उसका पुत्र गव्य हुआ। गव्यका पुत्र अल्प और अल्पका पुत्र नल हुआ। नल इतना प्रबल वीर था कि उसने दसों दिक्पालोंको जीतनेकी इच्छा की। सेनाकी तैयारी करके वह हस्तिनापुरमें पुरूरवा आदि तीन पूर्वजोंको छोड़कर सातों द्वीपोंके राजाओंके साथ उन्नत शिखरवाले मेरु-पर्वतपर चढ़ गया ॥ ३० ॥ ३१ ॥ वहाँ पहुँचकर उसने पहले अग्निको, फिर यमको और उनके बाद निर्ऋतिको जीतकर रावण आदि दैत्योंके साथ वरुणको जीतनेके लिए गया ॥ ३२ ॥ उसी समय रावण अपनी सेनाके साथ स्वर्गलोक पहुँचा और इन्द्रादि देवताओंको संग्राममें जीतकर अपनी लंकाको वापस चला गया। तब सोम अपने मित्रों तथा पुत्रोंको साथ लेकर रावणसे युद्ध करने तथा इन्द्रादि देवोंको छुड़ानेके लिए चल पड़ा ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ उसी समय ब्रह्माजीने आकर सोमको रावणपर चढ़ाई करनेसे रोक दिया और कहा कि स्वयं विष्णुभगवान् मनुष्यका रूप धारण करके रावणका संहार करेंगे। तुम आज रावणके पास मत जाओ। ब्रह्माकी बात मानकर सोम लंका न जाकर अमरावतीपुरी गया ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ इसके अनन्तर वही सोम नलरूपसे इस पृथ्वीपर अवतीर्ण हुआ और अपने पराक्रमसे कुबेर एवं ईशानको परास्त करके उसने अपनेको कृतकृत्य माना ॥ ३७ ॥ कुछ दिनों बाद इन्द्रको जीतनेके लिए नल स्वर्गलोकमें जा पहुँचा। इस तरह उसके घूमते-फिरते सत्ययुग बीत गया ॥ ३८ ॥ त्रेतायुगके समाप्त हो जानेपर नलने सब वीरोंको तो देखा, किन्तु रावण नहीं मिला। अन्तमें नलने फिर सब देवताओंको वशमें किया। लंकापर भी आधिपत्य जमाया। आगे चलकर नलके नघुक, नघुकके जातीकर, जातीकरके वसुद, वसुदके लघुश्रुत, लघुश्रुतके सुरथ, सुरथके अजमीढ़ पुत्र हुआ और इस प्रकार नलकी सन्तति बढ़ी। एक दिन नलने अपने मंत्रियों-

अस्माकं सेवकः सोऽस्ति दशास्यः करभारदः । निजं पुरं प्रगन्तव्यमधुना चिरकालतः ॥४४॥
दिगाश्रयाद्वयं सर्वे जीविताः स्म चिरं त्विह । पुरूरवादिकास्ते नः पूर्वजाः संति वा मृताः ॥४५॥
नास्माभिश्चिरकालं हि तद्वृत्तं भ्रमतः श्रुतम् । अतः स्वीयपुरं गत्वा द्रष्टव्यास्तेऽत्रिपूर्वजाः ॥४६॥
चेत्सोमबुधयोर्नाकं गन्तव्यं दर्शनेच्छया । तर्हि ताभ्यां युता देवाः किं जेता रावणेन हि ॥४७॥
किं ताभ्यां रहिता देवा जिताश्चेति न वेद्म्यहम् । अतस्तत्सकलं वृत्तं विदितं हस्तिनापुरे ॥४८॥
भविष्यति ततो यद्धि कर्तव्यं तत्करोम्यहम् । इति निश्चित्य स नलः शनैः स्वनगरं ययौ ॥४९॥
एतस्मिन्नंतरे राम त्वं जातोऽस्यवनीतले । हत्वा तं रावणं देवा मोचितास्ते दिवं गताः ॥५०॥
सप्तद्वीपांतरस्था ये नृपास्ते स्ववशीकृताः । पुरूरवादिकाः त्रींश्च निष्कास्यात्र गजाह्वये ॥५१॥
सुषेणः स्थापितः पूर्वं वानरैः सहितस्त्वया । ततः पुरूरवाद्यास्ते स्वकालेन मृतास्त्विह ॥५२॥
इदानीं ते समायाताः सोमवंशोद्भवा नृपाः । नलाद्याः सप्त स्वपुरं सप्तद्वीपनृपोत्तमाः ॥५३॥
त्वत्कृताः स्ववशगा ये च द्वीपांतरस्थिताः । नृपास्तेषां पूर्वजाश्च स्वसैन्यैस्ते नृपोत्तमाः ॥५४॥
बलिनः कोटिशः सर्वे समायाता गजाह्वयम् । भविष्यति त्वया तैश्च संगरः सोमवंशजैः ॥५५॥
तदा ब्रह्मा सुरैर्युक्तः समागत्य तवांतिकम् । पादयोस्ते प्रणामांश्च नलाद्यैः कारयिष्यति ॥५६॥
कृत्वा कः प्रार्थनां तेऽपि त्वां वैकुंठं प्रणेष्यति । एवं राम सविस्तारं तवाग्रे कथितं मया ॥५७॥
यत्पृष्टं मां त्वया पूर्वं नलादीनां कथानकम् । विवाहकांडमारभ्य रम्यं रामायणं शुभम् ॥५८॥
समग्रं हि मया राम पुराणं श्रावितं तव । पुत्राभ्यामधुना सर्वं शृणुष्व रघुनंदन ॥५९॥
इत्युक्त्वा कुशलवयोश्चकाराज्ञां मुनिस्ततः । विवाहकाण्डात्काण्डानि चत्वारि जगतुः शिशू ॥६०॥

से मंत्रणा की कि जब रावण सब देवताओंको पकड़कर पृथ्वीतलपर ही ले आया है, तब हम स्वर्गलोकको क्यों चलें ॥ ३९–४३ ॥ रावण हमारा सेवक है, वह हमें कर देता है। हम लोगोंको घूमते-घूमते भी बहुत दिन हो गये हैं। इसलिए अब अपनी पुरीको लौट चलना चाहिए। कितनी दिशाओंमें घूमते-फिरते हमलोग बहुत समय तक जीवित रहे, किन्तु पुरूरवा आदि हमारे पूर्वज जीवित हैं या मर गये। मुझे उनकी कुछ भी खबर नहीं है ॥ ४४ ॥ ४५ ॥ अतएव चलो, अपनी राजधानीको वापस चलें। वहांका हाल-चाल देखें और अपने तीनों पूर्वजोंका दर्शन करें ॥ ४६ ॥ लेकिन हमको यह बात भी नहीं ज्ञात है कि सोम और बुध भी तो और-और देवताओंके साथ रावण द्वारा बन्दी नहीं बना लिये गये। हस्तिनापुर चलनेसे ये बातें भी ज्ञात हो जायँगी। उसके बाद जो करना उचित होगा, सो किया जायगा। ऐसा निश्चय करके वह अपने नगरको लौटा ॥ ४७–४९ ॥ इसी समय हे राम ! आपका अवतार हो गया। आपने रावणको मार डाला और देवताओंको छुड़ा लिया। जिससे वे सब देवता स्वर्गलोकको चले गये ॥ ५० ॥ सातों द्वीपोंमें रहनेवाले राजाओंको आपने अपने वशमें कर लिया, वे पुरूरवा आदि तीन राजे भी आपके वशमें हो गये। तब आपने उनको हस्तिनापुरसे निकालकर वानरोंके साथ सुषेणको उसकी गद्दीपर बिठाल दिया। कुछ दिनों बाद समय आनेपर पुरूरवा आदि भी मर गये ॥ ५१ ॥ ५२ ॥ इस समय नल आदि सोमवंशी राजे उन सात राजाओंके साथ यहाँ आ रहे हैं, जिनको कि आपने अपने वशमें कर लिया था और अब तक वे किसी दूसरे द्वीपमें रहा करते थे। वे राजे अकेले नहीं, बल्कि अपने पूर्वजों तथा करोड़ोंकी विशाल सेनाके साथ हस्तिनापुरपर चढ़े आ रहे हैं। उन सोमवंशियोंके साथ आपको युद्ध करना पड़ेगा ॥ ५३–५५ ॥ उस समय सब देवोंके साथ ब्रह्माजी आकर नल आदिसे आपको प्रणाम करवायेंगे ॥ ५६ ॥ इसके बाद ब्रह्मा आपकी विधिवत् स्तुति करके अपने साथ आपको वैकुण्ठलोक ले जायँगे। हे राम ! इस तरह मैंने आपकी आज्ञासे उन नल आदि चन्द्रवंशी राजाओंका वृत्तांत विस्तारपूर्वक बताया ॥ ५७ ॥ हे रघुनन्दन ! बहुत दिन हुए, जब मैंने विवाहकांड-से लेकर सारी रामायण आपको सुनायी थी। अब आप अपने पुत्रोंके मुखसे वह पुनीत कथा सुनिए ॥ ५८ ॥ ५९ ॥ इतना कहकर वाल्मीकिने कुश और लवको रामचरित्र सुनानेकी आज्ञा दी और वे विवाहकांड-

तत्सर्वं राघवः श्रुत्वा परां मुदमवाप सः । विदुः सर्वे जनाश्चापि वैकुंठारोहणं प्रभोः ॥६१॥

इति शतकोटिरामचरितांतर्गते श्रीमदानंदरामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये मनोहरकाण्डे
सोमवंशनृपकथाविस्तारो नाम प्रथमः सर्गः ॥ ८ ॥

द्वितीयः सर्गः

(रामका सोमवंशियोंसे युद्धके लिए प्रस्थान)

श्रीरामदास उवाच

अथ रामस्तदा प्राह वाल्मीकिं मुनिसत्तमम् । आगंतव्यं त्वया तत्र मुनिभिस्तु गजाह्वयम् ॥ १ ॥
तथेति स मुनिः प्राह राघवं भक्तवत्सलम् । ततः स लक्ष्मणं शीघ्रं राघवो वाक्यमब्रवीत् ॥ २ ॥
पत्राणि प्रेषयस्वाद्य कुमारान्राज्यसंस्थितान् । स्वस्वराज्ये मंत्रिणश्च कृत्वाऽत्रागम्यतां बलैः ॥ ३ ॥
एवमेव प्रलेख्यानि जंबूद्वीपपतीन्नरान् । तथा द्वीपपतींश्चापि दूतास्तांस्त्वरयंतु नः ॥ ४ ॥
तथेति लक्ष्मणश्चोक्त्वा तथा चक्रे यथोदितम् । राघवेण सभामध्ये वाल्मीकिगुरुसन्निधौ ॥ ५ ॥
ततः प्राह पुनः श्रीमान् राघवो लक्ष्मणं मुदा । वासोगेहानि नेयानि बहिर्मम रघूद्वह ॥ ६ ॥
मुहूर्तो वर्त्तते श्वो वै सेनां चोदय सादरात् । आयुधान्यथ यंत्राणि जीर्णानि च बहूनि हि ॥ ७ ॥
पूर्वजैर्निहितान्येव कोशागारेषु वै सदा । तानि निष्कासनीयानि तेषां कालोऽद्य वर्त्तते ॥ ८ ॥
अन्तःपुराणि सर्वाणि बहिर्नेयानि मेऽग्रतः । अग्निहोत्रं पुरस्कृत्य सीताप्यग्रेऽनुगच्छतु ॥ ९ ॥
कोशागाराणि सर्वाणि बहिर्नेयानि वाहनैः । हस्त्यश्वरथपादाता नेयाः सर्वे बहिस्त्वया ॥१०॥
इत्याज्ञाप्य रघुश्रेष्ठो लक्ष्मणं विनयान्वितम् । मन्त्रिणौ नैगमाश्चैव वसिष्ठं चेदमब्रवीत् ॥११॥
अभिषेक्ष्यामि भरतं सप्तद्वीपपतेः पदे । लक्ष्मणो मां विना नैव भूम्यां वासं करिष्यति ॥१२॥

के बादवाले कांडोंकी कथाओंको मिल जुलकर गाने लगे ॥ ६० ॥ यह सब कथायें सुनकर रामचन्द्रजी बड़े प्रसन्न हुए और सर्वसाधारणके लोगोंको भी भगवान्‌की स्वर्गारोहणसम्बन्धी बातें ज्ञात हो गयीं ॥ ६१ ॥ इति श्रीशतकोटिरामचरितांतर्गते श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये पं० रामतेजपाण्डेयकृत'ज्योत्स्ना'भाषाटीका-सहिते पूर्णकांडे प्रथमः सर्गः ॥ १ ॥

श्रीरामदास बोले—इतनी कथा सुनकर रामचन्द्रजीने वाल्मीकिसे कहा कि आप भी हस्तिनापुर अवश्य आइएगा ॥ १ ॥ महर्षि वाल्मीकिने भक्तवत्सल रामसे कहा—"बहुत अच्छा"। इसके बाद राम लक्ष्मणसे कहने लगे कि सब राज्योंके सिंहासनपर बैठे हुए कुमारोंके पास पत्र लिख दो कि वे अपने-अपने मन्त्रियोंके ऊपर राज्यका भार छोड़कर अपनी सेनाके साथ यहाँ आ जायँ ॥ २ ॥ ३ ॥ इसी प्रकारके पत्र जम्बूद्वीपवाले तथा द्वीपान्तरनिवासी राजाओंके पास लिख दो और दूतोंको कहो कि उन्हें शीघ्र यहाँ आनेको कहें ॥ ४ ॥ "तथास्तु" कहकर लक्ष्मणजीने भी वैसा ही किया, जैसा कि रामचन्द्रजीने सभामें वाल्मीकि तथा गुरु वसिष्ठके सम्मुख कहा था ॥ ५ ॥ इसके बाद श्रीरामचन्द्रजीने फिर लक्ष्मणसे कहा कि हमारे तम्बू-कनात आदि सामान बाहर ले चलो ॥ ६ ॥ कल बड़ा अच्छा मुहूत है। सेनाको भी शीघ्र तैयार हो जानेकी आज्ञा दे दो। बहुतसे शस्त्र जीर्ण हो गये थे, जिनको मेरे पूर्वजोंने घरोंमें बन्द कर दिये थे, उनको निकाल लो। क्योंकि आज उनके उपयोगका समय आ पहुँचा है ॥ ७ ॥ ८ ॥ अन्तःपुरकी जितनी स्त्रियाँ हैं, उनको भी बाहर ले आओ। अग्निहोत्र लेकर सीता भी मेरे साथ चलें ॥ ९ ॥ मेरे जितने खजाने हैं उनको हाथी, घोड़े तथा रथकी सहा-
49 यतासे बाहर ले आओ ॥१०॥ इस तरह लक्ष्मणजीको आज्ञा देकर मन्त्रियों, विद्वानों तथा वसिष्ठजीसे कहा कि अब मैं सातों द्वीपोंके आधिपत्यके पदपर भरतजीको बिठालूँगा। क्योंकि मेरे बिना लक्ष्मण इस भूमण्डल-

एवं वदति राजेंद्रे पौरास्ते भयविह्वलाः । द्रुमा इव छिन्नमूला दुःखार्ताः पतिता भुवि ॥१३॥
मूर्छितो भरतश्चापि श्रुत्वा रामाभिभाषितम् । गर्हयामास राज्यं स प्राह दुःखाद्रघूत्तमम् ॥१४॥
सत्येन तु शपे नाहं त्वां विना दिवि वा भुवि । कांक्षे राज्यं रघुश्रेष्ठ शपे त्वत्पादयोः प्रभो ॥१५॥
अमुं योग्यं वरं राजन्नभिषिंचस्व राघव । अयोध्यायां कुशं वीरं सप्तद्वीपपतेः पदे ॥१६॥
अस्त्युत्तरकुरुष्वत्र जंबुद्वीपपतेः पदे । लवोऽभिषेचितः पूर्वं स एव तेषु गच्छतु ॥१७॥
भरतेनोदितं श्रुत्वा पतितास्ताः समीक्ष्य च । प्रजा वै भयसंविग्ना रामविश्लेषकातराः ॥१८॥
वसिष्ठो भगवान् राममुवाच सदयं वचः । पश्यतामादरात्सर्वाः पतिता भूतले प्रजाः ॥१९॥
तासां भावानुगं राम प्रसादं कर्तुमर्हसि । श्रुत्वा वसिष्ठवचनं ताः समुत्थाप्य पूज्य च ॥२०॥
सस्नेहो रघुनाथस्ताः किं करोमीति चाब्रवीत् । ततः प्रांजलयः प्रोचुः प्रजा भक्त्या रघूद्वहम् ॥२१॥
गन्तुमिच्छसि वैकुंठं त्वमस्माकं नय प्रभो । यत्र गच्छसि त्वं राम ह्यनुगच्छामहे वयम् ॥२२॥
अस्माकमेषा परमा प्राप्तिर्धर्मोऽयमक्षयः । तवानुगमने राम हृद्गता नो दृढा मतिः ॥२३॥
पुत्रदारादिभिः सार्द्धमनुयामोऽद्य सर्वथा । तपोवनं वा स्वर्गं वा पुरं वा रघुनन्दन ॥२४॥
ज्ञात्वा तेषां मनोदार्ढ्यं कारुण्याद्रघुनायकः । भक्तं पौरजनं दीनं बाढमित्यब्रवीद्वचः ॥२५॥
कृत्वैवं निश्चयं रामस्तस्मिन्नेवाहनि प्रभुः । कुशं तमभिषेक्तुं वै चोदयामास लक्ष्मणम् ॥२६॥
सौमित्रिश्चापि गुरुणा विप्रैः पौरजनैस्तदा । शोभयित्वा स्वनगरीं मुदा तमभ्यषेचयत् ॥२७॥
अभिषेके कुशस्यासीन्महोत्साहो गृहे गृहे । रामावरोधे सुमहान्समुत्साहस्तदाऽभवत् ॥२८॥
तदा सिंहासनारूढं छत्रचामरशोभितम् । प्रजाः कुशं पतिं प्राप्य प्रणामं चक्रुरादरात् ॥२९॥

पर नहीं रह सकते ॥ ११ ॥ १२ ॥ श्रीरामचन्द्रजीके ऐसा कहनेपर वे सब पुरवासी जड़से कटे हुए वृक्षोंकी भाँति पृथ्वीपर गिर पड़े। रामकी बात सुनकर भरतजी भी मूर्छित हो गये। होश आनेपर उन्होंने राज्यकी भरपूर निन्दा की और दुःखित होकर उन्होंने रामचन्द्रजीसे कहा—मैं आपके चरणोंकी शपथ खाकर कहता हूँ कि आपके बिना मैं पृथ्वी अथवा स्वर्गलोकका भी राज्य नहीं चाहता ॥ १३–१५ ॥ हे राजन् ! हे राघव ! आप वीर कुशको इस सप्तद्वीपपतिके आसनपर बिठाल दीजिए ॥ १६ ॥ उत्तरकुरु नामके देशमें जम्बूद्वीपपतिके पदपर तो आपने लवका बहुत दिनों पहले ही अभिषेक कर दिया है, वह अपने पदपर चला जाय ॥ १७ ॥ इस प्रकार भरतकी बात सुनकर वहाँके जितने प्रजाजन थे, वे सब रामके वियोगरूपी दुःखसे विह्वल और भयभीत हो गये ॥१८॥ उनकी यह दशा देखकर दयालु वसिष्ठजीने रामसे आदरपूर्वक कहा— हे राम ! देखिए, ये सब कितने दुःखी हैं। अब जिस तरह इनकी सन्तोष हो सके, वही काम करिए। वसिष्ठजीकी बात सुनकर रामने उन लोगोंको उठाया, उनका सत्कार किया और पूछा कि मैं क्या करूँ, जिससे आप लोग लोग प्रसन्न हो सकेंगे। यह सुना तो सब लोग हाथ जोड़कर भक्तिपूर्वक रामचन्द्रजीसे कहने लगे–हे राम ! आप अब यदि वैकुण्ठलोकको जाना चाहते हों तो हमें भी अपने साथ लेते चलिए, हम सब भी आपके साथ-साथ चलेंगे ॥ १९–२२ ॥ इससे बढ़कर हमको और कोई लाभ नहीं होगा। हम लोगोंके लिए यह अक्षय धर्मकार्य है। हे राम ! आपके साथ चलनेके लिए हमने दृढ़ निश्चय कर लिया है ॥ २३ ॥ आज हम सब अपने परिवारके साथ आपके सङ्ग वैकुण्ठलोकको, तपोवनको, स्वर्गको अथवा अयोध्याको जायँगे ॥ २४ ॥ रामचन्द्रजीने जब भक्तों और पुरजनोंकी इतनी दृढ़ता देखी तो साथ ले चलनेकी स्वीकृति दे दी ॥ २५ ॥ इस तरह निश्चय करके रामने उसी दिन कुशका अभिषेक करनेके लिए लक्ष्मणसे कहा और रामके आज्ञानुसार गुरु, विप्र एवं पुरवासियोंके साथ लक्ष्मणने उसी दिन कुशका राज्याभिषेक कर दिया ॥ २६ ॥ २७ ॥ कुशका अभिषेक करते समय अयोध्याके घर-घरमें महान् उत्सव मनाया गया। विशेषकर रामके अन्तःपुरकी नारियोंने उत्सव मनाया ॥ २८ ॥ जब कि छत्र और चमर आदिसे सुसज्जित होकर कुश सिंहासनपर

तदा कुशो नृपो विप्रान्धनं बहुतरं ददौ । प्रजास्तं पूजयामासुर्वस्त्रालंकारवाहनैः ॥३०॥
ततः प्रापूजयत्सर्वाः प्रजाः स कुशभूपतिः । भोजयामास विप्रौघान्कोटिशः स कुशेश्वरः ॥३१॥
अथ रामाज्ञया शीघ्रं सौमित्रिः सीतया सह । अन्तःपुराणि सर्वाणि निनाय नगराद्बहिः ॥३२॥
नानावाहनसंस्थानि नृत्यवाद्यादिमंगलैः । ततो रामः स्वयं बन्धुपुत्राद्यैः सर्वतो वृतः ॥३३॥
मुनिभिर्जयशब्दैश्च स्तुतो मंगलनिःस्वनैः । अयोध्याया बहिः पौरैर्ययौ मागधसंस्तुतः ॥३४॥
रथारूढश्चामराद्यैर्वीजितश्च शनैर्मुदा । विवेश वासोगेहानि तदा रामो जनैः सह ॥३५॥
ननृतुर्वारनार्यश्च तदा श्रीराघवाग्रतः । ततः पौराः सावरोधाश्चांडालान्ता विनिर्ययुः ॥३६॥
निन्युस्ते सारमेयांतान् पुर्याः पौराश्चतुष्पदान् । नासन्पक्षिकुलांताद्यास्तत्पुर्यां ते बहिर्ययुः ॥३७॥
नासीत्कोऽपि तदा पुर्यां जनशून्या बभूव सा । अयोध्यानगरी पुण्या गजभुक्तकपित्थवत् ॥३८॥
एतस्मिन्नन्तरे सर्वे द्वीपांतरनिवासिनः । जंबूद्वीपांतरस्थाश्च ययुः सैन्यैर्नृपोत्तमाः ॥३९॥
कोटिशो राघवं नेमुस्ततो नेमुः कुशेश्वरम् । उपायनानि रामाय कुशाय च पृथक् पृथक् ॥४०॥
दत्त्वा संपूजितास्ताभ्यां तस्थुः सर्वे नृपोत्तमाः । ततोऽङ्गदश्चित्रकेतुः पुष्करस्तक्ष एव च ॥४१॥
सुबाहुर्यूपकेतुश्च ययुः सर्वे निजैर्बलैः । सावरोधाः सपुत्राश्च सपौत्रास्ते स्नुषादिभिः ॥४२॥
प्रणेमू राघवादींश्च सीतादींश्चापि सादरात् । रामेणालिंगिताः सर्वे सीतया भोजिता अपि ॥४३॥
तस्थुः सर्वे सभायां ते स्वस्वपौरजनैः सह । तदागतान् नृपान्सर्वान् रामो वृत्तं न्यवेदयत् ॥४४॥

बैठे, उस समय सब प्रजाजनोंने उनको साष्टांग-प्रणाम किया ॥ २९ ॥ उस समय कुशने ब्राह्मणोंको बहुत-सा धन दिया और प्रजाजनने विविध प्रकारके वस्त्रों तथा आभूषणोंसे कुशकी पूजा की ॥ ३० ॥ इसके बाद कुशने सब लोगोंका आदर-सत्कार किया और करोड़ों ब्राह्मणोंको भोजन कराया ॥ ३१ ॥ इसके अनन्तर रामकी आज्ञासे लक्ष्मण सीता आदि अन्तःपुरकी सब नारियोंको विविध सवारियोंपर बिठाकर नगरके बाहर ले गये ॥ ३२ ॥ उस समय तरह-तरहके नृत्य-गीत आदि मङ्गलमय कार्य हो रहे थे। इसके अनन्तर राम भी बन्धुओं, पुत्रादिकों तथा अनेक ऋषियोंके साथ अयोध्याके सब पुरवासियोंको साथ लिये हुए अयोध्याके बाहर आ गये। उस समय कितने ही तरहके बाजे बज रहे थे और बन्दीजन भगवानकी विरुदावलीका गान कर रहे थे ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ जाते समय राम एक रथपर बैठे थे, उनपर छत्र लगा हुआ था और चमर चल रहे थे। इस तरह चलते-चलते राम उस स्थानपर पहुँचे, जहाँ ठहरनेको डेरा डाला गया था ॥ ३५ ॥ राम वहाँ जाकर आसनपर बैठ गये। वेश्यायें रामके सामने आकर नाचने लगीं। कुछ देर बाद उच्च जातिसे लेकर चाण्डाल जाति तकके अयोध्याके समस्त पुरवासी अपने बाल-बच्चोंको साथ लिये अयोध्यासे बाहर निकल आये। वे लोग अपने-अपने कुत्तों तथा बैल-गाय आदि पशुओंको भी साथ लेते आये थे। यहाँ तक कि पक्षियोंके कुल तक बाहर आ गये ॥ ३६ ॥ ३७ ॥ उस समय सारी अयोध्या सुनी हो गयी। कोई भी उस नगरीमें नहीं रह गया। उस पुनीत नगरीकी वही दशा हो गयी थी, जो दशा हाथीके पेटसे निकले कैथेकी होती है। मतलब यह कि हाथी जब कैथेके फल खाने लगता है तो समूचाका समूचा ही फल खा जाता है और मलत्याग करते समय ये कैथे देखनेमें समूचे ही निकलते हैं, किन्तु उन्हें तनिक-सी ठोकर मार दी जाय तो फूट जाते हैं, उनमें कुल तत्त्व नहीं रह जाता। वही दशा अयोध्याकी भी हो गयी थी। ऊपरसे देखनेमें तो अयोध्या ज्योंकी त्यों दीखती थी, किन्तु उसमें कोई रहनेवाला नहीं था ॥ ३८ ॥ उसी समय अनेक द्वीपोंके कितने ही राजे भी अपनी-अपनी सेनाके साथ आ पहुँचे ॥ ३९ ॥ उन्होंने वहाँ आकर रामको तथा नवीन राजा कुशको प्रणाम किया और दोनोंको अलग-अलग विविध प्रकारके उपहार दिये ॥ ४० ॥ ४१ ॥ उधर यूपकेतु तथा सुबाहु आदि राजपुत्र भी अपने अन्तःपुरकी स्त्रियों और पुत्रादिकोंके साथ जा पहुँचे। वहाँ आकर उन्होंने सीता आदि माताओं तथा रामको प्रणाम किया। रामने उनको उठाकर हृदयसे लगाया और सीताने उनको अपने हाथोंसे परोसकर भोजन कराया ॥ ४२ ॥ ४३ ॥ इसके बाद वे सब अपने-अपने नागरिकोंके साथ आकर सभा-

पुनः पप्रच्छ तान्सर्वान्संस्थितान्न रघुनन्दनः । युष्माकं पूर्वजाः सर्वे समायाता गजाह्वये ॥४५॥
भवतां रोचते युद्धं यदि तैः पूर्वजैः सह । आगन्तव्यं तर्हि सर्वं मया सह गजाह्वयम् ॥४६ ।
नोचेद्भवद्भिर्गन्तव्यमित एव निजस्थलम् । निर्बन्धोऽत्र न मे ज्ञेयः सर्वैः पार्थिवसत्तमैः ॥४७॥
इति रामवचः श्रुत्वा नृपा राघवमब्रुवन् । राम राम महावीर्य वयं सर्वे तवानुगाः ॥४८॥
त्वयैव वर्द्धिताः सर्वे तवान्नैः पोषिता वयम् । वीराः क्षत्रियवंशीया रणे तातप्रहारिणः ॥४९॥
तवाज्ञया वधामोऽद्य पितृपुत्रान् रणाजिरे । नास्मांस्त्वं विद्धि राजेन्द्र स्वामिकार्ये पराङ्मुखान् ५०
इति तेषां वचः श्रुत्वा तानालिंग्य स राघवः । संपूज्याभरणैर्वस्त्रैः सुखं सुष्वाप सीतया ॥५१॥
ततः प्रभाते श्रीरामो गत्वा तां सरयूनदीम् । स्नात्वा दानादि वै दत्त्वा सीतया विधिपूर्वकम् ॥५२॥
नत्वा तां सरयूं पुण्यां गन्तुं पप्रच्छ वै मुहुः । तद्रामवचनं श्रुत्वा सरयू राममब्रवीत् ॥५३॥
एतावत्कालपर्यन्तं स्थिता त्वद्दर्शनेच्छया । अहमद्य त्वया राम यास्यामि त्वत्पदं स्थितः ॥५४॥
तत्तस्या वचनं श्रुत्वा तामाह राघवः पुनः । यावत्कथा मम शुभा स्थास्यत्यत्राघनाशिनी ॥५५॥
तावत्त्वमंशरूपाऽत्र वस लोकाघनाशिनी । तथेति रामवचनादंशरूपं निधाय सा ॥५६॥
साकेतेऽत्र पूर्णरूपं ययौ रामेण तत्पदम् । अथ रामः सरय्वाऽसौ परिक्रम्य निजां पुरीम् ॥५७॥
साष्टांगं तां नमस्कृत्य गन्तु पप्रच्छ पूज्य ताम् । अयोध्येऽम्ब नमस्तेऽस्तु त्वयाऽहं रक्षितस्त्विह ॥५८॥
आज्ञां ददस्व पृच्छामि स्वस्थलं गन्तुमुद्यतः । क्षमस्व मेऽपराधांस्त्वं पुनर्दर्शनमस्तु ते ॥५९॥
इति रामवचः श्रुत्वा पुरी राघवमब्रवीत् । एतावत्कालपर्यंतं स्थिता त्वद्दर्शनेच्छया ॥६०॥
यास्ये त्वया समर्था न सोढुं त्वद्विरहं त्वहम् । तत्तस्या वचनं श्रुत्वा पुरीमाह रघूत्तमः ॥६१॥

में बैठे। और-और राजे भी वहाँ एकत्रित हुए तो रामने उनको अपना विचार सुनाया ॥ ४४ ॥ इसके अनन्तर रामने उन राजाओंसे कहा कि आपके पूर्वज हस्तिनापुरीमें युद्धके लिए गये थे ॥ ४५ ॥ सो यदि आपलोगोंको भी युद्ध करना हो तो मेरे साथ हस्तिनापुरी चलिए ॥ ४६ ॥ यदि न इच्छा हो तो आप लोग अपनी-अपनी राजधानीको लौट जाइये । मैं आपलोगोंसे किसी प्रकारका आग्रह नहीं करना चाहता ॥ ४७ ॥ इस प्रकार रामकी बात सुनकर उन राजाओंने कहा–हे राम ! हे महाबाहो ! हम सब आपके अनुगामी हैं। आपने ही हम लोगोंका अभ्युदय किया है। आपके ही अन्नसे हम पले हैं। वीर क्षत्रियोंके वंशमें मेरा जन्म हुआ है। इस कारण आप यदि आज्ञा देंगे तो हम अपने पितृघातियोंको संग्राममें अवश्य मारेंगे। हे राजेन्द्र ! आप कभी भी ऐसा न समझियेगा कि हम स्वामी (आप) के कामसे पराङ्मुख होंगे ॥ ४८-५० ॥ इस प्रकार उनकी बातें सुनीं तो रामने उन सब राजाओंको हृदयसे लगाया, विविध प्रकारके वस्त्र-आभूषणोंसे उनकी पूजा की और जाकर आनन्दपूर्वक सीताके साथ शयन किया ॥ ५१ ॥ इसके अनन्तर सबेरे सीताके साथ रामचन्द्रजीने सरयूके तटपर जाकर स्नान-दान किया। इसके बाद उन्होंने प्रणाम करके सरयूजीसे अपने लिए परम धाम जानेकी आज्ञा माँगी। रामकी प्रार्थना सुनकर सरयूने कहा—॥ ५२ ॥ ५३ ॥ अबतक आपके दर्शनोंकी इच्छासे मैं भी यहाँ थी। किन्तु हे राम ! जब आप जा रहे हैं तो मैं भी आपके श्रीचरणोंके साथ चलूँगी ॥ ५४ ॥ सरयूकी बात सुनकर रामने कहा—जबतक सब पापोंको नष्ट करनेवाली मेरी पुनीत कथा इस संसारमें विद्यमान है, तबतक अंशरूपसे तुम भी यहाँ रहती हुई सबके पाप दूर करती रहो। रामके कहनेपर सरयूने तत्काल अपना एक अंशरूप बनाया, जिससे वह अयोध्यामें रह गयी और पूर्णरूपसे रामके साथ चल पड़ी। सरयूको साथ लेकर रामने अपनी पावन पुरीकी परिक्रमा की और साष्टांग प्रणाम एवं पूजन करके परमधाम जानेकी आज्ञा माँगी और कहा––हे अम्ब अयोध्ये ! तुमने मेरी रक्षा की है। मैं अब अपने वैकुण्ठलोक जानेकी आज्ञा माँगता हूँ। मेरे अपराधोंको क्षमा करो और मुझे आशीर्वाद दो कि फिर कभी मैं तुम्हारा दर्शन कर सकूँ ॥ ५५ ॥ ५६ ॥ इस प्रकार रामकी बात सुनकर अयोध्यापुरीने कहा कि इतने दिनों तक मैं आपका दर्शन करनेके लिए यहाँ रही। आपके चले जानेपर यहाँ

यावत्कथा मम शुभा स्थास्त्यत्राघनाशिनी । तावत्त्वमंशरूपेण वसात्र मृन्मयी चिरम् ॥६२॥
तथेति रामवचनादंशरूपाऽत्र मृन्मयी । अयोध्या संस्थिता दिव्या हैमा रामेण सा ययौ॥६३॥
अयोध्यया सरय्वाऽपि रामः सेनास्थलं ययौ । अयोध्यायाः सरय्वाश्च प्रभावौ न गतौ त्वितः ॥६४॥
अथ सीता महानागीमारुरोह सखीजनैः । पृथक् नागीषुर्मिलाद्यास्ताः समारुरुहुस्तदा ॥६५॥
अथ रामो मुदा वेगात्समारुह्य गजोपरि । उवाच लक्ष्मण वाक्यं पुष्पके सकलान् जनान् ॥६६॥
पौरानारोहयस्व त्वं स्वबंधुभ्यां सुतादिभिः । नागारूढैः पृथक् शीघ्रं समारुह्य गजोपरि ॥६७॥
अनुगच्छस्व मत्पृष्ठे लक्ष्मणः स तथाऽकरोत् । अथ सर्वे नृपतयो नानायानेषु संस्थिताः ॥६८॥
ययुः स्वस्वबलैर्युक्ताः शीघ्र श्रीरामपार्श्वतः । ययावग्रे त्वग्रसरो रज्जुकुद्दालधारिभिः ॥६९॥
दृषत्कारैस्ततक्षकैश्च कुठारटंकपाणिभिः । ततो ययौ महानागः पताकाध्वजशोभितः ॥७०॥
ततो ययुर्यन्त्रहस्ता नानावाहनसंस्थिताः । ततो ययुः शतघ्नीभिः पूरिताः शकटाः शुभाः ॥७१॥
ततोऽश्वसंस्था वाद्यानि वादयन्तो ययुर्भटाः । ततोऽश्वसंस्थाः शतशो ययुस्ते वेत्रपाणयः ॥७२॥
ततो ययुर्मागधाश्च वंदिनो यानसंस्थिताः । ततो नटाश्चारणाश्च यानस्थाः सुविभूषिताः ॥७३॥
ततस्ता वारनार्यश्च काष्ठमंचकवाहिताः । मस्तकेषु भटैर्मार्गे नृत्यंत्यः प्रययुः सुखम् ॥७४॥
ततो ययुर्भूषितास्ते श्रीरामस्य तुरङ्गमाः । ततः पुरुषवद्वेषान्बिभ्रन्त्यः प्रमदोत्तमाः ॥७५॥
ययुस्तरुण्यः शतशः शस्त्रहस्ताः सुभूषिताः । गोपितास्याः कंचुकिन्यस्तुरंगादिषु संस्थिताः ॥७६॥
ततो ययुर्दंडहस्ता दासीपुत्राः सुभूषिताः । ततो ययौ रामचन्द्रस्तत्पृष्ठ लक्ष्मणो ययौ ॥७७॥

रहती हुई मैं आपके वियोगका दुःख नहीं सह सकूँगी । इसलिए मैं भी आपके साथ ही चलनेको तैयार बैठी हूँ । उसकी ऐसी बात सुनकर रामने अयोध्यापुरीसे कहा कि जबतक जगत्में मेरी पावनाशिनी कथा विद्यमान रहे, तबतक तुम अंशरूपसे मृन्मयी होकर यहाँ निवास करो ॥ ५७–६२ ॥ रामके कथनानुसार उसने अपने अंशरूपसे मृन्मयी होकर रहना स्वीकार कर लिया और सुवर्णमयी तथा रूपवती अयोध्या रामके साथ चल पड़ी ॥ ६३ ॥ इसके बाद राम अयोध्या तथा सरयूके साथ अपने सेनाशिविरको लौट गये । यद्यपि अयोध्या तथा सरयू ये दोनों अपने-अपने स्थानसे चली गयी थीं, किन्तु संसारमें उनका प्रभाव ज्योंका त्यों बना रहा । वह नहीं गया ॥ ६४ ॥ इसके अनन्तर सीता एक अच्छी-सी हथिनीपर सवार हुई और उर्मिला आदि दूसरी हथिनियोंपर जा बैठीं ॥ ६५ ॥ इसके बाद राम भी प्रसन्नतापूर्वक हाथीपर सवार हुए और लक्ष्मणसे कहा कि समस्त बन्धु-बान्धवोंके साथ अयोध्यावासियोंको पुष्पक विमानपर सवार करा दो । इसके बाद तुम अपने परिवारवालोंको हाथीपर बिठाकर मेरे पीछे-पीछे आओ । रामके आज्ञानुसार लक्ष्मणने सब प्रबन्ध ठीक कर दिया । इसके बाद सब राजे अनेक प्रकारकी सवारियोंपर सवार हो-होकर अपनी-अपनी सेनाके साथ रामके पास आये । आगे-आगे वे मजदूर चले, जो रस्सियें तथा कुदाल लिये थे । पत्थर काटनेवाले तथा बढ़ई आदि विविध प्रकारके औजार लिये थे । उनके पीछे-पीछे एक बड़ा हाथी पताका और ध्वजाओंसे अलंकृत होकर चला । उसके पीछे अपने-अपने हाथोंमें बन्दूक आदि विविध प्रकारके शस्त्रधारी सैनिक तरह-तरहके वाहनोंपर सवार होकर चले । उनके पीछे तोप आदिसे लदी बैलगाड़ियें चली जा रही थीं ॥ ६६–७१ ॥ उनके पीछे-पीछे अनेक प्रकारके बाजे बजानेवाले लोग घोड़ोंपर बैठ-बैठकर चले । उनके पीछे बहुतसे घुड़-सवार हाथमें बेंत लिये हुए चले ॥ ७२ ॥ उनके पीछे वाहनोंपर आरूढ़ होकर बहुतसे मागध और वन्दीजन चले जा रहे थे । उनके पीछे नटलोग और सजी चौकियोंपर बैठी हुई वेश्यायें गाती-बजाती और नाचती हुई चली जा रही थीं ॥ ७३ ॥ ७४ ॥ उनके भी पीछे रामके सजाये हुए घोड़े और उनके पीछे पुरुषके समान वेष धारण किये, अनेक प्रकारके अलंकार पहने, तरह-तरहके शस्त्र लिये, पर्देसे अपना मुख छिपाये और घोड़े आदि विविध सवारियोंपर सवार स्त्रियें चली जा रही थीं ॥ ७५ ॥ ७६ ॥ उनके पीछे हाथमें लाठियें लिये तरह-तरहके आभूषण पहने दासीपुत्रगण चले जा रहे थे । उनके पीछे भगवान् रामचन्द्र और लक्ष्मण, भरत,

तत्पृष्ठे भरतश्चापि शत्रुघ्नश्च ततो ययौ । ततः कुशो लवश्चाथ ततः सोऽप्यंगदो ययौ ॥७८॥
ययौ ततश्चित्रकेतुः पुष्करश्च ततो ययौ । ततस्तक्षः सुबाहुश्च यूपकेतुस्ततो ययौ ॥७९॥
ततः सीता ययौ शीघ्रमुर्मिला च ततः परम् । मांडवी श्रुतकीर्तिश्च स्नुषाः सर्वाः क्रमाद्ययुः ॥८०॥
ततस्ते मंत्रिणः सर्वे शिबिकासंस्थिता ययुः । ततो ययुर्वानराश्च कोटिशः पर्वतोपमाः ॥८१॥
ततो ययुर्नृपाः सर्वे कोटिशो वारणस्थिताः । ततो नृपाणां सैन्यानि ययुर्वाजिस्थितानि हि ॥८२॥
ययुस्ततस्ते यंत्राणां शकटाः कोटिशो वराः । शतघ्नीखड्गचर्मादिपूरिताः शकटास्तदा ॥८३॥
ततो वारणमुख्याश्च नववाद्यसमन्विताः । ततश्चोष्ट्राः सुवर्णानां ततः पृष्ठे खरादयः ॥८४॥
एवं रामः शनैर्मार्गे चामराद्यैः सुवीजितः । सीतया जालरन्ध्रैश्च वीक्षितश्च मुहुर्मुहुः ॥८५॥
ययौ शनैः शनैः श्रीमान्स्तुतो मागधवंदिभिः । पश्यन्नृत्यान्यप्सरसां शृण्वन्स गायनान्यपि ॥८६॥
सेनानिवेशस्थानानां यात्राकांडे यथोदिता । मया पूर्वं सुरचना तद्वदासीत्पुनस्त्विह ॥८७॥

इति श्रीशतकोटिरामचरितांतर्गते श्रीमदानंदरामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये पूर्णकांडे
रामदासविष्णुसंवादे रामप्रस्थानं नाम द्वितीयः सर्गः ॥ २ ॥

तृतीयः सर्गः

(रामका सोमसोशियोंके साथ युद्ध)

श्रीरामदास उवाच

अथ रामः शनैर्मार्गे नानादेशान्विलंघ्य च । एकादशदिनैः प्राप सेनया तद्गजाह्वयम् ॥ १ ॥
राममागतमाज्ञाय सुषेणो वेगवत्तरः । प्रत्युद्ययौ स्वकपिभिर्विंशल्लक्षसमन्वितैः ॥ २ ॥
नत्वा रामं च सीतां च सर्वं वृत्तं न्यवेदयेत् । राम राम महाबाहो प्रतापात्तव वै मया ॥ ३ ॥

शत्रुघ्न, कुश, अङ्गद, चित्रकेतु, पुष्कर, तक्ष और उनके पीछे राजपुत्र सुवाहु चले जा रहे थे । राजपुत्रोंकी टोलीके पीछे सीता, उर्मिला, मांडवी, श्रुतकीर्ति और उनके पीछे उनकी पतोहुएँ चली जा रही थीं। उनके पीछे रामके मन्त्रिगण पालकियोंपर बैठे चले जा रहे थे। उनके भी पीछे पर्वतके समान बड़े-बड़े आकारवाले वानर और उनके पीछे विविध प्रकारकी सवारियोंपर सवार सब राजे चले जा रहे थे। उनके पीछे उन राजाओंकी सेनायें घोड़ोंपर सवार होकर चली जा रही थीं। उनके पीछे कितनी ही बैलगाड़ियोंपर लदे हुए तोप आदि यन्त्र चले जा रहे थे ॥ ७७–८३ ॥ उनके पीछे मुख्य-मुख्य हाथी अनेक प्रकारके बाजे लादे हुए चले जा रहे थे और उनके भी पीछें एक बहुत बड़ा हाथी चल रहा था, जिसपर राष्ट्रकी पताका सुशोभित हो रही थी। उनके पीछे सुवर्णसे लदे हुए ऊँट और उनके पीछे और-और सामान लादे हुए गधे तथा खच्चर आदि चल रहे थे ॥ ८४ ॥ इस तरह राम धीरे-धीरे चले जा रहे थे। उनके ऊपर चमर-व्यजन आदि चल रहे थे और सीताजी अपनी सवारीके झरोखोंसे बार बार रामको निहार रही थीं ॥ ८५ ॥ मागध-बन्दीजन आदि विविध प्रकारकी स्तुतियें कर रहे थे और कितनी ही अप्सराओंके नृत्य-गान हो रहे थे ॥ ८६ ॥ रामचन्द्रजीके पड़ाव ठीक उसी तरह इस समय भी थे, जैसे कि पीछे यात्राकांडमें बतलाये जा चुके हैं ॥ ८७ ॥
इति श्रीशतकोटिरामचरितान्तर्गते श्रीमदानन्दरामायणे पूर्णकाण्डे द्वितीयः सर्गः ॥ २ ॥

इस तरह धीरे-धीरे चलते हुए राम अपनी सेनाके साथ अनेक देशोंको लाँघते हुए ग्यारह दिनमें हस्तिनापुर पहुँचे ॥ १ ॥ रामके पहुँचनेका समाचार पाते ही सुषेण बीस लाख सैनिकोंको लेकर आ पहुँचा ॥ २ ॥ रामके समक्ष पहुँचकर उसने सीता-रामको प्रणाम किया और कहने लगा—हे महाबाहो राम ! आपके

चतुर्दशदिनं युद्धं कृतमेभिः सुदुष्करम् । अधुना त्वं समायातः क्वैते स्थास्यंन्ति भूतले ॥ ४ ॥
सुषेणस्य वचः श्रुत्वा तमप्याश्वासयत्प्रभुः । अथ रामः स जाह्नव्याश्चोत्तरे परमे तटे ॥ ५ ॥
सेनानिवासमकरोद्ददर्श रिपुवाहिनीम् । तां निशां समतिक्रम्य द्वितीये दिवसे ततः ॥ ६ ॥
चोदयामास युद्धाय वानरान् रघुनंदनः । ततस्ते वानराः सर्वे जाह्नव्यामवप्लुत्य च ॥ ७ ॥
रामं सीतां नमस्कृत्य निर्ययुः समरं मुदा । ततस्ते वानराश्चक्रुः सिंहनादान्भयंकरान् ॥ ८ ॥
वादयामासुर्वाद्यानि दुद्रुवुः शत्रुवाहिनीम् ।नलाद्यास्तेऽपि श्रीरामसेनां दृष्ट्वाऽतिविस्मिताः॥ ९ ॥
चकिता भयभीताश्च निर्ययुः संगरं जवात् । ततस्ते वानराः सर्वे गंगामुल्लंघ्य वेगतः ॥१०॥
दृषद्भिः पर्वतैर्वृक्षैः शिलाभिर्मुष्टिभिः पदैः । निजघ्नुः शत्रुवीरांस्ते कीर्तयंतो रघूत्तमम् ॥११॥
नलवीराश्च ते सर्वे शस्त्रैस्तीक्ष्णैः कपीश्वरान् । निजघ्नुः समरे वेगाद्बभूव तुमुलो रणः ॥१२॥
अथ तैर्वानरैः सर्वैं बलाद्वृक्षैः प्रपीडिताः । पराङ्मुखाः कृताः सर्वे रणात्ते नलसैनिकाः ॥१३॥
तान् दृष्ट्वा ते नलाद्याश्च रणाद्वीरान् पराङ्मुखान् । निहतान्कपिवीरैश्चाचोदयन्नृपतींस्तदा ॥१४॥
ततस्ते पार्थिवाः सर्वे जंबूद्वीपनिवासिनः । तथा द्वीपांतरोद्भूता ये वृद्धाश्च पुरोदिताः ॥१५॥
ययुर्युद्धाय सन्नद्धा नानावाहनसंस्थिताः । तान्सर्वानागतान्दृष्ट्वा ययुः श्रीरामसैनिकाः ॥१६॥
जंबूद्वीपांतरस्थाश्च तथा द्वीपांतरस्थिताः । युवानश्च नृपाः सर्वे नानावाहनसस्थिताः ॥१७॥
सुग्रीवश्चांगदश्चाथ हनुमांश्च विभीषणः । जांबवांश्च सुषेणश्च संपातिर्मकरध्वजः ॥१८॥
गुहको भूरिकीर्तिश्च कंबुकंठः प्रतापवान् । तथाऽन्ये जनकाद्याश्च ययुः संग्रामभूतलम् ॥१९॥
तदोभयोर्महानासीत्सैन्ययोर्वीरनिःस्वनः । नववाद्यानि वै नेदुरुभयोः सैन्ययोः पृथक् ॥२०॥
तदा ब्रह्मादयो देवाः शिवेन सहिताश्च खे । सबुधेनाथ सोमेन देवेंद्रेण युता मुदा ॥२१॥
नानाविमानमारूढा ददृशुर्युद्धकौतुकम् । अथ चंद्रादयो देवाश्चक्रुर्मंत्रं परस्परम् ॥२२॥

प्रतापसे मैंने चौदह दिनों तक इन लोगोंके साथ भयंकर युद्ध किया है । अब आप भी आगये हैं तो ये दुष्ट बचकर कहाँ जायँगे ॥ ३ ॥ ४ ॥ सुषेणकी बात सुनकर रामने भी उसे आश्वासन दिया और गङ्गाके उत्तरी तटपर अपना सेनानिवास बनाया ॥ ५ ॥ वहाँसे ही शत्रुकी सेना देखी । रात बीत जानेपर सबेरे ही रामने वानरोंको युद्धके लिए विदा किया । रामकी आज्ञासे वे लोग सीता तथा रामको प्रणाम करके बड़ी प्रसन्नतासे गंगाजीको पार करके संग्रामभूमिमें जा पहुँचे । वहाँ पहुँचकर उन्होंने भयंकर सिंहनाद किया, विविध प्रकारके मारू बाजे बजाये और शत्रुकी सेनापर धावा बोल दिया । रामकी सेनाको देखकर वे नल आदि राजे बड़े विस्मित हुए ॥ ६–९ ॥ वे तुरन्त अपनी सेनाके साथ युद्धके लिए जा डटे । इसके अनन्तर वे सब वानर पत्थरके बड़े-बड़े खण्ड और वृक्ष ले-लेकर रामचन्द्रजीकी जयजयकार करते हुए शत्रुपक्षके वीरोंका संहार करने लगे ॥ १० ॥ ११ ॥ उधर नलकी सेनाके भी वीर अपने तीखे शस्त्रोंसे वानरोंको मारने लगे । इस तरह कुछ देर तक घमासान युद्ध हुआ और वानरोंने अपनी वृक्ष-पाषाणवर्षासे शत्रुओंके छक्के छुड़ा दिये । जिससे नलके सैनिकोंको वहाँसे पीछे हटना पड़ा ॥ १२ ॥ १३ ॥ इस तरह अपने वीरोंको भागते देखकर नल आदिने और-और राजाओंको प्रोत्साहित किया ॥ १४ ॥ इससे जम्बूद्वीपके अन्यान्य द्वीपोंके राजे जिनकी गणना पीछे कर आये हैं, वे सब अनेक प्रकारके वाहनोंपर आरूढ़ हो-होकर बड़ी तैयारीके साथ निकल पड़े । उन लोगोंको युद्धभूमिमें उपस्थित देखकर रामके सैनिक जा डटे ॥ १५ ॥ ॥ १६ ॥ उधर जम्बूद्वीप तथा अन्यान्य द्वीपोंके राजे उपस्थित थे । इधर सुग्रीव, अङ्गद, हनुमान्, विभीषण, जाम्बवान्, सुषेण, सम्पाती, मकरध्वज, भूरिकीर्ति, कंबुकण्ठ तथा जनक आदि वीर लड़नेके लिए संग्रामभूमिमें डटे हुए थे । उस समय दोनों ओरके सैनिक बहुत जोर-जोरसे सिंहनाद कर रहे थे और विविध प्रकारके बाजे बज रहे थे ॥ १७- २० ॥ उस समय शिव, बुध, सोम और इन्द्र आदि देवताओंको साथ लेकर

महाभयं समुत्पन्नं प्रलयोऽद्य भविष्यति । ब्रह्मदत्तवराश्चैते सोमवंशोद्भवा नृपाः ॥२३॥
रामो विष्णुरयं साक्षात्कथं जयपराजयौ । भविष्यतः कथं युद्धान्निवृत्तिरुभयोरपि ॥२४॥
भविष्यति उपायः कः कार्यो युद्धनिवारणे । तदा ब्रह्मा सुरानाह किंचिद्दृष्ट्वा वयं रणम् ॥२५॥
करिष्यामस्तयोः सख्यं रामसोमजयोस्त्विह । इत्युक्त्वा सकलान्वेधा ददर्श रणकौतुकम् ॥२६॥
तथोभयोः सैन्ययोश्च वभुवुर्यंत्रनिःस्वनाः । यंत्रोत्थवह्निज्वालाभिर्व्याप्ता दश दिशोऽभवन् ॥२७॥
यत्रोत्थनानागुटिकाभिर्निजघ्नुस्ते परस्परम् । शतघ्नीभिस्तथा जग्मुः शकटस्थाभिरादरात् ॥२८॥
तथा वीरा निजघ्नुस्ते वाणैः खड्गैः परश्वधैः । परस्परं तोमरैश्च भिंदिपालैश्च मुद्गरैः ॥२९॥
परिघैश्चक्रवाणैश्च कुंतैः शूलैश्च पट्टिशैः । तदा जघान पितरं पुत्रः पुत्रं तथा पिता ॥३०॥
पितामहस्तथा पौत्रं पौत्रश्चापि पितामहम् । अन्योन्यं कुलजात्याख्यादिकं संश्राव्य वै मुहुः ॥३१॥
तथा रणे प्रपौत्रं च जघान प्रपितामहः । तथा वाणैः प्रपौत्रोऽपि जघान प्रपितामहम् ॥३२॥
मातामहं तु दौहित्रस्तदा वाणैरताडयत् । तथा मातामहश्चापि दौहित्रं च रणेऽहनत् ॥३३॥
एवं परस्परं चासीद्युद्धं तल्लोमहर्षणम् । तत्र ये ये हता वीराः संगरे रामसेवकाः ॥३४॥
तान्सर्वान् जीवयामास तदा पवननंदनः । द्रोणाचलौषधीभिश्च वारं वारं स्वसैनिकान् ॥३५॥
रिपुसैन्ये मृता ये ते मृता एव तु नोत्थिताः । एवं तदा सोमवंशनृपास्ते क्षीणतां ययुः ॥३६॥
तदा लोहितपूरा सा बभूव सुरनिम्नगा । अर्कपद्ममिता सेना नलादीनां तदा रणे ॥३७॥
निपातिता राघवीयैर्नृपैः सा वरसंगरैः । एवं बभूव समरः षण्मासं हस्तिनापुरे ॥३८॥
ततस्ते सोमवंशस्था नृपाः किंचिद्बलैर्युताः । विषण्णा विगतोत्साहा निर्ययुः संगरं स्वयम् ॥३९॥
तानागतांस्तदा वीक्ष्य कुशाद्या वालकाश्च ते । रामदीनां ययुस्त्वग्रे रथस्था रणभूतलम् ॥४०॥

अपने वाहनपर बैठे हुए ब्रह्माजी आकाशमण्डलमें आ पहुँचे और उन लोगोंका वह भयानक युद्ध देखने लगे। कुछ देर बाद चन्द्रमा आदि देवताओंने आपसमें कहा कि यह बड़ा भयावह समय आ पहुँचा है। ऐसा लगता है कि आज प्रलय हो जायगा। इधर ये सोमवंशी राजे ब्रह्मासे वर प्राप्त किये हुए हैं, इसलिए किसीसे पराजित नहीं होंगे। उधर रामरूप धारण किये साक्षात् विष्णुभगवान् लड़ने आये हैं। ऐसी अवस्थामें जय-पराजय कैसे हो सकता है ? और यदि यह झगड़ा तें करानेका विचार किया जाय तो कैसे हो ॥२१-२४॥ उनकी बात सुनकर ब्रह्माने कहा कि हम थोड़ी देरतक इनका युद्ध देखकर इन दोनोंमें सन्धि करवा देंगे। ऐसा कहकर ब्रह्माजी युद्धकौतुक देखने लगे। उस समय दोनों सेनाओंसे तोप बन्दूक आदिकी भयंकर गर्जना सुनायी पड़ रही थी। उन यंत्रोंके मुखसे निकली आगकी लपटोंसे दसों दिशायें व्याप्त हो गयीं ॥ २५—२७ ॥ बन्दूककी गोलियोंसे आपसमें एक दूसरेको मार रहा था। दूसरी ओर बड़ी-बड़ी गाड़ियोंपर रक्खी हुई तोपें अलग आग उगल रही थीं। दोनों पक्षके वीर आपसमें पट्टिश आदिसे लड़ रहे थे। उस समय युद्धके मदसे मतवाले होकर पिता पुत्रको, पुत्र पिताको, पौत्र पितामहको तथा पितामह पौत्रको अपना ग्राम-कुल आदि बतलाकर मार रहा था। प्रपितामह प्रपौत्रको, प्रपौत्र प्रपितामहको, दौहित्र मातामहको और मातामह दौहित्रको निःशङ्कभावसे मार रहा था ॥ २८–३३ ॥ इस तरह परस्पर लोमहर्षक युद्ध हो रहा था। उस समय संग्राम-भूमिमें जो-जो रामके सैनिक मरते थे, उन्हें हनुमान्‌जी द्रोणाचलकी संजीवनी बूटीसे जीवित कर लिया करते थे ॥ ३४ ॥ किन्तु शत्रुकी सेनामें जो मरे, वे मरे ही रह गये। इस कारण वे सब सोमवंशी राजे धीरे-धीरे क्षीणबल हो गये ॥ ३६ ॥ उस संग्रामसे रुधिरकी गंगा वह चली और रामके सैनिकोंने नल आदि राजाओंकी बारह पद्म सेनाका संहार कर डाला। इस तरह छः महीने तक हस्तिनापुरीमें वह महासंग्राम होता रहा ॥ ३७ ॥ ३८ ॥ अन्तमें वे सोमवंशी राजे अपनी थोड़ी-सी सेना लेकर स्वयं संग्रामभूमिमें आये ॥ ३९ ॥ उनको आये देखकर कुश आदि बालक रथ-

नलं ययौ कुशः शीघ्रं नद्युकं स ययौ लवः । जातीकरमंगदश्च तथा च वसुदं नृपम् ॥४१॥
चित्रकेतुर्ययौ शीघ्रं तथा लघुश्रुतं नृपम् । ययौ स पुष्करः शीघ्रं तक्षकः सुरथं ययौ ॥४२॥
अजमीढं सुबाहुश्च यूपकेतुर्ययौ बलम् । यूपकेतुर्हि तत्सैन्यं चकारागोचरं शरैः ॥४३॥
वायव्यास्त्रेण चिक्षेप लवस्तं लवणांभसि । तदा ते सप्त वीराश्च नलाद्याः पर्वता इव ॥४४॥
युयुधू रघुवीरस्य बालकैः सह संगरे । न विरेजुर्बलैर्हीनाः स्कंधहीननगोपमाः ॥४५॥
कुशो विव्याध बाणैस्तं नलं संग्राममूर्धनि । तदा नलः प्रभिन्नांगः स्वबाणैस्तं व्यतर्जयत् ॥४६॥
ततः कुशः स्वबाणौघैर्नलस्याश्वान्ध्वजं धनुः । छत्रं सारथिनं छित्त्वा नलं बाणैरताडयत् ॥४७॥
नद्युकं चापि विव्याध स्वबाणौघैर्लवस्ततः । नद्युकश्च लवं बाणैस्तदा व्याकुलमातनोत् ॥४८॥
नद्युकं निजबाणौघैश्चकार विरथं लवः । एवं जातीकरं बाणैरंगदः संप्रताडयत् ॥४९॥
प्रताडयज्जातीकरः परिघेणांगदं तदा । ततो जातीकरं बाणैरंगदोऽपातयद्भुवि ॥५०॥
चित्रकेतुः स्वबाणौघैः क्रोशेन वसुदं नृपम् । चिक्षेप स्यंदनाद्वेगात्तदद्भुतमिवाभवत् ॥५१॥
तथा लघुश्रुतो बाणैर्हृदि विव्याध पुष्करम् । तदा स पुष्करः क्रोधाद्बाणैर्लघुश्रुतं रथे ॥५२॥
भित्तिचित्रोपमं कृत्वा वादयामास दुन्दुभिम् । सुरथश्चापि तक्षं स ववर्ष शरवृष्टिभिः ॥५३॥
ततस्तक्षः स्वबाणौघैः सुरथं गगनांगणे । सरथं भ्रामयामास शुष्कपर्णं यथा मरुत् ॥५४॥
अजमीढस्तदा सर्वान्पूर्वजान्व्याकुलीकृतान् । वीक्ष्य रामात्मजाद्यैस्तैर्ववर्ष शरवृष्टिभिः ॥५५॥
सुबाहुस्तं स्वबाणौघैश्चकार विरथं तदा । अजमीढस्ततोऽन्ये स रथे स्थित्वा ययौ पुनः ॥५६॥
मुमोच पवनास्त्रं स कुशादीनां वधे क्रुधा । तं दृष्ट्वा यूपकेतुस्तं पन्नगास्त्रं मुमोच सः ॥५७॥
तदा ते कोटिशः सर्पाः पपुस्तं कंपनं क्षणात् । रथस्थः स नलः सर्पान्दृष्ट्वा गारुडमुत्तमम् ॥५८॥

पर सवार होकर रणभूमिमें जा डटे ॥ ४० ॥ उस समय नलके सम्मुख कुश, नद्युकके समक्ष लव, जातीकरके सामने अङ्गद, वसुदके सम्मुख चित्रकेतु, लघुश्रुतके सामने पुष्कर, सुरथके समक्ष तक्षक, अजमीढ़के सामने सुबाहु और बल नामक राजाके सामने यूपकेतु जा पहुंचे । यूपकेतुने थोड़े ही समयमें समस्त सेनाका नाश कर डाला ॥ ४१–४३ ॥ लवने अपने वायव्य अस्त्रसे उन मरे हुए सैनिकोंको खारे समुद्रमें फेंक दिया। ऐसी अवस्थामें पर्वतकी नाईं बड़े-बड़े वे नल आदि सातों वीर रामजीके बालकोंके साथ युद्ध करने लगे। यह सब करते हुए भी वे राजे उसी तरह ओछे लग रहे थे, जिस तरह डाली और पत्तोंसे विहीन वृक्ष हों ॥ ४४ ॥ ॥ ४५ ॥ थोड़ी देर बाद कुशने अपने बाणोंसे नलको घायल कर दिया। तब नल भी दूने वेगके साथ कुशपर झपटा, किन्तु मौका पाकर कुशने बाणों द्वारा नलके रथ, घोड़े, ध्वजा, धनुष, छत्र और सारथीको नष्ट करके उसके शरीरपर भी प्रहार किया ॥४६॥४७॥ उधर लवने अपने बाणसमूहसे नद्युकको और नद्युकने अपने शस्त्रोंसे लवको व्याकुल कर दिया ॥ ४८ ॥ अन्तमें लवने अपनी बाणवर्षासे नद्युकके रथको काट डाला। इसी तरह अङ्गदने जातीकरपर प्रहार किया और जातीकरने परिघ चलाकर अङ्गदपर प्रहार किया । अन्तमें अङ्गदने अपने बाणोंसे जातीकरको धराशायी कर दिया ॥ ४९ ॥ ५० ॥ इसी प्रकार चित्रकेतुने अपने बाणोंसे वसुदको उसके रथसे उठाकर दूर फेंक दिया । यह एक बड़ी कौतुकमयी घटना थी ॥ ५१ ॥ उधर लघुश्रुतने अपने बाणोंसे पुष्करपर प्रहार किया और पुष्करने कुपित होकर अपने बाणोंसे बहुश्रुतको एक तसवीरकी तरह उसके रथमें ही जड़ दिया और अपनी विजयदुन्दुभी बजा दी ॥ ५२ ॥ ५३ ॥ इसके अनन्तर तक्षकने अपनी बाणवर्षासे सुरथको रथ समेत नचा दिया, जैसे सूखे पत्तोंको वायु नचा देता है ॥ ५४ ॥ उसी समय अजमीढ़ने जब देखा कि रामके वीर पुत्र उसके पूर्वजोंको बहुत सता रहे हैं तो वह इन लोगोंपर घोर बाणवृष्टि करने लगा ॥ ५५ ॥ इसी बीच सुबाहुने अजमीढ़के रथको काट डाला और वह दूसरे रथपर आरूढ़ होकर फिर संग्रामभूमिमें आ डटा ॥ ५६ ॥ आते ही उसने कुश आदिको मारनेके लिए पवनास्त्रका प्रयोग किया । उसके भयङ्कर पवनास्त्रको देखकर यूपकेतुने पन्नगास्त्र चलाया ॥ ५७ ॥ जिससे क्षणभरमें उन सर्पोंने सब वायु पी ली। उधर

मुमोच पन्नगास्त्रस्य निवृत्त्यर्थं ततोऽस्त्रवित् । तदा कुशः प्रमुमोच राक्षसास्त्रं भयावहम् ॥५९॥
नघुकश्च तदा वेगाद्धयास्त्रं तं व्यसर्जयत् । तदा क्रोधाल्लवश्चापि मेघास्त्रं तं व्यसर्जयत् ॥६०॥
तदा लघुश्रुतश्चापि पवनास्त्रं मुमोच सः । तदा स हनुमान् शीघ्रं व्यादाय विकटाननम् ॥६१॥
प्रपिबन्मरुतं वेगान्ननाद जलदस्वनः । एवं तच्च महायुद्धं पुष्पकारामसंस्थितौ ॥६२॥
सीतारामौ मुदा युक्तौ लक्ष्मणाद्यैर्ददर्शतुः । एवं युद्धं पञ्चमासान्सैकादश दिनान्यभूत् ॥६३॥
एकादशे दिने मार्गे गतास्तेऽस्मिन्समीरिताः । एवमेकादशैर्मासैसैकादशदिनैरपि ॥६४॥
त्रेतायुगभवैर्दिव्यैः समाप्तिं संगरस्य च । अदृष्ट्वा स कुशो वेगाद्ब्रह्मास्त्रं संदधे तदा ॥६५॥

इति श्रीशतकोटिरामचरितांतर्गते श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये पूर्णकाण्डे रामदास-
विष्णुदाससंवादे सोमवंशोद्भवनृपाणां युद्धवर्णनं नाम षोडशः सर्गः ॥ ३ ॥

चतुर्थः सर्गः

(सूर्यवंशी और चन्द्रवंशी राजाओंमें मैत्री)

श्रीरामदास उवाच

ब्रह्मास्त्रं संदधानं तं दृष्ट्वा वेधाः सुरैः सह । सोमेन च बुधेनापि विमानेन ययौ भुवम् ॥१॥
विमानादवरुह्याथ तदा ब्रह्मा कुशं ययौ । कुशं तं प्रार्थयामास मा त्वमस्त्रं विसर्जय ॥२॥
पालयस्व वचो मेऽद्य नाके सोमाय वै मया । द्वापरांतं वरो दत्तस्त्वजेयाश्च रणाजिरे ॥३॥
भविष्यन्ति नलाद्याश्च सर्वे युष्मत्कुलोद्भवाः । पुरा त्विति सुराग्रे हि कस्मिंश्चित्कारणांतरे ॥४॥
अतस्त्वं कुश माऽस्त्रं मे नलाद्येषु विसर्जय । तद्ब्रह्मवचनं श्रुत्वा कुशो वाक्यमथाब्रवीत् ॥५॥
अधुना क्षणमात्रेण सर्वान्दग्धान्करोम्यहम् । नोचेत्कथय रामाय तस्याज्ञां मानयाम्यहम् ॥६॥

रथपरसे नलने जब पन्नगास्त्र देखा तो गारुडास्त्रका प्रयोग किया ॥ ५८ ॥ उसकी निवृत्तिके लिए कुशने बड़े ही भयानक राक्षसास्त्रका प्रयोग किया ॥ ५९ ॥ उसी समय नघुकने वह्न्यस्त्र चलाया । तब मारे क्रोधके लवने उसपर मेघास्त्रका प्रयोग कर दिया ॥ ६० ॥ इसके अनन्तर लघुश्रुतने पवनास्त्र छोड़ा । इसी समय हनुमान्‌जीने अपना मुख फैलाकर सब हवा पी ली और मेघकी तरह बीभत्स स्वरमें गरजे । उधर विमानपर बैठे हुए पुष्कर, राम तथा सीताजी उस महायुद्धको देख रही थीं । इस तरह वह युद्ध पाँच महीना ग्यारह दिन चला ॥ ६१–६३ ॥ ग्यारह ही दिनके लगभग अयोध्यासे हस्तिनापुर आनेमें लगे थे । सब मिलाकर त्रेतायुगके दिनोंके हिसाबसे उस युद्धमें ग्यारह महीने और ग्यारह दिन लगे ॥ ६४ ॥ उधर जब कुशने देखा कि अब कोई अन्य उपाय नहीं है तो ब्रह्मास्त्रका संधान किया ॥ ६५ ॥ इति श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये पं० रामतेजपाण्डेयकृत 'ज्योत्स्ना' भाषाटीकासहिते पूर्णकाण्डे तृतीयः सर्गः ॥ ३ ॥

श्रीरामदासने कहा-जब ब्रह्माने देखा कि कुश ब्रह्मास्त्रका प्रयोग करने जा रहा है तो वे बहुतसे देवताओं और बुध तथा सोमको साथ लिये हुए विमानपर बैठकर पृथ्वीतलपर आये । यहाँ पहुँचे तो विमानसे उतरकर कुशके पास गये और प्रार्थना की कि तुम इस ब्रह्मास्त्रका प्रयोग मत करो ॥ १ ॥ २ ॥ आज मेरे कहनेसे मेरी बात मान लो । क्योंकि एक बार मैंने स्वर्गलोकमें इन सोमवंशियोंको वरदान दिया था कि द्वापर तक संग्रामभूमिमें तुम किसीसे भी पराजित नहीं होओगे ॥ ३ ॥ आगे चलकर तुम्हारे वंशमें नल आदि बड़े प्रतापशाली राजे होंगे ॥ ४ ॥ इस कारण हे कुश ! तुम इन नल आदि राजाओंपर ब्रह्मास्त्रका प्रयोग न करो । ब्रह्माकी बात सुनकर कुशने कहा कि मैं अभी क्षणमात्रमें इन दुष्टोंको भस्म किये देता हूँ । यदि आप कुछ कहना चाहते हों तो जाकर रामचन्द्रजीसे कहिए, मैं उन्हींकी बात मानूँगा ॥ ५ ॥ ६ ॥

यदा त्वया वरो दत्तस्तदा किं विदितं तव । नासीच्छ्रीरामसामर्थ्यं ह्यधुना प्रार्थ्यसे मुधा ॥ ७ ॥
त्वयि चेद्वर्तते किंचित्सारं धर्तुं रणं मया । तर्हि कुरुष्व साहाय्यं नलादीनां सुरैर्युतः ॥ ८ ॥
त्वया रणे संगरोऽद्य मम पश्यतु राघवः । सीताऽपि पुष्पकासीना जालरंध्रैश्च पश्यतु ॥ ९ ॥
एवं कुशस्य वचनं श्रुत्वा लज्जायुतो विधिः । सोमेनाथ बुधेनापि नलाद्यान्प्राह वेगतः ॥१०॥
रे रे मूढाः शृणुध्वं मे वचनं हि गतायुषः । साक्षान्नारायणं रामं यूयं योद्धुं समुद्यताः ॥११॥
केनेयं शिक्षिता बुद्धिः सर्वेषां घातकारिणी । गच्छध्वं शरणं रामं नोचेद्यूयं मरिष्यथ ॥१२॥
ममायं जनकः साक्षाद्रामो विष्णुर्न संशयः । इति धिक्कृत्य तान्वेधाः कुशं वचनमब्रवीत् ॥१३॥
यावद्यास्याम्यहं रामात्पुनस्त्वां कुशबालक । तावच्चेन्मोक्ष्यसे बाणं तर्हि मां हतवानसि ॥१४॥
इत्युक्त्वा तं कुशं वेधा नलाद्यैः परिवेष्टितः । ययौ रामं सुरैर्युक्तः पुरस्कृत्य वृषध्वजम् ॥१५॥
शिवमागतमाज्ञाय पुष्पकाद्रघुनन्दनः । प्रत्युद्गम्य शिवं नत्वा प्रणनाम ततो विधिम् ॥१६॥
ततस्तान्पूजयामास शिवादीन्रघुनन्दनः । ततः सभायां रामस्य तिष्ठन्वेधा नलादिभिः ॥१७॥
प्रणामान्कारयामास सोमेन च बुधेन च । ततस्तान्सहसोत्थाय रामचन्द्रः करेण हि ॥१८॥
श्रुत्वा तेषां हि नामानि विधेरास्यात्पृथक् पृथक् । ततः पप्रच्छ वेगेन ब्रह्माणं पुरतः स्थितम् ॥१९॥
सर्वे किमर्थमानीतास्त्वत्रैते सोमवंशजाः । वद त्वं कारणं शीघ्रं सत्यमेव ममाग्रतः ॥२०॥
तद्रामवचनं श्रुत्वा रामं वेधा वचोऽब्रवीत् । राम राम महाबाहो पालयस्वाद्य मे वचः ॥२१॥
रक्षस्वैतान्नृपानद्य वरदानान्मम प्रभो । द्वापरांतमजेयत्वं दत्तमस्ति मया पुरा ॥२२॥
ममास्त्रं सन्दधानं निवारय कुशं सुतम् । इति तद्वचनं श्रुत्वा विहस्य रघुनायकः ॥२३॥
सभायामाह ब्रह्माणमजेयत्वं त्वयोदितम् । क्व गतं चाद्य समरात्किमर्थमिह चागताः ॥२४॥

जब आपने उनको वरदान दिया था, तब क्या रामकी सामर्थ्यका आपको ध्यान नहीं था ? तब तो रामको कुछ समझे नहीं, अब झूठ-मूठकी प्रार्थना करने आये हैं ॥ ७ ॥ मैं कहता हूँ कि यदि आपमें कुछ शक्ति हो तो देवताओंको साथ लेकर आप नल आदिकी सहायता करिए। मैं आपके साथ घनघोर युद्ध करूँ और रामचन्द्रजी तथा सीता पुष्पक विमानके झरोखोंसे मेरा और आपका संघर्ष देखें ॥ ८ ॥ ९ ॥ इस प्रकार कुशकी बात सुनी तो ब्रह्माजी लज्जित हो गये और नल आदिको फटकारते हुए कहने लगे—अरे मूढ़ो ! जान पड़ता है कि तुम लोगोंकी आयु समाप्त हो गयी है, जो साक्षान्नारायणस्वरूप रामचन्द्रजीसे युद्ध करने आये हो ॥ १० ॥ ११ ॥ सर्वनाश उपस्थित करनेवाली यह दुर्बुद्धि तुमको किसने दी है ? अब यदि अपना कल्याण चाहते हो तो रामकी शरणमें जाओ, नहीं तो एक एक करके तुम सब मार डाले जाओगे ॥ १२ ॥ मेरे पिता विष्णुभगवान् ही तो रामरूपसे इस पृथ्वीतलपर अवतरे हैं। इस तरह उन लोगोंको डाँट-फटकार करके ब्रह्माजी कुशसे कहने लगे कि मैं रामके पास जा रहा हूँ । जबतक उनके पाससे न लौट आऊँ, तबतक बाणका प्रहार न करना । ऐसा करोगे तो मानों उनका नहीं, तुमने मेरा वध किया ॥ १३ ॥ १४ ॥ ऐसा कुशसे कहकर ब्रह्माजी शिवजीको आगे करके नल आदिके साथ-साथ श्रीरामचन्द्रजीके पास गये। जब रामने सुना कि शिवजी आ रहे हैं तो पुष्पक विमानसे उतरकर उनका स्वागत और प्रणाम करके ब्रह्माजीको भी अभिवादन किया ॥ १५ ॥ १६ ॥ इसके अनन्तर रामने शिवजी आदिकी विधिवत् पूजा की और सब लोग सभाभवनमें गये । वहाँ ब्रह्माने सोम और बुधसे श्रीरामको प्रणाम करवाया । तब रामने उनको अपने हाथोंसे उठा लिया और ब्रह्माजीके मुखसे उनका नाम सुना। कुछ देर बाद रामने ब्रह्मासे पूछा कि आप इन सोम-वंशियोंको यहाँ किस लिए लाये हैं ? जो इसका वास्तविक कारण हो, वह मुझे बतलाइए ॥ १७-२० ॥ रामकी बात सुनकर ब्रह्माने कहा—हे राम ! हे महाबाहो ! आज आप मेरी बात मानकर इन नल आदि राजाओंकी रक्षा कीजिए। मैंने इन लोगोंको यह वरदान दे रक्खा है कि द्वापरपर्यन्त तुम लोग किसीसे पराजित नहीं होओगे ॥ २१ ॥ २२ ॥ उधर कुश मेरे शस्त्र (ब्रह्मास्त्र) का सन्धान करके खड़े हैं। उन्हें भी

तद्रामवचनं श्रुत्वा रामं प्राह विधिः पुनः। सर्वेषां पुरतो मेऽस्ति बलं न तु तवाग्रतः ॥२५॥
त्वं तु मे जनकः साक्षादतस्त्वां प्रार्थयाम्यहम्। ततो रामः पुनः प्राह विहस्य चतुराननम् ॥२६॥
न श्रोष्यति वचो मेऽद्य कुशोऽयं यौवनस्थितः। प्रायः कुमारा वृद्धानां वाक्यमग्रे भजन्ति न ॥२७॥
अन्यथापि शृणुष्व त्वं यच्छास्त्रेऽप्युच्यते वचः। लालयेत्पंच वर्षाणि दश वर्षाणि ताडयेत् ॥२८॥
प्राप्ते तु षोडशे वर्षे पुत्रं मित्रवदाचरेत्। अतस्ते बालकाः सर्वे कुशाद्याः स्वार्थतत्पराः ॥२९॥
न श्रोष्यंति वचो मेऽद्य तान्गत्वा प्रार्थयस्व हि। ततः प्राह पुनर्ब्रह्मा रणक्रोधात्कुशो मया ॥३०॥
वाक्यं रम्यं मंजुलं च नैवाद्य वदति प्रभो। ततः प्राह विधिं रामः पुनर्वाक्यं विनोदयन् ॥३१॥
विधे त्वं गच्छ वाल्मीकिं स त्वां युक्तिं वदिष्यति। ततः स रामवाक्येन वाल्मीकिं पुष्पके स्थितम् ॥३२॥
मुनिभिर्मुनिशालायामूर्ध्वं सर्वैः स्थितं विधिः। नलाद्यैः सहितो गत्वा वृत्तं सर्वं न्यवेदयत् ॥३३॥
विधिमाहाथ वाल्मीकिर्ज्ञात्वा राममनोगतम्। स्त्रीलब्धजीविताश्चैते भवन्तु सुखिनस्त्विति ॥३४॥
नलादीनां स्त्रियः सर्वाः प्रार्थयन्तु विदेहजाम्। कुशोऽपि जानकीवाक्याच्छान्तिमेष्यति बालकः ३५
तथेति ते नलाद्याश्च दूतान् प्रेष्याथ सादरम्। आनीय स्वकलत्राणि शतशस्तु तदा जवात् ॥३६॥
जानकीं प्रेषयामासुस्ताः सर्वाः पार्थिवस्त्रियः। उपायनानि संगृह्य जानकीं प्रययुर्जवात् ॥३७॥
ददृशुर्जानकीं नारीशालायां स्वसखीवृताम्। स्नुषाभिः सेवितपदां पर्यंके निद्रितां मुदा ॥३८॥
ततः स्त्रीः समागताः सीता दृष्ट्वा चामरजीविता। मंचकादवरुह्याथ धृतपार्श्वोपबर्हणा ॥३९॥
स्वपृष्ठे मंचकं कृत्वा संस्थिताऽऽसीत्सखीवृता। स्नुषाभिर्वीजितां रम्यां प्रणेमुस्तां परस्त्रियः ॥४०॥
तासां सीमन्तरत्नौघप्रभया पदपंकजे। विरेजतुस्ते सीतायाश्चित्ररागविचित्रिते ॥४१॥
उपायनानि संगृह्य ताभ्यः सा जनकात्मजा। समालिंग्य निवेश्याथ ताः प्राह सुस्वरं वचः ॥४२॥

आप रोक दीजिए। ब्रह्माकी बात सुनकर रामने कहा कि आपने जब इनको अजेय कर दिया था, तब फिर ये लोग संग्रामभूमि छोड़कर यहाँ मेरे पास क्यों आये हैं? ॥ २३ ॥ २४ ॥ रामकी यह बात सुनकर ब्रह्मा कहने लगे—सब लोगोंके लिए तो मेरे पास बल है, किन्तु आपके लिए मेरेमें कुछ भी सामर्थ्य नहीं है ॥ २५ ॥ आप मेरे पिता हैं, इसी नाते मैं आपसे प्रार्थना करता हूँ। फिर राम बोले कि कुश युवावस्थामें है। संसारमें प्राय: देखा जाता है कि कुमार लोग वृद्धोंकी बात नहीं मानते ॥ २६ ॥ २७ ॥ इसके अतिरिक्त शास्त्रमें भी कहा गया है कि पाँच वर्षकी अवस्यातक बच्चोंका दुलार करे, दस वर्षकी अवस्था तक डराये-धमकाये, किन्तु सोलह वर्षका हो जानेपर बेटेके साथ मित्रताका व्यवहार करना चाहिए। इसी कारण वे स्वार्थी बालक मेरी बात नहीं मानेंगे। आप स्वयं जाकर उनसे प्रार्थना कीजिए। ब्रह्माने कहा कि संग्राम-जनित क्रोधके कारण आज तो वह हमसे सीधी बात भी नहीं करता। फिर विनोदवश रामने ब्रह्मासे कहा कि आप वाल्मीकिके पास जाइए। वे आपको कोई युक्ति बतलायेंगे। रामके कथनानुसार ब्रह्मा नल आदिको अपने साथ लेकर वाल्मीकिके पास गये। वाल्मीकिजी उस समय रामके साथ पुष्पक विमानपर ही रहा करते थे। इससे उनके पास पहुँचनेमें विशेष समय नहीं लगा। वहाँ जाकर ब्रह्माने वाल्मीकिको सब वृत्तांत कह सुनाया ॥ २८-३३ ॥ रामका मनोगत अभिप्राय जानकर वाल्मीकिने ब्रह्माजीसे कहा कि अपनी स्त्रियोंकी कृपासे ये लोग जीवनदान पा सकते हैं। उसका उपाय यह है कि नल आदिकी स्त्रियाँ सीताके पास जाकर अपने पतियोंके जीवनकी भीख माँगें। यदि सीता प्रसन्न हो गयीं तो कुश भी मान जायगा ॥ ३४ ॥ ३५ ॥ वाल्मीकिके कथनानुसार नल आदिने अपनी स्त्रियोंको लिवा लानेके लिए सैकड़ों दूत भेजे और वे तुरन्त उनको लिये हुए आ पहुँचे। इसके अनन्तर वे स्त्रियाँ विविध प्रकारके उपहार लेकर सीताके पास गयीं। वहाँ पहुँचकर उन स्त्रियों-ने देखा कि सीता अपनी सखियोंसे घिरी हुई बैठी झपकी ले रही हैं और पतोहुएँ उनकी सेवामें तत्पर हैं ॥ ३६-३८ ॥ जब सीताने उन स्त्रियोंको देखा तो तकिया बगलमें कर ली और उठ बैठीं। उस समय उन स्त्रियों-ने उनको प्रणाम किया ॥ ३९ ॥ ४० ॥ उन राजरानियोंके सीमन्तरत्नकी प्रभासे सीताके पैर चित्र-विचित्र

किमर्थमागता यूयं मा भेतव्यमितः परम् । कथयध्वं स्वीयमिष्टं यत्तद्वोऽद्य करोम्यहम् ॥४३॥
तदा ताः कथयामासुः सर्वं वृत्तं सविस्तरम् । देहि कंकणदानानि कुशं युद्धान्निवारय ॥४४॥
तथेति जानकी चोक्त्वा ज्ञात्वा राममनोगतम् । नारीहस्तान्मोचनीयाश्चैते निर्जरवच्चिति ॥४५
आरुह्य शिबिकायां सा ताभिर्युक्ता कुशं ययौ । तदा तं सान्त्वयामास क्रोधं त्यज कुशाधुना ॥४६॥
निवर्त्तस्व रणादद्य शृणु मे वचनं शिशो । तथेति जानकीवाक्याद्विहस्याथ कुशस्तदा ॥४७॥
मात्रा तैर्बंधुभिर्युक्तः सेनया संन्यवर्तत । पुष्पकं प्रययौ सीता नृपस्त्रीपरिवेष्टिता ॥४८॥
कुशाद्यास्ते कुमाराश्च सभायां राघवं ययुः । ततो वाल्मीकिना ब्रह्मा नलाद्यैः सहितस्तदा ॥४९॥
सनिर्जरः सभां गत्वा तस्थौ श्रीराघवाग्रतः । कुशाद्यास्तेऽपि श्रीरामं प्रणम्यं तस्य संनिधौ ॥५०॥
तस्थुस्तेनालिंगिताश्च स्त्रीभिर्नीराजिता अपि । तदा रामोऽब्रवीद्वाक्यं ब्रह्माणं सदसि स्थितम् ॥५१॥
रणान्निवर्तिता बालाः किमग्रे तव वांछितम् । न मे राज्ये छत्रपतिर्द्वितीयोऽत्र भविष्यति ॥५२॥
करणीयं नलाद्यैः किं तद्वदस्व सविस्तरम् । तदाऽऽसनादुत्थितः सः वेधा रामाग्रतः स्थितः॥५३॥
उवाच मधुरं वाक्यं सभायां रघुनन्दनम् । राम राम महाबाहो भूभारश्च त्वया हृतः ॥५४॥
चिरकालं कृतं राज्यं वैकुण्ठं पालयाधुना । कुरु सत्यं वचो मेऽद्य ददस्व हस्तिनापुरम् ॥५५॥
नलादिभ्यस्त्वयोध्यायां कुशो राज्यं प्रशासतु । तदा रामो विधिं प्राह ममाप्येतत्तु रोचते ॥५६॥
वैकुण्ठं श्वो गमिष्यामि सीतया बन्धुभिर्युतः । दशवर्षसहस्राणि प्रोक्तमायुर्युगेऽत्र हि ॥५७॥
तन्मया स्वीयसामर्थ्यात्कृतमत्र विधे मृषा । एकादश सहस्राणि समास्त्वेकादशैव तु ॥५८॥
तथैकादश मासाश्च गता मे दिवसा अपि । शेषमायुश्च किंचिन्मे तच्छ्वः पूर्णं भविष्यति ॥५९।

प्रकारके दीख रहे थे ॥ ४१ ॥ इसके बाद सीताने उनकी भेंटें स्वीकार कीं और उनको हृदयसे लगाकर कहने लगीं कि तुम लोग यहाँ किस कामसे आयी हो ? अपनी इच्छा प्रकट करो । तुम जो कुछ भी चाहोगा मैं उसका प्रबन्ध कर दूँगी ॥ ४२ ॥ ४३ ॥ तब उन रानियोंने युद्धसम्बन्धी सब वृत्तान्त बताते हुए कहा–हे देवि ! आज आप मेरी उतरती हुई चूड़ी रखनेके लिए कुशको युद्ध करनेसे रोक दीजिए ॥ ४४ ॥ सीताने मन ही मन रामकी इच्छा जान लीं । उन्होंने सोचा–वे चाहते हैं कि स्त्रियोंके द्वारा नल आदिको जीवनदान मिले । यह सोचकर उन्होंने उन स्त्रियोंसे कहा–अच्छी बात है । इसके अनन्तर वे तुरन्त पालकीपर सवार हुईं और कुशके पास जा पहुँचीं और कहा—बेटे कुश ! अब तुम अपने क्रोधका परित्याग कर दो ॥ ४५ ॥ ४६ ॥ मेरी बात मानकर संग्रामभूमिसे लौट चलो । जानकीकी बात सुनकर कुश मुस्कराये और अपने बन्धु-बान्धवों तथा सेनाको साथ लेकर लौट पड़े । सीता कुशको तथा उन स्त्रियोंको अपने साथ लिये अपने पुष्पक विमानपर आ पहुँचीं । वहाँ पहुंचनेपर कुश आदि बालक सभामें रामचन्द्रजीके पास चले गये । इसके अनन्तर ब्रह्माजी भी वाल्मीकि तथा नल आदिको साथ लेकर सभामें रामचन्द्रजीके पास पहुँचे । कुश आदि बालक भगवान्को प्रणाम करके एक ओर खड़े हो गये ॥ ४७–५० ॥ रामने उनको अपने हृदयसे लगा लिया और स्त्रियोंने उनकी आरती उतारी । कुछ देर बाद रामने ब्रह्माजीसे कहा कि आपके इच्छानुसार कुश आदि बालक तो संग्रामभूमिसे लौट आये । अब आपकी क्या इच्छा है ? अबसे मेरे राज्यमें कोई दूसरा छत्रधारी राजा नहीं रहेगा ॥ ५१ ॥ ५२ ॥ अब आप यह भी बतला दीजिए कि नल आदिको क्या करना चाहिए । रामकी यह बात सुनते ही ब्रह्माजी उठकर रामके आगे जा बैठे और कहने लगे-हे राम ! हे महाबाहो ! आपने पृथ्वीका भार उतार लिया । बहुत दिनोंतक पृथ्वीपर राज्य भी किया । अब चलकर वैकुण्ठधामकी रक्षा करिए और मेरी बात सच करनेके लिए नल आदिको हस्तिनापुरी दे डालिए ॥ ५३–५५ ॥ कुश आनन्दके साथ अयोध्याका राज्य करे । तब रामने ब्रह्मासे कहा कि यही बात मुझे भी जँच रही है ॥ ५६ ॥ कल मैं सीता तथा अपने बान्धवोंके साथ वैकुंठधामको चल दूँगा । इस युगमें मनुष्यकी आयु दस हजार वर्ष निर्धारित की गयी है । किन्तु हे ब्रह्माजी ! मैं अपनी सामर्थ्यसे उस नियमको व्यर्थ करके ग्यारह हजार ग्यारह वर्ष और ग्यारह

द्वादशायां घटिकायां सोऽहं वैकुण्ठमाश्रये । ततो विधिं कुशः प्राह नलाद्या यदि मां विधे ॥६०॥
दास्यंति करभारं मे तर्हि तिष्ठतु चात्र ते । मदाज्ञां पालयंत्वेते तव वाक्यात्सुरक्षिताः ॥६१॥
छत्रहीनाः सुखं त्वद्य वसन्तु हस्तिनापुरे । तद्वाक्यं स विधिः श्रुत्वा पुनः प्राह कुशं प्रति ॥६२॥
छत्रमाज्ञापयस्वैतांस्तवाज्ञावशवर्तिनः । दास्यंति करभारं त्वां मम वाक्यं हि पालय ॥६३॥
तथेति स कुशः प्राह विधिं किंचित्स्मिताननः । अथ ते सोमवंशस्था नृपाः सर्वे विधिं तदा ॥६४॥
प्रोचुर्वयं त्वया स्त्रीभिर्यास्यामो दिवमद्य वै । अजमीढोऽद्य नृपतिर्भवत्वत्र गजाह्वये ॥६५॥

तथेति तान् विधिश्चोक्त्वा सभायां समुपाविशत् ।
अथ ब्रह्माऽजमीढाय ब्राह्मणैरभिषिच्य च । गजाह्वये तं राजानं चकार राघवाज्ञया ॥६६॥

इति श्रीशतकोटिरामचरितांतर्गते श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये पूर्णकाण्डे
सोमसूर्यवंशजयो मैत्रीकरणं नाम चतुर्थः सर्गः ॥ ४ ॥

पञ्चमः सर्गः

(रामका मित्रों तथा राजाओंको विदा करना)

श्रीरामचन्द्र उवाच

अथ रामं सुषेणश्च सुग्रीवश्च विभीषणः । वानराः प्रार्थयामासुर्वयं राम त्वया दिवम् ॥ १ ॥
यास्यामो नात्र जीवामस्त्वया राम विना भुवि । ददस्वाज्ञां त्वया गंतुं तथाह राघवोऽपि सः ॥ २ ॥
विभीषण त्वया स्थेयं लंकायां मम वाक्यतः । प्रचरिष्यति यावन्मे रामनामावनीतले ॥ ३ ॥
त्वं गच्छाद्यैव मे वाक्यात्तथेति स विभीषणः । नत्वा रामं ययौ लंकां राघवेणातिमानितः ॥ ४ ॥
ततः प्राह जांबवतं राघवः पुरतः स्थितम् । हे जाम्बवँस्त्वया स्थेयं यावद्भूम्यां कथा मम ॥ ५ ॥

महीने इस संसारमें रहा ॥ ५७ ॥ ५८ ॥ थोड़ी-सी आयु शेष बची थी, सो भी कल पूरी हो जायगी ॥ ५९ ॥ ठीक बारह घड़ी बाद मैं वैकुण्ठधामके लिए चल दूँगा। तदनन्तर कुशने ब्रह्माजीसे कहा कि यदि नल आदि राजे मुझे करभार दें और मेरे आज्ञानुसार चलें तो मैं आपकी आज्ञासे इनको हर तरहसे सुरक्षित रक्खूँगा। इनको छत्र धारण करनेका अधिकार नहीं रहेगा । अर्थात् छत्रविहीन होकर ये लोग आनन्दके साथ रह सकेंगे। कुशकी बात सुनकर ब्रह्माने कहा कि आप इन्हें छत्र धारण करनेकी आज्ञा दे दीजिए । हाँ, ये सदैव आपकी आज्ञाका पालन करते हुए करभार देते रहेंगे ॥ ६०-६४ ॥ कुशने ब्रह्माकी बात स्वीकार कर ली। इसके अनन्तर उन सोमवंशी राजाओंने ब्रह्मासे कहा कि हमलोग अपनी स्त्रियें लिये हुए आपके साथ स्वर्गको चले चलेंगे । अब इस हस्तिनापुरीका राजा यह अजमीढ़ बनेगा ॥ ६५ ॥ ब्रह्माने भी उनकी बात स्वीकार कर ली और सभामें बैठ गये। इसके बाद रामकी आज्ञासे ब्रह्माने ब्राह्मणों द्वारा अजमीढ़का राज्याभिषेक कराके हस्तिनापुरीका राजा बना दिया ॥ ६६ ॥ इति श्रीशतकोटिरामचरितांतर्गते श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये पं० रामतेजपाण्डेयकृत'ज्योत्स्ना'भाषाटीकासहिते पूर्णकांडे चतुर्थः सर्गः ॥ ४ ॥

श्रीरामदासने कहा-इसके बाद सुषेण, सुग्रीव, विभीषण तथा अन्यान्य वानरोंने भगवान्से प्रार्थना की-हे राम ! हमलोग भी आपके साथ स्वर्गको चलेंगे। आपके बिना हमारा इस पृथ्वीपर जीवित रहना कठिन है । कृपया हमें भी अपने साथ चलनेकी आज्ञा दीजिए । यह सुनकर रामने कहा-हे विभीषण ! तुम मेरे कहनेसे तबतक लंकामें ही रहो, जबतक संसारमें मेरे नामका प्रचार होता रहे । तुम आज ही लंका चले जाओ । विभीषणने भी भगवान्की बात मान ली और प्रणाम करके लङ्काको प्रस्थान कर दिया। चलते समय भगवान्ने विभीषणका बहुत सम्मान किया ॥ १-४ ॥ इसके अनन्तर जाम्बवान्से बोले-हे जाम्बवान् ! जबतक इस संसार मेरी कथा प्रचलित रहे, तब तक तुम इसी लोकमें रहो । द्वापरके अन्तमें फिर तुम हमारा दर्शन

प्रचरिष्यति तावच्च द्वापरांते पुनर्मम । भविष्यति दर्शनं ते गच्छाद्यैव सुखं वस ॥ ६ ॥
त्वया कृतं यत्साहाय्यं लंकायां मे वनेऽपि च । अतस्त्वं श्वशुरो भूत्वा द्वापरे ख्यातिमेष्यसि ॥ ७ ॥
तथेति रामवचनाद्रामं सीतां प्रणम्य सः । जांबवान्निर्ययौ शीघ्रं राघवेणातिपूजितः ॥ ८ ॥
रामः प्राह हनूमन्तं वत्स तिष्ठ यथासुखम् । यदा सेतौ पणस्पे हि द्वापरांतेऽर्जुनेन वै ॥ ९ ॥
भविष्यति शरैः सेतुं कर्तुं मे दर्शनं तदा । त्वं लभिष्यसि गच्छाद्य सुखं वस भजस्व माम् ॥१०॥
तद्रामवचनं श्रुत्वा नत्वा रामं च लक्ष्मणम् । सीतां प्रणम्य हनुमान् गमनायोपचक्रमे ॥११॥
ततो रामो निजात्कंठान्नवरत्नविभूषितम् । हारं ददौ तथा सीता तं ददौ बाहुभूषणे ॥१२॥
ततो नत्वा रामचन्द्रं सार्द्रनेत्रः स मारुतिः । परिक्रम्य ययौ वेगात्तप्तुं तु हिमपर्वतम् ॥१३॥
ततोऽङ्गदं रामचन्द्रः पूज्य वस्त्रादिमण्डनैः । प्रेषयामास किष्किंधां शृंगवेरं तु गूहकम् ॥१४॥
पातालं प्रेषयामास राघवो मकरध्वजम् । वस्त्रादिभिस्तोषयित्वा सुहृदः स्वस्थलानि हि ॥१५॥
ततो रामः समाहूय यूपकेतुं महामनाः । वस्त्रादिभिस्तोषयित्वा विदिशानगरं प्रति ॥१६॥
प्रेषयामास सैन्येन सोऽपि नत्वा रघूत्तमम् । जानकीं च ययौ वेगात्स्त्रीपुत्रैः परिवारितः ॥१७॥
एवं रामः सुबाहुं तं मथुरां प्रैषयत्तदा । एवं रामः पुष्करं च प्रेषयामास बालकम् ॥१८॥
सैन्येन पुष्करावत्यां तक्षं तक्षशिलाह्वये । ततोऽङ्गदं गजाश्वं तं प्रेषयामास राघवः ॥१९॥
धनरत्नं चित्रकेतुं स्त्रीपुत्रबलवाहनैः । प्रेषयामास श्रीरामस्तोषितं वसनादिभिः ॥२०॥
ततो लवं समाहूय ससीतो रघुनन्दनः । वस्त्रालंकारयानाद्यैस्तोष्य स्त्रीपुत्रसंयुतम् ॥२१॥
उत्तरेषु कुरुष्वत्र प्रेषयामास सेनया । कामधेनुं ददौ सीता लवाय व्रजते मुदा ॥२२॥
ततः कुशं समाहूय रामः स्त्रीपुत्रसंयुतम् । प्रेषयामास साकेतं सैन्येन पार्थिवैर्युतम् ॥२३॥

करोगे। तुम भी आज ही प्रस्थान कर दो और आनन्दके साथ किसी स्थानपर निवास करो ॥ ५ ॥ ६ ॥ तुमने लंका और वनमें मेरी जो सहायता की है, उसीके प्रभावसे द्वापरमें तुम मेरे श्वशुरके रूपमें विख्यात होओगे ॥ ७ ॥ रामकी बात स्वीकार करके जाम्बवान् सीताजी तथा रामको प्रणाम करके चल दिये। चलते समय रामने उनका भी अच्छी तरह सम्मान किया ॥ ८ ॥ तदनन्तर हनुमान्‌जीसे रामने कहा—हे वत्स ! तुम भी आनन्दके साथ इसी लोकमें निवास करो। द्वापर युगके अन्तमें जब तुम्हारी अर्जुनके साथ सेतुविषयक होड़ होगी, उस समय तुम मेरा दर्शन करोगे। अब जाओ और मेरा भजन करते हुए आनन्दके साथ रहो ॥ ९ ॥ १० ॥ रामकी यह बात सुनकर हनुमान्‌जीने राम-लक्ष्मण तथा सीताको प्रणाम किया और चलनेकी तैयारी कर दी ॥ ११ ॥ चलते समय रामने अपने गलेसे एक रत्नमाला उतारकर हनुमान्‌जीको दी और सीताने अपना बाहुभूषण उतारकर दे दिया ॥ १२ ॥ इसके पश्चात् हनुमान्‌जीने आँखोंमें आँसू भरकर भगवान्‌को प्रणाम किया और परिक्रमा करके तपस्या करनेके लिए हिमंवान् पर्वतपर चले गये ॥ १३ ॥ इसके बाद रामने अङ्गदको विविध प्रकारके वस्त्र-आभूषण दिये और उन्हें किष्किन्धा भेज दिया। निषादराज-को श्रृंगवेरपुर भेज दिया ॥ १४ ॥ इसके बाद रामचन्द्रजीने मकरध्वजको पातालपुरी भेजा। मकरध्वजको चलते समय रामने विविध प्रकारकी भेंटें दीं। इनके अतिरिक्त और-और मित्रोंको भी आदर-सत्कार करके अपने-अपने स्थानको भेज दिया ॥ १५ ॥ थोड़ी देर बाद रामने यूपकेतुको बुलाया और विविध प्रकारके वस्त्राभूषण देकर विदिशानगरीको भेज दिया। यूपकेतुने भी राम तथा सीताको प्रणाम किया और अपनी सेना तथा परिवारको साथ लेकर चल पड़े ॥ १६ ॥ १७ ॥ इसी तरह रामने सुबाहुको मथुरा भेज दिया। पुष्करको भी उनकी सेनाके साथ पुष्करावती तथा तक्षको तक्षशिला भेज दिया। फिर अङ्गदको हस्तिनापुरी-के लिए और चित्रकेतुको स्त्री-सेना तथा वाहनोंके साथ उनकी राजधानीको भेज दिया। चलते समय विविध प्रकारके वस्त्र-आभूषणोंसे रामने इनका भी सत्कार किया ॥ १८-२० ॥ तदनन्तर राम और सीताने लव-को बुलाकर कितने ही प्रकारके वस्त्राभूषण प्रदान किये और उनकी स्त्री तथा पुत्रके साथ उन्हें उत्तरकुरु देशमें

दत्त्वा स्वीयानि शस्त्राणि कोदंडं च महोज्ज्वलम् । नानायानानि वस्त्राणि रामश्चिंतामणिं ददौ ॥२४॥
सत्रीपुत्रं कुशं तोष्य राघवो वाक्यमब्रवीत् । वत्स गच्छ सुखं तिष्ठ भूमिं धर्मेण पालय ॥२५॥
जंबूद्वीपनृपान्सर्वांस्तथा द्वीपान्तरस्थितान् । सर्वानेतान्पालयस्व पुत्रवत्कुशबालक ॥२६॥
इत्युक्त्वा तान्नृपान्प्राह युष्माभिः कुशबालकः । मत्स्थाने माननीयोऽयं रक्षणीयस्त्वहर्निशम् ॥२७॥
तद्रामवचनं श्रुत्वा नृपाः प्रोचू रघूत्तमम् । त्वत्तेजःपूरितो बालस्त्वत्तोऽस्माकं शताधिकः ॥२८॥
अस्त्येव नात्र संदेहः सत्यं विद्धि रघूत्तम । यथा त्वया पालिताः स्मो वयं तद्वत्कुशोऽप्ययम् ॥२९॥
रक्षिष्यति सदाऽस्माकं दृष्टोऽबालपराक्रमः । इत्युक्त्वा राघवं नत्वा सर्वे ते पार्थिवोत्तमाः ॥३०॥
रामेण पूजिताः सम्यक् वस्त्रालंकारवाहनैः । ययुः कुशं पुरस्कृत्य स्वस्वसैन्यसमन्विताः ॥३१॥
कुशोऽपि राघवं नत्वा मूर्ध्नि सीताऽवघ्रापितः । वसिष्ठेन रथे स्थित्वा पुरीं गन्तुं प्रचक्रमे ॥३२॥
तदा रामस्तं रजकं मंथरां प्रैषयत्पुरीम् । कुशेन सह वेगेन समाहूयाथ सादरम् ॥३३॥
पूर्ववैरमनुस्मृत्य नाभ्रं यातामधर्मिणौ । कृष्णावतारे तावेव रजको रजकोऽभवत् ॥३४॥
मंथरा पूतना जाता हतौ तौ पूर्ववैरतः । ततः कुशः सार्द्रनेत्रः पश्यन् रामं च जानकीम् ॥३५॥
परिवर्त्य मुखं पृष्ठे वारं वारं रथे स्थितः । गच्छ गच्छेति रामेण सीतयाऽपि निजैः करैः ॥३६॥
सूचितः सन्ययौ सैन्यैर्वेष्टितः स्वपुरीं प्रति । ददर्श नगरीं शून्यां श्रीरामविरहातुराम् ॥३७॥
गत्वा पुर्यां महोत्साहैर्निजसिंहासनस्थितः । पूज्य सर्वान्पार्थिवांश्च समालिंग्य व्यसर्जयत् ॥३८॥

भेज दिया । जिस समय लव चलने लगे तो सीताने उन्हें कामधेनु गौ दी ॥ २१ ॥ २२ ॥ इसके बाद रामने कुशको बुलाया और उन्हें भी स्त्री-पुत्र तथा मित्रता रखनेवाले राजाओं और सेना आदिके साथ अयोध्या भेज दिया ॥ २३ ॥ चलते समय कुशको रामने अपने दिव्य शस्त्र, महान् उज्ज्वल धनुष, विविध प्रकारकी सवारियें, वस्त्र और चिन्तामणि दिया । इस तरह नाना प्रकारकी वस्तुएँ देकर रामने कुशसे कहा—हे वत्स ! अब तुम अयोध्या जाओ और धर्मपूर्वक पृथ्वीकी रक्षा करो। हे बच्चे कुश ! इस जम्बूद्वीप तथा अन्यान्य द्वीपोंके रहनेवाले राजाओंका भली-भाँति पालन करना ॥ २४–२६ ॥ ऐसा कहनेके बाद रामने उन सब राजाओंसे कहा कि तुम लोग भी कुशको मेरे समान ही मानना और सदा इसकी रक्षा करते रहना ॥ २७ ॥ रामकी बातें सुनकर उन राजाओंने कहा कि यह बालक कुश आपही के तेजसे परिपूर्ण है। इस कारण मेरे लिए तो यह आपसे भी सैकड़ोंगुना अधिक माननीय है। हे रघूत्तम ! हम जो कुछ कह रहे हैं, उसे आप सच मानिए । जिस तरह अब तक आप हमारी रक्षा करते आये हैं, उसी तरह यह भी हमारी रक्षा करेगा । यह बालक अवश्य है, किन्तु इसका पराक्रम बच्चे जैसा नहीं है। ऐसा कहकर उन राजाओंने रामको प्रणाम किया और रामने विविध प्रकारके वस्त्र-आभूषण तथा सवारियें आदि देकर उन्हें हँसी-खुशी विदा किया । वे सब कुशको अपने आगे करके अपनी विशाल सेनाके साथ चल पड़े ॥ २८–३१ ॥ कुशने चलते समय रामको प्रणाम किया और सीताने कुशका माथा सूँघा । इसके बाद वे कुलगुरु वसिष्ठके साथ रथपर सवार होकर अयोध्यापुरीको चलनेकी तैयारी करने लगे ॥ ३२ ॥ उसी समय रामने उस निन्दक रजक (धोबी) तथा दासी मन्थराको सादर बुलाया और कुशके साथ अयोध्यापुरी भेज दिया ॥ ३३ ॥ पिछले वैरका स्मरण करके ही रामचन्द्रजी इन दोनोंको अपने साथ स्वर्गलोक नहीं ले गये । कृष्णावतारमें वह रजक राजा कंसका धोबी होकर उत्पन्न हुआ और दासी मन्थरा पूतना हुई । श्रीकृष्णचन्द्रजीने अपने हाथों इन दोनोंका संहार किया । रथपर बैठकर चलते समय बार-बार मुँह घुमाकर कुश आँसूभरे नेत्रोंसे राम और जानकीकी ओर निहार रहे थे। इधर राम और सीता भी अपने हाथोंसे कुशको जानेका संकेत कर रहे थे ॥ ३४–३६ ॥ इस तरह संकेत करनेपर कुश अपनी विशाल सेना लिये हुए अयोध्यापुरीको चल पड़े। जब पुरीमें पहुँचे तो वह सारी नगरी रामके वियोगसे रोती-सी दिखायी पड़ी ॥ ३७ ॥ अस्तु, कुश पुरीमें गये और बड़े उत्साहके साथ राजसिंहासनपर बैठे । इसके बाद अपने साथ आये हुए राजाओंका उन्होंने

तेऽपि नत्वा कुशं स्वं स्वं स्थलं जग्मुर्नृपोत्तमाः । करभारं ददुस्तस्मै तदाज्ञावशवर्तिनः ॥३९॥
मन्थराराजकौ द्वौ तौ दैवात्पुर्या बहिर्मृतौ । प्रापतुर्जन्म साकेते मृतानां न पुनर्भवः ॥४०॥
अथ रामोऽब्रवीत्सर्वान्वानरान् जाह्नवीतटे । मदर्थं भ्रमिताः सर्वे यूयं वानरसत्तमाः ॥४१॥

द्वापराग्रे पुनः सर्वे व्रजे गोपा भविष्यथ ।
युष्माभिः सहिनाः प्रीत्या करिष्याम्यशनादिकम् ॥ ४२ ॥

तदाऽब्रवीत्स सौमित्रिं रामः प्रीत्या पुरःस्थितम् । महान् श्रमः कृतः पूर्वं सेवायां मम दण्डके ॥४३॥
भव त्वं द्वापरे ज्येष्ठः शुश्रूषां ते करोम्यहम् । ततस्तान्राघवः प्राह ऋक्षान्पौरान्कपीनपि ॥४४॥
सर्वानेव मया सार्धं प्रयातेति दयान्वितः । ततो ददौ कल्पवृक्षपारिजातौ सुराधिपम् ॥४५॥

ततस्तं पुष्पकं प्राह कुबेरं वह सादरम् ।
गच्छाद्यैव तथेत्युक्त्वा रामं नत्वा तु पुष्पकम् ॥ ४६ ॥

सीतां पृष्ट्वा ययौ शीघ्रं राघवेणातिमानितम् । ततः प्राह रघुश्रेष्ठश्चोर्मिलां मांडवीं तथा ॥४७॥
श्रुतकीर्तिं समाहूय वाल्मीकेश्च मुनेः पुरः । युष्माभिर्भर्तृदेहैश्च निजदेहादि वेगतः ॥४८॥
श्वोऽग्नौ दग्ध्वा स्वर्गलोकं गन्तव्यं मम वाक्यतः । तथेति राघवं प्रोचुस्तदा ताश्चोर्मिलादिकाः ॥४९॥
रामं नत्वा ययुः सर्वाः स्वं स्वं तद्वसनगृहम् । अथ रामोऽपि तां रात्रिं सीतया रुक्ममंचके ॥५०॥
ऋषिभिः शिवब्रह्माद्यास्तस्थुस्तत्रैव संगताः । सौमित्राद्याः पत्नीभिः शिश्यिरे परया मुदा ॥५१॥

इति श्रीशतकोटिरामचरितांतर्गते श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये पूर्णकाण्डे
सर्वेषां विसर्जनं नाम पञ्चमः सर्गः ॥ ५ ॥

पूजन-आलिंगन करके विदा किया ॥ ३८ ॥ वे राजे भी कुशको प्रणाम करके अपनी-अपनी नगरीको चले गये और वहाँपर कुशकी आज्ञामें रहते हुए पूर्ववत् करभार देते रहे ॥ ३९ ॥ दैववश वह रामनिन्दक धोबी तथा दासी मन्थरा ये दोनों अयोध्यापुरीमें न मरकर अयोध्याके बाहर मरे । इसी लिए उन्हें फिर जन्म लेना पड़ा । वैसे तो अयोध्यामें जो लोग मरते हैं, उन्हें फिर माताके गर्भमें नहीं आना पड़ता ॥ ४० ॥ उधर सब लोगोंको विदा करके रामने सब वानरोंसे कहा—हे वानरश्रेष्ठगण ! तुम सबने मेरे लिए बड़ा कष्ट उठाया और मेरे साथ मारे-मारे फिरते रहे । आगे चलकर द्वापरमें तुम सब गोप होओगे । उस समय मैं तुम्हारे साथ भोजन तथा विविध प्रकारकी लीलायें करूँगा ॥ ४१ ॥ ४२ ॥ इसके बाद रामने लक्ष्मणसे कहा कि उस समय तुमने दण्डकवनमें मेरी सेवा करते समय बड़ा कष्ट उठाया था । आगे द्वापर युगमें तुम मेरे ज्येष्ठ भ्राता बलराम होओगे और मैं स्वयं तुम्हारी सेवा करूँगा । इसके अनन्तर रामने उन भालुओं, वानरों तथा पुरवासियोंसे कहा कि तुम लोग मेरे साथ चलो । तत्पश्चात् रामने कल्पवृक्ष और परिजात ये दोनों वृक्ष इन्द्रको दे दिये । फिर पुष्पक विमानसे कहा कि तुम आज ही जाकर आदरपूर्वक कुबेरकी सवारीका काम करो । यह सुनकर पुष्पक राम तथा सीताको प्रणाम करके चल पड़ा । चलते समय भगवानने उसका भी अच्छी तरह आदर-सत्कार किया । वाल्मीकिके समक्ष रामने माण्डवी (भरतपत्नी), उर्मिला (लक्ष्मणकी स्त्री) तथा श्रुतकीर्ति (शत्रुघ्नकी पत्नी) से कहा—तुम सब अपने-अपने पतिके शरीरके साथ कल अपना शरीर चिताकी अग्निमें जलाकर स्वर्गलोक चली जाना । उर्मिला आदिने भगवान्की आज्ञा स्वीकार कर ली ॥ ४२–४९ ॥ वे रामको प्रणाम करके अपने-अपने तम्बुओंमें चली गयीं । इसके अनन्तर राम उस रात्रिमें सीताके साथ एक सुवर्णमय मञ्चपर सो गये । शिव-ब्रह्मा आदि देवता भी ऋषियोंके साथ वहाँ ही ठहरे रहे और लक्ष्मण आदि भी जाकर अपनी-अपनी स्त्रियोंके साथ सानन्द सोये ॥ ५० ॥ ५१ ॥ इति शतकोटिरामचरितांतर्गते श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये
50. पं० रामतेजपाण्डेयकृत'ज्योत्स्ना'भाषाटीकासहिते पूर्णकांडे पञ्चमः सर्गः ॥ ५ ॥

षष्ठः सर्गः

(रामका वैकुण्ठारोहण)

श्रीरामदास उवाच

अथ रामः समुत्थाय प्रभाते सीतया सह । अजमीढं समाहूय मंजुलं वाक्यमब्रवीत् ॥ १ ॥
अद्याहं सीतया स्वीयं पदं गच्छामि बन्धुभिः । वानरैः सकलैः पौरैस्त्वया शेषं तु यज्जलम् ॥ २ ॥
वस्त्रगृहादिकं सर्वं प्रेषणीयं कुशं प्रति । यच्चरं कीटकांतं तन्मया यास्यति वै दिवम् ॥ ३ ॥
अतस्त्वं तं कुशं गत्वा सर्वं वृत्तं निवेदय । करोतूत्तरकार्याणि कुशोऽस्माकं सविस्तरम् ॥ ४ ॥
मा करोतु कुशोऽस्माकं खेदं तं त्वं निवारय । इति रामवचः श्रुत्वा साश्रुनेत्रस्तथेति सः ॥ ५ ॥
अजमीढस्तदा प्राह ननाम रघुनायकम् । अथ रामः शनैः पौरैः स्नात्वा भागीरथीजले ॥ ६ ॥
कृत्वा नित्यविधिं पूर्वं हुत्वा वह्निं सविस्तरम् । ददौ दानान्यनेकानि गङ्गासैकतसंस्थितः ॥ ७ ॥
ततः प्रास्थानिकं कर्म चकार स यथाविधि । वह्निं विसर्जयामास वैकुण्ठं प्रति राघवः ॥ ८ ॥
तदा रामस्य पद्मा सा गता दक्षिणहस्ततः । मूर्तिरूपधरा वेदा वैकुण्ठमाययुस्तदा ॥ ९ ॥
त्रिपदा प्रणवेनैव श्रीरामास्याद्विनिर्गता । नत्वा रामं ययौ शान्तिः क्षमा मेधा धृतिर्दया ॥१०॥
तेजो बलं यशः शौर्यं ययौ सर्वं तदा पुरः । ततः पौरा वानराश्च सर्वे भागीरथीजले ॥११॥
स्नात्वा निरुध्य वायूंश्च निजदेहानि तत्यजुः । अथ रामो मुदा गङ्गां स्पृष्ट्वा दर्भासनोपरि ॥१२॥
दर्भपाणिः स्थितस्तूष्णीमुत्तराभिमुखः श्रिया । तावत्सर्वे ददृशुस्ते देवा विष्णुं पुरःस्थितम् ॥१३॥
चतुर्भुजं नीलकांतिं पीतकौशेयधारिणम् । कौस्तुभांकितहृद्देशं श्रीवत्सांकोपशोभितम् ॥१४॥
सीता बभूव सा लक्ष्मीर्विष्णोर्वामांकसंस्थिता । शेषो बभूव सौमित्रिः फणाभिरतिभासुरः ॥१५॥

श्रीरामदासने कहा—सवेरे रामचन्द्रजी सीताके साथ सोकर उठे तो अजमीढ़को बुलाकर मीठी बातोंमें समझाकर कहने लगे कि आज मैं सीता, बन्धुओं, समस्त वानरों और प्रजाजनोंके साथ अपने परमधामकी यात्रा करूँगा ॥ १ ॥ २ ॥ मेरे जितने भी तम्बू-कनात आदि वस्त्रगृह हैं, उन्हें कुशके पास अयोध्या भेज देना। बड़े जीवसे लेकर कीट पर्यन्त सब प्राणी मेरे साथ वैकुण्ठ जायँगे। मेरे चले जानेपर तुम कुशके पास चले जाना और मेरा सब समाचार कह सुनाना और यह भी कह देना कि कुश हमारी और्ध्वदैहिकी क्रियाओंको खूब अच्छी तरह सम्पन्न करे। यदि मेरे परमधाम जानेके कारण कुश किसी प्रकारका खेद करने लगे तो तुम उसे अच्छी तरह समझा देना। रामकी बात सुनकर अजमीढ़ने आँखोंमें आंसू भरकर उनकी आज्ञा स्वीकार की और भगवानको प्रणाम किया। इसके अनन्तर रामने सबके साथ गङ्गाजीमें स्नान किया, नित्यकृत्य किये, हवन किया और गङ्गातटपर स्थित ब्राह्मणोंको तरह-तरहके दान दिये ॥ ३-७ ॥ इसके बाद यात्रासे सम्बन्ध रखनेवाले जितने कर्म थे, वह सब किये। चलते समय हवनकी अग्निको वैकुण्ठलोक भेज दिया ॥ ८ ॥ उस समय रामरूपधारी विष्णुकी लक्ष्मी सात्त्विकी सीता रामके दक्षिण भागसे वैकुण्ठधामको चली गयी। उस समय सब वेद अपने मूर्तरूपसे वैकुण्ठलोकमें जा पहुँचे ॥ ९ ॥ रामके प्राणायाम करते ही शान्ति, क्षमा, धृति और दया आदि गुण चले गये ॥ १० ॥ उसी तरह तेज, बल, यश और शौर्य आदि भी कूच कर गये। इसके अनन्तर सब पुरवासियो तथा वानरोंने भी गङ्गाजीमें स्नान और प्राणायाम करके अपने शरीरका परित्याग कर दिया। इसके बाद सीताके साथ रामने गङ्गाजलका स्पर्श किया और कुशासनपर बैठे ॥ ११ ॥ १२ ॥ हाथमें कुशा लेकर वे उत्तरकी ओर मुख करके बैठे। उसी समय राम देवताओंके सम्मुख विष्णुभगवान्‌के रूपमें परिणत हो गये ॥ १३ ॥ उन भगवान्‌के चार भुजायें थीं। नीलकमलके समान श्याम शरीर था। वे अपने शरीरपर पीले वस्त्र धारण किये हुए थे। कौस्तुभमणिसे उनका हृदय सुशोभित हो रहा था और श्रीवत्स अपनी निखार अलग ही दिखा रहा था ॥ १४ ॥ गङ्गाजीके तटपर रामके वामांगमें बैठी हुई सीता लक्ष्मीके

शङ्खो बभूव भरतः श्रीविष्णोः सव्यसत्करे । वामे करे बभूवाथ शत्रुघ्नश्च सुदर्शनम् ॥१६॥
देवेषु विविशुः सर्वे वानरास्ते क्षणात्तदा । चांडालकृमिकीटांता अयोध्यापुरवासिनः ॥१७॥
प्रापुस्ते दिव्यदेहानि विमाने संस्थिता बभुः । तदा निनेदुर्वाद्यानि देवानां गगनांगणे ॥१८॥
ववर्षुर्देवपत्न्यश्च पुष्पवृष्टिभिरादरात् । ननृतुर्वै ह्यप्सरसो जगुर्गन्धर्वकिन्नराः ॥१९॥
प्रणनाम तदा तार्क्ष्यः श्रीविष्णु रविभासुरम् । देहानि मुमुचुः सर्वे श्रीभिः सोमादिकाश्च ते ॥२०॥
पतिदेहानि चालिंग्य तदा ता उर्मिलादिकाः । देहान्यग्नौ जहुः सर्वा रम्ये भागीरथीतटे ॥२१॥
अथ ता देवपत्न्यश्च रत्नदीपैः सहस्रशः । विष्णुं नीराजयामासुर्लक्ष्मीयुक्तं महाभुजम् ॥२२॥
विष्णुस्ततोऽब्रवीद्वाक्यं वेधसं मंजुलं शनैः । अयोध्यावासिनः सर्वे तिर्यङ्मात्रादयः शुभाः ॥२३॥
एते समागता ब्रह्मन्नेषां स्थानं वदाधुना । तद्विष्णोर्वचनं श्रुत्वा तदा ब्रह्माऽब्रवीद्वचः ॥२४॥
मल्लोकादुपरिष्टाच्च लोकान्सांतानिकाञ्छुभान् । एते यांतु जनाः सर्वे त्वद्दर्शनमहोज्ज्वलाः ॥२५॥
ततः प्राह पुनर्विष्णुरयोध्यायां मृताश्च ये ।
अग्रे तेऽपि समायांतु लोकान्सांतानिकाञ्छुभान् ॥२६॥
तथेति स विधिः प्राह महाविष्णुं मुदान्वितः । ततस्ते दिव्यदेहाश्च साकेतपुरवासिनः ॥२७॥
नानाविमानसंस्थाश्च दिव्यवस्त्रविभूषिताः । दिव्यालंकारसंयुक्ता ह्यप्सरोभिर्विलेपिताः ॥२८॥
नानासुगंधगंधाद्यैर्दिव्यचामरवीजिताः । विरेजुर्गगने चंद्रवदना रविभासुराः ॥२९॥
ततो ब्रह्मादयो देवाः प्रणेमुर्विष्णुमादरात् । तुष्टुवुर्विविधैः स्तोत्रैर्वेदघोषैर्मुनीश्वराः ॥३०॥
तदा तुष्टाव शंभुस्तं विष्णुं त्रैलोक्यपालकम् । वनमालां दधानं तं दिव्यचन्दनचर्चितम् ॥३१॥

रूपमें और लक्ष्मण फणोंसे सुशोभित शेष भगवान्‌के स्वरूपमें परिणत हो गये ॥ १५ ॥ भरतजी शंखके रूपमें परिवर्तित होकर विष्णुभगवान्‌के दाहिने हाथमें जा विराजे । शत्रुघ्नने विष्णुके सुदर्शनचक्र बनकर वाम भुजामें अड्डा जमा लिया ॥ १६ ॥ वहाँपर जितने वानर थे, वे सब क्षण भरमें अपने अंशरूपसे देवताओंके शरीरमें प्रविष्ट हो गये । चाण्डालसे लेकर कृमि-कीट पर्यन्त सभी अयोध्यानिवासी अपने-अपने शरीरको छोड़कर दिव्य देह धारण करके विमानोंपर सुशोभित होने लगे । उस समय गगनांगणमें देवताओंके विविध प्रकारके बाजे बज रहे थे ॥१७॥१८॥ देवांगनायें प्रेमपूर्वक कुसुमवर्षा कर रही थीं । अप्सरायें नाच रही थीं और गन्धर्वगण तरह-तरहके गायन गा रहे थे ॥ १९ ॥ उसी समय गरुड़ने आकर सूर्यसदृश देदीप्यमान भगवान्‌को दण्डवत् प्रणाम किया । इधर सोम आदि राजाओंने भी अपनी स्त्रियों समेत अपने-अपने शरीरको छोड़ दिया ॥२०॥ इन लोगोंके परम धाम चले जानेके बाद उर्मिला, माण्डवी तथा श्रुतकीर्तिने अपने-अपने पतिके शरीरका आलिंगन करके चितामें जलकर शरीर छोड़ दिया ॥ २१ ॥ उधर समस्त देवताओंकी स्त्रियोंने हजारों रत्नमय दीपक जलाकर लक्ष्मीके समेत विष्णुभगवान्‌की आरती उतारी ॥ २२ ॥ कुछ देर बाद विष्णुभगवान्‌ने ब्रह्मासे कहा कि मेरे साथ जो अयोध्याके सब पुरवासी तथा तिर्यग्योनि तकके प्राणी यहाँ आये हैं, इनके लिए कोई स्थान बतलाइए । विष्णुभगवान्‌की बात सुनकर ब्रह्माजी बोले कि आपके दर्शनसे ये पवित्र प्राणी मेरे लोकसे भी ऊपर एक सान्तानिक लोक है–वहाँ ही जाकर निवास करें ॥ २३–२५ ॥ इसके बाद विष्णुभगवान्‌ने फिर कहा कि इनके अतिरिक्त भी जो प्राणी अयोध्यामें शरीर त्याग करें, वे सब सान्तानिक लोक प्राप्त करें ॥२६ ॥ ब्रह्माने भगवान्‌की यह बात भी स्वीकार कर ली । इसके अनन्तर वे सब अयोध्यावासी दिव्य शरीर धारण करके नाना प्रकारके विमानोंपर जा बैठे । उस समय वे लोग अच्छे-अच्छे गहने-कपड़े पहने थे और कितनी ही सुन्दरी अप्सरायें उनके शरीरमें सुगन्ध मल रही थीं । उनपर दिव्य चमर चल रहे थे । सूर्यके समान देदीप्यमान तथा चन्द्रमुखी नारियाँ सब प्रकारकी सेवायें कर रही थीं ॥ २७–२९ ॥ तदनन्तर ब्रह्मा आदि देवताओंने विष्णुभगवान्‌को प्रणाम किया और बड़े-बड़े ऋषि वेदकी ऋचाओंसे भगवान्‌की स्तुति करने लगे ॥ ३० ॥ सब लोगोंके बाद श्रीशिवजी त्रैलोक्यरक्षक विष्णुभगवानकी स्तुति करने लगे । उस

शंभुरुवाच

राघवं करुणाकरं भवनाशनं दुरितापहं माधवं खगगामिनं जलरूपिणं परमेश्वरम् ।
पालकं जनतारकं भवहारकं रिपुमारकं त्वां भजे जगदीश्वरं नररूपिण रघुनन्दनम् ॥३२॥
भूधवं वनमालिनं घनरूपिणं धरणीधरं श्रीहरिं त्रिगुणात्मकं तुलसीधवं मधुरस्वरम् ।
श्रीकरं शरणप्रदं मधुमारकं व्रजपालकं त्वां भजे जगदीश्वरं नररूपिणं रघुनन्दनम् ॥३३॥
विठ्ठलं मथुरास्थितं रजकांतकं गजमारकं सन्नुतं बकमारकं वृकघातकं तुरगार्दनम् ।
नन्दजं वसुदेवजं बलियज्ञगं सुरपालकं त्वां भजे जगदीश्वरं नररूपिणं रघुनन्दनम् ॥३४॥
केशवं कपिवेष्टितं कपिमारकं मृगमर्दिनं सुंदरं द्विजपालकं दितिजार्दनं दनुजार्दनम् ।
बालकं खरमर्दिनं ऋषिपूजितं मुनिचिंतितं त्वां भजे जगदीश्वरं नररूपिणं रघुनन्दनम् ॥३५॥
शंकरं जलशायिनं कुशबालकं रथवाहनं सरयूनतं प्रियपुष्पकं प्रियभूसुरं लवबालकम् ।
श्रीधरं मधुसूदनं भरताग्रजं गरुडध्वजं त्वां भजे जगदीश्वरं नररूपिणं रघुनन्दनम् ॥३६॥
गोप्रियं गुरुपुत्रदं वदतां वरं करुणानिधिं भक्तपं जनतोषदं सुरपूजितं श्रुतिभिः स्तुतम् ।
भुक्तिदं जनमुक्तिदं जनरंजनं नृपनन्दनं त्वां भजे जगदीश्वरं नररूपिण रघुनन्दनम् ॥३७॥
चिद्घनं चिरजीविनं मणिमालिनं वरदोन्मुखं श्रीधरं धृतिदायकं बलवर्धनं गतिदायकम् ।
शांतिदं जनतारकं शरधारिणं गजगामिनं त्वां भजे जगदीश्वरं नररूपिणं रघुनन्दनम् ॥३८॥
शार्ङ्गिणं कमलाननं कमलादृशं पदपङ्कजं श्यामलं रविभासुरं शशिसौख्यदं करुणार्णवम् ।

समय भगवान् वनमाला धारण किये थे और उनके शरीरमें दिव्य चन्दनका लेप किया हुआ था ॥ ३१ ॥ श्रीशिवजीने कहा–रघुवंशमें उत्पन्न, करुणाकर, संसारके आवागमनसे मुक्त करनेवाले, पापनाशकारी, लक्ष्मीके पति, जलरूपी परमेश्वर, सबके पालक, भक्तोंको तारनेवाले, भवबाधाके नाशक, शत्रुसंहारकारी, नररूपधारी हे जगदीश्वर रघुनन्दन ! मैं आपको प्रणाम करता हूँ ॥ ३२ ॥ पृथ्वीपति, वनमालाधारी, मधुनामक राक्षसको मारनेवाले, व्रजके पालक, नवीन नीरदके समान श्यामकाय, पृथ्वीकी रक्षा करनेवाले, सत्त्व, रज और तम इन तीनों गुणोंसे युक्त, तुलसीके पति, मीठे स्वरवाले, शोभाका विस्तार करनेवाले, नररूपधारी जगदीश्वर हे रघुनन्दन ! मैं आपका भजन करता हूँ ॥ ३३ ॥ विठ्ठलरूपसे मथुरामें निवास करनेवाले, रजकसंहारी, गजान्तकारी, सज्जनोंसे संस्तुत, बकासुर, वृकासुर और केशीको मारनेवाले, नन्दसुवन, वसुदेवके पुत्र, वामनरूपसे बलिके यज्ञमें जानेवाले, देवताओंके पालक, नररूपधारी हे जगदीश्वर रघुनन्दन ! मैं आपका भजन करता हूँ ॥ ३४ ॥ केशव, वानरोंसे घिरे हुए, बालि वानरको मारनेवाले, मृगरूपधारी मारीचको मारनेवाले, सुन्दर, ब्राह्मणोंके रक्षक, राक्षसोंका संहार करनेवाले, सर्वदा बालरूपधारी, खरको मारनेवाले, ऋषियोंसे पूजित, मुनियों द्वारा चिन्तित और नररूपधारी हे जगदीश्वर रघुनन्दन ! मैं आपका भजन करता हूँ ॥ ३५ ॥ संसारका कल्याण करनेवाले, जिनके कुश जैसे पराक्रमी बालक हैं, रथ जिनकी सवारी है, सरयू स्वयं जिनको नमस्कार करती है, जिनको पुष्पक विमान विशेष प्रिय है, जो ब्राह्मणोंसे अतिशय प्रेम रखते हैं, लव नामका जिनका बालक है, जो लक्ष्मीकी रक्षा करते हैं, जिन्होंने मधुनामक दैत्यका संहार किया था, जो भरतके बड़े भ्राता हैं और जिनको ध्वजामें गरुड़का चिह्न बना हुआ है, ऐसे नररूपधारी हे जगदीश रघुनन्दन ! हम आपका भजन करते हैं ॥ ३६ ॥ जिनको गौ विशेष प्रिय है, जो यमलोकसे गुरुपुत्रको लौटा लाये थे, जो वक्ताओंमें श्रेष्ठ हैं, जो करुणाके समुद्र हैं, जो सब तरहसे अपने भक्तोंकी रक्षा करते हैं, जो अपने भक्तोंको प्रसन्न रखते हैं, देवतागण जिनकी पूजा करते हैं, चारों वेद जिनकी स्तुति करते हैं, जो सब प्रकारके भोग प्रदान करते हैं और जो अपने भक्तको मुक्ति प्रदान करते हैं, महाराज दशरथके पुत्र हे जगदीश्वर रघुनन्दन ! मैं आपका भजन करता हूँ ॥ ३७ ॥ चिद्घनरूपधारी, चिरञ्जीवी, मणियोंकी माला धारण करनेवाले, वरदोन्मुख, श्रीधर, धैर्य प्रदान करनेवाले, गतिदायक, बलवर्धनकारी, शान्तिदाता, जनतारक, शरधारी, गजगामी, नररूप धारण करनेवाले हे जगदीश्वर रघुनन्दन ! मैं आपका भजन करता हूँ ॥ ३८ ॥ धनुष

सत्पतिं नृपबालकं नृपवंदितं नृपतिप्रियं त्वां भजे जगदीश्वरं नररूपिणं रघुनन्दनम् ॥३९॥
निर्गुणं सगुणात्मकं नृपमण्डनं मतिवर्द्धनमच्युतं पुरुषोत्तमं परमेष्ठिनं स्मितभाषिणम् ।
ईश्वरं हनुमन्नुतं कमलाधिपं जनसाक्षिणं त्वां भजे जगदीश्वरं नररूपिणं रघुनन्दनम् ॥४०॥
ईश्वरोक्तमेतदुत्तमादराच्छतनामकं यः पठेद्भुवि मानवस्तव भक्तिमांस्तपनोदये ।
त्वत्पदं निजबन्धुदारसुतैर्युतश्चिरमेत्य नो सोऽस्तु ते पदसेवने बहुतत्परो मम वाक्यतः ॥४१॥
इति स्तुत्वा महाविष्णुं प्रोवाच गिरिजापतिः । आरुहस्व रमानाथ गरुडोपरि वेगतः ॥४२॥
वैकुण्ठारोहणस्यायं कालो वाल्मीकिना कृतः । एकादश सहस्राश्च समास्त्वेकादशैव च ॥४३॥
तथैकादश मासाश्च दिनान्येकादशैव च । तथैकादश नाडीश्च पलान्येकादशैव च ॥४४॥
गतानि तेऽत्र भूम्यां हि जन्मादारभ्य राघव । वसन्तपञ्चमीनाम्नी तिथिश्चैत्रासिताऽद्य हि ॥४५॥
पुण्येऽह्नि स्वपदं गन्तुं त्वरां कुरु रमेश्वर । तदा विहस्य श्रीविष्णुर्वाल्मीकिं मुनिपुङ्गवम् ॥४६॥
समालिंग्य मुनीन्पृष्ट्वा तस्थौ स गरुडोपरि । ध्वनत्सु देववाद्येषु स्तुवत्सु नारदादिषु ॥४७॥
पुष्पैर्वर्षत्सु देवेषु प्रनर्तत्स्वप्सरःसु च । नानाविमानजालैश्च सर्वत्र परिवेष्टितः ॥४८॥
ययौ विष्णुः स वैकुण्ठं लोकान्पश्यन्शनैः शनैः। वैकुण्ठे स्वपदे स्थित्वा विससर्ज शिवादिकान् ॥४९॥
तस्थौ लक्ष्म्याऽऽनन्दमयः परिपूर्णमनोरथः । खगेंद्रसेवितपदः शेषतल्पविभूषितः ॥५०॥
अयोध्यावासिनः सर्वे ययुः सांतानिक पदम् । ततस्ते मुनयः सर्वे ययुः स्वं स्वं स्थलं प्रति ॥५१॥
रामवाक्यात्सोऽजमीढः सांत्वयामास त कुशम् । स्वर्गारोहणविस्तारं कथयामास तं कुशम् ॥५२॥

धारण किये, कमलके समान मुखवाले, कमलकी भाँति नेत्रोंवाले, कमलके ही सरीखे चरणकमलवाले, श्याम वर्ण, सूर्यके समान देदीप्यमान, चन्द्रमाको सुख देनेवाले, करुणाके समुद्र, एक अच्छे प्रभु, राजाओंके रक्षक, राजाओंसे वन्दित, राजाओंके प्रिय और नररूपधारी हे जगदीश्वर रघुनन्दन ! मैं आपका भजन करता हूँ ॥ ३९ ॥ निर्गुण होते हुए भी सगुणरूपधारी, राजाओंके कुलभूषण, बुद्धिवर्द्धनकारी, परम पूजनीय, मुस्कराकर बोलनेवाले, जगत्के प्रभु, हनुमानजीसे नमस्कृत, भक्तोंके साक्षी, लक्ष्मीके पति और नररूपधारी हे जगदीश्वर रघुनन्दन ! मैं आपका भजन करता हूँ ॥ ४० ॥ इस प्रकार स्तुति करते हुए शिवजीने अन्तमें कहा कि प्रातःकाल सूर्योदयके समय जो कोई प्राणी मेरे कहे हुए इस शतनाम-स्तोत्रका पाठ करेगा, वह मेरे आशीर्वादसे अपने बन्धुओं तथा स्त्री-पुत्रादिकोंके साथ यहाँ आकर बहुत कालतक आपके चरणोंकी सेवाका सुयोग पायेगा ॥ ४१ ॥ इस प्रकार स्तुति करनेके पश्चात् शिवजीने कहा—हे रमानाथ ! आप शीघ्र गरुड़पर आरूढ़ हों ! क्योंकि वाल्मीकिजीने आपके वैकुण्ठारोहणार्थ यही समय अपने रामायणमें निर्धारित किया है । इस समय ग्यारह हजार ग्यारह वर्ष, ग्यारह महीना, ग्यारह दिन, ग्यारह नाड़ी तथा ग्यारह पल पूरे हो रहे हैं । आज चैत्र कृष्णपक्षकी पञ्चमी तिथि है ॥ ४२–४५ ॥ इस पवित्र दिवसको आप परमधाम जानेके लिए शीघ्रता करिए । उस समय प्रभु मुसकाये । उन्होंने मुनिपुङ्गव वाल्मीकि ऋषिको हृदयसे लगाया, ऋषियोंसे आज्ञा माँगी और गरुडके ऊपर सवार हो गये । तब देवताओंने विविध प्रकारके बाजे बजाये, नारद आदि महर्षियोंने स्तुति की, देवतागण भगवान्पर फूल बरसाने लगे और अप्सरायें नाचने लगीं ॥ ४६–४८ ॥ इस तरह गरुड़पर बैठकर भगवान् राम सब लोगोंके देखते-देखते वैकुण्ठलोकको चले गये । उस धाममें पहुँचकर वे अपने सिंहासनपर बैठे और शिव आदि देवताओंको विदा कर दिया । वे आनन्दमय महाप्रभु हर प्रकारसे परिपूर्ण मनोरथ होकर लक्ष्मीके साथ आनन्दपूर्वक वहीं रहने लगे । उस समय गरुड़ भगवानके चरणोंकी सेवा करते थे और वे विष्णु भगवान शेषकी शय्यापर सोते थे ॥ ४९ ॥ ५० ॥ वे सब अयोध्यावासी भगवान्के कथनानुसार सान्तानिक लोकमें जा विराजे । इसके अनन्तर भगवान्का स्वर्गारोहण देखनेके लिए आये हुए ऋषि भी अपने-अपने आश्रमोंको चले गये ॥ ५१ ॥ रामचन्द्रजीके कथनानुसार हस्तिनापुरके राजा अजमीढ़ अयोध्यामें कुशके पास गये और भगवान्को परमधामयात्रा-सम्बन्धी

कुशेन मानितः सोऽपि ययौ स्वीयं गजाह्वयम् । लब्ध्वा कुमुद्वतीं तस्यां कुशः पुत्रान्स निर्ममे ॥५३॥
एवं श्रीरघुनाथस्य स्वर्गारोहणकौतुकम् । ये शृण्वंति नरा भक्त्या तेऽपि स्वर्गं प्रयांति हि ॥५४॥
वैकुण्ठारोहणाध्यायमिमं नित्यं पठेत्तु यः । सोऽन्ते गच्छति वैकुण्ठं रामचन्द्रप्रसादतः ॥५५॥
इति श्रीशतकोटिरामचरितान्तर्गते श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये पूर्णकांडे वैकुण्ठारोहणं नाम षष्ठः सर्गः ॥ ६ ॥

सप्तमः सर्गः

(सूर्यवंशवर्णन)

श्रीरामदास उवाच

एवं त्वया यथा पृष्टं स्वर्गारोहणमङ्गलम् । श्रीरामस्य मया चैतत्तवाग्रेऽद्य निवेदितम् ॥ १ ॥
किमन्यच्छ्रोतुमिच्छाऽस्ति तां त्वं वद वदाम्यहम् । एवं गुरोर्वचः श्रुत्वा विष्णुदासस्तमब्रवीत् ॥ २ ॥

विष्णुदास उवाच

कुशांतः सूर्यवंशोऽत्र गुरो पूर्वं त्वयेरितः । कुशाग्रे श्रोतुमिच्छामि सूर्यवंशं सविस्तरम् ॥ ३ ॥

श्रीरामदास उवाच

विष्णोरारभ्य कथिता एकषष्टितमाः पुरा । एकषष्टिनृपा ह्यग्रे तान्वदामि सविस्तरम् ॥ ४ ॥
श्रीरामस्य कुशः पुत्रोऽतिथिः पुत्रः कुशस्य सः । निषधस्त्वतिथेः पुत्रो निषधस्यात्मजो नभः ॥ ५ ॥
नभाज्जातो पुंडरीकः क्षेमधन्वा तु तत्सुतः । देवानीकस्तत्सुतोऽभूद्देवानीकसुतो महान् ॥ ६ ॥
अहीनः प्रोच्यते सोऽङ्गः पार्यात्रस्तत्सुतः स्मृतः । पार्यात्रस्य बलः पुत्रः स्थलः पुत्रो बलस्य हि ॥ ७ ॥
स्थलस्य वज्रनाभस्तु खगणस्तस्य कीर्त्यते । खगणाद्विधृतिर्जातो विधृतेस्तनयः शुभः ॥ ८ ॥
जातो हिरण्यनाभस्तु तस्य पुष्पः प्रकीर्त्यते । पुष्पात्स ध्रुवसंधिस्तु ध्रुवसंधेः सुदर्शनः ॥ ९ ॥
सुदर्शनादग्निवर्णस्तस्माच्छीघ्रः प्रकीर्त्यते । शीघ्राज्जाता मरुः पुत्रो मरोश्च प्रश्रुतः सुतः ॥१०॥
प्रश्रुतस्य च संधिर्हि संधेः पुत्रस्तु मर्षणः । मर्षणस्य महस्वांश्च विश्ववाहश्च तत्सुतः ॥११॥

सब बातें बतलायीं और समझा दिया कि आप किसी प्रकारका शोक न करें ॥ ५२ ॥ कुशने भी अजमीढ़का भरपूर आदर-सत्कार किया । कई दिनों अयोध्यामें रहकर वे हस्तिनापुरीको चले गये । कुछ दिनों बाद कुशको कुमुद्वती नामकी एक दूसरी भार्या प्राप्त हुई । उससे कुशके बहुतसे पुत्र हुए ॥ ५३ ॥ इस प्रकार भगवान्के स्वर्गारोहण-वार्ताको जो लोग भक्तिपूर्वक सुनते हैं, वे भी स्वर्गलोक प्राप्त करते हैं ॥ ५४ ॥ जो प्राणी वैकुण्ठारोहणके इस सर्गका नित्य पाठ करता है, वह रामचन्द्रजीकी कृपासे अन्तमें वैकुण्ठ धामको प्राप्त करता है ॥ ५५ ॥ इति श्रीशतकोटिरामचरितान्तर्गते श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये पं० रामतेजपाण्डेयकृत'ज्योत्स्ना'भाषाटीकासहिते पूर्णकाण्डे षष्ठः सर्गः ॥ ६ ॥

श्रीरामदासने कहा—हे शिष्य ! तुमने जिस तरह हमसे भगवान्का स्वर्गारोहण-वृत्तांत पूछा, वह मैंने कह सुनाया । अब तुम क्या सुनना चाहते हो सो कहो । वह भी मैं बतलाऊँगा । इस तरह गुरुकी बात सुनकर विष्णुदास कहने लगे—हे गुरुवर ! आपने कुशतक सूर्यवंशका वर्णन किया, सो मैंने सुना । अब यह जानना चाहता हूँ कि कुशके आगे कौन-कौन राजे हुए । यह हमें विस्तारपूर्वक बतलाइए ॥ १–३ ॥ श्रीरामदास बोले—हे शिष्य ! विष्णुभगवान्से लेकर एकसठ राजाओंका चरित्र मैंने पहले सुनाया है । उनके बाद जो एकसठ राजे और हुए हैं, उन्हें मैं विस्तारपूर्वक बतलाता हूं ॥ ४ ॥ श्रीरामचन्द्रजीके पुत्र कुश, कुशके पुत्र अतिथि, अतिथिके निषध, निषधके नभ, ॥ ५ ॥ नभके पुण्डरीक, पुण्डरीकके क्षेमधन्वा, क्षेमधन्वाके देवानीक, देवानीकके अहीन, अहीनके पार्यात्र, पार्यात्रके बल, बलके पुत्र स्थल ॥ ६ ॥ ७ ॥ स्थलके वज्रनाभ, वज्रनाभके खगण, खगणके पुत्र विधृति, विधृतिके हिरण्यनाभ, हिरण्यनाभके पुष्प, पुष्पके ध्रुवसंधि, ध्रुवसंधिके सुदर्शन, ॥ ८ ॥ ९ ॥ सुदर्शनके अग्निवर्ण, अग्निवर्णके पुत्र शीघ्र, शीघ्रके मरु, मरुके पुत्र प्रश्रुत,

तस्मात्प्रसेनजित्प्रोक्तस्तस्माज्जातस्तु तक्षकः । बृहद्बलस्तक्षकाच्च तस्माज्जातो बृहद्रणः ॥१२॥
तस्मादुरुक्रियः प्रोक्तो वत्सवृद्धस्तु तत्सुतः । वत्सवृद्धस्य व्योमस्तु व्योमाद्भानुः प्रकीर्त्यते ॥१३॥
भानोः पुत्रो दिवाकस्तु सहदेवश्च तत्सुतः । सहदेवात्मजो वीरो वीरस्य तनयः शुभः ॥१४॥
बृहदश्व इति ख्यातस्तस्य पुत्रस्तु भानुमान् । भानुमतः प्रतीकाशः सुप्रतीकश्च तत्सुतः ॥१५॥
सुप्रतीकस्य पुत्रोऽभून्मरुदेव इति स्मृतः । मरुदेवात्सुनक्षत्रः सुनक्षत्राच्च पुष्करः ॥१६॥
पुष्करस्यांतरिक्षश्च सुतपा अंतरिक्षजः । सुतपातनयो मित्रो मित्रजित्तत्सुतः शुभः ॥१७॥
बृहद्राज इति ख्यातस्तस्य बर्हिः स्मृतो बुधैः । बर्हेः कृतंजयः पुत्रस्तस्य पुत्रो रणंजयः ॥१८॥
रणजयात्संजयस्तु संजयाच्छाक्य उच्यते । शाक्यपुत्रस्तु शुद्धोदः शुद्धोदाल्लांगलः स्मृतः ॥१९॥
प्रसेनजिल्लांगलस्य तत्पुत्रः क्षुद्रकः स्मृतः । क्षुद्रकाद्रणकः प्रोक्तो रणकात्सुरथः स्मृतः ॥२०॥
सुरथात्तनयो जातस्तनयस्य सुतो महान् । नाम्ना सुमित्रः परमः पूर्णो वंशस्ततः परम् ॥२१॥
पूर्वमुक्तो मरुरिति नाम्ना यो नृपतिर्मया । कलापग्राममाश्रित्य हिमाद्रौ बद्रिकाश्रमे ॥२२॥
स तपश्चिरकालं हि करोत्यत्र समाधिमान् । कृते युगे पुनः प्राप्ते सूर्यवंशं करिष्यति ॥२३॥
एवं मया समाख्यातः सूर्यवंशो मनोरमः । विष्णोरारभ्य कथिता एकषष्टितमा मया ॥२४॥
एकषष्टिनृपाश्चाग्रे मध्ये रामो विराजते । त्रयोविंशोत्तरशताश्चैवं विष्णोर्मयोदिताः ॥२५॥
एवं यथा त्वया पृष्टं शिष्य वंशानुकीर्तनम् । तन्मया कथितं सर्वं श्रवणात्पुण्यवर्द्धनम् ॥२६॥

विष्णुदास उवाच

गुरो मया श्रुतं कस्यचिन्मुनेर्मुखतः पुरा । रामायणं सविस्तारं तच्चेदं नैव भासते ॥२७॥
तस्मादत्रांतरं प्रोक्तं त्वया सर्वत्र मां गुरो । संदेहोऽनेन मे जातस्तं त्वं छेत्तुमिहार्हसि ॥२८॥

श्रीरामदास उवाच

पुनः पुनः कल्पभेदाज्जाताः श्रीराघवस्य च । अवताराः कोटिशोऽत्र तेषु भेदः कचित्कचित् ॥२९॥

॥ १० ॥ प्रश्रुतके संधि, संधिके पुत्र मर्षण, मर्षणके महस्वान्, महस्वान्के विश्ववाह ॥ ११ ॥ विश्ववाहके प्रसेनजित्, प्रसेनजित् केतक्षक, तक्षकके बृहद्रण, बृहद्रणके उरुक्रिय, उरुक्रियके वत्सवृद्ध, वत्सवृद्धके व्योम, व्योमके भानु ॥ १२ ॥ १३ ॥ भानुके पुत्र दिवाक, दिवाकके सहदेव, सहदेवके वीर, वीरके पुत्र बृहदश्व, बृहदश्वके भानुमान्, भानुमान्के प्रतीकाश, प्रतीकाशके पुत्र सुप्रतीक ॥ १४ ॥ १५ ॥ सुप्रतीकके मरुदेव, मरुदेवके सुनक्षत्र, सुनक्षत्रके पुष्कर, ॥ १६ ॥ पुष्करके अन्तरिक्ष, अन्तरिक्षके सुतपा, सुतपाके पुत्र मित्र, मित्रके मित्रजित् ॥ १७ ॥ मित्रजित्के बृहद्राज, बृहद्राजके बर्हि, बर्हिके कृतंजय, कृतंजयके पुत्र रणंजय, ॥ १८ ॥ रणंजयके संजय, संजयके शाक्य, शाक्यके शुद्धोद, शुद्धोदके लाङ्गल ॥ १९ ॥ लांगलके पुत्र प्रसेनजित् प्रसेनजित्के क्षुद्रक, क्षुद्रकके रणक, रणकके सुरथ ॥ २० ॥ सुरथके तनय और तनयके पुत्र सुमित्र हुए। बस, यहीं ही तक चलकर सूर्यवंश पूर्ण हो जाता है ॥ २१ ॥ पूर्वमें हम मरु नामक राजाका नाम गिना आये हैं। वे हिमालयपर बद्रिकाआश्रममें तप कर रहे हैं। सत्ययुग आनेपर वे फिर सूर्यवंशका विस्तार करेंगे ॥ २२ ॥ २३ ॥ इस तरह मैंने विष्णुभगवान्से लेकर एकसठ राजाओं तक सूर्यवंशका वर्णन किया ॥ २४ ॥ एकसठ राजाओंके मध्यमें भगवान् रामचन्द्रजी विराजमान हैं और उनके आगेवाले एकसठको लेकर कुल एक सौ तेईस राजे हुए ॥ २५ ॥ इस तरह हे शिष्य ! मैंने तुम्हें सूर्यवंशका विवरण कह सुनाया। इसके सुननेसे पुण्यकी वृद्धि होती है ॥ २६ ॥ विष्णुदासने कहा–हे गुरो ! मैंने किसी मुनिसे सुना था कि रामायण इससे भी विस्तृत है, किन्तु पूरी रामायण इस संसारमें विद्यमान नहीं है। फिर आपने जो रामायण सुनायी है, वह तो सब रामायणोंसे भिन्न है। यह एक प्रकारका सन्देह मेरे हृदयमें उत्पन्न होता है। कृपा करके आप इसका निवारण करिए ॥ २७ ॥ २८ ॥ श्रीरामदासने कहा कि कल्पभेदसे रामके कितने ही अवतार हुए हैं और

कृतोऽस्ति राघवेणैव न सर्वे सदृशाः कृताः । रामायणान्यपि तथा पुरा वाल्मीकिनैव हि ॥३०॥
अनेकान्यंतरेणैव कीर्तितानि सविस्तरात् । शतकोटिमिता तेषां सर्वेषां गणना कृता ॥३१॥
तस्मात्त्वया न संदेहः कार्यः शिष्यात्र बुद्धिमन् । यन्मया कथितं ते हि तत्तथ्यं विद्धि नान्यथा ॥३२॥
भागाद्भरतखंडांतर्गताद्रामायणात्पुरा । नारदादिपुराणानि व्यासेनात्र कृतानि हि ॥३३॥
तेषु मत्कथितं चेदं सम्यग्विस्तारितं द्विज । तत्र जातो यथा शिष्य संदेहोऽत्र कथांतरात् ॥३४॥
भविष्यति तथाऽन्येषामग्रे यदि कदा क्वचित । नारदादिपुराणेषु दर्शनीयं हि तैर्जनैः ॥३५॥
दृष्ट्वा मदुक्तं सर्वेषु पुराणादिषु पंडितैः । त्यक्तव्याः स्वीयसंदेहाः सत्यं ज्ञेयं मयेरितम् ॥३६॥

इति शतकोटिरामचरितांतर्गते श्रीमदानंदरामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये पूर्णकाण्डे सूर्यवंशवर्णनं नाम सप्तमः सर्गः ॥ ७ ॥

अष्टमः सर्गः

(आनन्दरामायणकी सर्गानुक्रमणिका)

श्रीविष्णुदास उवाच

गुरोऽधुना वदस्व त्वं यन्मया पृच्छयते तव । अनुक्रमणिकासर्गं तथा पाठादिभिः फलम् ॥ १ ॥
कांडसंख्यां सर्गसंख्यां श्लोकसंख्यां सविस्तराम् । उद्यापनं ग्रन्थदानफलं वै शकुनेक्षणम् ॥ २ ॥
अनुष्ठानविधानं च श्रोतुं कालविनिर्णयम् । कांडानां च पृथक् संख्यां सर्वं त्वं वक्तुमर्हसि ॥ ३ ॥

श्रीरामदास उवाच

अनुक्रमणिकासर्गः प्रोच्यतेऽयं मयाऽधुना । यस्याः संश्रवणात्प्रोक्तं सर्वग्रंथफलं शुभम् ॥ ४ ॥
सर्गेऽत्र प्रथमे प्रोक्तं कौसल्यायाः स्वयंवरम् । रामादीनां सुजन्मानि द्वितीये कीर्तितानि हि ॥ ५ ॥
सीतास्वयंवरं प्रोक्तं तृतीये मिथिलापुरि । वृंदाशापादिकथनं चतुर्थे मुद्गलेन हि ॥ ६ ॥

उन अवतारोंमें कुछ न कुछ भेद पड़ ही गया है । यद्यपि रामकी लीलायें प्रत्येक रामायणमें वर्णित हैं, किन्तु उन सबमें कुछ न कुछ भेद है । स्वयं वाल्मीकिजीने जो शतकोटि श्लोकात्मक रामायण बनायी है, उसमें भी अन्तर विद्यमान हैं । इस कारण हे शिष्य ! तुम किसी प्रकारका सन्देह न करके मैंने जोकुछ कहा है, उसे सच मानो ॥ २९–३२ ॥ भरतखण्डके अन्तर्गत विद्यमान रामायणके भागके ही आधारपर व्यासजीने नारदादि विविध पुराणोंकी रचना की है । उसी खण्डके सहारे मैंने भी इस सविस्तर आनन्द-रामायणका वर्णन किया है । जिस तरह आज तुम्हें मेरी यह कथा सुनकर सन्देह उत्पन्न हुआ है, उसी तरह यदि आगे चलकर और किसी श्रोता-वक्ताको सन्देह हो तो उसे चाहिए कि उन नारद आदि पुराणोंको देखकर सन्देह निवृत्त कर ले ॥ ३३–३५ ॥ पण्डितोंको भी उचित है कि सब पुराणोंको देखें और उनमें मेरी कही बातें देखकर अपना सन्देह मिटा लें और समझ ले कि मैं जो कुछ कहता हूँ, वे बातें सच हैं या नहीं ॥३६॥ इति श्रीशतकोटिरामचरितान्तर्गते श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये पं० रामतेजपाण्डेयकृत 'ज्योत्स्ना' भाषा-टीकासहिते पूर्णकाण्डे सप्तमः सर्गः ॥ ७ ॥

विष्णुदासने कहा–हे गुरो ! अब आप हमें इस रामायणकी सर्गानुक्रमणिका तथा इसके पाठका फल बताइए ॥ १ । साथ ही इसकी काण्डसंख्या, सर्गसंख्या और श्लोकसंख्या आदि भी विस्तारपूर्वक कहिए । इसका उद्यापन, ग्रन्थके दानका फल, शकुनदर्शनविधान, अनुष्ठानविधि, इसके श्रवणका समय और काण्डकी संख्या आदि भी कहिए ॥ २ ॥ ३ ॥ श्रीरामदासने कहा–अब मैं तुम्हें इस रामायणकी सर्गानुक्रमणिका बताता हूँ । जिसके श्रवणमात्रसे समस्त रामायणके श्रवणका फल मिल जाता है ॥ ४ ॥ सारकाण्डके पहले सर्गमें कौसल्याका स्वयंवर, दूसरेमें राम आदिका जन्म, तीसरे सर्गमें जनकपुरमें सीताका स्वयंवर, चौथे

दशरथपूर्वजन्म कैकेय्याश्चापि पंचमे। वनप्रयाणं रामस्य प्रोक्तं षष्ठे सविस्तरम् ॥ ७ ॥
विराधखगमारीचवधादिसप्तमेऽकथि । किष्किंधायां वालिघातो राघवेणाष्टमे कृतः ॥ ८ ॥
नवमे जानकीशुद्धिर्लंका दग्धा हनूमता। दशमे सेतुमाहात्म्यं काशिविश्वेश्वरागमः ॥ ९ ॥
एकादशे रावणादिवधाः प्रोक्ताश्च राघवात्। सीतया स्वपुरीं गत्वा द्वादशेऽभून्नृपो विभुः ॥१०॥
त्रयोदशे राघवस्य विक्रमश्च हनूमतः। समाप्तं सारकांडं हि यात्राकांडमुदीर्यते ॥११॥
वाल्मीकेः प्रथमे सर्गे श्लोकोत्पत्तिः प्रकीर्तिता। रामायणविभागोऽत्र द्वितीये समुदाहृतः ॥१२॥
तृतीये सीतया रामो यात्रार्थं प्रार्थितो मुदा। चतुर्थे रामचंद्रस्य प्रस्थानं जाह्नवीं प्रति ॥१३॥
पंचमे मुनिवाक्येन यात्रां गंतुं विनिश्चयः। षष्ठे प्रोक्ता पूर्वदेशतीर्थयात्रा सविस्तरा ॥१४॥
प्रोक्ता दक्षिणतीर्थानां यात्रा रामस्य सप्तमे। तीर्थाटनं पश्चिमायामष्टमे राघवस्य च ॥१५॥
यात्रोत्तरप्रदेशस्य रामस्य नवमेऽकथि। यात्राकाण्डंसमाप्तं तु यागकाण्डमुदीर्यते ॥१६॥
सर्गेऽत्र प्रथमे प्राह यज्ञोपकरणं गुरुः। द्वितीये रामचन्द्रस्य यागारंभोऽत्र वर्णितः ॥१७॥
पृथ्वीप्रदक्षिणा प्रोक्ता तृतीयेऽध्वरवाजिनः। कुम्भोदरस्य रामस्य संवादोऽत्र चतुर्थके ॥१८॥
पञ्चमे रामनाम्नां वै ह्यष्टोत्तरशतं शुभम्। षष्ठेऽह्निकं हि सर्वेषां वाजिमेधे प्रकीर्तितम् ॥१९॥
ध्वजारोपविधानं च सप्तमे समुदाहृतम्। अष्टमेऽवभृथस्नानं राघवस्यात्र वर्णितम् ॥२०॥
नवमे वाजिमेधस्य समाप्तिः कीर्तिताऽत्र सा। यागकाण्डं समाप्तं हि विलासाख्यमुदीर्यते ॥२१॥
प्रथमे रघुवीरस्य स्तवराजोऽत्र कीर्तितः। द्वितीये रतिशालाया जानक्याश्चापि वर्णनम् ॥२२॥
तृतीये राघवेणोक्तं देहरामायणं स्त्रियै। दिनचर्याभूषणानि जानक्याश्च चतुर्थके ॥२३॥
जलयंत्रगता क्रीडा पञ्चमे शेषमाह्निकम्। द्विजस्य पत्न्यै प्रासादे षष्ठेऽलंकारमण्डनम् ॥२४॥

सर्गमें मुद्गल ऋषिका मिलना तथा वृन्दाशाप आदि वर्णित हैं ॥ ५ ॥ ६ ॥ पाँचवें सर्गमें दशरथ और कैकेयीके पूर्वजन्मका वृत्तांत है। छठें सर्गमें रामका वनगमन और सातवेंमें विराध-जटायु-मारीच आदिका वध तथा आठवें सर्गमें किष्किन्धा पर्वतपर बालिवध वर्णित है ॥ ७ ॥ ८ ॥ नवें सर्गमें सीताकी खोज और लङ्कादहन, दसवें सर्गमें सेतुमाहात्म्य तथा काशी-विश्वनाथके आगमनका वर्णन है ॥ ९ ॥ एकादश सर्गमें रामके द्वारा रावण आदिका वध तथा बारहवें सर्गमें सीताके साथ रामके अयोध्या लौटने और राज्याभिषेकका वर्णन है ॥ १० ॥ तेरहवें सर्गमें राम और हनुमान्जीके पराक्रमका वर्णन है। बस, यहाँ ही सारकाण्ड समाप्त हो जाता है ॥ ११ ॥ अब यात्राकाण्ड कहते हैं। इसके पहले सर्गमें वाल्मीकि द्वारा श्लोककी उत्पत्ति, दूसरे सर्गमें रामायणका विभाजन वर्णित है ॥ १२ ॥ तीसरे सर्गमें सीता द्वारा यात्राकी प्रार्थना और चतुर्थ सर्गमें जाह्नवीकी ओर रामकी यात्राका वर्णन है ॥ १३ ॥ पाँचवें सर्गमें कुम्भोदर मुनिकी सलाहसे यात्राका सविस्तर वर्णन है। छठें सर्गमें पूर्व देशकी यात्राका वर्णन है ॥ १४ ॥ सातवें सर्गमें दक्षिण भारतके तीर्थोंकी यात्रा और आठवें सर्गमें पश्चिमी प्रदेशके सब तीर्थोंकी यात्राका वर्णन है ॥ १५ ॥ नवें सर्गमें उत्तर प्रदेशके तीर्थोंकी यात्राका वर्णन है। बस, यात्राकाण्ड यहीं समाप्त हो जाता है। अब यागकाण्डके विषय बताते हैं ॥ १६ ॥ इसके पहले सर्गमें यज्ञोंकी सामग्रियोंका सविस्तर वर्णन है। दूसरे सर्गमें रामचन्द्रजीके द्वारा यागारम्भ, तीसरे सर्गमें यज्ञीय अश्वकी पृथ्वीप्रदक्षिणा, चौथे सर्गमें राम और कुम्भोदर मुनिका संवाद है ॥ १७ ॥ १८ ॥ पाँचवें सर्गमें रामका अष्टोत्तरशतनाम स्तोत्र है। छठें सर्गमें अश्वमेघ यज्ञमें की जानेवाली रामकी दिनचर्याका वर्णन है ॥ १९ ॥ सातवें सर्गमें ध्वजारोपणविधान, आठवेंमें अवभृथस्नान और नवें सर्गमें अश्वमेघ यज्ञकी समाप्ति वर्णित है ॥ २० ॥ बस, यहाँ यागकाण्ड समाप्त हो जाता है। अब विलासकाण्ड प्रारम्भ होता है ॥ २१ ॥ इसके प्रथम सर्गमें रामस्तवराज और दूसरे सर्गमें जानकीजीकी रतिशालाका वर्णन है ॥ २२ ॥ तीसरे सर्गमें सीताको सामने देहरामायण सुनायी है। चौथे सर्गमें सीताकी दिनचर्याका वर्णन है ॥ २३ ॥ पाँचवें सर्गमें जलयंत्रकी क्रीडायें और आह्निक कृत्यका विवेचन है। छठें सर्गमें ब्राह्मणपत्नीके लिए सीता द्वारा अलङ्कार-दानका वर्णन है।

मूर्तीनां सप्तमे दानं देवस्त्रीणां वरास्तथा । गुणवत्या पिंगलाया वरदानमथाष्टमे ॥२५॥
कुरुक्षेत्रस्य यात्रायां नवमे जानकीजयः । विलासाख्यं समाप्तं हि जन्मकांडमुदीर्यते ॥२६॥
आरामे दोहदक्रीडा सीतायाः प्रथमेऽकथि । द्वितीये विविधाः क्रीडाः सीमंतोन्नयनोत्सवः ॥२७॥
रजकस्योदितं श्रुत्वा सीतात्यागस्तृतीयके । जन्मकर्म चतुर्थेऽत्र कुशस्याथ लवस्य च ॥२८॥
सर्गेऽत्र पञ्चमे प्रोक्ता रामरक्षा सुखावहा । षष्ठे लवस्य कमलहरणे जय ईरितः ॥२९॥
युद्धादिकौतुकं प्रोक्तं पुत्रयोः सप्तमे विभोः । सीतादिव्यं च तल्लाभोऽष्टमे प्रोक्तोऽत्र मंडपे ॥३०॥
जन्मोपनयनादीनि बालानां नवमेऽकथि । जन्मकाण्डं समाप्तं हि विवाहाख्यमुदीर्यते ॥३१॥
स्वयंवरार्थं गमनं रामस्य प्रथमेऽकथि । स्वयंवरं चंपिकाया द्वितीये समुदाहृतम् ॥३२॥
स्वयंवरं सुमत्याश्च तृतीये परिकीर्तितम् । कुशस्याथ लवस्यापि विवाहौ द्वौ चतुर्थके ॥३३॥
गन्धर्वनागकन्यानां मोचनं पञ्चमेऽकथि । षष्ठे तासां विवाहानां निश्चयः समुदाहृतः ॥३४॥
विवाहा द्वादशे प्रोक्ताः सर्वासां सप्तमेऽत्र हि । अष्टमे यूपकेतोश्च वर्णितोऽत्र पराक्रमः ॥३५॥
प्रोक्तो मदनसुन्दर्या विवाहो नवमे महान् । पूर्णं विवाहकाण्डं च राज्यकाण्डमुदीर्यते ॥३६॥
रामनामसहस्रं च सर्गे प्राथमिकेऽकथि । द्वितीयेऽत्र समानीतौ रामेण सुरपादपौ ॥३७॥
रामकृष्णोपासकयोः संवादश्च तृतीयके । शतस्त्रीणां च निद्रायां वरदानं तथा पुनः ॥३८॥
रामविश्लेषविरहः सीतायाः पंचमेऽकथि । मूलकासुरघातश्च षष्ठे राज्यानि वै पृथक् ॥३९॥
जयो भरतखंडस्य रामेण सप्तमे कृतः । जम्बूद्वीपजयः प्रोक्तोऽष्टमे रामस्य विस्तरात् ॥४०॥
षड्द्वीपानां जयः प्रोक्तो नवमे राघवस्य च । यतिशूद्रगृध्रशिक्षा रामेण दशमे कृता ॥४१॥
चतुःस्त्रीणां वरदानं रामेणैकादशे कृतम् । स्त्रीषोडशसहस्राणां द्वादशेऽत्र वरार्पणम् ॥४२॥
अश्वत्थहसितं हास्यमुक्तेराज्ञा त्रयोदशे । चतुर्दशे वाल्मीकिना स्वजन्मत्रयमीरितम् ॥४३॥

॥ २४ ॥ सप्तम सर्गमें मूर्तियोंका दान और देवस्त्रियोंके वरदानका विधान है। अष्टम सर्गमें गुणवती और पिंगलाके वरदानका वर्णन है ॥ २५ ॥ नवम सर्गमें कुरुक्षेत्रकी यात्रामें जानकीविजयका वर्णन है । बस, यहाँ ही विलासकांड समाप्त हो जाता है ॥ २६ ॥ अब यहाँसे जन्मकांडका वर्णन करते हैं—पहले सर्गमें दोहदक्रीडा तथा दूसरे सर्गमें विविध प्रकारकी क्रीड़ाओं और सीमन्तोन्नयन संस्कारका विधान है ॥ २७ ॥ तृतीय सर्गमें सीतात्याग तथा चौथे सर्गमें कुश-लवका जन्म-कर्म वर्णित है । पांचवें सर्गमें रामरक्षास्तोत्रका विधान है। छठें सर्गमें लवका कमलहरण और उनकी विजय वर्णित है ॥ २८ ॥ २९ ॥ सप्तम सर्गमें युद्धादिके कौतुकका विधान है और अष्टम सर्गमें सीताकी शपथका वर्णन है ॥ ३० ॥ नवम सर्गमें बालकोंके जन्म और उपनयनका विधान है । बस, जन्मकाण्ड यहाँ ही समाप्त हो जाता है। अब यहाँसे विवाहकाण्ड प्रारम्भ होता है ॥ ३१ ॥ इसके प्रथम सर्गमें रामके गमनकी वार्ता है । दूसरे सर्गमें चम्पिकाके विवाहका वृत्तान्त है । तीसरे सर्गमें सुमतिके विवाहका वर्णन है। चौथे सर्गमें कुश और लवके विवाहकी बातें हैं ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ पञ्चम सर्गमें गन्धर्वों तथा नागोंकी कन्याओंके छुड़ानेका हाल है । षष्ठ सर्गमें इन लोगोंके विवाहकी बात पक्की हो जाती है ॥ ३४ ॥ सप्तम सर्गमें सबके विवाहका वर्णन तथा अष्टम सर्गमें यूपकेतुके पराक्रमका वर्णन है ॥ ३५ ॥ नवम सर्गमें मदनसुन्दरीके विवाहका वृत्तान्त है। बस, विवाहकांड यहाँ ही समाप्त हो जाता है। अब राज्यकांड चलता है ॥ ३६ ॥ राज्यकांडके प्रथमसर्गमें रामसहस्रनाम तथा दूसरे सर्गमें रामके द्वारा स्वर्गसे कल्पवृक्ष और पारिजात नामक वृक्षोंके लानेकी बातें हैं ॥ ३७ ॥ तीसरे सर्गमें रामकृष्णके उपासकोंका सम्वाद, चौथे सर्गमें निद्राके लिए वरदान, पाँचवें सर्गमें सीतारामका वियोग और मूलकासुरका वध, छठें सर्गमें राज्यकार्यका वर्णन है ॥ ३८ ॥ ३९ ॥ सातवें सर्गमें रामके द्वारा भरतखण्डकी विजय, आठवें सर्गमें जम्बूद्वीपविजय, नवें सर्गमें रामके अन्य छः द्वीपोंको जीतनेका वृत्तांत है । दसवें सर्गमें संन्यासी, शूद्र तथा गृध्रकी शिक्षाका वर्णन है ॥ ४० ॥ ४१ ॥ ग्यारहवें सर्गमें रामके

पंचदशे रामराज्यवर्णनं विस्तरात्कृतम् । वर्णिता राजनीतिः श्रीराघवेणात्र षोडशे ॥४४॥
सप्तदशेऽत्र कथितं कुशकन्यास्वयंवरम् । अष्टादशे रामनाथपुरं दत्तं द्विजन्मनाम् ॥४५॥
एकोनविंशे रामस्य दिनचर्येरिता शुभा । राज्ञां विंशेऽवतारे तु श्रेष्ठः प्रोक्तस्त्वयं महान् ॥४६॥
एकविंशे राघवेण दास्यै दत्तो वरो मुदा । सीतया तुलसीपत्रं द्वाविंशे संधितं शुभम् ॥४७॥
त्रयोविंशे स्मृताऽऽनन्दरामायणफलश्रुतिः । यमशिक्षा चतुर्विंशे धर्मशिक्षा च भूतले ॥४८॥
राज्यकांडं समाप्तं हि मनोहरमुदीर्यते । सर्गेऽत्र प्रथमे प्रोक्तं लघुरामायणं शुभम् ॥४९॥
नागराणां च मातृणामुपदेशं द्वितीयके । रामपूजोपासनादिविस्तारश्च तृतीयके ॥५०॥
रामतोभद्रविस्तारश्चतुर्थे समुदीरितः । रामलिंगतोभद्राणां भेदाः प्रोक्ताश्च पंचमे ॥५१॥
नवमीव्रतविस्तारः षष्ठे प्रोक्ता च तत्कथा । श्रीरामनाम्नां लक्षस्योद्यापनादीनि सप्तमे ॥५२॥
वेदादीनां हि सर्वेषामष्टमे फलमीरितम् । सार्द्धमासद्वयी पूजा कथिता नवमे विभोः ॥५३॥
दशमे चैत्रमासस्य महिमा समुदीरितः । एकादशे मधुस्नानात्सर्वेषां गतिरीरिता ॥५४॥
अद्वैतं दर्शितं राज्ञा द्वादशे स्त्रीकदम्बकम् । वायुपुत्रस्य रामस्य कवचे द्वे त्रयोदशे ॥५५॥
सीतायाः कवचादीनि प्रोक्तान्यत्र चतुर्दशे । पंचदशे कवचानि तद्बन्धूनां स्मृतानि हि ॥५६॥
व्रतं हनुमतः प्रोक्तं पताकाख्यं हि षोडशे । प्रोक्तं सप्तदशे साररामायणमनुत्तमम् ॥५७॥
अष्टादशे शरसेतोः खंडनं च हनूमता । जातं मनोहरं काण्डं पूर्णकाण्डमथोच्यते ॥५८॥
वाल्मीकिना सोमवंशविस्तारः प्रथमेऽकथि । रामचन्द्रस्य प्रस्थानं द्वितीये हस्तिनापुरम् ॥५९॥
सूर्यसोमवंशजयोर्युद्धं प्रोक्तं तृतीयके । सोमसूर्यवंशजयोर्मैत्रिकी च चतुर्थके ॥६०॥
कुशादीनां राघवेण पञ्चमेऽत्र विसर्जनम् । वैकुंठारोहणं षष्ठे गङ्गायां राघवस्य च ॥६१॥
सप्तमे सूर्यवंशीयनृपाणां वर्णनं कृतम् । अनुक्रमणिकासर्गः प्रोक्तोऽयमष्टमो महान् ॥६२॥

द्वारा चार स्त्रियोंकी वरदानप्राप्ति, बारहवें सर्गमें सोलह स्त्रियोंके वरदान पानेका वृत्तांत, तेरहवें सर्गमें पीपलके वृक्षकी हँसी, चौदहवेंमें वाल्मीकिके तीन जन्मका वृत्तान्त है ॥४२॥४३॥ पन्द्रहवें सर्गमें रामके राज्यका सविस्तर वर्णन और सोलहवें सर्गमें रामकी कही राजनीतिकी चर्चा है ॥ ४४ ॥ सत्रहवें सर्गमें कुशकी कन्याका स्वयम्वर, अठारहवें सर्गमें ब्राह्मणोंके लिए रामनाथपुरके राज्यका दान ॥४५॥ उन्नीसवें सर्गमें रामकी दिनचर्या और बीसवें सर्गमें सब अवतारोंमें रामावतारकी श्रेष्ठता कही गयी है ॥ ४६ ॥ इक्कीसवें सर्गमें दासीके लिये रामका वरदान, बाईसवें सर्गमें सीता द्वारा टूटे तुलसीपत्रको पुनः जोड़नेकी कथा है । तेईसवें सर्गमें आनन्दरामायणका श्रवणफल, चौबीसवें सर्गमें यमको शिक्षा एवं धर्मशिक्षाका वर्णन है ॥ ४७ ॥ ४८ ॥ बस, राज्यकांड यहाँ ही समाप्त हो जाता है। अब मनोहरकांड प्रारम्भ होता है। इसके पहले सर्गमें लघुरामायण, दूसरे सर्गमें नगरवासियों तथा माताओंके लिए उपदेशदान, तीसरे सर्गमें रामपूजा और उपासनाका सविस्तर वर्णन है ॥ ४९ ॥ ॥ ५० ॥ चौथे सर्गमें रामतोभद्रका विस्तार, पाँचवें सर्गमें रामलिंगतोभद्रका विस्तार, छठें सर्गमें नवमीव्रतका विस्तार, सातवें सर्गमें लक्ष रामनामजपका उद्यापन है ॥ ५१ ॥ ५२ ॥ आठवें सर्गमें वेदादिके सुननेका फल और नवें सर्गमें ढाई महीने तक रामके पूजनका विधान है ॥ ५३ ॥ दसवें सर्गमें चैत्रमासमें पूजन करनेकी महिमा, ग्यारहवें सर्गमें चैत्रस्नानसे सबको सद्गति पानेका उपाय और बारहवें सर्गमें रामने बहुतसो स्त्रियोंको अद्वैत पदकी बातें बतलायी हैं। तेरहवें सर्गमें राम तथा हनुमान्जीका कवच और चौदहवें सर्गमें सीताके कवच आदिका वर्णन है। पन्द्रहवें सर्गमें रामके भ्राताओंके कवच आदिका वर्णन है ॥ ५४-५६ ॥ सोलहवें सर्गमें हनुमान्जीका पताकारोपणव्रत है। सत्रहवें सर्गमें साररामायण कहा गया है। अठारहवें सर्गमें हनुमान्जीके द्वारा अर्जुनके बनाये शरसेतुका खंडन वर्णित है। बस, मनोहरकांड यहाँ ही समाप्त हो जाता है। अब पूर्णकांडके विषय गिनाते हैं ॥ ५७ ॥ ५८ ॥ पूर्णकांडके प्रथम सर्गमें सोमवंशी राजाओंकी वंशावली, दूसरे सर्गमें रामचन्द्रजी-की हस्तिनापुरके लिए यात्रा ॥ ५९ ॥ तीसरे सर्गमें सूर्य और सोमवंशी राजाओंका युद्ध और चौथे सर्गमें सोम-

ग्रंथश्रुतिफलादीनि नवमे कीर्तितानि हि । नवसर्गं पूर्णकाण्डं सम्पूर्णं नवमं त्विदम् ॥६३॥
अनुक्रमणिका चेयं मया शिष्य प्रवर्णिता । अस्याः श्रवणमात्रेण रामायणश्रुतेः फलम् ॥६४॥
रामायणपुस्तकस्य नित्यं कार्यं प्रपूजनम् । विशेषं पूजनस्यापि शृणु शिष्य वदामि ते ॥६५॥
सारकांडं विभोः स्थाने लक्ष्मणीये द्वितीयकम् । नवायतनरीत्येत्थं शेषाणि स्थापयेत् क्रमात् ॥६६॥
सप्त कांडानि विधिवत्तेषां पूजनमाचरेत् । अथवा राज्यकांडस्य पूर्वार्धं रामसत्स्थले ॥६७॥
राज्यकांडस्योत्तरार्धं सीतास्थाने निवेशयेत् । लक्ष्मणीये सारकांडं शेषाण्यग्रे क्रमेण तु ॥६८॥
एवं संस्थाप्य कांडानि तेषां पूजनमाचरेत् । नवायतनपूजायाः फलमेतेन कीर्तितम् ॥६९॥

इति श्रीशतकोटिरामचरितांतर्गते श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये पूर्णकाण्डे
अनुक्रमणिकावर्णनं नाम अष्टमः सर्गः ॥ ८ ॥

नवमः सर्गः

(ग्रन्थकी फलश्रुति)

श्रीरामचन्द्र उवाच

सारं यात्रा च यागाख्यं विलासाख्यं तु जन्मकम् । विवाहाख्यं हि राज्याख्यं श्रीमनोहरपूर्णके ॥१॥
कांडान्यनुक्रमेणैवानन्दरामायणे नव । त्रयोदश सारकांडे सर्गा वाल्मीकिनेरिताः ॥२॥
यात्राकांडे नव ज्ञेया यागकांडेऽपि वै नव । नव ज्ञेया विलासाख्ये जन्मकांडेऽपि वै नव ॥३॥
नव ज्ञेया विवाहाख्ये चतुर्विंशाश्च राज्यके । मनोहराख्ये ज्ञातव्याः सर्गा अष्टादशात्र वै ॥४॥
पूर्णकांडे नव ज्ञेयाः सर्गाः पापहरा नृणाम् । एवं नवोत्तरशतं १०९ सर्गा ज्ञेयाः शुभावहा ॥५॥

वंशी और सूर्यवंशी राजाओंकी मित्रताका वर्णन है ॥ ६० ॥ पाँचवें सर्गमें रामचन्द्रजीके द्वारा कुश आदिके विसर्जनकी कथा है । छठें सर्गमें गङ्गाजीके तटपर रामको परमधामयात्राका वर्णन है ॥ ६१ ॥ सातवें सर्गमें सूर्यवंशी राजाओंका वर्णन है और आठवें सर्गमें आनन्दरामायणकी अनुक्रमणिका बतलायी गयी है ॥ ६२ ॥ नवें सर्गमें आनन्दरामायणके श्रवणका फल आदि वर्णित है। बस, पूर्णकांड यहीं समाप्त हो जाता है। हे शिष्य ! इस प्रकार मैंने तुमको समस्त आनन्दरामायणकी अनुक्रमणिका बता दी। इस अनुक्रमणिकामात्रके सुननेसे समस्त रामायण सुननेका फल प्राप्त हो जाता है ॥ ६३ ॥ ६४ ॥ भक्तोंको चाहिए कि नित्य इस रामायणका पूजन करें। अब इसकी पूजामें जो विशेषतायें हैं उन्हें बतलाता हूँ, सुनो ॥ ६५ ॥ सारकांडको भगवान् रामचन्द्रजी, दूसरे कांडको लक्ष्मण तथा तीसरे कांडको सीता समझकर स्थापित करे। इस तरह सात कांडोंमें क्रमशः नवायतनकी स्थापना करके पूजन करे अथवा राज्यकांडके पूर्वार्धभागको रामके स्थानमें तथा उत्तरार्धको सीताके स्थानमें स्थापित करके पूजन करना चाहिए और सारकांडको लक्ष्मणकी जगहपर स्थापित करके पूजन करे । इसी तरह शेष कांडोंको क्रमशः भरत आदिके स्थानमें स्थापित करके पूजन करना चाहिए। इस तरह इस रामायणकी पूजा करनेसे रामनवायतन-पूजनका फल प्राप्त होता है ॥ ६६-६९ ॥ इति श्रीशतकोटिरामचरितांतर्गते श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये पं० रामतेजपाण्डेयकृत-'ज्योत्स्ना'भाषाटीकासहिते पूर्णकाण्डेऽष्टमः सर्गः ॥ ८ ॥

श्रीरामदासने कहा-हे शिष्य ! सार, यात्रा, याग, विलास, जन्म, विवाह, राज्य, मनोहर तथा पूर्णकाण्ड ये ही इस रामायणके नौ काण्ड हैं। सारकाण्डमें वाल्मीकिजीने तेरह सर्ग, यात्राकांडमें नौ सर्ग, जन्मकांडमें नौ सर्ग, विवाहकांडमें नौ सर्ग, राज्यकांडमें चौबीस सर्ग, मनोहरकांडमें अठारह सर्ग और पूर्णकांडमें पापोंको हरण करनेवाले कुल नौ सर्ग हैं। इस तरह इस आनन्दरामायणमें कुल मिलाकर एक सौ नौ (१०९) सर्ग हैं ॥ १-५ ॥

सारकांडे पंचविंशच्छतं श्लोकाः सत्रिंशकाः । यात्राकाण्डे सप्तशतं पंचत्रिंशोत्तरं स्मृताः ॥ ६ ॥
यागकांडे षट्शतं च पंचविंशोत्तरं शुभाः । विलासाख्ये षट्शतं च साष्टसप्तति संस्मृताः ॥ ७ ॥
जन्मकाण्डे ह्यष्टशताः सद्विश्लोकाः प्रकीर्तिताः । विवाहाख्ये पचशत कीर्तिताः सत्र्यशीतयः ॥ ८ ॥
सद्वाविंशा राज्यकाण्डे सुषड्विंशच्छतं स्मृताः । एकत्रिंशच्छतं श्लोकाः प्रोक्ताः कांडे मनोहरे ॥ ९ ॥
पूर्णकांडे पंचशतं सप्तसप्ततिमिश्रिताः । आनन्दरामचरिते सहस्राणि हि द्वादश ॥१०॥
द्वे शते च द्विपंचाशच्छ्लोका ज्ञेया मनीषिभिः । एवं शिष्य मया प्रोक्तं यथा पृष्टं त्वया पुरा ॥११॥
रामस्य तोषचरितं श्रवणात्पातकापहम् । पूर्णकांडमिदं ज्ञेयं श्रवणात्पुण्यवर्धनम् ॥१२॥
सारकांडश्रवादेव संसारान्मुच्यते नरः । यात्राकांडेन यात्राणां लभ्यते मानवैः फलम् ॥१३॥
यागकांडेन यज्ञानां लभ्यते फलमुत्तमम् । विलासकाण्डश्रवणादप्सरोभिर्विमोदते ॥१४॥
जन्मकांडेन प्राप्नोति नरः पुत्रादिसन्ततिम् । विवाहकाण्डश्रवणाद्रम्या स्त्री लभ्यते भुवि ॥१५॥
राज्यकाण्डेन राज्यं हि मानवैर्भुवि लभ्यते । काण्डं मनोहरं श्रुत्वा लभ्यते मानसेप्सितम् ॥१६॥
पूर्णकाण्डश्रवादेव विष्णोः पूर्णपदं लभेत् । सर्वं विस्तरतः श्रुत्वाऽऽनन्दरामायणं त्विदम् ॥१७॥
सच्चिदानन्दरूपे स लीनो भवति मानवः । रामायणं नरैः श्रुत्वा कार्यमुद्यापनं नरैः ॥१८॥
रामायणे श्रुते दद्याद्रथं हेममयं सुधीः । चतुर्भिर्वाजिभिर्युक्तं तथा क्षौमपताकया ॥१९॥
यंत्रैश्चैव समायुक्तं किंकिणीनादनादितम् । संपादितेऽस्य सम्यग्वै धेनु दद्यात्पयस्विनीम् ॥२०॥
ब्राह्मणान्भोजयेत्पश्चाच्छतमष्टोत्तरं सुधीः । एवं कृते विधाने तु महाकाव्यं फलप्रदम् ॥२१॥
रामायणं भवेन्नूनं नात्र कार्या विचारणा । यस्मिन्रामस्य संस्थानं रामायणमथोच्यते ॥२२॥
नरः प्रातः समुत्थायानन्दरामायणं पठेत् । यः स कामानवाप्नोति सकलान् दिवि दुर्लभान् ॥२३॥

सारकांडमें २५३० श्लोक, यात्राकांडमें ७३५ श्लोक, यागकांडमें ६२५ श्लोक, विलासकांडमें ६७८ श्लोक, जन्मकांडमें ८०२ श्लोक, विवाहकांडमें ५६३ श्लोक ॥ ५–८ ॥ राज्यकांडम २६०२ श्लोक, मनोहरकांडमें ३१०० श्लोक और पूर्णकाण्डमें ५७७ श्लोक हैं । इस आनन्दरामायणमें कुल मिलाकर १२३५२ श्लोक हैं ॥ ९ ॥ हे शिष्य ! तुमने हमसे जैसे पूछा, मैंने रामचन्द्रजीको प्रसन्न करने और पापोंको नष्ट करनेवाले रामचरित्रको कह सुनाया । यह पूर्णकाण्ड पुण्यको बढ़ाता है ॥ १० ॥ ११ ॥ १२ ॥ सारकाण्डके सुननेसे प्राणी इस संसारसे मुक्त हो जाता है । यात्राकाण्डका श्रवण करनेसे प्राणी सब तीर्थोंका यात्राका पुण्य प्राप्त करता है ॥ १३ ॥ यागकाण्डके सुननेसे प्राणी यज्ञोंके करनेका फल पाता है और विलासकाण्डके सुननेसे स्वर्गकी अप्सराओंके साथ आनन्द करता है ॥ १४ ॥ जन्मकाण्डका श्रवण करनेसे प्राणी संतति पाता है और विवाहकांड सुननेसे सुन्दर स्त्री मिलती है । ॥ १५ ॥ राज्यकांडके सुननेसे संसारका राज्य प्राप्त होता है, मनोहरकांडको सुननेसे अपनी इच्छित कामना पूर्ण होती है और इस पूर्णकांडको सुननसे प्राणी साक्षात् विष्णुभगवान्का पूर्णपद पाता है । जो प्राणी समस्त आनन्दरामायण सुन लेता है ॥ १६ ॥ १७ ॥ वह सच्चिदानन्दस्वरूप भगवान्में लीन हो जाता है । जो लोग यह रामायण सुनें, उन्हें इसका उद्यापन भी करना चाहिए ॥ १८ ॥ रामायण सुन लेनेके बाद श्रोता सुनानेवालेको एक ऐसा स्वर्णरथ दे, जिसमें चार घाड़े जुते हों और ऊपर रेशमी पताका फहरा रही हो ॥ १९ ॥ उसमें विविध प्रकारके यन्त्र लगे हों और किंकिण्यादिको मीठी ध्वनि निकल रही हो । इसके बाद एक दुधार गौ दे ॥ २० ॥ इसके पश्चात् १०८ ब्राह्मणोंको भोजन कराये । ऐसा करनेपर यह महाकाव्य पूर्ण फलदायी होता है । इसमें किसी प्रकारका संदेह न करना चाहिए । जिसमें भगवान्का निवास हो, उसे "रामायण" कहते हैं ॥ २१ ॥ २२ ॥ जो प्राणी सवेरे उठकर इस आनन्दरामायणका पाठ करता है तो देवताओंको भी दुर्लभ उसकी कामनायें पूर्ण होती हैं ॥२३॥ चैत्र शुक्ल नवमीको रामजन्मके अवसर-

चैत्रमासे सिते पक्षे नवम्यां रामजन्मनि । शतमाषसुवर्णेन वायुपुत्रं विधाय च ॥२४॥
एकविंशति माषैर्वा यथाशक्त्याऽथवा नरैः । वायुपुत्रं संविधायानन्दरामायणं त्विदम् ॥२५॥
मौल्यद्वारा लिखित्वान्यैर्लिखित्वा वा स्वहस्ततः । तत्पुनश्चित्ररंगाद्यैर्भूषितं सुविशोधितम् ॥२६॥
वेष्टितं पट्टतूलाद्यैस्ततस्तत्पुस्तकं शुभम् । स्कन्धे श्रीमारुते रूपं पूजितं दक्षिणान्वितम् ॥२७॥
मध्याह्ने ब्राह्मणं पूज्य नानाशास्त्रविशारदम् । तस्मै देयं पुस्तकं तद्वायुपुत्रसमन्वितम् ॥२८॥
एवं यः कुरुते दान तस्य पुण्यं वदाम्यहम् । कोटिभारसुवर्णस्य कुरुक्षेत्रे रविग्रहे ॥२९॥
दानेन पुण्यं यत्प्रोक्तं तस्मादेतच्छताधिकम् । अक्षराण्यत्र यावन्ति संति ह्यानन्दसंज्ञके ॥३०॥
तावद्युगसहस्राणि वैकुण्ठे मोदते नरः । सप्तजन्म भवेद्विप्रस्ततोऽयं वेदपारगः ॥३१॥
रम्यं पवित्रमानन्ददायकं च मनोहरम् । आनन्दसंज्ञकं रामचरितं पुण्यवर्द्धनम् ॥३२॥
रामायणमिदं येऽत्र भक्त्या शृण्वंति मानवाः । पुत्रैः पौत्रैः सुहृद्भिश्च न वियोगं लभन्ति ते ॥३३॥
रामायणमिदं येऽत्र भक्त्या शृण्वंति मानवाः । तेषां स्त्रीभिर्वियोगोऽत्र न कदापि हि जायते ॥३४॥
आनन्दसंज्ञकं पुण्य याः शृण्वन्त्यत्र वै स्त्रियः । स्वभर्तृभिर्वियोगं ता न गच्छन्ति यथा रमा ॥३५॥
ग्रामं देशान्तरं तीर्थं ये गताश्च चिरं नराः । तेषामागमनार्थं हि पठनीयमिदं सदा ॥३६॥
येषां भावीनि कार्याणि लब्धुं त्वरयते मनः । आनन्दसंज्ञकं तैस्तु पठनीयं प्रयत्नतः ॥३७॥
प्रथमे दिवसे काण्डमेकमेव पठेच्छुभम् । प्रथमं च द्वितीयं च द्वितीये दिवसे पठेत् ॥३८॥
एवं क्रमेण कांडानां वृद्धिः कार्या दिने दिने । नव काण्डानि नवमे दिवसे सम्पठेन्नरः ॥३९॥
अष्ट कांडानि दशमे क्षयस्त्वेकेन वै क्रमात् । सप्तदशदिनैर्ज्ञेयमनुष्ठानमिदं महत् ॥४०॥
अथवा क्रमेण कांडानि प्रथमं प्रथमे पठेत् । द्वितीयं च द्वितीयेऽह्नि नवमं नवमे दिने ॥४१॥
दशमं दशमे प्रोक्त क्षयः कार्यः क्रमेण हि । सप्तदश दिनैरेतदनुष्ठानं सुखावहम् ॥४२॥

पर सौ मासे हनुमान्‌जीकी मूर्ति बनवाकर, उसके अभावमें इक्कीस मासे अथवा जैसा अपनी शक्ति हो, उसके अनुसार मारुतिकी मूर्ति बनवानी चाहिए। इसके अनन्तर लिखाई देकर या अपने हाथसे यह ग्रन्थ लिखकर इसमें विविध प्रकारके चित्र बनाये और अच्छी तरह संशोधन करे। फिर दक्षिणाके साथ इस रामायणको रेशमी कपड़ेके टुकड़ेमें बाँधकर हनुमान्‌जीके कांधेपर रक्खे ॥२४–२७॥ फिर दोपहरके समय इसकी कथा कहनेवाले विविध शास्त्रोंके ज्ञाता ब्राह्मणकी पूजा करे। उसे अच्छे-अच्छे कपड़े पहनाये और वह हनुमान्‌जीकी प्रतिमा तथा पुस्तक उस ब्राह्मणको दान दे दे ॥ २८ ॥ इस तरह दान करनेका जो फल होता है, वह मैं तुमको बतलाता हूँ। सूर्यग्रहण लगनेपर कुरुक्षेत्रमें एक करोड़ भार सुवर्णदान करनेसे जो फल प्राप्त होता है, उससे सैकड़ों-गुना अधिक फल इस प्रकार आनन्दरामायणका दान करनेसे प्राप्त होता है। ऐसा करनेपर इस आनन्दरामायणमें जितने अक्षर हैं, उतने हजार युग तक प्राणी वैकुण्ठ लोकमें आनन्द करता है। इसके बाद सात जन्म तक विप्रके घरमें उसका जन्म होता है और इसके बाद वह एक वेदपारगामी ब्राह्मण होता है ॥ २९–३१ ॥ यह आनन्दरामायण पवित्र, रम्य, मनोहर एवं पुण्यवर्द्धक है। जो लोग इसका श्रवण करते हैं, वे अपने पुत्र पौत्र तथा मित्रोंसे कभी भी वियुक्त नहीं होते ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ जो इस रामायणको भक्तिपूर्वक सुनते हैं, वे अपनी स्त्रियोंसे कभी भी वियुक्त नहीं होते। जो स्त्रियाँ इस रामायणका श्रवण करती हैं, वे लक्ष्मीकी तरह सुखी रहती हुई कभी भी अपने अपने पतिसे वियुक्त नहीं होतीं ॥ ३४ ॥ ३५ ॥ यदि किसीके घरवाले किसी गाँव, देशान्तर अथवा तीर्थयात्राको गये हों तो उन्हें कुशलपूर्वक लौटानेके लिए इस आनन्दरामायणका पाठ करना चाहिए ॥ ३६ ॥ जिनको अपने किसी भावी कार्यकी विशेष चिन्ता हो और उसे शीघ्र पूर्ण करना चाहते हों तो वे प्रयत्नपूर्वक इस आनन्दरामायणका पाठ करें ॥ ३७ ॥ पहले रोज केवल एक कांड, दूसरे रोज पहला और दूसरा इन दो कांडोंका पाठ करे। तीसरे दिन पहला, दूसरा और तीसरा इन तीनों काण्डोंको, इस क्रमसे बढ़ाता हुआ नवें रोज नवों काण्डोंका पाठ करे ॥ ३८ ॥ ३९ ॥ फिर आठवें रोज आठ कांड, सातवें दिन

अथवा पृथक् काण्डेषु सर्गवृद्धिक्षयः क्रमात् । एवमेकदिनन्यूनसप्तमासैश्चरेद्व्रतम् ॥४३॥
अथवा प्रथमे सर्गस्त्वेक एव पठेन्नरः । द्वौ सर्गौ च द्वितीयेऽह्नि वृद्धिस्त्वेवं क्रमेण हि ॥४४॥
नवोत्तरशते प्राप्ते दिने कृत्स्नं त्विदं पठेत् । पुनः क्षयोऽनुक्रमतस्त्वेवं सप्तदिनोत्तरैः ॥४५॥
सप्तमासैरनुष्ठानं ज्ञेयं कार्यैकसाधनम् । अथवा प्रथमे चाह्नि सर्गं प्राथमिकं पठेत् ॥४६॥
द्वितीयेऽह्नि द्वितीयश्च तृतीयेऽह्नि तृतीयकम् । नवोत्तरशते प्राप्ते दिने च चरमं पठेत् ॥४७॥
दशोत्तरशते प्राप्ते ह्यष्टोत्तरशताभिधम् । पठेत्सर्गं क्रमेणैव शिष्य सप्तदिनोत्तरैः ॥४८॥
सप्तमासैरनुष्ठानं ज्ञेयं साधारणं नृणाम् । पञ्चानुष्ठानभेदाश्च मयैवं परिकीर्तिताः ॥४९॥
अनुष्ठानसमाप्तौ हि होमः कार्यो यथाविधि । पृथक् श्लोकं समुच्चार्य स्वाहांतं पायसैः फलैः ॥५०॥
नवान्नेनाथवा कार्यो होमो द्विजवरैः सह । ब्राह्मणान्भोजयेत्पश्चादनुष्ठानदिनैर्मितान् ॥५१॥
एतत्प्रातः समुत्थायानन्दरामायणं शुभम् । ये पठन्ति नरा भक्त्या ते सुखं प्राप्नुवन्ति हि ॥५२॥
द्वादश्यामपि चैतद्वै पठनीयं प्रयत्नतः । पारायणं नवदिनैः कार्यमस्य सुखावहम् ॥५३॥
कांडं सर्गोऽथवा श्लोकस्त्वानन्दाख्यस्य प्रत्यहम्। न नराः कीर्तयंत्यत्र तेषां जन्म निरर्थकम् ॥५४॥
पुत्रार्थं रतिशालायां शृणोति पुरुषः स्त्रिया । निशायां शयनारूढोऽपुत्री पुत्रमवाप्नुयात् ॥५५॥
नवराशिषु व्रीहीणां ध्यात्वा कार्यं तु विन्यसेत् । पूगीफलानि चत्वारि पूर्वेण कांडमुच्यते ॥५६॥
द्वितीयेन हि सर्गस्तु तृतीयेन फलेन हि । दशमोऽस्य च विज्ञेयश्चतुर्थेन फलेन च ॥५७॥
श्लोको ज्ञेयः पूर्वराशेः सर्वेषां गणनेरिता । सर्वत्रांत्येन श्लोकेन विपरीतं फलं स्मृतम् ॥५८॥
एवं सर्वैर्दर्शनीयः शकुनश्च शुभोऽशुभः । एवं शिष्य त्वया यद्यत्पृष्टं तत्तन्मयोदितम् ॥५९॥

सात काण्ड, छठें दिन छ काण्ड इस क्रमसे घटाता हुआ सत्रह दिनमें यह अनुष्ठान पूर्ण करे। वैसा न कर सके तो पहले रोज पहला, दूसरे दिन दूसरा, तीसरे दिन तीसरा, इस क्रमसे नौ रोजमें नौ काण्ड समाप्त करे। फिर दसवें रोज आठवाँ काण्ड, ग्यारहवें रोज सातवाँ काण्ड, इस क्रमसे घटाता हुआ सत्रह दिनोंमें यह अनुष्ठान पूर्ण करे ॥ ४०–४२ ॥ अथवा प्रत्येक कांडमें सर्गवृद्धिके क्रमसे पाठ करता हुआ सात महीनोंमें अनुष्ठान पूर्ण करे ॥ ४३ ॥ ऐसा भी न कर सके तो पहले रोज पहला सर्ग, दूसरे दिन दूसरा सर्ग, तीसरे दिन तीसरा सर्ग, इस क्रमसे एक सौ नौ दिनोंमें पूर्ण करके फिर उसी क्रमसे घटाये। इस अनुष्ठानमें भी सात ही महीनेका समय लगता है। इस अनुष्ठानको करनेसे एक कार्यकी सिद्धि हो सकती है। अथवा पहले रोज पहला सर्ग, दूसरे दिन दूसरा, तीसरे दिन तीसरा, इस क्रमसे पाठ करता हुआ एक सौ नवें दिन अन्तिम सर्गका पाठ करे ॥ ४४–४७ ॥ फिर एक सौ दसवें दिन एक सौ आठवाँ सर्ग, एक सौ ग्यारहवें दिन एक सौ सातवाँ सर्ग, इस क्रमसे पाठ करता हुआ सात महीनेने इसे समाप्त करे। इस तरह मैंने अनुष्ठानके पाँच भेद बताये। अनुष्ठान समाप्त हो जानेपर विधिवत् हवन करना चाहिए। होम करते समय ब्राह्मणोंके साथ बैठकर आनन्दरामायणके एक-एक श्लोकका उच्चारण करता हुआ खीर, फल अथवा नये अन्नसे हवन करें। हवन हो जानेपर जितने दिनोंका अनुष्ठान किया हो, उतने ब्राह्मणोंको भोजन कराये ॥ ४८–५१ ॥ जो लोग सबेरे उठकर इस रामायणका पाठ करते हैं, वे सदा सुखी रहते हैं। द्वादशीको तो अवश्य इसका पाठ करना चाहिए। नौ दिनोंमें इसका सुखावह पारायण पूर्ण करना चाहिए ॥ ५२ ॥ ५३ ॥ जो लोग इस रामायणके एक काण्ड, एक सर्ग अथवा एक श्लोकका भी पाठ नहीं करते, उनका जन्म निरर्थक है ॥ ५४ ॥ जो मनुष्य अपनी स्त्रीके साथ रतिशालामें पुत्रप्राप्तिके लिए इस रामायणका श्रवण करता है, वह यदि पुत्रविहीन हो तो अवश्य पुत्र प्राप्त करता है ॥ ५५ ॥ अब प्रश्नकी रीति बताते हैं। अन्नकी नौ राशियें बनाकर अपने कार्यका ध्यान करे। इससे बाद चारों दिशाओंमें चार पूगीफल (सुपारी) रक्खे। पहली सुपाड़ीमें कांड, दूसरीमें सर्ग, तीसरीमें दशक तथा चौथी सुपाड़ीमें श्लोकका स्थापन करे। पूर्वकी राशिसे सबकी गणना करनी चाहिए। सब जगह जो अन्तिम श्लोक निकले, उससे विपरीत फल होता है ॥ ५६–५८ ॥ इस

आनन्दरामायणमेतदुत्तमं नवोत्तरं सर्गगतं मयेरितम् ।
कांडानि यस्मिन्नव कीर्तितानि ते हे विष्णुदासाघहरं मनोहरम् ॥६०॥
दिने दिने पापचयान्प्रकुर्वन्नरः पठेत् श्लोकमपीह भक्त्या ।
विमुक्तसर्वाघचयः प्रयाति रामस्य सालोक्यमनन्यलभ्यम् ॥६१॥
आनन्दरामायणमेतदुत्तमं ये रामदासस्य मुखेन कीर्तितम् ।
श्रीराघवेणैव जनाघनाशनं नानाचरित्रैर्वरकौतुकैर्युतम् ॥६२॥
धन्यः स वाल्मीकिमुनिः कवीश्वरो रामायणं वै शतकोटिसंमितम् ।
कृतं पुरा येन सविस्तरं शुभं यस्माच्च सारं कथितं मया तव ॥६३॥
आनन्दरामायणमेतदुत्तमं श्रीजानकीक्रीडनकौतुकैर्युतम् ।
शृण्वन्ति गायन्ति वदन्ति वाऽपरान्कुर्वन्ति पारायणमादराच्च ये ॥६४॥
लभंति पुत्रानतिबुद्धिमत्तरान्स्त्रीश्चापि पौत्रान्परमान्मनोहरान् ।
धनानि धान्यानि पशूंश्च मानवाः श्रीरामचन्द्रस्य पदं प्रयांति ते ॥६५॥
आनन्दसंज्ञं पठतश्च नित्यं श्रोतुश्च भक्त्या लिखितुश्च रामः ।
अतिप्रसन्नश्च सदा समीपे सीतासमेतः श्रियमातनोति ॥६६॥
आनन्दरामायणजाह्नवीयं पापापहंत्री मलिनस्य जंतोः ।
आनन्दरामायणकामधेनुस्त्वियं जनानामतिकामदोग्ध्री ॥६७॥
रामायणं जनमनोहरमादिकाव्यं ब्रह्मादिभिः सुरवरैरपि संस्तुतं च ।
श्रद्धान्वितः पठति शृणुयात्स नित्यं विष्णोः प्रयाति सदनं स विशुद्धदेहः ॥६८॥
नवोत्तरशतैः सर्गै रामकीर्तनमालिकाम् । कृत्वा कण्ठे सुखं तिष्ठ शिष्येमां त्वं मयोदिताम् ॥६९॥

श्रीशिव उवाच

आनन्दरामचरितमिदं स्वीयगुरोर्मुखात् । श्रुत्वा स विष्णुदासस्तं ननामार्च्य पुनः पुनः ॥७०॥

प्रकार लोगोंको चाहिए कि शुभाशुभ फल जानना हो तो इस शकुनसे जान लें। हे शिष्य ! तुमने हमसे जो कुछ पूछा, वह मैंने बतलाया ॥ ५९ ॥ इस तरह हमने तुमको एक सौ नौ सर्गोंवाली यह उत्तम रामायण सुनायी। इसमें समस्त पापोंको हरनेवाले नौ कांड कहे गये हैं ॥ ६० ॥ दिनों दिन पाप करनेवाला मनुष्य भी यदि इस रामायणके एक श्लोकका भी पाठ करता है तो उसके सब पाप नष्ट हो जाते हैं और वह रामके चरणोंकी सालोक्य मुक्ति प्राप्त करता है ॥ ६१ ॥ इस आनन्दरामायणको श्रीरामदासने सुनाया है, जिसमें रामचन्द्रजी-की अनेक कौतुकमयी कथायें वर्णित हैं ॥ ६२ ॥ कवीश्वर वाल्मीकि ऋषि धन्य हैं कि जिन्होंने सौ करोड़ श्लोकोंमें विस्तारपूर्वक रामचरितका वर्णन किया है। उसीका सारांश मैंने तुम्हें सुनाया है ॥ ६३ ॥ जो लोग श्रीसीताजीकी क्रीडाओंसे युक्त इस आनन्दरामायणका सादर श्रवण और गायन करते अथवा औरोंको सुनाते हैं, वे बड़े बुद्धिमान् लोग पुत्र, स्त्री, विशाल वैभव, अन्न तथा उत्तम पशुओंको प्राप्त करते हैं और अन्तमें रामचन्द्रजीके चरणोंको प्राप्त होते हैं ॥ ६४ ॥ ६५ ॥ जो प्राणी नित्य इस आनन्दरामायणका पाठ करते, सुनते अथवा लिखते हैं। उनपर रामचन्द्र परम प्रसन्न होकर सीताके साथ उनके हृदयमें विराजमान रहते हुए सब तरहसे उनका कल्याण करते हैं ॥ ६६ ॥ यह आनन्दरामायणरूपिणी गङ्गा पापियोंके समस्त पाप हरती है और आनन्दरामायणरूपिणी यह कामधेनु भक्तोंकी सब कामना पूर्ण करती है ॥ ६७ ॥ यह आनन्दरामायण अति मनोहर और ब्रह्मादि देवताओंसे भी संस्तुत है। जो श्रद्धापूर्वक इसका पाठ करते हैं, वे लोग विशुद्धकाय होकर अन्तमें विष्णुभगवान्के लोकको पाते हैं। हे शिष्य ! एक सौ नौ सर्गोंवाली इस रामकीर्त्तनरूपिणी मालाको धारण करके तुम जहाँ चाहो, सुखसे रहो ॥ ६८ ॥ ६९ ॥ श्रीशिवजी बोले—अपने गुरु श्रीरामदासके मुखसे इस

रामदासः स्वशिष्यायानंदरामायणं प्रिये । एवमुक्त्वा मुनिः संध्यां कर्तुं गोदां गमिष्यति ॥७१॥
एवं देवि तवाग्रेऽद्य मयाऽपि परिकीर्तितम् । आनन्दरामचरितं श्रवणात्पुण्यवर्द्धनम् ॥७२॥
रामकीर्तनमालायां मेरुस्थाने स्वयं महान् । सर्गो मया ते कथितः श्रवणान्मंगलप्रदः ॥७३॥

श्रीपार्वत्युवाच

यदा वाल्मीकिना देव कृतं रामायणं वरम् । तदा क्व रामदासः स संवादोऽस्मिंस्त्वयाऽकथि ॥७४॥
क्व तदा विष्णुदासोऽपि संशयो मेऽत्र जायते ।

श्रीशिव उवाच

त्रिकालया ज्ञानदृष्ट्या मुनिनाऽत्र कथांतरे ॥७५॥
उभयोर्भाविसंवादः सोऽपि पूर्वं प्रवर्णितः । यथा रामस्य चरितं रामात्पूर्वं प्रवर्णितम् ॥७६॥
संदेहोऽत्र त्वया नैव कार्यः पर्वतकन्यके । रामदासमुखेनैतद्राघवेणैव वर्णितम् ॥७७॥

आनन्दरामायणमादरेण श्रीरामचन्द्रेण मुनेर्मुखेन ।
तद्रामदासस्य मुदैव चोक्तं भक्तिप्रदं मुक्तिदमेतदत्र ॥७८॥
आनन्दरामायणमादरेण पुत्रे प्रजाते पठनीयमेतत् ।
विवाहकाले व्रतबन्धकाले श्राद्धे पठेत्पर्वणि मंगले च ॥७९॥
आनन्दरामायणमादरेण कारागृहस्थस्य विमुक्तये च ।
उत्पातशांत्यै भयनाशनाय प्रभोः कृपार्थं पठनीयमादरात् ॥८०॥
आनन्दरामायणमादरेण शृणोति वा श्रावयते च भक्त्या ।
स स्वीयकामानखिलानवाप्य वैकुंठलोकं खलु गच्छति स्वैः ॥८१॥
आनन्दरामायणतोऽधिकानि न संति तीर्थानि हरेः स्थलानि ।
क्षेत्राणि दानान्यपि पुण्यदानि तथा पुराणान्यथ कीर्तितानि ॥८२॥

प्रकार आनन्दरामायणको सुननेके बाद विष्णुदासने इस ग्रन्थका पूजन करके बारम्बार प्रणाम किया ॥७०॥ हे प्रिये ! रामदास अपने शिष्यको यह आनन्दरामायण सुनाकर सन्ध्या करनेके लिए गोदावरीके तटपर चले गये ॥ ७१ ॥ हे देवि ! जिस तरह रामदासने अपने शिष्यको यह आनन्दरामायण सुनायी थी । उसी तरह मैंने भी पुण्यवर्द्धक इस उत्तम रामचरित्रका वर्णन कर दिया है ॥ ७२ ॥ रामके गुणोंका गान करनेवाली अनेक ग्रंथमालायें हैं । उनमें यह आनन्दरामायण सुमेरुके समान विराजमान है । इस रामायणमें भी जो सर्गोंकी माला है, उसमें यह सर्ग सुमेरुकी तरह है । इसका श्रवण करनेसे सर्वथा मङ्गल होता है ॥ ७३ ॥ श्रीपार्वतीजीने कहा—हे देव ! जब श्रीवाल्मीकिजीने यह रामायण बनायी थी, तब रामदास और विष्णुदास कहाँ थे ? जिनका संवाद आपने मुझे सुनाया । यह मेरे हृदयमें एक महान् संदेह उत्पन्न हो गया है । श्रीशिवजी बोले—हे पार्वती ! वाल्मीकिजीने अपनी त्रिकालदर्शिनी दृष्टिसे इस भावी संवादको पहले ही जान लिया था । इसी कारण संवाद होनेके पहले ही उसका वर्णन कर दिया । जैसे उन्होंने रामजन्मसे पहले रामायण लिख दी थी । हे पर्वतकन्यके ! तुम इस विषयमें किसी प्रकारका संदेह न करो । रामदासके मुखसे साक्षात् रामचन्द्रजीने स्वयं इस चरित्रका वर्णन किया है । उन मुनिके मुखसे स्वयं रामचन्द्रजीने आदरपूर्वक इस रामायणको कहा है । इसीलिए यह इस संसारमें भुक्ति और मुक्ति देनेवाली वस्तु बन गयी है ॥ ७४-७८ ॥ लोगोंको चाहिए कि पुत्र होनेपर, विवाहमें, यज्ञोपवीतमें, श्राद्धमें तथा किसी मङ्गलमय कार्यके समय आनन्दरामायणका पाठ अवश्य करें ॥ ७९ ॥ यदि कोई मनुष्य कारागारमें हो और उसे छुड़ानेकी आवश्यकता आ पड़े अथवा किसी उत्पात तथा भयको शांत करना हो अथवा भगवान्‌की कृपा प्राप्त करनी हो तो आदरपूर्वक इसका पाठ करना चाहिए ॥ ८० ॥ जो मनुष्य आनन्दरामायणका आदरपूर्वक पाठ करते या सुनते-सुनाते हैं, वे अपनी समस्त कामनायें पूर्ण करके अन्तमें वैकुण्ठलोकको जाते हैं ॥ ८१ ॥ आनन्दरामायणसे बढ़कर तीर्थ, भगवन्मन्दिर, क्षेत्र, दान तथा पुराण

आनन्दरामायणमेतदुत्तमं प्रोक्तं मया ते गिरिजे सविस्तरम् ।
त्वं चिंतयस्वाघहरं निरन्तरं मनोहरं लप्स्यसि राघवे मतिम् ॥८३॥

आदौ हत्वा दशास्यं द्विजवचनगुरुत्वेन यात्राश्च यज्ञान्
कृत्वा भुक्त्वातिभोगानवनितलविशंतीं गृहीत्वाऽथ सीताम् ।
लब्ध्वा नानास्नुषास्त्वास्त्ववनितलगतान्पार्थिवादींश्च जित्वा
कृत्वा नानोपदेशान् गजपुरनिकटे स्त्रीयलोकं जगाम ॥८४॥

वामे भूमिसुता पुरस्तु हनुमान्पृष्ठे सुमित्रासुतः
शत्रुघ्नो भरतश्च पार्श्वदलयोर्वाय्व्यकोणादिषु ।
सुग्रीवश्च विभीषणश्च युवराट् तारासुतो जाम्बवान्
मध्ये नीलसरोजकोमलरुचिं रामं भजे श्यामलम् ॥८५॥

आनन्दरामायणहारकोपमं ये पूर्णकाण्डं चरमं नरोत्तमाः ।
पठंति शृण्वंति हरेः परं पदं गच्छंति पूर्णेप्सितमालभंति ते ॥८६॥

आनन्दरामायणमेतदुत्तमं जप्यं पवित्रं श्रवणीयमादरात् ।
यन्मङ्गलानामपि मङ्गलप्रदं स्मरामि नित्यं प्रणमामि सादरम् ॥८७॥

इति श्रीशतकोटिरामचरितांतर्गते श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये पूर्णकाण्डे उमामहेश्वर-संवादे तथा रामदासविष्णुदाससंवादे ग्रंथफलश्रुतिर्नाम नवमः सर्गः ॥ ९ ॥

आदिका श्रवण, इनमेंसे एक भी नहीं है ॥ ८२ ॥ हे गिरिजे ! मैंने विस्तारपूर्वक यह उत्तम आनन्द-रामायण तुम्हें सुना दिया। तुम इस पापापहारी चरित्रका निरन्तर मनन किया करो। ऐसा करनेसे तुम्हें सुन्दर भगवद्भक्ति प्राप्त होगी और तुम्हारी बुद्धि रामकी ओर दौड़ पड़ेगी ॥ ८३ ॥ रामने पहले रावणका वध किया। फिर ब्राह्मणके वचनका सम्मान करते हुए तीर्थोंकी यात्रायें कीं और बहुतसे यज्ञ किये। फिर विविध प्रकारके भोगोंका भोग करके पातालमें जाती हुई सीताको उबारा। तदनन्तर पृथ्वीतलके अनेक राजाओंको जीतकर बहुत-सी पतोहुएँ लाये। तत्पश्चात् लोगोंको विविध प्रकारका उपदेश देकर वे हस्तिनापुरीके समीप गंगातटसे अपने परम धामको चले गये ॥ ८४ ॥ जिन रामचन्द्रजीके वाम भागमें सीता, आगे हनुमान्‌जी, पीछे लक्ष्मण, शत्रुघ्न तथा भरत, दायें-बायें एवं वायव्य आदि कोणोंमें सुग्रीव, विभीषण, अङ्गद तथा जाम्बवान् विराजमान हैं। उन सबके मध्यमें नीलकमलकी नाईं सुशोभित श्यामवर्ण श्रीरामचन्द्रजीका मैं भजन करता हूँ ॥ ८५ ॥ जो लोग हारकी भाँति सुन्दर इस अन्तिम पूर्णकाण्डका पाठ करते या सुनते है, वे परम पदको प्राप्त होते हैं और उनकी सब कामनायें पूर्ण हो जाती हैं ॥ ८६ ॥ लोगोंको चाहिए कि इस पवित्र आनन्दरामायणका आदरपूर्वक कीर्तन तथा श्रवण किया करें। क्योंकि यह मङ्गलका भी मङ्गल-दाता है। इसी कारण मैं तो नित्य इसका आदरपूर्वक स्मरण और नमन करता हूँ ॥ ८७ ॥ इति श्रीशतकोटि-रामचरितान्तर्गते श्रीमदानन्दरामायणे गोण्डामण्डलान्तर्गतसिसई (टिकरिया) ग्रामनिवासि पं० रामदत्तात्मज पं० रामतेजपाण्डेयकृत 'ज्योत्स्ना' भाषाटीकासहिते पूर्णकाण्डे नवमः सर्गः ॥ ९ ॥

॥ इति पूर्णकाण्डं सम्पूर्णम् ॥ ९ ॥

श्रीरामचन्द्रार्पणमस्तु

समाप्तोऽयं ग्रन्थः

6957

[illegible]

S. N. SARKAR